Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

০৪০৫৭।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080191

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

~~701~~

1943

080191

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] दीपंकरकी तिब्बत यात्रा [श्री मणीन्द्रभूषण गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गए हैं। इस तरह यह बात प्रायः हज़ार बरस पहले ही प्रदिपादित हो गई थी।

रस और साहित्यकी इस निगूढ़ शक्तिको वैदिक ऋषियोंने भी अनुभव किया था। इसीलिए अथर्वांगिरस ऋषि समग्र चित्तको एक करने जाकर सरस्वतीके शरणापन्न हुए—'ओते मे द्यावा पृथिवी ओता देवी सरस्वती।'—द्यौ और पृथिवी मुझमें अन्तर्व्याप्त हैं, देवी सरस्वती मुझमें अन्तर्व्याप्त हैं—अर्थात् प्रत्येकके अन्तरमें निखिल जगत् एवं सरस्वती अन्तर्व्याप्त हैं। इसीसे हृदय-हृदयके भीतर सरस्वती द्वारा ही विश्व-योग सम्भव होता है।

अर्थात्—समझता नहीं हूँ, इसीसे जो समझते हैं, उन कवियोंके निकट जिज्ञासा करता हूँ; नहीं जानता, इसीसे जो सब कवि जानते हैं, उनके निकट जिज्ञासा करता हूँ।

ये कवि ही जगत्का सार-तत्त्व जानते हैं, वही सत्य मनुष्यके अन्तरमें रस-रूपसे विराजमान है। वे ही विश्व-चित्तको पुकारकर सबके हृदयमें ऐक्य और योग संचार करनेमें समर्थ हैं। ऋषि जमदग्नि अग्नि-आवाहनके समय कविके सम्बन्धमें इसीलिए कहते हैं—'सब मित्रोंसे कहीं अधिक तुम मित्र हो, कवि हो, ज्ञानी हो; तुम्हारी दृष्टि अग्रवर्ती है और वही दृष्टि तुम अन्यको देनेमें भी समर्थ हो—अर्थात [illegible]

श्री मैथिलीशरण गुप्त

धार न धरो कृपाण में।
पीती है रस नहीं, रुधिर ही
किरण फूटकर बाण में।
धार न धरो कृपाण में।

चिनगारियाँ न छोड़ो आहा,
संघर्षण कर शाण में,
इस प्रकाश में ही जीवन तो
अन्धकार है प्राण में।
धार न धरो कृपाण में।

चमके नहीं कृपाण तुम्हारी,
बजे न मृत्यु विषाण में,
रुको, दमकती हुई दामिनी,
टूट न पड़े प्रयाण में।
धार न धरो कृपाण में।

मनुज, जलाओ न वह नरक की
ज्वाला इस परिमाण में,
बुझा सकें न तुम्हारे आँसू,
जिसे लोक-कल्याण में।
धार न धरो कृपाण में।

डरो, नाश न करो औरों का,
तुम अपने निर्माण में,
आग लगाकर लखो न कौतुक,
भूले हो किस भाण में।
धार न धरो कृपाण में।

सुनो, सत्य भी मर्यादित है
नूतन और पुराण में,
रक्त दीप्ति के लिए पुरुष क्या
परिणत हो पाषाण में?
धार न धरो कृपाण में।

अथवा उस जीवन में ही क्या,
घृणा भरे जो घ्राण में,
मृग-मरीचिका की आभा से,
भला तिमिर ही त्राण में।
धार न धरो कृपाण में।

यह अगिया वेताल, न भूलो
इसके प्रभा-प्रमाण में,
जाने दो मिथ्या प्रकाश वह,
निरत रहो निर्वाण में।
धार न धरो कृपाण में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

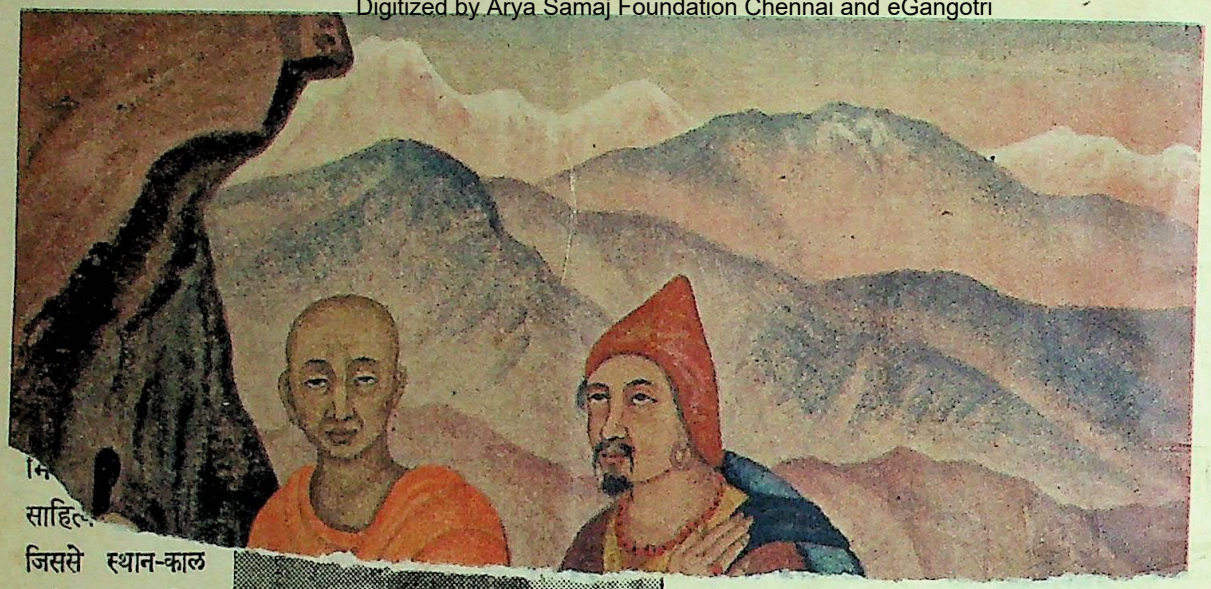

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन, शास्त्री ।

साहित्य जिससे स्थान-काल आदि द्वारा व्यवहित हृदय के सहित हृदयका मिलन घटित होता है, वही साहित्य क्यों नहीं होगा ? यह मैं ज़बरदस्ती स्वीकार नहीं कराना चाहता। नौ सौ वर्ष पूर्व आलंकारिक शिरोमणि भट्ट मम्मट भी हमारे हाथों यह सत्य दे गए हैं। अभिनय-नाट्यादि देखनेसे हमें जिस सुख-दुःखके भावकी अनुभूति होती है, वह क्या एकान्त हमारा ही सुख-दुःख है अथवा दूसरेका ? मम्मट भट्ट कहते हैं :—

ममैवैते शत्रोरेवैते न तटस्थस्यैवैते ;
न ममैवैते न शत्रोरेवैते न तटस्थस्यैवैते इति सम्बन्ध विशेष स्वीकार परिहार नियमानध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतेर् अभिव्यक्तः। (काव्यप्रकाश, ४ र्थ उल्लास)

—'ये सब भाव मेरे, मेरे शत्रुके अथवा तटस्थ किसीके हैं, या न मेरे, न मेरे शत्रुके और न तटस्थ किसीके हैं—यह समस्त संकीर्ण सम्बन्ध-विशेष स्वीकार अथवा परिहार यहाँ नहीं चलता। साहित्य-रसक्षेत्रमें जो भाव होता है, वह साधारण—समस्त सम्बन्धातीत—है।'

आगे चलकर मम्मट कहते हैं—'साधारण भावके बलसे उद्देश्य नहीं हो सकता।

उस रसको किस तरह समझाया जाय ? मम्मट भी उसे समझा न सके और केवल इतना ही कहकर रह गए कि 'हमारे सम्मुख सुर, अभिनय, वाक्य प्रभृतिके समन्वयसे यह रस मानो परिस्फुट होता है। यह मानो हमारे अन्तरमें प्रवेश कर जाता है, मानो सब ओरसे हमें अपने प्रेमालिंगनमें आबद्ध कर लेता है। उस समय मानो और सब विचार, वितर्क, विवेचना, उद्देश्य आदि तिरोहित हो जाते हैं, मानो उस समय एक प्रकारसे मुक्ति-स्वरूप ब्रह्मानन्दकी ही उपलब्धि होती है। यह रस अलौकिक चमत्कार करनेवाला है !' इस सम्पूर्ण विवेचनासे हमें ज्ञात होता है कि साहित्यका आनन्द समस्त सहृदयोंके हृदयमें एक अपूर्व आनन्द-रसका दान करता है, जिसे योग-रस कह सकते हैं। एक चित्तको इस प्रकार दूसरे चित्तके साथ रसानन्द द्वारा युक्त करनेके कारण ही वह वास्तवमें साहित्य कहलाता है।

पण्डित-मण्डलीमें आज प्रायः प्रश्न उठते हैं कि साहित्य द्वारा क्या-क्या किया जा सकता है। मम्मट भट्ट इसका उत्तर नौ सौ वर्ष पूर्व ही दे गए हैं। वह वेद्यान्तर सम्पर्कशून्य होता है—अर्थात् ज्ञान, विचार, उद्देश्य आदि उसका लक्ष्य नहीं है। वह एक अपरिमित भाव तथा हृदय-बन्धन द्वारा समस्त भेद-विभेद लुप्त कर देता है। साहित्यके विषयमें इससे बड़ी बात आज तक और किसने कही है ? उद्देश्य, विवेचना, सम्बन्ध आदिकी सीमा लाँघकर रस हमें आनन्दके सीमाहीन लोकमें मुक्ति देता है, इसीसे उसमें हम ब्रह्मानन्दका आभास पाते हैं। एक प्रकारसे यही रस हमारा मुक्तिदाता गुरु है। यह सब केवल मम्मटका उद्भावित सत्य नहीं है। उनसे भी पूर्व उनके गुरु—सार्वभौम आचार्य अभिनव गुप्तपाद—इस मतकी स्थापना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर गए हैं। इस तरह यह बात प्रायः हज़ार बरस पहले ही प्रदिपादित हो गई थी।

रस और साहित्यकी इस निगूढ़ शक्तिको वैदिक ऋषियोंने भी अनुभव किया था। इसीलिए अथर्वांगिरस ऋषि समग्र चित्तको एक करने जाकर सरस्वतीके शरणापन्न हुए—'ओते मे द्यावा पृथिवी ओता देवी सरस्वती।'—द्यौ और पृथिवी मुझमें अन्तर्व्याप्त हैं, देवी सरस्वती मुझमें अन्तर्व्याप्त हैं—अर्थात् प्रत्येकके अन्तरमें निखिल जगत् एवं सरस्वती अन्तर्व्याप्त हैं। इसीसे हृदय-हृदयके भीतर सरस्वती द्वारा ही विश्व-योग सम्भव होता है।

ऋषि शौनक कहते हैं :—

'यस्ते स्तनः शशयुर्योमयोभूर्
यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि
सरस्वती तमिह धातवे कः॥'

अर्थात्—हे सरस्वती, तुम्हारे जो निगूढ़ स्तन अपनी रसधारा द्वारा तुम्हारी सन्तानको पुष्ट करते हैं, जिसका आह्वान करते ही उत्तर पाया जाता है (सुहव), जो उदार दानशील है, जिसके द्वारा विश्वकी समग्र वरेण्य सम्पद तुम पोषण करती हो, उसीके रससे आज हमारे अन्तरमें ज्ञान-चेतना और जीवनके उपकरण परिपूर्ण कर दो!

ऋषि शन्ताति कहते हैं :—

'शिवा नः शन्तमा भव सुमृडीका सरस्वती
मा ते युयोम संदृशः।'

अर्थात्—हे सरस्वती, तुम हमारे लिए कल्याणतमा होओ, शोभन सुखप्रदा होओ, तुम्हारी समीचीन दृष्टिसे हम कभी भी बाहर न पड़ें!

मानवकी महिमा वर्णन करते हुए नारायण ऋषि कहते हैं—'मनुष्यका सब ऐश्वर्योंसे बड़ा ऐश्वर्य उसका ज्ञान है, संगीत और नृत्य है।'

'मेधां को असिन्नध्यौहत् को वाणं को नृतो दधौ॥'

अर्थात्—किसने उसके भीतर मेधाका संचार किया? किसने उसे संगीत और नृत्यका दान किया?

कवि जगत्के निगूढ़ रस—हृदयके गंभीरतम सत्य—की उपलब्धि करता है, इसीसे वह पूज्य है। इसीसे वैदिक ऋषि कहते हैं :—

'अचिकित्वां श्चिकितुषश्चिदत्र
कवीन पृच्छामि विद्वनो न विद्वान्॥'

अर्थात्—समझता नहीं हूँ, इसीसे जो समझते हैं, उन कवियोंके निकट जिज्ञासा करता हूँ; नहीं जानता, इसीसे जो सब कवि जानते हैं, उनके निकट जिज्ञासा करता हूँ।

ये कवि ही जगत्का सार-तत्त्व जानते हैं, वही सत्य मनुष्यके अन्तरमें रस-रूपसे विराजमान है। वे ही विश्व-चित्तको पुकारकर सबके हृदयमें ऐक्य और योग संचार करनेमें समर्थ हैं। ऋषि जमदग्नि अग्नि-आवाहनके समय कविके सम्बन्धमें इसीलिए कहते हैं—'सब मित्रोंसे कहीं अधिक तुम मित्र हो, कवि हो, ज्ञानी हो; तुम्हारी दृष्टि अग्रवर्ती है और वही दृष्टि तुम अन्यको देनेमें भी समर्थ हो—अर्थात् तुम प्रचेता हो। तुम विश्व-चित्तके दूत हो। सबका तुम यहाँ आवाहन करो!' (आच वह मित्रमहश् चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः।)

कविका एक लक्षण अद्भुत भावसे एक मन्त्रमें कहा गया है—'अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्थानि पश्यसि।'—यहाँ रहते हुए तुम वहाँका रहस्य जानते हो, वहाँ रहते हुए तुम यहाँका मर्म देख पाते हो। अन्यत्र ऋषि कहते हैं—विचित्र रूप, दर्शनीय रूप और विश्व-दर्शन—इन तीन छन्दोंकी साधना कवि कर गए हैं। यही तीन छन्द जलवायु और औषधि हैं। इस भुवनमें ही छन्दकी यह त्रिवेणी प्रवाहित है :—

'त्रीणि छन्दांसि कवयो वियेतिरे
पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आयोवाता ओषधयस्
तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि॥'

कविकी यह शक्ति भगवद्दत्त होती है। साधना द्वारा इसे जाग्रत करना होता है। कवित्वका झूठ-मूठ भान करनेसे नहीं चल सकता :—

'कवीयमानः क इह प्रवोचद्।
देवं मनः कुतो अधिप्रजातम्॥'

अर्थात्—कवित्वका आडम्बर-मात्र करनेवाले इन रहस्योंका कैसे प्रकाश कर सकते हैं? कहाँसे वह दिव्य मानस जन्म लाभ करेगा?

कवि जिस ब्रह्मवाणीका उच्चारण करते हैं, वही चराचर विश्वकी प्राण-वस्तु है। पृथिवी-द्युलोकमें कहीं वह प्राण-रस नहीं है, जिसके बलपर तरु-लता नित्य नवजीवन द्वारा जीवन्त हैं :—

'इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति विरुधः॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपूर्वके द्वारा उच्छ्वसित वाणी ही इस रहस्यको ठीक-ठीक व्यक्त करती है—'अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।' कवि इसीसे कालातीत होता है—चिन्मय अमृत-रससे वह अमर हो जाता है। इसीसे ऋषियोंने कहा है, कवि उस रथपर आरोहण करते हैं, विश्वब्रह्माण्ड जिसके चक्र हैं—सहस्राक्ष जरा-रहित बहुप्राणी-बीजयुक्त सप्तरश्मि काल-अश्व वह रथ अनाद्यन्त चलता रहता है। सच्चे कवि इसीपर आसीन होते हैं और काल-अश्व द्वारा उसे चलाकर अमृत-लोककी जय-यात्रा करते हैं :—

'कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्
तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥'

किन्तु सवाल यह है कि आखिर रस और सौन्दर्यका प्रयोजन ही क्या है? प्रयोजनके अतीत है रसका यह जगत्, इसे हमें खूब भली प्रकार ग्रहण करना होगा। ग्रीक तत्त्वज्ञोंसे लेकर वर्त्तमान यूरोपके मनीषी सौन्दर्यके इस प्रयोजनातीत साधारण लक्षणकी चर्चा कर गए हैं। काव्य, अभिनय, चित्र, संगीत प्रभृतिसे क्या क्षुधा मिटती है, शीत कटती है? यह रहस्य वैदिक ऋषिको अच्छी तरह ज्ञात था। अथर्ववेदके एकादश काण्डका नवम् सूक्त इसीलिए 'उच्छिष्ट' अर्थात् प्रयोजनसे अतिरिक्त है। कला, साहित्य, संस्कृतिका सभी कुछ उसमें उच्छिष्ट है। यहाँ तक कि ऋक्-साम-यजु—ये समस्त उच्छिष्ट हैं। उद्गाता और प्रस्तोताके गान भी उच्छिष्ट हैं। स्तववन्दना, संगीतकी हिंकार, स्वर-लहरी, सामगानका स्वर-सामंजस्य—ये सभी उच्छिष्ट हैं। ऋषि कहते हैं, यह समस्त उच्छिष्ट अर्थात् ऐश्वर्य मुझमें आहित हो :—

'ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्।
हिंकार उच्छिष्टे स्वरं साम्नो मेद्रिश्च तन्मयि॥'

केवल वेदादि ही नहीं, आनन्द, मोद, प्रमोद एवं अभिमोदयुक्त सभी कुछ उच्छिष्टसे उत्पन्न है। दिव्यलोकमें दीप्यमान द्युलोकाश्रित सभी कुछ उच्छिष्ट है :—

'आनन्दा मोदाः प्रमुदोभीमोदमुदश्च ये।
उच्छिष्टाज्जिज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥'

रस और सौन्दर्य प्रयोजनसे अतीत होनेपर भी आज तक टिके क्यों हैं? वहाँ साधक कहते हैं—'सौन्दर्य ही अनुनय है। अभ्यासवश हमारा चित्त उदासीन होता है। इसीसे हमारे निकट अपनी विनय जताता है—हमारी ओर भी ज़रा ताक लो; हम सारी सुषमा लेकर अनुरोध कर रहे हैं।' इसीसे विश्व-प्रकृतिके समस्त सौन्दर्यमें, पुष्पके वर्णमें, उषा-संध्याके अपूर्व रागमें, गिरि-सागरकी गंभीर नीलिमामें विधाता हमें अनुनयपूर्वक पुकारते हैं—'ज़रा-सा देख लो, ज़रा-सा देख लो।' तब हमारा उदासीन मन भी सचेतन होकर ताकता है। किन्तु यदि न ताकें, तब नाना ऋतुएँ हैं, उनके नाना महोत्सवोंमें सौन्दर्यका महासमारोह है, जिससे हम ताक सकें, पल-भर देख सकें।

यही अनुनय भाषामें भी छन्द, सुर आदि द्वारा अपने नाना उपचार ले आता है। इस रस, छन्द, सुर द्वारा पुकारकर हृदयका जो योग किया जाता है, उसीका नाम 'साहित्य' है। प्रतिदिन सन्तानका सौन्दर्य देखते हुए भी पिता-माताकी अभ्यस्त दृष्टि जैसे सौन्दर्यको भूल जाती है, चूक जाती है। विवाहके दिन अलका-तिलका पत्रलेखामें कन्यापुत्रका सजा हुआ मुख देखकर पिता-माता भी उस खोए हुए सौन्दर्यको देख पाते हैं और मानो हठात् उनके मुखसे निकल पड़ता है—'वही तो! इसका मुख इतना सुन्दर था!'

साहित्य-रसकी पुकार सुनकर जब हमारा चित्त सर्वचित्तके सहित मिलकर एक होता है, तभी हम नवदृष्टि, नवबल, नव-शक्ति लाभ करते हैं। प्रति विन्दु सागरकी ओर जानेके लिए उन्मुख है; किन्तु केवल एक ही बूँद यदि अकेली सिन्धु-यात्रा करने चले, तब रास्तेमें ही अपना अस्तित्व खो बैठेगी। इसीसे साधक रजब कह गए हैं :—

'प्रतीत अकेली व्यर्थ महासिन्ध विरही दिल होय।
बूँद पुकारै बूँदको गति मिलै सँजोय॥
अकेल बूँद पहुँचै नहीं सूखै पंथ जीव जोर।
पंथ भरभरे एक होय दरस दया प्रभु तोर॥'

चाबुक

श्री तेजनारायण काक, एम० ए०

'चाबुक! जब तू सड़ाकसे किसीकी पीठपर पड़ता है, तो क्या तुझे स्वयं पीड़ा नहीं होती?'

'दूसरेको पीड़ा पहुँचानेके आनन्दमें मैं अपनी पीड़ा भूल जाता हूँ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टिमें भगवानका ज्यामिति

कुमारी सुप्ति सिन्हा, एम० ए०, डी० टी०

वैज्ञानिकोंने सृष्टिकी महानतमसे लेकर लघुतम, सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओंके तत्त्वको समझनेकी चेष्टा की है। किसी भी वस्तुका अन्वेषण अथवा पूर्ण ज्ञान अभी पूर्ण नहीं हुआ। जिसका जितना गूढ़ अध्ययन किया जाता है, उसमें प्रत्येक बार नूतन रहस्यका आभास पाया जाता है। इसी कारण प्रत्येक वस्तुका गूढ़ अध्ययन हमें इस परिणामपर पहुँचाता है कि एक अलौकिक शक्ति समस्त भूमण्डलमें व्याप्त है। उस शक्तिको हम किसी भी रूपमें देख सकते हैं। जो जिस दृष्टिकोणसे उसे देखेगा, वह उसके उसी रूपमें एक अपरूप, अवर्णनीय अलौकिकताका निरूपण पायगा। बड़े-बड़े वैज्ञानिक, दार्शनिक, गणितज्ञ आदि उसी शक्तिके गूढ़तम स्तर तक पहुँचनेकी यथासाध्य चेष्टा करते हैं; फिर भी यह मानना पड़ता है कि सूक्ष्मसे सूक्ष्म दृष्टि तथा बुद्धि द्वारा हम उस अपार शक्तिका सम्पूर्ण परिचय नहीं पाते। विश्वमें रमी हुई प्रत्येक वस्तुमें, चाहे वह स्थावर हो अथवा जंगम, निर्जीव हो अथवा सजीव, अतिसूक्ष्म चक्षु-अगोचर हो अथवा अति महान, एक सुन्दर समन्वय, सौष्ठव, चित्रांकन तथा अद्भुत रेखा-प्रदर्शन है। इसीको अन्य शब्दोंमें हम भगवानकी अलौकिक ज्यामिति कह सकते हैं।

जगत्में सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु है परमाणु। वह इतना क्षुद्र है कि हम अपने चर्मचक्षु द्वारा उसे देख नहीं सकते। यदि तिग्मतम अनुवीक्षण सौगुना तिग्मतम भी हो, तब भी उससे परमाणु दृष्टिगोचर नहीं होगा। परन्तु चर्मचक्षुके ऊपर दिव्यचक्षु है, जिसको अंगरेज़ीमें clairvoyance कहते हैं। योग-बल द्वारा दिव्यदृष्टि उन्मेष करनेमें समर्थ होनेपर ही हम उस परमाणुको देख सकते हैं।

परमाणुका क्या अवयव है? बहुत दिनों तक वैज्ञानिक सोचते थे कि परमाणु निरावयव है, नित्य-वस्तु है। वे कहते थे कि स्वर्ण, रौप्य प्रभृति मूलभूतोंका परमाणु सदा स्वर्ण, रौप्य ही है; वही था और वही रहेगा। इसी कारण उन्होंने उसका नाम दिया था a-tom—अर्थात् जो अछेद्य है। इसी सिलसिलेमें अध्यापक डलवेयरने १८९९ ई०में कहा था—'रासायनिक शास्त्रज्ञ इस परिणामपर पहुँचे हैं कि प्रत्येक वस्तु अन्तमें परमाणुमें ही परिणत होती है, जो कि अछेद्य हैं।'[1] फिर भी किसी आविष्कारकके मनमें एक आशामय कल्पनाकी झलक दिखाई दी थी कि शायद यह सब भिन्न जातीय मूलभूत एक अद्वितीय उपादानसे गठित है; या शायद किसी चरमभूतका परिणाम-मात्र है। मनीषी सर विलियम क्रुक्सने इस स्वप्नको वास्तविकतामें परिणत कर दिखाया और यह सिद्ध कर दिया कि रसायनोक्त सारे मूलभूत वस्तुतः मूलभूत नहीं हैं। वे 'प्रोटाइल' नामक एक चरमभूतके विकार-मात्र हैं। यही 'प्रोटाइल' जगत्का निर्विशेष (होमोजीनियस) चरम उपादान है। इसीके संयोग-संहननसे विश्वकी सृष्टि-रचना हुई। वे यह भी प्रतिपन्न करते हैं कि वैज्ञानिक जिसको नित्य अखण्ड परमाणु सोचते हैं, वे नित्य नहीं हैं और न अखण्ड ही। यहाँ तक कि वे परस्पर स्वतन्त्र भी नहीं हैं; किन्तु जैसे ईंटोंके समूहको भिन्न-भिन्न प्रकारसे सुसज्जित करनेसे नाना विध अट्टालिकाओंका निर्माण किया जा सकता है, उसी प्रकार इस प्रोटाइल-रूप मूल परमाणुके संहनन-भेदमें रसायनके परिचित विभिन्न परमाणु-समूहकी उत्पत्ति हुई है। इसके बाद परमाणुके अवयवके सम्बन्धमें अनेक परीक्षाएँ हुईं, अनेकानेक गवेषणाएँ हुईं और क्रुक्सके इस मतको वैज्ञानिकोंने स्थिर सिद्धान्त कहकर मान लिया।

क्या प्राच्य, क्या पाश्चात्य दोनोंमें यह बात अविसंवादित है कि आदिमें यह जगत् असद या अव्यकृत था। 'तवेदमं तहीं अव्याकृतम् आसीत।' तथा 'असद वा इदमग्र आसीत।' पाश्चात्य विद्वान कहते हैं, जगत्को वे अव्याकृत, अव्यक्त, अविशेष तथा आदिम अवस्थासे निकलकर व्याकृत, व्यक्त, विशिष्ट विश्वमें विकसित मानते हैं। भारतमें यह विचार अति प्राचीन था।

'अविशेषात विशेषारम्भ।' (सांख्य-सूत्र)

'अव्यक्तात व्यक्तयः सर्वाः।' (गीता)

वैज्ञानिकोंका मत है कि आदिमें केवल Uniform Ether of Space या प्रोटाइल-मात्र था। वैदिक ऋषियोंने इसको 'अप्रकेतं सलिलं' (ऋग्वेद) कहा था। एक दिन उस ईथर-सागरमें एक अव्यक्त शक्ति द्वारा मथित होनेपर अगण्य बुलबुले उत्पन्न हुए थे। इस भागवती शक्तिको मादाम ब्लावास्कीने 'फोहत' (Fohat) कहा था। यह परमाणु नहीं है; परम-परमाणु है, जिसे electron अथवा तड़िताणु कह सकते हैं—अर्थात् निर्विशेष ईथर-बिन्दुका किंचित् सविशेष-मात्र। यह तड़िताणु दो प्रकारके हैं—पुंग (Positive) तथा मादा (Negative)। इन दोनोंको 'प्रोटन' (Proton) तथा 'इयन' (Eon) भी कहते हैं। इन्हींके संहनन-भेदसे भिन्न-भिन्न जातीय परमाणु (आक्सीजन, नाइट्रोजन, गन्धक

1. Matter, Ether and Motion, P. 9-10.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ण, चाँदी इत्यादि) की सृष्टी हुई है। इसी प्रकार प्रोटाइल द्वारा इन सब परमाणुओंकी उत्पत्ति होनेसे उनपर ताप, वेग इत्यादि भौतिक शक्तियोंकी कृपा द्वारा संयोगने ही इस विविध, विचित्र, विशाल, निरंग जगत् (Inorganic universe) की रचना की है। इसीको स्थावर-सृष्टि कहते हैं।

अब यह प्रश्न होता है कि ईथर-विन्दु किस प्रकार नाना रूपसे सज्जित होकर रासायनिक परमाणु गठित करते हैं—अस्त-व्यस्त, असम्बद्ध भावसे अथवा किसी निर्दिष्ट नियमित भावसे ? ध्यानसे लक्ष्य करनेपर उस स्थानमें भी हम भगवानकी अद्भुत ज्यामितिका परिचय पाते हैं। यह ज्यामिति-प्रकल्प (Geometrical designs) हमारे चर्मचक्षुसे अगोचर हैं। प्राचीन ग्रीक विद्वान इन्हें Platonic solids कहते थे।

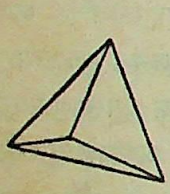

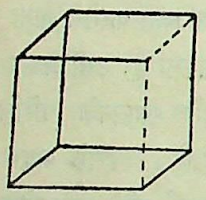

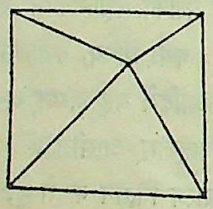

सांख्यमें 'तन्मात्रा'का जो रूप वर्णित है, यह उसीका अनुरूप है। यह हम देख चुके हैं कि परमाणु तिग्मतम अनुवीक्षण-यन्त्र द्वारा देखनेपर भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकता, तथापि किसी वैज्ञानिकने अध्ययन द्वारा इसके रूपकी कल्पना की है। इसी कल्पित रूपका चित्र ऊपर दिया जा रहा है। रेडियमके परमाणुको ध्यानसे देखनेपर विदित होगा कि इसके केन्द्र-स्थलमें 'प्रोटन'-समष्टि है एवं चारों ओर ८८ 'इलेक्ट्रन' अपने-अपने कक्षमें घूम रहे हैं। चित्रको ध्यानसे देखनेपर पता चलेगा कि यह ज्यामितिका ही चमत्कारपूर्ण उदाहरण है।

परमाणुके रूपकी कल्पना न करके उसको प्रत्यक्ष करनेका क्या कोई उपाय नहीं है ? महर्षि पतंजलिका कहना है कि योग द्वारा दिव्यदृष्टिके तृतीय नयनके समक्ष ही परमाणु अपनी मूर्त्ति प्रकट करता है। यहाँ एक अत्यन्त अद्भुत तथा रोचक घटनाका वर्णन करना अनुचित न होगा। कुछ वर्ष पूर्व श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा श्री लेडबीटरने योग-साधना द्वारा दिव्यदृष्टिका उन्मेषकर परमाणुके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष गवेषणा की थी। उसको उन्होंने 'गुह्य रसायन' (Occult chemistry) नाम दिया था। उनके ग्रन्थमें दी गईं योग-दृष्टि-अंकित मूर्त्तियोंका सूक्ष्म अध्ययन करनेपर विश्व-निर्माताकी अद्भुत ज्यामितिका परिचय पा विस्मय-विमुग्ध होना पड़ता है। इन दोनोंने उसी साधना द्वारा दो अपरिज्ञात परमाणुओंका सन्धान पाया है। वैज्ञानिकोंने जो द्विजातीय परमाणुओंका आविष्कार किया है, उन्हींमें इन दोनोंकी भी गणना की है। इसीसे इनकी दिव्य-दृष्टिकी सत्यता तथा विश्वसनीयता प्रमाणित होती है। कहनेका तात्पर्य यह है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि-अगोचर वैज्ञानिक ज्ञान तथा शक्तिके भी परे जो वस्तुओंकी सज्जा है, उसमें भी अद्भुत, मुग्धकारी चित्रांकन प्रदर्शित है।

अब अलग-अलग परमाणुओंको देखा जाय—जैसे 'हाइड्रोजन'। हम देखते हैं कि सब परमाणु ही सावयव हैं—अर्थात् प्रत्येक परमाणु पुंग (प्रोटन), मादा (इयन) तथा नपुंसक (न्यूट्रन) तड़ितानु द्वारा निर्मित है। कुल ९२ प्रकारके परमाणु अभी तक ज्ञात हैं। उनमें से 'हाइड्रोजन' परमाणु सबसे छोटा है। हम जिसको 'परम-परमाणु' कहते हैं, उसीके १८ परम-परमाणुओंके समन्वयसे 'हाइड्रोजन' बना है। अनुपातके लिए देखिए कि 'प्लेटिनम'के परम-परमाणुओंकी संख्या ३५१४ है और उसका गुरुत्व 'हाइड्रोजन' से प्रायः २०० गुना अधिक है।

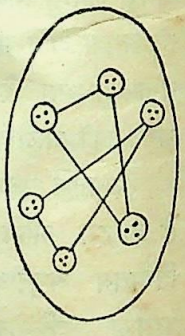

अब 'लिथियम' नामक परमाणुको लीजिए। १२८ परम-परमाणुओं द्वारा एक लिथियम परमाणुका अवयव है। नाइट्रोजन गैस हमारी अति ही परिचित है ; किन्तु क्या हम कभी सोचते हैं कि उसके भी अवयव-संस्थानमें आश्चर्यजनक विचित्रिता पाई जाती है ?

अब हम सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थोंको छोड़कर दूसरे दृष्टि-कोणसे विश्लेषण करनेकी चेष्टा करेंगे। इस विशाल विचित्र विश्वके विश्लेषणसे पता चलता है कि समस्त वस्तुओंको दो श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है—स्थावर और जंगम। स्थावर 'निरंग' (Inorganic) है और जंगम 'सांग' (Organic) है। ऊपर कहा जा चुका है कि कोई भी स्थावर पदार्थ ९२ प्रकारके मूलभूतके ज्यामितिक संयोग-संहनन द्वारा तथा भौतिक शक्तिके प्रकृत्य प्रभावसे रचित है। जंगमका द्विविध भेद पादप-उद्भिज है। जंगमके विश्लेषणसे देखा जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि प्रत्येक जंगम शरीर कोषाणु (cell)-समष्टि द्वारा गठित है।

पहले हम स्थावरको ही लें और देखें कि उसके खनिज पदार्थोंमें भगवानकी ज्यामिति कहाँ तक परिलक्षित है? सागर, नदी, आकाश, जल, स्थल, अन्तरिक्ष, धातु, शिला, क्षिति, वाष्प, सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि सब स्थावरके ही अन्तर्गत हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-समूह सब ही मण्डलाकार हैं तथा उनका कक्ष वृहत्ताकार है, अतएव ज्यामितिक है। सूर्यको केन्द्रकर मंगल, बुध, वृहस्पति इत्यादि नक्षत्र-मण्डल तथा पृथ्वीको केन्द्रकर चन्द्र—यहाँ तक कि धूमकेतु भी—अपने-अपने कक्षमें परिभ्रमण करते हैं। इन नक्षत्रोंसे भी दूर हैं तारे, उनसे भी दूर निहारिका-समूह तथा सुदूरतम तारक-राशि भी इसी सौर-मण्डलमें एक नियमित रूपसे अपने-अपने कक्षमें परिभ्रमण कर रहे हैं। कितने ही ऐसे भी तारे हैं, जो सबसे शक्तिमान दूरबीन द्वारा भी दृष्टिगोचर नहीं हो पाए हैं; पर अभिज्ञता द्वारा कहा जा सकता है कि सुदूरतम तारक-राशि भी किसी अलौकिक नियम द्वारा ही परिचालित है। अतएव नियमित कक्षका निर्माण करते हुए वे विश्वेश्वरकी अनुपम शक्ति, लीला तथा अद्वितीय अपार शक्तिका परिचय देते हैं। उनके अन्दर भी एक नियमित गति, एक सौष्ठव चित्रांकन पाया जाता है। निम्न चित्रपर दृष्टिपात करने मात्रसे ही पाठकोंको उसमें ज्यामितिका परिचय मिलेगा। और भी लक्ष करनेपर नदीके बीजि-हिल्लोलमें, समुद्र-तरंग-भंगमें, पर्वतके तुषारमय अनुपम

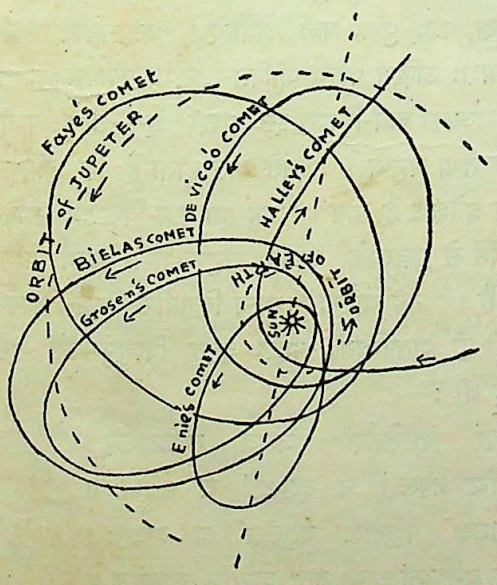

रम्य उत्तुंग शिखरोंमें एवं प्रान्तरके पुंजीभूत बालुका-स्तरमें—सर्वत्र ही नियमित समन्वय-चित्र मिलेंगे।

इससे भी अधिक ज्यामितिका सविशेष परिचय स्फटिकमें पाया जाता है। प्रायः तीन सौ वर्षसे पूर्व वैज्ञानिक बायेलने इस विषयमें कहा था—'जहाँ तक स्फटिकका सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृतिने एक साथ ही ज्यामिति तथा वर्ण-वैचित्र्यका खेल खेला है।'[२] इसी विषयमें श्रीयुत जिनराजदासका विचार है—'ऐसा कौन होगा, जिसने स्फटिकपर दृष्टिपात करनेके साथ ही साथ यह न देख लिया हो कि उनमें ज्यामितिक प्रकल्पकी कितनी पराकाष्ठा है? प्रत्येक स्फटिक मानो विश्वेश्वरकी अपनी रचना हो। स्फटिक-राज्य मानो दैविक मस्तिष्कसे निकला हुआ ज्यामितिक नियमोंका दर्पण है, जिसे कलाकार अनुभव करते हैं तथा गणितज्ञ आविष्कार करनेका प्रयत्न

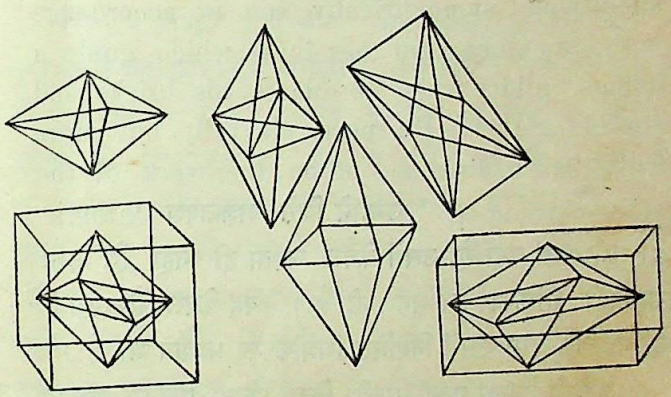

करते हैं।'[३] इसमें जो ज्यामितिक प्रकल्प है, उसे पाठक अध्यापक डेलवेयर द्वारा अंकित चित्रपर दृष्टिपात करते ही हृदयंगम कर सकेंगे। बालुका (रेत) स्फटिक अति साधारण स्फटिक है। इसके अन्दर भी ज्यामितिका प्रमाण पाया जाता है।

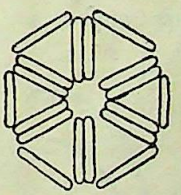

गर्मीमें हम सब बर्फ़ डालकर पानी पीते हैं; पर शायद ही यह कोई ध्यान देता होगा कि यह बर्फ़ स्फटिक है। अब हम कारखानोंमें बर्फ़ तैयार करते हैं। यहाँ तक कि हिमालय-

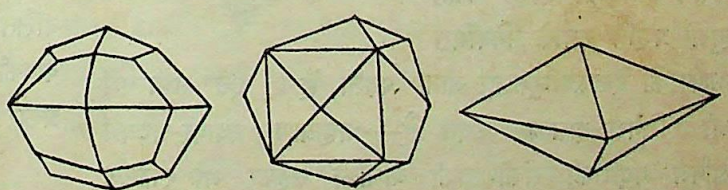

भ्रमणमें भी हम बर्फ़को पद्दलित करते हुए चलते हैं। इस प्रकार बर्फ़ हमारी अत्यन्त सुपरिचित वस्तु है। किन्तु पानी जमाकर जब बर्फ़ प्रस्तुत की जाती है, तब उसमें क्या ही

2. Boyle : Product chem. Prin. I, P. 49.
3. First Principles of Theosophy, P. 358-9.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत रेखांकन दृष्टिगोचर होता है, क्या हमने कभी उसपर विचार भी किया है? तुहिन-स्फटिककी अद्भुत ज्यामिति और भी विचित्र है। उसीका एक रोचक चित्र हम यहाँ दे रहे हैं। इस सम्बन्धके और-और चित्र इतनी सूक्ष्म रेखाओंवाले हैं कि लेखनी द्वारा उन्हें चित्रित करना असम्भव है। अध्यापक टिन्डलने बहुत समीक्षा-परीक्षा करनेके बाद इनको 'तुषार-पुष्प' कहा है। इस विषयमें उनकी विस्मयोक्ति यह है :—

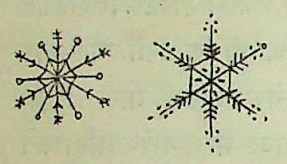

"Aton is thus added to atone, molecule to molecule, not boisterously or fortuitiously but silently and symmetrically and in accordance with laws more rigid than those which guide a human builder when he places his bricks and stones together. He speaks playfully, but more truly than he dreamed of on the work of the atomic architect."[४] उन्होंने जिसे अज्ञातवश 'atomic architect' कहा है, उसमें केवल जड़ता ही नहीं है, वरन भागवती शक्तिका प्रकाशन भी है। वह केवल सौन्दर्यमयी ही नहीं है, वरन उसमें नियमित चित्रांकनका प्रदर्शन भी है।

वर्त्तनमें जमता हुआ पानी किस प्रकार पंखका आकार धारण करता है, यहाँ हम उसके आलोक-चित्रकी प्रतिलिपि दे रहे हैं। यह फ़ोटोसे लिया हुआ है। आकाशसे जब तुषार-वृष्टि होती है, तब खिड़कियोंके शीशोंपर अपने-आप ऐसे हिम-चित्र अंकित हो जाते हैं। उनकी विचित्रता तथा ज्यामितिसे कोई भी विस्मय-विमुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। स्फटिकमें उत्तम मणि, हीरा, पन्ना, चुन्नी प्रभृति रत्नोंके नियमित आकारको देखकर मूक हो जाना पड़ता है। इस सम्बन्धमें श्री जिनराजदासका कथन है—'महाप्राण स्थावर-राज्यमें खनिज पदार्थकी संकीर्णताकी बाधाको सहकर भी स्फटिक ज्यामितिक आकारमें आत्म-प्रकाश करनेका अभ्यास करता है।'

वर्त्तमान युगमें वैज्ञानिकोंने क्रम-विकासके अवदान (theory) को मान लिया है, प्रत्येक वस्तु अविशेषसे विशेषमें, अव्यक्तसे व्यक्तमें तथा व्यक्तसे व्यक्ततरमें अभिव्यक्त होती है। विवर्त्तन-स्रोत पहले स्थावर-राज्यके नाना प्रकारके स्तरोंको उत्तीर्ण करके स्फटिकमें परिवर्त्तित होता है। क्रमशः यह विवर्त्तन-स्रोत स्थावर-राज्यको पारकर जंगम-राज्यमें उपनीत होता है। जिस क्षण वह स्थावरसे जंगममें परिवर्त्तित होता है, उसी क्षण एक आश्चर्यजनक घटना उपस्थित होती है। वह है कोषाणुकी उत्पत्ति। जंगम-मात्रके विश्लेषणके चरममें यह कोषाणु पाया जाता है। एकाएक मनमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह कोषाणु कहाँसे उत्पन्न हुआ? वह कहाँसे आया अथवा कैसे उत्पन्न हुआ, यह कहना तो कठिन है; तथापि यह अवश्य कहा जा सकता है कि उसमें एक विस्मयकर प्राण-शक्तिका प्रादुर्भाव दृष्टिगोचर होता है। इस शक्तिको जीवनी-शक्ति कह सकते हैं। जो शक्ति जड़को चेतना देती है, उसे जीवनी-शक्ति कहते हैं। यह 'प्राण' बहुत ही अद्भुत वस्तु है। यह न तो किसीका रूपान्तर है, न किसीका सजातीय ही; बल्कि यह एक अद्वितीय पदार्थ है—अर्थात् स्थावर वस्तुओंमें उत्ताप, आलोक इत्यादि अचेतन शक्तियाँ पाई जाती हैं। यह प्राण-शक्ति उससे सम्पूर्ण रूपसे विभिन्न है।

अतएव स्थावर अप्राणी और जंगम प्राणी, स्थावर निरंग और जंगम सांग। प्राचीन ऋषियोंने जंगमको चार भागोंमें विभक्त किया है—स्वेदज, उद्भिज, अण्डज तथा जरायुज। पादप-राज्यके अन्तर्गत हैं स्वेदज और उद्भिज तथा पशु-राज्यके अन्तर्गत हैं अण्डज तथा जरायुज। पादपमें अगण्य प्रभेद हैं—तृण, लता, वृक्ष, पत्र, पुष्प, फल इत्यादि। क्रम-विकासवादके मतानुसार क्रमशः उद्भिज पदार्थ जीवित-राज्यमें पदार्पण करता है। जीव-राज्यका क्रम-विकास इस प्रकार है—सीप, पक्षी, जानवर, वानर तथा मनुष्य। इससे ज्ञात होता है कि जंगम-राज्यमें प्रथम प्रवेशक है सीप। वह इस क्रम-विकासमें कोटि-कोटि योनियोंमें से गुज़रनेके पश्चात् मनुष्य-शरीर-रूपमें परिवर्त्तित होता है। यह धारणा पाश्चात्य विद्वानोंके क्रम-विकास-वादकी कितनी ही शताब्दियों पहले वृहत् विष्णुपुराणमें इस प्रकार दी गई थी :—

स्थावरं विंशतेर्लक्षं जलजं नवलक्षकम्।
कूर्माश्च नवलक्षं च दशलक्षं च पक्षिनः॥
त्रिंशलक्षं पशुनाश्च चतुर्लक्षं च वानराः।
ततो मनुष्यतां प्राप्य ततः कर्माणि साधयेत्॥

पादप वस्तु कोषाणु-समष्टि द्वारा उत्पन्न होती है। ये कोषाणु गोल, अण्डाकार, चौकोर, तिरछे, षट्कोण इत्यादि

4. Manchester Science Lectures, 6th Series, P. 148.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकारके होते हैं। यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिए Harmsworth's Popular Science से जीव-देहमें सज्जित कोषाणु-समष्टिका चित्र उद्धृत किया जा रहा है। पाठक ज़रा ध्यानसे देखें कि प्राण-पदार्थकी सबसे छोटी वस्तुमें क्या चमत्कार, सौष्ठव तथा सौन्दर्यमय चित्रांकन है। इस सम्बन्धमें श्री जिनराजदास कहते हैं—'पादप - राज्यकी जीवनी-शक्ति ज्यामितिक रूपसे ही बढ़नेकी इच्छा रखती है।'

नीचे हम एक Scolopendrium officinarium के कोषाणु-पुंजका चित्र उद्धृत कर रहे हैं। इस चित्रके सौन्दर्य तथा ज्यामितिक प्रकल्पको देखकर चमत्कृत होना ही पड़ता है। ऐसे भी पादप-पदार्थ हैं, जो एक कौषिक हैं। अनुवीक्षण-यन्त्र द्वारा देखनेसे उनके अंग-सौष्ठव तथा रेखा-विचित्रताका ज्ञान आसानीसे हो सकता है। यहाँ तक कि चर्मचक्षुसे अगोचर जो कीटाणु (bacteria) हैं, उनमें भी एक अत्यन्त सुन्दर चित्रांकन तथा रंगोंका खेल पाया जाता है। Fungus के Spori में वैसे ही सौन्दर्य तथा विचित्रताका परिचय मिलता है। ("Spores of fungus exhibit beautiful sculpturing and ornamentation.") पुष्प-परागमें भी कितनी अद्भुत ज्यामिति है! कोई गोलाकार है, तो कोई वृहत्ताकार।

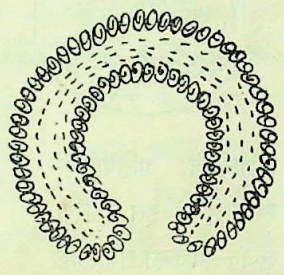

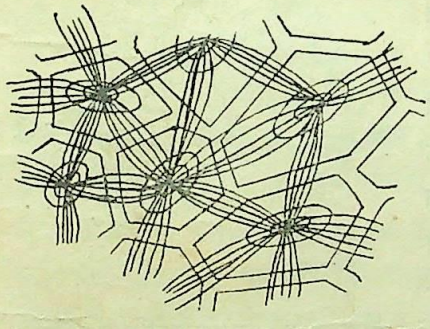

अब कोषाणुसे पादपके बाह्य अंगोंका अध्ययन किया जाय। श्री जिनराजदासका कथन है—"Each plant is built rythmically, the place of leaf on twig and branch on stem, being fixed by laws of geometry and design.'[५] ज़रा पाइन, ओक, एल्म, अंगूर इत्यादि वृक्ष-लताओंके पत्तोंकी ओर ध्यान दीजिए। पीपलके सूखे पत्तेके ढाँचेका यदि आप अच्छी तरह अध्ययन करें, तो आप देखेंगे कि उसमें सौष्ठवकी कैसी पराकाष्ठा है। क्या किसी कुशल चित्रकारकी तूलिकासे इस सूक्ष्मतासे अपूर्व सौष्ठव अंकित हो सकता है? प्रत्येक पुष्पकी पंखुड़ियोंमें क्या ही सूक्ष्म रेखाएँ हैं! उन रेखाओंका अंकन क्या ही नियमित रूपसे प्रदर्शित है! एक-एक पंखुड़ीको देखते ही बनता है। विचित्र सौन्दर्यमय पुष्पोंको हाथमें लिए विस्मय-विमुग्ध घण्टों बीत जाते हैं। प्रत्येक पुष्प मानो विश्वपतिके विराट लयकी एक राग-रागिनी है। एक ही तान, एक ही रीति, अनन्त शक्तिका एक-एक अंश प्रकृतिकी प्रत्येक रचनामें आभासित है। वृक्ष, कलिका, पुष्प तथा फल प्रकृतिके प्रत्येक स्तरसे हम ऐसे सुपरिचित हैं कि यहाँ उनके चित्र देनेकी आवश्यकता नहीं।

अब हम जंगमके दूसरे भाग पशु-राज्यका अध्ययन करें तथा उसमें मनीषी प्लेटोने भगवानकी सार्वभौमिक ज्यामितिकी जो बात कही है, उसका परिचय पानेकी चेष्टा करें। इस प्रसंगमें श्री जिनराजदासकी साधारण युक्ति यह है—'पशु-राज्यके कोटि-कोटि जीवोंमें भी विश्वपति वैसे ही ज्यामितिक स्वरूप दर्शाते हैं, जैसे जंगम-राज्यमें।'[६] यह कथन किस प्रकार और कहाँ तक सत्य है, यह प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की जाय। पहले सीपकी ओर देखनेसे ही हमारा ध्यान ज्यामितिक आकारकी ओर आकृष्ट होता है। उदाहरणार्थ Nautilus तथा Solarium नामक सीपकी ओर दृष्टिपात करनेपर मालूम होता है, मानो वह किसी चतुर रेखागणितज्ञके रहस्यमय कार्यका स्पष्टीकरण है। दूसरे चित्रमें Spiral के Logarithmic curve का स्पष्ट निदर्शन है। इसी प्रकार किसी भी समुद्र-तटपर जाकर बैठिए, तो आपको नाना प्रकारकी मछलियाँ दृष्टि-गोचर होंगी। उनमें आप गठन-सौष्ठव, वर्ण-विचित्रता तथा ज्यामितिको लक्ष्य करके अवश्य ही आश्चर्यान्वित होंगे।

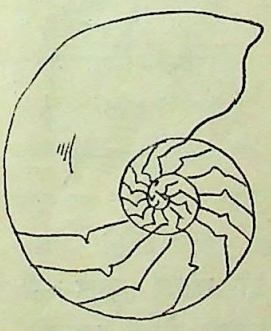

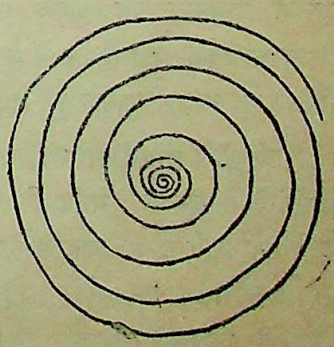

पशु-पक्षियोंमें गठन-सौष्ठव आश्चर्यजनक होता है। मयूर जब बादलको देखकर आनन्दोल्लाससे नृत्य करता है, तब उसके

5. Ibid. P. 359.

6. Ibid. P. 360.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंखोंके चित्रांकनसे कौन मन्त्रमुग्ध हो निर्वाक् नहीं रह जाता ? गिद्ध जब अपने पर फैलाकर उड़नेको उद्यत होता है, तब उसके परकी प्रत्येक रेखाके सौष्ठवको देखकर अद्भुत ज्यामितिका खयाल हो आता है। इसी प्रकार यदि हम तितली-जातीय जीवोंकी ओर दृष्टिपात करें, तो उनकी वर्ण-विचित्रता हमें विमुग्ध किए बिना नहीं रहेगी। तितलीको समीपसे देखनेपर किसी-किसीके परके ऊपर ऐसे-ऐसे अद्भुत सौन्दर्यमय रेखांकन मिलेंगे कि सिलाईमें पारदर्शी कन्याओंको तो एकदम उनके प्रकल्पों (Designs) की नक़ल कर लेनेकी प्रबल इच्छा होगी। दोनों परोंके निर्भूल सौष्ठवपर अवश्य ही हमारी आँखें विस्फारित रह जायँगी।

अब ज़रा जान्तव-जगत्पर भी दृष्टिपात किया जाय। इसको अनुस्टजन भी कहते हैं—अर्थात् ईश्वरका निर्माण नहीं, वरन् उसके जीवों द्वारा सृजित वस्तु। उदाहरणार्थ ततैयोंका छत्ता, मकड़ीका जाला, मधुमक्खियोंका छत्ता, पक्षियोंके घोंसले आदि। मकड़ीके जालेके केन्द्रमें एक संवर्गमान रेखा (Logarithmic curve) है, जिसके चारों ओर सौष्ठव आकृति है। उसे देखकर एकाएक हमारे मनमें यह प्रश्न उठता कि मकड़ीको यह ज्यामिति-प्रकल्प बनाना कैसे आया ? यह वही 'लय' है, जो प्राणी-अप्राणी और प्रकृतिके कण-कणमें है। इसी 'लय'के कारण प्रत्येक वस्तुमें एक ही झंकार सुनाई देती है और प्रत्येक कार्यमें नियम तथा सौष्ठवकी प्रेरणा अन्दरसे, अज्ञात भावसे, कार्य करती है। इसी प्रकार ततैये तथा मधुमक्खीके छत्तेमें भी अपूर्व षट्कोणका प्रदर्शन है। ऊपरसे देखनेपर वह केवल षट्कोण ही दिखाई पड़ता है; परन्तु आश्चर्यकी बात है कि ये षट्कोणात्मक आकार बड़े-से-बड़े सिलेण्डरका आकार आयत्त कर सकते हैं।

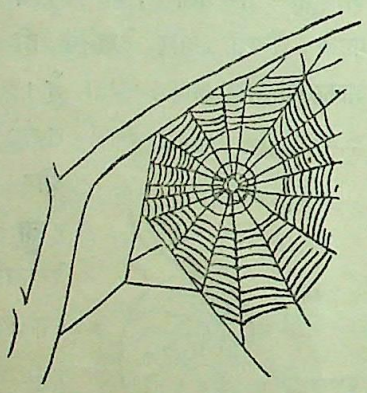

पक्षियोंके घोंसलोंका भी यही नियम है। छोटे-छोटे घोंसलोंके अन्दर प्रायः माता, पिता, एक-दो अण्डे तथा एक-दो बच्चे पाए जाते हैं। बाहरसे देखनेपर आप यह कदापि नहीं सोच सकते कि उसके अन्दर इतने जीव आ सकते हैं। प्रत्येक घोंसलेके अन्दरकी बिनावट बड़े-से-बड़े सिलेण्डरका आकार आयत्त करनेका नियम पालन करती हुई दिखाई देगी। बाहरसे अपूर्व सौष्ठवकी आवश्यकता इस कारण होती है कि वह एक छोटे-से तिनकेके सहारे लटका रहे। इसका कारण चाहे कुछ भी हो ; पर जान्तव-जगत्में भी हम अद्भुत ज्यामितिका परिचय पाते हैं। इसके अतिरिक्त क्षुद्र कीटके घरको यदि आप अनुवीक्षण-यन्त्र द्वारा देखें, तो आश्चर्यजनक ज्यामितिका परिचय मिलेगा। नीचे हम 'पापूलर साइन्स'से ऐसे दो चित्र दे रहे हैं।

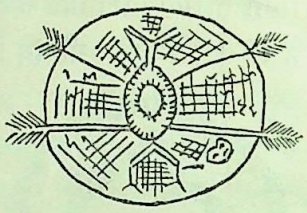

कहा जा सकता है कि प्रत्येक प्राणीमें सृजनकी एक स्वाभाविक प्रेरणा है। घोंसला, घर इत्यादि उनके रहनेके लिए हैं, उनकी अनन्त निधियोंके प्रतिपालन-स्थल हैं। इस कारण सृजन-शक्तिकी सर्वोत्कृष्ट शक्तिका परिचय यहाँ प्रस्फुटित होता है। उदाहरणार्थ, लकड़ीके कीड़ोंको लीजिए। किसी जंगलात-विभागमें कटी हुई लकड़ियोंके नमूने देखनेपर उन कीड़ोंका ध्येय घर बनाना अथवा अपने आत्मज-का प्रतिपालन करना नहीं मालूम होता। उनके काटनेकी रीतिमें एक अज्ञेय विचित्रता है। एक-एक चित्रको देखिए, जैसे किसी परिपाटीके कलाकारकी तूलिकाका सारा चमत्कार वहीं जमा हो गया हो। इतना सौष्ठवमय ज्यामितिक चित्र जान्तव-जगत्में शायद ही कहीं अन्यत्र मिले।

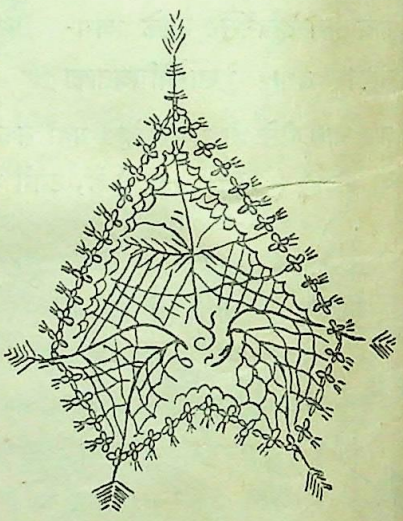

अब तक हमने वस्तुओंके देह-सौष्ठवपर ही विचार किया है। मनुष्यके, जो विश्वकर्त्ताकी श्रेष्ठतम कृति है, देह-सौष्ठवके सम्बन्धमें तो विशेष कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं; क्योंकि वह हमारे बहुत ही समीप और सुपरिचित है। जिन महाकवियोंके सौन्दर्य-वर्णन तथा सुप्रसिद्ध वास्तु और चित्र-कलाकारकी रचनाओंको देखकर हम मन्त्रमुग्ध-से रह जाते हैं, वे मानवके नियन्ता विश्व-कलाकारके चरण-रजकी भी बराबरी नहीं कर सकते। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि स्थावर-राज्यमें ताप, तड़ित, आलोक, चुम्बक इत्यादि हैं तथा जंगम-राज्यमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी-शक्ति। पर जीवनी-शक्ति ही शक्तियोंका चरमोत्कर्ष नहीं है। इसके ऊपर है आध्यात्मिक शक्ति, जिसका नाम-धारी जीवोंमें उत्कर्ष है। यह मनुष्यके चिन्ता-राज्यमें प्रकाशित होती है। जब हम किसी व्यक्ति अथवा किसी वस्तुकी चिन्ता करते हैं, तब हमारा मन एक खास ढंगसे कार्य करता है तथा उस व्यक्ति अथवा वस्तुकी चिन्ता एक खास मूर्त्ति धारण करती है। वह चित्र मस्तिष्कके एक भागमें जाकर हमें सुझाता है कि हम ठीक उसीको सोच रहे हैं। प्राचीन दार्शनिकोंने कहा है कि हमारा चित्त उसी प्रकारका आकार ग्रहण करता है। इस सम्बन्धमें पेरिसके वैज्ञानिक डा० बारादुकने बहुत समीक्षा-परीक्षा करनेके पश्चात् कहा है कि प्राचीन दार्शनिकोंका कथन सत्य है। उन्होंने इस प्रकार परीक्षा की : किसी व्यक्ति अथवा वस्तुकी चिन्ताके समय अपने हाथको फोटोग्राफ़के 'सेन्सेटिव-प्लेट' पर रखा। फिर एकाग्र चित्तसे चिन्ता करनेके बाद उसकी जब तस्वीर ली, तब देखा कि उसी व्यक्ति अथवा उसी वस्तुकी तस्वीर उस प्लेटपर है। उनका कथन है—'The creation of an object is the passing out of an image from the mind and its subsequent materialisation (being the chemical effect caused on silver salt by the thought-created picture).'[७] यदि आपने कभी मनस-शक्ति (मेसमेरिज़्म) का खेल देखा या सुना हो तथा उसपर विश्वास करते हों, तो आज बीसवीं शताब्दीके युगमें इसे भी अविश्वसनीय नहीं मानिएगा। यह सूक्ष्म चिन्ता-मूर्त्ति चक्षु-गोचर नहीं होती। यह उन्हींके सम्मुख प्रकट होती है, जिनमें दिव्यदृष्टि है। उन्हींकी भाषामें यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक चिन्ताके कारण हमारे मनोमय तथा काममय कोषमें एक स्पन्दन उत्पन्न होता है—'Every thought gives rise to a set of correlated vibrations in the matter of those bodies, accompanied with marvellous play of colours, and that body under this impulse throws off a vibrating portion of itself.' अर्थात् वह स्पन्दित कोषका भग्नांश, जो चिन्तित व्यक्ति अथवा वस्तुके आकारका है, उसी अंश-कोषसे विश्लिष्ट होकर व्योमसे अनुरूप उपादान संग्रहकर चिन्ता-मूर्त्तिका आकार धारण करता है। जो योगी हैं, जो ध्यानी हैं, जो साधना-पथपर बहुत अग्रसर हो चुके हैं, उनके एकाग्र साधना-कालमें जिन चिन्ता-मूर्त्तियोंकी रचना होती है, उनमें हम क्या ही अद्‌भुत ज्यामितिका परिचय पाते हैं! हम जानते हैं कि इस संसारकी रचना प्रकृति (Matter) तथा पुरुष (Spirit) के संयोगसे हुई। उसीके कारण इस जगत्‌में अपूर्व शृंखला तथा सामंजस्य है। एक विद्वान इसीकी चिन्तामें रत थे। उसीके फल-स्वरूप जिस चिन्ता-मूर्त्तिकी सृष्टि हुई, उसीको यहाँ इस ग्रन्थ[८]से उद्धृत किया जा रहा है। इस चित्रमें परस्पर बने हुए दो त्रिभुजकोंका क्या तात्पर्य है? यहाँ ऊर्ध्वोन्मुखी त्रिभुज द्वारा पुरुष (Spirit) की तीन अभिव्यक्तियाँ (Three-fold aspects of spirit) प्रदर्शित होती हैं तथा अधोमुखी त्रिभुज प्रकृति (Matter) के तीन गुणोंको व्यक्त करता है।

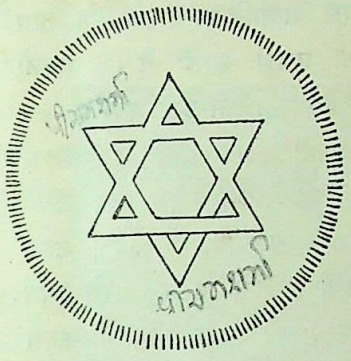

एक बार एक साधक गीताके 'मया ततमिदं सर्वं जगद् व्यक्त मूर्त्तिनां' (वह सारे विश्व-संसारमें रमा हुआ है) के ध्यानमें मग्न थे। उनकी चिन्ता-मूर्त्तिके आकारको सामने दिए गए चित्र द्वारा दिखानेका प्रयास किया गया है। 'प्रयास' शब्दका प्रयोग इसलिए किया गया है कि उस सूक्ष्मतासे कोई लेखनी इसका चित्रांकन नहीं कर सकती। जहाँ तक सम्भव हुआ, चित्रके आकारको यहाँ प्रस्फुटित करनेका प्रयास किया गया है। पाठक ध्यानसे देखें कि इसमें कितना अद्‌भुत चित्रांकन है। बीचमें एक जगह उसे चाहे आप प्रजापति कह लें, चाहे ब्रह्म, चाहे किसी भी अन्य नामसे पुकार लें। अतएव मनीषी प्लेटोका कथन 'God Geomatrises' तथा श्री जिनराज-दासकी उक्ति 'There exists underneath each of nature's creation a geometrical design'में सार्वभौमिक सत्यता है।

हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी]

7. Thought-forms.

8. Thought-forms.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-स्रष्टा शरच्चन्द्र

श्री दौलतराव परशुराम

शरचन्द्रकी सृष्टि, साहित्य-रचनाके आदिम नियमानुसार, न केवल जीवनके रससे पूर्णतः छलकती हुई ही है, बल्कि अपने अर्थमें मनुष्य-जातिके प्रति सम्पूर्ण रीतिसे सहानुभूति भी धारण किए हुए है। अपने विस्तृत घेरेके भीतर वह मानुषिक जीवन—और विशेषतः बंगाली सामाजिक जीवन—के साथ गुँथी हुई सारी समस्याएँ ला एकट्ठी करती है। बंगाली समाजका—सर्वसामान्य स्तरसे लेकर ऊँचे-से-ऊँचे स्तर तक—ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं, जिसका योग्य समाधान शरत्की रचनाओंमें नहीं पाया जाता। कम-से-कम प्रत्येक प्रश्न उचित रीतिसे उठाया गया है और उसकी सजीव एवं सार्थक टीका करनेकी प्रबल चेष्टा की गई है। इस प्रकार अपने रूपमें लेखनीके निपुण अध्यक्ष शरच्चन्द्रने सारे देशके नहीं, तो कमसे कम अपने प्रान्तके साहित्यपर अमिट मुद्रा अंकित कर दी है। लेखनीके प्रभावसे उन्होंने ऐसे शब्द-चित्र सिरजे, जिन्होंने समस्त संसारको अपने विभवसे मोहित कर दिया और लोगोंने शरच्चन्द्रको असाधारण लेखक माना। उन्होंने जनताको जो कुछ दान-स्वरूप दिया है, वह केवल पृष्ठोंका समूह—काग़ज़ोंका ढेर—ही नहीं है, बल्कि एक ऐसा जीवित ग्रन्थ है, जो जीवनको सत्य-रूप—दुःख-सुख तथा खेद-हर्षके सम्पूर्ण मेलके रूप—में प्रकट करता है, और जो ऐसे अमर-अविस्मरणीय चरित्र उत्पन्न करता है, जो भ्रान्त स्त्री-पुरुषोंके लिए आदर्श हो सकें।

शरच्चन्द्रका जन्म हुगली ज़िलेके एक छोटे-से ग्राम देवानन्दपुरके एक मध्य स्थितिवाले ब्राह्मण-परिवारमें १५ सितम्बर, १८७६ ई० को हुआ था। यह अच्छा ही था कि भविष्यकी प्रगति तथा उजेलेके प्रतिपालकका उद्भव बंगालमें प्रगति तथा उजेलेके युगके प्रारम्भमें ही हुआ। जीवन तथा साहित्यके पुराने और सड़े हुए संस्कार सब शनैः-शनैः नष्ट होकर मिट चुके थे और बँगला-साहित्यके इतिहासके नवीन युगका – जिसका बंकिमचन्द्र तथा मधुसूदन दत्तके द्वारा श्रीगणेश हुआ था और जो रवीन्द्रनाथकी विभूतिमान लेखनीके प्रभावसे अपूर्व प्रतापको पहुँच रहा था--आलोकपूर्ण प्रभाव चतुर्दिक फैल रहा था। रवीन्द्रनाथने साहित्यके नष्ट होते अंगोंमें नया जीवन प्रेरित किया था। इस समय तक उपन्यास और कहानीकी नई परिभाषा लगभग सम्पूर्ण बना दी गई थी; परन्तु जनताने स्वानुभूतिपूर्ण तथा जीवनके यथार्थतायुक्त तत्त्वकी आवश्यकता अनुभव की, जो शरच्चन्द्रने पूर्ण मात्रामें जुटा दी। उन्होंने न केवल अनुभवकी सहायतासे ही लिखा, बल्कि अपने लेखन-कार्यमें मानुषिक स्वभावके पूर्ण ज्ञानका भी प्रयोग किया।

उनके पिता श्री कालीनाथ चट्टोपाध्याय दरिद्र, परन्तु बहुत ही उन्नत व्यक्ति थे। कुछ ठोस कमा सकनेकी क्षमताका उनमें अभाव था, क्योंकि उनमें उस धैर्यका नाम न था, जो दूसरोंके अधीन काम करनेवालोंमें होना चाहिए। परन्तु वे एक ही साथ चित्रकार, संगीतज्ञ तथा लेखक थे। उनकी इसी सर्वतोमुखी प्रतिभाने शरच्चन्द्रकी विविध कलाओंको सम्पूर्ण बननेमें अधिक मात्रामें सहायता दी। अपनी बाल्यावस्थामें और उसके पश्चात् भी शरच्चन्द्र खेल-कूदमें बहुत तल्लीन रहते। इसके अतिरिक्त समय-असमय वे वन-जंगलोंमें चले जाते और वहीं घूमते रहते। उनको भ्रमणसे बड़ी रुचि थी, और इसीके दौरानमें उन्होंने जो-कुछ देखा, वही आगे चलकर उनके लेखन-कार्यमें काम आया। प्रारम्भमें उनके भ्रमणशील स्वभावके कारण उनके विद्या-अध्ययनमें अनेक विघ्न पड़े। किसी-किसी समय तो यही आभास हुआ कि ये किसी प्रकारकी विद्या प्राप्त नहीं कर सकेंगे; परन्तु फिर उन्होंने शीघ्र ही अपनी स्वच्छन्द स्वाभाविक बुद्धिका दमन किया और पूर्ण चित्तसे विद्या-लाभकी ओर ध्यान दिया। कहा जाता है कि उन्होंने अपने उन शिक्षकोंको भी अपनी प्रवीणतासे चकित कर दिया, जिन्होंने उनकी विद्या-बुद्धिके विषयमें कोई अच्छी धारणा नहीं बना रखी थी। सन् १८९४ में वे मैट्रिक्यूलेशन परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और इसके बाद भागलपुर आकर कालेजमें प्रविष्ट हुए। परन्तु परीक्षाका शुल्क देनेमें असमर्थ होनेके कारण उन्हें फ़र्स्ट ईयर (आर्ट्स्) की परीक्षामें बैठने नहीं दिया गया। अतः मजबूरन उन्होंने अपना विद्या-लाभ भी आगे नहीं बढ़ाया। इसी समय उनका ध्यान कहानियाँ और उपन्यास लिखनेकी ओर आकर्षित हुआ।

अवश्य ही उन्होंने इससे पूर्व भी साहित्य-रचनाकी ओर ध्यान दिया था; परन्तु वह एक प्रकारसे ऊपरी तौरपर ही किया गया था। अब तक वे अपनी सारी शक्तियाँ एक ही केन्द्र-स्थानमें न ला सके थे। अब उन्होंने साहित्य-सागरमें अपनेको मानो डुबो दिया और निर्विघ्न होकर, बिना किसी भ्रान्तिके अपना कार्य करने लगे। पहला उपन्यास उनके कथनानुसार 'ऐसा अच्छा लिखा हुआ नहीं' था और उन्होंने उसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसके पश्चात् वे दूसरा उपन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने लगे। उन्होंने मिसेज़ वुडके उपन्यास 'ईस्ट लिन्'का अनुवाद किया और मेरी कोरेलीके 'माइटी ऐटम'के आधारपर एक उपन्यास लिखा। इसके बाद उन्होंने अनेक मौलिक कहानियाँ और उपन्यास लिखे, जो उस समय उन्होंने किसी भी प्रकाशकको नहीं भेजे। इसका कारण बतलाते हुए उन्होंने एक बार कहा कि वे 'श्री रवीन्द्रनाथकी कृतियोंके समान' नहीं थे। उनके पहले दो अनूदित उपन्यास कभी प्रकाशित नहीं हुए; परन्तु उनकी मौलिक रचनाएँ कुछ वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुईं, जिन्होंने प्रमाणित किया कि शरच्चन्द्र कथाकारके रूपमें न केवल रवीन्द्रनाथके सदृश ही थे, बल्कि कई बातोंमें उनसे बढ़कर भी थे। इन रचनाओंने उन्हें अल्प समयमें ही विख्यात एवं लोकप्रिय बना दिया।

सन् १८९६ में उनकी माताका स्वर्गवास हो जानेपर उन्हें अपने पिताकी अतीव दरिद्रावस्थाका भान हुआ और उन्होंने अपने लिए एक नौकरी ढूँढ़ निकाली। परन्तु वह अधिक समय तक क़ायम न रह सकी। नौकरीका बन्धन उनके-से स्वभाववाले व्यक्तियोंके लिए धैर्यपूर्वक सहन करना कठिन था। अतः नौकरी छोड़ एक दिन वे गाँवसे भाग निकले और पूरे छः साल तक एक स्थानसे दूसरे स्थानपर, अपना व्यक्तित्व छिपाए, संन्यासीके वेशमें भटकते रहे। इन यात्राओंमें उन्होंने बहुत-सा ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात् जब उन्हें अपने पिताके आकस्मिक देहावसानका समाचार मिला, तो वे अपने गाँव लौटे और अपने भाइयों तथा बहनके पालन-पोषणका दायित्व अपने ऊपर लिया। उनके ऊपर यह एक गुरु भार था; परन्तु उन्होंने इस दायित्वसे बचनेका कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। कुछ समयके लिए वे एक एडवोकेटके यहाँ दस्तावेज़ोंके अनुवादक होकर भी रहे। इसके पश्चात् वे रंगून चले गए, जहाँ वे एक कारखानेके मैनेजर बना दिए गए।

सन् १९०६ में उनके भाई प्रभासचन्द्र पिंगलवर्ण वस्त्र धारणकर रामकृष्ण-मठमें प्रविष्ट हुए। इनसे छोटे भाई प्रकाशचन्द्रको अग्रद्वीपके ज़मींदारने गोद ले लिया और उनकी सबसे छोटी बहन भागलपुरकी उनकी ज़मींदारीमें जाकर रहने लगी। इस प्रकार अब शरच्चन्द्र समस्त गार्हस्थिक दायित्वसे मुक्त हुए। इस मुक्तिने उन्हें अपना कार्य निर्विघ्न होकर करनेका अवसर दिया। किसीके लिए भी अर्थ जुटानेके विचारसे छुटकारा पाकर वे निश्चिन्ततापूर्वक अपना काम करने लगे। साथ ही रंगूनमें उनके सामाजिक कार्य भी बढ़ गए। परन्तु इस समयसे लेकर सन् १९१२ तक उनके जीवनमें विशेष रूपसे ऐसा कुछ घटित नहीं हुआ, जिसका यहाँ उल्लेख किया जा सके। इस कालकी केवल हिरण्मयी नामकी एक दरिद्र असहाय बालाके साथ उनके विवाहकी बात अवश्य उल्लेखनीय कही जा सकती है, जो सन् १९१० के लगभग रंगूनमें फैली प्लेगकी महामारीसे उनकी पहली पत्नीकी मृत्यु हो जानेके पश्चात् उनके कलकत्ता चले आनेके बादकी है। इसके उपरान्त ही साहित्य-रचनापर उनकी मुद्रा अधिक गहराईसे अंकित हुई।

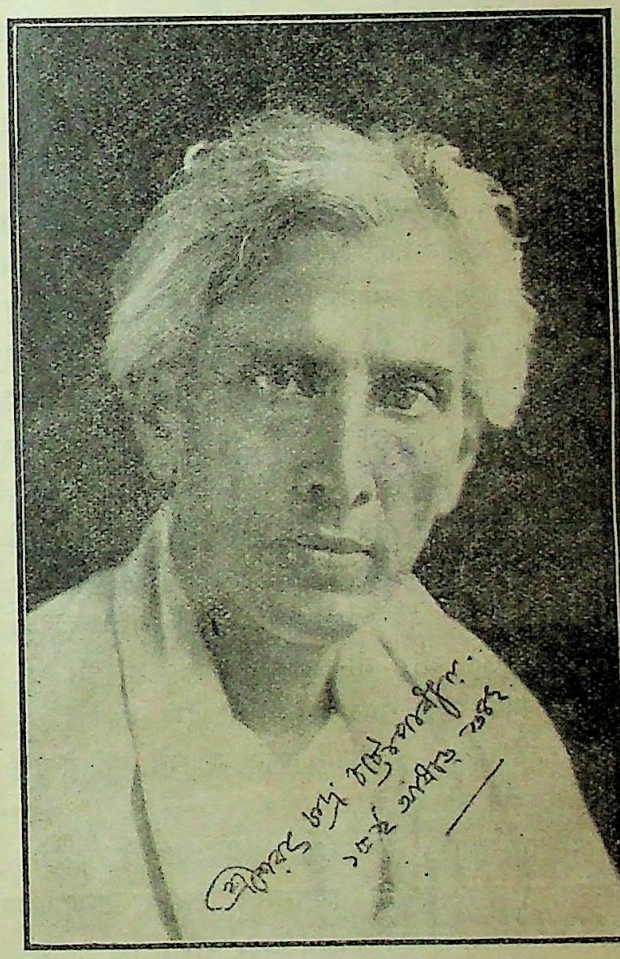

स्व० शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सन् १९१२ में उनका सुविख्यात उपन्यास 'बड़ दीदी' 'भारती'में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् आए 'बिन्दुर छेले', 'परिणीता', 'काशीनाथ', 'चन्द्रनाथ' और 'चरित्रहीन'; जो सन् १९१३ में 'यमुना'में प्रकाशित हुए। इनके उपरान्त 'बिराज बौ' 'भारतवर्ष'में प्रकट हुआ। अन्तमें ये सब रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं। सन् १९१४ के लगभग उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और डाक्टरोंने उन्हें बर्मा छोड़नेकी सलाह दी। परन्तु यह कहना आसान था, करना अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिन। उनके समक्ष पर्याप्त जीविकोपार्जन करनेका गम्भीर प्रश्न था। कहाँसे उन्हें वे एक सौ रुपए प्राप्त होंगे, जो उन्हें रंगूनमें मिल रहे थे? वे इतने सम्पन्न भी न थे कि ऐसा उचित वेतन छोड़ देते! फिर भी कलकत्तेके गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सन्सके अध्यक्ष श्री हरिदास चट्टोपाध्यायके प्रतिमास आवश्यक अर्थ देनेका भार अपने ऊपर लेनेसे समस्याका समाधान निकल आया और शरच्चन्द्र सदाके लिए ब्रह्मदेश छोड़ कलकत्ता आकर बस गए।

कलकत्तेमें उन्हें अपनी विपुल साहित्यिक साधनाका प्रयोग करनेके लिए प्रचुर साधन और पर्याप्त अवसर मिले। 'भारतवर्ष'ने अपने लिए लिखनेका उन्हें निमन्त्रण दिया और इसी ग्रहीता पत्रमें वे अपनी रचनात्मक योग्यताकी सारी सम्पदा, विरचनाकी सभी बनावटोंमें कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, तथा साहित्यिक आलोचनाएँ उँड़ेलने लगे। उनके जीवनका शेष भाग साहित्य तथा सामाजिक उद्योगके बीचमें विभक्त हो गया। अल्प समयमें ही वे प्रतिमास ५००) रुपयोंसे भी अधिक उपार्जन करने लगे और उनकी अवस्था काफ़ी सुधर गई। किन्तु यह सब होनेपर भी उन्होंने आनन्द अथवा विलाससे अपनेको बिलकुल दूर रखा। अपनी आवश्यकताओंके लिए काफ़ी अर्थ रखकर शेष वे दरिद्र और कंगाल व्यक्तियोंमें बाँट देते। इसके अतिरिक्त उनका ध्यान गाँवोंकी ओर भी आकर्षित हुआ। वे वर्षका अधिकतर भाग ग्रामीण देहातमें ही व्यतीत करने लगे और जो-कुछ भी उनकी शक्तिमें था, ग्रामीण जीवनको सहज, सरल तथा जीनेके योग्य बनानेके लिए निरन्तर करते रहे। वास्तवमें अपने जीवनमें बड़ी-से-बड़ी सेवा जो उन्होंने की, वह देहातमें ही।

'पण्डित मशाई', 'वैकुण्ठेर उइल', 'अन्धारे आलो', 'श्रीकान्त' (जो, बहुतोंके कथनानुसार, उन्हींके संन्यासीके वेशमें की गई यात्राका पूर्ण इतिहास है), 'दत्ता', 'पल्ली समाज', 'अरक्षणीया', 'गृहदाह', 'देना पाओना', 'अनुराधा' और 'शेष प्रश्न' आदि एक-एककर धारावाहिक रूपसे 'भारतवर्ष'में प्रकाशित हुए। इनके बाद 'शेषेर परिचय' छपना शुरू हुआ; पर दुर्भाग्यवश वह अधूरा ही रह गया और उसके पूर्ण होनेसे पूर्व ही शरच्चन्द्रका स्वर्गवास हो गया। 'स्वामी'को पढ़कर देश-बन्धु चित्तरंजनदास इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने हस्ताक्षर किया हुआ एक कोरा चेक काटकर शरच्चन्द्रको भेज दिया, जो बादमें उन्हींके मासिक पत्र 'नारायण'में प्रकाशित हुआ। 'महेश' और 'पथेर दाबी' (जिसकी कहा जाता है कि अल्प समयमें ही ३००,००० के लगभग प्रतियाँ बिक गईं और जिसे बादमें बंगाल-सरकारने ज़ब्त कर लिया) 'बंगवाणी'में प्रकाशित हुए। 'बिप्रदास' और 'अनागत' (यह उपन्यास भी अधूरा ही रहा) 'विचित्रा'में प्रकाशित हुए। 'वासुनेर मेये'ने प्रारम्भमें ही पुस्तकाकारमें प्रकाश देखा और 'जागरण', जो उन्होंने मासिक 'वसुमती'में आरम्भ किया था, अधूरा ही रह गया।

पचास वर्षकी आयु प्राप्त करते-करते शरच्चन्द्रको सर्वत्र आदर मिलने लगा। क्रमशः उनके उपन्यास भारतवर्षकी अनेक भाषाओंके अतिरिक्त अंगरेज़ी और फ्रेंचमें भी अनूदित हुए और उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंकी फिल्में बनीं। कलकत्ता-विश्व-विद्यालयने उन्हें 'जगत्तारिणी-पारितोषिक' दिया और एक मान-पत्र भी भेंट किया। स्व० विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने एक कविता-संग्रह ('लोकेर यात्रा') उन्हें सम्मानपूर्वक अर्पित किया। इसके अतिरिक्त उनके छप्पनवें जन्म-दिवसपर उनकी प्रशंसामें जो निबन्ध-आलोचनाएँ आदि लिखे गए, उन्होंने शरच्चन्द्रकी अद्भुत प्रतिभा एवं असाधारण लोकप्रियताका यथेष्ट प्रमाण दिया। सन् १९३७ में ढाका-विश्वविद्यालयने उन्हें 'डाक्टर आफ् लिटरेचर'की उपाधिसे सम्मानित किया।

कठिन परिश्रमके कारण अब उनका स्वास्थ्य टूटने लगा था और अजीर्ण रोगने भी उग्र रूप धारण कर लिया। फिर भी इससे उनकी हालतमें कोई खास अन्तर दिखाई नहीं दिया और उनका कार्य श्रान्तिके किसी भी लक्षणके बिना पहले-सा चलता रहा। परन्तु सन् १९३७ के उत्तरार्द्धमें उनकी देह जीर्ण होने लगी और उन्हें विवश होकर आपरेशन कराना पड़ा। इसके पश्चात् कुछ और आपरेशन हुए, जिनसे उनका स्वास्थ्य सुधरता प्रतीत हुआ; परन्तु यह उनके शरीरकी स्वास्थ्य-प्राप्तिके लिए मानो अन्तिम प्रबल चेष्टा थी, जिसके बाद शीघ्र ही दीपककी शिखा सदाके लिए बुझ गई! ११ जनवरी, १९३८ को भगन्दरके लिए उनका आपरेशन किया गया, जिसके पाँच दिन बाद ही—१६, जनवरीको—६१ वर्षकी आयुमें वे इस जगसे सिधार गए!

उनके रूपमें बंगाल और भारत ही नहीं, संसारने एक महान साहित्यकारको खो दिया। वे सफल तथा उपजाऊ लेखक थे। उन्होंने साठसे भी अधिक कहानियाँ और कई उपन्यास लिखे हैं। यद्यपि उनकी कुछ कृतियाँ खो गईं अथवा जल गईं, और कुछ उन्होंने स्वयं ही नष्ट कर डालीं, तथापि उनकी साहित्यिक योग्यताके प्रारम्भिक बहावसे लेकर अधूरे छोड़े हुए 'शेषेर परिचय'के अन्तिम प्रकरणों तक, जो उन्होंने मानो अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम श्वासके साथ लिखे थे, उनकी रचनाओंका केवल परिमाण ही प्रभावकारी है। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ खो गईं—कुछ अंशोंमें स्वयं उन्हींकी अनावधानताके कारण, क्योंकि वे उन रचनाओंको श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कृतियोंकी तुलनामें तुच्छ समझते थे, और कुछ अंशोंमें उनके उन मित्रोंकी लापरवाहीके कारण, जिनके पास उन्होंने वे रचनाएँ रखी थीं—फिर भी उनके जीवन-कालमें छब्बीस उपन्यास, इक्कीस कहानियाँ, एक निबन्ध और चार नाटक प्रकाशित हुए। 'शुभदा' उनके अवसानके पश्चात् प्रकाशित हुआ और चार उपन्यास अपूर्ण ही रह गए।

उन्होंने बहुतायतसे लिखा; परन्तु इस कारण उनकी किसी भी रचनामें किसी प्रकारका दोष न आ सका। वे अपनी प्रत्येक कृति सावधान पुनरावलोकनके पश्चात् ही प्रकट करते थे और उनकी सब रचनाएँ प्रकाशकोंके पास जानेसे पूर्व उलट-पलटका एक क्रम-सा पार कर लेती थीं। उनपर शरच्चन्द्रकी योग्यताकी अमिट मुद्रा अंकित रहती थी और उनमें किसी ऐसे गुणका अभाव नहीं पाया जाता, जो किसी भी कलात्मक वस्तुके लिए आवश्यक हो। इसी कारण वे रचनाएँ अपने ही प्रकारकी कृतियोंमें अपूर्व बन गई हैं। वे सबकी सब, जैसे हमने पहले ही संकेत किया है, विशेषतः बंगाली सामाजिक जीवनकी और साधारणतया भारतीय जीवनकी समस्याओंसे सम्बन्ध रखती हैं। समस्त दीनता, कृपणता तथा अधमता जो मनुष्यको दी गई सुगमताओंके होते हुए भी जीवनको बिलकुल व्यर्थ तथा जीनेके अयोग्य बना देती हैं, उनकी उन्होंने बहुत ही तीव्र निन्दा और उनके कारणोंकी कटु आलोचना की है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे कुल-नाम, वैभव अथवा दिखावटके धर्माचारकी सहायता लेकर समाजमें खराबी, दुराचार तथा पापके बीज बोए जाते हैं। उन्होंने यह स्थापित किया कि दीन, अधोगत तथा अशिक्षित लोगोंमें भी क्षुद्रता और बुराईसे कहीं अधिक मनुष्यता और ऊपर उठनेकी कामना है, और यदि कोई पाप करता है, तो वह इसलिए नहीं कि वह स्वभावतः ही अपराधी है, बल्कि इसलिए कि वह पाप करनेके लिए बाध्य होता है। सुतरां सारा दोष उस समयकी उसकी दशा और स्थितिका है।

उन्होंने कभी कहीं ऐसा कुछ नहीं लिखा, जो उन्होंने स्वयं देखा अथवा अनुभव न किया हो। यह अच्छा ही था, क्योंकि साहित्यको लाभ मानुषिक उमंगों तथा आकांक्षाओंको भेदती उस विशेष दृष्टिसे ही था, जो उन्होंने अपने सामाजिक अनुभवोंसे प्राप्त की थी। सामाजिक उद्योगने उन्हें मनुष्यके स्वभावका गूढ़ ज्ञान दिया, जो उन्हें जीवनके प्रति केवल काल्पनिक भाव कदापि नहीं दिला सकते थे। वही उनका सामाजिक जीवन भी था—शुद्ध साहित्यिक जीवनके अतिरिक्त अपनी प्रकृतिका आश्रित जीवन। उसीने उन्हें दिन-प्रतिदिनकी सामान्य घटनाओंकी क़द्र करना सिखाया।

उनके कथानक सरल तथा सामान्य हैं; परन्तु वे एक अद्भुत सम्पूर्णतासे प्रकट किए गए हैं। कथनोपकथन तथा चरित्र ऐसे बढ़े हुए हैं कि यदि कथानक बिलकुल ही न होता, तो भी विशेष अन्तर न होता। आदिसे अन्त तक उनकी भाषा सरलता-सूचक, अर्द्ध-सहानुभूतिपूर्ण और अर्द्ध-निन्दित रहती है। साथ ही वे जीवनपर भी अपना काबू रखते हैं, जो उपन्यास अथवा कहानी-लेखनमें अत्यावश्यक है।

उनकी सारी शक्ति चरित्रका—विशेषतः स्त्रियोंके चरित्रका—वर्णन करने तथा विकास दिखानेमें समाई हुई है, जिसे वे उनके जीवनकी साधारणातिसाधारण घटनाओंको विविध वर्णनोंमें प्रकट करनेसे दिखाते हैं। उनके पात्र यद्यपि सर्वसामान्य लोगोंमें से ही चुने गए हैं; पर ऐसे नियम, पूर्णता और स्पष्ट क्रमसे अंकित किए गए हैं कि वे अपना व्यक्तित्व सारे विस्तारमें लगभग साबित रखते हैं—यद्यपि बहुधा वे शरच्चन्द्रके व्यक्तित्वसे छाया प्राप्त करते दिखाई देते हैं। शरच्चन्द्र बाहरसे अपने विचार अपनी कहानियोंमें कभी नहीं घुसेड़ते थे और न ही कभी स्वयं अपने पात्रोंके सम्बन्धमें कुछ कहते थे। उनके पात्र स्वयं अपने-आपको और अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिए छोड़ दिए जाते हैं और शेष कार्य सब स्वाभाविक ढंगसे होते रहते हैं।

शरच्चन्द्र विश्व और समाजके महान् लेखक तथा महान् चित्रकार हैं। साहित्यके क्षेत्रमें उनकी पदवी निर्णीत है। भविष्यमें वे अधुनाकी नाईं ही माने जायँगे अथवा नहीं, यह हम नहीं कह सकते; परन्तु इतना तो सुनिश्चित है कि उनका नाम इस भूमिके साहित्यके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखा रहेगा। उनकी रचनाएँ उनका सबसे बड़ा स्मारक अथवा स्मृति-दर्पण हैं। जब-जब हम उनकी रचनाओंका पाठ करेंगे, तब-तब शरत्का प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व हमारे सामने आयगा; बल्कि हम तो यहाँ तक कहेंगे कि जो एक बार भी शरत्-साहित्यका अध्ययन करेगा, वह यावज्जीवन उन्हें भुला नहीं सकेगा।

बन्दर रोड, कराची]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयपुरका कारीगरी

श्री एन० सी० मेहता, आई० सी० एस०

अभी कुछ दिनों पूर्व मुझे जयपुर जानेका अवसर प्राप्त हुआ था। बीस वर्ष उपरान्त यह मेरी दूसरी जयपुर-यात्रा थी। दरअस्ल दुनिया बदल गई थी। पीतलकी जिस सुन्दर कारीगरीके लिए जयपुर इतना प्रसिद्ध रहा है, उसके कोई चिह्न वहाँ मौजूद न थे। भारतवर्षमें जयपुर ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ किसी ज़मानेमें पीतलकी नक्काशीका काम बहुत बढ़िया होता था—ऐसी नक्काशी, जिसमें रेखाओंके सौन्दर्य एवं आकृतिकी भावमयी सार्थकतापर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता था। बीस वर्ष पूर्व जिन थोड़ी-सी कलापूर्ण वस्तुओंका संग्रह मैंने किया था, उनके दर्शन अब दुर्लभ थे। उनका स्थान सस्ती कीमतके उन बर्त्तनोंने ग्रहण कर लिया था, जो मुरादाबादी बर्त्तनोंसे किसी विषयमें अधिक अच्छे नहीं थे।

मैं वहाँके कुछ प्रमुख स्थान देखने गया। वहाँकी हालत देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। चारों ओर गन्दगी और दरिद्रताने अपना आसन जमा रखा था। जो साँगानेर भारतीय इतिहासकी गाथाओंमें इतना प्रसिद्ध रहा है, उसकी अवस्था बड़ी शोचनीय थी। पुराने कागज़ी अब भी हाथका कागज़ बनाते थे और किसी तरह अपना पेट पाल रहे थे। किन्तु यह बतानेके लिए विशेष सूक्ष्मदर्शिताकी आवश्यकता नहीं थी कि इस स्थानके एवं इसी प्रकारके अन्य केन्द्रोंके सार्वजनिक जीवनमें यदि शीघ्र एक नवचेतनाका संचार नहीं किया जायगा, तो फिर उनका सर्वनाश निकट है।

यदि हम हस्त-कौशलको जीवित रखना चाहते हैं, तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि फैक्ट्रीके बने हुए मालसे प्रतिस्पर्धा करनेकी प्रेरणासे उनको मुक्त किया जाय। हाथकी बनी हुई चीज़ोंका अपना एक अलग स्थान है। उनको बढ़िया-से-बढ़िया बनानेकी कोशिश की जाय और ऐसे स्थानोंमें ही उनकी बिक्रीका प्रबन्ध किया जाय, जहाँ क़ीमतके बजाय व्यक्तिगत रुचि एवं कारीगरीको अधिक महत्व प्रदान किया जाता हो। यह केवल कहनेकी बात नहीं है, बल्कि ऐसी वस्तुओंके विषयमें, जिनकी बिक्रीका क्षेत्र बहुत सीमित है अथवा जो विशेष स्थानोंमें ही बेचनेके लिए तैयार की जाती हैं, यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि सस्ती होनेके बजाय वे अधिक सुन्दर और कलापूर्ण हों। उदाहरणके लिए भोजनके साधारण बर्त्तनोंको लीजिए। होटलों और विश्राम-घरोंने अब तक हमारे रसोईघरोंसे प्रतियोगिता करनेकी कोशिश नहीं की। इसका कारण यह है कि हमारे रसोईघर अब भी व्यक्तिगत रुचिको सन्तुष्ट करनेका साधन बने हुए हैं। यही बात सिले हुए कपड़ोंके—विशेषकर स्त्रियोंकी पोशाकके—विषयमें भी कही जा सकती है। नित्यप्रतिके व्यवहारकी अन्य वस्तुओंकी भी यही स्थिति है।

मैं एक बहुत स्पष्ट विषयपर इसलिए अधिक ज़ोर दे रहा हूँ कि सुसंगठित रूपसे चलनेवाली बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थाओंसे मुक़ाबला करनेकी धुनमें शक्ति और परिश्रमका बहुत अपव्यय हो रहा है। हम यह भूल जाते हैं कि हस्त-कौशलके कार्यमें लगे हुए कारीगरोंका पूर्ण शोषण किए बिना मिलोंकी प्रतियोगिता सम्भव नहीं है। चीन और जापानने इस समस्याको भलीभाँति समझा है। वस्तुओंकी उत्तम तैयारीकी ओर उनका मुख्य ध्यान रहता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ हाथकी बनी चीज़ें अपरिमित रूपसे अपनी श्रेष्ठताका परिचय दे सकती हैं। उदाहरणके लिए काग़ज़को लीजिए। भारतवर्षका हाथका बना काग़ज़ अपनी मज़बूतीके लिए सुप्रसिद्ध है। क़ीमतके बजाय जहाँ क़िस्म और रंगके स्थायित्वका प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण है, वहाँ भारतके मुक़ाबलेका काग़ज़ शायद ही कहीं बनता हो। इस तरहके काग़ज़की खपतके लिए एक विशाल क्षेत्र मौजूद है। महत्त्वपूर्ण सरकारी काग़ज़ों, दस्तावेज़ों, बही-खातों आदिके लिए सदैव बढ़िया और मज़बूत काग़ज़की माँग रहती है। काग़ज़की कतरन, चीथड़े तथा मूँज और सनकी तरहके रेशोंके रूपमें यदि कच्चे मालका सुभीता हो, कारीगरोंको उचित प्रोत्साहन मिले और बिक्रीका ठीक प्रबन्ध हो, तो हाथका बना काग़ज़ काफी परिमाणमें तैयार किया जा सकता है। युक्त-प्रान्तकी सरकारने इसका कुछ प्रबन्ध किया था। मुझे आशा है कि वर्त्तमान समयमें, जब कि मिलके काग़ज़का मिलना कठिन हो रहा है, भारतका हाथका बना काग़ज़ पुनः अपने पूर्व गौरवको प्राप्त करेगा।

मैं जयपुरके प्रसिद्ध पोथीखाने (पुस्तकालय)को देखने गया। इस संस्थामें जो अलभ्य ग्रन्थ-रत्न भरे पड़े हैं, उनका एक सूचीपत्र बनाने, वर्गीकरण करने तथा बाहरकी दुनियाको उनका परिचय देनेकी अब भी बड़ी आवश्यकता है। इस समय तो सारी सामग्री बण्डलोंमें बँधी पड़ी है और मुश्किलसे देखा जा सकती है। फिर भी सौभाग्यसे मुझे कुछ प्राचीन चित्र देखनेको मिल गए। इन पुरानी तस्वीरोंका परीक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते समय मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ कि इनको बाँधकर रखनेमें सुरुचि अथवा रसज्ञतासे ज़रा भी काम नहीं लिया गया था। अच्छी, बुरी, उपेक्षणीय अथवा पूर्णतः आडम्बरयुक्त तस्वीरें एक साथ लपेट या बाँधकर रख दी गई हैं। मुग़ल-साम्राज्यके अधःपतनके उपरान्त हमारे देशके शिक्षित समुदाय एवं राजकर्मचारी-वर्गमें सुरुचि और विवेचनाका निस्सन्देह बड़ा ही ह्रास हो गया होगा, अन्यथा वर्त्तमान समयमें सुरुचिके इस नितान्त अभावका कारण और हो ही क्या सकता है? पहुँचसे परे अनेक स्थानों, घरों और राजकीय संग्रहालयोंमें कलाके अनगिनत रत्न बिखरे पड़े हैं; किन्तु न तो वे अध्ययन और परीक्षणके लिए ही सुलभ हैं और न उनसे व्यक्तिगत गौरव तथा शोभाकी वृद्धि ही हो रही है। प्राचीन कालकी कलाके उत्कृष्ट नमूने दैवयोगसे ही हस्तगत होते हैं। जहाँ तक अपने देशकी कलाओंके—चित्र-कला, स्थापत्य-कला अथवा संगीत-कलाके—वास्तविक सम्मान और उनके महत्वको समझनेका प्रश्न है, गत पचीस वर्षके अन्दर इस विषयमें मुझे कोई उन्नति नहीं दीख पड़ी। नृत्य-कला निस्सन्देह कुछ सौभाग्यशालिनी रही है और इसका श्रेय उदयशंकरको प्राप्त है। संगीत-कलाका भाग्य उतना अच्छा नहीं रहा, यद्यपि उसके प्रेमियोंकी संख्या बढ़ गई है। संगीतके जो पुराने उस्ताद हैं, वे अपना उत्तराधिकारी नहीं छोड़ जाते और नए संगीतका जन्म होनेमें अब भी विलम्ब है। स्थापत्य-कलाकी अवस्था तो बहुत ही स्पष्ट और सुलझी हुई है। गत दो-तीन शताब्दियोंके अन्दर स्थापत्य-कलाका शायद ही कोई उत्कृष्ट नमूना तैयार हुआ हो। रही चित्र-कलाकी बात, सो वहाँ बहुलता तो अवश्य दृष्टिगोचर हुई; किन्तु उत्कृष्टताकी दृष्टिसे सन्तोषजनक उन्नति नहीं हुई। इस एकांगी विकासका कारण क्या है, यहाँ इसकी विवेचनाके लिए स्थान नहीं। मैं ज़ोर केवल इस बातपर देना चाहता हूँ कि हमारे देशमें साहित्यकी जो उन्नति हो रही है अथवा राष्ट्रीय भावनाकी जैसी जाग्रति हुई है, उसके अनुसार कलाकी कोई प्रगति देखनेमें नहीं आती।

बीते हुए ज़मानेकी उन तस्वीरोंको मैं घंटों देखता रहा और देखते-देखते मेरा हृदय दुःखसे रो पड़ा। सुरुचिका जहाँ इतना विनाश हो गया हो और चारों ओर दुःख तथा विषादके घने बादल छाए हों, वहाँ अध्ययन और अन्वेषणकी प्रवृत्तिका पोषण भला कैसे हो सकता है! मुझे यह भी स्मरण हुआ कि राजपूतानेके विषयमें पं० गौरीशंकर ओझाका जो अनुपम इतिहास-ग्रन्थ है, उसमें राजपूतानेकी मूल्यवान कला-सामग्रीके उद्घाटनका कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। अब भी विधिपूर्वक अनुसन्धान करनेसे कलाके अनेक ऐसे उत्कृष्ट नमूने हमारे हाथ लगेंगे, जिनसे भारतवर्षके सांस्कृतिक इतिहासके निर्माणमें बहुत महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान सहायता मिल सकती है।

मैं पोथीखानेके दूसरे भागमें गया, जहाँ जयपुरकी बनी अथवा वहाँ प्राप्त कुछ तस्वीरें सजाकर रखी गई थीं। उन सुन्दर और बड़ी तस्वीरोंको देखकर मैं विशेष रूपसे प्रफुल्लित हुआ, जिनमें राधा-कृष्णकी रास-लीलाके दृश्य अंकित हैं। ये तस्वीरें आजसे बीस वर्ष पूर्व राजमहलके पुस्तकालयमें मुश्किलसे देखनेको मिलती थीं। अठारहवीं शताब्दीके अन्तिम चरणकी बनी हुई ये तस्वीरें अपने आकार-प्रकार, विस्तार, रेखाओंकी उन्मुक्त गति, आलेखन-चातुर्य एवं परिष्कृत सौन्दर्यकी दृष्टिसे सारे भारतवर्षमें अकेली और अनुपम हैं। चित्रपट फड़कते हुए-से हैं और दर्शकको जीवनके उस युगमें ले जाते हैं, जब कि उस समय भी भारतवर्षका हृदय एक विचित्र तालसे—एक ऐसे तालसे, जो एक साथ ही छन्दोमय और प्रबल था—कम्पित हो रहा था। इन चित्रोंको निस्सन्देह ही जयपुरके—अथवा यों कहिए कि समस्त राजपूतानेके—दरबारी चित्रकारोंकी सर्वश्रेष्ठ कला-कृतियोंमें स्थान मिलना चाहिए। मैंने नूतन रूपसे पुनः 'रास-लीला' एवं 'गोवर्द्धन-धारण'के साथ अपना परिचय स्थापित किया। यहाँ मुग़ल-ज़मानेके अनेक उत्कृष्ट और भड़कीले चित्र भी देखनेको मिलते हैं।

यहाँका अजायबघर भी देखा। भारतवर्षमें अजायबघर एक ऐसी जगह समझी जाती है, जहाँ कुछ अनोखी और अद्भुत वस्तुएँ संग्रह करके रख दी जाती है। यह जगह भी उसका अपवाद नहीं थी। मैं बीते हुए जयपुरके पीतलके खूबसूरत और नक्काशीदार कलसोंको देखनेके लिए उत्सुक था; किन्तु वे तो अब इतिहासकी सामग्री हो गए हैं!

अनु०—श्री कृष्णानन्द गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसानोंके शिरोमणि

श्री गुरुदयाल मल्लिक

कुछ वर्ष हुए, एक बार कलकत्तेके कुछ प्रसिद्ध साहित्य-सेवियोंका एक दल शान्तिनिकेतन आया। उद्देश्य था कविगुरु रवीन्द्रनाथके साथ भेंट करके अपने सांस्कृतिक संस्तवको पुष्ट और प्राणवान् करना। कुछ घंटे जमकर बातचीत हुई, जिसमें उत्कृष्ट चिन्ता और सूक्ष्म परिहासका अनोखा बुनाव था। गुरुदेवके संलापकी यह एक सहज विशेषता होती थी। बातचीतके अन्तमें अतिथियोंने शान्तिनिकेतन-विश्वभारतीके शिल्प, संगीत और अनुसन्धान विभागोंको देखनेकी इच्छा प्रकट की। उसी साँझ उन्हें कलकत्ते लौट जाना था। गुरुदेवने अपना दाहिना हाथ उठाकर आवेगके साथ कहा—'वह सब कभी और देखा जा सकता है; लेकिन श्रीनिकेतन देखे बग़ैर आप लोग आज लौट नहीं सकेंगे। देशके जागरणमें मेरी यत्किंचित् सेवाका मूर्तरूप श्रीनिकेतन है।' साहित्यिक लोग यह सुनकर स्तब्ध रह गए। कारण, सभीका खयाल था कि कवि अपनी लेखनीके दानको ही अपना प्रकृत दान समझते होंगे, हल-बखरकी सेवाको नहीं। श्रीनिकेतन शान्तिनिकेतनसे प्रायः २ मीलके फ़ासलेपर ग्रामोन्नयनका केन्द्र है। यदि कोई शिल्पी कहे कि उसने अपनी सृष्टि तूलिका और रंगों द्वारा नहीं, प्रत्युत मक्खन और मथानी द्वारा की है, तो हमारे लिए अवाक् होनेके अतिरिक्त और चारा ही क्या रह जायगा?

किन्तु कविने जो-कुछ कहा था, सो सचमुच ही कहा था; वही उनका अभिप्राय था। अपने यौवन-कालमें पिताके आदेशानुसार जब वे ज़मींदारीको देखभाल कर रहे थे, तभी उन्होंने धरतीकी कोखसे उत्पन्न दीन किसानोंके प्रति चित्तमें गम्भीर समवेदना और ममता बोध की थी, जो चिरस्थायी हो गई थी। उनके दुख-दर्दके साथ एक होकर उन्होंने दिन बिताए थे, और अपने देशका यह परिचय उनके अन्तरमें बहुत भीतर तक जा पहुँचा था। 'गीतांजलि'के—

'Here is Thy footstool but there rest Thy feet
Where live the poorest, the lowliest and the lost.'

गानमें उन्होंने इन्हीं लुंठित-कुंठित निर्वासितोंके लिए मर्मकी व्यथा सुनाई थी। यह गान दीनबन्धु एण्ड्रूज़को बहुत प्यारा था और बापूको भी अत्यन्त प्रिय है। इसीसे गुरुदेव अपने अन्त समय तक इन ग्रामवासियोंके बीच आलोक फैलाने अथवा उनकी ग़रीबीमें कुछ समृद्धिका संचार करनेवाले सभी प्रयासोंके साथ गहरा सहयोग रखते आए। वे किसानोंके शिरोमणि थे। इसलिए नहीं कि वे किसानोंके प्रभु ज़मींदारके पुत्र थे, बल्कि इसलिए कि वे उनके सबसे निकटके बन्धु, पथ-प्रदर्शक, शुभाकांक्षी थे—आन्तरिक योगसूत्र द्वारा उनके साथ एक थे।

इसी प्रसंगकी दो-एक घटनाओंका उल्लेख करूँ। शिलाइदाकी बात है। गाँवमें वार्षिक उत्सव तथा मेलेकी विराट तैयारियाँ हो रही थीं। पड़ोसके सभी विख्यात ज़मींदार और राजकर्मचारी आमन्त्रित थे। सबकी सामर्थ्यके अनुसार जगहें बनी थीं। ज़मींदारके पुत्र (कवि) का पहली बार शुभागमन हुआ था। सबके दिलमें खुशी और मुँहपर हँसी थी। एक बहुमूल्य क़ालीनपर एक खास ऊँचा आसन उनके लिए सजाया गया था। कार्यारम्भकी वेला आ गई थी। रवीन्द्रनाथ भी उपस्थित थे, तब भी मालूम नहीं क्यों श्रीगणेश नहीं हो रहा था। सभी हैरान थे। कानोंकान पूछ-ताछ शुरू हुई और जाना गया कि जब तक कवि अपना विशिष्ट आसन ग्रहण न कर लें, तब तक काम-काज कैसे शुरू हो? आखिर वे भीड़के साथ खड़े क्यों हैं, बैठ ही क्यों नहीं जाते? गुमाश्तोंके प्रधानने हाथ जोड़कर अपना भीत निवेदन पेश किया? 'ना,' कविने क्रोधके सुरमें कहा—'यह श्रेणीके अनुसार बैठनेका प्रबन्ध जब तक तुम हटा नहीं देते, तब तक मैं बैठ नहीं सकता।' कर्मचारीने अनादि कालसे चली आनेवाली प्रथाकी दुहाई दी और तरुण ज़मींदार-पुत्रको उसका औचित्य समझाया। किन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी। आसपास खड़े सभी लोगोंकी ओर उन्मुख होकर उन्होंने दृप्त कंठसे कहा—'आज यह जो एक-दूसरेके निकट-सम्पर्कमें आनेका अनायास ही एक मौक़ा मिला है, इसे क्या हम लोगोंकी बनाई हुई किसी अनोखी प्रथाकी दुहाई देकर व्यर्थ ही जाने देंगे? ऊँच-नीचका यह भेद यदि यहाँ भी लागू हो, तब फिर उत्सवका तो उद्देश्य ही मिट गया! मुझे यह सब ज़रा भी नहीं जँचता। ये सब कुर्सियाँ यहाँसे हटा दो, ताकि हम सब एक ही आसनपर एक साथ बैठ सकें।' आखिर यही हुआ। उस दिन कविने परम्परासम्मत दस्तावेज़ों और सनदोंकी राशिपर बनी हुई ज़मींदारकी उच्चस्थित प्रतिष्ठाको हिलाया और मनुष्य-मात्रकी साम्य-भावनाका दृढ़ कंठसे निर्घोष किया।

गाँवमें एक किसान था, जिसका एकमात्र काम अन्य किसानोंके साथ अदालतमें या अदालतसे बाहर ज़रा-ज़रा-सी बातोंपर झगड़ा करना था। इस कारण वह किसीका कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्य नहीं देता था अथवा देनेमें असाधारण विलम्ब करता था। ज़मींदारके साथ भी उसका यही बर्ताव था। सारा गाँव उससे परीशान था और उसे पराभूत करनेका मौक़ा ताक रहा था। प्रसंगवश गाँवके एक साहूकारने अपने ऋणके सिलसिलेमें बेदख़ली और कुर्कीकी एक डिगरी प्राप्त कर ली। यहाँ ज़मींदारकी तरफ़से एक और ऐसी ही डिगरी प्राप्त कर ली गई थी। चक्कीके दोनों पाटोंके बीच आ जानेवाले गेहूँके दानों-जैसी उस किसानकी हालत हो गई। अन्तमें उसने कविके चरणोंमें शरण लेनेकी बात तय की; किन्तु उसे मिलने कौन देता? एक दिन तूफ़ानी रातमें पद्माका विशाल पाट तैरकर यह आदमी थककर बेदम हुआ कविकी हाउस-बोटके तले जा पहुँचा। देखा, वे भोरके समय डेकपर अपने ध्यानमें लीन बैठे हैं। किसानमें अब और अधिक शक्ति नहीं थी। जो कुछ थी, उसे बटोरकर अपनी सबल देह द्वारा उसने एक ज़ोरका धक्का बोटको दिया। कविका ध्यान भंग हुआ, और आँख खोलते हुए उन्होंने उसे बुलाया। उनका यह अनोखा अतिथि अनोखे समयमें अनोखी राहसे आ पहुँचा था। ऊपर उठानेके बाद क्लान्ति दूर होनेपर उसने अपनी सारी कहानी ठीक-ठीक कह सुनाई। कविने देखा, यह सज़ा उसे मिटा ही देगी। मैनेजरको पुकार हुई और उसके लगानकी सारी बाक़ी माफ़ कर देनेका हुक्म हुआ। उसे कुछ और भी रियायतें मिलीं। इस उदार दानने उस आदमीके सारे स्वभावको ही बदल दिया। 'मैं अकाल-मौत मरकर पिशाचकी तरह भहराता फिरता; किन्तु स्वर्गसे किसी देवताने आकर मुझे बचा लिया!'—उससे इतना ही कहा गया।

और भी एक बारकी बात है। गाँवकी दो विधवाओंकी ज़मीनकी सरहदपर अनन्नासके दरख्त थे, जिन्हें लेकर हक़के लिए दोनोंमें झगड़ा हुआ करता था। समूचे गाँवकी शान्तिको सिरपर उठाकर ये दोनों आक्रमण और प्रत्याक्रमण किया करती थीं। कविके पास गाँवकी प्रजाने फ़रियाद की। दोनों विधवाएँ हाज़िर हुईं। कविने दोनोंकी ज़बानी क़िस्सा सुना। चुपचाप उन्होंने इसकी सारी धारणा बना ली और हुक्म दिया कि अनन्नास पक जानेपर लेकर दोनों हाज़िर हों। एकके एक बच्चा था, दूसरी निःसन्तान थी। दूसरी पेशीके समय तीनों प्राणी हाज़िर हुए। कविने बच्चेसे कहा—'बबुआ, वह जो वहाँ खड़ी हुई हैं (निःसन्तान विधवा), उन्हें मौसी कहकर उनसे ज़रा लिपट तो जाओ!' बच्चा दौड़कर लिपट गया। भोले शिशुके इस भोले सम्बोधनने 'मौसी'की सारी आग और गर्जन अनायास ही छीन लिए। झगड़ेके बादल जाने कहाँ उड़ गए। बच्चेने ही न्यायाधीश बनकर झगड़ेका अन्त किया था। पके हुए अनन्नास इसलिए उसे ही मिले!

ऐसी ही और भी करुण और मधुर घटनाएँ रवीन्द्रनाथकी ज़मींदारीमें काम करनेवाले एक कर्मचारीने हाल ही में एक

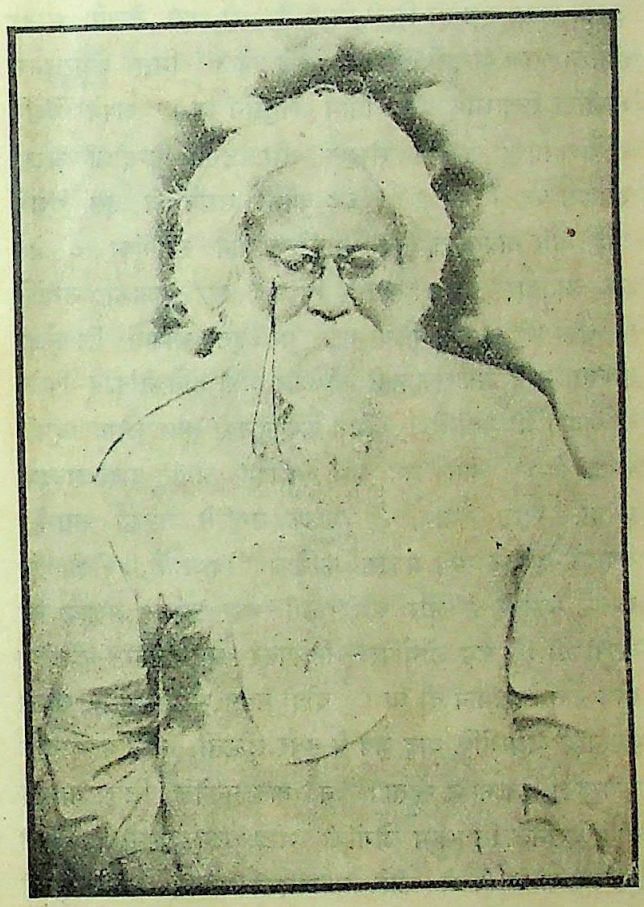

स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पुस्तकमें लिखी हैं। उसमें उन्होंने अपने संस्मरण व्यक्त किए हैं। पुस्तक बँगलामें है। जो लोग रवीन्द्रनाथको केवल कवि, जीवनसे पलायमान और किसानोंकी मृत्तिकामयी दुनियासे बाहर कहकर उनपर बिना जाने दोषारोपण किया करते हैं, उन सबसे यह पुस्तक—'सहज मानुष रवीन्द्रनाथ'—एक बार पढ़ जानेका आग्रह करता हूँ। उन्हें तब सहज ही मालूम हो जायगा कि रवीन्द्रनाथ किस तरह किसानोंके शिरोमणि थे।

शान्तिनिकेतन]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन पुस्तकोंमें नहीं हैं। इनके लिए मैंने समसामयिक पुस्तकोंका आश्रय लिया और एक तरहसे कथाको नए सिरेसे सम्पादित किया। आगे जो कथा दी हुई है, वह दीदीका अनुवाद है और फुटनोटमें जो पुस्तकोंके हवाले दिए हुए हैं, वे मेरे हैं। कथा ही असलमें महत्त्वपूर्ण है, टिप्पणियाँ तो उसकी प्रामाणिकताकी सबूत हैं।

बहुत दिनों तक दीदीका कोई समाचार नहीं मिला। मैं अब उनके दर्शनकी आशा छोड़ बैठा था। एक दिन अचानक मुग़लसराय स्टेशनपर दीदीके दर्शन हो गए। वे गाड़ी बदल रही थीं और बहुत व्यस्त दीख रही थीं। मुझे देखकर वे ज़रा भी प्रसन्न नहीं हुईं। केवल कुलीको डाँटकर कहती रहीं—'सँभालके ले चल। तू बड़ा आलसी है!' मैंने सोचा, कुली भी आलसी है! फिर मैंने चिल्लाकर कहा—'दीदी, तुम क्या पहचानतीं भी नहीं, वाह रे!'

दीदी रुक गईं। बोलीं—'देखो, मैं बहुत दुखी हूँ! वह बिल्ली धोखा दे गई।'

मैंने कहा—'क्यों, क्या हुआ?'

दीदी बोलीं—'कम्बख्त स्त्री निकली। देख न, पाँच बच्चे दिए हैं, मैं कहाँ तक सँभालूँ?'

मैंने बात काटकर कहा—'दीदी, वह आत्म-कथा मेरे ही पास पड़ी है।'

दीदी ग़ुस्सेमें थीं। रुकीं ही नहीं। गाड़ीमें बैठकर उन्होंने एक कार्ड फेंककर कहा—'मैं देश जा रही हूँ। ले, यह मेरा पता है। ले भला!'

मैंने कार्ड सँभाला और दीदीकी गाड़ी चल दी।

नीचे बाण भट्टकी आत्म-कथा दे रहा हूँ। दीदीने उसे प्रकाशित करनेकी आज्ञा दे दी है। लक्ष्य करनेकी बात यह है कि बाण भट्टकी अन्यान्य पुस्तकोंकी भाँति यह आत्म-कथा भी अपूर्ण ही है।

प्रथम उच्छ्वास

जयन्ति बाणासुर मौलिलालिता दशास्य चूड़ामणि चक्रचुम्बिनः
सुरासुराधीशसुखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥१॥

यद्यपि बाण भट्ट नामसे ही मेरी प्रसिद्धि है; पर यह मेरा वास्तविक नाम नहीं है। इस नामका इतिहास लोग न जानते, तो अच्छा था। मैंने प्रयत्नपूर्वक इस इतिहाससे लोगोंको अनभिज्ञ रखना चाहा है; पर नाना कारणोंसे अब मैं उस इतिहासको अधिक नहीं छिपा सकता। मेरी लज्जाका प्रधान कारण यह है कि मेरा जन्म जिस प्रख्यात वात्स्यायन-वंशमें हुआ है, उसके धवल कीर्ति-पटपर यह कहानी एक कलंक है। मेरे पितृ-पितामहोंके गृह वेदाध्यायियोंसे भरे रहते थे। उनके घरकी शुक-सारिकाएँ भी विशुद्ध मन्त्रोच्चारण कर लेती थीं, और यद्यपि लोगोंको यह बात अतिशयोक्ति जँचेगी; परन्तु यह सत्य है कि मेरे पूर्वजोंके विद्यार्थी उनकी शुक-सारिकाओंसे डरते रहते थे। वे पद-पदपर उनके अशुद्ध पाठोंको सुधार दिया करती थीं।[२] हमारे पूर्वजोंके घर यज्ञ-धूमसे निरन्तर धूमायित रहते थे। परन्तु यह सब मेरी सुनी हुई कहानी है। अपने पिता चित्रभानु भट्टको तो मैंने स्वयं देखा है। यदि मैं कहूँ कि सरस्वती स्वयं आकर अपने पाणि-पल्लवोंसे मेरे पितृदेवके होम-कालीन श्रम-सीकरोंको पोंछा करती थीं, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि उषःकालसे लेकर सूर्योदयके दो मुहूर्तों तक निरन्तर हवन करनेके बाद जब मेरे पिता पसीनेसे तर होकर उठते थे, तो सीधे अध्यापनके कुशासनपर जा बैठते थे। यही उनका विश्राम था। इसी समय विद्यार्थियोंको वेदाभ्यास कराते-कराते उनके श्रम-विन्दु सूखते थे।[३] इसे सरस्वतीका पसीना पोंछना न कहूँ, तो क्या कहूँ? ऐसे ही कृती पिताका मैं पुत्र था—जन्मका अवारा, गप्पी, अस्थिर-चित्त और घुमक्कड़। मैं घरसे जब निकल भागा था, तो अपने साथ गाँवके अन्य अनेक छोकरोंको भी फोड़ ले गया था। वे सब अन्त तक मेरे साथ नहीं रहे, तो भी मैं गाँवमें बदनाम तो हो ही गया था। मगधकी बोलीमें 'बण्ड' पूँछकटे बैलको कहते हैं। वहाँ यह कहावत मशहूर है कि 'बण्ड आप आप गए, साथमें नौ हाथका पगहा भी लेते गए।' सो लोग मुझे 'बण्ड' कहने लगे। इसीको बादमें संस्कृत शब्द 'बाण' द्वारा संस्कार करके मैंने इस नामकी कुछ इज्ज़त बढ़ा ली। भट्ट तो लोगोंने और बादमें जोड़ा। वैसे मेरा असली नाम दक्ष था। इधर मेरे प्रति लोगोंका आदर और स्नेहका भाव बढ़ गया है, वे चाहें तो दक्ष भट्ट कह लें। बड़ी होशियारीसे मैंने यह नाम अन्यत्र सुरक्षित रख छोड़ा है। उसकी कहानी मैं अभी बताऊँगा।

मेरे पिता ग्यारह भाई थे। मैंने उनमें से सबको नहीं देखा था। मेरे एक चचेरे भाईका नाम उडुपति था। वे उम्रमें मुझसे बहुत बड़े थे; पर मेरे साथ उनका व्यवहार समवयस्कोंके समान ही था। वे उस युगके प्रसिद्ध तार्किक

१. तु० कादम्बरी, कथामुख २।

२. तु० कादम्बरी, कथामुख १२।

३. „ „ १९; हर्षचरित, २य उच्छ्वास, पृ० ३३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उन्होंने ही गुणभद्र नामक बौद्ध भिक्षुको शास्त्रार्थमें पराजित किया था। उनकी विद्वत्ता और चारित्र्यका महाराजाधिराज हर्षवर्द्धनपर बड़ा प्रभाव था और वे एकाएक वैदिक मतकी ओर प्रवृत्त हो गए थे। वे उडुपति भट्ट[४] मेरे ऊपर जितना स्नेह रखते थे, उतना मेरे परिवारमें कोई नहीं रखता था। उन्होंने अनेक अपकर्मोंसे मुझे बचाया है। प्रसंगवश मैं उनकी चर्चा यथास्थान करूँगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि १४ वर्षकी उम्रमें जब मेरे पिता नहीं रहे—माता तो बहुत पहले मर चुकी थीं[५]—तो ये उडुपति भट्ट ही मुझे उस स्नेह-रससे सिंचित करते रहे, जिसे मैंने अपनी मातासे पाया था। लेकिन इस कहानीको अपने दुर्भाग्यके रोनेसे नहीं शुरू करूँगा। इसे अपने सौभाग्यके उदयके साथ ही आरम्भ करूँगा। बीच-बीचमें यदि दुर्भाग्यकी कहानी आ जाय, तो इस कथाके अध्येता उसे क्षमा करेंगे।

आवारा तो मैं था ही। इस नगरसे उस नगरमें, इस जनपदसे उस जनपदमें बरसों मारा-मारा फिरता रहा। इस भटकानमें मैंने कौन-सा कर्म नहीं किया? कभी नट बनता, कभी पुतलियोंका नाच दिखाता, कभी नाट्यमंडली संगठित करता और कभी पुराणवाचक बनकर जनपदोंको धोखा देता रहा। सारांश, कोई कर्म छोड़ा नहीं। भगवानने मुझे रूप अच्छा दिया था और बोलनेकी पटुता भी थोड़ी-सी थी। बस, मेरी किशोरावस्था और जवानीके दिनोंमें ये ही दो बातें मेरी सहायता करती थीं। यद्यपि लोग मेरे बहुविध कार्य-कलापको देखकर मुझे 'भुजंग' समझने लगे थे; पर मैं लम्पट कदापि नहीं था। सो घूमता-घामता एक बार मैं स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नगरमें पहुँच गया। उस दिनको मैं अपने सौभाग्यका दिन मानता हूँ।

जब मैं नगरमें पहुँचा, तो बड़ी धूमधाम देखी। कूर्मपृष्ठके समान उन्नतोदर राजमार्गपर एक बड़ा भारी जुलूस चला जा रहा था। उस जुलूसमें स्त्रियोंकी संख्या ही अधिक थी। राजवधुएँ बहुमूल्य शिविकाओंपर आरूढ़ थीं। साथ-साथ चलनेवाली परिचारिकाओंके चरणविघट्टन-जनित नूपुरोंके क्वणनसे दिगन्त शब्दायमान हो उठा था। वेगपूर्वक भुज-लताओंके उत्तोलनके कारण मणि-जटित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। इससे बाहु-लताएँ भी झनकार करने लगी थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियोंको देखनेसे ऐसा लगता था, मानो आकाश-गंगामें खिली हुई कमलिनियाँ हवाके झोंकोंसे विलुलित होकर नीचे उतर आई हों। भीड़के संघर्षसे उनके कानोंके पल्लव खिसक रहे थे। वे एक-दूसरीसे टकरा जाती थीं। इस प्रकार एकका केयूर दूसरीकी चादरमें लगकर उसे खरोंच डालता था। पसीनेसे धुल-धुलकर अंगराग उनके चीनांशुकोंको रँग रहे थे। साथमें नर्त्तकियोंका भी एक दल जा रहा था। उनके हँसते हुए वदनोंको देखकर ऐसा भाव होता था कि कोई प्रस्फुटित कुमुदोंका वन चला जा रहा है। उनकी चंचल हार-लताएँ ज़ोर-ज़ोरसे हिलती हुई उनके वक्षोभागसे टकरा रही थीं, खुली हुई केशराशि सिन्दूर-विन्दुपर अटक जाती थी। निरन्तर गुलाल और अबीरके उड़ते रहनेके कारण उनके केश पिंगल वर्णके हो उठे थे और उनके मनोरम गानसे सारा राजमार्ग प्रतिध्वनित हो उठा था।

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

मैं नगरके एक चौराहेपर खड़ा-खड़ा मुग्ध भावसे यह दृश्य देख रहा था। इसका सबसे मज़ेदार हिस्सा वह था, जिसमें राजमहलमें रहनेवाले बौने, कुबड़े, नपुंसक और मूर्ख लोग उद्धत नृत्यसे विह्वल होकर भागे जा रहे थे। एक वृद्ध कंचुकीकी दशा बड़ी दयनीय हो गई थी। उसके गलेमें एक नृत्यपरायणा रमणीका उत्तरीय वस्त्र अँटक गया था और खींचतानमें पड़ा हुआ बेचारा बूढ़ा उपहासका पात्र बन गया था। राजकन्याओंका स्थान जुलूसके ठीक मध्य भागमें था। यहाँका नृत्य-गान संयत, गम्भीर और मनोहारी था। एक ओर भेरी, मृदंग, पटह, काहल और शंखके निनादसे धरित्री फटी जा रही

४ हर्षचरितमें बाणके एक पितृव्य पुत्रका नाम तारापति लिखा है। उडुपति शायद वे ही हैं।

५. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वाससे तुल०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और दूसरी ओर राजकन्याओंके कपोल-तलोंके आन्दोलित मणिमय कुण्डल और उत्पल-पत्रोंसे जगमगाती हुई शिविकाएँ बीच-बीचमें सनूपुर चरणोंकी ईषत् झंकारसे मुखरित हो उठती थीं। सबके पीछे राजाके चारण और बन्दी लोग विरुद-गान करते हुए जा रहे थे। उनमें से कुछ तो आनन्दातिरेकमें ऐसे मदमस्त थे कि मुखसे ही एक विशेष प्रकारके वाद्यका काम ले रहे थे। जुलूसके पार होनेमें दो दण्ड समय बीत गया[६] और मैं निश्चल प्रतिमाकी भाँति इतनी देर तक खड़ा रहा।

जब जुलूस निकल गया, तो मैं जैसे नींदसे जागा। नगरवासियोंसे पता चला कि महाराजाधिराज श्री हर्षदेवके भाई कुमार कृष्णवर्द्धनके घर पुत्र-जन्म हुआ है और आज उसका नामकरण-संस्कार होने जा रहा है। मैंने जब यह सुना, तो क्षणभरके लिए मेरा चेहरा उतर गया। मुझे अपनी दशा याद आ गई। एक ऐसे भाग्यवान हैं, जिनके जन्मपर इतना उत्सव मनाया जा रहा है और एक मैं अभागा हूँ, जो देश-विदेश मारा-मारा फिर रहा हूँ! मुझे मेरा जन्म याद आया। मेरी माता मेरे जन्मके कुछ वर्ष बाद ही परलोक सिधार गई थीं। पिता उस समय वृद्ध हो चले थे। अपने अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजनके अनेक विध कर्मबहुल जीवनमें उन्हें मेरे पालन-पोषणका गुरु भार भी सँभालना पड़ा था। स्नेह बड़ी दारुण वस्तु है, ममता बड़ी प्रचण्ड शक्ति है; क्योंकि वृद्ध पिताके थके जीवनमें भी एक और उपसर्ग आ जुटा और फिर भी वे अक्लान्त चित्तसे मुझे सँभालते रहे। होम-वेदिकासे उठकर जब वे अध्यापनके कुशासनपर बैठते, तो मेरा धूलिधूसर कलेवर प्रायः उनकी गोदमें होता। मैंने उनसे जितना स्नेह पाया, उतनी विद्या नहीं पाई। चौदह वर्षकी अवस्थामें वे भी मुझे अनाथ करके चले गए! मेरे जीवनमें जो-कुछ सार है, वह मेरे पिताका स्नेह है। उसीसे मैं बिगड़ा भी और बना भी। आज इस आनन्दके कोलाहलने धक्का देकर मुझे अपने पिताकी गोदमें फेंक दिया। मैंने एक बार आकाशकी ओर देखा। मुझे ऐसा लगा कि मेरे पितामहगण मेरे ऊपर दुःखके अश्रु बरसा रहे हैं। कहाँ वेदाध्यायियोंका 'यशोंशु शुक्लीकृत सप्तविष्टय' वंश और कहाँ मैं अभागा वण्ड! हे धरित्री, फट जाओ, ताकि मैं छिप जाऊँ!

एकाएक मेरे मनमें आया कि क्यों न कुमार कृष्णवर्द्धनके पुत्र-जन्मके अवसरपर बधाई दे आऊँ। आशीर्वाद देना तो ब्राह्मणका धर्म है, कर्तव्य है, पेशा है। यद्यपि मैं योजना बनाकर कोई कार्य नहीं कर पाता—और यही कारण है कि मैं कोई भी पुस्तक समाप्त नहीं कर सका—पर निश्चय करनेमें बिल्कुल देर नहीं करता। सो ज्योंही यह विचार मेरे मनमें आया, मैं कुमारके गृहको प्रस्थान करनेका आयोजन करने लगा। उस दिन मैंने वटके स्नान किया, शुक्ल अंगराग धारण किया, शुक्ल पुष्पोंकी माला धारण की, अगुल्फ शुक्ल धौत उत्तरीय धारण किया—यही मेरा प्रिय वेश था[७]—और भगवान् त्र्यम्बकके चरणोंमें अश्रुधौत प्रणाम निवेदन करके चल पड़ा। उस समय संध्या हो आई थी। भगवान् मरीचि-मालीकी किरणें पृथ्वी-तलको छोड़कर तरु-शिखरोंपर और वहाँसे भी उठकर अस्तंगिरिकी चूड़ाओंपर जा बैठी थीं। धीरे-धीरे चाँदनी भी छा गई। उस दिन शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी थी। मैं अत्यन्त पुलकित होकर कुमार कृष्णवर्द्धनके घरकी ओर चला। एक बार भी मैंने यह नहीं सोचा कि इस समय वे मुझसे मिलना चाहेंगे भी या नहीं। मेरे मनमें आज अजीब उमंग थी। आज ही मानो मेरा सारा कलुष धुल गया था और मेरा मन तथा शरीर लघु-भार हो गए थे। मैं अब निश्चय कर चुका था कि अपनी लम्पटताकी बदनामीको हमेशाके लिए धो दूँगा। आज मैं कुमार कृष्णवर्द्धनसे मित्रता करूँगा और दस दिनके भीतर ही महाराजाधिराजका भी कृपापात्र बन जाऊँगा। फिर मेरा गृह यज्ञधूमकी कालिमासे दिशाओंको धवल बना देगा। फिर मेरे द्वारपर वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करती हुई शुक-सारिकाएँ बटुजनोंको पद-पदपर टोका करेंगी। मैं अब वात्सायन-वंशका कलंक कदापि न हूँगा।

पर मेरा भाग्य अब भी किसी अदृष्टके कंटकमें उलझा हुआ था। जो होना था, वह हो गया, और जो होना चाहिए था, वह न हुआ। इसके बाद मुझे एक ऐसी घटना लिखनी है, जिसे लिखते समय मुझे आज भी भय और आशंकासे काँप उठना पड़ता है। मैं जिस बातसे बचना चाहता था, उसीसे टकराना पड़ा। भाग्यको कौन बदल सकता है? विधिकी प्रबल लेखनीसे जो-कुछ लिख दिया गया है, उसे कौन मिटा सकता है? अदृष्टके पारावारको उलीचनेमें अब तक कौन समर्थ हुआ है? (क्रमशः)

---

६. यह वर्णन कादम्बरीमें शुकनासके पुत्रोत्सव-कालीन यात्रा-वर्णनसे मिलता है।

७. हर्षचरित, २य उच्छ्वास, पृ० ४० से तुल०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[इटलीके प्रसिद्ध चित्रकार **ल्यानार्दो द' विन्चीका** विख्यात चित्र **मोना लीज़ा** । इसके हाथों और मुसकानका चित्रण कला-जगत्में असाधारण एवं अद्वितीय समझा जाता है । निम्न कविताकी प्रेरणाका आधार इसी चित्रकी 'मायावी मुसकान' है !]

मायावी मुसकान

श्रीमती सत्यवती शर्मा

तुम्हारी मायावी मुसकान !
रूपसी रसका लेकर भार,
स्नेहसे सिंचित कुछ संगीत ।
कलाकी किरणोंसे हो दीप्त,
तुम्हारा जीवित स्वर्ण-अतीत ।
विजयसे नव विकसित है नित्य,
तुम्हारे अधरोंका अभिमान !
तुम्हारी मायावी मुसकान !

—लेखिका—

[शोणितसे आरक्त,
किए जिसने अधरोंके कूल ।
कबपर उस साधककी कौन,
चढ़ाने जाएगा दो फूल ?
अमर कर तेरा रूप अनूप,
रुका जिसके जीवनका गान !
तुम्हारी मायावी मुसकान !

तुम्हारे स्मितकी सुन्दर रेख,
क्षितिज तक ले जाती चुपचाप ।
झाँककर देख सका पर कौन,
उधर वरदान खिला या शाप ?
इसीकी छलनामें है लीन,
मानवी सपनोंका सब ज्ञान !
तुम्हारी मायावी मुसकान !

प्रलयके घनमें विद्युत-ज्वाल,
साधनाका पथ है या शान्त
कल्पनामें खोया संसार,
हुआ है मानवका मन भ्रान्त ।
तरंगित नयनोंमें दिन-रात,
तुम्हारी मोहमयी मुसकान !
तुम्हारी मायावी मुसकान !

शून्य रजनीकी वेला शान्त,
रहा हो चन्द्र गगनमें डोल ।
स्वप्नमें कह जाना चुपचाप,
भाव वे अन्तरके अनमोल ।
रहेगा रक्षित तेरा मर्म,
सृष्टिका चाहे हो अवसान !
तुम्हारी मायावी मुसकान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

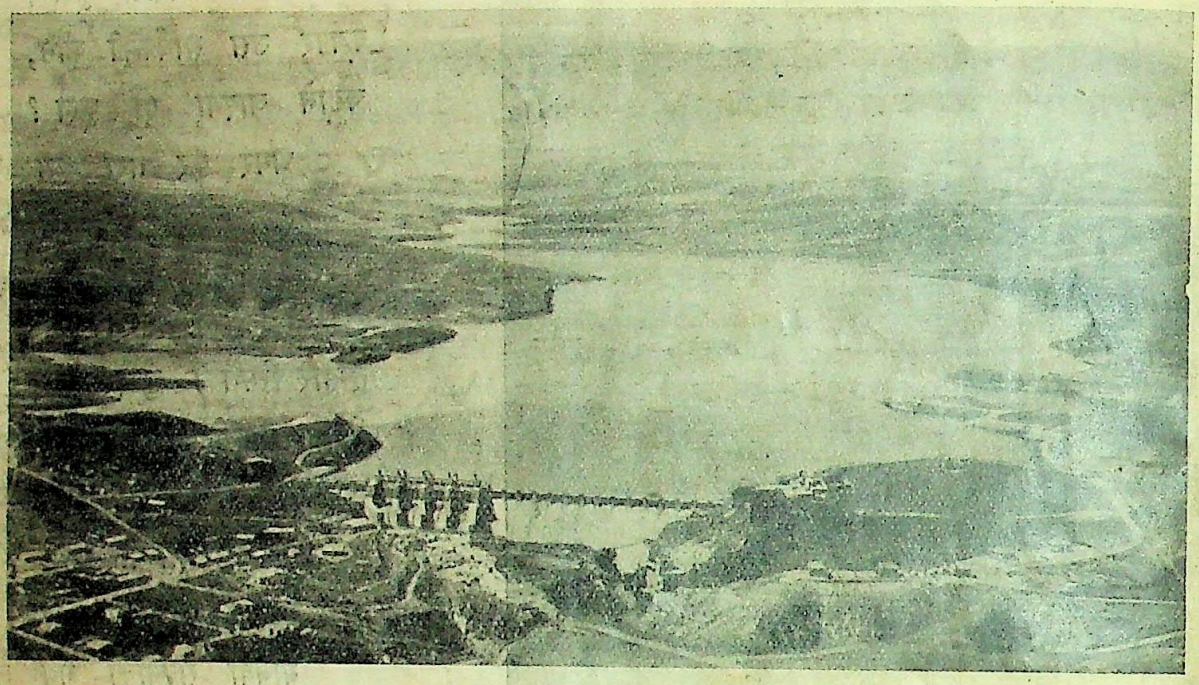

फ्रांसीसी मोरक्कोके विराट ओयद न'फिलस बाँधका एक दृश्य।

एलजीरियाके बोन बन्दरगाहमें आई हुई तेलकी टंकियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साध

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए० (आनर्स), एल्-एल्० बी०

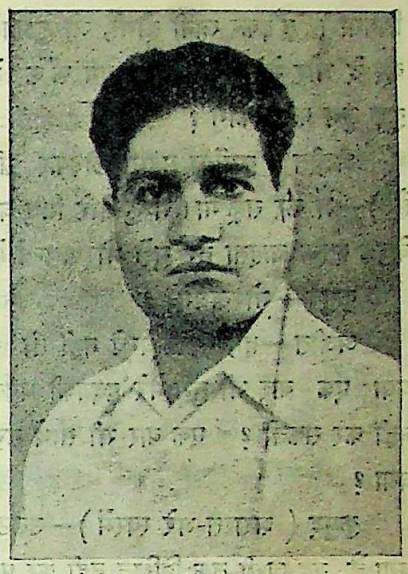

[हिन्दी-संसार शर्माजीसे अपरिचित नहीं है। आपकी कहानियाँ और लेख हिन्दीके लगभग सभी पत्रोंमें सम्मानपूर्वक प्रकाशित होते रहते हैं। थोड़े शब्दोंमें अधिक भाव भर देना आपकी अपनी विशेषता है। आपकी भाषा सरल, विचार संयत एवं सुरुचिपूर्ण और शैली परिष्कृत है। आपके 'दुविधा' और 'अपराधी' (नाटक) तथा 'पंखुड़ियाँ' (कहानी-संग्रह) इसके प्रमाण हैं। तीन अंकोंका प्रस्तुत नाटक—जिसका एक अंक यहाँ दिया जा रहा है तथा शेष दो क्रमशः अगले दो अंकोंमें छपेंगे—आपका नवीनतम सामाजिक समस्यामूलक नाटक है। नाटककी वस्तुका जिस मनोवैज्ञानिक ढंगपर निर्माण हुआ है, उसी बारीकी और कौशलके साथ विद्वान् लेखकने उसे अन्त तक निभाया भी है। आशा है, पाठक इसे पसन्द करेंगे। —सं०]

पात्र

अजीत	अर्थशास्त्रका प्रोफ़ेसर।
कुमुद	आधुनिक शिक्षा-प्राप्त युवती।
रामेश्वरी देवी	कुमुदकी माँ।
विमल	कुमुदका छोटा भाई।
मृदुला	कुमुदकी सखी।
जीवन	मृदुलाका भाई।
राजदेवी	मृदुलाकी माँ।
महेश	जीवनका मित्र।
मोहन	अजीतका चारवर्षीय भानजा।
जगेश्वर	मोहनका पिता।

आया, नौकर, शोफ़र आदि।

पहला अंक * पहला दृश्य

[समय—शामके साढ़े पाँच बजेके लगभग। स्थान—उत्तरीय भारतके एक बड़े शहरकी किसी कोठीका लान। दाईं ओर नीली कोठीका कुछ अंश भी दृष्टिगोचर है। लानके चारों तरफ़ कायदेसे कटी-छँटी हरी झाड़ियाँ हैं। साथ ही सामनेकी ओर वाटिका है, जिसमें विविध प्रकारके फूलोंके पौधे हवामें लहरा रहे हैं। डूबते हुए सूर्यकी रश्मियाँ फूलोंके साथ टकरा रही हैं। लानके दर्शकोंवाले किनारेसे कुछ ही हटकर तीन-चार कुर्सियाँ रखी हैं। उनके मध्यमें एक तिपाईपर कुछ पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी हैं। एक कुर्सीपर कुमुद, जिसकी आयु लगभग इक्कीस-बाईस वर्षकी होगी, बैठी है। यह बताना कि उसका रंग गोरा है या गन्दुमी, कठिन है; क्योंकि उसके चेहरेसे स्वस्थताकी आभा नहीं, बल्कि पेन्टकी लालिमा फूट रही है। बड़ी-बड़ी आँखोंमें काजल लग रहा है। ओंठ लिप-स्टिक द्वारा रंजित हैं। नाक छोटी, परन्तु तीखी है। अधकटे सुनहले बाल गर्दनको छिपाए हुए हैं। उनमें चिकनाहट नामको भी नहीं, परन्तु किसी पश्चिमीय 'नाइन' द्वारा उनपर स्थायी लहरें अवश्य बना दी गई हैं। उसके सामने कुर्सीका सहारा लिए झुका-सा अजीत बैठा है, जिसकी आयु कोई तीस वर्षकी होगी। बढ़िया सिला, परन्तु घिसा हुआ सूट पहने है, जिसका कपड़ा नीले, हरे और लाल रंगका मिश्रण-सा है। बाल कुछ बिखर-से रहे हैं और कोई-कोई बाल पक भी चुका है। रंग उसका गन्दुमी है, ललाट उन्नत, आँखें बड़ी और चमकती हुईं, ओठ पूर्ण रूपसे विकसित। ज़रा उत्तेजित मालूम देता है।]

कुमुद (हँसते हुए नेत्रोंसे अजीतकी ओर देखती हुई व्यंग्यात्मक स्वरमें)—क्यों, रुक क्यों गए हो? कहे जाओ।

अजीत (जोशसे)—लो सुनो। मैं चाहता हूँ, तुम्हारे प्रेममें पागल हो उठूँ। सुध-बुध खो दूँ। तुम्हें इधरसे उधर लेकर उड़ता फिरूँ।

कुमुद (अपने बालोंको छेड़ती हुई सहज स्वरमें)—तो यह ऊँचाई तुम्हें इस गणितकी समस्याओंकी भाँति नपे-तुले प्रेम द्वारा प्राप्त न हो सकेगी। उसके लिए तुम्हें अनन्त वर्षोंसे नस-नसमें समाई हुई सभ्यतासे नाता तोड़कर किसी आदि-पुरुषकी प्रेम-पुस्तकके पृष्ठोंको उलटना होगा।

अजीत (आश्चर्यसे)—आदि-पुरुष?

कुमुद—हाँ। जिस उन्मादको तुम चाहते हो, उसके अद्भुत आदर्शपर पहुँचनेके लिए तुम्हें कहींसे वह दिव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिनगारी ढूँढ़कर लानी होगी, जो तुम्हारे हृदयको प्रज्ज्वलित कर दे और मेरे तन-बदनमें आग फूँक दे। क्या यह सब कुछ तुम कर सकोगे ?

अजीत (कुर्सीका सहारा छोड़कर सीधा खड़ा हो जाता है)—मैं कर सकूँगा। मैं तुम्हारे लिए क्या नहीं कर सकता ? केवल इतना चाहता हूँ, मुझे गोरखधन्धोंमें न फँसाओ।

कुमुद—गोरखधन्धे ?

अजीत—हाँ, गोरखधन्धे नहीं तो और क्या ? कुमुद, क्या एक बार भी तुम मेरे हृदयकी धड़कनको मापनेका प्रयत्न नहीं कर सकतीं ? एक बार भी सीधे ढंगसे बात नहीं करोगी क्या ?

कुमुद (शरारत-भरे स्वरमें)—उलटा क्या है और सीधा क्या है, यह अभी तक निश्चित नहीं कर पाई हूँ, अजीत ! और तुम्हारे हृदयकी धड़कन तो मेरे नेत्रोंकी एक बरौनी तौल सकती है, तौलती है।

अजीत (ज़रा खीझकर)—फिर वही बातें। लोगोंने जो तुम्हारा नाम रखा है, वह ठीक ही है।

कुमुद (उत्सुकतासे)—क्या नाम रखा हुआ है लोगोंने मेरा, सुनूँ तो। आज तो सचमुच तुम रोचक होते जा रहे हो।

अजीत—लोग तुम्हें···

कुमुद—डरो मत, कह डालो।

अजीत—लोग तुम्हें जादूकी गुड़िया कहते हैं।

कुमुद (खिलखिलाकर हँसती है)—जादूकी गुड़िया ? बहुत खूब !

अजीत—इसलिए मैं निवेदन करूँगा कि तुम मुझे अपने जादूके खेल न दिखाओ। मैं पिछले दो वर्षोंसे तुम्हारे हृदयकी थाह पानेका प्रयत्न कर रहा हूँ, पर व्यर्थ। क्या कुछ क्षणके लिए भी तुम विशुद्ध नारीका रूप धारण नहीं कर सकतीं ?

कुमुद—नारी ! (कुछ देर सोचमें डूबी रहती है, फिर गम्भीर स्वरमें) अजीत, अपने नारीत्वको छिपा ही कहाँ पाई हूँ। तुम जो कहना चाहते हो, कहो। इस समय मेरा रोम-रोम तुम्हारी बात सुननेके लिए उत्सुक है।

अजीत—कुमुद मैं...(रुक जाता है।)

कुमुद—झिझको मत। हृदयका भार हल्का कर डालो। यदि तुम चाहो, तो मैं इस पुते हुए चेहरेको पोंछ-धो आऊँ।

अजीत (मुस्कराकर)—इसकी ज़रूरत नहीं। कुमुद, मैं चाहता हूँ, तुम्हें अपने सर्वस्वकी रानी बनाना।

कुमुद (अपनी गम्भीरतामें उपहास भरते हुए)—अर्थात् तुम मुझे बन्धनोंमें बाँधना चाहते हो।

अजीत—यही समझ लो।

कुमुद (आधे क्षणके लिए एकटक अजीतकी ओर देखती हुई)—अजीत, मैं तुम्हें चाहती हूँ, बहुत चाहती हूँ, यह न छिपाऊँगी ; किन्तु मैं अपनी स्वच्छन्दता तुम्हारे लिए भी निछावर कर सकूँगी, इसका मुझे विश्वास नहीं। इसलिए मुझे खेद है, मैं तुम्हारे प्रस्तावके साथ सहमत न हो सकूँगी।

अजीत—और यदि मैं तुम्हारी स्वच्छन्दतासे छेड़-छाड़ न करूँ तो ?

कुमुद—यह सम्भव ही नहीं। ज्यों ही विवाह हो जायगा, मेरे ऊपर तुम्हारे स्वामित्वकी मुहर लग जायगी। फिर न चाहते हुए भी तुम मेरे गलेमें रस्सी डालकर मुझे इधर-उधर प्रदर्शित करते फिरोगे।

अजीत (अनुनयसे)—कुमुद, मैं वचन देता हूँ कि ऐसा नहीं होगा।

कुमुद—चलो, मैं आधे क्षणके लिए मान लेती हूँ कि तुम अपने इस वचनका पालन कर लोगे। इसके बाद जानते हो, क्या होगा ?

अजीत—क्या ?

कुमुद—इसके बाद तुम्हारे हृदयमें अनन्त वर्षोंसे छिपी हुई अपने प्रतिरूपकी, अपने उत्तराधिकारीकी लालसा जागृत होगी। फिर उस लालसाको पूरा करनेके लिए मुझे धड़ाधड़ बच्चे पैदा करने होंगे। (ज़रा काँपकर) न, मुझसे इस जंजालमें न फँसा जायगा।

अजीत—हो सकता है, मैं इस लालसाका भी दमन कर दूँ।

कुमुद—हाँ, हो सकता है। पर बहुत सम्भव है कि ऐसा न भी हो। एक सम्भावनापर मैं अपना जीवन कैसे अर्पित कर दूँ ?

अजीत—यदि मैं प्रतिज्ञा करूँ कि इस सम्भावनाको निश्चयमें परिणत कर दूँगा, तो क्या मेरी प्रार्थना स्वीकृत हो जायगी ?

कुमुद (पिघलकर, दुलारसे)—अजीत, तुम क्यों मुझे मायाजालमें फँसानेकी कोशिश कर रहे हो ?

अजीत (अपने स्थानसे हटकर कुमुदके पाँवोंमें जा बैठता है)—कुमुद, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।

[कुमुद उसके बालोंसे खेलने लगती है। कुछ ही देर बाद नेपथ्यसे बातें करने और हँसनेका शब्द सुनाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजीत झटपट उठकर कुमुदके सामने कुर्सीपर बैठ जाता है। इतनेमें मृदुला, जीवन और महेश प्रवेश करते हैं। मृदुला एक सफ़ेद रेशमी साड़ी, जिसपर कोई पाव गज़ चौड़ा रूपहला बार्डर लगा है, पहने है। उसके बाल कटे हुए नहीं हैं और मालूम देता है, बहुत लम्बे हैं; क्योंकि उनका जो जूड़ा बन रहा है, वह काफ़ी बड़ा है। चेहरा उसका भी रँगा-पुता है। छोटे-छोटे नेत्रोंको काजलके बलपर महत्व देनेका विफल प्रयास किया गया है। नाक कुछ आवश्यकतासे अधिक लम्बी है। जीवन और महेश दोनों क्रमशः भूरे तथा नीले रंगके विलायती सूट पहने हैं। जीवन ज़रा लम्बे, छरहरे बदनका युवक है। सुन्दर चेहरेपर अध्ययनकी रेखाएँ पड़ी हुई हैं। महेशका क़द लगभग जीवन-जितना ही है और शरीर भी वैसा ही है; परन्तु मुखसे उच्छृंखलता टपकती है।]

जीवन—अहह! यहाँ तो प्रोफ़ेसर साहब भी बैठे हैं।

अजीत—आओ जीवन, क्या हाल है? पढ़ाई कैसी चल रही है?

जीवन—यूँ ही। पढ़ाईका सिलसिला टूट-सा गया है। थीसिस तैयार करनेमें लगा हूँ।

मृदुला—आप लोग क्या नीरस किस्सा ले बैठे हैं।

कुमुद (शरारतसे)—तुम जो सरस कहानी ले आई हो, वही कहो। कहाँकी तैयारी है?

मृदुला—आज स्टैंडर्डमें टी-डान्स है। हम लोग वहीं जा रहे हैं। झटपट कपड़े बदल डालो। प्रोफ़ेसर साहब, आपको भी चलना होगा।

अजीत—मुझे? (असमंजसमें पड़ जाता है।)

महेश—आपको क्या आपत्ति है?

अजीत—आपत्ति तो कुछ नहीं, परन्तु मुझे अभी कलका पाठ तैयार करना है।

महेश—वह तो कल सुबह भी हो सकता है।

अजीत—सुबह तो भई, मैं जल्दी उठ ही नहीं सकता। नहीं, मैं तो क्षमा ही चाहता हूँ।

मृदुला—जैसी आपकी इच्छा! कुमुद, तुम तो भागो।

कुमुद—मैं जा रही हूँ।

मृदुला—दो मिनटमें लौटना।

कुमुद—बहुत अच्छा।

[कुमुद भागती हुई लानसे बाहर हो जाती है।]

मृदुला (जोशसे पैरोंको हिलाती हुई)—मेरा तो जी चाहता है, नाचती-नाचती आज पागल हो जाऊँ।

अजीत—जानती हो, क्यों?

मृदुला—इसलिए कि इससे शरीरमें स्फूर्ति आयगी और हृदय खिल उठेगा।

अजीत—तुम भूलती हो। शरीरमें स्फूर्ति लानेके और भी तरीक़े हैं। बात यह है कि पश्चिमीय साँचेमें ढलकर हमारा जीवन अस्वाभाविक हो गया है, जिसके कारण उसपर नीरसता और अशान्ति छाई रहती हैं। उसी नीरसता और अशान्तिसे उन्मुक्त होनेके लिए हम उत्तेजनाकी राह टटोलते हैं ब्रिजकी मेजपर, घुड़दौड़के मैदानमें, जगमगाते नाच-गृहमें। बस, इसी उत्तेजनाकी तलाशमें हम सब भटका करते हैं; परन्तु इससे बन कुछ भी नहीं पाता। उत्तेजनाकी प्यास उल्टी और भी भड़क उठती है।

मृदुला (खिलखिलाकर हँसती है)—आपने तो यहाँ भी अपना क्लास-रूम बना लिया।

[अजीत लज्जित होकर चुप रह जाता है।]

जीवन—मृदुला, यह यों ही फेंक देनेवाली बात नहीं।

महेश (कलाईपर बँधी घड़ीकी ओर देखकर)—कुमुद अभी तक लौटी नहीं। देर हो रही है।

मृदुला—बस, आती ही होगी। चलो, तब तक हम फूल देखें।

महेश—चलो।

[दोनों हँसते हुए वाटिकाकी ओर बढ़ने लगते हैं। अजीत और जीवन वहीं बैठे रहते हैं।]

जीवन—आज आपने बड़ी पतेकी बात कही है। इस आधुनिकताकी लहरको बिलकुल मौलिक दृष्टिकोणसे देखा है।

अजीत—केवल देखा-भर ही है। यों तो मैं भी इस लहरमें बेतरह बहता चला जा रहा हूँ। कोशिश करनेपर भी कहीं कूल-किनारा नहीं मिलता।

[कुमुद साड़ीको सँवारती हुई तेज़ीसे प्रवेश करती है।]

कुमुद—मृदुला और महेश कहाँ गए?

जीवन—उधर फूल देखने गए हैं। मैं अभी बुलाता हूँ।

[वाटिकाकी ओर चल देता है और कुछ ही क्षणोंके बाद उन्हें लेकर लौट आता है।]

मृदुला—हो गई तैयारी, कुमुद?

कुमुद—हाँ।

महेश—तो चलो, जल्दी करो।

[सब उठकर लानसे बाहर निकल जाते हैं।]

[परदा गिरता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा दृश्य

[समय—शामके नौ बजेके लगभग। स्थान—कुमुदका बैठने-पढ़नेवाला कमरा। एक कोनेमें एक मेज़ और कुर्सी लगी हुई हैं। मेज़पर कुछ किताबें और कुछ पत्रिकाएँ बिखरी पड़ी हैं। बाक़ीके भागमें एक नए ढंगका सोफ़ा सेट और कुछ आरामकुर्सियाँ रखी हैं। कमरेके दाएँ-बाएँ एक-एक दरवाज़ा है। सामनेकी दीवारमें एक खिड़की है, जो बागमें खुलती है। कुमुद एक आरामकुर्सीपर सिमटी-सी बैठी है। मालूम होता है, किसी गहरे सोचमें डूबी हुई है। मृदुला टहल रही है। उसका मुख और अंग-अंग फड़क रहा है।]

मृदुला (जोशसे)--आजका नाच सचमुच स्वर्गीय था। महेश ख़ूब नाचता है। नाचता क्या है, फ़र्शपर इस तरह तैरता चला जाता है, मानो मानसरोवरमें राजहंस तैर रहा हो।

कुमुद (अन्यमनस्कतासे)--हाँ।

मृदुला (और भी जोशसे)—और मज़ेकी बात तो यह है कि न स्वय थकता है, न अपने साथीको थकने देता है। (थोड़ा रुककर कुमुदकी ओर ध्यानसे देखते हुए) परन्तु तुम तो बिलकुल चुप बैठी हो। (परिहाससे) किस सागरमें ताक-झाँक कर रही हो ?

कुमुद--मैं यह सोच रही हूँ कि क्या इस नाच आदिसे हमें भी लाभ हो रहा है ? हम जिस राहपर चल रही हैं, क्या वह पूर्ण रूपसे ग़लत नहीं है ?

मृदुला (हँसकर खिझाती हुई)--तुम तो आज प्रो० अजीतकी बोली बोल रही हो।

कुमुद--तो कोई पाप नहीं कर रही। प्रोफ़ेसर अजीतकी बातोंमें तथ्य होता है, यह मैं बहुत दिनोंसे अनुभव कर रही हूँ।

मृदुला (तीखी दृष्टिसे कुमुदकी ओर देखती है)—उसकी बातोंमें तथ्य होता है ! कुमुद, क्या तुम उसके मनमोहक मधुसे ओतप्रोत व्यक्तित्वपर फिसल तो नहीं पड़ीं ?

[कुमुद अपनी लज्जाको छिपाती हुई चुप रहती है।]

मृदुला—यदि यह बात है, तो मैं आज तुझे चेतावनी देना चाहती हूँ कि अजीतके साथ तुम सुखी न रह सकोगी।

कुमुद (न बोलना चाहते हुए भी)—क्यों ?

मृदुला—इसलिए कि उसके साथ कोई स्त्री सुखी नहीं रह सकती। अजीतके बाह्याडम्बरपर मत जाओ। उसकी ऊपरी आधुनिकताके भीतर एक पुरातन-पुरुष छिपा हुआ है, जिसे हम स्त्रियोंकी स्वच्छन्दता एक आँख नहीं सुहाती। विश्वास मानो, उसके साथ बँधकर तुम हाथ मल-मलकर पछताओगी। इसलिए अभीसे सँभल जाओ।

कुमुद (उत्सुकतासे)—तुम यह सब कैसे जानती हो ?

मृदुला (एक दीर्घ निश्वास लेकर)—बहन, कभी मैं भी... (रुक जाती है।)

कुमुद (बेचैनीसे)—बोलो, बोलती क्यों नहीं ? क्या कभी तुम भी उनके बहुत निकट थीं, यही कहने जा रही थीं न ?

मृदुला—हाँ, यही समझ लो।

कुमुद (चेहरा पीला पड़ जाता है)—अच्छा, यह बात है ?

मृदुला—हाँ।

[इतनेमें बाएँ दरवाज़ेसे रामेश्वरी देवी प्रवेश करती है। वह एक सादी सूती साड़ी पहने है। बाल अधपके हैं। चेहरेकी त्वचा ढीली पड़ चली है ; परन्तु वह है सौम्य। नेत्रोंमें अभी तक आकर्षण है। मृदुला दोनों हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करती है।]

रामेश्वरी—अच्छी हो, बेटी ?

मृदुला—आपकी कृपा है, बीबीजी !

रामेश्वरी—लौटी कब थीं तुम लोग ?

मृदुला—कोई आध घटा हुआ होगा।

रामेश्वरी--तो फिर खानेके लिए क्यों नहीं आईं ? मैं तो तुम लोगोंकी प्रतीक्षामें बैठी थी।

मृदुला—आपको कष्ट हुआ, इसके लिए खेद है ; परन्तु हम लोगोंने चायके साथ इतना अधिक खा लिया कि अब खानेको जी ही नहीं चाहता, क्यों कुमुद ?

कुमुद हाँ, मैंने तो तुमसे भी अधिक खाया।

मृदुला—अधिक कहाँ ? मैंने तीन क्रीम-रोल खाए और तुमने शायद दो।

कुमुद—दो नहीं, चार।

मृदुला—चलो, यही सही ; परन्तु मैंने मीट-पैटीज़ भी तो खाईं।

रामेश्वरी (मुस्कराकर)--चलो, छोड़ो इन बातोंको। तुम भी क्या झगड़ा ले बैठीं।

[मृदुला और कुमुद दोनों थोड़ी लज्जित होकर चुप हो जाती हैं।]

मृदुला--मुझे तो अब चलना चाहिए। माँजी बाट जोह रही होंगी, इसलिए आज्ञा चाहती हूँ।

कुमुद--ज़रा देर और ठहर जातीं।

मृदुला—नहीं बहन, देर बहुत हो चुकी है।

[दोनोंको नमस्कार करके कमरेसे बाहर हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे कुछ ही क्षणोंके बाद मोटरके स्टार्ट होनेका शब्द सुनाई देता है।]

कुमुद—लो, वह चल भी दी। बहुत तेज़ है।

रामेश्वरी—हाँ, बड़ी अच्छी लड़की है।

कुमुद (कुछ देर चुप रहती है, फिर सहसा बोल उठती है)—हाँ, अच्छी है।

रामेश्वरी (जिसका चेहरा थोड़ा आश्चर्य प्रदर्शित करता है, ध्यानसे अपनी बेटीकी ओर देखती है)—कुमुद, इतनी चिन्तित क्यों हो ? क्या बात है ?

कुमुद—कुछ भी तो नहीं।

रामेश्वरी—बेटी, छिपानेसे तो नहीं चलेगा।

कुमुद (दुलारसे)—बीबीजी, आपके सामने छिपाएसे भी क्या छिपा रह सकता है ?

रामेश्वरी—तो फिर संकोच छोड़ो।

कुमुद (लजाती हुई)—प्रोफ़ेसर अजीतको तो आप जानती हैं।

रामेश्वरी—बहुत अच्छी तरह। खूब लड़का है, सुलझा हुआ, सँभला हुआ, शान्त। मुझे खुशी होगी।

कुमुद—पर लोग डराते हैं।

रामेश्वरी—कैसे ?

कुमुद—वह पुरातनपंथी है, दक़ियानूसी विचारोंका है। मेरी स्वच्छन्दता छीन लेगा। मैं हाथ मल-मलकर पछताऊँगी।

रामेश्वरी—अर्वाचीनता, प्राचीनता, पुरातनता, आधुनिकता—यह सब मस्तिष्ककी प्रवृत्तियाँ हैं। इनके पचड़ेमें न पड़ो, कुमुद! सबसे पहले एकमात्र पुरुषके हृदयको टटोलो। यदि वह निर्मल है, सुन्दर है, तो चिन्ताकी कोई बात नहीं। हृदयका सौन्दर्य कितनी महत्त्वपूर्ण चीज़ है, यह आज नहीं, कुछ वर्षोंके बाद तुम जान सकोगी, बेटी!

कुमुद (जिसके सिरसे मनों बोझा उतर गया है, खिलकर)—हृदयका सौन्दर्य! बीबीजी, आपने किस स्कूलमें शिक्षा पाई थी ?

रामेश्वरी—तुम लोगोंके ही स्कूलमें। मैंने जो-कुछ तुम लोगोंसे सीखा है, वही तुम्हें सिखा रही हूँ।

कुमुद (ज़रा आश्चर्यसे)—हम लोगोंसे! (अभिमानसे) क्या सभी माताएँ आप-जैसी होती हैं ?

रामेश्वरी—माताएँ सभी एक-जैसी होती हैं। चलो, थोड़ा खाना खा लो। रात भूखे नहीं सोना चाहिए।

कुमुद—किन्तु मैं तो भूखी नहीं। यदि मुझे क्षमा कर दें, तो अच्छा है।

रामेश्वरी—चलो, हठ न करो।

कुमुद (अनुनयसे)—मैं आज सचमुच न खा सकूँगी।

रामेश्वरी—अच्छा, मैं यहीं भिजवाए देती हूँ, जो जीमें आए, खा लेना।

कुमुद—जैसी आपकी इच्छा।

[रामेश्वरी कमरेसे बाहर हो जाती है। कुमुद ज्योंकी त्यों कुछ सोचती-सी बैठी रहती है। फिर सहसा उठ खड़ी होती है। एक-दो पग कमरेमें चलती है, फिर दूसरी कुर्सीपर बैठ जाती है।]

कुमुद (अपने-आप)—हृदयका सौन्दर्य! यह तो अजीतमें पूर्ण रूपसे विद्यमान है। तो क्या इसी एक गुणके सहारे सर्वस्व समर्पण कर दूँ ? परन्तु वर्षोंके कठिन परिश्रमसे प्राप्त की हुई स्वच्छन्दता यदि छिन गई, तो ? क्या मृदुलाकी बात बिलकुल सारहीन है ? अवश्य होगी। बीबीजीकी जाँच कभी ग़लत नहीं होती। उनके दृष्टिकोणमें कितना आकर्षण है! उसमें कितनी मधुरता है! तो त्याग दूँ अपने भ्रमको ? स्वच्छन्दताको भी भाग्यके भरोसेपर छोड़ दूँ ?

[सहसा चुप हो जाती है। इतनेमें विमल प्रवेश करता है, जिसकी आयु अट्ठारह-उन्नीस वर्षकी होगी। वह सिलेटी रंगका सूट पहने है। रंग उसका भी गोरा है। चेहरेसे क्षमता टपकती है।]

कुमुद—आओ विमल, किधरसे आ रहे हो ?

विमल—आज घूमने निकल गए थे।

कुमुद—इस समय! इतनी रात गए कहाँसे घूमकर आ रहे हो ? साथमें कौन था ?

विमल—घूमने तो शामको गए थे, प्रोफ़ेसर अजीतकुमार और मैं। इस समय तो उनके मकानसे आ रहा हूँ।

कुमुद (उत्सुकतासे)—वहाँ क्या हो रहा था ?

विमल—वे एक नई किताब लिख रहे हैं। मेरे साथ उसीकी चर्चा कर रहे थे।

कुमुद—तुम्हारे साथ ? किस विषयपर लिख रहे हैं ?

विमल—हठीले बच्चोंपर। अद्भुत पुस्तक होगी।

[इतनेमें नेपथ्यसे विमलको कोई पुकारता है।]

विमल—बीबीजी बुला रही हैं। थोड़ी देरमें फिर आऊँगा।

कुमुद—खाना खा चुके हो ?

विमल—नहीं।

कुमुद—तो नौकरसे बोल देना, मेरा खाना इधर न लाए। मैं भी वहीं आती हूँ। इकट्ठे ही खायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमल—बहुत अच्छा।

[विमल कमरेसे बारह हो जाता है।]

कुमुद (अपने-आप मुसकराती हुई ज़रा गर्वके साथ)—आज हठीले बालकोंपर क़लमके जौहर दिखाए जा रहे हैं। क्या जाने कल हठीली पत्नियोंके मस्तिष्ककी चीर-फाड़ शुरू हो जाय। (एकाएक सोचमें पड़ जाती है) क्या यह सम्बन्ध मेरे लिए सन्तोषप्रद होगा भी? क्या मैं भूल तो नहीं कर रही?

[इतनेमें नेपथ्यसे विमल खाना तैयार हो जानेकी सूचना देता है। कुमुद बाँएँ दरवाज़ेसे कमरेसे बाहर निकल जाती है।]

[परदा गिरता है।

तीसरा दृश्य

[समय—शामके चार बजेके लगभग। स्थान—जीवनके बैठनेका कमरा। कमरा काफ़ी बड़ा है। उसके एक किनारेपर एक बढ़िया सोफ़ा सेट रखा हुआ है। दूसरे किनारेपर एक मेज़ और उसके पास दो-तीन कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक कुर्सीपर जीवन बैठा है। साथमें एक किताब है, जिसके एक स्थानपर उँगलीका निशान रखे वह उसे बन्द किए हुए है। उसके निकट ही मृदुला खड़ी है। एक सादी सफ़ेद साड़ी पहने है। सिर नंगा है। पश्चिमीय खिड़कीसे सूर्यकी थोड़ी धूप उसके चेहरेके कुछ भाग और एक कानपर पड़ रही है, जिससे वे रक्त-रंजित मालूम देते हैं। वह चाक़ूके साथ अपनी पेंसिल बना रही है।]

जीवन—रातका शो तो खूब रहा।

मृदुला—बहुत बढ़िया। वह लड़की खूब अभिनय करती है।

[इतनेमें महेश तेज़ीसे प्रवेश करता है। थोड़ा उत्तेजित है। मृदुलाको वहाँ खड़ी देखकर थोड़ा झिझक जाता है। फिर दोनोंको नमस्ते करता है।]

जीवन—क्या बात है? घबरा क्यों रहे हो?

महेश (लज्जित होकर)—कुछ नहीं।

मृदुला (मधुर स्वरमें)—कुछ बात तो ज़रूर है।

महेश—विशेष तो नहीं। तुमने तो शायद सुन लिया होगा।

जीवन—क्या?

महेश—कुमुदके विषयमें।

जीवन और मृदुला (एक स्वरमें उत्सुकतासे)—नहीं, हमने कुछ नहीं सुना।

महेश (साहससे)—वह अजीतके पंजेमें जा फँसी।

मृदुला—सच?

जीवन—खूब! विवाह कब हो रहा है?

महेश—कुछ ही दिनोंमें।

मृदुला—तुम्हें किसने बताया?

महेश—सभी तो जानते हैं। ये हैं आजकलके प्रोफ़ेसर! रँगे हुए सियार!

जीवन—लेकिन इसमें पाप क्या है, यह तो सुनूँ?

महेश—पाप? जिस लड़कीको पढ़ाया, उसीसे विवाह! यह भी कभी सुना था? (जोशसे) हम कहाँ जा रहे हैं? शास्त्रोंमें गुरु और शिष्याका सम्बन्ध पिता-पुत्रीका माना गया है।

[जीवन खिलखिलाकर हँसता है। मृदुला भी मुख मोड़कर मुस्कराती है।]

जीवन—क्यों पागलोंकी-सी बातें करते हो? तुम्हारे जैसे मनुष्य जब शास्त्रोंकी दुहाई दें, तो जानते हो, उन्हें क्या कहा जाता है?

महेश (ढिठाईसे)—क्या? बोलो।

[इतनेमें कुमुद प्रवेश करती है। वह एक चमकीली साड़ी पहने है; किन्तु चेहरा उतना खिला हुआ नहीं, जितनी आशा की जा सकती है। यह ठीक है कि ग़ौरसे देखनेवालेको चिन्ताकी छायाके नीचे अधछिपी-सी प्रसन्नताकी झलक दीख सकती है। वह गर्दनको थोड़ा झुकाए हुए है।]

मृदुला—आओ कुमुद! (परिहाससे) अभीसे पाँव सीधे नहीं पड़ रहे।

कुमुद (तीनोंको नमस्ते करती हुई)—तो तुम लोग सुन चुके हो?

मृदुला—हाँ, हमारी बधाई स्वीकार हो।

जीवन और महेश—और हमारी भी।

कुमुद (मुस्कराकर)—धन्यवाद। (मृदुलासे) तुम्हारे कमरेसे होकर आई हूँ। उसकी बुरी हालत है।

मृदुला—सफ़ेदी और मरम्मतमें यही हाल होता है। तुम यहीं बैठो। भाई साहबको कष्ट तो होगा; पर क्या किया जा सकता है?

जीवन—कष्टका नाम न लो। मज़ेसे बैठो। (उठ खड़ा होता है।)

मृदुला—लेकिन आप कहाँ भाग रहे हैं?

जीवन—ज़रा बाज़ार जा रहा हूँ। मेरी घड़ी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनोंसे घड़ीसाज़के यहाँ पड़ी है। आजका वादा है। महेश, तुम भी चलोगे ?

महेश—चलो।

कुमुद—मैंने तो तुम लोगोंको खूब भगाया।

[जीवन केवल मुसकरा भर देता है। फिर महेशको साथ लेकर कमरेसे बाहर चला जाता है। कुमुद एक कुर्सीपर बैठ जाती है। मृदुला दूसरी कुर्सी ले लेती है।]

मृदुला—भाई साहब भी खूब हैं। कैसे भाँपा कि तुम एकान्त चाहती हो।

कुमुद—हाँ, मैं उनकी कृतज्ञ हूँ। (थोड़ा ठहरकर) मृदुला, सुन ली न मेरी कहानी ?

मृदुला—कहानी तो नहीं, खबर ज़रूर सुनी है।

कुमुद (मृदुलाकी ओर सहानुभूतिपूर्ण नेत्रोंसे ताकती हुई)—क्या सचमुच मैंने ठीक नहीं किया ?

मृदुला—यह कौन कह सकता है, कुमुद ? जब गृहस्थीके जंजालमें फँसना ही है, तब फिर अजीत क्या और कोई दूसरा क्या ?

कुमुद—लेकिन तुम तो उस दिन डराती थीं।

मृदुला—मैंने डराया तो न था, तथ्यकी एक बात ज़रूर बताई थी।

कुमुद—वही तुम्हारा 'तथ्य' मुझे चैन नहीं लेने देता। इसीलिए तुम्हारे पास भागी हुई आई हूँ। क्या तुम मुझे आशीर्वाद नहीं दे सकतीं, बहन ?

मृदुला (पिघलकर)—कुमुद ऐसी बातें न करो। मेरा तो रोम-रोम तुम्हें आशीर्वाद दे रहा है। ईश्वर करे कि अजीत तुम्हें सुखी कर सके ; लेकिन—(रुक जाती है।)

कुमुद (धड़कते दिलसे)—लेकिन क्या ?

मृदुला (कुछ क्षण कुमुदकी ओर देखती रहती है)—कुछ नहीं। (परिहाससे) यह तो बताओ कि पूर्णरूपसे बन्धनमें कब बँध रही हो ?

कुमुद—कोई तीन मास बाद।

मृदुला—इतना विलम्ब क्यों ?

कुमुद—वे एक किताब लिख रहे हैं। विवाहसे पहले उसे पूरी करना चाहते हैं। उसमें दो-ढाई महीने लग जायँगे।

[इतनेमें राजदेवी प्रवेश करती हैं। आयु लगभग पैंतालीस वर्ष होगी। साँवला रंग है। छोटी आँखें पर तीखी नाक। सलवार और कमीज़ पहने हैं। दुपट्टेको बहुत सँवारकर लिया हुआ है। कुमुद उठकर उन्हें नमस्ते करती है।]

राजदेवी—आओ बेटी, बहुत दिनोंमें देख पड़ीं। कहाँ रहती हो ?

कुमुद—यहीं, आपके चरणोंमें।

राजदेवी (खुश होकर)—बड़ी अच्छी है मेरी बेटी।

मृदुला—माँजी, अब इसकी शादी हो रही है।

राजदेवी—बहुत अच्छी बात है। कहाँ हो रही है ?

मृदुला—प्रोफ़ेसर अजीतकुमारके साथ।

राजदेवी—सौभाग्यवती हो, बेटी ! (थोड़े चिन्ता-भरे स्वरमें) पर अब अपनी बहनको भी तो मनाओ।

मृदुला (बनावटी क्रोधसे)—माँजी छोड़िए भी इन बातोंको। आप मुझे यूँ ही बीचमें घसीट रही हैं।

कुमुद (शरारत-भरे स्वरमें)—ठीक तो कह रही हैं।

राजदेवी—ईश्वर तुम्हारा भला करे, बेटी ! इसका विवाह हो, तो मैं भी चैनकी नींद सोऊँ।

मृदुला (सचमुच खीझकर)—माँजी, अब जाने दीजिए। बहुत हो चुका।

[नौकरका प्रवेश]

मृदुला—क्यों, क्या बात है ?

नौकर (कुमुदकी ओर संकेत करके)—इनको बाहर प्रोफ़ेसर अजीतकुमार बुला रहे हैं। कहते हैं, बहुत जल्दीमें हैं, इसलिए अन्दर न आनेके लिए माफ़ी माँगते हैं।

कुमुद—लो भई, अब आज्ञा दो।

मृदुला—रोक ही कैसे सकती हूँ। लेकिन कहाँकी तैयारी है ?

कुमुद—जहाँ ले जायँ।

मृदुला—अभीसे व्यक्तित्व खो बैठी हो ? (खिलखिलाकर हँसती है।)

कुमुद (मृदुलाकी ओर झुककर धीरेसे)—इसमें भी एक रस है ! तुम क्या जानो ?

[कुमुद माँ-बेटीको नमस्ते करती हुई द्रुत गतिसे बाहर चली जाती है। उसके पीछे ही राजदेवी भी बाहर चली जाती है।]

मृदुला—हाँ, मैं क्या जानूँ ! आई थी मुझसे सहानुभूति माँगने और जाती हुई मुझे ही चोट लगा गई है। मेरी ही चीज़ छीनकर इतना गर्व ; परन्तु क्या वह गर्व था भी ? क्यों नहीं ? (दो-चार क़दम कमरेमें टहलती है) लेकिन अब ईर्ष्या करनेसे क्या लाभ ? ईर्ष्या ! (उसका चेहरा लाल हो उठता है। मन मारकर कुर्सीपर बैठ जाती है। उसको ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे-बैठे कुछ मिनट ही गुज़रते हैं कि जीवन प्रवेश करता है।)

जीवन—गई कुमुद ?

मृदुला (उदासीनतासे)—हाँ, गई।

जीवन (मुसकराकर)—डाल दिया उसे राहपर ?

मृदुला—देखिए भाई साहब, हर वक्त मज़ाक अच्छा नहीं होता।

जीवन (आश्चर्यसे)-अरी, तुम्हें क्या हो गया। विवाह उसका हो रहा है और चिन्ता तुम्हें सता रही है! बात क्या है ?

मृदुला (भर्राए स्वरमें)—कुछ नहीं। (उठकर कमरेसे बाहर भाग जाती है।)

जीवन—सुनो तो, मृदुला!

[जीवन भी उसके पीछे-पीछे जाता है]

[परदा गिरता है।

पृथ्वीराजकी दिल्ली

श्री 'रसिकेन्द्र'

वभव विचित्र अपर्वगका हुआ था प्राप्त,
सर्व-सुषमासे थी बढ़ाए मेल देहली।
सुखके समुद्रमें सदैव करती थी स्नान,
दुखको, दारिद्र्यको रही थी ठेल देहली।
प्रबल प्रतापी पृथ्वीराजका प्रताप पाके,
वार वैरी-वृन्दके रही थी झेल देहली।
चूमते गगनको थे भवन विशाल उच्च,
स्वर्ण, मणि, रत्नोंसे रही थी खेल देहली।

बुद्धि, बल, कौशलसे कर ली थी वशीभूत,
सिद्धियोंके साथ ही 'रमा' भी रमा रक्खी थी।
ध्रुव-धर्म-धीरताने अटल उपाधि पाई,
कर्मवीरताने वहाँ कीर्त्ति कमा रक्खी थी।
रुण्ड जिनके थे लड़े ऐसे थे प्रचण्ड वीर,
शब्दवेधी तीरने भी धाक जमा रक्खी थी।
मान गया जिसका प्रभाव ग़ज़नीपति भी,
दानको पराजितोंके हेतु क्षमा रक्खी थी।

भारतके अस्त्र-शस्त्र कौतुक रहे थे दिखा,
मन्द हुई कान्ति थी पुरन्दरके पविकी।
प्रभुता पसारती थी धारती थी दिव्य छटा,
भारती ही आरती उतारती थी छविकी।
राज्य-सदनोंमें सदा केलि किया करती थीं,
वहाँ रजनीमें रम्य रश्मियाँ भी रविकी।
अकलंकी चन्द-सी चमकती थीं नित्य वहाँ,
काव्यकी कलाएँ हो दुचन्द चन्द कविकी।

शीशपर शेषके है जिसकी धाक हुई,
प्रस्तुत करा चुकी है ऐसी लाट देहली!
जहाँ अस्सी लाख तलवारें करती थीं काम,
लोथोंसे वही कनौज चुकी पाट देहली।
बड़े-बड़े दुर्ग फूँक-फूँक तापती थी सदा,
सोडसी[1]का शोणित चुकी थी चाट देहली।
मोद थी मनाती, गुण गाती सँभरेश[2]के थी,
लक्ष-लक्ष शत्रुओंको काट-काट देहली।

झूली हर्ष-दोलमें थी, फूली मान-मदमें थी,
भूली भ्रातृ-प्रेम-भाव, हो गई प्रमत्ता हा!
आ गई संयोगिता-स्वयंवरकी कुघड़ी तो,
दोनों ओर साथ छोड़ भागी बुद्धिमत्ता हा!
चुने-चुने वीररत्न मिल गए धूलमें औ'
दुर्लभ सदाको हुई सिद्धि-शक्ति-सत्ता हा!
बो चुकी विरोध-बीज, हो चुकी स्वक्रोधपर,
खो चुकी स्वतन्त्रताकी विमल महत्ता हा!

१. जाति-विशेष। २. पृथ्वीराज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिरोंका देश दक्षिण

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

पौराणिक कथाओंके आधारपर कहा जाता है कि त्रिशिरः नामक एक असुर राजाका, जो रामायणके खरका भाई था, राज्य एक समय पूरे दक्षिण-भारतमें फैला था। उसने एक नगर बसाया, जिसका नाम उसीके नामपर त्रिशिरःपुरम् रखा गया। बादमें जब यह नगर जैनियोंका केन्द्र बना, तो इसका नाम त्रिशिरःपुरम्से बदलकर त्रिशिरःपल्ली हो गया; क्योंकि जैन श्रमण अपने निवास-स्थानको पल्ली कहा करते थे। यही त्रिशिरःपल्ली कालान्तरमें त्रिचिनापल्ली हो गया।

त्रिचिनापल्ली दक्षिण-भारतका एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। इसकी जन-संख्या आज क़रीब एक लाख पचास हज़ार है। नगरके बीचोंबीच जो पहाड़ एक प्रहरीकी तरह अनादि कालसे खड़ा है, उसका वर्णन 'आगनन्नरु' नामक तमिलके अति प्राचीन एक प्रसिद्ध ग्रन्थमें मिलता है। वरीऊर या उरन्दै, जो नगरसे पश्चिम क़रीब एक मीलपर बसा है, एक समय प्रारम्भिक चोलोंकी राजधानी था। इतिहास-प्रसिद्ध करीकल चोलका राज्य इधर सुदूर तक फैला हुआ था। प्रारम्भिक चोलोंके पतनके बाद इस नगरपर पल्लवोंका अधिकार हुआ (६०० ई० से ६२४ ई० तक)। पुलिकेशीन (द्वितीय) चालुक्य राजासे पराजित हो, इसी नगरमें प्राण-रक्षाके लिए भागकर आया। कहते हैं, उसी समय उसने नगरमें कई मन्दिर एक नवीन शैलीके आधारपर बनवाए। जिस पहाड़का हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं, उसपर दो या तीन ऐसे शिला-लेख हैं, जिनसे पल्लव राजाओंके नाम और उनकी शासन-पद्धतिका पता चलता है।

बादमें तीन शताब्दियों तक मदुराके नायक राजाओंका इस शहरपर अधिकार रहा। इसके बाद वर्षों तक इस नगरके बारेमें कोई उल्लेखनीय बात नज़र नहीं आती। परन्तु सत्रहवीं और अट्ठारवीं शताब्दीमें प्रसिद्ध 'त्रिचिनापल्लीका घेरा' इतिहासके पृष्ठोंमें एक बार पुनः त्रिचिनापल्लीका नाम ऊपर उठा देता है। यहीं 'गोल्डन राक'के पास चन्दा साहब और मुहम्मदअलीने अपनी-अपनी मित्र-सेनाओं--फ्रांसिसियों और अंगरेज़ों—की संरक्षतामें युद्ध किया और अपनी अदूरदर्शिता तथा स्वार्थके पागलपनमें क्लाइवको एक ऐसा भेद बतलाया, जिससे अर्काटकी नवाबीपर ही नहीं, सारे भारतपर अधिकार करनेकी एक कुंजी अंगरेज़ोंके हाथ लगी। यहाँ 'क्लाइव-घर'के रूपमें भारतके भाग्य-निर्णायकोंने इसकी स्मृतिको सुरक्षित रखा है।

नायकों और नवाबोंके राज्य-कालके चिह्न सारे शहरमें--इमारतों, मन्दिरों, मस्जिदों और जल-कुण्डोंके रूपमें—बिखरे पड़े हैं। रानी मंगम्माल (नायक) का आमदरबार और इसके पासकी नवाबी इमारतोंका उपयोग आज सरकारी दफ़्तरोंके लिए हो रहा है। ये सब इमारतें गोथिक शैलीकी हैं। नगरके पश्चिमी भागमें एक पुरानी आलीशान मस्जिद है, जिसे नादिर-

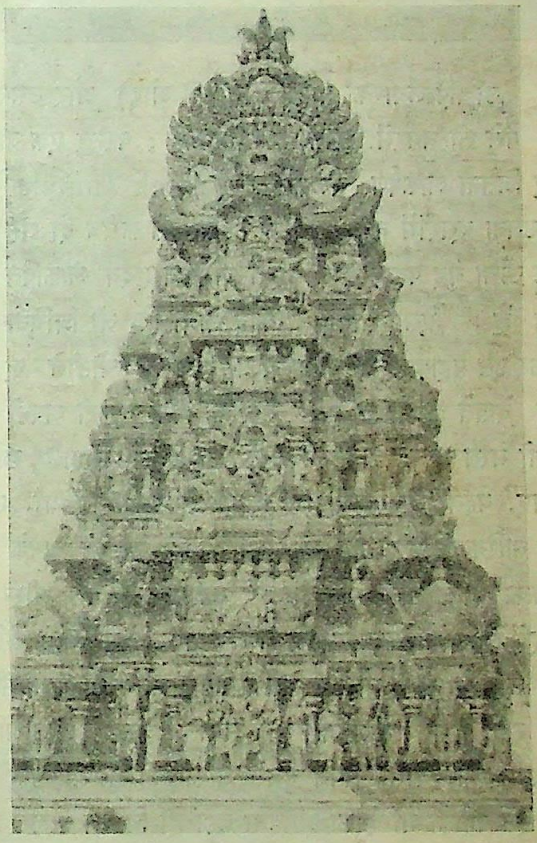

मलैक्कोविलका गोपुरम् मन्दिर।

शाहकी यादगारमें बनवाया गया कहा जाता है। इसमें आज भी हज़ारों मुसलमानोंके सिर ईदके दिन सिज्देमें झुकते हैं। कहा जाता है कि मंगम्माल रानीके ज़मानेमें नागरिकोंकी सुविधाके लिए साठ पक्के जल-कुण्ड थे, जिनकी सालाना सफ़ाई होती थी। आज जो कुण्ड बच गए हैं, उनकी हालत देखते ही बनती है। मरम्मत और सफ़ाईकी बात तो दूर रही, नगरका सारा गलीज़ और बुहारन जमा करनेके मानो ये सबसे सुरक्षित सन्दूक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

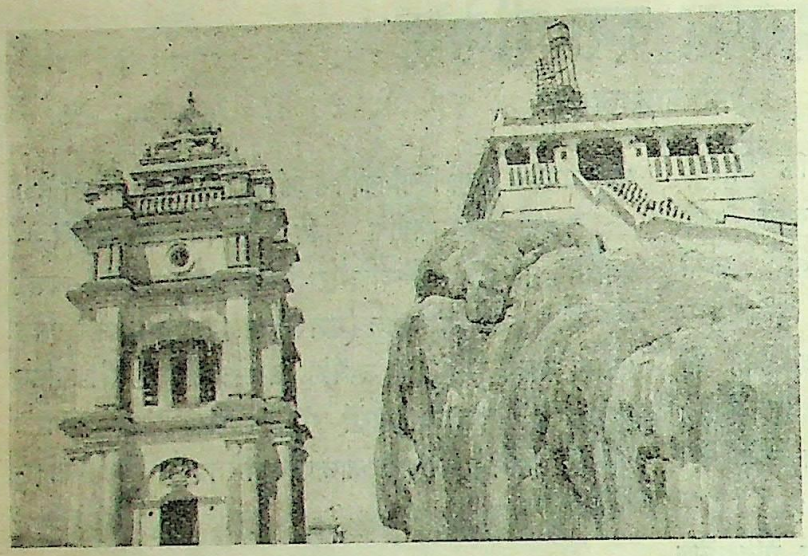

उच्चिपिल्लैयारका मन्दिर (दाहिनी ओर) और उसका घण्टाघर।

वैसे तो नगरमें कितने ही मन्दिर हैं; परन्तु एक यात्रीके लिए जितना आकर्षण मलैक्कोविल (Rock Tample) में है, उतना दूसरोंमें नहीं। सड़ककी सतहसे क़रीब दो सौ सत्तर फ़ीट ऊँचा यह पहाड़ मीलों दूरसे यात्रीका हृदय आकर्षित कर लेता है। ऐसा शायद ही कोई यात्री हो, जो त्रिचिनापल्लीमें आकर इस पहाड़पर चढ़े बिना चला जाय। चोटीसे शहरका दृश्य देखते ही बनता है। उत्तरकी ओर कावेरी अपनी उसी पुरानी मस्त चालसे कल-कल करती, युगोंका इतिहास छातीमें छिपाए, बहती जा रही है। किनारे सरसब्ज़ झाड़ियाँ, ऊँचे-ऊँचे नारियलके पेड़ और दूर तक फैले हरे लहराते धानके खेत दर्शकका मन मोह लेते हैं। नदीके उस पार श्रीरंगमके मन्दिरोंके किरणोंसे चमचमाते कलश और हवासे अठखेलियाँ करते लहराते झण्डे मानो प्रत्येक दर्शकको अपनी ओर आमन्त्रित करते रहते हैं। पश्चिमकी ओर सन्त जोज़फ़का अति प्राचीन गिरजा शताब्दियोंसे अपने बुर्जसे आकाशको चीरता खड़ा है।

इस पहाड़ी मन्दिरका इतिहास बड़ा ही विचित्र मालूम होता है। मन्दिरकी सबसे प्रसिद्ध मूर्तिका नाम तमिलमें 'तायुमानवर पेरुमाल' है। उत्तर-भारतके तीर्थ-यात्री इसे 'मातृभूतेश्वर' नामसे याद करते हैं। मन्दिरके प्रवेश-द्वारपर एक कहानी बड़े ही सजीव रंगीन चित्रोंमें चित्रित है, जिससे इस मूर्त्तिके 'मातृभूतेश्वर' नाम पड़नेका कारण स्पष्ट हो जाता है। कहानी यों है :--

किसी ज़मानेमें रत्नावलि नामकी एक वैश्य-कन्या त्रिचिनापल्लीमें रहती थी। वह और उसके पति दोनों शिवके परम भक्त थे। शिवजीकी कृपासे वह गर्भवती हुई। इसी बीच उसका पति किसी आवश्यक कार्यसे कहीं बाहर जानेको हुआ। पतिके जाते समय रत्नावलिने उसे बहुत-कुछ समझाया कि प्रसव-काल समीप है, वह अकेले कैसे इस परिस्थितिमें रह सकेगी? परन्तु पति आवश्यकतासे लाचार था, उसे उसी परिस्थितिमें अकेला छोड़ चला गया। बेचारी रत्नावलि बड़ी चिन्तित हुई। आखिर उसने प्रसव-काल अति समीप जान अपनी बूढ़ीमाँको, जो श्रीरंगममें कावेरीके उस पार रहती थी, बुला भेजा। बुढ़िया अपनी पुत्रीका समाचार पा त्रिचिनापल्लीको रवाना हुई; लेकिन संयोगकी बात कि उसी दिन न-जाने कहाँसे कावेरीमें बड़ी विकराल बाढ़ आ गई। बेचारी बुढ़ियाको बड़ा दुःख हुआ; लेकिन वह कर ही क्या सकती थी? लाचार हो वह अपने घर लौट गई और बाढ़ उतरनेकी प्रतीक्षा करने लगी। इधर जब माँ न आई, तो रत्नावलि और भी घबराई। अपनेको बिल्कुल निस्सहाय पाकर उसने अपने शिवसे सहायताकी प्रार्थना की। भक्तोंके भगवानने उसकी प्रार्थना सुनी। स्वयं शिव भगवान उसकी माँका रूप धारणकर और गंगा तथा यमुनाको अपनी सहायिका बनाकर प्रसवके समय उसके पास आ उपस्थित हुए। उन्होंने उसकी सेवा-सुश्रूषा की और आवश्यक वस्तुओंका प्रबन्ध भी किया।

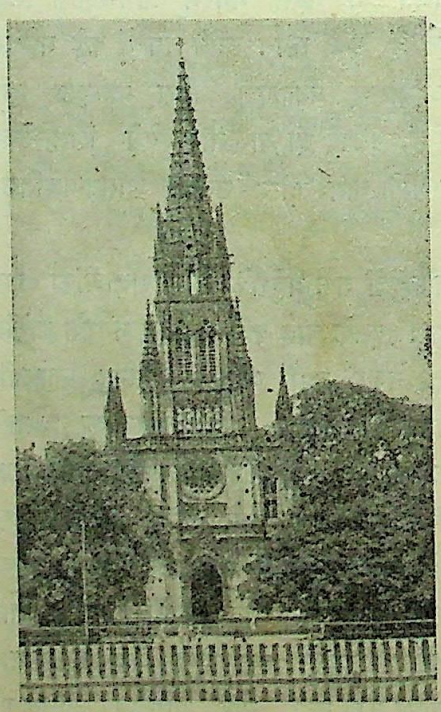

सन्त जोज़फ़का प्राचीन गिरजा।

इतनेमें कावेरीकी बाढ़ कम हुई। माँ लड़कीके घर आई। बच्चे-बच्चेको आरामसे देख वह बड़ी प्रसन्न हुई। फिर उसने समयपर न आ सकनेका कारण बड़े दुःखके साथ रत्नावलिको कह सुनाया। माँकी बात सुनकर रत्नावलिको बड़ा आश्चर्य हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

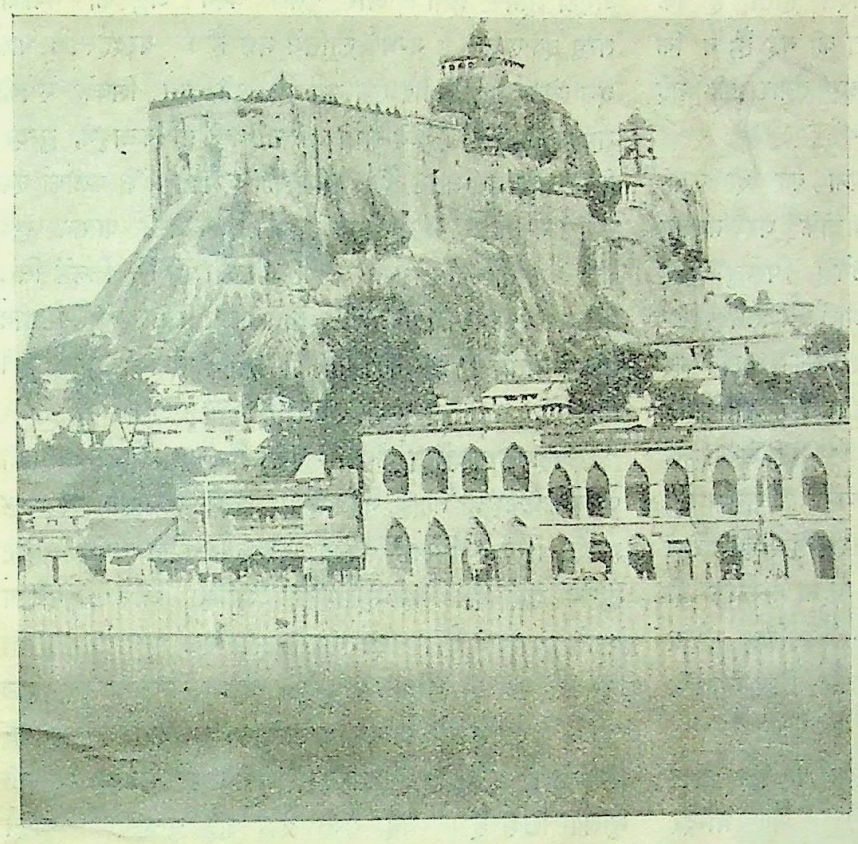

मलैक्कोविल मन्दिर और (नीचे दाहिनी ओर) क्लाइव-हाउस।

उसने पूछा—'क्यों माँ, तुम ऐसा क्यों कह रही हो ? तुम्हीं तो अब तक मेरे साथ थीं।' दोनों एक-दूसरेको साश्चर्य देख ही रही थीं कि भगवान शिव पार्वतीके साथ उनके सामने प्रकाशमान हुए। माँ-पुत्री दोनोंको सब-कुछ ज्ञात हो गया, और उन्होंने अपनेको धन्य माना। शिवजीको अपने भक्तके कारण माँका रूप धारण करना पड़ा, इसलिए उनकी मूर्त्तिका नाम 'तायुरमानवर पेरुमाल' या 'मातृभूतेश्वर' पड़ गया। पता नहीं, यह कहानी कहाँ तक सच है। तमिलनाडुके प्राचीन वेदान्तियोंमें तायुरमान स्वामी एक बड़े सन्तका नाम भी मिलता है। उनके पदोंका आज भी यहाँकी जनतामें बहुत आदर है। हो सकता है, उनके नामका भी कोई सम्बन्ध इस मूर्त्तिके नामसे (मन्दिरको मूर्त्तिके नामसे भी पुकारते हैं) हो।

नाम ही की तरह इस मन्दिरके निर्माण-कालका भी पता लगाना कठिन है। शिवजी कैलाश पर्वतके निवासी माने जाते हैं ; परन्तु उनके मन्दिर साधारणतया पहाड़ोंपर नहीं बनाए जाते। ऐसा माना जाता है कि पहाड़ोंपर खेलनेका अधिकार उनके पुत्र गणेशको ही है। फिर प्रश्न उठता है कि आखिर कैसे यह शिवका मन्दिर इस पहाड़पर बना ? अधिकतर सन्निधियोंके द्वार पूरबकी ओर होते हैं ; परन्तु इसकी सन्निधिका द्वार पश्चिमकी ओर है, यह भी कम कौतूहलकी बात नहीं। 'आगनन्नुरु' ग्रन्थमें पहाड़का तो वर्णन मिलता है ; किन्तु मन्दिरके बारेमें उसमें कुछ भी नहीं कहा गया है। इससे सन्देह होता है कि उस समय इस पहाड़पर कोई मन्दिर था या नहीं। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए हम एक हद तक निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इस मन्दिरके स्थानपर पहले जैनोंका कोई क़िला या पीठ था। बादमें जब पल्लवोंका राज्य-काल आया, तो इसे मन्दिरका रूप मिला (पल्लव बड़े ही कट्टर शैव थे)। काँचीपुरम्, तिरुप्पापुलियूर और सेलमके मन्दिरोंके बारेमें भी पुरातत्त्ववेत्ताओंकी यही राय है।

काँची और पाटलीपुरम्में आज जनोंका कोई चिह्न अवशेष नहीं ; परन्तु त्रिचिनापल्लीके इस मन्दिरमें आज भी उनके चिह्न वर्त्तमान हैं। अभी हाल ही में सरकारी पुरातत्त्व-विभाग द्वारा एक सूचना प्रकाशित हुई थी, जिसमें इस मन्दिरके पहाड़के बारेमें लिखा था—'सिरा पहाड़ (इस पहाड़की चोटी सिरकी तरह है) में ऐसी गुफ़ाएँ हैं, जहाँ जैन लोग संगठित रूपसे तपस्या किया करते थे। इस मन्दिरके अध्ययनसे यह बात साफ़ मालूम पड़ती है कि जहाँ महेन्द्र वर्म्मन (पल्लव) की स्थापित की हुई शिव-मूर्त्ति है, वहाँ और उसके नीचेकी गुफ़ामें पहले जैन ऋषियोंका निवास-

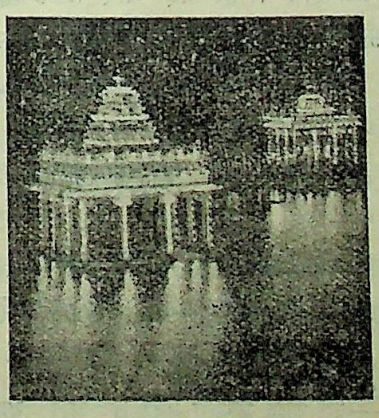

तेप्पकुलममें 'तेपम' (नौका-उत्सव) का दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान था। मूर्त्तियोंका स्थान देखनेसे विदित होता है कि ये मूर्त्तियाँ इन स्थानोंमें लाकर स्थापित की गई हैं, न कि ये गुफ़ाएँ इन मूर्त्तियोंकी स्थापनाके लिए तैयार की गई थीं।'

पहले पेड़ोंके नीचे ही मूर्त्तियोंकी स्थापना कर दी जाती थी। फिर लोगोंने इन मूर्त्तियोंके लिए मिट्टीके घर बनवाए और बादमें ईंट-गारेके मन्दिर भी बनने लगे। परन्तु पल्लव राजा महेन्द्र वर्म्मन ही पहला ऐसा राजा हुआ है, जिसने पहले-पहल पहाड़ोंको काटकर मन्दिर बनानेकी कलाका आविष्कार किया। उसीने इस सिरा-पहाड़-मन्दिर (सिरा मलैक्कोविल) का अपनी कलात्मक बुद्धिसे निर्माण करवाया। तामिल नाडुके महेन्द्रवाड़ी, पल्लावरम्, मामण्डूर, मण्डपप्पट्टु, तकवान्नूर, सिरा मलै, चिरन्नवासल, कुडुमिया मलै आदि स्थानोंके मन्दिरोंमें जिस सुन्दर कलाका निर्माण हुआ है, वह महेन्द्र वर्म्मनके ही परिपक्व कलात्मक मस्तिष्ककी उपज है। इसलिए महेन्द्र वर्म्मनको इतिहासके पृष्ठोंमें 'चित्र-सिद्ध और चित्र-व्याघ्र'के नामसे स्मरण किया गया है।

इस पहाड़पर दो गुफ़ा-मन्दिर हैं। एक पहाड़के ऊपर 'उच्चिपिल्लैयार कोविल'को जानेवाले मार्गमें है। यह मन्दिर पहाड़को काटकर बनाया गया है। यह चार स्तम्भवाले मण्डपके रूपमें है। अन्दर गर्भगृहके द्वारपर दो द्वारपाल हाथमें गदा लिए अधिकार-दृष्टिसे देखते खड़े हैं। गर्भगृहमें पूर्वकी दीवारपर शिवकी मूर्त्ति खुदी है। उसके अगल-बगल चार ऋषि और दो गन्धर्व हैं। शिवके सिरसे गंगा बह रही हैं। गलेमें सर्प लिपटे हैं। एक हाथमें एक सर्प फन फैलाए फुफकार रहा है। दूसरे हाथकी उँगलियोंके बीच एक रुद्राक्ष-माला लटक रही है। तीसरा हाथ यों ही बाईं ओर लटक रहा है और चौथा वरदहस्तकी तरह उठा हुआ है। एक पैरका अँगूठा भूमिको छूता है और दूसरा चरण 'असुर'को वज्रकी तरह दबाए है। गन्धर्व, स्तुतिमें मग्न हैं। वरदहस्तके पास एक छोटा मनुष्य और एक मृग हैं, जो इस शिवके रूपको सम्पूर्ण बनाते हैं। ये सभी मूर्त्तियाँ बड़ी ही कलापूर्ण, सुन्दर, दिव्य और शान्तिमय हैं। शिवकी त्रिभंगी मूर्त्ति कलाका एक उत्कृष्ट नमूना है। मन्दिरके स्तम्भोंमें बहुत-से शासन खुदे हैं। क़रीब एक सौ चार श्लोक तमिलके भी हैं, जिनमें सिरा पहाड़की स्तुति गाई गई है। शासनोंकी लिपि बड़ी प्राचीन मालूम होती है। उनकी पंक्तियाँ ऊपरसे नीचेकी ओर हैं। गोल-गोल अक्षर बड़े सुन्दर लगते हैं।

पहाड़के बादमें पूर्वकी ओर एक और गुफ़ा है। यह भी पहाड़ काटकर ही बनाई गई है। इसमें उत्तरकी दीवारपर गणेश, शिव, अम्बिका, ब्रह्मदेव और सूर्यभगवान—पंच देवोंकी मूर्त्तियाँ खुदी हैं। इन मूर्त्तियोंकी गम्भीरता और विचित्रिता देखते ही बनती है। इस गुफ़ाके ऊपर एक शून्य गर्भगृह है, जिसके द्वारपर दो द्वारपाल खड़े हैं; परन्तु अन्दर शायद कुछ नहीं है (इस गुफ़ाके अन्दर जानेकी आज्ञा नहीं), यह भी मण्डपके ही रूपमें है। बाहर मण्डपके ऊपर सैकड़ों भूतोंकी मूर्त्तियाँ छिदी हैं। यह सभी बड़ी ही सुन्दर और अपूर्व ढंगकी मूर्त्तियाँ हैं। मन्दिरके प्रधान भागकी पत्थरकी दिवारोंपर अनेक रंगीन चित्र खिंचे हैं। ये चित्र बड़े ही सुन्दर, सार्थक और सजीव हैं। और भी दूसरी कितनी ही धातु और पत्थरकी मूर्त्तियाँ इस मन्दिरमें हैं। नटराजकी धातु-मूर्त्ति इनमें विशेष रूपसे दर्शनीय है। मन्दिरके पास ही पश्चिम ओर एक जल-कुण्ड है। इसका नाम 'तेप्पकुलम' है। इसके बीचोंबीच एक सुन्दर मण्डप है। इसी कुण्डमें प्रतिवर्ष ८ अप्रैलको 'तेपम' (दीपोत्सव) मनाया जाता है।

तेप्पकुलम (त्रिचिनापल्ली)]

चार प्रकारके आदमी

(१) वह आदमी—जो कुछ जानता नहीं है और यह भी नहीं जानता कि वह कुछ नहीं जानता—मूर्ख है। ऐसे आदमीसे हमेशा बचो।

(२) वह आदमी—जो कुछ जानता नहीं है और यह जानता है कि वह कुछ नहीं जानता—बच्चा है। ऐसे आदमीका विश्वास करो।

(३) वह आदमी—जो जानता है, पर यह नहीं जानता कि वह जानता है—सोया हुआ है। उसे जगा दो।

(४) वह आदमी—जो जानता है और यह भी जानता है कि वह जानता है—बुद्धिमान है। उसके अनुगामी बनो।

(अरबकी एक कहावत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल-सेनाका जादूगर

कुमारी ननिबाला राय

अभी कुछ ही वर्ष पूर्व हुई इतालियन इतिहासवेत्ताओंकी कान्फ्रेन्सके प्रधान-पदसे बोलते हुए मुसोलिनीने कहा था—"शायद किसी दिन आपमें से कोई विद्वान यह भी खोज निकाले कि मैं किसी बड़े कुलका वंशधर हूँ या मेरे वंशका सम्बन्ध रोमन सम्राटोंसे है! पर दरअसल ऐसी कोई बात नहीं है। मैं एक बहुत ही साधारण और निम्न कुलका हूँ और मेरी किसी भी पीढ़ीका किसी भी इतालियन राजवंशसे कभी कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध नहीं रहा।"

मुसोलिनीके उक्त उद्धरणमें जिस मानवी दुर्बलता अथवा सफलको श्रेष्ठ बनानेकी भावनाका उल्लेख है, वह इटलीमें ही नहीं, समूचे संसारके व्यक्तियोंमें न्यूनाधिक मात्रामें है। इसीकी ओर एक बार डा० आइन्स्टाइनने संकेत करते हुए कहा था—"यदि मेरा सापेक्षवादका सिद्धान्त कभी किसीने ग़लत साबित कर दिया, तो फ्रांसीसी मुझे जर्मन बतलायँगे और जर्मन यहूदी।" इन कथनोंकी सत्यताका पता हमें तब चला, जब कि रूसके सुदक्ष सेनापति मार्शल तिमोशेंकोको—जिन्हें रूसवाले 'लाल-सेनाका जादूगर' कहकर पुकारते हैं—मिली सफलताओंके बाद सहसा हमने पढ़ा कि वेल्स और आयरलैण्डवाले उन्हें अपना देशभाई बनानेका गौरव लाभ कर रहे हैं। क्यूकर्न (इंग्लैण्ड) के एक अध्यापकका कहना है कि लाल-सेनाका यह जादूगर अंगरेज़ी और वेल्श भाषाओंमें उपदेश देनेवाले पादरी कैरेक्टेकस जेन-किन्सका पौत्र हैं। आयरलैण्डवासियोंका कहना है कि वे एरीनके लड़के हैं, जिसका असली नाम तिम ओ'शेंको है। पर सचाई यह है कि मार्शल तिमोशेंको न आयरिश हैं, न वेल्स और न रूसी ही; बल्कि वे बैसरेबियाके—जिसपर पोलैण्डके पतनके बाद सितम्बर, १९३९ में रूसने कब्ज़ा किया था; पर जो इस समय जर्मनीके अधीन है—एक यूक्रेनियनकी सन्तान हैं। ८ मई, १९४० को रक्षा-सचिवके पदपर—जिसपर किसी समय त्रात्स्की और फ्रुन्ज़-जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति रह चुके थे—नियुक्त होनेसे पूर्व सैनिक-हल्कोंके बाहर रूसके अधिकांश लोग भी उन्हें नहीं जानते थे। न वे १९३२ के फ़ौजी एन्साइक्लोपीडियाके १०० सम्पादकोंमें ही थे, जिनमें कि लाल-सेनाका प्रत्येक महत्त्वपूर्ण फ़ौजी-अफ़सर—यहाँ तक कि कर्नल तक—रहता है।

सेमियों कोन्स्तान्तिनोविच तिमोशेंकोका जन्म सन् १८९५ में रूस-रूमानियाकी सरहदपर बसे बैसरेबियाके फुरमांका गाँवमें हुआ था। उनका पिता कोन्स्तान्तिन एक खेतिहर मज़दूर (वह किसान, जिसकी अपनी ज़मीन न हो) था। उस गाँवमें रूसियों द्वारा एक पाठशाला खोली गई थी, जिसमें ९ से २ सालके समयमें बच्चोंको १०० तक गिनना, अपना नाम लिखना, छपी हुई चीज़ थोड़ी-थोड़ी पढ़ लेना और सब उपाधियों-सहित ज़ारका नाम कण्ठस्थ करना सिखाया जाता था। यहीं तिमोशेंकोने भी अपने मोल्देवियन साथियोंके साथ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। यहाँकी पढ़ाई ख़त्म करनेके बाद तिमोशेंको एक खेतपर काम करने लगा।

सन् १९१५ में जर्मनोंसे हुई लड़ाईके समय वह ज़ारकी शाही सेनामें भर्ती हो गया। यहीं पश्चिमी मोर्चेपर उसने

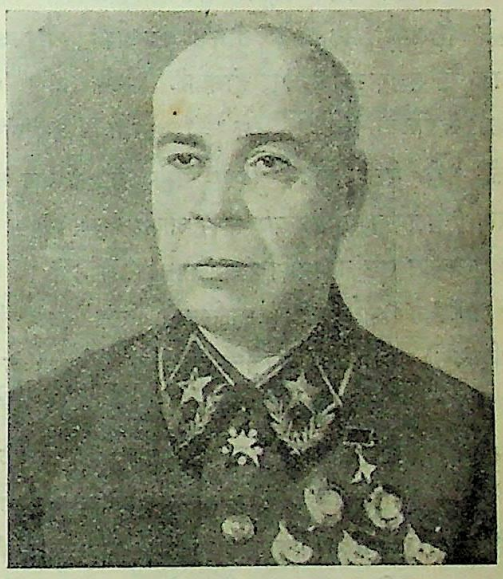

सेमियों कोन्स्तान्तिनोविच तिमोशेंको।

अमरीकामें बनी मशीनगन चलाना सीखा। किसी अफ़सर द्वारा कहा गया अपशब्द सहन न करके तिमोशेंकोने उसके एक चपत रसीद कर दी, जिसपर फ़ौजी क़ानूनके अनुसार उसे गिरफ़्तार कर लिया गया। (शायद अपने इसी अनुभवके बाद रूसके युद्ध-सचिव होनेपर तिमोशेंकोने फ़ौजी हिदायतनामेमें यह शर्त्त रखी कि अगर कोई फ़ौजी अफ़सर अनुशासनके लिए अपशब्द या बल-प्रयोगसे काम लेगा, तो वह उसके परिणामके लिए ज़िम्मेदार नहीं होगा। जो अफ़सर किसी आज्ञाके पालन करानेमें अपनी सारी शक्ति नहीं लगा देगा, उसे सज़ा दी जायगी।) पर सन् १९१७ में क्रान्तिका ज्वालामुखी फट पड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तिमोशेंको दण्डित होनेसे बच गया। इस समय बोल्शेविक शान्ति-स्थापनाकी चेष्टा कर रहे थे ; पर केरेन्स्कीकी अस्थायी सरकार अपने स्वार्थके लिए लड़ाई जारी रखनेकी कोशिशमें थी। इसी समय तिमोशेंकोका ध्यान लेनिनकी अपीलों और उसके सिद्धान्तोंकी ओर गया, और उसने अपनी टुकड़ीमें युद्ध-विरोधी प्रचार करनेका जोखिमपूर्ण दायित्व अपने ऊपर लिया। इसी समय केरेन्स्की-सरकारका खात्मा हो गया। तिमोशेंकोकी टुकड़ीने अपने युद्धके पक्षपाती अफ़सरोंको मार डाला और सब लोग जाकर लाल-सेनासे मिल गए।

पुरानी सेनाके विघटित होनेके बाद १९१८ में तिमेशेंको क्रीमियामें श्वेत रूसियोंके खिलाफ़ लड़नेवाली गुरिल्ला-टुकड़ीमें भर्त्ती हो गए। अपनी कुशाग्रबुद्धि, दूरदृष्टि और साहसिकताके कारण तिमोशेंकोको उस टुकड़ीका प्रधान बनाया गया। घोड़ेपर सवार तिमोशेंकोने कई महीनों तक नवस्थापित सोवियत् व्यवस्थाके खिलाफ़ लड़नेवाले दोनके कज़्ज़ाकों और जनरल केलेदिनकी खूँखार टुकड़ियोंपर होनेवाले प्रत्यक्ष और परोक्ष हमलोंका संचालन किया। पर कोहक़ाफ़में तिमोशेंकोकी टुकड़ीको बुरी तरह खदेड़ दिया गया, जिसके बाद आपने ज़ारित्सिन (वर्त्तमान स्तालिनग्राद) में आकर शरण ली। यहाँ आपकी मुलाक़ात एक नवस्थापित जार्जियन दलसे हुई। इसके प्रधान जार्जियन कार्यकर्त्ता (स्तालिन), एक रूसी मिस्त्री (वोरोशिलफ़) और एक कज़्ज़ाक घुड़सवार (बुदेनी) के साथ बैसरेबियाके इस किसान युवककी खूब पटने लगी, और यहीं इन चारोंकी ऐतिहासिक मित्रताका आरम्भ हुआ। पिछले २२ वर्षोंसे यह मैत्री-सम्बन्ध भीषण गृह-युद्ध, बोल्शेविक-पार्टीकी दलादली, विरोध एवं मतभेद और 'शुद्धि'के बावजूद अभी भी फौलादकी तरह अडिग-अटूट बना हुआ है।

ज़ारित्सिन नगरकी रक्षाका भार उस समय स्तालिनपर था। उसने अपने नवयुवक मित्र तिमोशेंकोको प्रथम घुड़सवार सेनाके जनरल बुदेनीके समान ही पद दिया। तिमोशेंकोने रातके अँधेरेमें शत्रूपर आकस्मिक हमले करके विशेष सफलता प्राप्त की। कई बार अपनी हमला करनेवाली टुकड़ीके आगे सबसे पहले व्यक्ति आप ही होते थे। कज़्ज़ाकों और जनरल देनिकिनकी श्वेत रूसियोंकी गारदको आपने कई बार शिकस्त दी। आपकी इन दिनोंकी फ़ौजी सफलताओंमें सबसे उल्लेखनीय है रोस्तवकी विजय, जब कि एक दिन अचानक भोजन करते हुए श्वेत रूसियोंके कैम्पमें आप जा पहुँचे और उन्हें आज्ञा दी कि अपना भोजन समाप्त करके वे सब आत्म-समर्पण कर दें।

१९२० के रूस-पोलैण्ड-युद्धमें आपने बुदेनीके साथ पिल्सुदस्कीकी सेनाओंपर घुड़सवार सेनाके वे आक्रमण किए, जिनकी सफलताके कारण ही लाल-सेना वारसाके द्वार तक जा पहुँची थी। इसी वर्ष प्रेकोप (क्रिमिया) में तिमोशेंकोकी टुकड़ियोंको बैरन रेंगेलकी सेनाने बुरी तरह हराया, जिसमें स्वयं तिमोशेंको सख्त घायल हुए। पर आपने एक क्षणके लिए भी लड़ाईका मैदान नहीं छोड़ा। गृह-युद्धके समय तो आप कोई ५ बार घायल हुए ; पर आपने युद्ध-क्षेत्रसे हटना स्वीकार नहीं किया।

लाल-सेनाने जब अपने देशी और विदेशी शत्रुओंको पराजित कर दिया और सोवियत्-व्यवस्था जब रचनात्मक कार्यकी ओर अग्रसर हुई, तो तिमोशेंकोने—जिन्होंने नाममात्रका अक्षर-ज्ञान भर प्राप्त किया था—कुछ पढ़ाई करनेका निश्चय किया। कई अन्य सैनिक-अफ़सरोंके साथ आपको इस कार्यके लिए विशेष रूपसे संगठित की गई फ्रुन्ज़-एकेडेमीमें युद्ध-विद्याकी शिक्षाके लिए भेजा गया। १९२२ में आपने यहाँकी अन्तिम परीक्षा पास की और १९२७ में सेनापतिकी। १९३० में आपने सैनिक-राजनीतिक विद्यालयकी उच्च परीक्षा भी पास की। आरम्भमें तिमोशेंकोको लाल-सेनामें साधारण पद ही दिए गए ; पर ज्यों-ज्यों स्तालिनकी 'शुद्धि' द्वारा बड़े-बड़े अफ़सर गायब और पदच्युत होने लगे, स्तालिनके अन्य विश्वासपात्र मित्रोंके साथ ही तिमोशेंकोकी पदोन्नति भी बड़ी द्रुतगतिसे होने लगी। १९३६ में उन्हें किएफ़के फ़ौजी क्षेत्रके अध्यक्ष जनरल याकिरका (जिन्हें दूसरे वर्ष 'शुद्धि'की तलवारसे उड़ा दिया गया !) सहायक नियुक्त किया गया। दूसरे वर्ष उत्तरी कोहक़ाफ़के फ़ौजी क्षेत्रके सेनापति जनरल कोशिरिन 'शुद्धि'के शिकार हुए और उनकी जगह तिमोशेंकोकी नियुक्त हुई। १९३७ में यही भाग्य खारकफ़के फ़ौजी क्षेत्रके सेनापति जनरल दुबोवोयका हुआ और उनके स्थानपर तिमोशेंकोको भेजा गया। १९३८ में जर्मनी और पोलैण्डकी तनातनी होनेके कारण उन्हें पोलैण्ड और रूसकी सीमाके पास किएफ़के विशिष्ट फ़ौजी क्षेत्रका प्रधान सेनापति बनाकर भेजा गया। इसके कुछ ही समय बाद स्तालिनने जर्मनीके साथ सन्धि की और पोलैण्डका पतन हुआ। पोलैण्डके जिन दक्षिण-पूर्वी ज़िलोंपर जाकर लाल-सेनाने इस समय कब्ज़ा किया था, उनके सेनाध्यक्ष तिमोशेंको ही थे। इसी वर्ष रूसने फिनलैण्डपर आक्रमण किया। पहले तो वहाँ लाल-सेनाको काफ़ी सफलता मिली ; पर जब अत्यधिक शीतके कारण लाल-सेनाकी गति शिथिल हो गई और उसे नुक़सान भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

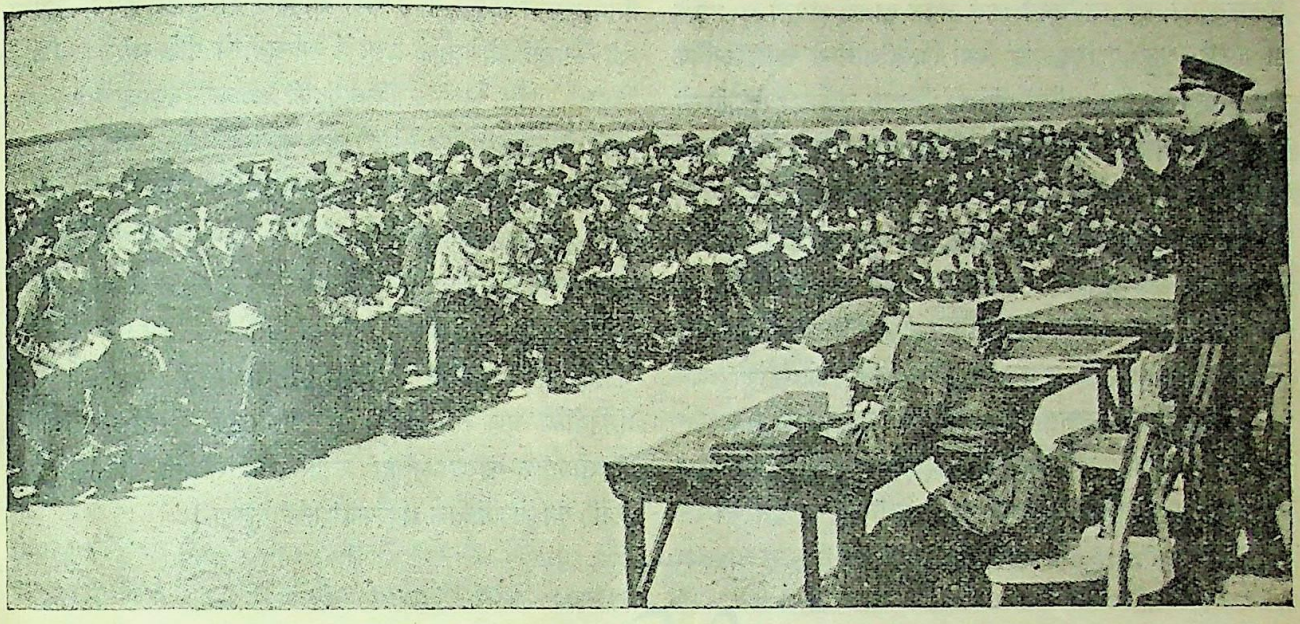

मार्शल तिमोशेंको लाल-सेनाके अफ़सरोंको आक्रमणसे पूर्व हिदायतें दे रहे हैं।

काफ़ी हुआ, तो स्तालिनका चिन्तित होना स्वाभाविक था। उसने अपने मित्र तिमोशेंकोको लेलिनग्राद बुलाया और फिनलैण्डपर हुए आक्रमणका सेनापतित्व स्वीकार करनेको कहा। वहाँ पहुँचकर तिमोशेंकोने प्रधान सेनापति शापोशनिकफ़ और सेनाध्यक्ष कुलिककी सहायतासे मैनरहीम-दुर्गपंक्ति जैसी ही एक नक़ली दुर्गपंक्ति बनवाई और अपनी सेनाको उसपर आक्रमण करनेकी शिक्षा देनी शुरू की। कुछ सप्ताहके अभ्यासके बाद तिमोशेंकोने इन अभ्यस्त सैनिकोंको लेकर असली मैनरहीम-दुर्गपंक्तिपर धावा बोल दिया और उसे छिन्न-भिन्न कर डाला।

पर इसके कई सप्ताह बाद तक तिमोशेंकोका नाम रूसियोंके लिए अपरिचित ही रहा। ७ मई, १९४० को बोल्शोई आपेरा-हाउसमें चेकोवस्कीकी जो बरसी मनाई गई, उसमें तिमोशेंकोको स्तालिनके पास बैठा देखकर कई दर्शकोंको आश्चर्य भी हुआ। दूसरे ही दिन फिनलैण्डमें स्तालिन और लाल-सेनाकी लाज बचानेवाले इस वीर योद्धाको 'सोवियत्-संघका वीर', 'आर्डर आफ़ लेनिन'की सर्वोच्च उपाधि और स्वर्ण-नक्षत्र-पदक तथा तलवारसे सम्मानित किया गया, जिसके फल-स्वरूप तिमोशेंकोका नाम विद्युत-गतिसे रूस-भरमें फैल गया। इसी समय आपको मार्शल बना दिया गया और जर्मनी द्वारा रूसपर हमला होनेके बाद इसके अतिरिक्त आपको रक्षा-सचिवका कार्य-भार भी सौंप दिया गया (और रक्षा-सचिव वरोशिलफ़को उप-प्रधान-मन्त्री बना दिया गया)। १९४० में जब बैसरेबियाको रूसमें मिला लिया गया, तो आप अपने फुरमांका गाँवको देखने गए। वहाँकी जनताने आपका गाजे-बाजेसे स्वागत किया। यहाँ अपने भाई और पुराने मित्रोंसे मिलकर आप बड़े प्रसन्न हुए।

१२ अक्टूबर, १९४० को रक्षा-सचिव तिमोशेंकोने लाल-सेनाके १९२५ के नियम बदल दिए और उनके स्थानपर एक आर्डिनेन्स जारी किया, जिसके अनुसार अनुशासन और आत्म-त्यागको लाल-सेनाके प्रत्येक सदस्यके लिए मूलमन्त्र बना दिया गया। अनुशासन-पालनपर नए नियमोंमें विशेष ज़ोर दिया गया है। उसके लिए सेनापतियोंको पूर्णाधिकार दिए गए हैं और उनका आदेश-मात्र उनके मातहतोंके लिए क़ानून बना दिया गया है। लाल-सेनामें जनरलका ओहदा फिर स्थापित किया गया और 'राजनीतिक कमिसार'का ओहदा तोड़ दिया गया। अपने अनुभवोंके आधारपर आपने लाल-सेनामें और भी कई सुधार किए। उसकी शिक्षा और अभ्यासके ढंगमें आमूलचूल परिवर्त्तन किए गए। नए रंगरूटोंकी शिक्षामें आपने खुद दिलचस्पी लेनी शुरू की।

११ जुलाई, १९४१ को जब नात्सी दस्युओंने रूसपर हमला किया, तो रक्षाके लिए स्तालिनने फिर अपने ज़ारिस्सिन-कालीन मित्रों—तिमोशेंको, वरोशिलफ़ और बुदेनी—की ही सहायता एवं शरण ली। युद्धके आरम्भमें मास्कोकी रक्षाका भार तिमोशेंकोको, लेनिनग्रादकी रक्षाका भार वरोशिलफ़को और उक्रेनको रक्षाका भार बुदेनीको सौंपा गया। इन सबके प्रधा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनानायकका कार्य स्तालिनने स्वयं अपने हाथमें लिया। युद्धके परिणामने यह ज़ाहिर कर दिया कि तीनोंमें से सबसे अधिक श्रेय-सफलताका हिस्सा तिमोशेंकोको मिलना चाहिए। स्तालिनने युद्धके दूसरे वर्षमें सेनाकी तैयारी और रक्षक सेनाएँ भेजने एवं संगठित और शिक्षित करनेका भार बुदेनीपर डाला और तिमोशेंकोको दक्षिणके युद्ध-क्षेत्रका कार्य-भार सौंपा। तिमोशेंकोकी पिछले वर्षकी पहली और सबसे शानदार विजय थी मास्कोकी (सितम्बर, १९४१) और दूसरी रोस्तवपर किए गए प्रत्याक्रमण की (दिसम्बर, १९४१), जिसमें नात्सियोंको जन और सामग्रीकी भयंकर क्षति हुई। नात्सियोंकी यह क्षति आजसे २० वर्ष पूर्व यहीं तिमोशेंको द्वारा श्वेत रूसियोंपर किए गए घातक हमलोंका स्मरण दिला देती है। इस वर्ष भी तिमोशेंकोने पिछले वर्षसे कहीं शानदार दो फतहआबियाँ हासिल कीं—पहली दोनेत्सकी तराईमें नात्सियोंको पीछे खदेड़कर (मार्च, १९४२) और दूसरी स्तालिनग्रादकी रक्षाकर (नवम्बर १९४२)। इनमें से अन्तिम विजय तो रूसके ही नहीं, संयुक्त-राष्ट्रोंके फ़ौजी इतिहासमें अपना असाधारण एवं अद्वितीय महत्व रखती है।

इस सबके बावजूद तिमोशेंको सेनापतिकी अपेक्षा आज भी एक किसान ही अधिक दिखाई देते हैं। १९१९ से कम्युनिस्ट-पार्टीके सदस्य होनेपर भी आप राजनीतिसे अलग ही रहे हैं। वे स्तालिनकी 'शुद्धियों', जर्मन-रूस-सन्धि और उसकी सारी नीतियोंके मूक समर्थक रहे हैं—पता नहीं, किसी नासमझी या उदासीनताके कारण अथवा स्तालिनकी मैत्रीके लिहाज़से या किसी गुप्त राजनीतिक महत्वाकांक्षाके कारण!

स्त्री-शिक्षा

श्री किशोरलाल घनश्याम मशरूवाला

दो पास-पास खड़े हुए आम और नीमके पेड़ोंको अलग-अलग स्थानोंसे देखनेपर एक जगहसे आम नीमकी दाहिनी ओर दिखाई पड़ेगा और दूसरी जगहसे बाईं ओर। तीसरी दिशामें खड़े होकर देखनेसे वह नीमके आगे दिखाई देगा और चौथी जगहसे उसके पीछे। इस भिन्नताका कारण पेड़ोंका स्थान-परिवर्त्तन नहीं, बल्कि देखनेवालेका स्थान-परिवर्त्तन ही है।

शिक्षाका भी कुछ ऐसा ही हाल है। जिस स्थानपर खड़े होकर हम जीवनका अवलोकन करते हैं, उसीके अनुसार जीवन-सम्बन्धी हमारे विचार बनते हैं और जीवनका यह या वह अंग हमें कम या ज़्यादा महत्त्वका मालूम होता है। शिक्षा जीवनको सुसंगत और सुगठित बनाती है, जीवन-निर्माण और जीवन-संस्कार उसका ध्येय है। शिक्षाको यदि हम जीवन-निर्माण या जीवन-संस्कारकी एक पद्धति मान लें और इस छोटी-सी परिभाषाको मानकर इस विषयपर विचार करें, तो हमें कुछ सुविधा होगी। यह परिभाषा हमारे सामने प्रश्नोंकी एक परम्परा—शृंखला—खड़ी कर देगी।

पहला प्रश्न यह है कि 'जीवन-निर्माण' या 'जीवन-संस्कार' का अर्थ क्या है? जब हम 'निर्माण' या 'संस्कार'का अर्थ ढूँढ़ने बैठते हैं, तो तुरन्त प्रश्न उठता है, 'जीवन किसका?' शायद इसका कोई यह उत्तर दे—स्त्रियोंका। लेकिन वह सम्पूर्ण न होगा। फिर प्रश्न उठेगा कौन-सी स्त्रियाँ, किस वर्ग या समाजकी स्त्रियाँ? यदि हमारी आँखोंके सामने शहरोंकी और उनमें भी धनी या मध्यम श्रेणीकी स्त्रियाँ होंगी, तो हमें अपने उत्तर एक ढंगके सूझेंगे। यदि गाँवोंके पिछड़े हुए और ग़रीब वर्गोंकी स्त्रियाँ हमारे सामने होंगी, तो हमें अपने उत्तर दूसरे ढंगके सूझेंगे।

मनुष्य-जाति अपनी राज-पद्धति, समाज-पद्धति, शिक्षण-पद्धति धार्मिक आचार-विचारके नियमों, नैतिक व्यवहारके नियमों आदिके द्वारा एक ही वस्तु सिद्ध करना चाहती है। वह है—जीवनकी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंमें आन्तरिक सामंजस्य स्थापित करना और अपने एवं दूसरे प्राणियोंके जीवनमें पारस्परिक समरसता उत्पन्न करना। शिक्षार्थियोंके जीवनको संस्कारी बननेका वह प्रयत्न शिक्षा है, जिससे उसके योजकोंको यह अनुभव हो कि उनके एवं शिक्षार्थियोंके बीचमें और समाजके विभिन्न अंगोंके बीचमें भी सामंजस्य या सुमेल स्थापित हुआ है। इसके अनुसार शिक्षाकी योजना बनानेवालोंके भी दो दल हो जाते हैं। वे लोग, जो अपने और शिक्षार्थियोंके जीवनमें सामंजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा करते हैं और वे, जो समाजके विभिन्न अंगोंमें सामंजस्य स्थापित करनेका यत्न करते हैं।

पहले प्रकारके शिक्षा-शास्त्रियोंके कुछ उदाहरण लीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़ों या बैलोंके वे मालिक, जो हमेशा यही सोचते हैं कि ये जानवर किस तरह उनके वशमें रहें और उनका अधिकसे अधिक काम कर दिया करें। ये लोग इन प्राणियोंके जीवनको एक ऐसा रूप दे देना चाहते हैं, जिससे इनके जीवनके साथ इन जानवरोंके जीवनकी एकता क़ायम रह सके! सरकारी शिक्षा-विभाग भी प्रजाको उसी ढंगसे सुशिक्षित करता है, जिससे कि वह राज्यके अस्तित्वके साथ मेल खा सके। दूसरे वर्गके शिक्षक वे हैं, जो शिक्षा द्वारा शिक्षितोंके जीवनको वह स्वरूप देना चाहते हैं, जिससे शिक्षा देनेवालेके जीवनके साथ शिक्षा ग्रहण करनेवालेका जीवन घुल-मिल सके। इस प्रकारका मेल बैठानेकी दृष्टिसे किसीके जीवनको बनानेकी कोशिश करनेमें कोई खास दोष नहीं है। लेकिन यदि सिखानेवालेके विशिष्ट दृष्टि-कोणके कारण शिक्षाका परिणाम यह होता है कि शिक्षक और शिक्षार्थीके बीच सदैव स्वामी और दासका ही सम्बन्ध बना रहे, तो उसमें अन्याय होता है। इस प्रकार अपने जीवनमें कोई परिवर्त्तन न करके दूसरोंके जीवनको अपने अनुकूल बनानेकी जो कोशिश की जाती है, उसमें आम तौरपर भय, लालच, खुशामद, अन्ध-विश्वासोंका पोषण, सत्यको छिपाना अथवा असत्य कहना आदि उपाय शिक्षा-पद्धतिके अंग बन जाते हैं, और इसमें मनुष्यकी धर्म, भक्ति, प्रेम, कृतज्ञता आदि समस्त कोमल भावनाओंसे अनुचित लाभ उठानेका भी यत्न किया जाता है।

यथासम्भव निःस्वार्थ और विशाल दृष्टिकोणसे प्रामाणिकता-पूर्वक जीवनका विचार करके किसी ऐसी शिक्षा-पद्धतिकी योजना होनी चाहिए, जिससे समाजके सभी अंगोंके बीच सबका समान हित करनेवाला सामंजस्य स्थापित हो सके। यदि ऐसा प्रयत्न प्रामाणिकतापूर्वक किया जाय, तो उससे कोई हानि नहीं होती। हमारे सामने मध्यम श्रेणीकी स्त्रियोंकी शिक्षाका प्रश्न भले ही मुख्य रहे; पर उनकी शिक्षा सामान्य वर्गकी स्त्रियोंके जीवनसे मेल रखनेवाली होनी चाहिए। सामान्य वर्ग और विशिष्ट वर्गके बीच कोई विरोध न रहना चाहिए। शिक्षाकी योजनामें पुरुष या स्त्री दोनोंमें से किसी एकको प्रधान पद देनेवाले दृष्टिकोणसे जीवनका विचार न किया जाना चाहिए, बल्कि दोनोंके जीवनको समान महत्त्व देकर दोनोंमें सामंजस्य स्थापित करनेका प्रयत्न होना चाहिए। अतएव पुरुषकी शिक्षण-पद्धतिमें स्त्रीके हितका विचार होना चाहिए।

पुरुष और स्त्रीकी शिक्षा-सम्बन्धी योजना पुरुष और स्त्री दोनोंको मिलकर तैयार करनी चाहिए और उसके बनानेमें विशिष्ट वर्गके हितोंको समझनेवालोंका भी हाथ रहना चाहिए। शर्त्त यह है कि इन योजकोंको अपने वर्गके प्रतिनिधिके रूपमें—उस हैसियतसे—सोचनेकी आदत छोड़ देनी चाहिए और जहाँ तक हो सके, सब वर्गोंसे ऊपर उठकर सोचनेकी आदत डालनी चाहिए। सबसे पहले तो हमें आम वर्गके और मध्यम वर्गके जीवनमें जो थोड़े मोटे-मोटे भेद हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए और साथ ही यह भी मान लेना चाहिए कि आम वर्गका जीवन प्रकृति और उचित स्थितिके अधिक समीप है। जन-साधारणमें स्त्री और पुरुषकी भूमिका क़रीब-क़रीब समान है। उनमें स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषका ज्ञान, श्रद्धा, विचार-शैली, रूढ़िगत बन्धन आदि अधिक उच्चकोटिके नहीं होते। ज्ञान-अज्ञानकी दृष्टिसे स्त्री-पुरुष दोनोंका दर्जा एक-सा होता है। स्त्री और पुरुष दोनोंको क़रीब-क़रीब समान स्वतन्त्रता प्राप्त है। विवाह और तलाक़के मामलोंमें दोनोंको एक बड़ी हद तक समान अधिकार हैं। दोनोंको गाँव और समाजमें घूमने-फिरनेकी समान स्वतन्त्रता है। दोनोंमें चरित्रकी शुद्धि या शिथिलता एक-सी पाई जाती है।

आम वर्गके स्त्री-पुरुष दोनों समान परिश्रम करते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि आम वर्गके पुरुषोंकी दृष्टि अधिक विशाल और स्त्रियोंकी संकुचित होती है, अथवा पुरुष ज़्यादा दुनियादार, फूँक-फूँककर क़दम रखनेवाला और स्त्री भावुक होती है। इसका यह मतलब नहीं कि सर्वसाधारण जनतामें पुरुष और स्त्री दोनोंका दर्जा बिल्कुल समान है। पुरुषने स्त्रीको अपने अधीन रहने योग्य बनानेका प्रयत्न किया ही है। सामान्य वर्गका पुरुष भी इसका अपवाद नहीं है; किन्तु इस प्रकारकी असमानता जितनी विशिष्ट वर्गमें पाई जाती है, उतनी सामान्य वर्गमें नहीं। इसीलिए आम वर्गकी जनता प्रकृत स्थितिके अधिक समीप है।

स्त्री-पुरुष दोनोंकी शिक्षाका कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे ज्ञान, धर्म, चारित्र्य, भावनाशीलता और व्यवहार-कुशलतामें दोनोंकी योग्यता एक-सी हो सके। गाँव या समाजमें घूमने-फिरनेकी तथा विवाह और तलाक़की सुविधा दोनोंको समान रूपसे मिलनी चाहिए। अपने निर्वाह या गृह-प्रबन्धके लिए किसीको विवश होकर विवाह अथवा पुनर्विवाह न करना पड़े, इसकी शक्ति निर्वाहकी दृष्टिसे स्त्रीमें और गृह-प्रबन्धकी दृष्टिसे पुरुषमें होनी चाहिए।

श्रमकी दृष्टिसे भी जनसाधारणमें और विशिष्ट वर्गवालोंमें कुछ भेद है; किन्तु वह उतना दृढ़ नहीं है। कुछ काम आम तौरपर स्त्रियाँ करती हैं और कुछ पुरुष; लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता पड़नेपर स्त्रियोंके काम पुरुष कर लेते हैं और पुरुषोंके काम स्त्रियाँ। दूसरे, यह श्रम-भेद एक ही धन्धोंकी भिन्न-भिन्न क्रियाओंमें होता है। इस श्रम-भेदमें यह नहीं होता कि पुरुष खेतीका काम करे और स्त्री दरजिन बनकर रहे। विशिष्ट वर्गमें स्त्री और पुरुष दोनों निर्वाहके लिए नौकरी या और कोई धन्धा करते पाए जाते हैं; पर उनके धन्धे एक-दूसरेसे बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं। अतः पुरुष और स्त्रीकी शिक्षाका प्रबन्ध कुछ ऐसा होना चाहिए, जिससे वे दोनों मिलकर एक ही धन्धा कर सकें। उनके विवाहमें भी यही दृष्टि रखी जाय, तो उसका महत्त्व अधिक एवं स्थायी होगा।

आज तक आम तौरपर पुरुषने स्त्रीपर हुकूमत की है, जिससे अयोग्य होनेपर भी पुरुषमें श्रेष्ठताके मिथ्याभिमानका और कुशल होनेपर भी स्त्रीमें हीनता एवं लघुताकी मिथ्या धारणाका पोषण हुआ है। फलतः यदि पति कुशल है और स्त्री मन्दबुद्धि, तो स्त्रीको पतिसे कोई ईर्ष्या नहीं होती और न उसके दिलमें पतिकी कुशलताको दबा देने अथवा उसके प्रति सशंक रहनेकी वृत्ति ही पैदा होती है। लेकिन यदि पुरुष मूर्ख है और स्त्री चतुर, तो पुरुष स्त्रीपर अपनी धाक जमानेका—उसकी चतुराईको दबानेका—प्रयत्न करता है। अतएव संस्कारवशात् पुरुषमें अपनी श्रेष्ठताका जो यह मिथ्याभिमान और स्त्रीमें अपनी हीनता एवं लघुताका जो झूठा खयाल घर कर गया है, वह दोनोंके लिए घातक है और सुतरां त्याज्य है। वैसे देखा जाय, तो कभी पुरुष बुद्धिमान होता है और कभी स्त्री। अतः स्त्री जिस प्रकार अपने बुद्धिमान पतिपर गर्व करती है, उसी प्रकार पुरुषको भी अपनी स्त्रीकी बुद्धिमत्तापर गर्व करना चाहिए और उसकी सहायता-सहयोगसे काम करना चाहिए।

पुरुषोंके मनमें सुदीर्घ कालसे यह भाव रहा है कि उन्हें स्त्रीको दबानेका हक़ है और स्त्रीका कर्त्तव्य है कि वह दबकर रहे। अतएव पुरुष जिसे दबा नहीं सकता और जो पुरुषसे अधिक चतुर है, उस स्त्रीसे विवाह करना पुरुष पसन्द नहीं करता। लेकिन यदि दोनोंके संस्कार बदल सकें और पुरुष या स्त्री एक-दूसरेको अपनी सम्पत्ति, शक्ति या विद्या द्वारा दबाकर रखनेका विचार छोड़ परस्पर प्रेम एवं सहयोगपूर्वक रहनेमें सन्तोष मानें, तो दोनोंका जीवन सुख-सन्तोषमय हो सकता है।

स्त्री-पुरुषमें कुछ नैसर्गिक भेद भी हैं। इन नैसर्गिक भेदोंमें मुख्य मातृपद-सम्बन्धी है। स्त्री यदि चाहे, तो अपनेको मातृत्वसे बचा सकती है; परन्तु पुरुष कभी भी उसे स्वीकार नहीं कर सकता। दूसरे शब्दोंमें, पुरुष पूर्णतया स्त्री नहीं बन सकता; किन्तु स्त्री यदि चाहे तो कई अंशोंमें पुरुषके समान जीवन बिता सकती है। अतएव जो स्त्री पुरुषके ही काम करना चाहती है, तो उसे वैसा करनेसे रोका नहीं जा सकता। लेकिन इस स्वतन्त्रताके रहते हुए भी हमें यह तो समझ लेना चाहिए कि ऐसी स्त्री अपवाद ही हो सकती है। ९५ प्रतिशत स्त्रियाँ तो मातृत्वको अपनानेवाली ही होंगी। अतः मोटे तौरपर तो हमें यह मानकर ही कि स्त्रीको माता बनना है, स्त्री-शिक्षाका प्रबन्ध करना चाहिए। किन्तु मातृत्वको स्वीकार करते ही स्त्रीकी स्वतन्त्रता कुछ हद तक मर्यादित हो जाती है और उसपर कुछ विशिष्ट उत्तरदायित्व भी आ पड़ता है। अतएव सार्वजनिक कार्योंमें वह पुरुषके समान सम्मिलित नहीं हो सकती और उसके लिए पुरुषकी अपेक्षा हल्का एवं घरेलू या घरके समीप ही हो सकनेवाला कोई धन्धा करनेकी आवश्यकता उत्पन्न होती है। आम तौरपर मातृत्वका यह दायित्व काफ़ी छोटी उम्रसे ही स्त्रीके सिरपर आ पड़ता है। अतएव उसे पुरुषकी अपेक्षा पाठशाला या विद्यालयकी पढ़ाईके लिए भी कम ही समय मिलता है।

पुरुष घरमें कम रहता है, अतः वह सार्वजनिक कार्योंमें अधिक भाग ले सकता है। समाजमें जाने-आनेकी स्वतन्त्रता और बड़ी उम्र तक शिक्षा प्राप्त करनेकी सुविधा भी उसे अधिक मिलती है। इसलिए पुरुषको अपने दृष्टिकोणकी विशालता बढ़ानेके जो अवसर मिलते हैं, वे स्त्रीको नहीं मिलते। फलतः स्त्री और पुरुषके बीच विचारोंका अन्तर बढ़ जाता है। पर इसके विपरीत मातृत्व स्त्रीमें एक ऐसी कर्त्तव्य-बुद्धि उत्पन्न करता है, जिसके कारण उसका जीवन अधिक स्वार्थत्यागपूर्ण और भावनामय बन जाता है। मातृत्वके इन दो अनिष्ट और इष्ट परिणामोंका यदि किसी तरह सामंजस्य हो सके, तो समाजमें पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका स्थान सब प्रकारसे श्रेष्ठ हो सकता है। इस सामंजस्यके लिए विवाहकी उम्र काफ़ी बढ़ानी चाहिए। २०-२२ वर्ष तक बढ़ सके, तो अच्छा है; पर १८ वर्षसे कम तो होनी ही न चाहिए। संयमका पालन इस तरह करना चाहिए कि जिससे दो बालकोंके बीच पर्याप्त अन्तर रहे (क़रीब पाँच वर्षका)। दो-तीन बालकोंके बाद सम्पूर्ण संयमका पालन होना चाहिए। पुरुषकी शिक्षामें भी शिशु-पालन और गृह-प्रबन्धके कुछ अंगोंको स्थान देना चाहिए, जिससे पुरुष स्त्रीके काममें सहायता कर सके।

विवाहकी वयको बढ़ाने और पुरुषको शिशु-पालन एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह-प्रबन्धकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था तो हो सकती है ; परन्तु संयम तो अधिकतर स्त्री-पुरुष अपने विचारसे ही रख सकते हैं। शिक्षा-शास्त्री तो उन्हें इसके संस्कार-मात्र दे सकते हैं। वर्षों पहले हमारे यहाँ संयुक्त-कुटुम्बकी जो प्रणाली और गौनेके जो रिवाज थे, वे कुछ हद तक इस संयमके पोषक सिद्ध होते थे। पर आज ये रिवाज मिट रहे हैं और साथ ही स्त्री-पुरुषकी स्वतन्त्रता भी अबाध-अनियन्त्रित होती जा रही है। इसके लाभोंके साथ हानियाँ भी स्पष्ट हैं। सवा साल या डेढ़ सालके अन्तरसे अधिकांश माताएँ बच्चोंको जन्म देती हैं, जिससे एक भी बालकका ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं हो पाता। इस प्रकार जल्दी और अधिक सन्तान पैदा करनेसे माता क्षीण-प्राण होकर जल्दी ही मर जाती है अथवा पिता असमय ही मृत्युका ग्रास बनकर उसे वैधव्य भोगनेके लिए छोड़ जाता है। यह अतिशय हृदय-विदारक स्थिति है। इसके प्रतिकारके लिए स्त्रीको यह सिखानेकी ज़रूरत है कि वह अपनी सारी ताक़तसे पुरुषके असंयम एवं नैतिक अतिक्रमणका निवारण करे। यह दोनोंके हितमें उसका कर्त्तव्य है।

स्त्रियोंमें जो जाग्रति आज दिखाई देती है, उसके परिणाम-स्वरूप एवं स्त्रीमें अपना निर्वाह स्वयं कर लेनेकी शक्ति आ जानेके कारण आज दो प्रकारके विचार उत्पन्न हुए हैं। एक स्वतन्त्र अविवाहित जीवन बितानेकी इच्छा और दूसरा स्वतन्त्रतापूर्वक कमाने अथवा आर्थिक रूपसे स्वावलम्बी होनेकी इच्छा। सामान्य वर्गकी स्त्रीमें स्वनिर्वाहकी शक्ति होती है। फिर भी उसमें अविवाहित रहकर स्वतन्त्र जीवन बितानेकी इच्छा नहीं पाई जाती। किन्तु विशिष्ट वर्गकी स्त्रियोंमें यह मनोवृत्ति बढ़ रही है। ९५ प्रतिशत स्त्रियोंके लिए इस प्रकारकी मनोदशा प्रकृति-धर्मका परिणाम न होकर किसी विपरित वृत्तिका ही फल होती है। किसी विशिष्ट आदर्शसे प्रेरित होकर पारिवारिक जीवन बितानेकी इच्छा न रखनेवाले मुश्किलसे २ से ५ प्रतिशत होते हैं, बाक़ी ९५ फ़ी-सदी मनुष्योंमें यह लालसा रहती है। लेकिन मध्यम वर्गकी स्त्री अब इस बोझको उठानेसे कतराने लगी है। यह इस बातका सूचक है कि इस वर्गके जीवनमें कोई रोग घुस गया है या मध्यम श्रेणीकी स्त्रियोंपर पारिवारिक दायित्वका बोझ इतना बढ़ गया है और विवाहित जीवनके बन्धन इतने कठोर हो उठे हैं कि स्त्री उनकी कल्पना-मात्रसे ही काँप उठती है। इससे यह भी मालूम होता है कि मध्यम श्रेणीके परिवारोंमें पुरुषका पारिवारिक जीवन इतना स्वार्थी और अविचारपूर्ण है कि जिस परिवारिक बोझको बढ़ानेमें पुरुष अग्रसर होता है, उसके प्रति अपने कर्त्तव्यका वह पूरा-पूरा पालन नहीं करता। फलतः बेचारी स्त्री इस दोहरे बोझके भार-तले पिस जाती है।

स्त्री-जाग्रतिके फल-स्वरूप मध्यम वर्गकी स्त्रियोंमें स्वयं स्वतन्त्रतापूर्वक अर्थोपार्जन करनेकी इच्छा बहुत प्रबल होती दिखाई देती है। यह इच्छा केवल नई पौधकी युवतियों और बालाओंमें ही नहीं, बल्कि प्रौढ़ वयकी स्त्रियोंमें भी घर कर रही है। स्त्रीमें स्वनिर्वाहकी शक्तिका होना एक बात है और स्वतन्त्र रूपसे अर्थोपार्जन करनेका आग्रह दूसरी बात है। पहली चीज़ स्त्रीको साधन-सम्पन्न बनाए रखती है ; लेकिन उसके लिए यह सदैव आवश्यक नहीं रहता कि वह उस साधनका उपयोग करे ही। स्त्रीके साथ जो पुरुष परिवारका भार उठाता है, उस पुरुषकी कमाईमें स्त्रीका भाग है ही।* इसके उपरान्त यह आवश्यक नहीं होना चाहिए कि स्त्री अपनी स्वतन्त्र कमाई दिखानेके लिए अलगसे कोई धन्धा करे ही। स्त्रियोंमें जो यह इच्छा प्रबल होती दिखाई देती है, वह इस बातकी सूचक है कि स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध जितना चाहिए, उतना हार्दिक और विश्वासपूर्ण नहीं है, एवं स्त्रीको यह विश्वास-सा होता जाता है कि उन दोनोंमें पुरुषका जीवन अधिक स्वार्थी और कृतघ्नतापूर्ण है।

पारिवारिक और सामाजिक जीवनके लिए यह स्थिति स्वास्थ्यसूचक नहीं है। किन्तु इस स्थितिको सुधारनेका उपाय यह नहीं है कि हम अकेली स्त्रीको 'सुसंस्कृत' बनाने और उसके सामने महान् सतियोंके स्वार्थत्यागपूर्ण जीवनोंको आदर्श-रूपमें रखनेका यत्न करें। स्त्रीका विश्वास प्राप्त करनेके लिए पुरुषको अपना जीवन सुधारना ही होगा, और

* यह बिल्कुल लचर और ग़लत दलील है। स्त्रीकी सारी परतन्त्रता, असमानता और दैन्य एवं भाव-लाघवकी जड़ उसकी आर्थिक परमुखापेक्षिता है। आर्थिक स्वावलम्बन ही उसकी सारी अयोग्यताओं, सामाजिक बुराइयों और ग़ुलामीको दूर कर सकता है। इस क्षमताके बिना वह सही अर्थोंमें समाजमें समानाधिकार एवं स्वतन्त्रता लाभ कर ही नहीं सकती। कदाचित् इसीलिए स्वार्थी पुरुषने उसे पर्देसे बाहर निकाल और पढ़ा-लिखाकर भी आर्थिक स्वावलम्बनसे कोसों दूर ही रखा है। इसके लिए बहाना उसने यह खोजा है कि स्त्रीके आर्थिक स्वावलम्बनसे घर और परिवारकी शान्ति, सुख और संगठन खतरेमें पड़ जायँगे। पर क्यों वह इसका निर्णय स्त्रीपर न छोड़कर स्वयं उसकी ओरसे वकालत करता है ? —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब तक दोनोंमें हार्दिक सम्बन्ध स्थापित न हो, तब तकके लिए कोई ऐसा रास्ता निकालना होगा, जिससे स्त्रीको सन्तोष हो। अतः जिस स्त्रीके लिए पारिवारिक सुविधाकी दृष्टिसे स्वातन्त्र्य-पूर्वक आजीविकार्थ श्रम करना शक्य न हो, उसका परिवारकी आयके एक निश्चित भागपर अधिकार माना जाना चाहिए और परिस्थिति-विशेषमें उसे यह भाग अलग मिल सकना चाहिए। इसकी व्यवस्था दहेजमें दी जानेवाली रक़मकी तरह ही विवाहसे पहले तय हो जानी चाहिए। कहा जा सकता है कि हिन्दू-धर्ममें विवाहके पीछे जो आध्यात्मिक भावना रही है, उसमें आर्थिकताका पुट दे देनेसे वह अपने आदर्शसे गिर जायगी; लेकिन यह टीका ठीक नहीं। जब हिन्दू-विवाहकी आध्यात्मिक भावना कन्या-विक्रय, वर-विक्रय और दहेजके इक़रारोंमें बाधक नहीं होती, तो इस प्रकारकी व्यवस्थासे उसमें गिरावट कैसे आ जायगी? यदि कुटुम्बमें एकता और हार्दिकताका अच्छा विकास हो जाय, तो इस तरहके इक़रार कागज़पर धरे रह जायँ। वैसा न होने पाय, तो इस व्यवस्थासे स्त्रीके साथ अन्याय न हो और न उसे पुरुषकी दयापर जीनेको विवश ही होना पड़े।

दुनियाके सभी देशोंमें अमीरों या राजाओंकी विधवाएँ पुनर्विवाह करनेमें अपनी हेठी समझती हैं; क्योंकि विधवा बने रहनेसे उन्हें सम्पत्ति, सम्मान और कुलीनताका यश प्राप्त होता है। इनके सहारे वे पति-वियोगको सह सकती हैं। विधवा-विवाहके अभावमें मध्यम श्रेणीको जो चिन्ता रहती है, धनिक-वर्गमें उसका अभाव पाया जाता है। मध्यम श्रेणीके लोग धनिकोंके इस स्वभावका अनुकरण करने क्या चले, खाईसे खड्डेमें जा गिरे। सरे बाज़ार निकलना, शरीर-श्रमके काम करना, बोझ ढोना, खेतोंमें मज़दूरी करना आदि धनिक स्त्रीको शोभा नहीं देता। इसमें वह अपनी अप्रतिष्ठा समझती है। पर इस जीवनको अपना आदर्श मानकर मध्यम श्रेणीने घोर आर्थिक तंगी और शारीरिक सम्पत्तिके ह्रासका ही अनुभव किया है। बाहर जाने-आनेके लिए गाड़ीका जुगाड़ होता नहीं। काम-धन्धेसे मुक्ति मिलती नहीं। अतएव विवश होकर इस श्रेणीकी स्त्रियोंको बारहों महीने दिन-रात घरकी चहारदीवारीमें ही बन्द रहना और जितना काम हो सके, करना पड़ता है। अब वे ज़रा बाहर निकल सकती है; लेकिन काम वैसे ही कर सकती हैं, जो बैठे-बिठाए हो सकें। अतएव मध्यम वर्गकी स्त्रीके लिए ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे धीमे-धीमे अभ्यस्त होकर वह आम वर्गकी स्त्रीके समान परिश्रमके कामोंमें लग सके।

इस दृष्टिसे हम उसकी शिक्षाको दो भागोंमें विभाजित करेंगे—एक **सामान्य प्रवृत्तियों**की शिक्षा और दूसरी **विशिष्ट प्रवृत्तियों**की शिक्षा। सामान प्रवृत्तियाँ हैं—(१) **गृह-उद्योग** : कताई, पिंजाई, सिलाई, क़सीदा, बेल-बूटा आदि। (२) **गृह-कार्य** : रसोई, पानी भरना, कलई व धुलाई करना आदि। (३) **गृह-मण्डन** : घरकी सजावट और स्वच्छता। विशिष्ट प्रवृत्तियाँ हैं—(१) शिशु-पालन और कुमार-कुमारी-छात्रालय। (२) बाल-मन्दिर और कुमार-मन्दिर। (३) स्त्रियों एवं बालकोंके सुश्रूषालय। (४) गो-पालन। (५) बुनाई, छपाई इत्यादि उद्योग। (६) समाजके सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तियाँ। सामान्य प्रवृत्तियोंमें प्रत्येक बहन प्रत्येक कार्यमें अपने हिस्सेका काम नियमित रूपसे करे। विशिष्ट प्रवृत्तियोंमें जिसे जिस कामके लिए तैयार किया जाय, वह उसीको सँभाले। सामान्यतः प्रत्येक स्त्रीपर एकाध बालकके पालनका दायित्व रहना चाहिए और इसके लिए उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। जिन बहनोंको समाजके सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तियोंमें भाग लेनेका उत्साह हो, उन्हें सामान्य प्रवृत्तियोंमें निर्दिष्ट गृह-कार्यों एवं शिशु-पालन आदिके प्रति अरुचि होती है। मेरे विचारमें स्त्रीके अन्दर जो सहज मातृत्व है, उसके कारण शिशु-पालन स्त्रीका विशेष कार्य हो जाता है। जन्मसे ही उसे इस कार्यका उत्साह रहता है। यह कार्य उसकी अनेक कोमल वृत्तियोंको विकसित करता है। यह उससे स्वार्थत्याग कराता है और उसे सन्तोष एवं सहिष्णुता प्रदान करता है।

सुश्रूषाका काम भी शिशु-पालनके ही ढंगका है और उसके लिए भी स्त्री ही अधिक योग्य है। लेकिन इसके साथ मैं यह भी मानता हूँ कि स्त्रियोंके लिए धात्री (नर्स) के कामको धन्धेके रूपमें स्वीकार करना अनुचित-सा है, और सुश्रूषाके लिए सर्वत्र स्त्रियोंका रहना कोई बहुत ज़रूरी नहीं है। इसलिए बेहतर तो यह है कि पुरुषोंके अस्पतालोंमें पुरुष ही सुश्रूषाका काम करें। अतएव ऐसी संस्थाके अन्तर्गत यदि स्त्रियों और बालकोंका सुश्रूषालय रहे, तो वह संस्थाका एक उपयोगी अंग होगा और साथ ही उसमें स्त्रीको उचित शिक्षा भी प्राप्त हो सकेगी।

अन्य धन्धोंमें गो-पालन शिशु-पालन-जैसा ही एक उपयोगी काम है। अपने बालकोंके बाद दूसरे नम्बरपर मनुष्य यदि किसीको वात्सल्य-भावसे देखता है, तो वह उसके अपने पाले हुए पशु हैं। आज आम वर्गकी स्त्रियाँ ही इस धन्धेको परिश्रम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक करती हैं। बुनाई, छपाई (कपड़ोंकी) आदि उद्योगोंके लिए भी आज काफ़ी गुंजाइश है। स्त्रियाँ इन धन्धोंको अच्छी तरह कर सकती हैं और इनसे उनका जीवन-निर्वाह भी हो सकता है। ये धन्धे न तो परिश्रम-साध्य हैं और न ऐसे ही कि बिलकुल बैठे-बैठे किए जा सकें। यह आशा तो सभी कोई रखते हैं कि इस प्रकारकी शिक्षण-संस्थाओंमें से अधिकतर ऐसी बहनें निकलें, जो सार्वजनिक जीवनमें भी हाथ बँटानेवाली और लोक-सेवाके लिए अपना जीवन अर्पण करनेवाली हों।

अब हम स्कूलों द्वारा मिलनेवाली स्त्री-शिक्षाके बारेमें कुछ विचार करेंगे। एक बढ़ईका अनपढ़ लड़का बचपनसे यह जानता है कि उसे अपने जीवनमें क्या करना है। इसीलिए वह उद्देश्यपूर्वक लकड़ीके टुकड़ोंसे खेलता और बापके औज़ारोंको उलट-पुलटकर देखता-भालता है। लेकिन उसका पढ़ा-लिखा लड़का जैसे-जैसे आगे पढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अपने भावी जीवनके बारेमें अधिकाधिक अबूझ और असूझ होता जाता है। जो विषय उसे सिखाए जाते हैं, उनके हेतु या प्रयोजनके बारेमें वह अधिकाधिक अनजान बनता जाता है। बहुत थोड़े लड़के-लड़कियाँ ऐसे मिलेंगे, जो जानते हों कि परीक्षाको छोड़ दूसरे किस हेतुसे वे अमुक विषयको सीख रहे हैं। इसीको उत्तरदायित्वहीन शिक्षा कहते हैं। आर्ट्स कालेज तककी सामान्य शिक्षण-संस्थाएँ आजकी दशामें छात्रोंके अन्दर इसी अनुत्तरदायित्वका पोषण करती हैं। क़रीब २०-२१ वर्ष तक लड़कोंको जब इसी तरहके स्कूल-कालेजोंमें रहकर पढ़ना पड़ता है, तो उनके जीवनका अधिकांश भाग उत्तरदायित्वहीन आदतोंके निर्माणमें ही बीतता है। ऐसे स्कूल-कालेज जन-साधारण और ग़रीब मध्यम वर्गके लिए अत्यन्त विघातक हैं।

आश्रम और विद्यापीठकी राष्ट्रीय शालाओंमें वस्त्र-सम्बन्धी उद्योगोंके सिवा अन्य उद्योगोंको सिखानेकी पर्याप्त व्यवस्था नहीं रहती—बल्कि कहना चाहिए कि जान-बूझकर उनकी उपेक्षा की जाती है। इस बातकी शिकायतें अक्सर गांधीजी तक पहुँचती थीं। शिक्षा-शास्त्री उनसे कहते—'आप यह तय मत कीजिए कि विद्यार्थी जुलाहा बने या चित्रकार। उसके सामने सब तरहसे साधन रख दीजिए और उसे अपना चुनाव खुद करने दीजिए।' इसपर गांधीजी कहते—'यह मेरे बूतेकी बात नहीं है कि मैं सभी धन्धोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करूँ। अभी तो मेरे यहाँ सिर्फ़ विद्यार्थी ही आते हैं; लेकिन मैं तो करोड़ोंका विचार करता हूँ। उनमें से यदि एक बिजलीका इंजीनियर बनना चाहे, दूसरा यन्त्रोंका, तीसरा इमारतोंका, चौथा रसायनमें निपुण होना चाहे, पाँचवाँ वैद्य-डाक्टर बनना चाहे, छठा गायक, सातवाँ चित्रकार, आठवाँ अभिनेता; इस प्रकार सबकी अपनी अलग-अलग पसन्द हो, तो उन सबकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करनेवाले साधनोंको जुटाते-जुटाते मेरा तो दम निकल जाय। इसलिए मैंने अपने विचारसे एक ऐसा धन्धा चुन लिया है, जो अधिक-से-अधिक लड़कोंको सिखाया जा सकता है। अतः मैं लड़कोंसे और उनके माता-पिताओंसे भी यही कहता हूँ कि जिन्हें वस्त्र-सम्बन्धी किसी भी विद्यामें प्रवीणता प्राप्त करनी और उसके साथ सामान्य शिक्षा भी ग्रहण करनी है, वे ही मेरे यहाँ आयँ।'

मैं मानता हूँ कि बच्चोंको छोटी उम्रसे ही उद्योग-धन्धोंकी शिक्षा देनी चाहिए और प्रत्येक कुमार-पाठशाला या कन्याशालाको चुने हुए एक या दो धन्धोंको सिखानेकी ज़िम्मेदारी लेकर उन धन्धोंको सीखनेकी इच्छा रखनेवाले छात्रोंको ही अपने यहाँ भर्त्ती करना चाहिए। इसके कारण बच्चोंको शुरूसे यह खयाल रह सकेगा कि उन्हें आगे चलकर कौन-सा धन्धा करना है। धन्धेके शिक्षणके साथ उन्हें अन्य शिक्षण भी मिलना चाहिए। इसी प्रकार यदि मध्यम वर्गकी कन्याशालाएँ भी, उस वर्गकी ८० या ९० फ़ी-सदी लड़कियोंको जैसा जीवन बिताना पड़ता है, उसका खयाल रखकर शिक्षणके प्रत्येक विषयका विचार करें और उसके लिए उपयोगी होनेवाली व्यावहारिक शिक्षाका प्रबन्ध करें, तो उनपर ग़ैर-ज़िम्मेदारीकी यह तोहमत नहीं रहेगी।

इस दृष्टिसे हम यह कह सकते हैं कि ८०-९० फ़ी-सदी लड़कियाँ बड़ी होकर विवाह करेंगी, बाल-बच्चोंवाली बनेंगी और रसोई बनाना, कातना, पींजना, सीना, घरका हिसाब रखना, नन्हें बच्चोंको कुछ सिखाना-पढ़ाना और अच्छी आदतें डालना, उनमें सच्चरित्रता और निष्ठाके संस्कार उत्पन्न करना, घरको साफ़-सुथरा, सुव्यवस्थित और सुघड़ रखना, सेवा-सुश्रूषा करना, ज़च्चा बनना आदि काम उन्हें करने ही होंगे। इसके सिवा हम यह भी आशा रखेंगे कि वे कुछ ऐसा समाजोपयोगी काम भी सीखें, जिसे सम्पन्नताकी दशामें वे समाजके लिए मुफ़्त कर सकें अथवा उन्हें मेहनताना देकर समाज जिससे लाभ उठा सके और जो उनके अपने या अपने गृह-स्वामीके धन्धेमें भी उपयोगी हो सके। ऐसे विषयोंमें भाषाका शुद्ध ज्ञान, सुन्दर लिखावट, रोगियोंकी परिचर्या, प्राथमिक और घरेलू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपचार, घरेलू व्यायाम और प्राथमिक शिक्षा आदि आम तौरपर उपयोगी कहे जा सकते हैं। इसके साथ कलाका कुछ ऐसा प्राथमिक ज्ञान, जो ग़रीबोंकी पहुँचका हो और बिना खर्चके परिवारके आनन्दका साधन बन सके तथा भूगोल, इतिहास और विज्ञानका सामान्य ज्ञान, जो दृष्टिकोणको कुछ विशाल बनाने और निरीक्षण-शक्तिको विकसित करनेवाला हो, और बढ़ा दिया जाय।

इसके बाद मेरी रायमें उच्च शिक्षाकी इच्छुक कन्याएँ—जिन्हें डाक्टरी, वकालत, साहित्य, विज्ञान आदि विषयोंमें निष्णात होना हो—यदि लड़कोंके महाविद्यालयोंमें पढ़ें, तो कोई हर्ज नहीं। समाजमें ऐसी शिक्षा पानेवाली स्त्रियाँ इनी-गिनी होंगी, अतएव उनसे समाजको नुक़सान नहीं होगा। लेकिन गतानुगतिकताकी दृष्टिसे अथवा यह सोचकर कि ऐसी शिक्षाका समाजमें अधिक मूल्य और आदर है, लड़कियाँ या उनके अभिभावक उसीका विशेष मोह रखें, तो मैं समझूँगा कि शिक्षा-विषयक उनके विचारोंकी जड़में ही दोष है। देशकी वर्त्तमान पराधीन स्थितिमें राष्ट्रीय या सार्वजनिक संस्थाओंको कुछ इने-गिने लोगोंके काम आनेवाली संस्थाएँ स्थापित करनेमें अपनी शक्ति और धनका व्यय करना उचित नहीं।

मेरी अन्तिम शुभकामना यही रहेगी कि स्त्री-जाति अपनी शक्ति और अपने कार्य-क्षेत्रकी दिशाको भलीभाँति समझे, पुरुषका और उसके काम-धन्धोंका अनुकरण करनेका आदर्श अपने सामने न रखे। अपनेको पुरुषकी दबैल न समझे। झूठे तरीक़ोंसे पुरुषको रिझानेकी कोशिश न करे। उसका सतत प्रयत्न स्त्री-पुरुष दोनोंसे बने हुए इस संसारको अधिकाधिक पारस्परिक सामंजस्य-युक्त बनानेका ही रहे।

अनु०—श्री काशिनाथ त्रिवेदी

बदला

स्व० इक़बाल वर्मा 'सेहर'

ठाकुर समरसिंह उन बिगड़े रईसोंमें थे, जिनको अपनी ज़ायदादकी अपेक्षा अपनी ज़ातपर अधिक अभिमान था। उनके पिताने तो पुरखोंसे अच्छा इलाक़ा पाया था; मगर उनके मरते-मरते अनेक व्यसनोंने यह दशा कर दी थी कि उस बड़े इलाक़ेके बचे-खुचे कुछ गाँव ही बाक़ी रह गए थे, सो भी ऋणके भारसे दबे हुए।

इस प्रकार समरसिंहको तक़ेंमें गाँव तो थोड़े ही मिले; पर तलब-तक़ाज़ेवालोंकी तादाद इतनी भारी थी कि जिसने उनके सन्तोषको सन्तापमें बदल दिया। किन्तु वह जल्द घबरा जानेवाले मनुष्य न थे। उन्होंने सब कामोंको बड़ी होशियारीसे सँभाला और प्रबन्धमें ऐसी निपुणता दिखाई कि धीरे-धीरे ऋणोंके चुकता हो जानेपर इतनी ज़मींदारी बच गई, जिससे न केवल उनकी जीविकाके साधन सुदृढ़ तथा सुरक्षित हो गए, बल्कि कुछ पास-पल्ले भी पड़ चला। आमदनी बढ़ानेकी चिन्ता हुई, तो कुछ लेन-देनका काम भी शुरू हुआ। जिस तरह वह पैसा पैदा करनेमें स्वयं अपने ऊपर सख़्ती करते थे, उसी तरह वह दूसरोंसे वसूल करनेमें भी रू-रियायत न करते थे।

२४ मार्च, १९२७ का सवेरा था। ठाकुर साहब अपने बाहरी कमरेके आगेवाले बरामदेमें बिछे हुए तख़्तपर एक मसनदके सहारे बैठे माला जप रहे। जिस फुर्तीसे उनकी अंगुलियाँ काम कर रही थीं, उसी फुर्तीके साथ उनकी इधर-उधर दौड़ती हुई निगाहें यह बता रही थीं कि उनके मनका मेल अंगुलियोंके साथ तनिक भी न था—वह मेल, जो रुपया-पैसा गिनते समय तो अवश्य ही हो जाया करता था!

इतनेमें घरका दरवाज़ा खुला और एक नवयुवक कहीं जानेको तैयार-सा दिखता हुआ ठाकुरके सामने आकर खड़ा हुआ। ठाकुरने पूछा—'क्यों बेटा, इतनी जल्दी कहाँके लिए तैयार हो गए?'

नवयुवक—'वहीं, कानपुर जा रहा हूँ।'

'अभी कल ही तो आए हो, क्या दो दिन भी न रहोगे?'

'आपके बुलानेपर आना पड़ा। काम हो गया, तो यहाँ अब अधिक रहना व्यर्थ ही होगा। वहाँ भी तो ले-देकर एक अकेली औरत है और फिर दुकानका भी हर्ज होगा।'

'अब तो वहाँ तुम्हारा कारबार भी ठीक चलने लगा है। कुछ अधिक सहायताकी आवश्यकता तो नहीं है?'

'आपके आशीर्वादसे सब ठीक है। आर्थिक सहायताकी तो ज़रूरत नहीं; पर यदि आप बुद्धूसिंहको मेरे पास रहनेके लिए भेज देते, तो अच्छा होता। उसके होते मुझे कहीं बाहर जाने-आनेका बड़ा सुभीता हो जाता।'

'तुम एक बार और भी कह चुके हो और मुझे खुद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़याल है। मैं किसी ठीक आदमीकी खोजमें हूँ और आशा है कि बद्धूसिंहको जल्द ही तुम्हारे पास भेज सकूँगा।'

'तो अब आज्ञा है?'

'तुमने मुन्ने मियाँवाली नालिशके काग़ज़ात तो अपने पास रख लिए हैं न? जाते ही किसी वकीलसे सलाह लेना। नालिश-बिना रुपया मिलनेकी उम्मीद नहीं।'

'ज़रूरी काग़ज़ात तो मैं लिए ही जा रहा हूँ; पर मुन्ने भी आपके यहाँ अर्से तक नौकर रह चुका है, और शायद अब बीमारीसे लाचार है। फिर उसके पास रुपया ही कहाँ है, जो आप वसूल कर लेंगे? मुफ़्तकी बदनामी ही है।'

'अभी तुम इन बातोंको नहीं समझते। नालिशसे नादिहन्दोंपर धाक तो जम जायगी। रही वसूलीकी बात, सो मुन्नेका लड़का नन्हें नौकर है। यह भी न सही, मुन्नेके पास घर तो है, उसीसे मैं अपनी तसल्ली कर लूँगा।'

अमरसिंह अपने पिताके स्वभावसे ख़ूब वाक़िफ़ था। उसने और कुछ कहना-सुनना उचित न समझ तनिक बेदीलीसे पिताके पैर छुए और अपनी राह ली।

थोड़ी देर ठहरकर ठाकुर साहबने बुद्धूसिंहको बुलाकर हुक्म दिया—'आज १० बजे तक मुन्ने मियाँके पास फिर जाओ और उसे अपने साथ ही लाकर यहाँ हाज़िर करो। ज़रा उससे दो-दो बातें तो कर लूँ।'

बुद्धूसिंह—'पर उसने तो मुझसे आप ही आज सरकारके पास आनेका वादा किया था।'

'फिर क्या हुआ, तुम चले तो जाना। क़र्ज़ लेनेवालेको वादेका ख़याल बहुत कम रहता है।'

'बहुत अच्छा, सरकार! (मालिकका रुख देखकर) पर बिना नालिशके रुपया वसूल न होगा।'

'सो तो मैं जानता हूँ और प्रबन्ध भी कर रहा हूँ; पर एक अन्तिम चेतावनी तो दे दूँ।'

- २ -

ठाकुर साहब दोपहरके बाद ही खाने-पीनेसे निवृत्त हो अपने उसी तख़्तपर बैठे हुक्का पी रहे थे कि बुद्धूसिंह मीर मुन्नेको अपने साथ लिए हुए आ पहुँचा। मुन्नेने ठाकुरको सलाम करते हुए कहा—'मैं तो आज खुद ही आ रहा था, सरकारने नाहक़ आदमी भेजनेकी तकलीफ़ की। कहिए, क्या हुक्म है?'

ठाकुरने सलामका जवाब देते हुए कहा—हुक्म क्या, मैं आज आख़िरी बार तुमसे पूछना चाहता हूँ कि तुमने मेरे रुपएकी अदायगीका क्या बन्दोबस्त किया?'

'सरकार, अभी तो कुछ नहीं हो सका। मैं तो बेकार भी हूँ और बीमार भी। इसी बीमारीसे तो यहाँकी नौकरी छूट गई, नहीं तो उसीमें से कुछ भरता जाता।'

'यह बीमारी या नौकरीकी कुछ बात नहीं। मैंने तुमको एकमुश्त रक़म दी है और उसे सूद-समेत एकमुश्त ही लेना चाहता हूँ। डेढ़-दो सौकी रक़म कौन ऐसी बड़ी रक़म है, जो तुम चाहते तो अब तक न दे पाते? आख़िर तुम्हारा लड़का भी तो तीन सालसे कमा रहा है।'

'उस कमाईमें क्या रखा है? कानपुरमें यों ही २०-२५ रुपए महीनेमें क्या होता है। फिर कुछ बच भी सका, तो वह मेरी दवा-दारूमें उठा। मैं तो बहुत चाहता हूँ कि सरकारका रुपया दे दूँ; पर मजबूरी है।'

'मीर मुन्ने, तुमको मालूम है कि मैंने कैसे आड़े वक़्तमें तुम्हारी मदद की। अगर १००) की रिश्वतका सुभीता न होता, तो तुम्हारे लड़केको मिलमें कभी जगह मिलती?'

'ठाकुर साहब, मुझे सब याद है और सदा याद रहेगा। नन्हेंकी रोज़ी आपकी बदौलत लगी। मैंने भी बरसों तक आपका नमक खाया...'

'तो उसीका यह बदला है कि मेरे रुपए मारे जा रहे हैं?'

'नहीं सरकार, ऐसा कभी न होगा। मीर मुन्नेके पास दौलत नहीं; पर ईमान ज़रूर है। वह अब ग़रीबीके कारण रज़ील भले ही समझा जाय; पर उसका लगाव भी एक बड़े पुराने और शरीफ़ घरानेसे है। आपका क़र्ज़ अदा होगा और भर-पाई अदा होगा; पर अभी बड़ी लाचारी है।'

'यह मैं जानता हूँ कि तुम भले आदमी हो और खरे आदमी भी। यह न जानता, तो सिर्फ़ तुम्हारी नौकरीके ख़यालसे उतना रुपया न दे देता। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हें इस समय कुछ लाचारी ज़रूर है; पर मुझे अफ़सोस है कि अब मैं और ठहर नहीं सकता।'

'तो फिर सरकारकी जैसी मर्ज़ी।'

'मैं तुम्हें १५ दिनकी मुहलत और देता हूँ।'

× × ×

न अमरसिंहकी सई-सिफ़ारिशसे कुछ काम चला, न मीर मुन्नेकी खुशामद-बरामदसे। समरसिंहने अपनी महाजनी खासियतको बड़ी बेमुरव्वतीके साथ प्रकट करते हुए १५ दिन बीत जानेपर नोटिस दे दी और फिर नालिश भी दायर हो गई। तारीखपर मीर मुन्नेने अदालतमें हाज़िर होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाजनके दावेको मान लिया। नतीजा यह हुआ कि इक़वाली डिगरी हो गई। डिगरीके इजरामें मुन्नेका मकान क़ुर्क़ हुआ और आखिर नीलाम होनेपर उसे महाजनने खुद ही खरीद लिया। महाजनके इस बर्तावसे मुन्ने मियाँके दिलको जो सख्त सदमा पहुँचा, उसकी हद न थी। उन्होंने उसी समय कहा—'ठाकुर साहब, अगर आपको मेरा घर लेकर मुझे बेघर-बारका कर देना ही मंजूर था, तो आपके कहनेपर मैं यों ही घर खाली कर देता। आपने नालिश करके नाहक़ कष्ट उठाया।'

ठाकुरने बात टालते हुए कहा—'मीर मुन्ने, तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि मैंने इस टूटे-फूटे मकानपर ही अपनी डिगरीकी पूरी रक़म निछावर कर दी। इस मकानकी मालियत ही क्या हो सकती है?'

'ठाकुर साहब, मेरी निगाहोंमें इस मकानकी बहुत बड़ी मालियत है। यह मेरे पुरखोंका बहुत पुराना मकान है। यह दूसरी बात है कि अब मेरा वह ज़माना नहीं रहा और मेरी हालत बिगड़नेके साथ ही मकानकी हालत भी बिगड़ती गई।'

'तो अब इत्मीनान रखो, मैं इसे दुरुस्त करा दूँगा।'

'अब मुझे इससे क्या?'

- ३ -

मार्च १९३१ का दिन है। कानपुरमें भीषण हिन्दू-मुस्लिम-दंगेको शुरू हुए आज तीसरा दिन है। हिन्दू-मुसलमान मज़हबके नामपर एक दूसरेको अपमानितकर, लूटकर, मार-पीटकर, जलाकर और एक-दूसरेके पवित्र स्थानोंको नष्ट-भ्रष्टकर ईश्वर या खुदाकी पृथकताको बड़ी बेदर्दीसे प्रमाणित करनेका व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। शहर तबाह हो रहा है। गली-कूचे सुनसान हैं। सड़कोंपर कहीं कोई कटा-फटा बक्स पड़ा है, तो कहीं कुछ और सामान। कहीं कोई लाश पड़ी है, तो कहीं लहूसे लत-पत कपड़े फैल रहे हैं। धुएँके उठते हुए बादल दिखाई देते हैं और आग बुझानेवाले दमकलकी घण्टियोंकी घनघनाहट तो लगातार ही सुनाई पड़ती है। रात-भर 'अल्लाह अकबर' और 'बजरंगबलीकी जय'के नारों और बीच-बीचमें कुछ न समझने पड़नेवाली चीख-पुकारकी आवाज़ोंसे ऐसा भीषण और भयानक कोलाहल होता है कि कुछ भी सुना नहीं जाता। कुत्ते भूँक-भूँककर उसे और भी भयानक तथा प्रचण्ड बना देते हैं।

शाम हो रही है। नगरके एक बड़े मकानकी बग़लकी कोठरीमें बुद्धूसिंह और नन्हें मियाँ बैठे बातें कर रहे हैं। नन्हेंने कहा—'आज दोपहरमें तो ठाकुर अमरसिंहने बड़ी वीरता दिखाई और ठाकुर, तुमने भी उनकी अच्छी मदद की, नहीं तो और किसीकी ताक़त न थी कि १०-१५ मुसलमानोंको सिर्फ़ लाठियोंके बल इस तरह खदेड़ देता और घरको लूटे जानेसे बचा लेता।'

बुद्धू—'हमारे ठाकुर साहब लाठी चलाना खूब जानते हैं। रहा मैं, सो मुझे भी कुछ महारत ज़रूर है। मेरा खयाल है कि उस मार-पीटमें कुछ मुसलमान काफ़ी ज़खमी हुए हैं।'

'हाँ, दो-तीनको गहरी चोटें आई हैं। पर ठीक ही हुआ। अपनी करनीका फल कोई दूसरा थोड़े ही भोगने आयगा? खुद नुक़सान उठाते हैं, दूसरोंको नुक़सान पहुँचाते हैं और सबसे ज़्यादा बुरी बात यह कि मज़हबको बदनाम करते हैं, मानो मज़हबने ही दुनिया-भरकी बुराइयोंका ठेका ले रखा है।'

'भाई, सच पूछो, तो मज़हब या धर्मका इन बातोंसे कोई सरोकार नहीं। हाँ, उसकी आड़में बदमाशोंको खुल-खेलनेका मौक़ा ज़रूर मिल जाता है। और बदमाशोंका मज़हब ही क्या है? सिर्फ़ बदमाशी, जिसमें हिन्दू-मुसलमानकी भी कोई क़ैद नहीं। अवसर पाकर हिन्दू हिन्दूको भी तंग करता है और मुसलमान मुसलमानको भी। पर हाँ, यह तो बताओ कि तुम्हें दोपहरवाली वारदातका पता कैसे चला? क्या तुम भी कहीं छुके-छिपे उसी गोलमें शामिल थे?'

'तौबा! मैं और ऐसे बदमाशोंके गोलमें! जान-बूझकर कैसी बातें करते हो? रही पता लगनेकी बात, सो भाई, सिर्फ़ यह समझ लो कि मैं भी मुसलमान हूँ और कुछ मेल-जोल भी रखता हूँ। इत्तिफ़ाकसे मुझे सिर्फ़ इतना ही नहीं, बल्कि और कुछ भी मालूम हो गया है, इसीलिए मैंने तुमसे इस समय मिलना बहुत ज़रूरी खयाल किया।'

'सो क्या?'

'सुनो, क्या तुम समझते हो कि मुसलमान एक बार हार खाकर और ज़खमी होकर चुपचाप बैठ रहेंगे और बदला लेनेकी कोशिश न करेंगे?'

'नहीं तो।'

'तो फिर तुमने बचावकी कौन-सी तदबीर सोची है?'

'इसी चिन्तामें घरसे बाहर आया था कि तुमसे भेंट हो गई।'

'यह तो अच्छा ही हुआ कि इस तरह आसानीसे भेंट हो गई। आज ही रातमें मुसलमानोंका एक बड़ा हमला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण-ट्यूनीसियाका एक सैनिक यातायात-मार्ग, जिसपर से फ्रांसीसी टैंक और घुड़सवार गुज़र रहे हैं।

ट्यूनीसिया नगरमें लोकतान्त्रिक विधानकी माँगके लिए निकाले गए एक जुलूसका दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

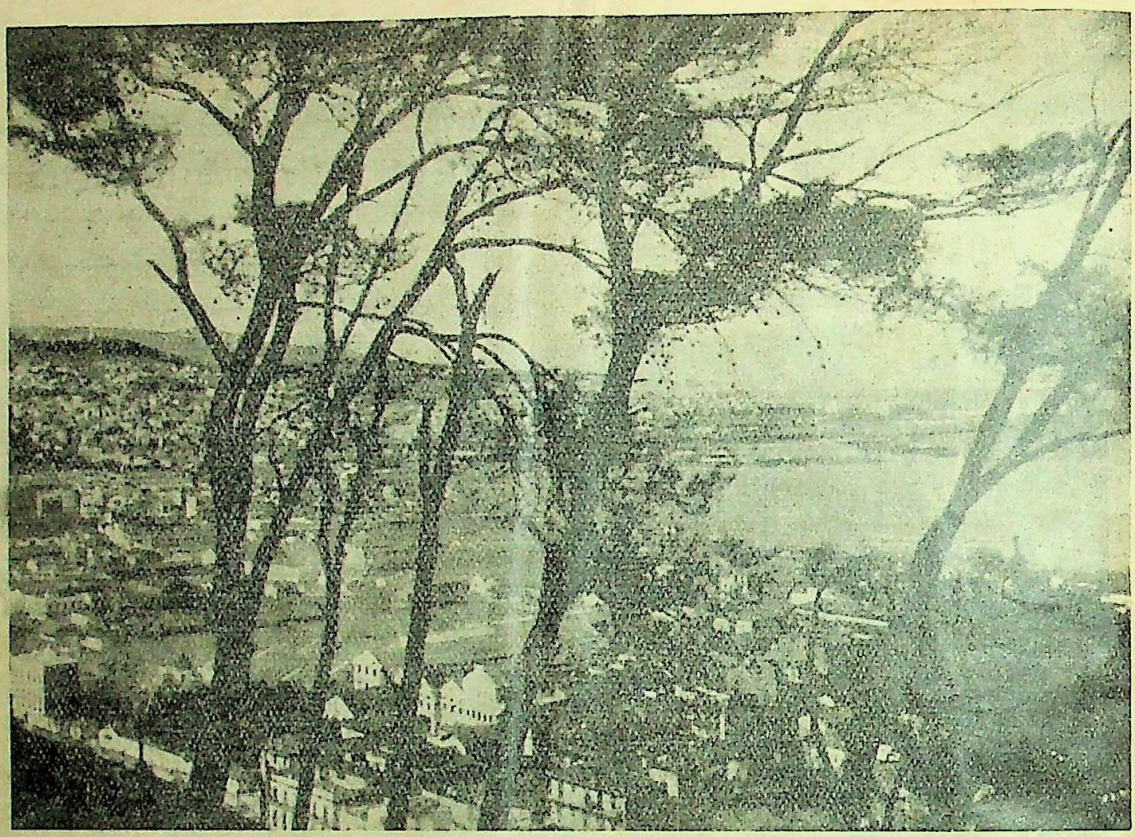

एलजियर्स बन्दरगाह (फ्रांसीसी मोरक्को) का एक दृश्य।

सेनेगाल बन्दरगाहके डाक-यार्ड, जहाँ जहाज़ माल लादते-उतारते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर होगा, जिसकी तैयारी हो रही है, और तब जान-माल, इज्ज़त-आबरूका बचना मुश्किल हो जायगा। मुझे मालूम है कि यह हमला १० बजेके पहले न होगा। अब न कहीं बाहर भाग जानेका मौक़ा है और न कहींसे किसी मददकी ही उम्मीद हो सकती है।'

'तो फिर क्या किया जाय? कुछ तो करना ही होगा।'

'हाँ, और इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अगर तुम्हें एतबार हो, तो तुम सब लोग जल्द ही मेरे यहाँ आ जाओ। मेरा घर तुम्हें मालूम ही है। थोड़ा फ़ासिला है और रास्ता भी अभी साफ़ है। अपने घरके गलीवाले दूसरे दरवाज़ेसे चुपचाप निकलकर आसानीसे पहुँच जाओगे।'

'मुझे तो लोगोंपर पूरा विश्वास है; पर जब ठाकुर और ठकुरानी भी राज़ी हों, तब तो। फिर पिछली और हालकी बातोंको देखते हुए उनका राज़ी होना कठिन ही है।'

'तो उनसे यह कहनेकी क्या ज़रूरत है कि तुम मेरे यहाँ जा रहे हो। किसी मित्रके घर जानेकी बात कह देना काफ़ी होगा। ठाकुरको तुमपर पूरा एतबार है और तुम्हें मुझपर। बस, यही काफ़ी है।'

'और जो कहीं हिन्दुओंने तुम्हारे घरपर हमला कर दिया या मुसलमानोंको तुमपर शक हो गया, तो?'

'पहले तो उस मुहल्लेमें हिन्दुओंका खटका ही नहीं; फिर वैसा हुआ भी, तो तुम सब तो बच ही जाओगे और शायद तुम्हारी बदौलत मेरी भी खैरियत रहे। रही मुसलमानोंकी बात, सो उसका कोई अन्देशा नहीं। पहले हमपर आँच आयगी, तब तुम लोगोंपर।'

'अच्छा, कोशिश करूँगा।'

'कोशिश नहीं, इस काममें बहुत जल्दी करना, नहीं तो खुदा-न-खास्ता कोई वैसी बात हो गई, तो मुझे बड़ा रंज होगा कि तुमने आखिर मेरा एतबार न किया। और मेरे बूढ़े वालिदके दिलपर तो न जाने क्या बीते; क्योंकि वह कहते थे कि अगर ऐसे वक्त मालिकका नमक न चुका पाया, तो कहीं मुँह दिखानेके क़ाबिल भी न रह जाऊँगा।'

- ४ -

२६ मार्चका दिन था और शामका समय। ठाकुर समरसिंह अपने बरामदेवाले तख्तपर उदास-से बैठे किसी गहरी चिन्तामें मग्न हैं। कानपुरके हिन्दू-मुस्लिम-दंगेकी खबर उन्हें मिल गई है; पर उनके पुत्र और पुत्र-वधूकी कोई खबर अभी तक नहीं मिली, जिससे उनके दिलमें बड़ी बेचैनी पैदा हो रही है। इतने ही में उनके पड़ोसी मुं० सेवाराम आते दीख पड़े। मुंशीजीने ठाकुरके पास आकर कहा—'कहिए ठाकुर साहब, किस लिए इतनी जल्दीमें याद फ़र्माया है? सब कुशल तो है?'

ठाकुर—'भाई, कुशलकी क्या पूछते हो? मैं यों तो कुशलसे ही हूँ; पर लड़के और बहूके लिए बड़ी चिन्ता हो गई है।'

'हाँ, सुना है कि कानपुरमें बड़े ज़ोरोंका हिन्दू-मुस्लिम-दंगा हो रहा है। तो अमरसिंहने कोई पत्र भी नहीं भेजा?'

'अजी, पत्र-वत्र कौन लिखे? वह आप न-जाने कैसी हैरानीमें पड़ा होगा। फिर इस समय शहरमें डाककी भी तो गड़बड़ी है। न किसी पत्रके आनेका इत्मीनान है और न पहुँचनेका।'

'तो फिर क्या किया जाय?'

'इसीलिए तो मैंने आपको बुलाया है कि कोई सलाह ठीक की जाय। आप जानते हैं, मैं सदा सलाह-मशविरेका काम आपसे ही लिया करता हूँ और आप सदा अपनी रायसे मेरी मदद भी करते हैं।'

'क्या बताऊँ, इस समय तो मेरी अक्ल ही कुछ काम नहीं देती? इन रोज़-रोज़के हिन्दू-मुस्लिम-दंगोंने तो लोगोंका शहरमें रहना और किसी तरह मर-खपकर कुछ पैसे कमाते हुए अपना पेट पालना भी दूभर कर दिया है।'

'खैर, यह सब तो है ही; पर यह बताइए कि अब किया क्या जाय?'

'चिट्ठी-पत्री भेजना तो बिल्कुल बेकार है और खुद जाना खतरेसे खाली नहीं। फिर किसी तरह गए भी, तो कौन ठीक है कि अमरसिंह घरपर मिल ही जायँ या उनका कुछ पता ही चल सके?'

'पर यहाँ बैठे भी तो नहीं रहा जाता।'

'अच्छा, तो ईश्वरका नाम लेकर कल चले ही जाइए, और न हो, तो पहले सीधे कोतवाली जाकर अपने गाँवके रहनेवाले सिपाहीसे मिलिए। मुमकिन है कि उसकी मददसे कुछ काम हो जाय।'

'यही तो मैं भी सोच रहा था। अच्छा, उस सिपाहीका नाम क्या है?'

'असली नाम तो मुझे भी मालूम नहीं; पर यों तो लोग उसे मम्मन कहते हैं।'

'तो क्या आप भी मेरे साथ चल सकेंगे?'

'भाई, यहाँ तो सब हाल सुनकर ही रूह फ़ना होती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर जाकर देखना तो दूरकी बात है। हाँ, यह हो सकता है कि कानपुर स्टेशन तक आपके साथ चला चलूँ और स्टेशन पर ही आपके शहरसे लौट आने तक रुका रहूँ।'

ठाकुरने व्यंग्यसे कहा—'और जो मैं ही न लौट पाया?'

मुंशीने कुछ घबराकर कहा—'ईश्वर न करे, नहीं तो फिर मेरे लिए कहीं भी गुंजाइश न रह जायगी। न डरकी वजहसे शहर जा सकूँगा और न फ़ायलीके मारे घर लौट सकूँगा।'

'अच्छा, आपमें इतनी हिम्मत नहीं, तो न चलिए। मैं ऐसे मामलेमें किसीको मजबूर न करूँगा।'

× × ×

२७ मार्च, १९३१ को दोपहरके बाद ठाकुर समरसिंह कानपुर पहुँचे। कोतवालीके पास पहुँचकर उन्होंने सिपाहीकी खोज शुरू की। संयोगवश वह आप ही आता दिखाई दिया। उसने दूरसे ही ठाकुरको पहचानकर सलाम किया। ठाकुरने कहा—'भाई, तुम खूब मिले। तुम्हींको खोज रहा था। जानते ही हो, अमरसिंह अपनी पत्नी-सहित अर्सेसे यहीं रहते हैं। उनका कुछ हाल नहीं मिला। दंगेकी खबरसे दिलको बड़ी घबराहट हुई और यह सोचकर यहाँ आया हूँ कि शायद तुम्हारी मददसे उन लोगोंकी कुछ खोज-खबर हो सके।'

'आपने नाहक तकलीफ़ की। मुझे खुद उनका खयाल था। दो-तीन दिन तो मुझे दम मारनेकी मुहलत नहीं मिली; मगर आज सबेरे ही मैं उस तरफ़ गया था। घर सूना और लुटा-जला मिला; पर वहाँ किसी मार-काट या खून-खराबेका कोई निशान नहीं मिलता। इधर-उधर पूछा भी; पर कुछ पता न चला। सोचा, एक बार फिर कोशिश करूँगा और जैसा कुछ हो, आपको लिख दूँगा। यह भी खयाल हुआ कि शायद मौक़ेसे सब अपने घर चले गए हों; पर अब आपके आनेसे यह खयाल ग़लत निकला। अच्छा, सुबह होते ही फिर पता लगाऊँगा।'

दूसरे दिन ९ बजते-बजते सिपाहीने लौटकर ठाकुरको अपने असफल होनेकी सूचना दी और कहा—'आप यक़ीन जानिए कि मैं अपनी ताक़त-भर कोई बात उठा न रखूँगा। इस वक्त शहरमें बहुत-कुछ अमन है; पर अभी गड़बड़ी बिलकुल दूर नहीं हुई। सब काम बेठीक-ठिकाने हो रहे हैं। सब लोग इधर-उधर हैं, इसलिए पूछ-ताछ भी नहीं हो सकती। घबरानेसे कोई फ़ायदा नहीं। सब्रसे काम लीजिए और मुझे भी अपने दुःख-दर्दमें पूरा शरीक समझिए।'

'अच्छा, तो अब मैं वापस जा रहा हूँ। शायद वे लोग अब तक घर भी पहुँच गए हों।'

'खुदा करे, ऐसा ही हो।'

- ५ -

ठाकुर समरसिंहको कानपुरसे लौटे आज चौथा दिन है। पर अभी तक न तो मम्मनका कोई पत्र मिला है और न लड़के और बहूकी कोई खबर ही मिली है। उधर घरमें ठकुरानी साहबाने पाँच दिनोंसे बेखाए-पिए रहकर और रो-धोकर एक आफ़त खड़ी कर दी है। इससे ठाकुर साहबकी परेशानी बढ़ती जाती है। बेचारे गहरे सोचमें बैठे हैं। उनके मनमें तरह-तरहके विचार उठ रहे हैं, मम्मनने पत्र क्यों नहीं दिया? वह पत्र अवश्य देगा, उसपर मेरा पूरा विश्वास है। वे अभी यह सब सोच ही रहे थे कि डाकघरसे लौटे हुए आदमीने एक लिफ़ाफ़ा लाकर उनके हाथमें रख दिया। वह मम्मनका पत्र था। उसमें लिखा था—'खत लिखते हुए मुझे खुशी होती है कि अमरसिंह, उनकी बीबी और बुद्धूसिंह मीर मुन्ने और उनके लड़केकी बदौलत यहाँपर आई हुई बलासे बाल-बाल बच गए हैं और खत पहुँचते-पहुँचते वे लोग खुद आपकी खिदमतमें हाजिर होंगे।'

पत्र पढ़ते ही ठाकुरकी आँखोंसे हर्ष और विषादके आँसू छलक पड़े। हर्ष पुत्रके कुशल-समाचारसे और विषाद अपने और मुन्नेके पारस्परिक बर्ताव और तज्जनित पश्चात्तापसे। वह तुरत भीतर गए और ठकुरानीको पत्र दिया। पत्र पढ़ते-पढ़ते वह रो पड़ीं और बोलीं—'भगवानने बड़ी दया की, जो हमारी सुन ली। नहीं तो जैसे हमने अपने पुराने और ईमानदार नौकर मुन्नेको बेघर-बारका कर दिया था, वैसे ही उस अपराधके बदलेमें अगर आज हमारा घर ही उजड़ जाता, तो इसमें दोष किसका था? देखो, उस समय तुमने लड़केका भी कहना न माना और रुपएके लिए ऐसी बेदर्दी और बेमुरव्वती बरती, जैसी मनुष्यको अपने किसी शत्रुसे भी न बरतनी चाहिए। अब तनिक अपने उस सलूकको देखो और साथ ही मीर मुन्नेके इस सलूकको भी, और तब कहो कि कौन अधिक आदरणीय है।'

ठाकुर पछताते और लजाते हुए-से बोले—'खैर, जो होना था, सो तो हो ही चुका। अब मैं मुन्नेको उसका मकान ज़रूर लौटा दूँगा।'

'बस, इतना ही या और भी कुछ?'

'नहीं, और...'

बुद्धूसिंहने आवाज़ दी और ठाकुर साहब अपनी बात पूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए बिना ही बाहर आ गए। वहाँ बुद्धूसिंहको अकेला ही देखकर कुछ घबराते हुए बोले—'और सब कहाँ हैं?'

बुद्धूसिंहने कहा—'सब लोग पीछे आ रहे हैं। मैं सरकारको खबर देनेके लिए आगे चला आया। और मुन्ने मियाँ...अरे, वह कहाँ रह गए? अभी तो मेरे साथ थे। कानपुरसे तो किसी तरह साथ हो लिए; पर यहाँ तो स्टेशनसे इधर आते ही न थे। कहते थे कि जाते हुए लाज लग रही है। बड़ी मुश्किलसे यहाँ तक आए थे। उन्हींने तो दंगेके दिनोंमें हम लोगोंको अपने यहाँ छिपाकर हमारी रक्षा की।'

ठाकुरने कहा—'मुझे यह सब मालूम हो चुका है। लाज तो जो-कुछ है, वह मुझे है; उनके लिए लाजकी क्या बात है? देखो तो, किधर गए? अच्छा, मैं भी चलता हूँ।'

मीर मुन्ने लम्बे डग बढ़ाए लौटे जा रहे थे। बुद्धूसिंहने पुकारा—'अरे ओ मुन्ने मियाँ, कहाँ चले? ठाकुर साहब बुला रहे हैं।'

मुन्नेने जैसे सुनी अनसुनी कर दी। ठाकुरने आगे बढ़ते हुए खुद आवाज़ दी—'ओ मीर मुन्ने, क्या मेरे बुलानेपर भी न लौटोगे? देखो तो, तुम्हारे मिलनेको मैं दौड़ा आ रहा हूँ।'

मुन्नेने पलटकर देखा और रुक गए। झुककर सलाम किया। ठाकुर साहब सलामका जवाब देते हुए उन्हें अपने घर वापस लाए। एकदम उनका जी भर आया। वह रो पड़े और मुन्नेको सहसा गलेसे लगाते हुए बोले—'भाई, मुझसे इतनी नाराज़गी कि यहाँ तक आकर भी अब मेरा मुँह नहीं देखना चाहते!'

मुन्ने—'अरे सरकार, यह आप कैसी बातें करते हैं? मैं अपनेको आपका वही पुराना वफ़ादार नौकर समझता हूँ।'

'इसका सबूत तो अभी मिल ही चुका है, और सच पूछो, तो अब मेरा सिर तुम्हारे इस नए एहसानके बोझसे कभी हल्का हो नहीं सकता। मुझे बहुत रंज है कि मैं इसके पहले तुम्हें पूरे तौरपर न पहचान सका।'

'मैं यह सुननेको बिलकुल तैयार नहीं, इसीलिए मुझे यहाँ आनेमें हिचक होती थी। मैंने तो कुछ भी नहीं किया, सिर्फ़ थोड़ा-बहुत आपके नमकका हक़ अदा कर दिया! और फिर जो-कुछ हुआ, वैसा होना तो यों भी एक खास इन्सानी फ़र्ज़ था।'

'सच कहते हो, मीर साहब! पर उसी इन्सानी फ़र्ज़का कुछ लगाव मेरे साथ भी तो है। सुनो, मेरी इच्छा है कि अब तुम अपने पुराने मकानमें ही रहो और अबसे तुम सबकी गुज़र-बसरका भार मेरे ज़िम्मे होगा। मैंने उस मकानको भी नया करा दिया है। उसीमें मेरा देहाती चौरा है।'

'तो अब वह मकान सरकार ही के रहने क़ाबिल है। हम ग़रीबोंके लिए तो पुराना टूटा-फूटा और गिरा-पड़ा घर ही मौजूँ था।'

'कुछ तो तुम्हें लेना ही होगा।'

'आप देना मंजूर करेंगे?'

'अपनी शक्ति-भर ज़रूर दूँगा।'

'वादा करते हैं?'

'हाँ?'

'तो मैं यही चाहता हूँ कि आप आज तककी सारी पिछली बातोंको भूल जायँ और मुझ ग़रीबको मेरे हालपर छोड़ दें।'

ठाकुर साहब यह सुनकर सन्न रह गए!

क्रान्तिकी दिशा

लियों त्रात्स्की

सामाजिक निर्माणकी किसी बनी योजनाके बिना ही जनता क्रान्ति कर बैठती है; पर उसमें यह भावना तीव्र होती है कि वह पुरानी शासन-प्रणालीको बरदाश्त नहीं कर सकती। राजनीतिक प्रोग्राम तो वर्गकी पथ-प्रदर्शन करनेवाली तहोंमें ही होता है और उसको भी घटनाओंकी कसौटी तथा जनताकी स्वीकृतिकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार क्रान्तिका बुनियादी राजनीतिक ढंग इस बातमें होता है कि एक वर्ग सामाजिक संक्रामक स्थितिसे उत्पन्न हुई समस्याओंको समझे और जनता द्वारा लगातार स्थितिको व्यवहृत करके उसे सक्रिय रूप दे। क्रान्तिकारी कालकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ—जिनका प्रकटीकरण दलोंके परिवर्त्तनसे होता है, जिसमें उग्रतम दल उग्र-दलका स्थान लेता है—जनताके बढ़ते हुए वामपक्षीय दबावको प्रकट करती हैं। यह तभी तक सम्भव है, जब तक क्रान्तिकी गति बाह्य अड़ंगोंमें नहीं फँस जाती। और जब ऐसा होता है—अर्थात् जब क्रान्ति अपने मूल मार्गको छोड़ देती है, तो प्रतिक्रिया आरम्भ होती है और क्रान्तिकारी-वर्गकी विभिन्न तहोंकी असन्तोष और तटस्थताकी भावना बढ़ने लगती है, जिससे क्रान्तिकारी-विरोधी शक्तियोंकी अवस्था मज़बूत होने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखिनी सीता

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना, एम० ए०

विश्वके इतिहासमें महारानी सीतासे अधिक दुःखद कहानी शायद ही किसी रानीकी रही हो। सीताके गौरवको अनेक कवियोंने अपनी रचनाओंमें गाया है। तुलसीदासने उसे 'जगदीश माया जानकी' कहा है। कौशल्याने जिसको पलँग-पीठ और हिंडोरेकी गोद नहीं छोड़ने दी और दीपकी बत्ती तक बुझानेको न कहकर 'नयन पुतरि'की भाँति रखा। जिसके सौन्दर्यकी समता सौन्दर्य-सिन्धुसे उत्पन्न लक्ष्मीसे देनेपर भी तुलसीदासको संकोच हुआ। जिसे देखकर केशवको 'रूप ही के रूपक वारि डारिए' की सूझी और आजके वैज्ञानिक युगके कवि श्री मैथिलीशरण गुप्तको भी मूर्तिमान अलक्ष्य ज्योतिकी याद आई। जिसकी घर रह सकनेकी चाह कौशल्या और दशरथने विपत्तिमें अवलम्ब पानेकी आशासे की। परन्तु कठोर भूमिपर कभी पाँव भी न रखनेवाली उस हंसगमनी सीताने अपने जीवनमें कितना सुख पाया?

चक्रवर्ती राजाकी पुत्रवधू, राम-जैसे राजाकी पत्नी और जनक-जैसे अनासक्त योगी राजाकी पुत्री होनेके कारण उसे किस वैभवकी कमी थी? विवाहके पश्चात् ही रिद्धि-सिद्ध-सम्पत्तिकी नदियाँ अयोध्याके वैभव-सागरमें उमड़-उमड़कर आने लगीं। किन्तु विधिके विधानसे कल्पवेलिके समान पली सीताके लिए फूलते-फलते समय ही विधाता वाम हुआ। व्यक्तिगत स्वार्थ ही (चाहे वह कैकेईका हो अथवा दशरथका) घटना-चक्रोंके कारण संसारके लिए वरदान और राम-परिवारके लिए अभिशाप बन गया। राज्याभिषेककी शोभामें प्रतिष्ठित देखनेके स्थानपर रामको उदासी-वेशमें वनकी तैयारी करते देख सीताका रुदन भी स्तब्ध-मौन रह गया था। कौशल्याके सम्मुख नमितमुख सोचमें बैठी हुई सीताकी व्यथाको नखसे धरती कुरेदते समय नूपुरोंके स्वरोंने सोचमें पड़कर इस प्रकार व्यक्त किया था :—

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि वरनी।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं।

कौशल्याके हृदयने सीताकी यह मौन भाषा पहचानी, उसकी संकोच-मुद्रा देखी और उसके नूपुरोंकी मुखर ध्वनि सुनी। गौरवशालिनी माता, सहृदया सास और धर्म-परायणा नारीने रामके सम्मुख सीताके हृदयका प्रस्ताव अपनी सम्मति-सहित रखा।* माताकी रुचिके अनुकूल ही रामने वनकी भयंकरताका चित्र सीताके सम्मुख उपस्थित किया। विनयशीला सीताने सासकी ममता और पतिके मृदु वचनोंको जब अपने कर्त्तव्य-धर्म और प्रेममें बाधक होते देखा, तो समझ लिया कि अब विनय-संकोचके मौनसे काम चलना कठिन है। सास और पति दोनों ही मुझे भीरु-स्वभाव वैभव-प्रिय राजकुमारी ही समझ रहे हैं और शायद इसीलिए मेरे घर रहनेपर ज़ोर दे रहे हैं। सब कुछ कहकर भी सासने निर्णयका भार रामपर ही छोड़ा है और राम स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि 'घर रहो, अपने भीरु-स्वभाव, वैभव-प्रियता और व्यक्तिगत स्वार्थके कारण; किन्तु यदि तुममें शक्ति है, दृढ़ता है, सहनशीलता है, लोक-हितकी भावना है, तो वन जाना आवश्यक है।'[1] सासके वचनों ('चन्दकिरन रस रसिक चकोरी। रवि रुख नयन सकइ किमि जोरी।' तथा 'सुर सर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी।') पर उसने विचार किया और वीप्सासे वचनोंकी सत्यता समझी। रामचन्द्रकी किरणोंके रसकी रसिक चकोरी वैभवके रवि-रुखको किस प्रकार देख सकती थी? रामकी शोभाके सरोवरमें विचरण करनेवाली हंसकुमारीके लिए रामसे हीन सरोवर डाबर ही है। सीताने—जो 'की तनु प्रान कि प्रानहिं प्राना'की बात मन-ही-मन सोच रही थी—निश्चय कर लिया कि वन जाना अपनी आत्म-दृढ़ता, धर्म-परायणता, कर्त्तव्य-बुद्धि, प्रेम-प्रवणता, कष्ट-सहिष्णुता तथा स्वभाव-शक्तिका परिचय दिए बिना हो नहीं सकता। इसलिए वह सास तथा पतिकी धरणाओंको बदलनेका प्रयत्न अपने वचनोंसे करती है। जब रामकी समझमें आ जाता है कि 'हठि राखे नहिं राखिहि प्राना', तो वे प्रसन्नतासे सीताको साथ चलनेकी अनुमति दे देते हैं :—

कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा।
नहिं विषाद कर अवसरु आजू। वेगि करहु बन गवन समाजू।

---

* अच्छा होता, यदि विद्वान लेखक इस कथनके आधारका भी उल्लेख कर देते। कारण, मूल कथामें हमें ऐसी किसी बातका उल्लेख याद नहीं पड़ता। —सं०

१. आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू।
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चन्द्रबदनि दुखु कानन भारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असह्य शोकसे मुक्ति पानेकी चाहसे सीता सारे वैभवोंको त्यागकर रामके साथ वन आई थी ; किन्तु वनमें भी क्या वह सुख पा सकी ? यह ठीक है कि राज्य-भार, समाज और कर्त्तव्यसे दूर राम और सीताके जीवनमें वह सौभाग्यशाली दिन भी आया, जब चित्रकूटकी एकान्त वनस्थलीमें राम फूलों तथा धातुराग द्वारा अपने हाथोंसे सजाई हुई सीताका सौन्दर्य देखनेमें तल्लीन थे[२] और सीता थके रामके शरीरके वारि-विन्दु पोंछनेमें सुख पा रही थी।[३] किन्तु शीघ्र ही वह दिन भी आया, जब शूर्पणखाकी छद्मलीला आरम्भ हुई और रावण रामको विलाप करनेके लिए छोड़ सीताको हर ले गया।

रावणके यहाँ सीताको कौन-सी यातनाएँ नहीं भोगनी पड़ीं ? रावणकी स्वर्णपुरीमें अशोक भी उसके लिए अंगार बरसाता था।[४] चाँदनी रात उसको दिनकी कड़ी धूप जान पड़ती थी। राम-विरहसे उसे जैसे सारा संसार ही जलता दिखाई देता था।[५] उसे जीवनकी आस नहीं रह गई थी।[६] दुःखके अथाह समुद्रमें डूबती सीताका उद्धार करने पोतकी भाँति हनुमान आए। रामका कुशल-सन्देश पाकर उसे सन्तोष हुआ। निर्वासित रामने भी अदम्य उत्साह दिखला वनवासी कपि-भालुओंकी सहायतासे लंका जानेकी राह निकाली और समूल रावणके वंशका नाशकर सीताका उद्धार किया। दुःखकी काली घटाओंके बीच सीताकी प्राप्ति एक विराम-स्थलकी भाँति शान्ति देनेवाली थी। कठिन परिश्रमके पश्चात् प्राप्त हुई इस सफलतामें कितनी खुशी होती उस सीताको, जिसने रामके लिए अयोध्याके वैभवोंकी अपेक्षा भयंकर काननकी कठिनाइयोंको सहर्ष अपनाया था और जो अशोक-वाटिकासे अपनी वेदना-भरी उत्कंठाको आशाकी करुण सम्भावनामें व्यक्त करती हुई पूछ रही थी :—

कबहुँ कपि राघव आवहिंगे ?
मेरे नयन-चकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे।
मधुप मराल मोर चातक है लोचन बहुप्रकार धावहिंगे।
अंग-अंग छबि भिन्न-भिन्न सुख निरखि-निरखि तहँ-तहँ छावहिंगे।
विरह-अगिनि जरि हरी लता ज्यों कृपा-दृष्टि-जल पलुहावहिंगे।
—गीतावली

जो सीता रामकी आशासे जी रही थी, उससे इतनी यातनाओं और विषमताओंको झेलनेके पश्चात् आए हुए शुभ दिनपर रामने कहा—'तुम्हारा उद्धार करना मेरा कर्तव्य था, सो मैंने पूरा किया। अब तुम्हारे चरित्रमें सन्देहका अवसर आया है। तुम मुझे ऐसी ही लग रही हो, जैसे आँखोंके रोगीको उजाला। दूसरोंके घरमें रही हुई स्त्रीको अपनाकर मैं अपने उज्ज्वल कुलपर कलंक नहीं लगा सकता। तुम्हारे लिए दसों दिशाएँ पड़ी हैं—लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण आदिमें से जिसे चाहो, वरण कर सकती हो। जहाँ तुम्हें सुख मिले, तुम वहाँ जा सकती हो। मैं तुम्हें कैसे अपना सकता हूँ ?'[७]

सहसा ऐसा वज्रपात होता है उस एकनिष्ठ पतिव्रता नारीपर, जिसके लिए 'एकहि धर्म एक व्रत नेमा, काय-बचन-मन पति-पद-प्रेमा'का सिद्धान्त ब्रह्मवाक्यकी तरह युग-युगसे भारतमें प्रचारित किया जाता रहा है। वह 'एक व्रत नेमा' पति-परायणा इस अपमानको किसी औरसे पाती, तो सम्भवतः उसकी व्यथा इतनी दारुण न हुई होती, जितनी अपने आराध्य पति रामके इन अप्रत्याशित कठोर वचन-बाणोंसे विद्ध होकर हुई। किन्तु फिर भी 'समष्टिके लिए व्यष्टिका बलिदान'के वातावरणमें युग-युगसे पली आती हुई भारतीय नारीका आत्म-सम्मान प्रेमको तिरस्कृतकर विकराल रूप नहीं धारण कर लेता। सीता एक भी अपशब्द रामसे नहीं कहती, वरन् दारुण अपमानके उस कालकूटको शिवकी भाँति पीकर गम्भीर

२. निज कर राजीवनयन पल्लवदल-रचित सयन,
प्यास परसपर पियूष प्रेम - प्रानकी।
सिय अंग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषण-विभाग,
तिलक करनि का कहौं कलानिधानकी॥
माधुरी विलास हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी॥—गीतावली

३. अयि राजहंसि तू तरस तरस क्यों रोती ?
तू शुक्ति वंचिता, कहीं मैथिली होती,
श्यामल तनके श्रमज वारि-विन्दुमय मोती।
निज व्यजन - पक्षसे अँकोर सुध खोती।
जिनपर मानसने निज पद्म-रूप मुँह बाया।
मेरी कुटियामें राज-भवन मनभाया॥—साकेत

४. देखि-देखि कै असोक राजपुत्रिका कह्यौ।
देहि मोहिं आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यौ॥
—रामचन्द्रिका

५. डहकु न, है उजियरिया, निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम॥

६. अब जीवन कइ है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कइ मुँदरी कंगना होइ॥

७. वाल्मीकि रामायण, लंकाकांड।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरोंमें अपने निष्कलंक चरित्रकी साक्षी देते हुए कहती है :—

मनसि बचसि काये जागरे स्वप्न संगे
यदि मम पति भावो राघावात् अन्य पुंषि ।
तह दिह दह ममांगं पावनं पावकेदं
सुकृत दुरित भाजां त्वंहि कर्मेक साक्षी ॥[८]

अग्नि भी सीताको जला नहीं पाई और रामने उसे अपना लिया ; किन्तु रामके हृदयके किसी कोनेमें लोकापवादकी आशंका छिपी सोई ही रही। अग्नि-परीक्षा समुद्र-तटपर हुई है, अयोध्यामें नहीं ; इसलिए अयोध्याके लोगोंको—चाहे ऐसे लोग थोड़े और नगण्य ही क्यों न हों—सन्देह करनेकी गुंजाइश थी। धीरे-धीरे एक दिन इस प्रत्याशित आशंकाकी ध्वनियाँ अयोध्याके वातावरणमें सुनाई देने लगीं। दुर्मुखके द्वारा रामके कानों तक भी बात पहुँच गई। चोट खाए हुए गरम लोहेकी भाँति रामका कोमल हृदय फट गया। सोच-विचारके पश्चात् रामने सीता-परित्याग द्वारा अपनी अपयश-कथाका परिमार्जन करना ही उचित समझा और एकान्तमें आज्ञाकारी लक्ष्मणसे कहा :—

प्रजावती दोहदशंसिनी ते तपोवनेषु स्पृहयालुखे ।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजैनाम् ॥[८]

—'हे सौम्य, परिपक्व-गर्भा तुम्हारी भाभीने तपोवनमें जानेकी इच्छा प्रकट की थी,[९] सो इस बहाने तुम उसे ले जाकर वाल्मीकि-आश्रममें छोड़ आओ।' लक्ष्मणने—जिन्होंने सुना हुआ था कि परशुरामने किन्तु-परन्तु न कर पिताकी आज्ञासे मातापर शत्रुकी तरह प्रहार किया था—बड़े भाईके शासनको अपनी छातीपर पत्थर रखकर स्वीकार किया।[१०]

रथ सज गया। लक्ष्मण सीताको वनमें छोड़नेके लिए जा रहे थे। सीता रुचिर प्रदेशोंसे होकर ले जाई जा रही थी। 'राम मुझे प्रिय लगनेवाली बात करते हैं', इस भावनामें डूबी हुई बेचारी सीताको क्या पता था कि उसके कल्पवृक्ष राम उसके लिए तलवारकी धार हो गए हैं। इसी समय सहसा दाहिने नेत्रने फड़ककर इस अशुभकी (जिसे मार्ग-भर लक्ष्मण छिपाए रहे) सूचना भी दी ; किन्तु पतिप्राणा सीताका ध्यान अपनी ओर न जाकर रामकी ही ओर जाता है, और उस कल्याणीने मन ही मन भाइयों-सहित रामके कुशलकी मनौती मनाई। अन्तर्व्यथाके वेगको थामे, सीताको बहलाते हुए, लक्ष्मण जब गंगाके तीरपर पहुँचे, तो उनकी दृष्टि गंगाकी उठती हुई लहरोंपर पड़ी। उन्हें उस घड़ी ऐसा प्रतीत हुआ, मानो जाह्नवी भी उन्हें ऐसा क्रूर कर्म करनेसे रोक रही है।[११] रथ नदीके तीरपर ही रोक दिया गया। नावसे सीता नदी पार हुई। अब वाल्मीकिका आश्रम निकट आ गया था। लक्ष्मणने भरे गलेसे लता-जैसी सीताको रामके सन्देश-सहित वह कठोर शासन[१२] सुना दिया, जो सीताके लिए औत्पात्तिक मेघ-वृष्टिके समान विनाशकारी सिद्ध हुआ। इस वज्र शासनसे मारी गई सीता मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी। किन्तु पृथ्वीने भी उस दुःखिनीको उस समय स्थान न दिया, मानो उसने भी सीताके चरित्रपर सन्देह किया हो कि इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न सद्वृत्त रामने इसे सहसा क्यों त्याग दिया ?[१३]

सीमा है कोई इस दुःखकी ? प्रजाको सन्देह, पतिको सन्देह, जननी-धरित्री (अथवा चेतनाहीन पृथ्वी) तकको सीताके चरित्रपर सन्देह हो रहा है! उस दुःखिनीके लिए कहीं मुख तक छिपानेके लिए आज स्थान नहीं है। कहीं भी शान्ति नहीं। बेहोशीमें शान्ति होती ; किन्तु लक्ष्मणके प्रयत्नोंने उस भुला देनेवाली मूर्छाको भी अधिक समय तक नहीं रहने दिया।[१४] किन्तु इसमें भी सीताके मुखसे एक भी अपशब्द

८. इन उद्धरणोंके मूल स्रोतका उल्लेख आवश्यक था।—सं०

९. तामंकमारोप्य कृशांगयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम ।
विलज्जमानांरहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम् ॥
सा दृष्टनीवारबलीनि हिंस्रैः संबद्ध वैषानसकन्यकानि ।
इयेष भूय कुशवन्ति गन्तुं भागीरथी तीर तपोवनानि ॥

१०. इस कथनसे लक्ष्मणके वर्णित चरित्रके साथ न्याय नहीं होता। अतः लेखक यदि इसके आधारका भी उल्लेख कर देते, तो पाठकोंको उससे स्थितिको समझनेमें काफ़ी सहायता मिलती।—सं०

११. गुरोर्नियोगाद्वानितां वनान्ते,
साध्वीं सुमित्रातनयो विहास्यन् ।
अवार्यतेवोत्थितवीचिहस्तैः,
जह्नोर्दुहित्रा स्थितया पुरस्तात् ॥

१२. अनुकूल थीं तुम सब तरह कुलके सदृश गुणशालिनी ।
सुख-दुःख सम्पद्-विपद्में सब काल थीं सहवासिनी ॥
यह जानकर भी छोड़ता हूँ लोक - निन्दा - त्राससे ।
प्यारी समझना मत कि तुमको प्रेम - रसके हाससे ॥
—कुन्दमाला

१३. इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां त्यजेदकस्मात् प्रतिरार्य्यवृत्तः ।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ॥

१४. सा लुप्त संज्ञा न विवेद दुःखं प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः ।
तस्या सुमित्रातनयोलब्धौ मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामके लिए नहीं निकलता, वरन् वह अपने दुर्भाग्यकी ही निन्दा करती है। लक्ष्मण सीताको वाल्मीकि ऋषिके आश्रमका मार्ग दिखाकर 'देवि, क्षमा करना, जेठे भाईकी आज्ञासे मुझे क्रूर-कर्मा बनना पड़ा है'[१५] कहते हुए सीताके चरणोंमें फूट पड़े।

दुःखिनी सीता अपने दुःखको भूल गई। वह स्नेहसे लक्ष्मणको उठाती है और प्रिय वचनोंसे उनकी ग्लानि मिटा, आशीष दे, कहती है—'हे वत्स, सब सासोंसे यथाक्रम मेरा प्रणाम कहना और कहना कि मुझमें स्थित अपने पुत्रकी वे सदा हितचिन्तना करती रहें।[१६] महाराजसे कहना कि आपके सम्मुख अपने शुद्ध चरित्रकी परीक्षा में उन अग्नि-सदृश वचनोंसे श्रीहीन न होकर दे चुकी थी, फिर भी लोकापवादके भयसे आपने जो मुझे त्यागा है, क्या यह कार्य आपके प्रख्यात वंशके गौरवके अनुकूल हुआ है? पर मैं यह भी कैसे सोच सकती हूँ कि कल्याण-बुद्धि आपने स्वेच्छासे यह काम किया होगा? यह तो मेरे जन्मान्तरके पापोंका—जिनमें राजतिलकके समय आती हुई लक्ष्मीका अपमान भी एक था—ही फल है, जो मुझे असह्य, वज्रतुल्य दुःखदायी वियोगकी यातना सहनी पड़ रही है। मेरे लिए बेमौतकी मौत तो यह है कि अब मुझे उन तपस्विनियोंकी शरणमें रहना पड़ेगा, जिनके पतियोंका दुःख किसी समय आपने राक्षस मारकर दूर किया था। राजाका एक धर्म वर्णाश्रमकी रक्षा करना भी है। तब धर्मपत्नीकी भाँति न सही, एक तपस्विनीकी भाँति ही सही, मेरी भी सुध ले लिया करें। अपनी असह्य यातनाका अन्त तो मैं प्राण त्यागकर कर देती; पर गर्भ-स्थित आपका तेज ऐसा भी कहाँ करने देता है? दुःख करनेसे कर्त्तव्यमें बाधा आ सकती है, अतः मेरे लिए दुःखी न हों। मैं आपके संग रहे हुए दिनोंकी यादकर आपकी सन्ततिका पोषण करनेके लिए जीवित रहनेका प्रयत्न करूँगी। जब मेरा अन्त समय उपस्थित होगा, उस समय आपके पाद-पद्मोंमें चित्त रख मैं यही विनय करती हुई प्राणोंको तजूँगी कि जन्म-जन्ममें मुझे आप ही पति-रूपमें प्राप्त हों।'[१७]

चिरस्थायी प्रेम, क्षमाशीलता, एकनिष्ठा, संयम और आत्म-त्यागकी सीमा इससे अधिक और क्या हो सकती है? क्षण भरके लिए व्यक्तिवादकी भावनाएँ आती हैं और व्यक्तिगत प्रेमसे उत्पन्न प्रियपर पत्नीकी एकाधिपत्यकी भावना सीताके मनमें उठती है और वह कह देती है :—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा,
वह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम्।
मां लोकवाद श्रवणादहासी,
श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य॥

किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी समझमें आ जाता है कि व्यक्तिसे अधिक समाज, स्वार्थसे अधिक परमार्थ और मोहसे अधिक त्यागका महत्व है। कल्याण-बुद्धि रामने स्वेच्छासे ऐसा नहीं किया होगा, इसलिए उनके कार्योंकी आलोचना करना भी वह पाप समझती है और अपने दुःखका कारण अपने पूर्वपापोंको ही मान, जन्म-जन्मान्तरमें भी रामको ही पति-रूपमें पानेकी कामना करती है।[१८] इसी सीताको—जो कि पतिको अपना बनानेकी अपेक्षा स्वतः पतिकी बन जाती है—देखकर हृदय स्वतः श्रद्धासे नत हो जाता है।

सीतासे आशीष और सन्देश पा आत्म-ग्लानिसे भरे लक्ष्मण[१९] लौट जाते हैं। दृष्टिपथसे लक्ष्मणके ओझल होते ही सीता मुक्तकण्ठसे कुररीकी भाँति रोने लगती है। उसका रुदन लक्ष्मणकी व्यथाको बढ़ा देता है[२०] और वाल्मीकिको उसके निकट खींच लाता है। वाल्मीकि दुःखिनी सीताको आश्वासन दे उससे पूछते हैं :—

थी धर्मसे पाई विजय जिसने समर विकरालमें।
दुख दे तुम्हें इस रामके भी कौन शासन-कालमें?

और यह जानकर कि वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्थाके रक्षक रामने ही उसे त्याग है, उसे अपना रास्ता नापनेके लिए कहते हैं—'यदि त्वं वर्णाश्रमव्यवस्थाभूतेन महाराजेन निर्वासितासि तत् स्वस्ति भवत्यै गच्छाम्यहम।'[२१] किन्तु सीता गर्भ-स्थित रघुवंशकी सन्तान-रक्षाके निमित्त आश्रयकी प्रार्थना करती है। जब वाल्मीकिको ज्ञात होता है कि लोकापवादके कारण ही रामने सीताको त्यागा है, तो उनको रामपर क्रोध आने

१५. 'निह्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्य, देवि क्षमस्वेति वभूव नम्रः।'
१६. इसके आधारका उल्लेख नितान्त आवश्यक था।—सं०
१७. देखिए—'रघुवंश' (कालिदास), 'कुन्दमाला' (दिङ्नाग) और 'कर्त्तव्य' (गेविन्ददास)।
१८. कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानाम् विपाक विस्फूर्जथुरप्रसह्यः।
साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिः उर्द्धं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये,
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः।
१९. गीतावली और कुन्दमाला।
२०. कुन्दमाला।
२१. कुन्दमाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है[२२] और कुलशीलवाली दुःखिनी सीताको वे अपनी अनुकम्पाकी पात्री बना लेते हैं। वे उससे कहते हैं—'बेटी, तपस्वियोंके संसर्गमें शान्त जन्तुओं-युक्त इस वनमें निर्भय होकर रहो। यहीं कष्ट-रहित प्रसवके पश्चात् तुम्हारी सन्तानके विधिवत् संस्कार होंगे। मुनिजनोंकी कुटियोंसे शोभित तमसाके तटोंपर स्नानोपरान्त देवार्चन करनेसे तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी। पूजाके योग्य फल-फूल ये मिठबोली मुनि-कन्याएँ वनोंसे तुम्हें ला-लाकर देंगी और तुम्हारा मन भी इनके साथ बहल जायगा। शक्ति-भर जल ला-लाकर आश्रमके नवीन वृक्षोंको सींचनेसे प्रसवके पूर्व ही पुत्र-स्नेह तुम जानने लगोगी।'[२३]

इस अनुग्रहको हृदयसे स्वीकार करनेवाली सीताको दयार्द्र वाल्मीकि अपने आश्रममें ले गए और उसके रहनेकी उचित व्यवस्था कर दी। तपस्विनियोंकी भाँति सीताके दिन बीतने लगे। दुःखकी गहराईको लव-कुशके जन्मसे वह बहुत-कुछ भूल जाती है। इन्हीं बच्चोंमें वह अपने रामको हँसता-बोलता पा सन्तोष कर लेती थी। किन्तु वे सदैव शिशु ही कैसे रहते? वे अपनी भुवन-मोहिनी सरल कोमलताको पीछे छोड़ यौवनके प्रौढ़ पौरुष-युक्त द्वारोंपर पहुँचने लगे। सीताको अब वह सहारा भी न रहा। वह एक दिन भागीरथीकी गोदमें अपना मुख छिपानेके लिए चल दी; किन्तु भाग्यने उसका उपहास किया। भागीरथीने उसे किसी और ही अधिक दारुण व्यथा सहनेके लिए बचा लिया। राम वाल्मीकि-आश्रमके निटक ही नैमिषारण्यमें अश्वमेध करने आए थे। वाल्मीकि लव-कुशको साथ ले यज्ञमें भाग लेने गए और रामसे पुत्रों-सहित सीताको स्वीकारनेको कहा। राम असमंजसमें पड़ गए। प्रजा अब भी पहलेकी तरह सन्देह करेगी, इसलिए उन्होंने वाल्मीकिसे कहा—'सीता अपने निष्कलंक चरित्रकी परीक्षा देकर जनताको विश्वास दिला दे कि वह पवित्र है, शुद्ध है; तब मैं उसे अपना लूँगा।' वाल्मीकि विवश थे।

दूसरे दिन वाल्मीकिके सम्मुख भरी सभामें रामने सीतासे यही बात कही। ठोकरपर ठोकर खाकर भी जो जनताके विश्वासको नहीं प्राप्त कर सकी थी, उस पतिप्राणा मानाभिमानिनी सती सीताने साक्षीपर साक्षी चाहनेवाले अविश्वासी अयोध्यावासियों और उनके राजा रामको अपने निष्कलंक चरित्रकी साक्षी पृथ्वीमें समा कर दी! पता नहीं, इसपर भी राम और उनकी प्रजाको सीताके चरित्रकी निष्कलंकतापर विश्वास हुआ या नहीं! *

२२. रघुवंश—१४ वाँ सर्ग, श्लोक ७३।
२३. रघुवंश—१४ वाँ सर्ग, श्लोक ७४ से ७८ तक।

* उपर्युक्त लेखका विषय जितना महत्त्वपूर्ण है, लेखकने उसे उतने ही विद्वत्तापूर्ण एवं रोचक ढंगसे पाठकोंके सामने उपस्थित भी किया है। पर उनकी सीताकी स्थिति उतनी ही अस्पष्ट है, जितने विविध उनके प्रमाण एवं उद्धरण हैं। वाल्मीकि, तुलसी, केशव और गुप्तकी सीता मूलतः भले ही एक हो; पर उनके काव्योंमें वह एक नहीं है। इनमें से प्रत्येककी कल्पनाका रंग और समयकी परम्पराओंकी छाप उनकी सीतापर स्पष्ट है। अतः तुलसी या केशवकी सीताके मुँहसे वाल्मीकिकी सीताकी बातें कहलवाना या विरोध दर्शाना कुछ असंगत-सा प्रतीत होता है।—सं०

आजका पन्ना

श्री सियारामशरण गुप्त

नवल उषाने कान्त करोंसे कंकण-कलित रणनमें,
पलट दिया कलका यह पन्ना प्राचीके प्रांगणमें।
यह अलिखित सम्मुख है, जिसके एक घूँटपर गहरी,
ज्वलनाभामें अनुरंजित वह व्यंजित बेल सुनहली।
ज्ञात किसे, कवि महाकालके मनमें क्या है, कितना,
किस भीषणका, किस सुन्दरका, नया लिखन है लिखना?

सूने रंगमंचके पीछे सज्जा किस अभिनयकी,
अग्निस्फोट, नए नीरोद्गम, हिंसा, प्रेम, प्रणयकी।
पता नहीं, क्या कुछ अदृश्यके आलेखकको भाया,
फिर भी इस द्रष्टा-श्रोताके मनमें ऐसा आया;—
मेरे बिना काव्य-नाटकके आयोजन निष्फल हैं,
निज रुचि-अरुचि न दूँ तो कविके स्वर असहाय-अबल हैं!

नहीं जानता, आज-पृष्ठको क्या मैं निजका दूँगा,
इसपर लिखी गई लेखामें मैं भी अन्वित हूँगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

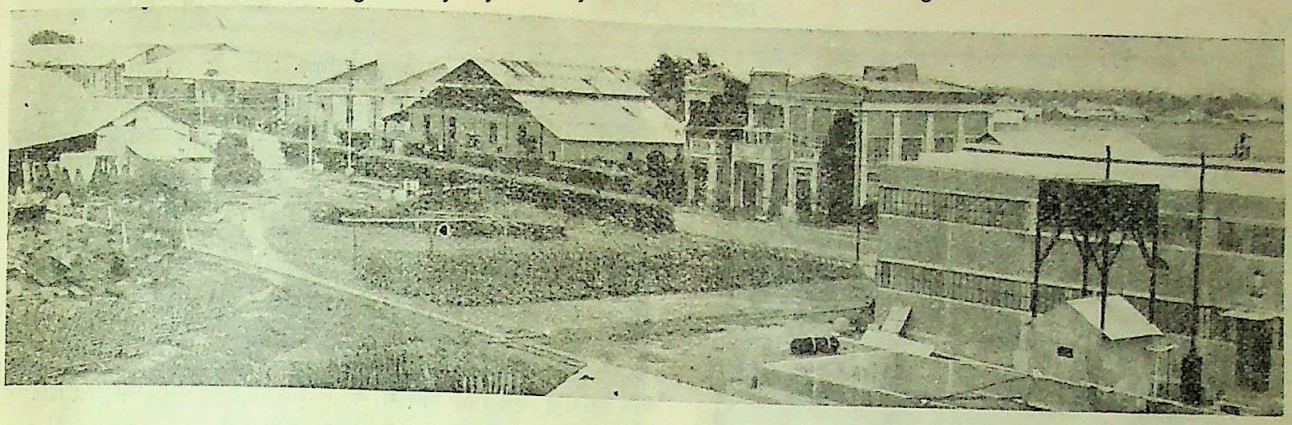

किर्लोस्कर-वर्क्सके प्रमुख कारखानोंका एक दृश्य।

किर्लोस्करवाड़ी

श्री रामस्वरूप व्यास

आधुनिक मशीनों और लोहेके सामानके क्षेत्रमें यद्यपि भारतीय उद्योगका इतिहास अभी आरम्भ-कालमें ही है, तब भी हमें इस समयके कुछ ऐसे साहसिक उद्योगपतियोंकी कथाएँ मिलती हैं, जिनका नाम हेनरी फोर्ड-जैसे नए उद्योगोंकी नींव रखनेवालोंके साथ लिया जा सकता है। भारतीय उद्योग-क्षेत्रमें श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्करका स्थान भी इसी प्रकारका है। उन्होंने अपने अथक परिश्रमसे न केवल लोहेके एक नए उद्योगकी ही भारतमें नींव रखी, वरन् यह सब-कुछ ऐसी परिस्थितियोंमें किया, जिसका प्रभाव भारतीय नवयुवकोंके मनमें साहस और उत्साह पैदा किए बिना नहीं रह सकता। आज भारतमें किर्लोस्करका नाम मुख्यतः उनके बनाए हुए फ़र्नीचर तथा पम्पों द्वारा ही प्रसिद्ध है; परन्तु जिस कारखानेकी श्री लक्ष्मणरावने नींव रखी है, उसमें इनके अलावा और भी अनेक चीज़ें बनती हैं, जिनमें से कुछके बनानेका श्रीगणेश तो भारतमें सबसे पहले उन्होंने ही किया। उन्होंने ही सबसे पहले खेतीके लिए हल तथा दूसरे औज़ार बड़े पैमानेपर बनाने शुरू किए थे।

श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्करका जन्म बेलगाँव ज़िलेके एक गाँवमें १८६८ ई०में हुआ था। शुरूमें ही उनकी रुचि मशीन तथा कल-पुर्ज़े बनाने और ठीक करनेकी ओर थी। पुस्तकोंसे उन्हें विशेष प्रेम न था। १८ वर्षकी अवस्थामें वे बम्बई पहुँचे। वहाँ कुछ दिनों तक उन्होंने ड्राइंगका अभ्यास किया। इसके बाद वे विक्टोरिया जुबिली टेक्निकल इन्स्टिट्यूटमें ३५) मासिकपर शिक्षक हो गए। नौकरी पाकर भी उन्होंने अपने शिल्प-शास्त्रका अभ्यास नहीं छोड़ा। वे जो-कुछ बचा सकते, उससे अमेरिकासे मासिक पत्र मँगाकर शिल्प-शास्त्रका अभ्यास किया करते। धीरे-धीरे इस दिशामें उनका ज्ञान बढ़ता गया। अन्तमें उन्हें उसी संस्थामें स्टीम इंजनोंका काम सिखानेके लिए अध्यापकका स्थान मिल गया। बादमें वेतन आदिके मामलेको लेकर अधिकारियोंसे उनका मतभेद हो गया और उन्होंने नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दिया।

उस समय साइकिल भारतके लिए एक नवीन चीज़ थी। सर्वप्रथम किर्लोस्करने एक साइकिलकी दुकान खोली। साथ ही वे लोगोंको साइकिलपर चढ़ाना भी सिखाने लगे। इसके अलावा उन्होंने मरहम रखनेकी डिबिया और बटन भी बनाने शुरू किए। पहला काम तो कुछ चमका; पर दूसरा नहीं चल सका। १८८६ ई०में बम्बईमें प्लेगका प्रकोप हुआ और किर्लोस्कर तथा उनकी पत्नी उसके झपाटेमें आ गए। प्लेगके प्रकोपसे वे तो बच गए; लेकिन उनका कारबार सारा अस्त-व्यस्त हो गया। बम्बईमें फिर नए सिरेसे काम जमान कठिन था, इसीलिए वे बेलगाँव चले आए। यहाँ आकर अपने भाईके साथ उन्होंने साइकिलका काम शुरू किया और साथ ही अमेरिकासे 'विण्ड मिल' भी मँगाकर बेचना आरम्भ किया।

इसी समय श्री लक्ष्मणरावके जीवनमें एक ऐसी बात हुई, जिसका उनकी भावी प्रगतिपर गहरा प्रभाव पड़ा। जब वे बम्बईमें थे, उनकी जान-पहचान औंधके भावी महाराजसे हो गई थी। राजा साहब उनका शिल्प-प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे। १९०२ में श्रीमन्त श्रीनिवास पन्त प्रतिनिधि औंधके राजा थे और श्रीमन्त बाला साहब, जिनसे किर्लोस्करकी जान-पहचान हुई, उनके प्राइवेट-सेक्रेटरी। औंधके एक प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

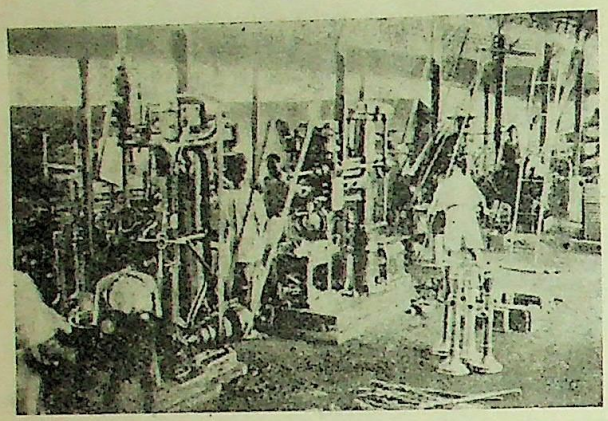

पानी निकालनेके पम्प बनानेवाला विभाग।

मन्दिरके सामने एक मण्डप तैयार करानेकी योजना थी। श्रीमन्त बाला साहबने उसका ठेका श्री लक्ष्मणरावको दिलवा दिया। उस मण्डपके बनानेमें ६५,०००) खर्च हुए। विशालता तथा सुन्दरताकी दृष्टिसे वह एक अनोखी और दर्शनीय वस्तु है। उसमें १५०० आदमी बैठ सकते हैं। उसके ऊपरकी गैलरीमें राज्यका एक पुस्तकालय भी है, जिसमें १२,००० पुस्तकें हैं।

इसके बाद श्री लक्ष्मणरावकी आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी हो गई, जिससे उन्हें फिर उत्साह और नया जीवन मिला। अब उन्होंने एक नई योजना बनाई। बहुत दिनोंसे उनके मनमें किसी ऐसी चीज़के बनानेका विचार था, जो देशकी अधिकांश प्रजाके लिए उपयोगी हो और देशकी गरीबी दूर करनेमें सहायक भी हो। सबसे पहले किर्लोस्करने किसानोंके उपयोगकी चीज़ें बनानेका निश्चय किया। सबसे पहली चीज़ जो उन्होंने बनाई, वह चारा काटनेकी मशीन थी। इसके लोहेके ढले हुए हिस्से बम्बईसे बनवाकर मँगवाए जाते और उनको जोड़नेका काम बेलगाँवमें किया जाता। साइकिलकी दुकानके साथ ही एक छोटा-सा वर्कशाप भी खुल गया, जिसमें 'लेथ', 'ड्रिल' तथा दूसरी कई मशीनें थीं। जब चारा काटनेकी मशीनकी बिक्री काफ़ी बढ़ी, तो उसके लोहेके हिस्सोंको ढालनेके लिए भी यहीं एक विभाग खोला गया। बेलगाँव शहरमें इन कामोंके लिए काफ़ी जगह न थी, इसलिए कारखानेको शहरके बाहर तीन मील दूर ले जाना पड़ा।

किर्लोस्करने किसानोंके लिए लोहेका हल भी तैयार करना शुरू किया। सबसे पहले ६ हल तैयार हुए। परन्तु सदियोंसे लकड़ीके हलोंकी परम्परामें जकड़े किसान इन लोहेके हलोंसे भड़कते थे। इसी कारण दो वर्ष तक वे यों ही पड़े रहे; पर अन्तमें मिरजके एक किसानने हिम्मत करके उन्हें खरीद लिया। धीरे-धीरे लोहेके इन हलोंकी कीर्त्ति बढ़ी। अब विभिन्न क़िस्मकी ज़मीनोंके लिए उपयोगी नए-नए ढंगके हल भी बनाए जाने लगे और एक सालके अन्दर लगभग २०० हल बिकने लगे। चौदह वर्षके बाद तो उनकी खपत एक वर्षमें ४०,००० तक पहुँच गई और वे भारतके प्रत्येक भागमें व्यवहृत होने लगे।

१९१० में बेलगाँवमें फ़ैक्टरीका काम अच्छी तरह चलने लगा। अब फ़ैक्टरीके आसपास धीरे-धीरे बस्ती बढ़ने लगी। अन्तमें वहाँकी म्युनिसिपैलिटीने उस हिस्सेको भी अपने अधिकारमें ले लिया। जब म्युनिसिपैलिटीके हाथमें यह प्रबन्ध आया, तो उसने इस छोटी-सी फ़ैक्टरीको ६ महीनेके अन्दर बन्द करनेका नोटिस दिया। बहुत-कुछ लिखा-पढ़ी करनेपर भी कोई रास्ता न निकल सका और न ऐसी कोई दूसरी जगह ही दी गई, जहाँ फ़ैक्टरी ले जाई जा सके। परिस्थिति अत्यन्त निराशाजनक हो गई और यह समझा जाने लगा कि अब शायद काम बन्द कर देना पड़ेगा। श्री लक्ष्मणरावके पास इतनी पूँजी भी न थी कि वे किसी दूसरी जगह नए सिरेसे काम शुरू कर सकते।

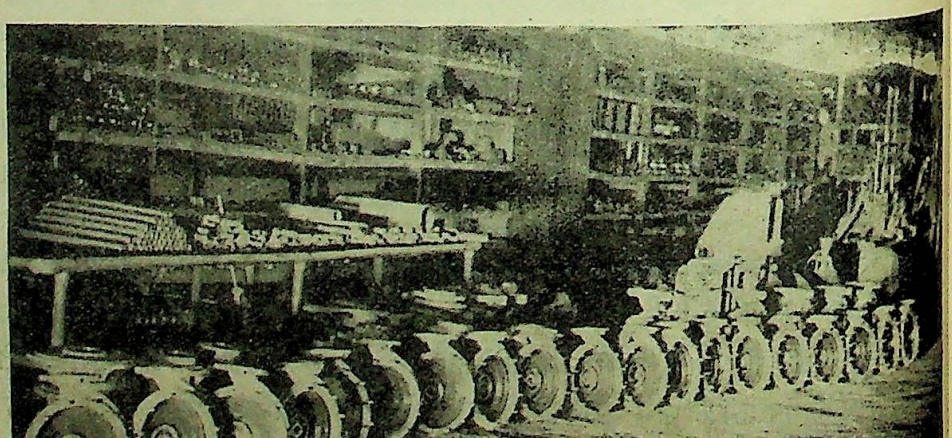

पम्पोंके केन्द्रीय भाग तैयार करनेवाला विभाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

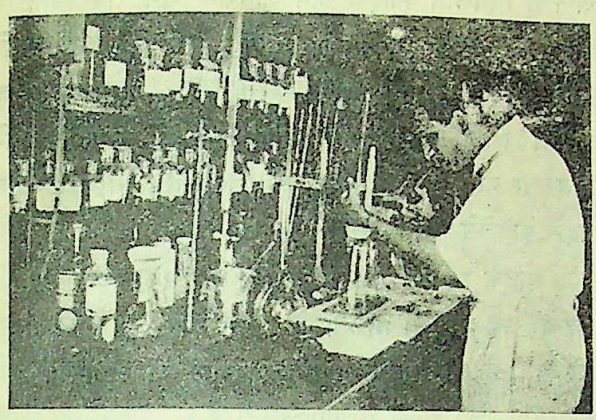

द्रव्योंके परीक्षणकी रासायनिक प्रयोगशाला।

इसी समय एक दिन औंधके राजा साहब आए और किर्लोस्करसे मिले। उस समय कारखानेकी बात राजा साहबसे छिपाई न जा सकी। सलाहके तौरपर श्री लक्ष्मणरावने राजा साहबसे पूछा कि ऐसी दशामें क्या करना चाहिए? कुछ क्षण तक चुप रहकर राजा साहब बोले—'मेरे राज्यमें चलो, पूँजी और ज़मीन दोनोंकी व्यवस्था हो जायगी। यह मैं तुमसे मित्रकी हैसियतसे नहीं, बल्कि औंधके राजाकी हैसियतसे कह रहा हूँ। वहाँ चलनेका फैसला अभी कर लो।' दोनों भाइयोंने सलाह-मशविरा करके राजा साहबको स्वीकृति दे दी। उन्होंने केवल एक ही शर्त्त रखी कि उन्हें कारखानेके लिए ऐसी जगह दी जाय, जहाँ रेलका स्टेशन हो। राजा साहबने स्टेटका नक़्शा निकाला और कुण्डल रोडको दिखाकर कहा—'मेरे राज्यमें केवल यही एक स्टेशन है।' किर्लोस्कर पेंसिलसे नक़्शेपर निशान लगाते हुए बोले—'बस, इतनी ज़मीन दे दीजिए।' राजा साहबने उसी समय स्वीकृति दे दी।

यह ज़मीन लगभग ३० एकड़ होगी। इसके अलावा राज्यकी ओरसे पूँजीके लिए १०,०००) क़र्ज़ भी दिया गया। साथ ही यह भी रियायत की गई कि १९४० तक कारखानेसे किसी प्रकारका राज्य-कर नहीं लिया जायगा। पर इन सुविधाओंके साथ यहाँ कुछ कठिनाइयाँ भी थीं। सबसे पहली दिक्क़त पानीकी थी। दूसरी भीषण समस्या साँपोंकी थी। आसपासका सारा प्रदेश काले साँपोंसे भरा पड़ा था। रहने आदिकी भी व्यवस्था न थी। रेल्वे-स्टेशन भी मामूली-सा था। वर्त्तमान किर्लोस्करवाड़ीका स्टेशन तो बादमें बना है। इन सारी बातोंसे कारखानेके कारीगरोंको काफी असुविधाएँ हुईं। फिर भी लगन और साहसके साथ काम करनेसे कुण्डल रोडकी कायापलट हुई और जो कारखाना १०,०००) की पूँजीसे शुरू हुआ था, आज उसका मूलधन लगभग १६,००,०००) है।

किर्लोस्करवाड़ीका पूनासे लगभग ६ घंटेका रेलका सफ़र है। आज तो यह एक नए ढंगका नगर बन गया है। स्टेशनसे एक पक्की सड़क बस्तीके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चली गई है। मुख्य सड़ककी एक ओर कारखाना और दूसरी ओर रहनेके मकान हैं। तारघर और डाकखाना भी हैं। स्कूल, कसरत तथा खेलके क्लब, मातृ-मन्दिर, अस्पताल, दुकान आदि सामाजिक जीवनकी सभी आवश्यक चीज़ें यहाँ विद्यमान हैं। बस्तीका दृश्य भी सुन्दर है। वह बम्बईके आसपास बसे हुए उपनगरोंके समान दिखाई देती है। श्री लक्ष्मणराव जहाँ औद्योगिक क्षेत्रमें नई-नई चीज़ें देना चाहते थे, वहाँ वे कारीगरोंको भी आराम व सहूलियत देनेमें पीछे नहीं रहते थे। उनकी योजना एक ऐसे उद्योग-केन्द्रकी स्थापना करनेकी थी, जिसमें हरएक कारीगरके लिए एक छोटा-सा बँगला हो। अमेरिकाके 'गार्डन सिटी'की भाँति ही वे अपनी इस बाड़ीको बनाना चाहते थे। हर्षकी बात है कि किर्लोस्करकी यह योजना आज अपने पार्थिव स्वरूपमें इस बाड़ीमें देखनेको मिलती है। बड़े-बड़े शहरोंके कारीगरोंके रहनेके ढंगों और गन्दी बस्तियोंसे यह व्यवस्था बिलकुल भिन्न है। इसके अतिरिक्त यहाँ कारीगरों तथा मज़दूरोंको केवल कारखानेकी मज़दूरीपर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता। अधिकांश कारीगर आसपासके गाँवोंसे आते हैं। कुटुम्बमें यदि दो भाई कारखानेमें काम करते हैं, तो एक भाई खेती करता है। इस प्रकार सारा बोझ न तो खेतीपर पड़ता है, न कारखानेकी मज़दूरीपर और न ही नौकरी करनेके लिए स्त्री-पुरुषको अलग-अलग रहना पड़ता है। औद्योगिक दृष्टिसे यह व्यवस्था महत्त्वपूर्ण और भारतकी विशेष स्थितिके लिए बहुत ही उपयोगी है। भारतको समृद्ध

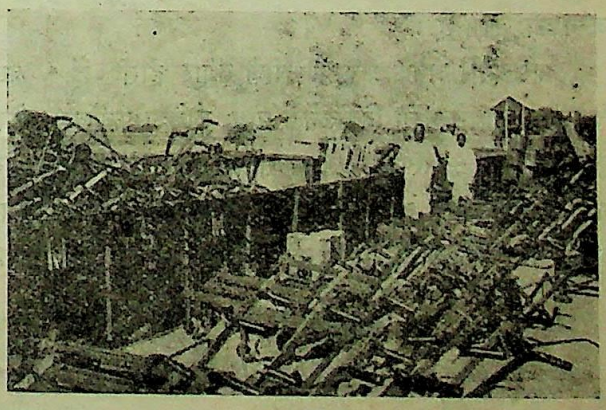

तैयार हुआ सामान गाड़ियोंमें लादा जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनानेके लिए गाँववालोंको उनके घरोंके पास ही काम देनेकी व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकारके प्रयोग अमेरिका और जर्मनीमें किए गए हैं, और वहाँके औद्योगिक केन्द्रोंमें होनेवाली बेकारीको दूर करनेमें वे उपयोगी भी सिद्ध हुए हैं।

किर्लोस्करवाड़ी स्टेशनके सामने ही कारखानेकी इमारत है। मुख्य सड़कपर कारखाना लगभग आध मील तक फैला हुआ है। कारखानेके चार-पाँच विभाग हैं। सदर दरवाज़ेसे घुसते ही सामने कारखानेका दफ़्तर है और दाहिनी ओर बिजलीका 'पावर-हाउस' तथा लोहा गलाने व ढालनेका विभाग। 'पावर-हाउस' में तेलसे चलनेवाले तीन बड़े और दो छोटे इंजन हैं, जो सब मिलाकर ५,००० अश्व-बलकी शक्ति पैदा करते हैं। इसी शक्तिसे कारखानेके विविध विभागोंका कार्य चलता है और नगरको प्रकाश तथा पानी मिलता है। यहाँ लोहा गलानेकी दो भट्टियाँ हैं। यहीं सब कल-पुर्जोंको साँचेमें ढाला जाता है। मुख्य द्वारसे बाईं ओर मशीनोंके कल-पुर्ज़ोंको खरादने, छेद करने या ठीक करनेके विभाग हैं। फिर दो स्टोर हैं। इनके पास ही बने हुए कल-पुर्ज़ोंको एक साथ बैठाकर चीज़ोंको तैयार करनेका 'एसेम्बली प्लांट' है। फिर बने हुए पम्पोंकी परीक्षा करनेका विभाग है। कारखानेके दूसरे सिरेपर तैयार चीज़ोंको रँगनेका विभाग और एक बड़ा गोदाम है, जहाँ भिन्न प्रकारके हल, मेज़, कुर्सियाँ, पम्प इत्यादि तैयार रहते हैं। कारखानेका काम बड़ी दक्षतासे चलाया जाता है। इंजीनियर और मैनेजर विदेशोंसे शिक्षा तथा अनुभव प्राप्त करके आए हैं। हरएक विभागके मैनेजरके सामने एक बोर्ड लगा होता है, जिसपर उस विभागमें जो-जो काम चलता है, उसकी तफ़सील रहती है। कारखानेके मध्य भागमें केन्द्रीय दफ़्तर है, जहाँसे सब काम व्यवस्थित रूपसे चलाया जाता है। यहाँ दो-एक रासायनिक प्रयोगशालाएँ भी हैं, जिनमें धातुओंकी जाँच की जाती है।

कारखानेमें अनेक प्रकारकी चीज़ें तैयार होती हैं। हल, बिजली व हाथसे पानी निकालनेके पम्प, लोहेका फ़र्नीचर—मेज़, कुर्सी, चारपाई—अस्पतालके लिए सामान, चरी काटनेकी मशीन, गन्ना पेरनेके कोल्हू आदि बनते हैं। पम्पोंके साथ उपयोगमें आनेके लिए बिजलीकी मोटरें व क्रूडआइल इंजन भी बनाए जाते हैं। मिलोंमें बुनाईके काम आनेवाले 'लूम' तथा 'डाबो' भी बनाए जाते हैं तथा लोहेकी चीज़ोंको खराद करनेके लिए 'लेथ' और दूसरे प्रकारके औज़ार भी तैयार होते हैं। हाल ही में किर्लोस्कर कम्पनीने मोटरगाड़ियोंमें लगानेके लिए प्रोड्यूसर गैस प्लांट भी बनाए हैं, जिनके द्वारा मोटर पेट्रोलके बदले कोयलेसे चलती है।

यहाँके रहनेवाले कार्यकर्त्ताओंको वे सब सुविधाएँ प्राप्त हैं, जो बड़े-बड़े शहरोंमें मिलती हैं। स्कूलमें प्रायमरी शिक्षा मुफ़्त दी जाती है और सब बच्चोंके लिए स्कूल जाना अनिवार्य है। बालिगोंके लिए रातमें श्रेणियाँ चलती हैं। स्कूलमें ही रेडियो भी लगा है, जहाँ जाकर लोग गाना और खबरें सुन सकते हैं। एक अच्छा दवाखाना और अस्पताल भी हैं, जहाँसे कारीगरोंको ही नहीं, वरन साधारण जनताको भी दवा मिल सकती है। श्री लक्ष्मणरावकी स्वर्गीया धर्मपत्नीकी यादमें 'राधाबाई मेटरनिटी होम' नामक एक संस्था स्थापित है, जहाँ बहुत ही मामूली खर्चमें स्त्रियाँ जापा करा सकती हैं। खेलके लिए एक बड़ा मैदान है, जहाँ फुटबाल और क्रिकेट मैच होते हैं। कुश्तीका एक क्लब है और एक अखाड़ा भी। 'सूर्यनमस्कार' द्वारा स्वास्थ्य-सुधारका भी काफ़ी प्रचार है। एक थियेटर-हाल भी है, जहाँ समय-समयपर नाटक खेले जाते हैं। यहाँसे मराठीके तीन मासिक पत्र निकलते हैं—'किर्लोस्कर', 'स्त्री' और 'मनोहर'। सब मिलाकर उनकी ग्राहक-संख्या ४५,००० है। केवल 'किर्लोस्कर' ही प्रतिमास २०,००० निकलता है।

भारतके औद्योगिक विकासका अभी आरम्भ-काल है। कपड़ेके उद्योगको छोड़कर शेष चीज़ें अभी यहाँ बहुत कम बन पाती हैं। मशीन तथा लोहेका सामान बनानेके कुछ कारखाने अवश्य हैं; परन्तु ये विदेशी पूँजीसे विदेशियों द्वारा ही चलाए जाते हैं। लोहेकी मशीनें बनानेके क्षेत्रमें शायद किर्लोस्कर बन्धु लि० का ही सबसे पहला कारखाना है, जो पूर्णतया भारतीय है और कार्य-क्षमताकी दृष्टिसे भी किसीसे पीछे नहीं है। यदि देशकी ग़रीबीको दूर करना है, तो भारतमें किर्लोस्कर कारखाने-जैसे उद्योगोंकी अधिकाधिक संख्यामें अत्यधिक आवश्यकता है।

चम्पानगर, बम्बई]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डित मूर्त्तियाँ

श्री 'धूमकेतु'

सन् १७८३ की बात है। मरहठा-साम्राज्यके आखिरी दो महापुरुष महादजी सिंधिया और नाना फड़नवीस अपना आधिपत्य जमाए हुए थे। मरहठा सैनिकोंके तेज़से अंगरेज़ सैनिक काँपते थे। हरिपन्त फड़के और परशुराम भाऊके नाम रणक्षेत्रमें जादूका काम करते थे। गुजरातपर पैर जमाए बैठी हुई आंग्ल सत्ता महादजी सिंधियाके सामने सिर झुकाती थी।

इसी समय शिल्पी हीराधरकी यशोभूमि डभोई क़स्बेमें एक घटना घटी। अंगरेज़ भड़ौंच और उसके आसपासके भू-प्रदेशको खाली करके सिंधियाके प्रतिनिधि भास्करराव को सौंपनेकी तैयारी कर रहे थे। डभोई उस वक्त जेम्स फ़ोबर्सके कब्ज़ेमें था। क़िलेकी मरम्मत करने और रणांगनमें शत्रुओंको मात करनेकी विद्या उसे वरण किए हुए थी। साथ ही संध्या-कालमें जब कमलिनीका मन्द-मन्द परिमल डभोईके सुन्दर सरोवरसे बह रहा हो, तब निर्निमेष नयनोंसे शिल्पी हीराधरकी अनमोल कृतियाँ मानो कोई स्वप्नस्थ प्रतिमाएँ हों—ऐसी काव्यमयी दृष्टि भी उसे वरण किए हुए थी। वह युद्ध-कालका अविश्रान्त परिश्रमी योद्धा था और शान्ति-कालका सौन्दर्य-सृष्टिमें लीन व्यक्ति।

युद्धके दिन आए और चले गए। डभोईके क़िलेकी चाबियाँ महादजी सिंधियाके प्रतिनिधि भास्करराव को सौंपनेकी घड़ियाँ भी आ पहुँचीं। डभोईके महाजन और ब्राह्मण गोरे साहबकी विदाईके लिए आ पहुँचे। उन्होंने उस गोरेकी राजनीति और शान्तिमय शासनकी प्रशंसा की और साथ ही कुछ उपहार लेनेकी नम्र प्रार्थना भी।

जेम्स फ़ोबर्स शान्त खड़ा था। उसे डभोईसे विदा होना जैसे अखर रहा था। उसकी नज़रोंमें डभोईमें ग्रीस और रोमकी उत्कृष्ट प्रतिमाओंसे कहीं अधिक सौन्दर्य बिखरा पड़ा था। उसके सरोवर, हरी-भरी उन्नतावनत शस्य-श्यामल भूमि, मन्द समीरसे क्रीड़ा करते हुए कमल, शिल्पी हीराधरकी यक्षकन्याएँ, दूरका वह पूर्व-द्वार—यह सारा दृश्य उसे अपनी मातृभूमिकी याद दिला रहा था। इस समय वह न योद्धा था, न मुल्की अफ़सर। वह अपनी मातृभूमि स्काटलैण्डका एक बालक था। उसे इस भूमिकी गोद माताकी गोद-सी प्यारी थी।

जेम्स फ़ोबर्सको शान्त खड़ा देखकर महाजनोंने पुनः नम्रतासे कहा—'हमें कुछ नज़राना देना है, उसे आपको स्वीकार करना होगा। आप हमारी इतनी स्मृति तो अपने साथ रखिए ही।'

और मूल्यवान वस्त्रोंके नीचे छिपे हुए बहुमूल्य आभूषण चमक उठे।

जेम्स फ़ोबर्सने सिर हिलाते हुए कहा—'मुझे यह सब नहीं चाहिए। मुझे कल दूसरी जगह भागना पड़े, तो मैं इनका क्या करूँगा?'

महाजन खिन्न हो उठे। किसी प्रकार उस गोरे साहबको चिरस्मरणीय उपहार तो देना ही चाहिए। इसीलिए उन्होंने फिर आग्रह किया। फ़ोबर्सने उनके आग्रहकी सत्य-ध्वनि पहचानी। फिर ज़रा सोचकर उसने कहा—'यदि आप सचमुच मुझे कोई स्मृति-चिह्न देना चाहते हैं, तो आपके पास कुछ अमूल्य चीज़ें हैं, उन्हें ही दीजिए।'

'कहिए, साहब, वे कौन-सी चीज़ें हैं?'

'यदि आपको कोई धार्मिक आपत्ति न हो, तभी दीजिए।'

'कहिए।'

'मुझे मन्दिरके बाहरके जर्जरित खँडहरोंमें से टूटी-फूटी कुछ मूर्त्तियाँ और हीराद्वारके बाहरके बेल-बूटोंके कुछ खण्डित नमूने ले जानेकी इजाज़त दीजिए।'

यह सुनकर महाजन, ब्राह्मण सभी स्तब्ध रह गए—दिलगीरीसे नहीं, आश्चर्यसे। माँगे भी तो टूटी-फूटी मूर्त्तियों और बेल-बूटोंके खण्डित नमूने, जिनपर बैठकर हर कोई भगेड़ू लड़का गाँवके सीवानपर अपने गोरूको रखने जानेवाली किसी रधिया या किसनीसे ठट्ठा कर सकता था! ऐसे पत्थरके टुकड़ोंको साहबने क्यों माँगा, उनके मनमें यह उलझन पैदा हो गई।

उनके सरदारने कहा—'साहब, यह भी कहीं दिया जा सकता है?'

ग्लानिका एक बादल फ़ोबर्सके मुँहपर से गुज़र गया।

इतनेमें ही एक दूसरे सज्जनने कहा—'साहब, ऐसे नमूने तो आप जितना चाहें, हम दे सकते हैं। पर आपने यह क्या माँगा? कुछ और माँगिए।'

जेम्स फ़ोबर्स निरुत्तर रहा, मानो उसके दिलमें लोहेकी कील चुभा दी गई हो। उसने व्यग्रतासे एक बार पीछेकी ओर झाँक लिया कि कहीं शिल्पी हीराधरकी मृतात्माने इसे सुन तो नहीं लिया।

फिर महाजनोंके मुखियाने कहा—'खण्डित मूर्त्तियोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारेमें हम कल सोमेश्वर शास्त्रीसे पूछ देखेंगे और हीराद्वारके जो नमूने आपको पसन्द होंगे, दे देंगे। पर आप उनको लेकर क्या करेंगे? ऐसे बेकार पत्थर···'

'यदि हो सके, तो इन्हें ही दीजिए।' फ़ोर्बसने कहा—'मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

यह सुनकर सभी लोग लौट गए। फ़ोर्बस भी सती माताके चौराहेकी ओर धीरे-धीरे चला गया। उसके लिए यह वातावरण भी अपूर्व था।

- २ -

एकान्त जीवन गुज़ारनेवाला सोमेश्वर महाजनोंको अपने आँगनमें आया हुआ देखकर स्तब्ध हो गया और उनकी बात सुनकर तो उसकी स्तब्धता और भी बढ़ गई।

'खण्डित मूर्त्तियोंके बारेमें आप क्या कहते हैं?'—महाजनोंके मुखियाने प्रश्न किया।

सोमेश्वरने अपनी कुटीके एक कोनेमें शिल्पी हीराधरकी एक सुन्दर प्रतिमा रख छोड़ी थी। अशान्तिके ज़मानेमें इस सात्विक ब्राह्मणने पेड़-तले रहकर ज्योतिष और वैद्यकका ज्ञान अर्जन किया था। डभोई क़स्बेमें उसकी प्रतिष्ठा अद्वितीय थी। उसकी सात्विकताका प्रभाव सबके मनपर था। उसका अभिप्राय शास्त्र-वचन समझा जाता था और उसकी नाराज़गी शाप-तुल्य थी।

महाजनने पूछा—'आप क्या समझते हैं? क्या खण्डित मूर्त्तियाँ एक विधर्मीको दी जा सकती हैं?'

सोमेश्वर मौन रहा। वह टकटकी लगाए जैसे हीराद्वारकी ओर देख रहा था।

'जाता है, तो सभी कुछ चला जाता है। "मुद्राराक्षस" नाटकमें क्या वह श्लोक नहीं है, जिसमें राक्षस दरिद्रताका वर्णन करता है? यह देश भी उसी तरह दरिद्र बना। अब ये खण्डित मूर्त्तियाँ भी चली जायँगी!'—सोमेश्वर जैसे अपने-आप ही कह रहा हो, इस तरह उसके होंठ हिलते दिखाई दे रहे थे।

वह होशमें बोल रहा है या स्वप्नमें, यह न समझ सकनेके कारण महाजनने फिर पूछा—'यदि लेनेवाला कोई विधर्मी हो, तो क्या ये खण्डित मूर्त्तियाँ उसे दी जा सकती हैं?'

'मैं इसी प्रश्नपर तो ग़ौर कर रहा हूँ। अच्छा, हीराधरका कोई दूरका सम्बन्धी भी है या नहीं?'

'कोई नहीं है। और हो भी, तो मालूम नहीं। पर उससे हमें क्या मतलब? एक विधर्मीको खण्डित मूर्त्तियाँ दी जा सकती हैं या नहीं, हमें तो यही जानना है। इसके सम्बन्धमें शास्त्राज्ञा क्या है?'

'तब क्या आपको मालूम है? वह कोनेमें रखी हुई यक्षकन्या हीराधरकी कृति है—कृति ही नहीं, उसकी प्राण-प्रतिमा है? हीराधरने उस मूक पत्थरमें अमर वाणी भर दी है। वेदकी ऋचा-जैसा उसका स्मित है। मोहक आरोह-अवरोह-जैसा उसके शरीरका त्रिभंग है। आप ज़रा उसे देखिए तो सही, मानो हीराधर अभी भी खड़ा-खड़ा उसे निहार रहा है। उसके हाथकी कैसी अनुपम छटा है···'

यक्षकन्या-जैसी सुन्दर सोमेश्वर शास्त्रीकी कन्याने पिछले द्वारसे प्रवेश किया। वह बोली—'पिताजी, फिर आप उन्हीं बातोंको ले बैठे। महाजनोंको उत्तर दीजिए।'

जैसे एक छोटा बच्चा माँका कहना मान जाता है, उसी तरह शास्त्रीजी चुप हो गए। उनकी नज़र ज़मीनपर गड़ गई।

'तब फिर विधर्मीको खण्डित मूर्त्तियाँ दे सकते हैं न?'—अग्रणीने फिर पूछा।

शास्त्रीजी पुनः तरंगोंमें बह गए—'जो रसिकता जयदेवकी वाणीमें है, वही रसिकता हीराधरकी तूलिकामें है। उसने पत्थरमें काव्य लिखे हैं। हीराधर···'

शास्त्रीजी आगे कुछ और भी कहने जा रहे थे कि उनकी पुत्रीने पुनः उन्हें सचेत किया—'आप जवाब नहीं देंगे क्या?'

'दूँगा क्यों नहीं? अच्छा, तो सुनो।' कहकर शास्त्रीजी कुछ क्षण शान्त रहे, फिर धीरेसे बोले—'हीराधरकी यह यक्षकन्या कालिदासकी अलका नगरीकी मानो रूप-रेखा है। मैं इसे धेनु गड़रिएके बाड़ेसे उठा ले आया था। सुनहरी रजमें रत्न खोजती हुई इस रूप-मूर्त्तिके पास दो गधे खड़े थे—एक-दूसरेको सामने देखकर जैसे वे अपनी सुन्दरताकी चर्चा करते हों। यक्षकन्यापर हीराधरने जो अनमोल अम्बर चढ़ाए थे, वे सब गायके गोबरमें लिपे-पुते थे।' शास्त्रीजी कुछ देरके लिए रुके और फिर बोले—'हाँ, तो इस गोरेको दो पत्थर देनेमें कोई हर्ज नहीं है।'

'हर्ज नहीं है न? हाँ, तो ठीक है। क्यों न उसका मन भी सन्तुष्ट हो? हमारे यहाँ तो ऐसे कितने ही पत्थर पड़े हुए हैं।'—महाजन बोल उठा।

शास्त्रीजी कुछ खिन्न कण्ठसे बोले—'कुछ हर्ज नहीं है; क्योंकि वह विधर्मी इन पत्थरोंकी देखभाल तो करेगा। और कुछ नहीं, तो गधे-कुत्तोंसे तो इन्हें हम अच्छे हाथोंमें सौंप रहे हैं।'

'हाँ, हमारे लिए तो ये पत्थर व्यर्थमें जगह घेरे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'परन्तु एक शर्त्त है।'

'वह क्या ?'

'आप कल जब वहाँ जायँ, तो मुझे भी साथ ले चलिए।'

'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'—कहता हुआ महाजन-मण्डल उठ खड़ा हुआ और शास्त्रीजीको नमस्कार करके तितर-बितर हो गया। शास्त्रीजीने निर्णय दे दिया था। उन्होंने और जो-कुछ कहा, उसका मतलब तो किसीने नहीं समझा; परन्तु उनकी विद्वत्तापूर्ण वाणीकी हर कोई प्रशंसा कर रहा था।

- ३ -

दूसरे दिन जेम्स फ़ोबर्स शिल्पी हीराधरकी कृतियोंको आखिरी बार देख रहा था। हीराद्वारकी एकसे एक बढ़कर सुन्दर कमानों, राजपूतनीके गलेकी मोतियोंकी माला-जैसी मौक्तिक मालाओंमें अजीब आकर्षण भरा था। इतने ही में वहाँ महाजन-मण्डल आ उपस्थित हुआ। सोमेश्वर सबसे आगे था। फ़ोबर्सने सबका स्वागत किया। फिर एक महाजनने कहा—'हमें खुशी है कि हम आपको आपका अभीष्ट उपहार दे सकेंगे। शास्त्रीजीने भी फतवा दे दिया है।'

फ़ोबर्सने शास्त्रीजीकी ओर देखा और उनका अभिवादन करते हुए कहा—'मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। मुझे हीराधरकी इन कलाओंमें...' फ़ोबर्स बोलते हुए रुक गया। सोमेश्वर ध्यान-मग्न हो हीराद्वारकी ओर एक टक देख रहा था। फ़ोबर्सने शब्दों द्वारा उस वातावरणको भंग करना उचित नहीं समझा।

'साहब, शिल्पी हीराधरके हाथोंमें संगीतकी रम्य पदावलियाँ खेल रही होंगी। ज़रा उस यक्षकन्याकी कटि-मेखलाको तो देखिए, मानो अभी उसकी सुनहरी घण्टियोंकी झंकार गूँज उठेगी। देखिए, उसके मुँहपर उस झंकारके सुननेका आनन्द भी छा रहा है...' शास्त्रीजी चिन्तनमें मग्न हो रुक गए।

'आपको हीराधरकी सर्वोत्तम कृति कौन-सी लगी ?'—फ़ोबर्सने पूछा।

'उसकी सर्वोत्तम कृति !'—शास्त्रीजी भयंकर शून्यको प्रतिध्वनित करते हुए हँसे। 'शायद भैंसोंके किसी चरागाहमें सुरक्षित पड़ी होगी। हीराधर ! वह कोई मानव नहीं होगा। मानवेन्दुके बिना ऐसी कृति नहीं बन सकती।'

'क्या आप इन्हें सुरक्षित रखनेका प्रयत्न नहीं कर सकते ?'—फ़ोबर्सने पूछा।

शास्त्रीजी शुष्क हँसी हँसे। 'मृत जनाताकी हरएक दृष्टि मारी जाती है। यहाँ इन पत्थरोंपर लड़के थूकेंगे। इन कृतियोंको सुरक्षित रखने या समझनेकी शक्ति आज इस ज़मीनपर विद्यमान नहीं रह गई है। आप इन्हें ले जाइए।'

फ़ोबर्स उस ब्राह्मणकी ओर देखता रहा। उसके मित्रोंने पूनाके नाना फड़नवीसकी बातें उसे सुनाई थीं। ब्राह्मणोंकी बुद्धिपर उसे आश्चर्य होता था। आज उसी वर्णका एक स्वप्न-शिल्पी उसके सामने खड़ा था। फ़ोबर्सने धीरेसे कहा—'अच्छा, मैं भी अपने दिलकी एक बात कहना चाहता हूँ।'

सोमेश्वरके मुखपर एक हल्की मुस्कराहट दौड़ गई और वह बोला—'मुझे यह पता था कि शिल्पी हीराधरकी कृतियोंको समझनेवाला कोई साधारण आदमी नहीं होगा। इसीलिए आपके हृद्गत भावोंको जाननेके लिए मैं आपके पास आया भी हूँ।'

अब तक महाजन-मण्डल मूढ़की तरह दोनोंके मुँह ताक रहा था। वार्तालापका एक वाक्य भी समझे बिना उन्हें आश्चर्य हो रहा था। उनका अग्रणी बोला—'साहब, हमें भी यही पूछना है कि आप इन मूर्त्तियोंको ले जाकर क्या करेंगे ? इन्हें कहाँ रखेंगे ?'

फ़ोबर्सने एक अर्थ-भरी दृष्टि सोमेश्वरपर डाली। सोमेश्वर भी यही जाननेके लिए उत्सुक था। फ़ोबर्सने कहा—'मेरा देश बहुत रमणीय है। उसकी हरी-भरी पर्वत-श्रेणियोंके बीच मेरा छोटा-सा गाँव नीलमके हारमें मानिक जैसा सुशोभित है। उस गाँवके पर्वत-शिखरपर अष्टकोणाकृति बनाकर उसमें ये मूर्त्तियाँ आठों कोनोंपर रखूँगा। वहाँ हीराद्वारकी नक्काशीके ये नमूने सौन्दर्य-खचित इलियडकी कृति-जैसे सुशोभित हो उठेंगे। मेरे देश-बन्धुगण इन्हें देखेंगे और आश्चर्य-चकित होंगे। गाँवके लड़के देखेंगे और अनेक प्रश्न पूछेंगे। रमणियाँ देखेंगी और अनेक दिनों तक न भूलेंगी। इसलिए मैं अपने इस स्थानकी पवित्र स्मृतिके रूपमें इन्हें ले जा रहा हूँ।'—फ़ोबर्स अब और अधिक बोल न सका। उसकी नज़र स्काटलैण्डकी पहाड़ियोंमें पहुँच चुकी थी।

सोमेश्वरके चेहरेपर प्रसन्नता छा गई। वह शिल्पी हीराधरकी उत्कृष्ट कृतियोंको समझानेके निष्फल प्रयत्न अनेक बार कर चुका था; पर वह समझ एक सहृदय परदेशीको प्राप्त हुई थी। उसने फ़ोबर्सको प्रसन्नतासे देखते हुए कहा—'बस, यही जाननेके लिए मैं आया था। आपकी आत्मा कलाधर हीराधरको परख सकी है। मैं भी अब इस स्थानका दो-चार दिनोंका ही मेहमान हूँ।'

अनु०—चावला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइसक्रीम

मोहनसिंह सेंगर

उस दिन थके हुए पाँव और थका हुआ मस्तिष्क लेकर कुछ विश्राम करनेकी इच्छासे एक पार्कमें जा पहुँचा। पार्कके बीचका हरी-हरी मुलायम दूबसे ढँका मैदान ऐसा मालूम हो रहा था, मानो कोई बहुत बड़ा मखमली फर्श बिछा हो। उसमें नौकरों अथवा आयाओंके साथ आए हुए रंग-बिरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित बच्चे खेल रहे थे। उनके लुका-छिपीके खेल तथा किलकारी मारकर एक-दूसरेको पकड़नेके लिए दौड़ना देखते ही बनते थे।

मैदानके चारों ओर लाल बजरीका एक जनपद बना था, जिसके किनारेके वृक्षोंकी छाया-तले थोड़े-थोड़े फासलेपर लकड़ीकी बेंचें रखी हुई थीं। इन्हींमें से एकपर मैं भी जा बैठा और बच्चोंके खेल-तमाशोंका आनन्द लेने लगा।

इसी समय मेरे सामनेसे एक प्रौढ़ वयके गौर-वर्ण सज्जन गुज़रे, जिनका दाहिना हाथ पतलूनकी जेबमें था और बाएँ हाथकी अंगुली पकड़े एक ४-५ वर्षका बच्चा उनके साथ-साथ चल रहा था। सहसा पीछेसे गहरे पीले रंगका मेगनोलियाका ठेला धकेलते हुए आते एक व्यक्तिने कहा—'आइसक्रीम, बढ़िया आइसक्रीम।' बच्चेने मुड़कर पीछे देखा और रुकते हुए अनुनयपूर्ण स्वरमें कहा—'बाबूजी, आइसक्रीम।'

बाबू साहबने एक विरक्तिपूर्ण दृष्टि पहले आइसक्रीमके ठेलेवालेपर और फिर बच्चेपर डाली और किंचित् भर्त्सनाके स्वरमें बोले—'जग्गू, देख तेरी यही आदत तो मुझे पसन्द नहीं। अभी-अभी तो हम लोग चाय पीकर आ रहे हैं। अब इतनी जल्दी उसपर आइसक्रीम खाना क्या अच्छी बात है?'

जग्गूने, जिसमें अभी अपने पिता-जितनी बुद्धिमत्ता नहीं आ पाई थी, पाँव पटककर ज़िद करते हुए रोनेकी सरगम शुरू की और बाएँ हाथसे बाईं आँख मलते हुए 'ऊँ-हूँ-हूँ' करने लगा। इसपर बाबू साहब कुछ पिघले और जग्गूके साथ ठेलेवालेकी ओर लौटते हुए बोले—'एक आइसक्रीम देना।' ठेलेवालेने ठेलेका मुँह खोला और पतले काग़ज़में लिपटा हुआ एक आइसक्रीम निकालकर बाबू साहबको थमा दिया, जिसे उन्होंने सरसरी निगाहसे देखते हुए जग्गूके हाथमें दे दिया और ठेलेवालेसे पूछा—'कितने पैसे?'

'दो आने, बाबूजी!' ठेलेवालेने विनम्र भावसे कहा। बाबू साहबने पतलूनकी दाहिनी जेबसे चमड़ेका एक छोटा-सा बटुआ निकाला और उसे खोलकर उसमें से पैसे निकालने लगे।

जग्गू अभी आइसक्रीमपर से चिपका हुआ कागज़ उतार भी नहीं पाया था कि उसने देखा, उसके सामने लगभग उसीकी उम्रका एक श्याम-वर्ण अर्द्ध-नग्न बालक खड़ा भूखी आँखोंसे आइसक्रीमको घूर रहा है। उसकी खानेके लिए अधीर ज़बान बार-बार उसके होठोंको गीलाकर फिर मुँहमें चली जाती थी। उसके बाल रुक्ष और रंजसे भूरे हो रहे थे। उसके शरीरपर का जीर्ण-शीर्ण कोट इतना मैला हो चला था कि उसकी श्याम-वर्ण देहका ही भाग-सा मालूम होता था। उसकी ओर उठकर जग्गूकी आँखें, फिर जैसे उसके चेहरेपर से हटीं नहीं। अनायास उसका आइसक्रीमवाला हाथ उस लड़केकी तरफ़ बढ़ा।

लड़केने एक दबी हुई मुस्कराहटके साथ पहले आइसक्रीमकी ओर देखा और फिर जग्गूकी ओर। उसके दोनों हाथ आधे उठे और फिर सहसा बीच ही में रुक गए। इसपर जग्गूने अपना आइसक्रीमवाला हाथ और आगे बढ़ाकर इस कमीकी पूर्त्ति कर दी। उस लड़केने जग्गूके हाथसे आइसक्रीम ले ली और कृतज्ञता-भरी आँखोंसे उसकी ओर देखने लगा।

बाबू साहबने आइसक्रीमवालेको पैसे देकर बटुआ वापस जेबमें रख लिया और ज्योंही जग्गूकी ओर देखा, तो एकदम सन्न रह गए। एक भिखारीका लड़का जग्गूके सामने खड़ा आइसक्रीम खा रहा था और वह तृप्त-दीप्त आँखोंसे उसे आइसक्रीम खाते हुए देख रहा था। जग्गू द्वारा किए गए अपनी गाढ़ी कमाईके इस अपव्ययको वे सहन न कर सके और ज़ोरका एक तमाचा उस भिखारीके लड़केके गालपर जड़ ही तो दिया! एक तड़ाक्-से शब्दके साथ उसके हाथसे आइसक्रीम नीचे जा गिरा और उसकी आँखोंसे दो बड़े-बड़े गोल आँसू ढुलक पड़े। बाबू साहबने एक तीखी दृष्टि उसपर डाली और होठोंको बल देकर यह कहते हुए कि 'बड़े आए साले आइसक्रीम खानेवाले!' जग्गूका हाथ पकड़कर आगे बढ़ गए।

भिखारीके लड़केने कुछ क्षण गल-गलकर मिट्टीमें मिलते हुए उस आइसक्रीमको सजल नेत्रोंसे देखा और फिर दोनों हाथोंसे आँसू पोंछकर पराजित सैनिककी तरह लौट पड़ा। सामनेसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्रोंसे अपने शरीरकी लाज ढँके, गोदमें एक बच्चेको लिए, एक भिखारिन आती हुई दिखाई पड़ी। लड़केको देखकर भर्त्सनापूर्ण स्वरमें उसने कहा—'क्यों रे, इतनी देर कहाँ रोता फिर रहा था? मैं तो तुझे खोज-खोजकर थक गई।'

लड़केने अपनी आँखें नीची कर लीं और बिना कुछ उत्तर दिए अपनी माँके साथ हो लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

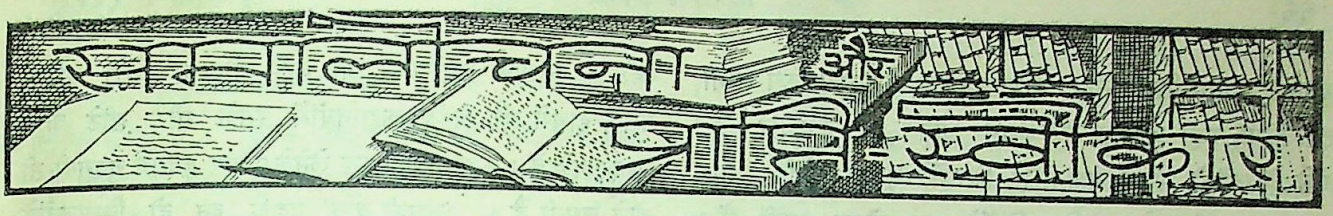

आवारा (अद्भुत, आधुनिक सामाजिक नाटक) : लेखक—श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ; प्रकाशक—सत्साहित्यिक सेवक समाज, भारती-भवन, उज्जैन (मालवा) ; पृष्ठ-संख्या ३+१०८ ; मूल्य १)।

प्रस्तुत तीन अंकोंके नाटकमें लेखकने मुख्यतया एक आवारा बूढ़े भिखारी, बुद्धूराम जो कभी सभ्य-समृद्ध समाजका अंग था, लाली बुद्धूरामकी बेटी और दयाराम—एक बिगड़े ज़मींदारके छोटे भाई तथा लालीके प्रेमी—की कहानी कही है। इन तीनोंका चरित्र-चित्रण करनेमें लेखकको सफलता मिली है, इसमें सन्देह नहीं। और इनके द्वारा 'उग्र'जीने हमारी कुछ सामाजिक त्रुटियोंपर तीखा व्यंग्य भी किया है, जो समयानुकूल है। किन्तु नाटककारका मुख्य उद्देश्य यह सब कुछ दर्शाना नहीं। 'मैं केवल कहानी सजाता हूँ', वे अपनी 'भूमिका और झपकी'में कहते हैं, 'मुझे कला कला ही के लिए (आदि, मध्य और अन्तमें) अच्छी लगती है।' उनके विचारमें विश्व-विख्यात नाटककार 'शा' साहब प्रचार और पोले सदाचारके विचारोंका ऐसा अम्बार ला देते हैं सुकुमार नाट्य-कलाकी गर्दनपर कि उसका दम बार-बार घुट-घुटकर रह जाता है। उनका दावा है कि नाटकको आदि, मध्य और अन्तमें पहले नाटक होना चाहिए, फिर कुछ और। यह तो ठीक है ; पर समझमें नहीं आता कि यहाँ-'शा' साहबको घसीट लानेका उद्देश्य क्या है? क्या लेखकका मतलब यह है कि उसका नाटक 'शा'के नाटकोंसे अच्छा उतरा है? यदि यह बात है, तो जिन पाठकोंने 'शा'के नाटक पढ़े हैं, वे 'प्रचार और पोले सदाचारके विचारों'के अतिरिक्त भी 'आवारा'को 'शा'के नाटकोंकी पंक्तिमें स्थान न दे सकेंगे।

'उग्र'जीने जो कहानी सजाई है, वह रोचक है ; किन्तु इसके कुछ स्थल खटकते हैं। एक-दो उदाहरण हम पाठकोंकी सेवामें पेश करते हैं। 'आवारा'में एक पात्र है भैरवलाल, जिसे श्रीपुर-ज़मींदारके नमकहराम मुनीमके रूपमें चित्रित किया गया है। यह आदमी अत्याचारी है और इसके अत्याचारोंके फल-स्वरूप कुछ बच्चों द्वारा इसकी हत्या करवाई गई है। बच्चे उसपर पत्थरोंकी इतनी बौछार करते हैं कि वह कुछ ही कालमें चल बसता है। ऐसा होना असम्भव तो नहीं ; किन्तु नन्हें निर्दोष बच्चों द्वारा ऐसा नृशंस कार्य करवाना न तो स्वाभाविक ही कहा जा सकता है और न ही सुरुचिपूर्ण। इसी भैरवलालकी चोरी हो जाती है। और चोरी करते हैं बुद्धूराम और उसकी बेटी लाली ; किन्तु सज़ा हो जाती है दयारामको। यह ठीक है कि दयाराम बिलकुल निर्दोष नहीं ; किन्तु जितना मसाला 'आवारा'में मिलता है, उसके बलपर कोई मामूली-सा फ़ौजदारी वकील भी उसे सज़ासे बचा सकता था।

एक बात और। नाटकको सुखान्त बनानेकी उतावलीमें ज़मींदार और उसके भाई दयारामको, जो बिलकुल ग़रीब हो चुके थे, एक बड़ा भारी दबा हुआ खज़ाना दिला दिया जाता है। यह खज़ाना हल चलाते हुए एकाएक मिल जाता है। इस 'परी-गाथा'-सी घटना द्वारा नाटक 'अद्भुत' तो अवश्य हो जाता है ; पर इसे 'आधुनिक' कहनेमें हिचकिचाहट होती है। यह १०८ पृष्ठोंका नाटक ३३ दृश्योंमें समाप्त हुआ है। दृश्य इतनी जल्दी-जल्दी बदलते हैं कि यदि नाटकमें आवश्यक संशोधन न किए जायँ, तो इसे रंगमंचपर खेलनेमें असुविधा होगी। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई अच्छी है और मूल्य भी उचित है।

—'अवनीश'

नींवकी ईंट : लेखिका—श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसेन जैन ; प्रकाशक—जीवन-कला-मन्दिर, सहारनपुर ; पृष्ठ-संख्या १६४ ; मूल्य १॥), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तक बहन चन्द्रवतीजीकी कहानियोंका संग्रह है। कहानियोंको हिन्दीकी मासिक पत्रिकाओंमें समय-समयपर प्रकाशित होते देखती रही थी। आज संग्रह-रूपमें इन्हें पाकर वास्तवमें सुख और सन्तोष हुआ। पुस्तकमें दिए हुए उनके चित्रकी मुखाकृतिमें स्वतन्त्र व्यक्तित्वकी जो छाप मुझे दीख पड़ी थी, उसीकी झलक मैंने उनकी प्रत्येक कहानीमें पाई। भूमिका भी आद्योपान्त पढ़ ली। वह भी एक सजीव कहानी-सी रोचक लगी। नपे-तुले शब्दोंमें लेखिका जो-कुछ भी पुस्तकके प्रारम्भमें कह गई हैं, यथासंगत है।

'झींकती भिखारिन'के विषयमें जब मैंने भूमिकामें पढ़ा, तो मेरे मनमें सन्देहके कुछ बादल-से उमड़ने लगे। सोचा, शायद ही कहानी अच्छी लगे। जिस कहानीके कथानकके लिए भखारियोंकी खोजमें इधर-उधर आदमी दौड़ाए जायँ, उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयकी अनुभूतिके साथ वास्तविकताका तारतम्य किस सीमा तक होगा, यही आशंका मेरे मनमें जाग्रत थी—यद्यपि कुछ ऐसे लेखकोंको भी मैं जानती हूँ, जिन्होंने पूसकी ठंडी रातें फुटपाथपर ठिठुरते हुए भिखारियोंके साथ सोकर काटी हैं। किन्तु मैं स्वीकार करती हूँ, कहानी पढ़ लेनेके पश्चात् मुझे अपनी यह आशंका निर्मूल प्रतीत हुई। 'झींकती भिखारिन'में लेखिकाने नारी और पुरुषके जीवनके चिरन्तन सत्य चित्र खींचे हैं।

पाठकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे इस कहानीको अवश्य पढ़ें। सूरदाससे झींकतीका मिलन, कुछ दिनोंका पारिवारिक जीवन और 'परी'का आगमन चलचित्रके समान आँखोंके सामने तैरने लगते हैं। 'झींकती'का सुख 'परी'की आँखोंमें खटक गया। नारी-सुलभ ईर्ष्याके वशीभूत हो 'परी'ने सूरदासको सम्मोहिनी मदिरा पिला ही दी। 'परी'के आकर्षणसे वह न बच सका। कुछ देर पहले जो मना रहा था 'परी'को प्लेग हो जाय, वही सूरदास दिन-भरकी गाढ़ी कमाई उसे दे आता है और 'झींकती'के लिए बच जाता है केवल विषाक्त पारिवारिक जीवन। इस कहानीका शीर्षक बहुत ही उपयुक्त है। कहानी पढ़ लेनेके पश्चात् मैं कुछ देरके लिए निस्तब्ध-सी रही। यही सोचती थी कि पुरुषके अन्तस्तलमें छुपी हुई वासना, नवीनताके प्रति मोह तथा 'और कुछ और'की लालसासे न जाने कितनी झींकतियोंकी सृष्टि होती रहती है। शायद अनादि-कालसे ही यह क्रम चला आ रहा है।

'अंजनहारी' वास्तवमें उत्कृष्ट कहानी है। कहानी पढ़ते समय फ्रेंच ग्राम-गीतका उद्धरण असंगत-सा ज्ञात हुआ। यहाँपर कहानी-लेखिका भूल जाती हैं कि उनकी कहानीका प्रवाह जिस माधुर्य व गतिके साथ तरंगित हो आगे बढ़ रहा है, उसमें वह अर्द्ध-पृष्ठ बाधक है, सहायक नहीं। उस समय यह जान लेनेको जी नहीं करता कि वह गीत क्या था। लेखिकाने वहाँ तक जो-कुछ कहा है, उससे सारा दृश्य बिल्कुल सुलझ जाता है। फिर इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। पढ़ लेनेके पश्चात् लेखिकाका दुःख पुंजीभूत हो बहुमुखी धाराओंमें सामने उमड़-सा आता है। हृदयकी सारी सहानुभूति उनके साथ हो जाती है। कहानी वास्तवमें बड़ी मार्मिक और सजीव हुई है।

'वे तीन दिन', 'है न यही बात', 'तीन साल पहलेकी बात', 'ग़रीबका ईमान', 'भैयाकी डायरी' आदि कहानियाँ करुण रससे ओतप्रोत हैं। 'धवल छत्रकी छायामें' मीठी चुटकी खूब रही। 'गुलाबी चुनरिया', 'जब घरमें चोर था', 'मेरी चुटिया उसके हाथमें थी' आदि कहानियोंमें रसके मीठे छींटे बहुत सुन्दर पड़े हैं। कहानियोंको पढ़ लेनेके पश्चात् हृदयमें गुदगुदी-सी होने लगती है। 'जंगूकी बात' यद्यपि इन दो विभाजनोंके बीचमें आती है; पर अन्तमें करुणाके प्रवाहमें जंगूकी बातकी वास्तविकता सजग हो जाती है। 'वह भीख माँगती आई' में जासूसी कथानक-सा विद्यमान है, यद्यपि वह चीज़ भी अच्छी है। 'नींवकी ईंट'-शीर्षक कहानी अपने नामको सार्थक करती है। उसमें गाम्भीर्यका सुन्दर पुट विद्यमान है।

कुल मिलाकर यह कहना सर्वथा सत्य है कि सभी कहानियोंकी अपनी-अपनी विशेषता है। सफल कलाकारकी कूचीकी सभी रेखाएँ स्पष्ट हैं और रंगोंका सामंजस्य एक अनोखे मिठाससे भरा है। एक कुशल कलाकारके हाथसे स्थापित इस 'नींवकी ईंट' का यथोचित सम्मान हो एवं इसके आधारपर निकट भविष्यमें वे सुन्दर साहित्यिक प्रासादका निर्माण कर सकें, यही अभिलाषा है। —जयन्ती पाण्डेय, बी० ए०

हमारी चिड़ियाँ : लेखक—कुँवर सुरेशसिंह; प्रकाशक—भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग; ६॥×८" साइज़के १४ पृष्ठ; मूल्य २॥), पक्की तिरंगी जिल्द; आर्ट पेपरपर कई तिरंगे और सादे चित्र, साधारण चित्र अनेक।

हमारी ही दुनियामें, हमारे बहुत निकट, पक्षियोंकी एक ऐसी दुनिया है, जो हमारी ही तरह रोती, गाती, हँसती, खेलती और सृष्टिके रचना-विनाश-संघर्षके पथपर निरन्तर चली जा रही है। उसके सब व्यापार हमारी आँखोंके सामने होते हैं। उसका गान सुनकर कभी-कभी हम आनन्द-विभोर हो उठते हैं। पर हमारा उससे हृदय या आँखोंका कुछ भी परिचय नहीं। हम उससे उतने ही अनभिज्ञ-अबोध हैं, जितने किसी दूसरे नक्षत्रकी दुनियासे। इसमें दोष है हमारी विकृत मनोवृत्ति और विघातक शिक्षाका, जो हमें इससे उदासीन बनाए हुए हैं।

अन्य विदेशी भाषाओंकी बात हम नहीं कह सकते; पर जहाँ तक हमारी जानकारी है, अंगरेज़ीमें पक्षियोंपर न केवल दर्जनों विशद सचित्र ग्रन्थ ही हैं, बल्कि कई प्रमुख पक्षियोंमें से तो प्रत्येकपर एकाधिक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं। दुर्भाग्यवश हिन्दीमें जिन अनेक वैज्ञानिक विषयोंपर अच्छे और सुलभ ग्रन्थोंकी कमी है, उनमें से एक यह भी है। कुछ समय पूर्व श्री पारसनाथसिंह-लिखित 'पक्षी-परिचय'ने इस कमीको कुछ अंशोंमें पूरा किया था और भविष्यके लिए आशा भी बँधाई थी; पर वह पूरी नहीं हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन इस दिशामें एक नवीन एवं स्पृहणीय प्रयास है। इसमें विद्वान लेखकने कुल ७२ ऐसी चिड़ियोंका वर्णन किया है, जो प्रमुख और हमारे विशेष निकट हैं। पक्षियोंका इतिहास और उनके कथित विकासका वर्णन बड़ी सरल और जानदार भाषामें किया गया है। उनके सादे और रंगीन चित्रोंसे उन्हें पहचानने अथवा उनका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करनेमें बच्चे और साधारण अक्षर-ज्ञानवाले व्यक्ति भी सफल प्रयास हो सकते हैं। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई एवं सजावट बहुत ही सुन्दर एवं उपयुक्त हुई है। ऐसी सुन्दर एवं उपयोग पुस्तक हिन्दी-संसारको भेंट करनेके लिए लेखक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। हमारा विश्वास है कि हिन्दी-संसार इस उपयोगी पुस्तकका यथेष्ट स्वागत करेगा। हमारी रायमें तो यह पुस्तक न केवल प्रत्येक नगर और ग्रामके घर, स्कूल, कालेज और पुस्तकालयमें ही पहुँचनी चाहिए, बल्कि लड़के-लड़कियोंके पाठ्यक्रममें भी इसे स्थान मिलना चाहिए। —'भग्नदूत'

सर सैयद अहमदख़ाँकी जीवनी : लेखक—सैयद कासिमअली, साहित्यालंकार ; प्रकाशक—जाफ़री ब्रदर्स, इलाहाबाद ; पृष्ठ-संख्या १७६ ; मूल्य १।), अजिल्द।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें भारतवर्षके जिन महाभागोंने सार्वजनिक सेवा-क्षेत्रमें अपने जीवनको उत्सर्ग किया था, उनमें सर सैयद अहमदख़ाँ भी एक थे। उस पीढ़ीके अन्य राष्ट्रीय नेताओंसे उनकी मनोवृत्ति भिन्न थी—वे पहले मुसलमान थे, बादमें हिन्दुस्तानी या और कुछ। सन् १८७६ तक तो वे सरकारी नौकरीमें मशगूल रहे और उसके बाद पेन्शन लेकर मुसलमानोंके विकास और उत्कर्षमें कटिबद्ध हुए। शिक्षाके क्षेत्रमें मुसलमानोंकी स्थिति शोचनीय थी। अंगरेज़ी पढ़ना उनके लिए शरीअतसे खिलाफ़ बात थी। मुल्ला और मौलवियोंने काफ़िरी ज़ुबान अंगरेज़ीसे दूर रहनेका फ़तवा दे रखा था। यह बात सैयद अहमदको बहुत खटक रही थी। वे सन् १८५७ की राजक्रान्तिके समय अंगरेज़ोंके पक्षमें थे, इसलिए विशेष रूपसे पुरस्कृत और सम्मानित किए गए थे। अंगरेज़ी सभ्यता और भाषाका उनपर गहरा प्रभाव था। अतएव आपने मुसलमानोंमें अंगरेज़ी भाषा और उच्च शिक्षाका प्रचार करनेके लिए अलीगढ़में मुस्लिम-कालेजकी बुनियाद डाली, जो अब विश्वविद्यालयके रूपमें परिणत हो गया है। उसके बाद ही भारतमें साम्प्रदायिक शिक्षा-संस्थाओंकी सृष्टि और वृद्धि होने लगी। सर सैयद अहमदने भारत-भूमिमें साम्प्रदायिकताका जो बीजारोपण किया था, वह आज हिन्दू-मुस्लिम-पृथक्करणके रूपमें वटवृक्ष बन गया है। ख़ैर, सैयद साहब जैसे पक्के राजभक्त थे, वैसे ही सच्चे कौमपरस्त भी। वे इस देशकी एक विमल विभूति थे। उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता और कार्यदक्षता हम सबके लिए आदर और अभिमानकी वस्तु है। सैयद कासिमअलीने उनकी जीवनी लिखकर हिन्द देश और हिन्दी-भाषाका अच्छा उपकार किया है। इसमें 'सरस्वती'-सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल-लिखित एक छोटी-सी भूमिका भी है, जिसमें लेखककी इस कृतिको 'साहित्यिक दृष्टिसे अति महत्त्वपूर्ण' बतलाया गया है। पुस्तककी भाषा प्रांजल है। शैली भी सरस है। हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंकी नितान्त आवश्यकता है, जिनमें मुसलमान महापुरुषोंके चरित्र-चित्रण किए गए हों। पुस्तक परिश्रम और योग्यतासे लिखी गई है। इसका बाहुल्य प्रचार वांछनीय है। छपाई भी अच्छी है।

वर्त्तमान जगत् : लेखक—डा० लक्ष्मीचन्द खुराना और श्रीकृष्णचन्द्र विद्यालंकार ; प्रकाशक—श्री आत्माराम एण्ड सन्स, लाहौर ; पृष्ठ ३२९ ; मूल्य २।), सजिल्द।

यह वर्त्तमान विश्वकी विविध विश्रुत वार्ताओं और वस्तुओंका विश्लेषणात्मक विवरण है। लेखकोंने गागरमें सागर भरनेका भगीरथ प्रयत्न किया है। इसमें पृथिवीकी उत्पत्तिसे लेकर भविष्यके गर्भकी बातें तक बता दी गई हैं। इसमें वर्णित प्रत्येक विषयपर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है, अतएव लेखकोंको संसारकी सामयिक स्थितिको विहंगम-दृष्टिसे ही अवलोकन करना पड़ा है। पुस्तक पन्द्रह अध्यायोंमें विभाजित है और कोई भी अध्याय असंबद्ध और अरोचक नहीं है। यह लेखकोंके भिन्न-भिन्न विषयोंके अध्ययन और अनुशीलनका ही निष्कर्ष है। इस समय संसारके संघर्षसे कोई भी देश विरक्त नहीं रह सकता, फिर भारत ही कैसे उपेक्षा कर सकता है? संसारमें जो-कुछ भला-बुरा हो रहा है, उससे अनजान और असावधान रहना राष्ट्रीय दृष्टिसे केवल अवांछनीय ही नहीं, वरन् आत्मघात भी है। इस खयालसे पुस्तक उपयोगी है। इसके पाठसे वर्त्तमान जगत्की परिस्थिति और प्रगतिकी एक झलक दिखाई दे जाती है। विषय-निर्वाचन श्लाघ्य, भाषा सजीव और शैली सुन्दर है। छपाई भी साफ़-सुथरी है। साधारण पाठकोंको इसमें कई नई और कामकी बातें मिलेंगी।

—(स्वामी) भवानीदयाल संन्यासी

प्रणय-गीत : रचयिता—श्री देवराज, एम० ए० ; प्रकाशक—आलोक-मन्दिर, रामपुर स्टेट ; पृष्ठ-संख्या ६७ ; मूल्य ।।)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगम : रचयिता—श्री कुमुद विद्यालंकार ; प्रकाशक—नवसन्देश-ग्रन्थ-रत्नमाला, आगरा ; पृष्ठ-संख्या ६४ ; मूल्य ।।।) ।

'प्रणय-गीत' और 'संगम' दोनोंमें काव्यकी सरस धाराका प्रवाह है ; पर जहाँ 'गीत' अपने ही वातावरणको ध्वनित करते हैं, 'संगम'में अपनेसे दूर—बहुत दूर—का भी संकेत झलकता है। गीतकारने जीवनकी आर्थिक व्याख्या तक अपनेको सीमित नहीं रखा, प्रत्युत उससे विद्रोह किया है। आप लिखते हैं—'इस पुस्तकके गीत (जीवनके आदर्शोंमें) बढ़ते हुए सन्देहवाद और जड़वादके विरुद्ध एक धीमी-सी आवाज़ हैं।' पुस्तकमें चूँकि मानवी प्रेमका राग है, इसलिए आगे कहा गया है—'मानवी प्रेम न तो देवताओंका प्रेम है, न पशुओंका ; कवि जिस प्रेमका वर्णन करता है, वह इस—मानवी—जगतकी चीज़ है। संसारके सन्तोंको मैं कवि नहीं मानता। जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं, वह उनका स्वाभाविक क्रीड़ा-क्षेत्र है। इसलिए वे कविसे ऊँची कोटिके प्राणी हो सकते हैं, कवि नहीं।' लेखकने 'कवि'की जो यह व्याख्या की है, वह 'कवि'को 'मानवी प्रेम'की सीमामें जकड़ देती है, अतः ग्राह्य नहीं हो सकती। 'सन्तों'में ऐसे कई गायक हो गए हैं, जिनके गीत स्वाभाविक काव्यकी माधुरीसे सराबोर हैं। भावावेगसे आत्म-विस्मृत हो अनुभूति-राग जिस हृदयसे छिड़ता है, वह कवि ही है—चाहे उसका बाह्य रूप 'सन्त' हो, चाहे मानव। 'स्त्री-पुरुषका प्रेम-प्रणय एक लक्ष्यकी ओर ले जानेके लिए है', इसमें लेखकसे हमारा मतभेद नहीं है। स्त्री-पुरुषका प्रणय-गान ही कविता है, इसे ज़रूर नहीं स्वीकार किया जा सकता। 'गीतों'में चूँकि एक तरुणकी शरीरी भूख-प्यासकी ललचाहट है, इसलिए उनमें स्वभावतः खिंचाव है। मण्डपके नीचे अवगुण्ठिताके लाज-समुद्रका अवगाहनकर कवि 'पहिली मिलन-रात'में उसके मुखचन्द्रके आलोकसे सिहरन अनुभव करते हैं। उसके पश्चात् 'उसके' समर्पणके प्रथम चुम्बनकी 'उष्णता' उन्हें प्राप्त होती है। प्रतीत होता है, यह समर्पण-सुख शीतकालमें नसीब हुआ है, अन्यथा विज्ञानकी भाषामें चुम्बन 'उष्ण' होकर भी अनुभव-कर्त्ताको 'शीतलता' ही प्रदान करता। कई गीतोंमें 'चुम्बन'की उमंग सरस रही है। प्रणय-गीतमें जहाँ मानवी प्रणयकी महिमा हज़ार बार घोषित है, ओठोंका पुनः-पुनः क्रीड़ा-विलास अनिवार्य ही था, यद्यपि उससे तटस्थ व्यक्ति ऊब भी सकता है। कविने अपनी 'रूपरानी'का मुस्कराना, पलंगपर लेटना आदिका वर्णन बड़ी सरसतासे किया है। जहाँ 'अपनी बातों'को उन्होंने गीतका रूप दिया है, वहाँ तक तो कविताकी धारा बड़े मज़ेसे बहती है ; पर जहाँ उन्होंने अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेका प्रयत्न किया है, वहीं वह सूख गई है। तर्क भावावेशके साथ चल ही नहीं सकता। सब मिलाकर 'प्रणय-गीत' मादक है, आकर्षक है।

'संगम'के भूमिका-लेखकने ठीक ही लिखा है—'('संगम'के गीतोंमें) आँसू, असन्तोष और विद्रोहके भाव एक साथ मिलकर अस्पष्ट हो चलते हैं, और तीनोंमें से किसी एकको पहचानना मुश्किल हो जाता है। कविकी स्थिति इन पंक्तियोंसे प्रकट हो जाती है :—

'मैं नहीं विरक्त दुखोंसे हूँ, अनुरक्त न सुख-विलासपर हूँ ;
क्षण-भरकी है बस, देर, अभी संगम-थलमें हूँ, सागर हूँ।'

और भी :—

'क्या रोऊँ—क्या गाऊँ ? मन ही नहीं दिखाता ठीक-ठिकाने ;
विरहिणि संयोगिता जाती है, मरघटमें सुहाग बिखराने।'

रीतिकालीन कवियोंके समान कवि दूरकी कौड़ी भी लाए हैं :—

'उठते हुए हृदय - घावोंको,
कहता जग कुचका उभार यह।'

यद्यपि 'संगम'की कविताओंमें बुद्धितत्त्वकी प्रधानता है फिर भी उनमें गति है, समा है और सन्देश भी।

—विनयमोहन शर्मा

प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तकोंकी एक-एक प्रति हमें प्राप्त हुई है, जिनकी प्राप्ति हम सधन्यवाद स्वीकार करते हैं :—

(१) **'रत्नाकर'** (पहला भाग) : प्रकाशक—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ; पृष्ठ-संख्या ३०५, मूल्य १), अजिल्द। (२) **हिन्दू राज्य-तन्त्र** (दूसरा खण्ड) : अनुवादक—श्री रामचन्द्र वर्मा ; प्रकाशक—उपर्युक्त ; पृष्ठ-संख्या ४२२, मूल्य ३), अजिल्द। (३) **हमारी सड़कें और रेलें** : प्रकाशक—अन्जुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू ; मिलनेका पता—हैदराबाद-बुकडिपो, चादरघाट रोड, हैदराबाद (दक्षिण) ; पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य ।), सजिल्द। (४) **हिन्दी-विश्वविद्यालय-पंचांग** (१९९०-२०००) : सम्पादक—श्री गंगाधर इन्दूरकर ; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ५६२, मूल्य ३), कपड़ेकी पक्की जिल्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

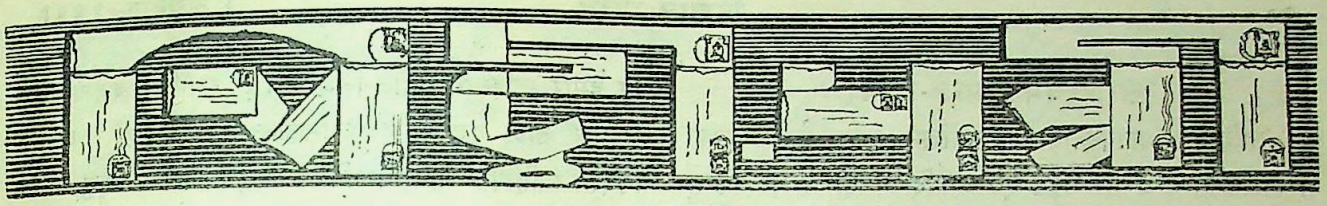

राहुलजीकी 'प्रभा'

अगस्त, १९४२ के 'विशाल भारत' में श्री राहुल सांकृत्यायनकी 'प्रभा' नामक कहानी पढ़ी। वाल्मीकिके राम वह नरचन्द्र हैं, जो अपने गुणोंसे उच्च होकर देवता बन गए हैं। इस बातका समर्थन 'रामायणी कथाकी भूमिका' में डाक्टर टैगोरने भी किया है और इन्हीं गुणोंके कारण हिन्दू-जनता त्रेता-युगसे आज तक भगवान रामके प्रति सम्मान प्रदर्शित करती आई है। वाल्मीकिने यदि रामकी प्रशंसा की है, तो उनकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना करनेसे भी वे नहीं चूके हैं। बालि-वधके स्थलपर उन्होंने रामको दोषी ठहराया है। यही नहीं, धर्मकी दृष्टिसे भरत रामकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, ऐसा भी उन्होंने एक स्थानपर लिखा है। परन्तु रामकी कीर्त्तिके इस पक्षपात-रहित वर्णनमें राहुलजी एक आश्रित कवि द्वारा अपने आश्रयदाताकी की गई स्तुति ही देख सके! आप लिखते हैं—'कोई ताज्जुब नहीं, यदि वाल्मीकि शुंग-वंशके आश्रित कवि रहे हों...और शुंग-वंशकी राजधानीकी महीमाको बढ़ाने ही के लिए उन्होंने जातकोंके दशरथकी राजधानी वाराणसीसे बदलकर साकेत या अयोध्या कर दी और रामके रूपमें शुंग-सम्राट् पुष्यमित्र या अग्निमित्रकी प्रशंसा की।...'

पता नहीं, राहुलजीने ये पंक्तियाँ किस इतिहासके आधारपर लिखी हैं, किस गवेषणाके बलपर? मर्यादापुरुषोत्तम रामके वंशज शुंग-वंशी पुष्यमित्र या अन्य कोई 'मित्र' ठहराए जा सकते हैं, यह सोचकर ही मेरी हिन्दू-आत्मा बौखला उठी है। आदिकवि वाल्मीकिको भी चाटुकार कवियोंमें स्थान दिया जा सकता है, इसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

वर्षोंके अनुसन्धानके पश्चात् संस्कृतके साहित्यकारोंने यह निष्कर्ष निकाला था कि संस्कृत-नाटक इस देशकी निजी सम्पत्ति है, किसी बाहरी प्रेरणाने इसके इतिहासमें कोई स्थान नहीं प्राप्त किया है। परन्तु आज राहुलजी फिर वही 'यूनान और हिन्दुस्तान' का पुराना क़िस्सा छेड़ बैठे हैं। 'प्रभा' में आपने यह जतानेका भरसक प्रयत्न किया है कि संस्कृतके प्रथम नाटककार अश्वघोषको नाटक लिखनेकी प्रेरणा यूनानी नाटकोंसे प्राप्त हुई। यह मैं मानता हूँ कि गल्पकारको यह अधिकार रहता है कि वह अपनी कृतिको अधिक कलामय एवं रुचिकर बनानेके लिए ऐतिहासिक तथ्योंकी परवाह न करे। परन्तु जो कहानियाँ केवल किसी विशेष धर्म (और इस कहानीमें बौद्ध धर्म) व सम्प्रदायका महत्व सिद्ध करनेके लिए ही लिखी जाती हैं, वे कला या साहित्यके क्षेत्रके अन्तर्गत नहीं आ सकतीं। वहाँ ऐतिहासिक तथ्योंकी अवहेलना करना एक महान दोष है।

भगवान बुद्धके प्रति मुझे श्रद्धा है, और हममें से अधिकांश हिन्दू उन्हें हिन्दू-धर्मके महान सुधारकोंमें गिनते हैं। परन्तु हम यह बात कदापि पसन्द नहीं करेंगे कि तथागतके अनुयायी हिन्दू-धर्मशास्त्रोंसे इस प्रकारकी स्वतन्त्रता लें, जैसा कि राहुलजीने अपने कहानी-संग्रह 'वोल्गासे गंगा'में ली है। ब्राह्मणोंके अपने-आपको सबसे ऊँचा समझने तथा जाति-गर्वसे सभी हिन्दू चिढ़े हुए हैं। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि समय-समयपर हम लोग इसी महान वर्णसे पथ-प्रदर्शकका काम लेते रहे हैं। यदि हमारा पतन उनकी भूलसे हुआ, तो हमारी उन्नतिमें भी उनका कुछ कम हिस्सा नहीं है।

राहुलजी कह सकते हैं कि कहानीके एक पात्रके प्रकट किए हुए विचारोंके लिए हम कहानीकारको दोषी नहीं ठहरा सकते। परन्तु एक बार कहानीको आदिसे अन्त तक पढ़ जाइए, आप निश्चय ही यह अनुभव करेंगे कि स्वयं राहुलजी ही अपने कहानी-नायकके मुखसे अपने ब्राह्मण-विरोधी विचारोंका प्रचार कर रहे हैं। मैं कड़ी-से-कड़ी समालोचनाको भी बुरा नहीं समझता, यदि उसमें कोई छुपा हुआ स्वार्थ न हो। यदि किसी विशेष धर्म या सम्प्रदायकी प्रशंसाके लिए दूसरे धर्मपर उँगली उठाई जायगी, तो हिन्दू-समाज उसकी भली प्रकार प्रतारणा किए बिना नहीं रहेगा।

लेंगले रोड, लाहौर] —अजीत चोपड़ा

[यह चिट्ठी मनोरंजक है। मुझे तो इसमें जवाब देनेकी कोई चीज़ नहीं मिलती। मेरी प्रत्येक कहानीके पीछे मेरा आज तकका अध्ययन है। उसे लेखबद्ध करना मेरे वशकी बात नहीं है। रहा प्रोपेगेण्डा? सत्यमें प्रोपेगेण्डा करनेकी अपनी निजी ताकत ऐसी है कि उसे सामने ला-भर देनेकी ज़रूरत है। सभी धर्मोंको मैं 'धारक' स्थिति-स्थापक सयझता हूँ, इसलिए उनके प्रति दया-मयाका सवाल नहीं उठ सकता। समाजमें घोर परिवर्त्तन होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। हाँ, उन्हें शीघ्र गतिसे अभीष्ट दिशामें करनेकी जरूरत है। —राहुल सांकृत्यायन]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यमें समाज-चित्र

साहित्य मानव-जीवनकी सर्वोत्तम कृति है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी अटूट एवं अनादि-सा ही है; किन्तु यह सम्बन्ध केवल निष्क्रिय नहीं। अपने 'जीवनके मुकुर'की देखभालमें मनुष्य सदासे ही सचेष्ट रहा है। यही कारण है कि इसकी व्याख्या प्रायः सर्वांगीण एवं त्रुटिपूर्ण मिलती है।

गत नवम्बर, १९४२ के 'विशाल भारत'में एक लेख देखनेको मिला, जिसका शीर्षक है 'साहित्यमें समाज-चित्र'। इसके विद्वान लेखक हैं डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त। इसका प्रारम्भ होता है साहित्यके रूपकी समस्याको लेकर। आश्चर्य तो यह देखकर हुआ कि वे साहित्यके विविध अंगोंमें से केवल दोको लेकर उनमें पारस्परिक पूरकताका भाव नहीं देख पाते, वरन् उनमें उन्हें अनावश्यक विरोध ही दीख पड़ता है। क्या यह सत्य नहीं कि 'साहित्य' शब्द सदासे ही—क्या हमारे देशमें और क्या अन्यत्र—दो अर्थोंमें प्रयुक्त होता आया है? एक विशिष्ट और दूसरा व्यापक। व्यापक अर्थमें केवल इतिहास ही क्या, वरन् सारे मानव-ज्ञानका 'प्रकाशन' भी साहित्यके ही अन्तर्गत माना जाता है; किन्तु विशिष्ट अर्थमें उसका प्रयोग विशुद्ध 'रसात्मक' रचनाओंके लिए ही किया जाता है। किन्तु इनमें पारस्परिक विरोधकी गुंजाइश कहाँ?

लेखमें आद्योपान्त यही सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई है कि साहित्यमें 'समाज-चित्र' देखनेको नहीं मिलता। समाजसे लेखकका आशय निम्नवर्गके समाजसे ही है। आजकलके ज़मानेमें यह विचार मौलिक नहीं, वरन् इसके विषयमें यदि यों कहा जाय तो ज़्यादा ठीक होगा कि हमारे देशमें भी इधर कई वर्षोंसे 'समाजवाद'के विस्तारके साथ-साथ यह विचार भी एक 'झक'की तरह फैल गया है। 'प्रगतिवादी' तो इसका बीड़ा ही उठाए फिरते हैं। परन्तु इस लेखमें तो वह 'झक' अपने और भी विकृत रूपमें दीख पड़ती है। लक्ष्यके प्रतिपादित करनेके लिए जितने उदाहरण दिए गए हैं, प्रायः सभी विदेशी साहित्योंके हैं, और उनके आधारपर निकाले हुए निष्कर्ष लागू किए गए हैं हमारे देशके साहित्यपर। ये सारे उदाहरण लेखकके प्रचुर पाण्डित्य एवं अध्ययनके प्रमाण भले ही हों, किन्तु तर्कयुक्त नहीं; क्योंकि जहाँ तक हमारे साहित्यका सम्बन्ध है, वह तो हमारे समाज-चित्रोंसे खाली नहीं। 'पृथ्वीराजरासो'से लेकर जायसी, तुलसी, सूर आदिकी अमर कृतियोंमें तो समाज-चित्र भरे पड़े हैं। तब हम यह कैसे कहें कि हमारे साहित्यमें समाज-चित्र नहीं? इसीलिए कहना पड़ता है कि डा० दत्त महोदयके सिद्धान्त तर्कयुक्त नहीं; क्योंकि विदेशी साहित्यके आधारपर निकाले गए निष्कर्ष वे लागू करना चाहते हैं हमारे साहित्यपर, जो सर्वथा एक-दूसरेसे भिन्न हैं।

विश्वविद्यालय, कलकत्ता] —(प्रोफ़ेसर) वसन्त

विश्वविद्यालय और हिन्दी-परीक्षाएँ

भारतीय हिन्दी-विश्वविद्यालयों—जैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा बिहार-विद्यापीठ, देवघर आदि—की परीक्षाएँ अन्य विश्वविद्यालयों द्वारा मान्य नहीं समझी जातीं। प्रान्तीय सरकारोंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको सरकारी नौकरी देनेमें ज़रूर कुछ सुविधा दी; किन्तु उस सुविधासे वास्तवमें कितने लोगोंने लाभ उठाया या उठा सके? सिद्धान्तकी दृष्टिसे प्रान्तीय सरकारोंने अपनी इस घोषणासे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा विद्यापीठ आदिकी परीक्षाओंको अंगरेज़ी-विश्वविद्यालयोंकी परीक्षाओंके बराबर स्वीकार कर लिया है; किन्तु अंगरेज़ी-विश्वविद्यालयोंने अभी तक इन परीक्षाओंको मान्य नहीं किया है। क्या विश्वविद्यालयोंके अधिकारी इसपर विचार करेंगे?

विश्वविद्यालयोंने अपने नियम इतने कड़े और संकीर्ण बनाए हैं कि उनके कारण कालेजमें पढ़नेवालोंके सिवा अन्य कोई भी व्यक्ति उनकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होकर लाभ नहीं उठा सकता। इस प्रकार बहुत थोड़ी संख्यामें अन्य लोग इन विश्वविद्यालयोंकी शिक्षासे लाभ उठा सकते हैं।

आज इस बातकी महती आवश्यकता है कि अंगरेज़ी-विश्वविद्यालय सम्मेलन और विद्यापीठ-जैसी संस्थाओंकी हिन्दी-परीक्षाओंको मान्य करें और योग्य व्यक्तियोंको निजी तौरपर अपनी उच्च परीक्षाओंमें बैठनेका अवसर दें। इसके लिए भारतीय यूनिवर्सिटी-एक्टमें भी आवश्यक सुधार होनेकी आवश्यकता है, जिससे विश्वविद्यालय अपने नियमोंमें इस प्रकारकी सुविधाएँ देनेमें समर्थ हो सकें।

रायपुर] —घनश्यामप्रसाद 'श्याम'

भूल-सुधार

गतांकमें बँगला-हिन्दी-मण्डल, दिल्लीकी जो सूचना छपी है, उसके नीचे श्री वियोगीहरिका नाम मन्त्रीकी जगह छप गया है। उनसे हमें मालूम हुआ है कि वे उक्त संस्थाके मन्त्री नहीं हैं, उन्होंने उक्त सूचना केवल प्रकाशनार्थ भेजी थी। आशा है, पाठक इस भूलको सुधार लेनेकी कृपा करेंगे।—सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

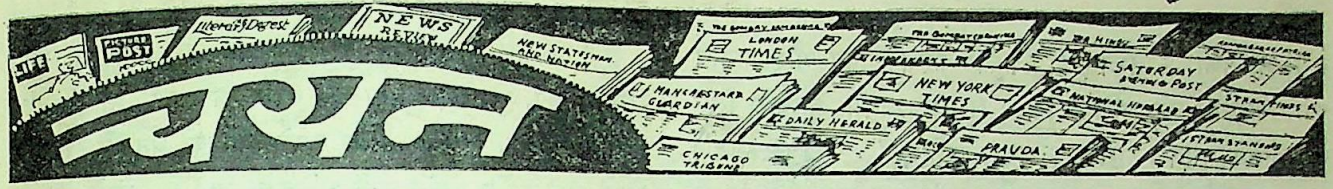

विजय या शान्ति ?

युद्धोंका अन्त विजयमें होना चाहिए या शान्तिमें, इस सम्बन्धमें दीर्घ कालसे मनुष्योंमें मतभेद रहा है। आम तौरपर युद्धोंका अन्त एककी विजय और दूसरेकी पराजयमें ही होता रहा है। विजेता शान्तिका ख़याल छोड़कर अपनी विजयका लाभ उठाने और विजित अपनी पराजयका बदला लेनेके लिए शक्ति-संचयकर विजेताको नीचा दिखानेका यत्न करनेमें लग जाता है।

पर यह मनोवृत्ति युद्धोंको निरन्तर जारी रखती है और इस प्रकार मनुष्य और मानवताका विनाश भी चिरन्तन काल तक जारी रहता है। जैसा कि बुद्धने कहा है, जय और पराजयका परिणाम फिर युद्ध है। कर्मका सिद्धान्त एकको विजयको पराजयमें और दूसरेको पराजयको विजयमें परिणत करनेके लिए प्रेरित करता है।

पर संघर्ष और युद्धके पक्षपातियोंका कहना है कि युद्ध अनादि कालसे चला आया है और अनन्त काल तक चला जायगा। शान्तिसे मनुष्य अकर्मण्य और अप्रगतिशील बन जायगा। किन्तु यह सरासर ग़लत दलील है। ईसासे पूर्व छठी शताब्दीमें भगवान बुद्धने कहा था—'विजय शत्रुताको जन्म देती है। पराजयसे लोग दुःखी होते हैं। किन्तु विजय और पराजयका त्याग करनेवाले ही शान्ति और सुखसे रह सकते हैं।'

प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक डा० भगवानदासने अपनी नई पुस्तक 'विश्व-युद्ध'में भी इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए कहा है कि इस युद्धका अन्त एक पक्षकी विजय और दूसरे पक्षकी पराजयके रूपमें न होकर विश्व-शान्तिकी स्थापनाके रूपमें ही होगा। दोनों पक्षोंके अति दुर्बल एवं हीन हो जानेपर ही शान्तिकी स्थापना हो सकती है। ('दि थियोसोफिस्ट')

एक वैज्ञानिक आविष्कार

अमेरिकन रासायनिक-समितिने कोर्नेल-विश्वविद्यालयके प्रोफ़ेसर विन्सेन्ट डू गिवनू द्वारा बायोटिनके रासायनिक संयोगका आविष्कार कर लिए जानेकी घोषणा की है। बायोटिन प्रकृतिका सबसे अधिक पोषक तत्व है और बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। इस आविष्कारके फल-स्वरूप संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा बायोटिन बनानेका उपाय निकल आयगा। इस समय समस्त संसारमें केवल $\frac{1}{4}$ औंस बायोटिन उपलब्ध है।

प्रसिद्ध रासायनिकोंका मत है कि प्रोफ़ेसर डू गिवनूने बायोटिनके अणुके जिस तीन परिमाणवाले रूपका आविष्कार किया है, वह आधुनिक विज्ञानकी एक बड़ी भारी सफलता है, जिससे रसायन, प्राणिशास्त्र और औषधि-विज्ञानके क्षेत्रोंमें महत्त्वपूर्ण नई उन्नति हो सकेगी।

बायोटिनके अणुमें ३२ परमाणु होते हैं। यह प्रायः १० एंगस्ट्राम अर्थात् प्रायः एक सेंटीमीटरके एक करोड़वें भागके बराबर लम्बा होता है। इन ३२ परमाणुओंमें १० कारबनके, १६ हाइड्रोजनके, ३ आक्सीजनके, २ नाइट्रोजनके १ गन्धकका परिमाण होता है। परीक्षणोंसे प्रकट हुआ है कि मनुष्य तथा उच्चकोटिके अन्य जीवोंको जीवित रहनेके लिए बायोटिन अत्यावश्यक है। बायोटिनके बिना भू-मण्डलपर जीव उत्पन्न नहीं हो सकते थे। ('भारतीय समाचार')

ब्रिटिश जनताकी माँग

आजकी स्थिति हाथपर हाथ रखकर बैठ रहनेकी नहीं है। तुरन्त बिना किसी शर्त्तके समझौतेकी बात शुरू कर देनी चाहिए, ताकि दोनों राष्ट्रोंके हितके अनुकूल किसी एक समझौतेपर पहुँचा जा सके। एक बात तो साफ़ तौरसे कही जा सकती है कि चर्चिल-एमरी-कम्पनीकी बाधा डालनेकी नीति साधारण मज़दूर जनता और जनतान्त्रिक लोगोंकी नीति नहीं है। 'मैंचेस्टर-गार्जियन,' 'न्यूज़ क्रानिकल,' 'इवनिंग स्टैण्डर्ड,' यहाँ तक कि 'डेली हेरल्ड'-जैसे पत्रोंने भी कांग्रेस-नेताओंकी गिरफ़्तारीके विरुद्ध और तुरन्त समझौतेके पक्षमें अपनी राय ज़ाहिर की है। ५ लाख कोयलेकी खानोंके मजूरोंके 'माइनर्स फेडरेशनकी नेशनल कान्फ्रेन्स'ने एक रायसे प्रस्ताव पास किया है कि भारतकी स्वतन्त्रताके आधारपर समझौतेकी बातचीत फिरसे शुरू की जाय। फैक्ट्रियोंमें आज़मायशी वोट लेकर देखा गया है कि ग्यारहमें से दस मज़दूर भारतीयोंकी स्वतन्त्रताकी माँगको ठीक समझते हैं। कम्युनिस्ट पार्टीके ५०,००० मेम्बरोंके आन्दोलनने २५ मई, १९४२ की राष्ट्रीय कान्फ्रेन्सके प्रस्तावका अनुसरण किया, जिसमें कहा गया था कि 'सम्मिलित संघर्षमें भारतकी ४० करोड़ जनताका सहयोग प्राप्त करनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें भारतकी स्वतन्त्रताको स्वीकार करना चाहिए और राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ पूरे अधिकारोंवाली सरकार क़ायम करनेके लिए समझौतेकी बात फिरसे शुरू करनी चाहिए।' ('लोकयुद्ध')

दुनियाके सबसे भारी मनुष्य

अभी हाल ही में अफ्रीकाके जोहन्सबर्ग नगरके एक ग़ैर-यूरोपियन अस्पतालमें दुनियाके एक सबसे भारी आदमीकी मृत्यु हो गई। उसका वज़न ९ मन १८ सेर था और उसकी कमरका घेरा ६ फ़ीट ८ इंच।

अफ्रीकामें एक दूसरा भी ऐसा ही आदमी था, जिसका नाम था डैनियल लैम्बर्ट। उसकी मृत्यु २१ जुलाई, १८०९ में हुई थी। उनका वज़न ९ मन ९॥ सेर था। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि भारी-भरकम और मोटे-ताज़े आदमियोंको जन्म देनेमें अफ्रीका यूरोपसे बाज़ी मार ले गया है।

एसेक्समें भी एडवर्ड ब्राइट नामक एक और मोटे-ताज़े व्यक्तिका उल्लेख मिलता है, जिसकी मृत्यु सन् १७५० में हुई थी। उसका वज़न ७ मन २८ सेर था। उसके सीनेका घेरा ६६, पेटका ८३ इंच, बाजूके बीचका २६ इंच और पैरका ३२ इंच था। वह क़रीब ६ फीट लम्बा था। उसकी मृत्युके उपरान्त लोगोंने अन्दाज़ लगाया कि उसके वेस्टकोटमें पाँच आदमी बन्द किए जा सकते हैं। पर अन्तमें जब उसकी परीक्षा की गई, तो पाँचके बदले सात व्यक्ति उसमें बन्द हो गए, और इससे न उसकी सिअन टूटी और न किसी बटनपर ही ज़ोर पड़ा। ('पैरेड')

पत्नीके लिए स्थायी फ़ीस

संसारके विविध भागोंकी विवाह-प्रणालीमें काफ़ी अन्तर है। लड़कों और लड़कियोंके विक्रय, दहेज या टीकेके रूपमें काफ़ी धन देने और लेनेकी प्रथा तो भारतमें भी कम नहीं है; पर अफ्रीकाके कांगो-प्रदेशमें एक ऐसी विचित्र प्रथा है कि वरसे वधूके लिए सदा धन वसूल किया जाता है। वहाँ जब कोई पुरुष किसी युवतीके प्रति प्रेम दिखाता है या उससे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है, तो उसे लड़कीके माता-पिता अथवा अन्य रिश्तेदारोंको उनकी स्थितिके अनुसार धन देना पड़ता है। पर इतनेसे ही उसका पीछा नहीं छूट जाता। यह तो वधूके लिए दी जानेवाली फ़ीसका आरम्भ-मात्र है। यह फ़ीस उसे उस समय तक देनी पड़ती है, जब तक कि पति-पत्नीमें से किसी एककी मृत्यु न हो जाय।

इसका परिणाम यह हुआ है कि युवतियोंको मजबूरन उन रोगी, कुरूप, दुश्चरित्र अथवा वृद्ध लोगोंके साथ भी विवाह करना पड़ता है, जो उनके लिए सबसे अधिक धन दे सकें। अपने शरीरपर उसे जैसे कोई अधिकार नहीं। इससे उनमें भी दोमुँहे व्यवहार, षड्यन्त्र और दुश्चरित्रताका बोलबाला है। वे जिस पतिके साथ रहती हैं, उससे प्रेम भी करें और उसके प्रति वफ़ादार रहें। पर इसका मतलब यह नहीं कि कांगोकी स्त्रियाँ इस प्रथासे तंग या परेशान हैं। इसके विपरीत वे इससे प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं तथा इसे पवित्र समझती हैं। कारण, इसके अन्तर्गत उन्हें पूरी आज़ादी और सुविधा है। धर्म, स्वभाव और रूढ़ियोंके पालनमें वहाँकी स्त्रियाँ पुरुषोंसे भी अधिक दक़ियानूसी हैं। ('रायज़ वीकली')

चीनमें प्लेग फैलानेकी चेष्टा

जापानियोंने अधिकृत चीनमें तो बड़े-बड़े नृशंस और बीभत्स अत्याचार किए हैं; पर स्वतन्त्र चीनमें भी उन्होंने अपनी जघन्य एवं अमानुषिक लीला-विस्तार करनेमें कोई संकोच नहीं दिखाया है। पश्चिमी चेकियांगके चूहसिन स्थानमें उन्होंने हवाई-जहाज़ों द्वारा प्लेग फैलानेवाले कीड़े और उनसे प्रभावित अनाज गिराया। सबसे पहले इससे चूहे प्रभावित हुए, जिनके द्वारा प्लेगके कीटाणु चतुर्दिक फैल गए। इसके बाद अनाज द्वारा स्त्री-पुरुष और बच्चोंपर प्लेगका असर स्पष्ट दीख पड़ने लगा। बच्चोंकी मृत्यु-संख्या सहसा बढ़ गई और स्त्री-पुरुषोंमें हैज़ा और पेटके रोग फैल गए। पहले तो इन्हें साधारण दैनिक घटनाएँ कहकर लापरवाहीसे टाल दिया गया; पर बादमें इनकी संख्या बढ़नेसे चीन-सरकार चिन्तित हुई, और उसने राष्ट्रीय स्वास्थ्य-विभागके अध्यक्ष डा० डब्ल्० डब्ल्यू० वुंग द्वारा इनकी जाँच करवाई।

कुछ रोक-थामके परिणाम-स्वरूप थोड़े समयके लिए इसका फैलना रुक गया; पर इधर उसका १२ प्रान्तोंमें फिर प्रभाव नज़र आने लगा है। ८ प्रान्तोंमें तो प्लेग फैल चुका है और शेषमें सरकार उसे रोकनेके प्रयत्नोंमें काफ़ी सफल हो रही है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य-विभाग और चीनी रेड-क्रासकी ओरसे इस कार्यके लिए विशेष दल बनाए गए हैं। फुकीन, क्यांगसी, क्वांगतुंग, क्वांगसी और शेन्सीकी प्रयोगशालाओंमें चेचक, हैज़ा, प्लेग और मियादी बुखारकी रोकके लिए बहुत बड़े पैमानेपर औषधियाँ तैयार की जा रही हैं। ('चाइना इन्फर्मेशन बुलेटिन')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

'विशाल भारत'का १६वाँ वर्ष

प्रस्तुत अंकसे 'विशाल भारत' अपने जीवनके १५ वर्ष समाप्तकर १६वें में प्रवेश कर रहा है। वैसे तो हिन्दी-पत्रोंका जीवन ही कठिनाइयों, अभावों एवं सतत परीक्षाओंका जीवन है ; पर पिछले वर्षमें हमें इनका जितना अधिक और गहरा अनुभव हुआ है, उतना शायद हमारे बहुत कम सहयोगियोंको हुआ होगा। काग़ज़ और प्रेस-सम्बन्धी अन्यान्य साज-सामानकी असाधारण रूपसे बढ़ती हुई दरों और दुर्लभता तथा ग्राहकों एवं विज्ञापनदाताओंकी अनिवार्य मजबूरियोंने पहले ही हमारी सेवाके क्षेत्रको काफ़ी सीमित और संकुचित कर दिया था ; फिर सुदूर-पूर्वकी लड़ाई तथा अभी हाल ही के देशव्यापी उपद्रवोंकी प्रतिक्रियाने तो उसे और भी संकीर्ण बना दिया। इधर हाल ही में कलकत्तेपर हुए जापानके हवाई-हमलोंने तो जैसे हमारी अन्तिम परीक्षा ही लेनेकी धमकी दी। पर अपने प्रेमी पाठक-पाठिकाओं, उदार ग्राहक-अनुग्राहकों एवं कृपालु लेखक-लेखिकाओंके सहयोग और सहायतासे हम इन असाधारण कठिनाइयोंपर सहज ही विजय प्राप्त कर सके। हमें आशा और विश्वास है कि अपनी भावी परीक्षाओंमें भी हमें इसी प्रकार उनकी सहायता एवं सहयोगका लाभ प्राप्त होता रहेगा।

अपने कृपालु साथी-सहयोगियोंकी बहुमूल्य सहायता एवं सुझावोंके लिए धन्यवाद देना औपचारिकता निभाना-मात्र होगा। हमें तो उनके प्रति हृदयसे कृतज्ञता निवेदन करना ही अभीष्ट एवं श्रेष्ठ जान पड़ता है। हमें आशा है, हमारी त्रुटियों, धृष्टताओं एवं मजबूरियोंको क्षमा करते हुए वे हमें भविष्यमें भी निरन्तर अपने सहयोग, सहायता एवं सुझावोंसे लाभान्वित करते रहेंगे।

अपने उदार ग्राहकों एवं पाठक-पाठिकाओंसे हमें विशेष रूपसे एक निवेदन करना है। जहाँ हम अनन्त कष्टों एवं कठिनाइयोंके बावजूद उनकी सेवासे विचलित नहीं होना चाहते—बमोंसे डरकर कलकत्तेसे भागना नहीं चाहते, और जब तक किसी भी मूल्यपर काग़ज़ मिलता रहेगा, 'विशाल भारत' अपने सेवा-पथपर आरूढ़ रहेगा—वहाँ हमारे प्रति उनका भी कुछ कर्त्तव्य हो जाता है। किसी प्रकारका दान या दक्षिणा हम उनसे नहीं चाहते ; पर इस समय यदि वे मुफ़्तमें या रियायती मूल्यपर 'विशाल भारत' पढ़ने अथवा अपने मित्र-परिजनोंको पढ़ानेके लोभ और मोहका संवरणकर इसके कुछ ग्राहक बनानेका कष्ट स्वीकार करें, तो न केवल हम अपनी मौजूदा कठिनाइयोंका ही सुगमतापूर्वक मुक़ाबला कर सकते हैं, बल्कि 'विशाल भारत'की कमियों एवं त्रुटियोंको दूरकर उनकी अधिकाधिक अच्छे रूपमें सेवा भी कर सकते हैं। क्या वे हमारी यह न्यूनतम आशा पूरी करेंगे ?

नये वर्षकी नई आशाएँ

नया वर्ष सदा ही नई आशाएँ लेकर आता है ; पर विगत तीन वर्षोंसे वह आशाओंकी अपेक्षा नई आशंकाएँ लेकर ही आ रहा है। यही बात १९४३ के सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। यद्यपि संयुक्त-राष्ट्र अमरीकाके राष्ट्रपति रूज़वैल्टने कहा है कि इस वर्ष मित्र-राष्ट्र नए आक्रमण करेंगे और १९४४ में अवश्य ही उनकी विजय होगी। अमरीकाके प्रशान्त-महासागरके नौसेनापति एडमिरल हेल्सीने १९४३ में ही मित्र-राष्ट्रोंकी विजय होनेकी भविष्यद्वाणी की है। परन्तु इन घोषणाओंको आशाके सूत्रमें पिरोकर रखना कुछ असंगत-सा मालूम होता है। हिटलरने अगली गर्मियोंमें रूसपर नया आक्रमण करनेकी दुर्बल-सी धमकी दी है और जनरल तोजोने तो महायुद्धका असली श्रीगणेश ही अब हुआ बतलाया है। मास्कोमें मार्शल तिमोशेंको, स्तालिन और वरोशिलफ़ जर्मनोंको रूसकी सीमासे एकदम बाहर निकालनेकी योजना बना रहे हैं।

गत वर्ष मार्शल रोमेलने ब्रिटिश सेनाओंको अलेक्ज़ेण्ड्रियाके द्वार तक खदेड़ दिया था ; किन्तु इस वर्ष जनरल अलेक्ज़ेण्डर और मोंटगुमरीने खुद उसीको ट्रिपोलीके द्वारा तक खदेड़ दिया है। दूसरी ओर फ्रांस, अमरीका और ब्रिटेनकी सेनाएँ जर्मनों तथा इतालियनोंको ट्यूनिस और बिज़ेरटाकी ओर खदेड़ रही हैं। रूसमें जर्मनीको और प्रशान्त-महासागरमें जापानको गत वर्षकी सफलताओंके विपरीत इस समय बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ रही है। युन्नान और बर्माकी सीमाओंपर चीनी, जापानी और भारतसे मित्र-राष्ट्र नए आक्रमणोंकी तैयारियाँ कर रहे हैं। मित्र-राष्ट्रों द्वारा बर्माके और जापान द्वारा पूर्वी भारतके नगरोंपर अधिकाधिक बम-वर्षा होने लगी है।

विग्रह-ग्रसित यूरोप आज मध्ययुगीन बर्बरताके नग्न नृत्यका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंच बना हुआ है। समूचा फ्रांस अधिकृत हो चुका है और पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, यूनान, अल्बानिया, चेकोस्लोवाकिया, नार्वे, डेन्मार्क आदि अपनी खोई हुई स्वाधीनताको पुनः प्राप्त करनेके लिए प्रतिदिन भूख, दुर्भिक्ष, बेकारी और फाशिस्त दस्युओंके डंडों, संगीनों एवं गोलियोंका सामना कर रहे हैं। स्पेन बगुलेकी तरह अशान्त जलमें अपनी मछली पकड़नेके लिए अवसरकी प्रतीक्षामें बैठा है। तुर्की अपनी मित्र-राष्ट्रोंकी सहानुभूतिको जर्मन-अप्रसन्नताके संघर्षसे बचानेका भरसक प्रयत्न कर रहा है। आज़ादी और जर्मन-आक्रमणके बीचमें झूलता हुआ स्वेडन अपना माल जर्मनीको उधार 'बेच'कर किसी तरह अपनी जान बचाए है। असहाय स्वीज़रलैण्ड अपने घरमें घुसे हुए उपद्रवियोंको बाहर निकालनेमें असमर्थ होनेके कारण उनके मनोरंजनका जोखिम-भरा प्रयत्न कर रहा है।

सारे संसारकी परिक्रमाकर जब हमारी आँखें भारतपर आकर रुकती हैं, तो सहसा क्षोभ, निराशा और ग्लानिसे हृदय बैठ-सा जाता है। जापान द्वारा सुदूर-पूर्वमें छिड़े युद्धसे फैले आतंकपर क्रिप्स-योजनाकी विफलता, कांग्रेस-नेताओंकी गिरफ़्तारी और उसके बाद हुए उपद्रवों एवं अशान्ति तथा पूर्वी भारतके नगरोंपर जापानी यानों द्वारा की गई बमबारीने कोढ़में खाजका काम किया है। सामूहिक जुर्मानों, गोली और अग्निकाण्डों तथा २४-परगना और मिदनापुरके प्रलयकारी तूफ़ानकी स्मृतियाँ तो आज भी हमारा दिल दहला रही हैं। चीज़ोंकी मँहगी और दुर्लभता तथा आध सेर चावल, चीनी या एक बोतल मिट्टीके तेलके लिए आधी-आधी रातसे लगनेवाली कतारें हमारे लिए एक नया अनुभव और कष्टप्रद नज़ारा हैं! पर इन सबके बावजूद हमारी सरकार जैसे कानोंमें तेल डाले बैठी है और हम पिंजरेमें बन्द पक्षीकी भाँति निराश-विवश हाथपर हाथ धरे बैठे हैं। न जाने इस स्थितिका कब अन्त होगा। क्या नये वर्षकी हमारी ये नई आशाएँ—जिन्हें लेखनी या जिह्वाकी अपेक्षा हमारी विवशता और देशकी स्थिति ही अधिक यथार्थ रूपमें व्यक्त कर रही हैं—पूरी होंगी?

कलकत्तेपर हवाई-हमले

पिछले महीने कलकत्तेपर जापानी बमवाज़ोंने पाँच बार बमबारी की। इस सम्बन्धमें निकली सरकारी विज्ञप्तियोंसे स्पष्ट है कि इनसे जान-मालकी क्षति बिल्कुल साधारण और नगण्य हुई है। कई बम नागरिक बस्तियोंपर भी गिरे, जिनमें से कुछ तो फटे भी नहीं। फेनी, चटगाँव और आसामके नगरोंपर हुई बमबारीकी क्षतिके सम्बन्धमें हम कोई खास मत नहीं दे सकते; पर कलकत्तेके इन पाँच हवाई-हमलोंका जो परिणाम हमने अपनी आँखोंसे देखा है, उसके आधारपर हम निःसंदिग्ध रूपसे कह सकते हैं कि जापानियों द्वारा गिराए गए बम भारी विस्फोटक न होकर नागरिकोंको तितर-बितर करनेवाले (Anti-personnel) साधारण बम ही थे। किन्तु इन हमलोंसे डरकर जिस बुरी तरहसे लोग कलकत्तेसे भागे हैं, उसपर कोई भी समझदार व्यक्ति हैरत, ग्लानि और लज्जाका बोध किए बिना नहीं रह सकता।

इस समय जापान-अधिकृत बर्मापर प्रत्याक्रमण करनेके लिए मित्र-राष्ट्र जो ज़ोरदार तैयारी कर रहे हैं और जापान-अधिकृत नगरोंपर मित्र-यानोंकी जो बमबारी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है, उसका ज़ोर और दबाव कम करनेके लिए ही जापानी पूर्वी भारतके नगरोंपर बमबारी कर रहे हैं। उनका चरम उद्देश्य प्रत्याक्रमणकी इस ज़बर्दस्त तैयारीकी नैतिक भित्तिको शिथिल करना है। अतः इन हमलोंसे डरकर भागनेवाले जापानी शत्रुओंकी मंशा और उद्देश्यको ही पूरा कर रहे हैं। ये हमले एक तरहसे हमारी परीक्षा हैं, जिसमें विफल होकर हम दुनियाकी नज़रोंमें न सिर्फ़ गिर ही जाते हैं, बल्कि उसे यह भी बतलाते हैं कि हम कितने कायर और मतिहीन हैं! माना कि आज हम ग़ुलाम हैं और अपनी रक्षा करनेकी पूरी सुविधा तथा स्वतन्त्रता भी हमें प्राप्त नहीं है; फिर भी भारत हमारा देश है, हमारी मातृभूमि है, अतः प्राण-पणसे उसकी रक्षा करना हमारा प्राथमिक कर्त्तव्य है। कायरों-कपूतोंकी तरह उसे शत्रुओंके हाथों सौंपकर हम आखिर कहाँ भागेंगे! हमें आज ही यह तय कर लेना है कि जीते-जी हम और हमारी मातृभूमि शत्रुओंके हाथोंमें नहीं पड़ेंगे! इसमें सन्देह नहीं कि हमारी व्यष्टि एवं समष्टिकी वीरताकी बातें अब अतीतकी गाथाएँ बन गई हैं। गोलों और बमोंके मुक़ाबलोंसे हम तनिक भी परिचित नहीं। अधिकांश लोग रोगोंसे, प्रकृत मृत्युसे या अकस्मातोंसे ही मरते हैं। अतः बमों अथवा गोलों द्वारा मरनेके भयसे आतंकित होना तथा डरकर इधर-उधर भागना स्वाभाविक ही है। पर आज जिस संकटापन्न स्थितिसे देश गुज़र रहा है, हमारा अपना शासन न होनेसे इतनी बड़ी तादादमें लोगोंके एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेके कारण उत्पन्न होनेवाली यातायात तथा खाद्य आदिकी समस्याओंको सम्यक रूपसे हल न कर सकनेकी हमारी जो मजबूरियाँ हैं, उन सबको देखते हुए पलायनसे हमारी कठिनाइयाँ कई गुना बढ़ ही जाती हैं। अतः हमें ज़रा बुद्धिसे काम लेना चाहिए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने-आपको परिवर्त्तित वातावरण तथा परिस्थितियोंके अनुकूल बनानेकी भरसक चेष्टा करनी चाहिए। उमर खय्यामका-सा सुखद और शान्तिप्रद वातावरण सदा-सर्वदा तो कहीं भी नहीं रह सकता। जिन्हें आजके युगमें जीना है, उन्हें अपने-आपको आजके वातावरणके अनुकूल भी बनना होगा।

सरकारकी बौखलाहट

क्रिप्स-योजनाकी विफलताका प्रमुख आधार भारतकी रक्षाका पेचीदा प्रश्न था। ब्रिटिश अधिकारियोंने, न मालूम क्यों, अनुभवहीन भारतीयोंको उनके देशकी रक्षाकी ज़िम्मेदारी नहीं सौंपी। सुतरां आज भारतकी रक्षाकी ज़िम्मेदारी उनपर ही है। पर पिछले दिनों कलकत्तेपर हुए हवाई-हमलोंके सम्बन्धमें उनकी ओरसे जो विज्ञप्तियाँ निकाली गई हैं, उनसे यह साफ़ झलकता है कि अपने इस आवश्यक कर्त्तव्य-पालनमें वे कितने शिथिल और अप्रस्तुत हैं। उनके सरपस्त और समर्थक 'स्टेट्समैन' तकने इस बातकी शिकायत की है कि ये विज्ञप्तियाँ अनावश्यक विलम्बसे निकाली गईं और बड़ी अपर्याप्त थीं। अपने २५ दिसम्बर १९४२ के अंकमें वह लिखता है—"नई दिल्लीके अधिकारियोंने एक विज्ञप्तिमें कलकत्तेके पहले तीन हवाई-हमलोंका 'पर्याप्त चित्र' देते हुए घोषणा की है कि वहाँसे कोई लोग 'नहीं भागे।' हम नहीं जानते कि सरकारी तौरपर 'भागने'का क्या अर्थ है; लेकिन बुधवारको बहुत बड़ी तादादमें लोग शहर छोड़कर भागे जाते हुए देखे गए हैं और बहुत-से इससे पहले ही भाग चुके थे।.....उसी विज्ञप्तिमें कहा गया है कि प्रत्येक हमलेके समय कलकत्तेको पर्याप्त चेतावनी दी गई थी। पर एक हमलेके बारेमें जनताकी धारण ऐसी नहीं है, जब कि साइरन बजने और बमोंके गिरने या तोपोंके दागे जानेकी आवाज़ों (अनअभ्यस्त कानके लिए दोनों आवाज़ोंमें भेद करना मुश्किल है) में बहुत कम अन्तर हुआ था।"

जिस दिन हमने कलकत्तेके एक दैनिक पत्रमें गवर्नर-जनरलकी व्यवस्थापिका-परिषदके नागरिक-रक्षा-सदस्य सर ज्वाला-प्रसाद श्रीवास्तवके ये उद्गार पढ़े कि 'कलकत्ता रेल और सड़कोंके मार्गसे खाली हो रहा है, ऐसी रिपोर्टोंमें कोई सचाई नहीं है', उसी दिन उसी पत्रमें हमने यह भी पढ़ा कि स्यालदह स्टेशनपर भीड़के नियंत्रणके लिए आवश्यक प्रबन्ध किया गया है। बंगाल-आसाम रेल्वेकी ओरसे की गई यह घोषणा भी उसी पत्रमें छपी थी कि सिटी-बुकिंग-आफिसोंमें निश्चित संख्यामें टिकट बेचनेका प्रबन्ध किया गया है, ताकि प्रतिदिन ट्रेनोंमें अधिकसे अधिक जितने यात्री जा सकते हों, उतने ही टिकट बेचे जायँ! हावड़ा स्टेशनपर भी भीड़को काबूमें रखनेके लिए विशेष प्रबन्ध किया गया और बंगाल-सरकारके दो मन्त्री स्वयं उसे देखनेके लिए वहाँ गए। अपनी आँखोंसे हमने कलकत्तेसे बाहर जानेवाली सड़कोंपर लोगोंकी जो कतारें जाती देखी हैं, उनका उल्लेख करनेकी हम कोई आवश्यकता नहीं समझते।

अपने २७ दिसम्बरके अंकमें 'स्टेट्समैन'ने लिखा है—"कलकत्तेके हवाई-हमलोंके समाचारोंके प्रकाशनके सम्बन्धमें शीघ्र ही कुछ किया जाना चाहिए। अधिकारियोंको इसकी तैयारी करनेके लिए पूरा एक वर्ष मिला है। इस महीनेकी बमबारीके शुरू होनेसे पहले यह आम धारणा थी कि जनताके सामने शीघ्र ही विश्वस्त विवरण रखनेकी उनके पास एक कार्यकर योजना तैयार है। पर इधर ऐसी किसी योजनाका तो कम ही आभास मिला है; किन्तु अधिक आभास मिला है एक तरहकी उस बौखलाहटका, जिसकी इससे पूर्व तैयारीके लिए कम समय मिलनेवाले स्थानोंमें बड़ी निन्दा की गई है।" इसके बाद सहयोगीने विज्ञप्तियोंके अत्यन्त संक्षिप्त, १२ घंटे देरसे कलकत्ता पहुँचने और आक्रान्त स्थानोंके एक पत्रके लिए एक अफ़सर द्वारा स्वीकृत चित्रोंके दूसरे पत्रके लिए दूसरे अफ़सर द्वारा अस्वीकृत कर दिए जानेकी शिकायत करते हुए लिखा है—"इस तरहकी गड़बड़ी जारी नहीं रह सकती। यह जनताकी नैतिक भित्तिके लिए, जिसे बनाए रखनेके लिए अधिकारियोंको काफ़ी सतर्क रहना चाहिए, बुरी है। पिछले कई महीनोंसे जनतासे यह अनुरोध किया जा रहा है कि वह अफ़वाहोंपर विश्वास न करे। अधिकांश लोगोंकी ऐसा करनेकी इच्छा भी नहीं। उनकी भावना मज़बूत है और उस सद्-भावनापर विश्वास भी किया जा सकता है। पर जब अधिकारी शीघ्र ही विश्वस्त विवरण देनेमें विफल होते हैं या स्थानीय प्रमुख घटनाओंका पूरा विवरण नहीं देते, तो अफ़वाहोंका फैलना स्वाभाविक ही है।"

ये बातें किसी विशेष टिप्पणीकी मुहताज नहीं। इनके द्वारा हम यह निष्कर्ष नहीं निकालते कि सरकार जान-बूझकर सत्यको छुपाना चाहती है। न ही संकटके इस कालमें हमारा अभिप्राय उसकी अप्रिय आलोचना करना है। पर हम इतना अवश्य चाहते हैं कि वह जनताके विश्वासको खोनेवाली ग़लती और लापरवाही न करे। सचाईको छुपानेका परिणाम झूठी अफ़वाहोंका प्रसार ही हो सकता है, जो इस नाज़ुक समयमें बहुत मँहगा और हानिप्रद होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय सरकारकी आवश्यकता

कभी-कभी बुराईमें भी परोक्ष रूपसे भलाई निहित रहती है। पूर्वी भारतके नगरोंपर हुए जापानी हमलोंने एक ओर जहाँ जनताका बुद्धि-विभ्रम और आतंकसे भागनेकी निन्द्य प्रवृत्ति तथा सरकारका दुर्बल पक्ष हमारे सामने रखा है, वहाँ यह ब्रिटिश अधिकारियोंकी सुबुद्धि और सद्भावनाके लिए एक तरहकी चुनौती भी है। बल्कि चुनौतीसे इसे उनके विवेककी याददिहानी कहना अधिक उपयुक्त होगा। हवाई-हमलोंसे शत-प्रतिशत निरोध और रक्षा कर सकना तो सर्वथा असम्भव है; किन्तु इनके परिणामसे नागरिक जीवन और युद्ध-प्रयत्नोंको अव्यवस्थित एवं असंबद्ध होने देनेसे रोकना तो अधिकारियोंके लिए शक्य एवं सम्भव है। पर किसी ज़ोर-ज़बर्दस्ती अथवा विशेष क़ानूनों और आर्डिनेन्सोंसे ऐसा किया जाना न सुशोभन ही है और न लाभप्रद ही। इसके लिए सर्वसाधारणमें सहानुभूति, सद्भावना, विश्वास एव स्वेच्छापूर्वक सहयोग देनेकी प्रवृत्ति पैदा करना या होना अपरिहार्य है। विधानकी भाषामें इसे क्या कहा जायगा, हमें नहीं मालूम; पर साधारणतया हम इसे जनताकी 'नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक भित्ति' कहेंगे।

फ्रांसके पतनपर लिखते हुए यूरोपके एक फ़ौजी विशेषज्ञने कहा है—'फ्रांसके कारखानोंसे जो मज़दूर और खेतोंपर से जो किसान मोर्चोंपर भेजे गए, वे युद्धको एक भीषण विनाशकारी दैवी-दुर्विपाक समझते थे। उनके कोई राजनीतिक विचार या आदर्श नहीं थे। युद्ध उनके लिए इतिहासकी एक क्रूर आकस्मिक घटना थी, जिससे वे भरसक बचना चाहते थे। फ्रांसके पतनकी दुर्घटनाका एक बहुत बड़ा कारण युद्ध-नीतिके पीछे इसी मनोवैज्ञानिक प्रेरणाका अभाव था।' कहना न होगा कि दुर्भाग्यवश युद्ध-नीतिके इस राजनीतिक और मनोवज्ञानिक पहलूकी भारतमें युद्धारम्भ-कालसे ही उपेक्षा की जा रही है। लोक-बल एवं लोक-सहानुभूतिके अभावके कारण सुदूर-पूर्वमें हुई अपनी विफलताओंके बावजूद ब्रिटिश अधिकारी इस अविचारपूर्ण हठधर्मीको क्यों अपनाए हुए हैं, यह हमारी समझमें नहीं आता। उनकी विजय हम भी चाहते हैं; पर साथ ही हम उनके विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रके सिद्धान्तोंकी भी सच्ची विजय चाहते हैं और साथ ही उस शान्तिकी भी विजय चाहते हैं, जो सच्चे लोकतन्त्र और यथार्थ विश्व-स्वातन्त्र्यकी स्थापनाके बाद ही सम्भव है।

जो लोग आज बमबारीके स्थानोंसे भाग रहे हैं, उनके भय और आतंकपर विजय प्राप्त करनेके लिए, उनके मनमें उनकी सुरक्षाका सुदृढ़ विश्वास पैदा करनेके लिए, उनके राजनीतिक विचार और आदर्श बनानेके लिए, युद्ध-प्रयत्नोंमें उनका हार्दिक सहयोग प्राप्त करने और उन्हें यह समझानेके लिए कि यह युद्ध उनके हितमें हो रहा है, उनकी अपनी और उनके अपने सुपरिचित नेताओंकी सरकार बननी अत्यावश्यक है। यह कार्य सरकारके कृपापात्र नहीं, जनताके विश्वासपात्र व्यक्ति ही कर सकते हैं। अतः ब्रिटिश अधिकारियोंको अपने और भारतके हितोंकी रक्षाके लिए शीघ्र ही मिथ्या प्रतिष्ठाका खयाल छोड़कर बुद्धि और साहससे काम लेना चाहिए और जनताके प्रतिनिधियोंको राष्ट्रीय सरकार बनानेकी सुविधा देनी चाहिए। कागज़की नावोंसे महासागर पार करनेकी भ्रान्ति और शठतासे उन्हें अपने-आपको बचाना चाहिए।

ब्रिटिश अधिकारियोंकी अकर्मण्यता

लन्दनके 'न्यूज़ क्रानिकल'ने अपने गत ४ दिसम्बर, १९४२ के अंकमें भारतके भविष्यको सुरक्षित करनेके लिए आगे क़दम उठानेकी ब्रिटिश सरकारकी विफलताकी आलोचना करते हुए एक अग्रलेख लिखा है। वह कहता है—'सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स मध्यस्थ बनकर भारतके लिए युद्धोपरान्त औपनिवेशिक दरजे और फिलहाल भारतीय मामलोंकी व्यवस्थाके लिए अधिक ज़िम्मेदारीका आश्वासन लेकर गए थे। भारतकी रक्षाकी सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी सरकारने अपने लिए सुरक्षित रखी थी। उसके बादसे जो-कुछ हुआ है, उससे इस रुखपर ही ज़ोर दिया गया है। मि० चर्चिल और मि० एमरीने पार्लमेंटमें पत्थरकी दीवारें खड़ी करनेवाली वक्तृताएँ दी हैं। हिन्दुस्तानके सबसे नरम विचारोंके नेता मि० राजगोपालाचार्यको गांधीसे मिलनेकी इजाज़त नहीं दी गई है। भारतीय लोकमतकी अवहेलनाके एक अंगरेज़को प्रधान न्यायाधीश नियुक्त किया गया है। अन्ततः लार्ड लिनलिथगोका कार्य-काल ६ मास बढ़ा दिया गया है। इसी दौरानमें भारतमें वास्तवमें जो-कुछ हो रहा है, हमें उसका बहुत कम पता लग पाता है। हमारा तो खयाल है कि निश्चय ही स्थिति मन्दगतिसे घसिट रही है।'

पर हमें तो यह भी सन्देह है कि इस स्थितिमें कोई गति रह भी गई है? कांग्रेसी नेताओंकी नज़रबन्दीके बाद सरकारने खुद तो किसी प्रकारके समझौते या स्थितिको सुधारनेकी कोशिश की ही नहीं, बल्कि ऐसा करनेवालोंको भी उत्साहित नहीं किया। हाँ, उन्हें गांधीजी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओंसे मिलनेकी आज्ञा न देकर इतना अवश्य ज़ाहिर कर दिया है कि सरकार अपनी हठधर्मी और अविचारपूर्ण रुखसे तनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी टससे मस नहीं होगी! इसमें न तो कोई राजनीतिक दूरदर्शिता है और न कोई बुद्धिमत्ता ही। युद्धके यथार्थ खतरेके भारतकी सीमामें आ पहुँचनेपर भी ब्रिटिश अधिकारियोंका यह रुख और उदासीनता सर्वथा निन्दनीय हैं।

पर इसमें दोष अकेले भारतके ब्रिटिश अधिकारियों या चर्चिल और एमरीकी पत्थरकी दीवारें खड़ी करनेवाली वक्तृताओंका ही नहीं है। ब्रिटेनकी जनता और वहाँके लोकमतका प्रतिनिधित्व करनेका दम भरनेवाले पत्रोंकी भी इसमें पूरी ज़िम्मेदारी और साठ-गाँठ है। अधिकांश ब्रिटिश जनताको आज यही चिन्ता है कि ब्रिटिश साम्राज्य—जिसमें भारत भी शामिल है—सुरक्षित बना रहे और उसका वैभव एवं उच्चासन अक्षुण्ण-अडिग रहे। ब्रिटेनके अधिकांश पत्र न केवल भारतके सम्बन्धमें सरकारी इकतरफ़ा रिपोर्टें ही छापते और उसकी अनुचित-से-अनुचित नीतिका भी समर्थन एवं औचित्य सिद्ध करते हैं, बल्कि भारतमें अपने संवाददाता रखकर यहाँकी बातोंको अपना रंग देकर ब्रिटिश जनताके सामने रखते हैं। आज भी वहाँके लोग समझते हैं कि भारतीय अंगरेज़ोंको देवताओंकी तरह पूजते एवं चाहते हैं और उनके शासनमें वे अत्यधिक सुखी एवं सन्तुष्ट हैं। ब्रिटिश जनताकी इस भ्रान्तिका श्रेय ब्रिटेनके स्वार्थी पत्रोंको ही है।

होर-लवाल-पैक्ट, स्पेनके हस्तक्षेप और म्यूनिख-पैक्टके विरुद्ध ब्रिटेनके जिस लोकमत और पत्रोंने ब्रिटिश हितोंकी खातिर आसमान सिरपर उठा लिया था, वे आज न केवल ब्रिटेन या संयुक्त-राष्ट्रोंके, बल्कि विश्व-मानवताके हितोंके लिए भी भारतके बारेमें चर्चिल और एमरीकी पत्थरकी दीवारें खड़ी करनेवाली वक्तृताओंके बावजूद चुप हैं! कांग्रेसके नेताओंको जेलमें डाल रखनेसे चर्चिल, एमरी और क्रिप्सका कलेजा भले ही ठण्डा हो जाय; पर इससे न तो भारतकी समस्या ही हल हो सकती है और न संयुक्त-राष्ट्रोंकी विजय ही शीघ्र हो सकती है। अगर वास्तवमें ब्रिटिश जनता और ब्रिटेनके पत्र अपने कतिपय अधिकारियोंकी मूर्खता एवं अदूरदर्शिताके दुष्परिणामसे अपनी और विश्व-मानवताकी रक्षा करना चाहते हैं, तो उन्हें तुरन्त संकीर्ण स्वार्थान्धताका आवरण हटाकर ज़ोरोंसे भारतकी आज़ादीकी माँग करनी चाहिए।

भारतमें अमरीकन एलची

वाशिंगटनसे गत ११ दिम्सबरको श्री विलियम फ़िलिप्सके भारतमें अमरीकन एलचीके रूपमें नियुक्त किए जानेकी घोषणा की गई। गत ८ जनवरीको आपने नई दिल्ली पहुँचकर अपना कार्य-भार भी सँभाल लिया है। राष्ट्रपति रूज़वैल्टने इस नियुक्तिके सम्बन्धमें दो महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं। पहली तो यह कि श्री फ़िलिप्स 'भारत-सरकारके निकट' उनके वैयक्तिक प्रतिनिधिकी हैसियतसे रहेंगे, हालाँकि उनका यह पद व्यक्तिगत रूपसे एलचीकी श्रेणीका ही समझा जायगा। दूसरी बात, जो शायद रूज़वैल्टने अपने ब्रिटिश मित्रोंकी तसल्लीके लिए पहले ही स्पष्ट रूपसे कह देनी आवश्यक समझी, यह है कि भारतीय समस्याके हलकी कोई योजना या तरकीब श्री फ़िलिप्स अपने साथ नहीं ले जा रहे!

राष्ट्रपति रूज़वैल्टका यह स्पष्टीकरण हमारे सामने कई प्रश्न उपस्थित कर देता है। सबसे पहला तो यह कि यदि ऐसा ही है, तो यह नई नियुक्ति किस लिए की गई है? नई दिल्लीमें श्री टामस एम० विल्सन द्वारा अमरीकन-मिशन (राजनीतिक या आर्थिक?) क्यों स्थापित किया गया है और क्यों कर्नल लुई जान्सनको—जिनकी भारतके प्रति पैदा हुई सहानुभूतिका उनकी रहस्यपूर्ण बीमारी और आकस्मिक वापसी द्वारा सहसा उपसंहार हो गया!—कांग्रेस-क्रिप्स-बातचीतमें पड़ना पड़ा? ग्रेडी-कमीशनकी रिपोर्ट किस लिए दफ़्तर-दाखिल कर दी गई? तब क्या हम यह समझें कि अमरीकाने यह नियुक्ति यहाँके शासकों अथवा शासितोंकी माँगपर की है; अथवा केवल अपने स्वार्थके लिए की है?

पर इस घोषणाके दूसरे ही दिन वाशिंगटन, लन्दन और न्यूयार्कके पत्रोंने श्री फ़िलिप्सकी नियुक्तिपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए 'भारतीय समस्या'के हल होनेकी आशा प्रकट की। स्वयं श्री फ़िलिप्सने, जो उस दिन लन्दनके एक होटलमें ठहरे हुए थे, भारत और उसकी समस्याओंमें अपनी गहरी सहानुभूति और दिलचस्पी ज़ाहिर करते हुए अपने 'मिशन'के सम्बन्धमें काफ़ी आशा प्रकट की! इसी दिन अमरीकाकी भारतीय गोलमेज़के मन्त्री श्री नार्टनने न्यूयार्कके 'हैराल्ड ट्रिब्यून'में एक पत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें अन्य बातोंके साथ कहा गया कि अमरीकन जनताको ऐसा अनुकूल वातावरण पैदा करना चाहिए, ताकि भारतीय समस्याका कोई सन्तोषजनक हल निकल सके! इससे शत्रके विरुद्ध संयुक्त-राष्ट्रोंका संगठन और भी मज़बूत हो जायगा। कई अमरीकन पत्रोंने इस पत्रमें कही गई बातोंको श्री फ़िलिप्सके 'मिशन'की रूप-रेखा बतलाया है। अधिक दिन नहीं हुए, जब सर्वश्री वेंडेल विल्की, लुई फ़िशर, लिन-यूतांग, मेल्विन जे० मास, श्रीमती पर्ल एस० बक और अमरीकाके अनेक पादरियोंने भारतको 'अमरीकाकी समस्या' बतलाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूयार्कके वैदेशिक नीति-संघने अभी हाल ही में एक स्मारक-पत्र निकालकर अमरीकनोंसे भारतीय समस्यामें अधिक दिलचस्पी लेनेका अनुरोध किया है, क्योंकि जापानको हरानेके प्रयत्नमें भारतका महत्त्वपूर्ण भाग होगा। आज भी भारतके अनेक पत्रोंमें अमरीकाकी ओरसे एक मोहक विज्ञापन छप रहा है, जिसमें श्री रूज़वैल्ट हमें ४ जुलाई, १७७६ को अमरीका द्वारा की गई स्वाधीनताकी घोषणाकी याद दिलाते हुए कहते हैं कि वे दुनियाको भाषण और धर्मकी स्वतन्त्रता तथा अभाव और भयसे मुक्ति दिलानेकी चौहरी स्वाधीनताके लिए लड़ रहे हैं!

तब क्या इन सबका भारतके लिए कुछ भी अर्थ नहीं है? अभी कुछ दिन पहले श्री रूज़वैल्टने वाशिंगटनकी एक प्रेस-कान्फ्रेंसमें कहा था कि 'अतलान्तिक-सनद समूची मानवताके लिए लागू है।' अगर यह बात झुँझलाहटमें या लापरवाहीसे नहीं कही गई, तो क्या हम पूछ सकते हैं कि 'समूची मानवता' से आपका अभिप्राय ४० करोड़ भारतीयोंको बाद देकर है या उन्हें मिलाकर? जो भी कुछ हो, यदि अमरीकाका स्वार्थ उसको इतना अन्धा बना दे सकता है कि वह स्वाधीनताके आदर्शका विज्ञापन करके भी भारतके साथ होनेवाली ज़्यादतीको नज़र-अन्दाज़ कर दे, अपने हितके खयालसे वह मानवताके हितको तिलांजलि दे दे, तब हमें उसके एलचियोंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहना है।

एक अनुचित नियुक्ति

ब्रिटिश सरकारने भारतीय फेडरल-कोर्टके प्रधान न्यायधीश सर मारिस ग्वायरके अवकाश ग्रहण करनेपर श्री विलियम स्पेन्सके उनके उत्तराधिकारी होनेकी घोषणा की है। घोषणाके साथ श्री स्पेन्सका जो संक्षिप्त परिचय प्रकाशित किया गया है, उससे ज्ञात होता है कि वे पार्लमेंटके अनुदार-दली सदस्य रह चुके हैं और गत महायुद्धके दौरानमें भारत और मेसोपोटामियामें कुछ समय तक उन्होंने युद्ध-सेवा भी की है। इन बातोंमें हम कोई ऐसी विशिष्टता नहीं देखते, जो उन्हें इतनी बड़ी ज़िम्मेदारीके उच्च पदका सुयोग्य अधिकारी बनाय, या कोई ऐसी विशेष योग्यता उनमें है, जो किसी भारतीयमें न हो। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक और उचित ही है कि उनकी नियुक्तिसे देश-भरमें असन्तोष और क्षोभ प्रकट किया गया है।

किसी ज़मानेमें भारतकी उच्च सरकारी नौकरियाँ असर और वसीलेवाले अंगरेज़ोंके लड़कों-पोतोंके लिए 'उपहार' समझी जाती थीं। पर कालान्तरमें बदलती हुई स्थितिके साथ अंगरेज़ोंके इस रुखमें परिवर्त्तन हुआ और योग्य भारतीयोंको भी उच्च पद दिए जाने लगे। किन्तु श्री स्पेन्सकी नियुक्तिने फिर हमें ब्रिटिश अधिकारियोंकी उसी अदूरदर्शी और संकीर्ण नीतिकी याद दिला दी है। भारतमें एक-से-एक बढ़कर क़ानूनदाँ आज मौजूद हैं। अगर उनमें से प्रीवी-कौंसिलके सदस्य होने लायक भारतीय चुने जा सकते हैं, तो फेडरल-कोर्टका प्रधान न्यायाधीश क्यों नहीं चुना जा सकता? फेडरल-कोर्टके अन्यतम न्यायाधीश श्री वरदाचारियर इस पदके लिए क्यों अयोग्य समझे गए या क्यों उन्हें यह पद नहीं दिया गया, यह भी हमारी समझमें नहीं आया। जब देशका वातावरण पहले ही काफ़ी क्षुब्ध और अशान्तिपूर्ण हो रहा है, तब एक अनुदार-दली और ऐसे व्यक्तिको भारतका प्रधान न्यायाधीश बनाना, जो यहाँके क़ानूनों, धर्मों, रीति-रिवाजों एवं परम्पराओंसे एकदम अनभिज्ञ है, कहाँकी अक़्लमन्दी है?

पत्रोंपर अनुचित प्रतिबन्ध

गत २१ दिसम्बरको बम्बईमें अखिल भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक-कान्फ्रेन्सकी स्थायी-समीतिकी बैठक हुई, जिसमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया—'अ० भा० स०-सं० कान्फ्रेन्सके साथ हुए समझौतेकी स्पष्ट रूपसे अवहेलनाकर कतिपय प्रान्तीय सरकारोंने हाल ही में जो हुक्म निकाला है, उसके विरोध-स्वरूप अ० भा० स०-सं० कान्फ्रेन्स भारतके सभी समाचारपत्रोंसे सिफ़ारिश करती है कि वे अध्यक्ष द्वारा बादमें नियत और घोषित किए जानेवाले एक दिन प्रकाशन स्थगित कर दें। वह यह भी सिफ़ारिश करती है कि जब तक यह हुक्म वापस न ले लिया जाय या अध्यक्ष अन्यथा आदेश न करें, वे (१) सारे सरकारी सरकूलर, (२) नए वर्षकी उपाधियोंकी सूची और (३) ब्रिटिश सरकार, भारत-सरकार तथा प्रान्तीय सरकारोंके सारे भाषण—निर्णयों और घोषणाओंको छोड़कर—प्रकाशित न करें।' इसके परिणाम-स्वरूप इस वर्ष भारतके अधिकांश प्रमुख पत्रोंने (इनकी संख्या परिषदके संयोजकने १०० के लगभग बतलाई है) नए वर्षकी उपाधियोंका विज्ञापन नहीं किया और अ० भा० स०-सं० कान्फ्रेन्सके अध्यक्षके आदेशानुसार गत ६ जनवरी, १९४३ के दिन अपना प्रकाशन स्थगित रखा।

उपर्युक्त प्रस्ताव किस हुक्मके विरोध-स्वरूप पास किया गया और किन-किन प्रान्तीय सरकारोंकी ओरसे वह या वैसा ही हुक्म निकाला गया, यह हमें नहीं मालूम। पर इतना हम अवश्य जानते हैं कि अ० भा० स०-सं० कान्फ्रेन्स और उसकी स्थायी-समितिमें ऐसे दूरदर्शी और अनुभवी लोग हैं, जो जल्द-बाज़ीमें ऐसा निर्णय या साधारण कारणसे ही ऐसा मज़बूत विरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कर सकते। उसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यूरोपियन सभी हैं, अतः वह किसी वर्ण या सम्प्रदायके हितोंके लिए भी ऐसा नहीं कर सकती। उसमें प्रायः सभी विचारों और वादोंके लोग हैं, अतः वह किसी खास राजनीतिक झुकावके कारण भी ऐसा नहीं कर सकती। फिर स्थायी-समितिकी जिस बैठकमें यह प्रस्ताव पास हुआ, उसमें भारत-सरकारके प्रधान प्रेस-एडवाइज़र भी निमन्त्रणसे उपस्थित थे, अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह क़दम सरकारकी ग़ैर-जानकारीमें उठाया गया है। सुतरां हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि इसका अवश्य ही कोई ठोस आधार और प्रबल कारण है।

युद्ध और पिछले कुछ महीनोंसे देशमें होनेवाले उपद्रवोंको देखते हुए समाचारों और टिप्पणियोंके किसी हद तक नियन्त्रणकी आवश्यकताको स्वीकार किया जा सकता है। पर 'नियन्त्रण'का पत्रोंकी स्वाधीनताके अपहरण, उनकी मुँहबन्दी, उनके कर्त्तव्य-पालनके मार्गमें अनावश्यक अड़चनों एवं पाबन्दियों और उनकी रीति-नीतिके सरकारी आदेशोंसे संचालित होनेकी चरम-सीमा तक असीम और अनियन्त्रित भावसे फैलाया जाना सर्वथा दुःसह एवं ऐसी ज़्यादती और ज़िल्लत हैं, जिन्हें कोई भी स्वाधीन-वृत्तिका, स्वाभिमानी और कर्त्तव्य-परायण पत्रकार सहन नहीं कर सकता। गत ८ अगस्तको भारत-सरकार द्वारा निकाला गया हिदायतनामा कुछ ऐसा ही था, जिसके विरोध-स्वरूप देशके अधिकांश प्रमुख पत्रोंको अनिश्चित कालके लिए अपना प्रकाशन स्थगित करना पड़ा था। पर शीघ्र ही सरकारने अपनी ग़लती महसूस की और उसे मन्सूख कर दिया। इसके बाद अ० भा० स०-सं० कान्फ्रेन्सके साथ उसने एक कामचलाऊ समझौता-सा कर लिया, जिसके अनुसार पत्र-सम्पादकोंने सरकारी नियन्त्रणों एवं प्रतिबन्धोंके बजाय स्वयं सावधानी, सतर्कता एवं नियन्त्रणसे काम करनेका आश्वासन दिया। किन्तु नियन्त्रणों और प्रतिबन्धोंकी अभ्यस्त सरकारको इससे सन्तोष नहीं हुआ और उसके प्रान्तीय अधिकारियोंने बिना किसी पत्र द्वारा इस समझौतेकी उपेक्षा किए जानेका एक भी उदाहरण बतलाए फिर पत्रोंकी स्वतन्त्रतामें अनुचित हस्तक्षेप और अपनी मनमानी शुरू कर दी! प्रेस-एडवाइज़रोंकी गुप्त विज्ञप्तियोंमें (हमें खेद है कि हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकते) 'सलाह'के बजाय 'आदेश'की बू आने लगी। उनकी भाषा और भाव लगभग वैसे ही होने लगे, जैसे कि सरकारी नौकरोंको दी जानेवाली हिदायतों एवं हुक्मोंके होते हैं। पता नहीं, सरकारके पास इसका क्या आधार एवं औचित्य है? हम तो केवल यही कह सकते हैं कि फ़ाशिज़्मके विनाश और लोकतन्त्र एवं विश्व-स्वातन्त्र्यकी स्थापनाके लिए लड़नेवालोंको यह रुख और अमल शोभा नहीं देते।

पत्रोंका स्टण्डर्ड और स्वाधीनता सभ्य और स्वतन्त्र देशोंका 'बैरोमीटर' (मापदण्ड) है। परतन्त्र होनेपर भी भारतके पत्रोंको जो थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है, उसका उन्होंने—अपवादोंको छोड़कर—शायद कभी दुरुपयोग नहीं किया। उन्होंने स्वेच्छापूर्वक सरकारके युद्ध-प्रयत्नोंको ठेस पहुँचाने या उनपर प्रतिकूल असर डालनेवाली बातों, कार्यों एवं प्रवृत्तियोंसे अपने-आपको और अपने सहस्रों-लाखों पाठकोंको बचाया है। उन्होंने अपने अस्तित्व, स्वातन्त्र्य एवं कर्त्तव्यको कभी किसी राजनीतिक संस्था या वादके साथ आँख मूँदकर नत्थी नहीं किया। तब क्या वे सरकारसे यह आशा भी न रखें कि वह उनको नाम-मात्रको स्वतन्त्रता एवं कर्त्तव्य-पालनमें अनावश्यक हस्तक्षेप एवं अनुचित पाबन्दियाँ लगाकर उनकी रीति-नीतिको 'डिक्टेट' करनेकी मनोवृत्तिसे काम न लेकर सौजन्य-सहयोगसे काम ले? वे यदि किसी संस्थाके एजेण्ट या किसी वादके प्रचारक नहीं, तो सरकारके नौकर या ग्रामोफ़ोन भी नहीं बन सकते। वे जनता-जनार्दनके सेवक हैं, अतः उन्हें उसके प्रति सचाई और ईमानदारीसे अपना कर्त्तव्य पालन करनेकी स्वतन्त्रता और सुविधा होनी चाहिए।

सरकारी स्वेच्छाचारिताके नमूने

पत्रोंके साथ इस समय जो मनमानी बरती जा रही है, स्थानाभावके कारण उसके विशेष उदाहरण न देकर हम केवल दो उदाहरण यहाँ दे रहे हैं। पाठकोंको स्मरण होगा कि दिल्लीके सहयोगी 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स'ने कुछ समय पूर्व सरकारी हस्तक्षेप एवं अनुचित प्रतिबन्धोंके विरोध-स्वरूप अपना प्रकाशन स्थगित कर दिया था। जब गत १ जनवरीसे उन्होंने अपना पुनः प्रकाशन करनेकी घोषणा की, तो दिल्लीके चीफ़-कमिश्नरने उनके सम्पादकों एवं प्रकाशकको हुक्म दिया कि वे छपनेसे पूर्व वर्त्तमान उपद्रवों-सम्बन्धी सारी सामग्री जाँचके लिए असिस्टेंट प्रेस-एडवाइज़रके पास भेजें। जिन्हें दैनिक पत्रोंके सम्पादन एवं प्रेस-कापीकी तैयारीका तनिक भी अनुभव है, वे इस प्रकारके हुक्मसे होनेवाली अकथनीय असुविधा एवं विलम्बकी सहज ही कल्पना कर सकते हैं।

दूसरा उदाहरण मद्रासका है। अ० भा० स०-सं० कान्फ्रेन्सकी स्थायी-समितिके बम्बई-प्रस्तावके अनुसार भारतके विभिन्न प्रान्तोंके लगभग १०० प्रमुख पत्रोंने इस वर्ष पहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरीको नये वर्षकी उपाधियाँ नहीं छापीं। पत्रोंके इस 'जुर्म'के लिए उन्हें 'दण्ड' देनेकी आवश्यकता अन्य प्रान्तोंकी सरकारोंने भी महसूस की या नहीं; किन्तु मद्रासकी प्रान्तीय सरकारने गत ४ जनवरीको ऐसा करनेवाले पत्रोंके प्रतिनिधियोंसे सरकारी विज्ञप्तियोंकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त करनेके लिए सेक्रेटेरिएटमें जा सकनेकी सुविधा और हवाई-हमलोंके स्थलोंको देखनेके स्वीकृति-पत्र वापस ले लिए हैं तथा ऐसे पत्रोंको सरकारी विज्ञापन न दिए जानेका फैसला किया है। सरकार द्वारा किए गए समझौते-भंगका पत्रोंने नये वर्षकी उपाधियाँ न छापकर जो विरोध किया है, वह बिल्कुल मामूली है। उसके मुक़ाबलेमें मद्रास-सरकारका क़दम न सिर्फ़ ग़ैरमामूली ही है, बल्कि अशोभन, निन्द्य और बदला लेनेकी दुर्भावनाका परिचायक है। इससे वह पत्रोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेके बजाय खो देगी और स्थिति अधिक तन जायगी।

उपर्युक्त दो उदाहरणोंसे यह साफ़ ज़ाहिर है कि पत्रोंके सम्बन्धमें भारत-सरकारकी कोई निश्चित और सार्वदेशिक नीति नहीं है। एक प्रान्तमें जो बात सम्भव है, दूसरेमें वही दंडनीय है। प्रान्तीय प्रेस-एडवाइज़रोंको इस तरहकी मनमानी करनेकी सुविधा और अनियन्त्रित स्वतन्त्रता दे देना पत्रों और सरकारके सम्बन्धोंको नुक़सान पहुँचानेवाला सिद्ध होगा। अच्छा हो यदि केन्द्रीय सरकार व्यर्थ अनावश्यक कटुता एवं तनाव पैदा करनेवाली इन ज़्यादतियोंको रोककर पत्रोंके साथ सहयोग और सद्भावनासे काम करनेका निश्चय और शीघ्र ही इस आशयका कोई समझौता करनेकी चेष्टा करे।

ब्रिटिश पत्रोंकी नीचता

'ब्रिटिश पत्रोंकी नीचता'पर टिप्पणी करते हुए सहयोगी "श्रीवेंकटेश्वर समाचार" अपने २५ दिसम्बर, १९४२ के अंकमें लिखता है—"इन दिनों बहुतेरे विलायती समाचारपत्र हाथ धोकर इस देशकी कांग्रेस तथा उसके जेलमें बन्द नेताओंके पीछे पड़े हुए हैं! उनके यह आक्रमण सत्यकी भित्ति छोड़कर मिथ्याका आधार ले रहे हैं। उस दिन विलायतके 'डेली हेराल्ड'ने **एक प्रधान लेख लिखकर अपने अंगरेज पाठकोंको यह पट्टी पढ़ाई है कि भारतीय कांग्रेसने स्वराज्य पानेके वादेपर जापानके साथ साट कर ली थी।** इसी-लिए उसके अंगरेज़-द्रोही नेताओंका इतना निग्रह किया जा रहा है। **और एक विलायती पत्रने गांधीजीकी धर्मपत्नी वयोवृद्धा श्रीमती कस्तूरबाईको कलंकित करनेकी धृष्टता प्रकाशित की है। और एक विलायती पत्रने कांग्रेसकी सेवा करनेवाली महिलाओंको 'वेश्या' उपाधि देनेमें ज़रा भी लज्जा बोध नहीं की है।** विला-यतमें इस विरोधका छल तथा प्रवंचनापूर्ण तूफ़ान इतना बढ़ गया है कि हालमें विलायतमें बैठे हुए दक्षिण-अफ़रिकाके प्रधान-मन्त्री सेनापति स्मट्सको भी इसका विरोध करना पड़ा है। विलायतके जिन श्रमसाम्प्रदायिक समाचारपत्रोंको भारतवासी बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे देखा करते थे; वे सब भी झूठका तूफ़ान बहानेके पापमें संश्लिष्ट हो गए हैं। तमाशेकी बात तो यह है कि जो रूटर मिथ्या-प्रचारके लम्बे-लम्बे तारों द्वारा भारत-भूमिको नित्य ही प्लावित कर रहा है, वही रूटर मिथ्या तथा छलके इस तूफ़ानका एक भी समाचार भारत नहीं भेज रहा है! आश्चर्यपर आश्चर्य तो इस बातका है कि विलायतकी सरकार भी इस पाप-तूफ़ानको रोकनेका कोई भी यत्न नहीं कर रही है। यदि आज भी कहीं संसारमें लज्जाका अस्तित्व है, तो उसे चाहिए कि वह सौ काम छोड़कर विलायतके प्रधान-मन्त्री मिस्टर चर्चिल और भारतके स्टेट-सेक्रेटरी मिस्टर एमरीके पास जाय।"

यह है उस देशकी पत्रकार-कलाका नमूना, जो न केवल खुद ही सभ्य और स्वतन्त्र है, बल्कि जो दुनियाके अन्यान्य असभ्य एवं अर्द्ध-सभ्य देशोंको भी सभ्य और स्वतन्त्रताके उपभोगके योग्य बनानेका दम भर रहा है। राजनीतिमें मतभेद, वाद-विवाद, आलोचना-प्रत्यालोचना आदिकी बात तो हमारी समझमें आती है; पर इस तरहकी नीचता और ऐसे ओछे हथियारोंके प्रयोगपर उतर आनेकी बात हमारी समझमें क़तई नहीं आती। और फिर यह सब भी एक ऐसे देशके ख़िलाफ़ किया जा रहा है, जो न केवल ग़ुलाम और निःसहाय है, बल्कि जिसे इन निकृष्ट लांछनोंका स्पष्ट उत्तर दे सकनेकी स्वतन्त्रता भी नहीं है। ब्रिटेनके साम्राज्यवादी पत्रोंकी यह बौखलाहट उनके आक़ाओंकी उस स्वार्थान्धताकी पराजयकी परिचायक है, जो इतिहासके दर्पणपर से मैलकी तरह अपने-आप मिटती जा रही है।

विलम्बके लिए क्षमा-प्रार्थना

हमें हार्दिक खेद है कि गत मास कलकत्तेपर हुए हवाई-हमलोंके कारण कुछ कम्पोज़ीटरोंके भाग जानेसे हम प्रस्तुत अंक समयपर नहीं निकाल सके। इस बारके विलम्बके लिए हम पाठकों, ग्राहकों एवं एजेंटोंसे क्षमा-प्रार्थी हैं। भावी अंकोंको समयपर ही निकालनेकी हमारी भरसक चेष्टा रहेगी।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विशाल भारत'

सचित्र मासिक पत्र

संचालक :—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

सम्पादक :—श्रीराम शर्मा

श्रीराम शर्मा

भाग ३०

जुलाई—दिसम्बर १९४२

वार्षिक मूल्य
१) छः रुपया

"विशाल भारत" कार्यालय
१२०।२, अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता

विदेशोंके लिए
१) या १४ शिलिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

अंगार हैं शृंगार मेरे ! (कविता)—सुधीन्द्र ६९९
अंधोंकी शिक्षा—सुबोधचन्द्र राय ३५७
अपनी कहानी (स०)—स्व० इक़बाल वर्मा 'सेहर' ४४५
अपराधी (कहानी)—रघुराज ७०३
अम्मां (कहानी)—सी० रामशेषय्या ३१७
अर्थका अनर्थ—हरिशंकर शर्मा ७१०
आकांक्षा (कविता)—'शतदल' ४४१
आगता—सुन्दरलाल त्रिपाठी २४१ ; ३७०
आचार नीतिका आरम्भ—धर्मवीर ४०२
आदमी (कहानी)—महेशचन्द्र मिश्र 'सरल' ६८४
एक अभागा देश (कविता)—विश्वम्भर 'मानव' १०७
एक महान् तपस्वी—जगन्नाथसिंह 'कमुन्ना' २१०
एशियाका प्रश्न—बालकृष्ण गुप्त १५४
एशियाकी आज़ादी—रेमण्ड क्लैपर ३०४
एशियामें एशियावासियोंका शासन हो !—
रिचार्ड एल० न्यूबर्गर ३११
कला और कलाकार (स०)—अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ४३०
कला और जीवनका योग-सूत्र—हंसकुमार तिवारी ११३
'कवि-व चित्रकार'—हरिशंकर शर्मा ६६६
कविता और विप्लववाद—जगन्नाथप्रसाद मिश्र २०१
कांग्रेसका प्रस्ताव और सरकार—
रामानन्द चट्टोपाध्याय ३२१
कार्य रत—तपेश्वरचन्द्र त्रिवेदी १२४
काव्य और प्रगतिवाद—रघुराज ३८०
कैंन्सर रोगकी अर्थनीति—जे० बी० एस, हाल्डेन ३९९
कोहकाफ़ (स०)—गिरीशचन्द्र जोशी ३९७
कोहकाफ़ : पच्छिमी एशियाका सिंहद्वार—
अबुलकलाम आज़ाद ६६१
क्या यही मन्दिर तुम्हारा ? (कविता)—सुधीन्द्र २७८
गांधीजी और महादेवभाई—
किशोरलाल घ० मश्रूवाला ३९६
गांधीजीका आश्रम-जीवन—प्रभुदयाल विद्यार्थी १७२
गीत—उदयशंकर भट्ट ३२३
गीत—सुधीन्द्र २३१
गीत—रूपकुमारी बाजपेई ३९५
गो-रक्षापर एक दृष्टि—लक्ष्मणसिंह यादव ७२१
ग्रन्थि (कहानी)—कृपाशंकर अग्निहोत्री ३८४
चक्रपाणि (कहानी)—राहुल सांकृत्यायन २८९
चयन २५९ ; ३४० ; ४१६ ; ४९१
चिट्ठी-पत्री ७४१ ; १६८ ; २५५ ; ३३९ ; ४१४ ; ४९७
चिरजीवी सोवियत् (स०)—
प्रभुदयाल विद्यार्थी १२१
चीनका स्वातन्त्र्य-संग्राम (स०)—सत्यनारायण १२५
चीनकी खनिज सम्पत्ति—स्टानवे चेंग २९७
चीनमें औद्योगिक शिक्षा—हाथोर्न चेंग ४५१
चीनमें भारतीय भिक्षुओंकी धर्म-साधना—
हंसकुमार तिवारी २२१
जनार्दनके चरण (कविता)—सुधीन्द्र ९१
जापानके राजनीतिक अनाथ—धर्मवीर ४४७
जापानी सिर्फ़ १०० दिन ही राज्य करेंगे !— २९९
'जिगर' मुरादाबादी—राजनारायण चतुर्वेदी २१८
जीवन-यात्रा (कहानी)—आशालता सिंह ४६१
टैगोर (कविता)—मनोहरलाल ४६८
डाकके जीवनपर एक नया प्रकाश—
रामइक़बालसिंह 'राकेश' ६७१
तारावलियोंसे (कविता)—'शतदल' १३१
तुच्छ भेंट ! (कहानी)—पृथ्वीनाथ शर्मा १२१
दर्शन (कहानी)—ललिताचरण गोस्वामी १२१
दक्षिण-अफ्रिकाकी सामयिक समस्या—
भवानीदयाल संन्यासी १३१
दुर्मुख (कहानी)—राहुल सांकृत्यायन १९
दो आंसू (कविता)—'विराज' ३७
नई बुनियादी तालीम—काशिनाथ त्रिवेदी ४७
नन्दलाल वसु (स०)—ईशानचन्द्र ४९
नव निर्माण (कविता)—सियारामशरण गुप्त ६०
नाट्य कला—गंगाप्रसाद पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाविकसे (कविता)—श्रीकृष्णदास १४३
निम्न-श्रेणीके सेवक—धर्मदेव शास्त्री ६८२
नेटालमें नई बला (स०)—भवानीदयाल संन्यासी ४१२
पथ-गीत (कविता)—सोहनलाल द्विवेदी ४२९
पथिक (कहानी)—कमलादेवी चौधरी १४४
पवित्र आहुति—कालेलकर, द० बा० ३३१
'पुंसवन'का महत्त्व—यतीन्द्रविमल चौधुरी २३४
पूर्वजन्मकी स्मृति—हरिशंकर शर्मा १०८
प्रत्यावर्त्तन (स० कहानी)—कुमारलाल दासगुप्त ७१३
प्रभा (कहानी)—राहुल सांकृत्यायन ९४
प्रवासी-भवन (स०)—बनारसीदास चतुर्वेदी ११८
प्रवासी भाइयोंकी स्थिति—भवानीदयाल संन्यासी २४८
प्रवाहण (कहानी)—राहुल सांकृत्यायन ३८९
फाशिस्त लुटेरे और चंगेज़ख़ाँ—एल० वालियांस्की ४८९
फासिलकी खोजमें—विद्याभास्कर शुक्ल १६०
फ़िन्नी सैनिक इतने सहिष्णु क्यों हैं ?—
वाल्टर सिट्राइन ७१२
बच्चोंके बापू—प्रभुदयाल विद्यार्थी ३१६
बाईस बनाम दो सौ बाईस (स० कहानी)—
कुमारलाल दासगुप्त ३०१
बीत जायँगे ये दिन भी ! (कविता)—
शिवमंगलसिंह 'सुमन' ३५६
बुकसेलरकी डायरी—एक बुकसेलर ७२८ ; २४२
बुद्धके अन्तिम वचन—सूर्यनारायण चौधरी ४७५
बौद्ध-संस्कृतिमें नारी—बैजनाथसिंह 'विनोद' ७२१
"भारत हमारी समस्या है !"—लुई फिशर ४४०
भारतीय धनिकोंसे—प्रभुदयाल विद्यार्थी ७११
भारतका ऐतिहासिक साहित्य—
कन्हैयालाल मणेकलाल मुन्शी ३७५
भारतकी आर्थिक समस्याएँ—जी० एस्० पथिक ४८१
भारतकी एकता—यदुनाथ सरकार, सर ४३६
भारतके ज़िचका अन्त किया जाय—बरट्रेण्ड रसैल ३१२
भारतपर स्टालिंगका बोझ—जी० एस्० पथिक २३२
भिक्षुक गांधी—श्रीमन्नारायण अग्रवाल ६९७
भूल (कहानी)—राजकुमारी सिन्हा ४७९
भोजन-सम्बन्धी दो भूलें—सुरेन्द्रप्रसाद ७१७
भोजपुरीका वियोगी कवि 'विश्राम'—
परमेश्वरीलाल गुप्त १०६
मजूर (कविता)—सियारामशरण गुप्त ४६०
मनसुखा और कल्ला (स०)—बनारसीदास चतुर्वेदी ३०८
मनोविश्लेषण—जगदीशचन्द्र जैन १०५
महत्त्वपूर्ण विचार—इंगरसोल २०५
महाकवि बाणके पुत्रका नाम ?—हरिदत्त शर्मा २२०
महादेवभाई देसाई—प्रभुदयाल विद्यार्थी २४५
महाभारतका आस्वाद—कालेलकर, द० बा० ४६१
मानवी सभ्यता—आनन्द कौसल्यायन २७४
मुसलमान कवि और हिन्दी—प्रद पनारायण वैद्य २८३
मूल्य : उसका वैज्ञानिक आधार—स्व० हेमचन्द्र मोदी २७९
मेरा देश (सचित्र)—सुदर्शन २७५
मेरी वाणी (कविता)—महावीरसिंह 'वीर' ४३३
मैंने अपनापन पाया ! (कविता)—
सत्यवती शर्मा २०९
मीर तकी 'मीर'—बनखण्डीदीन सेठ ७०७
मृत्यु और रवीन्द्रनाथ—हंसकुमार तिवारी ३५०
युग-सन्धि (कहानी)—मोहनसिंह सेंगर ४९०
युद्ध और भोजनकी समस्या—
अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार ४८४
रक्त-चाप—विट्ठलदास मोदी ४५०
रसखान और घनानन्द—शम्भुप्रसाद बहुगुना ४५६
रामायणका प्रभाव—'निर्मम' १५९
राष्ट्रभाषा हिन्दी—विनायक दामोदर सावरकर २७६
रिम-झिम-झिम बरसाती री ! (कविता)—
रूपकुमारी बाजपेई १०९
रीति और शैली—स्व० हेमचन्द्र मोदी ४६९
लूला और नंगमो (कहानी)—
राधिकाशरण वाजपेयी ४०८
वर्त्तमान (कविता)—महावीरसिंह 'वीर' ४५२
विजन-बालिका (कविता)—सत्यवती शर्मा ११२
विदा (कविता)—होमवती देवी १३७
विराट दर्शन (कविता)—
रामइक़बालसिंह 'राकेश' ८९
वे प्रभावपूर्ण स्मृतियाँ—तेज़बहादुर सप्रू, सर २७०
व्यक्ति—ब्रजमोहन मिहिर २५२
व्यायामकी आवश्यकता २१४
स्व० स्टैफ़िन ज़िवग—श्रीराम शर्मा १५३
शिल्पी !—गुरुदयाल मल्लिक ४३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पी और साधक गुरुदयाल मल्लिक ४०६
श्रीमती पर्ल बक (स०)—जगन्नाथप्रसाद मिश्र १३८
सन्तोंका मर्म—सोमेश्वरसिंह ६९४
सन्तोंके दो ब्रह्म—सोमेश्वरसिंह २१५
समालोचना और प्राप्ति स्वीकार—
७३७ ; १६४ ; २५७ ; ३४१ ; ४१८ ; ४९४
सम्पादकीय विचार—
७४२ ; १७५ ; २६१ ; ३४४ ; ४२१ ; ५०१
सांख्य-समन्वय—धुरेन्द्र शास्त्री ४७७
सात इन्द्रधनुष (कहानी)—पृथ्वीनाथ शर्मा ३७१
साहित्य : अनुभवकी अभिव्यक्ति—
स्व० हेमचन्द्र मोदी ११०
साहित्यमें समाज-चित्र—भूपेन्द्रनाथ दत्त ३६१
साहित्य-स्वामी रवीन्द्रनाथ—बचुभाई शुक्ल १८१
सुदास (कहानी)—राहुल सांकृत्यायन ६६९
सेवाग्राममें बापू (कविता)—
सोहनलाल द्विवेदी २६९
सौन्दर्यमय बंग-भूमि—विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय ६९१
स्मरण (कविता)—सियारामशरण गुप्त ३४१
स्व० घासीराम व्यास—यशपाल जैन २३१
स्व० चिन्तामणिजी—वृन्दावनलाल वर्मा ६६३ ; २३९
स्व० महादेवभाई देसाई—घनश्यामदास बिड़ला ३६१
हमारे देखे हुए सर्वोत्तम दृश्य—
बनारसीदास चतुर्वेदी १८८
हिन्दी-साहित्यमें कुछ उल्लेखनीय अभाव—
गौरीशंकर ओझा ७१९
हिन्दी-साहित्यमें 'जड़वाद' या वास्तववाद ?—
विनयमोहन शर्मा १४८
हिन्दीका इतिहास—श्रीराम शर्मा ६९१
हिन्दीमें वैज्ञानिक शब्दोंकी रचना—
कृष्णानन्द गुप्त ७३१
हिन्दू-क़ानूनका संशोधन—हरिदत्त वेदालंकार ३८१
क्षयके कारण—रणजित्राय आयुर्वेदालंकार ७०१
ज्ञान-मार्गके पाँच सोपान—आशादेवी आर्यनायकम् ४३१

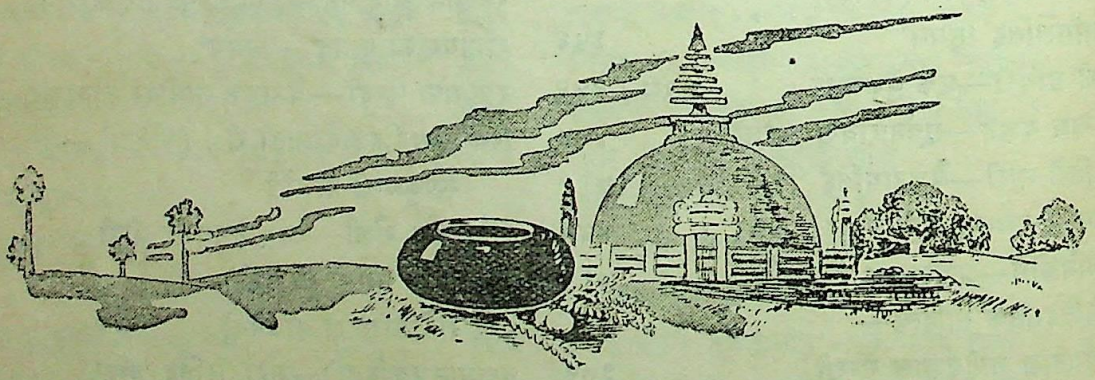

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक-सूची

अबुलकलाम आज़ाद—
कोहक़ाफ़ : पच्छिमी एशियाका सिंहद्वार ६६१
अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार—
युद्ध और भोजनकी समस्या ४८४
अवनीन्द्रनाथ ठाकुर—कला और कलाकार ४३०
आनन्द कौसल्यायन—मानवी सभ्यता २७४
आशादेवी आर्यनायकम्—ज्ञान-मार्गके पाँच सोपान ४३४
आशालता सिंह—जीवन-यात्रा (कहानी) ४६५
इंगरसोल—महत्त्वपूर्ण विचार २०५
इक़बाल वर्मा 'सेहर', स्व०—अपनी कहानी ४४५
ईशानचन्द्र—नन्दलाल वसु (स०) ४४२
उदयशंकर भट्ट—गीत २२३
एक बुकसेलर—बुकसेलरकी डायरी ७२८ ; २४२
एल० वालियांस्की—फाशिस्त लुटेरे और चंगेज़ख़ाँ ४८९
कन्हैयालाल मणेकलाल मुन्शी—
भारतका ऐतिहासिक साहित्य ३७५
कमलादेवी चौधरी—पथिक (कहानी) १४४
कालेलकर, द० बा०—
पवित्र आहुति ३३१
महाभारतका आस्वाद ४६१
काशिनाथ त्रिवेदी—नई बुनियादी तालीम ४७३
किशोरलाल घ० मश्रूवाला—
गांधीजी और महादेवभाई ३९६
कुमारलाल दासगुप्त—
प्रत्यावर्त्तन (स० कहानी) ७१३
बाईस बनाम दो सौ बाईस (स० कहानी) ३०१
कृपाशंकर अग्निहोत्री—ग्रन्थि (कहानी) ३८४
कृष्णानन्द गुप्त—हिन्दीमें वैज्ञानिक शब्दोंकी रचना ७३२
गंगाप्रसाद पाण्डेय—नाट्य-कला ३०७
गिरीशचन्द्र जोशी—कोहक़ाफ़ (स०) ३९७
गुरुदयाल मल्लिक—
शिल्पी और साधक ४०६
शिल्पी ४३९
गौरीशंकर ओझा—
हिन्दी-साहित्यमें कुछ उल्लेखनीय अभाव ७१९
घनश्यामदास बिड़ला—स्व० महादेवभाई देसाई ३६५
जगदीशचन्द्र जैन—मनोविश्लेषण १३५
जगन्नाथप्रसाद मिश्र—
श्रीमती पर्ल बक (स०) १३८
कविता और विप्लववाद २०१
जगन्नाथसिंह 'कमुना'—एक महान् तपस्वी २१०
जी० एस० पथिक—
भारतपर स्टर्लिंगका बोझ २३२
भारतकी आर्थिक समस्याएँ ४८१
जे० बी० एस० हाल्डेन—कैन्सर-रोगकी अर्थनीति ३९९
तपेशचन्द्र त्रिवेदी—कार्य-रत १२४
तेजबहादुर सप्रू, सर—वे प्रभावपूर्ण स्मृतियाँ २७०
धर्मदेव शास्त्री—निम्न-श्रेणीके सेवक ६८२
धर्मवीर—
आचार-नीतिका आरम्भ ४०२
जापानके राजनीतिक अनाथ ४४७
धुरेन्द्र शास्त्री—सांख्य-समन्वय ४७७
निर्मम—रामायणका प्रभाव १५९
परमेश्वरीलाल गुप्त—
भोजपुरीका वियोगी कवि 'विश्राम' २०६
पृथ्वीनाथ शर्मा—
तुच्छ भेंट (कहानी) १२१
सात इन्द्रधनुष („) ३७१
प्रदीपनारायण वैद्य—मुसलमान कवि और हिन्दी २८३
प्रभुदयाल विद्यार्थी—
भारतीय घनिकोंसे ७११
चिरजीवी सोवियत् (स०) १२९
गांधीजीका आश्रम-जीवन (स०) १७२
महादेवभाई देसाई २४५
बच्चोंके बापू ३१६
बचुभाई शुक्ल—साहित्य-स्वामी रवीन्द्रनाथ १८१
बनखण्डीदीन सेठ—मीर तकी 'मीर' ७०७
बनारसीदास चतुर्वेदी—
प्रवासी-भवन (सचित्र) ११८
हमारे देखे हुए सर्वोत्तम दृश्य („) १८८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसुखा और कल्ला (सचित्र) ३६८
बरट्रेण्ड रसैल—भारतके ज़िचका अन्त किया जाय ३१२
बालकृष्ण गुप्त—एशियाका प्रश्न १५४
बैजनाथसिंह 'विनोद'—बौद्ध-संस्कृतिमें नारी ७२१
ब्रजमोहन मिहिर—व्यक्ति २५२
भवानीदयाल संन्यासी—
प्रवासी भाइयोंकी स्थिति (स०) २४८
दक्षिण-अफ्रिकाकी सामयिक समस्या ३३२
नेटालमें नई बला (स०) ४१२
भूपेन्द्रनाथ दत्त, डा०—साहित्यमें समाज-चित्र ३६१
मनोहरलाल—टैगोर (कविता) ४६८
महावीरसिंह 'वीर'—
मेरी वाणी (कविता) ४३३
वर्त्तमान (,,) ४५२
महेशचन्द्र मिश्र 'सरल'—आदमी (कहानी) ६८४
मोहनसिंह सेंगर—युग-सन्धि (कहानी) ४९०
यतीन्द्रविमल चौधुरी, डा०—'पुंसवन'का महत्व २३४
यदुनाथ सरकार, सर—भारतकी एकता ४३६
यशपाल जैन—स्व० घासीराम व्यास २३५
रघुराज—
अपराधी (कहानी) ७०३
काव्य और प्रगतिवाद ३८०
रणजित्राय आयुर्वेदालंकार—क्षयके कारण ७००
राजकुमार सिन्हा—भूल (कहानी) ४७९
राजनारायण चतुर्वेदी—'जिगर' मुरादाबादी २१८
राधिकाशरण वाजपेयी—
लूला और नंगमो (कहानी) ४०८
रामइक़बालसिंह 'राकेश'—
डाकके जीवनपर एक नया प्रकाश ६७७
विराट दर्शन (कहानी) ८९
रामानन्द चट्टोपाध्याय—
कांग्रेसका प्रस्ताव और सरकार ३२१
राहुल सांकृत्यायन—
सुदास (कहानी) ६६९
प्रभा (,,) ९४
दुर्मुख (,,) १९३
चक्रपाणि (,,) २८९
प्रवाहण (,,) १८९
रिचार्ड एल० न्यूबर्गर—
एशियामें एशियावासियोंका शासन हो ! ३११
रूपकुमारी बाजपेई—
रिम-झिम-झिम बरसात री ! १०९
गीत ३९५
रेमण्ड क्लैपर—एशियाकी आज़ादी ३०४
ललिताचरण गोस्वामी—दर्शन (कहानी) १३२
लक्ष्मणसिंह यादव—गो-रक्षापर एक दृष्टि ७२६
लुई फ़िशर—"भारत हमारी समस्या है !" ४४०
वाल्टर सिट्रीन—
फ़िन्नी सैनिक इतने सहिष्णु क्यों हैं ? ७१२
विट्ठलदास मोदी—रक्त-चाप ४५०
विद्याभास्कर शुक्ल—फासिलकी खोजमें (स०) १६०
विनयमोहन शर्मा—
हिन्दी-साहित्यमें 'जड़वाद' या वास्तववाद ? १४८
विनायक दामोदर सावरकर—राष्ट्रभाषा हिन्दी २७६
विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय—
सौन्दर्यमय बंग-भूमि ६९१
'विराज'—दो आँसू (कविता) ३७४
विश्वम्भर 'मानव'—एक अभागा देश (कविता) १०७
वृन्दावनलाल वर्मा—
स्वर्गीय चिन्तामणिजी ६६३ ; २३१
'शतदल'—
तारावलियोंसे (कविता) १३१
आकांक्षा (,,) ४४१
शम्भुप्रसाद बहुगुना—रसखान और घनानन्द ४५१
शिवमंगलसिंह 'सुमन'—
बीत जायँगे ये दिन भी ! (कविता) ३५६
श्रीकृष्णदास—नाविकसे (कविता) १४३
श्रीमन्नारायण अग्रवाल—भिक्षुक गांधी ६९७
श्रीराम शर्मा—
हिन्दीका इतिहास ६९१
स्व० स्टैफिन ज़िवग १५३
सत्यनारायण, डा०—
चीनका स्वातन्त्र्य-संग्राम (स०) १२५
सत्यवती शर्मा—
विजन-बालिका (कविता) ११२
मैंने अपनापन पाया (,,) २०९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सियारामशरण गुप्त—
स्मरण (कविता) ३४९
नव-निर्माण (,,) ४६०
मजूर (,,) ४६०
सी० रामशेषय्या—अम्मा (कहानी) ३१७
सुदर्शन—मेरा देश (स०) २७५
सुधीन्द्र—
अंगार हैं शृंगार मेरे ! (कविता) ६९९
जनार्दनके चरण (,,) ९३
गीत (,,) २३१
क्या यही मन्दिर तुम्हारा ? (,,) २७८
सुन्दरलाल त्रिपाठी—आगता २४१ ; ३७०
सुबोधचन्द्र राय—अन्धोंकी शिक्षा ३५७
सुरेन्द्रप्रसाद—भोजन-सम्बन्धी दो भूलें ७१७
सूर्यनारायण चौधरी—बुद्धके अन्तिम वचन ४७५
सोमेश्वरसिंह—
सन्तोंका मर्म ६९४
सन्तोंके दो ब्रह्म २१५
सोहनलाल द्विवेदी—
सेवाग्राममें बापू (कविता) २६८
पथ-गीत (,,) ४२९
स्टानवे चेंग—चीनकी खनिज सम्पत्ति २९७
हंसकुमार तिवारी—
कला और जीवनका योग-सूत्र ११३
चीनमें भारतीय भिक्षुओंकी धर्म-साधना २२४
मृत्यु और रवीन्द्रनाथ ३५०
हरिदत्त वेदालंकार—हिन्दू-क़ानूनका संशोधन ३८५
हरिदत्त शर्मा—महाकवि बाणके पुत्रका नाम ? २३०
हरिशंकर शर्मा—
'कवि-व-चित्रकार' ६६६
अर्थका अनर्थ ७१०
पूर्वजन्मकी स्मृति १०८
हाथोर्न चेंग—चीनमें औद्योगिक शिक्षा ४५३
हेमचन्द्र मोदी, स्व०—
साहित्य : अनुभवकी अभिव्यक्ति ११०
मूल्य : उसका वैज्ञानिक आधार २७९
रीति और शैली ४६९
होमवती देवी—विदा (कविता) १३७

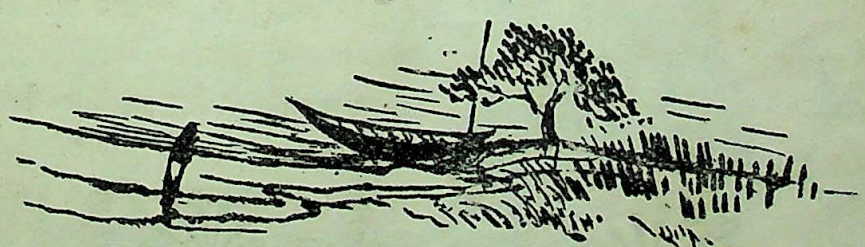

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

सादे चित्र—

अवनीन्द्रनाथके ३ चित्र ४३१
इक़बाल वर्मा 'सेहर' ४४६
काहिरो ७०९
कुण्डेश्वर-सम्बन्धी ४ चित्र १८८
कुलालुम्पुर ३७३
कोहक़ाफ़-सम्बन्धी ६ चित्र ६७६ ; ३ चित्र ३९७
कृष्णबहादुर १६१
गांधीजी-सम्बन्धी ४ चित्र १७२ ; ३ चित्र २४४
चीन-सम्बन्धी ८ चित्र १२५ ; ४ चित्र २९२ ; ४ चित्र ३२४
तमलुक (मेदनीपुर) ४६९
तोब्रुक ७०९
नन्दलाल वसु ४४२
नेटालमें एक भारतीय बस्ती ४१३
पर्ल बक और जे० वाल्श १३८
प्रत्यावर्त्तन-सम्बन्धी ३ चित्र ७१३
प्रवासी-भवन ११८
फासिल-सम्बन्धी ४ चित्र १६०
फ्रांसीसी उपनिवेशोंके ४ चित्र ४४४
बालिकपापान (बोर्नियो) ७०८
बैंकाकके २ चित्र ३७२
भवानीदयाल संन्यासी ११९ ; १२० ; २४९ ; २५०
मनसुखा-सम्बन्धी ५ चित्र ३६८
माल्टा ३७३
रंगूनके २ चित्र ३९७
रतनबाई १६१
रवीन्द्रनाथ ठाकुर ४६८
राहुल सांकृत्यायन ६६८
रूसी स्त्रियोंके २ चित्र १३०
लेनिनग्रादके २ चित्र ३९६
व्लाडीवास्टक ७०८
सिंगापुर ७०८
सुदर्शन २७५
स्तालिन १२९
२२ बनाम २२२ के ३ चित्र (कहानी) ३०१

तिरंगे चित्र :—

ईसा—मिस प्रभासनलिनी बनर्जी १८१
जयदेव और पद्मावती—जीवनकृष्ण वन्द्योपाध्याय ४२९
तूफ़ानमें—नन्दलाल वसु ८९
बापू—नन्दलाल वसु २६९
शकुन्तला और उसकी दो सखियां—रामगोपाल विजयवर्गी ३४९
शिशु और जननी—माणिकलाल वन्द्योपाध्याय ६६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय
१५-२-४३

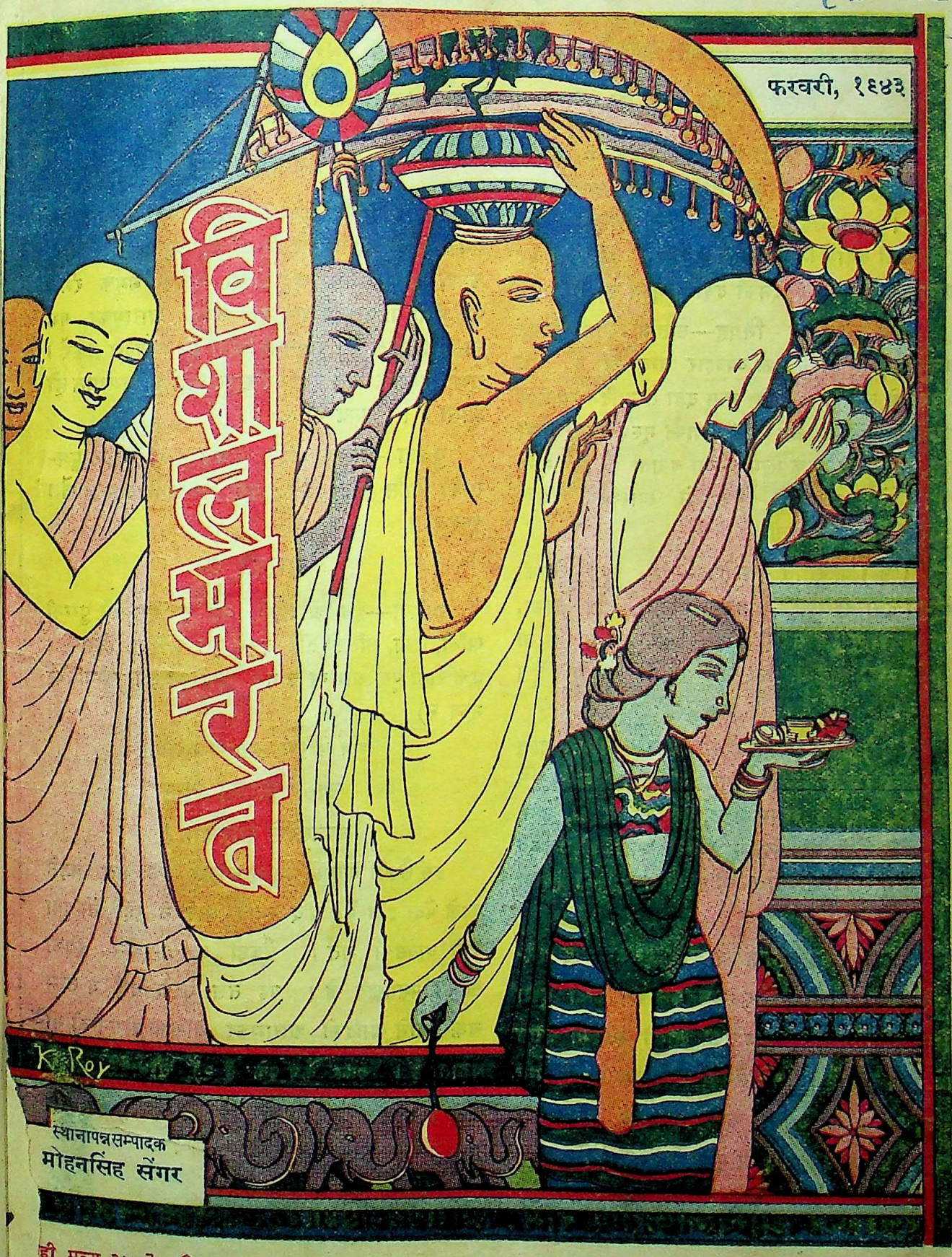

स्थानापन्नसम्पादक
मोहनसिंह सेंगर

ही मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१००) इनाम !

किसी औषधिको बेफायदा साबित करनेपर !

जिन्हें विश्वास न हो, वे ≈) का टिकट भेजकर शर्त लिखा लें।

(१) श्वेत कुष्टकी वनौषधि—महात्मा - प्रदत्त श्वेत कुष्ट (सफ़ेदी) की दवासे तीन दिनमें पूरा फायदा। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापन-दाताओंकी दवासे निराश हो चुके हैं, तो इसे लगाकर आराम पावें। १५ दिनकी दवाका मूल्य २)।

(२) सन्तति - निग्रह—सन्तान - निग्रहकी यह अचूक दवा है। दवाका व्यवहार बन्द कर दें, गर्भ धारण हो जायगा। प्रति मास दवा तीन दिन व्यवहार करनी पड़ती है। वर्ष-भरकी दवाका मूल्य २)। दूसरी दवा, जो जीवन-भरके लिए बन्ध्या बनाती है। मूल्य २)। दोनों दवाओंके व्यवहारसे स्वास्थ्यमें किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

(३) बहरापन - नाशक—यह कर्ण - रोगकी अद्भुत दवा बहरापन, कानकी आवाज, पीव बहना, नया अथवा पुराना सबको सदाके लिए आराम करती है। बहरा आदमी साफ-साफ सुनने लगता है। मूल्य २)।

(४) कोढ़ सुन्नबहरीकी जड़ी—काला, लाल और सफेद रंगका चकत्ता, अँगुली मोटी, टेढ़ी या घावसे गली हो, बदनमें झनझनाहट, सुन्न या दर्द हो, कान, नाक, भौंहें मोटी हों, बदनमें गिल्टी उठी हो, क़ब्ज आदिको गारंटीके साथ इस जड़ीसे आराम किया जाता है। मूल्य २)।

(५) आश्चर्यजनक जड़ी—इसके दिखाने-मात्रसे बिच्छू, ततैये और मधुमक्खीका काटा हुआ आराम हो जाता है। अब तक लाखों आदमी इससे लाभ उठा चुके हैं। इसे सैकड़ों साल तक अपने पास रखिए, पर इसका असर कभी भी कम न होगा। मूल्य १) फ़ी-जड़ी। ३ का मूल्य सिर्फ़ २॥)।

मासिक धर्म

इस औषधिसे मासिक धर्मकी गड़बड़ी, मासिक धर्मका अधिक या कम दिनमें होना, ऋतु-कालमें पेट, कमर, पेडू और सिरमें दर्द होना, मासिक धर्मके रंगमें फर्क होना या एकदम बन्द हो जानेको आरामकर गर्भ धारण हो जाता है। गर्भवती स्त्रियाँ इसे व्यवहार न करें। गर्भ धारणके बाद इसे व्यवहार करनेसे गर्भपात हो जाता है। मूल्य २) रु०।

पुत्रदा—इस औषधिसे निश्चय गर्भ रहकर पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होती है। पूर्ण विवरणके साथ लिखें। मूल्य २)।

रोगका घर

खांसी—इस औषधिसे नई व पुरानीसे पुरानी खाँसी, दमा, साँसको तीन दिनमें पूरा फायदा होता है। एक रोगी पूर्ण आरोग्य लायक एक मासकी औषधिका मूल्य २)।

अब ख़िज़ाब लगाना न होगा

बाल काला तेल

नक़ालोंसे सावधान !

इस तैलसे बालका पकना रुककर पके बाल जड़से काले पैदा होते हैं। यदि स्थाई काले न रहें, तो दूना दाम वापसकी शर्त। सैकड़ों प्रशंसा-पत्रोंसे इसकी सत्यता प्रमाणित है। यह तैल सरके दर्द व सरमें चक्कर आने आदिको आरामकर आँखकी रोशनीको भी बढ़ाता है। बाल कम पके हैं २), चौथाईसे अधिक पके हैं ३॥) व कुल बाल पके हों तो ५) का तैल मँगा लेवें।

वैद्यराज अखिलकिशोर राम, आयुर्वेद-विशारद, भिषक-रत्न,

नं० २८, पो० कतरीसराय (गया)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[पौष, १९९९ : : फरवरी, १९४३]

१ जीवनके हित बलि कर जीवन ! (कविता)—श्री 'बच्चन' ८१
२ नई व्यवस्था और भारत—श्री सी० वी० एच० राव ८२
३ मानव महान, मानव लघुतम (कविता)—श्रीकुमार शर्मा ८६
४ उपनिषद्का प्रथम दार्शनिक : प्रवाहण जैबलि—श्री राहुल सांकृत्यायन ८७
५ घर और बाहर—कुमार गोविन्दानुज ८८
६ गूँगों-बहरोंकी शिक्षा (स०)—श्री नृपेन्द्रमोहन मजूमदार ८९
७ फ़व्वारा (कविता)—श्री तेजनारायण काक ९४
८ सच्ची शिक्षाका स्वरूप—श्री 'जीवनमुक्त' ९५
९ शिवका मत्स्याखेट—(कविता)—डा० देवराज ९६
१० दुर्घटना (एकांकी नाटक)—श्री गौरांगप्रसाद वसु ९७
११ जीव-जन्तुओंके वैज्ञानिक नाम—श्री कृष्णानन्द गुप्त १०३
१२ जीव-विज्ञानके कुछ शब्द—कुँवर सुरेशसिंह १०५
१३ नक्षत्र (कविता)—श्री महावीरसिंह 'वीर' १०७

सन्तान **दमा**

यदि आपके लाखों यत्न करने पर भी **सन्तान नहीं** या दमेकी **बीमारी** है, तो आज ही एक महात्माकी बताई औषधि जो कि आज तक निष्फल नहीं हुई, सेवन कर देखिये। अवश्य लाभ होगा। मूल्य डाक खर्च सहित **सन्तान** की औषधि पाँच रुपये। दमे की औषधि चार रुपये।

नोटः—मैं कोई वैद्य या डाक्टरनी नहीं। मुझे केवल यही दो औषधियाँ आती हैं।

पता :—कमला (बी० बी० सी०)
पोस्ट-बाक्स नम्बर ६२, नई देहली।

ग्राहकोंके लिए

१. 'विशाल भारत' प्रत्येक अँगरेज़ी महीनेके पहले हफ़्तेमें प्रकाशित होता है। हर अंक सावधानीसे देख-भाल और पतेकी जाँच-पड़ताल करनेके बाद प्रत्येक ग्राहक, लेखक, विज्ञापनदाता, एजेण्ट आदिके पास भेजा जाता है।

२. अगर कोई संख्या किसी ग्राहक या विज्ञापनदाताके पास महीनेकी १५ तारीख़ तक न पहुँचे, तो उसे अपने यहाँके डाकघरको लिखना चाहिए और डाकघरके जवाबके साथ हमें उस मासकी २० तारीख़ तक सूचना देनी चाहिए।

३. कार्यालय उस समय तक किसी भी पत्रका उत्तर देनेके लिए बाध्य न होगा, जब तक कि पत्रके साथ उत्तरके लिए डाक-टिकट, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा या कार्ड न होगा। पत्र आनेपर आवश्यक कार्यवाही अवश्य कर दी जायगी ; पर उत्तर नहीं दिया जायगा।

४. ग्राहकोंको पत्र-व्यवहार करते, रुपया भेजने तथा पता बदलवानेका लिखते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बरका उल्लेख किए आए हुए पत्रोंपर कार्यवाही करने या उत्तर देने, अथवा इस सम्बन्धमें होनेवाले विलंबके लिए कार्यालय उत्तरदायी न होगा।

५. 'विशाल भारत' का मूल्य स्वदेशमें ६) वार्षिक, ३।) छमाही और एक प्रतिका ॥-) है तथा विदेशमें ९) वार्षिक और एक प्रतिका ।।।) है।

६. 'विशाल भारत' का मूल्य मनीआडरसे भेजना ही ग्राहकोंके लिए सुविधाजनक है। वी० पी० मँगानेमें एक तो वी० पी० ख़र्च और मनीआर्डर-कमीशन मिलाकर ।=) अधिक लग जाते हैं और वी० पी० की वसूलीमें देर होनेसे बादका अंक भेजनेमें भी देर हो जाती है।

७. युद्धके कारण कागज़, स्याही तथा प्रेसकी अन्य आवश्यक चीज़ोंके दाम चढ़ जानेसे 'विशाल भारत' रियायती मूल्यमें देना बन्द कर दिया गया है। अतः रियायत माँगनेवाले पत्रोंका उत्तर देनेको कार्यालय बाध्य न होगा। जो महानुभाव रियायतकी आशासे वार्षिक या छमाही मूल्य कम भेजेंगे, उन्हें उतने समय तक ही पत्र भेजा जायगा, जब तकका मूल्य कार्यालयमें प्राप्त होगा।

'विशाल भारत' कार्यालय
१२०।२, अपर ०र्कुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य बढ़ाया गया है

कागज़की बेहद महँगाईके कारण शरत्साहित्यके जो भाग अब छपे हैं और आगे छपेंगे, उनका मूल्य बारह आनेसे एक रुपया कर दिया गया है। भाग ३, १५ और १६-१७ हाल ही छपे हैं। इनके सिवा साहित्य-शिक्षा, हिन्दी-गद्यमाला, शाहजहाँ, मेवाड़-पतन, भारत-रमणी, दुर्गादास, जीवटकी कहानियाँ, हिन्दी-साहित्यकी भूमिका, ग्राम्य-जीवनकी कहानियाँ, देश-देशके लोग, शान्तिकुटीर, उपवास-चिकित्सा, शिवाजी, राणा प्रताप, नूरजहाँ, नवनिधि, उर्दू-हिन्दी-कोश, आनन्दकी पगडंडियाँ और ताराबाई—इन पुस्तकोंका मूल्य पहलेसे सवाया कर देना पड़ा है। अन्य सब पुस्तकोंका मूल्य ज्योंका त्यों है।

बहुतसे ग्राहक हमसे दूसरोंकी प्रकाशन की हुई पुस्तकें भी मँगाया करते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि प्रायः सभी प्रकाशकोंने अपनी पुस्तकोंके दाम बढ़ा दिए हैं। सूचीपत्रमें छपी हुई कीमतें ठीक नहीं हैं। इसलिए ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे बढ़ी हुई कीमतोंका खयाल रखकर ही आर्डर दें। कमीशन भी प्रकाशकोंने कम कर दिए हैं, इसका भी ध्यान रक्खें।

गुजरातके नाथ

गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत के० एम० मुन्शीका यह अतिशय मनोरंजक, उत्कण्ठावर्धक और कलापूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हाल ही प्रकाशित हुआ है। हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी कमी है और हिन्दीके लेखक इस समय इस ओरसे प्रायः उदासीन हैं। अतएव हिन्दीके पाठक इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। ४६० पृष्ठोंके इस उपन्यासका मूल्य सवा दो रुपया है। इसके पहले मुन्शीजीका 'पाटनका प्रभुत्व' प्रकाशित हो चुका है, जिसका मूल्य डेढ़ रुपया है। वह भी ऐतिहासिक है और उसके बादका ही इतिहास 'गुजरातके नाथ'में गुम्फित है। यों दोनों ही स्वतन्त्र हैं।

कबीर

शान्तिनिकेतनके अध्यापक पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्यने इस ग्रन्थमें कबीर, उनके साहित्य और उनकी फिलासफ़ीपर बिल्कुल ही नये दृष्टिकोणसे और बड़ी गहराईसे विचार किया है। कबीरको अच्छी तरह समझनेके लिए यह ग्रन्थ आवश्यक है। मूल्य ढाई रुपया।

जैन-साहित्य और इतिहास

लेखक:—पं० नाथूराम प्रेमी

जैन-साहित्य बहुत विशाल और गम्भीर है। व्याकरण, काव्य, न्याय, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि कोई भी ऐसा साहित्यांग नहीं है, जिसपर जैन-पण्डितोंने प्रामाणिक ग्रन्थ न लिखे हों। इस ग्रन्थमें ऐसे सैकड़ों प्रकाशित-अप्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंके ग्रन्थों और उनके कर्त्ताओंका विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके समयपर भी प्रकाश डाला गया है। इसके सिवा जैन-इतिहासकी अनेक गुत्थियां सुलझाई गई हैं। बहुतसे कवियों और ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें बिल्कुल नई खोजें की गई हैं। हिन्दीकी जननी अपभ्रंश भाषाके ऐसे अनेक कवियों और उनकी रचनाओंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें कोई जानता भी नहीं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो कुछ लिखा गया है, सब निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे।

'विश्व-भारती', 'विशाल भारत' आदि पत्रोंने और म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ, प्रो० हरिसत्य भट्टाचार्य, पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० भगवद्दत्तजी, डा० रघुवीरसिंहजी आदि माने हुए विद्वानोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या ६३४। मूल्य तीन रुपया।

संचालक—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१४ पाणिनि-कालीन भारत—प्रो० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी १०८
१५ साध (नाटक)—श्री पृथ्वीनाथ शर्मा ११२
१६ वासन्तीसे—(कविता)—श्री सोहनलाल द्विवेदी ११८
१७ बाण भट्टकी आत्म-कथा—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ११९
१८ रहमानबेकी अद्भुत करामात—
प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन १२३
१९ प्रसादके 'आँसू'पर एक दृष्टि (स०)—
प्रो० विनयमोहन शर्मा १२५
२० आर्थिक संकट और मुद्रा-प्रसार—श्री रामस्वरूप व्यास १२८
२१ अभिशाप (कहानी)—श्री ओंकारलंकर विद्यार्थी १३१
२२ यन्त्रपुरी (कविता)—श्री सियारामशरण गुप्त १३४
२३ प्रवासी भारतीय (स०)—
स्वामी भवानीदयाल संन्यासी १३५
२४ बलिदान (कहानी)—श्री पंडितजी १३९
२५ इंडिया-आफ़िस—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार १४२
२६ चिट्ठी-पत्री १४६
२७ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार १४८
२८ चयन १५१
२९ सम्पादकीय विचार १५३
तिरंगा चित्र—साँईं बाबा—श्री वीरेश्वर कर्मकार ८१

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', मू० २।)।

श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला १।=), भाग दूसरा १॥)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

शिकागो-वक्तृता—मू० ।=); **परिव्राजक**—मू० ॥=)।
प्रेमयोग; **प्राच्य और पाश्चात्य**; **आत्मानुभूति**: प्रत्येकका मू० ॥)।
मेरे गुरुदेव—मू० ।=); **वर्त्तमान भारत**—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर
(सी० पी०)

कलकत्ता आयुर्वेद कालेजके भूतपूर्व अध्यक्ष
भारत-विख्यात राजवंद्य

कविराज श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय

एम० ए० द्वारा आविष्कृत

यक्ष्मारि

सब तरहके यक्ष्मा-रोगका सर्वोत्तम प्रतिषेधक

यक्ष्मा-रोगके कीड़ोंको ध्वंसकर, श्वास, कास, स्वरभंग, लगातार बुखार, ख़ूनकी कै, फेफड़ेमें जखम, रक्त-हीनता, कमजोरी और क्षय दूर करनेकी ऐसी दूसरी दवा नहीं है।

रोग-विवरणके साथ पत्र लिखनेपर सब तरहकी व्यवस्था की जाती है

पता—राजवैद्य-आयुर्वेद-भवन

हेड आफिस—१७२, बहूबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।
फोन नं० बड़ाबाजार ४०३९

कारखाना और शाखा-औषधालय—
पोस्ट—रामपुरहाट (बीरभूम)।

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Books Available In The Modern Review Office

Name of the Book.	Price Rs.	As.	Postage with R. P. Rs.	As.
All Major Basu's books are Standard Works on the subjects.				
Rise of the Christian Power in India (*Illust. History*)—Major B. D. Basu	15	0	1	6
Ruin of Indian Trade and Industries—Major B. D. Basu	2	0	0	7
Story of Satara (*Illust. History*)—Major B. D. Basu	10	0	0	11
History of Education in India under The E. I Company—Major B. D. Basu	2	8	0	6
Consolidation of the Christian Power in India—Major B. D. Basu	1	8	0	5
India under the British Crown—Major B. D. Basu	10	0	1	0
My Sojourn in England—Major B. D. Basu	2	0	0	6
History of the British Occupation in India—[*An epitome of Major Basu's first book in the list.*]—N. Kasturi	3	0	0	6
History of the Reign of Shah Alum—W. Franklin	3	0	0	7
Canons of Orissan Architecture—[A standard book by an Expert]—N. K. Basu	10	0	0	9
Dynasties of Mediæval Orissa—Pt. Binayak Misra	4	0	0	9
History of Orissa—Vols. I & II (*Illust.*) [Authoritative History by eminent archæologist and historian.] R D. Banerji, each Volume	20	0	2	8
The History of Medieval Vaishnavism in Orissa — With introduction by Sir Jadunath Sarkar.—Prabhat Mukherjee	6	0	0	10
The First Point of Aswini—Jogesh Ch. Roy	0	8	0	4
Protection of Minorities—Radha Kumud Mukerji	0	4	0	4
Indian Medicinal Plants—Major B. D. Basu & Lt.-Col. K. R. Kirtikar—Complete in 8 Vols. [Authoritative Work with numerous Superb Plates]	320	0	extra	

Name of the Book.	Price Rs.	As.	Postage with R. P. Rs.	As.
Chatterjee's Picture Albums—Nos. 2 to 17 (*No. 1 out of Stock*) each No. at	2	4	0	6
Scenes from Indian Life (*Album*) Sarada Ukil	2	0	0	7
An Album of European Paintings	2	4	0	7
Life of Srish Ch. Basu—Phanindra Nath Basu	2	8	0	6
Hindu America (*Illustrated*)—Mr. Chaman Lal	4	8	0	11
Eminent Americans: Whom Indians Should Know—Contains biography and character sketches of Lincoln, Emerson, Garrison, Lowell, Paine, Longfellow, Holmes, Channing, Miss Alice Stone, Mrs. Lucy Stone, Whittier, Dr. Dole Mrs. J. W. Howe, H. Greeley & C. W. Eliot.—Rev. Dr. J. T. Sunderland	3	6	0	7
Emerson & His Friends—Sketches of Dr. Ripley, Parker, W. H. Furness, J. F. Clarke, Samuel, George, Rockwood, Elizabeth, Holmes Lowell, Longfellow, Agassiz, Cabot Norton, Burroughs, Whitman, Garrison, Summer, Howe, Webster, Taylor, Conway, Carlyle, Sterling etc. With introduction by Rabindranath Tagore.—By Rev Dr. J T. Sunderland	2	13	0	7
Evolution & Religion—By Ditto	2	4	0	6
Origin and Character of the Bible—Rev. Dr. J. T. Sunderland	2	4	0	7
Rajmohan's Wife—Bankim Chandra Chatterjee	1	8	0	6
Prayag or Allahabad (*Illustrated*)	1	11	0	6
The Knight Errant (*Novel*)—Sita Devi	2	13	0	6
The Garden Creeper (*Illust. Novel*) Santa Devi & Sita Devi	2	13	0	6
Tales of Bengal—Santa Devi & Sita Devi	2	4	0	6
Plantation Labour in India—Dr. Rajani Kanta Das, M.A., M.SC., PH.D	3	0	0	6
India And A New Civilization—Dr. Rajani Kanta Das, M.A., M.SC., PH.D.	3	0	0	6
Mussolini and the Cult of Italian Youth (*Illust.*)—P. N. Roy	3	8	0	7

THE MODERN REVIEW OFFICE, 120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] साँईं बाबा [श्री वीरेश्वर कर्मकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३१, अंक २] पौष, १९९९ : : फरवरी, १९४३ [पूर्णांक १८२

जीवनके हित बलि कर जीवन!

श्री 'बच्चन'

तू कैसे रचना करता है ?
तू कैसी रचना करता है ?

अपने आँसू की बूँदों में,
अविरल आँसू की बूँदों में,
विह्वल आँसू की बूँदों में,
कोमल आँसू की बूँदों में,
निर्बल आँसू की बूँदों में,

लेखनी डुबाकर बार - बार,
लिख छोटे - छोटे गीतों को,
गाता है अपना गला फाड़,
करता इनका जग में प्रचार।

उनको ले बैठ अकेले में
तुझ-से बहुतेरे दुखी - दीन
खुद पढ़ते हैं, खुद सुनते हैं,
तुझसे हमदर्दी दिखलाते,
अपनी पीड़ा को दुलराते,
कहते 'जीवन है मलीन,
यदि बचने का कोई उपाय
तो वह केवल है एक मरण।'

तू ऐसे अपनी रचना कर,
तू ऐसी अपनी रचना कर।

जगके आँसू के सागर में,
जिसमें विक्षोभ छलकता है,
जिसमें विद्रोह बलकता है,
जग का विश्वास ललकता है,
नवयुग का प्रात झलकता है,

तू अपना पूरा क़लम डुबा,
लिख जीवन की ऐसी कविता,
गा जीवन का ऐसा गायन,
गाए सँग में जग का कण-कण।
जो उसको जिह्वापर लाए,
वह दुखिया जग का बल पाए,
दुख का विधान रचनेवाला,
चाहे हो विश्वनियंता ही,
उसको सुनकर भर्रा जाए।
घोषणा करे उसका गायक,

'जीवन है जीने के लायक !
जीवन कुछ करने के लायक !
जीवन है लड़ने के लायक !
जीवन है मरने के लायक !

जीवन के हित बलि कर जीवन' !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई व्यवस्था और भारत

श्री सी० वी० एच० राव

एक विदेशीके लिए भारतकी समस्या अल्पसंख्यकों, विशिष्ट हितों और आन्तरिक झगड़ोंका एक विचित्र-सा माया-जाल है। पर तनिक बारीकीसे विचार करनेपर यह सब झगड़े और कठिनाइयाँ प्रचारवादियोंकी दन्तकथाएँ ही मालूम देती हैं। यदि शासक चाहें और सम्बन्धित व्यक्ति एवं दल सद्भावनासे काम लें, तो ये सब सहज ही हल हो सकते हैं।

पर आज हमें भारतकी समस्याको वर्त्तमान महायुद्ध द्वारा उत्पन्न स्थितिकी पृष्ठभूमिपर ही देखना होगा। कारण, अन्य सब बातोंकी अपेक्षा इसीका हमारे विचारों एवं कार्योंपर सबसे गहरा असर पड़ रहा है। आज हमारे लिए संयुक्त-राष्ट्रोंकी पूर्ण विजय और धुरी-सैनिक-सत्ताका विनाश ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि भावी नई व्यवस्थाका आधार यही होगा। जहाँ भी आज स्वाधीनताकी जोत जग रही है या जहाँ भी लोग स्वाधीनताके लिए व्याकुल हैं, वहाँ आज इसी भावनाका प्राबल्य देखनेमें आता है। धुरी-राष्ट्र भले ही अपनी 'नई विश्व-व्यवस्था' और 'सम-समृद्धि-क्षेत्र'की दुहाई दें; पर उनसे न कोई उत्साहित-उल्लसित हो रहा और न कोई धोखेमें ही आ रहा है। जिन लोगोंको हिटलर और तोजोकी नई व्यवस्थाओंका यत्किंचित् अनुभव हुआ है, उनकी और भी आँखें खुल गई हैं। उन्हें यह विश्वास हो चला है कि यदि धुरी-दस्युओंकी विजय हुई, तो मानव-सभ्यता, स्वातन्त्र्य और विकास सदियों पिछड़ जायँगे।

किन्तु जो संयुक्त-राष्ट्र आज बर्बर धुरी-शक्तियोंको विच्छिन्न और उनके मनसूबोंको बेकार करनेका प्रणकर लड़ रहे हैं, उन्हें अपने-आपसे यह प्रश्न करना चाहिए कि उनके पास धुरी-राष्ट्रोंकी तथाकथित नई व्यवस्थाके विरुद्ध लोकमत जाग्रत करने तथा अपने पक्षमें लोक-बल संग्रह करनेके लिए क्या है? क्या इसके लिए सिर्फ़ इतना कह देना ही पर्याप्त है कि यदि धुरी-राष्ट्रोंकी तथाकथित नई व्यवस्था क़ायम होने दी गई, तो मानव-स्वातन्त्र्यकी जोत बुझ जायगी और हमारी सभ्यता-संस्कृति तथा जीवनके अभिप्रेत विचारोंका नाश हो जायगा? किसी हद तक यह कहना ठीक ही है कि धुरी-शक्तियोंका विनाश संयुक्त-राष्ट्रोंका एक प्रमुख उद्देश्य है; पर इससे आज और निकट भविष्यका लोकमत आंशिक रूपसे ही सन्तुष्ट होगा और वह नैतिक तथा मनोवैज्ञानिक लोक-बल उपलब्ध नहीं होगा, जिसकी आज नितान्त आवश्यकता है। यह युद्ध मूलतः दो विचार-आदर्शों, दो प्रणालियों, दो राजनीतिक दर्शनों और जीवनके दो मार्गोंका संघर्ष है। अतः जो लोग लोकतान्त्रिक प्रणाली एवं व्यवस्थाके पक्षपाती हैं और उसकी विजय चाहते हैं, उन्हें सर्वसाधारणपर यह प्रकट करना चाहिए कि किस तरह यह प्रणाली मनुष्योंके लिए उस फाशिस्त एवं नात्सी प्रणालीसे श्रेष्ठ तथा अधिक उपयोगी है, जिसमें मानव-स्वातन्त्र्य तथा व्यक्तिगत अधिकारोंके लिए कोई स्थान नहीं! इस सम्बन्धमें शीघ्र ही कोई अमली, निश्चित, पर्याप्त, असन्दिग्ध, सोद्देश्य एवं प्रभावपूर्ण क़दम उठाया जाना चाहिए, ताकि फाशिस्त-व्यवस्थाके विरुद्ध लोगोंमें जो भावना है, वह और भी गहरी, व्यापक एवं प्रबल हो सके।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, धुरी-शक्तियोंका विनाश तो शीघ्रातिशीघ्र होना ही चाहिए; पर अगर इससे भी कोई अधिक ज़रूरी, महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य है, तो वह यह कि इनके विरुद्ध होनेवाले युद्धके साथ-ही-साथ शान्तिको भी जीता जाय और धुरी-राष्ट्रोंकी तथाकथित नई व्यवस्थाके विरुद्ध एक ऐसी यथार्थ लोकतान्त्रिक विश्व-व्यवस्थाकी नींव डाली जाय, जिसमें छोटे-बड़े सभी राष्ट्र स्वतन्त्र हों, देशों और व्यक्तियोंकी अर्थनीतिक विषमताएँ दूर हों, सर्वत्र सामाजिक न्याय हो और प्रत्येक व्यक्ति तथा राष्ट्र समान-स्वतन्त्र रूपसे एक-दूसरेसे बर्त्ताव कर सकें। किसी 'वाद'-विशेषका प्राधान्य हम नहीं चाहते; बल्कि मानवता, मानव-कल्याण और सुख-समृद्धि ही हमें सर्वाधिक श्रेय एवं प्रेय हैं। इन उच्चादर्शोंके लिए हमारे पुरुषोंने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी हैं और असंख्य क़ीमती क़ुर्बानियाँ दी हैं। यदि इस उद्देश्यकी पूर्त्तिमें उसे निराशा और विफलता मिली है तथा यदि आज भी मानव इनकी प्राप्तिके उपयुक्त स्थिति पैदा नहीं कर पा रहा है, तो इसमें कुछ तो उन स्वार्थी मनुष्योंका दोष है, जो बहुत बड़े-बड़े मानव-समाजोंके कर्त्ता-धर्त्ता हो रहे हैं और कुछ जन-साधारणका भी, जिनका नैतिक विकास अभी इन आदर्शोंसे लाभ उठा सकने लायक़ नहीं हो पाया है। कौन कह सकता है कि इस युद्धके बाद भी हमें अभीष्ट-सिद्धिमें निराशा और विफलता ही मिले? पर यदि हम राष्ट्र, व्यक्ति एवं श्रेणीगत स्वार्थों और संकीर्णताओंके नामपर मानव-कल्याणको धता न बता दें, तो इनके प्रभाव एवं परिमाणको काफ़ी कम कर सकते हैं और इनकी प्राप्तिके मार्गपर मानवताको काफ़ी आगे बढ़ा सकते हैं। मानवता शान्तिके लिए व्याकुल है, युद्धके लिए नहीं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर वह ऐसी शान्ति भी नहीं चाहती, जिसमें व्यक्ति और राष्ट्रकी विषमता, गुलामी, नीच-ऊँच और मौजूदा वैशिष्ट्य स्थायी बने रहें! जिस शान्तिमें ये सारी बातें बरक़रार रहेंगी, वह तो युद्धसे भी बदतर है। कारण, इसमें युद्धका खतरा और उसे जन्म देनेवाली परिस्थितियाँ तो सदा मौजूद ही रहेंगी। इसके अतिरिक्त पृथ्वीके बहुत बड़े भागोंकी जनतामें स्थायी असन्तोष, विषमता और मनोवैज्ञानिक अव्यवस्था रहेगी। अतः हमें पहले यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि हम वास्तवमें करना क्या चाहते हैं? जहाँ हमें दृढ़ निश्चयपूर्वक युद्धका विरोध करना है, वहाँ उस शान्तिके लिए भी व्यर्थ प्रयत्न नहीं करना है, जो चिर-अशान्तिमय शान्ति ही हो! यदि संयुक्त-राष्ट्रोंके नेताओं एवं जनताने इन महत्त्वपूर्ण पहलुओंको भलीभाँति महसूस नहीं किया, तो वे मानवताके प्रति ऐसा भयंकर अपराध एवं विश्वास-घात करेंगे, जिसका शायद ही कोई प्रायश्चित्त हो सके।

इस सम्बन्धमें जो महत्त्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न उपस्थित होते हैं, उनपर श्री वैंडेल विल्कीने, जिन्होंने पिछले दिनों मध्य-पूर्व और चीनका दौरा किया था, बड़े असन्दिग्ध रूपसे प्रकाश डाला है। न्यूयार्कके 'हैराल्ड फोरम' में निकले अपने एक लेखमें वे पूछते हैं—"हम कैसे निश्चय करेंगे कि किस लिए हम भावी शान्तिको जीतना चाहते हैं? और उसे इस युद्धके दौरानमें जीतनेके लिए हम कैसे तैयारी करेंगे?" ये प्रश्न सहज ही उनसे पूछे गए हैं, जो कहते हैं कि युद्ध-संचालन एकमात्र युद्ध-नीति-विशारदोंपर छोड़ दिया जाना चाहिए और जनसाधारणको उसमें दखल नहीं देना चाहिए। निःसन्देह प्राचीन युद्धोंकी भाँति आधुनिक युद्ध भी युद्ध-नीति-विशारदों एवं सेना-नायकोंका काम है। युद्धोंकी योजनाएँ युद्ध-नीति-विशारदोंका उतना ही काम हैं, जितना कि युद्ध और शान्तिको सम्भव करना राजनीतिज्ञों एवं जन-साधारणका काम है। अतएव यह निर्विवाद एवं निःसन्दिग्ध है कि आनेवाली शान्तिकी स्थापना जन-साधारणका ही काम है। यह असन्दिग्ध है कि शान्तिके आधारभूत सुदृढ़ सिद्धान्तोंके अमलपर ही संयुक्त-राष्ट्रोंकी विजय होगी। अतः सबसे अधिक ध्यान और ज़ोर इनके अमल एवं विकासपर ही दिया जाना चाहिए।

राष्ट्र-संघकी स्थापना और विफलता

पाठक भूले न होंगे कि १९१४-१८ के महायुद्धको 'सब युद्धोंका अन्त करनेवाला युद्ध' घोषित किया गया था; पर इसके विपरीत वह यूरोपीय राजनीतिज्ञोंकी भयंकर भूलों, राष्ट्र-वादियोंकी संकीर्णता, वर्सई-सन्धि करने तथा उसपर अमल करने-वालोंमें व्यापक दृष्टिका अभाव तथा राष्ट्र-संघके संचालकोंमें सदु-द्देश्यकी कमी होनेके कारण अधिक बड़े और भयंकर महायुद्धकी नींव डालने तथा उपनिवेशोंके भूखे और वर्ण-औद्धत्यके दम्भी अधिनायक हिटलरको जन्म देनेवाला सिद्ध हुआ! जिन लोगोंने पिछला युद्ध लड़ा और जीता, उन्होंने निश्चय ही एक आदर्शके लिए अपने प्राण उत्सर्ग किए; किन्तु जिन्होंने सुलह करके शान्ति स्थापित की और उसे कार्यान्वित किया, उन्होंने उन क़ीमती क़ुर्बानियोंको अपने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वार्थोंकी सिद्धिका सोपान बना लिया और मानवताको इस दूसरे महायुद्धकी विभीषिका और विनाशके द्वारपर ला खड़ा किया! सच तो यह है कि वर्सई-सन्धिके बाद यूरोपीय राजनीतिज्ञोंने जिस आदर्श-प्रियता एवं विशालहृदयताका परिचय दिया, वे नाम-मात्रको ही थीं। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सान्निध्यके सिद्धान्तको स्वीकारकर राष्ट्र-संघकी स्थापना तो की; पर राष्ट्रीय स्वार्थों एवं सुरक्षाके मोहने उन्हें इतना अन्धा बना दिया कि वे उसके निष्पक्ष एवं सफल संचालनका रहस्य नहीं जान सके। सामू-हिक सुरक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और निःशस्त्रीकरणके उनके छिछले भाव शीघ्र ही राष्ट्रीय सुरक्षाके संकीर्ण दायरेमें आबद्ध हो गए और शान्ति-रक्षाके लिए एक बार फिर उन्हें हिटलरके आगे गिड़गिड़ाना पड़ा—जिसने शान्तिका कभी दिखावा न कर बराबर युद्धके लिए ही तैयारी की।

आज हम फिर यूरोप और अमरीकाके कई राजनीतिज्ञोंको अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण-सहयोगकी बात कहते देखते हैं। लेकिन इसपर विचार करते समय हमें पिछले राष्ट्र-संघकी विफलताके कारणोंको न भूल जाना चाहिए और उनसे सबक़ हासिल करना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्र-संघकी स्थापनाके मूलमें यूरोपीय राजनीतिज्ञोंके आदर्शकी प्रेरणा प्रमुख थी। पर उस समय इन आदर्शोंपर प्रभावपूर्ण ढंगसे अमल करनेको न तो राष्ट्र ही तैयार थे और न उनका लोकमत ही। उसके प्रधान प्रतिष्ठाता ब्रिटेन, फ्रांस और रूस अपने बड़प्पनके मोहके कारण उसे अमली रूपमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-संरक्षण-संस्था नहीं बना सके। अफ्रीका और एशियाके बहुसंख्यक लोगोंके लिए तो वह एक ऐसा दिखावा था, जिसमें उनका कोई हाथ न था। कहनेके लिए भारत भी उसका स्वतन्त्र सदस्य है; पर उसे ब्रिटेनका पिछलगुआ ही समझना चाहिए, क्योंकि उसका प्रति-निधि भारत-मन्त्री द्वारा नामज़द होता है, जो ब्रिटिश प्रस्तावोंके समर्थनके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय निर्णयोंपर कोई असर नहीं डाल सकता। इससे कुछ ही बेहतर स्थिति चीनकी है, जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मानकी अपेक्षा लिहाज़ ही अधिक किया जाता रहा है। इधर उसने जिस मुस्तैदीसे जापानका मुक़ाबिला किया है और संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें जिस सहयोग एवं आत्म-त्यागका परिचय दिया है, उसके प्रति मित्र-राष्ट्रोंके रुखमें खासी तब्दीली हुई है। कहनेका तात्पर्य यह है, जिस राष्ट्र-संघमें एशिया और अफ्रीका-जैसे महाद्वीपोंका स्वतन्त्र एवं प्रभावपूर्ण अस्तित्व न हो और जिससे संयुक्त-राष्ट्र अमरीका तथा जर्मनी-जैसे राष्ट्र उदासीन हों, वह सफल और प्रभावपूर्ण हो भी कैसे सकता है। आज भी संयुक्त-राष्ट्रोंके सामने यूरोप और यूरोपीय हित ही प्रधान हैं और उनका दृष्टिकोण उन्हींसे अनुप्राणित है। राष्ट्र-संघकी विफलतासे हम सबसे बड़ा सबक़ यही हासिल कर सकते हैं कि बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, अन्तर्राष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक भित्ति और समूचे विश्वकी समानता तथा स्वाधीनताके कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था कृतकार्य हो नहीं सकती। इस दृष्टिसे भारतका उसका स्वतन्त्र, समान एवं सम्माननीय सदस्य होना उसके उद्देश्य एवं आदर्श-पूर्तिकी प्राथमिक आवश्यकता है।

संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध और शान्तिके उद्देश्य

इस युद्धमें भी संयुक्त-राष्ट्रोंने अपने युद्ध और शान्तिके जिन उद्देश्योंकी घोषणा की है, उनमें यूरोपीय महाद्वीपका प्राधान्य एवं सुदूर-पूर्वकी उपेक्षा स्पष्ट है। एटलांटिक-सनदके अनुसार यह युद्ध फाशिस्त दासतासे यूरोपीय राष्ट्रोंको मुक्तकर उनकी राजनीतिक व अर्थनीतिक स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीय सुरक्षाके लिए लड़ा जा रहा है। राष्ट्रपति रूज़वेल्टके यह कहनेपर भी कि यह सनद समूची मानवताके लिए है, ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री श्री चर्चिलने स्पष्ट रूपसे कहा है कि यह भारतपर लागू नहीं होगी। अतः एक भारतीय राष्ट्रवादीकी हैसियतसे यह कहा जा सकता है कि संयुक्त-राष्ट्रों—और खासकर ब्रिटेन—द्वारा घोषित युद्ध और शान्तिके ये उद्देश्य भारतको सन्तुष्ट एवं आश्वस्त नहीं कर सके हैं। युद्ध छिड़ते ही बिना उसकी इच्छाके ब्रिटेनके अधीन होनेके कारण उसे युद्ध-रत घोषित कर देना भारतके राष्ट्रीय लोकमतकी दृष्टिमें उसके आत्म-सम्मानपर भारी आघात हुआ है। जापानके युद्धमें शामिल होनेके बाद भारतकी सुरक्षाका प्रश्न काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो चला है। इस स्थितिमें भी ब्रिटेन द्वारा अपनी रक्षा और शासनकी यथार्थ ज़िम्मेदारी न दिए जाने और देशव्यापी राष्ट्रीय प्रेरणाओंको उत्तेजन न दिए जानेके कारण भारतीय काफ़ी निराश, परेशान और असन्तुष्ट हैं। उनकी रायमें ब्रिटेनका यह व्यवहार उसके घोषित उद्देश्यों एवं आदर्शोंके प्रतिकूल है।

ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री श्री चर्चिलको इस समय हिटलरकी पराजयके उपाय सोचने और उनके अमलकी नीति निर्धारित करनेके लिए डिक्टेटरोंके-से अधिकार प्राप्त हैं। उनकी रायमें भारतीयोंको युद्ध-कालमें अपने देशके शासनकी बागडोर सौंपनी ठीक नहीं, क्योंकि कुछ भारतीयोंने मौजूदा परिस्थितियोंमें राजनीतिक-कारणोंसे युद्धके प्रति अपना विरोध ज़ाहिर किया है। एटलांटिक सनदके भारतपर लागू न होनेकी उन्होंने जो बात कही है, उससे स्पष्ट है कि उनके मतानुसार भारतके साथ ब्रिटेन जब जैसा ठीक समझे, व्यवहार कर सकता है। भारतके बारेमें उनका रुख और मनोवृत्ति कदाचित् आज भी वे ही हैं, जिनसे प्रेरित होकर उन्होंने १९३५ के गवर्मेंट आफ़ इंडिया एक्टका ज़ोरोंसे विरोध किया था। वे शायद यह महसूस नहीं करते कि आज मानवताका भाग्य ही खतरेमें पड़ा हुआ है। वे नहीं समझते कि धुरी-शक्तियोंके विरोध एवं विनाश तथा संयुक्त-राष्ट्रोंकी विजयके लिए भारतकी आज़ादी संयुक्त-राष्ट्रोंकी युद्ध-नीति, उनके उद्देश्यों एवं शान्तिकी योजनाओंका आवश्यक भाग ही नहीं, मेरुदण्ड भी है! यही नहीं, अपने मेन्शन-हाउसके भाषणमें आपने स्पष्ट कहा है कि ब्रिटेनके पास जो-कुछ है, वह उसे क़ायम रखना चाहता है और आप ब्रिटिश साम्राज्यके खात्मेकी सदारत करनेको तैयार नहीं हैं! आपके इस कथनसे तो यही स्पष्ट है कि ब्रिटेनका प्रधान युद्ध-उद्देश्य हर हालतमें अपने साम्राज्यकी रक्षा करना है! परन्तु वास्तवमें इस बातपर विश्वास करना सर्वथा असम्भव है कि ब्रिटेन धुरी-शक्तियोंके विरुद्ध जो अपने सर्वस्वकी बाज़ी लगा रहा है, वह महज़ इसलिए कि भारत और अन्य अधिकृत देशोंपर—जिनपर कि हिटलर और तोजोके साम्राज्योंके स्वप्नोंसे बहुत पहलेसे ही उसका अधिकार है—अपना एकाधिकार बरक़रार रखे। पर श्री चर्चिलके साम्राज्यवादी रुख और घोषणासे यदि कोई ऐसा समझता है, तो उसका दोष नहीं। मूलतः श्री चर्चिलका कथन साम्राज्यवादकी रक्षाके लिए एक साम्राज्यवादीका वक्तव्य है।

जनसाधारणके लिए तो वर्त्तमान महायुद्ध एक विश्वव्यापी युद्ध है, जिसे भौगोलिक गोलार्द्धों एवं क्षेत्रोंमें विभाजित नहीं किया जा सकता। अपने अधीनस्थ देशों एवं उपनिवेशोंके प्रति ब्रिटेनकी जो नीति रही है तथा हांगकांग, मलाया, सिंगापुर और बर्माका जो भाग्य हुआ है, उसे देखते हुए कोई भी अंगरेज़ श्री चर्चिलके कथनका समर्थन नहीं कर सकता। इन अनुभवोंने एक राष्ट्रके किसी भूखण्डके लोगोंके राजनीतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अर्थनीतिक विकासके लिए ट्रस्टी होनेके सिद्धान्तका खोखलापन सर्वसाधारणके सामने उघाड़कर रख दिया है। साम्राज्यवादके मूलमें काम करनेवाले इस सिद्धान्तका समर्थन करना शोषणका औचित्य सिद्ध करनेकी चेष्टाके समान है। संयुक्त-राष्ट्रोंमें अमरीका और ब्रिटेन ही ऐसे देश हैं, जिनके अधीन अधिकांश देश और उपनिवेश हैं। अतः उन्हें राजनीतिक ग़ुलामी और आर्थिक शोषणसे मुक्तकर विजयका मार्ग सुनिश्चित एवं प्रशस्त करने तथा युद्धोपरान्त स्थापित होनेवाली नई व्यवस्थाके आधारको सुदृढ़ करनेकी नैतिक ज़िम्मेदारी इन्हींपर है। सही अर्थोंमें एटलांटिक-सनदकी पूर्ति और श्री चर्चिलके साम्राज्यवादी वक्तव्यसे पैदा हुए भ्रमका निराकरण इसी प्रकार किया जा सकता है और इसी तरह ब्रिटेनके सदुद्देश्यकी यथार्थता सिद्ध की जा सकती है।

ब्रिटेनके वादे और उनका अर्थ

ऊपर हमने श्री चर्चिलके जिन वक्तव्योंकी आलोचना की है, वे स्पष्टतः ब्रिटेन और उसके बादशाह द्वारा भारतको दिए गए उन आश्वासनों और दावोंके भी विरुद्ध हैं, जिनमें कहा गया है कि भारतको युद्धके बाद पूर्ण स्वाधीनता दे दी जायगी, वह अपना विधान स्वयं बनायगा तथा उसे वह औपनिवेशिक दरजा दिया जायगा, जिसमें वह चाहे तो ब्रिटेनसे सम्बन्ध विच्छेद करने तकको स्वतन्त्र होगा। उनके वक्तव्य श्री एमरीके उन बहुआवृत्त दावोंके भी विरुद्ध हैं, जिनमें कहा गया है कि युद्धके बाद भारतको ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलमें उतनी ही स्वाधीनता प्राप्त होगी, जितनी कि ब्रिटेनको है! वे बादशाहके वक्तव्यके भी विरुद्ध हैं, जो उन्होंने गत ११ नवम्बरको पार्लमेण्टका उद्घाटन करते हुए दिया था कि 'मेरी संयुक्त-राज्यकी सरकारने भारतके राजाओं और लोगोंके प्रति युद्धके बाद भारतीयों द्वारा बनाए जानेवाले विधानके आधारपर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलमें भारतको पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करते देखनेकी इच्छा घोषित कर दी है।' अब श्री चर्चिल ही बतलायँ कि उनके वक्तव्यों और बादशाहके भाषणकी इन सद्भावनाओंमें कहाँ तक साम्य है?

पर असली प्रश्न तो है इन वादों, आश्वासनों एवं सद्भावनाओंको अमली रूप देनेका। हमें देखना है कि किस प्रकार ब्रिटेन अमरीकन उपनिवेशों, अफ्रीका और आयरलैण्डके अपने पुराने सम्बन्धों तथा अपनी कट्टरता और अविश्वासको भुलाकर एक सुनिश्चित सरकारी नीति द्वारा इन्हें कार्यान्वित करता है। इसमें हमें कई गाँठें नज़र आ रही हैं। पहली तो है क्रिप्स-योजना, जो वापस भी ले ली गई और अब तक क़ायम भी है! गाँधीजीने इसे 'आगेकी तारीखका चेक' कहा है। दूसरी गाँठ है युद्धके बादके भारतकी आज़ादीके आश्वासनका कई घुंडियों और नियन्त्रणोंसे ग्रसित होना। इनमें से एक घुंडी यह भी है कि इसके लिए विविध जातियों और हितोंके लोगोंका एकमत होना लाज़िमी होगा, जब कि इसकी रूप-रेखा ही विविध जातियों एवं हितोंके भारतीयोंमें विचारों तथा कार्योंकी एकताको असम्भव बना देती है। यही चाल क्रिप्स-योजनामें भी है। उसके अनुसार यदि भारतका भाग्य-निर्णय हो, तब तो वह परस्पर-विरोधी भागोंमें इस प्रकार बँट जायगा, देशी राज्योंके रूपमें जहाँ-तहाँ इतने अल्स्टर बन जायँगे और साम्प्रदायिक वैभिन्य इतना हो जायगा कि राजनीतिक शान्ति स्वप्न बन जायगी और नक़्शा देखनेपर उसे भारत नामक एक देशके रूपमें पहचानना भी मुश्किल हो जायगा। हाँ, ब्रिटेनसे सम्बन्ध विच्छेद करनेकी स्वतन्त्रताके साथ औपनिवेशिक दरजेकी बात ज़रूर कुछ मानी रखती है। पर भारतीयोंका एक भाग, जो गांधीजीका अनुयायी है—और यह भाग काफ़ी महत्त्वपूर्ण तथा विकासशील है—औपनिवेशिक दरजेको छुएगा भी नहीं। जिन लोगोंका यह विश्वास है कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलमें शामिल होनेसे भारतको कुछ अर्थनीतिक और फ़ौजी लाभ ही होगा, वे भी ब्रिटेन द्वारा इस सम्बन्धमें निर्धारित सीमाओं तथा प्रतिबन्धोंसे काफ़ी परेशान हैं। इन प्रतिबन्धों एवं शर्तोंसे, जिनमें कुछ भी असन्दिग्ध तथा सुनिश्चित नहीं है, कब और कैसे भारत औपनिवेशिक दरजा प्राप्तकर लाभ उठायगा, यह कह सकना कठिन है। यह और भी दुःखकी बात है कि इसे अमली जमा पहनानेसे पहले ही ब्रिटेन अपनी नीतिसे अधिकांश भारतीयोंके मनमें वह मनोवैज्ञानिक स्थिति पैदा कर रहा है, जिसमें मजबूर होकर औपनिवेशिक दरजा मिलनेपर भारतका ब्रिटेनसे सम्बन्ध विच्छेद करनेकी ओर ही विशेष झुकाव हो।

साथ ही औपनिवेशिक दरजेकी भावना एवं रूप-रेखा भी तेज़ीसे बदल रही है और उसके अधिकारोंकी कोई सीमा-रेखा दिखाई नहीं देती। वैस्ट-मिंस्टरके क़ानून द्वारा उन्हें ब्रिटेनसे पृथक होनेका अधिकार मिल गया है। उन्हें उससे जोड़े रखनेकी एकमात्र प्रभावपूर्ण कड़ी ताज है, बशर्ते कि वे उसको इस रूपमें स्वीकार करें। इस युद्धने यह स्पष्ट कर दिया है कि आस्ट्रेलिया और कनाडा-जैसे उपनिवेश ब्रिटेनके मुखापेक्षी बने रहनेके बजाय अपनी स्वतन्त्रताका प्रयोग कर संयुक्त-राष्ट्र अमरीकासे अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करना अधिक श्रेयस्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं। इसका कारण यह है कि ब्रिटेन इनकी रक्षा-सम्बन्धी अपनी ज़िम्मेदारी ठीक तौरसे पूरी नहीं कर सकता और निकट होनेके कारण संयुक्त-राष्ट्र अमरीका इसके लिए अधिक उपयोगी हो सकता है। रक्षा-सम्बन्धी यह सहयोग ही युद्धोपरान्त व्यापारिक तथा अर्थनीतिक सहयोग-सम्बन्धका आधार बनेगा, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। अतः अगर युद्धके बाद कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड ऐसा करें, तो निश्चय ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके औपनिवेशिक दरजेकी मनोभावना एवं रूप-रेखा काफ़ी बदल जायगी। अतः भारत भी—अगर ब्रिटिश सरकारने अपने आश्वासनके अनुसार उसे औपनिवेशिक दरजा दिया, तो—इस प्रकारके सम्बन्ध स्थापित करनेके अपने अधिकारका प्रयोग करेगा और यदि आवश्यक हुआ, तो ब्रिटेन या ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलसे, बिना उन्हें किसी प्रकारकी क्षति पहुँचाए, अपना सम्बन्ध भी विच्छेद कर लेगा।

जो भी कुछ हो, अगर ब्रिटिश अधिकारियोंके आश्वासनके अनुसार भारतको युद्धोपरान्त औपनिवेशिक दरजा दिया जाता है, तब भी उसकी रक्षाके लिए युद्ध-कालमें उसे हर तरहसे स्वावलम्बी एवं आत्म-निर्भर बनाना उनका फर्ज़ है, ताकि ज़रूरत पड़नेपर वह अपने पाँवोंपर खड़ा हो सके। वास्तविकता एवं यथार्थताका तकाज़ा है—जिनमें सबसे उल्लेखनीय है भारतमें काफ़ी बड़ी तादादमें ब्रिटिश सेनाके अलावा चीनी और अमरीकन सैनिकोंकी उपस्थिति—कि ब्रिटेन स्वयं इस कार्यमें विलम्ब न करे। इसीके द्वारा वह भारतसे मैत्री एवं ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलसे उसका स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इसीसे वह यह भी सिद्ध कर सकता है कि भारतको वास्तवमें ब्रिटिश राष्ट्रमंडलमें रहनेसे ही आर्थिक, राजनीतिक और अन्य प्रकारके लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

ब्रिटेनके कुछ राजनीतिज्ञोंका खयाल है कि अल्पसंख्यक, सिविलियन, देशी नरेश और ब्रिटिश व्यापारिक हित आदि कुछ ऐसी बाधाएँ हैं, जिनके कारण भारतको बिना शर्त्त स्वतन्त्र घोषित करने और भारतीयोंको शासनाधिकार सौंप देनेसे यहाँ एकदम अराजकता फैल जायगी। पर सच बात तो यह है कि ये 'बाधाएँ' तभी तक हैं, जब तक कि ब्रिटिश सरकारकी मौजूदा नीति है। यदि सरकार साफ़गोईसे काम ले, तो ये सब अपने-आपको परिवर्त्तित स्थितिके अनुकूल बना लेंगे। भारतकी स्वाधीनताकी कुंजी ब्रिटेनके हाथमें है। जिस दिन उसने इसे भारतीयोंको सौंप दिया, वे दलादली और साम्प्रदायिक भेद-भाव भूलकर अपने देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए सगठित एवं प्रस्तुत हो जायँगे। इस कुंजीको अपनी मुट्ठीमें बन्द करके ब्रिटेनका यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता कि तुम सब मिल जाओ, तो यह तुम्हें सौंप दी जायगी। भारतीय दलोंके संगठित होने और आपसके झगड़े तय करनेका वास्तविक उत्तेजन उस समय तक नहीं मिल सकता, जब तक कि उन्हें यह विश्वास न हो जाय कि उन्हें अपने देशके मामलोंपर पूरा अधिकार होगा। इस अधिकारका उनके हाथमें आना ही इतना बड़ा उत्तेजन होगा कि वे अलग-अलग रहनेका खयाल भी नहीं कर सकते।

अतः अमरीका और ब्रिटेनके लिए जमनी और जापानकी उपनिवेशोंकी भूखकी निन्दा करना तथा स्वय उपनिवेशोंको सदा अपने अधीन बनाए रखना नैतिक दृष्टिसे सर्वथा अनुचित है। यदि उसने इस मोहका त्याग नहीं किया, तो यह युद्ध निरर्थक होगा; इसमें सितम्बर १९३९ से जो असंख्य मनुष्योंकी बलि दी जा रही है, वह बेकार जायगी और एटलांटिक-सनदका मूल्य उस कागज़के टुकड़े जितना भी न होगा, जिसपर कि वह लिखी गई है। पर हम जानते हैं कि ऐसी बात नहीं है और एटलांटिक-सनदका वही अभिप्रेतार्थ है, जो उसकी भाषासे व्यक्त होता है। उसकी पहली और तीसरी धाराओंमें स्वाधीनता और आत्म-निर्णयके अधिकारोंका जो उल्लेख है, वह सब लोगों—समूची मानवता—के लिए है और संयुक्त-राष्ट्र उसे यथार्थमें 'समूची मानवताकी आज़ादीकी सनद' बनायँगे।

मानव महान, मानव लघुतम !

श्रीकुमार शर्मा विद्यालंकार

मानव महान, मानव महान !
मानव ने हिमगिरि विजय किया, मानव ने हिम-सागर छाना,
मानव ने मथ-मथकर समुद्र अज्ञात रश्मियों को जाना,
मानव ने नव - नव ग्रह देखे औ' सुना तारकों का गाना,
मानव ने विहँस परीक्षा ली स्रष्टा की कृति की साभिमान !
मानव महान, मानव महान !

मानव लघुतम, मानव लघुतम !
मानव अपने तक सीमित है, है स्वार्थ-वृत्ति सीमाविहीन,
स्वाधीन प्रयत्नों में,—लेकिन अपने अन्दर है दास - दीन,
अधिकार, भोग, लिप्सा, तृष्णा, छलना, विलास है पुष्ट पीन,
मानव मानव को खाता है, मानव की मानवता निर्मम !
मानव लघुतम, मानव लघुतम !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्का प्रथम दार्शनिक : प्रवाहण जैबलि

श्री राहुल सांकृत्यायन

जिन उपनिषदोंमें ऐतिहासिक नाम मिलते हैं, उनमें छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतकि और मैत्रेयी ही हैं। इनमें भी जिन ऋषियोंके नाम आए हैं, उनमें सत्यकाम जाबाल, प्रवाहण जैबलि, उद्दालक आरुणि और याज्ञवल्क्य ही वे व्यक्ति हैं, जिनके बारेमें कहा जा सकता है कि उपनिषद्-दर्शनकी मौलिक कल्पनामें इनका विशेष हाथ था। ऋग्वेद-कालमें भी कुरु-पंचाल (पश्चिमी युक्तप्रान्त) वैदिक आर्योंके प्रधान कार्य-क्षेत्र थे। यहीं भरद्वाजके यजमान पंचाल-राज दिवोदासका समृद्धि-शाली राज्य था। यहीं उसके पुत्र सुदास् पहले वशिष्ठ और पीछे विश्वामित्रको पुरोहित बना अनेक याग कराए और पश्चिमके दस राज्योंको पराजितकर पंजाबमें भी सतलज-ब्यास तक अपना राज्य फैलाया। उपनिषद्-कालमें वेदकी इसी भूमिको हम फिर नये विचारकोंको पैदा करते देखते हैं। उद्दालक आरुणि कुरु-पंचालका ब्राह्मण था, यह शतपथ ब्राह्मणसे[1] मालूम होता है। जनककी जिस परिषद्में विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करके याज्ञवल्क्यने विजय प्राप्त की थी, उसमें मुख्यतः कुरु-पंचालके विद्वान मौजूद थे।[2] याज्ञवल्क्यके समयसे दो शताब्दियों बाद बुद्धके समय भी इसी भूमि (कुरुक्षेत्र=मेरठ कमिश्नरी) में अपने 'महासतिपट्ठान-सुत्त' और 'महानिदान-सुत्त'[3] जैसे दार्शनिक उपदेश करनेका कारण बतलाते हुए अट्ठकथा-कार कहते हैं—"कुरुदेश-निवासी...देशके अनुकूल ऋतु आदि-युक्त होनेसे हमेशा स्वस्थ शरीर, स्वस्थ चित्त होते हैं। चित्त और शरीरके स्वस्थ होनेसे प्रज्ञाबल-युक्त हो गम्भीर कथा (=उपदेश) ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं।...भगवान् (बुद्ध) ने कुरुदेश-निवासी परिषद्को पा गम्भीर देशना (=उपदेश) का उपदेश किया।... (इस देशमें) दास (=क्रीत पुरुष) और कर्मकर, नौकर-चाकर भी स्मृति-प्रस्थान (=ध्यान-योग) सम्बन्धी कथा ही को कहते हैं। पनघट और सूत कातनेके स्थान आदिमें भी व्यर्थकी बात नहीं होती। यदि कोई स्त्री—'अम्म! तू किस स्मृति-प्रस्थानकी भावना करती है?' पूछनेपर 'कोई नहीं' बोलती, तो उसको धिक्कारती हैं—'धिक्कार है तेरी ज़िन्दगीको, तू जीती भी मुर्देके समान है।"[4]

यह अट्ठकथाएँ ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमें भारतसे सिंहल-द्वीपमें गई परम्पराके आधारपर ईसाकी चौथी सदीमें लिखी गई थीं।

प्रवाहण जबलि (७००-६५० ई० पू०) उपनिषद्के प्रधान विचारकोंमें हैं। प्रवाहणके समयके बारेमें हम इतना ही जानते हैं कि वह याज्ञवल्क्यके गुरु उद्दालक आरुणिके गुरु थे। याज्ञवल्क्यका समय हमें ६५० ई० पू० के आसपास मालूम होता है, यह हम अन्यत्र बतला चुके हैं। प्रवाहण जहाँ पंचालके राजा तथा उपनिषद्-दर्शनके आचार्य थे, वहाँ वह अपने समयके तीन प्रसिद्ध साम-गायकों[5] में एक थे; बाक़ी दो थे—शिलक शालावत्य और चैकितायन दाल्भ्य। शिलक और चैकितायन ब्राह्मण थे, जब कि प्रवाहण क्षत्रिय थे, इसीलिए वह साम गाते वक्त अपने साथियोंसे कहते—"आप (दोनों) भगवान् बोलें, (आप) ब्राह्मणोंके वचनका मैं सुनूँगा।"[6] प्रवाहणका राजा होना इससे भी सिद्ध है कि उनके प्रश्नोंपर पण्डित-मानी श्वेतकेतु जब उत्तर न दे सका, तो अपने पिता उद्दालक आरुणिके पास जाकर जैबलिको 'राजन्य-बन्धु'[7] कहकर ताना मारा। प्रवाहणने उद्दालकको उपदेश देते वक्त कहा था कि तुमसे पहले यह विद्या ब्राह्मणोंके पास नहीं गई, इसे हम आगे कहनेवाले हैं।

दार्शनिक विचार—जैबलिके विचार छान्दोग्यके दो स्थानों तथा बृहदारण्यके एक स्थानपर मिलते हैं, जिनमें एक तो छान्दोग्य[8] और बृहदारण्यक[9] दोनों जगह दुहराया गया है :—

"श्वेतकेतु आरुणेय पंचालोंकी समितिमें गया। उससे प्रवाहण जैबलिने पूछा—'कुमार, क्या पिताने तुझे अनुशासन (=शिक्षण) किया है?'

'हाँ, भगवन्!'

'जानते हो, यहाँसे प्रजाएँ (=प्राणी) कहाँ जाती हैं?'

'नहीं, भगवन्।'

'जानते हो, कैसे यहाँ लौटती हैं?'

'नहीं, भगवन्।'

'जानते हो, क्यों वह (=पर) लोक नहीं भर जाता?'

'नही, भगवन्।'

'जानते हो, क्यों पाँचवीं आहुतिमें जल पुरुष-नामवाला हो जाता है?'

---

१. शत० १।४।१२। २. बृहद्० ३।१।१, 'तत्र कुरुपंचालानां ब्राह्मणा अभिममेता बभूवः।' ३. दीघनिकाय, २।१४, २।२२। ४. दीघनिकाय-अट्ठकथा; महासतिपट्ठान-सुत्त (देखो, बुद्धचर्या, पृष्ठ ११८)।

५. छान्दोग्य १।८।१। ६. वही। ७. बृहद्० ६।२।३; छान्दोग्य ५।३।५। ८. छान्दोग्य ५।३।१। ९. बृहद्० ६।२।१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं, भगवन्!'

'तो कैसे (अपनेको) अनुशासन-किया (=पठित) बतलाते हो? जो इन (बातों) को नहीं जानता, कैसे वह (अपनेको) अनुशिष्ट बतलायगा!'

"(तब) खिन्न होकर वह (श्वेतकेतु) अपने पिताके पास आया और बोला—'बिना अनुशासन किए ही भगवान् (=आप) ने मुझे कहा—तुझे मैंने अनुशासन कर दिया। राजन्य-बन्धुने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे, उनमें से एकका भी उत्तर मैं नहीं दे सका।'

'जैसा कि तूने मुझे इन प्रश्नोंको बतलाया, मैं उनमें से एकको भी नहीं जानता। यदि मैं उन्हें जानता, तो क्यों न तुझे बतलाता?'

"तब गौतम (उद्दालक आरुणि) राजाके पास गए। उनके पहुँचनेपर उन्हों (जैबलि) ने उनका सम्मान किया। दूसरे दिन···(आरुणि गौतमसे) पूछा—'भगवन् गौतम! मानुष-वित्तका वर माँगिए।'

"उस (उद्दालक) ने कहा—'मानुष-वित्त तेरे ही पास रहे। जो कुमार (श्वेतकेतु) से कही, वही (बात) मुझसे भी कह।'

"वह (जैबलि) मुश्किलमें पड़ गया। फिर आज्ञा दी—'चिरकाल तक वास करो।...जैसा कि तुमने गौतम, मुझसे कहा। (किन्तु) चूँकि यह विद्या तुमसे पहले ब्राह्मणोंके पास नहीं गई, इसीलिए सारे लोकोंमें क्षत्रियका ही प्रशासन (=शासन) हुआ।'..."

फिर पाँचवीं आहुतिमें कैसे वह पुरुष-नामवाला होता है, इसे समझाते हुए जैबलिने कहा—"गौतम, वह (नक्षत्र) लोक अग्नि है, उसका सूर्य ही ईंधन है, सूर्य-रश्मियाँ धूम हैं, दिन किरण, चन्द्रमा अंगार और नक्षत्र (तारे) शिखाएँ हैं। इस अग्निमें देवता श्रद्धाका हवन करते हैं। उस आहुतिसे सोम राजा पैदा होते हैं।

"पर्जन्य अग्नि है...वायु ईंधन, अभ्र (=अब्र, बादल) धूम, बिजली किरण, अशनि (=चमक) अंगार, ह्रादुनि (=कड़क) शिखाएँ। इस अग्निमें देव सोमराजका हवन करते हैं। इस आहुतिसे वर्षा होती है।"

इसी तरह आगे भी बतलाया है। इस सारे उपदेशको कोष्टकमें इस प्रकार दिया जा सकता है :—

अग्नि	ईंधन	धूम	किरण	अंगार	शिखा	आहुति	फल
(नक्षत्र)लोक	सूर्य	रश्मि	दिन	चन्द्रमा	नक्षत्र	श्रद्धा	सोम
पर्जन्य	वायु	अभ्र	विद्युत	अशनि	ह्रादुनि	सोम	वर्षा
पृथिवी	संवत्सर	आकाश	रात्रि	दिशा	अन्तर्दिशा	वर्षा	अन्न
पुरुष	वाणी	प्राण	जिह्वा	चक्षु	श्रोत्र	अन्न	वीर्य
स्त्री	उपस्थ	प्रेमाह्वान	योनि	अंतःप्रवेश	मैथुनसुख	वीर्य	गर्भ

"इस प्रकार पाँचवीं आहुतिमें जल पुरुष-नामवाला (गर्भ) हो जाता है। वह झिल्लीमें लिपटा गर्भ दस या नौ मासके बाद (उदरमें) लेटकर जन्मता है। जन्मसे आयु-भर जीता है। मरनेपर अग्नियाँ ही उसे यहाँसे वहाँ ले जाती हैं, जहाँसे कि (आकर) वह पैदा हुआ था।"

आगे ब्रह्म-विद्याके जाननेवाले साधकके लिए देवयान (=देवताओंका रास्ता) प्राप्त होता है, यह बतलाया गया। छान्दोग्यके इसी संवादको वृहदारण्यकने भी दोहराया है। हाँ, जैबलिने जिन मानुष-वित्तोंके देनेकी बात की है, उनकी यहाँ गणना भी कर दी गई—हाथी, सोना, गाय, घोड़े, प्रवर दासियाँ (=क्रीत स्त्रियाँ), वस्त्र। यह विद्या आरुणि (उद्दालक)से पहले 'किसी ब्राह्मणमें नहीं बसी', इस बातपर यहाँ भी ज़ोर दिया गया। पंचाग्नि, फिर देवयान, पितृयान (पितरोंका रास्ता), पुनर्जन्म और पितृयानसे लौटकर फिर इस लोकमें, छान्दोग्यके अनुसार, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि योनियों और वृहदारण्यकके अनुसार, कीट-पतंग आदिमें भी जन्म लेना। यह खूब स्मरण रखनेकी बात है कि पुनर्जन्मका सिद्धान्त क्षत्रियों (=शासकों) का गढ़ा हुआ है। और तब इसके भीतर छिपा रहस्य (=उपनिषद्) आसानीसे समझमें आ सकता है। (अप्रकाशित 'दर्शन-दिग्दर्शन'से)

खेतवाड़ी मेन रोड, बम्बई ४]

घर और बाहर

आकाशमें तारे चमक रहे थे। वह उन्हींकी ओर देखता रहा। पर तारोंका लक्ष्य उसे देखना नहीं था और न वे उसके लिए चमक ही रहे थे। फिर भी वह उन्हींकी ओर देखता रहा।

घरमें दीपक जल रहा था। वह उसीके लिए जल रहा था। उसीके लिए था उसका प्रकाश। पर उसको उस छोटे-से मन्द-ज्योति दीपकाकी ओर देखना पसन्द नहीं था। वह तारोंकी ओर ही देखता रहा।

एक तारेने नीचे देखा। उसको लगा जैसे वह उसीकी ओर देख रहा है। तारा नीचे आने लगा। उसे लगा जैसे वह उसीकी ओर आ रहा है। वह उसकी तरफ़ देखता हुआ भागने लगा। पर तारा भी क्या कभी उसके हाथ लग सकता था! वह गया किधर ही और यह गिरा किधर ही।

घर आकर उसने देखा कि दीपक उसको देखकर आज भी सदाकी भाँति ही हँस रहा है!

—कुमार गोविन्दानुज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

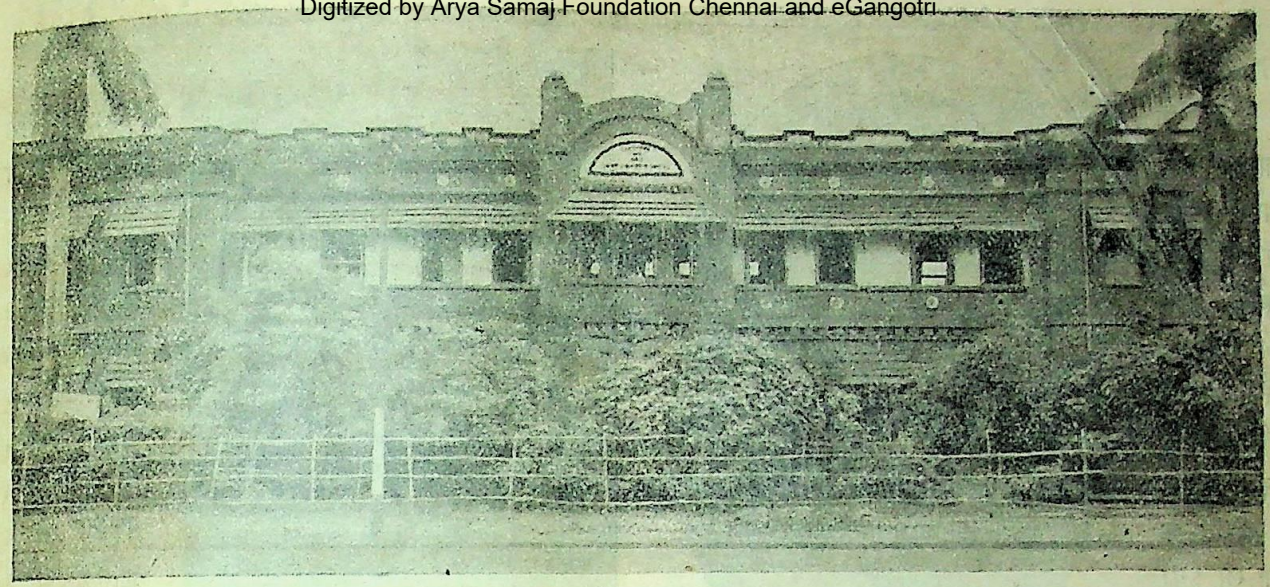

कलकत्तेका मूक-बधिर-विद्यालय।

गूँगों-बहरोंकी शिक्षा

श्री नृपेन्द्रमोहन मजूमदार

संसारमें जितने प्रकारके धर्म-ग्रन्थ, पुराण आदि हैं, उनके देखनेसे अभागे गूँगों-बहरोंके अस्तित्वका पता तो चलता है; पर उनको शिक्षा और संस्कृतिके लिए किसी व्यवस्थाका निर्देश नहीं मिलता। इससे मालूम होता है कि वे चिर-कालसे ही घृणित और उपेक्षित रहे हैं। सभी लोगोंकी यही धारणा थी और आज भी कितनों ही की है कि उन्होंने संसारमें व्यर्थ ही जन्म लिया है और बिना कुछ किए ही चुपचाप एक दिन काल-कवलित हो जायँगे। पर कहीं-कहीं गूँगों-बहरोंकी अवस्थाका कुछ-कुछ आभास अवश्य मिलता है। प्राचीन कालमें यूरोपमें उनपर जैसा अमानुषिक अत्याचार होता था, भारतमें वैसे अत्याचारकी बात कहीं भी सुननेमें नहीं आती। रोम आदिमें तो उनपर बड़े अमानुषिक अत्याचार होते थे। वहाँ-वाले आदर्श जाति-गठनके प्रयासमें इन असहाय गूँगों-बहरोंकी निर्दयतापूर्वक हत्या कर डालते थे। यद्यपि भारतमें उनपर ऐसा अत्याचार नहीं होता था, फिर भी उनको अच्छाई-बुराईकी ओर ध्यान देना कभी विशेष आवश्यक नहीं समझा गया। हिन्दू-क़ानूनकी प्रखर दृष्टिसे आज भी वे मुक्ति नहीं पा सके हैं। इस क़ानून द्वारा वे पैतृक सम्पत्तिके अधिकारसे वंचित हैं। आज गूँगे-बहरे शिक्षित और सभी प्रकारके कार्य करनेमें सक्षम होते हुए भी हिन्दू-क़ानूनकी कठिन व्यवस्थासे छुटकारा नहीं पा सके हैं। क़ानूनके इसी सुयोग और सुविधाकी शरण लेकर अनेक क्षेत्रोंमें असहाय शिक्षित गूँगों-बहरोंको उनकी सम्पत्तिसे वंचित कर दिया जाता है। ऐसे कितने ही शिक्षित गूँगे-बहरे हैं, जो अपनी पैतृक सम्पत्तिकी सर्वसाधारणके समान ही दक्षताके साथ रक्षा कर सकते हैं। सुतरां, क़ानूनकी इन कठिन धाराओंमें परिवर्तन करके शिक्षित गूँगों-बहरोंके सम्बन्धमें नए क़ानून बनानेकी विशेष आवश्यकता है।

आधुनिक सभ्यताके फल-स्वरूप आजकी कठिन जीवन-समस्याके युगमें भी पृथिवीमें सब कहीं गूँगों-बहरों और अन्धोंकी शिक्षाके लिए प्रयत्न हो रहा है और इस प्रयत्नमें सर्व-साधारणकी सहानुभूति भी मिल रही है। पाश्चात्य देशोंमें सातवीं शताब्दी तक गूँगों-बहरोंकी शिक्षाके लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। आठवीं शताब्दीसे उनकी शिक्षाका थोड़ा-बहुत कार्य आरम्भ हुआ। पहले जिन व्यक्तियोंने गूँगों-बहरोंकी शिक्षा-पद्धतियोंका आविष्कार किया था, वे अपनी-अपनी शिक्षा-पद्धतिके अनुसार उन्हें शिक्षा देते रहे। दुःखका विषय है कि उनमें से ऐसा एक भी नहीं था, जिसने अपनी शिक्षा-प्रणाली किसी दूसरेको बतलाई हो। इसके परिणाम-स्वरूप उनकी शिक्षा-प्रणालियाँ सर्वसाधारणमें प्रचारित नहीं हो पाईं और उनकी मृत्युके साथ ही लुप्त हो गईं।

सन् १७६० में आबे द'लापे नामक एक फ्रांसीसीने दो गूँगी-बहरी बालिकाओंकी दुरवस्थासे आकृष्ट होकर पेरिस नगरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूँगों-बहरोंका एक छोटा-सा विद्यालय क़ायम किया। यही गूँगों-बहरोंका संसारका सर्व-प्रथम विद्यालय था। आबे द'लापेने उनकी शिक्षाके लिए 'सांकेतिक प्रणाली' का आविष्कार किया। कुछ ही समयमें वे अपनी आविष्कृत प्राणालीसे उन्हें शिक्षा देनेमें सफल हुए। १७७६ में स्थानीय सरकारने इस विद्यालयके चलानेका भार अपने ऊपर लिया। २३ दिसम्बर, १७८९ को ७० वर्षकी उम्रमें उनकी मृत्यु हो गई। उनके स्मारक-स्वरूप उनके द्वारा प्रतिष्ठित पेरिसके विद्यालयमें (रायल इन्स्टीट्यूशन फ़ार दि डेफ़ एण्ड डम्ब) में तथा उनके जन्मस्थान ओवरसेलिसमें उनकी मूर्त्तियाँ खड़ी की गईं। प्रतिवर्ष उनके जन्म-दिनके उपलक्षमें पेरिसमें नाना देशोंसे आए हुए गूँगे-बहरे और कितने ही गण्य-मान्य व्यक्ति इकट्ठे होकर उनकी स्मृति-पूजा करते हैं। आज समूचे फ्रांसमें २२,६१० गूँगों-बहरोंके लिए ७१ विद्यालय स्थापित हो चुके हैं।

आबे द'लापे

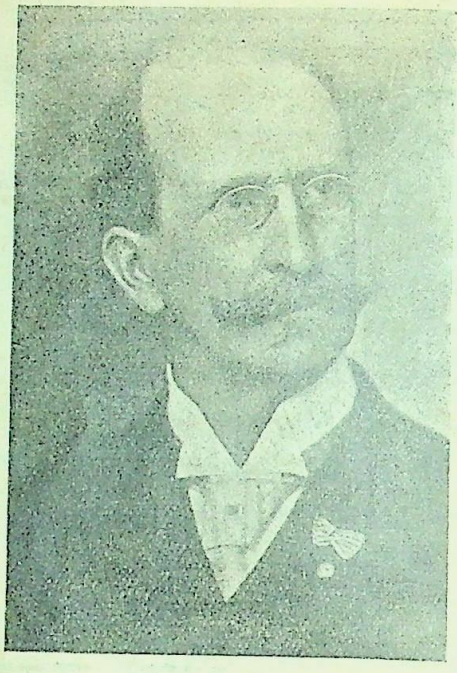
डा० ई० एम० ग्लाउडेट

१७५५ में सेमुअल हाइनिका नामक एक जर्मनने ड्रेसडन नगरमें सिर्फ़ दो गूँगे-बहरे लड़कोंको शिक्षा देना आरम्भ किया। कुछ ही समयमें उनके असीम यत्न और कोशिशसे उन दोनों लड़कोंने उन्नति प्राप्त कर ली। इससे उनकी शिक्षाकी प्रसिद्धि सर्वसाधारणमें फैल गई और १७७८ में उन्होंने ९ गूँगे-बहरे लड़कोंको इकट्ठा करके लाइप्ज़िक नगरमें एक विद्यालय खोला। जर्मनीमें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाका यही सर्वप्रथम विद्यालय था। हाइनिका अपनी आविष्कृत 'मौखिक प्रणाली'से शिक्षा दिया करते थे। पहले-पहल तो उन्होंने अपनी शिक्षा-प्रणालीको गुप्त ही रखा; पर अन्त तक वे ऐसा नहीं कर सके। हाइनिकाने अपनी आविष्कृत मौखिक प्रणालीके सम्बन्धमें आबे द'लापेसे कितनी ही बार पत्र-व्यवहार किया। इसी पत्र-विनिमयके फलस्वरूप संसारको ज्ञात हुआ कि यत्न

सेमुअल हाइनिका

स्व० यामिनीनाथ बन्द्योपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चेष्टा करनेसे गूँगे बोल सकते हैं और अपनी दृष्टि - शक्तिसे दूसरेकी भाषा समझनेमें समर्थ हो सकते हैं। आज सारे सभ्य जगत्में हाइनिकाकी आविष्कृत मौखिक प्रणाली द्वारा ही गूँगों-बहरोंको शिक्षा दी जा रही है। ३० अप्रैल, १७९० में हाइनिकाकी मृत्यु हो गई। उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करनेके लिए उक्त विद्यालयमें सर्वसाधारणकी सहायतासे उनकी एक मूर्ति खड़ी की गई है। आज जर्मनीमें ३८,४८९ गूँगों-बहरोंके लिए ९९ विद्यालय चल रहे हैं।

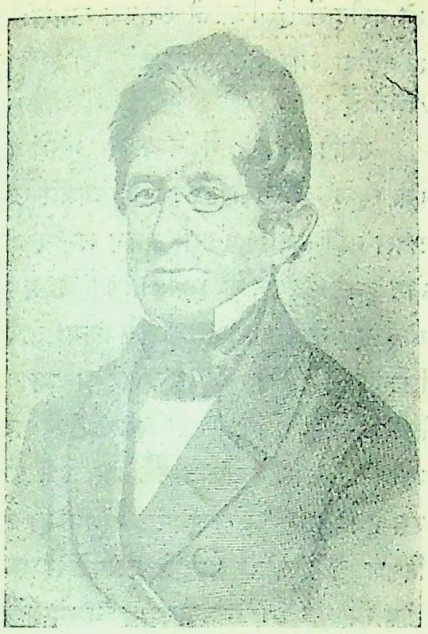

टामस एच० ग्लाउडेट

पेरिसमें आबे द'लापे और जर्मनीमें सेमुअल हाइनिकाके विद्यालयोंकी स्थापनाके समय ही टामस ब्रेडउड नामक एक अंगरेज़ एडिनबरो नगरमें सांकेतिक और मौखिक प्रणालियोंके सम्मिश्रणसे 'युक्त प्रणाली' द्वारा एक गूँगे-बहरे बालकको शिक्षा दिया करते थे। फिर उन्होंने लन्दन शहरके निकटवर्ती हेकनी नामक ग्राममें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाके लिए एक विद्यालय भी खोला। १७९२ में ब्रेडउड और उनके भतीजे मि० जोसेफ़ वाट्सनने सिर्फ़ ६ गूँगे-बहरे लड़कोंको लेकर लन्दनमें 'दि ओल्ड केन्ट रोड इन्स्टीट्यूशन' नामसे एक विद्यालय खोला। १८०६ में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी स्मृति-रक्षाके लिए 'नेशनल कालेज आफ़ दि टीचर्स आफ़ दि डैफ़' ने 'ब्रेडउड' नामसे एक स्वर्ण-पदक जारी किया है। गूँगों-बहरोंकी शिक्षाकी उन्नतिमें मौलिक गवेषणा करना और १८९७ में ग्लासगोमें स्थापित 'नेशनल एसोसिएशन आफ़ टीचर्स आफ़ दि डैफ़' के प्रथम सम्मेलनकी स्मृति-रक्षा करना इस पदकके जारी करनेका उद्देश्य है। आज ब्रिटेनमें गूँगों-बहरोंकी संख्या १९,२३७ है और उनके लिए ९५ विद्यालय हैं।

फ्रांसमें आबे द'लापे, जर्मनीमें सेमुअल हाइनिका और इंग्लण्डमें टामस ब्रेडउडने सर्वप्रथम असहाय गूँगों-बहरोंके उपयुक्त शिक्षा और संस्कृति-प्रसारके लिए प्रकट रूपमें विद्यालय स्थापित करके समग्र जगत्के सम्मुख उनके शिक्षा-विस्तारका पथ-प्रदर्शन किया था। इन महानुभावोंका स्वार्थत्याग, कर्मठता तथा महानुभावता इतिहासके पन्नोंमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जायँगे। वे सच्चे अर्थमें आर्त्तोंके बन्धु थे। आज संसारके प्रायः सभी सभ्य देशोंमें गूँगों-बहरोंके लिए स्कूल खुल गए हैं। पाश्चात्य देशोंमें गूँगे-बहरे बालक और बालिकाओंकी शिक्षा सर्व-साधारणके समान ही अनिवार्य कर दी गई है।

अमरीकामें इस प्रकारका स्कूल पहले-पहल एक छोटी-सी गूँगी-बहरी लड़कीके कारण खुला था। सन् १८०७ में वहाँके हार्टफ़ोर्ड नामक स्थानमें डा० कारज़वैलकी प्रायः ढाई वर्षकी लड़की किसी भीषण रोगसे बहरी हो गई। इससे उसके माता-पिताको गहरी चोट लगी और वे अपनी पुत्रीको किसी प्रकार शिक्षा देनेके लिए चिन्तित हो उठे। इसी समय उनके पड़ोसी एक शिक्षित युवक श्री टामस एच०ग्लाउडेटकी दृष्टि उस अभागी बालिकाकी ओर आकृष्ट हुई और उसने उसे कई उपायोंसे शिक्षा देनी शुरू की। कुछ ही समयमें वह लड़की दो-एक शब्दोंका उच्चारण करने लग गई। इसी समय श्री ग्लाउडेटको यूरोपके गूँगों-बहरोंके स्कूलका पता चला। उन्होंने कितने ही स्थानीय व्यक्तियोंकी सहायतासे हार्टफोर्डमें एक कमेटी क़ायम की। उस कमेटीका ध्येय अमरीकामें एक ऐसा विद्यालय स्थापित करना था, जहाँ अमरीकाके गूँगे-बहरे शिक्षा प्राप्त कर सकें। उक्त कमेटीने श्री ग्लाउडेटको गूँगों-बहरोंकी शिक्षा-प्रणालीका पर्याप्त अध्ययन करनेके लिए २५ मई, १८१५ को इंग्लैण्ड भेजा। पर इंग्लैण्डमें उन्हें इस विषयमें कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला, अतः वहाँसे वे पेरिस चले गए और वहाँ आबे द'लापे द्वारा स्थापित विद्यालयमें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाके विषयमें काफ़ी अध्ययन किया। वहाँसे विशेष योग्यता प्राप्तकर १८१६ में वे अमरीका लौटे। १८१७ में सिर्फ़ सात छात्रोंको लेकर अमरीकामें पहले-पहल एक विद्यालय खोला गया। अमरीकामें ३३,८७८ गूँगों-बहरोंके लिए आज १२६ स्कूल चल रहे हैं। गूँगों-बहरोंको उच्च शिक्षा देनेके लिए सन् १८९४ में श्री ग्लाउडेटके सुयोग्य पुत्र डा० ई० एम०

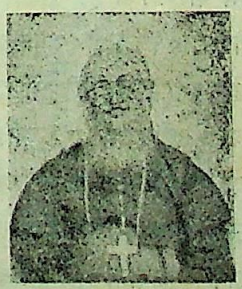

डा० लियो म्युरिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

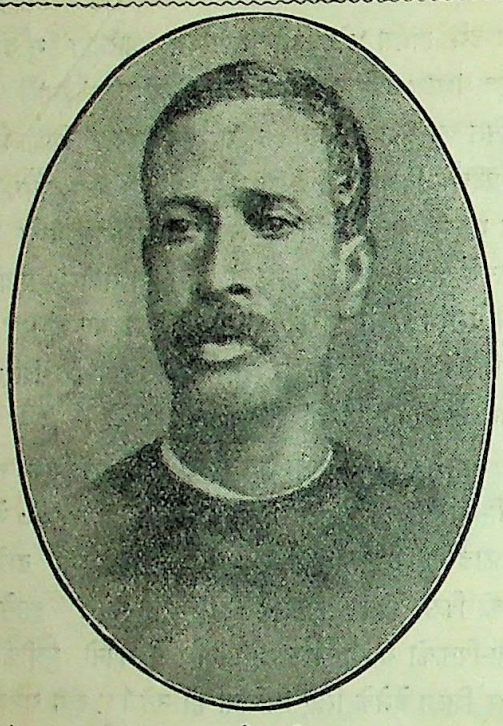

स्व० श्रीनाथसिंह

ग्लाउडेटने वाशिंगटनमें एक कालेजकी स्थापना की। इस कालेजको 'ग्लाउडेट-कालेज' कहते हैं। प्रतिवर्ष कितने ही गूँगे-बहरे इस कालेजसे बी० ए० और एम० ए० तककी उपाधियाँ प्राप्त कर रहे हैं।

अमरीका और पाश्चात्य देशोंमें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाका व्यापक प्रसार होनेपर भी भारतमें अब तक उनकी शिक्षाकी कोई व्यापक एवं सन्तोषप्रद व्यवस्था नहीं हो सकी है। प्रायः ७० वर्ष पूर्व बंगालके छोटे लाट सर रीवर टामसनने स्थानीय लोगोंकी सहायतासे कलकत्तेमें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाके लिए एक विद्यालयकी स्थापनाकी काफ़ी कोशिश की थी; किन्तु धनाभाव और सर्वसाधारणकी पर्याप्त सहानुभूति प्राप्त न होनेसे उनकी यह सद्भावना कार्य रूपमें परिणत न हो सकी।

बम्बई प्रेसीडेन्सीके प्रधान पादरी डा० लिओ म्युरिनका गूँगों-बहरोंकी शिक्षाकी ओर ध्यान गया और उन्हींकी चेष्टाके फल-स्वरूप १८८४ में बम्बईमें भारतका सर्वप्रथम मूक-बधिर-विद्यालय स्थापित हुआ। विद्यालयका कार्य नियन्त्रित और सुचारु रूपसे चलता रहे, इस खयालसे उन्होंने आयरलैण्डसे गूँगों-बहरोंकी शिक्षा-प्रणालीमें दक्ष एक शिक्षक बुलवाया। स्थानीय सरकार भी डा० म्युरि द्वारा स्थापित विद्यालयकी सहायताके लिए राज़ी हुई। इस प्रकार डा० लिओ म्युरि भारतवर्षमें मूक-बधिर-शिक्षाके प्रथम पथ-प्रदर्शक हैं। आज बम्बई-प्रेसीडेन्सीमें गूँगों-बहरोंके लिए ८ स्कूल चल रहे हैं। इनमें से दो बड़ौदामें हैं, जिनकी स्थापना क्रमशः १९०९ और १९१३ में बड़ौदा और मेहसानामें हुई थी और जो राज्यके खर्चसे चलते हैं।

यद्यपि १८८४ में बम्बईमें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाके लिए एक स्कूल खुल गया, फिर भी बंगालमें उनकी शिक्षाके लिए कोई प्रयत्न नहीं हुआ। इसी समय लन्दनके प्रसिद्ध 'ओल्ड केन्ट रोड इन्स्टीट्यूशन'के एक बधिर छात्र श्री फ्रान्सिस मैगिन, बी० ए० ने देखा कि भारतके प्रायः ढाई लाख गूँगों-बहरोंकी शिक्षाका बम्बई नगरको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी प्रबन्ध नहीं है। अतः उन्होंने भारतमें मूक-बधिर-विद्यालय खोलनेके उद्देश्यसे भारतके तत्कालीन बड़े लाटके पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा। किन्तु उस समय उनकी वह शुभेच्छा पूर्ण न हो सकी। जब वे यहाँसे निराश हो गए, तो उन्होंने यूरोपके समस्त शिक्षित गूँगों-बहरोंके साथ मिलकर भारतके असहाय गूँगों-बहरोंकी शिक्षा-व्यवस्थाके लिए स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाके पास एक प्रार्थना-पत्र भेजा।

कलकत्तेके एक ज़मींदार स्वर्गीय गिरीन्द्रनाथ वसुके दो पुत्र और दो कन्याएँ गूँगे-बहरे थे। वे अपनी अभागी सन्तानको पढ़ाने-लिखानेके लिए बड़े उत्सुक थे। उन्होंने गूँगों-बहरोंकी शिक्षा-सम्बन्धी कितनी ही पुस्तकें और समाचारपत्र इकट्ठे किए और स्वयं बम्बईका मूक-बधिर-विद्यालय भी देखा। फिर उन्होंने स्वर्गीय श्रीनाथसिंहको शिक्षक रखकर अपने तत्त्वावधानमें अपनी सन्तानकी शिक्षाका कार्य आरम्भ किया। श्रीनाथ बाबूकी

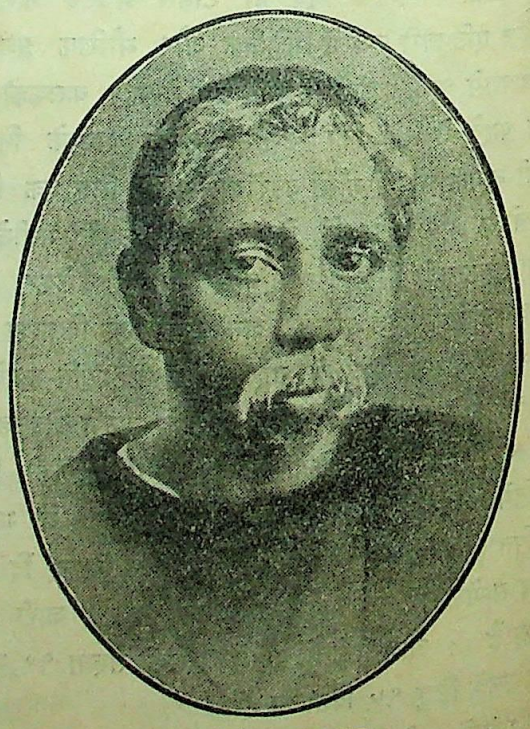

स्व० उमेशचन्द्र दत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

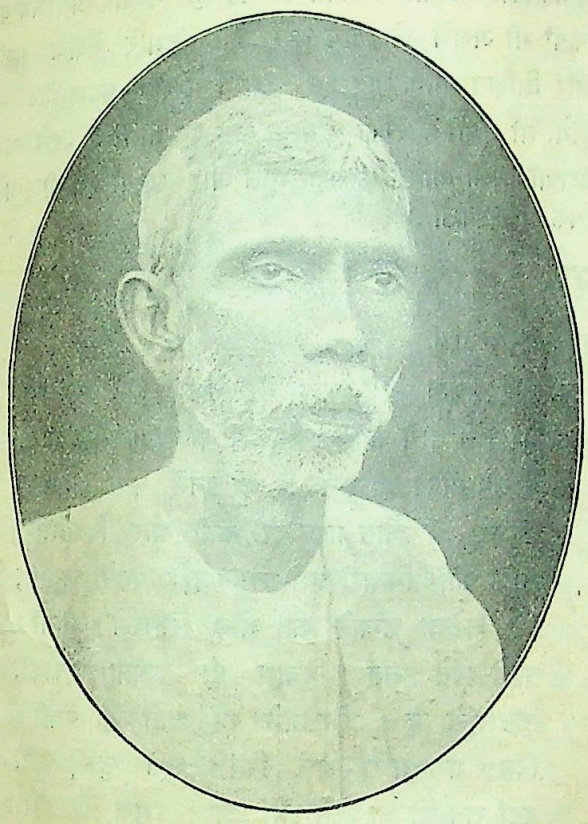

श्री मोहिनीमोहन मजूमदार

कोशिशसे थोड़े ही समयमें उनके लड़के-लड़कियोंने कितने ही शब्दोंका उच्चारण सीख लिया। उसी समय गिरीन्द्र बाबूने कलकत्तेमें एक मूक-बधिर-विद्यालयकी स्थापनाके लिए ज़ोरोंका आन्दोलन किया और इसके लिए काफ़ी खर्च भी किया। इतना करनेपर भी उन्हें सर्वसाधारणका सहयोग न मिला और उनका मनोरथ सिद्ध न हो सका।

जून, १८९३ में स्व० श्रीनाथसिंहने सिर्फ़ दो गूँगे-बहरे छात्रोंको लेकर सिटी-कालेजके तत्कालीन प्रिन्सिपल स्व० उमेशचन्द्र दत्तके सहयोगसे उक्त कालेजके एक कमरेमें गूँगों-बहरोंका क्लास खोला। कुछ ही दिनोंमें कलकत्ता-मूक बधिर-विद्यालयके प्रतिष्ठाता श्री मोहिनीमोहन मजूमदार और स्व० यामिनीनाथ बन्द्योपाध्यायसे श्रीनाथसिंहको काफ़ी सहायता मिलने लगी। इससे पहले ही मोहिनी बाबू गिरीन्द्रनाथ वसुकी गूँगी-बहरी सन्तानको चित्रांकनकी शिक्षा देते थे और इसी कारण श्रीनाथ सिंहसे उनका विशेष परिचय भी था। उमेश बाबूके तत्त्वावधानमें अब ये तीन युवक गूँगों-बहरोंकी शिक्षाके लिए प्रयत्नशील हुए। कुछ ही समयमें गूँगे-बहरे शिक्षा पाने लगे और छात्र-संख्यामें भी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। १८९४ में उमेश बाबूने एक कमेटी बनाई और स्कूलका सारा भार उसे सौंप दिया। फिर भी इस संस्थाके संचालनका भार उमेश बाबूपर ही था। उपर्युक्त चार व्यक्तियोंकी सम्मिलित चेष्टाके फल-स्वरूप वह छोटा-सा क्लास आज 'कलकत्ता-मूक-बधिर-विद्यालय'के नामसे प्रसिद्ध है।

आधुनिक उन्नततर प्रणालीसे गूँगों-बहरोंकी शिक्षा-पद्धतिके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए अगस्त, १८९४ में यामिनीनाथ इंग्लैण्ड गए। दो वर्ष तक इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड और अमरीकामें शिक्षा प्राप्तकर वे भारत लौटे। यहाँ उनकी नियुक्ति विद्यालयके अध्यक्ष-पदपर की गई। इसी समयसे विद्यालयका कार्य व्यवस्थित रूपसे चलने लगा। १८९६ में स्थानीय सरकारने विद्यालयको १२५) मासिक सहायता देना मंजूर किया और सन् १८९४ से कलकत्ता-कार्पोरेशनने भी १००) मासिक सहायता देना शुरू किया। विद्यालयके तत्कालीन प्रेसिडेंट माननीय सी० डब्लू० बोल्टनके प्रयत्नसे लाखों रुपए एकत्रित किए गए और १९०३ में २९३, अपर सर्कुलर रोडपर स्थित विद्यालयकी सुन्दर इमारत बनवाई गई। आज यहाँ २४० गूँगे-बहरे छात्र-छात्राएँ शिक्षा पा रहे हैं। उनको स्वावलम्बी बनानेके लिए उद्योग-धन्धोंकी भी शिक्षा दी जाती है। आज कितने ही गूँगे-बहरे यहाँसे शिक्षा प्राप्तकर अपनी जीविका उपार्जन कर रहे हैं।

इन सब प्रयत्नोंके बावजूद भारतवर्षमें इस दिशामें अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। देशके गूँगों-बहरोंके अनुपातसे उनकी शिक्षाका कार्य अभी बहुत नगण्य है। फिर भी देशमें उनकी शिक्षाका थोड़ा-बहुत प्रयत्न हो रहा है और जनसाधारणकी दया-दृष्टि भी किंचित् परिमाणमें इस ओर आकृष्ट हुई है। आज भारतके विभिन्न स्थानोंमें गूँगों-बहरोंके ४० स्कूल चल रहे हैं, जिनमें से बंगालमें ११, बम्बईमें ९, मद्रासमें ८,

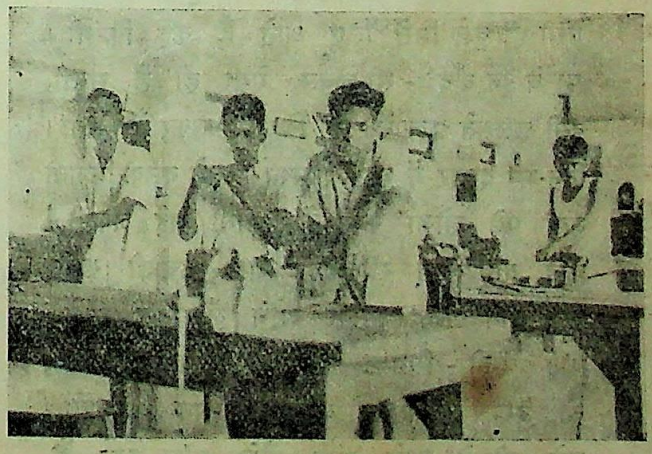

मूक-बधिर उद्योग-धन्धे सीख रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारमें २, उड़ीसामें १, आसाममें १, दिल्लीमें १, हैदराबादमें १, युक्त-प्रान्तमें २, मैसूरमें १, कोचीनमें १ और मध्य-प्रदेशमें २ हैं। इन सब विद्यालयोंमें सिर्फ़ ८०० छात्र-छात्राएँ शिक्षा पा रहे हैं। प्रायः ढाई लाख गूँगों-बहरोंकी तुलनामें छात्र-छात्राओंकी यह संख्या निस्सन्देह शोचनीय ही है।

गूँगों-बहरोंकी उपयुक्त शिक्षाके लिए आज भारतमें जो जनहितकारी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं, उनकी प्रयोजनीयता किसी भी अंशमें उपेक्षणीय नहीं है। हमारे देशके सम्पन्न और शिक्षित व्यक्ति यदि इस दिशामें विशेष प्रयत्नशील नहीं होंगे, तो गूँगों-बहरोंकी दुरवस्था कैसे दूर होगी? इस कार्यमें देशवासियोंकी आन्तरिक सहानुभूति और सहयोगिताकी अत्यधिक आवश्यकता है।

फ़व्वारा

श्री तेजनारायण काक, एम० ए०

बीच पार्क के खड़ा हुआ है एक बड़ा फ़व्वारा,
मोती की लड़ियों-सी उज्ज्वल छूट रही जल-धारा।
प्रातः रवि की चंचल किरणें इसे चूमने आतीं,
इस फ़व्वारे की फुहियों को सोने से मँढ़ जातीं।
दिन-भर कैसा छहर-छहरकर यह बूँदें बरसाता,
अपने चारों ओर धूप में हीरे-से बिखराता!
संध्या अपनी रंग-बिरंगी तूली लेकर आती,
इन बूँदों को इन्द्रधनुष के रंगों से रँग जाती।
रात चाँदनी में झर-झरकर जब चलता फ़व्वारा,
ऐसा लगता टूट रही है नभ से उल्का-धारा।
प्रातः-संध्या यहाँ न-जाने कितने प्राणी आते?
देख-देख इस फ़व्वारे को फूले नहीं समाते।
कोई कहता—'देखो तो, यह कैसा विहँस रहा है?'
कोई कहता—'रिमझिम-रिमझिम कैसा बरस रहा है?'
कितने ही पूँजीपति, बाबू, लेखक, कवि, भिखमंगे,
इसी पार्क में प्रतिदिन आते, कितने शुहदे-गुण्डे!
घूम रही हैं परियों-सी कितनी तितलियाँ अकेली,
प्रतिदिन धनिक साथ लाते हैं कोई नई नवेली!
लिपट रही है फ़व्वारे से जो मूरत अधनंगी,
ऐसी ही कुछ मिसें लिए आते हैं कई फ़िरंगी।
पर वे इन बूँदों-सी चंचल, ऐसी ही हैं सस्ती,
इसी छलकते फ़व्वारे-सी खिल-खिलकर हैं हँसतीं।
दिन-भर दफ़्तर में घुट-पिसकर कितने क्लर्क-किरानी
यहाँ पड़े खोजा करते हैं अपनी गई जवानी!
कोई बाबू देख खोंमचा, चाट-कचौड़ी खाते,
जूठे दोने फेंक घासपर औंधे मुँह पड़ जाते।
कोई बीड़ी-सिगरट पीता, कोई पान चबाता;
कोई देख किसी तितली को मन-ही-मन ललचाता।
फटे चीथड़े पहने कोई पौधे सींच रहा है,
कोई नंगे बदन सड़क पर रिक्शा खींच रहा है।
कोई बैठा है कोने में फटी टाट फैलाए,
घण्टों से तांबे के कुछ टुकड़ों की आस लगाए।
ये सब मानव ही मानव हैं, पर इनमें क्या समता?
फ़व्वारे के आस-पास ही कैसी घोर विषमता!
संध्या की अँधियारी ज्यों-ज्यों गहरी पड़ने लगती,
छोड़ अकेला फ़व्वारे को भीड़ खिसकने लगती।
पड़ते-पड़ते रात बिचारा हो जाता एकाकी,
कुछ भूखे कुत्ते, भिखमंगे रह जाते हैं बाक़ी।
दिन-भर मारे-मारे फिरते सूखे टुकड़े पाने,
यहाँ रात को आ जाते हैं, अपनी भूख मिटाने।
छीना-झपटीकर कुत्तों से, जूठे दौने खाकर,
यहीं मृतक-से पड़ रहते हैं, उर की आग दबाकर।
देख उमड़ते फ़व्वारे को कवि सोचा करता है—
यह फ़व्वारा हँसता है या फूट-फूट रोता है?
आज धरा पर छूट रहे हैं लोहू के फ़व्वारे!
आज गगन से टूट रहे हैं शोले और शरारे!
इन भिखमंगों-सी ही लाशें भू पर तड़प रही हैं,
आज बस्तियाँ अगणित अरमानों-सी उजड़ रही हैं।
दीन-दरिद्रों की छाती पर गिरि-से भवन उठाकर,
काले, कुत्सित लोहे के भीषण दानव निर्मितकर,
कैसी बेढब होड़ बदी थी मानव ने संसृति से?
आज स्वयं ही आहत है मानव अपनी ही कृति से!
अपने ही हाथों की निर्मित मानव ने निज कारा,
क्या आपने दुख भूल सकेगा देख-देख फ़व्वारा?
सावन की फुहियों-सा चंचल, यह थोड़ा-सा जीवन,
पाषाणों का बन्दी बन दिखता कितना हतचेतन!
मानव के हाथों पीड़ित हो प्रतिपल रोता रहता,
जाने कितनी विषम वेदना यह फ़व्वारा सहता!
कठिन पत्थरों की कारा से घिरकर यह बेचारा,
फफक-फफक कर, फूट-फूटकर रोता है फ़व्वारा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची शिक्षाका स्वरूप

श्री 'जीवनमुक्त'

शिक्षाकी जीवनमें परमावश्यकता है। घोड़ेको सवारीके लिए, बैलको हल जोतनेके लिए और कुत्तेको शिकारके लिए उचित शिक्षा देनी पड़ती है, तभी वह सफल और सहायक हो सकता है। इसी प्रकार मनुष्यको भी शिक्षा देना ज़रूरी है। शिक्षा दी भी जाती है; परन्तु किस प्रकारकी? जापानियोंको अपने देशके लिए मर-मिटना सिखाया जाता है, अमरीका फ़ोर्ड और कार्नेगी उत्पन्न करता है और इंग्लैण्डमें परमोच्च साम्राज्यवादी राजनीतिकी शिक्षा दी जाती है। परन्तु हमें तो यहाँ दो शब्द भारतकी शिक्षाके सम्बन्धमें ही लिखने हैं।

हमारे यहाँकी शिक्षाका क्या पूछना? सैकड़ों एम० ए०, बी० ए० २५) पर दफ़्तरोंमें क्लर्की करनेको लालायित रहते हैं। हज़ारोंने सौ-दो-सौ रुपए मासिक लेकर अपनी आत्माकी हत्या कर डाली है और लाखों ही मनुष्य आजकलकी 'शिक्षा' से अपनी वास्तविक हीनता अनुभव कर रहे हैं! ऐसा क्यों है? क्या हम अपने बालकोंको स्वयं अच्छी शिक्षा नहीं दे सकते?

हमारे देशमें अच्छी शिक्षा प्राप्त होती थी और अब भी हो सकती है। पद्मिनी और मीराँ विदेशियों द्वारा शिक्षित नहीं हुई थीं। शिवाजी और प्रतापको शिक्षा देनेवाले भी उनके माँ-बाप ही थे। फिर आजकल हम और हमारे बच्चे इतने नीच विचारोंके क्यों होते जा रहे हैं? इसका मूल कारण है हमारा गुलामीका मोह! हम समझते हैं कि बिना सरकारी नौकरी प्राप्त किए हमें धन और यश मिल ही नहीं सकते। इसीलिए सरकारी स्कूलोंमें, उनकी बुराइयाँ जानते हुए भी, हम भीड़ लगाए रहते हैं। अपने बच्चोंकी शिक्षापर बहुत-सा धन खोते हैं। उनके स्वास्थ्यसे हाथ धो बैठते हैं और जिस फलकी प्राप्तिके लिए ये सब संकट सहन करते हैं, वह 'सरकारी नौकरी' भी बहुधा हाथ नहीं आती। पर दुःख तो इस बातका है कि इस गुत्थीको सुलझानेकी किसीने अब तक कुछ भी कोशिश नहीं की।

महात्मा गांधीने १९२१ में स्कूल छोड़नेकी सलाह दी थी। स्कूल छोड़े भी गए; परन्तु उनका स्थान लेनेके लिए राष्ट्रीय स्कूल बहुत कम खोले गए। फलतः विद्यार्थियोंको लौटकर चाकरीके लिए उम्मीदवार तैयार करनेवाले उन्हीं स्कूलोंमें जाना पड़ा। अब ४-५ वर्षोंसे बुनियादी तालीमकी चर्चा छिड़ी है; परन्तु वह भी सरकारी सायेमें ही पनपनेके लिए छोड़ दी गई है। भला कहीं ऐसी महान काँटेदार शाखाओंके नीचे भी सुशिक्षाका पादप पनप सकता है? पर बिड़लाजीसे भी अधिक सैकड़ों भारतीय धनवानोंके इस देशमें होते हुए भी पिलानी-जैसे शिक्षा केन्द्र हमारे देशमें बहुत कम हैं। समझमें नहीं आता कि सेठोंको अपने धनका आखिर इतना मोह क्यों है? मैं मानता हूँ कि वे मन्दिर बनवा देते हैं, धर्मशालाएँ खोलते हैं; परन्तु इनसे देशका वास्तविक उपकार नहीं होता। पिलानी-जैसे स्कूलोंमें भी सरकारी पाठ्यक्रम ही पढ़ाया जाता है और उनमें देशके सच्चे सेवक और सैनिक उत्पन्न नहीं हो सकते। भला जिस इतिहासमें हमारी गुलामी और शोषणकी अवस्थाको सुख-शान्तिका साम्राज्य कहकर सन्तोष प्रकट किया गया हो, उससे हमारा क्या भला हो सकता है? हमें तो आचार्य रामदेव और महात्मा सुन्दरलालके लिखे हुए राष्ट्रीय इतिहासोंको पढ़ने और पढ़ानेकी आवश्यकता है।

फिर ऐसी पाठशालाएँ हमें कहाँ मिल सकती हैं? प्रत्येक गाँवमें एक छोटी पाठशाला होनी चाहिए, जिसमें ५० तक विद्यार्थी एक सदाचारी और स्वदेश-प्रेमी अध्यापकके निरीक्षणमें विद्या प्राप्त कर सकें। इन सब पाठशालाओंमें परम देशभक्तों द्वारा निर्धारित अत्यन्त रोचक और देश-हितकारी पाठ्यक्रमका ही अनुसरण होना चाहिए। यह सब काम यथेष्ट रूपसे करनेके लिए एक अखिल भारतीय संस्थाकी आवश्यकता है, जिसके संचालक निःस्वार्थ और देशप्रेमी धनिक हों। इसीलिए मैंने ऊपर लिखा है कि सेठोंको अपने धनका इतना मोह क्यों है, क्योंकि इस परमावश्यक कार्यके लिए अब तक किसी भी धनवानने उद्योग नहीं किया। मैं मानता हूँ कि कई संस्थाएँ ब्यावर, पिलानी, फतहपुर, बनस्थली, लाडनू आदि स्थानोंमें धनवानोंने खोल रखी हैं; परन्तु उन सबमें स्वदेशोन्नतिका उतना ध्यान नहीं रखा जाता, जितना कि संचालकों और कार्यकर्त्ताओंके यशोविस्तारका। तभी तो सरकारी गवर्नरों और चीफ़-मिनिस्टरों द्वारा उनका निरीक्षण कराया जाता है तथा उनके झूठे-सच्चे प्रशंसा-वाक्योंका समाचारपत्रों द्वारा विज्ञापन होता है। यह संस्थाएँ वास्तवमें अर्द्ध-सरकारी गुलाम पैदा करनेके अड्डे हैं। किसी भी राष्ट्रीय पाठशालाका इस समयकी सरकारसे कोई भी सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, उनमें और वर्त्तमान विद्यालयोंमें न तो कोई भेद ही होगा और न उनमें शिक्षा पानेवालोंकी मनोवृत्तिमें कोई खास उन्नति या अन्तर ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन संस्थाओंमें न तो सरकारी पाठ्यक्रम पढ़ाया जाय और न छात्रोंको सरकारी परीक्षाओंमें भाग ही लेने दिया जाय, क्योंकि 'काजरकी कोठरीमें कैसोहू सयानो जाय, एक रेख काजरकी लागि है पै लागि है' ही। वैसा होनेसे बालकोंमें कुछ न कुछ गुलामीके भाव आ ही जायँगे। ऐसी दशामें सरकारसे आर्थिक सहायता लेने या माँगनेका प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ, यह प्रश्न अवश्य उठता है कि इन छोटी-छोटी राष्ट्रीय पाठशालाओंमें विद्या प्राप्त करनेवाले छात्रोंका आगे चलकर जीवन-निर्वाह किस प्रकार होगा और जब इन छात्रोंको सरकारी नौकरी मिलनेकी कोई आशा ही नहीं, तो आजकलके गुलाम-मनोवृत्तिके माँ-बाप अपनी सन्तानको इन पाठशालाओंमें पढ़नेके लिए भेजेंगे ही क्यों? इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर अत्यन्त सरल है। देशके हितचिन्तक धनी मानी और सम्पन्न व्यक्ति यह प्रण कर लें कि वे अपने-अपने कार्यके लिए इन राष्ट्रीय पाठशालाओंमें विद्या प्राप्त किए हुए नवयुवकोंको ही चुनेंगे। साथ ही इन राष्ट्रीय पाठशालाओंमें उद्योग-धन्धे भी सिखाए जा सकते हैं, जिनके द्वारा आगे चलकर इनमें पढ़नेवाले थोड़ी पूँजीसे स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकें। किन्तु कठिनाई यह है कि स्वदेश-प्रेमी धनिक भी तो हमारे देशमें बहुत कम हैं। इसीलिए जितने भी वे हैं, उन महानुभावोंसे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि जो निःस्वार्थ भावसे अपना कुछ समय देशोपकारके लिए देनेमें समर्थ हैं, वे किसी-न-किसी प्रकार अपने त्याग और निर्लोभका परिचय देकर ऐसी राष्ट्रीय पाठशालाएँ चलायँ। तभी अपने देशमें सच्चे राष्ट्रीय सेवक और सैनिक तैयार हो सकते हैं और वे ही देशका उद्धार भी कर सकते हैं। जब तक इस प्रकार लगनसे कोई काम नहीं होगा, तब तक भारतकी स्वतन्त्रताका स्वप्न देखना केवल दुराशा-मात्र ही है। गन्दे और स्वार्थपूर्ण वातावरणमें सच्चे देशभक्त यथेष्ट संख्यामें कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकते।

शिवका मत्स्याखेट

डा० देवराज, एम० ए०, डी० फिल्०

एक दिन कैलासवासी, महायोगी, चिर - उदासी
शिव उमा को कर रहे थे वेद का उपदेश।
गूढ़ वार्त्ता, किन्तु रूखी, (नई वय ही तो अभी थी)
गया प्रणयी चित्त सहसा भाग दूजे देश॥
देख अन्यमनस्क उसको, काम-रिपु बोले कुपित हो—
'योग्य योगी-अंगना-पद के न हो तुम वाम।
भू-निलय में हो निपतिता, बनो धीवर-राज-दयिता,
जहाँ श्रुतियों से न होगा तुम्हें कोई काम॥'
तुरत ही हिमगिरि-कुमारी गिरी भूपर, ज्योति न्यारी
(शून्य-सा, गत-प्राण-सा, वि-श्री हुआ कैलास)।
प्राण का अवरोध करके, चित्त-वृत्ति-निरोध करके,
लगे पूर्ण समाधि का करने गिरीश प्रयास॥
'अहो! यह आश्चर्य कैसा, थिर न होता चित्त शिवका,
बँध रही न समाधि, होता तीव्र भावोन्माद।
गिरि-सुता का वदन सुन्दर, प्रेम-विह्वल मधुरतम स्वर,
बार-बार महेश को अब आ रहा था याद—
'अहह! मैंने अति त्वरा की, भेज दी भूलोक देवी,
कोमलांगी को वहाँ अब कष्ट होगा घोर!
पार्वती मेरी प्रिया रे, अन्य की क्यों वधू होवे?'
सोच यों नन्दी-सहित वे चले नर-पुर ओर॥

एक मछुआ निज सदन में, सिन्धु तट से (हृष्ट मन में)
ला उमा को द्वादशी था पालता सानन्द।
पतित नभ की तारिका-सी, वह भवन-दीपक-शिखा थी,
पाणि-प्रार्थी युवक-दल में चल रहा था द्वन्द्व॥
कहा शिव ने—'सुनो गणवर, उदधिमें पैठो मकर बन।'
'बहुत अच्छा', बोल नन्दी हुआ वारिधि-लीन।
छा गया तट-देश में भय, था मकर विकराल दुःसह,
बन्द मत्स्याखेट, जन-संख्या चली हो क्षीण॥
उमा का पालक पिता तब, (धीवरों में प्रमुख था वह)
लगा कहने, 'जो करे इस मकर का संहार,
वही पाए उमा गौरी, रूप-सीमा-सी किशोरी;
वही मेरे बाद ले अध्यक्ष का अधिकार॥'
सुन, चले उत्साह भर-भर, युवक पाँचों शस्त्र लेकर,
भीम मच्छ विलोक किन्तु रहा न साहस शेष।
हाथ ले धनु-बाण खरतर, बने धीवर-कुँवर सुन्दर,
मकर-निग्रह को हुए तब प्रकट आप महेश॥
घूमते निःशंक सस्मित, (नारि-नर सब मुग्ध विस्मित)
पकड़ लाए मकर पल में किए मृगया-साज।
फिर उमा को ब्याहने को, पुण्य प्रीति निबाहने को,
यों बने कैलास तज के शम्भु धीवर - राज॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्घटना

श्री गौरांगप्रसाद वसु

[पात्र—कालीकिंकर ; विजया ; विनोद ; राखाल ; पड़ोसी। स्थान—कालीकिंकरका मकान। छोटे-से बरामदेकी तरह। सामने रसोईघरका दरवाज़ा है। बरामदेकी बाईं ओरसे आनेका रास्ता है और दाईं ओर नल लगा है। मकान अच्छी हालतमें नहीं है। शहरकी गन्दी और घिचपिच-सी जगहमें थोड़े भाड़ेका छोटा-सा इकतल्ला मकान है। दालानकी अवस्था ही किराएदारकी दुरवस्थाकी साक्षी है। मकानमें घड़ी नहीं है। एक कैलेण्डर है और पुराने कैलेण्डरोंके कितने ही चित्र टँगे हैं। बरामदेमें स्लेट और पहली किताब लिए कालीकिंकरका सात सालका लड़का राखाल चटाईपर बैठा है। पढ़ने-लिखनेमें उसका मन नहीं लगता। इधर-उधर देखता है। वह एक काला निकर पहने है, उसके बदनपर और कोई कपड़ा नहीं है। काला-सा रोगीला चेहरा है। समय—प्रातःकाल ९॥ बजेके लगभग।]

बाहरसे आवाज़ आती है—राखाल, राखाल !

राखाल—चाचा !

(किताब और स्लेट फेंककर उठ खड़ा होता है। बाहरसे विनोद आता है। अच्छा, स्वस्थ-सबल चेहरा है। बदनपर छींटकी कमीज़ है। उम्र लगभग तीसके है। साधारण-सी नाक, आँख और मुँह।)

विनोद—क्यों रे, तू कुछ पढ़ता-लिखता भी है या नहीं ?

राखाल—हाँ, पढ़ता तो हूँ। (कुछ ठहरकर) अच्छा, चाचा, लाए हो ?

विनोद (आश्चर्यसे)—क्या ? (हँसकर) समझा, यह ले। एक ही बार सब मुँहमें मत ठूँस लेना, नहीं तो बीमार पड़ जायगा। (जेबसे एक छोटा-सा ठोंगा निकालकर देता है।) खूब मन लगाकर पढ़ना-लिखना। पन्द्रह दिनोंके अन्दर ही प्रथम भाग समाप्त होना चाहिए।

राखाल (ठोंगा लेते हुए सिर हिलाकर)—अच्छा, इसके लिए क्या दोगे, चाचा ?

विनोद—क्या दूँगा ? क्या दूँगा ? अच्छा, बता तो, तू क्या चाहता है ?

राखाल—मुझे एक बन्दूक दोगे, चाचा ?

विनोद (आश्चर्यका भाव दिखाकर)—बन्दूक ! तू बन्दूक लेकर क्या करेगा रे ? मुझे मारेगा क्या ?

राखाल—अरे नहीं, तुम्हें नहीं मारूँगा। बाबूजीको मारूँगा।

विनोद (भयका भाव दिखाते हुए)—कालीको ? अपने पिताको ? भला क्यों रे ?

राखाल—बाबूजी माँको जो मारते हैं। और मुझे भी तो मारते हैं न।

विनोद (गम्भीर भावसे हँसकर)—अच्छा, तब तुझे एक बन्दूक ही खरीद दूँगा। (अन्यमनस्क भावसे) किन्तु पढ़नेमें ज़रा भी भूल नहीं होनी चाहिए। (ज़रा ठहरकर) और हाँ राखाल, तेरी माँ कहाँ है ?

राखाल (दिखाकर)—वह देखो, नलपर है। माँ, माँ, ऐ माँ, चाचा आए हैं।

विनोद—ठहर; अब और नहीं पुकारना होगा। तू बैठकर पढ़।

(राखाल नए उत्साहके साथ पढ़ने बैठता है। विनोद राखालके पाससे कुछ आगे बढ़कर फिर लौट पड़ता है।)

विनोद—हाँ रे, तेरे बाबूजी अभी भी नहीं आए क्या ?

राखाल—नहीं, चाचा !

विनोद (चिन्तित भावसे, स्वगत)—अभी तक नहीं आया ! कहीं इस बार फिर कोई गोलमाल न हुआ हो। (राखालसे) अच्छा, तू जा, पढ़।

(भीतरसे आवाज़ आती है—राखाल, क्या यही तेरी पढ़ाई हो रही है रे ? बड़ा दुष्ट है तू !)

राखाल—माँ, चाचा आए हैं।

(एक बाल्टी पानी लिए हुए विजया आती है। साधारण-सा चेहरा है। श्याम वर्ण है। शरीरपर सिर्फ़ एक छपी हुई साड़ी है। हाथोंमें चूड़ियाँ हैं। सिरपर कपड़ा नहीं है। अभी-अभी स्नान करके आ रही है। उम्र तो उसकी २२ वर्षकी ही है ; पर शरीरसे अधिक उम्रकी दिखाई पड़ती है। विजया आकर बरामदेके एक कोनेमें बाल्टी रखती है।)

विजया (राखालसे)—चाचा आए हैं, इसीलिए अब तेरी पढ़ाई बन्द हो जायगी क्या ? जा, बैठकर पढ़।

(राखाल जल्दीसे चटाईपर बैठने जाता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनोद (विजयासे)—काली अब तक नहीं लौटा क्या ?

विजया—अभी थोड़े लौटेंगे ? क्यों ? अभी लौटनेकी बात थी क्या ? आज हफ़्तेकी मज़दूरी जो मिली है। शराबकी दुकानपर रुपया उड़ाकर ही तो वे लौटेंगे।

विनोद—आज कारखानेमें तो बहुत पहले ही छुट्टी हो गई। अभी तो दूसरी शिफ़्ट चल रही है। अब तक तो उसको यहाँ आ जाना चाहिए था। जान पड़ता है, अभागा बाज़ारकी ही ओर गया है। अच्छा, मैं जाकर देखता हूँ।

(विनोद जानेके लिए लौट पड़ता है। विजया अब तक अपने बालोंको ठीक कर रही थी। अब पानीसे भरी बाल्टीको उठाकर रसोईघरकी ओर चल पड़ती है।)

विजया—उन्हें अब तुम क्या देखोगे ? सब-कुछ तो मेरा देखा हुआ है। (बाल्टी रखकर बाहर निकल आती है।) अब तुम्हें कष्ट करनेकी ज़रूरत नहीं। वे ठीक समयपर शराब पीकर ही घर लौटेंगे। (कुछ ठहरकर) यदि हो सके, तो उस समय आकर उन्हें एक बार सँभाल ज़रूर जाना। तब शायद मैं उस हत्यारेके हाथसे रिहाई पाऊँ।

विनोद (सिर हिलाकर)—नहीं, नहीं, मैं उसे अभी पकड़े लिए आता हूँ।

(विनोद बाहर चला जाता है। विजया फिर रसोईघरमें चली जाती है। राखाल बड़े उत्साहसे पढ़ने लगता है। टूटते हुए स्वरमें गाना गाते और लड़खड़ाते हुए कालीकिंकर घरमें घुसता है। बड़ा और रौबीला चेहरा है। शरीरपर एक खाकी कमीज़ है। उसके चेहरेसे क्लान्ति और रुक्षताके भाव टपक रहे हैं। उम्र ३२ सालकी है ; पर शराब पीने और कारखानेमें काम करनेसे ४० वर्षका-सा लगता है।)

राखाल (डरे हुए स्वरमें)—माँ, बाबूजी आए हैं।

(विजया शीघ्रतासे बाहर चली आती है। राखाल नलकी ओर भाग खड़ा होता है। कालीकिंकर आकर आँख बन्द किए चारपाईपर बैठकर विश्राम करने लगता है।)

कालीकिंकर—क्या है ?

विजया—लौटनेमें इतनी देर क्यों हुई ?

(कालीकिंकर कोई उत्तर नहीं देता।)

विजया (कुछ देर चुप रहकर)—रुपए दो।

(कुछ उत्तर न देकर कालीकिंकर बरामदेमें घूमता है।)

विजया—हफ़्तेकी सारी मज़दूरी बाज़ारमें ही उड़ा आए क्या ?

(जेबसे तीन रुपए निकालकर कालीकिंकर विजयाके सामने टन-टन फेंक देता है।)

कालीकिंकर—रुपया कमानेका काम पुरुषोंका ही है।

विजया—हाँ, जानती हूँ, तुम कितने बड़े कमानेवाले हो! अच्छा, बाक़ीके रुपए कहाँ हैं ?

कालीकिंकर—और रुपए नहीं हैं।

विजया—हैं कैसे नहीं ? पन्द्रह रुपयोंमें से बाक़ीके रुपए कहाँ हैं ?

कालीकिंकर—मेरी जेबमें।

विजया (हाथ बढ़ाकर)—तो दो मुझे।

कालीकिंकर—और रुपए देकर आखिर होगा क्या ?

विजया—और रुपए देकर क्या होगा ? घरमें क्या है, जानते हो ? सब-कुछ तो खत्म हो गया है। भाड़ा देना होगा। कोयला खरीदना होगा। चावल, दाल, तेल, सब कुछ तो चाहिए।

कालीकिंकर—वह सब साला विनोद देगा।

विजया—विनोदसे कितने रुपए ले चुके हो, कुछ खयाल भी है ? तुम्हें वह क्यों रुपए देगा ? और आखिर कब तक ?

कालीकिंकर—मुझे रुपए देनेसे उसका क्या लाभ है ! सुनूँ तो उसके धड़पर कितने सिर हैं ? अब मैं उससे एक पाई भी लूँ, तो देखना। अरे, रुपए तो देगा वह तुम्हें !

विजया—अपनी स्त्रीके नामपर रुपया लेते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? और वह भी मुझे रुपया क्यों देगा ?

कालीकिंकर—ओहो, 'मुझे रुपया क्यों देगा ?' जैसे तुम लोगोंकी कलंक-कथाकी कोई बात मुझसे अब छुपी है !

विजया—यह तुम क्या बक रहे हो ? क्या सुना है तुमने ? तुम मुझपर सन्देह करते हो ?

कालीकिंकर—हाँ, पहले सन्देह करता था, विश्वास नहीं करता था। अब विश्वास करता हूँ, सन्देह नहीं करता। हाँ, हाँ, विश्वास करता हूँ, सन्देह नहीं करता।

विजया—क्या सन्देह करते हो तुम ?

कालीकिंकर—उसके साथ गहरी दोस्ती गाँठकर अब मुझसे पूछती हो—क्या सन्देह करते हो तुम ?

विजया—मुझसे यह कहनेका साहस कैसे हुआ तुम्हें ! तुम बड़े टुच्चे हो !

कालीकिंकर—ओहो, बड़ी आई है भले आदमीकी लड़की !

विजया—टुच्चे कहींके। सात पुश्तोंके टुच्चे। चौदह पुश्तोंके कमीने……

कालीकिंकर (एकाएक चीख उठा)—खबरदार !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजया—क्या खबरदार ? मैं तो कहूँगी ही। तुम मुझपर झूठा सन्देह क्यों.....

कालीकिंकर—अच्छा, तब ले !

(कालीकिंकर उसके बालोंको पकड़कर थप्पड़ मारते हुए उसे ज़मीनपर पटक देता है। उसके बाद लातोंसे उसकी खबर लेता है। एक छोटा डंडा हाथमें लिए राखाल दौड़ आता है।)

राखाल—खबरदार, जो माँको फिर मारा तो।

कालीकिंकर (हाँफ़ते हुए गुर्राकर)—क्या कहा रे ?

राखाल (कुछ घबरा जाता है)—माँको न मारो, नहीं तो—नहीं तो—

कालीकिंकर—नहीं तो, नहीं तो क्या रे पाजी !

राखाल—अगर तुम माँको मारोगे, तो मैं तुम्हें मारूँगा।

कालीकिंकर—मुझे मारेगा ? क्यों नहीं, मैं तो अब तेरा बाप नहीं रहा न ? रक्तका सम्पर्क तो अब नहीं रहा, सिर्फ़ खिला-पिलाकर ही बड़ा किया है न। दूर हो यहाँसे। इस घरसे बाहर निकल जा।

(आतंकित विजया उठ बैठती है।)

विजया—तुम राखालको यह क्या कह रहे हो ?

कालीकिंकर—क्या कह रहा हूँ ? अब मैं उसे खिला नहीं सकता। तुम्हें भी नहीं। किसीको भी नहीं। तुम लोग मेरे घरसे निकल जाओ। जाओ...

विजया—अपनी स्त्री और लड़केको घरसे निकालनेमें ही तो तुम्हारी सारी मर्दानगी है न !

कालीकिंकर—अपनी स्त्री और लड़का ? वह मेरा ही लड़का है क्या ? जिसका वह लड़का है, उसके पास जाय। विनोदके पास जाकर मरे, जूझे।

विजया—यह तुम क्या बक रहे हो ? राखाल तुम्हारा लड़का है। तीन बरस पहले तो मैं विनोदको पहचानती भी न थी.....

कालीकिंकर—जान पड़ता है, मेरे हिसाब लगानेमें ग़लती हुई है ! लात मारकर मुँह तोड़ दूँगा अगर ज़्यादा ज़बान चलाई तो। (कालीकिंकर विजयाकी ओर झपटता है। एक पग आगे बढ़ते ही राखाल उसपर डंडेसे प्रहार करता है।)

कालीकिंकर—ओह ! अच्छा, तो आज तेरा ही खून करूँगा।

(वह राखालको पकड़कर दोनों हाथोंसे उसका गला ज़ोरोंसे दबाता है। राखाल छटपटाता है। विजया घबराकर उठ खड़ी होती है।)

बाहरसे आवाज़ आती है—राखाल, ओ राखाल !

(साँस रुक जानेसे राखाल सिर्फ़ गों-गों करता है। विनोद वहाँ चला आता है। पहले तो वह अचकचा जाता है ; फिर ज़ोरोंसे धक्का देकर कालीकिंकरको हटा देता है। उसके बाद राखालको गोदमें उठा लेता है।)

विनोद—क्या तुम पागल हो गए हो, काली ?

(कालीकिंकर ज़रा हटकर चुपचाप खड़ा हो जाता है।)

विनोद (राखालके गलेपर हाथ फेरते हुए)—ज़रा-सा और दबानेसे तो बेचारा मर ही जाता !

(कालीकिंकर चुप है। विजया धीरे-धीरे उठकर रसोईघरके पास जा खड़ी होती है। विनोद ज़मीनपर पड़े तीनों रुपयोंको उठा लेता है।)

विनोद—तुम कारखानेसे इतनी जल्दी निकलकर कहाँ गए थे ? और इतनी देर तक तुम थे कहाँ ? हफ़्तेके तलबके बाक़ी रुपए कहाँ हैं ?

(कालीकिंकर चुपचाप खड़ा रहता है। विनोद आगे बढ़कर उसकी जेबसे दो रुपए निकाल लेता है।)

विनोद—और रुपए कहाँ हैं ?

(कालीकिंकर सिर हिलाता है। विनोद रुपयोंको विजयाके हाथोंपर रख देता है। कालीकिंकर जल्दीसे बाहर निकल जाता है।)

विनोद—कहाँ चले, सुनो, काली !

विजया—कहाँ गए ?

विनोद—कौन जाने, कहाँ गया। बिना कुछ कहे ही चला गया। (थोड़ा रुककर) अच्छा, बताओ तो, हुआ क्या था ? अरे, तुम्हारे सिरमें तो चोट आई है। खून निकल रहा है।

विजया—वह तो इससे बहुत पहले ही फट भी चुका है।

विनोद (चोटको ग़ौरसे देखते हुए)—जाओ, नलपर इसे धो डालो। मैं जाकर देखता हूँ, वह अभागा आखिर गया कहाँ ?

(विनोद बाहर चला जाता है। बरामदेमें सिर्फ़ राखाल और विजया हैं। विजया हाथसे सिरको दबाए हुए है।)

राखाल—माँ ?

विजया—क्या ?

राखाल—तुम्हें गहरी चोट आई है, माँ ?

विजया (म्लान हँसी हँसकर)—नहीं रे, ज़रा भी तो चोट नहीं आई है। यह तो यों ही थोड़ा-सा खून.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राखाल (कुछ सोचकर)—अच्छा माँ, बाबूजी तुम्हें रोज़ मारते क्यों हैं ?

(विजया एक हाथसे राखालको छातीसे लगा लेती है ।)

राखाल—चलो माँ, हम यहाँसे चले चलें ।

विजया—कहाँ रे ?

राखाल—चाचाके यहाँ । चाचाके यहाँ रहनेसे कितना अच्छा रहेगा, माँ ! फिर बाबूजी तुम्हें मार भी नहीं सकेंगे । चाचा मुझे खूब प्यार करते हैं । चाचा तुम्हें भी खूब प्यार करते हैं । बाबूजी तो सिर्फ़ हम लोगोंको मारा ही करते हैं । चलो न माँ, चाचाके घर ही चलकर रहें ।

विजया (कुछ क्षण चुप रहकर)—तू अपने चाचाको खूब चाहता है ?

राखाल—हाँ, चाचाको मैं बहुत चाहता हूँ । (थोड़ा रुककर) पर माँ तुम्हें मैं सबसे अधिक प्यार करता हूँ । माँ, तुम सिर नहीं धो आईं ? खून जो बह रहा है !

विजया—हाँ, अभी नलपर जा रही हूँ ।

(विजया नलपर जाती है । कारखानेमें काम शुरू करनेकी सीटी बजती है । हाँफ़ता हुआ विनोद प्रवेश करता है ।)

विनोद—राखाल !

राखाल—चाचा ?

विनोद—विजया कहाँ है ?

राखाल—माँ नलपर है । क्यों, क्या हुआ ?

(विनोद तेज़ीसे नलकी ओर जाता है । फिर विजयाके साथ-ही-साथ लौटता है । राखाल किताब और स्लेट लेकर बग़लवाले कमरेमें जाता है ।)

विनोद—गोपालके यहाँ एक बोतल और शराब पीकर वह गोपालके बदलेमें कारखानेमें ड्यूटी देने गया है । आज तुम्हें उसका कोई पता भी नहीं चलेगा । (ज़रा ठहरकर) दुष्ट कालीके हाथोंमें पड़ जानेसे तुम्हारे दुःखकी कोई सीमा ही नहीं है । उसे तुम्हारे ऊपर अत्याचार करते देख कभी-कभी तो मेरी इच्छा कालीको मार डालनेकी होती है ।

विजया—तब वही करो न । हमें भीख माँगकर खाना तो होगा ; पर शान्तिपूर्वक रह तो सकेंगे ।

विनोद (अपनी जेबसे रुपए निकालकर)—यह रुपए रखो । उसने तो सारे रुपए शराबमें ही उड़ा दिए हैं । (थोड़ा ठहरकर) इसमें सारा दोष मेरा ही है । यदि छुट्टी होनेके बाद मैं उसपर नज़र रखता.....

विजया—दोष तुम्हारा नहीं, दोष तो मेरे फूटे हुए भाग्यका है ! तुम जितना-कुछ हम लोगोंके लिए करते हो, उतना तो कोई अपने आदमियोंके लिए भी नहीं करता । तुम्हारा तो जैसे अपना कोई काम ही नहीं है, रात-दिन हम लोगोंकी ही सब तरहकी व्यवस्था करनेमें लगे रहते हो ।

विनोद—इतना होनेपर भी यदि मैं कुछ कर पाता । तुम्हें सुखी देखनेके लिए ही मैं इतना कष्ट उठाता हूँ । तुम्हारा कष्ट मैं सहन नहीं कर सकता । तुम्हारे सुखके लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ ।

विजया—तब तुम मेरे लिए थोड़ा-सा विष ख़रीद दो, ताकि मुझे इस नरकसे सदाके लिए छुटकारा मिले । मनपर होनेवाला अत्याचार सह्य होनेपर भी शरीरपर होनेवाला अत्याचार अब सहा नहीं जाता ।

विनोद—यदि यह जानता कि मरकर ही तुम सुखी होगी, विजया, तो मैं स्वयं तुम्हें विष दे देता । पर राखाल जो है, वह बड़ा होकर तुम्हें सुखी करेगा । विजया, कारखानेवाले हम लोगोंकी बातें कालीसे कहते हैं । मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, इसे मैं स्वीकार करता हूँ । तुम्हें सुखी देखकर सबसे अधिक आनन्द मुझे ही होगा । किन्तु मेरे हाथ-पैर बँधे हैं । यदि आज तुम मेरी स्त्री होतीं, तो वह सुयोग मुझे मिलता । जीवनमें इतनी श्रद्धा और इतना प्रेम मेरे हृदयमें कभी किसीके प्रति नहीं रहा । आज तीन बरसोंसे तुम्हारे मनका जो परिचय मैंने पाया है, उससे मेरी आत्माकी भी उन्नति हुई है । विजया, तुम्हारे प्रति मेरी श्रद्धा और मेरा प्रेम इतना गहरा है, इसीसे आज निःसंकोच यह बात मैं तुमसे कह पाया हूँ । तुम्हें सुखी करनेके लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, विजया ! कालीके यहाँसे तुम्हें भगानेकी बात भी मैंने सोची थी । तुम्हें यदि मैं कुछ कम प्रेम करता होता, तो ऐसा करना भी मेरे लिए सम्भव होता । पर इसमें तुम्हारी आत्माका अपमान होता ! तुम्हारे मनपर मैं आघात नहीं कर सकता, विजया !

विजया—पर इससे शायद मैं प्रतिदिनके अत्याचारसे तो बच जाती ।

विनोद—मैं भी बचता ; किन्तु तुम्हारे मनपर आघात लगनेकी बात मैं किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता.....

विजया—आठ वर्षोंसे एक शराबीका घर बसाकर, उसकी पत्नी होकर भी पत्नीकी मर्यादा न पाकर, मैं एक वेश्याकी तरह रही हूँ । मेरे जीवनमें इससे अधिक और कुछ नहीं रहा । पर सदासे मैं चाहती रही हूँ निर्विघ्न जीवन और नारीकी मर्यादा ।

विनोद—यदि हुआ, तो वह तुम्हें मैं दे सकूँगा, विजया !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागपुरकी एक मिलमें मुझे काम मिल रहा है। रुपए भी यहाँसे अधिक मिलेंगे। वहाँ तुम मेरे साथ चलोगी? वहाँ जाकर हम नया जीवन शुरू करेंगे। चलोगी विजया, बोलो, चलोगी मेरे साथ?

विजया—चलूँगी, मैं चलूँगी, ज़रूर चलूँगी तुम्हारे साथ।

विनोद—अच्छा, तो चलोगी विजया.....

विजया—हाँ, चलूँगी। किन्तु राखाल?

विनोद—उस हिंस्र पशुके हाथोंमें शायद मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ; किन्तु राखालको तो मैं कदापि उसके हाथोंमें नहीं छोड़ सकता।

(थोड़ी देर तक निस्तब्धता रहती है। फिर विजया विनोदकी छातीसे अपना सिर लगा लेती है।)

विजया—यहाँसे कब जाओगे? बोलो, मुझे लेकर कब जाओगे?

विनोद—जब तुम कहो, चले चलें?

विजया—आज ही चलो, अभी।

विनोद—आज, अभी?

विजया—हाँ, उसके वापस आनेसे पहले ही। अब मैं उसे देखना भी नहीं चाहती। मुझे लेकर आज ही यहाँसे कहीं चले चलो।

विनोद—अच्छा, तो आज ही चलो। आज रातके ठीक नौ बजे तक तैयार हो जाना। मैं उसी समय आऊँगा। अभी मैं जा रहा हूँ। सब-कुछ ठीक-ठाक करके रखना।

(विनोद जाते-जाते लौट आता है।)

विनोद—और देखना, कहीं राखाल सो न जाय। सब-कुछ ठीक करके तैयार रहना। साथमें अधिक सामान न लेना। अच्छा, तो मैं अब चला।

(विनोद बाहर चला जाता है। विजया व्यस्त हो जाती है।)

विजया—राखाल!

(राखालका प्रवेश)

विजया—राखाल!

राखाल—माँ!

विजया—तेरे बाबूजी बड़े ख़राब आदमी हैं न?

राखाल—हाँ, माँ! सिर्फ़ मारना ही जानते हैं जैसे।

विजया—तो चल, हम लोग यहाँसे कहीं दूसरी जगह चले चलें। पर जहाँ हम लोग जायँगे, वहाँ तुझे अच्छी तरह पढ़ना-लिखना होगा, यह याद रखना।

(राखाल सहमति-सूचक सिर हिलाता है।)

विजया—चल, तुझे नहला दूँ। फिर खा-पीकर थोड़ा सो ले। रातको सफ़रमें जगना जो पड़ेगा।

राखाल—तब क्या दोपहरमें पढ़ूँगा नहीं, माँ?

विजया—नहीं, आज दोपहरमें ज़रा सो ले; क्योंकि रातमें हमें जाना जो है। उस समय यदि तू कहीं सो गया, तो तुझे छोड़कर मैं अकेली ही चली जाऊँगी।

(यह कहते हुए विजया नलकी ओर चली जाती है। बरामदा खाली है। राखाल दौड़कर घरमें घुसता है और एक गमछा लेकर नलकी ओर जाता है। इतनेमें मिलका दुर्घटना-सूचक घंटा ज़ोरोंसे बज उठता है। विजया नलपर से लौट पड़ती है।)

विजया—यह घंटा अभी बेवक्त क्यों बज उठा रे? यह तो खतरेका घंटा है! न जाने मिलमें आज यह क्या हो गया? राखाल, राखाल.....

राखाल—क्या, माँ?

विजया—यह कैसा घंटा बज रहा है रे?

राखाल—कारखानेका खतरेका घंटा बज रहा है, माँ!

विजया—जा, दौड़कर देख तो आ क्या हुआ। जा, दौड़कर जा।

(राखाल दौड़ता हुआ बाहर चला जाता है। विजया भी कुछ दूर तक बाहर चली जाती है। इसी समय विनोद दौड़ता हुआ आता है।)

विनोद—विजया, चलो, हम लोगोंको अभी ही जाना होगा।

विजया—कहाँ?

विनोद—यहाँसे कहीं दूसरी जगह, जहाँ मैंने तुम्हें ले जानेकी बात कही थी। अभी ही चलो।

विजया—अभी ही? क्यों? इतनी जल्दी क्या है?

विनोद—बादमें हम लोग नहीं जा सकेंगे। यदि चलना है, तो अभी ही चलो। और राखाल कहाँ है?

विजया—कारखानेमें क्या हुआ है, यही पता लगाने वह गया है।

विनोद—कारखानेमें क्या हुआ है, उसका पता लगाने गया है?

विजया—हाँ, मैंने ही उसे भेजा है।

विनोद—अच्छा, जाकर मैं उसे देखता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विनोद दौड़ता हुआ बाहर जाता है। कुछ क्षणके बाद ही एक पड़ोसी हाँफ़ता हुआ वहाँ आता है।)

पड़ोसी—विजया, अब तक तुम यहीं हो ?

विजया—क्यों ? क्या हुआ है ?

पड़ोसी—अरे कालीकिंकर.....क्या उसका भी कुछ हाल-चाल तुम्हें मालूम है ?

विजया—वे तो कारखानेमें हैं न ? बोलो, क्या हुआ है उनको ?

पड़ोसी—क्या उसका कुछ हाल तुमने सुना है ?

विजया—नहीं तो। उन्हें क्या हुआ है ? कहो, उन्हें क्या हुआ है ?

पड़ोसी—मशीनमें उसका·····

विजया—कहो, वे बचे हैं या नहीं ?

पड़ोसी—बच तो गया है, शायद बच भी जायगा। सिर्फ़ उसका एक हाथ चूर-चूर हो गया है। इसीलिए उसे गाड़ीपर अस्पताल पहुँचाया गया है।

विजया (चीत्कार करके)—तो उनका हाथ नहीं रहा ?

(पड़ोसी सिर हिलाता है, फिर धीरे-धीरे चला जाता है। विजया बरामदेमें बैठ जाती है। उसकी दृष्टि अर्थशून्य है।)

विजया—एक हाथ चूर-चूर हो गया है, बच तो गया है, शायद बच भी जायगा। यह मैं जानती हूँ। वे मरेंगे नहीं, यह भी मैं जानती हूँ। अगर मर जाते, तो सब झगड़ा ही खत्म हो जाता। वे बच जायँगे और कटा हुआ हाथ लेकर अस्पतालसे लौटेंगे। फिर कारखानेमें भी न जायँगे। घरमें ही पड़े रहेंगे। उन्हें देखने-भालनेवाला कोई नहीं है। भगवानने उन्हें यह सज़ा दी है ! नहीं, मैंने ही उन्हें यह सज़ा दिलवाई है। उनके मरनेमें बाक़ी ही क्या रह गया था ? मैं उन्हें छोड़कर जा रही थी।

(राखालका हाथ पकड़े विनोद हाँफ़ते हुए आ उपस्थित होता है।)

विनोद—विजया, उठो, चलो।

विजया—कहाँ ?

विनोद—कहीं भी चलो ; पर यहाँसे चलो।

विजया—नहीं।

विनोद—विजया ! यह तुम क्या कह रही हो ?

विजया—नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। मेरा जाना इस समय सम्भव नहीं। मुझे यहाँ ठहरना होगा।

विनोद—यह तुम क्या कह रही हो, विजया ! जायँगे क्यों नहीं ?

विजया—नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। मशीनमें उनका हाथ·····

विनोद—विजया !

विजया—मैंने सब सुन लिया है। अब मेरा जाना नहीं हो सकेगा। उनके लिए मुझे यहाँ ठहरना ही होगा।

विनोद—तुम तो निर्विघ्न जीवन और नारीकी मर्यादा चाहती थीं न ?

विजया—हाँ, अब मैं उसे पाऊँगी। असहाय स्वामीका भार मेरे ऊपर है। उन्हें अब मुझे ही देखना होगा। स्त्रीका दायित्व मेरे सम्मुख है। फिर भला मैं कैसे जा सकती हूँ ?

(राखाल चुपचाप खड़ा है। विनोद होंठ काटता है।)

विजया—बोलो, मैं कैसे जा सकती हूँ ? तुम्हीं कहो, मैं कैसे जा सकूँगी ?

(विनोद बैठ जाता है।)

विनोद (टूटे हुए स्वरमें)—तब तो हम लोगोंका जाना नहीं होगा।

विजया—नहीं, मेरा जाना नहीं होगा, तुम्हारा तो हो ही सकता है।

(विजया राखालके पास सरक आती है।)

विजया—राखाल !

राखाल—माँ !

विजया—राखाल, चल.....

राखाल—कहाँ, माँ ? जहाँ तुमने ले जानेके लिए कहा था, वहाँ ?

विजया—नहीं, मेरे साथ अस्पताल। मुझे लेकर अस्पताल चल, बेटा ! तेरे बाबूजी वहाँ ले जाए गए हैं।

राखाल—तो क्या चाचा हमारे साथ अस्पताल नहीं जायँगे, माँ ?

विजया—नहीं, चाचा नहीं जायँगे। उनके जानेकी ज़रूरत भी नहीं।

(विजया राखालका हाथ पकड़े धीरे-धीरे बाहर चली जाती है। विनोद एक बार उठ खड़ा होता है, फिर बैठ जाता है।)

(यवनिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव-जन्तुओंके वैज्ञानिक नाम

श्री कृष्णानन्द गुप्त

हिन्दीके जिन पाठकोंको प्रकृति-विज्ञानसे थोड़ा भी प्रेम है और जो अंगरेज़ीमें इस विषयके ग्रन्थोंका अध्ययन करते रहते हैं, वे इस बातको शायद अच्छी तरह जानते होंगे कि जीव-जन्तुओं, वृक्षों आदिके वैज्ञानिक नाम लैटिन भाषामें होते हैं। ये नाम एक विशेष पद्धतिके अनुसार गढ़े जाते हैं। साधारण नामोंसे वैज्ञानिकोंका काम नहीं चलता, इसलिए अपने उद्देश्यके लिए उन्होंने विशेष प्रकारकी शब्दावलि बना ली है, जिसे संसारके सब देशोंने अपना लिया है। विज्ञानके विद्यार्थियोंको इससे बड़ी सुविधा हुई है। जीव-जन्तुओंके साधारण नाम तो अलग-अलग देशोंमें वहाँकी भाषाके अनुसार अलग-अलग हैं। इतना ही नहीं, एक स्थानपर एक जीवका जो नाम है, दूसरे स्थानपर उसी नामसे एक अन्य जीव प्रसिद्ध है। उदाहरणके लिए दक्षिणी अमेरिकामें जागौरको 'टाइगर' (बाघ) और प्यूमाको 'लायन' (सिंह) कहते हैं; किन्तु अन्य देशोंके लिए जागौर और प्यूमा बिलाव-वंशकी दो अलग ही जातियाँ हैं। अब यदि 'टाइगर' नामसे इस जीवके विषयमें कुछ लिखा जाय, तो दक्षिणी अमेरिकावालोंको उससे एक दूसरे ही जीवका बोध होगा और वे बड़े चक्करमें पड़ जायँगे कि यह कैसा 'टाइगर' है, जो हमारे यहाँसे बिलकुल भिन्न है। परन्तु वैज्ञानिक नाम सर्वत्र एक-से प्रचलित हैं। अतएव उनसे किसी प्रकारके भ्रमकी आशंका नहीं। 'टाइगर'के स्थानपर एक देशका प्रकृति-विज्ञान-विशारद जब 'फैलिस टिगरिस' शब्दका व्यवहार करता है, तो दूसरे देशके वैज्ञानिकको तुरन्त वास्तविक जीवका ज्ञान हो जाता है।

जीव-जन्तुओंके वैज्ञानिक नामकरणकी जो पद्धति इस समय संसारके वैज्ञानिकोंमें प्रचलित है, वह लिनियसकी पद्धति कहलाती है। लिनियस स्वीडनका एक प्रसिद्ध प्रकृतिवेत्ता हो गया है। उसने ही पहले-पहल जीव-जगत्का वैज्ञानिक ढंगसे वर्गीकरण किया। उसकी पद्धतिके अनुसार प्रत्येक जीवके दो नाम होते हैं--एक तो उसका वंशगत नाम और दूसरा जातीय नाम। यह वंश और जाति क्या वस्तु हैं, इसे उदाहरण द्वारा समझाना उचित होगा। जंगलके राजा सिंह या केसरीको सभी जानते हैं। इस जीवका वैज्ञानिक नाम 'फैलिस लियो' है। 'लियो'का अर्थ सिंह है। यह शब्द एक जीवकी जातिका द्योतक है। उससे हमें सिंह नामकी एक जातिका ज्ञान होता है। प्राणिशास्त्रकी भाषामें 'जाति' शब्द एक विशेष अर्थमें प्रयुक्त होता है। वर्गीकरणका काम 'जतियों'से ही शुरू होता है। किन्तु 'जाति' कहते किसे हैं? इसका जवाब ज़रा मुश्किल है। फिर भी एक प्रदेशमें रहनेवाले दो जीवोंकी प्रकृतियाँ, उनके रंग-रूप, उनकी शारीरिक बनावाट, उनकी बोली आदि जब बिलकुल एक-से होते हैं और जब वे अपनेसे मिलते-जुलते अन्य जीवोंसे जोड़ा न खाकर आपसमें ही सन्तानोत्पत्ति करनेकी प्रवृत्ति रखते हैं, तो उन्हें एक ही 'जाति'का जीव कहा जाता है। उदाहरणके लिए किलकिलाकी तीन जातियाँ होती हैं। वे तीनों एक दूसरेसे अलग हैं। उन सबको हम किलकिला नहीं कह सकते, बल्कि उनको किसी एक सामूहिक नामके अन्तर्गत रखकर अलग-अलग नामोंसे पुकारना पड़ेगा। तभी हम उनका प्रकृत परिचय दे सकते हैं। अगर हम इन तीनोंके समूहको किलकिलाका नाम ही दे दें, तो हम उनको एक-दूसरेसे अलग करनेके लिए कह सकते हैं—चितकबरा किलकिला, छोटा रंगीन किलकिला, बड़ा रंगीन किलकिला। अलग-अलग नाम दे देनेसे यह बात तुरन्त स्पष्ट हो जाती है कि कौनसे किल-किलेसे हमारा मतलब है। इस प्रकार जब हम प्रत्येक जीवधारीको एक खास विशेषण द्वारा उसके साथकी अन्य सदृश 'जातियों'से अलग करके बतानेका प्रयत्न करते हैं, तो समझ लीजिए कि हम नामकरणकी वैज्ञानिक पद्धतिका अनुसरण कर रहे हैं।

सिंह जीवधारियोंके किसी वर्गका नाम नहीं है, बल्कि वह स्वयं एक 'जाति' है। अतएव वैज्ञानिक दृष्टिसे यह कथन सही नहीं है कि सिंहकी अनेक 'जातियाँ' होती हैं। इसी तरह 'जाति'को जब हम वर्गीकरणकी इकाई मान लेते हैं, तो यह प्रश्न भी ग़लत है कि सिंह किस 'जाति'का जीव है; क्योंकि सिंह स्वयं एक 'जाति'का नाम है।

लियो (सिंह) के साथ जो 'फैलिस' शब्द जुड़ा है, वह सिंह तथा उसीकी तरहकी अन्य जातियोंका सामूहिक नाम है। सिंह उन जीवोंमें से एक है, जो आकार, प्रकार और प्रकृतिमें बिल्लीके निकट सम्बन्धी हैं। बाघ, तेंदुआ, चीता, प्यूमा, सियागोश, जागौर, बनबिलाव—ये सब जीव बिल्लियोंसे कई बातोंमें बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं। अतएव इन सबको एक समूहके अन्दर रख दिया गया है। इस समूहको हम 'वंश' कहेंगे। इस 'वंश'का वैज्ञानिक नाम 'फैलिस' रख दिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उससे 'फैलिस ल्यू' शब्द बना। 'फैलिस'का अर्थ बिल्ली है। 'फैलिस ल्यू' शब्दसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिंह नामक जो 'जाति' है, वह बिल्ली-वंशके अन्तर्गत है। इसी तरह 'फैलिस टिगरिस' (बाघ), 'फैलिस पार्डस' (तेंदुआ) आदि शब्द बनते हैं।

लगभग समान जातियोंके समूहसे जिस तरह एक वंश बनता है, उसी तरह लगभग समान वंशोंके समूहसे एक परिवार। आपसमें मिलते-जुलते परिवारोंको श्रेणीबद्ध करके फिर उनसे वर्ग बनाए गए हैं, और उन वर्गोंको भी फिर और बड़े वर्गोंके अन्दर रखा गया है। इस प्रकार जीवधारियोंको श्रेणीबद्ध करते-करते हम एक ऐसे मूलस्रोतपर पहुँचते हैं, जहाँसे जीव-जन्तुओंकी विभिन्न धाराएँ अलग-अलग रास्तोंपर स्पष्ट फूटती हुई नज़र आती हैं। हमारे समक्ष जीव-जगत्का एक वंश-वृक्ष उपस्थित हो जाता है, जिसके द्वारा हमें इस बातका ज्ञान तो हो ही जाता है कि कौन-सा जीव किस वंशका है। साथ ही जीवधारियोंके विकास-क्रमको समझनेमें भी उससे हमें मदद मिलती है।

यहाँपर हम पाठकोंको वर्गीकरणके झमेलेमें नहीं डालना चाहते। नीचे एक छोटा-सा नक़शा दिया जाता है, जिससे मोटे तौरपर यह विषय उनकी समझमें आ जायगा। समस्त जीव-जन्तुओंको दो भागोंमें विभाजित किया गया है—एक मेरुदण्डी, दूसरे अमेरुदण्डी। नक़्शेमें केवल मेरुदण्डी—रीढ़वाले—जानवरोंका मोटे तौरसे वर्गीकरण दिखाया गया है। वैज्ञानिक नामकरणके विषयमें केवल इतनी ही बात ध्यान रखने योग्य है कि सदृश जातियोंके समूहसे जो वंश बनते हैं और उन वंशोंको जो संज्ञा दी जाती है, उसीके आधारपर जीव-जन्तुओंके नाम रखे जाते हैं। वनस्पतियोंका नामकरण भी इसी तरह हुआ है। प्रत्येक वृक्ष या पौधेके जातीय या वास्तविक नामके साथ उसका वंशगत नाम जुड़ा रहता है, जिससे इस बातका पता चल जाता है कि कौन-सा वृक्ष किस वंशका है।

ये वैज्ञानिक नाम बड़े जटिल और कर्कश होते हैं, और अंगरेज़ी तथा लैटिनके विद्वान ही उनका अर्थ बता सकते हैं। हम तो यहाँ केवल नामकरणका सिद्धान्त समझाना चाहते हैं। प्रश्न यह है कि हिन्दीमें इन नामोंको किस प्रकार अपनाया जाय? वर्गीकरणके सिद्धान्तके आधारपर हम जीव-जन्तुओं और वनस्पतियोंके अपने नाम गढ़ें या हिन्दी-उच्चारणके अनुसार उनको ज्योंका त्यों ले लें? कुछ विद्वानोंकी राय है कि इन शब्दोंकी हमें ज़्यादा ज़रूरत तो पड़ती नहीं, वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें ही उनका उपयोग होता है; अतः नए शब्दोंको गढ़नेसे क्या लाभ? हम उनको ज्योंका त्यों क्यों न स्वीकार कर लें? हम इस मतसे पूर्णतया सहमत हैं, बशर्ते कि अंगरेज़ीमें

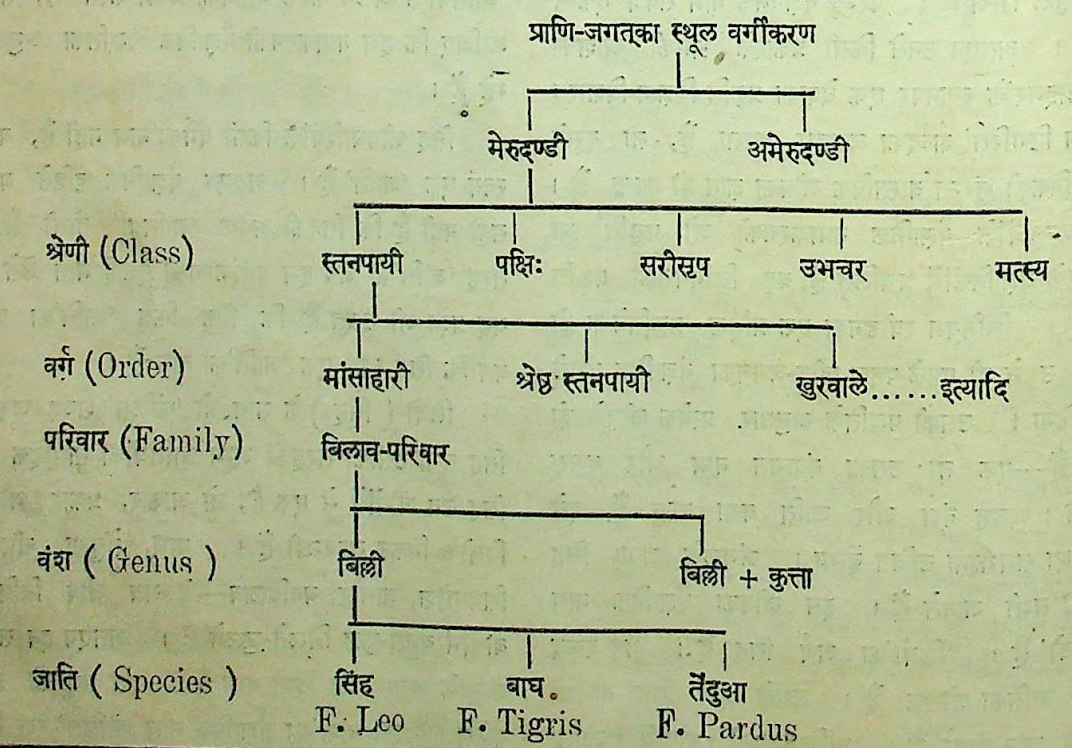

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

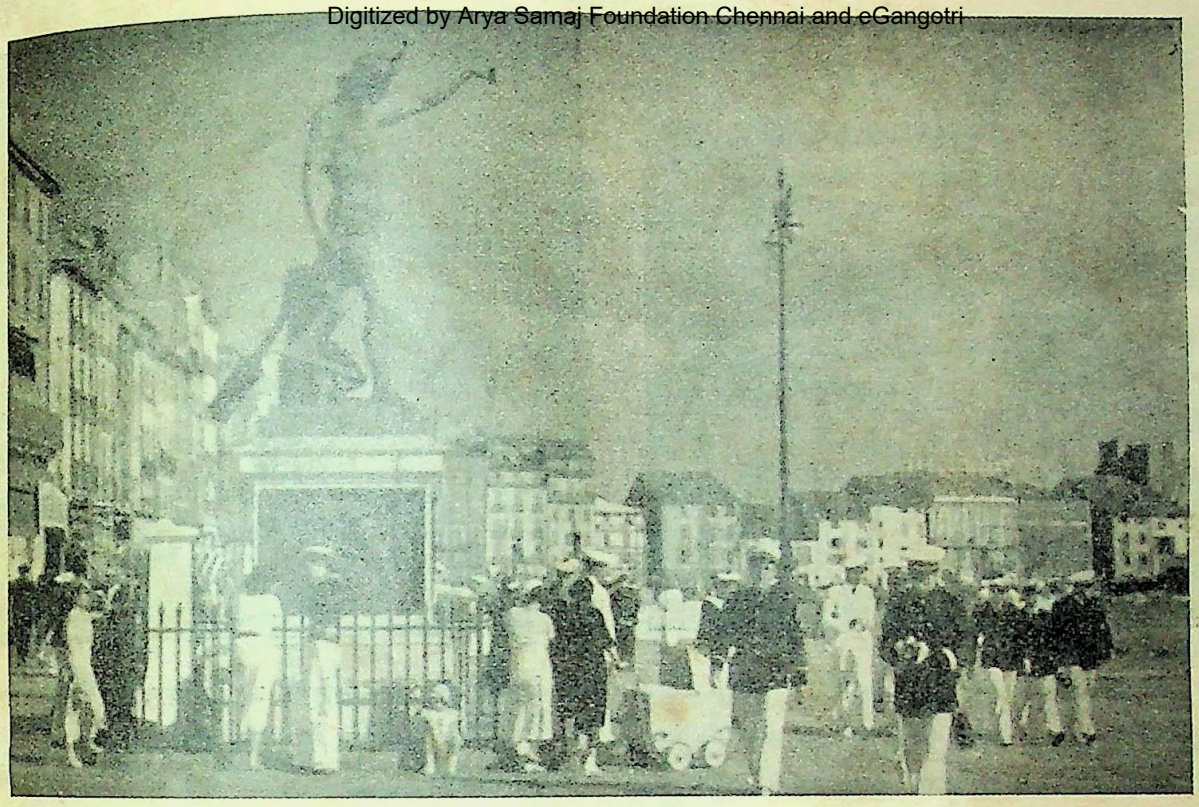

फ्रांसका प्रसिद्ध बन्दरगाह ट्रूलोन, जहाँ फ्रांसीसी नौसेनाके कई जंगी-जहाज़ जर्मनोंके हाथोंमें न पड़ने देनेके विचारसे जल-मग्न कर दिए गए।

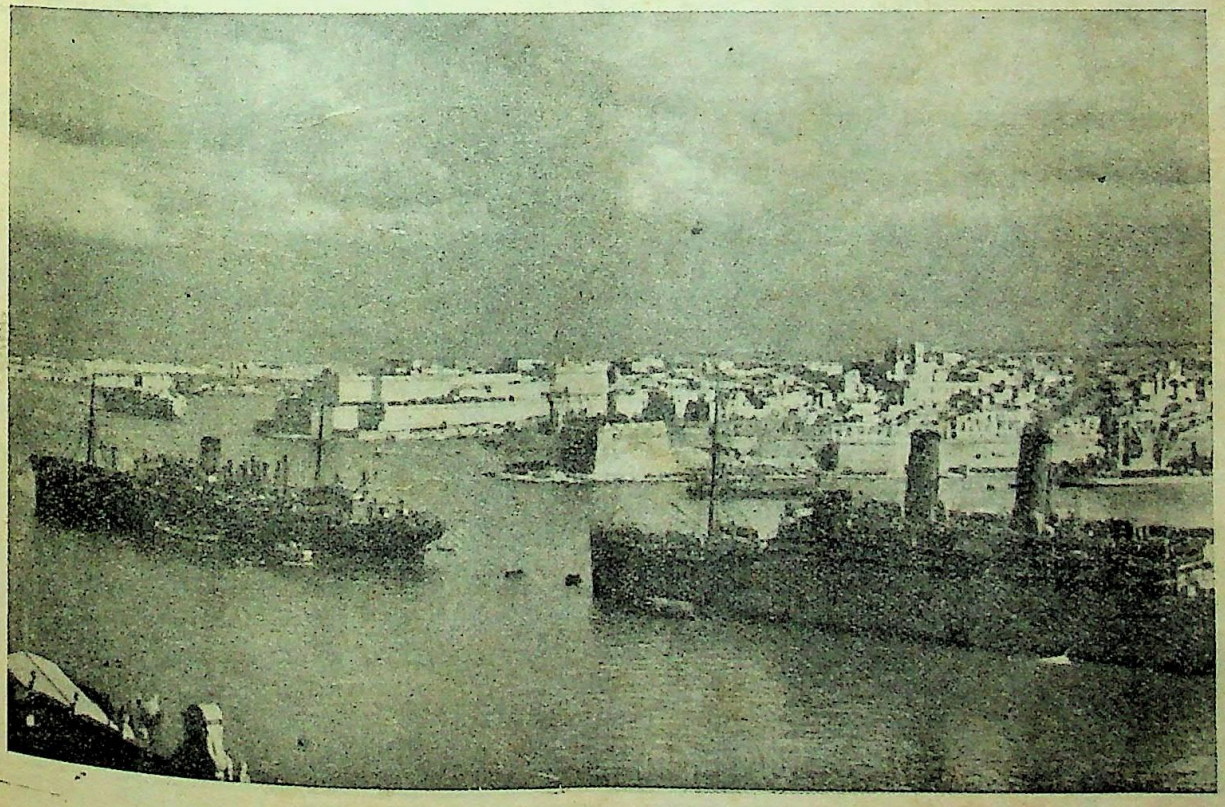

माल्टाके बन्दरगाहका एक दृश्य, जो अब धुरी-आक्रमणोंसे मुक्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

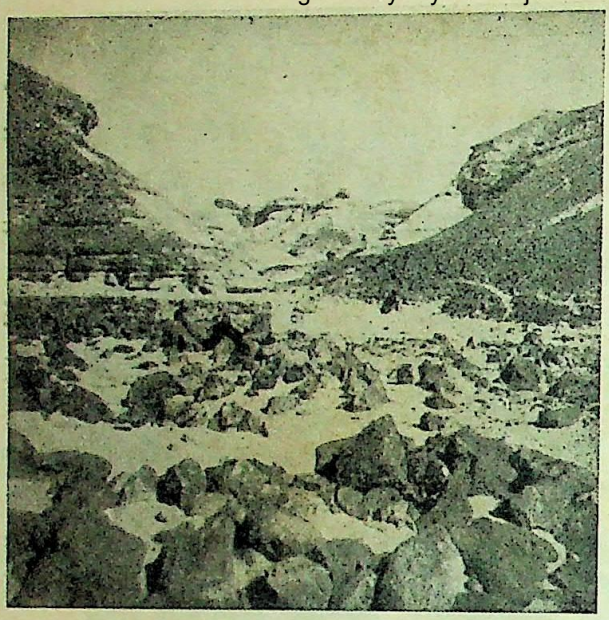

उत्तरी मिस्रका एक विशिष्ट प्रदेश।

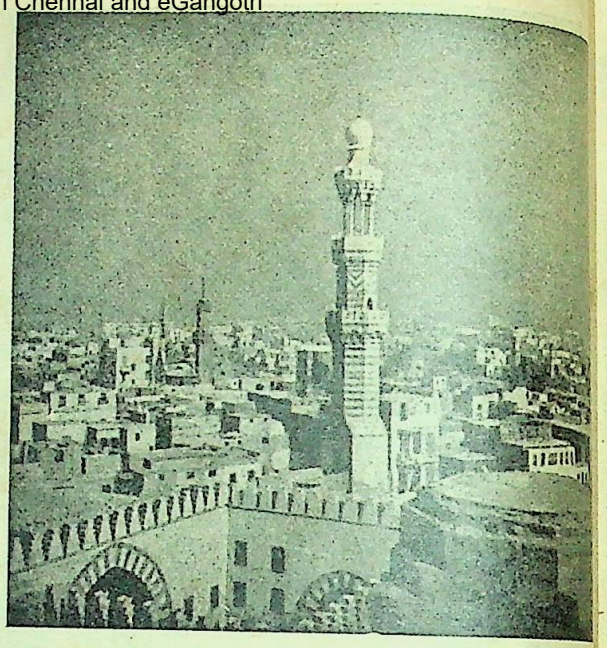

मिश्रका राजधानी काहिरो, जो आजकल आठवीं ब्रिटिश सेनाका केन्द्र बना हुआ है।

मिस्रका प्रसिद्ध बन्दरगाह अलेक्ज़ेण्ड्रिया, जो अब धुरी-आक्रमणोंसे फिर सुरक्षित हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनभिज्ञ पाठकोंकी सुविधाके लिए उनके संस्कृत पर्याय भी साथ दिए जायँ। अंगरेज़ीके ऐसे बहुसंख्यक परिभाषिक शब्द हैं, जिन्हें हमें ज्योंका त्यों लेना पड़ेगा। परन्तु हमारा निवेदन यह है कि विज्ञानका गम्भीर अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंके लिए आखिर लैटिन भाषाके ये शब्द कुछ अर्थ तो रखते ही हैं? जो लोग इन शब्दोंका व्यवहार करते हैं, वे उनका थोड़ा-बहुत आशय भी समझते हैं। अब अगर हिन्दीमें हम इन शब्दोंको ज्योंका त्यों लेना चाहते हैं, तो एक कठिनाई हमारे सामने आयगी, और वह यह कि हमारे देशके ऐसे विद्यार्थियोंके लिए, जो अंगरेज़ी नहीं जानते, ये शब्द एक संकेत-मात्र रहेंगे। वे उनका तात्पर्य नहीं समझ सकेंगे। ऐसी दशामें इन नामोंको हम ज्योंका त्यों तो अवश्य ले लें; किन्तु साथ ही एक ऐसा कोष तैयार करनेका प्रयत्न भी करें, जिसमें इन लैटिन नामोंके भावार्थ समझाए गए हों। ऐसा करनेसे हमें आगे चलकर अंगरेज़ी भाषाकी ग़ुलामीसे मुक्त होनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। साथ ही हम यह भी कहेंगे कि जो शब्द गढ़े जा सकें, उन्हें संस्कृतके आधारपर गढ़ भी लेना चाहिए। संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जिसमें शब्दोंको गढ़नेकी अद्भुत शक्ति मौजूद है। अंगरेज़ीके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। अपने ज्ञानके क्षेत्रको यदि हम विस्तृत करना चाहते हैं, तो इस भाषाका आश्रय हमें ग्रहण करना ही पड़ेगा। किन्तु वैज्ञानिक विषयोंके गम्भीर ग्रन्थोंको लिखने और समझने-वाले व्यक्तियोंकी संख्या बहुत थोड़ी ही होती है। आवश्यकता पड़नेपर वे अंगरेज़ी और लैटिन शब्दोंका मनमाना प्रयोग कर सकते हैं; किन्तु उनकी सुविधाके लिए यदि हम सारे देशपर अंगरेज़ी शब्दावलिका बोझ लाद दें, तो यह बड़ी ज़्यादती है। हम जिस जुएसे मुक्त होना चाहते हैं, वह तो और भी बोझल हो जायगा। कहा जा सकता है कि संस्कृतके आधारपर गढ़े गए ये नाम बड़े मुश्किल और गठीले होंगे। किन्तु जहाँ तक हमारा खयाल है, लैटिन नामोंकी अपेक्षा फिर भी वे हमारे लिए अधिक आसान साबित होंगे। कठिन शब्दोंको सरल बनानेका सबसे बढ़िया तरीक़ा यह है कि उनका खूब प्रचार किया जाय, न कि बहिष्कार।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़]

जीव-विज्ञानके कुछ शब्द

कुँवर सुरेशसिंह

जीव-विज्ञानका हमारी भाषामें कोई साहित्य न होनेके कारण यदि इस सम्बन्धके शब्द हमारे यहाँ न हों, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। लेकिन अब समयमें जैसा परिवर्त्तन हो गया है और परिस्थितियाँ जिस प्रकार अपने अनुकूल हो गई हैं, उनको देखते हुए यदि हम अपनी भाषामें विविध वैज्ञानिक विषयोंपर सुन्दर और उपयोगी साहित्य निर्माण करनेके काममें न लग जायँ, तो सचमुच ताज्जुब और खेदकी बात है। हमारी भाषाका भविष्य वास्तवमें बहुत उज्ज्वल है, और हिन्दी शीघ्र ही राष्ट्रभाषाका पद ग्रहण करने जा रही है, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। ऐसी दशामें हमको उसके प्रत्येक अंगको प्रौढ़ बनाना है। इसलिए अब प्रत्येक साहित्य-सेवीका यह कर्त्तव्य है कि जिस दिशाकी ओर उसका झुकाव हो, वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसी दिशामें काम करे।

वैज्ञानिक विषयोंके लेखकोंको एक नहीं, अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। पारिश्रमिककी कौन कहे, उनको प्रोत्साहन भी नहीं मिलता। फिर हमारे यहाँकी प्राचीन पुस्तकोंसे हमें वैज्ञानिक विषयोंके लिए कोई मदद नहीं मिलती। ऐसी दशामें हमें विदेशी भाषाओं तथा अपने व्यक्तिगत निरीक्षण और अनुभवोंपर ही बहुत-कुछ निर्भर रहना पड़ेगा। तभी उपयोगी और प्रामाणिक साहित्य तैयार हो सकता है। यदि ऐसे कुछ साहित्य-सेवी, जिन्हें इस प्रकारका शौक है, एक साथ मिलकर काम करें, तो बहुत आसानीसे इस कमीकी पूर्त्ति कर सकते हैं।

मिसालके तौरपर जीव-विज्ञानको ही लीजिए। अभी इस विषयपर हमारी भाषामें कोई सुन्दर और प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। मैंने अपने पिछले पाँच साल जीव-विज्ञान और खास तौरपर भारतीय पक्षिशास्त्रके अध्ययनमें बिताए हैं, और मैं जानता हूँ कि इस विषयपर कोई सुन्दर पुस्तक लिखनेमें कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। हम अपने चारों ओरके कीट-पतिंगों, चिड़ियों और यहाँ तक कि बहुत-से परिचित जानवरोंके भी नाम नहीं जानते। इसका कारण यही है कि हमारे यहाँ ऐसा साहित्य ही नहीं है। हमारे बच्चोंको इस विषयमें जो-कुछ ज्ञान मिलता है, वह अंगरेज़ी पुस्तकोंसे मिलता है। ऐसी दशामें अगर वे अपनी 'सुरागाय'से अधिक विदेशी 'बिसन' (Bison) को, 'खंजन'से ज़्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राबिन'को और 'सूस'से अधिक 'ह्वेल'को पहचानते हैं, तो उनका क्या दोष? हमें विदेशके पशु-पक्षियोंको ज़रूर पहचानना चाहिए; लेकिन अपने देशके जीवोंसे भी तो अपने बालकोंको अपरिचित रखना ठीक नहीं।

हाँ, तो इस समय विज्ञान-सम्बन्धी अन्य विषयोंको छोड़कर मैं केवल जीव-विज्ञानके बारेमें ही कुछ निवेदन करना चाहता हूँ और वह भी इस मंशासे कि सभी साहित्यिक भाई मुझे अपने सहयोग-सहायता और सलाहसे कृतार्थ करें, जिससे मैं अपनी त्रुटियोंको सुधार सकूँ। जीव-विज्ञानपर कुछ लिखनेसे पहले हमें एक शब्दावली तैयार करनी होगी, क्योंकि हमारे यहाँ पहले तो इस सम्बन्धके शब्द हैं ही बहुत कम और जो हैं भी, वे व्यवहारमें विशेष नहीं आते। उदाहरणार्थ, हम जीव-जगत्को ही लेते हैं। उसे जिस प्रकार प्रायः सभी देशोंके विद्वानोंने विभक्त किया है, हम उससे बाहर नहीं जा सकते; पर हम उन अंगरेज़ी शब्दोंके बजाय हिन्दीके शब्द तो रख ही सकते हैं। नीचे इसी प्रकार हमें Mammals, Reptiles और Amphibians के लिए शब्द तलाशना पड़ेंगे। Mammals के लिए स्तनपायी, Reptiles के लिए सरीसृप शब्द इस्तेमाल होते हैं; लेकिन Amphibian के लिए कोई सुन्दर शब्द नहीं मिलता। एक कोशमें 'स्थल-जलचर' मिला, जो बहुत ही बड़ा और भोंड़ा-सा लगता है। इसलिए Amphibian के लिए 'उभचर' शब्दका प्रयोग मैंने किया है।

इसी तरह जो शब्द जीव-विज्ञानके सम्बन्धमें प्रयुक्त होते हैं, उनकी एक संक्षिप्त सूची यहाँ दे रहा हूँ। उनके सामने हिन्दीके वे शब्द हैं, जिनका मैं प्रयोग कर रहा हूँ या करना चाहता हूँ। ऐसा करनेका मेरा तात्पर्य यह है कि यदि इसमें कहीं कोई त्रुटि रह गई है, तो मुझे हमारी भाषाके विद्वान अपनी उचित सलाह देकर कृतार्थ करें। मैं उनका बहुत आभार मानूँगा।

Absorption शोषण। Elementary Canal पाकनाली। Anatomy शरीर - व्यवच्छेद-विद्या, अंग-व्यवच्छेद-विद्या। Anas गुह्य। Blood circulation रक्त-प्रवाह, रक्त संचालन। Blood Vessel रक्त-वाहिनी। Body देह, शरीर। Body Wall देह-प्राकार, देह-भित्ति। Brain मस्तिष्क, मगज़। Bucal Cavity मुहविवर, मुखकोष्ठ। Seta रोम, लोम। Bristle काँटा, रोम-सूची। Chaetopoda रोमदेही। Chitin खोल। Cocoon कीटकोष, कृमिकोष। Coelom देह-गह्वर। Conjugation संयोग। Crop गलस्थली। Cuticle वाह्यचर्म, वाह्यत्वचा। Development क्रमवृद्धि, परिवर्द्धन। Digestion जठराग्नि, पाचन-क्रिया। Digestive Juice पाचक रस। Digestive Organ पाक-यन्त्र। Digestive Products परिणाम-रस। Digestive Tube पाचन-नली। Dissection व्यवच्छेद, अंगच्छेद। Duct प्रणाली, नली। Ductul नलिका। Embryo भ्रूण, गर्भ। Epidermis वाह्यचर्म, अधिचर्म। Excretion मलत्याग, अपनयन, निष्काशन। Excretion Duct अपनयन-नली। Family परिवार। Fat चर्बी, मेदा। Fertilization निषेक, गर्भाधान। Fertilise उर्वरित, फलित, निषिक्त, समलीकृत। Ganglion पिक्तक, स्फोट। Genus वंश। Gizzard पेशणाशय। Gland ग्रन्थि। Glottis श्वास-मार्ग। Haemoglobin रक्तिमा। Heart हृदय, दिल। Hermaphrodite द्विलिंग, उभलिंग। Impregnation गर्भाधान, निषेक। Intestine अंत्र, आँत, अँतड़ी। Kidney गुर्दा, मूत्र-ग्रन्थि, वृक्क। Kingdom राज्य (Animal kingdom=प्राणिराज्य)। Large intestine वृहदन्त्र, बड़ी आँत। Larva कीट-डिम्ब। Larynx स्वर-नाली। Liver यकृत्, जिगर, कलेजा। Lung फेफड़ा, फुसफुस। Membrane झिल्ली। Metamorphosis रूपान्तर। Mouth मुख। Muscle पेशी, मांसपेशी। Museum अजायबघर। Naeplius प्राथमिक कीटावस्था। Neck ग्रीवा, गरदन। Nerve स्नायु। Nose नासिका, नाक। Nostril नासापुट, नासारन्ध्र। Oesophagus अन्न-नाली। Oil Gland तैल-ग्रन्थि। Order वर्ग। Organ इन्द्रिय, यन्त्र। Organism जीव। Osculum वहिर्मुख। Ovary डिम्बकोष, रज-कोष। Oviduct डिम्ब-नली। Oviparous डिम्बप्रसू। Ovisac डिम्बस्थली। Ovum रजडिम्ब। Parasite परजीवी। Parasitic परजीविक। Parthenogenesis कानीनता। Parthenogenitic कानीन। Pharynx गलकोष, कंठाशय। Phylum विभाग। Pigment रंजक, वर्णक। Plasma तरल रक्तस्थ पदार्थ। Poison Gland विष-ग्रन्थि। Polyembryony बहुभ्रूणत्व। Polymorphosm बहुरूपत्व। Protoplasm जीवांकुर, जीव-बीज, जीव-पंक। Protozoa निम्नजीव, आद्यप्राणी। Pseudopodium क्षणपद, कल्पित पद। Pupa कृ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीटावस्था, इल्ली। Radula जिह्वादशन। Rectum मलाशय। Red Blood Corpuscle लाल रक्तकणिका। Regeneration नवोत्पत्ति, पुनरुत्पत्ति। Reproduction जनन। Reproductive Organ जननेन्द्रिय। Retina नेत्र-पट, नेत्र-दर्पण। Sac स्थली। Saliva लार। Salivary duct लार-नली। Salivary Gland लार-ग्रन्थि। Saprophyte मृत जीवी। Scale शल्क, बल्क। Self-fertilization स्वनिषेक। Serum रक्तजल। Sex यौन, द्वन्द, लिंग। Sexual लैंगिक, काम्य। Sexual reproduction यौन जनन। Skeleton कंकाल, अस्थि-पंजर। Skin त्वचा, चर्म, खाल। Skull कपाल, खोपड़ी। Small Intestine सूक्ष्मान्त्र, छोटी अँतड़ी। Species जाति। Sperm शुक्र-कीट। Spermatozoon शुक्राणु। Spleen प्लीहा, तिल्ली। Stomach पाकस्थली, आमाशय। Structure गठन, रचना। Symbiosis सहयोगिता। Symmetry संयोग, जवाब। Telson पुच्छांग। Tendon स्नायु रज्जु। Tentacle स्पर्शभुज, स्पर्शांग। Testes शुक्रकोष। Thorax वक्ष। Thymos वक्ष-ग्रन्थि। Thyroid gland गल-ग्रन्थि। Tissue रचनातन्तु, मूलतन्तु। Tongue जिह्वा, रसना, जीभ। Tooth दन्त, दशन, दाँत। Trachea वायु-नली, श्वास-नली। Unisexual एकलिंग। Urea मूत्र-द्रव्य। Ureter मूत्र-नाली। Urethra मूत्र-द्वार। Urine मूत्र। Uterus गर्भाशय। Vent गुह्यद्वार। Viviperous शिशुप्रसू, जरायुज। White Blood Corpuscle श्वेत रक्तकणिका। Wing पक्ष। Zoology जीवविज्ञान, प्राणिविज्ञान।

नक्षत्र

श्री महावीरसिंह 'वीर'

नभके नक्षत्र बताते हैं, जग - जीवनका इतिहास अमर।

है शरद - शशिकला छू जाती,
कलियोंका अलसाया अंचल।
नीड़ोंके सोए सुकुमारों
का हो उठता हृत्तल चंचल।
पल्लव - पल्लवसे चू पराग,
जब मानव-चित्त चुराता है।
नव - क्षुपके विकसित काननमें,
मलयानिल गन्ध लुटाता है।
तो तममें दीप जलाती है, तारोंकी जगमग ज्योति प्रखर।
नभके नक्षत्र बताते हैं, जग - जीवनका इतिहास अमर।

जीवित अम्बरका आकर्षण,
आकर्षण, ऐक्य - प्रणय - वर्षण।
रागिनि, रागिनिका मोहक सम,
समतामें भी वह संघर्षण।
उन दिव्य दिशाओंका नर्त्तन,
जिनमें अनुराग भरा अविरल।
बन्धुत्व - भावनाका निर्झर,
जिनसे झरता रहता प्रतिपल।
जिनकी नीरवता बनी राग, संस्कृतिका 'सत्य, शिवं, सुन्दर'।
नभके नक्षत्र बताते हैं, जग - जीवनका इतिहास अमर।

वह निजता, 'नफ़सीका आलम'
कोलाहल, चहल-पहल, कटु स्वन्।
पग - पगपर अत्याचारोंके,
उन परुष - प्रहारोंका वर्षण।
टुक शान्ति नहीं, संसार उसे
कैसे मैं कह पाऊँ, प्रियवर?
इस जगतीमें पाए जाते,
शोषण, संताप, क्षुधा, व्यतिकर।
निर्बल, निरीह जनकी आहें, तूफ़ान जगातीं प्रलयंकर।
नभके नक्षत्र बताते हैं, जग - जीवनका इतिहास अमर।

उडुगणमें यह लालिमा, ज्योति!
नूतन जीवनका ज्वलित रक्त।
पथकी उस आगत अड़चनको,
क्षणभरमें कर देता अशक्त।
मेरा उर सहसा खिंच जाता,
मैं कह उठता सँग ही क्षणभर
हममें बल है, अधिकारोंपर,
मनुहार न होगी मनुज-प्रवर।
है लेश न सैरिभ-गाड़ीकी, गति मन्द आज चूँ-चरर-मरर।
नभके नक्षत्र बताते हैं, जग - जीवनका इतिहास अमर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि-कालीन भारत

प्रो० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी

भारतके प्राचीन इतिहास, संस्कृति तथा समाज-स्थितिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए भारतीय और पाश्चात्य विद्वानोंने बड़ी लगनके साथ वैदिक वाङ्मय, पुराण, इतिहास, काव्य, नाटक आदि ग्रन्थोंके अतिरिक्त प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र आदि विविध अन्य सामग्रियोंका उपयोग किया है। फल-स्वरूप प्राचीन भारत-सम्बन्धी हमारा ज्ञान अधिक विस्तृत और सुसम्बद्ध हो गया है। किन्तु पाणिनिकी अष्टाध्यायीके समान नीरस और 'शुद्ध' व्याकरण-ग्रन्थसे भी तत्कालीन समाज-सम्बन्धी अनेक मनोरंजक और बोधप्रद बातें जानी जा सकती हैं, यह सुनकर आश्चर्य होगा। अन्वेषण और संशोधनके इस वर्त्तमान युगमें विद्वानोंकी तीक्ष्ण दृष्टि इस ओर भी गई है, और श्री सी० वी० वैद्य तथा श्री राधाकुमुद मुकर्जी आदि भारतीय संशोधकोंने इस दिशामें स्तुत्य प्रयत्न किया है।[1] किन्तु अष्टाध्यायीमें जितना गहरा प्रवेश किया जाय, उतनी अधिक ज्ञानराशि तत्कालीन भारतके सम्बन्धमें संचित की जा सकती है।

यहाँ पाणिनि-कालके सम्बन्धमें भी कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानोंके मतका झुकाव पाणिनि-कालके सम्बन्धमें धीरे-धीरे बदल रहा है और उसे अधिक प्राचीन माननेकी ओर है; फिर भी अभी तक वे पाणिनिको ५०० ई० सन्‌से पूर्वका माननेको तैयार नहीं हैं।[2] अष्टाध्यायी ग्रन्थकी अन्तरंग परीक्षासे गोल्डस्टूकर, भांडारकर, बेल्वेलकर, वैद्य आदि विद्वानोंने सिद्ध किया है कि पाणिनि बुद्ध-प्राक्कालीन हैं। अष्टाध्यायीमें पाए गए अनेक क्लिष्ट और वर्त्तमान संस्कृतमें अप्रयुक्त और दुरवबोध शब्दोंका विमर्श करते हुए हमने 'वुल्नर कमेमोरेशन वाल्यूम' (पृ० ४६) में यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि पाणिनि-काल न्यूनातिन्यून नवम शताब्दी (ई० पू०) से पहलेका होना चाहिए। दूसरी ज्ञातव्य बात यह है कि निम्नलिखित चित्रणमें अष्टाध्यायीमें साक्षात् पठित शब्दोंका ही प्रायः आधार लिया गया है। अष्टाध्यायी-सूत्रोंके गणपाठमें पठित अनेक शब्दोंके सम्बन्धमें अप्रामाणिकताका सन्देह हो सकता है कि वे शब्द बादमें गणपाठमें प्रविष्ट कर दिए गए हैं; किन्तु अष्टाध्यायीमें साक्षात् पठित या निश्चयात्मक रूपसे तत्साधित शब्दोंकी पाणिनि-कालीनताके सम्बन्धमें शंका करनेकी गुंजाइश ही नहीं है।

पाणिनिके समयमें स्टैण्डर्ड संस्कृतका प्रचार उत्तर-भारतमें ही सीमित था। दक्षिण-भारतमें संस्कृत या तो 'विशुद्ध भाषा'के रूपमें प्रचलित नहीं थी या पाणिनिको दक्षिण-भारतका परिचय ही नहीं था। भारतीय आर्य बाहरसे भारतवर्षमें आए या भरत-भूमि ही उनकी आदिभूमि है, इस प्रश्नके हलमें पाणिनिकी दक्षिण-भारत-सम्बन्धी अनभिज्ञताकी मीमांसा की जा सकती है। किन्तु यह तो निश्चय है कि अष्टाध्यायीमें दक्षिण-भारतके स्थानोंका हवाला नहीं है। पाणिनिके भारतकी सीमा पूर्वमें कलिंग (उत्तर-सरकार), पश्चिममें सिन्ध और कच्छ, उत्तर-पश्चिममें तक्षशिला और सुवास्तु (स्वात) की घाटी और दक्षिणमें दण्डकारण्य थी। पाणिनिने पूर्व-देश (प्राच्य) और उत्तर-देश (उदीच्य) में प्रचलित अनेक शब्द-रूपोंकी विशिष्टताका निर्देश किया है। काशिका (१-१-७५, पाणिनि-सूत्र) के अनुसार प्राच्य और उदीच्य देशोंको सरस्वती (शरावती) नदी (कुरुक्षेत्रके निकट) विभाजित करती थी। किन्तु ६-२-८९ में[3] अनुदीचाम् (उदीच्यभिन्न) पदके प्रयोगसे प्रतीत होता है कि पूर्व और उत्तरके बीचके मध्य-देशमें (जिसमें वाहीक आदि जनपद थे) प्रचलित शब्द-रूपोंके वैशिष्ट्यसे पाणिनि भलीभाँति परिचित थे। बल्कि अधिक संगत तो यह है कि पाणिनिने मध्य-देशकी 'संस्कृत' भाषाको स्टैण्डर्ड मानकर अपवाद-रूपमें पूर्व और उत्तर देशोंकी भाषाके रूपान्तरोंका ज़िक्र किया है। पाणिनिका जन्म सिन्धु नदीके तटपर अटकके निकट शलातुर (वर्त्तमान लहाउर गाँव, प्रसिद्ध लाहौर नगर नहीं) ग्राममें हुआ था, इसीसे उन्हें शालातुरीय कहा जाता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनत्सांग (सप्तम ईस्वीय शताब्दी) ने वैयाकरण पाणिनिके पाषाणकी स्मृति-चिह्नको लहाउर गाँवमें देखा था। अतः यह बहुत सम्भव है कि पाणिनिने पंजाब और पश्चिम-युक्तप्रान्तके आस

---

१. सी० वी० वैद्य : 'हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर', जिल्द १, भाग ३, पृ० १३८।
राधाकुमुद मुकर्जी : 'हिन्दू सिविलिज़ेशन', पृ० १२१।

२. मैक्समूलर : ३०० वर्ष ईस्वी पूर्व। कीथ : ३५० वर्ष ई० पू०। मैक्डानेल : 'इंडियाज़ पास्ट'में ४५० वर्ष ई० पू०।

३. पाणिनि-सूत्रोंके निर्देशकी संख्याएँ क्रमसे अध्याय, पाद और सूत्र-संख्या सूचित करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पासकी भाषाको मुख्य संस्कृत माना हो तथा काश्मीर और उसके आसपासकी भाषाको उत्तरकी और पूर्वीय प्रान्तोंकी भाषाको पूर्वकी भाषा मानकर उनके विशिष्ट रूपोंका अपवाद-रूपसे निर्देश किया हो। अस्तु।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, दक्षिण-भारतके स्थानोंका निर्देश अष्टाध्यायीमें नहीं है; किन्तु पूर्व, मध्य और उत्तर भारतके अनेक ग्रामों और नगरोंके नाम पाए जाते हैं। मध्य-भारतके वाहीक जनपदका तो बहुत बारीक ज्ञान पाणिनिको था। विपाशा नदी (ब्यास)के उत्तरमें पाए जानेवाले कूपोंके नामोंके उच्चारण-वैशिष्ट्य तकका पाणिनिने (४-२-७४) निर्देश किया है। पाणिनि-कालमें नगरोंके नामके अन्तमें प्रस्थ (जैसे इन्द्रप्रस्थ), विध (भौरिकिविध) या भक्त (ऐषुकारि-भक्त) रूप पाया जाता था। एवमेव ग्रामोंके नामके अन्तमें कूल (जैसे दाक्षिकूल), सूद (देवसूद), स्थल (माहकिस्थल) या कर्ष (दाक्षिकर्ष) रहता था। नगरों और गाँवोंको नाम देनेके भिन्न-भिन्न प्रकार थे। जैसे (१) संस्थापकके नामसे (कुशाम्ब द्वारा स्थापित होनेके कारण कौशाम्बी); (२) समीपस्थ प्रसिद्ध स्थानके नामसे (जैसे विदिशाके समीप होनेसे वैदिश); (३) निवासियोंके नामसे (जैसे शिबियोंके निवास-स्थान होनेसे शैब); (४) वहाँ पाई जानेवाली प्रसिद्ध वस्तुके नामसे (जैसे उदुम्बर—गूलर—के बहुतायतसे पाए जानेके कारण औदुम्बर)। जैसे आजकल दिल्लीमें नगर-विशेषको जानेवाली सड़कोंपर स्थित होनेके कारण फाटकोंके नाम लाहौरी-गेट, अजमेरी-गेट, काश्मीरी-गेट आदि हैं, वैसे ही पाणिनि-कालमें भी फाटकोंको ऐसे ही नाम दिए जाते थे (जैसे सुघ्नकी ओर जानेवाले मार्गपर स्थित कान्यकुब्ज नगरके फाटकका 'सौघ्न कान्यकुब्ज-द्वार' नाम था)। कम्बोज, गान्धार, कोशल आदि बीसों भिन्न-भिन्न प्रान्तों—जनपदों—के नाम अष्टाध्यायीमें आए हैं। प्रत्येक जनपदकी सीमा निश्चित रहती थी और उसमें अनेक विष्टप, नगर और ग्राम होते थे। जनपदोंके क्षत्रिय शासकोंको जानपदिन् और एक ही जनपदके निवासियोंको सजनपद कहते थे। शासक यदि क्षत्रिय माता-पिताका पुत्र हुआ, तो उसे राजन्य कहते थे, अन्यथा (वार्तिक-कारके अनुसार) राजन नाम दिया जाता था। गण-राज्य या संघ-राज्यका निर्देश अष्टाध्यायीमें आया है। एक संघ-राज्यकी भिन्न पार्टी या दलको 'वर्ग' कहते थे। वर्गोंका नामकरण बहुधा वर्गके नेताके नामसे होता था, जैसे अर्जुन-वर्ग्यका अर्थ अर्जुन-दलका सदस्य। दो दलोंकी आपसकी लाग-डाँट और परस्पर असहयोगका भी ज़िक्र (व्युत्क्रमण) आया है। अनेक संघोंका 'फेडरेशन' भी मिलता है, जैसे त्रिगर्त्तषष्ठ-संघमें ६ संघ-राज्य सम्मिलित थे। जिन संघ-राज्योंके पास प्रबल सेना रहती थी और वह सेना लड़नेके लिए अन्य राष्ट्रोंको द्रव्य लेकर दी जाती थी, उन संघोंको आयुध-जीवि-संघ कहते थे। कई संघ तो आपसमें मिलकर संयुक्त सेना रखते थे, जैसे क्षौद्रकमालवी सेना (खण्डिकादि गणपाठके अनुसार) क्षुद्रकों और मालवोंकी संयुक्त सेना थी। संघोंकी शासन-व्यवस्थामें स्वेच्छासे मत देनेके अधिकारका अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि 'छन्दस्य'का अर्थ स्वेच्छासे दिया 'मत' है। इसीसे पालि वाङ्मयमें मत (वोट) के लिए छन्द-पद प्रयुक्त होनेकी उपपत्ति भी मिलती है। शासन-सभाको 'परिषत्' और उसके सदस्योंको 'पारिषद्य' कहते थे। परिषत्की अनुमति बिना शासक कुछ नहीं कर सकता था, इसीसे उसको 'परिषद्वल' (सम्भवतः परिषद्बलका रूपान्तर) कहते थे। साधारण सरकारी कर्मचारीके लिए 'युक्त', मुख्य कर्म-चारीके लिए 'अध्यक्ष', शान्ति और दण्ड विभागोंके अध्यक्षके लिए 'वैनयिक', क़ानून-मन्त्रीके लिए 'व्यावहारिक' तथा अर्थ-मन्त्रीके लिए 'औपायिक' पदका प्रयोग होता था (व्यवहार और उपाय शब्द गणपाठसे लिए गए हैं)। ग्रामोंके संघको 'पूग' कहते थे और गाँवके मुखियाके लिए 'ग्रामणी' शब्द प्रयुक्त होता था। ग्रामणीका महत्व इसीसे सिद्ध होता है कि कई ग्राम ग्रामणीके नामसे जाने जाते थे।

पाणिनिके समयमें लोगोंकी आर्थिक स्थिति पर्याप्त रूपसे उन्नत हो चुकी थी। कृषि और वाणिज्यके अतिरिक्त अन्य जीविकाओंका भी ज़िक्र आता है। सरकारी नौकरोंको, जिन्हें नियमित रूपसे वेतन मिलता था, 'वैतनिक' कहते थे। साधारण मज़दूरोंको 'कर्मकर', निश्चित शर्तोंपर नियत समय तक काम करनेवालोंके लिए 'नियोजित', सम्मानित पेशेवालोंके लिए 'अधीष्ट' और मामूली पेशेवालोंके लिए 'भृत'का प्रयोग होता था। नौकरोंको वेतन द्रव्य-रूपमें न देकर भोजनके रूपमें भी दिया जाता था। सवारी (जैसे घोड़ा, ऊँट आदि) रखकर जीविका चलानेवाले 'वाहिक' कहलाते थे। तलवार, धनुष आदि रखकर जीविका चलानेवाले 'आयुधीय' या 'आयुधिक' कहलाते थे। गोदमें बच्चोंको लेकर खेलानेवालोंके लिए 'औत्संगिक' शब्द व्यवहृत होता था। ब्याजपर रुपया देने-वालेको 'कुसीदिक' कहते थे। ग्यारह रुपए प्राप्त करनेके लिए दस रुपए देनेवालेके लिए 'दशैकादशिक' शब्द आया है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे दस प्रतिशत ब्याज लेनेकी चालका अनुमान किया जा सकता है। क़र्ज़ चुकानेको 'विगणन' कहते थे। 'उत्तमर्ण' और 'अधमर्ण' पदका प्रयोग क़र्ज़ देनेवाले और क़र्ज़ लेनेवालेके लिए होता था। क़र्ज़ नक़द या वस्तुके रूपमें चुकाया जा सकता था। मासिक, वार्षिक या ख़ास ऋतुमें (फ़स्लके समय) क़र्ज़ चुकानेका नियम था। कभी-कभी ऋण चुकानेकी अवधि तक ब्याजके स्थानमें दूध देनेवाली गाय दी जाती थी और मूलधन चुका देनेपर गाय वापस ले ली जाती थी। इस गायको 'धेनुष्या' कहते थे। खरीद और बेचकर जीविका चलानेवालेके लिए 'क्रयविक्रयिक' शब्द आया है। गोणी (अन्न रखनेका बोरा) और प्रवाणी (करघा) शब्दसे बुननेकी कलाका पता चलता है। नवीन बुने हुए वस्त्रको 'निष्प्रवाणि' कहते थे। ऊनी (ऊर्णा) वस्त्रोंका भी उल्लेख आया है। रोचना और लाक्षासे वस्त्रोंके रँगे जानेका निर्देश है। कुलाल, चर्मकार, चित्रकार, लिपिकार, श्लोककार, सूत्रकार आदि पेशे-वालोंका भी हवाला मिलता है। चमड़ेसे जूतोंके अतिरिक्त रस्सी आदि अन्य वस्तुएँ भी बनती थीं। चिड़ियोंका शिकार करनेवालेको 'शाकुनिक' कहते थे। मृग, मछली आदि मारनेवालोंका भी ज़िक्र आया है। एवमेव इत्रफ़रोश (सौग-न्धिक) और लोहार, कलार, माली तथा पत्थर काटनेवालोंका भी निर्देश है। संगीत-कलामें भी लोग प्रवीण थे। वीणा, मृदंग, मड्डुक, झर्झर आदि विशिष्ट वाद्ययन्त्रोंको बजानेवालोंके लिए भिन्न-भिन्न शब्द मिलते हैं। चार बाजोंके एक साथ बजनेको 'तूर्यांग' (कंसर्ट) कहा जाता था। गायक और नर्त्तकके अतिरिक्त रंगभूमिके पीछेके पर्दे (अवस्तार) का भी उल्लेख मिलता है। गाँवमें रहनेवाले बढ़ईको 'ग्रामतक्ष' और स्वतन्त्र रूपसे अपनी जीविका चलानेवालेको 'कौटतक्ष' कहते थे।

कृषि और गौके सम्बन्धमें पाणिनिका ज्ञान अति विस्तृत था और उन्होंने बारीक-से-बारीक बातोंका भी निर्देश किया है। गृष्टि (एक बार जनी हुई), धेनु (नई जनी हुई), वशा (बाँझ), वेहत् (गर्भघातिनी), वष्कयणी (छोटे बछड़ेवाली), समांसमीना (हरसाल जननेवाली) आदि विविध अवस्थाओंकी गायोंके लिए भिन्न-भिन्न नाम आए हैं। ऐसे ही बछड़ा, साँड़, गाड़ीका बैल, रथका बैल, खेतीका बैल आदि विविध बैलोंके लिए भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। बैलों और गायोंकी पहचानके लिए विशेष चिह्न या संख्याके अंक दाग दिए जाते थे।[४] इसी प्रकार खेतीके सम्बन्धमें भी विस्तारपूर्वक निर्देश पाए जाते हैं। खेत दो या तीन बार जोते जाते थे; सीधा जोतकर आड़ा जोतने और जोतते समय बीज बोनेका निर्देश आया है। फ़स्ल जिस ऋतुमें बोई जाती थी या तैयार होती थी, उसीके नामसे वह पुकारी जाती थी। जैसे—हैमन्त-यव, शारद-शालि। उत्पन्न होनेवाले धान्यके नामसे खेतोंके नाम पड़ते थे। ६० दिनमें (बोनेके बाद) तैयार हो जानेवाले धान्यको 'षष्टिक' कहते थे। फ़स्ल काटनेके बाद खेतमें पड़े हुए अन्न-कण (उञ्छ) तपस्वियोंके लिए छोड़ दिए जाते थे। भिन्न-भिन्न वृक्षों, पशुओं, आयुधों आदिके नाम भी अष्टाध्यायीमें मिलते हैं। अष्टाध्यायीमें तत्कालीन जनपद, ग्राम, वंश तथा कुलके नामोंकी भरमार देखकर पाणिनिके सर्वतोमुखी ज्ञानका परिचय मिलता है। न्याय-विधानके शब्दोंका—जैसे साक्षी, प्रतिभू (जामिन), अंशक और दायाद (सम्पत्तिके हिस्सेदार) आदिका—भी निर्देश है। घोर अपराध करनेपर ज़हर देना (विष्य) या सिर काटनेकी व्यवस्थाका पता चलता है। जहाँ राज-कर वसूल किया जाता था, उस स्थानको 'आय-स्थान' कहते थे। शुल्क, उपदा (भेंट), अवक्रप (कष्ट देकर धन लेना)का भी उल्लेख मिलता है। खारी, विस्त, शतमान, आढक, पुरुष आदि नाप और तोलके शब्द भी पाए जाते हैं। पण, पाद, माष, शाण, कार्षापण, निष्क—ये उस कालमें प्रचलित सिक्कोंके नाम थे। सिक्के पीटकर या ढालकर बनाए जाते थे। खाद्य-पदार्थोंमें अपूप (मालपुवा), यवागू (लपसी), मूलक, दधि, क्षीर, उदश्वित् (मट्ठा), मक्खन (हैयंगवीन) आदि विविध शब्द मिलते हैं। पकाई गई तरकारीके लिए 'भाजी' तथा कच्ची तरकारीके लिए 'भाजा' शब्द व्यवहृत होते थे। भोजन बनानेके सम्बन्धमें मिश्रीकरण (मिलाना), संसृष्ट (मिलाकर एक कर देना) और संस्कार (छौंकना, बघारना) आदिका भी हवाला मिलता है।

पाणिनि-कालमें प्रचलित विद्या और शास्त्रोंके उल्लेखोंका बाहुल्य भी अष्टाध्यायीमें दृष्टिगोचर होता है। चारों वेद, ३० और ४० अध्यायवाले ब्राह्मण-ग्रन्थ और पुराने सूत्र-ग्रन्थोंका निर्देश किया गया है। वैदिक वाङ्मयके भिन्न-भिन्न अंगोंका उल्लेख पाणिनिने भिन्न शब्दोंसे (मन्त्र, छन्दस्, वेद, निगम आदि) किया है। भिक्षुसूत्र और नटसूत्र तथा श्लोक, गाथा, कथा और महाभारतका भी उल्लेख आया है। शिशुक्रन्द

४. अष्टाध्यायीमें लिपि शब्दके प्रयोग और संख्या-चिह्नोंके निर्देशसे भी स्पष्ट है कि पाणिनि-कालमें लेखन-कला प्रचलित थी। इस सम्बन्धमें बूलर आदि पाश्चात्य विद्वानोंका मत मान्य नहीं है। —ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बच्चोंका रोना) पर भी स्वतन्त्र ग्रन्थका निर्देश मिलता है। आध्वरिक और आर्चिक आदि याज्ञिक ग्रन्थोंका उल्लेख भी मिलता है। पाणिनिके अनुसार ग्रन्थोंका श्रेणी-विभाग इस प्रकार था—दृष्ट (अपौरुषेय), प्रोक्त (संगृहीत), उपज्ञात (मूलग्रन्थ), कृत (सामान्य रचना), व्याख्यात (टीका) आदि। शिक्षा-प्रारम्भके संस्कारका नाम 'आचार्यकरण' था। एक ही गुरुसे पढ़नेवाले छात्रोंको 'सतीर्थ्य' या 'सब्रह्मचारिन्' कहते थे। विद्यार्थीगण अपने गुरुके नामसे या अध्येय विषयके नामसे पुकारे जाते थे, जैसे पाणिनिके छात्र 'पाणिनीय' और व्याकरण पढ़नेवाले 'वैयाकरण'। वेद-शास्त्रके विद्यार्थीको श्रोत्रिय और वेदोंके व्याख्याताको प्रवक्ता कहते थे। गुरुके मुखसे सुनकर विद्यार्थी दुहराकर पाठ याद किया करते थे। परीक्षाके समय अशुद्धियोंकी संख्यासे विद्यार्थियोंका श्रेणी-विभाजन होता था। एक अशुद्धि करनेवालेको 'ऐकान्यिक', दो अशुद्धियाँ करनेवालेको 'द्वैयन्यिक' और तीन अशुद्धियाँ करनेवालेको 'त्रैयन्यिक' कहते थे। पठन-पाठनमें शुद्ध स्थान और समुचित कालका विचार किया जाता था। अतः कुछ स्थान और काल वर्ज्य माने जाते थे। विद्या और जन्म दोनोंसे वंशका सम्बन्ध माना जाता था। इसीसे यह समझा जा सकता है कि आचार्यका पद पिताके पदके समान था। एक समान मूलपुरुषसे जन्म-सम्बन्धवाले सगोत्रीय कहलाते थे। जैसे गर्ग मूलपुरुषका पुत्र 'गार्गि' तथा पौत्र और आगेकी सन्तान 'गार्ग्य' कहलाती थी। गर्गके जीवन-कालमें ही प्रपौत्र पैदा हुआ, तो उसे गार्ग्यायण कहते थे। सन्तानके लिए सामान्य शब्द 'अपत्य' था; किन्तु पौत्र और आगेकी सन्तान 'गोत्रापत्य' कहलाती थी। छः पीढ़ियों तकके वंशज 'सपिण्ड' कहे जाते थे। अष्टाध्यायीमें अनेक गोत्र और गोत्रकारोंके नाम आए हैं। प्राचीन गोत्र नाम अज्ञात हो जानेपर फिर नए गोत्र चलाए जाते थे। कुछ गोत्र माताके नामसे भी प्रचलित होते थे; किन्तु यह कुत्सित माना जाता था।

शूद्रोंके दो भेद पाए जाते थे—एक निरवसित और दूसरा अनिरवसित (अर्थात् जिनके स्पर्शसे भोजन-पात्र पुनः शुद्धकर काममें लाए जा सकते थे या नहीं)। 'समाज' शब्द मनुष्योंके समूहके लिए प्रयुक्त होता था। पशुओंके समूहको 'समाज' कहते थे। ऊँच-नीच-भेद-रहित एकधर्मीय लोगोंके समूहको 'निकाय' कहते थे। अष्टाध्यायीमें प्रायः सभी सम्बन्धवाचक (माता, पिता, ससुर, मामा आदि, सिवाय सालेके) शब्द आए हैं। भाई-बहनके लिए 'भ्रातरौ' और लड़का-लड़कीके लिए 'पुत्रौ'का प्रयोग पुरुष-सन्तानके विशेष महत्वका सूचक है। विवाहके लिए प्रयुक्त 'स्वकरण' शब्द पत्नीके ऊपर पतिके पूर्ण अधिकारको सूचित करता है। प्रथम विवाहके वर-वधूको 'कौमार' और 'कौमारी' कहते थे, अतः प्रतीत होता है कि उस कालमें स्त्री-पुरुषोंका पुनर्विवाह भी होता था। 'सपत्नी' शब्द पुरुषके एक कालमें बहुविवाहकी प्रथाका द्योतक है। सन्तानहीन स्त्रीके लिए 'अशिश्वी' और 'पतिघ्नी' शब्द निन्दा-सूचक माने जाते थे। हस्तरेखा या अन्य लक्षणोंसे वर-वधूके भविष्यका अनुमान किया जाना भी प्रचलित था। मानव-स्वभावके दोषोंका भी उल्लेख मिलता है। जैसे—परोक्षमें निन्दा करना (कर्णेजपन), शपथ खाना (शपन), फुसलाना (उपमन्त्रण), पोल खोलना (गन्धन), चापलूसी करना (चाटुकरण) आदि। अपना ही उदर-पोषण करनेवाले कुटुम्बीको 'आत्मम्भरि' और अकर्मण्य तथा पेटू मनुष्यको 'पात्रेसमित' कहते थे। आयुध-विशेषका उपयोगकर मार-पीटका खेल, शराब पीकर मस्त होना, (इरम्मद), नाली पीटना (पाणिन्धम), मुखसे विचित्र ध्वनि निकालना, भाँति-भाँतिकी द्यूतक्रीड़ा आदि अनेक मनोरंजक बातोंका ज़िक्र पाणिनिने किया है। शृंगारकी सामग्री, केशोंका सजाना (कैश्य), कंघी करना, इत्र (सुगन्धि-द्रव्य), हार (ग्रैवेयक), अँगूठी (अंगुलीयक) आदिका भी निर्देश मिलता है। सवारियोंमें रथका विशेष सम्मान था। उसके सजानेमें हस्तिचर्म, व्याघ्रचर्म, पाण्डुकम्बल आदिका उपयोग किया जाता था। उशीनर (कन्धार) देशका ग़लीचा और काबुल-प्रदेशकी अंगूरी शराब (काफिशायनी) की विशेष ख्याति थी। इस प्रकार तत्कालीन भारतके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिए पर्याप्त मसाला अष्टाध्यायीमें पाया जाता है।

धन्तोली, नागपुर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साध

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

दूसरा अंक * पहला दृश्य

[समय—प्रातः नौ बजेके लगभग। स्थान—एक कमरा, जो है तो ड्राइंग-रूम ; किन्तु जिसमें स्थान-स्थानपर पुस्तकें बिखर रही हैं। एक बढ़िया सोफ़ा-सेटके साथ-साथ एक कोनेमें लिखने-पढ़नेवाली मेज़ भी रखी है। एक आरामकुर्सीपर अधलेटा-सा अजीत पड़ा है। बाल कुछ बिखर-से रहे हैं। धोती और कुरता पहने है। घुटनोंपर एक कम्बल भी पड़ा है। एक पुस्तक पढ़ रहा है। मुखमें पकड़ा हुआ पाइप न जाने कबका बुझ चुका है। कुमुद कमरेके चारों ओर घूमती हुई पुस्तकें इकट्ठी कर रही है। वह एक बढ़िया रेशमी साड़ी पहने है। अधकटे बाल अच्छी तरह सँभाले हुए हैं। चेहरा भी लिपा-पुता है। मालूम देता है, नहा-धो चुकी है।]

कुमुद (सोफ़ेकी भुजासे एक किताब उठाती हुई)—कल मैंने सारा कमरा ठीक-ठाक किया था। आज फिर वही हालत! तुम किताब पढ़कर उसे ठीक स्थानपर क्यों नहीं रख देते ?

(अजीत कुछ जवाब नहीं देता। एक बार उड़ती हुई दृष्टिसे कुमुदकी ओर देखता है। फिर पुस्तकमें लीन हो जाता है।)

कुमुद (खीझकर)—क्या सुन नहीं रहे ?

अजीत (पुस्तकसे दृष्टि हटाकर)—क्या मुझे बुला रही थीं?

कुमुद—तुम्हें नहीं, तो और किसे ? क्या कोई और भी यहाँ है ?

अजीत—क्या आज्ञा है ? (दृष्टि फिर पुस्तककी ओर चली जाती है।)

कुमुद (आगे बढ़कर पुस्तक छीन लेती है)—आज क्या यों ही पड़े रहोगे ? जानते हो, कितने बजे हैं ? दस बजे हमें दरियापर पहुँच भी जाना चाहिए।

अजीत—क्या वहाँ जाना बहुत ज़रूरी है ?

[इतनेमें बाहरसे मोटरका हार्न बजता है।]

कुमुद—यह लो, मृदुला और जीवन आ भी पहुँचे हैं। अब तो उठो।

अजीत (एक अँगड़ाई लेता हुआ उठ खड़ा होता है)—मुझे पाँच मिनटमें आया समझो। यह किताब खूब है। हक्सले इसमें बहुत ऊँचा उठ गया है।

कुमुद—यह सब-कुछ फिर सोचेंगे। तुम अब भागो। (धकेलकर उसे कमरेसे बाहर कर देती है।)

[इतनेमें मृदुला प्रवेश करती है। वह ताम्र वर्णकी एक भड़कीली साड़ी पहने है। बालों और चेहरेपर आज दूसरे दिनोंकी अपेक्षा अधिक समय खर्च किया गया मालूम होता है।]

मृदुला—तैयार हो ?

कुमुद—मैं तो तैयार हूँ। वे अभी आते हैं।

मृदुला—तुम लोग बड़े सुस्त हो। (परिहाससे) लेकिन तुम भी क्या स्त्री हो। छः महीने विवाहको हो गए; किन्तु अभी तक प्रोफ़ेसरको अपने साँचेमें भी न ढाल सकीं। इस तरह तो न चलेगा। कुछ प्रयत्न करो।

कुमुद (मुस्कराते हुए)—बहुत अच्छा! यह तो बताओ, आज क्या इरादा है ?

मृदुला—फैसला यह हुआ है कि नाव लेकर नदीके चढ़ावकी ओर चलें और तब तक बढ़ते चले जायँ, जब तक सबके हाथ-पाँव न फूल जायँ। रास्तेमें फूलोंके संसार मिलेंगे, लहरोंके महल मिलेंगे, मोतियों और मूँगोंके ढेर मिलेंगे, जल-देव मिलेंगे, जल-परियाँ मिलेंगी ; लेकिन हम किसीकी ओर आँख उठाकर देखेंगे भी नहीं और बढ़ते ही चले जायँगे।

कुमुद (मुग्ध होकर)—फिर ?

मृदुला—जब थककर चूर हो जायँगे, तो नावका खेना बन्द कर देंगे। चाँद और तारोंके झिलमिलाते प्रकाशमें उसे अपना रास्ता स्वयं बनानेके लिए छोड़ देंगे। (खिल-खिलाकर हँसती है।)

कुमुद—तब तो खूब आनन्द रहेगा। लेकिन—

मृदुला—लेकिन क्या ?

कुमुद (ज़रा गम्भीरतासे)—ऐसे स्वप्न देखनेसे क्या लाभ ?

मृदुला—कुमुद यहाँ स्वप्नोंके सिवा और धरा ही क्या है ? यदि कोई अपने जीवनको एक मधुर स्वप्नमें परिणत कर सके, तो उसका जीना सार्थक हो जाय। लेकिन तुम्हारे स्वरमें उदासी क्यों घुस रही है ? (मुस्कराकर) क्या प्रेमियोंका प्रथम झगड़ा हो लिया ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुद—झगड़ा ? वे झगड़ा करना सीखे ही कहाँ ? हाँ, मैंने कई बार उनके साथ ज़रूरतसे ज़्यादा छेड़-छाड़ की ; किन्तु उनकी शान्ति न भंग कर सकी। कभी उनकी बालकों-सी सरलताने मेरे अस्त्रोंको बेकार कर दिया और कभी उनके नेत्रोंकी सागर-जैसी गहराईसे परास्त हो गई।

[इतनेमें जीवन प्रवेश करता है। वह एक खाकी निकर, लम्बे ऊनी भूरे रंगके मोज़े और गहरे नीले रंगका गर्म कोट पहने है। सिर नंगा है। बाल अस्त-व्यस्त-से हैं।]

जीवन—वाह ! मैं बाहर प्रतीक्षामें सूख रहा हूँ और यहाँ गप-शप चल रही है !

मृदुला—गप-शप कहाँ ? हम प्रोफ़ेसर साहबकी प्रतीक्षामें खड़ी हैं।

जीवन (आश्चर्यसे)—वे अभी तैयार नहीं ?

कुमुद—अब आते ही होंगे।

[जीवन कुर्सीपर पड़ी हुई पुस्तक उठा लेता है। उसके पृष्ठ उलटकर देखने लग जाता है, फिर उसे फेंक देता है।]

जीवन—मुझे अब ऐसे लेखक नहीं भाते। यह चतुरताकी सीमाका अतिक्रमण कर रहे हैं। आखिर मनुष्यका मस्तिष्क खेलका अखाड़ा नहीं। फिर उसे जिमनास्टिकके खेल खेलनेके लिए क्यों मजबूर किया जाय ?

कुमुद—इसलिए कि उसे काहिलीका ज़ंग न लग जाय। यदि हम मस्तिष्कको सीधी राह पकड़नेकी आदत डाल देंगे, तो वह इतना सीधा हो जायगा कि हमारी पग-पगपर जग-हँसाई करायगा।

जीवन—अर्थात् हम मूर्खोंकी पंक्तिमें जा बैठेंगे।

कुमुद—मैंने तो यह नहीं कहा।

जीवन (हँसते हुए)—किन्तु मतलब तो यही था। (कुछ देर सोचमें डूबे रहनेके बाद) भला यह तो बताओ कि सीधे मस्तिष्कवाले लोग क्या हमसे अधिक सुखी नहीं ?

कुमुद—क्या सुख ही जीवनका ध्येय है, भैया ?

जीवन—विषयमें जटिलता आ रही है। (मुस्कराकर) मैं अब ज़रा प्रोफ़ेसर साहबकी खोज-खबर लूँ। पता नहीं, वे इतनी देर क्यों लगा रहे हैं ? (कमरेसे बाहर चला जाता है।)

मृदुला—आजकी पिकनिकमें बड़ा आनन्द रहेगा।

कुमुद (अन्यमनस्क भावसे)—हाँ।

मृदुला (ध्यानसे उसकी ओर देखती हुई)—क्या सोच रही हो ?

कुमुद—कुछ नहीं। (ज़रा रुककर धीमे स्वरमें) मृदुला, मेरे मनको आजकल न-जाने क्या हो गया है। पिकनिकों और पार्टियोंमें सम्मिलित होती हूँ, साहित्य-गोष्ठियोंमें जाती हूँ, नई पुस्तकों और पत्रिकाओंका अवलोकन करती हूँ और उनसे मुझे आनन्द भी मिलता है ; पर उस उल्लासके लिए जिसकी इच्छा है, तरसती रह जाती हूँ। हृदयके किसी एकान्त कोनेमें एक अभाव खटकता रहता है।

मृदुला (ज़रा उत्सुकतासे)—किन्तु क्या ?

कुमुद—क्या जाने क्या। शायद कुछ भी नहीं। केवल एक वहम है। (मुस्कराती हुई) हाँ, वहम ही होगा। आजकी पिकनिक सचमुच खूब रहेगी। महेशके संगीत-विशारद साथ जा रहे हैं न ?

मृदुला—हाँ। (उठकर खड़ी हो जाती है) वे बेचारे दरियापर हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब हमें चलना चाहिए।

कुमुद—वे अब आते ही होंगे। (वह भी उठ खड़ी हो जाती है।)

[इतनेमें जीवन और अजीत प्रवेश करते हैं।]

मृदुला—अब चलें ?

अजीत—चलो। (आगे बढ़कर अपनी पुस्तक उठा लेता है।)

जीवन—आज तो इसे रहने दीजिए। वहाँ इसे देखनेकी भी फुर्सत नहीं मिलेगी।

अजीत—न मिलेगी, न सही। ले जानेमें तो कोई हर्ज नहीं। (पुस्तकको कोटकी जेबमें ठूँसने लगता है।)

कुमुद—अब चलते क्यों नहीं ?

अजीत—चलो, भई चलो।

[कुमुद मृदुलाकी कमरमें हाथ डाले हुए कमरेसे बाहर जाने लगती है। उनके पीछे-पीछे जीवन है और सबके अन्तमें अजीत है, जो अभी तक किताबको जेबमें ठूँसनेमें प्रयत्नशील है। इसी प्रयत्नमें वह कमरेसे बाहर निकल जाता है।] [परदा गिरता है।

दूसरा दृश्य

[समय—शामके छः बजेके लगभग। स्थान—अजीतकी कोठीका लान। कुमुद एक आरामकुर्सीपर बैठी है। सिर नंगा है। रेशमी साड़ी अस्त-व्यस्त हो रही है। एक पत्रिकाके पृष्ठ उलट रही है। कुछ पत्रिकाएँ सामने तिपाईपर बिखरी पड़ी हैं। आधे क्षणके बाद हाथवाली पत्रिकाको तिपाईपर फेंक देती है, कलाईपर बँधी घड़ीकी ओर देखती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर उठकर लानमें टहलने लगती है। कुछ ही सेकेंडोंके अनन्तर फिर ज़रा बेचैनीसे घड़ीकी ओर देखती है। इतनेमें बाहरसे मोटरके आनेका शब्द होता है और कुछ ही देर बाद अजीत एक चारवर्षीय बालककी उँगली पकड़े हुए प्रवेश करता है। कुमुद एक बार अजीतके चेहरेकी ओर देखती है, फिर उसके नेत्र बालकपर गड़ जाते हैं।]

अजीत (क्षमा-प्रार्थीके स्वरमें)—पद्माके बच्चेको साथ लाना पड़ा।

कुमुद (चकित स्वरमें)—क्या पद्माकी तबीयत बहुत खराब है ?

अजीत—हाँ। इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि उसे तपेदिक़ है।

कुमुद (घबराकर)—तपेदिक़ ?

अजीत—हाँ, लेकिन आशा की जाती है कि वह अच्छी अवश्य हो जायगी। हाल ही में तपेदिक़का एक नया इलाज निकला है, आपरेशन।

कुमुद (आश्चर्यसे)—आपरेशन ? वह कैसे ?

अजीत—चीर-फाड़ करके फेफड़ेके खराब भागको निकाल दिया जाता है। इससे रोगी भला-चंगा हो जाता है।

कुमुद—अच्छा ?

अजीत—पश्चिममें आपरेशन द्वारा सफलता भी बहुत मिली है। हाँ, एक बात है ?

कुमुद—क्या ?

अजीत—यह इलाज लम्बा भी है और मँहगा भी। (ज़रा झिझककर) इसलिए हमें उनकी आर्थिक सहायता करनी होगी। जगेश्वर अकेले यह भार नहीं सँभाल सकेगा।

कुमुद—आर्थिक सहायता जितनी चाहो, करो ; परन्तु—(रुक जाती है।)

अजीत—रुक क्यों गईं ? कहे जाओ।

कुमुद—इस बच्चेको कौन सँभालेगा ? इसका नाम क्या है ? मैं तो भूल ही गई।

अजीत—मोहन। क्या तुम न सँभाल सकोगी ?

कुमुद—मैं ? (कुछ देर सोचमें डूबी रहती है) बालक है तो सुन्दर। मोहन, ज़रा इधर तो आओ।

[बालक अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे कुमुदको तौलता है और ज्यों-का-त्यों खड़ा रहता है।]

अजीत (बालकको प्रोत्साहन देते हुए)—मोहन, लज्जा न करो। जाओ अपनी मामीजीके पास। इन्होंने तुम्हारे लिए बहुत खिलौने रखे हुए हैं।

[बालक झिझकता-सा कुमुदकी ओर बढ़ता है। कुमुद भी एक क़दम चलकर उसके निकट पहुँच जाती है। उसका हाथ पकड़ लेती है। हाथ छोड़कर उसके सिरपर हाथ फेरने लगती है। सिरके बाद चेहरेपर आती है। उसकी ओर ऐसे देखने लगती है, मानो वह कोई बहुत ही रहस्यमयी वस्तु हो। फिर एकाएक उसे छोड़कर सिर हिलाती हुई पीछे हट जाती है।]

कुमुद—न, मुझसे न हो सकेगा ?

अजीत—क्या ?

कुमुद—इसका पालन-पोषण। मुझे तो इसे हाथ लगाते हुए भी कुछ-कुछ होता है।

अजीत—कुछ-कुछ होता है ? तब ?

[कुमुद चुप रहती है। अजीत भी कुछ नहीं बोलता सोचमें पड़ा रहता है। सहसा उछल पड़ता है।]

अजीत—मुझे एक बात सूझ गई है।

कुमुद—सुनूँ तो।

अजीत—क्यों न मोहनके लिए एक आया ठीक कर ली जाय ?

कुमुद—आया ? हाँ, यही ठीक रहेगा।

अजीत—अच्छा, तुम मोहनको कुछ देरके लिए रखो मैं आयाकी तलाशमें जाता हूँ।

कुमुद—लेकिन कुछ खा-पी तो लो।

अजीत—मैं खा-पी चुका हूँ।

[अजीत बाहर चला जाता है। कुमुद और मोहन अकेले लानमें रह जाते हैं। कोई आधा क्षण दोनों चुप रहते हैं। एक-दूसरेकी ओर देखते रहते हैं। फिर साहस करके कुमुद शान्ति भंग करती है।]

कुमुद—मोहन, मिठाई लोगे ?

मोहन—मिठाई ? मामाजी तो मुझे कह रहे थे कि मामीजीके पास सचमुचकी एक बन्दूक़ है। मैं तो वही लूँगा।

कुमुद (मुस्कराकर)—बन्दूक ? वह लेकर क्या करोगे ?

मोहन—सिपाही बनूँगा। और ठायँ-ठायँ कबूतर और चिड़ियाँ मारूँगा।

कुमुद (गम्भीरतासे)—छिः-छिः यह तो ठीक नहीं मोहन ! उन बेचारे पक्षियोंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

मोहन—हमारे पापा भी बड़ी-बड़ी मुर्गाबियाँ मारकर बार लाए हैं।

कुमुद—अच्छा, यह बात है ! मोहन, कबूतरकी गर्दन रंग देखा है, कितना सुन्दर होता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन—देखा है।

कुमुद—और जिस समय गर्दन फुलाकर वह अकड़ता हुआ चलता है, कितना भला मालूम देता है! क्या कभी तुमने देखा है?

मोहन (उछलकर)—हाँ, देखा है। उस समय बहुत प्यारा लगता है।

कुमुद—चिड़ियाको भी तुमने एक डालीसे दूसरी डालीपर उछलते-कूदते और गाते अवश्य देखा होगा।

मोहन—हाँ। मेरा जी चाहा करता है कि मैं भी उसके साथ उछलूँ-कूदूँ!

कुमुद—बिलकुल ठीक। लेकिन यदि तुम उन्हें मार डालोगे, तो न कबूतर अकड़कर चल सकेगा और न चिड़िया ही उछले-कूदेगी। इसलिए उन्हें मारना नहीं चाहिए, नन्हें!

मोहन (कुछ देर सोचनेके बाद)—बहुत अच्छा। तो मुझे मिठाई ही ले दो।

कुमुद—मिठाई ही नहीं, बल्कि मैं तुम्हें एक बड़ी मोटर, हवाई-जहाज़ और नाचनेवाला बन्दर भी ले दूँगी।

मोहन (प्रसन्नतासे नाचता हुआ)—सचमुच मामाजी ठीक ही कह रहे थे कि मामीजी बहुत अच्छी हैं।

(नौकरका प्रवेश)

कुमुद—क्या बात है?

नौकर—बेबीका सामान किस कमरेमें रखूँ, बीबीजी?

कुमुद—पहले तुम इसे बाज़ार ले जाओ। एक अच्छी-सी बड़ी मोटर, एक हवाई-जहाज़ और एक सुन्दर-सा नाचनेवाला बन्दर इसे ले दो। यदि कहे, तो एक बन्दूक भी ले देना।

[कुमुद अपना पर्स खोलकर नौकरके हाथमें कुछ नोट पकड़ा देती है।]

मोहन—नहीं, मुझे अब बन्दूक नहीं चाहिए।

[नौकरकी उँगली पकड़े हुए मोहन लानसे बाहर हो जाता है। कुमुद उसकी ओर ज़रा उत्सुकतासे देखती हुई खड़ी रह जाती है।]

कुमुद—कितना होशियार और प्यारा बच्चा है! मेरी बात कितनी जल्दी मान गया। मैंने उसे समझाया भी खूब ढंगसे। (प्रसन्नतासे खिलकर) बच्चोंके साथ मैं इतनी सफल हो सकती हूँ, इसका मुझे पता भी न था।

[इतनेमें मृदुला प्रवेश करती है। वह एक बढ़िया कई रंगी साड़ी पहने है। चेहरेपर प्रसन्नता नाच रही है।]

मृदुला—कहो कुमुद, आज क्या बन रहा है?

कुमुद—आओ मृदुला! (आधा क्षण उसकी ओर देखते हुए) अहा, आज तो खूब बनी-ठनी हो! क्या बात है?

मृदुला (मुस्कराकर)—अच्छा, अब सादे कपड़े पहनना भी सजावटमें गिना जायगा! खैर, जाने दो। अब झटपट चलनेकी तैयारी करो।

कुमुद—चलनेकी? कहाँ?

मृदुला—एक नई तस्वीर आई है 'गुड अर्थ'। आज सब लोगोंका विचार उसे देखनेका है। प्रोफ़ेसर साहब कहाँ हैं?

कुमुद—एक कामसे अभी बाहर गए हैं, । लेकिन मैं तो आज न जा सकूँगी।

मृदुला (आश्चर्यसे)—तुम न जा सकोगी! क्यों? (परिहाससे) गृहस्थीके झंझटोंमें फँस रही हो न, इसलिए? झंझट भी हुए अगणित। इधर मुन्ना-मुन्नी रो रहे हैं, उन्हें सँभालना है। उधर पतिदेव डाँट रहे हैं, उनके लिए खाना बनाना है। तुम इस दलदलसे कैसे निकल सकती हो भला!

कुमुद—मुन्नी तो नहीं, किन्तु मुन्नेके रोनेका भय अवश्य है।

मृदुला (चकित स्वरमें)—मुन्नेके रोनेका भय! यह बेचारा कौन आ फँसा?

कुमुद—मेरी ननदका लड़का है। वह बीमारीकी वजहसे अस्पतालमें चली गई हैं, इसलिए बच्चा हमारे यहाँ आ गया है।

मृदुला (उत्सुकतासे)—कितना बड़ा होगा?

कुमुद—यही कोई तीन-चार बरसका। बड़ा प्यारा बालक है। बात-चीत खूब चित्ताकर्षक करता है।

मृदुला (व्यंग्यसे)—अभीसे शिकार हो गई हो? कहाँ गए तुम्हारे वे—

कुमुद (बीचमें रोककर)—शिकार होनेकी इसमें कोई बात नहीं। जो ठीक है, वही बता रही हूँ। अभी आता ही होगा! तुम स्वयं देख लेना।

मृदुला—वह कब तक यहाँ रहेगा?

कुमुद—तीन-चार महीने तो ठहरेगा ही।

मृदुला—तीन-चार महीने? तो क्या उसकी देख-भाल तुम्हें ही करनी होगी?

कुमुद—नहीं, यह झमेला मुझसे नहीं हो सकता। हम एक आया ठीक कर रहे हैं। वे उसीकी तलाशमें गए हैं।

[इतनेमें नौकरके साथ उछलता-कूदता मोहन प्रवेश करता है। एक हाथमें एक छोटी-सी मोटर और मखमलका बना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूरे रंगका छोटा-सा बन्दर छातीसे चिपकाए हुए है। दूसरे हाथमें एक लिफ़ाफ़ा पकड़े है। नौकरके हाथमें मिठाईकी एक टोकरी है।]

कुमुद—बड़ी जल्दी लौट आए हो ?

नौकर—बाईसिकलपर गए थे।

मोहन—मामीजी, मेरा बन्दर बहुत उछलता-कूदता है। अभी आपको दिखाता हूँ। (मृदुलाको देखकर झिझक जाता है।)

कुमुद—दिखाओ।

[मोहन लजाता हुआ ज्यों-का-त्यों खड़ा रहता है। कुमुद आगे बढ़कर उसे गोदमें उठा लेती है। प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरने लगती है।]

कुमुद—इनसे मत शरमाओ, मोहन! ये तुम्हारी मौसी हैं। इन्हें नमस्ते करो।

मोहन (कोई आधा क्षण तक मुस्कराती हुई मृदुलाका निरीक्षण करनेके अनन्तर)—मौसी! फिर दूसरी ओर मुँह मोड़कर हाथ जोड़ देता है।)

मृदुला (नमस्ते करती हुई प्यारसे)—इधर देखो तो सही। क्या अपनी मौसीके साथ बोलोगे नहीं ?

मोहन—बोल तो रहा हूँ।

मृदुला—तो इस बन्दरको नचाकर दिखाओ।

मोहन—बहुत अच्छा।

[मामीकी गोदसे नीचे उतर जाता है। मोटरको अपने पाँवमें रख देता है। फिर चाबी देकर बन्दरको ज़मीनपर छोड़ देता है। बन्दर उछलने-कूदने लगता है। उसके साथ-ही-साथ मोहन भी शोर करता हुआ नाचने लगता है।

मोहन (चाबी समाप्त हो जानेपर) —देखा मेरा बन्दर कैसा अच्छा है! अब मोटर भागेगी।

[मोटरको चाबी देकर ज़मीनपर रख देता है; किन्तु घासके कारण वह वहींकी वहीं घर्र-घर्र करके रह जाती है। मोहन निराश होकर अपनी मामीकी ओर देखता है।]

कुमुद (स्नेह-भरे स्वरमें)—बेटा, यह यहाँ नहीं चलेगी, अन्दर फ़र्शपर खूब भागेगी।

मोहन—तो चलो फिर अन्दर।

कुमुद—चलो! आओ मृदुला।

[मोहनका हाथ पकड़कर मृदुलाको साथ लिए हुए कुमुद कोठीकी ओर बढ़ने लगती है।]

[परदा गिरता है।

तीसरा दृश्य

[समय—दोपहर तीन बजेके लगभग। स्थान—इसी अंकके पहले दृश्यवाला कमरा। अजीत सदाकी भाँति एक आरामकुर्सीपर अधलेटा-सा पड़ा है। एक पुस्तक पढ़नेमें तन्मय है। होठोंके बाईं ओर पकड़े हुए सिगारसे धुएँके बादल छोड़ रहा है। कुछ ही दूर क़ालीनपर कुमुद और मोहन बैठे हैं। कुमुदके बाल अस्त-व्यस्त-से हैं। चेहरा भी पफ़-पाउडरसे अछूता है। होंठ भी अपना स्वाभाविक रंग दिखा रहे हैं। तस्वीरोंका एक बड़ा एल्बम सामने रखे हुए है। उसका एक-एक चित्र मोहनको दिखाने और उसका आशय समझानेमें तल्लीन है। इतनेमें एक स्थूलकाय आया प्रवेश करती है। एक सफ़ेद सूती साड़ी मदरासी ढंगसे पहने है। सिर नगा है, तेलसे लथपथ बाल पीछेको कंघी किए हुए हैं। काले-काले मोटे होंठोंपर एक सन्दिग्ध-सी मुस्कानकी छाप खेल रही है।]

कुमुद—क्यों आया ?

आया—बेबीके दूधका वक्त हो गया है।

मोहन—मैं अभी नहीं जाऊँगा। मैं सबकी सब तस्वीरें देखकर यहाँसे हिलूँगा।

कुमुद—तुम भागकर दूध पी आओ, मैं तब तक यहीं बैठी तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।

मोहन—सच ?

कुमुद—बिलकुल।

मोहन—तो मैं अभी आता हूँ। आप यहाँसे कहीं जाइए मत।

[मोहन उठकर आयाकी बाँह पकड़ लेता है और उसे ज़ोरसे खींचता हुआ कमरेसे बाहर निकल जाता है।]

अजीत (सिगारकी राख पासकी तिपाईपर पड़ी ऐश-ट्रेमें फेंकते हुए)—कुमुद, जिस स्नेह-सूत्रमें तुम बँध रही हो, वह कच्चे धागेसे भी अधिक कच्चा है। वह पक्षी जो तुम्हारे एक-एक हाव-भावपर चहक रहा है, एक दिन तुम्हारे देखते ही देखते पंख फड़फड़ाकर उड़ जायगा।

कुमुद (एक दीर्घ निश्वास दबाकर)—जानती हूँ। लेकिन मैं कहाँ किसीपर रीझी हूँ? जब तक वह यहाँ है, उसका लालन-पालन तो करना ही होगा। (ध्यानसे अपने पतिकी ओर देखती हुई) क्या यहाँसे चले जानेपर मोहन मुझे बिलकुल याद नहीं करेगा ?

अजीत—कुछ दिन तक ज़रूर, कुछ महीने तक शायद—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुद—और उसके बाद क्या वह मुझे पूर्णतया भूल जायगा ?

अजीत—यदि वह न भी भूले, तो प्रयत्न करके उसके मस्तिष्कसे तुम्हारी याद भुला दी जायगी।

कुमुद (आश्चर्यसे)—वह क्यों ?

अजीत—इसलिए कि वह तुम्हारा नहीं, किसी औरका है। तुम्हारे और हमारेका भेद-भाव क्या अनर्थ ढा सकता है, यह शायद तुम नहीं समझतीं।

कुमुद (किंकर्तव्यविमूढ़ होकर)—किन्तु—(इससे आगे कुछ नहीं कह पाती।)

अजीत—इसलिए भावुकताके मोह-जालमें न फँसो। तुम्हारी जीवन-धारा जिस दिशामें बह रही है, उससे छेड़-छाड़ न करो।

कुमुद (एक दीर्घ निश्वास छोड़कर)—मेरी जीवन-धारा! क्या वह एक निश्चित दिशामें बह भी रही है ? मुझे तो ऐसा मालूम देता है कि वह बेचैन हो इधर-उधर भटक रही है।

अजीत (दृष्टि द्वारा कुमुदको चीरते हुए)—इस बेचैनीका कारण ? क्या किसी बातकी लालसा तो तुम्हें नहीं सता रही है ?

कुमुद (आवश्यकतासे अधिक ज़ोर देकर)—नहीं, बिलकुल नहीं।

[उठकर खड़ी हो जाती है। फिर कमरेमें टहलने लगती है। टहलते-टहलते अजीतकी ओर देखकर रुक जाती है। अजीतके मुखमें पकड़ा हुआ सिगार तब तक बुझ चुका होता है।]

कुमुद—तुम्हारा सिगार मुखमें पकड़ा हुआ भी क्यों बुझ जाता है ?

अजीत—बुझ गया है ? (सिगारको मुँहसे निकालकर हाथमें पकड़ लेता है, फिर मसलकर उसे ऐश-ट्रे में फेंक देता है और मुस्कराता है) बुझना तो होगा ही। मेरे हृदयमें अब उष्णता कहाँ, जो इसे प्रज्ज्वलित रख सके।

कुमुद—संसारके प्रति इतनी उदासीनता क्यों ?

अजीत (ज़रा चौंककर)—उदासीनता ? जानती हो, मनुष्य उदासीन कब होता है ?

कुमुद—कब ?

अजीत—जब वह चारों ओरसे निराश हो जाता है और उसकी महत्वाकांक्षाएँ पिस-पिसकर निःशेष हो जाती हैं।

कुमुद (ध्यानसे अपने पतिकी ओर देखती हुई रहस्यमय स्वरमें)—तो क्या तुम्हारे हृदयमें अभी तक भी आशाकी कोई लकीर बाक़ी है ?

अजीत—आशाकी लकीर ? क्या मतलब ? कौन-सी आशाकी ओर तुम्हारा संकेत है ?

कुमुद—कौन-सी आशा ? (एकाएक खिलखिलाकर हँसती है) मेरा किसी ओर भी संकेत नहीं। (फिर कमरेमें टहलने लग जाती है।)

अजीत (ज़रा बेचैनीसे)—संकेत किसी ओर तो ज़रूर है। सच-सच बताओ, क्या बात है ?

कुमुद (वैसे ही टहलते हुए)—कोई बात नहीं। अपने हृदयमें यों ही सन्देहका बीजारोपण न करो।

अजीत—सन्देहकी कोई बात नहीं ; किन्तु तुम्हें बताना ज़रूर होगा।

कुमुद—क्या बताना होगा, यह भी पता तो लगे।

अजीत—वही, जो अभी तुम्हारे मनमें उदय हुआ था।

कुमुद (टहलती-टहलती रुक जाती है, फिर होंठोंको बल देकर मुस्कराती है और शरारत-भरे स्वरमें कहने लगती है)—मेरे मनमें तो भविष्यका एक रुपहला चित्र नाचा था।

अजीत—क्या ?

कुमुद—गगनचुम्बी हिमाच्छादित हिमालयकी एक गुफ़ामें तुम हो और मैं हूँ। हमारे बाल हिम-से श्वेत हैं ; किन्तु हमारे चेहरोंपर एक भी सिकुड़न नहीं। शरीर सनोवरकी तरह सीधे हैं। क्या यह सम्भव है ?

अजीत (मुस्कराकर)—हवाके महल बना बातको उनमें छिपाकर उड़ा देना तुम खूब जानती हो।

कुमुद—हवाके महल ? क्या कभी हवाके महल यथार्थतामें परिणत हो सकते हैं ?

[इतनेमें आया मोहनको लेकर प्रवेश करती है। मोहन अपनी जिह्वासे ओठोंको सँवारता चला आ रहा है।]

कुमुद—देखो मोहन, इस तरह ज़बानको ओठोंपर फेरना अच्छा नहीं।

मोहन—क्यों ?

कुमुद—यह भला मालूम नहीं देता। (मोहन उसकी ओर ज़रा आश्चर्यसे देखता है। कुमुद आयाकी ओर देखकर) क्या यह ठीक तरहसे दूध पी आया है ? कोई शरारत तो नहीं की ?

आया—की क्यों नहीं, बीबीजी ! इसको दूध पिलाना एक आफ़त है, आफ़त ! कभी कहता है, दूधमें मलाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे निकालती हूँ, तो इसे चीनी कम मालूम देने लग जाती है। चीनी और डालती हूँ, तो ज़्यादा चीनीकी शिकायत करता है। अब भी दो-तीन घूँट छोड़कर आया है।

मोहन (क्रोधसे)—दो-तीन घूँट ? झूठ। सिर्फ़ आधा घूँट बचा होगा। यह आया बहुत खराब है, मामीजी !

आया—मैं तो—

कुमुद (आयाको बीचमें ही रोककर)—जाने दो, आया! आओ मोहन, हम तस्वीरें देखें।

[फ़र्शपर बिछे क़ालीनपर बैठ जाती है। मोहन भी उसके निकट बैठ जाता है। अजीत अपनी आरामकुर्सीपर पड़ा-पड़ा अँगड़ाई लेता है। एक सिगरेट निकालकर उसे सुलगाता है ? फिर अपनी पुस्तकमें लीन हो जाता है। इतनेमें मृदुला प्रवेश करती है। अजीत कुर्सीसे उठ खड़ा होता है और उसे नमस्ते करता है, फिर बैठ जाता है।]

कुमुद—आओ मृदुला !

मृदुला—तुम भी खूब छिपी बैठी हो। सारी कोठी छानती हुई यहाँ पहुँची हूँ।

कुमुद—मैं ज़रा मोहनको चित्र दिखा रही थी।

मृदुला—हाँ, देख रही हूँ। (थोड़ा रुककर) मोहनने तुम्हें खूब मोहित किया है। अब आदत तो पड़ ही गई है, अपने ही बन्धन क्यों नहीं तोड़ डालतीं ?

कुमुद (तेज़ीसे)—क्या मतलब ?

कुदुला—मतलब तो स्पष्ट है।

कुमुद (और भी तेज़ीसे)—जो बात तुम लोग समझते हो, वह बात यहाँ नहीं। मोहनकी देख-भाल मैं केवल इसलिए करती हूँ कि वह हमारा अतिथि है।

मृदुला (मुस्कराकर)—अच्छा ! मैं तो समझती थी कि उसने तुम्हारे हृदयमें एक हलचल छेड़ दी है। उसे ही शान्त करनेके लिए तुम उसे खिलौनेकी भाँति खिलाती रहती हो।

कुमुद (जोशसे)—यह तुम्हारी भूल है।

[अजीत खिलखिलाकर हँसता है।]

कुमुद (क्रोधसे लाल होकर)—तुम क्यों हँसे हो ?

अजीत (मुखपर गम्भीरता लानेके प्रयत्नमें)—यों ही।

कुमुद—यों ही कैसे ?

अजीत (ज़रा सोचकर)—इस किताबका एक वाक्य पढ़कर हँसी नहीं रोक सका !

कुमुद (पहलेके-से स्वरमें)—हँसी नहीं रोक सके ! मैं सब समझती हूँ। (उठ खड़ी होती है) आओ मोहन। चलो मृदुला ! हम बाहर लानमें बैठेंगे।

[मोहनकी बाँह पकड़े और मृदुलाको साथ लिए उड़ती हुई कमरेसे बाहर हो जाती है। अजीत, जिसके ओठोंपर हँसीकी एक रेखा अभी तक खेल रही है, उसीकी ओर देखता रह जाता है।]

अजीत—अब इसे कौन समझावे और क्या। जिह्वापर कुछ है तथा अन्तरमें कुछ और।

[उठकर टहलने लग जाता है, फिर अधपिए अपने सिगरेटको मुँहसे निकालकर ऐश-ट्रे में फेंक देता है और एक नया सिगरेट सुलगाता है।]

अजीत (गहरे विचारोंमें डूबे हुए)—नहीं, इसका कुछ इलाज करना ही होगा। कुमुदके असमंजसको तोड़ना ही होगा।

[कुछ देर वहाँ खड़ा अपने सिगरेट द्वारा उत्पन्न किए धुएँके छोटे-छोटे चक्करोंको देखता है। फिर तेज़ीसे दरवाज़ेकी ओर बढ़ता है।] [परदा गिरता है।

वासन्तीसे—

श्री सोहनलाल द्विवेदी

नवपल्लव नवसुमन खिल उठे,
नवमधु नवसौरभ छाया।
प्रणय-कुहुक कोकिल की लेकर
नववसन्त जग में आया।
कण-कणमें तृण-तृणमें क्षण-क्षण
प्राणोन्मादक है लहरी।

कौन खड़ा उत्सुक सुननेको,
दो शब्दों का बन प्रहरी।
सघन तमाल हो उठें नीले,
वन-वन में नवफूल खिलें।
स्नेहांचल की ऊषा में,
आओ, दो बिछुड़े हृदय मिलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण भट्टका आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

द्वितीय उच्छ्वास

मैं तेज़ीसे बढ़ा जा रहा था। भावी जीवनकी रंगीन कल्पनाओंमें डूबते-इतराते मनुष्यको आसपास देखनेकी फुरसत कहाँ होती है। मैं एक प्रकारसे आँख मूँदकर चल रहा था। इसी समय एक क्षीण-कोमल कंठने पुकारा—'भट्ट, ओ भट्ट, इधर देखो, मुझे पहचानते हो?' इस आवाज़ने मुझे चौंका दिया। इस सुदूर स्थाण्वीश्वरमें मुझे पहचाननेवाला यह कौन है? भागते हुए घोड़ेको वल्गा जिस प्रकार रोक देती है, उसी प्रकार मेरी दौड़ती हुई विचार-धाराको इस आवाज़ने रोक दिया। मैंने पीछे मुँड़कर देखा। एक नातिकमनीय मूर्त्ति रमणी मुझे आवाज़ दे रही थी। उसके मुखमंडलपर तारुण्य था; परन्तु उसकी दीप्ति धुँधली हो गई थी, जैसे धुआँ उगलती हुई दीप-शिखा हो। उसकी आँखें संध्याके धुँधले प्रकाशमें भी चमक रही थीं। उनके किनारोंपर साफ़ ही दिख जानेवाली काली रेखाएँ उस चमकको अभिभूत नहीं कर पाती थीं। वह एक पानकी दूकानपर बैठी थी। ऐसा लगता था कि वह पान कम बेच रही थी, मुस्कान ज़्यादा। मुझे अपने पहचाननेकी शक्तिका गर्व था। मैं हँसीवाली रुलाई और रुलाई-वाली हँसी पहचाननेमें अपनेको सिद्धहस्त समझता था; पर यह हँसी एक विचित्र प्रकारकी थी। उसमें आकर्षण था, पर आसक्ति नहीं थी; ममता थी, पर मोह नहीं था। मैं उसकी दूकानकी ओर अनायास ही खिंच गया और उसे पहचाननेकी कोशिश करने लगा। वह बोल उठी—'भट्ट, तुम भी नहीं पहचानते! अरे, यह तो निपुणिका है। मैं एक क्षण तक उन्मथित-सा, भ्रान्त-सा, निःसंज्ञ-सा खड़ा रहा। फिर एकाएक चिल्ला पड़ा—'अरे, निउनिया!' निउनिया निपुणिकाका प्राकृत नाम है। मैं उसके प्राकृत रूपसे ही ज़्यादा हिला हुआ था। निपुणिकाने अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे मुझे डाँटा—'हल्ला क्यों करते हो, धीरे-धीरे बोलो।' और फिर उसने एक आसन सरकाते हुए कहा—'बैठो, पान तो खालो।' मैं बैठ गया।

निपुणिकाका संक्षिप्त परिचय यहाँ दे देना चाहिए। निपुणिका आजकलकी उन जातियोंमें से एककी सन्तान है, जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थीं; परन्तु जिनके पूर्वपुरुषोंको सौभाग्यवश गुप्त-सम्राटोंकी नौकरी मिल गई थी। नौकरी मिलनेसे उनकी सामाजिक मर्यादा कुछ ऊपर उठ गई। वे आजकल अपनेको पवित्र वैश्य-वंशमें गिनने लगी हैं और ब्राह्मण-क्षत्रियोंमें प्रचलित प्रथाओंका अनुकरण करने लगी हैं। उनमें विधवा-विवाहकी चलन हाल ही में बन्द हुई है। निपुणिकाका विवाह किसी कान्दविक वैश्यके साथ हुआ, जो भड़भूजेसे उठकर सेठ बना था। विवाहके बाद एक वर्ष भी नहीं बीतने पाया था कि निपुणिका विधवा हो गई। मुझे यह नहीं मालूम कि विधवा होनेके बाद निपुणिकाको क्या दुःख या सुख झेलने पड़े थे; परन्तु वह घरसे भाग निकली थी। मुझसे अपने पूर्वजीवनके विषयमें उसने इससे अधिक कुछ भी नहीं बताया; परन्तु उसके बादकी कहानी मेरी बहुत-कुछ जानी हुई है। निपुणिका जब पहले-पहल मेरे पास आई थी, उस समय मैं उज्जयिनीमें था। वहाँ मैं एक नाटक-मंडलीका सूत्रधार था। निपुणिकाने मंडलीमें भरती होनेकी इच्छा प्रकट की और मैं राज़ी हो गया था। निपुणिका बहुत अधिक सुन्दरी नहीं थी। उसका रंग अवश्य शेफालिकाके कुसुम-नालके रंगसे मिलता था; परन्तु उसकी सबसे बड़ी चारुता-सम्पत्ति उसकी आँखें और अंगुलियाँ ही थीं। अंगुलियोंको मैं बहुत महत्त्वपूर्ण सौन्दर्योपादान समझता हूँ। नटीकी प्रणामांजलि और पताक-मुद्राओंको सफल बनानेमें पतली-छरहरी अंगुलियाँ अद्भुत प्रभाव डालती हैं। सो मैंने निपुणिकाको मंडलीमें आ जानेकी अनुमति दे दी। मेरी मंडलीकी स्त्रियाँ पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक सुखी थीं। बहुत छुटपनसे ही मैं स्त्रीका सम्मान करना जानता हूँ। साधारणतः जिन स्त्रियोंको चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है, उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं। मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री-शरीरको देव-मन्दिरके समान पवित्र मानता हूँ। उसपर की गई अननुकूल टीकाओंको मैं सहन नहीं कर सकता। इसी-लिए मैंने मंडलीमें ऐसे कठोर नियम बना रखे थे कि स्त्रियोंकी इच्छाके विरुद्ध उनसे कोई बोल तक नहीं सकता था। जनतामें यह प्रसिद्ध था कि बाण भट्टकी नर्त्तकियाँ अवरोधमें रहती हैं। पर इसका फल बहुत अच्छा हुआ था। जनता मेरी मंडलीको प्यार करने लगी थी। निपुणिकाको मैं धीरे-धीरे रंगभूमिपर उतारने लगा; पर उसकी अनुज्ञा लिए बिना नहीं।

एक दिन उज्जयिनीमें मेरा ही लिखा हुआ एक प्रकरण अभिनीत होनेवाला था। उस दिन परमभट्टारकके उपस्थित होनेकी भी सम्भावना थी। मैंने शक्ति-भर आयोजन किया था। मैंने उस दिन अपने प्रधान अभिनेताओंको अपनी उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला दिखानेके लिए खूब उत्तेजित किया था। मन-ही-मन मेरी इच्छा थी कि पूर्ण आडम्बरके साथ अभिनय हो। हुआ भी ऐसा ही। महाकालनाथकी सांध्य-आरात्रिकाके बाद प्रेक्षा-गृहमें लोग जमा होने लगे। नगरीके सभी सम्भ्रान्त नागरिक यथास्थान बैठ गए। नगाड़ा बज उठा और मैंने आडम्बरके साथ पूर्वरंगकी विधिका अनुष्ठान किया। गायक और वादक यथास्थान बैठ गए और नर्त्तकियोंके नूपुर-झंकारके साथ ही वीणा, वेणु, मुरज और मृदंग मुखरित हो उठे। मैं जब शृंगारधर और जर्जरधरके साथ जर्जर-स्थापनाके लिए रंगभूमिमें आया, तो सामाजिकोंमें अपार औत्सुक्य देखकर गद्‌गद् हो गया। मेरा अभिनय बहुत सफल रहा। जर्जर उत्तोलन करनेके बाद मैं अत्यन्त सन्तुष्ट होकर नेपथ्य-शालामें लौट गया। निपुणिका पहलेसे ही पुष्पोपहार लेकर वहाँ मौजूद थी। मेरे इशारेपर एक बार फिर नगाड़ेपर चोट पड़ी और निपुणिका पुष्पोपहारकी प्रणामांजलि लेकर रंगभूमिमें अवतीर्ण हुई। यमनिका (पर्दे) के पीछेसे मैं उसके अपूर्व नृत्तको देख रहा था। वीणा, वेणु और मुरजके साथ कांस्यताल झनझना रहे थे और निपुणिकाके नूपुर-क्वणनको और भी गम्भीर तथा और भी मनोहारी बना रहे थे। एकाएक बाजोंका बजना रुक गया और उनकी मधुर ध्वनिके अनुरणनकी पृष्ठभूमिमें निपुणिकाका कोमल कंठ सुनाई पड़ा। मैं आज निपुणिकाका कौशल देखकर विस्मय-मुग्ध हो गया था। गान समाप्त होते ही बाजोंके साथ नूपुरके क्वणनकी ध्वनि सुनाई पड़ी। बहुत ही सुकुमार भंगीसे निपुणिकाने अपना उपहार देवताओंको समर्पित किया और अभिराम-संचारके साथ धीरे-धीरे नेपथ्य-भूमिकी ओर लौट आई।

क्षण-भरमें मेरे मानस-समुद्रमें विक्षोभका तूफ़ान उठा और शान्त हो गया। मैं सदा अपनेको सम्हाल सकनेमें समर्थ रहा हूँ। इस बातका मुझे अभिमान है। मैंने एक बार आग्रह-भरी आवाज़में पुकारा—'निउनिया!' निपुणिका ठिठककर खड़ी हो गई—उसका बायाँ हाथ कटिदेशपर न्यस्त था, कंकण कलाईपर सरक आया था, दाहिना हाथ शिथिल श्यामा लताके समान झूल पड़ा था, उसकी कमनीय देह-लता नृत्यभंगीसे ज़रा झुक गई थी, मुखमंडल श्रमविन्दुओंसे परिपूर्ण था। मुझे 'मालविकाग्नि मित्र'की मालविका याद आ गई। मैंने हँसते हुए कालिदासका वह श्लोक पढ़ दिया।* निपुणिका संस्कृत नहीं जानती थी, उसने क्या जाने क्या समझा। उसके अधरोंपर ज़रा-सी स्मित-रेखा प्रकट हो आई और कुछ देरके लिए उसकी आँखें झुक गईं। उसी समय उसके शिथिल कबरीबन्धसे एक मल्लिका-पुष्प गिर गया और इस अपराधका दण्ड उसे तुरत मिल गया। निपुणिका अपने पादांगुष्ठोंसे उसे इधर-उधर रगड़ने लगी। कालिदासकी मालविकाका जो रूप निपुणिकामें अभी तक नहीं आ पाया था, वह भी आ गया और मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। मेरा हँसना देखकर निपुणिकाने सिर उठाया। अबकी बार उसकी आँखें गीली थीं। वह धीरे-धीरे वहाँसे हट गई। मुझे लगा कि मेरा हँसना वह बर्दाश्त नहीं कर सकी। मैं और कामोंमें उलझ गया। नाटक शुरू हुआ और ५ घटी तक समारोहके साथ होता रहा। मैं उस दिन बहुत प्रसन्न था। परमभट्टारकके आनन्द-गद्‌गद् मुखसे स्पष्ट ही प्रकट हो रहा था कि मैं कल प्रचुर पुरस्कार पाऊँगा। उन्होंने दूसरे दिन राज-सभामें दर्शन देनेका प्रतिवचन दिया। सामाजिकोंके भूयोभूयः साधुवादके बीच अभिनय समाप्त हुआ। उस दिनका कार्य समाप्त करके मैं आवासकी ओर लौटा। निपुणिकाको एक अच्छा पुरस्कार देनेकी बात सोच रहा था कि किसीने आकर समाचार दिया कि निपुणिका नहीं है! मैं जैसे अनभ्र गर्जन सुनकर चौंक उठा। रात-भर निपुणिकाकी खोज करता रहा; पर उसे न पा सका। दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन—निपुणिका फिर नहीं मिली। मैं राज-सभामें नहीं जा सका। रह-रहकर निपुणिकाकी गीली आँखें मेरा हृदय कुरेदने लगीं। मैं अपनी उस अशुभ हँसीसे अकाल-कुसुमकी भाँति भय पाने लगा। नाटक-मण्डलीको मैंने पाँचवें दिन तोड़ दिया और अपने लिखे हुए प्रकरणको शिप्राकी चटुल-तरंगोंको भेंट कर दिया। तबसे आज छः वर्ष बीत गए हैं, मैंने वह पेशा ही छोड़ दिया है। आज जब फिर एक पुरस्कारकी आशासे राज-सभाकी ओर चला हूँ, तो सामने वही निपुणिका। उस दिन जिसके अदर्शनने विघ्न उपस्थित किया था, उसका दर्शन भी क्या आज विघ्न उपस्थित करेगा? अदृष्टको कौन रोक सकता है!

मैं बड़ी देर तक कुछ बोल न सका। केवल निर्निमेष नयनोंसे निपुणिकाकी ओर देखता रहा। वह पान लगा रही थी; पर यह अनाड़ी आदमी भी समझ सकता था कि उसके

* निम्नलिखित श्लोकसे तात्पर्य जान पड़ता है :—

वामं संधिस्तिमित वलयं न्यस्य हस्ते नितम्बे
कृत्वा श्यामा-विटपि-सदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयं।
पादांगुष्ठालुलित-कुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्यादस्याः स्थितमतिभरां कान्तमृद्वायताक्षम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तमें कोई भयंकर उथल-पुथल चल रही थी। बहुत दिनोंके बाद पानपर फिरती हुई निपुणिकाकी शिथिल अंगुलियोंको देखकर मुझे एक अभूतपूर्व आह्लाद हो रहा था। निपुणिकाके अधरोंपर मुस्कान थी और आँखोंमें पानी। वह भी चुप थी। पानका एक बीड़ा एक घटीमें लग सका। तब उसने मेरी ओर ताका। आँसू रुक नहीं सके। वे झरते रहे--झरते रहे—झरते रहे। मैं निर्वाक्-निश्चल देखता रहा। अश्रु फिर भी झरते रहे। अन्तमें मैं ही चिल्ला उठा—'निउनिया, रो मत।' मेरी वाणी ज़रूर कातर रही होगी। निउनिया अब सिसकने लगी। मैं धड़फड़ाकर उठा कि उसके आँसू पोंछ दूँ। फिर तो वह सावधान हो गई। ज़रा भर्त्सना-सी करती हुई बोली—'छीः-छीः, क्या कर रहे हो? बाज़ारमें बैठे हैं, नहीं देखते!' मैंने दृढ़ताके साथ कहा—'मैं बिल्कुल नहीं परवा करता कि हम कहाँ बैठे हैं। मैं तुझे इस तरह रोने नहीं दूँगा। अभागी, तू भाग क्यों आई?' निपुणिकाने एक बार फिर कनखियोंसे डाँटा। बोली—'पान खाओ।' अब उसका गला स्वाभाविक हो गया था। मैंने पान ले लिया।

जहाँ जा रहा था, वहाँ जाना नहीं हुआ। मैं इस अभागिनीके दुःख-सुखको अच्छी तरह समझे बिना अब उठ नहीं सकता था। बहुत दिनोंके बाद अपनी असावधान हँसीके कारण उत्पन्न हुई परिस्थितिको सुधारने-सम्हालनेका अवसर मिला था। न जाने मेरी प्रमत्त किलकारने इस दुःखिनीके किस सुकुमार घावको ताज़ा कर दिया था, निरन्तर ६ वर्षोंसे न जाने वह कहाँ-कहाँ मारी-मारी फिरी है और इन दिनों न जाने किस अभाग्यके नालेमें छटपटा रही है, बाण भट्ट यह सब जाने बिना नहीं टल सकता। इसी सहानुभूतिमय हृदयने तो इसे अवारा बना दिया है। जो प्रमत्त हँसी ६ वर्षोंसे मेरा हृदय कुरेद रही है, उसका प्रायश्चित्त आज आँसुओंसे करना होगा। मुझे इस विषयमें कोई सन्देह नहीं कि निपुणिकाका चरित्र यहाँके सदाचारियोंकी दृष्टिमें अत्यन्त निकृष्ट है। इस दूकानपर बैठे हुए निश्चय ही मैंने अपनेको काजलकी कोठरीमें बन्द कर दिया है। सब है; पर निपुणिका मुझसे बड़ी है, मूल्यवान् है। सारे जीवन मैंने स्त्री-शरीरको किसी अज्ञात देवताका मन्दिर समझा है। आज लोगोंकी आलोचनाके डरसे उस मन्दिरको कीचड़में धँसा हुआ छोड़ जाना मेरे वशकी बात नहीं है। मैंने फिर पूछा—'निउनिया, तू क्यों चली आई, अब तक कहाँ रही, अब क्या कर रही है? मैं तुझे दुःखी देख रहा हूँ। तुझे इसी अवस्थामें छोड़कर मैं यहाँसे टल नहीं सकता। बता, किस बातपर तू भाग आई थी? आज निरन्तर छः वर्षोंसे मेरा चित्त मुझे धिक्कार रहा है; मुझे ऐसा लगता है कि मैं ही तेरे समस्त दुःखोंका मूल हूँ। एक बार तू अपने मुखसे कह दे कि यह बात ग़लत है। मैं क्या निर्दोष हूँ?'

निपुणिकाने दीर्घ निश्वास लेते हुए कहा—'हाँ भट्ट, मेरे भाग आनेके कारण तुम्हीं हो; परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है। दोष मेरा ही है। तुम्हारे ऊपर मुझे मोह था। उस अभिनयकी रातको मुझे एक क्षणके लिए ऐसा लगा था कि मेरी जीत होनेवाली है; परन्तु दूसरे ही क्षण तुमने मेरी आशाको चूर कर दिया। निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी-देहको देव-मन्दिरके समान पवित्र मानते हो; पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मन्दिर हाड़-मांसका है, ईंट-चूनेका नहीं! जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशासे तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशाको धूलिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ पाषाण-पिण्ड हो; तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु, है एक अडिग जड़ता। मैं इसीलिए वहाँ ठहर नहीं सकी। जीवनमें मैंने उसके बाद बहुत दुःख झेले हैं; पर उस क्षण-भरके प्रत्याख्यानके समान कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ। छः वर्षों तक इस कुटिल दुनियामें असहाय मारी-मारी फिरी और अब मेरा मोह भक्तिके रूपमें बदल गया है। भट्ट, तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझे स्त्री-धर्म सिखाया है। छः वर्षके कठोर अनुभवोंके बलपर मैं कह सकती हूँ कि तुम्हारी जड़ता ही अच्छी थी—मैं अभागिन थी, जो तुम्हारा आश्रय छोड़कर चली आई। मेरे जीवनमें जो-कुछ घटा है, उसे जाननेकी क्या ज़रूरत है? आजकल मैं पान बेचती हूँ और छोटे राजकुलके अन्तःपुरमें पान पहुँचाया करती हूँ। सब मिलाकर मैं दुःखी नहीं हूँ। तुम मेरी चिन्ता छोड़ो। जहाँ जा रहे हो, वहाँ जाओ। यदि इस नगरमें रहो, तो कभी-कभी दर्शन पानेकी आशा मैं अवश्य रखूँगी। पर तुम इस दूकानपर अधिक देर तक मत ठहरो। यहाँ आनेवाले लोग स्त्री-शरीरको देव-मन्दिर नहीं मानते।' इतना कहनेके बाद उसने एक बार हँसकर मेरी ओर देखा। उस दृष्टिमें अपने ऊपर एक प्रकारकी वितृष्णाका भाव था; पर किसी प्रकारका पश्चात्ताप या अनुशोचनाका लेश भी नहीं था। ज़रा रुककर वह फिर कहने लगी—'भट्ट, मुझे किसी बातका पछतावा नहीं है। मैं जो हूँ, उसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकती थी। परन्तु तुम जो-कुछ हो, उससे कहीं श्रेष्ठ हो सकते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए कहती हूँ, तुम यहाँ मत रुको। मैं पश्चात्ताप करूँ, तो जिस नरकमें पड़ी हूँ, वहाँ भी स्थान नहीं मिलेगा। तुम सम्हल जाओ, तो जिस स्वर्गमें स्थान पाओगे, उसकी कोई कल्पना मेरे मनमें भी नहीं है, तुम्हारे मनमें भी नहीं है। मैंने दुनिया कम नहीं देखी है। इस दुनियामें तुम्हारे जैसे पुरुष-रत्न दुर्लभ हैं।' निपुणिकाकी आँखें नीची हो गईं, जैसे कुछ ऐसी बात कह गई हो, जिसे कहना नहीं चाहिए था और उसकी उँगलियाँ तेज़ीसे ताम्बूल-पत्रको खदिर-रागसे रँगनेमें जुट गईं।

निपुणिकाकी अन्तिम बात मेरे मर्ममें चुभ गई। वह अगर पश्चात्ताप करती है, तो जिस नरकमें पड़ी है, वहाँ भी स्थान नहीं मिलेगा? वह कुलभ्रष्टा स्त्री है, उसके सद्गुणोंका समाजमें क्या मूल्य है? दुर्गुणोंकी तो फिर भी कुछ-न-कुछ पूछ है ही। मैंने उसकी कोटरशायिनी आँखोंको एक बार फिर देखा। उनमें आँसू भरे हुए थे। मैं बोला—'निउनिया, तू झूठ बोलती है। तू पछता रही है, तू कष्टमें है, तू आश्रय चाहती है, तू मुझे यहाँसे हटने नहीं देना चाहती। मैं जो पहले था, वह आज भी हूँ, सारी दुनिया भी तुझे मेरे आश्रयसे अलग नहीं कर सकती। यह दूकान अभी बन्द कर दे। जहाँ लोग तेरी कोई बात नहीं जानते, ऐसे किसी स्थानपर शान्तिपूर्वक रह। मैं तुझे कीचड़में छोड़कर नहीं जा सकता। मेरे प्रति तेरा मोह कट गया है, यह अच्छी बात है। तू इस कालिमा-भरी नगरीके राजमार्गको छोड़ दे। तेरी आँखें कैसी धँस गई हैं। हा, अभागी, तू मुझसे भी छिपा रही है!' निपुणिका इस बार घायल हो गई। वह फूट-फूटकर रो पड़ी। दो-एक ग्राहक इसी समय दूकानपर आते दिखाई पड़े। उन्हें दूरसे देखकर ही निपुणिका सम्हल गई। एक क्षणका भी विलम्ब किए बिना उसने दूकानका दरवाज़ा बन्द कर दिया और मुझे भीतर चलनेका इशारा किया। दूकानके पीछे एक छोटा-सा आँगन था, उसके बीचोबीच एक तुलसीका वृक्ष था, पासमें एक छोटी वेदी थी और उसपर महावराहकी एक अत्यन्त भव्य मूर्त्ति रखी थी। मूर्त्ति छोटी ही थी; पर जिस मूर्त्तिकारने उसे बनाया था, वह बहुत पका हुआ शिल्पी जान पड़ता था। महावराहके दाँतोंपर उठी हुई धरित्रीके मुखमण्डलपर जो उल्लास और दीप्तिका भाव था, वह देखते ही बनता था। महावराहके दोनों हाथ कटिदेशपर इस प्रगल्भताके साथ टिके हुए थे, और बाहुमूलकी पेशियाँ इस दृढ़ता के साथ निकाली गई थीं कि देखकर मनमें एक अपूर्व विश्वास उद्रिक्त हो उठता था। मुझे समझनेमें एक मुहूर्त्तका भी विलम्ब नहीं हुआ कि ये निपुणिकाके उपास्य देव हैं और निपुणिका अपने उद्धारकी ऐसी ही आशा लगाए हुए है। निपुणिकाने एक बार मूर्त्तिको सतृष्ण नयनोंसे देखा, उसका गला तब भी रुँधा हुआ था, और इशारेसे मुझे एक छोटे घड़े बैठनेका निर्देश किया। मैं बैठ गया। वह फिर बाहर चली गई और बहुत शीघ्र ही स्नान करके फिर लौट आई। मेरी ओर देखकर वह बोली—'थोड़ा रुको, मैं अभी आ रही हूँ।' फिर वह कुशासनपर बैठ गई और महावराहके सामने रुँधे गलेसे एक स्तोत्र पाठ करने लगी। उसकी आँखोंसे निरन्तर आँसू झरते रहे, वक्षःस्थलपर का वासन्ती उत्तरीय इस अश्रुधारासे भींग गया। मैं यह दृश्य एक टक देखता रहा। निपुणिका धन्य है, महावराह धन्य हैं, तुलसी धन्य हैं, और मैं अभागा बाण इन तीनोंको देख रहा हूँ, सो धन्य ही हूँ। मुझे एक बार अपने गर्वकी तुच्छतापर पश्चात्ताप हुआ। किसे आश्रय देनेकी बात मैं कह रहा था? निपुणिकाको जो आश्रय मिला है, उसकी तुलनामें मेरा आश्रय कितना तुच्छ, कितना नगण्य और कितना अकिंचन है। मेरे पुरुषत्वका गर्व, कौलीन्यका गर्व और पांडित्यका गर्व क्षण-भरमें भरभराके गिर गए। निपुणिकाको पहचाननेमें मैंने कितनी भूल की थी! वह भक्ति-गद्गद स्वरमें स्तोत्र पाठ कर रही थी, और मैं निर्निमेष नयनोंसे उसे देख रहा था—उस समय अंगप्रभा अलौकिक दिख रही थी; कोटरगत आँखें मानो उद्वेल वारिधारासे परिपूर्ण होकर प्रफुल्ल पुण्डरीकके समान विकसित हो गई थीं; कुन्तल-जाल रह-रहकर इस प्रकार विलुलित हो उठते थे, मानो महावराहके चरण-प्रान्तमें गिर पड़नेको व्याकुल हो उठे हों। मैं क्षण-भरके लिए भूल गया कि निपुणिका हमारी नाटक-मण्डलीकी परिचित निउनिया है। ऐसा लगता था कि वह कोई देवांगना है और कब इस कलुष धरित्रीको छोड़ ऊपर उड़ जायगी, यह कहा नहीं जा सकता। मैंने इस रमणीके हृदयान्तःस्थित परम प्रेम-मूर्ति महावराहको मन-ही-मन प्रणाम किया। प्रथम दर्शनमें जिसे मैंने रुलाईकी हँसी समझकर अपनी सहृदयतापर गर्व किया था, वह एक भद्दी भूल थी। मैंने मन-ही-मन अपनी अकिंचनताको धिक्कारा। इसी समय निपुणिका उठी; और उसके साथ ही शान्तिकी एक भारी श्री भी उठ खड़ी हुई। उसके गममें एक प्रकारकी भाव-विह्वल मंथरता अब भी वर्त्तमान थी। भाव भावमत्ता भक्ति ही देह धारण किए चली आ रही हो। उसके चेहरेपर अब फिर मुसुकान थी। इस बार मैंने समझा कि मैंने प्रथम दर्शनमें इस रमणीको कितना ग़लत समझा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करुणासे दीप्त मुखमण्डलको अनुशोचना मानना मेरा प्रमाद था। निपुणिका आई और थोड़ी देर तक चुप बैठी रही। मेरे मुँहसे भी कोई बात निकल नहीं रही थी। कुछ देरकी चुप्पीके बाद उसने ही शुरू किया—'भट्ट, तुम सचमुच मेरी सहायता कर सकते हो?'

'तुम्हें सन्देह क्यों हो रहा है, निपुणिका? मैंने क्या कभी ऐसी बात कही है, जिसका पालन करनेमें आनाकानी की हो?'

'लेकिन अगर मेरी सहायता करनेमें कोई अनुचित कार्य करना पड़े?'

'देख निउनिया, मैंने अभी प्रत्यक्ष देखा है कि तू जिसके यहाँ आश्रय पाए हुई है, उसे छोड़कर तुझे किसी औरकी सहायता आवश्यक नहीं है, फिर भी तू परीक्षा लेनेके लिए यह बात कह रही है मेरा उत्तर स्पष्ट है। साधारणतः लोग जिस उचित-अनुचितके बँधे रास्तेसे सोचते हैं, उससे मैं नहीं सोचता। मैं अपनी बुद्धिसे अनुचित-उचितकी विवेचना करता हूँ। मैं मोह और लोभवश किए गए समस्त कार्योंको अनुचित मानता हूँ; परन्तु हमेशा मैं अपनेको इन दो रिपुओंसे बचा नहीं सका हूँ। आज ही मैंने एक महान् संकल्प किया है। मैं नहीं जानता कि इसमें मैं कहाँ तक सफल हूँगा। अनुचित कार्योंसे मैं अपनेको सदा बचा नहीं पाया हूँ; पर उचित कर्मोंको अवसर आनेपर करनेके लिए मैंने अपने प्राणों तककी परवा नहीं की है। तू मुझे वह कार्य बता, जिसमें मुझे तेरी सहायता करनी होगी। तू मुझे जानती है, मैं आशा करता हूँ कि मुझे अनुचित कार्यमें कभी प्रवृत्त नहीं होने देगी।'

निपुणिका हँसी। बोली—'अब तुम बचनेका रास्ता खोज रहे हो। मेरी जैसी स्त्रीसे तुम उचित कार्यमें सहायक बनानेकी आशा रखते हो? तुम बहुत भोले हो।'

इस बार मैं सचमुच विचलित हुआ; पर फिर भी ज़रा दृढ़ताके साथ बोला—'तो बता न, मुझे क्या करना होगा?'

निपुणिका इस बार और ज़ोरसे हँस पड़ी। बोली—'देव-मन्दिरका उद्धार करना है।'

मैं समझ गया, देव-मन्दिर अर्थात् नारी। यह तो कोई अनुचित कार्य नहीं है। ज़रा हँसके मैंने कहा—'तेरा उद्धार तो महावराहने कर दिया है, तेरी परवा मुझे नहीं है। अब और कौन रमणी विपत्तिमें फँसी हुई है, जिसका उद्धार मुझे करना होगा?'

निपुणिकाने कहा—'भट्ट, अब तक तुमने नारीमें जो देव-मन्दिरका आभास पाया है, वह तुम्हारे भोले मनकी कल्पना थी। आज मैं तुम्हें सचमुचका देव-मन्दिर दिखाऊँगी। परन्तु उसके लिए तुम्हें छोटे राजकुलमें मेरी सखी बनकर प्रवेश करना होगा और कीचड़में धँसे हुए उस मन्दिरका उद्धार करना होगा। आज ही उत्तम अवसर है। महावराह ही मेरे वास्तविक सहायक हैं। उन्होंने ही तुम्हें यहाँ भेजा है। तुम न आते, तो भी मुझे तो यह करना ही था। बोलो भट्ट, तुम यह काम कर सकोगे? तुम असुर-गृहमें आबद्ध लक्ष्मीका उद्धार करनेका साहस रखते हो? मदिराके पंकमें डूबी हुई कामधेनुको उबारना चाहते हो? बोलो, अभी मुझे जाना है। महावराहने आज ही अनुमति दी है। इस सीताका उद्धार करते समय तुम्हें जटायुकी भाँति शायद प्राण दे देना पड़ेगा। है साहस?"

मैं हँसा। यह काम मैं ज़रूर कर सकता हूँ। केवल एक बार मैंने अपने स्वर्गीय पिताको मन-ही-मन प्रणाम किया—'पितः, आज आत्मोद्धार-कर्मसे विरत रहना पड़ा। समय और सुयोग मिला, तो फिर कभी वह होता रहेगा। न जाने किस दुःखिनीके दुःख-मोचन-यज्ञमें अपने-आपको होम देनेकी पुकार आई है। आज इसीका ऋत्विज् बनने दो।' निपुणिकाकी ओर देखकर मैंने कहा—'निउनिया, मैं प्रस्तुत हूँ, नेपथ्य ला।'

(क्रमशः)

रहमानबेकी अद्भुत करामात

प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन

पहली जुलाई, १९३८ के दैनिक पत्रोंमें रहमानबे नामक एक मिस्रवासीका क़िस्सा छपा था। कहते हैं कि वह एक घंटे तक एक तालाबके तलपर एक धातु-निर्मित टैंकमें बन्द पड़ा रहा। उसने अपनी इस अनोखी शक्तिका कारण एक योगी बतलाया। यह सारा क़िस्सा ब्रिटेनकी जनताके सामने प्राच्यियोंकी अद्भुत विशेषताके रूपमें रखा गया है, जो निश्चय ही हमसे इतने भिन्न हैं। इस क़िस्सेमें दो बातें मज़ेकी हैं। रहमानबेका अर्थ 'दयालु सेनापति' होता है, जो हास्यजनक-सा जान पड़ता है। योग भारतवर्षकी उपज है। उसके जाननेवालेका मिस्रके बच्चोंपर प्रयोग करना एक अजीब-सी बात लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'डेली हेराल्ड'में इस टैंककी एक तस्वीर भी छपी थी। उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई क्रमशः ८, १॥ और २ फ़ीट मालूम होती थी। इस हिसाबसे उसका आयतन २० और २५ घनफ़ीटके बीच होता है। एक साधारण मनुष्यका आयतन २॥ घनफ़ीटके लगभग रहता है। अतः रहमानबेके लिए क़रीब २० घनफ़ीट वायु बाक़ी बच गई थी। चौबीस घंटेमें मामूली काम करनेवाला आदमी क़रीब २० घनफ़ीट ओषजन व्यय करता है; चुपचाप पड़े रहनेपर वह इसका आधा ही व्यय करेगा। अस्तु, 'दयालु सेनापति'ने एक घंटेमें लगभग आधा घनफ़ीट ओषजन खर्च किया। २० घनफ़ीट वायुमें ४ घनफ़ीटसे कुछ अधिक ओषजन रहता है। अतः एक घंटेके बाद रहमानबेके लिए काफ़ी ओषजन बच जाता और वह दो घंटे तक और उसी प्रकार लेटा रह सकता था। इसके बाद वह ज़ोरोंसे हाँफ़ने लगता और इतनी तेज़ीसे साँस लेने लगता कि बाक़ी ओषजन शीघ्र ही खत्म हो जाता। तीन घंटेके बाद जब वह बाहर निकलता, तो उसके ज़ोरका सिर-दर्द होता; क्योंकि मनुष्य जितना ओषजन व्यय करता है, उससे कुछ कम कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकालता है। एक घंटे तक ६ प्रतिशतसे अधिक इस गैसवाली वायुमें साँस लेनेसे थोड़ी देरके लिए बड़े ज़ोरका सिर-दर्द होने लगता है और मुझे तो कभी-कभी वान्त भी हो जाता है।

टैंकमें बन्द होनेके पहले रहमानबेने अपने बदनको ज़ोरसे झकझोरा और तड़ाक-से अचेत हो गया। मैं होता, तो चुपचाप ही लेट जाता। किन्तु रहमानबे यदि अचेत था, तो वह एक घंटेकी नीरसतासे सहज ही बच गया। यदि मुझे भी एक ऐसा ही टैंक मिल जाय और 'इन्टरनेशनल ब्रिगेड डिपेन्डेन्ट्स फण्ड'में से समुचित रक़म दी जाय, तो किसी तालाबके तलमें मैं भी एक घंटा व्यतीत करनेको सहर्ष उद्यत हूँ। बहुतसे पाठक कहेंगे, इस सबका क्या महत्व? पर महत्व इस सबका बहुत है। मनुष्यके साँस लेनेकी प्रक्रियाका बहुत-कुछ सम्बन्ध खानों और कारखानोंके 'वेन्टिलेशन' तथा विषाक्त गैसोंके बचावसे है। अन्तिम प्रश्नका सम्बन्ध तो आजकल सभीसे है। इस विषयकी शिक्षा न मिलनेके कारण हम गैससे बचाववाली सरकारी विज्ञप्तियोंको उसी प्रकार मान लेते हैं, जिस प्रकार पत्रकारोंने रहमानबेकी करामातको बिना शक-शुबहके मान लिया था।

मैंने अभी हाल ही में शीशेकी खिड़कीवाले, वायुके आयात-निर्यातसे रहित एक ऐसे टैंकको तैयार करवाया था, जिसमें विषाक्त गैसके आक्रमणके समय एक बच्चा कुछ घंटों तक रखा जा सकता था। मैं स्वयं एक घंटे तक उसके अन्दर रहा। मुझे कुछ गरमी मालूम हुई, जब कि तालाबके तलपर रहमानबेके लिए निश्चय ही काफ़ी ठंढक थी। लेकिन इसके पहले कि कोई माँ अपने बच्चेको आध घंटेके लिए भी उसमें रखनेकी अनुमति दे, मुझे तीन माताओंसे मिन्नत-खुशामद करनी पड़ी।

बच्चोंके लिए गैस-मास्क अभी नहीं तैयार हुए हैं। इस तरहके टैंकसे उनका कुछ घंटोंके लिए तो बचाव हो ही सकता है। किन्तु एक घंटेमें हम कितना ओषजन व्यय करते हैं, इस तरहकी साधारण बातें हमें न बतलाई जानेके कारण यदि युद्धमें कभी नागरिकोंपर विषाक्त गैसका आक्रमण हुआ, तो बहुतसे बच्चे निश्चय ही काल-कवलित हो जायँगे। आप मुझे निपट भौतिकवादी कह सकते हैं; किन्तु मेरी दृष्टिमें बच्चोंको यह बतलानेके बजाय कि हेनरी अष्टमने कितनी बार विवाह किया अथवा एजिन-कोर्टके युद्धमें किसकी विजय हुई, ये बातें बतलाना अधिक उपयोगी एवं आवश्यक हैं।

एशिया तथा अफ्रीका-निवासियोंकी अद्भुत शक्तिके अनेक क़िस्से प्रचलित हैं। पता लगानेपर वे या तो असत्य सिद्ध होते हैं अथवा शरीर-विज्ञानके किसी ऐसे साधारण नियमपर आधारित होते हैं, जिसका यूरोपमें आमतौरपर पता नहीं है। उदाहरण-स्वरूप मैंने सिगरेटका जलता हुआ सिरा एक 'हिन्दो-टाइज़्ड' अंगरेज़की अंगुलियोंसे छुआए रखा; पर न तो उसे कोई दर्द मालूम हुआ और न उसकी अँगुलीपर कोई फफोला ही पड़ा। मेरे स्थानपर यदि कोई भारतीय होता, तो दैनिक पत्रोंके लिए एक खासी मज़ेदार कहानी तैयार हो जाती।

ऐसे क़िस्से साम्राज्यवादियोंके बड़े कामके हैं, क्योंकि उनसे यह विचार फैलनेमें सहायता मिलती है कि मानव-जातियाँ एक-दूसरेसे अलग हैं। यदि इंगलैण्डके लोग इस ग़लत बातपर विश्वास कर सकते हैं कि रंगीन जातियोंमें कुछ ऐसी खूबियाँ हैं, जिनसे यूरोपवाले वंचित या अनभिज्ञ हैं, तो वे यह भी मान सकते हैं कि उनमें अपना कार्य-भार सँभालनेकी क्षमता नहीं है! किन्तु अब समय आ गया है, जब कि हम यह अनुभव करें कि वैज्ञानिक अन्वेषणने विभिन्न मानव-जातियोंमें आश्चर्यजनक समता प्रमाणित कर दी है, और यदि उनमें भ्रातृत्वका भाव नहीं उत्पन्न होता, तो उसका कारण शोषकोंकी स्वार्थपरता तथा पक्षपात है। —अनु० शिवप्रसाद दीक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसादके 'आँसू' पर एक दृष्टि

प्रो० विनयमोहन शर्मा

'हँस-हँस के तन पाइया, जिन पाया तिन रोय।'

—कबीर

'प्रसाद' हिन्दीके भावुक कवि और कुशल कलाकार हैं, इसे कोई यदि उनकी एक ही रचनामें देखना चाहता है, तो उसे 'आँसू' की ओर इंगित किया जा सकता है। आचार्योंने कविताके तीन पक्ष माने हैं। वे हैं—(१) भाव-पक्ष, (२) विभाव-पक्ष और (३) कला-पक्ष। भाव-पक्षमें कविका हृदय उद्वेलित होता है, विभाव-पक्ष हृदयके उद्वेलनका कारण है और कला-पक्ष भाव-पक्षका व्यक्त रूप है।

सबसे पहले हम 'आँसू' के विभाव-पक्षपर दृष्टिपात करेंगे—यह देखनेका प्रयत्न करेंगे कि कविके हृदयको कहाँसे ठेस पहुँच रही है, उसका 'आलम्बन' क्या है? प्रसादके एक आलोचक लिखते हैं—"जीवनके प्रेम-विलासमय मधुर पक्षकी ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होनेके कारण वे उस 'प्रियतम'के संयोग-वियोगवाली रहस्य-भावनामें—जिसे स्वाभाविक रहस्य-भावनासे अलग समझना चाहिए—प्रायः रमते पाए जाते हैं। प्रेम-चर्चाके शारीरिक व्यापारों और चेष्टाओं (अश्रु, स्वेद, चुम्बन, परिरम्भण, लज्जाकी दौड़ी हुई लाली इत्यादि), रँग-रेलियों और अठखेलियों, वेदनाकी कसक और टीस इत्यादिकी ओर इनकी दृष्टि विशेष जमती थी। इसी मधुमयी प्रवृत्तिके अनुरूप उनकी प्रकृतिके अनन्त क्षेत्रमें भी वल्लरियोंके दान, कलिकाओंकी मन्द मुस्कान, सुमनोंके मधुपात्रपर मँडराते मलिन्दोंके गुंजार, सौरभहर समीरकी लपक-झपक, पराग-मकरन्दकी लूट, ऊषाके कपोलोंपर लज्जाकी लाली, आकाश और पृथ्वीके अनुरागमय परिरम्भ, रजनीके आँसूसे भींगे अम्बर, चन्द्रमुखपर शरद-घनके सरकते अवगुण्ठन, मधुमासकी मधु-वर्षा और झूमती मादकता इत्यादिपर अधिक दृष्टि जाती थी।" दूसरे आलोचक भी इसी बातको इन शब्दोंमें कहते हैं—"प्रसादजीका काव्य मूलतः मानवीय है।" इनके विपरीत ऐसे भी आलोचक हैं, जो प्रसादकी रचनाओंमें रहस्यवाद ही पाते हैं; किन्तु शुद्ध रहस्यवादी रचनाओंमें 'अन्नमय कोष'के प्रति विरक्ति पाई जाती है; चैतन्य मनोमय और 'आनन्दमय' कोषोंमें 'एकता'का अनुभव करता है। अन्तिम कोटिकी रचनाएँ चाहे जो कहलायँ, काव्यके अन्तर्गत नहीं आतीं। उनसे बुद्धिका कौतूहल दूर हो सकता है, हृदयकी प्यास नहीं मिट सकती।

आँसूमें 'व्यक्त'के प्रति ही आकांक्षा प्रकट की गई है। इसमें अन्नमय कोषका—स्थूल सौन्दर्यका—आकर्षण प्रबल है, जो निम्न उद्गारोंसे स्पष्ट है :—

(१) इस हृदय कमलका घिरना
अलि-अलकोंकी उलझनमें।

(२) बाँधा था विधुको किसने इन काली जंजीरोंसे।

(३) थी किस अनंगके धनुकी
वह शिथिल शिंजिनी दुहरी।
अलबेली बाहु - लता या
तनु-छवि-सर की नव लहरी?

स्वर्गीय जयशंकर 'प्रसाद'

आदि शब्दोंमें 'स्थूल शरीर'का नख-शिख वर्णन ही है। अतः 'आँसू'का आधार ससीम व्यक्ति है, जिसके मिलन-सुखकी स्मृतिने कविके हृदयमें वेदना-लोककी सृष्टि की है। यह अवश्य है कि कविने यत्र-तत्र परोक्षका संकेतकर उसे अलौकिकताकी आभासे दीप्त करनेका प्रयास किया है, जिससे ऐसा भासने लगता है कि कविका उस 'विराट्'से साक्षात्कार हो चुका है। निम्न पंक्तियोंमें कुछ ऐसा ही संकेत है :—

(१) कुछ शेष चिन्ह हैं केवल
मेरे उस महा - मिलन के।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी।

परन्तु इन संकेतोंके विद्यमान रहते भी रचनाका आधार एकदम पारलौकिक नहीं माना जा सकता। प्रेमीके लिए उसके प्रियका क्षणिक मिलन--ऐसा मिलन, जिसे वह अन्तिम समझ चुका है--'महा-मिलन' ही है, और 'आँसू'की 'स्मृतियोंकी बस्ती'में तो हमें प्रियकी पार्थिव अंग-शोभा ही नहीं, 'प्रेमी' और 'प्रिय'के शरीर-व्यापारोंकी झाँकी भी मिलती है :--

परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके।
मुख-चन्द्र चाँदनी - जल से
मैं उठता था मुँह धो के।

इसके साथ ही जब हम यह पढ़ते हैं :--

निर्मम जगती को तेरा
मंगलमय मिले उजाला।
इस जलते हुए हृदय की
कल्याणी शीतल ज्वाला!

तब जान पड़ता है, आँसूका 'आलम्बन' जन-समूह भी है।

तो क्या हम यह मान लें कि 'आँसू'की वेदनाकी 'कोई निर्दिष्ट भूमि नहीं' और 'उसका कोई एक समन्वित प्रभाव निष्पन्न नहीं होता'? पुस्तकको ऊपरी दृष्टिसे—सरसरी तौरपर—देखा जाय, तो ये आक्षेप ठीक प्रतीत होंगे; किन्तु उसकी मनोभूमिमें प्रविष्ट होनेपर हमें उसमें जीवनकी एक मनोवैज्ञानिक कहानी अन्तर्हित दिखलाई देती है।

'आँसू'के नायकको 'दुर्दिन'में अपने गत वैभव—विलासपूर्ण जीवन—का स्मरण हो आता है; उसकी प्रेयसीकी मदमाती छवि उसकी आँखोंमें बस जाती है। उसे याद आता है, मानो 'हाफिज़'के शब्दोंमें 'माशूकोंके जमावमें सम्राट एक ही था। गिनतीमें वे हज़ारों थे, मगर उसके दिलको चुरानेवाला एक ही था।'[1] स्मृतिके जाग्रत होते ही वह उदास हो जाता है—अपने 'प्रिय'के प्रथम आगमन--प्रथम परिचय—की अवस्थाको रह-रहकर बिसूरने लगता है। कभी सोचता है, वह इस पृथ्वीकी न थी, वह स्वर्गिक आभा थी, जो उससे मिलनेको नीचे आई थी। उसका 'मधुराका'को लजानेवाला 'मुख' देखते ही वह उसकी ओर खिंच गया था। Love at first sight[2] इसीको कहते हैं। उसमें वह अपना अस्तित्व ही भूल गया। उसने उसपर पूर्ण अधिकार जमा लिया।[3] जब मनुष्यके मनमें किसीकी स्मृति तीव्रतम हो उठती है, तो वह स्मृतिके आधारकी आकृति, उसकी बातों, उसके व्यापारों—कार्य-कलाप-का बहुत विस्तारके साथ मनन करने लगता है। तभी हम 'आँसू'के नायकको अपने 'प्रिय'के शारीरिक सौन्दर्य-वर्णनमें—नहीं, नहीं, उसके साथ मिलन-क्रीड़ाओंका उल्लेख करनेमें—हर्ष-विकम्पित पाते हैं। 'चाँदनी'की चाँदी-भरी रातें सुखके सपनोंकी अधिक समय तक उसके 'कुंज'में वर्षा नहीं कर पाईं। वह 'प्रिय'से बिछुड़ जाता है और सम्भवतः वह उससे मुँह भी मोड़ लेती है।[4] तब उसका हृदय स्वभावतः जलता है, तड़पता है। उसमें आशा-निराशाकी आँखमिचौनी-सी होती रहती है। जब सशरीर अपने निकट उसे देखनेकी आशाका अन्त हो जाता है, तब वह प्रकृतिके व्यापारों द्वारा उसके सान्निध्य-सुखका अनुभव करने लगता है :--

शीतल समीर आता है, कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ, बरसा कर आँसू-धारा।

जैसे उद्गार इसी परिस्थितिके द्योतक हैं।

फिर वह अपनी स्थितिसे ही सन्तुष्ट होनेका प्रयत्न करता है :-

निष्ठुर यह क्या छिप जाना मेरा भी कोई होगा।
प्रत्याशा विरह-निशाके हम होंगे औ' दुख होगा।

'दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना'के अनुसार वह निराशाको त्याग देता है। दुखी मनुष्यका दुःख दूसरोंके दुःखको देखकर घट जाता है। 'आँसू'के नायकने जब देखा कि संसारमें वही दुखी नहीं है, विश्वके चारों ओर मानव-जाति पीड़ासे कराह रही है, तब वह अपनी व्यथाको भूलने लगता है, दूसरोंके दुःख-दर्दमें अपनी सहानुभूति प्रकट करने लगता है और प्रकृतिसे भी प्रार्थना करता है कि वह भी संसारके दुःखको कम करनेमें सहायक बने। वह अपनी वेदनासे भी कहता है—तुम अपनी ही उलझनोंको सुलझानेमें व्यग्र न रहो; अपने ही अभावोंमें न जलो। तुम्हारे चारों ओर जो हाहाकार मचा हुआ है, उसे भी अनुभव करो। संसारके सभी दुखी प्राणियोंके दुःखमें अपने आँसू बहाओ।

'आँसू'में मानव-जीवनका व्यक्तिका समष्टिकी ओर विकास भी दिखलाई देता है। पहले हम भौतिक सौन्दर्यकी ओर

---

१. थी एक लकीर हृदयमें, जो अलग रही लाखोंमें।
२. परिचित-से जाने कबके लगे उसी क्षण हमको। (आँसू)
३. समा गये थे मेरे मनके निस्सीम गगनमें।
४. छिप गईं कहाँ छूकर वे, मलयजकी मृदुल हिलोरें।
क्यों घूम गईं हैं आकर, करुणा-कटाक्षकी कोरें॥ (आँसू)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकदम खिंच जाते हैं, उसीको परमात्मा मान लेते हैं—स्वर्ग और परलोककी सारी कल्पनाओंका उसीमें आरोप कर देते हैं। उसकी आराधनामें ही हम सब-कुछ भूल जाते हैं। हमारी दुनिया 'दो' ही में समा जाती है। परन्तु जब भौतिक सुख छिन जाता है, तो हम पहले तो उसकी यादमें तड़पते हैं, रोते हैं, आशा-निराशामें उतराया करते हैं और फिर ज्यों-ज्यों उसके अप्राप्य बनते रहनेकी सम्भावना बढ़ती जाती है, हमारी मोह-निद्रा टूटती जाती है। तब हम वस्तु-स्थितिको पहचानते हैं और अपनी सहृदयताको अपनी ही ओर केन्द्रित न रखकर संसारमें बिखेर देते हैं। लोक-कल्याणमें हम अपने जीवनका अन्तिम ध्येय अनुभव करने लगते हैं। दूसरे शब्दोंमें 'आँसू'में पहले उठते यौवनकी मादकता—बेचैनी, फिर प्रौढ़ताका चिन्तन और अन्तमें ढलती आयुका निर्वेद दिखलाई देता है।

भाव-पक्ष—हमारे हृदयमें अनेक भावोंकी स्थिति है; परन्तु वे कुछ-एक—नौ— में परिगणित कर लिए गए हैं और वे ही हमारे मूल भाव माने जाते हैं। शेष समय-समयपर तरंगित हो उठते हैं। साहित्यमें वे ही भाव—वे ही भावनाएँ—मान्य हैं, जो अपने 'आश्रय'के सुख-दुःख तक ही सीमित नहीं हैं, प्रत्युत् जिनकी व्याप्ति विश्वमें समाई हुई है; जो केवल कविमें ही उदित नहीं होते, समान परिस्थितिमें अन्य व्यक्तियोंमें भी जाग उठते हैं। दूसरे शब्दोंमें, जिन भावोंमें 'साधरणीकरण'की अवस्था पैदा करनेकी सामर्थ्य नहीं, वे व्यक्ति-विशेषके भाव हो सकते हैं, साहित्यके नहीं।

प्रसादके 'आँसू' उनकी ही आशा-निराशाओंके 'स्फुलिंग' नहीं हैं। उनमें हमारी आशाएँ-निराशाएँ भी प्रतिबिम्बित जान पड़ती हैं। वे हममें पीड़ा भरकर भी हममें अनिर्वचनीय 'आनन्द'की सृष्टि करते हैं। परन्तु 'आँसू'के भावोंकी एक विशेषता है—वे सीधे निःसृत होकर सीधे ही प्रविष्ट नहीं होते। वे कलाका सुन्दर अवगुण्ठन डालकर आते हैं। जब तक हम कविके सश्रम निर्मित अवगुण्ठनको पहचान नहीं पाते, वे हमारे मनमें 'रस-बूँद' नहीं बरसा पाते; हमें आत्म-विभोर नहीं बना पाते। यही कारण है, 'आँसू'में बहुतोंको दुरूहता दिखाई देती है। सच बात तो यह है कि अप्रच्छन्न होकर प्रसादने बहुत कम कहा है। कई बार वे शब्दोंका चित्र खींचकर ओझल हो जाते हैं और हमें अपनी भावनाओंका रंग भरनेको स्वतन्त्र छोड़ देते हैं। कभी-कभी ऐसा भी प्रतीत होने लगता है कि कवि स्वयं अनुभव नहीं कर रहा है, उसकी बुद्धि अनुभवका अभिनय कर रही है।

'आँसू'का मुख्य भाव विरह-शृंगार है, जो करुणाके सिंचनसे निखर गया है और लोक-कल्याणकी शान्त कामनासे पूत हो उठा है। ग्लानि, मद, श्रम, उत्कण्ठा, आवेग, मोह, चिन्ता आदि भाव रह-रहकर 'संचरित' होते रहते हैं।

कला-पक्ष—इसमें भावोंकी अभिव्यक्तिका रूप सामने आता है। भावोंकी अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है तथा भाषा शब्दोंसे बनती है, जिनके अर्थकी दृष्टिसे तीन भेद हैं—(१) वाचक, (२) लक्षक और (३) व्यंजक। वाचक शब्दोंसे उनका कोशादिमें वर्णित अर्थ ही प्रकट होता है। लक्षक शब्दोंसे वाचक अर्थ नहीं, उससे सम्बन्धित रूढ़ि या प्रयोजनसे दूसरा अर्थ प्रकट होता है। जो अर्थ वाचक शब्दसे प्रकट होता है, उसे शब्दोंकी अभिधा-शक्तिका परिणाम कहा जा सकता है, और जो अर्थ लक्षक शब्दोंसे जाना जाता है, उसे शब्दोंकी लक्षणा-शक्तिका फल कहा जाता है। जो अर्थ शब्दोंकी अभिधा या लक्षणा-शक्तिसे प्रकट न होकर प्रसंग, सन्दर्भ आदिसे प्रकट होता है, उसे व्यंजना-शक्तिका परिणाम कहा जाता है। 'आँसू'में शब्दोंकी लक्षणा-शक्तिसे विशेष काम लिया गया है। उसमें हमारे परिचित सृष्टिके सादृश्य और साधर्म्य व्यापारोंके साम्य दिए गए हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि कविने सार्वभौमिक प्रतीकोंको अधिक अपनाया है—जैसे सुख-दुःखके लिए क्रमशः चन्द्रिका और अँधेरी; भावनाओंके लिए 'कलियों' आदिके प्रभाव-साम्य मिलते हैं। कविने स्थूलके सूक्ष्म उपमान भी यत्र-तत्र रखे हैं। व्यापारोंका वर्णनकर वे भावोंका चित्र भी अच्छा खींचते हैं।

'आँसू'में इस तरह हमें भावावेग कल्पनाके साथ उड़ता हुआ दिखाई देता है। कविने अपने भावोंको अलंकृत करनेमें बड़े कौशलका परिचय दिया है। उपमा, रूपक और विरोधाभास जगह-जगह जड़े हुए-से दिखाई देते हैं। तभी हमने प्रारम्भमें कहा है—स्वर्गीय प्रसाद हिन्दीके भावुक कवि और कुशल कलाकार हैं, इसे यदि कोई उनकी एक ही रचनामें देखना चाहता है, तो उसे 'आँसू'की ओर इंगित किया जा सकता है।

कांग्रेस-नगर, नागपुर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक संकट और मुद्रा-प्रसार

श्री रामस्वरूप व्यास

पिछले दो वर्षोंसे हमारा देश एक भारी आर्थिक संकटमें से गुज़र रहा है। साधारण अर्थोंमें भले ही कुछ लोग इस आर्थिक संकटको न मानें; परन्तु वास्तवमें तो यह एक खतरनाक आर्थिक संकट है। जिस रूपमें यह संकट आज हमारे सामने उपस्थित है, वह यह है कि दिन-प्रति-दिन दैनिक जीवनकी आवश्यकताकी चीज़ोंका मूल्य बढ़ रहा है, और इस मूल्य-वृद्धिके कारण लोगों—खासकर ग़रीब तथा मध्यवर्गकी जनता—का जीना तक दूभर हो गया है। और इसमें भी पिछले तीन-चार मासमें जितनी मूल्य-वृद्धि हुई है, उतनी तो पहले कभी भी न हुई थी। इस मूल्य-वृद्धिके अनेक कारण बतलाए जाते हैं, जैसे यातायातके साधनोंका अभाव, फ़स्ल कम होना, व्यापारियोंकी मुनाफ़ाखोरी और चीज़ें जोड़नेकी वृत्ति, लोगोंका अपनी आवश्यकतासे अधिक खाद्य-पदार्थ भर रखना, सरकारी काम व सेनाके लिए स्टाक करना, दूसरे देशोंको अन्न भेजना, अनाजमें सट्टा और अधिक मुनाफ़ा प्राप्त करनेके लिए उसे दबा रखना आदि। एक बात, जो सबसे मुख्य होते हुए भी हम सबसे कम सुनते हैं, वह है मुद्रा-प्रसार (Inflation), और जहाँ ऊपर लिखी हुई बातें थोड़े-बहुत प्रमाणमें वर्त्तमान स्थितिके लिए उत्तरदायी हैं, वहाँ इन सब बातोंका मिलकर जितना प्रभाव नहीं पड़ता, उतना केवल सरकारकी एक मुद्रा-प्रसार नीतिका पड़ता है। खासकर मूल्य-वृद्धिके लिए तो भारी अंशोंमें मुद्रा-प्रसार ही उत्तरदायी है।

वर्त्तमान युद्धके शुरू होनेसे अब तक भारत-सरकारका युद्धका तथा सरकारी खर्च अपेक्षाकृत बहुत बढ़ गया है। १९३८-३९ में भारत-सरकारकी आय १२१ करोड़ थी, जो १९४२-४३ में १९१ आँकी गई है। इसी हिसाबसे १९३८-३९ में खर्च १२२ करोड़ था और १९४२-४३ में यह २२७ आँका गया है। इस प्रकार ३६ करोड़का घाटा आता है। परन्तु वास्तवमें खर्च इससे अधिक ही होगा। कुछ मास पहले डेढ़ करोड़ प्रतिदिन युद्धके खर्चका हिसाब लगाया गया था। इस हिसाबसे एक वर्षका युद्ध-खर्च लगभग ५४८ करोड़के बैठता है, जो भारत-सरकारकी १९३८-३९ की आयसे लगभग ४॥ गुना है। यह ठीक है कि इसमें का सारा खर्च भारत-सरकारका नहीं होगा और इसका काफ़ी भाग ब्रिटेन व अमरीकाके लिए खर्च किया गया होगा। अभी तक सरकारने यह निर्णय नहीं किया है कि इसमें से कितना भारत-सरकार देगी और कितना ब्रिटेन। अब तक अकेले ब्रिटेनके लिए ४२५ करोड़के लगभग खर्च किया गया है। मिला-जुला खर्च तथा वह खर्च, जिसका अभी तक निश्चय नहीं हुआ है, वह इसके अलावा ही होगा। फिर अमरीकन फ़ौजोंके लिए जो खर्च हो रहा है, वह तो इससे अलग है ही। इस खर्चमें कुछ तो कच्चा माल या बना हुआ वह सामान, जो इस देशसे बाहर भेजा जाता है, सम्मिलित है; परन्तु खासकर तो यह उसी युद्ध-सामग्रीका है, जो ब्रिटेनके लिए यहाँ तैयार की जा रही है। यह खर्च भारत-सरकार ब्रिटेनके बदले चुका रही है, और ब्रिटेन इसके बदलेमें अपने यहाँ हमारे खातेमें 'स्टर्लिंग सिक्युरिटियाँ' जमा करता है। इस खर्चके बदलेमें कुछ तो भारतके नाम ब्रिटेनने जो 'स्टर्लिंग कर्ज़' लिए थे, वे भरपाई कर दिए गए। अब ये कर्ज़ें ४६९ (१९३९) से घटकर १८० करोड़ स्टर्लिंगके रह गए हैं।

परन्तु इसके साथ ही भारत-सरकारका जो खर्च हो रहा है, उसे चलानेके लिए लन्दनमें जमा रखी हुई 'स्टर्लिंग सिक्युरिटियों'के बलपर भारत-सरकार नोट छाप-छापकर खर्च चला रही है। युद्धके पूर्व प्रचलित नोटोंकी संख्या लगभग १८० करोड़ थी, जो दिसम्बर १९४२ के अन्तमें बढ़कर ५०० करोड़ तक पहुँच गई! परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि देशकी समृद्धि या धन इतना बढ़ गया है। वास्तवमें बात इसके विपरीत ही है और आज देशमें अपेक्षाकृत कम अन्न, वस्त्र तथा उपयोगकी चीज़ें प्राप्त हैं। 'स्टर्लिंग सिक्युरिटियाँ' भारतके नोटोंके प्रचलनका आधार हैं, इससे उसका कोई मूल्य हो जाता है, यह बात भी नहीं है। इस सम्बन्धमें बम्बई विश्वविद्यालयके अर्थशास्त्रके अध्यापक श्री सी० एन० वकील लिखते हैं—"स्टर्लिंग-रिज़र्वके कारण हमारे नोटोंका कोई मूल्य हो जाता है, सो बात नहीं है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार बैंक आफ़् इंग्लैण्डका सोना वहाँकी कागज़ी मुद्राको कोई मूल्य नहीं देता, क्योंकि १९३१ से कागज़ी मुद्रा स्वर्णमें नहीं बदली जा सकती। यह तो अपनी एक प्रकारकी राष्ट्रीय 'जमा' (asset) है, जो भविष्यमें हमारे काम आ सकती है। परन्तु उस समय इसका वास्तविक मूल्य वर्त्तमान समयकी चीज़ोंके रूपमें चुकाए हुए मूल्यसे कहीं कम हो सकता है।"

नोटोंके चलनका परिमाण इतना अधिक बढ़ जानेके कारण देशकी आर्थिक व्यवस्थाको भारी धक्का पहुँचा है। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि रुपया सस्ता और चीज़ें मँहगी हो गई हैं। यह एक ही बातके दो स्वरूप हैं। सरकारी व युद्धके खर्चके लिए माल खरीदनेके लिए सरकारको अधिक मुद्रा-प्रसार करना पड़ा, और ज्यों-ज्यों अधिक नोट चलनमें आते गए, वस्तुओंका मूल्य पहलेके परिमाणमें बढ़ने लगा, क्योंकि पहले वस्तुओं तथा मुद्राका जो सन्तुलन था, वह नष्ट हो गया। कुछ वर्गके लोगोंके हाथमें क्रय-शक्तिका परिमाण बहुत बढ़ गया। इसके साथ इस क्रय-शक्ति द्वारा ऊँचे मूल्यमें चीज़ें खरीदकर और सरकारको इससे भी ऊँचे मूल्यमें देकर वस्तुओंकी ओर भी कमी पैदा कर दी गई। इस प्रकार उस सामान्य वर्गके लिए, जिसकी आमदनी बँधी हुई थी, भारी कठिनाइयाँ उपस्थित कर दी गई हैं।

प्रश्न होता है कि जब मुद्रा-प्रसारसे देशका आर्थिक सन्तुलन इस प्रकार नष्ट होता है, तब भला क्यों सरकारने इसे काममें लिया? इसके दो उत्तर हो सकते हैं। एक तो यह कि वर्त्तमान परिस्थितिमें सरकारके लिए यह सबसे आसान मार्ग था। दूसरे सरकारको सैनिक परिस्थितियोंसे बाध्य होकर ऐसा करना पड़ा है। जो भी कुछ हो, सरकारको देशके आर्थिक सन्तुलनकी ओर हर हालतमें पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। मुद्रा-प्रसारकी बुराइयाँ किसीसे छिपी नहीं हैं। पिछले महा-युद्धके बाद जर्मनीमें जिस प्रकार मुद्रा-प्रसार हुआ, वह तो किसीको भी न भूला होगा। हज़ारों-लाखों मार्क एक-एक रोटीके लिए खर्च करने पड़ते थे। इससे वहाँके मध्यवर्गकी सारी समृद्धि नष्ट हो गई थी। उसने जो-कुछ बचा रखा था, वह मुद्रा-प्रसारने क्षण-भरमें स्वाहा कर दिया। इस दृष्टिसे मुद्रा-प्रसारको रोकना देशके लिए जीवन-मरणका प्रश्न है।

भारत या ब्रिटिश सरकार चाहती, तो युद्धके खर्चके लिए दूसरे मार्ग निकाल सकती थी; परन्तु चूँकि ब्रिटेनकी सरकार भारतीय राष्ट्रीयतासे कोई समझौता नहीं करना चाहती, इसलिए उसे यह मार्ग ग्रहण करना पड़ा। भारतमें युद्धके लिए जो उत्पादन-कार्य चलता है, या कच्चे मालकी जो खरीद होती है, उसके लिए तो सरकारको रुपया चाहिए ही। युद्धके समयमें एक तो माल लानेमें कठिनाई होती है और दूसरे जब तक योंही काम चलता है, तब तक उपयोगी चीज़ें कौन दे, इस दृष्टिसे भारतके मालके बदलेमें कागज़के वादे ही दे दिए जाते हैं। चूँकि देशका शासन-तन्त्र ब्रिटेनके हाथमें हैं, इसलिए यह सब चल जाता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि यह कब तक चलेगा? युद्धका खर्च अधिकतर बचत द्वारा कर्ज़ लेकर या कर लगाकर प्राप्त करना चाहिए। परन्तु भारतमें जब तक राष्ट्रीय सरकार स्थापित नहीं होती, अधिक कर्ज़ें मिलना काफ़ी मुश्किल है, यद्यपि काफ़ी रुपए बैंकोंमें बेकार पड़े हैं। कुछ मास हुए सरकारने १५ करोड़का एक कर्ज़ निकाला था; पर उसमें सिर्फ़ ३॥ करोड़ रुपए ही मिल सके। इतना ही नहीं, डाकखानेके सेविंग-बैंकमें से भी लोगोंने रुपए निकाल लिए हैं, और जहाँ १९३८-३९ में डाकखानेके सेविंग-बैंकमें १४१ करोड़ रुपए जमा थे, अब केवल ९५ करोड़ ही रह गए हैं। इस प्रकार लगभग ४६ करोड़ रुपया, जो सरकारी काममें लगा रहता था, निकल गया। करों द्वारा सरकारी आमदनीमें कुछ वृद्धि ज़रूर हुई है; परन्तु एक तो साधारण जनताकी कर देनेकी शक्ति भी सीमित है और दूसरे सरकार अपने नौकरों तथा पूँजीपतियोंको सन्तुष्ट भी रखना चाहती है, इसलिए उनपर करोंका अधिक भार नहीं डालना चाहती। अप्रत्यक्ष करोंका भार तो ग़रीबोंपर ही अधिक पड़ता है। बचानेकी दृष्टिसे भी भारतकी जनताको युद्धके लिए बचतमें कोई रुचि दिखाई नहीं देती। इस प्रकार सरकारको युद्धका खर्च चलानेके लिए मुद्रा-प्रसार ही करना पड़ता है।

परन्तु इस तरह मुद्रा-प्रसार करनेका एक आवश्यक परिणाम यह है कि इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रहती है और अन्तमें यह क़ाबूके बाहर हो जाता है। मुद्रा-प्रसारसे वस्तुओंका मूल्य बढ़ता है और इस मूल्य बढ़नेके कारण बँधी हुई आमदनी-वाले लोग वेतन-वृद्धि चाहते हैं। उन्हें अपनी ज़रूरतके लिए पूरा तो नहीं मिलता; परन्तु कुछ वृद्धि अवश्य हो जाती है। इसका अर्थ यह होता है कि लोगोंकी क्रय-शक्ति बढ़ती है। इस कारण चीज़ोंकी माँग बढ़ती है और माँग अधिक होनेका स्वाभाविक परिणाम मूल्य-वृद्धि है। इस प्रकार जो क्रम चल पड़ता है, वह अन्तमें एक ऐसी अवस्थापर पहुँचता है, जहाँ देशका आर्थिक तन्त्र अस्त-व्यस्त हो जाता है। इसी कारण दूसरे युद्ध-रत राष्ट्र इस युद्धमें नोट छापकर युद्धका खर्च निकालनेकी नीति काममें नहीं ला रहे। ब्रिटेनमें वस्तुओंके मूल्यमें बहुत कम वृद्धि हुई है।* वहाँका जुलाई, १९४२ का मूल्य-वृद्धिका 'इंडेक्स'-अंक १२२ है तथा अमरीकाका ९८.८, जब कि कलकत्तेका मूल्य-वृद्धिका अंक २२८ है।† हमारे

* अभी हाल ही में ब्रिटिश सरकारके अर्थनीतिक विभाग द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्तिमें यह वृद्धि केवल ५ प्रतिशत बतलाई गई है।—सं०

† मूल्य-वृद्धिके इंडेक्स-अंकमें अमरीकाके लिए १९२६,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ १९३९ के हिसाबसे चलनमें आनेवाले नोटोंकी संख्यामें दिसम्बरके अन्त तक २१८ प्रतिशत वृद्धि हुई, तथा मूल्य-वृद्धिके अंक १९३९-४० में ११५ थे और अब २२७ हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस मुद्रा-प्रसारको रोका कैसे जाय? देशको आर्थिक बरबादीसे बचानेके लिए यह करना अत्यन्त आवश्यक है। यह हमें भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मुद्रा-प्रसारका मूल कारण वे खर्च हैं, जो भारत ब्रिटेन तथा अमरीकाके लिए कर रहा है तथा उनकी भरपाई माल या सोनेमें नहीं पा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक विनिमयमें या तो वस्तुओंके बदलेमें सोना या चीज़ें दी जाती हैं। भारतके लिए भी यही किया जाना चाहिए। वह ब्रिटेन या अमरीकाके लिए जो वस्तुएँ दे रहा है, उनके बदलेमें या तो ये देश उसे सोना दें या माल; केवल काग़ज़ी वादोंसे तो काम नहीं चलेगा। भारतमें बहुत-सी ऐसी चीज़ोंकी आवश्यकता है, जिसे ब्रिटेन या अमरीका पूरा कर सकता है। भारी उद्योगोंके लिए यन्त्र-सामग्री चाहिए। रेलके इंजन तथा जहाज़ बनानेके कारखाने खोलनेके लिए मशीनें चाहिएँ। सोना भी भारतको भेजा जा सकता है, और अमरीकामें तो सोनेकी कमी भी नहीं है। यदि ऐसा नहीं किया जा सकता, तो ब्रिटेन और अमरीकाका जो रुपया भारतमें लगा है, उसे ही मालके बदलेमें भारतको सौंप दिया जाय। इसपर भी और अधिक रुपएकी ज़रूरत पड़े, तो ब्रिटेन तथा अमरीकाकी सरकारें अपनी ज़िम्मेवारीपर भारतमें कर्ज़ लें।

इसके साथ ही प्रभावपूर्ण ढंगसे मूल्य-नियन्त्रण करके वस्तुओंके मूल्यको अधिक बढ़नेसे रोका जाना चाहिए और अधिकतर युद्धका खर्च या तो कर-वृद्धि द्वारा या क़र्ज लेकर चलाया जाना चाहिए, मुद्रा-प्रसार द्वारा नहीं। हम यह जानते हैं कि ये बातें भारत-सरकारके ध्यानमें हैं तथा ब्रिटेन व अमरीकाके राजनीतिज्ञ भी इन्हें समझते हैं। परन्तु ब्रिटेन व अमरीकाको इस समय भारतकी विशेष गरज़ नहीं है। वे तो अभी अपना काम निकाल लेना चाहते हैं, और समझते हैं कि यदि युद्धका अन्त शीघ्र हो जाय, तो फिर कोई पंचायत करनेकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। यदि ऐसी बात न होती, तो वह दबानेके बजाय भारतकी राष्ट्रीयतासे कोई-न-कोई समझौता अवश्य करती; क्योंकि बिना राष्ट्रीय सरकारके इस सम्बन्धमें कोई सन्तोषप्रद व्यवस्था नहीं की जा सकती।

इस सम्बन्धमें प्रो० सी० ए० वकीलने लिखा है—"मुद्रा-प्रसारको रोकनेके जो मार्ग सुझाए गए हैं, उनको उनके अन्तिम ध्येयको समझे तथा जनतापर, जिसके सहयोगके बिना ये पूरे नहीं हो सकते, मुद्रा-प्रसारका क्या प्रभाव पड़ेगा, इसे समझे बिना काममें नहीं लाया जा सकता। साथ ही यह भी अपेक्षा की जाती है कि जिनके हाथमें सत्ता है, उनमें ठीक नीतिके काममें लानेका साहस व दृष्टि होगी, जिससे कि वे निहित हित-वालोंकी अप्रसन्नताका विचार न कर देशके लोगोंका विचार कर सकें। परन्तु इस प्रकारकी दृष्टि तथा साहसकी अपेक्षा भारतके वर्त्तमान सरकारसे तो नहीं की जा सकती। इसके लिए तो भारतकी अपनी राष्ट्रीय सरकार ही चाहिए, जो लोगोंके सहयोग तथा उनकी देशभक्तिकी सहायतासे काम कर सके। राष्ट्रीय सरकार बनानेके पक्षमें जो बहुत-सी बातें देशके नेताओं द्वारा कही जाती हैं, उनमें से वर्त्तमान आर्थिक परिस्थिति भी एक भारी कारण है, जिसकी यथार्थता और प्रभावको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। और यह आर्थिक परिस्थिति राजनीतिक नेताओं की माँगसे कहीं अधिक बलवान हो सकती है। नेताओंको चुप करनेके मार्ग हैं; परन्तु आर्थिक परिस्थितिको चुप नहीं किया जा सकता। मुद्रा-प्रसारके कारण तो आज देशके प्रत्येक घरमें हाहाकार मचा है। वह बढ़ता ही जायगा, यदि मुद्रा-प्रसारकी मूखतापूर्ण नीतिको इसी प्रकार जारी रखा गया। फिर इसके परिणाम-स्वरूप जो भूखमरी तथा अव्यवस्था पैदा होगी, वह भारीसे भारी हथियारों द्वारा भी रोकी नहीं जा सकेगी, चाहे देशमें कितनी भी अधिक संख्यामें गोरे सैनिक क्यों न हों? अमरीका तथा ब्रिटेनके स्वार्थकी दृष्टिसे भी, यदि वे भारत को जापानियोंके विरुद्ध एक मज़बूत क़िला बनाना चाहते हैं, यह आवश्यक है कि वर्त्तमान आर्थिक अव्यवस्थाको क़ाबूसे बाहर होनेसे पहले ही रोका जाय; क्योंकि यदि देशमें आर्थिक अव्यवस्था पैदा होगी, तो जापानियोंका मार्ग आसान हो जायगा।"*

ब्रिटेनके लिए १९३९ और कलकत्तेके लिए १९१४ के अंकोंको 'आधार' या १०० मानकर हिसाब किया गया है।—ले०

* इस लेखके लिखनेमें प्रो० सी० एन० वकीलकी पुस्तिका 'The Falling Rupee' से सहायता ली गई है।—ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिशाप

श्री ओंकारशंकर विद्यार्थी

मैं बड़ी बहन हूँ, उसकी बड़ी बहन हूँ, जो कुछ दिनों पहले अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी। जब मैं अपने घरके आँगनको छोड़कर दूसरे, अनजाने, घरके आँगनके लिए विदा हो गई, तो मुझे उस पारकी चीज़ोंमें सबसे अधिक याद आई माँकी। पर नहीं,...माँ तो मैं ही हूँ। माता-पितामें सन्तान एकका ही अवतार होती है, दूसरेको तो वह दूरसे चाहती है अथवा सम्मान करती है अथवा अतिशय घृणा करती है। हाँ, अपनी माँ तो स्वयं मैं ही हूँ, और अपने बच्चोंकी माँ होनेके पहले ही मैं माँ हो गई थी अपनी छोटी बहनकी, कुमुदकी।

और, कुमुद अब मर गई है। कुमुदकी आँखें खुली हुई हैं; परन्तु उसके प्राण मुँद गए हैं। उसकी एक मुट्ठी खुल गई है और दूसरी मुट्ठी अधखुली रह गई है। सब रो रहे हैं। माँ छाती पीटकर, भाई आँखोंके जल-स्फीत करुणासे आरक्त लाल डोरोंसे। पड़ोसकी स्त्रियोंके होंठ हिल रहे हैं—'हाय, कुमुद ऐसी सीधी थी...दुनियाका एक भी सुख न जान पाई!' मैं चुप थी, बुतकी तरह देख रही थी। विनोद पास आकर चिपट गया। कहने लगा—'माँ, मौसी क्या सोती ही रहेंगी?' मैंने स्वप्नसे जागते हुए कहा—'कुमुद, देखो तुम्हारा विनोद...' और उसके बाद मुझे होश नहीं रहा।

× × ×

जब मैं सन् '३३ में अपना घर छोड़कर नए जीवनमें, नई नावमें, नए नाविकके साथ कानपुर आई, तब कुमुद मुझे हर शनिवारको पत्र लिखती थी। उस समय वह बहुत छोटी थी, कोई ६-७ सालकी। नई-नई बारहखड़ी सीखी थी। जो-कुछ सीखती थी, उसीका एक नमूना भेज देती थी।

बहुत वर्षोंके बाद—जब उस नवम्बरके जाड़ेमें मुझे बारह दिनोंके अनिवार्य संयमनके बाद बाहर आना पड़ा, तो 'उन्होंने' कहा कि हम अपनी प्यारी-प्यारी लड़कीका नाम इन्दिरा रखेंगे। इन्दिराको जब-जब मैं गोदमें खिलाती थी, तब-तब वे दिन किरणोंके रूपमें मेरी खिड़कीके मार्गसे छन-छनकर आ जाते थे। जब सब लोग कहा करते थे—'कुमुदकी बड़ी बहन अब बहुत बड़ी हो गई है', जब माँके हाथ भगवानकी हरएक प्रतिमाके आगे झुक जाते, जब उनकी विधवा आँखें बादलोंको चीरकर प्रकट होनेवाली किसी उद्धारक मंगलमय करके स्वर्णो-दयकी प्रतीक्षा किया करती थीं; तब मैं कुमुदको लेकर घरके एक कोनेमें बैठ जाती थी। घरमें इतना परदा होता था कि हमारे आँगनके आस्मानपर ही हमारा पूरा खगोल लिखा रहता। हम दोनों आँगनके एक कोनेमें बैठकर आस्मानकी ओर देखा करती थीं। मैं कुमुदसे कहती—'भगवान हम सब लड़कियोंको उठा क्यों नहीं लेता?' और होंठोंके उस पारसे उठती हुई आहको दबाकर कुमुदका हाथ पकड़ लेती। उस समय कुमुद आस्मानमें मेरी ही तरह कुछ पढ़नेका प्रयत्न करत थी...और कभी-कभी स्वच्छन्द पंछियोंको देखकर हँस पड़ती थी।

पर, कुमुद अब कभी नहीं हँसेगी।...पंछी उड़ते हैं। कीर-दल अपने नीड़ोंको जा रहे हैं। इस समय सन्ध्या हो रही है। यह दिन संसारके इतिहासमें वापस नहीं आ सकता। और कुमुद भी अब वापस नहीं आयगी।

× × ×

परिणयके बाद एक बन्धनसे मेरी मुक्ति हुई और दूसरे बन्धनमें मुझे फँस जाना पड़ा। संसारके पिंजरेकी तीलियाँ बड़ी ही मज़बूत हैं। 'वे' बेकार रहे, कई साल तक। लोग हम दोनोंपर हँसते रहे। 'उनके' लिए कहते रहे कि तीन बच्चोंके बाप हैं और कमाते तीन रुपए भी नहीं! 'उनके' सिरके बाल यत्किंचित् सफ़ेद होने लगे। मेरी आँखोंकी रेखाएँ गहरी हो गईं। सन्दूककी चाभीका गुच्छा पकड़ते वक्त उँगलियाँ काँप जातीं। कुमुदका स्नेह और भी कोमल हो गया था। वह लिखती थी—'माँ आशीर्वाद कहती हैं। कहती हैं कि बिटिया घबराय नहीं, भगवान सभीके दिन फेरता है।' नीचे वह खुद लिखती थी—'जीजी, मैं रामजीसे प्रार्थना करती हूँ कि जीजाजीकी बहुत अच्छी नौकरी लग जाय।'

तब कुमुद तेरह सालकी हो गई थी। कुमुदमें न जाने क्या विशेषता थी कि वह ज्यों-ज्यों बड़ी होती जाती थी, उसके अन्दर नारीत्व उदित हो रहा था, स्त्रीत्व नहीं। वह हिम-गिरिकी श्वेत शिखा-सी ज्वलन्त होती जा रही थी; परन्तु उठती हुई माधवीकी विलासमयी सिहरन उसके किसी भी अंग-संचालनमें नहीं मालूम होती थी। सभी लोग सन्तुष्ट थे। अपनी स्मृतिके झिलमिल प्रकोष्ठोंमें झाँककर मैं भी सन्तुष्ट थी कि वह मेरी तरह नहीं है...सावधान है...भगवान सब कुछ ठीक ही करेंगे।

भगवानने सब कुछ ठीक ही कर दिया है। एक माह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, उसकी बारात अर्थीमें उसका फूल-सा शरीर लेकर विदा हो चुकी है, और हम सब दरवाज़ेके इस पार ही रोती-चिल्लाती रह गईं

× × ×

'उनकी' नौकरी लग गई थी। कुमुदने बड़े मचलकर मिठाई माँगी। हम लोगोंने सोचा कि कुमुदकी पढ़ाईका इन्तज़ाम ठीक नहीं चल रहा है, उसे अपने पास ही क्यों न बुला लिया जाय। पहले तो माँके सामने अनिवार्य रूपमें लोक-लाज और बाधाएँ आकर खड़ी हो गईं; परन्तु कुमुदकी एक लालसा थी—कुछ दिन अपनी जीजीके पास रहकर पढ़नेकी। मैं अड़ गई, कुमुद भी बच्चोंकी तरह ज़िद पकड़ गई। पर कुमुदके जीजाजीको पढ़ानेकी फुरसत कहाँ? वे प्रोफ़ेसर हो गए थे। चालीस-पचास लड़कोंके क्लासको पढ़ा सकते थे; परन्तु मेरी बहन कुमुदको नहीं। कुमुदकी आभा विकसित हो रही थी···, वे पढ़ाना भी चाहते, तब भी शायद न पढ़ा सकते।

दूर-दराज़के रिश्तेका एक लड़का हमारे यहाँ आया करता था। वह बाँसुरी बजानेमें कमाल रखता था। मुझे भाभी कहता था और बड़े दीन नेत्रोंसे मेरी ओर ताका करता था।... पर अब उसके वे नेत्र बुझ गए हैं—दो महीने पहले ही बुझ गए हैं, और कुमुदकी चिता भी एक माह पहले गोमतीके तटपर बुझ गई है!

× × ×

मैं, कुमुद और वह लड़का, अब नाटकके ये तीन ही पात्र हैं, जो बारी-बारीसे मेरे मानस-मंचपर अपना-अपना अभिनय कर जाते हैं। मैं तीनोंके अभिनय देखती हूँ, उनके कथनोपकथन सुनती हूँ। अपना पार्ट भी सुनती हूँ; पर समझ नहीं पाती कि कौन-सा ठीक है?...कौन कहता है कि वह लड़का जीवित है, कि मैं उसके अतंकमें रहती हूँ, और जब कभी मैं उसके विषयमें बात करती हूँ, सुनती हूँ अथवा लिखती हूँ, तभी मुझे डर लगता है। परन्तु यदि यह असत्य है, तो मैं प्रायः डर क्यों जाती हूँ, और ऐसा क्यों लगता है कि सामनेके पेड़की डालमें कोई रस्सी बाँध रहा है...एक फन्दा...!

उस लड़केका असली नाम लिखनेमें डर लगता है। ऐसा लगता है, मानो मसिके अंकनोंके बीच घुटते हुए किसीके प्राण चिल्ला उठेंगे—'एक चुम्बन!' आह, कैसे घृणित शब्द हैं ये! 'वह दिन कितना अशुभ था, जब तुम मेरे घरमें पहली बार आए थे। देखो, तुम अपना गला घोट सकते हो; लेकिन मेरा क्यों घोटते हो? मेरी बहनका क्यों घोटते हो?' परन्तु मेरे इस तरह चिल्लानेसे क्या होता है? जो होना था, वह तो हो ही गया।

उस लड़केने मेरे कहनेसे कुमुदको पढ़ाना शुरू कर दिया। मैं भी प्रायः कुमुदके पास बैठ जाया करती। पढ़ाते-पढ़ाते वह लड़का मुझे न जाने किस विचित्र भावसे देखना प्रारम्भ कर देता। कुमुद किसी तरह पास हो जाय, अच्छी तरह पास हो जाय, इसलिए मैं उस लड़केका काफ़ी सम्मान करती थी। उसके बीमार पड़नेपर 'उनसे' कहकर उसके लिए औषध इत्यादिका इन्तज़ाम करवा दिया करती थी। कुमुद उससे दसवेंकी पढ़ाई करती थी और मैं कभी-कभी संगीतके कुछ पाठ ले लेती थी। संगीत मेरे जीवनकी अनन्य आराधना थी, जिसकी तान संसारकी चक्कियोंके बीच दब-सी गई थी। उस लड़केके साथसे हम लोगोंके शुष्क-जीवनमें एक कला-सी खिल उठी थी। काश, ऐसा न हुआ होता···!

एक दिन कुमुद और बच्चे कुमुदके जीजाजीके साथ सिनेमा देखने गए थे। मेरा जी सिनेमा देखनेका नहीं था और सबसे छोटी बच्चीकी तबीयत भी खराब थी, अतः मैं नहीं गई। मैं बहुत देर तक उसको गोदमें खिलाती हुई चन्दा मामाके आमन्त्रण सुनाती रही। उस समय चारों ओर चाँदनी छिटक उठी थी। बच्ची सो गई थी। इसी समय वह लड़का ऊपर आया। उसने सविनय कहा—'भाभी, आज मैंने बाँसुरी पर एक नई धुन सीखी है। सुनोगी?' मैंने पहले कुछ देर तक सोचा, किंकर्तव्यमें पड़ी रही। परन्तु इन्दिरा अत्यन्त प्रगाढ़ निद्रामें सो गई थी, इसलिए उससे कुछ हटकर, छतके किनारे चटाई बिछाकर हम दोनों बैठ गए। मेरी उँगलियाँ हारमोनियमके पर्दोंपर फिसलती हुईं ध्वनिके उन आलोकमय वृत्तोंकी सृष्टि कर रही थीं, जो मुझे उठाए लिए जा रहे थे, और उस लड़केके स्वर बाँसुरीमें अपने प्राण बिखेर रहे थे।

गीत करुण रागिनीसे शुरू हुए। फिर अवसाद, फिर आराधना, फिर समर्पण और फिर शृंगारके गीत बजाए गए। इस प्रकार कोई डेढ़ घंटा बीत गया। उस नवयुवककी अँगुलियाँ उन्मत्त-सी हो रही थीं। सहसा उसने मेरी उँगलियाँ पकड़ लीं। मैं किसी दूसरे ही लोकमें थी। सँभलते-सँभलते कुछ देर लग गई। उसके होंठ और साहसी होनेको हुए। मैं सतर्क हो उठ खड़ी हुई और आँखें बन्द किए हुए ही खड़ी रही, जब तक कि भर्त्सनाकी ठोकर खा वह ज़ीनेसे नीचे नहीं उतर गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुदकी परीक्षाके दस-बारह दिन बाक़ी थे। अतः मैं छातीपर पत्थर बाँधकर रह गई। क्या पुरुषोंने सभी रूपवती स्त्रियोंको खिलौना ही समझ रखा है? परन्तु, यह शिक्षक—उसने तो मुझे खिलौना नहीं समझा था। आह, मैं उसको अन्य पुरुषोंकी कोटिमें कैसे रख गई, जब कि उसने अपने संगीतकी, जीवनकी, आराधनाकी देवी ही मुझको समझ रखा था।

इसके बाद दस दिन तक वह पढ़ाता रहा; परन्तु उसने मुझे आँखें उठाकर फिर कभी नहीं देखा। मैं घुलती रही, मेरे अंग-अंगसे उस लड़केके लिए घृणाके भाव टपकने लगे। कुमुदने एक दिन अकेलेमें पूछा भी—'जीजी, मास्टरजीसे आजकल बोला नहीं जाता। उनका चेहरा पीला पड़ गया है, एकदम पीला; परन्तु वे न जाने कहाँकी ताक़त लगाकर मुझको पढ़ाए लिए जा रहे हैं।' मैंने कुमुदसे झुँझलाकर कह दिया—'कुमुद, तेरे मास्टरजी बड़े नीच हैं।' वह अचकचा गई! दाँतों-तले उँगली दबाकर बोली—'नीच? जीजी, यह तुम आज क्या कह रही हो?' मैं खुद असमंजसमें पड़ गई। सहसा मेरे मुँहसे निकल गया—'उनकी माँने कहला भेजा है कि उन्होंने घरसे कुछ रुपए चुरा लिए हैं।'

उस दिन कुमुदके मास्टरजीका आखिरी दिन था। पिछली रातको ही मैंने 'उनसे' सब बातें बता दी थीं। सुनकर उनके क्रोधका ठिकाना न रहा। बोले—'कल सारी फ़ीस देकर, धक्के मारकर निकाल दूँगा उस पाजीको। ऐसे नीच आदमीको...।'

उस दिनका दृश्य क्या शब्दोंमें लिखा जा सकता है? एक ओर उनकी क्रोधानल-दग्ध विष-वाक्य-धारा बह रही थी और दूसरी ओर उस दृश्यकी सारी तैयारी करके भी परिस्थितिकी तीव्रतासे व्याकुल होकर मैं पसीनेसे नहा-सी गई थी। कुमुद वात-त्रस्त शेफालिकाकी भाँति विवर्ण और कम्पित हो उठी थी। शिक्षकने कुछ जवाब नहीं दिया। हाँ, मैं यह कहना भूल गई कि विद्या और संगीतसे समन्वित होते हुए भी वह लड़का अत्यन्त श्यामवर्ण और कुरूप था। मैं तो उसपर दया करती थी। उसकी कुरूपताका हल्का-सा भान ही कुहासे-सा मेरे मस्तिष्कपर छाया रहता था। परन्तु उस प्रताड़नाके अवसरपर उसका रंग जैसे और भी काला पड़ गया था। 'उन्होंने' उसके हाथोंमें नोट थमा दिए; परन्तु उन हाथोंमें किसी चीज़को थामनेकी शक्ति नहीं मालूम पड़ती थी। वह फूट-फूटकर रोने लगा। मैं उस समय कठोर हो गई थी, बिलकुल कठोर; और उसकी सिसकियोंका जवाब मैंने कठोर, क्रूर अट्टहासके रूपमें दिया।

अरे, इस समय यह कौन मेरे सामने अट्टहास कर रहा है! कुमुदका चेहरा...लपटोंमें से झाँक रहा है। तुम भी हँस रही हो...हँस लो...पु...त्री! ठीक है, कुमुद तो यही समझती रही कि ग़लती मैंने की, मुझे सावधानीसे काम लेना चाहिए था। वह यही सोचती रही कि मैंने एक नाज़ुक परिस्थितिको झूठी ऐंठके साथ निबाहा। कुमुदको फल ही तो मालूम था; परन्तु कारण उसके सामने कैसे खोलकर रखे जा सकते थे?

× × ×

कुछ दिन बाद एक पार्सल मिला। उसमें एक पत्र, दिए गए नोट, एक टूटी हुई बाँसुरी और फटे हुए कुछ प्रमाण-पत्र रखे थे। उसके एक दिन पहले ही 'उन्होंने' आकर बतलाया था—'उस नीचने अपने घरके पासवाले बग़ीचेमें गलेमें फाँसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली।' घटनाओंके भँवरमें पड़कर मेरे पैर उखड़ गए। भगवानकी मूर्त्तिके सामने बैठी हुई घंटों रोती रहती; परन्तु उस मूर्त्तिके चेहरेपर वही अट्टहास था, जो मेरे होठोंपर एक नालायक परन्तु अभागे मनुष्यके आँसुओंको देखकर बोल उठा था।

वह टूटी हुई बाँसुरी एक अपूर्ण कला-जीवनकी विभक्त देह-यष्टिके सिवा और कुछ नहीं थी। उसको मैंने मृतककी माँके पास लौटा दिया; परन्तु उस पत्रको तो मैं किसीके पास नहीं लौटा सकती थी। पत्रकी एक-एक लाइन मेरे मस्तिष्कपर आज भी लिखित है। मैं उन्हें यहाँ नहीं लिखूँगी, मैं लिख भी नहीं सकती। मैं उसे फाड़ भी नहीं पाती, जला भी नहीं पाती। ट्रंकके एक कोनेमें वह रखा हुआ है। 'वे' तो समझते हैं कि मैंने उस पागल नीचकी वह चीज़ जला दी है; पर आज भी उस ट्रंकको देखकर पत्रका स्मरण आते ही मेरे हृदयके तार-तारमें शिशिर-वायु काँप जाती है।

उस पत्रमें जो-कुछ लिखा हुआ था, मैं वह सब कुछ तो नहीं लिख सकती; पर हाँ, ये पंक्तियाँ उसमें ज़रूर थीं—'तीन साल पहलेकी दीपावलीकी जगमगाहट...जब तुम रोशनी देखने गई थीं···उस दिनसे सब परीक्षाएँ तुम्हारे लिए···सब राग तुम्हारे लिए···।' आगेके अक्षर फीके पड़ गए थे। फिर एक जगह अक्षर लहरोंकी भाँति काँप गए थे। उनमें लिखा था—'ग़रीबी...कुरूपता...मैंने किसीका स्नेह नहीं जाना···किसीका नहीं···।' इन्हें लिखते-लिखते शायद वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं काँप गया था। और कुछ मुझे याद नहीं है। उस पत्रको दुबारा मैं पढ़ भी तो नहीं सकती। हाँ, एक अभिशाप याद है, जो दबे हुए शब्दोंमें, जुटे-जुटे हरूफ़ोंमें लिखा था—'जिस-जिस वस्तुसे तुम्हें स्नेह होगा, वह नष्ट हो जायगी।' यह था जुटे-जुटे शब्दोंमें एक गहरा अभिशाप।

इस अभिशापके पीछे एक इतिहास है। जब मैं उसे प्रेम नहीं करती थी, तब उसके प्रति झूठे स्नेहका प्रदर्शन मैंने क्यों किया? किसी कुरूप व्यक्तिकी, किसी स्नेहहीन व्यक्तिकी, असहाय मनोदशाको मैं कैसे समझ सकती थी? सामनेका दर्पण तो मेरे सौन्दर्यको देखकर हँस रहा है, एक निस्सीम कटु व्यंग्य लेकर। ये उँगलियाँ मेरे मुखकी मांस-पेशियोंका स्पर्श कर रही हैं, गालोंके उच्छ्राय और होंठोंकी तरलतापर ये घूम रही हैं। इन होंठोंने तो हमेशा यही समझा कि जिधर मुस्करा देंगे, उधर ही हृदय-कपाट खुल जायँगे।

सामने एक कैलेण्डर दिखाई पड़ रहा है, जिसमें एक नर और नारी नृत्यकी भूमिकामें हैं। 'वे' भी तो यही कहा करते हैं कि जीवन एक नृत्य है, हँसी-खुशी और आँसुओंके बीचका एक सन्तुलन है। न जाने किस लेखककी किताब पढ़कर ऐसा कह रहे थे? शायद आल्डस हक्सलेकी किताब थी। पर वह युवक, जो अभिशाप देकर जीवनके टूटे-फूटे कगारसे कूदकर मृत्युकी सरितामें जा गिरा, वह बेवकूफ़ था; परन्तु क्या सारा क़सूर उसीका था? जब जीवन-नृत्यमें सन्तुलित मुद्राके लिए उसका जन्म ही नहीं हुआ था, जब उसके पैरोंमें शुरूसे ही फालिज था, तब मैंने उसके साथ उसी तरह हँसकर बातें क्यों कीं? इस क्योंका कोई जवाब नहीं है। कमरेकी सभी खूँटियाँ चुप हैं। सबमें रस्सियाँ झूल रही हैं और उनमें बँधे हुए...

× × ×

उस भयानक आत्म-हत्याके तीस दिन बाद ही कुमुद चली गई। अभिशाप व्यर्थ न गया। कुमुदको मोतीझरा हुआ और उसके अन्तिम दिनोंमें ही मैं उसके पास जा सकी। कुमुद सदाके लिए इस दुनियासे जा रही थी; परन्तु उसने मुझसे कहा—'जीजी, अब तुम गम्भीर हो जाओ। भगवान जीवन-पथमें तुम्हारी सहायता करेंगे।' मैं कुछ रो-सी उठी; परन्तु आँसू दबा गई। कुमुद छोटी होकर भी उपदेश दे गई, क्योंकि वह मेरे रूप-वैभवके मादक फलको देखकर खिन्न हो गई थी। मैंने कुमुदके ज्वर-तप्त चेहरेको देखा। उसके साधारण, अत्यन्त साधारण, रूपवाले चेहरेके अन्दरसे, बहुत अन्दरसे, ज्योतिकी कुछ किरणें फूट रही थीं।

× × ×

दुनिया चलती जाती है। एकने फाँसी लगा ली, दूसरेको मोतीझरेने उठा लिया। मनको समझा लेती हूँ कि कुमुदको मोतीझरेने उठा लिया; परन्तु उसके शिक्षकके 'अभिशाप'की स्मृतिको भूल नहीं सकती। कुमुदको विवाहित देखना ही मेरे जीवनकी एक बड़ी अभिलाषा थी। कहाँसे कितने रुपए उधार लेने होंगे, यह सब-कुछ तय हो गया था; परन्तु व्यक्तित्वके एक भूतने आकर कुमुदका नाश कर दिया।

पन्द्रह दिन हो गए हैं। स्मृतियोंका एक भूत-लोक हृदयमें बसा है। स्वामीसे कह नहीं सकती, इसलिए हृदयके ग़ुबार निकालनेके लिए यह सब लिख रही हूँ···और सामने दिया-सलाई भी रख ली है इस वृत्तान्तको क्षार-क्षार कर देनेके लिए। कहनेको शब्दोंसे दीवारोंके कानमें भी नहीं डाल सकती; परन्तु अभिशापदाताके प्रति मुझे कुछ सहिष्णुता-सी होती जा रही है। जब दोपहरको कुमुद मेरे पास आकर बैठती है, तब एक दूसरी आधिभौतिक छाया भी मेरे चरणोंके पास आकर बैठती है। पहले यह दूसरी छाया बड़ी आहत मालूम पड़ती थी; पर कुमुदके मरनेके बाद वह कुछ उदास-सी हो गई मालूम पड़ती है। जो अव्यक्त रागिनी अब उसकी उँगलियोंसे निकलती है, उसमें पश्चात्तापके भी कुछ स्वर हैं। सम्भवतः अन्तिम हिचकीके बाद अशान्तिकी अग्नि-शिखा और धूम-पटलसे ऊपर उठकर वह छाया अब सितारोंकी सरितामें डूबनेके लिए अग्रसर हो रही है। क्या यह उसका दूसरा आत्मघात होगा?

यन्त्रपुरी

श्री सियारामशरण गुप्त

इस नगरीके नागरिक सभी हैं अन्ध, अखण्डित जन्म जात।
निज कार्यलग्न सब हैं, फिर भी हड़बड़-हड़बड़ दिन और रात॥
हैं सबके सब सम्पूर्ण वधिर इस नगरीमें जिनका निवास।
फिर भी इसका प्रत्येक अजिर गीतोंसे मुखरित है सहास॥
इस नगरीमें जितने भी जन, वे सबके सब हैं निपट मूक।
तब भी सुन पड़ती है प्रतिक्षण यह कितनी भारी हूक-कूक॥
मन, विस्मयसे तू मूक न बन, नव यन्त्रपुरी यह है अपार।
सबकी रसनाएँ, श्रवण, नयन वह लिए दूर है यन्त्रकार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी भारतीय

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

स्वर्गीय पारख सेठ

गत बड़े दिनके सबेरे मुझे नेटाल-इंडियन-कांग्रेसके संयुक्त-मन्त्री श्री अबूबकर मूसा और श्री हंस मेघराजका तार मिला कि २४ दिसम्बरको दक्षिण-अफ्रीकाके वयोवृद्ध नेता हाजी इस्माइल मोहमद पारख उस लोकको कूच कर गए, जहाँसे कोई लौटकर नहीं आता। उनकी मृत्यु ७५ वर्षकी आयुमें अपने मकानपर (डरबनमें) हुई। यद्यपि इधर कुछ दिनोंसे उनका स्वास्थ्य बिगड़ रहा था, तो भी उनकी मृत्यु आकस्मिक हुई, जिससे सारे दक्षिण-अफ्रीकामें शोक छा गया। डरबनके भारतीय व्यापारियोंने शोक-प्रदर्शनके रूपमें घण्टे-भरके लिए अपनी दुकानें बन्द रखीं। उनके जनाज़ेके साथ लगभग पाँच हज़ार आदमियोंकी भीड़ थी, जिनमें यूरोपियनोंकी भी अच्छी संख्या थी।

पारख सेठसे मेरा परिचय बहुत पुराना है; किन्तु इधर कुछ कालसे वह घनिष्ठताके रूपमें परिणत हो गया था। मुझपर उनका सच्चा स्नेह ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास भी था। जब कोई विकट प्रश्न उपस्थित होता और उनकी सम्मति माँगी जाती, तो वे प्रायः यही उत्तर देते कि 'स्वामीजीसे पूछो और जो वह कहें, वही करो।' एक बार जब नेटाल-इंडियन-कांग्रेसके सामने जीवन-मरणका सवाल था, तब उन्होंने कांग्रेस-कर्मियोंसे स्पष्ट कह दिया था —'यदि स्वामीजी कांग्रेसको बन्द करनेकी सलाह दें, तो उसके आफ़िसमें ताला लगा दो, और यदि वे कांग्रेसको चलानेके पक्षमें हों, तो अन्य किसी कठिनाईकी परवाह मत करो। मैं सब प्रकारसे सहायता करूँगा।'

उनकी मृत्यु नेटाल-प्रवासी भारतीयोंके लिए एक बहुत बड़ी क्षति है। नेटाल-इंडियन-कांग्रेसने अपना सिरताज, कांग्रेस-कर्मियोंने एक बहादुर साथी और प्रवासी भारतीयोंने अपना एक वफ़ादार मित्र खो दिया। वे अनेक वर्षोंसे नेटाल-इंडियन-कांग्रेसकी प्रत्येक कार्यवाही और उसकी गति-विधिके साथ अत्यन्त निकटतर सम्पर्क रखते आ रहे थे। अतएव मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि उनकी मृत्युसे उनके रिक्त स्थानकी पूर्त्ति होना फ़िलहाल तो बिलकुल असम्भव है। नेटाल-इंडियन-कांग्रेसके प्रधानकी हैसियतसे उन्होंने उसकी प्रगतिके लिए अपनी थैलीकी डोरी एकदम ढीली कर दी थी।

वे सन् १८६७ में सूरत-ज़िलेके कठोर नामक ग्राममें उत्पन्न हुए थे। पहले वे व्यापार करनेके विचारसे मारिशस गए और वहाँसे सन् १८८४ में नेटाल पधारे। डरबनमें उन्होंने जो दुकान खोली थी, उसकी उत्तरोत्तर ऐसी उन्नति होती गई कि वह प्रान्त-भरमें मशहूर हो गई। व्यापारके अतिरिक्त उन्होंने औद्योगिक क्षेत्रमें भी प्रवेश किया। ग्लेन्डेलमें चीनीका कारखाना और इनान्दामें चायके बागान खरीद लिए। नेटाल-प्रदेशमें श्वेतांगोंके सिवा दूसरा कोई चीनीका कारखाना भारतीयोंके हाथमें नहीं है। भारतीय व्यापारियोंमें भारतीय मज़दूरोंको मुलाज़मत देनेवाले वे सर्वोपरि व्यक्ति थे।

वे प्रसिद्धि और प्रकाशनसे दूर रहते थे, तो भी अपनी सम्मति और सम्पत्ति द्वारा जनताको लाभ पहुँचानेमें कभी किसीसे पीछे नहीं रहे। जब विलायतके युवराज डरबन पधारे थे, तब आप ही उनके स्वागतके लिए बनी हुई समितिके सभापति चुने गए थे। सन् १९३४ में प्रिन्स जार्जको नेटाल-इंडियन-कांग्रेसने एक प्रीतिभोज दिया था। उस ऐतिहासिक अवसरपर भी आपने ही सभापतिका आसन सुशोभित किया था। माननीय श्रीनिवास शास्त्री जब एजेण्ट-जनरल बनकर दक्षिण-अफ्रीका गए, तो पारख सेठने बिरियाकी पहाड़ीपर स्थित अपना सुन्दर बँगला शास्त्रीजीको रहनेके लिए

श्री अबूबकर मूसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दिया था। जुम्मा-मस्जिद, सूरत-अंजुमन-ए-इस्लाम, अंजुमन-इस्लामिक मदरसा आदि अनेक संस्थाओंके आप ट्रस्टी थे।

पारख सेठने अपने जीवनमें सैकड़ों ग़रीब भारतीयोंको ज़मीन-घरवाला बना दिया। उन्होंने डरबन नगरके आसपास हज़ारों एकड़ ज़मीन खरीदी और उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके ग़रीबोंको इस शर्त्तपर बेची कि वे अपनी आमदनीके अनुसार मासिक किश्त भरा करें। जो किश्त भरनेमें असफल हुए, उनकी ज़मीन ज़ब्त नहीं की गई, बल्कि अदायगीकी अवधि और भी बढ़ा दी गई। इस प्रकार सैकड़ों ग़रीब भारतीय ज़मीन-घरवाले बन गए। उनकी व्यापारिक और व्यावहारिक बुद्धि बेजोड़ थी। इसी वजहसे उन्होंने खूब धन कमाया और उसका कुछ अंश प्रवासी भाइयोंकी भलाईमें खर्च भी किया।

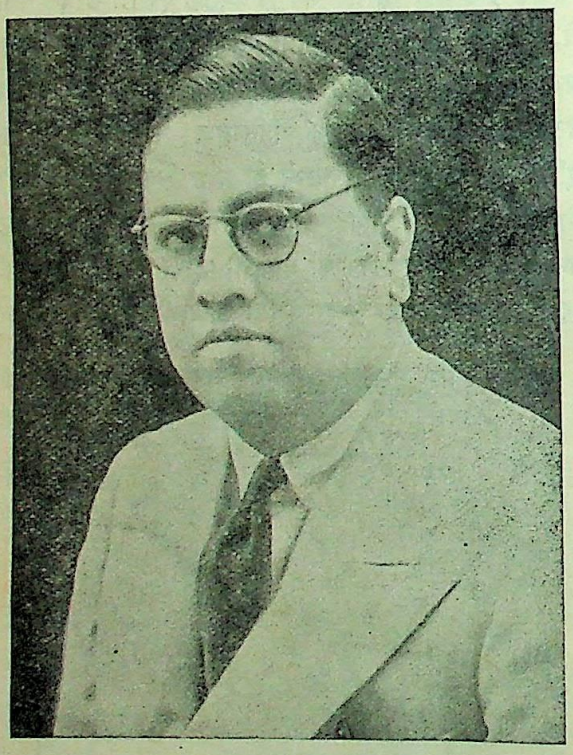

श्री हंस मेघराज

स्वर्गीय पारख सेठ बड़े सरल और सहृदय थे। उनमें ऐसी उदारता थी कि उनके दरवाज़ेसे कभी कोई खाली हाथ नहीं लौट सकता था। उनकी दानशीलता सदाके लिए उनके स्मृति-स्तम्भका काम देगी। भावी सन्तान भी उनको श्रद्धासे याद करेगी। वे सबसे और सभी उनसे प्रेम करते थे। दक्षिण-अफ्रीकाके भारतीय व्यापारियोंको उनके चरण-चिह्नोंपर चलनेकी चेष्टा करनी चाहिए। यद्यपि सभी उनकी तरह बड़े-बड़े काम नहीं कर सकते, तो भी मेरी धारणा है कि छोटे पैमानेपर ज़रूर कुछ-न-कुछ कर सकते हैं।

उनकी मृत्युकी दुर्घटना निस्सन्देह दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी भारतीयोंके लिए एक असह्य आघात है और उनके हितोंके लिए संघर्ष करनेवालोंके लिए एक गहरी चोट। पारख सेठ नेटाल-प्रवासी भारतीयोंके नेता और मार्ग-प्रदर्शक थे। उनकी सम्मतिके बिना कोई कार्य नहीं होता था। हममें से जिन्होंने उनके साथ सलाह-मशवरा और काम किया है, उनके लिए उनकी मृत्यु एक दुर्घटना ही है। प्रवासी भारतीयोंका भविष्य चाहे जो-कुछ हो; परन्तु पारख सेठने अपना फर्ज़ अदा किया और अपना जीवन सार्थक बनाया। मैं सुलेमानभाई, मुहम्मदभाई तथा उनके परिवारके अन्य प्राणियोंके प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूँ और परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि वे दिवंगत आत्माको सद्गति और चिरशान्ति प्रदान करें।

निराशाजनक सरकारी रिपोर्ट

दक्षिण-अफ्रीकाके भारतीय हाई-कमिश्नरकी सन् १९४१ की वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। भारत-सरकारकी ओरसे उसकी एक प्रति मुझे भी मिली है। सन्तोषकी बात है कि देशके दैनिक अखबारोंमें इसकी काफी चर्चा हुई है। इस रिपोर्टको आद्योपान्त पढ़ जानेपर यही नतीजा निकलता है कि इस महायुद्धके प्रतापसे संसारकी गति-विधिमें चाहे कितना ही परिवर्त्तन क्यों न हो जाय; पर दक्षिण-अफ्रीका-सरकारकी नीति और प्रवृत्तिमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। 'विशाल भारत' के गत अक्टूबर-अंकमें जिन्होंने 'दक्षिण-अफ्रीकाकी सामयिक समस्या'-शीर्षक मेरा लेख पढ़ा है, उनके लिए इस रिपोर्टमें कोई नई बात नहीं। उन्हीं बातोंपर इसमें सरकारी रंग चढ़ाया गया है। इसमें एक बात अवश्य ही बड़ी मज़ेदार है।

एक बार नेटालकी राजधानी पीटरमेरित्सबर्गमें एक लड़ाकू वायुयान आनेवाला था। नगरके हज़ारों गोरे, भूरे और काले आदमी तमाशा देखनेके लिए मैदानमें इकट्ठे हुए थे। भिन्न-भिन्न रंगके व्यक्तियोंको अलग-अलग बैठने अथवा खड़े रहनेके लिए म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे बाड़े नहीं बनाए गए थे, इसलिए कुछ हिन्दुस्थानी अंगरेज़ोंकी भीड़के पीछे जाकर खड़े हो गए। उनके शरीरकी दुर्गन्धिसे श्वेतांगोंके सिरमें चक्कर आ गया। गोरोंने हल्ला मचाया; फ़ौजी सिपाहियोंको अपना युद्ध-कौशल दिखानेका अच्छा अवसर मिल गया। उन्होंने लाठियाँ उठाईं और उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

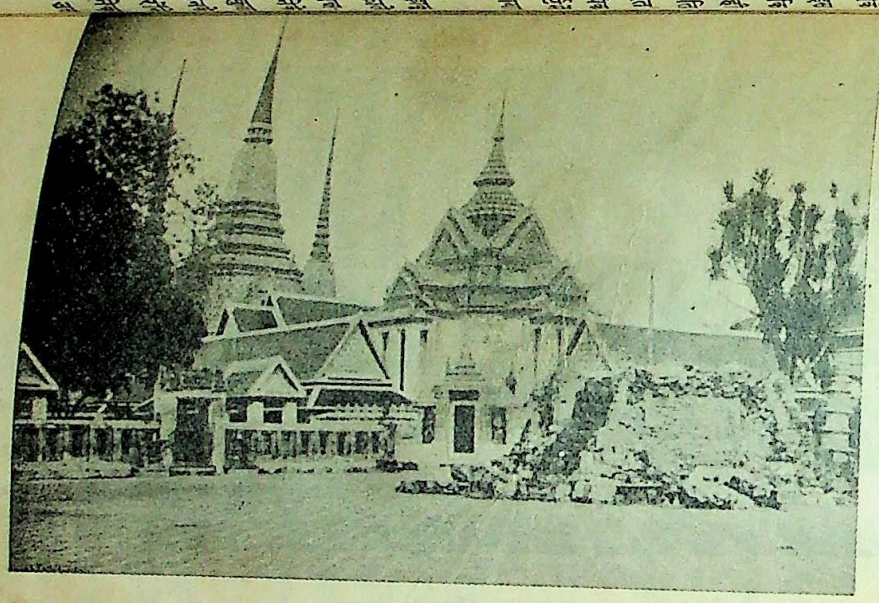

स्यामकी राजधानी बैंकाकका 'वात पो' मन्दिर।

रेलोंके प्रचलनसे पूर्व चैंगमाई और बेंकाकके बीच यात्री तथा माल लाने-ले जानेके काममें आनेवाली नौका।

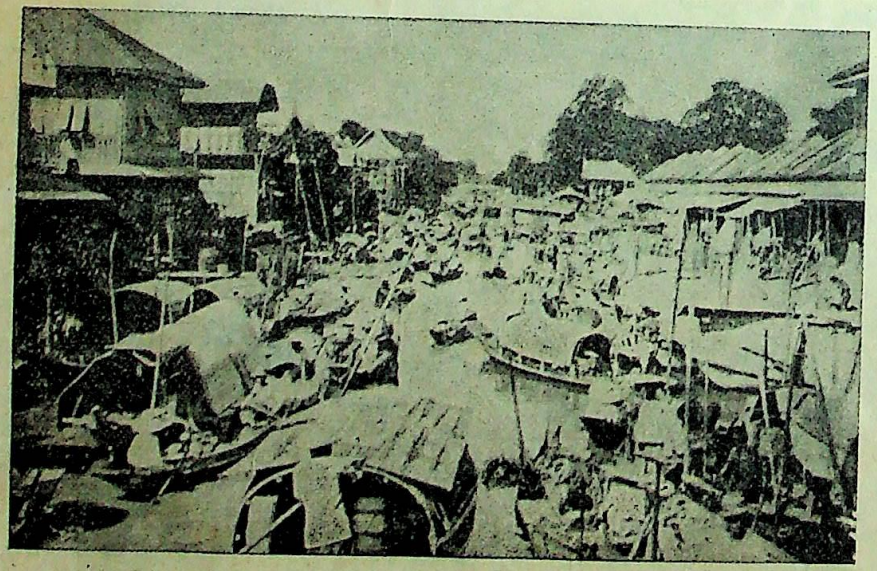

बैंकाककी नहरका 'क्लोंग महानक' नामक तैरता हुआ बाज़ार।

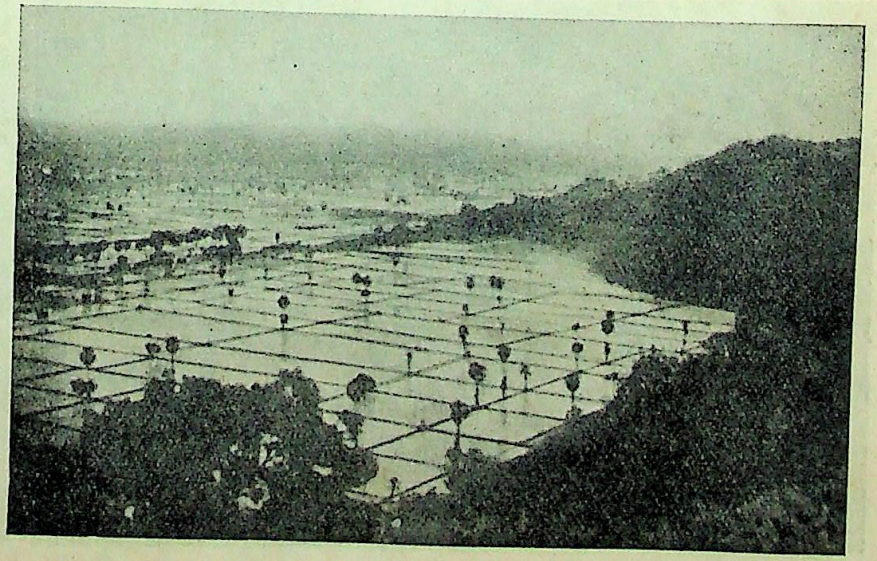

पेचाबुरी (केन्द्रीय स्याम) के धानके खेतोंका दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

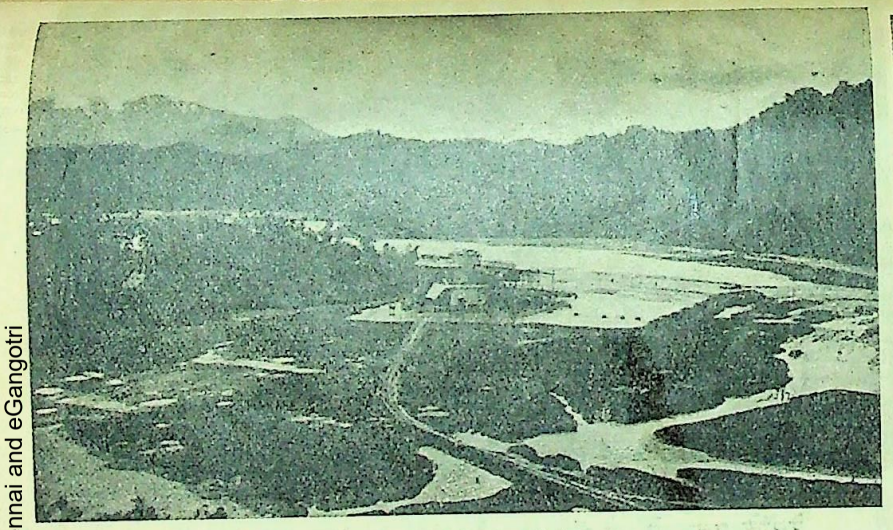

आधुनिक यन्त्रोंसे स्यामके नदी-गर्भसे टिन निकाला जाता है।

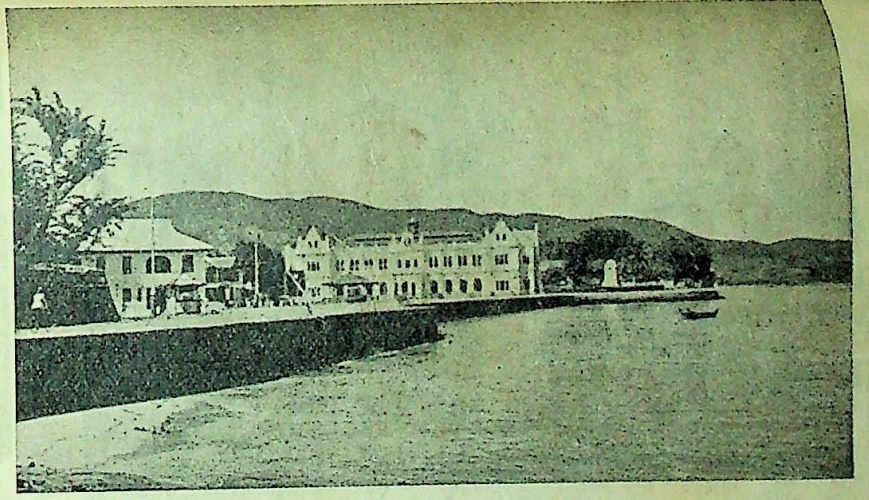

पेनांग (मलाया) का म्युनिस्पल-भवन।

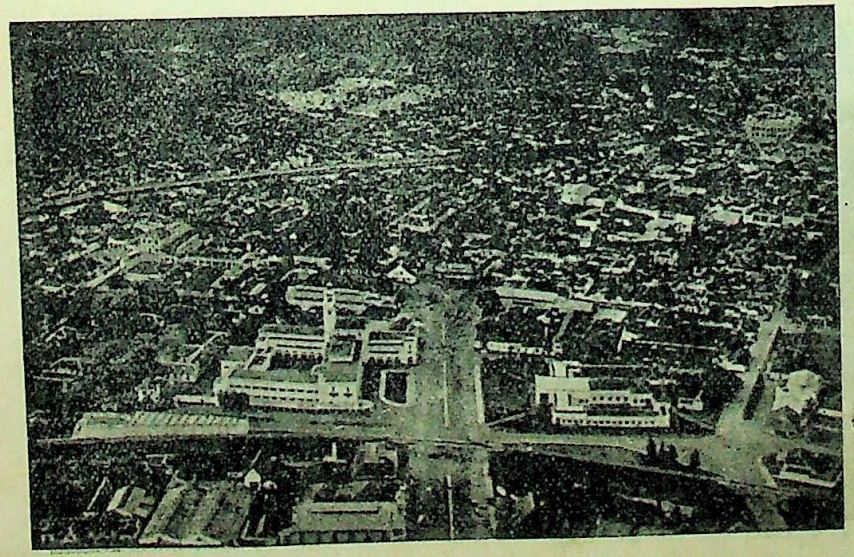

सुराबाया (यवद्वीप) नगरका एक दृश्य।

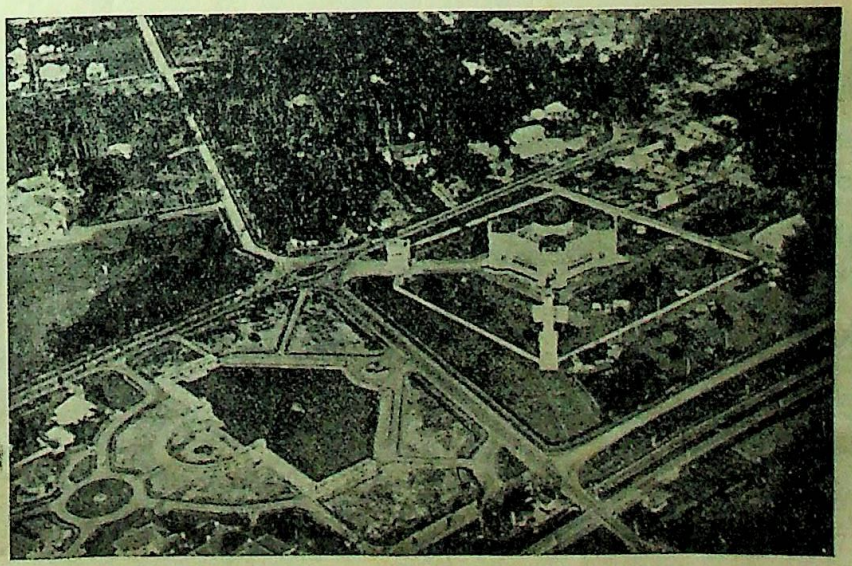

सुमात्राकी एक मस्जिदका वायुयानसे लिया गया चित्र।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीड़में से चुन-चुनकर भारतीयोंकी ऐसी मरम्मत की कि उनको छठीका दूध याद आ गया। औरतें और बच्चे भी उनके प्रहारसे नहीं बच सके। भारतीयोंमें आतंक छा गया। कैसा बीभत्स दृश्य था वह! हिन्दुस्थानी स्त्रियाँ अपमानित हो रही थीं और अंगरेज़ औरतें अट्टहास कर रही थीं तथा चिल्ला रही थीं—'इनको लात मारकर बाहर निकालो।' उस समय मैं दक्षिण-अफ्रीकामें ही था। इस घटनाके दूसरे दिन मेरित्सबर्ग जानेपर उन लोगोंको ज़बानी सारी कहानी सुनी थी, जो इस उपद्रवके चश्मदीद गवाह थे। 'नेटाल विटनेस' ने तो यहाँ तक लिखा था कि 'नाज़ियोंकी तूफ़ानी फ़ौजकी करतूतकी यह साउथ-अफ्रीकन आवृत्ति थी।'

इस मामलेमें आगे जो-कुछ हुआ, वह और भी दुःखजनक है। भारतके हाई-कमिश्नरने प्रधान-मंत्री जनरल स्मट्ससे इस बातकी शिकायत की। जवाब मिला कि जाँच की जायगी। अन्तमें हाई-कमिश्नरको सूचना मिली कि फ़ौजी अदालतके ख़्यालमें यद्यपि सिपाहियोंका आचरण वैसा नहीं था, जैसा होना चाहिए; किन्तु अदालत उनमें से किसीको भी मार-पीट अथवा अनुचित कृत्यके अपराधमें दण्ड देनेमें असमर्थ है! अफ़सोस है कि इस घटनापर हमारे पत्रकारोंका ध्यान नहीं गया। उन्होंने फ़िदम-प्रस्ताव एवं ब्रूम-कमीशनकी चर्चा करके ही सन्तोष कर लिया है। यह एक ऐसी घटना है, जो हमें अपनी पराधीनताकी याद दिलाती है। एक बार एक जापानीका साधारण-सा अपमान होनेपर तोकियो क्रोधसे उबल पड़ा था। तब गोरी सरकार और गोरी जनताको अक्ल ठिकाने आई और जापानियोंसे बराबरीका बर्ताव होने लगा। पर हमारी सरकार हम लोगोंके अपमानोंके बावजूद कुछ नहीं करती! यह हमारी पराधीनताका ही दोष है।

समालोच्य सालमें ट्रांसवाल एशियाटिक लैण्ड एण्ड ट्रेडिंग एक्ट, मोटर केरियर ट्रांसपोर्टेशन (अमेन्डमेन्ट) एक्ट, फ़ैक्ट्रीज़, मशीनरी एण्ड बिल्डिंग वर्क एक्ट, वर्कमेन'स् कम्पेन्सेशन एक्ट, लोकल हेल्थ कमीशन आर्डिनेन्स, डरबन एक्सटेन्डेड पावर्स आर्डिनेन्स आदि ऐसे क़ानूनोंकी सृष्टि हुई, जिनकी विस्तृत व्याख्या करना व्यर्थ है। केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि प्रवासी भारतीयोंके बचे-खुचे अधिकारोंपर क़ानूनके रूपमें यह सब निष्ठुर प्रहार हैं। यह सब अन्याय हो रहा है। भारतके हाई-कमिश्नर साहबकी उपस्थितिमें; किन्तु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बनता है। अतएव भारतीय जनताको यह पूछनेका अधिकार है कि फिर वे आखिर हैं किस मर्ज़की दवा?

सारी रिपोर्ट अन्यायमूलक गाथाओंका पुलिन्दा है; केवल दो बातें ऐसी हैं, जो प्रवासी भारतीयोंके हितमें हैं। एक तो पार्लमेंटमें फ़िदम-प्रस्तावके पास हो जानेसे ट्रांसवालके निर्धारित स्थानोंमें भारतीय भूमि खरीद सकते हैं। दूसरी मार्केकी बात यह है कि ब्रूम-कमीशनने अपनी रिपोर्टमें गौरांगोंके इस आक्षेपको कि भारतीय गौरांगोंके मुहल्लोंमें अधिकाधिक प्रवेश कर रहे हैं, बिल्कुल निराधार ठहराया है। कमीशनकी रिपोर्टसे गौरांगोंको सन्तोष नहीं हुआ है और नेटाल म्युनिसिपल एसोसिएशनने सर्वानुमतिसे एक प्रस्ताव पास करके सरकारसे प्रार्थना की है कि भारतीयोंको अलग बसानेके लिए शीघ्र ही क़ानून बनना चाहिए।

रिपोर्टमें मेरे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें नेटाल-इण्डियन-कांग्रेसका अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया है और उसको 'पुनर्गठित कांग्रेस'के नामसे सम्बोधित किया गया है। इस सम्बन्धमें अब तक भारत-सरकारकी बड़ी विचित्र नीति रही है। नेटाल-इण्डियन-एसोसिएशनको राजनिष्ठापर मुग्ध होकर उसने नेटाल-इण्डियन-कांग्रेसका नाम-निशान मिटानेमें कोई कसर उठा नहीं रखी है। कांग्रेसका अस्तित्व स्वीकार करनेके लिए भी वह तैयार नहीं थी, इसलिए जब कभी कांग्रेसकी ओरसे कोई पत्र जाता, तो उसका उत्तर आता हस्ताक्षर करनेवालेके नामसे, व्यक्तिगत रूपमें। आखिर विवश होकर भारत-सरकारको पुनर्गठित कांग्रेसकी हस्ती मंजूर करनी पड़ी, यह कांग्रेस-कर्मियोंके लिए सन्तोषकी बात है।

प्रवासी और स्वराज्य

भारतकी राष्ट्रीय प्रगतिकी ओर सभी अंगरेज़ोंकी टकटकी लगी हुई है, चाहे वे स्वदेशमें हों अथवा किसी उपनिवेशमें। इस अभागे देशको वे अपनी बपौती ज़ायदाद समझते हैं और यहाँके निवासियोंको अपना ज़रखरीद ग़ुलाम। भारतीयोंमें स्वराज्यकी भावना देखकर उनके तन-बदनमें आग लग जाती है और वे क्रोधोन्मत्त होकर अनाप-शनाप बकनेसे बाज़ नहीं आते। जिन अंगरेज़ोंको यहाँकी स्थितिका ककहरा भी नहीं मालूम, विस्मयकी बात है कि वे भी यहाँकी समस्याओंपर सम्मति देना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। यहाँ कोई भी राजनीतिक घटना होती है, तो तत्क्षण दक्षिण-अफ्रीकाके 'स्टार', 'डेली मेल', 'मरक्युरी', 'टाइम्स' आदि अखबारोंमें अग्रलेख निकलते हैं, जिनमें भारतीय राष्ट्रीयताको संसारकी दृष्टिमें गिरानेका प्रयत्न किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय ब्रिटिश-गायनाकी राजधानी जार्जटाउनसे प्रकाशित होनेवाला 'इंडियन ओपनियन' नामक मासिक पत्र मेरे सामने है, जिससे मालूम होता है कि इधर भारतमें क्रिप्स-मिशन विफल होता है और उधर ब्रिटिश-गायनामें चौबीस घंटेके अन्दर 'डेली आर्गोसी' नामक अंगरेज़ोंके अखबारमें अग्रलेख निकल जाता है। उसमें भारतीय राष्ट्रीयताको चुन-चुनकर गालियाँ तो दी ही जाती हैं; किन्तु वहाँके प्रवासी भारतीयोंको भी दग़ाबाज़, विश्वासघाती और राजद्रोही कहकर दिलके गुबार निकाले जाते हैं। इससे वहाँके प्रवासी भाइयोंमें आतंक छा गया है। ईस्ट-इंडियन-एसोसिएशनकी ओरसे जार्जटाउनके टाउन-हालमें एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें उपनिवेश-भरके भारतीय नेता सम्मिलित हुए। सभीने एक स्वरसे 'डेली आर्गोसी'के आक्षेपका प्रतिवाद किया और सर्वानुमतिसे एक प्रस्ताव भी पास हुआ, जिसमें उक्त अंगरेज़ी अखबारकी दूषित नीति और कलुषित मनोवृत्तिपर खेद प्रकट प्रकट किया गया।

वास्तवमें प्रवासी भाई अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी समस्या मातृभूमिकी समस्यासे बिलकुल भिन्न है। भारतीय राष्ट्रीयताके प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते हुए भी उन्होंने अपनी समस्यापर सदैव औपनिवेशिक दृष्टिसे ही विचार किया है। इस महायुद्धके सम्बन्धमें भारतका दृष्टिकोण कुछ और ही है; किन्तु प्रवासी भारतीयोंने ब्रिटिश साम्राज्यको सर्वप्रकारसे सहायता करना ही अपना लक्ष्य बनाया है। फिर भारतके राष्ट्रवादियोंका बदला उनसे चुकाना कहाँका न्याय है? आज स्वाधीनताकी प्याससे भारतका बच्चा-बच्चा तड़प रहा है और इस भावनासे ओत-प्रोत होना प्रवासियोंके लिए भी सर्वथा स्वाभाविक ही है; किन्तु वे जानते हैं कि भारतको आज़ादीकी लड़ाई भारत-भूमिमें ही लड़ी जा सकती है—किसी विशेष उपनिवेशमें नहीं।

पूर्वी अफ्रीकामें नई आफ़त

पूर्वी अफ्रीका-प्रवासी भारतीयोंके भाग्य-चन्द्रपर इस समय ग्रहण लगा हुआ है। इस भीषण महायुद्धके कारण योंही उनके कारबार और व्यापारकी स्थिति डवांडोल हो रही थी, उसपर अब 'युनाइटेड किंगडम कमर्शियल कार्पोरेशन'की प्रतिस्पर्द्धासे उनकी हस्ती ही खतरेमें पड़ गई है। इस अर्द्ध-सरकारी व्यापारी-मंडलकी नीति और प्रवृत्तिसे हमारे देशवासी बहुत-कुछ परिचित हैं और यहाँके दैनिक अखबारोंमें इसकी प्रायः चर्चा होती ही रहती है। पूर्वी अफ्रीकामें भी इस मंडलका ऐसा जाल फैल गया है, जो प्रवासी भारतीयोंके लिए नागपाश सिद्ध हो रहा है। सरकारकी ओरसे इसे विशेष सहायता और सुविधाएँ दी जा रही हैं। इसके आतंकसे भारतीय व्यापारी काँप रहे हैं। इसने एक प्रकारसे वहाँके कच्चे माल और उनको विदेश भेजनेके ज़रियोंपर एकाधिकार कर लिया है। इससे भारतीय व्यापारियोंके कष्टों और कठिनाइयोंकी सीमा नहीं है और दिन-पर-दिन उनके व्यापारका ह्रास होता जा रहा है। इस मंडलकी मर्ज़ीके बिना किसीको बाहर माल भेजनेके लिए जहाज़ोंमें जगह नहीं मिल सकती। इसलिए भारतीय व्यापारियोंको अपना माल बहुत सस्ते दामपर इस कार्पोरेशनके हाथ बेचनेको मजबूर होना पड़ रहा है। वहाँसे अन्यत्र माल भेजनेके लिए सरकारी लाइसेन्स भी लेना पड़ता है, जो इस कार्पोरेशनकी सहायता और सम्मतिके बिना नहीं मिल सकता। इससे भारतीय व्यापारियोंको झक मारकर इस कार्पोरेशनकी शरणमें जाना पड़ता है।

निर्यात करनेवाले भारतीय व्यापारियोंके हाथ-पाँव इस प्रकार बँध गए हैं। उनका रोज़गार चौपट हो रहा है और उनको ऐसी आर्थिक क्षति हो रही है, जिसे इस विकट कालमें सँभलना कठिन है। इस कार्पोरेशनकी करतूतसे टैंगेनिका-प्रदेशमें त्राहि-त्राहि मच गई है। ज़ंज़ीबार, यूगाण्डा और केनियाके भारतीय व्यापारी भी आतंकित हो रहे हैं। महायुद्धके कारण योंही उनके सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं; किन्तु इस नई आफ़तसे तो उनकी स्थिति और भी डावांडोल हो रही है। भारत-सरकारके प्रवासी-विभाग और उसके अध्यक्ष माननीय अणेको शीघ्र ही इस ओर ध्यान देना चाहिए।

—।—

एक आदर्श विवाह

'विशाल भारत'-परिवारके सुपरिचित स्वामी भवानीदयालजी संन्यासीके सबसे छोटे सुपुत्र भाई ब्रह्मदत्तका शुभ विवाह गत २० दिसम्बरको अजमेरके प्रवासी-भवनमें वैदिक रीति एवं आर्य विवाह-क़ानूनके अनुसार नागपुरके श्री लक्ष्मणराव डांगेकी सुपुत्री कुमारी निर्मलादेवीके साथ सुसम्पन्न हुआ। इस विवाहकी दो विशेषताएँ थीं। पहली तो यह कि विवाह अत्यन्त सादगीसे भारतीय संस्कृतिके अनुरूप एवं नाम-मात्र खर्चसे हुआ। दूसरी यह कि यह एक अन्तर्जातीय एवं अन्तर्प्रान्तीय विवाह था—वर बिहारी कायस्थ हैं और वधू महाराष्ट्रकी एक विदुषी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मसे ईसाई हैं ; किन्तु अब वैदिक धर्मको अपना चुकी हैं। वर-वधू दोनों ही सेवाव्रती और सुशिक्षित हैं। जहाँ यह सम्बन्ध 'विवाह' के सैद्धान्तिक आदर्शको निभाते हुए हुआ है, वहाँ इसका उत्सव एवं समारोह भी अन्ध-परम्परा, रूढ़िवाद और फ़ज़ूलखर्चीसे विहीन एक सामाजिक अनुष्ठान (Social Gathering) मात्र था। इसके लिए वर और वधू-पक्ष हार्दिक साधुवादके पात्र हैं।

जिस अभागे एवं पिछड़े हुए देशमें दहेज, सजातीयताके प्रतिबन्ध और सौदेकी घृणित मनोवृत्तिके कारण वयस्क हो जाने-पर भी कन्याओंके लिए सुयोग्य वर नहीं मिल पाते, जहाँ लोक-लाज और समाजमें थोथी प्रतिष्ठा बनाए रखनेके नामपर विवाहके दावत-दिखावे वर और वधू-पक्षोंको दिवालिया बना देते हैं, वहाँ ब्रह्मदत्त-निर्मला-विवाह निश्चय ही आदर्श कहा जायगा। जहाँ वर अपने सुयोग्य, कर्मठ एवं सेवाव्रती पिताश्रीके चरण-चिह्नोंपर चलनेवाले दृढ़व्रती एवं साहसी युवक हैं, वहाँ वधूने भी अपना जीवन प्रवासी भारतीयोंमें हिन्दी-प्रचार करनेका व्रत लेकर नई पौधकी नारियोंके सामने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। आजके युगकी नारी रसोईघरकी नौकरानी अथवा रंग-महलकी रानी नाम्नी मनबहलावकी कठपुतली नहीं है, यह इस विवाहने स्पष्ट कर दिया है। क्या हम आशा करें कि अन्ध-परम्परा और रूढ़ियोंके शवका बोझ ढोनेवाला समाज ऐसे विवाहोंसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेगा और जीवनकी इस आवश्यक

श्रीमती निर्मलादेवी और श्री ब्रह्मदत्त।

सहयोग-संस्थाको बन्धन और बोझ बनाते रहनेसे बाज़ आयगा?

—मो० सि० सेंगर

बलिदान

श्री पंडितजी

कृष्ण-पक्षकी शारदीया रजनीकी गोदमें क्योंतो नगर अपनी अशान्ति छुपाकर सो रहा था। जग रहे थे केवल आकाशसे मूक भावसे टुकुर-टुकुर उसकी असहायावस्था देखने-वाले उज्ज्वल तारे और मोमबत्तियोंके मन्द प्रकाशसे आलोकित एक कमरेमें बैठे दस युवक। सभी अल्हड़ देशभक्त, कठोर व्रती, आत्म-त्यागी और अदम्य उत्साहवाले थे। इस समय उनके सामने मुख्य प्रश्न था अपने देशको शोगन[1]के स्वेच्छा-चारिता, असहिष्णुता और व्यक्तिवादी शासनसे मुक्तकर वास्तविक स्वाधीनताके पथपर अग्रसर करना। शोगनने जिस कौशलके साथ मिकादो[2]को अपने हाथकी कठपुतली एवं निःसहाय खिलौना बना लिया था, उसपर सभी क्रुद्ध एवं असन्तुष्ट थे। पर उनके प्रचण्ड उद्बोधन-आवाहनके बावजूद जनतामें जो शिथिलता और अकर्मण्यता छाई थी, उसपर वे बार-बार खीझ उठते थे।

कमरेके बन्द द्वारकी ओर देखते हुए अराकाने कहा—'आज अनिष्टकी आशंका कुछ प्रबल दिखाई देती है। शायद हम सब आज ही धर लिए जायँ।'

१. मराठोंके शासक-कालमें जो प्रधानता एवं प्रभुत्व पेशवाओंका था, वही पिछली शताब्दियोंमें जापानमें शोगनका रहा है। यह पद वंशानुवंशगत होता था।

२. जापानके सम्राट मिकादो कहलाते हैं, जो शोगन द्वारा शासन-प्रबन्धसे सर्वथा पृथक् एवं अनभिज्ञ रखे जाते रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हो सकता है,'—किंचित् उदासीके साथ काकारुकाने द्वारकी ओर दृष्टि गड़ाते हुए कहा—'पर आखिर ऐसा हमने किया ही क्या है ? हम शोगनकी पदच्युति तो चाहते नहीं। पर उसकी स्वेच्छाचारिता और जनतापर होनेवाले मनमाने ज़ुल्मोंके खिलाफ़ आवाज़ उठाना तो हमारा मानवीय कर्त्तव्य ही है। फ्रांस और अमरीकाकी जनता जब स्वेच्छाचारिता और परतन्त्रताके विरुद्ध सिर उठा रही है, तो केवल हम ही इस नरकमें पड़े क्यों सड़ते रहें ?'

'तुम ठीक कहते हो भाई',—अराका बोला—'पर एक ओर यह कायर मिकादो डर और दब रहा है, दूसरी ओर जनता इतना ज़ुल्म-ज़बर्दस्ती सहकर भी चूँ तक नहीं करती और हम लोग तो हैं ही कितने ? हमारे नेता हिरोनुमाके बचनेकी आशा नहीं और हमारी स्वतन्त्रता चन्द दिनोंकी आशा-भर है।'

'जो-कुछ भी हो, अराका',—काकारुकाने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—'क्रान्ति किसी व्यक्ति-विशेषके द्वारा ही नहीं हुआ करती। उसका ज्वालामुखी तो जनताकी मनःशक्ति और उसके दृढ़ निश्चयकी गरमीसे ही फटता है ? संसारकी कोई भी शक्ति उसके आवेगको रोक नहीं सकती।'

'लेकिन जनताकी मनःशक्ति और दृढ़ निश्चय...'

अभी काकारुकाका वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि कमरेके दरवाज़ेपर एक ज़ोरका आघात हुआ, फिर दूसरा और तीसरे आघातके साथ वह टूटकर धड़ामसे नीचे आ गिरा और उसके पीछे दिखाई पड़े शोगनकी पुलिसके कई हथियारबन्द जवान ! दसों युवकोंके हाथोंमें हथकड़ियाँ भर दी गईं और उन्हें वहाँसे क्योतोके केन्द्रीय पुलिस-थानेमें ले जाया गया।

- २ -

शिन्तो-मतके प्रधान आचार्य, मिकादो और शोगनके सामने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रोंसे ढँको विवर्ण देह लिए हिरोनुमा उपस्थित किया गया। उसके हाथ-पाँव हथकड़ी बेड़ियोंसे आबद्ध थे। राज्य-अमात्यने कहा—'हिरोनुमा, देशके सर्वोच्च शासक मिकादो, सर्वोच्च धर्माचार्य ताओशी और सर्वोच्च सत्ताध्यक्ष शोगनको प्रणाम करो।'

विद्रोही हिरोनुमाने अपनी छाती फुलाकर गर्वके साथ पहले उत्तप्त-दीप्त दृष्टिसे राज्य-अमात्य और फिर बारी-बारीसे मिकादो, ताओशी और अन्तमें घृणापूर्वक शोगनकी ओर देखा और फिर व्यंग्यपूर्वक अट्टहास करके कहा—'सर्वोच्च ! ये नर-पुंगव, जो आज अपने काले कारनामोंसे जापानकी क्षुब्ध-त्रस्त जनताको पीड़ित और उसके पवित्र नामको कलंकित कर रहे हैं, इन्हें मैं नमस्कार करूँगा ? इतिहासके ये भूले हुए प्यादे प्रणाम नहीं, प्रतिशोध और प्रतिहिंसाके पात्र हैं। हा ! हा ! हा ! हा !'

धर्माचार्य और मिकादोके चेहरे पीले पड़ गए और शोगनकी आँखें क्रोध और अपमानसे जलने लगीं। राज्य-अमात्यके हाथका इशारा पाकर कुछ सैनिक कोड़े लेकर आगे बढ़े और हिरोनुमापर तड़ातड़ मार पड़ने लगी। आहत हो कराहता हुआ वह गिर पड़ा। दो सैनिकोंने आदेश पाकर उसे पकड़कर खड़ा किया और पासके एक खम्भेसे बाँध दिया।

राज्य-अमात्यने फर्द-जुर्म सुनानी शुरू की—'हिरोनुमा, तुमपर प्रधान-न्यायाधीशकी ओरसे राजद्रोहका अभियोग लगाया गया है।'

कराहता हुआ हिरोनुमा सजग हो गया। उसके चेहरेपर एक विचित्र तेज झलकने लगा। आवेशके साथ उसने कहा—'तब तो मुझे सन्तोष है, सुख है। प्रधान-न्यायाधीशने कोई ग़लती नहीं की। जिस राजकी नीति अन्याय, अत्याचार और स्वेच्छाचारिता हो, उसके विरुद्ध विद्रोह करना प्रत्येक नागरिकका प्राथमिक कर्त्तव्य है। वही मैंने भी किया है और जब तक इस शरीरमें दम है, करूँगा। तुम लुटेरे हो, चोर हो, अत्याचारी हो, अन्यायी हो और तुम्हारा सर्वनाश करना प्रत्येक जापानीका.....'

वाक्य पूरा होते-न-होते फिर उसपर कोड़े बरसने लगे और उसका स्वर कम्पित होकर टूट-सा गया। कुछ ही क्षण बाद न्यायका यह नाटक समाप्त हुआ और हिरोनुमाकी अर्द्ध-चेतन देहको घसीटकर फिर काल-कोठरीमें डाल दिया गया।

- ३ -

'हिरोनुमा, प्यारे हिरोनुमा !'—युवतीने क्षीण कण्ठसे पुकारा।

भूख, प्यास और कोड़ोंकी मारसे आहत हिरोनुमाने सीखचोंके पीछेसे देखा ; पर उसे कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं दिया। घसिटते-घसिटते वह अपनी कोठरीके द्वारके पास आया। अब उसे दिखाई दिया, उसकी सुन्दरी पत्नी सजल आँखोंसे उसकी ओर देख रही है। एक क्षण तक उससे कुछ भी नहीं बोला गया, फिर उसने सारा साहस बटोरकर कहा—'तोयामा, प्यारी तोयामा, मुझे दोष न देना। सचमुच मैंने तुम्हारे प्रति अपना कर्त्तव्य नहीं निबाहा ; पर इसमें मेरा क्या दोष ? तुम्हारे प्रेमपर देशका प्रेम, पीड़ितों और शोषितोंकी आहें विजय पा गईं। आज जो-कुछ तुम देख रही हो, यह उसी पागलपनका परिणाम है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह तुम क्या कह रहे हो',—तोयामाने कहा—'तुम्हें भला क्यों दोष दूँगी? तुमने जो-कुछ किया, ठीक ही किया है।'

'ठीक ही किया है!'—हिरोनुमा आह्लादसे चीख उठा। 'तब तुम भी मेरी बात और कामको ठीक मानती हो, तोयामा?'

एक फीकी मुस्कराहटके साथ तोयामाने कहा—'हाँ। इसीलिए तो तुम्हें बधाई देने आई हूँ और साथ ही एक खुश-खबरी भी सुनाने।'

'खुशखबरी? वह क्या?'

'मैं गर्भिणी हूँ।'

हिरोनुमा सन्न रह गया! उसपर मानो बिजली गिर पड़ी हो। उसकी सारी प्रसन्नता जैसे हवा हो गई। तोयामा कुछ समझ नहीं पाई। उसने कहा—'तुम उदास क्यों हो गए? क्या मेरे...'

'नहीं, नहीं',—बीच ही में बात काटते हुए हिरोनुमाने कहा—'चिन्ता और उदासीकी बात तो यह नहीं है। पर सोचता हूँ...'

'क्या सोचते हो, बोलो।'

'यही कि इस अन्यायी और अत्याचारी शासनमें...पर वह सब-कुछ नहीं। सुनो, अगर तुम्हारे लड़की हो, तो होते ही उसका गला दबाकर मार डालना। मेरी सन्तान पराधीन और सस्ती वेश्याओंकी संख्या-वृद्धि करे, यह मुझे सह्य नहीं। अगर लड़का हो, तो रोज़ उठकर मेरी यातनाओंकी दुःखगाथा उसे सुनाना और इस अत्याचारी एवं अन्यायी शोगन-शासनके विरुद्ध क्रान्ति करनेकी उसे शिक्षा देना। स्वर्ग या नरक जहाँ भी मैं जाऊँ, मेरी आत्मा अपने उत्तराधिकारीके कार्यसे शान्ति एवं तृप्ति लाभ करेगी। इसे भूल न जाना, समझीं।'

फिर कुछ क्षण दोनों चुपचाप सजल नेत्रोंसे एक-दूसरेकी ओर देखते रहे। इसी समय एक पहरेदारने आकर तोयामासे बाहर चले जानेको कहा और वह उसीके साथ बाहर चली गई।

- ४ -

हिरोनुमाके सब साथी फाँसीपर लटका दिए गए। उनकी लाशें नगरके खम्भों और वृक्षोंपर सड़नेको लटका दी गईं, जिन्हें देख-देखकर लोग भय और आतंकसे काँप उठते थे। आज वे हिरोनुमाका प्राण-दण्ड देखनेके लिए ड्योंढ़ी पीटकर बुलाए गए थे। शोगन-महलके सामने एक मैदान था, जिसके बीचमें एक चबूतरा बना था। उसपर लकड़ीके कई खम्भे खड़े थे। उन्हींमें से एकसे हिरोनुमा भी बँधा था।

शोगनके आनेकी घोषणासे भीड़में एक चहल-पहल-सी नज़र आई। सबके चेहरे और आँखें घृणा तथा क्षोभ प्रकट कर रहे थे। पर जब उनके बीचमें से चार घोड़ोंके रथमें शोगन निकला, तो किसीने चूँ तक नहीं की। चबूतरेपर रखे एक उच्चासनपर जाकर शोगन बैठ गया। उसका संकेत पाकर कुछ सैनिक हिरोनुमापर कोड़े बरसाने लगे। हिरोनुमा कराहने लगा और उसके शरीरसे खून निकलने लगा।

गर्वके साथ शोगनने कहा—'हिरोनुमा, अब भी समय है। तुम माफ़ी माँग लो, तो तुम्हें छोड़ा जा सकता है।'

'माफ़ी? किस बातकी माफ़ी? और फिर तुमसे माफ़ी माँगूँगा? नीच, अन्यायी, अत्याचारी, अमानव कहींके!'

शोगनका चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा। फिर उसने इशारा किया और हिरोनुमाकी क्षत-विक्षत देहपर कोड़े बरसने लगे।

पीड़ा बढ़ती जा रही थी। हिरोनुमा फिर कराहने लगा। उसको सम्बोधित करके शोगनने कहा—'अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। क्षमा माँग लो, तो अब भी तुम्हें छोड़ा जा सकता है।'

'नहीं, नहीं, नहीं',—हिरोनुमा चीख उठा—'नहीं। अपने प्राणोंके मोहसे मैं अपने और जापानकी पीड़ित-शोषित मूक जनताके प्रति विश्वासघात नहीं करूँगा।'

इसी समय एक गोली हिरोनुमाकी छातीके पार हो गई। लहूकी एक धारा बह निकली और खम्भेसे बँधी हुई उसकी देह दोहरी होकर लटक गई।

शोगन जिस आवेग और उत्साहसे आया था, उसी गर्व और वीरताके साथ भीड़को चीरता हुआ लौट गया। सब लोग उत्तेजित, क्षुब्ध, किन्तु निश्चल खड़े रहे। सबकी आँखोंमें खून उतर आया था; पर एक जड़ता, एक अकर्मण्यता उन्हें पाषाणकी तरह निर्जीव बनाए थी।

भीड़में से किसीने कहा—'देखा उसका साहस और मर्दानगी? हिरोनुमा स्वतन्त्र जापानके इतिहासमें अमर रहेगा।'

'शायद रहे',—दूसरेने अन्यमनस्क भावसे कहा—'पर क्या इस तरह मरनेसे शोगन-सत्ताका अन्त हो जायगा?'

'बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाते। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो और किसी दिन मूक, जड़, अन्ध-परम्परानुयायी जापानी अपनी सच्ची स्वाधीनता, आत्म-निर्णय और लोक-शासनके लिए एक व्यक्तिकी तरह उठेंगे ही।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्डिया-ऑफ़िस

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

"That this Congress considers the abolition of the Council of the Secretary of State for India, as at present constituted, the necessary preliminary to all other reforms."

First Congress, 1885 (Bombay)

इण्डिया-आफ़िस मिटा दिया जाय! यह नारा निर्दल-सम्मेलनके अध्यक्ष राइट आनरेबल सर तेजबहादुर सप्रूने बुलन्द किया है। सर तेज गरम-दली नहीं हैं। इसके विपरीत वे नरमोंमें नरम हैं। वे हिम-शिखर हैं। रोष और आवेशमें वे कोई बात नहीं कहते। वे क़ानूनी मस्तिष्कसे जिस युक्तियुक्त निर्णयपर पहुँचते हैं, उसीको कहते हैं। वे अपने विचारों और विश्वासोंके प्रति सच्चे और ईमानदार हैं। वे अपने विश्वासोंको निडरता और साहसके साथ प्रकट करनेकी प्रबल क्षमता रखते हैं। वे समान भावसे गांधी-नीति और लिनलिथगो-नीतिकी निन्दा करनेका साहस रखते हैं। अपने विश्वासोंके प्रति वफ़ादारी और ईमानदारी उनकी बहुत ऊँचे दर्जेकी है। इसके पीछे उन्होंने अपने राजनीतिक जीवनके आदि संगी-साथियोंका मोह भी नहीं किया और उनको छोड़ दिया। १९३० में गोलमेज़-कान्फ्रेन्सके अवसरपर उन्होंने अपने हाथोंसे रोपे, सींचे, पोसे लिबरल-फेडरेशनका भी त्याग कर दिया और अपनेको 'राजनीतिक अनाथ' कहाना पसन्द किया, यूनीटरी गवर्मेन्टके बजाय फेडरल गवर्मेण्टकी स्थापनाके पक्षमें प्रचार किया। होर-लिनलिथगो-योजनाका सारे देशने विरोध किया; मगर सर तेजका विश्वास था कि यह योजना जैसी भी है, अमलमें आनी चाहिए, और इसको उन्होंने छिपाया नहीं। इस योजनाको सफल बनाने और अमलमें लानेके लिए उन्होंने लार्ड लिनलिथगोसे कम यत्न नहीं किया। १९३७ में जब प्रान्तीय गवर्नरोंने कांग्रेस द्वारा मांगा वचन और आश्वासन देनेसे इन्कार कर दिया, तब गवर्नरोंके पक्षमें वैधानिक दृष्टिसे अपना मत सर्वप्रथम देनेमें वे पीछे नहीं रहे। वे आन्दोलनकारी नहीं हैं। उनके इस नारेके पीछे वाइसरायकी कौंसिलकी सदस्यताका गहरा अनुभव है। इसलिए जब सर तेज कहते हैं कि 'इण्डिया आफ़िस मिटा दिया जाय', तो समझना चाहिए कि इस अर्थ-गम्भीर गिराके साथ समस्त राष्ट्रका हृदय ध्वनित हो रहा है और यह उसकी न्यूनतम और नरमसे नरम मांग है।

इण्डिया-आफ़िसको मिटा देनेकी मांग नई नहीं है, बल्कि कांग्रेसके जन्मके समान पुरानी है। १८८५ के अपने पहले अधिवेशनमें कांग्रेसने दूसरे प्रस्ताव द्वारा आवाज़ बुलन्द की थी कि इण्डिया-आफ़िस मिटा दिया जाय और इसको अन्य शासन-सुधारोंके लिए आवश्यक प्रारम्भिक सुधार घोषित किया था। इस मांगके औचित्यको बताते हुए कांग्रेसके चौथे प्रेसिडेण्ट जार्ज यूलने कहा था कि भारत-मन्त्री ड्यूक आरगिलने १८७० में लार्ड मेयोके ज़मानेमें इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया कि भारत-मन्त्रीका शासनाधिकार केवल भारत-सरकार द्वारा पास किए क़ानूनोंको 'वीटो' करना नहीं है। भारत-मन्त्रीका मत था कि भारत-सरकार ब्रिटिश गवर्मेण्टकी केवल कार्यकारी अफ़सर है। आपने २४ नवम्बर, १८७० के अपने खरीतेमें लिखा कि—

'The Government in India were merely Executive officers of the Home Government, who hold the ultimate power of requiring the Governor-General to produce a measure and of requiring also all the Official Members of the Council to vote for it.'

इसके बादसे भारत-मन्त्री महान मुग़ल सम्राट बना हुआ है। इस स्थितिको संक्षेपमें बताते हुए मि० यूलने निराशाके साथ कहा था—'भारत-सरकार अधिकारहीन है, लन्दनकी कौंसिल सत्ता-शून्य है, आम-सभाके पास सत्ता और शक्ति है, मगर वह उसको अमलमें लानेसे इन्कार करती है या उसकी उपेक्षा करती है।' इसका अर्थ यह हुआ कि भारत-मन्त्री सर्वाधिकारी और ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त भारतका डिक्टेटर है।

सर विलियम वेडरबर्नने कांग्रेसके पाँचवें अधिवेशनके अध्यक्ष आसनसे बोलते हुए इण्डिया-कौंसिलके कार्यको स्वांग, जाल और धोखा बताया था। २८ वीं कांग्रेसके अध्यक्ष नवाब सय्यद मोहम्मदने भी इण्डिया-आफ़िसका अन्त करनेकी मांग की थी। १८९६ में कलकत्ता-कांग्रेसने अन्य शासन-सुधारोंके साथ इण्डिया-कौंसिलका अन्त करनेका प्रस्ताव स्वीकार किया था। इससे प्रकट है कि भारतमें राजनीतिक अनुभूति उत्पन्न होनेके साथ ही इण्डिया-आफ़िसको मिटानेकी मांग भारतकी ओरसे की गई थी।

इस मांगकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि समझनेके लिए भारतमें ब्रिटिश शासनके तीन पुर्जोंको समझना ज़रूरी है। शासनका नियन्त्रण करनेवाली पहली मशीनरी है हूवाइट-हाल, दूसरे भारतके अफ़सर—विशेषतः आई० सी० एस०—तीसरी समय-समयपर भारत भेजे जानेवाले जाँच-कमीशन। इनमें इण्डिया-आफ़िस एक भाग है; मगर पहलेका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। तथा, पार्लमेण्ट और मन्त्रिमण्डल (जिसके प्रति भारत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्री प्रत्यक्ष रूपसे भारतीय मामलोंके लिए ज़िम्मेदार हैं) शासन-प्रबन्धके नवागन्तुक भाग हैं, और इण्डिया-कौंसिल ओर इण्डिया-आफ़िस विशेषज्ञोंको प्रदान करता है।

इनमें से ताज राज्य करता है; मगर शासन नहीं करता। भारतीय मामलोंमें ब्रिटिश पार्लमेण्टकी उदासीनता और उपेक्षा प्रसिद्ध ही है। भारत-मन्त्रीकी नवसिखुआ प्रकृति होनेसे भारतीय शासन शक्तिशाली नौकरशाहीके हाथमें है। इण्डिया-कौंसिल द्वारा (जिसके अधिकांश सदस्य भारतसे अवकाश-प्राप्त होते हैं) न केवल इस नौकरशाहीके आधे ब्रिटिश भागका प्रतिनिधित्व होता है, बल्कि इण्डिया-आफ़िस द्वारा भी होता है, जो नाममात्रको 'होम सिविल सर्विस'का भाग है; मगर नौकरशाहीसे किसी क़दर कम नहीं है। ब्रिटिश जनता और पार्लमेण्टका घरेलू, पर-राष्ट्रीय तथा आयरिश मामलोंकी ओर अधिकाधिक ध्यान है। भारतीय मामलोंकी पेचीदगी और गुत्थियाँ अधिकाधिक बढ़ने और पार्लमेण्टके चुनावके भारतीय समस्यासे सम्बन्ध नहीं रखने तथा भारत-मन्त्री हेनरी फाउलरने इस सिद्धान्तके माने जानेसे कि ब्रिटिश पार्लमेण्टका हरएक सदस्य भारतका शासक है; साम्राज्यके इस समुज्वल रत्नकी रक्षा करना प्रत्येकका कर्त्तव्य है तथा १८५७ की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए ऐतिहायतन काममें लाए गए उपायोंका समथन सबको करना चाहिए; ब्रिटिश नौकरशाहीके हाथमें भारतीय शासन पूर्णरूपसे चला गया है। इस स्थितिका प्रथम गोलमेज़-कान्फ्रेन्समें सर तेजबहादुर सप्रूने बड़े सुन्दर शब्दोंमें वर्णन किया था। उन्होंने कहा था कि भारतका शासन लन्दनमें बैठे आधे दर्जन अंगरेज़ों और दिल्लीमें बैठे आधे दर्जन अंगरेज़ोंके हाथोंमें है। इनमें ६००० मील दूरसे भारतीय शासनकी बागडोर सँभालनेकी आवश्यक शक्ति, ज्ञान, अनुभव और क्षमता है। ब्रिटिश पार्लमेण्ट भारतके मामलेमें एक जनतन्त्रात्मक संस्था न होकर वेस्ट-मिंस्टरमें जमा नियामक संस्था है।

इण्डिया-कौंसिल इण्डिया-आफ़िसकी पूरक है। यह भारतीय अनुभवका ही नहीं, बल्कि वर्त्तमानका भी प्रतिनिधित्व करती है। इसके 'बोर्ड आफ़ एडवाइज़र्स'में रूपान्तरित होनेसे पहले इण्डिया-कौंसिलके सौ सदस्य अंगरेज़ हुए, और उनमें से अधिकांश भारतसे लौटे अनुभवी पक्के नौकरशाह थे। पैसे और नौकरीके बारेमें कौंसिल शक्तिशाली थी। विधानसे अनेक मामलोंमें बहुमतका होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त व्यक्तिशः हरएक सदस्य अमित प्रभाव रखता है। हरएक सदस्य किसी प्रान्त, किसी विषय व किसी महकमेका विशेषज्ञ माना जाता है और उसको अपने विभागमें मनमाना करनेकी उस समय तक छूट है, जब तक कि अन्य सदस्योंके कार्यमें वह हस्तक्षेप नहीं करता।

एडमण्ड बर्कने इंग्लैण्डके अन्दर भारतीय शासन निष्पक्ष समितिके हाथोंमें देनेकी बात कही थी। फ़ाक्सका 'इण्डिया-बिल' इस आवश्यकताको पूरा भी करता था। बर्कने इसको भारतका 'मैग्नाचार्टा' (अधिकार-पत्र) कहा था। मगर वह पास न हो सका। इसके बाद फिर कोई ऐसा प्रयत्न नहीं किया गया। मगर १८५८ में भारतका शासन 'ताज' के हाथमें जानेसे पहले कम्पनीके शासनपर दो प्रकारसे पार्लमेण्टका नियन्त्रण रहता था। पहले तो पार्लमेण्टके सदस्य ईस्ट इण्डिया कम्पनीको ईर्ष्याकी नज़रसे देखते थे, दूसरे हर तीस साल बाद कम्पनीका अधिकार-पत्र नया किया जाता था और उस समय उसको अपने शासनका औचित्य सिद्ध करना पड़ता था। मगर १८५८ के बादसे यह नियन्त्रण उठ गया। इसके बाद भारत-मन्त्रीकी कौंसिल सर विलियम वेडरबर्नके शब्दोंमें भारतीय शासनकी शिकायतें सुननेके लिए 'सीक्रेट कोर्ट आफ़ अपील' हो गई। वे पहले भारतमें एक विषयका निर्णय करते हैं। बादमें वे ही पुनः 'वेस्ट-मिंस्टर' में जमा होकर 'इण्डिया-कौंसिल' के सदस्योंके रूपमें अपने निर्णयके विरुद्ध की गई अपीलपर विचार करते हैं। इसका फल यह होता है कि जब इण्डिया-आफ़िसकी किसी निर्णयपर मुहर लग जाती है, तब पार्लमेण्टमें सारा सरकारी पक्ष उसका समर्थन करता है और उसको बदलवानेके लिए स्वतन्त्र सदस्यों द्वारा किया गया प्रयत्न निष्फल जाता है।

सर विलियम वेडरबर्नने इस प्रसंगमें कुछ मज़ेदार उदाहरण दिए हैं। पहला मामला 'ब्रेक आफ़ गेज-कन्ट्रोवर्सी' नामसे प्रसिद्ध है। जनरल स्ट्राशी वाइसरायकी कौंसिलके तामीर-सदस्य थे। आपने भारतीयों, यूरोपियनों, सरकारी और ग़ैर-सरकारी मतकी अवहेलना करके रेलवे-गेज अपनी इच्छाके मुताबिक निश्चित की। बादमें इसके विरुद्ध भारत-मन्त्रीसे अपील की गई। इस समय जनरल स्ट्रेशी इण्डिया-कौंसिलके सदस्य हो गए थे। लोग तो यह समझ रहे थे कि उन्होंने भारत-सरकारके निर्णयके विरुद्ध भारत-मन्त्रीसे अपील की है; मगर वस्तुतः उन्होंने जनरल स्ट्रेशीके निर्णयके विरुद्ध भारत-मन्त्रीके रेलवे-सलाहकार जनरल स्ट्रेशीसे अपील की थी!

सर विलियम वेडरबर्न और उनके सहयोगियोंने भारतीय किसानोंके कर्ज़को दूर करनेके लिए जर्मन पद्धतिपर भारतमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि-बैंक स्थापित करनेकी योजना बनाई। बम्बई-सरकारने इसको पसन्द किया और इसका परीक्षण करना स्वीकार किया। लार्ड रिपनकी सरकारने उस योजनाको भारत-मन्त्रीके पास स्वीकृतिके लिए भेजा। भारत-सरकारके अर्थ-सदस्य सर एवेलिन बारिंगने पुराने कर्ज़को दूर करनेके लिए ५ लाख रुपया देना स्वीकार किया था। इंग्लैण्डमें इस योजनाका स्वागत किया गया। इसके समर्थनमें हुई एक सभाका मि० जान ब्राइटने सभापतित्व ग्रहण किया। लन्दनके दैनिक पत्रोंने इसका स्वागत किया। मैंचेस्टर चेम्बर्स आफ़ कामर्सने भारत-मन्त्रीको इसके पक्षमें आवेदन-पत्र भेजा। मगर लार्ड रिपनकी सरकार द्वारा भेजा गया बिल इण्डिया-आफ़िससे जीता नहीं निकला। जर्मनीमें अकेले उस समय २०० कृषि बैंक खुले हुए थे। मगर पार्लमेण्टमें भारत-मन्त्रीकी ओरसे कहा गया कि योजना व्यावहारिक नहीं है।

भारतमें प्रेस-एक्ट बननेके समय सर विलियम ली-वारनर इण्डिया-कौंसिलके सदस्य थे और लार्ड मारले भारत-मन्त्री। वे प्रेस-एक्टको नापसन्द करते थे और उसपर अपनी मंजूरी नहीं दे रहे थे। उनके उदार सिद्धान्त उनको यह करनेसे रोकते थे। दैवयोगसे उस समय बम्बईके सिविलियन मि० ए० सी० किनकेड छुट्टीपर लन्दन गए हुए थे। सर विलियम ली-वारनरने मि० किनकेडके साथ मिलकर एक जाल रचा, जिससे लार्ड मारले प्रेस-एक्टपर अपने दस्तखत करनेको बाध्य हों। मि० किनकेडने इसके अनुसार प्रेस-एक्टके पक्षमें लन्दनके पत्रोंमें एक लेखमाला लिखी। यह चाल काम कर गई। इस प्रकार इण्डिया-आफ़िस नौकरशाहीकी मेहराबकी आधार-शिला है।

भारत-मन्त्री और पार्लमेण्टरी उपभारत-मन्त्री—जो मन्त्रि-मण्डलके परिवर्त्तनके साथ बदलते रहते हैं—के नीचे 'परमानेण्ट अण्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फ़ार इण्डिया' के नियन्त्रण, प्रबन्ध और देख-रेखमें इण्डिया-आफ़िसका काम होता है। इस शक्तिशाली व्यक्तिके नीचे तीन असिस्टेण्ट-सेक्रेटरी और एक और अण्डर-सेक्रेटरी हैं। इसके बाद कर्मचारियोंके चार दर्जे हैं। इनमें सर्वोच्च 'एडमिनिस्ट्रेटिव डिविज़न' है, जो भारतके आई० सी० एस० के समान है। १९३८ में इसमें ग्यारह विभागीय अध्यक्ष, १९ प्रिन्सिपल्स और ११ असिस्टेण्ट प्रिन्सिपल्स थे। इसके बाद 'एक्ज़ीक्यूटिव डिविज़न' हैं। इनमें ७ हैं एकाउण्टेण्ट जनरलके महकमेमें, ३ सेनामें, १९ हायर एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर और २२ एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर हैं। इसके बाद क्लर्कोंकी श्रेणीका नम्बर आता है। इसमें ३० हायर क्लेरिकल और २२५ साधारण अफ़सर हैं। इसके अतिरिक्त ४ फर्स्ट-ग्रेड क्लेरिकल असिस्टेण्ट हैं। इन सबके नीचे ५४ आदमियोंकी शार्टहैण्ड टाइपिस्टोंकी श्रेणी है। मगर ६ दफ़्तर, रिकार्ड-कीपर्स और लाइब्रेरियन और उसका स्टाफ़, जिसमें ४० व्यक्ति हैं, इसके अन्तर्गत नहीं हैं। इनके अलावा १६ सन्देशवाहक भी हैं। इसके बाद विविध नियुक्तियाँ आती हैं, यथा लीगल-एडवाइज़र, मेडिकल-बोर्ड, पोलिटिकल ए० डी० सी० आदि। इस प्रकार इण्डिया-आफ़िसमें लगभग ५०० आदमी हैं, जिनमें से एक-चौथाई स्त्रियाँ हैं।

ह्वाइट-हालके अन्य आफ़िसोंके विपरीत इण्डिया-आफ़िसमें नौकरशाही-तत्त्वकी प्रधानता है। परमानेण्ट अण्डर-सेक्रेटरी अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्ति है। सर लुइस मैलेट (१८७४-८३ तक परमानेण्ट अण्डर-सेक्रेटरी थे) ने अपने उत्तराधिकारीकी नियुक्तिके विषयमें भारत-मन्त्री ड्यूक आरगिलको सलाह दी थी कि इस पदपर ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाय, जो नौकरशाहीकी भावनाका प्रतिरोध करे, भारतीय शासनके काले पहलुओंपर रोशनी डाले और इंग्लैण्डके सार्वजनिक जीवनके सम्पर्कमें राजनीतिक शिक्षा पाया हुआ उसीके विचारोंका हो, तथापि उदार विचारोंसे सहानुभूति रखता हो। सर लुइसने यह बात अपने नौ सालके अनुभवसे लिखी थी।

मगर भारतके दुर्भाग्यसे तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समयोंमें इण्डिया-आफ़िस भारतसे अवकाश-प्राप्त सिविलियनोंके नियन्त्रणमें था। भारतका शासन जब कम्पनीसे ताजने लिया, उस समय अवकाश-प्राप्त कवनेण्ट सिविल सर्वेण्ट सर जार्ज क्लार्क परमानेण्ट अण्डर-सेक्रेटरी थे। पिछली लड़ाई और मांट-फोर्ड-सुधारोंके बननेके समय सर टामस होल्डरनेस (१९१२-२०) परमानेण्ट अण्डर-सेक्रेटरी थे। डायर्कीके प्रारम्भिक दिनोंमें सर विलियम ड्यूक (१९२०-२४) इस पदपर थे। ये दोनों इण्डियन सिविल-सर्विसके आदमी थे। इसके अतिरिक्त अन्य पदोंपर भी इण्डिया-सर्विसके अंगरेज़ोंका एकाधिकार है। यथा पोलिटिकल ए० डी० सी० भारत-सरकारके पोलिटिकल डिपार्टमेण्टका कोई अवकाश-प्राप्त व्यक्ति होता है। इण्डिया-आफ़िसके मेडिकल-बोर्डके प्रेसिडेण्ट और सदस्य आई० एम० एस० अवकाश-प्राप्त अंगरेज़ ही होते हैं। भारत-मन्त्रीका क़ानूनी सलाहकार भारतीय हाईकोर्टका कोई रिटायर्ड अंगरेज़ जज होता है। वही सालीसीटरका भी कार्य करता है। रेलवे-एडवाइज़र जो इण्डियन रेलवे कम्पनियोंका गवर्नमेण्ट डाइरेक्टर भी है, इण्डियन रेलवे-सर्विसका पेन्शनर है। आनुपातिक पेन्शनपर भारतसे रिटायर्ड हो जाते हैं, वे भी इण्डिया-आफ़िसमें ले लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। यथा सर विलियम डाब्सन इस समय असिस्टेन्ट सेक्रेटरी हैं। आप भारतमें १६ साल (१९०५–२१) आई० सी० एस० में रहे हैं। डा० एच० एन० रैण्डले चीफ़-लाइब्रेरियन हैं। आप २२ साल (१९०५-२७) आई० ई० एस० में रहे हैं। भारतसे कुछ अफ़सर इण्डिया-आफ़िसमें कुछ विषयोंमें विशेषज्ञ होनेके लिए भेजे जाते हैं। सेनापर गए क्लर्कोंकी जगह काम करनेके लिए पिछली लड़ाईमें और सम्भवतः इस लड़ाईमें भी सीनियर सिविलियनोंको अस्थायी तौरपर रखा गया था। विभिन्न कमेटियों और कमीशनोंके साथ इण्डिया-आफ़िससे अफ़सर भारत भेजे जाते हैं। वे यहाँ कुछ पदोंपर भी नियुक्त करके भेजे जाते हैं। यथा मि० पी० जे० पैट्रिक, जो इण्डिया-आफ़िसमें असिस्टेण्ट सेक्रेटरी (पोलिटिकल इण्टरनल डिपार्टमेण्ट) हैं, भारत-सरकारके सेना-विभागमें ८ मास अस्थायी सेक्रेटरी रहे, फिर बिहार-गवर्नरके सेक्रेटरी रहे और १९२८ में इण्डियन स्टेट्स इन्क्वायरी कमेटीके ज्वाइन्ट-सेक्रेटरी रहे। वाइसरायके वर्त्तमान प्राइवेट सेक्रेटरी सर एच० जे० लैथवेट इण्डिया-आफ़िसमें सर्विसेज़ एण्ड जनरल डिपार्टमेण्टमें प्रिन्सिपल थे।

इससे स्पष्ट है कि इण्डिया-आफ़िसका कार्य नौकरशाहीकी दृढ़ परम्परापर चलता है। सर विलियम वेडरबर्नने इसको ब्रिटिश जनतन्त्रकी शुभेच्छा और भारतकी राष्ट्रीय माँगोंके बीच दुर्वाहक माध्यम बताया था। यातायात और बाहुतकीके आधुनिक आविष्कारोंने भारतपर इण्डिया-आफ़िसका पूर्णरूपसे शासन और नियन्त्रण स्थापित कर दिया है। लार्ड मारलेके सामने आजसे तीस साल पहले 'हाबहाउस-कमीशन आफ़ डिसेण्ट्रलाइज़ेशन'के एक सदस्यने स्वीकार किया था कि अकेन्द्रीकरणकी पहली चीज़ इण्डिया-आफ़िस है। तफ़सीलमें इण्डिया-आफ़िस द्वारा हस्तक्षेप करनेकी शिकायत अनेक वाइसरायोंने की है। १९३१ में इंग्लैण्डने जब 'गोल्ड-स्टैण्डर्ड'का त्याग कर दिया था, तब भारत-सरकारने भी सर जार्ज शुस्टर (अर्थ-सदस्य) की प्रेरणासे गोल्ड-स्टैण्डर्डका त्याग कर दिया था। मगर भारत-मन्त्रीने भारत-सरकारको रुपएका सम्बन्ध स्टर्लिंगसे स्थापित करनेको बाध्य किया। मि० माण्टेग्यूने तो भारत-सरकारको लार्ड मिण्टोकी एजेन्सी द्वारा कार्य करनेवाला बताया था। इसका वाइसरायने निष्फल तीव्र प्रतिरोध किया था। अनुभव और कार्यक्षमताके बावजूद इण्डिया-आफ़िसका काम बहुत देरसे होता है। लार्ड क्रूके शब्दोंमें छोटी-छोटी बातोंमें भी असह्य देर हो जाती है। डा० जो० मकग्रेगर डाब्सनने कहा था कि इण्डिया-आफ़िस भी 'नौकरशाही पापों'से मुक्त नहीं है। मि० माण्टेग्यूने कहा था कि जिन नियामक क़ानूनोंके शब्द-जाल द्वारा इण्डिया-आफ़िसका काम संचालित होता है, उनकी साधारण नागरिक कल्पना भी नहीं कर सकते। जान बूकनने भी इण्डिया-आफ़िसकी कच्छप-गतिकी शिकायत की है।

इण्डिया-आफ़िसके हटनेसे भारत-मन्त्री सरकारी फ़ाइलोंसे अनुप्राणित नहीं होगा। वह भारतका 'महान मुग़ल' भी न रहेगा। मि० माण्टेग्यूके समान पार्लमेण्टमें उसको यह न कहना पड़ेगा कि वह इण्डिया-आफ़िसकी सलाहके विरुद्ध पार्लमेण्टके आदेशको माननेमें असमर्थ है और अपना भी मालिक नहीं है। १८९४ में आम-सभाने भारत और इंग्लैण्ड दोनों जगह एक साथ आई० सी० एस० परीक्षा होनेके पक्षमें प्रस्ताव पास किया था; मगर वह अमलमें नहीं आया। इण्डिया-आफ़िसके मिट जानेसे पार्लमेण्टकी अवहेलना न होगी। भारत सरकारकी प्रकट इच्छाके विरुद्ध ब्रिटिश व्यवसाइयोंके दबावसे भारतीय उद्योगोंका १८७४ में जो गला घोटा गया, उसकी भी पुनरावृत्ति न हो सकेगी।

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि इण्डिया-आफ़िस उठा देनेकी माँग क्या उचित है? भारतकी परचक्रसे रक्षा करनेके लिए और जनतन्त्र राष्ट्रोंकी विजयमें समस्त भारतीय धन-जन-शक्ति सहायक हो, इसके लिए नरम-से-नरम भारतीयका भी विश्वास है कि भारतमें राष्ट्रीय सरकारका स्थापित होना आवश्यक है। मगर दिल्लीमें सच्ची राष्ट्रीय सरकार तब तक स्थापित नहीं हो सकती, जब तक कि शासन-सूत्र ह्वाइट-हाउससे संचालित होता है। जब तक शासन-सूत्र लन्दनसे हटकर दिल्ली-सरकारके हाथमें नहीं आता, तब तक वास्तविक सत्ता भारतीय प्रतिनिधियोंके हाथमें न आयगी और इसके बिना भारतीय सरकार राष्ट्रीय सरकार न होगी।

यदि अंगरेज़ भारतीय स्वतन्त्रताके प्रति सच्चे हैं, तो इण्डिया-आफ़िसका स्वतन्त्र भारतके चित्रमें कोई स्थान नहीं है। भारत ब्रिटिश कामनवैल्थमें रहेगा, तो इण्डिया-आफ़िस डोमीनियन आफ़िसमें चला जायगा और यदि आयरलैण्डके समान अलग हो जाय, तो इसकी भी ज़रूरत न रहेगी। भारतका शासन इण्डिया-आफ़िसके क़ायम रहते निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियोंके हाथमें नहीं आ सकता। इसलिए समयकी पहली ज़रूरत नौकरशाहीके इस अभेद्य दुर्ग इण्डिया-आफ़िसको हटा देना है। तभी सच्ची भारतीय स्वाधीनताका जन्म होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

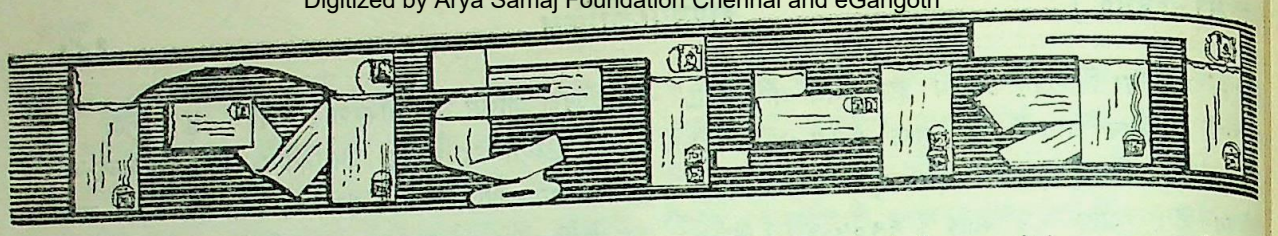

वर्त्तमान हिन्दी-लेखक और उनकी रचनाएँ

उपर्युक्त नामसे संकलित होनेवाले 'लेखक-कोष'का कार्य सभामें श्री सेठ बाबूलालजी राजगढ़ियाके प्रस्तावसे हो रहा है। समाचारपत्रोंमें प्रकाशित सूचना पढ़कर लेखक और कवि लोग कृपाकर अपनी-अपनी सूचना भेज रहे हैं। दूसरे लोग भी अपने परिचित लेखकोंकी सूचना भेज रहे हैं। यह कार्य सभाकी जयन्तीसे पूर्व सम्पन्न हो जाना चाहिए। इसलिए सहायक लोग इस विषयकी सूचनाएँ भेजनेमें अब विलम्ब न करें। इस 'लेखक-कोष'में उन्हीं लोगोंको स्थान देनेका निश्चय हुआ है, जो जीवित हैं और कम-से-कम जिनकी दो-एक रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हो गई हैं। यह व्यापक कार्य सबके सहयोगसे ही सम्पन्न हो सकेगा, अतः सभी मुख्य स्थानोंके उत्साही लोग इसके लिए प्रयत्न करें। इसके लिए चाहिएँ केवल—(१) नाम, (२) स्थान, (३) जन्म-संवत् और (४) रचनाओंका नाम ब्योरे-सहित (प्रकाशित हैं या अप्रकाशित, प्राप्य हैं या अप्राप्य, मौलिक हैं या अनुवाद और गद्य हैं या पद्य)।

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी] —लल्लीप्रसाद पाण्डेय

राहुलजीका 'अध्ययन' या 'अनुभव' ?

राहुलजीकी कहानियोंके उत्तरमें 'ब्रह्म', 'पुनर्जन्म' आदि दार्शनिक विचारोंपर एक मित्रने हमसे एक लेख लिखनेका अनुरोध किया था। पर कला-साहित्यकी पत्रिकामें शुद्ध दार्शनिक लेख पाठकोंको रुचिकर न होगा, यह सोचकर हम मौन ही रहे। परन्तु गत जनवरी मासके 'विशाल भारत'में चिट्ठी-पत्री-स्तम्भमें राहुलजीकी 'प्रभा' कहानीपर जो पत्र छपा और उसपर राहुलजीने अपना जो मनोरंजन प्रकट किया है, उसे देखकर अनायास महाभारतका यह श्लोक स्मरण हो आया—'नित्यं क्रोधाच्छ्रियं रक्षेत्तपो रक्षेच्च मत्सरात्। विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥' कर्पूर-गौरांग प्रभुओंकी तरह राहुलजीको अपने उच्चासनसे वह पत्र किसी क्षुद्र जन्तु-जनित परिहास-योग्य मनोरंजन-मात्र प्रतीत हुआ। उनके अध्ययन और भ्रमण-बाहुल्यके सामने एक साधारण हिन्दूके हृदयोद्गार उनका मनोरंजन भी कर सके, यह क्या कम है? संसारने वह दिन भी देखा था, जब कि यात्रियोंके विवरणोंमें गप्प-बाहुल्य देखकर अरब और रोमवालोंने उनकी बातोंपर विश्वास करना छोड़ दिया था और उनकी बातें क़िस्से-कहानीकी तरह मनोरंजन-मात्र समझी जाती थीं। परन्तु समयने पलटा खाया और आज भ्रमण-बाहुल्य गौरवयुक्त हो गया है।

राहुलजीने अपने अध्ययनकी आड़ ली है। चोपड़ाजीने एक ही उद्धरणसे साफ़ कर दिया है कि जिस अध्ययनके आधार-पर उन्होंने यह क़िस्से गढ़े हैं, वह जातक-ग्रन्थोंसे सम्बन्ध रखता है। राहुलजीको भूलना न चाहिए कि प्रत्येक धर्ममें एक गाथा-युग हुआ करता है, जो उस धर्मके विकृत होनेपर जन-साधारणमें पनपता है। भारतमें उत्पन्न धर्मोंकी एक और भी विशेषता रही है कि उनकी गाथाओंमें 'रामायण' और 'महाभारत'के पात्र अवश्य आए हैं। क्या पुराण, क्या जैन-ग्रन्थ और क्या बौद्ध जातक— सबका यही हाल है। इससे यह स्पष्ट है कि रामायण और महाभारतका भारतवर्षमें बहुत प्राचीन कालसे गौरव रहा है और उनके पात्रोंको अपनानेका प्रत्येक धर्मके गाथाकारने कसकर प्रयत्न किया है। फलस्वरूप इन गाथाओंमें ऐतिहासिक तथ्योंकी जो छीछालेदर की गई है, वह एक बार इन सब गाथाओंको साथ-साथ देख जानेपर स्पष्ट झलक जाती है। हम राहुलजीके मनोरंजनार्थ अपना [एक अनुभव यहाँ प्रस्तुत करते हैं (नामोंको हम छोड़ रहे हैं जिससे मित्रोंको दुःख न हो)।

लगभग १२ वर्ष पहले हमारे एक सात्विक एम० ए० मित्रने हमें पुराणोंके विरुद्ध समझ अपने धर्मके प्रोपेगेण्डाके जोशमें कहा कि पौराणिक धर्मोंके माननेवाले अधिक-से-अधिक अपने नारायणको प्राप्त करते हैं और यह नारायण हमारे 'अमुक'के पोते होते हैं। अतः जो हमारे धर्मको मानते हैं वे नारायणके दादासे मिलते हैं, जो श्रेष्ठतम हैं। जब हमने उनसे प्रमाण माँगा, तो शीघ्र ही उन्होंने अपने सम्प्रदायके ग्रन्थमें प्रकाशित वंशावली हमें दिखा दी। हमने कहा कि बात तो वास्तवमें बड़ी पतेकी है; परन्तु यदि इसपर कुछ निर्णय रहे, तो शीघ्र ही कोई महामहोपाध्याय एक नवीन पुराण रचकर आपके 'अमुक'को अपने नारायणकी वंशावलीमें आठवीं पीढ़ीमें कोई नगण्य-सा व्यक्ति बता देंगे। प्रश्न यह है कि 'अमुक' अथवा 'नारायण' व अन्य और किसी भी नामसे पुकारे जानेवाला तत्त्व क्या गुण रखता है? तब वह सज्जन एम० ए० और सात्विक होनेके नाते अपने अध्ययनको एकांगी मान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लो। यदि नया मुसलमान अल्लाह-अल्लाह ही पुकारे और नवीन भक्त अपने गाथा-ग्रन्थोंकी ही दुहाई दे, तो क्षम्य है। परन्तु जब वह उसके आधारपर कल्पनाकी उड़ान भरके प्रोपेगेण्डा करे, तो वास्तवमें मनोरंजक हो जाता है।

सत्य तो यह है कि राहुलजीके उत्तरमें 'अध्ययन' शब्दके स्थानपर 'अनुभव' अधिक सार्थक बैठता है। उनकी कहानियोंसे यह अनुभव शीघ्र ही प्राप्त किया जा सकता है। धार्मिक पहलूमें उनके अनुभवसे ब्राह्मणोंके प्रायः सब सिद्धान्त धनोपार्जनके साधन-मात्र हैं, साहित्य-चर्चामें सब कवियोंकी काकली किसी राजाके मनोरंजनका प्रयास-भर है तथा सामाजिक पक्षमेंसब प्रयत्न किसी प्रेयसीको प्रसन्न करना-मात्र हैं। बौद्ध धर्मकी प्रशंसा तो गौण रूपसे उनकी कहानियोंमें है ही, कदाचित् इस कारण कि ऐसे खुले प्रेमको उनका ब्राह्मण-धर्म अंगीकार नहीं करता। संक्षेपमें राहुलजीके अनुभवका सार (उनकी कहानियोंके आधारपर) यह है कि संसारमें दो बलवान प्रेरक शक्तियाँ हैं, जो एक दूसरीसे स्पर्द्धा करती हैं—पहली प्रेयसी-प्रेम, दूसरी धन-प्रेम। पौराणिक देवासुर-संग्रामका बीसवीं सदीका यही प्रतिरूप है (शायद जातक-कालमें भी ऐसा ही हो, राहुलजीका प्रयत्न इसी ओर दीखता है), यह सत्य है ; परन्तु केवल इन्हीं दो प्रेरणाओंको सर्वोपरि अनुभव करनेवाला व्यक्ति अन्य सूक्ष्म प्रेरणाओंपर लिखनेका कितना अधिकार रखता है, यह विज्ञजन स्वयं विचार लें और सारहीन कल्पनाओंसे श्रेष्ठ साहित्यकी रक्षा करें।

मथुरा छावनी] —श्रीभूषण गुप्त

स्व० वंशीधर जालानकी स्मृति-रक्षा

समाचारपत्रोंमें मैंने पढ़ा है कि कलकत्तेके प्रमुख व्यापारी स्व० वंशीधर जालान सार्वजनिक हितके कामोंके लिए ७॥ लाख रुपया छोड़ गए हैं। मुझे नहीं मालूम उनके उत्तराधिकारी या जिनके द्वारा यह धन खर्च किया जायगा, किन कामोंमें इसका कितना हिस्सा लगायँगे। पर देशकी वर्त्तमान स्थितिको देखते हुए इसका अधिक-से-अधिक उपयोगी कामोंमें व्यय होना आवश्यक है।

जहाँ तक मेरी व्यक्तिगत राय है, मंदिरों, धर्मशालाओं, गोशालाओं और ऐसी ही संस्थाओंकी कलकत्तेमें कमी नहीं है। अतः इनकी तादाद बढ़ानेमें व्यर्थ अधिक धनका व्यय न किया जाय, तो अच्छा है। इस समय कलकत्तेमें सैकड़ोंकी संख्यामें जो अंधे, गूँगे-बहरे और भिखमंगे हैं, यदि उनके लिए कुछ किया जा सके, तो अति उत्तम होगा। हमारे देशमें बड़े-बड़े दानवीर हैं, भारी-भारी दान भी रोज़ दिए जाते हैं ; पर इन अभागोंकी शायद ही कभी किसीको याद आती हो। युद्धकी वर्त्तमान मँहगाई और तनहाईके ज़मानेमें इन बेचारोंपर क्या बीत रही होगी, क्या हमने कभी यह भी सोचा है?

मेरी जानकारीमें इनके लिए काम करनेवाली दो संस्थाएँ हैं। अंधोंके लिए 'आल इंडिया लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइंड' (३७-ए, हरीश मुखर्जी रोड, भवानीपुर, कलकत्ता) और बहरों-गूँगोंके लिए 'कैलकटा डैफ़ एण्ड डंब स्कूल' (२९३, अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता)। भिखमंगोंके हितके लिए काम करनेवाली कोई संस्था मैंने सुनी नहीं। हाँ, कार्पोरेशनकी ओरसे इस दिशामें अवश्य कुछ किया जा रहा है। पर उक्त दोनों संस्थाओंने क्रमशः अंधों और गूँगों-बहरोंके लिए स्तुत्य कार्य किया और कर रही हैं। यह भी एक सर्वविदित बात है कि ये दोनों ही संस्थाएँ आर्थिक चिन्ताओंसे मुक्त नहीं हैं और इच्छा होनेपर भी जितना चाहती हैं, उतना कार्य इन अभागोंके लिए नहीं कर पातीं।

अतः स्व० वंशीधरजीके उत्तराधिकारियों तथा उनके दानके ट्रस्टियोंसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे हमारे समाजके इन कोढ़ और कलंक बने अभागे भाइयोंकी भी सुधि लें और इनकी स्थिति सुधारनेके लिए कार्य करनेवाली उक्त और अन्य ऐसी ही संस्थाओंकी उचित आर्थिक सहायता करें।

कलकत्ता] —राजकिशोरसिंह

छोटे सिक्कोंकी कमी

आजकल ट्राम, बस, केबिन, होटल, दुकानों और जहाँ भी कहीं एक रुपया या नोट दीजिए, रेज़गारीके लिए फौरन इन्कार कर दिया जाता है। इनमें से अधिकांशमें इस आशयके नोटिस लिख या छपवाकर टाँग दिए गए हैं कि रुपएकी रेज़गारी नहीं मिलेगी। बड़े-बड़े सिनेमाघरों और रेल्वे-बुकिंग-आफिसों तकने घोषणा कर दी है कि रेज़गारीकी कमी होनेसे टिकटके पूरे दाम ही दीजिए। समझमें नहीं आता कि जब सब जगह रुपएकी रेज़गारी नहीं मिलेगी, तो बेचारा ग्राहक ही कहाँसे अपने सब कामोंके लिए रेज़गारी जुटायगा?

इससे ग़रीबों और मध्यवर्गके लोगोंको जो असुविधा हो रही है, वर्णनकी अपेक्षा उसकी कल्पना ही की जा सकती है। सरकारको इस ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए और न सिर्फ़ पैसे ही, बल्कि अन्य छोटे सिक्कोंका भी प्रबन्ध करना चाहिए।

कलकत्ता] —एक नागरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

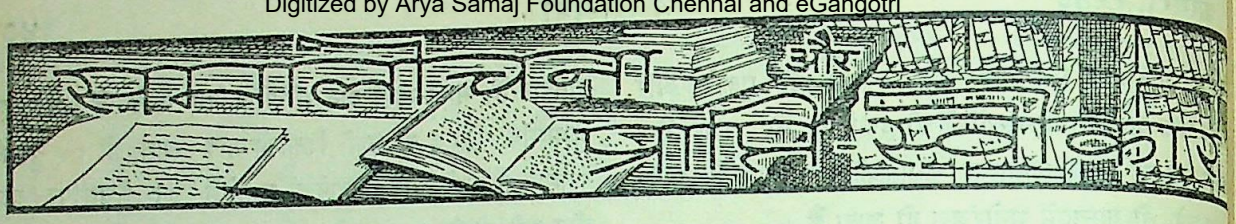

हिन्दू-राजतंत्र (दो खंड) : लेखक—स्व० काशीप्रसाद जायसवाल ; अनुवादक—श्री रामचन्द्र वर्मा ; प्रकाशिका—नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ; पृष्ठ-संख्या ३६८+२५+४२२ ; मूल्य ३॥) + २।), सजिल्द ।

स्व० बाबू काशीप्रसाद जायसवालने अंगरेज़ीमें 'Hindu Polity' नामकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी। उसीका यह हिन्दी-उल्था बाबू रामचन्द्र वर्माने किया है। Polity का अर्थ नीतिशास्त्र वा राजनीति वा राज्यशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र है। नीति शब्द भी उसका परिचायक है—जैसे शुक्रनीति, चाणक्यनीति आदि। तंत्र शब्दका प्रयोग इस अर्थमें नवीनतम है। संस्कृतमें सेना-अर्थमें तंत्र शब्द आया है। आधुनिक समयमें समाचारपत्रोंमें राजतंत्र, प्रजातंत्र, एकतंत्र, जनतंत्र जैसे शब्दोंमें तंत्र अधिकार-अर्थमें प्रयुक्त हुआ है सही ; पर वह शास्त्रीय अर्थ नहीं है और राज्यतंत्रसे राज्य-शासन-व्यवस्थाका अर्थ नहीं निकलता। विलसन वा आपटेके कोशोंमें भी तंत्रका यह अर्थ नहीं बताया गया है। यही नहीं, जब जायसवालजी पटनेके 'पाटलिपुत्र'के सम्पादक थे, तब उन्होंने भी 'राज्यशास्त्र' नामसे ही एक छोटी-सी पुस्तिका इस विषयपर लिखी थी, जो 'पाटलिपुत्र'-आफ़िससे ही प्रकाशित भी हुई थी।

हमारे पास अंगरेज़ी पुस्तक नहीं है और न इतना समय ही है कि हम दोनोंका मिलान करके देखें कि भाषान्तर कहाँ तक ठीक हुआ है। पर हमारा अनुमान है कि साधारणतः वह ठीक ही होगा, यद्यपि विषय क्लिष्ट है। हिन्दीमें इसके समझनेवाले नहींके बराबर ही होंगे। फिर भी हम वर्माजीके अध्यवसायकी प्रशंसा ही करेंगे कि उन्होंने इसे हिन्दी-जामा पहना दिया। अवश्य ही कहीं-कहीं भूल रह गई है, जैसे 'उशना' की जगह 'उष्ण'। उशनस वा उशना शुक्रका नाम है। राज्यशास्त्रकी कोई पुस्तक बृहस्पति, शुक्र आदि प्राचीन आचार्योंके मतों वा विचारोंके उद्धरणोंके बिना पूर्ण नहीं हो सकती।

इस हिन्दी-रूपान्तरके दो भाग हैं। प्रथम भागकी भूमिका जायसवालजीकी अंगरेज़ी भूमिकाका भाषान्तर है। इसके दूसरे और तीसरे पैरोंसे ऐसी ध्वनि निकलती है कि सन् १९११-१२ में जायसवालजीने ही पहले-पहल हिन्दू-राज्यशास्त्र-सम्बन्धी शोध आरम्भ किया था। परन्तु यह बात यथार्थ नहीं कही जा सकती, क्योंकि इसी समय और कदाचित् इससे भी पू औरोंने भी इस दिशामें कार्य आरम्भ कर दिया था। हाँ, सम्भव है कि एकके उद्योगका पता दूसरेको जैसे प्रायः होता, वैसे ही कदाचित् काशीप्रसादजीको भी न हो, रामायण और महाभारतके आधारपर श्रीयुक्त द्विजदास 'माडर्न रिव्यू' में ही अपने लेख छपाए थे। इसी समय सुप्रसिद्ध 'केसरी' पत्रमें अनेक वैदिक मंत्रोंके उद्धरणपूर्वक हिन्दू-राजनीतिपर प्रकाश डाला गया था और कई ऐसे अन्य ग्रन्थोंसे भी दिए गए थे, जिनकी चर्चा 'हिन्दू-पालि नहीं है। काशीप्रसादजीसे १९११ में इस विषयपर मेरी चीत भी हुई थी और मैंने वैदिक मंत्रोंके कुछ कटिंग देनेको कहा भी था ; पर न दे सका। १९१३ में मैंने संग्रहको 'हिन्दुओंकी राजकल्पना' नामसे प्रकाशित भी किया

जहाँ तक मुझे पता है, नियंत्रित राजशक्तिको वैदिक मं सबसे पहले स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने देखा था। अपने ग्रन्थमें वाजसनेयी संहिताके 'यकासकौ' और 'यद्धि मंत्रोंको उद्धृत ही नहीं किया, प्रत्युत शतपथ ब्राह्मणमें दिए उनके अर्थोंसे अपना मत पुष्ट भी किया था। वैदिक मं इस प्रकारके भाव हैं, यह मुझे स्वामीजीके ऋग्वेदादि भ भूमिकासे ही ज्ञात हुआ। काशीप्रसादजीके ग्रन्थमें इन अथवा स्वामीजीकी कोई चर्चा नहीं है। परन्तु स्वामी हज़ारों वर्ष पहले यवन लेखकों मेगस्थनीज़ और एरियनने ग्रन्थोंमें भारतमें प्रजातंत्र राज्योंका उल्लेख किया था। भी स्वार्थान्ध अंगरेज़ राजनीतिज्ञोंने सदा यही कहा कि भा सदा एकतंत्र स्वेच्छाचारी शासन रहा है। पर इधर व वर्षोंसे पुराने प्रमाण उपस्थित किए जानेपर उन्होंने अपना राग अलापना बन्द कर दिया है।

जो हो, काशीप्रसादजीने इस दिशामें विशेष कार्य कि यह मानना ही पड़ता है। गणों वा संघोंका उल्लेख महाभारत और कौटिलीय अर्थशास्त्र आदिमें है, तथापि बहुत पुराना हो जानेके कारण स्पष्ट नहीं हो रहा था। वालजीने नया मसाला खोजा और पाणिनि, कात्यायन पतंजलि जैसे प्राचीन वैयाकरणोंके सूत्रोंके आधारपर इसे कर दिया और यह सहज हो गया। इसी प्रकार उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानपदका स्पष्टीकरण किया। इनका वर्णन रामायणमें श्रीरामको यौवराज्य देनेके समय हुआ है। और भी अन्यत्र मिलता है। पर साधारणतः पाठकके मनमें यही आता है कि पुरके रहनेवाले पौरवा नागरिक और जनपदके रहनेवाले जानपद हैं और जहाँ इनका उल्लेख है, वहाँ नगरवासियों और नगरके बाहर राज्यमें रहनेवालोंसे अभिप्राय है। यह ध्यानमें ही नहीं आता कि पूर्वकालमें नागरिकों और पुरवासियोंकी संस्थाएँ थीं, जो पौर और जनपद कहाती थीं। आजकलके म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट-बोर्डोंकी-सी ये संस्थाएँ थीं; पर इन्हें विशिष्ट अधिकार थे।

बाबू काशीप्रसादजीने जिस तीसरी महत्त्वपूर्ण बातकी ओर इस ग्रन्थमें विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया है, वह भूमिके स्वामित्वके विषयमें है। जैसे राज्य प्रजाका होता है और राजा उसका नियामक वा प्रधान सेवक-मात्र होता है, वैसे ही भूमि भी प्रजाकी होती है और राजा किसान वा भूस्वामीसे कर भर ही ले सकता है। यह हिन्दू-सिद्धान्त है। परन्तु अंगरेज़ राजनीतिज्ञोंको अपने देशका यह सिद्धान्त ही ज़्यादा पसन्द आता है कि कुल ज़मीन राजाकी है और जैसा वह चाहे उसका बँटवारा कर सकता है। इसका कारण यह है कि नाना देशोंसे आक्रमणकारी योद्धाओंने पहुँचकर ब्रिटेनकी भूमिपर अधिकार कर लिया और उसे अपने अनुयायियोंमें बाँट दिया। अंगरेज़ोंने आप अल्सटरमें यही किया। इससे प्रजाकी भूमि छिन गई। इसी सिद्धान्तकी प्रतिमूर्त्ति अंगरेज़ राजनीतिशास्त्र विशारदोंको हिन्दू-राज्यशास्त्रमें भी दिखने लगी। परन्तु जायसवालजीने मीमांसा, कात्यायन, माधव, नीलकण्ठ, मित्रमिश्र आदिके वचनोंसे उक्त अंगरेज़ी सिद्धान्तका खण्डन करके सिद्ध किया है कि भूमि प्रजाकी ही है और चक्रवर्ती राजा भी किसीको भूमिका दान नहीं कर सकता। जहाँ दानकी चर्चा है, वहाँ पूर्व मीमांसामें कहा गया है कि सार्वभौम राजा न तो सम्पूर्ण पृथ्वीका दान कर सकता है और न माण्डलिक लोग अपना मण्डल ही दान कर सकते हैं। दान करनेका अर्थ वृत्ति-मात्र ही है। राजा जब द्रव्य देकर भूमि क्रय करता है, तभी वह इसका स्वामी बनता है।

राज्यशास्त्रका विषय कठिन और जटिल है और साधारण लोगोंकी समझमें नहीं आ सकता। संस्कृतके पण्डित भी अनभ्यास तथा राज्यशास्त्रकी गुत्थियाँ न सुलझा सकनेके कारण अनेक स्थानोंमें भूल कर जाते हैं। बहुधा देखा गया है कि राजाके आलंकारिक वर्णनमें वे उलझे रहते हैं, उसका वास्तविक रूप नहीं समझ पाते। हिन्दीवालोंके लिए यह बिल्कुल नई चीज़ है और उनकी समझके बाहर है। अंगरेज़ीवाले अंगरेज़ी पुस्तक ही पढ़ना चाहेंगे। फिर भी जो हिन्दीवाले इस विषयका विशेष अध्ययन करना चाहेंगे, उन्हें इस पुस्तकसे विशेष सहायता मिल सकेगी।

पुस्तकके दोनों खण्डोंका मूल्य ३॥)+२।) अर्थात् ५॥।) बहुत अधिक है और इसके प्रचारमें बड़ी भारी बाधा है। इसकी प्रकाशिका नागरी-प्रचारिणी सभाको इसपर ध्यान देना चाहिए। —अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

रवीन्द्र-संगीत (बँगला) : लेखक—श्री शान्तिदेव घोष; प्रकाशक—विश्वभारती, ६।३, द्वारिकानाथ ठाकुर लेन, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १६४; मूल्य १॥)।

रवीन्द्रनाथने एक बार लिखा था—'मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि उच्छ्वसित वाणीके साथ मैं वाणी हूँ, गानके साथ गान।' किन्तु रवीन्द्रनाथके जिज्ञासु पाठकोंको यह भी मालूम है कि वाणी तथा सुर दोनों एक साथ ही रवीन्द्रनाथके गानमें फूलकी खुशबू और खूबसूरतीकी तरह मिल गए हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें रवीन्द्र-संगीतका स्वरूप, विकास तथा सृजन-कालकी अज्ञात कहानियाँ सुनाई गई हैं। जहाँ शब्द चुक जाते हैं, वहींसे गान शुरू होता है, अतएव उसकी बौद्धिक आलोचना नहीं की जा सकती। किन्तु इस पुस्तकके लेखकने अशेष कौशलके साथ उसी कार्यको अनायास ही सम्पन्न किया है। उन्हें स्वयं कविगुरुके निकट संगीत सीखनेका सौभाग्य मिला था, इसीलिए उनके अनेक गीतोंको उनके रहस्यागारसे बाहर लाकर पाठकों तक उनका मर्म पहुँचानेके वे सहज ही अधिकारी हैं।

रवीन्द्रनाथके निकट संगीत साधनाकी वस्तु थी, केवल सुरकी दृष्टिसे नहीं, भावकी दृष्टिसे भी। शिल्पी नन्दलाल वसु द्वारा अंकित 'रवि बाउल' नामक स्केच प्रस्तुत पुस्तकके प्रारम्भमें दिया हुआ है, जिसमें ऊपरकी बात खूब ही प्रकाश पाती है। रवीन्द्रनाथने बाक़ायदा किसी चीज़को उसके टेकनिकल रास्तेसे कभी नहीं सीखा, फिर भी सदा उसके हृदय तक वे सहज ही पहुँच जाते रहे। 'संगीत और बाल्य जीवन' नामक अध्यायमें इसका परिचय है। यौवन-कालसे ही रवीन्द्रनाथके भीतरसे वाग्गेयकार (Composer) की प्रतिभाने प्रकाश पाया था। उनके संगीतमें देश और विदेशके नाना सुरोंकी धाराएँ मिली हैं, फिर भी वह सबसे विशिष्ट वस्तु है। लेखकने इन सभी धाराओंकी आलोचना और छान-बीन की है। एक अलग अध्यायमें रवीन्द्र-संगीतकी ताल-योजनाकी चर्चा है। बड़ी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी लिरिक-कविताओंमें सुर बैठानेमें रवीन्द्रनाथ किस तरह कुशल थे, भावके उत्थान-पतनके साथ सुरकी कैसी अनोखी संगति वे जमा सके हैं, यह सभी परवर्ती अध्यायमें आलोचित हुआ है।

संगीतके क्षेत्रमें गीत-नाट्य और अभिनय—यह रवीन्द्रनाथकी एक विशेष दिशा थी। शान्तिनिकेतनके विचित्र रंग-मंचपर उन्होंने एक सम्पूर्ण अनवद्य नृत्य-सृष्टिकी योजना की है। प्रकृतिके स्वागतके लिए भी नाना अवसरोंपर उपयुक्त गीत रचे गए थे। प्रयोजककी हैसियतसे भी रवीन्द्रनाथके कौशलपर यहाँ प्रकाश डाला गया है। यह रंगमंच रवीन्द्रनाथकी एक अत्यन्त अनूठी सृष्टि है। प्रचलित भारतीय अथवा पाश्चात्य रंगमंचोंके साथ तुलना करते ही इसका वैशिष्ट्य साफ़ हो जाता है। और तभी हम उसके प्रकृत सौन्दर्य तथा महत्वको भी समझ पाते हैं।

संगीतके सम्बन्धमें लेखकने रवीन्द्रनाथकी अगणित रचनाओंसे उद्धरण दिए हैं। पुस्तक इस तरह साफ़ और सुलझी हुई भाषामें लिखी हुई है कि साधारण पाठकको शास्त्रीय ज्ञानकी ज़रूरत नहीं पड़ती। यों विषयकी वैसी आलोचना लेखकने की भी नहीं है। साथ-ही-साथ संगीतके क्षेत्रमें भारतवर्ष तथा विशेष रूपसे बंगालमें बहनेवाली प्रायः सभी समसामयिक धाराओं और विवादोंका एक साधारण परिचय भी पाठकको मिल जाता है। इसी पटभूमिकामें हम रवीन्द्र-संगीतको भलीभाँति समझ भी सकते हैं।

पुस्तकका अन्तिम अध्याय 'रवीन्द्रनाथका शेष जीवन' बहुत-से परवर्ती गानोंका करुण इतिहास है। समूची पुस्तकमें गानोंके जन्मकी मनोरंजक कहानी सुननेको मिलती है। विषय-सूची तथा अनुक्रमणिकाका अभाव खटकता है, जो आशा है, शीघ्र ही आगामी संस्करणमें दूर कर दिया जायगा। छापेकी भूलें भी काफ़ी रह गई हैं; शुद्धि-पत्रकी सहायतासे इनकी मार्जना की जा सकती थी। सब मिलाकर पुस्तक संग्रहणीय है। भविष्यमें रवीन्द्र-संगीतके सम्बन्धमें आलोचना अथवा अन्वेषण करनेवाले प्रत्येक जिज्ञासुको इसकी सहायता लेनी होगी। इस विषयका यह प्रथम प्रयास है, जिसके लिए लेखक महोदय बधाईके पात्र हैं। —गुरुदयाल मल्लिक

तुलसी-दर्शन : सम्पादक—श्री कमलधारीसिंह 'कमलेश' साहित्यरत्न और श्री सुभकरण सुराना; प्रकाशक—श्री माहेश्वरी-विद्यालय, ४, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १५९, मूल्य छपा नहीं।

इसमें तुलसी और उनकी कवितासे सम्बन्ध रखनेवाली २५ गद्य-पद्यमय रचनाएँ संकलित हैं, जिनमें साहित्यरत्न, बी० ए० (आनर्स) आदि उपाधिधारियोंसे लेकर कक्षा ७ अ की योग्यता रखनेवाले लेखकोंकी लेखनीका प्रसाद (?) पाया जाता है। संकलित सामग्रीसे विशेष ज्ञानकी भूख नहीं बुझती। हम कक्षा ८ अ और ७ अ के छात्रोंसे तुलसी-साहित्यके दर्शनकी आशा भी नहीं रख सकते। अच्छा होता, सम्पादक महोदय पुस्तकका नाम 'तुलसी-दर्शन' न रखते, क्योंकि उससे पाठक पुस्तकमें गम्भीर निबन्धोंकी अपेक्षा रखता है। इसके अतिरिक्त विषयके अधिकारी विद्वान् डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्० की तुलसीकी दार्शनिकतापर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकका नाम भी 'तुलसी-दर्शन' है। जहाँ तक सम्भव हो, एक विषयकी पुस्तकोंका एक ही नाम न रखा जाना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक स्कूलके छोटे विद्यार्थियोंके कामकी हो सकती है।

भारती (कविता) : रचयिता—डा० श्याम दीक्षित; प्रकाशक—नागरी-निकेतन, विजयनगर, आगरा; पृष्ठ-संख्या ८०।

रचयिता हिन्दीके उदीयमान कवि हैं, जो अपनी लेखनीमें राष्ट्रीयताकी उमंग भरकर बहुत-कुछ लिखते रहते हैं। प्रस्तुत संग्रह इसी उमंगका परिणाम है। कविताओंके विषयमें श्री जवाहरलाल नेहरूका सर्टिफिकेट है—'मुझे कविताएँ अच्छी लगीं।' जो 'उग्र'की तुली हुई भूमिका लिख देनेके पश्चात् सर्वथा अस्तुत है। कविकी रचनाओंमें जोश है, प्रवाह है और अभिव्यक्तिका अपनापन भी है। 'राम-रहीम' की ये पंक्तियाँ :—

मसज़िदके आगे बाजेने सुर खोला
तेरे रहीमका आसन डग-डग डोला
तुम चले साथमें लिए गज़बका गोला
तुमने भाईका सिर लाठी पर तोला
क्या ऐसे ही तुमने रहीम पहचाने

और :— वह छोड़ सकेगा नहीं गायकी बोटी
यह खा न सकेगा मुसलमानकी रोटी
वह लम्बी दाढ़ी कर न सकेगा छोटी
यह देख रहा घट न जाय यह चोटी।

आदि पंक्तियाँ वर्त्तमान हिन्दू-मुस्लिम-सम्बन्धपर अच्छा प्रकाश डालती हैं। एकाध स्थलपर भाषा कानोंको अच्छी नहीं लगती, जैसे :—

हममें सारा जग भरमाया
तुमने हम भरमाये।

कविसे प्रभावोत्पादक सामयिक रचनाओंकी सृष्टिकी आशा रखी जा सकती है। —विनयमोहन शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

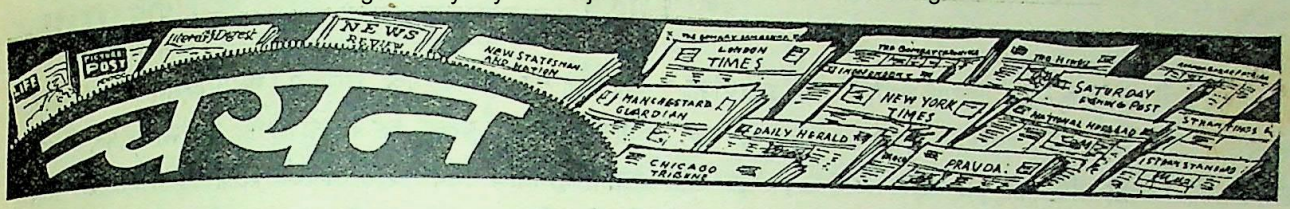

अंडमानमें जापानियोंके अत्याचार

जबसे अंडमान टापुओंपर जापानियोंका कब्ज़ा हुआ है, उस समयके बादसे अंडमान टापुओंके बन्दरगाह पोर्ट ब्लेयरसे प्राप्त सबसे प्रथम समाचारमें बताया गया है कि स्थानीय जनताको लूटा-खसोटा जा रहा है और उसपर भीषण अत्याचार किए जा रहे हैं। बड़े-बड़े भयंकर अपराधियोंको अत्याचार करनेके लिए मुक्त कर दिया गया है और प्रातःकालसे लेकर सायंकाल तक लोगोंसे ज़बर्दस्ती काम लिया जाता है, जिसके लिए उन्हें गुलामोंकी तरह न्यूनतम मज़दूरी मिलती है।

सैनिक अधिकारियोंके पास एक व्यक्तिका आँखों-देखा विवरण मौजूद है, जिसमें कहा गया है कि टापुओंपर कब्ज़ा करनेके बाद जापानियोंने तुरन्त ही सबसे अधिक भयंकर अपराध करनेवाले समस्त क़ैदियोंको जेलसे मुक्त कर दिया। इसके बाद अपराधी क़ैदियों, स्थानीय निवासियों तथा बाहरसे स्वतन्त्रतापूर्वक आकर बसनेवालोंको टापुओंमें समान स्वतन्त्रतासे इधर-उधर जानेकी आज्ञा दे दी गई। केवल कुछ निषिद्ध क्षेत्रोंमें, जैसे हवाई-अड्डे और जहाज़-घाट आदिपर जानेकी आज्ञा किसीको नहीं दी गई।

कब्ज़ा करनेके बाद पहले सप्ताहमें जापानियोंने घरों और व्यापारिक स्थानोंको खूब लूटा, व्यक्तिगत और सार्वजनिक सम्पत्तिको स्वच्छन्दतापूर्वक नष्ट किया और स्त्रियों तथा बच्चोंपर भीषण अत्याचार किए। एक गाँवमें सैनिकोंने एक ग़ैरसरकारी मकानमें आग लगा दी। आगकी लपटें अबाध रूपसे फैलने लगीं और ४० से लेकर ५० तक मकान जलकर भस्म हो गए और सैकड़ों लोग गृह-विहीन हो गए।

इस सबके होते हुए जापानियोंने लोगोंसे बाध्य रूपसे काम लेनेकी एक प्रणाली निकाली, जिसके अनुसार प्रातःकालसे सायंकाल तक काम करनेके बाद भी उन्हें केवल ८ आने ही मज़दूरी मिलती है।

('भारतीय समाचार')

रूसके सांस्कृतिक जीवनकी झाँकी

क्रान्तिके बादके पिछले २५ वर्षोंमें सोवियत-रूसके सांस्कृतिक जीवनमें जो भारी परिवर्त्तन हो गया है, उसे आज सारी दुनिया मानती है। सोवियत-संस्कृतिकी सबसे बड़ी विशेषता है उसका जन-प्रिय होना। सोवियत-शासनमें संस्कृति और सभ्यताकी तमाम चीज़ें जनताकी हैं। इसीलिए उनका इतना व्यापक और क्रान्तिकारी विकास हुआ है। जिस कामके लिए दूसरे मुल्कोंने १००-१०० वर्ष लिए हैं, सोवियत-संघने उससे कहीं ज़्यादा काम इन २५ वर्षोंमें कर लिया है। नीचेके आँकड़ोंसे इसपर समुचित प्रकाश पड़ेगा :—

क्रान्तिके तुरंत बाद छापाखानोंका तमाम सामान जनताकी सम्पत्ति हो गया। पुस्तकालयों, वाचनालयों, नाटक-गृहों और सिनेमाओंपर मज़दूर-किसान-राज अथवा जन-संस्थाओंका अधिकार हो गया। शिक्षा-प्रणालीमें मौलिक सुधार किए गए, शिक्षालयोंके द्वार सारी जनताके लिए खुल गए। अनगिनत नए सांस्कृतिक केन्द्र-क्लब, वाचनालय इत्यादि खोले गए। प्राथमिक एवं हाई-स्कूलोंके विद्यार्थियोंकी संख्या १९१४ में ७८,९५,६०० और १९३१-३९ में ३,१३,८६,००० थी। १९३३के बादसे २०,६०७ स्कूल खोले जा चुके हैं। १९३३ में सारे देशमें सार्वलौकिक प्राथमिक शिक्षा जारी की गई। १९३९ में फैसला किया गया कि तमाम राष्ट्रीय प्रजातन्त्रोंके अन्दर और ग्रामीण क्षेत्रोंमें हाई-स्कूल तककी शिक्षा बाध्य हो।

औद्योगिक शिक्षाके १९१४ में २९५ हाई-स्कूल थे, जिनमें ३६,००० विद्यार्थी थे। १९३८ में यह संख्या क्रमशः ३,७३२ और १०,०००,००० हो गई। ऊँची शिक्षाके १९१४ में ९१ शिक्षालय तथा १,१२,००० विद्यार्थी थे, जो १९३९-४० में क्रमशः १५० और ६,५२,००० हो गए। इनके अलावा १,५०,००० विद्यार्थियोंने पत्र-व्यवहारसे शिक्षा प्राप्त की। आज सोवियतमें विद्यार्थियोंकी संख्या जर्मनीसे दस गुनी ज़्यादा है। केवल यूक्रेनमें जर्मनीसे दुगनी संख्यामें विद्यार्थी पढ़ते हैं। अकेले लेनिनग्रादमें जर्मनीसे ज्यादा विद्यार्थी पढ़ते हैं। मज़दूर-किसान-परिवारोंके बहुतसे बच्चे विश्वविद्यालयोंके ग्रेजुएट हैं या उनमें शिक्षा पा रहे हैं।

सोवियत-रूसके समाचारपत्र वास्तवमें स्वतंत्र हैं, क्योंकि सब सामग्री जनताकी सम्पत्ति है। वहाँके पत्रकार ईमानदार हैं, सत्यसे नहीं डिगते, सत्यके प्रकट करनेमें खौफ़ नहीं खाते, ऊँचे एवं श्रेष्ठतम उद्देश्योंके लिए लिखते हैं। वहाँ १९१३ में ८,५९ अखबार छपते थे, जिनकी प्रतिदिन छपनेवाली कुल प्रतियोंकी संख्या २७,००,००० थी। १९३९ में ९,००० अखबार छपते थे, जिनकी दैनिक प्रतियोंकी संख्या ३,८०,००,००० थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९१३ में रूसमें ६,००० किताबें छपीं, जिनकी प्रतियोंकी कुल संख्या ८,००,००,००० थी। १९३९ में ४५,००० किताबें छपीं, जिनकी प्रतियोंकी कुल संख्या ७०,००,००,००० थी। १९४१ में सोवियतमें पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ १,११ भाषाओंमें छापी जाती थीं।

इनके अतिरिक्त रूसमें संसारके तमाम पुराने महान लेखकोंकी रचनाएँ भी प्रकाशित होती हैं और इतनी बड़ी संख्यामें कि उनके अपने देशोंमें भी लोग सुनकर हैरान हो जाते हैं। प्राचीन यूनानके दार्शनिक अरस्तूकी रचनाओंकी एक लाख प्रतियाँ, फ्रांसके दार्शनिक दिदेरोकी रचनाओंकी डेढ़ लाख प्रतियाँ, प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हेगेलकी रचनाओंकी दो लाख प्रतियाँ, अंगरेज़ वैज्ञानिक डारविनकी रचनाओंकी ढाई लाख प्रतियाँ, फ्रांसीसी उपन्यासकार बालज़ककी रचनाओंकी बीस लाख प्रतियाँ, जर्मन साहित्यकार हाइनकी रचनाओंकी दस लाख प्रतियाँ तथा जर्मन कवि गेटेकी रचनाओंकी पाँच लाख प्रतियाँ छप चुकी हैं। इनके सिवा फ्रांसीसी उपन्यास-लेखक एवं कवि ह्यूगोकी रचनाओंकी चालीस लाख प्रतियाँ, अंगरेज़ उपन्यास-लेखक डिकेंसकी रचनाओंकी बीस लाख प्रतियाँ, फ्रांसीसी उपन्यास-लेखक ज़ोलाकी रचनाओंकी बीस लाख प्रतियाँ, फ्रांसीसी उपन्यास एवं कहानी-लेखक मोपाँसाँकी रचनाओंकी चालीस लाख प्रतियाँ, स्पेनिश लेखक रकरवांतेज़की रचनाओंकी पाँच लाख प्रतियाँ और अंगरेज़ कवि शेक्सपियरकी रचनाओंकी पन्द्रह लाख प्रतियाँ निकल चुकी हैं। सोवियत-उपन्यास ४० भाषाओंमें लिखे जाते हैं।

१९१४ में रूसमें कुल १५३ नाटक-गृह (थियेटर) थे। १९४१ में इनकी संख्या ८२५ हो गई। सोवियतमें आज कुल ४० हज़ार सिनेमा-गृह हैं। ('लोकयुद्ध')

बंगालमें अन्धता-निवारण-कार्य

बंगालकी अन्धता-निवारण-एसोसिएशनकी १९४१-४२ की वार्षिक रिपोर्ट अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। इसमें उन पाँच चलते-फिरते नेत्र-चिकित्सालयोंके कार्यका विवरण है, जिन्होंने बंगालके विविध ज़िलोंमें घूम-घूमकर नेत्र-रोगियोंका औषधोपचारकर उन्हें अन्धता-रोगका शिकार होनेसे बचाया है। भाषणों एवं नेत्र-परीक्षा द्वारा भी काफ़ी लाभ हुआ है। रिपोर्टमें इनके कार्यको सन्तोषजनक कहा गया है।

यद्यपि इस कार्यमें जनताकी ओरसे पर्याप्त साहाय्य-सहयोग मिला, तथापि अभी इस दिशामें अर्थाभाव काफ़ी बाधक हो रहा है। इस ओर सर्वसाधारणको विशेष ध्यान देना चाहिए। यह कार्य वह अधिकाधिक संख्यामें एसोसिएशनके वार्षिक या आजीवन सदस्य बनकर कर सकती है। ३१ मार्च, १९४२ को समाप्त होनेवाले वर्षमें १०९ स्थानोंके अन्धोंकी गणना की गई, जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी संख्या प्रति लाख १८१.७६ पाई गई।

इण्डियन-रिसर्च-फंड एसोसिएशनकी ओरसे संस्थाको रु० २५९६) इस बातकी शोधके लिए दिए गए हैं कि बंगालमें नेत्र-रोगों तथा अन्धता-निवारणके लिए पौष्टिक खाद्य द्वारा क्या-कुछ किया जा सकता है? नेत्र-विशेषज्ञोंकी राय है कि पौष्टिक पदार्थोंसे इस रोगकी वृद्धि बहुत-कुछ रोकी जा सकती है। संस्थाके चलते-फिरते नेत्र-चिकित्सालय कलकत्ता-मेडिकल-कालेजकी 'आई-इन्फर्मरी' (नेत्र-चिकित्सा-विभाग) के सहयोगसे यह शोध-कार्य कर रहे हैं।

आलोच्य वर्षमें चलते-फिरते जुबिली नेत्र-चिकित्सालयने सबसे अधिक और अच्छा कार्य किया है। अनेक अभावों और कठिनाइयोंके बावजूद इसे जो सफलता मिली है, उसका श्रेय इसके कार्यकर्त्ताओंको ही है। ('बंगाल वीकली')

दुनियाके अन्धोंकी संख्या

देश	सन्	अन्धोंकी कुल संख्या	प्रति लाखमें
आस्ट्रेलिया	१९२१	३१५४	५८
कनाडा	१९२५	४७१२	४९
डेन्मार्क	१९२५	१८००	५२
इंग्लैण्ड	१९२७	४६८२२	११९
फ्रांस	१९११	२८९४५	७३
जर्मनी	१९२५	३४७०३	५८
हिन्दुस्तान	१९२१	४७९६३७	१५०
आयरलैण्ड	१९११	३२५०	१०३
उत्तरी आयरलैण्ड	१९११	१०६२	८५
इटली	१९११	२८२११	८१
जापान	१९२८	५१८७४	१०५
न्यूज़ीलैण्ड	१९२८	६५०	४८
संयुक्त-राष्ट्र	१९२९	५२५६७	४९

('विश्व-दर्शन')

भूल-सुधार

गतांकमें छपे 'सृष्टिमें भगवानकी ज्यामिति'-शीर्षक लेखके नीचे इस बातका उल्लेख होना भूलसे रह गया है कि इसके लिखनेमें बँगलाके 'परिचय'में प्रकाशित एक लेखसे सहायता ली गई है। इस ग़लतीके लिए हम लेखिका तथा पाठकोंके प्रति क्षमा-प्रार्थी हैं। आशा है, पाठक सुधार लेनेकी कृपा करेंगे। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी अर्द्ध-शताब्दी

काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभा अपने जन्म-कालसे अब तक हिन्दी-भाषा, नागरी-लिपि और हिन्दी-साहित्यकी निरन्तर जो सेवा करती आ रही है, वह हिन्दी-जगत्के लिए गर्व और गौरवकी वस्तु है। अपने जीवनके इस दीर्घकालमें सभा द्वारा हिन्दीकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंकी खोज और सुरक्षा; 'वैज्ञानिक कोश' और 'हिन्दी-शब्द-सागर'-जैसे विशाल ग्रन्थोंका प्रणयन, अनेक पुस्तकमालाओंके अन्तर्गत विविध विषयोंके सैकड़ों ग्रन्थोंका प्रकाशन; हिन्दी-साहित्यकी श्रीवृद्धिके लिए सभाकी ओरसे दिए जानेवाले अनेक पदक और पुरस्कार; अदालतों, देशी रियासतों, अ-हिन्दी प्रान्तों और शिक्षा-विभागमें सभा द्वारा किए गए हिन्दी-प्रचार; सभाका 'आर्यभाषा-पुस्तकालय'; 'भारतीय कला-भवन'; संकेत-लिपि-विशालय और अनुशीलन-विभाग आदि सभा द्वारा की गई हिन्दीकी ठोस सेवाओंके उज्ज्वल प्रतीक हैं।

हर्षका विषय है कि विक्रम संवत् २००० के साथ ही सभाके जीवनके ५० वर्ष भी पूरे होते हैं। अतः सभाने विक्रम द्विसहस्राब्दिके साथ ही अपनी अर्द्ध-शताब्दी मनानेका निश्चय किया है। इस अवसरपर सभाकी ओरसे एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की जायगी, जिसमें उसका गत ५० वर्षोंका विस्तृत कार्य-विवरण, हिन्दीकी गत ५० वर्षोंकी प्रगतिका वर्णन, ५००) या अधिक सहायता देनेवालोंके चित्र, हस्तलिखित ग्रन्थोंका विवरण, सभाके 'आर्यभाषा-पुस्तकालय'की पुस्तकोंकी सूची तथा सभाके 'भारतीय कला-भवन' की वस्तुओंकी सूची रहेगी। 'वर्तमान हिन्दी-लेखक और उनकी कृतियाँ' नामक एक पुस्तक भी प्रकाशित की जायगी, जिसमें लेखकोंके नाम, पूरे पते, जन्म-संवत्, जन्म-स्थान और कृतियोंकी सूची रहेगी। हिन्दी तथा भारतकी अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें, जिनमें उर्दू भी सम्मिलित है, व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा जो विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियाँ बनी हैं, उनका एक संग्रह भी तैयार करनेका प्रयत्न किया जायगा। संगृहीत शब्दोंमें से जिनको सभा सर्वोत्तम समझेगी, उन्हें अन्य शब्दोंकी अपेक्षा कुछ मोटे टाइपमें दिया जायगा। यह वैज्ञानिक शब्द-कोश विभिन्न प्रान्तोंसे आमन्त्रित विद्वानोंकी परिषद्में निर्णयार्थ उपस्थित किया जायगा।

इन कार्योंके अतिरिक्त इस शुभ अवसरपर कतिपय अन्य आवश्यक कार्योंका आरम्भ भी सभा करना चाहती है। सभा वर्षोंसे प्राचीन ग्रन्थोंका प्रकाशन कर रही है; किन्तु इसके लिए धनका कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं है। सभाका विचार है कि अर्द्ध-शताब्दीके अवसरपर इसके लिए एक स्थायी कोशकी स्थापना की जाय। सभाने जो 'अनुशीलन-विभाग' खोला है, उसके लिए ऐतिहासिक ग्रन्थोंके एक अच्छे संग्रहका प्रबन्ध किया जाना है। सभाके 'भारतीय कला-भवन'के लिए एक भवन, एक कला-पुस्तकालय और एक फ़ोटोग्राफ़ी-विभागकी व्यवस्था की जानी है। भारतके बाहर उपनिवेशोंमें जो भारतीय बसे हैं, वे हिन्दीको भूल रहे हैं। सभा उनमें हिन्दीका प्रचार करनेके लिए भी उपयुक्त आयोजन करना चाहती है।

इन सब कार्योंके लिए सभाको लगभग ६ लाख रुपएकी आवश्यकता है। ये कार्य हमारी भाषा और साहित्यके सौष्ठव और श्रीवृद्धि तथा देश, जाति, राष्ट्रीयता एवं आत्म-गौरवके लिए कितने उपयोगी, महत्त्वपूर्ण, अमूल्य एवं आवश्यक हैं, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। सभाने अब तक जिस लगन, परिश्रम, अध्यवसाय एवं आत्म-त्यागके साथ हिन्दीकी ठोस और अमूल्य सेवाएँ की हैं, उन्हें देखते हुए हमारा अनुमान और आशा ही नहीं, बल्कि दृढ़ विश्वास है कि वह इन कार्योंको भी उत्तम ढंगसे योग्यतापूर्वक सम्पन्न कर सकेगी। चूँकि हिन्दी किसी जाति या प्रान्त-विशेषकी भाषा न होकर भारतकी आम भाषा है, प्रत्येक भारतीयका यह आवश्यक और पुनीत कर्त्तव्य है कि वह इन कार्योंके लिए सभाकी शक्ति-भर सहायता करे।

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होगी!

मद्रासके लोयला-कालेजकी वाक्वर्द्धिनी सभामें बोलते हुए गत २१ जनवरीको माननीय श्रीनिवास शास्त्रीने एक राष्ट्र-भाषाके लिए ज़ोर देते हुए कहा—"अनेक मातृभाषाओंके प्रचलनसे राष्ट्रीय जीवनका सम्यक विकास नहीं होगा। सभी मातृभाषाएँ लगभग हिन्दीकी दिशामें आगे बढ़नेका प्रयत्न कर रही हैं; पर उन सबकी पृथक-पृथक बढ़ती होनेसे कोई विशेष फल नहीं हुआ। अवश्य ही हिन्दीके लिए अनुकूल स्थान ग्रहण करनेमें कठिनाइयाँ हैं; पर मुझे इसमें सन्देह नहीं कि एक दिन हिन्दी ही राष्ट्रभाषाका स्थान ग्रहण करेगी।"

कहना न होगा कि हिन्दी न तो श्री शास्त्रीकी मातृभाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और न वे इसके प्रचारक ही रहे या हैं। हाँ, उनके इस कथनके पीछे उनका परिपक्व राजनीतिक अनुभव अवश्य है। यही उनके कथनकी वास्तविकताका सुपुष्ट आधार है। हिन्दीकी कभी किसी भी प्रान्त या जातिकी मातृभाषासे कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं रही। साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके कुछ मुसलमानों और मद्रासकी जस्टिस-पार्टीने अपने राजनीतिक स्वार्थके लिए अवश्य ही उसे इस रूपमें बदनाम किया। पर इससे कुछ खास नुक़सान हिन्दीको नहीं हुआ। आज प्रत्येक विचारशील भारतीय यह समझने लगा है कि देशकी एकराष्ट्रीयताके लिए एक राष्ट्रभाषा अपरिहार्य है। जो लोग जान-बूझकर स्वार्थ, निजी महत्वाकांक्षा या मातृभाषाके अनुचित मोहसे अन्धे हैं, उनकी बात तो हम नहीं कहते; पर जिनमें ज़रा भी समझ, व्यापक दृष्टि और कल्पना-शक्ति है, वे न केवल मुक्तकण्ठसे यह स्वीकार ही कर रहे हैं कि हिन्दी ही भारतकी राष्ट्रभाषा होगी, बल्कि इसे उस पथपर अग्रसर होने देनेमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपसे शक्ति-भर सहायता भी कर रहे हैं।

श्री शास्त्रीके इस कथनसे हम सर्वथा सहमत हैं कि अभी हिन्दीके अपना निर्दिष्ट स्थान ग्रहण करनेके मार्गमें काफ़ी कठिनाइयाँ हैं। पर हम उन्हें विनम्र भावसे यह भी सूचित कर देना चाहते हैं कि हिन्दीवाले इन कठिनाइयोंसे अनभिज्ञ कदापि नहीं हैं, बल्कि उनसे कहीं अधिक अभिज्ञ और उनके प्रति सजग-सचेष्ट हैं। किन्तु हिन्दीवालोंके साधन सीमित एवं अभाव तथा विरोध असीम हैं। एक ओर शासनका मज़बूत हाथ उसकी प्रगति एवं उन्नतिको रोके हुए है और दूसरी ओर राजनीतिक अवसर-सेवियों, साम्प्रदायिक कठमुल्लाओं तथा मातृभाषाके मोह-ग्रस्त संकीर्णवृत्तिवाले 'विद्वानों'की सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं साधन-सम्पन्न संस्थाएँ उसके विरुद्ध भ्रान्ति-प्रसार कर रही हैं। इस ज़बर्दस्त अवरोधके मुक़ाबलेमें हिन्दीके कार्यकर्त्ताओंकी संख्या, साधन, संगठन, व्यवस्था एवं उद्देश्यकी एकता अभी एकदम नगण्य न होते हुए भी काफ़ी सामान्य ही है। पर इस सबके बावजूद आज देशके लगभग प्रत्येक भागमें हिन्दी बोली और समझी जाती है, सबसे अधिक पुस्तकें और पत्र हिन्दीमें ही निकलते हैं और सहस्रोंकी संख्यामें अहिन्दी-भाषा-भाषी छात्र-छात्राएँ हिन्दीकी परीक्षाएँ दे रहे हैं। किन्तु हमें सिर्फ़ इतनेपर ही सन्तोष नहीं कर लेना है। अभी हमें हिन्दीकी भाषा और लिपि-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयोंको तथा इसके विविध अंगोपांगोंकी कमियों एवं त्रुटियोंको दूर करनेके लिए बहुत-कुछ करना है। यह काम एक जाति, एक प्रान्त या एक भाषा-भाषी जनताके वशका नहीं है। भारतकी [illegible] राष्ट्रीयताके इस अंग-विशेषके निर्माण एवं पोषणके कार्यमें [illegible] प्रान्तों, जातियों एवं सभी भाषा-भाषी सम्पन्न महानुभावों सहयोग-साहाय्यकी अपेक्षा है। हिन्दी स्वतः अपनी कमी और त्रुटियोंको दूरकर सर्वमान्य समर्थ राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। उसे ऐसा बनाना होगा। और यह सर्वसाधारण भारतकी एकराष्ट्रीयता चाहनेवाले प्रत्येक देशभक्त-प्राथमिक कर्त्तव्य है।

हिन्दी-पत्रोंकी भाषा

पिछले दिनों इन्दौरमें हुए मध्य-भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके द्वितीयाधिवेशनके अन्तगत हुई शिक्षा-परिषद् सभापति-पदसे स्टेट-कौंसिलके सदस्य श्री प्रकाशनारायण ने हिन्दी-भाषाकी सराहना करते हुए हिन्दीमें विज्ञान और [illegible] नीतिकी पुस्तकोंके अभावकी ओर ध्यान आकृष्ट कराया है। विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाको सर्वसाधारण जनता तक पहुँचानेपर देते हुए हिन्दीके समाचारपत्रोंके विषयमें अपने विचार प्र किए। अपना ताल्लुक़ 'लीडर' व 'भारत' आदिसे बतलाते आपने कहा कि "इंग्लिशकी अपेक्षा हिन्दी-पत्रोंकी भाषा [illegible] होती है, जिससे साधारण पढ़े-लिखे लोग उचित फ़ायदा उठा पाते। हिन्दीमें भी 'फ्री-प्रेस' और 'सेण्टीनल' सरल और मुहावरेकी भाषाका होना आवश्यक है। मैं हि समाचारपत्र बड़े चावसे पढ़ता हूँ; पर पत्रोंकी भाषाका सरल बहुत ज़रूरी है। मैं हिन्दीका आदर करता हूँ। मैं चा हूँ कि हिन्दीका प्रचार बड़े ज़ोरके साथ घर-घरमें हो।"

श्री सप्रूकी इस नेक सलाहके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं आशा करते हैं कि हिन्दी-पत्रोंके संचालक-सम्पादक इससे उठानेका यत्न करेंगे। पर श्री सप्रू अपने कथनको गोलमटोल न रखकर सोदाहरण रखनेकी कृपा एवं कष्ट तो हिन्दीवालोंका अधिक उपकार हो सकता था। उदा एवं नमूनोंसे उनका कथन अधिक स्पष्ट और हिन्दीवालोंके एवं कर्त्तव्य अधिक सरल हो जाता। हमारी दृष्टिसे भी दिन अनेक हिन्दी-पत्र गुज़रते हैं। उनकी भाषाके अधिक और अदोष होनेकी कामना एवं यत्किंचित चेष्टा हम भी हैं; पर साधारण पढ़े-लिखे लोग उन्हें समझ या उनसे फ़ायदा नहीं उठा पाते, यह हमने बहुत कम ही सुना केवल हिन्दीका अक्षर-ज्ञान रखनेवालोंकी बात हम नहीं (यद्यपि वे भी हिन्दी-पत्रोंसे काफ़ी लाभ उठाते हैं); पर रण पढ़े-लिखे तो शायद लाखोंकी संख्यामें हिन्दी-पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ उठाते हैं। फिर भी उनकी भाषाको अधिक सरल करने और उनके स्टैण्डर्डको ऊँचा उठानेकी अभी काफ़ी गुंजाइश है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी-पत्रोंके संचालक-सम्पादक इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

न्यायके नामपर...?

इस समाचारसे कि हेमू कलानी नामक एक २० वर्षीय सिन्धी छात्रको हैदराबादके निकट रेलकी पटरीमें से 'फ़िश-प्लेट' निकालनेका प्रयत्न करनेके अपराधमें फ़ौजी-क़ानूनी-अदालत द्वारा प्राणदण्ड दिया गया है, भारतीय लोकमतको मार्मिक आघात पहुँचा है। यातायातके साधनोंको—और वह भी ऐसे समय, जब कि एक ओर युद्ध और दूसरी ओर हूरोंका उपद्रव दोहरे खतरेके रूपमें सिन्धपर मँडरा रहे हों—हानि पहुँचाना निन्दनीय एवं दण्डनीय है, इस बारेमें दो मत नहीं हो सकते। ऐसे अपराधों (अभियोगों अथवा प्रयत्नों नहीं) के लिए कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जानेके औचित्यको भी हम स्वीकार करते हैं। पर जहाँ एक ओर समय तथा स्थितिका यह तक़ाज़ा है, वहाँ दूसरी ओर बुद्धि एवं विवेकका भी यह तक़ाज़ा है, और वह यह कि दण्ड देनेमें न्यायकी भावना एवं अभिप्रेतार्थको नज़र-अन्दाज़ न होने दिया जाय। बिना इस ओर पर्याप्त ध्यान दिए न्यायका उद्देश्य—अपराधीका सुधार एवं अपराधोंकी पुनरावृत्ति न होने देनेके उपयुक्त वातावरण एवं लोकमत तैयार करना—सिद्ध नहीं होता।

वर्त्तमान विधानके अनुसार जबसे सिन्ध बम्बई-प्रान्तसे पृथक हुआ है, उसका वातावरण काफ़ी क्षुब्ध एवं अशान्त है। जिस साम्राज्यवादी संकीर्णता एवं साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे वहाँका शासन संचालित होता रहा एवं होता है, उसे देखते हुए यह परिणाम स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इधर कुछ महीनोंसे वहाँ हूरोंके जो उपद्रव हो रहे हैं, उनके निराकरणके लिए उसके काफ़ी बड़े भागमें फ़ौजी-क़ानून लागू कर दिया गया है। इस हल्केमें होनेवाले अपराधोंका निर्णय भी फ़ौजी-क़ानूनी-अदालतें ही करती हैं। हेमूने जिस स्थानमें रेलकी पटरीमें से 'फ़िश-प्लेट' निकालनेका प्रयत्न किया, वह इसी हल्केमें है। अतः स्वाभाविक रूपसे उसके मामलेकी सुनवाई और निर्णय फ़ौजी-क़ानूनी-अदालत द्वारा ही किया गया, यद्यपि प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूपसे उसके इस प्रयत्नका हूरोंके खतरेसे कोई सम्बन्ध मालूम नहीं देता। ऐसी हालतमें यदि सिन्ध-सरकार चाहती, तो हेमूके मामलेकी सुनवाई और निर्णय फ़ौजी-क़ानूनी-अदालतके बजाय मुल्की-अदालत द्वारा भी करवा सकती थी। इधर भारत-सरकार-क़ानूनोंने मुल्की-अदालतोंकी क्षमताको भी पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा दिया है।

पिछले कुछ महीनोंमें भारतके अनेक भागोंमें हेमूके-से प्रयत्न ही नहीं, अपराध भी हुए हैं; पर प्राणदण्ड शायद बहुत कमको दिया गया है। अपराधको देखते हुए जो सज़ा हेमूको दी गई है, उसके सम्बन्धमें कोई मत हम नहीं दे सकते—न ऐसा करनेका शायद हमें अधिकार ही है। पर अपराधीको देखते हुए तो हम उसे ज़रूरतसे ज़्यादा कड़ा कहनेको ही बाध्य हैं। कारण, वय और अनुभव आदमीमें जो विचारशीलता, मानसिक स्थिरता, विवेक एवं सोच-समझकर कार्य करनेकी क्षमता लाते हैं, उनका हेमूकी अवस्थावाले युवकोंमें सर्वथा अभाव ही पाया जाता है। कौन कह सकता है कि २५,३० अथवा ३५ वर्षका हेमू अपनी २० वर्षकी आयुमें नए खूनके उबाल, राजनीतिक जोश, नासमझी और बिना परिणामकी कल्पनाके की गई इस बेवकूफ़ीपर खुद ही न हँसता या पश्चात्ताप करता? चढ़ती वयमें भूलें और बेवकूफ़ियाँ प्रायः सभी लोग करते हैं; पर उम्र, ज्ञान, अनुभव और समझ उन्हें आगे चलकर महान एवं पूजनीय व्यक्ति तक बना देते हैं। बचपनके न-जाने कितने नासमझ चोर, शरारती अपराधी और अनजान अविचारी भावी जीवनमें समाजके त्राता-विधाता हुए हैं। व्यक्तिगत अनुभवके आधारपर हम कह सकते हैं कि स्कूल और कालेज-जीवनके कितने ही समाजवादी, साम्यवादी और अराजकवादी तक आज उसी नौकरशाहीके नगण्य एवं सस्ते पुर्ज़े बने हुए हैं, जिसकी किसी ज़मानेमें कालेज, सिनेमा, खेलके मैदान या वाद-विवादमें भाग लेकर लौटते समय जड़ें तक उखाड़ फेंकनेकी वे डींग हाँका करते थे! तब फिर २० वर्षके हेमूको अपनी नासमझी और बेवकूफ़ीको सुधारनेका मौक़ा न देनेवाला दण्ड क्या न्यायके उद्देश्य एवं आदर्शको पूरा करता है?

१९४३ का पहला आर्डिनेंस

इस वर्षका पहला आर्डिनेंस 'एनीमी एजेंट्स आर्डिनेंस, १९४३'के नामसे प्रचलित हुआ है। यह २ सितम्बर, १९३९ के बाद किसी भी समय हुए अपराधोंपर लागू हो सकेगा। इसके द्वारा शत्रुके सहायकों और उनकी मददके लिए कतिपय अपराध करनेवालोंके मामलोंकी सुनवाई और उन्हें दण्ड देनेकी विशेष व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार जो भी शत्रु-सहायक या शत्रुको सहायता पहुँचानेकी नीयतसे किसी व्यक्तिके साथ षड्यन्त्र करके शत्रुकी नाविक, फ़ौजी या हवाई-गति-विधिमें सहायता पहुँचायगा या शाही नाविक, फ़ौजी या हवाई-गति-विधिमें बाधा डालेगा या इनके व्यक्तियोंका जीवन खतरेमें डालेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। इस आर्डिनेंसके अन्तर्गत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनेवाले मामलोंपर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त विशेष न्यायाधीश विचार करेंगे। विशेष न्यायाधीश वे ही हो सकेंगे, जो कम-से-कम दो वर्ष तक दौरा या नायब दौरा-जजके पदपर काम कर चुके हैं। केन्द्रीय सरकार ऐसे मामलोंको सुनवाईके दौरानमें किसी भी समय एक विशेष न्यायाधीशके पाससे हटाकर किसी दूसरे न्यायाधीशके पास विचारार्थ भेज सकती है। इस आर्डिनेंसके मातहत जुर्मोंमें चालान किए गए शत्रु-सहायकका विशेष न्यायाधीशके सामने ही १९३८ की ज़ाब्ता फौज़दारीके या अन्य किसी जुर्मके लिए भी चालान किया जा सकता है। विशेष न्यायाधीशको क़ानूनके अनुसार कोई भी सज़ा देनेकी क्षमता होगी। फाँसी अथवा कालेपानीकी सज़ा पाए हुए किसी व्यक्तिके बारेमें अगर किसी विशेष न्यायाधीशने इस बातकी तस्दीक़ की कि उसके मामलेमें वक़ूए या क़ानूनकी कुछ गुत्थियाँ हैं, तो उसके मामलेके पुनर्विचारके लिए केन्द्रीय सरकार भारतीय हाईकोर्टके किसी जजको नियुक्त करेगी, जिसका निर्णय अन्तिम समझा जायगा। विशेष न्यायाधीशकी आज्ञा मिलनेपर अभियुक्त केन्द्रीय सरकार द्वारा तैयार की गई वकीलोंकी सूचीमें से किसीको अपनी सफ़ाईके लिए चुन सकता है। पर मामलोंपर विचार तथा पुनर्विचार करनेवाले न्यायाधीशों द्वारा दिए गए दण्डके विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी। केन्द्रीय सरकारकी अनुमतिके बिना यदि कोई व्यक्ति इस आर्डिनेंसके मातहत विचाराधीन किसी व्यक्तिके बारेमें कुछ भी ज़ाहिर करेगा या छापेगा, तो उसे दो वर्ष तककी क़ैद या जुर्माना या दोनों ही की सज़ा दी जायगी।

संक्षेपमें यही उक्त आर्डिनेंसके प्रमुख पहलू हैं। युद्धका खतरा भारतके इतना निकट आ गया है कि प्रस्तुत आर्डिनेंसकी आवश्यकताके बारेमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। फिर भी इसके प्रतिगामी पहलुओंको देखकर कहना पड़ेगा कि जल्दबाज़ीके कारण इसके कई पहलू बड़े ही अनर्थकारी सिद्ध हो सकते हैं। विशेष न्यायाधीशोंका केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाना, उनके निर्णयोंके विरुद्ध बिना अनुमतिके भारतीय हाईकोर्ट, फेडरल-कोर्ट तथा प्रीवी-कौंसिलकी जुडीश्यल-कमेटीमें अपील करनेकी सुविधा न होना, सफ़ाईके वकीलोंका सरकारी सूचीमें से चुना जाना आदि ऐसी रुकावटें हैं, जो ब्रिटिश न्यायनीतिकी परम्पराके विरुद्ध हैं। अच्छा होता, यदि इसे केन्द्रीय धारा सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित किया गया होता। सरकार चाहे, तो अब भी ऐसा कर सकती है। धारा-सभाके सदस्योंका इस ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है।

भारतके स्वाभिमानकी रक्षा

नक़्शा देखनेपर सिंहल-द्वीप (सीलोन अथवा लंका) भारतीय भूखण्डका ही एक भाग दिखाई पड़ता है। इतिहास और भूगोल भी इस बातके साक्षी हैं। पर पिछली एक शताब्दीके साम्राज्यवादी शासनके परिणाम-स्वरूप न केवल बर्माकी भाँति लंका भी भारतसे राजनीतिक एवं भौगोलिक दृष्टिसे अलग कर दिया गया है, बल्कि सिंहलियोंमें भारतीयोंके प्रति घृणा, द्वेष, प्रतिस्पर्द्धा, कटुता एवं विदेशियोंकी-सी भावनाकी भी सृष्टि सम्भव हुई है! लंका-सरकार द्वारा बनाए गए भूमि-सुधार, नागरिकता एवं मत देनेके अधिकार, आवास और रजिस्ट्री, मज़दूर-संघ आदि सम्बन्धी क़ानून इसी नई मनोवृत्तिके परिचायक हैं। यह लंका और भारतके भाग्यका ही दोष है। भारत-सरकारके लंका-स्थित एजेंटकी गत वर्षकी रिपोर्ट, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है, हम दोनोंकी ग़ुलामीपर खासा अच्छा व्यंग्य है।

इधर सरकारको युद्धकी आवश्यकताके कारण लंकाके रबड़ क्षेत्रोंमें काम करनेके लिए ३०,००० भारतीय शर्त्तबन्द मज़दूरों और खाद्य-पदार्थोंकी कमी पूरी करनेके लिए भारतीय चावलकी माँग करनी पड़ी है। जब भारतीय लोकमतको पता चला कि लंका-सरकारके नई दिल्ली-स्थित एजेंट सर बैरन जयतिलक इसके लिए भारत-सरकारसे बातचीत कर रहे हैं, तो चारों ओर लंकामें भारतीयोंके साथ सद्व्यवहार होने और भारतीयोंके विरुद्ध पास किए गए क़ानूनोंमें संशोधन-सुधार किए जानेकी आवाज़ बुलन्द की गई। इससे लंकाके भारतीय-विरोधी संकीर्णवृत्ति सिंहली बौखला उठे और वहाँकी राज्य-परिषद्‌ने गत २९ जनवरीको ७ के विरुद्ध २१ मतोंसे यह प्रस्ताव पास किया कि चूँकि प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न अभी सन्तोषजनक रूपसे हल नहीं हुआ है और लकामें पर्याप्त खाद्य-सामग्री भी नहीं है, अतः अभी और भारतीय मज़दूर न बुलाए जायँ। धारा-सभाके नेता श्री डी० एस० सेनानायकने कहा कि यह केवल अखबारोंकी खबर है; वास्तवमें भारतसे कोई मज़दूर नहीं माँगे गए हैं तथा जब ऐसा किया जायगा, धारा-सभाकी अनुमति अवश्य ली जायगी! दोनोंमें से कौन-सी बात सच है, हम नहीं कह सकते; पर इतना ज़रूर सुननेमें आया है कि सर बैरन जयतिलक और भारत-सरकारके प्रवासी भारतीय विभागके सदस्य माननीय श्री अणेमें हुई बातचीतके फल-स्वरूप भारत-सरकारने लंकाकी माँग पूरी करनेके सम्बन्धमें कुछ शर्त रखी हैं, जिन्हें लेकर लंका-सरकारके भारतीय हाई-कमिश्नर वैद्यनाथन लंका गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भी कुछ हो, लंकाको भारतीयोंके प्रति अपने रुख और नीतिमें परिवर्त्तन करना ही पड़ेगा, अन्यथा उसके साथ किसी भी प्रकारका सहयोग-सम्बन्ध सम्भव नहीं होगा। जहाँ निरक्षर सिंहलियोंको मताधिकार प्राप्त है, वहाँ काफ़ी बड़ी तादादमें वहाँ बसे पढ़े-लिखे भारतीयोंको इससे वंचित रखा गया है! उनका आवास लज्जास्पद एवं कठोर संकीर्णताओंसे एकदम मर्यादित एवं अपमानजनक कर दिया गया है। अभी हाल ही में वहाँके भारतीय वस्त्र-व्यवसायियोंको खदेड़नेके लिए एक नई चाल चली गई है, जिसके अनुसार जिन वस्त्र-व्यवसायियोंने गत ईस्टरके हवाई-हमलोंके समय अपना कारबार बन्द कर दिया था और १ अक्तूबर, १९४२ तक फिर चालू नहीं किया, उनके लाइसेंस रद्द किए जा रहे हैं। सिंहलियोंकी इस नीतिके पीछे जो भावना काम कर रही है, उसे अधिक अच्छी तरह समझनेके लिए हम यहाँ एक विशेष घटनाका उल्लेख करना चाहते हैं। पिछले वर्ष लंका गए भारतीय प्रतिनिधि-मंडलके एक सदस्य श्री टी० आर० वेंकटराम शास्त्रीने गत २८ जनवरीको मद्राससे एक वक्तव्य निकालकर बतलाया है कि लंकाके मन्त्री श्री सेनानायकने जब उनसे कहा कि लंका उन भारतीयोंका पालन नहीं कर सकता, जो यहाँ हैं, और जो भारत चले गए हैं, उन्हें अब यहाँ नहीं लौटना चाहिए, तो आपने कहा कि लंकामें अभी बहुतेरे उजाड़ भूखंड पड़े हैं, जिनको खेती आदिसे उन्नत किया जा सकता है। इसपर श्री सेनानायकने कहा—'अच्छा है कि हम उन भूखंडोंकी उन्नति न करें, बजाय इसके कि हम हिन्दुस्तानी मज़दूरोंकी सहायतासे उनकी उन्नति करें।'

यह बड़े दुःख और लज्जाकी बात है कि हम एक विदेशी सत्ताको—जिसकी नाग-फाँससे एक दिन लंका और भारत दोनोंको ही स्वतन्त्र होना है—मध्यस्थ बनाकर आपसमें लड़ें-झगड़ें। पर जब तक सिंहली साम्राज्यवादी शासनके कुप्रभावसे मुक्त होकर भारतीयोंको अपना भाई या पड़ोसी नहीं, तो कम-से-कम मनुष्य नहीं समझेंगे, उनके साथ मनुष्योंका-सा बर्त्ताव नहीं करेंगे और उन्हें नागरिक-अधिकार नहीं देंगे, मिट्टीके ढेलोंकी तरह भारतीय उनकी ठोकरें खानेको कदापि नहीं भेजे जा सकते। यह कुछ भारतीयोंकी सुख-सुविधा एवं अधिकारोंका ही नहीं, भारतके आत्म-सम्मानका प्रश्न है। हमारा विश्वास है कि भारतीय श्रमजीवी और माननीय श्री अणे भारतके स्वाभिमानकी रक्षाकर अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे।

खाद्य-सामग्रीका अभाव

'अधिक खाद्य उपजाओ'-आन्दोलनकी सरगर्मीके बाद सहसा खाद्य-सामग्रीके अभावसे चारों ओर हाहाकार मचा देखकर हमारे ही नहीं, विदेशियों तक के कान खड़े हो गए हैं। इसके कारणों-पर प्रकाश डालते हुए लन्दनके 'टाइम्स'ने अपने २६ जनवरीके अंकमें स्पष्ट कहा है—"आमतौरसे यह स्वीकार किया जाता है कि गेहूँका मूल्य नियन्त्रित करने तथा बड़े पैमानेपर होनेवाली मुनाफ़ाखोरी और उसका जमा किया जाना रोकनेमें सरकार सफल नहीं हो सकी है।" अपने २२ जनवरीके अंकमें 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' नामक पत्रने 'भारतमें अकाल'-शीर्षक अपनी टिप्पणीमें लिखा है—"ब्रिटिश सरकार भारतमें कांग्रेससे भी भीषणतर शत्रुका सामना कर रही है।...इन स्थितियोंमें गेहूँका निर्यात ग़लत था। यद्यपि इसकी कमी पिछले ६ मासे बराबर बढ़ रही थी; पर नौकरशाहीने अभी कल तक इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं किया। इन मामलोंमें इसका बहाना यह था कि इसे कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि खाद्य-सामग्रीका प्रश्न प्रान्तीय है। यह सब खुराफ़ात है।"

उपर्युक्त उद्धरण किन्हीं राष्ट्रीय या सरकार-विरोधी पत्रोंके नहीं हैं, जिनकी नीयतमें शक किया जा सके। 'टाइम्स'की स्पष्टोक्तिका समर्थन भारत-सरकारके व्यवसाय-सदस्य सर नलिनी-रंजन सरकारने स्वयं गत ३ जनवरीको बंगाल नेशनल चेम्बर आफ़ कामर्समें हुई बातचीतके दौरानमें किया है। रही खाद्य-सामग्रीकी बढ़ती हुई कमी और चढ़ती हुई क़ीमतोंके बावजूद कुछ न करनेकी बात, सो उसका स्पष्टीकरण आपने दिल्लीकी प्रेस-कांफ्रेंसमें कर दिया। आपने कहा—'हमारी वर्त्तमान कठि-नाइयोंका मुख्य कारण विश्वासका न होना है।' और 'हमारी वर्त्तमान कठिनाइयाँ जनता तथा व्यापारियोंमें पुनः विश्वासकी भावना जाग्रत होनेसे ही दूर हो सकती हैं।' खाद्य-सामग्रीके निर्यातके सम्बन्धमें गत ४ फरवरीको बम्बईमें एसो-सिएशन आफ़् इंडियन इंडस्ट्रीज़की कमेटीके सामने आपने कहा—'पिछले महीनोंमें भारतसे बाहर भेजे जानेवाले अन्नकी मात्रा काफ़ी घटा दी गई है। इस समय जो चावल बाहर भेजा जाता है, वह भारतकी ३ दिनकी खपत-मात्र है।'

खाद्य-सामग्रीकी समस्याके सम्बन्धमें सरकारने जिस ग़ैर-ज़िम्मेदारी, नासमझी, कमज़ोरी और अवास्तविकतासे काम किया है, वह उसकी विषमतासे सुस्पष्ट है। यह जानते हुए भी कि गेहूँका मूल्य-नियन्त्रण उसे बाज़ारोंसे अदृश्य कर रहा है और 'ब्लैक मार्केट'में उसकी क़ीमत चढ़ा रहा है, सरकारने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हटानेमें इतना विलम्ब क्यों किया ? युक्त-प्रान्तमें अब भी जो नियन्त्रण जारी है, वह किस लिए ? सिन्धमें अभी हाल ही में एक स्थानपर एक लाख मन गेहूँ पाया गया है। बम्बईमें बालूके बोरोंके साथ गेहूँके बोरे छुपाकर रखे गए मिले हैं। अगर सरकार कोशिश करे, तो क्या अन्य स्थानोंमें भी गुप्त रूपसे जमा किए गेहूँ या अन्य खाद्य-सामग्रीको बरामद नहीं किया जा सकता ? और इस तंगीके बावजूद खाद्य-सामग्रीका निर्यात क्यों जारी रखा जा रहा है ? जब विदेशी सेनाओंके कारण भारतकी खाद्य-सामग्रीकी खपत ही काफ़ी बढ़ गई है, तो सरकारको एक दाना भी बाहर नहीं जाने देना चाहिए। मुनाफ़ाखोरों और गुप्त रूपसे अन्न जमा कर रखनेवालोंके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए। साथ ही अगली फ़स्ल इन रक्त-शोषकोंके हाथोंमें न पड़े, इसकी पेशबन्दी अभीसे होनी चाहिए।

रही जनता और व्यापारियोंके विश्वासकी बात, सो उसके सम्बन्धमें सरकार और उसके लन्दन-स्थित आक़ा ही अधिक ज़िम्मेदार हैं। स्वयं सर नलिनीरंजनका कथन इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि विदेशोंमें प्रोपेगेण्डा करनेके लिए बनाई गई तथाकथित 'भारतीय सरकार' भारतीयोंमें विश्वास-सम्पादन करनेमें असमर्थ है। यह कठिनाई एकमात्र राष्ट्रीय सरकार संगठित करके ही दूर की जा सकती है। जनतामें केवल वे ही व्यक्ति विश्वास पैदा कर सकते हैं, जो उसके विश्वास-भाजन तथा उसके प्रति ज़िम्मेदार हों। बिना इसके खाद्य-सामग्रीकी समस्या ही नहीं, देशकी अन्यान्य समस्याओंको भी सन्तोषजनक रूपसे हल नहीं किया जा सकता। क्या भारतका यह अन्न-अकाल श्री चर्चिल और एमरीका ध्यान इस कटु सत्यकी ओर आकृष्ट कर सकेगा ?

भारतकी स्वाधीनताकी माँग

आजसे १३ वर्ष पूर्व, २६ जनवरीके दिन, रावीके किनारे राष्ट्रीय महासभाने भारतकी आज़ादीकी प्रतिज्ञा एवं घोषणा की थी। इस प्रतिज्ञाको प्रतिवर्ष २६ जनवरीको दोहराया जाता रहा है। यह माँग किसी दल या जाति-विशेषकी न होकर समूचे भारतकी ओरसे समग्र- भारतीयोंकी चरम आकांक्षाकी अभिव्यक्ति है। स्वयं ब्रिटिश सरकार भारतको युद्धके बाद आज़ाद करनेके लिए वचनबद्ध है। फिर हमारी समझमें नहीं आया कि इस वर्ष स्वाधीनता-दिवस मनाने तथा तिरंगा झंडा फहरानेवालोंके खिलाफ़ सरकारने क़ानूनके अस्त्रका प्रयोग करना किस दृष्टिसे उचित एवं आवश्यक समझा ? क्या उस ब्रिटिश शासनमें भी, जो विश्व-स्वातन्त्र्य एवं जनतन्त्रके लिए आज अपने सर्वस्वकी बाज़ी लगा रहा है, स्वतन्त्रता-दिवस मनाना निषिद्ध और ग़ैरक़ानूनी है ?

पिछले १३ वर्षोंमें हमने स्वाधीनताकी प्रतिज्ञा दोहराकर भले ही उसे हासिल न कर पाया हो ; पर उसके मार्गपर हमारा देश काफ़ी आगे बढ़ा है, इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता। आज भारतकी आज़ादीका सवाल दुनियाकी राजनीतिका मेरुदण्ड और विश्व-स्वातन्त्र्य तथा जनतन्त्रके लिए लड़नेवाले राष्ट्रोंका प्राथमिक सवाल बना हुआ है। ब्रिटेनकी कूटनीति तो क्या, दुनियाकी सारी प्रतिगामी शक्तियाँ भी मिलकर इस प्रश्नपर पर्दा नहीं डाल सकतीं। गत २६ जनवरीको वाशिंगटन और लन्दनकी सार्वजनिक सभाओंमें जिन्होंने भारतकी आज़ादीकी आवाज़ बुलन्द की है, वे हमारी इस आशा और दृढ़ विश्वसके उज्ज्वल प्रतीक हैं। ग़ुलामी दो तरहकी नहीं होती और उसकी लड़ाई भी एक साथ दो घोड़ोंपर चढ़कर नहीं लड़ी जा सकती, यह हमारे लन्दन और वाशिंगटनके भाइयोंने स्पष्ट बतला दिया है। उनके प्रदर्शन ब्रिटिश शासकोंके लिए इस बातकी चुनौती हैं कि आया वे मनुष्य-मात्रकी स्वतन्त्रता और आत्म-निर्णयके समर्थक हैं अथवा मनुष्य द्वारा मनुष्यके ग़ुलाम बनाए जाने और शोषणके ? इस युद्धका और इसके बाद आनेवाली शान्तिका भाग्य-निर्णय इसी प्रश्नके उत्तरसे होगा।

ब्रिटिश शासनका निकम्मापन

अमरीकाके 'टाइम', 'यूनिटी', 'नेशन', 'एशिया' आदि पत्रोंने भारतके सम्बन्धमें जो तथ्यपूर्ण आलोचनाएँ की हैं, उनका उत्तर ब्रिटेनने किराएके टट्टुओं एवं कागज़ी घोड़ोंसे देनेकी विफल चेष्टा की है। इनके सम्बन्धमें कई तरहके शक-शुबहे पैदाकर भ्रम फैलानेकी चेष्टा भी की गई है। पर स्वयं ब्रिटेनके लोग उसकी नीति और भारत-सम्बन्धी रवैयेके बारेमें क्या कहते हैं, यह ब्रिटिश सेंसर और रायटरकी कृपासे जब-तब हमें मालूम होता रहता है। अभी हाल ही में लन्दनके किंग्ज़वे और हालबोर्न-हाल तथा स्वराज्य-भवनमें हुई सभाओंमें ब्रिटेनके लगभग सभी विचारोंके नागरिकोंने भारतकी स्वाधीनताकी माँग की है। पर इन सबसे कहीं महत्वपूर्ण है इंडिया-लीग द्वारा कोलीस्यूम थियेटरमें आयोजित वह सभा, जिसमें मज़दूरों, साम्यवादियों, उदारदलियों एवं ट्रेड-यूनियनिस्टोंका पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ था। इसके पीछे ब्रिटेनका जो लोकबल था, उसकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकता।

इस अवसरपर बोलते हुए पार्लमेण्टके सदस्य श्री एस० ओ० डेवीजने कहा कि भारतमें ब्रिटिश शासन नाकामयाब रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यहाँ या संयुक्त-राष्ट्र अमरीकाके लिए ५० प्रश्न गढ़ तथा स्वयं उनका उत्तर देकर यह भ्रम फैलानेसे कि स्वेज़के पूर्वमें, जिस पर कि इस युद्धमें संयुक्त-राष्ट्रोंकी युद्ध-नीति गम्भीर रूपमें निर्भर करती है, सब कुछ ठीक-ठाक है, कोई लाभ नहीं। भारतीय प्रश्नको सुलझानेका यह ढंग नितान्त मूर्खतापूर्ण है। श्री डेवीज़का कहना है कि अगर ब्रिटिश शासकोंमें भारतके तथा-कथित साम्प्रदायिक एवं धार्मिक विरोधोंको हल कर सकनेकी बुद्धि नहीं है, तो वे रूसके उदाहरणसे लाभ क्यों नहीं उठाते? ब्रिटिश सरकारको इस दिशाकी अपनी नैतिक एवं राजनीतिक कमीको महसूसकर सोवियत-राष्ट्रसे सहायता लेनी चाहिए। पर शायद श्री डेवीज़को नहीं मालूम कि भारतीय समस्याको हल करना ही कौन चाहता है? कम-से-कम ब्रिटिश शासकोंके रवैये और अविचारपूर्ण नीतिसे तो यही लक्षित होता है, अन्यथा अगर चाह होती, तो राह कब तक नहीं निकलती? प्रसिद्ध दार्शनिक एवं विज्ञानवेत्ता प्रो० हाल्डेनने कहा—"ब्रिटिश साम्राज्यवादका खात्मा ज़रूरी है, क्योंकि वह प्रतिगामी है तथा भारतके लिए बुराईकी जड़ है। भारतीयोंकी स्वतन्त्रता हमारी भी स्वतन्त्रता है। यह कहना कि श्री चर्चिल और श्री एमरी तथा ब्रिटेनके अन्य युद्ध-कालीन नेता पं० जवाहरलाल नेहरू-जैसे भारतीय देशभक्तसे, जिन्होंने फाशिस्तोंके आगे घिघियाकर आत्म-समर्पण करनेके—जो म्यूनिखके जुएमें इतना सुस्पष्ट था—विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की थी, समझौता नहीं किया जा सकता, सरासर कपट-वृत्ति है!" इस कथनकी यथार्थतामें शायद ही किसीको सन्देह हो।

अमरीकन इंडिया-लीग द्वारा भारतीय स्वाधीनता-दिवसके उपलक्षमें न्यूयार्कमें दिए गए भोजमें बोलते हुए कुमारी पर्ल बक (श्रीमती रिचार्ड जे० वाल्श) ने कहा—"जब अंगरेज़ हमसे कहते हैं कि यदि हम भारतकी आज़ादी चाहते हैं, तो हमें उन्हें उनके एशियाके बोझको वहन करनेमें सहायता देनी चाहिए, तब हममें से तटस्थ रहनेवालोंको जैसे नया जीवन मिल जाता है। पर अंगरेज़ों द्वारा सारे सम्भावित मतभेदोंपर दिए जानेवाले ज़ोरके कारण ही हम आज भारतमें यूरोपसे कहीं अधिक अशान्ति देख रहे हैं। सच पूछा जाय, तो हम अमरीकन गोरोंके बोझ वहन करनेमें साझीदार नहीं होना चाहते। लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध उनपर अपना शासन थोपकर अपने लिए बोझ पैदा करनेके सिवा गोरोंके लिए कभी कोई बोझ रहा ही नहीं है।" गोरोंका असली बोझ है साम्राज्य-लिप्सा, जिसे वे स्वेच्छासे अभी उतार या हल्का नहीं कर पाए हैं। एशियाके कई लाख आदमियोंका 'बोझ' तो जापानी फाशिस्तोंने अपने ऊपर ले ही लिया है, जिन्हें ब्रिटेनने कभी स्वेच्छासे स्वतन्त्र नहीं किया। ब्रिटेनके इसी साम्राज्यवादी मोहने आज उन्हें खाईसे निकालकर खन्दकमें धकेल दिया है। पर इससे, जान पड़ता है, ब्रिटेनके शासकोंने कुछ भी सबक़ हासिल नहीं किया; नहीं तो जो ४० करोड़ भारतीय आज अपना बोझ उनके सिरपर से उतार लेना चाहते हैं और सारी दुनिया ब्रिटेनसे यह बोझ हल्का करनेका जो अनुरोध कर रही है, उसके प्रति वे इतने उदासीन और अनिश्चित क्यों हैं? सहज-बुद्धिका तक़ाज़ा तो यही है कि ठोकर खाकर बोझके नीचे खुद दब जानेकी अपेक्षा बेहतर यही है कि उसे ज़्यादा-से-ज़्यादा हल्का कर लिया जाय।

चिमूर-काण्डपर पर्दा

गतांकमें हमने पत्रोंपर लगाए गए जिस अनुचित प्रति-बन्धकी चर्चा की थी, उसपर मध्य-प्रान्तीय सरकारने स्वयं ही प्रकाश डालनेकी कृपा की है। यह प्रतिबन्ध था चिमूर-काण्ड और उसकी निष्पक्ष सार्वजनिक जाँचके लिए किए गए प्रो० भंसालीके अनशन-सम्बन्धी समाचारोंपर। गत १२ जनवरीको मध्य-प्रान्तीय सरकारने यह प्रतिबन्ध हटा लिया और यह आशा प्रकट की कि चिमूर-काण्डकी जाँचके लिए कोई आन्दोलन नहीं किया जायगा। इसके फल-स्वरूप प्रो० भंसालीने ६३ दिनोंके बाद अपना अनशन भंग कर दिया तथा अखिल भारतीय समा-चारपत्र-सम्पादक-कान्फ्रेंसने सरकारी सामग्रीके प्रकाशनपर लगाया प्रतिबन्ध भी हटा लिया है। इसे सरकारकी नैतिक हार भले ही न कहा जा सके; पर प्रो० भंसाली और राष्ट्रीय पत्रोंकी नैतिक विजय तो अवश्य ही कहा जायगा।

इस सम्बन्धमें डा० खरेने गत ८ जनवरीको प्रो० भंसालीको जो पत्र लिखा है, उसमें कहा है—"चिमूरकी स्त्रियोंपर किए गए बलात्कारोंकी सार्वजनिक जाँचकी माँगपर इतना समय बीत जानेसे शनाख्तमें दरपेश दिक्क़तकी वजहसे अब ज़ोर न दिया जाय।" डा० खरेके कथनसे सहमत होनेपर भी प्रो० भंसालीका यह कथन कि 'एक स्त्रीको भी छेड़ना न केवल समाज, बल्कि ईश्वरके प्रति अपराध है,' हमें सजग-सचेत कर देता है। जाँचका प्रश्न जब नहीं रहा, तो प्रो० भंसाली डा० खरे और श्री अणेके साथ चिमूर जाकर क्या करेंगे, हम नहीं जानते। पर ऐसे कारनामे किसी भी शासनके लिए कम कलंक और लज्जाकी बात नहीं हैं। अपनी ग़ुलामी और बेबसीके कारण यद्यपि मातृजातिके इस विरल अपमानकी रक्त-घूँटको हम पिए लेते हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सरकारको भविष्यमें इस तरहकी बदफ़ेलियोंकी पुनरावृत्ति कदापि नहीं होने देनी चाहिए। इस तरहके काले कारनामोंसे न केवल उसके नामपर ही कलंक लगेगा, बल्कि लोगोंके विक्षोभ-विरोधके परिणाम-स्वरूप उसके युद्ध-प्रयत्नपर भी अवांछनीय प्रभाव पड़ेगा।

हमारे तुर्की मेहमान

'भारत देखने'को आया हुआ तुर्की पत्रकार-मण्डल पिछले दिनों कलकत्ता आया और चार दिन यहाँ रहकर मद्रास चला गया। दरअसल हमें तो संकोच हो रहा था कि जब हम राजनीतिक ज़िच और आन्तरिक अशान्ति एवं झगड़ोंसे परेशान तथा बाहरी आक्रमणके डर एवं खतरेसे काफ़ी आतंकित हैं; जब पैसे, रेज़गारी, खाद्य-सामग्री और कोयले आदिका अभाव हमारी अपनी गुज़र-बसर ही मुश्किल बनाए हुए है; तब हम अपने इन सँहगे मेहमानोंका सम्यक आतिथ्य कैसे कर पायँगे? पर शुक्र है कि कलकत्तेके शानदार ग्रेट ईस्टर्न होटल और सरकारकी मेज़बानीने हम अभागोंकी ग़रबतकी लाज रख ली। बहरहाल कलकत्तेके स्वागतको शायद वे जल्द ही भूल न सकेंगे। ब्रिटिश साम्राज्यकी इस महानगरी, हिन्दू-संस्कृतिके इस समुज्ज्वल केन्द्र, हावड़ाके विशालकाय नए पुल और नगरपर मँडरानेवाले बैलूनोंके पड़ोसमें रहनेवाले लोगोंकी राजनीति, विचार, संस्कृति और उनसे कहीं बढ़कर ग़रीबी और बेबसीका जो चित्र हमारे मेहमानोंने अपनी आँखोंसे देखा है और उसकी जो भाषा उन्होंने अपने कानोंसे सुनी है, शायद तुर्की पहुँचने तक वे उसे भूल नहीं जायँगे।

मण्डलके एक सदस्यने हँसकर कलकत्तेमें यह नरम शिकायत भी की कि जहाँ भी वे गए हैं, उनसे भारतीयोंने अपना दुखड़ा ही अधिक रोया है और तुर्कीके बारेमें बहुत कम पूछ-ताछ की है। किसी हद तक यह शिकायत बजा भी है। इसमें कुछ तो हमारे स्वभावका दोष है और कुछ परिस्थितिका। पाकिस्तान और मुस्लिम-राष्ट्रसंघकी बातें कहकर हमने सबसे पहले अपने ओछेपन, मनोमालिन्य और अविचारका उपहार ही उन्हें भेंट किया, जिसका 'हम तुर्क पहले हैं और मुसलमान बादको'-जैसा अच्छा, मुँहतोड़ और शिष्टतापूर्ण उत्तर देकर उन्होंने हमें एक खासा अच्छा सबक़ सिखाया है। किसी भी स्वतन्त्र देशसे यह कहना या आशा करना कि वह हमें आज़ादी दिलायगा या हमारी आज़ादीके आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेगा या हमें उसका अधिकारी घोषित तथा स्वीकार करेगा; परले सिरेकी ग़ुलाम, पराजयवादी और आत्म-प्रवंचनापूर्ण मनोवृत्ति तथा आत्म-विश्वासके अभावका परिचायक है। चीन-जैसा अफ़ीमची मुल्क हमारे देखते-देखते न केवल अपने पाँवोंपर ही उठ खड़ा हुआ, बल्कि अपनेसे कई गुना शक्तिशाली जापानसे पिछले ५ सालसे दृढ़तापूर्वक लोहा ले रहा है। 'यूरोपका दायमुलमरीज़' तुर्की हमारी आँखोंके सामने एक सबल-समृद्धिशील राष्ट्र बन गया। यही क्या हमारे लिए कम प्रेरणाकी बात है?

मण्डलने हमें बतलाया कि तुर्की-प्रजातन्त्रमें नीच-ऊँच या अमीर-ग़रीबका कोई भेद-भाव नहीं है। ८० प्रतिशत व्यवसाय और पूँजी सरकारके अधीन हैं। पीपल्स-पार्टी नामक केवल एक दल है। सभी तुर्क समान स्वतन्त्रता एवं अधिकारवाले नागरिक हैं। सबका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। किसानोंसे कोई लगान नहीं लिया जाता, केवल व्यापारियों द्वारा उनसे नाम-मात्रका कर वसूल किया जाता है। तुर्कीके औद्योगीकरणका प्रयत्न जारी है; पर तुर्की अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारोंमें प्रतियोगिता नहीं करना चाहता। अतः वह केवल दैनिक आवश्यकताकी ऐसी चीज़ें बनाता है, जिनका विदेशोंसे विनिमय किया जा सके। तुर्कीमें एक भाषा और एक लिपि तथा अन्तर्राष्ट्रीय विचार-विनिमयके लिए एक विभाषा (फ्रेंच) प्रचलित है। असन्तोषके अभावमें आन्दोलनकी प्रवृत्ति वहाँ नहीं पनपी है। यह पूछनेपर कि विदेशी राष्ट्रोंमें से तुर्की किसपर सबसे अधिक विश्वास करता है, एक सदस्यने तुरन्त जवाब दिया—'एकमात्र तुर्कीपर'। तुर्की-प्रजातन्त्रके पथ-प्रदर्शक ६ सिद्धान्तोंका भी मण्डलने स्पष्टीकरण किया, जिनका डा० सुनयात्-सेनके तीन सिद्धान्तोंसे काफ़ी साम्य है।

यद्यपि तुर्की और भारतमें विशेष भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक नैकट्य नहीं है, फिर भी हमारे सामने वह चीन ही की भाँति आज़ादीकी जीती-जागती मिसाल रहा है। उसके राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक सुधारोंकी लहरोंका कम्पन हमारे हृदयोंकी तहों तक पहुँचा है। ब्रिटेन, अमरीका या यूरोपके किसी भी देशके नेताओंकी अपेक्षा कमाल अतातुर्क, अनवर, तालात, जमाल इस्मत, रफ़ैत और क्याज़िमसे हम अधिक परिचित हैं। तुर्कीकी स्वतन्त्रता और उन्नति हमारे लिए सन्तोष और प्रसन्नताका विषय हैं। हमारा विश्वास है कि हमारी इन भावनाओंका परिचय स्वदेश लौटनेपर मण्डल अपने देशवासियोंको अवश्य ही करायगा और साथ ही हमारी वर्तमान स्थितिका सही-सही हाल भी उन्हें बतलायगा।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैंतालीस सालकी परीक्षित महौषधि

सन्तानदाता अवलेह

यह अवलेह यथा नाम तथा गुण है। हज़ारों अँधेरे घरोंमें इसने चिराग़ जलवा दिये। यह अवलेह वन्ध्याको पुत्रवती बनाकर कुलका नाम चलाता है। जिसके घरमें पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। इसलिए पुत्र पानेके लिये आप इस अवलेहको अपनी प्यारी धर्मपत्नीको सेवन कराइये। इससे स्त्रियोंके सारे गुप्तांग रोग नाश होते हैं—जैसे कमर और पीठ वगैरःमें दर्द होना, कम-ज़्यादा ख़ून गिरना, गर्भाशयमें पीड़ा होना, नलोंमें भारीपन रहना, हल्की हरारत, जीर्ण-ज्वर, पिंडलियाँ दुखना, सिरमें दर्द रहना वगैरह सारी शिकायतें इस अमृतसे काफ़ूर हो जाती हैं। जो काम लेडी डाक्टरोंके आपरेशनोंसे नहीं हुए, वे इस अवलेहसे हो गये। मूल्य १२) रुपये सेर। पहले आधा सेर मँगा लीजिये। चमत्कार दीख जायगा।

नोट :—अगर प्रदर आदि रोगकी शिकायत है, तो आप हमारे यहाँसे रोगिणी-फार्म मँगा लें। आपके पत्रका उत्तर आदरणीय वैद्य बाबू हरिदासजीकी सुपुत्री श्रीमती चमेलीदेवीजी वैद्या द्वारा दिया जायगा, जो कि नारी-चिकित्सामें प्रवीण हैं। याद रखें, इनका दवाख़ाना अलग नहीं है। हरिदास एण्ड कम्पनीके ही पतेपर पत्र-व्यवहार करें, अन्यथा धोखा होगा!

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तमान तथा भावी मातायें

रोगका यथासमय उपचार करनेमें सुस्ती करके असह्य यातनाओंका शिकार न बनें। इस बातको सदा ध्यानमें रक्खें कि आपकी सन्तानका स्वास्थ्य अथवा हमारे देशका भविष्य आपके गर्भाशयकी शुद्धिपर ही निर्भर है।

गर्भाशयके अनेक रोगोंको दूर करनेवाली सुप्रसिद्ध तथा शीघ्र आरोग्यकारी

भाइब्रो

बी० सी० पी० डब्ल्यू० ब्राण्ड अशोक

से आपका सारा कष्ट तुरन्त दूर हो जायगा। यह कष्टकर तथा अनियमित मासिक धर्म, खूनकी रुकावट तथा भीतरकी जलनके लिये भी बहुत ही गुणकारक है। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंके अन्य रोगोंको भी नष्ट करता है।

बड़े-बड़े डाक्टर इसके सेवनके लिये सलाह देते हैं।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०—कलकत्ता : : बम्बई

बच्चों के लिए ताकत की दवा
डोंगरे का बालामृत

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका चौथा अंक प्रकाशित हो गया

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

लाल कनेर (एकांकी नाटक)	रवीन्द्रनाथ
रुद्रकी वैदिक कल्पना	बलदेव उपा
मनुष्य और मशीन	गुरुदयाल म
शिल्प-तत्त्व	नन्दलाल व
मज्मअ'-उल बहरैन	विक्रमाजीत ह
रवीन्द्रनाथकी मृत्युंजय वाणी	क्षितिमोहन
आखिरी रात (कहानी)	रवीन्द्रनाथ
बँगला छन्दकी प्रकृति	प्रबोधचन्द्र

कई गान, कविताएँ, पुस्तक-समीक्षा और सम्पादकी

वार्षिक मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए प्रति संख्या

व्यवस्थापक, विश्वभारती पत्रिका,
हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गुरुकुल कांगड़ी संचालक—श्री नन्द चट्टोपाध्याय पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
96-3-42

मार्च, १९४३

विशाल भारत

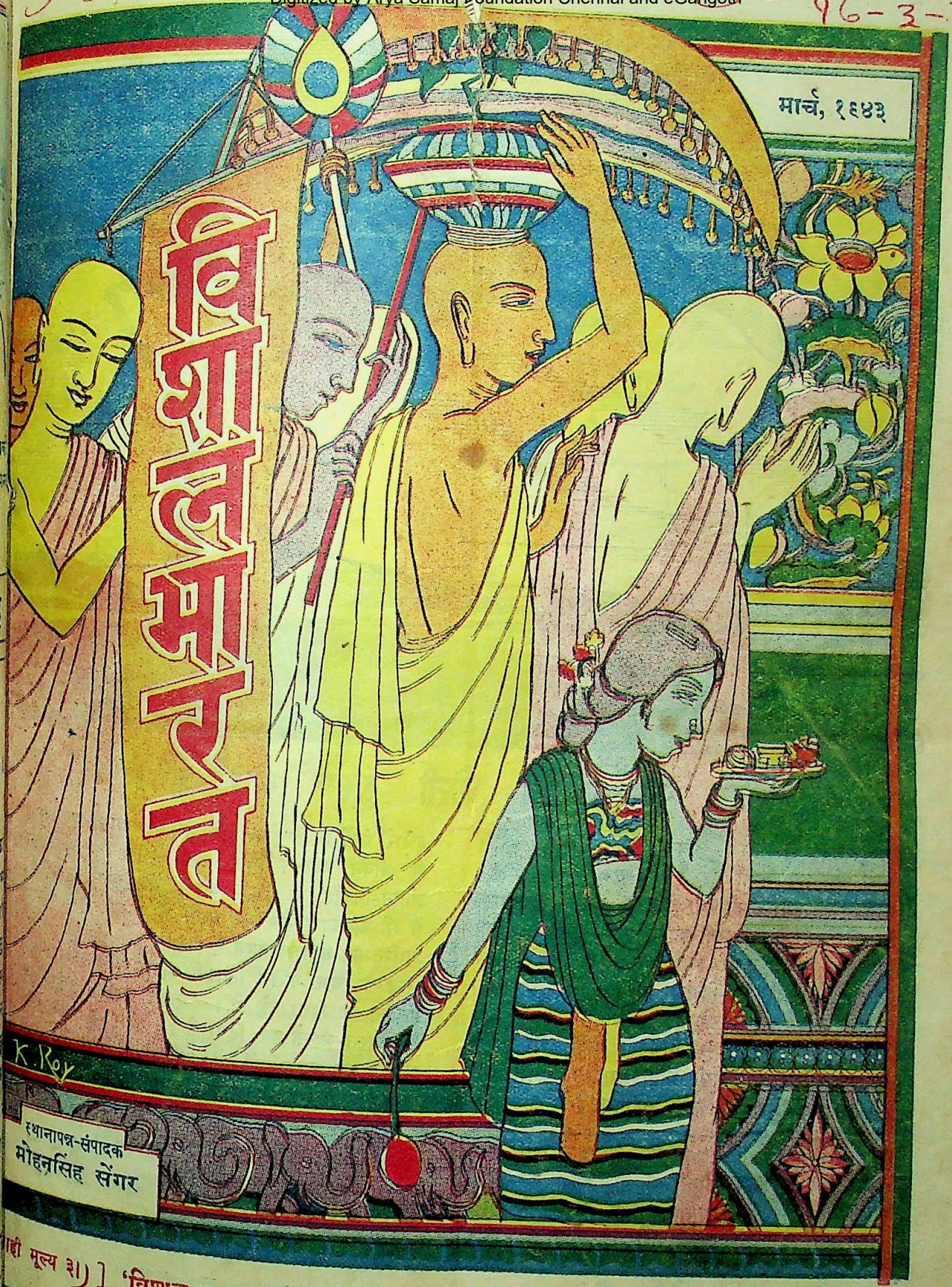

स्थानापन्न-संपादक
मोहनसिंह सेंगर

सही मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

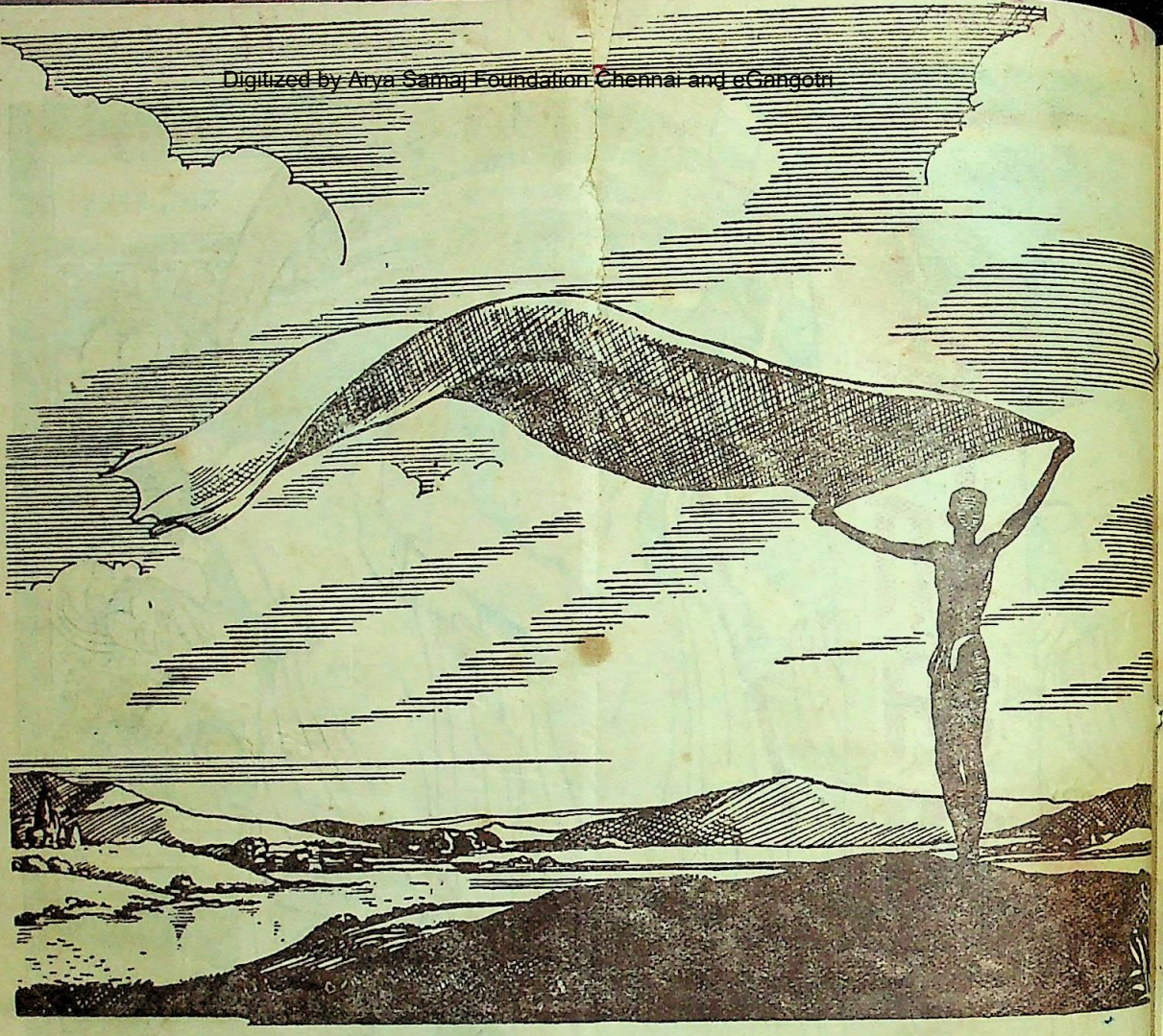

टीले पर लड़का धोती सुखा रहा है।

हिन्दुस्तान का ग्राम्य जीवन कितना मनोहर है। चारों ओर धूप खिली हुई है। सूरज चमक रहा है। सूर्य्यदेव की कृपा से ही वर्षा होती है, फसलें लहलहाती हैं और ऋतुयें अदलती-बदलती हैं। एक लड़का टीले पर खड़ा हुआ हवा में अपनी धोती सुखा रहा है। नदी के किनारे वृक्षों की शीतल छाया के नीचे मवेशी सुस्ता रहे हैं। किसान अपने खेतों में काम कर रहे हैं। पास के गावों और कस्बों की चहल-पहल की धीमी धीमी आवाज़ सुनाई पड़ रही है। हमारा देश कितना सुहावना है।

हज़ारों वर्षों से हिन्दुस्तान के ग्रामीण शान्त वातावरण में जीवन व्यतीत करते आये हैं। जिन लोगों को जीवन-निर्वाह के लिये शहरों में रहना पड़ता है वे भी अवकाश पाने पर गावों में जाकर सुख एवं शान्ति का अनुभव करते हैं।

चीन के चार करोड़ निवासी अपना पारिवारिक जीवन शान्ति से बिता रहे थे। नृशंस जापानी सैनिकों ने इसे अस्त-व्यस्त कर दिया है। चीन के जिन जिन प्रदेशों पर जापानियों ने अधिकार किया है, उन्होंने चीनियों के घरबार बरबाद कर डाले हैं।

हिन्दुस्तान में जापानी यह भयानक काण्ड न करने पावें, इसके लिये हम सब लोगों को मिल जुल कर अपने सैनिकों को सहायता पहुँचानी चाहिये, जिससे वे सारी शक्ति लगा कर आक्रमणकारियों का नाश कर सकें।

स्वयं विचार कर देखिये और मिल जुल कर काम कीजिये

यही है राष्ट्रीय युद्ध मोर्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[माघ, १९९९ : : मार्च, १९४३]

१	जयजयकार (कविता)—श्री गोपालसिंह नेपाली	१६१
२	अमरीका और भारत—श्री ईश्वरशरण	१६२
३	रेलकी खिड़कीसे (कविता) —श्री राजेन	१६६
४	रवीन्द्रनाथके चित्र—श्री गुरुदयाल मल्लिक	१६८
५	अगर आज ईसा जीवित होते ?—प्रो० हाल्डेन	१६९
६	लड़ाईके बाद—श्री बालकृष्ण गुप्त	१७१
७	कलाकारकी ज़िम्मेदारी—श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	१७४
८	साध (नाटक)—श्री पृथ्वीनाथ शर्मा	१७७

बच्चों के लिए ताकत की दवा
डोंगरे का बालामृत

आपके केशोंकी रक्षाकी कुंजी

अपने केशोंकी रक्षा करनेकी कुंजी आपके ही हाथोंमें है···केशोंकी वृद्धिके सहायक और उसकी रक्षामें उपयोगी एवं उसके सौन्दर्यके स्थायित्वमें मददगार

कामिनिया आयल (रजि०)

की एक शीशी ही यह काम करती है...इसे आप भूल नहीं सकते...इसकी अद्वितीय सुगन्ध इसके नामकी तरह ही आकर्षक है। कीमत एक शीशीकी १), २॥।-) ; ३ शीशीकी। वी० पी० चार्ज अलग। मुफ्त नमूनेके लिये -) का टिकट भेजें।

ओटो दिलबहार (रजि०)

सुगन्धका राजा—यह मामूली सुगन्ध-द्रव्यों से भिन्न वस्तु है...अत्यन्त मनमोहक। अन्य सुगन्धित द्रव्योंसे इसकी तुलना नहीं हो सकती... अलकोहलसे मुक्त···स्थायी सुगन्ध ! एक ड्रामकी शीशी ॥।=)। वी० पी० खर्च अलग। नमूनेके लिये =) आनेके स्टाम्प भेजें।

सोल एजेण्ट—

एंग्लो इंडियन ड्रग एण्ड
केमिकल कं०, बम्बई-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

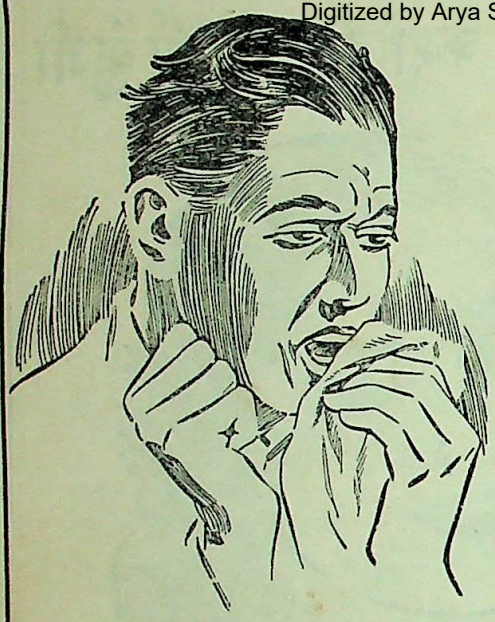

का सा वि न

दमा और खाँसीमें शीघ्र फलप्रद

जिन्हें श्लेष्माका ज़ोर हो और तनिक-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खाँसी, टान्सिलका प्रदाह और दमेका दौरा आने लगता हो, उन्हें सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातीत लाभ होगा और फिर निश्चिन्त होकर वे आरामसे अपने दैनिक कर्त्तव्य करनेमें समर्थ होंगे।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०,

कलकत्ता : : बम्बई

पैंतालीस सालकी परीक्षित महौषधि

सन्तानदाता अवलेह

यह अवलेह यथा नाम तथा गुण है। हज़ारों अँधेरे घरोंमें इसने चिराग़ जलवा दिये। यह अवलेह वन्ध्याको पुत्रवती बनाकर कुलका नाम चलाता है। जिसके घरमें पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। इसलिए पुत्र पानेके लिये आप इस अवलेहको अपनी प्यारी धर्मपत्नीको सेवन कराइये। इससे स्त्रियोंके सारे गुप्तांग रोग नाश होते हैं—जैसे कमर और पीठ वग़ैरःमें दर्द होना, कम-ज़्यादा ख़ून गिरना, गर्भाशयमें पीड़ा होना, नलोंमें भारीपन रहना, हल्की हरारत, जीर्ण-ज्वर, पिंडलियाँ दुखना, सिरमें दर्द रहना वग़ैरह सारी शिकायतें इस अमृतसे काफ़ूर हो जाती हैं। जो काम लेडी डाक्टरोंके आपरेशनोंसे नहीं हुए, वे इस अवलेहसे हो गये। मूल्य १२) रुपये सेर। पहले आधा सेर मँगा लीजिये। चमत्कार दीख जायगा।

नोट :—अगर प्रदर आदि रोगकी शिकायत है, तो आप हमारे यहाँसे रोगिणी-फार्म मँगा लें। आपके पत्रका उत्तर आदरणीय वैद्य बाबू हरिदासजीकी सुपुत्री श्रीमती चमेलीदेवीजी वैद्या द्वारा दिया जायगा, जो कि नारी-चिकित्सामें प्रवीण हैं। याद रखें, इनका दवाख़ाना अलग नहीं है। हरिदास एण्ड कम्पनीके ही पतेपर पत्र-व्यवहार करें, अन्यथा धोखा होगा!

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

९	संगीत-कला—श्री जगन्नाथबख्श दास	१८२
१०	डेविड हरबट लारेन्स—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र	१८५
११	कनीज़ (कहानी)—श्री भैरवप्रसाद गुप्त	१८८
१२	माया-गृह—श्री ब्रह्मदेव शास्त्री	१९१
१३	यूरोपके आदर्शवादी विचारक—श्री शैलेन्द्र	१९३
१४	गुजरातका गरबा-रास—श्री गौरीशंकर ओझा	१९८
१५	विधर्मियोंका हिन्दू-धर्ममें प्रवेश—प्रो० श्रीराम शर्मा	२०१
१६	समाधिपर (कविता)—श्रीमती सत्यवती मल्लिक	२०४
१७	प्रतिशोध (कहानी)—श्री झवेरचन्द मेघाणी	२०६
१८	जीवन और विज्ञान—पं० जवाहरलाल नेहरू	२०७
१९	बाण भट्टकी आत्म-कथा—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी	२०८
२०	चीनी लिपि—श्री कृष्णकिंकर सिंह	२१४
२१	कल तुम जाओगे ! (कविता)—श्री 'केसरी'	२१९
२२	अन्तका आरम्भ—मोहनसिंह सेंगर	२२०
२६	चिट्ठी-पत्री	२२५
२७	समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार	२२८
२८	चयन	२३१
२९	सम्पादकीय विचार	२३३
	तिरंगा चित्र—वसन्त-आगमन—श्री गोपालचन्द्र घोष	१६१

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', मू० २।) ।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला १।=), भाग दूसरा १॥) ।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

शिकागो-वक्तृता—मू० ।=) ; **परिव्राजक**—मू० ॥=) । **प्रेमयोग ; प्राच्य और पाश्चात्य ; आत्मानुभूति :** प्रत्येकका मू० ॥) ।

मेरे गुरुदेव—मू० ।=) ; **वर्त्तमान भारत**—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर

(सी० पी०)

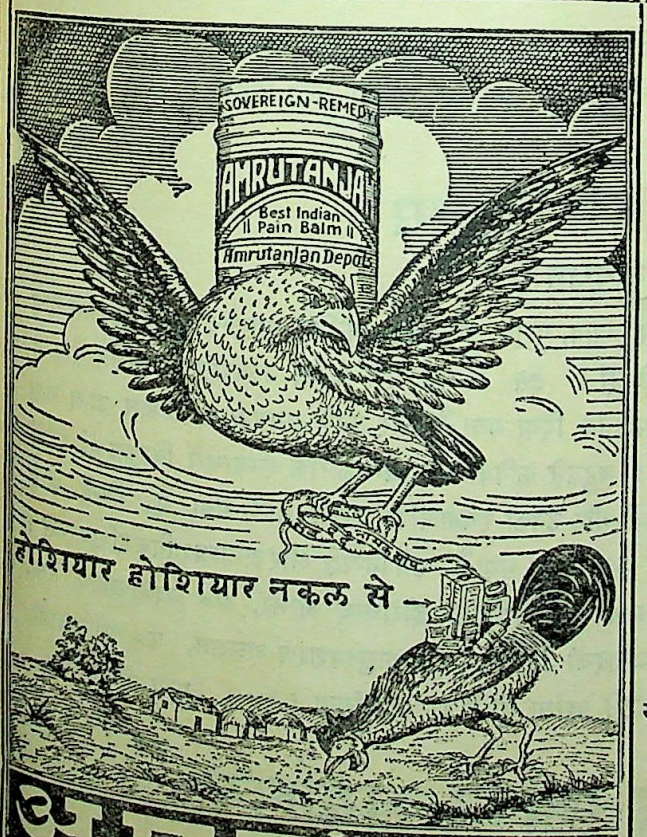

कलकत्ता आयुर्वेद कालेजके भूतपूर्व अध्यक्ष
भारत-विख्यात राजवंद्य
कविराज श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय
एम० ए० द्वारा आविष्कृत

यक्ष्मारि

सब तरहके यक्ष्मा-रोगका सर्वोत्तम प्रतिषेधक

यक्ष्मा-रोगके कीड़ोंको ध्वंसकर, श्वास, कास, स्वरभंग, लगातार बुखार, ख़ूनकी कै, फेफड़ेमें जखम, रक्त-हीनता, कमज़ोरी और क्षय दूर करनेकी ऐसी दूसरी दवा नहीं है ।

रोग-विवरणके साथ पत्र लिखनेपर सब तरहकी व्यवस्था की जाती है

पता—राजवैद्य-आयुर्वेद-भवन
हेड आफिस—१७२, बहूबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता ।
फोन नं० बड़ाबाजार ४०३९
कारखाना और शाखा-औषधालय—
पोस्ट—रामपुरहाट (बीरभूम) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य बढ़ाया गया है

कागज़की बेहद महँगाईके कारण शरत्साहित्यके जो भाग अब छपे हैं और आगे छपेंगे, उनका मूल्य बारह आनेसे एक रुपया कर दिया गया है। भाग ३, १५ और १६-१७ हाल ही छपे हैं। इनके सिवा साहित्य-शिक्षा, हिन्दी-गद्यमाला, शाहजहाँ, मेवाड़-पतन, भारत-रमणी, दुर्गादास, जीवटकी कहानियाँ, हिन्दी-साहित्यकी भूमिका, ग्राम्य-जीवनकी कहानियाँ, देश-देशके लोग, शान्तिकुटीर, उपवास-चिकित्सा, शिवाजी, राणा प्रताप, नूरजहाँ, नवनिधि, उर्दू-हिन्दी-कोश, आनन्दकी पगडंडियाँ और ताराबाई—इन पुस्तकोंका मूल्य पहलेसे सवाया कर देना पड़ा है। अन्य सब पुस्तकोंका मूल्य ज्योंका त्यों है।

बहुतसे ग्राहक हमसे दूसरोंकी प्रकाशन की हुई पुस्तकें भी मँगाया करते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि प्रायः सभी प्रकाशकोंने अपनी पुस्तकोंके दाम बढ़ा दिए हैं। सूचीपत्रमें छपी हुई कीमतें ठीक नहीं हैं। इसलिए ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे बढ़ी हुई कीमतोंका खयाल रखकर ही आर्डर दें। कमीशन भी प्रकाशकोंने कम कर दिए हैं, इसका भी ध्यान रक्खें।

गुजरातके नाथ

गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत के० एम० मुन्शीका यह अतिशय मनोरंजक, उत्कण्ठावर्धक और कलापूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हाल ही प्रकाशित हुआ है। हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी कमी है और हिन्दीके लेखक इस समय इस ओरसे प्रायः उदासीन हैं। अतएव हिन्दीके पाठक इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। ४६० पृष्ठोंके इस उपन्यासका मूल्य सवा दो रुपया है। इसके पहले मुन्शीजीका 'पाटनका प्रभुत्व' प्रकाशित हो चुका है, जिसका मूल्य डेढ़ रुपया है। वह भी ऐतिहासिक है और उसके बादका ही इतिहास 'गुजरातके नाथ'में गुम्फित है। यों दोनों ही स्वतन्त्र हैं।

कबीर

शान्तिनिकेतनके अध्यापक पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्यने इस ग्रन्थमें कबीर, उनके साहित्य और उनकी फिलासफ़ीपर बिल्कुल ही नये दृष्टिकोणसे और बड़ी गहराईसे विचार किया है। कबीरको अच्छी तरह समझनेके लिए यह ग्रन्थ आवश्यक है। मूल्य ढाई रुपया।

जैन-साहित्य और इतिहास

लेखक:—पं० नाथूराम प्रेमी

जैन-साहित्य बहुत विशाल और गम्भीर है। व्याकरण, काव्य, न्याय, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि कोई भी ऐसा साहित्यांग नहीं है, जिसपर जैन-पण्डितोंने प्रामाणिक ग्रन्थ न लिखे हों। इस ग्रन्थमें ऐसे सकड़ों प्रकाशित-अप्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंके ग्रन्थों और उनके कर्ताओंका विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके समयपर भी प्रकाश डाला गया है। इसके सिवा जैन-इतिहासकी अनेक गुत्थियां सुलझाई गई हैं। बहुतसे कवियों और ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें बिल्कुल नई खोजें की गई हैं। हिन्दीकी जननी अपभ्रंश भाषाके ऐसे अनेक कवियों और उनकी रचनाओंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें कोई जानता भी नहीं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो कुछ लिखा गया है, सब निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे।

'विश्व-भारती', 'विशाल भारत' आदि पत्रोंने और म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, प्रो० हरिसत्य भट्टाचार्य, पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० भगवद्दत्तजी, डा० रघुवीरसिंहजी आदि माने हुए विद्वानोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या ६३४। मूल्य तीन रुपया।

संचालक—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[श्री गोपालचन्द्र घोष

वसन्त-आगमन

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३१, अंक ३] माघ, १९९९ : : मार्च, १९४३ [पूर्णांक १८३

जयजयकार

श्री गोपालसिंह नेपाली

जग का जयजयकार !
मग का जयजयकार !
जग-मगपर जगमग प्रकाश-कण-कणका जयजयकार !
नव प्रभात के सुन्दर स्वर्णिम क्षणका जयजयकार !

- १ -

उषा खड़ी कोमल कुन्तल में गूँथ किरण के फूल ;
बनकर स्वर्ण उड़ी अम्बर में रवि के रथकी धूल ।
आज तिमिर के पुंज-पुंज पर मची ज्योति की केलि ;
रवि किरणों के प्रथम परस से रोमांचित वन-बेलि ।
चमक उठा है रंग - रंग में टहनी - टहनी पानी ;
छूती जादू की वंशी से रवि की नई जवानी ।
किरणों की माया देखो, जग सोने की काया है ;
दूर पूर्व से चलकर दिनकर हँसता ही आया है ।
गान विश्वको देनेवाले रवि का जयजयकार !
स्वप्न नयन में भरनेवाली छवि का जयजयकार !

- २ -

जन्म - मरण दो छोर दूरतर
और बीच का जीवन सुन्दर ।
जग में यह सुरसरि की धारा,
डुबा रही जो कूल - किनारा ।
खिड़की एक जन्म है, जिससे देखो जग रंगीन ;
मरण दूसरी खिड़की, जिससे सुनो नियति की बीन ।
और जगत् का जीवन कलकल-छलछल जल की धारा ;
गरज-गरज जिसकी लहरों ने अग-जग को ललकारा ।
जीवन आकर एक शून्य को है संसार बनाता ;
और मरण के वधिर कान में फूँक मारता जाता ।
जग-मरु पर जीवन के पावस-जल का जयजयकार !
मरे भूत पर अमर आज औ' कल का जयजयकार !

- ३ -

जीवन आगे को चलना है,
सम्भव है, कलना - छलना है ;
और जवानी खुद अपने ही
जीवन की लौ में जलना है ।

जीवन नियम, जवानी अनियम तोड़ चली जो बाँध ;
बिना जवानी के इस जग में जीवन है अपराध ।
है अपराध स्वयं जग के प्रति और धरा का भार ;
और जवानी जीवन में ही जीवन का उद्धार ।
एक गीत है जीवन, जिसमें बज उठता संसार ;
और जवानी उसी गीत की नई - नई झंकार ।
जीवन-कानन की मधुऋतु का, रस का जयजयकार !
यौवन बने स्वयं जीवन के यश का जयजयकार !

- ४ -

उड़ा आज वन - राजि - राजि में सघन रूप का जाल ;
जीवन नीड़ बना, लोचन बन रहे चपल खग - बाल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहराया आवरण रूप का जल - थल नील गगन में ;
पहुँची उसकी शीतल छाया श्रान्त मनुज के मन में।
देख रूप की छवि मानव ने और खोल दीं आँखें ;
उलझ-उलझ फड़फड़ा उठीं दृग के पंछी की पाँखें।
सुन्दरता मानव - प्राणों की मुक्ता - माणिक - काया,
सूर्य्य - चन्द्र ने जिसका केवल एक अंग झलकाया।
अरुण कपोलों से प्राची तक एक रूप का आँचल ;
दृग में, फूलों में, तारों में सुन्दरता है झलमल।

प्रातः जब - जब दुनिया जागे,
देखे तब नयनों के आगे
झुला रहे हैं फूल, रूप के
पिरो - पिरो किरणों के धागे।

जग की ज्योति, प्रकाश नयनका, छवि का जयजयकार !
सुन्दरता के चारण गायक कवि का जयजयकार !

- ५ -

हास - विलास - केलि - कलरव में जग को जो आनन्द ;
लाता उसे लुटाता फिरता फूलों का मकरन्द।

क्षणिक जगत् में जीवन क्षण - भर,
जग के मरु में केवल कण - भर।
लेकिन मानव आनन्दित है,
क्षण - क्षण का संगीत श्रवण कर।

यह प्रकाश, यह जीवन - यौवन, यह सुषमा, आनन्द ;
क्षणिक जगत् के जीवन के क्षण के कोटर में बन्द।
प्रथम जन्म के अट्टहास से जीवन - क्षण खुलता है ;
और अन्त, अवसान - रुदन के आँसू से धुलता है।
जग में कलरव बननेवाले क्षण का जयजयकार।
युग - पर्वत पर चढ़नेवाले कण का जयजयकार।

अमरीका और भारत

श्री ईश्वरशरण

"But it is India that is the center of the problem and the hope of Allied Strategy in Asia. Formerly we Americans could take India, as the saying goes, or leave it alone. But whether we like it or not, India may become as much our problem as are the jurisdictional disputes of Messrs. Green and Murray. What happens or does not happen in India can cost us heavily."
—Edgar Snow.

प्रसिद्ध अमरीकन लेखक एडगर स्नोकी उपर्युक्त पंक्तियाँ उस समय अमरीकाके 'सैटरडे ईवनिंग-पोस्ट'में छपी थीं, जब कि जापानने सुदूर-पूर्वके द्वीपों, डच द्वीप-समूह, मलाया तथा बर्मापर अधिकार कर लिया था और अमरीकामें काफ़ी आतंक फैल गया था। विचारशील अमरीकन तब यह अनुभव करने लगे थे कि मूल निवासियोंकी असद्भावना एवं अविश्वाससे मित्र-राष्ट्रोंको जो हानि हुई है, उससे सबक़ हासिल किया जाय और भारतमें उसकी पुनरावृत्ति न होने दी जाय। इसके साथ ही उन्होंने यह भी अनुभव किया कि जापानको पराजित करनेके लिए १०-१२ हज़ार मील दूरसे सैनिक और शस्त्रास्त्र ले जाकर लड़ना मँहगा ही नहीं, मूर्खतापूर्ण भी है। इसीलिए भारतकी लोक-शक्ति एवं उपादानोंकी सामरिक व्यवस्थाकी आवाज़ बुलन्द की गई। ग्रेडी-कमीशनके भारत आनेका एक प्रधान उद्देश्य यही था।

पर इधर जापानके आक्रमण-चक्रके रुक जाने तथा मित्र-राष्ट्रोंको अन्यान्य क्षेत्रोंमें मिली सफलताओंके कारण, मालूम होता है, अमरीकाने फिर भारतको उसके भाग्य या कुछ ब्रिटिश अधिकारियोंकी इच्छाके भरोसे छोड़ दिया है। सर्वश्री वेंडेल विल्की, पर्ल बक, लुई फिशर, एडगर स्नो तथा श्रीमती रूज़वेल्ट आदिकी वाणी जैसे अमरीकन अधिकारियोंके एक कानमें पड़ कर दूसरेसे निकल चुकी है। कहनेके लिए अमरीकाने भारत अपना एलची नियुक्त किया है, जो समय-समयपर भारतीय आँसू पोंछनेके लिए उनसे मुलाकातें करता और यह कह रहता है कि भारतके मसलेपर अमरीकन और ब्रिटिश अधिकारी ग़ौर कर रहे हैं। पर अमरीकाके राज्य-सचिव कार्डेल हल वक्तव्य और अब तक राष्ट्रपति रूज़वेल्टका भारतीय समस्या रहस्यपूर्ण मौन धारण किए रहना अधिकारियोंकी मनोवृत्ति खासे अच्छे परिचायक हैं।

लेकिन अब भी भारतके पत्रोंमें अमरीकाके वे विज्ञ छपते हैं, जिनमें चौहरे अभावसे मानवको मुक्त करनेकी है ; जिनमें उसकी स्वतन्त्रताकी प्रतिज्ञा और विश्व-स्वतन्त्र तथा लोकतन्त्रके लिए लड़नेकी दुहाई है। अब भी अमरीकी कहते हैं कि विजय बहुत निकट और आसानीसे प्राप्त होगी। अब भी जर्मनी और जापानको पूर्णतया परा करनेकी योजनाएँ सोची और बनाई जा रही हैं। तब भारतकी समस्याको—जिसपर न केवल मित्र-राष्ट्रोंकी विज निर्भर करती है, बल्कि उसके बाद आनेवाली शान्ति खटाईमें डाल देना या उसे एकमात्र मुट्ठी-भर ब्रिटिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्थियोंकी मर्ज़ीपर छोड़ देना क्या अमरीकाके लिए बुद्धि-संगत और युद्ध-नीतिके अनुकूल है ? यदि वास्तवमें यह लड़ाई जन-साधारणकी एवं उनके लिए है, यदि वास्तवमें मित्र-राष्ट्र आक्रमणकारी फ़ाशिस्तोंकी शक्तिको मिटाना चाहते हैं और यदि हृदयसे वे इसके बादकी शान्तिको स्थायी, सुख-सन्तोषप्रद एवं संघर्ष, प्रतिद्वन्द्विता और युद्धोंकी सम्भावनासे मुक्त करना चाहते हैं, तो ४० करोड़ लोगोंका भाग्य-निर्णय लोकतन्त्र, विश्व-स्वातन्त्र्य एवं आत्म-निर्णयके सिद्धान्तोंकी अवहेलनाकर युद्धकी समाप्ति तकके लिए स्थगित नहीं रखा जा सकता। अस्तु—

पर इसका मतलब यह कदापि नहीं कि हम अमरीकासे भारतकी आज़ादीकी भीख माँग रहे हैं। भारतके जन-नेताओंने एकाधिक बार यह स्पष्ट कर दिया है कि वे किसी अन्य देशसे अपनी समस्याके हलमें कोई सहायता, सहयोग या हस्तक्षेप नहीं चाहते। यह राष्ट्रके स्वाभिमानका तक़ाज़ा है। लेकिन जो व्यक्ति और देश वर्त्तमान युद्धको दो राजनीतिक आदर्शों, दो परस्पर-विरोधी शक्तियों, पशु-बल और नैतिक सिद्धान्तोंका संघर्ष बनाए हुए हैं और गला फाड़-फाड़कर कहते हैं कि उसकी विजयपर मानवताकी सुख-समृद्धि और उसकी पराजयपर मानव-मात्रकी गुलामी, भुखमरी और अन्धकार सुनिश्चित हैं, उन्हें किसी संकीर्ण स्वार्थ-भावना या झिझक-संकोचसे इस आवश्यक कर्त्तव्य-पालनमें शिथिल अथवा अविचारी किसी भी दशामें नहीं होना चाहिए। ऐसा करनेसे या तो युद्ध लम्बा होगा और विजय काफ़ी महँगी पड़ेगी; या फिर जो शान्ति स्थापित होगी, वह यथार्थ और चिरस्थायी न होगी—उसमें अशान्ति और भावी युद्धके कीटाणुओंका रहना अवश्यम्भावी है। एतदर्थ भारतको पूर्णतया मित्र-राष्ट्रोंके साथ करने तथा युद्ध-प्रयत्नमें उसकी लोक-शक्ति और उपादानोंका भरपूर प्रयोग करनेके लिए उसकी समस्याको हल करना अपने स्वार्थ, घोषित उद्देश्योंकी पूर्त्ति और विश्व-मानवताके हितकी दृष्टिसे अमरीकाका प्राथमिक कर्त्तव्य है।

भारतकी उपादेयता

मित्र-राष्ट्रोंके लिए इस समय भारतकी उपादेयता क्या है, यह उन्हींके अधिकारी व्यक्तियों द्वारा जानना उचित है। कारण, व्यक्तिगत रूपसे इस सम्बन्धमें हमारी जानकारी लगभग नगण्य ही है। ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा इस सम्बन्धमें जो आँकड़े जब-तब प्रकाशित किए गए हैं, वे पूर्ण नहीं कहे जा सकते। अतः हम एडगर स्नो द्वारा प्रस्तुत आँकड़ोंका ही प्रयोग करेंगे। पहले लोक-शक्तिको ही लें। पिछली मर्दुमशुमारीके मुताबिक भारतकी आबादी लगभग ४० करोड़ है। पर स्नोके कथनानुसार यहाँकी सैनिक-संख्या विगत दिसम्बरमें १० लाख थी, जिसे भारतके प्रधान सेनापति जनरल वेवलने भी स्वीकार किया है। इस अनुपातसे प्रति ४०० भारतीयोंपर एक सैनिक हुआ! इसके मुक़ाबलेमें जापानकी आबादी है सिर्फ़ ७ करोड़ और पूर्वी एशियाके जिन भागोंपर अब तक उसका कब्ज़ा हुआ है, उनकी कुल आबादी है ३५ करोड़। जापानकी सैनिक-संख्याके निश्चित आँकड़े उसके सिवा किसीको भी नहीं मालूम; फिर भी इतना तो सभीने सुना है कि उसने अधिकृत स्थानोंके लोगोंको भी स्वेच्छा या बाध्य-रूपसे सेनामें भर्त्ती किया है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि १९४२ के बाद उसने अपनी सैनिक-संख्या काफ़ी बढ़ा ली है। अगर इसी अनुपातसे मित्र-राष्ट्र भारतीयोंको सैनिक-सेवाके लिए तैयार करें, तो ४० करोड़की आबादीमें से कम-से-कम ४ करोड़ सैनिकोंका तैयार होना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।

यह तो हुई सिर्फ़ सैनिकोंकी बात; पर शेष ३६ करोड़ लोगोंमें से युद्ध-सामग्री तैयार करनेवाले कारखानोंमें काम करनेवाले करोड़ों मज़दूर (स्त्री-पुरुष और बच्चे) मिल सकते हैं। हिन्दुस्तानकी ग़रीबी और बेकारी किसी भी देशसे कम नहीं है। अतः यदि प्रतिनिधि राष्ट्रीय सरकार द्वारा देशका औद्योगीकरण हो, इसके घरेलू उद्योग-धन्धोंको उत्तेजन एवं प्रोत्साहन दिया जाय, पशु-धन और खेतीकी वृद्धि की जाय, तो भारतके इन असंख्य भूखों-नंगोंको रोटी-कपड़ा भी मिल सकता है और युद्ध-सामग्रीका असाधारण उत्पादन भी हो सकता है। मज़दूरोंके अलावा मिस्त्री, कारीगर और किरानी भी काफ़ी बड़ी तादादमें मिल सकते हैं।

स्नोका कहना है कि भारत अमरीकासे तिगुना बड़ा है और उसके कई उपादान तो अमरीकासे भी श्रेष्ठ हैं। अमरीकाके बाद संसारमें लोहेका सबसे बड़ा स्वामी भारत ही है! लेकिन अब तक इसकी खुदाई और शोधकी उचित व्यवस्था नहीं हुई है। इसके विपरीत जापान—जो इसका केवल सातवाँ हिस्सा है और अपने समग्र अधिकृत स्थानोंको मिलाकर भी जिसके पास पर्याप्त लोहा नहीं है—भारतसे कई गुना अधिक इस्पात तैयार करता है। अगर टाटा-जैसे आधे दर्जन कारखाने भी भारतमें हों और इसके लोहेकी खुदाई तथा शोध आदिकी उचित व्यवस्था हो, तो भारत न केवल एशियामें ही सबसे अधिक इस्पात तैयार कर सकेगा, बल्कि शायद किसी दिन अमरीकाको भी मात दे दे। इसके अलावा सोना, ताँबा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जस्ता, वुल्फ्राम, मांगल तथा अनेक अन्य खनिज पदार्थ भी यहाँ पर्याप्त मात्रामें मिल सकते हैं। प्लाटिनम और एल्यूमीनियम आदिका उत्पादन भी उचित व्यवस्था द्वारा किया जा सकता है।

कोयला तो भारतमें काफ़ी होता ही है। यदि प्रयत्न किया जाय, तो उसका उत्पादन भी काफ़ी बढ़ाया जा सकता है। इस समय भारतमें रूस और चीनसे भी कम कोयला पैदा होता है। अफ्रीका और अमरीकाके बाद जंगलोंमें भारतका स्थान सर्वप्रथम है। भारतीय जंगलोंमें ईंधनको छोड़कर पचासों प्रकारकी नरम और सख्त लकड़ियाँ पैदा होती हैं। बर्माके लट्ठों, चीड़ व टीकका अभाव इससे आसानीसे पूरा किया जा सकता है। शस्त्रास्त्रोंके अलावा नावों और डोंगियोंके बनानेमें भी इसका समुचित उपयोग हो सकता है। भारतकी जल-शक्ति अमरीकासे भी अधिक है; पर अब तक उसके केवल २ प्रतिशत भागका ही उपयोग हो सका है।

विदेशी शासनका परिणाम

स्नोका कहना है—'यदि भारतके इस लोक-बल और उपादानोंका पूर्णतया संग्रह एवं उचित व्यवस्था की जाय, तो सिर्फ़ इसीसे एशियाका युद्ध जीता जा सकता है। पर दर-असल इस दिशामें नाम-मात्रका ही प्रयत्न किया गया है। देशके बहुसंख्यक लोग अभी निरक्षर, विगठित, उपेक्षणीय और सैनिक शिक्षासे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। जिन लोगोंको आत्म-रक्षाकी शिक्षा दी गई है, उनकी संख्या बहुत नगण्य है। भारत अमरीकासे बहुत पुराना देश है, फिर भी उसकी ९३ प्रतिशत आबादी अब तक निरक्षर है! इसके विपरीत फिलिपीनमें—जहाँ गत ४० वर्षोंसे अमरीकन शासन है—निरक्षरता ९८ प्रतिशतसे घटकर ४५ प्रतिशत ही रह गई है। भारतके सबसे धनी नरेशोंकी सत्ता और सम्पत्तिमें तथा जन-साधारणकी दरिद्रता एवं अज्ञानमें जो सामन्त-युगीन विषमता है, वह शक्तिके स्थानपर भारतकी वर्त्तमान दुर्बलताका एक प्रमुख कारण है। जब तक किसीने विदेशी शासन या भारतकी १८००,००० वर्ग-मील भूमिके तिहाई भागपर अधिष्ठित ५६३ नरेशोंके अधीन रहनेवाले भारतीय किसानोंको नहीं देखा है, उसने ग़रीबी नहीं देखी!'

आधुनिक शासनकी सबसे बड़ी देन हैं—साक्षरता, सभ्यता, आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा कर्त्तव्य और अधिकारोंकी जागरूकता। बिना इनके न तो जनतामें सच्चे स्वातन्त्र्यकी भावनाका विकास ही हो सकता है और न वह उसके लिए लड़ने अथवा सर्वस्वकी बाज़ी लगानेके महत्वको ही समझ सकती है। चीन और रूसकी जनता इसके उज्ज्वल प्रमाण हैं। इनके विपरीत बर्मा, मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदिकी जनता—जिसे विदेशी शासकोंने इन देशोंके उपादानोंकी प्राप्तिके लिए किम्बहुना निरक्षर एवं अज्ञानी मज़दूर ही रखा—एक पुराने शासकोंके पराजित होनेपर नए आक्रमणकारियोंकी लूट बन गई। इसमें उसका दोष एक हद तक ज़रूर है; पर यथार्थमें दोष तो उन विदेशी शासकोंका है, जिन्होंने अपने शोषणके लिए उसे राजनीतिक एवं अर्थनीतिक दृष्टिसे पराधीन और अज्ञानी ही रखा। ऐसी अबोध जनताके लिए एक शत्रु विरुद्ध दूसरेकी और दूसरेके विरुद्ध तीसरेकी मदद करनेमें पड़ ही क्या हो सकता है?

पर भारतीय इतने पिछड़े हुए नहीं हैं। परतन्त्र और अधिकांशतः निरक्षर होनेपर भी उनकी अपनी संस्कृति, सभ्यता है और सत्-असत्के विवेककी एक भावना है। इस युद्धमें जो दो पक्ष हैं, उनके काले-उजले पहलू वे बखूबी समझते हैं। राजनीतिक विचार-नीतिमें भारी वैभिन्य होनेपर भी देशकी सबसे बड़ी राष्ट्रीय संस्था कांग्रेसने भारतीय जनताके इस विवेक-बुद्धिको निःसंदिग्ध रूपसे व्यक्त किया है। अमरीकी भलीभाँति यह जानते हैं कि भारतीय क्यों और किस फ़ाशिज़मके विरुद्ध हैं। यदि उनका बस चले, तो यूरोप ही नहीं, दुनियासे फ़ाशिज़म और लोग-दिखाऊ लोकतन्त्रको खात्माकर वे असली लोकतन्त्र, आत्म-निर्णय एवं सच्चे किस्म स्वातन्त्र्यकी स्थापना करें। पर विदेशी शासनने जिस तरह उनको राजनीतिक एवं अर्थनीतिक दृष्टिसे निकम्मा बना रखा है, देशके सैनिकीकरण और उपादानोंके सदुपयोग और औद्योगीकरणको जिन संकीर्ण सीमाओंसे अवरुद्ध कर रखा है, उससे वे अपने फ़ाशिज़म-विरोधको कार्य-रूपमें परिणत नहीं कर सकते। इस अवसरपर भारतकी जो मनोव्यथा है, उसे स्वाधीनता-प्रेमी एवं स्वाभिमानी अमरीकन शायद सहज ही अनुभव कर सकते हैं।

सुदूर-पूर्वके युद्धों और अबीसीनिया, लीबिया, ट्यूनीसिया आदिमें मित्र-राष्ट्रोंको मिली सफलताओंमें भारतीय सेनाका प्रमुख हाथ रहा है। मित्र-राष्ट्रोंके सेनापतियोंने उनकी अनेक अवसरोंपर प्रशंसा भी की है। अगर इसे अतिशयोक्ति प्रशंसा न समझा जाय, तो हम दावेके साथ कह सकते हैं कि भारतीय सैनिक शारीरिक, मानसिक और यान्त्रिक दृष्टिसे किसी भी मित्र-राष्ट्रके सैनिकसे कम नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बक्तौल एडगर स्नोके ऐसे ही श्रेष्ठ सैनिकोंकी एक विशाल सुसज्जित सेना तैयार की जाय और भारतको युद्ध-समग्री तैयार करनेका पूर्वी-केन्द्र बनाया जाय, तो क्या जापानको हराना कठिन होगा? पर हमारी इस माँगको आज विश्वास और सद्भावनाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा रहा। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप भारतमें जो विक्षोभ और असन्तोष फैल रहा है तथा ब्रिटिश अधिकारियोंकी नीति और दमनने उसे जो दुखद रूप दे दिया है, वह प्रत्येक फ़ाशिज़्म-विरोधीके लिए चिन्ता एवं खेदका विषय है।

आज भारतीयोंको विदेशोंमें फ़ाशिज़्मका समर्थक अथवा 'पाँचवें दस्तेवाले' कहकर बदनाम किया जा रहा है। अमरीकामें यह भारत-विरोधी प्रचार काफ़ी बढ़ रहा है। इसका उद्देश्य कदाचित् भारतीयोंको आज़ादी और फ़ाशिज़्मके विरुद्ध लड़नेके लिए लोक-बल और उपादानोंकी व्यवस्था-संगठनके लिए आवश्यक राष्ट्रीय सरकारकी माँगको आज जो विश्वव्यापी समर्थन प्राप्त हो रहा है, उसकी जड़पर कुठाराघात करना है। पर इसे भारतका सौभाग्य ही कहना चाहिए कि दुनियाकी नज़रोंमें भारतकी आज़ादीकी माँगका अनौचित्य एवं असामयिक सिद्ध करनेका प्रोपेगेण्डा विशेष सफल नहीं हो पाया है। अपने वेतनभोगी नौकरोंके अलावा ब्रिटिश अधिकारी सर्वश्री लुई फिशर, एडगर स्नो, पर्ल बक, लुई जान्सन और श्रीमती गुन्थर-जैसी प्रतिभा, प्रतिष्ठा एवं ईमानदारीका एक भी अमरीकन समर्थक प्राप्त नहीं कर सके हैं। आज जो अमरीकन जनता भारत-विरोधी ब्रिटिश प्रोपेगेण्डापर विश्वास नहीं करती और वहाँके दर्जनों पत्र भारतकी आज़ादीकी माँग कर रहे हैं, उसका श्रेय अमरीकाके उल्लिखित ईमानदार, दूरदर्शी एवं यथार्थ फ़ाशिज़्म-विरोधी व्यक्तियोंको ही है।

अमरीका क्या करे?

पर केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। कोरी सहानुभूति और सद्भावना न तो प्रजातन्त्र स्पेनको ही बचा पाई और न रूस तथा चीनके लिए ही विशेष सहायक सिद्ध हुई। आज उन्हें कार्य-रूप देनेका समय है। अमरीका न केवल लोकतन्त्रका एक विशाल शस्त्रागार ही है, बल्कि आज वह फ़ाशिज़्म-विरोधी युद्धका नेता भी है। उसके लाखों सैनिक पृथिवीके विभिन्न भागोंमें आज फ़ाशिज़्म-विरोधी लड़ाई लड़ रहे हैं। उसकी युद्ध-सामग्री और अन्य प्रकारकी सहायतासे आज अनेक मोर्चोंपर फ़ाशिज़्मको दफ़नाया जा रहा है। रात और दिन; आँधी और तूफ़ान; गर्मी, सर्दी और वर्षा; सुविधा और असुविधाका ध्यान भूलकर उसके नागरिक आज फ़ाशिज़्मकी अन्तिम आहुतिके लिए अपना खून-पसीना एक किए हुए हैं। उसके जहाज़ और यान सहस्रों मीलकी यात्राकर इस युद्धमें सहायता-सामग्री पहुँचा रहे हैं। यह सब मामूली बात नहीं है।

तब फिर क्या यह देखना भी उसका और उसके नागरिकोंका काम नहीं है कि जिस प्रयत्नके लिए वह जन और धनकी यह असीम बलि दे रहा है, वह अपूर्ण और अकारथ न जाय? उसकी १०० फ़ी-सदी सफल और सार्थक करनेमें क्या वह भारतका पूर्ण सहयोग नहीं चाहेगा? ब्रिटेनकी तरह उसे साम्राज्यका मोह नहीं है। वह विश्व-स्वातन्त्र्य एवं लोकतन्त्रको अपनी स्वार्थ-सिद्धिके नारे नहीं बनाए हुए है, बल्कि यह उसका राजनीतिक विश्वास और नैतिक आदर्श है। यही वाशिंगटन, जैफरसन और अब्राहम लिंकनकी जीती-जागती भावना है। समूचे विश्वमें इसका प्रसार एवं रक्षा तभी सम्भव है, जब कि मनुष्य-मात्रकी स्वतन्त्रता एवं आत्म-निर्णयके अधिकारको न केवल मौखिक रूपसे, बल्कि व्यावहारिक रूपसे, पूरी ईमानदारी और बिना झिझक-संकोचके, स्वीकार किया जाय। तब भारतके बारेमें इस सिद्धान्तकी उपेक्षाको सहनकर क्या वह अपनी स्थितिको दुर्बल नहीं बना रहा?

संयुक्त-राष्ट्रोंकी विजय, फ़ाशिज़्मके विनाश तथा विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रकी स्थापना एवं रक्षाके लिए ४० करोड़ भारतीयोंका स्वतन्त्र एवं स्वशासित होना एक सैनिक आवश्यकता और राजनीतिक दूरदर्शिता ही नहीं, नैतिक अनिवार्यता भी है। एक ओर पृथ्वीके इतने बड़े जन-समूहको उसकी इच्छाके विरुद्ध पराधीन रखना और दूसरी ओर जर्मन-जापान द्वारा पराधीन बनाए गए देशोंको स्वतन्त्र करने तथा विश्व-स्वातन्त्र्य एवं लोकतन्त्रकी स्थापना व रक्षाकी दुहाई देना इतनी बड़ी कपटवृत्ति है, जिसपर कोई भी शक्ति और प्रोपेगेण्डा परदा नहीं डाल सकते। इसके विपरीत स्वाधीन भारतका सैनिक तथा सामग्रीका सहयोग न केवल मित्र-राष्ट्रोंको विजयी ही बनायगा, बल्कि उन्हें वह नैतिक बल भी देगा, जो विजयके बादकी शान्तिको सफल, चिरस्थायी और यथार्थ बना सके। अतः अमरीकाको यह समझनेमें भूल नहीं करनी चाहिए कि भारत अपने लिए नहीं, संयुक्त-राष्ट्रों और सुतरां विश्वके भविष्यके लिए स्वाधीन और स्वशासित होना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेल का खिड़की से—

श्री राजेन

आज रेल की इस खिड़की से
मैं लखता जीवन की यह गति !
चलती रेल, पेड़ भी चलते,
चलती जीवन की सारी गति !

चलती धरणी उमड़ - घुमड़ कर
जीर्ण-शीर्ण-चिर फिर नवीन हो।
अपनी केंचुल बदल - बदल कर
नवल प्रभा में नव - नवीन हो।

चलते मानव, चलते पशु भी,
चलती मछली, चिड़ियाँ सारी।
चलते संसृति के ये अणु - अणु,
धूप - छाँह ये बारी - बारी।

बारी - बारी, ग्रह - ग्रह अविरत
एक चक्र अविराम निरन्तर।
एक निहित चिर - शाश्वत गति में
अरुक निरन्तर घर-घर-घर-घर !

कभी न रुकता बढ़ता गिर - गिर
यह प्रवाह अविराम अरुक चिर।
नित विकास के अविगत पथ पर
चला जा रहा तीव्र अग्रसर।

सुख - दुख के पलड़ों में तुलता
जीवन - सौदा चला जा रहा।
काल यहाँ व्यवसायी बेढब
किसकी सुनता कभी वह रहा।

जब जो चाहा पलड़ा ऊँचा—
करके सौदा तौल दिया रे !
अश्रु - भरे दृग, खिलते अधरों
दोनों पर ही मौन रहा वह।

कौन छिद्र वह, पार क्षितिज के,
अगम भयावह अतल अकेला—
जिससे निकल निरन्तर बहता
यह अनन्त जीवन का मेला ?

कितनी भीड़ ! आह, कितने पथ !
ठेलमठेल विरत संघर्षण !
अह ! कितने वैषम्य विभिन रस
बहे जा रहे घुल - मिल घर्षण।

अगन तत्त्व रे अगन छाँह ले
विभा-छाँह में घुल - मिल घुटकर।
अपने उर से मथ निकालते
एक सार चिर धवल प्रभामय।

उसी सार की मुग्ध छाँह में
अगणित विहग चहकते - उड़ते।
रंग - बिरंगे धूमिल बादल
रजत विभा में खिल - खिल मिलते।

वे बच्चों - से खेल - किलक कर
थक गोदी में हैं सो जाते।
महामातृ की मुक्त भुजाओं
में लय हो वह ही हो जाते।

मैं भी चलता, तन में बहता,
तनके तख्तों पर द्युति - पग धर।
गिर न पड़ूँ, बस यही एक डर,
सीढ़ी के तख्तों से भ्रम कर।

चलता नभ भी, चलती गाड़ी,
चलता मेरा यह अणु - अणु भी।
चला - चला की इस जल्दी में
भूल न जाऊँ पथ यह भारी।

भूल न जाऊँ यही एक डर,
इसीलिए भीतर प्रकाश का
मार्ग प्रभामय कर लेता हूँ,
धुँधली छाँहों को रे दमका।

सुन्दर यह तन - चिमनी मेरी,
सुन्दर मेरी आत्मा - बत्ती।
सुन्दर : विभा मनोहर निर्मल
बिखरी इस चिमनी से छनती !

यह नीला आकाश दूर तक
फैला छितरे बादल छहरा।
इस शीतल भीनी आभा में
आग झलकती यह क्या हहरा ?

यह किस के उर की है ज्वाला ?
यह किसके भीतर की तड़पन ?
ठण्डी आह, कराह अरे रे,
यह किसकी उर - ध्वनि है भीषण ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पक्की दीवार गढ़ी की
ज़मींदार ठाकुर के घर की।
अभी न सहमी लख निज तल में
आग धधकती उबले उर की?

उन टूटी छानों के घर से
आग उमड़ती कुचले उर की।
फटने ही को भक्-भक् करती,
ज्वाल-माल भीषण उर-उर की।

यह प्रकाश की आँधी चलती,
वह विकास की लहरें बढ़तीं!
आज निखिल जग की रग-रग में
आग-भरी बिजली है बहती!

यह शोषण! उफ़! मुक्त न जिसमें
मानवका तन-मन-विकास रे!
ध्वंस! ध्वंस! यह महानाश की
आग उठी कर अट्टहास रे!

पाशव-तम के गिरे स्तूप वे
ज्योति-राशि में डूबे कँपते।
मुक्त व्योम के नव-प्रसार में
खिल-खिल अंकुर नवल सिहरते।

सुन्दर कांक्षाएँ मानव की
पूर्ण आह! होंगी इस जग में?
खिलता मुग्ध प्रकृति का वैभव
और खिलेगा उस के तन में?

आज धरणि पर मानव-मानव
निखिल प्राण हिल-मिल गावेंगे!
कर्म-चेतना आत्माभा में
हँस कण-कण खिलते जावेंगे!

आह! आज छू लेंगी वह तट
मानव की भावी आशाएँ!
आज उमड़तीं उच्चाकांक्षा
भर जीवन की गुरु पीड़ाएँ।

वह प्रकाश! चिर विश्व पूर्ण नव
फूट रहा, जगमग-जगमग नभ!
आह! क्षितिज पर किरणें नव-नव
पुलक रहा खिल-खिल मानव-जग!

दूर-दूर फैली हरियाली!
दूर क्षितिज तरु-रेखा काली।
छहर चुकी भीनी फुहार है,
अभी-अभी मधु-मदिरावाली।

चले जा रहे सिर पर रक्खे
गठरी भारी, पीछे नारी,
दो ग्रामीण चकित-से भोले
किसी गाँव की किए तयारी?

किस घंटे की रे गाड़ी से
गाथाएँ लेकर निज चढ़ने?
कहीं उदासी, छोड़ रुलानी,
कहीं हर्ष का स्रोत छहरने।

सुन्दर कितनी वे पनिहारिन!
जल भर छम-छम चलतीं मन्थर!
आह! छहरते यौवन-मधु की
सुरभि-लोर में बिछुओं का स्वर—

बहा जा रहा भरे हिलोरें
मधुर सुरीली जीवन-मधु की।
निखिल सृष्टि की रग-रग द्वेलित,
उत्पादक विह्वल कण-लहरी!

सुन्दर धरणी! नारी सुन्दर!
सुन्दर मुख! सुन्दर उर, यौवन!
सुन्दर, स्वस्थ सबल वे नर भी
सुन्दर बैल, खेत का जीवन!

सुन्दर! सुन्दर! सब कुछ सुन्दर!
सुन्दर में ही लय हो जाऊँ!
मैं सुन्दर! चिर-सुन्दर! शाश्वत!!
आज उजाली क्यों न बहाऊँ?

दूर व्याप्त निखरे खेतों में
कैसा यह सौन्दर्य लहरता!
आज प्रभा फूटी कण-कण में
मुक्त हर्ष का स्रोत उमड़ता!

आज असुध फिर मेरा अणु-अणु
रोम-रोम में खुल-खुल गाऊँ!
आज आह! पगले प्राणों को—
इस वैभव में क्यों न समाऊँ!

आज रेल की इस खिड़की से
मैं लखता जीवन की यह गति!
मैं विराट रे! चिर अपार नव,
मैं ही निखिल सृष्टि की रे गति!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्रनाथके चित्र

श्री गुरुदयाल मल्लिक

पश्चिमसे आया हुआ कोई अतिथि शान्तिनिकेतनमें रवीन्द्रनाथके पुत्रके सुन्दर और सुरुचि-सज्जित कमरेकी दीवारोंपर जड़ी हुई तस्वीरें देख रहा था। तस्वीरें सभी गुरुदेवकी आँकी हुई थीं। जैसा कि स्वाभाविक था, अतिथिने उनके विषय, शैली और अंकन-प्रणालीके बारेमें प्रश्न पूछे। 'केवल एक क्रीड़ा और एक कौतुक' ('A mere pastime and a phantasy')—गुरुदेवने मुस्कराते हुए उत्तर दिया !...किन्तु इन डेढ़ हज़ारसे भी ऊपर संख्यक चित्रोंकी ओर दृष्टि दौड़ानेवालेके मनमें सहज ही यह सवाल उठता है—क्या यह सब-कुछ महज़ क्रीड़ा और खामखयाली ही है? रंगोंकी यह दुनिया क्या केवल तमाशा ही होगी?

लेकिन एक तरफ़से शायद कवि-शिल्पीका यह उत्तर एकबारगी सही है। शिल्पकी सम्पूर्ण सृष्टिपर मानो मनुष्यकी आत्माका आनन्द क्रीड़ा-कौतुककी छाप लगा देता है। कवि शेलीका अमर पंछी जिस तरह कौतुकके आवेशमें अवश गान गा उठता है, आकाशके सुदूर कोनेसे जिस तरह 'स्वतः उच्छ्वसित संगीत' अपनेको धरापर ढाल देता है, खेलकी वही मस्ती और खुशीका वही तराना शिल्प-रचनाका सबसे सही परिचय है। वही चिरकालकी कहानी है, जिसमें शाश्वत शिशु सृजनकी अदम्य प्रेरणा पाकर फैली हुई रेतपर बालूके घरौंदे बनाता है, गढ़ता है और मिटाता है। अगर कोई उससे पूछे कि यह सब क्यों है, तो बालकके पास उसका एक ही छोटा और पूरा जवाब है—'मुझे अच्छा लगता है।'

किन्तु इसीका और भी एक पहलू है। और इस छोटे-से निबन्धमें इसी दूसरे पहलूसे रवीन्द्रनाथके चित्रोंके मूल अर्थ तथा विषय तक पहुँचनेकी चेष्टा की गई है। अपने जीवनके उत्तरार्द्धके शुरूमें रवीन्द्रनाथके मनमें एक प्रकारकी क्लान्ति संचारित हो गई थी; कवितादेवीकी उपासनाके भीतर—अर्द्धरात्रिमें चुपकेसे घुस आनेवाले चोरकी भाँति—एक अजब थकान आ बैठी थी। सम्भव है, इसका कारण उस कुण्ठाके भीतर छुपा हुआ हो, जिसे रवीन्द्रनाथ तब कभी-कभी अनुभव किया करते थे, जब वे जीवनके प्रधान कर्मक्षेत्रोंमें अपने अन्तरके आदर्शवादको रूप देनेमें बाधा पाते थे। तब उनकी आत्मा एक प्रकारके संकोचका अनुभव करके जैसे हाँफ उठती थी; वे विश्राम चाहते थे।

और सबसे बड़ा विश्राम मनुष्य तब पाता है, जब वह दैनन्दिन जीवनके प्रधान और अभ्यस्त कामोंमें एक परिवर्त्तन ला पाता है, जैसे नदी अपनी परिचित धाराका पथ छोड़कर यहाँ-वहाँ मुड़ जाती है, जिससे उसकी आज़ादी, ताज़गी और ताक़त बनी रहे, वह बन्धनमें उलझी न रह जाय।

और सिर्फ़ इतना ही क्यों, प्रस्तुत और व्यतीत जीवनमें संचित अनुभव तथा चिन्ताकी राशि-राशि किस तरह 'मुक्ति' पायगी, यदि वह केवल एक ही रास्ते बाहर होती रहे? इसीलिए भीतरसे जब वे चेतनाके द्वारपर आकर बार-बार कुण्डी खटखटाने लगीं, तब बिना द्वार खोलकर उनका स्वागत किए कविका कोमल और अतिथि-वत्सल चित्त रह ही कैसे सकता था?

इस दृष्टिसे यदि हम रवीन्द्रनाथकी सृजन-चेष्टापर विचार करें, तो उसके विपुल वैचित्र्यका रहस्य ठीक समझमें आ जायगा। भीतरकी उपचित गतिको बहनेके लिए रास्ता देनेके लिए ही रवीन्द्रनाथने साहित्य, संगीत, शिक्षा और ग्रामोन्नयनके क्षेत्रमें असंख्य प्रयोग किए थे। उनके भीतरकी अधीर व्याकुलता इसी तरह प्रकाश पाना चाहती थी। उन्होंने स्वयं ही गाया है—'मैं चंचल हूँ, मैं सुदूरका प्यासा हूँ।'

किसी कविने कहा है—'स्नेहमें डूबी हुई याद मुझे आस-पाससे घेरकर रखनेवाले अन्य दिनोंका प्रकाश ला देती है।' 'अन्य दिनोंके प्रकाश'का रहस्य अनायास ही हमारी समझमें आ जाता है, जब हम रवीन्द्रनाथके चित्रोंपर एक नज़र दौड़ाते हैं। यह देखिए, एक व्यक्तिकी भीषण आकृति है, जो एक और व्यक्तिकी छातीमें छुरा भोंक रहा है। वह देखिए, किसीकी आँखोंसे गुस्सेकी आग बरस रही है। यहाँ एक सुकुमार मुख है, जिसकी मृदुल शोभामें मातृत्वका सारा दुलार जैसे सघन होकर बरसने आया है; और फिर दूसरी तरफ़ मनुष्य-भोजीकी प्रकाण्ड-निर्मम मुद्रा हमारे मनको क्षोभ और जुगुप्सासे भरपूर किए दे रही है। यहाँ देखिए, एक दृश्य है, जिसके पहाड़-पर्वत, नदी-निर्झर, फूल-पत्ते हमारे देखे हुए नहीं जान पड़ते। या फिर उधर देखिए, उस जन्तुकी ओर, जिसकी बनावट भी किसी परिचित पाशवाकृतिसे नहीं मिलती-जुलती।

कहते हैं, गर्भस्थित बालकको भीतर ही भीतर अपने विकासकी सारी सीढ़ियाँ पैदा होनेसे पहले पार करनी होती हैं। इसी तरह हमारा जीवन भी समूचे विकासका एक संक्षिप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्करण ही होता है। अपने ज्ञान-कर्म-उपासनाके भीतरसे हम उन असंख्य सम्भावनाओंका एक बहुत ही थोड़ा-सा अंश प्रकाश करते हैं, जो हमारी आत्मामें निवास करती हैं। इसीलिए हमारी सत्ताका चेतन अंश एक तरफ़ असीम अचेतन द्वारा और दूसरी ओर परम चेतन द्वारा घिरा हुआ होता है। तब क्या यह सम्भव नहीं है कि रवीन्द्रनाथके चित्र, जो अपरिचित व्यक्तियों और आकृतियों, जीवों अथवा स्थानोंके अनोखे रूप तथा रंग प्रस्तुत करते जान पड़ते हैं, वास्तवमें उनकी महान् व्यापक दृष्टिके एक जालके समान हैं, जिसमें हमारे चैतन्यके यही तीनों रूप आकर बन्दी हो गए हैं, पकड़ाई दे गए हैं, औचक उलझ गए हैं ? हम सभीकी तरह कवि भी उन दो तत्त्वोंके बने हुए थे, जो कुछ हद तक परम और कुछ हद तक परमोन्मुख विकासको प्राप्त होते हैं। और इसीलिए इन परमोन्मुख किन्तु अविकसित अंशको निर्वासित करनेकी, मार्ग देनेकी, व्यक्त करके बहा देनेकी ज़रूरत थी, जिससे परम भागवत चेतना अपने समूचे वैभवको प्रकाशित कर सके। यह केवल भीतरकी इच्छाओंका गोपन समाधान-मात्र नहीं है, यह एक सत्य है। हमें मालूम है कि अपनी स्थूल कायाके निर्वाणके पूर्व ही कवि 'हड्डियोंके समूह' न होकर प्रकाशके जीवन्त पुंज ही थे।

अक्सर हमने कविको कहते सुना था कि जीवन-भर 'स्कूल-भगोड़े' लड़केकी चंचल आत्मा उन्हें छाए रही। पाठशालासे पलायमान् शिशु जैसे अचानक ही कवि बन बैठा। आगे चलकर काव्यके रूप और बन्धन भी उन्हें क्लान्तिकर हो उठे। काव्यकी पाठशालासे वे भागनेके लिए उत्सुक हुए और शिल्पी बन बैठे! वे चिरकाल आत्माकी स्वतन्त्रताके उपासक थे, और यही आत्मिक स्वतन्त्रता स्वतन्त्रताकी आत्मा है। यही कारण था, जो वे अपने लिए अक्सर कुछ नया काम खोजा करते थे। किसी तरुण साथीने एक बार उनसे उनकी प्रेरणाके गोपन उत्सका रहस्य पूछा था। उत्तरमें कविने उन्हें लिखा था—'अपने जीवनकी सबसे महान् प्रेरणाएँ मुझे या तो अप्रत्याशित भावसे—अचानक आए हुए विस्मयोंके भीतरसे—मिली हैं, या फिर सृजन-चेष्टाकी नाना भंगियोंकी राहसे प्राप्त हुई हैं, जो सदा आत्म-प्रकाशनमें हमें सहायता पहुँचाया करती हैं।'

अप्रत्याशित विस्मयोंने—जैसे सहसा अपनी पुश्तैनी सम्पत्तिके मैनेजर बनाकर भेज दिया जाना, पत्नीका देहान्त, मँझले बच्चेकी अचानक मृत्यु, अध्यापकका काम—प्रतिक्रियाके रूपमें असंख्य कहानियों और गीतों तथा मानव-प्रकृतिके रहस्योद्घाटनकी चेष्टाओंको जन्म दिया। ये सब जैसे तूफ़ानकी तरह थे, जो उन्हें उनके प्रकृत कवि-जगत्से दूर बहाकर ले गए। जार्ज हर्बर्टके शब्दोंमें कहें, तो—"तूफ़ान ही 'उनके' शिल्पकी जयध्वजा हैं।"

ऊपर एक साधारण दर्शककी हैसियतसे कविके शिल्पपर कुछ विचार प्रकाशित किए गए हैं। इस निबन्धको हम रवीन्द्रनाथकी ही कविताके एक उद्धरणके साथ शेष करते हैं :—

"कविके भीतरके उस चिर-चंचल मनमौजी पर
—जिसे यशकी बाग भी वशमें नहीं रख पाती—
रेखाओंकी लक्ष्मीका कुछ खास दुलार है ;
क्योंकि ख्यातिकी हाटमें अर्जित उसका
गर्वीला नाम अवज्ञा करता है—
शिल्पीकी तूलीकी ;
मुक्त पथपर जाने देता है वह उसे—बन्धनहीन—
—जिस तरह बन्धनहीन होती है
वसन्तकी अनोखी रंगसाज़ी।"

शान्तिनिकेतन]

अगर आज ईसा जीवित होते ?

प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन

मेरे सभी देशवासी कम-से-कम नामधारी ईसाई हैं ; लेकिन मैं वैसा नहीं हूँ। कवि ब्लेकके शब्दोंमें उनके लिए कह सकता हूँ :—

"The vision of Christ which thou dost see
Is my vision's chiefest enemy.
Yours is the healer of mankind,
Mine speaks inparable to the blind."

मेरी नज़रोंमें ईसा एक ऐसे पुरुष हैं, जिनका आध्यात्मिक बोध अत्यन्त तीव्र और असाधारण है। उनकी वाणीसे यही प्रतीत होता है कि वे अपने अनुयायियोंसे ज्ञानमें सभी तरह श्रेष्ठ थे। उनके अनुयायियोंने उनकी वाणीका ग़लत अर्थ किया है। हम उन्हींकी नज़रोंसे ईसाको देखनेमें अभ्यस्त हैं, इसीलिए उनका ठीक-ठीक मूल्य-निरूपण करनेमें भी असमर्थ हैं।

वर्त्तमान युगमें यदि ईसा किसी यूरोपीय पूँजीवादी राष्ट्रमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा उत्तरी अमरीकाके किसी कंगाल यहूदी परिवारमें पैदा होते, तो उन्हें १९०० वर्ष पहले जो शिक्षा मिली थी, आज उससे कहीं उन्नत प्रकारकी शिक्षा पानेकी सुविधा मिलती। उस समय उनकी शिक्षा पैगम्बरकी जीवनी, उपदेश और धार्मिक क़ानूनोंकी शिक्षा तक ही सीमित थी। शायद इसी-लिए दैनिक जीवनकी घटनाओंसे प्राप्त होनेवाली उपमा अथवा धर्मकी परिभाषामें ही उनके विचार व्यक्त हुए हैं। वर्त्तमान कालमें अवश्य ही उन्हें विज्ञान, मनोविज्ञान और अर्थनीतिक परिभाषामें विचार करनेकी सुविधा प्राप्त होती। अतएव विशुद्ध धर्म-नेताके रूपमें उनपर विचार करनेसे उनके प्रति अन्याय करना होगा। अपने समयमें अत्यन्त सहज और प्रांजल भाषामें धर्मनीति-विश्लेषण करनेके अपराधके लिए ही वे दोषी ठहराए गए। आजकल प्रायः सभी धर्मध्वजी उन्हें धर्म-विरोधी घोषित करनेमें आगा-पीछा नहीं सोचते।

आज यदि वे होते, तो अखबारोंमें उनके बारेमें तरह-तरहकी बातोंका प्रचार किया जाता। अखबारोंके रिपोर्टर उनके विषयमें कुतूहल पैदा करनेवाली बातोंका आविष्कार करके प्रचार करते कि ईसा एक विचित्र पुरुष हैं; यह कपटी साधु पक्का शराबी है; कहा जाता है कि लोगोंके सामनेसे जादूगरकी तरह वह शराबके बर्त्तनको हटा सकता है; इस हँसमुख पुरुषसे जब कोई धर्म-सम्बन्धी प्रश्न पूछा जाता है, तो वह उसका सीधा जवाब न देकर कहता है 'ईश्वरके सम्बन्धमें कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहते हो, तो मेरे साथ रहो।' आदि। फिर पुलिस भी उनपर नज़र रखने लगती, क्योंकि पुलिसके मतानुसार वे भावी क्रान्तिके अग्रदूत समझे अथवा कहे जाते। वे कभी अपनेको शान्तिका प्रधान शत्रु कहते और फिर कभी यह भी कि क्रान्तिके लिए ही उनका जन्म हुआ है। पूँजीपति-वर्गके प्रति उनका दृष्टिकोण पूरी तौरसे क्रान्तिकारी था। उनका मत था कि पूँजीपति-वर्ग अत्यन्त नीच और सन्तापोंसे जर्जरित है। इसीलिए वे वैयक्तिक सम्पत्तिको उठा देनेके लिए कहते थे। वे कहा करते थे कि धनियोंके लिए जीवनका आनन्द लेना उतना ही कठिन है, जितना कि सुईके छेदमें से लारी चलाना। अतः आज इस मतके लिए वे पुलिस और पुरोहित-वर्गके विक्षोभ और घृणाके पात्र समझे जाते।

दो या तीन साल इस तरहसे बीतनेपर सरकारकी कोप-दृष्टि भी उनपर पड़ती। उनके अनुयायी गिर्जों और आम जनतामें गड़बड़ी पैदा करते। यह आन्दोलन भी धीरे-धीरे संगठित होता। चूँकि आजकल क्रासपर चढ़ाकर मारना बर्बरतापूर्ण समझा जाता है, अतः उनपर शायद मुक़दमा चलाया जाता। लेकिन आजकल बिना मुक़दमा चलाए भी किसी भी व्यक्तिको जेल भेज देने या जेलमें रखनेका जो सहज रास्ता निकाल लिया गया है, शायद उसीका सहारा लेना अधिकारी विशेष पसन्द करते। एक गवाह कहता, असामीने अपनेको अवतार घोषित किया है। दो चिकित्सक उनके पागल होनेके प्रमाण-पत्र दे देते। एक राजभक्त खुफ़िया-पुलिसका आदमी उनपर निगरानी रखकर गिरफ़्तारीका रास्ता साफ़ कर देता। फ़ौरन अखबारोंमें छप जाता कि इस पागलने पागलपनके कारण आत्म-हत्या कर ली है! या शायद यह घोषित किया जाता कि वह एक पागलखानेमें मर गया!

लेकिन यहींपर उनके जीवनका अन्त नहीं होता। उनके अनुयायी इस बातका प्रचार करते कि वह उन्हींके बीचमें है। कोई-कोई उनकी वाणीका भी प्रचार करने लगते। वे इस बातका भी प्रचार करते कि वे मनोविज्ञानमें क्रान्ति करने रसायन-शास्त्रकी तरह उसे कायक्षम बना गए हैं। उन्होंने सन्तापहीन जीवन व्यतीत करनेका उपदेश देते हुए कहा है—'पड़ोसीको प्यार करना नहीं सीखनेसे अपनेको भी प्यार नहीं कर सकोगे। अगर तुम उसकी त्रुटियोंको ही देखते रहोगे तो यह समझ लेना कि तुम खुद अपने ऊपर भी भरोसा नहीं रखते हो।' कुछ नर-नारी उनके अखण्ड व्यक्तित्वका प्रचार करनेकी भी चेष्टा करते। शायद जेलकी हवा खाकर उन्हें इस चेष्टाकी क़ीमत चुकानी पड़ती। लेकिन आम जनताका एक हिस्सा इससे आकर्षित भी होता। पूँजीवादी वर्ग जीवनका आनन्द नहीं ले सकता है, इससे क्रान्तिकारी मतका प्रचार किया जाता और मुट्ठी-भर धनी नर नारी बहुप्रचारित आनन्द छोड़नेके लिए सचमुच ही धनको त्याग देते। किन्तु नर-नारियोंका एक दूसरा दल इसके विरुद्ध प्रचार करता। वे ईसाकी वाणीकी रहस्यमयी टीका टिप्पणी करते। इस मतवादका प्रचार करनेके लिए सरकार काफ़ी उत्साह प्रदान करती। इस धर्मके अभ्युत्थानके कारण सरकार तनिक भी नहीं घबराती, इस बातको सभी समझ सकते।

लेकिन भविष्य अज्ञात है। क्या सचमुच ही ईसाने अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकी आग जलाई है, या धर्म-प्रचार किया? इस प्रश्नके उत्तरपर ही दुनियाका भविष्य निर्भर करता है।

अनु०—महादेवप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

लड़ाईके बाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री बालकृष्ण गुप्त

जबसे मानव-समाजने गुफ़ाओंमें रहना और पत्थरके हथियारोंसे पशुओंको मारकर उनके मांसके लिए छीना-झपटी करनी शुरू की, तभीसे इतिहास युद्धोंकी एक कहानी-मात्र रहा है। शान्ति भी बिना लड़ाई किए दूसरे उपायोंसे छीना-झपटी करनेका ही कूटनीतिक उपाय-मात्र रही है। व्यक्ति-वादने वर्त्तमान समयमें राष्ट्रवादका रूप धारणकर मुल्ककी भीतरी लूट-खसोटमें से कुछको तो क़ानूनके ज़रिए जायज़ मानकर उससे पैदा हुए झगड़ोंको दबा डाला और कुछको प्रति-द्वन्द्वी-दलोंकी बहसका मसाला-मात्र बना दिया। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें वह छीना-झपटी अब भी जारी है। इसी प्रस्तर-युगकी छीना-झपटीने इस इस्पातके युगमें हवाई, नाविक और सैनिक महायुद्धका भयानक वैज्ञानिक रूप धारण किया है। आज यह युद्ध एक देशका दूसरे देशके खिलाफ़ युद्ध-मात्र ही नहीं रह गया है, बल्कि विश्वव्यापी दो दलोंके महायुद्धके रूपमें परिणत हो गया है। चारों महासागरोंमें मनुष्योंको ऐसी मछलियाँ खा रही हैं, जिनके पूर्वजोंको पकड़-पकड़कर मनुष्यने अपनी खाद्य-सामग्री बनाया था। चारों महाद्वीपोंके खेतोंमें नर-कंकाल फिर फासफोरस पैदाकर उस धरतीको पुनर्जीवित कर रहे हैं, जिसकी शक्ति उन्होंने गेहूँ और चावलके रूपमें वर्षोंसे खींची है। इस महायुद्धकी काली घटाओंके हटनेके बाद दुनिया इसके धुएँ से हमेशा काली रह जायगी, या साधारण मनुष्य, जो इस वक्त दोनों ओरके नेताओंके मनसूबोंका साधन-मात्र रह गया है, मार्गका रुख बदलकर राजनीतिक एवं आर्थिक स्वाधीनता और सहयोगका वह युग लायगा, जब लड़ाईकी ज़रूरत ही न रह जायगी और मानव-समाज विज्ञानकी मददसे अपनी ही ज़रूरतोंको पूरा करनेमें सफल होगा। यह प्रश्न आज दुनियाकी राजनीतिके विचारशील विद्यार्थियोंके सामने है।

इस समय बमोंके फटनेकी आवाज़से कान फटे जा रहे हैं। तोपोंसे निकलते हुए अंगारोंसे आँखोंमें चकाचौंध हो रही है। जीवनकी अनिश्चितिताने मनुष्योंको मूढ़-सा बना रखा है। विजयके आवेशमें कितने ही व्यक्ति पागल-से हो रहे हैं। हारकी निराशाने दूसरोंको हतबुद्धि बनाकर निर्जीव-सा कर दिया है। विचार-युगके लिए जिस शान्ति एवं सुविधाकी आवश्यकता होती है, उसके अभावने दार्शनिकों और विचारकोंको भी पक्षपाती प्रचारक-मात्र बना डाला है। महायुद्धके नुक़सानोंकी परवा न करते हुए विजयमें ही जीवनका सुनहला भविष्य देखनेवालोंने तो लड़ाईके बादकी दुनियाकी कल्पना ही करनी छोड़ दी है।

महायुद्धको शुरू हुए आज ३॥ वर्षका अरसा गुज़र गया है। यूरोपके बड़े-बड़े साम्राज्य धूल-धूसरित हो गए हैं। फ्रांस, नारवे, डेन्मार्क, हालैण्ड, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, ग्रीस, अल्बाविया, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड, रुमानिया और बल्गेरिया ही नहीं, रूसका पश्चिमी भू-भाग भी हिटलरके कब्ज़ेमें है। पूर्वी एशियापर जापान अपना कब्ज़ा जमाए हुए है। साम्राज्यवादी अंगरेज़ आज साम्यवादी रूसकी पीठ ठोंक रहे हैं। एशियावासी जापानी सफ़ेद जातियोंकी नक़लकर एक दूसरा साम्राज्य क़ायम करनेकी कोशिश कर रहे हैं। लड़ाई जीतनेका सवाल महत्त्वपूर्ण ज़रूर है; परन्तु शान्ति होनेपर विश्वके पुनर्निर्माणका सवाल उससे कहीं अधिक जटिल और आवश्यक है। पिछले महायुद्धमें नामकी विजय अंगरेज़ों, फरासीसियों और अमरीकनोंकी हुई; परन्तु यूरोप लड़ाईके बाद सचमुच जिन लोगोंके हाथमें चला गया, वे थे लेनिन, हिटलर और मुसोलिनी। मित्र-राष्ट्रों द्वारा स्थापित जर्मन प्रजातन्त्रकी क़दर न तो उसके संस्थापकोंने की और न जर्मन जातिने ही। मज़दूर और किसान जनता रूसमें उठी साम्यवादी क्रान्तिकी तरफ़ झुकी। उसका नतीजा यह हुआ कि पूँजीवादियोंने यूरोपके सबसे प्रधान कला-कौशलवाले देश जर्मनीको मज़दूरोंके राज्यसे बचानेके लिए हिटलरका अभिषेक किया। इस प्रकार प्रजातन्त्र-युगका अन्त हुआ और निरंकुश शासक फिर लोहा और ताँबा इकट्ठाकर नये हथियार बनानेमें लगे।

मित्र-राष्ट्र बार-बार यह कहते हैं कि यह लड़ाई निरंकुशताका अन्तकर साधारण नागरिकोंकी स्वतन्त्रताका युग लानेके लिए लड़ी जा रही है। राष्ट्रपति रूज़वेल्टने तो आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों तरहके अधिकारोंकी दुन्दुभि बजाई है। साधारण जनताको काम और रोटी-कपड़ेका ही नहीं, बल्कि अपने शासकोंको चनने और हटानेका भी वह अधिकार रहेगा, जो आज यूरोपके एकतन्त्र राज्य तो अलग रहे, प्रजातन्त्र कहे जानेवाले देशोंमें भी नहीं है। अंगरेज़ी सरकारने भी लड़ाईके बादकी दुनियाकी एक तस्वीर सर विलियम वेवरिजकी अध्यक्षतामें एक कमेटी द्वारा बनवाई थी। परन्तु जब मज़दूर-दलके कुछ सदस्योंने उसपर सरकारी स्वीकृति चाही, तो सरकारने सिवा कुछ अंशोंके उसे अव्यावहारिक क़रार दे दिया। शासकोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओरसे निकली युद्धोपरान्त सुधारोंकी घोषणाको विचारक दुनिया तंग एवं त्रस्त जनतामें युद्धके नये आक्रमणके लिए उत्साह बढ़ानेके प्रचारका एक पहलू-मात्र समझने लगी है। पिछली लड़ाईमें मिस्टर लायड जार्जने भी बहुत-से वादे किए थे; किन्तु विजयके बाद उन वादोंका कोई अर्थ न निकला। बेकारी और भूख बढ़ी। लड़ाईकी वजहसे कला-कौशलमें आज जो चहल-पहल दिखाई दे रही है, वह लड़ाईके बाद गायब होकर हज़ारों-लाखों ही नहीं, बल्कि करोड़ों आदमियोंको बेकार कर देगी। पिछले महायुद्धमें न तो इतना खर्च ही हुआ था, न इतनी बरबादी ही। आज लड़ाईमें प्रायः दुनियाके उत्पादनकी आधीसे ज़्यादा शक्ति तो खर्च हो ही रही है, वर्षोंके सतत प्रयत्नसे जो पूँजी कारखानों, नगरों, यातायातके साधनोंको बनानेमें खर्च की गई है, उसका भी हवाई और फ़ौजी आक्रमणों और प्रत्याक्रमणोंसे नाश हो रहा है। उक्रेन और काकेशशके इलाक़ोंके उद्योगीकरणमें रूसी जनताने खुद भूखे रहकर खाने-पीनेकी चीज़ोंको बदलेमें दे जो मशीनें पश्चिमी यूरोप और अमरीकासे ला खड़ी की थीं और जिसके लिए २० वर्ष तक अपनी सारी उत्पादन-शक्ति लगा दी थी, वह बहुत-सी पूँजी आज मिट्टीमें मिल गई है। यूरोपके उद्योग-धन्धोंका हवाई-आक्रमणोंने जो भयंकर विनाश किया है, उसे पूरा करनेमें वर्ष ही नहीं, एक-दो युग लग जायँगे। यूरोप इन्हीं उद्योग-धन्धोंके बलपर दुनियाका राजा बना बैठा था। इस भयंकर तबाहीके बाद भी गो वह एशियासे उद्योग-धन्धोंमें बहुत आगे ही रहेगा; परन्तु तुलनात्मक दृष्टिसे उसकी ताक़त बहुत कम हो जायगी।

अमरीका और जापानको पिछली लड़ाईने ही पहले दर्जेका औद्योगिक राष्ट्र बना दिया था। आज लड़ाईमें रत होनेपर भी उनके कारखाने दुश्मनोंके हवाई-जहाज़ोंकी मार व युद्धके क्षेत्रसे दूर हैं। किन्तु जापान आज सात वर्षोंसे भयंकर युद्धमें व्यस्त है। उसके कल-कारखाने भी उतने बढ़े-चढ़े नहीं हैं। अगर वह लड़ाईमें हार गया, तो उसको अपने कारखानोंसे अपनी बरबादी व खर्चको पूरा करनेमें ही वर्षों लग जायँगे। जापानके अन्तर्गत इतना कच्चा माल भी नहीं है कि वह एशियाके हाथमें आए हुए देशोंके चंगुलसे निकल जानेपर अपने कारखानोंको अच्छी तरह चला सके। अमरीका अवश्य ही विश्व-व्यापी पूँजीवादका एकछत्र अधिपति रह जायगा। लड़ाईके बाद भी यदि पूँजीवाद क़ायम रह गया, तो अमरीकाकी प्रधानता स्वतः स्थापित हो जायगी।

यूरोपीय राष्ट्रोंके मज़दूरोंमें साम्यवादका अंकुर पचास वर्षोंसे पनप रहा है। हर युद्धके बाद मज़दूरोंकी क्रान्ति हुई है। वर्त्तमान युद्धके बाद तो दबी हुई जनता और भी ज़ोरोंके साथ उठ खड़ी होगी। पराजित देशोंके शासकोंको क्रुद्ध जन-समूहसे बचाना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असम्भव-सा साबित होगा। विजयी यूरोपीय राष्ट्र भी पराजित देशोंसे उठी हुई राज्यक्रान्तिको अपनेसे दूर रखनेमें उसी अवस्थामें सफल हो सकेंगे, जब कि वे बड़े गम्भीर परिवर्त्तनोंका प्रारम्भकर अपने नागरिकोंकी आर्थिक ज़रूरतोंके निराकरणका उपाय करें। लड़ाईके बादके यूरोपकी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पद्धतिमें काफ़ी परिवर्त्तन होंगे, जिनका आज दुनिया अनुमान भी नहीं कर सकती। राष्ट्रीय युद्धके अन्धकारमें आज यूरोपीय जनता अपनी सच्ची माँगोंको भूल-सी गई है। उसे यह आशा है—और इस आशाको शासक-मण्डलने और भी बढ़ाया है—कि विजयके बाद उसकी सारी ज़रूरतें पूरी की जायँगी। किन्तु शान्तिका प्रस्ताव उठते ही एक-दूसरेका सत्यानाश करनेके लिए रात-दिन चलनेवाले कारखानोंमें शिथिलता आ जायगी और लड़ाईकी सामग्रीकी यह प्रबल लहर एकाएक विलीन हो जायगी। युद्धमें कर्ज़ लेकर खर्च करनेवाली सरकारें फिर बजटोंको सम्हालकर उन्हें क़ाबूमें लानेकी चेष्टाएँ करेंगी। लड़ाईके लिए चलनेवाले ७५ फी-सदी कारखानोंके बन्द हो जानेसे बेकार मज़दूर गलियों और सड़कोंकी गश्त लगायेंगे। लड़ाईके लिए पूँजीपति हमेशा सरकारको कर्ज़ देनेको तैयार रहते हैं; परन्तु शान्तिके बाद मज़दूरोंके लिए काम व आरामके साधन जुटानेमें वे एक फूटी कौड़ी भी नहीं खर्चेंगे। सरकारी टैक्स और कर्ज़ इतने बढ़ गए हैं कि लोकहितके किसी भी कार्यको क़ायम रखना उनके लिए मुश्किल हो जायगा। पूँजीवादी सरकारें तो उस वक्त अपने देशके पूँजीवादको बचानेमें लगी रहेंगी। ऐसी हालतमें उन्हें ऐसे लोकहितके कार्य असामयिक लगेंगे। पराजित देशोंसे उन्हें अब कोई रक़म प्राप्त नहीं हो सकेगी। हारे हुए देशोंकी जनता तो वैसे ही क्रान्तिकारियोंके नेतृत्वमें होगी। यदि पिछली लड़ाईकी तरह उन्हें तंग किया गया, तो क्रान्ति फौरन सफल हो जायगी। इस समय लड़ाईके बादके जो सुनहले खाके शासक-मण्डलके प्रचारक खींच रहे हैं, वे तब सब्ज़ बाग़-मात्र साबित होंगे। आश्चर्य नहीं कि इस समयके वादे उस समय अधिकारियोंको याद भी न रहें।

सच पूछिए तो इस संसारके दुःखोंका निवारण करनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगका तरीक़ा ही सबसे श्रेष्ठ है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगके साथ-साथ राष्ट्रीय पूँजीवादकी ताक़तको भी तोड़ना होगा और दुनियाके दो अरब बाशिन्दोंके जीवनको सुखमय बनानेके लिए दुनियाकी सारी उत्पादन-शक्ति खर्च करनी होगी। अगर विश्वकी राजनीतिक सत्ता उन लोगोंके हाथमें आ सके, जो जन-समूहके फ़ायदेके लिए कटिबद्ध हों, तब तो वैसे आर्थिक संगठनकी उम्मीद की जा सकती है। संसारके दो अरब स्त्री-पुरुषोंको अगर ऐसे उत्पादनके लिए संगठित किया जाय, तो पहले जो आर्थिक उन्नति दस वर्षोंमें सम्भव नहीं थी, वह एक वर्षमें हो सकती है। इस समय भी ज़्यादासे ज़्यादा दुनिया-भरमें १५-२० करोड़ आदमी वैज्ञानिक ढंगसे संचालित उद्योग-धन्धोंमें लगे हुए हैं, बाक़ी एक अरबके क़रीब वयस्क नागरिक पुरानी पद्धतिकी खेती-बारीसे किसी तरह अपना पेट भरते हैं। अगर कृषिमें कला-कौशलकी तरह विज्ञानकी मदद पहुँचने लग जाय और इस तरह कम आदमी यानी आजसे एक-तिहाईके क़रीब तादादमें दुनियाके बाशिन्दे कृषिमें लगे रहें, तो बाक़ी नागरिकोंको उद्योगीकरणमें लगाकर काफ़ी तरक्की की जा सकती है। विज्ञानसे भिज्ञ मनुष्यकी उत्पादन-शक्तिकी कोई सीमा नहीं है। वर्त्तमान आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता ही उस आर्थिक युगके आगमनमें बाधक है, जिसमें नागरिकोंको खाने-पीने-पहननेकी तो प्रचुर सामग्री मिलेगी ही, साथ ही सांस्कृतिक एवं मानसिक विकासके वे साधन भी उन्हें प्राप्त होंगे, जो आजकी दुनियामें धनियोंको भी दुर्लभ हैं। आजकी इस व्यक्तिवादी दुनियाकी छीना-झपटीको खत्मकर अभावका अध्याय बन्द कर दिया जायगा और उत्पादनको संगठनकर बाहुल्यका वह ज़माना ला दिया जायगा, जिसमें साधारण जीवनकी चीज़ें हवा और पानीकी तरह सुलभ होंगी। इस बाहुल्यकी दुनियामें राष्ट्रीय सीमाएँ स्वयं निकम्मी दिखने लगेंगी। पुराने ज़मानेमें जब विज्ञानकी सहायता इतनी सुलभ नहीं थी, तब तक तो इस आर्थिक एवं राजनीतिक पद्धतिकी कुछ ज़रूरत भी थी, जिसमें मनुष्य दूसरे मनुष्यको और राष्ट्र दूसरे राष्ट्रोंको तलवार व रुपएके ज़ोरसे अपने अधीनकर अपने आर्थिक अभावको दूर करनेकी कोशिश करता था। विज्ञानको भी व्यक्तिगत सम्पत्ति बनाकर पूँजीपतियोंने उसके व्यवहारको अपने लाभके लिए सीमित कर दिया था। किन्तु अब मनुष्य-जातिको यह पता लग गया है कि एककी जगह सौ और सौकी जगह हज़ार कारखानोंको खड़ा करना असम्भव नहीं, सिर्फ़ वर्त्तमान पूँजीवादके अन्तर्गत उनकी पैदावारको बेचना दुष्कर है; क्योंकि पूँजीवाद पूँजीपतिको धनिक बनाते हुए भी साधारण जनताकी क्रय-शक्तिको इतना नहीं बढ़ाता कि उसकी चीज़ें सरलतासे बिक सकें। दुनियामें भूखों और वस्त्रविहीनोंकी तादाद कम नहीं हुई है। उनकी इच्छाएँ पैसोंके अभावमें अतृप्त ही बनी हुई हैं। जनताके लिए कारखानोंकी पैदावार सुलभ करनेके लिए जनताके हाथमें उन पैसोंको देनेकी सख्त ज़रूरत है, जिनके ज़रिए वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओंको पूराकर मानसिक विकासकी ओर बढ़े। यूरोपीय मुल्कोंने अपना उद्योगीकरण एशिया और अफ्रीका व दक्षिण एवं मध्य अमरीकाके लोगोंको राजनीतिक और आर्थिक पराधीनताकी बेड़ियोंमें कसकर अपने बाशिन्दोंके जीवनकी सतह ऊँची उठाई थी। परन्तु उद्योग-धन्धोंवाले सब देशोंको पर्याप्त मात्रामें एशिया, अफ्रीका और दक्षिण एवं मध्य अमरीकाके वे भू-भाग नहीं मिल सके थे, और उन्हींके बँटवारेके लिए जर्मनी और जापान यह लड़ाई लड़ रहे हैं। किन्तु इस लड़ाईसे पहले ही साम्राज्यवादके शोषणकी जड़ें ढीली पड़ गई थीं। पराधीन देशोंमें राष्ट्रीयताकी लहर फैल गई थी। यूरोपीय मज़दूरोंने रूसकी साम्यवादी सरकारको जनताकी इच्छाओंको पूर्त्तिके लिए पंचवर्षीय योजनाओंपर अमल करते हुए भी देखा। रूस सामन्तशाहीसे सीधा साम्यवादकी ओर झुक गया, अतः भीतरी और बाहरी राजनीतिक एवं आर्थिक बाधाओंके कारण वह इतनी तीव्र गतिसे उन्नति नहीं कर सका कि यूरोपीय मज़दूर उसका अनुकरण करनेकी चेष्टा करते। किन्तु लड़ाईके बाद जब एशियाके देश फिर स्वाधीनताकी ओर अग्रसर होनेकी कोशिश करेंगे और यूरोपियन मज़दूर भी अपनी माँगें फिर पेश करेंगे, तो पुराने पूँजीवादको आत्म-समर्पणके सिवा कोई उपाय नहीं रह जायगा। पुराने कल-कारखानोंकी पूँजीको सम्हालकर नई सरकारें आर्थिक विषमताको दूर करने और जनताकी ज़रूरतोंको पूरा करनेके लिए उद्योगीकरणकी योजनाओंमें लड़ाईसे लौटे सिपाहियोंको लगायेंगी। इस प्रकार एक-दूसरेके संहारके युगका अन्त होकर मानवताकी उन्नतिका इतिहास शुरू होगा। पुरानी लड़ाइयों और लूटोंके इतिहासका अन्त होकर मानव-समाजके विकासकी एक नई कहानी शुरू होगी, जिसमें विज्ञान वृद्धिका साधन बनकर जन समूहको सुन्दर एवं स्वस्थ करनेमें सफल होगा, अभाव और दुःखके दिन दूर होंगे और सूर्यकी किरणों, हवा और पानीकी ताक़तको खींचकर मनुष्य अपनेको उन्नत बनायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकारकी ज़िम्मेदारी

श्री ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

सन् १९३० के प्राक्कालसे ही मेरा साहित्यिक जीवन आरम्भ हुआ। मैंने राजनीतिक क्षेत्रसे साहित्यकी ओर क़दम बढ़ाया था। मनमें एक क्षोभ था कि बंगालके शक्तिशाली साहित्यिकगण देशकी जीवन-शक्तिके इतने बड़े रूपायित प्रकाशको देखकर भी नहीं देख सके। बड़े आग्रहके साथ मैं साहित्यिक समाजमें परिचित होनेके लिए उस समयके साहित्यिक मित्रोंके पास आया था। परिचय भी हुआ; किन्तु मनकी बात कहनेकी हिम्मत नहीं हुई। ऐसा क्यों हुआ, इसका वृत्तान्त यहाँ अप्रासंगिक होगा। लेकिन उन्होंने जिस एक दिशाको साहित्यमें प्रतिबिम्बित किया था, वह हमारे जीवनका एक कठोर सत्य है। उसीके सम्बन्धमें मैं यहाँ कुछ कहना चाहता हूँ।

३८-३९ वर्ष पहले, जब कि मेरी उम्र ७-८ वर्षकी थी, उस समयके ग्रामीण समाजका चित्र मुझे याद है। राममोहन-विद्यासागर-उद्बोधित नवजीवनकी चंचलता दूरसे आनेवाली समुद्रकी लहरोंकी ध्वनिकी तरह शब्द-तरंगके रूपमें आ रही थी; लेकिन उसका प्रभाव धाराहीन तलैयाके-से देहाती-समाजमें स्रोत नहीं पैदा कर सका। गाँवोंमें उस समय ज़मींदारों और धनियोंका प्रबल प्रताप था। आम लोगोंकी हालत डरे-घबराए मूक मवेशियोंकी-सी थी। तान्त्रिकताके नामपर 'कारण-चक्र'की बैठक नियमित रूपसे धनी ज़मींदारों और तान्त्रिक-साधकोंके घरोंपर रोज़ शामको हुआ करती थी। अन्तःपुरमें स्त्रियाँ डरसे गूँगोंकी तरह दिन काटती थीं। अनेक घरोंमें स्त्रियोंमें भी तान्त्रिक दीक्षा प्रचलित थी, क्योंकि कारण-चक्रकी गति वहाँ भी पहुँच चुकी थी। पर सबसे अचरजकी बात तो है उस डरे-घबराए मूक जनताके गोपन जीवनकी, जहाँ वह निरी पशु बन गई थी।

इसके बाद बंग-भंगके रूपमें एक नया प्रचण्ड जीवनोच्छ्वास आया। उसने मानो सारे देशको प्लावित कर दिया। उस प्रेरणाकी प्रचण्डताने मेरे जीवनपर भी एक गम्भीर छाप डाली। मैंने देखा, देशमें एक परिवर्त्तन आरम्भ हो गया। बंकिम-चन्द्रके साहित्यका आदर्श तथा राममोहन-विद्यासागरके समाज-सुधार-आन्दोलनका कार्य उस युगमें मानो रातों-रात देशमें प्रसारित और प्रचारित हो गया। इसके बाद आया आतंक-वादका युग। उसके बाद आया पिछला यूरोपीय महायुद्ध। लड़ाईके बाद आया १९३१ के अन्तवाला जन-आन्दोलन। उस आन्दोलनमें मैं कार्यकर्त्ताकी हैसियतसे कूद पड़ा था। आन्दोलन धीरे-धीरे ढीला पड़ गया। रचनात्मक कार्यकी धूम मच गई। उसमें भी मैंने व्यावहारिक रूपसे हाथ बँटाया। कई गाँवमें घूमता रहा। हमारे देशमें जिन्हें छोटी जातिका कहा जाता है, उनके बीच कामके सिलसिलेमें मुझे कितने ही चक्कर काटने पड़े। इसीके फल-स्वरूप मैं एक अकल्पित सत्यका कुछ धीरे अनुभव कर सका। मैंने देखा, अपने घरमें ही मनुष्य पराएकी तरह रह रहा है। उसकी सैकड़ों जगह फटी चादरने जिस तरह वस्तुतः उसके कंकालसार बुभुक्षु तनको ढँक रखा है, उसी तरह सामाजिक-नैतिक नियम-क़ानूनोंके आवरण भी उसके स्वकाम और अहंकारपूर्ण क्रूर घृणासे जर्जर मनको ढँक रखा है। इसके बाद धीरे-धीरे इस व्याधिग्रस्त मनको सर्वत्र—समाजके सभी स्तर और सभी जगह—देखा। मैंने देखा मुक्तिके लिए मानवकी आत्मा हाहाकार कर रही है। तत्कालीन साहित्यमें यही प्रतिबिम्बित हुआ था। लेकिन फिर भी मैं इसे पूर्ण सत्य नहीं कह सकता; क्योंकि उसमें केवल उपसर्गोंकी सचाई है, मौलिक सत्योपलब्धि नहीं है। घर—मनुष्यका चिर काम्य नीड़—क़ब्र बन गया है। जो नींव नष्ट हो गई उसके ध्वंसकी बात उसमें नहीं है। उसमें घरसे निकल मुक्त आकाशके नीचे आनेका आह्वान नहीं है, बल्कि घर क़ब्रमें परिणत हो जानेपर भी उसीके नीचे माँद खोदे रहनेकी पागलपनसे भरी लाचारी है। सभी चीज़ोंके प्रति घृणासे जर्जर मनका आत्म-प्रकाश है, स्वस्थ-सबल मनका हवा और उष्ण-मधुर आलोकके प्रति अनुराग या प्रेम नहीं है।

इतनेमें ही फिर एक नया आन्दोलन—१९३० का अवज्ञा-आन्दोलन—आ पहुँचा। इसमें भी मैं कूद पड़ा। मैंने समझा, इसीमें हमारे तन-मनकी मुक्तिका उपाय है। फिर जेलमें मैं एक प्रचण्ड संघर्षके संकटमें पड़ गया। उस संघर्षका ब्यौरा देनेका समय आज भी नहीं है। इस ज़िन्दगीमें शायद वह समय नहीं आता है, तो उसे मेरे मरनेके बाद तनके ही समाहित होना पड़ेगा। फिर भी इतना तो कहूँगा ही कि मैंने देखा, हमारा सौ सालका सुधार-आन्दोलन व्यर्थ हो गया है। जीवनकी फटी गुदड़ीमें हमने सैकड़ों पेबन्द लगाए, लेकिन फिर भी उतने ही फटे स्थान उसीके आसपास दिखाई पड़ रहे हैं। मनमें भी धीरे-धीरे परिवर्त्तन हो रहा था। इस अनुभव, दृष्टि और नवीन शक्तिके आनन्दसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी आनन्दको विकसित करनेकी कामना उत्पन्न हुई। अतः राजनीतिको गौण करके साहित्यको मुख्य बनाया। इसके बाद इन्हीं कई सालोंमें पुरातनको एक नये रूपमें देखा। जीवनमें यह दर्शन आगे चलकर हमारे अपने ही लिए ग़लत साबित होगा कि नहीं, कह नहीं सकता; लेकिन आज मेरे लिए यही प्रत्यक्ष सत्य है। मैंने देखा, घरका क़ब्रमें परिणत होना ही अनिवार्य था। वह अनिवार्यता नियति नहीं है, बल्कि उसकी नींव डालनेमें ही त्रुटि है। मैंने देखा, समाजमें आदिमतम कृषि-सभ्यताकी व्यवस्था ब्राह्मण्य सभ्यता और साम्राज्यवादी शासन-पद्धतिके संघर्षसे तथा दुनियाकी पूँजीवादी सभ्यताके शोषणसे संकटमें पड़ गई है। बढ़ई, लोहार, नाई, कुम्हार आदिके प्राचीन बन्दोबस्त अब जीवित नहीं रह गए हैं। आम जनता इस बदइन्तज़ामीके चक्करमें बवण्डरके तिनकेकी तरह घूम रही है। उसके पैरोंके नीचेकी ज़मीन खिसक गई है। साथ ही घर तो नष्ट हो ही गया है, समाज भी टूट-फूटकर जीर्ण और दरारोंसे भरे हुए एक विशाल घरकी तरह किसी तरह खूँटोंके सहारे खड़ा-भर है। उद्योग-धन्धोंके केन्द्रोंमें मज़दूरोंकी भी यही हालत दिखाई पड़ी। वहाँपर भी वही रुकावटें हैं।

मनुष्यकी अन्तरात्मा चिल्लाकर कह रही है, मुझे मुक्ति दो, मुझे बाहर निकलने दो। लेकिन मुक्ति नहीं मिल रही है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि मनुष्य हिंसा-द्वेषसे पागल होकर पशुओंकी भाँति आपसमें ही मार-काट कर रहे हैं। मेरी अन्तरात्मा व्याकुल हो गई। अपने कल्याणके लिए तथा अपने पड़ोसी, अपने ग्रामवासी, अपने देशवासीके कल्याणके लिए मैंने दुनियाकी ओर नज़र डाली। देखा, सभी जगह एक ही लेखा है—कहीं कम, कहीं अधिक। केवल रूसकी हालत अलग है। पूर्ण रूपसे न हो, तो भी असम्पूर्ण रूपसे ही शान्तिकी एक अभिनव व्यवस्था वहाँ स्थापित हुई है। हाँ, १९३० के पहले ही रूसी क्रान्ति और नई व्यवस्था—साम्यवाद—ने मुझे प्रभावित किया था; लेकिन उसमें एक प्रकारके मोहका प्रभाव था। वह सोलहों आना रोमांटिक प्रभाव था, इसलिए यह स्थायी नहीं हुआ। इसके बाद अपनी नई अनुभूतिके कारण रूसी व्यवस्थाको सर्वोत्तम श्रद्धाके साथ मैंने इसलिए ग्रहण करना चाहा कि वह मानवके लिए विशालतम कल्याणकी खान है। मैं दीक्षा-प्राप्त साम्यवादी नहीं हूँ। किसी-किसी बातमें मुझे अब भी संकोच है। निजी अनुभवके बग़ैर वह दूर नहीं होगा। मानव-कल्याणकी ओरसे ही मैं उधर बढ़ा था। अपनी इस धारावाहिक अनुभूतिको मैंने अपनी रचनाओंमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमिके साथ प्रतिबिम्बित करनेका प्रयास किया है।

जब इतालीने अबीसीनियापर अचानक आक्रमण किया, तो मुझे ज़बर्दस्त चोट पहुँची। ऐसा मालूम हुआ, मानो इस बीसवीं सदीमें मानवके जीवनमें बर्बरता और मनुष्यत्वकी एक रस्साकशी शुरू हो गई है। मानव जब सभी बर्बरताओंको समाहित करके विशालतम कल्याणकी ओर जा रहा है, ठीक उसी समय मनुष्यकी आत्मस्वार्थ-युक्त पद्धतिने अपना ताण्डव नृत्य शुरू कर दिया। जर्मनीमें यहूदियोंके प्रति हुए जुल्मको देखकर मैं दंग रह गया। फ्रायड तथा आइन्स्टीनकी दुर्दशा और अपमान, स्त्रियोंके अधिकारोंका छीना जाना, स्पेनका गृह-युद्ध, चीनपर जापानकी चढ़ाई आदिको भी मैंने देखा। यह सब देखकर मनमें बारम्बार प्रश्न उठता था, क्या मनुष्य इसे बर्दाश्त करेगा? कभी-कभी ऐसी आशा भी होती कि उन देशोंकी जनता बर्बरताके विरुद्ध विद्रोहकर मानवताके इस चरम अपमानका अन्त कर देगी। इसके बाद शुरू हुआ पोलैण्डपर आक्रमण। उस समय मुझे सबसे अधिक दुःख हुआ था जर्मन जनताके लिए! आज बिना लड़ाईके ही उसका सर्वस्व छीन लिया गया है। इसके साथ ही अंगरेज़ों-फ्रांसीसियोंकी जर्मनोंसे लड़ाई शुरू हो गई। धीरे-धीरे लड़ाई दुनिया-भरमें फैल गई। फ़ाशिस्तोंने अपने प्रधान शत्रु रूसपर चढ़ाई कर दी। रूसके रहते सारी दुनियापर कब्ज़ा कर लेने पर भी वे सुखकी नींद नहीं सो सकते थे। कारण, मानव-कल्याणकी सर्वोत्तम व्यवस्थाने रूसमें विशाल रूपमें आत्म-प्रकाश किया है। इसीलिए उन्हें रूससे सबसे अधिक ख़तरा है। अँधेरा उजलेसे और पाप पुण्यसे डरता है। यही डर और घृणा उनकी रूसके (साम्यवादके) प्रति है। इधर जापान भी प्रशान्त-महासागरमें कूद पड़ा। आज वह भारतके दरवाज़ेपर खड़ा है।

भारतकी जन-शक्ति, उसके नेतृवृन्द, बुद्धिजीवी और समाचारपत्र कभी भी अपना सच्चा कर्त्तव्य पूरा करना नहीं भूले हैं। वे फ़ाशिज़्मकी उत्पत्तिके समयसे ही इसे एक हीन आदर्श घोषित करते आ रहे हैं। भारतके राष्ट्रीय समाचार-पत्र फ़ाशिस्त-विरोधी नीति और आदर्शका आन्तरिकताके साथ प्रचार करते आ रहे हैं। भारतकी जनता, उसकी श्रेष्ठ राष्ट्रीय संस्था, उसके समाचारपत्र, उसके साहित्यिक, उसके मनीषि-वृन्द—कोई भी फ़ाशिस्त जर्मनी, जापान या इतालीको नहीं चाहते। फिर भी हमारे सामने एक विचित्र समस्या है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटिश नौकरशाहीकी दमन-नीति, भेद-नीति और कूटनीतिने फ़ाशिस्तोंके विरोधमें उठाए गए भारतके हाथोंको पंगु कर दिया है। भारतकी श्रेष्ठ राष्ट्रीय संस्था आज संकट-ग्रस्त है। उसके नेता आज जेलोंमें बन्द हैं। आज इसी संकटके समय भारतके प्रत्येक प्रान्तमें साहित्यिक और विद्वन्मंडली एकताबद्ध होकर शुभ और निर्भीक सत्य घोषित करनेके लिए जो उठ खड़ी हुई है, उससे जिन लोगोंको आनन्द हुआ है, मैं उन्हींमें से एक हूँ।

एक कहावत सुनी है कि प्लासीकी लड़ाईके पहले जो षड्यन्त्र हुए थे, उसके सम्बन्धमें रानी भवानीने कहा था—'राघव, मछलियोंको मारनेके लिए नहर खोदकर घड़ियाल मत बुलाओ।' यह बात ऐतिहासिक रूपसे सच हो या न हो; लेकिन इससे बढ़कर सत्य और क्या हो सकता है? भारतकी जनता एक बन्धनसे छुटकारा पाकर दूसरे बन्धनमें नहीं पड़ना चाहेगी। भारतके इतिहासमें इस भूलकी पुनरावृत्ति हुई है; उसके लिए हमें काफ़ी दण्ड चुकाने पड़े हैं। इसलिए अब हम फिर उसे नहीं दोहरायँगे। कुछ मुट्ठी-भर लोग हैं, जो गुलाम ही बने रहना चाहते हैं। ऐसे लोग नपुंसक हैं, जिनका शीघ्र ही हमारी जातिसे लोप होना चाहिए। इन्हींके सगोत्रीय कुछ अवसरवादी भी हैं, जो कहते हैं कि साँड़के दुश्मनको बाघ मार रहा है। दीये-तले अँधेरेकी तरह इन अतिबुद्धिमानोंकी विषय-बुद्धिमें जो साफ़ बेवकूफ़ी झलक रही है, उसे वे नहीं देख रहे है। साँड़के दुश्मनको अगर बाघ मार ही डालता है, तो उन्हें कौन-सी खुशी हो सकती है? पर बाघसे बढ़कर साँड़का दूसरा दुश्मन ही कौन है? फ़ाशिज़्मके इस स्वरूपकी शायद वे कल्पना भी नहीं करते हैं।

फ़ाशिज़्म एक निष्ठुर, स्वार्थान्ध, यूथबद्ध मानव-सम्प्रदायकी स्वार्थ-प्रभुता-नीति है। शारीरिक और सब तरहकी आसुरिक शक्तियोंसे प्रभावित वह एक जाति है। फ़ाशिस्तोंके हृदयमें उग्र स्वार्थान्धता और हिंस्र क्षुधा है। आसुरिक शक्तिसे, हिंस्र क्षुधासे वे सारी दुनियाको अपने पैरों-तले रौंदना चाहते हैं; वे दुनियाके विधाता और दण्ड-मुण्डके स्वामी बनना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि दुनिया-भरके लोग उनकी गुलामी करें, उनके मनके मुताबिक सोचें और समाज भी उनकी बताई रीति-नीतिके अनुसार चले। मनुष्यकी स्वतन्त्र विचार-धारा, सरस जीवनदायिनी सार्थकताकी आकांक्षा, काव्य, साहित्य, दर्शन, कला—संक्षेपमें सत्य, सुन्दर और मंगल-साधनाका रास्ता ही बन्द कर देना उनका ध्येय है। फ़ाशिज़्मके अधीन जिस साहित्य, कला आदिका निर्माण होगा, उसकी बात दिमाग़में आते ही मुझे जेलखानेमें दरी तथा नारियलकी रस्सी बँटने आदिकी बात याद आ जाती है, जिसकी हरएक गाँठमें निर्यातित मानवताका अभिशाप रहता है। इस प्रकारके मक्कारीसे भरे कौशल-जालसे धन बाँटनेकी व्यवस्थापर इनका एक ऐसा नव-विधान बनेगा कि एक या दो पीढ़ियोंके बाद हम समानता, स्वाधीनता, विश्व-भ्रातृत्व, उन्नत जीवन तथा विशालतम लोक-कल्याणकी कल्पना भी नहीं कर सकेंगे। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि मनुष्यके जीवनकी लम्बी गौरवमय उन्नततर प्रेरणा और आत्म-त्यागके यज्ञके विरुद्ध इतना बड़ा आसुरिक जेहाद दुनियाके इतिहासमें पहले कभी दिखाई नहीं पड़ा। टिड्डियाँ आती हैं और फ़सलको एक ही दिनमें नष्ट करके चली जाती हैं। जंगली कुत्ते राह चलते आदमियोंपर हमला करके उनका ख़ून पी लेते हैं। लेकिन वे हमेशा नहीं रह सकते। नई ऋतुमें फिर खेत हरे-भरे दिखाई पड़ते हैं। कुत्तोंके चले जानेके बाद लोग फिर सुखसे रहने लगते हैं। शान्ति लौट आती है। लेकिन फ़ाशिज़्मकी जीतका मतलब होगा दुनियामें हमेशाके लिए टिड्डियों और कुत्तोंका रहना।

फ़ाशिज़्मकी जीवन-सम्बन्धी और आर्थिक व्यवस्थाके विषयका विश्लेषण अनेक पण्डितोंने किया है और आगे भी करेंगे। इसके अलावा मुट्ठी-भर नपुंसक और अवसरवादी लोगोंकी दलीलोंके प्रतिवादमें अधिक कहनेकी ज़रूरत भी नहीं है। लेकिन आज भारतमें फ़ाशिज़्मके खिलाफ़ जो क्षोभ दिखाई पड़ रहा है, उसके बावजूद साम्राज्यवादी नौकरशाहीकी भ्रान्ति-पूर्ण दाम्भिक शासन-पद्धतिकी प्रतिक्रियाकी बाधाके कारण जन-शक्तिको संगठित करने और नई प्रेरणा प्रदान करनेमें कठिनाई हो रही है। भ्रान्त और उद्विग्न जन-शक्तिको कैसे शान्त और संगठित करके इस विश्व-मानव और मानवताके खिलाफ़ खड़े ध्वंसकारी आसुरिक शक्तिका नाश करनेमें लगाया जाय, हमारे सामने यही सबसे बड़ी समस्या है। इसके लिए मैंने बंगालके इस साहित्यिक और कलाकार-संघकी ओर आशा लगा रखी है। आपकी वाणीके साथ मैं भी अपनी वाणी मिला दूँगा। भारतके लोगोंको समझाना होगा कि यह लड़ाई केवल उनके लिए ही नहीं है, बल्कि समग्र दुनियाकी मुक्तिके लिए है।*

* कलकत्तेके फ़ाशिस्त-विरोधी लेखक और कलाकार-संघके सभापति-पदसे दिया गया भाषण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साध

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

तीसरा अंक * पहला दृश्य

[समय—शामके पाँच बजेके लगभग। स्थान—अजीत कुमारकी कोठीका लान। कुमुद टहल रही है। वह एक धानी रंगकी रेशमी साड़ी पहने है। चेहरेपर चिन्ताकी कुछ रेखाएँ साफ़ दीख रही हैं। उसके पीछे कुछ दूरीपर मोहन गेंद खेल रहा है। इतनेमें अजीत प्रवेश करता है। चेहरेपर गम्भीरताकी छाप है। कुछ सोचता-सा मालूम देता है। अपनी टोपीको हाथमें पकड़े हुए है।]

कुमुद—आज पद्मा कैसी है ?

अजीत—अच्छी है। अब डाक्टरोंको पूर्णरूपसे विश्वास हो गया है कि आपरेशन सफल रहा।

कुमुद—बहुत अच्छी बात है।

अजीत—आज तो डाक्टरोंने उसे मोहनसे मिलनेकी इजाज़त भी दे दी है।

कुमुद—मोहनसे मिलनेकी ? अच्छा, मैं अभी पद्माको देखने जाऊँगी, तो उसे भी लेती जाऊँगी।

अजीत—इसकी आवश्यकता नहीं। जगेश्वर अभी उसे लेने आयगा।

कुमुद—जगेश्वर ? वह क्यों ?

अजीत—इसलिए कि वह उसका पिता है। उसकी ऐसी ही इच्छा है।

कुमुद—पिता है ? उसकी ऐसी ही इच्छा है ?

अजीत—हाँ, और शायद अब मोहन हमारे यहाँ लौटे भी नहीं।

कुमुद (मुखका रंग एकाएक फीका पड़ जाता है, घबराकर)—क्यों, लौटेगा क्यों नहीं ?

अजीत—आजकल उसकी बुआ पद्माकी देख-रेखके लिए अस्तालमें आई हुई है। उसकी और जगेश्वरकी मर्ज़ी है कि मोहन भी वहीं रहे। पद्माको तो इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। (झूठी मुस्कान चेहरेपर लाते हुए) इसलिए मोहनका सामान बाँध रखो।

कुमुद (आधे क्षणके लिए चुप रहती है)—सामान बाँध रखूँ ?

अजीत—हाँ।

कुमुद—किन्तु—

अजीत—किन्तु क्या ?

कुमुद—यदि मैं उसे न जाने दूँ, रोक लूँ, तो ?

अजीत—तुम रोक लो ? तुम उसे रोकनेवाली हो कौन ?

कुमुद (दीर्घ निश्वास छोड़कर)—मैं उसकी कुछ भी न सही, परन्तु मैं उसे—(रुक जाती है।)

अजीत (कोमलतासे)—कहे जाओ।

कुमुद—मैं उसे स्नेह तो करती हूँ। (नेत्रोंमें झगड़ते हुए आँसू सहसा फूट निकलते हैं। वह उन्हें छिपानेका प्रयत्न भी नहीं करती।)

अजीत (सहानुभूति सूचक स्वरमें)—रोना छोड़कर परिस्थितिको समझनेकी कोशिश करो।

कुमुद (खीझकर)—मैं परिस्थितिको खूब समझती हूँ। ले जायँ, उसे लाख बार ले जायँ। (दूर खेलते मोहनको आवाज़ देती है) मोहन, इधर आओ।

मोहन (गेंदको फेंककर भागता हुआ कुमुदके निकट आ जाता है)—हाँ, मामीजी !

कुमुद (निर्दय स्वरमें)—यहाँसे जानेकी तैयारी करो।

मोहन—कहाँ ?

कुमुद—अभी तुम्हारे पिता तुम्हें लेनेके लिए आयँगे।

मोहन (उछलकर)—मेरे पिताजी मुझे लेने आयँगे। अहा हा ! कब आयँगे ?

[कुमुद इतनी प्रसन्नता देखकर अवाक् रह जाती है। टुकुर-टुकुर मोहनकी ओर देखने लगती है। फिर निकट पड़ी हुई कुर्सीपर बैठ जाती है।]

अजीत—अभी थोड़ी देरमें आ रहे हैं।

मोहम—मेरी बीबीजी भी आयँगी ?

अजीत—नहीं, वे नहीं आयँगी ; परन्तु तुम आज उनसे मिलोगे ज़रूर। तुम्हारे पिता तुम्हें बीबीजीके पास ही ले जायँगे।

मोहन (प्रसन्नतासे नाचता हुआ)—मैं अभी जाकर अपने खिलौने इकट्ठे करता हूँ।

[भागता हुआ बाहर चला जाता है। कुमुद कुर्सीसे उठ खड़ी होती है। दो-चार पग इधर-उधर चलती है, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्सीपर आ बैठती है। अजीत जहाँका तहाँ खड़ा रहता है।]

कुमुद (उदास स्वरमें)—अपने लोहूमें यह प्रभाव होता है, यह जादू होता है, मैं न जानती थी।

[अजीत चुप रहता है, कुमुदकी ओर टकटकी बाँधे देखने लगता है।]

कुमुद (बेचैनीसे)—चुपचाप क्यों खड़े हो? बोलते क्यों नहीं?

[अजीत एक सिगरेट निकालकर उसे सुलगाता है।]

अजीत (प्यारसे ओत-प्रोत वाणीमें)—मैं यह सोच रहा हूँ कि मोहनके चले जानेके बाद तुम्हारा क्या हाल होगा?

कुमुद—जो उसके आनेसे पहले था।

अजीत—तब और बात थी।

कुमुद—होगी। (आवेशसे) मैं ऐसे घुटनोंके बल चलनेवाले मिट्टीसे लथपथ बालकोंके लिए रोग पालनेवाली नहीं हूँ, यह निश्चय रखो। जिस मायाजालमें तुम मुझे फँसाना चाहते हो, उसमें तुम मुझे फँसा न पाओगे।

अजीत (खिलखिलाकर हँसते हुए)—मायाजालमें? मैं तुम्हें फँसाना चाहता हूँ?

कुमुद—हाँ, तुम। तुम मेरी दुर्बलताका अनुचित लाभ उठाना चाहते हो।

अजीत (गम्भीरतासे)—कौन-सी दुर्बलता?

कुमुद—तुम खूब जानते हो।

[इतनेमें जगेश्वर प्रवेश करता है। वह एक पुराना और घिसा हुआ सूट पहने है। कमीज़ कालरवाली अवश्य है; किन्तु नैकटाई नहीं लगी है। दाढ़ी बनाए हुए भी दो-तीन दिन हो गए मालूम देते हैं। बूटपर मिट्टी पड़ी है। चेहरेपर चिन्ताकी छाया है, यद्यपि नेत्रोंमें सन्तोषकी एक झलक भी दिखती है। उसे देखकर अजीत और कुमुद दोनों लज्जित हो जाते हैं। जगेश्वर हाथ जोड़कर दोनोंको नमस्ते करता है। उसकी नमस्तेका जवाब वे दोनों मुस्करानेकी कोशिश करते हुए देते हैं।]

कुमुद (पास पड़ी हुई कुर्सीपर बैठनेका संकेत करती हुई)—आइए, आइए।

जगेश्वर (कुर्सीपर बैठते हुए)—मोहन कहाँ है?

कुमुद—अभी गया है अपने खिलौने ठीक करने। आता ही होगा। पद्माका अब क्या हाल है?

जगेश्वर—पहलेसे तो बहुत अच्छी है। आशा है, अब ठीक हो जायगी। मोहनको देखनेके लिए तरस रही है।

कुमुद—अच्छा। मोहन लड़का भी खूब है।

जगेश्वर—खूब तो क्या है, बड़ा शरारती है; फिर माँकी ममता है न। आप तो सब-कुछ समझती हैं।

कुमुद (रुँधे हुए गलेसे)—हाँ।

[इतनेमें भागता हुआ मोहन प्रवेश करता है। पिताको देखकर उछलता हुआ उसकी गोदीमें जा बैठता है। पिता प्यारसे उसे उठा लेता है, उसके सिरपर हाथ फेरने लगता है। हाथ फेरते-फेरते उसके नेत्र सजल हो जाते हैं। कुमुद कुछ चकित और खोई-सी उनकी ओर देखती है। लगभग आधा क्षण सब ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। फिर अजीत सन्नाटा तोड़ता है।]

अजीत (जगेश्वरसे)—क्या अभी मोहनको ले जाइए या सबेरे?

जगेश्वर—पद्माकी तो यही इच्छा थी कि इसे अभी जाऊँ।

अजीत—किन्तु—

कुमुद (अजीतको बीचमें ही रोककर)—यदि उनकी यह इच्छा है, तो अभी ले जाना उचित होगा।

जगेश्वर—लेकिन इसका सामान!

कुमुद—हम पीछे भिजवा देंगे।

जगेश्वर—धन्यवाद। आपने जो कृपा मुझपर की वह मैं भूलनेका नहीं। अब आज्ञा दीजिए। (उठने लगता है)

कुमुद—ठहरिए, कुछ चाय-वाय तो पी लीजिए।

जगेश्वर—चाय मैं पी चुका हूँ। (उठकर खड़ा हो गया है) मोहन, अपनी मामीजी और मामाजीको नमस्ते करो।

[मोहन हाथ जोड़कर नमस्ते करता है। दोनों पत्नी भी हाथ जोड़कर उसे जवाब देते हैं।]

कुमुद (नेत्रोंमें छलकते हुए आँसुओंको छिपानेका प्रयत्न करती हुई)—मोहन, क्या सचमुच चल दिए? क्या कभी आओगे भी?

[मोहन, जिसे शायद कुमुदके आँसू दीख जाते हैं, पिताकी गोदीसे उतरकर अपनी मामीके निकट चला जाता है। अपने नन्हें-नन्हें हाथोंसे कुमुदका हाथ पकड़ लेता है। उनके साथ प्यारसे अपने गाल रगड़ने लगता है। कुमुद पुलकित हो उठती है। मोहनको उठाकर छातीसे चिपटा लेती है।]

कुमुद—मोहन, बेटा कभी-कभी आया ज़रूर करना।

मोहन—हाँ, ज़रूर आया करूँगा, मामीजी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुद (जगेश्वरसे)—क्या जब तक पद्मा अस्पतालमें है, मोहनका यहाँ रहना ठीक न होगा ?

जगेश्वर—पद्मा चाहती है—

कुमुद (बीचमें ही रोककर)—हाँ, मैं भूल रही थी। (स्वगत) पद्मा इसकी माँ जो ठहरी !

[मोहनको एक बार फिर जी-भरकर प्यार करती है। फिर उसे गोदसे उतार देती है। मोहनमें भी वह पहलेका-सा जोश नहीं रहता। वह धीरे-धीरे पग रखता हुआ अपने पिताकी ओर बढ़ता है। पिता उँगली पकड़ लेता है।]

जगेश्वर—चलें ?

मोहन (अन्यमनस्क भावसे)—चलिए।

[जगेश्वर मोहनकी उँगली पकड़े हुए बाहरकी ओर जाने लगता है। अजीत भी उसके साथ हो लेता है। कुमुद ज्यों-की-त्यों खड़ी उनकी ओर देखती रहती है। जब वे आँखोंसे ओझल हो जाते हैं, तो एक दीर्घ निश्वास छोड़कर निकट पड़ी हुई कुर्सीपर बैठ जाती है। अब तक के सँभाले हुए आँसू नेत्रोंसे बरसने लगते हैं। रुमाल निकालकर उन्हें पोंछती है। अजीत लौट आता है। चुपके-से बढ़कर साथवाली कुर्सीपर बैठ जाता है और कुमुदका हाथ कोमलतासे अपने दोनों हाथोंमें ले लेता है।]

अजीत—क्या सोच रही हो ?

कुमुद (व्यंग्यसे)—अपने और परायेकी समस्या सुलझानेमें लगी थी। तुम सुलझा सकते हो ?

[अजीत कुछ जवाब नहीं देता। कलाईपर बँधी हुई घड़ीकी ओर देखता है।]

अजीत—'स्टैंडर्ड'में आज बहुत अच्छा नाच हो रहा है। अभी शुरू नहीं हुआ होगा। यदि तुम फ़ौरन तैयार हो जाओ, तो हम समयपर पहुँच सकते हैं। क्या चलोगी ?

कुमुद—नाच, तमाशा ! (कुछ देर सोचमें डूबी रहती है, फिर उछलकर खड़ी हो जाती है) हाँ, चलूँगी। मुझे किसी भी तैयारीकी ज़रूरत नहीं। मैं तैयार हूँ। चलो।

[अजीतका हाथ ज़ोरसे पकड़कर अपनी ओर खींचती हुई दरवाज़ेसे बाहरकी ओर बढ़ने लगती है।]

[परदा गिरता है।

दूसरा दृश्य

[समय—दोपहरके एक बजेके लगभग। स्थान—एक कमरा, जिसके दाएँ-बाएँ एक-एक दरवाज़ा है और पीछे एक खिड़की है। फ़र्शपर एक बढ़िया दरी बिछी हुई है। एक कोनेमें छोटा-सा पलंग बिछ रहा है। कमरेमें तीन-चार छोटी-छोटी कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं और इधर-उधर कुछ खिलौने बिखरे हुए हैं। कुमुद एक सादी साड़ी पहने नंगे पाँव चलती-फिरती जहाँ-तहाँसे खिलौने आदि एकत्रित करके उन्हें एक बक्समें डाल रही है। चेहरा बहुत उदास है। नेत्रोंमें भी वह पहलेकी-सी चमक नहीं।]

कुमुद (स्वगत)—चलो, अच्छा हुआ, जल्दी ही चला गया। अधिक मोह और ममता बढ़ानेसे लाभ ही क्या था ? आखिर तो उसको जाना ही था। मेरे अध्ययनका जो सिलसिला बीचमें टूट गया था, उसे फिरसे ठीक करूँगी। इतने दिनों तक संसारको ही तिलांजलि दे रखी थी। न सिनेमा, न थिएटर, न गाना, न बजाना। बच्चे सचमुच जंजाल होते हैं। किन्तु—नहीं, यह मेरी भूल है। और बच्चे होते होंगे, पर मोहन ऐसा नहीं। मोहन ! क्या कोई और बालक भी वैसा हो सकता है ? यदि मेरे—

[यहाँ रुक जाती है। तन्मयतासे चीज़ें बक्समें डालने लगती है। फिर उठकर बेचैनीसे कमरेमें डग भरने लगती है। इतनेमें रामेश्वरीदेवी प्रवेश करती है।]

रामेश्वरी—कुमुद, क्या बन रहा है ?

कुमुद (चेहरा खिल उठता है)—आइए, बीबीजी ! बैठिए।

[रामेश्वरीदेवी नीचे फ़र्शपर ही बैठ जाती है।]

कुमुद—मोहनका सामान तैयार कर रही हूँ।

रामेश्वरी (आश्चर्यसे)—क्यों, वह कहाँ गया ?

कुमुद—कल अस्पताल चला गया है। उसकी माँ और बुआकी यही इच्छा थी। वे उसकी अपनी जो ठहरीं ! (गला रुँध जाता है।)

रामेश्वरी (एकटक कुमुदकी ओर देखती हुई)—बेटी, आखिर तो मोहनको जाना ही था।

कुमुद—जानती हूँ, बीबीजी ! और यह भी जानती हूँ कि उससे ममता बढ़ाना व्यर्थ था। पर आपसे यह न छिपाऊँगी कि वैसा बच्चा मैंने कभी नहीं देखा।

रामेश्वरी—वैसा क्या ? तुमने मोहनके सिवा कोई बालक देखा ही कब है ? घरमें कोई नन्हा बच्चा था नहीं, क्योंकि तुम्हारे होश सँभालते ही विमलने भी होश सँभाल लिया और दूसरोंके बच्चोंसे तू सदा दूर ही रही। इसलिए एक नन्हें बालकमें क्या मधुरता होती है, लाख बतानेपर भी तू न जान सकी। जिन बच्चोंका लालन-पालन ठीक ढंगसे हुआ करता है, उनमें वही दिल-लुभानेवाला जादू होता है, जो मोहनमें है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो-कुछ तुम्हें मोहनमें दीखा है, उससे भी अधिक तुम्हें अपने बच्चेमें दीखेगा।

कुमुद (ज़रा चौंककर)—अपना बच्चा ? मेरा बच्चा ? (लज्जासे मुख लाल हो जाता है।)

रामेश्वरी—हाँ, तुम्हारा बच्चा। कुमुद, विश्वास मानो, इस असार मायामय संसारमें बच्चे ही यथार्थ हैं, सत्य और सुन्दर हैं। इसलिए बेटी, इस झूठी चमकवाली सभ्यताके मोहमें फँसकर बच्चोंसे विमुख न हो।

कुमुद (आश्चर्यसे)—लेकिन बीबीजी, आजसे पूर्व आपने मुझे यह सब-कुछ क्यों नहीं समझाया ?

रामेश्वरी—इसलिए कि मैं जानती थी, वह व्यर्थ होगा। एक अपरिपक्व युवक और युवतीकी हठके आगे भला कौन ठहर सकता है ?

कुमुद (श्रद्धासे नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं)—बीबीजी, आप सचमुच महान हैं।

[कुमुद प्यारसे अपनी माँकी गोदीमें सिर रखकर लेट जाती है। माँ अपनी उँगलियोंको कोमलतासे उसके बालोंमें फेरने लगती है। ठीक उसी समय अजीत प्रवेश करता है। कुमुद लज्जासे सिमटती हुई झटपट उठकर बैठ जाती है।]

अजीत—नमस्ते बीबीजी ! आज तो खूब माँ-बेटीमें प्यार हो रहा है !

रामेश्वरी (नमस्तेका प्रत्युत्तर देती हुई)—आज जल्दी लौट आए हो ?

अजीत—हाँ, आज ज़रा जल्दी ही छुटकारा पा गया। (बक्सकी ओर देखकर) यह क्या है ? मोहनका सामान ठीक हो रहा है ?

कुमुद—ठीक हो चुका है।

अजीत—तो इसे अब पहुँचवा देना चाहिए। बुलाऊँ नौकरको ?

कुमुद - बुलाइए।

[अजीत दीवारके साथ लगे हुए घण्टीके बटनको दबाता है। थोड़ी ही देर बाद नौकर प्रवेश करता है।]

नौकर—आज्ञा !

अजीत—उस बक्सको मोटरके पीछे बाँध दो और शोफ़रसे बोलो कि इसे अस्पताल छोड़ आए। ये मोहन बाबूकी चीज़ें हैं।

नौकर—बहुत अच्छा।

[नौकर बक्स उठाकर बाहर ले जाता है।]

रामेश्वरी—लेकिन कुमुद, क्या तुम्हारा स्वयं साथ जाकर बक्सको वहाँ पहुँचाना ठीक न होगा ?

कुमुद—मैं साथ जाऊँ ? नहीं, मुझसे यह न हो सकेगा। इतनी जल्दी वहाँ जानेका मुझमें साहस नहीं।

रामेश्वरी—कबूतरकी भाँति आँखें बन्द करनेसे तो न चलेगा। अजीत, तुम्हीं छोड़ आओ।

अजीत—मैं ? (बगलें झाँकने लग जाता है।)

रामेश्वरी—हाँ तुम। क्या हर्ज है।

अजीत (बात टालते हुए)—बीबीजी, शोफ़र बड़ा विश्वासी है। गड़बड़ होनेका कोई भय नहीं।

रामेश्वरी—मैं गड़बड़की बात नहीं कर रही थी। शोफ़रको ही जाने दो। (उठकर खड़ी हो जाती है।)

अजीत—क्या जा रही हैं ?

रामेश्वरी—हाँ।

अजीत—इतनी जल्दी ?

रामेश्वरी—विमल आज खाना खाकर कालेज नहीं गया था। अब तक लौट चुका होगा और मेरी राह देख रहा होगा। (कुमुदसे) कुमुद, आजकी कही हुई मेरी बातें भूल न जाना।

कुमुद (मुख लज्जासे लाल हो जाता है)—उन्हें भूल भी नहीं भूल सकती, बीबीजी !

अजीत—क्या बातें थीं ?

रामेश्वरी—कुछ विशेष नहीं। लो, अब चलती हूँ।

[दोनों हाथ जोड़कर रामेश्वरीदेवीको नमस्कार करते हैं। वह आशीश देती मुस्कराती हुई कमरेसे बाहर चली जाती हैं।]

कुमुद—प्रेटा गार्बोका एक बहुत अच्छा चित्र आया है। मृदुला बहुत आग्रह कर रही है। क्या तुम भी चलोगे ? ज़रूर चलो।

अजीत—आज ?

कुमुद—हाँ, आज ही।

अजीत—मेरा जाना शायद न हो सके। आज शाम विश्वविद्यालयकी एक मीटिंगमें मुझे ज़रूर पहुँचना है।

कुमुद—कितने बजे ?

अजीत—पाँच बजे। मैं सिनेमा-हालमें पहुँचनेका अवश्य करूँगा ; परन्तु तुम लोग मेरी प्रतीक्षा मत करना।

(नौकरका प्रवेश)

नौकर—खाना तैयार है।

कुमुद—बहुत अच्छा, हम थोड़ी देरमें आते हैं। (अजीतसे) तुम जल्दीसे मुँह-हाथ धो लो। मैं अभी आती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजित—देर मत लगाना। (कमरेसे बाहर हो जाता है।)

कुमुद (कुछ देर कमरेमें इधर-उधर टहलनेके बाद, स्वगत)—मेरा बच्चा! मेरी सन्तान? संसारमें बच्चे ही यथार्थ हैं, सत्य और सुन्दर हैं! अब मैं मानती हूँ। मैं माता बन जाऊँगी, माता! मैं। (खिलखिलाकर हँसती है) नहीं, मुझे बच्चा नहीं चाहिए। सचमुच नहीं चाहिए।

[इतनेमें शोफ़र प्रवेश करता है।]

कुमुद—क्यों ड्राइवर?

शोफ़र—बक्स छोड़ आया हूँ।

कुमुद—मोहन मिला था?

शोफ़र—जी! और मेरे साथ आनेके लिए उसने हठ भी बहुत किया।

कुमुद (प्रसन्न होकर)—क्या कहता था?

शोफ़र—आपसे मिलना चाहता था; लेकिन उसकी बुआ नहीं मानी। उसने मोहनको ज़बर्दस्ती रोक लिया।

कुमुद (चेहरा क्रोधसे तमतमा उठता है)—उसकी बुआ? वह कौन होती है रोकनेवाली! चलो, मैं चलती हूँ। देखूँगी, कैसे वह उसे रोकती है।

[क्रोधसे भरी हुई एक-दो पग द्वारकी ओर बढ़ती है, फिर कुछ सोचती हुई रुक जाती है।]

कुमुद—शोफ़र, तुम जाओ। इस समय मैं न जा सकूँगी।

[शोफ़र चुपकेसे कमरेसे बाहर चला जाता है।]

कुमुद (स्वगत)—यह भी खूब रही। बच्चा आना चाहता है और उसे रोका जा रहा है। क्या हमारे यहाँ वातावरण बहुत विषैला है? वे ठीक ही कह रहे थे। वह हमारा जो नहीं।

(अजीतका प्रवेश)

अजीत—तुम अभी तक यहीं खड़ी हो, उधर खाना ठंडा हो रहा है।

कुमुद—क्षमा माँगती हूँ। चलो।

[दोनों कमरेसे बाहर चले जाते हैं।]

[परदा गिरता है।

तीसरा दृश्य

[समय—रातके साढ़े नौके लगभग। स्थान—दूसरे अंकके पहले और तीसरे दृश्यवाला कमरा। अजीत एक धोती और कुरता पहने टहल रहा है। मुँहमें सिगार है; किन्तु सुलगा हुआ नहीं। उसमें से फूटती हुई चिनगारियाँ बिजलीके प्रखर प्रकाशमें भी साफ़ दीख रही हैं। उससे उत्पन्न हुए धुएँके बादल कमरेमें छाए हुए हैं। आधे क्षणके बाद अजीत अपनी आरामकुर्सीपर बैठ जाता है। कम्बलको घुटनोंके ऊपर फेंक पासकी मेज़पर पड़ी हुई किताब उठा लेता है। उसके पृष्ठ उलटने लगता है; किन्तु किसी भी पृष्ठपर अटक नहीं पाता। आखिर पुस्तकको मेज़पर फेंक देता है और वहाँ पड़ी हुई एक चित्रमय पत्रिका उठा लेता है। उसके चित्रोंमें अपने-आपको खो देनेमें प्रयत्नशील होता है; परन्तु वह पत्रिका भी अधिक देर उसे लुभा नहीं पाती। उसे भी अजीत पुस्तकके पास पटक देता है। फिर आँखें मूँदकर बैठ जाता है। इतनेमें कुमुद प्रवेश करती है। वह बैंगनी रंगकी एक भड़कीली साड़ी पहने है, जिसका किनारा सुनहला और बहुत चौड़ा है। पाँवोंमें सुनहले जूते हैं। चेहरा ज़रा उत्तेजित-सा है। उसके पाँवोंकी आहटसे अजीत आँखें खोल देता है और मुस्कराकर अपनी पत्नीका स्वागत करता है।]

अजीत—क्षमा चाहता हूँ, मैं न पहुँच सका।

कुमुद—मीटिंग देरमें समाप्त हुई होगी?

अजीत—हाँ, आठ बजे तक चलती रही। चित्र तो खूब होगा। इसमें ग्रेटा गार्बो बहुत ऊँची उठ गई है क्या?

कुमुद—कह नहीं सकती।

अजीत (हैरतसे)—क्या मतलब?

कुमुद—मैंने चित्र देखा ही नहीं।

अजीत (और भी आश्चर्यसे)—देखा नहीं, तो तुम आ कहाँसे रही हो?

कुमुद—आ तो सिनेमा-हालसे ही रही हूँ और बैठी भी सारा समय वहीं रही।

अजीत—बैठी भी वहीं रहीं! तो वहाँ देखती क्या रहीं?

कुमुद—एक स्वप्न।

अजीत—स्वप्न? (उत्सुकतासे) कैसा स्वप्न? तुमने क्या देखा?

कुमुद—मैंने देखा कि हमारी वाटिकामें फूलोंका एक इन्द्रधनुष लहरा रहा है। उन पुष्पोंसे उड़ती हुई सुगन्ध वातावरणमें एक अनूठी मस्ती बिखरा रही है। उन फूलोंके इर्द-गिर्द एक देवदूत-सा सुन्दर और ओस-सा निर्मल बालक उछलता-कूदता खेल रहा है।

अजीत—बालक?

कुमुद—हाँ, बालक। उसकी अवस्था कोई तीन वर्षकी होगी। रंग साँवला, किन्तु स्वस्थ। नेत्र बड़े-बड़े और मनमोहक। काली अलकें इधर-उधर लहरा रही थीं। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रमुग्ध-सी खड़ी उस बालककी ओर देखने लगी और न-जाने कितनी देर योंही बनी रही। आखिर बालककी दृष्टि मुझपर पड़ गई। मुझे देखते ही वह तीरकी तरह उड़ता हुआ मेरी ओर बढ़ा और मेरी छातीसे आकर चिपट गया। उसके सारे शरीरसे भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी। 'तुम कौन हो?'—मैंने पुलकित होकर पूछा। 'आपका बेटा।'—उसने जवाब दिया।

अजीत—'बेटा?'

कुमुद—हाँ बेटा। कहने लगा, 'क्या आप मुझे अपना बेटा बना सकती हैं?' 'क्यों नहीं?'—मैं खुशीसे झूम उठी। 'यदि तुम मेरे पुत्र बन जाओ, तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी।' मैंने स्नेहसे ओत-प्रोत होकर उसका मस्तक चूमा और उसके बालोंसे खेलने लगी।

अजीत—फिर?

कुमुद—ठीक उसी समय इण्टरवलकी घण्टी बजी और हाल ज्योतिसे जगमगा उठा, जिससे मेरा वह मधुर स्वप्न खो गया।

अजीत—खूब स्वप्न था?

कुमुद—इतना सुखद स्वप्न मैंने आज तक कभी नहीं देखा। इसी स्वप्नने मेरे मनमें एक नई भावना, नई इच्छा जाग्रत कर दी है।

अजीत—वह इच्छा क्या है? क्या तुम मुझे बता सकती हो?

कुमुद (अपने नेत्रोंका सारा रस अजीतके नेत्रोंमें उँडेलती हुई)—मैं चाहती हूँ, तुम्हारा एक प्रतिरूप तुम्हें भेंट करूँ।

अजीत (मुख प्रसन्नतासे खिल उठता है)—सच कहती हो, कुमुद!

कुमुद—बिलकुल सच, प्रियतम! क्या मेरा वह स्वप्न सत्य होगा, मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी?

अजीत—अवश्य होगी, मेरी रानी!

[कुमुदके नेत्र हर्षसे सजल हो जाते हैं। वह अपनी कुर्सीसे उठकर अजीतके पाँवोंमें आ बैठती है और आँसुओंको उसके चरणों द्वारा पोंछने लग जाती है।] [परदा गिरता है।

(समाप्त)

संगीत-कला

श्री जगन्नाथबख्श दास, एम० ए०

भारतीय संगीतका कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। पर इतना हम भलीभाँति जानते हैं कि प्राचीन कालमें यह कला अपनी चरम सीमापर पहुँची थी। हिन्दू पाश्चात्य विद्वानोंकी भाँति क्रम-विकासके सिद्धान्तको नहीं मानते और इस विश्व तथा प्रत्येक प्राचीन कलाको ईश्वर-कृत मानते हैं। हमारे यहाँ संगीतके जन्मदाता ब्रह्मा माने जाते हैं। शिवने नृत्य-कलाको जन्म दिया और सरस्वतीने वीणाकी उत्पत्ति की। संगीतके विषयमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'सामवेद' है। इससे पता चलता है कि वैदिक कालमें संगीतका प्रचार था। हमारे पुराणोंमें भी संगीतकी काफ़ी चर्चा है। रामायणमें रावणको संगीतका एक बहुत बड़ा पंडित बताया गया है। द्वापरमें तो श्रीकृष्ण संगीतके रूप ही माने जाते थे। उन्होंने कहा भी है—'वेदोंमें सामवेद मैं हूँ।' किन्तु ये सब बातें हमें ऐतिहासिक वर्णनके रूपमें ही मिलती हैं। हम इनसे यह पता नहीं लगा सकते कि उस समय किस प्रकारके संगीतका प्रचार था, क्योंकि इनमें राग-रागिनियोंका कहीं भी वर्णन नहीं है।

भरतका 'नाट्य-शास्त्र' अपने विषयका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसका निर्माण-काल कोई ४००० ईस्वी-पूर्व बताते हैं, तो कोई ४०० ईस्वी-पूर्व। इसमें सन्देह नहीं कि यह अपने विषयका सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है; पर इसमें भी राग-रागिनियोंका वर्णन नहीं है। इसमें रागके स्थानमें जातिका उल्लेख है, जो जाति-रागके नामसे प्रसिद्ध है। धीरे-धीरे इन जाति-रागोंपर भारतीय आक्रमणकारियों, नवागन्तुकों और प्राचीन भारतवासियोंके तत्कालीन प्रचलित रागोंका प्रभाव पड़ा। बादमें इसी संसर्गके आधारपर इस देशके विभिन्न रागोंकी उत्पत्ति हुई। इस ग्रन्थके बाद एक बहुत बड़े अर्से तक हमें ऐसा कोई प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं मिलता, जो संगीत-शास्त्रसे सम्बन्ध रखता हो। इसके अतिरिक्त दूसरी पुस्तक जो हमें प्राप्त हुई है, वह है मतंग मुनिकी 'बृहद्देशी'। इसका रचना-काल सन् ४०० के लगभग कहा जाता है। आर्योंकी संगीत-पद्धतिके अनुसार जिस रागमें पाँच स्वर न होते थे, उसे रागका स्थान प्राप्त नहीं था; किन्तु अनार्योंकी संगीत-पद्धतिके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत-से राग ऐसे थे, जिनमें केवल चार ही स्वर होते थे। हमारे प्राचीन संगीतकी व्यापकता इतनी विस्तृत थी कि बिना अपना अंग-भंग किए या अपनेको दूषित बनाए वह अन्य पद्धतियोंके गुण ग्रहण कर लेता था। आर्योंने इन अनार्य रागोंमें पाँचवाँ स्वर जोड़कर इन्हें मार्ग रागोंका स्थान दिया। इस विषयका कुछ वर्णन हमें 'बृहद्देशी' में मिलता है। मतंग मुनिका कथन है कि चार स्वरोंके राग दक्षिण-भारतमें पाए जाते थे और पाँच स्वर या उनसे अधिकवाले उत्तर-भारतमें। बादको इन चार स्वरवाले रागोंको आर्य संगीताचार्योंने अपनी पद्धतिके अनुसार शुद्ध किया और उन्हें संगीत-शास्त्रमें उचित स्थान प्राप्त हुआ।

उपर्युक्त ग्रन्थोंसे पता चलता है कि प्राचीन कालमें संगीतका बहुत प्रचार था। हमारा कोई भी ऐसा काम न था, जिसमें संगीतका स्थान प्रधान न हो। देवाराधनासे लेकर साधारण गार्हस्थिक कार्य तक संगीतके बिना सम्पन्न नहीं होते थे। राजा-महाराजाओंसे लेकर जन-साधारण तकमें संगीतका प्रचार था। गुप्त कालमें, जिसे हिन्दू ऐतिहासिक कालका स्वर्ण-युग कहा जाता है, यह कला बहुत उन्नत थी। सम्राट समुद्रगुप्त स्वयं एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ था। उसके प्रयागके शिला-लेखोंमें लिखा है कि 'संगीत-विद्यामें मैं किसीसे भी कम नहीं।' उसकी संगीत-प्रियता इसीसे प्रकट है कि उसके सिक्कों तक में उसका चित्र वीणा हाथमें लिए हुए है। चौदहवीं शताब्दीका पं० सारंगदेव-लिखित 'संगीत-रत्नावर' भी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस ग्रन्थमें एक दर्जनसे भी अधिक राजाओंके नामोंका उल्लेख है, जो सिर्फ़ संगीत-कलाके प्रेमी ही नहीं, वरन् संगीत-शास्त्रके प्रकाण्ड ज्ञाता और पंडित भी थे। इस ग्रन्थमें रागोंका वर्णन है।

आज जिसे हम भारतीय संगीत कहते हैं, वह सर्वथा वही संगीत नहीं है, जिसे हमारे पूर्वज वैदिक तथा पौराणिक कालोंमें गाया करते थे। जिस प्रकार हमारी भाषा तथा अन्य कलाओंपर बाहरसे आनेवाले लोगोंका प्रभाव पड़ा है और हमने उनकी बहुत-सी बातें ग्रहण कर ली हैं, उसी प्रकार हमारा संगीत भी उनकी छापसे न बच सका। हमारे संगीतपर विदेशी संगीतका प्रभाव अवश्य पड़ा; किन्तु उसने अपना वास्तविक रूप कभी नहीं खोया। भारतवर्षपर सदासे उत्तरकी ओरसे ही आक्रमण होते आए हैं। इसीसे इन आक्रमण-कारियोंकी छाप खासकर उत्तर-भारतके संगीतपर पड़ी और वह सदाके लिए अटल हो गई। दक्षिण-भारतपर हमले कम हुए, इसलिए वहाँवाले नवागन्तुकोंके बहुत कम संसर्गमें आए और उनकी कलाओंपर भी विदेशियोंका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इन आक्रमणकारियोंकी कलाओं तथा उत्तर-भारतकी कलाओंके सम्मिश्रणका परिणाम यह हुआ कि वह अमिश्रित दक्षिणी संगीतसे प्रायः भिन्न-सा हो गया। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूपसे दो पद्धतियाँ हो गईं। उत्तर-भारतमें जो संगीत प्रचलित है, वही आजकल हिन्दुस्तानी संगीतके नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिणमें जो पद्धति प्रचलित है, उसे 'कर्नाटकी' कहते हैं।

यह सौभाग्यकी ही बात थी कि जो आक्रमणकारी विजेता भारतीय शासक हुए, वे स्वयं इस कलाके अच्छे ज्ञाता थे। उनके हाथों इसका सर्वनाश न होकर इसे प्रश्रय ही मिला। यह दूसरी बात है कि उन्होंने अपनी रुचिके अनुकूल इस कलाका पोषण किया। पठान-कालमें यमन, हिजाज़ इत्यादि फ़ारसी राग आर्य-पद्धतिके अनुकूल बनाकर अपना लिए गए। मुग़ल-कालमें भी हिन्दुस्तानी संगीतने बहुत उन्नति की। इतिहास-कारोंका कथन है कि मुग़ल-राज्यके प्रथम १०० वर्षोंने भारतीय संगीतके उत्तमोत्तम कलाकारोंको जन्म दिया। पन्द्रहवीं शताब्दीमें सुल्तान हुसेनशाह जौनपुरीने 'ख्याल'की नींव डाली। इसी समयके लगभग बैजू बवराने गुजरातके शासक सुल्तान बहादुरके नामपर 'बहादुरी टोड़ी' बनाई। ग्वालियरके राजा मानतोमर संगीतके गुणी थे। उन्होंने 'छपद-राग'की रचना की। अबुलफ़ज़ल अपनी 'आइन-ए-अक़बरी'में लिखते हैं कि उन्होंने उस समयके गायकों तथा गुणियोंका एक सम्मेलन उस समयके संगीत-सिद्धान्तोंपर विचार करनेके लिए कराया और उसका निर्णय 'रागदर्पण' नामक पुस्तकमें लिखा गया। कहा जाता है कि उसका अनुवाद फ़ारसी-भाषामें भी किया गया, जो आज तक अप्रकाशित रूपमें रामपुर-दरबारमें मौजूद है।

राजा-महाराजाओं और नवाबोंके अतिरिक्त भारतीय भक्त-समुदायका भी हिन्दुस्तानी संगीतके इतिहासमें बहुत ऊँचा स्थान है। जयदेव, सूरदास, नानक, कबीर, मीराबाई, नरसी मेहता, चैतन्य महाप्रभु आदि भक्तोंने संगीतकी बहुत-कुछ उन्नति की। ये लोग इस कलाके पण्डित थे और जो पद और भजन गाते थे, वे सब संगीत-शास्त्रानुसार स्वरबद्ध होते थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि गाँव-गाँवमें संगीतका प्रचार हो गया। अक़बरके समयमें भारतीय संगीत-कला एक बार फिर उन्नतिके शिखरपर पहुँच गई। अक़बर स्वयं संगीत-प्रेमी था और बड़े-बड़े गुणी गायक उसके दरबारमें रहते थे। तानसेन उसके नवरत्नोंमें से एक था। तानसेनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई नये राग बनाए, जिनमें 'मियाँकी मलार', 'मियाँकी टोड़ी' और 'मियाँका सारंग' प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि अक़बरको 'कान्हड़ा' बहुत पसन्द था। एक बार तानसेनने एक नए ढंगका 'कान्हड़ा' बनाया, जिसे अकबरने बहुत पसन्द किया। उसका नाम 'दरबारी' रखा गया। तानसेनके बारेमें यह भी प्रसिद्ध है कि उसके 'दीपक-राग' गानेसे चिराग़ जल उठता था और 'मेघ-राग' से वर्षा होने लगती थी।

अक़बरके बाद जहाँगीर और शाहजहाँके समयमें संगीत-कलाकी उन्नति होती रही; किन्तु औरंगज़ेबने इसे बड़ा धक्का पहुँचाया। अन्य कलाओंकी तरह इसका भी ह्रास होना आरम्भ हो गया। जिस प्रकार मुग़ल-साम्राज्य मुहम्मदशाह पिया-रंगीलेके समयमें छिन्न-भिन्न हो गया, उसी तरह हमारा संगीत भी समयकी गतिका मुक़ाबिला नहीं कर सका। प्रत्येक कलाकी उन्नति सभ्यताकी उन्नतिका चिह्न है और उसका पतन उसकी अवनतिका। इस समय भारतमें शान्तिका अन्त-सा हो चला था और सब कहीं अशान्ति ही नज़र आ रही थी। दिल्लीके सम्राट शान्ति नहीं स्थापित कर सकते थे और न कलाकारोंको ही आश्रय देना उनके लिए सम्भव था। छोटे-छोटे राज्य स्वतन्त्र होने लगे थे। किन्तु यह अराजकता बहुत दिनों तक नहीं रह सकी और न सभ्यताका ही पतन हो सका। फिर देशमें शान्ति स्थापित हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि लखनऊ, पटना, कलकत्ता, बड़ौदा आदि स्थान फिर संगीतके केन्द्र बन गए। लखनऊके वाज़िदअलीशाहके संगीत-प्रेमको कौन नहीं जानता? उन्होंने बहुत-सी ठुमरियाँ बनाईं। 'फूलवाले कन्त मैका लागत वसन्त'—यह उनकी बड़ी प्रसिद्ध रचना है। लखनऊसे मटियाबुर्ज़ जाते समय उन्होंने 'बालम मोरो नैहर छूटो जाय' ठुमरी बनाई थी। उनके समयमें अवधमें संगीतका ख़ूब प्रचार हुआ था।

जयपुर-नरेश महाराज प्रतापसिंहजी भी बड़े संगीत प्रेमी थे। संगीतकी दुर्दशा देखकर उन्होंने सन् १८०० में एक संगीत-सम्मेलन किया था और 'संगीतानुसार' ग्रन्थ तैयार कराया था। किन्तु यह कोई असाधारण रचना नहीं है, बल्कि संस्कृत-ग्रन्थोंका अनुवाद-मात्र है। इससे पता चलता है कि उस समय कोई प्रतिभाशाली संगीताचार्य नहीं था।

सन् १८५७ में समस्त उत्तर-भारतपर अंगरेज़ोंका कब्ज़ा हो गया। नए शासक आए। नई रोशनी आई। नई रहन-सहन तथा सभ्यताका विकास होना आरम्भ हो गया। इस समय संगीतको, जो सदासे सहारेका आदी हो गया था, आश्रय देनेवाला कोई न रहा। नए शासकोंने इसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। सन् १८४२ ई० में 'संगीत-कल्पद्रुम'के रचयिताने चार सौ रागों और लगभग एक लाख गानोंका उल्लेख किया है; किन्तु आज कोई गायक एक सौ रागों तथा एक हज़ार गानोंसे अधिक नहीं बना सकता है। इससे पता चलता है कि इन एक सौ वर्षोंमें संगीतकी जितनी क्षति हुई, उतनी शायद ही कभी हुई हो। इसका कारण हमारे संगीताचार्यों और गायकोंकी बेक़दरी ही है। अब उनको रोटी कमानेकी चिन्ता हुई, और उन्होंने संगीतको अपना पेशा बनाया। जो कलाकार थे, वे पेशेवर हो गए। सुविधानुसार उस्तादोंने अपनी पद्धतियाँ रच लीं। एक ही चीज़को दस गायक दस प्रकारसे गाने लगे। ऐसी अवस्थामें किसी रागके शुद्धाशुद्धका पता लगाना कठिन हो गया।

संगीतकी यह दुर्दशा देखकर उसके जीर्णोद्धारका प्रयत्न आरम्भ हुआ। इस युगको हम उत्तर-भारतके संगीतका आधुनिक युग या वर्त्तमान युग कह सकते हैं। इसी समय कलकत्तेमें राजा सुरेन्द्रमोहन ठाकुरने इसको सुधारनेका सफल प्रयत्न किया। पटनेमें मोहम्मद रज़ाखाँ साहबने संगीतके भिन्न-भिन्न मतोंको एक करनेका बहुत उद्योग किया। सबसे सफल और देशव्यापी प्रयत्न श्री भातखण्डेने किया। उन्होंने मनमानी पद्धतियोंके खिलाफ़ एक ज़बरदस्त आवाज़ उठाई। उन्होंने रागोंको पुनः ठीक करके उन्हें यथोचित स्थान प्रदान किया और लगभग २५० रागोंको क्रमबद्ध किया। उनके प्रयत्नसे बड़ौदा, दिल्ली, बनारस, लखनऊ आदि स्थानोंमें बड़े-बड़े संगीत-सम्मेलन हुए, जिनमें देशके बड़े-बड़े गायकों और संगीत-शास्त्रियोंने भाग लिया। बहुत वाद-विवादके बाद सभी लोगोंने भातखण्डेजीकी पद्धतिको स्वीकार किया। उनको इतनेसे ही सन्तोष नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने जन-साधारणकी संगीत-शिक्षाकी सुविधाके लिए भी प्रयत्न किया। फल-स्वरूप जनतामें एक बार फिर संगीतकी उत्कण्ठा जाग्रत हो उठी। जो संगीत घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था, अब सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाने लगा। जो संगीत उस्तादोंकी पैतृक सम्पत्ति समझा जाता था, वह जन-साधारणका हो गया। बड़ौदा, ग्वालियर, बनारस, प्रयाग, कानपुर, लखनऊ आदि स्थानोंमें उनकी पद्धतिकी पाठशालाएँ चल रही हैं। आशा है, उत्तर-भारतमें जहाँ-तहाँ प्रचलित अन्य पद्धतियोंमें भी शीघ्र ही सामंजस्य स्थापित हो जायगा और संगीत-कला एक बार फिर अपने गत गौरवको प्राप्त करेगी।

५६, गुइन रोड, लखनऊ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोवियत् रूसकी हवाई-सेना पराशूटोंकी सहायतासे उतर रही है।

एक जर्मन मोर्टर, जिसे लाल-सेनाने भागते हुए जर्मनोंसे छीना है।

मध्य-पूर्वमें सशस्त्र मोर्टरके साथ भारतीय सैनिकोंका एक दस्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

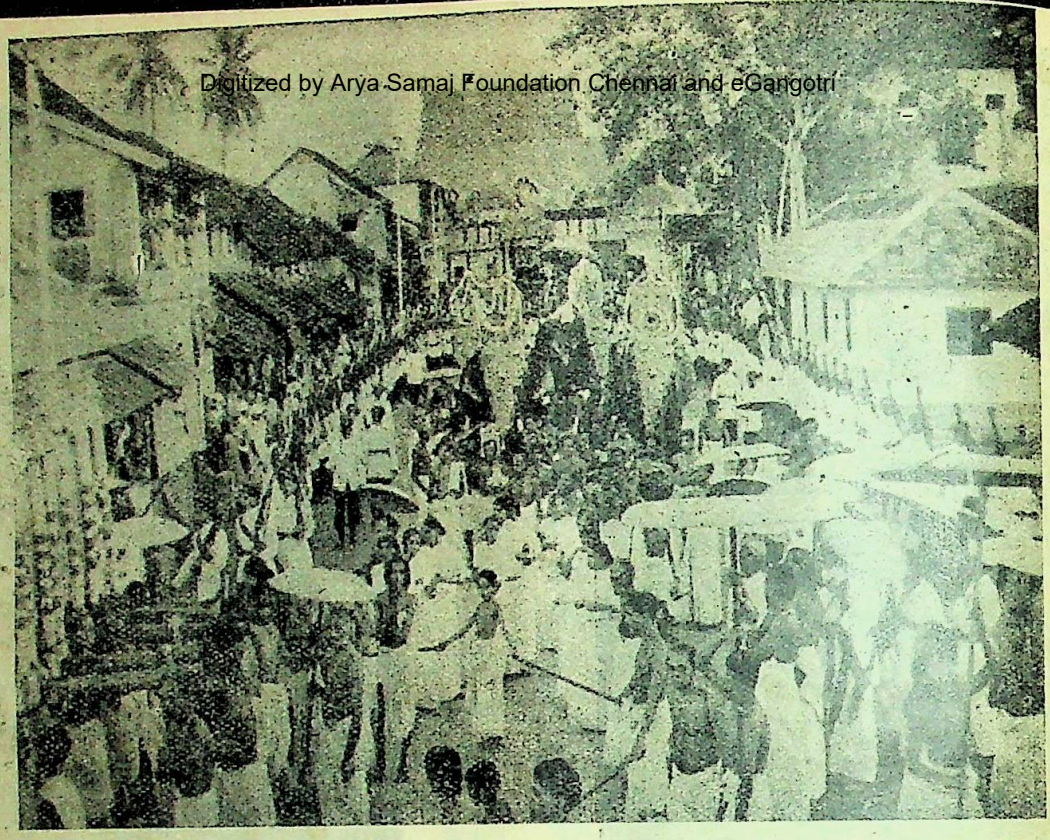

त्रिवेन्द्रमके श्री पद्मनाभ स्वामीके उत्सवमें निकली 'आरात'की सवारीका एक दृश्य। आगे-आगे त्रावणकोरके महाराजा तथा राज्य-परिवारके अन्यान्य सदस्य चल रहे हैं।

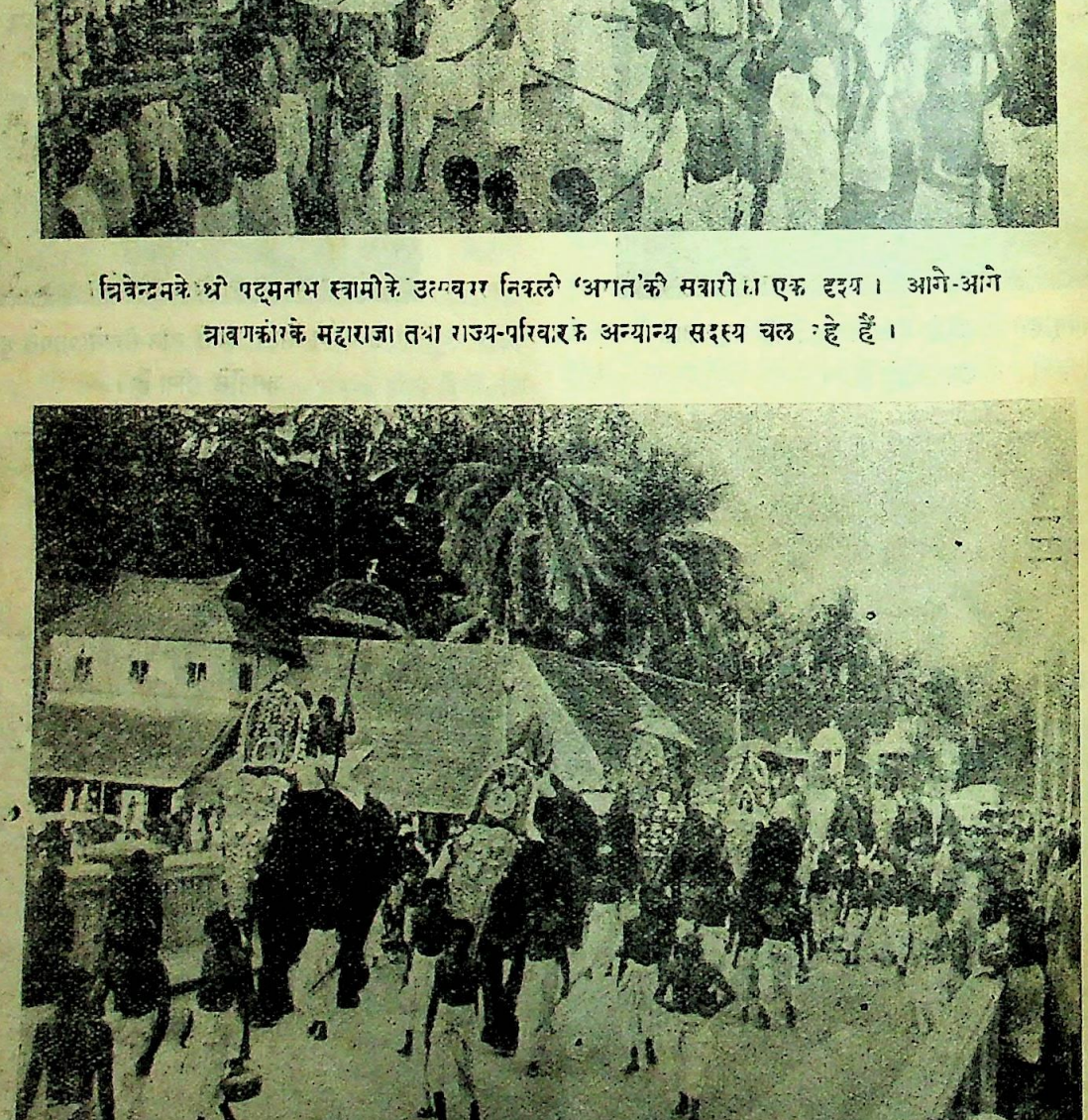

त्रावणकोर-राज्यके हाथियोंपर 'आरात'के जुलूसमें देवताओंकी सवारी निकल रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेविड हरबर्ट लारेन्स

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

आधुनिक अंगरेज़ी-साहित्यमें डी० एच० लारेन्सका कवि और औपन्यासिकके रूपमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान समझा जाता है। लारेन्स-जैसी प्रतिभा सब देशोंके लिए और सब कालमें दुर्लभ है। पुरातन संस्कार-प्रधान इंग्लैण्डमें अनुसन्धानके प्रति गत दो शताब्दियोंके अन्दर इस प्रकारकी रुचि देखी गई या नहीं, इसमें सन्देह है। लारेन्सकी कवि-प्रतिभा यद्यपि असामान्य थी, फिर भी साहित्यानुरागियोंकी दृष्टिमें वे अपने उपन्यासोंके लिए ही विशेष विख्यात हैं। किन्तु लारेन्सके उपन्यासोंके मर्मको हृदयंगम करनेके लिए उनकी कविताओंका अध्ययन करना भी आवश्यक है। एक विशिष्ट समालोचकके मतसे लारेन्सकी कविता उनके उपन्यासोंके गम्भीर तत्त्वको समझनेका सहज उपाय है।

कविके रूपमें लारेन्सको हम वर्ड्सवर्थकी श्रेणीमें रख सकते हैं। वर्ड्सवर्थके समान लारेन्स भी प्रकृतिके उपासक थे, और यही कारण है कि आधुनिक युगमें जन्म ग्रहण करनेपर भी उनका स्थान आधुनिक कवियोंसे भिन्न समझा जाता है। गत महायुद्धके बाद जिन कवियोंने ख्याति प्राप्त की है, उनमें अधिकांशने प्रकृतिकी उपेक्षा करके आधुनिक सभ्यताको ही अपनी कविताका विषय बनाया है। किन्तु लारेन्सने अपने काव्यमें एक भिन्न मार्गका अवलम्बन किया है। उन्होंने प्रकृतिको ही काव्य-रचनाका विषय बनाया है। कविताकी भाववस्तुके लिए वर्ड्सवर्थने अपनी प्रतिभाका उपयोग किया था; किन्तु लारेन्सने सिर्फ़ कविताके प्राणकी ही ओर दृष्टि रखी है और उसकी अन्य दिशाओंपर विशेष ज़ोर नहीं दिया है। उन्होंने केवल प्राकृतिक दृश्योंका ही वर्णन नहीं किया है, बल्कि प्रकृतिका पुंजानुपुंज रूपमें विश्लेषण करनेकी भी चेष्टा की है, प्रकृतिके गुप्त रहस्योंकी बात भी जाननी चाही है और उसे जतलाना चाहा है। इसीलिए उनकी कविताएँ यद्यपि साधारण फूल-फल, जीव-जन्तु, कीट-पतंग आदिको लेकर लिखी गई हैं, फिर भी उन्हें पढ़नेमें आनन्द मिलता है।

सन् १८८५ के सितम्बर महीनेमें लारेन्सका जन्म हुआ था। उनके पिता एक कोयलेकी खानमें मज़दूर थे और माता एक मध्यवित्त गृहस्थ-परिवारकी लड़की थीं। इस प्रकारके दो विभिन्न श्रेणियोंके स्त्री-पुरुषके दाम्पत्य-जीवनमें शान्ति एवं सुव्यवस्थाका अभाव होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इसी अन्तर्विरोधके बीच लारेन्सका जन्म हुआ था, इसलिए स्वभावतः उन्होंने समाजकी प्रचलित रीति-नीतिको संदिग्ध दृष्टिसे देखा। स्कूल और विश्वविद्यालयकी शिक्षा समाप्त करनेके बाद उन्होंने कुछ समय तक शिक्षकका कार्य किया। सन् १९०९ में २४ वर्षकी अवस्थामें 'इंग्लिश रिव्यू' पत्रिकाके सम्पादकके प्रोत्साहनसे उन्होंने कविता लिखना शुरू किया और बादमें उपन्यास-रचनाकी ओर ध्यान दिया। सन् १९११ में उनका पहला उपन्यास 'दि व्हाइट पीकाक' प्रकाशित हुआ। इसके बाद दूसरे सालमें 'दि ट्रेसपासर' और 'सन्स एण्ड लवर्स' प्रकाशित हुए। बादमें उन्होंने शिक्षकका कार्य छोड़ दिया।

इस तीसरे उपन्यासके प्रकाशित होनेके साथ-साथ लारेन्सकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई। सन् १९१४ में लारेन्सने अपनी कविताओंका एक संग्रह 'लव-पोयम्स एण्ड अदर्स' नामसे प्रकाशित किया। जर्मनी, इटली और आस्ट्रिया का भ्रमण करके लौटनेके बाद इसी साल जुलाई महीनेमें उनका विवाह हुआ। अंगरेज़ी-साहित्य-समाजमें लेखकके रूपमें इस समय तक उनकी काफ़ी शोहरत हो चुकी थी। साहित्यिक समाजमें प्रथम श्रेणीके एक लेखकके रूपमें वे परिचित हो चुके थे और साहित्य-रसिकोंमें भी उनका यथेष्ट आदर था। यों तो वे अपनी सफलता या सम्मानकी कुछ भी परवाह नहीं करते थे, फिर भी वे जनताकी सहानुभूति अवश्य चाहते थे। उनका विश्वास था कि साहित्य-साधनाके रूपमें वे जो-कुछ दे रहे हैं, वह एकमात्र लोकोपकारके लिए ही।

इसके बाद यूरोपका महायुद्ध आया। इस युद्धको उन्होंने एक अखिल विश्वव्यापी दुर्घटनाके रूपमें समझा। युद्धके आरम्भ कालमें लारेन्स लन्दनमें ही थे। महायुद्धको उन्होंने किस दृष्टिसे देखा था, इसका वर्णन उन्होंने अपने 'दि रेनबो' नामक उपन्यासमें किया है। यह उपन्यास सरकारकी ओरसे ज़ब्त कर लिया गया और उसे नष्ट करनेका आदेश दिया गया। इस उपन्यासके पृष्ठोंमें स्थान-स्थानपर लारेन्सकी उत्कृष्ट गद्य-शैलीके अनुपम दृष्टान्त पाए जाते हैं। अपनी इस पुस्तककी ज़ब्तीसे उन्हें बड़ी मनोव्यथा हुई, और उन्होंने पाँच वर्ष तक कोई उपन्यास नहीं लिखा। किन्तु इससे उनके विचारमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। इंग्लैण्डमें रहनेको अब उनकी इच्छा नहीं थी; मगर आर्थिक कठिनाईके कारण वे इंग्लैण्ड छोड़कर कहीं जा भी नहीं सकते थे। सन् १९१९ में जब युद्ध समाप्त होनेपर सन्धिकी घोषणा हुई, तो लारेन्स इंग्लैण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर चले गए और १९३० तक, मृत्युकाल-पर्यन्त, इंग्लैण्डमें रहनेकी नीयतसे वापस नहीं लौटे। जीवनके बाक़ी दिन उन्होंने विभिन्न देशोंमें भ्रमण करते हुए व्यतीत कर दिए।

लारेन्स पहले इटली गए। वहाँ रहते हुए उन्होंने दो उपन्यास लिखे—'आरन्स रौड' (१९२२) और 'दि लौस्ट गर्ल' (१९२०)। सन् १९२२ में वे इटलीसे सिंहल और आस्ट्रेलिया होते हुए अमरीका गए। मार्गमें कुछ समयके लिए आस्ट्रेलियामें रह गए और 'कँगारू' (१९२३) तथा 'दि ब्वाय इन दि बुश' (१९२४) नामक उपन्यास लिखे। वहाँसे अमरीका गए, और कुछ समय तक संयुक्त-राष्ट्र अमरीकामें रहे। फिर मेक्सिकोमें जाकर सन् १९२५ तक रहे। बादमें मलेरियाकी बीमारीके कारण उन्हें मेक्सिको छोड़ना पड़ा। इसी बीच उनके निम्न-लिखित उपन्यास प्रकाशित हुए—'सेन्ट माओर' (१९२५), 'दि वोमैन हू रोड अवे' और 'दि प्लुम्ड सर्पेन्ट' (१९२६)। वहाँसे वे इटली आए और फ्लारेन्सके समीप उन्होंने अपना वासस्थान ठीक किया। लारेन्सने अपनी एक चिट्ठीमें लिखा था—"It is all a form of running away from oneself and the great problems : all this wild west and the strange Australia."

सन् १९२८ में जब लारेन्स इटलीमें थे, उनका विख्यात उपन्यास 'लेडी चैटरलेज़ लवर' प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशित होते ही पुलिसने उनके विरुद्ध अश्लील साहित्य प्रकाशित करनेके अभियोगमें मुकदमा चलाया। इस पुस्तकमें यौन-जीवनके सम्बन्धमें उन्होंने बिलकुल नए दृष्टिकोणसे विचार किया है। लारेन्सका मत है कि स्त्री-पुरुषके यौन-जीवनके सम्बन्धमें हमारे मनोभावोंमें पूर्ण परिवर्त्तन होना चाहिए। इस विषयमें स्वभावतः हमारे मनमें एक प्रकारका जो लज्जाबोध होता है, जिससे हम स्त्री-पुरुषके यौन-व्यापारको अश्लील समझकर प्रकट रूपमें उसकी चर्चा नहीं कर सकते, उसे लारेन्स ईश्वरकी निन्दाके समान पाप समझते हैं। उनकी दृष्टिमें यौन-सम्बन्धको अश्लील समझना जीवनके मूल उत्सको ही अस्वीकार करना और उसे अधःपतित करना है। लारेन्सने लिखा है—'मैं चाहता हूँ कि यौन-व्यापारके सम्बन्धमें लोग पूर्णरूपसे सचाई और ईमानदारीके साथ स्पष्टतया सोचें।' लारेन्सके विचारसे यौन-सम्बन्ध जीवनके तेजका मूल उत्स है। इसके साथ पाप और लज्जाकी भावनाको जोड़ना पाखण्डके सिवा और कुछ नहीं है। उन्होंने आधुनिक कालकी इस द्वैत-बुद्धिकी निन्दा की है, जिसमें मन और शरीर तथा मस्तिष्क और रक्त-मांसके बीच एक विभाजक रेखा खींची जाती है। पुरातन कालके इस शुद्धाचारका उन्होंने तीव्र प्रतिवाद किया है, जो देहको मनका क़ैदी बनाकर रखना चाहता है।

प्रेमके सम्बन्धमें लारेन्सने लिखा है—'प्रेमकी शक्तिसे बढ़कर अनुप्राणित करनेवाली क्या और कोई दूसरी शक्ति है?' प्रेमको वे शक्तिशाली रूपमें स्थूल अर्थात् ऐन्द्रिक बनाना चाहते थे ; किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह पाशविक और कामुक बन जाय। आज प्रेमको आध्यात्मिक और बौद्धिक रंगमें रँगनेकी जो प्रवृत्ति देखी जाती है, उसकी उन्होंने व्यंग्यपूर्ण अवज्ञा की है। लारेन्सके इस मतको लेकर कुछ समालोचकोंने उनके विरुद्ध यह अभियोग लगाया है कि वे मनुष्यको आदिम युगकी अधम पाशविकताकी ओर ले जाना चाहते हैं। किन्तु ऐसा समझना लारेन्सके प्रति अन्याय करना है। वे तो मनुष्यकी आदिम शक्तिकी पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। प्रेमके सम्बन्धमें उन्होंने अन्यत्र लिखा है—'प्रेमकी चर्चा करनेकी अपेक्षा प्रेम करना और प्रेम प्राप्त करना कठिन है।' एक स्थानपर नारीके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है—'परम पिता परमात्मा जो दुर्बोध्य और अज्ञेय है, उसे भी हम नारीके रक्त-मांसमें ही जानते हैं।'

लारेन्सके उपन्यासोंकी एक विशेषता है नर और नारीमें द्वन्द्व। किन्तु यह द्वन्द्व विशेषकर इस बातको लेकर चलता है कि आधुनिक युगकी सभ्य नारी मूलतः पुरुषके प्रति शत्रु-भाव धारण करनेवाली बन गई है। वह पुरुषकी जो सबसे बड़ी सम्पत्ति—उसका मनुष्यत्व, उसका पौरुष—है, उसका शोषण कर लेती है और कुछ समयके अनन्तर पुरुषको स्त्रैण बनाकर उसे पूर्णरूपसे अपनी इच्छाके अधीन कर लेती है। अपने 'आरन्स रौड' उपन्यासमें स्त्रियोंके सम्बन्धमें एक पुरुष पात्रके मुँहसे उन्होंने कहलवाया है—'I hate her when she knows, and when she wills. I hate her when she will make of me that which serves her desire. She may love me. She may be soft and kind to me. She may give her life to me. But why? Only because I am hers.' लारेन्सके इस उपन्यास तथा अन्य पुस्तकोंमें नारीके प्रति इस प्रकारके विरुद्ध मनोभाव कई स्थलों पर पाए जाते हैं।

वर्त्तमान सभ्यताके विरुद्ध भी लारेन्सने अत्यन्त तीव्र मनोभाव प्रकट किया है। वे चाहते हैं कि वर्त्तमान सभ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा एवं बुद्धिका जो अहंकार करता है, उस कृत्रिम जीवनका परित्याग करके वह अपनी स्वभावसिद्ध प्रकृतिको मान ले। अपने उपन्यासोंमें उन्होंने बार-बार इस बातका उल्लेख किया है कि हमारी भौतिक और यान्त्रिक सभ्यता अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी है, और जिन शक्तियोंको इसने अब तक दबा कर रखा है, उन्हींके द्वारा इसका विध्वंस होने जा रहा है। अतीतमें हमने जो निष्ठुरता, लोभ और मूर्खता की है तथा जान-बूझकर जिन बुराइयोंकी सृष्टि की है, उन्हींके परिणाम इस समय हमारे सामने उपस्थित हो रहे हैं। हमारी आशाओं, हमारे उद्देश्यों और हमारी कलाके लिए भविष्य अन्धकारपूर्ण है। 'मानव-जाति प्राणहीन होकर मृत्युको प्राप्त हो रही है। उसकी दशा एक ऐसे उखड़े हुए बृहत् वृक्षके समान हो रही है, जिसकी जड़ शून्यमें हो। मनुष्यको एक बार फिर पृथिवीके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना होगा।'

लारेन्सका स्वास्थ्य एक तो पहलेसे ही अच्छा नहीं था, इसपर पुलिस द्वारा मुकदमा चलाया जाना तथा दूसरी विपत्तियोंमें पड़ना उनके गिरे स्वास्थ्यके लिए और भी खतरनाक साबित हुआ। आखिर २ मार्च, १९३० को उनकी मृत्यु हो गई। वे अपने अन्तिम काल तक साहित्य-साधनामें संलग्न रहे। सन् १९३० में उनका 'दि वरजिन एण्ड दि जिप्सी' और मृत्युके बाद सन् १९३१ में 'दि मैन हू डाइड' नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। इसके बाद उनकी शेष कवितावली 'लास्ट पोयम्स'के नामसे सन् १९३२ में प्रकाशित हुई। लारेन्स कविके रूपमें साहित्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे और उनका अन्तिम दान भी कविताके रूपमें ही हुआ।

युद्धके बाद लारेन्सके जो उपन्यास प्रकाशित हुए थे, उनको पढ़नेसे ऐसा लगता है कि साहित्य-सम्बन्धी अपने प्राचीन संस्कारोंको वे भूल-से गए हैं। इन सब पुस्तकोंमें आवेगका अभाव नहीं है, भावुकताकी मात्रा भी पाई जाती है; किन्तु तर्ककी बहुलताने आख्यान भागको दबा दिया है। फिर भी उनकी शैलीकी निपुणता एवं कवि-प्रतिभाके कारण ये सब उपन्यास पाठकोंके लिए अपाठ्य नहीं कहे जा सकते। किन्तु उनके अन्तिम दो उपन्यास—'दि वरजिन एण्ड दि जिप्सी' और 'दि मैन हू डाइड'के सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। इन उपन्यासोंको पढ़नेसे ऐसा प्रतीत होता है कि लारेन्सकी रस-सृष्टिकी शक्ति अणु-मात्र भी क्षुण्ण नहीं हुई है। मृत्युके सन्निकट होनेपर उनकी प्राथमिक प्रतिभा इन पुस्तकोंके पृष्ठ-पृष्ठमें अमृताक्षरोंमें फूट-सी पड़ी है। प्रथम उपन्यासमें एक परिमार्जित कुमारीका इतिहास है, जो आधुनिक सभ्य-शिष्ट-जीवनके चापमें पड़कर अपने व्यक्तित्वको खो चुकी थी। मुक्तिका पथ उसके सामने उद्घाटित होनेपर भी सामाजिक कुसंस्कारोंके कारण वह सामाजिक बन्धन-रूपी कारागारसे अपनेको मुक्त करनेमें असमर्थ थी। आखिर प्रकृतिदेवीने संहार-मूर्त्ति धारण करके उसके कारागारके द्वारको उन्मुक्त कर दिया और एक जिप्सीके बाहुपाशमें अपनेको सौंपकर उसने देहको परम सत्यके रूपमें ग्रहण किया।

दूसरे उपन्यासके नायक स्वयं क्राइस्ट हैं। क्राइस्ट यदि रक्त-मांसके शरीरको सहज ही मान लेते, तो सचमुच वे हम लोगोंके लिए स्वर्ग-सोपानकी रचना करते; किन्तु रक्त-मांसके अस्तित्वको न मानकर उन्होंने हम लोगोंके लिए नरकके मार्गको परिष्कृत कर दिया है। उपन्यासकी आख्यायिकामें क्राइस्ट केवल पुनरुज्जीवित होकर ही इस संसारमें नहीं लौटे हैं, बल्कि अपने चलाए हुए धर्मकी भ्रान्तिके सम्बन्धमें भी पूर्ण सचेतन होकर लौटे हैं। किन्तु जब तक जगत्के परित्राणका सुयोग नष्ट हो चुका था। उनके सामने कोई आशा-भरोसा नहीं रह गया था। इसलिए वे मिस्र चले गए, जहाँ मनुष्य-देहके प्रति असम्मान नहीं दिखता। यहीं कुमारीके शरीर-स्पर्शसे वे उर्व्वरताके देवता बन गए। अपने इन दो छोटे उपन्यासोंमें भी लारेन्सने अपने पूर्वोक्त मतका ही प्रतिपादन किया है—अर्थात् जीवनमें रक्त-मांसको अस्वीकार करके जीवन धारण करना विडम्बना-मात्र है। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सिर्फ़ प्रचारकी दृष्टिसे ही ये पुस्तकें लिखी गई हैं। दोनोंके कथानक उद्देश्यमूलक रूपक होनेपर भी इतने मर्मस्पर्शी हैं, इनका रचना-कौशल इतना निपुण है और चरित्र-चित्रण इतना सजीव एवं वास्तविक हुआ है कि प्रचार-प्रवृत्ति कहीं भी कलाको क्षुण्ण नहीं कर सकी है। पुस्तकोंमें कहीं एक भी पंक्ति ऐसी नहीं मिलेगी, जिसमें उपदेश देनेकी या अपने मतमें लानेकी प्रवृत्ति हो। प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द मानो आवेदन कर रहा हो। कथाका प्रांजल प्रवाह तर्ककके आलोड़नमें पड़कर अणु-मात्र भी आविल नहीं हुआ है।

आधुनिक युगमें जन्म ग्रहण करनेपर भी लारेन्स यूरोपके प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते। बुद्धि एवं तर्ककके ऊपर लारेन्सकी श्रद्धा बिलकुल नहीं थी। उनका बराबर यह विश्वास रहा कि परीक्षा एवं प्रयोग द्वारा सत्यका सन्धान नहीं मिल सकता। इसके लिए एकमात्र उपाय स्वान्तःकरणकी स्वतः स्फूर्त्त प्रेरणा ही है। अपने जीवनकी शोकपूर्ण दुर्गति देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही लारेन्स इस सिद्धान्तपर पहुँचे थे कि मानवीय सम्बन्धका मूलाधार देह ही है। सभ्यता-वृद्धिके साथ-साथ देहके अस्तित्वको भूलकर मनुष्यने संसारको दुःखपूर्ण और दुर्नीतिमय बना दिया है। इस प्रकारके विश्वासको धारण करके लारेन्सने यदि अध्यात्म-प्रधान ईसाई धर्म और अध्यात्म-बली अवतारी पुरुष ईसाका प्रत्याख्यान किया है, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। आधुनिक मनोविज्ञानकी सत्यतामें जिनका विश्वास है, वे अवश्य लारेन्सके इस मतवादका समर्थन करेंगे।

लारेन्सने जगत्को जीवन्त और शक्तिपुंजके रूपमें अनुभूत किया था। उनकी रचनाओंमें शक्तिका स्रोत उमड़ता हुआ-सा प्रतीत होता है। लारेन्सने जो-कुछ लिखा है, वह सब प्रकम्पनकारी शक्ति और प्रचण्ड तेजसे ओत-प्रोत है। उन्होंने एक ऐसे जगत्का स्वप्न देखा था, जिसमें मनुष्यने ऐसे समाजकी सृष्टि की है, जो समाज पृथिवीके प्राणोंमें अपने प्राणोंको मिलाकर अपना अस्तित्व बनाए हुए है। लारेन्सके प्रशंसकोंकी संख्या जहाँ अधिक है, वहाँ उनके विरोधी समालोचक भी कम नहीं हैं। एक समालोचकने तो लिखा है कि लारेन्सकी कविताओंमें और सब-कुछ है, सिर्फ़ कविता नहीं है। किन्तु उन्होंने अपनी कविताओंमें एक नूतन आध्यात्मिकताका जो सन्देश दिया है। वर्त्तमान कालके साहित्यमें अवश्य उनका स्थान है और भविष्यमें भी रहेगा। वर्त्तमान यूरोप लारेन्सके विचारोंकी अपेक्षा उनकी रचनाओंके कलालित्यपर ही विशेष मुग्ध है। उनके अर्थ-गौरवकी मर्यादाको एकमात्र मिडिलटन मेरीने ही समझा है। लारेन्स-जैसी प्रतिभा आज दुर्लभ है। उनकी मृत्युसे केवल इंग्लैण्डने ही नहीं, बल्कि समग्र साहित्यिक जगत्ने एक असामान्य प्रतिभाशाली साहित्यिकको खो दिया।

मिथिला-कालेज, दरभंगा]

कनीज़

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

आक़ाकी आँखें भक्से जल उठीं। वह ऐसी भीषण प्रकृतिका आदमी है, इसका परिचय कनीज़को अब तक न था। उसकी तलवारकी धार-सी खूनी दृष्टिसे ही मानो कनीज़के शरीरमें काँटे उठ आए। कलेजा मुँहको आ गया। वह लड़खड़ाकर गिरने ही वाली थी कि अपनेको सँभाल लिया। धीरे-धीरे बाबर्चीखानेकी ओर दबे पाँव बढ़ी। लालटेन जल रही थी। उसकी बत्ती ज़रा कम कर दी और कटे पेड़की तरह धम्मसे पीढ़ेपर गिर पड़ी और किसी खयालमें ग़र्क़ हो गई।

खट्-खट्-खट् आक़ाके आनेकी आहट उसके कानोंमें पड़ी। कहीं वह...। कनीज़ धीरेसे उठी। दस्तरखान फैला दिया और अनमनी-सी खाना चुनने लगी। आक़ा आ गया। कनीज़की बेबस आँखें तनिक ऊपर उठीं। ओफ़, वही जलती आँखें! वही तीर-सी खून-आलूदा नज़रें! धुँधली रोशनीमें कनीज़की ओर देखते हुए आक़ाने कहा—'एँ, तुम इस अँधेरेमें यह क्या कर रही हो?' और ताकपर रखी टिमटिमाती लालटेनकी बत्ती बढ़ा दी। कनीज़ने झट दुपट्टेको सँभाला और उसे मुँह तक खींच लिया।

'ओ, तुम खाना चुन रही हो! लेकिन मैं...मैं ज़रा जल्दीमें हूँ। अभी खाना नहीं खा सकूँगा। मैं तो यह कहने आया था, वरना...।'

'वरना, तुम चले जाते, क्यों न?'—भर्राई हुई आवाज़में कनीज़ने ज़रा नज़र ऊपर उठाते हुए पूछा। उसकी नम नज़र आक़ाकी आग उगलती नज़रोंपर कुछ देरके लिए टँक-सी गई जैसे लाल काँटोंकी नोकपर शबनमके क़तरे।

'अरे नहीं। लेकिन हाँ, देर बिल्कुल नहीं लगेगी, मैं अभी वापस आया।'—कह वह जल्दीसे मुड़ा ही चाहता था कि कनीज़ने उसकी आँखोंमें आँखें डालकर एक अजीब बेबसीसे आवाज़में पूछा—'क्या वाक़ई तुम जा रहे हो?'

'हाँ प्यारी, मैं जा रहा हूँ।...एँ, तुम इस तरह मेरी तरफ़ क्यों देखती हो? ओः, शायद तुम परेशान हो रही हो कि तुम्हारा आक़ा कहीं...! लेकिन ऐसा...ऐसा नहीं होनेका मुझे कोई खतरा नहीं।'—आक़ाने मज़बूत लहज़ेमें जवाब दिया।

कनीज़को जैसे कुछ बल मिला। वह उठ खड़ी हुई। प्यारसे लबरेज़ आरज़ूके लफ़्ज़ोंमें हसरत-भरी निगाहोंसे आक़ाको देखते हुए बोली—'मेरे आक़ा, मेरे प्यारे आक़ा, तुम तो ऐसे नहीं थे। तुम्हारा दिल कैसे इस कामपर राज़ी हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथोंकी उँगलियोंको उलझाए, यह बात पूछते-पूछते उसके शरीरका ऊपरी हिस्सा कुछ झुक-सा गया। आँखोंसे टप्-टप् आँसू गिरने लगे।

आक़ाकी आँखोंकी लाली जैसे पल-भरको धुल गई। कनीज़को अपने कन्धेके सहारे सँभाल, एक हाथकी हथेली उसके सिरपर रख और दूसरेकी उँगलियोंसे उसकी ठुड्डी उठाकर आक़ाने उसकी नम पलकोंको चूम लिया। फिर उसके बालोंमें एक नाज़ुक अन्दाज़से अपनी उँगलियोंको उलझाते, एक हल्की-सी मुस्कानके साथ उसके मुँहपर नज़र गड़ाए, 'औरतका दिल' कह उसने कनीज़को ज़रा ज़ोरसे गुदगुदा दिया। कनीज़के दिलका सोज़ जैसे साज़में बदल गया। शबनमसे धुली पंखुड़ियोंकी तरह जैसे उसकी पलकोंपर तबस्सुम मुस्कराने लगी। मुहब्बतके जोशमें वह आक़ासे लिपट गई। कुछ क्षण बाद धीरेसे सिर उठा आक़ाको मुहब्बत-भरी नज़रसे देखते हुए रुँधे गलेसे बोली—'मैं जानती थी, मेरा आक़ा कभी भी ऐसा काम नहीं कर सकता, मेरा प्यारा आक़ा।' और दूसरे ही क्षण एक लम्बी साँस दिलका सारा ग़ुबार लिए बाहर निकल आई। कनीज़ फिर आक़ासे लिपट गई। उसकी नाज़ुक उँगलियाँ आक़ाकी पीठपर धीरे-धीरे थिरकने लगीं।

'लेकिन नज्जम, क्या तुम नहीं जानतीं, यह सब मैं किसके लिए कर रहा हूँ? दुनिया जानती है, तुम मेरी कनीज़ हो; लेकिन मैं तो तुम्हें अपने दिलकी मल्का समझता हूँ। लेकिन मेरी बदबख़्ती कि दुनियाकी आँखोंमें मैं तुम्हें मल्का नहीं बना सका। आज खुदाने यह मौक़ा मानो मेरा ही हौसला पूरा करनेके लिए भेजा है। आज मेरे अरमान हज़ार क़दमोंसे दौड़ रहे हैं, नज्जम! अब मैं तुम्हें मल्का बनाऊँगा—अपने दिलकी और हरदोजहाँकी मल्का!' कहते-कहते आक़ाने दोनों हाथोंसे कनीज़के बाज़ुओंको पकड़कर ज़ोरसे झकझोर दिया।

कनीज़ मानो किसी मीठे ख्वाबसे जग पड़ी हो, ऐसे चौंक गई। अकचकाकर उसने देखा, आक़ाकी आँखें फिर वही ख़ूनसे डूबी हुई हैं। 'नहीं, नहीं, नहीं आक़ा!' वह ज़ोरसे अपने प्राणोंका ज़ोर लगा सिरको झकझोरते हुए चिल्ला उठी—'मैं तुम्हारे दिलकी मल्का बनकर ही खुश हूँ। मैं दुनियाकी मल्का नहीं बनना चाहती। मुझे कुछ नहीं चाहिए, आक़ा...कुछ भी नहीं...तुम...बस...तुम!'

'चुप',—कनीज़के मुँहपर हाथ रखते हुए मुँह बनाकर आक़ा बोल उठा—'तुम कुछ नहीं चाहतीं?' मगर तुम्हारे चाहने-न-चाहनेसे होता क्या है? मैं तो चाहता हूँ, और कोई ताक़त मुझे इस कामसे रोक नहीं सकती। तुम चुपचाप घरमें बैठो।' कनीज़को पीछेकी ओर धकेलते हुए आक़ा तेज़ीसे खट्-खट् करता हुआ बाहर हो गया। कनीज़ धम्मसे ज़मीनपर गिर पड़ी। उसकी आँखें मुर्देकी सफ़ेद आँखोंकी तरह एकटक आक़ाकी ओर देखती रह गईं।

अचानक शून्यपर काले-काले बादल घिर आए। कड़ककर बिजली कौंध उठी, खंजरकी धारकी तरह बादलोंका कलेजा चीरती हुई और चमक उठीं कनीज़की निस्तेज आँखें बैठे दिलकी तड़पसे। 'उफ़्' कनीज़का दर्द-भरा दिल फट पड़ा! 'चला गया...ग़द्दार!' दाँत पीसते हुए कनीज़ उठी। खूँटीपर हत्यारेकी आँखकी तरह टँगा खंजर चमक रहा था। कनीज़का मज़बूत हाथ उसपर पड़ा। उसकी तेज़ चमकती धारको ग़ुरेरते हुए एक बार वह पागलकी तरह अट्टहास कर उठी। सारी फ़िज़ा काँप उठी!

- २ -

हब्शका शहंशाह अभी-अभी अपने जासूसोंसे रुखसत हो दस्तरखानपर बैठा है। हाथ रोटी तोड़नेमें लगा है, आँखें एकटक कहीं दूर कुछ देख रही हैं और दिल व दिमाग़ जैसे किसी ख़यालमें ग़र्क़ है। हाथ मशीनकी तरह धीरे-धीरे उठ लुक़मा मुँह तक पहुँचा देता है और मुँह उसी तरह उसे अन-जाने ही चबाने लगता है। दिमाग़में एक अजीब-सा बवंडर उठ रहा है—मेरे खिलाफ़ मुल्कमें क्यों सोरिश फैलती जा रही? और यह सफ़ेद जासूस कौन है, जिसकी ख़बरें बराबर पहुँच रही हैं, जिसने सारे मुल्कमें मुखालिफ़तकी एक आग-सी लगा दी है। कहीं वह अतालियाका जासूस तो नहीं...?

'हज़रत, एक ग़ुलाम यह रुक़्क़ा आपकी ख़िदमतमें पेश करनेकी इल्तिजा कर रहा है। कहता है, बहुत ज़रूरी है।'—रुक़्क़ा शहंशाहके सामने बढ़ाते हुए ग़ुलाम एक ही साँसमें कह गया।

शहंशाहके ख़यालका रव टूट गया। 'बहुत ज़रूरी है', कहते हुए उसने रुक़्क़ा झट उसके हाथसे ले लिया और जूठे हाथ ही उठ, चिराग़के नज़दीक जा, उसे पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—'मेरे अज़ीज़ दोस्त, तुम्हें यह जानकर बेहद रंज और तअज्जुब होगा कि मेरी हालत एक-ब-एक बड़ी नाज़ुक हो गई है। मुमकिन है, अब मैं चन्द लहमोंमें ही इस दुनियासे कूच कर जाऊँ। तुमसे इस बिस्तरे-मर्गपर एक ज़रूरी बात कहनी है। तुम जल्दी आओ। फ़क़त। तुम्हारा,...।'

शहंशाहको सचमुच इस रुक़्क़ेसे तअज्जुब हुआ, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका दोस्त कल तक तो बिल्कुल तन्दुरुस्त था। उसने हैरत-अंगेज़ आँखोंसे ग़ुलामको देखते हुए कहा—'उसे यहाँ बुलाओ।' और फिर दस्तरख़ानपर बैठकर दरवाज़ेकी ओर देखने लगा।

ग़ुलामने वापस आकर कहा—'हज़रत, वह चला गया है। ग़ुलामसे कह गया है कि उसके आक़ा सख्त अलील हैं, लिहाज़ा उसे बहुत जल्दी है। इसलिए वह जा रहा है।'

शहंशाहके मुँहपर जैसे एक हल्के स्याह बादलका टुकड़ा छा गया। बोला—'आक़ा बहुत अलील हैं। अच्छा, हाथ धुलवाओ। देखो, मैं एक बहुत ज़रूरी कामसे ज़रा बाहर जा रहा हूँ। अभी वापस आ जाऊँगा, किसीको कुछ खबर न हो, समझे।'

'हज़रत, मैं भी···।'

'नहीं, नहीं, तुम्हारे चलनेका अभी वक्त नहीं है। मेरी बातोंका खयाल रखना। मैं अभी आया।' और शहंशाह चोर-दरवाज़ेसे लम्बे-लम्बे क़दम भरता हुआ बाहर निकल गया।

चारों ओर घटाटोप अन्धकार छाया हुआ था। हवा सांय-सांय करती एक ओरसे आ दूसरी ओर भाग रही थी। शहंशाहकी रफ़्तार क्रमशः तेज़ होने लगी। अन्धकारमें उसके मनकी परेशानी मानो और भी बढ़ती जा रही थी। सारा शरीर पसीने-पसीने हो रहा था। एक उँगलीसे ललाटका पसीना पोंछते हुए शहंशाह मानो उन परेशानियोंसे काँप उठा—'उफ़्, क्या आफ़त है! आफ़तपर आफ़त···मुल्कमें बदअमनी···और एक अज़ीज़ दोस्त, जिससे इस बुरे वक्तमें कितनी ही उम्मीदें वाबस्ता थीं, बिस्तरे-मर्गपर···उफ़्···!'

इसी वक्त अचानक अँधेरेमें एक शख्स नमूदार हुआ, जिसके बलन्द हाथमें खंजर झल-झल कर रहा था। शहंशाहकी आँखोंके सामने जैसे अँधेरा छा गया। पैर-तलेकी ज़मीन खिसकने लगी। उसने चीखकर पीछे हटना चाहा, लेकिन पैर जैसे ज़मीनसे चिपक गए हों और कोई जैसे गला घोंट रहा हो। उसे सक्ता-सा लग गया। क़रीब था कि खंजर शहंशाहके सीनेमें पैवस्त हो जाय, मगर फ़ौरन ही पीछेसे एक और खंजर चमका और मुजरिमके सीनेमें उतर गया। शहंशाह हैबतज़दा खड़ाका खड़ा रहा, जैसे उसकी समझमें कुछ न आया हो। इसी समय एक मीठी-सी आवाज़ उसके कानोंमें पड़ी। जैसे किसीने उसके मुँहपर ठंडे पानीके छींटे दे उसे होशमें ला दिया हो। वह अकचकाकर आवाज़की ओर मुड़ा। आवाज़ कह रही थी—'आला हज़रत, मुतमय्यन रहिए। मैं मुल्ककी एक अदना कनीज़ नजीमुल्निसाँ हूँ। आज मैंने अपने सबसे प्यारे आक़ाको क़त्लकर उसकी रूहको मुल्ककी ग़द्दारीसे बचाया है। हज़रत सलामत रहें, मुल्कके लिए आपकी जानकी क़ीमत मेरे प्यारे आक़ासे कहीं बढ़कर है। मुझे अब सिर्फ़ एक काम और करना है, फिर अपने आक़ाके लिए अपना फ़र्ज़ अदा करूँगी। हाँ, इस अदना कनीज़की आपसे एक छोटी-सी इल्तिजा यह है कि आप इस लाशको अच्छी तरह दफ़ना दें। यह लाश भी मुझे अपने आक़ासे कम प्यारी नहीं।'

आवाज़ चारों ओर गूँजकर एकाएक बन्द हो गई। शहंशाह आवाज़की ओर दौड़ा, मगर बेसूद।

- ३ -

हब्शके शहंशाह यासूका बाप पहले मुसलमान था, फिर ईसाई बन गया। खुद शहंशाह ईसाई था और जानता था कि हब्शकी हुकूमतको मसीही रहना चाहिए। लेकिन वह अपनी क़ुव्वत बढ़ानेके लिए हब्शके मज़लूम मुसलमानोंके साथ इन्साफ़ करना चाहता था, ताकि वे भी उसके जाँनिसार बन जायँ। चुनाँचे उसने मुसलमानोंको रियायतें देनी शुरू कीं। जब वह मुसलमानोंकी किसी आबादीमें पहुँचता, तो दरयाफ़्त करता कि वहाँ कोई मस्जिद है या नहीं। अगर मस्जिद न होती, तो अपने खर्चसे बनवा देता। मुसलमानोंसे उसकी यही हमदर्दी थी, जिसे दुश्मनोंने उसके खिलाफ़ आधार बनाया।

जब यूरोपका पिछला महायुद्ध शुरू हुआ और शहंशाहने तुर्की और जर्मनीकी ओर अपनी रुझान ज़ाहिर की, तो इत्तेहादी सल्तनतोंने, जिनमें अतालिया भी था, किसी तरह हब्शमें अपने जासूस भेज दिए। इन सबका सरदार एक सफ़ेद जासूस था। इन जासूसोंने तमाम मुल्कमें यह अफ़वाह उड़ा दी कि शहंशाह मुसलमान हो गया है। इन्होंने शहंशाहकी लाखों ऐसी तस्वीरें, जिनमें वह किसी मस्जिदकी नींव डालता हुआ या किसी मुसलमान सरदारके यहाँ दावत खाता हुआ दिखाया गया था, सारे मुल्कमें तक़सीम कीं। परन्तु शहंशाह हरदिल अज़ीज़ था। इतनी आसानीसे उसकी रियायाको भड़काना नामुमकिन था। इसलिए यह साज़िश की गई कि खुफ़िया तौरपर किसी न किसी तरह इस क़ाफ़िर शहंशाहको हलाल कर डालें। किसी ही ईसाइयोंको धन और सबाबका लालच दिला इस कामके लिए भेजा गया; मगर कोई नतीजा नहीं निकला। जो भी तरकीब वे काममें लाते, एक खुफ़िया हाथ उसे तोड़ डालता। शहंशाहको ऐनवक्त साज़िशका पता चल जाता और वह बाल-बाल बच जाता। आखिर इन तरकीबोंमें नाक़ायब हो सफ़ेद जासूसने यह काम अपने हाथमें लिया।

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रोज़ रातके वक्त शहंशाहकी फ़ौज सल्तनतके एक खित्तेमें बलवेको दबा एक जंगलमें डेरा डाले पड़ी थी। सिपाही अपनी मौजमें क़हक़हे लगा रहे थे; पर शहंशाह बहुत फ़िक्रमन्द था। वह एक ऊँचे घने दरख़्तके सायेमें अपनी फ़िक्रोंमें डूबा बैठा था। ख़यालके ही रवमें उसे नजीमुल्निसाँ याद आई, जिसने बार-बार उसकी जान बचाई थी, मगर जो कभी भी उसे दिखाई नहीं दी थी। वह आरज़ू करने लगा कि काश वह मिलती, तो पाक मुहब्बतसे उसकी पेशानीको बोसा देता और उसके एहसानोंका शुक्रिया अदा करता। फिर उसने आसमानकी तरफ़ नज़र उठाई। एक बड़ा सितारा चमक रहा था। वह उखड़ी हुई आवाज़में कहने लगा—'नजीमुल्निसाँ, ए हब्शके मुबारक सितारे, हमेशा यों ही तुम्हारी चमक बाक़ी रहे!'

इसी समय अचानक अँधेरेमें एक शोर सुनाई दिया—'नजीमुल्निसाँ तेरी मौत आ गई।' फिर फ़ौरन दो फ़ैर सुनाई दिए। एक लाश ज़मीनपर गिरी और साथ ही एक हल्की-सी चीखसे सारा जंगल गूँज उठा! फ़ौजमें खलबली मच गई। सबने अपनी-अपनी पिस्तौलें निकाल लीं और हादिसेकी ओर लपके। सितारोंकी धीमी रोशनीमें शहंशाहकी नज़र लाशपर पड़ी और वह कलेजा थामकर वहींका वहीं बैठ गया। कुछ सिपाही लाशको सँभालने लगे। चोट शदीद थी। कुछ लोग दुश्मनका सिर तलाश करने जंगलमें घुस गए।

शहंशाहने नज्जमका सिर अपनी गोदमें रख लिया और आँसू-भरी हसरतकी निगाहोंसे उसे देखते हुए काँपती आवाज़में कहने लगा—'ओह, नजीमुल्निसाँ क्या तू ही है! तूने मुझे शुक्रिया अदा करनेका भी मौक़ा नहीं दिया!' टप्-टप् आँसूकी कुछ बूँदें उसकी पेशानीपर चू पड़ीं। नजीमुल्निसाँने आँखें खोल दीं और सिर कुछ ऊँचाकर शहंशाहके मुँहपर नज़रें डालीं। उसके मुँहसे निकला—'ओफ़, शहंशाह!' और उसकी आँखें बन्द हो गईं। एक सन्तोषकी साँस शहंशाहके मुँहपर होती हुई उड़ गई!

'नज्जम! नज्जम!' शहंशाह अधीर हो उसकी ठुड्डीको ऊपर उठाते हुए पुकारने लगा। इसी समय दूर जंगलमें से गोली छूटनेकी आवाज़ आई। कनीज़की आँखें एक बार फिर खुल गईं। दम तोड़ते हुए उसने कहा—'आला हज़रत, अब मैं बड़े चैनसे मर सकूँगी। अब मेरा काम खत्म हो गया। जिस सफ़ेदपोश जासूसने मेरे प्यारे आक़ाको गुमराह किया, सारे मुल्कको आपके खिलाफ़ भड़कानेकी कोशिश की, आज उस शैतानकी मौतकी ख़बर सुन मैं ख़ुशी-ख़ुशी अपने प्यारे आक़ाकी गोदमें जा रही हूँ। आप मेरी लाशको भी आक़ाकी बग़लमें ही सुला दें। यही मेरी आखिरी इल्तिजा है।'

सिपाही एक लाशको घसीटते हुए शोर मचाते आ पहुँचे। कनीज़के कानोंने उनकी आवाज़ सुनी। उसकी आँखें एक बार उधर मुड़ीं और मुड़ीकी मुड़ी ही रह गईं। एक अजीब-सा नूर उसके चेहरेपर छा गया। आसमानके तारे उसे हसद-भरी नज़रोंसे देख रहे थे।

इलैक्ट्रिसिटी-हाउस, कानपुर]

माया-गृह

श्री ब्रह्मदेव शास्त्री

सुरहरके पार अरण्या नामक एक वनस्थली थी, जिसमें शबरोंकी एक छोटी-सी बस्ती थी। ये शबर पासके जंगलोंमें शिकारकर अपनी जीविका चलाते। शबर-बालक सुबह-शाम और दोपहरीमें सुरहरके पहाड़ी झरनेके किनारे मौजसे खेला करते। कभी-कभी बाँसुरी बजाते हुए वे माया-गृह तक पहुँच जाते और वहाँसे भिक्षा ले आते। माया-गृह सुरहरके किनारे एक सुन्दर गाँव था, जिसमें दो-एक प्रासाद और कई बौद्ध मन्दिर तथा विहार थे।

एक दिन झरनेके किनारे बैठा एक शबर-बालक माया-गृहकी ओर बड़े ग़ौरसे देख रहा था। कभी-कभी वायुके झोंकोंके साथ बहकर आती हुई संगीत-लहरी उसे सुनाई पड़ जाती थी। वह मुग्ध मृगकी तरह उठा और संगीतकी दिशामें आगे बढ़ा। उसके केश हवामें उड़ रहे थे, उसकी भोली-भाली आँखें मृगकी-सी थीं और उसके हृदयमें एक उत्कण्ठा थी। आगे जानेपर वह कोमल-ज्योति जलमें अपनी छाया देखता हुआ नदीमें उतरा। संध्याके गुलाबी प्रकाशमें वह एक नील कमल-सा लग रहा था। धीरे-धीरे पार होकर वह दूसरे तटके सघन वृक्षोंमें लुप्त हो गया। अब संगीत कुछ स्पष्ट रूपसे सुनाई पड़ने लगा। आगे एक कुटीर था, जिसके सामनेमें एक तरुण योगी और एक अर्द्ध-वयस्का संन्यासिनी उसे दीख पड़े। तरुण वीणापर गा रहा था। उसके गानकी समाप्तिपर संन्यासिनी उसकी संगीत-कलाके लिए शाबासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती हुई बोली—'आदित्य, इस बार माया-गृहमें जो संगीत-गोष्ठी होगी, वह तुम्हारी कलाकी दिव्यतासे अपूर्व होगी। सुना है, इस बार प्राणचक्राके स्थविर श्री विकच तथा पद्मगन्धा और पराश्री भी माया-गृहके उत्सवमें आयँगे। भगवान बुद्धके धर्म-प्रवर्त्तनके उत्सवपर तुम्हारा यहाँ आना हम लोगोंके सौभाग्यसे ही हुआ है।'

आदित्य धीरेसे उठा और बोला—'देवि, इस समय आज्ञा दें, तो मैं चलूँ, पुनः दर्शन करूँगा। उस पेड़के नीचे जो शबर-बालक बैठा है, वह मेरा परिचित-सा जान पड़ता है। उससे मिलनेका लोभ हो रहा है।'

'आदित्य तुम्हें बचपनमें यह झरना बड़ा प्यारा था। तुम्हारे पिताका कुटीर अरण्यामें ही था। वह देखो, दूरपर एक टीला अभी भी दीख रहा है। अभी यहाँ और कुछ दिन ठहरोगे न? पाटलिपुत्र जानेका निश्चय अभी स्थगित रखना। अच्छा जाओ।'—यह कहते हुए वयस्काने अपनी आँखें फैलाकर उस पारके एक निराले पेड़की ओर जमा दीं। आदित्य उसकी ओर बिना देखे ही शबर-बालककी ओर चल दिया।

× × ×

'इस टीलेके नीचे जो पत्थर दबे पड़े हैं, उन्हें निकालो, भिन्द! मुझे अपना बचपन याद आ रहा है। १५ वर्ष हुए जब हम और तुम बहुत छोटे थे, पासके उस हस्ती-आकारके शिलाखण्डपर बैठकर सारी अरण्या और धारावेणीके दृश्य देखा करते थे। मनमें आता है, इस निर्जन किनारेपर पूज्य पिताकी शान्ति-साधनाकी जगह एक कुटीर बनाऊँ और अपना यह जीवन तुम गरीबोंकी सेवामें बिता दूँ। मैं अब पाटलिपुत्र नहीं जाऊँगा। भिन्द, कल तुम यहीं मिलोगे न? मैं आज संगीत-गोष्ठीमें जा रहा हूँ। मालूम पड़ता है, महास्थविर विकच आ गए। जयघोष सुनाई पड़ रहा है।'

भिन्द, टीलेपर बैठा रहा। आदित्यने उसे साथ लेनेकी बात सोची ज़रूर; किन्तु वैसा न कर सका, क्योंकि वह शबर-बालक होनेके कारण सभ्य समाजमें स्थान नहीं पा सकता था। आदित्य ऐसी हालतमें दुःखी होता।

× × ×

माया-गृहमें सुरहरके तटपर उत्सवका विराट आयोजन था। सहस्रों नर-नारी उपस्थित थे। पद्मगन्धाके वीणा-वादनपर जनता मुग्ध हो उठी। संगीतकी मूर्च्छनामें उसकी आँखोंकी घनी काली पुतलियाँ धीरे-धीरे छिपने लगीं। श्रोता-समूहपर एक अज्ञात लोककी निद्रा छा गई। पुनः स्वरारोहपर सबोंने करतल-ध्वनि की। इसके बाद एक तरुण योगीने अपना गायन प्रारम्भ किया। सबोंकी दृष्टि उसकी ओर खिंच गई। वह तरुण आदित्य था। उसकी स्मृतिमें अरण्याका एक कुटीर था, पश्चात् उसके टीलेपर बाँसुरी बजाता हुआ शबर-बालक भिन्दका चित्र और उसके बाद लक्ष्यहीन संयमका धुँधला दृश्य। उसके हृदयका एक अज्ञात विधुर-भाव उसके कण्ठसे गान बनकर स्फुट हो रहा था। पद्मगन्धाकी आँखें न-जाने क्यों गीली होने लगीं। पराश्री अपने शैशवके बादका अन्धकार टटोलने लगी। एक कोनेमें बैठी एक संन्यासिनी स्थविर विकचकी ओर देख रही थी। उसके नेत्रोंमें अश्रुकी दो बूँदें निकलकर धीरे-धीरे बड़ी होने लगीं।

गान समाप्त हो गया। जनता शान्तिमय रही। महास्थविर विकचकी वाणी सुननेके लिए सभी बैठे रहे; किन्तु पद्मगन्धा वहाँसे न-जाने क्यों चली गई। उसका भवन माया-गृहके बीच एक सुन्दर टीलेपर था। वह अपने ऊपरके प्रकोष्ठमें खड़ी होकर चारों ओरकी पहाड़ियोंकी ओर देखने लगी। दूरपर प्रत्येक चोटीके उच्चतम एवं निर्जनतम भागपर एक संगीतमग्न योगी बैठा हुआ दिखाई दिया। वह अनन्त आकाशमें अपनेको कल्पितकर एक शून्य स्वरमें बोली—'आदित्य!'

× × ×

आदित्यका कुटीर बन गया। पद्मगन्धा अपने सौधपर बैठी-बैठी उसी ओर देखा करती है। हवाकी प्रत्येक लहरमें उसे आदित्यका गान सुन पड़ता है। वह हृदयसे उसको उसके कुटीरके आसपास मँडराया करती है।

आदित्य दिन-दिन उदास होता गया। उसके संयममें एक आँधी आनेवाली है, उसे ऐसा ज्ञात हुआ। पाटलिपुत्रका पवित्र जीवन उसे याद आया। बुद्धगयाके संघारामें जाकर वह प्रव्रज्या लेगा, ऐसा निश्चयकर वह एक दिन रोते हुए भिन्दको गले लगा चल दिया।

उसी दिन संध्या-कालमें जब पद्मगन्धाकी वीणाकी तन्त्रि-रागिनी तार टूट जानेसे विकृत हो गई, तो वह नीचे उतरी। उसके उद्यानके सरोवरमें अब एक भी हँसता हुआ कमल न था। वायुके उदासीन स्रोतमें अपने संगीतका पीछा करती हुई वह आदित्यके कुटीरपर आई। वहाँ भिन्द बाँसुरी बजा रहा था; पर आदित्य न था!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोपीय राजनीति-दर्शनके आदर्शवादी विचारक

श्री शैलेन्द्र

अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें यूरोपके राजनीति-दर्शनमें उपयोगितावाद-स्कूलकी प्रधानता थी। इसके तीन बड़े विचारक—जेरेमी बेंटम, जेम्स मिल, जे० एस० मिल—अंगरेज़ थे। पर इस विचारधाराकी सीमा इंग्लैण्ड तक ही न थी। इस स्कूलके विचारक यूरोपमें भी थे। जिन परिस्थितियोंने उपयोगितावाद और व्यक्तिवादको पनपाया, वे इंग्लैण्डमें ही खास तौरसे न थीं, कुछ कम-अधिक समस्त यूरोपमें भी थीं। जे० एस० मिलके बाद उपयोगितावादी स्कूलमें कोई बड़ा विचारक नहीं हुआ। ग्रोटे, आस्टिन, मालें आदि इस विचारधाराके उत्तरकालीन समर्थक थे; पर इन्होंने अपने पूर्ववर्ती उपयोगितावादी दार्शनिकोंका ही अनुसरण किया। उपयोगितावादी विचारधाराका प्राधान्य इस कालमें ज़रूर था; पर और भी विचारधाराएँ चल रही थीं। उसमें दो खास हैं—विज्ञानवादी और आदर्शवादी। विज्ञानवादी स्कूलके प्रसिद्ध विचारक कामटे, स्पेंसर, हक्सले आदि और आदर्शवादी स्कूलके कांट, हीगल, ग्रीन, बोज़ान्कुए आदि हुए। इन्हींके विचारोंका संक्षिप्त परिचय इस लेखमें कराया जायगा।

आदर्शवादी धाराके विचारक अपनेको रूसोसे प्रभावित बतलाते हैं। वे कहते हैं कि उनकी विचारधारा रूसोके विचारोंको आगे बढ़ाती है। रूसोका देहान्त १७७८ ई० में हुआ। जैसा कि सर हैनरी मैनका कहना है, रूसो फ्रेंच, जर्मन और रूसी साहित्योंपर अपनी अमर छाप छोड़ गए हैं। रूसोकी महत्ता और विचित्रता यह है कि उनकी विचारधाराका प्रभाव आदर्शवादी और समाजवादी दोनों स्कूलोंके विचारक स्वीकार करते हैं। इसका कारण यह है कि रूसो राजनीति-शास्त्रके कवि थे, एक महान राजनीतिक दार्शनिक थे; पर राजनीति-शास्त्रके वैज्ञानिक दार्शनिक नहीं। उन्होंने बड़ी प्रभावपूर्ण बातें कही हैं। इसीलिए उनके कुछ विचारोंका प्रभाव आदर्शवादी मानते हैं और कुछका समाजवादी भी। आदर्शवादी दार्शनिकोंपर रूसोका तो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा ही, साथ ही उनपर प्राचीन यूनानकी आदर्शवादी विचारधाराका भी काफ़ी प्रभाव पड़ा। प्लेटो, अरस्तू और अन्य कई यूनानी दार्शनिक अपने समाज-सम्बन्धी विचारोंमें समाजको ही आधार मानकर चलते थे, न कि व्यक्तिको। एक यूनानीके लिए जीवन प्रधानतः सामाजिक था। यूनानके छोटे-छोटे नगर-राष्ट्रोंमें सामाजिकताकी भावना बड़ी प्रबल थी। इसलिए वहाँके दार्शनिक समाजका सामूहिक चित्र लेकर चलते थे। उस चित्रमें राजनीतिक संस्थाओंका भी समावेश होता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं, यूरोपमें आदर्शवादी स्कूलका प्रारम्भ प्राचीन यूनानसे हुआ, उसका विस्तार रूसोने किया और उसको महत्त्व तथा सम्बद्धता कांट, हीगल आदिने दी।

इमैनुअल कांट (१७२४-१८०४ ई०) एक अध्यात्म और नैतिकवादी विचारक थे। उनकी प्रधान पुस्तक 'दि क्रिटिक आफ़ प्योर रीज़न' (शुद्ध तर्ककी समीक्षा) है। आरम्भसे कांटकी विचारधारापर रूसोका प्रभाव प्रत्यक्ष है। कांटके अनुसार प्रकृतिसे मनुष्य स्वतन्त्र और समान है। पर प्राकृतिक अवस्थामें सुरक्षा नहीं, अतः सब आदमी इकट्ठे होते हैं, एक समझौता करते हैं और अपने प्राकृतिक अधिकारोंको एक सामान्य सामूहिक सुरक्षाके सुपुर्द करते हैं। दूसरे शब्दोंमें 'व्यक्ति अपने प्राकृतिक अधिकारोंको समाजमें निहित कर देता है।' कांटमें व्यक्तिवादका कुछ अंश तो है ही, जो उनको हीगल, बोज़ान्कुए आदि आदर्शवादी स्कूलके अन्य विचारकोंसे पृथक करता है।

कांटके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनेमें साध्य है। वह दूसरोंके साध्यका साधन-मात्र नहीं है। एक व्यक्तिका हित उतना ही चिंत्य है, जितना दूसरोंका। प्राचीन यूनानमें दासता-प्रथा थी। दास स्वामीके हित थे, साधन थे; पर स्वामी दासके हितके साधन नहीं थे। मध्य-युगमें तरह-तरहके सामन्त-सरदार थे और उनके नीचे ज़मीनसे बँधे हुए मज़दूर-किसान। वे केवल अपने मालिकोंके स्वार्थकी पूर्त्तिके ज़रिए-भर थे। यह यूनानी जनतन्त्रकी एक बहुत बड़ी कमी थी। कहनेके लिए तो प्रत्येक व्यक्ति अपनेमें साध्य अवश्य है; पर उसको समूहमें रहना पड़ता है। इसलिए उसे स्वेच्छासे अपने पर कुछ सीमाएँ लादनी पड़ती हैं। व्यक्ति प्रत्येक वस्तुपर अधिकार नहीं कर सकता, हर काम नहीं कर सकता; इसलिए उसे अपने अधिकार और कार्य सीमित करने पड़ते हैं। सामाजिक जीवन पारस्परिक सीमाओं—क़ानूनों—की अपेक्षा रखता है। इसलिए हरएक क़ानूनके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह ज़बरदस्ती है। क़ानून सीमा-निर्धारण है और सीमा-निर्धारण सामाजिक हितकी आवश्यकता है।

इस प्रकार कांटने व्यक्ति और समाजका समन्वय किया है। व्यक्ति जिस निर्बाध स्वतन्त्रताका प्राकृतिक अवस्थामें उपभोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था, वह उसने पूर्ण स्वतन्त्रता उपभोग करनेके लिए अपनी इच्छासे सामाजिक समूहको दे दी। देखनेमें निर्बाध स्वतन्त्रता पूर्ण स्वतन्त्रता ही लगती है ; पर वास्तवमें निर्बाध स्वतन्त्रता-जैसी कोई स्वतन्त्रता कहीं भी नहीं है। वह तो निरी अराजकता है। निर्बाध स्वतन्त्रता भी यथार्थमें निर्बाध नहीं होती। उसकी भी सीमाएँ होती हैं। निर्बाध स्वतन्त्रतामें व्यक्ति अपना विकास नहीं कर सकता, मनुष्य अपनी तात्विक आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं कर सकता। उदाहरणके लिए हरएक आदमीको इमारत बनानेकी निर्बाध स्वतन्त्रता है। तब एक आदमी ऐसा मकान भी बनवा सकता है, जो दूसरोंके मकानोंकी रोशनी कम करे या हवा रोके। इसलिए अगर मकान अच्छे, रोशनीवाले और हवादार बनाने हैं, तो उनके बनानेके कुछ सामान्य नियम भी होने चाहिएँ। इन नियमोंको हमने सामाजिक अनुशासन एवं प्रबन्धके लिए आवश्यक माना है। इस प्रकार वास्तविक स्वतन्त्रताका अर्थ है एक वस्तुका इस प्रकार उपभोग करना कि दूसरे भी उस वस्तुका उसी प्रकार उपभोग कर सकें। मनुष्यका स्वभाव तत्त्वतः सामाजिक है। इसलिए सामाजिक नियम तत्त्वतः आवश्यक हैं। सामाजिक नियम समाज और राष्ट्रका व्यक्त रूप हैं। अतः व्यक्तिके अधिकारोंकी प्रकृति सामाजिक है, यानी उनका उपभोग समाजमें ही हो सकता है, और समाजकी वजहसे ही उनका अस्तित्व है।

हीगल (१७७०-१८३१ ई०) आदर्शवादी स्कूलके सबसे महान विचारक हुए हैं। उन्होंने यह माना है कि उनकी विचारधारापर दो बातोंका बड़ा असर पड़ा—(१) प्राचीन यूनानी दर्शन और (२) फ्रांसकी राज्यक्रान्ति। जिन दिनों हीगल अपनी प्रसिद्ध पुस्तकें लिख रहे थे, नेपोलियन विजय-पराजयके चक्रमें से गुज़र रहा था। हीगलपर नेपोलियनके राजनीतिक जीवनका बड़ा असर पड़ा। नेपोलियनकी शक्तिका ह्रास क्यों हुआ, इस सम्बन्धमें हीगलका कहना है कि १८१२ ई० तक नेपोलियन उस पार्टीका नेता था, जो निरंकुश शासनके विरुद्ध लड़ रही थी ; पर १८१२ ई० के बाद नेपोलियन उस शासनका संचालक हो गया, जो दूसरे राष्ट्रोंसे उनकी स्वतन्त्रता छीननेके लिए लड़ रहा था। नेपोलियनको आरम्भमें रूस और प्रुशियामें विजय इसलिए मिली कि उन देशोंमें ऐसे राजाओंके शासन थे, जो स्वेच्छाचारी तथा अत्याचारी थे और जनताका शासन-संचालनमें कोई हाथ न था।

हीगलके अनुसार प्रत्येक प्राणीमें जीवन-शक्ति होती है। वह जीवन-शक्ति अभिव्यक्ति खोजती है। उसके द्वारा प्राणी अपनेको व्यक्त-विकसित करता है। यह उस प्राणीकी प्रकृति कही जा सकती है। इस प्रकार प्राणी अपनी प्रकृतिको जीवन-शक्ति द्वारा प्राप्त करता है। उन्नति—अभिव्यक्ति और विकास—आत्म-प्राप्तिका आवश्यक तात्विक अंग है। पौधेको यदि खाद्य न दिया जाय अथवा अपर्याप्त खाद्य दिया जाय, तो उसकी आत्म-प्राप्ति समाप्ति-पूर्णता तक नहीं पहुँच पाती। एक छोटा जानवर है। वह अपने विकास और उन्नतिके लिए कुछ पर-वरिश और कुछ रक्षा चाहता है। तब वह बढ़ता और अपनेको पाता है। जैसा कि अरस्तूने कहा है—'किसी वस्तुकी पूर्ण प्रकृति उस वस्तुकी पूर्णतामें मिलती है।' मानव-प्राणीको आत्म-प्राप्तिके लिए उसका विकास और उन्नति आवश्यक है। बच्चा चिल्ला-भर सकता है, उसमें भाषणकी शक्ति निहित है ; पर उस शक्तिका प्रकाश संगतिकी अपेक्षा रखता है, नहीं तो वह कभी अच्छी तरह नहीं बोल सकेगा।

मनुष्यकी रचना इस तरहकी है कि वह अपनी उन्नति समाजमें ही कर सकता है। मानव-प्रकृति और मानव-व्यक्तित्व विकास समाजमें ही सम्भव है। मनकी समस्त शक्तियोंका—सश्लेषण, विश्लेषण, निरीक्षण, प्रयोग, सहानुभूति, स्नेह आदिका—विकास समाजमें ही सम्भव है। इन शक्तियोंका अभिव्यक्ति-विकास ही गणितीय भाषामें समाजका संचलन (Function) है। समाज पूर्ण, अपूर्ण, कम पूर्ण, कम अपूर्ण, अच्छा, बुरा—इस तरहका हो सकता है। इसीके अनुसार उसकी उन्नति भी होगी—पूर्ण, अपूर्ण, कम पूर्ण, कम अपूर्ण आदि उन्नतिकी प्रक्रिया रचनात्मकताका तत्त्व हैं। रचनात्मकतासे मतलब है मानव-व्यक्तित्वका परिस्थितिपर प्रभाव। रचनात्मकता सामंजस्य-स्थापक यान्त्रिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक सजीव प्रक्रिया है। मानव-व्यक्तित्व परिस्थितियोंसे निष्क्रिय रूपमें उन्नतिकी ओर नहीं बढ़ता। वह परिस्थितियोंसे सक्रिय सामंजस्य स्थापित करता है। आदमी और जानवरमें यही बड़ा फ़र्क़ है। जानवर सामग्रीको जिस रूपमें पाता है, उसी रूपके उपभोग तक सीमित नहीं रहता। वह गेहूँको पीसकर खानेके लिए रोटियाँ बनाता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि विकासोन्मुख मानव परिस्थितियोंमें संशोधन और उनका निर्माण भी करता है। मानव-व्यक्तित्व परिस्थितियोंको अपनी आवश्यकताके अनुकूल बनाता है।

हीगलने एक सवाल उठाया है—आखिर मानवकी आत्म-प्राप्तिके लिए स्वतन्त्रता होनेमें रहस्य क्या है? इस सवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाबमें उनपर रूसोका असर पड़ा है। रूसोने कहा था—'सामाजिक समझौतेके अनुसार व्यक्तिने अपनी अन्तःशक्ति समाजकी सामान्य इच्छाके प्रभुत्वपूर्ण निर्देशको सौंप दी।' रूसोने सामान्य इच्छाके दो भेद किए हैं—उच्च और निम्न। सामान्य इच्छा व्यक्तिकी स्वहितकारी चंचल इच्छासे पृथक् है। सब समाजकी इच्छा भी सामान्य इच्छा नहीं है, अगर वह सामाजिक हितकी भावनासे प्रेरित न हो। रूसोकी विचारधाराको अपनाते हुए हीगलने कहा है कि व्यक्तित्वकी सम्पूर्णता उच्च 'स्व' की सम्पूर्णता है। 'स्व' की सम्पूर्णता व्यक्तिका समाजसे पृथक्करण नहीं, बल्कि एकीकरण है। उच्च 'स्व'की सम्पूर्णताका अर्थ है समाजमें स्थापित संस्थासे एकता। समाजका तात्विक संगठन राष्ट्र है। इसलिए जिस स्वतन्त्रताका अर्थ है उच्च 'स्व' की सम्पूर्णताकी प्राप्ति, वह राष्ट्रसे एकरूपता होनेमें है। राष्ट्रकी अभिव्यक्ति नियम हैं, इसलिए नियमोंसे एकाकार—यानी नियम-पालन—स्वतन्त्रता है। इसलिए राष्ट्रका आज्ञापालन स्वतन्त्रता है और उसका आज्ञोल्लंघन परतन्त्रता।

यहाँ हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हीगल वर्त्तमान राष्ट्र और वर्त्तमान नियमोंपर विचार नहीं कर रहे हैं। वे आदर्श राष्ट्रका ही विचार कर रहे हैं। पर आदर्श राष्ट्र हैं कहाँ? वे तो 'केवल उदाहरण'के राष्ट्रका विचार कर रहे हैं। वे हमें याद दिलाते हैं कि किसी वस्तुका वास्तविक स्वरूप उसकी पूर्णतामें है। राष्ट्रका वास्तविक स्वरूप राष्ट्रकी पूर्णतामें है। इसलिए आत्म-प्राप्ति आदर्श राष्ट्रके आदर्श व्यवस्थापकों द्वारा अमल कराए जानेवाले आदर्श नियमोंके पालनमें है। ऐसे आदर्श राष्ट्रमें दण्ड पाना भी मनुष्यकी आत्म-प्राप्तिका ही एक सोपान है।

हीगलके अनुसार राष्ट्र एकप्राणीय व्यक्तित्व है। राष्ट्र व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका मूर्त्तिकरण अथवा अभिव्यक्तिकरण है। राष्ट्र सत्य है, महान है, निस्वार्थ है। वह व्यक्तिके सुन्दर अंशका बाह्यकरण है; सामान्य इच्छाकी अभिव्यक्ति है। राष्ट्रका व्यक्तित्व है। राष्ट्र आत्म-चेतनशील है। वह आत्म-ज्ञानी और आत्म-प्राप्तिशील व्यक्तित्व है। वह जो-कुछ करता है, उसमें उच्च 'स्व'का प्रतिनिधित्व है। वह नागरिकोंकी सामाजिक नैतिकताका प्रतिनिधि है। काफ़ी हेर-फेरके बाद हीगलने स्वीकार किया है कि राष्ट्र स्थिर नहीं है। अभी राष्ट्र पूर्ण, आदर्श, सत्य नहीं है। राष्ट्र अभी गतिशील एवं विकासोन्मुख अवस्थामें है। डार्विन और वैलेसके भी पहले विकासवादका संकेत करना हीगलकी दार्शनिक प्रतिभाका ही परिचायक है।

हीगलने अरस्तूके आकारवादी निगमन (Syllogism) की बड़ी आलोचना की है। अरस्तूके तर्कशास्त्रका एक नियम है 'तादात्म्यका सिद्धान्त'। हीगल कहते हैं कि 'क' 'क' है, इस नियमसे हमारा 'क' के बारेमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता। तर्कशास्त्रकी यह प्रणाली वस्तुओं—पदार्थ—को स्थितिशील मानकर चलती है। यह मान्यता ग़लत है। वस्तु बदलती है, उन्नति करती है। मनुष्य-समाज भी परिवर्त्तनशील है। एक विशेष समाजमें संस्थाओं, नियमों, व्यवहारों, परम्पराओं और क़ानूनोंका विशेष चक्र होता है। इसे हम 'सत्' (Thesis) कह सकते हैं। इसी 'सत्' के अन्तर्गत 'विसत्' (Anti-thesis) होता है। उस विशेष चक्रमें कुछ ऐसे विचार होते हैं, जो 'सत्' से मेल नहीं खाते। इन्हें 'विसत्' कहते हैं। 'सत्' और 'विसत्' के संघर्षसे 'सद्विसद' (Synthesis) प्रकट होता है। फिर यह 'सद्विसद' एक विशेष चक्रके 'सत्' और 'विसत्'का संघर्ष-स्वरूप विकसित रूप—एक दूसरा विशेष चक्र—बन जाता है, जिसके अन्दर 'विसत्' छिपा रहता है। 'सद्विसद' के 'सत्' और 'विसत्' का संघर्ष चलता रहता है और दूसरा 'सद्विसद' विकास-रूप धारण करता है। सृष्टिके विकासका यह क्रम है। इसे 'हीगलका गतिशास्त्र' कहते हैं।

प्राचीन कालमें नगर-राष्ट्र थे। उनमें स्वतन्त्र नागरिक रहते थे। यह है उस चक्रका 'सत्'-रूप! उसमें एक बहुत बड़ी संख्या दासोंकी थी। यह है उस चक्रका 'विसत्'-रूप। फिर 'सत्'-'विसत्'के संघर्षसे देश-राष्ट्र आए। प्रुशन (जर्मन) राजतन्त्र इस विकासकी अन्तिम मंज़िल है। इसलिए प्रुशन नियमोंका पालन करना स्वतन्त्रता है। राजनीतिक जीवनके विश्वव्यापी विकासको प्रुशन राजतन्त्र तक लाकर समाप्त मान लेना हीगलके राजनीतिक दर्शनकी एक महानतम न्यूनता है। मालूम होता है, यहाँ आकर हीगलकी राजभक्तिने उनकी ज़बानपर ताला लगा दिया!

इंग्लैण्डमें १८ वीं सदीके उत्तरार्द्ध और १९ वीं सदीके पूर्वार्द्धमें उपयोगितावाद और व्यक्तिवादकी विचारधारा प्रबल थी, क्योंकि पूँजीवादकी विकासशील अवस्थामें यह विचारधारा अनुकूल बैठती थी। पर १९ वीं सदीके उत्तरार्द्धमें पूँजीवादकी विकासशील अवस्था समाप्तप्राय हो चुकी थी। इसलिए इस विचारधाराका प्राधान्य क्षीण होने लगा और आदर्शवादी, समाजवादी और विज्ञानवादी विचारकोंका उदय हुआ। अंगरेज़ी आदर्शवादी विचारकोंपर विशेष प्रभाव तो हीगल और कांटका पड़ा; पर परोक्ष प्रभाव रूसो और प्लेटोका भी पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगरेज़ आदर्शवादी विचारकोंमें ग्रीन और बोज़ान्कुए मुख्य हैं।

टी० एच० ग्रीन (१८३६-१८८२ ई०) आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालयमें अध्यापक थे। राजनीतिक मामलोंमें व्यावहारिक दिलचस्पी लेते थे। इनके विचार 'राजनीतिक कर्त्तव्य' विषयपर दिए गए भाषणोंमें मिलते हैं। स्वतन्त्रता क्या है? स्वतन्त्रताका अन्तराय क्या है? आमतौरसे इस शब्दका अर्थ समझा जाता है बन्धनका अभाव। एक स्वतन्त्र चिड़िया वह है, जो आकाशमें स्वच्छन्द उड़ती फिरती है। पिंजरेमें बन्द चिड़िया परतन्त्र है। स्वतन्त्र आदमी वह है, जो जहाँ चाहे घूमे-फिरे। परतन्त्र आदमी वह है, जो स्वेच्छानुसार स्वतन्त्र न हो। राजनीतिक दर्शनमें स्वतन्त्रताका यह साधारण अर्थ नहीं लिया जाता। राजनीतिक दर्शनमें स्वतन्त्रताके दो पहलू हैं—निषेधात्मक और प्रस्तुतात्मक। निषेधात्मक पहलू है बन्धनोंका अभाव और प्रस्तुतात्मक पहलू है विकासका अवसर। हीगलने प्रुशन राजतन्त्रको राष्ट्रके विकासका अन्तिम सोपान कहा था। ग्रीनने इसको इस तरह घुमा-फिरा दिया है कि पार्लमेंटको राष्ट्रके विकासकी अन्तिम अवस्था माना जाय, क्योंकि इंग्लैण्डमें राजतन्त्र नहीं, पार्लमेंटका शासन है।

हीगलके अनुसार नियम-पालन स्वतन्त्रता है। हीगलके शब्दोंमें स्वतन्त्रताकी प्रत्यक्ष प्राप्ति नियम-पालन है। पर ग्रीन एक सावधान लेखक हैं। वे यह तो मानते हैं कि बन्धनका अभाव-मात्र स्वतन्त्रता नहीं है; पर यह नहीं कहते कि स्वतन्त्रता नियम-पालन है। ग्रीनका राजनीतिक दर्शन अध्यात्म और मनोविज्ञानसे जुड़ा हुआ है। उनका दृष्टिकोण अध्यात्मवादी है। वे कहते हैं—चिर-आत्म-चेतनको ही ईश्वरीय आत्म-चेतन कहते हैं। मनुष्य अपनी चेतनामें शिवमूका स्वरूप प्राप्त करता है। शिवमूके स्वरूपके बारेमें यह समझ लेना चाहिए कि मनुष्य समाजमें ही रहता है, रह सकता है; इसलिए शिवमूका स्वरूप सामाजिक शिवम्—सामाजिक हित—से अलग नहीं। मानव-चेतना, कम-से-कम मानव-चेतनाका भव्य अंश, पूर्ण शिवमूकी प्राप्तिका ही प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दोंमें मानव-चेतनाकी प्रगति नित्य-चेतनाकी ओर रहती है। पर दुर्भाग्यसे मनुष्यमें वासनाएँ हैं। वे मनुष्यको नीचे गिराती हैं। इस प्रकार मनुष्यमें उच्च 'स्व' और निम्न 'स्व'का द्वन्द्व चलता है; पर उच्च 'स्व' का सम्बन्ध, उसका उद्गम, नित्य-चेतनासे होनेके कारण वह सदैव अपनेको बनाए रखता है। इसलिए जब तक मनुष्य पूर्ण शिवमूकी ओर बढ़नेको प्रयत्नशील रहता है, वह स्वतन्त्र है, क्योंकि वह वस्तुतः आत्म-प्राप्ति करता होता है।

मनुष्य अपनी वासनाओंसे भिन्न है। कभी वह ईर्ष्याकी भावनासे आक्रान्त हो जाता है, कभी प्रतिशोधकी भावनाके वशीभूत हो जाता है। पर जब वह प्रकृतिस्थ होता है, तो अपनी ईर्ष्या, प्रतिशोध आदिके लिए शोक प्रकट करता है। इसलिए मानवका व्यक्तित्व वासनामूलक प्रेरणाओंसे विभिन्न है। इसका एक और प्रमाण भाषा है। हम कहते हैं—'मैंने अपने क्रोधपर विजय पा ली है'; 'वह लालचके फन्देमें आ गया।' इन कथनोंसे ज़ाहिर है कि 'मैं' और 'वह' क्रमशः 'क्रोध' और 'लालच'से जुदा हैं। इसलिए मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भी यह कहना ग़लत नहीं है कि वास्तविक स्वतन्त्रता चरित्रके ऐसे विकासमें है, जिसका नित्य-चेतनासे सामंजस्य हो। संत पालने कहा था—'मैं अन्तरस्थ पापोंसे लड़ रहा हूँ।' पापसे हराना आज़ादी है। स्वतन्त्रताका सार देवपुत्रत्व है, यानी ईश्वरके पुत्र—ईसा—की तरह आचरण करना।

मनुष्यने संस्थाओंकी रचना की है। उनका क्या ध्येय है और क्या ध्येय होना चाहिए? संस्थाओंका ध्येय होता चाहे कुछ भी हो; पर होना चाहिए वैयक्तिक चेतनाको उच्चतम बननेके प्रयत्नमें सहायता करना। इस प्रकार राष्ट्र, जो एक मानव संस्था है, का ध्येय नैतिक है। राष्ट्र एक प्राकृतिक उपज है। समझौता-स्कूलके दार्शनिक—हाब्स, लौक और रूसो आदि—कहते हैं कि समझौतेका फल राष्ट्रकी रचना होना है। इस विचारका एक आध्यात्मिक मूल्य है। वह यह कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाजमें ही रह सकता है, इसके लिए उसे कुछ नियमोंका पालन करना चाहिए, जो उसके आचरणका पथ-प्रदर्शन करें। राष्ट्र एक सहयोग-संस्था है। इसका मूल व्यक्तित्वकी गहरी प्रेरणामें है। इसलिए राष्ट्रका आधार ज़बरदस्ती नहीं, स्वेच्छामय स्वीकृति है। यह स्वीकृति व्यक्त भी हो सकती है और अव्यक्त भी। अन्ततोगत्वा स्वीकृतिका कारण है मनुष्यका एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता महसूस करना, जो सामाजिक जीवनके हितकी न्यूनतम संस्थाओंको बनाए रखे। इस तरह राष्ट्र सामाजिक जीवन शिवमूके प्रोत्साहनका साधन है।

इस रूपमें आदर्शवादी विचारक व्यक्ति और समाजमें दिखाई देनेवाले विरोधका परिहार करते हैं। हरबर्ट स्पेंसरने एक किताब लिखी है—'मानव बनाम राष्ट्र'। ग्रीनके अनुसार इस पुस्तकका नाम ही ग़लत है। जब हम आदमी कहते हैं तब हमारा आशय सामाजिक आदमीसे है। इसलिए सामाजिक आदमी बनाम समाज अर्थात् सामाजिक मानव और राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष कैसे हो सकता है ? अगर समाजमें ही मनुष्य अपनेको पूर्ण बना सकता है, तो राष्ट्रका होना आवश्यक है। राष्ट्रकी उपज स्वाभाविक है और राष्ट्र सार्वजनिक हितका साधन है।

अगर राष्ट्र एक स्वाभाविक उपज है, तो अधिकार और कर्त्तव्योंके मसलेपर एक नई रोशनी पड़ती है। रूसो, हाब्स, लौक आदि दार्शनिक मनुष्यकी प्राकृतिक अवस्थामें, जब राष्ट्रका अस्तित्व नहीं था, प्राकृतिक अधिकार मानते हैं और उन्हें मूलस्थ कहते हैं। राष्ट्रको उनकी गारण्टी करनी चाहिए। आदर्शवादियोंके अनुसार राष्ट्र एक आवश्यक संगठन है। इसलिए अधिकार सामाजिक हैं। अधिकार व्यक्तिसे सम्बन्धित हैं; पर समाजके आश्रित हैं। अधिकार व्यक्तित्वके विकासमें सहायता देनेवाली प्राथमिक शर्तें हैं। समाजमें ही अधिकार सम्भव हैं, प्राकृतिक अवस्थामें कोई अधिकार सम्भव नहीं। इस प्रकार अधिकार वे अवस्थाएँ हैं, जो व्यक्तित्वका विकास नैतिक दिशाकी ओर करती हैं। ऐसी कौन-सी अवस्थाएँ हैं, इसका निर्णय कौन करे ? समाज। समाजका निर्णय ग़लत भी हो सकता है। तब समझना चाहिए, व्यक्तित्वके विकासकी उचित अवस्थाएँ नहीं हैं। इसलिए अधिकारोंकी यह परिभाषा है: वे अवस्थाएँ, जो समाज द्वारा व्यक्तित्वके विकासमें साधक समझी जाती हैं और जिन्हें कुछ कम-अधिक करके सब माननेको बाध्य हैं।

कर्त्तव्य क्या हैं ? कर्त्तव्य अधिकारके प्रत्यंग हैं। उदाहरणके लिए, जीवनका अधिकार लीजिए। ज़िन्दा रहना उन्नतिकी पहली शर्त्त है। पर जीवनके लिए खतरे हैं। 'क'को जीवनका अधिकार है; पर 'ख' उसे क़त्ल कर दे। यह 'क'के जीवनके लिए खतरा है, इसलिए 'क'को जीवनका अधिकार है और 'ख' 'क'का जीवन खत्म न करे, यह उसका कर्त्तव्य है। इसी प्रकार 'ख'का अधिकार 'क'का कर्त्तव्य है। इसलिए अधिकारोपभोग और कर्त्तव्यपालन पारस्परिक संलग्नता रखते हैं।

एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, राष्ट्रके कर्त्तव्य क्या हैं ? इससे राष्ट्रका नागरिकोंके प्रति दृष्टिकोण मालूम होता है और वह दृष्टिकोण नागरिकोंकी उन्नतिकी अवस्थाएँ निर्द्धारित करता है। ग्रीन और बोज़ान्कुए दोनों संरक्षक-राष्ट्रके तीव्र विरोधी हैं। अगर व्यक्तिके लिए राष्ट्र सब-कुछ करे, तो व्यक्तिमें स्वतन्त्र विचार-शक्ति और किसी कार्यको शुरू करनेकी हिम्मत दोनों खत्म हो जायँ। इसलिए व्यक्तित्वके विकासके लिए कार्य-स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। पर कुछ बाधाएँ ऐसी हैं, जिनसे व्यक्तित्वका विकास रुकता है। राष्ट्रको इन्हें दूर करना चाहिए। पहली बाधा है ग़रीबी, जिसकी वजहसे करोड़ों-अरबों आदमियोंकी उन्नति रुकी हुई है। मज़दूरोंको कम मज़दूरीपर काम करना पड़ता है, क्योंकि उनके पास स्वतन्त्र व्यवसाय करनेके लिए पूँजी नहीं है। इसलिए पूँजीका असम वितरण ही ग़रीबीका कारण है। राष्ट्रको असम वितरणपर नियन्त्रण रखना चाहिए। पर ग्रीन निजी सम्पत्तिके खिलाफ़ नहीं हैं। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि वे अपने निष्कर्ष तार्किक समाप्ति तक ले जाते हुए झिझकते हैं। दूसरी बाधा अशिक्षा है। राष्ट्रको प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करनी चाहिए और ज्ञानका अधिकतम विस्तार करना चाहिए। नागरिकोंके बौद्धिक विकासके लिए निरन्तर साधन जुटाने चाहिएँ। ग्रीनके समयकी तीसरा बाधा मद्यपान है। मनुष्य मद्यपी होनेपर समाज और परिवारका खयाल भूल जाता है। इस प्रकार ग्रीनने राष्ट्रके ये तीन कर्त्तव्य बताए हैं।

बोज़ान्कुए रूसोवादी थे, कांटवादी नहीं। वे कुछ स्थितिशील थे। उनके अनुसार राष्ट्रको भय-सम्मान-मिश्रित दृष्टिसे देखना चाहिए। बोज़ान्कुएने उपर्युक्त तीन कर्त्तव्योंके अलावा एक कर्त्तव्य और माना है। वह है अन्य संस्थाओंकी कर्त्तव्य-साधक आलोचना करना। इसका उद्देश्य उन संस्थाओंकी उन्नतिमें बाधा डालना नहीं, बल्कि उनकी उन्नतिका पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करना है। उनके शब्दोंमें 'राष्ट्र समस्त नैतिक व्यवस्थाका संरक्षक है।' राष्ट्र तरह-तरहके दण्ड देता है। यह भी उसका एक प्रमुख कार्य है। दार्शनिक मतसे दण्ड-विधानके तीन सिद्धान्त बताए जाते हैं—प्रतिशोध, प्रतिरोध और सुधार। पर बोज़ान्कुएने अपना नवीन दृष्टिकोण रखा है। दण्ड समाजपर किए गए आक्रमणके प्रतिघातका प्रतिनिधि है। 'क' 'ख'को धक्का देता है; 'ख' 'क'को धक्का दे देता है। धक्का देते समय 'ख' यह नहीं सोचता कि धक्का देकर वह 'क'का सुधार कर रहा है या 'क'से प्रतिशोध ले रहा है या 'क'को दूसरोंको धक्का देनेसे रोक रहा है। 'ख'का 'क'को धक्का देना 'ख'की एक अन्तःप्रेरित क्रिया है। इसी प्रकार समाज सम्बन्धोंका एक ताना-बाना है। जब समाजका एक अंग विद्रोह करता है, तब समाजकी अन्तःप्रेरणा उस अंगपर प्रतिघात करती है। चूँकि व्यक्ति और समाजके बन्धनमें अन्तर है, व्यक्तिका प्रतिघात तुरन्त होता है और समाजके प्रतिघातमें कुछ कार्रवाई की जाती है। अपराधीको अदालतमें लाया जाता है, तहक़ीक़ात की जाती है, साक्षी ली जाती है, तब कहीं उसे दण्ड दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। पर मूलतः दण्ड समाजका अन्तःप्रेरित प्रतिघात ही है।

पर स्मरण रहे, अभियुक्त भी सामाजिक ताने-बानेका ही एक अंग है। 'ख'ने 'क'को धक्का दिया; पर 'क' 'ख'का एक अंग नहीं है। अपराधी समाजका अंग होता है, इसलिए दण्ड देते समय ऐसे सार्वजनिक हितका ध्यान रखा जाना चाहिए, जिसमें अभियुक्तका हित भी शामिल हो। यों घूम-फिरकर बोझान्कुए भी सुधार-सिद्धान्त तक पहुँच जाते हैं। हमें यह न भूलना चाहिए कि अपराधका बहुत-कुछ कारण सामाजिक अवस्था है। गरीबी, अशिक्षा, बेकारी, वंशानुगत सुविधाएँ-असुविधाएँ, पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियाँ अपराधोंके लिए काफ़ी उत्तरदायी हैं। इसलिए राष्ट्रको इनका सुधार करना चाहिए।

आदर्शवादी युद्धके विरुद्ध हैं, क्योंकि वे आक्रमणकारीका किसी प्रकार समर्थन नहीं कर सकते। पर वे अन्तर्राष्ट्रीयतावादी भी नहीं हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय संघका विरोध करते हैं, क्योंकि इस प्रकारके संघसे राष्ट्रकी प्राथमिकता नष्ट हो जाती है।

२९ शिवाजी पार्क, बम्बई-२८]

गुजरातका गरबा-रास

श्री गौरीशंकर ओझा

आदिकालसे ही नृत्य-कला मनुष्य-जातिमें स्वभाव-जन्य रही है। आनन्दातिरेकमें जब शरीर दोलायमान हो उठता है, अंग-परिचालनकी यह भाव-भंगीकी अवस्था ही नृत्य है। भारतीयोंके जीवनमें स्मरणातीत कालसे ही नृत्य एक महत्त्वपूर्ण कला रहा है। इसका उल्लेख चारों वेदोंमें पाया जाता है। हिन्दू-धर्मके साथ नृत्य विशेष सम्बन्धित रहा मालूम होता है। पौराणिक युगमें नृत्यका अत्यन्त उत्कर्ष हुआ था। देव और देवियाँ, अप्सराएँ, किन्नर और गन्धर्व, राज-परिवार और प्रजाजन, भक्त और भिखारी—सभी इस कलाके उपासक थे। मन्दिरों, राजमहलों और कुटीरोंमें सर्वत्र नृत्य-कला प्रचलित थी। किन्तु धीरे-धीरे अनेक प्रतिकूल संयोगोंके परिणाम-स्वरूप इस कलाका ह्रास होता गया। अब केवल उस समयकी नृत्य-कलाके पूर्ण विकासका आभास अजन्ता, एलोरा और दक्षिण-भारतके कुछ स्थानोंमें चित्रोंके रूपमें दिखाई देता है। सुसंस्कृत शिष्ट-समाजके सम्पर्कसे अलग होनेपर यह कला बहुत काल तक गणिकाओंके पास ही रही। इसके परिणाम-स्वरूप जीवनके अनुपम भाव, हृदयके दिव्य उल्लास और सौन्दर्यमयी ऊर्मियोंको व्यक्त करनेके साधन उन्नत होनेकी अपेक्षा आत्महीन कंकालकी तरह केवल तालबाज़ीके रूपमें विकृत होते चले गए। किन्तु नृत्यके साथ धर्म और समाजका सम्पर्क बना रहनेके कारण धार्मिक और सामाजिक उत्सवोंमें इसका अस्तित्व किसी हद तक सुरक्षित रहा। दक्षिण-भारतमें कथकलि, गुजरातमें गरबा-रास और उत्तर-भारतमें कत्थक-नृत्यके रूपमें अब भी यह कला जीवित है। बंगालमें इस कलाकी विशेष उन्नति हुई और अब नृत्य-कला सभ्य समाज द्वारा प्रोत्साहित होकर अपनी विभिन्न शैलियोंमें विकसित होकर उन्नति कर रही है।

कथकलि, मनीपुरी और कत्थक-नृत्यसे अधिक व्यापक, लोकप्रिय और जातीय नृत्य गुजरातका गरबा-रास है। इसका क्षेत्र गुजरात-काठियावाड़ तक ही सीमित है और वहाँके सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवनमें इसका विशेष महत्व है। गरबा-रास केवल नृत्यके रूपमें ही नहीं, किन्तु उसमें गाए जानेवाले गीतोंके रूपमें भी गुजराती ललित-कलाओंमें अपना विशेष स्थान रखता है। नरसी मेहता और मीराबाईसे लेकर आधुनिक कवियोंनान्हालाल दलपतराम और फ़ामजी खबरदार तक गुजराती भाषाके प्रत्येक कविने—गरबाओंकी रचना की है। यही नहीं, जितने भी प्रसिद्ध कवि हुए हैं, वे इन्हें लिखनेके कारण विशेष लोकप्रिय हो सके हैं। गुजराती संगीतका प्रधान अंग भी यही गरबा-रास है। इस प्रकार गरबा-रास साहित्यमें काव्यरूपमें और कलामें नृत्य तथा संगीतके रूपमें गुजरातकी निधि है। यह गुजरातके नारी-जीवनका कलात्मक उल्लास है, जो सदियोंसे उन्नत और परिष्कृत होता रहा है।

मानव-जातिमें शक्तिकी आराधना शक्तिको प्रकट करनेके लिए है। शक्तिका प्रथम लक्षण शौर्य और निर्भयता है। यह भाव सर्वथा प्राकृतिक है। इसी शक्तिकी आराधना 'गरबा' नृत्य-गीत द्वारा की जाती है। नवरात्रके ९ दिनों तक रातको गली-गली और प्रत्येक मोहल्लेमें पड़ोसकी स्त्रियाँ एकत्र होकर वृत्ताकारमें गाती हुई तालियोंके तालपर गरबा-नृत्य करती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय गतिके विविध रूपोंसे और गीत, ताल तथा लयके माधुर्यसे गरबामें एक अनुपम आकर्षण होता है। गरबा मूलमें तो दुर्गाकी पूजाका ही नृत्य है; इसीलिए नवरात्रमें ही इसका विशेष माहात्म्य है। आजकल नारी-जीवनके विकासके साथ-साथ गरबाने भी कई प्रकारके नए-नए रूप ग्रहण कर लिए हैं। भाव और अभिनय-नृत्यका गुर्जर-रमणियोंने इसे नया अवतार प्रदान किया है और शिष्ट-साहित्य तथा शास्त्रीय संगीत मिलाकर गरबा द्वारा उन्होंने एक उच्च सौन्दर्य-दर्शनसे समाजको सुसंस्कृत और उन्नत बनाना आरम्भ किया है।

रास भी गरबाका ही एक पर्यायवाची शब्द कहा जा सकता है, यद्यपि गरबा और रासमें कुछ अन्तर है। रासमें ओज अधिक होता है और गरबामें लावण्य। कहा जाता है कि जब यादव-वंश मथुरा छोड़कर सौराष्ट्रमें आया, तब वे लोग श्रीकृष्णकी रास-लीला भी अपने साथ लाए थे। तबसे अब तक वह सौराष्ट्रमें जीवित है। अधिकांश गरबोंमें दुर्गाकी स्तुति होती है। घट-दीप, जिसके चारों ओर नाचा जाता है, दुर्गाका प्रतीक माना जाता है। गरबोंके अनेक विषय होते हैं। उनमें प्रधानतः दुर्गाकी प्रार्थना और श्रीकृष्णकी जीवन-सम्बन्धी घटनाएँ ही होती हैं। आजकल तो उसके विषयोंका विस्तार बहुत बढ़ गया है। जीवनकी समस्त आकांक्षाओं और समस्त व्यवहारोंका उसमें समावेश हो गया है। शरत्-पूर्णिमाकी रात गरबोंके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस कारण इसका भी गरबोंके विषयोंमें अपना विशेष स्थान है। गरबा रास जीवनकी अनेक भावनाओंको व्यक्त करते हैं। ये शहरों और ग्रामोंमें वर्ग-भेदके अनुसार प्रचलित हैं।

नवीन रासोंको संगीतकी नई-नई तर्ज़ोंमें अनुकूल अभिनयके साथ मिलानेमें गुजरातके शहरोंकी स्त्रियोंने विशेष प्रयत्न किया है। पहले रास केवल संगीत-प्रधान होते थे, उनमें कवित्व नाम-मात्रको ही होता था। परन्तु आजकल सुकवियों द्वारा विभिन्न विषयोंपर रचे गए भाव-प्रधान रास सुयोग्य सुशिक्षिता बहनों द्वारा नवीन संगीत-पद्धति और अभिनय-नृत्यके सहयोगसे अधिकाधिक समृद्ध और उन्नत हो रहे हैं। आधुनिक गुजराती कवियोंमें न्हानालालके रास अधिक लोकप्रिय हैं।

गरबामें एक वयकी लड़कियाँ या युवतियाँ अलग-अलग टोलियोंमें बँट जाती हैं। चूँकि इसमें निर्देशन अधिक होता है, अतः कलात्मक प्रेरणा, विकास तथा विविधता भी अधिक रहती है। गरबामें ताल, अंग-परिचालन और संगीतसे जो एक सरस सजीव कलात्मक सर्जन होता है, उसमें एकरसता अधिक होती है। ताल देनेके लिए स्त्रियाँ मँजीरे, कलश, डण्डे या तालियोंका उपयोग करती हैं। रंग-बिरंगे वस्त्रालंकारोंकी सुघड़तापर भी अधिक ध्यान दिया जाता है। गरबा-नृत्यमें गुर्जर-सुन्दरियोंके सुरुचिपूर्ण रंगीन वस्त्राभूषण, कंकण और झाँझरोंकी झनकार, सुमधुर संगीत तथा वाद्योंके सामंजस्यके साथ उनके उन्नत कलापूर्ण नृत्यका दृश्य अवर्णनीय होता है, जिससे सच्चा कलात्मक सुरुचिपूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। गरबा-नृत्यके विषयमें सुप्रसिद्ध नृत्यकार श्री उदयशंकरने कहा था—'गुर्जर-बहनोंके गरबा-रासको देखकर ही मुझे नृत्य सीखनेकी प्रेरणा मिली है।' स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी गुजरातके इस लोकप्रिय नृत्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की थी।

आजकल धार्मिक उत्सवोंके अतिरिक्त विवाह आदि विशेष अवसरोंपर तथा कालेज-स्कूलके सम्मेलनोंपर भी गरबाका कार्यक्रम रखा जाता है। अहमदाबाद, बड़ौदा और सूरतकी शिक्षिता बहनोंके गरबे विशेष आकर्षक तथा प्रभावशाली होते हैं। ऐसे रास और गरबोंकी लोकप्रियता इधर कुछ वर्षोंसे इतनी अधिक बढ़ गई है कि कई ग्रामोफ़ोन-रेकार्ड-कम्पनियोंने रास-प्रवीणा बहनोंसे रेकार्ड भरवाकर हज़ारोंकी संख्यामें उन्हें प्रचारित किया है। इस प्रकार पुरानी रूढ़ि-प्रणालीमें परिवर्त्तनकर गरबोंको नित्य नवीन रूप दिया जा रहा है।

माताकी स्तुतिमें कवि चन्द्रकान्त मंगलजी ओझाने निम्न-लिखित गरबामें भावोंकी महत्ताको बड़े सुन्दर रूपमें व्यक्त किया है :—

मारी माता त्रिभुवनतारिणी हो।
मैया सृष्टि सकल उद्धारिणी हो ॥ मारी माता०।
देश-विदेश-विजेता जननी
राजेश्वरी-पद-धारिणी हो ॥ मारी माता०।
कला, कुशलता, संस्कृति, शुचिता
खंडे-खंडे प्रचारिणी हो ॥ मारी माता०।
ज्ञान, भक्ति, सत्शील सूर्यनाँ
अमृत-तेज-प्रसारिणी हो ॥ मारी माता०।
सुखकारिणी हो, दुखहारिणी हो,
जग-जड़वाद-विदारिणी हो ॥ मारी माता०।
धारिणी हो मणि-मुगट-धारण माँ
नवयुग-दर्शन-कारिणी हो ॥ मारी माता० ॥

उक्त गरबाका अर्थ, भाव और भाषा संस्कृत-प्रधान होनेके कारण स्पष्ट हैं। इसमें माताको जिन-जिन आकांक्षाओंकी पूर्त्ति करनेके रूपमें चाहा है, वे उच्च एवं मंगलकारिणी है। गरबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत-प्रधान और प्रसाद-गुणसे परिपूर्ण है। कवित्वका इसमें पूर्ण समावेश है। गुजराती काव्य-साहित्यमें सैकड़ोंकी संख्यामें उच्चकोटिके गरबे हैं और उनके संग्रहोंकी भी अनेक पुस्तकें हैं। उनमें से कम-से-कमका नमूना बतलाना भी असम्भव है। देवी-स्तुतिका निम्न पद बहुत प्रचलित है :—

अलबेली रे अम्बे मात, जोवाने जइये,
विरदाली रे बहुत्तर मात जोवाने जइये।

अर्थात्—अलबेली अम्बा माताको देखने चलो, टेक रखनेवाली बहुत्तर माताको देखने चलो।

कवि वल्लभ भट्टने दुर्गाकी भक्तिके लोकप्रिय गरबोंको बहुत बड़ी संख्यामें रचा है। और भी अनेक कवियोंने देवीकी स्तुतिमें गरबे रचे हैं। श्रीकृष्णके जीवन-सम्बन्धी विषयोंपर सबसे अधिक गरबे रचे हुए हैं। इस विषयका एक गरबा बहुत प्रचलित है :—

कहाना नी मोरली ने फूलना हिंडोला,
मोरली ना शब्द मीठा झील जो रे लोल।
× × ×
पृथ्वी थी दूर देव अन्तर नी आँख माँ,
पूजन करूँ छूँ प्रभु रीझ जो रे लोल।

अर्थात्—कृष्णजीकी मुरली और फूलोंका झूला है; मुरलीके मीठे स्वरोंको ग्रहण कर लेना। तुम पृथ्वीसे दूर और अन्तरकी आँखोंमें हो। प्रभु! मैं तुम्हारी अराधना करती हूँ। तुम प्रसन्न होना।

यह गरबा आधुनिक कालकी रचना है। प्राचीन कालके सुप्रसिद्ध भक्त कवि नरसी मेहता और मीराबाईके गरबा-रास भी बहुत प्रचलित हैं। आधुनिक कालके कवियोंने गरबा लिखनेमें बहुत उन्नति की है। उनमें नवीन भावोंका समावेश करके उन्हें अत्यन्त भावपूर्ण और चित्ताकर्षक बना दिया है। कवि 'ललित'का निम्न पद इसका सुन्दर उदाहरण है :—

मारा हैया माँ एक वागे छे मोरली,
जाणुँ न कोण ए वगाड़े छे मोरली।
हैये थी कण्ठ म्हाँय जागे छे मोरली।
रोम-रोम ने ए जगाड़े छे मोरली।

अर्थात्—मेरे हृदयमें एक मुरली बजती है। न-जाने उसे कौन बजाता है? हृदयसे वह कण्ठमें जागती है और फिर वह रोम-रोमको जगाती है।

शरत्-पूर्णिमापर सैकड़ों गरबे रचे गए हैं। एक देखिए :—

चालो रमिए सखी! शरद ना रास,
शरद ना रास सखी शरद ना रास।
शरद ना चन्द्रमा नो शोड़ो प्रकाश,
जीवन माँ जगवे छे केवो उल्लास? चालो०

अर्थात्—हे सखी, चलो शरद्का रास रचें। शरद्के चन्द्रमाका शीतल प्रकाश जीवनमें कैसा उल्लास जगा रहा है?

इसी प्रकार जीवनके भिन्न-भिन्न विषयोंपर सैकड़ों गरबे हैं, जो पढ़नेपर अपने कवित्वके कारण, गानेपर अपने संगीतके कारण और गाती हुई रमणियोंकी टोलीमें सौन्दर्य-राशिके उत्तोलनमय नृत्यके रूपमें जीवनको आनन्द प्रदान करते हैं। इनकी भावुकता और उल्लास, माधुर्य और लय, सौन्दर्य और आनन्दकी एकरस त्रिवेणीका हृदयपर सच्ची कलाका और जीवनपर कलाके आदर्शका वास्तविक प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। गरबा-रास आज गुर्जर-नारीके स्वभाव और जीवनका एक प्रधान अंग बन गया है। शुभ अवसरपर वह गरबा-रासके लिए स्वभावतः अधीर और उत्सुक हो जाती है और गा उठती है :—

म्हारा झाँझर माँ झमके कोंई गीत रे,
रमवुँ छे रास माँ!
रमवुँ छे रास माँ, आश-उल्लास माँ,
कोंई गावाँ छे गीतो अनूप रे,
रमवुँ छे रास माँ!

अर्थात्—मेरे झाँझरोंमें कोई गीत बज उठा है, मुझे अब गरबा-नृत्य करना है। आशा और उल्लासमें किसी गीतको गाना है। मुझे गरबा नृत्य करना है।

गुजराती-साहित्यमें गरबा-रासका कविताओंके रूपमें विशेष स्थान है। इस प्रकार गरबा-रास नृत्य, कविता और संगीतके रूपमें गुजरातकी सैकड़ों वर्षोंसे संचित की हुई अमूल्य कला-निधि है। भारतीय नृत्य-कलाका यह एक अनुपम, उल्लेखनीय और विकासशील प्राचीन अंग है, जो भारतीय संस्कृति, कला और साहित्यका सुन्दर परिचायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधर्मियोंका हिन्दू-धर्ममें प्रवेश

प्रो० श्रीराम शर्मा

इतिहासके अध्ययनसे पता चलता है कि हिन्दू-धर्ममें केवल वही लोग नहीं रहे, जो जन्मजात हिन्दू थे, बल्कि विधर्मियों और किसी लोभ अथवा दबावके कारण विधर्मी हुए हिन्दुओंके लिए भी इसके द्वार सदा खुले रहे। प्रोफ़ेसर भण्डारकरने अपने 'हिन्दू-जनतामें बाह्य अंश'-शीर्षक निबन्धमें प्राचीन इतिहाससे शुद्धि-सम्बन्धी प्रायः सभी घटनाओंको एकत्र कर दिया है। परन्तु अभी भी कहीं-कहीं यह विचार पाया जाता है कि मुस्लिम शासन-कालमें हिन्दुओंने शुद्धिके कार्यको छोड़ दिया था। पर यह सच नहीं है। इसके प्रमाण मुसलमान इतिहास-लेखकोंकी रचनाओंमें ही पर्याप्त मात्रामें हैं। इस सम्बन्धमें दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पहली तो यह कि मुसलमान इतिहासकार प्रायः अपने आश्रयदाताकी विजय दिखानेके लिए ही पुस्तकें लिखते थे। अतः शुद्धि-सम्बन्धी घटनाएँ अकस्मात् और बहुत ही कम लिखी गई हैं। दूसरी यह कि मुसलमानोंके राज्य-कालमें मुसलमानोंकी शुद्धि करना साधारण अपराध नहीं था। इसके लिए मृत्यु-दण्ड तक दिया जाना मामूली-सी बात थी।

सन् ७१२ ई० में मुसलमानोंने सिन्धको जीता। कहते हैं, इस अवसरपर उन्होंने बहुतसे हिन्दुओंको मुसलमान बनाया। परन्तु जब तमीम (७२४ से ७४३ ई०) सिन्धका गवर्नर था, तो हिन्दुओंने अपने इन बिछुड़े भाइयोंको फिर अपने धर्ममें मिला लिया। इस सम्बन्धमें मुसलमान इतिहासकार मौलाना बिलाज़ुरी केवल इतना ही लिखता है कि तमीमके उत्तराधिकारी हकीमके कालमें कासाके प्रदेशको छोड़कर बाक़ी सब लोग फिरसे मूर्त्तिपूजक हो गए।

पर सिन्धके हिन्दुओंने अपने विधर्मी हुए भाइयोंको ही फिरसे हिन्दू नहीं बनाया, अपितु जन्मके मुसलमानोंको भी सहर्ष हिन्दू-धर्मकी दीक्षा दी। सर डेनीसन रासका कथन है कि मुहम्मद बिन-क़ासिमके लौट जानेके बाद कुछ मुसलमान सिन्धु नदीके पश्चिमी किनारेपर आबाद हो गए थे; परन्तु वे सब शनैः-शनैः हिन्दुओंमें ही जज़्ब हो गए। सिन्धकी राजधानी मनसूरके मुसलमानोंने भी हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया। हकीमके शासन-कालमें मुसलमान सिंदेसे चले गए, क्योंकि वहाँ उनके धर्मके लिए अनुकूल एवं सुरक्षित स्थान नहीं था। हकीमने कोलके परले किनारेपर मुसलमानोंकी रक्षाके लिए एक शहर बसाया, जिसका नाम मनसूर (अर्थात् सुरक्षित) रखा गया।

मेरे एक मुसलमान मित्र उर्दू-विश्वकोषके सम्पादक हैं। उन्हें कुछ साल हुए एक प्रसिद्ध मुसलमान-वंशके इतिहासको साहित्यिक रूप देनेकी इच्छासे रावलपिण्डी जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने राजा सुल्तानखाँकी वंशावलीका भी अध्ययन किया। वंशावलीका आरम्भ आठवीं शताब्दीसे होता था। मेरे मुसलमान मित्रके आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा जब कि उन्होंने मुसलमान वंशावलीमें कई हिन्दू नामोंको देखा। वंशावलीका आरम्भ मुसलमान नामोंसे होता था, फिर आठवीं शताब्दीके मध्यमें दो-तीन पीढ़ी तक हिन्दू नाम आए। तत्पश्चात् फिर मुसलमान नामोंका आरम्भ हो गया। घरवालोंने उन्हें बताया कि हमारे पूर्वजोंने कई हिन्दू सरदारोंकी नौकरियाँ की हैं, शायद उन्होंने ही हमारे पूर्वजोंके यह हिन्दू नाम रख दिए हों। पर अधिक सम्भव यही मालूम होता है कि यह लोग भी किसी समय शुद्ध कर लिए गए हों और कुछ काल बीतनेपर फिर मुसलमान हो गए हों।

पाठक शायद यह समझें कि आठवीं शताब्दीमें हिन्दुओंमें इतना जीवन बाक़ी होगा कि वे शुद्धि करनेमें सफल हो सके; पर ऐसी बात नहीं मालूम पड़ती। दसवीं शताब्दीमें भी शुद्धिके उदाहरण मिलते हैं। ९८६-८७ में सुबुक्तगीनने राजा जयपालको पराजित किया, जिसने विवश होकर अपने पौत्र सुखपाल तथा कुछ अन्य अधिकारियोंको ज़मानतके तौरपर सुबुक्तगीनके हवाले कर दिया। सुबुक्तगीनने सुखपालको मुसलमान बनानेका प्रयत्न नहीं किया और ९९४ ई० में नेशापुरके आक्रमणके समय उसको अपने साथ ले गया। यहाँ सुखपाल महमूदके साथ रहने लगा। ९९५ में अबुल्अलीने महमूदको वहाँसे भगा दिया। सम्भवतः इसी समय सुखपाल अबुल्अलीके हाथ लगा, जिसने उसको मुसलमान बना लिया। ९९६ में अबुल्अली क़ैद कर लिया गया। उसके साथ सुखपाल भी महमूदके हाथ लगा और शीघ्र ही ऊँचे पदपर पहुँच गया। १००६ ई० में महमूदने मुल्तानके दाऊदपर आक्रमण किया, जिसमें सुखपाल भी महमूदके साथ था। दाऊद भाग गया और सुखपालको मुल्तानका शासक नियुक्त किया गया। अभी एक वर्ष भी न बीता था कि सुखपाल इस्लाम-धर्मको छोड़कर फिरसे हिन्दू हो गया। यह खबर महमूदको १००८ ई० में खुरासानमें मिली। वह तुरन्त भारतवर्षकी ओर बढ़ा और सुखपालको पराजितकर क़ैद कर लिया। परन्तु उसने अपने धर्मको नहीं छोड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीसे मिलता-जुलता एक उदाहरण दक्षिण-भारतमें भी मिलता है। भारत और अरबमें व्यापारिक सम्बन्ध बहुत दिनोंसे चला आता था। बहुतसे मुसलमान व्यापारी अरब-महासागरके साहिलपर आबाद हो गए थे। १४वीं शताब्दीमें मदुरामें रहनेवाले कुछ व्यापारियोंने हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया। १३११ ई० में मलिक काफ़ूरने मदुराके राजा रवि वर्मापर चढ़ाई की। राजा तो भाग गया; पर मलिक काफ़ूरने रिआयाके क़त्लेआमकी आज्ञा दे दी। इस अवसरपर बहुतसे मुसलमान व्यापारी भी, जो हिन्दू हो गए थे, मौतके घाट उतार दिए गए और कुछने क़ल्मा पढ़कर अपनी जान बचाई।

अलाउद्दीनके बाद देहलीके सिंहासनपर मुबारकशाह बैठा। मुबारकका गुजरातके एक हिन्दू (महर-जातिके) नवयुवकसे परिचय था। इस नवयुवकको मुसलमान बनाकर खुसरूखाँ हसनकी उपाधि दी गई। इस नवयुवकका प्रभुत्व इतना बढ़ा कि वह एक बादशाहको उसके महलमें ही मारनेमें सफल हो सका। फिर उसने अपना नाम नासिरुद्दीन खुसरू रख लिया। इससे अगली घटनाके बारेमें बर्नीने लिखा है—'महलमें मूर्त्ति-पूजाके लिए तैयारियाँ हुईं। मूर्त्तियोंकी स्थापना कर दी गई। खुसरूकी इच्छा हिन्दुओंकी शक्तिको बढ़ानेकी थी। इस प्रकार सारे मुसलमान राज्यमें हिन्दू अभिमानके साथ कहने लगे कि देहली हिन्दुओंके शासनमें आ गई है और मुसलमानोंको वहाँसे निकालकर भगा दिया गया है।' यह घटना बड़े ही महत्वकी है, यद्यपि इसका प्रचार बहुत ही कम हुआ है। खुसरू हिन्दू हुए बिना मूर्त्तिकी स्थापना नहीं कर सकता था। इसलिए अवश्य ही उस समयके हिन्दुओंने खुसरूको शुद्ध किया होगा।

मुसलमानोंकी शुद्धि करनेवालोंको कितनी आपत्तियाँ उठानी पड़ती थीं, इसके भी काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। जब देहलीमें फ़ीरोज़शाह तुग़लक़का राज्य था, तो एक ब्राह्मणके विरुद्ध शिकायत पहुँची कि उसने लकड़ीकी मूर्त्तियाँ स्थापित की हुई हैं, जिनकी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही पूजा करते हैं। मुस्लिम पुजारियोंमें अधिक संख्या स्त्रियोंकी थी, जो शुद्ध की गई थीं। कहते हैं, फ़ीरोज़शाहने उस ब्राह्मणको मूर्त्तियोंके साथ ही ज़िन्दा जलवा दिया।

१४वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें दो हज़ार धर्मभ्रष्ट ब्राह्मण लड़कियोंको फिर हिन्दू-धर्ममें प्रविष्ट किया गया। यह घटना भी दक्षिण-भारतकी ही है। विजयनगरके राजाओंका बहमनी राजाओंके साथ सदा लड़ाई-झगड़ा रहता था। १३९८-९९ ई० में विजयनगरके राजा देवरायने फ़ीरोज़शाह बहमनीपर आक्रमण किया। इस युद्धमें फ़ीरोज़शाहकी विजय हुई और उसने दो हज़ार ब्राह्मण लड़कियोंको क़ैद कर लिया। देवराय सन्धि करनेके लिए विवश हो गया, क्योंकि ब्राह्मण अपनी लड़कियोंको मुसलमानोंके पंजेसे छुड़ानेके लिए ज़ोर दे रहे थे। देवरायने एक लाख हंस (एक सिक्का) देकर ब्राह्मण लड़कियोंको छुड़ाया। ब्राह्मण लड़कियाँ मुसलमानोंको क़ैदमें तो रही थीं; पर उनको विधिपूर्वक मुसलमान न भी बनाया गया हो, फिर भी हिन्दुओंने उन्हें शुद्ध करके ही वापस लिया।

जैनुल्आब्दीन १४२४ से १४६० ई० तक काश्मीरका शासक था। उसने अपने शासन-कालमें ब्रह्मणोंको इस बातकी आज्ञा दे दी थी कि वे उन लोगोंको शुद्ध कर लें, जिनको किसी समय ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया था। इस आज्ञाके मिलते ही बहुतसे धर्मभ्रष्ट फिर हिन्दू-धर्ममें मिला लिए गए। मुसलमान इतिहासकारोंने इस शुद्धिके बारेमें यह विचित्र कल्पना की है कि यह जैनुल्आब्दीन वास्तवमें एक हिन्दू योगी था, जो मरते हुए जैनुल्आब्दीनके शरीरमें प्रवेश कर गया! उसी योगीने नवमुस्लिमोंको फिरसे शुद्ध करवाया!

मुहम्मद सादिक़ने अपनी पुस्तक 'सुबह सादिक़' में भी मुसलमान स्त्रियोंकी शुद्धिका उल्लेख किया है। पूर्णमल शेरशाह सूरीके अधीन रायसेनका गवर्नर था। उसने कई मुसलमान स्त्रियोंको हिन्दू बनाया। इतिहासकारका कथन है कि यह एक प्रधान कारण है, जिससे शेरशाहने पूर्णमलपर आक्रमण किया। यह पुस्तक १६३९ ई० में लिखी गई, जब कि अभी शेरशाहको मरे सौ वर्ष भी नहीं हुए थे; इसलिए यह कहना कि यह घटना बनावटी है, किसी तरह भी युक्तिसंगत नहीं। इसी लेखकने लिखा है कि जब कालपीके शासक नसीरखाँने इस्लामको त्याग दिया, तो मालवेके शासक सुल्तान मुहम्मदने उसपर आक्रमण किया। इसपर नसीरखाँने चटपट मुसलमान होनेकी घोषणा कर दी। परन्तु नसीरखाँ ऐसी चाल पहले भी चल चुका था, इसलिए मालवेके शासकने तय किया कि चार मास तक इस बातका पूरा निश्चय करनेके पश्चात् ही कालपीका राज्य उसको वापस दिया जायगा। इससे स्पष्ट है कि जन्मसे मुस्लिम शासक अपने पड़ोसियोंसे भय होते हुए भी हिन्दू हो सकता था।

जहाँगीर अपने राज्यके पाँचवें वर्षका वृत्तान्त लिखते हुए एक रोचक घटनाका उल्लेख करता है। कुमरखाँका पुत्र कौक़ब एक योगीके पास गया, जिसने उसको हिन्दू-धर्म और योग शिक्षा देनी आरम्भ कर दी। कौक़बको यह शिक्षा अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी, इसलिए उसने इस उपदेशको ग्रहण कर लिया। कौक़बने अपने दो सम्बन्धियोंको भी अपने साथ मिला लिया। कुछ दिनों तक तो यह बात छिपी रही। आखिर भेद खुलनेपर यह मामला जहाँगीरके सामने पेश हुआ। कौक़ब और उसका एक साथी तो क़ैद कर लिए गए और दूसरे साथीको जहाँगीरने अपने सामने कोड़े लगवाए। जहाँगीरने दण्ड देना इसलिए आवश्यक समझा कि कहीं दूसरे लोग भी इनका अनुकरण करते हुए हिन्दू-धर्म न ग्रहण कर लें।

शाहजहाँके राज्य-कालमें भी मुसलमानोंकी शुद्धिकी कई घटनाएँ मिलती हैं। जब जहाँगीर काश्मीरसे वापस आ रहा था, तो उसे पता चला कि हिन्दुओंने कुछ मुसलमान स्त्रियोंसे विवाह कर लिया है। कहते हैं, उन मुसलमान स्त्रियोंको ज़िन्दा जलवा दिया गया। साथ ही शाहजहाँने यह नियम बना दिया था कि मुसलमान स्त्रियोंसे विवाह करनेवाले हिन्दुओंको अपना धर्म छोड़ना पड़ेगा, अन्यथा उन्हें जुर्मानेकी सज़ा दी जायगी। इस नियमके होते हुए भी असंख्य मुसलमान स्त्रियोंसे हिन्दुओंने विवाह किया। कितनी मुसलमान स्त्रियोंको हिन्दू-घरोंमें बसाया गया होगा, इसका अनुमान इस बातसे किया जा सकता है कि जब शाहजहाँने यह आज्ञा जारी की कि मुसलमान स्त्रियाँ वे ही लोग अपने घरोंमें रख सकेंगे, जो स्वयं भी मुसलमान होंगे। इस आज्ञाका परिणाम यह हुआ कि केवल बदनौरमें ही पाँच हज़ार हिन्दू मुसलमान हो गए।

यह रिवाज केवल काश्मीरमें ही नहीं था, गुजरातमें भी शाहजहाँने यही शिकायत सुनी। परन्तु यहाँ काश्मीरकी भाँति शुद्धिका कार्य इतना विस्तृत नहीं था। केवल ७० मुसलमान स्त्रियाँ ही हिन्दुओंके साथ विवाहिता पाई गईं। खोज करनेपर पता चला कि पंजाबमें भी ४०० मुसलमान स्त्रियाँ हिन्दुओंके घरोंमें आबाद थीं। शाहजहाँको अपने शासनके दसवें वर्षमें पता लगा कि सरहिन्दका दलपतराय नामक एक हिन्दू अब भी शुद्धिके कार्यको कर रहा है। उसने एक पुरुष और छः स्त्रियोंको हिन्दू-धर्ममें प्रविष्ट किया और उनके नाम भी बदल दिए। काज़ीकी शिकायतपर शाहजहाँने दलपतरायसे मुसलमान हो जानेको कहा; परन्तु उसने इन्कार कर दिया और खुशी-खुशी दण्ड स्वीकार किया।

औरंगज़ेबको ९ अप्रैल, १६६९ को सूचना मिली कि थट्टा-मुल्तान और काशीमें हिन्दू लोग अपने मन्दिरोंमें मुसलमानोंको बुलाते हैं और वहाँ उन्हें अपने धर्मकी शिक्षा-दीक्षा देते हैं। इसे बन्द करनेके लिए औरंगज़ेबने क्या मार्ग ग्रहण किया, यह बताना हमारा उद्देश्य नहीं। पर इतना तो स्पष्ट है कि औरंगज़ेब-जैसा कट्टर मुसलमान इस बातको सहन नहीं कर सकता था। हिन्दू विद्यार्थी अपने मुसलमान सहपाठियोंको अपने साथ मन्दिरोंमें बिठाकर पढ़ते थे, ताकि मुसलमान हिन्दुओंके धर्म और सभ्यतासे परिचित हो जायँ। औरंगज़ेबके राज्य-कालकी एक और घटना भी है। एक बार होशियारपुर (पंजाब) का एक हिन्दू मुसलमान बना लिया गया। वह कई साल तक मुसलमान रहा। आखिर उसे शुद्ध करके हिन्दू-धर्ममें सम्मिलित कर लिया गया। जब इसकी सूचना औरंगज़ेबको मिली, तो उसने उसे क़ैदमें डलवा दिया। हिन्दुओंने उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिए हड़ताल कर दी। इससे स्पष्ट है कि उस समय हिन्दू शुद्धिके लिए उत्सुक ही न थे, अपितु शुद्ध होनेवालोंके लिए पूरी सहानुभूति भी रखते थे।

'दबिस्ताने मज़ाहब'के लेखकने भी मुसलमानोंके हिन्दू होनेकी कई घटनाएँ लिखी हैं। यह लेखक कई हिन्दू साधु-सन्तोंका मित्र था। सिक्खोंके गुरु हरगोविन्दसिंहसे भी इसका परिचय था। गुजरातके गुसाँई छत्रप नामक ब्राह्मणने उसे वेदसे 'सूर्य-सूक्त' पढ़ाया और अपने शिष्य गणेशको उसे हिन्दू-धर्मकी शिक्षा देनेका भार सौंपा। 'दबिस्ताने मज़ाहब'का लेखक हिन्दू नहीं था। उसे हिन्दू धर्मकी शिक्षा देना शुद्ध करनेके बराबर ही है। वह १६४३ ई० में कल्याण भारती नामक एक सन्तसे मिला, जो किरतपुर (ज़िला होशियारपुर) का निवासी था। यह संन्यासी ईरान आदि देशोंमें घूम आया था और मुसलमानोंके साथ भी रहा था। ईरानमें यह शाह अब्बासके प्रभावसे मुसलमान हो चुका था। अतः इसका फिर हिन्दू सन्त बन जाना ध्यान देने योग्य बात है।

'दबिस्ताने मज़ाहब'के लेखकने दो और मुसलमानोंके नाम भी लिखे हैं, जिनको हिन्दुओंने शुद्ध करके वैरागी बना लिया था। एकका नाम मिर्ज़ा सालह और दूसरेका मिर्ज़ा हैदर था। इसी पुस्तकके अनुसार केरन नामक एक और व्यक्तिको भी हिन्दुओंने शुद्ध करके वैरागी बना लिया था। जलाली और मदारी मुसलमानोंके बच्चोंकी शुद्धिका भी लेखकने उल्लेख किया है। जलाली शिआ मुसलमान थे और मदारी सुन्नी। एक बार सिन्धके एक तीर्थ-स्थानमें इन मुसलमानोंने गायका वध करना चाहा। इस जगह बहुतसे हिन्दू संन्यासी मौजूद थे। उन्होंने क़ीमत चुकाकर दो गायोंको तो मुसलमानोंके पंजेसे छुड़ा लिया; परन्तु मुसलमानोंने एक गाय और लाकर यहाँ मार डाली। इसके परिणाम-स्वरूप हिन्दू-मुसलमानोंमें लड़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई। संन्यासियोंने ७०० मुसलमानोंको मार डाला और उनके बच्चोंको हिन्दू बना लिया। इसी पुस्तकमें लिखा है कि वैष्णव लोग भी इसी प्रकार शुद्धि करते थे। जब गुरु हरगोविन्दसिंह किरतपुर लौटे, तो उन्होंने वहाँके मुसलमानोंको शुद्ध करना आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि किरतपुरसे लेकर तिब्बतकी हद तक कोई भी मुसलमान नहीं रहा।

कबीरकी घटना तो शुद्धिका सबसे बड़ा प्रमाण है। कबीरको कुछ लोग जन्मका मुसलमान मानते हैं। सभी यह स्वीकार करते हैं कि उनका पालन-पोषण एक मुसलमान जुलाहेके घर हुआ था। पर धार्मिक जगत्में कबीरके सम्बन्धमें यह कथा प्रसिद्ध है कि उनकी माता एक विधवा ब्राह्मणी थी, जिसको रामानन्दजीने आशीर्वाद दिया कि जा, तेरे घर पुत्र पैदा होगा। तब उसका पिता रामानन्दजीके पास गया और बोला—'आपने मेरी विधवा लड़कीके जो पुत्र होनेका आशीर्वाद दिया है, उससे तो मेरी नाक ही कट जायगी।' परन्तु रामानन्दजी अपने आशीर्वादको वापस लेनेको राज़ी न हुए। जब कबीरका जन्म हुआ, तो उनकी माता और नानाने लोक-निन्दाके भयसे बालकको डुबा देनेकी चेष्टा की; परन्तु एक मुसलमान जुलाहेने इसको बचा लिया और अपने पुत्रके रूपमें लालन-पालन किया। बड़े होकर यही कबीर रामानन्दजीके शिष्य बने। मुसलमान इन्हें मरते दम तक मुसलमान ही समझते रहे; परन्तु हिन्दुओंने इन्हें शुद्ध ही नहीं किया, बल्कि अपना नेता भी स्वीकार किया। कबीरका चलाया हुआ मत 'कबीर-पन्थ'के नामसे प्रसिद्ध है। इस धर्मके माननेवाले अब भी हिन्दू ही हैं, जो पंजाब और युक्त-प्रान्तमें काफ़ी संख्यामें पाए जाते हैं।

८, देवसमाज रोड, लाहौर]

समाधि पर

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

अनन्तोदधि के गर्भ से आ मिले थे—
वासन्ती वातास के झकोरे,
अन्तहीन नभ में झिलमिलाते तारे,
हरी डाली में विकसित कुसुम-दल,
प्रातःवेला में सरोवर के निर्मल वक्षपर—
क्रीड़ा करते नन्हीं चंचल लहरों की नाईं।

मिलन की उन मधुमयी घड़ियों में,
झकोरे दोलायित हुए, सौरभयुक्त,
और भी—चम्पा-मौलश्री की गन्ध भर।
खिले - हँसे बार - बार, अँधियारी—
निशा के वे ज्योति - पुंज।
यौवन उभर आया गुंचे के फूलों में,
लहरें थिरकीं और भी पुलक-भर—
माँ की गोदी में—युगल शिशुओं-सी।

बादलों में आभा थी,
फूलों में यौवन था;
लहरों में थिरकन थी,
उपवन में गुंजन था।
मधु बरसता,
रस झरता,
श्यामी गाती,
भँवरे गूँजते।
तभी तो—हरियाली छा जाती बार - बार,
अल्हड़ वह निखरा संसार।
मतवाले साथी—
झूलते डाल-डाल पर
वन -विहग-से।
कमल-वन मूक, शान्त कानन,
निनादित हमारी कल-कल हास्य-ध्वनि से।
पागल झंझावात बन जायगा, विकराल ताण्डव
धारण कर लेगा (यही छलिया सुरभित पवन
छिन्न-भिन्न हो जायँगे तारे,
झरते होंगे कुसुम,
चूर-चूर होंगी नन्हीं लहरें,
ऐसे तूफ़ानी बवण्डर तले।
जानते न थे—
ओह...हम अजान—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान में, हार-जीत में, रोष,
परस्पर कृत्रिम प्रवंचना ही में
तभी तो—बिखरते गए वे अमूल्य क्षण।

चमचमाती कटार-सी—
वह काल-रात्रि—
जाने किस अदृश्य क्रूर आवरण से आच्छादित
धराकाश तक—सब कुछ
मात्र—साँय—साँय—
उस भीषण नाद में—
विदा के-से तुम्हारे
क्रन्दित व्यथित स्वर।
तूफ़ान थम जायगा,
तारे चमकेंगे,
पुनः पुष्प-गुच्छ मुस्कायँगे,
प्रातः प्रकाश तले
लहरें थिरकेंगी
और हम दोनों आबद्ध-आश्वासित
हो कहेंगे, आँसू भर-भर,
गत रात्रि की भयभीत कहानी
ओह—मेरी—छलना, आशा के
कच्चे डोर।

उजले आकाश तले,
लहरें थिरकीं
कि—पँखुड़ियाँ सहलीं नव कुसुम-दलों की।
पर—धूसरित पथ में
किन्हीं क्रूर करों द्वारा—
झर गए—तुम पराग-से।
मुग्ध प्रातः - हास्य की लड़ियाँ बिखेरते,
गान नए नित गाते विहँगवर—
झिलमिल रश्मियाँ लहरों से मिलकर
अनायास—उमड़ती सरिता,
प्राणों के झरने से पल-भर।
किन्तु—गाते-गाते स्वर थम जाता,
वीणा जाती थिरक करों से,
पथहारे - बटोही - सा रह - रह—
निर्निमेष—विक्षत हृदय,
ढूँढ़ रहा है असीम विश्वका
—कोना - कोना।

प्रतिध्वनित कहाँ से ?
किस दिशा से ?
वे उन्माद-भरे, छलकते, मधु-स्वर।
आज डोलते विरही प्राण—
स्नेही—मेरे—मिटकर तुमने जिनको
किया गहन, महान।
स्मृति-अर्घ्य को—आकुल अंजलि
भरे हुए पीड़ा का सौरभ—
छलक न जाय अनजाने क्षणमें
कम्पित, शंकित हूँ, डग-मग।

उन्मत्त हास्य के अन्त में,—
निश्वास बन ?
वीणा के स्वरों में करुण भैरव—
आलाप बन ?
समा गए हो प्रिय, अंग-अंग में ?

संध्या के अनुपम रंगों से
प्रतिबिम्बित पथपर। आल्हादित, उल्लसित ;
बिछुड़े जगके अगणित स्वर।

किन्तु—आकुल मेरी थकीं भुजाएँ,
चिर-संचित दुःख-सुखकी माला
पहराने को, आश्वासित होनेको—
स्पर्श नहीं जब कर पाती हैं ;
(तुझे पाऊँ कहाँ ?
बन्धु ! मेरे व्यथित हियको सहलाऊँ कहाँ ?)
तब उमड़-घुमड़कर बरस जाती हैं।
... दो बूँदें ही—
निज अन्तर में निर्मित
तेरी पुण्य समाधि पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिशोध

श्री झवेरचन्द मेघाणी

वह मोमके पुतले बनाता था। सन्त कुमारी जोन, हतभागिनी रानी मेरी एन्तोने, वाल्तेयर और कितने ही अन्य करुण, भयंकर और सुन्दर क़ब्रमें सोए-हुओंको उसने अपने पुतलोंके रूपमें वापस बुला लिया था। उन मोमकी आकृतियोंको कलाकारने मानो जननी बनकर अपने गर्भमें पाला था। पूरे महीनोंपर वेदनासे चीत्कार करते हुए जन्म दिया था। उनका लालन-पालन किया था और अपने कलेजेको चुसाकर उन्हें स्तन-पान कराया था।

कलाकारको जैसे और किसी बातका खयाल ही न था। अपने स्टुडियोमें वह अकेला अपने इन प्यारे बच्चोंसे बातें किया करता। उसकी अंगुलियाँ प्रत्येक आकृतिको देहपर प्यार बिखेरती थीं। ऐसा लगता था, मानो प्रत्येक पुतलेके होंठ अभी फड़क उठेंगे। उनके स्थिर नेत्र अपने सर्जकके शरीरको भव्य रूप-चन्द्रिकासे पुलकित कर रहे थे।

देशके बड़े-बड़े धनी-मानी सज्जन उन्हें देखने आए और खूब खुशी प्रदर्शित करते हुए कह गए—'देखिए न, हम लोग बाहर जा रहे हैं। वापस आनेपर अपने राज-कुटुम्बोंके साथ आपका परिचय करा देंगे। बहुत खुशी हुई आपको और आपके कामको देखकर। अच्छा, अब चलें, नमस्कार!'

'मेरी प्यारी जोन! दुलारी एन्तोने! अब हमारा राज-कुटुम्बोंसे परिचय होगा। हम लोग धन्य बनेंगे, सुखी होंगे।' शिल्पीके ऐसे सुखोद्गारके बीच एक प्रतिच्छाया दिखाई पड़ी और यह सुनाई पड़ा—'बहुत हुआ, ऐसा पागलपन!'

× × ×

वह था कलाकारका पूँजीपति साझेदार। विलम्ब उसे पोसाता नहीं था। कलाकारकी ठंडी-धीमी प्रगति उसे असह्य थी। पुतलोंको आखरी रेखाएँ देना अभी बाक़ी था। कलाकार पूँजीपतिके पास गिड़गिड़ाती ज़बानसे कुछ और समयकी याचना कर रहा था; पर पूँजीपतिकी दृष्टि मैली बनी थी। उसके हाथमें एक लिफ़ाफ़ा था। उसने लिफ़ाफ़ा दिखाते हुए कहा—'मेरे पैसे वसूल करनेका तरीक़ा देखो इसमें है।' वह पत्र था अग्निके बीमेकी पालीसी। उसको देखते ही कलाकारको भय हुआ। पूँजीपति साझेदारका गुप्त आशय वह समझ गया। बोला—'नहीं, नहीं, ओ पागल! ऐसा मत करना। तेरे पैर पकड़ता हूँ।'

इतनेमें ही पूँजीपति साझेदारने कागज़का एक टुकड़ा जलाया और कलाकार उसको रोके, तब तक कुमारी जोनकी मूर्त्तिपर आग दिखाई देने लगी। आगमें पिघलते उन पुतलोंके सिर एकके बाद एक गुम होने लगे। पागलकी तरह हाथ-पाँव पीटता हुआ कलाकार उन सबको बचाने—आग बुझानेके लिए दौड़ने लगा। पर पूँजीपति अपनी पूरा ताक़त लगाकर उसे द्वारकी ओर धकेल रहा था। अन्ततः कुछ क्षण बाद कलाकारको जला हुआ, बेहोश और ज़मींदोस्त पड़ा छोड़कर पूँजीपति बाहर निकला और शायद कलाकार अपनी मददके लिए किसीको बुलाए, इस खयालसे द्वार बाहरसे बन्दकर चला गया।

कुछ समय बाद अपनी बारह वर्षकी सृजित कला-सन्ततिके भस्मसात अवशेषमें से कलाकार भी उठा - ज़िन्दा, हाँ ज़िन्दा; पर प्रेतदेहके रूपमें। उसके हाथकी जली हुई अंगुलियाँ अब फिरसे मोमके पिंडको नहीं पकड़ सकेंगी। अग्निकी जीभोंने उसके मुखपर से सारी मानवताको चाट लिया था और उसके स्थानमें मढ़ दी थी मृत्युकी कुरूपता। वह उठा और चला फिर अपने प्यारे बाल-बच्चोंको ज़िन्दा जला देनेवाले पूँजीपतिके पास सहायता माँगने। परन्तु सहायताके बदले उसे मिला अपमान और धक्के। पूँजीपतिके घरसे धक्के खा वह आ रास्तेके फुटपाथपर, और तब उसके हृदयने प्रतिशोधकी पकड़ी। अपनी कला-मूर्त्तियोंका नरमेध करनेवाले इस पूँजीपतिकी मूर्त्तिमें उसने देखा सारे समाजका बीभत्स चि 'अपने मृत बच्चोंको मैं इसी समाजसे वापस लूँगा।' निश्चयके साथ उसने समुद्रके उस पार एक विदेशकी राह ली।

अपने भयावने चेहरेपर मोम भरकर उसे उसने जैसा ही बना लिया है। उसके जले हुए हाथ अब करामात करनेके लिए असमर्थ थे, फिर भी अपने जले बच्चोंको एकके बाद एक करके जीवित करके ही वह चैनसे सकता था। 'दुनिया जिसको खा गई है, उसको उसे देना ही होगा।' यह उसका निश्चय था।

× ×

शहरमें एकके बाद एक सुन्दरियोंकी आत्महत्या शुरू और हवालातमें से प्रत्येक सन्देहात्मक शवकी चोरी होती क़द्दावर जवान और भव्य वृद्धोंकी भी कईएक आत्महत्या और उनके ग़ायब होते शवोंने सारे शहरको आश्चर्यमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। लोग भयभीत हो गए और पुलिसकी तो अक़्ल ही गुम हो गई।

पर दरअसल वे आत्महत्याएँ नहीं थीं, मोमके पुतलोंका संग्रह-स्थान नए सिरेसे बन रहा था। अपनी भस्मीभूत आकृतियोंकी प्रतिकृति कलाकारने जिस-जिस मनुष्यके मुखपर देखी, उस-उसको वह पुलिस-थानेसे चुरा लाया। उन्हें खौलते हुए पानीके हौजमें डुबोकर उनके चेहरोंपर उसने गरमागरम मोमको सजा दिया। इस तरह उसने कुमारी जोन, भयानक महापुरुष वाल्तेयर इत्यादि अपने ऐतिहासिक पात्रोंको—अपने समग्र प्यारे आत्मजनोंको—पुनः जीवित कर लिया। सबसे अखीरमें उसने मोमसे ही गढ़ दिया उस पूँजीपतिको भी। अब बाक़ी रह गई थी सिर्फ़ एक हतभागिनी रानी एन्तोने, जिसके लिए कलाकारके नेत्र खोज रहे थे इस दुनियामें एन्तोनेके किसी जीवित अवतारको।

'एन्तोने, मेरी एन्तोने, तू मुझे मिल गई है। घबराना मत, मैं तुझे चिर-यौवनकी भेंट दूँगा। तू कदापि नहीं बदली जायगी। दुनिया तेरे रूप-लावण्यकी सैकड़ों वर्षों तक पूजा करेगी, ओ मेरी प्यारी एन्तोने!' ये शब्द एक दिन उस कलाकारके संग्रह-स्थानके भीतर रखे हुए मानव-शवोंकी सृष्टिके बीच रातको गूँज उठे। कलाकारके बाहुपाशमें थी उस समय एक चिर-यौवना! शिल्पीका बनावटी मुख खुल गया था, उसका भयावना चेहरा चमक रहा था और उखड़ी हुई ज़बानमें वह उस युवतीसे कह रहा था – 'मेरी यह दशा? मेरी सन्तानकी यह हालत? मेरे बारह वर्षोंके कठिन परिश्रमकी यह हालत? सबका जिम्मेदार कौन है? देख! देख! देख!'...और आवेशमें आगे बढ़कर उसने एक बड़ा बक्स खोला। उसमें से आँखें फाड़कर देख रहा था कलाकारका वही पूँजीपति साझेदार!

बक्सको बन्दकर प्रेतमुख शिल्पीने उस सुन्दरीको नरमेध-कुण्डके किनारे पड़ी एक मेज़पर नग्न करके लिटा दिया। फिर उसने बिजलीका यन्त्र चालू किया और देखते-ही-देखते हौजका पानी खौल उठा। दूसरी ओर मोम भी उबलने लगा। जीवित मानव-देहको जैसीकी तैसी बिना कुम्हलाए बनाए रखनेके लिए कलाकारने अभी इन्जेक्शनकी एक पिचकारी भरी ही थी कि छुपी पुलिस आ पहुँची। कलाकारके अन्तिम क्षण पागल हो उठे। इसी समय एक मर्मभेदी चीत्कारके साथ वह खौलते हुए हौजमें जा गिरा और उबलने लगा! पुलिस आँखें फाड़कर देखती हो रह गई। दर्शकोंने खूब तालियाँ पीटीं।

× × ×

यह था 'मोमके पुतलोंके संग्रह-स्थानका रहस्य' नामक रोमांचकारी और हृदयद्रावक चित्रपट। उसके प्रत्येक प्रदर्शनके अन्तमें ऐसी लाखों-करोड़ों तालियाँ पीटी गई होंगी। लेकिन ये तालियाँ किस लिए? किस आनन्दसे? जासूसी 'स्टन्ट'को पचाकर विकृत बनी हुई लोकदृष्टि इतने बड़े ध्वंसके पीछे छिपी हुई कलाकारकी करुणा भला कैसे देख सकेगी? बस, कलाकारने जो दारुण नरमेधकी सृष्टि की थी, उसके लिए वह पकड़ा गया। शाबाश छुपी पुलीसको! यही है न उसकी समझ?

पर कलाकारके मानसको ऐसा विकृत करनेवाले उस शिल्प-मेधका समाजने क्या हिसाब चुकाया है? उसकी सन्तानको जिसने ज़िन्दा ही जला दिया, कलाकारको जीवित अवस्थामें ही जिसने पिशाच-स्वरूप बना दिया, उस लोलुपताको किस छुपी पुलिसने गिरफ़्तार किया? किसी अद्भुत कला-विधायकका जनताके अन्तरकी गहराईके मंथनके लिए बनाया हुआ यह चित्रपट आखिर जासूसी दिमाग़की विजय प्रदर्शित करके लोगोंको झूठे हर्षनादके साथ ही तो खत्म हुआ न?

अनु०—श्री रमणीक मेघाणी

जीवन और विज्ञान

पं० जवाहरलाल नेहरू

'विज्ञान हमारे आजके जीवनका मूलाधार और ताना-बाना है। इसके बिना या तो हम विनष्ट हो जायँगे या फिर बर्बर-युगमें चले जायँगे। विज्ञानका मतलब वे सहस्रों प्रयोग नहीं हैं, जो हम आज देख रहे हैं; बल्कि इनसे अधिक उसका अर्थ है जीवनकी सभी समस्याओंके प्रति तर्क-संगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण। पश्चिममें विज्ञानने बहुत उन्नति की है और कई देशोंमें रहन-सहनके स्टैंडर्डको असाधारण रूपसे ऊँचा उठा दिया है। पर दूसरी ओर हम देखते हैं कि यही विज्ञान युगकी प्रमुख समस्याओंको हल न कर अपनी समस्त विभीषिकाके साथ संसारका विनाश कर रहा है। यदि विज्ञान मानव-जीवनके राजनीतिक और अर्थनीतिक क्षेत्रों तथा अन्यान्य प्रचेष्टाओं तक नहीं फैला है, तो वह स्वयं अपना नाश कर रहा है। पर विज्ञान आजकी अधिकांश प्रमुख समस्याओंको हलकर समूची मानवताके कल्याण तथा उन्नतिके हालात पैदा कर सकता है।' ('साइंस एण्ड कल्चर')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण भट्टकी आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

तृतीय उच्छ्वास

निपुणिका आँगनके बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी सखी बनकर मैं जब बाहर आया, तो हंसके समान धवल-वर्णा, ज्योत्स्नासे भरी हुई धरतीको देखकर चित्त एक अननुभूत आनन्दसे भर गया। मैंने सोचा कि जब भगवान त्रिलोचनके उत्तमांगसे झरनेवाली गंगाकी धारा समुद्रको भर रही होगी, तो कुछ ऐसी ही शोभा उस समय भी हुई होगी। चन्द्रमा निश्चय ही देरसे आकाशपर विचर रहा था। उदय-कालमें जो एक लालिमा रहा करती है, उसका कहीं कोई चिह्न नहीं रह गया था। इन्द्रका ऐरावत गज जब स्वर्मन्दाकिनीमें अवगाहन करके निकलता होगा, तो उसके श्वेत कुम्भस्थलपर से सिन्दूर धुल जानेके बाद ऐसी ही शोभा होती होगी। सारा आकाश चाँदनीसे इस प्रकार भर गया था, जैसे किसी अज्ञात शिल्पीके सुधा-विलेपन-चूर्णका भाण्डार ही उलट गया हो। ताराओंका टिमटिमाना देखकर मुझे ऐसा लगा कि वे झीम रही हैं और जिस-किसी क्षण लुढ़ककर सो पड़ेंगी। मृदु-मन्द सान्ध्य समीरने गृह-धेनुओंपर अपना प्रभाव डाल दिया था, क्योंकि उसके स्पर्शसे इन जीवोंमें एक अलस-निद्राका भाव आ गया था। उनके रोमन्थन-व्यस्त जबड़े धीरे-धीरे शिथिल हो रहे थे और आँखोंकी बरौनियाँ जुड़ती जा रही थीं। मुझे सबसे दयनीय चन्द्रमामें का वह मृग लगा। ऐसा जान पड़ता था कि वह अभागा प्यासका मारा इस अमृत-सरोवरमें आया था और अब अमृत-पंकमें धँसा हुआ कर्त्तव्यमूढ़ बना जबदा-सा खड़ा था![1] क्षण-भरके लिए मेरे मनमें आया कि क्या मैं भी किसी अमृत-पंकमें धँसने जा रहा हूँ! परन्तु अब सोचना बेकार था। निपुणिकाके एक इशारेपर मैं अनुचरीकी भाँति उसके पीछे हो लिया। न-जाने क्यों मुझे ऐसा लग रहा था कि नीचेसे ऊपर तक सारी प्रकृतिमें एक अवश अवसादकी जड़िमा छाई हुई है। निपुणिकाने अत्यन्त संक्षेपमें मुझे मेरा कर्त्तव्य बताया था। उसने अपने पक्षके औचित्य-स्थापनकी परवा बिल्कुल न की। उसकी बातचीतमें मेरी अवज्ञा कहीं भी प्रकट नहीं हुई; पर इतना तो मुझे शुरूसे अन्त तक लगा कि वह मुझे इस कार्य-साधनमें निमित्त-मात्र मानती है, उसके असली सहायक तो महावराह हैं। उसके संकल्पकी सचाईका प्रमाण उसकी बड़ी-बड़ी अश्रुपूर्ण आँखें थीं। मुझे उसने बताया था कि छोटा राजकुल प्रतापी मौखरियोंका अन्तिम चिह्न है। जबसे महा-राजाधिराज श्री हर्षवर्धनने अपने बहनोईका राज्य भी अपनी ही छत्रच्छायामें ले लिया है, तबसे उक्त बहनोईके एक दूरके सम्बन्धीको—जो मौखरि-सिंहासनका उत्तराधिकारी हो सकता था—इस नगरमें आश्रय मिला है। इधरकी जनतामें अब भी मौखरि-वंशके प्रति प्रबल सम्मान-भाव वर्त्तमान है। मौखरि-वंशका यह सम्बन्धी थोड़े ही दिनोंसे स्थाण्वीश्वरमें रह रहा है। इसके अन्तःपुरको ही यहाँ छोटा राजकुल कहा जाता है। निपुणिकाने इस छोटे राजकुलके विभवको ज़रा विस्तारपूर्वक ही समझाया और फिर वहाँकी कलंक-वार्ताको भी उसी विस्तारके साथ व्यक्त किया। कान्यकुब्जकी रक्षणशील जनतामें मौख-रियोंके प्रति आदर और संभ्रमका भाव है, चतुर महाराज हर्षवर्धन इस बातको जानते हैं। इसीलिए मौखरि-वंशका यह दावेदार स्थाण्वीश्वरमें 'महाराज' कहकर ही पुकारा जाता है। उसे कोई अधिकार नहीं दिया गया है; पर सम्पत्ति दी गई है। इसीलिए उसमें एक अनुत्तरदायी भोग-लिप्सा बढ़ गई है, जो अब अत्यन्त अनाचारका रूप धारण कर चुकी है। महाराज-धिराजको यह बात मालूम है; पर जनतामें अब भी मौखरि-वंशका मान है, इसलिए साहसपूर्वक इस छोटे महाराजको हटा नहीं सकते। इसी छोटे महाराजके घरमें आज एक महीनेसे एक अत्यन्त साध्वी राजकुमारी उसकी इच्छाके विरुद्ध आबद्ध है। निपुणिकाने यद्यपि यह कहानी बहुत संक्षेपमें बताई, पर उस राजबालाकी बात आते ही वह अपनेको रोक नहीं सकी। उसने उसकी एक-एक क्रियाका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया और अन्तमें डबडबाई आँखोंसे कहा—'भट्ट, यह अशोक-वनकी सीता है, तुम उसका उद्धार करके अपना जीवन सार्थक करो।' जीवन सार्थक करनेका साधन निपुणिकाने स्वयं दे दिया था। वह एक छोटा-सा विष-दिग्ध छुरा था, जो कंचुकीमें आसानीसे छिपाया जा सकता था। इसे देते समय उसने ज़रा हँसकर कहा था—'इसकी कोई आवश्यकता नहीं होगी, भट्ट, पर रख लेनेमें हर्ज ही क्या है।' मैं समझ गया, प्राण लेना या देना ज़रूरी नहीं है; पर लेना या देना पड़ ही जाय, तो नुक़सान क्या है!! मैंने निपुणिकाकी ओर हँसकर देखा। वह भी हँसने लगी।

हम दोनों चुपचाप चले जा रहे थे। मैं स्त्री-वेशमें कुछ बदल गया था, क्योंकि एक अकारण भीरुता रह-रहकर

१. कादम्बरी, कथामुखके संध्या-वर्णनसे तुलनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

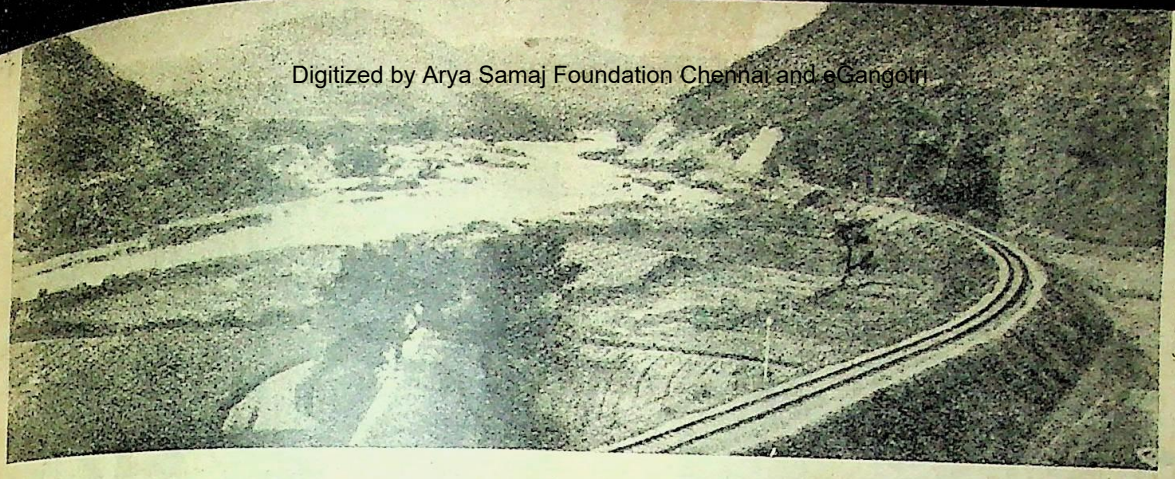

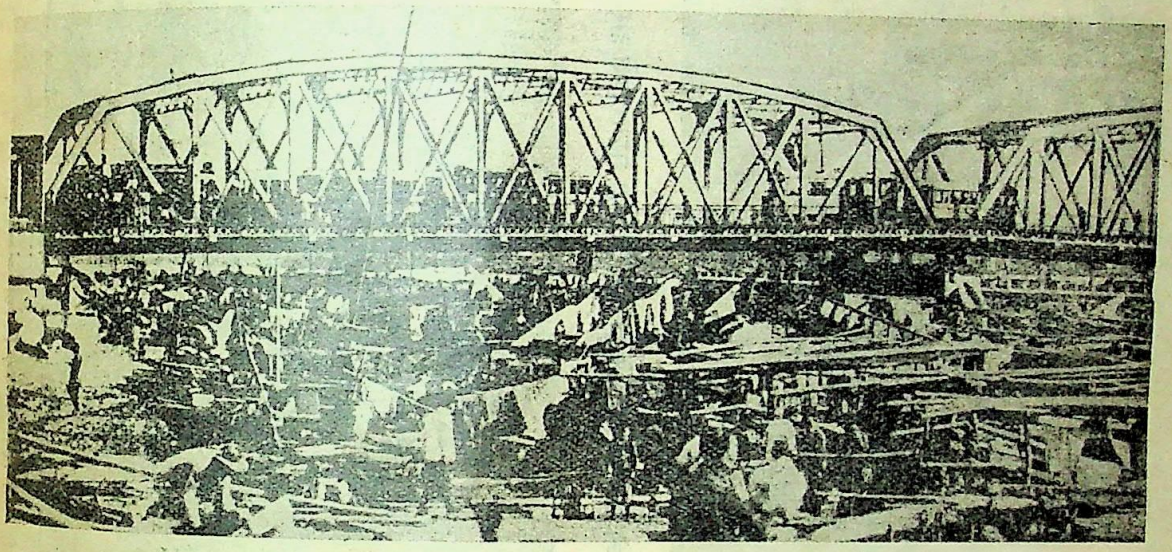

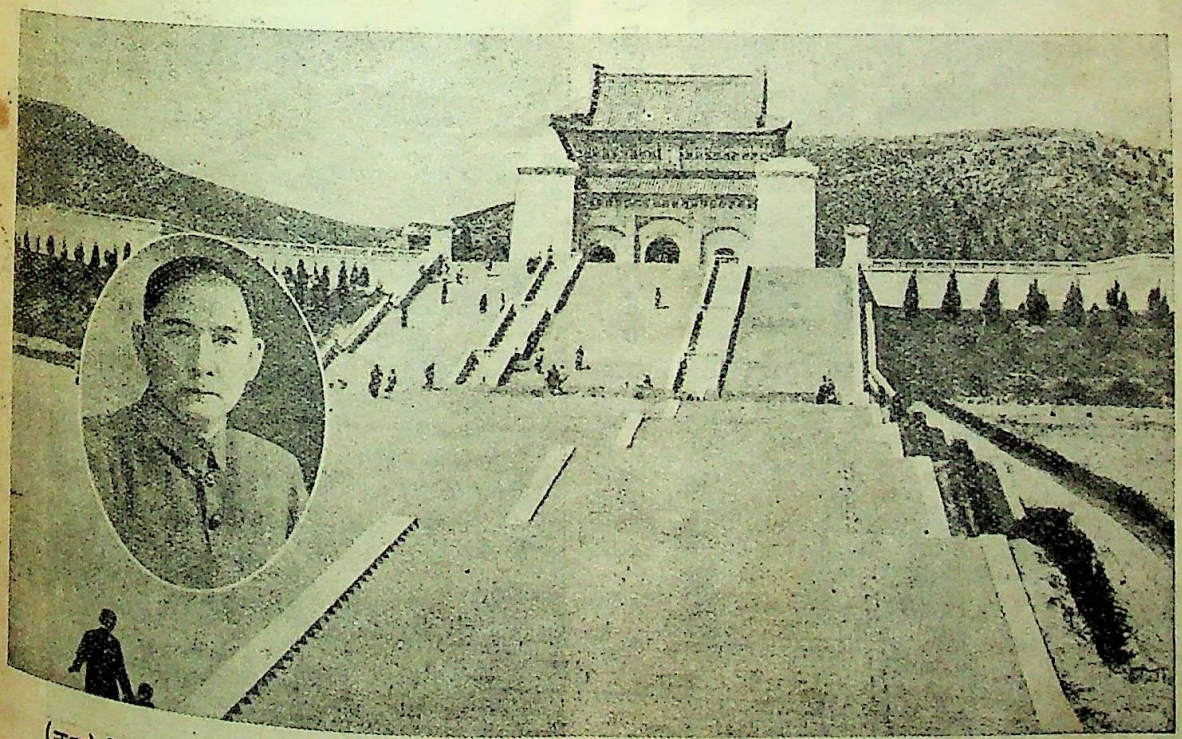

(ऊपर) केन्द्रीय चीनमें यांग्सीकी तराईका उपजाऊ मैदान। (बीचमें) शंघाईकी अन्तर्राष्ट्रीय बस्तीका प्रसिद्ध गार्डनब्रिज। (नीचे) नानकिंगके बाहर पहाड़ियोंमें बने डा० सुनयात सेनकी समाधि।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

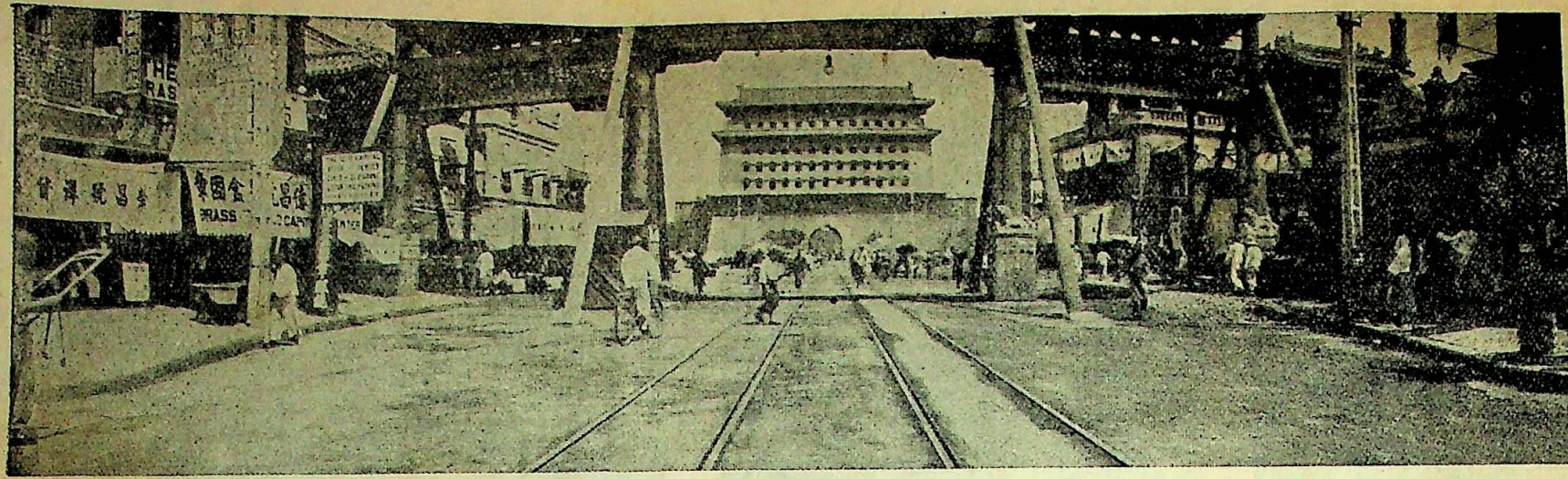

चीनकी पुरानी राजधानी पीपिग (जो अब जापानियोंके कब्ज़ेमें है) का मुख्य प्रवेश-द्वार ।

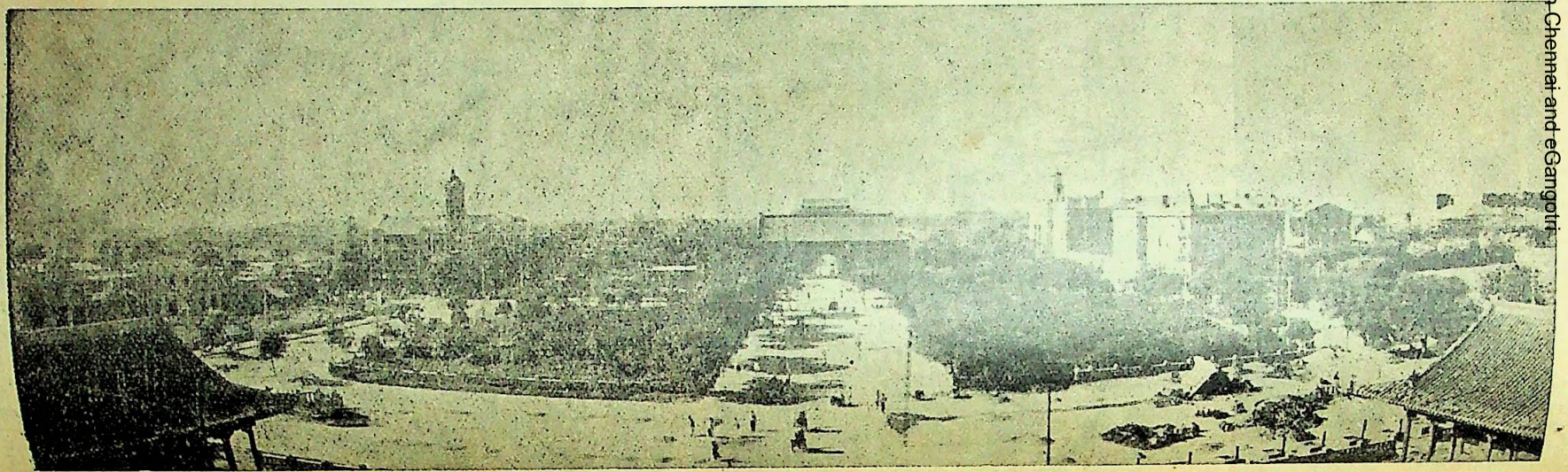

पीपिगके बाहरी हिस्सेमें स्थित सुरम्य विदेशी दूतावास ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे सचेत कर देती थी। कसे हुए कंचुकबन्ध मानो किसी अनजाने महागौरवके निरोध-यन्त्र बने हुए थे और आगुल्फ-लम्बे उत्तरीयने किसी अननुभूत सौन्दर्य-लक्ष्मीको सारे बाह्य-जगत्से अलग छिपा रखा था। राजमार्ग शान्त ही था, केवल दूरसे किसी अविपुल जन-समारोहकी ध्वनि सुनाई दे रही थी। निपुणिकाने घूमकर मेरी ओर देखा और हँसकर पुकारा—'सुदक्षिणे!' मैं ज़रा चौंककर उसकी ओर देखने लगा। दक्ष भट्टका यह सुकुमार संस्करण प्रथम सम्बोधनमें ही स्पष्ट हो गया। मैंने ज़रा मुस्कुराकर क्षीण स्वरमें उत्तर दिया—'हला निपुणिके!' निपुणिकाकी आँखें आनन्दातिरेकसे विकच पुण्डरीकके समान खिल गईं। स्मयमान मुखमण्डलके मृदु संभारके कारण ग्रीवा ईषद् वक्र हो गई और उसने उल्लास-गद्गद् स्वरमें साधुवाद दिया—'अभिनय उत्तम कोटिका हुआ है!' मैंने संकोच और व्रीड़ाकी हँसी हँसी। मैं इन बातोंमें सिद्धहस्त था। निपुणिका इस प्रकार चलने लगी, जैसे उड़ रही हो। बोली—'यह ध्वनि मदनोद्यानसे आ रही है, सुदक्षिणा! आज चैत्र शुक्ल त्रयोदशी है। आज मदन-पूजाका दिन है। आज कुमारियोंने व्रत किया होगा, कामदेवकी पूजा की होगी और वरदानमें अपने अभिलषित वरोंको माँग लिया होगा। कान्यकुब्जमें यह उत्सव बड़े आडम्बरके साथ मनाया जाता है। आज मदनोद्यानमें कुमारियोंने फूल चुने होंगे, हार गूँथे होंगे, कुंकुम और अबीरका तिलक लगाया होगा और लाक्षा रससे भूर्जपत्रपर अपने-अपने अभिलषित वरोंकी प्रतिमा बनाकर चुपकेसे भगवान कुसुम-सायकको भेंट किया होगा।[२] आज अन्तःपुरमें बड़ा धूमधाम होगा। अशोकमें दोहद उत्पन्न करनेके लिए अन्तःपुरिकाएँ प्रमोद-वनमें चली गई होंगी। वहाँ आज मदिरा और मृदंगका उत्सव चल रहा होगा। भट्ट, नहीं, सुदक्षिणे, आज युवतियोंके आनन्द-केलिका उत्सव है। इस राजबालाके उद्धारका इससे अधिक उपयुक्त अवसर दूसरा न मिलेगा। तुम्हारे अन्दर कुछ झिझक देख रही हूँ। ना हला, यह झिझक ठीक नहीं है!'

मैं चुप सुनता रहा। झिझक तो मेरे अन्दर नहीं थी; पर यह संशय ज़रूर था कि पहचान लिया जाऊँगा। ज़रा क्षीण कंठसे मैंने अभिनय-सा करते हुए कहा—'हला, लज्जा तो तरुणियोंका स्वाभाविक अलंकार है।' निपुणिकाने रस लेते हुए कहा—'होने दो न; पर उसे अस्वाभाविक बनाना तो ठीक नहीं। नहीं हला, आज लज्जा-संकोचको दूर रख। आज तरुणियोंके उन्मत्त-विलासकी तिथि है।' मैं समझ गया। जहाँसे संशय था, वहाँ आज उन्माद होगा। चन्द्रमा अब धीरे-धीरे ऊपर आ गया था। जो-कुछ भी अन्धकार है, उसे दूर कर देनेको कृतसंल्प था। हम राजकुलके द्वार-देशपर आ गए।

निपुणिकाने बार-बार छोटे राजकुलकी बात बताई थी। मुझे उस समय राजकुलकी अपेक्षा 'छोटा' शब्द ही ज़्यादा मुखर जान पड़ा था। इसीलिए मैंने मन-ही-मन एक छोटे अन्तःपुरकी कल्पना की थी। पर द्वारपर आते ही मुझे अपनी धारणा बदल देनी पड़ी। द्वारपर से विस्तीर्ण राजकुलकी वृक्ष-वाटिका दूर तक फैली हुई दिखाई दे रही थी। बाहरकी ओर अशोक, पुन्नाग, अरिष्ट, शिरीष आदिके छायादार वृक्ष लगे हुए थे। उनकी नील सघन पत्र-राशिपर ज्योत्स्ना बिछला रही थी। मेरे सामने लौहागल-युक्त विराट कपाट और सशस्त्र रक्षक न होते, तो मैंने उस चाँदनी रातमें इस विशाल राजकुलको एक घना जंगल ही समझा होता। उस समय मुझे ठीक मालूम नहीं हो सका कि इस राजकुलका बहिःप्रकोष्ठ किधर है। केवल एक वंकिम मार्गसे निकल जानेके कारण इतना ही अनुमान कर सका कि दाहिनी ओर पुरुषोंका बहिःप्रकोष्ठ होगा। द्वारी निपुणिकाको पहचानता था, हमारे भीतर जानेमें कोई बाधा नहीं हुई। निपुणिकाने ज़रा हँसके द्वारीको ताम्बूल-वीटिका देते हुए कहा—'नाग, क्या खबर है?' नागने हँसते हुए कहा—'हुड़दंग है, खबर क्या है?' हम दोनों भीतर चले गए। वाटिकाकी वीथियाँ पर्याप्त चौड़ी थीं; पर दोनों ओरके सघन वृक्षोंकी छायाके कारण अन्धकार दिखता था। थोड़ा चक्कर काटकर हम अन्तःपुरके द्वारपर आए। वहाँ द्वारके एक पार्श्वमें एक द्वार-रक्षिणी स्त्री बैठी हुई थी। उसके हाथमें एक नंगी तलवार थी और बाईं ओर एक क्षुद्र कृपाण कोषबद्ध अवस्थामें झूल रहा था। वह स्त्री बहुत मज़बूत तो नहीं थी; पर उसका वेश देखकर मुझे ऐसा लगा, मानो विषधरोंसे लिपटी हुई कोई चन्दन-लता हो। क्षण-भरके लिए मेरा कलेजा धड़क उठा; पर ज़रा समीप जाते ही रहस्य खुल गया। कठोर वेशने उसकी स्वाभाविक कोमलताको और भी निखार दिया था। यद्यपि उसका रंग काला था; पर एक मोहक दीप्ति उससे साफ़ झलक जाती थी। वह एक जीवित नीलमणिकी सुकुमार पुत्तलिका हो जान पड़ती थी। वैसे उसका सारा शरीर आगुल्फ-लम्बे नील कंचुकसे ढँका हुआ था और

२. इस प्रकारके एक उत्सवका कुछ इससे मिलता-जुलता वर्णन भवभूतिके 'मालती-माधव' नामक प्रकरणमें है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तकपर एक लाल उत्तरीय बँधा हुआ था। पर इससे उसकी शोभामें लेश-मात्र भी कमी नहीं आई थी, अधिकन्तु वह संध्या समयकी लाल सूर्य-किरणों द्वारा आच्छादित नील-कमलकी वनस्थलीकी भाँति अधिक रमणीय हो गई थी। धवल वर्णा ज्योत्स्ना एक ओर वृक्ष-वाटिकाकी घन-चिक्कन नीलिमाको उज्ज्वलित कर रही थी और दूसरी ओर इस द्वार-रक्षिणीके कानमें के दन्तपत्र उसके चिक्कन कपोलमण्डलको उद्भासित कर रहे थे। उसके पैरोंमें लगा हुआ घन अलक्तक-रस (महावर) दूरसे ही दिख रहा था और क्षण-भरके लिए मैं सोचने लगा कि क्या तुरन्त ही महिषासुरकी छातीपर नृत्य करके कराल कृपाण-धारिणी महादुर्गा तो नहीं आ गई हैं। उसका भीषण-मनोहर रूप मुझे शक्तिकी अपेक्षा आनन्दित अधिक कर रहा था। फिर भी शंका तो मनमें थी ही। मैंने उत्तरीयको सीमन्तके बहुत नीचे सरका लिया और चकित मृगीके अभिनयके साथ निपुणिकाके पीछे छिप गया। वस्तुतः वह पिए हुई थी। यद्यपि उसके रूपकी मनोहारिता और मलिनताने मुझे भगवान् त्रिलोचनकी नयनाग्निसे भस्मीभूत मदन देवताके धूमसे मलिन रतिकी याद दिला दी थी ; पर उसकी आँखोंके लाल कोए और अलस जड़ भ्रू-लताएँ बता रही थीं कि उनपर मदिराने पूरा प्रभाव डाल दिया है। उसने एक बार कुछ स्खलित वाणीमें निपुणिकासे पूछा और फिर शिथिल भावसे पड़ रही। फिर तो हम दोनों असली अन्तःपुरके भीतर प्रविष्ट हो गए। यहाँ भी कुछ दूर तक बड़े-बड़े वृक्ष थे ; पर आगे चलकर कुब्जक, मल्लिका, कुरण्टक, नवमालिका आदिके गुल्म थे। यद्यपि चाँदनीमें सबकुछ स्पष्ट नहीं दिखाई देता था ; पर गन्धसे तो स्पष्ट ही पता चल जाता था कि बकुल की वीथी कहाँ है, सिन्धुवारकी पाली किस ओर है और चम्पकोंके गुल्म किधर लगे हुए हैं। विविध प्रकारके पुष्पोंके सम्मिलित सौरभसे एक प्रकारका उत्सुकी भाव चित्तको पर्याकुल कर रहा था। दूरसे मृदंग, काहल और शंखका नाद सुनाई दे रहा था। प्रेक्षादोलाओंकी घंटा-ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई दे रही थी। मैंने बिना बताए ही समझ लिया कि मदनोत्सव अपने पूरे वेगपर है।

हम अभी पुष्प-गुल्मोंकी वीथीमें ही थे कि दो परिचारिकाओंको द्विपदी-खण्डका गान करते अपनी ओर आते देखा। उनके हाथोंमें आमकी मंजरी थी और वे उन्मत्त भावसे नृत्य कर रही थीं। निस्सन्देह वे मधु पानसे मत्त थीं, क्योंकि वे नारी-सुलभ मर्यादा-ज्ञानको भूल चुकी थीं। नाचते-नाचते उनके केशपाश शिथिल हो गए थे, कवरी (जूड़े)को बाँधनेवाली मालती-माला न-जाने कहाँ गिर गई थी, पैरोंके नूपुर पटकन-झटकनके वेगको न सँभाल सकनेके कारण दुगुने ज़ोरसे झनझना उठे थे—उनके भीतर और बाहर उन्मत्त आमोदकी आँधी बह रही थी।[3] उनमें से एक निपुणिकाकी ओर बढ़ी। जान पड़ता था, उसका नाम भी निपुणिका ही होगा, क्योंकि उसने 'मित्तिया' कहकर निपुणिकाको पुकारा था। ज़रा नज़दीक आकर उसने निपुणिकाको पुकारकर कहा—'मित्तिया, आज तो तेरा ही जयजयकार है। महाराजने घोषणा की है कि···जो परिचारिका नई बहूको प्रमोद-वनके उत्सवमें ले आएगी, उसे अपना रत्नहार उपहार देंगे। तो जा न सखी, दूसरी ऐसी बड़भागी कौन है, जो नई बहूको घरसे बाहर निकाल सके। वे ता पूजामें लगी हैं। बहुत देखा है बाबा, इस राजकुलकी ऐसी पुजारिनें कई गंडा आ चुकी हैं। अरे भला, यह नई चिड़िया कहाँसे फँसा लाई, मित्तिया!' इतना कहकर वह मेरी ओर मुँड़ी। निपुणिकाने मेरे कानमें धीरेसे कहा—'क्षीबा है?' मैं मतलब समझ गया। 'क्षीबा' कान्यकुब्जकी बोलीमें मदिरा पी हुई स्त्रीको कहते हैं। निपुणिकाने मुझे साहस बँधानेके लिए यह बात कही थी। इतनेमें वह स्त्री मेरे पास आ गई। मैंने समझा, अबकी भेद खुला चाहता है। पर उसके मुखसे ऐसी गन्ध निकल रही थी कि मेरा मुँह बरबस दूसरी ओर फिर गया। निपुणिकाको अवसर मिल गया। बोली—'उसे न छेड़ मित्तिया, गाँवसे नई आई है, अभी यहाँकी रीति-नीति नहीं जानती।' मित्तिया ज़ोरसे हँस पड़ी। 'दो दिनमें सीख जाओगी लली, न-जाने कितनी आँखोंपर नाचती फिरोगी!' परन्तु उसे ज़्यादा फ़ुरसत नहीं थी। अपनी सखीके साथ नाचती हुई वह फिर एक ओर चली गई। मैंने शान्तिकी साँस ली। निपुणिकाने साहस बँधाते हुए कहा—'सब क्षीबा हैं, हला!'

उस समय दक्षिण-समीर मन्द गतिसे बह रहा था। सारी वाटिकाके वृक्ष-लता-गुल्म सभी झूम रहे थे। उनकी मूँगे-जैसी लाल-लाल किसलय-सम्पत्तिने उनकी सारी शोभाको लाल कर दिया था। उनपर गूँजते हुए भौरोंकी आवाज़ स्खलित वर्णोंके समान सुनाई दे रही थी और मलयानिलकी मृदु-मन्द लहरोंसे आहत होकर वे सचमुच ही झूम रहे जान पड़ते थे। वसन्त मधुमासके मधु-पानसे वे भी मत्त थे। अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ ही नहीं, कुसुम-लताएँ भी क्षीबा बनी हुई थीं।[4]

३. तुल०, रत्नावली, प्रथम अंक।
४. तुल०, रत्नावली, प्रथम अंक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिकाकी बातपर रहस्यकी टिप्पणी करते हुए कहा—'सब क्षीबा हैं, निउनिया !' निउनियाने मुँहपर अँगुलि रखके इशारा किया—चुप ! और झुककर एक वृद्धको अभिवादन किया। सारी अन्तःपुरकी उन्मत्त विलास-लीलाके विरुद्ध यह वृद्ध अपनी समस्त आयुका अनुभव लिए गम्भीर खड़ा था। उसके समस्त इन्द्रिय शिथिल हो गए थे। लम्बे श्वेत कंचुकसे उसका सारा शरीर ढँका हुआ था। सिरपर और कानमें के समस्त केश दूधके समान शुक्ल हो गए थे। यह कंचुकी था। इसीको देखकर मुझे चुप होनेका इशारा किया गया था। वृद्धको कुछ कहनेका अवसर दिए बिना ही निपुणिका बोल उठी—'बाबसे नई आई है अज्ज, कोई रीति-नीति नहीं जानती।' फिर मुझे डाँटते हुए कहा—'प्रणाम कर सुदक्षिणा ! आर्य बाभ्रव्य हैं। अन्तःपुरिकाओंके पिताके समान पूज्य हैं।' मैंने धरतीपर जानुपात करते हुए प्रणाम किया। बाभ्रव्यसे सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद पाकर हम दोनों विराट अट्टालिकामें धँस गए।

जिस नई बहूको प्रमोद-वनमें ले जानेके लिए छोटे महाराजने रत्नहारका पुरस्कार घोषित किया था, वह वही राजकन्या थी, जिसके उद्धारके लिए मैं अन्तःपुरमें चोरकी भाँति घुसा था। निपुणिकाने फुसफुसाते हुए मेरे कानमें कहा—'महावराह निश्चय ही आज प्रसन्न हैं, नहीं तो छोटे महाराज यह घोषणा क्यों करते ?' फिर नाना अलिन्दों और कुट्टिम-वीथियोंसे अग्रसर होते हुए हम उस राजकन्याके गृहमें गए। उस समय वह सचमुच ही पूजाकी वेदीपर बैठी हुई थी। उसकी पूजामें किसी प्रकारका विघ्न न हो, इसलिए निपुणिकाने मुझे चुपचाप एक ओर बैठनेका इशारा किया और स्वयं भी धीरेसे बैठ गई। बैठकर मैंने एक बार सारे गृहको ध्यानसे देखा। गृहके एक प्रान्तमें एक नातिदीर्घ शय्या पड़ी हुई थी, जिसके दोनों सिरोंपर दो उपधान रखे हुए थे। सारी शय्या दुग्ध-धवल प्रच्छटपट (चादर) से ढँकी हुई थी। शय्याके सिरहानेकी ओर कूर्च-स्थानपर महावराहकी एक भावपूर्ण मूर्त्ति पुष्पमाल्यसे विभूषित विराज रही थी। महावराहका विशाल दंष्ट्रा आकाशकी ओर इस प्रकार उठा हुआ था, मानो अभी वेगपूर्वक समुद्रसे बाहर उठा है, उसपर धरित्रीकी भीति-चकित मूर्त्ति बहुत ही मनोहारिणी दिख रही थी। महावराहकी आँखें ठीक प्रस्फुटित पद्मके समान दिख रही थीं और सारा शरीर उत्पल-पत्रके समान घन-चिक्कन नील वर्णका दिख रहा था। वस्तुतः वह सारी मूर्त्ति एक ही नील प्रस्तरको काटकर बनाई गई थी। मन ही मन मैंने जीवन्त नीलाचलके समान स्फूर्णित-वीर्य महावराहका ध्यान मन्त्रपाठ करते हुए प्रणाम किया।[५] इसी महावराहकी मूर्त्तिके नीचे इस अन्तःपुरकी 'नई बहू' और हमारी 'अशोक-वनकी सीता' ध्यानस्थ बैठी थी। उसकी बग़लमें एक वेदिका पर माल्य, चन्दन और अनेक प्रकारके उपलेपन रखे हुए थे। एक छोटी-सी स्फटिक पीठिकापर सुगन्धित सिक्थ-करण्डक (मोमबत्तीकी पिटारी) और सौगन्धिकपुटिका (इत्रदान) रखी हुई थी। ज़रा दूर हटके एक कांचन पात्रमें मातुलुंगका छाल और पानके अन्यान्य उपकरण रखे हुए थे। शय्याके पादाधानकी ओर चाँदीका पतद्ग्रह (पीकदान) रखा हुआ था। ऊपर दीवारमें हाथीदाँतकी खूँटियोंपर लाल कपड़ेमें लिपटी हुई एक वीणा रखी थी। दूसरी खूँटियाँ खाली पड़ी थीं, क्योंकि उनपर की विपंची उतरकर पूजापरायणा राजबालाकी गोदमें पड़ी हुई थी। दीवारकी दूसरी ओर श्वेत पट्ट लगे हुए थे, जो या तो हाथीदाँतके होंगे या वैसे ही किसी शुक्ल प्रस्तरसे बने होंगे। उनपर चित्र-फलक, तूलिका और रंगके डब्बे और भूर्जपत्रपर लिखी हुई एक पुस्तक रखी हुई थी। यह पुस्तक इस देशमें प्रचलित पोथियोंसे कुछ भिन्न थी। उसके पत्रे खुले हुए नहीं थे और पुट्ठे बँधे दिख रहे थे। एक अन्य नागदन्त (खूँटी) पर कुरण्टक-माला बड़ी सुकुमार भंगीमें लटकाई गई थी। शायद कुरण्टक-मालाका यह गुण कि वह बहुत देर तक सूखती नहीं, उसे यहाँ ले आनेमें समर्थ हुआ था।[६] गृहमें सामान बहुत थोड़े थे ; पर वह फिर भी अत्यन्त भरा-पुरा दिखता था।

इसी समय उस राजकन्याने वीणा बजाना शुरू किया। धीरे-धीरे वह अत्यन्त तन्मय हो गई। मैंने इस बार स्वाभाविक संकोच छोड़कर इस कमनीयताकी मूर्त्तिकी ओर देखा। उसको देखकर अत्यन्त पतित व्यक्तिके हृदयमें भी भक्ति हुए बिना नहीं रह सकती। उसके सारे शरीरसे स्वच्छ कान्ति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त धवल प्रभापुंजसे उसका शरीर एक प्रकार ढँका हुआ-सा ही जान पड़ता था, मानो वह स्फटिक गृहमें आबद्ध हो, या दुग्ध-सलिलमें निमग्न हो, या विमल चीनांशुकसे समावृत हो, या दर्पणमें प्रतिबिम्बित हो, या शरद्कालीन मेघपुंजमें अन्तरित चन्द्रकला हो। उसकी धवल कान्ति दर्शकके

५. तुल०, महावराहका ध्यान :—
ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुट-पद्म-लोचनः।
रसातलादुत्पल-पत्र-सन्निभः समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥

६. तुल०, वात्स्यायनके कामसूत्रका नागरिक गृह-वर्णन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयन-मार्गसे हृदयमें प्रविष्ट होकर समस्त कलुषको धवलित कर देती थी, मानो स्वर्मन्दाकिनीकी धवल धारा समस्त कलुष-कालिमाको क्षालन कर रही हो। मेरे मनमें बार-बार यह प्रश्न उठता रहा कि इतनी पवित्र रूप-राशि किस प्रकार इस कलुष धरित्रीमें सम्भव हुई? निश्चय ही यह धर्मके हृदयसे निकली हुई है। मानो विधाताने शंखसे खोदकर, मुक्तासे खींचकर मृणालसे सँवारकर, चन्द्रकिरणोंके कूचेकसे प्रक्षालितकर, सुधाचूर्णसे धोकर, रजत-रससे पोंछकर, कुटज कुन्द और सिन्धुवार पुष्पोंकी धवल कान्तिसे सजाकर ही उसका निर्माण किया था। अहा, यह कैसी अपूर्व पवित्रता है! यहाँ क्या मुनियोंकी ध्यान-सम्पत्ति ही पुंजीभूत होकर वर्त्तमान है, या रावणके स्पर्श-भयसे भागी हुई कैलास पर्वतकी शोभा ही स्त्री-निग्रह धारण करके विराज रही है, या बलरामकी दीप्ति ही उनकी मत्तावस्थामें उन्हें छोड़कर भाग आई है, या मन्दाकिनीकी धाराने ही यह पवित्र रूप ग्रहण किया है।[७] वह भक्ति-गद्गद् स्वरमें गान करती हुई वीणा बजा रही थी। मैंने ऐसी वीणा पहले कभी नहीं सुनी थी। आवाल्य अभिनय देखनेमें ही काट दिया। हाय, सच्ची भक्ति तो हमने कभी देखी ही नहीं। शूद्रकके मृच्छकटिकमें अभिनय करते समय मैंने एक बार वीणाको असमुद्दोत्पन्न रत्न कहा ज़रूर था; पर समझा तो आज ही। उस दिन हमने अपने वयस्योंसे विनोद करते हुए शूद्रकके उस श्लोकका उपहास किया था मुझे उस दिन यह समझमें नहीं आया था कि संकेत-स्थानमें प्रतीक्षा करके ढाढ़स बँधाने और अनुरक्त व्यक्तिका राग-वर्धन करनेके सिवा वह और कौन-सी बात है, जिसे शूद्रकने उत्कण्ठितको वयस्यता कहा है। उत्कण्ठित तो विरहातुरको ही कहते हैं और उसकी अनुगुणता तो राग-वर्धनमें ही समाप्त हो गई। मैंने उस दिन वह रहस्य नहीं समझा था। आज देखता हूँ कि सच्चा उत्कण्ठित क्या होता है। सचमुच ही वीणा असमुद्दोत्पन्न रत्न है। मैं शूद्रककी बातका रहस्य समझ रहा हूँ![८]

धीरे-धीरे वीणा बन्द हुई। प्रमाद-वनकी ओरके गवाक्षसे प्रमोद-वनके उत्सवका आभास मिल रहा था। नर्त्तकियोंका एक दल चर्चरी तालके साथ गान करता हुआ इसी ओर आता जान पड़ता था। उस सम्मिलित ध्वनिमें कैसी-कैसी बुभुक्षा थी, पिपासा थी और मानो भूख-प्यासकी कभी तृप्ति न होनेवाली छटपटाहट थी। ईषत् स्पष्ट ध्वनिमें दूरसे गान सुनाई दिया:—

इह पढमं महुमासो जणस्स हिअ आइँ कुणइ मिदुलाइँ
पच्चा विद्धइ कामो लद्धप्पसरेहि कुसुम बाणेहि॥[९]

और इसी राग-रुण गानकी पृष्ठभूमिमें हमारी 'अशोक-वनकी सीता'ने भक्तिकातर वाणीमें महावराहकी स्तुति की:—

जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाणकोट्याखिलविश्वमूर्तिना।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंभूर्भगवान् प्रसीदतु॥

फिर उसने अश्रुपूर्ण नयनोंसे एक बार महावराहकी ओर देखा। अत्यन्त धीर पद-संचारसे उसने अपने इष्टदेवकी परिक्रमा की और शय्याकी ओर अग्रसर हुई। शय्यापर बैठनेके थोड़ी देर बाद तक भी उसकी आँखें भक्तिकी मादकतासे मुक्त नहीं हुईं। कुछ देर बाद हम दोनोंकी ओर उसने देखा। अहा, दृष्टिमें इतनी पूतकारिता भी होती है! मानो वह दृष्टि पुण्य-रश्मियोंसे द्रष्टव्यको उद्भासित कर रही थी, तीर्थ-वारि-धारासे प्लावित कर रही थी, तपस्यासे पवित्र बना रही थी और सत्यके अन्तर्निहित तापसे हृदयके अशेष पाप-भावोंको भस्म कर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि वेदोंकी पवित्र वाणी विग्रहवती होकर मुझे आत्म ब्राह्मणत्वके वरण-योग्य बना रही है। आज मेरी प्रतिज्ञा सफल होगी क्या?

निपुणिकाने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और मैंने भी उसीका अनुकरण किया। राजकन्याने निपुणिकाकी ओर विश्वासपूर्वक देखा। निपुणिकाके लिए वह पार्वतीके समान वंदनीया थी और उसके लिए निपुणिका सखी और वयस्या समान दुःख-संगिनी। एक बार अपनी बड़ी-बड़ी स्नेह-भरी आँखोंसे मेरी ओर देखा। उस दृष्टिमें जिज्ञासाका भाव था। निपुणिकाने आगे जाकर बहुत धीरे-धीरे कुछ कहा। उसने मेरे विषयमें कुछ गोपन नहीं रखा; क्योंकि एक क्षणमें ही राजकन्याके नयनोंमें लज्जाका भाव उदय हुआ, उसके धवल मान कपोलोंपर लज्जाकी लालिमा दौड़ गई। वह क्षण-भरके लिए कुछ म्लान भी हो गई। उस समय मुझे अपने अनधिकार प्रवेशपर बड़ा क्षोभ हुआ; लेकिन निपुणिकाने क्या जाने क्या कहकर उसे सँभाल लिया। राजकन्याने वंकिम नेत्रसे मेरी ओर देखा और फिर एक बार महावराहकी ओर भक्ति-भावसे ताका। उसकी आँखोंसे धारा बह चली। स्पष्ट था उस कातर दृष्टिका अभिप्राय यह था कि हे इष्टदेव, अभी क्या-क्या दिखाओगे! निपुणिका किन्तु कानमें कुछ कहती

७. तु०, कादम्बरीमें महाश्वेता-वर्णन।

८. निम्नलिखित श्लोकसे तात्पर्य होगा:—
उत्कंठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापना प्रियतमा विरहानुराणां रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः॥
—मृच्छकटिक, ३-१

९. तु०, रत्नावली, प्रथम अंक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। एक घटी तक मैं ग्लान-लज्जित बैठा रहा और वह राजकन्या नाना चिन्ताओंमें डूबी पड़ी रही। फिर वह धीरे-धीरे उठी। निपुणिकाने घरके बाहर बैठी हुई चामर-धारिणीको पुकारके कहा—'हज्जे, आर्य वाभ्रव्यसे कह दे कि नई बहूको प्रमोद-वनमें चलनेको निपुणिकाने राजी कर लिया है। वे आ रहो हैं।'

चामर-वाहिनीको आश्चर्य हुआ। क्षण-भर तक वह इसे परिहास समझे रही। पर निपुणिकाने जब दुबारा कहा, तो वह उल्लासपूर्वक दौड़ी हुई बाहर निकल गई। ऐसा जान पड़ा कि क्षण-भरमें यह संवाद समूचे अन्तःपुरमें व्याप्त हो गया। प्रमोद-वनके अन्यान्य बाजे बन्द हो गए, केवल मांगल्य-शंख रह-रहकर बज उठने लगा। आर्य वाभ्रव्यने व्यस्त भावसे आकर जयनाद किया—'भावी महादेवीकी जय हो!' निपुणिकाने ज़ोरसे दुहराते हुए कहा—'जय हो!!' और वह राजकन्या, निपुणिका और मैं धीरे-धीरे राज-भवनसे प्रमोद-वनकी ओर चलनेको उद्यत हुए। राजकन्याने एक बार फिर महावराहको भक्तिपूर्वक देखा, उनके चरणोंपर आंखें रगड़ीं और एक खंड वस्त्र उनके चरण-तलसे खींचकर निपुणिकाको दिया। निपुणिकाने चुपचाप मेरी ओर उसे सरकाया और कहा—'सम्हालकर रख लो।' महावराहके उस प्रसादको मैंने बड़े यत्नसे सम्हाला।

प्रमोद-वनके प्रवेश-द्वारपर जब हम तीनों पहुँचे, तो राज-कुलकी परिचारिकाओंकी एक मंडली आनन्द-कोलाहलके साथ आती दिखाई दी। वे बारंबार 'भावी महादेवीकी जय हो!' कहकर उल्लास प्रकट कर रही थीं। उनका वेश अस्त-व्यस्त था और वाणी स्खलित-खंजित। 'भावी महादेवी'के गम्भीर मुखमण्डलपर भाव-परिवर्त्तनका कोई चिह्न नहीं था। वह मेरी ओर एक बार देखकर रुक गई। निपुणिकासे जनान्तिकमें उसने कुछ कहा; पर इतने ज़ोरसे बोली कि मुझे सुननेमें कोई बाधा नहीं हुई। वस्तुतः मुझे सुनाना ही उसे अभीष्ट था। बोली—'निपुणिका, अन्तःपुरकी मर्यादा भंग नहीं होनी चाहिए। कुमारियों और परिचारिकाओंका व्यवहार आज असंयत है।' फिर मेरी ओर घूमकर धीरेसे बोली—'भद्र, तुम हमारे अकारण बन्धु हो, बुरा न मानना; अन्तःपुरकी एक मर्यादा होती है।' मैं समझ गया। मैंने हाथ जोड़कर ग्रीवा झुकाकर बिना बोले ही उत्तर दे दिया कि उनकी प्रत्येक आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। निपुणिका बड़ी चतुर स्त्री थी। वह तत्क्षण लौटकर आर्य वाभ्रव्यके पास चली गई और उन्हें साथ लेकर लौट आई। मैं कुछ समझ नहीं सका। आर्य वाभ्रव्यने परिचारिकाओंकी मुख्याको बुलाके कहा—'भावी महादेवी आज अपनी इन दो सहचरियोंके साथ ही प्रमोद-वनका भ्रमण करना चाहती हैं। उनका आदेश है कि उनके किसी कार्यमें तुम लोग अन्तराय न बनो।' परिचारिकाओंने संभ्रमके साथ सुना और एक स्वरसे 'भावी महादेवीकी जय हो!' कहकर दूसरी ओर चली गईं।

'भावी महादेवी' प्रमोद-वनके बाहरसे घूमती हुई वृक्ष-वाटिकाकी ओर चल दीं। वाटिकाके बीचोंबीच एक विशाल वापी थी। सारी वापी कुमुद-कल्हारोंसे परिपूर्ण थी। चाँदनीकी शुक्लताने उसकी स्वच्छताको और भी गाढ़ बना दिया था। हम तीनों वहाँ पहुँचकर रुक गए। राजकन्याने निपुणिकाकी ओर देखकर कहा—'अब!' और प्रस्तर-निर्मित घाटपर अवसन्न-सी होकर बैठ गई। निपुणिकाने कहा—'आर्ये, महावराह सहायक हैं। भगवान्‌को साधुवाद दो कि दक्ष भट्ट जैसा साहसी और भद्र पुरुष हमें सहायक मिल गया है। झिझक छोड़ो। उठो।' राजकन्याने मेरी ओर प्रश्न-भरी दृष्टिसे देखा। मैंने धीरे-धीरे किन्तु दृढ़तासे कहा—'आर्ये, अभागे दक्षको एक पुण्य-कार्य करनेका अवसर मिला है। साहस करो। यमराज भी तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।' निपुणिकाने एक बार मेरी ओर देखा और राज-कन्याके उत्तरकी प्रतीक्षा किए बिना मुझसे कहा—'भट्ट, नेपथ्य उतार दो। महावराहका प्रसाद-वस्त्र धारण करो और प्रान्त वृक्षोंकी शाखाके सहारे चहारदीवारी लाँघ जाओ। फाटकपर हमारी प्रतीक्षा करना।' मैं सब समझ गया। वाटिकाके एक प्रान्तमें जाकर मैंने पुरुष-वस्त्र धारण किया। निपुणिकाकी सखीका नेपथ्य उसे ही देकर मैं एक नातिदीर्घ शिरीष-वृक्षपर चढ़ गया और बाहर आकर राजमार्गपर खड़ा हो गया। नाग उस समय उनींदा था। मैं दूर खड़ा प्रतीक्षा करने लगा। उस समय चन्द्रमा मध्य आकाशमें आ गया था, ऐसा जान पड़ता था कि वह शुक्ल वसनधारिणी धरित्रीके ललाटका चन्दन तिलक है। क्या आज धरित्रीने भी अपने उद्धारकर्त्ता महा-वराहकी पूजा की है? (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी लिपि

श्री कृष्णकिंकर सिंह

मानव-जीवनके इतिहासमें सहस्रों वर्ष ऐसे बीते हैं, जब उसके पास अपने भावों और विचारोंको प्रकट करनेके लिए भाषा तो थी ; परन्तु उन विचारोंको दूर तक—दूसरेके पास—पहुँचानेके लिए तथा उन भावों और विचारोंको चिर-स्थायी करनेके लिए कोई साधन नहीं था। न तो किसी प्रकारकी लिपि थी, न लिपिबद्ध करनेके लिए आजके-से सुलभ साधन ही। सचमुच वह प्रथम मानव, जिसके दिलमें अपने विचारों और भावोंको लिपिबद्ध करनेकी बातका प्रादुर्भाव हुआ, बहुत सभ्य तथा सुसंस्कृत दिमाग़का रहा होगा। साधनहीन होनेके कारण उसके दिलमें एक लिपिके लिए जो तड़प रही होगी, उसका आज हम लोग अनुमान भी नहीं कर सकते। इसीलिए शायद सभी लिपियोंके व्यवहार करनेवालोंमें यह बात देखी जाती है कि वे लोग अपनी-अपनी लिपिको ईश्वर-निर्मित कहते हैं। चीनी भाषाकी लिपि भी इसका अपवाद नहीं है।

किसी भी देशमें लिपिका निर्माण वास्तवमें उसके सभ्य होनेका प्रमाण है। यह बात आज सभी विद्वानोंको मान्य है कि भारत, चीन, मिस्र और बाबुल ये ही चार देश पुरातन कालमें सभ्य थे। आजके सभी सभ्य कहलानेवाले देशोंकी संस्कृति, लिपि आदि इन चारों देशोंमें से किसी-न-किसी देशकी नक़ल है। यही वर्त्तमान कालको पुरातनकी देन है। पर आज मिस्र और बाबुलके मूल निवासी नष्ट हो गए तथा उनकी प्राचीन सभ्यता अतीतके अन्धकारमें छिप गई है। उनके देश और शहर पुरातत्त्ववेत्ताओंके लिए खोज और खुदाईके स्थान-मात्र रह गए हैं और खुदाईसे निकली चीज़ें आज अजायबघरोंकी शोभा बढ़ा रही हैं। भारत और चीन ये ही दो देश आज भी अपनी चीज़ोंके साथ आदि कालसे वर्त्तमान हैं तथा दुनियाका ध्यान आकृष्ट किए हुए हैं। इन दोनों देशोंमें लिपिका निर्माण अति प्राचीन कालमें हो चुका था। जो लोग भारतीय लिपिको दूसरे देशोंकी नक़ल तथा हालकी उत्पन्न हुई मानते हैं, उनके मतका खण्डन रायबहादुर गौरीचन्द हीराचन्द ओझाने 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला'में बड़े ही अच्छे ढंगसे किया है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि भारतीय लिपि भारतीय दिमाग़की ही उपज तथा अति प्राचीन है।

चीनी लिपिके विषयमें भी कुछ विद्वानोंकी यह राय है कि चीनी लिपि चीनी दिमाग़की उपज नहीं, बल्कि मिस्र देशकी प्राचीन लिपिकी नक़ल है। यह बात सही है कि मिस्रकी प्राचीन लिपि चित्रात्मक थी और चीनी लिपि भी कुछ अंशमें चित्रात्मक है। यह भी हो सकता है कि दोनों देशोंके लिपि-निर्माण तथा विकासका सिलसिला एक-सा रहा हो। प्राचीन कालमें चीन देशकी सभ्यता मिस्रकी सभ्यतासे किसी भी अंशमें कम नहीं थी, न उससे पीछेकी ही थी। चीनमें प्राचीन कालसे ही इतिहास आदि लिख रखनेकी प्रथाके अनेक प्रमाण मौजूद हैं, जो इस बातको स्पष्ट करते हैं कि चीनी सभ्यता तथा चीनी लिपि प्राचीन हैं।

किसी भी लिपिके विषयमें तीन तरहके मत मिलते हैं। कुछ लोग तो उसे देववाणी या ईश्वर-निर्मित बतलाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि अमुक लिपि अमुक देशका मौलिक आविष्कार नहीं, बल्कि अमुक लिपिके आधारपर बनी है। कुछ लोग उसे मौलिक तथा मनुष्य द्वारा निर्मित बताते हैं। चीनी लिपिके बारेमें भी यही तीन तरहके मत हैं। इस वैज्ञानिक युगमें लोग सभी बातें विज्ञानकी कसौटीपर परखना चाहते हैं, इसलिए चीनी लिपिको ईश्वर-निर्मित माननेसे इनकार करते हैं। और इस बातको माननेवाले भी अपने मतके पक्षमें कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं देते। दूसरे मतका भी कि चीनी लिपि मिस्रकी पुरानी लिपिकी नक़लपर बनी है, कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं। हाँ, इस बातके माननेवाले बहुत लोग हैं कि चीनी लिपि चीनी दिमाग़की ही उपज है और जिस प्रकार अन्य देशोंकी लिपियाँ विकास-क्रमसे गुज़रती हुईं वर्त्तमान रूपमें आई हैं, उसी प्रकार चीनी लिपिका भी प्रादुर्भाव तथा विकास हुआ है।

यह बात तो सर्वमान्य है कि अति प्राचीन कालमें कोई लिपि नहीं थी और उस कालके निवासी अपनी आवश्यकताओंके इशारों तथा निशानों आदिको व्यक्तकर पूरा करते थे। चीनी भाषाके इस प्रकारके इशारेका जो सबसे पहला उल्लेख मिलता है, वह है 'रस्सीमें गिरह देकर' दूसरोंको समझानेकी बातका। चीनी भाषाका एक वाक्य 'शांग् कु चिअ शांग्' इसी बातका द्योतक है कि अति प्राचीन कालमें चीनवाले किसी चीज़की याददाश्तके लिए रस्सीमें गाँठ देते थे। प्राचीन कालमें यह प्रथा केवल चीनमें ही नहीं, बल्कि दक्षिणी अमरीकाके सबसे प्राचीन सभ्य देश पेरूमें और दक्षिणी समुद्रके द्वीप-निवासियोंमें भी प्रचलित थी। यूनानी इतिहासज्ञ हेरोडोटसने भी अपने इतिहासमें पारसके सम्राट् दरीयसके रस्सीमें गिरह देकर आज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखनेकी बातोंका ज़िक्र किया है। चीनकी प्राचीन कालकी किताबोंमें 'रस्सीमें गिरह देकर' याद रखनेकी बातोंका कई जगहोंपर उल्लेख मिलता है। लाओ-त्जे नामक चीनी महात्माने अपनी किताब 'तो ते चिन्'में एक जगह लिखा है—'आदमियोंके बीच रस्सीमें गिरह देकर याददाश्तकी प्राचीन प्रथापर आने तथा (लिखनेकी जगह) उसे व्यवहार करनेको कहो।' च्वांग-त्जु कहता है—'शेन नुँग् (चीनके पौराणिक कालका एक राजा) के समय सभी राजाओंके यहाँ रस्सीमें गिरह देनेवाली प्रथा प्रचलित थी। यद्यपि इस प्रथाका चीनी लिपिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी यह पुराने आदमियोंके अपने भावों और विचारोंको मूर्त्त रूप देनेके प्रयासका प्रमाण है।

रस्सीमें गिरह देनेकी प्रथाके बाद चीनी लिपिमें फु-सी द्वारा निर्मित 'आठ रेखाचित्रों'का उल्लेख आता है, जिसे चीनी भाषामें 'पा क्वा' कहते हैं। शायद चीनवालोंका अपने भावोंको आकृतिके रूपमें व्यक्त करनेका यह पहला प्रयास था। आर० वी० ब्लेकने ने अपनी 'चीनी अक्षरोंका विश्लेषण' नामक पुस्तकमें लिखा है—'यद्यपि इन रेखाचित्रोंसे वह भाव नहीं व्यक्त होता, जो साधारणतः लिखे जानेवाले शब्दोंसे होता है; पर ये सम्पूर्ण दर्शन और विश्वतत्त्वके सांकेतिक चिह्न हैं।' फु-सी के कालमें बड़ा मतभेद है। प्रो० तान-युन-सानने अपने 'चीनी इतिहासकी भूमिका'-शीर्षक लेखमें लिखा है—'फु-सी ने जाल डालकर मछली पकड़ना और सितार बजाकर गाना सिखाया। उसने शादीका रिवाज डाला। शादीके लिए नियम बनाए और कुटुम्बकी बुनियाद डाली। उसने आठ शक्लें (पा क्वा) ईजाद कीं, जिनसे बादमें बढ़ते-बढ़ते आजकलकी चीनी लिखावट बनी। 'साल महीने...। ये सभी बातें क़रीब-क़रीब दस हज़ार वर्ष पहलेकी हैं।' आर० वी० ब्लेकने ने अपनी 'चीनी अक्षरोंका विश्लेषण' नामक पुस्तकमें फु-सीका समय २८५२ ई० पू० माना है। चाहे फु-सी किसी भी कालमें क्यों न हुआ हो, उसके बनाए आठ रेखाचित्र ही चीनी लिपिके निर्माणके आधार बने। आज कुछ लोग चीनी लिपिका आधार 'चित्रकला' बतलाते हैं। इन रेखाचित्रोंके विषयमें चीनी भाषाकी किताब 'ई-चीं' (परिवर्त्तनोंका नियम) में अच्छी तरह लिखा गया है।

चीनी लिपिका स्पष्ट इतिहास चीनके सम्राट ह्वांग-ती (पीला सम्राट) के समयसे मिलता है। चीनी भाषाका एक वाक्य 'छांग चिये चाव त्सु' है, जिसका अर्थ है छांग चियेने शब्दों (लिपि) को बनाया। (चीनी भाषामें वर्णमाला नहीं है, इसके एक-एक अक्षर पूर्ण शब्द हैं।) प्रो० तान-युन-सानने अपनी छोटी पुस्तिका 'चीन और भारतका सांस्कृति आदान-प्रदान'में चीनके एक प्रसिद्ध साधु तौ-शीह द्वारा लिखित एक चीनी किताब 'फ़ा युवान चु लीन' (बौद्ध-संसारके मोती) से एक उद्धरण दिया है, जिससे चीनी लिखावटके बारेमें भी बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं। वह यों है—'पुराने समयमें लिपिके तीन महान आविष्कारक हुए हैं। पहला ब्रह्मा था, जिसके लिखनेका तरीक़ा बाईं ओरसे दाहिनी ओर था। दूसरा खरोष्ठ था, जिसके लिखनेका तरीक़ा दाहिनी ओरसे बाईं ओर था और तीसरा छांग चिये, जिसके लिखनेका तरीक़ा ऊपरसे नीचेकी ओर था।' इस उद्धरणसे क्रमशः ब्राह्मी, खरोष्ठी और चीनी लिपियोंका ज्ञान होता है। आगे चलकर उसी किताबमें लिखा है कि ब्रह्मा बड़ा भाई और खरोष्ठ मझला भाई था और दोनों ही 'थियेन चु' (स्वर्ग-राज्य) में रहते थे। छांग चिये सबसे छोटा था और चुंग को* (मध्य-राज्य) में रहता था। असलमें छांग चियेने किसी खास तरहकी लिपिका निर्माण नहीं किया, बल्कि अपने समयके पहलेके प्रचलित शब्दोंमें सुधारकर तथा उन्हें नए सिरेसे सजाकर लोगोंके बीचमें रखा। चूँकि छांग चियेके पहले किन-किन लोगोंने लिपिके बनानेमें हाथ बँटाया, यह नहीं ज्ञात है, इसलिए छांग-चिये ही प्रथम लिपि-निर्माता समझा जाता है। छांग चियेके समयसे ही लिपि-निर्माणका काल समाप्त हो जाता है और विकासका आरम्भ होता है।

चीनी लिपिका मुख्य विकास मोटे तौरपर चार भागोंमें बाँटा जाता है। पहला कु-वेन (प्राचीन लिपि); दूसरा ता-च्वान् (दीर्घ मुद्रालिपि); तीसरा श्याव-च्वान (लघु मुद्रालिपि) और चौथा ली शु (राजकीय लिपि) है। यों तो छोटे-मोटे कुछ परिवर्त्तन और भी हुए हैं, जैसे पा-फेन-सु आदि। जैसा कि ऊपर कहा गया है, चीनी लिपिका विकास छांग चियेके समयसे ही प्रारम्भ हो जाता है। छांग चिये चीनके प्रसिद्ध सम्राट ह्वांग-तीके दरबारमें इतिहासका मन्त्री था।

---

* चीनी लोग भारतवर्षको थियेन चु (स्वर्ग-राज्य) और चीनको चुंग को (मध्य-राज्य) कहते हैं। चीनी लोगोंका पुराने समयमें विश्वास था कि उनका देश संसारके मध्यमें है और इसीलिए अपने देशको वे 'चुंग को' कहते थे। उस समय मध्य-एशियाके लोगोंका केवल चीन (सामंतशाही राज्य) से ही सम्पर्क था और उन लोगोंने ही सारे देशको चीन नामसे पुकारना प्रारम्भ किया।—ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे सम्राटके दरबारकी सारी कार्रवाइयोंको लिखना पड़ता था। पहलेकी प्रचलित लिपिमें लिखनेमें उसे अवश्य ही कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता होगा। शायद इसीसे उसने अपने कालके पहलेकी प्रचलित लिपिमें सुधार किए। छांग चिये द्वारा सुधारी लिपि ही कु-वेन (प्राचीन लिपि) कहलाती है। चीनी लिपि चीनके अविष्कारोंमें से एक बड़ा ही मनमोहक आविष्कार है। उस समय जो संकेत-चिह्न बने, वे उन चीज़ों या भावोंके चित्र थे, जिनके लिए उनका निर्माण हुआ। उस समयके बहुतसे शब्दों (संकेत-चित्रों) को, जिनमें आज तक भी कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है, देखकर कोई भी कह सकता है कि ये अमुक-अमुक चीज़ोंकी प्रत्याकृतियाँ हैं। एक आम लिपिके निर्माणके बाद भावात्मक लिपिका भी निर्माण दो चित्रात्मक लिपियों (शब्दों) को मिलाकर होने लगा, जो नए भावोंकी द्योतक थी। उदाहरणके लिए वृक्षके लिए निर्मित संकेतको लीजिए। जो संकेत एक वृक्षका द्योतक था, वही संकेत एक जगह दो बार सटाकर लिखनेसे संयुक्त संकेत (अक्षर) हुआ, जो जगलका द्योतक हुआ। यहाँ संकेतका भाव लिया गया। एक संकेत एक वृक्षका बोधक था, और चूँकि जंगलमें एकसे अधिक वृक्ष होते हैं, इसलिए वृक्ष-बोधक संकेत दो बार एक जगह लिखनेसे जंगलका बोध माना गया।

कु-वेन (प्राचीन लिपि) का प्रारम्भ सम्राट ह्वांग-ती (पीला सम्राट, २६६७ ई० पू०) के समयसे माना जाता है। सत्रह सौ वर्षों तक सारे देशमें यही लिपि व्यवहारमें आती रही—यानी चो-राजकुलके ग्यारहवें सम्राट शुवेन-वंग (८२७-७८१ ई० पू०) के राजकाल तक। यद्यपि सम्राट ह्वांग-तीके समयमें उनके दरबारकी सारी कार्रवाइयाँ लिखी जाती थीं; परन्तु उस समयकी लिपिका आज कोई प्रमाण नहीं मिलता। (बहुत-सी किताबें तो चीनी राजकुलके सम्राट शी ह्वांग-ती ने जलवा दीं और कुछ कालान्तरमें नष्ट हो गईं।) फु-सी के समय (२३५८-२२०८ ई० पू०) की 'थी-चिंग' (परिवर्त्तनके क़ानून) पुस्तक, 'शांग-सु' और 'शी चिंग'—जिसमें शांग और चो राजकुलों (१५००-५०० ई० पू०) के समयके गीतोंका संग्रह है—आदि पुस्तकें अभी भी पाई जाती हैं। इसके अलावा चिह्नित औज़ार, अलंकृत पात्र, यज्ञ-सम्बन्धी बर्त्तन, जो खुदाईमें पुरातत्त्ववेत्ताओंको मिले हैं, उनमें से कुछ सिया-राजकुल (२२०५-१७६६ ई० पू०), कुछ शांग-राजकुल (१७६६-११२२ ई० पू०) और कुछ चो-राजकुल (११२२-२५५ ई० पू०) के समयके बताए जाते हैं और उनपर चिह्नित अक्षरोंसे उस कालकी लिपि कु-वेनका कुछ पता चलता है।* कु-वेन एक विचित्र प्रकारकी चित्रात्मक लिपि है, जो उस कालमें पीतल, ताँबे और पत्थरपर लिखी जाती थी।

सत्रह सौ वर्षों तक कु-वेन लिपिका ही सारे देशमें व्यवहार होता रहा। चो-राजकुलके ग्यारहवें बादशाह शुवेन-वंगके दरबारमें ताई-शी चो इतिहासका मन्त्री थी। सत्रह सौ वर्षोंके लगातार व्यवहारके कारण कु-वेन लिपिमें बहुत तरहकी मिलावट हो गई होगी। कितने ही संकेत अदल-बदल गए होंगे और इस तरहकी खिचड़ी लिपिसे काममें दिक्क़त पड़ती होगी। इन मिलावटोंने कु-वेन लिपिको और भी कठिन बना दिया और एक आदर्श लिपिकी आवश्यकता सभी महसूस करने लगे। राज-दरबारमें मन्त्री होनेके कारण ताई-शी चोको भी कु-वेनसे लिखनेमें दिक्क़तोंका सामना करना पड़ता होगा तथा उसे दूसरोंकी कठिनाइयोंका भी पता लगा होगा, और तब उसीने सारे देशमें लिखी जाने योग्य कु-वेनके जटिल और ऊटपटांग अक्षरोंकी जगह—लेकिन उसीके आधार पर—वक्राकृतिकी एक लिपि तयार की, जो 'ता-च्वान' (दीर्घ मुद्रा-लिपि) कहलाती है। इस कालमें चित्र-लिपि और भावात्मक लिपिके साथ ध्वन्यात्मक लिपिका भी निर्माण होने लगा।

उच्चारणके खयालसे चीनी लिपि मोटे तौरपर तीन भागोंमें बाँटी गई है। (१) पूर्ण उच्चरित : पुराने समयसे आज तक जिन शब्दोंके उच्चारण स्थिर हैं। (२) अर्द्ध-उच्चरित : ऐसे शब्द, जिनके स्वर-व्यंजन-युक्त उच्चारणमें से व्यंजन-उच्चारणमें हेर-फेर हो गया है। (३) उच्चारण-हीन : वे शब्द, जिनके प्राचीन उच्चारण एकदम विलीन हो गए हैं और दूसरे उच्चारण आ गए हैं।†

चो-राजकुलका समय चीनका स्वर्ण-काल था। इस कालमें साहित्य, दर्शन, कला सभीका विकास हुआ। बड़े-बड़े महापुरुष दार्शनिक और साहित्यिक हुए। कान्फ्यूशीयस, लाओ-त्से (ताओ-धर्मके प्रवर्त्तक), मेनशीयस, मीशीयस आदिने अपनी रचनाओंसे चीनी लिपिकी उस खूबीको प्रकट किया, जो अन्य देशोंमें वर्णमाला-युक्त अक्षरोंसे हो रही थी। तूलिकाके ईजादसे वक्र चित्रात्मक लिपि कुछ-कुछ वर्गाकार होने लगी। परन्तु चो-राजकुलके अन्तिम कालमें देशकी हालत बिगड़ गई

* देखिए, Analysis of Chinese Characters, R. B. Blakney. P. 17.
† Ibid, P. 20.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययनपर से लोगोंका ध्यान हट-सा गया। अध्ययनके अभावमें लोग लिपि (शब्दों) को भूलने लगे। उच्चारणमें भी विकृति आ गई। नए-नए संकेत बनने प्रारम्भ हो गए। किसीको कोई शब्द याद नहीं रहता था, तो अपनी ओरसे गढ़कर ऊटपटांग-सा शब्द रख देता था। परन्तु यह हालत बहुत दिनों तक नहीं रही। चीन-प्रदेश (इसी प्रदेशके नामपर सारे देशका नाम आगे चलकर चीन पड़ा) के सरदारने चो-कुलका खात्माकर छीन-राजकुलकी स्थापना की और अपनेको छीन-सी-ह्वांग्-ती (छीन-कुलका प्रथम सम्राट, २४६-२१० ई० पू०) के नामसे सारे चीनका सम्राट घोषितकर देशमें शान्ति स्थापित की और सर्वप्रथम सारे देशको एक सूत्रमें बांधा। यह भारतके सम्राट अशोकका समकालीन था और कदाचित् इसीलिए इसकी तुलना भी अशोकसे की जाती है। देश-भरमें एक भाषा और एक लिपिका न होना एकतामें बाधक समझकर छीन्-सी-ह्वांग्-तीने अपने इतिहासके वज़ीर ली-सुको पुरानी लिपि (दीर्घ मुद्रालिपि) में सुधारकर एक आदर्श लिपि तैयार करनेको कहा। यह चीनी लिपिके विकासका तीसरा अध्याय है। ली-सुने लिपि तैयार की ; पर वह केवल पुराने अक्षरोंकी प्रतिलिपि ही थी। यह इस बातका प्रमाण है कि ली-सुकी इस विषयकी कितनी कम जानकारी थी। उसने लिपिमें कोई नया आविष्कार नहीं किया, बल्कि पुरानी जटिल लिपिको ही काट-छाँटकर पुनः तरतीबसे सजानेमें सन्तोष किया। परन्तु इसके सजाए अक्षरोंको देखनेसे पता लगता है कि उसने पुराने अक्षरोंको समझनेमें भूल की और इस कारण बहुत-सी भद्दी गलतियाँ हो गईं तथा शब्दोंका दुरूहपन भी कम नहीं हुआ।*

ली-सुके तैयार किए गए अक्षरोंका कई दिशाओंसे विरोध हुआ। बादशाहने यह सोचकर कि जब तक पुरानी लिपिके ग्रन्थ मौजूद रहेंगे, लोग नई लिपिको नहीं अपनायँगे, उस काल तक लिखित-प्राप्त सभी ग्रन्थोंको और साथ ही नई लिपिके कितने ही विरोधियोंको भी जलवा दिया। परन्तु ली-सु द्वारा निर्मित अक्षरोंके दुरूह होनेके कारण समस्या विशेष सुलझी नहीं। यह अक्षर चीनी लिपिके इतिहासमें स्याम-च्वान् (दीर्घ मुद्रा-लिपिको सरल करनेवाले या लघु मुद्रालिपि) कहलाती है। यह बतलाना कठिन है कि लघु मुद्रालिपिका प्रयोग लोगोंने किया या नहीं और किया तो कितने समय तक ; क्योंकि लघु मुद्रालिपिके साथ ही चीनी लिपिके विकासका चौथा अध्याय अर्थात् ली-सु (राजकीय लिपि) का विकास भी शुरू हुआ। सम्राट छीन-सी-ह्वांग्-तीके दरबारमें ही छेंग-मियाव नामका एक साधारण अधिकारी था। उसे लिखनेका काम बहुत करना पड़ता था। इसलिए उसे अपनी तथा राजकीय विभागमें काम करनेवाले दूसरे किरानियोंकी उस समय प्रचलित लिपि द्वारा लिखनेकी कठिनाइयोंका पूरा ज्ञान था। एक बार किसी अपराधमें उसे जेलकी सज़ा हुई और जेलमें ही उसने पुरानी लिपिके आधारपर नए ढंगसे सरल अक्षरों (लिपि) का निर्माण किया, जो ली-सु—राजकीय लिपि—कहलाती है। छांग-मियावने लिपिको सरल बनानेकी भरपूर चेष्टा की। उसने पुराने अक्षरोंके बेकार संकेतोंको, जिनसे लिखनेमें बाधा पड़ती थी, उड़ा दिया। सम्राटके कानों तक जब इस नवीन लिपिकी खबर पहुँची, तो उन्होंने स्वयं उन अक्षरोंको देखा और छांग-मियावको जेलसे निकालकर पुनः राजकीय नौकरी दी।

लिपिमें ऊपर लिखे परिवर्त्तनोंके अलावा सम्राट क्वांग-वु-तीके राज्य-कालमें वांग-त्जु-चुंगने एक मिश्रित लिपि तैयार की थी, जो पा-फेन-सु कहलाती है। इसके अक्षरोंमें दस भागोंमें से आठ भाग लघु मुद्रालिपि और दो भाग राजकीय लिपिके ढंगपर लिखे गए थे। इस लिपिका चीनी लिपिके विकासके इतिहासमें कोई खास महत्व नहीं है और न यह कोई मौलिक आविष्कार ही था, जिससे लिपिकी दुरूहता कम होती। इसके बाद चीनी लिपिमें कुछ गौण परिवर्त्तन हुए, जो मोटे तौरपर चार भागोंमें बाँटे जाते हैं—पहला काई-सु (आदर्श लिखावट), दूसरा छौव-सु (घसीट लिखावट), तीसरा शींग-सु (साधारण चालमें हाथसे बनी हुई लिखावट) और चौथा चियेन-त्सु (संक्षिप्त लिखावट)।

काई-सु (आदर्श लिखावट) हस्तलिपि-विशारद वांग-सी-चीकी ईजाद की हुई है, जो छीन-राजकुलके समय हुआ था। यह ली-सु—राजकीय लिपिका ही परिवर्त्तित संस्करण था, जो आजकल छापेमें काम आता है। ली-सुके समय छापा-खाना नहीं था, इसलिए हाथसे लिखे अक्षरों और छापेके अक्षरोंमें जो विभिन्नता हो सकती है, वही ली-सु और काई-सुमें है। यद्यपि काई-सुके ईजाद होनेके समय भी छापाखाना नहीं था ; परन्तु यह वांग-सी-चीकी प्रतिभाकी ही देन है कि छापेखानेसे पहले छापेखानेमें व्यावहार होने योग्य अक्षरोंका आविष्कार हुआ। ली-सुकी अपेक्षा काई-सु अक्षर अधिक वर्गाकार हैं।

छौव-सु (घसीट लिखावट) जल्दी-जल्दीमें बने हुए

* Ibid, P. 25.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरोंको कहते हैं। चीनी भाषाका हर शब्द कई संकेत-चिह्नोंके मिलानेसे बनता है। चीनी लोग बहुत जल्दी लिखनेमें बहुतसे संकेतोंको छोड़ देते हैं या इस तरह घसीटकर लिखते है कि बहुतसे संकेत-चिह्नोंका पता ही नहीं चलता। इस प्रकार लिखनेकी शैली हान-राजकुलके समय ही प्रारम्भ हुई थी। इस लिखावटके पढ़नेमें भी बड़ी दिक्क़त होती है। इस प्रकारकी लिखावट चित्रकारों और हस्तलिपि-विशारदोंके लिए कला हो गई है।

शींग्-सु साधारण तौरसे हाथसे लिखनेमें अक्षरोंकी आकृतिमें हुए परिवर्त्तनोंको कहते हैं। काई-सु—अर्थात् जो अक्षर छापेमें काम आता है, उसी अक्षरको लोग हाथसे भी लिखते हैं। लेकिन छापेके अक्षरोंको कुछ जल्दीमें हाथसे लिखते समय उन अक्षरोंके ढाँचेमें कुछ परिवर्त्तन हो जाना स्वाभाविक है। जहाँ छापेके अक्षरोंका प्रत्येक संकेत-चिह्न स्पष्ट तथा कुछ वर्गाकार लिए रहता है, वहाँ हाथसे लिखनेमें कुछ संकेत-चिह्न एक दूसरेसे मिलकर वक्राकृति हो जाते हैं। शींग-सु काई-सु लिपिकी ही हाथसे लिखनेकी प्रणाली है।

चियेन-त्सु संक्षिप्त लिखावटको कहते हैं। यह प्रणाली खासकर बड़े-बड़े अक्षरोंको संक्षेपसे लिखनेमें काम आती है।

इन दिनों अधिकतर तीन तरहसे लिखनेकी प्रणाली चालू है। छापेखानेमें काई-सुका व्यवहार होता है और प्रायः सभी किताबें इसी लिपिमें छापी जाती हैं। हाथसे लिखनेमें शींग-सु प्रणाली चलती है और मुद्रापर च्वान्-सु। चीनमें प्राचीन कालसे कोई चीज़ लिखकर उसपर अपनी मुद्राका निशान कर देनेकी प्रथा चली आती है। आज भी यह प्रथा लोगोंमें उसी तरह बनी हुई है। च्वान्-सु लिपि यद्यपि जटिल है; परन्तु देखनेमें बड़ी सुन्दर होती है। इसलिए चीनी लोग अपनी मुद्रापर प्रायः च्वान्-सु (मुद्रालिपि) ही अंकित कराते हैं। चीनी मुद्रा देखनेमें बड़ी ही सुन्दर होती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, चीनी लिपिका एक-एक अक्षर किसी चीज़का संकेत है और प्रत्येक अक्षर कई छोटे-छोटे संकेत-चिह्नोंने मिलनेसे बनता है। ये संकेत-चिह्न तीन भागोंमें बँटे हैं। पहला मौलिक संकेत, जो गिनतीमें सात हैं। दूसरा आश्रित संकेत, जो गिनतीमें चार हैं; और तीसरा संयुक्त संकेत, जो गिनतीमें आठ हैं। सभी अक्षर इन्हीं तीन प्रकारके संकेतोंके योगसे बनते हैं। संकेत लिखनेके लिए भी नियम बने हैं—अर्थात् किसी अक्षरको लिखते समय ज्यों-त्यों करके संकेत-चिह्नोंको मिलाना नहीं पड़ता है। क्रम यह है कि संकेत ऊपरसे नीचे और बाईं ओरसे दाहिनी ओर लिखा जाता है।

चीनी भाषामें जितने अक्षर (शब्द) हैं, वे ६ भागोंमें बाँटे गए हैं, जो लु-सु (छः लिखावटें) कहलाते हैं। पहला शियांग-शिंग (सादृश्य चित्र), जिसमें वे शब्द हैं, जिनका रूप उन रूपोंके सादृश है, जिनके लिए ये शब्द (अक्षर) बनाए गए हैं। दूसरा ची-शी (अर्थ-संकेत) रूप, जो संकेतोंके अर्थको बतलाते हैं। तीसरा ह्वी-ई (भावात्मक रूप), जिसके सभी शब्द संयुक्त हैं और दो या अधिक साधारण शब्दों (अक्षरों) के मिलनेसे बने हैं तथा दोनोंके सम्मिलित अर्थके भावके द्योतक हैं। चौथा शिंग-सुंग (ध्वन्यात्मक रूप), जिसमें सभी संयुक्त शब्द हैं और दो साधारण शब्दों (अक्षरों) के योगसे बने हैं। संयुक्त शब्दका एक भाग ध्वनि देता है और दूसरा अर्थका द्योतक होता है। पाँचवाँ च्वान-चु (पर्याय रूप), जिसमें सभी पर्यायवाची शब्द (अक्षर) हैं; और छठा च्या-चिये (अध्याहरण रूप), जिसमें वे शब्द हैं, जिनका असली अर्थ तो कुछ है; पर जो आते हैं दूसरे अर्थके प्रयोगमें।

चीनमें हस्तलिपि-विद्या (सु-फा) तथा हस्तलिपि-विशारदोंका खास स्थान है। यह विद्या एक प्रकारकी कला समझी जाती है। हस्तलिपि-विशारद होनेके लिए आदमीको साधक-सा बन जाना पड़ता है। जो आदमी इस विद्याका अभ्यास करते हैं, उनको सीधी तरहसे बैठ तूलिकाको लम्ब रूपमें हाथसे पकड़कर अभ्यास करना पड़ता है। चंचल मनको अक्षरोंकी बनावटपर केन्द्रित करना होता है। चीनी लिपि लिखनेमें तूलिका तथा एक प्रकारकी काली स्याहीका, जिसे चीनी भाषामें 'मे' कहते हैं, प्रयोग होता है। परन्तु अब लोग साधारण स्याही तथा क़लमसे ही लिखाईका दैनिक कार्य करते हैं। चीनी लिपिका वाक्य ऊपरसे नीचे तथा दाहिनी ओरसे बाईं ओर लिखा जाता है; परन्तु इन दिनों अन्य लिपियोंकी तरह ही यह भी बाईं ओरसे दाहिनी ओर सीधी लिखी जाने लगी है।

भारत और चीनका पुराना सम्बन्ध रहा है और चीनकी प्रायः सभी चीज़ोंपर भारतकी काफ़ी छाप पड़ी है। यद्यपि चीनकी लिपिकी बनावटमें देवनागरी लिपिकी छाया नहीं दीख पड़ती; परन्तु भारतीय लिपिसे अपनी लिपिका सामंजस्य स्थापित करनेकी कोशिश चीनवालोंने ज़रूर की थी। प्रो० तान-पुन-सानने लिखा है—'थांग-वंशके राज्य-कालमें शौ-वेन नामक चीनी बौद्ध साधुने संस्कृत शब्दोंके आधारपर ३६ अक्षरोंकी वर्णमाला तैयार की, जिससे चीनी लिपिकी ध्वनि, उच्चारण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लयमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुआ।'* पुराने समयमें भारतसे बहुत-सी संस्कृतकी पुस्तकें चीन गईं और उनका चीनवालोंने अपनी भाषामें अनुवाद किया। परन्तु आज उनमें से कमसे कम ५००० पुस्तकें ऐसी हैं, जिनकी मूल संस्कृत-प्रतियाँ चीन तथा भारत दोनों जगहोंसे लुप्त हो गई हैं।

चीन-भवन, शान्तिनिकेतन]

* India's Contribution to Chinese Culture, By Prof. Tan-Yun-Shan, P. 4.

कल तुम जाओगे !

प्रो० 'केसरी', एम० ए०

कल तुम जाओगे ?
बीत गए दिन सात बात में,
सात प्रात ढल गए रात में,
ये सुख की घड़ियाँ लगतीं
जैसे कोई सपना प्रभात में।
सच, कल तुम मेरी दुनिया से दूर कहीं छाओगे ?
कल तुम जाओगे ?
सब के बालम बड़े सनेही,
मेरे हो तुम बने बटोही,
कठिन माघ की रैन, और तुम
मुझको छोड़ चले निर्मोही !
अब यह रूप न पाल सकूँगी,
अब यह छवि न सँभाल सकूँगी,
कल से हे भगवान! न फिर मैं
दर्पण कभी निकाल सकूँगी !
किन्तु आज-भर मुझे न तुम धूमिल-बेदिल पाओगे।
कल तुम जाओगे ?
कल तुम जाओगे ?
माँजीने अपने हाथोंसे बड़ी लगनसे खीर पकाई।
मटकेमें भर रखी तुम्हारी प्रिय जो-जो पकवान-मिठाई।
और वहाँ वह आँगनमें है गुलगुल् रूईदार दुलाई—
बाबूजी की साध लिए तुम जाओ—घरसे सिली-सिलाई।
बड़ी गरम होती, कहते वे, अपने घरकी बनी दुलाई।
हाय, बनी किरकिरी किन्तु इन आँखोंमें यह मधुर विदाई,
यह सुखकी चिन्ता, प्रसाद ये, यह अनुपम वात्सल्य लुनाई,
सबमें देख रही अंकित मैं पत्थरकी लकीरकी नाईं—
'कल तुम जाओगे' !
कल तुम जाओगे ?
अच्छा, लो मेरी अपनी भी एक चीज़, यह एक निशानी।
मेरी याद बनाकर रख लो, अपनी इन आँखोंका पानी।
मेरी याद न सूख सकेगी यह सावनकी बदली धानी—
मेरी याद न चूक सकेगी, यह बिजली-सी भरी - रवानी।
मेरी याद लिए कैसे तुम मुझे भुला पाओगे ?
कल तुम जाओगे ?
कल तुम जाओगे ?
एक महीने बाद फूट जाएगी जौ-गेहूँमें बाली,
झुक जाएगी छवि-सिंगारसे सरसों राशि-राशि फलवाली।
चमक उठेगी मुसकाहट - सी खेतोंमें हल्की-सी लाली,
कहीं रूपहली, कहीं सुनहली, कहीं बैंगनी छटा निराली।
एक महीने बाद रामनवमीका वर्ष-पर्व, खुशहाली,
उस दिन गाँव-गाँवकी माँएँ पूजेंगी जगदंबा काली।
नया अन्न-त्यौहार, नए गेहूँसे सुरभित घर-घर थाली,
और नई सरसोंसे उर-उर पुर-पुरमें होगी उजियाली।
उस दिन क्या तुम आ न सकोगे, मेरे परदेशी, वनमाली ?
('बेटा ! और किसे दूँगी वे मधुर पूड़ियाँ पूजावाली ?'
उस दिन तुम्हें खिलानेको यह हौस उन्होंने हियमें पा ली।)
माँजीका उछाह बढ़ता है ज्यों-ज्यों खेतोंकी हरियाली।
आशीर्वाद-प्रसाद कहो, तुम कैसे ठुकराओगे ?
कल तुम जाओगे ?
और आम भी तो बालम ! तब बागोंमें गदराएँगे !
एक महीने बाद टिकोरोंपर भँवरे भी मँडराएँगे।
एक महीने बाद पिकी भी मंगल बीन बजाएगी।
वन-उपवन में कूक-कूक योगिन-सी अलख जगाएगी।
अरे बटोही, तब भी क्या सुधि तुम्हें नहीं घरकी आएगी ?
तब भी क्या न तुम्हारे प्राणोंकी वीणा बज जाएगी ?
एक महीना माघ, तीस दिन उँगलीपर कट जानेको,
चले पिया तुम फागुनमें फिर फूलोंके पथ आनेको।
आस दिए जाओ यह तुम, मधुमास लिए आओगे।
कल तुम जाओगे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तका आरम्भ

मोहनसिंह सेंगर

कुहरेको चीरती हुई गाड़ी बर्लिनकी ओर दौड़ी जा रही थी। डब्बेमें यद्यपि अभी बिजली जल रही थी; पर बाहरकी धुन्ध धीरे-धीरे दूर हो रही थी। बर्फ़से धुले खिड़कियोंके शीशे यात्रियोंको बाहरकी अस्पष्ट-सी झाँकी दे रहे थे। एक कोनेमें बैठे कप्तान फ्रिट्ज़बाख पैरिस-प्लास्टरसे बँधे अपने बाएँ हाथको गलेसे लटकी एक पट्टीके सहारे टाँगे मुँहमें दबी पाइपसे धुँएके छोटे-छोटे बादल निकाल रहे थे। उनकी आँखें जैसे बर्लिनके चिरपरिचित पड़ोसको पहचाननेका विफल प्रयत्न कर रही थीं। उनके मनमें आज वह उल्लास और आह्लाद नहीं था, जो घरके निकट पहुँचनेवाले परदेशीमें होता है।

फ्रीड्रिखस्ट्रासे स्टेशनपर जब गाड़ी पहुँची, तो वे उतर पड़े। प्लेटफ़ार्मपर इने-गिने आदमी फटे-मैले कपड़े पहने उदास-से घूम रहे थे। पहलेकी-सी भीड़-भाड़ मानो अब अतीतकी कथा बन गई थी। कप्तानको पहले तो सन्देह हुआ कि कहीं वे किसी छोटे स्टेशनपर तो नहीं उतर गए हैं; पर स्टेशनका नाम देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि नहीं, फ्रीड्रिखस्ट्रासे यही है। स्टेशनसे बाहर आकर उन्होंने 'आंगरिफ़'की एक प्रति खरीदी। सारा मुखपृष्ठ जर्मनोंकी विजयोंके अतिशयोक्तिपूर्ण समाचारोंसे रँगा था। एक कालमके नीचेवाले कोनेमें बिना शीर्षकके दो पंक्तियाँ छपी थीं—"खारकफ़से हमने अपनी सेनाएँ पीछे हटा ली हैं। लाल-सेना हमारे प्रतिकूल मौसमसे लाभ उठाकर कुछ आगे बढ़ आई है।"

कप्तानका माथा ठनका—'तो खारकफ़ भी हाथसे गया!' फिर उन्हें खयाल आया—'नहीं, इतनी जल्दी यह कैसे सम्भव हो सकता है?' उन्होंने इधर-उधर देखा और कुछ दूरीपर खड़े एक अखबार बेचनेवाले लड़केको इशारेसे अपनी ओर बुलाया। उसके पास 'दोएचेस एलेग्माइने साईतूंग' था। कप्तानने उसकी एक प्रति खरीदी और बड़े गौरसे उसका मुखपृष्ठ देखने लगे। वही खबर, उन्हीं शब्दोंमें, इसमें भी एक कोनेमें छपी थी। कप्तानके ललाटपर सलवटें पड़ गईं और उनके चेहरेकी उदासी और भी गहरी हो गई। एक ठण्डी साँस लेकर वे टैक्सी-स्टैण्डकी ओर चल पड़े। उन्हें अपने पाँव आज अधिक भारी मालूम हो रहे थे।

ग्रूनेवाड बस्तीमें एक घरके सामने पहुँचकर उन्होंने टक्सी रुकवाई। पाँच मार्कका एक नोट निकालकर ज्यों ही उन्होंने ड्राइवरकी ओर बढ़ाया, उसने गिड़गिड़ाकर कहा—'मुझे खेद है कप्तान, यहाँ तकका भाड़ा १७ मार्क हुआ।' कप्तानने एक मर्मभेदी दृष्टि ड्राइवरपर डाली और बिना कुछ कहे जेबसे १२ मार्क और निकालकर उसके हाथपर रख दिए।

दरवाज़ेपर पहुँचकर उन्होंने दस्तक दी। दो भारी पाँवोंकी आहट उनके कानोंमें पड़ी और दूसरे ही क्षण दरवाज़ा खुला। कप्तानने देखा कि उनकी बूढ़ी माँने—जो उनकी लम्बी अनुपस्थितिमें शायद अधिक बूढ़ी हो गई थी—आनन्दातिरेकसे गद्‌गद् हो अपने काँपते हुए दोनों हाथोंको उनकी ओर बढ़ा दिया और चिल्ला उठी—'फ्रिट्ज़बाख, मेरा प्यारा बेटा!' माँके गले लगकर फ्रिट्ज़बाखको जैसे आज नया जीवन मिल गया। उसकी भूरी आँखोंमें छलछलाते हुए आनन्दाश्रु और मूक गिराकी विवशतासे काँपते हुए होंठ जैसे माताके सरल-सुष्ठु वात्सल्यकी दुहाई दे रहे थे।

दूसरे ही क्षण बुढ़ियाकी दृष्टि कप्तानके बँधे हुए हाथकी ओर गई। कुछ अनमने-से भावसे उसने पूछा—'और यह हाथमें क्या हुआ रे?'

'कुछ खास तो नहीं, माँ!'—कप्तानने बनावटी मुस्कराहटके साथ कहा—'यों ही, ज़रा चोट लग गई थी।'

'पर तूने तो मुझे इसकी कभी खबर तक भी न दी।' बुढ़ियाने किंचित् अविश्वासके स्वरमें पूछा।

'भला इसकी भी कोई खबर देनेकी ज़रूरत थी? ऐसी मामूली-सी चोटों.....'

'बस, बस, रहने दे।' बुढ़ियाने कप्तानको बीच ही में रोककर कहा—'मामूली चोटोंमें पैरिस-प्लास्टर बाँधा जाता होगा? तू तो जैसे मुझे निरी भोली बच्ची ही समझ रहा है।'

कप्तानने अपना दायाँ हाथ माँके कन्धेपर रखते हुए कहा—'लो, फिर आते ही तुमने झगड़ा शुरू कर दिया न! अच्छा, तो मैं कल ही फिर पूर्वी-मोर्चेपर चला जाऊँगा और फिर शायद ज़िन्दा न लौटूँ।'

इस बार बुढ़ियाकी भौंहें तन गईं। उसकी आँखें लाल हो आईं। कप्तानकी ओर देखते हुए उसने दाँत पीसकर कहा—'पूर्वी-मोर्चा! मेरे सामने फिर उसका नाम न लेना। अब तो वह हमारी नई पौध और नई आशाकी समाधि बन रहा है। सत्यानाश हो इस पापी फ़्यूहरेरका.....'

कप्तान अब तक जिसे मज़ाक समझ रहे थे, वह उस आहत माँकी मर्मवाणी थी और उसके पीछे मानो समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माताओंका दुर्दम विक्षोभ छिपा था। किसी तरह बात बदलनेके खयालसे वे बोले—'अच्छा माँ, ईवा कहाँ है? इतनी देर तक वह दिखाई क्यों नहीं दी?'

'ईवा, बेचारी ईवा!' एक ठण्डी साँस लेकर बुढ़ियाने अपने आँसू पोंछे और टूटते हुए स्वरमें बोली—'ईवा अब स्वतन्त्र महिला नहीं है। उससे ज़बरदस्ती एक फैक्ट्रीमें काम कराया जाता है। सुबह सात बजे जाती है और रातको ८, ९ और कभी-कभी तो १० बजे तक लौटती है। खाने-पीनेको ठीक मिलता नहीं, इतना काम भी वह बेचारी कर नहीं सकती; इसलिए स्वास्थ्य एकदम गिर गया है। तू तो शायद इतने दिनों बाद सहसा उसे पहचान भी नहीं सकेगा।'

'और हाँ, आनाका क्या हाल है? क्या वह भी कहीं काम करती है?'

'नहीं, उसे नात्सी दस्युओंने पोलैण्ड भेज दिया है। मेरे यह कहनेपर कि वह तुम्हारी मँगेतर है, अधिकारियोंने कहा कि वे एक अर्द्ध-यहूदी स्त्रीको किसी आर्य जर्मनको कदापि भ्रष्ट नहीं करने देंगे।'

'आर्य जर्मन!'—कप्तानके दाँत किटकिटा उठे। फिर कुछ शान्त होकर वे बोले—'अच्छा माँ, तुम्हारे गिरजा जानेका समय हो गया। तुम वहाँ हो आओ। मैं इस समय बहुत थका हूँ, ज़रा आराम करूँगा।'

'गिरजा!' एक व्यंग्यपूर्ण हँसीके साथ बुढ़ियाने कहा—'अब ग्रूनेवाडमें गिरजा है ही कहाँ? वह अब शैलफैक्ट्री बन गया है। उसके पादरीको बाध्य-रूपसे श्रम करना पड़ता है और उसमें रहनेवाली नन्सको फ़ौजी वेश्यालयोंमें भेज दिया गया है। अब ईसाकी जगह वहाँ गेस्टेपोका उपदेश होता है!'

'यह तुम क्या कह रही हो, माँ?'

कप्तानका हाथ पकड़कर आगे बढ़ते हुए बुढ़ियाने कहा—'मैं ठीक ही कह रही हूँ। अब तू आ गया है, अपने कानोंसे सब कुछ सुन लेगा। वे तो ईवाको भी पकड़े लिए जा रहे थे; पर जब मैंने कहा कि वह तेरी सगी बहन है, तब कहीं बेचारीका पिण्ड छूटा। अब भी क्या वह सुरक्षित है? ईश्वर जाने, उसका और हम सबका अब क्या होना है?'

- २ -

ग्रूनेवाडमें फ्रिट्ज़बाख-परिवारके केवल एक ही मित्र रहते थे और वे थे डा० कोनरेड हाइन। वे बेल्जियममें लड़ते हुए घायल हुए थे। घुटनोंसे नीचे तक उनके दोनों पाँव काट डाले गए थे। तबसे वे अपने घरपर ही रहते थे। एक पहियों-वाली गाड़ीपर चढ़े वे दिन-भर अपने विशाल भवनके एक कमरेसे दूसरे कमरेमें घूमा करते थे। कप्तान फ्रिट्ज़बाखके पूर्वी-मोर्चेपर चले जानेके बादसे ईवा ही उनके घर अधिक आती-जाती थी। इन गाढ़े दिनोंमें वे उसके और उसकी माँके लिए एक बहुत बड़ा सहारा थे।

ईवासे कप्तान फ्रिट्ज़बाखके आनेकी बात उन्हें मालूम हो गई थी। तभीसे वे उनसे मिलनेके लिए अधीर हो उठे थे और थोड़ी-थोड़ी देर बाद उन्हें बुलानेको अपना नौकर भेज रहे थे। अन्तिम बार तो उन्होंने यहाँ तक धमकी दी कि अगर इस बार कप्तान फ्रिट्ज़बाख उनके यहाँ नहीं गए, तो वे खुद नौकरकी पीठपर सवार होकर आयँगे। इस बार फ्रिट्-ज़बाखको हार माननी पड़ी और ईवाके लौटनेकी अधिक प्रतीक्षा किए बिना ही वे डा० हाइनके घरकी ओर चल पड़े।

कप्तानको देखकर डा० हाइनकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। उनके दाएँ हाथको अपने दोनों हाथोंमें लेकर दबाते हुए वे बोले—'तुम ज़िन्दा कैसे लौट आए, फ्रिट्ज़बाख? लाल-सेना और सर्दीने तुम्हें कैसे छोड़ दिया?'

'यह मेरा और तुम्हारा दोनोंका सौभाग्य ही समझो, डाक्टर!' कप्तानने सामने रखी कुर्सीपर बैठते हुए कहा—'और सुनाओ, घरू-मोर्चेके क्या हाल-चाल हैं?'

'पहले तुम पूर्वी-मोर्चेकी बात तो बताओ, घरू-मोर्चेकी चर्चाके लिए तो अभी काफ़ी समय है। ज़रा सुनूँ तो, हमारी जीतोंकी अस्लियत क्या है?'

'पूर्वी-मोर्चेका हाल अब क्या सुनोगे? जब हम लोग विगत वर्ष गिद्धोंकी तरह रूसियोंपर टूट पड़े थे, तो जान पड़ा था कि उन्हें हराना कुछ ही हफ़्तों या महीनोंकी बात है। जिस बुरी तरह वे लोग पीछे हटते गए, उसने हमारी इस धारणाको विश्वासमें परिणत कर दिया। पर पिछले वर्ष हमें पता लग गया कि रूसी कमज़ोर नहीं, बल्कि पूरी तरह तैयार नहीं हैं। वे डर या हारकर नहीं, बल्कि हमें अधिक भीतर खींचने और हमारी सेना तथा सामग्री खटानेकी रण-नीतिक चालके कारण पीछे हटे थे। इस वर्ष तो उन्होंने हमारी रही-सही भ्रान्ति भी दूर कर दी है। भूखे भेड़ियोंकी तरह टूटते उनके सैनिकों, बाजकी तरह झपटते उनके लड़ाकू और बोमारू यानों और बवण्डरकी तरह चारों ओरसे बढ़ते हुए उनके टैंकोंको देखकर तो हम लोगोंके पाँव ही नहीं, दिल भी उखड़ गए हैं। कौन जाने, वे कहाँ तक बढ़ेंगे?

'अच्छा, यह बात है?' डा० हाइनने आँखें फाड़कर कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ, अभी तो शायद हमारी हालत इससे भी बदतर होनी है। फ़ौजी विशेषज्ञोंकी बातोंकी उपेक्षाकर फ़्यूहरेरने जो यह भूल की है, वह जर्मन राष्ट्रके लिए बहुत मँहगी पड़ेगी। अन्य देशोंमें हमने जो विजय प्राप्त की, उसे हम ज़ोर-ज़ुल्मसे किसी तरह अभी तक क़ायम रख रहे हैं; पर रूसमें तो अब उल्टी हवा बह चली है। कौन कह सकता है कि ये लाल सेनाएँ रूसके पुराने सीमान्तपर आकर रुकेंगी या बर्लिनकी ओर बढ़ेंगी? खारकफ़से तो वे आगे आ ही पहुँची हैं।'

'खारकफ़ तो वे कई दिन पहले ही पहुँच गई थीं। अब तो उन्होंने उक्रेनके लगभग आधे हिस्सेपर दखल कर लिया है।'

'तब तो हम लोगोंको जो हज़ारों टन युद्ध-सामग्री और लाखों जर्मन प्राणोंकी बलि देनी पड़ी है, वह सब व्यर्थ ही जायगी।'

'जायगी नहीं, समझ लो गई—कभी की गई! तभी तो फ़्यूहरेर, फ़ौजी अधिकारी और उनके खुशामदी अब बगलें झाँक रहे हैं! लोगोंमें भीषण असन्तोष और विक्षोभ फैल रहा है।'

'तब वे इस युद्धको जारी क्यों रखे हुए हैं?'

'और उपाय क्या है? नात्सियोंकी प्रतिष्ठा और अस्तित्व तक आज दाँवपर लगे हैं। उन्होंने बाल्शेविज़्मके विरुद्ध धर्म-युद्ध कहकर इसे शुरू किया था; पर यूरोपके अन्य पूँजीवादी इस चालमें नहीं आ सके और अब तो नात्सियोंको लेनेके देने पड़ रहे हैं।'

'यह तो ठीक है; पर जनता आखिर उनका साथ क्यों दे रही है?'

'सुनो फ्रिट्ज़बाख',—डा० हाइनने कुछ गम्भीर होकर कहा—'जनता स्वेच्छासे नहीं, डरके मारे और विजयकी आशासे नहीं, पराजयको दूर ठेलनेके लिए आज इसे जारी रख रही है। युद्धोपरान्त लोगोंको किन-किन यातनाओं, कष्टों, अपमानों और अनिष्टका सामना करना पड़ेगा, इनकी आशंका ही आज उन्हें जड़ और कायर बनाए हुए है।'

'आपकी बातोंमें कुछ सचाई मालूम होती है, डाक्टर!'

'कुछ ही नहीं, बहुत-कुछ। मैं चाहता हूँ फ्रिट्ज़बाख, तुम जितने दिन भी यहाँ हो, ज़रा घूम-फिरकर अपनी आँखोंसे देखो और अपने कानोंसे सुनो कि लोग क्या कहते, क्या सोचते और कैसे खाते-पीते-रहते हैं? ९ राष्ट्रोंको पराजित और पद्-दलित करनेवाले जर्मनीकी दशा आज कैसी है? और जिस दिन रूस, फ्रांस, पोलैण्ड, नार्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम, हालैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया आदिके लोग इसपर प्रतिशोधका दण्ड लेकर टूट पड़ेंगे, उस दिन इसकी अवस्था क्या होगी, मैं तो उसकी कल्पना ही से काँप उठता हूँ। एक ओर फ़्यूहरेर विजय और साम्राज्यके स्वप्न देख रहा है और दूसरी ओर जनता उसे 'माइन काम्फ़' के साथ ही ज़िन्दा दफ़नानेके मन्सूबे बाँध रही है।'

'तब क्या होगा, डाक्टर? क्रान्ति होगी?'

'अवश्य। जर्मन जनताके उद्धारका अब और कोई मार्ग ही नहीं रह गया है।'

कुछ क्षण दोनों चुप रहे। फिर डा० हाइनने पूछा—'और हाँ, तुम्हारे हाथमें क्या हुआ, यह पूछना तो मैं भूल ही गया। क्या बहुत गहरी चोट लगी है?'

'नहीं',—डा० हाइनके कानके पास मुँह ले जाकर कप्तान ने कहा—'चोट तो बहुत मामूली है; पर छुट्टी आनेके लिए यह ढोंग रचना ज़रूरी था। बिना संगीन चोटके मोर्चेपर से इ महीनेकी छुट्टी भला क्यों मिलने लगी?'

'तुममें अभी बुद्धि है!'—डा० हाइनने मुस्कराकर कहा।

'सो बात नहीं है; यह बुद्धि पूर्वी-मोर्चेके अधिकांश फ़ौजी अफ़सरोंमें आती जा रही है। जब रूसमें हम भ्रान्तियों और भूलोंकी सीमा ही नहीं है, तब व्यर्थ अपने गँवानेसे लाभ क्या?'

'तुम ठीक कहते हो, कप्तान! मैं तुमसे पूर्णतया सहमत।'

'अच्छा, तो अब मुझे इजाज़त दीजिए। कई जगह जाना है।' कहकर कप्तान उठे और डा० हाइनसे हाथ मिला बाहर निकल आए।

- ३ -

आदलोन-होटलमें एक फ़ौजी अफ़सरसे भेंटकर जब फ्रिट्ज़बाख घरकी ओर लौट रहे थे, तो उन्हें काफ़ी भूख आई थी। उन्होंने सोचा, घर जानेके बजाय रास्तेमें ही क्यों न कुछ खा लिया जाय। पर साधारण होटलोंमें पीनेकी चीज़ें मिलना काफ़ी अनिश्चित था, अतः वे केफ़े होटलकी ओर ही चल पड़े।

भीतर पहुँचकर उन्होंने देखा, होटलकी शान काफ़ी फीकी पड़ गई है। सारे हालमें मुश्किलसे १ आदमी बैठे थे, जिनमें से अधिकांश गेस्टापोके ही मालूम थे। एक मेज़के पास कुर्सी खींचकर वे भी जा बैठे। चेक बेहरेने आकर उनसे नात्सी सलाम किया और कुछ फूटी जर्मनमें पूछा—'आप क्या खायँगे?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कप्तानने सामने पड़े हुए मैन्यूको देखते हुए कहा—'हैम-एण्डविचेज़, सासेजेज़, पोटेटो सैलेड, ब्रेड एण्ड बटर और काफ़ी।'

'मुझे खेद है, साहब',—बेहरेने किंचित् संकोचके साथ विनम्र भावसे कहा—'ये चीज़ें अभी नहीं हैं। हाँ, ब्रेड ज़रूर मिलेगी; पर मक्खन, मांस वग़ैरा नहीं।'

'और बीअर?'

'हाँ, वह होगी।'

'अच्छा, वही ले आओ।'

बेहरा चला गया। कप्तानने मैन्यूको अपने सामनेसे सरका दिया और सोचने लगे कि यहाँ भी यह हाल है? संगीतके अभावमें होटलका वातावरण और भी मनहूस-सा जान पड़ता था। कुछ क्षण बाद बेहरा बीअरसे भरा एक टम्बलर लाकर कप्तानके सामने रख गया।

कप्तानने एक घूँट टम्बलरमें से ली और मुँह बिदकाकर बिना माल्टके उस रंगीन पानीकी ओर देखने लगे। दूसरी घूँट लेनेका उन्हें साहस ही नहीं हुआ। टम्बलर अपने सामनेसे दूर खिसकाकर वे बेहरेके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। ५ मिनट बीते, फिर १०, फिर १५; आखिर कप्तानका धैर्य जवाब देने लगा। उन्होंने बेहरेको पुकारा। बेहरा तेज़ीसे क़दम बढ़ाता हुआ आया और गिड़गिड़ाकर बोला—'क्षमा कीजिएगा, मुझे ज़रा अधिक देर लग गई। मुझे खेद है, ब्रेड तो चुक गई।'

'तो यह सूचना देने तुम अब १५ मिनट बाद आए हो?'—कप्तानने साश्चर्य बेहरेकी ओर देखकर ज़रा उत्तेजित स्वरमें कहा—'आखिर तुम्हारा मतलब क्या है?'

बेहरेने कोई उत्तर नहीं दिया और सशंक दृष्टिसे इधर-उधर देखने लगा। कप्तानने किंचित् मुस्कराहटके साथ आश्वस्त स्वरमें कहा—'तुम मुझपर विश्वास कर सकते हो। मैं नात्सी नहीं हूँ। साफ़ कहो, दरअसल बात क्या है?'

बेहरेने कप्तानकी ओर झुककर धीमी आवाज़में कहा—'इस धृष्टताके लिए आप मुझे क्षमा करें। सच बात तो यह है कि चेक वेहरोंके संघने निश्चय किया है कि हम इसी तरह ग्राहकोंको परेशान करें, ताकि वे होटलोंमें आना छोड़ दें और सब जर्मन होटल बन्द हो जायँ।' यह कहकर वह फिर तनकर सीधा खड़ा हो गया और कप्तानके आगे बिल बढ़ा दिया। मुस्कराकर कप्तानने बिल देखा और १ मार्क २५ फ़ेनिंग जेबसे निकालकर उसपर रख दिए। चुपचाप उठकर वे बाहर चले आए।

पैदल, ट्राम और टैक्सीमें कप्तान फ्रिट्ज़बाखने बर्लिनकी अनेक सड़कें और गली-कूचे छान डाले। जहाँ भी वे गए, अधभूखे लोगोंके मुर्झाए-से चेहरे, मैले और फटे कपड़े एक गहरी निराशा और नीरसताका परिचय दे रहे थे। लोगोंमें जिस उत्तेजना और उत्साहको उन्होंने अपने जानेसे पूर्व देखा था, आज उसका नाम भी न था। इसी तरह घूमते-फिरते उन्होंने सारा दिन बिता दिया। शाम होते ही बर्लिनके ब्लैक-आउटने वातावरणको और भी मनहूस बना दिया। अब उन्हें रास्ता खोजनेमें भी कठिनाई होने लगी।

कुर्फ्युर्स्टरडाममें काफ़े-वीनके सामने पहुँचकर वे सहसा रुक गए। भीतरसे कई लोगोंके बोलनेकी आवाज़ आ रही थी। उन्होंने देखा कि काफ़े-वीनके आस-पासके काफ़े न मालूम कबके अपने साइन-बोर्डोंके साथ ही गायब हो चुके हैं। भीतर जाकर उन्होंने देखा, कई बूढ़े-बूढ़ियाँ और बच्चे जहाँ-तहाँ बैठे कुछ खा-पी रहे हैं। संगीतका यहाँ भी अभाव है। कप्तानने रेकर्डकी मशीनके पास पहुँचकर १५ फेनिंग उसमें डाले। दूसरे ही क्षण काफ़ेकी उदासीको भंग करता हुआ 'होर्स्ट वेज़ल'* गानका रेकर्ड बज उठा। पर कप्तानको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि कुछ पेशेवर लड़कियोंके अलावा इस गानपर कोई भी खड़ा नहीं हुआ।

एक बुढ़ियाने उन लड़कियोंकी ओर व्यंग्य-भरी मुस्कराहटके साथ इशाराकर अपने पास बैठे बूढ़ेसे कहा—'इन खड़ी होने-वाली सुन्दरियोंकी ज़रा शक्ल तो देखो।' बूढ़ेने शरारत-भरी दृष्टिसे उनकी ओर देखते तथा उन्हें सुनाते हुए कहा—'भला ये क्यों खड़ी नहीं होंगी, इन्हींके लिए तो बेचारे होर्स्ट वेज़लने जान दी थी!' और दोनों क़हक़हा मारकर हँस पड़ते हैं। लड़कियाँ कुछ झेंप-सी जाती हैं। काफ़ेमें एकत्रित कई व्यक्ति उनकी ओर घूरने लगते हैं, जिनकी दृष्टिसे घृणा और उपेक्षा स्पष्ट झलक रही हैं।

---

* नात्सियोंके इस 'अमर संगीतज्ञ'की कहानी भी बड़ी रोचक है। होर्स्ट वेज़ल एक बड़ा दुश्चरित्र और पतित नात्सी था। एक दिन एक वेश्याके यहाँ किसी दूसरे प्रतिद्वन्द्वीने उसका वध कर डाला। हिटलरने यह ड्योंढ़ी पीट दी कि कम्यू-निस्तोंने उसका खून कर डाला है और बड़ी शानसे उसकी अर्थीका जुलूस निकाला। उसको और उसकी कलाको 'अमर' बनानेके खयालसे 'होर्स्ट वेज़ल' नाम देकर उसके एक गानको नात्सियोंने राष्ट्रीय गान बना दिया है।—ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर आकर कप्तान ज्यों ही बाईं ओर मुड़े, उन्होंने देखा कि कई स्त्री-पुरुष और बच्चे खड़े हुए गलीके मोड़पर लगे सरकारी रेडियोसे खबरें सुन रहे हैं। अभी उन्होंने दो ही तीन क़दम उठाए होंगे कि रेडियोपर डा० जोज़ेफ़ गेबल्सके विशेष भाषणकी घोषणा सुन पड़ी। वे रुक गए और कुछ ही क्षण बाद डा० गेबल्सकी सुपरिचित चीख-चिल्लाहट आरम्भ हुई। वे कह रहे थे—'महान जर्मन राइखके सदस्यो, दुश्मनके झूठे प्रोपेगेण्डापर कभी कान मत दो। विश्वास कीजिए, हर मोर्चेपर हमारी सेनाएँ जीत रही हैं। सिर्फ़ पूर्वी-मोर्चेपर सर्दीकी वजहसे हम अपनी रक्षा-लाइनको जान-बूझकर कुछ छोटी कर रहे हैं। हमारी अन्तिम विजय सुनिश्चित है!'

इसी समय टूटी हुई-सी आवाज़में एक व्यक्ति चिल्लाता है—'ज़ीग हाइल।'* अन्य व्यक्ति कुतूहलसे उसकी ओर देखने लगते हैं। कोई कुछ नहीं कहता। वह व्यक्ति हतप्रभ हो झुँझला जाता है; पर इस ओर कोई भी ध्यान नहीं देता।

और ऊँची आवाज़में डा० गेबल्स गरजते हैं—'यह राष्ट्रकी रक्षाका युद्ध है। हमें दोनों हाथोंसे लड़ना होगा। अभी हमें और बड़ी-बड़ी क़ुरबानियाँ करनी होंगी। यूरोपकी बाल्शेविक खतरेसे रक्षा करनेका भार जर्मन सशस्त्र सेनापर ही है।.....अभी और मुसीबतों और खतरोंके लिए तैयार रहिए .....।'

भाषण समाप्त होते ही एक बुढ़िया ज़ोरसे ठहाका मारकर पागलोंकी तरह हँसी और एक ओर चल पड़ी। पीछेसे तेज़ीसे क़दम बढ़ाते हुए दो वर्दीधारी नात्सी उसके पास पहुँचे और उनमें से एकने अर्द्ध-विक्षिप्त स्वरमें कहा—'माँ, तुम्हें इस तरह नहीं हँसना चाहिए। इससे जनताके धीरज और साहसपर क्या असर पड़ेगा?'

'ऐ बेवकूफ़ छोकरो, भागो यहाँसे',—बुढ़ियाने गुर्राकर कहा—'तुम क्या जानो धीरज और साहस किस चिड़ियाका नाम है? जानते हो, मैं अपने पतिको पिछले युद्धमें और अपने पाँचों लड़कोंको इस युद्धमें खो चुकी हूँ। और यह देखो (जेबसे एक कागज़ निकालते हुए) उनकी मृत्युका संवाद भी मुझे अब कई हफ़्तों बाद मिला है, और वह भी इस चेतावनीके साथ कि मैं इसकी चर्चा न करूँ, सोग न मनाऊँ और काले कपड़े भी न पहनूँ! मेरी तरह न मालूम कितनी माताओंकी गोद आज सूनी हो गई है और तुम लोग अभी और क़ुरबानियाँ करने.....।' सहसा एक नात्सी युवकका हाथ बुढ़ियाके मुँहपर ताला बनकर चिपक गया और दोनों उसे घसीटते हुए एक ओर अँधेरेमें ग़ायब हो गए।

* जय हो!

- ४ -

फ्रीड्रिखहाफ़न पहुँचकर कप्तानकी जानमें जान आई। स्टेशनसे बाहर आकर जैसे वे निश्चित नहीं कर सके कि उन्हें किधर जाना है। उनके पाँव निरुद्देश्य उठ और गिर रहे थे। मस्तिष्कमें एक भयंकर बवण्डर-सा आया हुआ था। कभी उन्हें अपनी माँका खयाल आता, कभी ईवा और आनाका और कभी पूर्वी-मोर्चेका। नहीं, अब वे फिर वहाँ नहीं लौटेंगे, कदापि नहीं। उनकी माँ, ईवा, आना आदिका जो भी हाल हो; लोग भले ही उन्हें कायर और ग़द्दार कहें। नात्सियोंकी दुराकांक्षाके लिए वे अपने प्राण नहीं गँवायँगे।

हिमाच्छादित पर्वतमालाओंसे आवेष्टित कान्स्टेंस-झीलका सुस्थिर-निर्मल जल रूपहले चौखटेमें जड़े एक बहुत बड़े दर्पणकी भाँति चमक रहा था। चन्द्रमा उसमें अपना मुँह देखकर जैसे मन-ही-मन हँस रहा था। झीलके किनारे खड़े होकर कप्तानने हसरत-भरी दृष्टिसे अमल-धवल हिम-मण्डित पहाड़ियोंको देखा, फिर झीलके सुनिर्मल जलको और फिर मृदु-मन्द समीरने गहरी साँस खींचकर जैसे अपने फेफड़ोंमें शुद्ध वायु भरनेका अभ्यास करने लगे। अभी उनके हृदय और मस्तिष्कका संघर्ष रुका नहीं था, अपितु और बढ़ता ही जा रहा था।

इसी समय पीछेसे किसीके आनेकी आहट-सी सुनाई दी। कुछ दूरीपर कोई आदमी उत्तर-पूर्वकी ओर जाता हुआ दिखाई पड़ा। कप्तान फिर झीलकी ओर देखने लगे। मन-ही-मन वे कहने लगे—'कायर शायद मैं नहीं हूँ। पर वीर और कायरकी पहचान तो समयपर ही होती है। आज जो अपनी जान जोखिममें डालने चला हूँ, वह क्या अपने लिए? ६० मील चौड़ी यह झील क्या आसानीसे पार होगी? जो कुछ हो, अब अधिक सोच-विचारका समय नहीं है। आजकी रातके साथ ही मेरी छुट्टीका आखरी दिन भी पूरा हो जायगा। कल या तो मेरी लाश इस झीलकी सतहपर तैरती होगी या माँ, ईवा, आना और शायद डा० कोनरेड हाइन भी गेस्टापोके हवालातमें होंगे; या.....'

खाँसकर कप्तानने अपना गला साफ़ किया और इधर-उधर देखने लगे। एक बार उन्होंने पीछे देखा और सहसा झीलमें छलांग लगा दी। इस समय उनके शरीर और मनकी जो स्थिति थी, वह वर्णनातीत है। कप्तान अच्छे तैराक थे,

(शेष पृष्ठ २२५ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

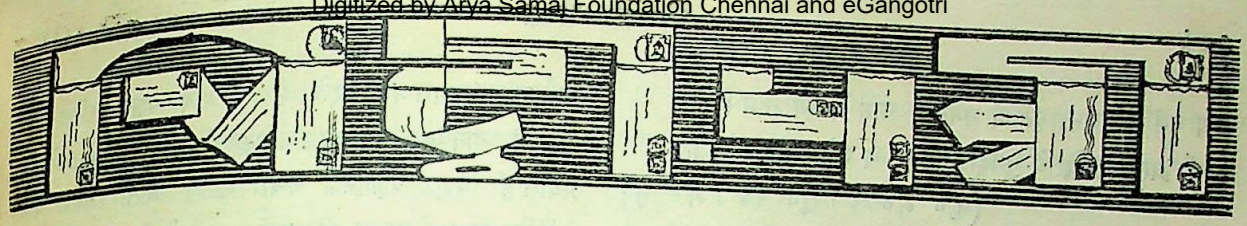

डा० गंगानाथ झा-स्मारक

सर गंगानाथ झाका नवम्बर, १९४१ में स्वर्गवास हो गया। देशके कुछ गण्य-मान्य उदारचेता महानुभावोंका विचार है कि उनके-जैसे मनीषी एवं शिक्षण-शास्त्रीकी स्मृति-रक्षाके लिए कोई उपयुक्त स्मारक बनाया जाय। उनकी रायमें प्रयागमें भारत-सम्बन्धी अध्ययन, शोध एवं प्रकाशन-कार्यके लिए एक संस्था स्थापित करना सर्वश्रेष्ठ रहेगा। यह स्वर्गीय डा० झाके जीवन-कार्य एवं उद्देश्यके अनुरूप ही होगी। डा० झाके सुपुत्रोंने उनके सारे ग्रन्थ संस्थाको सौंप देनेका आश्वासन दिया है।

इस प्रकारकी संस्थाकी स्थापना, भवन, ग्रन्थ तथा पाण्डु-लिपियाँ आदि जुटने, प्रकाशन और शोध-कार्य करनेवालोंको उचित वृत्ति देने आदिके लिए ३ लाख रुपयोंकी लागतका अनुमान किया गया है। चूँकि यह संस्था स्थायी उपयोगकी होगी, सभी उदारचेता एवं भारतीय संस्कृतिके प्रेमियोंसे हमारा अनुरोध है कि वे इस पुनीत कार्यके लिए मुक्तहस्त होकर आर्थिक सहायता दें। दरभंगाके महाराजाधिराजने इस कार्यके लिए १० हज़ार रुपए दिए हैं और १५ हज़ार और देनेका वचन दिया है। कानपुरके सर्वश्री पद्मपत सिंघानिया और हरगोविन्द मिश्रने भी क्रमशः १५ और १ हज़ार रुपए दिए हैं।

सब प्रकारकी सहायता संस्थाके कोषाध्यक्ष पं० ब्रजमोहन व्यास, एक्ज़ीक्यूटिव आफ़िसर, इलाहाबाद म्युनिस्पल-बोर्ड, इलाहाबादके पतेपर भेजी जानी चाहि।

१ एलेनगंज रोड, प्रयाग] (डा०) उमेश मिश्र, मन्त्री

राहुलजी और पुनर्जन्म

'विशाल भारत'के गत फरवरीके अंकमें राहुलजीने अपने अध्ययनकी झाँकी 'उपनिषद्का प्रथम दार्शनिक—प्रवाहण जैबलि' लेखमें हमें प्रदान की है। लेखका शीर्षक ही भ्रमपूर्ण है। उपनिषद्में अनेक ऋषि-सम्मेलनोंका वर्णन है; पर उनमें कहीं भी किसी ऋषिको ऐतिहासिक प्रथमता नहीं दी गई है। साधारण तौरपर कहा गया है कि इतने विद्वान थे, उन्होंने एकत्रित होकर अमुक चर्चा की। स्वयं छान्दोग्य और बृहदारण्यकमें ही अनेक अन्य ऋषियोंका इसी प्रकार वर्णन आता है। उनमें से किसी एकको चुनकर प्रथम कह देना सर्वथा भ्रमोत्पादक है।

सौभाग्यसे राहुलजी अपने इस लेखमें ऋग्वेदकी प्राचीनता मानते हैं। नीचे हम पुनर्जन्मपर ऋग्वेदके कुछ मन्त्र दे रहे हैं :—

(पृष्ठ २२४ का शेष)

दृढ़ विश्वासके साथ आगे बढ़ने लगे। रातका सन्नाटा उनकी गतिसे होनेवाली हल्की-सी छप्-छप्से रह-रहकर भंग हो रहा था; पर उस ओर ध्यान देनेवाला इस समय आस-पास कोई भी नहीं था।

× × ×

जब कप्तानकी आँख खुली, तो उन्होंने एक छोटे-से झोंपड़ीके घरमें अपने-आपको आगके समीप एक चारपाईपर लेटे पाया। पास ही एक बूढ़ा स्विस बैठा पाइप पी रहा था। कप्तानको जगा देखकर उसने कहा—'क्यों दोस्त, अब कैसी तबीयत है? सर्दी तो नहीं मालूम होती?'

'नहीं',—कप्तानने सिर हिलाकर कृतज्ञतापूर्वक कहा—'पर भले वृद्ध, तुमने आखिर मुझे क्यों बचाया?'

'जर्मन-पुलिसके हवाले करनेके लिए!' बूढ़ेने शरारत-भरी आँखोंसे हँसते हुए कहा।

कप्तान ज़रा गम्भीर हो गए। उन्हें चिन्तित देखकर बूढ़ेने सहज मुस्कराहटके साथ कहा—'किसी बातकी चिन्ता मत करो, दोस्त! मेरे घरमें अब तुम्हें किसी भी बात या व्यक्तिका डर न होगा।'

कप्तान एक क्षण चुप रहे। फिर बूढ़ेकी ओर देखकर बोले—'इसके लिए मैं आजीवन तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा। पर यह तो बताओ कि तुमने आखिर मुझे बचाया किस लिए?'

'तुम्हारे परिवार, प्रेमल पत्नी और निरवलम्ब जर्मनीके लिए! मैं चाहता हूँ कि इस विनाशकारी युद्धके बाद भी तुम-जैसे कुछ स्वस्थ-सबल युवक बच जायँ। नवीन जर्मनीकी आशा-आकांक्षा अब तुम्हीं-जैसे पुरुष हैं।'

कप्तानकी आँखें कृतज्ञतासे भर आईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥'
(ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १)

'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥'
(ऋ० मं० १। सू० २४। मं० २)

'असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति ॥'
(ऋ० अ० ८। अ० १। व० २३। मं० ६)

'पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुर्नर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां ३ या स्वस्तिः ॥'
(ऋ० अ० ८। अ० १। व० २३। मं० ७)

विशेष कथनीय यह है कि अन्तिम दो मन्त्रोंके ऋषि 'बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः' हैं। उपनिषत्वचनमें पुनर्जन्म राजन्य-बन्धु द्वारा कथित है। राहुलजीको यदि प्राचीनता ही मान्य है, तो ऋग्वेदका प्रमाण स्पष्ट प्रबलतर है। परन्तु कोई सिद्धान्त उसके ज्ञात करनेवालेकी जातिके अनुसार मान्य अथवा अमान्य नहीं हो सकता। आज विज्ञान-कालमें अनेक जातियों तथा राष्ट्रोंके लोगोंने अनेक ऐसे वैज्ञानिक सिद्धान्त खोज निकाले हैं, जो सर्वमान्य हुए हैं। प्रकृति और प्राणकी अमरता (Conservatism of matter and energy) की नींव-पर खड़ा हुआ भौतिक विज्ञान लहलहा रहा है तथा जीवनमें नवीन आशा और स्फूर्तिका संचार कर रहा है। आज वैज्ञानिक किसी पदार्थके रूपके नष्ट होनेपर खिन्न नहीं होता। प्राचीन आर्यवर्त्त जीवकी अमरता (Conservatism of life-soul) से पूर्ण परिचित था। पुनर्जन्म उसीकी दूसरी व्याख्या है। जो आत्मोन्नति चाहते हैं, इस संसारमें अमर सुख और शान्ति चाहते हैं, भव-बाधाओंसे मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें आधुनिक वैज्ञानिककी तरह इस सिद्धान्तको भी मूलभूत सिद्धान्त मान लेना पड़ेगा। तभी जीवनके द्वन्द्व अपने-आप शान्त हो जायँगे, अन्यथा आशाहीन नास्तिकवाद—खाओ, पिओ और मौज करो—ही एकमात्र शेष रह जायगा। दायित्वपूर्ण जीवन, वैज्ञानिक जीवन, सृष्टि-नियमोंके अध्ययनका जीवन है और संसार अपनी मूल शक्तियोंकी अमरता (Conservatism—पुनर्जन्म) का जाज्ज्वल्यमान उदाहरण है। केवल अन्ध-विश्वास ही उससे हमें दूर रख सकता है।

उपनिषद्के जिस रहस्यका राहुलजीने वर्णन किया है, वह भी उन्हें स्पष्ट नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है। 'उद्गीथ'का अर्थ वह 'सामगान' करते हैं। यदि पक्षपात-रहित होके उन्होंने ध्यानपूर्वक वह प्रपाठक पढ़ा होता, तो उन्हें उसमें किस प्रयास ही विशुद्ध वैज्ञानिक चर्चा झलक जाती, सकल वाङ्-शक्तिका आधार मालूम हो जाता। आगे जिस चक्रका उन्होंने वर्णन किया है, वह श्रद्धा-चक्र है। आज प्रत्येक भूगोल विद्यार्थी 'वर्षा-चक्र' (Cycle of Rains) से परिचित है। यदि भाव-प्रदर्शनके लिए श्रद्धा-चक्रको आंग्ल भाषामें (Cycle of Protoplasm) कह दें, तो उक्त वर्णनका रहस्य समझमें आ जायगा। फिर उसका उपहास कैसे किया जा सकता है। 'श्रद्धा' शब्दका अर्थ जहाँ उसका वर्णन आपः (fluid) रूपसे वेद और उपनिषद्-ग्रन्थोंमें हुआ है, वहाँ ही अध्ययन करनेसे आ सकता है। पाठक वैदिक विज्ञानको जीवित करें।

देवयान तथा पितृयान आदिका स्रोत भी वेद ही है। ऊपरका अँगुली-निर्देश इस ओर भी पर्याप्त होगा, ऐसा हम मानते हैं। राहुलजीका दार्शनिक अध्ययन अधिक दर्शनमुखी हो, यही हमारी कामना है।

मथुरा छावनी] —श्रीभूषण गुप्त

पुस्तकालय तथा हस्त लिखित पुस्तकें

पत्र-पत्रिकाओंमें अब तक जो पुस्तकालय-सम्बन्धी लेख निकले हैं, वे अधिकांशतः प्रोत्साहन दिलानेके खयालसे हैं। उनमें प्रायः यही कहा गया है कि विदेशोंमें पुस्तकालयोंकी संख्या बहुत अधिक है और हमारे देशमें बहुत कम। किन्तु वास्तवमें भारतवर्षमें इस गए-गुज़रे समयमें भी जितने पुस्तकालय होने चाहिएँ, उतने हैं; पर उनका ठीक उपयोग नहीं किया जाता, उनकी कमीको दूर नहीं किया जाता।

उदाहरणार्थ, भारतवर्षमें लगभग दस हज़ार हाई-स्कूल और एक हज़ार कालेज तथा लगभग १७ विश्वविद्यालय हैं। इनके अतिरिक्त गैर-सरकारी स्कूल, कालेज तथा धार्मिक, व्यावसायिक एवं राष्ट्रीय विद्यालय आदि भी काफ़ी हैं। कितने संख्या इन संस्थाओंकी है, लगभग उतनी ही पुस्तकालयोंकी संख्या है। इस प्रकार लगभग बीस हज़ार पुस्तकालय भारतवर्षमें हैं। इनके अतिरिक्त आर्यसमाजों, म्युनिस्पल बोर्डों और सार्वजनिक पुस्तकालयोंकी संख्या भी काफ़ी होगी।

भारतवर्षमें पुस्तकालयों-सम्बन्धी शिक्षाका भी प्रबन्ध है; बनारस, बड़ौदा, लाहौर आदि स्थानोंमें प्रबन्ध है; पर यह उनमें बड़ौदाको छोड़कर बाक़ी जगह अंगरेज़ी साँचे ही ढाले जाते हैं, जो किसी भी प्रकार भारतवासियोंके पुस्तकालयोंके लिए लाभकारी साबित नहीं हो सकते। इसमें जनताकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आवश्यकताका ध्यान रखा जाना चाहिए। नागरी-प्रचारणी सभा, काशी तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागको यह कार्य अपने हाथमें लेना चाहिए।

हस्त-लिखित पुस्तकोंके बारेमें भी भारतमें बड़ी टीका-टिप्पणी होती रहती है। इसमें कोई शक नहीं कि भारतसे बहुत-सी हस्त-लिखित पुस्तकें विदेशोंको चली गईं; किन्तु आजकल जो पुस्तकें भारतमें हैं, उनकी रक्षाके लिए भी क्या हो रहा है? उनकी सुरक्षा, संपादन एवं छपवाई आदिका भी कोई प्रबन्ध नहीं। नागरी-प्रचारणी सभा, काशीमें लगभग एक हज़ारसे भी ज़्यादा हस्त-लिखित ग्रन्थ मौजूद हैं; किन्तु उस सम्बन्धमें अब तक क्या हुआ है? इस कार्यके लिए सभाने तीन लाख रुपएकी अपील की है। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। इससे तो अच्छा है, यदि प्रकाशकोंको उन ग्रन्थोंको देकर छपवा लिया जाय, जिससे जनताका कुछ लाभ हो।

इसी प्रकार गवर्मेण्ट-संस्कृत-कालेजमें भी हज़ारों हस्त-लिखित ग्रन्थ हैं। इसके प्रतिष्ठापक भी अक्सर कहा करते हैं कि संसारमें इतनी हस्त-लिखित पुस्तकें और कहीं नहीं हैं। पर इससे लाभ क्या? यह पुस्तकालय मनमौजसे खुलता है और हरएक जन-साधारणको दिखाया भी नहीं जाता। उन्हें शायद नहीं मालूम कि ऐलेक्ज़ेड्रियाका पुस्तकालय, जिसमें लगभग चार लाख हस्त-लिखित ग्रन्थ थे, जलाकर खाक कर दिया गया। यदि वह दौलत बँटी हुई होती, तो आज हमें हाथ मलकर पछताना नहीं पड़ता। हमारे गाँवोंमें भी काफ़ी बड़ी तादादमें हस्त-लिखित ग्रन्थ पड़े हैं, जो यातो अनाड़ियोंके हाथोंमें पड़कर नष्ट हो रहे हैं या रद्दीमें बिककर सदाके लिए लोप हो रहे हैं। इस ओर शीघ्र ही ध्यान दिया जाना चाहिए।

विश्वविद्यालय, काशी] —राममोहन, बी० काम०

बुन्देलखण्डी विश्वकोष

बुन्देलखण्डी विश्वकोषकी योजना जनताके सम्मुख पहुँच चुकी है। इस मतसे कि इस जनपदके मनुष्यों, वृक्षों, नदियों, पशु-पक्षियों और प्राकृतिक स्थलोंका नापा-जोखा ले लिया जाय, सभी प्रान्त-प्रेमी सहमत होंगे। हमारे प्रान्तमें ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक व साहित्यिक शोधकी अगणित सामग्री भरी पड़ी है। उस सबका अन्वेषण करना दो-चार व्यक्तियोंका काम नहीं। वैसे लेखक अपने कमरेमें बैठकर ग्रन्थ बना सकते हैं; पर यदि हमें वास्तवमें सम्पूर्ण प्रान्तकी लुप्त शक्तियोंको प्रकाशमें लाना है, तो हमें देखना होगा कि कोई ऐसी ग़लती, जो ज़रा-सी सावधानी और जनताके सहयोगसे ठीक हो सकती थी, ज्यों-की-त्यों न छूट जाय अथवा किसी आवश्यक तथ्य या विषयकी उपेक्षा न हो जाय। साधारण पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे बिना किसी हिचकिचाहटके जिन विषयोंपर थोड़ी भी जानकारी रखते हों, हमारे पास लिख भेजें। इसके लिए सिद्धहस्त लेखक होना आवश्यक नहीं। यदि विस्तृत लेख न लिखे जा सकें, तो दो-चार आवश्यक तथ्योंपर ही प्रकाश डाला जा सकता है। नीचे कुछ विषय दिए जाते हैं, जिनपर हम सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं व संस्थाओंसे सहायता व परामर्शकी आशा रखते हैं :—

(१) बुन्देलखण्डकी सार्वजनिक संस्थाएँ और उनका इतिहास। (२) बुन्देलखण्डके राजनैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यकर्त्ता : दिवंगत व वर्त्तमान। (३) बुन्देलखण्डके देशी राज्योंमें प्रजाकी अवस्था। (४) प्रान्तमें स्त्री-शिक्षा। (५) प्रान्तमें शिक्षाकी दशा व शिक्षण संस्थाएँ। (६) बुन्देलखण्डके प्रसिद्ध व्यक्ति, वकील, डाक्टर, वैद्य, नर्त्तक, गवैये, कारीगर, खिलाड़ी, पहलवान इत्यादि। (७) बुन्देलखण्डके प्राचीन व नवीन लेखक और कवि। (८) बुन्देलखण्डमें समाज-सेवा। (९) बुन्देलखण्डके शिक्षा-प्रसारक। (१०) बुन्देलखण्डके रीति-रिवाज, व्यवहार व देवता। (११) बुन्देलखण्डके प्राकृतिक सुन्दर स्थल। (१२) बुन्देलखण्डके प्राचीन ऐतिहासिक स्थान, तीर्थ और उनका महत्व। (१३) प्रान्तके समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, उनके सम्पादक और पत्रकार। (१४) प्रान्तसे बाहर जाकर काम करनेवाले बुन्देलखण्डी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और औद्योगिक कार्यकर्त्ता। (१५) और भी प्रान्त-सम्बन्धी विषय जो छूट गए हों।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़] —जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

भूल-सुधार

(१) गतांकमें पृष्ठ १२८, कालम २ की १९ वीं पंक्तिमें '६०० करोड़'की जगह ग़लतीसे '५०० करोड़' छप गया है। (२) उसी अंकमें पृष्ठ १३८, कालम २ की अन्तिम पंक्तिमें 'वर बिहारी कायस्थ हैं' हमारी अनभिज्ञतावश छप गया है। वास्तवमें वर जन्मतः कायस्थ नहीं, 'क्षत्रिय' हैं, और कार्यतः उनका परिवार जात-पाँतको सर्वथा तिलांजलि दे चुका है। (३) उसी अंकमें पृष्ठ १५६, कालम २ की १६ वीं पंक्तिमें भारतीय शर्त्तबन्द मज़दूरोंकी संख्या २०,००० की जगह ३०,००० छप गई है। आशा है, पाठक इन भूलोंको सुधार लेनेकी कृपा करेंगे।—सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

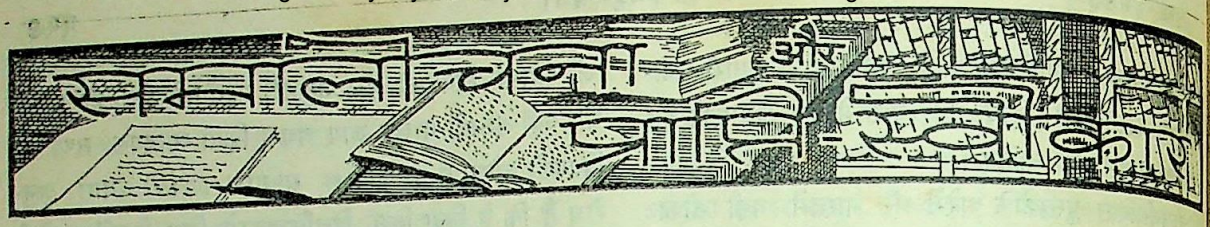

संन्यासी (उपन्यास) : लेखक—श्री इलाचन्द्र जोशी; प्रकाशक—भारती-भण्डार, लीडर-प्रेस, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ५२२, मूल्य ३) ।

बहुत दिन हुए जोशीजी द्वारा लिखित एक उपन्यास पढ़ा था 'घृणामयी' । उसमें उन्होंने एक रूपगर्विता तथा प्रदर्शन-शीला नारीकी कहानी बिल्कुल नई शैलीमें कही है । उसे पढ़कर यह आशा बँधी थी कि यह लेखक हिन्दीके कथा-साहित्यको मूल्यवान कृतियाँ प्रदान करेगा । इसलिए 'संन्यासी' का हमने विशेष उत्सुकताके साथ अध्ययन किया ; किन्तु जो आशा लेखकने 'घृणामयी' में जाग्रत की थी, वह पूर्ण रूपसे प्रस्तुत उपन्यासमें फलीभूत नहीं हो पाई, यद्यपि प्रकाशकोंकी दृष्टिमें 'संन्यासी' कथा-साहित्यकी 'अपूर्व' वस्तु है ।

'संन्यासी'का नायक नन्दकिशोर विश्वविद्यालयका एक विद्यार्थी है । समय-समयपर स्त्रियोंके साथ जो उसका सम्बन्ध रहा है, प्रस्तुत पुस्तकमें उसीकी कहानी विस्तारपूर्वक कही गई है । कृपादृष्टि तो नन्दकिशोरपर बहुत स्त्रियोंकी पड़ी ; किन्तु 'संन्यासी'में मुख्यतया शान्ति और जयन्तीकी दुःख-गाथा ही कही गई है । शान्तिसे नन्दकिशोरका परिचय राहचलते बाज़ारमें हुआ था, क्योंकि वह उसे पान खाते देखकर खिल-खिला पड़ी थी और जयन्तीको उसने उसके पिताके घर प्रथम बार देखा, जब कि वह बिना बुलाए कुछ मित्रोंको लेकर उनका अतिथि जा बना था । शान्तिको नन्दने अविवाहित प्रेमके बन्धनमें बाँधा, और फिर उसके साथ उसने तथा उसके भाईने इतनी निर्दयताका व्यवहार किया कि उसे उन्हें छोड़नेके लिए मजबूर होना पड़ा । हालां कि वह एक बच्चेकी माँ बनने जा रही थी । उसके चले जानेपर नन्दकिशोरने शान्तिको ढूँढ़ना व्यर्थ समझा और अपनी भाभी तथा भैयाके कहनेका सहारा लेकर जयन्तीसे विवाह कर लिया ; किन्तु उसके साथ भी उसने अन्याय किया । बिना कैफ़ियत माँगे उसपर एक झूठा दोष लगा दिया, जिसके कारण उसे इतनी चोट लगी कि उसने आत्म-हत्या कर ली । जोशीजीने पाठकोंको यह विश्वास दिलानेकी कोशिश की है कि नन्दकिशोरने यह सब-कुछ इस-लिए किया कि उसका अहंभाव बहुत प्रबल था । सच पूछा जाय, तो पुस्तक समाप्त करनेपर पाठकका मन इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं होगा । साधारण पाठककी दृष्टि तो नन्दकिशोर एक स्वार्थी, नीरस, दुर्बल, व्यक्तित्व-रहित प्राणी दीखता है । उसे नायक चुनकर जोशीजीने पाठकोंपर ही नहीं बल्कि अपने ऊपर भी अत्याचार किया है । इस पात्रमें इतना कम आकर्षण है कि बहुत थोड़े पाठक उत्साहके साथ उसकी कहानी पढ़नेमें तल्लीनता दिखायँगे । इसमें दो और पुरुष पात्र हैं । एक है पूँजीवाद-विरोधी बलदेव और दूसरा है शराबी, चालबाज़ और संसार-चतुर कैलाश । इन दोनोंका अपना विशेष व्यक्तित्व है । यदि नायकके पदके लिए जोशीजीकी दृष्टि इनमें से किसीपर—विशेषतया कैलाशपर—पड़ जाती, तो उनका परिश्रम सचमुच सफल हो जाता । इन दोनोंका चरित्र-चित्रण जितना भी लेखकने किया है, खूब उतरा है । शान्ति, जयन्ती और नन्दकिशोरकी भाभीका चित्रण भी सुन्दर हुआ है । हाँ, लेखकने सरेबाज़ार एक अपरिचित व्यक्तिको देखकर शान्तिकी खिलखिलानेकी चेष्टा दिखाकर उसके साथ अन्याय की है । बादमें उसके चरित्रका जो रूप उसने दर्शाया है, उसकी चेष्टा उसके बिल्कुल अनुरूप नहीं । जो नारी सर्वस्व खो बैठी पर निराश होकर बैठी हो और फिर एकाएक सब-कुछ जानेपर भी सिद्धान्तके लिए उस सब-कुछको ठुकरा सकती है, वह राह जाते अपरिचित पुरुषोंके हास-परिहासमें कभी नहीं लेगी ।

जोशीजीकी शैलीमें बल है, यद्यपि आगेके कुछ परिच्छेदोंमें प्रौढ़ताका अभाव ही नहीं, बल्कि परस्पर-विरोधी भाव भी मिलते हैं । बादके पृष्ठोंमें प्रवाह और प्रौढ़ता अवश्य आ गई हैं ; किन्तु शैली स्थान-स्थानपर व्याख्यानात्मक तथा नीरसता-पूर्ण हो गई है, जिसके कारण कहीं-कहीं पाठकके ऊबने का भय है । इन पृष्ठोंमें लेखकने कुछ स्थलोंपर प्राकृतिक दृश्यका बहुत सुन्दर वर्णन किया है । इससे पुस्तकमें प्राण-से आ गए हैं । पुस्तककी छपाई-सफ़ाई सुन्दर है और मूल्य —अनु उचित है ।

विश्व-वेदना : रचयिता—श्री मैथिलीशरण गुप्त ; प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) ; पृष्ठ-संख्या मूल्य ।=), अजिल्द ।

विश्व-वेदना' का आरम्भ गत महायुद्धकी समाप्तिपर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था और पूरी हुई है वह वर्त्तमान महायुद्धके प्रभावकी प्रेरणासे। अपितु लेखकने उसे एक ही समयकी रचना, एतदर्थ सामयिक ही कहा है। उनकी अभिव्यक्तिपर जहाँ-तहाँ समयकी छाप है भी स्पष्ट; देखिए :—

बढ़ाकर दो देशोंमें द्वेष,
बेच दोनोंको वस्तु - विशेष ;
लूटता एक तीसरा देश,
वणिज्या में क्या लज्जा लेश।
राज्य पूँजीपतिका ही आज,
नहीं कुछ उसके लिए अकाज।

और—

आज प्रजनन ही पौरुष-भोग,
भोग ही बना अन्त में रोग।
हुई परिपूर्ण प्रजाकी पौर,
नहीं अब रहनेको भी ठौर।
रहें तो कितने जन सटकर ?
जायँ तो जायँ कहाँ हटकर ?

और इसका कारण भी सुनिए :—

नहीं स्वर्गापवर्ग की हाय,
बड़ोंका अब है यही उपाय,—
बड़ी-सी हाट कहीं मिल जाय,
बने हाटकका निज व्यवसाय।
रक्तकी नदियाँ भी बह जायँ,
किन्तु बस हमीं वहाँ रह जायँ।

एक ओर जहाँ लेखकने युद्धके मूलभूत साम्राज्यवादी कारणका इतना सुन्दर वर्णन किया है, वहाँ इसके अन्तर्गत होनेवाले शोषण-दोहनका भी अच्छा चित्र खींचा है। देखिए :—

हो रही नव-नव भौतिक सिद्धि,
उपजमें एक अनोखी वृद्धि।
कहाँ जाती है किन्तु समृद्धि,
प्रकट भी गुप्त सदासे ऋद्धि !
देखते रह जाते हैं नग्न,
श्रमी वा कृषक भारसे भग्न।

और—

हुआ मिट्टीका सोना है,
आज फिर भी यह रोना है।
न खाना और न सोना है,
कमाकर योंही खोना है।
उदरोत्पादन है सब ओर,
विभाजन-वितरण कृपण-कठोर।

इसी प्रकार लेखकने वैज्ञानिक आविष्कारों, विकास और प्रगति, रक्तपात और विजय आदिपर बड़े तर्क-संगत ढंगसे प्रकाश डाला है और अन्तमें कहा है :—

आपको सबका-सा मानो,
और सबको निज-सा जानो।
द्वन्द्वको अब तो पहचानो,
न ठग जानेकी हठ ठानो।
यहाँ सबका आद्यन्त समान,
मध्यमें क्यों इतना व्यवधान ?

फिर करुणा-पारावारसे अपील की गई है :—

बहा दे नव रसकी वह धार,
कि धो दे जो वैषम्य-विकार।

विचार और तर्ककी दृष्टिसे वैषम्य-विकार धोनेके लिए करुणा-पारावारसे की गई प्रार्थना वाचकको एक अबूझ भँवरमें छोड़कर पुस्तकके साथ ही खत्म हो जाती है। विश्वकी वेदनाका यह निष्कर्ष (परिणाम) शायद उसे विशेष रुचिकर न प्रतीत हो। पर कविताकी दृष्टिसे तो ये पंक्तियाँ और भी चिन्त्य और अनर्थपूर्ण हैं। प्रथम तो पारावारसे धार बह ही नहीं सकती ; फिर यदि कवि किसी प्रकार ऐसा सम्भव कर या करा भी सके, तो सिर्फ करुणाके पारावारसे समग्र ९ रसोंकी धार (सम्मिलित ?) कैसे बहेगी (जब तक कि इसे सर्वशक्तिमान करुणा-पारावारके बाँए हाथका खेल न मान लिया जाय !) ? और अगर यह भी सम्भव हो सके, तो प्रश्न होता है कि विकार क्या रसकी धारसे धोए जाते हैं ? अगर हम गलत नहीं समझ रहे, तो काव्यमें 'रस'से अभिप्राय है आनन्दानुभूतिका। उसे ब्रह्मानन्द तक कहा गया है। लेखकने उसे विकार धोनेका 'एण्टीसेप्टिक सौल्यूशन' बनाकर अपनी कवि-प्रतिभाका बहुत अच्छा परिचय नहीं दिया है।

कुल मिलाकर 'विश्व-वेदना'की अभिव्यक्ति सुन्दर हुई है, यद्यपि उसमें 'भारत-भारती'का ओज या 'साकेत' अथवा 'यशोधरा'का गाम्भीर्य हमें नहीं मिला। वसुधाकी बाधाको उसकी प्रसव-वेदना बनने और इसी वैषम्य-वनमें अपना पृथुराज पानेके लिए जब कवि 'राम करे'का सहारा लेते हैं, तो ऐसा लगता है कि यदि वे रामकी जगह इस अवसरपर 'मानव'को ही याद करते, तो वेदनाकी यथार्थता और भी गहरी हो जाती। पृथुराज और रामके अविभाज्य राज्यकी आकांक्षा शायद इस युगमें असामयिक प्रतीत होती है। —'भग्नदूत'

'विश्वभारती' (अवनीन्द्र-अंक) : सम्पादक—श्री के० आर०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपलानी ; प्रकाशक—विश्वभारती, शान्तिनिकेतन ; पृष्ठ-संख्या १३८, चित्र-संख्या—सादे ४२, रंगीन २६, मूल्य ८)।

शिल्पी-गुरु श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके नामसे कोई भी भारतीय अपरिचित न होगा। उनकी कलाने न सिर्फ़ भारतीय चित्रकलाको ही नया जीवन प्रदान किया है, बल्कि विदेशोंमें भी भारतका सिर ऊँचा किया है। प्रस्तुत अंक उनकी ७० वीं वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें निकाला गया है। इसमें उनकी कला-शिक्षा, उसके क्रमिक विकास, मोड़ और परिवर्त्तन, उनपर पड़े विदेशी प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया तथा भारतीय चित्रकलाको दी गई उनकी देन एवं नवीनतापर विशद प्रकाश डालनेवाले अधिकारी विद्वानोंके अनेक सुपाठ्य एवं ज्ञानवर्द्धक लेख हैं। कई चित्रकारों एवं विद्वानोंने श्री ठाकुरकी कलाका जो विश्लेषण किया है, वह उनके कला-सागरमें पैठनेवाले पाठकके लिए काफ़ी सहायक सिद्ध हो सकता है। श्री विनोद मुखोपाध्याय द्वारा वर्गीकरण-सहित दी गई श्री ठाकुरके चित्रोंकी सूची कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। वह पूर्ण और समीचीन है या नहीं, यह हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते ; पर श्री ठाकुरकी कलाके शोधक-अन्वेषकके लिए वह असाधारण महत्व रखती है।

सर्वश्री ज़ेटलैण्ड, लारेन्स बिनियन, निकोलाई रोरिक और सर विलियम रोथेंस्टीन द्वारा श्री ठाकुरके सम्बन्धमें व्यक्त किए गए विचार उनकी कलाके व्यापक प्रभाव एवं महत्वके खासे अच्छे परिचायक हैं। अंकमें दिए गए श्री ठाकुरके सादे और रंगीन चित्र न केवल स्थायी कला-निधि ही हैं, बल्कि प्रत्येक अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता है और श्री ठाकुरकी असाधारण प्रतिभाका जैसे मुँहसे बोलकर परिचय देता है। महँगी और कठिनाइयोंके इस समयमें भी ऐसा सुन्दर और दुर्लभ अंक निकालकर विश्वभारती-संचालकोंने जिस साहस, कला-साधना और सेवा-परायणताका परिचय दिया है, उसके लिए वे सर्वथा बधाईके पात्र हैं। हमारा विश्वास है, कला-प्रेमी और समर्थ पाठक प्रस्तुत अंकको अपने संग्रहमें अवश्य सम्मिलित करेंगे, ताकि वे और उनकी आनेवाली पीढ़ियाँ भारतके इस अद्वितीय कलाकारको जान व पहचान सकें। —मो० सिं० सेंगर

देशी राज्य-शासन : लेखक—श्री भगवानदास केला ; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दाबन ; पृष्ठ-संख्या ५६० ; मूल्य ३॥), सजिल्द।

श्री भगवानदास केला हिन्दी-साहित्य-मन्दिरके एक पुराने पुजारी हैं। वे लगभग एक-चौथाई सदीसे भिन्न-भिन्न प्रकारके पुस्तक-पुष्प गूँथकर भारतीय ग्रन्थमालाको सजा रहे हैं। यह पुस्तक भी उसी मालाका २६वाँ सुमन है। इसमें देशी राज्योंकी शासन-पद्धतिपर प्रकाश डालनेका प्रयास किया गया है। स्वतन्त्र भारतके भविष्यके लिए यह एक विकट समस्या है। देशी रजवाड़े इस समय जिस दिशाकी ओर अग्रसर हो रहे हैं, वह भारतकी प्रगतिके लिए वास्तवमें विघातक है। यह दावा कि उनका राजनीतिक सम्बन्ध सीधा ब्रिटिश ताजके साथ है और रहेगा, भारतके राष्ट्रीय सूत्रधारों और देशी राज्योंकी जनताके लिए भय और चिन्ताका कारण बन रहा है। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका भारतके भविष्यके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। दुर्भाग्यवश देशी राज्योंकी प्रजाकी कोई आवाज़ ही नहीं है ; उसके प्रतिनिधित्वको ठेकेदारी भी ब्रिटिश अधिकारियोंकी कृपासे रजवाड़ोंको ही मिल गई है। इन स्वेच्छाचारी और निरंकुश रजवाड़ोंकी सच्ची स्थिति संसारके सामने रखनेके लिए पर्याप्त राजनीतिक साहित्यकी आवश्यकता है। खेद है कि इस विषयपर हिन्दीमें प्रामाणिक ग्रन्थोंका घोर अभाव है।

ऐसी स्थितिमें केलाजीकी यह रचना सामयिक और उपयोगी है। यह ग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें अंगरेज़ोंके आगमनसे लेकर अब तककी अवस्थापर एक विहंगम दृष्टि डाली गई है और द्वितीय भागमें कुछ चुने हुए देशी राज्योंकी शासन-प्रणालीका संक्षेपमें परिचय दिया गया है। यह वर्णन अधूरा है, क्योंकि इसमें सभी देशी राज्योंका परिचय नहीं दिया जा सका है। इस त्रुटिको लेखकने भी स्वीकार किया है। यदि पाँच-दस देशी राज्य होते, तो उनका विस्तृत विवरण दिया जा सकता था ; किन्तु यहाँ तो राज्योंका एक बहुत बड़ा समूह है। कोई कुछ बड़े हैं और कोई बहुत ही छोटे। कोई पन्द्रहवीं सदीके नमूने हैं, तो कोई आधुनिक युगकी गति-विधिके शिथिल और आंशिक अनुयायी। समग्र भारतका क्षेत्रफल १,८०५,३३२ वर्गमील है, जिसमें ३९ प्रतिशत देश रजवाड़ोंके अधिकारमें है। इनकी आबादी लगभग ७२,००,००० है। इतनी बड़ी जन-संख्याकी विभिन्न अवस्थाओंपर यदि यथेष्ट प्रकाश डाला जाय, तो महाभारत-जैसे विशाल ग्रन्थका कलियुगी संस्करण तैयार हो सकता है। अतः केलाजीके इस ग्रन्थको देशी राज्योंपर सिंहावलोकन ही कहना उपयुक्त होगा। फिर भी जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ केलाजीका यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य-संसारके सत्कारका पात्र है।

—भवानीदयाल संन्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

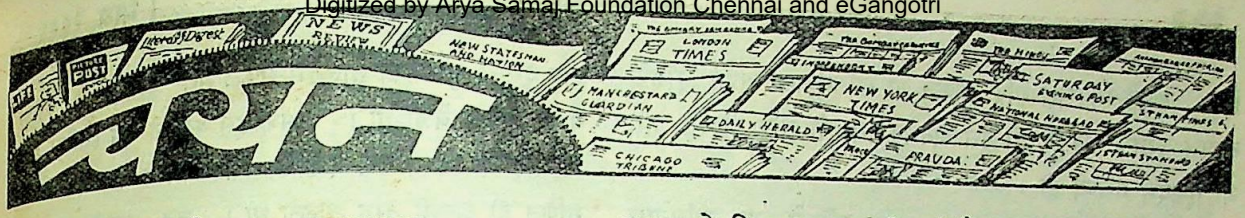

गांधीजीका पहला अनशन

गांधीजीके जीवनमें सत्य, अहिंसा और सत्याग्रहके बाद ही शायद अनशनका स्थान है। कई बार राजनीतिक और नैतिक दृष्टिसे लोगोंने—उनके समर्थकों एवं विरोधियों दोनोंने—उनके इस अस्त्रकी अलोचना की हैं। पर गांधीजीके अपने सिद्धान्त, अपने प्रयोग और अपना शास्त्र है। उनका यह अस्त्र अब तो काफ़ी प्रसिद्ध हो चला है।

गत १० फ़रवरीसे उन्होंने २१ दिनके लिए जो अनशन किया, उसने हमें ऐसे ही उनके सर्वप्रथम अनशनकी याद दिला दी है। १९२४ में देशके अनेक स्थानोंमें हिन्दू-मुस्लिम-दंगोंके दौरानमें हुई लूट-मार और रक्तपातसे गांधीजीको मार्मिक आघात पहुँचा और उन्होंने दिल्लीमें मौलाना मोहम्मदअलीके मकानपर २१ दिनका अनशन किया। इस अवसरपर भारत-भक्त दीनबन्धु सी० एफ़० ऐण्ड्रूज़ उनके पास थे। उन्हींके शब्दोंमें उस समयका एक वर्णन देखिए—

"दिल्ली शहरसे दूर पहाड़ीके नीचेवाले उस 'दिलखुश'-भवनमें गांधीजी अनशन कर रहे थे। पास ही वह पहाड़ी थी, जिसके भग्नावशेष अतीत कालकी अनेक लड़ाइयोंकी स्मृति लिए खड़े थे। उसके सबसे ऊँचे भागपर ग़दरका स्मारक बना था। 'दिलखुश'की ऊपरी मंज़िलके बरामदेसे ये भग्नावशेष साफ़ दिखाई पड़ रहे थे और इनसे थोड़ी ही दूरीपर अशोकका स्तम्भ आकाशकी ओर अँगुली उठाए खड़ा था। जब अँधेरा हो जाता था, तो चाँद और तारोंके प्रकाशमें इनकी छटा देखते ही बनती थी।

"इस पहाड़ी और 'दिलखुश'के बीचसे—जहाँ गांधीजी शिथिल-थकित लेटे हैं—रोज़ तीसरे पहर मोटरोंकी कतारें गुज़रती हैं और कई स्वस्थ-सबल व्यक्ति गोल्फ खेलने आते हैं। पहाड़ीकी चोटीके आसपासके मैदानमें गोल्फ खेलने-वालों और इधर-उधर दौड़ती हुई गेंदको मैं देखा करता हूँ। स्त्री, पुरुष और बच्चे सबके शरीरोंमें एक अजीब-सा शारीरिक और दैवी कृतीत्व मैं देखता हूँ। उन्हें देखकर जब मेरी दृष्टि मेरे पास ही बरामदेमें पड़ी चारपाईपर लेटे उस क्षीण, दुर्बल, त्रस्त एवं संतप्त शरीरपर पड़ती, जो अपने देशवासियोंके पापों एवं दुःखोंको वहन कर रहा है, तो मुझे 'बुक आफ़ लेमेंटेशन्स'की ये पंक्तियाँ याद आ जातीं—'ऐ राहगीरो, क्या तुम सबके लिए यह कुछ भी नहीं है? आओ और देखो कि मेरे दुःख-जैसा भी कोई दुःख है या नहीं?'

"और दिव्यदृष्टिके उस क्षणमें मैंने ईसाके क्रासका और भी गहरा अर्थ अपने व्यक्तिगत जीवनमें देखा और जाना।"

आप घास क्यों नहीं खाते?

आजकल खाद्य-सामग्री न सिर्फ़ मँहगी ही है, बल्कि उसकी बहुत कमी भी है। अतः ताज्जुब नहीं, अगर आदमियोंको भी घास खाना पड़े। कदाचित् यह पढ़कर आप हँसें और समझें कि हम मज़ाक कर रहे हैं; लेकिन दरअसल ऐसी बात नहीं है। अभी हाल ही में अमरीकाके एक डाक्टरने लम्बे अर्सेके अनुसन्धानों एवं प्रयोगोंके बाद यह सिद्ध किया है कि १२ पौंड घासमें ३४० पौंड शाकसे अधिक विटेमिन होता है! और अगर घासको नवीन वैज्ञानिक उपायोंसे तुरन्त सुखा लिया जाय, तो उसके विटेमिन पूर्णतया सुरक्षित रह सकते हैं। इस प्रकार उसे स्वतन्त्र रूपसे या पीसकर अन्य खाद्य-पदार्थोंमें मिलाकर खाया जा सकता है।

समान वज़नके शाक-फलसे घासमें विटेमिन 'बी' दसगुना ज़्यादा होता है। इसी प्रकार विटेमिन 'सी' भी उसमें १४ गुना ज़्यादा होता है। 'ई' विटेमिन तो उसमें और भी अधिक अनुपातमें होता है। हाँ, विटेमिन 'डी'का उसमें अभाव होता है। पर डाक्टरोंका कहना है कि स्वतन्त्र रूपसे घासको खाद्यके रूपमें नहीं लाया जा सकता। हाँ, अन्यान्य खाद्य-पदार्थोंके साथ उसके शुद्ध एवं सम्मुन्नत मिश्रणको मिलाकर खाद्य-सामग्रीकी कमी किसी प्रकार आंशिक रूपसे पूरी की जा सकती है।

छींकने व खाँसनेका दुष्परिणाम

हमारे यहाँ प्रायः लोग बिना रूमालके ही छींकते या खाँसते हैं। अपनी जानकारीमें वे शायद किसीका कुछ नहीं बिगाड़ते; पर दरअसल अनजाने ही वे दूसरोंका बहुत बड़ा अनर्थ एवं अहित करते हैं। अमरीकाके डाक्टरोंने वहाँके मज़दूरोंमें बढ़ी हुई आदतके खिलाफ़ ज़ोरोंसे आन्दोलन शुरू किया है।

छींकने या खाँसनेवाले आदमीसे ३ फीटकी दूरीपर एक अति सूक्ष्मदर्शी केमरा रखकर उन्होंने चित्र लिए हैं। इन चित्रोंसे ज्ञात हुआ है कि एक आदमीके छींकनेसे जो छोटे-छोटे छींटे (जिन्हें नंगी आँखोंसे नहीं देखा जा सकता) निकलते हैं, उनसे कीटाणुओंके १९,००० समूह हवामें मिलकर फैल जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसके विपरीत यदि छींकने या खाँसनेवाला अपने मुँहके सामने रूमाल रख ले, तो इस अनर्थकी या तो सृष्टि ही न हो, या एकदम नगण्य हो।

पहले कुछ लोगोंका खयाल था कि छींकने या खाँसनेपर कुछ छींटे-भर उछलते हैं, जो ज़मीनपर गिर जाते हैं। पर डाक्टरोंका कहना है कि ऐसे छींटोंके अलावा १००,००० सूक्ष्म छींटे और निकलते हैं, जो कीटाणुओं-सहित हवामें मिल जाते। बन्द कमरेकी हवामें ये कुछ मिनट और आसपासकी हवामें कोई आध घण्टे तक रहते हैं। इनसे खाँसी, ज़ुकाम, इन्फ्लुएंजा आदि फलनेकी बहुत आशंका रहती है।

बोलनेवाली गाय

भारतवर्षमें गाय अत्यधिक पवित्र समझी जाती है। कहा जाता है कि यदि इस पवित्र पशुके साथ किसी प्रकारका दुर्व्यवहार किया जाय, तो उसका परिणाम बड़ा अनिष्टकारी होता है। अभी हाल ही में गायके सम्बन्धमें एक अद्भुत बात सुननेमें आई है। कहा जाता है कि मैसूर-राज्यके किसी गाँवमें एक गाय थी, जो अपने मालिकसे आदमियों-जैसी आवाज़में बातचीत करती थी। एक दिन तिमैहा नामक किसान अपने खेतपर गया। उस दिन उसके पास न बैल था और न भैंस ही; इसलिए उसने गायको साथमें ले लिया। जब वह खेतपर पहुँचा, तो उसे प्यास लगी। अतः गायको वहीं छोड़कर, वह पानी पीनेके लिए चल पड़ा।

अभी वह मुश्किलसे कुछ ही दूर गया होगा कि उसने अपने खेतकी ओरसे किसीको पुकारते हुए सुना। उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उसने आकर देखा कि उसकी गाय ही आदमीकी-सी आवाज़में उससे कह रही है—'तुम आश्चर्यान्वित न हो, मैंने ही तुम्हें बुलाया है। गायको हलमें जोतना इस धरित्रीपर सबसे बड़ा पाप है। चूँकि तुमने ऐसा पाप करनेका निश्चय किया है, इसलिए तुम अपनी ज़मीनका ४/५ हिस्सा खो बैठोगे।'

यह कहकर गाय वहीं गिर पड़ी और मर गई। इस अद्भुत घटनाको देखनेवाले आश्चर्य-चकित ग्रामीणोंने गायके शवको बड़े धूमधामसे जुलूसके साथ ले जाकर गाड़नेका निश्चय किया। इसलिए गायके शवको एक विराट जुलूसके रूपमें ले जाकर गाड़ा गया। अब वहाँ एक स्मारक भी बनवा दिया गया है।

दुनियाका वज़न

एक शताब्दीसे कुछ ही समय पूर्व लन्दनका एक अवसर-प्राप्त दलाल दुनियाको तोलनेमें सफलीभूत हुआ था। उसका नाम फ्रांसिस बेली था। उसके इस कार्यको धूम इसलिए और भी हुई थी कि न उसे वैज्ञानिक शिक्षा मिली थी और न वह गणित ही अच्छी तरह जानता था। जब उसकी उम्र ६३ वर्षकी हुई, तो उसने दुनियाको तोलनेका कठिन कार्य अपने मकानके एक छोटे-से कमरेमें प्रारम्भ किया था। प्रथम आठ महीनों तक तो उसे असफलतापर असफलता ही मिलती रही, जिसमें उसकी विशेष ग़लती नहीं थी। उसके यन्त्रमें जो शीशा लगा था, उसमें गर्मी पैदा हो जाती थी, जिससे उसके हिसाबमें गड़बड़ी हो जाया करती थी। बादमें उसने उसे ठीक कर लिया और फिर अपना कार्य आरम्भ किया।

जून, १८४१ में उसे इस कार्यमें कुछ सफलता नज़र आने लगी। इसी समय जब वह सड़क पार कर रहा था, तो एक घोड़ेने उसे लात मारी। यह आश्चर्य ही है कि उसकी उम्रके आदमीके लिए यह आघात घातक साबित नहीं हुआ। सितम्बर तक वह फिर अपने काममें लग गया। अक्तूबर, १८४१ और मई, १८४२ के बीच उसने हज़ारों बार हिसाब लगाया और अपने उत्तरको बार-बार दोहराया, जिससे उसमें कोई ग़लती न रह जाय। अन्तमें उसने घोषित किया कि दुनियाका वज़न १,२५६,१९५,६७३,०००,०००,०००,००० टन है।

दीवारके समाचारपत्र

ब्रिटिश फ़ौजोंके लिए दीवारके समाचारपत्रोंका विचार रूससे लिया गया है। रूसके समाचारपत्रोंमें इन पत्रोंका विशेष स्थान है। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक परिस्थितियोंमें ये उनकी आधार-शिला हैं। ये समाचारपत्र अधिकांश हस्त-लिखित होते हैं। इनमें जो शीर्षक दिया जाता है वह रँगा हुआ होता है। फोटोग्राफ़ और कार्टून हाथसे सजाए जाते हैं। ये हमेशा श्रमजीवियों, सैनिकों, अध्यापकों और बच्चों द्वारा तैयार किए जाते हैं।

ये समाचारपत्र साप्ताहिक, पाक्षिक और कभी-कभी मासिकके रूपमें निकलते हैं। कुछ पत्र दैनिक भी हैं। मास्कोमें स्तालिन मोटर-वर्क्स अपनी प्रमुख दुकानोंमें छपे हुए साप्ताहिक पत्रोंके अतिरिक्त २३ दैनिक और ३२६ साप्ताहिक मासिक दीवारके समाचारपत्र निकालता है। सोवियत-सरकार १३५,००० श्रेष्ठ सम्पादकों और संवाददाताओंके लिए एक व्यवहार द्वारा शिक्षा दिए जानेका क्लास स्थापित किया है। उन्हें साहित्य, कला, पत्रकार-कला, फोटोग्राफ़ी, साधारण आदिके सम्बन्धमें पाठ दिए जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

गांधीजीका अनशन

गत मासकी सबसे उल्लेखनीय घटना है गांधीजीका २१ दिन (१० फ़रवरीसे ३ मार्च, १९४३ तक) का अनशन। गांधीजीने इसका कारण बताते हुए अपने ३१ दिसम्बर, १९४२ को वायसरायके नाम लिखे गए पत्रमें कहा है—"मैंने बन्दी-गृहको आनन्दके लिए नहीं, बल्कि कर्तव्यवश इस आशासे स्वीकार किया है कि किसी दिन अधिकारियोंको यह ज्ञान होगा कि उन्होंने निरपराध व्यक्तियोंके प्रति अन्याय किया है। मैंने ६ मास तक रुकनेका निश्चय किया था। यह समय समाप्त हो रहा है और उसके साथ ही मेरा धैर्य भी। ऐसे संकटके अवसरोंपर सत्याग्रहका क़ानून जो उपाय निर्धारित करता है, वह मैं जानता हूँ। एक वाक्यमें यह उपाय है—'उपवास द्वारा शरीरको कष्ट देना।' उसी क़ानूनका यह भी कहना है कि इस उपायका अवलम्बन केवल अन्तिम क्षणमें अन्य उपायोंके असफल होनेके बाद किया जाय। मैं उसका अवलम्बन नहीं करना चाहता, यदि उसके बचकर भी काम हो सके। उससे बचनेका एकमात्र तरीक़ा यह है कि मुझे मेरी ग़लतियाँ बताई जायँ। तब मैं अपनी ग़लतियोंके लिए भरपाई करनेको तैयार हूँगा। आप मुझे बुला सकते हैं अथवा किसी ऐसे व्यक्तिको भेज सकते हैं, जो आपके विचारोंसे परिचित हो और मुझे क़ायल कर सके।"

इसके बाद अपने १९ जनवरी, १९४३ के दूसरे पत्रमें गांधीजीने फिर लिखा—"यदि आप चाहते हैं कि मैं अकेला ही कार्य करूँ, तो मुझे विश्वास दिलाइए कि मैं ग़लतीपर हूँ।... यदि आप चाहते हैं कि मैं कांग्रेसकी ओरसे कोई प्रस्ताव रखूँ, तो मुझे कांग्रेस-कार्य-समितिके सदस्योंके साथ रखिए।" पर सरकारने ऐसा करना उचित नहीं समझा और गांधीजीको अनशन करना पड़ा। पूर्व निर्धारित २१ दिनके उपवासके आरम्भमें उनके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें डाक्टरोंने कुछ चिन्ता ज़ाहिर प्रकट की; पर शुक्र है कि वह सकुशल समाप्त हो गया। राजनीतिक अस्त्रके रूपमें अनशन कहाँ तक न्यायोचित एवं नीति-संगत है, इस सम्बन्धमें मतभेद होना स्वाभाविक है। स्वयं गांधीजीने अपने राजकोटके अनशनके बाद इसे 'नैतिक दबाव' बतलाया था, जो विशुद्ध अहिंसाके सिद्धान्तसे मेल नहीं खाता। पर इसके बावजूद वे अब तक ६ बार (१-१८ अप्रैल १९१९; २-१७ सितम्बर, १९२४; ३-२१ सितम्बर, १९३२; ४-८ मई, १९३३; ५-१६ अगस्त, १९३३ और ६-१३ मार्च, १९३९) विविध कारणोंसे अनशन कर चुके हैं। इसकी लौकिक प्रतिक्रिया—राजनीतिक अथवा नैतिक दृष्टिसे—कहाँ तक लाभ एवं स्वास्थ्यप्रद होती है, यह कहना हमारे लिए सम्भव नहीं। पर आत्म-पीड़नकी यह प्रणाली एक दीर्घ कालसे प्रचलित है। सिद्धार्थ (बुद्ध) का आत्म-पीड़न तो एक जन-श्रुति बन चुका है। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुए-त्सांग जब भारत आ रहे थे, तो तुरफ़ानके सम्राट चू-वान्ताईने—जो उनके शिष्य थे—उन्हें बहुत-से उपहारादि देकर भारत न जानेके लिए अनुरोध किया। इसपर हुए-त्सांगको लाचार होकर अन्न-जल त्याग करना पड़ा। तीन दिन तक वे चुपचाप, बिना हिले-डुले, निर्जल-निराहार बैठे रहे। चौथे दिन सम्राट हुए-त्सांगके चरणोंपर आकर गिरे और अपनी धृष्टताके लिए क्षमा-याचना की। इस प्रकार नैतिक विजयके रूपमें हुए-त्सांगका अनशन समाप्त हुआ और वे भारतके लिए रवाना हुए।

हठधर्मी और अदूरदर्शिता

समझ और बुद्धिमें सम्राट चू-वान्ताईसे सर्वश्री लिनलिथगो-एमरी-चर्चिल अधिक हैं या कम, यह तो हमें नहीं मालूम; पर वे गांधीजीका अनशन भंग नहीं करा सके। लार्ड लिन-लिथगोने अनशनकी पूरी ज़िम्मेदारी गांधीजीके सिर मँढ़कर अपनी ज़िम्मेदारीसे हाथ धो लिए। एमरी साहबने फ़रमाया कि 'ब्रिटिश सरकार भारत-सरकारके गांधीजी द्वारा बिला शर्त्त छूटनेके लिए किए गए इस प्रयत्नके दबावमें न आनेके निश्चयका समर्थन करती है।' और चर्चिल साहबने कहा—'सम्राटकी सरकार भारत-सरकारके गांधीजीके अनशन द्वारा बिला शर्त्त छूटनेके प्रयत्न द्वारा भारत और संयुक्त-राष्ट्रोंके लोगोंके प्रति अपने कर्त्तव्यसे च्युत न होनेके निश्चयका समर्थन करती है।'

गांधी-लिनलिथगो-पत्र-व्यवहारके प्रकाशनके बाद श्री चर्चिल और एमरी-जैसे उच्च अधिकारियोंका यह कहना कि अनशन द्वारा गांधीजी अपनी बिला शर्त्त रिहाई चाहते हैं, खेद और आश्चर्यजनक है। अनशनका कारण तो उन्होंने अपने पहले पत्रमें ही स्पष्ट कर दिया है। जहाँ तक हम समझ सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, गांधीजीने सरकारसे भारतका राजनीतिक संकट दूर करने और अगर वह कांग्रेससे इस सम्बन्धमें कोई प्रस्ताव रखनेकी आशा रखती है, तो गांधीजीको अन्य कांग्रेस-नेताओंके साथ रखनेका एक नया आग्रह-अनुरोध किया। इससे लाभ न उठाकर सरकारने अपनी हठधर्मी और अदूरदर्शिताका ही परिचय दिया है, बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञताका नहीं। गांधीजीपर बिना शर्त रिहाईका यह ओछा अभियोग लगानेके बजाय यदि सरकार राजाजीका कहना मानकर किसी अधिकारी व्यक्ति द्वारा उपद्रवों-सम्बन्धी सब सबूत-सामग्री गांधीजीके सामने रखवाती और उन्हें निष्पक्ष निर्णय एवं भरपाई करनेका अवसर देती, तो न केवल उसे लोकमतकी सहानुभूति ही प्राप्त होती, बल्कि उसकी नीति एवं न्याय-परायणताकी साख भी बढ़ जाती। पर बक़ौल लायड जार्जके, 'उसने सारी स्थितिको ऐसा गड़बड़ा दिया कि उसके लिए समझौतेका और कोई रास्ता ही नहीं रह गया।'

'बुद्धिमान देशभक्तों'का विरोध

कांग्रेस-नेताओंकी गिरफ़्तारीके कुछ ही दिनों बाद जब वाइसरायकी शासन परिषदसे सर सी० पी० रामस्वामी अय्यरने अचानक इस्तीफ़ा दे दिया, तो सर्वसाधारणको सन्देह हुआ कि ज़रूर कुछ दालमें काला है। उसके सन्देहको यह कहकर दूर करनेका प्रयत्न किया गया कि सर रामस्वामीका इस्तीफ़ा नीति-सम्बन्धी किसी प्रकारके मतभेदका परिणाम नहीं है। इस कथनकी यथार्थताके बारेमें हम कोई मत नहीं दे सकते। पर अभी हाल ही में परिषदके जिन अन्य तीन सदस्यों—सर्वश्री मोदी, सरकार और अंबे—ने इस्तीफ़े दिए हैं, उन्होंने स्पष्ट कहा है कि गांधीजीके अनशनके सम्बन्धमें उनका वाइसरायसे मतभेद था। और सर्वशक्तिमान वाइसरायसे मतभेद होनेका जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ—अर्थात् वाइसराय अचल रहे और शासन-परिषदके ये सदस्य अपनी असहायावस्था एवं परिषदका खोखलापन देखकर बाहर निकल आए।

पाठक शायद भूले न होंगे कि गत दिसम्बर १९४२ में वाइसरायने अपनी परिषदके 'चुने हुए' भारतीय सदस्योंको उच्च चरित्रका और भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें विशिष्ट स्थान रखनेवाला बतलाया था, जिनके पीछे भारतकी सेवाका उज्ज्वल रेकर्ड है। श्री चर्चिल और एमरीने भी इन्हें 'बुद्धिमान देशभक्त' कहा था। भारतसे विफल होकर लौटे सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सने भी अमरीकाकी जनताके नाम किए गए ब्राडकास्टमें बड़ा शान और शेखीके साथ कहा था कि वाइसराय और उनकी परिषद एक 'टीम'के रूपमें काम करते हैं। अब तक—यहाँ तक कि कांग्रेस-नेताओंकी गिरफ़्तारी तकके बारेमें—इन 'बुद्धिमान' देशभक्तोंने वाइसरायका पूरी तरह साथ देकर 'टीम-स्पिरिट' का ही परिचय दिया और कोई भी बात ऐसी नहीं की या कही जिससे सर्वश्री चर्चिल, एमरी और सर क्रिप्सके कथन अन्यथा प्रतीत या साबित होते।

तब फिर समझमें नहीं आता कि गांधीजीकी रिहाईके बारेमें ही इन देशभक्तोंकी 'बुद्धिमत्ता' एवं 'टीम-स्पिरिट' अवांछनीय अथवा उपेक्षणीय क्यों समझा गया? ये लोग न तो कांग्रेसके प्रतिनिधि थे और न भारतीय जनताने ही चुनकर इन्हें शासन-परिषद्में भेजा था। इनका चुनाव स्वयं वाइसरायने अपनी इच्छा एवं श्री चर्चिल और एमरीकी स्वीकृतिसे किया था; और न केवल भारत, बल्कि अमरीका तकमें इनकी योग्यता, पात्रता, देशभक्ति एवं राजनीतिक महत्वकी डुग्गी पीटी गई। ऐसे खैरख्वाह, विश्वस्त और 'बुद्धिमान देशभक्त' क्या वाइसरायको कोई ऐसी सलाह दे सकते थे, जिससे उनकी शान को बट्टा लगता, या सरकारका पक्ष दुर्बल होता, या संयुक्त राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें बाधा पहुँचती? पर बक़ौल रहीमके 'काज परे कछु और है, काज सरे कछु और!'

अगर अक़्लमन्दीका ठेका सरकारने ही नहीं ले रखा, तो कहना पड़ेगा कि इन तीन 'बुद्धिमान देशभक्तों'की गांधीजीकी रिहाईकी उचित, सामयिक, व्यावहारिक एवं दूरदर्शितापूर्ण सलाहको ठुकराकर वाइसरायने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतके एकछत्र अधिपति अकेले वे ही हैं और शासन-परिषद उनके निर्णयोंपर स्वीकृतिकी मोहर लगा देनेका एक यन्त्र मात्र है। फिर इसके कितने पुर्ज़े भारतीय हैं और कितने अंग्रेज़, इसका कोई अर्थ या महत्व नहीं।

भारतीय लोकमतका अवहेलना

ब्रिटिश अधिकारियोंके इस रुखसे एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है। अब तक वे गला फाड़-फाड़कर दुनियाको यह दिखा रहे थे कि सब हिन्दुस्तानी मिलकर यदि कोई माँग या योजना पेश करें, तो सरकार उसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी। गांधीजीकी रिहाईके लिए भारतकी लगभग सभी जातियों, धर्मों एवं दलोंकी ओरसे की गई माँग उन्होंने बिना आगा-पीछा सोचे ही ठुकरा दी। भले ही गांधीजी बच गए हों, लेकिन इस अवसरपर सरकारने जो कठोर एवं असहयोगका अख्तियार किया, उससे स्थिति तो तनिक भी नहीं सुधरी, दोनों देशोंके बीचकी मतभेदकी खाई और बढ़ ही गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसरपर सरकार यदि झूठी शानका मोह छोड़कर कोई व्यावहारिक क़दम उठाती, तो सहज ही इस अनावश्यक क्षोभ एवं कटुता-वृद्धिको रोका जा सकता था।

असली समस्याकी उपेक्षा

गांधी-वाइसराय-पत्र-व्यवहारसे भी कांग्रेस और सरकारके रुखपर खासा प्रकाश पड़ता है। वाइसरायने पिछले दिनों हुए उपद्रवोंकी सारी ज़िम्मेदारी गांधीजी और कांग्रेसपर थोपी है और गांधीजीने गत ९ अगस्तसे हुए हिंसात्मक कार्योंकी निन्दा करते हुए भी उनकी सारी ज़िम्मेदारी सरकारकी जल्दबाज़ी और अविचारपूर्ण नीतिपर मढ़ी है। दोनोंमें से किसका पक्ष कितना प्रबल एवं यथार्थ है, इसका निर्णय तो कोई निष्पक्ष न्यायाधीश अथवा ट्रिब्यूनल ही कर सकता है; पर इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि उसके परिणाम-स्वरूप असली समस्याके हलकी कोई सूरत निकलनेके बजाय उसपर पर्दा ही पड़ा रह गया है। इसपर दोनोंमें से कोई भी पक्ष प्रसन्नता या सन्तोष नहीं प्रकट कर सकता।

गांधीजीने अपने पत्रोंमें वाइसरायके सामने दो मुख्य सुझाव रखे थे। पहला तो यह कि उन्हें उपद्रवोंके यथार्थ विवरणों एवं सबूतोंको जानने और उनका विश्लेषण करनेका अवसर दिया जाय और कांग्रेसकी ओरसे कोई प्रस्ताव रखवानेके लिए उन्हें कांग्रेस-नेताओंके साथ रखा जाय। दूसरा यह कि सरकार कांग्रेस नेताओंको छोड़ दे, सब दमनात्मक पग पीछे खींच ले और समझौतेका कोई मार्ग निकाले। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि पहली बात दूसरीकी अथवा दूसरी बात पहलीकी पूरक थी। पर वाइसरायके पत्रोंमें कहीं भी इनका स्पष्ट और सीधा उत्तर नहीं है। उन्होंने गांधीजीसे कांग्रेसपर लगाई गई फर्द-जुर्म मान लेनेके लिए जितना ज़ोर दिया है, यदि उसका कुछ अंश भी समझौतेकी कोई सूरत निकालनेकी ओर देते, तो सम्भवतः मामला बहुत कुछ सुलझ सकता था।

इस सम्बन्धमें वाइसराय ही की तरह ब्रिटिश अधिकारियोंने भी लगभग नकारात्मक रुख ही अख्तियार किया। इससे सुलझनेके बजाय स्थिति अधिक उलझ गई। जिस तरह वाइसरायने गांधीजीके पास किसीको भेजना, उनसे मुलाक़ात करना अथवा कांग्रेस-नेताओंको छोड़ना बेकार समझा, उसी प्रकार कामन्सके नेता श्री ईडनने भी इस सम्बन्धमें बहस करना व्यर्थ बतलाया। इसका स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि सरकारने यह तय कर लिया है कि कांग्रेससे किसी प्रकारका समझौता नहीं किया जाय। कदाचित् इसीलिए श्री चर्चिलने भारतीय नेताओंको उत्तर देते हुए कहा—'भारत और सम्राटकी सरकारका प्राथमिक कर्त्तव्य है भारत भूमिको आक्रमणसे बचाना—जिसका कि इसे अब भी खतरा है—और इसे संयुक्त-राष्ट्रोंके आम उद्देश्यमें शक्ति भर सहयोग देनेके योग्य बनाना।' हमें खेद है, श्री चर्चिलने जो बात कही है, वह उनके तर्ज़अमल एवं उसके परिणामसे सर्वथा विपरीत है। अगर वे बिना भारतीय जनताके पूर्ण सहयोगके भारतको विदेशी आक्रमणसे बचाने और भारतके संयुक्त-राष्ट्रोंके उद्देश्यमें शक्ति-भर सहयोग-सहायता देनेकी बात कहते हैं, तो वे एक बड़ी अनहोनी बात कह रहे हैं। उनकी नीति इन दोनों कामोंके लिए भारतकी क्षमताको बढ़ानेके बजाय किसी हद तक कम और सीमित ही करती है।

समझ और व्यावहारिकताकी आवश्यकता

गांधीजीके अनशनकी सफल समाप्तिपर 'न्यूयार्क-टाइम्स'ने लिखा है—"उन्होंने अपना नैतिक प्रदर्शन किया है। अंगरेज़ोंने भी अपना प्रदर्शन किया है। अब जो प्रश्न उठता है, वह यह है कि अब या भारतमें नई शुरूआत करनेका समय आ गया है या नहीं।" इसी प्रकार बेलियल-कालेजके मास्टर श्री ए० डी० लिण्डसेने 'टाइम्स'में लिखा है—"कई अवसर ऐसे होते हैं, जब कि जो दल सही हो, उसके उदारतापूर्ण रुखसे ज़िद दूर किया जा सकता है। हमें निश्चय ही मि० गांधीकी रिहाईके परिणामोंका कोई डर नहीं है। हम तो केवल 'राजनीतिक अनैतिकके सामने झुकने'को तैयार नहीं। 'अपनी शानपर अड़े रहना', तो बहुत ही मूर्खतापूर्ण है। पर क्या सही होनेपर भी तने खड़े रहना कभी-कभी उतना ही बुरा नहीं है?" (रायटर)

मास्टर लिण्डसेके मतसे हम पूर्णतया सहमत हैं। हमारी समझमें जो-कुछ हो गया, उसमें किसका कितना दोष था या कौन सही है और कौन ग़लत, इस व्यर्थकी बहसमें समय और शक्तिका अपव्यय करना दोनों पक्षोंके लिए अनावश्यक एवं अशोभन है। हम चाहते हैं कि दोनों ही पक्ष प्रतिष्ठाका झूठा मोह छोड़कर फिर नए सिरेसे समझौतेकी कोशिश करें। आज जो स्थिति है, देशमें जो असन्तोष और क्षोभ है, उसका जारी रहना न तो किसीके लिए हितकर ही है और न बुद्धि-संगत ही। अतः इस स्थितिका शीघ्रातिशीघ्र अन्त किया जाना चाहिए, ताकि भारत अपने और मानवताके हितके लिए संयुक्त-राष्ट्रोंके साथ पूर्ण शक्ति-भर सहयोग-साहाय्यसे काम कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रवोंमें कांग्रेसकी ज़िम्मेदारी

गांधी-वाइसराय और गांधी-टाटेनहम पत्र-व्यवहारके प्रकाशनके कुछ ही समय बाद भारत-सरकारके गृह-विभागने ८६ पृष्ठोंकी एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसका नाम है '१९४२-४३ के उपद्रवोंमें कांग्रेसकी ज़िम्मेदारी' (Congress Responsiblity for the Disturbances, 1942-43)। इसमें 'हरिजन' में प्रकाशित गांधीजीके लेखों, कांग्रेसके प्रस्तावों, कार्य-समितिके सदस्योंके मतों, श्री जयप्रकाश-नारायणकी विज्ञप्ति, तथाकथित अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी हिदायतों तथा कांग्रेसके नामसे निकली अनेक विज्ञप्तियों, सूचनाओं एवं हिदायतोंसे विशद उद्धरण दिए गए हैं। पुस्तिकाकी भूमिकामें गृह विभागके अतिरिक्त-मन्त्री सर रिचार्ड टाटेनहमने कहा है—(१) यह 'अवलोकन' सरकारके पास कई सूत्रोंसे पहुँची मांगोंके फलस्वरूप तैयार किया गया है। (२) इस 'अवलोकन' में दिए गए लगभग सभी तथ्य जनताकी जानकारीमें हैं या होने चाहिएँ। (३) इस 'अवलोकन'में वह सब मसाला नहीं दिया गया, जो कि इस सम्बन्धमें सरकारके पास है। इसमें उल्लिखित तथ्योंके अलावा बहुत बड़ी मात्रामें सबूत हैं, जिनका इस समय प्रकाशन अवांछनीय है।

पहली बातके सम्बन्धमें सहयोगी 'लीडर'के शब्दोंमें कहा जा सकता है—"सर रिचार्ड एक सुदक्ष मुल्की कर्मचारी हो सकते हैं; पर वे एक भौंड़े राजनीतिज्ञ हैं। वे प्रोपेगेण्डाको राजनीतिज्ञताकी बराबरी देना चाहते हैं। उनके पास पुस्तिकाकी मांगें किन सूत्रोंसे पहुँचीं, यह मालूम करनेके लिए किसी शरलक होम्सकी ज़रूरत नहीं। सरकारी प्रचारकर्त्ताओंको उसकी ज़रूरत थी! हमारा विश्वास है, यदि सरकार इसकी भूमिका जार्ज बरनार्ड शासे—जिनकी भूमिकाएँ अंगरेज़ी-साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ भूमिकाओंमें गिनी जाती हैं—लिखवाती, तो वे शायद जवाबमें अपनी भूमिकाके ये शब्द लिख देते: 'छोटे दिमाग और बड़ी लड़ाइयाँ' और सरकारसे अनुरोध करते कि वह पुस्तिकाको नष्ट कर दे और भारत-सम्बन्धी अपनी नीतिका पुनरावलोकन करे।"

दूसरी बात काग़ज़की इस मँहगीके ज़मानेमें पुस्तिकाके प्रकाशनको सर्वथा अनावश्यक एवं शक्ति, समय और धनका अपव्यय सिद्ध करती है। तीसरी बातका औचित्य एवं कारण हमारी समझसे बाहरकी बात है। सहयोगी 'लीडर'के शब्दोंमें इसका प्रकाशन 'बड़ा कुरुचिपूर्ण' है और 'इससे भारतीय लोकमत और भी चिढ़ जायगा।' जिस ढंगसे इसमें प्रसंगसे दूर करके गांधीजी अथवा अन्य कांग्रेस-नेताओंके लेखों एवं कथनोंसे इक्के-दुक्के वाक्य या वाक्यांश दिए गए हैं, उसे शायद सभ्य समाज सम्मान और सद्भावनाकी दृष्टिसे न देखे। यदि सम्पादन एवं संकलनकी इसी विचित्र प्रणालीका अनुसरणकर सर्वश्री चर्चिल, एटली, ईडन, हरबर्ट मौरिसन, साइमन, होर आदिके इक्के-दुक्के वाक्योंको लेकर एक स्थानपर छापा जाय, तो कम्यूनिस्टों और रूसकी वर्त्तमान सरकार—जो कि आज ब्रिटेनकी मित्र है—के विरुद्ध 'माइन काम्फ़'का एक गुटका अंगरेज़ी-संस्करण तैयार हो सकता है। पर किसी ब्रिटिश अधिकारी उसे 'तथ्य' या 'सबूत'के रूपमें स्वीकार करनेको तैयार होंगे?

अन्तिम निर्णायक कौन?

न्याय-नीतिका प्राथमिक मूल सिद्धान्त यह है कि वादी ही न्यायाधीश या अन्तिम निर्णायक न हो। पर उल्लिखित पुस्तिकासे तो ऐसा मालूम होता है कि उपद्रवोंकी ज़िम्मेदारीके सरकारने कांग्रेस-नेताओंपर सिर्फ़ आरोप ही नहीं किया, बल्कि वह वादी, गवाह, न्यायाधीश और जेलर सब-कुछ स्वयं हो बन गई है। उसने प्रतिवादी (कांग्रेस) को सफ़ाई देने या वादीसे जिरह करने या किसी निष्पक्ष न्यायाधीशसे विचार अथवा अपीलके लिए प्रार्थना करनेका भी अवसर और अधिकार नहीं दिया है। इसी कारण उसके भूतपूर्व क़ानून-सदस्य सर सप्रू तक को कहना पड़ा कि इसका अन्तिम निर्णय कोई निष्पक्ष कमीशन या ट्रिब्यूनल ही कर सकता है।

हम यह कदापि नहीं कहते कि सरकारने जो 'तथ्य' 'सबूत' इस पुस्तिकामें प्रकाशित किए हैं, वे सही नहीं हैं। जब खुली अदालतमें ऐसे ही 'तथ्य' या 'सबूत' न्यायार्थ सामने पेश किए गए हैं, तो उन्होंने स्पष्ट कहा है कि इनसे साबित नहीं होता कि इन उपद्रवोंके लिए कांग्रेस ज़िम्मेदार है। यह बात दिल्लीके मजिस्ट्रेट श्री ईसरने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मामलेमें कही थी। वर्धाके ज़िला और दौरा-जज श्री आर० मुधोलकर, बार-एट-लाने अभी हाल ही में भारत-क़ानूनके मातहत 'कांग्रेस-आन्दोलनके प्रसारके लिए प्रोपेगेण्डा करने'के कारण ६ मासका कठोर कारावास दण्ड पाए हुए व्यक्तिको रिहा करते हुए अपने फैसलेमें कहा है—"..... समझसे यह नहीं माना जा सकता कि इस ज़िलेमें अभी हुए में जो उपद्रव हुए हैं, वे कांग्रेस द्वारा आरम्भ किए गए अवज्ञा-आन्दोलनका ही भाग हैं। मैंने अब तक कोई ऐसा प्रस्ताव नहीं देखा है, जिसके द्वारा किसी भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्दोलनके आरम्भ करनेका निर्णय किया गया हो। यह सिद्ध नहीं किया गया है कि कांग्रेसने ऐसे किसी आन्दोलनके लिए लोगोंको गुप्त हिदायतें दी हैं। सिर्फ़ इस बातसे कि कुछ लोगोंने, जो कांग्रेसके भी सदस्य हैं, अभी हाल ही में हुए उपद्रवोंमें भाग लिया है, यह मान लेना उचित न होगा कि भद्र-अवज्ञा-आन्दोलन चल रहा है और इसे कांग्रेसने आरम्भ किया है।" ('हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड')

यह एक ब्रिटिश अदालतके जजका मत है। लगभग इसीसे मिलता-जुलता सर तेजबहादुर सप्रूका भी मत है। यही नहीं, वाइसरायकी शासन-परिषदके अन्यतम सदस्य सर फ़ीरोज़ख़ाँ नूनने, जो न हिन्दू हैं और न कांग्रेसी ही, अगस्त, १९४२ में अलीगढ़में अपने एक भाषणके दौरानमें कहा था—"यद्यपि हाथसे लिखे हुए हज़ारों ऐसे पोस्टर बाँटे गए हैं, जिनमें लोगोंसे कहा गया है कि महात्माजीकी यह इच्छा और अन्तिम वसीयत है कि इस बार आखरी दम तक लड़ा जाय, तथापि मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि ये सब झूठ हैं और सब-कुछ महात्मा गांधीके जीवन-भरके विश्वास और प्रयोगके प्रतिकूल किया जा रहा है।" ('रायज़ वीकली')

बहरहाल, हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि अगर सरकारको यह पूरा और पक्का विश्वास है कि उसके पास जो 'सबूत' और 'तथ्य' हैं, वे एकदम पुख्ता, खरे और असंदिग्ध हैं, तब फिर उसे उन सबको किसी निष्पक्ष कमीशन या ट्रिब्यूनलके सामने रखनेमें क्या आपत्ति या झिझक है? बल्कि यह तो उसे बड़ी खुशीसे और अबसे काफ़ी पहले ही करना चाहिए था। अब भी उसे अविलम्ब ऐसा कर विश्व-लोकमतके सामने अपनी स्थिति साफ़ कर देनी चाहिए।

१९४३-४४ का केन्द्रीय बजट

वर्त्तमान युद्ध छिड़नेके बादसे भारतके बजट जनताके लिए तिहरी निराशा लिए आते रहे हैं—खर्चकी वृद्धि, घाटेकी वृद्धि और करोंकी वृद्धि! भारत-सरकारके अर्थ-सदस्य सर जैरेमी रेज़मैनने १९४३-४४ के बजटमें अपने पिछले तीन बजटोंकी इस विशिष्टताकी खूब रक्षा की है। युद्ध-कालमें खर्चका बढ़ना स्वाभाविक है; पर यदि सोच-समझकर उसे कुछ वर्षोंमें बाँट दिया जाय, तो वह आकस्मिक या अखरनेवाला नहीं रहता। और खर्च बढ़नेसे स्वाभावतः घाटा भी बढ़ता ही है, जब तक कि उसी अनुपातमें आय भी न बढ़े। पर चूँकि युद्ध-कालमें खर्च आयके अनुपातसे कहीं अधिक और तेज़ीसे बढ़ता है, उससे होनेवाले घाटेकी पूर्त्ति या आंशिक पूर्त्ति नए कर लगाकर अथवा नए कर्ज़ लेकर की जाती है। इनमें से कर्ज़ोंमें इस बातका ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि उनका सूद अधिक एवं एकत्र न होने पाय और नए करोंमें इस बातका कि उनका बोझ ग़रीबोंकी अपेक्षा सम्पन्न एवं मुनाफ़ाख़ोर लोगोंपर ही पड़े। पर हमें खेद है कि पिछले तीन बजटोंकी भाँति सर जैरेमीका यह चौथा बजट भी इन दृष्टियोंसे निराशाजनक ही है।

सन् १९३८-३९ में कुल सरकारी आय १२२ करोड़ थी। इस वर्ष वह १८९ और अगले वर्ष १९९ कूती गई है। इस प्रकार पिछले ५ वर्षोंमें भारतकी आयमें ७७ करोड़की वृद्धि हुई है। अगले वर्ष नए करोंसे होनेवाली २० करोड़की आय मिलाकर १९४३-४४ के अन्त तक यह वृद्धि ९७ करोड़ हुई। यह वर्द्धित आय भारतको युद्धपर ही खर्च करनी पड़ रही है। इसमें यदि १९४२-४३ और १९४३-४४ का १६८ करोड़ घाटा भी शामिल कर दिया जाय, तो युद्धके कारण भारतपर कुल २६५ करोड़का बोझ पड़ रहा है!

अब ज़रा रक्षा-व्ययके आँकड़े देखिए। १९४१-४२ में रक्षाके मूल व्ययको छोड़कर १०३ करोड़ व्यय हुआ। १९४२-४३ में कुल रक्षा-व्यय २,३८,८९ लाख तथा १९४३-४४ में १,९९,६६ लाख कूता गया है। इस प्रकार इन दो वर्षोंमें भारतको ४३८·५ करोड़ रक्षा-व्यय करना पड़ेगा। यह व्यय भारतकी युद्ध-पूर्वकी आयका चार गुना है! भारतके लिए युद्धका क्या अर्थ है, यह पाठक इन आँकड़ोंसे जान सकते हैं। अमरीकाकी उधार-पट्टा-व्यवस्थाके अनुसार संयुक्त-राष्ट्र अपनी शक्ति-भर युद्ध-प्रयत्नमें सहायता करनेके लिए बाध्य हैं; पर भारतकी देनेकी शक्तिका निर्णय कौन करे? सर जैरेमी पिछले दिनों ब्रिटेनसे यह फैसला करने गए थे कि इस युद्ध-व्ययका कितना बोझ भारत उठाय और कितना ब्रिटेन? पर इस सम्बन्धकी 'कठिनाइयाँ' उन्हें विफल ही वापस लौटा लाईं।

इस सम्बन्धमें हमें दो आपत्तियाँ हैं। पहली तो यह कि जो 'विदेशी' सैनिक इस समय 'भारतकी रक्षा'के लिए यहाँ हैं और जो रँगरूट यहाँ भर्ती किए जाते हैं (जिनकी संख्या गृह-सदस्यने प्रतिमास ७०,००० बतलाई है), उनसे भारत दरअसल कितना लाभ उठा रहा है? इसी अनुपातसे भारतका रक्षा-व्यय भी तय होना चाहिए। दूसरी आपत्ति यह है कि अगर सरकार ज़रा समझ और सूझसे काम लेती और रक्षा-व्ययको अकस्मात इस प्रकार न बढ़ाकर पिछले ५ वर्षोंमें बराबर-बराबर बाँट देती, तो यह घोटाला नहीं होता। वास्तवमें यह सुव्यवस्था राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनासे ही हो सकती थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके लिए सरकार पहलेसे ही निश्चय कर चुकी थी। सुदूर-पूर्वके युद्धने सहसा उसकी निद्रा भंग की और सहसा भारतपर यह ज़बर्दस्त रक्षा-व्यय आ पड़ा। जो-कुछ भी हो, सरकार चाहे, तो अब भी इसका सन्तुलन कर सकती है।

खर्चकी इस असाधारण वृद्धिके कारण अगले वर्ष ६०.२९ करोड़का घाटा होगा, जिसके एक-तिहाई भागकी पूर्ति २० करोड़ आयके नए कर लगाकर करनेका निश्चय किया गया है। काग़ज़ी मुद्रा-प्रसारके कारण चीजें जितनी मँहगी हो रही हैं, उन्हें देखते हुए चिट्ठी, पार्सल, टेलीफ़ोन आदिकी दरें बढ़ाना और तम्बाकू तथा वनस्पतिपर कर लगाना निम्न और मध्य-वर्गकी आर्थिक कठिनायोंको और भी बढ़ा देना है। व्यक्तिगत रूपसे हम तम्बाकूके क़तई विरोधी हैं; पर इस तथ्यसे हम आँखें नहीं मूँद सकते कि भारतके करोड़ों ग़रीब किसान-मज़दूर अपनी थकान मिटानेके लिए तम्बाकूका ही प्रयोग करते हैं। अतः तम्बाकूके करका बोझ इन्हीं अभागोंपर पड़ेगा; उन साहबों और बाबू लोगोंपर नहीं, जो विदेशी सिगार, सिगरेट और चुरुट आदि पीते हैं। लगभग यही बात वनस्पतिके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। इसके अलावा एक उद्योगके रूपमें वनस्पति अभी अपनी शैशवावस्थामें ही है, अतः नये करका बोझ उसकी जड़पर कुठाराघात करेगा।

सबसे अधिक ज़्यादतीकी बात है भारतकी जमा स्टर्लिंग पूँजी-सम्बन्धी इकतरफ़ा व्यवस्था। इसके कुछ भागसे तो ब्रिटेनका भारतपर गत ६० वर्षोंका जो कर्ज़ था, वह उतार दिया गया और बाक़ी ६०·७ करोड़ भारत-सरकारकी ओरसे ब्रिटेनमें रहनेवाले सिविलियनोंको जो पेंशन, पारिवारिक पेंशन और प्रोविडेण्ट-फंड आदि दिए जाते हैं, उनके मदमें पेशगी जमा हो जायगा। यह सरासर अन्याय है। जब कनाडा और दक्षिण-अफ्रीकाको ब्रिटेन स्टर्लिंग-कर्ज़का ४० प्रतिशत सोनेमें चुका रहा है और शेषके बदलेमें उनको औद्योगिक उन्नतिके लिए आवश्यक साधन-सामग्री भेज रहा है, तब भारतके साथ ही यह सौतेली माँका-सा व्यवहार क्यों? एक ओर जहाँ भारत कनाडा तथा दक्षिण-अफ्रीकासे सोनेके उत्पादनमें बहुत पीछे है, वहाँ दूसरी ओर औद्योगिक उन्नतिकी भी उसमें उनकी अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यकता एवं गुंजाइश है। अच्छा हो यदि भारतकी जमा स्टर्लिंग-पूँजीको अवसर-प्राप्त सिविलियनोंके लिए सुरक्षित रखनेके बजाय उसका बड़ा भाग अभी और युद्धोपरान्त भारतकी औद्योगिक उन्नतिके लिए खर्च किया जाय।

यह बात भी कम आपत्तिजनक नहीं है कि जहाँ भारतकी आयको करोंसे इस प्रकार बढ़ाया जा रहा है और युद्धार्थ उसका इतना धन व्यय हो रहा है, जन-साधारणकी सामाजिक अथवा अर्थनीतिक उन्नति एवं सुव्यवस्थाके लिए बजटमें कोई भी व्यवस्था नहीं है! ब्रिटेन-वासियोंके सामने जैसी भी हो, नामके लिए एक बेवरिज-योजना तो है; पर हम लोगोंके सामने तो एक बड़ी शून्य और उससे भी बड़े प्रश्नसूचक चिह्नके अलावा और कुछ भी नहीं है।

भारतके ट्रस्टी!

न्यूयार्कके 'दि अमरीकन'में इसी मास भारतके भूतपूर्व वाइसराय और ब्रिटेनके वर्त्तमान अमरीकन एलची लार्ड हैलीफैक्स (पूर्व लार्ड अरविन) का भारतके सम्बन्धमें एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें आपने लिखा है—".....हम भारतको एक ट्रस्ट समझते हैं, अपनी मल्कियत नहीं। हम उससे आयके रूपमें एक पेनी भी नहीं लेते। वह युद्ध-प्रयत्नमें शानदार सहायता कर रहा है।...उसके सभी नेता—सिवा उनके जिनके कि अपूर्वकथनीय कार्य भारतको राष्ट्रीय सुरक्षाके लिए नुक़सानदेह साबित हों—हस्बदस्तूर अपना काम करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। दूसरी तरहके नेताओंके विरुद्ध साकाले क़ानूनी कार्यवाही करनी आवश्यक समझी है।"

पता नहीं, लार्ड हेलीफैक्सको यह मालूम है या नहीं कि किसी ट्रस्टका ट्रस्टी वही हो सकता है, जिसका ट्रस्टमें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न हो। भारतमें अंगरेज़ोंका स्वार्थ है या नहीं और वे उसे अपनी मल्कियत समझते हैं या ट्रस्ट, यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं। जिसके ट्रस्टी होकर अंगरेज़ मालामाल हो रहे हों और ट्रस्ट दिन-ब-दिन दिवालिया होता जा रहा हो, ऐसे ट्रस्टका खुदा ही हाफ़िज़! अगर 'ट्रस्ट'का प्रयोग लार्ड हेलीफैक्सने साम्राज्यवाद'के अर्थमें किया है (क्योंकि साम्राज्यवादको क़ायम रखनेके लिए उसके प्रतिष्ठापकोंने इस शब्दका प्रयोग करना कम कर दिया है), तब फिर हमें कोई बहस नहीं रही भारतसे एक पेनी भी न लेने और युद्ध-प्रयत्नमें उसके शानदार सहायता करनेकी बात, सो वह भारतकी जमा स्टर्लिंग-पूँजीकी व्यवस्था और भारतके रक्षा-व्ययके सम्बन्धमें ऊपर हम जो-कुछ लिख आए हैं, उससे स्वतः स्पष्ट है। भारतसे बिना बड़ा—और संसारमें सबसे ऊँचा – वेतन लार्ड हेलीफैक्स ले रहे हैं, 'होम चार्जेज़'के रूपमें ब्रिटेन भारतसे जो मोटी रक़म प्रतिवर्ष लेता रहा है और अवसर-प्राप्त अंगरेज़-सिविलियनोंको पेंशनोंके रूपमें भारतको प्रतिवर्ष जो-कुछ देना पड़ रहा है, सब क्या है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें नहीं मालूम किन नेताओंके कार्योंको लर्ड हेलीफैक्स देशकी राष्ट्रीय सुरक्षाके लिए नुक़सानदेह समझते हैं। पर अगर उनका अभिप्राय कांग्रेस-नेताओंसे ही है, तो हमें आश्चर्य है कि १० वर्ष पूर्व इनके खिलाफ़ की गई क़ानूनी कायवाहीकी उपेक्षाकर उन्होंने इन्हें जेलसे रिहा क्यों किया? और गांधी-अर्विन-समझौता क्या उनकी ग़लती और भूल ही था? या फिर आज वे जो-कुछ कह रहे हैं, वही ग़लत और भूल है? हमें नहीं मालूम, क्या वक़्तके साथ आदमीकी समझ और बुद्धिमें भी इतना परिवर्त्तन आ जाता है?

बढ़ता हुआ खाद्य-संकट

गेहूँपर से सूच्य-नियन्त्रण हटाए जानेके कुछ ही दिन बाद केन्द्रीय असेंबलीमें सहायक खाद्य-मन्त्री मेजर-जनरल वुडने कहा कि इससे न केवल ब्लैक-मार्केटमें ही गेहूँकी दर गिरी है, बल्कि ज्वार और बाजरेकी दरें भी कम हो गई हैं। साथ ही आपने यह भी कहा कि गत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष खरीफ़की फ़सल २२ लाख टन ज़्यादा हुई है। पर बावुद इसके गेहूँ तथा अन्य अनाजोंकी दरें चढ़ती जा रही हैं और उनकी कमी अधिकाधिक व्यापक होती जा रही है। हमारी समझमें नहीं आता कि खाद्य स्थितिकी वास्तविकता सरकारी वक्तव्य-विज्ञप्तियोंसे अधिक मालूम होती है या बाज़ारमें अनाजकी दरों एवं उसकी कमीसे और स्थान-स्थानसे आनेवाले खाद्यकी लूटके समाचारोंसे।

पिछले दिनों कामन्समें पूछे गए एक प्रश्नके उत्तरमें भारत-मन्त्री श्री एमरीने बताया कि भारतमें अन्नकी कोई व्यापक कमी नहीं है। इन दिनों सरकारकी ओरसे पत्रोंमें कुछ विज्ञापन छपवाए जा रहे हैं, जिनमें कहा गया है कि 'आजकल अनाजकी कमी केवल ५ प्रतिशत है, अर्थात् दाल, चावल या आटाके रूपमें आपका जो भोजन है, उसमें केवल बीसवें भागकी कमी हुई है।' इसके साथ ही जनतासे अन्न जमाकर रखने-वालोंका बहिष्कार करनेकी भी अपील की गई है। अन्य प्रान्तोंकी बात तो हमें नहीं मालूम; पर बंगाल-असेंबलीमें पिछले दिनों प्रधान-मन्त्रीने जो आंकड़े पेश किए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि इस प्रान्तमें अनाजकी लगभग ३० प्रतिशत कमी है। पर हमें आंकड़ोंको लेकर बहस नहीं करनी है। हम यह मानते हैं कि अनाज जमाकर रखनेवालों और मुनाफ़ाखोरोंने स्थितिको काफ़ी विषम बना दिया है; पर केवल इनके बहिष्कारसे ही समस्या हल नहीं होगी। सरकारको चाहिए कि इन्हें कड़ीसे कड़ी सज़ा दे और 'ब्लैक-मार्केट' को चलने ही न दे। ऐसा करनेके उसके पास साधन भी हैं और क्षमता भी।

पर केवल इतनेसे ही काम नहीं चलेगा। अनाजकी दरें निश्चित एवं स्थिर रखने और बाज़ारोंमें एक खास अनुपातसे बराबर अनाज पहुँचानेके लिए सरकारको इसके उत्पादन, वितरण और दरोंपर काफ़ी मुस्तैदीके साथ नियन्त्रण करना होगा। अनाजके उत्पादनकी वृद्धिके लिए कागज़ी प्रोपेगेण्डाके अलावा सरकारने क्या-क्या अमली क़दम उठाए हैं, हमें नहीं मालूम; पर खेतीका क्षेत्र और प्रति एकड़ अनाजकी उपज बढ़ानेके लिए उसे शीघ्र ही कुछ करना चाहिए। बाहरसे जिस अनाजके आनेकी सूचना उसके विज्ञापनोंमें है तथा रबीकी जो फ़सल आनेवाली है, उनका वितरण ठीक ढंगसे होना चाहिए। अगर ग़रीबोंके खूनसे अपनी तोंदको चर्बी बढ़ानेवाले तथाकथित व्यापारियोंके हाथोंमें पड़नेसे इसे बचाया जा सके, तो समस्या काफ़ी हल हो सकती है। सरकारको इसकी बिक्रीका प्रबन्ध सरकारी दुकानों द्वारा या सरकारी पहरेमें कराना चाहिए। दरोंका नियन्त्रण तभी सफल हो सकता है। पर क्या सरकार यह ज़हमत उठायगी?

मिदनापुरमें क्या हुआ?

मिदनापुरमें पिछले दिनों आए नाशकारी तूफ़ान और डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जीके आरोपोंके उत्तरमें सरकारने, पता नहीं क्यों, अभी तक भी वहांका सविस्तार विवरण प्रकाशित नहीं किया है। गत ५ मार्चको बंगाल-असेम्बलीमें प्रधान-मन्त्रीने यूरोपीय दलके नेता द्वारा पूछे गए प्रश्नके उत्तरमें 'बायिया' द्वारा की गई जन और धनकी क्षतिका कुछ विवरण दिया है। पर जब डा० नलिनाक्ष सान्यालने उनसे सरकार तथा उसकी पुलिस आदि एजेन्सियोंके कार्योंके फल-स्वरूप जनताको पहुँची क्षतिका विवरण देनेको कहा, ताकि वे दोनों पक्षोंको जानकें, तो प्रधान-मन्त्रीने कहा—'इसका उत्तर देनेके लिए इस बातकी माकूल छान-बीन होनी ज़रूरी है कि मिदनापुरके अफ़सरोंपर किए गए आरोपोंके मामलेमें क्या हुआ?···बिना इस बातकी पूरी जांच किए, इस क्षण उत्तर देना मेरे लिए असम्भव है।'

लेकिन अब तक इसकी छानबीन हुई या नहीं, और अगर नहीं हुई, तो क्यों, इसका उत्तर कौन देगा?

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य और शक्ति के लिये "जी.जी.जैम" का प्रयोग सबदशाओं में हितकर है

GG

जी.जी. फ्रूट प्रिज़र्विंग फ़ैक्टरी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१००) इनाम !

किसी औषधिको बेफायदा साबित करनेपर !

जिन्हें विश्वास न हो, वे ⁻) का टिकट भेजकर शर्त लिखा लें।

(१) श्वेत कुष्ठकी वनौषधि—महात्मा - प्रदत्त श्वेत कुष्ठ (सफ़ेदी) की दवासे तीन दिनमें पूरा फायदा। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापन-दाताओंकी दवासे निराश हो चुके हैं, तो इसे लगाकर आराम पावें। १५ दिनकी दवाका मूल्य २)।

(२) सन्तति - निग्रह—सन्तान - निग्रहकी यह अचूक दवा है। दवाका व्यवहार बन्द कर दें, गर्भ धारण हो जायगा। प्रति मास दवा तीन दिन व्यवहार करनी पड़ती है। वर्ष-भरकी दवाका मूल्य २)। दूसरी दवा, जो जीवन-भरके लिए बन्ध्या बनाती है। मूल्य २)। दोनों दवाओंके व्यवहारसे स्वास्थ्यमें किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

(३) बहरापन - नाशक—यह कर्ण - रोगकी अद्भुत दवा बहरापन, कानकी आवाज, पीव बहना, नया अथवा पुराना सबको सदाके लिए आराम करती है। बहरा आदमी साफ-साफ सुनने लगता है। मूल्य २)।

(४) कोढ़ सुन्नबहरीकी जड़ी—काला, लाल और सफेद रंगका चकत्ता, अँगुली मोटी, टेढ़ी या घावसे गली हो, बदनमें झनझनाहट, सुन्न या दर्द हो, कान, नाक, भौंहें मोटी हों, बदनमें गिल्टी उठी हो, कूबड़ आदिको गारंटीके साथ इस जड़ीसे आराम किया जाता है। मूल्य २)।

(५) आश्चर्यजनक जड़ी—इसके दिखाने-मात्रसे बिच्छू, ततैये और मधुमक्खीका काटा हुआ आराम हो जाता है। अब तक लाखों आदमी इससे लाभ उठा चुके हैं। इसे सैकड़ों साल तक अपने पास रखिए, पर इसका असर कभी भी कम न होगा। मूल्य १) फ़ी-जड़ी। ३ का मूल्य सिर्फ़ २॥)।

मासिक धर्म

इस औषधिसे मासिक धर्मकी गड़बड़ी, मासिक धर्मका अधिक या कम दिनमें होना, ऋतु-कालमें पेट, कमर, पेडू और सिरमें दर्द होना, मासिक धर्मके रंगमें फर्क होना या एकदम बन्द हो जानेको आरामकर गर्भ धारण हो जाता है। गर्भवती स्त्रियाँ इसे व्यवहार न करें। गर्भ धारणके बाद इसे व्यवहार करनेसे गर्भपात हो जाता है। मूल्य २) रु०।

पुत्रदा—इस औषधिसे निश्चय गर्भ रहकर पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होती है। पूर्ण विवरणके साथ लिखें। मूल्य २)।

रोगका घर

खांसी—इस औषधिसे नई व पुरानीसे पुरानी खाँसी, दमा, साँसको तीन दिनमें पूरा फायदा होता है। एक रोगी पूर्ण आरोग्य लायक एक मासकी औषधिका मूल्य २)।

अब ख़िज़ाब लगाना न होगा

बाल काला तेल

नक़ालोंसे सावधान !

इस तैलसे बालका पकना रुककर पके बाल जड़से काले पैदा होते हैं। यदि स्थाई काले न रहें, तो दूना दाम वापसकी शर्त। सैकड़ों प्रशंसा-पत्रोंसे इसकी सत्यता प्रमाणित है। यह तैल सरके दर्द व सरमें चक्कर आने आदिको आरामकर आँखकी रोशनीको भी बढ़ाता है। बाल कम पके हैं २), चौथाईसे अधिक पके हैं ३॥) व कुल बाल पके हों तो ५) का तैल मँगा लेवें।

वैद्यराज अखिलकिशोर राम, आयुर्वेद-विशारद, भिषक-रत्न,

नं० २८, पो० कतरीसराय (गया)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तमान तथा भावी मातायें

रोगका यथासमय उपचार करनेमें सुस्ती करके असह्य यातनाओंका शिकार न बनें। इस बातको सदा ध्यानमें रक्खें कि आपकी सन्तानका स्वास्थ्य अथवा हमारे देशका भविष्य आपके गर्भाशयकी शुद्धिपर ही निर्भर है।

गर्भाशयके अनेक रोगोंको दूर करनेवाली सुप्रसिद्ध तथा शीघ्र आरोग्यकारी

उटेरन

वि. सि. पि. डब्ल्यू. ब्राण्ड **भाइत्रो-अशोक**

से आपका सारा कष्ट तुरन्त दूर हो जायगा। यह कष्टकर तथा अनियमित मासिक धर्म, रुकावट तथा भीतरकी जलनके लिये भी बहुत ही गुणकारक है। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंके रोगोंको भी नष्ट करता है। बडे-बड़े डाक्टर इसके सेवनके लिये सलाह देते हैं।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०—कलकत्ता : : बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संपादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

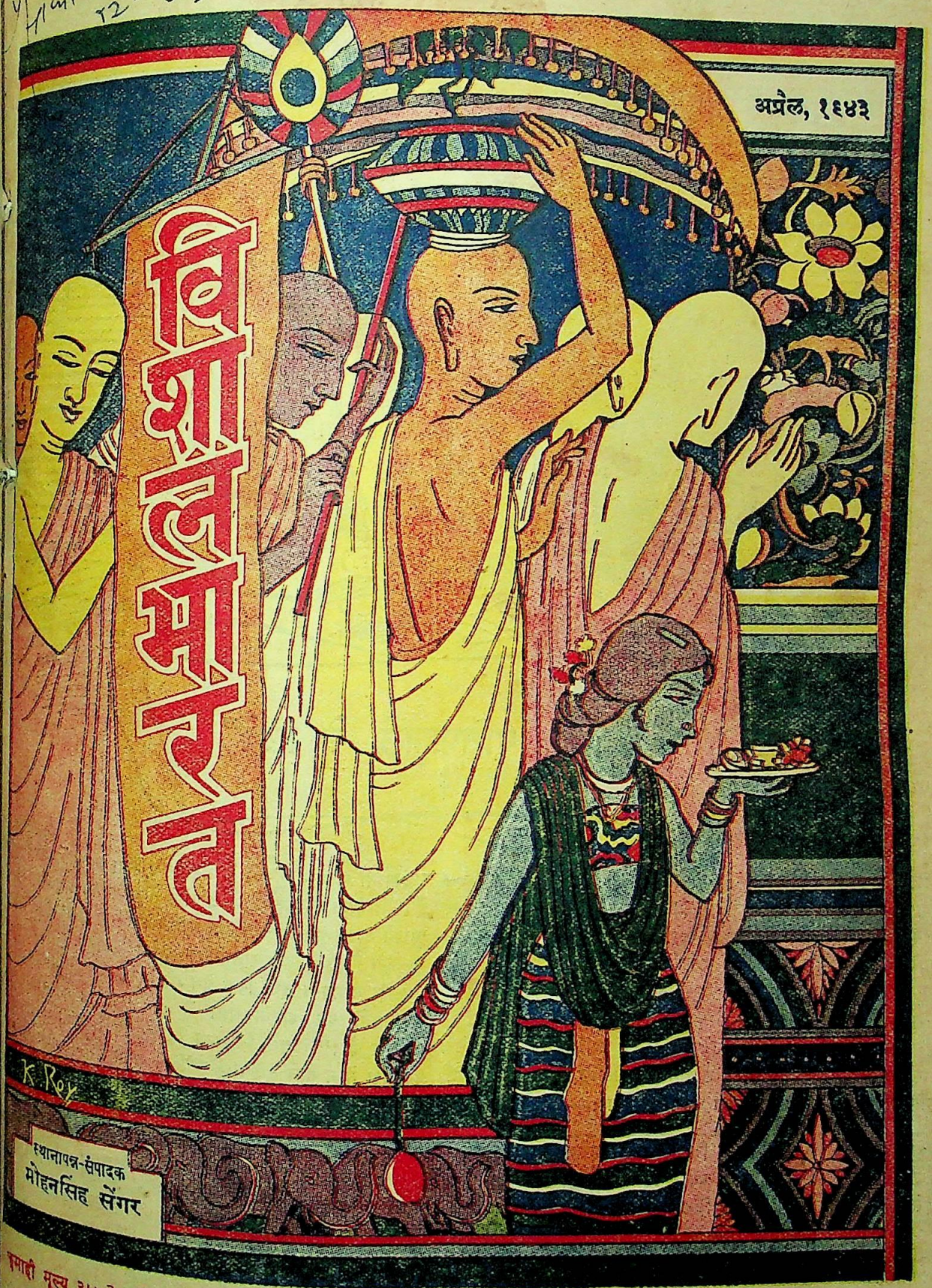

वार्षिक मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

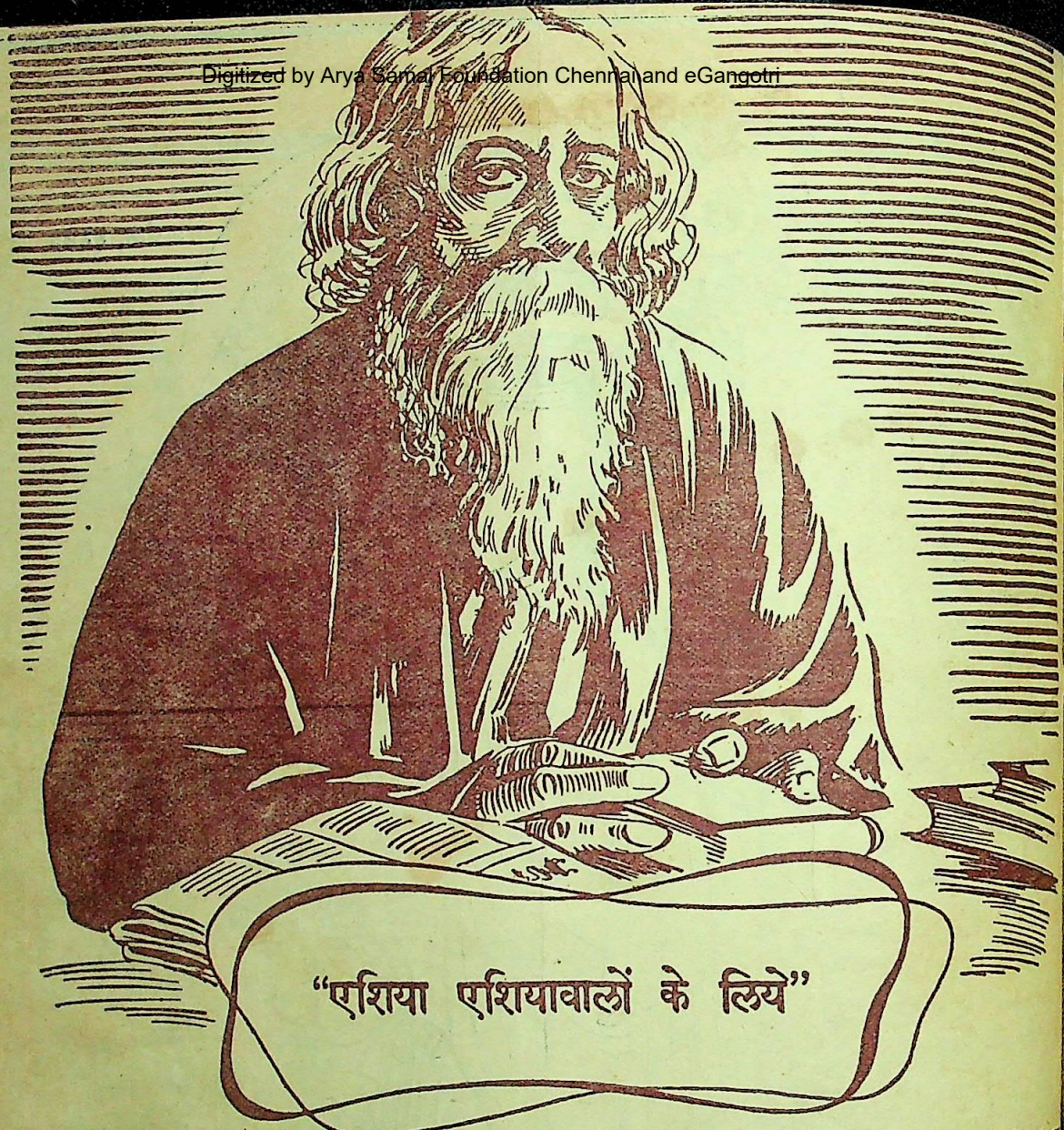
"एशिया एशियावालों के लिये"

विश्व-प्रेम तथा धार्मिक सहिष्णुता भारतवर्ष की विशेषतायें हैं। इस देश में प्रत्येक धर्म एवम् दार्शनिक विचार-धारा को आदर का स्थान प्राप्त है। जगन्नाथ पुरी का मन्दिर, शृंगेरी मठ, श्रीअरविन्द का पोण्डिचेरी आश्रम, कवीन्द्र रवीन्द्र का शान्ति-निकेतन आदि सांस्कृतिक एवम् धार्मिक केन्द्र इस देश की उच्चतम विभूतियां हैं। क्या आप अपने देश की इस संस्कृति का विनाश सहन कर सकते हैं? अगर जापानी इस देश में आ गये, तो वे इन धार्मिक तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का अस्तित्व ही मिटा डालेंगे। कवीन्द्र रवीन्द्र ने जापानी कवि नागुची को इस आशय का पत्र लिखा था :—

"जापानी लोग नरमुण्डों के ढेर पर एशिया का पुनर्निर्माण [illegible] हैं। नरहत्या के कुकृत्यों में जापानी तैमूरलंग का अनुकरण [illegible] आपने अपने पत्र में "एशिया एशियावालों के लिये" जिस [illegible] उल्लेख किया है, वह राजनीतिक धूर्तता के सिवा कुछ नहीं। विशाल मानवता तथा विश्व प्रेम की भावना का लेशमात्र नहीं। जापानियों का अन्धविश्वास है कि "जापान का राजा [illegible] अवतार है।" इस सिद्धान्त के सिवाय वे किसी भी मत [illegible] इस देश में न होने देंगे। इसलिये अपने धर्म की रक्षा के [illegible] आवश्यक है कि हिन्दुस्तान में जापानियों को न घुसने दि[illegible]

गुरुदेव ने विशाल मानवता के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसका अनुकरण कीजिये। व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर अपनी सेना को सहायता पहुंचाइये, जिससे जापानियों को रोका जा सके।

स्वयं विचार कीजिये और मिल जुल कर काम कीजिये

यही है राष्ट्रीय युद्ध मोर्चा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[फागुन, १९९९ : : अप्रैल, १९४३]

१ पवमान सोमके प्रति (कविता)—
श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश' २४१

२ ऐण्ड्रूज़ : वर्त्तमान युगके सन्त फ्रांसिस—
श्री गुरुदयाल मल्लिक २४२

३ युद्धके बाद भारत—श्री ईश्वरशरण २४३

४ वृद्ध भारतके नये नुक्ताचीं—श्री दर्शनानन्द २४६

५ प्रतिभा : उसका स्वरूप (स०)—स्व० हेमचन्द्र मोदी २४८

६ दृष्टि (कहानी)—श्रीमती सत्यवती मल्लिक २५३

७ अंकमें सौन्दर्य (स०)—कुमारी सुप्ति सिन्हा २५७

८ राष्ट्र-निर्माणमें हिन्दीका हाथ—
श्री औटमी चौफीन : श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना २६२

९ तितलियाँ (स०)—कुँवर सुरेशसिंह २६५

१० जापानकी युद्ध-कालीन अर्थनीति—डा० नन्दलाल २६९

११ मृत्तिकाका दीप (कविता)—
श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' २७१

१२ बुद्धके अन्तिम दिन (स०)—
श्री सूर्यनारायण चौधरी २७२

१३ रात, तेरे रंग गहरे ! (कविता)—
श्री रूपकुमारी बाजपेई २७४

१४ बबूल—श्री तेजनारायण काक २७४

१५ धूमिल चित्र (कहानी)—
श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' २७५

१६ साहित्यमें हास्य-रस—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र २७८

१७ हमारी चीनी बहनें (स०)—कुमारी ननिबाला राय २८२

१८ गांधीजी (स०)—श्री गुरुदयाल मल्लिक २८६

१९ युग-प्रवर्त्तक अकबर—श्री गो० स० सरदेसाई २८७

२० 'नजर नसाय गई, मालिक !'—
प्रो० विनयमोहन शर्मा २९१

२१ स्वर्गीय आचार्य शुक्ल—श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय २९२

२२ बाण भट्टकी आत्म-कथा—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी २९५

२३ प्रवासी भारतीय—स्वामी भवानीदयाल संन्यासी ३०२

२४ चिट्ठी-पत्री ३०६

२५ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार ३०९

२६ चयन ३१२

२७ सम्पादकीय विचार ३१३

तिरंगी चित्र—गाँवके रास्तेपर—
श्री माणिकलाल वन्द्योपाध्याय ३१५

तितलियाँ २६४

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री 'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', मू० २।)।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला १।=), भाग दूसरा १॥)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

शिकागो-वक्तृता—मू० ।=) ; **परिव्राजक**—मू० ॥=)।
प्रेमयोग ; प्राच्य और पाश्चात्य ; आत्मानुभूति : प्रत्येकका मू० ॥)।
मेरे गुरुदेव—मू० ।=) ; **वर्त्तमान भारत**—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर
(सी० पी०)

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका चौथा अंक प्रकाशित हो गया।

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

लाल कनेर (एकांकी नाटक)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
रुद्रकी वैदिक कल्पना	बलदेव उपाध्याय
मनुष्य और मशीन	गुरुदयाल मल्लिक
शिल्प-तत्त्व	नन्दलाल वसु
मज्मअ'-उल बहरैन	बिक्रमाजीत हसरत
रवीन्द्रनाथकी मृत्युंजय वाणी	क्षितिमोहन सेन
आखिरी रात (कहानी)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
बँगला छन्दकी प्रकृति	प्रबोधचन्द्र सेन

कई गान, कविताएँ, पुस्तक-समीक्षा और सम्पादकीय नोट

वार्षिक मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए **प्रति संख्या १।"**

व्यवस्थापक, विश्वभारती पत्रिका,
हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विशाल भारत'-सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ

ग्राहकोंके लिए

१. 'विशाल भारत' प्रत्येक अँगरेज़ी महीनेके पहले हफ़्तेमें प्रकाशित होता है। हर अंक सावधानीसे देख-भाल और पतेकी जाँच-पड़ताल करनेके बाद प्रत्येक ग्राहक, लेखक, विज्ञापनदाता, एजेण्ट आदिके पास भेजा जाता है।

२. अगर कोई संख्या किसी ग्राहक या विज्ञापनदाताके पास महीनेकी १५ तारीख़ तक न पहुँचे, तो उसे अपने यहाँके डाकघरको लिखना चाहिए और डाकघरके जवाबके साथ हमें उस मासकी २० तारीख़ तक सूचना देनी चाहिए।

३. कार्यालय उस समय तक किसी भी पत्रका उत्तर देनेके लिए बाध्य न होगा, जब तक कि पत्रके साथ उत्तरके लिए डाक-टिकट, टिकट-लगा लिफ़ाफ़ा या कार्ड न होगा। पत्र आनेपर आवश्यक कार्यवाही अवश्य कर दी जायगी; पर उत्तर नहीं दिया जायगा।

४. ग्राहकोंको पत्र-व्यवहार करते, रुपया भेजने तथा पता बदलवानेका लिखते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। बिना ग्राहक-नम्बरका उल्लेख किए आए हुए पत्रोंपर कार्यवाही करने या उत्तर देने, अथवा इस सम्बन्धमें होनेवाले विलंबके लिए कार्यालय उत्तरदायी न होगा।

५. 'विशाल भारत' का मूल्य स्वदेशमें ६) वार्षिक, ३।) छमाही और एक प्रतिका ॥-) है तथा विदेशमें ९) वार्षिक और एक प्रतिका ॥।) है।

६. 'विशाल भारत' का मूल्य मनीआडरसे भेजना ही ग्राहकोंके लिए सुविधाजनक है। वी० पी० मँगानेमें एक तो वी० पी० ख़र्च और मनीआर्डर-कमीशन मिलाकर ।=) अधिक लग जाते हैं और वी० पी० की वसूलीमें देर होनेसे बादका अंक भेजनेमें भी देर हो जाती है।

७. युद्धके कारण कागज़, स्याही तथा प्रेसकी अन्य आवश्यक चीज़ोंके दाम चढ़ जानेसे 'विशाल भारत' रियायती मूल्यमें देना बन्द कर दिया गया है। अतः रियायत माँगनेवाले पत्रोंका उत्तर देनेको कार्यालय बाध्य न होगा। जो महानुभाव रियायतकी आशासे वार्षिक या छमाही मूल्य कम भेजेंगे, उन्हें उतने समय तक ही पत्र भेजा जायगा, जब तकका मूल्य कार्यालयमें प्राप्त होगा।

एजेंटोंके लिए

१. कमसे कम ५ कापियाँ प्रतिमास मँगानेपर कोई भी 'विशाल भारत'का एजेंट बन सकता है।

२. स्थायी एजेंटोंको १) फ़ी कापीके हिसाबसे पेशगी ज़मानत जमा करानी होगी और हर महीने हिसाब साफ़ कर देना होगा।

३. जिस महीनेके अंककी जितनी प्रतियाँ चाहिएँ, उसकी सूचना उससे पहले महीनेकी २५ तारीख़ तक कार्यालयको अवश्य मिल जानी चाहिए।

४. जिन एजेंटोंका रुपया जमा न होगा, उन्हें नया अंक उस समय तक नहीं भेजा जायगा, जब तक कि वे रुपया या वी० पी० से अंक मँगानेका आर्डर नहीं भेजेंगे।

लेखकों एवं कवियोंके लिए

(१) 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ आनेवाली रचनाएँ कागज़के एक ओर स्याहीसे साफ़ अक्षरोंमें संशोधनके लिए ३ इंचके लगभग हाशिया अथवा दो पंक्तियोंके बीचमें काफ़ी जगह छोड़कर लिखी होनी चाहिएँ। कारबन-कापी, पेंसिलसे लिखी हुईं अथवा कागज़की दोनों ओर, अस्पष्ट, घिचपिच और लापरवाहीसे घसीटी हुई रचनाएँ स्वीकार नहीं की जायँगी। (२) रचनाओंकी स्वीकृति-अस्वीकृतिकी सूचना उस समय तक नहीं दी जायगी, जब तक कि उनके साथ पोस्टकार्ड या लिफ़ाफ़ा न होगा। स्वीकृत रचनाएँ जिस अंकमें छपेंगी, उसकी एक प्रति यथासमय लेखककी सेवामें भेज दी जायगी। (३) बिना मँगाए आनेवाली रचनाओंके छापने या लौटानेके लिए सम्पादक बाध्य न होगा। (४) बिना पोस्टेजके आनेवाली रचनाओंको लौटानेके लिए सम्पादक ज़िम्मेदार न होगा। (५) कविताओंके लौटाना हमारे लिए शक्य नहीं है, अतः कवि महानुभाव या तो अपनी रचनाओंकी प्रतिलिपि रख लिया करें अथवा उन्हें लौटानेके लिए आवश्यक पोस्टेज भी साथ भेजें। ( ) पारिश्रमिक चाहनेवाले लेखकोंको पहलेसे ही सम्बन्धमें लिखा-पढ़ी कर लेनी चाहिए। (७) प्रकाशनार्थ रचनाएँ, चिट्ठी-पत्री, परिवर्त्तनके पत्र-पत्रिकाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि सब सम्पादकको भेजी जानी चाहिएँ, किसी व्यक्ति-विशेषके नामसे नहीं। (८) कौन रचना कब छपेगी या किस पुस्तककी आलोचना कब होगी, इस सम्बन्धमें कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नमना मुफ्त भेजनेका नियम नहीं है। उसके लिए कृपया ॥=) के टिकट भेजिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य बढ़ाया गया है

कागज़की बेहद महँगाईके कारण शरत्साहित्यके जो भाग अब छपे हैं और आगे छपेंगे, उनका मूल्य बारह आनेसे एक रुपया कर दिया गया है। भाग ३, १५ और १६-१७ हाल ही छपे हैं। इनके सिवा साहित्य-शिक्षा, हिन्दी-गद्यमाला, शाहजहाँ, मेवाड़-पतन, भारत-रमणी, दुर्गादास, जीवटकी कहानियाँ, हिन्दी-साहित्यकी भूमिका, ग्राम्य-जीवनकी कहानियाँ, देश-देशके लोग, शान्तिकुटीर, उपवास-चिकित्सा, शिवाजी, राणा प्रताप, नूरजहाँ, नवनिधि, उर्दू-हिन्दी-कोश, आनन्दकी पगडंडियाँ और ताराबाई—इन पुस्तकोंका मूल्य पहलेसे सवाया कर देना पड़ा है। अन्य सब पुस्तकोंका मूल्य ज्योंका त्यों है।

बहुतसे ग्राहक हमसे दूसरोंकी प्रकाशन की हुई पुस्तकें भी मँगाया करते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि प्रायः सभी प्रकाशकोंने अपनी पुस्तकोंके दाम बढ़ा दिए हैं। सूचीपत्रमें छपी हुई कीमतें ठीक नहीं हैं। इसलिए ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे बढ़ी हुई कीमतोंका खयाल रखकर ही आर्डर दें। कमीशन भी प्रकाशकोंने कम कर दिए हैं, इसका भी ध्यान रक्खें।

गुजरातके नाथ

गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत के० एम० मुन्शीका यह अतिशय मनोरंजक, उत्कण्ठावर्धक और कलापूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हाल ही प्रकाशित हुआ है। हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी कमी है और हिन्दीके लेखक इस समय इस ओरसे प्रायः उदासीन हैं। अतएव हिन्दीके पाठक इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। ४६० पृष्ठोंके इस उपन्यासका मूल्य सवा दो रुपया है। इसके पहले मुन्शीजीका 'पाटनका प्रभुत्व' प्रकाशित हो चुका है, जिसका मूल्य डेढ़ रुपया है। वह भी ऐतिहासिक है और उसके बादका ही इतिहास 'गुजरातके नाथ'में गुम्फित है। यों दोनों ही स्वतन्त्र हैं।

कबीर

शान्तिनिकेतनके अध्यापक पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्यने इस ग्रन्थमें कबीर, उनके साहित्य और उनकी फिलासफीपर बिल्कुल ही नये दृष्टिकोणसे और बड़ी गहराईसे विचार किया है। कबीरको अच्छी तरह समझनेके लिए यह ग्रन्थ आवश्यक है। मूल्य ढाई रुपया।

जैन-साहित्य और इतिहास

लेखक:—पं० नाथूराम प्रेमी

जैन-साहित्य बहुत विशाल और गम्भीर है। व्याकरण, काव्य, न्याय, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि कोई भी ऐसा साहित्यांग नहीं है, जिसपर जैन-पण्डितोंने प्रामाणिक ग्रन्थ न लिखे हों। इस ग्रन्थमें ऐसे सकड़ों प्रकाशित-अप्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंके ग्रन्थों और उनके कर्त्ताओंका विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके समयपर भी प्रकाश डाला गया है। इसके सिवा जैन-इतिहासकी अनेक गुत्थियां सुलझाई गई हैं। बहुतसे कवियों और ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें बिल्कुल नई खोजें की गई हैं। हिन्दीकी जननी अपभ्रंश भाषाके ऐसे अनेक कवियों और उनकी रचनाओंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें कोई जानता भी नहीं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो कुछ लिखा गया है, सब निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे।

'विश्व-भारती', 'विशाल भारत' आदि पत्रोंने और म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ, प्रो० हरिसत्य भट्टाचार्य, पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० भगवद्दत्तजी, डा० रघुवीरसिंहजी आदि माने हुए विद्वानोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या ६३४। मूल्य तीन रुपया।

संचालक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय उपहार

एक महात्मा-प्रदत्त कुछ अचूक औषधें

१. 'इन्सैनीटी'—सब तरहके पागलपनकी शर्तिया दवा।

२. 'ह्वाइटलिन'—सफ़ेद कुष्ट और सफ़ेद चकत्तोंकी आश्चर्य-जनक दवा। १५ दिनके इस्तैमालसे सभी तरहकी ऊपर लिखी बीमारियां ठीक हो जाती हैं।

लिखिए—श्री हृषिकेश घोष,

"शान्ति-मन्दिर", भातपाड़ा, (२४ परगना)

बच्चों के लिए ताकत की दवा

डोंगरे का बालामृत

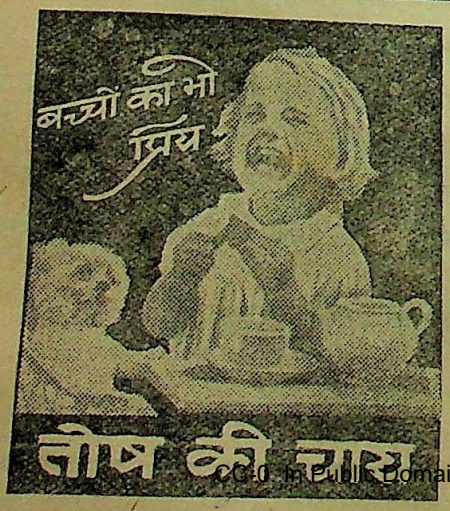

वतन का लोकप्रिय साबुन!

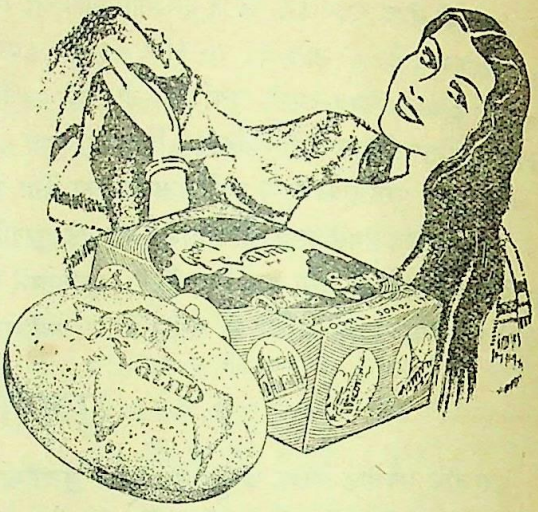

ताज़गी पहुँचाने वाले 'वतनी' टायलेट साबुन से अपनी चिन्ताओं को धोकर आप अपने राष्ट्रीय गृह-मोर्चे पर स्वस्थ और प्रफुल्लित रह सकते हैं। वनस्पति तेल से बने हुए इस साबुन के दूध-से उज्वल और प्रचुर फेन से आप सर से पैर तक अपने शरीर को निर्मल बना दें। इसका स्वच्छ करनेवाला, सुन्दरता बढ़ानेवाला और शान्तिदायक फेन बच्चों के चर्म के लिए भी लाभदायक है। इस साबुन की मोहक सुगन्ध आपके शृंगार को दूना आकर्षक बना देगी। यह बड़ा साबुन अन्त तक सुगन्धित और ताज़ा रहेगा। जो आपको अन्य साबुनों में नहीं मिलेगा, वह 'वतनी' में मिलेगा। फिर भी वह अपने किफ़ायती मूल्य के कारण अधिक लोकप्रिय हो गया है। इसलिए अपने चर्म पर व्यर्थ ही क्यों नये प्रयोग करते हैं? गुणों में अद्वितीय इस 'वतनी' राष्ट्रीय साबुन पर ही निर्भर करें।

नं० १ नं० २ 'वतनी' सन्दल : लिमडा : फैमिली
टर्किश-बाथ : शेविंग-स्टिक : शेविंग-'राउन्ड'

Godrej 'chavi' brand Vatni

गोदरेज चाभी छाप वतनी

टायलेट साबुन

गोदरेज सोप्स, लि०—पटना (स्टेशन रोड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३१, अंक ४] फागुन, १९९९ : : अप्रैल, १९४३ [पूर्णांक १८४

पवमान सोमके प्रति

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

स्नेह-क्षरण हे !
मधु-वर्षण हे !
विश्व-जठरको अमृत-घूँट दो मादक।
हविर्युक्त हो ऋत्विक
पीते जिस पयको आह्लादक,
युग-युगसे जिस प्रियकर पयको
पीते प्यासे चातक।
जिसकी एक बूँदसे शीतल
अतल-वितल चल प्रतिपल,
जिस रससे यह रसा रसवती,
सम्पोषित तृण-तरु-दल।
हरित वरण हे !
पिंग वरण हे !
ढरका दो जगके कण-कणमें मधुकण।
जो मदकर मधु पीकर मधुकर
खो सुध-बुध अपनापन,
वीणानिन्दित स्वरसे गुंजित
गाते गीत सनातन।

चिन्मय जरामरणजित शंकर
जो अक्षय मधु पीकर
करते ताण्डव नृत्य चिरन्तन
घूर्णय धराधर अम्बर।
स्रवणशील हे ! सृजनशील हे !
तरुण किरण संचरणशील हे !
निर्मल कर दो भवका कुत्सित जीवन।
फुत्कारोंसे कम्पित कर दो
छिद्रोंका सिंहासन,
अन्धकारके अद्रि-शिखरपर
छूटो इन्द्र-कुलिश बन।
हृदय-हृदयमें आत्माहुतिकी
ज्वाला होकर आओ,
निर्भयताकी दो मशाल, हे
दीप-रागमें गाओ।
गीति-गुंज हे !
ज्योति-पुंज हे !
कर दो जगके मलिन नयनमें अंजन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐण्ड्रूज़ : वर्त्तमान युगके संत फ्रांसिस

श्री गुरुदयाल मल्लिक

प्लैटफ़ार्मपर विचित्र और अस्तव्यस्त भीड़की ठेलमठेल है। लोग गाड़ीमें चढ़नेके लिए धक्का-मुक्की कर रहे हैं। कुछ ही मिनटोंमें गार्ड साहबने हरी झण्डी दिखला दी और इंजनने सीटी दी। देरीसे आया हुआ एक यात्री किसी तरह डिब्बेके पायदान तक जा पहुँचा है ; डिब्बा दूसरे दर्जेका है। भीतरके श्वेतांग यात्रियोंमें से एकके भीतरका वर्ण-भिमान जाग उठा। उसने अपना क्रोधसे रक्ताभ मुँह फिराकर काले आदमीके सामने ही बलपूर्वक दरवाज़ा चपेट दिया और कहा—'गेट आउट यू निगर !' गाड़ीके काले-गोरे मुसाफ़िरोंने इसे देखा और सारे अपमानकी पीड़ाको चुपचाप पी गए। उस योद्धाके इस युक्तिहीन दुर्व्यवहारकी अमानुषिकताके खिलाफ़ किसीने चूँ तक नहीं की। लेकिन डिब्बेमें एक तरुण अंगरेज़ मिशिनरी भी था, जो अभी ताज़ा ही विलायतसे आया था। केम्ब्रिजसे डिग्री लेकर वह देशकी चिर-पुरानी राजधानी दिल्लीके एक कालेजमें अध्यापकका काम करने जा रहा था। ईसाके धर्मपर उसे विश्वास था और उनके 'सबके लिए प्रेम और किसीके लिए भी बैर नहीं' वाले सन्देशपर उसे श्रद्धा थी। इस घटनाने उसी श्रद्धा और विश्वासपर बुरी तरह आघात किया। अपने ही देशवासीका यह अहंकार उसके मर्मको छू गया। उसी क्षणके भीतर ही उसने सम्पूर्ण जीवनके लिए एक संकल्प लिया कि वह आजीवन इस अमानुषिक वर्ण-बाधाके विरुद्ध धर्मयुद्ध करता रहेगा। मानवीय समानाधिकारका यह भक्त और कोई नहीं, चार्ल्स ऐण्ड्रूज़ ही थे, जिनकी तीसरी पुण्यतिथि ५ अप्रैल, १९४३ को पड़ रही है।

ऐन्ड्रूज़ देश और देशान्तरमें चिर-जीवन इसी एक उद्देश्यकी साधना करते रहे—जातिगत श्रेष्ठताके अहंकारको मिटा देना। यह अहंकार कुछ दिनोंसे पूर्व और पश्चिम दोनों जगह मनुष्योंके लिए अशोभन और लज्जाजनक हो गया था। कभी मंचपर से, कभी प्रेसके कालमोंसे और अपने जीवनके दृष्टान्तसे बीसियों बार ऐन्ड्रूज़ने धनके दम्भी, शक्ति-मदसे अन्धे लोगोंके निकट अपना आवेदन जनाया—दक्षिण-अफ्रीकामें, फिजी-द्वीपमें, ब्रिटिश-गायनामें, आस्ट्रेलियामें और दुनियाके किस हिस्सेमें नहीं—कि वे पग-पगपर आज प्रभु ईसाको क्रूस पर टाँग रहे हैं, जब कि पग-पगपर वे उनके उपदेशोंके उस मूल सत्यपर कठोर आघात कर रहे हैं, जिसमें कहा गया है—'प्रेम करो, परस्पर प्रेम करो।' और इसके उत्तरमें जब वे देखते कि भरी हुई जेबोंमें अपने हाथ डालकर, बैंककी बढ़ती हुई बाक़ीपर अपनी अपलक दृष्टि जमाए इन सम्पत्तिशालियोंने प्रभुके सन्देशका अर्थ केवल श्वेतांग ईसाइयोंके साथ ही भाईचारा जोड़ना समझा है, तब ऐण्ड्रूज़की अकपट आत्मा सात्विक क्रोधसे उद्दीप्त हो उठती और उनकी वाणीसे जैसे बाइबिलकी वाणी बोल उठती—'भ्रममें न रहना, भगवान्‌के साथ तमाशा नहीं किया जा सकता !'

ऐण्ड्रूज़ मनुष्यको मनुष्यके नाते ही पहचानते और श्रद्धा करते थे, फिर वह मनुष्य पूरबका हो या पच्छिमका, उत्तरका हो या दक्खिनका। और इसी जीवन्त श्रद्धा तथा मानवीय गौरवके प्रति सम्मानकी धारणाने उन्हें एक ओर कवि रवीन्द्रनाथका, तो दूसरी ओर महात्मा गांधीका घनिष्ठ बन्धु बना दिया था। उनके अन्तरमें प्रभु यीशुकी उस सत्य और जीवित आत्माका निवास था, जो शास्त्रोंके वचन अथवा परम्पराकी उक्तिमें अटकी नहीं रहती। इस मूर्त्तिने गांधी तथा गुरुदेवके आश्रमोंके निकट जीवनव्यापी सेवा तथा निष्ठाके भीतरसे अपनेको प्रकाशित किया। कविके शान्तिनिकेतनमें स्थित विश्वभारतीके स्वप्नको साकार करनेके लिए उन्होंने जैसा अक्लान्त श्रम किया, वैसा ही गांधीके अनुगत होकर 'दीनों-हीनों और खोए-हुओं'की सेवाके लिए भी। काव्य-दर्शन तथा अध्यात्मके प्रति उनका जो प्रबल आकर्षण था, लांछित और उत्पीड़ित मानव-समाजके दुःखको कम करनेके लिए भी वैसा ही था। किन्तु पहलेकी अपेक्षा दूसरेका पलड़ा अक्सर ही भारी पड़ जाया करता था। कन्फ़्यूशियसके शब्दोंमें ऐण्ड्रूज़ भी कह सकते थे—'कुलीन और मंगल कोई एकान्तवासी योगी नहीं हैं ; वे पड़ोसियोंसे सदा घिरे हुए हैं।' और इसीसे अपने आराध्य देवता—ईसा खीष्ट—के समान वे लोक-मंगलके लिए सदा गृहत्यागी रहे।

इस छोटे-से स्केचके लेखकको अपने जीवनमें एक बार ऐण्ड्रूज़के निजी सहायककी हैसियतसे उनकी सेवा करनेका गौरव और आनन्द प्राप्त हुआ था। इस तरह वह विशेष भी उनके निकट संस्पर्शमें आया। उसने कभी तो ऐण्ड्रूज़ कार्यमें डूबा हुआ पाया, तो कभी उपासनामें। कभी देखा अनन्त आकाशको कविकी दृष्टिके जालमें बाँध रहे हैं, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया, उनका मन अनन्त विश्वके भीतर छुपे हुए आध्यात्मिक नियमका अनुगामी हो रहा है। फिर देखा, ऐण्ड्रूज़ स्टेशनकी तरफ़ भागे जा रहे हैं—पहली गाड़ी पकड़ने—कोई बन्धु मृत्युशय्यापर अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। अभी डेस्कपर झुके हुए किसी ज़रूरी चिट्ठी अथवा लेखमें डूबे हुए हैं, तो अभी उठकर रसोईघरकी तरफ़ जा रहे हैं—किसी हड्डियोंके ढाँचे-जैसे भिखारीकी भूख शान्त करने। और अन्तमें फिर उसी दुरूह अनिवार्य चक्रके उसी विश्राम-स्थलपर आ पहुँचते हैं—वही भूख, वही दुर्भिक्ष, वही संघर्ष। इन पंक्तियोंके लेखकको उनकी इन्हीं 'कृतियों' द्वारा प्राणोंकी प्रेरणा मिलती थी। किन्तु उसका खयाल है कि अनेक अवसरोंपर यदि कोई ऐण्ड्रूज़से पूछता कि उन्हें सबसे अधिक आश्चर्यजनक वस्तु जीवनमें कौन-सी मालूम हुई, तो वे एडविन मार्खेमके शब्दोंमें बिना विचारे उत्तर देते—"कैण्टका कहना था—'दो चीज़ें मुझे आतंक और आश्चर्यसे भर देती हैं : ताराओंसे भरा हुआ आसमान और विश्वका नैतिक नियम।' किन्तु मैं एक और वस्तु जानता हूँ, जो इनसे कहीं भीषण और अख्यात है : लूटे-खसोटे हुए ग़रीबोंका सुदीर्घ—सुदीर्घ धैर्य।"

शायद यही कारण है, जो जीवनके सबसे बड़े शिल्पी महात्मा गांधीने चार्ल्स ऐण्ड्रूज़को 'दीनबन्धु' कहकर पुकारा था, जिस पुण्य नामको देशकी कृतज्ञ जनताने अनायास ही स्वीकार कर लिया और जिससे उन्हें चिरकालके लिए वरण किया।

शान्तिनिकेतन]

युद्धके बाद भारत

श्री ईश्वरशरण

युद्ध अभी खत्म नहीं हुआ, मित्र-राष्ट्रोंकी जीत हुई नहीं, और अभीसे युद्धके बादके पुनर्निर्माण—नई दुनिया तथा नई व्यवस्था—की चर्चा चल पड़ी है। कुछ अंशोंमें यह है भी उचित ही। कारण, कल जब शान्तिकी चर्चा चलेगी, तो उसे किस साँचेमें ढाला जाय, इसका पहलेसे विचार और रूप-रेखा सोच रखना ज़रूरी है। पर जब हम इस युद्धके कारणोंपर विचार करते हैं और साथ ही नई व्यवस्थाकी प्रस्तावित रूप-रेखापर नज़र डालते है, तो मालूम होता है कि जिन आदर्शों एवं पवित्र उद्देश्योंको लेकर यह युद्ध लड़ा जा रहा है, क्या वास्तवमें वे पूरे होंगे? एटलांटिक-सनद, चर्चिलकी प्रस्तावित चतुर्वर्षीय योजना, बीवरिज-योजना आदि क्या दुनियाकी नई आशाओंको पूरा कर सकेंगी?

इस तरहके सवाल और आशंकाएँ शायद दुनियाके सभी भागोंके लोगोंके दिमाग़में उठ रहे होंगे। वे लोग इनका क्या जवाब देंगे, मुझे मालूम नहीं; पर मैं तो एक भारतीयकी हैसियतसे यही कहूँगा कि इनका जवाब एक सवालके जवाबपर निर्भर करता है और वह सवाल है—युद्धके बाद भारतका क्या होगा? बहुतसे पाठक कहेंगे कि यह तो संकीर्ण राष्ट्रीय विचार है। पर सच पूछिए तो राष्ट्रीय होते हुए भी यह प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय है और समूची मानवताका भविष्य इसीपर निर्भर करता है। इस लड़ाईने जहाँ दुनियाकी विषमताओं और बुराइयोंको उघाड़कर हमारे सामने रखा है, वहाँ मित्र-राष्ट्रोंको उन्हें दूरकर एक सुधरी हुई, उन्नत, सुखी एवं सन्तुष्ट बेहतर दुनिया बनानेका नायाब मौक़ा भी दिया है। यह मित्र-राष्ट्रोंके नेताओंकी सूझ, दूरदर्शिता और हाथकी बात है कि वे इस मौक़ेसे पूरा-पूरा फायदा उठायँ या अपने स्वार्थ और संकीर्णताके चक्करमें फँसकर इसे खो दें और दुनियाको फिर तीसरे महा-युद्धकी आशंकाके हवाले कर दें।

चर्चिल और रूज़वेल्टने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया है कि भावी शान्तिका सबसे मज़बूत और स्थायी आधार होगा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सहयोग-सम्बन्ध। इसे यथार्थमें स्थायी और सुदृढ़ बनानेके लिए ४० करोड़ भारतीयोंके भविष्यके प्रश्नको अनिश्चित एवं अन्धकारमें नहीं रखा जा सकता। पर आज रूज़वेल्ट और चर्चिलके भाषणोंमें भारतका नामोल्लेख भी नहीं होता! आखिर यह क्यों? जब युद्धके बाद दुनियाकी नई व्यवस्था कैसी होगी, इस सम्बन्धमें विचार किया जा रहा है, तो भारतके बारेमें यह रहस्यपूर्ण मौन क्यों? अधिक आशंका हमें तब होती है, जब हम चर्चिल, हेलीफैक्स, क्रेन-बोर्न, ओलिवर स्टानली, हरबर्ट मौरिसन, ईडन आदिको साम्राज्य और उपनिवेशोंको क़ायम रखने, उनके सम्बन्धमें अन्तिम निर्णय अकेले अंगरेज़ोंपर छोड़ने और ट्रस्टीशिपके खोखले 'सिद्धान्त'की दुहाई देते देखते हैं। अगर अंगरेज़ यही चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, तो फिर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सद्भावनाके मज़बूत और स्थायी होनेकी बात वे कैसे सोचते और कहते हैं? अगर साम्राज्य और उपनिवेश रहेंगे, तो उनके शोषण, दमन और छीना-झपटीके लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सद्भावनाको नष्ट अथवा कमज़ोर करनेवाली प्रतिक्रिया और सुतरां लड़ाइयाँ भी अवश्य होंगी।

भारतकी पूर्ण स्वाधीनता

सर कैम्पबेल बैनरमैनने कहा है कि सुराज्य स्वराज्यका स्थान नहीं ले सकता। भारतकी समस्याएँ और उसकी मौजूदा स्थिति इस कथनका सबसे बड़ा प्रमाण हैं। पता नहीं, ब्रिटिश अधिकारी इसे वास्तवमें समझ और महसूस कर रहे हैं अथवा लोक-भयसे ही उन्होंने इसको स्वीकार किया है। पर उनकी रीति-नीतिने इस सम्बन्धमें उनकी स्थितिको भारतीयोंकी आँखोंमें एकदम असन्दिग्ध नहीं रखा है। उन्होंने सदा भारतीय लोकमतकी उपेक्षाकर अपनी मनमानी की है। जो वादे भारतके साथ किए गए, वे बादमें कभी पूरे नहीं किए गए।

पिछली लड़ाई और जीतमें हिन्दुस्तानियों द्वारा दिए गए जन और धनके विपुल बलिदानका खासा प्रमुख हाथ था; पर इतनी बड़ी क़ुरबानी और सहायता भी भारतको आज़ादी नहीं दिला सकी! इसके बादकी राजनीतिक घटनाएँ—और विशेष रूपसे जलियाँवाला बाग़-काण्ड—तो बड़ी ही हृदय-विदारक थीं। १९१९ के मांटफोर्ड-सुधार एक ऐसा ढकोसला और दिखावा-मात्र था, जिसका उपसंहार १९३५ के नए विधानने कर दिया। इसने तो आज़ादीके मार्गपर भारतको बढ़ानेके लिए जितना दिया नहीं, उतना छीन लिया। पिछले दिनों सर क्रिप्स जो योजना लाए थे, उसने और भी स्पष्ट रूपसे यह प्रकट कर दिया कि युद्धके बाद भारतको आज़ादी देनेवाले ब्रिटिश अधिकारी युद्धके दौरानमें उसके अनुकूल वातावरण तैयार करने तथा युद्ध-प्रयत्नको पूर्ण करने तकके लिए भारतीयोंको वास्तविक शासनाधिकार नहीं देना चाहते! इससे भारतकी न्यायोचित माँग और ब्रिटिश अधिकारियोंकी हठधर्मी एवं अदूरदर्शिताके बीचकी खाई और भी चौड़ी हो गई, जिसका परिणाम आज सभीपर प्रकट है।

जब सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलकी योजना लेकर भारत आए थे, तो मित्र-राष्ट्रोंकी रणनीतिक साख बहुत ऊँची नहीं थी। बर्मा, मलाया, सिंगापुर और सुदूर-पूर्वके अनेक स्थान उनके हाथोंसे छिन गए थे और भारतपर जापानी आक्रमण होनेकी आशंका थी। पर ज्यों ही उनकी स्थिति ज़रा सम्हली और भारतपर आक्रमण होनेकी सम्भावना, कमसे कम फिलहाल तो, नहीं रही, तो ब्रिटिश अधिकारियोंकी भारत-सम्बन्धी रीति-नीतिमें भी स्पष्ट परिवर्त्तन नज़र आने लगा। इसका दोष भले ही वे दूसरोंके कन्धोंपर डालें या इसका औचित्य सिद्ध करनेको सफ़ाई दें; किन्तु है यह सरासर कपट-वृत्ति, राजनीतिक अदूरदर्शिता और प्रतिगामी मनोवृत्ति। भारतकी समस्या विश्व-समस्याकी बहुत बड़ी घुण्डी है, जिसे खोले बिना जर्मनी-जापानको हराना, फ़ाशिज़्मको नष्ट करना और विजयसे लाभ उठाना अधूरा ही रहेगा।

जिस अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सद्भावकी आज मित्र-राष्ट्र दुहाई दे रहे हैं, उसकी आधार-भित्ति है मानवताके प्रति खरी वफ़ादारी और ईमानदारी! भारतके प्रति ब्रिटेनने आज जिस नीतिका अवलम्बन किया है, हमें खेद है, उसमें इस दूरदर्शितापूर्ण वफ़ादारीकी छाप हम नहीं देखते। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सद्भावको सुदृढ़ आधार भारतकी आज़ादीसे ही प्राप्त हो सकता है और भारतको आज़ादीके सक्रिय आरम्भ—शासन-सत्ताके हस्तान्तरित करनेकी शुरूआत—का सर्वोत्तम अवसर है आजकी स्थिति और आवश्यकताएँ। इस समय भारतको वास्तविक शासन-सत्ता देकर न सिर्फ़ मित्र-राष्ट्र युद्ध-प्रयत्नमें ही उसकी भरपूर सहायता प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि अपने युद्धोद्देश्योंकी नैतिक भित्तिको भी सुदृढ़ बना सकते हैं और इस प्रकार युद्धके बाद आनेवाली शान्तिको कहीं अधिक सुरक्षित और स्थायी बना सकते हैं। पर ब्रिटिश अधिकारी ऐसा करनेका कोई रुख नहीं दिखा रहे।

अपने इस जान-बूझकर कुछ न करनेकी ज़िम्मेदारी वे भारतीयोंपर ही डालते हैं और कहते हैं कि वे एकमत नहीं हैं; मिल-जुलकर वे स्वशासनकी कोई योजना रखें, तो हम उसपर विचार करें। पर इस दलीलमें कोई दम नहीं है। अगर थोड़ी देरके लिए यह मान भी लिया जाय कि सब भारतीय एकमत नहीं हैं, तो इसका श्रेय ब्रिटिश अधिकारियोंको ही है! कारण, यह उन्हींके लगभग दो शताब्दियोंके शासनका परिणाम है! इसे भारतीयोंका कितना ही बड़ा दोष या नासमझी क्यों न कहा जाय; पर गर्व इसपर ब्रिटिश अधिकारी भी नहीं कर सकते। रही स्वशासनकी सर्वसम्मत योजना रखनेकी बात, सो मेरी समझमें उसका वातावरण भी ब्रिटिश अधिकारी ही पैदा कर सकते हैं और इस बातका प्रमाण देकर कि अगर ऐसी कोई रूप-रेखा उनके सामने रखी जाय, तो वे उसे दरअसल स्वीकार कर लेंगे और वास्तविक शासन-सत्ता भारतीयोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंप देंगे। पर दुर्भाग्यवश ब्रिटिश अधिकारियोंका आचरण ऐसा वातावरण पैदा करनेके प्रतिकूल ही रहा है। क्रिप्स-योजनाके समय उन्होंने जो रुख अख्तियार किया, उससे सभी भारतीयोंको यह स्पष्ट हो गया कि वे वास्तविक शासन-सत्ता भारतीयोंको देना ही नहीं चाहते। पिछले दिनों गांधीजीके अनशनके समय लगभग सभी दलोंकी ओरसे उनकी रिहाईकी माँग की गई; पर ब्रिटिश अधिकारियोंने उसे कहाँ माना? तब फिर इसी बातका क्या विश्वास कि शासन-संचालनके लिए रखी गई सर्वसम्मत ही योजना स्वीकृत हो जायगी।

पर दरअसल यह समस्या इतनी पेचीदा या उलझी हुई नहीं है। पारस्परिक विश्वास, सहयोग एवं सद्भावना द्वारा इसे आसानीसे हल किया जा सकता है। दमन, दुराग्रह और प्रतिष्ठाके मिथ्या मोहको छोड़कर ब्रिटिश अधिकारी यह घोषणा कर दें कि वे शासन-सत्ता भारतीयोंको सौंपनेके लिए तैयार हैं, अतः सब मिलकर कोई सर्वसम्मत या बहुमत-सम्मत योजना उनके सामने रखें। यह हो सकती है एक असली और सही हलकी सूरत, जिससे ब्रिटेन अपनी युद्ध और शान्ति-कालकी बहुत-सी परेशानीसे मुक्त हो सकता है। इसमें न सिर्फ़ उसकी या भारतकी ही, बल्कि विश्वकी भी भलाई है।

नई व्यवस्था और भारत

भारतकी पूर्ण स्वाधीनतापर हम इसलिए ज़ोर देते हैं कि कल या जब भी दुनियामें नई व्यवस्था क़ायम होगी, भारतका उसमें प्रमुख और प्रधान भाग रहेगा। कुछ पाठक शायद कहें कि स्वयं ग़ुलाम और पिछड़ा हुआ भारत संसारको क्या दे सकता है? इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत आज राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिसे ग़ुलाम है; पर आध्यात्मिक बलमें आज भी वह संसारका सिरमौर है। विज्ञानके नवीनतम आविष्कारों द्वारा निर्मित शस्त्रास्त्रों एवं साधनों द्वारा अपना ही गला घोंटने-वाले विश्वको भारत आज भी श्रेष्ठ जीवनका सन्देश दे सकता है। यह सन्देश कोई नया नहीं, महावीर और बुद्धका सन्देश है, जिसे गांधीजीने पुनरुज्जीवित किया है। यह सन्देश है हिंसापर अहिंसाकी विजयका, पशुबलपर मानवताकी विजयका।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि युद्ध और हिंसा मानवके क्रम-विकासके प्राकृतिक अंग हैं और बर्बर-युगसे सभ्य-युगमें पहुँचकर एकदम मानव उनसे मुक्ति नहीं पा सकता। पर भारतने सहस्रों वर्ष पूर्व युद्ध और हिंसासे मुक्ति पा ली है। आज अन्य देशवासियोंकी अपेक्षा औसत भारतीय मार-काट, लड़ाई और लूट-पाटके अधिक विरुद्ध है। उसकी शान्ति-प्रियता दिखावटी नहीं, बल्कि उसके स्वभाव एवं विचारोंका एक अंग बन गई है। वर्त्तमान युद्धके-से पैमानेपर जन और धनका विनाश भारतीय पसन्द नहीं करते। प्रतिहिंसा अथवा अधर्म-मूलक युद्धके प्रति तो भारतीयोंके हृदयमें सबसे अधिक घृणा रही है। मानव-मात्रमें समान भ्रातृ-भाव, स्नेह, सद्भावना, न्याय, नीति और धर्मका पालन ही भारतीय दर्शन और धर्मोंका मूलाधार हैं। इन्हींका सन्देश वह सदाके लिए युद्धोंको मिटाने, शान्तिको चिरस्थायी बनाने और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सद्भावनाको वास्तविक रूप देनेके लिए संसारको देगा। सत्य, न्याय और अहिंसा भारतीय सभ्यता तथा संस्कृतिका मेरुदण्ड हैं।

अहिंसाके आलोचक प्रायः यह कहते हैं कि इस हिंसामय जगमें कोरी अहिंसासे कोई ज़िन्दा नहीं रह सकता। एक बहुत बड़ी हद तक यह सच भी है; पर हिंसाकी वर्त्तमान दौड़में संसार कहाँ आ पहुँचा है, यह मार-काट उसे कहाँ ले गई है, यह भी तो हम देख रहे हैं। राष्ट्र-संघकी विफलता और दुनियाका दो परस्पर-विरोधी दलोंमें बँट जाना हिंसापर बहुत बड़ी टीका है। इन्हें देखकर क्या कोई बता सकता है कि इसका अवलम्बनकर दुनियामें सुख-शान्ति-समृद्धि कभी रह सकते हैं? पिछली २-३ दशाब्दियोंमें कांग्रेसको जो सफलता मिली है, जो प्रभाव उसका फैला है, उसमें अहिंसाका बहुत बड़ा हाथ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्धके बाद जो शान्ति क़ायम होगी, उसे यथार्थ एवं स्थायी बनानेमें भारत बड़ा महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकता है। इन्हीं आदर्शों द्वारा सच्चे जनतन्त्र, विश्व-स्वातन्त्र्य, सुख-समृद्धि तथा न्याय एवं समानताकी स्थापना और सुरक्षा हो सकती है। इसी मार्गपर चलकर मानवताका भविष्य उज्ज्वल एवं उन्नत हो सकता है और उसे विनाशसे बचाया जा सकता है। पर यह तभी सम्भव है, जब कि भारतको शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र किया जाय और युद्धके बाद होनेवाले शान्ति-सम्मेलनमें स्वतन्त्र भारतके प्रतिनिधि अन्य देशोंके प्रतिनिधियोंकी बराबरीकी हैसियतसे ही भाग लें और वर्सई-सन्धिकी पुनरावृत्ति न होने दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्ध भारतके नए नुक्तचीं

श्री दर्शनानन्द

ज्ञान-प्राप्तिकी चेष्टा मनुष्यमें जितनी स्वाभाविक है, उतनी ही या उससे भी अधिक प्रबल इच्छा उसमें आत्म-प्रकाशन की भी है। युगोंसे साहित्यकी निरन्तर वृद्धिका यही भेद है। मनुष्यकी मानसिक उन्नतिके ये दो प्रधान साधन हैं। प्राचीनतम कालसे लेकर आज तककी सारी सभ्यताकी नींव इन्हीं आधारोंपर है। यही प्रेरणा एक देशको दूसरे देशके प्रति या एक जन-समूहको दूसरे जन-समूहके प्रति आकर्षित करती रहती है। इन्हीं भावनाओंके वश ज्ञानका पारस्परिक विनिमय हुआ करता है।

अन्य समकालीन सभ्य देशोंके साथ भारतका ज्ञान-विषयक आदान-प्रदान बहुत पुराना है। यह कहना निराधार होगा कि भारतका पाश्चात्य देशोंके साथ परिचय अंगरेज़ी शासनके बाद या उसकी बदौलत हुआ था। अंगरेज़ों या उनके शासनकी तो बात ही क्या, अपने छोटे-से टापूमें जब वे सभ्य भी नहीं हो पाए थे, उस समय भी भारत अपने ज्ञानके प्रकाशसे दुनियाके अन्धकारको मिटानेकी कोशिश कर रहा था।[1]

न केवल दार्शनिक सिद्धान्तोंका निदर्शन ही, वरन सामाजिक जीवनकी जटिल-से-जटिल समस्याओंका हल भी भारतीय प्रतिभाकी ही देन है। गम्भीर तत्त्वोंकी गम्भीर गवेषणा 'मानव-चिन्ता'की उच्च साधना कहलाती है। परन्तु अपने उच्चतम शिखरपर पहुँचकर ज्ञानका सलिल जब सरस होकर सुलभ स्रोतों द्वारा प्रवाहित होने लगता है, उस समय साधनाकी चरम सीमाका संकेत मिलता है। यह सौभाग्य संसारकी सभ्यताके इतिहासमें कितने देशोंको प्राप्त हो सका?

दार्शनिक और विचारक तो प्रायः सभी देशोंमें होते आए हैं; किन्तु अन्य सभी देशोंमें तत्त्व-चिन्ता तथा सत्य-साधना प्रायः गम्भीरताकी परिधिसे बाहर नहीं निकल सकी। परन्तु इस ओर प्राचीन भारतका प्रयास असाधारण था। हमारे तमाम पुराने 'कथा-संग्रह'[2] इसके प्रमाण हैं। गहरे-से-गहरे सत्य-ज्ञानकी दुरूह गुत्थियाँ केवल दार्शनिकके दिमाग़ तक ही सीमित नहीं थीं, वरन इन सरल कथाओं द्वारा और कभी-कभी विविध पशु-पक्षियोंके माध्यमसे सारे सत्य जन-साधारणकी सम्पत्ति बना दिए गए थे। ज्ञानका इतना सर्वव्यापक तथा विस्तृत प्रकाशन इससे पहले कब और कहाँ हुआ था? क्या आज भी यह सिद्ध करना होगा कि 'इसपकी कहानियाँ' या 'आरव्योपन्यास'-जैसी प्रख्यात विदेशी ज्ञान-निधियोंकी नींव हमारे यहाँके कोने-कोनेमें फैली हुई विविध कहानियोंपर हीं थी! हमारे इन विस्तृत ज्ञान-स्रोतोंसे अपनी-अपनी प्यास बुझानेका उद्योग किस देशने नहीं किया? किन्तु कोई क्या अनुकरणकी सीमाके आगे भी बढ़ सका?

किन्तु यह अनुपम एवं असाधारण उदारता भी आजके प्राचीन भारतके आलोचक-वर्गको या तो सूझ ही नहीं पड़ती या इसमें वह कोई विशेषता ही नहीं देखता; क्योंकि आए दिन प्राचीन भारतके आदरणीय आचार्योंकी निराधार कटु टीकाएँ[3] देखनेमें आती हैं। ऐसी टीकाएँ यदि मूढ़ व्यक्तियों द्वारा लिखी जातीं या इनका लक्ष्य केवल धार्मिक क्षेत्रों तक ही सीमित होता, तब तो उनकी उपेक्षा की जा सकती थी—यदि और किसी कारणसे नहीं, तो कम-से-कम यही सोचकर कि या तो लेखकका प्रमाद है या लेखक शायद 'सुधारक'-दलका है। किन्तु आश्चर्य तो तब होता है, जब ऐसी निराधार कल्पना-प्रसूत टीका-टिप्पणी सत्य और न्यायकी दुहाई देकर ऐसे व्यक्तियों द्वारा की जाती हैं, जो परम ज्ञानी और अध्ययनशील होनेका भी दावा करते हैं। और जब इन टिका-टिप्पणियोंका लक्ष्य धार्मिक विवेचनकी सीमाको लाँघकर परम आदरणीय व्यक्तियों,[4] चिर-सुपोषित और पूज्य सामाजिक व्यवस्थाओं तथा हमारी प्रियतम[5] कलाओंके आदर्शोंकी ओर होता है, तब तो उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

घोर परिवर्त्तनोंके इस युगमें भी एक साधारण भारतीय

---

१. सुलेमान नदवी : 'भारत और अरबका सम्बन्ध'।

२. जातकोंसे लेकर महाभारत, उपदेश-कथामंजरी, हितोपदेश, पंचतन्त्र, कथा-सरित्सागर इत्यादि।

३. 'वाल्मीकिने अयोध्या नामका प्रचार किया; जब उन्होंने अपनी रामायणको पुष्यमित्र या उसके शुंग-वंशके शासन कालमें लिखा था।' ('वि०भा०,' अगस्त, १९४१, पृ० ९४)

४. "कदाचित् व्यास और वाल्मीकि कोई व्यक्ति न थे, वरन 'मुंशी' या 'लेखक'-जैसे कोई पद रहे होंगे।"
विन्टरनीज़ : 'भारतीय साहित्यका इतिहास'।
और 'Ancient India' By R. chawdhari, P. 16

५. 'रामायणकी कथामें ग्रीसका प्रभाव प्रत्यक्ष है।'—वेबर तथा उनके आधारपर अनेक भारतीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सभ्यताकी उस दृढ़ नींवपर खड़ा है कि युगोंकी आँधी और बवण्डरोंको सहकर भी भारतीय सभ्यता आज विनाशके यज्ञमें स्वाहा होनेवाले संसारको शान्ति और सात्विकताका सन्देश देनेका दावा रखती है।[6] यह भारतका थोथा गर्व नहीं, वरन हममें से जिन्हें विदेशी विचारकोंसे मिलनेका अवसर मिला होगा, वे कह सकेंगे कि प्रायः वहाँका प्रत्येक समझदार व्यक्ति पाश्चात्य सभ्यताके खोखलेपनका बड़ा बुरा अनुभव कर रहा है। उसकी उस दुहाईमें यहाँके नए सन्देशकी भिक्षाका संकेत भी प्रायः मिला ही करता है।

यह एक घोर विषम परिस्थिति है कि विदेशी तो हमसे जीवनके आदर्शों और न्यायोचित सामाजिक संगठनकी दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हों; किन्तु हमारे यहाँके स्वनामधन्य विचारक विदेशी कलईपर कुछ इस तरह लट्टू हो जायँ कि सत्य-असत्यका विवेक ही खो बैठें!

इन गुमराहोंकी केवल आलोचना ही काफ़ी नहीं, वरन देखना तो यह होगा कि इसका कारण क्या है? सम्भव है, इस दलके कुछ व्यक्ति केवल प्रमादके ही शिकार हों; कुछ ऐसे भी होंगे, जो 'बदनाम होंगे, तो क्या नाम न होगा'वाली कहावतको चरितार्थ करके शायद 'सस्ती लोडरी'की फ़िराक़में हों। किन्तु कुछका तो शायद यही ईमान है कि (१) भारतीय सभ्यता-जैसी प्रायः अनुकरणीय या गर्व करने लायक कोई चीज़ ही नहीं थी। वाल्मीकि, व्यास, राम या कृष्ण-जैसी विभूतियाँ भी शायद कवि-कल्पनासे अधिक कुछ नहीं। (२) वर्णाश्रम धर्म-जैसी सुदृढ़ एवं संयत सामाजिक व्यवस्था ब्राह्मणोंकी बर्बरताके ज्वलन्त उदाहरणके अलावा और कुछ नहीं। (३) हमारी मूर्त्ति-कला या स्थापत्य-कला या हमारे नाटक आदि यूनान इत्यादि पाश्चात्य देशोंकी देनके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

आधुनिक युगकी यूरोपीय विचार-धारासे जिनका परिचय है, वे भलीभाँति जानते हैं कि लगभग १७वीं शताब्दीके अन्तसे ही यूरोपीय विद्वानोंका भारतीय साहित्य एवं कलासे कुछ गहरा सम्पर्क हो चला था। इसका विस्तृत इतिहास भी एक रोचक कहानी है; किन्तु उसके लिए यह अवसर उपयुक्त नहीं। यहाँ तो केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि लगभग १८वीं शताब्दीके अन्तमें तथा १९वींके प्रारम्भमें यूरोपके अनेक देशोंमें—विशेषकर जर्मनीमें—तो भारतीय ज्ञानकी खोजका बड़ा प्रबल उद्योग किया जाने लगा। न-जाने वहाँके कितने मेधावी विद्वान संस्कृत, पालि, प्राकृत इत्यादि भाषाएँ सीखनेमें रात-दिन एक करने लगे और कितनों ही का शौक तो उन्हें भारतवर्ष तक खींच लाया। यह शौक अंगरेज़ोंमें भी बढ़ा; किन्तु इनमें अधिकांश व्यक्ति आई० सी० एस० दलके ही थे। यहाँकी कला, यहाँका ज्ञान उन्हें भी आश्चर्यके पालनोंमें झुलाने लगा; किन्तु वे एक क्षणके लिए भी यह न भूल सके कि अंगरेज़ होने ही के नाते वे यहाँके शासक हैं। यह देश एक ग़ुलाम देश है। इसकी सारी निधि शासकके उपभोगकी वस्तु तो हो सकती है; किन्तु गर्व या सराहनाकी नहीं। और अपनी प्रत्येक मंज़िलपर यूनानको—अरस्तू और प्लेटोको—गुरु माननेवाले ये अंगरेज़ यह सिद्ध करनेकी चेष्टामें लगे कि चूँकि यूनान और भारतका सम्बन्ध बहुत प्राचीन है, अतः भारतकी सभ्यता और संस्कृतिका एक-एक अंग यूनानी छापसे विभूषित है—अर्थात् अरस्तू और प्लेटो ही भारतके भी ज्ञान-गुरु सिद्ध कर दिए गए!

विदेशी शिक्षा और पश्चिमके सम्पर्कके साथ-ही-साथ मानसिक ग़ुलामीकी गहराई भी बढ़ने लगी और धीरे-धीरे परिस्थिति कुछ यहाँ तक आ गई है कि आज एक नासमझ विदेशीकी औंधी-सीधी बहक भी हमारे लिए आप्त-वाक्यसे कम नहीं। जिस लेखमें अथवा जिस व्याख्यानमें दस-पाँच विदेशियोंकी दुहाई न दी जाय, वह वैज्ञानिक अध्ययन तो कहा ही नहीं जा सकता, वरन उसका प्रत्येक सत्य शंकाकी वस्तु है। यह है हमारा घोर मानसिक पतन और हमारी मानसिक ग़ुलामीका नमूना। इसीलिए मानसिक ग़ुलामी राजनीतिक ग़ुलामीसे कहीं अधिक घातक कही गई है।

नीर-क्षीर-विवेक निश्चय ही विद्वत्ताका परम आभूषण है और साथ ही पूर्वजोंकी अर्जित विद्वत्ता तथा कीर्त्तिका अनधिकार उपभोग अकर्मण्यताकी घृणित सीमा भी; किन्तु उपरियुक्त कतिपय निष्कर्ष क्या नीर-क्षीर-विवेकके नमूने कहे जा सकते हैं? ईसासे अनेक शताब्दी पूर्व होनेवाले वाल्मीकिको १८५ ईस्वी पूर्वके शुंग-वंशी नृपका दरबारी कवि कहना किस कोटिकी विद्वत्ताका परिचय देता है? रामके अस्तित्वको ही अस्वीकार करना क्या सूर्य-वंश या इक्ष्वाकु-वंशके अस्तित्वसे ही इन्कार करना नहीं है? केवल 'यवनिका' शब्दके आधारपर भारतीय नाट्य-साहित्यपर यूनानका प्रभाव

6. "A civilization based on material prosperity has reached its heights in the west; but along with its ascendence it has also outlived itself. To-day it stands bankrupt and spent up, and India has once again to play its role as the giver of life and peace."—Sir S. Radhakrishnan, Kamla Lectures, I.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान लेना किस कोटिकी अध्ययनशीलताका परिचय देता है? भासके नाटक तथा भरत मुनिके नाट्य-शास्त्र इत्यादिकी स्वयंसिद्ध प्राचीनताका यह अनोखा मूल्यांकन कम हास्यास्पद नहीं है।

विदेशी साम्यवादके नशेमें चूर भारतीय समाज-संगठनके प्रायः प्रत्येक अंग और उपांगको दोषपूर्ण ही देखने लगे हैं; और वर्ण-व्यवस्था तो उनके लिए एकदम असह्य ही हो उठी है। किन्तु साम्यवाद[७] भी तो व्यक्तिगत योग्यताओं और अयोग्यताओंकी उपेक्षा नहीं कर सका है। इस नवीनतम समाज-संगठनकी व्यवस्थामें भी तो मानवकी नैसर्गिक प्रवृत्तियोंका समुचित ध्यान रखना ही पड़ा है। और किसी भी सुविस्तृत समाजका संगठन तथा उसका संचालन बिना किसी प्रकारके वर्गीकरणके सम्भव भी किस तरह हो सकता है? हाँ, वर्गीकरणका आधार समय तथा परिस्थितिके अनुसार परिवर्त्तित किया जा सकता है और हो ही जाता है। क्या इसकी व्यवस्था[८] भारतीय सभ्यता तथा समाजके विधायकोंने नहीं की थी?

अतः यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि हमारे दुर्भाग्य एवं अन्धकारके लगभग ६०० वर्षोंके लम्बे-चौड़े युगने हमें इतना अधिक बदल डाला कि हम अपने-आपको ही भूल गए। इस असहाय अवस्थामें दिनका दिव्य प्रकाश तो दूर रहा, पश्चिमसे जो टिमटिमाते बनावटी दीपककी रोशनी देख पड़ी, तो हमारी आँखें उसीसे चकाचौंध हो गईं और हमें जिस रंगमें जो चीज़ दिखाई गई, वही हम बावलेकी तरह देखते रह गए। यह मतिभ्रम और यह विवेकशून्यता यदि शीघ्र ही दूर न हुई, तो यही कहना पड़ेगा कि 'इनका इलाज क्या हो, ये लाइलाज हैं।'

7. Individual potentialities have the force of a foundation in the structure of social reconstruction.—"Materialism Explained" by R. R. Radcliff.

८. देश, काल और परिस्थिति शास्त्र-निर्माणके आधार होने चाहिएँ। —'पाराशर स्मृति', श्लो० ६४

प्रतिभा : उसका स्वरूप

स्व० हेमचन्द्र मोदी

आचार्य हेमचन्द्रने 'काव्यानुशासन'में कहा है—'प्रतिभैव च कवीनां काव्यकरणकारणम्। व्युत्पत्त्यभ्यासौ तस्या एव संस्कारकौ न तु काव्यहेतू।' अर्थात् व्युत्पत्ति और अभ्यास आदि काव्यके संस्कार करनेमें भले ही सहायक हों; पर वे काव्यके कारण नहीं हैं। कारण तो एकमात्र कविकी प्रतिभा ही हो सकती है। जब हम किसी रचनाकी आलोचना करते हैं, तब हम कहते हैं कि यह लेखक प्रतिभाशाली है, या उसकी प्रतिभा उससे हीन है। यही बात हम किसी सेनापति, वैज्ञानिक, मूर्त्तिकार, चित्रकार वगैरहकी आलोचनामें भी कहते हैं। साहित्यकी आलोचनामें तो इसका इतना अधिक व्यवहार होता है कि यह समझना ज़रूरी हो जाता है, यह प्रतिभा नामक वस्तु क्या है? प्रतिभाके बारेमें प्राचीन विद्वानोंने कुछ भी विवेचन नहीं किया है। खाने-पीने, सोने, हँसने आदिके समान उन्होंने इसे भी एक नैसर्गिक वस्तु मान लिया है, जो किसी-किसी व्यक्तिमें पाई जाती है।[१] फिर भी प्रतिभाके ऊपर बताए जितने भी कार्य हैं, वे सब तलवार, क़लम और ब्रशकी अपेक्षा बुद्धिके ही अधिक हैं। इस तरह प्रतिभा एक विशेष प्रकारकी बुद्धि या प्रज्ञाका नाम है। प्रतिभाके बारेमें विशेष जाननेके लिए हमें बुद्धि और चिन्तनका अध्ययन करना चाहिए। आचार्य भामहने भी प्रतिभाको एक प्रकारकी प्रज्ञा या बुद्धि ही माना है।[२]

१. नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः॥

नविद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्युपग्रहम्॥
तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती ममादुपसया खलु कीर्तिमीप्सुभिः।
कृशेकवित्वेऽपिजनाः कृतश्रमाः विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशते॥
(दण्डीः 'काव्यादर्श', १०२-५)

२. प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।
तदन्द्रप्रणिनाज्जीवेद् वर्णनानिपुणः कविः॥
तस्य कर्मस्मृतं काव्यम्। (भामह)
प्रतिभा अपूर्व वस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा। (लोचन, पेज १-२)
प्रसन्नपदनव्यार्थयुक्त्युद्बोधविधायिनी।
स्फुरन्ती सत्कवेर्बुद्धिः प्रतिभा सर्वतोमुखी॥ (वाग्भट्टालंकार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन या विचार करनेकी जो मानसिक क्रिया है, वह इतनी उलझी हुई होती है कि उसकी मौलिक विशेषताओंका पता लगाना बड़ा मुश्किल कार्य है। कई आचार्योंका मत है कि चिन्तना बुद्धिका व्यापार है और इसका स्वरूप अलग-अलग अनुभूतियोंके बीच समानताओं और असमानताओंका भेद और अभेदका निश्चय करना है। कई आचार्योंके मतसे विभिन्न अनुभूतियोंमें से कुछको चुननेकी क्रियाका नाम चिन्तना है। किसीके मतसे चिन्तना दुनियाके जड़-ठोस पदार्थोंको भावात्मक रूपमें परिवर्त्तित करनेका नाम है। सभी पुरातन आचार्योंने इस तरह संस्कार, संगति, भावात्मक परिणति और अचानक होनेवाले अकस्मातोंको ही सबसे अधिक महत्व दिया है। क़रीब-क़रीब प्रत्येक सवाल और शंकाका हल वे भूत कालमें हो चुकनेवाली अनुभूतियोंके अधारपर करते हैं, जो काल और क्षेत्रकी व्यवधान-रहितताके कारण संस्कार-रूपमें एकत्र होती आ रही हैं। सभी सवालों और शंकाओंके क़रीब-क़रीब इस एक ही उत्तरसे हम निरुत्तर भले ही हो जायँ; पर हमें इससे सन्तोष नहीं होता।

मनोविज्ञानकी नवीन धारा—जिसे गेस्टाल्ट-सिद्धान्त कहते हैं—इस सम्बन्धमें एक नया ही विचार पेश करती है। जब हम कहते हैं कि हमने चिन्तन किया, तब हमारा मतलब यह होता है कि हमने मन-ही-मन बहुत-सी पुरानी अनुभूतियों या अनुभवोंको एकत्र किया, जिसके फल-स्वरूप हमें उनमें परस्पर कई नए सम्बन्धोंका पता लगा। गेस्टाल्ट-सिद्धान्त संघटनके ऊपर सबसे ज़्यादा ज़ोर देता है। उसके अनुसार हमारा शरीर—खासकर उसके भीतर संज्ञावाहिनियोंका जाल—असंख्य संवेदनोंका संघटित समूह है। ये संवेदन सुप्तावस्थामें रहते हैं और जब-तब बाह्य उद्दीपनों द्वारा जागरित किए जाते हैं। हरएक नाम-रूपके चारों ओर अनेक मानसिक विकार, आशाएँ, विचार और संस्कार एकत्र रहते हैं, जो उस नाम-रूपके दृष्टिके सामने आते ही उद्दीप्त हो उठते हैं। इस कारण हम उन नाम-रूपोंको उद्दीपन संज्ञा देते हैं। संवेदनोंके विशिष्ट समूह विशिष्ट उद्दीपनों द्वारा जागरित होते हैं और अन्तमें एक विशिष्ट व्यवहारमें परिणत होते हैं। संज्ञावाहिनियोंका जाल वह साधन है, जिसके द्वारा शरीरके बाहर और भीतरके उद्दीपन उस विशिष्ट व्यवहारमें परिणत होते हैं। जितनी भी मानसिक प्रक्रियाएँ हैं, वे सब उद्दीपन और उसकी इस परिणतिके बीचमें विभिन्न स्थानोंमें घटित होती हैं।

अब हमें यह देखना है कि पुरानी अनुभूतियोंका एकत्रित होना और उनमें परस्पर सम्बन्धोंका पता लगाना हमारे किन मानसिक आचरणोंपर अवलम्बित है और उनका क्या स्वभाव है? जिस तरह हम स्टीम-इंजनका सिद्धान्त समझनेके लिए एक निम्न-श्रेणीके यन्त्रकी परीक्षा करते हैं, आधुनिकतम बृहत्काय इंजनकी परीक्षा नहीं करते; क्योंकि सरल बनावटके इंजनसे ही हम सिद्धान्तको सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। उसी तरह मानसिक आचरणोंके अध्ययनके लिए यह ज़रूरी है कि पहले हम चूहे, मेंढ़क आदि निम्न-स्तरके प्राणियोंके मानसिक आचरणोंकी परीक्षा करें, इसके बाद मनुष्यके मस्तिष्कको हाथ लगायँ।

पहली वस्तु जो इस तरहके प्रयोगोंमें से निकलती है, वह यह है कि जो अनुभूतियाँ काल और क्षेत्रमें एक संग रही हैं, वे परस्पर सम्बद्ध हो जाया करती हैं। उनमें से एकको भी उत्तेजित किया जाय, तो बाक़ी सबकी सब अपने-आप सूत्रबद्ध-सी होकर एकके पीछे एक चली आती हैं। सूत्रबद्ध होनेकी यह क्रिया जिन नियमोंके अधीन है, उनको संगतिके नियम कहते हैं। दूसरी बात जो चूहोंपर किए गए प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुकी है, वह यह कि उनमें दो असम्बद्ध अर्थात् क्षेत्र और कालके हिसाबसे दूर-दूर पड़ी हुई अनुभूतियोंको इस तरह एकत्र करनेकी क्षमता भी है, जिससे किसी परिणामपर पहुँचा जा सके। इस तरह हम चूहोंके मानसिक आचरणको दो शक्तियोंमें बाँट सकते हैं—पहली पुरानी अनुभूतियोंको मन-ही-मन पुनरावृत्त करनेकी शक्ति और दूसरी क्षेत्र और कालके हिसाबसे दूर-दूर पड़ी हुई अनुभूतियोंमें परस्पर सम्बन्ध देख सकनेकी शक्ति। पहली शक्तिको हम अभ्यास और दूसरीको युक्ति कह सकते हैं। अभ्यास-शक्ति वह है, जिसके द्वारा हम पुरानी अनुभूतियोंकी बार-बार पुनरावृत्ति करते हैं, और युक्ति-शक्ति वह है, जिसके द्वारा हम किन्हीं ऐसी दो या दोसे अधिक अनुभूतियोंमें परस्पर ऐसे सम्बन्धका

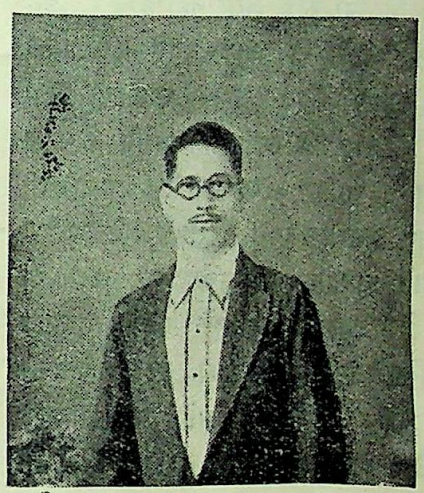

स्व० हेमचन्द्र मोदी (१९३१ में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार करते हैं, जिन्हें पहले कभी एकसाथ अनुभूत नहीं किया था। अभ्यास-शक्तिको हम मोटे तौरपर स्मरण-शक्ति भी कह सकते हैं। अभ्यास और युक्ति इन दोनों शक्तियोंको ही समूह-रूपमें बुद्धि या चिन्तना कहते हैं।

चूहोंके बाद आदमियोंपर प्रयोग किए गए। एक मुश्किल सवालके हलको तीन भागोंमें बाँटा गया। उन तीनों भागोंका पृथक्-पृथक् रूपमें हम क, ख और ग तथा पूरे हलको 'क ख ग' कह सकते हैं। जिनपर प्रयोग किया गया, उन आदमियोंको ये तीनों भाग, पृथक्-पृथक् अनुभूतियोंके रूप, दे दिए गए और उनसे कहा गया कि इन तीनोंको जोड़कर हल बतलाओ। अगर केवल पूर्वानुभूतियाँ ही किसी सवालके हलके लिए काफ़ी मानी जायँ, तो यह स्पष्ट है कि सरलतासे वे सवालको हल कर पाए होते। पर देखा गया कि इन तीनों भागोंको पृथक्-पृथक् बतानेका उन आदमियोंपर कोई असर नहीं हुआ। यह बतानेपर भी कि इन तीनों हिस्सोंको जोड़ देनेसे हल मिल जायगा, वे हल नहीं बना सके। इससे स्पष्ट हो गया यह सिद्धान्त ग़लत है कि बार-बार ग़लतियाँ करनेसे कभी न कभी सवालका हल मिल जाता है। साथ ही यह जानना भी कि किन अनुभवोंके उपयोगसे हल मिल सकता है, बेकार है। विभिन्न अनुभूतियों या अनुभवोंको एकसूत्रबद्ध कर सकना या उनमें परस्पर सम्बन्ध देख सकना ही सवालके हलका एकमात्र उपाय है। इसके लिए उन आदमियोंको सही 'दर्शन'की ज़रूरत है, और सही 'दर्शन'का मतलब उन्हें उस सवालको एक विशेष दृष्टिकोणसे देखनेके लिए प्रेरित करना है। इस दर्शनका मतलब विशेष सामग्री देना नहीं, बल्कि उन आदमियोंका केवल दृष्टिकोण बदल देना था। दृष्टिकोणके बदलते ही बाईस आदमियोंमें से आठने तुरत सवालका हल बता दिया।

इस तरह हम देखते हैं कि मानव-प्रज्ञा या बुद्धिका प्रमुख कार्य विभिन्न अनुभूतियों या अनुभवोंको सूत्रबद्ध या संघटित करना है। यह ठीक है कि सूत्रबद्ध करनेके लिए पहले अनुभवोंका होना ज़रूरी है; पर जब तक क्षेत्र और कालके हिसाबसे बिल्कुल असम्बद्ध अनुभवोंको इस तरह न पिरो दिया जाय, जिससे सवालका हल निकल आय, तब तक केवल अनुभवोंसे कुछ नहीं होता। 'दर्शन'का काम वह तरीक़ा निश्चित करना है, जिससे विभिन्न अनुभूतियोंके मूल तत्त्व सफलतापूर्वक सूत्रबद्ध किए जा सकें। यह 'दर्शन' उस दृष्टिकोणपर निर्भर करता है, जिससे कि वह कठिनाईको देखता है।

उपर्युक्त बातोंको अच्छी तरह हृदयंगम करनेके लिए एक प्रयोग देखिए। कुछ आदमियोंसे कहा गया कि वे एक कमरेके मध्यमें मज़बूतीके साथ एक लकड़ी सीधी खड़ी करें। इसके लिए उन्हें दो बाँस, एक पेचवाला लोहेका संयोजक, दो मज़बूत मोटी लकड़ियाँ, दो तिपाइयाँ और दो काठके डोंके दिए गए। जितनी सामग्री उनको दी गई थी, उसके सिवा किसी और चीज़का उपयोग करनेको उनको इजाज़त नहीं थी। इसका हल दो तरहसे करनेकी कोशिश की गई। पहली तो यह कि लकड़ीमें पैर लगाकर उसे सीधा खड़ा किया जाय; पर इसके लिए काफ़ी सामान नहीं था। दूसरी कोशिश कुछ चीज़ोंको आधार-रूपमें नीचे रखकर उनपर लकड़ीको खड़ा करनेकी थी; पर इसकी सफलताके लिए वह लकड़ी काफ़ी लम्बी नहीं थी। नौ आदमियोंने पहले प्रकारकी कोशिश की और चारने दूसरे प्रकारकी। जब सब असफल होकर लौट आए, तब इशारेके रूपमें उन्हें एक अनुभव कराया गया। उनसे कहा गया कि वे कमरेकी छतको छुएँ। छत छूनेके लिए उन्होंने दोनों लकड़ियोंके छोरोंको एकत्र किया और लोहेके संयोजकके सहारे कसकर एक बना दिया। इसके सहारे वे छतको छूना चाहते थे। पर इतनेमें ही पिछले चार आदमियोंको उस समस्याका सही हल सूझ पड़ा। उन्होंने उन जुड़ी लकड़ियोंको इस तरह सीधा किया कि वे छत और ज़मीनके बीचमें कसकर मज़बूतीसे खड़ी हो गईं। पर जिन लोगोंने पहले लकड़ीमें पैर लगानेकी कोशिश की थी, उन्होंने इस इशारेसे कोई फ़ायदा नहीं उठाया। वे फिर दुबारा वही कोशिश करने लगे। उन्होंने इस इशारेको मूर्खतापूर्ण समझा। वे देख ही न सके कि इशारेके साथ सवालके हलका क्या सम्बन्ध है? इसका कारण यह था कि पहले वर्गके लोगोंने अपने काममें जो कठिनाई महसूस की, इशारेको उसके साथ कोई संगति नहीं थी। पर दूसरे वर्गके लोगोंकी कठिनाईके साथ इशारेकी संगति ठीक बैठ गई।

अब हम एक दूसरा प्रयोग देते हैं। इसका उद्देश यह बताना है कि हरएक व्यक्ति दिए गए सुझावों और इशारोंको अपने उस दृष्टिकोणमें फिट करनेके लिए बदल लेता है, जिसे उसने अनायास ही आदतके अनुसार ग्रहण कर लिया है। परीक्ष्य व्यक्तिको एक जलती हुई मोमबत्ती क़रीब २॥ गज़की दूरीसे बुझानेके लिए दी गई। साधारण तौरसे लोग मोमबत्ती फूँककर ही बुझाते हैं। इसी आदतके मुताबिक उस व्यक्तिने भी उसे फूँककर बुझाना चाहा। पर जब वह इस तरह नहीं बुझी, तो वह इसके लिए साधन खोजने लगा। उसने मेज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी हुई रबड़ और सीसेकी नलियोंको उठाकर उन्हें एकमें एक पिरो लिया, जिससे क़रीब एक हाथ (३० इंच) लम्बी नली बन गई। अब उसने इस नलीमें से फूँकना शुरू किया; पर इससे भी मोमबत्ती नहीं बुझी। यदि इस नलीको और बड़ा बनाया जाता, तो सवालका हल हो जाता; पर इससे बड़ी नली नमनशील होनेके कारण केवल हाथके आधारपर स्थिर नहीं रखी जा सकती थी। पर परीक्ष्य व्यक्तिने आधारके अभावको अपनी कठिनाई नहीं समझा।

इसके बाद उसे सूचना देनेके लिए रबड़ और सीसेकी छोटी-छोटी नलियोंको जोड़कर एक बड़ी नली बनाई गई और उसमें से पानी खींचा गया। इससे यह सूचना मिल सकती थी कि कार्यके लिए अधिक बड़ी नलीकी ज़रूरत है; पर परीक्ष्य व्यक्तिने इस सूचनाको ग्रहण नहीं किया। उसने मुँहमें पानी भरकर अपनी उसी पुरानी छोटी नलीमें से पानी फूँकना शुरू कर दिया। उसने सोचा कि बत्तीको बुझानेके लिए हवा काफ़ी नहीं है, इसलिए पानी फूँको। जब इससे भी बत्ती नहीं बुझी, तो उसने ग्लास भर-भरकर बत्तीपर पानी फेंकना शुरू किया। पर इससे भी सफलता नहीं मिली। इसके बाद उसे फिर दूसरी सूचना दी गई। एक रस्सीके छोरपर फन्दा लगाकर उससे कहा गया कि वह कुर्सीपर बैठे ही बैठे उसे एक बाँसके सहारे छतमें लगे एक कीलेमें पिरो दे। रस्सीको ऊपर तक पहुँचानेके साधनके रूपमें ही बाँसका उपयोग करना था और उससे उसे उसी तरहके किसी सहारेके ज़रिए बत्तीके बिल्कुल निकट पहुँचानेके विषयमें सूचना मिल सकती थी। पर यह सूचना भी असफल रही। अन्तमें उसे एक सिगरेट पीनेके लिए दी गई। उसने उसे भी एक सूचना समझा और सिगरेटके धुएँको नलीमें से फूँकना शुरू कर दिया।

उपर्युक्त प्रयोगों द्वारा यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि वह विशिष्ट दृष्टिबिन्दु, जिससे हम किसी सवालको देखते हैं, यह निश्चित करनेका मुख्य गुणक है कि कौन-सी अनुभूतियाँ ऐसी हैं, जिन्हें सूत्रबद्ध किया जा सकता है? हम अब एक ऐसी स्थितिमें आ गए हैं कि 'दर्शन'की ठीक-ठीक व्याख्या कर सकें। हम कह सकते हैं कि दर्शन उस दिशा और तरीकेको कहते हैं, जिसमें और जिससे हम किसी सवालको हल करना शुरू करते हैं। उदाहरणार्थ, एक बीमारीके बारेमें दो डाक्टर खोज करते हैं। एक सोचता है कि यह बीमारी एक प्रकारके कृमि द्वारा पैदा होती है। सीरम अक्सर मनुष्योंको बहुत-सी बीमारियोंसे मुक्त कर देते हैं, इसलिए उसे चाहिए कि वह उस कृमिको उत्पन्न न होने देनेवाला सीरम खोज निकाले। दूसरा डाक्टर भी सोचता है कि यह बीमारी एक प्रकारके कृमिसे उत्पन्न होती है; पर वह सीरम न खोजकर यह खोजनेमें लग जाता है कि वह कृमि कैसे और क्यों पैदा होता है? उस कृमिसे बचने और उसे नष्ट करनेके उपायोंको खोजना ही वह अपना लक्ष्य बना लेता है। इस तरह हम देखते हैं कि इन दोनोंका दृष्टिबिन्दु एक ही है; फिर भी उस दृष्टिबिन्दुसे आगे पहुँचनेकी विचार-धाराएँ जुदा-जुदा हैं।

दुनियामें अक्सर मनुष्य-मनुष्यके बीच जो ग़लतफ़हमियाँ और झगड़े हुआ करते हैं, उनका कारण यह होता है कि लोग दूसरोंके कथनोंपर अपना दर्शन लागू करते हैं। एक आदमी जो-कुछ कहता है, उसको इस तरह तोड़-मोड़कर या अर्थ बदलकर पेश किया जाता है कि वस्तु-स्थितिको दूसरे लोग जिस दृष्टिबिन्दुसे देख रहे हैं, उसमें वह फिट हो जाय। इस तरह चिन्तनमें अलग-अलग दर्शन एक ही वस्तुको अलग-अलग दृष्टिबिन्दुओंसे पेश करते हैं। इससे संवेदन और अनुभूतियाँ तरह-तरहसे संघटित हो आती हैं और कथनका मूल अर्थ बिल्कुल ही घपलेमें पड़ जाता है। स्कूलमें अक्सर अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्यार्थी केवल इसीलिए वज्र मूर्ख क़रार दिए जाते हैं कि वे शिक्षकके कथनको सही दृष्टिबिन्दुसे नहीं देख पाते और ग़लत दर्शन ग्रहण कर लेते हैं। यदि शिक्षक उनके दृष्टिबिन्दुको समझकर सही दर्शन दे दे, तो बिना परिश्रमके ही विद्यार्थी आगे बढ़ने लगे।

अब हम इस बातकी जाँच करें कि जब हमें किसी सवालका हल सूझ रहा होता है, तब हमारे मनके भीतर कौन-सी प्रक्रिया होती है? हम ऊपर कह चुके हैं कि मनोवैज्ञानिकोंका गेस्टाल्ट-सम्प्रदाय मानता है कि सवालका हल एकाएक एक गेस्टाल्ट या समूह संघटित होनेका परिणाम है। 'गेस्टाल्ट' शब्द जर्मन भाषाका है और इसका मतलब असंघटित या फैली हुई वस्तुका आकृति या संघटनाके रूपमें परिणत होना है। चिन्तन या तर्ककी प्रक्रिया इस सिद्धान्तके अनुसार कुछ स्वीकृत तत्त्वोंको बार-बार पुनः संघटित करते रहना है। उदाहरणके तौरपर हम यहाँ शब्दोंका एक समूह देते हैं, जैसे कि मेज़, शीशी, बिल्ली, आलमारी, ग्लास, बोतल और आदमी। अगर ये शब्द लोगोंके एक समूहके सामने पढ़कर सुनाए जायँ, तो पता लगेगा कि हरएक आदमीका झुकाव इन सब शब्दोंको एक ही सूत्रमें संगठित करनेकी ओर है। इस तरह हम एक निश्चित संघटन प्राप्त करते हैं और उस संघटनके निश्चयमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक शब्दका अर्थ सीधे तौरपर कार्य करता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि वह संघटन ही शब्दोंके अर्थको यथार्थता देता है।

उपर्युक्त दृष्टिबिन्दुसे हम नीचे लिखे सवालको देखें। लकड़ीकी दीवारपर हमें एक तस्वीर टाँगनी है। इसके लिए हमारे पास एक हथौड़ा तो है; पर कीलें नहीं हैं। स्क्रू या पेच तो मौजूद हैं; पर पेचकश नहीं है। दीवारमें कील या पेच लगाकर उसके सहारे तस्वीर टाँगना ऐसी बात है, जो हमारी आदतोंमें शुमार हो गई है, इसलिए उसे करनेके लिए मनुष्यमें किसी प्रतिभाकी ज़रूरत नहीं। परन्तु सामग्रीके अभावमें वह हल सम्भव नहीं। इसलिए हमारे सामने एक नई कठिनाई आ खड़ी होती है। परन्तु एकाएक एक दुअन्नीका सिक्का पेचकशकी तरह इस्तेमाल किया जाता है और कठिनाई हल हो जाती है। इसमें कौन-सा पुनःसंघटन हुआ? दुअन्नी, जो पहले एक सिक्का-मात्र थी, एकाएक पेचकश बन गई। उस दुअन्नीका कार्यात्मक मूल्य वही नहीं रहा, जो पहले था। उसके गुणोंमें पारस्परिक रिश्ता बदल गया।

इससे हमें यह बात मालूम हुई कि हल सूझ पड़नेके पहले मन उलझी-सी अवस्थामें रहता है। वे मूल तत्त्व, जिनके संघटनसे हल पैदा होता है, उस समय असंघटित अवस्थामें रहते हैं, अथवा दूसरे-दूसरे संघटनोंके हिस्सोंके रूपमें रहते हैं। चूँकि वे मूल तत्त्व और-और संघटनोंके हिस्से रहते हैं, इसलिए उनके अर्थ भी उन संघटनोंपर अवलम्बित रहते हैं, जिनके कि वे हिस्से हैं। ये अर्थ उस अर्थसे जुदे होते हैं, जो नवीन संघटित हलके मूल तत्त्वोंके निकलते हैं। इस तरह हलको प्राप्त करनेके लिए जिस वस्तुका उपयोग किया जाता है, प्रथम दर्शनमें उस वस्तुसे कार्यकी असंगति-सी मालूम होती है। इसके बाद एकाएक हल संघटित होकर आगे आता है और मूल तत्त्वोंके अर्थोंमें फ़र्क़ नज़र आने लगता है। मूल तत्त्वोंका एक नया संघटन पुराने संघटनकी जगह ले लेता है। एकके आने और दूसरेके जानेके बीच मनकी कोई भी सतर्क अवस्था नहीं होती—अर्थात् नवीन संघटनका किसी बीज या केन्द्रमें से धीरे-धीरे विकास नहीं होता, बल्कि एकदम आविर्भाव होता है।

अब हम यह देखें कि 'दर्शन' और 'संघटन'में परस्पर क्या सम्बन्ध है? किसी सवालका हल मिलेगा या नहीं, यह निश्चय करनेमें दर्शन ही सबसे प्रमुख कारण है। सही दिशा और सही दृष्टिबिन्दुसे सही दशन मिलता है। ग़लत दिशा और ग़लत दृष्टिबिन्दुसे देखनेपर ग़लत दर्शन प्राप्त होता है। अगर दर्शन ही ग़लत है, तो मनुष्य कितनी ही मेहनत क्यों न करे, हल नहीं मिल सकता। दर्शनके बाद संघटनकी बारी आती है। हल दीख चुकनेके बाद संघटन घटित होते हैं। संघटन कैसा होगा, यह संघटन होगा या वह होगा आदि बातें भी दर्शनपर ही अवलम्बित होती हैं। प्रो० शेपर्ड, फ़ुगल-सांगर तथा मायरने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि व्यवहारमें जाकर दर्शन एक प्रवृत्ति और निवृत्तिकी प्रक्रिया-मात्र रह जाता है—अर्थात् व्यवहारमें जाकर दर्शनका कार्य किन्हीं विशेष संघटनोंके रूपमें संघटित होनेके कार्यमें मूल तत्त्वोंको हर तरहसे सहायता देकर प्रवृत्त करना तथा दूसरे संघटनोंकी ओरसे उन्हें निवृत्त करना है। मूल तत्त्वोंको किसी एक संघटनकी ओर प्रवृत्त करनेका मतलब ज़रूरी तौरपर अन्य संघटनोंकी ओरसे उन्हें निवृत्त करना ही हो सकता है। इस प्रक्रियामें जो मूल तत्त्व उस संघटनमें फिट नहीं होते, वे निकाल बाहर कर दिए जाते हैं। इस क्रियाको 'निवृत्ति' कहते हैं। जो मूल तत्त्व फिट हो सकते हैं, उन्हें फिट किया जाता है। इस क्रियाको प्रवृत्ति कहते हैं। इस प्रवृत्ति और निवृत्तिका ऐसा सामंजस्य या सुसंगति, जिससे सवालका हल निकल सके—उद्देश्यकी सिद्धि हो—सही दर्शन हैं।

किसी एक तत्त्वके किसी एक संघटनके सदस्य होनेकी ओर प्रवृत्त करना या निवृत्त करना दर्शनका कार्य है। जैसा दर्शन होगा, वैसी ही ये दोनों प्रवृत्तियाँ भी होंगी। किन्हीं तत्त्वोंके किन्हीं विशेष गुणोंपर ज़ोर देना उन्हें ऐसे संघटनका सदस्य होनेकी ओर प्रवृत्त करना है, जिससे कि उसका मेल है। यदि किसी कारण पहले ग़लत दर्शन ले लिया गया होता है, तो इस तरहका ज़ोर देना सही दर्शन ग्रहण करनेमें सहायक हो सकता है। जब हम किसी सवालको हल करनेकी कोशिश करते हैं, तो उसे हम किसी विशेष रास्तेसे करनेकी कोशिश करते हैं। जब तक कोई एक दर्शन मौजूद रहता है, तब तक दूसरे दर्शन असम्भव होते हैं। हम एक ही साथ पूर्व और पश्चिम दोनोंके रास्ते नहीं चल सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रतिभा-सम्पन्न होनेके लिए ग़लत दर्शनसे स्वतन्त्र हुआ जाय। चूँकी ग़लत दर्शन भी मौजूद रहते हैं, इसलिए महान् आविष्कार तभी होते पाए गए हैं, जब उनके खोजनेकी कोई कशिश नहीं की गई होती। न्यूटन मन-ही-मन जिस गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तका आविष्कार किया उसने पहलेसे उसे खोज निकालनेकी कोई कोशिश नहीं थी। उसने विश्राम-कालमें पेड़पर से फलको नीचे गिरते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एकाएक उसके मनके भीतर उसका आविष्कार हो गया। जब कि हमारी सभी शक्तियाँ काम करते-करते थककर चूर-चूर हो गई होती हैं और किसी कारण एकदम कार्यशून्य होती हैं, तभी हमें नए-नए आविष्कारोंके दर्शन प्राप्त होते हैं।

इसलिए प्रतिभाको जाग्रत करनेका सबसे सहज रास्ता यह है कि पहले जो भी सवाल सामने आय और उसको हल करनेके जो भी पुराने चिराभ्यस्त मार्ग या तरीक़े सामने आयँ, उनका त्याग किया जाय और उसको हल करनेके नए तरीक़ोंकी खोज की जाय। प्रो० मायरने एक कालेजके विद्यार्थियोंपर यह प्रयोग किया। उन्होंने विद्यार्थियोंसे कहा कि जो भी सवाल तुम्हें दिए जायँ, उन्हें हल करते वक्त इसका खयाल रखो कि उन्हें हल करनेका जो तरीक़ा पहले-पहल तुम्हें सूझे, उसे छोड़कर किसी नए तरीक़ेसे उसे हल करनेकी कोशिश करो। साल-भरका हिसाब जोड़कर देखा गया, तो मालूम हुआ कि जिन विद्यार्थियोंने इस शिक्षापर अमल किया, वे उन विद्यार्थियोंकी अपेक्षा जिन्होंने इस शिक्षापर अमल नहीं किया, २० से ५० फ़ी-सदी ज़्यादा सवालोंको हल करनेमें सफल हुए।

प्रतिभाका जो महत्त्व अन्य बातोंमें है, वही साहित्यमें भी है। शेक्सपियरने आजसे ४०० साल पहले जैसे नाटक लिखे, अगर वैसे ही, बल्कि उनसे अच्छे नाटक कोई आज इंग्लैण्डमें लिखे, तो उनसे उसका नाम नहीं हो सकता। कालिदास, भास आदिकी रचनाएँ कितनी ही लोकप्रिय क्यों न हुई हों; पर आज हम उनकी नक़ल करने बैठें और नक़ल करनेमें स्वयं उनको भी मात क्यों न कर दें; पर आज इस कारण हमारी क़द्र नहीं हो सकती। इसका उत्तर स्पष्ट है। अगर हमें अपना साहित्य उन्नत करना है, तो हमें अपनी ही मौलिकता, अपनी ही प्रतिभाके बलपर ऐसा करना होगा। किसीकी उधार ली हुई मौलिकता या प्रतिभा हमारे कुछ काम नहीं आ सकती। प्रतिभाको हम दूसरे शब्दोंमें नवीनता या अपूर्वता कह सकते हैं। आचार्य भामहने भी कहा है—'नए-नए उन्मेषवाली, नई-नई सूझ और नए-नए विकासवाली बुद्धि-प्रज्ञाका नाम प्रतिभा है।' साहित्यमें हम जो नित्य नवीनता चाहते हैं, वह हम उसके किसी एक ही पहलूमें नहीं, बल्कि उसके सभी पहलुओंमें चाहते हैं। भाषामें, शब्दोंमें, शब्दोंके चुनावमें, शब्दोंके अन्वयमें, कथावस्तुमें, कथा-विस्तारमें, चरित्र-चित्रणमें, छन्दोंमें, उपमाओंमें, रसों और ध्वनियोंमें, छपाईमें, सफ़ाईमें, काग़ज़में, जिल्द-बँधाईमें; पर सबसे बढ़कर अभिव्यक्त अनुभूतियोंमें हम नवीनता चाहते हैं।

इस युगमें नवीनताकी यह प्रेरणा इतनी अधिक तीव्र है कि उसकी अभिव्यक्तिके लिए मौजूदा माध्यम भी कम पड़ते हैं। काग़ज़-क़लम तो उसने दूर ही छोड़ दिए हैं; नाटक, सिनेमा, रेडियो भी कम पड़ते हैं। पर इसका मतलब यह नहीं है कि काग़ज़-क़लममें नवीनता व्यक्त करनेकी सम्भावनाओंमें न्यूनता आ गई है। सच पूछा जाय, तो रचनामें नवीनता लानेकी सम्भावनाएँ अब भी असीम और असंख्य हैं। एक ही कथावस्तुको देखनेके असंख्य दर्शन हो सकते हैं। एक ही सामाजिक पहलूको अगणित दृष्टिबिन्दुओंसे देखा जा सकता है। एक ही भावको व्यक्त करनेवाले शब्दों और वाक्योंके असंख्य संघटन हो सकते हैं। जाननेकी ज़रूरत इस बातकी है कि ग़लत और जूठे दर्शनोंसे कैसे बचा जाय? दर्शनों द्वारा मौजूदा सामग्रीको किस तरह अनेकानेक संघटनोंमें संघटित किया जाय और सही दर्शनके मिलते ही सही संघटनका किस तरह एकाएक आविर्भाव हो उठता है, जिसे काव्यमें 'चमत्कार' कहा गया है और जो काव्यकी जान है।

दृष्टि

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

उस साँवले चेहरेपर, छोटी-छोटी सौन्दर्य-विहीन आँखोंमें, सहसा घनी काली बदली-सी उठी और टप्-टप् करके बरस पड़ी। अपनी आँखोंको उसने ऐसी लापरवाहीसे बहने दिया कि मैं चकित-सी उस उभरे उफ़ानको देखती ही रह गई! मैं अवाक् थी। 'हैं, क्या यह वही लड़की है? और इसके भी इतना दिल हो सकता है?' इस लड़कीके विषयमें काफ़ी जाँच-परख और छान-बीनके अनन्तर जो निष्कर्ष निकाला गया, वह यह था—केवल भर-पेट खाना और कतिपय अच्छे वस्त्रोंके अतिरिक्त उसका जड़ हृदय कुछ अनुभव ही नहीं करता। इसीलिए समर्थन-स्वरूप वहीं बैठे-बैठे मेरे नेत्रोंके आगेसे कई पुरातन चित्र निकल गए।

उन दिनों जब हम लोग बम्बईमें रहते थे, अविनाश भी एक देशी कम्पनीमें इंजीनियरकी हैसियतसे वहीं नियुक्त होकर आया। वह कालेजमें मेरे भाईका सहपाठी रह चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बईसे पहले तो मुझे उससे मिलनेका अवसर दो-चार बार ही मिला था ; किन्तु वह ऐसा मिलनसार है कि थोड़े ही दिनोंमें उसने हमारे घरमें काफ़ी मेल-जोल बढ़ा लिया।

करीब रोज़ सन्ध्या समय चायके वक़्त वह आ उपस्थित होता और ऐसे ही कोई-न-कोई चर्चा छिड़ जाती। तभी उसने अपने विषयमें मुझे बतलाया था कि उसकी सगाई बचपनमें ही उसके माता-पिताने पंजाबके एक गाँवमें कर दी है। लड़की बहुत कम पढ़ी-लिखी और एक ज़मींदारकी कन्या है। वह स्वयं तो उस सम्बन्धसे सन्तुष्ट नहीं था ; किन्तु अविनाशके मित्रोंमें से अधिकांशकी सम्मति यही होती—'अजी लड़कीको बस एक तो भोजन बनानेमें निपुण होना चाहिए और दूसरे हँसमुख हो, ताकि घर आनेपर पतिका मुस्कराती हुई स्वागत करे।' और कुछ-एकका मत यह भी होता—'नहीं जी, कम-से-कम अंगरेज़ी बोलना और ठीकसे कपड़े पहनना तो लड़कीको अवश्य ही आना चाहिए, ताकि अविनाश-सरीखे व्यक्तिके साथ वह उच्चवर्गमें भलीभाँति आ-जा सके।'

मुझपर अविनाश सगी बहनकी-सी श्रद्धा रखता था। पूछनेपर मैंने भी अन्य बन्धुओंकी भाँति ही सम्मति दी—'बहुत पढ़ी-लिखी लड़की तुम्हारी घर-गृहस्थी नहीं चला सकेगी और फिर लड़कियोंका होता ही क्या है, शहरोंमें आते ही रहन-सहनके नए ढंग तो वे एकदम स्वतः ही सीख जाती हैं।' फिर भी शादीपर जानेके लिए जिस दिन अनमना-सा आकर उसने मुझसे आशीर्वाद चाहा, जाने क्यों, मैं कर्त्तव्य-विमूढ़-सी रह गई!

गाँवसे लौटकर आते ही अविनाशने सुनाया कि लड़की उसे ज़रा भी नहीं जँची। स्वाँग-सा बनाकर वधूको कैसे उसके पास भेज दिया गया और कैसे वह पहली रात ही उठ उठकर चक्कर काटता रहा। विवाहके दो-तीन दिन बाद मित्रोंकी सम्मतिसे यही निश्चय हुआ कि लड़की कुछ समय अमृतसरमें उसके मित्र विनोदके यहाँ सभ्यता एवं रहन-सहन आदिके नियम सीखनेके लिए रहे।

कोई दो-तीन मास बाद अविनाशकी माँ बहूको बम्बई लिवा लाई। साँवला रंग, नाटा-सा क़द, उसपर शोख लाल रंगकी साड़ीके साथ वह पहन लेती गहरे नीले रंगके साटनका ढीला-ढाला ब्लाउज़, जिसके खुले गलेसे बहुधा नीचेकी शमीज़ दिखाई दे रही होती। और जब उससे उचित ढंगसे वस्त्र आदि पहननेको कहा जाता, तो वह गरमीके दिनोंमें बूटोंके ऊपर तक ढुलकते हुए रेशमी मोज़े पहन लेती, बालोंमें दो-चार हेयर-पिन और खोंस लेती और गले तक ऊपर बेहद पाउडर झाड़ लेती। तब मन-ही-मन अविनाशके भाग्यपर मुझे दुःख होता और मैं बहूसे कहती—'ज़रा चेहरेपर नीबूका रस ही लगा लिया करो, बालोंको तनिक माथेसे ऊपरकी ओर हटाकर बाँधा करो।' कभी मैं कोई कहानीकी पुस्तक ही उसके आगे करके पढ़नेका आग्रह करती। वह बोलती बहुत कम। किसी भी बातका प्रत्युत्तर देना अथवा प्रतिवाद करना उसकी देहाती प्रकृतिने मानो सीखा ही न था। किन्तु जाने क्यों, उपर्युक्त सुझावोंपर वह एकटक मेरी ओर देखते हुए विचित्र भावसे मुस्करा देती, जिससे मुझे अकस्मात् उन खुले नेत्रोंमें उस समतल भूमिका स्मरण हो आता, जिसमें पहाड़ोंकी भाँति तालनदी-नाले, वृक्ष, झरने, स्रोत आदिका-सा कटा-छँटा सौन्दर्य नहीं होता, बल्कि होता दूर-दूर तक फैली हुई ऊबड़-खाबड़ भूमिका स्वच्छन्द, मुक्त, विस्तृत भाव। उसका उमड़ा यौवन मानो उसी भावमें हँस-हँसकर कह रहा हो—'मेरे इस उन्मुक्त साम्राज्यमें तुम कौन?'

दोपहरीमें किसी-किसी दिन जब वह मेरे यहाँ आया विनोदकी स्त्रीसे सीखी हुई कुछ सुरें हारमोनियम लेकर बजाने बैठ जाती, तो उसके स्वरकी तीव्रताके कारण कानोंमें ऊँगलियाँ देनी पड़तीं। इतनेपर भी अपनी ओरसे अविनाशने उसे शिक्षित करनेके प्रयत्नोंमें कोई कसर शेष नहीं रखी। किन्तु जब पूरे एक-एक सप्ताहके बाद अंगरेज़ी पढ़ानेवाले, हारमोनियम और सितार सिखानेवाले मास्टर विफल-प्रयास हो चले गए, तो विवश हो अविनाशको उसे उसके गाँव ही लौटा देना पड़ा।

और एक दिन सन्ध्याके धूमिल प्रकाशमें अविनाशने गाँवसे आया हुआ एक पत्र दिखलाया। बिगड़े हुए हिज्जे, अधूरे वाक्य, किन्तु जोड़-जाड़कर पढ़नेसे लिखनेवालेके हृदयसे झरता हुआ रस बरबस मोह लेता था। उस पत्रको देखकर हँसी-हँसीमें मैंने अविनाशसे कहा—'भई, तुम्हारी बहू तो बिलकुल रवि ठाकुरकी "समाप्ति" कहानीकी नायिका है।' अविनाश मुस्कराकर चुप रह गया।

- २ -

इधर हम लोग दिल्ली चले आए। बीचमें लगभग वर्ष तक अविनाशकी कोई खबर नहीं मिली। हाँ, इतना चला कि वह बम्बईसे बदलकर इलाहाबाद चला गया है। दिन सवेरे एक ताँगा आकर नीचे रुका। गाँवसे परिवार लेकर अविनाश इलाहाबाद जा रहा था। इस बार उसकी और स्त्रीके अतिरिक्त साथमें दो वर्षकी एक नन्हीं-सी बच्ची थी। उसके ऊपर आनेपर मैंने कहा—'बड़े मज़ेसे हो! तो परिवारवाले बन गए हो न?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पूरे दो वर्ष बाद घर गया हूँ, जीजी! पहली ही बार इस बच्चीकी शक्ल मैंने देखी है, और यदि उसकी माँको अक्कका नमूना सुनाऊँ, तो आप फिर हँसी उड़ायँगी। घर जाते ही ही मैंने साफ़-साफ़ शब्दोंमें इससे कहा—'जानती हो, हम दोनोंमें कतई प्रेम नहीं है, फिर कब तक हम इसी प्रकार बहे जायँगे? तो यह अपने कर्कश स्वरमें बोली—कौन कहता है कि हमारा-तुम्हारा प्रेम नहीं है? और यह क्या कहते हो, हम बहे कहाँ जा रहे हैं? नदी कहाँ है?'

वास्तवमें इस अबोध और गँवार उत्तरको सुनकर मुझे बहुत हँसी आई। दो-तीन दिन तक वे लोग हमारे यहाँ ठहरे। अब भी लड़कीके चंचल नेत्रोंमें वैसी ही स्वच्छता थी। शहरी वस्तुओंके प्रति उसका आकर्षण एवं कौतूहल किसी प्रकार भी कम नहीं हुआ था। जंगली हरिणीकी भाँति आश्चर्य-चकित-सी कभी वह शृंगारकी मेज़के पास जाकर आईनेके सामने साड़ी अदल-बदल करती, शृंगारकी वस्तुओंको उलटती-पलटती और मोटरकी आवाज़ सुन वहींसे एक छलांगमें बाहर बरामदेमें जा लटकती। कभी-कभी अकारण ही हँसने लगती। अभी तक वह नहीं जान पाई थी कि उसकी ये अचेतन चंचलताएँ ही उसका दोष गिनी जाती हैं और न ही वह सरल नारी-हृदय यही पहचान पाया था कि जीवनकी हाटमें उसका मूल्य कुछ भी नहीं है, वह किसी भी दिन अघड़ पत्थरकी नाईं हटाकर एक ओर रख दी जा सकती है।

तनिक चपटी नाक और छोटी-छोटी आँखोंवाली ठीक माँकी-सी सूरत-शक्लकी वह छोटी बच्ची घुटनों तक गहरे नीले रंगका फ्राक पहने घर-भरमें आवारा-सी घूमती। कभी दादीके पास, कभी माँकी ओर और कभी पिताकी टाँगोंके पास एकटक आँखें खोले वह मूक भावसे ऐसे जा खड़ी होती, मानो उसके नन्हे प्राण दुलारके प्यासे हों। न कोई उसे हँसाता, न गोदमें लेकर किलकारी देता और न चलते-चलते गिर जानेपर किसीके हृदयमें दौड़कर उसे उठानेकी धड़कन ही होती। एक बार मेरे सामने ही बच्चीने रोते-रोते साहस करके पिताकी पतलूनको पकड़ लिया। अविनाशने उसे पुचकारनेकी चेष्टा अवश्य की; किन्तु उसके व्यवहारसे यह झलक रहा था, जैसे वह मांस-पिण्ड उसे सहस्र डंकों-सा चुभ रहा हो। उठाकर एक ही क्षण बाद उसे नीचे छोड़ दिया। बालिका इस व्यव-हारपर और भी रो उठी। ठीक इसी समय दूसरे कमरेके पर्दोंको हटाकर भेदती हुई एक तीक्ष्ण नारी-दृष्टि पहले अविनाश-पर पड़ी, फिर उस बच्चीपर और फिर मेरे नेत्रोंसे मिलते ही फ़र्शपर एकटक झुक गई। अविनाशकी बहूकी मुद्राको उस समय तो मैं स्पष्ट न समझ सकी; किन्तु वह घूमती हुई विवश दृष्टि मेरे हृदयमें एक ऐसी उलझन छोड़ गई, जिसे उन लोगोंके चले जानेके बाद भी कितनी ही देर तक सुलझा न सकी।

एक दिन अचानक विनोद मिला—वही अविनाशका परम बन्धु, जिसके यहाँ अमृतसरमें पहले-पहल अविनाशकी बहूको ठहराया गया था। बोला—'अविनाश सुखी नहीं हुआ।' और फिर उसने मुझे अविनाशका एक पत्र भी पढ़कर सुनाया। पत्रमें लिखा था—"तुम जानते हो, मैंने अपनी ओरसे सभी कर्त्तव्य पूरे किए। तुम्हारे यहाँ भी उसे ठहराया; संगीत, अंगरेज़ी आदि सिखलानेका भी भरपूर प्रबन्ध किया; किन्तु इस मूढ़-बुद्धि लड़कीने किसी भी कार्यमें तनिक भी दिलचस्पी एवं उत्साह नहीं दिखाया। फिर मैंने सोचा, बच्चा होनेपर शायद हममें कुछ प्रेम बढ़ सके; किन्तु सब व्यर्थ। काश! मैं इस बच्चीको तनिक भी स्नेह कर सकता! इस दशामें अब तुम्हीं बताओ, क्या किया जाय? इसी तरह कब तक मझधारमें डूबता-उतराता रहूँ? चाँदनी रातोंमें कब तक अपने भाग्यपर आँसू बहाता रहूँ? मेरा पद भी अब बढ़ गया है, ऊँची-ऊँची सभा-सोसाइटियोंमें मिलना-जुलना होता है। पर मेरे यौवनके ये अमूल्य क्षण क्या इसी प्रकार शून्यमें नष्ट होते जायँगे?"

इसके दो-एक महीने बाद, अभी-अभी जब मैं लाहौर आनेवाली थी, पुनः विनोद आया और मुस्कराते हुए उसने यह सूचना दी—'आखिर अविनाशके लिए नई लड़की चुन ही ली गई। शादी भी आगामी मासमें ही होनी तय हुई है। लड़कियाँ तो उसे बहुत-सी, अच्छे-अच्छे घरानोंकी पढ़ी-लिखी ग्रेजुएट तक मिलती थीं; किन्तु इस लड़कीके अनुपम सौन्दर्यने तो अविनाशको एकदम लुभा ही लिया। है तो यह भी अघड़ ही, किन्तु वह उसे शीघ्र ही अनुकूल साँचेमें ढाल लेगा। वास्तवमें उसकी ज़िन्दगीके अधूरे अध्यायको यही लड़की पूर्ण कर सकेगी।' वह कहता गया—'अविनाशने अभीसे कार भी ले ली है। नई बहूके लिए बहुमूल्य उपहार भी खरीदे जा रहे हैं। आभूषण और वस्त्र तो सीधे बम्बईसे मँगाए जायँगे। और अबके यह पहले ही निश्चय हो चुका है कि विवाहोपरान्त अविनाश सीधा कुछ समयके लिए कहीं पहाड़पर चला जाय, ताकि घरमें किसीके नुक्ताचीनी करनेसे नववधूके कोमल हृदयको कहीं ठेस न पहुँचे।'

यह अप्रिय प्रसंग पहले ही बहुत दिनोंसे मेरे हृदयके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवाहको चट्टानकी तरह रोके पड़ा था, जो किसी अन्य विचारको आगे आने ही न देता था। बहुत सोचती। कभी एक पलड़ा भारी हो उठता, तो कभी दूसरा। झुँझलाहट आती लड़कीके माता-पिताकी नासमझीपर, कभी अविनाशकी दुर्बल प्रकृतिपर और कभी लड़कीकी अज्ञानतापर। अकस्मात् मुँहसे निकला—'कुछ भी हो, एक जीवित प्राणीपर यह तजुर्बे क्यों किए गए? और फिर बच्चेकी क्या आवश्यकता थी?'

'अभी हाल ही में तो मुश्किलसे···छुटकारा मिला है। यही···दो-तीन महीनेका···' विनोदने धीरेसे आँखें नीची करके कहा। मैं समझ गई कि बात क्या है और सन्न-सी रह गई। मुझे क्षुब्ध देख पुनः युक्ति देते हुए विनोदने कहा—'तो क्या आप चाहती हैं कि विषाक्त फोड़ेको भीतर-ही-भीतर पकने दिया जाय? निःसन्देह दो विवाहित व्यक्तियोंको जबरन एक साथ बँधे रहनेका विधान समाजने किया है; किन्तु समाज एवं क़ानून दोनों व्यक्तियोंमें से जिसे खुली आज्ञा और आज़ादी देते हैं, वह क्यों अपना जीवन नष्ट करे? और फिर अविनाश तो स्वयं ही उसके गुज़ारे आदिके लिए व्यवस्था कर रहा है। फिर उसकी पहली स्त्रीने तो स्वयं ही अपनी इच्छासे उसे दूसरा विवाह करनेकी स्वीकृति दे दी थी। यह तो आप भलीभाँति जानती ही हैं कि उस लड़कीको तो केवल भर-पेट खाना और कुछ चमकीले-भड़कीले वस्त्रोंके अतिरिक्त और कुछ चाहिए ही नहीं। वह तो जैसे बुत है।' यह कहकर विनोद खूब हँसा और फिर बोला—'बाक़ी रही वह बच्ची, सो माँके पास रहकर तो वह भी निश्चय ही फूहड़ बन जायगी। उसका भार तो मैं ही लिए लेता हूँ। मेरे बच्चोंके साथ ही रहेगी, पढ़ेगी-लिखेगी और खेलेगी-कूदेगी।'

आखिर एक दिन अविनाशका विवाह हो गया, यह सूचना मुझे मिली। यह भी सुना कि नई बहूको लेकर मसूरीमें उसके अवकाशके दिन आनन्दसे कट रहे हैं। बच्चीको उसने विनोदके यहाँ और पहली स्त्रीको लाहौरमें एक सम्पन्न सम्बन्धीके पास भेज दिया है।

- ३ -

पाँच-सात मिनटोंमें एक लहरके समान मेरे मस्तिष्कमें उपर्युक्त सभी घटनाएँ घूम गईं। शीशमके पेड़के नीचे प्रभातकी मोद-भरी शान्ति विराज रही थी। शीतल वायुके झकोरे उठ रहे थे। आज वह सफ़ेद सलवारपर रंगीन खादीकी कमीज़ पहने और सफ़ेद दुपट्टा ओढ़े थी। अविरल अश्रुओंकी धारा, गम्भीर भाव और साथ ही पीले पत्तोंमें से छन-छनकर आती हुई शीत-कालकी निस्तेज किरणोंने उसके श्यामल चेहरेको कितना करुणापूर्ण और सुन्दर बना दिया था—व्यथित भैरव रागिनीकी तरह।

बहनकी शादी हो चुकनेके अनन्तर कल ही मुझे स्मरण हो आया कि लाहौर आनेके मुख्य कारणोंमें से एक अविनाशकी बहूसे मिलना भी है। इसीसे आज सबेरे-सबेरे उसे बुला लाई। अविनाशके दूसरे विवाहके विषयमें कुछ पूछकर उसे दुःखी करनेका मेरा तनिक भी अभिप्राय न था, बल्कि उत्सुकता तो मुझे यह जाननेकी थी कि कैसे उसने प्रसन्नतापूर्वक अविनाशको दुबारा शादी करनेकी रज़ामन्दी दे दी? उसका प्रतिवाद क्यों नहीं किया? क्या अब भी उसके जड़ हृदयको कुछ अनुभव नहीं हुआ? किन्तु सृष्टिमें अनेक प्राणी ऐसे हैं, जिन्हें विधाताने हाव-भाव, रूप अथवा वाणी द्वारा अपनेको व्यक्त करना सिखाया ही नहीं। उनके निर्मल हृदयकी प्रत्येक अनुभूति केवल दो स्वच्छ नेत्रोंकी राहसे ही निरन्तर झरती रहती है। कोई उन्हें पहचानने या उनकी तह तक पहुँचनेका प्रयत्न करे, तभी भले ही उन्हें जाने, अन्यथा ऐसे प्राणी संसारकी दृष्टिमें प्रायः उपहास एवं अवहेलनाके पात्र ही समझे जाते हैं।

मूक पशुकी नाईं सजल-कातर दृष्टिसे उसने इस तरह कई बार मेरी ओर देखा, मानो मेरे अन्तरमें अपने छिन्न-भिन्न हृदयका सम्पूर्ण हाहाकार उँड़ेल देना चाहती हो। उस समय मेरे सामने घूमने लगी भावोंकी गहन छायामें साकार हो उठी अभागी बच्ची – अपरिचित वातावरणमें दूसरे बच्चोंके पीछे-पीछे घूमती हुई, पितृ-स्नेहसे वंचित वह मांस-पिण्ड और साथ ही उस परित्यक्ता युवती माँकी ज़िन्दगीके लम्बे लम्बे वर्ष, जिनका उत्तर आज भी इस सभ्य समाजके पास नहीं है। भविष्यकी आईनेमें वह गम्भीर मुखमुद्रा शायद स्वयं भी अपने तिरोहित चेहरेकी परछाईं देख रही थी—अनजान दीपककी भाँति अँधेरी राहपर स्तब्ध-सी।

'देखो, यदि तुम दत्तचित्त होकर पढ़ने-लिखनेमें लग जाओ, सिलाई आदिका काम ही सीख लो,···अपना अस्तित्व पहचानने लगो, तो तुम्हें किसी भी अन्य व्यक्तिकी अपेक्षा न रहेगी।' ऐसा कहकर बादमें उसे उत्साहित करनेकी चेष्टा मैंने की।

बड़ी मुश्किलसे ढुलकते हुए आँसू उसने आँचलके छोरसे पोंछे और धीरेसे मुस्कराते हुए मुझपर एक गहरी दृष्टि डालकर कहा—'कृपा करके इस विषयमें मुझसे आइन्दा कुछ न कहिएगा।'

(दिल्ली-रेडियोसे प्रसारित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकमें सौन्दर्य

कुमारी सुप्ति सिन्हा, एम० ए०, डी० टी०

सौन्दर्य क्या है, इसको ठीक-ठीक परिभाषा अभी तक नहीं हुई है; यदि ऐसा कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। पर कौन-सी वस्तु आँखोंको अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है, इसकी अनुभूति हमें है। इस अनुभूतिकी मात्रामें भी व्यक्तिगत रूपसे तथा ज्ञानके साथ ही साथ भिन्नता होती है। इस अनुभूतिको हम अतिकोमल भी बना सकते हैं। सौन्दर्यको समझनेके लिए भी उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक ज्ञानकी आवश्यकता होती है, जितना कि किसी ललित-कलाको समझनेके लिए चाहिए। अतएव यह जाननेकी आवश्यकता है कि प्रत्येक वस्तु अथवा भावके सौन्दर्य-निरीक्षणके मूलमें क्या निहित है? सौन्दर्यका रहस्य है सौष्ठवमें, और सौष्ठवका गूढ़ सम्बन्ध है अंकसे, जिसको हम 'आनुपातिक मात्राका विज्ञान' भी कह सकते हैं। सौन्दर्य-समीक्षामें पटु आँखों द्वारा ही इस अनुपातका ज्ञान होता है, अंकगणितके फारमूलेसे नहीं। फिर भी अंकगणित ही एक ऐसा विषय है, जो अनुपातको पूर्णरूपसे सिखा सकता है। ऐसी अभ्यस्त आँखें आप-से-आप ऐसे अंकोंको चुनती हैं, जिनकी परीक्षाके अभ्यन्तर यह ज्ञात हो जाता है कि उनमें अनुपातकी पराकाष्ठा है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्यको इन्द्रिय द्वारा समझ लेनेमें अंकको रहस्यमयी प्रकृति छिपी हुई है।

अंक सबमें रमा हुआ है। १ स्वयं ब्रह्मका प्रतीक है। ३ ओम्का व्यापक रूप है। ४ दिशाएँ अथवा कोण, ५ कलाएँ, ६ ऋतुएँ अथवा पद, ७ रंग, सप्तराग, सप्तऋषी, सप्ताश्चर्य विख्यात हैं। यह स्थान तथा कालकी मात्रा है, यह हृदयके स्पन्दनके साथ ही साथ स्पन्दित होता है तथा तारका-राशिके साथ चमकता है। प्रत्येक वस्तुके कम्पनमें, प्रत्येक कणके मिलन-उच्छ्वासमें इसी अंकका अनुपात है। यहाँ तक कि पाइथोगोरियन्स (Pythogorians) तथा पुरातन मिस्रोंके कथनानुसार अंक ही लिंग (sex)-विभाजनका भी प्रतीक है, यथा—सम अंक पुल्लिंगका तथा विषम अंक स्त्रीलिंगका। इस प्रतीकमें एक अनन्तता-सी प्रतीत होती है। इसका कारण यह है कि विभिन्न क्षत्रोंमें दो विरूप प्रवृत्तियोंका मिलन असीम प्रकारसे भिन्न है। लयमय मिलन—अर्थात् स्त्री-पुरुषके विवाह-स्वरूप लय—उसीमें है, जिसमें दोनों प्रकारके अंक हों।

मनुष्य-आत्माको जब अनन्त-अनादिके एक अस्फुट स्वरकी क्षीण ध्वनिका जो आभास-मात्र मिलता है, उसी समसे उसमें अनन्तकी ओर दौड़नेको एक अटूट प्रेरणा-सी जाग्रत होती है। इसी प्रेरणा अथवा अन्तर्ज्योतिके जाग्रत होनेके कारण मनुष्य अपने अन्तरको टटोलता है, अपनेमें लौट आता है, अपनेसे परिचित होनेकी चेष्टा करता है, अपनी परीक्षा करनेके लिए आपमें प्रत्यावर्त्तित होता है। उद्देश्य तथा आदर्शकी पूर्त्ति करनेके लिए जैसे उच्चतम मनकी गति है, ठीक उसी प्रकारकी धारा अंककी भी है। वह 'एक'से 'अनन्त' तक अबाध गतिसे चला जाता है, वरन यह कहें कि वह शून्यसे अनन्त तक विस्तरित है और फिर अनन्तसे एकमें लौट आता है। इस अनन्त तक उठनेकी गतिको तथा प्रत्यावर्त्तनके प्रवाहको दो प्रकारसे दर्शाया गया है—'योग' तथा 'वियोग' (addition and subtraction)। अनन्तके साथ हमारा संयोग होनेको 'योग' कहा गया है तथा संसारसे अपनेको विमुक्तकर हम अपनेको पहचानें, इसे 'वियोग' नाम दिया गया है। यही दो शक्तियाँ विश्व-ब्रह्माण्ड, चराचर जगत्की रक्षा करती हैं और इन्हींको बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी शक्तियाँ (centripetal and centrifugal forces) कहते हैं। मनुष्यकी यह चाह रहती है कि वह आदिभौतिकसे आध्यात्मिक स्तर तक चढ़े। उसमें अनन्तको जाननेकी पिपासा बनी ही रहती है, चाहे वह किसी भी स्तरमें हो। इसी तृष्णाका निवारण करनेकी उसने अनेक प्रकारसे चेष्टाएँ की हैं। कितने संघ बने, कितने मन्दिरोंमें दलबद्ध होकर पूजा-आराधना होती है, कितने भजनालयोंमें संगीत द्वारा ईश्वरोपासना होती है, व्यक्तिगत रूपसे कितने साधु-सन्त एकान्त तपोवनमें उसी एककी आराधनामें निमग्न हैं। कितने साधना-स्थलोंमें ऐसी साधनामें योगी वर्षों एकाकी जीवन व्यतीत कर देते हैं।

ठीक इसी प्रकार अंक भी इसी प्रयत्नमें अपने सारे रहस्यको छिपाए हुए है। एक-दो उदाहरणोंसे इसका स्पष्टीकरण हो जायगा। वर्त्तमान युगके प्रत्येक व्यक्तिको यह अवश्य ज्ञात होगा कि किस प्रकार हमारे सौर्य-जगत्में प्रत्येक ग्रह-उपग्रह एक सूर्यको लक्ष्यकर उसीकी परिक्रमा करते हैं। इतने महान् ब्रह्माण्डमें और कोई उनका आकर्षण नहीं, और कोई उनका ध्येय नहीं। आपमें एकाएक यह जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि जब वे सब अपनी-अपनी गतिसे पारस्परिक कोई सम्बन्ध न रखते हुए चलते हैं, तो उनमें संघबद्धता कहाँ और कैसे सम्भव हो सकती है? साधारण दृष्टिसे ऐसा ही प्रतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है ; पर वास्तवमें (जैसा कि वेद-कालीन ज्योतिष-शास्त्रमें कहा गया है) किसी एक विशेष मुहूर्त्तमें कुछ ग्रह-उपग्रह अपने-अपने कक्षपर हो एक पंक्तिमें हो जाते हैं तथा अपनी-अपनी गतिसे चलकर फिर किसी ऐसे ही एक मुहूर्त्तमें पुनः एक पंक्तिमें आ जाते हैं। इसको 'नाक्षत्रिक संयोग' (astronomical conjunctions)-सिद्धान्त कहते हैं। जिस प्रकार ग्रह, नक्षत्र तथा तारका-राशि कभी-कभी संघबद्ध हो एक ही साथ, एक ही ध्येयसे अपनी साधनामें रत हो जाते हैं, उसी प्रकार अंकमें भी इसी प्रेरणाकी लय दिखाई पड़ती है। अंक जब अनन्तकी ओर अपनी धाराको स्वच्छन्द रूपसे प्रवाहित कर देता है, तो उसकी श्रेणी (progression) के अंकोंमें किसी विशेष स्थानमें एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। फिर उसी लक्ष्यपर वे पृथक-पृथक भी हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, १२ में एक विशेष संयोग या युति (conjunction) है, क्योंकि २ का यह छठा स्थान है, ३ का चौथा, ४ का तीसरा तथा ६ का दूसरा। ८ के साथ इसका ३:२ का अनुपात है। ९ के साथ ४:३ का अनुपात है। ७ के साथ इसका सम्बन्ध गूढ़ है, यथा ३ और ४ का गुणनफल है १२ तथा ३ और ४ का योगफल है ७। इसी प्रकार २४, ३६..... आदि इसी गतिके बीचके संघ-स्थल अथवा संयोग-अंक कहला सकते हैं। इसके बादका मिलन-अंक है १५, जो ३ और ५ का सम्बन्ध विभिन्न प्रकारसे जोड़ता है। इसी प्रकार और भी असंख्य अंक हैं, जो प्रत्येकके साथ नूतन सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

अंकके सौन्दर्यको आध्यात्मिक दृष्टिसे न देखकर अब हम कलाकी दृष्टिसे देखनेका प्रयत्न करें—अर्थात् अब यह चेष्टा की जाय कि अंक कहाँ तक वास्तु तथा ललित-कलाओंमें सौन्दर्यके प्रस्फुटनमें सहायता करता है। कलाका प्रत्येक रूप किसी विशेष भाव, आदर्श अथवा मनके किसी विकारकी प्रच्छन्न अभिव्यक्ति है। मनुष्य अपने ढंगसे विकास-प्रवृत्ति (creative instinct) को एक-एक रूप देता है ; जैसे—संगीतमें श्रुतियाँ (harmonies=तन्त्रीके तारमें से निकलनेवाले सहायक स्वर) उसके माधुर्यको द्विगुणित करती हैं ; चित्र-कला रंगोंकी होली द्वारा भावोंको रूप देती है ; संगीत-कला काठ, पीतल, ताँबा तथा तारमें ध्वनि उत्पन्न करके उनमें प्राणका संचार कर देती है ; वास्तु-विद्या प्रकाश तथा छायाको आँख-मिचौनी खिलाती है और वस्तुके सौन्दर्य तथा स्थायित्व-शक्तिकी परीक्षा कराती है। प्रत्येक कला—विशेषकर संगीत तथा वास्तु—अपने-अपने विकासमें भिन्न-गति तथा भिन्न-रीतिसे अंककी सहायताको उद्भासित करती है।

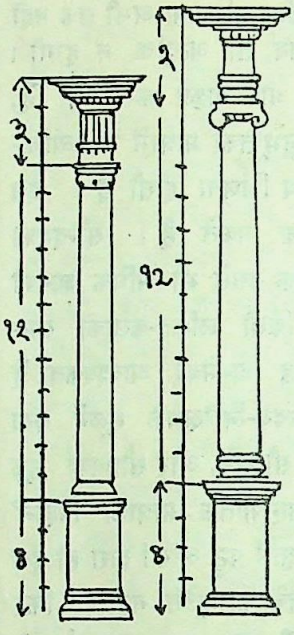

टसकन, डोरिक तथा आयोनियन स्तम्भमें ३ और ४ का अनुपात।

वास्तु इसे दो प्रकारसे प्रस्फुटित करती है : (१) अन्तरंग रूपसे (esoterically), यथा—उसके हरात्मक समानुपात-रूपमें (harmonic proportion) तथा (२) बहिरंग-रूपसे (exoterically), अर्थात् प्रतीकके रूपमें। यह वास्तविकता कि ४ और ३ की माला (series) १२ में मिलती है, वास्तुमें भी आभासित है। विगनोल (Vignole) के कथनानुसार टसकन (Tuscan), डोरिक (Doric) तथा आयोनिक (Ionic) वास्तु-कलाओंमें इसके उदाहरण पाए जाते हैं। इन वास्तु-कलाओंमें सारे आधार अथवा अधिष्ठान (stylobates) चार भागोंमें हैं, कार्निश अथवा स्तम्भ-शीर्ष (entablatures) तीनमें और मध्यस्थ भाग १२ में। Palazzo Pirro तथा वैसे ही कुछ आधुनिक भवनोंमें चार और सातमें एक काठ-कोण त्रिकोण (right-angled triangle) की भूमि (base) और ऊँचाई (altitude) का अनुपात है। संगीत इस अनुपातको "Interval of the diminished Seven" कहते हैं। इसीको Palazzo Giraud के वास्तुमें यों देखा जा सकता है कि वह भवन चार मंज़िल ऊँचा है तथा प्रत्येक मंज़िलमें सात खुले भाग हैं। ये उदाहरण प्रसिद्ध वास्तु-कलाके हैं। हम इन्हें देखते ही कहते हैं कि वास्तु-कलाका कैसा अद्भुत चमत्कार है! पर क्या हमने कभी इस बातपर भी ध्यान

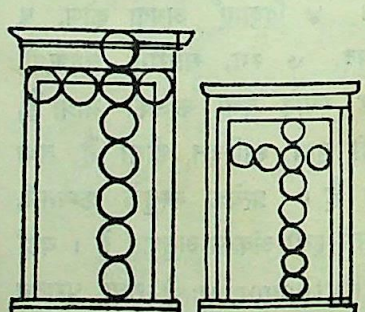
४ व ७ का अनुपात।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है कि इस चमत्कारमें किन अंकोंके सौष्ठवका रहस्य निहित है?

प्रत्येक भवन किसी या किन्हीं अंकोंका प्रतीक है। जितनी उनमें अंक-सौष्ठवकी निपुणता होगी, उतनी ही सौन्दर्यकी पराकाष्ठा भी होगी। ३,५,७ आदि अंक सबसे साधारण तथा सबसे अधिक व्यवहारमें आनेवाले हैं, क्योंकि छोटे होनेके कारण ये एक-बारगी आँखोंको जँच जाते हैं। इनके विषम होनेके कारण इनमें एक केन्द्र अथवा अक्ष (axis) होता है। इसके मध्यासीन होनेके कारण इस अक्षको वास्तु-कलाकी रीढ़की हड्डी भी कह सकते हैं। क्या आप सोच सकते हैं कि विषम संख्या ही क्यों आँखोंको अधिक जँचती है अथवा उसीका सौन्दर्य-सौष्ठवके स्थानमें क्यों अधिक प्रयोग किया जाता है? जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विषम अंक स्त्रीलिंगका प्रतीक है, इसी कारण सौन्दर्य-गठनके विचारको अंकित करनेमें भी इसका प्रयोग एक रहस्यमयी रीति है।

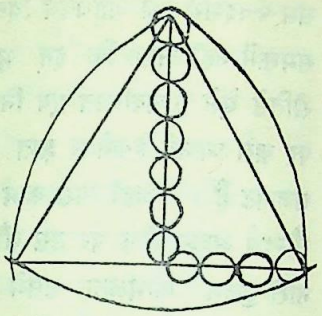

समकोणमें ४ और ७ का अनुपात।

इसके अनन्तर सौन्दर्य-परीक्षाके मूलमें दूसरा स्थान है इन्हीं संख्याओंके सबसे छोटे गुणनफलका तथा इनमें से किन्हीं दोके बीचके गुणनफलका (अर्थात्—lowest multiple of those numbers and least common multiple of any two of them)। आँखोंको थोड़ी-सी चेष्टा द्वारा ही ज्ञात हो जाता है कि ये अंक इस भवनके सौन्दर्यके मूलमें हैं, तब फिर वे पूरे अंकोंकी गिनती ही नहीं, केवल ऊपर से एक बार दृष्टि फेर लेती हैं। आँखोंकी आदत है गिननेकी। जब किसी वस्तुका सौन्दर्य किसी विशेष वस्तुकी संख्यापर निर्भर है, और जब एक बार दृष्टि डालनेपर ही उसकी सारी संख्या सहज ही बोधगम्य नहीं होती, तब आँखें गिनना आरम्भ कर देती हैं। इसमें आँखोंको तनिक भी क्लान्ति प्रतीत नहीं होती। यदि ये संख्याएँ ऐसी सजी हुई हों कि किसी छोटी संख्याका गुणनफल हों (अर्थात्—grouped in such a way that they are the multiple of some small number), तो आँखें शीघ्र ही उन्हें गिन लेती हैं। गोथिक-कलाकी झिलमिलियाँ (Tracery of Gothic-rose window) सम्भवतः अंककी सबसे सूक्ष्म तथा सर्वोत्कृष्ट अभिव्यंजना हैं। जिस प्रकार तृष्णा जलको अधिक मधुर बताती है, उसी प्रकार गोथिक झिलमिलियाँ तथा मुग़ल-झिलमिलियाँ एवं सजावट भी आँखोंको अधिक तृप्त-सी करती हैं। आँखें जितनी उनके

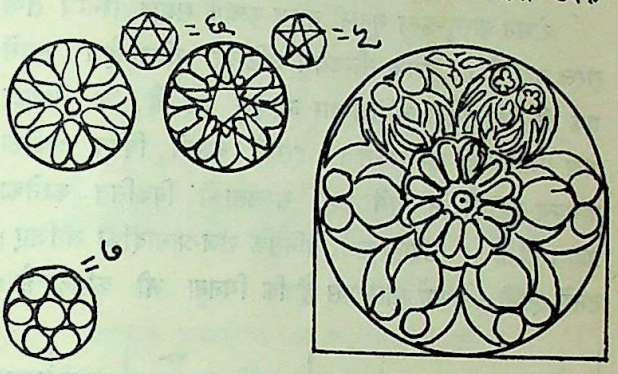

कुछ गोथिक झिलमिलियाँ।

सौन्दर्यकी पिपासित होंगी, उतनी ही उनकी जटिलतामें उलझ भी जायँगी तथा सानन्द चेष्टा करती रहेंगी उस सरलताको खोजनेकी, जो उस जटिलतामें छिपी हुई है। कहनेका तात्पर्य यह है कि वास्तु-कलामें हमें जो जटिल वस्तुएँ अधिक रहस्यमय चमत्कारसे आकर्षित करती हैं, उन जटिलताओंमें सरल अंकोंकी समष्टियाँ सुव्यवस्थित रूपसे निहित हैं। उनके ज्ञान-मात्रसे हम सौन्दर्य-सौष्ठवको अधिक समझ सकेंगे।

यूनानी वास्तु-कलामें संख्याको बहुत ही प्राधान्य दिया गया है। यूनानकी पुरानी इमारतों तथा राज-प्रासादोंके भग्नावशेषोंके चित्र अभी भी मिलते हैं। उन प्रासादोंके विशाल-व्यापक सौन्दर्यके मूलमें है लम्बे-लम्बे स्तम्भोंका अस्तित्व। इनमें प्रायः ३,५ और ७ की ही अधिकता है। ऊपर तीन

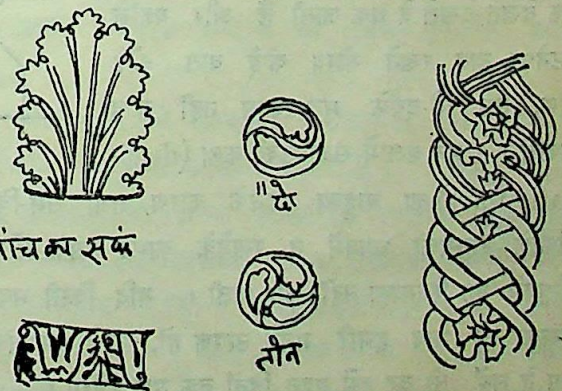

यूनानी वास्तु-कलामें ३,५ और ७ के कतिपय संघ।

पंक्तियोंकी स्थायी रीति तो यूनानी वास्तु-कलाकी विशेषता हो गई है। सामनेकी लम्बी-लम्बी सीढ़ियाँ सौन्दर्यकी स्निग्धताको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विगुणित कर देती हैं। उन्हें गिनकर देखनेसे विदित होता है कि उनमें भी विषम अंकोंका ही प्राधान्य है। सौन्दर्यकी प्रतिभा वहींसे आरम्भ होती है। उस सौन्दर्यमें काठिन्य नहीं आ सकता। विषम अंकमें ऐसी ही शान्तिदायिनी शक्ति है।

रोमन वास्तु-कला यूनानी वास्तु-कलाके समान स्निग्ध तथा सरल नहीं है। इसके सौन्दर्यमें जटिलता अधिक है। इसमें एक ही रीति इतनी अधिक बार व्यवहृत हुई है कि गिनकर आप समाप्त नहीं कर सकते। इसकी कलामें विषम अंकोंका प्राधान्य नहीं है, न इसमें कहीं सरलताको विकसित करनेका प्रयास ही है। उदाहरणार्थ, वेनिसके राज-प्रासादोंको लीजिए। उनमें इतनी संख्याएँ पास-पास हैं कि गिनना भी कठिन है।

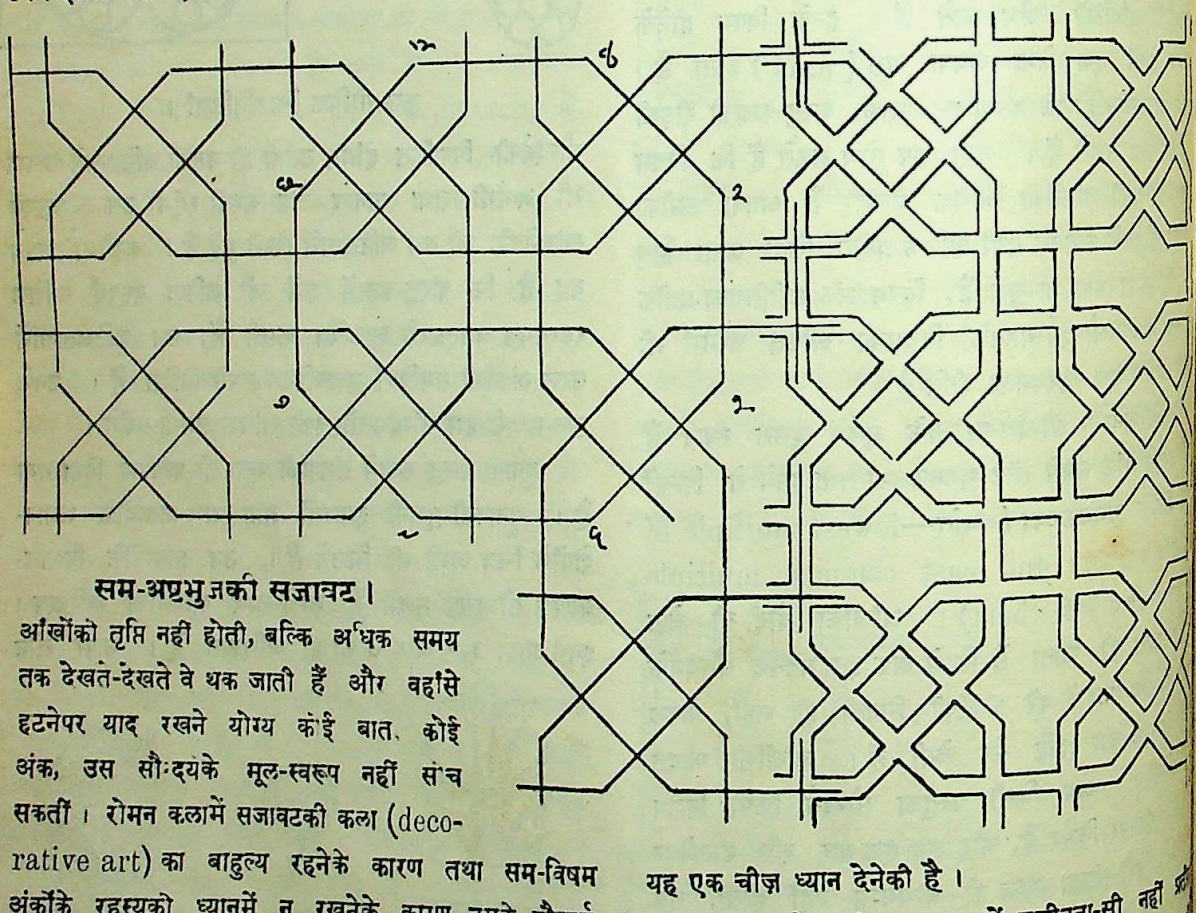

सम-अष्टभुजकी सजावट।

आँखोंको तृप्ति नहीं होती, बल्कि अधिक समय तक देखते-देखते वे थक जाती हैं और वहाँसे हटनेपर याद रखने योग्य कोई बात, कोई अंक, उस सौन्दर्यके मूल-स्वरूप नहीं खिंच सकतीं। रोमन कलामें सजावटकी कला (decorative art) का बाहुल्य रहनेके कारण तथा सम-विषम अंकोंके रहस्यको ध्यानमें न रखनेके कारण उसके सौन्दर्य-सौष्ठवमें वह स्निग्धता नहीं आ पाती। यदि किसी भवनको देखकर जो भाव हमारे मनमें उत्पन्न हों, उन्हें हम अंकोंका रूप दे सकें तो वह हमें बहुत दिनों तक याद रहेगा।

अब ज़रा सजावट अथवा अलंकार-कला (decorative Art) पर ध्यान दीजिए। इस कलाके साथ मुग़लोंका नाम विशेष रूपसे सम्बन्धित एतदर्थ उल्लेखनीय है। मुग़ल-कलामें पच्चीकारीका काम विशेष प्रसिद्ध है। ज़रा ध्यानसे देखनेपर उसमें सम-पंचभुज तथा सम-अष्टभुज और कहीं-कहीं सम-पंचदशभुजका आधिक्य दिखाई देगा। एकाएक देखनेपर समझमें नहीं आता कि इन भूलभुलैयोंवाली पंक्तियोंको किस रीतिसे ऐसे सुव्यवस्थित एवं निर्भूल रूपसे सजाया गया है। पर ज़रा ध्यानसे देखनेपर ज्ञात होगा कि यह सम-अष्टभुजकी सजावट है। जहाँ सारा काम अष्टभुज द्वारा ही है, वहाँ सौन्दर्य अवश्य है; पर उस सौन्दर्यमें पौरुषिक काठिन्य भी है। नारी-सुलभ कोमलता उसमें नहीं है। जहाँ पंचदशभुज व्यवहृत हुआ है, वहाँ नयनोंको उतना अटपटापन नहीं खल पड़ता। कारण, इनकी रेखाओंमें ज़्यादा कोण आ जाते हैं। यह एक चीज़ ध्यान देनेकी है।

पर न जाने क्यों, मुग़ल-कलामें सजीवता-सी नहीं प्रतीत होती। किसी भी मुग़ल-इमारतमें प्रवेश करनेपर उसकी दीवारें बोल नहीं उठतीं, उसकी पच्चीकारीमें सौन्दर्यकी भाषाकी अभिव्यक्ति दिखाई नहीं देती। उसके सारे वातावरणमें सौन्दर्य अवश्य है; पर सजीवता नहीं। उन्हें देखनेसे आँखोंको स्फूर्तिकी जगह एक थकान-सी मालूम होती है। पच्चीकारीसे सुसज्जित ऊँची-ऊँची दीवारोंके उस पार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखोंको दिलासा देती हुई कुछ हरियाली दीख पड़ती है, कुछ पत्ते बेदनासे सिहरते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, एक-दो पक्षी नीरव निर्जनताको भंग करते हुए क्वणित हो उठते हैं। सन्ध्या समय इनकी झिलमिलियोंकी सुन्दर कारीगरीके पृष्ठपत्रपर डूबता हुआ सूर्य जब अपनी अन्तिम किरणें समेटता है, तो मनपर एक असीम उदासीनता-सी छा जाती है। कहा जा सकता है कि भावुकतासे देखनेपर कोई भी निराला स्थान निर्जीव-सा ही प्रतीत होगा। पर ऐसी बात नहीं है। पच्चीकारीकी सीधी रेखाएँ उदासीनता अथवा निर्जीवता उत्पन्न नहीं करतीं। उनमें जहाँ जितने घुमाव होंगे, वहाँ उतनी ही सजीवता प्रतीत होगी। नारीके सुकोमल शरीरकी लचकके समान उनमें कोमलता होगी तथा विषम अंक सारे काठिन्यको मिटाकर सरसताका संचार कर देंगे। पर मुग़ल-कलाकी पच्चीकारी ऐसी नहीं है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि यह सब वास्तु-कलाके बहिरंग अध्ययनका एक दृष्टिकोण-मात्र है। उच्चतम कोटिका सौन्दर्य-सौष्ठव केवल अंकके अनुपातमें ही नहीं है, वरन और वस्तुओंमें भी है, जिनका उल्लेख इस लेखका विषय नहीं है।

अब कुछ संगीत-कलाकी दृष्टिसे भी देखें। संगीतसे वास्तुका गूढ़तम सम्बन्ध है। एक विद्वानके कथनानुसार वास्तु जमा हुआ संगीत है। इसी दृष्टिसे देखनेपर हम कह सकते हैं कि जो आनुपातिक सौन्दर्य वास्तुके सम्बन्धमें कहा गया है, वही इसपर भी लागू है। वास्तुको यदि पुरुष तथा संगीतको नारी कहा जाय, तो अत्योक्ति न होगी। वास्तुमें दृढ़ता, रक्षा करनेकी क्षमता, लम्बाई-चौड़ाई तथा सारे झंझावातोंको सँभालनेकी शक्ति है। संगीतमें कोमलता, माधुर्य और सुकुमारता है, यहाँ तक कि उसमें वायुके एक झोंकेको सहने तककी भी शक्ति नहीं है। इन्हीं कई कारणोंसे एक-दूसरेका गूढ़ सम्बन्ध है। मनुष्य दो प्रकारसे अपने भावको व्यक्त करता है—नाम तथा आकार द्वारा। पहलेका सम्बन्ध है समयसे तथा दूसरेका स्थान (space) से। संगीत समयपर अंकित आलपना (pattern) है तथा वास्तु स्थानमें उद्भासित चित्र। वास्तु तथा संगीतका सम्बन्ध समझनेके लिए दो-एक उदाहरण देना असंगत न होगा।

यदि हम अंगरेज़ी गानोंकी सुर-लिपिको ध्यानसे देखें, तो बिना किसी चेष्टाके यह ज्ञात हो जायगा कि उसमें संख्याका कितना बड़ा स्थान है तथा आनुपातिक अंकोंका क्या महत्व है। प्रत्येक सुरको लिखनेके लिए वैज्ञानिक रूपसे अंकोंका अनुपात निकाला गया है। अतः यदि यह कहा जाय कि पाश्चात्य संगीत-कला वैज्ञानिक रूपसे आनुपातिक अंकोंपर ही निर्भर है, तो अनुचित न होगा। इसी प्रकार भारतीय संगीत-कलाकी प्रणालीमें भी यही बात है।

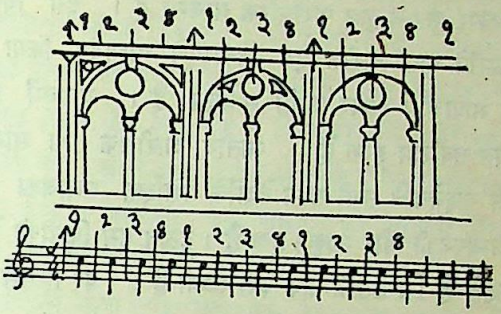

'वास्तु जमा हुआ संगीत है'—यह वास्तु और संगीतके तुलनात्मक अंक-अनुपातसे आसानीसे समझमें आ जायगा।

काव्यकी शैलीके सौन्दर्यकी परीक्षा करनेसे भी यही ज्ञात होता है कि उसकी सौन्दर्य-वृद्धिमें भी अंकका ही दान है। सुविख्यात शेक्सपियरकी कविताएँ प्रसिद्ध तथा अमर बताई जाती हैं। उनके काव्यकी विशेषता यह है कि उन्होंने अधिकांश कविताएँ Iambic pentameter छन्दमें ही लिखी हैं। कदाचित् इसीलिए वे अंगरेज़ी-काव्यमें गहनतम विषयोंको भी विकसित करनेमें सफल हुई हैं। काव्य-समीक्षकोंने इनकी सफलताका कारण बतलाते हुए कहा है कि १:५ के अनुगतमें सबसे जटिल विषय भी अपनी गम्भीरता नहीं खोता। मिल्टनने भी गूढ़ अध्ययनके पश्चात् ही फिर इसी छान्दिक अनुपातको अपनाया था। यही कारण है कि मिल्टनके 'Paradise Lost' का छन्द सबसे उत्तम छन्दोंमें गिना जाता है। अन्य कवियोंने भी विषयके अनुसार ही छन्दोंको चुना है। इस प्रकार कवियोंके छन्दोंमें भी अंक-अनुपातका प्रधान हाथ है।

ललित-कलाओंमें सौन्दर्यके निरीक्षण-परीक्षणका अवकाश तथा अवसर बहुत कम लोगोंको मिलता है। साधारण मनुष्य अपने प्रतिदिनके वातावरणमें आमतौरसे रास्तेपर चलते हुए किसी व्यक्तिकी रूप-आकृतिका अथवा वातायनसे झाँकते हुए किसी लावण्यमय चेहरेको ही सुन्दर कहता-समझता है। हम एकाएक किसीको सुन्दर कहते हैं उनके रंगके लालित्यपर मुग्ध होकर नहीं, बल्कि उसके गठन-सौष्ठवको देखकर। मनुष्य-शरीरके गठन-सौष्ठवपर ही उसका ७० प्रतिशत सौन्दर्य निभर है और यह सौष्ठव निभर है अनुपातपर। मनुष्य-सौन्दर्यमें तो अंक-अनुपातकी सबसे अधिक पराकाष्ठा है। चेहरेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हथेलीसे, नाकका आँख, सिर तथा कानसे १:१ का अनुपात है। शरीरकी लम्बाई और चेहरेमें १:१० का अनुपात है। हाथ और शरीरमें २:७ का अनुपात है। सारे अंगोंका इसी प्रकार कुछ-न-कुछ पारस्परिक सम्बन्ध है। इस विषयका चित्रकारोंने काफ़ी बारीक एवं विचारपूर्ण अध्ययन किया है। अनेक भाषाओंमें इसपर पर्याप्त साहित्य है। यूनानमें इसका अध्ययन सर्वोत्तम हुआ है। जातीय, शारीरिक तथा मानसिक विकास चाहनेवाले सभी सभ्य देशोंके शिक्षित समाजका ध्यान इस अध्ययनकी ओर आकृष्ट हुआ है। हठात् हम किसीको देखते ही कहते हैं कि उसकी नाक ज़रा लम्बी है। पर किससे ज़रा लम्बी है? इस तरह हम बिना सोचे ही इस आनुपातिक भाषामें बोलते हैं। हाथसे हम चेहरेको नापते नहीं; पर आँखोंको अनुपातकी ज़रा सी भी कमी खटक जाती है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारी आँखें आनुपातिक भाषा द्वारा ही पढ़ी हुई हैं। इसीसे हमारे सारे सौन्दर्य-ज्ञानका द्वार खुला है। यह भाषा मूक है और हम इसकी महत्ताको सराहनेमें भी मूक ही रह जाते हैं। पर यदि चित्रकारको इस मूक भाषाका पूर्ण ज्ञान न हो, तो उसकी कला-जगत्में कभी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

अस्सीघाट, काशी]

राष्ट्र-निर्माणमें हिन्दीका हाथ

श्री औटमी चौफीन : श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना

साहित्य-क्षेत्रमें हिन्दी चाहे किसी सीमित क्षेत्रकी ही भाषाका नाम हो; किन्तु व्यवहारमें वह अति प्राचीन कालसे भारतके जीवनको एकताके सूत्रमें ग्रथित करनेवाली भाषाओंमें से रही है। आठवीं शताब्दीके सिद्धोंकी भाषा केवल बिहार, आसाम, बंगाल तथा नेपालकी तराईकी ही भाषा नहीं थी, वरन् उसका प्रचार सुदूर सिंहल-द्वीप तक भी हो चला था। योगियोंके सिंहल जानेकी कथा प्रतीक-मात्र नहीं हो सकती। कुमायूँ (गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल) के ज़िलोंमें इन सिद्धोंकी परम्परा अति प्राचीन कालसे मान्य है, और वहाँ इनका प्रचार आजका नहीं, बल्कि दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दीका है। नवीं शताब्दीके आचार्य चिह्नोद्योतनकी 'कुवलय-कथा'में आए हुए हिन्दीके शब्द उस समयकी बोलचालकी भाषाके हैं। बुर्जविन शहरयारके लिखे 'सफ़रनामा'में सन् ८७० के लगभग अनेक भाषाओंके विद्वान अब्दुल्ला ऐराकी द्वारा कुरानका हिन्दी-अनुवाद किए जानेका उल्लेख है। क्या इससे यह नहीं प्रकट होता कि हिन्दी उस समय प्रचलित बोलचालकी भाषा रही होगी? कालिंजरके राजा नन्दाने एक दूत सुल्तान महमूदके यहाँ एक हिन्दी कविता-सहित भेजा था। उस कविताकी खूब प्रशंसा हुई थी, जिससे स्पष्ट है कि महमूदके दरबारी हिन्दी अच्छी तरह समझते थे। बारहवीं शताब्दीमें नामदेव और तेरहवींमें ज्ञानेश्वर तथा उनकी बहन मुक्ताबाई पश्चिमी भारत अथवा महाराष्ट्रमें हिन्दी-कविता करते थे। तेरहवीं शताब्दीमें मसऊद सादसलमाने भी हिन्दीमें एक दीवान लिखा था। इसके पश्चात् हिन्दी-साहित्यकी परम्परा बराबर चलती ही रही। नव-साहित्यमें भी हिन्दीको स्थान था। इससे यह निश्चित है कि हिन्दी उस समय सर्वसाधारणके आदान-प्रदानकी भाषा अवश्य रही होगी। इसी कारण मध्य-युगमें सन्तोंने भी इसे अपनाया। १८ वीं शताब्दीमें अंगरेज़ पादरियोंको बाइबिलका हिन्दी-अनुवाद करानेकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि वह उस समय बोलचालकी भाषा थी। आज हिन्दीका प्रभाव ज़ोरोंके साथ बढ़ रहा है। आज साहित्यके कोई भी ऐसी बारीकी नहीं, जीवनकी कोई भी ऐसी विचार-धारा नहीं, जिसे हिन्दी अपने ढंगसे व्यक्त करनेमें समर्थ न हो। जिस हिन्दीकी इतनी शक्ति-सम्पन्न, जीवन तथा साहित्य-मय धारा हो, क्या वह राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती? क्या उसकी शक्ति जीवनको दीप्त करनेवाली नहीं है? क्या उसका सम्पन्न साहित्य भारतीय संस्कृतिका गौरवपूर्ण अंग नहीं है? और यदि है, तो उसका विरोध क्यों, किस लिए?

राष्ट्रकी सभी विचार-धाराओंपर हिन्दीका प्रभाव पड़ा है। वीरगाथा-काल, भक्ति-काल, रीति-काल तथा आधुनिक कालके हिन्दी-साहित्यका प्रभाव उनकी प्रत्येक विचार-धारामें विद्यमान मिलेगा, क्योंकि साहित्य-निर्माण अपने देश, काल और वातावरणसे अलग रहकर कभी नहीं होता। वीरगाथा-कालको ही प्रायः मुसलमानोंका पहले-पहल भारतमें आगमन हुआ और उनके पैर राजनीतिक लूट-पाट अथवा धर्म-प्रचारकी दृष्टिसे यहाँ जमे। अरब और भारतका व्यापारिक सम्बन्ध तो ईसाके एक [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष पूर्वसे चला आ रहा है। हिन्दीको अपनानेवाले खुसरो, कबीर, जायसी, रहीम, रसखान आदि अनेक मुसलमान कवि हुए। मुसलमान फक़ीरों तथा कवियोंके साहित्य द्वारा राष्ट्रमें वेदान्त तथा औपनिषदिक अद्वैतवादसे मिलता-जुलता निर्गुण एकेश्वरवादका प्रचार हुआ। साथ ही इसके द्वारा वे हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता स्थापित करना और हिन्दू-मुसलमानोंकी आपसी विषमताओंको हटाकर जनताको मनुष्यका असली रूप दिखाना चाहते थे। यह कार्य वे जन-वाणी हिन्दी द्वारा ही कर सके। हिन्दीके प्रभाव-सौन्दर्यसे मुग्ध कबीरने कहा भी था—'संस्कीरत है कूप-जल, भाषा बहता नीर।' आडम्बर और असत्यके विरोधी, सत्य-प्रचारक कबीरने मुसलमानोंको बतलाया :—

कांकर - पाथर जोरिके मसजिद लई बनाय ;
ता पर मुल्ला बाँग दे, बहरा हुआ खुदाय।

और हिन्दुओंको सुझाया :—

दुनिया ऐसी बावरी, पाथर पूजन जाय ;
घरकी चकिया कोई न पूजे, जेहिका पीसा खाय।

इस प्रकारके विचारोंसे एक जाग्रति, एक चेतना समाजमें उत्पन्न हुई। राष्ट्र आगे बढ़ा और परिवर्त्तित परिस्थितियोंकी प्रतिक्रियाके रूपमें भक्तिकी धारा फूट आई।

प्रत्येक नया युग पुराने युगके दोषोंके कारण प्रकाशमें आनेका प्रयत्न करता है। जब तुलसीका उदय हुआ, तो साहित्य द्वारा समाजकी धार्मिक विचार-धाराओंमें एक बड़ा परिवर्त्तन हुआ। समाजके गुण-दोष तुलसीके आलोकमें स्पष्ट रूपसे दृष्टिगत हुए और उन्होंने अपने समयकी सब परिस्थितियोंको समझकर राष्ट्रको उन्नत करना चाहा। समाजके दोषोंको दिखाकर ही वे चुप नहीं हो गए, बल्कि उन्होंने हिन्दी-भाषा द्वारा जन-साधारणके सामने एक आदर्श मार्ग भी रखा, जो उनके अनुसार निस्वार्थ, विवेकयुक्त 'श्रुति-सम्मत हरिभक्ति' ही था। इस समय हिन्दी-साहित्यकी प्रवृत्ति आदर्शवादकी ओर थी। तुलसीके मर्यादा पुरुषोत्तम राम एक आदर्शके रूपमें राष्ट्र-निर्माण करने आए। फिर साहित्यकी धाराके साथ ही राष्ट्र भक्ति-कालकी पराकाष्ठासे विलासिताके अन्धकारमय गर्त्तमें जा गिरा। रीति-कालके शृंगारी साहित्यने राजा-प्रजा सभीको ज्ञानान्ध बना दिया और राष्ट्र अधोगतिको प्राप्त हुआ।

अब गद्य-काल (आधुनिक काल) आया। इस कालमें फिर हिन्दी-साहित्य ऊपर उठा और प्रसाद, गुप्त, प्रेमचन्द आदि उसको आगे ले जानेवाले अगुआ बने। समाजकी सारी विषमताओंको, जो अनेक कारणोंसे भारतमें आ गई थीं, इन नेताओंने पहचाना और उन्हींको साहित्यसे परिष्कृतकर भारतको फिर आशाकी झलक दिखाई। पर इससे पहले कि साहित्य द्वारा इन नेताओंपर राष्ट्र-निर्माण करनेके लिए विचार किया जाय, यह समझ लेना आवश्यक है कि अंगरेज़ोंके आनेसे राष्ट्रकी क्या दशा हुई। अंगरेज़ोंके आनेसे भारतमें दो विचार-धाराओंका आगमन हुआ—विशेषकर उस समय, जब भारतमें शिक्षाका माध्यम अंगरेज़ी बनाई गई। एक तो वह धारा थी, जो पूर्ण रूपसे पाश्चात्य भाषा तथा साहित्यके साथ-साथ उनको वेश-भूषा आदिको भी अपनाना चाहती थी और दूसरी वह, जो भारतीय संस्कृति, रहन-सहन तथा सभ्यताको ही यहाँ रखना चाहती थी। अंगरेज़ी भाषा आदिके एक बड़े पक्षपाती राजा राममोहन राय हुए और भारतीय सभ्यताकी ओर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरने जनताको आकर्षित किया। किसी भी अन्य स्वतन्त्र देशमें किसी और देशकी भाषाको अपनाना हास्यास्पद समझा जाता ; परन्तु दुर्भाग्यवश भारतने इसको अपनाना गौरव समझा। हिन्दीने भी वह घुमाव लिया कि उसके साहित्यपर विदेशी भाषाका प्रभाव दिखाई देने लगा। पराधीन देश होनेके कारण भारतके मत्थे अंगरेज़ी भाषा मढ़ दी गई। उसके अध्ययनसे लाभ अवश्य हुआ ; परन्तु उसने भारत-वासियोंको ऐसा जकड़ा कि वे उसके अध्ययनके साथ-ही-साथ 'साहब' हो गए और विदेशियोंका अन्धानुकरणकर अपनी सुन्दर-से-सुन्दर वस्तुओंको बुरा समझने लगे। अंगरेज़ी वेश धारण करना, उनकी भाषा बोलना और उनकी सभ्यताके अनुसार समाजमें प्रवेश करना 'फ़ंशन' हो गया। राष्ट्रीय सभ्यताको इस आचरणसे जो धक्का लगा, उसको देखनेवाले इने-गिने 'मूर्ख' कुछ भी न कर सके। भारतवासियोंकी नींद गहरी थी, वह जल्दी न टूटी। वे रात-दिन कार्यक्षेत्रमें ही नहीं, सभ्यता तथा संस्कृतिके क्षेत्रमें भी अपनी सरकारके संकेतपर नाचते रहे और उनके नचानेवाले उन्हें आनन्दसे नचाते रहे।[1] यह पाश्चात्य रंग ईसाइयोंपर और भी अधिक चढ़ा। भारतीय ईसाई-वर्ग, जिसने धर्मको विदेशी कपड़ों आदिमें ही देखा, अपने हृदयमें यह नहीं समझ पाया कि ईश्वरको भारतीय कपड़े भी अच्छे लगते हैं और वह हिन्दुस्तानी भाषा भी समझता

1. "We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions we govern, a class of persons Indian in blood and colour but English in taste, in opinions, in morals and in intellect."—Lord Macaulay.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इतना ही नहीं, हिन्दू-समाजपर भी इसका गाढ़ा रंग चढ़ा, जिसे देखकर किसी व्यथित-हृदयकी आह निकली :—

'छूमंतर हिन्दुत्व हो गया कोट पैंट बूटोंमें मिलकर ;
फिर भाग्यको स्वराज्यका मंतर आया तो क्या आया।'

इस प्रकार लार्ड मेकालेकी आशाएँ पूरी हुईं[2] और भारत पतनकी ओर बढ़ा।

पर जब सब ओर अन्धकार छा गया, तो साहित्यने आशाके तारे जगमगाए, जो लेखक, नाटककार, कवि आदिके रूपमें प्रकट हुए। प्रसाद, गुप्त तथा प्रेमचन्दका आलोक (हिन्दी-साहित्यमें) सबसे अधिक फैला। राष्ट्रकी भावनाओंसे पूर्ण ये लेखक तथा कवि समाजको उसकी गहरी नींदसे जगानेमें समर्थ हुए। प्रेमचन्दने वास्तविक भारतकी, जो गाँवोंमें है, एक-एक समस्याका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्रण करके हमें देशकी कमियोंको पूरा करनेके लिए उत्तेजित किया। प्रसादने अपनी रचनाओंमें प्राचीन गौरवके भव्य चित्रों-सहित जीवनके सभी क्षेत्रोंकी विषमताओंकी ओर हमारी दृष्टि खींची और हमें साहित्य द्वारा ऐसे चरित्रोंसे परिचित किया, जो अपने पाँवपर स्वयं कुल्हाड़ी मारकर गर्व करते हैं ; किन्तु ऐसे भी लोग उन्होंने दिखाए हैं, जो कर्त्तव्यको बलिवेदीपर राष्ट्रके हितके लिए, मानवताकी शान्ति-रक्षाके लिए, अपने स्वार्थोंको छोड़ प्राणों तक को उत्सर्ग करनेमें हिचकते नहीं, वरन बड़ी गौरवपूर्ण शान्त प्रसन्नतासे उस त्यागकी ओर अग्रसर होते हैं, जो भारतीय संस्कृतिके मूलमें सबसे बड़ी विशेषता बनकर रही है। गुप्तजीने अपनी भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रीय भावनाओंको सरल एवं भावपूर्ण काव्य-रचनाओं द्वारा हिन्दी समझनेवाले प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचा दिया।

सभी कलाकारोंने इस प्रकार जीवनमें अनेक प्रतिद्वन्द्वोंको दिखाकर, समाजकी भावनाओंको साहित्यका रूप देकर राष्ट्रके निर्माणमें सहायता दी। आज हिन्दी द्वारा देशके न-जाने कितने ही प्राणी देशके प्रति अपनी सोई हुई भावनाओंको जगाकर कर्त्तव्य-पथपर आरूढ़ हैं और अपने जीवनका लक्ष्य देशकी स्वतन्त्रता ही बनाए हैं। यह स्वतन्त्रता राजनीतिक ही नहीं, वरन् धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक भी है। अतीतमें हिन्दीने जो-कुछ किया, वह तो अपना है ही ; पर हिन्दी द्वारा देशका भविष्य उज्ज्वल हो गया है, यह देखना अभी शेष है। अनेक विघ्न-बाधाओंके होते हुए भी हिन्दी देशके रंगमंचपर इतना अधिक भाग ले सकी है। यदि हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गई, तो वह भारतकी स्वतन्त्रताके पूर्ण नाटकमें अत्यन्त सफल सूत्रधार बन सकेगी।

हिन्दी-भाषा राष्ट्रभाषा बननेका अन्य भाषाओंसे कहीं अधिक अधिकार रखती है। राष्ट्रभाषा होनेके लिए उसमें सभी गुण विद्यमान हैं। माना भारतमें कितनी ही भाषाएँ प्रचलित हैं, जिनके कारण राष्ट्रभाषाको नियत करना कठिन है ; पर जब हमारी शक्तियोंको छिन्न-भिन्न करनेवाली अंगरेज़ी राष्ट्रीय भाषा बन सकती है, तो अपनी बिखरी शक्तियोंको साहित्यिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकरूपताकी ओर ले जा सकनेवाली हिन्दी क्यों राष्ट्रीय भाषा नहीं बन सकती है ? अन्य भारतीय भाषाओंमें भी सम्पन्न साहित्य है ; किन्तु उन भाषाओंमें से किसीका भी उतना व्यापक क्षेत्र भारतमें नहीं है, जितना हिन्दीका। फिर हिन्दीके राष्ट्रभाषा बन जानेसे हिन्दी अन्य भाषाओंके स्वाभाविक विकासमें बाधक नहीं होती है, वरन् साधक ही है। स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भारतीय अन्य भाषाओंके राष्ट्रीय भाषाके केन्द्रमें पंखुड़ियोंको फूलके केन्द्रसे सजानेकी बात कही थी। हिन्दीका यह सम्बन्ध भारतीय अन्य भाषाओंसे अति प्राचीन कालसे ही रहा है। तब किसी अन्य केन्द्रको अपनानेके व्यर्थ प्रयासमें समय नष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं और न हिन्दीको नए अस्वाभाविक साँचोंमें ढालकर हिन्दी बनानेकी ही। कृत्रिमता कभी भी किसीका स्वाभाविक विकास नहीं होने देती, इसलिए हिन्दीको अपने स्वाभाविक विकासके साथ चलने दें, तो उसकी नैसर्गिक शोभा भी रहे और समाज तथा राष्ट्रकी सभी चेतनाओं तथा विचार-धाराओंमें पूर्ण सामंजस्य भी उससे सरलतासे हो सकेगा। उसके रूप विकृतकर हम अपनी प्राचीन सम्पत्तिसे ही हाथ नहीं धो बैठेंगे वरन् वर्त्तमान और भविष्यकी अमूल्य राशियोंका भी स्थिर न नहीं कर सकेंगे।

९२ एबट रोड, लखनऊ]

2. "The effect of the English education on Hindus is prodigious. No Hindu who has received an English education ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess themselves pure diests and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plants of education are followed up there will not be a single idolator among the respectable class in Bengal thirty years hence (1856 A.D.)."—Lord Macaulay.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

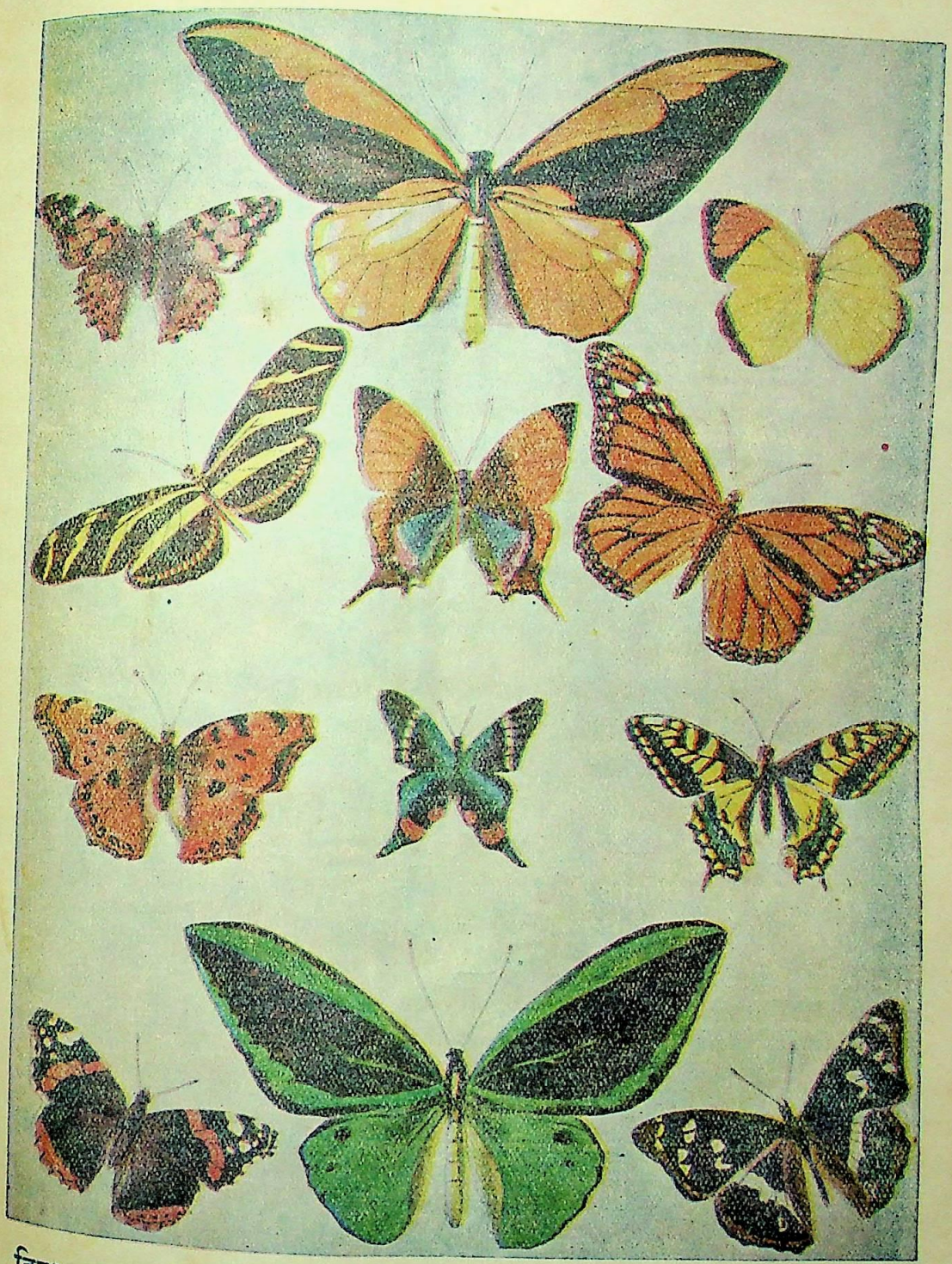

तितलियां

[प्रवासी प्रेस, कलकत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तितलियाँ

कुँवर सुरेशसिंह

हमारा विस्तृत देश प्रायः सभी तरहकी जलवायुसे पूर्ण रहनेके कारण जीव-विज्ञानके अध्ययनके लिए एक अद्‌भुत स्थान कहा जा सकता है। हिमालयके विशाल अंचलमें सैकड़ों तरहके पक्षी, स्तनपायी जीव और कीड़े-मकोड़े मिलते हैं। अगाध समुद्रमें तरह-तरहकी रंगीन मछलियाँ, सीप, प्रवाल और अन्य समुद्री वृक्ष पाए जाते हैं और बीचका सारा प्रान्त पशु-पक्षियों, कीड़े-पतिंगों, तरह-तरहकी मछलियों तथा सरीसृपोंसे भरा पड़ा है। लेकिन अन्य सभी जीवोंको छोड़कर आज यहाँ सबसे सुन्दर और भोली तितलियोंका वर्णन ही दिया जा रहा है।

तितलियोंको किसी कविने उड़ते हुए फूल कहा है। लेकिन सच पूछा जाय, तो तितलियाँ इस उपमासे कहीं आगे हैं। रंगोंके लिहाजसे बाज़-बाज़ तितलियोंको फूल पा ही नहीं सकते। इस विशाल विश्वमें प्रकृतिने आवश्यकतानुसार रंगोंके उपयोगमें कमी नहीं की। स्तनपायियोंमें रंगोंका इस्तेमाल ज़रा कम हुआ है; लेकिन मोर, फ़ेज़ेन्ट आदि पक्षियों और प्रवाल-द्वीपके निकट रहनेवाली सुन्दर मछलियोंको देखकर यह कहना उचित नहीं होगा कि प्रकृतिने रंगोंकी कहीं कंजूसी की है। पर जैसा सुन्दर चित्रण और जैसा रंगोंका विभाजन बाज़ तितलियोंके पंखोंमें हुआ है, वैसा किसी जीवधारीका नहीं।

संसारमें अन्य जीवोंकी अपेक्षा कीड़े-मकोड़ोंकी संख्या अधिक है, और यह सब भी उसी तरह अनेक वर्गों (Order) और परिवारों (Family) में बांट दिए गए हैं, जैसे स्तनपायी जीव और पक्षी आदि। इन्हीं कीड़ोंके बड़े विभागमें से शल्क-युक्त परोंवाले जीवोंको एकत्रित करके जो एक वर्ग बनाया गया है, उसीमें से हमारी तितलियाँ भी एक हैं। परोंके अलावा इनमें और अन्य कीड़ोंमें एक मुख्य भेद यह भी रहता है कि अपनी पूर्णावस्था तक आनेसे पहले इनके कई रूपान्तर होते हैं, जो क्रमशः डिम्बावस्था (Eggs), शिशुकीटावस्था (Larval stage) और मूक-कीटावस्था (Pupa) को पार करनेके बाद अपने वास्तविक स्वरूपको पहुँचता है।

इससे पहले कि तितलियोंका वर्णन प्रारम्भ किया जाय, हमारे लिए यह ज़रूरी है कि हम तितलियोंके बहुत निकट सम्बन्धी पतिंग (Moth) को पहचान लें और उसमें तथा तितलियोंमें क्या भेद है, इसको भी जान लें; क्योंकि तितलियों और पतिंगोंमें अक्सर हमको धोखा हो जाता है। पतिंग तितलियोंसे शक्ल-सूरतमें ही नहीं, बल्कि और भी अनेक बातोंमें मिलते हैं; लेकिन वास्तवमें वे उनसे भिन्न प्राणी हैं, जिसे हम निम्नांकित बातोंसे आसानीसे जान सकते हैं—(१) तितलियाँ जहाँ दिनमें उड़ती हैं, पतिंग प्रायः रातमें निकलते हैं। (२) तितलियाँ बैठनेपर अक्सर अपने दोनों पंखोंके ऊपरी हिस्सेको एक-दूसरेसे चिपकाकर ऊपरकी ओर उठाए रहती हैं; लेकिन पतिंग बैठनेपर अपने पख फैलाए ही रहते हैं। (३) तितलियोंकी मूँछ, जो वास्तवमें उनकी स्पर्श-इन्द्रिय है, पतली होती है और उसके सिरेपर अक्सर घुण्डी-सी

कुँवर सुरेशसिंह

रहती है; लेकिन पतिंगकी मूँछ नीचे जड़के पास मोटी होती है, जो नोंक तक पहुँचते-पहुँचते पतली हो जाती है, जैसे तेज़ बनी हुई पेन्सिलका सिरा। लेकिन ऊपरकी पहचानको हम एक नियम नहीं कह सकते, क्योंकि इसके अलावा दोनोंमें अपवाद भी देखा जा सकता है।

हमारे देशकी तितलियाँ ९ श्रेणियोंमें विभक्त हैं। पहली श्रेणीमें वे बड़ी तितलियाँ आती हैं, जिनमें से अधिकांशके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले परके नीचेका कुछ हिस्सा बाहरकी ओर बढ़ा रहता है। इनके पैर बड़े होते हैं, जिनके सहारे ये चल लेती हैं। इनमें से कुछका शरीर लाल होता है और कुछका काला। इनके पर सुन्दर और रंगीन रहते हैं, जिनमें पीला, काला, सफ़ेद, लाल और हरा रंग प्रमुख रहता है। अंग्रेज़ीमें इस श्रेणीकी तितलियाँ 'Papilionids' या अबाबील-पुछी तितलियाँ (Swallow Tails) कहलाती हैं। इनमें 'क़ैसरे-हिन्द' (Kaisar-i-hind) नामकी तितली बहुत प्रसिद्ध है, जिसके परोंपर पीले और हरे रंगोंका बहुत सुन्दर सम्मिश्रण रहता है।

दूसरी श्रेणीकी तितलियाँ प्रायः सफ़ेद रंगकी होती हैं। इन्हें 'Pierids' या 'धौरी तितलियाँ' (Whites) कहते हैं। लेकिन इस श्रेणीमें पीली तितलियाँ भी काफ़ी हैं और कुछ ऐसी भी हैं, जिन्हें लाल या नीला रंग मिला है। इनमें 'धानी' (Grass Yellow) और 'केसरिया' (Orange Tips) प्रसिद्ध हैं। 'धानी' पीले रंगकी तितली है, जिसके परका ऊपरी किनारा काले रंगका रहता है। 'केसरिया' वैसे तो सफ़ेद तितली है; पर उसके अगले परका ऊपरी हिस्सा केसरिया या नारंगी रंगका होता है।

तीसरी श्रेणी उन तितलियोंकी है, जिन्हें 'Danaids' या 'चीतल तितलियाँ' कहा जाता है। इनके पैर छोटे होते हैं और ये पहली दोनों श्रेणियोंकी तितलियोंकी तरह खूब अच्छी तरह उड़ तो लेती हैं; लेकिन उनकी तरह पैरोंके बल चल नहीं पातीं। ये बड़ी और चितकबरी तितलियाँ हैं, जिनके पर चितकबरे रहते हैं। कभी काली ज़मीनपर सफ़ेद और कभी सफ़ेद ज़मीनपर काली धारियाँ या चित्तियाँ रहती हैं। इनमें 'शेर तितली' (Tigers) और 'कौआ तितली' (Crows) प्रसिद्ध हैं।

चौथी श्रेणीकी तितलियाँ भी छोटे पैरोंवाली होती हैं, जो टाँगोंके बल चलनेमें असमर्थ होती हैं। यही नहीं, आगे आनेवाली और तीन श्रेणियोंकी तितलियाँ भी छोटे पैरोंकी होती हैं। ये 'Satyrids' या 'भूरी तितलियाँ' (Browns) कहलाती हैं। इनमें से अधिकांशके पंखोंका रंग धुमैला भूरा होता है और उनपर प्रायः आँख-जैसा एक गोल चिह्न बना रहता है। क़दके लिहाज़से ये बड़ी और छोटी दोनों होती हैं और ज़्यादातर सायेमें ही रहना पसन्द करती हैं। इनमें 'चाँद तितली' (Ring) आदि कुछ बहुत प्रसिद्ध हैं।

पाँचवीं श्रेणीकी तितलियाँ बड़ी और रंगीन तो होती हैं; पर ये अक्सर घने जंगलोंमें ही रहना पसन्द करती हैं। ये 'Amathusuds' या 'जंगली तितलियाँ' कहलाती हैं।

छठी श्रेणीकी तितलियाँ रंग-रूपमें बहुत सुन्दर और भड़कीली होती हैं और इनको 'Nymphalids' या 'परी तितलियाँ' कहते हैं। इन्हें धूप बहुत पसन्द है, इसी कारण इन्हें हम प्रायः बाग़-बगीचोंमें देख सकते हैं। इनमें भिन्न-भिन्न रंगोंकी तितलियाँ हैं, जिनमें 'राजा' (Rajah), 'नवाब' (Nawab) आदि प्रसिद्ध हैं।

सातवीं श्रेणीकी तितलियाँ छठी श्रेणीकी तितलियोंसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती होती हैं; पर इनका क़द उनसे छोटा होता है और इनकी सिर्फ़ मादाएँ पैरोंके बल चल-फिर लेती हैं। ये 'Erycinids' या 'छोटी परियाँ' कहलाती हैं।

आठवीं श्रेणीकी तितलियाँ 'Lycaenids' या 'नीली तितलियाँ' (Blues) कहलाती हैं। ये छोटे क़दकी तितलियाँ हैं। वैसे इनमें प्रायः सभी रंगोंकी तितलियाँ पाई जाती हैं; लेकिन इनके रंगमें नीलेपनका ही प्राधान्य रहता है।

नवीं और अन्तिम श्रेणीकी तितलियाँ ऊपरकी सभी श्रेणियोंकी तितलियोंसे रंग-रूपमें ही नहीं, वरन् शक्ल-सूरत भी थोड़ी-बहुत जुदा होती हैं। ये 'Hesperiids' या 'फुदकी तितलियाँ' (Skippers) कहलाती हैं। देखनेमें तितलियोंसे ज़्यादा छोटे पतिंग जान पड़ती हैं। इनका उड़ना बहुत धुमैला होता है और इनकी उड़ान अन्य तितलियोंकी-सी अलसाई-सी न होकर सीधी और तेज़ होती है।

श्रेणी-विभाजनके रूखे वर्णनके बाद तितलियोंके रूपान्तर (Transformation) का रोचक वर्णन आता है और यह कि ऊपर कहा गया है, तितलियोंको अपने वास्तविक स्वरूप आनेमें तीन परिवर्त्तनोंको पार करना पड़ता है। पहले डिम्ब वस्था रहती है। फिर अण्डोंके फूटनेपर उसमें से सिंडी (Cater-pieler) निकलता है। यह अपना सारा खानेमें ही बिता देता है। खूब खाकर बढ़ जानेपर यह कीट मूक-कीट बन जाता है और वह एक कड़ी खोलके क़ैद-सा होकर सुप्तावस्थामें कुछ दिनों तक पड़ा रहता समय पाकर जब उसकी यह खोल टूटती है, तो उसमें से तितली अपना पूर्ण स्वरूप पाकर निकल आती है। तितलियाँ अण्डे देती हैं, जो क्रमशः अण्डे, शिशुकीट मूक-कीटके परिवर्त्तनोंके बाद तितलियाँ बन जाती हैं और प्रकार तितलियोंका जीवन-चक्र चलता रहता है।

शिशुकीटका लम्बा शरीर १४ वृत्तखण्डोंमें बँटा रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें से पहला खण्ड सर और अन्तिम खण्ड मल-द्वारका रहता है। दूसरे-तीसरे और चौथेमें से इनकी ६ टाँगें निकली रहती हैं और सातवें, आठवें, नवें और दसवें खण्डोंमें से पैरकी शक्लके कुछ रेशे-से निकले रहते हैं, जो वास्तवमें इनकी चूसनेकी इन्द्रियाँ हैं। अन्तिम खण्डकी शक्ल बहुत-कुछ बिमटी-सी होती है, जिससे शिशुकीट किसी वस्तुके पकड़नेका काम लेता है। इसके शरीरके दोनों ओर दूसरे खण्डमें और फिर पाँचसे बारह खण्डोंमें थोड़ी जगह सींग-सी चिकनी होती है, जहाँसे शिशुकीट साँस लेता है। सरके दोनों ओर ६-६ छोटी-छोटी आँखें-जैसी रहती हैं, जो प्रारम्भिक अवस्थाकी कही जा सकती हैं। शिशुकीटके आगे थूथनके पास दो मूँछें-सी रहती हैं, जो इसकी स्पर्श-इन्द्रियाँ हैं। इसके मुँहके भीतर कड़े जबड़े रहते हैं, जिन्हें यह ऊपर-नीचे न चलाकर आड़े-आड़े चलाता है। निचले जबड़ेसे कुछ ऊपर एक छोटा छिद्र रहता है, जिसमें से शिशुकीट रेशमके तार निकालता है। दो-एकको छोड़कर प्रायः सभी तितलियोंके शीशुकीट शाकाहारी होते हैं और कुछ तो ऐसे होते हैं, जिन्हें मदारके पत्ते ही सबसे अधिक पसन्द हैं। इस अवस्थामें शिशुकीट जैसे-जैसे बढ़ता है, अपने शरीरकी ऊपरी खालको पाँच बार केंचुलकी तरह निकाल फेंकता है। प्रत्येक परिवर्त्तनसे पहले वह कुछ समय तक पत्तीपर अपने बिने हुए रेशमी बिछौनेपर चुपचाप स्थिर होकर पड़ा रहता है। फिर जब उसकी केंचुल बीचसे फट जाती है, तो वह उसमें से बाहर निकल आता है और पुरानी फटी केंचुलको खा जाता है। हर मरतबा इस तरहके केंचुलके परिवर्त्तनोंके बाद उसके रंगमें भी कुछ-न-कुछ नवीनता आ जाती है।

शिशुकीटकी इस अवस्थाका भी एक दिन अन्त निकट आ जाता है और खूब खा-पीकर बढ़ जानेके बाद वह किसी निराले स्थानकी खोजमें निकलता है, जहाँ वह मूक-कीटावस्थाको प्राप्त हो सके। ऐसा स्थान पानेपर वह अपने मुँहसे रेशमके तार निकालने लगता है, जिसका एक छोर वह दुमके पासकी चिमटीसे पकड़ लेता है। इस प्रकार रेशमके तार उगलते-उगलते वह अपने सारे शरीरको एक मोटी रेशमी खोलसे ढँक लेता है। कुछ समय तक उसकी यही अवस्था रहती है, जिसके बाद एक दिन यह खोल भी फट जाती है और उसके भीतरसे मूक-कीट निकल आता है।

मूक-कीट शिशुकीटके बराबर नहीं रहता, बल्कि यह सिकुड़कर छोटा हो जाता है और इसके ऊपरकी खोल काफ़ी कड़ी और चिकनी हो जाती है। इसका रंग प्रायः भूरा रहता है; पर वैसे ये हरे और सुनहले रंगके भी होते हैं। यह अवस्था भी थोड़े दिनों तक रहती है। इसके बाद एक दिन यह कड़ी खोल फट जाती है और उसमें से तितली बाहर निकल आती है। थोड़ी देर तक अपने पंख सुखानेके बाद हमारी सुन्दर तितली अपना छोटा जीवन बितानेके लिए हवामें उड़ जाती है। छोटा जीवन इसलिए कहना पड़ा कि तितलियोंके जीवन-कालके बारेमें अभी कुछ निश्चयपूर्वक भले ही न कहा जा सकता हो और कोई इनका जीवन दो-चार दिनका और कोई भले ही दो-चार महीनेका बताता हो; पर इतना तो प्रायः सभी विद्वान मानते हैं कि ये एक सालसे ज़्यादा नहीं जीतीं।

तितलियोंके शरीरको हम तीन मुख्य हिस्सोंमें बाँट सकते हैं—(१) सरका हिस्सा, जिसमें आँखें, रस चूसनेकी सूँड और मूँछें या स्पर्श-इन्द्रियाँ शामिल हैं। (२) धड़ या बीचका हिस्सा, जिसमें तितलियोंके पैर और पंखकी जड़ें जुटी रहती हैं। (३) निचला हिस्सा, जिसमें तितलियोंके पैर और मल-द्वार शामिल रहते हैं। तितलियोंकी आँखें बड़ी होती हैं, जो स्थिर रहती हैं और जिन्हें हम छोटे-छोटे अनेक छिद्रोंका समूह कह सकते हैं—जैसे किसी अँगूठीमें बहुत छोटे-छोटे नग जड़े हों। इनकी मूँछें या स्पर्श-इन्द्रियाँ लम्बी और सीधी होती हैं, जिनके सिरोंपर छोटी-छोटी घुण्डियाँ रहती हैं। ये लम्बाईमें चौथाई इंचसे आधा इंच या इससे कुछ बड़ी होती हैं, जो मथेपर से आँखोंके बीचमें से निकलकर आगेकी ओर बढ़ी रहती हैं।

तितलियोंकी सूँड, जिससे ये फूलोंमें से रस खींचती हैं, बहुत लम्बी होती है; पर यह गोलाईमें लिपटकर आगेकी ओर बढ़ी रहती है और देखनेमें ऐसी लगती है, जैसे घड़ीकी बालकमानी। इसका इस्तेमाल और जीवोंकी ज़बानकी तरह नहीं होता, क्योंकि तितलियाँ दरअसल कुछ खातीं नहीं। वे शिशुकीटावस्थामें जो-कुछ खाकर अपने शरीरमें जमा किए रहती हैं, उसीको नम भर रखनेके लिए इस स्प्रिंग-जैसी ज़बान या सूँडसे फूलोंका रस आदि चूस सकती हैं।

तितलियोंका धड़ तीन हिस्सोंमें बाँटा जा सकता है। पहलेमें से दोनों पैर निकले रहते हैं। दूसरेमें बिचले दोनों पैर निकलते हैं और इसीमें अगले परोंकी जड़ें जुटी रहती हैं। तीसरे या निचले हिस्सेमें से पिछले पैर निकलते हैं और इसीमें पिछले परोंकी जड़ें लगी रहती हैं। तितलियोंके पैरोंके नीचेका हिस्सा ब्रश-जैसा रहता है, जिससे ये सफ़ाईका काम लेती हैं।

तितलियोंके रंगीन पर, जिन्होंने इनको इतना महत्व दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा है, दोनों ओर बहुत महीन झिल्लियाँ-मढ़े-से रहते हैं, जिनके बीच-बीचमें बारीक नसोंका जाल सा फैला रहता है। तितलियोंकी दोनों बगलोंमें दो-दो पर रहते हैं, जिनकी बनावट भिन्न-भिन्न तरहकी होती है। धड़ या छातीके पासके हिस्सेको जल्द-जल्द सिकोड़ने और फैलानेसे ये पर हरकत करते हैं और तितलियाँ उड़ने लगती हैं। परोंके ऊपर बहुत ही बारीक धूल-कण जमे रहते हैं, जो अलग-अलग रंगके होते हैं। इन्हीं धूल-कणोंके इकट्ठा होनेसे तितलियोंके परोंका रंग और उनकी तरह-तरहकी क़िस्में हमें देखनेको मिलती हैं। पंखको हाथसे छूनेपर ये धूल-कण हाथमें लग जाते हैं और वह जगह खाली हो जाती है।

हम लोगोंको प्रकृतिने पाँच इन्द्रियोंसे युक्त किया है। देखने, सुनने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श-ज्ञानके लिए हम लोगोंको आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा मिली है, जिसमें स्नायुका जाल-सा फैला हुआ है। लेकिन भिन्न-भिन्न कीड़ोंको खाने, शत्रुओंसे अपनी रक्षा करने और जीवनकी अन्य आवश्यकताओंके लिए किन इन्द्रियोंकी ज़रूरत पड़ती है, इसका अभी तक कोई एक नियम नहीं बनाया जा सका है। इसलिए तितलियोंके बारेमें इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। तितलियोंकी आँखकी बनावट सैकड़ों हिस्सोंमें बँटी रहनेपर भी उतनी मुकम्मिल नहीं होती, जितनी हम लोगोंकी। वह केवल दो-तीन इंच तककी चीज़ें ही साफ़ तौरपर देख सकती है; लेकिन तितलियोंकी आँख अनेक हिस्सोंमें विभक्त होनेके कारण एक ही वस्तु उतनी ही संख्यामें दिखाई पड़ती है, जितनी संख्यामें आँख बँटी हुई होती है। एक गज़की दूरीकी चीज़ तो इनको एकदम धुँधली और लिपी-पुती-सी जान पड़ती होगी।

तितलियाँ किसी प्रकारकी आवाज़ नहीं कर सकतीं और न उनके सुननेकी ही इन्द्रियाँ होती हैं; लेकिन प्रकृतिने उन्हें घ्राणेन्द्रियसे हीन नहीं बनाया है, क्योंकि सुगन्धित फूलोंको कीड़ोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए जब प्रकृतिने सुगन्धि दी है, तो इन तितलियोंको उनके सूँघनेकी इन्द्रिय भला क्यों न मिलती? इसके अलावा कुछ नर तितलियाँ मादाको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए एक प्रकारकी खुशबू छोड़ती हैं, जिस कारण तितलियोंके लिए घ्राणेन्द्रियोंका होना ज़रूरी हो जाता है।

स्वादके लिए भी ऐसा अनुमान किया जाता है कि तितलियोंकी सूँड़ोंके पासका हिस्सा वास्तवमें उनके स्वाद लेनेकी इन्द्रियाँ हैं और स्पर्श अथवा अनुभवके लिए उनके शरीरमें स्नायुका जाल फैला हुआ है। इतना होते हुए भी उनकी प्रकृतिने सूँड़ोंकी शक्लकी जो स्पर्श-इन्द्रियाँ दी हैं, वे उनके बहुत कामकी हैं। घने जंगलोंमें इन्हीं सूँड़ोंके सहारे जहाँ वे बिना किसी पत्तीको छुए तेज़ीसे उड़ लेती हैं, वहीं इन सूँड़ोंके कट जानेपर इनका उड़ना कठिन हो जाता है और उनकी वही हालत हो जाती है, जैसे कोई आदमी अँधेरेमें छोड़ दिया गया हो।

तितलियाँ कुछ चिड़ियोंकी तरह स्थान-परिवर्त्तनके लिए दूरका सफ़र तो नहीं करतीं; पर कुछ ऐसी ज़रूर हैं, जो हमारे देश ही में थोड़ा-बहुत स्थान-परिवर्त्तन कर लेती हैं। शत्रुओंसे रक्षाका प्रश्न प्रायः सभी जीवधारियोंके लिए बड़े महत्वका है। सारे विश्वमें बलवानों और चालाकोंका निर्बलों और सीधे-सादोंके प्रति निरन्तर एक युद्ध चलता रहता है; क्योंकि इस प्रकारका संहार और विनाश प्रकृतिका समतुल्य क़ायम रखनेके लिए बहुत ज़रूरी है। तितलियाँ अभाग्यवश निर्बलों और सीधोंकी श्रेणीमें आती हैं; लेकिन अपनेको शत्रुओंसे बचानेके लिए इन्होंने कुछ-न-कुछ उपाय कर ही लिए हैं।

डिम्बावस्थामें तिलचट्टे आदि इनके परम शत्रु होते हैं, जिनसे बचनेके लिए जहाँ तक होता है, तितलियाँ पत्तियों आदिकी आड़में ही अंडे देनेका उद्योग करती हैं। डिंभ या शिशुकीटावस्थामें इनके शत्रुओंकी संख्या बढ़ जाती है और इस समय इनको सबसे अधिक डर चिड़ियोंसे रहता है। इसके लिए शिशुकीट प्रायः पत्तियोंके निचले हिस्सेकी ओर अपनेको छिपाए रहते हैं और अक्सर रातको ही बाहर निकलते हैं। कुछके शरीरका रंग पास-पड़ोसकी चीज़ोंसे मिलता होता है, जिससे दुश्मनोंकी निगाह उनपर न पड़े; कुछके शरीरपर रोएँ-से रहते हैं, जिससे शत्रु उन्हें खानेमें हिचकें; और कुछ ऐसे भी हैं, जो शत्रुपर एक प्रकारका ज़हरीला रस छोड़ते हैं। लेकिन इसके अलावा कुछने यह तरीक़ा भी अख्तियार किया है कि वे आक्रमणकारीको निकट देखकर ऐंठकर लिपटकर ज़मीनपर गिर पड़ते हैं, जिससे शत्रुओंके ग्रास बच जायँ।

ये कुछ तरीक़े तो बहुतसे शिशुकीट शत्रुओंसे बचनेके लिए करते ही हैं; लेकिन इन सबसे अधिक रोचक ढंग शिशुकीटोंका है, जो अपनेको चीटियोंके हवाले कर देते हैं। ये चीटियाँ इनकी शत्रुओंसे रक्षा करती हैं और उसके बदले ये उनको एक प्रकारका मीठा रस देते हैं, जो इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थियोंसे निकलता है। मूक-कीटावस्थामें शरीरके ऊपर कड़ी खोल चढ़ जानेके कारण मूक-कीटको शत्रुओंसे ज़्यादा डर नहीं रहता; लेकिन तितली बन जानेपर इनके शत्रुओंकी संख्या फिर बढ़ जाती है। छिपकलियाँ और चिड़ियाँ आदि फिर इनकी जानके गाहक हो जाती हैं और इसके लिए उन्हें अपने रंगीन परोंका ऐसा विकास करना पड़ा है कि वे जहाँ तक हो सके, आसपासके रंगोंके अनुरूप ही रहें। इसीलिए कुछ तितलियाँ बिल्कुल पत्तीके रंगकी होती हैं और कुछके परोंपर आँख-जैसा चिह्न बना रहता है, जिससे हमला करनेवाला शत्रु डर जाय। कुछ तितलियोंके शरीरसे एक प्रकारका ऐसा रस निकलता है, जिसे इनके शत्रु बहुत नापसन्द करते हैं और इनपर हमला नहीं करते, और कुछ तितलियोंने अपनेको इन्हीं तितलियोंके रंग-रूपका बनानेमें ऐसा विकास किया है कि ये बहुत-कुछ उन्हींकी शक्ल-सूरतकी हो गई हैं और इस प्रकार अपने शत्रुओंको धोखेमें डालकर इन्होंने अपनी रक्षाका एक उपाय निकाल लिया है।

तितलियोंके विवरणका अन्तिम भाग उनके पकड़ने, मारने और संग्रह करनेका है, जिसे मैं यहाँ इसलिए नहीं दे रहा हूँ कि एक तो उसके बारेमें विस्तृत वर्णनके बिना तितलियोंके संग्रहकर्ताओंको कोई विशेष लाभ नहीं होगा और फिर अधिकतर पाठक ऐसे ही होंगे, जो इन रंगीन जीवोंको मारकर उनका संग्रह करनेसे अधिक उनके विषयमें कुछ जानकारी हासिल करना ही ज़्यादा पसन्द करेंगे।

कालाकांकर (अवध)]

जापानकी युद्धकालीन अर्थनीति

डा० नन्दलाल

जापानकी युद्धकालीन अर्थनीतिकी किसी प्रकारकी आलोचना उसके अर्थ-कोषसे ही आरम्भ की जा सकती है। जब सन् १९३७ में चीन-जापान-युद्ध शुरू हुआ था, तभीसे जापानके अर्थ-कोषमें मुद्रा-प्रसारकी नीति बर्ती जा रही है। यदि जापानके सन् १९३१ के सम्पूर्ण खर्च १,४७०,०००,००० येनको आधार मान लिया जाय, तो सन् १९३६ से उसके खर्चमें निम्न-प्रकारसे वृद्धि हुई है :—

वर्ष	खर्च (दस लाख येनमें)	प्रतिशत वृद्धि
१९३६	२८२२	१५४
१९३७	५२४८	३५५
१९३८	८१३८	५५१
१९३९	९०९८	६१६
१९४०	११६३३	७८८
१९४१	१२८७५	८७२

ऊपरकी तालिकामें सन् १९३९ के पहलेके जो आँकड़े दिए गए हैं, वे वास्तवमें खर्च हुए थे। बाक़ीके जो आँकड़े हैं, उनके खर्च होनेका अन्दाज़ लगाया गया था। किन्तु इनमें फ़ौजका असाधारण रूपसे बढ़ा हुआ खर्च सम्मिलित नहीं है।

जब सन् १९३७ में मंचूरियाका युद्ध आरम्भ हुआ था, तो जापानका समूचा खर्च सन् १९३१ के खर्चसे ३५५ प्रतिशत अधिक था। दिसम्बर १९४१ में जब वर्त्तमान युद्ध छिड़ा, तो जापानका खर्च सन् १९३१ से ८७५ प्रतिशत और सन् १९३७ से क़रीब २५ गुना अधिक था। सन् १९४० में जापानी धारासभाकी जो बैठक हुई थी, उसमें चीनके युद्ध-खर्चके लिए सन् १९३९ की अपेक्षा १४००,०००,००० येन अधिकका बजट पास किया गया था। इस समय जापानका युद्ध-खर्च बहुत ज़्यादा बढ़ गया है। इसका पता इस बातसे आसानीसे चल जाता है कि सन् १९०४-०५ में रूस-जापान-युद्धमें जापानने १,७२१,०००,००० येन और गत महायुद्धमें ९००,०००,००० येन खर्च किए थे, जब कि चीनके युद्धमें उसे सन् १९४१ तक २२,३३५,०७७,००० येन व्यय करने पड़े हैं।

युद्धके इस बढ़ते हुए खर्चको पूरा करनेके लिए जापान-सरकारको करोंमें काफ़ी वृद्धि करनी पड़ी है। इन करोंमें प्रतिवर्ष वृद्धि की जाती रही है और निरीह जापानी जनतापर करोंका बोझ लादा जाता रहा है। पर करोंमें काफ़ी वृद्धि करके भी जापान अपने युद्ध-खर्चको पूरा कर सकनेमें असमर्थ ही रहा है। सन १९३६ की अपेक्षा लोगोंसे तीन गुना अधिक कर वसूल किया गया था। इसके अतिरिक्त जापान-सरकारने सार्वजनिक बोण्ड निकालकर असाधारण रूपसे बढ़ते हुए युद्ध-खर्चको पूरा करनेका प्रबन्ध किया। इसका परिणाम यह हुआ कि १९३७ से ही इन सार्वजनिक बौण्डोंकी संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ती गई और यहाँ तक बढ़ी कि सन् १९४१ में जापानी जनता और बैंकोंपर ३०,०००,०००,००० येन ज़बरदस्ती लाद दिए गए।

१९४१ में जापानको ३८,०००,००० येन अर्थात् अपने आम खर्चका १५·५ प्रतिशत भाग—सार्वजनिक बौण्डोंके सूद या खर्चके रूपमें चुकाने पड़े थे। सार्वजनिक बौण्ड जितनी रक़मके निकाले गए थे, उसमें से सिर्फ़ १९३७ में ५५·५ प्रतिशत, १९३८ में ८७·५ प्रतिशत और १९४० में ७८·६ प्रतिशत ही बिक पाए। जो बौण्ड बिक नहीं पाए, उन्हें बैंक आफ़ जापानके हवाले कर दिया गया और उनके बदलेमें उसे अधिकाधिक संख्यामें नोट निकालनेका अधिकार दिया गया।

चीन-जापान-युद्धके बादसे ही जापानकी आर्थिक समस्या सार्वजनिक बौण्डोंको बेचने तथा अधिक उत्पादनके लिए पूँजी जुटानेकी रही है। जापानके विदेशी विनिमयको नियन्त्रित करनेके लिए १९३३ से ही उचित व्यवस्था की जा रही है। इस व्यवस्थामें कितनी ही बार परिवर्त्तन किए गए हैं। इस सम्बन्धमें मार्च, १९४१ में जो विशेष क़ानून बनाए गए, वे बिल्कुल नये हैं। ये नये क़ानून इसलिए काममें लाए गए कि इस परिवर्त्तित स्थिति और युद्ध-कालीन मुद्रा-प्रसारका आसानीसे मुक़ाबला किया जा सके। पूँजीको उचित रूपसे उत्पादन-कार्यमें लगाया जाय, इसके लिए कितने ही और भी क़ानून जापान-सरकारको पास करने पड़े हैं। १९३८ से ही जापान-सरकार अपने आवश्यकीय साधनोंको जुटाने तथा वस्तुओंके उत्पादनमें वृद्धि करनेकी कोशिश करती रही है।

अक्तूबर, १९४० में बैंकोंकी पूँजीके चुकानेके सम्बन्धमें एक घोषणा की गई थी। जापान-सरकारने अपनी पूँजीको नियन्त्रित करनेके लिए एक योजना बनाई। इसके लिए सबसे पहले उसने बैंकोंकी पूँजीको सन्तुलित करनेका आयोजन किया और साथ ही चालू पूँजीको ठीक करनेके लिए सन्तुलनकी नीति निर्धारित की। इस प्रकार बैंकोंमें जमा और प्रचलित पूँजी सरकारके नियन्त्रणमें आ गई। इसके अतिरिक्त जनताके पास जो पूँजी जमा थी, उसे भी सरकारने हथिया लिया। इस प्रकार जनताने १९४० में ३८७,०००,००० येन सरकारको दिए। साथ ही जापानकी अन्य आर्थिक संस्थाओंको २८,२५३,२०९,००० येनके सार्वजनिक बौण्ड खरीदनेके लिए सरकारने बाध्य किया।

सार्वजनिक बौण्ड युद्धके असाधारण रूपसे बढ़े हुए खर्च और उत्पादन-कार्यके लिए बहुत ही कम हैं, इसलिए जापानी बैंक अधिकाधिक संख्यामें नोट जारी कर रहे हैं। बैंकोंमें सार्वजनिक बौण्ड अधिक-से-अधिक संख्यामें आते हैं और बैंक आफ़ जापान, बैंक आफ़ ताइवान, बैंक आफ़ कोरिया और चीनमें जापान-अधिकृत बैंक उनके बदलेमें नोट निकालते हैं। जहाँ कहीं जापानी फ़ौज जाती है, वहाँ फ़ौजके लिए विशेष रूपसे येन चलाए जाते हैं।

इस विनाशकारी युद्धमें साधनोंको अक्षुण्ण बनाए रखना आवश्यक है। चीनकी लड़ाई छिड़नेके बादसे ही जापान-सरकारने चावल और अन्य अनाजोंका उत्पादन बढ़ानेवाली चीज़ोंपर नियन्त्रण करना आरम्भ कर दिया था। उसी समयसे चीज़ोंकी बिक्री, वितरण, खपत, यातायात और आयात-निर्यात-पर कठोर नियन्त्रण किया जाने लगा। जब जापान त्रिराष्ट्र-संघमें सम्मिलित हुआ, तो अमरीका आदि देशोंसे उसके यहाँ मालका आना प्रायः बन्द-सा हो गया। उधर मज़दूरोंकी कमीके कारण उत्पादनमें वृद्धिकी जापानकी जो योजना थी, उसमें भी कितनी ही बाधाएँ आ उपस्थित हुईं। साथ ही मालवाही जहाज़ोंकी कमीके कारण उसकी दिक़्क़तें और भी बढ़ गईं। सन् १९३९ में जापानका उत्पादन अपनी चरम-सीमापर पहुँच गया था; पर उसके बादसे उत्पादन-शक्ति घटने लग गई। जापानके अर्थ-सचिवकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि १९३७ से बाहरसे मालका आना बिलकुल घट गया, जब कि अत्यधिक परिमाणमें कारखानोंके लिए कच्चे मालका आयात हुआ था।

जीवनोपयोगी चीज़ोंकी कमीके कारण युद्ध-कालमें जापानमें सभी चीज़ोंपर सरकारका नियन्त्रण है। जापान-सरकारको बाध्य होकर जापानी जनताकी रहन-सहनके स्टैण्डर्डको नीचे करना पड़ा है। चूँकि जापानकी प्रत्येक चीज़ सीमित है और प्रत्येक चीज़ सरकारके प्रचलित सर्टिफिकेटसे खरीदनी पड़ती है, इसलिए छोटे-छोटे व्यापारियों और उद्योग-धन्धेवालोंको ज़बरदस्त हानि उठानी पड़ी है। इसका कितने ही व्यापारियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है और कितने ही कारखाने बन्द हो गए हैं। इस कारण वहाँ लोगोंकी बेकारीकी समस्या विकट रूपसे उठ खड़ी हुई है। तोक्यो बिज़नेस-इण्डस्ट्रियल इन्स्टिट्यूटके कथनानुसार तोक्योके १,११८ व्यापारिक प्रतिष्ठानोंमें से ७८१ या ७२·२ प्रतिशत ही आज चालू हैं। जो व्यापारिक प्रतिष्ठान बन्द हो गए हैं, उसका कारण लागत मूल्यपर कड़ा नियन्त्रण, मज़दूरोंकी कमी तथा मालका न मिलना ही है।

जापानमें चीज़ोंकी दर इतनी चढ़नेका कारण येनका मूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, बल्कि चीज़ोंका अभाव है। चीनके साथ युद्ध छिड़नेपर भी जापानी येनका विदेशी विनिमय कड़े नियन्त्रणकी वजहसे क़ायम रखा गया था। अगस्त, १९३७ में जापानने संयुक्त-राष्ट्र अमरीकासे २३·७१६ की दरपर विनिमयका एक समझौता किया था। इस समझौतेके कारण शंघाईमें भी येनकी दर तो नहीं गिरी थी; पर वस्तुओंके दाम चढ़ गए थे। दिसम्बर, १९४१ में प्रशान्त महासागरका युद्ध छिड़नेके साथ ही जापानमें चीज़ोंके मूल्यमें और भी अधिक वृद्धि हुई होगी। जब सितम्बर, १९३९ में यूरोपीय युद्ध आरम्भ हुआ था, तो जापानमें चीज़ोंके दाम और भी चढ़ गए थे। इस बढ़ते हुए मूल्यमें कमी करनेके लिए जापान सरकारने काफ़ी प्रयत्न किए थे; किन्तु सब व्यर्थ साबित हुए। इसी समय चीज़ोंके मूल्यपर नियन्त्रण रखनेकी कोशिश की गई थी; पर अन्तमें उसकी यह नीति भी बेकार साबित हुई। जब तक जापानको वस्तु-उत्पादनके और अधिक साधन प्राप्त नहीं होते, तब तक उसके मूल्यका प्रश्न हल करना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। हाल ही में कोरियामें उद्योग-धन्धोंकी वृद्धिकी उसने जो चेष्टा की है, कच्चे माल और पूँजीके अभावमें उसका यह प्रयत्न भी निष्फल ही सिद्ध होगा।

चीन और गत वर्ष सुदूर-पूर्वके जिन भागोंपर जापानने अधिकार किया है, वे कच्चे माल और सस्ते मज़दूरोंके लिए काफ़ी प्रसिद्ध हैं। पर जापानकी सैनिक एवं शासन-नीतिकी जो प्रतिक्रिया हम जब-तब सुनते हैं, उसके द्वारा यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इसका लाभ वह आसानीसे नहीं उठा सकता। प्रथम तो जो भाग जापानके हाथ लगे हैं, उनमें उत्पादनके साधन नष्ट-भ्रष्ट कर दिए गए हैं, जिन्हें पुनः तैयार करनेमें काफ़ी समय और श्रमकी ज़रूरत होगी। दूसरे ये स्थान इतने बड़े और फैले हुए हैं कि युद्धको जारी रखते हुए जापानके पास इतने आदमी कहाँ हैं, जिनकी सहायतासे वह इनसे भरपूर लाभ उठा सके? ग़ैर-जापानी अधिवासी उसकी रीति-नीतिके कितने खिलाफ़ हैं, यह उनके द्वारा जापानके युद्ध-प्रयत्नोंको पहुँचाई जानेवाली हानि और व्यापक गुरिल्ला-युद्धोंसे स्पष्ट है।

अतएव यह समझना सरासर भूल है कि इतने बड़े भू-भागपर अधिकार हो जानेसे जापानको विशेष लाभ हुआ है, जिससे कि वह अपनी युद्धकालीन अर्थ-नीतिको सन्तुलितकर असाधारण मुद्रा-प्रसार, चीज़ोंकी चढ़ती हुई दरों और जन-शक्तिके अभावसे पैदा हुए आन्तरिक संकटको दूर कर सकेगा। और जब जापानको इन सब स्थानोंको छोड़कर पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी, तब उसकी अर्थनीतिक दुर्दशा कैसी होगी, इसकी अभी कल्पना भी नहीं की जा सकती। कदाचित् इसी दुर्घटनासे बचनेके लिए जापानके सेनाध्यक्षोंको अब आक्रमणोंके बजाय रक्षात्मक युद्धपर ही सन्तोष करना पड़ रहा है।

मृत्तिका का दीप

श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

हाय, जी भर देख लेने दो मुझे, मत आँख मींचो;
और उकसाते रहो बाती, न अपने हाथ खींचो।
प्रात जीवन का दिखा दो,
फिर मुझे चाहे बुझा दो,
यों अँधेरेमें न छीनो
हाय, जीवन-ज्योति के कुछ क्षीण कण अवशेष!
मृत्तिका का दीप तब तक जलेगा अनिमेष,
एक भी कण स्नेह का जब तक रहेगा शेष!

- २ -

तौहते हो क्यों भला जर्जर रुई का जीर्ण धागा?
भूल कर भी तो कभी मैंने न कुछ वरदान माँगा।
स्नेह की बूँदें चुवाओ,
जी करे जितना जलाओ,
हाथ उर पर धर बताओ,
क्या मिलेगा? देख मेरा धूम्र-कालिख वेष?
मृत्तिका का दीप तब तक जलेगा अनिमेष,
एक भी कण स्नेह का जब तक रहेगा शेष!

- ३ -

शान्ति-शीतलता अपरिचित, जलन में ही जन्म पाया,
स्नेह-आँचल के सहारे ही तुम्हारे द्वार आया,
और फिर भी मूक हो तुम;
यदि यही, तो फूँक दो तुम;
फिर किसे निर्वाण का भय,
जब अमर ही हो चुकेगा जलन का सन्देश!
मृत्तिका का दीप तब तक जलेगा अनिमेष,
एक भी कण स्नेह का जब तक रहेगा शेष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धके अन्तिम दिन

श्री सूर्यनारायण चौधरी

अश्वघोष-कृत 'बुद्ध-चरित' भगवान बुद्धकी एक सुन्दर जीवनी है, जो आजसे लगभग दो हज़ार वर्ष पहले लिखी गई थी। अब इसका पूर्वार्द्ध[1] ही मूल संस्कृतमें बचा हुआ है; किन्तु अविकल तिब्बती अनुवादमें सम्पूर्ण 'बुद्ध-चरित' सुरक्षित है। इस अनुवादके आधारपर डा० जौन्स्टनने नष्ट हुए उत्तरार्द्धका अंगरेज़ी-अनुवाद किया है। इस उत्तरार्द्धका चतुर्थांश वैशालीमें भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए सुन्दर उपदेशों एवं उनके अन्तिम निश्चयके वर्णनसे भरा है। इसी अंशका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

एक बार भगवान बुद्ध पाटलिपुत्र आए। उस समय मगध-राज्यके मन्त्री वर्षकारने वैशालीके लिच्छवियोंको शान्त रखनेके लिए वहाँ एक क़िला बनवाया था।[2] पाटलिपुत्रमें गंगा पार करके बुद्ध कुटी नामक गाँवमें गए। वहाँसे नादी और नादीमें एक रात ठहरकर वे वैशाली गए। वहाँ वे अम्रपाली वेश्याके एक सुन्दर उपवनमें ठहरे। 'तथागत यहीं हैं', यह जानकर अम्रपाली वेश्या एक साधारण रथपर सवार होकर अत्यन्त प्रसन्न चितसे तथागतके दर्शनार्थ चली। देव-पूजन-समयकी एक कुलीन स्त्रीके समान वह स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहने हुए थी और मालाओं या अंगरागसे रहित थी। उसे दूरसे ही आते देखकर सुगतने अपने शिष्योंको आदेश दिया—"यह अम्रपाली, जो दुर्बलोंका मानसिक ताप है, समीप आ रही है। स्मृति-रूपी रसायनसे अपने-अपने मनको वशमें रखते हुए तुम लोग ज्ञानमें स्थित हो जाओ। स्मृति एवं ज्ञान-रहित पुरुषके लिए स्त्रीके पड़ोसकी अपेक्षा साँप या खुली तलवारवाले शत्रुका पड़ोस अच्छा है। बैठी हो या सोई, टहलती हो या खड़ी, चित्र-लिखित ही क्यों न हो, स्त्री हर हालतमें पुरुषोंके हृदय हरण करती है। किन्तु स्त्रीको अनित्य, अनात्म, दुःखमय और अपवित्र समझनेसे पण्डितोंके चित्त उसे देखकर अभिभूत नहीं होते।"

मुनिके इस प्रकार उपदेश कर चुकनेपर अम्रपाली हाथ जोड़े उनके समीप आई और सिर नवाकर बड़ी श्रद्धासे उन्हें प्रणाम किया। उसके बैठनेपर मुनिने उससे कहा—"तुम्हारा चित्त धर्माभिमुख है, यही तुम्हारा सच्चा धन है; क्योंकि जीवलोक अनित्य है, अतः धर्मको छोड़कर कोई दूसरी सम्पत्ति नहीं। रोग स्वास्थ्यको गिराता है, उम्र जवानीको काटती है और मृत्यु जीवन अपहरण करती है; किन्तु धर्मके लिए ऐसी कोई विपत्ति नहीं। सुखकी खोजमें मनुष्य केवल प्रियसे वियोग और अप्रियसे संयोग होता है, इसलिए धर्म ही सर्वोत्तम मार्ग है।"

यह उपदेश सुनकर अम्रपालीको अपनी जीविकाके साधनोंसे घृणा हो गई और देह झुकाकर प्रणाम करते हुए उसने निवेदन किया—"भगवान अपने शिष्योंके साथ भिक्षाटनका समय मेरे लिए सफल करें।" उन्होंने मौन धारणकर अपनी सम्मति दी।

अम्रपालीके चले जानेपर लिच्छवि भिन्न-भिन्न रंगोंके बहुमूल्य आभूषण पहने मुनिके दर्शनके लिए आए। वहाँ पहुँचकर वे रथोंसे उतर गए और सिर नवाकर उन्हें प्रणाम किया। सिंह आदि लिच्छवियोंके बैठ जानेपर मुनिने उनसे कहा:—

"मैं वृज्जियोंको भाग्यवान समझता हूँ कि उनके अधिपति आप हैं, जो धर्मके ज्ञाता एवं विनयके इच्छुक हैं। आपके सौन्दर्य-भव्य वस्त्रों, आभूषणों या हारोंकी वैसी चमक नहीं है, जैसी शील आदि गुणोंकी। यह शील हमेशा आपमें रहना चाहिए। शीलका फल महान् है—सन्तुष्ट चित्त, सम्मान, लाभ, यश, विश्वास, आनन्द एवं पारलौकिक सुख। जो मनुष्य यशस्वी, रूपवान और धनवान होकर भी शीलसे विमुख है, वह उस वृक्षके समान है, जो फूला-फला होनेपर भी काँटोंसे भरा हो। कोई मनुष्य महलमें रहता हो और उज्ज्वल वस्त्र आभूषण पहनता हो; किन्तु यदि वह शीलवान है, तो उसकी गति महर्षिकी-सी है। वे सब छद्मचारी (कपटी) नर्क जायँगे, जिन्होंने काषाय या वल्कल वस्त्र पहनते हुए ऋषियोंकी भाँति तरह-तरहसे केशोंको सजाते हुए भी शील नष्ट कर लिया है। यद्यपि कोई मनुष्य प्रतिदिन तीन बार तीर्थमें नहाता हो, अग्निमें दो बार आहुतियाँ डालता हो, अग्निके तापसे दग्ध होता हो, तो भी शीलवान न होनेपर

---

१. 'बुद्ध-चरित' (मूल संस्कृत और प्रथम हिन्दी-अनुवाद) संस्कृत-भवन (काश्मा, पूर्णियाँ) से हालमें ही प्रकाशित हुआ है।

२. मगध-राज्य गंगाके दक्षिण आधुनिक पटना और गया ज़िलोंमें फैला हुआ था और लिच्छवियोंका राज्य गंगाके उत्तर आधुनिक तिरहुत-कमिश्नरीमें। वैशाली लिच्छवियों (के वृज्जि-देश) की प्रधान नगरी थी, जिसका तादात्म्य मुज़फ़्फ़रपुर ज़िलेके बसाढ़ नामक स्थानसे किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नहीं है। यद्यपि वह हिंस्र पशुओंके आगे अपना शरीर समर्पित करता हो, पर्वतपर से अपनेको गिराता हो, आग या पानीमें कूदता हो, तो भी शीलवान न होनेपर वह कुछ नहीं है। यद्यपि वह थोड़ा-सा फल-मूल खाकर रहता हो, मृगके समान तृण चरता हो, हवा पीकर जीना चाहता हो, तो भी शीलवान न होनेपर वह शुद्ध नहीं हो सकता। दुःशील मनुष्य पशु-पक्षियोंके समान है। वह धर्मका पात्र नहीं, बल्कि पानीके चूते हुए घड़ेके समान है। इहलोकमें उसे भय, अयश, अविश्वास एवं असन्तोष मिलते हैं और परलोकमें वह विपत्ति भोगेगा।

"उन्नति चाहनेवाला आदमी पहले अपनेको आत्म-भाव (अहंभाव) से मुक्त करे; क्योंकि आत्म-भाव गुणोंको वैसे ही छिपाता है, जैसे धुआँ आगको। गुण, वास्तवमें होनेपर भी, अभिमानसे अभिभूत होकर नहीं चमकते, जैसे बादलोंसे ढँके हुए तारे, सूरज व चाँद नहीं चमकते। औद्धत्य लज्जाको नष्ट करता है, शोक धैर्यको, बुढ़ापा सौन्दर्यको और आत्म-भाव गुणोंके मूलको। वह मनुष्य बुद्धिमान नहीं समझा जाता, जो अनित्य जीवनमें अपनेको सबसे अच्छा, न कि बुरा, समझता है। यद्यपि यह आकृति ही अस्थिर है तथा मनुष्य अनित्य व विनाशधर्मा है, तो भी 'मैं ही' (अहमेव) यह सोचता हुआ वह अभिमान करता है, इसमें विवेकशून्यताके अतिरिक्त और क्या है?

"कामराग प्रबल, प्रच्छन्न एवं सहजात शत्रु है, जो बुराई करनेवाले दुश्मनके समान मित्रताके वेशमें प्रहार करता है। कामरागकी अग्नि तथा साधारण अग्नि समान रूपसे दहनशील हैं; किन्तु अग्निकी वैसी शक्ति नहीं है, जैसी कि कामरागकी अग्निकी; क्योंकि अग्नि जलसे शान्त हो जाती है, पर कामरागकी अग्नि परिपूर्ण सरोवरसे भी नहीं। कामरागके कारण मनुष्य सुख खोजता है और सुखके लिए बुराई (अकुशल कर्म) करता है। बुराई करनेसे नरकमें गिरता है। कामरागके समान शत्रु नहीं।

"क्रोध चित्तका घना अन्धकार है, मित्रताका प्रधान शत्रु है तथा सम्मान-विनाशक और अपमानजनक है। इसलिए क्रोध न कीजिए। यदि आप क्रोध करते भी हों, तो इसे छोड़ दीजिए। जैसे दंशधर्मा साँपके पीछे आप नहीं पड़ते, वैसे ही क्रोधके पीछे न पड़ें।"

मुनिके ऐसे उपदेशसे लिच्छवियोंको आनन्द हुआ और उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने यहाँ पधारनेके लिए उनसे अनुरोध किया। किन्तु मुनिने उनसे कहा कि अम्र-पालीकी पारी पहले आई और कुल-पुत्रोंके निमित्त नीच कुल-वालोंको उनके अधिकारोंसे वंचित नहीं करना चाहिए। उस स्त्रीने पहले ही आकर उन लोगोंको वंचित कर दिया, यह सोचकर उसके प्रति वे मन-ही-मन कुढ़ने लगे। किन्तु तथागतके उपदेश करनेपर वे वैसे ही शान्त हो गए, जैसे मुनियोंके मन्त्रोंका ठीक-ठीक उच्चारण करनेसे साँपका विष शान्त हो जाता है। रात बीतनेपर अम्रपालीने मुनिका आतिथ्य किया।

वर्षावास करनेके लिए तथागत वेणुमती गाँवमें गए। वहाँ वर्षा-ऋतु बिताकर वे वैशाली लौट आए और मर्कट-जलाशयके

ताँबे और गिलटके मिश्रणसे बनी बुद्धकी एक मूर्त्ति।

किनारे बैठ गए। जब वहाँ वे एक वृक्षके नीचे बैठे विराज रहे थे, तब मार (शैतान) ने उनके समीप जाकर कहा—"पूर्वमें, हे मुनि, नरंजना नदीके तीरपर जब मैंने आपसे कहा था, 'आपने अपना काम पूरा कर लिया, निर्वाण प्राप्त कीजिए', तब आपने वहाँ उत्तर दिया था—'मैं तब तक निर्वाण प्राप्त न करूँगा, जब तक पीड़ित प्राणियोंकी रक्षा नहीं कर लेता हूँ और उनके द्वारा पाप-परित्याग (दोष-क्षय) नहीं करा लेता हूँ।' अब बहुतोंने मुक्ति (निर्वाण) पाई या पाना चाहते हैं या पायँगे, इसलिए आप निर्वाण प्राप्त कीजिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसपर उन्होंने उत्तर दिया—"तीन महीनेमें मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा, अतः अधीर मत हो।"

अपने गुरुका यह निश्चय सुनकर आनन्दका चित्त विचलित हो उठा। उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। उसे सान्त्वना देते हुए भगवानने कहा—"पहचानो, आनन्द, जगत्के वास्तविक स्वभावको। यह जगत् अनित्य है। यहाँ जो-कुछ उत्पन्न हुआ है, वह सब अनित्य है। किसीके लिए भी नित्यत्व प्राप्त करना शक्य नहीं। मैंने सम्पूर्ण मार्ग तुम्हें दृढ़तापूर्वक बतला दिया है। मेरे उस पार चले जानेपर जो लोग इसपर स्थित रहेंगे, वे उत्तम, अहार्य एवं नैष्ठिक पद प्राप्त करेंगे।"

मुनिके निर्वाण प्राप्त करनेका निश्चय सुनकर लिच्छवियोंको अत्यन्त दुःख हुआ। सब कामोंको छोड़कर वे मुनिके समीप दौड़े आए और प्रणामकर एक ओर खड़े हो गए। मुनिने उनसे कहा—"मेरे प्रति तुम लोगोंके चित्तमें जो-कुछ हो रहा है, वह सब मैं जानता हूँ। यदि मुझसे कुछ सुनकर तुम लोगोंने ज्ञान प्राप्त किया है, तो अपनेको शान्त करो और दुःखी न हो। यह जीवन ही असार और नश्वर है। वसिष्ठ, अत्रि और दूसरे सभी तपस्वी कालके वशीभूत हुए। पृथ्वीपति मान्धाता, वासव-तुल्य वसु और भाग्यशाली नाभाग पंच महाभूतोंमें मिल गए। सूर्य अपने स्थानसे च्युत होता है, सम्पत्तिशाली देवगण पृथ्वीपर आए, शत-शत इन्द्र चले गए, कोई सत्य नहीं रहता। अतीतके सभी बुद्ध उन दीयोंके समान, जिनका तेल क्षीण हो गया हो, निर्वाणको प्राप्त हुए और भविष्यके सभी बुद्ध उन अग्नियोंके समान, जिनका जलावन जल गया हो, निर्वाणको प्राप्त होंगे। अब मुझे भी यहाँसे प्रस्थान करना चाहिए, क्योंकि मैं इस व्यर्थ शारीरिक अस्तित्वको घसीटूँ, इसका कोई कारण नहीं।"

मुनिके प्रस्थान करते समय वह रमणीय वैशाली निर्जन हो गई। गजराजके समान अपना सारा शरीर घुमाकर नगरकी ओर देखते हुए मुनिने ये वचन कहे—"हे वैशाली! अपने जीवनके शेष भागमें मैं तुम्हें फिर न देखूँगा, क्योंकि मैं निर्वाणकी ओर जा रहा हूँ।"

रात, तेरे रंग गहरे !

श्री रूपकुमारी बाजपेई

रात, तेरे रंग गहरे।
एक मधु-स्मित सज अधरपर,
चल पड़ी दुनिया दियोंकी नींदके अभिसार-पथपर।
आज तो चम्पक-कलीका भी मृदुल सौरभ न लहरे!
छू न लेना कहीं रे अलि!
मोतियोंकी लड़ी-जैसी खिलखिलाती गुलबकावलि,
चाँदनीसे धुल धवल जो ताल-तटपर गई सो रे!
दूर जनपथपर गई मिट,
शून्यसे सहमी हुई आतुर पगोंकी विकल आहट।
तैरती जो नील जलपर रजत-किरणोंके सहारे!
हवाने कुछ आ सुनाया,
सिमिट अपनी गोदमें मुँह लाजवन्तीने छुपाया।
कर दिए धीमे झकोरोंने न-जाने क्या इशारे!
ध्रुव दिखा वह पार देता,
ओसके गहने जहाँ नभ धरणिको उपहार देता।
छलक जाते मदिर तेरे गीतके लय-भार सारे।
नित नई, ओ चिर-पुरातन!
अजिरके चिर-देवताकी रूपमयि, तरुणी पुजारिन!
कौन स्वप्निल मधुरिमाके बने री! शृंगार तेरे?
रात, तेरे रंग गहरे!

बबूल

श्री तेजनारायण काक

हमारे घरके पूर्वी बरामदेसे एक बड़ा-सा बबूलका पेड़ दिखाई देता है। लोग कहते हैं—उसपर भूतोंका डेरा है। उसके चारों ओर कोई पेड़-पौधा नहीं है। दूर-दूर तक सुनसान, पथरीली, उजाड़ मरुभूमि फैली हुई है। गर्मी दोपहरीमें जलती हुई हवाके तेज़ झोंके जब उसकी टहनियोंको ज़ोर-ज़ोरसे झकझोरते हैं, तो घरके किसी कोनेमें दुबका पालतू कुत्ता बड़े ज़ोरसे भोंक उठता है। रातोंमें बबूलकी काली, डरावनी ठठरीसे भयभीत होकर कोई सयाना बच्चा या समझदार आदमी भूलकर भी इस बबूलके आनेका साहस नहीं करता।

किन्तु प्रत्येक पूर्णिमाकी संध्याको जब चाँद क्षितिजपर धीरे-धीरे ऊपर उठता है और उस बबूलकी कँटीली डालोंमें उलझकर बड़ी देर तक जैसे वहीं अटक-सा जाता है, तो सबसे छोटी बच्ची चुपचाप बरामदेमें आकर मेरी गोदमें सो जाती है और बार-बार मुझसे चाँदको तोड़ लानेकी हठ करती है। उस समय उसकी प्रत्येक शाखासे जैसे पिघले हुए चाँदकी फुलझड़ियाँ-सी झरने लगती हैं और उसपर बसेरा लेनेके लिए उड़-उड़कर आनेवाले कौओंका कर्कश स्वर भी कानोंको बुरा नहीं लगता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमिल चित्र

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

एक दुमंज़िले मकानके ऊपरी कमरेमें एक पलंगपर बैठी हुई अलका अपने नन्हेके लिए ऊनका एक स्वेटर बुन रही थी। उसी कमरेके एक कोनेमें अपने खिलौनोंसे उलझा हुआ नन्हे कभी किसी खिलौनेको अपनी छातीसे लगा लेता, कभी किसीको हवा-सँवारकर अपने सामने बैठा देता और कभी किसीको क्रोधमें आकर ज़ोरसे धरतीपर पटक देता। यों अलकाका ध्यान अपने इस नन्हेकी तरफ़ शायद् अभी न भी जाता; लेकिन नन्हेने जब मिट्टीकी एक गुड़ियाको धरतीपर दे मारा, तो अलकाका ध्यान अनायास ही उसकी ओर आकृष्ट हुआ।

उसने देखा कि मिट्टीकी जिस गुड़ियाको नन्हेने पटक दिया है, वह फूट चुकी है। नन्हेकी मुद्रापर अचानक किसी परिताप की रेखा देखकर अलकाको कुछ आश्चर्य हुआ; लेकिन इस मामलेमें उसने चुप रहना ही ठीक समझा। जो कहीं वह कुछ बोल देती और नन्हे यह समझ पाता कि उसकी अम्माने उसका यह व्यापार देख लिया है, तब तो नन्हेकी मुद्रापर दीख पड़नेवाली रेखाएँ किसी पुतलीघरके भोंपूकी तरह चीख उठतीं और तब उसे चुप करना अलकाके लिए एक असाध्य-सी बात हो जाती।

अलका चुपचाप स्वेटर बुननेमें लगी रही। नन्हेने कनखियोंसे दो-एक बार उसकी तरफ़ देखा। फिर यह सोचकर कि वह तो अपने काममें लगी हुई है, उसने शायद यह सब देखा ही नहीं; वह चुपचाप उठा और एक आलेमें रखी गोंद-दानी उठाई। वह फूटी गुड़ियाको गोंदसे चिपकाकर पूर्ववत् बना लेनेकी चेष्टा करने लगा। यह देखकर अलकाने ज़ोरोंसे आती हुई अपनी हँसीको यत्नपूर्वक रोका। वह जानती थी कि वह हँसी नहीं और नन्हे एकदम बिगड़ पड़ेगा। उसका स्वेटर बुनना अपने-आप रुक गया।

नन्हे जब फूटी गुड़ियाको चिपका सकनेमें सफल न हो सका, तो उसकी झुँझलाहट और भी बढ़ गई। लेकिन गुड़ियाका मोह भी तो कोई अस्तित्व रखता था। अनमना-सा वह अपनी अम्माके पास पहुँचा और एक अपराधीकी तरह धीमेसे बोला—'अम्मा!' अलका चुप रही। उसने जान-बूझकर नन्हेकी पहली पुकारपर कोई ध्यान नहीं देना चाहा। यह निर्मम उसे इसलिए करना पड़ा कि नन्हे अच्छी तरह यह समझ ले कि उसकी अम्माने मानो यह सब अभी तक देखा ही नहीं। एक क्षण रुककर नन्हेने वह फूटी गुड़िया अलकाके सामने रखते हुए कहा—'अम्मा, यह फूट गई!'

'फूट गई!' अलकाने कहा—'कैसे फूट गई, नन्हे?'

नन्हे बिना कोई उत्तर दिए चुप-चाप खड़ा रहा। अलकाने उसके सिरपर हाथ फेरते हुए प्यारसे कहा—'फूट जाने दे, बेटा! दूसरे खिलौने तो अभी ढेर-सारे रखे हैं। मेरा नन्हे बड़ा राजा बेटा है। अब वह दूसरे खिलौनोंके साथ खेलेगा।'

पर माताकी यह स्नेह-वाणी सुनकर फूटी गुड़ियाके प्रति नन्हेकी ममता जैसे उमड़ आई और उसकी आँखोंमें आँसुओंकी बूँदें छलक उठीं। वह चुपचाप कोनेमें गया और वह गोंद-दानी तथा फूटी गुड़िया लेकर अपनी अम्माके पास आया। रुद्ध कण्ठसे उसने कहा—'अम्मा, इसे जोड़ दो।'

यह सुनकर अलकाको ज़ोरोंकी हँसी आ गई। नन्हेका चुम्बन लेकर उसने उसे गोदमें बिठा लिया और कहा—'यह फूटी गुड़िया अब नहीं जुड़ सकेगी, बेटा! तुझे दूसरी मँगा देंगे।' यह सुनकर नन्हेकी आँखोंमें झिलमिलाती हुई अश्रु-बूँदें बड़े-बड़े मुक्ता-कण बनकर टपकने लगीं और वह ज़ोरोंसे रोने लगा। रोते-रोते ही उसने कहा—'इसे जोड़ दो, अम्मा!'

अलका परेशान थी कि उस फूटी गुड़ियाको वह कैसे जोड़े? उसने नन्हेको गोदमें लेकर छतपर टहलते हुए कहा—'नन्हे, तुम राजा बेटा होकर यों रोते हो! छीः छीः, चलो, तुम्हारे चाचासे कहकर अभी दूसरी गुड़िया मँगवाए देती हूँ।'

- २ -

विनोद अभी-अभी कालेजसे लौटकर आया था और अपने कपड़े बदलकर टेनिस खेलनेके लिए कहीं जानेकी तैयारीमें था। लेकिन नन्हेको सिसकता हुआ देखकर वह फौरन दरवाज़ेपर खड़ी हुई अपनी भाभीके पास पहुँचा और नन्हेको उसकी गोदसे लेते हुए बोला—'क्या हुआ नन्हे? तुम रो क्यों रहे हो?'

नन्हे तो कुछ न बोला; पर अलकाने विनोदसे सारी कहानी कह सुनाई। विनोदने कहा—'तो नन्हे, तुम्हें एक गुड़िया चाहिए?' और अपनी भाभीकी तरफ़ देखकर मुस्कराते हुए बोला—'पर अभीसे गुड़िया लेकर तू क्या करेगा?'

अलकाने अपने देवरका परिहास समझते हुए कहा—'देख, तेरे चाचाके पास तो अभी तक भी कोई गुड़िया नहीं है। जब तू चाचाकी तरह बड़ा हो जायगा, तब चाचा तेरे लिए कोई अच्छी-सी गुड़िया ले आयँगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचारा नन्हे इस हास-परिहासको क्या समझे ? उसने फौरन कहा—'नहीं, मैं तो अभी लूँगा।'

'लो, अब बोलो, छोटे बाबू !' अलकाने मुस्कराते हुए कहा—'तुम भले ही अभी तक किसी गुड़ियाकी आवश्यकता न महसूस करते हो ; लेकिन मेरा नन्हे तो अभीसे गुड़िया चाहता है।'

'क्यों न चाहेगा ?' विनोदने एक चुटकी लेते हुए कहा—'वह सदा तुम्हारे पास जो रहता है।'

इसी समय नन्हेने कहा—'चाचा, चलो न।'

'अच्छा, चलता हूँ, नन्हे !' अब मैं टेनिस खेलने नहीं जाऊँगा। फिर एक क्षण रुककर अलकासे कहा—'हाँ, भाभी, वह फूटी गुड़िया है कहाँ ? वह मुझे दे दीजिए, ताकि बाज़ारमें देखकर नन्हें उसी तरहकी गुड़िया ले सके।'

'वह तो ऊपरके कमरेमें ही पड़ी है।'—कहकर अलका फौरन ऊपर गई और वह फूटी गुड़िया ले आई।

विनोदने वह फूटी गुड़िया अपने कोटकी जेबमें डाल ली और नन्हेको साइकिलपर बैठाकर बाज़ार चल दिया।

- ३ -

अलका आज सब तरहसे सुखी है। उसे किसी बातकी कमी नहीं है। सुन्दर, स्वस्थ और विद्वान पति उसने पाया है। मोहन बाबू उसे अपनी आँखोंकी पुतली समझते हैं। वे उसका सम्मान भी काफ़ी करते हैं। उनका अनुज विनोद भी अलकाकी किसी बातको कभी सपनेमें भी नहीं टालता। वह अलकाको अपनी स्वर्गीया माताकी तरह श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखता है। नन्हेको तो वह जैसे अपना छोटा सहोदर ही समझता है। नन्हेकी किसी भी हठको पूरा करनेमें उसे जैसे असीम आनन्दका अनुभव होता है। कितनी ही बार मोहन बाबू और अलका कह चुके हैं—'बच्चेकी प्रत्येक हठ पूरी करके तुम उसे बिगाड़ रहे हो।' लेकिन विनोद इन बातोंसे कभी म्लान नहीं होता।

जब विनोद नन्हेको लेकर बाज़ार गया, तो अलका अपने दुमंज़िले कमरेकी खिड़कीसे उसे काफ़ी देर तक देखती रही। जब वह आँखोंसे ओझल हो गया, तो वह दूर खड़े हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको देखने लगी। नील क्षितिजपर बादलोंके कुछ टुकड़े पृथ्वीका आलिंगन करते हुए प्रतीत हो रहे थे। यह देखकर अलकाको लगा कि नीलाकाश और पृथ्वीका यह सम्मिलन यथार्थमें दृष्टि-विभ्रम ही तो है। ठीक इसी तरह मानव-जीवन भी कितना भ्रान्त और रहस्यपूर्ण तथा कुछका कुछ दीखनेवाला है।

जीवनकी लम्बी यात्रामें कितने ही यात्री हमें मिलते हैं; उनसे हमारा सम्पर्क भी होता है ; लेकिन ठीक मीलके पत्थरोंकी तरह ही उन्हें हम पीछे छोड़ते जाते हैं। फिर कभी उनका हमें स्मरण भी नहीं आता। हम अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर इन सभी यात्रियोंको सदाके लिए विस्मृतिके गर्भमें विलीन कर देते हैं। पर कुछ स्मृतियाँ यों बरबस विस्मृत नहीं होतीं। ऐसी ही एक स्मृति अलकाके हृत्पटपर जब-तब झलक जाती है। उस समय अलकाकी जीवन-यात्राका प्रारम्भ ही था। लम्बे पथपर चलते-चलते वह कहाँ आ पहुँची है, इसका उसे कोई भान न था। तभी एक यात्री उसे मिला। उसका नाम था अनिल। तब उसके जीवनमें दो-चार इधर-उधर-सी बातोंके अतिरिक्त अन्य कोई बात थी ही नहीं। सबेरा हुआ नहीं कि अलका अपने घरसे निकलकर बाहर आ खड़ी होती और अनिल भी उसके पास आ पहुँचता। अलकाके घरके ठीक सामने एक बहुत पुराना नीमका वृक्ष था। उसीके नीचे दोनों घण्टों खेला करते।

लेकिन गरमीके दिनोंमें जब धूप तेज़ रहती और धूलके गुब्बार उड़ा करते, ये दोनों उस नीमकी छायाका सहारा लेकर अपना खेल खेलनेकी कोशिश करनेपर भी अधिक समय तक वहाँ खेल न पाते। कभी अलकाकी माता दोनोंको प्यार-भरी झिड़कियाँ सुनाकर घरके भीतर लिवा ले जाती और कभी अनिलकी दीदी वहाँ आ पहुँचती और कहती—'अरे, तुम लोग यहाँ धूलमें क्या खेल रहे हो ? चलो, मैं तुम्हें गुड्डा-गुड़िया बनाए देती हूँ।'

अनिलका परिवार तब एक दुमंज़िले मकानमें ही रहता था। ऊपरी मंज़िलके एक एकान्त कमरेमें अलका और अनिल अपने गुड्डे-गुड्डीका खेल खेलते। एक दिन उस कमरेकी खिड़कीसे जब ये दोनों अपने गुड्डे-गुड्डीको सजा-सँवारकर खेल रहे थे, तभी ज़ोरोंकी आँधी आई। इन दोनोंकी आँखोंमें धूल भरने लगी और जब तक आँधीका वेग कम न हो गया, दोनों वहीं एक कोनेमें चुपचाप आँखें बन्द किए हुए खड़े रहना पड़ा। आँधी जब शान्त हुई और दोनों पुनः उस खिड़कीके पास पहुँचे, तो यह देखकर अलका एकदम उदास हो गई कि उसका गुड्डा खिड़कीसे गायब हो चुका था।

'मेरा गुड्डा उड़ गया !' अलकाने अनमने स्वरमें कहा।

'उड़ गया, तो उड़ जाने दो !' अनिलने हँसकर कहा—'दीदीसे दूसरा बनवा लेंगे।'

लेकिन इस उत्तरसे अलकाको सन्तोष नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदास देखकर अनिलने उसके साथ मकानके नीचे जाकर इधर-उधर बहुत खोज की ; लेकिन अलकाका गुड्डा कहीं भी नहीं मिला।

इस घटनाके बाद अलकाने फिर गुड्डा-गुड़ियाका खेल कभी नहीं खेला। अनिलकी दीदीने बहुत चाहा कि उसके लिए वह दूसरा गुड्डा बना दे ; लेकिन अलकाने साफ़ इनकार कर दिया। कुछ दिनों बाद अनिलके पिताका तबादला हो गया। अलकाका गुड्डा उस दिनकी आँधीमें उड़ ही चुका था, आज उसका साथी अनिल भी उससे बिछुड़ गया। अब वह अकेली रह गई। अनिलकी उसे बहुत याद आया करती। अलकाके माता-पिता और पास-पड़ोसके लोगोंको अलकाकी अपने बाल-साथी अनिलके प्रति यह अगाध आत्मीयता देखकर कुछ आश्चर्य हुआ।

अन्धकारके आँचलमें छिपकर रातें और सूर्यके रथपर चढ़-कर दिन बीतने लगे। धीरे-धीरे अलकाके मानस-पटलसे अनिलकी स्मृतिका चित्र धूमिल होने लगा। आज ठीक एक युगके बाद जब नन्हेकी गुड़िया टूट गई, तब उसे अनायास अपने बचपनके साथी अनिलका ध्यान हो आया। उसे लगा कि जिस अनिलके साथ वह रात-दिन खेलती-कूदती और प्रसन्न रहती थी, पता नहीं, वह आज कहाँ और कैसे होगा? उस दिन जिस प्रकार मेरा गुड्डा आँधीमें उड़ गया था और फिर खोजनेपर भी कहीं नहीं मिला, उसी तरह यह अनिल भी पता नहीं, कहाँ उड़ गया—दुनियाके किस कोनेमें चला गया?

अलका जब अपने मनकी इसी ऊहापोहमें उलझ रही थी और अचानक गीली हो उठनेवाली अपनी आँखोंको आँचलके एक छोरसे पोंछ रही थी, तभी किसीने नीचेका दरवाज़ा खट-खटाया। एक क्षणके लिए अलका चौंक उठी।

स्वस्थ होनेकी कोशिश करती हुई वह छतपर से नीचे उतरी और दरवाज़ा खोल दिया। देखा, मोहन बाबू खड़े थे और उनके साथ थे विनोद तथा साइकिलपर बैठा हुआ नन्हे।

'यह नन्हे बड़ा परेशान करता है विनोदको।' मोहन बाबूने भीतर क़दम रखते हुए अलकाकी ओर देखकर कहा।

'इसमें तो छोटे बाबूको आनन्द ही आता है!' अलकाने मुस्कराते हुए विनोदकी तरफ़ मुखातिब होकर कहा—'क्या हुआ, छोटे बाबू?'

'कुछ नहीं, भाभी!' विनोदने सहज भावसे कहा—'जैसी गुड़िया नन्हे चाहता था, वैसी जब नहीं मिली, तो उसका मुझे परेशान करना बजा ही था।'

'वैसी गुड़िया नहीं मिली?' अलकाने कुछ चिन्तासे पूछा—'तब चारा ही क्या है? एक वस्तु जब नष्ट हो जाती है, तब ठीक उसी तरहकी दूसरी वस्तु बहुधा नहीं मिलती।'

'अम्मा, गुड़िया नहीं मिली।' नन्हेने अलकाके आँचलका छोर पकड़कर खींचते हुए कहा—'पर चाचाने यह घोड़ा ले दिया है।'

'वाह नन्हे! तब क्या कहना!' अलकाने उसे गोदमें लेकर प्यारसे कहा—'अब मेरा नन्हे घोड़ेपर बैठेगा।'

यह सुनकर नन्हे अलकाकी गोदसे उतर पड़ा और जो घोड़ा वह अभी-अभी लाया था, उसपर बैठ गया। अलका जब तक उसे रोके-रोके, तब तक नन्हेके बोझसे वह मिट्टीका घोड़ा भी फूट गया और नन्हे फिर ज़ोरसे रो पड़ा।

मोहन बाबू और विनोद भले ही इस छोटी-सी बातको लेकर परेशान न हुए हों ; लेकिन नन्हेको चुप करनेके प्रयत्नमें उसे अपने वक्षसे चिपकाए, अलकाका हृदय भीतर ही भीतर बेहद परेशान हो उठा। उसे लगा कि खिलौनोंका इस प्रकार बार-बार टूट जाना अच्छा नहीं। उसका अपना गुड्डा जब उड़ गया, तो उसे अपने बाल-साथी अनिलसे सदाके लिए हाथ धोने पड़े। तो क्या नन्हेको भी अपने किसी साथी अथवा आत्मीयसे……?

यह सोचते-सोचते अलकाके चेहरेपर जो हवाइयाँ उड़ने लगी थीं, उन्हें कोशिश करनेपर भी शायद वह छिपा नहीं सकी। तभी उसकी म्लान मुद्रा देखकर मोहन बाबूने कहा—'तुम क्यों इतनी परेशान दीख रही हो, अलका? क्या इसकी गुड़िया और मिट्टीका घोड़ा टूट जानेका तुम्हें इतना दुःख हो रहा है?'

'नहीं तो'—रुँधे हुए कण्ठसे अलकाने कहा और उनके सामनेसे हट गई। उसकी आँखोंसे बार-बार आँसूकी जो बूँदें टप्-टप् गिर रही थीं, वह उन्हें चुपचाप पोंछ लेती थी। पर पता नहीं, इस धूमिल चित्रको वह कब तक अपने अन्तर्चक्षु-ओंसे देखती रही।

१५०, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यमें हास्य-रस

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जो हँस सकता है। अन्य प्राणी हँस नहीं सकते। हास्य द्वारा आनन्द-प्रकाशकी क्षमता मनुष्यके प्रति विधाताकी एक बहुत बड़ी देन है। इसीसे सृष्टिके आदिकालसे ही मनुष्य हँसता आ रहा है और आगे भी हँसता रहेगा। हास्य-कौतुकमें कुछ ऐसा जादू है, जिससे मनुष्यके मनमें निरानन्दका अन्धकार दूर हो जाता है। हास्य-रसका यदि जीवनमें स्थान न हो, तो मनुष्यके लिए जीवन धारण करनेमें कोई स्वाद ही नहीं रह जायगा। मनुष्यकी जीवन-रूपी मरुभूमिमें हास्य ही मरुद्यान है। शोक, दुःख, नैराश्य एवं अवसादसे जब मनुष्यका मन भाराक्रान्त हो उठता है, उसी समय वह हास्य-रसका प्रयोजन अनुभव करता है। जो मनुष्य घोर दुःख एवं विपदाओंके बीच भी दिल खोलकर हँस सकता है, वही सबसे बढ़कर सुखी है। सदा हास्य-परायण व्यक्ति दुःखोंके बीच भी अपनी सहज-स्वाभाविक वृत्ति नहीं छोड़ता। प्राचीन कालके राजा लोग हास्य-रसका मूल्य जानते थे। उनके दरबारोंमें रसिक लोगोंका सम्मान होता था। मनुष्य स्वयं सदा हँस नहीं सकता। अगर कोई मनुष्य हमेशा हँसता ही रहे, तो लोग उसे पागल कहेंगे। इसलिए मनुष्य जब स्वयं हँस नहीं सकता, तो वह मानसिक एवं शारीरिक क्लान्ति दूर करनेके लिए कृत्रिम उपायोंसे हास्यकी सृष्टि करता है। राजा लोग स्वयं नहीं हँस सकते थे, तभी तो वे अपने दरबारोंमें विदूषकों या भाँड़ोंको हँसानेके लिए रखा करते थे। शक्तिशाली इंजनके लिए जिस प्रकार वायु-निःसरण-द्वार (Safety-valve) की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मनुष्यके देह-यन्त्रके लिए भी हास्यकी आवश्यकता है। शरीर-शास्त्रवेत्ताओंका कथन है कि जैवधर्मके नियमानुसार हास्यकी सार्थकता है। प्राचीन पण्डितोंने हास्यकी आवश्यकताको स्वीकार किया है। ग्रीक पुराणोंमें वेनसको हास्यकी देवीके रूपमें माना गया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य हँसता क्यों है और उसके हास्यके मूलमें कौन-सी प्रवृत्ति काम करती है? इस प्रश्नके उत्तरमें मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि आकस्मिक एवं अनपेक्षित मनश्चांचल्य, जिससे शारीरिक अथवा मानसिक वेदनाकी अनुभूति किंवा अनुकम्पाका संचार नहीं होता, ही मनुष्यकी हास्य-प्रवृत्तिका मूल कारण है। जिस समय मनुष्यका चित्त हल्का रहता है, आकस्मिक, अनपेक्षित अथवा शारीरिक या मानसिक वेदना, दुःख, आशंका या अनुकम्पाका संचार उसके मनमें नहीं होता और इस अवस्थामें जो मनश्चांचल्य संघटित होता है, वही हमारे लिए हास्यका उपादान जुटाता है।

मान लीजिए, कोई प्रौढ़-वयस्क व्यक्ति जल्दीसे किसी कामके लिए सड़कपर जा रहा है। तेज़ीसे क़दम बढ़ाते हुए अचानक उसका पाँव फिसल गया और वह धड़ामसे गिर पड़ा, तो इससे हमें हँसी आती है। क्यों? इसलिए कि एक वयस्क व्यक्तिके धीर-गम्भीर भावसे चलनेके साथ उसके पाँवका फिसलना, असंगत है और साथ ही अनपेक्षित भी। किन्तु एक बच्चा, जिसे अभी ठीकसे चलना नहीं आया है, यदि फिसल कर गिर पड़ता है, तो हमें हँसी नहीं आती; क्योंकि अभी वह चलनेमें अभ्यस्त नहीं हुआ है और न उसमें उतनी सतकता ही आई है। इसके सिवा बच्चेके प्रति हमारी स्वाभाविक अनुकम्पा भी होती है। मगर वही प्रौढ़ व्यक्ति यदि ट्रेनसे गिर जाय, तो हमें हँसी नहीं आयगी। किसीकी विलक्षण वेश-भूषा देखकर जो हम हँसने लगते हैं, इसका कारण यह है कि मनुष्यकी वेश-भूषाके सम्बन्धमें हमारे मनमें जो धारणा जमी हुई है, उस आदर्श धारणाके साथ उस व्यक्तिकी वेश-भूषाका कोई सामंजस्य नहीं है।

जिन अवस्थाओंको हम हास्यजनक कहते हैं, उनमें कौन-सी ऐसी विशेषता होती है, जिसके कारण वे 'हास्योद्दीपक' कही जाती हैं, इस विषयको लेकर मनोवज्ञानिकोंमें आज भी गवेषणाएँ चल रही हैं। आचार्य फ्रायडके मतसे जो सब असामाजिक वृत्तियाँ हमारे मनके अवचेतन प्रदेशमें अवरुद्ध होकर रहती हैं, हास्य-कौतुकमें वे ही छद्मरूपमें प्रकाशित होती हैं। केलेके छिलकेपर पाँव पड़नेसे फिसलकर गिर जानेवाले व्यक्तिके प्रति हमारे मनके किसी गोपन प्रदेशमें पहलेसे ही विद्वेष रहता है, इसीलिए फिसलकर गिरनेकी घटना हमें कौतूहलप्रद प्रतीत होती है।

हाब्सके मतसे किसी व्यक्तिकी दैहिक, मानसिक या सामाजिक अवस्थामें जब अवनति होती है, तभी हम कौतुकका बोध करते हैं। व्यंग्य एवं विद्रूप-जनित हास्यके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। प्राचीन कालके इतिहाससे यह भी पता चलता है कि आदिकालमें मनुष्य किसी व्यक्तिकी शारीरिक यन्त्रणा या पीड़ाको देखकर सबसे अधिक कौतुकका बोध करता था। किसी आहत व्यक्तिको पीड़ासे छटपटाते देखकर लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ोरसे हँसते थे। इस प्रकार निष्ठुर हास्य-कौतुकके कितने ही दृष्टान्त इतिहासमें पाए जाते हैं। जीव-जन्तुओंको कष्ट देकर आनन्द प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति तो बहुत-से लोगोंमें देखी जाती है।

मनुष्यकी दुर्गति भी अनेक समयमें हमारे लिए कौतुकप्रद हो जाती है। कुबड़े या काने मनुष्यको देखकर और किसी व्यक्तिको तुतलाते या अबोध-जैसी बातें करते देखकर हम हँस पड़ते हैं। पागल व्यक्तिके आचरण भी हमारे लिए हँसीकी खुराक जुटाते हैं। कोई शौकीन व्यक्ति खूब सज-धजकर बाहर घूमने निकला। सड़कके फुटपाथसे होकर वह जा रहा है। अकस्मात् ऊपरसे पानकी पीक फेंककर किसीने उसके स्वच्छ-सुन्दर वस्त्रोंको खराब कर डाला। इस प्रकारकी घटनाएँ भी हमारे लिए कम हास्यजनक नहीं होतीं। प्रचलित प्रथा एवं कार्य-कारणके सम्बन्धमें अभाव देखकर, भाषा एवं व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियों तथा बोलने, लिखने या छापेकी भूलोंको देखकर जो हम कौतुकका बोध करते हैं, इसका कारण है सामंजस्य-हीनता या विसदृशता।

कुछ लोगोंका अनुमान है कि हास्य-रसका जन्म हमारे मनकी हिंस्र प्रवृत्तिसे हुआ है। डारविन और हरबर्ट स्पेन्सरके मतसे हास्यका दैहिक प्रकाश हिंस्र जन्तुओंके दन्त-विकाससे क्रमिक विवर्तनके फल-स्वरूप हुआ है। आचार्य फ्रायडके इस मतको भी हम आंशिक रूपमें मान ले सकते हैं कि हमारी असामाजिक हिंस्र प्रवृत्तियोंको अबाध रूपमें चरितार्थ होनेका मौक़ा नहीं मिलता और हमें निर्विचार उनका दमन करना पड़ता है जिससे हास्य-कौतुककी सृष्टि होती है। मानव-मनकी इन आदिम पशु-प्रवृत्तियोंको यदि चरितार्थ होनेका सुयोग मिलता, तो अवश्य ही मनुष्यका वासस्थान यह पृथिवी रसातलको चली जाती। इसीलिए इनमें अनेक प्रवृत्तियोंका उन्नयन हो जाता है और उनसे हास्य-रसकी सृष्टि होती है। व्यंग्य-विद्रूपमें हमारे मनके इसी हिंस्र भावका आभास मिलता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सभी प्रकारके हास्य-कौतुकमें मनुष्यकी पशु-प्रवृत्तिका ही परिचय मिलता है। बहुत-से निर्मल एवं निर्दोष हास्य-कौतुकमें पशु-प्रवृत्तिका अणुमात्र भी आभास नहीं पाया जाता। इस प्रकारका हास्य-रस जिस व्यक्तिमें जितना ही अधिक होगा, उसमें हिंस्र प्रवृत्ति उतनी ही कम होगी। विशुद्ध हास्य-कौतुकके प्रभावसे मनुष्यके मनकी पाशव प्रवृत्तियोंका ह्रास भी अनेकांशमें हो सकता है। किन्तु रसिक व्यक्तियोंको यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि उनका कौतुक पाठक या श्रोता-वर्गके लिए सहज ही बोधगम्य एवं चित्ताकर्षक हो। लेख या कथनमें हास्यका जो सूक्ष्म आभास या इंगित होता है, वह यदि सहज ही बोधगम्य न हो, तो हास्य-रस उपभोग्य नहीं हो सकता।

मनुष्यके व्यावहारिक जीवनमें जब हास्यकी इतनी उपयोगिता है, तो साहित्यमें हास्य-रसका स्थान क्यों नहीं होगा? आखिर साहित्यका उपादान भी तो मानव-जीवन और मानव-मन ही है। मनुष्यको आनन्द देनेके लिए, उसकी रसानुभूतिको जाग्रत करनेके लिए ही जब साहित्यकी सृष्टि होती है, तो फिर मनुष्य साहित्यके द्वारा यदि हँसनेकी चेष्टा करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसीलिए साहित्यका हास्य-रस कृत्रिम होनेपर भी अनेक समय हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। पहले राजाओंके दरबारोंमें हँसने और हँसानेके लिए विदूषक या भाँड़ रहा करते थे। उनका कुछ स्थान आज साहित्यने और बाक़ी स्थान सिनेमा और थिएटरने ग्रहण किया है। यह सच है कि साहित्यमें जो हास्य-रस पाया जाया है, वह थोड़े-से शिक्षित लोगोंके लिए ही उपभोग्य होता है, फिर भी समाजमें उसका स्थान है, यह तो मानना ही पड़ेगा।

संसारकी सभी जातियोंके साहित्यमें हास्य-रसका अस्तित्व पाया जाता है। अंगरेज़ी-साहित्यमें चासर, शेक्सपियर, डिकेन्स, शेलकर्क, वर्त्तमान समयके बर्नार्ड शा तक सभीने अपने साहित्यमें हास्य-रसकी सृष्टि की है। स्पेनके साहित्यमें दानकूइक्सट और अमरीकन साहित्यमें मार्क ट्वेन तो इस क्षेत्रमें अमर ही माने जाते हैं। प्राचीन संस्कृत, ग्रीक और लैटिन साहित्यमें हास्य-रस-प्रधान रचना विरल ही पाई जाती है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि उस समय प्रत्येक मनुष्यकी जीवन-यात्रा सरल, शान्तिपूर्ण एवं आनन्दमय थी। उनके जीवनमें हास्यका अभाव नहीं था। इसीलिए साहित्य द्वारा कृत्रिम हास्यरस-सृष्टिका उन्हें प्रयोजन नहीं था और हास्यरस-प्रधान साहित्यकी विशेष सृष्टि नहीं हुई। किन्तु आधुनिक कालकी जटिलताओंने हमारे जीवनको दुर्वह बना दिया है। प्राचीन कालका वह आनन्द-स्रोत आज सबके प्राणोंको सरसित नहीं करता। अतएव जिनके जीवनमें हास्य है, उनसे दूसरे लोग हास्यरस-सृष्टिकी आशा करते हैं।

प्राचीन साहित्यिकोंने हास्य-रसका एक विशिष्ट स्थान है, इस बातको स्वीकार किया है। आलंकारिकोंने नवरसमें हास्य-रसको भी स्थान दिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने हास्य-रसके दैहिक स्वरूपपर भी विचार किया है और दन्त-विकासकी मात्राको लेकर हास्य-रसका श्रेणी-विभाग किया है। इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य-रसके ६ भेद किए गए हैं—अर्थात् स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित। जिस हँसीमें दशन-पंक्ति दिखाई भी नहीं देती, वह स्मित है; कुछ-कुछ दाँत दिखाई पड़ें, वह हसित; शब्दके साथ दाँत दिखाई पड़नेसे विहसित; हँसते समय नासिकाका स्फुरित और नेत्रोंका कुंचित होना अवहसित; हँसते-हँसते आँखोंमें आँसू भर आना और रो पड़ना अपहसित; और हाथोंसे ताल देते हुए अंग-विक्षेपपूर्वक हँसना अतिहसित है।

लैटिन साहित्यमें होरेसकी विद्रूपात्मक रचनावलीकी काफ़ी प्रसिद्धि है। प्लेटोके कथोपकथनमें भी एक प्रकारका श्लेष देखा जाता है, जिसे समालोचकोंने 'सुकरातका विद्रूप' (Socratic Irony) नाम दिया है। मध्य-युगके संस्कृत नाटकोंमें हास्य-रसका एक विशेष स्थान है। शेक्सपियरका हास्य-रसात्मक चरित्र फलस्टाफ़ भी काफ़ी प्रसिद्ध है। हास्य-रसका स्थान यदि साहित्यमें नहीं होता, तो अंगरेज़ आज डिकेन्स और थैकरेको लेकर इतना गर्व नहीं करते। रवीन्द्रनाथके हास्य-रसमें जो एक प्रकारका आभिजात्य एवं सूक्ष्म रसानुभूति पाई जाती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'चिर कुमार-सभा', 'वैकुण्ठका खाता', 'हास्य-कौतुक', 'व्यंग्य-कौतुक' आदि रचनाओंमें जा चुटकी पाई जाती है, वह बड़ी ही चमत्कारपूर्ण है। पर केवल थोड़े-से उच्च शिक्षित पाठक ही इसका उपभोग कर सकते हैं।

अंगरेज़ीमें हास्य-रसके लिए साधारणतः ह्यूमर (humour) शब्दका व्यवहार किया जाता है। यह शब्द इतना व्यापक है कि इसके अन्दर हास्यके विभिन्न रूपोंका समावेश हो जाता है। साहित्यमें चापल्य या fun, उपहास या jest या joke, परिहास या wit, विद्रूप या irony और sarcasm, व्यंग्योक्ति एवं व्यंग्य या satire सब 'ह्यूमर'के अन्दर आ जाते हैं।

कौतुक या fun में बुद्धिका कोई चमत्कार नहीं होता, इसलिए यह बुद्धिग्राह्य नहीं होता। इसके अन्दर कोई छिपा हुआ उद्देश्य नहीं होनेसे इसमें अर्थ-गाम्भीर्य नहीं होता। अन्तरके आनन्दका स्वतःस्फूर्त्त प्रकाश इसमें हम पाते हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त लघु एवं सरल हास्य-रसकी खुराक जुटाता है।

परिहास या wit केवल बुद्धि द्वारा ही ग्राह्य हो सकता है। इस प्रकार बुद्धिग्राह्य होनेपर ही इसकी रसानुभूति हमें हो सकती है। परिहास कोई शब्द-विशेष या शब्दोंके समूहपर निर्भर करता है। किसी परिचित शब्दके अर्थ या भावको इस प्रकार अपरिचित रूपमें रखना, जिससे आकस्मिक या अनपेक्षित भावकी अवतारणा हो, wit या परिहास कहा जाता है। श्लेष भी परिहासके अन्दर ही आ जाता है; किन्तु यदि उसमें दूसरेके ऊपर दोषारोपण करने या क्षति पहुँचानेका उद्देश्य हो, तो वह परिहास नहीं रह जायगा। सूरदासका 'निर्गुण कौन देसको बासी? मधुकर, हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥' पद एक साथ ही चापल्य या fun और परिहास या wit का सुन्दर उदाहरण है। तुलसीका निम्न-लिखित कवित्त:—'बिंध्यके बासी उदासी तपोब्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे; गौतम-तीय तरी, तुलसी सो कथा सुनि, भे मुनि-बृन्द सुखारे॥ हवैहैं सिला सब चन्द्रमुखी, परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे; कीन्हीं भली, रघुनायकजू, करुना करि काननको पगुधारे॥' सुन्दर, सरल एवं शिष्ट हास्य-कौतुकका अनुपम दृष्टान्त है।

विद्रूप या irony और sarcasm तथा व्यंग्य या satire की साधारण विशेषता यह होती है कि इसमें जिस व्यक्ति, वस्तु या भावको लेकर व्यंग्य-विद्रूप किया जाता है, उसे जनताकी दृष्टिमें हीन या उपहासास्पद सिद्ध करनेकी चेष्टा की जाती है। क्षति या अनिष्ट-साधनका उद्देश्य भी इसमें हो सकता है। चापल्य, परिहास या उपहासमें इस प्रकारका कोई उद्देश्य नहीं होता।

किसी वाक्यका अर्थ या भाव प्रत्यक्ष रूपमें तो ठीक मालूम हो; किन्तु वक्ता या लेखककी वाक्-भंगी या रचना-भंगी इस रूपमें हो कि उसका अर्थ अप्रिय व्यंजित हो, तो उसे irony कहते हैं। irony शब्दके उपयुक्त कोई भाषा-शब्द नहीं होनेसे इसे विद्रूप कह सकते हैं; किन्तु विद्रूप और irony सब समय एकार्थवाची नहीं होते।

मुख्य अर्थ या भावकी अपेक्षा उद्दिष्ट गौण अर्थ अधिक स्पष्ट होनेसे व्यंगोक्ति या sarcasm कहा जाता है। sarcasm या व्यंग्योक्ति विद्रूप (irony) की तरह बुद्धि-ग्राह्य नहीं होती। व्यंग्य या satire विद्रूपकी तरह हृदयंगम नहीं होता। इसमें अतिशयोक्तिकी मात्रा हास्य-रसके और सब भेदोंकी अपेक्षा अधिक होती है और जिसका व्यंग्य किया जाता है, उस व्यक्ति, वस्तु या भावको उपहासास्पद या क्षतिग्रस्त करनेका उद्देश्य सहज ही समझमें आ जाता है। व्यंग्यपूर्ण रचना किसी व्यक्ति-विशेष या श्रेणी-विशेषको लेकर हो सकती है।

'ह्यूमर' और विद्रूप-व्यंग्यके बीच प्रधान भेद यह है कि जिस व्यक्ति या वस्तुको लेकर हम परिहास या उपहास करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके प्रति हमारी सहानुभूति होती है ; किन्तु व्यंग्य या विद्रूपमें ऐसा नहीं होता। 'ह्यूमर'में दृष्टि व्यापक हो जाती है। लिप्त व्यक्तिका उपहास किया जाता है, उसकी दोष-त्रुटियोंकी तीव्रता तथा उसकी हीनता-तुच्छताकी ओर हमारा ध्यान विशेष नहीं जाता और इन सबसे परे उसके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति या अनुकम्पा उत्पन्न होती है। अंगरेज़ी-साहित्यमें हास्य-प्रधान चरित्रका श्रेष्ठ उदाहरण है डिकेन्सका 'पिकविक'। हिन्दी-साहित्यमें इस प्रकारके हास्य-प्रधान चरित्र विरल ही पाए जाते हैं।

हिन्दीमें हास्य-रसके साहित्यका अभी विकास नहीं हो पाया है। हास्य-रसके लेखकोंकी संख्या भी अभी इनी-गिनी ही है। स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्तने शिवशम्भु शर्माके नामसे 'शिवशम्भुके चिट्ठे'-शीर्षक एक लेखमाला बहुत पहले लिखी थी। उसमें व्यंग्य एवं हास्यका अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। स्वर्गीय प्रतापनारायण मिश्रकी भी कुछ हास्य-रसात्मक रचनाएँ पाई जाती हैं ; पर उनमें कोई ऐसी विशेषता नहीं, जिसका उल्लेख किया जा सके। 'तृप्यन्ताम्' या 'हाय ! बुढ़ापा तेरे मारे हम तौ अब नकुयाय गयन' आदि रचनाओंमें हास्य-रसकी विशदता बहुत कम ही देखी जाती है। आधुनिक लेखकोंमें सर्वप्रथम श्री जी० पी० श्रीवास्तवने हास्य-रसको विशेष रूपसे अपनी रचनाओंका विषय बनाया। 'लम्बी दाढ़ी', 'चिलयती उल्लू', 'लतखोरीलाल' आदि उनकी हास्यरस-विषयक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उनके उपन्यास 'स्वामी चौखटानन्द' और नाटक 'मरदानी औरत'में भी हास्य-रसका काफ़ी पुट पाया जाता है ; पर इन कृतियोंमें उच्चकोटिके 'ह्यूमर' या 'विट'का कोई चमत्कार नहीं पाया जाता। इनमें हास्यका मुख्य आधार लेखककी प्रकाश-भंगी न होकर उनके पात्रोंके अस्वाभाविक एवं बेढंगे कथन या आचरण हैं। हास्य-रसका बहुत स्थूल रूप श्रीवास्तवजीकी रचनाओंमें हमें मिलता है। फिर भी हिन्दीके इस क्षेत्रको पूर्ण करनेमें उन्होंने जो प्रारम्भिक प्रयत्न किए हैं, वे अवश्य प्रशंसनीय हैं। श्री अन्नपूर्णानन्द तथा पं० हरिशंकर शर्मा निस्सन्देह हास्य-रसके श्रेष्ठ लेखक माने जा सकते हैं। श्री अन्नपूर्णानन्दकी 'महाकवि चच्चा', 'मंगलमोद', 'मेरी हजामत', 'भागल रहु चोला' आदि पुस्तकोंमें हास्य-रसका सुन्दर रूपमें निदर्शन हुआ है। श्री हरिशंकर शर्माकी 'चिड़ियाघर' पुस्तकमें उच्चकोटिके हास्य एवं व्यंग्यका चमत्कार हम पाते हैं। उनकी भाषा भी हास्य-रसके सर्वथा उपयुक्त होती है। उनका हास्य क्लिष्ट होता है। श्री 'बेढब' बनारसीमें भी हास्य-रसात्मक साहित्यकी सृष्टि करनेकी प्रतिभा है। उनकी भाषामें काफ़ी चुहल है। लिखनेका ढंग भी बहुत मनोरंजक एवं विनोदपूर्ण है। श्री गुलाबरायका 'ठलुआ-क्लब' भी शिष्ट हास्यका एक नमूना है। 'विशाल भारत'के भूतपूर्व संयुक्त-सम्पादक स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्मा भी हास्य-रसके एक प्रतिभाशाली लेखक थे। खेद है कि उनकी प्रतिभाका यथेष्ट विकास न होने पाया। हास्यका एक रूप parody या व्यंग्य-रचना भी है। इसमें दूसरेकी रचनाका अनुकरण पद्यात्मक रूपमें किया जाता है। इस प्रकारकी रचनाओंके मूलमें शुद्ध कौतुक या fun भी हो सकता है या परिहास अथवा व्यंग्य या wit या satire भी। सर्वश्री हरिशंकर शर्मा, कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' तथा 'मनोरंजन'ने पैरोडी लिखी हैं। पर उनमें से कुछ ऐसी भी हैं, जिनमें संयमसे काम नहीं लिया गया है।

बँगलामें स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सिवा 'परशुराम' और स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्रने हास्य-रसकी श्रेष्ठ रचनाएँ की हैं। रवीन्द्रनाथकी 'चिरकुमार-सभा' और 'बैकुण्ठेर खाता' उच्चकोटिके गम्भीर हास्यकी बहुत ही सुन्दर पुस्तकें हैं। 'परशुराम'की हास्य-रसात्मक रचना 'हनुमानेर स्वप्न' भी एक अनुपम कृति है। इनकी एक पुस्तकका अनुवाद 'भेड़ियाधसान' नामसे हिन्दीमें हुआ है। स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्रकी हास्य-रसकी रचनाएँ किसी भी साहित्यके लिए गौरवकी वस्तु हो सकती हैं। मन्द-मधुर-स्मित हास्यका ऐसा श्रेष्ठ नमूना शायद ही और कहीं मिले। 'त्रिलोचन कविराज' नामसे उनकी एक पुस्तकका हिन्दीमें अनुवाद हो चुका है।

हिन्दीका हास्यरस-साहित्य अभी अन्यान्य सजीव भाषाओंकी तुलनामें साधारण ही कहा जायगा। उच्चकोटिकी हास्य, व्यंग्य एवं विद्रूपमूलक रचनाएँ अभी बहुत कम पाई जाती हैं। सभ्यता एवं संस्कृतिमें परिवर्त्तन होनेके साथ-साथ हास्य-रसमें भी परिवर्त्तन हुआ है। पहले भी लोग स्थूल या अश्लील, अशिष्ट हास्यसे आनन्दोपभोग कर लिया करते थे ; किन्तु साहित्यमें उसका कोई स्थान नहीं था। शिक्षित-भद्र-समाजके लिए अब इस प्रकारके हास्यरस-परिवेशनको आवश्यकता है, जो केवल शिष्ट ही न हो, बल्कि बुद्धिग्राह्य भी हो और साथ ही उसमें स्मित-हास्यकी सूक्ष्म रसानुभूति भी हो। दुःख-दैन्य-दुर्दशा-ग्रस्त भारतवासियोंके जीवनमें शोक, विषाद एवं रुदन तो लगे ही हुए हैं। करुण-रसात्मक साहित्यकी सृष्टि करके उनके शोक-विषादपूर्ण मनको और भी भाराक्रान्त क्यों बनाया जाय ? समय-समयपर यदि हम कुछ हँस लिया करें, तो इससे जीवन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्राममें विजयी होनेके लिए कुछ शक्ति-संचय तो अवश्य ही होगा। कारण, हास्य हमारे चित्तको उसकी स्वाभाविक नियन्त्रित गतिसे कुछ क्षणोंके लिए मुक्त कर देता है, जिसके फल-स्वरूप हमारी जीवनी शक्तिको नूतन स्फूर्ति मिलती है। हँसी केवल मनकी क्लान्तिको ही दूर नहीं करती, वरन देहकी क्लान्तिको भी दूर करती है और शरीरको कार्यक्षम बनाती है। इस सम्बन्धमें डब्लू०जे० क्रोमीने लिखा है :—

Laughing is an exercise which aids digestion. Laugh and grow fat. A merry heart doeth good like a medicine. Laughing stirs up the abdominal organs and increasing the circulation of the blood it aids peristalsis and causes the flow of the juices, etc., needed in digestion. Take a five minute's dose of laughter after each meal.

अर्थात् हँसना एक ऐसी कसरत है, जो हमारा हाज़मा सुधारती है। अगर मोटा होना हो, तो खूब हँसिए। प्रसन्न-चित्त औषधकी तरह लाभदायक है। अतः भोजनके बाद प्रतिदिन थोड़ा-बहुत हँसना अत्यावश्यक है। इस प्रकार हास्य हमारे शरीर और मन दोनोंके लिए एक न्यामत है। एतदर्थ हास्य-रसात्मक साहित्यकी ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट होना अत्यावश्यक है।

मिथिला-कालेज, दरभंगा]

हमारी चीनी बहनें

कुमारी ननिबाला राय

भारत और चीनकी सांस्कृतिक एकता एवं समानताकी बातें मैंने बहुत सुनी हैं। पर यदि मैं यह कहूँ कि वे मुझे तो बड़े-बड़े लोगोंकी बड़ी-बड़ी बातें ही अधिक प्रतीत हुई हैं, तो छोटे मुँह बड़ी बात न होगी। अतीतको गौरवमय कहने और समझनेकी न केवल गुलाम एवं अकर्मण्य जातियोंमें आदत ही होती है, बल्कि कालान्तरमें ये दन्तकथाएँ जन-श्रुतियाँ बन जाती हैं और दूसरा कोई विश्वास करे या नहीं; पर वे खुद तो उनपर अवश्य ही अगाध विश्वास करने लगती हैं। निश्चय ही भारत और चीनमें बहुत बड़ा सांस्कृतिक साम्य रहा है; पर आज न तो वह चीन ही रह गया है और न भारत ही। दोनोंकी संस्कृतियोंको भी काल-चक्रने बहुत-कुछ बदल दिया है। जहाँ तक दोनों देशोंकी स्त्रियोंका सम्बन्ध है, साक्षरता या फैशन-परस्तीमें भले ही हम अपनी चीनी बहनोंसे आगे हों; किन्तु जीवनके अन्य लगभग सभी क्षेत्रोंमें तो आज भी हमें उनसे बहुत-कुछ सीखना है।

चीनी स्वयंसेविकाएँ (गर्ल-गाइडस) अमरीकन स्वयंसेविकाओंसे सहायतार्थ प्राप्त हुए चावलको युद्ध-शरणार्थियोंमें बाँट रही हैं।

भारतमें नारीको 'आदर' और 'पूजा'के नामपर गुलाम बनाया गया; किन्तु चीनी नारीकी गुलामीमें तो यह सन्तोष और आश्वासन भी नहीं रहा। उसकी गुलामी तो एकदम १०० फ़ी-सदी विशुद्ध दासता एवं परमुखापेक्षिता रही है। वह पुरुषकी पाशविकता और सामाजिक रूढ़ियोंकी गुलाम रही है। पुरुषने उसे सदियों तक ठोकरें मारकर, अपनी जूँठन खिलाकर—और वह भी आधे-पेट—तथा पाँवकी जूती बनाकर अपनी काम-वासनाकी तृप्तिका एक सस्ता खिलौना तथा बच्चे पैदा करनेका हाड़-मांसका एक यन्त्र-मात्र बनाए रखा। पहले-पहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मादाम च्यांगकाई-शेक चुंकिंगमें हुए महिला-सम्मेलनके सभानेतृ-पदसे भाषण दे रही हैं।

श्रीमती पर्ल बकके ग्रन्थोंसे मुझे चीनी बहनोंके इस नारकीय जीवनका आभास मिला। इस स्थितिसे आज वे कहाँ पहुँच गई हैं, इस सम्बन्धमें चीनीकी राष्ट्रनेतृ श्रीमती च्यांगकाई-शेकने अभी हाल ही में मैसाचूसेट्सके वैलेज़्ली-कालेजमें, जहाँसे १९१७ में वे स्नातिका हुई थीं, बोलते हुए कहा—"जब मैं इस कालेजकी छात्रा थी, तो दुनियामें खूनकी नदियाँ बहती थीं। आज वे फैलकर महासागर बन गई हैं।...चीनी महिलाएँ आज एक नई दुनियामें बाहर आई हैं—ऐसी दुनिया, जिसमें घरोंकी सुख-सुविधाएँ नामको भी नहीं हैं। यद्यपि सम्पन्न घरानोंकी महिलाओंकी अपेक्षा किसान-मज़दूर-परिवारोंकी चीनी महिलाओंको अधिक स्वतन्त्रता रही है, तथापि यह परिवर्त्तन सबके लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है।...चीनके नए विधानकी धारा ४८ के अनुसार आज स्त्री-पुरुषोंको शिक्षाका समान अधिकार है। पिछले ५॥ वर्षोंके युद्धके दौरानमें चीनी महिलाओंने पुरुषसे समानता प्राप्त करनेके लिए उल्लेखनीय प्रगति की है। चीनके प्रत्येक प्रान्तमें—यहाँ तक कि जापान-अधिकृत चीनी प्रान्तोंमें भी—एक महिला-परामर्श-दातृ समिति है, जो शरणार्थियोंकी देख-रेख, युद्धमें अनाथ हुए बच्चोंका पालन-पोषण एवं उत्पादन-कार्य बढ़ाने आदिके कार्य करती है। जब कि अन्य देशोंमें आज स्त्रीकी हैसियत उसके पतिकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितिसे कूती जाती है, चीनी स्त्री आज अपने पाँवोंपर खड़ी है और उसकी हैसियत वही समझी जाती है, जो-कुछ कि वह स्वयं है।"

चीनी महिलाओंने आज जो यह असाधारण उन्नति की है, उसका बहुत-कुछ श्रेय सुंग-बहनोंको है; जिनमें से एक मादाम च्यांगकाई-शेक भी हैं। वे आज चीनके नवोदित नारीत्वका उज्ज्वल प्रतीक समझी जाती हैं। उन्हींके प्रयत्नसे आज कुछ इने-गिने उच्च घरानोंकी स्त्रियोंको छोड़कर समस्त चीनकी स्त्रियाँ बर्मा-रोडके निर्माणसे लेकर खेतों एवं कल-कारखानोंका काम करने, अपने बच्चोंके अलावा युद्धके अनाथोंका पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा देने, मोर्चोंपर युद्ध-सामग्री पहुँचाने, गुरिल्ला-युद्धोंका संचालन करने तथा युद्धास्त्रोंका प्रयोग तक करनेके कामोंमें सहर्ष सम्पूर्ण सहयोग दे रही हैं। जहाँ युद्धने उनके देशके बहुत बड़े जन-धनका भक्ष्य लिया है, वहाँ उन्हें न केवल सदियोंकी गुलामी एवं रूढ़ि-परम्पराओंसे ही मुक्त किया है, बल्कि अपनी स्थिति एवं अस्तित्वको सार्थक करने एवं मन-

महिला-सम्मेलनमें एक ग्रामीण चीनी युवती अपने युद्ध-कालीन अनुभव वर्णन कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

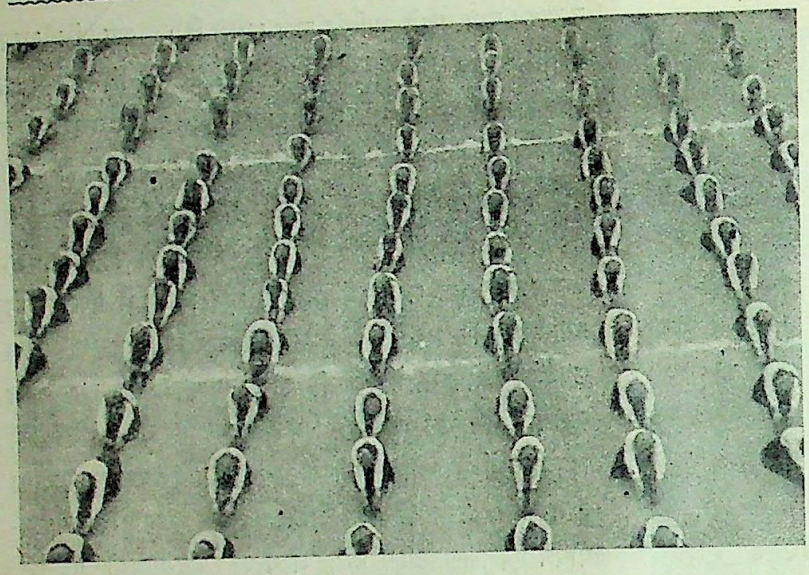

शारीरिक सुधारके लिए चीनी स्वयंसेविकाएँ प्रातःकालीन व्यायाम कर रही हैं।

वानेका भी सुअवसर दिया है। बड़ी खूबीसे उन्होंने अपने-आपको परिवर्त्तित परिस्थितियोंके अनुकूल बना लिया है। इससे उनमें वह क्षमता आ गई है, जो उनके भविष्यके सुनिश्चित एवं उज्ज्वल होनेकी आशा एवं विश्वास पैदा करती है।

१९३७ में जब जापानने चीनपर आक्रमण कर दिया, तो चीनको अपनी सारी पुरुष-शक्ति शत्रुका मुक़ाबला करनेके लिए संगठित एवं व्यवस्थित करनी पड़ी। इसके परिणाम-स्वरूप नागरिक जीवनकी बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी महिलाओंपर आ पड़ी। युगोंसे पीड़ित, लांछित और पद्दलित होनेके कारण सहसा उन्हें यह ज़िम्मेदारी कुछ बोझिल और असाधारण ज़रूर जान पड़ी; किन्तु शीघ्र ही आत्म-विश्वासने उनकी सुप्त शक्तियोंको जगा दिया और वे बड़ी आसानीसे अपना कर्त्तव्य पालन करने लगीं। स्काउटोंके साथ सम्पन्न और भले घरोंकी लड़कियाँ भी गर्ल-गाइड्स (स्वयंसेविकाओं) के रूपमें घायलोंकी सेवा-सुश्रूषाके काममें जुट पड़ीं। इससे उनके संकीर्ण विचारों एवं सामाजिक बन्धनोंके छिन्न-भिन्न होनेमें काफ़ी सहायता मिली। भाषा, प्रान्तीयता, अमीर-ग़रीब, नीच-ऊँच और बड़े-छोटेके भेद-भाव देखते-देखते काल-कवलित हो गए। इसके फल-स्वरूप एक नए सखा-भाव, समानता एवं स्वच्छन्दताका जन्म हुआ। आज चीनमें ७९,००० स्वयंसेविकाएँ हैं, जिनमें से ३,००० युद्धके विभिन्न मोर्चोंपर काम कर रही हैं।

ज्यों-ज्यों चीनके पूर्वोत्तरीय भागोंपर जापानका अधिकार होता गया; किसानों, मज़दूरों, कल-कारखानों, व्यापारियों, छात्र-छात्राओं तथा अध्यापक-अध्यापिकाओंकी बहुत बड़ी संख्या पश्चिमोत्तरके अधिक सुरक्षित स्थानोंकी ओर हटने लगी। पैदल या साधारण सवारियोंकी इन लम्बी यात्राओं; पहाड़ों, नदी-तटों एवं मैदानोंकी रहन-सहन, पढ़ाई-लिखाई और युद्ध-सेवा आदिने चीनी युवक-युवतियोंके विचार और दृष्टिकोण आमूल-चूल बदल दिए। जीवनकी इस व्यावहारिक शिक्षाने उनमें एक नई विचार-क्रान्ति की। अपनी पढ़ाई और सेवा-कार्यके अलावा बचनेवाले समयमें टोलियाँ बनाकर गाँवोंमें घूम-घूमकर उन्होंने इन नए विचारोंका प्रचार किया, लोगोंको युद्धके कारण समझाए और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर देनेके लिए तैयार किया। नानकिंगके पतनके बाद चीनी युवतियोंकी एक टोलीने न केवल लोगोंको स्थानान्तरित होनेमें ही मदद दी,

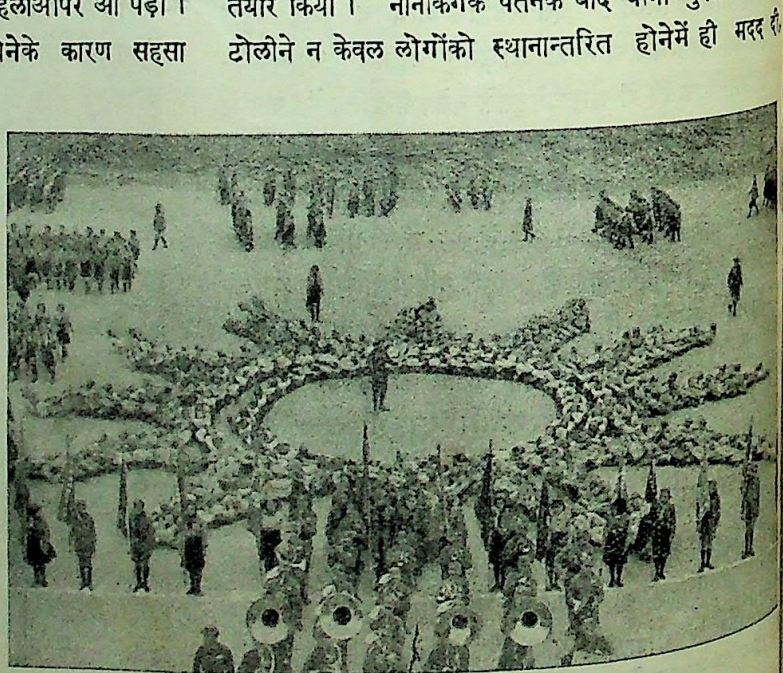

चीनी स्काउटों एवं स्वयंसेविकाओं द्वारा निर्मित चीनका राष्ट्रीय चिह्न 'सितारा'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल्कि जाते-जाते सड़कें आदि नष्ट करनेके लिए उन्हें उत्तेजित भी किया।

इस प्रकार चीनी युवतियोंने न केवल जनता और सेनाकी सहायता ही की है, बल्कि उनमें सहयोग-सद्भाव पैदा करनेकी भी चेष्टा की है। अपनी सामाजिक, अर्थनीतिक एवं राजनीतिक ज़िम्मेदारीसे भी वे आज कहीं अधिक परिचित हैं। 'माँ चाओ'का नाम आज चीनका बच्चा-बच्चा जानता है। जब पहले-पहल उसने शत्रुसे मुक़ाबला करनेके लिए आन्दोलन एवं संगठन करनेका विचार प्रकट किया, तो लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे। पर जब एक दिन उसने अपने पिस्तौलसे भागते हुए तीन जापानियोंमें से दोको मार गिराया, तो लोगोंकी आँखें खुलीं और उन्हें विश्वास हुआ कि अवसर एवं अस्त्र मिलनेपर स्त्रियाँ भी लड़ सकती हैं। आज माँ चाओके गुरिल्ला-सैनिकोंकी संख्या ३०,००० है, जो मंचूरिया और उत्तरी चीनमें जापानियोंको लोहेके चने चबवानेके बाद अब पीपिंगके आस-पास उन्हें छठीका दूध याद दिला रही है। माँ चाओके गुरिल्ला अधिकांशतः छात्र-छात्राएँ ही हैं, जो खुली लड़ाईमें एक क्षण भी जापानियोंके आगे ठहर नहीं सकते; पर छुपकर जिन्होंने न-जाने कितनी जापानी टुकड़ियाँ खत्म कर दी हैं! उनके कार्योंकी साहसिकताका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि जापानियोंने उसे जीवित या मृत पकड़नेवालेको ५० हज़ार येन इनाम देनेकी घोषणा की है। पिछले दिनों जापानियोंने उसके अनुमानित केन्द्रको तहस-नहस करनेके लिए ६००० सैनिक और ५० बमवर्षक भेजे थे; पर रात-दिनकी अथक खोज-बीनके बाद भी वे अपने कार्यमें सफल नहीं हुए। वे केवल १७ गुरिल्लाओंको ही मार सके। माँ चाओ आज भी उन्हें मौतका रास्ता दिखानेके लिए चीनके जंगलों-पहाड़ोंमें स्वतन्त्र विचरण कर रही है।

चीनका नागरिक जीवन भी महिलाओंके लिए विशेष सुख-सुविधामय नहीं रहा है। कपड़े, चारपाइयाँ, बिस्तरे, खाने-पीनेका सामान आदि लगभग सभी कुछ उन्हें खुद ही तैयार करना पड़ता है—और यह भी केवल एक परिवारके लिए नहीं, नागरिकों और सैनिकोंके एक बहुत बड़े भागके लिए! बम-वर्षाके कारण बाज़ार छिन्न-भिन्न हो गए हैं। उनमें मिलने-वाली चीज़ोंकी अनिश्चितता बड़ी बाधक हो चली है। पर इन सब कठिनाइयोंको चीनी महिलाओंने हँसकर झेलना सीख लिया है। उन्हें किसीसे कोई शिकायत नहीं। मोर्चोंपर लड़नेवाले अपने पिता, पति, भाई या दूर रहनेवाले सम्बन्धियोंको सन्देश भेजते समय वे लिखती (या लिखवाती) हैं कि वे खूब प्रसन्न, सन्तुष्ट एवं सकुशल हैं; चिन्ताकी कोई बात नहीं। इस समय उन्हें अगर कोई चिन्ता है, तो बस अपने देश और उसकी स्वाधीनताकी रक्षा की; और अगर कोई असुविधा है, तो बस जापानी दस्युओंकी! वे बराबर पुरुषोंसे यही कहती हैं कि ज़रूरत पड़नेपर हम भी तुम्हारे साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर लड़ेंगी। आज वे दुगुने उत्साह, साहस एवं बलके साथ खेतों, कारखानों, अस्पतालों और दफ़्तरोंमें काम करनेके लिए जाती हैं।

इतना ही नहीं, कई अदम्य साहसी महिलाएँ मोर्चोंपर पुरुषोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर लड़ भी रही हैं। मर्दानी पोशाकमें कटे हुए बालोंवाली स्त्रियोंको कन्धेपर बन्दूक रखे पुरुषोंके साथ क़वायद करते या मार्च करते देखकर आप शायद ही पहचान सकें। तोपखानों, हवाई-अड्डोंकी व्यवस्था, बेतारके-तार तथा औद्योगिक एवं युद्ध-सामग्री तैयार करनेवाले कारखानोंमें किशोरियाँ, युवतियाँ, प्रौढ़ाएँ तथा वृद्धाएँ बड़े उत्साह एवं लगनके साथ काम कर रही हैं। जापानी प्रगतिके साथ ही जो उद्योग-धन्धे स्वतन्त्र चीनके भीतरी हिस्सोंमें स्थानान्तरित हुए हैं, उन्हें जारी रखनेकी अधिकांश ज़िम्मेदारी इन्हींपर है। साबुनसे लेकर जूतेके फ़ीते, नागरिकोंके कपड़ोंसे लेकर सेनाकी वर्दियाँ एवं युद्ध-सामग्री तथा सहस्रों अनाथों, नागरिकों एवं सैनिकोंके खाद्य आदिकी व्यवस्था भी इन्हें ही करनी पड़ती है। २०,००० अनाथोंके लिए ५० रक्षा-केन्द्र खोले गए हैं, जिनमें उनके पालन-पोषण, चिकित्सा, कपड़े आदिका प्रबन्ध इन्हें ही करना पड़ता है।

इस प्रकार चीनी महिलाओंने सारे बन्धनों एवं रूढ़ियोंको तोड़कर अपने देशकी रक्षाके लिए जो-कुछ किया है, वह चीनके मुक़ाबलेका प्रमुख अंश है। इसीलिए हमें विश्वास होता है कि ७ करोड़ जापानी किसी भी दशामें ४० करोड़ चीनियोंको पराजित-पद्दलित नहीं कर सकेंगे। जिस दिन चीनकी विजय होगी, उसमें चीनी बहनोंका यथेष्ट हाथ तो रहेगा ही; पर साथ ही उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अर्थनीतिक विजय भी होगी। युद्ध-कालमें चीनी बहनोंने जो स्वाधीनता एवं समानता प्राप्त की है, शान्ति-कालमें उसे उनसे कोई भी छीन नहीं सकेगा—बल्कि वह अधिक यथार्थ एवं स्थायी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी

श्री गुरुदयाल मल्लिक

'असत्का अन्धकार जब-जब विश्वको चारों ओरसे घेर लेता है, तब-तब सत्यकी प्रकाश-रेखाके समान मैं उसे चीरता हुआ बाहर होता हूँ'—इतिहासकी यह वाणी, जो भगवानकी वाणी है, मानवीय विकासके अन्तरालसे बार-बार गूँज उठी है। गांधीजी इसी आलोक-रेखाके एक अंश हैं। जो दुनिया भ्रमकी अँधियारीमें कंठ तक डूबी हुई है, मद और अहंकारसे जिसका जन्म है, जिसे वृहदाकार यन्त्र और विषुलकार देहका गर्व है, उसीके बीच गांधीजी उज्ज्वल नक्षत्रकी तरह हमें संकेत कर रहे हैं - निर्देश कर रहे हैं—कि सत्य और प्रेमके आलोक-पथसे हम कहाँ तक दूर जा पड़े हैं?

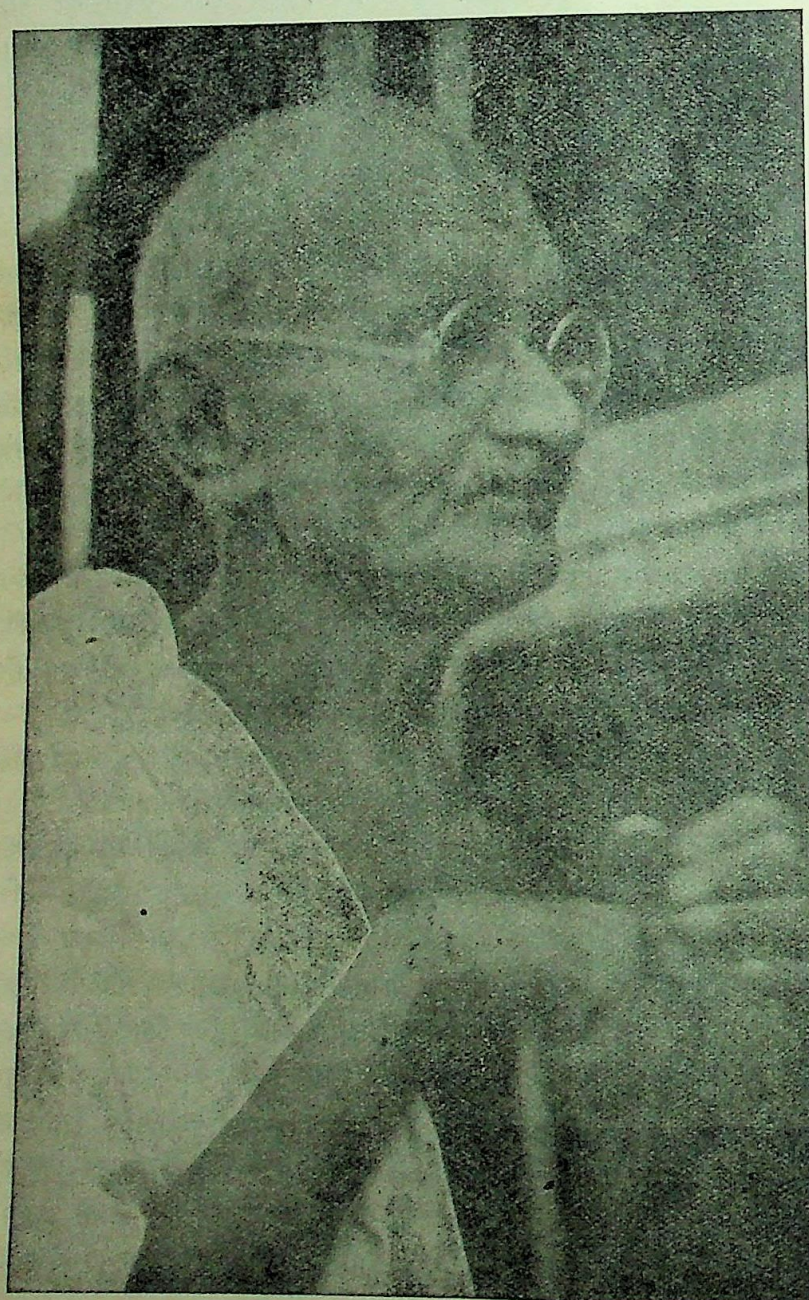

बापू !

कितने ही युग बीते, जिस दिन योद्धाकी तरह पृथ्वीकी कठिन बाधाओंको चीरकर एक छोटा-सा सुकुमार अंकुर प्राणोंकी विजय घोषित करने निकला, अणु-परमाणुओंके ब्रह्माण्डने उस दिन इस विजयका स्वागत किया। हमारे गांधीजी जब अपनी सुदूरवर्तिनी दृष्टिके शिखरसे हमारे बीच आ खड़े हुए, तब हम धरतीके जीवोंने भी ऊपरकी ओर ताककर देखा; आत्माके नवजन्म और नवचैतन्यका अनुभव किया।

'वैराग्यकी साधनामें मेरी मुक्ति नहीं है'—गांधीजीने उत्तर दिया जब हमने उनसे पूछा कि हिमकुंज स्वच्छ परिवेशको छोड़ वे क्यों अपने यात्रीके वस्त्रोंमें हमारी धूलि धूसरित गलियोंकी मलिनता लेने आ गाए? उन्होंने और भी कहा 'मेरे गुरु वहीं छुपे हैं, जहां किसान मिट्टी तोड़ रहा है और मज़दूर पत्थर फोड़ रहा है। उसके वस्त्र अवश्य धूलसे मैले हैं। साथीकी सेवा मुझे भी उस सुन्दर कालिमाको धारण करनी होगी; तभी न उनके योग्य हो सकूँगा?' और एक क्षण ही उन्होंने हलको थामा, बरछी घुमाया, झाड़ूको सँभाला। श्रमिकपर अपनी स्थिर दृष्टि जमाए वे दिनपर दिन अक्लान्त श्रम करते रहे, अपनेको मिटाते रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छ कौपीन इसीसे हमारे दाग़ोंसे भर उठी। किन्तु तारोंकी तरह इन चिह्नोंमें एक प्रकाश था, जिसके सहारे कोटि-कोटि नर-नारी जीवनकी राहपर चल निकले।

इसीलिए हम आज गांधीजीको जहाँ पाते हैं, वह जगह है—किसानका खेत, जहाँ उसकी मेहनत भूखेको दो दाने अन्न जुटा रही है, जहाँ जुलाहा उसकी लज्जा ढँकनेके लिए दो-हाथ कपड़ा बुन रहा है, जहाँ लांछितने दुर्दान्त शक्तिशालीके विरुद्ध निर्भय माथा उठाया है, जहाँ तीर्थ-पथका यात्री सत्यके शिखरकी ओर पाँव-पाँव चुपचाप बढ़ता आ रहा है और जहाँ नारी अपने पुण्यकी शक्तिको लेकर पुरुषकी छातीमें न्यायके लिए अकेले लड़ाई करनेको अनुप्राणित कर रही है। और कहानीके उस अमर पंछीकी तरह जो अपनी चिताकी भस्ममें से फिर जाग उठा था, कोटि-कोटि मानवोंके अन्तरमें वे बार-बार जीवन्त भावसे जाग उठे हैं। दीर्घायु हों हमारे गांधीजी!

युग-प्रवर्त्तक अकबर

श्री गो० स० सरदेसाई

मुग़ल-वंशज हुमायूँ बादशाहकी मल्काका नाम हमीदाबानू था। इसी भाग्यशालिनीकी कोखसे १४ अक्तूबर, १५४२ को सिन्ध-प्रान्तकी पूर्वी सरहदके उमरकोट ग्राममें अकबरका जन्म हुआ। इतिहासकारोंने अकबरको 'महान्'की उपाधिसे सुशोभित किया है। यह प्रथा पश्चिमके लेखकोंकी है। सिकन्दर, शार्लमन, एल्फ्रेड, चार्ल्स, नेपोलियन आदि राजाओंको इसी शब्दसे सम्बोधित किया गया है। 'अकबर' अरबीका शब्द है, जिसका अर्थ है 'महान्', सबसे उच्च। किन्तु ऐसे सामान्य शब्दसे उस व्यक्तिकी वास्तविक विशेषता व्यक्त नहीं हो पाती। उससे कहीं अधिक 'युग-प्रवर्त्तक' शब्दमें कुछ नवीन, विशेष तथा उच्चतम कल्पना प्रतीत होती है। हमारी आर्य-परम्परामें ज्ञानकी महत्तापर व्यक्तिकी प्रतिष्ठाका मूल्यांकन होता है। शाक्यमुनि गौतमने 'बुद्ध'—यानी ज्ञानी, सत्य ज्ञानी, अज्ञजनको ज्ञानका सत्य-मार्ग बतानेवाला—ऐसा साभिप्रेत अभिधान स्वीकार किया। ज्ञान मनुष्यको महानता प्रदान करता है। ज्ञानसे ही लाखों मनुष्योंका जीवन सुखमय बनता है। ज्ञान ही शास्त्रका जनक है। शास्त्रका अर्थ है शासनका, जगन्नियमनका, मार्ग। बुद्ध, ईसा, भगवान श्रीकृष्ण—ये हैं ज्ञानी। हमारी पूर्व-संस्कृतिमें युग-प्रवर्त्तक मनुकी कल्पना इसी अर्थमें सार्थक है। अशोक, अकबर, शिवाजी ऐसे कित्येक पुरुषोंने जगन्नियमनका नया मार्ग दिखाया और जन-सुख-वृद्धिके महान् ध्येयोंको प्रचलित किया। इन्हींको सच्चे अर्थमें 'महान्' यानी 'युग-प्रवर्त्तक' कहा जायगा। सिकन्दर, जूलियस सीज़र, नेपोलियन आदि कितने ही पुरुषोंको पराक्रमी-सामर्थ्य-वान कहा जायगा; किन्तु उनके कार्योंसे जनताके सुखमें वृद्धि नहीं हुई, वरन् हानि ही हुई है। इतिहास पढ़नेवाले यह बात भलीभाँति जानते हैं। अतः इस दृष्टिसे उन्हें यथार्थमें महान् नहीं कहा जा सकता।

जग-चक्रकी ओर देखनेसे ज्ञात होगा कि यह युग-प्रवर्त्तन प्रतिक्षण चल रहा है। आज भी यह अखिल जगत्में चल रहा है। युद्ध असत्यका प्रचार, परापहार, शक्ति-सम्पन्नों द्वारा दुर्बलोंको लूटने आदि अनीतिपूर्ण विचारों एवं क्रियाओंपर आधारित है। प्राचीन समयमें बुद्ध, अशोकादि महात्माओंका प्रचार ठीक इसके विरुद्ध था। उस समय जनताके व्यवहारमें धर्मकी प्रबलता थी। कोलम्बससे पूर्व जगत् यूरोपसे अपरिचित था। अनन्तर प्रथम नौका-व्यवहारसे तथा आधुनिक समयमें मोटर-विमानोंके प्रसारसे यातायातके साधन बढ़कर सभी देश एक-दूसरेके निकट आकर सुविज्ञात होते गए। प्राचीन युगमें अनेक धार्मिक युद्ध लड़े गए। यूरोपमें धर्मच्छलके हेतु अनेक संग्राम हुए। भारतवर्षमें भी महमूद गज़नवीसे लगाकर पठानों तकने खूब लूट-पाट की, मूर्त्ति-मन्दिरोंका विनाश करके इस देशको छिन्न-भिन्न कर दिया। इसी कारण पठानोंकी सत्ता चिरस्थायी न रह सकी और देशमें सर्वत्र सैकड़ों वर्ष पर्यन्त अन्धाधुन्धी मची रही। ऐसी दुःखमय तथा अशान्त परिस्थितिमें ही अकबरका जन्म हुआ।

अकबरके पिताको राज्य छोड़कर वनवासमें रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। अतएव अकबरको शैशवमें सुखकी झोंपड़ी भी नसीब नहीं हुई। माता-पिता उसे जंगलमें छोड़कर चल दिए। काकाके नियन्त्रणमें रहकर उसे अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं। वह हस्ताक्षर कर सके, उसे इतनी भी शिक्षा देनेकी किसीने चिन्ता नहीं की। वह जीवित कैसे रहा, यही आश्चर्य है। पिताकी मृत्युके समय तेरह वर्षका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक सुदूर पंजाबमें था। केवल उसका पालनकर्त्ता बहरामखाँ उसके निकट था। उसने अकबरको बादशाही सिंहासन पर बिठाकर शासन-सूत्र अपने हाथमें ले लिया। अकबरकी महाम अनागा नामक दाई बुद्धिमती तथा राजनीति-निपुण थी। उसके तथा बहरामखाँके हाथकी कठपुतली बनकर अकबरने अपने शासनके पाँच वर्ष जैसे-तैसे समाप्त किए। अकबरको दबाकर मनमाना बर्ताव करनेकी बहरामखाँकी इच्छा थी; किन्तु अकबरका मानी स्वभाव इस बातको न सह सका। 'बादशाह कौन? मैं या बहरामखाँ या महाम अनागा?' यह प्रश्न उसके मनमें रात-दिन उठने लगा। साल-छः मासमें ही उसने दोनोंको दूर ढकेल दिया और शासन-सूत्र अपने हाथमें लेकर धड़ल्लेके साथ अपने विचारोंको अमलमें लानेका निश्चय किया। इस समय अकबरकी आयु १८-१९ वर्षकी हो गई थी।

अकबरके शासनमें इस समय चट्टानकी तरह एक भयानक बाधा उपस्थित हुई। घर-बाहर प्रत्येक व्यवहारमें, प्रतिक्षण धर्मकी बाधा उसका अवरोध करने लगी। उस समय और स्थितिमें धर्मका अर्थ था मुल्ला या क़ाज़ीके वचन। उसके मुखसे निकलनेवाला प्रत्येक शब्द मानो धर्मका नियम था। न्याय-विभाग इन्हींके हाथोंमें था। किसी भी कार्यमें—फिर चाहे वह धर्म-कार्य हो, राज-कार्य हो, लगान-वसूली हो, सेना भर्ती करनी हो—सारांश कि राज्यके किसी भी कार्यमें यदि इन मुल्लाओंकी सम्मति प्राप्त नहीं हुई, तो बादशाहको रुक ही जाना पड़ता था। शत्रुके आक्रमणका समाचार सुनकर अकबर उससे लड़ने निकलता, तो ये मुल्ला कहते—'रुकिए, नमाज़का समय हो गया है। पहले नमाज़ पढ़िए। निकलनेके पूर्व ज्योतिषियोंसे मुहूर्त्त पूछिए। धर्म-गुरुओंको दान दीजिए।' इस प्रकार अकबरके प्रत्येक कार्यमें यह मुल्ला हठ करके बाधा उपस्थित करने लगे। अतः सन् १५६० के अनन्तर दो-तीन वर्ष अकबरने इसी चिन्तामें बिता दिए कि इनसे कैसे पिण्ड छुड़ाया जाय? पासमें धनकी कमी थी। राज्यकी सीमा तब दिल्लीके आसपासकी सौ-पचास मील भूमिसे अधिक नहीं थी। देशमें चारों ओर बग़ावत फैली हुई थी। शत्रु सभी ओरसे आक्रमणको तैयार खड़े थे। कोई विश्वासु सेवक अकबरके पास नहीं था। ऐसी विकट परिस्थितिमें अकबरने अपना प्रभाव स्थापित करके अपने पैर जमाए तथा जनता-जनार्दनके आत्यन्तिक हितका एक नवीन प्रयोग सफलतापूर्वक कर दिखाया।

अकबर सन १५५६ में सिंहासनपर बैठा तथा पचास वर्ष राज करके सन् १६०५ में मर गया। सन् १५६२ तक प्रथम सात वर्षोंमें उसने धीरे-धीरे सम्पूर्ण राजसत्ता अपने हाथोंमें ली। तबसे तेरह वर्ष पर्यन्त उसने अनेक प्रान्तोंपर आक्रमणकर अपने राज्यमें शान्ति एवं स्थिरता स्थापित की तथा नर्मदा नदी तक अपना राज्य-विस्तार किया। इसी बीच उसे एक-दो सत्यनिष्ट मार्गदर्शक मिले। उनकी सत्यतासे उसने सन् १५७५ में बीच-बीचमें रोड़े अटकानेवाली धर्मकी बाधाएँ दूर करनेका एक नया उपक्रम आरम्भ किया। यह उपक्रम सफल हुआ और सन् १५८३ में किसी भी सुयोग्य विचारधारासे सामंजस्य स्थापित करनेवाला एक नवीन 'दीन-ए-इलाही' (ईश्वरका धर्म) उसने जनताके सम्मुख रखा। इस बनाव-बिगाड़की कहानी अत्यन्त मनोरंजक है।

उलेमाका अर्थ है 'धर्म-गुरु'। इन धर्म-गुरुओंने अकबरके मार्गमें जो बाधाएँ उपस्थित कीं, उनका निराकरण करनेका जब वह उपाय सोच ही रहा था, तो दो विचित्र व्यक्तियोंसे उसका परिचय हुआ। एक था राजा बीरबल और दूसरा शेख मुबारक। 'राजा बीरबल' उपाधि अकबरने महेशदासको प्रदान की थी, जो काल्पी-निवासी तद्देशीय ब्राह्मण था। उसका धन्धा भाटोंका था। कविताएँ रचकर, उन्हें राजाओंको सुनाकर जीविकोपार्जन करना ही उसका काम था। राजपूत राजाओंसे उसका परिचय था। प्रखर-बुद्धि, भाषा-प्रभुत्व, चतुर वाणी आदिके सामंजस्यसे उसने खूब कीर्त्ति सम्पादन की थी। सन् १५६२ में अकबरने जयपुरपर आक्रमण किया। उस समय वहाँके राजाने महेशदास भाटको अपनी ओरसे सन्धिकी चर्चा करनेके लिए अकबरके पास भेजा। किन्तु प्रश्न यह था कि अकबरके पास पहुँचा कैसे जाय? काव्य-कलाने इस समय उसका साथ दिया। उसने सुन्दर, आकर्षक कविताएँ कर्ण-मधुर स्वरमें गाकर अकबरका मन मोह लिया। अकबर बहुत खुश हुआ और उसने इस भाटको खूब इनाम देकर अपने पास ही रख लिया। दरअसल इस भाटने कविता द्वारा राजपूत-कुल तथा हिन्दू-धर्मकी तरफ़दारी करके बादशाहके मनकी शत्रुत्वकी भावना शान्त कर दी। अनन्तर अकबरकी व उसकी रात-दिन इसी विषयपर खुली चर्चा होने लगी। गत ४००-५०० वर्षोंमें मुसलमानोंने हिन्दुओंके साथ अत्यन्त छल किया था। इस छलसे मुसलमानोंको कुछ भी लाभ नहीं हुआ। हाँ, हिन्दू अवश्य त्रस्त और उनके विरुद्ध हो गए। यदि मुसलमानोंको भारतपर वर्षपर राज्य ही करना था, तो यहाँके निवासियोंके प्रति शत्रुत्वकी भावनाएँ रखकर वे कैसे चिरस्थायी हो सकते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आग और खूनसे खेलनेवाले सोवियत रूसके दो दृश्य

नात्सी शैतानों द्वारा स्त्रियों और अबोध बच्चोंपर किए गए अत्याचारोंका एक दृश्य। आज वीर रूसी इसका बदला लेनेको मुस्तैदीसे आगे बढ़ रहे हैं।

एक रूसी माता अपने पुत्रको नात्सी शैतानोंको मार भगानेके लिए मोर्चेकी ओर भेज रही है। [श्री अजितकुमार मुखोपाध्यायके सौजन्यसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

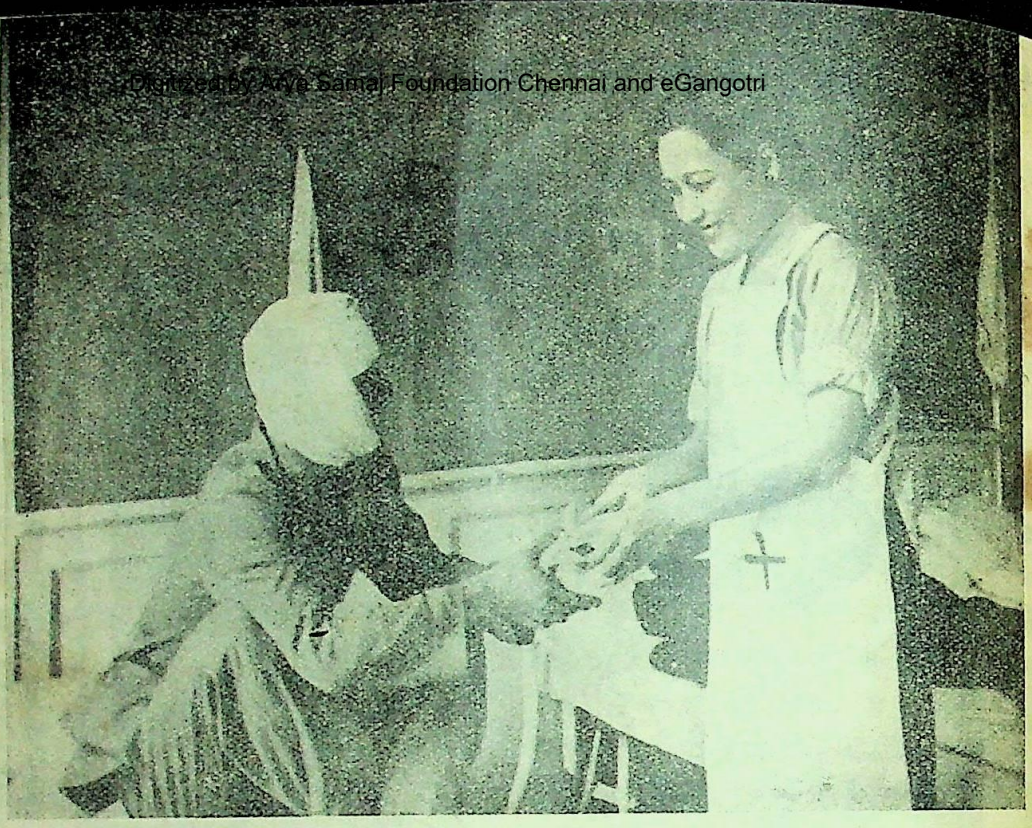

चीनके एक अस्पतालमें मादाम च्यांगकाई शेक स्वयं नर्सका काम कर रही हैं।

लिक्यांग-कालेजके शवाईसे १२०० मील दूर चुंकिंग स्थानान्तरित किए जानेपर कुलीन एवं सुशिक्षिता चीनी युवतियोंने न
अपना सामान ही स्वयं ढोया, बल्कि रास्तेमें सड़कें बनाईं, बाग लगाए तथा खेलके लिए मैदान आदि भी साफ किए।
चित्र श्रीअजितकुमार मुखोपाध्यायके सौजन्यसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीरबलने अकबरको बताया कि जनताका सुख और हित राजाको ही देखना होगा, जो जनताको सन्तुष्ट रख सके, वही सच्चा राजा है। परमेश्वर सबका एक ही है। धर्म-भेद कृत्रिम दिखावा-मात्र है। सभी मनुष्य उसी परमेश्वरकी सन्तान हैं, अतएव सभीकी क्षमता एवं अधिकार समान हैं। इस प्रकार बीरबलने अकबरके सम्मुख राज करनेका एक नया मार्ग प्रस्तुत किया। अपनी अपूर्व योग्यतासे बीरबलने अपने इन क्रान्तिकारी विचारोंकी नींव अकबरके हृदयमें इतनी गहरी जमा दी कि उसने राजपूतोंका प्रेम तथा सहयोग प्राप्त करनेका विचार किया। बीरबलने बतलाया कि यदि यह कार्य स्थायी करना है, तो दोनों जातियोंमें रोटी-बेटी-व्यवहार होना चाहिए। इस सम्बन्धमें राजपूतों तथा अकबरकी ओरसे अनेक चर्चाएँ हुईं। निष्कर्ष यह निकला कि राजपूत अपनी पुत्रियोंका विवाह बादशाह तथा उनके वंशजोंसे करें। राजपूत राजाओंने यह तो स्वीकार कर लिया; पर मुसलमानोंकी लड़कियोंसे विवाह करना अस्वीकार कर दिया। स्वयं अकबरका विवाह जयपुर-निवासी बिहारीदासकी पुत्रीसे हुआ।

इसी बीच अकबरने अपनी सेना चित्तौड़पर आक्रमण करनेके लिए भेजी। चित्तौड़के राणा उदयसिंह व प्रतापसिंह स्वधर्म-रक्षार्थ अन्त तक लड़ते रहे। अन्तमें प्रतापसिंहने अपनी स्वतन्त्रता अकबरसे स्वीकार करा ली। इन सारी बातोंसे अकबरके मनमें यह धारणा जम गई कि राजपूतोंको शत्रु बनाकर राज्यमें शान्ति एवं स्थिरता नहीं रह सकती। अतएव हिन्दुओं तथा मुसलमानोंकी मूल धार्मिक भावनाओंमें सामंजस्य स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। भविष्यमें इस विचार-धाराका प्रयोग करनेके लिए अकबरने कमर कस ली। इस कार्यमें बीरबलने प्रेम एवं विश्वासपूर्वक उसका आजीवन साथ दिया। इसी समय एक दूसरा सुयोग उपस्थित हुआ, जिसकी कहानी इस प्रकार है।

अरबसे एक सैयद महाशय कुछ वर्ष पूर्व हिन्दुस्तानमें आकर अजमेरमें रहने लगे थे। उनके वंशमें सन् १५०५ में एक शेख मुबारक नामक विद्वानका जन्म हुआ। अनेक धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर उसे ज्ञात हुआ कि इस्लाम-धर्ममें बहुत-सी बातें व्यर्थ तथा अधिकतया दिखावा-मात्र हैं। उसकी आयु जब कुछ बढ़ी, तो उसने आगरा शहरमें क़ुरान पढ़ानेके लिए एक पाठशाला स्थापित की। इस पाठशालामें वह अपने स्वतन्त्र विचारोंको पढ़ाने लगा। अपूर्व बुद्धिमत्ता तथा भाषा-प्रभुत्वके संयोगसे शेख मुबारकका शिष्य-समुदाय शीघ्र ही बढ़ गया और देश-भरमें इस्लामकी चर्चा-आलोचना होने लगी। इसी समय यूरोपमें मार्टिन लूथरने ईसाई-धर्मकी अन्धविश्वास-पूर्ण बातोंके विरुद्ध प्रचार आरम्भ करके एक नया सुधारक-पथ स्थापन किया था। उसी प्रकारका प्रयत्न शेख मुबारकने भी किया। अतः मुबारकपर दिल्लीके कट्टरपन्थी उलेमा बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने उसका बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया। अकबर जब बादशाही सिंहासनपर बैठा, तब यह विरोध-बहिष्कार अपनी सीमा पार कर चुका था। उलेमाओंने बादशाह अकबरके पास शिकायत करके किसी तरह उसको क़त्ल करानेकी आज्ञा भी प्राप्त कर ली। मुबारकको इस बातका पता लगते ही वह प्राण बचानेके लिए भागकर अजमेर चला गया। वहाँ शेख सलीम चिश्ती नामक एक साधुने उसकी जान बचाई। शेखको वहाँ रहते अनेक वर्ष बीत गए। इसी बीच उसके दो पुत्र हुए। बड़ा अबुलफ़ैज़ी (सन् १५४७-१५९५) व छोटा अबुलफ़ज़ल (सन् १५५१-१६०२)। ये दोनों भी अपने पिताके पास रहकर विद्योपार्जन करते हुए स्वतन्त्र विचारोंके उपासक बन गए। पिताके साथ ही लोगोंने उनका भी बहिष्कार किया, जिसे सहते हुए वे बड़े कष्टसे समय व्यतीत करने लगे। फैज़ी शान्त स्वभावका था और अधिकतर काव्य-कलाकी उपासनामें ही निमग्न रहता था। किन्तु फ़ज़ल स्वतन्त्र विचारोंका, गरम स्वभावका, बोलकर तथा लिखकर जनतापर अपने विचारोंका प्रभाव डालनेवाला, विद्वान तथा बहुश्रुत था। जिन लोगोंने उसका बहिष्कार किया था, उनसे पूरा-पूरा बदला लेनेके लिए उसकी भावना उग्र हो उठी।

इस प्रकार पिता-पुत्र तीनों अपना कार्य अबाध रूपसे कर रहे थे कि संयोगसे फैज़ीके काव्यकी कीर्त्ति अकबरके कानों तक भी पहुँची। अकबरने उसे बुलाकर उसकी कविताएँ सुनीं। बादशाहको वे बहुत पसन्द आईं। उसने फैज़ीको (सन १५६८ में) अपने पास ही रख लिया। इसके ६ वर्ष बाद ही (सन् १५७४ में) अकबरने बंगालपर आक्रमण किया। साथमें फैज़ी भी था। किसी एक प्रसंगपर अकबरने किन्हीं घटनाओंका इतिहास लिखनेकी फैज़ीको आज्ञा दी। फैज़ीने कहा—'मुझसे यह काम अच्छा नहीं हो सकेगा। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मेरे एक छोटा भाई और है, वह यह कार्य बेहतर ढंगसे कर सकेगा।' अतएव बंगालसे लौटते ही बादशाहने फ़ज़लको बुलवाया। फ़ज़लका स्वभाव ही कुछ ऐसा मोहक था कि एक बार यदि किसीसे भेंट हो गई, तो वह उससे प्रभावित हो जाता था। फतेहपुर-सीकरीमें सन् १५७५ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भमें अकबर और फ़ज़लकी प्रथम भेंट हुई। तबसे वे दोनों प्रेम-सूत्रमें बँध गए।

बादशाहका आश्रय मिलते ही शेख मुबारकके खानदानका भाग्योदय होने लगा। मुल्लाओंकी ओरसे होनेवाला बहिष्कार अपने-आप बन्द हो गया। इतना ही नहीं, राजनीतिसे उनके धार्मिक अधिकारका उच्चाटन किस प्रकार किया जाय, इसीपर सब विचार करने लगे। अकबरको हिन्दुस्तानमें अपना राज्य चिरस्थायी करनेकी धुन रात-दिन सवार थी। स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करनेपर उसे ज्ञात हुआ कि सर्वधर्म एक-से ही हैं। किसीका किसीपर ज़ुल्म करना उचित नहीं है। जबसे बीरबल द्वारा अकबरका राजपूतोंसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हुआ था, तभीसे बादशाहकी सहिष्णुता एवं समताकी भावना अधिक दृढ़ हो चली थी। अकबर और फ़ज़लके गुणावगुण एक-दूसरेके अभावकी पूर्त्ति करने लगे। अकबर अभिमानी, अशिक्षित व चिकित्सक स्वभावका था, तो फ़ज़ल खुशामदी, प्रसंगानुरूप स्तुति-पाठ करके बादशाहको प्रसन्न करनेमें तत्पर रहता था। अकबरको फ़ज़लसे स्तुति प्राप्त होती थी और फ़ज़लको बादशाहसे गौरव प्राप्त होता था। इस तरह फ़ज़लकी योग्यता और अकबरकी बुद्धि जनताके काम आने लगी। मुल्ला लोगोंका मुँह किस प्रकार बन्द किया जाय, यही चिन्ता बादशाहको सता रही थी। यदि अपने अधिकारके ज़ोरपर वह मुल्लाओंका दमन आरम्भ कर देता, तो अत्यन्त अनर्थ हो जाता। जनतामें धार्मिक खलबली मचकर बग़ावत फैल जाती। फ़ज़लने अपने मालिकको उलेमाओंपर विजय प्राप्त करनेका एक नया ही मार्ग सुझाया। वह मार्ग यह था कि मुल्ला कहते हैं हमारा मुसलमान धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है; किन्तु जगमें और भी अनेक धर्म हैं। उन सब धर्मोंके योग्य प्रतिनिधियोंका एक सम्मेलन किया जाय और उसमें बादशाहके सम्मुख सब धर्मोंकी खुली चर्चा हो। इस चर्चासे जो फल निकले, वह सबको मान्य होना चाहिए।

अकबर उन दिनों अधिकतर फतेहपुर-सीकरीमें ही रहता था। वहाँ बहुत बड़े पैमानेपर सम्मेलनकी तैयारी शुरू हुई। एक बड़ा 'इबादतखाना' बनाया गया, जहाँ प्रत्येक गुरुवारको खुले तौरपर धर्मकी चर्चा तथा वाद-विवाद होने लगे। इसके लिए दूर-दूरसे मुस्लिम, हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईरानी, ईसाई आदि अनेक धर्माचार्य आमन्त्रित हुए। नवसरीसे दस्तूर मेहरजी राणा गए। उनकी विद्वत्तासे प्रभावित होकर बादशाहने उनके तथा उनके पश्चात् उनके वंशजोंके लिए सालाना पेन्शन क़ायम कर दी। गोवाके पोर्चुगीज़ोंके रोमन कैथलिक पन्थका उन दिनों भारतमें अधिक प्रचार था। वहाँसे आक्वाहिया, मान्सेराट, फ्रान्सिस, हेन्रिक आदि अनेक पादरी आए। काशीके पुरुषोत्तम तथा देवि आदि अनेक विद्वान भी आए। हीरविजय सूरि, विजयसेन सूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय, जिनचन्द्र, सिद्धचन्द्र आदि अनेक जैन धर्मोपासक भी आए। चार्वाक-मतावलम्बी तथा निरीश्वरवादी भी आए। इन सभी अभ्यागतोंका बादशाहने यथायोग्य सत्कार तथा आदरातिथ्य किया। इस प्रकार सतत आठ वर्ष पर्यन्त यह धर्म-चर्चा चलती रही। इस युक्तिसे धीरे-धीरे मुल्लाओंका पानी उतर गया और उनके मुँह अपने-आप बन्द हो गए।

इस वाद-विवादसे यह ज्ञात हुआ कि प्रचलित परिस्थितिमें कोई भी एक धर्म पूर्ण रूपसे राज्यके प्रति लागू नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्ममें कुछ-न-कुछ गुण व दोष हैं। ईरानी धर्मकी अग्नि-पूजा, हिन्दुओंकी सूर्योपासना, जैनोंकी अहिंसा, ईसाइयोंके समान बन्धुत्व आदि अनेक मोटे-मोटे तत्त्व सर्वमान्य घोषित किए गए। सबकी रायसे यह निर्णय हुआ कि सब धर्मोंके उत्तमोत्तम तत्त्वोंको एकत्रित करके एक नया धर्म बादशाहकी ओरसे चलाया जाय तथा उसके प्रचलनका उत्तरदायित्व स्वयं बादशाह स्वीकार करें। इसके फल-स्वरूप सन् १५८२ में सर्वसम्मतिसे एक विवेचनात्मक नियम बनाया गया कि धर्मका मुख्य अधिष्ठाता बादशाह ही है। इस नियमपर सभी मुल्लाओं तथा प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर लिए गए एवं इसका विज्ञापन समस्त राज्यमें किया गया। सन १५५९ में इंग्लैण्डकी रानी इलिज़ाबैथने 'एक्ट आफ़ सुप्रीमेसी' नामक क़ानून बनाकर धर्मसत्ता अपने हाथमें ले ली, उसी प्रकार अकबरने भी सन् १५८३ में राजनीतिके साथ-साथ धर्म-नियन्त्रण भी अपने हाथमें ले लिया। इस नए धर्मको 'दीन-ए-इलाही' नाम दिया गया तथा 'अल्ला-हो-अकबर' यह महामन्त्र उसकी आराधनाके लिए प्रयुक्त किया गया। इस मन्त्रके दो अर्थ होते हैं। एक तो 'अकबर' शब्दका अर्थ 'उच्चतम' होनेसे 'परमेश्वर उच्चतम' है और दूसरा यह कि 'अकबर उच्चतम है'। मुल्ला इस महामन्त्रका विरोध उलेमा नहीं कर सके और अकबरका इच्छित कार्य बन गया। एक क्षणमें मुल्लाओंकी सत्ता नष्ट हो गई। राज्यमें उचित परिवर्त्तन करनेका, प्रजाके लिए नए नियमोंके निर्माणका तथा नवीन धर्मके प्रचारका अधिकार अकबरके हाथोंमें आ गया।

सुयोग्य विचार-धाराको जो मान्य हो सके, वही धर्म मनुष्यको अपने इच्छित ढंगसे ईश्वरोपासना करने या न क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता होनी चाहिए। एकका दूसरेपर ज़ुल्म करना अन्याय है। अर्वाचीन युगमें इस विचार-क्रान्तिका सर्वप्रथम प्रमुख प्रणेता अकबर ही है। अकबरके पहले मुसलमानोंने जो अत्याचार किए थे, उन्हें उसने अयोग्य एवं अन्याय्य सिद्ध किया। धर्मके नामपर चाहे जैसे अन्याय करना, समाजमें मनमानी करना, ज़बरदस्ती धर्मका प्रसार तथा प्रचार करना, उसके प्रीत्यर्थ युद्ध करना अदि पागलपनके अप्रयोजक प्रकार यदि किसीने जनताके सम्मुख धड़ल्लेके साथ रखकर उनका प्रकट रूपसे विरोध किया, तो एक अकबरने ही। राज्य-व्यवहारसे तथा राजनीतिसे धर्मका उच्चाटन करके स्वतन्त्रता, समता व बन्धु-भावकी स्थापना यूरोपमें अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें फ्रांसीसी राज्य-क्रान्तिसे हुई। यूरोपकी इस घटनाके २०० वर्ष पूर्व वही कार्य भारतमें अकबरने कर दिखाया। यह उसका चिरन्तन, पवित्र तथा अविस्मरणीय कार्य है। इसे ही सच्चे अर्थोंमें 'युग-प्रवर्त्तन' कहते हैं। अकबरके अनुयायियोंने उसकी इस पवित्र प्रथाको उसके अनन्तर भुला दिया। उसीका फल मुग़ल-साम्राज्यने तो भोगा ही; पर सारा भारतवर्ष आज भी भुगत रहा है। किन्तु इससे धर्मोंकी एकता प्रस्थापित करनेका अकबरका सराहनीय उद्योग भुलाया नहीं जा सकता और न उसकी महत्ता ही कम हो सकती है। अनु०—श्या० ना० चिताम्बरे

'नजर नसाय गई, मालिक!'

प्रो० विनयमोहन शर्मा

सुबह आया। खुला और चढ़ा सबेरा था। पाँच दिन लगातार पानी बरसनेके बाद उस रोज़ आकाशसे तेज़ धूप छिटक रही थी—हौले-हौले, मिठास-सी लिए हुए। जीमें उल्लास झूल-सा रहा था। मैं सामनेके कमरेमें बैठा सोच रहा था—कालिदासने बरसाती दिनोंको 'दुर्दिन'की संज्ञा ठीक ही दी है। बादलोंका रोज़-रोज़ घुमड़ना, गरजना-तरजना और झरते रहना उन्हें भी न सुहाया होगा। अपनी अनुभूतिको महाकविकी अनुभूतिसे मिलते देखकर हृदय गर्वसे भर गया था। उसी समय सामनेकी सड़कसे एक अलमस्त तरुण गाते हुए निकला—'घिर आईं बदरिया सावनकी, मनभावनकी। घिर.....' उसके गानेमें 'खटका' था और स्वरमें काट। ऐसा लगा, मानो वह महाशय मेरी मनोवृत्तिकी निर्दय आलोचना कर रहे हों। मैं मन ही मन हँस पड़ा, क्या खूब!

'बाबू नौकरी मिली?' आवाज़ने मुझे ज़रा चौंका दिया। सामने देखा, एक अधेड़ उम्रका दुबला और लम्बा-सा आदमी अपने दोनों हाथोंको जोड़े खड़ा था। शरीरपर एक मैला कुर्ता था, जो कन्धों और बगलोंपर फटकर अपने जीर्ण होनेकी शहादत दे रहा था। वह घुटनों तक पहुँचनेवाली बरसाती खाकीकेरंगकी धोती पहने था। सरपर सिर्फ़ बाल थे और पैरोंमें बिवाइकी दरारें। भाल चन्दनसे पुता हुआ था। आँखोंमें आशा-निराशा आँखमिचौनी-सी खेल रही थीं। उसने दुहराया—'मेरे बाबू, मालिक, नौकरी मिली ना? हम बाम्हन हैं।'

'कौन-सी नौकरी तुम कर सकते हो? खाना बना सकते हो?'—मैंने पूछा।

'काहे नहीं, बाबू! हम सब काम करि सकित है। मौका परै पै जूतौ साफ़ करि सकित है—बच्चनका मैला तक। मालिक, मा-बाप दाखिल हौ।'

मुझे ऐसे ही 'पीर, बाबर्ची, भिश्ती, खर' व्यक्तिकी आवश्यकता थी। मैंने बिना ज़्यादा जिरह या पूछ-ताछ किए, उसे रख लिया।

- २ -

वह रहा। दोनों प्रहर रोटियाँ बनाता, झाड़ू लगाता—सब करता। बच्चोंको खिलाने और उनके साथ खेलनेमें उसे विशेष सुख मिलता। छोटी बच्चीको वह बहुत चाहता था। उसके प्रति उसकी ममता पक्षपातकी सीमा तक पहुँची हुई मालूम होती थी। उसकी एक बात भी वह खाली न जाने देता था। अगर उसका वश चलता, तो वह आकाशकी 'तरैया' भी उसके लिए तोड़कर ला दे सकता था। कहता—'चार साल छोड़े हो गया। हमरी रमैयअ इत्ती बड़ी होई।' मैं उसकी सहृदयतापर बेहद खुश था।

'तो तू कब जायगा शंकर, अपनी रमैयाके पास? कभी चिट्ठी वगैरह डालता है घरको? रमैयाकी माँ भी है न?'—मैंने एक दिन पूछा।

'सब हैं, मालिक! दो ठौ आमके बिरवा हैं। थोड़ी ज़मींदारी है। भाई है, भौजाई है। मुदा भौजाईसे हमरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनति नाहीं है। रमैयाकी माँ मैकेमें है। वहींका मनीआडर भेजत रहे हैं।'

वह फुर्सतके वक्त हमारे बीच बैठ जाता और अपनी राम-कहानी कहता रहता और अन्तमें यह ज़रूर बोलता—'अब हम मालिक, कतौं नौकरी न करब, तुम्हार दुवार न छाँड़ब!

- ३ -

वह गया। मुँदा और उतरा हुआ दिन था। धरतीमाता पानीसे नहा रही थीं—ज़ोरोंकी बौछारोंमें! मैंने देखा, शंकर सिर तक धोती लपेटे और बगलमें अपनी 'पोटरी' दाबे मेरी टेबिलके पास आ रहा है। आते ही वह पैरोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा।

'क्या हुआ रे शंकर तुझे?—मैंने पूछा।'

उसका रोना और बढ़ गया—'माफी देव हजूर, अब हम देस जाइत है।'

मैं हैरान था—'क्यों? बोल न, क्या हुआ तुझे?'

उसने मेरे हाथमें एक रुपएका नोट रखकर थर्राई हुई आवाज़में कहा—'मालिक, हमार नजर नसाय गई। हम अब आपके घरमाँ रहन लायक नाहीं रहे। माफी मिलै, सरकार!'

उसकी आँखोंसे आँसू जारी थे। मैंने उसे बहुतेरा समझाया कि उसकी एक रुपएकी चोरीकी चर्चा किसीसे न होगी। पश्चात्ताप कर लेनेपर मनुष्यके पाप धुल जाते हैं, पर वह न माना।

'हमारे मुँहपर तो कारिख पुत गई, हजूर! हम यह मुँह आप सबका कैसन दिखाब? का कही, नजर तो नसाय गई, मालिक!' कहता हुआ वह अहातेके बाहर हो गया—बरसते पानीमें भींगते हुए!

× × ×

शंकर समाजकी नज़रोंमें गिरा हुआ प्राणी है—अशुद्ध, असंस्कृत। परन्तु उसकी आत्मा कितनी ऊँची है, कितनी संस्कृत और सभ्य। महीने-भरसे मेरी आँखोंमें वह घूम रहा है और कानोंमें गूँज रहे हैं उसके ये शब्द—'नजर तो नसाय गई, मालिक!'

सिटी-कालेज, नागपुर]

स्वर्गीय आचार्य शुक्ल

श्री ललीप्रसाद पाण्डेय

दिवंगत आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लके सम्बन्धमें अनेक लोगोंने विभिन्न पत्रोंमें संस्मरण लिखे हैं। किन्तु 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास'के सम्बन्धमें लोगोंने बहुत कम प्रकाश डाला है और यह है आचार्य शुक्लकी बहुत महत्वकी कृति। इस पुस्तकके सम्बन्धमें जो थोड़ा-बहुत मुझे मालूम था, उसे प्रकट करनेके लिए ही ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।

उनकी बड़ी मूँछें और टाई-कालर आदिको देख प्रथम परिचयमें मिलनेवालेको कुछ झिझक-सी होती थी; किन्तु वे तो भीतरसे नवनीत-समान थे। मेरा स्वल्प परिचय था। एक मुस्लिम ग्रेजुएटको ट्रेनिंग-कालेजमें भर्ती होनेके लिए इस बातके प्रमाणपत्रकी आवश्यकता थी कि प्रवेशार्थी हिन्दीसे परिचित है। वह मेरे पास आया, यद्यपि उससे मेरा विशेष परिचय नहीं था। मैंने दो-एक वाक्य उससे हिन्दीमें लिखवाए और समझ लिया कि यह नागरी लिख-पढ़ लेता है। फिर उसको साथ लेकर मैं शुक्लजीके यहाँ गया। उन्होंने मुझसे संक्षिप्त भूमिका सुनकर प्रवेशेच्छुकी कुछ परीक्षा लिए बिना ही उसे प्रमाणपत्र लिखकर दे दिया। उस व्यक्तिने इसी आशयका एक प्रमाणपत्र देनेका अनुरोध एक युवक प्रोफेसर हिन्दी मास्टरसे भी किया, जो शुक्लजीकी तुलनामें कुछ भी नहीं था। पर वहाँ प्रवेशेच्छुको कई बार भटकनेपर ही सफलता हुई।

'हिन्दी-साहित्यका इतिहास'का प्रथम संस्करण संवत् १९८६ में हुआ था। उस समय आचार्य शुक्लजीको इतनी प्रसिद्धि प्राप्त न हुई थी। मेरा भी उनसे प्रत्यक्ष परिचय न था। उक्त संस्करणमें अनेक लेखकों और कवियोंका उल्लेख न हो सका था। अपने मित्र पं० बदरीनाथ भट्टके नामका अभाव उसमें न देख मैंने शुक्लजीको एक पुर्ज़ा लिखा, तो न तो उन्होंने उसका कुछ उत्तर दिया और न पुस्तकमें ही कुछ अंश बढ़ा। इससे मुझे खेद हुआ; किन्तु मैंने जब पुस्तकके "वर्त्तमान कालके अनेक प्रतिभा-सम्पन्न और प्रभावशाली लेखकों और कवियोंके नाम जल्दीमें या भूलसे छूट गए होंगे। इसके लिए उनसे तथा उनसे भी अधिक उनकी कृतियोंसे विशेष परिचित महानुभावोंसे क्षमाकी प्रार्थना है।...कवियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकोंके नामोल्लेखके सम्बन्धमें एक बातका निवेदन और है। इस पुस्तकका उद्देश्य संग्रह नहीं था। इससे आधुनिक कालके अन्तर्गत सामान्य लक्षणों और प्रवृत्तियोंके वर्णनकी ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है।" यह अंश पढ़ा, तो खेदको स्थान न रहा। उक्त वक्तव्यमें एक अंश और मज़ेदार है—"आधुनिक कालके प्रारम्भिक प्रकरण लिखते समय जिस कठिनताका सामना पड़ा, उसमें मेरे बड़े पुराने मित्र पं० केदारनाथ पाठक ही काम आए। पर न आज तक मैंने उन्हें किसी बातके लिए धन्यवाद दिया और न अब देनेकी हिम्मत कर सकता हूँ। 'धन्यवाद'को वे 'आजकलकी एक बदमाशी' समझते हैं।"

'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' का परिवर्धित संस्करण जब प्रेसमें छपनेको दिया गया, तब उसके आकार-प्रकारका निश्चय करनेमें कुछ समय लगा। इसके बाद कार्य आरम्भ हुआ। पीली कोठी, मिर्ज़ापुरसे भेजा हुआ शुक्लजीका १४ अप्रैल, १९३९ का एक पोस्ट-कार्ड मेरे पास है, जिसमें उन्होंने लिखा था कि "पहला फ़ार्म (छपा हुआ) भेज दीजिए।" इसके इसके पश्चात् ६ जून १९३९ को उन्होंने वहींसे उत्तर दिया था—"मैं इधर बराबर परीक्षाओंके कार्यमें फँसा रहा, पर प्रूफ़ समयपर लौटाता रहा। अब मुझे अवकाश मिला है, पर यहाँ पुस्तकों आदिका ठीक साधन न रहनेसे कार्य व्यवस्थित रूपसे नहीं चल सकता। फिर भी जहाँ तक शीघ्र हो सकेगा, मैं कागेका मैटर भेजूँगा। मैं जब काशीमें था, तब इसीलिए जल्दी करता था कि परीक्षाओंके आरम्भ होनेके पूर्व पुस्तक छप जाय। जब उसके छपनेमें बहुत देर दिखाई पड़ी, तब मैं ढीला पड़ गया और दूसरे काम करने लगा। खैर, मैं शीघ्र आगेका मैटर भेजूँगा।" २ सितम्बर, १९३९ को भी उन्होंने कापी भेजी और आगे यही क्रम रहा। बात यह है कि उन्होंने लगकर 'इतिहास'को तैयार नहीं किया था, प्रत्युत जब उन्हें समय मिलता और शरीर ठीक रहता था, तब धीरे-धीरे वे इस कार्यको करते थे। बीचमें बार-बार उनसे तक़ाज़े किए जाते थे कि शीघ्र मैटर भेजकर पुस्तक समाप्त कीजिए; वह जहाँपर पाठ्य-पुस्तकके रूपमें स्वीकृत है, वहाँ यदि नये रूपमें स्वीकृत न कराई जायगी, तो निकाल दी जायगी। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके काशीवाले अधिवेशनके समय वे साहित्य-परिषद्के स्वागताध्यक्ष थे और उसके लिए अपना अभिभाषण तयार कर रहे थे कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके तत्कालीन प्रधान-मन्त्रीने उनके यहाँ तक़ाज़ा भेजा, तो उन्होंने (सम्भवतः १३ अक्तूबर, १९३९ को) यह उत्तर एक पुर्ज़ेपर लिख भेजा :—

"प्रियवर, साहित्य-परिषद्के स्वागताध्यक्षका भाषण मैं लिख रहा हूँ, जो कुछ हो जाय। मुझे इस बीच पटने भी जाना पड़ा था। वहाँके लिए भी कुछ लिखना पड़ा था। सोमवारको लौटकर आया हूँ। तबसे जो कुछ अवकाश मिल रहा है, लिखनेमें लाग रहा हूँ। कल तक भाषण तैयार हो जायगा। किसीको दोपहर तक भेज दीजिएगा।

"मालवीयजीका भाषण, जान पड़ता है, केवल मौखिक होगा।"

जीवित लेखकोंकी कृतिके सम्बन्धमें निरपेक्ष सम्मति देना अपने सिर आफ़त मोल लेना है। लेकिन कर्त्तव्यवश शुक्लजीको यह अप्रिय कार्य करना पड़ा था। उन्होंने 'इतिहास'के पृष्ठ ६४० पर लिखा है—"कुछ ऐसे व्यक्ति भी 'मध्य-युगकी प्रवृत्ति', 'क्लासिकल', 'रोमांटिक' इत्यादि शब्दोंसे विभूषित अपनी आलोचना द्वारा 'नये युगकी वाणी'का संचार समझाने खड़े होते हैं, जो इन शब्दोंका अर्थ जानना तो दूर रहा, अंगरेज़ी भी नहीं जानते।" मेरी जान-पहचानके एक लेखन-व्यवसायीजी जब-तब मेरे पास आकर परिवर्धित 'इतिहास'का मुद्रित अंश देखनेकी प्रार्थना किया करते और मैं इस नियम-विरुद्ध अनुरोधको मानकर उन्हें फ़ाइल दिखा देता था। एक दिन उल्लिखित अवतरणको मुद्रित देखकर उक्त महोदय जामेसे बाहर होकर कहने लगे कि यह मेरे लिए लिखा गया है। मैं तो प्राचीन लेखकोंका सम्बन्ध नवयुगके लेखकोंसे जोड़ता हूँ और शुक्लजीको गुरु मानता हूँ, इत्यादि। उनको बहुत समझाया कि आप अपनेको ही उक्त अंशका लक्ष्य क्यों मानते हैं? सम्भव है, और लोग भी उक्त अंशके लक्ष्य हों। आगे चलकर यथास्थान उन महाशयकी रचनाओंका उल्लेख उनके अनुरूप किया गया, तो अपनी मिथ्या स्तुति न पाकर वे बहुत दिनों तक कुड़मुड़ाते रहे। अभी उनके सम्बन्धमें एक मासिक पत्रमें मैंने यह अंश देखा—"वे दलदलमें फँस गए हैं।...उनके भ्रामक वक्तव्योंको पढ़कर उतना ही आश्चर्य होता है, जितना उनके अंगरेज़ी शब्दोंके प्रयोगोंपर। वह भी यहाँ तक कि कभी अगर ठीक बात भी करते हैं, तो लग आता है कि यह तुक है, विचारपूर्वक पाया गया निष्कर्ष नहीं।"

सन् १९३९ में ९ मार्चसे ३० अप्रैल तक काशीमें 'इतिहास'का काम न हो सकनेपर लगभग सौ-सवा-सौ पृष्ठ प्रयागमें छपवाए गए। उनका प्रूफ़ मैंने भी देखा और उसमें से एक-आध कविको अर्धचन्द्र देनेका प्रस्ताव किया, तो शुक्लजीने स्वीकार कर लिया। एक 'कवि-लेखक-वक्ता'को मैंने संक्षिप्त करनेकी इच्छा प्रकट की, तो उसको भी उन्होंने मान लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे 'इतिहास'का जितना अंश काशीमें छापा गया था, उसमें यथोचित संशोधन करने-करानेका मुझे सुभीता न था। यदि मैं ऐसा करता, तो कार्यमें और भी विलम्ब हो जाता। जिनका स्थान 'इतिहास'में से छीन लिया गया है अथवा जिनकी मर्यादामें कुछ काट-छाँट हो गई है, उनको यदि मेरी कृपणताका पता चल जाय, तो वे बिना खंगहस्त हुए न रहें।

सावधानी रखनेपर भी 'इतिहास'में ऐसे लोग आ गए होंगे, जिनको 'उसमें' स्थान न मिलनेसे पुस्तककी शोभा थी और जिनको स्थान देनेसे पुस्तककी उपयोगिता बढ़ती। पर एक मनुष्य कहाँ तक सर्वांगकी रक्षा कर सकता है और भूल-चूक किससे नहीं होती?

पुस्तकमें आधुनिक कवियोंपर अपने विचार प्रकट करनेके लिए शुक्लजीको बहुत अध्ययन करना पड़ा था। इसीलिए 'कापी' तैयार करनेमें अत्यधिक विलम्ब होता था और प्रेस तक़ाज़ेपर तक़ाज़े किया करता था। ११ अक्तूबर, १९४० की बात है। प्रयागसे प्रकाशित 'सरस्वती-सिरीज़'के परामर्श-दाताओंमें नाम देनेकी स्वीकृति लेने मैं शुक्लजीके स्थानपर गया, तो दरवाज़ेपर पालित श्वान मिले। पता लगानेपर मालूम हुआ कि शुक्लजी घरपर नहीं हैं, आते ही होंगे। उनके बैठकेकी घड़ीमें बारह बजे कि वे कहींसे आ गए। दमेसे दुखी थे। कहने लगे कि दवा करनेसे और भी उभड़ता है। इस साल न जाने कबका बदला लिया है। इन दिनों तो कुछ स्वस्थ रहता था। एक दुःखद प्रसंगकी उन्होंने सूचना दी—ट्रंकमें से कोई ज़रूरी काग़ज़ निकालनेके लिए उसके ऊपरके काग़ज़-पत्तर निकालकर बाहर रखे और भूलसे उन्हें बाहर ही रखा रहने देकर ट्रंक बन्द कर दिया। फिर दो-एक दिनके लिए कहीं जाना पड़ा। वापस आनेपर याद आई कि कुछ काग़ज़ ट्रंकके बाहर ही रह गए हैं। पूछनेपर मालूम हुआ कि नौकरने उनको रद्दीमें बेच दिया है। जिसके यहाँ रद्दी बेची गई थी, उसके यहाँसे 'इतिहास'की कापीका कुछ अंश तो मिल गया; किन्तु उन कविताओंके कटिंग नहीं मिले, जिनको उन्होंने समय-समयपर सामयिक पत्रोंमें छपवाया था। बड़े खेदसे उन्होंने कहा कि वर्त्तमान कवियोंकी पुस्तकें पढ़कर मैंने उनपर चिह्न कर दिए हैं और जो-कुछ लिखा था, उसका बहुत-कुछ स्मरण है। इसलिए उसके दुबारा लिखनेमें परिश्रम-मात्र है और दूसरी कठिनाई नहीं; किन्तु बहुत पहले जो कविताएँ लिखी थीं, उनका तो स्मरण ही नहीं कि वे कब किस पत्रकी किस संख्यामें प्रकाशित हुई थीं। अब उनका संग्रहीत होना सम्भव नहीं।

शुक्लजी काशीसे मिर्ज़ापुर ज़िलेके दो-एक स्थानोंमें होते हुए कानपुर जानेको थे और वहाँसे लौटकर मिर्ज़ापुरमें छुट्टियाँ बितानेका उनका विचार था। वहींपर वे 'निराला' और महादेवी आदिकी रचनाओंपर समीक्षात्मक विवरण तैयार करके 'इतिहास'को समाप्त करनेवाले थे। कहते थे कि बहुत-सी पुस्तकें साथ ले जाना तो कठिन है, फिर भी आवश्यक पुस्तकें ले जायँगे और जो कसर रह जायगी, उसको काशीमें आकर पुस्तकें देख-कर ठीक कर लेंगे। इसी संकल्पको लेकर शुक्लजी सम्भवतः १२ अक्टूबरको बाहर गए। यात्रा-कालमें उन्होंने कितनी 'कापी' तैयार की, इसका मुझे पता नहीं। मेरे कर्मक्षेत्रसे शुक्लजीका निवास-स्थान दो-ढाई मीलकी दूरीपर था, फिर मुझे अवकाश भी कम मिलता था, इससे मैं उनके यहाँ उक्त भेंटके बाद नहीं पहुँच सका। इसी बीच वे चल बसे!

× × ×

सन् १९३७ की ग्रीष्म-ऋतुके एक सायंकालकी घटना है। काशी-विश्वविद्यालयसे रा० ब० श्यामसुन्दरदासजीके अवकाश ग्रहण कर लेनेपर आचार्य शुक्लजीको उक्त स्थान मिला। इस उपलक्ष्यमें काशीके क्विंस-कालेजके उद्यानमें स्थानीय हिन्दी-सेवियोंको आचार्य शुक्लके सम्मानमें एक हिन्दी अध्यापककी ओरसे जलपानके लिए आमन्त्रित किया गया। निमन्त्रित लोगोंमें से अधिकांश यथासमय आ गए। निर्दिष्ट समयको उत्तीर्ण हुए एक घंटेसे अधिक समय बीत गया, पर शुक्लजीका कहीं पता ही नहीं। निमन्त्रणकर्तासे पूछा गया कि शुक्लजीको ठीक तारीख और समयकी सूचना देनेमें कुछ व्यतिक्रम तो नहीं हुआ? उत्तरसे ज्ञात हुआ कि उन्होंने सन्देहकी गुंजाइश नहीं रहने दी। तब बाबू रामचन्द्र वर्माके एक सहचरने एक क़िस्सा सुनाया कि शुक्लजीके पुत्रकी बारात इलाहाबाद स्टेशनके प्लेटफ़ार्मपर टिकी हुई थी। दक्षिणकी गाड़ीसे जाना था। ठण्डाई छन रही थी। इस कार्यसे छुट्टी होनेपर शुक्लजीने कहा कि देखो तो गाड़ी कब मिलेगी? पता लगानेपर मालूम हुआ कि गाड़ी तो अभी-अभी इसी प्लेटफ़ार्मसे खुल गई है। इस क़िस्सेको सुनकर लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। जहाँ पर बारात पहुँचनेको थी, वहाँवाले बारातका स्वागत करनेके उत्कंठामें तार पाकर चौंके होंगे और यहाँ विंवस-कालेजके जलपानार्थी यदि विलम्ब देखकर सशंक हों, तो आश्चर्य ही क्या। अन्तमें शुक्लजी आए और विलम्बका कारण उन्होंने ठीक समयका याद न रहना या ऐसा ही कुछ बतलाया। यह घटना उनके भोलेपनका एक उदाहरण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण भट्टका आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

चतुर्थ उच्छ्वास

निपुणिकाने अपनी स्वामिनीको छिपा रखनेके लिए जिस स्थानको चुना था, उसके दर्शन-मात्रसे मेरा हृदय बैठ गया। वह एक देवी-मन्दिरसे संलग्न छोटा-सा जीर्ण गृह था। जब निपुणिकाके घरसे कुछ आवश्यक सामग्री लेकर चोरकी भाँति हम नगर-प्रान्तमें अवस्थित उस मन्दिरके पास पहुँचे, उस समय चन्द्रमा पश्चिमाकाशकी ओर लटक गया था। सप्तर्षियोंका मण्डल मानसरोवरमें स्नान करनेकी तैयारीमें था और कालपुरुष अस्तगिरिके शिखरको छूता दिखाई दे रहा था। चाँदनी उस समय भी दूधके समान श्वेत होकर धरित्रीको ढँके हुए थी। चण्डी-मन्दिरके बाहर लोहेके मोटे छड़ोंका बना हुआ एक विराट कपाट था, जिसके भीतरसे चण्डीकी मूर्त्ति स्पष्ट दिखाई दे रही थी। देवीके सामने एक लौह-वेदिकापर कज्जलके समान काला भैंसा स्थापित था, जिसके सारे शरीरपर भक्तजनोंने लाल थापे दे रखे थे। ऐसा लगता था कि वह साक्षात् यमराजका वाहन है और यमराजने अपने रक्ताक्त हाथोंसे थप्पड़ मार-मारकर उसे चलाया है। देवीके चरणोंके पास एक छोटी वेदी थी, जिसपर कोई लाल-लाल वस्तु दिख रही थी। बादमें मैंने देखा कि वह और कुछ नहीं, एक पीढ़ेपर रखा हुआ महावरसे रँगा वस्त्रखण्ड था। मन्दिरके सामने एक खुला हुआ प्रांगण था, जिसके कुट्टिम विदीर्ण हो चुके थे और उन दरारोंसे हरिद्वर्णके तृण निकलकर जीवनी शक्तिकी विजय-घोषणा कर रहे थे। इसी प्रांगणसे सटा हुआ एक घर था, जो बाहरसे गुफा-जैसा दिखाई दे रहा था। घरके सामने कुछ अयत्न परिवर्द्धित करबीरके झाड़ थे, जिनमें वन-कुक्कुटोंने रातको आश्रय ग्रहण किया था। निपुणिकाने बड़ी सावधानीसे उस घरको खोला और जब हम तीनों उसमें प्रविष्ट हो गए, तो उसी सावधानीके साथ भीतरसे बन्द कर दिया। बन्द कर देनेके बाद वह आँगन चारों ओरसे घिर जाता था। आँगनमें दो-तीन छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं और एक जीर्णप्राय कुआँ था। इस भग्नप्राय प्रांगण-गृहको ज्योत्स्नाने और भी भयंकर बना दिया था। आँगनमें भीतोंपर लाल रंगसे चित्रित नाना प्रकारके चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। जान पड़ता था, किसी समय इस घरमें कोई भैरव अपनी भैरवीके साथ वाम-मार्गी साधना किया करते थे; क्योंकि उन चिह्नोंका यही अर्थ हो सकता था! निपुणिकाने इस कुसुम-सुकुमार राजकन्याको छिपानेके लिए इस भयंकर स्थानको चुनकर न तो बुद्धिमानीका परिचय दिया था और न सहृदयताका ही। लेकिन वह लाचार थी। उसकी श्रेणीकी दासीके लिए इससे उत्तम स्थान चुन सकना असम्भव था। उसने केवल एक बार मेरी ओर कातर भावसे देखा। उस दृष्टिका स्पष्ट तात्पर्य यह था कि 'इससे अधिक मेरे बसकी बात न थी।' वह प्रसन्न नहीं थी। मेरा पौरुष गर्व परास्त हो चुका था। एक दीर्घ-निःश्वास द्वारा मैंने अपना असन्तोष प्रकट किया। मेरे प्राण हाँफ उठे थे। उस निसर्ग-सुकुमार राजबालाकी ओर आँख उठाकर देख सकनेका साहस भी मुझमें नहीं रह गया था। मैं जिस समय अवसन्न होकर बैठ पड़ने जा रहा था, उसी समय राजबालाने थके हुए स्वरमें कहा—'भद्र, विलम्ब हो रहा है; करणीय हो, सो करो।' इस वाक्यने विद्युतकी त्वराके साथ मेरे समस्त अस्तित्वको झकझोरकर जगा दिया। मेरा जड़-भाव जाता रहा। ऐसा लगा, जैसे किसी अमृत-संजीवनीने मेरे भीतर नये प्राण भर दिए हैं। विनीत भावसे मैंने कहा—'देवि, आज इसी स्थानपर विश्राम करें। कल मैं कोई और व्यवस्था करूँगा। मुझे इस स्थानपर आपको देखकर बड़ा कष्ट हो रहा है; पर विवश हूँ।' उत्तर मिला—'मुझे कोई कष्ट न होगा, करणीय कीजिए।' निपुणिकाने एक छोटी कोठरीकी ओर चलनेका इशारा किया। उसके वचन रुद्ध हो गए थे, शायद वह रो रही थी। वह कोठरी अपेक्षा-कृत साफ़ और मज़बूत थी। वहाँ एक कम्बल पहलेसे ही बिछा हुआ था। हमने राजबालाको अँधेरेमें वहीं विश्राम करनेको कहा। राजबालाके बैठ जानेके बाद हम दोनों अन्याय कार्योंमें जुट गए।

निपुणिका कुछ देर तक चुपचाप काम करती रही; पर उसकी प्रत्येक क्रियासे एक व्याकुल आशंकाका भाव प्रकट होता रहा। मैंने उससे पूछा कि क्या बात है? पहले तो वह जबदी-सी खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे बोली कि किस प्रकार यहाँके वृद्ध पुजारीको हाथ करके उसने यह घर हथियाया है। यद्यपि इस मन्दिरमें बहुत कम लोग आया करते हैं, फिर भी यह स्थान सुरक्षित नहीं है, इस विषयमें निपुणिकाको कोई सन्देह नहीं था। उसने बताया कि दिनको इस घरका पूर्ण रूपसे बन्द रहना ही उचित है। मुझे दिन-भर बाहर रहना होगा और रातको पुजारीके सो जानेके बाद ही निपुणिकासे मिलना सम्भव होगा। पर वस्तुतः निपुणिकाने जो बात नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कही, वही उसका प्रधान वक्तव्य थी। वह पुजारीसे डरी हुई थी। पहले उसने इस स्थानपर आनेके परिणामोंको जितना हल्का समझा था, अब उतना हल्का नहीं समझ रही थी। स्त्री-सुलभ भीरुताने उसे अभिभूत कर दिया था। मैंने साहस बँधाते हुए कहा—'निउनिया, बाण भट्टके साथ रहकर भी तू डरती!' वह आँखें नीची ही किए रही और स्खलित भावसे 'नहीं' कहकर धीरे-धीरे भीतर चली गई। प्रभात होनेमें अब ज़्यादा देर नहीं थी। मैं बाहर निकल आया। निपुणिकाने भीतरसे घर बन्द कर लिया।

देखते-देखते चन्द्रमा पद्म-मधुसे रँगे हुए वृद्ध कलहंसकी भाँति आकाश-गंगाके पुलिनसे उदास भावसे पश्चिम जलधिके तटपर उतर गया। समस्त दिङ्मण्डल वृद्ध रंकुमृगकी रोम-राजिके समान पांडुर हो उठा। हाथीके रक्तसे रंजित सिंहके सटाभारकी भाँति या लोहित वर्ण लाक्षारसके सूत्रके समान सूर्य-किरणें आकाश-रूपी वनभूमिसे नक्षत्र-रूपी फूलोंको इस प्रकार झाड़ देने लगीं, मानो वे पद्मराग-मणिकी शलाकाओंसे बनी हुई झाड़ू हों। तारिकाएँ लुप्त होने लगीं। दो-एक जो अब भी बच रही थीं, वे पश्चिमाकाश-रूपी समुद्र-तटपर सीपियोंके उन्मुक्त मुखसे बिखरे हुए मुक्ता-पटलकी भाँति दिख रही थीं। पूर्वकी ओर प्रकाश आविर्भूत होने लगा। धीरे-धीरे शिशिर-बिन्दुको वहन करता हुआ, पद्म-वनको प्रकम्पित करता हुआ, परिश्रान्त नगर-रमणियोंके घर्म-बिन्दुको विलुप्त करता हुआ, वन्य-महिषोंके फेन-बिन्दुसे सिंचा हुआ, कम्पमान पल्लवों और लता-समूहोंको नृत्यकी शिक्षा देता हुआ, प्रस्फुटित पद्मोंका मधु बरसाकर, पुष्प-सौरभसे भ्रमरोंको सन्तुष्ट करके मन्द-मन्द संचारी प्रभात-वायु बहने लगा। इस समय तक छोटे राज-कुलमें न-जाने क्या घटा होगा। शायद सबसे आघात वृद्ध वाभ्रव्यको सहना पड़ेगा। अब तक शायद निपुणिकाका घर जला दिया गया होगा। मैंने सन्तोषकी साँस ली, क्योंकि मैं इस विपत्तिमें निपुणिकाके साथ था और सौभाग्यवश इस नगरमें मुझे कोई पहचानता भी नहीं। निपुणिकाके घरसे जब हम आवश्यक सामग्री लेने गए थे, उसी समय मैंने अपना शुक्ल वेश धारण कर लिया था। इस समय मैं निरीह ब्राह्मण था। यद्यपि रात-भरकी क्लान्तिसे मेरा शरीर कुछ अवसन्न हो आया था; पर इस समय आराम करनेकी प्रवृत्ति मेरे अन्दर नहीं थी। मैं यही सोच रहा था कि किसी अच्छे स्थानपर कैसे जाया जा सकता है। पासकी टूटी पुष्करिणीमें हाथ-मुँह धोकर मैं देवीके सामने जाकर स्तुति पाठ करने लगा। अनति पश्चात् एक वृद्ध ब्राह्मण चण्डी-मन्दिरकी ओर आते दिखाई दिए। उन्होंने भक्तिपूर्वक चण्डीको प्रणाम किया और परिक्रमा करके प्रांगणमें खड़े हो गए। मैंने भी परिक्रमा की और प्रणाम किया। वे मेरी ओर इस प्रकार ताक रहे थे, जैसे कुछ जानना चाहते हों। मैं उनके पास गया और प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए उन्होंने बताया कि इसके पहले उन्होंने कभी मुझे नहीं देखा है और जानना चाहते हैं कि मैं कैसे इधर भटक पड़ा हूँ। मैंने विनीत भावसे कहा कि मैं परदेशी हूँ, रातको यहीं टिक गया था। वे थोड़ी देर तक हँसते रहे। बोले—'तो आप भाग्यवान हैं, पुजारी बाबासे आपका साक्षात्कार नहीं हुआ?'

मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'पुजारी बाबाको मैं नहीं जानता।'

वे बोले—'जानते, तो यहाँ नहीं रुकते।'

मैंने इसका कारण पूछा। फिर वे हँसकर पुजारी बाबाका परिचय देने लगे। वृद्ध काफ़ी सरस जान पड़ते थे। उन्होंने पुजारीकी वर्णना बड़ी रसमयी भाषामें की। बताया कि पुजारी कोई वृद्ध द्रविड़ साधु हैं। उनके काले-काले शरीरमें शिराएँ इस प्रकार फूटी दिखाई देती हैं, मानो उन्हें जला हुआ खम्भा समझकर गिरगिट चढ़े हुए हों। सारा शरीर घावके दागोंसे इस प्रकार भरा है, मानो अलक्ष्मी देवीने शुभ लक्षणोंको उस देहसे काट-काटकर अलग कर लिया है। वे काफ़ी शौकीन भी हैं। यद्यपि वृद्ध हैं, तो भी कानोंमें औण्ड्र-पुष्पका लटकना नहीं भूलते। वे भक्त भी हैं, क्योंकि चण्डी-मन्दिरकी चौखटपर सिर ठुकराते-ठुकराते उनके ललाटमें अर्बुद हो गया है। वे तान्त्रिक भी हैं; प्रायः ही वृद्धा तीर्थ-यात्रिणियोंपर वशीकरण चूर्ण फेंका करते हैं। वे प्रयोग-कुशल भी हैं, क्योंकि एक बार गुप्त स्थानोंकी निधि दिखानेवाला कज्जल लगाकर एक आँख खो चुके हैं। वे चिकित्सक भी हैं, अपने आगेवाले लम्बे और ऊँचे दाँतोंको समान बनानेके उद्योगमें अन्य दाँतोंको खो चुके हैं; पर वे ऊँचे दाँत जहाँके तहाँ हैं। वे विनोदी भी हैं, क्योंकि बालकोंके पीछे एक बार ईंट लेकर दौड़ पड़े थे और लुढ़ककर गिर गए थे, जिससे होंठ कुछ कट गए हैं। उनकी विद्याका भाण्डार अक्षय है। समस्त दक्षिणापथकी सम्पत्ति प्राप्त करनेकी आशासे कपालमें तिलक धारण करते हैं। हरे बघरेंड़के पत्तोंके रसमें श्मशानका कोयला पीसकर उससे सीपीको रँग रखा है। उनका विश्वास है कि उसे देखनेसे धनियोंके हृदयमें उच्चाटन होता है और वे अपनी सम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर चल देते हैं। माया-वशीकरणके ऊपर भी उनका विश्वास है। इस कार्यके लिए उन्होंने तालपत्रकी एक पोथीपर महावरके रंगसे एक लाख बार 'हुं फट्' लिख रखा है और उसे गुग्गुलु-धूमसे धूपित किया है। उनका विश्वास है कि इस पोथीको देखकर रमणियाँ उनकी चेरी हो रहेंगी। आँख यद्यपि एक ही है; पर उसमें एक चिक्कन शलाका द्वारा नित्य अंजन लगाया करते हैं। यद्यपि रातको रतौंधीके कारण देख नहीं सकते; परन्तु अप्सराओंके अप्रत्याशित आगमनकी आशासे रात-भर प्रदीप जलाए रखते हैं। यद्यपि निद्रामें कुम्भकरणके प्रतिद्वन्द्वी हैं; पर स्वप्नमें नूपुर-क्वणन निरन्तर सुना करते हैं। यद्यपि बानरोंसे स्पर्द्धा करके पेड़पर से कूदकर एक पैर खो चुके हैं; पर मूलस्थानीय उपानहोंको यत्नपूर्वक संग्रह कर रखा है। ब्राह्मणोंसे उनका निसर्ग वैर है, और आप यदि अभी यहाँसे नहीं टल जाते, तो एक टण्टा ज़रूर खड़ा करेंगे। भगवानकी इतनी लोकानुकम्पा अवश्य है कि उन्हें काण, खंज और बधिर बना दिया है, नहीं तो यह स्थाण्वीश्वर अब तक उजाड़ हो गया होता।

वृद्धके इस वर्णनको सुनकर मैं समझ गया कि निपुणिकाने किस प्रकार इन्हें हाथ किया होगा और अब वह डर क्यों रही है। परन्तु मुझे कुतूहल ही हुआ। मैंने हँसते हुए कहा—'ऐसे लोकोत्तर महात्माके दर्शन किए बिना तो नहीं टला जाता।'

वृद्धने हँसते हुए कहा—'ज़रूर दर्शन कीजिए; पर सावधान रहकर। कब सिरपर डण्डा बैठा देंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता।' यह कहकर वृद्ध वहाँसे चलते बने। मैं भी प्रांगणसे दूर हटकर वृद्ध पुजारीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा।[1]

कुछ देर बाद पुजारी निकले। चण्डी-मन्दिरके गर्भगृहमें ही वे सोए हुए थे। उनकी आँखें लाल थीं। वृद्धने उनका जैसा रूप वर्णन किया था, वे वैसे ही थे। चण्डी-मण्डपसे निकलकर उन्होंने कुछ मन्त्र पढ़े। फिर हाथके डिब्बेसे काला-सा चूर्ण निकालकर उस प्रांगण-गृहकी ओर फेंका, जिसमें हम लोगोंने आश्रय लिया था। जल्दी-जल्दी वे उस घरकी ओर बढ़े, दो-एक बार शीघ्रताके कारण लड़खड़ा भी गए। प्रांगण-गृहके द्वारपर उन्होंने चूर्ण निक्षेप किया और सँभालकर बगलसे तालपत्रकी पोथी निकाल उसे सामने कर लिया। फिर उन्होंने ज़ोर-ज़ोरसे द्वारपर धक्का मारा। निपुणिका सावधानीसे बाहर आई और लीला कटाक्षसे एक बार वृद्ध साधुकी ओर देखा। फिर तो पुजारीके अर्द्धविशिष्ट ऊपरवाले दाँत बाहर निकल आए और सूखे हुए कपोलोंपर अनुरागकी हरीतिमा दौड़ गई। बहुत दिनोंके बाद उनका तन्त्र सफल हुआ था। वे उस महावर-लिखित तालपत्रकी पोथीको बराबर सामने लिए हुए थे। यद्यपि निपुणिकाने उस पोथीकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, तथापि यह तो स्पष्ट ही जान पड़ता था कि वे इस विजयको उस पोथीका ही सुपरिणाम समझ रहे थे। शायद उन्हें यह आशंका थी कि पोथी सामनेसे हटा लेनेपर वशीकरणका प्रभाव जाता रहेगा। मैं दूर बैठा यह कौतुक देख रहा था। निपुणिकाने क्या कहा, यह तो मुझे नहीं मालूम; पर उसने एक बार मेरी ओर अंगुली उठाकर दिखाया। पुजारी मुझे देखते ही अग्निशर्म हो उठे। निपुणिकाने किवाड़ बन्द कर लिए और पुजारी मेरी ओर दौड़ पड़े। शायद निपुणिकाने मुझे दिखाकर यह बताया था कि इस समय निर्जनता नहीं है और पुजारीका उसके पास आना ठीक नहीं हुआ है। पुजारीने मुझसे क्या-क्या कहा, यह मुझे ठीक नहीं मालूम, क्योंकि उनकी स्खलित वाणीका स्पष्ट सुनना सहज नहीं था; परन्तु वे बातें भले आदमियोंके सुनने योग्य नहीं रही होंगी, इस विषयमें मुझे लेशमात्र भी सन्देह नहीं। वे क्रोधकी मूर्त्ति बने हुए थे। यद्यपि वे एक पैरसे लँगड़े थे; पर दौड़नेमें उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी। शीघ्रताके कारण उनके हाथसे कज्जल चूर्णका डिब्बा लुढ़क गया और क़रीब-क़रीब खाली हो गया। ऐसा जान पड़ा कि मुझे इस स्थानपर बैठनेके पापका प्रायश्चित्त अवश्य करना होगा। उन्होंने एक बड़ा-सा प्रस्तरखण्ड मेरे ऊपर फेंका। लेकिन वहाँके प्रस्तरखण्ड भी पुजारी बाबाका परिहास करना चाहते थे। उनके उत्तरीयमें उलझकर वह पत्थर उनकी पीठपर आ गिरा। बाबाका क्रोध और भी उफ़न पड़ा। मैं उन्हें शान्त करनेका कोई उपाय सोच नहीं पा रहा था; लेकिन पत्थरने ठीक मौक़ेपर मेरी सहायता की। उत्तरीयके उलझनेसे उनका वक्षःस्थल खुल गया, शुष्कप्राय औण्ड्र-पुष्पकी माला बाहर निकल आई और काले धागेमें बँधी हुई उच्चाटनवाली सीपी दिख गई। मुझे मेरा करणीय सूझ गया। अत्यन्त नम्रता-पूर्वक मैंने प्रणिपात किया और हाथ जोड़कर कहा—'धन्य हो महान् धार्मिक, आश्चर्य है यह उच्चाटन-शुक्ति, अद्भुत है इसकी महिमा! मुझे नगरश्रेष्ठी धनदत्तने भेजा है। आपकी इस अद्भुत शुक्तिको देखकर उनका मोह टूट गया है। धन-वैभव कमल-पत्रके बुद्बुद्के समान उन्हें निर्विकार छोड़कर अलग हो गए हैं। संसारसे उन्हें वैराग्य हुआ है। वे अपनी समस्त

१. कादम्बरीके 'जरद्विड धार्मिक' से तुलनीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पत्ति आज ही आपके चरणोंमें समर्पण करना चाहते हैं। यदि आप उन्हें शिष्य बना लें, तो वे अभी सेवा करनेको उपस्थित हो जायँगे। मैं जब तक आपकी स्वीकृतिका सन्देशा उनके पास न ले जाऊँगा, तब तक वे अन्न-जल नहीं ग्रहण करेंगे।' धार्मिकने एक बार गर्वके साथ अपनी आश्चय-विभव-भूमि शुक्तिकी ओर देखा, फिर धीरे-धीरे शान्त होकर बोले—'धनदत्तका कल्याण हो। वह बड़ा धार्मिक है। उसे कह दे कि वह सम्पत्ति दे जाय। शिष्य होना हो, तो सौगतोंके सुगतभद्रके पास जाय। मैं शिष्य नहीं बनाता।' यह कहकर उन्होंने गर्वके साथ एक बार फिर सीपीको देखा। उस दृष्टिका तात्पर्य यह था कि 'बच्चू अब तो फँस गए हैं, जायँगे कहाँ?' मुझे एक नई सूचना मिली। मैंने हाथ जोड़कर विनीत भावसे पूछा—'वे अपनी सम्पत्ति और किसीको नहीं देना चाहते। वे आपके चरणोंमें ही सब-कुछ रख देनेका संकल्प रखते हैं। आपकी अनुमतिसे वे सौगतोंके शिष्य भी बन सकते हैं। अनुज्ञा दें, उन्हें इसी प्रकारका सन्देशा दे आऊँ।' पुजारीने कहा—'हाँ, जा; अभी जा। कल मैं कुछ नहीं लेता। मैं आज ही यहाँसे कान्यकुब्जकी ओर चला जाऊँगा। स्थाण्वीश्वरके नागरिक असभ्य हैं, भाग्यहीन हैं, कुत्सित हैं। मैं उनपर थूकता हूँ।' और सचमुच ही धार्मिकने थूक दिया। फिर बोले—'परिहास करना हो, तो वे इधर आयँगे। मैं पूर्णिमाके दिन उनकी अभद्रता सह नहीं सकता।' मुझे इस बातका रहस्य बादमें मालूम हुआ था। बात यह थी कि फाल्गुनी पूर्णिमाको कई बार नागरिकोंने वृद्धा वेश्याओंसे पुजारी बाबाका विवाह करा दिया था। इधरके लोग ऐसे परिहासमें अधिक प्रगल्भ हैं। अब तक पुजारी बाबाको इस परिहासका ज्ञान हो गया था। वे आज ही स्थाण्वीश्वर त्याग करनेवाले थे। उनकी इच्छा शायद निपुणिकाको साथ ले लेनेकी थी। मैंने उत्तम अवसर देखकर कहा—'तो क्यों न परम धार्मिक श्रीमान् श्रेष्ठी धनदत्तके महलकी ओर चलें? नगरके प्रान्त-देशमें जो ऊँचा महल है, वही उनका निवास-स्थान है।' पुजारी बाबा आज अपनी सफलताके मदमें बेहोश थे। बोले—'नहीं जाता मैं किसीके महलकी ओर। धनदत्तको पड़ेगी, तो सौ बार यहाँ आयगा। तू जा यहाँसे। सौगतोंके सुगतभद्रके पास जा। वह घर-घर भीख माँगता फिरता है। मैं चण्डीके मन्दिरको छोड़कर कहीं नहीं जाता।' मैंने कहा—'साधु, परम धार्मिक साधु। तपस्या इसे कहते हैं, भक्ति इसका नाम है। भला वह सुगतभद्र कहाँ रहता है?' पुजारीने अनति दूर स्थित एक विहारकी ओर उपेक्षापूर्वक उँगली उठाई। बोले—'वहाँ!' फिर मेरी ओर देखे बिना ही चण्डी-मण्डपकी ओर चले गए। मैं क्षण-भर वहीं खड़ा रहा और सोचता रहा कि एक बार उधरका रंग भी क्यों न देख आऊँ? वस्तुतः मैं भूल ही गया था कि मुझे धनदत्तके पास पुजारी बाबाकी अनुज्ञा ढो ले जानेका काम करना है। पुजारीने एक बार मेरी ओर देखा। फिर तेज़ीसे आकर बोले—'जा जल्दी यहाँसे। मार डालेगा बेचारे धनदत्तको। तू पाप-भृत्य है। वह अन्न-जल छोड़े बैठा है, तू यहाँ खड़ा है!' सचमुच ही तो मैं कुछ कुभृत्य हूँ!

मैं हाथ जोड़कर बोला—'हे परम धार्मिक, धनदत्तके महल तक आपका जाना आवश्यक है। वहाँसे वह आपके साथ गंगा-तट तक जायँगे और गोधूलिके शुभ मुहूर्तमें गंगा-जलसे संकल्प करके अपनी समस्त सम्पत्ति श्रीचरणोंको सौंप देंगे। आप जब तक ऐसी अनुज्ञा नहीं देते, तब तक मैं यहाँसे नहीं टल सकता।' पुजारी नर्म हुए। बोले—'बड़ा हठी है। भक्त जो न करा ले। मैं चलता हूँ; मगर तुझे साथ नहीं ले जा सकता। तू यहाँसे भाग जा।' शायद धार्मिकको यह सन्देह था कि मैं कुछ हिस्सा लेना चाहता हूँ। मैंने हाथ जोड़कर कहा—'सो कैसे होगा? आपने श्रेष्ठी धनदत्तका महल देखा है क्या?' मैंने तो कल्पनासे श्रेष्ठी धनदत्तका सर्जन किया था और प्रान्त-भागमें कोई महल भी उसी शक्तिसे खड़ा कर लिया था। पर कैसा आश्चर्य है, धार्मिकने वह महल देख रखा था। बोले—'हाँ, हाँ, देखा है; वही न, जिसके सामने विशाल अश्वत्थ-वृक्ष है?' मैंने कहा—'धन्य हो महाराज! ठीक उसी अश्वत्थवाले महलमें श्रेष्ठीका निवास है। परन्तु आप यदि महलमें न जाना चाहें, तो अश्वत्थ-वृक्षके नीचे प्रतीक्षा करें। श्रेष्ठीको मैं सन्देशा देने जा रहा हूँ।' धार्मिकने उपेक्षापूर्वक कहा—'जा! मैं अश्वत्थ-वृक्षके नीचे प्रतीक्षा करता रहूँगा।' मैंने सिर झुकाकर प्रणाम किया और एक ओर चल गया। थोड़ी देर बाद पुजारीने महावरके रंगसे रँगा वस्त्र पहना, उत्तरीय सँभाल लिया और कज्जल चूर्ण बगलमें लेकर प्रस्थान किया। मैंने मन-ही-मन सोचा कि नगरके उस छोर तक जानेमें पुजारीके लँगड़े पैरोंको कम-से-कम दो घटी तो लगेगा, दो घटी प्रतीक्षा करनेमें जायगा और यदि उस बीच महलमें घुस न पड़े, तो लौटनेमें भी दो घटीका समय तो लग जायगा। कम-से-कम छः घटी तक हम निश्चिन्त हैं। यदि कोई व्यवस्था सम्भव हो, तो कर लेनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रांगण-गृहके पास जाकर निपुणिकाको धीरेसे आवाज़ दी। वह पहलेसे ही मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देखते ही उसने हँसकर कहा—'अभिनय सफल हुआ है, भट्ट! पुजारी आए थे। प्रचुर अन्न दे गए हैं। गोधूलि-समय तक वे अश्वत्थ-वृक्षके नीचे प्रतीक्षा करेंगे। तुमने जिस महलकी कल्पनासे रचना की है, वह सचमुच है और यहाँसे एक योजन दूर है। पुजारी आज रातको भी नहीं लौट सकता। वह रात्र्यन्ध है। इस बीच कोई अच्छी व्यवस्था कर सकते हो, तो करो। भट्टिनी बहुत उदास हैं।' निपुणिका उस राजबालाको 'भट्टिनी' कहती थी। अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ रानीको इसी प्रकार सम्बोधन करती हैं। मैंने भी इसीलिए उन्हें 'भट्टिनी' कहना उचित समझा।

भट्टिनीकी उदासीका समाचार सुनकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। मैंने ढाढ़स बँधाते हुए ज़रा ज़ोरसे ही कहा—'भट्टिनीको उदास होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं अभी कोई व्यवस्था करने जा रहा हूँ। आसपास क्या है, मुझे बिल्कुल पता नहीं। केवल पुजारीने बताया है कि यहाँसे पास ही कोई बौद्ध विहार है, जहाँ 'सुगतभद्र' नामक कोई भिक्षु रहते हैं। मैं एक बार उस तरफ़ जाकर पता लगाता हूँ कि क्या व्यवस्था सम्भव है। भिक्षु लोगोंको बहुत-कुछ पता होता है।'

मेरी बात भट्टिनीने सुन ली। वस्तुतः उनको सुनाना ही मेरा उद्देश्य था। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—'क्या कहते हो, भट्ट! सुगतभद्र क्या वही हैं, जो तक्षशिलाकी ओर धर्म-प्रचार करने गए थे? क्या वे नालन्दाके आचार्य शीलभद्रके गुरु-भाई हैं?'

'मैं नहीं जानता, देवि! मैंने इतना ही सुना है कि कोई सुगतभद्र नामक भिक्षु पासके विहारमें रहते हैं।'

'पता लगा लो, भद्र! यदि वे आचार्य शीलभद्रके सहपाठी तक्षशिलासे लौटे हुए हैं, तो मेरा भाग्य आज प्रसन्न है। वे मेरे पिताके समान हैं, उन्हें मैं सन्देश भेजूँगी।'

मैंने विनीत भावसे कहा—'भद्रे, मैं अभी पता लगाऊँगा। परन्तु यदि वही हों, तो मैं क्या सन्देशा ले जाऊँ?'

भट्टिनीने कहा—'कह देना, भद्र, कि देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्या आपको प्रणाम कहती है और यदि प्रसाद हो, तो दर्शन पाना चाहती है।'

मेरे हृदयमें धक्से लगा। बोला—'तो देवि, क्या आप तत्रभवान् विषम-समर-विजयी, बाह्लीक-विभर्दन, प्रत्यन्त-बाड़व देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्या हैं?'

राजबालाकी आँखें नीची हो गईं। बड़े-बड़े पुण्डरीक-दल-से नयनोंमें अश्रु भर आए। भर्राई हुई आवाज़में बोलीं—'हाँ, भद्र!'

मैं थोड़ी देर तक आश्चर्यमें डूबता-उतराता खड़ा रहा। उचित स्थानपर विधाताका पक्षपात हुआ है। हिमालयके सिवा गंगाकी धाराको कौन जन्म दे सकता है? महासमुद्रके सिवा कौस्तुभ-मणिको कौन उत्पन्न कर सकता है? धरित्रीके सिवा और कौन है, जो सीताको जन्म दे सके? मैं बड़भागी हूँ, जो इस महिमाशालिनी राजबालाकी सेवाका अवसर पा सका। आहा! किस पाप-अभिसन्धिने इस कुसुम-कलिकाको तोड़ लिया था? किस दुर्वह भोग-लिप्साने इस पवित्र शरीरको कलुषित करनेका संकल्प किया था? किस दुर्निवार पाप-भावनाने ज्योत्स्नाको मलिन करना चाहा था? मेरे हृदयकी भक्ति और भी बढ़ गई। मैं सम्भ्रमपूर्वक हाथ जोड़कर बोला—'हे राजनन्दिनी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; पर आज तो इस सन्देशको ले जाना बुद्धिमानीका काम नहीं है। आप एक बार सोचें कि हम लोग कैसी परिस्थितिमें हैं।'

भट्टिनीने अवसन्न होकर कहा—'मैं नहीं जानती, भद्र! जो उचित हो, सो करो। यदि सुगतभद्र वही हैं, तो उनसे कुछ भी कहनेमें हानिकी कोई सम्भावना नहीं है।' इतना कहकर वे रो पड़ीं।

निपुणिकाने रुँधे गलेसे कहा—'ना भट्टिनी, रोओ मत।' और उनके गले लिपट गई। मैं कर्त्तव्यमूढ़ बना खड़ा रहा। निपुणिकाने रुँधे गलेसे ही कहा—'भट्ट, जाओ।'

मैं तत्काल बाहर निकल आया। आते-आते देख आया कि भट्टिनी फफक-फफककर रो रही हैं। निश्चय ही मेरा हृदय उस समय काठके समान संज्ञाहीन रहा होगा; नहीं तो इतनी बड़ी वेदना वह सह कैसे सका? निपुणिकाने भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिए। मैं बौद्ध विहारकी ओर अवश गतिसे चल पड़ा। मेरे पैरोंमें स्फूर्त्ति नहीं थी। क्या मैं देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्याके उपयुक्त कोई आवास-स्थान खोज सकूँगा, क्या भदन्त सुगतभद्र आचार्य शीलभद्रके सहाध्यायी हैं? इन्हीं विचारोंमें निमग्न मैं विहारके द्वारपर आ गया। विहार दुतल्ला था; पर आजकल बौद्धोंमें विहार बनानेकी जो नई शैली मान्य होती जा रही है, वह इसमें भी दिख रही थी। बाहरसे सीधे दुतल्लेपर जानेकी सीढ़ी थी। इकतल्लेपर आनेका रास्ता भीतरकी ओर था। बिना दुतल्लेपर गए कोई नीचेके तल्लेमें नहीं जा सकता। मैं ठीक नहीं समझ पाता कि इस प्रकारका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहार बनानेसे बौद्धोंके सद्धर्मको क्या लाभ पहुँचता है। वे लोग अब सभी बातोंको रहस्यमय बनाते जा रहे हैं, शायद यह शैली भी रहस्यमयताका परिणाम हो। खैर, अपनेको इन बातोंसे क्या मतलब? सामने बौद्ध विहार है। मुझे जानना है कि सुगतभद्र कौन हैं? अपने काम लायक कोई बात मिल गई, तो ठीक है; नहीं तो समय नष्ट करनेसे अनर्थ हो जायगा। विहारके द्वारपर एक सामनेर हाथमें कोई पोथी लिए रट रहा था। मैंने उसीसे पूछा—'क्यों भाई, भदन्त सुगतभद्र हैं?'

उसने बिना सिर उठाए ही जवाब दिया—'हैं।'

'क्या आपसे एक बात पूछ सकता हूँ?'

'दो पूछ लीजिए।'—सामनेरने हँसकर सिर उठाया।

'ये सुगतभद्र कौन हैं?'

सामनेरकी आँखोंमें ज़रा क्रोधका भाव खेल आया। बोला—'क्या आप आचार्य सुगतभद्रको भी नहीं जानते? स्वयं महाराजाधिराज श्रीहर्षवर्धनने उन्हें तक्षशिलासे यहाँ बुलाया है। जिनकी चरण-धूलि पानेके लिए महाराजाधिराज सर्वदा समुत्सुक रहते हैं, उन आचार्य-प्रवर सुगतभद्रको भी आप नहीं जानते!'

मैंने टोककर कहा—'परदेशी हूँ, भद्र!'

'कहाँसे आए हैं?'

'मैं मगधका निवासी हूँ।'

'भद्र, आपने मगधका नाम कलंकित किया है! नालन्दाके भुवन-विश्रुत आचार्य शीलभद्रके सहाध्यायी सुगतभद्रको आप नहीं जानते और फिर भी कहते हैं, मगधके निवासी हैं!'

मैंने अपनी अज्ञता स्वीकार की। बोला—'भाई, अज्ञ-जनपर दया होनी चाहिए। आपके इस सम्भाषणसे मैं उपकृत हुआ हूँ। अच्छा, मैं आचार्यका दर्शन पा सकता हूँ।'

'आचार्य अवरोधमें नहीं रहते। आप क्या चाहते हैं, मैं उनकी अनुज्ञा ले आ देता हूँ।'

'उनसे कहें कि मगध-देशका निवासी दक्ष भट्ट—जो लोकमें बाण भट्ट नामसे प्रसिद्ध है—आचार्यपादका दर्शन करना चाहता है। उसे कुछ निवेदन करना है।'

'आप क्या शास्त्रार्थ-विचारके लिए आए हैं?'

'मैं आचार्यसे कुछ आवश्यक निवेदन करना चाहता हूँ।'

'मैं पूछ आता हूँ, आप यहीं रुकें।'

थोड़ी देरमें सामनेर लौटा। उसके स्वरमें इस बार मेरे प्रति थोड़ा आदर-भाव था। उसने आते ही पूछा—'क्या आप मगधके महापण्डित स्वर्गीय जयन्त भट्टके कनिष्ठ पुत्र हैं? आचार्यपादने आपका नाम सुनकर यह पूछनेका आदेश दिया है।' मैं चौंका। तो आचार्यपाद मुझे जानते हैं? मेरे समस्त कलुष जीवनका परिचय उन्हें मिल चुका है? क्षण-भरमें मेरा सिर घूम गया। अपनेको बलपूर्वक सँभालकर मैंने कहा—'हाँ, मैं महापण्डित जयन्त भट्टका ही अभागा पुत्र हूँ।' मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा किए बिना ही सामनेर चला गया और शीघ्र ही लौटकर बोला—'आचार्यपादने इसी समय आपको दर्शन देनेका प्रसाद किया है। आप परम सौभाग्यशाली हैं। आइए।' मैं सामनेरके पीछे इस प्रकार चला, जैसे शूलोविद्ध होने जा रहा हूँ।

दुतल्लेसे उतरकर हम नीचेकी ओर आए और फिर एक पतले अलिन्दमार्गसे होते हुए नीचेके कुट्टिम प्रांगणमें उपस्थित हुए। इस आँगनके ठीक केन्द्रमें एक अश्वत्थ-वृक्ष था। नये किसलयोंसे वह लदा हुआ था। उसीकी घनी छायामें आचार्य बैठे हुए थे। उनके पास दो-एक शिष्य वर्त्तमान थे। मैं जब वहाँ पहुँचा, उस समय आचार्य किसी शिष्यको कुछ समझा रहे थे। उन्होंने मेरा आना लक्ष्य नहीं किया। यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि मैंने इस बीच अपनेको सम्हाल लिया। आचार्यपाद बहुत वृद्ध थे। उनका मस्तक मुण्डित था; परन्तु कानोंके गह्वरमें दो-चार शुक्ल केश फिर भी दिखाई देते थे और वे बता रहे थे कि वार्द्धक्यने आचार्यको किस प्रकार प्रभावित किया है। उनकी आँखें बहुत स्निग्ध और करुणार्द्र थीं। उनकी वाणी दृढ़ और मधुर थी। उनकी स्थापन-शैली युक्तिपूर्ण और प्रश्नोत्पादिनी थी। मैं उन्हें थोड़ी देर तक एकटक देखता रहा। तपस्या भी कैसी महिमाशालिनी होती है; क्योंकि इस तपस्याने उनकी आकृतिको तप्त कांचनके समान निर्मल बनाया है। उस कान्तिसे एक अद्भुत शान्ति टपक रही है। थोड़ी देर बाद आचार्यने मेरी ओर देखा—जैसे हर-जटासे सहसा च्युत होकर पड़ी निर्मल मन्दाकिनी-धारा अशेष तापदग्ध धरित्रीको शीतल करने चली हो, उसी प्रकार उनकी आँखोंसे एक अजस्र करुणा-स्रोतस्विनी बह गई। ग्रीवाको मेरी ओर फिरानेमें उन्हें थोड़ा आयास करना पड़ा। फिर मुझे देखकर बोले—'तो वत्स, तू जयन्तका कनिष्ठ पुत्र है न? देखूँ ज़रा। ठीक जयन्त-जैसा ही दिख रहा है। जयन्त मेरा गुरुभाई था, बेटा! हम दोनोंमें बड़ी प्रीति थी। वह अन्त तक मुझे अपना बड़ा भाई ही मानता रहा। मैं जबसे तक्षशिलाको चला गया, तबसे हम दोनोंकी देखा-देखी नहीं हुई। बहुत बाद जब उधरसे लौटकर नालन्दा गया, तो सबसे पहले जयन्तकी ही खबर ली। मुझे उस समय मालूम हुआ कि वह लोकको छोड़ गया! उसी समय मैंने सुना था कि तू अभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर कहाँ-कहाँ भटकता फिरता है। बहुत अच्छा हुआ वत्स, तू मुझसे मिल गया। क्यों बेटा, अभी घर जानेकी रुचि नहीं है?'

वृद्ध आचार्यकी आँखें भर आईं। मैं अपनेको कुछ प्रीत, कुछ ग्लान, कुछ आश्वस्त और कुछ गौरवान्वित अनुभव करता रहा। वृद्धने जैसे मुझे स्नेह-रसमें डुबो दिया। मैं कुछ कातर भावसे ही बोला—'देश जानेकी रुचि तो है आर्य, पर एक विशेष कार्यमें उलझ गया हूँ। आर्यपादसे अपने पितृदेवका सम्बन्ध जानकर आनन्दित हुआ हूँ। परन्तु इस समय जिस जंजालमें फँस गया हूँ, वह महान होनेपर भी मेरे वंश-गौरवके अनुकूल नहीं है, और आर्य, ऐसे ही विषयमें आपकी सहायता प्रार्थना करने आया हूँ, जो आपको केवल कष्ट ही देगा। मैं अभागा हूँ; पर जिस कार्यके विषयमें आपकी सहायता माँगने आया हूँ, उसे आप अन्यथा न समझें।'

आचार्यकी आँखें विकच पुण्डरीकके समान खिल गईं। बोले—'बता न बेटा, क्या कार्य है?'

क्षण-भर इधर-उधर देखकर मैंने निवेदन किया—'उस बातको कहनेके लिए मैं निर्जन प्रदेश चाहता हूँ।'

आचार्यने अपने शिष्योंकी ओर देखा। वे आशय समझकर उठ गए। केवल एक शिष्य थोड़ी देर तक रुका रहा। शायद उसका पाठ समाप्त होना बाकी था। फिर आचार्यने मेरी ओर देखकर कहा—'क्षण-भर रुको वत्स, इस आयुष्मानकी एक शंका बीचमें रुकी हुई है।' और फिर उस शिष्यकी ओर देखकर बोले—'हाँ आयुष्मान्, तू पूछ रहा था कि आर्य असंगने "शून्यता" शब्दको ही इतना महत्त्व क्यों दिया? जो वस्तु है भी नहीं, नहीं भी नहीं, है और नहीं दोनों भी नहीं और इन दोनोंका अभाव भी नहीं, उसे शून्यता क्यों कहा? यही तेरा प्रश्न है न?'

'हाँ, आर्य!'

'तो आयुष्मान्, तू कोई उचित शब्द चुन सकता है?'

'शंकाकी कोई बात नहीं, बोल कोई शब्द।'

'हाँ आर्य, "निरालम्ब" या "परम तत्त्व" जैसे शब्दोंके कहनेमें क्या दोष होता?'

'साधु आयुष्मान्, आज सौगत पण्डितोंका एक सम्प्रदाय "निरालम्ब" शब्दको बहुत महत्त्व देने लगा है; पर इस निषेधात्मक शब्दसे तू उस वस्तुका बोध करा सकता है, जो "नहीं भी नहीं"?'

'नहीं, आर्य!'

'और "परम तत्त्व" कहनेसे "तत्" वस्तुकी सत्ता तो माननी पड़ेगी। फिर उसे "है भी नहीं" कह सकता है?'

'नहीं, आर्य!'

'साधु आयुष्मान्! तो तेरे दोनों शब्द निरर्थक हुए न?'

'ऐसा ही दिखता है, आर्य!'

'साधु वत्स! वस्तुस्थिति यह है, आयुष्मान्, कि शून्यता या निरालम्ब या निर्वाण एक अनुभवगम्य वस्तु है। भाषाकी कमज़ोरी है कि वह उस पदार्थको कह नहीं सकती। यह तो केवल प्रज्ञप्तिके लिए एक काम-चलाऊ शब्द व्यवहार किया गया है। तू उसके शब्दार्थपर मत जा। मनन कर। यह गुह्य रहस्य है। केवल पुस्तक पढ़नेसे तू इसे नहीं समझ पायगा।'

'तो आचार्योंने जो ग्रन्थ लिखे हैं, वे निरर्थक हैं, आर्य!'

'नहीं आयुष्मान्, आचार्योंने ज्ञानका दीपक जलाया है। दीपक क्या है, इसकी ओर अगर ध्यान देगा, तो उसके प्रकाशमें उद्भासित वस्तुओंको नहीं देख सकेगा। तू दीपककी जाँच कर रहा है, उससे उद्भासित सत्यकी नहीं।'

'तो दीपकके दोषसे प्रकाशकी क्षति नहीं होती, आर्य!'

'कुतर्क कर रहा है आयुष्मान्, उपमा एकांशमें होती है। तद्गत भूयोधर्मवत्त्व ही सादृश्य है। धर्मकी साधारणताकी ओर देख, तो उपमाका तात्पर्य समझमें आयगा। सद्धर्ममें कुतर्कका प्राबल्य बढ़ रहा है, आयुष्मान्! संयत बनकर आचार्योंके वाक्यका तात्पर्य अनुशीलन कर। कुतर्क सद्विचारोंकी दावाग्नि है, वत्स! अभी जा, मुझे ज़रूरी काम है। फिर आना। भिक्षुओंसे कह दे कि जब तक मैं दक्ष भट्टसे वार्तालाप करूँ, तब तक इधर कोई न आय।'

आदेश पाकर शिष्य वहाँसे उठ गया और आचार्यने मेरी ओर जिज्ञासाके साथ देखा। मैं मुग्धभावसे आचार्यकी प्रेम-पूर्ण अध्यापन-शैलीको देख रहा था! थोड़ी देर तक भूल ही गया था कि मैं किस कामसे आया हूँ। फिर बिना किसी भूमिकाके ही मैंने कहा—'विषम-समर-विजयी बाह्लीक-विमर्दन प्रत्यन्त-बाड़व देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्या आपका दर्शन पाना चाहती हैं।'

आचार्यको जैसे विस्मयका एक धक्का लगा, मानो उस धक्केसे वे टल गए। ज़रा आगे झुककर आँखें फाड़कर देखते हुए बोले—'क्या कहा वत्स, देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी एकमात्र कन्या चन्द्रदीधिति अभी जीवित है? वह कहाँ है, वत्स? किस अवस्थामें तुमने देखा है? वह कुशलसे तो है? मैंने सुना था, प्रत्यन्त-दस्युओंने उसे हरण किया है। तुमने ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा है, वत्स ! वह सुकुमारताकी मूर्त्ति है, पवित्रताकी उत्स है, शोभाकी खनि है, शुचिताकी आश्रय-भूमि है, मूर्त्तिमति भक्ति है, कान्तिमती करुणा है ! आहा, वह तुवर मिलिन्दकी नयन-तारा अभी जीवित है ? बताओ वत्स, मैं उसे देखनेको व्याकुल हूँ।'

मैंने उनका नाम पहली बार सुना। मैं हाथ जोड़कर बोला—'पास ही हैं, आर्य ! पर आप सारी कथा सुन लें, फिर जैसा उचित समझें, करें।' यह कहकर मैं कल रातसे लेकर इस समय तककी सारी कथा कह गया। आचार्यदेवके सहज शान्त कोमल मुखमण्डलपर ज़रा-सी वंकिम रेखा उग आई। वे थोड़ी देर तक मेरा मुँह ताकते रहे। फिर बोले—'साधु वत्स, तू जयन्तका उपयुक्त पुत्र है।' फिर ज़रा भ्रूकुंचित करके बोले—'मौखरि-वंशका कल्याण हो, यह छोटा राजकुल समस्त मौखरि-गौरवपर कालिख पोत देगा। शान्तं पापम् शान्तं पापम् !!' मैं आचार्यपादके मुखकी ओर देखता रहा। उसपर कितने ही भाव आए और गए। मन-ही-मन वे किसीसे बातें कर रहे थे। बोले कुछ नहीं। थोड़ी देर तक हम दोनों चुप बैठे रहे। फिर उन्होंने एक शिष्यको बुलाकर कहा—'शीघ्र ही कुमार कृष्णवर्धनके पास चले जाओ। कहना कि आचार्यदेव अत्यन्त प्रयोजनीय कार्यसे यथाशीघ्र मिलना चाहते हैं।'

शिष्यके चले जानेके बाद उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा—'राजदण्ड कठिन होता है, वत्स ! तूने साहसका काम किया है। मैं तुझसे प्रसन्न हूँ; परन्तु अन्तःपुरमें रातको प्रवेश करना धर्मतः निषिद्ध है। यहाँ रहनेपर तुझे राजकोपका भाजन होना पड़ेगा। शीघ्र ही तू चन्द्रदीधिति और निपुणिकाको लेकर मगधकी ओर चला जा। मैं व्यवस्था कर देता हूँ। जा, चन्द्रदीधितिको मेरी ओरसे आशीर्वाद कहना। मैं उसके निरापद प्रस्थानकी आयोजना कर रहा हूँ। जब तक कोई व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक उसके देखनेकी व्याकुलताको मैं दबा रहा हूँ। तू जाकर उसे आश्वस्त कर। मेरी ओरसे उसे विश्वास दिला देना कि यहाँ कोई भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। जा, जल्दी कर। पुजारीसे सतर्क धान रहना। वह मूर्ख और नीच है।'

मैंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और तेज़ीसे चण्डी-मण्डपकी ओर बढ़ा। (क्रमशः)

प्रवासी भारतीय

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

ट्रांसवाल-कांग्रेसका चुनाव

पिछले दिनों ट्रांसवाल इण्डियन कांग्रेसका असाधारण अधिवेशन और नवीन निर्वाचन हो गया। इसमें सात सहस्र प्रवासी भारतीयोंने भाग लिया था। ठोस बहुमतसे श्री एम० ई० वलोड प्रधान और श्री एस० एम० नाना मन्त्रीके पदपर पूर्ववत् क़ायम रहे। ट्रांसवाल-कांग्रेसका यह नवीन निर्वाचन अनेक वर्षोंके बाद हुआ है और नवीन अमलदार चुननेके लिए जनता कितनी व्यग्र और उत्सुक थी, इतनी बड़ी संख्यामें उसकी उपस्थिति ही इसका यथेष्ट प्रमाण है। यह ध्यान रहे कि ट्रांसवालमें केवल २५,४९३ भारतीयोंकी आबादी है, जिनमें १०,११४ तो स्त्रियाँ हैं; शेष १५,३७९ पुरुषोंमें से सात हज़ारका सभामें शरीक होना और चुनावमें भाग लेना दरअसल उस प्रदेशके लिए कोई साधारण घटना नहीं है। इस बार पदाधिकारके लिए प्रतिद्वन्द्विताका प्रचण्ड प्रदर्शन हुआ। एक ओर डा० दादूका राष्ट्रीय दल था और दूसरी ओर श्री नानाका कांग्रेस-दल। पर राष्ट्रीय दलकी करारी हार हुई। यद्यपि राष्ट्रीय दलका यह दावा था कि ट्रांसवालकी अधिकांश जनता उसके साथ है और चूँकि नाना-दल यूनियन-सरकारसे सहयोग एवं समझौतेकी नीतिसे काम लेकर जनताका विश्वास खो चुका है, इसलिए अगामी निर्वाचनमें उसका पतन अनिवार्य है। इसका मुख्य कारण राष्ट्रीय दलके नेता डा० यूसुफ़ मोहम्मद दादूकी चंचल मनोवृत्ति और अस्थिर नीति ही है।

सन् १९३९ में ट्रांसवालमें सत्याग्रहकी चर्चा छेड़कर डा० दादू भारत और दक्षिण-अफ्रीकामें बहुत प्रसिद्ध हुए। यह प्रसिद्धि उनको मुफ़्तमें ही मिल गई—परीक्षा देनेका मौक़ा नहीं आया। सहज ही में वे दक्षिण-अफ्रीकाके भारतीय युवकोंके नेता बन गए। पर जब परीक्षाका समय आया, तो वे फिसल पड़े। जब वर्त्तमान महायुद्धका बिगुल बजा, तो उन्होंने खामोश या तटस्थ रहना उचित न समझ यूनियन सरकारको युद्ध-संचालनमें सहयोग और सहायता देनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषण देने शुरू कर दिए। वे गिरफ़्तार हुए, मामला चला और उनको एक मासकी सादी क़ैद या २५ पौण्ड जुर्मानेकी सज़ा हुई। उनके साहस, शौर्य और शूरताकी चर्चासे दक्षिण-अफ्रीकाका वायुमण्डल गूँज उठा; किन्तु उनके एक मित्र श्री मणीलाल गांधीने जुर्माना भरकर सारा गुड़ गोबर कर दिया। इस सम्बन्धमें डाक्टर साहबने जनताको यही सफ़ाई दी कि उनकी इच्छाके विरुद्ध यह काम हुआ है और अपने मित्रकी करतूतपर उनको अफ़सोस भी है। वे फिर मैदानमें कूद पड़े, इससे-कड़ी वक्तृता देने लगे। इस बार उन्हें ४० पौण्ड जुर्मानेके साथ ही दो मास कड़ी क़ैदकी सज़ा मिली और इसके साथ ही पिछली एक मासवाली क़ैदकी सजा भी भुगतनी पड़ी। इस प्रकार तीन मासके बाद जब डा० दादू क़ैदसे छूटे, तो उन्होंने सरकारको आश्वासन दिया कि भविष्यमें न तो वे राजनीतिक कार्योंमें भाग लेंगे और न कोई भाषण ही देंगे।

पर इस काण्डकी यहीं समाप्ति नहीं हो सकी। जब रूसको लड़ाईमें घसीटा गया, तो डाक्टर साहब फिर रंगमंचपर आए और प्रवासी भारतीयोंको सलाह देने लगे कि अब यह साम्राज्यवादी युद्ध नहीं रहा, इसका रूप बिलकुल बदल गया है। यह लड़ाई एकतन्त्र और जनतन्त्रके बीचमें है, इसलिए तन-मन-धनसे यूनियन सरकारको सहायता देना उनका परम कर्त्तव्य है।

टेंगेनिकामें भारतीय परिषद्

गत दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें टेंगेनिका-प्रवासी भारतीयोंकी जो विशेष परिषद् दारस्सलाममें हुई थी, उसका पूरा विवरण अब मुझे प्राप्त हुआ है। महायुद्ध-जनित भीषण परिस्थितिपर विचार करनेके लिए इस परिषद्की आयोजना की गई थी और सन्तोषकी बात है कि टेंगेनिका-प्रदेशके सभी नगरों, कस्बों और ग्रामोंके चुने हुए प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए। श्री एम० पी० चितलेने सभापति-पदसे जो भाषण दिया, वह उस प्रदेशके प्रवासी भारतीयोंका सच्चा और सजीव शब्द-चित्र है। इस संसारव्यापी समरके अनिवार्य प्रभावसे टेंगेनिकाके भारतीय भला कैसे बच सकते हैं? उनकी स्थिति दिनपर दिन गम्भीर और चिन्ताजनक होती जा रही है। इस समय उपेक्षा-वृत्तिसे काम लेना प्रवासियोंके लिए हितकर नहीं हो सकता। यह परिषद् प्रवासी भारतीयोंकी सजगताकी सूचक थी। इसमें सारी परिस्थितिपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया और अनेक उपयोगी प्रस्ताव भी पास हुए। परिषद्ने संयुक्त-राष्ट्रोंकी विजय-कामना प्रकट करके इस बातपर विशेष ज़ोर दिया कि अटलांटिक-सनद भारतपर अवश्य लागू होनी चाहिए। फर्जियात फ़ौज-भर्तीके प्रश्नपर परिषद्में खूब गरमा-गरम विवाद हुआ और अन्तमें इस आशयका प्रस्ताव पास हुआ कि सेनामें भारतीयोंके भर्ती होनेकी स्थिति, नियम और शर्तोंमें यथोचित सुधार होने चाहिएँ और उनमें फैला हुआ असन्तोष दूर किया जाना चाहिए।

कुछ कालसे यह चर्चा चल रही है कि केनिया, यूगाण्डा और टेंगेनिकाका एक संघ बना देना चाहिए। इस सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए सन् १९२८ में सर हिल्टन यगकी अध्यक्षतामें एक कमीशन भी बैठाया गया। टेंगेनिकाके भारतीय सदासे इस प्रस्तावित संघके विरुद्ध आवाज़ उठाते आए हैं और इस परिषद्में भी उन्होंने अपने उसी अभिमतकी पुनरावृत्ति की। वास्तवमें टेंगेनिका जर्मनीका उपनिवेश था, जो पिछले महायुद्धके बाद राष्ट्र-संघके अधिकारमें आ गया और जिसे संघने ब्रिटेनकी संरक्षतामें सौंप दिया। अतएव ब्रिटिश उपनिवेशोंकी अपेक्षा टेंगेनिकामें भारतीयोंके साथ अच्छा व्यवहार होता है। इस स्थितिमें केनिया और यूगाण्डाके प्रभावसे पृथक रहनेकी उनकी अभिलाषा स्वाभाविक ही है।

एक प्रस्ताव द्वारा सरकारसे यह भी याचना की गई कि भारतीय किसानोंको खेती-बारीके लिए यथेष्ट ज़मीन मिलनी चाहिए और उनके व्यापारकी प्रगतिमें अनावश्यक क़ानूनी अड़ंगे नहीं लगाए जाने चाहिएँ। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव था नाम-ज़दगीकी प्रथा उठाकर निर्वाचनकी प्रणाली प्रचलित करनेके लिए सरकारसे अनुरोध करनेका। अब तक सरकार द्वारा मनोनीत भारतीय सदस्य ही वहाँकी धारासभामें बैठते आए हैं; किन्तु परिषद्ने इस प्रथाको लोकतन्त्रके प्रतिकूल घोषितकर बलपूर्वक अनुरोध किया कि धारासभाके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होने चाहिएँ और भारतीयोंकी आबादीके अनुपातसे उनकी संख्या निर्धारित की जानी चाहिए।

इस प्रकार यह परिषद् सब तरहसे सफल रही। इसमें जहाँ वर्त्तमान स्थितिपर विचार हुआ, वहाँ भविष्यके लिए कार्य-क्रम भी बना। टेंगेनिकाके समग्र प्रवासी भाइयोंकी संयुक्त आवाज़ ही इस परिषदकी सर्वोपरि विशेषता है। यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ कि भविष्यमें प्रतिवर्ष इसका अधिवेशन हुआ करेगा।

फिजीमें भारतीयोंकी भर्ती

आस्ट्रेलियाके पड़ोसमें ही फिजी है, जहाँ लगभग ७० हज़ार भारतीय रहते हैं। जापानके लड़ाईमें कूद पड़नेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादसे आस्ट्रेलियाकी सरकार देश-रक्षाके लिए बहुत चिन्तित है। अतएव फिजी-सरकारका भी सचेत और सजग होना स्वाभाविक ही है। फिजी-सरकारको फ़ौजी कामके लिए कुछ भारतीय मज़दूरोंकी ज़रूरत है। इन मज़दूरोंको फिजीमें ही काम करना होगा; पर ज़रूरत पड़नेपर इन्हें बाहर भी जाना पड़ेगा। भारतीयोंसे सैनिक-सेवा तो ली जायगी; लेकिन उनके साथ समानताका व्यवहार नहीं होगा। उनका वही दर्जा और वेतन होगा, जो वहाँके मूल निवासी काईबीतियोंका है। वहाँके प्रवासी भारतीय नेताओंको समझाया जाता है कि साम्राज्यपर इस समय संकट आ पड़ा है, उसकी सहायता और रक्षा करना ही सबका एकमात्र कर्त्तव्य है। इस समय समानताका सवाल उठाकर एक नई समस्या खड़ी करना और बनियोंकी भाँति मोल-भाव करना भारतीयोंके लिए उचित और शोभाप्रद नहीं है। जहाँ जर्मन और इतालियन श्वेतांग होते हुए भी अंग्रेज़ोंका अस्तित्व मिटानेपर तुले हुए हैं, एशियाके भूरे और पीले आदमी अंगरेज़ोंकी रक्षाके लिए अपना लहू बहा रहे हैं। तब फिर अंगरेज़ोंके हृदयमें गोरे और भूरे—यूरोपियन और एशियाटिक—का पुराना भाव क्यों बना हुआ है? जब इस संकट-कालमें उनके हृदय-परिवर्त्तनका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता, तो युद्धके बाद आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिण-अफ्रीका, केनिया आदि सभी ब्रिटिश उपनिवेशोंसे वर्ण-भेदका उच्छेदन कैसे होगा?

फिजीके भारतीय मज़दूर तो समानताका हक़ भी नहीं माँगते हैं। वे तो केवल यही चाहते हैं कि यदि सरकार उनका वेतन बढ़ाना नहीं चाहती, तो कम-से-कम उनके औरत-बच्चोंको गुज़र-बसरके लिए भत्तेके रूपमें तो कुछ दे। पर यह भी फिजी-सरकारको मंजूर नहीं है। वह भारतीयोंके साथ काईबीतियोंसे अधिक रियायत करना उचित नहीं समझती। सन्तोषकी बात यही है कि इसी बहाने फिजीके भारतीय नेताओंका एक सम्मेलन सूबामें हुआ, जिसमें पं० विष्णुदत्त, श्री बी० डी० लक्ष्मण, श्री अब्दुलरहमान साहु खाँ, श्री के० बी० सिंह आदि धारासभाके भारतीय सदस्य सम्मिलित हुए। इस प्रश्नपर सभीने अपने-अपने दृष्टिकोणसे विचार-विवेचन किया। यह दुःखकी बात है कि आपसी मनोमालिन्यके कारण कोई सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो सका।

नेटालमें साम्प्रदायिक संघर्ष

मुसलमानोंकी मौजूदा रीति-नीति भारतकी सीमा तक ही सीमित नहीं है, वह समुद्रको पारकर नेटाल तक जा पहुँची है। जनाब मुहम्मदअली जिन्नाने जहाँ मातृभूमिका अंग-भंग करनेकी शपथ खाई है, वहाँ उनके दिमाग़-शरीफ़में यह बात भी सूझी है कि हिन्दू और मुसलमान केवल दो मज़हब ही नहीं, बल्कि अलग-अलग क़ौमें भी हैं। दुःखकी बात है कि यह विषाक्त विचार दक्षिण-अफ्रीकामें भी फैल रहा है, जिससे वहाँका वातावरण भी दूषित हो रहा है। वहाँ गुजराती मुसलमान काफी हैं, जिनमें विचारशील व्यक्तियोंकी कमी नहीं है। जिस देशमें प्रवासियोंको पग-पगपर अपमानकी ठोकरें खानी पड़ती हों और मानवी अधिकारोंकी रक्षा एवं क़ानूनी प्रहारसे बचनेके लिए सदा युद्धरत रहना पड़ता हो, वहाँ पाकिस्तानका झगड़ा खड़ाकर उनमें दुर्भावना फैलाना और फूट डालना क्या अक़्लमन्दी है? पिछले कई महीनोंसे डरबनके 'इण्डियन व्यूज़'में पाकिस्तानपर लेख-माला निकल रही है, जो प्रवासी भारतीयोंकी हित-दृष्टिसे वांछनीय नहीं है। मैंने उसके सम्पादक श्री मूसा इस्माइल मीरको एक व्यक्तिगत पत्र लिखकर प्रार्थना की कि दक्षिण-अफ्रीकामें 'पाकिस्तान' और 'अखण्ड हिन्दुस्थान'का आन्दोलन करना प्रवासी भारतीयोंके लिए बड़ा ही विघातक होगा। इसके जवाबमें अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है कि वे भारतके आन्दोलनसे सदा तटस्थ और विरक्त रहते आए हैं, क्योंकि उनका भी यही ख़याल है कि दक्षिण-अफ्रीकामें भारतके विवादास्पद प्रश्नोंको उठाना प्रवासियोंके लिए हितकर नहीं हो सकता। किन्तु इस बार वहाँके कुछ अखबारों और संस्थाओंने मुस्लिम-लीग और उसके नेता जनाब जिन्नाको गालियाँ देकर उनको यह नीति ग्रहण करनेपर मजबूर कर दिया है। उनका पत्र बहुत विस्तृत है और उसे जिन्ना साहबकी आवाज़ और दलीलोंकी प्रतिध्वनि ही कहना चाहिए। मस्लन, कांग्रेसका आन्दोलन ब्रिटेनके विरुद्ध नहीं, बल्कि मुसलमानोंके विरुद्ध है। इसलिए मैंने प्रत्युत्तरमें उनसे फिर अपील की है कि उनकी मौजूदा नीति और प्रवृत्तिका परित्याग ही प्रवासियोंकी सच्ची सेवा होगी।

इधर 'हिन्दू'के सवाददाताने जो खबरें भेजी हैं वे अत्यन्त चिन्ताजनक हैं। दिसम्बरके अन्तमें डरबनमें जि जिन्नाकी जन्मगाँठ मनाई गई, जिसमें पाकिस्तानका प्र समर्थन किया गया और मुस्लिम-लीगको आर्थिक सहायता भेजी गई। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप सोई हुई हिन्दू-महा भी जाग उठी है और उसने 'अखण्ड हिन्दुस्थान'का आन्दो आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार दुर्भाग्यवश हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवाई-जहाज़से लिया हुआ ग्वादलकानालके हवाई-अड्डेका एक दृश्य ।

न्यूगिनीके जंगलोंका एक विकट मार्ग, जिसपर होकर मित्र-सेना आगे बढ़ रही है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सोलोमन-द्वीपका वह भाग, जिसपर अमरीकन नौ-सेनाने अधिकार कर लिया है।

न्यूगिनीके जंगलोंमें मित्र-सेनाके लिए रास्ता बनाया जा रहा है।

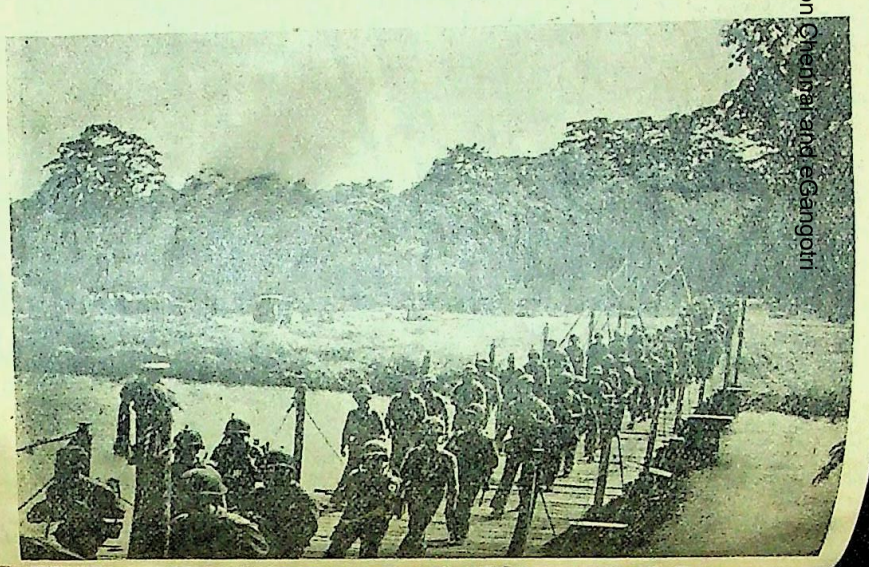

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकरार बिला वजह बिखर रही है और आपसमें दुर्भावना फैल रही है, जिसका नतीजा किसी भी वर्गके लिए अच्छा नहीं हो सकता।

स्व० जगन्नाथ भवानीशंकर पाण्ड्या

अचानक यह खबर पाकर कि हृदयकी गति रुक जानेके कारण श्री जगन्नाथ भवानीशंकर पाण्ड्या केवल ५२ वर्षकी वयमें ही इस संसारसे सदाके लिए चल बसे, हृदयको गहरा आघात लगा। सन् १९२५ में जब कि मैं दक्षिण-अफ्रीका-भारतीय शिष्ट-मण्डलका एक सदस्य होकर स्वदेश आ रहा था, तो मोम्बासामें उनसे प्रथम मिलन और परिचय हुआ। विदेशों और उपनिवेशोंमें ऐसे अनेक प्रवासी भाई हैं, जिन्होंने व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवनमें आशातीत उन्नति कर ली है; किन्तु केनियाके स्व० जे० बी० पाण्ड्या उनमें अद्वितीय थे। उन्होंने साधारण स्थितिसे उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए न केवल लाखों रुपए ही कमाए, बल्कि सार्वजनिक जीवनमें अपने सेवा-बलसे वह प्रतिष्ठा-प्रतीति भी पाई, जो आज तक दूसरे किसी प्रवासी भाईको प्राप्त नहीं हो सकी।

सन् १८९१ में काठियावाड़के गोंडल राज्यमें आपका जन्म हुआ था। आपके पिता श्री भवानीशंकर नारणजी पाण्ड्या वहांके 'पेनाली मोती स्कूल'के मुख्याध्यापक थे। भावनगरके हाई स्कूलमें आपने केवल मैट्रिक तक शिक्षा पाई थी। सन् १९०८ में १८ सालकी आयुमें आप पूर्व-अफ्रीकाके प्रवासी बने। उस साल केनियामें सरकारी नौकरीके उम्मेदवारोंकी जो परीक्षा ली गई, उसमें आप सर्वप्रथम रहे। अतएव आपको मोम्बासाके अकाउन्ट-विभागमें नौकरी मिली। पर पाण्ड्याजी नौकरीके लिए पैदा नहीं हुए थे। सन् १९१४ में आपने सरकारी नौकरीसे इस्तीफ़ा दे दिया और एक यूरोपियन व्यापारीके यहाँ काम करने लगे। व्यापारका अनुभव प्राप्त होते ही सन् १९१७ में आपने 'पाण्ड्या एण्ड कम्पनी' नामसे अपना स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ किया। इस क्षेत्रमें आपने असाधारण उन्नति की। सन् १९१७ में आपने सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। पूर्वीय अफ्रीका भारतीय कांग्रेसके आप साधारण सदस्यसे बढ़ते-बढ़ते प्रधान तक हो गए। जब 'ईस्ट अफ्रीका फेडरेशन ऑफ् इण्डियन चेम्बर्स ऑफ् कामर्स एण्ड इण्डस्ट्री'की स्थापना हुई, तो उसके भी आप प्रथम सभापति चुने गए।

सन् १९२७ में पाण्ड्याजीने मोम्बासामें 'पण्ड्या प्रिंटिंग प्रेस' खोला और 'केनिया डेली मेल' नामक अंगरेज़ी-गुजराती दैनिक निकालना शुरू किया। बहुत दिनों तक आप स्वयं इसके सम्पादक रहे। जब आपको अन्य सार्वजनिक कार्योंसे अवकाश कम मिलने लगा, तो आपने अपने अनुजको सम्पादन-कार्य सौंप दिया। इस अखबारमें आपको बहुत घाटा उठाना पड़ा; किन्तु प्रवासी भाइयोंकी हित-दृष्टिसे उसको बन्द करना आपको उचित नहीं जँचा। इसीलिए यह अखबार आज भी चल रहा है। अपनी लोक-सेवाके प्रतापसे आप केनियाकी धारासभाके सदस्य भी चुने गए। आप प्रथम भारतीय थे, जो मन्त्रिमण्डलके सभासद बनाए गए। महायुद्ध छिड़नेके बाद जब नई दिल्ली में 'ईस्टर्न ग्रुप-कौंसिल'की स्थापना हुई, तो पाण्ड्याजी पूर्व-अफ्रीकाकी सरकारकी ओरसे उसके प्रतिनिधि होकर आए थे।

पाण्ड्याजीके परलोक-प्रस्थानसे प्रवासी भारतीयोंके भाग्याकाशका चमकता हुआ एक उज्ज्वल सितारा अस्त हो गया। मोम्बासामें उनके स्मारक-स्वरूप २५ हज़ार पौण्ड (लगभग ढाई लाख रुपए) की लागतसे 'पाण्ड्या-अस्पताल' बनानेका विचार हो रहा है। इस कार्यमें पाण्ड्या-परिवारने भी दस हज़ार पौण्ड देनेका संकल्प किया है।

पथरजाका स्वर्गवास

दक्षिण-अफ्रीकासे समाचार आया है कि 'साउथ अफ्रीकन इण्डियन कांग्रेस'के सामयिक सभापति श्री वैदलिंग सुब्रमण्या कुपसामी पथर भी परलोक सिधार गए। किम्बर्ली नगरमें सन् १८८७ में आपका जन्म हुआ था। सन् १९२० में आपने सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया। नेटाल इण्डियन कांग्रेसके कार्यकर्त्ताके रूपमें आपने लोक-सेवाका कार्य आरम्भ किया। सन् १९२५ में संकट-संकुल समयपर जो दक्षिणीय अफ्रीका भारतीय शिष्ट मण्डल यहाँ आया था, उसके आप भी एक सभासद थे। आप एक विद्वान, बुद्धिमान और गम्भीर व्यक्ति थे। कुछ काल तक आपने 'विवेक भानु' और 'सन्तामिल सलवन' नामक तामिल अखबारोंका सम्पादन किया था। इधर दो-तीन साल पहले आपको लकवा मार गया था, जिससे आप प्रायः रुग्ण ही रहा करते थे। अनेक सभा-समितियोंसे आपका सम्बन्ध था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

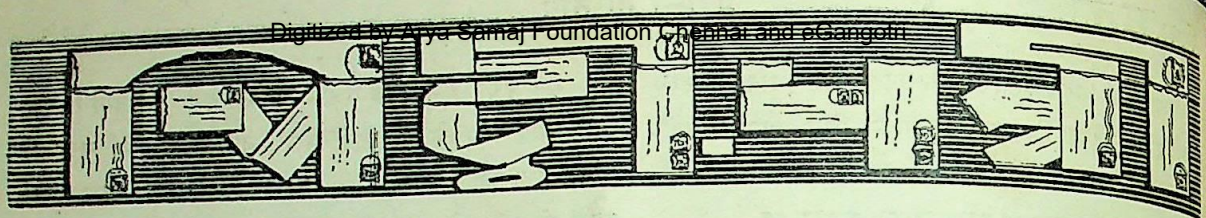

आचार्य द्विवेदी और सुहागरात

दरभंगा (बिहार) की विद्यापति-हिन्दी-सभाने इस वर्ष एक बड़ा पोथा बड़ी सजधजसे प्रकाशित किया है। उसका नाम है—'जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ'। यह श्री रामलोचनशरण बिहारीकी स्वर्ण-जयन्ती और उनके 'पुस्तक-भण्डार'की रजत-जयन्तीके उपलक्ष्यमें अर्पित हुआ है। अन्यान्य विषयक लेखोंके अतिरिक्त उसमें पृष्ठ ३१३-३७२ पर दिवंगत आचार्य द्विवेदीजीके वे पत्र छापे गए हैं, जो उन्होंने या तो श्रीनगरके राजा कीर्त्यानन्दसिंहके लिए लिखे थे या श्री जनार्दन झा 'जनसीदन'को, जो बिहारके पुराने लेखक और कवि हैं तथा जिनका आचार्य द्विवेदीजीसे सम्बन्ध रहा है। झा महोदय कई वर्ष तक उक्त राजा साहबके आश्रयमें थे। आपका कहना है कि 'द्विवेदीजीके बहुतसे पत्र तो उचित रक्षणावेक्षणके अभावमें दीमकके उदरमें चले गए और बहुतसे दूसरी रीतिसे भी नष्ट हो गए। जो बच गए, उनको प्रतिपंक्तिके क्रमसे छापा गया है। ये पत्र इससे पहले प्रकाशमें नहीं आए थे। इनमें पहला पत्र ६।१।१९०३ का है और अन्तिम १।८।१९३३ का। इस पत्रावलीमें २३।३।१९०३ का एक पत्र एक विशिष्ट घटनापर प्रकाश डालता है। इस पत्रका एक अंश यह है—

"उस कविता* को राजा साहबके पास भेजनेमें हमने कोई हानि नहीं समझी। यदि राजा साहब या आपने वात्स्यायन, जयदेव, डन्लन, बाइरन आदिके ग्रन्थ देखे हैं, तो विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। इनसे बड़ा ऋषि, भक्त और कवि कोई इस समय नहीं है।.....

"यथासमय उत्सव मनाया गया और द्विवेदीजीको वह ग्रन्थ अर्पित किया गया। हम लोगोंकी बड़ी उत्कट इच्छा थी कि इस अवसर (अभिनन्दनोत्सव) पर काशी-विश्वविद्यालय द्विवेदी-जीको 'डाक्टर'की आनरेरी-उपाधि दे। इसके लिए पण्डित रामनारायण मिश्रने मालवीयजीसे मिलकर आग्रह किया। मालवीयजीको हम लोग साग्रह उत्सवमें लाए और यह सोचा गया कि मालवीयजीके मुँहसे यदि आशाजनक वाक्य निकल जायँ, तो आगे उद्योगमें सफलताकी आशा की जा सकती है। जो कार्यक्रम बनाया गया था, उसमें मालवीयजीका भाषण न था। यथासमय द्विवेदीजी अपना उत्तर पढ़नेके लिए खड़े हुए, तो मैंने प्रार्थना की कि मालवीयजीके भाषण करनेके अनन्तर वे अपना वक्तव्य पढ़ें। द्विवेदीजीने कुछ बिगड़कर कहा कि प्रोग्राममें यह नहीं है। मैंने क्षमा माँगी और चुपचाप बैठ गया। उत्सवके अनन्तर पण्डित रामनारायण मिश्रसे ज्ञात हुआ कि द्विवेदीजीके वक्तव्यका प्रभाव मालवीयजीपर अच्छा नहीं पड़ा; पर हम लोग उद्योग करते गए। इधर द्विवेदीजीने एक पत्र 'लीडर'में छपवाया, जिसमें उन्होंने मुझे 'डाक्टर'की उपाधि देनेके लिए प्रस्ताव किया। काशी-विश्वविद्यालयका नियम यह है कि आनरेरी-उपाधिके लिए केवल वाइस-चांसलर ही प्रस्ताव कर सकते हैं। दूसरे किसीको ऐसा प्रस्ताव करनेका अधिकार नहीं है। मैंने द्विवेदीजीको एक पत्र लिखा कि यह आपने क्या किया? आपको विश्वविद्यालयके नियम ज्ञात नहीं हैं।....." (मेरी आत्म-कहानी, पृष्ठ २४५)

आचार्य द्विवेदीजीने अपने उक्त वक्तव्य ('आत्म-निवेदन'—सरस्वती, मई १९३३, पृष्ठ ६२५) में पूर्व-जीवनकी एक घटनाका उल्लेखकर कहा था कि हमने एक ऐसी पुस्तक लिखी थी, जो छप जाती, तो इतनी बिकती कि उसकी आमदनीसे मालामाल हो जाते, पर गृहिणीने उसे अपने बक्समें बन्द कर लिया। कहा कि ऐसी पुस्तकका प्रकाशन जनताके लिए हितकर न होगा। ऐसी पुस्तक लिखनेके लिए उन्हें गृहिणीसे मीठी मलामत भी सहनी पड़ी। कहते हैं कि द्विवेदीजीके वक्तव्यके इस अंशसे ही महामना मालवीयजी असन्तुष्ट हुए थे, जिसका संकेत 'आत्म-कहानी'के उद्धरणमें है। बात यह है कि जिस 'सुहागरात'के लेखक और प्रकाशक मालवीयजीके भतीजे स्व० पं० कृष्णकान्त मालवीय थे, उसी नामकी पुस्तक द्विवेदीजीने पूर्व-जीवनमें लिखी थी और पत्नीके अनुरोधको मानकर उसे प्रकाशमें नहीं आने दिया था। सुना जाता है कि 'सुहागरात'के उल्लेखने मालवीयजीके मनपर अच्छा प्रभाव नहीं डाला, फलतः द्विवेदीजी 'डाक्टर' भी नहीं बन पाए। न बनें, इससे द्विवेदीजीका कुछ बना-बिगड़ा नहीं; पर मेरे और मेरे-ऐसे अन्य लोगोंके मनमें यह शंका हुई कि नए पुराने

* द्विवेदीजीने 'सुहागरात'-शीर्षक अपनी बनाई एक कविता राजा साहबको गुप्त रीतिसे भेजी थी, जिसे पढ़कर उनके मनमें कुछ क्षोभ हुआ। वह कविता अभी तक अविकल रूपमें झा महोदयके पास सुरक्षित है।—ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो बातें 'सुहागरात'में पं० कृष्णकान्तने लिखी हैं, उनका पता पुराने पण्डित द्विवेदीजीको कैसे लगा होगा? फलतः उनकी अप्रकाशित पुस्तकके अस्तित्वके सम्बन्धमें शंका होने लगी। भला हो पण्डित जनार्दन झा 'जनसीदन'का, जिन्होंने द्विवेदीजीकी 'सुहागरात'-शीर्षक कविताका पता दिया और यह भी बताया कि वह उनके पास अब तक अविकल रूपमें सुरक्षित है। इससे स्पष्ट है कि जब द्विवेदीजीने इस शीर्षककी कविता लिखकर भेजी थी और उसमें वर्णित विषयका समर्थन भी निजी-पत्रमें किया था, तब उन्होंने उसी विषयपर पुस्तक भी लिखी होगी। उस वक्तव्यमें सच्ची बात सुननेसे यदि मालवीयजी नाराज़ हो गए, तो क्या हुआ; इतने दिन बाद सच बात प्रकट हुई कि द्विवेदीजीने किसीको झेंपानेके लिए उस पुस्तकका उल्लेख नहीं किया था और न झूठी वाहवाही लूटनेके उद्देश्यसे ही। काशी-जैसे पुण्यधाममें, ७० वर्षकी वृद्धावस्थामें, द्विवेदीजी भला उतने बड़े समारोहमें मिथ्याभाषण क्यों करने लगे?

इण्डियन प्रेस-शाखा, काशी] —लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय

'भारतेन्दु-युग'

अभी कुछ दिन हुए डा० रामविलास शर्माकी 'भारतेन्दु-युग' नामकी एक पुस्तक युग-मन्दिर, उन्नावसे प्रकाशित हुई है। इसमें विषय-विभाजन इस प्रकार किया गया है—भारतेन्दु-युग और जन-साहित्य, राजभक्ति और देशभक्ति, पत्र-पत्रकार, पत्र-साहित्य और प्रगति, सभा-समिति-व्याख्यान, नाटककार काशीनाथ और हरिश्चन्द्र, नाटककार प्रतापनारायण और श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी और उनके दो प्रहसन, निबन्ध-रचना, उपन्यास, कविता आदि। कोई भी विषय अछूता नहीं रह गया है। लेखक महोदयने भी इसे रेखा-चित्र कहा है। इसकी विशेषता यह है कि यह रेखा-चित्र भारतेन्दु-कालका रेखा-चित्र नहीं है, वरन कुछ लेखकोंके कुछ लेखोंका और भारतेन्दुकी जीवनी तथा उनपर निकले हुए विचारोंका रेखा-चित्र है।

भारतेन्दु-युगके हम दो भाग कर सकते हैं—एक जब तक भारतेन्दु थे और दूसरा जब तक उनके समकालीन मण्डलकी धूम मची रही। लेखकने स्वयं कहा है कि संवत् १९२५से जब 'कविवचन-सुधा' का प्रकाशन आरम्भ किया गया और सं० १९५७ में जब 'सरस्वती'का प्रकाशन आरम्भ हुआ, इन्हीं तीस-चालीस वर्षोंकी अवधिमें भारतेन्दु-युग सीमित है। उन्होंने इसी समयकी दशाका वर्णन भी किया है; पर उन्होंने भारतेन्दु-युगकी विचार-धाराओंका वर्णन न कर केवल उस समयका इतिहास लिख डाला है। जन-साहित्य, राजभक्ति और देश-भक्ति—इन्हीं तीन धाराओंकी ओर उन्होंने कुछ ध्यान दिलाया है; पर वह भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि लेखक महोदयने 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' आदि पत्रोंके नाम ही अधिक गिनाए हैं।

पुस्तकका लेखन एकांगी है। भारतेन्दुको छोड़कर किसी भी कवि, लेखक, निबन्धकार, आन्दोलनकर्त्तापर पूर्ण और सूक्ष्म विचार नहीं किया गया है। किसीका अध्ययन तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि उसकी आत्मामें न पैठा जाय। जब हम यह समझते हैं कि हम २० वीं सदीके हैं, तब हम २०वीं सदीको अच्छी तरह समझ सकते हैं। भारतेन्दु-युग एक प्रगतिका युग था। प्रगतिवादकी धारा उस समय ज़ोरोंसे बह रही थी। (प्रगतिसे मेरा अभिप्राय उन नवीन धाराओंसे है, जो रूढ़िगत परम्पराके विरोधमें उत्पन्न हुई हैं।) आलोचकका यह उत्तरदायित्व है कि प्रगतिकी उन गुत्थियोंको सुलझाय, उनका तारतम्य स्पष्ट करे। भारतेन्दु-युगकी कविता-कामिनी प्रतिदिन जो नए रूप धारण करती थी, उन्हें आलोचकने देखा ही नहीं। खड़ी बोलीकी कवितामें कौन-कौनसे विचार उठे, ब्रजभाषामें क्या परिवर्त्तन हुए, ये विषय लेखकने नगण्य समझे। प्रेमघनजीकी कविता भारतेन्दु-युगमें अपना स्थान रखती है; पर उनके काव्यका लेखकने केवल परिचय-मात्र ही पर्याप्त समझा। इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्रकी प्रवृत्तियोंके स्फुटन-कार्यमें भी लेखकने अधिक परिश्रम नहीं किया।

भारतेन्दु-युगकी महानता वर्त्तमान गद्यका उदय है। भारतेन्दु-युगमें गद्यकी कई धाराएँ चलीं। कुछ लोग धारा-शैलीके लेखक थे, कुछ तरंग-शैलीके। कुछ हास्य-रसके नेता थे, कुछ गाम्भीर्यके; जैसे पण्डित हरिश्चन्द्र उपाध्याय, जिनकी पुस्तकें 'साहित्य-हृदय'के नामसे प्रकाशित हुई हैं। पर दुःखसे कहना पड़ता है कि लेखकने गद्यके चार स्तम्भों—भट्टजी, प्रेमघनजी, प्रतापनारायजी और भारतेन्दुजी—के गद्य कैसे थे, उनमें क्या त्रुटियाँ या खूबियाँ थीं, इसका कुछ भी विवेचन नहीं किया। उस समयके गद्यमें साहित्यिक, व्यक्तिगत, राजनीतिक, सामाजिक निबन्ध लिखे गए, जिन्हें लेखक 'आनन्द-कादम्बिनी', 'नागरी-नीरद', 'ब्राह्मण' आदिसे पढ़ सकते थे। प्रौढ़ भाषाका रूप तो 'आनन्द-कादम्बिनी' आदिमें ही मिलता है।

पत्र-पत्रिकाओंके नाम तो काफ़ी गिनाए गए हैं; पर किन पत्रोंके क्या विचार थे, उनका क्या उद्देश्य था, इन सबके बारेमें लेखकने कुछ भी नहीं कहा। हाँ, इतना इस पुस्तकमें अवश्य है कि 'ब्राह्मण'को चन्दा न मिलनेपर प्रतापनारायणजी कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखकर छापा करते थे। आलोचनाके विषयमें भी लेखककी धारणा बिना सिर-पैरकी है। हिन्दीकी आलोचनाके सूत्रपात-कर्त्ता पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' हैं। हिन्दीकी सर्व-प्रथम आलोचना संवत् १९३८ में 'मधुतरंग' नामक पुस्तककी 'आनन्द कादम्बिनी'में निकली थी। मालूम होता है, लेखकने भारतेन्दुके नाटकोंको छोड़कर अन्य ग्रन्थोंका उचित अध्ययन नहीं किया है। भारतेन्दुके नाटकोंका भी शायद उन्होंने उचित अध्ययन नहीं किया। कारण, आपने उनकी भी पूर्ण विवेचना नहीं की है। पर प्रेमघनजीके 'भारत-सौभाग्य'को तो लेखकने शायद पढ़ा भी नहीं, और यदि पढ़ा भी, तो शायद जल्दीमें थे। उनके विवेचनको देखकर हम कह सकते हैं कि वे उसका भी अध्ययनशील विचार करनेमें सफल न हो सके। भारतेन्दु-युगके अन्य कवि, नाटककार, उपन्यासकार आदिकी कौन कहे, स्वयं भारतेन्दुकी कृतियोंकी भी कोई गम्भीर आलोचना हमें उनकी पुस्तकमें नहीं मिली।

मेस्टन-होस्टल, लखनऊ] — दिनेशनारायण उपाध्याय

वनस्थली बालिका-विद्यालय

फ़रवरी, १९४३ के 'विशाल भारत'में श्री 'जीवनमुक्त'का 'सच्ची शिक्षाका स्वरूप'-शीर्षक एक लेख छपा है। उसके निम्न-लिखित अंशकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया गया है—"मैं मानता हूँ कि कई संस्थाएँ ब्यावर, पिलानी, फतहपुर, वनस्थली, लाडनू आदि स्थानोंमें धनवानोंने खोल रखी हैं; परन्तु उन सबमें स्वदेशोन्नतिका उतना ध्यान नहीं रखा जाता, जितना कि संचालकों और कार्यकर्त्ताओंके यशोविस्तारका। तभी तो सरकारी गवर्नरों और चीफ़-मिनिस्टरों द्वारा उनका निरीक्षण कराया जाता है तथा उनके झूठे-सच्चे प्रशंसा-वाक्योंका समाचारपत्रों द्वारा विज्ञापन होता है। ये संस्थाएँ वास्तवमें अर्द्ध-सरकारी गुलाम पैदा करनेके अड्डे हैं।" श्री 'जीवनमुक्त'के लेखको पढ़ते-पढ़ते मेरे दिमाग़में कई विचार उठे और अन्तमें मैंने यह सोचा कि उक्त लेखमें जो-कुछ लिखा है, उसके बारेमें मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिए। परन्तु बादमें मेरा खयाल हुआ कि जब 'विशाल भारत'-जैसे मासिकमें एक लेख छपा है, तो मुझे उसके पाठकोंको वनस्थलीके सम्बन्धमें सही जानकारी करानेकी दृष्टिसे कुछ-न-कुछ लिखना ही चाहिए।

सितम्बर, १९३९ में आचार्य काका कालेलकर वनस्थली पधारे थे। उन्होंने लिखा था—'.....मैं आशा करता हूँ कि यह संस्था राष्ट्रीय शिक्षणका सच्चा आदर्श विकसित करनेमें सफल होगी।' बादमें उन्होंने 'सर्वोदय'में लिखा—'इस स्थानके लिए यह कोई मामूली चीज़ नहीं है। लड़कियोंका जीवन सादा, स्वतन्त्र और निर्भय है।'

जून, १९४० के 'विशाल भारत'में बरेली-कालेजके प्रो० शंकरसहाय सक्सेनाका एक सचित्र लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने लिखा था—'बालिकाओंमें सत्य और प्रेमके आधारपर राष्ट्रकी सेवा करनेकी उत्कट भावना जाग्रत करनेके प्रयत्नोंका इस विद्यालयके शिक्षाक्रममें प्रथम स्थान है।...राष्ट्रीय वातावरण तथा अध्यापकोंकी जागरूकताके कारण विद्यालयकी छात्राओंके जीवन स्फूर्त्ति, साहस और राष्ट्रीय भावनाओंसे ओतप्रोत है।'

अक्टूबर, १९४० में विद्यालयका वार्षिकोत्सव डा० राजेन्द्रप्रसादकी अध्यक्षतामें हुआ था। उस समय उन्होंने अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी थी—'मैंने विद्यालयकी सभी प्रवृत्तियोंको अच्छी तरह देखा। सब-कुछ देखकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। लड़कियोंको शिक्षा सब प्रकारसे दी जाती है। अन्य विद्यालयोंकी तरह केवल अक्षर ज्ञान और किताबी विद्या पर ही अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। उनके स्वास्थ्यका विशेष ध्यान रहता है और हर तरहकी कसरत कराई जाती है। अपने बचावके लिए वे शारीरिक बल-संग्रह कर लेती हैं और गुण भी सीख लेती हैं, जो किसीसे मुक़ाबिला करनेमें सहायक बन सकें। अक्षर-ज्ञान भी कम नहीं होता।'

हमारे कृपालु दर्शकोंकी सम्मतियोंमें से दिए गए उक्त कुछ उद्धरणोंसे पाठकोंको वनस्थली-बालिका-विद्यालयका वास्तविक स्वरूप मालूम हो गया होगा। अपने जीवनके पिछले दस वर्षों और कुछ महीनोंमें यह संस्था काफ़ी बढ़ी हो गई है। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे आई हुई लगभग २०० लड़कियाँ सस्ती शिक्षा पाती हैं। शिशुशालासे लेकर महाविद्यालय उच्च कक्षाओं तककी सर्वांग सुन्दर पंचमुखी शिक्षाकी व्यवस्था इस संस्थामें है; परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे हमने भारतीय संस्कृति और विशुद्ध राष्ट्रीयताके आधारपर ही अपने यहाँ वातावरणकी रचना की है। इस संस्थाकी सहायताके लिए दो-दो आने, चार-चार आने भी आए हैं, तो हज़ारों रुपए भी आए हैं। धनका काम धनसे ही चलता है, और धनिक-वर्गने इस संस्थाकी आवश्यकतानुसार और समय-समय सहायता भी की है; परन्तु संस्थाके कार्यकर्त्ताओंकी यह नीति है कि वे धनको दूसरे नम्बरकी चीज़ मानते आए हैं।

—रतन कुमारी
वनस्थली, पो० निवाई (जयपुर)]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

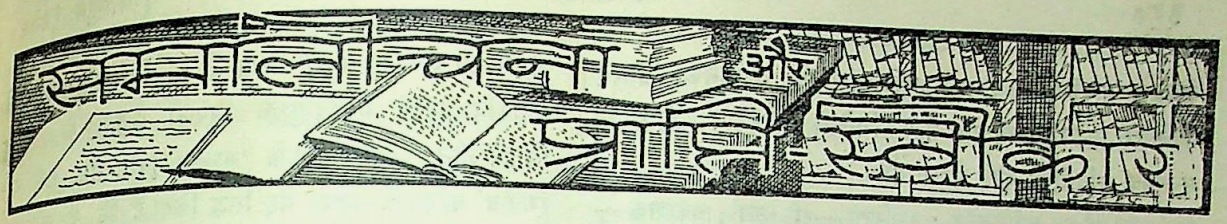

नन्ददास (प्रथम और द्वितीय भाग) : सम्पादक—पण्डित उमाशंकर शुक्ल, एम० ए० ; प्रकाशक—प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या (दोनों भागोंकी) ५९१ ; मूल्य १२) ।

अष्टछापके कवियोंमें नन्ददासजीका विशिष्ट स्थान है । ये सूरदासके समकालीन माने जाते हैं ; पर इनके जीवन-वृत्तका पूरा और ठीक पता नहीं चलता । इनके स्वर्गारोहणके बहुत समय बाद गोकुलनाथजीके नामसे 'दो सौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता' नामक पुस्तक लिखी मिलती है । उसमें इनका कुछ जीवन-वृत्त दिया गया है । उसमें इन्हें गोस्वामी तुलसीदासका भाई बताया गया है ('सो एक दिन नन्ददासजीके मनमें ऐसी आई जैसे तुलसीदासजीने रामायण भाषा करी है, सो हम हूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें') । पर 'वार्ता'की बातोंका ऐतिहासिक महत्व माननेको हिन्दीके विद्वान तैयार नहीं हैं । डा० धीरेन्द्र वर्मा और स्व० रामचन्द्र शुक्ल इन्हें 'भक्तोंका गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्यजीकी गद्दीकी महिमा प्रकट करनेके लिए पीछेसे लिखी गई' समझते हैं । डा० धीरेन्द्र वर्माने 'वार्ता'के गोकुलनाथ-कृत न होनेके 'पुष्ट कारण' भी दिए हैं । उमाशंकरजीका 'अनुसन्धान' भी हमें कविके जीवन-वृत्तके सम्बन्धमें आज तककी खोजोंके अतिरिक्त कोई नई सामग्री प्रदान नहीं करता । उनके अध्ययनका प्रधान उद्देश्य नन्ददासके 'समस्त प्रामाणिक काव्य-ग्रन्थोंका वैज्ञानिक रीतिसे सम्पादन करना' ही रहा है । इसमें सन्देह नहीं उन्होंने इस कार्यमें काफ़ी श्रम उठाया है । कविके ग्रन्थोंकी कई हस्त-लिखित प्रतियोंको प्राप्तकर भाषाकी दृष्टिसे उन्हें प्राचीनतम निश्चित करना और तत्कालीन भाषा-प्रवृत्तियोंके अनुरूप कविका ठीक पाठ निर्धारित करना सचमुच कठिन कार्य है । प्रस्तुत ग्रन्थोंमें नन्ददासके 'रूप-मंजरी', 'विरह-मंजरी', 'रस-मंजरी', 'भँवर-गीत', 'पंच-पंचाध्यायी' आदि १२ ग्रन्थोंका सम्पादन किया गया है । साथ ही परिशिष्टमें कविकी सन्दिग्ध और असम्पादित रचनाओंको भी जोड़ दिया गया है । अन्तमें ग्रन्थोंका शब्दार्थ-कोष भी है, जो बहुत ही अधूरा कहा जा सकता है । प्रथम भागमें ११७ पृष्ठकी लम्बी भूमिका है, जिसमें कविके ग्रन्थोंके सम्बन्धमें प्राप्त सामग्रीका विशेष विवेचन है । 'काव्य-समीक्षा' का भाग भी है ; पर उसमें काव्यकी समीक्षा सविस्तर नहीं है । उमाशंकरजीने हिन्दी-साहित्यके काव्य-प्रेमियोंके सामने ब्रजभाषाके एक उत्कृष्ट कविके प्रमुख प्राप्त ग्रन्थोंको सम्पादितकर और उन्हें इन दो पुस्तकोंमें रखकर उनका बड़ा उपकार किया है । साहित्यान्वेषण करनेवालोंको भी इसमें सुविधा हो गई है । आशा है, प्रयाग-विश्वविद्यालय हिन्दीके प्राचीन कवियोंके ग्रन्थोंका इसी तरह प्रामाणिक संस्करण हिन्दी-पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत करता रहेगा ।

कूजन (कविता-संग्रह) : रचयिता—श्री पद्मकान्त मालवीय ; प्रकाशक—नेशनलिस्ट न्यूज़-पेपर्स लिमिटेड, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ८३ ; मूल्य १) ।

यह पद्मकान्तजीकी कविताओंका 'सातवाँ संग्रह' है । इसमें उनकी सन् १९३६ से १९४० तककी रचनाएँ संकलित हैं । भूमिकामें लेखकने हिन्दी-पद्यकी कई आधुनिक प्रवृत्तियोंके श्रीगणेशका सेहरा अपने मथे बाँध लिया है । उन्हें प्रसन्नता है कि हिन्दीके कवि उनके निर्दिष्ट मार्गपर चलने लगे हैं । वे लिखते हैं—"हिन्दी-उर्दूको अधिकाधिक समीप लाने तथा हिन्दीके शब्द-कोषकी वृद्धि तथा उसके दायरेको और अधिक विस्तृत करनेका जो प्रयत्न मैंने प्रारम्भ किया था, वह भी सफल होता हुआ दिखाई दे रहा है । 'बच्चन'जीकी कविताएँ इस बातका प्रमाण हैं, और भी कितने ही उदीयमान··· सुकवि इस दिशामें···प्रयत्न कर रहे हैं ।" पद्यमें हिन्दी-उर्दूको अधिकाधिक समीप लानेके प्रयत्न हिन्दीमें पद्मकान्तजीसे बहुत पूर्व बहुतों द्वारा किए जा चुके हैं । 'सनेही'जी, स्व० लाला भगवानदीनजी आदिका नाम इस दिशाके प्रयत्नकर्त्ताओंमें लिया जा सकता है । उन्हें शिकायत है कि 'हिन्दीके वर्त्तमान नवयुवक कवियोंने मुहावरोंपर...विशेष ध्यान नहीं दिया ।' यह अच्छा ही हुआ, अन्यथा हिन्दीमें 'चोखे चौपदों'की आवृत्तियाँ ही अधिक तयार होतीं, बुद्धिका विलास ही हमारे सामने आता । उन्होंने हिन्दीमें ग़ज़लोंका प्रचार न देखकर वस्तुत संग्रहमें उन्हींका अधिक समावेश किया है । ग़ज़लोंके अतिरिक्त गीत आदि भी हैं । पद्योंका मुख्य विषय प्रेम है, जिसका आधार किन्हींमें व्यक्ति है, किन्हींमें देश । कुछ रचनाएँ सरस हैं और कुछमें केवल बिना रसका वस्तु-वर्णन है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहके भावों और उनकी अभिव्यंजनामें आधुनिक हिन्दी-कविताके पाठकको नवीनता नहीं मिलेगी और न उदीयमान नवयुवक कवियोंको कोई प्रेरणा ही।

पारिजातोंका बलिदान : रचयिता—श्री 'उग्र'; प्रकाशक—श्री विभूतिभूषण पाकेट-पुस्तकालय, इन्दौर; पृष्ठ-संख्या १९; मूल्य चार आना।

यह 'उग्र'-रचित एक सामयिक कविता है, जिसमें भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनकी आत्माकी हूक सुनाई पड़ती है। कविकी कल्पनामें मौलिकता है। निम्न-पंक्तियाँ कविताका प्राण हैं:—

'कुछ भी हो, हम सब हैं हरसिंगार'
बोल उठे पारिजात एक सुर—एक तार—
'हँसते हम हर-शिरपर या बसते हरिद्वार!
अन्धकार परदेशीकी रे रुचती न बात।'

आज जहाँ हम सामयिक प्रगतिशील रचनाओंमें नई सूझ और नई अभिव्यक्तिकी बुरी तरह कमी अनुभव करते हैं, वहाँ 'उग्र'की इस रचनाकी ताज़गी देखकर प्रसन्नता होती है।

—विनयमोहन शर्मा

'मिश्र-बन्धु-प्रलाप' : लेखक—पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'; प्रकाशक—अ० भा० ब्रह्मभट्ट ब्रह्म-सभा, मारवाड़ी-प्रेस, बम्बई; पृष्ठ-संख्या १२४; मूल्य ॥), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें चार खण्ड हैं—सूर-खण्ड, बिहारी-खण्ड, भूषण-खण्ड और चन्द्र-खण्ड। शुरूके तीन खण्डोंमें सूर, बिहारी तथा भूषणको सप्रमाण ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया गया है। मिश्र-बन्धुओंने इन महाकवियोंके जीवन-चरित्र लिखनेमें किंवदन्तियों तथा दन्तकथाओंपर बहुत विश्वास किया है। सूरदासके विषयमें मिश्र-बन्धुओंने लिखा है कि वे सारस्वत ब्राह्मण थे। 'बेताब'जीने युक्तियोंसे सिद्ध किया है कि सूरदास चन्दबरदायीके वंशज तथा ब्रह्मभट्ट थे। मिश्र-बन्धुओंको यह जानना चाहिए कि ब्रह्मभट्ट ब्राह्मण हैं। ब्रह्म अथवा ब्राह्मण शब्दके आगे भट्ट शब्द लगनेका कारण यही है कि ये लोग राज-सभाओंके पण्डित, कवि तथा सामन्त थे, जिसका इतिहास साक्षी है। सूरदासके एक पदमें ब्रह्म शब्द उनके अपने लिए आया है, जिससे स्पष्ट है कि वे ब्राह्मण थे।

बिहारीके विषयमें मिश्र-बन्धुओंने लिखा है कि ये माथुर चौबे थे; परन्तु इसका उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया है। इसके विपरीत 'बेताब'जीने बिहारीके ही एक दोहेको लेकर सिद्ध किया है कि वे ब्रह्मभट्ट थे। 'राय' शब्दका प्रयोग भट्टके लिए प्रायः हुआ है। बिहारीने भी कदाचित् इसी अर्थमें इस शब्दका प्रयोग किया है। मिश्र-बन्धुओंके मतसे महाकवि भूषण तिकवाँपुरके त्रिपाठी ब्राह्मण थे। परन्तु 'बेताब'जीने 'शिवा-बावनी'के 'भणत भूषण भाट सुनौ नक रंगज़ेब' कविताके बलपर यह सिद्ध किया है कि ये भी ब्रह्म-भट्ट थे। इस सम्बन्धमें आपने कई प्रमाण पेश किए हैं। पुस्तकके अन्तमें चन्दबरदायीकी विस्तृत प्रामाणिक जीवनी देकर आपने हिन्दीके इस आदिकविके विषयमें फैली हुई अनेक भ्रान्तियोंका भी खण्डन किया है। —कृष्णदेव उपाध्याय

भारतीय अर्थशास्त्र : लेखक—श्री भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दाबन; पृष्ठ-संख्या ३९८; मूल्य अजिल्द २॥) और सजिल्द ३)।

इस ग्रन्थमें भारतकी प्रायः सभी आर्थिक समस्याओंका विचार-विवेचन किया गया है। यह छः खण्डोंमें विभक्त है। अर्थशास्त्रकी समीचीन व्याख्या करके लेखकने भारतकी उत्पत्ति और उपभोग, मुद्रा और बैंक, विनिमय और व्यापार एवं वितरण-व्यवस्थापर यथेष्ट प्रकाश डाला है। देशके आर्थिक प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई आवश्यक और उपयोगी बात छूटने नहीं पाई है। अंगरेज़ीमें इस विषयपर अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ मिलते हैं; किन्तु हिन्दीमें अभी तक सर्वांगपूर्ण अर्थशास्त्रका अभाव ही है। वास्तवमें केलाजीने एक अखरने वाले अभावकी पूर्तिका प्रयास किया है और इसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली है।

मेरी हिमाक़त : लेखक—श्री वियोगी हरि; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई देहली; पृष्ठ-संख्या १९९; मूल्य ॥), अजिल्द।

वियोगी हरिजी हिन्दी-साहित्यके एक सिद्धहस्त शिल्पी हैं। उनकी भाषा जैसी प्रांजल होती है, शैली भी वैसी ही प्रतिभाशाली। उनके कितने ही वाक्य तो ऐसे अनूठे होते हैं कि हृदयमें चुभ-से जाते हैं और उनकी विवेचन-पद्धति इतनी सीधी होती है कि उनके चुस्त वाक्योंका सरल भाव सहज ही समझमें आ जाता है। इस पुस्तकमें उन्होंने कवि, कलाकार, चित्रकार, लेखक, पत्रकार, नेता, ग्रामोद्धारक, राष्ट्रकर्मी, आश्रम-वासी, प्रचारक, शिक्षक, शिक्षार्थी, वैज्ञानिक, परीक्षक, तर्कवादी, युवक, वृद्ध, चिकित्सक, धर्मोपासक और ख़ुदसे भी अपने हृदयकी बातें कह डाली हैं और वह भी इस ढंगसे कि सुननेवाले शरीरमें सनसनी पैदा हो जाती है। इस पुस्तककी रचना जैसी स्वाभाविक और सरस है, वैसी ही शिक्षाप्रद और उत्साह-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्द्धक भी। सभी वर्गोंके व्यक्तियोंके आदर्श और उद्देश्यपर लेखकने बड़ी मीठी चुटकी ली है।

स्वराज्य-शास्त्र : लेखक—श्री विनोबा भावे ; प्रकाशक—ग्राम-सेवा-मण्डली, नालवाड़ी, वर्धा ; पृष्ठ-संख्या ८६ ; मूल्य ⁄), अजिल्द।

पुस्तकका विषय उसके नामसे ही स्पष्ट है। यह मराठी पुस्तकका हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक महाशयने अपना नाम प्रकट करना उचित नहीं समझा, यह उनकी दूरदर्शिताका ही परिचायक है ; क्योंकि उनका यह अनुवाद भाषाकी दृष्टिसे सर्वथा अस्पष्ट, अरोचक और असंगत है। कहीं-कहीं तो मूल लेखकका आशय समझनेमें भी कठिनाई होती है। वैसे तो यह पुस्तक बहुत ही अच्छी है, इसमें गांधीवादियोंके दृष्टिकोणसे स्वराज्यकी सुन्दर विवेचना की गई है ; पर इसमें प्रतिपादित सिद्धान्तोंसे सहमत होना सबके लिए सम्भव नहीं। जब कि संसारमें हिंसाका नग्न-नृत्य हो रहा है, तब विदेशी आक्रमणकारियोंसे अहिंसा द्वारा ही देशकी रक्षा हो सकेगी, यह एक ऐसी बात है, जिसपर देशके विचारशील राजनीतिज्ञोंमें बड़ा मतभेद है। यद्यपि अहिंसाका सिद्धान्त बड़ा ही उच्च, पवित्र और श्रेष्ठ है, तो भी आधुनिक जगत्की नीति, मनोवृत्ति और क्रियाशीलताकी उपेक्षा करना भारतके लिए राष्ट्रीय आत्मघात होगा। विनोबाजीका यह कथन कि 'राज्य हिंसासे प्राप्त किया जाता है, स्वराज्य अहिंसाके बिना असम्भव है' अन्तमें विवादास्पद है और संसारके इतिहास इसके विरुद्ध साक्षी दे रहे हैं। फिर भी इस छोटी-सी पुस्तकमें विचारकी यथेष्ट सामग्री है, जो देश-प्रेमियोंके पढ़ने और मनन करने योग्य है।

साम्राज्य और उनका पतन : लेखक—श्री भगवानदास केला ; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दाबन ; पृष्ठ-संख्या २२८ ; मूल्य १।), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें साम्राज्योंके निर्माण और भेदका निरूपण करते राम, कृष्ण, मौर्य, मुग़ल, मंगोल, ईरानी, मिस्र, यूनानी, रोम, सेक्सन, तुर्क तथा पवित्र रोमन साम्राज्योंके पतनकी मीमांसा की गई है। यह पुस्तक संसारके इतिहासका वह विशिष्ट भाग है, जो साम्राज्योंके उदय-अस्तसे सम्बन्ध रखता है। साम्राज्योंके गुण और दोष, विकास और ह्रासका यह सजीव-चित्र है। विषय चित्ताकर्षक और शिक्षाप्रद है एवं वर्णन-शैली गम्भीर और ओजपूर्ण। इस समय भारत साम्राज्यवादके पाशसे मुक्त होनेके लिए प्रयत्नशील है, अतएव यह पुस्तक समयोपयोगी है।

सभ्य नारी : लेखिका—श्रीमती सरस्वतीदेवी शर्मा, वैद्या ; प्रकाशक—'मीरां'-कार्यालय, अजमेर ; पृष्ठ-संख्या ६५ ; मूल्य ⁄), अजिल्द।

इसमें स्त्रियोंके लिए चुने हुए २१९ उपदेश हैं। भाषा साफ़ है, भाव सीधे हैं और बातें सच्ची हैं। पुस्तक बालिकाओंके लिए उपयोगी है। पुस्तककी विशेषता यह है कि इसमें लेखिकाका केवल चित्र ही नहीं, चरित्र भी दिया गया है। छपाई बिलकुल साधारण और मूल्य बहुत अधिक है।

हमारा हिन्दुस्तान : लेखक—श्री मिनू मसानी ; अनुवादक—श्री बी० पी० सिन्हा ; प्रकाशक—श्री हम्फ्रे मिलफर्ड, आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटी-प्रेस, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या १६५ ; चित्र १०० ; मूल्य अंकित नहीं।

मूल पुस्तक अंगरेज़ीमें है ; यह उसीका भाषान्तर है, जो सरस, सुबोध और साफ़-सुथरी भाषामें किया गया है। पुस्तक बारह अध्यायोंमें विभाजित है। अनेक अंगरेज़ी ग्रन्थोंका यह निचोड़ है। अध्याय-क्रम और विवेचन-पद्धति इस प्रकारके हैं कि पाठक बड़ी सुगमतासे सब बातें अच्छी तरह समझ सकता है। यह पुस्तक ऐतिहासिक नहीं है। इसमें भारतकी भौगोलिक स्थिति, ऋतु, खेती-बारी, सिंचाई, मवेशी, ग्रामोद्योग और खनिज-पदार्थोंका ऐसा सुन्दर और ओजपूर्ण वर्णन है कि देशका सच्चा चित्र आँखोंके सामने आ जाता है। भारतीय जीवनके प्रायः सभी पहलुओंपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। पुस्तक बड़ी मेहनत और खोजके साथ लिखी गई है और पाठशालाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंमें स्थान पाने योग्य है। इसमें जो-कुछ लिखा गया है, वह देशकी वर्त्तमान अवस्थाके अनुकूल है, अतएव इसका व्यापक प्रचार वांछनीय है। भाषा ऐसी सरल और मँजी हुई है कि साधारणसे साधारण पढ़े-लिखे मनुष्यके भी पढ़ने और समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। छपाई और गेट-अप आकर्षक एवं नेत्ररंजक हैं। हिन्दीमें यह एक अमूल्य अभिवृद्धि है।

—भवानीदयाल संन्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

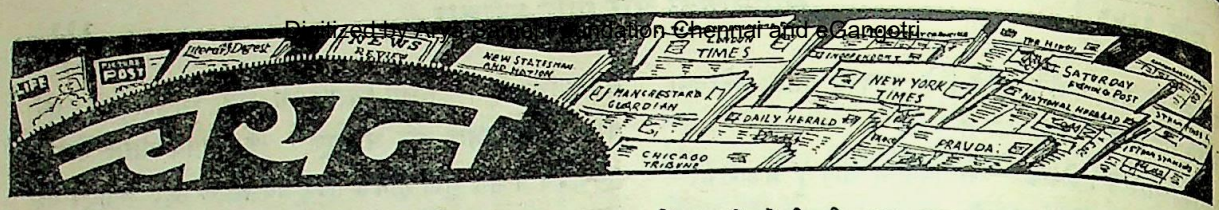

खादीकी उत्पत्ति और हानि

आज जब कि वस्त्र-संकटसे जनताकी असुविधाओंमें एक नई वृद्धि हुई है, लोग यह महसूस करने लगे हैं कि अगर बाज़ारोंमें पहले जितनी या अधिक खादी आती, तो यह संकट बहुत-कुछ कम हो सकता था। पर दुर्भाग्यवश सरकारी कोप-दृष्टिके कारण खादीकी उत्पत्ति बढ़नेकी अपेक्षा उल्टी घटी ही है। अखिल-भारत चर्खा-संघका जुलाई, १९४२ से जनवरी, १९४३ तकका जो कार्य-विवरण प्रकाशित हुआ है, उसमें बतलाया गया है कि सन् १९४१-४२ में खादीकी उत्पत्ति पिछले तमाम वर्षोंसे अधिक (क़रीब १ करोड़ रुपए) रही। यह सारी उत्पत्ति हिन्दुस्तानके लगभग १५००० गाँवोंमें क़रीब साढ़े तीन लाख कारीगरों द्वारा की गई। इन कारीगरोंमें इस वर्षमें पचास लाख रुपयोंसे अधिक मज़दूरी बाँटी गई थी। सन् १९४२-४३ में उत्पत्ति बढ़ाने तथा वस्त्र-स्वावलम्बनकी पद्धतिको फैलानेके लिए एक योजना बनाई गई थी। खादीकी उत्पत्ति बढ़ानेकी ज़रूरत सिर्फ़ इसी कारण नहीं पाई गई थी कि खादीमें विश्वास करनेवालोंकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी, बल्कि इसलिए भी कि मिलके कपड़ोंकी मँहगाईके कारण लोग खादीकी ओर झुक पड़े, जिससे खादीकी माँग यकायक बहुत बढ़ गई। इसलिए हज़ारों चर्खे जो वर्षों पहले बन्द हो चुके थे, नए सिरेसे चलने लगे। चालू वर्षके प्रारम्भमें संघके कार्यमें लगभग ५० लाख रुपएकी पूँजी लगी थी। इतनी रकमसे अधिकसे अधिक लगभग १ करोड़ रुपयोंकी खादी तैयार होकर बिक सकती थी।

ये सारी योजनाएँ विचाराधीन थीं, संघकी शाखाएँ नए कार्यकर्त्ता भर्ती करनेमें लगी हुई थीं; इतनेमें ही ९ अगस्त, १९४२ को बिहार-सरकारने एक विज्ञप्ति प्रकाशितकर संघकी बिहार-शाखाको काम करने देना लगभग अशक्य कर दिया। अन्य प्रान्तोंमें भी संघकी शाखाओंको बन्द कर दिया गया। आश्चर्यकी बात तो यह है कि अब तक संघके खादी-कार्यको कई प्रान्तीय सरकारोंकी ओरसे, जिनमें बिहारकी सरकार भी एक है, यथेष्ट अर्थिक सहायता मिलती रही है। सरकारी दमन-नीतिके कारण लगभग ४०० केन्द्र या भण्डार बन्द हो गए हैं। खादीकी उत्पत्ति, जो लगभग ८ लाख रुपए प्रतिमासकी होती थी, अब लगभग ४ लाख रुपएकी ही रह गई है; जिसके कारण प्रायः डेढ़ लाख कारीगर बेकार हो गए हैं। मालकी ज़ब्ती, लूट व आग आदिसे क़रीब ६ लाख रुपएकी और हानि हुई है। प्रमाणित संस्थाओं द्वारा उठाई गई हानिके अंक चूँकि पूरे नहीं मिले हैं, इसलिए वे ६ लाखके अंकमें शामिल नहीं हैं। वर्तमान परिस्थितिमें संघ उत्पत्ति बढ़ानेके काममें हतोत्साह हो गया है। अनिश्चितताके कारण कामको और भी संकुचित कर दिया गया है। जो अधिक पूँजी शाखाओंको पहले दी गई थी, वह वापस ले ली गई है; और लम्बी मुद्दतके जो कर्ज़ कुछ ही दिनों पहले लिए जा चुके थे, पूरे-के-पूरे वापस कर दिए गए हैं।

भूकम्प या अग्नि-विस्फोट

जिन देशोंमें तेलके कुएँ अधिक संख्यामें होते हैं, भूकम्प अक्सर उन देशोंकी शक्ल-सूरत बिगाड़ देते हैं और वहाँके अधिवासियोंपर अकथनीय यन्त्रणा और कष्ट लाद देते हैं। यह बात रूमानियामें अनुभव की गई जब कि वहाँ तेलके कुओंके क्षेत्रमें अभी हाल ही में भूकम्प आया। भूकम्पके फल-स्वरूप ज़मीनमें एक बहुत बड़ी दरार दिखाई पड़ी। कुछ कुओंसे तेल निकलना भी बिलकुल बन्द हो गया था और कुछमें तेलकी मात्रा बढ़ गई थी।

पिछले दस वर्षोंमें यह दूसरा मौक़ा है, जब कि रूमानियाके तेल-क्षेत्रमें इस तरहकी घटना हुई है। सन् १९३३ में कोप्साके निकट एक पहाड़ी फूट पड़ी थी और उसमें से ९०० फीट ऊँची आगकी लपटें निकलने लगी थीं। इनके प्रकाशने ५० वर्गमीलमें दिनके समान उजाला हो गया था। उससे पैदा होनेवाली गरमी इतनी तेज़ थी कि उस स्थानपर कोई भी नहीं जा सकता था। ये लपटें लगातार दस दिनों तक निकलती रहीं, बादमें धीरे-धीरे शान्त हुईं।

बाकूके निकट शेमहका नामक स्थानमें भी एक बार ऐसी ही घटना घटी थी। यह फरवरी, १९०३ की बात है। तब पहले-पहल वहाँ भूकम्प हुआ था, जिससे २००० आदमी मरे और ३४ गाँव नष्ट हो गए थे। इसके बाद धरती फट पड़ी थी और उसमें से सैकड़ों फीट ऊँची लहरें निकल पड़ी थीं। ये लहरें कई सप्ताह तक निकलती रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

बंगालमें गवर्नरी शासन

पहली अप्रैल ('मूर्ख-दिवस') से बंगालमें प्रान्तीय स्वाधीनताका विधान स्थगितकर १९३५ के विधानकी धारा ९३ के अनुसार गवर्नरका शासन क़ायम होनेकी घोषणा की गई है। इस सम्बन्धमें प्रकाशित सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया है—'गत २८ मार्चको प्रधान-मन्त्री माननीय ए० के० फज़लुल हक़ने मन्त्रिमण्डलको अधिक व्यापक और स्थायी आधारपर लानेकी सम्भावनाकी खोज करनेमें सहायता पहुँचानेकी ग़रज़से इस्तीफ़ा दे दिया, जिसे गवर्नरने स्वीकार कर लिया।' आगे चलकर इसमें बतलाया गया है कि गवर्नरने १९४३-४४ के खर्चोंकी माँगें धारा-सभासे स्वीकार करा लेनेके लिए २९ मार्चका दिन अन्तिम रूपसे निश्चित किया था; पर चूँकि इससे पहले ही प्रधान-मन्त्रीने इस्तीफ़ेकी घोषणा कर दी और अन्य मन्त्रियोंने कहा कि वह समूचे मन्त्रिमण्डलका इस्तीफ़ा है, ३१ मार्च तक कोई ऐसा मन्त्रिमण्डल नहीं रहा, जिससे खर्चोंकी शेष माँगें स्वीकार कराई जा सकतीं। अतः इसके लिए अन्य विकल्पोंकी खोज करनेके बाद गवर्नरके सामने अत्यन्त अनिच्छापूर्वक १९३५ के विधानकी धारा ९३ पर अमलकर प्रान्तका शासन अपने हाथमें लेनेके सिवा और कोई चारा नहीं रहा।

विज्ञप्तिके अन्तमें कहा गया है—'ज्योंही गवर्नरको यह सन्तोष हो जायगा कि कोई टिकाऊ और प्रतिनिध्यात्मक मन्त्रिमण्डल बन सकता है, जिसे धारा-सभाका विश्वास प्राप्त हो और जो शासनकी जिम्मेदारी लेनेको तैयार हो, वे इस घोषणाको मंसूख कर देंगे।'

फ़ज़लुल हक़के इस्तीफ़ेका रहस्य

गत २९ मार्चको जब बंगाल-असेम्बलीकी बैठक शुरू हुई, तो कांग्रेस-दलके नेता द्वारा पूछे गए प्रश्नके उत्तरमें श्री फ़ज़लुल हक़ने कहा—'...यह सच है कि रविवारकी शामको ७॥ बजेके लगभग गवर्नरने मुझे बुलाया और ९ बजे तक मैं उन्हींके साथ रहा। एक राष्ट्रीय सरकार बनानेके बारेमें लम्बी चर्चा हुई और कई प्रस्ताव भी सामने रखे गए, जिनमें से कुछको अपने स्वाभिमानके अनुकूल न होनेके कारण मैं स्वीकार नहीं कर सका। गवर्नरने प्रस्ताव किया कि मैं नियमानुसार अपने पदसे इस्तीफ़ा दे दूँ। मैंने कहा कि जब तक मुझे अपने सहयोगियों और पार्टीसे सलाह लेनेका समय नहीं दिया जाता, मैं ऐसा नहीं कर सकता। गवर्नर इससे सहमत नहीं हुए और मुझे राष्ट्रीय सरकारकी शीघ्रातिशीघ्र स्थापना होना सम्भव करनेके लिए एक त्यागपत्रपर हस्ताक्षर करनेको राज़ी कर लिया गया। फिलहाल मैं अधिक बातें नहीं बताना चाहता...।'

एक अन्य सदस्य द्वारा पूछे गए प्रश्नके उत्तरमें श्री हक़ने कहा—'यह सच है कि गवर्मेंट-हाउसमें मेरा त्यागपत्र टाइप करवाकर तैयार रखा गया था।' इस सम्बन्धमें असेम्बली-क्षेत्रोंमें होनेवाली चर्चाका जो विवरण गत ३० मार्चकी 'अमृतबाज़ार पत्रिका'में छपा है, उसमें कहा गया है—'गत शनिवारकी रातको जब मि० हक़को गवर्मेंट-हाउसमें बुलाया गया, तो उनसे स्पष्टतया कहा गया कि एक ऐसे मन्त्रिमण्डलको, जिसे वास्तवमें कांग्रेस-दल सत्तारूढ़ रख रहा है, सहन नहीं किया जा सकता। इसके बाद, अफ़वाह है कि मि० हक़के सामने एक तैयार-शुदा वक्तव्य उनके द्वारा हस्ताक्षर किए जानेके लिए रखा गया। इसका अभिप्राय असेम्बलीमें दिए गए डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जीके वक्तव्यका खण्डन करना था। कहा गया है कि मि० हक़ने एकदम कोई निर्णय करनेमें असमर्थता प्रकट की। इसपर उनसे कहा गया कि उनकी डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जीके वक्तव्यका खण्डन करनेकी अनिच्छा अथवा असमर्थताको देखते हुए उनके सामने दो विकल्प हैं—बर्खास्तगी या इस्तीफ़ा। यह बात खास तौरसे बतलाई गई कि गवर्नर ऐसे मन्त्रिमण्डलके साथ काम नहीं कर सकता, जो डा० किरणशंकर रायके नेतृत्वमें चलनेवाले कांग्रेसी "बग़ियों"के समर्थनपर इतना अवलम्बित हो।'

यदि इन बातोंमें कुछ भी सचाई है, तो यह स्पष्ट है कि गवर्नरने धारा-सभाका विश्वास-प्राप्त मन्त्रिमण्डलके अध्यक्षसे इस्तीफ़ा लेकर—और अगर वह ऊपर बतलाए गए ढंगसे लिया गया है, तब तो बहुत ही विस्मयजनक और अशोभन है—नए विधानकी हिदायतोंके अधीन प्राप्त अपने अधिकारोंका सरासर दुरुपयोग किया है। युद्ध-काल और खास तौरपर अन्न तथा कपड़े आदिकी कमीसे पैदा हुई स्थितिमें 'राष्ट्रीय' अथवा 'टिकाऊ' और 'प्रतिनिध्यात्मक' मन्त्रिमण्डलकी आवश्यकता एवं उपादेय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तासे इन्कार नहीं किया जा सकता ; पर ऐसा धारा-सभाका विश्वास-प्राप्त चालू मन्त्रिमण्डल या उसके अध्यक्षकी इच्छा, सहमति और सहयोगसे ही होना चाहिए। जिस ढंगका अनुसरण गवर्नरने किया है, व्यावहारिक रूपसे तो उसका अभिप्रेतार्थ प्रधान-मन्त्रीकी 'बर्खास्तगी' ही है। बंगाल-गवर्नर पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने धारा-सभाका विश्वास-प्राप्त एक बहुसंख्यक दलके मन्त्रिमण्डलको, जो विधानको चलाना चाहता था, भंगकर विधानको स्थगितकर अपना शासन स्थापित किया है। यह कार्य सर्वथा अवैधानिक प्रतीत होता है।

गवर्नरसे लीगका अनुरोध

इधर बंगाल-कौंसिलके चुनावोंमें ४-५ मुस्लिम-सीटोंपर लीगका अधिकार हो जानेसे उसका हौसला और भी बढ़ गया। गत २७ मार्चके 'स्टेट्स्मैन'में '(अन्य प्रमुख पत्रोंमें नहीं !) प्रथम पृष्ठपर बंगाल-प्रान्तीय मुस्लिम-लीगकी पार्लमेंटरी पार्टीके नेता सर नाज़िमुद्दीन और मुस्लिम-लीगकी कार्य-समितिके सदस्य श्री एम० ए० एच० इस्फ़हानीके दो पृथक वक्तव्य निकले, जिनमें इन चुनावोंका अर्थ यह लगाया गया कि बंगालके मुसलमानोंका श्री हक़में विश्वास नहीं है, अतः उन्हें अपने पदसे इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। इन वक्तव्योंके नीचे, उसी कालममें, बंगाल-प्रान्तीय मुस्लिम-लीगकी कार्य-समिति द्वारा पास किए गए उस प्रस्तावका संवाद भी छपा है, जिसमें इन चुनावोंके उपरिलिखित अर्थकी ओर गवर्नरका ध्यान आकृष्ट करते हुए उनसे अनुरोध किया गया कि वे मन्त्रिमण्डलको क़ायम न रखें (the Governor was urged not to maintain the Ministry.)।

केवल चार-पाँच सीटें हार जानेसे श्री हक़ या मन्त्रिमण्डल-पार्टीने बंगालके सारे मुसलमानोंका विश्वास खो दिया, यह कह-कर लीगने जिस आसानी और चालाकीसे मुसलमानोंके विश्वास और नेतृत्वका सेहरा अपने सिरपर बाँधनेकी कोशिश की है, वह उसके नेताओंकी ज़हनियतका परिचायक है। उनके इस कथनका सबसे बड़ा खण्डन तो यही है कि आज भी दोनों धारा-सभाओंमें मन्त्रिमण्डल-पार्टीको बहुमत प्राप्त है। ये सदस्य क्या बंगालके मुसलमानों द्वारा ही नहीं चुने गए—सुतरां उनके प्रतिनिधि नहीं हैं ? पर इससे भी कहीं बड़े अनर्थ और आपत्तिकी बात है उनका मन्त्रिमण्डलको क़ायम न रखनेके लिए गवर्नरसे अनुरोध करना ! गोया मुसलमानोंका विश्वास किसे प्राप्त है और किसे नहीं, तथा कौन उनका प्रतिनिधि है और कौन नहीं, यह बात वे गवर्नरके अधिकार-बलसे मनवाना चाहते हैं।

गवर्नरका दूसरा अवैधानिक कार्य

लीगके उपर्युक्त प्रस्तावपर गवर्नरने क्या करने या न करनेका निश्चय किया, यह जानना हमारे लिए सम्भव नहीं है। पर इसके पास होनेके दो दिन बाद ही मन्त्रिमण्डल नहीं रहा। यह एक समसामयिक घटना भी हो सकती है। इसे अवैधानिक बतलाते हुए श्री हक़के ५ सहयोगी मन्त्रियोंने जो पत्र गत ३१ मार्चको गवर्नरको लिखा, उसमें कहा गया है—"हम गवर्नरके अपने इस्तीफ़ोंकी माँग और जहाँ तक सम्भव हो, नए मन्त्रिमण्डलके संगठनकी सम्भावनाकी जाँच करनेके कार्यमें सर नाज़िमुद्दीनको सहयोग देनेके अनुरोधका विरोध करते हैं। हम जानते हैं कि सर नाज़िमुद्दीनको आज धारा-सभाओंका बहुमत प्राप्त नहीं है और गवर्नर प्रान्तमें पार्टी-गवर्मेण्ट बनानेकी सम्भावनाकी जाँच करनेके लिए सर नाज़िमुद्दीनसे अनुरोधकर अपने निर्देश-पत्रके शब्दों और भावनाके प्रतिकूल काम कर रहे हैं।"

इस तरह गवर्नरने एक अवैधानिक कार्य तो धारा-सभाओंका बहुमत-प्राप्त मन्त्रिमण्डलको खत्मकर किया और दूसरा अवैधानिक कार्य करनेकी सूचना दी उस दलके नेताको नए मन्त्रिमण्डलके निर्माणकी सम्भावनाओंकी खोज करनेको बुलाकर जिसे बहुमत प्राप्त नहीं है। पर इस समय दूसरा मामला खटाईमें पड़ गया जान पड़ता है—यद्यपि सर नाज़िमुद्दीन बहुमत प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील हैं और सरकारी घोषणाकी अन्तिम पंक्तियोंने नए मन्त्रिमण्डलके निर्माणकी सम्भावनाका द्वार भी खोल रखा है। आसाम और उड़ीसाकी भाँति बंगालमें भी सम्भावित प्रधान-मन्त्रीको बहुमत प्राप्त कर लेना शायद असम्भव नहीं हो ; पर क्या वैसा मन्त्रिमण्डल किसी भी रूप या अर्थमें 'राष्ट्रीय', 'टिकाऊ' और 'प्रतिनिधिमूलक' होगा ?—जब तक कि सर नाज़िमुद्दीन १६ वें लुईका अनुकरण कर—जिसने कहा था : 'मैं ही राष्ट्र हूँ !'—खम ठोंककर न कहें : 'मैं ही बंगाल हूँ ! मैं ही सारे बंगालका नेता और प्रतिनिधि हूँ !'

फ़ज़लुल हक़के नेतृत्वमें विश्वास

प्रोग्रेसिव-कोएलीशन-पार्टीके १०७ सदस्योंके—जिनमें कृषक-प्रजा-सिव-एसेम्बली पार्टी, बंगाल कांग्रेस पार्लमेंटरी पार्टी, कृषक-प्रजा पार्टी, नेशनलिस्ट पार्टी, तफ़सीली जातियाँ, एंग्लो-इण्डियन और भारतीय ईसाई दलोंके सदस्य तथा नेता आदि शामिल हैं—हस्ताक्षरोंसे एक वक्तव्य प्रकाशित किया गया है, जिसमें फ़ज़लुल हक़के नेतृत्वमें विश्वास प्रकट किया गया है और उनके नेतृत्वमें विधानको कार्यान्वित करनेकी सहमति प्रकट की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दलके केवल उन सदस्योंके हस्ताक्षर इसपर नहीं हैं, जो या तो कलकत्तेसे बाहर गए हुए हैं या नज़रबन्द हैं।

स्मरण रहे, बंगाल-असेम्बलीमें कुल २२८ सदस्य हैं, जिनमें से १५ कांग्रेसी और २४ गोरोंके दलोंमें हैं। कांग्रेसी—बकौल गवर्नरके—मन्त्रिमण्डलका साथ दे रहे हैं और गोरे विरोधी (लीगी) दलका। इस हिसाबसे भी वर्त्तमान कोएलीशन-पार्टीको ठोस बहुमत प्राप्त है।

नेताओंको वाइसरायका जवाब

पिछले दिनों बम्बईमें हुई निर्दल नेताओंकी कान्फ्रेंसने भारतके राजनीतिक संकटको दूर करनेके लिए वाइसरायके पास एक डेपूटेशन भेजनेका निश्चय किया था। उसकी ओरसे वाइसरायको भेजे गए स्मारकपत्रमें गांधीजीसे मिलनेकी सुविधा दी जाने और अर्थनीतिक संकट टालनेके लिए राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना करनेकी माँग की गई थी। वाइसरायने उसके उत्तरमें कांग्रेसके अगस्त-प्रस्ताव, आनन्दोलन और कांग्रेस-नेताओंके पीछे तथा गांधी-वाइसराय-पत्रव्यवहारमें भी हिंसात्मक उपद्रवोंकी गांधीजी द्वारा निन्दा न की जानेकी दुहाई देकर कहा है—'जब तक भारतकी जापान और धुरी-राष्ट्रोंके आक्रमणसे रक्षा करना तथा शत्रुको मदद पहुँचे या संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें बाधा पड़े, ऐसा कुछ न होने देनेकी हमारी ज़िम्मेदारी है और जब तक कांग्रेसकी वही नीति रहती है, जो आज है, कांग्रेसके प्रति हमारे रुखमें परिवर्त्तन होनेका कोई प्रश्न नहीं उठता।.....दूसरी ओर अगर मि० गांधी कांग्रेसके पिछले अगस्तके प्रस्तावको पूर्णतया अस्वीकार करने तथा हिंसाको उत्तेजना देनेवाले, 'खुला विद्रोह' तथा कांग्रेसियोंको 'करने या मरने'की सलाह और नेताओंके बाहर न रहनेपर सर्वसाधारणको स्वतः निर्णय करने आदिके परामर्शोंकी पूरी तरह निन्दा करनेको तैयार हों और साथ ही भविष्यके लिए आश्वासन देनेको भी तैयार हों, जो कि सरकारको स्वीकार हों, इस मामलेपर आगे विचार किया जा सकता है.....।'

राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनाके सम्बन्धमें उत्तरमें कहा गया है—'किन्तु आप लोगोंका यह सुझाव कि अगर आपको गांधीजीसे सलाह लेनेकी सुविधा दी जाय, सिर्फ़ तभी सच्ची राष्ट्रीय सरकार क़ायम हो सकती है, बतलाती है कि राष्ट्रीय सरकारके सच्चे स्वरूपको समझनेके बजाय आप चाहते हैं कि सरकार एक ऐसे राजनीतिक नेताकी सहमतिसे नामज़द हो, जो इस देशके अन्य दलों एवं नेताओंके बिना ही स्वतन्त्र रूपसे चल रहा है।' परस्पर और सरकारको सहयोग देनेवाले राजनीतिक दलों एवं व्यक्तियोंके प्रतिनिधियोंकी सरकारको सच्ची राष्ट्रीय सरकार बतलाते हुए आपने कहा है—'इसकी प्राथमिक आवश्यकता है दलों, जातियों और हितोंमें समझौता, जिसके लिए मैं अब तक उत्सुक रहा हूँ; पर अब तक उसके मार्गमें कांग्रेस और उसके नेताओंके अत्युक्तिपूर्ण दावे और सामन्तवादी आकांक्षाएँ स्थायी बाधा रही हैं।' वाइसरायके उत्तरकी अन्य आवश्यक बातें हैं—(१) नेताओंकी कान्फ्रेंसने जो सुझाव रखे थे, उनके समर्थनके लिए कोई नई दलील नहीं दी गई है और न उन्होंने कांग्रेसके हिंसात्मक आन्दोलनकी ही निन्दा की है। (२) स्मारकपत्रपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें तफ़सीली जातियाँ, मुस्लिम-लीग तथा देशी-राज्योंके प्रतिनिधि शामिल नहीं हैं और हिन्दू-महासभाने उससे असहयोग किया है। (३) गांधीजीने अपने उपवाससे पूर्व या आज तक हिंसात्मक कार्योंकी निन्दा नहीं की है।

वाइसरायके इस उत्तरपर राजाजीने नई दिल्लीकी प्रेस-कान्फ्रेंसमें कहा—'इस उत्तरसे मैं तो यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि सरकारके अपने दृष्टिबिन्दुसे ये कारण कितने ही उचित क्यों न हों; पर वह समझौता नहीं करना चाहती। न सिर्फ़ वह समझौता ही नहीं करना चाहती, बल्कि वह कांग्रेसको और उन सब लोगोंको भी, जिन्हें कांग्रेसका नाम सुहाता है, ज़लील भी करना चाहती है।' हमें खेद है, वाइसरायके उत्तरमें हम समझौतेकी भावना नहीं देखते। इससे उस ज़िम्मेदारीको निभानेमें कोई सहायता नहीं मिल सकती है, जिसे वाइसरायने भारतीय जनता और संयुक्त-राष्ट्रोंके प्रति बतलाया है। दलीलें तो दोनों पक्षोंकी ओरसे दी जा सकती हैं; पर उनसे लाभ क्या? अच्छा होता, अगर वाइसराय कांग्रेसको ज़लील करनेके मोह और सरकारकी प्रतीष्ठाके अनावश्यक लोभसे ऊपर उठकर दूरदर्शी राजनीतिज्ञकी बुद्धि और विवेकसे काम लेते। अब भी वे चाहें तो ऐसा साहसपूर्ण क़दम उठा सकते हैं।

कामन्समें भारतीय समस्या

गत ३० मार्चको भारत-मन्त्री श्री एल० एस० एमरीने हाउस आफ़ कामन्समें १९३५ के भारतीय विधानकी धारा ९३ के अनुसार जिन ६ प्रान्तोंमें गवर्नरी शासन है, उसे एक वर्ष और जारी रखने तथा धारा ३०९ के अनुसार गवर्नरोंके भत्तों और सुविधाओंके संशोधनके लिए भारत-सरकार द्वारा निकाले गए हुक्मकी स्वीकृतिके लिए दो प्रस्ताव पेश किए। इन प्रस्तावोंपर बोलते हुए आपने, बकौल 'डेली हेरल्ड' और 'मैंचेस्टर गार्जियन'के, पुरानी बातोंके पिष्ट-पेषणके अलावा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समस्याको सुलझानेके लिए कोई क्रियात्मक सुझाव नहीं रखा। गांधीजी तथा अन्य कांग्रेस-नेताओं और कांग्रेसको भर-पेट कोसना तो जैसे आपकी राजनीतिज्ञता और वक्तृत्व-कलाका तकिया-क़लाम हो गया है। स्वयं क्रिप्स द्वारा यह कह देनेपर भी कि उनकी योजनाकी अस्वीकृतिके लिए गांधीजी ज़िम्मेदार नहीं हैं, आपने यह ज़िम्मेदारी फिर उन्हींके सिर मँढ़नेका कष्ट और हौसला दिखाया है। अगर यह मान भी लिया जाय कि वर्त्तमान संकटकी जड़ कांग्रेस और उसके नेता ही हैं, तब भी क्या यह प्रश्न नहीं उठता कि सरकारने अब तक भारतीय समस्याके हलके लिए किन-किन अन्य राजनीतिक दलों एवं व्यक्तियोंका सहयोग प्राप्त किया है या इस दिशामें क्या क्रियात्मक अमली क़दम उठाए हैं?

सबसे मज़ेदार बात एमरी, एटली और एमनने यह कही है कि भारतके लिए ब्रिटेनके ढंगका लोकशासन ठीक नहीं। आप महानुभावोंने भारतीयों द्वारा भारतका भावी विधान बनाए जानेकी दुहाई देकर भी यह बतलानेका कष्ट किया है कि भारतके लिए स्विस, संयुक्त-राष्ट्र अमरीका या किसी यूरोपीय देशके ढंगका विधान बनाया जाना चाहिए। भारतका भावी विधान किस ढंगका होना चाहिए, इसके लिए शायद हमें एमरी, एटली और एमन-जैसे व्यक्तियोंका एहसानमन्द नहीं होना पड़ेगा। कारण, इसका निर्णय स्वतन्त्र भारतकी जनता करेगी, जिसमें आज भी इन लोगोंसे अधिक बुद्धिमान, दूरदर्शी और राजनीतिवेत्ता काफ़ी बड़ी तादादमें मौजूद हैं। पर इतना तो इन लोगोंको मालूम होना चाहिए था कि भारतमें अगर ब्रिटिश ढंगके लोक-शासनका कुछ भी विकास हुआ है, तो उसका श्रेय ब्रिटेन ही को है। अपने सारे खोखलेपन और साम्राज्यवादी चालोंके साथ १९१९ और १९३५ के विधान—जो भारतीय जनताकी इच्छाके विरुद्ध उसपर थोपे गए और जिनके द्वारा भारतीयोंको स्व-शासनका बहुत बड़ा भाग सौंपनेकी ड्योंढ़ी पीटी गई—इस बातके प्रमाण हैं। लेकिन यह बात ब्रिटेनके भारत-विशेषज्ञोंको आखिर इतने दिनों तक क्यों नहीं सूझी?

श्री एटली एमरीसे भी दो क़दम आगे बढ़ गए। आपने फ़रमाया कि भारतीय राजनीतिक पार्टियोंने (सिर्फ़ कांग्रेसने ही नहीं) एक ग़लत रास्ता पकड़ लिया है—एकतन्त्रकी मनो-वृत्तिका रास्ता। इन छोटी बुद्धि और बड़ी ज़बानवालोंसे हम इतना ही कहेंगे कि ग़लत या सही, इस रास्तेपर भारतीय राज-नीतिक पार्टियोंको चलाया आप ही लोगोंने है और जगह-जगह उसपर 'पृथक निर्वाचन', 'अल्पसंख्यकोंको विशेष सुविधाएँ एवं रियायतें', 'तफ़सीली जातियोंके लिए सीटोंका अनुपात' आदिके सुहावने साइन-बोर्ड भी लगा दिए हैं! और फिर यही रास्ता तो ब्रिटेनका भी है। तब क्या वह भी एकतन्त्रकी मनो-वृत्तिका ही है? जो कुछ भी हो; पर कम-से-कम भारतके प्रति ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंका रुख देखकर तो यही कहना पड़ेगा कि वह लोकतन्त्रकी यथार्थतासे अभी कोसों दूर है।

कुल मिलाकर कामन्सकी यह बहस व्यर्थकी बकवासके अधिक कुछ नहीं। अंगरेज़ोंके इन वादोंका कि वे भारतीयोंको स्वतन्त्र तथा ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलका समान और स्वशासित सदस्य देखना चाहते हैं, भारतीयोंके लिए क्या मूल्य और महत्व हो सकता है, जब कि उनके आचरण इनके सर्वथा प्रतिकूल हैं? एमरी, एटली, एमन, हिडले, जार्ज शुस्टर आदिके भाषण इस बातके परिचायक हैं कि ब्रिटेन गम्भीरतापूर्वक भारतीय समस्याको हल करनेके लिए कुछ भी नहीं करना चाहता। ऐसी हालतमें संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंमें भारतका भरपूर सहयोग प्राप्त करने और भारतीयोंको स्व-शासनके मार्गपर आगे बढ़ानेका दम भरना क्या अर्थ रखता है, यह समझना कठिन है।

काला 'श्वेत-पत्र'

युद्धमें सत्य पहली क्षति है, इस कहावतकी यथार्थता युद्ध-रत दलोंकी हार-जीत या आगे बढ़ने अथवा पीछे हटनेके समा-चारोंसे भी अधिक अच्छी तरह हमें तब मालूम हुई, जब हमने असत्यों, अर्द्ध-सत्यों और निराधार 'सबूतों'के उस प्रचार-प्रसारको देखा, जो ब्रिटिश अधिकारी आज़ादी चाहनेवाले भारत और उसके लोकप्रिय नेताओं—खासकर महात्मा गांधी—को विश्व लोकमतकी दृष्टिमें गिरानेके लिए कर रहे हैं। गांधीजीके उपवासके दौरानमें निकली ८६ पृष्ठोंकी सरकारी पुस्तिका—जिसमें गत वर्षके उपद्रवोंकी ज़िम्मेदारी कांग्रेसके सिर मँढ़नेकी चेष्टा की गई है—की चर्चा हम गतांकमें कर चुके हैं। अब हाल ही में लन्दनसे ५०,००० शब्दोंका एक श्वेत-पत्र प्रकाशित किया गया है, जिसमें लगभग वैसी ही बातें गांधीजीके लेखोंसे इक्के-दुक्के उद्धरण देकर दोहराया गया है। 'मैंचेस्टर गार्जियन'ने इसे इस्तग़ासेका बयान कहा है।

इसमें कांग्रेस और उसके नेताओंकी ज़ातपर भी बड़े ही आरोप किए गए हैं। मसलन, गांधीजी पहलेसे जानते थे कि जनता हिंसात्मक हो जायगी; उन्होंने ब्रिटेनके खतरेसे फ़ायदा उठाना चाहा; वे जापानसे समझौता करना चाहते थे, आदि। अगर आरोपी ज़रा कष्ट उठाकर गांधीजी द्वारा 'प्रत्येक जापानी नाम' लिखे गए पत्रको पूरा पढ़नेकी कोशिश करते, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता कि उन्होंने जापानके बारेमें भी वैसा ही विरोध प्रकट किया है, जैसा कि नात्सी फ़ाशिज़्म अथवा ब्रिटिश साम्राज्यवादके लिए। उसी पत्रमें उन्होंने यह भी स्पष्ट कहा है कि अगर ब्रिटेनके खतरेसे ही भारतको फायदा उठाना होता, तो आजसे ३ वर्ष पूर्व जब युद्ध छिड़ा था, तभी ऐसा किया जा सकता था। सरकार द्वारा कांग्रेस-दफ़्तरसे हथियाए हुए कागज़ोंके प्रकाशनपर दिए गए वक्तव्यमें नेहरूजीने कहा था—'जापानसे समझौतेकी बातचीत करनेका उल्लेख भी सर्वथा असत्य और सिलसिलेसे हटाकर किया गया है। संघर्षसे पहले गांधीजी सदा अपने विरोधीको अग्रिम सूचना देते हैं। अतः इस प्रकार उन्होंने जापानको न केवल भारतसे ही दूर रहनेकी चेतावनी दी होती, बल्कि चीनसे भी हट जानेको कहा होता। किसी भी हालतमें वे भारतपर आक्रमण करनेवाली किसी भी शक्तिका विरोध करते और उन्होंने हमारे देशवासियोंको भी प्राण तक देकर ऐसा करनेकी ही सलाह दी। वे किसीको आत्म-समर्पण कदापि नहीं करते।'

यह कहना अनावश्यक होगा कि इस तरहकी बिना सिर-पैरकी बातोंसे न केवल राजनीतिक मतभेद अथवा विरोधकी खाई ही अधिक चौड़ी होती है, बल्कि इनसे भारतीय जनतामें ब्रिटेनके प्रति अधिक नाराज़गी और कटुता फैलनेका भी डर है। इससे लाभ तो कुछ नज़र नहीं आता, हाँ भारत और ब्रिटेनमें वह अनावश्यक एवं अवांछनीय तनाव और कटुता ज़रूर पैदा हो जायेगी, जिनके लिए आनेवाली पीढ़ियाँ ब्रिटेनके वर्त्तमान अधिकारियोंको कोसेंगी। इस प्रकारकी काली करतूतोंसे भले अंगरेज़ोंके दोनों देशोंमें सद्भावना स्थापित करनेके प्रयत्नों एवं सुपरिणामोंपर भी पानी फिर जायगा।

लीग चक्कमेमें नहीं आयगी!

उक्त श्वेत-पत्रके सम्बन्धमें दिल्लीका मुस्लिम-लीगी मुखपत्र 'डान' अपने २७ मार्चके अंकमें लिखता है—'ब्रिटेनमें भारतीय उपद्रवोंके लिए कांग्रेसको ज़िम्मेदार ठहराते हुए जो श्वेत-पत्र प्रकाशित किया गया है, उसका उद्देश्य भारत और ब्रिटेनके सम्बन्धको सुधारना कदापि नहीं हो सकता। भारत-सरकार द्वारा कांग्रेसपर लगाए गए अभियोगोंके लन्दन-संस्करणमें कोई नई बात नहीं कही गई है। और यदि गांधीजीने ग़लतियाँ की हैं तो मालूम होता है, सरकार भी उतनी ही ग़लतियाँ करनेपर तुली हुई निश्चित है। भारत-सरकारने पहले जो आरोप लगाए थे, जिनमें कहा गया था कि कांग्रेसके अपराधोंके और भी सबूत दिए जा सकते हैं। परन्तु राज्य-परिषद्में हालमें सरकारकी ओरसे कहा गया है कि वह यह बतानेको तैयार नहीं है कि वह कब उन आरोपोंको प्रकाशित करेगी। कांग्रेस-साहित्यसे उद्धृत करके अभी तक जो सबूत दिए गए हैं, जब तक उनसे ज़्यादा विश्वसनीय प्रमाण नहीं दिए जाते, तब तक इस कथनपर कि देशमें घटित उपद्रवोंके लिए कांग्रेस ज़िम्मेदार है, कोई यक़ीन नहीं कर सकता। लन्दनके श्वेत-पत्रमें कहा गया है कि मुसलमानोंने इन उपद्रवोंमें कोई शिरकत नहीं की। मुस्लिम-लीग इन चापलूसीकी बातोंमें नहीं आनेकी। भारतमें भेद-नीतिके सहारे राजनीतिक दलोंको सन्तुष्ट करनेकी अनेक चेष्टाएँ हो चुकी हैं। दमन आज़ादीकी माँगका कोई उत्तर नहीं है और भारत-सरकारका रुख तो बिलकुल ही सन्तोषजनक नहीं है। यद्यपि लीगका कांग्रेसके तरीक़ोंसे मतभेद है, फिर भी उसकी माँग है कि ब्रिटिश सरकार लँगड़ी, लूली और चालाकीसे भरी दलीलोंसे, जो श्वेत-पत्रमें दी गई हैं, भारतीय आज़ादीको न रोके। क्रिप्स-प्रस्तावोंको सब दलोंने ठुकरा दिया है। अब हिन्दुस्तानको शासन-सम्बन्धी पूरी ज़िम्मेदारी ही देनी होगी।'

गांधीजी जापानके विरुद्ध हैं!

न्यूयार्कके 'नेशन' नामक साप्ताहिक पत्रमें जनरल च्यांगकाई-शेकको लिखे गए गांधीजीके पत्रको प्रकाशित करते हुए प्रसिद्ध पत्रकार श्री लुई फिशरने अपनी भूमिकामें लिखा है—'जनरल च्यांगकाई-शेकसे ज़्यादा और कोई नहीं जानता कि कौन जापानियोंके पक्षमें है और कौन उनके विरुद्ध। च्यांगकाई-शेकको विश्वास है कि महात्मा गांधी जापानियोंके विरुद्ध हैं। च्यांगकाई-शेकको यह भी यक़ीन है कि भारतके राष्ट्रीय आन्दोलनकी माँगें पूरी करके ब्रिटेन न केवल चीनको विजयी होनेमें ही सहायता देगा, बल्कि समूचे विश्वव्यापी युद्धमें विजयकी ओर क़दम बढ़ानेमें भी सहायक होगा। चीन-सरकारने ब्रिटिश-सरकारसे ज़ोरदार अपीलें की हैं कि वह भारतीय समस्याको शीघ्रातिशीघ्र सुलझाए। च्यांगकाई-शेक गांधीजीके पक्षमें हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि गांधीजी चीनके पक्षमें हैं।'

भारतवासी जापानको नहीं चाहते!

अमरीकके ५७ नेताओं, विद्वानों, लेखकों और पत्रकारोंने, जिनमें 'न्यू रिपब्लिक', 'नेशन', 'एशिया' और 'अमेरिका'-जैसे प्रसिद्ध पत्रोंके सम्पादक, लुई ब्रामफील्ड, अप्टन सिंक्लेयर, श्रीमती पर्ल बक, जान गुन्थर, लिलियन हैलमैन, कुमारी फैनी हर्स्ट, जान एर्सकिन, क्लैरेन्स पो और विलियम शरर-जैसे प्रसिद्ध लेखक, प्रो० कार्ल फ्रीडरिख, प्रो० विलियम हाकिंग, प्रो० राबर्ट लिण्ड और प्रो० मैक्सलर्नर-जैसे विद्वान तथा बिशप फ्रांसिस जे०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकनील भी हैं, राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और जनरल च्यांगकाई-शेकके नाम निम्न अपील प्रकाशित की है :—

"हमें जापानके विरुद्ध भारतके करोड़ों आदमियोंके सहयोग की आवश्यकता है। भारतके निवासी जापानको नहीं चाहते। वे आज़ादी चाहते हैं। यदि उन्हें स्वतन्त्रता दी जानेका आश्वासन दे दिया जाय, तो वे जापानके विरुद्ध उसी तरह लड़ेंगे, जैसे चीन लड़ रहा है।

"भारतीयोंको स्वतन्त्रताका आश्वासन कैसे दिया जाय? कोरी बातों अथवा वादोंसे नहीं। वे पहले महायुद्धमें बहादुरीके साथ लड़े थे। उन्हें विश्वास था कि विजयके बाद फौरन ही उनको स्वतन्त्रता दी जानेके उद्देश्यसे राजनीतिक सुधार किए जायँगे। वे दो वर्ष तक प्रतीक्षा करते रहे; पर कुछ नहीं हुआ। तब उन्होंने वह लम्बी आज़ादीकी लड़ाई शुरू की, जिसका एक अंश वर्त्तमान अशान्ति है। वे अब कभी वादोंपर विश्वास नहीं करेंगे।

"अतः हम राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और जनरल च्यांगकाई-शेकसे अपील करते हैं कि वे भारतीय समस्यामें मित्र-राष्ट्रोंकी भारी दिलचस्पीको देखते हुए ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय कांग्रेस और उसके नेताओंके बीच समझौतेकी नई बातचीत चलानेके लिए अपना प्रभाव डालें, ताकि पारस्परिक विश्वासके साथ एक ऐसा मार्ग निकाल लिया जाय, जो भारतको मित्र-राष्ट्रोंकी पंक्तिमें ला सके और भारतको स्वतन्त्रता दिए जानेका प्रोग्राम फौरन ही शुरू किया जाय।"

भारतको स्वराज्य दिया जाय

श्री वेण्डेल विल्कीने एक वक्तव्यमें कहा है—'रूस, चीन और मध्य-पूर्वके देशोंमें से बहुत कम ऐसे होंगे, जो युद्धोत्तर संसारके लिए ब्रिटेन और अमरीकाके प्रस्ताव स्वीकार करेंगे। मैं इस विचारसे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ कि दुनियाकी शान्ति ब्रिटिश-अमरीकन सहयोगपर आधारभूत है।

'हमें अपने विचारोंमें ऐसा परिवर्त्तन करना होगा कि हम शान्ति-सम्मेलनमें रूस, चीन और अन्य राष्ट्रोंके साथ समानताके आधारपर बैठ सकें। रूस, चीन और मध्य-पूर्वकी अपनी यात्रामें मैंने इस विचारको प्रत्येक स्थानपर प्रकट किए जाते सुना। अन्तर्राष्ट्रीय नीति-सम्बन्धी जटिलताओंके कारण संयुक्त-राष्ट्रकी सरकारने मुझे भारत नहीं जाने दिया; परन्तु भारतमें यह भावना अत्यधिक प्रबल है। प्रत्येक पूर्वी देश भारतपर नज़र गड़ाए है। मैं यह नहीं कहता कि भारत कल ही अकेला खड़ा हो सकता है; पर भारतीय जनताकी स्वराज्यकी माँग फौरन पूरी की जानी चाहिए। पिछले १५० वर्षोंमें ब्रिटिश साम्राज्य विश्वव्यापी संगठनका आधार रहा है; पर हमें पिछले दिनोंकी बातें नहीं, आजकी आवश्यकताएँ देखनी हैं।

'मैं यह स्वीकार करता हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्यकी ४० सरकारोंने स्वास्थ्य, शिक्षा और स्व-शासनके क्षेत्रोंमें सारे संसारमें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है; पर उनकी गति काफ़ी तेज़ नहीं रही। जब तक हम सुदूर तथा निकट-पूर्वके करोड़ों लोगोंको स्व-शासन नहीं देते, एक उत्कृष्ट प्रणाली आशासे भी अधिक शीघ्रतया नष्ट हो जायगी। हमें समयका खयाल रखना है। यदि हम इन करोड़ों व्यक्तियोंको सन्तुष्ट नहीं करते, तो क्रान्ति अनिवार्य है—भले ही ब्रिटिश और अमरीकन अपने इरादोंमें ईमानदार हों।'

अमरीकामें ब्रिटेन-विरोधी भावना

ब्रिटिश परराष्ट्र-मन्त्री श्री ईडनकी अमरीका-यात्रापर टीका करते हुए प्रसिद्ध पत्रकार श्री रेमण्ड क्लेपर 'वर्ल्ड टेलीग्राम' नामक पत्रमें लिखते हैं—'अमरीकामें फैल रही ब्रिटिश-विरोधी भावनाके प्रति अंगरेज़ोंको चिन्ता होने लगी है और वे इसको अतिरंजित रूपमें देखते हैं। ब्रिटेनको इस बातका ज्ञान हो गया है कि भारतके सम्बन्धमें अमरीकाका लोकमत क्या है? मगर भारतके सम्बन्धमें कोई कार्रवाई की जायगी, इस विषयमें सन्देह है।'

प्रशान्त-सम्मेलनके सुझाव

प्रशान्त-सम्मेलनने अभी हाल ही में हुई बैठकमें भारतकी समस्याको सुलझानेके लिए निम्न सुझाव पेश किए—(१) भारतमें प्रशान्त-युद्ध-कौंसिलकी एक शाखाकी स्थापना अथवा एक प्रतिनिधिकी नियुक्ति। (२) भारतके बारेमें ब्रिटिश योजनाओंका श्री चर्चिल द्वारा अधिक विस्तृत स्पष्टीकरण। (३) एक नए वायसरायकी नियुक्ति। (४) कांग्रेस-नेताओंकी रिहाई अथवा उनपर लगाए गए प्रतिबन्धोंमें ढिलाई। ज्ञात हुआ है कि ये सुझाव बहुमतसे स्वीकृत हुए। केवल भारत-सरकारके प्रतिनिधियोंने, जिनमें कि सर रामस्वामी मुदालियर और मुहम्मद जफरुल्लाखाँ आदि थे, इनका विरोध किया।

नेहरू वेल्ससे श्रेष्ठ इतिहासकार हैं!

पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित 'विश्व-इतिहासकी झलक' नामक पुस्तककी प्रशंसामें अमरीकाके प्रसिद्ध पत्र 'हिस्ट्री'ने एक बड़ा लेख प्रकाशित किया है। इस लेखमें कहा गया है कि नेहरूजीकी पुस्तक एच० जी० वेल्सके इतिहासकी रूप-रेखासे भी श्रेष्ठ है। पत्रने इस बातकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा की है कि नेहरूजीकी पुस्तकमें भारतके विरोधियोंके प्रति कोई घृणा अथवा द्वेष-भाव प्रकट नहीं किया गया है।

आज विश्वका यह श्रेष्ठ इतिहासकार अपने ही देशमें विदेशी 'लोकतन्त्र'की जेलमें बन्दी है!

चावलकी कमी कहाँ है?

भारत-सरकारके नव-नियुक्त खाद्य-सलाहकार श्री विगरने भारतमें आनेके तीन हफ़्ते बाद ही फ़तवा दे दिया है कि कुल मिलाकर भारतमें चावलकी कोई वास्तविक गम्भीर कमी नहीं है। आपने सरकारके सामने सुझाव पेश किया है कि जिन शहरी हल्कोंके लोग पहले चावलका इस्तेमाल करते थे, उनसे मोटे अनाजोंका प्रयोग करनेका अनुरोध किया जायगा।('स्टेट्समैन')

विशेषज्ञोंकी रायमें विशिष्टता होना लाज़िमी है। फिर श्री विगरने ३ हफ़्तोंमें ही समूचे भारतकी चावल-सम्बन्धी स्थितिका अध्ययनकर जिस निर्णयकी घोषणा की है, वह तो उनकी विशिष्टताको और भी सुस्पष्ट कर देता है। 'कुल मिलाकर' भारतमें चावलकी कितनी कमी है, इसका ठीक-ठीक निर्णय करना तो हमारे लिए असम्भव है; पर उसकी 'कमी' और 'मँहगाई'की शिकायत हमने अधिकांश घरोंमें देखी और व्यक्तियोंसे सुनी है। चावलके विक्रेता भी इसके प्रमाण हैं। पर अगर यह सब भ्रम ही है और श्री विगरकी बात ही दुरुस्त है, तो समझमें नहीं आता कि उन्होंने चावलका इस्तेमाल करनेवालोंसे मोटे अनाजोंके प्रयोगका अनुरोध करनेका सुझाव क्यों रखा है?

कपड़ेकी कमीसे चिन्ता

'टाइम्स आफ़् इण्डिया'ने भारतमें कपड़ेकी संकटपूर्ण स्थिति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हुए लिखा है—'खाद्य-पदार्थोंके बाद कपड़ा जनताकी प्रमुख आवश्यकता है। वक्त आ गया है कि जनताको अत्यन्त आवश्यक राहत देनेके लिए भारत-सरकार इस मामलेमें हस्तक्षेप करे। कपड़ेके कारखानोंने जो भारी लाभ उठाया है, उससे कपड़ेकी मिलोंके शेयर बहुत ऊँचे चढ़ गए हैं। कई दशाब्दियों बाद कपड़ेकी मिलोंके शेयर इतने ऊँचे गए हैं। जनताको पर्याप्त रूपमें मोटा-स्टैण्डर्ड-कपड़ा दिलानेकी व्यवस्थामें देर होनेसे लोगोंमें भारी चिन्ता फैल गई है। इस स्थितिको बड़े भयकी दृष्टिसे देखा जा रहा है।'

राजबन्दियों व नज़रबन्दोंके साथ बर्त्ताव

गत २५ मार्चको केन्द्रीय असेम्बलीमें श्री टी० टी० कृष्णमाचारीने एक प्रस्ताव पेशकर सरकारसे अनुरोध किया कि वह राजबन्दियों एवं नज़रबन्दोंके साथ होनेवाले व्यवहार-सम्बन्धी अपनी नीतिमें काफ़ी परिवर्त्तन करे। आपने केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्योंको उनसे मिलनेकी सुविधा दी जानेका भी अनुरोध किया, ताकि वे उनकी असुविधाओं एवं पाबन्दियोंको हटवानेके लिए सरकारका ध्यान आकृष्ट कर सकें। अपने भाषणमें आपने गृहके कई सदस्योंकी बीमारीका उल्लेख करते हुए कहा कि मध्य-प्रान्तसे जो ५० दक्षिण-भारतीय राजबन्दी और नज़रबन्द वैलोर-जेलमें तब्दील हुए थे, उनमें से एकके सिवा सब-के-सब बीमार थे और श्री सत्यमूर्त्ति तो कंकाल-मात्र रह गए हैं। (इस कथनके लगभग ६०-६२ घण्टे बाद ही यह कंकाल एक निष्प्राण शव बन गया!) नेहरूजी द्वारा अपनी पुत्रीकी बीमारीके सम्बन्धमें लिखे गए पत्रोंके रोके जाने, स्त्रियोंके काल-कोठरीमें रखे जाने और लोगोंके दो-दो मास तक पुलिसकी हवालातमें सड़नेका भी आपने उल्लेख किया।(ए० प्रे०)

गृह-सदस्य श्री मैक्सवैलने सरकारी स्थिति समझाते हुए कहा—'शुरूसे नीति यह रही है कि इन लोगोंको अलग कर दिया जाय, ताकि इनका बाहरी दुनियासे—घरेलू मामलों और पत्रोंके सिवा—कोई सम्पर्क न रहे।...पाबन्दियोंमें कोई ढिलाई नहीं की जा सकती, क्योंकि युद्ध अभी जीता नहीं गया है; अभी तक खतरा बना हुआ है और कांग्रेस-आन्दोलन अभी मरा नहीं है। कांग्रेसका गुप्त संगठन अभी भी है और वह आन्दोलनको जारी रखनेपर तुला हुआ है। सरकारने इन पाबन्दियोंमें जितनी ढिलाई की, उतने ही जेलोंसे भागने और दंगे करनेके वाक़यात हुए।'(ए० प्रे०)

अगर सरकारकी नीति राजबन्दियों और नज़रबन्दोंको बाहरी दुनियासे अलग ही रखना है, तो भी उनके स्वास्थ्य और जीवनकी रक्षाके लिए पर्याप्त ध्यान देना इसमें बाधक नहीं हो सकता। जिसे गृह-सदस्यने 'आन्दोलन' कहा है, वह भले ही न मरा हो; पर जो जेलोंकी चहारदीवारीमें पहुँच चुके हैं, उनके साथ इस बिनापर कठोर व्यवहार करना एवं अधिक प्रतिबन्ध लगाना कोई मानी नहीं रखता। नेहरूजी द्वारा श्रीमती इन्दिरा गांधीको भेजे गए पत्रोंका एक लम्बे अर्से तक रोका जाना, कई नज़रबन्दोंकी अस्वस्थता और सर्वश्री महादेव देसाई, चन्द्रभाल जौहरी तथा सत्यमूर्त्तिका नज़रबन्दीके दौरानमें अथवा उसके बाद शीघ्र ही मर जाना क्या इस बातके द्योतक नहीं कि उनके साथ होनेवाला व्यवहार सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता? हम चाहते हैं कि सरकार अपनी नीतिपर पुनः विचार करे और मानवताके नामपर नज़रबन्दों तथा राज-बन्दियोंके साथ अधिक सम्मानीय एवं भद्र-जनोचित व्यवहार करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिसकी ज़्यादतीका आरोप

श्री मोहम्मद अहमद काज़मीने अभी हाल ही में केन्द्रीय असेम्बलीमें पूछा कि क्या इलाहाबादमें भारत-रक्षा क़ानूनके मातहत नज़रबन्द किए गए राजनीतिक क़ैदियोंपर पुलिसकी ज़्यादतियोंकी शिकायतें आई हैं और क्या इलाहाबादके बुनियादी शिक्षा-कालेजके एक अध्यापक श्री दुर्लभभाई त्रिवेदीको गिरफ़्तारीके २० दिन बाद तक पुलिस-चौकीमें बन्द रखा गया और वहाँ उन्हें प्रतिदिन पीटा गया ? गृह-सदस्यने उत्तर देते हुए कहा कि उन्हें ऐसी कोई सूचना नहीं मिली।

यह पूछे जानेपर कि क्या सरकार प्रान्तीय सरकारको यह सलाह देना उचित समझेगी कि वह इस प्रकारके तरीक़े काममें लाने बन्द कर दे, गृह-सदस्यने कहा—'नहीं।'

प्रो० चन्द्रभाल जौहरीकी मृत्यु

केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य प्रो० चन्द्रभाल जौहरीकी मृत्युके बारेमें पूछे गए प्रश्नका उत्तर देते हुए गृह-सदस्यने इस लांछनका खण्डन किया कि नज़रबन्दीके समय उनके लिए उपयुक्त इलाजका इन्तज़ाम नहीं किया गया। उन्होंने बताया कि प्रो० जौहरी २७ जनवरीको बलरामपुर-अस्पतालके स्पेशल वार्डमें भर्ती किए गए थे और ३ फ़रवरीको जब उनकी हालत नाजुक हो गई, तो टेलीफोन द्वारा उनके भाईको खबर दी गई ; लेकिन ५ फ़रवरी तक किसीने अस्पतालमें आकर उन्हें देखनेका यत्न नहीं किया। ५ फ़रवरीको प्रो० जौहरीकी पत्नी तथा उनके भाईको जेलमें उनसे भेंट करनेकी इजाज़त दी गई। प्रो० जौहरी उनकी पत्नीके अनुरोधपर उसी दिन छोड़ दिए गए तथा इस सम्बन्धमें उनके लिए खास इन्तज़ाम किया गया था।

गृह-सदस्यने बताया कि प्रो० जौहरीने अस्पतालमें खूनकी परीक्षा या ऐसी कोई अन्य डाक्टरी परीक्षा करानेसे इन्कार कर दिया था, जिसमें सुई चुभानी पड़े। यह कहकर कि मेरा होमियोपैथीमें विश्वास है, उन्होंने कोई दवाखानेसे भी इनकार कर दिया था। उनका देहावसान १० फ़रवरीको हुआ और इस बीचमें उनकी हालतके बारेमें मुझे कोई सूचना नहीं मिली।

बिहार-गवर्नर कैसे हटे ?

'इण्डिपेण्डेंट इण्डिया' के विशेष संवाददाताका कथन है कि बिहारके भूतपूर्व गवर्नर सर टामस स्टुअर्टको सहसा अपने पदसे हटा एक अज्ञात व्यक्तिकी इस पदपर नियुक्ति पटनेके राजनीतिक हल्कोंमें हलचल मचा देनेवाली है। कहा जाता है कि सर स्टुअर्टको पदसे हटा देनेका कारण यह है कि वे बिहारमें हुए उपद्रवोंको बहुत देरके बाद दबा सके और इस कार्यमें उन्होंने शिथिलता दिखाई। इसीका यह परिणाम है कि यद्यपि स्वास्थ्य-सुधारके लिए अवकाश लेते समय उन्होंने मित्रोंको शीघ्र ही लौट आनेका विश्वास दिलाया था ; लेकिन इंग्लैण्ड पहुँचते ही यह घोषणा कर दी गई कि वे रिटायर हो गए। इस घटनाने इस सन्देहकी और भी पुष्टि कर दी। इस प्रकार एक गवर्नरको अपने पदसे हटा देनेकी भारतमें यह पहली घटना है।

अराकान-अभियानकी समाप्ति

न्यूयार्कका 'हेरल्ड ट्रिब्यून' लिखता है—'बर्माके अराकान-ज़िलेमें ब्रिटिश-फौजोंका शरत्कालीन आक्रमण लगभग समाप्तिके क़रीब है। ब्रिटिश व भारतीय सैनिक पिछली मोर्चाबन्दियों-पर हट रहे हैं। लेकिन यह सन्दिग्ध है कि जनरल वैवल इस पीछे हटनेको आक्रमणकी असफलता मानेंगे।'

साधु ऐण्ड्रूज़की पुण्य-तिथि

गांधीजीने एक बार कहा था—'जिस अंगरेज़-जातिमें ऐण्ड्रूज़-जैसे व्यक्ति हों, उससे द्वेष नहीं किया जा सकता।' स्वर्गीय लाला लाजपतरायने भी अपनी विशेष-कांग्रेसवाली वक्तृतामें कहा था—'केवल एक अंगरेज़, जिनका नाम हमें कृतज्ञतापूर्वक लेना चाहिए, वे हैं श्री सी० एफ़्० ऐण्ड्रूज़, जो आज हमारे ही हो गए हैं।' पर आज उनकी पुण्य-स्मृति हमारे आदर और श्रद्धाकी निधि है। यद्यपि आजसे ३ वर्ष पूर्व, इसी ५ अप्रैलको, उन्होंने भारतसे अपना भौतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया ; तथापि ४० कोटि भारतीयोंके हृदयोंमें उनके सुकृत्योंका पौधा आज भी हरा है और सदा हरा ही रहेगा।

आज हमें उनकी याद इसलिए और भी अधिक आती है कि उनकी जातिवालोंने भारतके प्रति जो नीति बरत रखी है उससे ऐण्ड्रूज़-जैसे अनेक अंगरेज़ साधुओंके किए-कराएपर पानी फिर गया है। काश, आज हमारे बीच ऐण्ड्रूज़ होते! यदि वे आज जीवित होते, तो कांग्रेस-नेताओंकी गिरफ़्तारी, बच्चों अनशन और सरकारी दमन आदिके सम्बन्धमें क्या-कुछ न पाते, यह कहना तो हमारे लिए सम्भव नहीं ; पर इतना विश्वास हमें अवश्य होता है कि यदि आज ऐण्ड्रूज़ जीवित होते, तो भारत और ब्रिटेनके पारस्परिक सम्बन्धमें जो तल्खी और कटुता आ गई है, शायद वे उसे रोक या कम कर पाते। क्या उनकी आत्मा भारत और ब्रिटेनके प्रति किए गए इस दोहरे अपराधके लिए अपने अविचारी और कृतघ्न भाइयोंको क्षमा कर सकेगी ?

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सा बि न

दमा और खाँसीमें शीघ्र फलप्रद

जिन्हें श्लेष्माका ज़ोर हो और तनिक-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खाँसी, टान्सिलका प्रदाह और दमेका दौरा आने लगता हो, उन्हें सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातीत लाभ होगा और फिर निश्चिन्त होकर वे आरामसे अपने दैनिक कर्त्तव्य करनेमें समर्थ होंगे। सभी प्रतिष्ठित दुकानोंमें मिलती है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैंतालीस सालकी परीक्षित महौषधि

सन्तानदाता अवलेह

यह अवलेह यथा नाम तथा गुण है। हजारों अँधेरे घरोंमें इसने चिराग़ जलवा दिये। यह अवलेह वन्ध्याको पुत्रवती बनाकर कुलका नाम चलाता है। जिसके घरमें पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। इसलिए पुत्र पानेके लिये आप इस अवलेहको अपनी प्यारी धर्मपत्नीको सेवन कराइये। इससे स्त्रियोंके सारे गुप्तांग रोग नाश होते हैं—जैसे कमर और पीठ वगैरःमें दर्द होना, कम-ज़्यादा ख़ून गिरना, गर्भाशयमें पीड़ा होना, नलोंमें भारीपन रहना, हल्की हरारत, जीर्ण ज्वर, पिंडलियाँ दुखना, सिरमें दर्द रहना वगैरह सारी शिकायतें इस अमृतसे काफ़ूर हो जाती हैं। जो काम लेडी डाक्टरोंके आपरेशनोंसे नहीं हुए, वे इस अवलेहसे हो गये। [illegible] सेर। पहले आधा सेर मँगा लीजिये। चमत्कार दीख जायगा।

नोट :—अगर प्रदर [illegible]द रोगकी शिकायत है तो आप [illegible]रे यहाँसे रोगिणी-फार्म मँगा लें। आपके पत्रका उत्तर आदरणीय वैद्य बाबू हरिदासजीकी सुपुत्री श्रीमती चमेलीदेवीजी वैद्या द्वारा दिया जायगा, जो कि नारी-चिकित्सामें प्रवीण हैं। याद रखें, इनका दवाख़ाना अलग नहीं है। हरिदास एण्ड कम्पनीके ही पतेपर पत्र-व्यवहार करें, अन्यथा धोखा होगा!

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

कलकत्ता आयुर्वेद कालेजके भूतपूर्व अध्या
भारत-विख्यात राजवैद्य
कविराज श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय
एम० ए० द्वारा आविष्कृत

यक्ष्मारि

सब तरहके यक्ष्मा-रोगका सर्वोत्तम औ

यक्ष्मा-रोगके कीड़ोंको ध्वंसकर, शुष्क स्वरभंग, लगातार बुखार, ख़ूनकी कै, जखम, रक्त-हीनता, कमजोरी और क्षय दूर ऐसी दूसरी दवा नहीं है।

रोग-विवरणके साथ पत्र लिखनेपर सब तरहकी व्यवस्था

पता—राजवैद्य-आयुर्वेद-भवन

हेड आफिस—१७२, बहूबाजार स्ट्रीट, कल

फोन नं० बड़ाबाजार ४०३९

कारखाना और शाखा-औषधालय—

पोस्ट—रामपुरहाट (बीरभूम)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गु. कांगड़ी पुस्तकालय

संचालक—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

१३-२-४

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

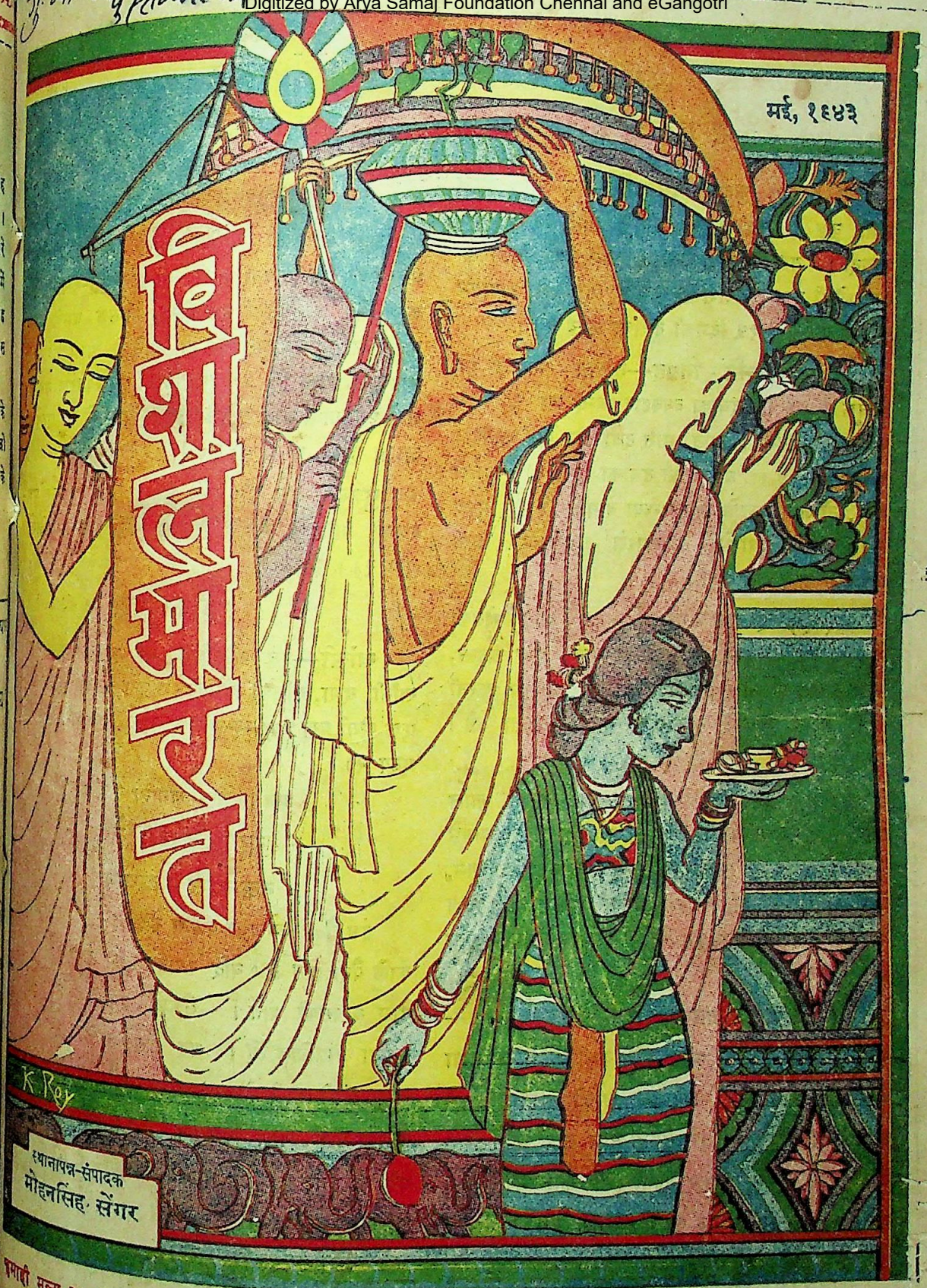

वार्षिक मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य बढ़ाया गया है

कागज़की बेहद महँगाईके कारण शरत्साहित्यके जो भाग अब छपे हैं और आगे छपेंगे, उनका मूल्य बारह आनेसे एक रुपया कर दिया गया है। भाग ३, १५ और १६-१७ हाल ही छपे हैं। इनके सिवा साहित्य-शिक्षा, हिन्दी-नायमाला, शाहजहाँ, मेवाड़-पतन, भारत-रमणी, दुर्गादास, जीवटकी कहानियाँ, हिन्दी-साहित्यकी भूमिका, ग्राम्य-जीवनकी कहानियाँ, देश-देशके लोग, शान्तिकुटीर, उपवास-चिकित्सा, शिवाजी, राणा प्रताप, नूरजहाँ, नवनिधि, उर्दू-हिन्दी-कोश, आनन्दकी पगडंडियाँ और ताराबाई—इन पुस्तकोंका मूल्य पहलेसे सवाया कर देना पड़ा है। अन्य सब पुस्तकोंका मूल्य ज्योंका त्यों है।

बहुतसे ग्राहक हमसे दूसरोंकी प्रकाशन की हुई पुस्तकें भी मँगाया करते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि प्रायः सभी प्रकाशकोंने अपनी पुस्तकोंके दाम बढ़ा दिए हैं। सूचीपत्रमें छपी हुई कीमतें ठीक नहीं हैं। इसलिए ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे बढ़ी हुई कीमतोंका खयाल रखकर ही आर्डर दें। कमीशन भी प्रकाशकोंने कम कर दिए हैं, इसका भी ध्यान रक्खें।

गुजरातके नाथ

गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत के० एम० मुन्शीका यह अतिशय मनोरंजक, उत्कण्ठावर्धक और कलापूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हाल ही प्रकाशित हुआ है। हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी कमी है और हिन्दीके लेखक इस समय इस ओरसे प्रायः उदासीन हैं। अतएव हिन्दीके पाठक इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। ४६० पृष्ठोंके इस उपन्यासका मूल्य सवा दो रुपया है। इसके पहले मुन्शीजीका 'पाटनका प्रभुत्व' प्रकाशित हो चुका है, जिसका मूल्य डेढ़ रुपया है। वह भी ऐतिहासिक है और उसके बादका ही इतिहास 'गुजरातके नाथ'में गुम्फित है। यों दोनों ही स्वतन्त्र हैं।

कबीर

शान्तिनिकेतनके अध्यापक पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्यने इस ग्रन्थमें कबीर, उनके साहित्य और उनकी फिलासफ़ीपर बिल्कुल ही नये दृष्टिकोणसे और बड़ी गहराईसे विचार किया है। कबीरको अच्छी तरह समझनेके लिए यह ग्रन्थ आवश्यक है। मूल्य ढाई रुपया।

जैन-साहित्य और इतिहास

लेखक:—पं० नाथूराम प्रेमी

जैन-साहित्य बहुत विशाल और गम्भीर है। व्याकरण, काव्य, न्याय, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि कोई भी ऐसा साहित्यांग नहीं है, जिसपर जैन-पण्डितोंने प्रामाणिक ग्रन्थ न लिखे हों। इस ग्रन्थमें ऐसे सकड़ों प्रकाशित-अप्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंके ग्रन्थों और उनके कर्ताओंका विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके समयपर भी प्रकाश डाला गया है। इसके सिवा जैन-इतिहासकी अनेक गुत्थियां सुलझाई गई हैं। बहुतसे कवियों और ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें बिल्कुल नई खोजें की गई हैं। हिन्दीकी जननी अपभ्रंश भाषाके ऐसे अनेक कवियों और उनकी रचनाओंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें हिन्दी जानता भी नहीं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो कुछ लिखा गया है, सब निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे।

'विश्व-भारती', 'विशाल भारत' आदि पत्रोंने और म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, प्रो० हरिसत्य भट्टाचार्य, पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० भगवद्दत्त, डा० रघुवीरसिंहजी आदि माने हुए विद्वानोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या ६३४। मूल्य तीन रुपया।

संचालक—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीमका तेल

चर्म, स्वास्थ्य और सौन्दर्यके लिये

बीस वर्षोंसे देशवासियोंको स्वच्छ एवं नीरोग रखनेमें गोदरेजकी सेवाएँ स्मरणीय हैं। हम गोदरेजका 'लिमडा' साबुन भेंट करते हैं। नीमके ठण्डक पहुँचानेवाले, शान्ति-दायक, जन्तुनाशक एवं चर्मरोग-नाशक गुण इस नीमके तेलसे बने 'लिमडा' साबुनमें पूर्ण रूपसे विद्यमान हैं। गोदरेजके अन्य दूसरे नहानेके साबुनकी विख्यात वैज्ञानिकों और चर्मरोग-विशेषज्ञोंने जिस लिए मुक्तकण्ठसे सराहना की है, इस लिमडाको भी उन गुणोंसे आप पूर्ण पायँगे। लिमडा साबुनके घने एवं कोमल फेनसे अपने शरीरको स्वच्छ रखिए और भारतीय चर्मकी पुश्तैनी आरोग्यता और सुन्दरताको कायम रखिए।

गोदरेज
टायलेट साबुन
नं० १, नं० २
बतनी', सन्दल
लिमडा, फैमिली
टर्किश बाथ,
शेविंग स्टिक,
शेविंग राउण्ड'

Godrej Limda NEEM

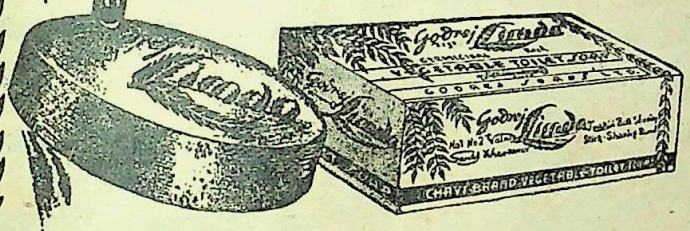

गोदरेज
चाभी छाप
लि म डा
टायलेट साबुन
गोदरेज सो० लि०
पटना (स्टेशन रोड)

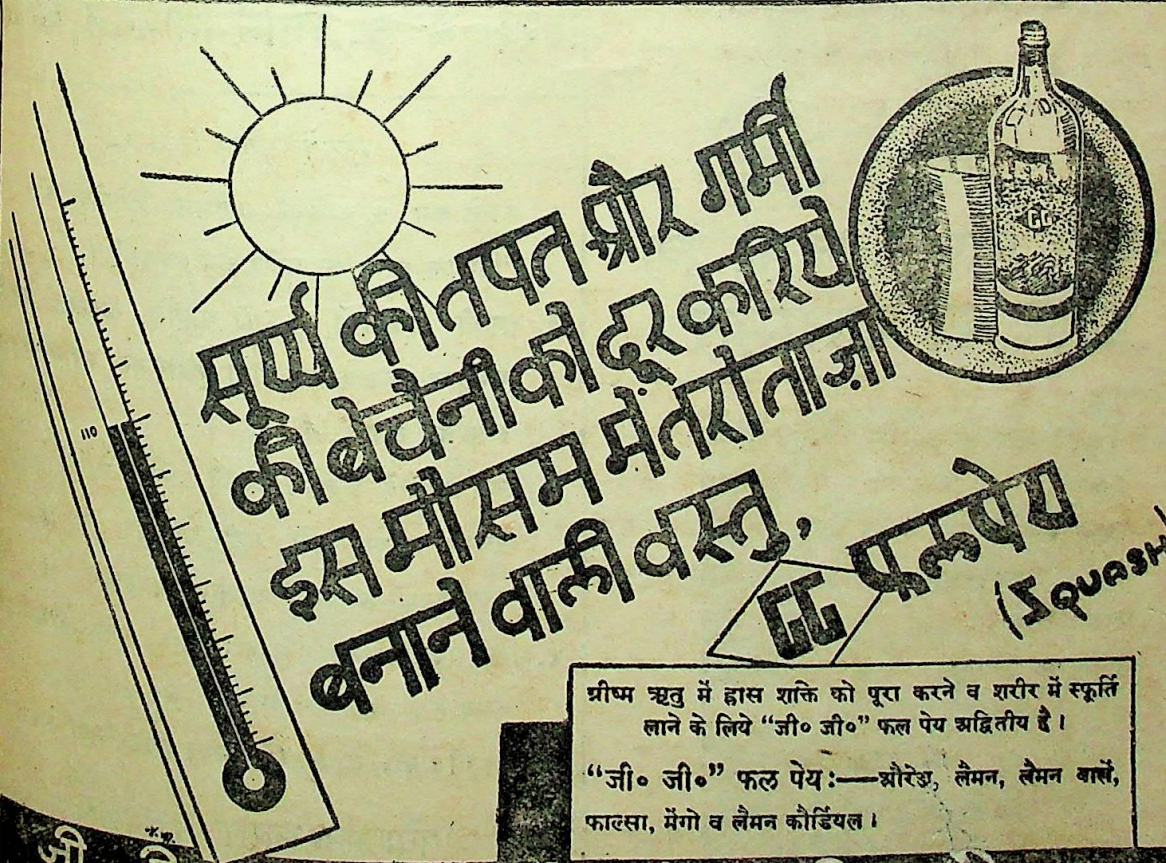

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप जीवनसे निराश हो चुके हैं ?

समझ बैठे हैं कि आपका रोग जानेका नहीं, तो प्राकृतिक चिकित्साका सहारा लीजिए। यह शरीर मिट्टी, पानी, धूप, हवाका बना है और उन्हींके समुचित प्रयोगसे यह फिर नवीन हो सकता है। इसके अलावा इस आरोग्य मन्दिरमें आसन, प्राणायाम, बिजली, मालिश, उपवास, युक्त अहार, दूध-कल्प एवं विचार-शक्तिका भी सहारा लिया जाता है। चिकित्सा 'आरोग्य मन्दिर'में रहकर एवं पत्र-व्यवहार द्वारा दोनों प्रकारसे कराई जा सकती है।

आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर, (यू० पी०)

बच्चों के लिए ताकत की दवा
डोंगरे का बालामृत

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका पाँचवाँ अंक प्रकाशित हो गया।

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

आत्म-त्राण (कविता)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
धर्मकीर्त्तिका दर्शन	राहुल सांकृत्यायन
चतुरंग (उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
संतसाधनाका प्रवेशपथ	क्षितिमोहन सेन
नारीका मनुष्यत्व	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
युद्धारम्भके बाद चीनी काव्यकी प्रवृत्ति	उ-शिऔ-लिङ् अनागारिक शांतिभिक्षु
'रवीन्द्र-संगीत' (आलोचना)	विद्याधर वमलवार
'हमारा हिन्दुस्तान' (आलोचना)	कृष्ण कृपालानी
'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (आलोचना)	हजारीप्रसाद द्विवेदी
'रवीन्द्रनाथ थ्रू वैस्टर्न आईज़' (आलोचना)	ह० द्वि०
सम्पादकीय	नैशनल वार-फ्रन्ट और रवीन्द्रनाथ।

वार्षिक मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए प्रति संख्या १॥)

व्यवस्थापक, विश्वभारती पत्रिका,
हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल

एजेंटोंके लिए नियम

१. कमसे कम ५ कापियाँ प्रतिमास मँगानेपर कोई भी 'विशाल भारत'का एजेंट बन सकता है।

२. स्थायी एजेंटोंको १) फ़ी कापीके हिसाबसे पेशगी ज़मानत जमा करानी होगी और हर महीने हिसाब साफ़ कर देना होगा।

३. जिस महीनेके अंककी जितनी प्रतियाँ चाहिएँ, उसकी सूचना उससे पहले महीनेकी २५ तारीख़ तक कार्यालयको अवश्य मिल जानी चाहिए।

४. जिन एजेंटोंका रुपया जमा न होगा, उन्हें नया अंक उस समय तक नहीं भेजा जायगा, जब तक कि वे रुपया या वी० पी० से अंक मँगानेका आर्डर नहीं भेजेंगे।

'विशाल भारत' कार्यालय
१२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[শ্রী বাসুদেব রায়

প্রত্যাবর্ত্তন

প্রবাসী প্রেস, কলিকাতা।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३१, अंक ५] चैत, २००० : : मई, १९४३ [पूर्णांक १८५

नया संसार

श्री गोपालसिंह नेपाली

एक नया संसार।
युवक बसायेंगे हिल-मिलकर एक नया संसार ;
तरुण बनायेंगे रच - रचकर एक नया संसार।
एक नया शृंगार सृष्टि का,
एक नया संसार दृष्टि का,
एक नया जीवन का घेरा,
एक नया मानव का डेरा,
एक नया वैभव का फेरा,
नया उजाला, नया अँधेरा,
जगती की प्राचीन बीन में नए सजेंगे तार ;
नए बजेंगे तार।
तरुण क्रान्ति मन-मन मचलेगी,
नगर-नगर वन-वन उछलेगी,
प्रान्त-प्रान्त पुर-पुर बिछलेगी,
दुनिया को लपटों में लिपटा
हा-हा करती हुई चलेगी।
यह मरघट की शान्ति जलेगी,
लिपी-पुती मुख-कान्ति जलेगी ;
क्लेश जलेगा, क्लान्ति जलेगी,
तरुण क्रान्ति की अग्नि-शिखा में
जग-जीवन की भ्रान्ति जलेगी।
जग की राखों पर सुलगेगा एक नया अंगार।
सामाजिक पापों के सिर पर चढ़कर बोलेगा अब खतरा ;
बोलेगा पतितों-दलितों के गरम लहू का क़तरा-क़तरा।
होंगे भस्म अग्नि में जलकर, धरम-करम औ' पोथी-पत्रा ;
और पुतेगा व्यक्तिवाद के चिकने चेहरे पर अलकतरा।
सड़ी-गली प्राचीन रूढ़ि के भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे ;
युग-प्रवाह पर कटे वृक्ष-से दुनिया - भर के ढोंग बहेंगे।
पतित-दलित मस्तक ऊँचाकर संघर्षों की कथा कहेंगे ;
और मनुज के लिए मनुज के द्वार खुले के खुले रहेंगे।
वह दिन आनेवाला होगा,
धूम मचानेवाला होगा,
नींव हिलानेवाला होगा,
जग में लानेवाला होगा
नए रंग का, नए ढंग का, एक नया संसार।
मानव होगा नहीं कभी भी मानव-पशु का दास ;
जीवन-सत् उसका न हरेंगे मन्द-अन्ध-विश्वास।
बाँधेगी न नियम की पट्टी मानव की आँखों को ;
काटेगा क़ानून न कोई चिड़ियों की पाँखों को।
हाँकेगी न ज़ुल्म की लाठी इधर-उधर लाखों को ;
भस्म समझ हम सिरपर लेंगे जीवन की राखों को।
वह दुनिया जल्दी आयेगी,
हमको - तुमको अपनायेगी,
इनको - उनको समझायेगी,
मानव की टोली गायेगी,
उस गायन में डूब जायगी बेड़ी की झंकार।
एक नया संसार कि जिसमें एक नवीन समाज ;
एक नई ज़िन्दगी कि जिसका एक नया अन्दाज़।
जग में मनुज-रुधिर के बदले बहती रहे स्नेह की धारा ;
शान्ति बुलाती रहे पथिक को बन जीवन-नभ का ध्रुवतारा।
मानव की आँखों में जग का कण-कण प्यारा, क्षण-क्षण न्यारा ;
मानवता का सिन्धु सोख ले मानव के दृग का जल खारा।
दुनिया हो मस्तों की दुनिया, जीवन हो त्यौहार ;
मानव के जग में मानव का गूँजे जयजयकार!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टर्लिंग-निधिका भविष्य

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

भारत आज कर्ज़दार देश नहीं है, बल्कि आज तो महाजन देशोंमें उसका भी नाम शामिल हो गया है। भारत पिछली लड़ाईमें भी कर्ज़दार नहीं रहा था ; मगर लड़ाई समाप्त होनेके कुछ साल बाद ही वह कर्ज़दार देश हो गया। लार्ड हेलीकी विनिमय-दरकी नीतिके कारण भारतका संचित ११८ करोड़ रुपएका सोना अदृश्य हो गया! आज भारतका १४ अरब रुपया स्टर्लिंगके रूपमें लन्दनमें जमा है। यह भारतके गरीब किसानोंके पसीनेकी कमाई है और उन्होंने अपनेको भूखा और नंगा रखकर तथा सोनेमें संचित सम्पत्तिकी रफ़्तनी कर यह रक़म जमा की है। फिर भी दुर्भाग्यवश इस रक़मपर भारतका नियन्त्रण नहीं है। इसे वापस करनेके लिए भारतीय वाणिज्य-व्यवसाय-संघने माँग की थी, जिससे लन्दनका 'इकनामिस्ट' चौंक उठा और संघकी जली-कटी सुनानेसे बाज़ नहीं आया। रक़म लौटानेकी बात तो दूर रही, कुछ मास पूर्व यह सुझाया गया था कि यह रक़म भारत कनाडाकी तरह युद्ध-व्ययके लिए ब्रिटेनको दे दे!

भारतके प्रति सदासे दूषित अर्थनीति बरती जाती रही है। इसी कारण इतना समृद्धिशाली देश होते हुए भी भारत कर्ज़दार देश हो गया। १८६४-६५ से लेकर १९२८-२९ तक भारतने २८०० करोड़ रुपएके मालकी रफ़्तनी की, जिससे इस अर्सेमें उसे १४०० करोड़ रुपएकी आमद हुई। निर्यात और आयातके इन आँकड़ोंसे स्पष्ट है कि भारतका १४०० कोटिका पावना ब्रिटेनपर था ; मगर यह सब अदृश्य हो गया! इस अर्सेमें एशिया और अफ्रीकामें साम्राज्य-विस्तारके लिए जो लड़ाइयाँ लड़ी गईं, उनका सारा खर्च भारतपर लादा गया। यही वजह है कि १९२२ की गया-कांग्रेसने घोषणा की थी कि भारतके नामपर ब्रिटेन द्वारा लिए गए कर्ज़को चुकानेके लिए भारत ज़िम्मेदार न होगा। १९३१ में शाह-देसाई-कुमारप्पाकी कमेटीने इस प्रश्नपर विस्तारसे विचार किया था। उसकी रिपोर्ट इस बातकी साक्षी है कि भारतके साथ ब्रिटेनने आर्थिक अन्याय किया है। इस आर्थिक अन्यायके फल-स्वरूप भारतपर जो स्टर्लिंग-ऋण डाला गया था, वह स्टर्लिंग प्रत्यावर्त्तन करके चुका दिया गया है और इस ऋणको चुकानेमें भारतको काफ़ी नुक़सान सहना पड़ा है। किन्तु इस तथाकथित कर्ज़को चुकानेके बाद भी लन्दनमें भारतकी जो स्टर्लिंग-निधि बची हुई है, उसका क्या किया जाय?

रिज़र्व-बैंक भारतके बैंकोंका बैंक है। भारतकी चलन-व्यवस्था इसीके सिपुर्द है। रिज़र्व-बैंक बाज़ारकी ज़रूरतके मुताबिक नोट निकालता है। क़ानूनके अनुसार नोटोंके पीछे विशिष्ट प्रकारकी गंगाजली या तारण व पृष्ठबल चाहिए। यह गंगाजली स्वर्ण, स्वर्ण-मुद्रा, स्टर्लिंग-सिक्युरिटियाँ, रुपए, रुपयोंकी सिक्युरिटियाँ व व्यापारी हुण्डियाँ होनी चाहिए। स्वर्ण, स्वर्ण-मुद्रा और स्टर्लिंग-सिक्युरिटियाँ ४० प्रतिशतसे कम नहीं होनी चाहिएँ। इसमें भी प्रति रुपया ८·४ ग्रेन सोनेके परिमाणसे ४० करोड़ रुपएका सोना होना चाहिए, यह प्रतिबन्ध है। रिज़र्व-बैंकके मूल क़ानूनमें यह भी निहित है कि भारत-सरकारको रुपयोंकी सिक्युरिटियाँ रिज़र्व-बैंक द्वारा निकाले गए नोटोंका २५ प्रतिशत या ५० करोड़ रुपया इन दोनोंमें से जो अधिक हो, उससे अधिक न होनी चाहिएँ। मगर फ़रवरी, १९४१ के आर्डिनेन्स द्वारा इसे रद्द कर दिया गया है। इस प्रतिबन्धके हट जानेसे रिज़र्व-बैंक अब भारत-सरकारकी सुविधानुसार रुपयोंकी सिक्युरिटियाँ रख सकता है।

हिल्टन यंग-कमीशनने जिस समय गंगाजलीका कुछ भाग स्टर्लिंग-सिक्युरिटियोंमें रखनेकी सिफ़ारिश की थी, उस समय इंग्लैण्डने स्वर्णमानका परित्याग नहीं किया था। स्टर्लिंगके बदलेमें सोना मिल सकता था ; मगर उस समय भी यह प्रकट किया गया कि यदि स्टर्लिंगने स्वर्णको तलाक़ दे दिया, तो नोटोंके पृष्ठबल अनिश्चित मूल्यका हो जायगा। १९३१ में बैंक आफ़ इंग्लैण्ड अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देनमें निश्चित दरपर स्टर्लिंगके बदले सोना देनेकी ज़िम्मेदारीसे मुक्त हो गया। जब तक लन्दनसे लिए गए स्टर्लिंग-ऋणको चुकाना था, तब तक नोटोंके पृष्ठबलपर या गंगाजलीमें स्टर्लिंग-सिक्युरिटियाँ रखना विशेष आपत्तिजनक नहीं था ; मगर अब स्थिति बदल गई है। सारा स्टर्लिंग-ऋण चुका दिया गया है और रिज़र्व-बैंकके पास स्टर्लिंग-सिक्युरिटियोंकी मात्रा बढ़ती जाती है। चलन-विस्तार और स्टर्लिंग-बचतका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

अगस्त, १९३९ में रिज़र्व-बैंक द्वारा निकाले गए नोटोंकी रक़म २०६ कोटि थी। इसमें से १७० कोटिके नोट भारत-हारमें थे। २०६ कोटिके नोटोंके पृष्ठबल या तारणमें स्टर्लिंग-सिक्युरिटियोंका तारण केवल ६० कोटि रुपया था। फ़रवरी, १९४३ को रिज़र्व-बैंक द्वारा निकाले गए नोटोंकी रक़म ६२६ कोटि रुपया थी। इसमें ६०४ कोटि रुपए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट व्यवहारमें थे और उसके पृष्ठबल व तारणमें ३८५ कोटि रुपयोंकी स्टर्लिंग-सिक्युरिटियाँ थीं। इससे स्पष्ट है कि भारतमें जिस प्रकार नोटोंका विस्तार बढ़ रहा है, उसी परिमाणमें उसके तारणमें स्टर्लिंग-सिक्युरिटियाँ भी बढ़ती जाती हैं।

लड़ाई छिड़नेसे पहले अन्य देशोंके समान भारतके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारमें लेन-देनके बाद जो बचता था, उसे मूल्यवान धातुके रूपमें या राष्ट्रके लिए आवश्यक वस्तुके रूपमें ले लिया जाता था। शान्ति-कालमें भारतीय व्यापारमें आयातकी अपेक्षा निर्यात ज़्यादा होता था। लड़ाईके कारण विदेशी मालका आयात बहुत घट गया, अतः आयातकी अपेक्षा निर्यात अत्यधिक परिमाणमें होने लगा। मगर पहलेके समान मूल्यवान धातुके रूपमें या वस्तुके रूपमें वसूली न होनेसे इंग्लैण्डमें भारतके खातेमें बढ़े निर्यातके मूल्य-जितनी रक़म स्टर्लिंगमें जमा होने लगी। भारत-सरकार मित्र-राष्ट्रोंके लिए भारतमें युद्धोपयोगी वस्तुओंकी खरीद करती है। ब्रिटिश और अमरीकन सरकारों द्वारा भारतमें बहुत-सा युद्ध-खर्च चल रहा है। इनमें लगनेवाली रक़म ब्रिटिश सरकार भारत-सरकारको स्टर्लिंगमें देती है। भारतीय आयात-व्यापारकी अपेक्षा निर्यात-व्यापारकी अधिकता और मित्र-राष्ट्रोंके लिए ब्रिटिश सरकारकी ओरसे भारतमें होनेवाली मालकी खरीद व अन्य व्ययोंके कारण भारतको स्टर्लिंगमें मिली रक़म मार्च, १९४२ के अन्तमें ५८२ कोटि रुपए थी। इसमें से २९२ कोटि रुपयोंका स्टर्लिंग-क़र्ज़ और अन्य देन चुकाए गए। शेष १८४ कोटि रुपयोंकी स्टर्लिंग-बचतका विनियोग भारतमें नोटोंकी गंगाजलीमें किया गया। मित्र-राष्ट्रोंका भारतमें माल खरीदना और अन्य खर्च बढ़ रहे हैं। इसी प्रकार आयात-व्यापारकी अपेक्षा निर्यात-व्यापार ज़्यादा है। इस कारण इस सालके प्रारम्भसे एक करोड़ रुपयोंसे अधिक रक़म प्रतिदिन स्टर्लिंगमें जमा हो रही है। इसके परिमाणमें और भी वृद्धिकी सम्भावना है। स्टर्लिंगमें जमा होनेवाली इस रक़मका रूपान्तर यहाँ नोटोंमें किया जाता है। इस कारण चलन-विस्तार अधिकाधिक परिमाणमें हो रहा है।

स्टर्लिंगकी क़ीमत स्थिर है, अतः नोटोंके पीछे गंगाजलीमें स्टर्लिंगके होनेसे कोई भय नहीं है। मगर प्रश्न तो यह है कि क्या लड़ाईके बाद भी स्टर्लिंगका मूल्य स्थिर रहेगा? इसलिए भारतीय वाणिज्य-व्यवसाय-संघका कहना है कि इन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंको इस सम्बन्धमें ध्यानमें रखना चाहिए कि रक्षा न केवल स्वेच्छा व आसानीसे स्वर्ण या स्वर्णपर आधारित मुद्रामें परिवर्त्तन-योग्य होना चाहिए, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मालोंके अन्दर उसका स्थिर मूल्य भी होना चाहिए। इसलिए संघका सुझाव है कि भारतका स्टर्लिंग-दायित्व चुकाने और भारतमें निहित ब्रिटिश पूँजी व अन्य माल प्राप्त करनेके बाद बचे स्टर्लिंगको या तो स्वर्णमें या डालरमें बदल दिया जाय, या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी वस्तुओंकी निदर्शिका संख्यासे जोड़ दिया जाय। इस पिछली बातका श्री घनश्यामदास बिड़लाने भी प्रतिपादन किया है; मगर संघ और श्री बिड़लाके उसको प्रकट करनेमें कुछ अन्तर है। श्री बिड़लाका कहना है कि इस समय इंग्लैण्डमें बाज़ार-भावकी जो धारणा है, उसके साथ स्टर्लिंग-बचतका हिसाब जोड़ दिया जाय और युद्धोत्तर-कालमें स्टर्लिंगकी क़ीमत उतरनेपर इस समय स्टर्लिंगमें जितना माल मिलता है, उतना ही युद्धके बाद मिलेगा, यह वचन ब्रिटिश सरकार दे। अर्थात् लड़ाई समाप्त होनेपर स्टर्लिंगकी डालर या सोनेमें यदि क़ीमत गिरने लगे, तो भारतको नुक़सान न हो। इस सम्बन्धमें दो मत नहीं हो सकते; मगर इससे भारतीय स्टर्लिंग निधिका प्रश्न सन्तोषजनक रीतिसे हल नहीं होता। इस समय स्टर्लिंगका डालर और रुपएके साथ भाव नियन्त्रित है। आज रुपएकी वस्तुओंके अन्दर क़ीमत युद्ध-पूर्वकी परिस्थितिकी तुलनामें आधेसे अधिक नीचे उतर गई है और इसके अधिक नीचे गिरनेकी सम्भावना है। प्रो० वकीलकी यह आशंका कि लड़ाईके बाद व्यापारी लेन-देन शुरू होनेपर रुपएके गिरते हुए भावकी छाया स्टर्लिंगकी क़ीमतपर पड़नेसे वह और भी गिरेगा, अकारण नहीं कही जा सकती। यदि यह भय सत्य सिद्ध हुआ और बाज़ारमें रुपएका भाव १८ पेंससे भी नीचे जाने लगा, तब भी चलन-क़ायदेके मुताबिक रिज़र्व-बैंकको १ शि० ५$\frac{९}{३२}$ पेंसके भावसे स्टर्लिंग-हुण्डियाँ व्यापारियोंको बेचकर रुपएका १८ पेंस भाव स्थिर रखना पड़ेगा। बाज़ारकी अपेक्षा रिज़र्व-बैंकसे एक रुपएके बदले अधिक पेंस मिलते हैं। ऐसी स्थितिमें एक्सचेंज-बैंकों और व्यापारियोंकी स्टर्लिंग-हुण्डियोंके लिए स्वभावतः माँग बढ़ेगी। इस व्यवहारसे गंगाजलीमें आज दिखनेवाली स्टर्लिंग-बचतकी भारी रक़म विलीन और अदृश्य हो जायगी। बाज़ारमें चलनकी मात्रा कम होनेसे बाज़ार-भाव उतरने लगेगा और भारत मन्दीके जालमें पुनः फँस जायगा।

इंग्लैण्डमें जमा स्टर्लिंग-निधिके विनियोगके लिए निम्न सुझाव पेश किए गए हैं—(१) रेल्वे, पोर्ट-ट्रस्ट आदिमें से स्टर्लिंग-सिक्युरिटियाँ और अन्य कम्पनियोंकी स्टर्लिंग-पूँजी दे दी जाय। (२) भारतके उद्योग-धन्धों व व्यापारोंमें ब्रिटिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकोंका निहित माल-मत्ता खरीद लिया जाय। (३) युद्धोत्तर-कालमें भारतके उद्योगीकरणके लिए जो मशीनरी, यन्त्र, प्लाण्ट आदि सामान लगेगा, उसको लेनेके लिए एक स्टर्लिंग-फण्डका निर्माण किया जाय। इनमें से पहली बात बहुत-कुछ भारत-सरकार अमलमें ला रही है। रेल्वेका स्टर्लिंग-डिबेंचर ४ फरवरी, १९४४ को वापस किया जायगा। पोर्ट-ट्रस्ट व अर्द्ध-सरकारी संस्थाओंका डिबेंचर भी सम्भवतः वापस कर दिया जाय। दूसरी बात सरकार मानेगी, इसमें सन्देह है। भारतके उद्योग-धन्धोंमें, 'मैंचेस्टर गार्जियन'के मुताबिक, ४०० कोटि रुपयोंकी ब्रिटिश पूँजी लगी हुई है। यह पूँजी वापसकर सरकार भारतीय व्यापार-व्यवसायसे अंगरेज़ोंको निकाल बाहर करेगी, यह आशा करना व्यर्थ है।

भारतमें लगी ब्रिटिश या विदेशी पूँजीको देशके बचे स्रोतोंसे हासिल किया जाय, यह हमेशा वांछनीय है। मगर प्रश्न यह है कि यह किसके द्वारा और किसके लाभके लिए किया जाय? क्या यह सम्भव नहीं है कि यह कुछ पूँजीपतियों, उद्योगपतियों, मिल-मालिकोंके हाथमें न जाकर सर्वसाधारणके पास जाय? जिस प्रकार रेल्वे सरकारी है, क्या उसी तरह भारतीय उद्योग-धन्धोंमें लगी ब्रिटिश पूँजीको वापसकर सरकार उनपर स्वत्व नहीं प्राप्त कर सकती?

सरकारकी ओरसे प्रस्ताव किया गया है कि औद्योगिक पुनर्निर्माणके लिए आवश्यक यन्त्र-सामग्री, मशीनरी व प्लाण्ट युद्धोत्तर-कालमें खरीदनेके लिए एक स्वतन्त्र स्टर्लिंग-फण्डका निर्माण किया जाय। इसका उद्देश्य ब्रिटिश उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन देना, युद्धोत्तर-कालमें ब्रिटिश कल-कारखानोंको चालू रखना और सम्भावित मन्दीके प्रभावसे ब्रिटेनको बचाना है। दूसरे स्टर्लिंग-पावनेके लन्दनमें होनेसे भारत एकमात्र ब्रिटेनसे मुँहमाँगे दामोंपर मशीनरी लेनेको बाध्य किया जायगा और उसे अन्य देशोंसे स्वेच्छापूर्वक मशीनरी लेनेकी स्वतन्त्रता न होगी। इसी कारण उपर्युक्त प्रस्तावका विरोध किया गया, जिसके फलस्वरूप वह वापस ले लिया गया है।

ऐसी अवस्थामें स्टर्लिंग-बचतके विनियोगके लिए दो ही प्रस्ताव शेष रह गए हैं—स्टर्लिंग-बचतको स्वर्णमें परिणत कर दिया जाय और उसे लन्दनमें न रखकर दिल्लीमें रखा जाय; या स्टर्लिंग-बचतको डालरमें बदल दिया जाय। किन्तु लन्दनके 'इकनामिस्ट'ने इसका विरोध करते हुए लिखा है कि कोई भी राष्ट्र इस समय भारतको मशीनरी देनेको तैयार न होगा। ब्रिटेन अपनी स्वर्ण-निधि कम करनेको तैयार नहीं है, क्योंकि युद्धोत्तर-कालमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका आधार स्वर्ण या स्वर्ण-मानदण्डपर आश्रित मुद्रा होगी। वह स्टर्लिंगको डालरमें बदलनेके लिए भी तैयार नहीं है, क्योंकि इससे स्टर्लिंगका मान घटता है। भारत परतन्त्र है। उसकी आर्थिक नीतिका निर्द्धारण करना ह्वाइट-हालके ही हाथमें है, इसलिए जो नीति उपनिवेशोंने बरती है, उसपर भारतको चलनेका अधिकार नहीं है।

स्टर्लिंग-बचतके जिस तारण व पृष्ठबलपर नोट जारी किए गए हैं, या आगे भी जारी किए जायँगे, उन्हें वापस लिए बग़ैर उसका उपयोग किसी अन्य कार्यमें नहीं किया जा सकता। भारत-सरकारने जो स्टर्लिंग-ऋण चुकाया है, वह या तो लोगोंसे या रिज़र्व-बैंकसे कर्ज़ लेकर चुकाया है। ब्रिटिश सरकारने जो रक़म स्टर्लिंगमें भारत-सरकारको देती है, उससे उसे भारतमें मित्र-राष्ट्रोंके लिए माल खरीदना तथा अन्य खर्च चलाना होता है। फलतः ब्रिटिश सरकार द्वारा मिलनेवाली स्टर्लिंग-रक़मके तारण व पृष्ठबलपर यहाँ सरकार नोट जारी करती है। अतः ब्रिटिश सरकार द्वारा मित्र राष्ट्रोंकी ओरसे भारत-सरकारको मिलनेवाली स्टर्लिंग-रक़मका उपयोग चलन-विस्तारके सिवा अन्य कार्योंमें नहीं हो सकता। इसलिए प्रो० वकील तथा अन्य अर्थशास्त्रियोंकी माँग है कि ब्रिटेन और अमरीका सीधे भारतसे माल खरीदें और उसका मूल्य स्वर्णमें दें। इससे भारत-सरकार मित्र-राष्ट्रोंके लिए माल खरीदनेके झंझटसे बच जायगी और भारतमें बेतहाशा नोटोंका छपना भी रुक जायगा। साथ ही महँगीका असर भी बहुत अंशोंमें कम हो जायगा। पर भारतकी इस माँगको भी स्वीकार नहीं किया गया है।

जो उपनिवेश अपना वैदेशिक विनिमय स्टर्लिंगमें रखते हैं उनमें से ८ जनवरी, १९४३ को भारतका ३०८३ लाख पौण्ड, आस्ट्रेलियाका ५९० लाख पौण्ड, न्यूज़ीलैण्डका २५० लाख पौण्ड और आयरका ९३० लाख पौण्ड जमा था। दक्षिण अफ्रीका इसका एक अपवाद है, क्योंकि वह अपनी बचत सोनेमें रखता है। भारतको छोड़कर अन्य देश थोड़ी मुद्रा ज़रूरतोंको पूरा करनेके लिए लन्दनमें कमसे कम स्टर्लिंग रखते हैं। कनाडा डालरमें अपना वैदेशिक विनिमय रखता है, फिर भी अपनी बचतका एक हिस्सा स्टर्लिंगमें रखता है। युद्धारम्भसे १९४२ के अन्त तक कनाडामें ब्रिटेनको १८० लाख डालर देना था, जो ५६१ करोड़ रुपयोंके बराबर होता है। कनाडाने न केवल सरकारी ऋण, बल्कि अंगरेज़ोंकी निजी (स्टर्लिंग) पूँजी भी वापस कर दी है। आर्जेन्टाइना साम्राज्यसे बाहरका देश होकर भी स्टर्लिंगमें भुगतान लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया है। आर्जेन्टाइना-ब्रिटिश-समझौतेके अनुसार १,०००,००० डालरसे ऊपरकी रक़म सोनेमें बदली जा सकेगी। ब्रिटेनने यह भी वचन दिया है कि यदि किसी कारण डालरके मुक़ाबलेमें स्टर्लिंगकी क़ीमत गिरी, तो जितने अंशमें क़ीमत गिरेगी, उतने अंशका वह स्वर्णमें हर्जाना भर देगा।

जब उपनिवेश अपनी भुगतानका कुछ भाग स्वर्णमें और कुछ भाग कनाडियन और दक्षिण-अफ्रीकन स्टाककी ब्रिटिश मिल्कियतमें लेते हैं, तब यदि भारत भी अपने मालकी क़ीमत सोनेमें माँगे और इस बातका आग्रह करे कि भारतमें अंगरेज़ोंकी लगी निजी पूँजी वापस कर ली जाय, तो इसमें ब्रिटेनके नाराज़ होनेकी क्या बात है? आर्जेन्टाइनाको स्वर्णकी गारण्टी दी गई है; मगर भारतको तो वह भी नहीं दी गई है। फिर इंग्लैण्डमें सब देशोंके कुल जमा ६००० लाख स्टर्लिंगमें भारतका, 'इकानमिस्ट'के शब्दोंमें, ५० प्रतिशत भाग है।

भारतके स्टर्लिंग-ऋणके प्रत्यावर्त्तनसे यह समझा जाता है कि लन्दनके आर्थिक प्रभुत्वका अन्त हो गया; पर बात ऐसी नहीं है। जब तक अंगरेज़ोंकी निजी पूँजी भारतमें लगी हुई है और उसे वापस करनेकी निकट भविष्यमें कोई सम्भावना नहीं है, तब तक लन्दनके आर्थिक प्रभुत्वका अन्त नहीं हो सकता। यदि भारत-सरकारने इसको वापस करना मान भी लिया, तब भी ब्रिटिश आर्थिक साम्राज्य भारतमें बना रहेगा; क्योंकि इस बातकी सदा सम्भावना है कि ब्रिटिश पूँजी भारतमें उद्योग-धन्धे स्थापित करे और कल-कारखाने चलाय। कुछ शर्तें पूरी करके वे नये उद्योगोंके लिए संरक्षण भी प्राप्त कर सकते हैं। ये शर्तें और कुछ नहीं, केवल इतनी हैं कि डाइरेक्टरोंमें एक भाग भारतीय हो, भारतीयोंको उद्योग सीखनेकी सुविधा देनी होगी और पूँजीका एक भाग भारतीय हो। ब्रिटिश पूँजी और प्रबन्ध द्वारा संचालित और नियन्त्रित उद्योगोंका अन्त उद्योगोंको पूर्णरूपसे राष्ट्रीय बनाकर ही किया जा सकता है।

ऐसी परिस्थितिमें हमारे लिए यह अधिक अच्छा होगा कि हम इन तीन प्रश्नोंकी ओर मुख्यतया ध्यान दें—(१) रुपएकी घटती क्रयशक्ति—बाज़ार-भावका बढ़ना—और न घटे, इसके लिए कोई क्रियात्मक योजना बनाना; (२) स्टर्लिंगका स्वर्ण-भाव या डालर-भाव युद्धोत्तर-कालमें कम होनेपर गंगाजलीमें स्टर्लिंग-सिक्युरिटियोंकी वस्तुओंकी क़ीमतके होनेसे भारतको नुक़सान न हो, इसकी सावधानी रखना; और (३) विदेशी आयात-निर्यात-व्यापारसे जो अधिक फ़ायदा होता है और जिसके बदले स्टर्लिंगमें रक़म मिलती है, उसका विनियोग युद्धोत्तर-कालमें औद्योगिक पुनर्निर्माणमें करनेके लिए योजना बनाना। आशा है, देशके अर्थशास्त्री, व्यापारी-व्यवसायी और कारखानेदार इस समय मिलकर काम करनेसे नहीं चूकेंगे।

ट्यूनीसिया

श्री ईश्वरशरण

आजसे कोई ८ वर्ष पहलेकी बात है। होर-लावाल-पैक्ट द्वारा अबीसीनियाका अंग-भंग करनेका फ्रांस और ब्रिटेनकी प्रगतिगामी शक्तियोंका प्रयत्न विफल हो चुका था। इटालियन सेनाएँ द्रुतगतिसे दक्षिण-पश्चिम-अबीसीनियामें बढ़ रही थीं और उसके हवाई-जहाज़ निरीह अबीसीनियनोंको बमों और ज़हरीली गैस द्वारा 'सभ्य' बना रहे थे। पर एक तो इटालियनोंकी यह विजय-यात्रा आशासे धीमी एवं शिथिल थी और दूसरे आर्थिक अकुशोंके कारण इटलीवाले तंग आ गए थे। अतः सर्वत्र असन्तोष और क्षोभ फैल रहा था। इसी समय युद्धके सम्बन्धमें विदेश-मन्त्री काउण्ट चिआनोका वक्तव्य सुननेके लिए इटालियन धारा-सभाकी बैठक बुलाई गई। सभी डेपुटी क्षुब्ध और उत्तेजित नज़र आ रहे थे। ज्योंही काउण्ट चिआनो अपना वक्तव्य पढ़नेको उठे, एक डेपुटीने गरजकर पूछा—'क्या सरकार अंकुशोंसे होनेवाली हानिसे परिचित है?'

चिआनो पहले तो कुछ हतप्रभ हुए, फिर एक फीकी-सी मुस्कराहटसे उनका चेहरा खिल उठा और साहसपूर्वक उन्होंने कहा—'हाँ, है।'

दूसरे डेपुटीने चिल्लाकर पूछा—'तब यह लड़ाई क्यों जारी रखी जा रही है?'

इस बार चिआनो फिर कुछ हतप्रभ हुए और दूसरे ही क्षण उनके मुँहसे निकला—'रोमन साम्राज्यकी पुनः प्राप्तिके लिए! ट्यूनिस, कोर्सिका और नीसपर फिर इटालियन झण्डा फहरानेको!!'

डेपुटियोंके उत्तेजित चेहरों एवं बलखाते होंठोंपर सन्तोषकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्कराहट दौड़ गई और गृहका क्षुब्ध वातावरण तीव्र हर्षध्वनिसे गूँज उठा। इस हर्षध्वनिके पीछे थी इटलीकी वह साम्राज्य-लिप्सा, जिसका पोषण उसके कर्णधार पिछले ६२ वर्षोंसे करते आए हैं।

ट्यूनीसियापर एक युग तक रोमन सम्राटोंके झण्डे फहराते रहे हैं। ट्यूनिससे १॥ मील दूर स्थित कार्थेज उस समयकी याद दिलाता है, जब यहाँके जहाज़ वैदेशिक व्यापारमें रोमन जहाज़ोंसे प्रतियोगिता करते थे। यहाँकी वीर सेनाओंका इतिहास अभी इटलीवाले भूले नहीं हैं। मंगोलियाकी ओरसे आए तुर्कोंने न केवल रोमन साम्राज्योंका खात्मा ही किया, बल्कि ईसाइयों और यहूदियोंके साथ ऐसा दुर्व्यवहार भी किया, जिसकी स्मृति-मात्र दिल दहला देती है।

धूपकी तरह एक दिन तुर्कोंका साम्राज्य भी ट्यूनीसियासे तिरोहित हो गया। पर इटलीमें रोमन सम्राज्यके इस रत्नको पुनः प्राप्त करनेकी क्षमता नहीं थी। ब्रिटेन दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका तथा सुदूर-पूर्वके अपने साम्राज्यकी समस्याओंमें व्यस्त था। जर्मनी एक नए स्वप्नको सार्थक करनेकी ज़बरदस्त तैयारीमें लगा था। एल्सस-लारेन छिन जानेके कारण फ्रांस जर्मनीके 'लौह-पुरुष' बिस्मार्कको नीचा दिखानेकी फ़िराकमें था। पर बिस्मार्क फ्रांसके असन्तोषको एक नई दिशाकी ओर ले जानेका मौक़ा ढूँढ़ रहा था। १९ वीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें जब ओटोमन साम्राज्य लड़खड़ा रहा था, बिस्मार्कने फ्रांसको इशारा किया—'यह तुम्हारा समय है! जर्मनीको तो उपनिवेश चाहिए नहीं और ब्रिटेन ज़रूरतसे ज़्यादा हथिया चुका है।'

फ्रांसने इस इशारेसे लाभ उठाया और १८८१के एक दिन इटालियनोंने आश्चर्य-चकित हो देखा कि ट्यूनीसियापर फ्रांसका तिरंगा झण्डा फहरा रहा है! इस बीच इटालियनोंने जो लाखों लिरा खर्चकर ट्यूनीसियामें सड़कें बना ली थीं, वे भी फ्रांसीसियोंकी मिल्कियत हो गईं। ट्यूनिससे गोलेटा तककी ब्रिटिश रेल्वे ब्रिटेनके ही हाथमें रही, क्योंकि ब्रिटेन फ्रांसका इटलीसे अधिक नज़दीकी मित्र था। कुछ भी हो, इटली ट्यूनीसियाके भौगोलिक महत्व एवं खनिज-पदार्थों—फ़ास्फेट, जस्ता, सीसा, कच्चा लोहा, शोरा, सज्जी, लकड़ी तथा कोयला आदि—को अभी भी नहीं भूला है। यह इतिहासकी विचित्रता ही है कि जिस देशका ट्यूनीसियापर फ्रांसका अधिकार करानेमें परोक्ष हाथ रहा, वही आज इटलीकी सहायतासे मित्र-राष्ट्रों-सहित फ्रांसको वहाँसे अपदस्थ करनेके लिए एक जोखिम-भरी लड़ाई लड़ रहा है।

इस महायुद्धमें—जब कि संसारके विविध भागोंमें छै मोर्चोंपर एक साथ लड़ाइयाँ हो रही हैं, ट्यूनीसियाका भौगोलिक महत्व कई गुना अधिक हो गया है। नक़्शा देखनेपर यह बात आसानीसे हमारी समझमें आ जाती है। रूम-सागरके मध्य-दक्षिणमें स्थित होनेके कारण यदि यह मित्र-राष्ट्रोंके हाथोंमें रहता है, तो उन्हें रूम-सागरके जल-मार्गका स्वामी बना दे सकता है और अगर शत्रुके हाथोंमें चला जाता है, तो रूम-सागरके पश्चिमी द्वार जिब्राल्टर तथा पूर्वी द्वार एलेक्ज़ेंड्रिया (और सुदूर-पूर्वके लिए पोर्ट सैद तथा अदनमी) के महत्व एवं उपयोगिताको बहुत कम कर दे सकता है। इसपर मित्र-राष्ट्रोंका अधिकार हो जानेसे न केवल ट्यूनिस और बिज़ेरटेके बन्दरगाहोंके रूपमें उत्तरी अफ्रीकाकी कुंजी ही उनके हाथ लग जायगा, बल्कि रूम-सागरके जल-मार्गपर अधिकार हो जानेसे वे युद्धको लम्बा न होने देकर शीघ्र ही विजय लाभ कर सकेंगे। सुदूर-पूर्वमें मित्र-राष्ट्रोंके पश्चात्-पद होने और रूसको कम समयमें अधिक सहायता न भेज सकनेका एक प्रमुख कारण यह है कि मित्र-राष्ट्रोंको सेना और सामान सारे अफ्रीका महाद्वीपका चक्कर लगाकर केप-मार्गसे भेजना पड़ता है। रूम-सागरके मार्गके बजाय इस मार्गमें तिगुना समय लग जाता है और यह यात्रा सँहगी भी अधिक पड़ती है। साथ ही अगर मित्र-राष्ट्र इटली या मध्य-दक्षिणी यूरोपमें कहीं अन्यत्र आक्रमण करना चाहें, तो उसकी तैयारी तथा आधारके लिए भी ट्यूनीसिया बड़े महत्वकी जगह है।

ट्यूनीसिया उत्तरी-अफ्रीकाका सबसे विचित्र देश है। यह आधा सरसब्ज़ और आधा रेगिस्तान है। रूम-सागरके तटकी मातदिल आबहवा भी उसमें है और रेगिस्तानोंकी अनावृष्टि एवं आँधियाँ भी। बड़े-बड़े मैदानों और झीलोंकी भी उसमें कमी नहीं है और दो बड़ी-बड़ी पर्वत-श्रेणियाँ उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर फैली हैं। उत्तरके कुछ भागको छोड़कर ट्यूनीसियाका अधिकांश समुद्र-तट-पूर्वमें ही है, जो उत्तरसे दक्षिण-पूर्वकी ओर अर्द्ध-चन्द्राकार चला गया है। इस तटपर प्राकृतिक खाड़ियाँ है, जिनपर बने गाबी, सफ़ाक्स और ट्यूनिसके बन्दरगाह आँधी-तूफ़ानोंसे बहुत-कुछ सुरक्षित हैं। इसके उत्तर और पूर्वमें समुद्र, पश्चिममें मोरक्को, दक्षिणमें एल्जीरिया और दक्षिण-पूर्वमें लीबिया है। बरसाती हवाओंके मार्गमें पड़नेके कारण शेष उत्तरी अफ्रीकासे यहाँ अधिक वर्षा होती है। इसी कारण यह उपजाऊँ भी अपेक्षाकृत अधिक है। यहाँ झीलोंके अलावा प्राकृतिक झरनोंकी भी बहुतायत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जिनसे सिंचाईका काम लिया जाता है। अधिक बड़ी झीलोंमें नमक पैदा होता है। नदियाँ अधिक नहीं हैं। सबसे बड़ी नदी मेज़रदा है, जो एल्जीरियाके पहाड़ोंसे निकलकर उत्तर-पूर्वी ट्यूनीसियामें होती हुई रूम-सागरमें गिरती है। इसके मुहानेपर फ़ारीना नामक बन्दरगाह है। पहाड़ी प्रदेशमें नदियोंके तंग व तेज़ तथा मैदानमें धीमी व पानीके छिछलेपनके कारण उनसे यातायातका काम नहीं लिया जाता।

१९३१ की जनगणनाके अनुसार ट्यूनीसियाकी आबादी २४,१०,६९३ थी। इसमें २१,५९,१५१ मुसलमान (तुर्कों व अरबोंका मिश्रण), ५६,२४८ यहूदी और १,९५,२९३ अंगरेज़, फ्रांसीसी तथा इटालियन थे। पिछले १० वर्षोंमें यहाँकी आबादी तो बढ़ी ही है, साथ ही विदेशियोंके अनुपातमें भी अन्तर पड़ा है। रेलोंका काम ब्रिटिश तथा ट्राम और बिजली आदिका फ्रांसीसियोंके हाथोंमें है। व्यापारी क्षेत्रोंमें पिछले कुछ वर्षोंसे इटालियन और जर्मन भी काफ़ी घुसे हैं। चूँकि व्यापार तथा खेती आदिके प्रमुख क्षेत्र समुद्र-तटके आसपास ही हैं, अधिकांश आबादी भी इन्हीं क्षेत्रोंमें है। तटके पीछेके हिस्सोंमें आबादी बहुत कम है। भीतरके अधिकांश हिस्सेके रेगिस्तान या पहाड़ी होनेके कारण लोगोंके उदरपोषणका कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं है, जिसके फल-स्वरूप इन प्रदेशोंके अधिकांश निवासी खानाबदोश या जंगलों-गुफ़ाओंमें रहनेवाले असभ्य ही हैं।

भौगोलिक स्थितिके अनुसार ही ट्यूनीसियाकी पैदावार भी है। मोटा अनाज (बाजरा, जवार, जौ आदि), जैतून, खजूर, नमक, शोरा, सब्जी, पोटाश आदि यहाँकी मुख्य उपज है। जैतूनका तेल काफ़ी मात्रामें बाहर जाता है। कुछ कपास भी पैदा होती है; पर वह इतनी मोटी होती है कि उसकी रुईसे दरियाँ आदि ही विशेष बनती हैं। चमड़ेका काम भी यहाँ बहुत सुन्दर होता है। कारण, सवारी और मांस-भक्षणके लिए काफ़ी पशु पाले जाते हैं। इस समय ट्यूनीसियामें लगभग सवा लाख ऊँट, ३॥ लाख बैल, ८ लाख घोड़े, २ लाख खच्चर, १५ हज़ार सूअर, १५ लाख भेड़ें और १० लाख बकरे-बकरियाँ हैं। ट्यूनीसिया फ़ास्फेटका प्रमुख केन्द्र है, जो प्रतिवर्ष कई हज़ार मन बाहर भेजा जाता है।

ट्यूनीसियाकी मुख्य उपज समुद्र-तटपर ही होती है और वहींसे वह बाहर भेजी जाती है। अतः इसके अधिकांश नगर—जो व्यापारी मण्डी और बन्दरगाह दोनों हैं—समुद्र-तटपर ही स्थित हैं। इसके प्रमुख नगर और बन्दरगाह हैं—ट्यूनिस, बिज़ेरटा, सूसा, गाबी, कैरुआन, गाफ़्सा और सफ़ाक्स। इनमें से नगर कहलाने लायक तो एक ट्यूनिस ही है, जिसकी आबादी लगभग २॥ लाख है। अन्य नगरोंकी आबादी १६ से ४५ हज़ारके लगभग है। ट्यूनीसियामें बग़दाद और काहिरोके-से ऊँचे-ऊँचे मीनार यद्यपि नहीं दिखाई पड़ते; पर यरूशलम, शीराज और अदनके गुम्बद यहाँ भी दर्शककी आँखोंको आकृष्ट किए बिना नहीं रहते। ट्यूनिसमें गोरोंकी बस्ती अलग है और देशी लोगोंकी अलग। झीलें, सिद्दी माहरेजकी मस्जिद, रोमन-रंगमच और नाश्तेकी दुकानें ट्यूनिसकी अपनी विशेषता हैं। ट्यूनिस बहुत प्रसिद्ध सुरक्षित बन्दरगाह है। दूसरा प्रमुख बन्दरगाह है बिज़ेरटा, जिसे उत्तरी अफ्रीकाकी कुंजी कहा जाता है। तीसरा बन्दरगाह दक्षिण-पूर्वमें है गाबी। यह समुद्र-तटकी फ्रेंच-रेल्वेका, जो ट्यूनिस, बिज़ेरटा और गाबीको मिलाती है, महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। इसकी खाड़ी और उसमें स्थित ज़ेरबा द्वीप भी नाविक दृष्टिसे बड़े महत्वके हैं। सफ़ाक्स अभी छोटा और अपेक्षाकृत अनुन्नत है। उसके दक्षिणका अधिकांश भाग दलदल है। ट्यूनिससे ८० मील दक्षिणमें कैरुआन नामका प्रसिद्ध नगर है। व्यापारियोंके कारवाँका विश्राम-स्थल होनेके कारण इसका यह नाम पड़ा मालूम होता है। हज़रत मोहम्मदका साथी ओक़्वा ही इस नगर और इसकी प्रसिद्ध ऐतिहासिक मस्जिदका संस्थापक माना जाता है। चूँकि यह नगर इस्लामका प्रमुख क्रीड़ा-क्षेत्र रहा है, ईसाइयों और यहूदियोंकी बस्तियाँ यहाँ मुसलमानोंकी बस्तीसे अलहदा हैं। अरबी (मराकेश) और फ्रेंच भाषाएँ यहाँ प्रमुख हैं।

ट्यूनीसियाका युद्ध झीलों और पर्वत-शिखरोंका युद्ध कहा जा सकता है। एलीफेंट-हिलसे मेदेनीके उत्तर-पश्चिममें बना प्रसिद्ध 'मारेथ दुर्गपंक्ति' इस युद्धकी एक बहुत बड़ी सीढ़ी थी, जिसे मित्र-राष्ट्रोंने सफलतापूर्वक पार कर लिया है। इस दुर्ग-पंक्तिका मुख्य भाग हैं ट्यूनीसियाकी कुछ बड़ी-बड़ी झीलें और कतिपय पर्वत-शिखर। कई पर्वत-शिखर तो ६ हज़ार फ़ीट तक ऊँचे हैं। गाफ़्ता और झीलोंके बीच ऊँचे पहाड़ हैं, जिनसे लकड़ी और कुछ खनिज-पदार्थ आदि प्राप्त होते हैं। ट्यूनीसियन सहाराके पूर्वी छोरपर मातमाता नामक एक पुराना पठार है, जिसपर मोटे अनाजोंकी खेती होती है। इन पहाड़ोंकी चोटियोंपर कई पुराने क़िले बने हैं, जिनका महत्व युद्धने एक बार फिर ट्यूनीसियनोंके सामने ला दिया है। कई क़िलोंकी अभी हाल ही में मरम्मत हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक अथवा अर्थनीतिक दृष्टिसे ट्यूनीसियाका महत्व विशेष नहीं है। मंगोल, तुर्क और अरब-निवासियोंके उत्तराधिकारियोंने धर्मान्धताके सिवा और कोई उन्नति नहीं की। १८८१ में जब फ्रांसका इसपर कब्ज़ा हुआ, तो देश छोटे-छोटे झगड़ालू खानाबदोशोंके गिरोहोंमें बँटा था। इटलीने इसके कच्चे मालको अपने जहाज़ोंपर लादनेके लिए समुद्र-तट तक पहुँचनेकी गरज़से सड़कें बनाईं और फ्रांस-ब्रिटेनने रेलें और बादमें ट्रामें। इस समय वहाँ लगभग ५१८० किलोमीटर लम्बी सड़कें और २३०० किलोमीटर लम्बी रेल्वे-लाइन है। इनके द्वारा लगभग ४० लाख टन कच्चा माल ट्यूनीसियासे बाहर जाता है। पर पिछली आधी सदीके फ्रांसीसी शासनने अधिकसे अधिक कच्चा माल प्राप्त करनेके अलावा ट्यूनीसियनोंकी शिक्षा, रहन-सहनका स्टैण्डर्ड ऊपर उठाने, उद्योग-धन्धोंकी स्थापना एवं उन्नति और उन्हें स्व-शासनके योग्य बनानेके लिए कुछ भी नहीं किया। उल्टा फ्रांसीसी दमन, शोषण और ज़ोर-ज़ुल्मोंने गोरोंके प्रति—ईसाइयों तथा यहूदियोंके प्रति भी—अरबियोंमें एक घृणा और विरोध-भाव पैदा कर दिया है।

१२ मई, १८८१ को जब फ्रांसीसियोंने ट्यूनिसमें प्रवेश किया, तो ट्यूनीसियाके अयोग्य और दुर्बल बे (शासक) के सामने—जो अपने वज़ीरोंके षड्यन्त्रसे तंग आ चुका था और देशमें शासन तथा शान्ति क़ायम रख सकनेमें सर्वथा असमर्थ था—फ्रांसीसियोंको आत्म-समर्पण कर देनेके सिवा कोई चारा ही नहीं था। उस समय फ्रांसीसियोंके साथ जो सन्धि हुई थी, उसकी शर्तें आज शायद ही किसीको याद हों; पर यह सच है कि आज ट्यूनीसियाके कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता फ्रांसीसी ही हैं। फ्रांसके पतनके बाद इस 'साम्राज्य'के धनी-धोरी वे फ्रांसीसी सेनाध्यक्ष बन बैठे हैं, जो लावाल-पेताँकी जर्मन-समर्थक सरकारके विरोधी और मित्र-राष्ट्रोंके साथी हैं। युद्धके बाद जिन देशोंके आज़ाद किए जानेकी चर्चा जब-तब सुनाई देती है, उनमें इस अभागे देशका नाम ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता!

दक्षिण-अफ्रीकामें 'गोरावाद'

मोहनसिंह सेंगर

आखिर दक्षिण-अफ्रीकाकी पार्लमेण्टने, जिसमें न तो प्रवासी भारतीयोंका कोई प्रतिनिधित्व है और न जिसका मताधिकार ही उन्हें प्राप्त है, भारतीयोंके प्रबल विक्षोभ-विरोधके बावजूद 'दि ट्रेडिंग एण्ड औकूपेशन आफ़ लैण्ड (नाटाल एण्ड ट्रांसवाल) बिल' पास कर ही दिया। इसके अनुसार भारतीयोंके 'गोरे'-क्षेत्रोंमें व्यापार करने तथा ज़मीन खरीदकर मकान बनवाने अथवा वहाँ बसनेके 'अधिकारों'को और भी सीमित एवं संकुचित कर दिया गया है। एक तरहसे इस नए 'क़ानून' (जिसे ज़बर्दस्तका ठेंगा कहना अधिक उपयुक्त होगा) के पास होनेके बाद स्वस्थ क्षेत्रोंमें न तो भारतीय व्यापार-व्यवसाय कर सकेंगे और न वहाँ बस या अचल सम्पत्ति ही प्राप्त कर सकेंगे। जिस तेज़ी, अक्खड़पन और जल्दबाज़ीसे यह 'क़ानून' पास किया गया है, जोहेन्सबर्गके 'सण्डे टाइम्स'के शब्दोंमें वह बिदके साँड़का फाटककी ओर दौड़ना ही है!

आश्चर्य और दुःख तो इस बातका है कि आज जो लोग-लोकतन्त्र और विश्व-स्वातन्त्र्यके सुनहले सिद्धान्तोंकी गला फाड़-फाड़कर दुहाई दे रहे हैं; जो मानव-मात्रकी स्वाधीनता, समानता एवं भ्रातृत्वका दावा कर रहे हैं; और सर्वसाधारणको सब तरहके अभाव-अयोग्यताओंसे मुक्ति दिलाकर नई मानवताके श्रीगणेशका दम भर रहे हैं, वे ही उनका उल्लंघन करने—एक बहुत बड़े जन-समूहको गुलाम बनाए रखने, उसे नागरिक स्वतन्त्रतासे वंचित रखने और व्यापार करने तथा अचल सम्पत्ति प्राप्त करनेके सहज-समान अधिकारपर कुठाराघात करने—में तनिक भी संकोच व लज्जा अनुभव नहीं करते! जो लोग भारतीय आज दुनियाके विविध मोर्चोंपर गोरोंके अस्तित्व और लज्जा-रक्षाके लिए नहीं, बल्कि एक नई और बेहतर दुनियाके लिए—जिसमें वे भी उतने ही आज़ाद, सुखी एवं सन्तुष्ट होंगे जितने कि किसी भी अन्य देशके लोग—अपना खून बहा रहे हैं, उनके दिल व दिमाग़पर अपने देश तथा देशवासियोंके अपमानित एवं ज़लील करनेके लिए बनाए गए इस नए काले क़ानूनका क्या असर और प्रतिक्रिया होगी? जो करोड़ों भारतीय आज मित्र-राष्ट्रोंके घोषित युद्ध और शान्ति-उद्देश्योंकी सचाईमें विश्वासकर उन्हें सफल एवं यथार्थ बनानेके लिए युद्ध-प्रयत्नमें अपना सर्वस्व झोंक रहे हैं, उनपर इस काले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ानूनका क्या असर पड़ेगा ? सन् १९१५ में—जब कि भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकासे अपमानितकर खदेड़ भगाने और अमरीकामें उन्हें घुसने न देनेके लिए 'क़ानून' बनाए जा रहे थे, प्रसिद्ध भारतीय पत्रकार सन्त निहालसिंहने "नैश'ज एण्ड पैलेस मैगेज़ीन"में लिखा था कि भारतने ब्रिटिश सरकारको उसके सभी उपनिवेशों और डोमिनियनोंके सैनिकोंसे अधिक सैनिक दिए हैं। इस युद्धमें तो भारतकी जन और धनकी देन उससे दूने गुना ज़्यादा है और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों एवं फ़ौजियोंने भारतीय सैनिकोंके साहस एवं शौर्यकी मुक्तकंठसे प्रशंसा भी की है। तब फिर क्या यह काला और भेद-भावपूर्ण क़ानून ही इस सबका इनाम है ?

इस काले क़ानूनका आधार भी वही 'गोरावाद' (Whiteism) है, जिसे जर्मनोंने 'हैरेनफाक'-सिद्धान्तकी संज्ञा दी है। इसके अनुसार दक्षिण-अफ्रीकाके २० लाख गोरोंको—जो जन्म एवं वर्णतः कालोंसे सब तरहसे 'श्रेष्ठ' हैं—७० लाख कालोंकों एवं एशियावासियोंपर शासन करनेका दैवी अधिकार एवं आदेश प्राप्त है। आज मित्र-राष्ट्र जिस हिटलरवाद या नात्सीवादका खात्मा करनेके लिए लड़नेका दावा कर रहे हैं, वर्ण-श्रेष्ठता (Racial superiority) की भावना ही उसके दर्शनका मूल आधार है। नीत्शे और उसके वर्त्तमान सस्ते संस्करण रोज़ेनबर्गने इसी 'दर्शन'को जर्मनोंकी देशभक्तिके साँचेमें ढालनेका प्रयत्न किया है। 'विशुद्ध आर्य-रक्त' और 'नात्सिज़्म' इसीके ट्रेड-मार्क हैं तथा यहूदियोंकी पृथक बस्तियाँ (Ghettos) तथा उनके मूलोन्मेषके काले कारनामे इसी वर्ण-औद्धत्यके अस्वस्थ, अस्वाभाविक एवं अवांच्छनीय दुष्परिणाम ! रोज़ेनबर्गका कूटनीतिक बहाना एवं चेकोस्लोवाकिया और पोलैण्डपर किए गए आक्रमण—जिनसे वर्त्तमान महायुद्धका ज्वालामुखी धधका—इसीके अनिष्टकारी परिणाम हैं। पर वर्ण-औद्धत्यका यह मनोविकार अकेले जर्मनीकी ही बपौती नहीं है ; रोम, ब्रिटेन, इटली, स्पेन, हालैण्ड, बेल्जियम, पुर्त्तगाल आदि अधिकांश यूरोपीय देशोंके 'साम्राज्यों' अथवा 'उपनिवेशों'का इतिहास इसी वर्ण-औद्धत्य-जनित शोषण और पीड़नकी दर्द-भरी कहानी है। जर्मन—और उनके नए छुटभैया जापानी भी—अपने-आपको संसारकी सभी जातियों एवं वर्णोंसे श्रेष्ठ समझते हैं। अन्य यूरोपियन भी ऐसा ही समझते हैं या नहीं, यह तो हमें ठीक नहीं मालूम ; पर कालों और पीलोंसे तो हर गोरा अपने-आपको श्रेष्ठ ही समझता है।

पर यह क़ानून कोई नई या अनहोनी बात नहीं है। दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंका पिछली ८ दशाब्दियोंका इतिहास ही ऐसी ज़्यादतियों, ज़ुल्मों और ज़बरदस्तियोंकी लम्बी दास्ताँ है। पिछले ८३ वर्षोंके लम्बे अर्सेमें शायद एक भी दिन ऐसा नहीं मिलेगा, जिस दिन वहाँके गोरोंने भारतीयोंको—और कुछ नहीं, तो मनुष्यताके नाते ही—समानता एवं सम्मानकी दृष्टिसे देखा हो। रेलों, ट्रामों, सड़कों, पार्कों, पुस्तकालयों, सिनेमाघरों आदि उन सार्वजनिक वाहनों एवं स्थानोंको, जहाँ गोरोंके कुत्ते तक आज़ादीसे जा सकते हैं, काले भारतीयोंकी छाया-तकसे बचाया गया है ! और केवल बचाया ही नहीं गया, गोरोंके लिए उन्हें सुरक्षित रखनेके विचारसे भारतीयोंको घोर अपमानित एवं ज़लील भी किया गया है !

यूनियनकी उन्नतिमें भारतीयोंकी देन

सम्पत्तिकी खोज अथवा व्यापारके बाज़ारों और कच्चे मालकी सम्भावनामें इस अँधेरे महाद्वीपकी शान्ति भंग करनेवाले यूरोपीय अन्वेषकोंकी कथाएँ बड़ी ही रोमांचक एवं कुतूहलपूर्ण हैं। पर उनका उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक होगा। यहाँ इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि उत्तम-आशा-अन्तरीपसे आए डचोंने आजसे लगभग २५० वर्ष पूर्व केप-उपनिवेश बसाया। केपका समुद्र-तट न केवल समुद्री यात्राकी दृष्टिसे ही उन्हें सीधा एवं सुविधाजनक जान पड़ा, बल्कि यहाँकी यूरोपियनोंके अनुकूल आबहवा एवं उपजाऊ भूमिने भी उन्हें आकृष्ट किया। धीरे-धीरे अन्य गोरोंकी आँखें भी केपकी ओर फिरीं। १८४३ में इस उपनिवेशके प्रमुख भाग नाटालपर अंगरेज़ोंने कब्ज़ा कर लिया। इसके ब्रिटिश साम्राज्यमें मिलाए जानेकी घोषणा करते हुए महारानी विक्टोरियाने कहा था—"क़ानूनकी नज़रमें महज़ वर्ण, मूल, भाषा या महज़बके भेदोंके आधार कोई भेद-भाव या अयोग्यताएँ न होंगी ; और मन्शा व रूहसे क़ानूनका संरक्षण सबको निष्पक्ष रूपसे प्राप्त होगा।" विक्टोरियाके ख़ैरख्वाह कर्मचारियोंने अपनी मल्काके इस सदाशयतापूर्ण आदेशका कहाँ तक पालन किया, इसका उत्तर दक्षिण-अफ्रीकाके मूल निवासियों एवं बादमें एशियाई लोगोंके साथ किया गया उनका बर्त्ताव है।

कहते हैं कि गोरोंके प्रवेशसे पहले ही भारतीय अफ्रीकामें रहते और व्यापार-व्यवसाय करते थे। पर १८६० में नाटालकी औपनिवेशिक सरकारके अनुरोधपर भारतकी ब्रिटिश सरकारने गोरोंके ऊखके खेतोंमें काम करनेके लिए शर्त्तबन्द भारतीय कुली भेजना स्वीकार किया। एक ओर यह मूल निवासियोंकी—जो स्वभावतः गोरोंको अपने घरपर आधिपत्य जमाते देखकर खुश नहीं थे—परिश्रमशीलतापर उपेक्षाका एक ज़बरदस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्यवादी थप्पड़ सिद्ध हुआ और दूसरी ओर अपने ही देशमें विदेशी शासनके परिणाम-स्वरूप ग़रीब और बेकार बने भारतीयोंके लिए राहतका हाथ! इन भारतीय 'कुलियों'को न सिर्फ़ आर्थिक प्रलोभन और तीर्थ अथवा मेला दिखानेके झाँसोंसे ही जहाज़ोंपर चढ़ाया गया, बल्कि दक्षिण-अफ्रीका पहुँचनेपर मुफ़्त ज़मीनें देकर उन्हें वहाँ बसनेके लिए भी राज़ी किया गया। स्वदेश तथा परिजन-कुटुम्बके बिछोह, लम्बी यात्राकी असुविधा एवं अननुकूल जलवायुके बावजूद भारतीयोंने इस उपनिवेशको सुख-समृद्धिका स्वर्ग बनानेमें क्या-कुछ किया, यह गोरोंके ही मुँहसे सुनिए।

१५ जुलाई, १९१५ को दक्षिण-अफ्रीकाकी असेम्बलीमें बोलते हुए सर लीज़ हुलेटने कहा था—"भारतीय मज़दूरोंके आनेसे पहले इस उपनिवेशकी स्थिति निराशाजनक थी और देशकी साधन-सम्पत्ति विनष्ट हो रही थी। ऐसे ही समय भारतीयोंने आकर इसमें नई जान फूँकी। उन्होंने इसके समुद्र-तटको दक्षिण-अफ्रीकाका सबसे समृद्ध हिस्सा बना दिया। समूचे केप और ट्रांसवालमें इतनी अच्छी और उपजाऊ ज़मीन नहीं, जितनी कि नाटालके समुद्र-तटकी १०,००० एकड़ भूमि और उसमें एक बार होनेवाली फ़स्ल है। और यह सब पूर्णतया भारतीयोंके आगमनका ही परिणाम है। डरबन नगर तो बिल्कुल भारतीय बस्तीकी ही देन है।"

'माई अफ्रीकन जरनी' (मेरी अफ्रीका-यात्रा) में ब्रिटेनके वर्त्तमान प्रधान-मन्त्री श्री विंटसन चर्चिलने लिखा है—"पूर्वी अफ्रीकाके इन देशोंको जीतने और इनमें शान्ति स्थापित करनेमें सिक्ख सिपाहियोंने सम्माननीय भाग लिया है। सबसे पहले भारतीय व्यापारियोंने ही उन सब स्थानोंमें घुसकर तथा हर हालतमें वहाँ रहकर—जिनमें कोई गोरा नहीं जा सकता था और न कोई गोरा जीविकोपार्जन ही कर सकता था—व्यापार एवं यातायातके प्रारम्भिक साधनोंका श्रीगणेश किया। भारतीय मज़दूरोंने ही दक्षिण-अफ्रीकाके उस रेल-पथका निर्माण किया है, जिसपर आज उसका सब-कुछ निर्भर करता है।"

गुलाम-प्रथाकी नई आवृत्ति

जिस गुलाम-प्रथाका गोरोंने मानवीय भावनाओंसे प्रेरित होकर अन्त किया था, २७ वर्ष बाद 'शर्त्तबन्द कुली-प्रथा'के रूपमें उसे साम्राज्यवादी भावनाओंसे प्रेरित होकर पुनर्जीवित किया गया। देखनेमें दोनोंमें इतना अन्तर ज़रूर जान पड़ता है कि पहली जीवन-भर और पुश्त-दर-पुश्त चलती थी, जब कि दूसरीका समय ५ वर्ष निर्धारित कर दिया गया; पर कार्यतः दोनोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं। ५ वर्ष तक 'मालिक' की दयापर जीनेवाले कुलीके सामने यही विकल्प होता था कि वह तो वह शेष जीवन भी उसीकी दयापर अर्पित कर दे, या फिर भूखों मरे! एक और विकल्प भी गोरे साम्राज्यवादियोंने इसके सामने रखा और वह था वापस भारत लौट आनेका! मालिक पशुओंके अधिकारोंके अपहरण एवं उनके दुर्भाग्यका इससे अधिक खेदजनक उदाहरण शायद ही अन्यत्र कहीं मिले।

जिन भारतीयोंने दक्षिण-अफ्रीकाके बीहड़ जंगलोंको स्वर्ग-उद्यान बनाया, बंजर ज़मीनोंको लहलहाते खेतोंमें बदल दिया, अस्वस्थ-गन्दी बस्तियोंको सुरम्य नगर बना दिया, उनको इस सबका इनाम क्या मिला? स्थानाभावके कारण हम इस सम्बन्धमें विशेष कुछ न लिखकर केवल एक ही घटनाका उल्लेख यहाँ करेंगे। वर्त्तमान शताब्दीकी पहली और दूसरी दशाब्दियोंमें भारतीयोंके साथ होनेवाला दुर्व्यवहार एक तरहसे अपनी चरम सीमा पार कर चुका था। १९१३-१४ में सख्तीके विरोधके स्वरूप कई जगह भारतीयोंने काम करनेसे इन्कार कर दिया। कहते हैं कि रेण्डमें हड़ताल करनेवालोंको कोड़े लगाए गए, भूखों मारा गया, उनपर गोलियाँ चलाई गईं और उन्हें ऐसे कँटीले तारोंके घेरेमें बन्द रखा गया, जिनमें कि बिजलीकी तेज़ करेंट दौड़ रही थी। इन सब 'शिकायतों'को नाटाल-भारतीय समितिके सामने रखनेकी गांधीजीने बड़ी कोशिश की; पर उन्हें सुनवाई नहीं हुई।[1] कदाचित् इसी स्थितिके कारण स्व० ऐण्ड्रूज़को शर्त्तबन्द कुली-प्रथाको उठा देनेके लिए आन्दोलन करना पड़ा था। आपने कहा था कि (गोरोंकी यन्त्रणासे बचनेके लिए) प्रति १० लाखमें से ६६२ भारतीय आत्महत्या कर लेते हैं![2] भारतीयोंके साथ होनेवाले इस अमानुषिक व्यवहारके विरुद्ध भारतकी कांग्रेसने भी अपने १८९५, १८९७, १८९८ और १९०९ के अधिवेशनोंमें प्रस्ताव पास किए।

गांधीजी-जैसे ब्रिटिश-हितैषी एवं समर्थक भी इस अमानुषिक बर्बरताको सहन नहीं कर सके और मानवोचित व्यवहार पानेके लिए सत्याग्रहके रूपमें सर्वप्रथम बार भारतीयोंने अपूर्व विवेक एवं आत्मबलका परिचय दिया। अत्याचारोंके इस विरोधमें स्व० ऐण्ड्रूज़ और पोलकने भी गांधीजीका साथ दिया। हज़ारों भारतीय स्त्री-पुरुष जेलमें ठूँस दिए गए तथा पीटे और दण्डित किए गए। अन्तमें विजय सत्य, न्याय और औचित्यकी ही हुई और यूनियन-सरकारको झुकना पड़ा।

१ देखिए—'माडर्न रिव्यू', जनवरी १९१४, पृष्ठ ११२।
२ " " " " " " ११४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त हुआ गांधी-स्मट्स-समझौतेके रूपमें, जिसमें सरकारने भारतीयोंके साथ भलमनसाहतका बर्त्ताव करने तथा उनके हितों एवं अधिकारोंका आदर करनेका आश्वासन दिया। १९१४ में 'इण्डियन रिलीफ़ एक्ट' पास करके भारतीयोंको व्यापार करने, रहने व ज़मीन खरीदने आदिकी नाममात्रकी सुविधाएँ दी गईं और वर्णके कारण उनके साथ भेद-भाव न किए जानेका आश्वासन भी दिया गया। पर सही तौरपर ईमानदारीसे इसपर अमल ह्यापि नहीं किया गया और युद्धकी समाप्तिके बाद ये सुविधाएँ वापस ले ली गईं। शायद इसीलिए पिछले महायुद्धके बारेमें कहा गया है कि वह लड़ा तो गया था लोकतन्त्रकी सुरक्षाके लिए; किन्तु उसकी विजयसे सुरक्षित हुई गुलामी।[3]

एशियाई प्रश्न और वर्ण-द्वेष

पिछली शताब्दीके उत्तरार्द्धमें दक्षिण-अफ्रीकाका खाँड-व्यवसाय प्रधानतया मोज़ैंबिकके देशी लोगोंके हाथमें था। गोरोंके लिए गोरे मज़दूर रखकर इनसे प्रतियोगिता करना सम्भव नहीं था। अतः उन्होंने भारतीय मज़दूरोंको बुलवाया, जो अफ्रीकनोंके बराबर या उनसे अधिक मेहनती होकर भी उनसे काफ़ी सस्ते थे। पर चूँकि भारतीय मज़दूरोंके कार्य-कालकी शर्त्त केवल ५ वर्षकी थी, अतः यह समय पूरा हो जाने-पर वे स्वदेश न लौटकर वहीं बस गए। ये लोग या तो वहाँ खेती करने लगे या खाँड-व्यवसायमें ही लग गए। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन भारतीयोंको बुलाकर गोरोंने अफ्री-कनोंकी प्रतियोगिताको खत्म कर दिया था, उन्हींको अब वे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे। भारतीयोंका एकमात्र दोष यही था कि वे कम खर्च और अधिक परिश्रम द्वारा खेती और खाँड-व्यवसायमें सहज ही सफल होने लगे। कमसे कम परि-श्रमसे अधिकसे अधिक मुनाफ़ा कमानेवाले गोरोंने इसे अपने एकाधिकारको चुनौती समझा और एक स्वरसे भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकासे निकाल बाहर करनेके लिए आवाज़ उठाई।

दक्षिण-अफ्रीकामें प्रधानतया अंगरेज़, डच, जर्मन और फ्रांसीसी गोरे हैं। यही वहाँके शोषक हैं और यही शासक भी। इन लोगोंने मनमाने 'क़ानून' बनाकर भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकाकी नागरिकतासे वंचित रखने और निकाल बाहर करनेमें शायद ही कोई कसर रखी हो। इन 'क़ानूनी' अन-धिकार चेष्टाओंके अलावा पग-पगपर भारतीयोंको अपमानित और ज़लील करना तो जैसे हर गोरेने अपना फ़र्ज़ ही समझ रखा है। १८७२ में पास हुए क़ानून १२ की धारा १३-१४; १८९१ के क़ानून २५ की धारा ६५ और १८९६ के क़ानून ७ द्वारा बार-बार यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय दक्षिण-अफ्रीकाके निवासी नहीं, विदेशी एवं अस्थायी प्रवासी हैं। यूनियन-पार्लमेंटमें एकाधिक बार कहा गया है कि भारतीयोंको यहाँ कुलियोंके तौरपर लाया गया था, प्रवासियोंके तौरपर नहीं। १८८५ के क़ानून १७ में कहा गया है (यह क़ानून ट्रांसवालमें १८९५ में प्रचारित हुआ) कि ५ वर्षकी मियाद खत्म होनेपर भारतीय या तो नया शर्त्तनामा भरें या भारत लौट जायँ। जो यह दोनों बातें न करके दक्षिण-अफ्रीकामें ही रहेंगे, उन्हें इस अवांछनीय प्रवासके लिए ३ पौंड प्रतिव्यक्ति विशेष कर देना पड़ेगा। इसी क़ानूनकी धारा ८ में कहा गया है कि कोई भी निषिद्ध प्रवासी (यानी भारतीय) व्यापार करने, ज़मीन खरीदने या अचल सम्पत्ति प्राप्त करनेका लाइसेंस हासिल नहीं कर सकेगा और अगर किसी तरह ऐसा लाइसेंस प्राप्त भी कर लेगा, तो वह लेनेकी तारीखसे ही रद्द समझा जायगा। इसके अतिरिक्त ट्रांसवालमें रहनेवाले भारतीयोंको अपनी सब अँगुलियोंके निशान शनाख्तके लिए अलग-अलग और एक साथ देनेका क़ानून भी बनाया गया।

दक्षिण-अफ्रीकन कृषि-संघमें प्रवासी भारतीयोंपर लगाए गए ३ पौंडके इस विशेष करके सम्बन्धमें बोलते हुए सर टामस हिल्सपने कहा था—"इस लाइसेंसका अभिप्राय भारतीयोंको इस देशमें बसने नहीं देना है। इसे उपनिवेशमें पैदा हुए भार-तीयोंपर भी लागू किया गया है। अगर इसे हटा दिया जाय, तो भारतीय यहाँ स्वतन्त्र नागरिककी तरह बस जायँगे। हम भारतीयोंको शर्त्तबन्द कुलियोंके रूपमें ही चाहते हैं, स्वतन्त्र नागरिकके रूपमें नहीं।"[4]

सन् १९१३ के 'इमिग्रेशन-एक्ट' द्वारा समस्त संसारके भारतीयोंको, उनके रहन-सहनके ढंग और आर्थिक आदतोंके कारण दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासके लिए 'विदेशी' अथवा 'अयोग्य' एवं 'आवांछनीय प्रवासी' घोषित कर दिया गया। भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकाकी नागरिकतासे तो वंचित रखा ही गया; पर बिना सरकारी आज्ञापत्रके उनके एक प्रान्तसे दूसरेमें जा सकने-पर भी पाबन्दी लगा दी गई। और इसपर भी तुर्रा यह कि यूनियनके प्रधान न्यायालय तथा अन्य अदालतोंने इस अनुचित एवं अनीतिपूर्ण बेहूदगीपर न्यायकी मोहर भी लगा दी। इस-पर बोलते हुए तत्कालीन आन्तरिक मन्त्री (और यूनियन-पार्लमेंटके वर्त्तमान विरोधी-दलके नेता) डा० मालानने बड़े

[3] देखिए—The Tyranny of Colour : By P. S. Joshi.

[4] देखिए—'माडर्न रिव्यू', जनवरी १९१४, पृष्ठ ११७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्वसे कहा था—"भारतीयोंके लिए एकमात्र रास्ता है समुद्रकी ओर, उपजाऊ ज़मीनोंकी तरफ़ नहीं !"

इस प्रकार भारतीयोंको नागरिकता तथा म्युनिस्पल एवं राजनीतिक मताधिकारसे वंचित रखनेमें तो गोरे अवश्य सफल हुए ; पर उनको दक्षिण-अफ्रीकासे निकाल बाहर करनेमें उन्हें कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। अब उन्होंने अनेक प्रकारके बहानों एवं षड्यन्त्रों द्वारा न्याय और क़ानूनकी परवाह छोड़कर अधिकाधिक ज़्यादतीसे काम लेना शुरू किया। भारतीयोंको हर तरहसे अपमानित और ज़लील किया जाने लगा और उन्हें अशिक्षित, गन्दे, नीची रहन-सहन और आचार-नीतिवाले कहकर व्यापार-व्यवसाय और आवास-क्षेत्रोंसे चुन-चुनकर निकालने तथा गोरी बस्तियोंसे दूर रखनेका धारा-सभा और अदालतोंमें नाटक किया जाने लगा। १९२४ में इसके लिए 'क्लास-एरियाज़ बिल' पेश किया गया। इसके दूसरे वाचनपर बोलते हुए स्मट्स-मन्त्रिमण्डलके आन्तरिक सदस्य सर पैट्रिक डंकनने कहा था—"इस बिल द्वारा हम एशियावासियों या भारतीयोंके प्रश्नको हल करना चाहते हैं। संसारके किसी भी दूसरे हिस्सेमें यह समस्या नहीं है, जहाँ कि यूरोपीय जाति एशियावासी जातिके संपर्क-संघर्षमें आई हो। यह समस्या केलिफोर्निया, ब्रिटिश-कोलम्बिया या कनाडाकी समस्यासे भी पेचीदा है। दक्षिण-अफ्रीकामें हमारी स्थिति उन सब उपनिवेशोंसे भिन्न है, क्योंकि यहाँ गोरी जाति आबाद है, जो यहाँ सभ्यता लाई है—जिसपर कि इस देशकी सभ्यताका अस्तित्व निर्भर करता है—और जिसके चारों ओर देशी लोग हैं, बाहरसे आए हुए नहीं, जिन्हें इसी यूरोपीय सभ्यता द्वारा शिक्षित करना तथा बर्बरतासे सभ्यताकी ओर लाना है।... जब १९१३ का इमिग्रेशन-एक्ट पास हुआ, तो भारतीयोंके प्रतिनिधियोंने यह स्वीकार भी किया कि वे और अधिक यहाँ नहीं बसेंगे। जब यह क़ानून पास हुआ, तो यद्यपि यह आश्वासन दिया गया था कि भारतीयोंके नामसे कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायगा, फिर भी इसके अधीन प्राप्त अधिकारों द्वारा शासक एशियाई मुल्कों—और खासकर भारत—से आए लोगोंका और आना बन्द कर सकते हैं।... इस बिलको पेश करनेका कारण है नाटाल तथा ट्रांसवालमें भारतीयोंका दबाव तथा वर्ण, समाज और व्यापारका संघर्ष। मैं बिल्कुल साफ़ कह देना चाहता हूँ कि यह बिल गोरी आबादी पर भारतीयोंके दबावके कारण पेश किया गया है। इस देशके लोग उस 'खतरे'की चर्चा कर रहे हैं, जो दक्षिण-अफ्रीकाके भारतीयोंकी प्रतियोगिताके कारण गोरोंको है।"

मज़दूर-दलके नेता (और बादमें रक्षा-मन्त्री) कर्नल क्रैक वेलने कहा था—"यह हमारा अधिकार ही नहीं, कर्त्तव्य भी है कि हमने जिस पाश्चात्य सभ्यताकी छाप इस देशपर लगाई है, उसे यहाँ क़ायम भी रखें। लोकमत उस समय तक सन्तुष्ट नहीं होगा, जब तक कि सरकार ज़बरदस्ती या अन्य उपायों द्वारा इस देशसे एक-एक एशियावासीको निकाल बाहर नहीं करती।... पहला हमला होना चाहिए म्युनिस्पल-नियमों और सार्वजनिक स्वास्थ्यके क़ानूनोंको कठोरतापूर्वक लागू करके।.....ऐसा करनेसे बहुतसे लोगोंके रास्तेमें भारी कठिनाइयाँ पैदा हो जायँगी। मैं सरकारसे यह भी अनुरोध करूँगा कि जो लोग इन कठिनाइयोंको दुर्लंघ्य समझें, उन्हें अपने जातीय घरोंको लौटनेके लिए सरकार पर्याप्त आर्थिक सहायता दे।"

इसी अवसरपर प्रधान-मन्त्री जनरल स्मट्सने कहा था—"मुझे भारतीयों या पृथ्वीके किन्हीं अन्य भद्रजनोंके विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। लेकिन हमें एक महान कार्य सौंपा गया है। दक्षिण-अफ्रीकाके गोरे एक महान ध्वजा लेकर आगे बढ़ रहे हैं। विधाताने हमारे हाथोंमें एक विशाल मशाल दी है। हम इसे आगे ले जायँगे और इस देशमें गोरी सभ्यताके आधारको स्थायी बनायँगे !"[५]

यद्यपि सभ्यता और लोकतन्त्रके नामपर दक्षिण-अफ्रीकेके 'गोरावाद'का प्रचार करनेवाले सभी सरकारी और ग़ैरसरकारी एजेंट 'क्लास एरियाज़ बिल'के सम्बन्धमें एकमत थे ; पर इसके एशियाई प्रश्नका मनचीता हल सम्भव न देखकर कई निहित हितोंवाले गोरे बौखला उठे। पार्लमेंटमें अपनी हार होनेकी आशंकासे स्मट्सने गवर्नर-जनरलको समझा-बुझाकर उसे भंग करवा दिया। नए चुनावोंके फल-स्वरूप जनरल हर्टज़ोग मज़दूरों और राष्ट्रवादियोंकी सम्मिलित सरकार बनाई, जिसमें आन्तरिक मन्त्री हुए परम भारतीय-विरोधी डा० एफ० ए०

५. गोरी सभ्यताके ध्वजाधारी इन्हीं प्रधान ट्रस्टी महोदयने हाल ही में अपने ही श्रीमुखसे फरमाया है—"देशी कर्मचारियोंके भोजन, स्वास्थ्य और घरोंके सम्बन्धमें हमने तौरपर अब तक कुछ भी नहीं किया है !..... इस काम अब श्रीगणेश किया जा रहा है।" और इसी परायणताके बलपर आपने अभी हाल ही में, जब कि निवेशोंको अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षणमें रखनेका प्रस्ताव गया, तो फरमाया कि उपनिवेशोंका शासन ब्रिटिश आन्तरिक प्रश्न है ! —'सोशल वैल्फ़ेयर', २ अप्रैल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालान। आपने 'क्लास एरियाज़ बिल'को १९२६ में 'दि एरियाज़ रिज़र्वेशन बिल'के नामसे परिवर्त्तित रूपमें पेश किया। यह पहले बिलसे कई गुना अधिक प्रतिगामी और अन्यायपूर्ण था। इसमें क्रैसवेलकी बुद्धि और बोयडेलकी प्रतिभाने समाजवादके नामपर वर्ण-औद्धत्य तथा बोअर-गुलाम-मनोवृत्तिके राष्ट्रवादियोंका वर्ण-द्वेष कूट-कूटकर भर दिया था। इसका उद्देश्य न सिर्फ़ कुछ उपजाऊ और स्वस्थ क्षेत्रोंको ही गोरोंके लिए सुरक्षित करना था, बल्कि भारतीयोंको खदेड़कर समूचे दक्षिण-अफ्रीकाको गोरों के लिए सुरक्षित करना था।

यूनियन-पार्लमेंटमें इस बिलपर बोलते हुए डा० मालानने कहा था—"यह आम धारणा है कि इस देशकी आबादीमें भारतीय विदेशी जाति हैं; और जब तक इनकी संख्यामें काफ़ी कमी नहीं हो जाती, इस समस्याका कोई हल स्वीकार्य न होगा।...और भारतीयोंको स्वदेश लौटनेके लिए जो मजबूर किया जा रहा है, उसके साथ आर्थिक दबाव भी डाल जायगा।"

इस प्रतिगामी बिलका समूचे भारतमें इतना ज़बरदस्त विरोध हुआ कि भारत-सरकार और अधिक मौन एवं तटस्थ नहीं रह सकी। लोकमतके दबावके कारण उसने भारतीयोंकी वास्तविक वस्तु-स्थिति जानने तथा उनके हितों व 'अधिकारों'(?) की सुरक्षाके लिए यूनियन-सरकारसे बातचीत करने सर जार्ज पैंडिसन, माननीय श्रीनिवास शास्त्री तथा सर हबीबुल्लाखाँ आदिका एक शिष्टमण्डल दक्षिण-अफ्रीका भेजा। केपटाउनमें एक गोलमेज़-कान्फ्रेंस हुई, जिसमें 'केपटाउन-समझौता' अथवा 'इण्डो-यूनियन-समझौता' हुआ। इसके सम्बन्धमें डा० मालानने यूनियन-पार्लमेंटमें कहा—"यह कोई कठोर और पालन करने लायक सन्धि नहीं, बल्कि एक मैत्रीपूर्ण समझौता है। इस सम्बन्धमें किसी भी समय क़ानून बनानेका अधिकार यूनियन-सरकारने खो नहीं दिया है।"

केपटाउन-समझौता : एक धोखा

केपटाउन-समझौतेकी मुख्य धाराएँ इस प्रकार हैं—(१) अपमानजनक 'क्लास-एरियाज़ बिल' पास नहीं किया जायगा। (२) प्रवासी भारतीयोंको 'स्वेच्छा'से पुनः भारत भेजनेकी एक सहायक योजना बनाई जायगी। (३) प्रवासी भारतीयोंको अपने स्त्री-बच्चोंको दक्षिण-अफ्रीकामें ला सकनेका अधिकार दिया जायगा। (४) भारतीयोंके लिए रहन-सहनका पाश्चात्य ढंग तय किया जायगा। (५) प्रवासी भारतीयोंके हितों एवं अधिकारों, उनके भावी विकास और उन्नति तथा गोरोंको भारतीयोंकी आशा-आकांक्षाओंसे परिचित करानेके लिए एक गैर-सरकारी भारतीय एजेण्ट दक्षिण-अफ्रीकामें रखा जायगा।

इस समझौतेपर हस्ताक्षर हो जानेके बाद केपटाउनके सिटी-हालमें हुई सभामें बोलते हुए माननीय श्रीनिवास शास्त्रीने कहा था कि इसके फल-स्वरूप यूनियन-सरकार और भारतीयोंमें पूर्ण सद्भावना स्थापित होगी। स्व० ऐण्ड्रूज़ने कहा था कि इससे भारतीयोंकी मर्यादा तथा सामाजिक स्थिति स्वीकार कर ली गई है; वे विदेशी नहीं माने जाँयगे; दोनों जातियोंमें मैत्रीपूर्ण वातावरण स्थापित हो गया है और सभी लोग एशियाई-विरोधी उद्गारोंकी निन्दा कर रहे हैं। कोई दबाव डालकर भारतीयोंको बाहर नहीं भेजा जायगा और स्वेच्छासे जानेवालोंको सरकारी बोनस मिलेगा। गांधीजीने समझौतेसे पूर्णतया सन्तुष्ट न होते हुए भी उसे दोनों दलोंके लिए सम्मानपूर्ण बतलाया था और साथ ही उसके सम्भावित खतरोंकी ओर भी इशारा किया था।

समझौतेकी शर्त्तोंको ध्यानपूर्वक पढ़नेके बाद हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि वह सरासर एक धोखा और भारतीयोंके विक्षोभ एवं विरोधको ठण्डा करने तथा लोकमतको बरगलानेका लोग-दिखाऊ ढोंग-मात्र था। इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिससे भारतीयोंके प्रति गोरोंके रुखमें कोई मौलिक एवं स्थायी परिवर्त्तनकी सूचना मिलती हो। स्वयं ऐण्ड्रूज़ने २३ फ़रवरी, १९२७ को दक्षिण-अफ्रीकासे गांधीजीको दिए गए तारमें कहा था कि इस समझौतेसे प्रवासी भारतीय खुश नज़र नहीं आते। 'नाटाल मर्करी'ने लिखा था कि समझौतेकी सारी चर्चा ही रहस्यपूर्ण रूपसे निराशाजनक है। 'अफ्रीकन क्रानिकल'ने तो माननीय शास्त्री और ऐण्ड्रूज़के मतोंकी कड़ी आलोचना करते हुए लिखा था कि इस समझौते द्वारा भारतने अपने आपको सभ्य और स्वतन्त्र राष्ट्र कहलानेका एक अवसर खो दिया है। भारत-सरकारने बिना भारतीय जनता या दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंका मत जाने इसे स्वीकारकर यूनियन-सरकारकी भारतीय-विरोधी नीतिपर अपनी सहमति एवं स्वीकृतिकी मोहर लगा दी। नाटाल इण्डियन कांग्रेसका जो शिष्टमण्डल केपटाउनकी गोलमेज़-कान्फ्रेंसमें शामिल हुआ था, उसने बिना कांग्रेस-कार्य-समितिकी सलाह-स्वीकृतिके ही समझौतेपर हस्ताक्षर कर दिए। माननीय शास्त्री और ऐण्ड्रूज़के आशावाद तथा गोरोंकी बातोंपर ज़रूरतसे ज़्यादा विश्वास करनेकी भावनाने प्रवासियोंको और भी क्षुब्ध बना दिया।

(अगले अंकमें समाप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

दो पत्र

(१)

सेवामें—श्री माखनलालजी चतुर्वेदी,

आपने लिखा है : "गुजराती, मराठी, बँगला आदि भाषाओंमें ऐसी विभिन्नताएँ मैं नहीं देखता, तब हिन्दीमें ही यह चीज़ सफल कैसे होगी? और क्यों न विभागीय संघर्षोंसे यह हिन्दी-जगत्की सर्वशक्तिमत्ताके लिए हानिकर वस्तु हो जायगी।"

प्रारम्भमें ही मैं अपना यह अपराध स्वीकार किए लेता हूँ कि समस्त हिन्दी-जगत्को भिन्न-भिन्न मण्डलोंमें विभाजित करनेका आन्दोलन मेरा ही चलाया हुआ है। दिल्लीके साहित्य-सम्मेलनके पहले मैंने इसका प्रारम्भ किया था। कृपया इस बातको न भूल जाइए कि जहाँ गुजराती, मराठी, बँगला इत्यादि भाषाओंका राज्य है, वहाँ हिन्दीका साम्राज्य है। साम्राज्यके भिन्न-भिन्न अंगोंको पूर्ण स्वाधीनता देकर हमें संघकी स्थापना करनी है। उदाहरणार्थ, यदि राजस्थानी लोग अपनी रीडरें राजस्थानी-भाषामें लिखना चाहते हैं, तो हमारे लिए यही उचित है कि हम उन्हें यह स्वाधीनता दे दें।

प्रारम्भमें यह आन्दोलन कार्यकी सुविधाके लिए ही उठाया गया था। दिल्ली-सम्मेलनने इसे स्वीकार भी कर लिया था। उसने प्रस्ताव भी पास कर दिया था, जिसका अभिप्राय यह था कि ब्रज-मण्डल, बुन्देलखण्ड-मण्डल इत्यादिका संगठन बोलियोंके आधारपर किया जाय। हिन्दी-जगत् इतना विस्तृत है कि बड़े-बड़े भूखण्डोंको लेकर हम ठोस गम्भीर काम नहीं कर सकते। हमें छोटे-छोटे जनपद बनाने ही पड़ेंगे।

विकेन्द्रीकरणकी ज़रूरत

केन्द्रीकरणकी हानियाँ हम देख ही रहे हैं। प्रयागमें सम्पूर्ण शक्तिको केन्द्रित करके हम लोगोंने कोई बहुत बुद्धिमानीका कार्य नहीं किया। हिन्दी-भाषा-भाषी २० करोड़ हैं। २० करोड़ व्यक्तियोंको मानसिक भोजन देनेका कार्य प्रयागके ४-५ बहुधन्धी आदमी कदापि नहीं कर सकते। भिन्न-भिन्न जनपदोंके सांस्कृतिक धरातलोंमें अन्तर है। उनके कुछ प्रश्न भी जुदे-जुदे हैं। कोई भी केन्द्रीय संस्था उनकी ओर भरपूर ध्यान नहीं दे सकती। यह कार्य तो स्थानीय तथा जनपदीय संस्थाओं द्वारा ही हो सकता है।

हमारे प्रान्त बुन्देलखण्डके स्वर्गीय श्री घासीरामजी व्यासकी कीर्ति-रक्षाके लिए कोई अखिल भारतीय संस्था कुछ काम कर सकेगी, इसकी आशा ही छोड़ देनी चाहिए। जब प्रयागवाले सम्मेलनके भूतपूर्व प्रधान अमरशहीद गणेशजीके स्मृति-दिवसके लिए एक गश्ती चिट्ठी भी नहीं भिजवा सकते, तो बेचारे व्यासजीको कौन पूछता है! साथमें स्व० श्रीयुत साधकजीका स्केच भेजता हूँ, उससे आप मेरी मनोवृत्तिको समझ जायँगे। अराजकवादका मूल सिद्धान्त विकेन्द्रीकरण ही है। छोटेसे छोटे व्यक्तिके यथोचित विकासके लिए विकेन्द्रीकरणकी नीति काममें लानी ही पड़ेगी। स्वर्गीय श्री सीतारामजी साधकके यशःशरीरकी रक्षाके लिए सर्वश्री रामप्रसाद त्रिपाठी, दयाशंकर दुबे तथा रामचन्द्र टण्डनसे कुछ कार्य हो सकेगा, यह उम्मीद हम छोड़ दें। जहाँ तक कार्यकी सुविधाका खयाल है, वहाँ तक समस्त हिन्दी-जगत्को छोटे-छोटे जनपदोंमें विभाजित करनेकी नीतिका समर्थन आप करेंगे ही। इसमें हमारा आपका मतभेद नहीं होगा; पर जब ये जनपद अपनी स्वाधीनता चाहेंगे, तब हम लोगोंके विचारोंमें अन्तर आ सकता है। अबोहर-सम्मेलनपर राजस्थानी प्रतिनिधियोंका बहुमत यही था कि उन्हें अपनी भाषा या बोलीमें रीडरें छपानेकी स्वाधीनता होनी चाहिए। मैं यह मानता हूँ कि यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर है और इसपर पूरा-पूरा ध्यान देनेकी ज़रूरत है। हरद्वारमें इसको बहुमतसे तय नहीं किया जा सकता।

मेरा एक दृष्टिकोण और भी है। वह यह कि यदि भिन्न-भिन्न जनपद अपने यहाँके मुहाविरों, शब्दों, कहावतों तथा कहानियों इत्यादिका संग्रह कर लें, तो राष्ट्रभाषाके कोषमें अद्भुत वृद्धि हो जायगी। बुन्देलखण्डमें एक कहावत है 'अपने काज परे सौतके घरे जाने परत।' इस अर्थकी कहावत खड़ी बोलीमें भी है 'अपने काम पड़नेपर गधेको भी बाप बनाना पड़ता है।' मेरी समझमें सौतके घर जानेमें अधिक संस्कृति है, यद्यपि उसके खतरोंका अनुमान किसी महिला लेखिकाको ही हो सकता है। दूसरा मुहाविरा वीभत्स है।

श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल तथा श्री क्षितिमोहन सेनने भिन्न-भिन्न जनपदोंके लिए जो कार्यक्रम बताया है, उसके विषयमें क्या कोई मतभेद हो सकता है? फिर क्या इतना विस्तृत और ठोस कार्य किसी एक अखिल भारतीय संस्था द्वारा हो सकता है? कृपया वासुदेवशरणजी तथा क्षिति बाबूके कार्यक्रमको एक बार फिर पढ़ लीजिए। ब्रजका कार्य ब्रजवालोंसे ही कराना होगा और बुन्देलखण्डका बुन्देलखण्डियोंसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बघेलखण्डसे 'बान्धव' नामक पत्र निकलने लगा है, उसकी प्रतियाँ भिजवाऊँगा।

मेरा निवेदन सिर्फ़ इतना ही है कि अभी जो बड़े-बड़े विस्तृत भूखण्डोंकी शिथिल संस्थाएँ बनी हुई हैं, उनको विभाजित करके छोटे-छोटे सजीव साहित्यिक जनपदोंका निर्माण कर दिया जाय। दो नीतियोंमें से एक हम लोगोंको चुन लेनी होगी। या तो हम अन्य बोलियोंकी संस्कृतिको खत्म करके केवल एक खड़ी बोलीकी संस्कृति जारी रखें, या फिर इस सांस्कृतिक उपवनके वैचित्र्यको स्थायी बनाए रखनेके लिए जनपदोंकी विशेष-विशेष बोलियोंको पनपने दें। मैंने सुना है कि सोवियत रूसने द्वितीय मार्गका अवलम्बन किया है, और मैं भी उसीका पक्षपाती हूँ। सांस्कृतिक क्षेत्रमें आप फ़ौजीकरणकी लाठीसे हम सबको नहीं हाँक सकेंगे। वर्त्तमान स्थितिमें यह तो सम्भव नहीं दीखता कि हम लोग प्रान्तीय सम्मेलनोंके अधिवेशन कराके इस प्रश्नका निर्णय उनके द्वारा करा सकें; पर इतना तो हम लोग कर ही सकते हैं कि भिन्न-भिन्न जनपदोंके कार्यकर्त्ताओंकी सम्मति इस प्रश्नपर मँगावें।

दिल्ली-सम्मेलनका प्रस्ताव

दिल्ली-सम्मेलनका प्रस्ताव यह था—"राष्ट्रभाषा हिन्दीकी विस्तृत अभिवृद्धि और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कार्यों और उद्देश्योंका सुसंगठित प्रचार करनेकी दृष्टिसे यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि प्रत्येक प्रान्तमें प्रान्तीय सम्मेलन और महत्त्वपूर्ण बोलियोंके क्षेत्रमें मण्डल-सभाएँ स्थापित की जायँ, जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे सम्बद्ध होकर व्यवस्थित रीतिसे निरन्तर कार्य करती रहें।"

इस प्रस्तावके अनुसार बोलियोंके क्षेत्रोंको जनपदका रूप तो हम दे ही सकते हैं, और जब तक सम्मेलनका यह प्रस्ताव बना हुआ है, तब तक हमारा कार्य सर्वथा वैध होगा।

सम्मेलनके अधिवेशनके दिनोंमें किसी भी प्रश्नपर गम्भीर विचार होना बहुत ही मुश्किल है। वहाँ तो मेला-सा लग जाता है और साहित्यिकोंको इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि इस प्रकारके प्रश्नोंपर विस्तृत विचार-परिवर्त्तन करनेकी आशा दुराशामात्र है। अभी यदि आप पत्र-व्यवहार कर लें, तो सम्भवतः उलझनोंको सुलझानेमें मदद मिल सकती है। जनपदोंके लिए कार्यक्रम तथा प्रस्तावोंको ही पास करा लेनेसे काम नहीं चलेगा। साल-भर तक खटखटानेके लिए कोई मशीन तो होनी ही चाहिए।

एक बात और भी सोचनेकी है। जनपदोंके वार्षिकोत्सव वसन्त-ऋतुमें करा देनेसे और तत्पश्चात सम्मेलनोत्सव करानेसे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रश्नोंपर भारतव्यापी आन्दोलन हो सकता है। प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय पुण्य तिथियाँ या जन्मोत्सव भी निश्चित किए जा सकते हैं। यदि केवल वसन्त-व्याख्यानमालाकी ही आयोजना हम लोग भिन्न-भिन्न जनपदोंमें कर सकें, तो बड़ा काम हो।

मुश्किल तो यह है कि अभी एक भी जनपदको साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिसे संगठित करनेका दृढ़ उद्योग नहीं किया गया। बुन्देलखण्डके लिए जो अत्यल्प कार्य हुआ है, वह श्रीमान् ओरछेशकी उदारताके कारण सम्भव हुआ है। कभी-कभी तो मैं यह खयाल करने लगता हूँ कि 'मधुकर', 'ब्रज-भारती' अथवा 'बान्धव'का जन्म उपयुक्त समयके १५-२० वर्ष पहले ही हो गया है।

संघर्षका स्थान कहाँ?

आपकी यह आशंका है कि विभागीय संघर्षोंसे कहीं हिन्दी-जगत्की सर्वशक्तिमत्ताको धक्का न पहुँचे, सर्वथा स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, यदि ब्रजवासी और बुन्देलखण्डी अपनी सारी शक्ति इसी झगड़ेमें लगा दें कि कौन-सी बोलीमें अधिक मिठास है, तो यह समयका अपव्यय ही होगा। पर यदि हम लोग अपने-अपने जनपदोंके मुहाविरों, शब्दों, कहानियों तथा कहावतोंका संग्रह कर लें, अपने यहाँके पशु-पक्षी तथा वृक्ष-जगत्का ठोस अध्ययन करें और अपने यहाँके सुन्दर प्राकृतिक स्थलोंका सचित्र विवरण प्रकाशित करें, तो इस कार्य-पद्धतिमें संघर्षको स्थान ही कहाँ मिलेगा? अपना-अपना घर साफ़ करनेके मानी थोड़े ही हैं कि कूड़ा एक-दूसरेके घरमें फेंक दिया जाय।

कृपया अन्य साहित्यिक बन्धुओंसे भी आप इस विषयपर विचार-परिवर्त्तन कीजिए। सम्भव है कि मेरा मार्ग ग़लत हो; पर चूँकि अगले वर्षके लिए आप ही अखिल हिन्दी-जगत्के पथ-प्रदर्शक हैं, इसलिए आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी।

टीकमगढ़] —बनारसीदास चतुर्वेदी

(२)

प्रिय सम्पादकजी,

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी गति-विधिके सम्बन्धमें आपने मेरे विचार जानने चाहे हैं। इसी सिलसिलेमें अन्य 'जनपदों' की विशेष साहित्यिक थातीकी रक्षाके खयालसे सम्मेलनके विकेन्द्रीकरणकी आवश्यकताका ज़िक्र भी आपने किया है।

सच बात तो यह है कि स्पष्ट रूप-रेखासे युक्त 'जनपद' प्राचीन भारतके इतिहासको छोड़कर इस समय तो केवल कल्पनाकी ही वस्तु हो सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि देशका विविध प्रान्तोंमें वर्त्तमान विभाजन सांस्कृतिक अथवा भाषा या बोलीके आधारपर नहीं है। अतः प्राचीन भारतके जनपदोंकी कल्पनाके आधारपर वर्त्तमान विभिन्न परिस्थितिका 'बन्दोबस्त' बहुत कामका नहीं हो सकता। किन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारे इस घोर पतनके काले युगमें भी जगह-जगहपर प्राचीनतम संस्कृतिके खँडहर सर ऊँचा किए खड़े हैं। आज भी ये इतने विस्तृत और इतने मूल्यवान हैं कि इनकी रक्षा नितान्त आवश्यक है। यह भी ठीक है कि इस ओर पूर्ण सफलता तभी मिलेगी, जब यह कार्य स्थानीय ढंगसे किया जायगा। किन्तु साहित्यिक, सांस्कृतिक या अन्य किसी प्रकारके संगठनके लिए भी सम्मेलनके 'विकेन्द्रीकरण'की आवश्यकता किस प्रकार होती है, यह बात समझमें नहीं आती।

अनेक वर्षोंसे मेरा सम्बन्ध भी सम्मेलनसे रहा है। सम्मेलनकी अनेक त्रुटियोंको स्वीकार करते हुए भी मैं नहीं कह सकता कि सम्मेलनके वे कौनसे नियम हैं, जो उपरियुक्त संगठनमें किसी प्रकार बाधक सिद्ध होते हों। यदि कोई जन-समुदाय अपनी सांस्कृतिक या साहित्यिक रक्षाके लिए अपनी प्राचीन पूँजीको एकत्रित करना चाहता है या अपने यहाँके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंका सम्मान करना चाहता है, तो उसमें सम्मेलनको आपत्ति ही क्या हो सकती है? मुझे तो याद नहीं कि ऐसे अवसर कभी आए भी हों। किन्तु यदि किसी नियम या उपनियमके अनुसार या किसी परिपाटीके अनुसार इस प्रकारकी परिस्थितिकी आशंका हो सकती हो, तो उनका सुधार कर दिया जाना चाहिए। लेकिन इसके लिए 'विकेन्द्रीकरण' जैसे घोर इलाजकी तो शायद ज़रूरत नहीं।

अब तककी सारी परिस्थितिपर यदि निष्पक्ष दृष्टिसे विचार किया जाय, तो स्पष्ट कहना पड़ेगा कि 'मुद्दई चुस्त और गवाह सुस्त' वाली कहावत ही चरितार्थ होती रही है। इधर कई वर्षोंसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी बागडोर धीरे-धीरे राजनीतिक 'लीडरों'के हाथमें चली गई और स्वाभाविक परिणाम इस नीतिका यही हुआ कि साहित्य-सम्मेलनका साहित्यसे, हिन्दी-भाषासे, हिन्दीके सेवकोंसे या यों कहना चाहिए कि हिन्दी-संसारसे ही नाता बहुत कम रह गया और अपने मूल मार्गसे हटकर यह भी राजनीतिक क्षेत्रका एक छोटा-सा अखाड़ा बन गया तथा वहाँके दाँव-पेंचोंका यहाँ भी अभ्यास होने लगा। न केवल हिन्दी-संसारके ही प्रश्नों या समस्याओंकी, वरन् देशकी तमाम आवश्यक और अनावश्यक समस्याओंकी ठेकेदारी भी सम्मेलनने ले ली। रास्ता एक बार खुल गया, प्रायः सभी क्षेत्रोंके 'लीडरी-पसन्द' व्यक्तियोंको इसके मंचपर खुलकर खेलनेका भरपूर मौक़ा मिल गया और दुनिया-भरके 'घरेलू' झगड़े भी सम्मेलनके सुपुर्द होने लगे। किसी भी सार्वजनिक संगठनके लिए ऐसी ज़िम्मेदारी ले लेना बुरा तो नहीं कहा जा सकता, यदि कार्य-सम्पादनकी उसमें शक्ति हो। किन्तु सामर्थ्यके बाहर अपनी जिम्मेदारियाँ बढ़ा बैठना दुस्साहस ही कहा जा सकता है, साहस नहीं।

आजकी परिस्थिति तो यह है कि 'साहित्य-सम्मेलन' एक पथभ्रष्ट, उद्देश्य-शून्य, असंगठित, पढ़े-लिखे जन-समूहका जमघट-सा हो रहा है। इसके अधिवेशन चार दिनके 'कार्निवल-शो'की तरह कुछ धन एकत्रित करनेके अवसर-मात्र रहते हैं। किन्तु अपनी इतनी प्रतिष्ठित पुरानी संस्थाका यह पतन हिन्दी-संसारके लिए गौरवकी वस्तु नहीं। आवश्यकता है इस समय इसके नव-संगठनकी। इस छोटे-से पत्रके नपे-तुले स्थानमें यह तो सम्भव नहीं कि पूरी परिस्थितिकी विषद् आलोचना या नव-संगठनकी पूरी योजना पेश की जाय; किन्तु उसकी रूप-रेखा तो दी ही जा सकती है। अच्छा हो, यदि हरद्वारके अधिवेशनमें एक ऐसी समितिकी रचना की जाय, जो सम्मेलनकी शक्ति और उसकी कमज़ोरियोंका सम्पूर्ण लेखा-जोखा तैयार करे तथा कुछ निश्चित उद्देश्योंको स्थिर करके एक ऐसी योजना भी पेश करे, जिसे सम्मेलन अपने सम्पूर्ण विस्तृत कुटुम्बके द्वारा या कुछ चुने हुए समर्थ हाथोंके ही द्वारा उस योजनाके सर्वांगीण सम्पादनके लिए बाध्य हो। इस योजनाके अंग इत्यादिका विवरण यदि सम्मेलन चाहेगा, तो यथासमय उसके सामने पेश किए जा सकते हैं।

शायद प्रश्न उठे कि सम्मेलन 'समिति'-संगठनमें काफ़ी पड़ रहा है; किन्तु उसकी समितियाँ कार्य करती कभी नज़र नहीं आईं। यह आक्षेप अनुचित नहीं; किन्तु यह तो ऊपर निवेदन किया जा चुका है कि यदि सम्मेलनको जीवित रखना हिन्दी-संसार आवश्यक समझता है, तो उसका नव-संगठन आवश्यक है और इस दृष्टिकोणसे यह नवीन समिति यदि बनाई जायगी, तो इसकी नीति, कार्य-प्रणाली तथा परिपाटीका पूर्व समितियोंसे भिन्न होना भी आवश्यक है। यदि इस ओर कुछ मित्रोंका ध्यान गया, तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

विश्वविद्यालय, कलकत्ता] —ललिताप्रसाद सुकुल

[इस विषयमें अपना निवेदन हम सम्पादकीय विचारोंके अन्तर्गत दे रहे हैं।—सं०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवके विकासकी कथा

कुँवर सुरेशसिंह

जीवके जन्म और विकासकी बड़ी अद्‌भुत और रोचक कहानी है ; पर उसकी रोचकताके बारेमें कुछ भी जाननेके लिए हमें सौ-दो-सौ ही नहीं, लाख-दो-लाख भी नहीं, बल्कि करोड़ों-अरबों वर्ष पहलेकी कल्पना करनी होगी। इस विशाल अन्तरिक्षमें अविराम गतिसे घूमते हुए एक ज्वलित नीहारसे घनीभूत होकर हमारी पृथ्वीने जब आकार-प्रकार ग्रहण किया होगा, तो उस समय वह एक विशाल अँगीठीकी तरह जला करती रही होगी। उसकी सतहपर ज्वालामुखीके लावेकी तरहका गला हुआ पदार्थ बहता रहा होगा, जो धीरे-धीरे ठण्डा पड़कर घना हो गया होगा। पृथ्वीकी प्रचण्ड गरमीके कारण तब पानी केवल तप्त वाष्पके बादलोंके रूपमें रहा होगा और वह भी पृथ्वीके गर्भमें गलित रूपमें उछलते रहे होंगे। सारी पृथ्वी एक गन्धकके लोककी तरह धुएँ और भापकी विकराल लपटें छोड़ती हुई सुलगती रही होगी। करोड़ों वर्ष बाद वह आग और भापका रंगमंच धीरे-धीरे ठण्डा होकर हमारी पृथ्वीके रूपमें जड़ीभूत हो सका होगा और तब आकाशमें भापका सघन बादल पानीकी पहली बौछारके रूपमें बरसा होगा ; जले हुए लावेके समान पदार्थने जमकर चट्टानोंका आकार ग्रहण किया होगा और पृथ्वीपर गरम पानीकी धाराएँ बहकर नदियों, झीलों और सागरोंमें इकट्ठा होने लगी होंगी। सूरज और चाँद एक दूसरेसे और भी दूर चले गए होंगे और चाँद छोटा होनेके कारण जल्दी ठण्डा पड़ने लगा होगा।

कैसी रोचक है यह सारी-की-सारी कल्पना ! इसके उपरान्त कहीं जाकर वह अवस्था आई होगी, जब हमारी पृथ्वी आजकी मौजूदा पृथ्वीसे मिलती-जुलती शक्लकी बन सकी होगी। उस समय यदि किसी मनुष्यका होना सम्भव होता, तो वह अपनेको विशाल तप्त चट्टानों और लावेकी शिलाओंके बीच खड़ा पाता। मिट्टीका कहीं चिह्न भी न मिलता। हाँ, उसे अत्यन्त भयंकर अग्नि-वृष्टिके बीच चारों ओर गँदले गरम पानीके नाले समुद्रकी ओर दौड़ते जरूर मिलते और प्रचण्ड भूकम्प रह-रहकर उसके पैरोंके नीचेकी चट्टानोंको कँपाते रहते। इस कल्पनातीत कालमें पृथ्वी और भी पुरानी हो चली। करोड़ोंके बाद करोड़ों वर्ष पार हो गए। सूरज दूर होकर मन्द पड़ गया। चाँदकी चालमें भी शिथिलता आ गई। आँधी-पानीकी तेज़ीमें कमी होने लगी। पानी बह-बहकर सागरोंमें जमा होने लगा, सागर महासागर बन गए और हमारी पृथ्वीकी रूप-रेखा धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी। किन्तु जीवन ? जीवनके चिह्नका अब भी कोई पता नहीं था। उसके उपक्रममें अभी और भी देर थी।

पृथ्वी इस अवस्थामें भी असंख्य वर्षों तक रही। उसके बाद कहीं जाकर एक ऐसा समय भी आया, जब खास ताप-मानमें प्रोटोप्लाज़्म (Protoplasm=जीव-पंक) नामक पदार्थसे हमारी पृथ्वीके छिछले समुद्रोंमें जीवन-शक्तिका जन्म हुआ और तबसे आज तक उसका इतना विकास और विस्तार हुआ है कि हमारी पृथ्वी भिन्न-भिन्न प्रकारके जीवधारियोंसे भर-सी गई है। यह प्रोटोप्लाज़्म या जीवन-पंक उस खास तापमानमें हमारी पृथ्वीपर ही उत्पन्न हुआ या वह दूसरे ग्रहोंसे हमारी पृथ्वीपर आया, यह अभी विवादास्पद है ; पर इतना तो प्रायः सभी विद्वान मानते हैं कि हम सब जीवधारियोंका प्रारम्भ इसी प्रोटो-प्लाज़्म नामक पदार्थसे हुआ। जीवन-अभिनयकी यवनिका उठनेके बाद जलवायुके अनुकूल होनेपर जीवोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका विकास हुआ और परिस्थितियोंके प्रतिकूल होनेके कारण ऐसी अवस्था भी कभी-कभी आ गई कि उनकी कुछ प्रधान जातियोंका समूल नाश भी हो गया। इस प्रकारके प्रलय-कालको हम युगोंमें विभक्त किए हुए हैं, जिनकी अवस्था करोड़ों वर्षकी मानी गई है।

पहलेके कुछ युगोंको यदि हम छोड़ भी दें, तो इस वर्त्तमान स्तनप्राणियोंके युगके पूर्वके सरीसृपोंके युगका संक्षेपमें वर्णन कर देना अनुचित न होगा। इस युगमें, जिसे हम नवजीवन-युग कहते हैं और जिसका समय ८० करोड़ वर्ष लगाते हैं, सरीसृपोंका राज्य था। ये जीव आकारमें इतने बड़े थे कि पृथ्वीपर इतने बड़े भीमकाय जन्तु कभी नहीं हुए। कुछकी लम्बाई तो ८० से १०० फ़ीट तक पहुँच गई। डाइनासोर (Dinosaur) की आकृति तो भयंकरताकी पराकाष्ठाको भी पार कर गई। उसके बाद वर्षोंके बाद वर्षों और शताब्दियोंके बाद शताब्दियोंके बीत जानेपर धीरे-धीरे विकास और ह्रासके साथ-साथ प्राकृतिक परिस्थितियाँ और भी कठोर एवं उग्र हो गईं। पृथ्वीके धरातलमें बड़े-बड़े बदलाव और समुद्रों तथा पहाड़ोंके विभाजनमें भी नए-नए परिवर्त्तन उपस्थित हो गए, जिनके कारण हमारी पृथ्वीके जीवधारियोंमें भी बहुत बड़े परिवर्त्तन और नई-नई अज्ञात जातियोंका प्रादुर्भाव हुआ। उसके बाद करोड़ों वर्षका हाल फिर नहीं मिलता। जीवनके इतिहासकी बाहरी रूप-रेखा फिर अस्पष्ट हो जाती है ; पर कुछ समय बीतनेपर इस नवीन युगका परदा उठता है और स्तनप्राणियोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह वर्त्तमान युग प्रारम्भ होता है, जिसका क्रम अभी तक चल रहा है।

प्रारम्भिक स्तनप्राणी प्रारम्भिक पक्षियोंकी तरह जीवन-संघर्षसे कठोर और ठंडे मुल्कोंमें रहनेके योग्य जीवन व्यतीत करनेको विवश किए गए प्राणी थे। उनके सेहर या शल्क (scales) भी पक्षियोंकी तरह परोंकी डंडी या क्विल (quill)-नुमा बनकर ठंडकसे उनकी रक्षा करने योग्य गरम आवरणमें बदल गए और परोंके बदले उनमें बालोंका विकास हुआ। अंडोंकी देखभाल करने और सेनेके बदले वे उन्हें अपने शरीरके भीतर ही रखने लगे और अंडेके बदले जीते-जागते बच्चे ही पैदा करने लगे। बच्चोंको दूध पिलानेके लिए उनके स्तन निकल आए, जिनसे उनका स्तनप्राणी* नाम पड़ा।

कुछ लोग ऐसा खयाल करते हैं कि विकासका क्रम सीढ़ी-नुमा है और संसारके प्रारम्भिक प्राणियोंसे ही विकास होकर आज मनुष्योंकी अवस्था पहुँची है। लेकिन वास्तवमें बात ऐसी है नहीं। विकासके क्रमको यदि हम सीढ़ीनुमा न मानकर एक वृक्षकी तरह सोचें, तो उसे हम ज़्यादा आसानीसे समझ सकेंगे। इस विकासके वृक्षमें एक ही तना होते हुए भी अलग-अलग शाखाओंकी कल्पना करनी होगी, जिसमें कुछ शाखाएँ कम बढ़ीं, कुछका बहुत विस्तार हुआ और कुछकी बाढ़ क़तई रुक-सी गई। ये भिन्न-भिन्न शाखाएँ-प्रशाखाएँ हमारे जीव-जगत्की जातियाँ और उपजातियाँ हैं, जिनमें फैली हुई वे हैं, जिनका आज पृथ्वीपर राज्य है; और बाढ़ रुक जानेवाली वे हैं, जो अपनेको पृथ्वीके परिवर्त्तनके अनुकूल न बना सकनेके कारण सदाके लिए इस पृथ्वीसे लोप हो गई हैं।

इस प्रकार हमारा विकास-वृक्ष उसी प्रोटोप्लाज़्मसे प्रारम्भ होगा, जिसमें पहले एक-कोष प्राणी (one-celled animals) रहे होंगे, जिनकी बनावट बहुत सीधी-सादी थी। आगे चलकर एक ओर इनकी एक शाखा निकली, जिसमें उन्नत होकर तारा-मछली (Star-Fish) आदि हुए। दूसरी शाखाके प्राणियोंने अपना विकास कड़े और खोखले शरीरकी ओर किया, जो आगे चलकर केकड़े आदि हुए। कुछ आगे फिर एक शाखा फूटी, जिसने बाहरी परिवर्त्तनोंके साथ-साथ अपनेमें एक बड़ा परिवर्त्तन किया रीढ़की हड्डीका। इन्हें हम मछलियोंके पुरखे कह सकते हैं। ये अपना कुछ समय पानीके बाहर निकलकर सूखेमें भी बिताने लगे और इस प्रकार एक और शाखा निकली, जिनमें आगे चलकर हमारे मेंढक आदि उभचर हुए।

रीढ़वाले प्राणियोंके विकाससे विकास-क्रममें एक नया क्रम उपस्थित होता है; क्योंकि इस नवीन परिवर्त्तनसे जीवोंकी भीतरी बनावट ही एक प्रकारसे बदल गई। केकड़े आदि पहलेके जीवोंसे जो कड़ी खोलमें जकड़े रहकर अपना फैलाव नहीं कर सकते थे, ये रीढ़वाले जीव कहीं उन्नत माने जाते हैं। रीढ़से इन्हें यह लाभ हुआ कि इनकी हड्डियाँ रीढ़से जुटी रहकर उनके ऊपरी मांसके लिए एक ढाँचा-सा बन गईं, जिससे इनके फैलावमें आसानी हो गई। इस महान परिवर्त्तनके आधारपर ही आज सारा प्राणिजगत् रीढ़वाले या मेरुदण्डी (Backboned) और बिना रीढ़वाले या अमेरुदण्डी (Backboneless) दो मुख्य हिस्सोंमें बाँट दिए गए हैं।

आगे चलकर एक शाखा सरीसृपोंकी निकली, जिन्होंने जल और थल दोनोंमें रहनेके लिए अपनेको तैयार कर लिया था। इस विभागमें हमारे घड़ियाल, साँप वगैरह सरीसृप और मेढ़क आदि उभचर हैं।

यह क्रम यहीं तक नहीं रुक गया, बल्कि धीरे-धीरे उन्नत होकर एक शाखा और निकली, जिसने अपनेको हवामें उड़नेके अनुकूल बना लिया, जिनसे हमारी चिड़ियोंका विकास हुआ। इधर तो यह शाखा हवामें अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए उद्योग करती रही, उधर पृथ्वीपर स्तनप्राणियोंकी एक नवीन शाखा फूटी, जिसने अपना इतना विकास कर लिया कि आज तक पृथ्वीपर से उसके आधिपत्यको कोई हटा नहीं सका। इनमें और बातोंके अलावा जो विशेषता इन्हें जलवायुके मामूली परिवर्त्तनसे बचानेमें समर्थ हुई, वह इनके शरीरपर के बाल हैं।

स्तनप्राणियोंमें कई उपशाखाएँ फूटीं, जिनमें किसीमें हाथी, कुत्ते, हिरण वगैरह हुए, तो किसीमें गोरिला और शिम्पेन्ज़ी आदि प्राणी। एकमें एप (ape) नामक बन्दर और उसीके निकटवाली दूसरीमें है मनुष्य, जो पशु होकर अपने मस्तिष्कके कारण आज सभी प्राणियोंपर राज्य कर रहा है। इस प्रकार यह खयाल करना भूल है कि हम पुरखे बन्दर थे या मनुष्योंका विकास बन्दरोंसे हुआ है। तो केवल इतना है कि हमारे और एपके पूर्वज एक ही थे।

कालाकाँकर (अवध)]

---

* इस श्रेणीके प्रायः सभी जीव अपने स्तनोंसे अपने बच्चोंको दूध पिलाते हैं और उनकी रखवाली और पोषण करते हैं; पर आस्ट्रेलिया-निवासी डकमोल (Duckmole) और एन्ट-ईटर (Ant-eater) ऐसे भी दो पशु इस परिवारमें हैं, जो अब भी अंडे देते हैं और जिनके स्तन नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिकतम उपन्यासका दृष्टिकोण

श्री इलाचन्द्र जोशी

इस घोर संघर्षके युगमें भी, जब कि सारे संसारमें विनाश और विध्वंसका नंगा नाच हो रहा है और प्रतिदिन हजारों आदमी रणचण्डीकी बलि होकर कौवों और कुत्तोंकी मौत मर रहे हैं, बीसवीं सदीके पूर्ण रूपसे सुरक्षित नगरोंमें रहते हुए भी सहस्रों नर-नारी और निरपराध बच्चे चरम अरक्षित अवस्थामें अविवेकी बमवर्षकों द्वारा तुच्छ कीड़ोंकी तरह पीसे और कुचले जा रहे हैं—ऐसे भयंकर तूफ़ानी युगमें भी जब हम अपने साहित्यके ध्वजाधारियोंको रात-दिनके जीवनके यथार्थवादी पहलूकी ओरसे मुँह मोड़ते देखते हैं, तो केवल गम आश्चर्य ही नहीं, आन्तरिक दुःख भी होता है। समस्त विश्वकी सत्ताको डगमगाते देखनेपर भी हमारे साहित्यिक पंडे अभी तक जीर्ण आदर्शवादको जकड़े बैठे हैं और उसीका नारा बुलन्द किए चले जा रहे हैं, इससे वास्तवमें मानव-स्वभावके एक विचित्र रूपका रहस्य हमारे सामने आता है। सिन्दबाद व्यापारीका जहाज़ जब एक बार एक ज़बर्दस्त तूफ़ानके धक्कोंके कारण डूब गया, तो वह बड़ी मुश्किलसे डूबता-उतराता हुआ एक ऐसे स्थानपर पहुँचा, जो उसे एक द्वीपकी तरह दिखाई दिया। उस 'द्वीप'पर उतरनेके बाद उसने अपनेको बहुत भाग्यशाली समझा और ईश्वरको इस बातके लिए धन्यवाद दिया कि वह एक सुरक्षित स्थानपर पहुँच गया। चारों ओर अशान्त समुद्रकी तूफ़ानी तरंगें विकट शब्दसे तर्जन-गर्जन कर रही थीं; पर सिन्दबाद उस 'टापू'में स्थिर भावसे निश्चिन्त होकर बैठा हुआ था। किन्तु उसकी यह निश्चिन्तता अधिक समय तक स्थायी नहीं रही। अचानक उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसका 'टापू' भयंकर भूकम्पके कम्पनसे हिल उठा है और सारी ज़मीन उलटनेको है। कुछ समय बाद उसे असली बातका पता लगा और वह बुरी तरह घबरा उठा। उसके आगे यह रहस्य खुला कि जिसे वह 'टापू' समझे था, वह वास्तवमें एक विराट् मत्स्य-जातीय जीव था। अपनेको पहलेसे भी बड़े ख़तरेमें जानकर सिन्दबाद फिरसे समुद्रमें कूद पड़ा। हमारे साहित्य-जगत्के ध्वजाधारीगण अपने चारों ओरके प्रलयंकर वातावरणके बीचमें ठीक उसी प्रकारके 'टापू'पर आसन जमाए हुए अपनेको सुरक्षित समझे बैठे हैं। चारों ओरके प्रलय-पयोधिके बीचमें वे जिस पौराणिक मत्स्य-जातीय विराट् जीवकी पीठ-पर बैठे हुए हैं, उसे वे साहित्यका भी पीठस्थान समझे बैठे हैं और वहींपर से निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व भावसे यथार्थवादियोंपर कीचड़ उछालकर पोपपन्थी आदर्शवादके लेक्चरपर लेक्चर पिलाए जा रहे हैं। ऊँटाकार पक्षी-विशेषकी जातिसे प्रेम रखनेवाले इन महापुरुषोंको एक बार पूरी ताक़तसे इस बातकी चेतावनी देनेका समय आ गया है कि उनकी स्थिति एकदम अरक्षित है और समय रहते यदि वे न सँभले, तो उन्हें निश्चित रूपसे तूफ़ानी समुद्रमें ग़र्क़ हो जाना पड़ेगा।

आश्चर्य इस बातपर अधिक होता है कि यथार्थवादसे—प्रतिदिन और प्रतिपलके घोर संघर्षमय जीवनके कठोर सत्यसे—केवल पिछले युगके आदरणीय गुरुजन ही सशंकित नहीं हो उठे हैं, बल्कि बहुत-से नई पीढ़ीके सुकुमार कल्पना-प्रिय तरुण साहित्यिक भी भड़कने लगे हैं। यथार्थसे भागनेवाले तरुण साहित्यिकोंमें विशेषकर वे लोग हैं, जिनके व्यक्तित्वका पालन-पोषण छायावादी कविताके ललित-ललित और कोमल-कोमल कुसुमोंके कलित केसर, पुलकित पराग, मधुर मधु और सरस सुवास द्वारा हुआ है। फल-स्वरूप इन तरुणोंके अलस-लालस मायासे आच्छन्न हृदयोंमें एक ऐसा अफ़ियूनी नशा छा गया है, जो जीवनकी किसी भी यथार्थताको अपने पास फटकने नहीं देना चाहता और भरसक उसका प्रतिरोध करता है। इस ललित-भावानुगामी दलकी संख्या दिन-पर-दिन घटती जा रही है, इसमें सन्देह नहीं; पर फिर भी उसका बहुत-कुछ प्रकोप अभी तक जारी है।

एक और तरुण-वर्ग है, जो जीवनकी कठोर वास्तविकताका ज़बर्दस्त प्रतिरोधक है। इस वर्गको हम देवदास-पंथी सम्प्रदाय कहना उचित समझते हैं। (स्मरण रहे, यह 'देवदास' 'देव-दासी'का पुल्लिंगवाची शब्द नहीं है।) जबसे शरच्चन्द्रके 'देव-दास' नामक प्रसिद्ध उपन्यासने फिल्मके रूपमें हिन्दी-जगत्में प्रवेश किया, तबसे हमारे तरुण साहित्यिकोंके एक बहुत बड़े भागके भावना-लोकमें एक निराली ही मादकता छा गई, जो छायावादी युगकी अलस-लालस-मायासे कई गुना अधिक तीव्र और साहित्यके व्यापक कल्याणकी दृष्टिसे अत्यन्त घातक सिद्ध हुई। 'देवदास'में यथार्थवादका ढाँचा अवश्य वर्त्तमान है; पर वह ढाँचा केवल ढाँचा ही रह गया है और उसके शरीर तथा आत्माका निर्माण छायावादी युगके सस्ते 'रोमांटिसिज़्म'के मूल उपादानोंसे हुआ है। 'रोमांस'की पुट आपको नवीनतम युगके घोर यथार्थवादी—कठोर वास्तविकतावादी—उच्चकोटिके उपन्यासोंमें भी मिलेगी (सच तो यह है कि प्रारम्भिक कालसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकर वर्त्तमान समय तक विरला ही कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण उपन्यास देखनेमें आयगा, जिसमें नर-नारीके पारस्परिक प्रेमकी समस्या किसी-न-किसी रूपमें न ली गई हो) ; पर 'देवदास'के तथा आधुनिकतम युगके चरम यथार्थवादी उपन्यासोंके 'रोमांसों' में एक मूलगत अन्तर है। 'देवदास'का आत्मलीन, अन्तः-सारहीन, चारित्रिक बलसे एकदम रहित, भावुकताके साबुनी बुद्बुदोंसे भरे हुए हृदयवाला नायक जब अपनी मनचाही प्रेमिकाको न पा सकनेके कारण पतनके गढ़ेमें गिरता है और गन्दे वेश्यालयको 'कवित्वपूर्ण' मधुशाला बनाकर अपनी गम-गीनीको बोतलोंमें डुबाने लगता है, तो लेखक पूरी ताक़तसे उसका साथ देता है और उसके प्रति पाठकोंकी भी समवेदना जगानेका पूर्ण प्रयत्न करता है। चरित्रहीनोंके प्रति सहानुभूति उभाड़नेकी चेष्टा भारतमें शरत्-कालीन और यूरोपमें सोवियत्-पूर्व रूस-कालीन कवियों और औपन्यासिकोंकी विशेषता रही है। फिर भी रूसी लेखकोंने अपनी इस प्रकारकी प्रवृत्ति और चेष्टाको एक सीमासे आगे नहीं बढ़ने दिया था ; पर शरच्चन्द्रका एकमात्र उद्देश्य ही जैसे निकम्मे, आलसी, अहंभावापन्न और चरित्रहीन नायकोंके पतनको महिमान्वित करनेका रहा है। इस दृष्टिकोणसे आधुनिकतम कथाकारके दृष्टिकोणमें मूलगत विरोध पाया जाता है। आधुनिकतम कलाकार यदि अपनी कथाओंमें चरित्रहीन और रोमांसवादी पात्रोंकी अवतारणा करता है तो केवल इसलिए कि वह अपने मनोवैज्ञानिक अस्त्रसे उनकी आत्माका स्तर-प्रति-स्तर खोलकर उनके घोर अहंभावपूर्ण 'कवित्वमय' प्रेमका पोल-प्रकाश करना चाहता है, उनके रोमांसकी इन्द्रजाली रंगीनीसे पाठकोंकी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करना वह किसी प्रकार भी उचित नहीं समझता। औपन्यासिक आदर्शका यह दृष्टिकोण एकदम नया, सच्चे अर्थोंमें यथार्थवादी और समाजकी सामूहिक आत्माके परिष्करणके लिए परम मांगलिक है। चूँकि यह मूलतः नया दृष्टिकोण पूर्वोक्त देवदास-पंथी सम्प्रदायके अलस-विलासितामय स्वप्नको, भग्न-प्रेमकी मधु-मोहमयी प्रतिक्रिया-रूपी खुमारको अत्यन्त निर्ममताके साथ तहस-नहस करता है, इसलिए उस वर्गके बीचमें वह कभी लोकप्रिय नहीं हो सकता।

देवदासकी उच्छृंखलताके प्रति समवेदनशीलताका रस उत्पादन करके और उस रसपर खमीरा चढ़ाकर उसे एक विशेष वर्गके पाठकोंके बीचमें वितरित करके 'देवदास'के लेखकने जो मतवालापन फैलाया, वह कभी भी बज़ारू मधुशालाके मतवाले-पनसे किसी क़दर कम नहीं था। उस रसके छायावादी और हालावादी रोमांटिक रसोंके साथ मिलनेसे जो उग्र 'कॉकटेल' तैयार हुआ, उसे पान करके हिन्दीके बहुत-से साहित्य-प्रेमी उन्मत्त हो उठे। कुछ लोग तो देवदास-पंथके ऐसे कट्टर अनुयायी बन गए कि अपने बाज़ारू प्रेमके भग्न होनेकी कल्पना देवदासके प्रेमकी असफलतासे करके उसीकी तरह वेश्यालयोंमें मधुपान करने लगे और केवल इतनी ही बातसे अपनेको समाज-दलित, अन्याय-पीड़ित, शोषित और महान् प्रतिभाशाली उपेक्षित कलाकार समझने लगे। हमारे एक सुप्रसिद्ध कवि-हृदय आलोचक बन्धु तो देवदासके 'पतनकी महानता'से इस क़दर प्रभावित हुए कि उन्होंने अपना उपनाम ही 'देवदास' रख लिया। इस नामसे उनकी कई चीज़ें छपी हैं। केवल यही नहीं, उन्होंने देवदासपर एक कविता ही लिख डाली, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

हे देवदास, हे चिर-उदास,
पारुल के उर के महोच्छ्वास !
तुम महाशून्य के अधिवासी
क्यों भवसागर में लिया वास ?
किस अमृत-लाभ के लिए बन्धु
कर गए गरल पर गरल पान ?
हे तप्त शप्त, क्या मिला तुम्हें
केवल विषाद का महादान ?
इस ज्वाल-सिन्धु में कौन आह
चल सका अरे ले मृदुल प्राण ?
हे सरल हृदय, ले तरल प्रणय
मिल सका किसे कब कहाँ त्राण ?
चिर-प्रेम-चिता की शैय्या पर
लपटों ने तुझसे रचा रास,
वह करुण कथा, वह तरुण व्यथा
बन गई नियति का एक हास।

कविताके भावोद्गार बड़े मार्मिक रूपसे प्रकट किए गए हैं यह माननेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। हमारा उद्देश्य केवल यह दिखाना है कि एक अत्यन्त क्षीण-प्राण, दुर्बल-हृदय असच्चरित्र नायकके प्रति अन्ध मोहाकर्षणका कैसा तूफ़ानी जोश हमारे भावुक कवि-प्राण आलोचक बन्धुने प्रदर्शित किया है। शरत्के चरित्रहीन नायकोंके प्रति यह दृष्टिकोण केवल इन कवि-हृदय आलोचक मित्रका ही नहीं, बल्कि हिन्दीके अधिकांश तरुण साहित्यिकोंका भी रहा है। इस मनोभावने कैसे अस्वास्थ्यकर वातावरणसे हिन्दी-साहित्याकाशको कुछ वर्षोंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा है, अनुभवियोंको इस विषयमें कुछ बतलानेकी आवश्यकता न पड़ेगी। हम पाठकोंसे इस बातपर ठण्डे दिलसे विचार करनेका अनुरोध करेंगे कि जो नायक इस क़दर दुर्बल है कि इच्छित प्रेमिकाको प्राप्त न कर सकनेके कारण शराबके नशेसे बेहोश होकर चौबीसों घण्टे वेश्यालयोंमें पड़ा रहता है, उसका वह पतन क्या वास्तवमें इतना महान् और काव्यात्मक है कि उसे गौरवान्वित करके उसपर करुणा-विगलित आँसुओंकी अविरल धाराएँ बहाई जायँ? जिस नायकमें इतनी शक्ति और समझ-दारी नहीं है कि वह अपने भग्न-प्रेमकी अनुभूतिको समुन्नत रूप देकर उसे वैयक्तिक विकास तथा सामाजिक कल्याणकी ओर नियोजित करे, जो अपने विफल प्रेमकी प्रतिक्रियाके कारण पतनके निम्नतम गढ़ेमें गिरकर आत्म-विनाशको ही पौरुषकी चरम सीमा समझता है, वह क्या सचमुच आदर्श-प्रेमी माने जाने योग्य है, या सामाजिक उद्यानके लिए विष-वृक्षके बीजकी तरह घातक है और समूल नष्ट कर दिए जाने योग्य है? यथार्थवादी उपन्यासोंमें ऐसे नायकोंकी अवतारणा होनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। आपत्ति केवल इस बातपर है कि 'पापीके प्रति करुणा'के नामपर ऐसे खतरनाक जीवोंके पतनको महिमान्वित न किया जाय, बल्कि उनके अत्यन्त जटिल और विकृत अन्तस्तलके प्रति स्तरमें छिपे हुए घोर व्यक्तिवादी, आत्मकामी और असामाजिक संस्कारोंकी पोल खोलकर समाजको इस बातकी चेतावनी दी जाय कि इन विष-वृक्षके बीजों और नरकके कीड़ोंसे सावधान रहकर वह अपनी रक्षा करता रहे। ऐसे व्यक्ति न केवल पतन-प्रेमी होते हैं, बल्कि—जैसा कि कहा जा चुका है—अत्यन्त आत्मलीन तथा निपट स्वार्थी भी होते हैं। देवदास पार्वतीसे प्रेम करता था, सन्देह नहीं; पर वह कभी पार्वतीके मार्मिक प्रेमका महत्त्व उसके (पार्वतीके) दृष्टि-कोणसे—बल्कि सच पूछिए तो किसी भी दृष्टिकोणसे—नहीं समझ पाया। वह इस क़दर आत्मगत और अहम्मन्य था कि पार्वतीके साधारण-से व्यंग्यका मर्म न समझकर उसने बाँसकी लकड़ीके गाँठदार सिरेसे उसके कपालपर ऐसे ज़ोरसे आघात किया कि उसका कपाल फट गया और रक्तकी धारा निकलने लगी। अपनी सामाजिक सत्ताको बनाए रखनेके लिए उसने पार्वतीको इस बुरी तरहसे अपमानित करके ठुकराया, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। अन्तमें वह इधरका रहा, न उधरका—चीतपुरके नरकमें स्वर्ग हो गया। उसके चरित्रका अध्ययन भलीभाँति करनेपर इस बातपर तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि यदि किसी घटनाक्रमसे पार्वतीके साथ उसका विवाह हो भी गया होता, तो वह उससे ऊबकर निश्चित रूपसे चीतपुरकी गन्दी नालियोंमें बहनेवाले कीड़ोंका साथ देता। किन्तु यह सब होनेपर भी लेखकने इस हर तरहसे भ्रष्ट नायकके प्रेमको—परोक्ष रूपसे—स्वर्गीय बताया है और उसके पतित चरित्रपर कोमल कवितामयी करुणाकी इन्द्रजाली रंगमयताका ऐसा प्रकाश डाला है कि प्रत्येक पाठक उसे उसी सम्मोहक रंगीन चश्मेसे देखने लगता है।

हिन्दी-साहित्य-जगत्में ग़ुलाम मनोवृत्ति अभी तक किस क़दर छाई हुई है, इस बातका ज्वलन्त प्रमाण केवल इसी एक बातसे मिल जायगा कि शरत्के जिन उपन्यासोंमें (और ऐसे उपन्यासों और कहानियोंकी संख्या काफ़ी है) भ्रष्ट-चरित्रोंकी महिमा गाई गई है, उनका स्वागत हमारे कला-पारखी पण्डितोंने अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओंको बढ़ाकर किया है, और हिन्दीके जिन नव-प्रकाशित उपन्यासोंका एकमात्र उद्देश्य अहंवादी, आत्म-कामी और पतित पात्रोंके चरित्रका विश्लेषण मनोवैज्ञानिक एक्स-किरणों द्वारा करके उनपर निर्मम रूपसे कशाघात करना है और उन चरित्रहीन नायकोंकी निष्ठुर चीर-फाड़ द्वारा समाजका परिष्करण करके नैतिक स्वास्थ्यका स्थापन करना है, उनकी निन्दाके लिए दल-के-दल संगठित होते चले जा रहे हैं; और वह निन्दा भी इस बिनापर कि वे उपन्यास 'भ्रष्ट' हैं—केवल इसलिए कि उनमें भ्रष्ट-चरित्रोंकी अवतारणा की गई है!! भ्रष्ट-चरित्रोंकी अवतारणा किस उद्देश्यको सामने रखकर की गई है, इस बातको जानते हुए भी हमारे पण्डितगण न जाननेका ढोंग रचना चाहते हैं। उनके इस रुखके मूलमें कौन-सी मनो-भावना काम कर रही है, इस बातपर प्रकाश डालनेका न तो यह उपयुक्त अवसर है और न हमारा उद्देश्य ही।

एक उपन्यास है, जिसका उद्देश्य एक आत्मपरायण दुश्चरित्र नायकके पतन और विकृतिको गौरवान्वित करनेका है, उसकी प्रशंसाके पुल बाँधे जाते हैं और उसे कलापूर्ण और समाजके लिए कल्याणप्रद बताया जाता है। दूसरा उपन्यास है, जिसमें समाजघाती पात्रोंके चरित्रका मनोवैज्ञानिक निरूपण करके उनका यथार्थवादी चित्र सामने रखा जाता है और उनके विषैले संसर्गसे बचकर अथवा उन्हें ठीक रास्तेपर लाकर समाज किस प्रकार सच्ची प्रगतिकी ओर अग्रसर हो सकता है, इस बातका सुझाव पेश किया जाता है। वह दूसरा उपन्यास इसी कारणसे निन्दनीय समझा जाता है। आज यदि कोई यक्ष युधिष्ठिरकी तरह हमसे भी प्रश्न करता कि 'किमाश्चर्यं परम्?' तो हम उत्तरमें यही बात दुहराते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात नहीं कही जा सकती कि हमारे वयस्क पण्डितों अथवा तरुण पारखियोंमें गुण-दोष-विवेचन तथा विशेषताओंको छाँटने और परखनेकी भेदाभेदमयी दृष्टि नहीं है। यह दृष्टि उनमें है और खूब पैनी है। पर कुछ ऐसे विरोधी संस्कार उनके मनपर पड़े हुए रहते हैं, जो कभी-कभी उनके विवेकपर भी विजय पा लेते हैं। इसी कारण साहित्यमें किसी भी नये दृष्टिकोणका महत्व स्वीकार करनेके लिए वे तैयार नहीं होते और तब तक उसका भरसक प्रतिरोध करते रहते हैं, जब तक समय और वातावरण बलपूर्वक उन्हें माननेको बाध्य न करें। इस प्रतिरोधी मनोवृत्तिने वर्षोंसे हिन्दी-साहित्यकी प्रगतिके मार्गमें कैसे भयंकर रोड़े अटकाए हैं और अभी तक अटकाती चली जाती है, इसके कारण कैसा घोर अहित आज तक हिन्दीका हुआ है और होता चला जा रहा है, अनुभवियोंसे यह बात छिपी न होगी। अन्य प्रान्तीय अथवा अन्य देशीय साहित्योंके साथ आज भी हिन्दी-साहित्य कन्धे-से-कन्धा भिड़ानेमें जिस संकोचका अनुभव कर रहा है, उसमें प्रतिभाशाली साहित्य-रचयिताओंका दोष उतना नहीं, जितना हमारे प्रतिभाशाली विवेचकोंका प्रतिरोधी संस्कार है, यह बात दुःखके साथ स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

देवदास-पंथियोंके अतिरिक्त एक और दल हमारे साहित्य-समाजमें है, जो साहित्यमें यथार्थवादकी महत्ता स्वीकार तो करता है; पर केवल एक अत्यन्त संकीर्ण सीमा तक। इस 'स्कूल'के मतानुसार किसी उच्चकोटिके उपन्यासमें वास्तविक जीवनके संघर्ष-विघर्ष, प्रेम और प्रतिहिंसा, घृणा और विद्वेष, पीड़न और निर्यातनका तूफ़ानी विस्फूर्जन नहीं रहना चाहिए—यानी यह कि जीवनके मूल केन्द्रमें जो महत्त्वपूर्ण घटनाचक्र कभी एक झीने पर्देकी ओटमें और कभी खुले तौरपर संघटित होते रहते हैं, जिनके बिना जीवनका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, उनसे एकदम मुँह मोड़ लेना चाहिए और केवल महा-जीवन-प्रवाहके किनारेपर जो तत्त्व निष्क्रिय और निश्चल रूपसे वर्त्तमान हैं, उनको लेकर तटस्थ दार्शनिक भावसे खेलते रहना ही ऊँचे दर्जेकी औपन्यासिक कला है। इस मतके अनुयायी यह बात भूल जाते हैं कि वे अपने अनजानमें छायावादियों तथा देवदास-पंथानुगामियोंसे भी अधिक भयंकर रूपसे पलायन-वृत्तिसे विवश हैं। यदि वे शान्त भावसे आत्म-विश्लेषण करें, तो अपने मानसिक चक्रजाल (Complex) से वे स्वयं भयभीत हो उठेंगे। इन तटस्थतावादियोंको चाहिए, वे अपने इस भयंकर भ्रमको जड़से उखाड़ डालें कि उच्चकोटिकी कला शान्त, संयत और तटस्थ होती है और केवल मौन इंगितोंसे अपनी बात कहती है। साहित्य और कलाके आदि-युगसे लेकर आज तक जितने भी प्रकारकी उच्चतम श्रेणीकी कला-कृतियाँ कालकी अग्नि-परीक्षामें खरी उतरनेके बाद अपना महत्व प्रमाणित कर पाई हैं, उन सबने जीवनके केन्द्रमें गरजने-तरजने और फुफकार मचानेवाले तूफ़ानी घटनाचक्रोंको परिपूर्ण साहसके साथ अपनाया है। यही कारण है कि साहित्यिक क्रान्तियोंकी कितनी ही लहरें आईं और गईं; किन्तु घटनाचक्रवादी शेक्सपियर जहाँ-का-तहाँ स्थित है। रूसके बड़े-बड़े औपन्यासिक महारथी विश्व-साहित्यके रंगमंचपर आए; पर टाल्सटाय और डास्टा-एव्स्की और बहुत-कुछ अंशोंमें गोर्की अपनी इस प्रलय-बाढ़के युगमें भी पूर्ववत् क़ायम रहनेमें समर्थ हुए, और तटस्थतावादी तूर्गेनिवका साहित्य विगत महायुद्धके पहले ही विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो चुका। कारण यह है कि तूर्गेनिव सच्चा कलाकार होनेपर भी तटस्थ रह गया—अर्थात् जीवनके तटपर ही स्थित रहकर कोरी काव्य-कल्पनामें रमा रहा और कलाको केवल कलाके लिए माननेकी सीमा तक ही बँधा रहा। पर डास्टा-एव्स्की आदि प्रमुख महारथियोंने जीवन-स्रोतके भँवरके बीचमें गोते लगाकर तरंगोंकी उथल-पुथलके जो अनुभव प्राप्त किए, उन्हें कलाका रूप दिया, और केवल इतने से ही सन्तुष्ट न रहकर उन्होंने जीवनके तूफ़ानी सागरमें भटके हुए पथिकोंको निश्चित और कल्याणप्रद लक्ष्य सुझाया। जीवनके तटपर स्थित रहकर जीवन और उसकी समस्याओंके साथ खेलनेवाले लेखक—चाहे वे तूर्गेनिवके चचेरे भाई हों, चाहे शाके, चाहे जेम्स जोयसके—कभी कालकी अग्नि-परीक्षामें साबूत नहीं रह सकते, भले ही किसी एक युगकी सीमाबद्धता तक उनकी तूती बोल उठे, बल्कि स्वयं अपने ही युगमें ऐसे लेखक स्वयं अपने भक्तोंसे (अज्ञात रूपसे) घृणा तथा अवज्ञा पाने लग जाते हैं। शाने अपने युगमें बड़ी प्रतिष्ठा पाई और धन भी पाया; पर स्वयं उसके 'भक्तों'ने परोक्ष रूपसे समय-समयपर जैसा मज़ाक उसका उड़ाया, वैसा किसी दूसरे जीवित या मृत लेखकका नहीं उड़ाया। कारण वही है, जो हम बतला चुके हैं। शाने कभी जीवनकी उथल-पुथलके बीचमें पाँव नहीं रखा और केवल किनारेपर स्थित रहकर वह जीवनकी समस्याओंके साथ 'तटस्थ' भावसे खेलता रहा—जीवन-संघर्षके बीचमें आए हुए व्यक्तियोंको वह कभी बच्चोंकी तरह मुँह चिढ़ाता रहा और कभी प्रमादियोंकी तरह उनपर व्यंग्य कसता रहा। शा जब प्रतिष्ठाकी चोटीपर पहुँचा हुआ था, उसी वक्त मर चुका था—सम्मानकी तड़क-भड़कके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपरके रंगीन मायावरणके भीतर जिन लोगोंकी आँखें पैठनेकी सामर्थ्य रखती हैं, उनसे यह बात छिपी न होगी।

असल बात यह है कि न केवल-मात्र घटनाचक्रोंकी बहुलतासे कोई औपन्यासिक रचना श्रेष्ठ मानी जा सकती है, न घटनाओंके वर्जन, कोरे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और तटस्थ दार्शनिक विवेचनसे। घटनाचक्र आलेक्साँद्र दुमा और एडगर वालेसके उपन्यासोंमें बहुतायतसे पाए जाते हैं; पर कभी किसी साहित्य-विवेचकने कलाकारोंकी श्रेणीमें उनकी गिनती नहीं की। किन्तु ह्यूगो और डास्टाएव्स्कीके उपन्यासोंमें घटना-चक्रोंकी इफ़रात रहते हुए भी वे संसारके सर्वोत्तम औपन्यासिक माने गए। दोनों श्रेणीके लेखकोंके बीच इस मूलगत अन्तरका कारण यह है कि पहली श्रेणीके लेखकोंने घटनाचक्रोंका उपयोग केवल अपनी कथाओंको दिलचस्प बनानेके लिए किया और दूसरी श्रेणीके लेखकोंने जीवन-संघर्षकी भयंकरता, जीवनके चक्रजालकी जटिलता और मानव-हृदयके उलटे-सीधे मनोविकारोंकी मार्मिकता प्रदर्शित करके मानवताके लिए जीवनका आदर्श-द्वार मुक्त करने और सामूहिक कल्याणका पथ सुझानेके उद्देश्यसे उनको अपने कथानकमें सन्निविष्ट किया। यदि व्यक्तिगत विद्वेष और विरोधी संस्कारोंको कुछ समयके लिए हटाकर इस बातपर तनिक गौरसे विचार किया जाय, तो एक भयंकर ग़लतफ़हमी हमारे कला-प्रेमियोंके मस्तिष्कसे दूर हो सकती है।

आधुनिक युगके सच्चे यथार्थवादी कलाकारका पथ 'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया' (सानपर चढ़े हुए छुरेकी पैनी धारके समान तीखा और दुर्गम) है। उसपर जीवनके मर्मस्थलोंके फोड़ोंका आपरेशन करके जीवनको स्वस्थ और सबल बनानेका बहुत महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। आपरेशनमें ज़रा भी चूक हुई नहीं कि रोगीकी मृत्यु निश्चित है। आज तक बहुतसे नीमहकीमोंने हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें इस भारी ज़िम्मेदारीके कामको बेधड़क अपने क़ातिल हाथोंमें लेकर साहित्यका जो घोर अहित किया है, उसकी क्षतिपूर्ति होनेमें अभी कई वर्ष लगेंगे। फिर भी इधर कुछ नये औपन्यासिकोंने किसी क़दर अच्छी 'ट्रेनिंग' प्राप्त करनेके बाद इस ओर क़दम बढ़ाए हैं और अपनी योग्यताका अच्छा प्रदर्शन किया है। ये शुभ लक्षण हैं।

अन्तमें हम अपने कला-प्रेमियोंसे यह विनम्र प्रार्थना करेंगे कि वे अपने प्रतिरोधी संस्कारोंको त्यागकर औपन्यासिक कलाके नये आदर्शपर निष्पक्ष और गम्भीर भावसे विवेचन करें। कोई उपन्यास चाहे घटनाचक्रपूर्ण हो, चाहे शान्त और गम्भीर विवेचनासे युक्त; चाहे उसमें मार्मिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया हो, चाहे उसे सरल उपाख्यानका रूप दिया गया हो, इन सब बातोंसे कुछ आता-जाता नहीं। देखना यह होगा कि लेखककी रचना ठोस जीवनके केन्द्रपर स्थित है या नहीं, जीवनके मर्मको छूती है या नहीं और कठोर वास्तविक जीवन-संघर्षके माध्यमसे ही रुग्ण जीवनका उपचार सुझानेमें समर्थ है या नहीं।

३५५, कर्नलगंज, प्रयाग]

ग्राम-बालिका

श्री सोहनलाल द्विवेदी

वह ग्राम-बालिका चली जा रही पथ में,
पहने कानों में तरकी, मुख पर बाला।
अध-खुले बाल रुखे लहराते सिर पर,
आँखों में अंजन लगा हुआ है काला।

पेड़ों-पत्तों पर जो लावण्य बिखरता,
वह खेल रहा है उसके मुखमण्डल पर।
अनजान नगर की हाट-बाट से भोली,
वह देख रही है सबको कौतुक भरकर।

है लाल-लाल लहँगा काली ढिग वाला,
कुछ बूटे उसमें बने हुए हैं सुन्दर।
ओढ़नी छींट की चमकदार-चटकीली,
ऊपर चोली है कसी गजी की मनहर।

है कोका-बेली लिए हाथ में फूली,
हैं हरे-हरे-से बाल लटकते भूपर।
बनदेवी जैसे आती चली नगर में,
हरिणी-सी जाती ठिठक सकुच कुछ लखकर।

राँगे की काली बिछिया हैं पावों में,
हाथों में चूड़ी पड़ी लाख की पीली।
दो काँसे के हैं कड़े पड़े बाजू में,
चूनर की ढिग की कोर सुघर है नीली।

गालों पर गुदना गुदा हुआ है नीला,
हैं बुन्दे उसके चमक रहे हिल-हिलकर।
गाँवों का है यही सिंगार मनोहर,
इससे लगती वह और सलोनी सुन्दर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक झलक

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

नदीका जल आज मटमैला-सा हो रहा था और वह दोनों ओरके ऊँचे किनारों तक वेगसे भर रही थी—सम्भवतः पीछेकी पर्वत-श्रेणियोंपर वर्षा होनेके कारण। जहाँ-तहाँ चिनार-वृक्षोंकी लम्बी झुकी डालियाँ उसका आलिंगन कर रही थीं। कार्त्तिक मासकी केसर-सुरभित पवनमें सफ़ेदेके वृक्षोंसे लाल-पीले-सूखे पत्ते भी झड़-झड़कर मानो उसके वक्षमें शान्ति पाना चाहते थे। उधर पश्चिमकी ओर गुलमर्गके पहाड़ोंकी हिमाच्छादित चोटियोंपर से होती हुई सूर्यकी अन्तिम किरणें भी इसी दूरवाहिकाके हाथों अपना मूक सन्देश सौंपने आई थीं।

स्थान-स्थानपर रुक-रुककर मौसी क्या कहती चली जा रही थीं, युवती मानो सुन ही न रही हो। वृद्धाके शब्द मानो उसके कानोंके बाहर ही रह जाते थे। शायद वह जान-बूझकर ही ऐसा कर रही थी; फिर भी उसकी चेष्टाओंसे वृद्धाको सन्तोष था कि वह अपना हृदय किसी व्यक्तिके आगे ही खोल रही है। किन्तु युवतीकी सम्पूर्ण संज्ञा जैसे हेमन्त-वायुके साथ विस्मृत-सी हो रही थी। मँदले फेन और सूखे पत्तोंसे आच्छादित वितस्ता नदीकी शान्त-गम्भीर गति रह-रहकर उसे मुग्ध किए लेती थी।

जहाँ पक्का किनारा समाप्त हो समतल भूमिके साथ नदीकी चौड़ाई अधिक हो जानेसे वृहत् झील-सा आकार बन गया है, वहाँ पर्वतोंके प्रतिबिम्ब उसकी स्वच्छ-शान्त जल-धारामें पृष्ठभूमि-से लगते हैं। प्रतिदिन इसी कच्चे बाँध तक अकेले ही घूमने आनेका उसका नियम-सा हो गया है। किन्तु अकस्मात् आज ऐसा हुआ कि जब वह सैरके लिए तैयार हो नीचे सड़क पर आई, तो दूरसे वृद्धा मौसीको अपनी ओर आते देखा। 'चलो, मैं भी तुम्हारे साथ ही बाँध तक चलती हूँ।' मौसीके इस अनुरोधको वह टाल न सकी। इस प्रकार अनमने भावसे उसे इधर आना पड़ा।

उसकी प्रकृति-सौन्दर्य-पानकी मूर्च्छना तब टूटी, जब उसके दोनों ठण्डे हाथोंने किसी स्निग्ध उष्णताका स्पर्श अनुभव किया और अपने नेत्रोंमें उन दो प्रौढ़ किन्तु स्वच्छ नेत्रोंकी राहसे प्रकाशकी अद्भुत झलक भीतर आते देखी। इस समय वे दोनों घरके पास ही एक बहुत ऊँचे चिनारके पेड़के नीचे खड़ी थीं। आस-पास धुँधला कुहरा छाने लगा था। वृद्धाने कहा—'ओह! मुझे यह सब अपनी बेटीके सामने न कहना चाहिए था। जाने किसी स्नेहीको पाकर हृदय क्यों फूट पड़ता है?'

युवतीके दोनों हाथ वृद्धाके गरम-गरम उभरे हुए हाथोंमें आबद्ध थे। उसने जैसे निद्रासे चौंककर वृद्धाकी ओर ऊपरसे नीचे तक एक दृष्टि डाली और एक कम्पन-सा उसके शरीरमें दौड़ गया। सफ़ेद हो गए वे लहरदार केश, वह सूखे पुष्प-सा सिमटता हुआ चेहरा! मौसी कभी कितनी सुन्दर थीं! समय और जीवनकी कठोरताएँ मनुष्यको कैसे पीस डालते हैं!

चिनार-वृक्षके पीछेसे वृद्धाके ओझल हो जानेके बाद कुछ क्षण युवती हतप्रभ-सी वहीं खड़ी रही। घर लौटनेको उसका मन न हुआ। वह पुनः नदीके बाँधको ओर, जहाँ लकड़ीके बड़े-बड़े लट्ठे पड़े थे, जँगलेके सहारे जा खड़ी हुई। अँधेरा बढ़ता जा रहा था। आकाशमें कहीं-कहीं तारे झिलमिलाने लगे थे। दूर उस कच्चे बाँध तककी सभी वस्तुएँ, वृक्ष, मोंपड़े आदि चिह्नमात्र-से दिखाई देते थे।

जीवनमें कुछ ऐसे पल अचेतनसे स्पर्श करते हुए निकल जाते हैं, जिनका मूल्य हमें उनके खो जानेपर ही ज्ञात होता है। युवतीको जैसे अनुताप हो रहा हो कि नदी, पर्वतों और वृक्षोंसे फूटती झंकारकी अपेक्षा कहीं अधिक मानव-हृदयके करुण विहागको क्यों आज उसने अनसुना किया? इसी कारण वह बार-बार दत्तचित्त हो चेष्टा करती अभी-अभी कहे गए उन शब्दोंको स्मरण करनेकी—मौसी क्या कहती रही होंगी? किन्तु उसकी चेष्टाके विपरीत मानो दूर दिगांचलमें भासित होने लगे क्रमशः कुछ पुरातन चित्र।

वह एक पहाड़ी गाँव था। वहीं मौसीके पास वह स्कूलकी छुट्टियोंमें गई थी। ऊँची-नीची, घनी हरियाली भूमिमें बावड़ियों, खड्डों, नदी-नालोंके इस-पार उस-पार सुमित्रा बहनके गलेमें हाथ डाले दिन-भर घूमती थी। सुमित्रा बहनकी प्रायः सभी सखी-सहेलियोंसे उसका घनिष्ठ परिचय हो गया था। शहरके स्कूल और घिरे हुए वातावरणकी अपेक्षा उसे वहाँ स्वच्छन्द भावसे विचरना कितना आकर्षक प्रतीत होता था। उस गाँवकी झलक कई बार अब भी उसकी मृदु बाह्य-स्मृतियोंके कोषमें जुगनू-सी चमक उठती है; किन्तु इस समय तो उसके सामने घिर-घिरकर आ रही थी एक भयावनी रात्रि।

दिन-भर वहीं ग्रामीण मेलेमें खेल-कूदकर वह सुखसे निद्रामें निमग्न थी। एकाएक किसी बीभत्स कण्ठ-स्वरसे चौंक पड़ा, मानो एक भयावना स्वप्न देख रही हो। वह भयभीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

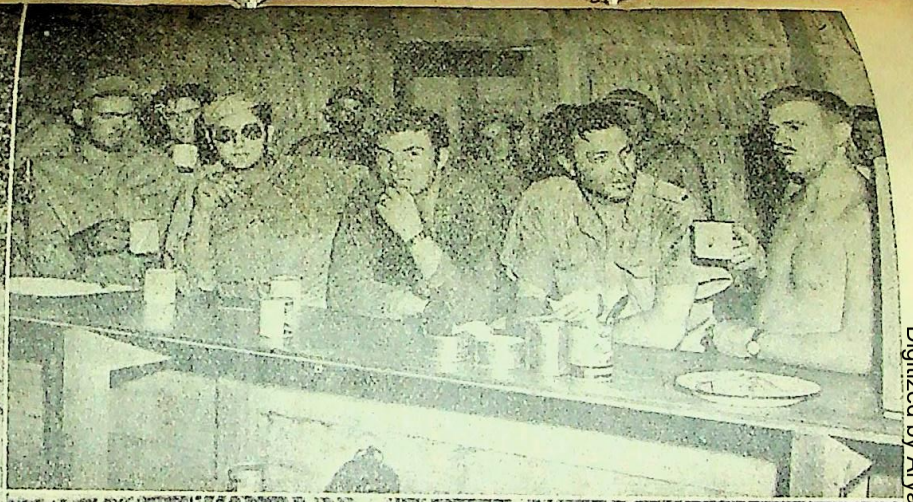

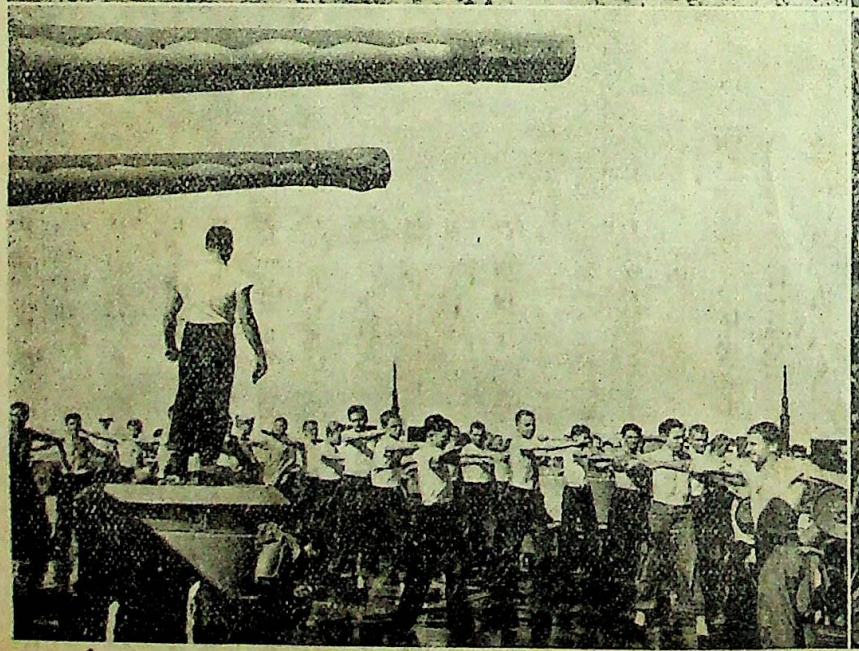

ऊपर—(१) सोलोमन-द्वीपमें एक अमरीकन सैनिक गोदमें छोटी मशीनगन रखकर ब्यालू कर रहा है। (२) पोर्ट मोर्स्बी (न्यूगिनी) के हवाई-अड्डे पर हुई बम-वर्षाके बाद अमरीकन उड़ाके चाय पी रहे हैं। नीचे—(३) अमरीकन नाविक एक जंगी-जहाज़पर दैनिक व्यायाम कर रहे हैं। (४) इन तीन अमरीकन उड़ाकोंने अब तक ४६ जापानी हवाई-जहाज़ोंको मार गिराया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

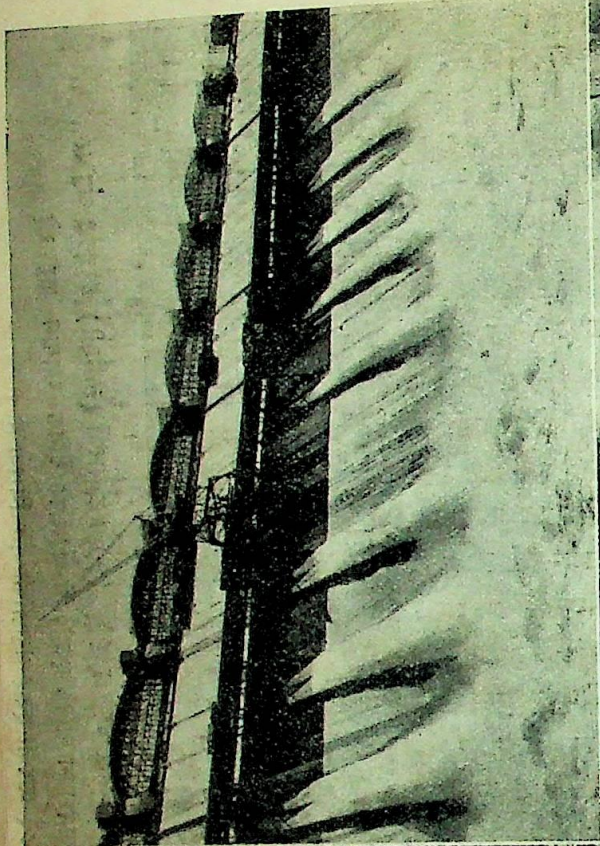

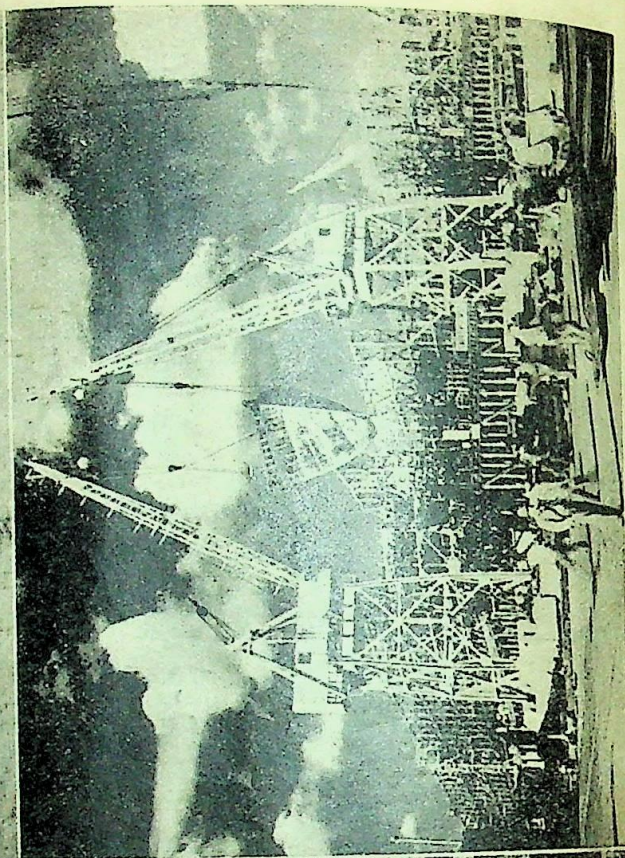

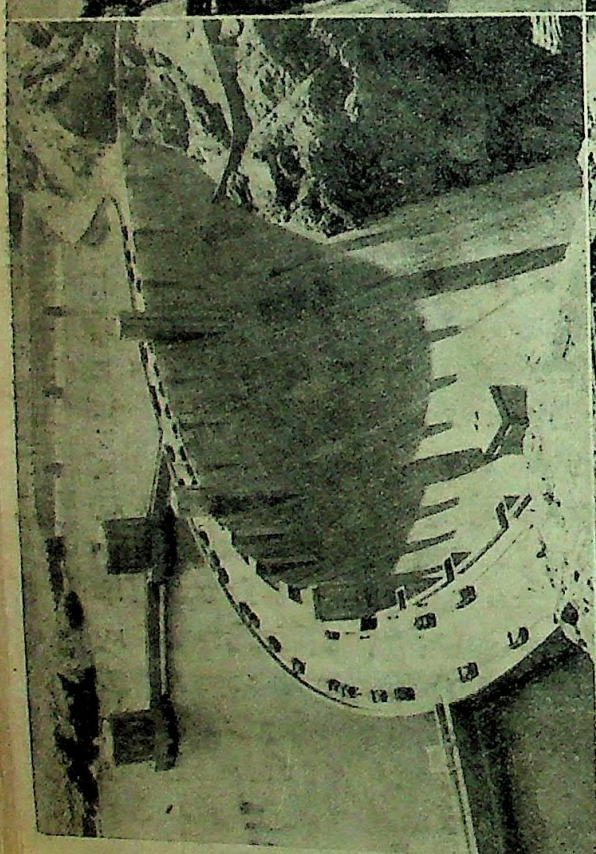

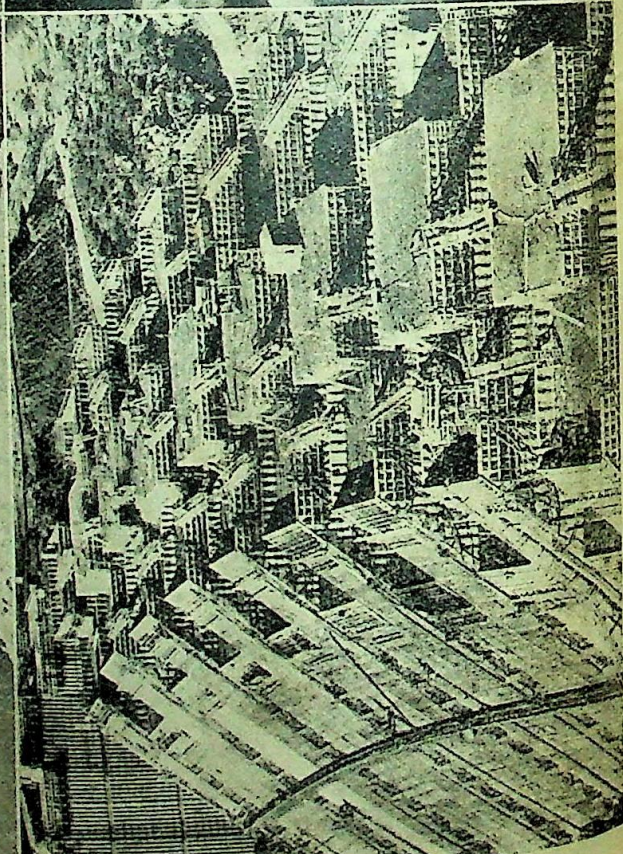

अंगुल-राष्ट्र अमरीकाके प्रसिद्ध व्यवसायी हेनरी जे० कैसरके निर्माण-कौशलके कुछ अद्भुत नमूने—ऊपर : (१) कोलोरोडो नदीका बाँध, जो संसारमें सबसे ऊँचा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्वास खींचे, वहीं बिस्तरमें दुबकी-सी, रज़ाई और भी समेट लेती है। मौसा पुलिसकी वर्दीमें हैं। बाहर आँगनके घने अन्धकारको उनकी लाल-लाल आँखें चमककर और भी भयावना बना रही हैं। फिर भद्दी गालियाँ—शायद मौसीको सम्बोधित करके—'ला पानी'...और फिर क्रोधसे गिलास पटकनेकी आवाज़। रज़ाईसे तनिक मुँह निकालकर उसने देखा, माँ-बेटी दीवारके सहारे रक्तहीन-सी खड़ी हैं। सुमित्रा बहनकी आँखोंमें आँसू हैं और वह काँपती हुई बार-बार उसकी चारपाईके पास देखने आती है कि कहीं वह जागकर देख तो नहीं रही है। जब भी सुमित्रा बहन पास आने लगती, कैसे वह झटसे आँखें मूँद लेती थी।

सहसा सब शान्त हो गया। फिर अर्द्ध-रात्रिकी नीरवता छा गई; किन्तु वह देर तक जागती रही। उसके नन्हे जीवनमें विद्रोहका प्रथम अंकुर सम्भवतः इसी रात्रिमें उपजा था और उन्हीं क्षणोंमें एकबारगी मिट गए उस घरके प्रति संचित आदर, सम्मान और वर्षोंकी रौबीली छाप। सुमित्रा बहन तथा मौसी पालकीमें बैठकर शानसे बाहर निकलती थीं। पीछे-पीछे दो वर्दीधारी अर्दली रहा करते। मौसी प्रायः शहरमें उसके यहाँ इसी ठाटसे आया करतीं। रेशमी वस्त्रों, ज़रीके जूतों और चमक-दमकके ज़ेवरोंसे उसके घरमें जहाँ-तहाँ झलमलाहट हो उठती। कैसे वह अपनी सहपाठिनोंको इन्हीं मौसी और बहनके आगमनका बखानकर चकाचौंध कर दिया करती थी। फिर वह एक सन्तोषकी साँस लेकर सो गई। भले ही उसके घरमें ऐसी बहुमूल्य वस्तुएँ, नौकर-चाकर और पालकियाँ न हों; किन्तु उसकी माँको तो यह सब उपद्रव नहीं सहज करना पड़ता।

अगले दिनके कार्य पूर्ववत् होते देख उसके प्राणोंमें बल आया। उसी सन्ध्याको बैठकमें उसकी बुलाहट हुई। 'अच्छा, तो तुम्हारे पिताजी ऐसा कभी नहीं करते?' कहते हुए मौसाने प्रेमसे उसका सिर दोनों हाथोंसे दबा दिया। ओह! यही बात दिनमें उसने सुमित्रा बहनसे कही थी। मौसा उसपर स्नेह रखते हैं, वह जानती थी। किन्तु उसे क्रोध आ रहा था माँ-बेटी दोनोंपर; क्योंकि वे उसी व्यक्तिसे पुनः घुल-मिलकर बातें कर रही हैं, जिसने रातको उनका इतना अपमान किया था। माता-पिताको प्रसन्नतासे बातचीत करते देख सुमित्राके मुखपर जो सहज मुस्कान बिखर उठी थी, वह भी उसकी बालवृत्तिको न सुहाई। उसका चेहरा लाल हो उठा और वह लापरवाहीकी एक नज़र उस परिवारपर डालते हुए मौसाके हाथोंसे सिर छुड़ाकर भाग निकली।

समयके झोकोंमें एक युग-सा व्यतीत हो गया। बीच-बीचमें स्मरण हो आते हैं माँके ये शब्द—'तुम्हारी मौसीने बड़े दुःख झेले हैं। गईं तो वे बड़े घरमें; किन्तु भगवान बचाए उनकी सास-ननदसे। तुम्हारे मौसा तो शुरूसे ही रँगीले थे। कई-कई दिन बाहर ही गुज़ारते। पीने-खेलनेकी आदत तो उन्हें बहुत दिनोंसे है।...न उनको सन्तानका सुख ही पूरा नसीब हुआ। छः बच्चे हुए, इतने सुन्दर...पर अब यही दो जीते हैं।' कहते-कहते माँका गला रुँध आता और आँखोंमें आँसू छलक उठते।

और एक दिन दरवाज़ेके पीछे चुपके-चुपके खड़े होकर सुनी थी उसने मौसाके सोनेकी घड़ी और चेन हार आनेकी बात। किन्तु पुनः घूम गए उसके सामने सुमित्रा बहनकी शादीमें मौसा-मौसी दोनोंको एक साथ उल्लाससे धूम-धाम रचानेके दृश्य।.....और विवाहके कुल दो ही वर्ष बाद एकप्राण माँ-बेटीका करुण विच्छेद। सुमित्रा बहनकी आकस्मिक मृत्युका समाचार सुन वह दौड़ी गई थी, ताकि किसी प्रकार मौसीके इस तीव्रतम आघातमें सान्त्वना पहुँचा सके।

गरमियोंके दिन थे। कच्चे कोठेकी छतपर वे लोग सो रहे थे। सोते-सोते अकस्मात् एक दीर्घ निश्वाससे उसकी नींद खुल गई। देखा, सर्वत्र चाँदनी छिटकी हुई है। मौसाका बिस्तर खाली है। पास ही चौकीपर पानीकी सुराही और भोजन ढँका पड़ा है। मौसी क्षितिजकी ओर मलिन भावसे देखते हुए क्लान्त पथिककी भाँति इधर-उधर क़दम उठा रही हैं। 'क्यों व्यर्थमें जग रही हैं, मौसी! आप सो रहिए न!' करवट लेते हुए नींदमें उसने कहा था।

'बेटी, मुझे तो नींद ही नहीं आती। तुम्हारे मौसा तो किसी आवश्यक कामसे शहर गए हैं।'

फिर एक झपकीके बाद उसने देखा। रात्रिका अन्तिम प्रहर था। बेरीके वृक्षोंमें से छन-छनकर पूर्णचन्द्रकी अनन्त सुधा उस मलिन मुख-छविको और भी निर्मल सौन्दर्यसे पूर्ण कर रही है। वे एक हाथके सहारे जाने कबसे छोटी कच्ची मुँड़ेरपर झुकी खड़ी हैं। सहसा मानो उमड़ा गहन भाव श्यामल मेघकी नाईं टप्-टप् बरस पड़ा। वह झटसे उठ बैठी और आँचलसे मौसीका मुख पोंछना चाहा; पर मौसीने कहा—'नहीं, नहीं, रानी बिटिया, मैं वारी जाऊँ, तुम सो रहो। आखिर माँ हूँ न, रह-रहकर स्मृतियाँ आती हैं।'

उस रुँधी कातर वाणीको सुनकर उसका जी हुआ कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसीके गलेसे लिपट जाय; पर उसके सामने जैसे एक दीवार-सी खड़ी थी। ढँका हुआ विद्रोह उफ़नने लगा था। मौसी कितना ही पर्दा क्यों न डालें, सन्तति-विच्छेदकी पीड़ाके साथ ही जो असह्य बोझ और बँध गया है, जिसे माँ-बेटी एक साथ वहन कर लेती थीं। आज उनके एकाकी प्राण कितने आकुल और असमर्थ हैं, यह उससे तनिक भी छिपा नहीं है। किन्तु क्यों नहीं वे उतार फेंकतीं इस केंचुलीको? यह सब ऊपरका ही तो प्रपंच है!

वर्षों गुज़र गए हैं; किन्तु अत्यन्त चेष्टा करनेपर भी वह आज तक अपनी इन मौसीको नहीं समझ पाई है। अनजाने ही बाल्य-कालसे जैसी श्रद्धा और आस्था उस मुखश्रीको देखकर उसके हृदयमें उमड़ती आई है, वैसे ही क्षोभके भाव भी। उन तरल नेत्रोंके पीछे मानो एक विरल झरना है, जिससे वात्सल्य, करुणा और स्नेहके आँसू निरन्तर झरते हैं। पास-पड़ोस, नौकर-चाकर तकके बाल-बच्चोंके दुःख-सुखमें उन्हें अपलक जागते एवं हर्षित होते देखा है। एक स्निग्ध आभा-सी उस सहज, सरल, कृश चेहरेसे फूटती रहती है। परसों शामको ही तो उसे स्मरण हो आया था वह दिन, जब वह अपनी एक सखीके बच्चेकी अँगुली पकड़े अकस्मात् उधर गई थी। दिवालीका दिन था। बच्चेको उपहार देनेका उनका कितना मन हुआ। वे दो बार बाहर और भीतर गईं और आँखोंके कोनों तक आँसू भरकर धीरेसे मानो अपनेको ही सम्बोधित कर कह बैठीं—'ओह, जैसा मैंने अपनेको खोया है.....।' पर उन आँसुओंमें करुणा न थी, वात्सल्य भी न था; किन्तु था एक ऐसे विवश भावका उद्रेक, जो पहले कभी नहीं देखा गया।

तभी तो उसे झुँझलाहट हो आती है। अपने जीते-जी वे सब कुछ बहू-बेटेको सौंपकर नदीके तीरपर क्यों जा खड़ी हुई हैं? मौसा पेन्शन लाते हैं और जब-तब कृपा करके उन्हें कुछ दे देते हैं। वर्षोंकी जमा की हुई पूँजीसे जो एक छोटा मकान खड़ा किया है, उसे कितना ही समझाने-बुझानेपर भी अपने नाम करवानेको उनका जी नहीं माना। आश्चर्य है पति-पुत्रकी मान-मर्यादाकी ऐसी रक्षापर!

जीवन एक लम्बी उड़ान है, जिसको उनकी पिंजरबद्ध आत्मा तनिक भी स्पर्श नहीं कर पाई। इस विचारके आते ही चित्रपट-सी उसके सामने घूम गई देश-विदेशमें स्वतन्त्र रूपसे कार्य करनेवाली आधुनिक नारी। किन्तु जीवनके विकासके लिए चाहिए अदम्य शक्तिका प्रवाह। कैसे उसने समाजकी कठोर भित्तिको चूरकर शिक्षा प्राप्त की और कैसे विरोध एवं मनोमालिन्यके बाद स्थानीय कालेजमें शिक्षिकाके पदपर नियुक्त हुई। उसे लगा, जैसे अपनी इन्हीं मौसी-सरीखी पुरातन नारियोंके भीतर-ही-भीतर खौलनेवाली हलचलों और तूफ़ानोंके सत्वसे उसका निर्माण हुआ है।

तारोंसे जगमग अँधेरी रात अभिसारिका-सी बढ़ी आ रही थी। नदीमें शिकारों तथा नावों आदिके चलनेकी धीमी आवाज़ें भी थम गई थीं। भावी सन्तति अपनी जीवन-नौका खेनेमें किस स्वतन्त्र रूपसे समर्थ होगी, इसी मुग्ध कल्पनामें विभोर युवती बाँधसे इस ओर नीचेकी सड़कपर उतरने लगी और सहसा बिजलीके खम्भेका सहारा लेकर रुक गई। चित्रका अन्तिम दृश्य अभी शेष था। सफ़ेदेके वृक्षोंके साथ-साथ जाते हुए मानो अनन्त पथपर दो चिर सहपथिक।

वृद्धा रिक्त मन लेकर घर लौटी, तो बाहर-भीतर सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। केवल कहीं दूर वृक्षोंसे छनते पत्तोंका मर्मर स्वर अथवा सामनेके कमरेसे हल्के प्रकाशके साथ उसके बहू-बेटेकी मन्द हास्य-ध्वनि-भर जब-तब सुनाई पड़ जाती। कुछ क्षण तक वह बरामदेमें वैसे ही खड़ी रही, मानो वह भी उसी निस्तब्धताका अंग हो। निःसन्देह पिछले दो दिनोंसे एक ऐसी कुण्ठित साँस उसके भीतर-ही-भीतर वेगसे चल रही थी। जीवन-भर वह जिस त्याग, सेवा, स्नेह, वात्सल्य आदिको निधि जान अपनी छातीसे लगाए थी, वह एक क्षणमें ही काँचके बर्त्तनकी तरह चकनाचूर हो गई थी। उसके पतिके यह कहनेपर कि 'तुम्हारी कमाई मैं नहीं खाता हूँ; मेरा पैसा हाथका मैल है, जहाँ चाहूँ खर्च करूँ; और रहे तुम्हें खयाल है मकानपर व्यय हुए रुपयोंका, तो वे भी मेरी ही कमाईमें से बचा-खुचाकर जमा किए गए थे।' उस सन्ध्याको उसके अपने ही अभिन्नतम अंश बेटेकी सम्मति थी—'माँ, वास्तवमें तुम्हें इस मन्दीके युगमें पुराने ज़मानेकी खर्चीली आदतें छोड़ देनी चाहिएँ।' वह उस समय कुछ उत्तर न दे सकी। ठीक ही तो है, पति उसका लाता है अपने परिश्रमका संचित धन; बेटे-बहूके स्वयं खाने-पीनेके दिन हैं। किन्तु उसका अपना अस्तित्व क्या है? पथहारा राही सन्ध्या-वेलामें मुड़-मुड़कर पीछे घने मेघाच्छन्न दीर्घ मार्गको देखता है और उसके थके-हारे प्राण जैसे अपनी ही भूलोंपर आह भर उठते हैं। उसका मन भी कुछ ऐसा ही हो चला।

पचपन-वर्षीया वह वृद्धा पंखहीन पक्षीकी नाईं एक वेदनासे छटपटा उठी। न जाने कैसे दो दिन तक उस घुटे वायुमण्डलमें उससे ग्रास निगला गया और साँस ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदाचित् इसी कार। अत्यन्त विवश हो आज सन्ध्याको जाते-जाते अपनी भानजोके आगे दिल खोल बैठी थी। वह अब बुर्क़ा नहीं पहनती, चादर नहीं ओढ़ती, घूँघट भी बहुत कम निकालती है; किन्तु वह सुदृढ़ प्राचीर, जो युगोंसे उसके चारों ओर खड़ी है, उसे वह कैसे तोड़े? अपनी युवावस्थामें वह कितने अनोखे क़सीदे काढ़ सकती थी, ज़रीका बहूमूल्य वारीक काम और मोज़े आदि बुनकर निर्वाह करनेकी योग्यता रखती थी; न जाने क्यों और कैसे पलँगों व पालकियोंपर ज़ेवरों-कपड़ोंसे गुड़ियोंकी भाँति सजा-सँवारकर उसे निर्जीव बना दिया गया। कैसे प्रकट करे वह उन सहस्रों गला घोंटनेवाले क़ानूनोंकी कथा? शराबकी तेज़ गन्धवाली साँसको उसे ज़बरन, अत्यन्त समीपसे, न मालूम कब तक सहन करना पड़ा है? कितनी लम्बी रातें उसने अधीर प्रतीक्षामें काटी हैं? अपनी चिन्ता छोड़ इस परिवारकी सेवा-सुश्रूषामें कैसे तन्मय हो मंगल-कामनाएँ की हैं? पर यह उसकी कितनी बड़ी भूल थी! सहसा उसका स्वाभिमान जाग उठा और आवेशमें आकर वह कह ही बैठी कि आज भी यदि उसे कहीं काम मिले, तो इन रुग्ण हाथोंमें फिर क्षमता आ सकती है!

किन्तु नारी-हृदय एक गूढ़ पहेली है। प्रचण्ड तूफ़ान लिए वेगवान लहरें जैसे सिन्धुमें उठती हैं और तटकी भूमिका स्पर्श करते ही पुनः उसी अगाध जल-राशिमें विलीन हो जाती हैं। उपर्युक्त सभी बातें कह चुकनेके अनन्तर दूसरे ही क्षण उसे खयाल आया—अपनी नग्नता दूसरेपर प्रकट कर क्या वह सब-कुछ खो नहीं बैठी? उसका चित्त हल्का होनेकी अपेक्षा पुनः जैसे एक नूतन कुहासेसे भरने लगा। तीखी सर्द वायु, वर्षाके कारण जहाँ-तहाँ पोखर-गड्ढोंमें एकत्रित जल, कीचड़, निविड़ रात्रि। उसकी आँखें दूर-दूर अन्धकारमय पथपर अधीर हो विचरने लगीं और भुजाएँ अनायास ही आकाश-बेलकी भाँति किसी पोषितको समेटनेके लिए आकुल हो उठीं। न जाने वह किस प्रेरणासे दौड़ी-दौड़ी बाज़ारके कोने तक पहुँच गई।

एक कुलीके कन्धेका सहारा लिए उसका पति लड़खड़ाता चला आ रहा था। पथ-भ्रष्ट सन्तानपर अत्यन्त दुखी, किन्तु स्नेहकी शतधाराएँ बहानेवाली जननीकी भाँति, नशेसे चूर पतिको उसने आगे बढ़कर वक्षसे लगा लिया। कहीं कोई इस अवस्थामें उन्हें देख न ले, इस भयसे सीधे लोक-पथसे न जाकर, जो संकीर्ण मार्ग पीछेकी ओरसे काश्मीरी मुहल्लेकी ओर गया है, उसी ओरसे वह उसे गड्ढों-पोखरोंवाले बीहड़ पथसे बचाती हुई लिए चली जा रही थी।

वसन्त और ग्रीष्मकी समूची बिखरी राशिको समेट, एकाकिनी धरणीका सौन्दर्य हेमन्तमें जैसे और भी निखर उठा है। समस्त वन-प्रान्तके निर्झरों, झीलों और छोटे-बड़े नदी-नालोंका दुख-सुख-भरा संगीत हृदयमें छिपाए वितस्ता सहसा गम्भीर कल-कल स्वरसे भर उठी है। वहीं, बिजलीके खम्भेके पास अपलक, मुग्धा-सी खड़ी युवती उस प्रौढ़ नारी-हृदयसे फूटती वैसी ही एक अक्षय झलक पा पुलकित हो उठी।

भग्न-नीड़

श्री ब्रह्मदेव शास्त्री

धवल शिखर पर चढ़,
तुषार की धाराओं से कहो—
उतर आएँ वे नीचे।
आग बह रही है पृथ्वी पर, उसको सींचें।
मानव का दानवी रूप
हो रहा आज भैरव नर्त्तन - रत,
शत - शत ज्वालाएँ धधकी हैं
क्षुब्ध सिन्धु के आलिंगन को।
है पुकारती दिशा निशा में
निज प्रकाश के उज्ज्वल दिन को।
आभग्न - नीड़ हो गए नगर,
खँडहर, टीले समाधि - संस्थल;
बन गए सौध, विश्राम-कक्ष, मदिराप्लुत
बेसुध लास्य-गेह, लीला - गृह, केलि - सदन संचल;
चंचल विलास, अतृप्त प्यास, क्रीड़ा - विद्युत्
शृंगार-साज; वे हाव-भाव, वे राग-रंग सपनोंके अंचल,
प्रलयंकर के गीत बन गए!
पृथ्वी, जल, आकाश, अनिल में
व्याप्त अहर्निशि सर्वनाश।
शस्य-श्यामला भूमि बधस्थल,
अनल गिराता अरे, आज गीला नीलाम्बर।
अहरह यह जलता है सागर,
घहर - घहर गिर रहे वज्र रे,
कहाँ अमृतके आज घन गए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटलीमें नारीका स्थान

श्री कुसुम गुप्ता, बी० ए०

किसी देशमें स्त्रियोंका क्या स्थान है, अथवा उनका कैसा स्थान होना चाहिए, यह सर्वथा अविवादास्पद नहीं है। जब तक हम किसी देशके इतिहास, परम्परा, समाज, जातीय विशेषताएँ तथा अन्य बातोंका सम्यक अध्ययन न करें, उसके बारेमें कुछ कहना कठिन है। इस लेखमें केवल यही बताया जायगा कि इटलीका स्त्री-समाज पहले क्या था और अब क्या है?

कुटुम्ब समाज और देशकी नींव है। कदाचित् इसीलिए फ़ाशिस्त व्यवस्थामें भी इसे बड़े महत्वका स्थान दिया गया है। चाहे यह नीतिकी दृष्टिसे हो, चाहे आर्थिक दृष्टिसे और चाहे धार्मिक दृष्टिसे; पर इसके फल-स्वरूप स्त्रियोंकी उन्नतिकी ओर सर्वसाधारणका ध्यान गया है। आज तो इटलीकी स्त्री अपने देशके ऐतिहासिक रंगमंचकी मुख्य अभिनेत्री है। विवाहको वह अपना मुख्य ध्येय समझती है। १९२२ तक इटलीमें विवाहकी दो रस्में हुआ करती थीं—एक अदालती, जिसे सरकार स्वीकार करती थी; और दूसरी धार्मिक, जो गिरजेमें होती थी। पर अब एक धार्मिक रस्म यदि पादरी द्वारा गिरजेमें होती है, तो वह क़ानूनी मानी जाती है। तलाक़ नहीं होता; किन्तु वैवाहिक जीवनका 'कैनन-ला'के अनुसार विच्छेद हो सकता है। पहले तलाक़ तभी हो सकता था, जब कि स्त्री घरमें रहती थी। अब व्यभिचारके दोषमें भी तलाक़ हो सकता है। पुरुष १६ और लड़की १४ वर्षकी अवस्थामें विवाह कर सकते हैं; किन्तु पुरुषको २१ वर्ष और लड़कीको १८ वर्षकी आयु तक संरक्षककी आज्ञा लेनी पड़ती है। पर शनैः-शनैः उसकी स्थिति सुरक्षित होती जा रही है। उसकी अपनी कमाई हुई आय उसकी निजी सम्पत्ति मानी जाने लगी है।

चूँकि फ़ाशिस्त-व्यवस्थाका मुख्य आधार सेना है, लोक-बल नहीं; स्त्रियोंको सन्तानोत्पत्तिके लिए विशेष प्रोत्साहन एवं सुविधाएँ दी जाती हैं। प्रसूति-गृहोंका संचालन बहुत बड़े पैमानेपर और बड़ी तत्परतासे होता है। जिन औरतोंके बच्चे होनेवाले होते हैं, उनको सरकारकी ओरसे मुफ़्त डाक्टरी सहायता दी जानेकी व्यवस्था है। ऐसी स्त्रियोंके लिए सरकारी मातृ-मन्दिर भी काफ़ी संख्यामें हैं। शिशु-पालन-केन्द्रोंकी भी कमी नहीं है। अनाथ बच्चोंके लिए अनाथालय हैं, जहाँ १८ वर्ष तकके बालकोंका पालन-पोषण एवं शिक्षण होता है। औरतोंको सलाह दी जाती है कि वे अपने बच्चोंको शिशुपालन-केन्द्रोंपर ले जायँ, उनके पालन-पोषणके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक बातें सीखें और उनका नियमानुसार वज़न करवायें। ज़रूरत होनेपर उनके खाने और रहनेका इन्तज़ाम भी सरकारकी ओरसे किया जाता है। इटलीके व्यापारिक केन्द्रोंमें उनके लिए दिवस-दाईखाने खोले गए हैं। जो स्त्रियाँ कारखानोंमें काम करने जाती हैं, वे अपने बच्चोंको यहाँ छोड़ जाती हैं। यहाँ उनको दूध पिलाने, खेलने-कूदने आदिकी व्यवस्था है। अब यहाँ तीन वर्षसे छः वर्ष तकके बच्चोंकी पढ़ाई भी होने लगी है। जिन लड़कियोंके विवाहित न होते हुए भी बच्चे हो जाते हैं, उनको भी पर्याप्त सहायता मिलती है। ऐसी माताओंका विवाह तय करानेका भी प्रयत्न किया जाता है। यदि ऐसे बच्चेका पिता उसकी मातासे विवाह नहीं करता, तो उसे उस बच्चेकी रक्षा और पोषणके लिए कुछ आर्थिक सहायता देनी पड़ती है। रोगी, दुर्बल और क्षयवाले बालकोंके लिए विशेष प्रकारके औषधालय और स्वास्थ्य-निवास हैं। जो बच्चे छोड़ दिए जाते हैं, उनके पालन-पोषणके लिए भी विशेष प्रबन्ध है।

इटलीमें औरतोंके युवती-संगठन भी हैं। कम-से-कम छः वर्षकी बालिकाएँ इसमें दाखिल हो सकती हैं। ये 'छोटे इटालियन' कहलाती हैं। १४ वर्षकी होनेपर ये 'युवा इटालियन' और १७ वर्षकी होनेपर 'युवा फ़ाशिस्त' कहलाती हैं। २५ वर्षकी होनेपर यह सब फ़ाशिस्त-संघकी सदस्या बन जाती हैं। आयुके हिसाबसे इनको व्यायाम, खेल-कूद इत्यादि करने पड़ते हैं। ग़रीब स्त्रियोंको दवाई तथा खाना आदि मुफ़्त मिलता है। गर्मीमें 'ग्रीष्म-कैम्प' होते हैं, जहाँ शिक्षा-दीक्षाके अलावा स्वच्छ वायु-सेवन और स्वास्थ्य-सुधारका लाभ सबको होता है। इस प्रकारके कैम्पोंमें आधुनिक शैलीके सुन्दर मकान होते हैं। यहाँ बड़ी आयुकी लड़कियों और स्त्रियोंके लिए गृह-शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, आरम्भिक सहायता, शिशु-पालन, अन्य भाषाएँ, टाइप-राइटिंग, संकेत-लिपि, बही-खाता, फ़ोटोग्राफ़ी, कपड़े बुनना, सीना-पिरोना इत्यादिकी शिक्षा दी जाती है। जो औरतें गाँवोंमें रहती हैं, उनको भी अनेक प्रकारकी शिक्षा दी जाती है, जैसे घरेलू जानवरोंका पालन, मालियोंके शाक और फल उगाना आदि। सुदक्ष औरतोंको काम दिलानेके लिए जगह-जगह आफ़िस बने हैं।

इटलीकी लड़कियाँ और स्त्रियाँ खेल-कूदमें भी काफ़ी आगे हैं और समाज तथा सरकारकी ओरसे उनको प्रोत्साहित किया जाता है। इसके लिए महिलाओंके खेलोंकी अलग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्प्रान्तीय, र[illegible]-और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। बर्लिनमें हुए ओलिम्पिक-खेलोंमें इटलीकी एक लड़कीने ८० मीटर टट्टीकी दौड़में विश्वका रेकर्ड तोड़ा था। मुझे जब अन्तर्राष्ट्रीय छात्रोंकी यात्राके दौरानमें इटली जानेका अवसर मिला, तब मुझे एक विशेष बात यह मालूम हुई कि वहाँकी औरतें और लड़कियाँ खेलोंका महत्व जानती हैं और उनमें खूब दिलचस्पी लेती हैं। वहाँकी लड़कियोंके स्वास्थ्य और हमारे भारतीय लड़के-लड़कियोंके स्वास्थ्यमें ज़मीन-आस्मानका फ़र्क़ है। रोम और मिलानमें हम लोगोंने इटालियन लड़कियोंके खेल भी देखे। वे लड़कोंसे किसी भी प्रकार कम न थीं। टेनिस, फेन्सिंग, स्कीइंग, स्केटिंग, कसरत, तीरन्दाज़ी और तैरनेमें सभी लड़कियाँ सुदक्ष थीं।

अन्य देशोंकी भाँति इटलीमें भी इधर कुछ दशकोंसे गाँवोंसे आ-आकर लोग शहरोंमें बसने लगे हैं; पर अब इस हवाको रोकनेका प्रयत्न हो रहा है। जो कच्ची सामग्री और खाद्य-पदार्थ बाहरसे आते हैं, उन्हें सरकार पसन्द नहीं करती। इस कारण जिन वस्तुओंकी यहाँ कमी रहती है, अब उनके कारखानें ही बनाने और बढ़ानेके प्रयत्न हो रहे हैं। गाँव-वालोंको अनेक सुविधाएँ देकर गाँवोंमें ही रखा जाता है। वहाँके किसानोंकी औरतें ढोर, दुग्धशालाओं और मुर्ग़ियोंकी देख-भाल करती हैं। गाँवोंमें सभाएँ स्थापित की गई हैं, जो कृषि-विभाग तथा स्वामी और मज़दूरोंकी प्रबन्ध-कर्तृ-सभाओंसे सम्बन्ध रखती हैं। ये गाँवोंकी औरतोंको पुस्तकों, फ़िल्मों तथा भाषणों द्वारा शिक्षा देती हैं और आवश्यक मामलोंमें सलाह भी। मुर्ग़ी, खरगोश, मधुमक्खी, खेत आदिको कैसे रखना चाहिए और कैसे इनकी उन्नति करनी चाहिए, ये बातें फ़िल्मों तथा भाषणोंसे बताई जाती हैं। रेशमके कीड़ोंको पालना तथा बढ़ाना, कातना, बुनना, बेल-फूल इत्यादि बनाना (काढ़ना) आदि उद्योगोंको प्रोत्साहन दिया जाता है। बच्चोंकी देख-भाल, पालन-पोषण, प्राथमिक सहायता, रसोई, सिलाई आदि भी सिखाए जाते हैं। जिस स्त्रीका घर सबसे सुन्दर और साफ़ होता है, उसको पुरस्कार भी दिया जाता है।

सजावटी कलाएँ और जीवनमें कलाओंका क्या स्थान होना चाहिए, यह भी उन्हें बताया जाता है। कृषि-विभागने ६० से अधिक फ़िल्म इस तथा ग्राम-सुधार-सम्बन्धी अन्य समस्याओंपर बनाए हैं। शहरोंमें गाँवकी वस्तुओंका प्रदर्शन होता है और पुरस्कार भी दिए जाते हैं। स्थानीय दस्तकारी, खाद्य-पदार्थ तथा पशु-पालनके लिए भी पुरस्कार दिए जाते हैं। स्त्री-संगठनोंके चन्देसे थोक कपड़ा और अन्य वस्तुएँ खरीदी जाती हैं, जिनसे ग़रीब बच्चोंके लिए स्त्रियाँ टोपियाँ, बोनेट, जूते, कम्बल इत्यादि बनाती हैं। इफ़ी-फेइंग इटलीकी बालिकाओंका राष्ट्रीय त्यौहार है। इस दिन हज़ारों बच्चोंको कपड़े, मिठाई, खिलौने आदि बाँटे जाते हैं।

फ़ाशिस्त-पार्टीकी स्त्री-सदस्याएँ जाड़ोंमें नगरों व गाँवोंमें घूम-घूमकर ग़रीबोंकी सुख-सुविधाओंको देखती हैं। यह काम सच्चे दिलसे होता है। इसके लिए चार महीनेकी शिक्षा लेनी पड़ती है। अस्पताल, रोग-शय्या, बीमा आदिके बारेमें भी उनको पूरी जानकारी हासिल करनी पड़ती है। आज राजनीति, शिक्षा, व्यायाम, क़ानून, डाक्टरी, पशु-चिकित्सा, यन्त्र-विज्ञान, रसायन, शिल्प, कृषि, लेखन-कला, सम्पादन, ललित-कला, संगीत आदिके क्षेत्रोंमें इटालियन स्त्रियोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है और वे काफी संख्यामें हैं।

सरकारी नौकरियों आदिमें भी औरतें पुरुषोंके समान प्रतियोगितामें भाग लेती हैं। एक स्त्री रोमकी देख-भालकी उपसंचालिका है। रोम-विश्व-विद्यालयमें पुरातत्त्वकी अध्यापिका भी एक स्त्री ही है। सरकारी अन्वेषण-विभागकी अध्यक्षा भी एक स्त्री ही है। वैज्ञानिक खोजके लिए जो दल अफ्रीका गया था, उसकी मुखिया भी एक स्त्री ही थी। जीव-विज्ञान और रसायन-शास्त्रमें खोजका काम औरतें ही कर रही हैं। इन सबके अतिरिक्त व्यापार और लेन-देनमें भी स्त्रियाँ खूब काम कर रही हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इटलीकी स्त्री एक आदर्श गृहिणी, आदर्श माता और आदर्श देश-सेविका है; पर पुरुषोंकी निरी ग़ुलामीसे मुक्ति पानेके बाद आज वह अनुभव कर रही है कि फ़ाशिस्त-व्यवस्थाने उसके विकासको संकीर्ण सीमाओंमें बाँध दिया है। जिसे वह अब तक अपनी सामाजिक, राजनीतिक एवं अर्थनीतिक उन्नति समझ रही थी, वह उसकी ग़ुलामीका एक नया रूप ही है। वह अपने नहीं, पुरुषों द्वारा निर्दिष्ट किए गए पथपर ही चलनेको विवश है। इटलीकी बहुसंख्यक नारियोंने आज अपनी स्थितिकी इस वास्तविकताको समझा है और उनमें इसकी तीव्र प्रतिक्रिया भी स्पष्टतया दिखाई पड़ रही है। बहुत शीघ्र वह समय आनेवाला है, जब वे वर्त्तमान व्यवस्थाके जालसे मुक्त हो अपनी वास्तविक स्वाधीनता और स्त्री-पुरुषकी सच्ची समानताकी नींव डालेंगी।

नज़रबाग, लखनऊ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्माओंका प्रत्यक्ष आवाज़

श्री ललीप्रसाद पाण्डेय

"आत्माओंकी प्रत्यक्ष आवाज़ भोंपे द्वारा सुनी जाती है। इसके प्रयोग करनेकी विधि यह है कि माध्यम और ४-६ आदमी एक कमरेमें बिलकुल अँधेरा करके बैठ जाते हैं और भोंपा ज़मीनपर रख देते हैं। वह भोंपा ग्रामोफोनके भोंपेकी भाँति होता है। इसकी लम्बाई १॥ फुटसे २ फुट तक होती है। इसके एक सिरेमें ३/४ इंच चौड़ा छेद होता है और दूसरा सिरा, जहाँसे आवाज़ सुनाई पड़ती है, ६ इंचका होता है। ये प्रायः कागज़ या एल्यूमीनियम आदि हल्की धातुके बनाए जाते हैं। प्रयोग करनेवाले परस्पर हाथ मिला कर बैठते हैं। कमरेमें बिलकुल अँधेरा रहता है। इसके बाद भोंपा ऊपर अधर हो जाता है। अँधेरेमें यह दिखाई पड़ता रहे, इसके लिए उसमें कुछ चमकनेवाले कण लगा दिए जाते हैं। प्रयोग करते समय भोंपा इस प्रकार ऊपर उठ जाता है, तब उससे कुछ टूटी-फूटी आवाज़ आने लगती है। इसके बाद माध्यम और अन्य लोग आत्मासे प्रार्थना करते हैं कि 'हाँ, बोलिए, बोलिए।' तब धीरे-धीरे आवाज़ स्पष्ट होने लगती है। हमने इसके प्रयोग अपनी विलायत-यात्राके समय देखे हैं। जब यह भोंपा ऊपर उठा, तो हमने इसके चारों ओर हाथ फेरकर अपना यह सन्देह निवारण किया कि इसमें कोई चालाकी तो नहीं है। किन्तु वह गुब्बारेकी भाँति अधर था। एक बार तो श्रीमती ऋषिने उसे हाथसे ऐसा झटका दिया कि वह ऊपर चला गया। ऐसे प्रयोग कई घण्टे तक होते रहते हैं। यदि बीचमें आवाज़ कम हो जाती है, तो आत्माओंसे फिर प्रार्थना करते हैं कि कृपाकर बोलिए। भारतमें ऐसे प्रयोग करनेके लिए माध्यमोंका अभाव है। हमने अपने यहाँ इसके प्रयोग किए थे; किन्तु इसमें कोई सफलता नहीं मिली।" ('परलोकवाद')

श्रीयुत वी० डी० ऋषिकी पुस्तक 'परलोकवाद'में उक्त अनुच्छेद देखनेपर मुझे मास्टर साहबकी बँगला-पुस्तक 'इहलोक-परलोक'के तृतीय परिच्छेदमें वर्णित एक घटनाका स्मरण हो आया और प्रसन्नता हुई कि जिस कार्यमें ऋषिजीको रत्ती-भर भी सफलता नहीं हुई, उसीमें मास्टर साहब सोलहो आने कृतकार्य हुए। मैंने मास्टर साहबके सम्बन्धमें सितम्बर, १९४१ के 'विशाल भारत'में पृष्ठ २३४ पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। मास्टर साहब तो परलोक-विद्याके निःस्वार्थ प्रेमी हैं और उसके शोध-कार्यमें बड़ी लगनसे लगे रहे हैं। इसलिए यह शंका करनेकी गुंजाइश ही नहीं रह जाती कि उनके वर्णनमें कहीं कुछ छल-कपट होगा। अब यहाँ 'इहलोक-परलोक'से अभीष्ट अंश उद्धृत किया जाता है।

मास्टर साहब (श्रीयुत बाबू अतुलबिहारी गुप्त, एम० ए०, एल० टी०) उन दिनों मुरादाबादमें रहते थे। एक दिन दैवयोगसे एक गुजराती साधु उस शहरमें आए और मास्टर साहबसे मिले। इनका नाम शिवानन्द था। उम्र ६०-६५ वर्षकी रही होगी। ये साधुओंकी भाँति गेरुआ वस्त्र आदि नहीं पहनते थे। किसी प्रकारका बाहरी आडम्बर इनमें न था। इन्होंने बचपनमें ही घर-द्वार छोड़ दिया था। देश-विदेशमें रमते रहना और यथाशक्ति लोक-सेवा करना इनका प्रिय कार्य था। ये कभी किसीसे रुपया-पैसा वगैरह न लेते थे। भेंट होते ही मास्टर साहबने समझ लिया था कि परलोकगत आत्माओंसे सम्बद्ध ज्ञान इन्हें पर्याप्त है। इतने दिनोंसे मास्टर साहब जैसे सन्तको ढूँढ़ रहे थे, लगे भगवानने इस प्रकार उनके पास पहुँचा दिया। इनसे मिलनेके बाद मास्टर साहबने अपने घरपर 'चक्र'का प्रबन्ध किया। मास्टर साहब तो प्रतिदिन 'चक्र'का प्रयोग करना चाहते थे; पर शिवानन्दजीकी सलाहसे सप्ताहमें दो दिन—शनिवार और बुधवार—इसके लिए रखे गए।

शिवानन्दजीने पहले ही दिन बतलाया कि परलोकगत आत्माओंको बुलानेके सम्बन्धमें कुछ नियमोंका पालन आवश्यक है। यथा (१) पहले-पहल कुछ चक्रोंकी व्यवस्था सूर्यास्तके पश्चात् ही होनी चाहिए। आत्माका सूक्ष्म शरीर ऐसे उपादानसे निर्मित रहता है कि साधारणतः वह सूर्यके तेजको सहन नहीं कर सकता; किन्तु कुछ ऐसी भी आत्माएँ हैं, जो दिनके उजालेमें भी बेखटके प्रकट हो सकती हैं। (२) जिनको प्रेत-विद्यापर विश्वास न हो, उन्हें 'चक्र'में सम्मिलित न करना ही उत्तम है। (३) जहाँपर चक्र बैठे, वहाँ एकाएक तीव्र प्रकाश न लाया जाय। (४) सभी परलोकगत आत्माओंमें इस लोकमें आकर बातचीत करने और हम लोगोंको दिखाई देनेकी योग्यता एक समान नहीं होती। बहुत-सी आत्माएँ तो देह त्यागनेके बाद ही इस जगत्‌में आकर बातचीत करने लगती हैं और अन्य आत्माओंको यह क्षमता बहुत समय बीतनेपर प्राप्त होती है। शरीर धारण करके दिखाई देनेकी योग्यता बहुत ही कम आत्माओंमें होती है। जो आत्माएँ बातचीत कर सकती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें भी कुछ [illegible]में (क) कोई-कोई तो केवल ठक-ठक शब्द द्वारा ही प्रश्न आदिका उत्तर देती हैं। (ख) कोई-कोई चोंगेके भीतरसे बोलती हैं। इसलिए प्रत्येक चक्रमें एक चोंगा रखना पड़ता है। (ग) कोई-कोई माध्यम (सहायक) की मारफ़त बातचीत करती हैं। किन्तु गलेकी आवाज़ और बातचीत करनेका ढंग आदि बिल्कुल आत्माके पार्थिव जीवनके ही समान होता है। (घ) कोई-कोई स्वयं बातचीत करती हैं। उस समय ऐसा लगता है, कोई आकाशसे बोल रहा है। (५) मृत्युके बाद बहुत-सी आत्माएँ आकर हम लोगोंसे बातें करना चाहती हैं। इनमें दुष्ट आत्माओंकी अधिकता होती है। चक्र बैठते ही ये भली आत्माओंको दूर हटाकर स्वयं प्रकट होनेकी चेष्टा करती हैं। ऐसे समय यदि माध्यम विशेष जानकार और क्षमताधारी नहीं होता, तो ये बुरी आत्माएँ आ जाती हैं।

जिस कमरेमें 'चक्र' बिठाया जाता था, उसमें चक्रके लिए आवश्यक वस्तुओंके अतिरिक्त और कुछ न रहने दिया जाता था। सामग्रीकी सूची यह है—एक टेबिल, कुछ कुर्सियाँ, एक चोंगा, एक फूलदानी, एक हारमोनियम बाजा, कुछ सादे काग़ज़, एक पेंसिल, एक टेबिल-लैम्प और एक गीताकी पुस्तक। उस दिन चक्रमें कुल सात आदमी थे—पाँच हिन्दू और दो मुसलमान, जो स्थानीय कालेजमें लेक्चरर थे। चक्रसे प्रथम जब साधुने सुना कि दो अहिन्दू हैं, तब उन्होंने मास्टर साहबसे कहा—'मुसलमानकी उपस्थितिसे हमें ज़रा भी आपत्ति नहीं है। किन्तु ऐसे लोगोंको हमने इससे पहले कभी सम्मिलित नहीं किया। पता नहीं, प्रेतात्माको इसमें कुछ ऐतराज़ हो सकता है कि नहीं। इसलिए कह नहीं सकते कि चक्र सफल होगा या नहीं।' दोनों ही लेक्चरर मास्टर साहबके साथी थे। चक्रका हाल सुनकर वे अपने-आप आ गए थे।

मास्टर साहबके अनुरोध करनेपर इन दोमें से एक (सुलतान मुहम्मद) ने उर्दू-भजन गाया। भजनकी दो कड़ियाँ पूरी होते ही टेबिलके ऊपरका चोंगा एकाएक ऊपर उठकर चक्कर खाने लगा। कमरेमें बहुत धीमा उजाला था। उसमें दिखाई दिया कि माध्यम तथा अन्य व्यक्ति अपनी-अपनी कुर्सीपर निःस्तब्ध बैठे हुए हैं। सबने समझ लिया कि चोंगेकी इस झपटमें किसीके हाथकी सफ़ाई नहीं है। कोई चेष्टा करता, तो भी चोंगेको इस तरह अधर में नचा सकता था। वह कभी तो सबके सिरपर आ जाता था, कभी बिलकुल छतके समीप पहुँच जाता था और कभी-कभी कमरेमें एक दिशासे दूसरीमें चला जाता था। अन्तमें उसकी गति इतनी बढ़ गई कि वह साफ़-साफ़ दिखाई तक न देता था।

इसके बाद माध्यमके मस्तकसे प्रायः ३ फुट ऊपर आकर चोंगा ठहर गया। पहले-पहल उसके भीतरसे बहुत ही मद्धिम आवाज़ निकली, जिसको कोई समझ नहीं सका; किन्तु लगभग आधे मिनटमें आवाज़ साफ़ हो गई। तब मालूम हुआ कि कोई सलीस उर्दूमें बोल रहा है। स्वरसे वक्ताकी उम्र अधिक प्रतीत हुई। शब्द साफ़ होनेपर समझमें आ गया। वह कह रहा था—'सुलतान, क्या तुमने मुझे पहचाना नहीं?' भावसे जान पड़ा कि यह भला आदमी आरम्भमें इस घटनाके लिए प्रस्तुत नहीं था। वह कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। शायद उसके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली। अदृश्य वक्ताके स्वरने जब दुबारा वही बात पूछी, तब उसने उत्तर दिया—'आप...आप हैं कौन? आप अब्बाजान तो नहीं हैं?'

इसके बाद लगभग ७-८ मिनट तक साफ़ उर्दूमें बाप-बेटेके बीच बातचीत होती रही। अन्तमें सुलतानने सबको बतलाया कि मामलेकी जाँच करनेके लिए मैंने प्रेतात्मासे कुछ ऐसी बातें पूछी थीं, जिनका उत्तर कोई बाहरी आदमी दे ही नहीं सकता। यथा:—(१) पिताजीकी मृत्युकी तारीख, दिन और समय; (२) मृत्युसे पहले उन्होंने मुझसे क्या कहा था और मैंने क्या उत्तर दिया था; (३) इस समय मेरी माँ कहाँ हैं और 'चक्र'के समय क्या कर रही हैं; और (४) मेरे कितने बेटे-बेटियाँ हैं।

सुलतानने माना कि प्रत्येक प्रश्नका ठीक-ठीक उत्तर मिला। सुलतानकी माताकी मृत्यु पिताके सामने ही हो गई थी, इससे उनके बापने दूसरा विवाह किया था। इस कारण आत्माने तीसरे प्रश्नके उत्तरमें पूछा—'तुम अपनी माँकी बाबत पूछ रहे हो या सौतेली माँकी बाबत?' इसका कुछ उत्तर न देकर सुलतानने चौथा प्रश्न किया। इस बार आत्मा हँसी। उसने कहा—'देखो, तुम मेरी जाँच-पड़ताल कर रहे हो। तुम्हें अभी तक विश्वास नहीं हुआ है कि मैं सचमुच तुम्हारे बापकी आत्मा हूँ। देखो, मरनेके बाद हम लोगोंकी जड़ देह नष्ट हो जाती है, इसके सिवा और कोई परिवर्त्तन नहीं होता। और तो क्या, हम लोगोंका मन तक ज्यों-का-त्यों पहले-जैसा ही रहता है। मेरा बतचीत करनेका वक्त पूरा होनेको है, नहीं तो यहाँकी बहुत-सी बातें बतलाता।' इसके बाद वह चोंगा धीरे-धीरे टेबिलपर वहीं आ गया, जहाँ पहले रखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-साहित्यमें मीराका योग

श्री शान्तिस्वरूप गौड़

'सन्तवाणी किसी भी राष्ट्रकी सर्वश्रेष्ठ पूँजी है। वह वाणीका विलास नहीं, किन्तु जीवनका निचोड़ है; इसलिए वह जीवित और अमर होती है। सन्तवाणी वही स्वर्गीय गंगा है, जिसमें स्नान-पान करनेसे लोक-जीवन पवित्र, समृद्ध, समर्थ और स्वतन्त्र हो जाता है।'—काका कालेलकर

'पृथ्वीराज-रासो'के रचयिता चन्दबरदाई और उनके समकालीन अन्य कवियों द्वारा प्रयोगमें लाई गई भाषा और उनके भाव आगे चलकर हिन्दी-साहित्यके विकासके लिए अधिक सहायक सिद्ध न हो सके। इस मुख्य बातको ध्यानमें रखते हुए अगर हम इन कतिपय कवियोंको यहींपर भूल जायँ, तो फिर यह बात अधिकारपूर्ण ढंगसे कही जा सकती है कि इनके बाद अगर हिन्दी-साहित्यको किन्हींने जीवन प्रदान किया, तो वे वैष्णव कवि ही थे। कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी, सूर आदि अनेक वैष्णव कवियोंने साहित्यकी रचनामें जिस भाषाका प्रयोग किया है, वह आज भी कुछ परिमार्जित करके हिन्दीके रहस्यवादी कवियों द्वारा व्यवहारमें लाई जाती है। भक्ति-कालके इन कवियोंके लिए साहित्य-निर्माण कोई मनोरंजनका विषय नहीं था, बल्कि वे अपने धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रचारार्थ ही कविता किया करते थे। उनकी भाषा हिन्दी-प्रदेशोंमें प्रचलित बोलियोंके आधारपर ही बनी थी और उसने सर्व-साधारणकी भाषाका ही रूप धारण किया। यही कारण है, जो भावोंमें इतना परिवर्त्तन हो जानेपर भी भाषा अब भी अछूती-सी है और उसके वास्तविक रूपमें बहुत कम अन्तर हो पाया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दी-साहित्यके निर्माणकी शिला चन्दबरदाई आदि वीर-गाथा-कालके कवियों द्वारा ही रखी गई; मगर उस आधार-शिलापर एक सुन्दर भवन खड़ा कर देनेका सारा श्रेय इन वैष्णव कवियोंको ही है। चन्दबरदाईकी मृत्युके थोड़े दिन पश्चात् ही वीर-रसका स्थान भक्तिने ले लिया और वह प्रवाह बारहवीं शताब्दीसे प्रारम्भ होकर आज भी बह रहा है। समयके फेरसे आज चाहे उसका स्थान उच्चतम न हो; मगर उसकी दशा इतनी हीन भी नहीं हो पाई है कि उसको भुलाया जा सके। कुछ ही वर्ष पूर्व भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, रत्नाकर, महावीरप्रसाद द्विवेदी और सत्यनारायण कविरत्न ऐसे ही साहित्य-निर्माताओंमें से थे और कविवर अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा बाबू मैथिलीशरण गुप्त आज भी उसी पथपर आगे बढ़ रहे हैं।

भगवानके प्रेममें पगे इन वैष्णव कवियोंके हृदय चन्दबरदाईकी कवितामें योग देनेमें असमर्थ रहे, सही; मगर जहाँ पर भी इन कवियोंकी पैनी दृष्टि पहुँची है, वहाँपर इन्होंने सूक्ष्मसे सूक्ष्म और कोमलसे कोमल प्रवृत्तिको भी जीवन-रस दिया है। यही कारण है, जो हिन्दी-साहित्यको विश्व-साहित्यमें सम्मानित होनेका अवसर मिला और उसका सारा श्रेय इन सन्त कवियोंको ही है। कबीरका परस्पर एकताका प्रयत्न, सूरदासका कृष्णकी बाल-लीलाओं द्वारा लोकरंजन, तुलसीकी भक्ति और मीराका विश्वास एवं अनुराग अब भी भाव-प्रवण हरि-भक्तोंमें अमृतकी वर्षा कर देता है और वे प्रेम-विभोर हो नाचने लगते हैं।

यों तो बारहवीं शताब्दीमें ही भक्तिके वृक्षको निम्बार्क स्वामी द्वारा जीवन-दान मिल चुका था; परन्तु उस समय वह इतना बड़ा और अनेक शाख-डाल और पत्तियोंसे भरपूर नहीं हो पाया था कि उसकी सुशीतल छायामें सभीको आश्रय मिल सकता। अभी उसको और सिंचाईकी आवश्यकता थी, इसीलिए तेरहवीं शताब्दीमें विष्णु स्वामीने उसकी देख-रेख की और वह दिन-प्रति-दिन शक्ति पाकर फलने-फूलने लगा। यह १४०० ई० का प्रारम्भ था। भक्तिका वह छोटा-सा वृक्ष अब पूर्णताको प्राप्त हो चुका था, इसीलिए इस समयके समस्त साहित्यमें उसकी छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। मीराके समयमें भारतके समाज और साहित्यपर भक्तिका एकछत्र शासन था और भक्ति-कालकी चार प्रमुख धाराओंमें से कृष्ण-काव्यकी धारा उस समय बड़े वेग और मदमाती चालसे बह रही थी। कृष्ण-काव्यकी धाराके आदि प्रवर्त्तक सूरदासने वाणी द्वारा कृष्णकी बाल-लीलाओंकी यमुना प्रवाहित कर दी थी। इस समयके सभी भक्त सूरदासके शब्दोंमें कृष्णकी लीलाओंको गाते-गाते आनन्द-विभोर हो जाया करते थे। यही कारण है, जो कृष्णकी जन्म-भूमि व्रजका प्रदेश भक्ति-कालके समस्त साहित्यके उत्पादनका एक क्षेत्र बन गया था। परन्तु विधाता और मीराबाई इस प्रदेशसे बाहरके दो अत्यन्त प्रसिद्ध भक्त कवि हुए, जिन्होंने साहित्यमें सुगन्ध उत्पन्न कर दी। मीराबाई कृष्णकी अनन्य भक्त और कृष्ण-काव्यकी अमर कवियत्री थीं। उन्होंने जिस साहित्यका सृजन किया है, वास्तवमें भक्ति-कालके साहित्यकी अमूल्य निधि है।

भक्ति-कालकी इस प्रमुख कवियत्रीका जन्म १५७३ वि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौकड़ी नामक गाँवमें मेड़तियाके राठौर ठाकुर रत्नसिंहके घरमें हुआ था। सौभाग्यवश मीराका 'गिरधर गोपाल'के साथ परिचय बाल्य कालमें ही हो गया था; परन्तु तब भी लौकिक रीतिके अनुसार इनके पिताने उदयपुरके महाराणा-कुमारके साथ इनका विवाह कर दिया। भवितव्यतावश विवाहके थोड़े दिन पश्चात् ही मीराबाईके पति भोजराजकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार लौकिक पतिकी मृत्युके पश्चात् जब मीराने राजसी ठाट-बाटपर लात मार दी और वह साधु-सन्तोंके साथ अपने पारलौकिक पति 'गिरधर गोपाल'की खोजमें लग गई, तो परिजनोंने मीराको उस मार्गसे च्युत करनेके लिए अनेक उपाय किए। मगर वे निष्फल रहे। अपने 'गिरधर गोपाल'के लिए उसके हृदयमें अखूट प्रेम था और अब उसे सांसारिक मनुष्योंके लांछन और व्यंग्य-बाणोंकी चिन्ता नहीं थी। उसका प्राणप्यारा उसको मिल गया था और अब तो वह उस मिलनके सुखको मापनेमें तल्लीन थी।

भक्ति-कालके अनेक कवियोंकी भाँति मीराका किसी सम्प्रदाय-विशेषसे सम्बन्ध नहीं था। यह कहा अवश्य जाता है कि रैदास इनके गुरु थे; मगर यह अप्रामाणिक है। मीराके पति और गुरु तो केवल 'गिरधर गोपाल' ही थे। उन्हींके विरहमें वह दिन-रात तड़पती थी और कभी-कभी कसकके बढ़ जानेपर मीठी आहें फूट निकलती थीं। फिर वे ही आहें शब्दोंके जालमें बिंधकर संसारके सम्मुख आती थीं। यही मीराकी कविता है, जिसने हिन्दी-साहित्यमें एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया। 'नरसीका मायरा', 'गीतगोविन्द-टीका', 'राग गोविन्द' और 'राग सोरठके पद'—मीराके लिखे ये ही चार ग्रन्थ हैं, जो हिन्दी-साहित्यके मुकुटमें चार मणियोंके समान हैं और जिनकी आभामें उसके 'गिरधर गोपाल' और उनकी पुरी स्पष्ट दीख पड़ती है।

मीराबाई कृष्णकी अनन्य भक्त थीं। उन्होंने राधा-रूप होकर कृष्णमें स्वयंको खो दिया था। इस नश्वर-संसारके उलाहनोंका उनके सम्मुख कोई मूल्य नहीं था। कवि रैदासका अमूल्य ज्ञान उन्हें बाल्य कालमें ही प्राप्त हो चुका था। इसीलिए उन्होंने अपने जीवनके प्रथम प्रहरमें ही 'साँवरे'को अपना जीवन-साथी चुन लिया था, जिससे उनका सुहाग सदाके लिए अमर हो गया :—

ऐसे वरको कहा वरूँ, जो जन्मे औ' मरि जाय;
वर वरिये इक साँवरो, मेरो चुड़लो अमर हो जाय।

दृढ़ विश्वासके साथ ही किसी भावनाको आगे धकेला जा सकता है। यह किसी भी भावना-पुष्पका वह प्रथम रूप है, जिसके आधारके बिना उस पुष्पका कोई अस्तित्व ही नहीं। विश्वाससे रहित प्राणी किसी भी भावनाको उत्तम रूप प्रदान नहीं कर सकता। यही कारण है कि तुलसीकी भाँति मीराने भी अपने दृढ़ विश्वासका चित्र अपने प्रत्येक पदमें अंकित किया है। मयूरके पंखोंका मुकुट धारण करनेवाला गिरधर गोपाल ही अब तो उसका एकमात्र सम्बन्धी था। केवल इसीलिए मीरा स्वयंको अपने भगवानके इतने निकट अनुभव करती थी। जिस उच्च आसनपर उसने कृष्णको सुशोभित किया है, उस तक किसी दूसरेकी पहुँच होना उसकी दृष्टिमें प्रायः असम्भव है। इस प्रकार वह अपने मनकी सारी वृत्तियोंको भगवानके एक ही रूपमें केन्द्रीभूतकर स्वयं भी उसीमें लीन हो गई। मीराबाईका यही अनन्य भाव इतना प्रसिद्ध है, जिसके सम्मुख सूर और तुलसी भी नहीं ठहरते। उसकी प्रत्येक रचनामें यह भाव स्पष्ट दीख पड़ता है, यथा :—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
दूसरो न कोई, साधो, सकल लोक जोई॥
भाई छोड़्या, बन्धु छोड़्या, छोड़्या सगा-सोई।
साधु-संग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई॥
भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
अँसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई॥
दधि मथ घृत काढ़ि लियो डार दई छोई।
राणा विषको प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अब तो बात फैलि पड़ी जाणे सब कोई।
'मीरा' एक लगन लागी होनी होय सो होई॥

और—सुरत - निरत को दिवलो जोयो,
मनस पूरण बाती।
अगम घाणिको तेल सिंचायो,
बाल रही दिन - राती॥

सुरत-निरतका दिवला लेकर उसमें पूर्ण मनोवृत्तिकी बाती डाल दी, अगम घानीका तेल भरकर मीरा उसको अपनी दृढ़ आशाके बलपर दिन-रात जला रही है।

अब ज़रा मीराके प्रेम और आत्म-समर्पणका नमूना भी देखिए :—

और सखी मद पी-पी माती, मैं बिन पीयाँ ही माती।
प्रेम भठीको मैं मद पीयो, छकी फिरूँ दिन-राती।

अनन्य भक्तिका स्रष्टा प्रेम जीवनका आनन्द और आत्मिक सम्बन्धोंको एकरूप कर देनेका एकमात्र उपाय है। प्रेमके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण ही उपासक और उपास्यका भेद क्षितिजके किसी कोनेमें जाकर विलीन हो जाता है। इसीलिए प्रेम एक नशा है, जिसके बिना पिये उपास्यकी प्राप्ति, उपासककी लगन, जीवनका सच्चा सुख और रसपूर्ण उन्मादकी प्राप्ति नहीं होती। प्रेमसे रहित जीवन एक निर्जीव कंकाल-मात्र है। मीराने प्रेमकी प्याली चढ़ा ली और फिर वह नशा कभी न उतरा। इस प्रकार अपने गिरधर गोपालके प्रति प्रेम-प्रदर्शनकी भावना जाग्रत होनेपर उसने उनके प्रति आत्म-समर्पण ही कर दिया:—

हरि मेरे जीवन - प्राण - अधार।
और आसरो नाहीं तुम बिन तीनूँ लोक मँझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै निरख्यो सब संसार।
'मीरा' कहै मैं दास रावरी दीज्यो मती बिसार।

मीराबाईके प्रत्येक पदमें आत्म-समर्पणकी निःसंकोच अभिव्यक्ति मिलती है और यही भक्तका चरम आदर्श है।

वैसे तो भगवानका कोई रूप ही नहीं; मगर भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए वे नर-रूप धारणकर उनके दुखोंका निवारण करते हैं और तभी भक्त उनके सगुण-रूपमें दर्शनकर कृतकृत्य हो जाते हैं। तुलसीदासने भगवान रामके दर्शनोंके लिए हनुमानजीसे अनेक बार प्रार्थना की थी और अपने इष्टदेवके बार-बार दर्शन करनेपर भी वे अघाते नहीं थे। इसी-लिए प्रत्येक सन्त कविने अपने इष्टदेवके रूपका वर्णन इतनी उत्तमतासे किया है कि उसकी ओर मन हठात् आकर्षित हो जाता है। सुन्दरतामें एक आकर्षण है, सच्ची लगनकी यही आधार-शिला और मनकी एकाग्रताके लिए एक बाह्य गुण है, जो प्राणीके हृदयपर सीधा प्रभाव डालता है। यही कारण है, जो मदमाती मीराके प्रेमके गीतोंमें यत्र-तत्र कृष्णके रूपका वर्णन भी मिलता है:—

जबसे मोहिं नन्दनँदन दृष्टि पड़्यो माई।
तबसे परलोक - लोक कछु न सोहाई॥
मोहनकी चन्दकला सीस मुकुट सोहै।
केसरको तिलक भाल तीन लोक मोहै॥
कुण्डलकी अलक - झलक कपोलन पर छाई।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवनमें सैना।
खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग - छौना॥
सुन्दर अति नासिक सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेस धरे रूप अति विसेखा॥
अधर बिम्ब अरुण नैन मधुर मन्द हाँसी।
दसन-दमक दाड़िम-दुति चमके चपला-सी॥
छुद्र घंटिका किंकिनि अनूप धुनि सोहाई।
गिरधरके अंग-अंग 'मीरा' बलि जाई॥

इस प्रकार मीराने उपास्यकी कृपा, भगवत्-नाम-कीर्तन और गुरु-भक्ति आदि अनेक विषयोंपर कुछ-न-कुछ अवश्य ही लिखा है; मगर 'दृढ़ विश्वास और अनन्य भक्ति' तथा 'प्रेम और आत्म-समर्पण'पर लिखते हुए मीरा स्वयंमें जैसे खो-सी गई है। उस समय तो जैसे उसको केवल अपने प्रियतम कृष्णकी महत्ताका ही ध्यान था। इहलोक-परलोक अथवा मुक्तिकी चर्चा मीराको नहीं भाती थी। भक्तिका सर्वोत्तम आदर्श उसके सम्मुख था और वह उसीमें लीन रहते हुए एक दिन स्वयं भी कृष्ण-रूप हो गई। यही उसकी सफलताकी पराकाष्ठा है, जो बड़े-बड़े मुनियों, ज्ञानियों और तपस्वियों तकको अपनी ओर बरबस आकर्षित कर लेती है।

इसलिए मीराने भक्तोंमें तो सर्वोच्च आसन प्राप्त किया ही था, साहित्यकी दृष्टिसे भी वह महान् कवियत्री हुई है। उसके पदोंकी भाषा प्रधानतया राजस्थानी है; मगर उसके ब्रज-भाषामें लिखे अनेक पद भी मिलते हैं। पद-विन्यासकी दृष्टिसे भी मीराकी रचनाका सौष्ठव अनूठा है। भावोंकी तीव्रतामें भाषाका रूप बदलने नहीं पाया है, जो साहित्यिक दृष्टिसे बहुत ऊँची बात है। मीराके लिखे पदोंकी भाषा सजीव और उनमें प्रदर्शित भाव अनूठे हैं। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्यको जीवन प्रदान करनेवाले वैष्णव कवियोंमें मीराका स्थान बहुत ऊँचा है। कृष्णके प्रेममें आनन्दसे हर्षोन्मत्त हुई मीराने जो कुछ भी पाया, वह भक्ति और साहित्यके लाभार्थ यहीं बिखेर दिया। इस तरह अपने अनुभवकी बात मीराने सीधी-सादी भाषामें संसारके सम्मुख व्यक्त की और वह साहित्यके लिए एक अमूल्य निधि बन गई।

घुसरी रोड, हावड़ा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकूरका शुकराना

श्री 'जीवनमुक्त'

(श)

'विमलादेवी, क्या आप मुझे सड्सका एक ज़रूरी सवाल समझा देंगी ?'—शकूरने खिड़कीकी चिकमें से झाँकते हुए कहा।

विमला पहले तो कुछ झिझकी ; परन्तु फिर कुछ सोचकर उसने झटसे दरवाज़ा खोल दिया और कहा—'आइए।'

सामनेकी कुर्सीपर बैठते हुए शकूर बोला—'माफ़ कीजिएगा, इस सवालको मैं दो घण्टेसे लगा रहा हूँ ; परन्तु बैठता ही नहीं ; और सुना है, कल परीक्षामें यह सवाल ज़रूर पूछा जायगा।'

विमलाने पंखा शकूरके सामने रखते हुए कहा—'लेकिन आप बड़ी धूपमें आए हैं, पहले आपके लिए जल ले आऊँ ?'

'जी नहीं, मेरा घर यहाँसे कुछ दूर नहीं है। मैं पानी पीकर चला था।'—कहकर शकूरने बीजगणितकी किताबका २२३ वाँ पृष्ठ खोलकर विमलाके सामने रख दिया।

विमला सवालको हल कर ही रही थी कि अचानक उसके पिता पं० सीताराम दफ़्तरसे आ गए। वे एक सुधरे हुए विचारोंके ग्रैजुएट और रेल्वे-आफ़िसमें ७५) मासिकपर क्लर्क थे। अपनी प्रथम सन्तान विमलाको वे बेहद प्यार करते थे। जब तक घरपर रहते, विमलाको प्रायः अपनी आँखोंके सामने ही रखते थे। ज्योंही पाँच बजे दफ़्तरसे लौटते, विमला उनके पास दौड़ आती और पंखा झलते हुए अपनी मीठी-मीठी बातोंसे उनका मन मुग्ध किया करती। आज एक रेल्वे-अफ़सरकी वायुयानसे गिरकर अचानक मृत्यु हो जानेके कारण दफ़्तर चार बजे ही बन्द हो गया था। पं० सीताराम अपने बड़े कमरेमें साइकिल रखकर सीधे विमलाके पढ़ाईके कमरेमें चले आए। शकूर कुर्सीसे उठा और कुछ सकपका-सा गया ; परन्तु विमलाने तुरन्त अपनी मधुर वाणीमें कहा—'आइए पिताजी, आज तो आप बहुत जल्द चले आए। ये मेरे सहपाठी श्री अब्दुलशकूर हैं। मुझसे बीजगणितका एक सवाल पूछने चले आए।'

पण्डितजी अत्यन्त प्रसन्न-मुद्रासे बोले—'हमारे अहोभाग्य ! इनके पिता हाजी अब्दुलरहमान तो मेरे परम मित्र हैं। तुमको इनका विशेष सत्कार करना चाहिए, विमला ! अच्छा देखो, तुम इन्हें जाने मत देना। मैं अभी जलपानका प्रबन्ध करता हूँ।'

अब्दुलशकूर उनसे हाथ जोड़कर विनय करता ही रहा—'जी, कुछ ज़रूरत नहीं है, आप तशरीफ़ रखिए। सवाल तो क़रीब-क़रीब हल हो भी चुका है।' परन्तु पं० सीताराम तुरन्त अन्दर चले गए और काँचकी तीन तश्तरियोंमें कुछ फलादि ले आए। मजबूरन अब्दुलशकूरको अपना हिस्सा लेना ही पड़ा। फिर थोड़ी देर तक बातचीत करनेके बाद वह अपने घर चला गया।

(कू)

विमला अत्यन्त सुशीला और सुन्दरी कन्या थी। उसके जपाकुसुम-से मधुर अधरोंपर सदा मन्द-मन्द मुस्कान खेलती रहती थी। उसके विशाल लोचनोंकी स्निग्ध आभा देखते ही बनती थी। शील और सद्गुणोंके सिवा विमलाकी बुद्धि भी ऐसी विचक्षण थी कि अध्यापकोंको उसे पढ़ानेमें विशेष प्रसन्नता होती थी। हाईस्कूल-परीक्षामें उसने गणितमें विशेष योग्यता प्राप्त की थी। संगीतका भी उसने अच्छा अभ्यास किया था। विमलाके साथ पढ़नेवाले छात्रोंमें से दो-चार उद्दण्ड एवं अशिष्ट भी थे। वे कभी-कभी विमलाकी ओर विष-भरी दृष्टिसे देखा करते, जिसे वह कभी तो देख पाती और कभी नहीं। देख लेनेपर भी विमलाके चित्तमें कभी कोई दुर्भावना उत्पन्न नहीं हुई। कभी-कभी अब्दुलशकूर भी उस चण्डाल-चौकड़ीमें इसी विचारसे जा बैठता था कि उसकी मनोवृत्तिका कुछ परिचय पा सके।

एक दिन उसके सहपाठी नासिरुद्दीनने हँसते हुए कहा—'यार शकूर, तुम बड़े खुशकिस्मत हो, जो उस माहरूके कूचेमें ही रहते हो। कभी अपने यहाँ दावत तो दो, जिससे हम भी उसकी दिलफ़रेब सूरत और सुरीली तानका मन भरकर मज़ा लूट सकें।'

लालबहादुरने भी झटसे समर्थन किया—'हाँ यार, बात तो सोलह आने ठीक है। तुमने इतनी दौलत पाकर भी दिल किसी कंजूसका ही पाया है, वर्ना क्या कभी छठे-छमासे भी हमारी बात नहीं पूछते ?'

गदाधरसिंह तो कोरा लट्ठबाज ही था। बीचमें ही बोल उठा—'अरे, तो तुम इनके बुलावेका इन्तज़ार क्यों करते हो ? चलो, किसी दिन हवेलीपर चल बैठें। फिर तो शर्मा-हुज़ूरी खिलाना ही पड़ेगा।'

अब्दुलशकूरने उनसे बिगाड़ करना उचित न समझकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्काल कह दिया—'अच्छा दोस्तो, अबकी बार मौक़ा आने दो, तुम लोगोंको भरपेट मिठाई खिलाऊँगा।'

(९)

अब्दुलशकूर अत्यन्त सौम्य प्रकृतिका नवयुवक था ; परन्तु था कुछ कुन्द-ज़हन। बेचारेने तीन बार परीक्षा दी, तब कहीं जाकर मैट्रिक पास हुआ। इतिहाससे वह बहुत घबराता था, इसीलिए इन्टरमीडिएटमें भी उसने अंकगणित ही लिया। उसके पिता लोहेके बहुत बड़े व्यापारी थे। धनकी उन्हें कुछ कमी न थी ; परन्तु आजकलके अर्थोंमें वे विद्यासे शून्य थे। उनका छोटा लड़का अब्दुलमजीद पढ़नेमें तेज़ था ; परन्तु वह अभी दस ही वर्षका था और छठी कक्षामें पढ़ता था। हाजीजीका सारा आशा-भरोसा अब्दुलशकूरकी ही उन्नतिपर निर्भर करता था, इसलिए उसके खाने-पहनने और लिखने-पढ़नेकी उन्हें विशेष चिन्ता रहती थी।

शकूर जब विमलाके घरसे लौटकर अपने मकानपर पहुँचा, तो अब्दुलरहमान दुकानपर जानेके लिए तैयार खड़े थे। शकूरसे बोले—'आज ऐसी दोपहरीमें कहाँ गए थे ?'

'जी, अपने एक सहपाठीसे एक ज़रूरी सवाल पूछना था।'

'तो शामको चले जाते, या फिर कार लेकर जाना था।'

'कुछ दूर नहीं जाना था, इसी मुहल्लेमें तो उनका मकान है। सवाल बहुत ज़रूरी था, शायद कल इम्तहानमें आ जाय।'

'अपने मुहल्लेमें ही तुम्हारा यह सहपाठी कौन है ?'

'पं० सीतारामजीकी लड़की विमलादेवी मेरे ही क्लासमें पढ़ती हैं। भला, वे मेरे यहाँ क्यों आने लगीं ? मैं भी सिर्फ़ आज ही उनके पास गया था। वे हमारे क्लासमें सबसे ज़्यादा होशियार हैं।'

'तो क्या तुम्हें हिसाब सिखानेके लिए किसी मास्टरका इन्तज़ाम किया जाय ?'

'जी नहीं, इस वक्त तो उतनी ज़रूरत नहीं है, अगले साल देखा जायगा। हाँ, अगर आप पंडितजीसे कह दें, तो मैं कभी-कभी विमलादेवीसे कुछ पूछ लिया करूँ।'

'अच्छा, मिलनेपर मैं उनसे मालूम करूँगा। वैसे तो वे अपनी नेकीके लिए मशहूर हैं ; लेकिन शायद हमारे मुसलमान होनेकी वजहसे कुछ परहेज़ करें।'

'जी नहीं, यह बात उनमें हर्गिज़ नहीं है। आज भी वे बड़ी मुहब्बतसे पेश आए और मुझे बग़ैर नाश्ता किए आने ही नहीं दिया।'

'अच्छा ! मुझे भी उनसे यही उम्मीद थी। मैं आज शामको ही उनसे मिलूँगा। तुम अन्दर जाकर आराम करो।'

(९)

जैसी कि हाजी अब्दुलरहमानको कुछ-कुछ आशा थी, पं० सीतारामने यह बात सानन्द स्वीकार कर ली कि अब्दुलशकूर, जब कभी आवश्यक हो, विमलासे अपनी पढ़ाईमें सहायता ले लिया करे। परन्तु जब नासिरुद्दीन और लालबहादुर वग़ैरःको मालूम हुआ कि अब्दुलशकूर अब प्रतिदिन पढ़ाईमें क्यों तेज़ होता जा रहा है, तो उनके दिलपर साँप लोटने लगा। विमला और शकूरमें घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी। अब वे कभी-कभी कक्षामें भी पास-पास बैठ जाते थे और विमलाको यदि इक्केके आनेमें देर जान पड़ती, तो वह कालेजमें न ठहरकर शकूरके साथ ही कारमें बैठ घर चली जाती थी।

संयोगवश जो प्रश्न परीक्षाके पहले दिन विमलाने शकूरको समझाए थे, वे ही परीक्षामें आए और शकूर बहुत अच्छे नम्बरोंसे पास हुआ। नासिरुद्दीन और लालबहादुर तो परिश्रम ही नहीं करते थे, पास कैसे होते ? परन्तु अपनी असफलताका दण्ड उन्होंने अब्दुलशकूरको देना चाहा। शकूर इतना नेक था कि इन दो-चार बदमाशोंके अतिरिक्त कालेजका एक भी लड़का उससे अप्रसन्न नहीं रहता था। वह किसी दीनहीन विद्यार्थीको पुस्तकें दिला देता, तो किसीकी फीस जमा करा देता था। प्रिन्सिपलसे लेकर प्रोफ़ेसर तक सभी उसे प्यार करते थे।

अपने पास होनेकी खुशीमें शकूरने एक चाय-पार्टी दी, जिसमें लालबहादुर और नासिरुद्दीन वग़ैरः भी शामिल थे। परन्तु विमलाको वहाँ न देखकर वे बड़े निराश हुए। शकूरसे जवाब तलब किया गया कि उसने 'बिला साक़ीके पैमाना' क्यों पेश किया ? शकूरने बहुतेरा समझाया कि अव्वल तो विमला कहीं आना-जाना पसन्द नहीं करती, दूसरे वह कट्टर हिन्दू है। उसे यहाँ खाने-पीनेमें ज़रूर ऐतराज़ होता। फिर उसके पितासे आज्ञा कौन लेता ? परन्तु यह सब उसकी चालबाज़ी समझी गई और लालबहादुर तड़ककर बोला—'वाह, क्या मैं हिन्दू नहीं हूँ ? ये सब तो बहाने हैं। यों कहिए कि आप अपने मज़ेमें खलल पड़नेके खयालसे हमें शामिल ही नहीं करना चाहते। खैर, देखा जायगा।' और इस प्रकार यह मजलिस कुछ नाखुशगवारीके साथ ही बर्खास्त हुई।

(९)

चाय-पार्टीके दूसरे दिन क्लासमें पहुँचते ही विमलाने शकूरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—'कहिए जनाब, आपने अपने पास होनेकी खुशीमें मुझे याद भी नहीं किया! मुझे तो आज सवेरे कृष्णाने बताया, वर्ना शायद पता भी न लगता। भला ऐसा हम ग़रीबोंने क्या अपराध किया था, जो हमीं दोनोंको छोड़ दिया गया?'

शकूर कुछ लज्जित-सा होकर बोला—'विमलादेवी, बेशक मेरा बहुत बड़ा कुसूर है और मैं माफ़ी भी माँगता हूँ; लेकिन यह अपराध मैंने जान-बूझकर किया है। सच पूछिए तो मैं अपने सभी साथियोंका स्वभाव सुरुचिकर नहीं समझता। इनमें कुछ कौए भी मिले हुए हैं और मुझे डर था कि उनकी इन-कांक्षसे कहीं आपको नाखुशी न हो जाय। इसीलिए आपको तक़लीफ़ देना मुनासिब नहीं समझा।'

प्रोफ़ेसरके क्लासमें आते ही बातें समाप्त हो गईं।

अब्दुलशकूरके सुशील स्वभावको देखकर विमला और उसके माता-पिताका प्रेम शकूरकी ओर बढ़ता ही गया। विमलाकी माँ मनोरमा कभी-कभी शकूरको जाते हुए देखकर कहती—'कैसा भोला और सुन्दर लड़का है! पूर्वजन्ममें यह ज़रूर किसी ब्राह्मणका ही पुत्र रहा होगा।'

पं० सीताराम हँसकर उत्तर देते—'अपना पुत्र नहीं है न, इसीलिए शकूरके प्रति इतनी उत्कण्ठा बढ़ रही है। यदि तुम्हारा सुरेश आज जीवित होता, तो शायद तुम शकूरको देखना न चाहतीं।'

विमला और शकूरमें पढ़ते-पढ़ते इधर-उधरकी बातें भी होने लगतीं। विमला कहती—'लोग कहते हैं कि मुसलमान बहुधा निर्दयी और क्रूर होते हैं; परन्तु आपकी प्रकृतिमें यह बात क्यों नहीं है?'

'शायद मैं मुसलमान नहीं हूँ। मुझे भूलसे खुदाने एक मुसलमानके घर भेज दिया है।'

'अच्छा, तब आप हिन्दू क्यों नहीं बन जाते? हम आपको शकूरके बजाय शंकर कहा करेंगे, क्योंकि आप वैसे ही भोले और सुन्दर हैं।'

'नहीं, सच बात तो यह है कि मैं एक आईना हूँ, जिसमें आपको अपनी ही सूरत दिखाई दे रही है।'

(क)

हरिपुरमें २६ जनवरीसे कालेजोंके खेलोंकी प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। २९ को सुबह विमलाको भी टेनिसका एक मैच खेलना था। ७ बजे ही कृष्णा और सविता विमलाके घर आ पहुँचीं। मैच आठ बजे प्रारम्भ होना था, इसलिए चाय पीकर तीनों एक ही इक्केपर बैठ स्टेडियमकी ओर रवाना हो गईं। उनको गए अभी दस ही मिनट हुए होंगे कि शकूरका चचेरा भाई जलील दौड़ता हुआ आया और पं० सीतारामके हाथमें एक छोटा-सा पर्चा थमा दिया, जिसमें लिखा था—'बहन विमला, तुम अभी टेनिस-मैचके लिए रवाना न होना। यहाँ दालमें कुछ काला जान पड़ता है। मैं खुद अभी टहलकर आ रहा हूँ। तुमको अपनी कारमें ले चलूँगा। तुम्हारा भाई,—शकूर।'

पं० सीताराम साइकिल लेकर स्टेडियमकी ओर दौड़े। शहरके बाहर एक मील ही गए होंगे कि विमला ताँगेपर लौटती हुई दिखाई दी। पास आनेपर देखा कि उसकी आँखें लाल हो रही हैं और आँसुओंकी अविरल धारा बह रही है। वह अपने पिताको देखकर बोली—'सीधे घर चलिए, वहाँ सब कहूँगी।'

पं० सीतारामको नाना प्रकारके सन्देह होने लगे; परन्तु वहाँ कुछ बोलना उचित न समझ चुपचाप ताँगेके पीछे-पीछे चलते रहे। घर पहुँचकर विमला अपनी माँके गलेसे चिपट गई और चीख-चीखकर रोने लगी। कृष्णाने पण्डितजीसे कहा—'नहरके पुलके पास जो दो-तीन बड़े-बड़े खड्डे हैं, वहाँ शकूरका शव पड़ा है और आसपासकी सारी भूमि रक्तसे लाल हो गई है। हमने दूरसे ही शकूरको पहचान लिया।'

पं० सीतारामने मनोरमासे पूछा—'बताओ, क्या करूँ? हाजी साहब तो बम्बईसे लगभग एक सप्ताहमें लौट सकेंगे, यह पर्चा पुलिसमें दे आऊँ?'

मनोरमाने उस काग़ज़को पढ़कर कहा—'साहस रखिए, जाकर देखिए कि शकूरकी क्या दशा है? कदाचित् बेहोशी ही आ गई हो। यदि आवश्यकता हो, तो पुलिस भी बुलाइए। हाथ-पैर फुला लेनेसे तो और भी अनिष्ट होनेकी आशंका है।'

अतः पं० सीताराम नहरके पुलपर पहुँचे। पुलिस वहाँ पहले ही मौजूद थी। शकूरका शव मोटरमें रखा जा चुका था। शकूरके चाचा, भाई वगैरः भी पुलिसके साथ अस्पताल गए। पं० सीताराम अपने घर लौट आए और विमलाको सान्त्वना देते रहे।

(ख)

सन्ध्याके चार बजे पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट पं० सीतारामके मकानपर आए और विमलाको बुलाकर पूछा—'बेटी, सच-सच बताओ, नासिरुद्दीनने कभी तुमसे कुछ कहा था? क्या तुम्हारे सामने नासिर और शकूरमें कभी झगड़ा हुआ था?'

विमलाने संकोचसे कहा—'नासिरुद्दीन मुझसे कभी पास आकर बोला ही नहीं और न मेरे सामने उन दोनोंका कभी झगड़ा ही हुआ। हाँ, इतना मैं ज़रूर जानती हूँ कि अब्दुल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकूर नासिरुद्दीनको अच्छे आचरणका नहीं समझता था।'

'अच्छा, अब्दुलशकूरका तुमसे कैसा बर्त्ताव था?'

विमला इस प्रश्नको सुनते ही अपनेको सँभाल न सकी और सिसकियाँ ले-लेकर रोने लगी। पं० सीतारामने उसे अन्दर भेज दिया और एक पर्चा पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टको देकर कहा—'देखिए, प्यारे शकूरकी लेखनीने ही इस बातको स्पष्ट कर दिया है।'

पर्चेको देखते ही पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टने एक डायरी अपनी जेबसे निकाली और पर्चेको उसमें जोड़ते हुए कहा—'यह पर्चा भी इसी डायरीका एक पृष्ठ जान पड़ता है। आप ज़रा इस डायरीको पढ़िए।'

पं० सीतारामने इधर-उधरसे उस डायरीको पढ़कर कहा—'भगवानकी इच्छा, ऐसे सदाचारी और परोपकारी लड़केको यों बलिदान होना पड़ा!'

सुपरिन्टेन्डेन्टने पण्डितजीको आश्वासन देते हुए कहा—'घातक नासिरुद्दीन और उसके साथी लालबहादुर आदि तो यहाँसे तीन मीलपर एक झाड़ीमें छिपे हुए गिरफ़्तार हो गए और उनकी बदहवासीने उनके बयानोंसे ही उनको मुल्ज़िम भी साबित कर दिया है। उनको मुनासिब सज़ा भी मिलेगी; परन्तु यदि दौरा-जजके यहाँ आपके और विमलादेवीके बयानोंकी ज़रूरत पड़े, तो क्या आप हमारी मदद करेंगे?'

पण्डितजी बोले—'मैं आपकी सेवामें हाजिर हूँ; परन्तु जहाँ तक बने विमलाको इस झंझटसे बचाइए, नहीं तो मुझे उसके जीवनसे भी हाथ धोने पड़ेंगे।'

सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबके जानेके बाद पण्डितजी घरमें गए तो देखा कि विमला अपनी माँकी गोदमें चेतना-शून्य पड़ी है। डाक्टरको बुलाकर दिखाया गया, तो उसने कहा कि विमलाके हृदयपर घोर आघात हुआ है। अब्दुलशकूरके सम्बन्धकी कोई भी बात उसके सामने न की जाय।

(ना)

पं० सीतारामने विमलाको फिर कालेज नहीं भेजा। यद्यपि कुछ समय बाद उसका स्वास्थ्य सुधर गया; परन्तु वह प्रायः मौन ही रहकर आँसू बहाती रहती थी। हाजी अब्दुलरहमान तार द्वारा समाचार पाकर तुरन्त हरिपुर लौट आए। जब उनको इस दुर्घटनाका सम्पूर्ण रहस्य अवगत हुआ, तो वे बहुत रोए और एक पत्र अपने छोटे पुत्रके हाथ विमलाके पास भेजा। पत्रमें लिखा था—"पुत्री विमला, शकूर चला गया; लेकिन वह बड़ा खुशक़िस्मत। खुदाने उसको सब-कुछ दिया था और सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुम-जैसी देवीको उसने वधू बनाया। मेरी बेटी, क्या तुम जानती हो, शकूर तुमको कितना प्यार करता था? इस खतके साथ ही एक फ़ोटो भेजता हूँ, जिसपर शकूरने अपने हाथसे लिख रखा था—'मेरी प्यारी बहन, विमलादेवी।' शायद तुम भी शकूरको कभी भुला न सकोगी, फिर भी तुम्हें कभी-कभी याद दिलानेके लिए शकूरका यह फोटो भेज रहा हूँ। भैयादूजके दिन इसे देख लिया करना, क्योंकि तुम्हारा दूसरा भाई तो कोई था नहीं। हाँ, मजीद तुम्हारी खिदमतको ज़िन्दगी-भर हाज़िर रहेगा। उसके हाथ एक मामूली-सी चीज़ और भेज रहा हूँ, जिसे तुम 'शकूरका शुकराना' समझकर मंजूर कर लेना।"

उसी वर्ष विमलाका विवाह हो गया। वह प्रतिवर्ष भैयादूजके दिन हाजीजीका दिया हुआ हीरक-हार पहनकर शकूरकी समाधिपर मुक्ताश्रुमिश्रित पुष्पोपहार चढ़ाती है। उसके पति प्रोफ़ेसर रमाकान्त इस शुभ कार्यमें कभी कोई बाधा नहीं डालते, वरन् प्रसन्नतापूर्वक प्रत्येक प्रकारकी सुविधा कर देते हैं।

बहरोंकी शिक्षा

श्री नृपेन्द्रमोहन मजूमदार

हम लोग जन्म लेते ही बोलने नहीं लग जाते। बोलना हमारे नैसर्गिक गुणोंका कोई अंग नहीं है। यह तो प्राप्त किया हुआ एक गुण है। बच्चा लोगोंको बोलते सुनता है, वह उनका अनुकरण करता है और बोली जानेवाली भाषाको धीरे-धीरे सीखता है। जो बच्चा जन्मसे बहरा होता है या बहुत कम उम्रमें ही बहरा हो जाता है, वह अपनी श्रवण-शक्ति खो बठता है और गूँगा हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि एक बहुत बड़ी हद तक बहरेपनके फल-स्वरूप ही गूँगापन होता है। यदि हम श्रवणेन्द्रियकी खोई हुई शक्तिको पुनः प्राप्त कर सकते, तो बहरे बच्चोंकी शिक्षाके लिए किसी खास स्कूलकी आवश्यकता ही न रहती। किन्तु दुःख तो इस बातका है कि हम बहरे बच्चोंको सुननेकी शक्ति पुनः प्रदान नहीं कर सकते।

ऐसी स्थितिमें प्रश्न उठता है कि हम बहरे बच्चोंको बोलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे सिखा सकते हैं ? यदि हम इस बातपर विचार करें कि बोलना किसे कहते हैं, तो इस प्रश्नका उत्तर आसानीसे दिया जा सकता है। जब हम बोलते हैं, तो हमारी ज़बान और होंठोंमें कुछ खास क़िस्मकी हरकतें होती हैं, जिन्हें आसानीसे देखा जा सकता है। उन हरकतोंसे कम्पन भी पैदा होते हैं, जिनका अनुभव सीने, ठुड्डी, गाल और माथेपर अँगुली रखकर किया जा सकता है। प्रत्येक उच्चारणकी विशिष्ट गति होती है। होंठोंकी जो गति 'प' का उच्चारण करती है, वही 'ट'का उच्चारण नहीं कर सकती। इसी तरह 'क' का उच्चारण करनेवाली गतिसे 'स'का उच्चारण नहीं हो सकता। बोलते समय होंठोंमें होनेवाली इन हरकतोंको हम बहरे बच्चोंको अनुकरण

लेखक अनुकरण द्वारा एक गूँगे-बहरेको शिक्षा दे रहे हैं।

करनेके लिए दिखला सकते हैं, जिनका अनुकरण वे आसानीसे कर भी सकते हैं।

किन्तु कठिनाई तो इस बातकी है कि बहरोंको 'प' और 'फ' या 'ट' और 'ड'का अन्तर कैसे बताया जाय ? अर्थात् एक ही क़िस्मकी हरकतोंसे पैदा होनेवाली आवाज़ोंके उच्चरित और अनुच्चरित गुणोंमें भेद कैसे किया जाय ? ऊपर कहा जा चुका है कि बोलनेमें कम्पन भी होता है और हम ठुड्डीपर अँगुली रखकर स्पष्ट उच्चारणके लिए होनेवाले कम्पनका अनुभव भी कर सकते हैं। इसी प्रकार बहरे बच्चोंकी स्पर्श-शक्तिको इतना विकसित किया जा सकता है कि स्पष्ट उच्चारणके कम्पनमें होनेवाले थोड़े-से परिवर्त्तनका अन्तर भी वे सहज ही समझ सकें।

इस प्रकार यद्यपि बहरे बच्चे सुन नहीं सकते ; फिर भी

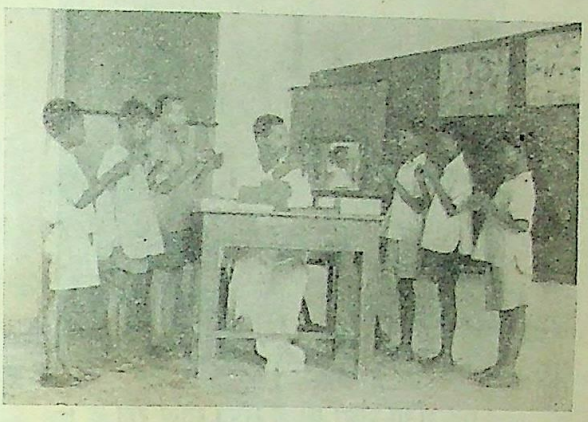

प्रदर्शन द्वारा गूँगे-बहरे छात्रोंको चित्र-कला सिखाई जा रही है।

हम उनकी दृष्टि और स्पर्श-शक्तियोंको विकसित करके उनकी खोई हुई श्रवण-शक्तिकी कुछ अंशोंमें पूर्त्ति कर सकते हैं। बहरे बच्चोंकी दृष्टि और स्पर्श-शक्तियोंको कुछ विशेष क्रियाओं द्वारा विकसित किया जाता है—जैसे वाद्य-यन्त्रों तथा मान्टेसोरी-पद्धतिके प्रयोग द्वारा। किन्तु यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है

स्पर्श द्वारा ध्वनिका बोध कराया जा रहा है।

कि ये तो श्रवण-शक्तिको किसी अंश तक ही पूरा करनेवाले हैं, ये उसकी सम्पूर्ण रूपसे क्षति-पूर्त्ति कदापि नहीं कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

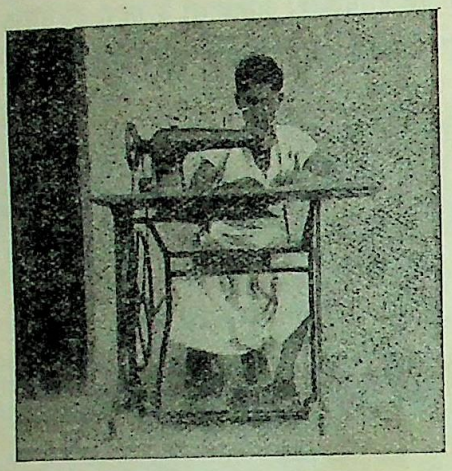

एक गूँगा-बहरा कपड़ा सीना सीख रहा है।

बहरे बच्चोंको बोली साधारण तरीक़ोंसे प्राप्त नहीं हुआ करती और फिर उसमें साधारण बोलीके विशिष्ट गुणोंका अभाव भी रहेगा—जैसे उच्चारणका ज़ोर, स्वरमें तारतम्य तथा अन्य बातोंका अभाव। इन सब कमियोंके बावजूद यदि हम उनकी बातोंको धैर्य तथा सहानुभूतिपूर्वक सुनें, तो उनकी बोली स्पष्ट रूपसे समझमें आ जायगी।

पर सिर्फ़ शब्दोंका स्पष्ट उच्चारण-भर सिखाना ही बहरोंके लिए विशेष लाभकारी सिद्ध नहीं होगा। उन्हें भाषा देनी होगी, जिससे वे अपने मनोभावोंको लिख और बोलकर प्रकट कर सकें तथा दूसरे लोग उनसे जो-कुछ कहें, उसे वे ठीक-ठीक समझ सकें। बहरोंको भाषाका ज्ञान कराना बड़ा कठिन काम है। स्थानाभावसे यहाँ उसके विषयमें विस्तारपूर्वक लिखना भी हमारे लिए सम्भव नहीं। यहाँ मैं इतना ही कह सकता हूँ कि उनका शब्द-भाण्डार संकेत आदिकी सहायतासे धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। भाषाका रूप उन्हें व्यावहारिक क्रियाओं द्वारा सिखाया जाता है। क्लासमें किसी प्रकारकी जो भी क्रिया की जाती है, उसपर भाषाका आवरण चढ़ा होता है। सम्पूर्णताके साथ उसके विभिन्न अंगोंका क्या सम्बन्ध है, यह पट्टी (स्लेट) पर लिखकर उन्हें समझाया जाता है। शिक्षकोंके होंठोंके संचालन तथा क्लासके दूसरे छात्रोंके होंठोंके संचालन और भाव-भंगियोंको देखकर बहरे बच्चे यह समझना सीखते हैं कि उनसे क्या-कुछ कहा जा रहा है।

यहाँ मैं यह भी स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि हम लोग बहरे बच्चोंके लिए चाहे जितना भी अपना समय और शक्ति क्यों न खर्च करें, फिर भी हम उन्हें शिक्षा और योग्यतामें सुननेवालोंकी श्रेणीमें नहीं ला सकते। हमारा अभिप्राय तो बहरोंको समाजमें पुनः प्रतिष्ठित करना-भर है। मोटरके कामोंमें एक बहरा आदमी सुननेवाले साधारण आदमीके समान ही योग्यता रखता है। यदि उसे उद्योग-धन्धेकी शिक्षा दी जाय, तो वह सुननेवाले शिल्पीके समान ही अच्छी जीविका उपार्जन कर सकता है। इसीलिए बहरोंकी शिक्षामें उद्योग-धन्धोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम उन्हें बोलचालकी भाषाका उतना ही ज्ञान कराना चाहते हैं, जिससे वे साधारण लोगोंसे रोज़मर्राकी बातचीत करके अपना काम चला सकें और साथ ही प्रसन्न-चित्त और स्वाभिमानी नागरिक बन सकें।

हमारे देशमें गूँगों-बहरोंकी शिक्षाकी कैसी दुरवस्था है, इसे निम्न-लिखित तालिकामें इंग्लैण्ड और अमरीकाके आँकड़ोंके तुलनात्मक अध्ययनसे भली-भाँति समझा जा सकता है :—

	गूँगों-बहरोंकी संख्या	स्कूलोंकी संख्या	छात्रोंकी संख्या
भारतवर्ष	२००,०००	४०	९००
अमरीका	९०,०००	२०९	१९,६५८
ब्रिटेन	४०,०००	६५	६,२१४

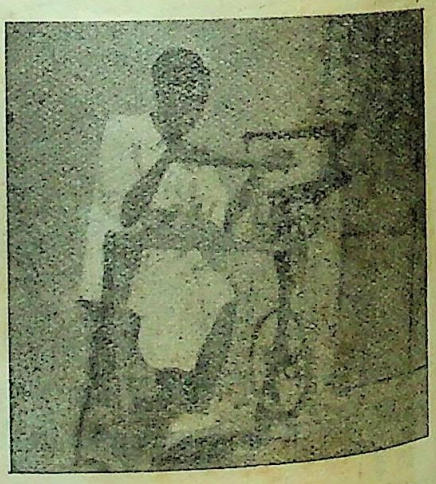

एक गूँगा-बहरा परफोरेटिंग-मशीनपर काम कर रहा है।

गूँगों-बहरोंमें शिक्षा-प्रचार करने तथा उन्हें समाजमें पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिए सन् १९३५ में भारतमें एक अध्ययन-मण्डल स्थापित हुआ था। आशा है, निकट-भविष्यमें यह संस्था भारतमें गूँगों-बहरोंके शिक्षा-प्रसारमें विशेष समर्थ होगी।

[बोण्डेल रोड, बालीगंज]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय सत्यमूर्त्ति

श्री शिवकुमार विद्यालंकार

दिल्लीके दीवान-हालमें नक़ली पार्लमेण्ट हो रही थी। एक व्यक्ति सामने सभापतिके आसनपर आसीन था। उसके सिरपर मद्रासी पगड़ी शोभित थी और भालपर चन्दनका टीका अंकित था। बन्द गलेका एक कोट उसने पहन रखा था और मद्रासी किनारीका एक रेशमी उत्तरीयांशुक उसके कन्धेपर पड़ा था। ऊनी पतलून और पैरोंमें पेशावरी चप्पल थे। उसकी सुबाकृति कभी मुस्कराती, कभी विचारमग्न हो जाती और कभी 'आर्डर, आर्डर' कहती अपनी व्यवस्था दे रही होती थी। उसके आसनसे उठते ही गृहमें सन्नाटा छा जाता था। उसकी अद्भुत वक्तृता-शक्ति और प्रतिभा देखकर वहाँ बैठा प्रत्येक व्यक्ति मन-ही-मन मानो सोच रहा था—'एक दिन आयगा, जब यह व्यक्ति स्वतन्त्र भारतकी पार्लमेण्टका स्पीकर बनेगा।' किन्तु किसीने कल्पना भी न की थी कि यह असाधारण मेधावी कुछ ही महीनोंमें उस भारतको स्वतन्त्र देखे बिना ही—जिसके लिए उसने अपना सर्वस्व होम दिया और जिसकी आज़ादीकी लड़ाईका होश सँभालनेके बादसे ही वह सिपाही बना रहा—एक दिन अचानक हमसे जुदा हो जायगा!

सत्यमूर्त्तिका जन्म १९ अगस्त, सन् १८८७ को हुआ था। आपके पिता ब्राह्मण थे। वे पुद्दूकोटा रियासतके तिरुमायम नगरके एक सफल वकील थे। सत्यमूर्त्तिका शिक्षण राजा कालेज, पुद्दूकोटा और क्रिश्चियन कालेज, मद्रासमें हुआ। अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही वे चुस्त और क्रियाशील रहे। कालेजकी प्रत्येक हलचलमें वे सदैव आगे रहा करते थे। सभाओंमें बोलनेका उन्हें आरम्भसे ही काफ़ी शौक था। विद्यार्थी-जीवनमें ही उनकी वक्तृत्व-कलाने श्री श्रीनिवास आयंगरको मोह लिया था। मद्रासके ला-कालेजमें उन्होंने क़ानूनकी शिक्षा प्राप्त की और अपने पैतृक पेशे (वकालत) को अपनाया। वे मद्रासमें वकालत करने लगे।

भारतके राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवनमें वकीलोंका सदैव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। एक वकील क़ानूनको समझता है और इसीलिए वह प्रायः निर्भीक होता है। यह निर्भीकता उसे सार्वजनिक जीवनमें हठात् खींच लाती है। सत्यमूर्त्ति भी एक ऐसे ही निर्भीक वकील थे। एक कुशल वकीलकी बुद्धि, प्रतिभा एवं निर्भीकता ही उन्हें सार्वजनिक जीवनमें खींच लाई और केवल खींच ही नहीं लाई, इस जीवनकी प्रेरणाने उन्हें वकालतके पेशेसे दूर हटा लिया। वे सार्वजनिक जीवनमें आए और जब तक रहे, सदैव मुस्तैद रहे। नेता बननेके गुण उनमें विद्यमान थे। उनकी वक्तृता-शक्तिकी प्रशंसा शनैः-शनैः शेष भारतमें भी फैलने लगी। यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो चला था। भारतकी महत्वाकांक्षाएँ उग्र हो रही थीं। कांग्रेस उसका कोई इलाज सोच रही थी। सन् १९१९ में कांग्रेसकी ओरसे एक शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड भेजा गया। सत्यमूर्त्ति भी इस मण्डलके एक सदस्य थे। सन् १९२५ में उन्हें कांग्रेस-मिशनपर फिर इंग्लैण्ड भेजा गया। इस बार कामन्स-सभामें उन्होंने जो भाषण दिया, वह आज भी उनके साथियोंके कानोंमें गूँज रहा है। कांग्रेसकी और इसी नाते देशकी सेवाका यह श्रीगणेश था।

इन्हीं दिनों कांजीवरम्में एक राजनीतिक सम्मेलन हुआ। श्रीमती सरोजनी नायडू इसकी सभानेत्री थीं। डा० एनी बेसेण्ट—जिनके होम-रूल-आन्दोलनकी उन दिनों बड़ी धूम थी और जो अपनी प्रशस्तिकी चरम सीमापर पहुँच चुकी थीं—सम्मेलनमें बोलनेवाली थीं। सत्यमूर्त्ति भी इस सम्मेलनमें गए थे। उन्होंने डा० बेसेण्टके भाषणकी एक-एक बातको लेकर धज्जियाँ उड़ानी शुरू कर दीं। उनकी वक्तृत्व-शक्ति एवं तर्क-प्रणालीका सभी लोहा मान गए। श्रीमती नायडू तो उनका भाषण सुनकर इतनी चकित हुईं कि उन्होंने सोल्लास अपने पास बैठे एक व्यक्तिसे पूछा—'यह नया एडमण्ड बर्क कहाँसे आ गया?'

जब स्वर्गीय चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू और श्री श्रीनिवास आयंगरने दो-अमली शासनका अन्त करनेके लिए कौंसिल-प्रवेशका निश्चय किया और स्वराज्य-पार्टीकी स्थापना की, तो सत्यमूर्त्तिकी आँखोंके सामनेसे आयरलैण्डका इतिहास गुज़र गया। उन दिनों स्वराज्य-पार्टीकी धूम थी। सत्यमूर्त्ति इसी पार्टीकी ओरसे मद्रास-कौंसिलके लिए खड़े हुए और भारी बहुमतसे चुन लिए गए। कौंसिलमें पहुँचकर वे विरोधी-दलमें सम्मिलित हुए। एक तरहसे वे विरोधी-दलके प्राण थे। सन् १९२३ में मद्रास-कौंसिलके तूफ़ानी दिन थे। श्री सी० आर० रेड्डीने जस्टिस-पार्टीके मन्त्रिमण्डलके खिलाफ़ अविश्वासका प्रस्ताव पेश किया था। सत्यमूर्त्तिने उस प्रस्तावका समर्थन करते हुए जो भाषण दिया था, उसका एक-एक शब्द जस्टिस-पार्टीके कफ़नमें एक-एक नई कीलका काम कर गया। उनकी दलीलों एवं भाषणका प्रभाव जादूका-सा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर सत्यमूर्त्ति केवल वाक्-वीर ही न थे। विचार-स्वातन्त्र्यके कट्टर पक्षपाती होते हुए भी उन्होंने कांग्रेसके आदेशों एवं अनुशासनकी कभी अवहेलना नहीं की। कांग्रेसमें रहते हुए उन्होंने उसके निर्णयोंके प्रति अपनी सहमति और असहमति समान स्पष्टता एवं निर्भीकताके साथ प्रकट की। अवसर आनेपर वे देशके लिए अपना खून और प्राण तक देने-वालोंमें से थे। वे गांधी-पंथी थे। भाषण करने और कौंसिलोंमें बहस करनेका उन्हें व्यसन-सा था; किन्तु जब देशके लिए त्याग व तपस्या करनेका आह्वान होता, तो वे किसीसे पीछे नहीं रहते थे। सन् १९३१ में महात्मा गांधीने सत्याग्रह-आन्दोलनका शंख फूँका। उसकी आवाज़ सत्यमूर्त्तिके कानोंमें भी पड़ी। वे भी सत्याग्रही बने और जेल गए। एक वर्ष बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया। मुक्त होते ही उन्हें फिर १८ मासके लिए जेलमें डाल दिया गया। सन् १९४० के व्यक्ति-गत सत्याग्रहमें भी उन्होंने सहर्ष जेल-यात्रा की। अगस्त, १९४२ के स्वाधीनता-मुहिममें सत्यमूर्त्ति फिर गिरफ़्तार कर लिए गए। इस बार वे जेलमें ही बीमार पड़े और अस्वस्थताके कारण २ फरवरीको रिहा कर दिए गए। इलाजके दौरानमें ही गत २८ मार्चको उनका शरीरान्त हो गया। सन् १९४० से ही वे हृदय-रोगसे पीड़ित थे।

सन् १९३२ के भीषण दमन और गांधी-अरविन-पैक्टके फल-स्वरूप कांग्रेसकी गति-विधि कुछ शिथिल पड़ गई थी और भय था कि कहीं उसके पुर्ज़ोंको ज़ंग न लग जाय। महात्मा गांधी अपने रचनात्मक कार्योंमें व्यस्त थे। स्वभावसे विस्मृति-शील भारतीय जनता कांग्रेसको भुला दिया चाहती थी। इस समय सत्यमूर्त्ति एक सेना-नायककी तरह कार्यक्षेत्रमें उतरे। उन्होंने ज़ोरोंके साथ देश और कांग्रेसके सामने असेम्बली-प्रवेशका कार्यक्रम रखा। सत्यमूर्त्तिके बहुतसे क्षुद्राशयी आलो-चकोंने इस आन्दोलनके पीछे उनकी वैयक्तिक महत्वाकांक्षाको ही देखा है। पर सच तो यह है कि धारा-सभाओंमें सरकारकी हाँमें हाँ मिलानेवाले जाकर जो प्रदर्शन करते हैं, वह सत्य-मूर्त्तिको सह्य न था। उनका विश्वास था कि धारा-सभाओंका कार्य सिर्फ़ प्रतिगामी लोगोंके हाथोंमें ही छोड़ देना भयंकर भूल है। उन्होंने समर्थन या विरोध, प्रशंसा या निन्दाकी परवा किए बिना ही दिन देखा न रात, आँधी देखी न वर्षा, गरमी देखी न सर्दी, भूख देखी न प्यास, अपने आन्दोलनमें तन-मनसे जुट पड़े। अन्ततः जो कांग्रेस धारा-सभाओंसे मुँह मोड़ चुकी थी, जिसे धारा-सभाओंमें होनेवाली बहस बच्चोंका खेल अथवा दिखावा-मात्र प्रतीत होती थी, वही आखिर केन्द्रीय असेम्बलीका चुनाव लड़नेको तत्पर हो गई। सत्यमूर्त्ति मद्रास-निर्वाचन-क्षेत्रसे केन्द्रीय असेम्बलीके लिए खड़े हुए। उनका मुक़ाबला था जस्टिस-पार्टीके कर्णधार सर रामस्वामी मुदालियरसे, जिन्हें उन्होंने भारी बहुमतसे परास्त किया। केन्द्रीय असेम्बलीकी कांग्रेस-पार्टीने उन्हें अपना उप-नेता चुना। केन्द्रीय असेम्बलीमें पहुँचकर उन्होंने एक भी सरकारी बिलको चुनौती दिए बग़ैर पास नहीं होने दिया। बजट-अधिवेशनमें कटौती-प्रस्तावोंपर उनके भाषण इतने तर्क-संगत होते थे कि सरकारी सदस्य भी दाँतों-तले अँगुली दबाते थे। अर्थ-बिल कई बार उनके प्रयत्नोंसे ही असेम्बलीमें पास न हो सका और वाइसरायको अपने विशेषा-धिकारसे ही उसे प्रमाणित करना पड़ा! उनके प्रश्न और उप-प्रश्न पूछनेके ढंगसे तो सरकारी सदस्य अक्सर परेशान हो झल्ला उठते थे। जिस दिन विरोधी-दल मत-गणनाके लिए चली जानेवाली सरकारी चालोंको विफल करना चाहता, उस दिन उन्हें बोलनेके लिए खड़ा कर दिया जाता था। वे धारा-प्रवाह-रूपसे घण्टों बोलते जाते, जिसके फल-स्वरूप मत-गणना अगले दिनके लिए टल जाती। सन् १९३५ का वर्ष किसे याद न होगा, जब दमनकारी क़ानूनोंको मंसूख करानेका पेचीदा मसला असेम्बलीके सामने दरपेश था। सत्यमूर्त्तिने उस समय जो वक्तृता दी, उसका एक-एक शब्द सुवर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य है। केन्द्रीय असेम्बलीमें अपने किसी भी प्रस्तावके पक्ष अथवा सरकारी बिलके विपक्षमें भाषण करनेके लिए वे पहलेसे ही खूब तैयार होकर आते थे। यही कारण था कि जब-जब वे असेम्बलीमें बोले, तब-तब उनकी असाधारण योग्यता, सहज बुद्धि, प्रत्युत्पन्नमतित्व, प्रखर प्रतिभा और गम्भीर अध्ययनकी श्रोताओंपर गहरी छाप पड़ी।

इतने योग्य होते हुए भी विनयको उन्होंने तिलांजलि नहीं दे दी थी। झूठा घमण्ड उन्हें छू तक नहीं गया था। भारतीय अखबार पढ़नेवाला बच्चा-बच्चा जानता है कि सन् १९३५के भारतीय विधानके अनुसार प्रान्तीय चुनाव लड़नेके लिए कांग्रेसको सत्यमूर्त्तिने ही तैयार किया। इसके फल-स्वरूप ११ में से ६ प्रान्तोंमें कांग्रेसको ठोस बहुमत प्राप्त हुआ। किन्तु पद-ग्रहणकी समस्याको लेकर कांग्रेस फिर उलझ गई। सत्य-मूर्त्ति पद-ग्रहणके प्रबल समर्थक थे। उन्होंने प्रेस और प्लैटफार्मसे पद-ग्रहणके पक्षमें ज़ोरोंका आन्दोलन किया। उन्हींके प्रयत्नोंका सुफल था कि पं० जवाहरलाल नेहरू, महामना मालवीयजीके विरोधके बावजूद कांग्रेसने पद-ग्रहण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना स्वीकार किया। कांग्रेसी प्रान्तोंमें मन्त्रिमण्डल बने। बहुतोंको आशा थी कि सत्यमूर्त्ति मद्रासके प्रधान-मन्त्री बनेंगे; किन्तु उन्होंने स्वयं इस कायके लिए श्री राजगोपालाचार्यको अपनेसे श्रेष्ठतर एवं अधिकारी व्यक्ति बतलाकर यह पद उन्हें ही दिए जानेपर ज़ोर दिया। यह उनके विनय-भाव एवं सेवा-व्रतका एक उज्ज्वल उदाहरण है।

सत्यमूर्त्ति अखिल भारतीय ख्यातिके व्यक्ति तो थे ही, किन्तु अपने प्रान्तमें भी वे कम लोकप्रिय नेता नहीं थे। वे मद्रासमें भी उतने ही लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध थे, जितने मद्राससे बाहर। इसका कारण था उनकी क्रियाशीलता और सेवा। आज मद्रास-प्रान्तमें जो थोड़ी-बहुत राजनीतिक जग्रति दिखाई दे रही है, उसका अधिकांश श्रेय सत्यमूर्त्तिको ही है। वे अकेले नेता थे, जिन्हें यह गर्व था कि मद्रासका एक भी मुख्य गाँव ऐसा नहीं, जिसमें उनका भाषण न हुआ हो। सन् १९२६ में वे मद्रास-कार्पोरेशनके सदस्य और १९३९-४० में मेयर चुने गए। मद्रासकी सड़कें, मद्रासकी रोशनी और मद्रासकी जल-कलोंसे निकलता हुआ स्वच्छ पानी सभी मूक-भावसे साक्षी दे रहे हैं कि स्वर्गीय सत्यमूर्त्ति कभी मद्रासके नगर-पिता थे। वे मद्रास नगरको 'इन्द्रपुरी' बना देनेका स्वप्न देखा करते थे। नगरकी सफ़ाई, सुख-सुविधा और उन्नतिका उन्हें सदा ध्यान रहता था। आज नगरको जल-मुहैया करनेके लिए कार्पोरेशनकी ओरसे जो पुंडी-जलागार तैयार हो रहा है, उसके निर्माणका श्रेय भी सत्यमूर्त्तिको ही है।

कई वर्ष तक सत्यमूर्त्ति मद्रास-विश्वविद्यालके सिंडीकेटके प्रमुख सदस्य भी रहे। अन्नामलाई-विश्वविद्यालय तो अपने अस्तित्व एवं जीवनके लिए सत्यमूर्त्तिका आजन्म आभारी रहेगा। केन्द्रीय असम्बलीमें इस विश्वविद्यालयका जो विधान पेश हुआ, उसको सत्यमूर्त्तिने ही ज़ोरोंसे पैरवी की और अन्ततोगत्वा उसे स्वीकृत कराकर ही दम लिया। सत्यमूर्त्ति स्वदेशीके भी परम उपासक थे। संगठन-शक्ति भी उनमें कमालकी थी। सन् १९३१, १९३४ और १९३६में मद्रासमें जो स्वदेशी-प्रदर्शनियाँ हुईं, उन सबके संयोजक व प्रबन्धकर्त्ता सत्यमूर्त्ति ही थे। उनका क्षेत्र केवल राजनीति तक ही सीमित न था; साहित्य, संगीत, ललित-कला आदिमें भी उन्हें काफ़ी दिलचस्पी थी। वे एक श्रेष्ठ लेखक और साहित्य-सेवी भी थे। तमिल भाषापर उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। अंगरेज़ीकी अपेक्षा वे तमिलमें ज़्यादा अधिकारके साथ बोल सकते थे। संस्कृत भाषासे भी उनका अच्छा परिचय था। संस्कृतके महत्त्वपूर्ण श्लोक एवं आख्यान उनकी वक्तृताके अलंकार थे। संगीतमें भी उन्हें पर्याप्त अभिरुचि थी। मद्रास-विश्वविद्यालयमें भारतीय संगीतका अध्यापन करनेके लिए जो बोर्ड क़ायम हुआ, उसके वे भी एक सदस्य थे। मद्रास-म्यूज़िक-एकेडेमीके वे उप-प्रधान थे। नगरमें जब कभी संगीत-सम्मेलन होते, वे उनके आयोजनमें अवश्य हाथ बँटाते थे। 'सुगुन-विलास' सभाके भी वे उप-प्रधान थे। इस सभाकी ओरसे होनेवाले नाटकोंमें वे स्वयं भी अभिनय किया करते थे। रजत-पटके विकासमें भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया था। सन् १९३९ में इंडियन मोशन पिक्चर कांग्रेसका जो अधिवेशन बम्बईमें हुआ, वे उसके सभापति थे। वे मद्रास-पुस्तकालय-संघ, पोस्टमैन-संघ, विश्वविद्यालय-जाँच-कमीशन और लन्दनके नेशनल लिबरल-क्लब आदिसे भी सदस्य अथवा पदाधिकारीके रूपमें सम्बद्ध थे।

सत्यमूर्त्तिकी एकमात्र महत्वाकांक्षा थी देशकी आज़ादी और उनके मतानुसार उसे प्राप्त करनेका एकमात्र साधन या प्लैटफ़ार्म था कांग्रेस। इसीलिए उन्होंने सबका विरोध किया; पर कांग्रेसका नहीं। कांग्रेसके भीतर रहकर ही उन्होंने उसके नेताओंके निर्णयोंके विरुद्ध अपनी आवज़ बुलन्द की। नेताओं और वक्ताओंकी कांग्रेसमें कमी नहीं; किन्तु सत्यमूर्त्ति-जैसा व्यक्ति दूसरा कौन है, जिसमें प्रतिभा, विद्वत्ता, विवेक, वाक्-शक्ति, सहजबुद्धि, गहन अध्ययनशीलता, प्रत्युत्पन्नमतित्व, त्याग और तपश्चर्याका इतना सुन्दर समन्वय हो? इसीलिए कहना पड़ता है कि सत्यमूर्त्तिका निधन देशकी एक अपूरणीय क्षति है।

मानवकी पहचान

श्री महेशचन्द्र मिश्र

मानव आज तुझे पहचाना।
तुझमें कितनी क्षमता औ' बल, जिसपर हो उठता तू पागल,
निस्सहाय दुखियोंपर करता, अनाचार जी-भर मनमाना।
तेरा साहस देख लिया है, तेरा बढ़ना पेख लिया है,
जिसके बलपर आज चाहता तू युगको पीछे लौटाना।
शोषणकी नंगी तलवारें, कँपा रहीं निर्बल दीवारें,
इसको अपनी विजय जानता, किन्तु पड़ेगा फिर पछताना।
मानव आज तुझे पहचाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण भट्टका आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

पंचम उच्छ्वास

विहारसे जब मैं बाहर निकला, तो चित्त प्रसन्न था। आती बार मैंने रास्तेकी ओर दृष्टि ही नहीं दी थी। चिन्तामें निमग्न मनुष्य अन्धा होता है। इस समय मैंने लक्ष्य किया, वृक्षों और लताओंपर वसन्तका प्रभाव पूर्णरूपसे व्याप्त हो गया था—विकसित मंजरियोंके सौरभसे स्वयं आकृष्ट भ्रमरावलीने आमके वृक्षोंको छा लिया था; पुष्प-धूलिके केसर-चूर्ण सघन भावसे वर्षित होकर वनभूमिको पीत बालुकामय पुलिनके रूपमें परिणत कर रहे थे; पुष्प-मधुके पानसे आमत्त भ्रमरियाँ विह्वल भावसे लता-रूप प्रेंखादोलापर झूला झूल रही थीं; मत्त कोकिल-लवलीके विकसित पल्लवोंके अन्तरालमें लुकायित होकर पुष्प-मधु निकाल रहे थे और इसलिए उन पेड़ोंके नीचे मधु-वृष्टि-सी हो रही थी; किसी-किसी वृक्ष और लतासे जीर्ण पुष्प गिर रहे थे और भ्रमर-भारसे जर्जरित उनके गर्भ-केसरोंसे लतामण्डप मनोरम हो उठे थे; और नाना भाँतिके रग-बिरंगे पक्षियोंसे वृक्ष-समूह अतिशय रमणीय दिखाई दे रहे थे। दूर एक विशाल पर्कटी-वृक्ष आपाद रक्त किसलयोंसे लदा हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरु पर्वत पद्मराग-मणिके आकस्मिक आविर्भावसे लाल हो गया हो। प्रस्फुटित कांचनार-पुष्पोंसे नगर-प्रान्तकी वनस्थली लहक उठी थी और यत्र-तत्र अयत्न परिपुष्ट भाण्डीरक गुल्मोंके पुष्प-स्तवक अपनी सुगन्ध और मधु-रिमासे पथिकके चित्तको अकारण उत्कण्ठित कर देते थे। कान्यकुब्जोंका सबसे प्रिय वृक्ष आम है और इस समय आमकी मस्ती समस्त कान्यकुब्ज-साम्राज्यकी मस्तीका प्रतीक जान पड़ती थी।

इस भरे फागुनके भीतर मैं इस प्रकार चला जा रहा था, जैसे उड़ रहा होऊँ। मेरा उद्देश्य सिद्ध हुआ था। कुछ देर पहले आचार्यसे मिलकर मेरे हृदयका भार बहुत-कुछ हल्का हो गया था। अब तक भट्टिनीको किसी भद्रतर स्थानमें ले जानेकी चिन्ता ही प्रबल थी। मैं भूल ही गया था कि उनके आहार और विश्रामकी चिन्ता भी करनी है। मुझे याद आया कि कल रातसे ही वे और निपुणिका निराहार हैं। मैं भी तथैव हूँ। उस समय तक एक प्रहर दिन चढ़ आया था। एक बार मैंने सोचा कि बाज़ारकी ओरसे होता चलूँ और कुछ फल-मूल संग्रह कर लूँ; परन्तु उससे भी अधिक आवश्यक कार्य था भट्टिनीको आश्वस्त करना। इसलिए पहले उनसे मिलकर बाज़ार जाना ही उचित जँचा। चण्डी-मन्दिरके पास उस समय कोई नहीं था। मैंने प्रांगण-गृहका द्वार खटखटाया। निपुणिकाने धीरेसे दरवाज़ा खोला और जब मैं भीतर चला गया, तो सावधानीसे उसे बन्द कर दिया। मेरे मनमें इस समय सन्तोष था और प्रच्छन्न रूपसे एक गर्वका भाव भी वर्त्तमान था। मैं न होता, तो इन विचारियोंको कितने कष्टोंका सामना करना पड़ता! यह अच्छा ही हुआ कि मेरा गर्व उसी समय चूर्ण हो गया। मैंने निपुणिकासे पूछा कि भट्टिनी कहाँ हैं? निपुणिकाने इशारेसे मुझे चुप किया और आँगनके कोनेकी ओर अँगुलि-निर्देश किया। भट्टिनी स्नानकर एक अत्यन्त मामूली वस्त्र धारण करके ध्यानस्थ बैठी थीं। सामने गिली मिट्टीकी एक छोटी-सी वेदी थी और उसपर निपुणिकाके उपास्य महावराहकी छोटी मूर्त्ति विराजमान थी। मामूली वस्त्रकी पृष्ठभूमिमें उनकी शोभा-सम्पत्ति शतगुण समृद्धिशालिनी दिख रही थी। निश्चल ध्यानमग्न भट्टिनीके सामने अंजलिबद्ध सुकुमार करतलोंकी अँगुलियाँ इतनी अभिराम दिख रही थीं कि भ्रम होता था कि शिखान्तपर्यन्त प्रफुल्ल मालतीसे आच्छादित तरुण अशोकके कोमल किसलय झलक रहे हैं। ध्यान-स्तिमित नयनोंको देखकर जान पड़ता था कि महावराहकी अपूर्व शोभासे विस्मय-विमूढ़ होकर दो चञ्चल खंजन-शावक चित्र-लिखित-से स्थिर हो रहे हैं। भट्टिनीके चारों ओर एक अनुभाव-राशि लहरा रही थी। मैं थोड़ी देर तक उस शोभाको देखता रहा। मन-ही-मन मैंने सोचा कि कैसा आश्चर्य है, विधाताका कैसा विरूप विधान है! कितनी कोमल देह-लता है और कैसी भारी अनुभाव-सम्पत्ति है! कितना मृदुल हृदय और कितनी कठोर तपश्चर्या है! ऐसे ही रूपको देखकर महाकवि कालिदासके मनमें कांचन-पद्म-धर्मी शरीरकी धारणा हुई होगी। ठीक ही है—'ध्रुवं वपुः कांचन-पद्म-धर्मि यत् मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च।' इस चिन्तामें मैंने ज़रूर कुछ अनुचित विलम्ब किया होगा, क्योंकि निपुणिकाने मुझे धीरेसे दूसरी ओर हट जानेका संकेत किया। मुझे अपने इस आचरणपर अकारण पश्चात्ताप हुआ। पछतानेकी कोई बात नहीं थी। निपुणिकाके साथ मैं दरवाज़ेके पास आया और धीरे-धीरे उससे विहारमें हुई बातोंको समझने लगा। पूरी बात कहनेके पहले मैंने थोड़ी भूमिका बाँधनेका यत्न किया। निपुणिका इस समय कुछ प्रसन्न दिख रही थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान उसने भी कर लिया था और सारी रातकी थकानको बहुत-कुछ धो चुकी थी। उसकी कोटरशायिनी आँखोंमें जागर-खेद अभी भी झलक रहा था; पर कोई दृढ़ विश्वास उस खेद-रागको स्निग्ध कर चुका था। उन आँखोंको देखकर मुझे ऐसा लग रहा था कि प्रफुल्ल कांचनार-कुसुमपर चन्द्रमाकी धवल प्रभा पड़ी हुई है। निपुणिकाकी प्रसन्नता देखकर मुझे सन्तोष हुआ। मनमें जो गर्व था, वह ज़रा और ऊपर उठकर धरातलपर आ गया। अपना महत्त्व प्रतिष्ठित करनेके लिए ही मानो मैंने बातचीत शुरू की—'निउनिया, कल सौभाग्यसे मुझसे तेरी मुलाक़ात हो गई।'

'हाँ, भट्ट!'

'मैं सोचता हूँ कि कहीं तू अकेली ही भट्टिनीको लेकर इधर आई होती, तो कितना कष्ट होता!'

'सो तो होता ही।'

'इस समय मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, उस समय उतना भी तो नहीं हो पाता!'

'इतना तो हो जाता, भट्ट!'

'कौन करता भला?'

'पुजारी।'

'पुजारी? पर तू तो पुजारीसे डरी हुई थी, निउनिया!'

'पुजारी-जैसे मूर्ख रसिकोंसे डरती, तो निउनिया आजसे ६ वर्ष पहले ही मर गई होती, भट्ट!'

'पर तू प्रत्यूष-कालमें डरी हुई ज़रूर थी।'

'सो तो थी ही।'

'तो तू किससे डरी थी भला?'

'तुमसे!'

'मुझसे?'

'हाँ, भट्ट, तुमसे।'

'तो मुझसे क्यों डरी थी, निउनिया!'

'क्या बताऊँ, भट्ट! मेरी-जैसी स्त्री तुम्हारे-जैसे पुरुषसे क्यों डरती है, यह बात अगर आज तक तुम्हारी समझमें नहीं आई, तो अब नहीं आयगी।'

मैं सचमुच हैरान था। निपुणिकाको मुझसे डरनेकी क्या बात थी? निपुणिकाने ठीक ही कहा था। मैं आज तक उस अज्ञात कारणको ठीक-ठीक नहीं समझ सका। अनुमानसे कुछ समझता ज़रूर हूँ; पर अब मुझे अपनी समझपर भरोसा कम ही है। मैंने आश्चर्यके साथ निपुणिकाको देखा और हारे हुएकी तरह बोला—'तो निउनिया, मैं चला जाऊँ?'

निपुणिका हँसी। उसकी आँखोंमें जैसे एक प्रकारकी चुहल थी। बोली—'यही तो डरकी बात है, भट्ट, कि कब तुम किस बातपर कह उठोगे कि मैं चला!'

अजीब पहेली है। मैंने कुछ देर चुप रहनेके बाद कहा—'निउनिया, मैं हार मानता हूँ। मेरी कोई ज़रूरत भी नहीं थी, मुझसे तुम डरती भी हो और मेरा चला जाना ठीक भी नहीं है—मैं कुछ भी नहीं समझता।'

निपुणिकाकी आँखोंमें एक अद्भुत आनन्द खेल रहा था। बोली—'यही तो तुम नहीं समझते कि कौन हारता है। यदि तुम समझ लेते कि कौन हारता है, तो यह भी समझ लेते कि कौन डरता है। भट्ट, तुम भोले हो! तुम इस पृथ्वीपर शरीरधारी देवता हो!'

मैं और भी चक्करमें पड़ गया। भोला सही, देवता भी सही; पर इसमें डरनेकी बात क्या हो सकती है? मैंने सोचा कि अब अगर और कुछ बोलता हूँ, तो यह विदग्धा न-जाने उसमें कौन-सी शाखा-प्रशाखा निकालकर मुझे एक बार फिर निरुत्तर कर देगी। बुद्धिमानकी नीति मौन होती है। मैं हँसकर चुप हो रहा। निपुणिका हँसती रही—चुपचाप। मैं भी हँसने लगा। फिर प्रसंग बदलनेके लिए मैंने कहा—'सुन निउनिया, भट्टिनीके लिए कोई अच्छी व्यवस्था आज ही हो जायगी। परन्तु इस समय उनके आहारादिकी चिन्ता करनी है। कल ही भट्टिनीने राजभोग खाए हैं, आज एकाएक उन्हें रूखा-सूखा अन्न नहीं देना चाहिए।'

निपुणिका प्रसन्न थी। उसने मेरी बातको इस प्रकार सुना, मानो उसका कोई महत्त्व ही न हो। भट्टिनीके लिए कोई उत्तम व्यवस्था हो जायगी, यह बात मानो वह पहलेसे ही जानती थी। बोली—'व्यवस्था तो हो ही जायगी। उसकी चिन्ता अभी छोड़ो। मैंने अन्न प्रस्तुत कर लिया है। भट्टिनीके लिए थोड़ा दूध और मधु मिल जाता, तो उत्तम होता; परन्तु इस समय देर करोगे, तो अनर्थ हो जायगा। जाओ, जल्दी स्नान करके आ जाओ। भट्टिनी तुम्हें खिलाए बिना अन्न ग्रहण नहीं करेंगी।'

मैं जैसे आकाशसे गिरा। बोला—'सो क्या निउनिया, भट्टिनी जब तक आहार नहीं कर लेतीं, तब तक मैं कैसे भोजन कर सकता हूँ? मैं अकिंचन सेवक···।'

निपुणिकाने इशारा किया कि ज़ोरसे न बोलो। फिर धीरे-धीरे बोली—'भट्ट, इस छोटी गिरस्तीमें तुम्हीं श्रेष्ठ व्यक्ति हो। तुम पुरुष हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम पंडित हो, तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता हो। तुम्हें भोजन कराए बिना भट्टिनी अन्न ग्रहण कर सकेंगी भला! जाओ, जल्दी करो। वह तुम्हारी संध्या-पूजा-वाली आदत अब भी है न? देखो, ज़रा जल्दी करना। उठो।' मैं हतचेता स्थिर बना बैठा रहा। निउनियाने फिर कहा—'उठो भी। भट्टिनीको असमय हो जायगा।'

उठना पड़ा। स्नान और संध्या-आह्निक करनेमें मैंने शीघ्रता की। लौटकर जब आया, तो भट्टिनी मेरे आहारका आयोजन कर रही थीं। उनकी आँखें इस समय प्रसन्न दिख रही थीं और शरीरमें एक प्रकारका लाघव-भाव स्पष्ट ही लक्षित हो रहा था। वे यत्किंचित् आहार्यको बड़ी तन्मयताके साथ सजा रही थीं। निपुणिकाने मुझे बैठनेका इशारा किया। मैं लाजसे सिकुड़ा हुआ बैठ गया। मेरा सारा अस्तित्व संकुचित होकर गट्टर-जैसा बनता जा रहा था। भोजन करनेकी इतनी बड़ी कीमत मैंने कभी नहीं चुकाई थी। भट्टिनीने आँखें नीची किए हुए ही मन्द स्मितके साथ कहा—'संकोच करते हो, भट्ट?'

अब कोई उपाय नहीं रह गया। मैंने सिर झुकाकर हाथ जोड़कर कहा—'देवि, इस अकिंचनको आप अनुचित गौरव दे रही हैं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है; परन्तु निवेदन करना चाहता हूँ कि भविष्यमें इस अकिंचनको ऐसे गौरवका अधिकारी न समझा जाय।'

भट्टिनी हँसीं। उनका आर्द्रार्द्र मुखमण्डल प्रत्यूष-कालीन वृष्टिसे भीगे हुए पुण्डरीक-कोरकके समान एकाएक विकसित हो गया। बोलीं—'मुझे इतना अधिकार मिलना चाहिए, भट्ट, कि अपनी बुद्धिसे निर्णय कर सकूँ कि कौन-सा गौरव किसे मिलना चाहिए।'

निपुणिका ज़रा दूर बैठी थी। हँसती हुई बोली—'भोजनका गौरव तो भट्टको ही मिलना चाहिए।'

निपुणिकाकी बातपर मुझे भी हँसी आ गई, और इस हँसीने सारे व्यापारपर से संकोचका पर्दा हटा दिया। पत्तेके पात्रमें बहुत मामूली भोज्य-सामग्री मेरे सामने आई; पर उसमें अपूर्व मिठास था। मेरे मनमें हर्ष और विषादका द्वन्द्व चल रहा था। हर्ष अपने पाए हुए गौरवपर और विषाद इस बात-पर कि यह मामूली अन्न भट्टिनीके गले कैसे उतरेगा। निपुणिका किन्तु निश्चिन्त थी। मैं जिसे अन्न समझ रहा था, वह उसकी दृष्टिमें महावराहका प्रसाद था। उसको अच्छा या बुरा समझना भक्तिहीन चित्तका विकल्प था। भक्तके लिए तो वह अमृतसे श्रेष्ठ था। भट्टिनीने उस सामान्य अन्नके परिवेषणमें असामान्य गरिमा भर दी थी। आज मैं पहली बार समझ सका कि 'प्रसाद' क्या वस्तु होता है। भट्टिनीने इसी बीच पूछा—'सुगतभद्र वे ही हैं न, भट्ट!'

'हाँ देवि, वे ही हैं। उन्होंने आपसे मिलनेकी उत्कण्ठा प्रकट की है और आपको स्नेहपूर्वक आश्वासन भेजा है कि आज ही वे कोई भद्रतर व्यवस्था करके आपसे मिलेंगे। वे आपको बहुत स्नेह करते हैं।'

भट्टिनीकी बड़ी-बड़ी आँखें वाष्पाकुल हो उठीं। उन्होंने संक्षेपमें उत्तर दिया—'हाँ, भद्र!'

मैंने बात और आगे बढ़ाई—'आपको यह जानकर आश्चर्य होगा, देवि, कि वे मेरे पिताके अग्रज-सतीर्थ हैं। मेरे ऊपर भी उनका सन्तान-जैसा ही प्रेम है। मैं यह बात बिल्कुल नहीं जानता था।'

भट्टिनी आश्चर्यके कारण दीर्घ-दीर्घायित नयनोंसे मेरी ओर थोड़ी देर तक देखती रहीं। बोलीं—'आप एकदम नहीं जानते थे?'

'एकदम नहीं।'

'आश्चर्य है!'

मैं कुछ संकुचित हो गया। भट्टिनीकी सरलता देखकर मैं भी कम आश्चर्यान्वित नहीं हुआ। बातको और किसी दिशामें मोड़नेके उद्देश्यसे बोला—'उन्होंने कुमार कृष्णवर्धनको बुलवाया है। शायद वे ही कोई व्यवस्था करें।' सुनते ही भट्टिनीको जैसे काठ मार गया। क्षण-भरमें वे स्फटिक प्रति-माकी भाँति हतचेष्ट हो गईं। निपुणिका कुछ शंकित हुई। मैं भी चौंका। बोला—'कुछ अनुचित हो गया है क्या, देवि!'

भट्टिनी सँभल गईं। बोलीं—'मैं स्थाण्वीश्वरके राजवंशसे घृणा करती हूँ। राजवंशसे सम्बद्ध किसी व्यक्तिका आश्रय पानेसे पहले मैं यमराजका आश्रय ग्रहण करूँगी। भद्र, आचार्यपादने मेरी कल्याण-कामनाके भ्रमसे मेरा सत्यानाश किया है!'

मैं धक्कसे रह गया। लेकिन स्थिति सुकुमार थी। ज़रा-सी त्रुटि होनेसे इस महीयसी राजबालाका सर्वनाश हो जायगा। मैंने दृढ़ताके साथ कहा—'भद्रे, आप बाण भट्टपर भरोसा रखें। समग्र कान्यकुब्जकी सैन्य-शक्ति भी आपकी इच्छाके विरुद्ध आपको कहीं नहीं ले जा सकती। कल तक यह अकिंचन पथभ्रान्त अकर्मा था। आजसे इसे विषम समर-विजयी बाहुलीक-विमर्दन, प्रत्यन्त-बाड़व, देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी प्राणाधिका कन्याका सेवक बननेका गौरव प्राप्त है। मैं कुमार कृष्णसे निपटनेकी मर्यादा जानता हूँ। दृढ़ रहो, राजनन्दिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह-किशोरीका भीत होना अशोभन है। इधर देखिए, आपके सेवकपर भरोसा कीजिए।'

भट्टिनी आश्वस्त हो गईं। टोककर बोलीं—'सेवक नहीं भट्ट, अभिभावक कहो!'

'मैं देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी प्राणाधिका कन्याकी मर्यादाका पालन करना और कराना जानता हूँ। देवि, आप निश्चित मानें कि आपके एक इशारेपर बाण भट्ट सम्राटोंका मुण्डपात कर सकता है। जिन लोगोंने सिंहके सटाभारको पैरोंसे कुचलनेका साहस किया था, वे उसका फल पायँगे।'

भट्टिनीने आँगनके कोनेमें रखी हुई महावराहकी मूर्त्तिको विश्वासके साथ देखा। गम्भीर भावसे, किन्तु मृदुल स्वरमें बोलीं—'उत्तेजित मत होओ, भद्र! तुम्हारे ऊपर मेरा पूर्ण विश्वास है। जैसा उचित समझो, करो। केवल इतना स्मरण रखो कि मैं किसी राजवंशके अन्तःपुरमें या उससे सम्बद्ध या संलग्न किसी गृहमें नहीं जा सकती।'

मैं भी शान्त हो गया। केवल इतना ही कहा—'बाण भट्ट इस बातको कभी नहीं भूलेगा।'

भोजन समाप्त करके मैं घरके बाहर चला आया और चण्डी-मन्दिरके सामनेवाले प्रांगणमें शुखासन बाँधकर बैठ रहा। न-जाने कब मेरी आँखें लग गईं। थोड़ी देरमें मुझे किसीके पैरोंकी आहट मिली। मैं सावधान होकर बैठ गया। देखा, बौद्ध विहारवाला सामनेर आ रहा है। पास आकर उसने अपेक्षाकृत संयत स्वरमें कहा—'कल्याण हो भद्र, तत्रभवान् आचार्य सुगतभद्रने आपको स्मरण किया है। कुमार कृष्णवर्द्धन स्वयं विहारमें पधारे हैं और वे आपसे मिलनेको उत्सुक हैं।'

मैं इस सन्देशके लिए तैयार था। सोचा, जानेके पहले एक बार भट्टिनीकी आज्ञा ले लूँ; पर यह नहीं हो सका, क्योंकि सामनेरके पीछे-पीछे चार-पाँच अच्छे तगड़े तरुण आए और चण्डी-मण्डपके चारों ओर पृथक्-पृथक् खड़े हो गए। मुझे उनके रंग-ढंगसे सन्देह हुआ; परन्तु उनके वेशमें कहीं राज-पुरुषोचित चिह्न नहीं देखकर सोचा कि ये साधारण नागरिक ही होंगे। मैंने द्वार नहीं खुलवाया। बाहरसे सामनेरको उद्देश्य करके ज़रा ज़ोरसे ही बोला—'कुमार कृष्णवर्धनका दर्शन करने अभी चल रहा हूँ।' मेरा उद्देश्य यह था कि भीतर इस बातको निपुणिका और भट्टिनी सुन लें और सावधान हो जायँ। फिर मैंने सरोवरमें मुँह-हाथ धोया, उत्तरीय ठीक किया और मनमें नाना चिन्ताओंसे उलझा हुआ सामनेरके साथ चल पड़ा। सामनेर वाचाल था। उसने थोड़ी देर बाद स्वयं वार्तालाप शुरू कर दिया—'कुमार बड़े उदार हैं। विद्वानों और गुणियोंका सम्मान जानते हैं। यद्यपि तरुण हैं; पर चरित्रके उज्ज्वल और बुद्धिके परिपक्व हैं। आचार्यपादके भक्त हैं और महाराजाधिराज परम भट्टारक श्री हर्षदेवके अन्तरंग हैं। कितने विद्वानोंका उन्होंने राजकोपसे उद्धार किया है, कितने गुणियोंको विपंजालसे बचाया है, इसकी इयत्ता नहीं है।' मैं उसकी बात सुन रहा था; पर कोई उत्तर नहीं दे रहा था। सामनेर किन्तु उत्साहके साथ कहता ही गया—'कान्यकुब्ज विचित्र देश है, भद्र! यहाँ ऊपरी आचारको बहुत महत्त्व दिया जाता है और भीतरके तत्त्वको समझनेका प्रयत्न कम किया जाता है। क्या ब्राह्मण और क्या श्रमण, सभी बाह्य आचारोंको ही बहुमान देते हैं। स्वयं महाराजाधिराज श्री हर्षदेव भी इस बातसे अस्पृष्ट नहीं कहे जा सकते। उनका सबसे अधिक सम्मान सौगत तार्किक वसुभूतिपर है; पर आचार्य सुगतभद्रकी तुलनामें वह कितना छिछला है, इसे बुद्धिमान-मात्र समझ सकते हैं। कुमार कृष्ण कान्यकुब्जोंमें रत्न हैं। वे खरा और खोटा पहचानते हैं।'

'तुम कहाँसे आए हो, ब्रह्मचारिन्?'—मैंने प्रश्न किया।

'मैं सौवीरसे आया हूँ। आचार्यपादके साथ ही चला आया था। सौवीरमें बाह्य आचारोंकी पूजा नहीं होती। वहाँ लोग तत्त्व जानना चाहते हैं।'

'परन्तु कान्यकुब्जोंमें तत्त्व-जिज्ञासु न होते, तो कुमार कृष्ण कैसे होते?'

'कुमारकी बात और है। इतनी छोटी वयमें इतना गम्भीर्य दुर्लभ है।'

'वसुभूति कौन हैं, भाई?'

'वसुभूति इस देशके वाद-धुरन्धर सौगत तार्किक हैं। वे तर्कसे सद्धर्मका प्रचार चाहते हैं। इस देशमें यही हवा बहती है, भद्र! तर्कसे ही मानो ये भगवान् बुद्धकी करुणाको देशव्यापी बना देंगे। धिक्।'

'तुम्हारा मत क्या है, ब्रह्मचारिन्?'

'आचार्यपाद कहते हैं कि तर्क वस्तु ही ग़लत है। भगवानने जीवनमें करुणाको प्रतिष्ठित करना चाहा था। जिसमें वह करुणा नहीं, वह सौगत नहीं, वह सद्धर्मका सत्यानाश करता है। तर्कसे विद्वेष बढ़ता है, विद्वेषसे हिंसा पनपती है और हिंसासे मनुष्यताका विध्वंस होता है। वसुभूतिको ये बातें थोथी जान पड़ती हैं। वह नित्य आचार्यदेवको शास्त्रार्थके लिए ललकारता रहता है। पर आचार्यदेव क्षमाके निधि हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी दुनिया जानती है और स्वयं महाराजाधिराज भी जानते हैं कि वाद-सभामें सुगतभद्र और वसुभूतिका कोई जोड़ ही नहीं है। सुगतभद्र सिंह हैं, वसुभूति स्यार। परन्तु नंगा अपनेको भगवानसे भी बड़ा मानता है। वसुभूतिको हमारे विहारके कई पंडितोंने ललकारा है; पर वह तो आचार्यपादसे ही लड़ना चाहता है।'

सामनेरसे मनोरंजक सूचना प्राप्त हो रही थी। मैंने जाननेकी इच्छासे थोड़ा और उसकाया—'किन्तु महाराजाधिराजको तो यह बात मालूम होनी चाहिए थी। उन्होंने ऐसे मनुष्यको क्यों प्रश्रय दिया है?'

'कान्यकुब्ज ब्राह्मण-पंडितोंकी गढ़ी है। ऐसे तर्क-कुक्कुरोंको ललकारकर ही यहाँका राजा सौगत बना रह सकता है!'

'तो यह भी तो कम आवश्यक नहीं है, ब्रह्मचारिन्!'

'आचार्यपाद कहते हैं कि इस नीतिका फल विपरीत होगा। यदि किसी दिन सद्धर्मको नीचा देखना पड़ा, तो कान्यकुब्जसे ही उस अशुभ दिनका प्रारम्भ होगा।'

इसी प्रकारकी बातें करते-कराते हम विहारके द्वारपर उपस्थित हुए। सामनेर मुझे सीधे आचार्यपादके गृहकी ओर ले गया। आचार्यदेव कुशासनपर बैठे हुए थे। शायद वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे देखकर ज़रा स्मित हास्यके साथ बोले—'आओ वत्स, कुमार कृष्णवर्धन तुमसे मिलनेको उत्सुक हैं। उनसे मिलकर तुम आयुष्मती चन्द्रदीधितिके लिए कोई अच्छी व्यवस्थाकी बात सोचो। कुमार मेरे विश्वासपात्र शिष्य हैं, वत्स! उनसे कोई पर्दा रखनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम उनसे सारी बातें खोलकर कह सकते हो। थोड़ा-बहुत मैंने भी बता रखा है।' फिर उन्होंने सामनेरको बुलाकर आज्ञा दी—'पंडित-प्रवर बाण भट्टको महासान्धिविग्रहिक कुमार कृष्णवर्धनके पास ले जाओ। वे पासके धर्मायतनमें पंडितकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

मैंने प्रणतिपूर्वक विदा ली। सामनेर मुझे एक नाति दीर्घ गृहमें ले गया। वहाँ कुमार एक तृणास्तरणपर बैठे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। आचार्यकी बातसे मैंने पहली बार जाना कि कुमार महासान्धिविग्रहिकके महत्त्वपूर्ण पदपर अधिष्ठित हैं। मुझे देखते ही वे उठ खड़े हुए और बड़े प्रेमसे अपने तृणास्तरणके आधे भागपर बैठाया। मुझे उस समय कुमारकी उदारता, विनय और शील देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ; परन्तु वास्तवमें कुमार थे ही ऐसे। वे गुणियोंके आश्रय, गुणोंकी जन्मभूमि, विद्वानोंके रक्षक और विद्याके भाण्डागार थे। उनकी आँखें प्रेम-रससे परिपूर्ण थीं; पर उनकी भ्रुकुटिमें से आतंक मार रहा था। यद्यपि वे इस समय विहारोचित वेशमें थे; परन्तु राजकीय गरिमा सहज ही उनके मुखमण्डलसे प्रकट हो रही थी, जैसे अन्तर्मदावस्थ कोई तरुण गजराज हो। यद्यपि उनके हाथमें उस समय कोई शस्त्र नहीं था; पर एक सहज तेजसे वे बलयित थे और विषधर-वेष्टित बाल चन्दन-तरुके समान भीषण मनोरम दिखाई दे रहे थे। अवस्था बहुत कम थी; पर मुखमण्डलपर अनाविल बुद्धि और द्रुत विवेचना-शक्ति स्पष्ट दिखाई दे रही थी। क्षण-भर तक मैं उस तेजसे अभिभूत हो गया था; पर भट्टिनीकी याद आते ही मैंने अपनेको सम्हाल लिया। कुमारने आवश्यक शिष्टाचारके बाद देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्याके विषयमें प्रश्न किया। मैंने आदिसे अन्त तक सारी कथा संक्षेपमें सुना दी। यह भी बताया कि कल उन्हींसे दर्शन करने जा रहा था और बीचमें यह कार्य करना पड़ा। कुमारने धैर्यके साथ सब सुना। एक बार भी उनके चेहरेपर कोई विकार नहीं आया, जिससे मैं समझ सकूँ कि किस कार्यको वे अच्छा समझ रहे हैं और किसे बुरा। सब-कुछ समाप्त होनेके बाद मैंने उनकी ओर जिज्ञासाके भावसे देखा। वे शान्त थे। किसी बातपर कोई टिप्पणी किए बिना बोले—'देवपुत्रकी कन्याके लिए मेरा गृह प्रस्तुत है। मैं उन्हें यथोचित सम्मानके साथ ले चलनेको प्रस्तुत हूँ।'

मैंने विनीत भावसे कहा—'देवपुत्रकी कन्या स्थाण्वीश्वरके राजवंशसे सम्बद्ध किसी व्यक्तिके घर नहीं जा सकेंगी। मेरा मत है कि स्थाण्वीश्वरने अपनेको सम्मानितके सम्मान देनेके अयोग्य सिद्ध किया है।'

मेरी बात कुमारको लगी। उनकी भ्रुकुटियाँ तन गईं। कुछ उद्धत स्वरमें बोले—'क्या कहते हो भट्ट, सोच-समझकर बोलो।'

'सोच लिया है, कुमार!'

कुमारके क्रोध-कषायित नयनोंमें थोड़ी और हलचल हुई। बोले—'तुम्हें मालूम है, तुम किससे यह बात कह रहे हो?'

ज़रा भी अभिभूत हुए बिना मैंने कहा—'मैं कान्यकुब्ज साम्राज्यके महासान्धिविग्रहिक कुमार कृष्णवर्धनसे बातें कर रहा हूँ।'

'दुर्विनीत हो, भद्र!'

'कुमारसे ऐसी बात सुननेकी मुझे आशा नहीं थी।'

'तुम्हें ऐसी बात करते लज्जा मालूम होनी चाहिए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लज्जा मुझे क्यों होगी, कुमार ?'

'तो किसे होगी ?'

'उस शक्तिशाली शासक-वंशको, जिसने छोटे राजकुल-जैसे अत्याचारियोंको प्रश्रय दिया है और अपनेको कलंकित कर लिया है।'

कुमारकी भ्रुकुटियाँ तन गईं—'दुर्विनीत ब्राह्मण-वटु, तुम जब जिस व्यक्तिसे भीख माँगने जा रहे थे, उससे बात करनेकी यही पद्धति है ?'

'कल मैं राहका भिखारी था, कल मैं स्थाण्वीश्वरमें राज्य करनेवाले राजवंशके कलंकसे परिचित नहीं था···।'

'और आज क्या हो ?'

'आज मैं विषम समर-विजयी बाह्लीक-विमर्दन प्रत्यन्त-बाड़व देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी प्राणाधिका कन्याका अभिभावक हूँ।'

'अभिभावक !'

'हाँ, अभिभावक।'

'मेरे एक इशारेपर तुम्हारी रक्षणीया देवपुत्र-कन्याका और तुम्हारा क्या हाल हो सकता है, तुम जानते हो ?'

'जानता हूँ; परन्तु कुमारको शायद बाण भट्टका पूरा परिचय नहीं मालूम। उस इशारेके होनेके बहुत पूर्व इशारा करनेवाली आँखें नहीं रहेंगी।'

कुमारने उत्तेजित होकर कहा—'दुर्विनीत ब्राह्मण-वटु, भिक्षाजीवी, दम्भी !' मैंने हँस दिया। कुछ कहा नहीं। कुमार और भी उत्तेजित हो गए। बोले—'अन्तःपुरमें चोरकी तरह प्रवेश करनेवाले अधार्मिक, तुम्हें शर्म नहीं है !'

'मुझे स्थाण्वीश्वरके लम्पट राजकुलके अन्तःपुरके विषयमें कोई श्रद्धा नहीं है। जहाँ चौर्य-लब्ध अत्याचारिता वधुएँ काम करती हैं, उस अन्तःपुरकी कोई मर्यादा नहीं होनी चाहिए। ऐसे अन्तःपुरोंको प्रश्रय देनेवाले शर्म करना चाहें तो करें, उन्हें धोखा दे सकता है। कुमार, साम्राज्य-गर्वमें अन्धे न बनो। स्थाण्वीश्वरने राजलक्ष्मीका अपमान किया है। और ब्राह्मणपर क्रोध व्यर्थ है। वह न भिखारी होता है, न महा-दानी-विग्रहिक। वह धर्मका व्यवस्थापक होता है। मैंने जो कुछ किया है, उससे न मैं लज्जित हूँ, न मेरा ब्राह्मणत्व कुण्ठित हुआ है। मैं देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी मर्यादाका रक्षक जानकार हूँ और निर्भय भावसे फिर कहता हूँ कि स्थाण्वी-श्वरके राजवंशने अपनेको पूज्य-पूजनके अयोग्य सिद्ध किया है। देवपुत्र-नन्दिनी इस राजवंशको घृणा करती हैं।'

कुमार कुछ चिन्तामें पड़ गए। उन्हें मेरी बातमें कुछ सार मालूम पड़ा होगा। थोड़ी देरके लिए वे भेदक दृष्टिसे मुझे देखते रहे। इसी समय कुमारके उत्तेजित स्वरको सुनकर आचार्यपाद वहाँ आए। उन्हें देखकर हम दोनों उठ खड़े हुए। झगड़ते समय हम दोनों ही भूल गए थे कि वस्तुतः हम आचार्यकी आज्ञा पालन करनेके लिए मिनित हुए हैं। आचार्यने आते ही पहले मुझसे कहा—'क्यों बेटा, तूने कुछ अनुचित कह दिया है क्या ? कुमार कृष्ण जैसे सज्जनको तूने क्यों उत्तेजित किया ? छिः, ऐसा भी करते हैं।' ऐसा कहकर उन्होंने मेरा माथा सहलाया और कुमारकी ओर बढ़कर बोले—'कुमार, उत्तेजित क्यों होते हो ? वत्स, बाण भट्ट नादान है, राजोचित सम्मान करना नहीं जानता। उसकी बातका अर्थ-भर समझो, शब्द-व्यवहारपर न जाओ।' फिर उन्होंने बड़े प्रेमसे कुमारकी पीठपर थपकी दी। बोले—'बैठो।'

आचार्यदेव आसनपर और हम दोनों कुट्टिम-भूमिपर बैठ गए। कुमारने ही पहले शुरू किया—'आर्य, बाण भट्ट स्थाण्वीश्वरके राजवंशसे घृणा करते हैं।'

आचार्यने आश्चर्य-मुद्रामें मेरी ओर ताका—'शान्तं पापम् ! हाँ बेटा, तूने यही कहा है।'

मैंने शान्त भावसे कहा—'आर्य, देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्याको अपमानित करनेवाले राजकुलको प्रश्रय देनेवाले राज-वंशने अपनेको पूज्य-पूजनके अयोग्य सिद्ध किया है। मैं देवपुत्र-नन्दिनीको उस राजवंशसे सम्बद्ध किसी व्यक्तिके गृहमें आश्रय नहीं लेने दे सकता। यह बात मैं उनकी अनुमति पाकर ही कह रहा हूँ। मेरा अविनय क्षमा हो; किन्तु इस समय मैं अकिंचन बाण भट्टके रूपमें नहीं बोल रहा हूँ, बल्कि देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी प्राणाधिका कन्याकी प्रतिष्ठा और मर्यादाके रक्षकके रूपमें बोल रहा हूँ। बाण भट्ट कुमारका वशंवद है; पर देवपुत्र तुवर मिलिन्दके आहत अभिमानके प्रतिनिधिके रूपमें आप उससे झुकनेकी आशा नहीं कर सकते।'

'साधु वत्स, तुमने देवपुत्रकी मर्यादाके अनुकूल कहा है। और कुमार, तुम धीर हो, विवेकी हो, तुम्हें स्थाण्वीश्वरके कलंक-पंकको धो डालनेका पवित्र कार्य करना है। तुम्हीं इस कार्यको कर सकते हो। दूधका जला मट्ठा फूँककर पिया करता है। ना कुमार, तुम्हें आयुष्मती चन्द्रदीधितिके सम्मानका ध्यान रखना होगा। एक बार प्रत्यन्त-देशकी ओर देखो। यौधेयोंने सौवीरसे गान्धार तक आतंक फैला रखा है, सम्राट समुद्रगुप्तकी कीर्त्ति आज तक चन्द्र-किरणोंके समान धवल है। परन्तु रणदुर्मद यौधेयोंका दमन न किया गया, तो सद्धर्मका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाश अवश्यम्भावी है। इस कार्यमें देवपुत्रको तुम्हें मित्र बनाना है। उस मित्रताके लिए तुम्हें आयुष्मती चन्द्रदीधितिका छन्दानुरोध करना पड़ेगा और उसकी विपत्तिके अकारण बन्धु बाण भट्टकी वाणीका उचित सम्मान करना होगा।'

कुमार निर्विकार रहे। शान्त भावसे बोले—'तो क्या आज्ञा है, आर्य!'

आचार्यने कहा—'आयुष्मतीको उस स्थानसे हटाना है, भद्रतर स्थानमें ले जाना है, स्थाण्वीश्वरके कलंकको धोकर उसका विश्वास अर्जन करना है और फिर देवपुत्रको सन्देसा भेजना है। वत्स, मैं चण्डी-मण्डपके मूर्ख पुजारीसे डरा हुआ हूँ। न-जाने वह कब क्या कर बैठेगा। उसकी कोई व्यवस्था तुमने की है, कुमार!'

कुमार यथापूर्व निर्विकार बैठे रहे। केवल भीगे हुए स्वरमें बोले—'नागरिक-वेशमें पाँच सशस्त्र सैनिक चण्डी-मण्डपकी रखवाली कर रहे हैं।'

आचार्यने साधुवाद दिया। फिर कुमारकी ओर देखकर बोले—'क्या सोच रहे हो, बेटा! तुम्हारा क्रोध क्या अभी शान्त नहीं हुआ?'

अवसर देखकर मैंने विनीत भावसे कहा—'कुमारको उत्तेजित करनेका अपराध मैंने किया है, आर्य! उसका दण्ड भी मुझे मिलना चाहिए। परन्तु मेरे औद्धत्यसे देवपुत्र-नन्दिनीका कोई अनिष्ट नहीं होना चाहिए।'

कुमारने मेरी ओर देखकर कहा—'मैं तुम्हारे साहसका प्रशंसक हूँ, भट्ट! मैंने आजसे पहले तुम्हारे-जैसे ब्राह्मणको क्यों नहीं देखा, यही सोच रहा हूँ।'

आचार्यने प्रेम-भरे स्मितके साथ कहा—'कभी खोजा था वत्स?'

कुमारने कहा—'नहीं, आर्य!'

आचार्यने पुलकित होकर कहा—'क्या ब्राह्मण और क्या श्रमण, मनुष्यता दोनों ही जगह विरल है, कुमार!' फिर हँसकर कुमारकी पीठ सहलाने लगे।

थोड़ी देर चुप रहनेके बाद कुमारने मेरी ओर देखा। वे कुछ सोचमें पड़े हुए थे। फिर उन्होंने आँखें आचार्यकी ओर फिराईं। बोले—'स्थाण्वीश्वरमें मैं ऐसा गृह नहीं देख रहा हूँ, जो राजवंशसे सम्बद्ध न हो। फिर धर्मतः मैं जो-कुछ जानता हूँ, उसे महाराजाधिराजको निवेदन करना आवश्यक है। धर्मतः बाण भट्ट भी राजकोपके भागी होंगे और उस हतकी निपुणिकाका सर्वनाश तो निश्चित है। इसीलिए मैं यह सोच रहा हूँ कि बाण भट्ट कल सायंकाल तक देवपुत्र-नन्दिनी और निपुणिकाको लेकर मगधकी ओर चले जायँ। आज ही मैं एक बड़ी नौकाकी व्यवस्था कर देता हूँ। देवपुत्र-नन्दिनी आज रातको उसीमें विश्राम करें। कल प्रस्थानके पूर्व बाण भट्ट मुझसे मिल लें। कल होलिकोत्सव है। कल शासन और धर्मके विभागोंमें छुट्टी होगी। मैं परसों मध्याह्नको महाराजाधिराजको सारी बात खोलकर समझाऊँगा। देवपुत्र-नन्दिनीको कोई कष्ट न हो, इसकी व्यवस्था मैं यथासाध्य करूँगा और उनकी प्रीति प्राप्त करनेका प्रयत्न भी।'

आचार्यने उत्साह दिया—'साधु वत्स! यही कुमारके योग्य है!'

कुमारने टोककर कहा—'परन्तु यह अनुताप मेरे चित्तमें काँटेकी तरह चुभा रह ही गया, आर्य, कि देवपुत्र-नन्दिनीने निर्दोष राजवंशपर कोप किया है। छोटा राजकुल जो पाप कर रहा है, उसका प्रायश्चित्त यदि हमें इस प्रकार करना पड़ा, तो अनर्थ हो जायगा।' फिर मेरी ओर मुँड़कर बोले—'पुरुष देवपुत्र-नन्दिनीके सामने जानेमें लज्जा हो रही है। भद्र, तुमने ठीक ही कहा है कि स्थाण्वीश्वरके राजवंशने अपनेको पूज्य-पूजनके अयोग्य सिद्ध किया है। पर यह सब अनजानमें हुआ है, भद्र! अनुकूल अवसरपर देवपुत्र-नन्दिनीको यह समझा देना कि उनकी इच्छासे ही पूज्य-पूजनका यह अवसर उस राजवंशके हाथसे निकल गया। यद्यपि साहस नहीं होता, पर मेरी ओरसे तुम उन्हें शिविकापर गंगा-तीर तक चलनेकी प्रस्तुत करना। देवपुत्र-नन्दिनीका जिन लोगोंने अपमान किया है, उन्होंने समस्त स्थाण्वीश्वरकी राजलक्ष्मीको पैरोंसे ठुकराया है। उसका हिसाब उन्हें देना होगा; परन्तु हम किसी भी कार्यमें तरल-कर्मा होनेको नीति-विरुद्ध मानते हैं। देखो भट्ट, तुम देवपुत्र-नन्दिनीका विश्वास प्राप्त करनेका सौभाग्य पाया है, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि तुम तत्रभवतीको ठीक-ठीक समझाओ कि आज ही जो उन अपराधियोंके अपराधका दण्ड नहीं मिलता, सो राजनीतिकी जटिलताके कारण हुआ है। कुमार कृष्णवर्धन प्रतिज्ञा करता है कि अनीतिका उच्छेद करके ही वह दम लेगा। देवपुत्र-नन्दिनीके अपमानको वह अपनी बहनका ही अपमान समझता है।' आचार्यने करुणार्द्र आँखोंसे एक बार कुमारकी ओर देखा। उन्होंने फिर उत्साह दिया—'साधु वत्स, साधु! स्थाण्वीश्वरके प्रतापी राजवंशके योग्य वचन हैं।' कुमारने कहा—'किन्तु आर्य, मेरे हृदयमें जो कण्टक चुभा है, वह जहाँका तहाँ है। देवपुत्र-नन्दिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी इच्छामें बाधक बनना मेरी इच्छाके बाहर है। कुमार कुलने आज तक इतनी अधिक लज्जा कभी नहीं पाई। आज उस शीर्ण देवायतनके प्रांगण-गृहमें कुसुम-सुकुमार राजकुमारीने हूण देश और कदन्नपर या शायद निरन्न रहकर जो समय व्यतीत किया, उसकी बात याद आती है, तो मेरा सम्पूर्ण क्षत्रियत्व उबल पड़ता है। मैंने बहुत प्रयत्नपूर्वक अपनेको दबाया है। मुझे दुःख है कि मैं इस विषयमें कुछ कर नहीं सकता। मेरा प्रत्येक कार्य देवपुत्र-नन्दिनीके सन्देहको उद्रिक्त कर सकता है। मेरा रोष और भी उग्र हो जाता है, जब मैं सोचता हूँ कि यह उस देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्या हैं, जिनके दौर्दण्डके प्रतापसे रोमकपत्तनके उत्तरके देश काँपते हैं, जिसकी धारा असि-धारा-स्रोतस्विनीमें शाक-पार्थिव-जसे पार्थिव फेन-बुदबुदको भाँति बह गए, जिसकी प्रतापाग्निने उद्दण्ड राजाओंको इस प्रकार तोड़ डाला, जैसे क्रीड़ापरायण शिशु इक्षुदण्डको तोड़ देते हैं और जिसकी स्फूर्जित दीप्ति कीर्त्ति-रश्मिमें प्रत्यन्त-सामन्त स्वयं पतंगायमान हो रहे हैं। उस विषम शत्रु-विजयी अज्ञात प्रतिस्पर्द्धि-विकट देवपुत्र तुवर मिलिन्दकी कन्याको दुर्दशापन्न देखकर भी मैं जो-कुछ सहायता नहीं कर सकता, यही विशाल शल्य मेरे आहत चित्तसे निकल नहीं रहा है। मेरा यह अनुरोध आप पालन करायँ, आर्य, कि तत्रभवती यमुना-तट तक जाते समय पैदल न जायँ और मेरी भेजी हुई शिविकाके व्यवहारमें संकोच न करें। कुमार कृष्णवर्धनको शत्रुमर्दनीका भाई होनेका गौरव मिलना चाहिए।'

कुमारके प्रभास्वर मुखमण्डलसे कभी रोष, कभी क्षोभ, कभी ग्लानि और कभी बेबसीके भाव टपकते रहे। दिनान्त-कालीन मेघमण्डलके समान उनके आर्द्रार्द्र मुखमण्डलपर अनेक रंग आए और गए। आचार्यपादने मेरी ओर देखकर कहा—'वत्स, मेरी ओरसे कुमारीसे यह अनुरोध पालन करनेका प्रति-वेदन करना। मैं गंगा-तीरपर उससे मिलूँगा। अब तुम जाओ।'

आचार्यके इंगितपर कुमार भी उठे और मैं भी उठ गया। बाहर निकलकर देखा, तो मध्याह्न-कालीन सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र तप्त किरणोंसे अग्नि-स्फुलिंगकी वर्षा कर रहा था। वातोद्धूत धूलिसे पटलित होकर आकाश धूसरायमान हो गया था। विहारका अंगण-कुट्टिम सूर्य-किरणोंसे तप्त होकर अग्निके समान दाहक बना हुआ था और इस अंगारमय वातावरणमें विहारके बीचवाला अश्वत्थ आपाद ताम्र किसलयोंसे लदा हुआ ऐसा जान पड़ता था कि धरतीके भीतरसे कोई ज्वलन्त आग्नेयगिरि ज्वालमालाके रूपमें धरतीके अन्तःस्थित प्रचण्ड उष्णताको उगल रहा है। परन्तु वह क्या उष्णता थी? नहीं, अश्वत्थकी किसलय-सम्पत्तिको उष्णता समझना केवल विकृत चिन्तनका परिणाम था। वास्तवमें वह धरतीके हृदयकी रस-राशि थी, जो प्रचण्ड तापके भीतर भी अपनी शीतलताकी घोषणा कर रही थी। कुमार कृष्णवर्धनके हृदयस्थित शीतल प्रेम-धाराको भी मैंने जो उष्णता समझ लिया था, वह मेरे विकृत चिन्तनका ही परिणाम था। मैंने अपने पार्श्वस्थित कुमारको एक बार क्षमा-याचनाकी दृष्टिसे देखा। कुमारका मुखमण्डल शान्त था। उससे एक स्निग्ध प्रभा निकल रही थी, जो दर्शकको अभय देती जान पड़ती थी। मेरी दृष्टिका अर्थ कुमारने पहचाना। ज़रा स्मितके साथ कहा—'देवपुत्रकी मर्यादाके उचित जानकार हो, भट्ट! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।'

मैंने हाथ जोड़कर कहा—'कुमारका प्रसाद मौन विनयके साथ ग्रहण किया।'

सहृदय कुमार समझ सके कि कृतज्ञताके आतिशय्यने मेरे वचन रुद्ध कर दिए थे। वे प्रसन्न हो गए। (क्रमशः)

गीत

श्री 'विराज'

उठते नव रविके कर कोमल।
ये निशा - सुमन चुनने वाले,
दिन की जाली बुनने वाले,
थक गए जगाते दुनिया को
इस लिए लाल दिखने वाले,
कितने सुन्दर, कितने उज्ज्वल!
पत्ती - पत्ती को सहलाते,
कलिका - कुसुमों को बहलाते,
अपनी हेमाभ अरुणिमा से
सारी धरती को नहलाते,
हो रहे अधिक सुखसे विह्वल।
गत वर्ष लगा था दावानल,
शिशु - नीड़ गए थे जिसमें जल,
करके उसकी फिर आशंका,
अवलोक इन्हें होकर विह्वल
उड़ रहे त्रस्त विहगों के दल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्रनाथके साथ एकतान

श्री गुरुदयाल मल्लिक

अभी उस दिनकी बात है। शान्तिनिकेतनकी शाल-वीथिकाके तरुण पल्लवोंको जब रवीन्द्रनाथकी वासन्ती आत्माने चंचल कर दिया था, मैंने अपने हृदय-यन्त्रकी घुण्डी खोल दी और चाहा कि उस आत्माके सन्देशको पा सकूँ। जाने क्यों मुझे ऐसा लग रहा था, मानो नवीन फूल-पत्तोंकी ताज़गीके मौसमके साथ जब हम नृत्य और गीत द्वारा अपने चित्तका स्वागत सँजो रहे थे, वे हमारे बीच आ गए हों। सो भोरके पंछीने मीनारके मुअज्ज़िनकी तरह जब दुनियाको कर्म और उपासनाके इस जगत्में जागनेके लिए पुकारा, तभी मैंने अपनी इस नज़रकी मूर्त्तिके निकट अपने उत्सुक कान लगा दिए और भीतर-ही-भीतर जैसे उसी उदात्त वाणीका स्वर सुना :—

"यही पुण्यस्थल है, जहाँ मेरे श्रद्धेय पिताजी निविड़ भावसे भगवानका स्पर्श पा सके थे—जाग उठे थे। उनकी यह पुनीत आज्ञा थी कि जो यहाँ आय, वह इसी जाग्रत चैतन्यके भीतर रहनेकी चेष्टा करे। जिस सत्यको उन्होंने राजा राममोहन रायके निकट पाया था और जिसके दीपक द्वारा ब्राह्म-समाजको आलोकित कर रखा था, उसे वे मानो मेरे हाथों सौंप गए थे। उन्होंने मुझसे कहा—'देखना, प्रकाश कभी धुँधला न होने पाए।'

"मेरे पिता और गुरुने ऐसी ही दोहरी सम्पत्तिका दायित्व मुझे सौंपा था। मैंने उसे सर्वान्तःकरणसे स्वीकार किया था और शिरोधार्य करते हुए मन-ही-मन निश्चय किया था कि अपनी शक्ति-भर इसके लिए कुछ भी उठा न रखूँगा। किन्तु चिरनवीन-चिरंतनने उस पथका मुँह कहीं मोड़ दिया, जिसपर मैं जा खड़ा हुआ था, और मैंने अपना आसन व्यास-गादीपर न पाकर इन्हीं शाल-वृक्षोंकी छायामें बिखरा पाया। और मानो उस परम वाणीने मेरे कानों-कान कहा—'यह बंसी लो, जो तुम्हारे खेलकी साथिन होगी और जिसके सुरसे तुम गम्भीर और विचित्र संगीतकी धारा बहा सकोगे।'

"जब वसन्तकी बहारने सुदूरकी खुशबूसे मन-प्राण भर दिए, तब मैंने बाँसुरीका सुर साधा; जब वर्षा-सुन्दरी पाँवोंमें रिमझिम-नूपुर पहनकर धरतीकी नृत्यस्थलीपर थिरक उठी, तब मैंने बाँसुरीकी तान छेड़ी। बच्चोंने मेरा गीत सुना और आकर मुझे इस तरह घेर लिया, जैसे मैं स्वर्गका जादूगर-गायक होऊँ। उन्होंने बंसीके गीत सुनने चाहे और मैंने तान छेड़ दी; क्योंकि मैं जानता था, उनकी माँग प्राणोंकी माँग है, जीवनका आह्वान है। किन्तु तब भी सुरोंके पीछे मुझे सदा इस बातका बोध रहा कि यह बाँसुरी मेरे जीवन-देवताका ही दान है और इस संगीतके भी वही स्वामी हैं।

"कौन जाने, शायद मेरे प्रभुको मेरा सुर पसन्द आ गया, गान भा गया; तभी तो उन्होंने अपने आदेश द्वारा मुझे सम्मानित किया कि मैं शान्तिनिकेतनसे दूर इस फैले हुए विश्वमें विशाल मानव-समाजके जादूगर-गायककी तरह भटकता फिरूँ।

"तब मैं चल निकला और घूमा-फिरा—पूरब और पच्छिम। मानव-सन्तानने मेरा गान सुना और शान्तिके सुरभित पथपर वे मेरे पीछे-पीछे चल पड़े—सामने एकमें निवास करनेवाले अनेक तथा अनेकके निवासी एकके असीम पारावारकी तट-रेखापर। उन्हें ऐसा लगा, मानो जादूकी खिड़कियाँ खुल गई हों।

"किन्तु तत्काल ही एक भयंकर तूफ़ान घुमड़ आया और उसके झपट्टेमें जादूकी खिड़कियाँ बन्द हो गईं; रोशनी बुझ गई। सब जगह 'ब्लैक-आउट' हो गया और उस वक्त अँधियारेने मनुज-सन्तानके दीप्त मुखोंको ढँक लिया; उनके हर्षसे स्फीत स्वरको उदास श्मशानकी साँय-साँयमें डुबा दिया। किन्तु सौभाग्यकी बात इतनी ही है कि उदार स्वर्गके आँगनमें 'ब्लैक-आऊट' नहीं होता—सारे आकाशको छापकर लाख-लाख तारोंके दीपक टिमटिमा उठते हैं, जो नीचे धरतीके निष्प्रभ मनुजकी सन्तानोंके ढँक-मुँदे प्रकाशको खुश होनेका सन्देश देते हैं; क्योंकि प्रभात आ पहुँचता है; सत्यके द्रष्टा अपने आलोक-रथपर आसीन होकर आ जाते हैं।

"युग-युगके उसी अतिथिके लिए आज शान्तिनिकेतन अपने मंगल-थालमें पूजाके पुष्प और चन्दन-अक्षत लेकर प्रस्तुत हो जाय, अपना उदात्त शंख सँभाले। ऐसा न हो कि वह किशोरीकी तरह वह सोया रह जाय और चिरकालका स्वप्न उसके दरवाज़ेसे फिर जाय।..."

इसी समय आसमानके एक हवाई-जहाज़की अलस आवाज़ ने बाधा दी और मेरा रेडियो सहसा बन्द हो गया। फिर उसने काम करनेसे साफ़ इन्कार कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजका कहानी

श्री रूपकुमारी बाजपेई, एम० ए०

विचारोंमें लीन अशरफ़ जान न सका कि अपने-आप बन्द होनेवाला ग्रामोफ़ोन रुक गया है। उसके कानोंमें अभी भी उस हृदयस्पर्शी स्वरमें किसीकी अमिट, असीम पिपासा झंकृत हो रही थी—

'रह किस मस्तकी प्यासी गई मयखानेसे ?
मय उड़ी जाती है साक़ी तेरे पैमानेसे।'

अन्तरमें उच्छ्वासोंका ज्वार-सा उठ पड़ा। आकुल मन उड़ते-उड़ते अपने देश जा पहुँचा—बम्बई···फिर इलाहाबाद, जहाँ उसका घर है। पड़ोसके उस नीले बँगलेमें उसके दोस्त प्रोफ़ेसर सफ़दर रहा करते हैं। यह नहीं कि यह ग़ज़ल उसे अपनी मर्मज्ञताके कारण इतनी पसन्द है, बल्कि ज़ीनतने गमलोंमें पानी देते समय इसे बहुधा गाया है और अपने बँगलेके बरामदे पर खड़े होकर उसने बार-बार इसे सुना है।

'हलो!'

अशरफ़की तन्द्रा टूट गई—'हलो, डाक्टर! आज इतनी देर?'

डाक्टरका चेहरा गरमीके कारण कुछ लाल और कुछ स्याह हो रहा था। टोपी उतारकर टेबिलपर फेंकते हुए उसने कहा—पूछो मत अब! क़यामत है पूरी। आज डा० मुकर्जी भी मरीज़ बन गए। उन्हींका काम करके आ रहा हूँ। कैसा है?'

पेरिस-प्लास्टरमें बँधा हाथ अशरफ़ने आगे बढ़ा दिया और कहा—'अब इसे फुरसत दे दो, भाई! मेरी भी जान बचे।'

'अभीसे फुरसत? अभी तो एक ही सप्ताह हुआ है।'

'नहीं, डाक्टर! सच कहता हूँ, मैं भाग जाऊँगा।'

'अरे नहीं साहब! यह कैसी बात है? अपने मेहमानोंकी भलीभांति खातिर किए बग़ैर हम उन्हें जाने नहीं देते।'

'बाज़ आया ऐसी मेहमानदारीसे।'

डाक्टरने हँसकर पास पड़े रेकर्डको उलट-पलटकर देखते हुए कहा—'क्या बज रहा था, ग़ज़ल? आज घरसे पत्र आया है। वहाँ अमरूदोंकी बहार है।'

'आयेंगे तब तो। अकेले ही न साफ़ कर जाना। हज़म न होंगे।'

'नहीं, भाई! अकेले कैसे? प्रो० सजनके नाम भी एक लम्बा-चौड़ा पार्सल आया है। मैंने देख लिया। कहा, पाँचों नामे हैं? तस्वीर भी आई है? बोला, शामको आना।'

'इस गरमीसे तो तबीयत घबरा गई। पानी यहाँ आकर ही अमृत जान पड़ा।'

'गरमीके क्या कहने।'

'खाना खा चुके?'

'अरे कहाँ! जाता हूँ अब। आज दो सौ घायल मोर्चेसे और आ गए। आफ़त है। डा० मुकर्जी भी बीमार हो गए।'

'लेकिन यह हाथ, डाक्टर, सच कहता हूँ, जैसे कोई बारूद रखकर जला रहा है। ऐसी तक़लीफ़ तो तब भी नहीं हुई थी, जब गोली आरपार हो गई थी।'

डाक्टरने सहृदयतासे कहा—'बस, दो हफ़्ते और। चोट ऐसी कोई बड़ी थोड़े ही है।'

लीबियाके रण-क्षेत्रमें शत्रु पूर्णरूपसे परास्त हुआ था। वे सब बहुत प्रसन्न हैं। जानते हैं, विजय उनके ही प्रयासका परिणाम है। शत्रु-विमानोंकी घर्राहट अब सुनाई नहीं पड़ती और न गोलोंके धड़ाके ही दिल दहलाते हैं; परन्तु सतर्कताकी आवश्यकता तो है ही। बाहर दियासलाई जलाने या सिगरेट सुलगानेकी भी आज्ञा नहीं है। खानेके बाद सजन अशरफ़के कमरेमें आ गया और प्रश्नसूचक दृष्टिसे उसके हाथकी ओर देखकर बोला—'कैसा है?'

'बेहतर है।'

'खुजलाहट तो नहीं है?

'है अभी।'

वह ऊँचा-पूरा, स्वस्थ, सुन्दर तरुण था। फ़ौजमें आनेके पहले किसी कालेजमें प्रोफ़ेसर था। मज़ाकमें उसके साथी अभी भी प्रो० सजन कहकर उसे बुलाते थे। लैम्पके धुँधले प्रकाशमें उसके कन्धेपर लगा हुआ कैप्टेनके पदका संकेत-चिह्न बार-बार चमक उठता था। प्राणोंकी बाज़ी लगाकर सजनने इसे लीबियाके मैदानमें पाया था। अशरफ़की दृष्टि जब कभी उससे टकराती, वह ईर्ष्या अनुभव करता।

'क्यों?'—सजनने अनुमान किया कि कष्ट शायद अधिक है, इसीलिए कुर्सी बिलकुल उसके पास खींचकर दुलार-भरे स्वरमें पूछा—'दर्द क्या ज़्यादा मालूम होता है?'

'नहीं तो, बिलकुल नहीं। आज क्या खत आया है घरसे?'

'ज़ीनतने कुछ अमरूद भेजे हैं। कुछ नए चित्र भी आए हैं। सुबह लाऊँगा सब।' ज़ीनतके उल्लेखपर अशरफ़ चेष्टा करके चुप हो जाया करता है। बहुत-सी सुषुप्त स्मृतियाँ जाग्रत हो जाती हैं। बड़ी मधुर हैं वे, साथ ही तीखी भी। सजन सम्भवतः यह जानता था। कहता गया—'वे सब काश्मीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए हुए थे। इन दिनों सफ़दर बीमार है। वहींकी तमाम बातें उसने लिख भेजी हैं। पूरा महाभारत है। एक बार मैंने कहा था, लड़कियाँ निबन्ध लिखनेसे घबराती हैं। वही उसने स्मरण दिलाया है कि लड़कियाँ पत्र भी निबन्ध क्या, प्रबन्ध-रूपमें लिख सकती हैं।' और वह ज़ोरसे हँसा।

'अब तो उनका इम्तहान क़रीब आ गया होगा?'

'इस बार उपद्रवोंके कारण परीक्षाएँ देरसे होंगी।'

छल्ले बनाता हुआ सिगारका धुआँ ऊपर उठता-उठता जब एकदम सीधा होकर विलीन हो गया, तब अशरफ़ने कहा—'इलाहाबाद छोड़े एक ज़माना गुज़र चुका। मैं तो मामूके यहाँ पटियालेमें रहा। उम्मीद थी, रियासतमें जगह मिल जायगी। फिर यहाँ चला आया।'

'कब आए थे तुम?'

'पिछले जूनमें। तुम्हारी तो छुट्टीका समय अब आ गया?'

'हाँ, मिलनी तो चाहिए। फिर देखो।' तनिक ठहरकर उसने कहा—'ट्रिपोली है अगला गन्तव्य।'

अशरफ़ने उदासीनतासे सिर हिला दिया—'कब चलेंगे?'

'जब आर्डर हो। कल ही निकल पड़ें।' फिर उठनेके उपक्रममें बोला—'नींद लानेकी दवा मिली है?'

'नहीं तो। पर अब मैं अच्छा हूँ।'

'तो फिर सोनेकी कोशिश करो। मैं भी चलूँ। ज़ीनतके लिए पत्र तो लिखकर तैयार कर लूँ। पत्र पहुँचनेमें आठ दिन तो लग ही जाते हैं। सुरमा और सन्ध्या मेरी बहनें भी उसके साथ ही परीक्षामें बैठ रही हैं। वे चाहती हैं कि परीक्षाके लिए मैं कुछ सलाह दूँ। लिखे देता हूँ कि दुश्मनकी माइनोंका जाल तोड़नेकी तरकीब अगर वे मुझसे सीखना चाहें, तो सीख लें। इन दिनों बस यही याद है।' और हँसकर वह उठ खड़ा हुआ।

- २ -

अफ़सरके खेमेसे बाहर आकर सजन कुछ देर तक निस्तब्ध भावसे खुले आकाशके नीचे खड़ा रहा। नील-वर्ण स्वच्छ गगनमें चन्द्रमा पूर्वकी ओर ऊपर उठ आया था। स्निग्ध और निर्विकार ज्योत्स्ना खिली थी। परन्तु पश्चिमकी सीमा सघन, श्याम मेघोंकी रेखासे छा गई थी। रह-रहकर बिजलीकी चमक एक छोरसे उत्पन्न होती और दूसरेमें जा मिटती। 'क्या ही दृश्य है!'—सजनने सोचा। आलोक और अन्धकार! जलना और बुझना! प्रकृति क्या मानवको आज बहुत ही गोपनीय कोई बात समझाना चाहती है? उसकी समस्त इन्द्रियाँ शिथिल होकर अचेत-सी हो गईं। उन्हें अभी अर्द्ध-रात्रिकी निस्तब्धतामें धावा करना है। उसने ज़ोर-ज़ोरसे दो-तीन गहरी साँसें खींचीं, जैसे उस जादू-भरी रातकी मादकताका अणु-अणु अन्तरमें समेट लेना चाहता हो।

छोटे-बड़े रेतीले टीलोंका एक सिलसिला घुमावके साथ क्षितिजकी कोर तक फैलता चला गया था। मुग्ध खड़े खजूरोंके समूहोंके प्रतिबिम्बोंके बाहर रेतके कण सर्पकी मणिके समान चमक रहे थे। अफ्रीकाके विषयमें उसने बहुत-कुछ पढ़ा-सुना था। सोचा, चिर-रहस्यसे ढँकी अफ्रीकाके देव-पितरोंकी आत्माएँ शायद इस सुन्दर निशीथ-वेलामें भ्रमणके लिए निकली हैं। बहुत देर तक वह निरुद्देश खड़ा देखता रहा। तभी सामनेकी पहाड़ियोंमें कहीं प्रकाशकी एक लौ कई बार झिलमिलाई और विलीन हो गई। सजनको अचरज हुआ। वह हटा और खजूरकी छायामें आ खड़ा हुआ। फिर न-जाने क्या सोचकर वह वृक्षोंकी आड़ लेता हुआ उस रहस्यमयी ज्योतिकी ओर बढ़ने लगा।

जलती-बुझती बिजलीके आलोकमें उसे वह व्यक्ति स्पष्ट दीख गया। शक्ल-सूरतसे वह कोई अरब जान पड़ता था। धरतीपर लेटा वह आकाश-पातालके निरीक्षणमें तन्मय था। सजनने देखा कि जो लौ आमन्त्रण देकर उसे यहाँ तक खींच लाई है, वह उस अरबके हाथोंमें सँभाला हुआ 'निरीक्षण-यन्त्र' है। विद्युतकी उन्मुक्त सहायता प्राप्तकर अपनी रंगीन किरणोंका मनमाना प्रदर्शन वह कर बैठता है, इसका उसके मालिकको ध्यान ही न था। जैसे बिजली कौंधकर आ गिरे सजनने उसके सिरपर पिस्तौल तानकर कहा—'हाथ ऊपर!'

बन्दीके मुँहसे अनायास ही किसी विदेशी भाषाके कुछ शब्द निकल पड़े। पलक झपकते वह तिरछा हुआ और उसके हाथका काँच सजनके माथेसे टकराकर दूर जा गिरा। साथ ही सजनकी गोली प्रतिस्पर्धीका कन्धा छेदती हुई धरतीमें जा धँसी।

× × ×

सामने फैले चार्टपर उँगलीसे संकेतकर सजनने कहा—'देखो, हमें यहाँ रहना है और यह, इस जगह, दुश्मन छिपा है। समझे?'

आस-पास खड़े हुए सहायकोंमें से एकने सिर हिलाकर उत्साहसे कहा—'जी, समझ गया।'

'इस पहाड़ीके पीछे, योगेन्द्र, तुम्हें अपने आदमी रखने हैं। समझ रहे हो जसपाल, इधर रहोगे तुम।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक़्शेपर काली रेखाएँ आवागमनकी राहें और प्रान्तकी भौगोलिक स्थितिका स्पष्टीकरण कर रही थीं। उनपर लाल पेंसिल बनाकर सेनाको विभिन्न टुकड़ियोंके रहनेके निर्दिष्ट स्थानोंको समझाया गया था। अपने-अपने कर्त्तव्योंको भली-भांति समझ वे एक-एककर चले गए।

'अशरफ़, तुम और मैं एक साथ पास-ही-पास रहेंगे। जीवन या मरण, जो भी पथ आज भाग्य दिखला दे, हम साथ ही पार करेंगे।'

बड़ा भला लग रहा था अशरफ़ अपनी फ़ौजी वर्दीमें। सिरसे पैर तक उसकी ओर एक प्रशंसासूचक दृष्टि फेककर सजन मुस्कराया। विप्लवके इस क्षणमें एक अननुभूत आह्लादसे उसका उर भर आया। जैसे उस एक अशरफ़में उसे अपने समस्त बिछुड़े स्नेही उपलब्ध हो गए हों; जैसे उस एक व्यक्तिमें सारा देश ही संक्षिप्त होकर आज पकड़में आ गया हो। और अशरफ़को लगा कि विदेशकी अपरिचित भूमिमें एक मित्र देकर ईश्वरने उसपर असीम अनुग्रह किया है। सजनके साथ जिस एकात्मकताका उसे बोध हो रहा था, उसे समझ वह स्वयं लजा गया। उनकी अनुभूतियाँ इतनी तीव्र हो उठी थीं कि केवल मूकता ही में अभिव्यंजित हो सकीं। बिना कुछ कहे दोनों मित्रोंने ज़ोरसे एक दूसरेके हाथ दबाए और तब कर्त्तव्यकी पुकारमें खो जानेके लिए तैयार हो गए।

- ३ -

ज़ीनतने लिखा था—"इलाहाबादमें हिन्दू-मुस्लिम-दंगा इतना ज़बरदस्त हुआ कि लिखते नहीं बनता। उस दिन एक बेचारा बूढ़ा मेरे बँगलेके पीछे ही मार डाला गया। मुझे तो यह देख-सुनकर बड़ा सदमा पहुँचता है। मैं जब सफ़दर मियाँसे इनके लड़नेका सबब पूछती हूँ, तो वे कहते हैं—'इनके सिरोंपर भूत सवार है। जो-कुछ अभी ये कर रहे हैं, वह बेहोशीकी हालतमें, वर्ना वैसे ये लोग बुरे नहीं हैं।'

"बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें मैं जिस तरह समझती हूँ उसी प्रकार समझा नहीं पाती। अपनी अनुभूतियोंको दूसरों तक ठीक-ठीक पहुँचा न पानेके कारण कभी-कभी बहुत तक़लीफ़ होती है। मेरी बातोंसे कई बार अशरफ़ भाईको चोट पहुँची है। लेकिन आज उस मदानके सिरेपर खड़े होकर, जहाँ मौत रात-दिन ज़िन्दगीके साथ आँख-मिचौनी खेला करती है, उन्हें ज़रूर महसूस हुआ होगा कि जाति लेकर कोई पैदा नहीं होता; मृत्यु कोई भेद स्वीकार नहीं करती।..."

पत्र पढ़कर अशरफ़ने निःशब्द पास लेटे सजनको लौटा दिया। ज़ीनतकी भेजी हुई मिठाइयोंका पार्सल उन्हें पिछले सप्ताह मिल गया था। अशरफ़के पीले पड़ रहे ओठोंपर मुस्कराहट नाच गई। सिनेमाके चल-चित्रोंकी भाँति दृश्यपर दृश्य उसकी आँखोंसे गुज़रते गए, जैसे जाग्रत ही स्वप्न देख रहा हो:—

'आज कालेज नहीं गईं आप?'

वह शीशमसे टिकी हुई कुछ पढ़ रही थी। सिर उठाकर बोली—'आइए। नहीं गई। कालेजमें अब तबीयत नहीं लगती। जबसे प्रो० सजनसिंह चले गए हैं, कालेज-जीवन बड़ा शुष्क हो गया है। फिर इम्तहान भी क़रीब आ गया है।'

पास ही घासपर बैठते हुए अशरफ़ने पूछा—'पढ़ाई कैसी चल रही है?'

'हो रही है यों ही-सी कुछ। आप कहीं गए हुए थे क्या? मुद्दतोंमें देखा।'

'जी हाँ, बाहर था।'

'जिन्नाके कामसे?'

'लीगके कामसे।'—उसने सुधारना चाहा।

'मैं दोनोंको एक कहती हूँ।' वसन्तके आगमनके कारण वातावरणमें एक विचित्र-सी शून्यता छाई थी। अन्तरमें भी उसीका अनुभव करते हुए ज़ीनतने कहा—'न जाने कैसी उदासी महसूस हो रही है मुझे, अशरफ़ भाई! बीस है न आज? आज ही प्रो० सजनका जहाज़ अफ्रीकाके लिए रवाना हो जायगा।'

'खत लिखते हैं शायद?'

'हमेशा। तस्वीर भी भेजी है।' दूरपर माली गुल-मेंहदीकी क्यारी सँभाल रहा था। ज़ीनत उसी ओर नेत्र दौड़ाती हुई बोली—'कल हम लोग "रूसी मोर्चेकी लड़ाई" नामक फिल्म देखने गए थे।'

'अच्छा, आप गई थीं? कैसा है चित्र?'

वह जैसे सिहर उठी। बोली—'आपने नहीं देखा?'

'जी नहीं। देख नहीं सका।'

'आपके पाकिस्तानमें पिक्चर-हाउस शायद अभी नहीं खुले!'

अशरफ़ने मर्माहत होकर शिकायतके ढंगपर कहा—'आपने मुझे कभी भी ठीक-ठीक नहीं समझा।'

ज़ीनत बहुत भावुक लड़की थी। जब वह कोई चित्र देखती या कहानी पढ़ती, तो उसमें डूब-सी जाती। हफ़्तों उसके प्रभावसे उसका हृदय आलोड़ित हुआ करता। उसने सुलझा हुआ मस्तिष्क और मर्मज्ञ आत्मा पाई थी। सदय कण्ठसे बोली—'मेरे जीवनकी वह सबसे महत्त्वपूर्ण घड़ी होगी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब यह मालूम हो जायगा कि इधर कुछ दिनोंसे आपके बारेमें मैं जो खयाल करने लगी हूँ, वह सब ग़लतफ़हमीसे भरा है।'

शीशमकी पत्तियोंसे छन-छनकर धूपकी रंगीन रश्मियाँ उसके बालोंसे होती हुई आधे चेहरेपर पड़ रही थीं। भावाकुल अशरफ़ बहुत देर तक ओठोंपर बेधड़क चली आती मुस्कराहटको रोकता हुआ विमुग्ध बैठा रहा। फिर बोला—'अगर मैं भी पल्टनमें चला जाऊँ और कहीं मेरे मरनेकी खबर आपको मिले, तो क्या आप मुझे कभी याद भी करेंगी?'

उसकी बातका उत्तर न देकर ज़ीनतने एकाएक उत्तेजित होकर कहा—'क्यों आप अपने उन विचारोंका अक्स मेरे मनमें उतारना चाहते हैं, जिनसे मुझे इतनी सख्त नफ़रत है? क्यों आपकी यह कोशिश रहती है कि हिन्दुओंको मैं बुरा समझूँ, उनसे दूर भागूँ? मैं क्यों ऐसा करूँ?'

'आपसे दूर भागनेके लिए किसने कहा? और यह तो मानी हुई बात है कि हिन्दू मुसलमान नहीं कहे जा सकते।'

'पर आप यह क्यों नहीं समझ पाते कि आज हम जीवनके उस संघर्ष-स्थलपर आ खड़े हुए हैं, जहाँ एक-दूसरेका प्रेम पाए बिना ज़िन्दा नहीं रहा जा सकता। जाति लेकर भी कोई पैदा हुआ है?'

अशरफ़ हँसा। बोला—'दुनियामें पनपनेके लिए दर्शनकी गुंजाइश नहीं होती, ज़ीनत!'

'यह लम्बी बहस है कि दुनियाकी तरक्कीमें दार्शनिकोंका कितना हाथ रहा है। मुझे यह बताइए, यदि आपके सामने दो घायल पड़े हों—एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान—उनमें से सिर्फ़ एकको आप जीवन-दान दे सकते हैं, तो बतलाइए, आप किसे बचाइएगा?'

अशरफ़ने उसके नेत्रोंमें स्थिर दृष्टिसे देखकर कहा—'मेरी ज़िन्दगीके तमाम आराम मज़हबपर निछावर हो चुके हैं।'

'पर आप किसे बचाइएगा, बताइए?'

'शायद आपकी तबीयत ठीक नहीं। जाकर आराम कीजिए। मैं फिर आऊँगा।' ज़ीनतकी उत्तेजना उसकी प्रसन्नताका कारण कभी नहीं हुई। मन-ही-मन वह तनिक भयभीत हो गया था।

'तो आप उस संकुचित क्षेत्रके बाहर नहीं आ सकते, जिसमें आपने अपनी सारी हस्ती क़ैद कर ली है?'

'ज़ीनत, आप पागल तो नहीं हो गईं! मैं फिर आऊँगा।'

ज़ीनतका मुँह तमतमा आया था। अकुलाकर वह खड़ी हो गई और विवशताके भावसे सिर हिलाकर बोली—'आपने मेरी उम्मीदोंपर खाक डाल दी।'

पर आज तो युद्धके मैदानमें क्षत-विक्षत शरीरोंके ढेरोंके बीच खड़े होकर उसने घायलोंको पानीके लिए तड़पकर मरते देखा है। न-जाने कितने वहाँ पड़े-पड़े ही सड़ जाया करते हैं। बलिदानकी केवल एक पुकारपर जो अपना सर्वस्व समर्पित कर चुके हैं, उनके लिए अश्रुकी दो खारी बूँदें गिरानेवाला भी वहाँ कोई नहीं! उसने तो मानवका चरम उत्कर्ष और अन्तिम पतन देखा है। प्रकृतिका महाकाल-रूप देखा है! क्या अब भी न समझेगा कि मनुष्यकी केवल एक जाति है—मानव; एक ही धर्म है—मानवता। यहाँ, अस्पताल ही में चारों ओर कितनी वेदना, कैसी पीड़ा बिखरी पड़ी! इस सजन ही को लो न! उसने कभी इस जीवनकी भी कल्पना की होगी? डाक्टरोंने उसका एक हाथ और पैर काट डालनेका निर्णय किया है!

बरामदेके उस पार बादल सतरंगे होकर छा रहे थे। अशरफ़ने अपनी थकी आँखें उन्हींमें उलझा दीं। घायलोंकी पंक्तिके दूसरे छोरपर अपनी तक़लीफ़ बहलानेके लिए कोई रह-रहकर गा उठता था—"मेरे बिछुड़े हुए साथी!...तेरी याद सतावे!"

गायकके स्वरमें दर्द था। गीत प्राणोंमें समाता चला जाता था। सजनने निर्जीवकी भाँति कहा—'वह जासूस अरब नहीं, जर्मन था।'

'जानता हूँ।'—वैसे ही भावसे अशरफ़ने उत्तर दिया।

'उसे आज गोली मार दी गई।'

घायलकी आवाज़ घूम-घूमकर अपनी पूर्ण व्यथामें सिसक रही थी—"...तेरी याद सतावे!"

'उसकी तस्वीर मुझे भेजी गई है। युद्धकी समाप्तिपर सुविधानुसार इसे उसकी बहनके पास भिजवा दूँ, यही उसकी अन्तिम इच्छा थी।'

सजनने न जाने कैसे स्वरमें कहा—'उसके बस यह एक बहन ही है!' और अशरफ़ने देखा, उसके नेत्रोंमें युग-युगकी करुणा घनीभूत हो आई है।

दिसम्बरकी यह २४वीं सन्ध्या थी। कभी इसी रातकी यौवन-वेलामें संसारका एक महापुरुष शान्ति और सत्य वेदनाका सन्देश सुनाने जगतीपर अवतीर्ण हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

टेम्स नदीके तटपर स्थित ब्रिटेनके सुप्रसिद्ध क्यू-गार्डन्स

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैरनेका तालाब और वनस्पति-गृह, जिसमें संसारके लगभग सभी पौधे हैं।

लहराती हुई पुष्प-शय्याओंसे सुशोभित क्यूके रायल बोटेनिकल गार्डन्स।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने देशसे जापानियोंको मार भगानेके लिए एक चीनी टुकड़ी मोर्चेकी ओर जा रही है।

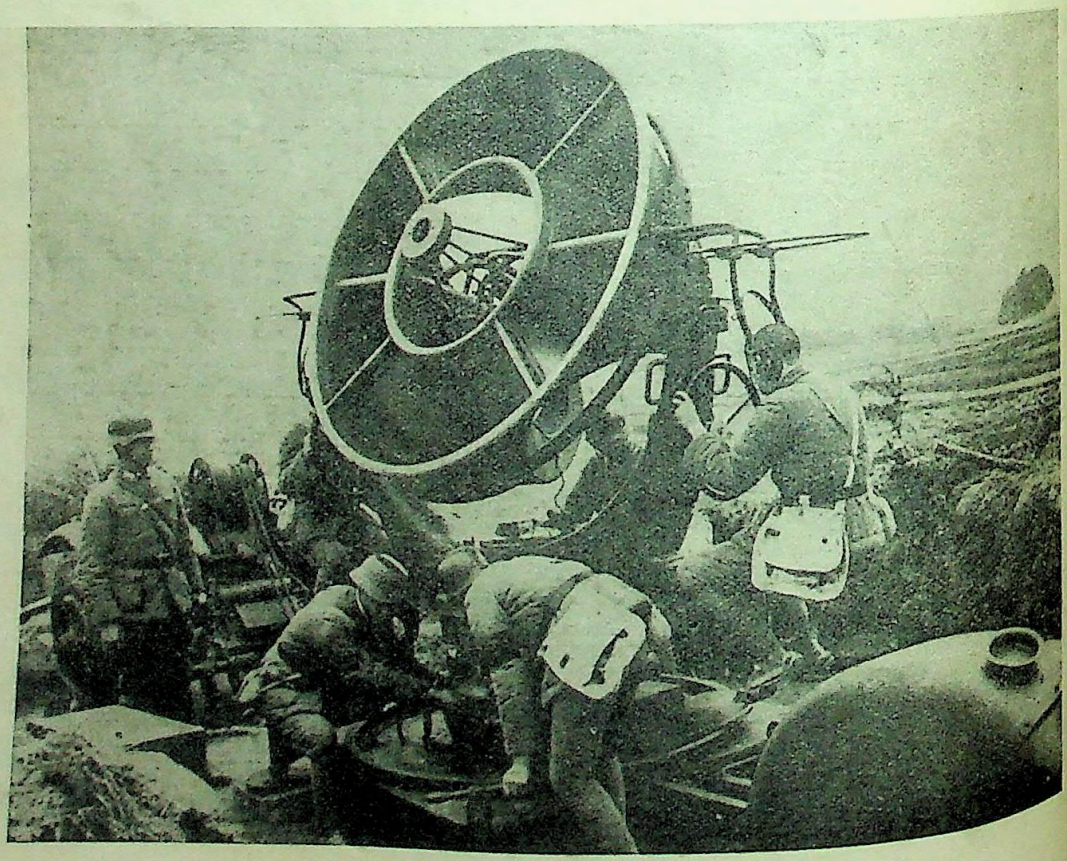

शत्रु-विमानोंके आगमनकी आहट सुननेका एक यन्त्र।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'छिताईवार्त्ता'

श्री अगरचन्द नाहटा : श्री भँवरलाल नाहटा

हिन्दी-साहित्यका मौलिक अन्वेषण अभी तक पूर्ण रूपसे नहीं हो पाया है, इसीलिए उसकी बहुत-सी गुत्थियाँ सुलझ नहीं पाई हैं। वैसे तो हिन्दी-साहित्यके कितने ही ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं; पर उनमें अन्वेषणका अभाव बहुत ही अखरता है। कारण, जो भूलें 'शिवसिंह-सरोज' और 'मिश्र-बन्धु-विनोद'के समयसे चली आ रही हैं, वे अद्यतनतम कहे जानेवाले इतिहासोंमें भी पाई जाती हैं। इस प्रकार ये सारे इतिहास-ग्रन्थ एक-दूसरेके अनुकरण-मात्र ही कहे जा सकते हैं। इनमें जैन-साहित्यकी बहुत ही उपेक्षा की गई है। बहुत-से कवियोंके नामोंका निर्देश तक नहीं किया गया है। छोटे मलिक मुहम्मद जायसीके 'पद्मावत'के बादशाह-चढ़ाई-खण्डमें जब हम सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा प्रेषित दूतके मुँहसे—'बोल न, राजा आपु जनाई। लीन्ह देवगिरि और छिताई॥' सुनते हैं, तो उक्त पद्यमें उल्लिखित छिताईके सम्बन्धमें हमारी जानकारी कुछ भी नहीं रहती। पं० रामचन्द्र शुक्लने अपने सम्पादित 'जायसी-ग्रन्थावली'में छिताईका टिप्पण कहीं की (?)' दिया था। गत दो वर्षोंसे हमने हिन्दी-साहित्यके अप्रसिद्ध ग्रन्थोंकी खोजका कार्य प्रारम्भ किया है और फलतः सैकड़ों नए ग्रन्थोंका पता चला है, जिनमें से 'छिताईवार्त्ता' भी एक है। इस वार्त्तासे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि जायसीने अपने 'पद्मावत'में देवगिरिकी जिस छिताईका उल्लेख किया है, यह वार्त्ता उसीके सम्बन्धकी है।

इस वार्त्ताके रचयिता कवि नारायणदास हैं। उन्होंने चौपाईमें इसकी रचना की है। रचना साधारण है। इस एक ही प्रतिके अपूर्ण एवं अशुद्ध मिलनेके कारण कई स्थानोंमें कथाकी संगति पूर्णरूपसे नहीं बैठती। हमें अभी तक इसकी एक ही प्रति बीकानेरके बृहत् खरतरगच्छीय ज्ञान-भण्डारसे प्राप्त हुई है। यह गुटकाकार है। इसमें और भी कई रचनाएँ हैं; पर 'छिताईवार्त्ता'के प्रारम्भके ६० पद्यके पत्र नष्ट हो गए हैं और आगे जाकर पत्रांक १६-१७ भी नहीं हैं। पद्यांक ६४१ तक चौपाइयोंके अंक लगे हुए हैं, उसके बाद नहीं हैं; पर आगे कथाका सम्बन्ध ज्यादा नहीं रहा है। अनुमानतः ४०० चौपाइयोंमें रचना समाप्त होती है। वार्त्तामें कविने रचना-काल नहीं दिया है; पर 'संवत् १६४७ माघ बदि ६ दिने लिखितं चेला करमसी साह रामजी पठनार्थं' लिखा होनेसे यह सं० १६४७ से पूर्व रचित अवश्य ही है। वार्त्तामें कई जगह रचयिता अपनेको 'कवियण नारायणदास' नामसे सम्बोधित करता है, इसके सिवा कविका कोई परिचय उपलब्ध नहीं है।

प्रस्तुत काव्यमें वर्णित कथाका सार यों है। निसुरतखांकी फ़ौजोंने दक्षिणके ग्राम-नगरोंको लूट-खसोटकर उजाड़ डाला। क्रमशः मीर देवगिरि जा पहुँचा और तुर्कों द्वारा सन्तप्त प्रजा भी राजा रामदेवके पास देवगिरि गई। चिन्तातुर राजाने मन्त्रियोंसे सलाह ली। मन्त्रियोंने कहा कि दोनों नाशके मार्ग हैं। यदि युद्धमें निसुरतखांकी पराजय हुई, तो सुल्तान अलाउद्दीन उसकी मददमें आ धमकेगा और यदि कहीं हमारे पैर उखड़ गए, तो भी मुश्किल होगी। इस अचिन्त्य संकटसे बचनेके दो ही उपाय हैं, या तो बेटी देकर निश्चिन्त हो जाना या सुल्तानके पास दिल्ली जा पहुँचना। राजाके स्वयं कष्ट सहन करनेपर प्रजा, देश, धन आदि बच सकते हैं। समुद्र-तटके जिन राजाओंको निसुरतखांने अपने अधिकारमें कर लिया था, उन्हें राजा रामदेवने अपने पक्षमें कर लिया और उन्हें साथ लेकर दिल्लीकी ओर कूच किया। अविश्रान्त गतिसे प्रयाण करते हुए वे थोड़े दिनोंमें दिल्ली जा पहुँचे। राजा रामदेवने अलूखांकी मारफ़त सुल्तान अलाउद्दीनसे मिलकर लाख रुपए भेंट किए। बादशाहकी प्रसन्नता प्राप्तकर राजा उसके पास रहने लगा। गयर-महल नामक राजप्रासाद राजाको रहनेके लिए मिला। बादशाहके साथ राग-रसमें प्रवीण राजा रामदेवका यहाँ तक प्रेम बढ़ा कि परस्पर मनकी बातें तक होने लगीं। इस प्रकार सुखसे तीन वर्ष बीत गए और राजाने घरकी सुधि तक नहीं ली।

इधर रानीने मन्त्रीसे कहा—'राजाको दिल्ली गए तीन वर्ष हो गए, बिना नायकके राज्य कैसे चलेगा? घरमें विवाह-योग्य बेटी है, उसकी चिन्ता करना परमावश्यक है। तुम शीघ्र राजाको संवाद लिखो।' मन्त्री तत्काल पत्र लेकर चार सवारों-सहित दिल्ली पहुँचा। राजाने पत्र पाकर कुशल-समाचार पूछा और देश जानेके लिए सुल्तानसे आज्ञा प्राप्त करनेका विचार किया। मन्त्रीने कहा—'सुल्तानसे पुत्रीके ब्याहकी बात करना ठीक नहीं, क्योंकि आपकी दी हुई दोनों दासियोंसे भेद पाकर यदि कहीं उसने आपको गिरफ़्तार कर लिया, तो फिर प्रिय छिताईको देकर ही आप छुटकारा पा सकेंगे।' राजाने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता। सुल्तान मुझे अलखांकी तरह मानता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रीकी बात न मानकर राजा रामदेव पत्र लेकर सबेरे ही सुल्तानके पास गया और सुल्तानसे निवेदन किया कि मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया। देवगिरिसे पत्र आया है, मेरी कन्याका विवाह है। सुल्तानने कहा—'मैं तुम्हारी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ; जो इच्छा हो, माँगो।' राजाने कहा—'यहाँके चित्र मुझे बहुत पसन्द है, अतः एक कुशल चित्रकार मुझे दें।' बादशाहने हाथी-घोड़ा आदिके साथ एक चित्रकार देकर राजाको रवाना किया। मन्त्रीने चित्रकार-रूपी साँपको पिटारेमें डाल कर ले जानेका बहुत विरोध किया; परन्तु राजाने उसकी बातकी कोई परवाह न की।

राजा रामदेवके देवगिरि पहुँचनेपर सारे नगरमें आनन्द छा गया। चित्रकारको चित्र बनानेके लिए महल दिखलाए गए; परन्तु चित्रकारने कहा कि पुराने मकानमें चित्र सुन्दर नहीं लगते। इस सुझावपर राजाने नए महलकी नींव रखी। कविने नव-निर्मित महलका खूब वर्णन किया है। महल तैयार होनेपर चित्रकारने सरस्वती, नल-दमयन्ती, नायक-नायिका-भेद, ८४ भोगासन आदि नाना प्रकारके चित्र बनाने प्रारम्भ कर दिए। छिताई अपनी सखियोंके साथ चित्रशालाका निरीक्षण करने आई। उसका अनुपम रूप देखकर चित्रकार विस्मित हुआ और उसने छिताईका जैसेका तैसा रूप काग़ज़पर चित्रित कर लिया।

राजाने विश्वस्त ब्राह्मणको नारियल-सुपारी देकर छिताईकी सगाईके लिए भेजा। उसने ढोलसमुन्दगढ़ पहुँचकर राजा भगवान-नारायणके पुत्र सुरसीके साथ, जो गुणवान और सुदृढ़ शरीरवाला था, छिताईकी सगाई कर दी। तिलक हो जानेपर लग्नपत्री लेकर वह ब्राह्मण देवगिरि लौटा। राजा रामदेवने विवाहकी तैयारी की। सुरसी राजा-राणाओंके साथ बड़े ठाट-बाटसे बरात लेकर आया। राजा रामदेवने बड़े समारोहसे स्वागत किया। विवाहके बाद राजाने सोना और जवाहरात दहेजमें देकर लड़कीको विदा किया। राजा भगवाननारायण ढोलसमुन्दगढ़ पहुँचे। पालकीसे उतरते ही छिताईको छींक आ गई। आरती, स्वागत आदि होनेके बाद वह सुखसे ससुरालमें रहने लगी। यहाँ कविने छिताईके रूप और प्रथम रात्रिके वर्णनको खूब विस्तारसे लिखा है।

राजा रामदेवके निमन्त्रणपर सुरसी छिताईके साथ देवगिरि आया। ससुरालमें बड़े सत्कारके साथ उसे रखा गया। नित्य नाटक देखने और राग-रंगमें दिन बीतने लगे। सुरसीको शिकारका ऐसा शौक लगा कि वह प्रतिदिन जाने लगा। छिताई भी कभी-कभी उसके साथ चली जाती। राजा रामदेवने मृगयाके अवगुण बाताकर प्रतिदिन उसे जानेसे रोका; पर लत लगी हुई सहजमें नहीं छूटती। एक दिन सुरसी मृगके पीछे बहुत दूर चला गया, जहाँ राजा भर्तृहरि योग-समाधिमें थे। शोरगुलसे योगीका ध्यान भंग हुआ और उसने सुरसीको यह कार्य करनेसे रोका। परन्तु सुरसीने उद्दण्डतापूर्वक कहा—'अच्छा, मैं मृगके बदले तुझे ही मारूँगा।' योगिराज भर्तृहरिने उसे उपदेश दिया; किन्तु सुरसी नहीं माना और हरिणको पकड़ने लगा। भर्तृहरिने हरिणको छुड़ाकर उसे शाप दिया कि तुम्हारी स्त्री दूसरेके हाथमें पड़ेगी और तुम्हारा विनाश होगा! भयभीत सुरसी दिग्मूढ़ होकर रात-भर इधर-उधर भटकता रहा। इधर प्रतीक्षामें छिताईने बड़े कष्टसे रात काटी। दूसरे दिन संध्या-समय सुरसी घर लौटा।

इधर चित्रकार देवगिरिसे विदा होकर दिल्ली पहुँचा। उसके मनमें छिताई और सुरसीके सुखकी बड़ी ईर्ष्या थी। वह दक्षिणकी बहुमूल्य वस्तुओंको सुल्तानके सामने रखते हुए सलामकर एक ओर खड़ा हो गया। बादशाहने राजा रामदेवका कुशल-मंगल, देवगिरिकी कैफ़ियत और राजकन्या छिताईके विवाहकी बात पूछी। चित्रकारने सभा-विसर्जनके बाद कहनेकी बात कही। सभा-विसर्जनके बाद बादशाह चित्रकारके साथ गयर-महलमें गया। चित्रकारने छिताईका रूप वर्णन करते हुए चित्र पेश किया। चित्र देखकर अनुरागवश बादशाह मूर्छित हो गया और होश आनेपर छिताईको प्राप्त करनेके लिए देवगिरिपर चढ़ाई करनेकी ठानी। देश-भरमें फरमान भेजे गए। आज्ञा पाकर बड़े-बड़े खानों, उमरावों, खिलची, खुरेसी, लोदी, जुर्जलवानी, ईसपखानी, बब्बर, गोरी, बलोची इत्यादिकी सेनाएँ तैयार हुईं। सब हज़ार लाल दाढ़ी-मूँछवाले मुग़ल थे। अलूखांको दिल्लीमें छोड़ बादशाहने कूच किया। दस-दस कोसकी मंज़िल करते हुए छः महीनेमें देवगिरि पहुँचा। शाही सेनाने रामदेवके सब्जमें फैलकर गाँवोंको उजाड़ डाला और मन्दिरोंको तोड़ फोड़कर मस्जिदें बना डालीं। राजा रामदेवको जब यह मालूम हुआ, तो उसने सेना तैयारकर रणभेरी बजवा दी। हिन्दू सवार वीरतापूर्वक लड़ने लगे। रूपा, रूहा, हिम्मा, जैता, जाजो, जागो, जोग, सांगा, भाखर आदि वीर तुर्क सेनामें प्रवेशकर उन्हें तितर-बितर करने लगे।

राणाओंने मिलकर सुरसीसे कहा—'तुम छिताईको लेकर अपने नगरको चले जाओ। उसने कहा—'मैं ढोलसमुन्दरकी सेना लाकर देवगिरिको बचाऊँगा। आपत्तिके समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानेसे हमारी राजपूती कुल-लाज और वंशको कलंक लगता है।' ऐसा कहकर सुरसी छिताईको अपने चिह्न-स्वरूप गलेकी माला देकर ढोलसमुन्दगढ़ चला गया। उसके वियोगमें छिताई शृंगारादि त्यागकर प्रतिदिन भगवान शिवका दर्शन-पूजन करने लगी। वह कुशासनपर सोती और पतिके नामकी माला जपा करती।

इधर बादशाहने धोखा समझकर राघवचेतनसे कहा—'इस समय छिताई देवगिरिमें हो या ढोलसमुन्दगढ़में, मैं छिताईको लिये बिना दिल्ली नहीं लौटूँगा। मैंने पद्मिनीके लिए चित्तौड़में खूनकी नदियाँ बहा दीं और रत्नसेनको बाँधकर प्राप्त करनेपर भी बादल उसे छुड़ा ले गया; पर अबकी जो छिताईको न ले जाऊँ, तो अपने प्राण यहीं तज दूँगा। यदि तुम छिताईकी प्राप्तिका कोई उपाय नहीं करोगे, तो तुम्हें भी मरवा डालूँगा।' राघवचेतनने चिन्तित होकर पद्मावतीकी आराधना की। देवीका वर प्राप्तकर उसने देवगिरिमें छिताईके पास दूतियाँ भेजनेके लिए बादशाहसे कहा। बादशाहने तत्काल लक्ष्मी नाइन और देवश्री नामक मालिनको सम्भरि-देशका राज्य देनेका प्रलोभन देते हुए छिताईको लानेकी बात कही। लक्ष्मीने कहा—'हमारे सामने सती तो कोई रह ही नहीं सकती, फिर छिताईकी क्या बिसात है? मैं देवलोककी अप्सराको लाकर हाज़िर कर सकती हूँ। परन्तु देवगिरिका गढ़ दुर्गम है। फिर जगह-जगह योद्धा बैठे हैं, गोलियाँ चल रही हैं और अरहट-यन्त्र तथा धनुष-बाणोंकी भरमार है। अतः वहाँ पहुँचा देनेपर हम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकेंगी।' राघवचेतनने दुर्ग-प्रवेशकी तजवीज सोची। सुल्तानने हठपूर्वक कहा—'मुझे भी तुम्हें देवगिरि-दुर्ग दिखाना पड़ेगा।' राघवचेतनके बहुत समझानेपर भी जब सुल्तान न माना, तो वह उसे सुखासनपर बैठा और सुल्तान अलाउद्दीनने प्यादेका वेश लिया। शाही खेमेसे निकलकर वे तलहटीकी हाटमें जा पहुँचे। फिर उन्होंने दूतियोंको अपना काम करनेके लिए राजकुमारी छिताईके पास भेजा। इसके बादका सम्बन्ध प्रतिके कागज़के नष्ट हो जानेसे टूट गया है। उसके बाद राघवचेतनके राज-सभामें जानेकी बात लिखी है।

राघवचेतन सारे देवगिरि-दुर्गका निरीक्षण करता हुआ राज-सभामें जा पहुँचा। राजा रामदेवने बड़े सत्कारके साथ उसे अपने बराबर सिंहासनपर बिठाया और युद्धकी सब हकीकत पूछी। राघवचेतनने युद्धकी उत्पत्तिका सारा हाल कह सुनाया और शान्तिके निमित्त राजकुमारी छिताईको दे डालनेकी बात कही। राघवचेतनकी बातसे राजाको अपार क्रोध हुआ और उसे मारनेको उद्यत हुआ; पर दूतको मारना नीति-विरुद्ध समझकर उसे छोड़ दिया। राघवचेतन राज-सभासे निकलकर बादशाहके साथ अपने स्थानको आया। बादशाहने उसे दासीसे मिलने और उसके द्वारा हाथ पकड़े जानेकी बात कही, तब राघवने कहा—'यह बहुत बुरा हुआ। यदि आप वहाँ पकड़े जाते, तो मेरी बड़ी बदनामी होती। खैर, अच्छा ही हुआ कि आप पकड़े नहीं गए।' बादशाहने शाही सेनामें दमामे बजवाए।

इधर राजा रामदेवसे पीपा मन्त्रीने कहा कि बादशाहके कूचकी तैयारी मालूम होती है। इतनेमें ही एक दासीने आकर राजासे निवेदन किया—'आज बादशाह ग़रीबके वेशमें दुर्गपर आया था। उसके हाथमें गिलोल थी, जिससे उसने तालाबके बहुतसे पक्षी मार डाले। मैंने लक्षणोंसे पहचानकर बादशाहका हाथ पकड़ लिया। बादशाहने बहुत-सा द्रव्य देते हुए खुदाको बीचमें रखकर मुझे एक पत्र लिख दिया है। मैंने सुल्तानको वचनबद्ध किया है।' यह कहकर दासीने शाही पत्र राजाके हाथमें दिया। राजाने पढ़कर दासीसे कहा—'यदि तुमने उसे वचनबद्ध किया है, तो यहाँसे शाही सेना हटवा दो। मैं तुम्हें आधा राज्य दूँगा।' तब नयनसुख दासीने छज्जेपर चढ़ बादशाहको पुकारकर कहा—'हे प्रतिज्ञापालक, तुम यहाँसे फ़ौजें हटा लो!' बादशाहने वैसा ही किया।

इधर दूतियाँ योगिनका वेश बनाकर छिताईके पास पहुँचीं। छिताईने उन्हें सम्मान-सहित बिठाकर पूछा—'आप लोगोंने कौन-कौन-से तीर्थोंकी यात्रा की?' उन्होंने प्रयागमें मकर-स्नान, गयामें पिण्डदान, बनारस, केदार, द्वारामती, नगरकोट, जगन्नाथ, गोदावरी, सेतुबन्ध रामेश्वर आदि तीर्थोंकी यात्रा करके आनेकी बात कही। छिताईने अपनेको धन्य माना। एक योगिनने प्रसंग देखकर छिताईसे कहा—'इस अवस्थामें तुम चिन्तित-सी क्यों दीखती हो? तुम्हारे शृंगारादि त्यागनेका क्या कारण है? तुम्हें ऐसा कौन दुःख है?' छिताईने कहा—'मेरे पति मेरे पिताजीकी सहायताके लिए फ़ौज लाने ढोलसमुन्द-गढ़ गए हैं।' योगिनीने कहा—'यह यौवन व्यर्थ क्यों खोती हो? और सब कुछ जानेपर मिल जाता है; पर गया हुआ यौवन फिर नहीं लौटता।' योगिनीके मुँहसे यह सुनकर छिताईने ग्लानिपूर्वक कहा—'हे दुष्टा, सुरसीके सिवा परपुरुष मेरे पिता, पुत्र एवं बन्धुके सदृश्य है।' योगिनने सोचा, मेरा वार खाली गया। अब कटकमें जानेसे सुल्तान नाक-कान कटवा डालेगा। इतनेमें संध्या हो गई। पचास सखियोंके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिताई रत्नलिंगकी यात्राके लिए चली। दोनों दूतियाँ भी साथ हो गईं। सुबुद्धि सूत्रधार द्वारा बनाई हुई सुरंगके मार्गसे शीघ्र ही दर्शनकर वे सब लौट आईं।

दूतियोंने शिवका स्थान देख लिया। कटकमें जाकर उन्होंने छिताईका सारा हाल कहा और गढ़से दक्षिण सात कोस उजाड़के अन्दर सुल्तानको ले जाकर स्थान भी दिखाया। जब संध्या-समय कुण्डमें स्नानकर छिताई सखियोंके साथ गढ़में गई, तो तुर्कोंने उसे घेर लिया। वहाँ वीरतापूर्वक लड़कर चालीस स्त्रियाँ काम आईं। पुरुषके वेशमें छिताईको दस स्त्रियोंके साथ बचकर निकलते देख दूतियोंने पहचान लिया और उनके संकेतपर सुल्तानने उसे पकड़कर अपने घोड़ेपर बिठा लिया। सुल्तानको अपार हर्ष हुआ। उसने छिताईकी सहज प्राप्तिको अपनी महान विजय समझा। छिताईने कहा—'सम्राट, तुम मेरे पितातुल्य हो। मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। यदि तुमने बदनीयतीसे हाथ डाला, तो मैं आत्मघात कर लूँगी!' सुल्तानने कानोंमें अँगुलियाँ डाल लीं। उसकी अवस्था साँप-छछुन्दरकी-सी हो गई। जिस छिताईके लिए उसने घमासान युद्ध और इतना प्रपंच किया, उसकी प्राप्ति हो जानेपर भी वही निराशा!

सुल्तान अलाउद्दीन छिताईको लेकर अन्तःपुरमें गया। वहाँकी औरतोंने छिताईका रूप देखकर दाँतों-तले अँगुलियाँ दबाईं। तुर्कोंके वश पड़ी छिताई चिन्तित रहने लगी। सुल्तानने उसे समझानेके लिए दक्षिणी दासीको भेजा। दासीने दक्षिणी भाषामें कहा—'मैं राजा रामदेवकी दासी हूँ। बाई, विधाताने तुम्हें जो दुःख दिया, उसे क्षमतापूर्वक सहन करो। तुम्हारा सौन्दर्य ही इस दुःखका कारण है।' इस तरह समझा-बुझाकर छिताईको शान्त किया। बादशाह दक्षिणमें अपनी दुहाई फिराकर ससैन्य दिल्ली लौटा। उसने छिताईपर की हुई पाप-दृष्टि हटाकर उसे राघवचेतनको सौंप दिया और बारह सहस्र टका प्रतिदिनका खर्च बाँध दिया। वह राघवचेतनके तत्त्वावधानमें ५० वारांगनाओंसे संगीत-कलाका अभ्यास करती हुई अपने दुखके दिन काटने लगी। सुरसीकी खोजके लिए देश-विदेशमें भाट आदि भेजे गए।

इधर सुरसी छिताईके हरणकी बात सुनकर योगी हो गया। उसने चन्द्रगिरिमें जाकर योगाभ्यास किया। सिद्धने मस्तकपर हाथ रखा। योगीके वेशमें कन्धेपर वीणा रखे हुए वह बाग-बगीचोंमें विचरने लगा। योगी सुरसीने जटाशंकरकी यात्रा की। वहाँ उसे एक योगीसे छिताईका सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ और वह लम्बी मंजिल तय करता हुआ कालन्द्रीके तटपर चन्दवारि पहुँचा। पनघटपर बैठे हुए सुरसीका रूप देखकर नगरकी नारियाँ मोहित होने लगीं। एक दिन वह वहाँ रहकर आगे चला और क्रमशः दिल्ली पहुँचा। दिल्लीमें सुरसीकी संगीत-कलाको प्रसिद्धि पाते देर न लगी। राघव-चेतन उससे मिला और छिताईकी दासियोंने भी छिताईको उसकी खबर दी। सम्राटसे मिलनेपर उसने सुरसीसे परिचय पूछा। उसने सिंहलद्वीप-निवासी वियोग-विरक्त योगीके रूपमें अपना परिचय दिया और यह भी कहा कि इस नगरीमें मेरा सर्वस्व लुट गया है। विशेष परिचय एकान्तमें देनेकी बात कहनेपर सम्राट सुरसीके साथ जंगलमें गया। उसने अपने संगीत-कला द्वारा सम्राटके चित्तमें चमत्कार उत्पन्न कर दिया। सम्राटने खुश होकर उसे मनोवांछित वर माँगनेको कहा। सुरसीने सम्राटको वचनबद्धकर अपना सच्चा परिचय दिया और छिताईकी याचना की।

सुल्तान अलाउद्दीनने नगरमें आकर सब लोगोंके समक्ष शाही सभामें छिताईको सुरसीके सुपुर्द कर दिया। उन लोगोंके रहनेके लिए महल देकर कहा कि छिताई मेरी पुत्रीके समान है। कुछ मास दिल्लीमें सुखपूर्वक रहनेके पश्चात् जब सुरसीके पिता भगवाननारायणको यह समाचार मिला, तो उसने सुरसीके बुलावा भेजा। सुरसी भी सम्राटसे विदा लेकर छिताईके साथ दिल्लीसे रवाना हुआ। सुल्तानने उसे ५० पातर, हाथी, घोड़े द्रव्य इत्यादि दिए। सुरसी ५० कोस चलकर चन्दवारि पहुँचा। राजा रामदेव यह शुभ संवाद ज्ञातकर अत्यन्त हर्षपूर्वक स्वयं तार्थ आया और उन्हें देवगिरि ले गया। छिताई अपनी माताले मिली। राज-परिवार और नगर-जन सभी बड़े खुश हुए। सुरसीके साथ राघवचेतन और मोल्हण थे। राजाने उनका बड़ा सत्कार किया। कुछ दिन वहाँ ठहरकर सुरसी अपनी राजधानीको गया। राजा भगवाननारायणको अपार हर्ष हुआ। ढोलसमुन्दगढ़में बधाइयाँ बटने लगीं, सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया।

भारतीय इतिहासके पर्यालोचनसे स्पष्ट है कि अलाउद्दीन खिलजीके शासन-कालमें देवगिरिपर दो बार मुसलमानोंका आक्रमण हुआ था। पहले आक्रमणके सम्बन्धमें प्रस्तुत कथाका वैषम्य इतना ही है कि कथामें आक्रमणकारीका नाम निर्दिष्ट आता है, जब कि इतिहास*में काफ़ूरका। दूसरे आक्रमणका समय १३१२ है। इतिहासके अनुसार इस समय देवगिरिका शक्तिशाली राजा रामचन्द्र (रामदेव) था।

* 'भारतवर्षका इतिहास', पृ० २०८-१०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकरदेव था। उसके कर न देनेपर काफूरने पुनः आक्रमण किया था। प्रस्तुत कथाके अनुसार यह आक्रमण रामदेवके समयमें छिताईके लिए स्वयं अलाउद्दीनने किया था। कथा घटनाके लगभग २५० वर्ष पीछेकी रचना है। अतः नामादिके सम्बन्धमें उसमें भूल-भ्रान्ति होना सम्भव है; पर हमारे खयालसे आक्रमणका प्रमुख कारण छिताईको लक्ष्य करके था, जिसका मलिक मुहम्मद जायसी भी अपने ग्रन्थ 'पद्मावत'में समर्थन करता है। मुसलमान तवारीख-लेखकोंने जिस प्रकार चित्तौड़पर पद्मिनीके लिए चढ़ाई करनेकी बातको छिपा लिया है—पर हिन्दू-इतिहासमें वह अति प्रसिद्ध है—उसी प्रकार देवगिरिके इस आक्रमणका मूल कारण भी मुसलमान इतिहास-कारोंने छिपाकर कुछ और ही लिख दिया प्रतीत होता है। इस दृष्टिसे प्रस्तुत कथा इतिहासका एक नया पृष्ठ आलोकित करती है। कथामें वर्णित ढोलसमुद्र विशेषकर इतिहास-प्रसिद्ध दक्षिणका द्वार समुद्र होना सम्भव है। वहाँके राजा वीर-बल्लालको कथामें भगवाननारायण लिखा है।

राजस्थानका शिक्षण-केन्द्र पिलानी

श्री सोहनलाल पचीसिया

जिन लोगोंने शेखावाटी (जयपुर-राज्य) के फतेहपुर, रामगढ़, नवलगढ़ आदि स्थान देखे हैं, उन्हें पिलानी-ग्राम विशेष महत्वका नहीं मालूम होगा। बाहरवालोंने तो उसका नाम कम ही सुना होगा; पर पिलानीमें जो रचनात्मक कार्य हो रहे हैं, वे ही उसका महत्व हैं। उनकी एक लम्बी सूची तैयार की जा सकती है। परन्तु यदि उन सबको हम एक ही शीर्षक के नीचे रखें, तो उस का नाम रखना होगा 'शिक्षा'। 'शिक्षा' शब्द का जो व्यापक अर्थ होता है, उसीका व्यावहारिक रूप वहाँ विकसित हो रहा है। मनुष्य-जीवनके विभिन्न पहलू हैं। उन सबका समुचित विकास ही मनुष्यको एक अच्छा नागरिक बना सकता है। दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है कि मनुष्य-जीवनकी जो विभिन्न रुचियाँ और आवश्यकताएँ हैं, उन सबको विकसित एवं पूरा करनेका प्रयत्न ही शिक्षा है। यदि हम पिलानीके समस्त कार्यों और उसके अभिभावकोंकी मन्शाको एक ही वाक्यमें प्रकट करना चाहें, तो कहना होगा कि वहाँ अच्छे नागरिक तैयार करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

संध्या-समय बिड़ला-कालेज, पिलानीके सब छात्र खुले मैदानमें सम्मिलित क़वायद कर रहे हैं।

इस प्रयत्नका बीज आजसे ४५ वर्ष पूर्व एक ग्राम-पाठशालाके रूपमें बोया गया था। उस समय राजपूतानेमें शिक्षाका इतना अभाव था कि अच्छे-अच्छे शहरोंमें भी तार और चिट्ठी पढ़नेवाले बहुत कम मिलते थे। अधिक तो क्या, लोगोंको अच्छी तरह हिन्दी पढ़ना भी नहीं आता था। सामान्य अक्षर-ज्ञान, पहाड़ा और हिसाब ही अधिकांश शिक्षितोंकी शिक्षाकी चरम-सीमा थी। ऐसे समय स्वर्गीय सेठ शिवनारायण बिड़लाने अपने दो पौत्रों (रामेश्वरदास और घनश्यामदास) की शिक्षाके लिए एक अध्यापककी नियुक्ति की। शीघ्र ही यह अध्यापक पाठशालाके रूपमें परिवर्त्तित हो गया और कुछ समय बाद वहाँ अंगरेज़ी भी पढ़ाई जाने लगी। थोड़े समय बाद सेठजीके दोनों पौत्र तो बम्बई चले गए; परन्तु पाठशाला दूसरे लड़कोंके लिए क़ायम रखी गई और जैसे-जैसे उनकी आवश्यकता बढ़ती गई, पाठशालामें भी विकास होता गया। धीरे-धीरे उन्नति करती हुई यह पाठशाला मिडिल-स्कूल, फिर हाईस्कूल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

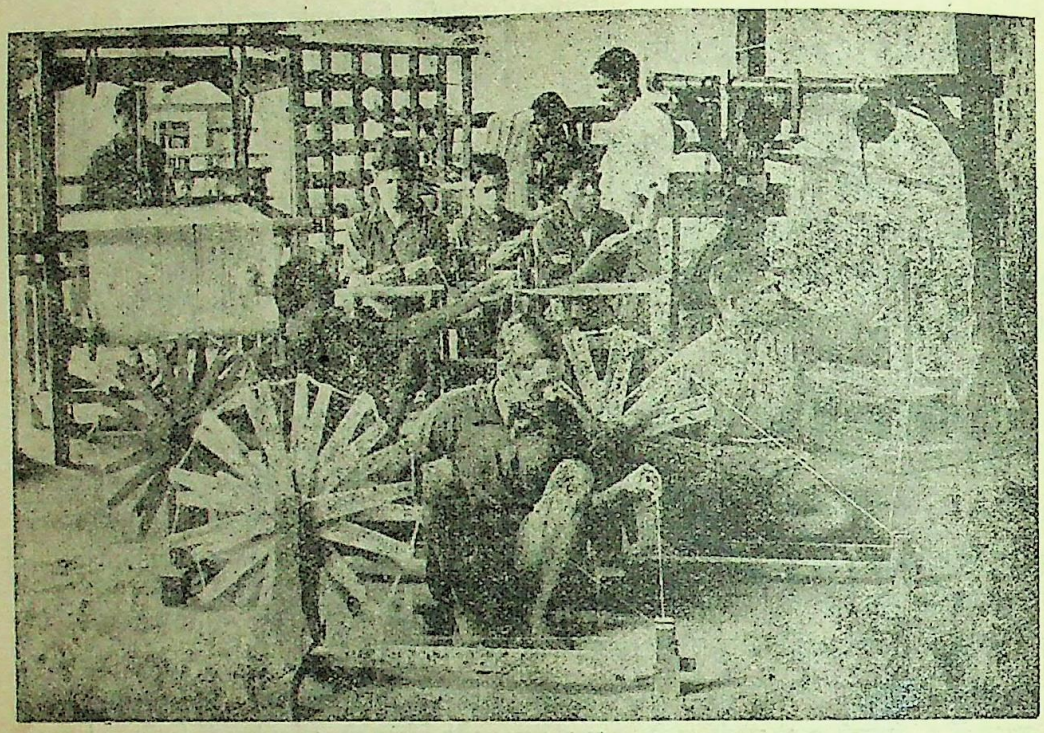

छात्रोंको बुनना और कातना सिखाया जा रहा है।

फिर इन्टरमीडिएट-कालेजके रूपमें परिवर्त्तित हो गई। परन्तु यहाँ आकर इसकी उन्नति कुछ रुक-सी गई। बहुत वर्षों तक इसे डिगरी-कालेज बनानेके लिए प्रयत्न किए जाते रहे; पर जयपुर-सरकारने स्वीकृति नहीं दी। किन्तु अभी हाल ही में जयपुरके नये प्रधान-मन्त्री सर मिर्ज़ा इस्माइलने अनुमति दे दी है और डिगरी-कालेज बनानेकी तैयारियाँ हो रही हैं। डिगरी-कालेजकी चार शाखाएँ होंगी—विज्ञान, इंजीनियरिंग, कामर्स और आर्ट्स। इनके लिए शीघ्र ही मकान बनने शुरू होनेवाले हैं। उनकी लागत १४ लाख रुपए होगी, जिसमें १२०० नये विद्यार्थियोंके लिए बननेवाले छात्रावासका खर्च भी सम्मिलित है।

आज पिलानीमें १४०० छात्र शिक्षा पा रहे हैं; परन्तु आशा की जाती है कि डिगरी-कालेज होनेके बाद यह संख्या ३००० तक पहुँच जायगी। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी बाहरके ही हैं, जो अधिकांशतः छात्रावासमें रहते हैं। स्कूल और कालेजके सिवा यहाँ एक शिशु-मन्दिर भी है, जहाँ बच्चोंको मांटेसोरी-पद्धतिके अनुसार शिक्षा दी जाती है। इस तरह मनुष्यकी शिक्षाके लिए यहाँ प्राथमिक शिक्षासे लेकर

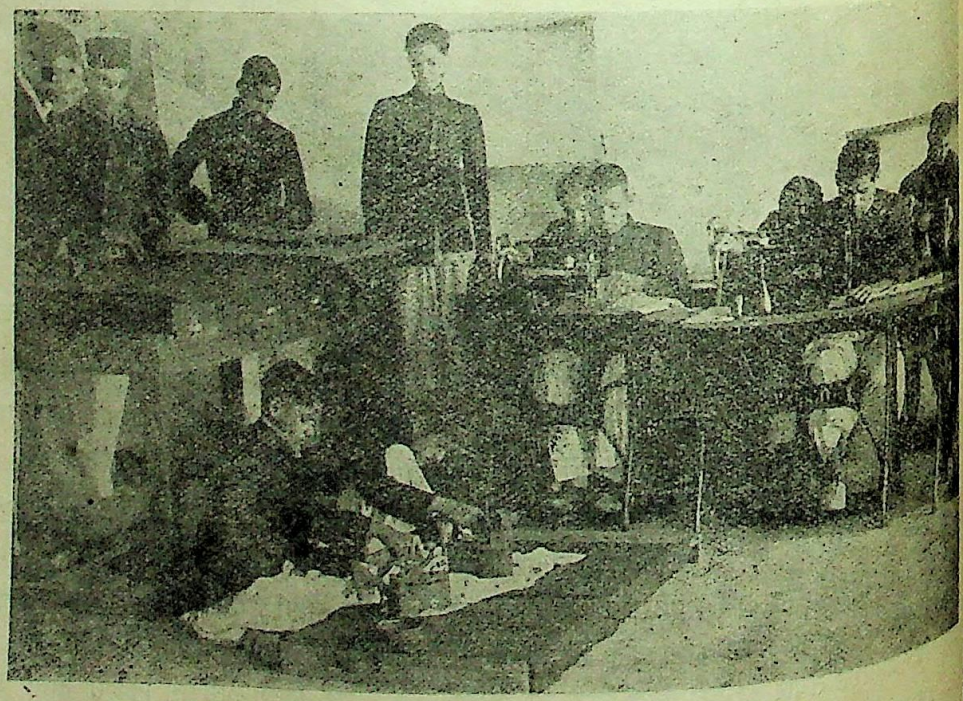

शिल्प-विद्यालयकी दर्जीगीरी-क्लासका एक दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रेजुएट होने तकके लिए व्यवस्था है। लड़कियोंके लिए अलग हाईस्कूल है। मैट्रिकुलेशनके बाद यदि कोई लड़की आगे पढ़ना चाहे, तो वह लड़कोंके साथ ही कालेजमें पढ़ सकती है। कुछ लड़कियाँ इस तरह पढ़ती भी हैं। यहाँके शिक्षा-क्रममें साधारण किताबोंकी शिक्षाके अलावा ४ बातें अनिवार्य हैं—शिल्प-शिक्षा, व्यायाम, स्वाध्याय और आध सेर दूध पीना। शिल्प-शिक्षाका उद्देश्य यह है कि यहाँसे निकले हुए विद्यार्थी सिर्फ़ क्लर्क ही न हों, बल्कि समय आनेपर कुछ धन्धा करके भी जीविकोपार्जन कर सकें।

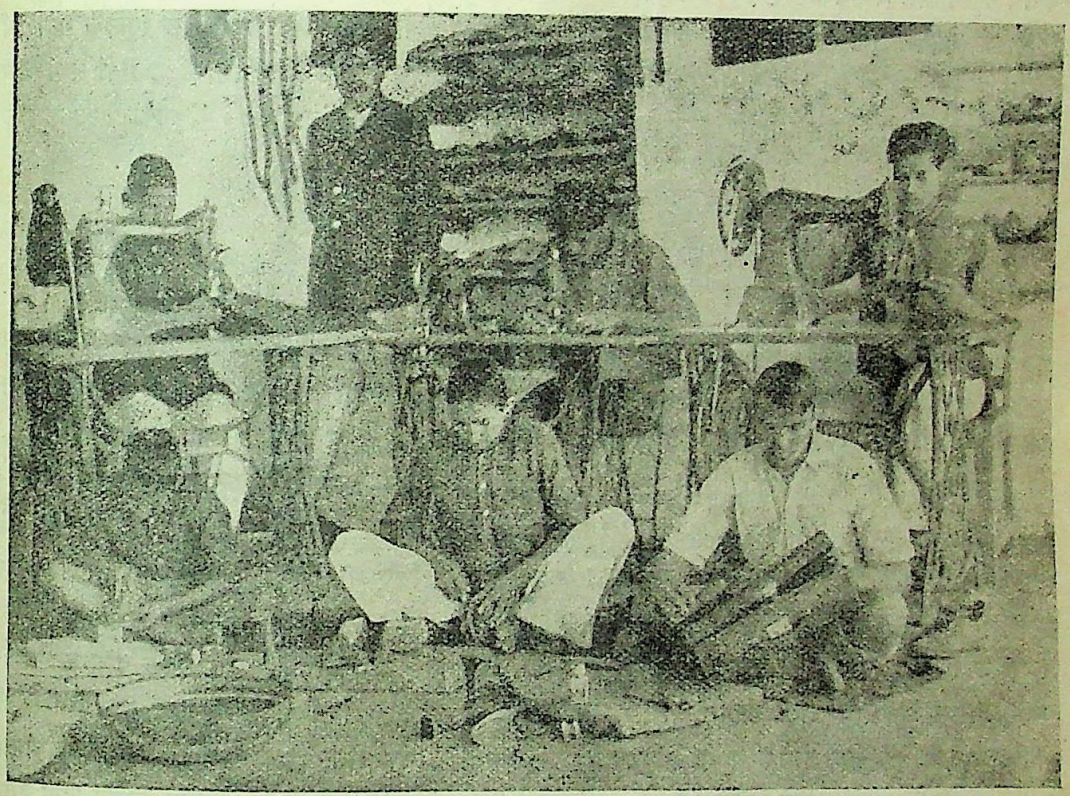

शिल्प-विद्यालयके छात्र चमड़ेका सामान बनाना सीख रहे हैं।

एक शिल्प - शाला है, जहाँ विद्यार्थियों को शिक्षा एवं नौकरी दोनों ही मिलती हैं। यहाँके बने हुए ग़लीचे, कपड़े, चमड़े और काठका सामान एवं दूसरी चीज़ें बाज़ारोंमें बिकती हैं और उनकी आमदनी संस्था को मिलती है। गाँवके बाहर १४०० विद्यार्थियोंके एक साथ कवायद एवं अन्य कसरतें करनेके लिए मैदान है। स्कूल, कालेज और छात्रावास सभी बाहर मैदानमें बने हुए हैं, जिससे लड़कोंको शुद्ध हवा मिलती है। खानेके लिए भी जहाँ तक सम्भव है, शुद्ध एवं पौष्टिक चीज़ें ही दी जाती हैं। पढ़ना, खेलना, सोना सबके लिए समय बँधा हुआ है। सब विद्यार्थी मिलकर एक साथ काम करते हैं, जिससे उनमें सहयोगकी भावनाका विकास होता है। एक पुस्तकालय भी है, जहाँ हिन्दी-अंगरेज़ीकी सब मिलाकर लगभग १०,००० पुस्तकें हैं और देश-विदेशोंसे बहुतसे पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। समय-समयपर लड़कों एवं लड़कियोंके नाटक तथा खेल-कूद होते रहते हैं। संगीत, चित्रकला आदिकी शिक्षाका भी प्रबन्ध है। लड़कियोंके लिए गृह-विज्ञान, संगीत, चित्रकला, नृत्य, व्यायाम आदि सिखानेकी पृथक व्यवस्था है।

यह तो हुई खास पिलानीकी शिक्षा-व्यवस्थाकी बात; पर एक दूसरी योजना गाँवोंमें शिक्षा-प्रचार करनेके लिए भी है। इसके अन्तर्गत पिलानीके चारों ओर लगभग ७००० वर्गमीलके क्षेत्रमें ४०० प्राथमिक स्कूल खोले जायँगे, जिनमें २०० तो खुल भी चुके हैं। अनुमानतः ६ महीनोंके भीतर यह सब स्कूल काम करने लगेंगे। आगे चलकर यह संख्या १००० तक पहुँच जायगी, ऐसी आशा की जाती है। चूँकि प्राथमिक स्कूलों तककी पढ़ाई क़ाफ़ी नहीं है, आयोजकोंकी महत्त्वाकांक्षा है कि इन सबमें मिडिल-स्कूल तककी पढ़ाई हो।

पिलानी एवं उसके चारों तरफ़ शिक्षा-प्रचारका जो महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है, उसका एक अलग विभाग है, जिसका नाम है बिड़ला-एजुकेशन-ट्रस्ट। इसके ट्रस्टियोंमें (स्वर्गीय महादेव देशाई और जमनालाल बजाज भी थे) सर राधाकृष्णन् तथा सर्वश्री घनश्यामदास बिड़ला, रामेश्वरदास बिड़ला और प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका आदि हैं। ट्रस्टकी तरफ़से नासिकमें भी एक विद्यालय बन रहा है। इस समय जो कालेज और स्कूल बन रहे हैं, उनके तैयार हो जानेपर इस ट्रस्टकी कुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पति ५० लाख रुपए होगी। ट्रस्टका वर्त्तमान सालाना बजट दो लाख रुपएके लगभग होता है ; परन्तु नया कालेज बन जानेपर यह रक़म ४॥ लाख तक पहुँच जायगी। यह बजट हिन्दुस्तानकी किसी एक अच्छी रियासतके शिक्षा-बजटके बराबर है।

शिक्षाके अलावा पिलानीमें कुछ ऐसी चीज़ें भी हैं, जिनकी तरफ़ स्वभावतः ध्यान खिंच जाता है। एक डेरी-फ़ार्म है, जिसकी स्वस्थ-सबल गायें देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। यहाँकी कुछ गायें तो प्रतिदिन २५ सेर तक दूध देती हैं। स्वर्गीय जमनालाल बजाजकी स्मृतिमें स्थापित एक साँड़-शाला भी है, जो 'ऋषभ-सुधार-समिति'के नामसे प्रसिद्ध है। इसमें इस समय १०० साँड़ हैं। नस्ल-सुधारके लिए जिन्हें अच्छे साँड़ोंकी ज़रूरत हो, उन्हें यहाँसे फ़ायदा उठाना चाहिए। १२०० बीघा ज़मीनमें वैज्ञानिक ढंगसे खेती करनेके भी काफ़ी प्रयत्न किए गए ; परन्तु अभी तक विशेष सफलता नहीं मिली। अब इस ज़मीनमें जंगल लगाया जा रहा है। पानीकी कमी बिजलीकी सहायतासे दूर कर दी गई है और प्रति घण्टे ५०,००० गैलन पानी कुओंमें से निकाला जा सकता है। जंगल लग जानेपर उसमें बारहसिंगे तथा अन्य जंगली जानवर भी छोड़े जायँगे। इस प्रकार पिलानी रेगिस्तानसे नखलिस्तानमें परिवर्त्तित हो जायगा। मातृ-सेवा-सदन और लोयलका-अस्पताल भी जनताकी अच्छी सेवा कर रहे हैं। हरिजन-शयनागार और दस्तकारी सिखानेवाले स्कूलके नाम भी उल्लेखनीय हैं। इस स्कूलमें विद्यार्थियोंको मशीनों तथा अन्य प्रकारकी यान्त्रिक शिक्षा दी जाती है। इसका पाठ्य-क्रम ६ महीनेका है।

माताका सौन्दर्य

श्री विट्ठलदास मोदी

कुमारीका सौन्दर्य सर्वोपरि माना जाता है और यह सही भी है ; पर जो गरिमा माताके सौन्दर्यमें होती है, वह कुमारीको कहाँ नसीब ? वस्तुतः स्त्रीके सौन्दर्यका पूर्ण विकसित रूप उसके माता होनेपर ही देखनेको मिलता है। चंचलता गम्भीरताका स्थान ले लेती है। मुखका शील शान्त वातावरण और विशेष ओज प्रस्फुटित करता है। पर बहुत कम स्त्रियाँ हैं, जो माता होनेमें अपने सौन्दर्यको विकसित कर पाती हों। अक्सर माता होना कुरूपताकी प्रस्तावना समझी जाती है। इसका सम्बन्ध स्वास्थ्यसे जोड़ा जाता है। और स्वास्थ्य ही तो सच्चा सौन्दर्य है। बच्चा होनेके मानी स्वास्थ्यको खोना नहीं है। वस्तुतः गर्भावस्थाको सौन्दर्यका साधन बनाया जा सकता है।

क्या आपने कभी तीन-चार बच्चोंकी माँको कुमारी समझने या कमसे कम ऐसी स्त्री समझनेकी, जिसके बच्चे न हुए हों, भूल नहीं की है ? ऐसी स्त्रियोंके स्वास्थ्यका रहस्य क्या है ? यों स्वास्थ्यके कुछ नियमोंका उल्लंघन किया भी जा सकता है ; पर गर्भवती होनेपर स्वास्थ्यकी ओर विशेष ध्यान देनेकी तो आम चाल है और यही ध्यान विज्ञान-सम्मत सूचनाओंका खयाल करते हुए रखा जाय, तो प्रजनन निश्चय ही सौन्दर्य-वृद्धिका साधन बनाया जा सकता है। कमसे कम यह तो दावेके साथ कहा जा सकता है कि बच्चा होनेसे सौन्दर्यमें किसी प्रकारकी कमी न आयगी।

गर्भवतीके विषयमें अक्सर पहली ग़लती की जाती है भोजनकी। मानो गर्भवती होना इस बातका लाइसेन्स मिलना है कि जो मनमें आय, खाया जाय। अक्सर ऐसी स्त्रियाँ ज़बानके स्वादके लिए खटाई, मिर्च-मसाले आदि अधिक खाती हैं। इनके सहारे वे अक्सर आवश्यकतासे अधिक—और इसलिए भी कि उन्हें दो जीवोंका भोजन ग्रहण करना है—खाती हैं। इस प्रकार बेहिसाब खानेपर भी उनका शरीर भूखा रहता है। बच्चा होने तक उनके दाँत पतले और छीदे हो जाते हैं। शरीर शिथिल हो जाता है और कान्ति फीकी पड़ जाती है। मुँह पीला पड़ जाता है। दो-जीवी माताओंको अधिक भोजन चाहिए अवश्य ; पर ऐसा जिसमें चूना और लोहा अधिक हों। ऐसा न होनेसे गर्भस्थ बच्चेके निर्माणके लिए चूना गर्भिणीके शरीरकी हड्डियोंसे और लोहा रक्तसे खिंचता है। अतः हड्डीके प्रतिनिधि दाँत और रक्तकी लालिमाकी दर्शिका त्वचा अपनी कमज़ोर होती दशाकी सूचना शरीरके धनीको देते हैं। यदि इन सूचनाओंपर ध्यान दिया जाय, तो गर्भावस्था कभी सौन्दर्य-संहारक सिद्ध न होगी।

स्वास्थ्यके लिए साधारण अवस्थामें शरीरको १५ ग्रेन चूनेकी ज़रूरत होती है ; पर गर्भावस्थामें और बच्चेको पिलाते समय इससे ड्योढ़े अर्थात् २२ ग्रेन चूनेकी ज़रूरत होती है। इतना चूना कितने वज़नके किस खाद्यमें मिलता है, वह इस प्रकार है—किशमिश ३० छटाँक, खजूर ३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूँगफली २७, पालक २४, अखरोट २१, करमकल्ला १८, फूल-गोभी १५, चोकर-समेत आटेकी रोटी १५, चोकर १०, मक्खन-निकाला दूध १५, दूध १५, मठा १८, सन्तरा १५, दालें १२, अंजीर १२, गुड़ ९, शलजमके ऊपरकी पत्ती ६, सरसोंका साग ४। उपर्युक्त द्रव्योंमें छँटे चावल, चोकर-रहित आटा, चीनी, घी, तेल आदि सम्मिलित नहीं हैं, क्योंकि इनमें चूना बहुत ही अल्प मात्रामें या नहींके बराबर होता है। अब आप इससे समझें कि आपके भोजनमें कितने चूनेकी कमी है। इस कमीकी पूर्तिके लिए जो समर्थ हों, वे दूध और सन्तरेका उपयोग करें; क्योंकि इन दोनोंमें शरीरके लिए आवश्यक सभी विटामिन हैं। सन्तरेके साथ दूध लेनेसे दूध जल्द पचता है। अतः जो स्त्रियाँ अपना सौन्दर्य निखरा हुआ देखना चाहती हैं, उन्हें सबेरे और शामके भोजनमें केवल सन्तरा और दूध लेना चाहिए। यों सन्तरा दोपहरको भोजनके अन्तमें या कुछ समय बाद भी लिया जा सकता है।

लोहेकी केवल एक पंचमांश ग्रेनकी नित्य ज़रूरत होती है। यह पाव-डेढ़-पाव हरे सागोंमें आसानीसे मिल जायगा। यह खास तौरसे पालक, चौलाई, बथुए वग़ैरहमें खूब मिलता है। इसका खुलकर उपयोग कीजिए। इनसे लोहा तो मिलेगा ही, कब्ज़ भी जायगा। कब्ज़ सबसे बड़ा सौन्दर्य-संहारक है, और गर्भवतीके लिए तो खास तौरसे हानिकर है। इससे कभी-कभी आँतोंमें गर्मी उत्पन्न हो जाती है, जिससे गर्भपात तक हो जाता है। कब्ज़ न रहे, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि भोजनमें गरिष्ट खाद्य न हों। जहाँ तक सम्भव हो, तली हुई चीज़ न खाई जाय। भोजनमें चोकर-समेत आटेकी रोटी, हरी तरकारियाँ, फल और दूध-दही आदि अवश्य रहें। चीनीका उपयोग यथासम्भव कम ही किया जाय। चीनीके बजाय अंजीर, मुनक्का, खजूर, शहद आदिका उपयोग लाभदायक है। शहदमें सौन्दर्य प्रदान करनेकी अद्भुत शक्ति है।

भोजन अच्छी तरह पचे और कब्ज़ न रहे, इसके लिए कसरतकी परम आवश्यकता है। वैसे तो यह आवश्यकता सभीके लिए है; पर गर्भवतीके लिए तो इसकी खास ज़रूरत है। जिन स्त्रियोंका प्रसव कष्टदायक होता है, उसके मूलमें उनका कसरत न करना ही होता है। बच्चा स्वस्थ हो, उसके अंग-प्रत्यंग ठीक काम कर और बढ़ सकें, इसके लिए यह आवश्यक है कि कसरत की जाय। कठिन कसरतोंको धीरे-धीरे कम कर दिया जाय और छठे महीनेके बाद तो केवल टहलना ही रहे; पर दस-पाँच क़दम टहलनेसे काम न चलेगा। सबेरे-शाम मिलाकर ६-८ मील तक ज़रूर टहलना चाहिए। जो स्त्रियाँ कारणवश बाहर न निकल सकें, उन्हें चक्की-चूल्हे-झाड़ू आदिसे ही कुछ श्रम करना चाहिए।

जिन स्त्रियोंको अक्सर गर्भपात हो जाता है, वे भोजन और कसरतके इन नियमोंपर चलकर अपने गर्भको सुरक्षित रख सकती हैं। पर अच्छा हो कि वे एक विशेष क्रिया करें। वे दिनमें रोज़ तीन-चार बजे या सोते वक्त दो इंच चौड़ी कपड़ेकी पट्टी ठण्डे पानीमें भिगो तथा निचोड़कर नाभिके नीचे कमरके चारों ओर तीन-चार तह लपेट लें और ऊपरसे कोई ऊनी कपड़ा लपेट लें। इससे कटि-प्रदेशमें खूनका संचार विशेष होगा, जिससे गर्भाशय सुपुष्ट एवं स्वस्थ बनेगा। इसी प्रदेशमें मल-धारक आँतें भी हैं। उनमें रक्तका संचार विशेष होनेसे वे भी सशक्त होंगी और कब्ज़ दूर होगा। जिन्हें रातको अच्छी नींद न आती हो, वे यह पट्टी रातको सोते वक्त ही बाँधें। नींद आ जानेपर यह पट्टी सबेरे या नींद टूटनेपर खोली जा सकती है। साधारणतया इसे बाँधनेके एक घण्टे बाद खोल देना चाहिए।

कुछ और भी स्वास्थ्य-नियम हैं, जिनका उचित पालन होना चाहिए। जैसे रातको लघुशंका करके सोना चाहिए और उठते ही शौच जाना चाहिए। कमरको साड़ी या पेटीकोटसे कसना न चाहिए। रातको पहननेके कपड़े सभी ढीले और हलके हों। गर्भावस्थामें चोलीका उपयोग भी बन्द कर दिया जाय, ताकि कुच स्वाभाविक रूपसे बढ़ सकें। कुचकी ठोड़नी भी इसी वक्त बढ़ती है; पर यह कभी-कभी कुचके अन्दर ही धँसी रहती है। बच्चा पैदा होनेका समय नज़दीक आनेपर उसे दो अँगुलियोंसे धीरेसे पकड़कर नित्य उभारा जाय। चिन्ता और शोकसे अपनेको मुक्त रखना चाहिए और खूब आराम करना चाहिए। रातको पूरी नींद सोया जाय और दिनको भोजनके उपरान्त एकाध घण्टे ज़रूर लेटा जाय। मैथुनसे बचना चाहिए। बहुत-सी गर्भवती स्त्रियोंको मिचली आने लगती है। यदि कब्ज़ न रहने दिया जाय एवं भोजनका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे किया जाय, तो निश्चय लाभ होगा। मैथुनसे भी यह व्याधि बढ़ती है। जिन्हें बराबर मिचली आती हो, उन्हें शामको सन्तरा, अनन्नास और दूधका सेवन करना चाहिए। शाम और सुबह भोजन हल्का ही किया जाय। जो कुछ खाना हो, दोपहरको ही खाना ठीक है। शुरूमें प्रति सप्ताह एक दिनका उपवास करना चाहिए और पाँच महीनेके बाद तो केवल फल खाकर ही रहना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

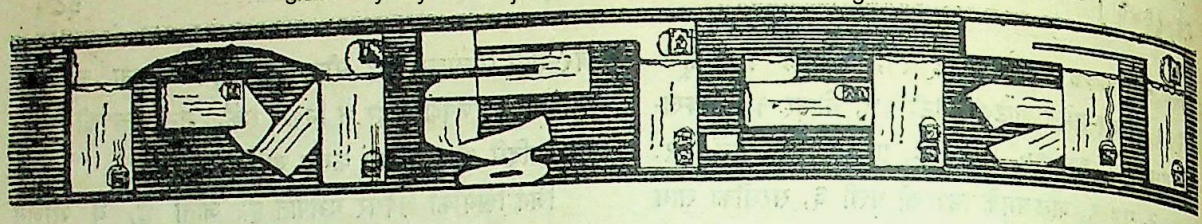

सम्मेलनका ३१वाँ अधिवेशन

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका ३१वाँ अधिवेशन १७, १८, १९ मईको हरिद्वारमें होना निश्चित हुआ है, जिसके लिए स्वागत-समितिका संगठन हो चुका है और उसकी विविध उप-समितियाँ अपने-अपने काममें तेज़ीके साथ जुट गई हैं। इस अवसरपर हरिद्वार आनेवाले सज्जनोंको सम्मेलनके अलावा महत्त्वपूर्ण तीर्थ-यात्रा; गुरुकुल-कांगड़ी तथा ऋषिकुल और महाविद्यालय आदि शिक्षा-संस्थाओंके दर्शन; नगाधिराज हिमालयकी दिव्य छटा; भागीरथीके निर्मल तथा तेजस्वी दर्शन; दक्षकी राजधानी तथा सतीकी बलिदान-भूमि कनखल; स्वामी रामतीर्थकी निर्वाण-स्थली ऋषिकेश तथा लक्ष्मणझूलेकी अलौकिक शोभा; बदरिकाश्रम आदि तीर्थोंके निकटसे दर्शन; सहस्रधारा तथा गन्धकके चश्मे, मसूरी-चकराता आदिकी मनोरम और सुखद यात्रा इत्यादिका सुयोग भी प्राप्त होगा।

श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिर, हरिद्वार]—कि० दा० वाजपेयी, (प्र० मं०)

नागरी-प्रचारिणी सभाका अर्द्धशताब्दी-उत्सव

सभाने अपने अर्द्धशताब्दी-उत्सवके लिए, जो आगामी वसन्त-पंचमीपर होगा, तैयारी आरम्भ कर दी है। पुस्तकालय और कला-भवनकी सूची तैयार है। हिन्दी-भाषा और साहित्यकी प्रगतिका विवरण तैयार किया जा रहा है। अर्द्धशताब्दी-उत्सवके लिए तीन प्रदर्शनियाँ होंगी—(१) हस्तलिखित पुस्तकोंकी प्रदर्शनी, (२) समाचारपत्रोंकी प्रदर्शनी और (३) भारत-कला-भवन द्वारा संघटित प्रदर्शनी। राजघाटकी खुदाईकी जो महत्त्वपूर्ण सामग्री केन्द्रीय सरकारसे मिली है, उसका इस समय विशेषरूपसे प्रदर्शन किया जायगा। इसके लिए सेठ जुगलकिशोर बिड़लाने २०००) प्रदान किए हैं। कला-भवनके इस अंगका अर्द्धशताब्दीके समय उद्घाटन किया जायगा। सेठ जुगलकिशोर बिड़ला ५००) पहले दे चुके हैं, जिससे पुस्तकालयकी सूची छपवाई जायगी। (सूची तैयार है, पर कायस्थ न मिलनेके कारण यह काम रुका हुआ है।) अन्य दाताओंके नाम इस प्रकार हैं—पं० रतनचन्द कालिया, कानपुर १०००); सेठ रामकुमार केजड़ीवाल, कलकत्ता १०००); राजा ब्रजनारायणसिंह, पडरौना ५००); श्रीमती रमादेवी जैन, डालमियानगर ५००); सेठ मँगतूराम जयपुरिया, कलकत्ता ५०१); और सेठ बाबूलाल ढांढनियाँ, काशी २०१)।

अर्द्धशताब्दीके समय तक स्थायी सभासदोंकी संख्या बढ़ानेका भी उद्योग किया जा रहा है, जिससे स्थायी कोषमें वृद्धि हो। अतएव जो सज्जन केवल १००) देते हैं, वह रुपया स्थायी-कोषमें चला जाता है। ऋण चुकानेका भी प्रयास किया जा रहा है। इसके लिए भी दाताकी इच्छानुसार रुपया जमा किया जा रहा है। ऋण १८०००) का है। शब्द-सागरका संशोधित संस्करण निकालनेका भी उद्योग हो रहा है। उसका संशोधन भी आरम्भ हो गया है।

काशी] —रामनारायण मिश्र (उप-सभापति)

अ० भा० रामायण-सम्मेलन

आगामी मई मासमें जबलपुरमें अखिल भारतवर्षीय रामायण-सम्मेलन करना निश्चित हुआ है। इस अवसरपर अनेक सन्त-महात्माओं, रामायणके मर्मज्ञ विद्वानों, कथावाचकों तथा कीर्त्तनकारोंके सम्मिलित होनेकी आशा है। समस्त सन्तों एवं महात्माओंसे प्रार्थना है कि वे अपना आशीर्वाद तथा आदेश दें। साथ ही रामायण-प्रेमी विद्वानों, कथावाचकों एवं कीर्त्तनकारोंसे अपील है कि वे सम्मेलनको पूर्ण सफल बनानेमें सहायक हों। सम्मेलनाधिवेशनको सर्वांग सुन्दर एवं सफल बनानेकी दृष्टिसे उचित परामर्श और विशेष योजनाओंका स्वागत किया जायगा। रामायण-सम्मेलनके साथ संगीत-सम्मेलनकी भी योजना की जा रही है। सम्मेलनकी निश्चित तिथियोंकी सूचना शीघ्र ही दी जायगी।

भारत-प्रेस, जबलपुर] —संयोजक

ग्रामीण साहित्यिक क्या करें?

श्री सम्पादक 'विशाल भारत',

परिचय न होते हुए भी आपसे कुछ प्रश्न करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ, और इसके लिए प्रारम्भमें ही क्षमा-प्रार्थी हूँ। बात यह है कि मैं एक ग्रामका निवासी हूँ और कविता तथा लेख लिखनेसे मुझे प्रेम है। कभी-कभी मेरी कुछ कविताएँ तथा लेख पत्रोंमें प्रकाशित भी हो जाते हैं; पर पथ-प्रदर्शकके अभावमें मैं यथोचित उन्नति नहीं कर पाता। इतने रुपये मेरे पास हैं नहीं कि किसी केन्द्रीय नगरमें जाकर रह सकूँ। यही परिस्थिति मेरे-जैसे पचासों लेखकों तथा कवियोंकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आप अपने विस्तृत अनुभवसे मेरा कुछ पथ-प्रदर्शन कर सकें, तो अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा।

मेरे प्रश्न ये हैं—(१) ग्रामोंमें पड़े हुए हिन्दी-कवियों और लेखकोंकी रचनाओंमें संशोधन कैसे हो? (२) ग्रामीण साहित्य-प्रेमियोंको मानसिक भोजन कैसे और कहाँसे प्राप्त हो? (३) क्या कोई ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनसे हम लोगोंको उचित प्रेरणा तथा सहायता मिल सके? (४) क्या आप कृपाकर ग्रामीण साहित्यिकोंके लिए २५ उपयोगी ग्रन्थोंकी सूची (उनके नाम तथा प्राप्ति-स्थान-सहित) बना देंगे? (५) योग्यतर साहित्यिकों तथा सम्मानशील कवियों या लेखकोंके सम्पर्कमें हम लोग कैसे आवें? (६) लेखोंका मसाला कहाँसे और कैसे इकट्ठा किया जाय? (७) क्या आप कुछ ऐसे सज्जनोंके नाम तथा पते बतानेकी कृपा करेंगे, जो हम छुटभइयोंकी रचनाओंमें संशोधन कर सकें? (८) क्या आप-जैसे महानुभाव कभी इधरके ग्रामोंकी यात्रा कर सकते हैं, जिससे हम लोग लाभ उठा सकें? (९) क्या प्रारम्भिक लेखकोंको इतना पैसा भी मिल सकता है, जिससे कागज़ तथा पोस्टेजका व्यय चल सके?

एरथुरा (बाँदा)] —चन्द्रभानु 'विशारद'

[उपरिलिखित पत्र द्वारा लेखकने एक अत्यावश्यक एवं महत्त्वपूर्ण समस्याकी ओर ध्यान दिलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रामोंमें अनेक साहित्यिक अंकुर पैदा होकर या तो समय ही सूख जाते हैं या आवश्यक सहायता, सत्परामर्श और मार्ग-प्रदर्शनके अभावमें समुचित रूपसे विकसित नहीं हो पाते। पर यह समस्या किसी एक व्यक्ति या पत्रके हल करनेकी नहीं है। इसके लिए कुछ आत्मत्यागी साहित्य-सेवियोंके सक्रिय सहयोगकी नितान्त आवश्यकता है। बल्कि अधिक उत्तम तो यह हो कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या नागरी-प्रचारिणी सभा इस समस्याको अपने हाथमें लें। पर जब तक ऐसा नहीं होता, लेखकके प्रश्नोंके उत्तरमें अपने व्यक्तिगत कार्यके रूपमें हमारा निवेदन इस प्रकार है :—

(१) ग्रामीण लेखकों एवं कवियोंको अपनी एक-एक रचना, और प्रयोगके, संशोधनार्थ एवं सम्मत्यर्थ हिन्दीके कुछ प्रमुख लेखकों, कवियों एवं पत्र-सम्पादकोंके पास भेजनी चाहिए। अप्रकाशकोंकी शिकायतकर पिण्ड छुड़ानेवालोंके सम्बन्धमें कुछ कहना मुश्किल है; किन्तु कभी-कभी अपने छुटभइयोंके लिए समयका थोड़ा-सा 'त्याग' करनेकी अपेक्षा प्रत्येक ज़िम्मेदार साहित्य-सेवी अथवा पत्रकारसे की जाती है। (२) अच्छे-अच्छे पत्रों और ग्रन्थोंसे। यदि ग्रामीण पुस्तकालयों—स्थायी एवं चलते-फिरते दोनों तरहके—की सम्यक व्यवस्था की जाय, तो यह कार्य बड़े सुन्दर ढंगसे हो सकता है। (३-४) ग्रन्थोंका चुनाव अपनी रुचि, विचार एवं उद्देश्य-दृष्टिसे ही किया जाना उपयुक्त होगा। यह चुनाव विविध प्रकाशकोंके सूची-पत्रों, अपनी रुचिके लेखकोंके ग्रन्थों अथवा कतिपय विद्वानोंके सम्मति-सुझावोंके आधारपर किया जा सकता है। (५) सम्मेलन व नागरी-प्रचारिणी सभाके अधिवेशन-उत्सवोंमें सम्मिलित होकर, ग्रामीण जनपदोंमें ऐसे उत्सवोंको आमन्त्रित-आयोजितकर तथा प्रमुख साहित्यिक केन्द्रोंकी समय-समयपर दल बनाकर यात्राकर। (६) एमर्सनका कथन है—'अगर तुम्हें लिखना सीखना है, तो गली-रास्तोंमें घूमो।' यहाँ घूमनेसे अभिप्राय है अवारा नहीं, बल्कि आँख-कान खोलकर घूमनेसे। जीवनकी साधारण घटनाओं एवं अनुभवोंको ही लेखक अपनी प्रतिभा, योग्यता एवं दृष्टि द्वारा 'लेखनका मसाला' बना सकता है। (७) पं० हरिशंकर शर्मा, लोहा मण्डी, आगरा। श्री सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग। पं० देवीदत्त शुक्ल, इण्डियन प्रेस, प्रयाग। पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', दारागंज, प्रयाग। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', भारती प्रेस, लाहौर। पं० केशवप्रसाद मिश्र, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी। प्रो० विनयमोहन शर्मा, सिटी कालेज, नागपुर। श्री इलाचन्द्र जोशी, ३५५, कर्नलगंज, प्रयाग। प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल, कलकत्ता-विश्वविद्यालय, कलकत्ता। (८) 'महानुभावों'के मुहताज होनेके हम पक्षपाती नहीं। इससे तो अच्छा यह है कि ग्रामीण भाई अपने अध्ययन-केन्द्र खोलें और ग्रन्थों एवं पत्रोंसे भरपूर लाभ उठायँ। (९) यदि वे परिश्रम कर अच्छी चीज़ें लिखेंगे, तो पत्र-सम्पादक उन्हें पत्र-पुष्प भेंट करनेमें अपना गौरव ही समझेंगे। वैसे इसका उत्तर पत्रोंकी आर्थिक स्थिति एवं सम्पादकोंकी पसन्द-नापसन्द तथा निर्णय-बुद्धिपर ही अधिक अवलम्बित है।

इस सम्बन्धमें यदि अन्य कोई सज्जन अपने विचार प्रकट करना चाहें, तो वे सहर्ष हमें संक्षेपमें अपना मतामत लिख भेजनेकी कृपा करें।—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

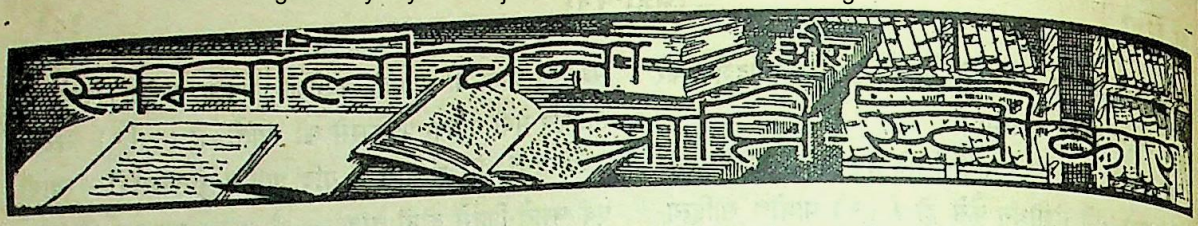

कुणाल गीत : रचयिता—बाबू मैथिलीशरण गुप्त ; प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) ; पृष्ठ-संख्या १३५ ; मूल्य १॥) ।

कुणाल अशोकका सुन्दर और सदाचारी पुत्र था। इसी-लिए वह उसकी विमाताकी आँखोंमें कसकता था। जब सीमा-प्रान्तके उपद्रवको शान्त करने सम्राटने कुणालको वहाँ भेजा, तो उसकी पतिव्रता पत्नी कांचनमाला भी उसके साथ गई। "इधर कुणालकी सौतेली माँने रुग्ण-दशामें महाराजकी ऐसी परिचर्या की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी राजमुद्रा उन्हें सौंप दी। एक दिन उसी राजमुद्रासे अंकित एक आदेश-पत्र सीमा-प्रान्तके अधिकारीके पास पहुँचा। उसमें लिखा था—'कुणालको अन्धा करके निष्कासित कर दो।' कुणालने माताके आदेशको शिरोधार्य किया। अन्धा होकर वह भिक्षा-टनके लिए निकल गया। कांचनमाला भी उसके साथ थी। जब वह पाटलिपुत्र पहुँचा, तो उसके गीतकी ध्वनिने सम्राटको आकर्षित किया। 'पिता-पुत्र मिले।' पिताके आशीर्वादसे कुणालको पुनः दृष्टि-लाभ हुआ। कुणालने अपनी विमाताका अपराध क्षमा करनेके लिए पिताको बाध्य किया।"

'कुणाल गीत'में कथाकी सूत्रता नहीं है ; पर गीतोंके 'रस'को भूमिकाकी 'कथा' पढ़कर गृह्य किया जा सकता है। कुणाल स्वयं 'अन्धा' बनकर अपनी स्थितिके अनुकूल वातावरण बनाता है। उसके गीतोंमें जहाँ एक ओर आत्म-सन्तोष है, वहाँ वेदना भी है। सहसा बाह्य जगत्से नाता टूट जानेपर उसके हृदयमें एक अभावका अनुभव होना बहुत स्वाभाविक है। तभी वह कहता है :—

पल में बुझी दीपावली,
जो झिलमिलाती थी भली।
यह कौन-सी आँधी चली,
काली घटा आ घिर गई।
लो बीच नाटक में यवनिका छूट सहसा गिर गई।

कांचनमालाको अपने पतिकी अन्धतासे क्षोभ होता है। कुणाल उसे धैर्य बँधाता है, त्यागकी महिमा समझाता है और भीतरी दृष्टिसे जगत्को देखनेका आत्म-सुख अनुभव कराता है। प्रत्येक ऋतुमें वह 'जोड़ी' देशाटन करती और भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करती है। ग्राम-जीवन और ग्रामवासियोंकी उदारताके दृश्य भी 'गीतों'में गूँथे गए हैं, जो केवल अपनी सीधी-सादी अभिव्यक्तिके कारण ही मोहक और सुन्दर हो गए हैं। निम्न पंक्तियोंमें एक चित्र देखिए :—

गोबर से गेह लिपे,
दीपक से दिव्य दिये,
छीकों पर झूल रही स्नेहमयी माया।
आँगन में घूम-घूम
बच्चे कर रहे धूम,
माने थक हार कहा गोरस की काया।
तरल वे कटाक्ष नहीं,
सरल हास्य सभी कहीं,
पति से भी गति विशेष रखती है जाया।

'कुणाल गीत'का यदि कोई सन्देश है, तो वह इन पंक्तियोंमें स्पष्ट सुन पड़ता है :—

अर्पित हो मेरा मनुज-काय,
बहुजन-हिताय, बहुजन-हिताय।

'गीतों'में भावोंकी तीव्रता छाई हुई नहीं मिलती, मिलती है कविकी कल्पनाकी जागरूकता। उसने ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया है, जो गीतोंमें अर्थ-चमत्कार भर देते हैं। पाठक तो समझकर कविकी सूझकी प्रशंसा ही कर सकता है। पता नहीं, परिष्कृत भाषाके इस युगमें (जिसे अग्रसर करनेमें कविका भी हाथ है)—

'दर्शक, सँभल कर जाइयो,
मन हो, कभी फिर आइयो,
तुम स्वप्न में भर पाइयो',

में 'जाइयो, आइयो', 'पाइयो' आदि शब्दोंसे कौन-सी रस-सृष्टि हुई है। इसी प्रकार गीत १४ में—

'तुम घूम चारों खूँट लो,
रथ अश्व गज या ऊँट लो',

आदि पंक्तियाँ अनावश्यक और नीरस प्रतीत होती हैं। 'खूँट' देखकर ही विराजमान समझ पड़ते हैं। सब मिलाकर 'कुणाल गीत' कविकी काव्य-परम्पराके अनुरूप है और काव्य-प्रेमियोंके बीच निस्सन्देह स्वागत होगा।

—विनयमोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरसी : रचयिता—श्री आरसीप्रसादसिंह ; प्रकाशक—श्री युगलकिशोर झा, तारामण्डल, मुजफ्फरपुर ; पृष्ठ-संख्या ४+५३९ ; मूल्य ७) अजिल्द ।

'आरसी'में कविकी समस्त कविताएँ संग्रहीत हैं। शायद ही कोई विषय होगा, जिसपर आरसीप्रसादजीने क़लम न चलाई हो। इसलिए यह पुस्तक सभी तरहके पाठकोंको रुचिकर हो सकती है ; किन्तु उन्हें अपनी रुचिकी वस्तु ढूँढ़नेके लिए सन्तोषसे काम लेना होगा। पुस्तककी काफ़ी कविताएँ हृदय-स्पर्शी हैं और काफ़ीसे भी अधिक साधारण। सुन्दर कविताओंको साधारण कविताएँ बुरी तरह छिपाए हुए हैं। क्या ही अच्छा होता, यदि कवि अपनी सब कृतियोंको प्रकाशित करनेका लोभ संवरण करते और केवल कुछ चुनी हुई कविताओंका ही संग्रह करवाते। इससे पाठकका ही नहीं, बल्कि उनका अपना भी उपकार होता। फिर शायद पुस्तकमें जो गुण श्री अमरनाथ झाको—जिनकी सम्मति पुस्तकके अन्तमें दी गई हैं—दीखे हैं, वे साधारण पाठकको भी दीख जाते। यह सब कुछ होते हुए भी पुस्तकका साहित्यमें अपना स्थान होगा, इसमें सन्देह नहीं।

मल्लिका : लेखक—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ; प्रकाशक—श्री हरिश्चन्द्र 'सारस्वत', सरस्वती-मन्दिर, बाबूगढ़ (मेरठ) ; प्राप्ति-स्थान—हिन्दी-भवन, अनारकली, लाहौर ; पृष्ठ-संख्या १०+६४ ; मूल्य १।) ।

प्रस्तुत पुस्तकमें 'सुमन'जीकी ५१ कविताएँ संग्रहीत हैं। आरम्भमें श्री नन्ददुलारे वाजपेयी-लिखित भूमिका है, जिसमें उन्होंने क्षेमचन्द्रजीकी कलापर विचार किया है। पुस्तकके अन्तमें श्री उदयशंकर भट्ट तथा श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' द्वारा 'मल्लिका'के स्वागतमें दिए गए प्रशंसा-पत्र छपे हैं। 'मल्लिका'से ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुमन'जी कविताके क्षेत्रमें अभी राह टटोल रहे हैं और श्री 'बच्चन' आदि दुःखवादके कवियोंसे विशेष रूपसे प्रभावित हुए हैं। इसलिए उनकी कवितामें मौलिकताका प्रायः अभाव-सा है। उनके कहनेके ढंगमें एक प्रवाह अवश्य है। अधिक परिपक्वता प्राप्त कर लेनेपर आप हिन्दी-साहित्यको सुन्दर चीज़ें दे सकेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। एकाध कवितामें अश्लीलता आ गई है, जिससे बचा जा सकता था। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई अच्छी है ; पर मूल्य अधिक जँचता है।

—'अवनीश'

मुक्तिर सन्धाने भारत अथवा भारतेर नवजागरणेर इतिवृत्त (बँगला) : लेखक—श्री योगेशचन्द्र बागल ; भूमिका-लेखक—आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ; प्रकाशक—एस० के० मित्र एण्ड ब्रादर्स, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या ४८४ ; मूल्य २॥), सजिल्द ।

'मुक्तिर सन्धाने भारत अथवा भारतेर नवजागरणेर इतिवृत्त'को हम भारतका पिछले लगभग १५० सालके इतिहासका खाका कह सकते हैं। संसारके इतिहासमें शायद १५० वर्षोंका समय विशेष उल्लेखनीय न हो ; किन्तु भारत-जैसे देशके जीवनमें, जो गुलामीका पुराना चोला बदलकर नया रूप और नई आत्मा धारण कर रहा है, जिसके समाजतत्व, साहित्य, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान, इतिहास, ललित-कला, लोकाचार आदिमें आमूलचूल परिवर्त्तन हुए हैं, प्रगतिके १५० वर्षोंका महत्व सामान्य नहीं है। परिवर्त्तनकी इस धाराका इतिवृत्त जितना रोचक है, उतना ही आगेका पथ निर्दिष्ट करनेके लिए आवश्यक तथा नई पीढ़ीके पथ-प्रदर्शनके लिए उपयोगी भी है।

इस इतिवृत्तको लेखकने दो खण्डोंमें विभाजित किया है। एक कांग्रेसकी स्थापनासे पहलेका युग और दूसरा उसकी स्थापनाके बादसे अब तकका। पहले युगमें फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापना (सन् १८०० में, जब कि भारतीय सर्वप्रथम अंगरेज़ी भाषाके सम्पर्कमें आए) तथा हिन्दू-कालेजकी स्थापना (१८१७ में, जब कि भारतीयों और अंगरेज़ोंमें सर्वप्रथम संसर्ग-सम्पर्क स्थापित हुआ) से लेकर कांग्रेसकी स्थापनासे पूर्व तककी राष्ट्र-चेतना एवं नवजागरणकी विशद चर्चा की गई है। इस युगमें अंगरेज़ी-शिक्षा द्वारा भारतको मिले पाश्चात्य उपादानोंके विकास, प्रभाव एवं प्रतिक्रियाको लेकर भारतीय राजनीतिका किस प्रकार रूप-निर्माण हुआ और किस प्रकार देशमें मुक्तिकी आकांक्षा शनैः-शनैः बलवती हुई, किस प्रकार नई राष्ट्रीयता एवं स्वाधीनताकी भावनाओंका जागरण हुआ, किस प्रकार केन्द्रीय धारा-सभाके कार्योंने जनतामें लोकतन्त्रके प्राथमिक सिद्धान्त 'आत्म-निर्णय'की आकांक्षा जाग्रत की, इन सबका तथ्यमूलक वर्णन है। इस युगमें राजनीतिकी धारा जितनी प्रबल, वेगवती और व्यापक थी, उतना ही उसका इतिवृत्त भी प्रांजल एवं प्रभावपूर्ण बन पड़ा है।

दूसरे खण्डमें कांग्रेसकी स्थापनाके समयसे लेकर वर्त्तमान युद्धके आरम्भसे पूर्व तकके राजनीतिक युगका इतिवृत्त है। इसके सम्बन्धमें लेखकके इस मतसे हम सर्वतः सहमत हैं कि 'कांग्रेसकी राजनीति जीवन और कर्मके सभी क्षेत्रोंमें—व्यक्ति-विशेष या नेता-विशेषके विरोधी निर्देशोंके बावजूद—व्यापक हुई है। वह शिक्षा, साहित्य और समाजको नियन्त्रित करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहती है। कांग्रेसके इतिहासको किसी संस्था-विशेषका इतिहास कहना भूल है। कांग्रेस ही भारतके नवजागरणका प्रतीक है।' इस युगकी समीक्षामें लेखकने अपने-आपको किसी संस्था, वाद या दृष्टिकोण-विशेषके मोहमें न फँसाकर यथा-सम्भव निष्पक्ष रूपसे ही इतिवृत्त लिखा है, जो काफ़ी संयत और जानकारीपूर्ण है।

पुस्तककी शैली रोचक और भाषा सरल तथा प्रभावपूर्ण है। छपाई, सफ़ाई और गेट-अप नयनाभिराम हैं। बँगला जाननेवाले पाठकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे एक बार इस इतिवृत्तको अवश्य पढ़ देखें। राजनीतिके विद्यार्थियोंके लिए तो यह विशेष रूपसे उपयोगी है। —मो० सिं० सेंगर

मानव-समाज : लेखक—श्री राहुल सांकृत्यायन; प्रकाशक—ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना; पृष्ठ-संख्या ४५२; मूल्य ३), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें सभ्यताके विविध रूपों द्वारा हुए मानवके विकास एवं उन्नतिका विशद वर्णन है। उसकी और उसकी भाषाकी उत्पत्तिसे लेकर उसके आज तकके समाज-संगठनका इतिवृत्त इसमें है। चूँकि इसे लेखकने अपने जेल-प्रवासमें लिखा, वे समाज-शास्त्रपर निकले नए ग्रन्थोंसे सहायता नहीं ले सके। फिर भी लेखकने यूरोपीय समाजशास्त्र-सम्बन्धी कई पारिभाषिक शब्द दिए हैं। जहाँ तक हमारी जानकारी है, आज प्रायः सभी भारतीय भाषाएँ अपने-अपने स्वतन्त्र पारिभाषिक शब्द बना रही हैं। यदि यूरोपमें प्रचलित वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंकी भाँति यहाँ भी विविध प्रान्तीय भाषाएँ एक ही-से पारिभाषिक शब्द बनायँ, तो अधिक अच्छा हो।

परन्तु 'मानव-समाज'में केवल मानवके विकास और उन्नतिका इतिवृत्त ही नहीं है, बल्कि उससे सम्बन्धित अर्थनीति एवं राजनीतिका भी विशद विवेचन किया गया है। हमारे देशवासी इस बातको बहुत महसूस नहीं करते कि राजनीति ही आर्थिक हितोंकी नस है। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने राजनीतिसे अर्थनीतिका जो सम्बन्ध है, उसपर बड़ी विद्वत्तासे प्रकाश डाला है। उनके सभी मतों एवं परिभाषाओंसे सहमत होना सम्भव नहीं, फिर भी इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि हिन्दीमें समाजशास्त्रपर यह एक अनमोल और बड़ी जानकारीपूर्ण पुस्तक है। हमारा विश्वास है कि हिन्दी-संसार इसे अपनायगा। नई पीढ़ीके लिए तो विश्वके विकासको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखनेके लिए यह अत्यावश्यक है।

वैज्ञानिक भौतिकवाद : लेखक—उपर्युक्त; प्रकाशक—सोशलिस्ट पब्लिशिंग-हाउस, आगरा; पृष्ठ-संख्या २४९; मूल्य २), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें विद्वान लेखकने भारतीय दर्शनकी पृष्ठभूमिपर विस्तृत प्रकाश डाला है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी चर्चा करते हुए आपने प्राचीन देशों और वर्त्तमान समाजका तुलनात्मक विवेचन किया है। आपने किसी भी वादकी आलोचनामें रू-रियायत नहीं की है। 'गुण-मानवका नारा'—जो अब सुनाई नहीं पड़ता—को लेकर आपने गांधीवादकी भी खबर ली है। पर यह तो गांधीजीने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने यह नारा रूसके तालस्ताय तथा ब्रिटेनके समाजवादी पादरी रस्किन, मौरिस, किंग्ले और प्राचीन अमरीकन अर्थ-नीतिज्ञ हेनरी जार्जसे लिया है।

लेखकने एक जगह लिखा है कि सर राधाकृष्णनने अपने 'भारतीय दर्शन'में "सर्वे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता"की ग़लत परिभाषा की है। उन्होंने कहा है कि हमारी वर्ण-व्यवस्थाने वर्ग-संघर्षकी सम्भावनाको दूर कर दिया है, अतः यह पाश्चात्य समाज-व्यवस्थासे श्रेष्ठ है। किन्तु यदि वर्णाश्रम द्वारा वर्ग-संघर्षका उन्मूलन हो गया होता, तो बुद्धके पूर्वसे लेकर अब तक अनेक अवसरोंपर अनेक दलोंने इसके विरुद्ध बग़ावत क्यों की? सभी राजनीतिक एवं सामाजिक क्रान्तियोंकी जड़ बौद्धिक क्रान्ति है, जिसका विस्फोट प्राचीन तथा मध्य-युगोंमें धार्मिक विद्रोहके रूपमें ही हुआ है।

राहुलजीने अपनी पुस्तकमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा हिन्दुओंके पतनकी कथाको खोलकर रख दिया है और बतलाया है कि कर्म तथा जन्मान्तरवादके थोथे सिद्धान्तोंमें फँसे रहनेके बजाय हमें अपने इतिहास और समाजका मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके सहारे नया मूल्यांकन करना चाहिए। इसके लिए नवीन विश्व-दृष्टिकोणकी नितान्त आवश्यकता है। आपने बड़ी विद्वत्तापूर्वक बतलाया है कि भारतीय दर्शनकी पृष्ठभूमि—जिसमें विश्वको क्षणभंगुर अथवा परिवर्त्तनशील माना है—का आधार वैज्ञानिक भौतिकवाद ही रहा है। ऐसे सुन्दर एवं सामयिक ग्रन्थके प्रकाशनके लिए लेखक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। —(डा०) भूपेन्द्रनाथ दत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

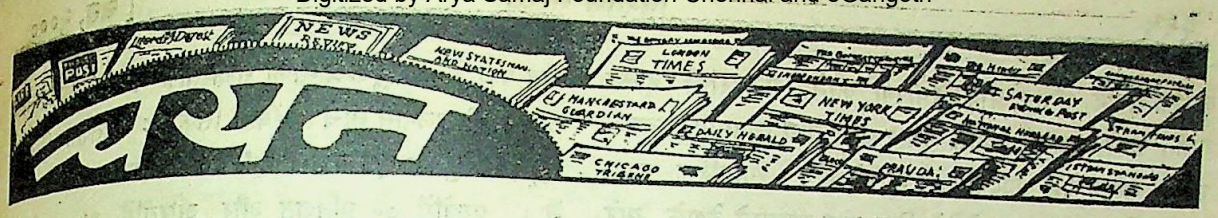

इटलीकी आन्तरिक स्थिति

'वर्त्तमान महायुद्धमें इटलीकी प्रत्येक मोर्चेपर जो हार हुई है, उसका कारण यह नहीं है कि इटालियन सैनिकोंमें हिम्मत और बहादुरीकी कमी है, बल्कि सच तो यह है कि इस युद्धके लिए उनकी उचित मानसिक तैयारी नहीं थी। मुसोलिनीकी घातक नीतिने इटलीकी जनताका भाग्य अन्धकारमय कर दिया है। उदाहरणार्थ, गत बीस वर्षोंसे मुसोलिनी द्वारा प्रत्येक योग्य पुरुषके, जो कार्यक्षेत्रमें था, बहिष्कारने उनके विश्वासको नष्ट कर दिया है।'

यह कथन इटलीसे अभी हाल ही में लौटे एक निष्पक्ष यात्रीका है। इसकी अन्तिम पंक्तियाँ बड़ी ही महत्त्वपूर्ण हैं। नेताके बिना कोई देश क्रान्ति नहीं कर सकता। मुसोलिनीने अपने प्रभावोत्पादक ढंगसे इस बातको देखा कि उसके सिवा कोई नेता नहीं हो सकता। राजा बूढ़ा है और सम्भवतः दुर्बल भी। उसके सम्बन्धमें गैटोनो सालवेमिनीका कहना है—'इटलीमें लोग राजासे घृणा करते हैं।...प्रत्येक आदमी जानता है कि उसका दिमाग़ खराब हो गया है, जिसके दौरेको रोकनेके लिए उसकी स्त्री संध्या-समय उसे ताश खेलनेमें लगाए रहती है।' युवराज और भी निकम्मा और रोगी है। बाल्बाओ मर चुका है। बादोग्लिओ बहुत ही सतर्क व्यक्ति है। जब तक उसे ८० प्रतिशत सफलताकी आशा न हो, वह क्रान्तिकी जोखिम लेनेको कदापि तैयार नहीं। ऐसी दशामें इटालियनोंका ईश्वर ही मालिक है। जो लोग इटालियनोंके निकट सम्पर्कमें रहे हैं, उनका कहना है कि वे बड़े ही भले, सुसभ्य और सुसंस्कृत हैं। किन्तु उन्होंने मुसोलिनी-जैसे ढोंगीको नहीं पहचाना, यही उनकी सबसे बड़ी ग़लती है।

इटलीमें राजनीतिक कार्योंकी देखरेखके नामसे मुसोलिनीने एक खुफ़िया-विभाग खोल रखा है, जो उसके विरोधियोंको जेल और फिर मौतके घाट पहुँचाता है। इसके सदस्य बड़े-बड़े ओहदों औरतें, छात्र, बैंकर्स, भंगी और वेश्याएँ तक हैं। ये जो-कुछ भी जहाँ-कहीं सुनते हैं, उसकी रिपोर्ट खुफ़िया-विभागमें दे आते हैं। इस कार्यके लिए इन्हें सरकारकी ओरसे काफ़ी पैसे मिलते हैं। ये इधर-उधर जाकर मुसोलिनी और फ़ाशिज़्मकी कटु आलोचना करते हैं, ताकि दूसरे लोग भी वैसा ही करें, जिससे उन्हें आसानीसे पकड़ा जा सके। ये अक्सर मज़दूरों, भिखमंगों और पादरियोंके वेशमें इटालियन जनताके मनोभाव जाननेके लिए उससे जा मिलते हैं। ('कैथलिक हेराल्ड')

तीन हब्शियोंकी हत्याएँ!

संयुक्त-राष्ट्र अमरीकामें नीग्रो लोगोंकी जिस अमानुषिक ढंगसे हत्याएँ की जाती हैं, उनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अभी हाल ही में वहाँ एक सप्ताहके अन्दर इसी प्रकारकी तीन हत्याएँ की गई है! शुबूता (मिसीसिपी) के एक रेल्वे-पुलके पास आधी रातके समय किसीने जेलर जी० एफ० डब्सका दरवाज़ा खटखटाया। ज्यों ही उन्होंने दरवाज़ा खोला कि गोरोंकी एक भीड़ने अन्दर घुसकर उनके सिरपर एक कम्बल डालकर उन्हें नीचे गिरा दिया, उनके पाससे चाबी ले ली और उन्हें एक अँधेरी कोठरीमें बन्द कर दिया। इसके बाद कई मोटरोंकी कतारें बनाकर वे उन दो नीग्रो लड़कोंको (जिनकी उम्र १४ सालकी थी और जो एक तेरहवर्षीया गोरी लड़कीपर बलात्कार करनेके अभियोगमें गिरफ़्तार किए गए थे) रातों-रात ले भागे। दूसरे दिन अधिकारियोंने देखा कि नीग्रो लड़कोंकी लाशें पुलसे बँधी लटक रही हैं।

इस घटनाके पाँच दिन बाद ही लाउरेल नामक स्थानके आसपास होवार्ड वाश नामक एक नीग्रोको अपने गोरे मालिकका खून करनेके लिए दोषी ठहराया गया और उसे आजीवन कारावासका दण्ड दिया गया। उसी दिन रातके १ बजे सौ आदमियोंके एक झुण्डने राइफ़ल और बन्दूकोंके साथ लाउरेल-जेलको घेर लिया। अधिकारियोंने इस घटनाकी सूचना गवर्नर पाल बी० जौन्सनको दी। जेलकी रक्षाके लिए सरकारने कुछ सिपाहियोंको भेजा। साथ ही गवर्नरने दो लाउरेल मन्त्रियोंको बुलाकर भीड़को रोकनेके लिए भी कहा। किन्तु मन्त्रियों और सिपाहियोंके पहुँचनेके पहले ही उतावली भीड़ने अपना काम समाप्त कर लिया था। दूसरे दिन सबेरे देखा गया कि होवार्ड वाशकी लाश पुलसे लटक रही है! ('टाइम')

चीनमें समाज-सुधार-कार्य

यद्यपि चीन आज जापानी आक्रमणकारियोंसे अपने-आपको बचानेमें संलग्न है, फिर भी वहाँ समाज-सुधारके कार्य ज़ोरोंसे चल रहे हैं। इस सम्बन्धमें आज वहाँ सामाजिक सहायताको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक बनाने, सेवा-क्षेत्रोंकी स्थापना करने, मज़दूरोंकी हालत उन्नत करने, बच्चोंकी दशामें सुधार करने तथा व्यवसाय-सम्बन्धी उचित सलाह देने आदिके कार्य हो रहे हैं। सामाजिक सहायता-कार्यको व्यापक रूप देनेके लिए चीन-सरकारने देशके सारे अनधिकृत भागके लिए समाज-सुधारकी एक योजना बनाई है। इसी योजनाके अनुसार वहाँकी कितनी ही प्रान्तीय तथा म्युनिसिपल सरकारोंने कमसे कम ५६० सामाजिक सहायता-केन्द्र खोले हैं, जिनमें शरणार्थियों, बूढ़ों और अपाहिजोंकी सेवा-सुश्रूषा की जाती है; बच्चोंकी दशा सुधारी जाती है। साथ ही वहाँ रोगियोंके लिए आरोग्य-भवन तथा मनोरंजन आदिका भी प्रबन्ध किया गया है।

चुंकिंगमें सामाजिक सहायता-कार्यकी एक आदर्श संस्थाकी स्थापना की गई है। यहाँ बूढ़ों और अपाहिजोंको सहायता दी जाती है; बच्चोंका सुधार-कार्य होता है; स्त्रियोंको धात्रीकी शिक्षा दी जाती है; रोगियोंके लिए आरोग्य-भवन हैं; और दस्तकारीकी उन्नतिकी चेष्टा की जाती है। यहाँ नागरिक और यान्त्रिक शिक्षाकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता है, जिससे लोग अपना भरण-पोषण करनेमें समर्थ हो सकें। दस्तकारीमें छपाई, बुनाई, सिलाई आदि शामिल हैं। इसी संस्थाके अन्तर्गत बेकारोंको व्यावसायिक तथा यान्त्रिक शिक्षा दी जाती है, ताकि वे अपनी गुज़र-बसर कर सकें और समाजका उत्पादन भी बढ़ा सकें। सामाजिक सहायता-कार्यको उन्नत करनेके लिए चीन-सरकारने अनेक स्थानोंपर सहायता-केन्द्र खोले हैं और साथ ही प्रान्तीय तथा म्युनिसिपल सरकारोंको भी ऐसे सहायता-केन्द्रोंकी स्थापनाके लिए प्रोत्साहन दिया है।

('चाइना इन्फर्मेशन बुलेटिन')

भारतमें साक्षरताकी वृद्धि

अभी हाल ही में भारतकी जन-गणनाकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें मर्दुमशुमारीके कमिश्नर श्री एम० डब्ल्यू० एम० यीट्सने कहा है कि इस बार भारतमें आश्चर्यजनक रूपसे साक्षरतामें वृद्धि हुई है। १९३१ की अपेक्षा इस बार सारे भारतमें ७० प्रतिशत साक्षरतामें वृद्धि हुई है। इस प्रकार पुरुषोंमें ६० प्रतिशत और स्त्रियोंमें १५० प्रतिशत साक्षरता बढ़ी है। फिर भी महिलाओंमें साक्षरताके लिए अभी काफ़ी गुंजाइश है।

पंजाबमें साक्षरताकी सबसे अधिक (१४० प्रतिशत) वृद्धि हुई है। पुरुषोंकी साक्षरता ११० और स्त्रियोंकी ३९० प्रतिशत बढ़ी है। संयुक्त-प्रान्तकी साक्षरताके आँकड़े अन्य प्रान्तोंके आँकड़ोंकी तुलनामें नीचे हैं (वहाँ सिर्फ़ ८ प्रतिशत साक्षरता है); किन्तु इन दस वर्षोंमें वहाँ ८० प्रतिशत साक्षरता बढ़ी है। पुरुषोंमें ७० प्रतिशत और औरतोंमें १५० प्रतिशत साक्षरता बढ़ी है। इतना होनेपर भी २ प्रतिशत स्त्रियाँ ही शिक्षित हैं। बम्बई १९३१ के समान इस बार भी साक्षरतामें सभी प्रान्तोंसे आगे रहा है। वहाँ १०० प्रतिशतसे भी अधिक साक्षरता बढ़ी है। इस समय वहाँ पुरुषोंमें ३० प्रतिशत और औरतोंमें ९ प्रतिशत साक्षरता है। समूचे बंगालमें अब १६ प्रतिशत साक्षरता हो गई है। पुरुषोंमें २५ प्रतिशत और स्त्रियोंमें ७ प्रतिशत साक्षरता है। ट्रावनकोर और कोचीनने तो इन आँकड़ोंको बहुत पीछे छोड़ दिया है। ये दोनों देशी राज्य एक क्षेत्रमें शामिल कर दिए गए हैं। इसमें ४५ प्रतिशत साक्षरता है। पुरुषोंमें ५६ और स्त्रियोंमें ३४ प्रतिशत साक्षरता है। वहाँ स्त्रियोंकी साक्षरता ब्रिटिश भारतके किसी भी प्रान्तसे चौगुनी है। ('इण्डियन इन्फर्मेशन')

चलता-फिरता कारखाना

दिल्ली-पोलीटेकनीकलका चलता-फिरता कारखाना दिल्लीके निकटके गाँवों तथा कस्बोंमें सहस्रों व्यक्तियोंके आगे यह प्रदर्शित कर रहा है कि भारत-सरकारकी टेकनीकल ट्रेनिंग-योजनाके अन्तर्गत किस प्रकारकी ट्रेनिंग दी जा रही है। यह कारखाना बेडफोर्डके एक मोटर-ठेलेमें है। इसमें एक छोटी खराद, एक विशेष प्रकारका बरमा, धातुकी चीज़ोंमें टाँका लगानेका यन्त्र, चीज़ें फिट करनेकी रेंच और जेनरेटर इत्यादिकी व्यवस्था है। चलता-फिरता कारखाना किसी गाँव अथवा कस्बेमें उस समय जाता है, जब मेले आदिके सिलसिलेमें वहाँ लोग इकट्ठे होते हैं। मशीनोंको चलते हुए देखने अथवा कारखानेके शिक्षक या प्रकाशन-अफ़सरसे टेक्नीकल ट्रेनिंगके विविध अंगोंपर व्याख्यान सुननेके लिए मोटरके चारों ओर पन्द्रह-पन्द्रह हज़ार व्यक्ति एकत्र हो चुके हैं। कारखानेमें लाउडस्पीकर, रेडियो-सेट और सिनेमा दिखानेके यन्त्रकी भी व्यवस्था है और प्रदर्शनके बाद सायंकाल-शिक्षा तथा मनोरंजन-सम्बन्धी चित्र भी दिखाए जाते हैं।

विश्वास किया जाता है कि यह कारखाना, जो आजकल गाँवोंकी जनताको टेकनीकल ट्रेनिंग-योजनाकी बातें बता रहा है, युद्धके बाद गाँवके कारीगरोंको उच्च श्रेणीका शिल्प सिखानेमें सहायक होगा।

('भारतीय समाचार')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

सम्मेलनका ३१ वाँ अधिवेशन

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका ३१ वाँ अधिवेशन इस बार १७, १८, १९ मई, १९४३ को हरद्वारमें (हरिद्वार नहीं, क्योंकि बदरिकाश्रमके 'हर' का 'द्वार' होनेके कारण इसका नाम हरद्वार पड़ा है। पुराणोंमें इसका उल्लेख 'मायापुरी' नामसे है।) होना निश्चित हुआ है। सम्मेलनकी ओरसे भेजे गए निमन्त्रण-पत्रमें किसी ऐसे खास मसलेका उल्लेख नहीं है, जिसपर इस अधिवेशनमें सम्मेलन अपना ध्यान और शक्ति केन्द्रित करेगा। इसी अंकके चिट्ठी-पत्री-स्तम्भमें भी स्वागत-समितिके प्रधान-मन्त्री महोदयकी विज्ञप्तिमें भी ऐसी किसी समस्याका उल्लेख नहीं है। हाँ, उसमें उन 'अतिरिक्त आकर्षणों'का उल्लेख ज़रूर है, जिनका लाभ सम्मेलनमें जानेवाले उठा सकेंगे। एक अन्य सूचनामें उन्होंने इस अवसरपर होनेवाले कवि-सम्मेलनके विषय और गिने-चुने कवियोंके कविता-पाठ करनेकी बात भी कही है। पर ये तो हुईं गौण बातें; सम्मेलनमें क्या होगा, इसपर किसीने भी कुछ कहने-सुननेकी आवश्यकता नहीं समझी!

क्या इससे यह नहीं झलकता कि सम्प्रति सम्मेलनके पीछे कुछ साहित्यिक तमाशबीनों अथवा मेला देखने-दिखानेवालोंकी मनोवृत्तिका ही प्राधान्य है, कुछ ठोस करने-धरनेवालोंका नहीं। अवश्यमेव इसीलिए कुछ लोगोंकी वैयक्तिक महत्वाकांक्षाएँ सम्मेलनके महत्व, प्रतिष्ठा एवं उद्देश्योंसे इतनी ऊपर ऊभर आती हैं कि सम्मेलनका अधिवेशन अनावश्यक, अवांछनीय एवं अशोभन कुश्तीदली, प्रतिद्वन्द्विता तथा मनोमालिन्यका अखाड़ा बन जाता है। इस अधिवेशनको ही लीजिए—पहले उसका स्थान-परिवर्तन हुआ (भैणीसाहबसे हरद्वार); फिर स्वागताध्यक्ष दुबारा बदले गए और इसके बाद स्वागत-समितिकी साधारण बैठकोंमें जो-कुछ हुआ, उसका तो सविस्तार उल्लेख न करना ही अच्छा होगा। सम्मेलनके सभापतिके चुनावमें भी जिस मनोनीत व्यक्तिका परिचय दिया गया, उसपर कोई भी हिन्दी-भाषा-भाषी गर्व अथवा गौरव अनुभव नहीं करेगा। नगण्य होनेपर भी ये बातें किसी अखिल भारतीय संस्थाको शोभा नहीं देतीं। हमें इससे ऊपर उठकर सोद्देश्य अपने कर्त्तव्य-पालनकी ओर सन्नद्ध होना चाहिए।

सम्मेलन क्या करे?

पर सबसे प्रमुख और विचारणीय प्रश्न तो यह है कि सम्मेलन करे क्या? अब तक वह चार दिनोंका साहित्यिक तमाशा-मात्र रहा है। इधर कुछ वर्षोंसे तो यह तमाशा भी कुछ फीका-सा पड़ने लगा है। इससे उसके उद्देश्यों एवं कर्त्तव्यकी अस्पष्टता स्वतः सिद्ध है। फिर पिछले कुछ वर्षोंसे तो बड़े-बड़े नेताओंको—जिनके पास न तो सम्मेलनको पर्याप्त समय दे सकनेकी गुंजाइश थी और न जिनके मस्तिष्कमें हिन्दी या सम्मेलनके सम्बन्धमें कोई स्पष्ट रूप-रेखा ही थी—सम्मेलनकी कुर्सीपर बिठाकर उसे उनके पिछलग्गुओंकी महत्वाकांक्षाओंका अखाड़ा भी बना दिया गया है। इन लोगोंके थोथे प्रवचनोंने जहाँ हिन्दीके बुद्धिजीवी सेवियोंको सम्मेलनसे विरक्त किया, वहाँ उसे लिपि और भाषा (हिन्दी-हिन्दुस्तानी) के दलदलमें भी फँसा दिया है। इस तरह सम्मेलनकी एक टाँग राष्ट्र और राष्ट्रभाषाके नामपर कुछ राजनीतिज्ञ एक ओर खींच रहे हैं और दूसरी हिन्दीके नामपर उसके पेशेवर पण्डे-पुरोहित दूसरी ओर।

किन्तु सम्मेलनमें इन दोनोंके लिए ही कोई स्थान नहीं होना चाहिए। न तो वह राजनीतिज्ञोंका 'अतिरिक्त प्लेटफ़ार्म' ही है और न हिन्दीके पुस्तक-विक्रेताओं एवं प्रकाशकोंकी बिना किराएकी दुकान ही। इस बातसे हम इन्कार नहीं कर सकते कि सम्मेलनको राष्ट्रभाषा तथा उसकी श्रीवृद्धिके आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंको दृष्टिगत रखकर चलना है; पर यह काम पेशेवर लोगोंका नहीं है। सम्मेलनको कुछ आत्मत्यागी, धुन और लगनके पक्के तथा सुयोग्य व्यक्तियोंको लेकर चलना होगा—भले ही उनकी संख्या बहुत अधिक और मंच सजाने लायक न भी हो। इन लोगोंका सबसे पहला काम यह होगा कि सम्मेलनके उद्देश्यों एवं कार्योंका निश्चय करें तथा उनके अनुकूल व्यावहारिक योजनाकी रूप-रेखा बनायँ।

भाषा, लिपि और साहित्यकी श्रीवृद्धि

भाषा प्रत्येक राष्ट्रकी ज़बान और उसकी एकराष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिक एकताका प्रधान सूत्र है। इस दृष्टिसे उसे निर्जीव एवं शिथिल होनेसे बचाना और उसके साहित्यकी श्रीवृद्धिके लिए सतत प्रयत्न करना प्रत्येक राष्ट्रवादी और भाषा-संस्थाका प्राथमिक कर्त्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो भारतवर्ष पिछली आधी शताब्दीसे अपनी स्वाधीनताके लिए लड़ रहा है, उसकी भावी राष्ट्रीय रूप-रेखा—इस समय राजनीतिक क्षितिजपर दिखाई देनेवाले नाशवान कुहरे एवं धुन्धके बावजूद—स्पष्टसे स्पष्टतर होती जा रही है। स्वाधीन होनेपर जिस प्रकार राष्ट्रके निर्माण एवं संगठनकी व्यवस्था राष्ट्रीय महासभाको करनी होगी, उसी तरह एक राष्ट्रभाषा और उसके सम्यक साहित्य-निर्माणकी व्यवस्था जिन संस्थाओंको करनी होगी, उनमें से सम्मेलन भी एक प्रधान या शायद सबसे प्रधान संस्था है। राष्ट्रके राजनीतिक एवं अर्थनीतिक पुनर्निर्माण एवं व्यवस्थाका कार्य तो राजसत्ताके बिना आरम्भ नहीं किया जा सकता; किन्तु राष्ट्रभाषा, राष्ट्र-लिपि और उसके साहित्यके निर्माण और उन्नतिकी थोड़ी-बहुत व्यवस्था तो अभीसे ही की जा सकती है। इस गुरुतम दायित्वको वहन करनेके लिए सम्मेलनको तैयारी करनी चाहिए।

आज सम्मेलन प्रधानतया हिन्दीका एक परीक्षा-बोर्ड ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सम्मेलनकी परीक्षाओंसे हिन्दीका विशेष प्रचार-प्रसार हुआ है; पर केवल हिन्दी-प्रचार तक ही तो उसे सीमित नहीं रहना है। हिन्दीके इस देशव्यापी प्रचारने हिन्दी और अ-हिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें आज हिन्दीके सर्वांगीण साहित्यकी ज़बरदस्त माँग पैदा कर दी है। इसे पूरा करनेकी ओर सम्मेलनने क्या उतना ही ध्यान दिया है, जितना कि परीक्षाओं द्वारा हिन्दी-प्रचारकी ओर? हिन्दीमें अभी कई विषयोंपर साहित्य नहींके बराबर है; कई विषयोंपर अपूर्ण, अपर्याप्त एवं अयोग्य है और कुछपर हीन-साहित्यके पोथेके पोथे रँग डाले गए हैं। इस दयनीय स्थितिके लिए कौन उत्तरदायी है? हिन्दी-प्रचार द्वारा सम्मेलन बहुत बड़े पैमानेपर हिन्दीके साहित्यकी जो भूख पैदा कर रहा है, उसे पूरा कौन करेगा? और अगर यह भूख उचित ढंगसे पूरी न की गई, तो क्या यह हिन्दीके बढ़ते हुए साम्राज्यको खोखला नहीं बना देगी?

एतदर्थ सम्मेलनको अन्तिम रूपसे यह तय कर लेना चाहिए कि आया वह केवल हिन्दीकी प्रचार-संस्था ही रहेगा या साहित्यकी श्रीवृद्धिके लिए भी कुछ करेगा? हमारी समझमें तो यदि वह परीक्षाओं द्वारा हिन्दी-प्रचारको अपना गौण और साहित्यकी श्रीवृद्धिको प्रमुख कार्य बना ले, तो अधिक श्रेयस्कर है। पर इसका मतलब यह नहीं कि वह परीक्षाओंकी ओर कम ध्यान दे। उनकी अधिक उन्नत रूपसे देशव्यापी व्यवस्था की जानी चाहिए। जब तक परीक्षाओंकी प्रान्तीय व्यवस्था न हो, सम्मेलन एक अखिल भारतीय परीक्षक विश्वविद्यालयके रूपमें कार्य करे। इसके लिए उसका एक स्वतन्त्र विभाग हो। दूसरा विभाग भाषा, लिपि और साहित्यके सुधार-संशोधन, शोध एवं श्रीवृद्धिका कार्य करे। सम्मेलनका अधिक ध्यान और शक्ति इसी दूसरे विभागपर केन्द्रित होने चाहिएँ।

विकेन्द्रीकरण और साहित्यिक जनपद

इस सम्बन्धमें यह आशंका या आपत्ति हो सकती है कि सम्मेलन—जैसा कि वह आज है—शायद ये दोनों कार्य सम्यक रूपसे न कर सके। पर हमारी समझमें यदि सुव्यवस्थित ढंगसे काम किया जाय, तो असम्भव या कठिन कुछ भी नहीं। उद्देश्यों एवं कार्यकी भाँति ही सम्मेलनका वर्त्तमान संगठन भी कुछ बेढंगा-सा है। नामके लिए उसकी समितियाँ-उपसमितियाँ हैं; लेकिन करने-धरनेवाले प्रयागके ही कुछ लोग हैं। किसी व्यक्ति-विशेष या किन्हीं व्यक्तियोंके खिलाफ़ हमें कोई खास शिकायत नहीं—बल्कि उन्होंने सम्मेलनके लिए अब तक जो भी कुछ किया है, उसके लिए हम उनके प्रति साभार नतमस्तक हैं—किन्तु जिस ढंगसे सम्मेलनकी सत्ता और अस्तित्व प्रयागमें केन्द्रीभूत है, उसे हम सम्मेलनके अतीत और वर्त्तमानको देखते हुए उसके भविष्यके लिए प्रयोजनीय एवं वांछनीय नहीं समझते। सम्मेलनका केन्द्र और प्रधान-कार्यालय भले ही प्रयागमें (या किसी भी अन्य नगरमें) रहे; किन्तु उसके कार्यों, सत्ता एवं सक्रिय अस्तित्वका विकेन्द्रीकरण अत्यावश्यक एवं शीघ्रातिशीघ्र वांछनीय है।

प्रान्तीय भाषाओं एवं बोलियोंके आधारपर साहित्यिक जनपदोंकी स्थापना सम्मेलनके विकेन्द्रीकरणके लिए एक विचारणीय व्यावहारिक योजना है। इस दिशामें सम्मेलनके प्रान्तीय सम्मेलनोंका आयोजनकर तथाकथित जनपदोंकी निश्चित रूप-रेखा तैयार करवानी चाहिए। व्यक्तियों और धनका अभाव शायद नहीं रहेगा। हरद्वार-सम्मेलन यदि और कुछ न कर इस सम्बन्धमें ही अमली क़दम उठाय, तो वह बहुत बड़ा काम करेगा। यदि इस दिशामें क़दम बढ़ाने लायक उपयुक्त एवं स्थिति इस अधिवेशनमें न हो, तो कम-से-कम अगले अधिवेशनके लिए इस कार्यका श्रीगणेश करने तथा प्रारम्भिक कार्यकी रूप-रेखा तैयार करने आदिका कुछ काम तो हरद्वार किया ही जा सकता है।

हिन्दी-लेखकोंका आदर्श

लेकिन इन सब कार्योंकी जड़ तो हैं हमारे लेखक। उनके हार्दिक एवं सक्रिय सहयोग-साहाय्यके कोई भी योजना सम्मेलनमें जान नहीं डाल सकती और न ही हमारा राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं उसके सर्वांगीण साहित्यका स्वप्न ही सत्य हो सकता है। लेखक कोई व्यक्ति नहीं, व्यष्टि अथवा संस्था होता है; जिसकी लेखनी राष्ट्र और मानवकी नई आत्माका सृजन करती है। पर हमें बड़े दुःख और ग्लानिके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दीका आजका औसत लेखक न तो जागरूक है और न उसके सामने कोई स्पष्ट आदर्श, सिद्धान्त अथवा उद्देश्य ही हैं। हमारे लेखकोंकी संख्या आज नाम-मात्रकी है, जो अपनी जिम्मेवारी और कर्त्तव्यको भलीभाँति समझकर क़लम उठाते हों। उसपर भी आत्मश्लाघा तो मानो कोढ़में खाज हो रही है।

इस सम्बन्धमें सहयोगिनी 'सरस्वती'ने अपने गत अप्रैलके अंकमें लिखा है—"आज हिन्दीके वर्त्तमान गौरव-कालमें इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि उसके लेखकोंका आदर्श भी ऊँचा रहे। जहाँ उन्होंने अपने लोभको दबाकर आजीवन अधिक कष्ट झेलकर हिन्दीके साहित्यको भाँति-भाँतिकी अनूठी तथा स्वाभाविक रचनाओंसे समलंकृत किया है, और इस प्रकार उसे ऊँचेसे ऊँचतर बनाया है; वहाँ उनमें से कुछमें अहंभावका जो रूप प्रकट हुआ है, तथा आत्मश्लाघाकी जो लालसा जागृत हुई है, वह सुवर्णमें दुर्गन्धके सिवा और क्या कही जायगी? किस देशके साहित्यकारोंका यह आदर्श रहा है कि उन्होंने अपनी सारीकी सारी रचनाएँ ऋषियोंके नाम बना डालीं, और यदि नाम दिया भी, तो अपना परिचय तक न दिया; वहीं कुछ लेखोंमें ऐसी प्रशंसा-लोलुपताने जड़ जमा ली है कि लिखना-पढ़ना छोड़कर अपनी विरुदावली लिखवानेका धन्धा-सा उठा लिया है। और मज़ा यह कि उन्होंने न उतना, न वैसा कुछ अपनी लिखा ही है।...इन महानुभावोंको जानना चाहिए कि हिन्दीके लेखकोंका आदर्श राष्ट्रके हितका आदर्श है और हिन्दी तभी राष्ट्रभाषा बनेगी, जब उसके लेखक महान् आदर्शको ग्रहण करेंगे।"

बुन्देलखण्डी विश्वकोष

बुन्देलखण्डी विश्वकोषकी योजनाकी संक्षिप्त रूप-रेखा और सूचना विषय हम गत मार्चके 'विशाल भारत'में प्रकाशित कर चुके हैं। हमें सन्तोष और प्रसन्नता है कि उसके निर्माणकी नींव डाली जा चुकी है। पर यह किसी एक या कुछ ही व्यक्तियोंका काम नहीं है। इस तरहके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक यज्ञोंमें अधिकाधिक सुविज्ञजनोंके सक्रिय सहयोग, सुझावों एवं मार्ग प्रदर्शनकी अपेक्षा होती है। बिना इसके श्रेष्ठ एवं उपयुक्त रूपसे इस यज्ञकी पूर्त्ति सम्भव नहीं।

इस जनपदके निवासियों, वृक्षों, नदियों पशु-पक्षियों तथा प्राकृतिक स्थलोंका विस्तृत प्रामाणिक विवरण, इसके ऐतिहासिक, भौगोलिक, भूतात्विक, साहित्यिक, सामाजिक, अर्थनीतिक एवं राजनीतिक महत्वका दिग्दर्शन तथा इसकी सांस्कृतिक छटाका उल्लेख निश्चय ही भारतकी सांस्कृतिक निधिके इस भूले हुए रत्नको फिर यथार्थ रूपमें हमारे सामने रखेगा। प्रस्तावित विश्वकोषकी जो योजना प्रकाशित की गई है, उसके विषय और लेखक-सूची देखकर विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि उसकी सफल एवं श्रेष्ठ पूर्त्ति अवश्यम्भावी है। अपने कृपालु लेखकों, कवियों एवं पाठकोंसे हमारा सानुरोध निवेदन है कि वे इस यज्ञमें यथाशक्ति भरपूर सहायता करें।

स्व० माधव शुक्लका स्मारक

गत ७ अप्रेलको राँची (बिहार) में पं० माधव शुक्लके निधनके रूपमें हिन्दीने अपना एक और सुपुत्र खो दिया। पिछली ४ दशाब्दियोंसे आप नाटक, राष्ट्रीय कविताओं, गायन, अभिनय द्वारा हिन्दीकी सेवा कर रहे थे। आप स्व० बालकृष्ण भट्टके सुयोग्य शिष्य और शुद्ध हिन्दीके हिमायती थे। पिछले कुछ वर्षोंसे आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह रहा था। गत वर्ष आपके सुपुत्र पं० विजय शुक्लका असमय ही यक्ष्मासे देहान्त हो गया, जिससे आपके हृदयको मार्मिक आघात पहुँचा। उनके अन्तिम दिनोंकी मानसिक अवस्थाका कुछ आभास निम्न कवितासे, जिसे वे मरनेसे कुछ ही घण्टों पूर्व लिखकर अपने सिरहाने छोड़ गए बतलाते हैं, मिलता है:—

"अब तो जैसे बने निबाहो।
बहुत गई थोड़ी अब बाकी, दिन - दिन डूबत नैया।
तुम्हरे बिना कौन अब दूजो, हमरो पार लगैया॥
यही लालसा एक, कृपा के कोर ठौर पा जाऊँ।
सकल वासना तज तेरे हिय शान्ति-धाम बस जाऊँ॥"

और सहसा हमें याद हो आई उनकी यह कविता-पंक्ति—'अब भारतीय हुंकारोंसे, लन्दन भी थर्रायेगा!' कितना ओज और देशाभिमान कूट-कूटकर भरा था हिन्दीके इस राष्ट्रकविमें! क्या कोई कह सकता है कि ऊपरकी निराशा एवं दीनतापूर्ण पंक्तियाँ भी इसी स्वाभिमानी कविकी लेखनीका ही प्रसाद हैं? पर दुर्भाग्यवश वे हैं, और उसी कविके आहत कण्ठकी करुण पुकार है, जो अपनी भरी जवानीमें हुंकार उठा था—'मेरा सर न रहे, सामाँ न रहे; मेरी माताके सरपर ताज रहे!' और 'जगा दे भारतको करतार! ऐसा जगे खोजता निज बल, मान, राज-अधिकार!' उनके 'भारत-गीतांजलि', 'राष्ट्रीय गायन' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जाग्रत भारत' पढ़कर आज भी शिथिल नसोंमें खूनका दौरा तेज हो जाता है।

पर शुक्रजी कोरे वाक्वीर ही नहीं थे। स्व० लोकमान्य तिलकके स्वर्गवासपर हिन्दी-नाट्य-परिषदकी ओरसे आपने कलकत्तेमें एक विराट जुलूस निकाला, जिसमें ५० हज़ारसे अधिक आदमी थे। जिन दिनों कलकत्तेमें बँगला और पारसी नाटक-कम्पनियोंका बोलबाला था, आपने हिन्दी-नाट्य-परिषदकी स्थापनाकर हिन्दी-मंच तैयार करनेका बीड़ा उठाया। इन्हीं दिनों आपने 'महाभारत' नाटक लिखा, जिसका अभिनय खूब सफल रहा। कवि और नाटककारके अलावा आप एक कुशल अभिनेता एवं गायक भी थे। आपके कई गानोंके रेकार्ड भरे गए हैं। आपने कई नाटकों एवं फिल्मोंके संवाद तथा गायन आदि भी लिखे हैं।

कलकत्ता-निवासियोंकी ओरसे शुक्रजीकी स्मृतिमें कुछ स्थायी महत्वका कार्य करनेका विचार किया जा रहा है। माधव शुक्र-स्मारक-समिति द्वारा प्रकाशित योजनाके अनुसार उनके स्मारक-ग्रन्थके प्रकाशन तथा स्थायी स्मारकके लिए की गई अपीलका हम हृदयसे स्वागत एवं समर्थन करते हैं। समर्थ सज्जनोंको इस कार्यमें हाथ बँटाना चाहिए। सब प्रकारकी सहायता एवं संस्मरणादि समितिके मन्त्रीको १५०, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्तेके पतेपर भेजे जाने चाहिएँ।

जयपुरमें देवनागरी-लिपि

गत २८ जनवरी, १९४३ को जयपुर-सरकार द्वारा एक 'मैमोरेण्डम' प्रकाशित किया गया, जो इस प्रकार है—"गवर्नमैण्टके दफ़्तरों और अदालतोंमें इस्तेमाल होनेवाली लिपिके सम्बन्धमें गवर्नमैण्टसे हालमें बहुधा निवेदन किया गया है और यह कहा गया है कि मौजूदा व्यवस्थामें श्रीमान् महाराजा साहिब बहादुरकी अधिकांश प्रजाको कठिनाई होती है। श्री महाराजा साहिब बहादुरकी गवर्नमैण्ट जनताकी वाजिब शिकायतोंके बारेमें सहानुभूतिके साथ विचार करनेके लिए हमेशा उत्सुक है। अभी भी देवनागरी-लिपिके इस्तेमालपर किसी भी प्रकारकी रुकावट नहीं है और दरअसल इस रियासतमें राज्यके अधिकांश दफ़्तरों और अदालतोंमें यह लिपि काममें लाई जा रही है। श्री महाराजा साहिब बहादुरकी अधिकांश प्रजा देवनागरी-लिपि इस्तेमाल करती है। इसलिए गवर्नमैण्टकी यह मन्शा है कि तमाम दफ़्तर और अदालतें देवनागरी-लिपिका प्रयोग करें, ताकि सम्बन्धित जनताको किसी क़िस्मकी असुविधा न हो। मगर इस आर्डरकी मन्शा यह नहीं है कि देवनागरी-लिपि ठीक तरह न जाननेवालोंके लिए उर्दू-लिपि इस्तेमाल करनेपर किसी क़िस्मकी रुकावट है।"

गत ८ फ़रवरी, १९४३ को इसी सम्बन्धमें एक 'नोट' प्रकाशित हुआ, जो इस प्रकार है—"जयपुर-सरकारका ध्यान आकर्षित किया गया है कि राज्यकी ओरसे सरकारी दफ़्तरों और अदालतोंमें देवनागरी-लिपिके प्रयोगके सम्बन्धमें जो आदेश हालमें एक मैमोरेण्डमके रूपमें निकला है, उसमें आए हुए 'मन्शा'से यह आशय स्पष्ट नहीं होता कि यही सरकारका निश्चित फैसला है। पब्लीसिटी-आफीसरको यह अधिकार दिया गया है कि वह सूचित कर दे कि इस भाषाका स्पष्ट आशय यही है कि सरकारकी यही मरज़ी या निर्णय है। मैमोरेण्डमके अन्तिम वाक्यमें आए हुए शब्दों 'देवनागरी-लिपि ठीक तरहसे नहीं जाननेवालोंके लिए'से सरकारका अभिप्राय यह है कि जल्दीसे जल्दी सरकारी दफ़्तरों और अदालतोंमें देवनागरी-लिपिका आम व्यवहार होना चाहिए।"

इसके बाद गत १५ फरवरी, १९४३ को प्रकाशन-विभागकी ओरसे एक और 'नोट' निकला, जिसका आशय है—"सरकारके २८ जनवरी, १९४३ के मैमोरेण्डम और प्रकाशन-अफसरके ८ फरवरी, १९४३ के नोटको कुछ क्षेत्रोंमें यह कहकर ग़लत ढंगसे पेश किया जा रहा है कि उनका मतलब अदालतों और सरकारी दफ़्तरोंमें उर्दू-लिपिके प्रयोगपर पाबन्दी लगाना है। अतः यह स्पष्ट करना ज़रूरी मालूम होता है कि सरकारकी यह मन्शा ज़रूर है कि देवनागरी-लिपिको अदालतों और सरकारी दफ़्तरोंकी आम-लिपि बनाया जाय, पर उर्दू-लिपिमें लिखे गए कागज़ात महज़ इसी बिनापर अस्वीकार्य न होंगे। जो लोग देवनागरी-लिपिसे परिचित नहीं उन्हें—जैसा कि सरकारके मैमोरेण्डममें स्पष्ट कहा गया है—सरकारी कार्योंमें उर्दू-लिपिका प्रयोग करनेकी आज़ादी होगी।"

उपरियुक्त तीनों सूचनाओंसे यह स्पष्ट है कि जयपुरके 'अधिकांश प्रजा'की सुविधाके खयालसे देवनागरी-लिपिको राज्य-लिपि घोषित किया गया है। इसमें हम न तो उर्दू-लिपिका कोई विरोध ही देखते हैं और न देवनागरी-लिपि या उसे जाननेवालों उसका प्रयोग करनेवालोंके साथ किसी तरहका अनुचित पक्षपात अथवा उनपर कोई एहसान ही। जयपुर-राज्यकी लगभग ९२ प्रतिशत जनता इस लिपि (और हिन्दी-भाषा) का प्रयोग करती है। इस दृष्टिसे जयपुरके ज़िम्मेदार अधिकारियोंको बहुत पूर्व ही इसे राज्य-लिपि (और हिन्दीको राज्य-भाषा) स्वीकार कर लेना चाहिए था। पर 'देर आयद दुरुस्त आयद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के खयालसे अब भी उन्होंने अपने पूर्ववर्त्तियोंकी ग़लतीको सुधारकर अपना कर्त्तव्य ही पालन किया है। पर इस सम्बन्धमें व्यावहारिक रूपमें क्या-कुछ किया जा रहा है, यह हमें ठीक-ठीक नहीं मालूम।

जयपुरकी राष्ट्रीय साप्ताहिक 'लोकवाणी'ने अपने गत २३ मार्च, १९४३ के अंकमें इस सम्बन्धमें लिखा है—"...यदि नोटमें गवर्नमेण्टकी पालीसी सही तौरपर बताई गई है, तो कहना होगा कि सरकारने इतने मैमोरेण्डम और स्पष्टीकरणके नोट निकालनेका कष्ट व्यर्थ ही किया, क्योंकि दोनों लिपियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक इस्तेमाल कर सकनेकी आज़ादी तो पहले भी मौजूद थी। जनतामें से जो लोग हिन्दी नहीं जानते, वे उर्दूमें कायज़ात पेश कर सकें, यह बात दूसरी है; पर राज्यके दफ़्तरों और अदालतोंका काम केवल देवनागरी-लिपिमें ही हो, यह अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना जनताके बहुभागकी दिक्कतें दूर होना असम्भव हैं। सरकारकी ओरसे इसकी ज़रूरत स्वीकार की जा चुकनेके बाद भी यह सब गड़बड़ें क्यों हो रही हैं, इसका मतलब समझनेमें हम असमर्थ हैं। यदि राज्यके कर्मचारियोंको यह छूट दी जायगी कि वे अनिश्चित काल तक उर्दू इस्तेमाल कर सकते हैं, तो लोगोंकी असुविधा कभी भी दूर होनेवाली नहीं।"

उर्दूके ये हिमायती!

देवनागरी-लिपिको राज्य-लिपि बनानेकी घोषणा करनेके बावजूद जयपुर-सरकार इसपर पूर्णतया अमल क्यों नहीं कर रही और किन क्षेत्रोंमें उसकी इस नीतिकी ग़लत-बयानी की गई; इस विषयमें हमारी कोई खास जानकारी नहीं। हाँ, ता० २७ फरवरी, १९४३ के 'बम्बई क्रानिकल'में छपा अंजुमन-ए-तरक्क़ि-ए-उर्दूके मानद-मन्त्री मौलवी अब्दुलहक़ साहबका एक पत्र अवश्य हमारी नज़रसे गुज़रा है। इसमें मौलवी साहबने फ़रमाया है :—

"मुग़लोंके वैभवके पराभवके बाद भी एक लम्बे अर्से तक जयपुर मुग़ल-परम्पराओंका वफ़ादार अनुगामी बना रहा। पुराने स्कूलके कई लेखकों और विद्वानोंको उस समय इसकी आतिथ्य-पूर्ण दीवारोंके पीछे पनाह मिली, जब कि दिल्ली लूट ली गई थी और अवध उजड़ चुका था। (इस तरह) जयपुर उर्दू-कविताका एक केन्द्र बन गया और हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रतीक-स्वरूप इस सुन्दर भाषाका, शत्रुओं द्वारा इसे अपदस्थ करनेके लिए निरन्तर होनेवाली चालोंके बावजूद, स्व० महाराजा सवाई मानोसिंहजीके देहान्त तक एकछत्र राज्य रहा। सर (तब मि०) आर० आर० ग्लांसीके रीजेंसी-कालमें भी हिन्दीके हिमायतियोंकी ऊँची माँगको भारत-सरकारके एक प्रस्ताव द्वारा, जिसके अनुसार कोई भी देशी-राज्य रीजेंसी-कालमें ऐसा कोई परिवर्त्तन नहीं कर सकता, अस्वीकार किया गया। इसके बाद पोलिटिकल-एजेंटको फिर उर्दूके स्थानपर हिन्दी करनेके आन्दोलनका सामना करना पड़ा; पर वे भारत-सरकार द्वारा निर्दिष्ट नीतिसे डिगे नहीं। किन्तु स्टेट-कौंसिलसे यह स्वीकार कराया गया कि अदालतों व दफ़्तरोंमें हिन्दीका प्रयोग हो सकता है। पर हिन्दीके साथ किया गया यह पक्षपात भी उर्दूकी स्थितिपर उसकी अपनी योग्यता और लोकोपयोगिताके कारण कोई विशेष असर नहीं डाल सका। किन्तु जयपुरमें सर मिर्ज़ा इस्माइलके आगमनने सारी स्थितिमें एक नाटकीय परिवर्त्तन ला दिया। किसी एक पण्डित आर० सी० शर्माने इस बातके लिए आमरण अनशन किया कि उर्दूकी जगह पूर्णतया हिन्दी हो (दो अन्य माँगें भी थीं) तथा स्थानीय एवं प्रान्तीय हिन्दू-महासभाने धर्मान्धताका भी प्रचार किया। इन ग़ैरक़ानूनी प्रदर्शनोंकी धमकियोंसे जयपुर-सरकार झुक गई।"

इसके बाद आपने जयपुर-सरकारके मैमोरेण्डम और नोटकी आलोचना करते हुए लिखा है—"नोटके उर्दू-भाषान्तरकी भाषा अगर अमार्जित नहीं, तो थोड़ी-सी अस्पष्ट ज़रूर है। वह उन सब श्रेणियोंको, जो उर्दूके सिवा और कुछ नहीं समझतीं या बरततीं हैं, बड़ी भड़काने और हलचल मचानेवाली है।" इसके बाद आपने फरमाया है कि जयपुर-सरकारका यह कार्य 'उर्दूको ज़बरदस्ती हटाने' और 'नागरी-लिपिके जामेमें संस्कृत-मिश्रित तथा नई गढ़ी हुई हिन्दी'का प्रचार करनेकी संभावनाका द्योतक है!

मौलवी साहबके प्रकाण्ड पाण्डित्य और उर्दू-सेवाके बारेमें हमने अब तक जो-कुछ पढ़ा या सुना है, उससे सहज ही विश्वास नहीं होता कि यह पत्र उन्हींका लिखा हुआ है। कारण, इसमें न तो कहीं उनके पाण्डित्यकी ही छाप है और न इससे किसी 'विद्वान'के दृष्टिकोण तथा असली समस्याकी ठीक पहुँचका ही आभास मिलता है। अगर इसमें कुछ है, तो एक अधकचरे पेशेवर प्रोपेगेण्डिस्टका प्रमादपूर्ण प्रलाप और भाषाके मोहमें फँसे कठमुल्लाका सज्जनोचित, निष्पक्ष एवं न्याय्य विचार-धारासे विरोध। जयपुर-राज्य कब तक और किस हद तक मुग़ल-परम्पराओंका 'ख़ैरख्वाह अनुगामी' रहा तथा किन-किन उर्दू-लेखकों और विद्वानोंको जयपुरमें शरण मिली, इस बहसमें हम नहीं पड़ना चाहते। पर मौलवी साहबसे हम इतना ज़रूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछना चाहेंगे कि जयपुर उर्दू-कविताका केन्द्र कब रहा और कितने उल्लेखनीय उर्दू-कवि वहाँ हुए? अगर वे जयपुर-राज्यके इतिहासको एक बार पढ़ जानेका कष्ट एवं कृपा करें, तो उन्हें पता लगेगा कि 'उर्दू-कविता' और 'मुग़ल-परम्पराओं'के इस तथाकथित केन्द्रमें, मुग़लोंके ज़मानेमें ही, सोमदेव, मान-सिंह, जयसिंह और बिहारीलाल-जैसे हिन्दीके अनेक उज्ज्वल कवि-रत्न हुए हैं। जयपुरकी उस समयकी साहित्यिक एवं कला-कृतियोंमें नागरी-लिपि स्वयं मुँह बोल रही है। और न केवल हिन्दी ही, बल्कि संस्कृतका भी उस समय जयपुरमें काफ़ी प्रचार था।

रही उर्दूके 'हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं संस्कृति'का प्रतीक होनेकी बात, सो उसकी अस्लियत—वकील मौलवी साहबके—इसीसे सिद्ध है कि स्व० महाराजा माधोसिंहजीके देहावसानके बाद जनताकी इच्छाके विरुद्ध उसपर शासन-बलसे ज़बरदस्ती थोपी गई इस विभाषाको हटानेके लिए कई बार आन्दोलन हुए और केवल भारत-सरकारके अधिकार-बलसे ही वह क़ायम रखी गई! अगर किसी भाषाकी 'योग्यता एवं लोकप्रियता' और 'जनताकी एकता एवं संस्कृतिका प्रतीक' होनेकी कसौटी यही है, तब तो शायद मौलवी साहब-जैसे व्यक्तियोंको ही यह सौभाग्य, गर्व एवं गौरव शोभा दे सकते हैं। पर मौलवी साहब-जैसे पढ़े-लिखे और समझदार व्यक्तिको इतना तो समझना चाहिए कि भारत-सरकारके जिस प्रस्तावकी उन्होंने दुहाई दी है, वह उर्दूके पक्षमें और हिन्दीके विरुद्ध कोई भाषा-विषयक फैसला नहीं, रीजेंसी-शासनका एक सामान्य निर्देश-मात्र है।

हिन्दी और हिन्दीवालोंको कोसते-कोसते आपने जयपुरके नए दीवान सर मिर्ज़ा इस्माइलको भी—जिनकी एकराष्ट्रीयता साम्प्रदायिक कठमुल्लाओंकी नज़रोंमें बुरी तरह खटक रही है—लपेट लिया है। सबसे नीचतापूर्ण आक्षेप आपने उनपर यह किया है कि वे एक व्यक्तिके आमरण अनशन और हिन्दू-महासभाके गौरक्षानूनी प्रदर्शनोंकी धमकियोंसे झुक गए और नागरी-लिपिके जामेमें संस्कृत-मिश्रित तथा नई गढ़ी हुई हिन्दीका प्रचार करना चाहते हैं। पहला आक्षेप शायद इस-लिए किया गया है कि मुसलमान होते हुए भी सर इस्माइल अपने गुमराह सजातीयोंकी धौंसमें नहीं आए! जयपुर-राज्यकी घोषणाके पीछे जो मन्शा ज़ाहिर की गई है, उसपर अविश्वास करनेका हमारे पास कोई ठोस आधार या उचित कारण नहीं है। अगर जनताकी भाषा और लिपि-सम्बन्धी न्यायोचित माँगको सरकारसे मनवानेके लिए किसी व्यक्तिने अनशन किया या किसी साम्प्रदायिक संस्थाने इसे आधार बनाकर अनुचित लाभ उठानेकी कोशिश की, तो ये हरकतें भी उतनी ही हेय एवं निन्दनीय हैं, जितनी कि मौलवी साहबकी इस प्रश्नको साम्प्रदायिक रंग देनेकी भ्रान्तिपूर्ण कोशिश। हमारी रायमें तो भाषाके मसलेका साम्प्र-दायिक संस्थाओं या साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके लोगोंके हाथोंमें जाना ही हिन्दू-मुस्लिम-एकता और संस्कृतिके लिए एकदम घातक एवं अवांछनीय है।

फेडरल-कोर्टका महत्त्वपूर्ण फैसला

गत २२ अप्रैलको भारतीय फेडरल-कोर्टके प्रधान न्याया-धीश सर मारिस ग्वायरने भारत-रक्षा-नियमोंके नियम २६ को, जिसके अधीन गांधीजी आदि ८००० व्यक्ति नज़रबन्द हैं अवैध बतलाते हुए एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण फैसला दिया है। अपने फैसलेमें उन्होंने कहा है—"हम महसूस करते हैं कि हमारे फैसलेसे सरकारको अस्थायी तौरपर परेशानी और कठि-नाईका सामना करना पड़ेगा। हमें इस बातका दुःख है; पर हम आशा करते हैं कि भविष्यमें इस प्रकारके क़ानून बनाए जाते समय विशेष सतर्कता बर्ती जायगी, ताकि सम्राट्के हज़ारों प्रजाजनोंको गैरक़ानूनी वारण्टपर गिरफ़्तार और नज़रबन्द न किया जा सके। इसके साथ ही नज़रबन्दीकी आज्ञा जारी करनेवालोंको अपनी आज्ञाके कारण स्पष्ट रूप से प्रकट करने चाहिएँ।

"भारत-रक्षा-नियमोंकी धारा २, उपधारा २, पैरा १० में कहा गया है कि इस धाराके अनुसार किसी भी व्यक्तिको गिरफ़्तार अथवा नज़रबन्द किया जा सकता है, यदि उस व्यक्तिके बारेमें सरकारके विरुद्ध होनेका युक्तियुक्त सन्देह हो, या उसने कोई ऐसा काम किया हो, अथवा करनेका इरादा रखता हो, जो कि ब्रिटिश भारतकी रक्षाको खतरेमें डालता हो। ऐसे व्यक्तिको किसी विशेष इलाकेमें प्रवेश करने अथवा रहनेसे भी रोका जा सकता है और किसी विशेष इलाकेमें रहनेके लिए बाध्य भी किया जा सकता है।"

"उपर्युक्त धाराके अन्तर्गत बनाए गए भारत-रक्षा-नियमोंके २६ वें नियमकी भूमिकामें कहा गया है कि यदि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारको किसी व्यक्तिपर इस प्रकारका सन्देह हो (जैसा कि उपर्युक्त धारामें प्रकट किया गया है), तो वह उस व्यक्तिके लिए उपर्युक्त प्रकारकी आज्ञा जारी कर सकती है।

"उपर्युक्त नियमका अध्ययन करनेपर हम इन प्रश्नोंको करनेके लिए बाध्य हैं—(१) 'युक्तियुक्त सन्देह'का अर्थ क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि आज्ञा जारी करनेवाले अधिकारियोंको युक्तियुक्त कारणसे सन्देह है, अथवा यह कि उस व्यक्तिपर सन्देह किए जानेके कारण युक्तियुक्त हैं ? (२) क्या क़ानून बनानेका अधिकार सरकारको यह अधिकार देता है कि वह ऐसा नियम बना सके, जिसके अनुसार किसी व्यक्तिपर सन्देह होते ही उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सके ?

"हम यह जानते हैं कि यह युद्ध-काल है, जबकि प्रत्येक देशकी सरकारको विशेषाधिकार प्राप्त करने पड़े हैं। हम यह भी जानते हैं कि सरकारके सचाईके साथ किए गए कामोंकी कटु आलोचना नहीं होनी चाहिए। फिर भी हमें देखना है कि वह उन अधिकारोंसे आगे तो नहीं जाता, जो कि धारा-सभाने उसे दिए हैं, चाहे समयकी आवश्यकता कितनी ही बड़ी क्यों न हो ?"

"धारा-सभाने जो क़ानून बनाया है, उसमें सरकारको यह अधिकार दिया गया है कि वह 'युक्तियुक्त सन्देह' होनेपर किसी व्यक्तिके विरुद्ध कार्रवाई कर सकती है ; पर नियम २६ के अनुसार केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार सन्देह न होनेपर भी किसी व्यक्तिके विरुद्ध कार्रवाई कर सकती है, जो कि अवैध है। इस नियमके अनुसार तो सरकार बिना सन्देहके भी किसी व्यक्तिको नज़रबन्द कर सकेगी। भारत-रक्षा-नियमोंकी धारा २, उपधारा २ के १०वें पैराग्राफ़में इस प्रकारका अधिकार सरकारको नहीं दिया गया है। धारा-सभा इस प्रकारका अधिकार केन्द्रीय सरकारको दे सकती थी ; परन्तु हमें विश्वास है कि अब तक उसने ऐसा नहीं किया है। फिलहाल तो उसने केवल 'युक्तियुक्त सन्देह'के आधारपर ही कार्रवाई करनेका अधिकार दिया है। अतः जब तक किसी व्यक्तिके विरुद्ध 'युक्तियुक्त सन्देह' न हो और केवल इसी आधारपर कि वह कुछ काम करनेवाला है, अथवा कर सकता है, किसी व्यक्तिको नज़रबन्द नहीं किया जा सकता।"

भारत रक्षा-नियमोंमें संशोधन

फ़ेडरल-कोर्टके उपयुक्त फैसलेसे उत्पन्न हुई स्थितिका सामना करनेके लिए भारत-सरकारने एक नए आर्डिनेन्स द्वारा भारत-रक्षा-नियमोंकी धारा २ (२) की उपधारा १० के स्थानमें निम्न शब्द रख दिए हैं :—

"किसी भी ऐसे व्यक्तिकी गिरफ़्तारी अथवा नज़रबन्दी, जिसकी गिरफ़्तारी अथवा नज़रबन्दी अधिकारी युक्तियुक्त कारणोंसे उचित समझते हैं, जो कोई ऐसा काम करनेका इरादा रखता हो, अथवा जिसने कोई ऐसा काम किया हो, अथवा ऐसा काम करनेवाला हो, जो कि ब्रिटिश भारतकी रक्षा, सार्वजनिक शान्तिके बनाए रखने, विदेशी शक्तियों अथवा देशी रियासतोंसे सम्राटकी सरकारके सम्बन्धों, कबीली इलाकोंकी शान्ति और युद्ध-प्रयासके सुचारु रूपसे चालू रखनेमें बाधा डालनेवाला हो, अथवा जिस व्यक्तिके प्रति अधिकारियोंको ऐसी कार्रवाई करनेके औचित्यपर सन्तोष हो, ऐसे व्यक्तिको किसी स्थानमें प्रवेश करने और रहने देनेसे रोकना अथवा किसी स्थानमें रहनेके लिए बाध्य करना।"

आर्डिनेन्समें आगे चलकर कहा गया है कि अब तक भारत-रक्षा-नियम २६ के अन्तर्गत की गई कोई कार्रवाई केवल इसीलिए ग़ैरक़ानूनी नहीं समझी जायगी कि उक्त नियमके अनुसार जिन अधिकारोंका प्रयोग किया गया, वे १९३९ के भारत-रक्षा-नियमोंकी दूसरी धारा द्वारा दिए गए अधिकारोंसे अधिक व्यापक थे।

गवर्नर-जनरलके अधिकारोंको चुनौती

गवर्नर-जनरलने भारत-रक्षा-नियमोंके नियम २६ को वैध ठहराते हुए जो नया आर्डिनेंस जारी किया है, गत ४ मईको मद्रास-हाईकोर्टके जस्टिस हारविल और जस्टिस हेपेलके सामने उसे भी चुनौती दी गई। श्रीमती अम्मु स्वामिनाथ और ७ अन्य नज़रबन्दोंकी ओरसे 'हेबियस कार्पस'का प्रार्थना-पत्र पेश करते हुए मद्रास-एडवोकेट्स एसोसिएशनके अध्यक्ष श्री टी० वी० सुथुकृष्ण अय्यरने कहा कि नया आर्डिनेंस अवैध है, क्योंकि इसके द्वारा भारतीय धारा-सभाके एक मौजूदा क़ानूनमें संशोधन किया गया है। आपने कहा कि १९३५ के गवर्मेण्ट आफ़ इण्डिया एक्टके अनुसार भारतीय धारा-सभा द्वारा बनाए गए क़ानूनमें संशोधन करनेका गवर्नर-जनरलको कोई अधिकार नहीं है। गवर्मेण्ट आफ़ इण्डिया एक्टकी धारा ७२ के अनुसार गवर्नर-जनरलको आर्डिनेंस जारी करनेका अधिकार अवश्य दिया गया है ; पर उन्हें धारा-सभाके किसी क़ानूनके साथ दस्तन्दाज़ी करनेका विकल्प नहीं दिया गया है।

नए आर्डिनेंसकी कुछ असंबद्धताएँ बतलानेके बाद आपने कहा कि इसके रूपमें वाइसरायने अपने आर्डिनेंस जारी करनेके अधिकारोंके प्रयोगके बहाने धारा-सभाके अधिकारोंका भी उपयोग किया है, जिसके लिए गवर्मेण्ट आफ़ इण्डिया एक्टकी धारा ७२ उन्हें कोई अधिकार नहीं देती।

१९४३ का दूसरा आर्डिनेंस अवैध !

कलकत्ता-हाईकोर्टके चीफ़-जस्टिसकी अध्यक्षतामें स्पेशल बेंचने गत २३ अप्रैलको एक और महत्त्वपूर्ण फैसला दिया है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके अनुसार १९४२ के दूसरे आर्डिनेंसकी ५, १०, १४ और १६ धाराओंको अवैध बतलाया गया है। अपने फैसलेमें चीफ़-जस्टिसने कहा कि चूँकि आर्डिनेंसके भाग ५, १० और १६ इण्डिया-एक्ट १९३५ के अन्दर उचित रूपसे संगठित धारा-सभाओंके अलावा अन्य व्यक्तियोंको ज़ाब्ता-फ़ौजदारीके कुछ भागों और हाईकोर्टके 'लेटर्स पेटेण्ट'को वापस लेनेका हक़ देते हैं, अतः उस अंश तक वे अवैध हैं।

जस्टिस खण्डकरने अपने एक फैसलेमें लिखा है कि इण्डिया-एक्ट १९३५ की ९ वीं सूचीका ७२ वाँ भाग गवर्नर-जनरलको यह अधिकार नहीं देता कि वे आर्डिनेंस द्वारा विचारित स्पेशल-कोर्टोंकी सीमा और मर्यादा निश्चित करनेके लिए उचित धाराएँ बनानेका अपना अधिकार किसी औरको दे दें। इस कारण आर्डिनेंसके ५, १० और १६ भाग इण्डिया-एक्ट १९३५ की ९ वीं सूचीके ७२ वें भागके अनुसार गवर्नर-जनरलके अधिकारोंके बाहर हैं, अतः यह अवैध हैं।

जस्टिस सेनने अपने अलग फैसलेमें लिखा है कि आर्डिनेंसकी भूमिका और आर्डिनेंसका भाग १ (३) परस्पर विरोधी हैं और उनको एक साथ पढ़नेसे मालूम होता है कि गवर्नर-जनरलने इस विषयमें अपनेको गुमराह किया है कि किन परिस्थितियोंमें उनको आर्डिनेंस निकालनेका अधिकार दिया गया है। इसके अतिरिक्त चूँकि गवर्नर-जनरलने पार्लमेण्ट द्वारा यह निर्णय करनेका यह अधिकार कि आया संकटापन्न (एमर्जेन्सी) अवस्था है या नहीं, जिससे उनके आर्डिनेंस जारी करनेका औचित्य प्रकट होता है, प्रान्तीय सरकारोंको दे दिया है, इसलिए यह आर्डिनेंस अवैध है।

गांधीजीको छोड़ दिया जाय

'हिन्दू'के नई दिल्ली-स्थित संवाददाताका कहना है कि प्रसिद्ध अंगरेज़ी-लेखक जार्ज बरनार्ड शासे भारतीय समस्याका कोई हल सुझानेका अनुरोध करनेपर उन्होंने कहा : इसके सिवा मैं और कोई व्यावहारिक हल नहीं बतला सकता कि बादशाह गांधीजीकी रिहाईका हुक्म दे दें और मन्त्रि-मण्डलकी—जिसने उनकी गिरफ़्तारीकी आज्ञा दी—दिमाग़ी खराबीके लिए क्षमा-याचना कर लें!

क्या बादशाह इस नेक सलाहसे लाभ उठायँगे ?

फिलिप्स गांधीजीसे नहीं मिल सके!

नई दिल्लीमें गत २५ अप्रैलको प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्टके विशेष प्रतिनिधि श्री विलियम फिलिप्सने अमरीकाके लिए रवाना होनेसे पहले पत्रकारोंसे अपनी अन्तिम भेंटमें एक महत्त्वपूर्ण रहस्योद्घाटन किया। यह पूछे जानेपर कि क्या उन्होंने महात्मा गांधी अथवा पंडित जवाहरलाल नेहरूसे मिलनेका प्रयत्न किया, श्री फिलिप्सने कहा कि मैं महात्मा गांधीसे अवश्य ही मिलना और बातचीत करना चाहता था। मैंने अधिकारियोंसे इसके लिए अनुमति भी माँगी थी ; पर मुझे कहा गया कि मुझे गांधीजीसे मिलनेकी सुविधाएँ नहीं दी जा सकतीं।

अमरीकाके प्रधान समाचारपत्रोंने श्री फिलिप्सके गांधीजीसे न मिलने दिए जानेपर खेद प्रकट किया है। 'वाशिंगटन पोस्ट' अनुमति न दिए जानेके लिए खेद प्रकट करता है। 'स्टार' लिखता है कि अमरीकाने भारतीय मामलोंसे अपने हाथ अलग रखे हैं। अतः श्री फिलिप्सको अनुमति न दिया जाना और भी अजीब मालूम देता है। 'सन' लिखता है कि क्या महात्मा गांधी और श्री फिलिप्सकी भेंटका प्रबन्ध गुप्त रूपसे नहीं किया जा सकता था ?

ग़ैरक़ानूनी तरीक़ोंका प्रयोग

भारतकी मौजूदा स्थितिपर प्रकाश डालते हुए लन्दनके प्रसिद्ध कम्युनिस्ट पत्र 'डेली वर्कर'ने—जिसपर से अभी हाल ही में रोक उठाई गई है—एक अग्रलेख लिखा है। अन्य बातोंके अतिरिक्त उसमें कहा गया है :—

"इण्डिया-आफिस सौभाग्यशाली है ; क्योंकि अब तक वह जिन ग़ैरक़ानूनी तरीक़ोंसे भारतमें काम करता रहा है, उसका भण्डाफोड़ उस समय हुआ, जब कि पार्लमेण्टका अधिवेशन ईस्टरकी छुट्टियोंके कारण स्थगित हो चुका है। नहीं तो भारत-सरकारकी उस घोषणाको चुनौती अवश्य दी जाती, जिसमें कहा गया था कि सरकार एक नया क़ानून बनाकर सब ठीक-ठाक कर लेगी और अपने-आपको अपनी पुरानी ग़लतियोंके लिए पापमुक्त कर लेगी। प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्टके दूत तक्को गांधीजी और नेहरूजीसे नहीं मिलने दिया गया ; इस रहस्योद्घाटनसे तो रही-सही कसर और भी पूरी हो गई।"

लेखकों एवं कवियोंसे निवेदन

हमारे बार-बार अनुरोध करनेपर भी बहुतसे लेखक और कवि महानुभाव उत्तर अथवा अस्वीकृत रचनाएँ लौटानेके लिए पोस्टेज साथमें नहीं भेजते हैं। ऐसी रचनाओंको लौटाने और उनके सम्बन्धमें आए पत्रोंका उत्तर देनेके लिए कार्यालय ज़िम्मेदार न होगा।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संचालक—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पुस्तकालय
१२.६.६२

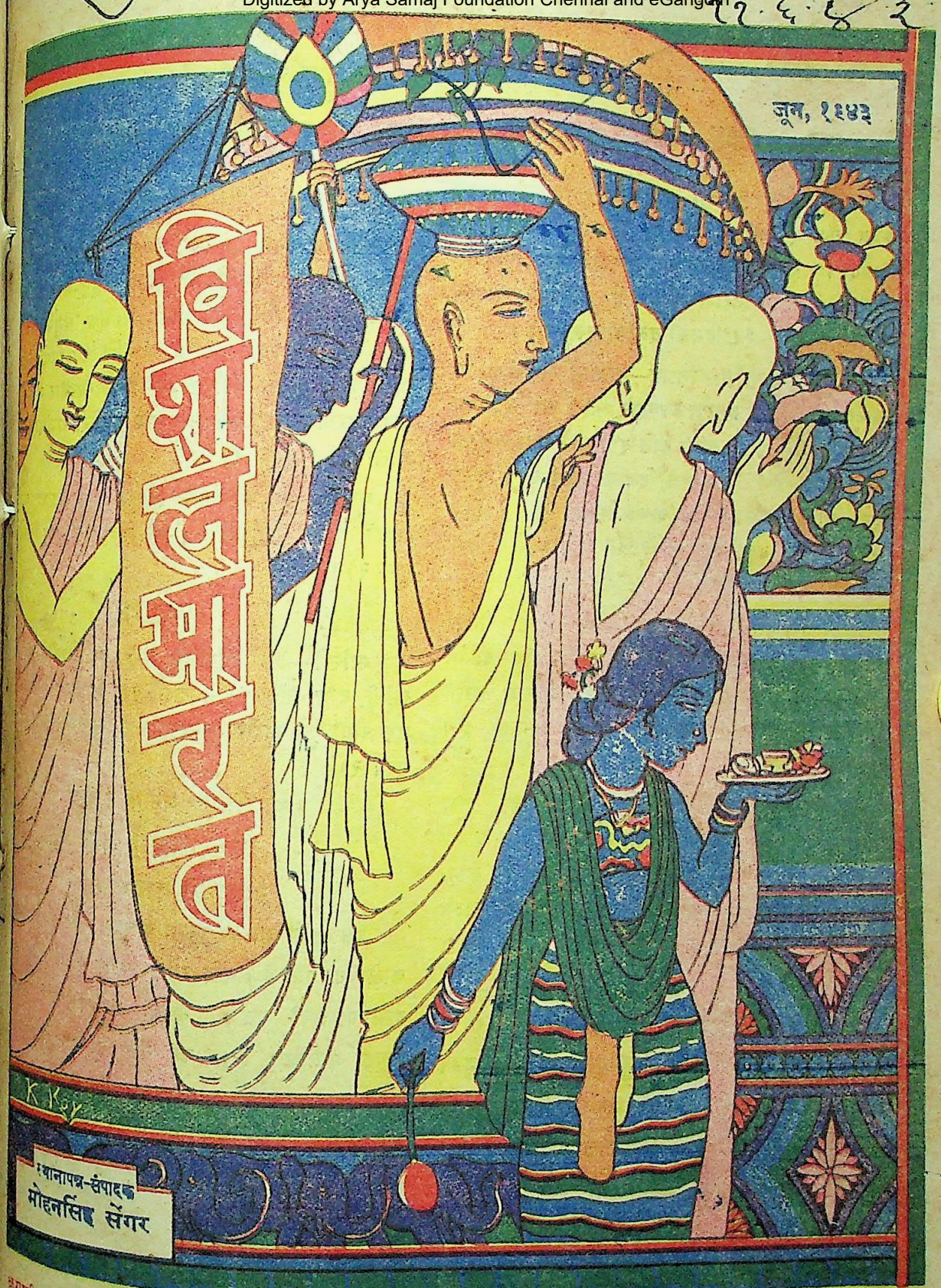

डाकही मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ।।-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१००) इनाम !

किसी औषधिको बेफायदा साबित करनेपर !

जिन्हें विश्वास न हो, वे ≈) का टिकट भेजकर शर्त लिखा लें।

(१) श्वेत कुष्ठकी वनौषधि—महात्मा - प्रदत्त श्वेत कुष्ठ (सफ़ेदी) की दवासे तीन दिनमें पूरा फायदा। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों, विज्ञापन-दाताओंकी दवासे निराश हो चुके हैं, तो इसे लगाकर आराम पावें। १५ दिनकी दवाका मूल्य २)।

(२) सन्तति - निग्रह—सन्तान - निग्रहकी यह अचूक दवा है। दवाका व्यवहार :बन्द कर दें, गर्भ धारण हो जायगा। प्रति मास दवा तीन दिन व्यवहार करनी पड़ती है। वर्ष-भरकी दवाका मूल्य २)। दूसरी दवा, जो जीवन-भरके लिए बन्ध्या बनाती है। मूल्य २)। दोनों दवाओंके व्यवहारसे स्वास्थ्यमें किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

(३) बहरापन - नाशक—यह कर्ण - रोगकी अद्‌भुत दवा बहरापन, कानकी आवाज, पीव बहना, नया अथवा पुराना सबको सदाके लिए आराम करती है। बहरा आदमी साफ-साफ सुनने लगता है। मूल्य २)।

(४) कोढ़ सुन्नबहरीकी जड़ी—काला, लाल और सफेद रंगका चकत्ता, अँगुली मोटी, टेढ़ी या घावसे गली हो, बदनमें झनझनाहट, सुन्न या दर्द हो, कान, नाक, भौंहें मोटी हों, बदनमें गिल्टी उठी हो, क़ब्ज आदिको गारंटीके साथ इस जड़ीसे आराम किया जाता है। मूल्य २)।

(५) आश्चर्यजनक जड़ी—इसके दिखाने-मात्रसे बिच्छू, ततैये और मधुमक्खीका काटा हुआ आराम हो जाता है। अब तक लाखों आदमी इससे लाभ उठा चुके हैं। इसे सैकड़ों साल तक अपने पास रखिए, पर इसका असर कभी भी कम न होगा। मूल्य १) फ़ी-जड़ी। ३ का मूल्य सिर्फ़ २॥)।

मासिक धर्म

इस औषधिसे मासिक धर्मकी गड़बड़ी, मासिक धर्मका अधिक या कम दिनमें होना, ऋतु-कालमें पेट, कमर, पेड़ू और सिरमें दर्द होना, मासिक धर्मके रंगमें फर्क होना या एकदम बन्द हो जानेको आरामकर गर्भ धारण हो जाता है। गर्भवती स्त्रियाँ इसे व्यवहार न करें। गर्भ धारणके बाद इसे व्यवहार करनेसे गर्भपात हो जाता है। मूल्य २) रु०।

पुत्रदा—इस औषधिसे निश्चय गर्भ रहकर पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होती है। पूर्ण विवरणके साथ लिखें। मूल्य २)।

रोगका घर

खांसी—इस औषधिसे नई व पुरानीसे पुरानी खाँसी, दमा, साँसको तीन दिनमें पूरा फायदा होता है। एक रोगी पूर्ण आरोग्य लायक एक मासकी औषधिका मूल्य २)।

अब ख़िज़ाब लगाना न होगा

बाल काला तेल

नक़ालोंसे सावधान !

इस तैलसे बालका पकना रुककर पके बाल जड़से काले पैदा होते हैं। यदि स्थाई काले न रहें, तो दूना दाम वापसकी शर्त। सैकड़ों प्रशंसा-पत्रोंसे इसकी सत्यता प्रमाणित है। यह तैल सरके दर्द व सरके चक्कर आने आदिको आरामकर आँखकी रोशनीको भी बढ़ाता है। बाल कम पके हैं २), चौथाईसे अधिक पके हैं ३॥) व कुल बाल पके हों तो ५) का तेल मँगा लेवें।

वैद्यराज अखिलकिशोर राम, आयुर्वेद-विशारद, भिषक-रत्न,

नं० २८, पो० कतरीसराय (गया)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[वैशाख, २००० वि० : : जून, १९४३ ई०]

१ ताजमहल (कविता)—डा० देवराज ४०१
२ सेतुबन्ध—बनारसीदास चतुर्वेदी ४०२
३ नारी—श्री तेजनारायण काक ४०४
४ बँगला-साहित्यमें मंगल-काव्य—कुमारी प्रभामयी राय ४०५
५ रूसमें दीवार-चित्र (स०)—श्री अजित मुखोपाध्याय ४०६
६ हिन्दीका उपन्यास-साहित्य—
श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ४०९
७ स्व० डा० नीलरतन सरकार—श्री 'निर्मम' ४१५
८ लोक-साहित्यमें पक्षी-वर्णन—
श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश' ४१७
९ राल्फ़ फ़ाक्स—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र ४२३
१० जीवन-गान—श्री महेशचन्द्र मिश्र ४२५
११ सितमगर (एकांकी नाटक)—प्रो० आनन्द ४२६
१२ गोपन कौन कथा रही अब ?—
श्री सोहनलाल द्विवेदी ४२७
१३ बुन्देलखण्ड-प्रान्तका निर्माण—
श्री वासुदेवसिंह जादौन ४२८
१४ 'साकेत'की उर्मिला—श्री भागीरथी चन्द ४३३
१५ स्वप्न-सृष्टि—श्री धर्मवीर ४३६
१६ फूल (गद्य-काव्य)—कुमार गोविन्दानुज ४३७
१७ जीवन (कहानी)—श्री राधिकाशरण वाजपेयी ४३८
१८ रोटीकी समस्या—स्व० फ्राँसोया कोपे ४४१
१९ बाण भट्टकी आत्म-कथा—श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ४४३
२० दक्षिण-अफ्रीकामें 'गोरावाद'—मोहनसिंह सेंगर ४४९
२१ 'पृथ्वीराजरासो'की एक महत्त्वपूर्ण प्रति—
श्री अगरचन्द नाहटा ४४५
२२ दुनियामें कितने तरहके लोग हैं ?—
श्री भानुकुमार जैन ४५६
२३ चिट्ठी-पत्री ४५७
२४ चयन ४५९
२५ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार ४६२
२६ सम्पादकीय विचार ४६५
रंगीन चित्र—
श्री देवीप्रसाद राय चौधरी

वैज्ञानिक फलित ज्योतिष

'भाग्य बतानेसे' भिन्न है !

वैज्ञानिक फलित ज्योतिष नक्षत्र-विज्ञानपर आधारित एक विशुद्ध विज्ञान है। इसमें किसी प्रकारका 'जादू' नहीं है। यह प्रदर्शन-योग्य गणित-विज्ञान है, जिसका कोई भी जिज्ञासु परीक्षण कर सकता है। हम अपने पचास वर्षोंके अनुभवके आधारपर सुधार-संशोधन करके हिन्दू फलित ज्योतिष और पाश्चात्य तरीकोंसे काम लेते हैं। फलित ज्योतिषकी शिक्षा पत्र-व्यवहारसे दी जाती है। संक्षेपमें सारे जीवनका हाल ५) रु० में ; विस्तृत हाल १०) रु० में ; सालाना हाल ७) रु०में; एक सालका महीनवारी हाल १५) रु० में लिख भेजा जाता है। इसके लिए जन्मकी तारीख, समय और जन्म-स्थान लिख भेजना चाहिए। जीवन-फल वी० पी० से भेजा जायगा।

हालके तीन प्रशंसापत्र : पटना-विश्वविद्यालयके प्रो० पन्नालाल, एम०-एस-सी० लिखते हैं—"आपकी उल्लेखनीय भविष्य-वाणियाँ अभी तक हूबहू सत्य निकली हैं।" लुधियानाके डिप्टी-कमिश्नर-आफिससे श्री एच० बी० शर्मा लिखते हैं—"चूँकि मेरा फलित ज्योतिषमें विश्वास है और आपमें भी, क्योंकि जिन लोगोंको मैं जानता हूँ, उनमें आप इस विषयके भारतमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं, इसलिए आपसे सलाह लेनेके सिवा मेरे लिए और कोई चारा नहीं।" सी० एण्ड एस० कालेज शिकारपुर (सिंध)के प्रो० एम०एल० जेठमलानीने लिखा है—"आपने मेरे सम्बन्धमें जो उल्लेखनीय भविष्य-वाणियाँ की हैं, उन्हें मैंने अपने मित्रोंको दिखाया।...मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि आपके ज्योषित-सम्बन्धी ज्ञानसे सुशिक्षितोंको लाभ उठाना चाहिए।" दि एस्ट्रोलाजिकल ब्यूरो (प्रो० एस० सी० मुकर्जीका) १८९२ में पहले कालीघाट, कलकत्तेमें स्थापित हुआ था।

THE ASTROLOGICAL BUREAU (OF PROF. S. C. MUKERJEE, M.A.), BENARES CITY, U. P.

एजेंटोंके लिए नियम

१. कमसे कम ५ कापियाँ प्रतिमास मँगानेपर कोई भी 'विशाल भारत'का एजेंट बन सकता है।

२. स्थायी एजेंटोंको १) फ़ी कापीके हिसाबसे पेशगी ज़मानत जमा करानी होगी और हर महीने हिसाब साफ़ कर देना होगा।

३. जिस महीनेके अंककी जितनी प्रतियाँ चाहिएँ, उसकी सूचना उससे पहले महीनेकी २५ तारीख़ तक कार्यालयको अवश्य मिल जानी चाहिए।

४. जिन एजेंटोंका रुपया जमा न होगा, उन्हें नया अंक उस समय तक नहीं भेजा जायगा, जब तक कि वे रुपया या वी० पी० से अंक मँगानेका आर्डर नहीं भेजेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य बढ़ाया गया है

काग़ज़की बेहद महँगाईके कारण शरत्साहित्यके जो भाग अब छपे हैं और आगे छपेंगे, उनका मूल्य बारह आनेसे एक रुपया कर दिया गया है। भाग ३, १५ और १६-१७ हाल ही छपे हैं। इनके सिवा साहित्य-शिक्षा, हिन्दी-गद्यमाला, शाहजहाँ, मेवाड़-पतन, भारत-रमणी, दुर्गादास, जीवटकी कहानियाँ, हिन्दी-साहित्यकी भूमिका, ग्राम्य-जीवनकी कहानियाँ, देश-देशके लोग, शान्तिकुटीर, उपवास-चिकित्सा, शिवाजी, राणा प्रताप, नूरजहाँ, नवनिधि, उर्दू-हिन्दी-कोश, आनन्दकी पगडंडियाँ और ताराबाई—इन पुस्तकोंका मूल्य पहलेसे सवाया कर देना पड़ा है। अन्य सब पुस्तकोंका मूल्य ज्योंका त्यों है।

बहुतसे ग्राहक हमसे दूसरोंकी प्रकाशन की हुई पुस्तकें भी मँगाया करते हैं। उन्हें जानना चाहिए कि प्रायः सभी प्रकाशकोंने अपनी पुस्तकोंके दाम बढ़ा दिए हैं। सूचीपत्रमें छपी हुई कीमतें ठीक नहीं हैं। इसलिए ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे बढ़ी हुई कीमतोंका खयाल रखकर ही आर्डर दें। कमीशन भी प्रकाशकोंने कम कर दिए हैं, इसका भी ध्यान रक्खें।

गुजरातके नाथ

गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत के० एम० मुन्शीका यह अतिशय मनोरंजक, उत्कण्ठावर्धक और कलापूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हाल ही प्रकाशित हुआ है। हिन्दीमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी कमी है और हिन्दीके लेखक इस समय इस ओरसे प्रायः उदासीन हैं। अतएव हिन्दीके पाठक इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। ४६० पृष्ठोंके इस उपन्यासका मूल्य सवा दो रुपया है। इसके पहले मुन्शीजीका 'पाटनका प्रभुत्व' प्रकाशित हो चुका है, जिसका मूल्य डेढ़ रुपया है। वह भी ऐतिहासिक है और उसके बादका ही इतिहास 'गुजरातके नाथ'में गुम्फित है। यों दोनों ही स्वतन्त्र हैं।

कबीर

शान्तिनिकेतनके अध्यापक पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी शास्त्राचार्यने इस ग्रन्थमें कबीर, उनके साहित्य और उनकी फ़िल्सफ़ीपर बिल्कुल ही नये दृष्टिकोणसे और बड़ी गहराईसे विचार किया है। कबीरको अच्छी तरह समझनेके लिए यह ग्रन्थ आवश्यक है। मूल्य ढाई रुपया।

जैन-साहित्य और इतिहास

लेखक:—पं० नाथूराम प्रेमी

जैन-साहित्य बहुत विशाल और गम्भीर है। व्याकरण, काव्य, न्याय, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि कोई भी ऐसे साहित्यांग नहीं है, जिसपर जैन-पण्डितोंने प्रामाणिक ग्रन्थ न लिखे हों। इस ग्रन्थमें ऐसे सकड़ों प्रकाशित-अप्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंके ग्रन्थों और उनके कर्त्ताओंका विस्तृत परिचय दिया गया है और उनके समयपर भी प्रकाश डाला गया है। इसके सिवा जैन-इतिहासकी अनेक गुत्थियां सुलझाई गई हैं। बहुतसे कवियों और ग्रन्थकारोंके सम्बन्धमें बिल्कुल नई खोजें की गई हैं। हिन्दीकी जननी अपभ्रंश भाषाके ऐसे अनेक कवियों और उनकी रचनाओंपर प्रकाश डाला गया है, जिन्हें दुनिया जानता भी नहीं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जो कुछ लिखा गया है, सब निष्पक्ष और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे। 'विश्व-भारती', 'विशाल भारत' आदि पत्रोंने और म० म० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, प्रो० हरिसत्य भट्टाचार्य, पं० जयचन्द्र विद्यालंकार, पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० भगवद्दत्तजी, डा० रघुवीरसिंहजी आदि माने हुए विद्वानोंने इस ग्रन्थकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। पृष्ठ-संख्या ६३४। मूल्य तीन रुपया।

संचालक—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप जीवनसे निराश हो चुके हैं ?

समझ बैठे हैं कि आपका रोग जानेका नहीं, तो प्राकृतिक चिकित्साका सहारा लीजिए। यह शरीर मिट्टी, पानी, धूप, हवाका बना है और उन्हींके समुचित प्रयोगसे यह फिर नवीन हो सकता है। इसके अलावा इस आरोग्य मन्दिरमें आसन, प्राणायाम, बिजली, मालिश, उपवास, युक्त आहार, दूध-कल्प एवं विचार-शक्तिका भी सहारा लिया जाता है। चिकित्सा 'आरोग्य मन्दिर'में रहकर एवं पत्र-व्यवहार द्वारा दोनों प्रकारसे कराई जा सकती है।

आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर, (यू० पी०)

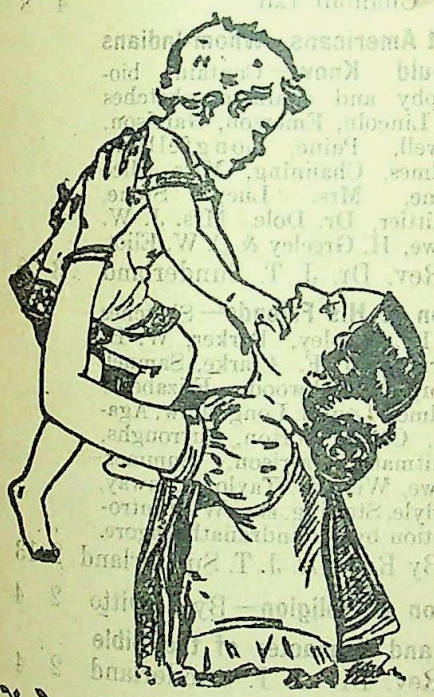

बच्चों के लिए ताकत की दवा
डोंगरे का बालामृत

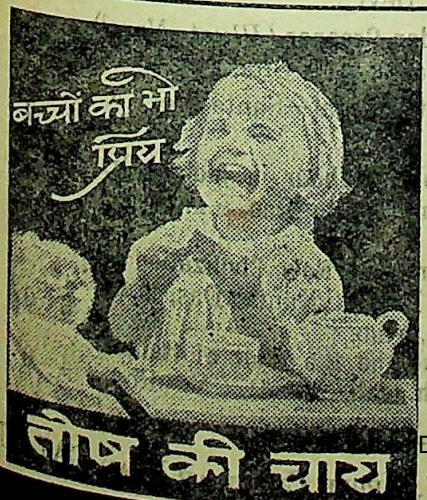

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका पाँचवाँ अंक प्रकाशित हो गया।

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

आत्म-त्राण (कविता)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
धर्मकीर्त्तिका दर्शन	राहुल सांकृत्यायन
चतुरंग (उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
संतसाधनाका प्रवेशपथ	क्षितिमोहन सेन
नारीका मनुष्यत्व	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
युद्धारम्भके बाद चीनी काव्यकी प्रवृत्ति	उ-शिऔ-लिङ् अनागारिक शांतिभिक्षु
'रवीन्द्र-संगीत' (आलोचना)	विद्याधर वम्फलवार
'हमारा हिन्दुस्तान' (आलोचना)	कृष्ण कृपालानी
'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (आलोचना)	हजारीप्रसाद द्विवेदी
'रवीन्द्रनाथ थ्रू वैस्टर्न आईज़' (आलोचना)	ह० द्वि०
सम्पादकीय	नैशनल वार-फ्रन्ट और रवीन्द्रनाथ।

वार्षिक मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए प्रति संख्या १॥)

व्यवस्थारक, विश्वभारती पत्रिका,
हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल

लेखकों एवं कवियोंके लिए

(१) 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ आनेवाली रचनाएँ कागज़के एक ओर स्याहीसे साफ़ अक्षरोंमें संशोधनके लिए ३ इंचके लगभग हाशिया अथवा दो पंक्तियोंके बीचमें काफ़ी जगह छोड़कर लिखी होनी चाहिएँ। कारबन-कापी, पेंसिलसे लिखी हुईं अथवा कागज़की दोनों ओर, अस्पष्ट, घिचपिच और लापरवाहीसे घसीटी हुई रचनाएँ स्वीकार नहीं की जायँगी। (२) रचनाओंकी स्वीकृति-अस्वीकृतिकी सूचना उस समय तक नहीं दी जायगी, जब तक कि उनके साथ पोस्टकार्ड या लिफ़ाफ़ा न होगा। स्वीकृत रचनाएँ जिस अंकमें छपेंगी, उसकी एक प्रति यथासमय लेखककी सेवामें भेज दी जायगी। (३) बिना मँगाए आनेवाली रचनाओंको छापने या लौटानेके लिए सम्पादक बाध्य न होगा। (४) बिना पोस्टेजके आनेवाली रचनाओंको लौटानेके लिए सम्पादक ज़िम्मेदार न होगा। (५) कविताओंको लौटाना हमारे लिए शक्य नहीं है, अतः कवि महानुभाव या तो अपनी रचनाओंकी प्रतिलिपि रख लिया करें अथवा उन्हें लौटानेके लिए आवश्यक पोस्टेज भी साथ भेजें। ( ) पारिश्रमिक चाहनेवाले लेखकोंको पहलेसे इस सम्बन्धमें लिखा-पढ़ी कर लेनी चाहिए।

विशाल भारत कार्यालय

CC-0. Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Books Available In The Modern Review Office

Name of the Book.	Price Rs.	As.	Postage with R. F. Rs.	As.
All Major Basu's books are Standard Works on the subjects.				
Rise of the Christian Power in India (*Illust. History*)—Major B. D. Basu	15	0	1	6
Ruin of Indian Trade and Industries—Major B. D. Basu	2	0	0	7
Story of Satara (*Illust. History*)—Major B. D. Basu	10	0	0	11
History of Education in India under The E. I. Company—Major B. D. Basu	2	8	0	6
Consolidation of the Christian Power in India—Major B. D. Basu	1	8	0	5
India under the British Crown—Major B. D. Basu	10	0	1	0
My Sojourn in England—Major B. D. Basu	2	0	0	6
History of the British Occupation in India—[*An epitome of Major Basu's first book in the list.*]—N. Kasturi	3	0	0	6
History of the Reign of Shah Alum—W. Franklin	3	0	0	7
Canons of Orissan Architecture—[A standard book by an Expert]—N. K. Basu	10	0	0	9
Dynasties of Mediæval Orissa—Pt. Binayak Misra	4	0	0	9
History of Orissa—Vols. I & II (*Illust.*) [Authoritative History by eminent archæologist and historian.] R. D. Banerji, each Volume	20	0	2	8
The History of Medieval Vaishnavism in Orissa — With introduction by Sir Jadunath Sarkar.—Prabhat Mukherjee	6	0	0	10
The First Point of Aswini—Jogesh Ch. Roy	0	8	0	4
Protection of Minorities—Radha Kumud Mukerji	0	4	0	4
Indian Medicinal Plants—Major B. D. Basu & Lt.-Col. K. R. Kirtikar—Complete in 8 Vols. [Authoritative Work with numerous Superb Plates.]	320	0	extra	

Name of the Book.	Price Rs.	As.	Postage with R. F. Rs.	As.
Chatterjee's Picture Albums—Nos. 2 to 8 & 10 to 17 (*No. 1 & 9 out of Stock*) each No. at	2	8	0	6
Scenes from Indian Life (*Album*) Sarada Ukil	2	0	0	7
An Album of European Paintings	2	8	0	7
Life of Srish Ch. Basu—Phanindra Nath Basu	2	8	0	6
Hindu America (*Illustrated*)—Mr. Chaman Lal	4	8	0	11
Eminent Americans: Whom Indians Should Know—Contains biography and character sketches of Lincoln, Emerson, Garrison, Lowell, Paine, Longfellow, Holmes, Channing, Miss Alice Stone, Mrs. Lucy Stone, Whittier, Dr. Dole, Mrs. J. W. Howe, H. Greeley & C. W. Eliot. —Rev. Dr. J. T. Sunderland	3	6	0	7
Emerson & His Friends—Sketches of Dr. Ripley, Parker, W. H. Furness, J. F. Clarke, Samuel, George, Rockwood, Elizabeth, Holmes, Lowell, Longfellow, Agassiz, Cabot, Norton, Burroughs, Whitman, Garrison, Summer, Howe, Webster, Taylor, Conway, Carlyle, Sterling, etc. With introduction by Rabindranath Tagore. —By Rev. Dr. J. T. Sunderland	2	13	0	7
Evolution & Religion—By Ditto	2	4	0	6
Origin and Character of the Bible—Rev. Dr. J. T. Sunderland	2	4	0	7
Rajmohan's Wife—Bankim Chandra Chatterjee	1	8	0	6
Prayag or Allahabad (*Illustrated*)	1	11	0	6
The Knight Errant (*Novel*)—Sita Devi	2	13	0	6
The Garden Creeper (*Illust. Novel*) Santa Devi & Sita Devi	2	13	0	6
Tales of Bengal—Santa Devi & Sita Devi	2	4	0	6
Plantation Labour in India—Dr. Rajani Kanta Das, M.A., M.SC., PH.D.	3	0	0	6
India And A New Civilization—Dr. Rajani Kanta Das, M.A., M.SC., PH.D.	3	0	0	6
Mussolini and the Cult of Italian Youth (*Illust.*)—P. N. Roy	4	0	0	7

THE MODERN REVIEW OFFICE, 120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] प्रतीक्षा [श्री देवीप्रसाद राय-चौधरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव-विज्ञान) नामक एक पुस्तक लिखी थी और उसमें सत्यका उद्घाटन किया था।

चानकी इन विद्वत्तापूर्ण बातोंका संग्रह तो सुशिक्षित किसीमें भी सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है, अन्तमें वह तद्रूप हो जाता है। जिस प्रकार भृंगी कीट द्वारा अपने बिलमें बन्द किया हुआ कीड़ा भयसे उसीका ध्यान करते-करते

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३१, अंक ६] वैशाख, २००० : : जून, १९४३ [पूर्णांक १८६

ताजमहल

डा० देवराज

ताजमहल, ओ ताज!
विश्व-भुवनकी कला - सृष्टिके शिरोरत्न, सिरताज।

ओ विशाल, ओ भव्य, स्वच्छतम शुभ्र-कलेवर,
अमल - धवल शरदिन्दु-किरण - पूरितसे शुचितर।
तुम हिमाद्रिके छिन्न शृंगमें हुए विनिर्मित,
ताज! तुम्हारी आभासे जग मुग्ध संचकित।
नित रवि-बिम्बि खिलाता जिसमें शत-शत ज्योति-कमल।
ताजमहल!

ताज, तुम्हारे देह - दुर्गमें हैं चिर - रक्षित,
अस्थि - शेष दो मनुज प्रेमियोंके अभिवन्दित।
एक प्रेम - वंशीमें जीवन भर स्वर भरते,
रहे सदा जो विश्व - हृदयको पुलकित करते।
सोए आज तुम्हें शय्याकर वे एकत्र युगल।
ताजमहल!

कितना प्रणयोल्लास बरसता था उनके जीवनमें!
कितनी छवि, विस्मृति, खुमारके प्याले केलि-भवनमें!
कैसी उन्मादिनी बहती थी उनकी जीवन-हाला!
कितनी तेज़ रक्तमें जलती निविड़ वासना-ज्वाला!
वही झलक उठती तममें बन अरुण-प्रभास-पटल।
ताजमहल!

शुचि निशीथमें सित ज्योत्स्नाका पहन मृदुल परिधान,
जटित रत्न-पुष्पोंकी किरणें जिसमें गुह्याख्यान —
लिखतीं-सी, होते तुम यमुना-दर्पण-जल-प्रतिबिम्बित;
शाहजहाँ - प्रेयसिकी दीर्घित छायासे अभिदर्शित।
मर्त्यलोकमें फिर दिखती-सी वह मुमताज़महल।
ताजमहल!

वह मुमताज़ विरहमें जिसके कातर शाहजहाँने,
रुँधे कण्ठसे जाने कितने गाए दर्द-तराने।
वह गुलाबकी पंखुड़ियों-सी स्वल्प-प्राण सुकुमारी,
सुरभित थी जिसकी शोभासे मुग़ल-राज्य-फुलवारी।
असमय जिसको क्रूर कालने अपना किया कवल।
ताजमहल!

हे दिगन्तके करुण निनाद!
तुममें मूर्त्तिमयी उसकी ही मर्मभेदिनी याद।
आँसू-सा बहता यमुनाका छाया - कलुष - प्रवाह;
भेद रही नभ-देश ताज बन शाहजहाँकी आह।
चतुर्दिक् उठ मीनार—
वेदना-ज्वाल-शिखा साकार—
अमर - लोकमें मृत्यु - शोकका देते - से सन्देश;
कभी गले मिल उनसे रोते वारिद सूने - वेश।
इसी ताजके अन्दर दो क़ब्रोंमें—
अमर प्रणयके छिपे प्रतीक विनश्वर;
दाएँ शाहजहाँ, बाएँ उसकी मुमताज़महल।
ताजमहल!

कितने मज़दूरोंने तेरा किया ताज निर्माण!
कितने मनुज-करोंके श्रमने दिए कलामय प्राण!
अमर समझ गहता रे नश्वर मनुज कलाकी छाँह;
क्या न कलासे अधिक अमर यह अमर प्रेमकी चाह!
मानव सन्तानें हों तुम-सी आहत चिर - उज्ज्वल!
ताजमहल!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीको चुराकर रावण लंकामें ले गया था और भगवान रामचन्द्रजीने नल-नीलकी सहायतासे सेतुबन्ध रामेश्वरका पुल तैयार किया था। आज पारस्परिक विद्वेष-रूपी दानवने शान्ति माताको हरण कर लिया है और मानव-समाज अत्यन्त क्षुब्ध तथा पीड़ित है। आज फिर सेतुबन्धकी आवश्यकता आ पड़ी है। पर यह सेतु समुद्रों अथवा नदियोंको पाटनेके लिए नहीं होगा; बल्कि देश-देश, जाति-जाति तथा मनुष्य-मनुष्यके हृदयोंके बीचमें जो महान अन्तर आ पड़ा है, उसको पाटनेके लिए इस पुलका निर्माण होगा। त्रेतायुगमें तो इस पुलको मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजीने पाटा था और इस युगमें महामानव (अखिल मानव-समाज) को इस उद्योगमें सम्मिलित होना होगा।

भगवान गौतम बुद्धने ढाई हज़ार वर्ष पूर्व कहा था :—

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण च शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः॥

—अर्थात् यहाँ (संसारमें) वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैरसे ही शान्त होता है। यही सनातन-धर्म (नियम) है। आज मानव-समाजको ऐसे सहस्रों-लक्षों व्यक्तियोंकी आवश्यकता है, जो संसारसे पारस्परिक विद्वेषको दूर करनेके लिए तन, मन, धनसे प्रयत्न करें।

भारतवर्षमें जिस त्रिमूर्त्तिने इस महान लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए उद्योग किया, उनमें से दो—महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़—इस संसारमें नहीं हैं, और तीसरे महात्मा गांधी ब्रिटिश सरकारके कारागारमें हैं। (यूरोपमें इस पथके महान पथिक रोमाँरोलाँ भी जर्मनी द्वारा अधिकृत फ्रान्समें पराधीन पड़े हुए हैं।) पर चूँकि ५ अप्रैल दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़की तृतीय वर्षी या पुण्यतिथि है, इसलिए यह उपयुक्त ही होगा, यदि आज हम इस महत्त्वपूर्ण विषयपर कुछ विचार कर लें।

प्रारम्भमें ही एक बात मुझे स्वीकार कर लेनी चाहिए। वह यह कि ऐसे प्रश्नपर, जिसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव-समाजसे है, कोई मौलिक विचार प्रकट करनेकी योग्यता मुझमें नहीं है। मेरे-जैसे साधारण आदमीके लिए यही उपयुक्त है कि वह इंजीनियर बननेकी महत्त्वाकांक्षाको तिलांजलि देकर ईंट-पत्थर ढोनेवाले मज़दूरके परिश्रमयुक्त कार्यको अंगीकार कर ले। पुलका निर्माण तो तभी हो सकता है, जब दोनों किनारोंकी भूमिकी ऊँचाई बराबर हो। जहाँ एक किनारा आसमानसे बातें कर रहा हो और दूसरा पातालमें धँसा हुआ हो, वहाँ पुल कैसे बनेगा? स्वाधीनों और पराधीनोंके बीचकी खाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक कि दोनोंके सम्बन्धमें मूलतः परिवर्त्तन न कर दिया जाय। इस परिस्थितिमें सबसे अधिक श्रेय उन महानुभावोंको मिलना चाहिए, जो मानव-समाजमें साम्यवाद फैलानेके उद्योगमें संलग्न हैं। रोगका असली इलाज वही है, बाक़ी सब तो मरहम-पट्टी है।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ज्ञान—जिसका प्रचार किसी लेखक या सम्पादक द्वारा मानव-समाजमें किया जा सकता है—यही है कि मानव-समाज एक है और उसके हित एक-दूसरेसे इतने सम्बद्ध हैं कि मानव-समाजके किसी एक अंगकी हानिसे सम्पूर्ण समाजकी हानि हो सकती है। भगवानने गीतामें कहा था—'सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते। अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥' अर्थात् जिस ज्ञानके द्वारा परस्पर भिन्न रूपसे प्रतीत होते हुए समस्त चराचर भूतोंमें सर्वव्यापक, एकरूप, अद्वितीय एवं अविनाशी परमात्म-तत्त्वकी उपलब्धि हो, उसे सात्त्विक ज्ञान समझो।

रोमाँरोलाँने अपनी एक पुस्तक 'फोर रनर्स' (अग्रगामी अथवा पथ-प्रदर्शक) में लिखा है—'यदि एक दम्पतिके औसत तन तीन बच्चे माने जायँ, तो इक्कीस पीढ़ीमें अथवा यों कहिए कि पाँच सौ वर्षोंमें एक दम्पतिकी सन्तानोंकी संख्या सम्पूर्ण संसारकी जन-संख्याके बराबर हो जायगी! गणितके इस तर्क द्वारा यह सिद्ध होता है कि पाँच सौ वर्ष पहले जो मानव-समाज था, उसमें से प्रत्येक मनुष्यका कुछ अंश आजके संसारके प्रत्येक मनुष्यमें विद्यमान है। इसलिए किसी भी आदमीको किसी भिन्न जाति अथवा अलग राष्ट्रमें संकुचित कर देना महान हिमाक़त है।'

जीव-विज्ञानके महान रूसी आचार्य जैनिकीने अपने प्रयोगोंसे यह प्रमाणित कर दिया है कि मानव-समाजके मूलमें एक ही बीज विद्यमान है—एक ही प्रकारके अणुसे, जो उसमें सम्मिलित है, असंख्य मानव-समाजकी उत्पत्ति हुई है। डॉ० एफ० निकोलाई नामक एक जर्मन विद्वानने, जिसे पिछले महा-युद्धमें अपने देशसे भागना पड़ा था, 'बायलॉजी आफ़ वार'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(युद्धका जीव-विज्ञान) नामक एक पुस्तक लिखी थी और उसमें भी इसी सत्यका उद्घाटन किया था।

विज्ञानकी इन विद्वत्तापूर्ण बातोंका संग्रह तो सुशिक्षित व्यक्तियोंके लिए होना चाहिए; पर साधारण जन-समाजको तो सीधी-सादी भाषामें लिखे हुए ऐसे ग्रन्थ, ट्रैक्ट अथवा लेख चाहिएँ, जिनमें भिन्न-भिन्न देशों तथा जातियोंके महापुरुषोंके जीवन-वृत्तान्त हों और जिन्हें पढ़कर जनताको यह विश्वास हो जाय कि लोकका कल्याण करनेवाली आत्माएँ सभी जातियों अथवा देशोंमें जन्म लेती हैं। जिस समय महात्मा गांधीने लिखा था कि 'जब तक अंगरेज़-जातिमें एक भी ऐण्ड्रूज़ विद्यमान है, तब तक हम अंगरेज़-जातिसे द्वेष नहीं कर सकते', उस समय उन्होंने एक अत्यन्त दूरदर्शितायुक्त तथा महत्त्वपूर्ण बात कही थी।

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी एक चिट्ठीमें दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़को लिखा था—'किसी भी जाति अथवा राष्ट्रके विषयमें फ़ैसला देते हुए हमें उस जाति अथवा राष्ट्रके सर्वोत्तम पुरुषोंको ही ध्यानमें रखना चाहिए।' स्वयं हम यही चाहते हैं कि भारतके विषयमें निर्णय करते समय विदेशी लोग महात्माजी तथा कवीन्द्रके गौरवको ध्यानमें रखें।

एक बात और है, जो हमें न भूलनी चाहिए। वह यह कि जिन लोगोंको हमने अपना विरोधी समझ रखा है, उनके दुर्गुणोंका निरन्तर ध्यान करनेसे हम उन दुर्गुणोंको ग्रहण कर लेंगे। आयरलैण्डके महान लेखक, कवि और चित्रकार स्वर्गीय जार्ज रसेल (ए० ई०) ने अपनी एक पुस्तकमें लिखा था—'राष्ट्रीय आवेशोंमें जातीय विद्वेष सबसे अधिक सस्ती और सबसे अधिक नीच भावना है, और जिस तरह प्रेमके विषयमें यह प्राकृतिक नियम है कि जिससे प्रेम करोगे उसीके तद्रूप हो जाओगे, उसी प्रकार द्वेषका भी यही नियम है। जिसका हम निरन्तर ध्यान करते हैं, उसीके रूपमें हम परिवर्त्तित हो जाते हैं। जिसको हम पूजा करते हैं, उच्च भावों द्वारा उसीका हम साम्य प्राप्त करते हैं, और जिससे हम द्वेष करते हैं, पतित भावना द्वारा तद्रूप हो जाते हैं।' श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें यही भाव प्रकट किया गया है :—

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम॥
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः।
याति तत्साम्यतां राजन् पूर्व रूपमसन्त्यजन्॥

—अर्थात देहधारी जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे जिस किसीमें भी सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है, अन्तमें वह तद्रूप हो जाता है। जिस प्रकार भृंगी कीट द्वारा अपने बिलमें बन्द किया हुआ कीड़ा भयसे उसीका ध्यान करते-करते अन्तमें अपने पूर्व रूपको छोड़कर उसीके समान रूपवाला हो जाता है।

स्वयं अपनी अन्तरात्माके हितके लिए यह आवश्यक है कि हम दूसरोंके गुणोंका ही चिन्तन करें। जो महानुभाव बूढ़े हो चुके हैं—और अविश्वास अथवा विद्वेष करना आत्माके बुढ़ापेकी निशानी है—उनसे हमें कुछ नहीं कहना; पर नवयुवकोंसे हम यह आशा अवश्य रखते हैं कि वे इस विद्वेषसे ऊपर उठें।

एक कार्यक्रम

महान कार्य तो महापुरुषों द्वारा ही हो सकते हैं। अभी सुप्रसिद्ध अंगरेज़ विचारक बरट्रेण्ड रसेलने एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखकर अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी स्थापनापर ज़ोर दिया है, और इस बातकी सिफ़ारिश की है कि सभी देशोंकी शिक्षाका क्रम इस विश्वविद्यालयके आदेशानुसार निश्चित किया जाय। उनका कथन है कि जब तक युवकोंकी शिक्षा-प्रणालीको अपने हाथमें नहीं लिया जायगा और भिन्न-भिन्न राष्ट्र अपने युवकोंको मनमानी शिक्षा देते रहेंगे, तब तक इस अभागे संसारसे महा-युद्ध उठ नहीं सकते। तानाशाही देशोंमें लड़कोंको युद्धके लिए वैसे ही तैयार किया जाता है, जैसे फैक्टरियोंमें बम इत्यादि। रसेलके कहनेका मतलब यह है कि जापान तथा जर्मनी इत्यादिकी शिक्षा-पद्धतिमें आमूल परिवर्त्तन करना होगा। स्वयं अपने देश इंग्लैण्डकी शिक्षा-पद्धतिको वे दोषपूर्ण मानते हैं। खास तौरसे भिन्न-भिन्न देशोंमें ऐतिहासिक तथ्योंकी पढ़ाईमें जिस परस्पर-विरोधी नीतिसे काम लिया जाता है, उस नीतिको जड़से उखाड़ देना वे अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। खैर, यह तो युद्धके बादकी बात है। और जब कभी इस प्रश्नपर विचार करनेका अवसर आयगा, तब श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री और सर राधाकृष्णन-जैसे विद्वान ही उसपर अपने विचार प्रकट करेंगे। इस बीचमें हमारे-जैसे छोटे-छोटे लेखक क्या करें?

यदि हम लोग आपसमें मिलकर प्रारम्भिक पाठशालाओंसे लेकर मैट्रिक क्लास तकके लिए ऐसे पाठ्यग्रन्थ बना दें, जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे निबन्ध या पाठ लिखे गए हों, तो उनके द्वारा नवयुवकों तथा नवयुवतियोंमें सद्भावनाका काफ़ी प्रचार हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी तक कहीं भी ऐसा पुस्तकालय नहीं है, जहाँ उन विदेशियोंके जीवन-चरितोंका मसाला मिल सके, जिन्होंने संसारके कल्याणके लिए उद्योग किया था। सम्पादकाचार्य सी० पी० स्काट, पत्रकार-शिरोमणि नेविनसन, कांग्रेसके संस्थापक ह्यूम इत्यादिके जीवन-चरितोंके लिए हमें जगह-जगह भटकना पड़ा है। उन पत्रोंकी पुरानी फाइलें भी चाहिएँ, जिनका दृष्टिकोण उदार रहा है।

यदि आज कोई विद्यार्थी अंगरेज़ों तथा भारतीयोंके सम्बन्धके विषयमें थीसिस या प्रबन्ध लिखना चाहे, तो एक भी स्थान ऐसा नहीं, जहाँ बैठकर वह अपने उद्देश्यकी पूर्त्ति कर सके। एक मुश्किल और भी है, वह यह कि हमारे विश्वविद्यालयोंने इस महत्त्वपूर्ण विषयकी ओर अभी ध्यान ही नहीं दिया। जिस प्रकार आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयमें रोड्स छात्रवृत्तियाँ हैं, उसी प्रकार हमारे विश्वविद्यालयोंमें भी इस विषयके अनुसन्धानके लिए कुछ स्कालरशिप होने चाहिएँ।

जो भी व्यक्ति इस विषयको अपनाना चाहे, उसके पास इतने साधन तो होने चाहिएँ कि वह समानशील व्यक्तियोंसे बातचीत कर सके और विचार-परिवर्त्तन द्वारा अपने कार्यको अग्रसर कर सके। मान लीजिए, कोई विदेशी विद्वान या राजनीतिज्ञ दिल्ली अथवा बम्बई या कलकत्ते आता है। यदि हम उससे मिलना चाहें, तो हमें इन स्थानोंकी यात्रा करनी पड़ेगी। यह कहाँसे की जाय? उनसे इण्टरव्यू लेनेके लिए भी ये यात्राएँ आवश्यक हैं।

भिन्न-भिन्न स्थानोंपर विदेशी महापुरुषोंके विषयमें भाषण देनेके लिए भी घूमना ज़रूरी है। उदाहरणार्थ हमारी यह अभिलाषा है कि देशके ३०-३५ स्थानोंको दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़के चित्र भेंट किए जायँ और वहाँ उनके विषयमें भाषण दिए जायँ। खास तौरसे मैं उन स्थलों तथा संस्थाओंको चुनना चाहता हूँ, जो दीनबन्धुके प्रिय थे अथवा जहाँ उनका कार्यक्षेत्र विशेष रूपसे रहा था। यह कार्य भी व्यय-साध्य है।

हम लोग अपनी भाषाको राष्ट्रभाषा मानते हैं, इसलिए हमारी ज़िम्मेवारी और भी अधिक है। सबसे पहले हम हिन्दीवालोंको ही यह कार्य अपने हाथमें लेना चाहिए। भविष्यमें यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जायगा, इसमें सन्देह नहीं। जो भी युवक अभीसे इस उद्देश्यको अपना लेंगे, उन्हें आगे चलकर अपने कार्यक्षेत्रको विस्तृत बनानेमें बड़ी सुविधा होगी। दूरदर्शिताका यह तकाज़ा है कि बिना विलम्बके इस यज्ञका श्रीगणेश कर दिया जाय।

वर्त्तमान युगको हम उषाके पूर्वका अन्धकार मानते हैं। आखिर मानव-समाज कब तक एक-दूसरेके सिर फोड़नेमें आनन्द लेता रहेगा? कभी-न-कभी तो ये मदान्ध राष्ट्र अपनी इन हरकतोंसे बाज़ आयँगे ही। द्वेष क्या कभी चिरस्थायी हो सकता है? आज भी परस्पर-विरोधी राष्ट्रोंमें ऐसे सैकड़ों व्यक्ति विद्यमान हैं, जो वर्त्तमान विघातक प्रवृत्तियोंको तुरन्त ही त्याज्य मानते हैं; पर उनका गला घोंट दिया गया है। वे बोल नहीं सकते। पुल बनानेवाले इंजीनियर लोग परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें जकड़े हुए हैं और मानव-समाजके बीचकी खाई अधिकाधिक चौड़ी होती जाती है!

इस निराशामय परिस्थितिमें 'सेतुबन्ध'का कोई कार्यक्रम जनताके सम्मुख रखनेमें खतरा ही खतरा है। पर हम लोगोंको निराश हर्गिज़ नहीं होना चाहिए। क्या वह गिलहरी, जिसने भगवान रामचन्द्रको सेतुबन्धके समय रेतीका कण भेंटमें दिया था, निराश हुई थी? कहते हैं कि गिलहरीकी पीठपर जो लकीरें पाई जाती हैं, वह भगवान द्वारा हाथसे प्रेम करनेपर बनी थीं। इसी प्रकार जो भी महानुभाव आज भिन्न-भिन्न जातियोंमें पारस्परिक सद्भाव फैलानेका उद्योग करेंगे, वे भी अखिल मानव-समाजके प्रेम-पात्र बनेंगे।

स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी दृष्टिसे सेतुबन्धका कार्य महान है। हमारे-जैसे लाखों ही व्यक्ति जब इसमें अपना जीवन खपा देंगे, तब कहीं जाकर यह परिपूर्ण होगा। कब यह समय होगा, इसकी चिन्ता हम क्यों करें? भगवानका आश्वासन तो हमारे साथ है ही—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

नारी

श्री तेजनारायण काक, एम० ए०

जीवनकी कण्टकित डालीमें तू फूल बनकर खिलती है, नारी!
अत्याचारके आतपमें या वेदनाकी वृष्टिमें निरन्तर सौरभ वितरण करना ही तेरी अलौकिक दिनचर्या है!
अपने हृदयका रक्त पिलाकर जिस कीटको तू जन्म देती है, जिसका तू पालन करती है, वही बड़ा होकर तुझे नष्ट कर डालता है!
आ, ओ उपेक्षिता! प्यारके डोरेमें गूँथकर तुझे अपने हृदयसे लगा लूँ—पथकी धूलिमें से उठाकर तुझे मस्तकपर चढ़ा लूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगला-साहित्यमें मंगल-काव्य

कुमारी प्रभामयी राय, एम० ए०

सेन-राजाओंके समयमें बंग-देशमें ब्राह्मण-संस्कृतिकी सत्ता प्रायः जम-सी चुकी थी ; लेकिन फिर भी जन-साधारणके बौद्ध धर्म-जात संस्कार मिट नहीं सके थे। दो धर्मोंके इसी संघर्ष-कालमें बँगला-साहित्यमें मंगल-काव्यका उद्भव हुआ। नए मतको लोगोंने ग्रहण तो किया ; किन्तु प्राचीनका पूर्ण परित्याग इतना सरल नहीं था। नवीन और पुरातनमें सामंजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा मंगल-काव्यमें देखी जाती है ; क्योंकि पौराणिक देव-देवियोंके साथ लौकिक देव-देवियोंकी स्थापना मंगल-काव्यकी एक विशेषता-सी है। इसीके साथ यह भी देखा जाता है कि इसके द्वारा सवर्ण हिन्दुओंके साथ अनुन्नत हिन्दुओंका और हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंका पारस्परिक सद्भाव उपस्थित किया गया है। इसी चेष्टाके फलस्वरूप 'सत्यपीर' और 'मंगल-चण्डी' प्रभृतिके चरित्र मिलते हैं।

देशपर इस समय मुसलमानोंका शासन था, और दुर्भाग्यसे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें बहुत सद्भाव भी नहीं था। केवल मुसलमानोंके राजनीतिक प्रभुत्वके कारण हिन्दुओंने अपने बाह्य जीवनमें मुसलमानोंकी सत्ता स्वीकार कर ली थी ; किन्तु गृहाभ्यन्तर-जीवनमें अपनी स्वतन्त्रता क़ायम रखनेकी वे पूर्ण चेष्टा कर रहे थे और स्वतन्त्रताकी इस भावनाको ठेस-पर-ठेस लगती चली जाती थी। हिन्दू इस पीड़ासे बचनेके लिए धर्मका अधिकाधिक आश्रय ले रहे थे। इस राष्ट्र-भीतिके अतिरिक्त अन्य व्याधियाँ, महामारियाँ और हिंस्र जन्तुओंका भय भी कम नहीं था। इस प्रकारके जो उपद्रव, उत्पीड़न, आकस्मिक उत्पात, अन्याय इत्यादि समाजको भोगने पड़ते थे, उनको देव-मर्यादा देनेकी तथा उन्हें ईश्वरकी अनियन्त्रित अभिलाषा सिद्ध करनेकी चेष्टा मंगल-काव्यमें प्रत्यक्ष है। शत्रु-द्वारा पीड़ित असहाय जाति इस समय जीवनके उच्चतर आदर्शसे भ्रष्ट होकर सब तरहसे दैव-अनुग्रहके ऊपर ही निर्भर कर रही थी। दुर्दशासे परित्राण लाभ करनेके लिए देव-देवियोंके ऊपर निर्भरशील लोगोंके जीवनके माहात्म्य मंगल-काव्योंके विषय हैं।

अनेक विशेषज्ञोंका अनुमान है कि बौद्ध प्रभावान्वित बंगाली समाजपर जब सर्वप्रथम हिन्दू-राजत्वकी प्रतिष्ठा हो रही थी और इसके कुछ ही बाद जब मुसलमानोंकी सत्ता जमने लगी थी, प्राचीनतम मंगल-काव्यकी सर्वप्रथम उत्पत्ति उसी समय हुई। चैतन्य-भागवत् प्रथम खण्डमें लिखा है :—

"मंगल-चण्डीर गीत करे जागरणे।
दम्भ करि विष हरि पूजे कोभजने॥"

इससे इस बातका प्रमाण मिलता है कि चैतन्यदेवके पूर्व चण्डी और विषहरिके गीतोंका देशमें बहुत प्रचार था। इसीसे अनेक पण्डितोंका विचार है कि मंगल-काव्यकी उत्पत्ति त्रयोदश शताब्दीमें हुई थी। यह भी मंगल-काव्यके निर्माण-समयका एक काफ़ी बड़ा प्रमाण है।

मंगल-काव्यके प्रथम युगमें लौकिक देवताओंका प्राधान्य था ; लेकिन परवर्त्ती मंगल-काव्योंमें संस्कृत-पुराणोक्त देवताओंके माहात्म्य वर्णित हैं। इसीलिए परवर्त्ती मंगल-काव्योंमें मौलिकताका अभाव देखा जाता है और पुराणोंकी अन्ध-अनुकृति देख पड़ती है। अन्नदा-मंगल, गंग-मंगल, दुर्गा-मंगल, भवानी-मंगल प्रभृति काव्य इसी श्रेणीके हैं। यद्यपि नए आर्य-संस्कारोंने स्त्री-देवताओंकी पूजा स्वीकार नहीं की थी और इसीकी प्रतिमूर्त्ति कल्पनासे 'चाँद सौदागर'की सृष्टि हुई थी ; लेकिन मंगल-काव्योंमें स्त्री-देवता ही अधिक हैं। व्याधि, महामारी प्रभृतिसे उद्धार पानेके लिए जिन विविध देवियोंकी कल्पना की गई थी, उनमें शीतला, ओलाबीबी, मंगल-चण्डी, मनसा प्रभृति प्रधान हैं।

इसी समय मनुष्य विचार करते थे कि व्याधि अथवा हिंस्र जन्तुओंसे उत्पीड़ित होना विविध देवियोंकी अकृपा है। इससे बचनेके लिए उनकी अभ्यर्थना करनी चाहिए। इन्हीं सब उप-धर्मोंको केन्द्रित करके भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय संगठित हो गए। अपने-अपने समुदायके पृष्ठ-पोषकोंने देव-देवियोंके माहात्म्य-प्रचारके लिए कहना शुरू किया कि स्वप्नमें उन्हें देवीके दर्शनका लाभ हुआ। दूसरे समुदायको अपनेसे हीन बतलानेके लिए और कई तरहकी चेष्टाएँ भी होती थीं। इस प्रकार इनके हाथों इन देव-देवियोंकी न तो दुर्गतिकी ही सीमा थी और न उनके माहात्म्यकी ही।

मंगल-काव्योंमें मनसा-मंगल और चण्डी-मंगल काव्य विशेष प्रसिद्ध हैं। इन दोनों देवियोंको लेकर जिस परिमाणमें साहित्य-रचना हुई है, उतनी और किसी देवीको लेकर नहीं हुई। यद्यपि कालिका-मंगल, गंगा-मंगल, शीतला-मंगल प्रभृति काव्य भी हैं, तथापि साहित्यमें मनसा-मंगल और चण्डी-मंगलका स्थान ही श्रेष्ठ माना जाता है। देवोंमें शिवका अस्तित्व कुछ विशेष है। इसके बाद धर्मदक्षिणराय, सत्यपीर आदि भी देख पड़ते हैं ; लेकिन चण्डी और मनसादेवी तक कोई देव या देवी नहीं पहुँच पाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूसमें दीवार-चित्र

श्री अजित मुखोपाध्याय, एम० ए०, एफ० आर० ए० आई० (लंदन)

आधुनिक युद्धमें जिस प्रकार हवाई-सेनाका होना नितान्त आवश्यक है, उसी प्रकार प्रचार-विभाग भी आधुनिक युद्ध-कौशलका एक ज़बरदस्त अस्त्र है। और फिर प्रचार-विभागमें भी रेडियोके बाद दीवारोंके चित्रों अथवा पोस्टरोंका ही

आगे बढ़नेवाले हिटलरके पीछेसे यह क्या हो रहा है ?

स्थान है। दीवारोंके चित्रोंकी कला राष्ट्रीय जागरण एवं युद्धमें कितनी प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली हो सकती है, इसका रूसकी 'अक्तूबरकी क्रान्ति'में सबसे पहले प्रमाण मिला था। एक ओर सुसज्जित टैंकोंसे लड़ाई लड़ी जा रही थी और दूसरी ओर हज़ारोंकी संख्यामें दीवारोंपर चित्र अंकित किए जा रहे थे, जिन्होंने मज़दूरों, किसानों और सैनिकोंके मन-प्राणमें एक नवजीवन और नवजागरणकी प्रेरणा भर दी थी। जगद्विख्यात रूसके कवि मायकोवस्कीने इन युद्ध-कलाकारोंके सहयोगसे अभूतपूर्व व्यंग्य-चित्रोंका निर्माण किया, जिसके लिए आज भी रूसवासी उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

युद्ध-सम्बन्धी दीवार-चित्रोंको प्रभावपूर्ण बनानेमें रूसी कलाकारोंको शुरूसे ही बहुत ज़्यादा परिश्रम करना पड़ा था। उन्होंने इस बातको भलीभाँति समझ लिया था कि कलाकारका काम पुरातनकी गतानुगतिक रीतिमें सुधार-संशोधनकर नए पथका निर्माण करना है। इसी कारण वहाँ इस दिशामें चारों ओर तरह तरहके प्रयोग किए जाने लगे। इसकी उन्नतिके लिए रूसकी 'युद्ध-कौंसिल'ने दीवार-चित्रोंके निर्माण एवं उनके निर्देश-सुझावका कार्य अपने हाथोंमें ले लिया। उसके प्रोत्साहन और प्रेरणासे रूसके दीवार-चित्र धीरे-धीरे उन्नत होने लगे और आज वे नए समाजके प्रतीक बन रहे हैं। मायकोवस्कीने युद्ध-चित्र अंकित करके ही सन्तोष नहीं कर लिया, बल्कि उन्हें अधिकाधिक स्पष्ट और भावपूर्ण भी बनाया। उदाहरणार्थ, रूसके प्रसिद्ध दीवार-चित्रोंके कलाकार मूर द्वारा अंकित एक चित्रमें लिखा हुआ है—'तुम स्वयंसेवक सेनामें भर्ती हुए हो।' कलाकार कोरेटजस्की, जिनके चित्रोंकी विषय-वस्तु विश्व-आन्दोलन है, के विख्यात 'इण्टरनेशनल' दीवार-चित्रोंका परिचय इस प्रकार दिया गया है—'यह अन्तिम युद्ध है, प्रत्येक अपने-अपने स्थानपर तैयार हो जाओ' (It is the final conflict, let each stand in his place.)। इनके चित्रोंमें लिखा हुआ है—'हम लोगोंमें से प्रत्येक विशेषज्ञ होगा' (We must ourselves become specialists.)।

शान्ति-कालके दीवार-चित्र भी—विशेषतः सन् १९३१ के आरम्भके, जब कि रूसमें गणतान्त्रिक प्रयोग शुरू हुए थे—रूसके आन्तरिक संगठनके इतिहासमें बहुमूल्य देन हैं। मेहनतकश लोगोंकी जिस शक्तिको बढ़ाकर रूस आज इतना बलिष्ठ हुआ है, उसी श्रम-शिल्प-सम्बन्धी कल-कारखानों और मज़दूरोंके जीवनको दीवार-चित्रोंमें बड़ी योग्यतापूर्वक अंकित किया गया है। इस समयके दीवार-चित्रोंकी एक खास विशेषता यह थी कि उनमें एक मूर्त्ति अंकितकर उसके इर्द-गिर्द ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण तैयार कर दिया जाता था, जिससे चित्रकार जो भाव प्रदर्शित करना चाहता हो, वह अनायास ही लोगोंकी समझमें आ जाय। इस प्रकार नवीन रूसके चित्रकारोंका कार्य नए समाजके नए मनुष्योंको लेकर आरम्भ हुआ।

सोवियत् रूसकी दीवार-चित्र-पद्धतिकी इतनी अधिक उन्नतिका प्रधान कारण रूसी चित्रकारोंका जन-आन्दोलनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध-सम्पर्क रखना है। दीवार-चित्रोंके इतिहासके आरम्भसे ही सोवियत् चित्रकारोंने कलाके प्रतिपाद्य विषयों और मूर्तियोंका समावेश इस प्रकार किया है कि जन-साधारणका मन सहज ही उद्वेलित हो उठे। इसके फल-स्वरूप दीवार-चित्रों और व्यंग्य-चित्रोंका प्रभाव हज़ारों लेखों व भाषणोंसे कहीं अधिक व्यापक रहा है और जन-साधारण वास्तविक जीवनको और भी गम्भीर एवं व्यापक भावसे समझने और उपलब्ध करनेमें समर्थ हुए हैं। विभिन्न रंगोंका समावेश भी इन दीवार-चित्रोंकी एक विशेषता है। सोवियत् चित्रकारोंका मत है कि रंगोंका प्रयोग किसी अंग-विशेषको चित्रित करनेके लिए ही नहीं किया जाता, बल्कि प्रतिपाद्य विषयका चरित्र-विश्लेषण ही उसका मुख्य उद्देश्य है।

दीवार-चित्रोंके साथ ही रूसमें व्यंग्य-चित्रों (कार्टूनों) का स्पष्ट सहयोग-सम्पर्क भी हुआ है। व्यंग्य-चित्रोंमें जिस प्रकार शत्रुकी दुर्बलता प्रदर्शित की जाती है, उसी प्रकार उनमें मनुष्योंके यथार्थ जीवनकी झाँकियाँ तथा राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाएँ भी दिखलाई जाती हैं। आज रूसमें व्यंग्य-चित्रोंके कितने ही दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र निकलते हैं, जिनका भार विचारशील चित्रकारोंपर आ पड़ा है। यही नहीं, रूसके प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'प्रावदा' और 'इज़वैस्तिया'ने भी प्रतिदिन दीवार-चित्रों और व्यंग्य-चित्रोंको छापकर जन-शिक्षाके कार्यमें स्तुत्य सहयोग दिया है। वर्त्तमान युद्धके मोर्चोंपर हज़ारोंकी संख्यामें दीवार-चित्रों और व्यंग्य-चित्रोंके मासिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ भेजी जाती हैं। कारण, वहाँ सैनिकोंको पढ़ने-लिखनेका बहुत कम अवसर मिलता है, इसलिए इन्हीं सब चित्रोंको देखकर वे राजनीतिक अवस्थाकी गति-विधि सहज ही समझ जाते हैं।

हिटलरवादके नाशके लिए दृढ़-प्रतिज्ञ रूसका एक यथार्थवादी चित्रण।

रूसमें युद्ध सम्बन्धी दीवार-चित्रोंके अलावा दैनिक जीवनकी घटनाओंको दीवार-चित्रोंमें काफ़ी चित्रित किया जाता है। कितनी ही बार तो कल-कारखानोंकी कठिन समस्याओंको दीवार-चित्रोंकी सहायतासे जनताके लिए सहज बोधगम्य बनाया गया है। शिक्षण-संस्थाओंमें भी दीवार-चित्रोंकी बहुलता है। तरह-तरहकी घटनाओंपर चित्र बनाए गए हैं। हमारे देशमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे पर्दोंपर बने चित्रों द्वारा जन-शिक्षाकी रीति आदिकालसे प्रचलित है, उसी प्रकार रूसमें संगीत, अभिनय, शिक्षा, कृषि, कला-कौशल आदिके प्रचारमें दीवार-चित्रोंका ज़बरदस्त हाथ है। लोक-शिक्षाके हिसाबसे दीवार-चित्रोंकी माँग बढ़ जानेके मूलमें निश्चय ही रूसकी अर्थनीतिक समस्याका समाधान और उद्योग-धन्धोंका व्यापक प्रसार है। १९२५ से सोवियत् रूसकी दीवार-चित्र-कलामें जिस सुनिर्दिष्ट मार्गका अवलम्बन किया जा रहा है, उसे सहज ही स्पष्टतया समझा जा सकता है। परम्पराके अन्धानुकरणके लिए वहाँ बिल्कुल स्थान नहीं है। वहाँ अवस्था-विशेषमें अंकन-रीति भी बदल रही है। उदाहरण-स्वरूप कहा जा सकता है कि सोवियत्के दीवार-चित्रोंमें पहले-पहल आलोक-चित्रोंको तरह-तरहसे काटकर बैठाया जाता था; पर समयके परिवर्त्तनके साथ-साथ यह प्रथा अब उठ-सी गई है। अब रंगोंका प्रयोग शुरू हो गया है। वर्त्तमान रूसमें दीवार-चित्र सिर्फ़ प्रचारके उद्देश्यसे ही नहीं बनाए जाते, बल्कि कलाकी दृष्टिसे भी उनका स्थान बहुत ऊँचा और महत्त्वपूर्ण है। कदाचित् इसीलिए सोवियत्-संघकी राष्ट्रीय सम्पत्तिके खयालसे दीवार-चित्रोंको वहाँके सभी प्रसिद्ध अजायबघरोंमें स्थान मिला है।

साधारणतः हमारे देशमें दीवार-चित्र कहनेसे सस्ते बाज़ारू चित्रोंका ही बोध होता है; किन्तु सोवियत्-संघमें दीवार-चित्र हल्के न हो जायँ, इसकी पर्याप्त व्यवस्था है। किसी जातिको सुनिर्दिष्ट पथपर अग्रसर होनेमें दीवार-चित्र कितना और किस रूपमें सहायता और प्रेरणा दे सकते हैं, सोवियत्-संघके दीवार-चित्र इसके उज्ज्वल दृष्टान्त हैं।

स्पेनके पिछले गृह-युद्धमें रूसी दीवार-चित्रोंकी प्रथाका अनुकरणकर सारे राष्ट्रके मनमें नवजागरणका भाव भर दिया गया था। प्रसिद्ध कलाकार पिकासोने स्पेनके दीवार-चित्रोंके अंकनमें सहयोग दिया था। संसारकी कलाके इतिहासमें स्पेनके दीवार-चित्रोंका बहुत ज़्यादा मूल्य और महत्त्व है। स्पेनके समान चीनमें भी रूसके युद्ध-सम्बन्धी दीवार-चित्रोंका निर्माण किया गया है, जो जन-साधारणको आज उत्साह, शिक्षा और संगठित होनेकी प्रेरणा दे रहे हैं। इस समय इंग्लैण्डमें भी

रूस-जर्मनीमें हुई अनाक्रमण-संधि (१९३९) का उपसंहार।

दीवार-चित्रोंकी माँग क्रमशः बढ़ रही है और गत वर्ष वहाँ लोगोंको शिक्षा देनेके लिए रूस और स्पेनके युद्ध-सम्बन्धी दीवार-चित्रोंका कितनी ही बार प्रदर्शन किया गया था। बीसवीं शताब्दीकी बर्बरताके विरुद्ध नर-नारीकी मुक्ति और आगे बढ़नेके पथमें इन दीवार-चित्रों और व्यंग्य-चित्रोंका कितना ज़बरदस्त हाथ है, हमारे लिए इसे समझनेका समय आ गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीका उपन्यास-साहित्य

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सम्भवतः भरतपुर - अधिवेशनमें कहा था—"हिन्दीको सम्पूर्ण भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा बनानेके लिए जितना प्रयत्न किया जाता है, उतना प्रयत्न और उतनी शक्ति यदि हिन्दीका साहित्य-निर्माण करनेमें व्यय की जाय, तो उससे हिन्दीका बहुत बड़ा हित हो जाय।" महाकविकी इस उक्तिको लेकर हिन्दी-जगतमें कुछ चर्चा भी हुई थी और हिन्दीके अनेक हिमायतियोंने उसे पसन्द नहीं किया था। परन्तु हमें उनकी इस उक्तिमें काफ़ी तथ्य दिखाई देता है और हिन्दीकी वास्तविक उन्नतिका माप हम उसके साहित्यसे ही करते हैं।

इसमें भी सन्देह नहीं कि हिन्दीका साहित्य सब मिलाकर अच्छी आशाजनक रफ़्तारसे उन्नति कर रहा है। इन दिनोंकी बात जाने दीजिए। वर्त्तमान महायुद्धने संसार-भरकी साहित्यिक प्रगतिको भारी बाधा पहुँचाई है; तथापि यह बाधा सामयिक है, इसमें सन्देह नहीं। महायुद्धके बाद साहित्यमें और भी बड़ी प्रगति दिखाई देगी। पिछले १५-२० बरसोंमें हिन्दी-साहित्यके अनेक क्षेत्रोंमें बहुत आशाजनक उन्नति दिखाई दे रही थी। इन क्षेत्रोंमें कविता और कहानी विशेष उल्लेखनीय हैं। पिछले ५० वर्षोंमें हिन्दी-कविताने जैसे दो-तीन सदियोंका मार्ग तय कर लिया है। आज यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि सब मिलाकर कहानी और कविताकी दृष्टिसे हिन्दी कमसे कम भारतवर्षकी किसी भी प्रान्तीय भाषासे पिछड़ी हुई नहीं है।

परन्तु साहित्यके एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंगकी दृष्टिसे हिन्दी अभी तक बहुत पिछड़ी हुई है, और यह अंग है उपन्यास। नाटकोंकी दृष्टिसे भी हिन्दी काफ़ी पिछड़ी हुई अवस्थामें है। परन्तु नाटक-साहित्यकी कमज़ोरीका कारण जहाँ बहुत स्पष्ट दिखाई दे जाता है, वहाँ उपन्यास-साहित्यकी कमज़ोरीका कारण आसानीसे दिखाई नहीं देता। नाटककी कमज़ोरीका कारण हिन्दीमें रंगमंचका अभाव है। यदि हिन्दी-जनता इस ओर ध्यान देगी, तो अच्छे रंगमंचकी विद्यमानतासे हिन्दीमें श्रेष्ठकोटिके नाटकोंकी रचना भी होने लगेगी; किन्तु उपन्यासके बारेमें यह बात नहीं है।

बीसवीं सदीमें साहित्यमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान उपन्यासोंका बन गया है। इसका एक प्रमाण यह है कि साहित्यका नोबेल-पुरस्कार जितनी अधिक बार उपन्यासोंपर दिया गया है, उसका दशमांश भी साहित्यके किसी एक अंगपर नहीं दिया गया। दूसरी ओर हिन्दीका सबसे बड़ा माना जानेवाला, साहित्यका मंगलाप्रसाद-पुरस्कार (यहाँ साहित्यसे कविता, कहानी, उपन्यास और आलोचना ही अभिप्रेत है) आज तक एक बार भी किसी उपन्यासपर नहीं दिया गया। साहित्यमें उपन्यासकी इतनी अधिक महत्ता बढ़ जानेपर भी यह एक आश्चर्यकी बात है कि उपन्यासकी टेकनीकको बाँधनेका, उसे सीमित करनेका प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ। बीसवीं सदीमें कहानीकी लोकप्रियता भी बहुत अधिक बढ़ी है। महत्त्वकी दृष्टिसे तो नहीं, पर लोकप्रियताकी दृष्टिसे कहानी शायद उपन्यासोंको भी पीछे छोड़ जाय। कहानीको अपनी इस लोकप्रियताका भारी मूल्य चुकाना पड़ा है। बीसवीं सदीमें कहानीकी टेकनीक बहुत विकसित हो गई है, और उस टेकनीकको भली प्रकार समझे बिना आज कोई व्यक्ति केवल अपनी प्रतिभाके बलपर प्रथम श्रेणीका कहानी-लेखक नहीं बन सकता। कहानीकी इस वर्त्तमान टेकनीकने लेखककी बहुत-सी आज़ादी छीन ली है।

इधर उपन्यास-लेखक आज भी पूरी तरह आज़ाद है। यह समझना तो भूल होगी कि उपन्यासकी कोई टेकनीक है ही नहीं। फिर भी आजका उपन्यास-लेखक उतना ही आज़ाद है, जितना आजसे १०० बरस पहलेका उपन्यास-लेखक था। वास्तवमें उपन्यास-रचना एक नई काल्पनिक सृष्टिकी रचनाके समान है। इस काल्पनिक सृष्टिकी रचनामें लेखकको पूरी आज़ादी है; परन्तु लेखककी परीक्षा इसी बातमें है कि वह अपनी इस काल्पनिक सृष्टिको कितना वास्तविक, कितना आकर्षक और कितना सहेतुक बना पाया है। उपन्यासमें लेखक चाहे जिस तरहका और चाहे जितना छोटा या बड़ा कथानक ले सकता है; परन्तु इस कथानकका सम्पूर्ण औचित्य पाठकको उसी उपन्यासमें से मिलना चाहिए। उपन्यासकी कोई बात थोपी हुई, लादी हुई या नितरती हुई नहीं रह जानी चाहिए।

उक्त दृष्टिसे हिन्दीके अधिकांश उपन्यास बहुत कमज़ोर-से प्रतीत होते हैं। यह और भी अधिक चिन्ताका विषय है कि हिन्दीके पाठक इस ओर बहुत कम जागरूक हैं। जहाँ तक उपन्यासोंका सम्बन्ध है, हिन्दीके अधिकांश सर्वसाधारण पाठक अधकचरे और हीन कोटिके मौलिक कहे जानेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासोंसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि हिन्दीमें उपन्यास पढ़नेवालोंकी संख्य अन्य भारतीय भाषाओंके मुक़ाबलेमें कम नहीं और बाबू देवकीनन्दन खत्रीके तिलस्मी उपन्यासोंसे लेकर बाबू सर्वदानन्द वर्माके 'आधुनिकतम' कहे जानेवाले 'नरमेध' उपन्यास तक हिन्दीमें सैकड़ों-हज़ारों उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। एक अतिरिक्त खेदकी बात यह है कि उपन्यासोंके प्रतिपाद्य विषयमें ज़मीन-आस्मानका अन्तर आ जानेपर भी आजसे ४०-५० साल पहलेके तिलस्मी उपन्यासोंसे अधिकांश अर्वाचीन सामाजिक उपन्यास विशेष श्रेष्ठ नहीं कहे जा सकते।

हमारे अधिकांश उपन्यासोंका धरातल बहुत ही कमज़ोर है। उनमें नवीनता और सूझकी कमी है। फिर भी हिन्दीमें 'उपन्यास-सम्राट'-जैसे विशेषण बहुत आसानीसे मिल जाते हैं, और जब हमारे नौसिखिए लेखक शुरूसे ही इस बातका दावा करने लगते हैं कि वे हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं, तो हिन्दी-जनता उनका मज़ाक न उड़ाकर प्रायः उनके रौबमें आ जाती है। परिणाम यह होता है कि हिन्दी-उपन्यासोंका धरातल ऊँचा नहीं होने पाता। कुछ अपवादोंको छोड़कर हमारे उपन्यासकारोंका अध्ययन, अनुभव, मालूमात और प्रतिभा औसत दर्जेसे भी कम है। ये लोग जिस तरहकी अपरिपक्व-सी रचना हिन्दी-पाठकोंके सम्मुख पेश कर देते हैं, पाठक उसीको सिरसे लगाकर स्वीकार कर लेते हैं। उस वस्तुकी अमौलिकता, हीनता और अयथार्थताकी ओर हमारे साधारण पाठकोंका ध्यान ही नहीं जाता।

हाल ही में इस तरहका एक ज़बरदस्त उदाहरण मेरे सामने आया है। बाबू सर्वदानन्द वर्मा-लिखित 'नरमेध'की चर्चा मैंने अनेक जगह सुनी और पढ़ी थी। परन्तु हाल ही में जब जिस किसी तरह मैंने यह उपन्यास पढ़ डाला, तो उपन्यासके आन्तरिक दौर्बल्य और लेखकके दम्भको देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। बाबू सर्वदानन्दने अपने प्रारम्भिक वक्तव्यमें लिखा है—"मुझे प्रसन्नता है कि उपन्यासकारके रूपमें हिन्दी-संसारने मुझे काफ़ी आगे देखा। नए उपन्यास-लेखकोंमें मुझे अग्रणी कहा गया। हिन्दी-संसारने जैनेन्द्र, भगवतीप्रसाद वाजपेयी और अज्ञेयके साथ आधुनिक युगके सर्वश्रेष्ठ तीन उपन्यास-लेखकोंमें मेरा भी नाम लिया। यह बहुत बड़ा सम्मान है। एक उपन्यासके बलपर इतनी प्रसिद्धि कम ही लोगोंको मिल पाती है। चाहूँ तो इस बातको लेकर उचित गर्व कर सकता हूँ। दिल्ली और लखनऊ-रेडियोने भी मुझे आस्मानपर चढ़ाया।"

इस उपन्यासका 'मैंने देखा' (मतलब शायद परिचयसे है) हिन्दी-संसारके दूसरे सर्वश्रेष्ठ लेखक यानी श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयीने लिखा है। उनका कहना है—"जो लोग कहा करते हैं कि हिन्दी-कथा-साहित्य बंग-कथा-साहित्यकी सस्ती भावुकताका अन्ध अनुकरण है, 'नरमेध' उन लोगोंके लिए एक तगड़ा और ज़बरदस्त उत्तर है।" 'हिन्दी-संसार'ने किस दिन सर्वदानन्द वर्माको 'आधुनिक युगके तीन सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखकोंमें गिना'—यह तो मुझे मालूम नहीं और न यही मालूम है कि कौन लोग हिन्दी-कथा-साहित्य (Fiction) को बंग-कथा-साहित्यकी सस्ती भावुकता (बंग-कथा-साहित्यमें क्या सिर्फ़ 'सस्ती भावुकता' ही है?) का अन्ध-अनुकरण मानते हैं; परन्तु 'नरमेध'को पढ़कर इतना मुझे ज़रूर मालूम हो गया है कि इस उपन्यासका लेखक न केवल प्राणहीन भावुकताका एक ज़बरदस्त शिकार है, अपितु उसमें सिर्फ़ अपनेको ही ठीक माननेका दम्भ कूट-कूटकर भरा हुआ है।

पिछली पीढ़ीके सामाजिक उपन्यासोंमें वृद्ध-विवाहका विरोध और विधवा-विवाहका समर्थन करनेके लिए अनेक कथानकोंमें युवती सौतेली मांसे सौतेले पुत्रके अनुचित सम्बन्ध और विधवा बहनोंका वेश्यालय-प्रवेश आदि दिखाया गया था। 'नरमेध'का हीरो अपने पिताके वृद्ध-विवाहके विरोधमें घरसे भागता है और पहली ही रात अपने एक घनिष्ठ मित्रकी पत्नीको 'सतीसे असती' बना देता है; उसके बाद अनजानमें वह अपनी सौतेली माँको गर्भवती बना देता है। 'नरमेध'के इस कथानकमें आधुनिकता इस बातकी है कि जहाँ पिछली पीढ़ीके समाज-सुधारक लेखक इस तरहके कथानकों द्वारा वृद्ध-विवाहका निषेध और विधवा-विवाहका समर्थन करना चाहते थे, वहाँ सर्वदानन्द वर्मा अपने इस उपन्यास द्वारा इस बातका प्रचार करना चाहते हैं (जैसा कि उन्होंने उपन्यासकी भूमिकामें लिखा है) कि 'सतीत्व पूँजीवादकी उपज है', इसलिए विवाहिता नारियोंको इस बातकी आज़ादी होनी चाहिए कि वैवाहिक सम्बन्धके लिए जब और जिस 'नरको वे पसन्द करें', उसीके साथ यह सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

नर-नारीके पारस्परिक सम्बन्धोंके बारेमें सर्वदानन्दजीके विचार ग़लत हैं या सही, इस सम्बन्धमें मुझे कुछ भी नहीं कहना। मुझे तो उनसे शिकायत इतनी ही है कि उनके ये दक़ियानूसी या क्रान्तिकारी विचार उपन्यासकी भित्ति नहीं बन पाए। वे बेचारे सौतेले माँ-बेटेके अवैध सम्बन्धोंके पुराने कथानकमें साफ़ तौरसे पृथक् नितरते हुए अवलम्बनस्थ-से प्रतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। उनके विचार, जहाँ तक उपन्यासका सम्बन्ध है, उनके हीरोकी असीम निर्लज्जता और लेखककी असंयत भावुकतासे भरे उद्‌गारोंका परिधान पहनकर ही पाठकके सामने आते हैं; उपन्यासकी सृष्टिका भाग बनकर नहीं। इसपर भी श्री सर्वदानन्द वर्माने अपने 'पहले'में जो दम्भ-भरे दावे पेश किए हैं, उनकी मिसाल शायद हिन्दीमें ही मिल सकती है।

(२)

हिन्दीमें उपन्यासके प्रारम्भका श्रेय बाबू देवकीनन्दन खत्रीको मिलना चाहिए। उनके तिलस्मी और चक्करदार उपन्यासोंका एकमात्र उद्देश्य पाठकका मनोरंजन था, और हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि अपने समयमें बाबू देवकीनन्दन खत्रीको अपने इस उद्देश्यमें पूरी सफलता मिली। १८वीं और १९वीं सदीमें संसारके उपन्यास-साहित्यमें नितान्त अनुत्तरदायित्वपूर्ण और एकदम ढील दी हुई कल्पनासे पूर्ण कथानक बनानेकी जो एक प्रवृत्ति काफ़ी लोकप्रिय हो गई थी, उस तरहकी रचनाओंमें बाबू देवकीनन्दन खत्रीके उपन्यास निस्सन्देह काफ़ी अंश तक एक मौलिक देन हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस तरहके उपन्यास केवल अर्द्ध-संस्कृत, अर्द्ध-विकसित अथवा अपरिपक्व मस्तिष्कको ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। अपने प्रिय पात्रोंको विकट परिस्थितियोंमें डालकर उन्हें ठीक मौकेपर बचाते चले जाना, अप्रिय या शैतान पात्रोंको सफलताकी ओमार पर ले जाकर नीचे पटक देना, अनुत्तरदायित्वपूर्ण और लगभग निराधार कल्पनाओंका धारावाहिक-सा लम्बा जाल बुनते चले जाना—इस ढंगके उपन्यासोंका रूप है। स्पष्टतः कलापूर्ण रचनाओंमें इस ढंगके उपन्यासोंको सम्मानका स्थान नहीं मिल सकता। फिर भी अपने क्षेत्रमें बाबू देवकीनन्दनने जो कुछ लिखा, उसका श्रेय उन्हें सदैव मिलता रहेगा।

बाबू देवकीनन्दन खत्रीकी देखादेखी इस ढंगके अनेक उपन्यास-लेखक हिन्दीमें पैदा हुए। तिलस्मी उपन्यासोंकी इस धाराको पहली रुकावट शुरू-शुरूके सामाजिक उपन्यासोंसे मिली। बँगलामें बीसवीं सदीके प्रारम्भसे ही खासे अच्छे उपन्यास लिखे जा रहे थे। सन् १९१० के आस-पास हिन्दीमें भी सामाजिक उपन्यासोंकी रचना होने लगी। इन्हीं दिनों बँगला-उपन्यासोंके हिन्दी-अनुवाद भी हिन्दी-जनताके सम्मुख आने शुरू हुए। परन्तु इन सामाजिक उपन्यासोंने तत्कालीन हिन्दी-जगत्पर कोई गहरा प्रभाव नहीं डाला।

पिछले महायुद्धके साथ ही साथ मुन्शी धनपतराय नामक एक नवयुवक 'प्रेमचन्द' नामसे हिन्दीमें लिखने लगे। इस प्रतिभाशाली युवकका पहला उपन्यास हिन्दीमें 'सेवा-सदन' नामसे प्रकाशित हुआ। इस उपन्यासने हिन्दीके ऊँचे दर्जेके पाठकोंको हठात् अपनी ओर आकृष्ट किया। प्रेमचन्दजीसे आशाएँ की जाने लगीं। महायुद्धके बाद उन्होंने 'प्रेमाश्रम' नामसे अपना दूसरा उपन्यास हिन्दी-जगत्को भेंट किया। सन् १९२१-२२ में सत्याग्रह-आन्दोलनके साथ ही साथ प्रेमचन्दजीने 'रंगभूमि' नामसे लगभग १००० पृष्ठोंका एक उपन्यास लिखा और इस उपन्यासने उन्हें हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ और काफ़ी अंशों तक युगान्तरकारी उपन्यासकार बना दिया। हिन्दी-उपन्यासकारोंमें मुन्शी प्रेमचन्दका स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी कि सन् १९१६ से लेकर सन् १९३६ तकका मुन्शी प्रेमचन्दका इतिहास एक तरहसे हिन्दी-उपन्यासोंका इतिहास है।

अभी तक उपन्यास-साहित्य तीन दशाओंमें से होकर गुज़रा है—(१) तिलस्मी और प्रारम्भिक सामाजिक उपन्यास, (२) प्रेमचन्द-स्कूलके आदर्शवादी उपन्यास और (३) आधुनिक उपन्यास। इनमें से पहली दशा कलाकी दृष्टिसे बहुत कम महत्त्वपूर्ण है और तीसरी दशा अभी तक एकदम अपरिपक्व और जैसे अन्धकारमें टटोलती हुई-सी जान पड़ती है। (उसके सम्बन्धमें मैं इस लेखके चौथे भागमें लिखूँगा।) अभी तक जो-कुछ महत्त्वपूर्ण है, उसका अधिकांश प्रेमचन्द-स्कूलके उपन्यासोंमें है। यह भी निस्संकोच कहा जा सकता है कि अभी तक प्रेमचन्द-स्कूल ही हिन्दी-उपन्यासोंका वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है।

एक बात और भी। मेरी यह भी धारणा है कि पिछले १०० सालोंमें हिन्दीके किसी भी एक लेखकने हिन्दी और भारतवर्षकी अन्य प्रान्तीय भाषाओंपर इतना अधिक और व्यापक प्रभाव नहीं डाला, जितना मुन्शी प्रेमचन्दने। मैं यह भी मानता हूँ कि एक कविकी अपेक्षा एक उपन्यासकार दूसरी भाषाओंमें अधिक आसानीके साथ लोकप्रिय हो सकता है। अनुवादकी कठिनाई और भावोंके आधारभूत भेदके कारण जहाँ एक भाषाका कवि दूसरी भाषामें उतनी आसानीके साथ पसन्द नहीं किया जा सकता, वहाँ एक उपन्यासकारकी रचनाका मूल्य आँकनेके लिए दूसरी भाषावालोंको भी बहुत कठिनाई नहीं होती। यह भेद होते हुए भी मुन्शी प्रमचन्दको हिन्दी-जगत्की सर्वकालीन श्रेष्ठ प्रतिभाओंमें आसानीसे स्थान दिया जा सकता है और उन्हें खड़ी बोलीका अभी तकका सबसे अधिक लोकप्रिय लेखक कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुन्शी प्रेमचन्दकी यह सब तारीफ़ कर जानेके बाद भी मैं कहूँगा कि एक उपन्यासकारकी दृष्टिसे वे प्रथम श्रेणीके लेखक नहीं थे। कहानी-लेखक वे प्रथम कोटिके अवश्य थे; परन्तु उपन्यास-लेखककी दृष्टिसे उन्हें अधिकसे अधिक ऊँची द्वितीय श्रेणीका ही कहा जा सकता है। इसपर भी प्रेमचन्द विश्व-साहित्यमें स्थान पानेके योग्य हैं। मेरी रायमें स्व० शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय प्रथम श्रेणीके उपन्यासकार थे और उन्हें मैं भारतवर्षका सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार मानता हूँ। इसपर भी विश्व-साहित्यमें अन्य देशोंके पाठकोंके दृष्टिकोणसे मुन्शी प्रेमचन्द शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायकी अपेक्षा सम्भवतः अधिक लोकप्रिय सिद्ध होंगे। इसका कारण यह है कि प्रेमचन्दने अपने उपन्यासोंमें भारतवर्षके ग्राम्य जीवन और भारतीय जनताके आदर्शोंका जो चित्र खींचा है, वह शरच्चन्द्रके चित्रोंकी अपेक्षा अधिक व्यापक है, और इन चित्रोंका कैन्वस अपनी विशालताके कारण ही आसानीसे किसी भी पाठकको अपनी ओर खींच सकता है। दूसरी ओर शरच्चन्द्रके अनेक उपन्यास तो अन्य देशवासियोंको अपनी ओर आकृष्ट कर ही नहीं सकते। कारण, उनमें भारतवर्ष और विशेषकर बंगालकी स्थानीय समस्याओंका चित्रण किया गया है। विषय-भेदसे उपन्यासोंकी लोकप्रियतापर जो प्रभाव पड़ता है, उसका यह तथ्य एक अच्छा उदाहरण है। स्वयं अपनी भाषामें शरच्चन्द्रके उपन्यासोंको जो लोकप्रियता प्राप्त हुई है, उसका एक अंश ही अभी तक प्रेमचन्दको हिन्दीमें मिल पाई होगी।

प्रेमचन्द एक आदर्शवादी लेखक थे। 'कला कलाके लिए' वाला सिद्धान्त उन्हें स्वीकार नहीं था। यह बात जुदा है कि उनका आदर्शवाद एकदम अपरिवर्त्तनशील नहीं था। दूसरे दृष्टिकोणोंको समझनेका प्रयत्न वे पूरी ईमानदारीके साथ करते थे और अनेक उदाहरणोंमें यह भी देखा गया है कि किसी-किसी आदर्शके सम्बन्धमें उनका दृष्टिकोण बदलता गया है। आदर्शवादी होनेपर भी प्रेमचन्दकी मनोवृत्ति बहुत उदार थी। वे किसी बातमें कट्टर या उग्र नहीं थे। अपने हृदयकी सहज सहानुभूतिको और जीवनके सभी पहलुओंको समझनेके सहज स्वभावको उन्होंने आजीवन सतर्क रखा। इस दृष्टिकोणसे उनकी तुलना रूसके महान कलाकार लीओ टालस्टायसे की जा सकती है; बल्कि यहाँ तक कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी कि काउण्ट टालस्टायका जो स्थान रूसी-साहित्यमें है, वही स्थान प्रेमचन्दका भारतीय साहित्यमें है—इस अन्तरके साथ कि जहाँ टालस्टायसे रूसके कुलीन वर्गका बहुत श्रेष्ठ चित्र बन पड़ा है, वहाँ प्रेमचन्दको भारतवर्षकी दरिद्र जनताका चित्रण करनेमें विशेष सफलता मिली है। इस भेदका कारण तो स्पष्ट ही है। व्यक्तित्व और प्रभावकी दृष्टिसे भी इन दोनों साहित्यिकोंमें बहुत अन्तर है; परन्तु दोनोंके साहित्यिक आदर्शों और स्रोतोंमें जो समानता है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्रेमचन्दका साहित्यिक जीवन यद्यपि एक कहानी-लेखकके रूपमें शुरू हुआ, तथापि उनकी रुचि कहानीकी अपेक्षा उपन्यासोंकी ओर अधिक थी। एक बार उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था—'कहानी लिखनेकी अपेक्षा मुझे उपन्यास लिखनेमें अधिक आनन्द आता है।' उनकी लिखी कहानियोंकी कुल संख्या २५० से ३०० के बीच है। पृष्ठ-संख्याकी दृष्टिसे उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कहानियोंकी अपेक्षा लगभग दुगुने पृष्ठोंके उपन्यास लिखे। इसपर भी यह एक अर्थपूर्ण तथ्य है कि उन्हें उपन्यास लिखनेमें उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी कहानी लिखनेमें।

'हिन्दीका कहानी-साहित्य'-शीर्षक लेखमें* मैंने लिखा था—"मेरी रायके अनुसार भारतवर्षके तीनों सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकोंके क्षेत्र पृथक-पृथक हैं। (तब ये तीनों महान लेखक जीवित थे।) श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर मानव-हृदय और मानवात्माके लेखक हैं। हृदयकी सूक्ष्म अनुभूतियोंका चित्रण करनेमें उन्हें कमाल हासिल है। श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय परिवारके अथवा मानव-सम्बन्धके लेखक हैं। मनुष्य जहाँ अपने व्यक्तित्वको सुरक्षित रखकर दूसरे मनुष्यसे मिलता है, चाहे वह किसी भी सम्बन्धमें क्यों न मिले, वह शरच्चन्द्रका क्षेत्र है और इस क्षेत्रमें वे सर्वश्रेष्ठ हैं। उसके बाद जब मनुष्य अपना व्यक्तित्व खोकर समूहका, भीड़का, जनताका एक छोटा-सा अंग बन जाता है, तब प्रेमचन्दजीका क्षेत्र शुरू होता है। इस क्षेत्रमें एक व्यक्तिके मानसिक आघात-प्रत्याघातकी महत्ता बहुत कम रह जाती है, क्योंकि वह समष्टिका एक छोटा-सा और अधिकांश दशाओंमें तो नगण्य-सा भाग बन जाता है।"

उपर्युक्त स्थापना उपन्यास-साहित्यकी दृष्टिसे और भी अधिक पूर्णताके साथ की जा सकती है। प्रेमचन्दको अपने उपन्यासोंके जिन पात्रोंका निर्माण करनेमें वास्तविक सफलता मिली है, वे पात्र, सबके सब, प्रतिनिधि-पात्र हैं। वे एक व्यक्ति नहीं, वे खास क़िस्मके आदर्शों और खास टाइपका प्रतिनिधित्व करते हैं। जहाँ प्रेमचन्दने किसी रूपक व्यक्ति प्रतिनिधि-पात्रके स्थानपर व्यक्ति-पात्रका निर्माण करनेकी

* 'विशाल भारत'; फरवरी, १९३५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है, वहाँ प्रायः वे औसत दर्जेसे भी ऊपर नहीं उठ सके। एक उपन्यासकारके रूपमें प्रेमचन्दकी सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने भारतवर्षकी वास्तविक आत्माका चित्रण अपने उपन्यासोंमें किया है। एक आदर्शवादी लेखक होते हुए भी काफ़ी अंश तक—कमसे कम आधे अंश तक, वहाँ जहाँ वे ग्रामीण भारतका चित्रांकन करते हैं—वे यथार्थवादी भी रहे। उनकी कल्पनाकी सृष्टि भले ही पूर्ण और निर्दोष न हो, वह हृदयग्राही और साधार अवश्य है और प्रायः उसकी पीठपर एक महान देशके सैकड़ों-हज़ारों वर्षोंके अनुभूत आदर्श और लाखों-करोड़ों अभागोंकी जन्म-भरकी तीव्र अनुभूतियाँ विद्यमान हैं। और इसी दृष्टिसे मैं कहता हूँ कि केवल भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संसार-भरके उपन्यास-साहित्यकी दृष्टिसे प्रेमचन्दके उपन्यासोंका स्थान काफ़ी महत्त्वपूर्ण है।

जिस तरह प्रेमचन्द 'कला कलाके लिए'वाला सिद्धान्त नहीं मानते थे, उसी तरह वे इस बातको भी नहीं मानते थे कि प्रतिभाशाली लेखकको केवल उसी समय लिखना चाहिए, जिस-समय वह लिखनेकी मनोवृत्तिमें हो। 'प्रेरणा' (inspiration) की अपेक्षा 'पसीने' (perspiration) को वे ज़रा भी कम महत्व नहीं देते थे। वे स्वयं कहते थे कि 'लिखना मेरा व्यवसाय है', और इसी कारण वे बिला नाग़ा हर रोज़ लिखते थे। दिन-भरमें कमसे कम दो घण्टे लिखनेका उनका नियम था। उनके इस नियमके पक्षमें भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परिमाणकी दृष्टिसे अपनी छोटी आयुमें ही वे जितना-कुछ लिख गए, वह बहुत अच्छी और औसतसे काफ़ी ऊपर मात्रा है। इसी नियमके कारण उनकी दिलचस्पी भी विविध बनी रही। यह सब होते हुए भी, उनके इसी नियमके कारण, उनके उपन्यासोंमें अनेक जगह शिथिलताका दोष अवश्य आ गया है। कोशिश तो वे ज़रूर करते थे कि जिस दिन लिखनेका 'मूड' न हो, अथवा मानसिक प्रेरणा न हो, उस दिन वे कहानी और उपन्यास न लिखें; परन्तु आर्थिक समस्या और प्रकाशकों, प्रकाशकों और मित्रोंके तकाज़ोंके कारण वे बहुत बार अपनी इस कोशिशमें सफल नहीं हो पाते थे। मुख्यतः इसी कारण पैनी निगाहसे देखनेपर उनकी अनेक अच्छी-अच्छी रचनाओंमें भी कई जगह पैबन्द लगे हुए दिखाई दे जाते हैं।

प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंको चार श्रेणियोंमें बहुत आसानीसे बाँटा जा सकता है—(१) 'गोदान' (सर्वश्रेष्ठ)। (२) 'रंगभूमि', 'सेवा-सदन' और 'प्रेमाश्रम' (दूसरी श्रेणी)। (३) 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'ग़बन', 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' (तीसरी श्रेणी)। (४) 'वरदान' (निकृष्ट)। इनमें से सम्भवतः 'सेवा-सदन' प्रेमचन्दजीकी सबसे पहली रचना है। ('वरदान' उस ज़मानेकी चीज़ प्रतीत होता है, जिस ज़मानेमें वे बिल्कुल अपरिपक्व थे। उसकी बात जाने दीजिए।) कलाकी दृष्टिसे और कथानककी दृष्टिसे भी 'सेवा-सदन'में अनेक दोष हैं; परन्तु उसमें वह ताज़गी और वह जीवन प्रचुर मात्रामें ओत-प्रोत है, जो किसी अत्यन्त प्रतिभाशाली लेखककी पहली रचनामें प्रायः पाया जाता है। 'सेवा-सदन'में अस्वाभाविकता भी है और अनुपातसे अधिक भावुकता भी। इसपर भी वह प्रेमचन्दकी एक बहुत श्रेष्ठ रचना है। 'सेवा-सदन'को पढ़कर प्रेमचन्दके व्यक्तित्व और आदर्शोंको समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

पिछले महायुद्धकी समाप्तिके बाद भारतवर्षके राजनीतिक जीवनमें साधारणतः और इस देशकी सर्वसाधारण जनतामें विशेषतः जागृति और असन्तोषकी जो लहर व्याप्त हो गई थी, उसकी छाप 'प्रेमाश्रम'पर स्पष्ट दिखाई देती है। 'प्रेमाश्रम' का क्षेत्र 'सेवा-सदन'से काफ़ी अंशोंमें भिन्न है। मालूम होता है कि 'सेवा-सदन'में प्रेमचन्द अपने जीका सभी कुछ कह नहीं पाए थे। अभी बहुत-कुछ कहनेको बाक़ी बच रहा था। वह सब प्रेमचन्दने 'प्रेमाश्रम'में कहा है। इसीसे 'प्रेमाश्रम'में भी 'सेवा-सदन'की ताज़गी और जीवन उसकी अपेक्षा कुछ न्यून मात्रामें विद्यमान है। रचना-सौष्ठव और गढ़नकी दृष्टिसे 'प्रेमाश्रम' 'सेवा-सदन'की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। परन्तु सब मिलाकर मैं 'सेवा-सदन'को ही अधिक पसन्द करूँगा। 'प्रेमाश्रम'में प्रेमचन्दका आदर्शवाद और प्रचारकपन अनेक जगह सीमाको लाँघ गया है। सन् १९२१ के भारतीय राजनीतिक आन्दोलनने प्रेमचन्दके भावुक और राष्ट्रीयतासे पूर्ण हृदयको जो प्रेरणा दी, उसका एक अत्यन्त श्रेष्ठ फल 'रंगभूमि'के रूपमें हिन्दी-साहित्य-जगत्को मिला। कुल मिलाकर प्रेमचन्दजीने तीन राजनीतिक उपन्यास लिखे—'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि'। इन तीनों उपन्यासोंमें परस्पर काफ़ी समानता है। परन्तु इन तीनोंमें 'रंगभूमि' स्पष्टतः और निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है।

अपने सम्पूर्ण साहित्यिक जीवनमें प्रेमचन्दने दो ऐसे अमर पात्रोंकी सृष्टि की, जिनकी छाप विश्व-साहित्यपर अमिट रहेगी। ये दोनों पात्र हैं—'रंगभूमि'का सूरदास और 'गोदान'का होरी। एक अन्धा भिखमंगा है और दूसरा एक दरिद्र किसान; परन्तु ये दोनों अपाहिज और दरिद्र व्यक्ति भारतवर्षके वास्तविक प्रतिनिधि हैं। प्रेमचन्दने अपने इन दोनों पात्रों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्षकी आत्माकी पूर्णतः सफल अभिव्यक्ति की है।

भारतकी प्राचीन प्रथाओं, संस्थाओं और संस्कृतिकी रक्षा करनेका जितना श्रेय हमारे देशके गाँवोंको है, उतना किसी दूसरी चीज़को नहीं। भारतवर्षमें अनेक बड़े-बड़े राजनीतिक परिवर्त्तन होते रहे। मध्य-युग और उसके बाद मुस्लिम शासन-कालमें बहुत बार बरसों तक लगातार राजनीतिक उथल-पुथल और मार-काट भारतीय नगरोंके दैनिक जीवनका भाग-सा बनकर रही। परन्तु भारतवर्षके ये लाखों गाँव, सदियोंकी इस राजनीतिक उथल-पुथलके बीच भी, जिस तरह पूरी सफलताके साथ भारतीय आदर्शों और प्रथाओंकी रक्षा करते रहे, वह एक आश्चर्यसे पढ़ी जानेवाली वस्तु है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे राजनीतिक उथल-पुथल, युद्ध और मार-काटकी उग्र आँधी ऊपर-ऊपरसे ही गुज़र जाती थी; भारतवर्षके वास्तविक जीवनपर ज़रा-सी गर्द-गुबार पड़ जानेके अतिरिक्त उसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता था। परन्तु हमारे देशके स्वायत्त और अपनेमें पूर्ण इन ग्रामोंको भी अंगरेज़ी राज्यके साथ आनेवाले मशीन-युगने जैसे पूरी तरह झकझोरकर रख दिया, वह आजकलको ही, इस अर्वाचीन कालकी ही तो बात है। मुन्शी प्रेमचन्दने भारतीय ग्राम-संस्थापर मशीन-युगके प्रभावका जो चित्र 'रंगभूमि'में खींचा है, वह बहुत ही श्रेष्ठ, वास्तविक और अमिट है। चित्रका दूसरा पहलू उन्होंने नहीं दिखाया; परन्तु यह उनका अधिकार था कि वे अपना दृष्टिकोण ही अपने चित्रमें अंकित करते।

'रंगभूमि'में एक बहुत बड़ी कमज़ोरी भी है। उसमें दो उपन्यास पृथक-पृथक चल रहे हैं। इन दोनोंका परस्पर इतना कम सम्बन्ध है कि थोड़ा-बहुत घटा-बढ़ाकर उन्हें दो पृथक-पृथक उपन्यासोंमें आसानीके साथ बाँट दिया जा सकता है। एक उपन्यासका प्रधान पात्र सूरदास है और घटना-क्षेत्र पांडेपुर गाँव। दूसरे उपन्यासका प्रधान पात्र विनय है और घटना-क्षेत्र नगर और रियासतें। पहला उपन्यास वास्तविकता और लेखकके हृदयकी सहाभूतिके प्राचुर्यके कारण जहाँ सजीव है, वहाँ दूसरा उपन्यास एकांगी कल्पनाओं और अतिरंजित चित्रोंके कारण श्रेष्ठकोटिका नहीं है। इस दूसरे उपन्यासके अनेक पात्रोंको लेखकके हृदयकी पर्याप्त सहानुभूति नहीं मिली। उसमें अवास्तविकता और अस्वाभाविकताका भी अभाव नहीं। इस दूसरे उपन्यासमें अनेक बड़े-बड़े दोष आ गए हैं।

एक बात यहाँ भी स्पष्ट है। 'रंगभूमि'के उक्त दोनों उपन्यासोंमें से एकमें भी व्यक्तिकी महत्ता नहीं। सूरदास और उसके साथी खास क़िस्मकी भारतीय जनताके प्रतिनिधि हैं और दूसरे उपन्यासके पात्रोंको लेखकने पूँजीपति या अमीर-जमातका प्रतिनिधि बनानेका प्रयत्न किया है। इसमें उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली। नागरिक पात्रोंके व्यक्तित्वका निर्माण वे अभीष्ट कोटिका नहीं कर पाए; फिर भी यह तो स्पष्ट है कि चाहते वे उन्हें भी प्रतिनिधि-पात्र बनाना ही थे। इस तरह उक्त दोनों उपन्यासोंके पात्र कठपुतलियोंकी तरह लेखकके इशारोंपर नाचते हैं। उनका अपना व्यक्तित्व नहीं है। फिर भी जहाँ सामूहिक कार्यशीलताका सवाल आता है, दोनों ही उपन्यास श्रेष्ठ बन जाते हैं।

प्रेमचन्दसे न्याय करनेके लिए यहाँ एक बात कह देना आवश्यक है। मेरी रायमें हमारे देशमें बहुत समयसे व्यक्तिके जीवनको इतना अधिक बाँध दिया गया है कि उसके लिए किसी तरहकी स्वाधीनता बाक़ी ही नहीं बच रही। जीवनकी तुच्छातितुच्छ बातोंके सम्बन्धमें भी हमारे स्मृतिकारोंने हमारे लिए कोई आज़ादी नहीं छोड़ी। इसका एक बहुत हानिकर परिणाम इस देशके जन-साधारणकी इकाइयोंके व्यक्तित्वका विनाश हो जानेके रूपमें हुआ। सब ओरसे बँधकर हमारे समाजके व्यक्तियोंका मनोविज्ञान निस्सन्देह अध्ययनका एक विशेष विषय बन गया है। परन्तु यह भी स्पष्ट ही है कि भारतीय समाजमें से व्यक्तित्वका विनाश हो जानेके कारण उसका यथार्थ चित्रण केवल प्रतिनिधि-पात्रों द्वारा भी किया जा सकता है। और प्रेमचन्दने अपने उपन्यासोंमें ऐसा ही किया है।

'रंगभूमि'के बाद प्रेमचन्दने 'कायाकल्प' नामसे एक नये ढंगका उपन्यास लिखनेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। उन्होंने मृत्युका आवरण भेदकर दूसरे पार देखनेकी और विभिन्न जीवनोंमें परस्पर समन्वय करनेकी चेष्टा की; परन्तु 'कायाकल्प'के रूपमें उनकी यह चेष्टा प्राणवती नहीं बन पाई। वैसे 'कायाकल्प' बुरा उपन्यास नहीं। पढ़नेमें वह खासा दिलचस्प है। प्रेमचन्दका लेखन-चातुर्य और मनोरंजकता उसमें भी है; परन्तु इससे अधिक और कुछ नहीं। इसके बाद ५-६ बरसों तक प्रेमचन्दने मामूली दर्जेके सामाजिक उपन्यास लिखे—'प्रतिज्ञा', 'निर्मला' और 'ग्रबन'। इन सब उपन्यासोंकी रीढ़ बहुत कमज़ोर है। इन सामाजिक उपन्यासोंमें 'ग्रबन' सबसे अच्छा है। उसकी शैली खूब मँजी हुई है, कथानक दिलचस्प है और विस्तार मार्मिक हैं। तौरसे वह किसी सिद्धहस्त लेखककी रचना प्रतीत होती है; परन्तु रीढ़ उसकी भी काफ़ी कमज़ोर है। अस्वाभाविकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लचकीलापन 'गबन'में भी बहुत है और इसी कारण वह उपन्यास लगी-सी रचना मालूम होता है।

महात्मा गांधीके असहयोग-आन्दोलनका तीसरा परीक्षण फेल होनेके बाद लगभग सन् १९३३ में प्रेमचन्दने 'कर्मभूमि' लिखा। राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंकी आन्तरिक कमज़ोरियाँ दिखलाकर प्रेमचन्दने इस उपन्यासको यथार्थवादी उपन्यास बनानेका प्रयत्न तो किया; परन्तु इस प्रयत्नमें उन्हें यथेष्ट सफलता नहीं मिली। दूसरी ओर 'कर्मभूमि'के कथानकमें भी तीव्रता बहुत कम है। 'रंगभूमि'की स्पष्ट छाप उसपर है। इसी कारण 'कर्मभूमि' ऊँचे दर्जेका उपन्यास नहीं बन पाया।

'गोदान' प्रेमचन्दकी अन्तिम और मेरी रायमें उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। 'गोदान' लिखने तक उनकी शैली बहुत ही सध गई थी और कलाके सम्बन्धमें उनका अध्ययन और मनन भी बहुत बढ़-चढ़ गया था। वे यह जान गए थे कि आदर्शवादी उपन्यासका आदर्श भी उपन्यासके प्रधान पात्रको आदर्श पुरुषके रूपमें चित्रण करना नहीं होना चाहिए। आदर्श पात्रकी रचनाकर पाठककी सहानुभूति प्राप्त करनेका गुर, और चाहे जो-कुछ भी हो, कलापूर्ण नहीं है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि 'गोदान' लिखने तक प्रेमचन्दकी मनोवृत्ति घोर निराशापूर्ण हो उठी थी। इसी कारण 'गोदान'में एक गहरी निराशा प्रारम्भसे अन्त तक समान रूपसे व्याप्त है। आशाकी किरण तक भी उसमें दिखाई नहीं देती; परन्तु इस निराशामें उनका आदर्शवाद जैसे और भी निखर आया है। फलाफलसे एकदम अनासक्त होकर आदर्शको प्रेमचन्दने जीवनके एक आवश्यक और अनिवार्य अंगके रूपमें ले लिया है।

अपने संघर्षमय जीवनकी अन्तिम मञ्ज़िलपर पहुँचकर इस प्रतिभाशाली साहित्यिककी क़लमने 'गोदान'के होरीकी सृष्टि की—ऐसा होरी, जिसका जीवन अत्यन्त निराशापूर्ण होते हुए भी अकर्मण्य नहीं हुआ था; जो एकान्त अशिक्षित होते हुए भी महज़ अपने संस्कारोंके बलपर गीताका परम ज्ञानी और निस्संग पुरुष था। सम्पूर्ण जीवनमें आशाकी एक क्षीण आभा तक पाए बिना यह अशिक्षित और दरिद्र किसान एकाकी अपने जीवन-पथपर बढ़ता चला गया—बढ़ता ही चला गया। मानव-स्वभावकी सभी कमज़ोरियाँ इस दरिद्र किसानमें थीं; परन्तु हज़ारों बरस पुरानी आर्य-संस्कृति वंश-परम्पराको भेदती हुई जैसे बलात् उसकी प्रकृतिका एक आवश्यक अंग बन गई थी और उसने उसे स्वभावसे कर्म-भीरु बना दिया था। वह डरपोक था, प्रतिकूल परिस्थितियोंका शिकार था; परन्तु फिर भी उसके भीतरका मानव जैसे चिर-जाग्रत था। निस्सन्देह 'होरी' प्रेमचन्दके सम्पूर्ण साहित्यिक जीवनकी सर्वश्रेष्ठ सृष्टि है।

'गोदान'में भी दोष हैं। वह भी अनेक। 'रंगभूमि'के समान उसमें भी दो उपन्यास पृथक-पृथक चल रहे हैं, जिनमें से एक उपन्यास बहुत श्रेष्ठ है और दूसरा भी बुरा नहीं। 'रंग-भूमि'के नागरिक उपन्यासकी अपेक्षा 'गोदान'का नागरिक भाग भी अधिक श्रेष्ठ बन पड़ा है और यहाँ इन दोनों उपन्यासोंको परस्पर काफ़ी अच्छी तरह गूँथ देनेका भी प्रयत्न किया गया है। फिर भी 'गोदान'में जितने दोष हैं और जितना लचकीला-पन है, वह सब उसके नागरिक भागमें ही है। होरी-सम्बन्धी उपन्यासका भाग लगभग पूर्णतः निर्दोष रचना है। 'गोदान' निस्सन्देह एक बहुत श्रेष्ठ उपन्यास है। उसे हम हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ मौलिक उपन्यास कह सकते हैं। इस तरह लगभग २० बरसोंमें ही प्रेमचन्द हिन्दी-उपन्यासको कहाँसे कहाँ ले गए।

(आगामी अंकमें समाप्य)

स्व० डा० नीलरतन सरकार

श्री 'निर्मम'

संसारमें कुछ लोग जन्मसे ही बड़े होते हैं, कुछ लोग अपने बाहुबलसे बड़प्पन प्राप्त करते हैं और कुछ लोगोंपर बड़प्पन लाद दिया जाता है। निश्चय ही स्व० सर नीलरतन सरकार न तो जन्मसे ही कोई बहुत बड़े आदमी थे और न बड़प्पन उनपर लादा ही गया था; बल्कि अपने परिश्रमके बलपर ही वे जीवनमें इतना सम्मान और प्रसिद्धि प्राप्त कर सके थे। यद्यपि उन्हें सफलता जल्द ही मिल गई थी; पर इसके लिए उन्हें काफ़ी परिश्रम करना पड़ा था। उनके जीवनके आरम्भिक ३० वर्षों तक उनके सहयोगियोंके सिवा उन्हें कम ही लोग जानते थे।

स्व० सर नीलरतन सरकारका जीवन एक बड़ी मनोरंजक कहानी है। वे कितनी ही बातोंमें अपने देशवासियोंसे अद्वितीय थे। यही कारण है कि गाँवके एक स्कूलके हेड-मास्टरसे कलकत्ता-विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर तक हो सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। भारत जैसे पराधीन देशमें आम तौरपर राजनीतिज्ञोंको ही प्रसिद्धि और सम्मान मिला करते हैं। बहुसंख्यक लोगोंकी दृष्टिमें कोई डाक्टर अपने पेशेमें ही बड़ा हो सकता है। ऐसी अवस्थामें किसी डाक्टरकी भारतके बड़े आदमियोंमें कैसे गिनती की जा सकती है? स्व० सर नीलरतन सरकार न तो राजनीतिज्ञ थे और न सार्वजनिक कार्यकर्त्ता ही। फिर भी उनके देशवासियोंने उनका बड़प्पन मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया। निश्चय ही यह बहुत बड़ा सम्मान था। किन्तु यह सम्मान उन्हें एक बहुत बड़े डाक्टरकी हैसियतसे नहीं प्राप्त हुआ था, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अपने लाखों अशिक्षित और दरिद्र देशवासियोंकी अशिक्षा और दरिद्रता दूरकर उन्हें विश्वके अन्य राष्ट्रोंके लोगोंकी श्रेणीमें बैठानेका प्रयत्न किया था।

स्व० सर नीलरतन सरकार एक बहुत बड़े डाक्टर ही नहीं थे, बल्कि शिक्षण-शास्त्री भी थे। सन् १८९३ से ही वे कलकत्ता-विश्वविद्यालयके 'फेलो' रहे थे और शिक्षाकी उन्नतिके लिए उन्होंने समय-समयपर कितने ही सुझाव-सुधार पेश किए थे। १९१७ से १९ तक वे कलकत्ता-विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर भी रहे थे। १९२० में जो शिक्षण-शिष्टमण्डल यूरोप गया था, उसके सदस्योंमें वे भी एक थे। उसी अवसरपर आक्सफोर्ड और एडिनबरो-विश्वविद्यालयोंने उन्हें क्रमशः डी० सी० एल० और एल-एल० डी० की उपाधियाँ प्रदान की थीं।

स्व० सर नीलरतन सरकारको उद्योग-धन्धोंसे भी प्रेम था। इस दिशामें उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया। उन्होंने कितने ही उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन दिया और उनकी आर्थिक सहायता भी की। कितने ही ज़रूरी उद्योग-धन्धोंके अभावमें देशका जो धन विदेशोंको जा रहा था, उसे वे नज़र-अन्दाज़ न कर सके। इसी कारण कुछ स्वार्थी लोगोंके ज़बरदस्त विरोधके बावजूद उन्होंने भारतीय मूलधनसे चमड़ेका एक कारखाना खोला। इस कार्यमें उन्हें बराबर आर्थिक संकट बना रहा; फिर भी उन्होंने उसे चालू रखा। इसके पहले देशमें भारतीय कहा जानेवाला एक भी चमड़ेका कारखाना नहीं था। इसके बाद उन्होंने साबुनका एक कारखाना खोला। उनके द्वारा स्थापित यह कारखाना भारतमें अपने ढंगका पहला था। उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि देशके नवयुवकोंको वाणिज्य-व्यवसायमें लगना चाहिए। रासायनिक द्रव्योंका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वे स्वयं दो बार—१९०५ और १९०७ में—बड़ौदा गए थे। कितने ही वर्षों तक वे कई औद्योगिक संस्थाओंके सभापति भी रहे।

देशकी राजनीतिसे भी स्व० सर नीलरतनको काफ़ी दिलचस्पी थी। १८९० की कांग्रेसमें वे प्रतिनिधिकी हैसियतसे सम्मिलित हुए थे। वे कितने ही वर्षों तक कांग्रेसके विभिन्न विभागोंके मन्त्री भी रहे थे। यद्यपि १९१९ से वे कांग्रेससे अलग हो गए थे; पर उसके प्रति अन्त काल तक उनकी सहानुभूति बनी रही। वे गांधीजीके बड़े प्रशंसक थे और गांधीजी भी उन्हें उसी दृष्टिसे देखते थे। देशकी भलाईके लिए उन्होंने जो भी कार्य किए, उनमें उनका लेश-मात्र भी व्यक्तिगत व्यार्थ निहित नहीं था और न कभी उन्होंने अपनी सस्ती विज्ञापनबाज़ीकी ही कोशिश की। वे एक धार्मिक प्रवृत्तिके आदमी थे। वे ब्राह्म-धर्मको माननेवाले थे। उनका कथन था कि उस धर्मका जीवनमें कोई मूल्य नहीं, जो जर्जरित और पीड़ित मानवताके प्रति सहानुभूतिका उद्रेक नहीं करता।

स्व० सर नीलरतन सरकारका जन्म १८६१ में डायमण्ड-हारबरके निकटवर्ती नेतरा नामक गाँवके एक कायस्थ-परिवारमें हुआ था। उनके पिताका नाम नन्दलाल सरकार था। जयनगर हाईस्कूलसे मैट्रिक पास करनेके बाद उनका नाम कैम्पबेल मेडिकल स्कूलमें लिखाया गया, जहाँसे उन्होंने सब-असिस्टेण्ट सर्जनकी परीक्षा पास की। १८८० में कालेजमें भर्ती होकर उन्होंने एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ पास कीं। इसके बाद ही वे चतरा हाईस्कूलके हेडमास्टर नियुक्त हुए। पर उनके जैसे एक मेधावी व्यक्तिके लिए गाँवके स्कूलके सीमित क्षेत्रमें रह सकना असम्भव ही था। इसी कारण नौकरी छोड़कर वे कलकत्ता चले आए। यहाँ एक स्कूलमें अध्यापन करनेके बाद १८८३ में उन्होंने मेडिकल कालेजमें अपना नाम लिखाया और १८८८ में एम० बी० की उपाधि प्राप्त की। इसी साल वे मेयो-हास्पिटलके हाउस-सर्जन भी नियुक्त हुए। मगर इतनेपर भी शायद उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं हुई थी, इसीलिए उन्होंने १८८९ में कलकत्ता-विश्वविद्यालयसे एम० ए० और एम० डी० की उपाधियाँ हासिल कीं। वे कलकत्तेके प्रसिद्ध कारमाइकेल मेडिकल कालेजके संस्थापकोंमें से एक थे और उसके प्रेसिडेंट भी रह चुके थे। वे चित्तरंजन-सेवा-सदन, यादवपुर राजयक्ष्मा-अस्पताल आदिके भी प्रेसिडेंट थे। वे 'जर्नल आफ़ दि इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन'के प्रधान सम्पादक थे। १८९० से उन्होंने अपनी व्यक्तिगत डाक्टरी शुरू कर दी। डाक्टरी-पेशेमें उन्हें जैसी सफलता मिली, वह दूसरे किसीको शायद ही मिल सकेगी। यही नहीं, उनकी चिकित्साकी ख्याति विदेशों तकमें फैल गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

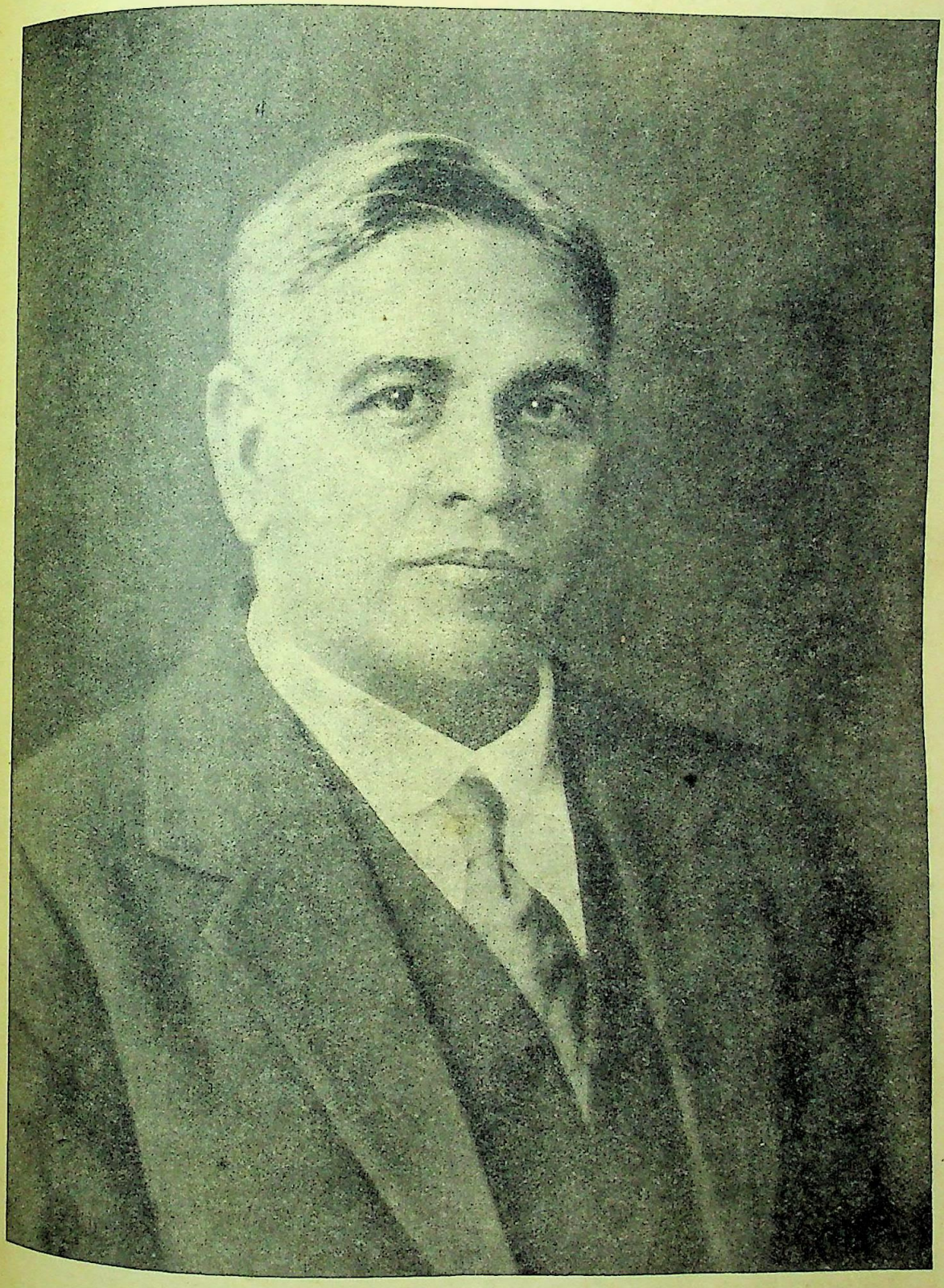

स्व० डाक्टर सर नीलरतन सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-साहित्यमें पक्षी-वर्णन

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

देश-देशके, प्रान्त-प्रान्तके लोक-मानसमें पक्षी-वर्णनको स्थान मिला है। लोक-साहित्यकी डाली-डालीपर पंछी पौढ़े हैं—क़िस्म-क़िस्मके पंछी। एक नहीं, हज़ारों पंछी अपनी नई भाव-भंगिमाके साथ नज़राने गुज़ार रहे हैं। कहीं जना-कीर्ण कलरवको चीरकर पिपिहरीका मधुर स्वर आसमानमें गूँज रहा है। कहीं 'बुलबुल-हज़ारदास्ताँ'की मीठी चहक दिलमें हुकी ले रही है। कहीं पौ फटते ही रात्रिके पहरेदार मुर्गे बेको पुकार रहे हैं।[1] कहीं मत्त मयूरोंके चिन्तामुक्त पैर झूम-झमाछम' नृत्यसे पवनके कलेजेको चोट पहुँचा रहे हैं। कहीं पालतू कीर बेक़रारीकी कशमकशमें पिंजड़ेकी काल-कोठरीमें पंख फैलानेके लिए स्थान ढूँढ़ रहे हैं। कहीं स्वाधीन सारस आसमानमें जंगली गाने गा रहे हैं। कहीं बगुले अपने श्वेत शंख-सदृश पंखोंकी किरणोंसे अँधेरेको चर रहे हैं और कहीं कोयल अपनी रसीली तानसे विरहिणियोंके हृदयकी धड़कन बन्द कर रही है।

लोक-साहित्यकी नवरंग फुलवारीमें जाने कहाँसे उड़-उड़कर आए हैं ये झुण्डके झुण्ड पंछी? कुछ नील नभो-मण्डलमें पूर्णचन्द्रके बिम्बकी तरह सौम्य और सुन्दर, कुछ गुलाबके फूल-से नयनाभिराम या काण्डरके फूल-से अछूते, कुछ सूदे-नसीमके गुलाबी मौज-से मनहर—रोज़मर्राके दस्तूर-से, हिदायत खुली तबीयत और मुस्कराते चेहरे-से, चित्रकारके मन-सुलभ चित्र-से अथवा रबाबके श्रुतिप्रिय तार-से। ये जीवनकी सूखी पहाड़ीमें प्रकृतिके छायादार बग़ीचेसे आए हैं। अनुभूति ही इन्हें पेट भर-भरकर दाने चुगाती है—दाने, जो ज्वलन्त निरीक्षणके आबदार मोती हैं और दिलके अतल समुद्र और पारदर्शी आँखोंकी सीपियाँ हैं उन मोतियोंके उद्गम-स्थान!

मिथिलाके भाटोंके एक लोक-गीतमें प्रायः ३३-३४ पक्षियोंका वर्णन एक साथ मिलता है। इनमें कौवा, गिद्ध, गैंरी, चील, मैना, बुलबुल, मुर्गा, नीलकण्ठ, बगुला, गरुड़, सुग्गा, धनसुग्गा, भुँइछपका, मोर, बसन्त, बेटाम, बलुआरा, काग, बतख, हाँस, किनकिन, मगचिकनी, कओरेना, करौंकुल, हरदा, कुचकुचवा, कोठाडूम्मर, शाही, मुनिया, कोकिल, लाल और शार्दूल नामके पक्षी हैं, जिनका मधुर कलरव लोक-हृदयको अहर्निश गुंजारित किया करता है। वर्णनके प्रसंगमें गीतमें उल्लिखित पक्षियोंके स्वभाव, आहार-विहार, जाति-वर्ण और ढब-छबकी अनोखी बातोंका भी जीवन्त चित्रण किया गया है। इससे पता चलता है कि लोक-साहित्यकी निर्मातृ-दृष्टि कितनी पैनी और कारगर है। यह है वह गीत :—

सब चिड़ियनमें लाल बादशाह कहावे,
सिंह शारदूल नाम धरावे,
कौवा चाण्डाल, गिद्ध कसाय,
गैंरी मलाहिन, चील चमार,
मैनी भठियारिन, बुलबुल पैठान,
मुर्गा मोलना, नीलकण्ठ ब्राह्मण,
बगला वजीर, गरुड़ गोसाँय,
सुग्गा सकलदीपी, धनसुग्गा कहार,
भुँइछपका शेख, मोर नरतनिया,
बसन्त रँगरेज, बेटाम ततमा,
बलुआरा सोनार, काक मुसहर,
बतक दोनबार, हाँस थारू,
किनकिन सूँड़ी, मगचिकनी तेली,
कओरेना नट, करौंकुल भाँट,
हरदा कायस्थ, कुचकुचवा कुम्हार,
कोठाडूम्मर बढ़ई, शाही बेलदार,
मुनिया धुनिया, कोकिल गवैया,
सब चिड़ियनमें लाल बादशाह कहावे,
सिंह शारदूल नाम धरावे।[2]

---

1. लाल लाल मुर्गा राम राम बोले
बोले लागल, बितलो राति;
उठु से भवाजि, उठु से भवाजि
रउरे के बड़ा निन्दा आवय।
—हे भावज, उठो। तुम्हें बहुत गहरी नींद आ रही है। उठो। रात बीत गई। लाल-लाल मुर्गे राम-राम बोलने लगे। भोर होने लगी। —उराँव गीत

२. सभी पंक्तियोंमें लाल बादशाह और शार्दूल सिंह कहलाता है। कौवा चाण्डाल है, गिद्ध हत्यारा है। गैंरी मलाहिन है, चील चमार है। मैनी भठियारिन है, बुलबुल पैठान है। मुर्गा मौलवी है, नीलकण्ठ ब्राह्मण है। बगुला वजीर है, गरुड़ गोसाईं है। सुग्गा शाकद्वीपी है, धनसुग्गा कहार है। भुँइछपका शेख है, मोर नरतनिया है। बसन्त रँगरेज़ है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-कविने एक 'चाण्डाल' शब्दमें ही कौवेकी क्रूरता और निर्ममताका चमकदार चित्र खींच दिया है। जिस तरह मानव-समाजमें चाण्डाल अछूत और घृण्य है, उसी तरह पक्षी-जगत्में कौवा। 'गैंरी मलाहिन है'—मलाहिन (अर्थात् मछुवेकी पत्नी) क़ौमका पुश्तैनी पेशा है जाल और टापी लेकर जलमें मछलियाँ टापना। गैंरी जलकी चिड़िया है। वह जलमें मछली और घोंघेकी टोहमें काफ़ी देर-देर तक डूबती-उतराती है। इन पंक्तियोंके लेखकको गैंरीके शिकारमें एकाधिक बार जानेका अवसर मिला है और उसने इस जलचर पक्षीको समीपसे देखा है। प्रस्तुत गीतमें एक-एक पक्षीके लिए व्यवहृत एक-एक विशेषण अनुभूतिकी आगमें तपकर निकला है और वह सम्बन्धित पक्षियोंकी जाति, आहार और स्वभावका हू-बहू परिचय देता है। इस प्रकार लोक-साहित्यकी इमारत जीवनकी भावना-तन्मय अनुभूतिके आधारपर खड़ी हुई है।

राजस्थानी लोक-कवि राजियाने भी अपने सोरठोंमें बाज, हंस, काग, टीटूड़ी (टिटहरी) आदि पक्षियोंके प्रकृति-जन्य गुणोंका उल्लेख किया है। देखिए, राजस्थानका पराक्रमी बाज राजपूती शानको चुनौती दे रहा है :—

नभचर विहँग निरास, बिन हिम्मत लाखाँ बहै।
बाज त्रपट कर बास, रजपूती सूँ राजिया।

—आसमानमें वैसे अनेक पक्षी मँडराते फिरते हैं; पर वहाँ शासन तो बाजका ही रहता है। यही तो राजपूती शान है।

रसालकी छायामें संगीतके तार झनझनानेवाली कोयल, कर्कश-कण्ठ काग और प्रिय पक्षी राजहंस—इन्हें संकेत करके प्रान्त-प्रान्तके लोक-साहित्यमें सुन्दर चित्र उतारे गए हैं। राजस्थानके लोकप्रिय कवि राजियाने भी इस प्रसंगमें अपना कौशल दिखलाया है :—

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरषित करै।
कड़वो लागे काग, रसना रा गुण राजिया।

—कोयल मन हर्षित कर देती है, वह प्रिय लगती है और काग कटु। यही तो वाणीका गुण है।

दूध नीर मिल दोय, एक जिसी आकृत हुया।
करै न न्यारा कोय, राजहंस बिन राजिया।

—दूध और पानी मिलकर एक वर्ण हो जाते हैं; पर राजहंसके बिना उन्हें कौन विलग कर सकता है? इसी लड़ीके—इस भावका तो नहीं—एक नैपाली लोक-गीतमें डेढ़-दो दर्जन परिचित और अपरिचित पक्षियोंने अभिनन्दनीय स्थान पाया है :—

पंखिराज गरुड़, बाज, मजुर, हाँस
काफलचरि ढुंगिफोर,
रानीचरि, बटाई, ढुकुरचुँइको
कोइलीचिवे, हाड़फोर।
मुहुनालाहाँचे काहाले मलेवा
मैना शुभा चाखुरां,
फिरिफिरे चखेवा भँगेरी जलेवा
डाँफेचरी भ्याकुरा।
काकाकुल कोकले चमेली बजबा
ढुकुर भइँजोरली,
शाशासोर सुनढुकुर खुलेढुकुर
तमेढुकुर गमथली।
लामपुछरे तितरी खरउटो देवुकाग
छिछिनकोटे चाहरो,
फिस्टोचाँचरी टिकटिके मटिचरि
लाटीचरी कोसरो।
कुथुरको होटिटंग माडांगरे लेहिचे
आँधोजुरे न्याउलो,
तोरीगाँडो सुसुरको ढैउआ
ढबसी हुँहुराइलो।
धोब्यानी जुरेलो शिखारी बउँड़इ
भद्राइ बुंगीचरी,
माटीकोरे दशाँइ करांकुरूँ
चिल काग सिमलचरी।[3]

बेटाम ततमा है। बलुआरा सुनार है, काक मुसहर है। बतख दोनबार है, हाँस धारू है। किनकिन सूँड़ी है, मग-चिकनी तेली है। कओरेना नट है, करांकुल भाट है। हरदा कायस्थ है, कुचकुचवा कुम्हार है। कोठाडूम्मर बढ़ई है, शाही बेलदार है। मुनिया धुनिया है, कोकिल गवैया है। सभी पक्षियोंमें लाल बादशाह और सिंह शार्दूल कहलाता है।

३. काफल—एक पहाड़ी फल; चरि—चरनेवाला; काफलचरी ढुंगिफोर—काफल फल चरनेवाला ढुंगिफोर नामका एक पहाड़ी पक्षी; रानीचरि—एक लाल चिड़िया, सम्भवतः लाल मुनिया; बटाई—बटेर; ढुकुर—पंडुक; चिवे—कबचिचि; सतबहनी; मलेवा—कबूतरकी जातिका पक्षी; शुभा—सुग्गा; चाखुरां—भुजुंगा; डाँफेचरी—हिमालयकी तराईमें रहनेवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा-कालमें अनिष्ट-परिहार और अभीष्टकी सिद्धिके लिए लोक-साहित्यमें भिन्न-भिन्न पक्षियोंकी बोली, प्रणय-केलि और उनके दर्शनके फलाफलका विवेचन किया गया है। मिथिलाके लोक-कवि डाकने तीतर, नीलकण्ठ, श्यामा, दहियल, खंजन, मोर, कोकिल, मुर्गा, सुग्गा, मैना, गिद्ध, बटेर, पूर्णकूट, ब्राह्मण-वर्ण काक आदि पक्षियोंको शकुन-निर्देशक माना है। इन विचित्र-विचित्र पक्षियोंकी कल्पनासे लोक-मानसके दृश्य-पटपर एक अभिनव रंग चढ़ गया है। लोक-गीतकी दुनियामें पक्षियोंके अद्भुत भावोद्रेकके कारण सृष्टिमें भयंकर उथल-पुथल और तूफानी परिवर्त्तन होनेकी आगमवाणी की गई है। इन पक्षियोंकी गति-विधिके कारण कार्य-सिद्धि हो जानेपर उन्हें पुरस्कार देनेकी भी चर्चा मिलती है :—

लिङ्गक पारावत कलविङ्क, प्रतुद[४] - जाति कादम्ब।
कहथि 'डाक' सुनु भड्डरी यात्रामें अवलम्ब॥

—डाक कहता है कि पारावत, लिंगक, कलविंक, कादम्ब आदि प्रतुद[४]-जातीय पक्षी यात्राके आधार-स्तम्भ हैं।

राजहंस, कलहार अरु महुअक पूरनकूट।
कहथि 'डाक' सुनु भड्डरी यात्राके सुख लूट॥

—डाक कहता है कि राजहंस, कल्हार, महुअक और पूर्णकूट[५] पक्षी यात्राके लिए मंगलकारी हैं।

तनु अति कारी बड़का लोल; पैक काक अति ऊँचे बोल।
ताहि काक केँ बाभन जान; कहथि 'डाक' जे आन नहिं मान।
पिंगल आँखि नील रंग ठोर; सब देह कारी क्षत्री सोर।
पाण्डु नील रंग चोंचो देह; कहथि 'डाक' जे वैश्य कहिलेह।
भसमक रंग ओ दुबर शरीर; कर कर बाजय रह नहिं थीर।
ताहि 'डाक' कह शूद्र पुकारि; एहि सँ आन थिक अन्त्यज धारि।

—शरीर अत्यन्त काला, चोंच लम्बी, क़द बड़ा और आवाज़ तेज़—ये लक्षण जिस काकमें दीख पड़ें, वह ब्राह्मण है। पिंगल नेत्र, नील रंगके होंठ और समस्त शरीर काला, इन लक्षणों-वाला काक क्षत्रिय है। जिस काकके शरीर और चोंच पाण्डु और नील वर्णके हों, वह वैश्य है। राखका रंग, क्षीण शरीर, कर्कश स्वर, प्रकृतिका चंचल, इन लक्षणोंवाला काक शूद्र है, और उपर्युक्त चार प्रकारोंके अतिरिक्त अन्य सभी काक अन्त्यज हैं।

पाँचोंमें मुख बाभन जान; असगुन सगुन तकरे मान।
जौं माँस बोकरय आगाँ आवि; कहथि 'डाक' निश्चय धन पावि।
आगाँ लावय माटिक ढेप; भूमि लाभ हो ताही खेप।
रतन आनि जे राखय अग्र; कहथि 'डाक' जे राज हो सग्र।
काक द्वारमें आवय जाय; कहथि 'डाक' जे पाहुन लाय।
बकुल मोर दर्शन शुभकारी; 'डाक' हे सज्जन लेहु बिचारी।
कोकिल मुर्गा सुग्गा कही; चौथे मैना सुन लह सही।
बाँचे बोलय तो शुभ होय; 'डाक' कहथि मनमें लह जोय।

—इन पाँच प्रकारके कार्कोंमें शकुन-निर्देश करनेके लिए ब्राह्मण-वर्ण काककी गति-विधि विचारणीय है। सामने आकर यदि काक मांस उगल दे, तो निश्चय ही धनकी प्राप्ति हो। यदि काक सामने आकर मिट्टीका ढेला रख दे, तो भूमि; और रत्न रख दे, तो राज्यकी प्राप्ति हो। जिसके द्वारमें काक आया-जाया करे, तो समझ लो कि बाहरसे कोई अतिथि आयगा।

एक पक्षी; जुरली—धोबिन; सुनुदुकुर—आकाशपक्षी, सम्भ-वतः हारिल; खुलेढुकुर—जलपक्षी; तमेढुकुर—बड़ा पंडुक; खटटो—बगेरी या खंजन; देवुकाग—कौवा; लेहिंचे—लक्ष्मण; तोरीगाँडो—तोरी फल खानेवाला पक्षी-विशेष; कोइ-लो—एक पहाड़ी पक्षी, जिसकी बोली अशुभ समझी जाती है; होटिटंग—टीटूड़ी; माटीकोरे—ज़मीनके अन्दर रहनेवाले पक्षी; करौंकुरूँ—करौंकुल; सीमलचरी—शुक; टिकटिके—कठफोड़; लामपुछरे मयूर; मटिचरी—मिट्टी खानेवाले पक्षी; छिछिनकोटे—कबकदरी; चाहरो—दुर्रज; फिस्टो—टीट्टू; माडाँगरे—हुबाश; न्याउलो—शाहबलूत; धोब्यानी—कोविन; बुंगी-चरी—बुड़ार (Pochard); बउँड़इ—बानवर (Darter); हुँहुराइलो—किलकिला; ढेउआ—लगलग (White-necked stork); ढबसी—ढेंक।

४. प्रतुद वे पक्षी हैं, जो अपना भक्ष्य चोंचसे तोड़कर खाते हैं। जैसे—गिद्ध, श्येन, कंक, काक, द्रोणकाक, उल्लू और मयूर। सुश्रुत (अध्याय ४६) में लिखा है—'कपोत, पारावत, भृंगराज, परभृतक, यष्टिक, कुलिंग, गृहकुलिंग, पोतोड्रक, हिण्डिमानक, शतपत्रक, मातृनिन्दक, भेदशी, शुक, सारिका, बलगुली, खंजरीट, हारीत और दान्यूह' प्रतुद-जातिके हैं। चरक-सूत्र (अध्याय २७) के अनुसार 'शतपत्र, कोयष्टी, जीवजीवक, कैरात, कोकिल, प्रियात्मग, वभ्रु, बटहा, तिण्डि-मानक, जटी, दुन्दुभि, पृष्ठकु, लिंगक, कपोत, शुक्र सारंग, चिरि-टीक, कुयष्टिक, सारिका, कलविंक, चटक, पारावत और पाण्ड-विक—ये सब प्रतुद-जातीय पक्षी हैं।

५. भष, कूट, पूरि, करवक और करायिका—ये सब पक्षी पूर्णकूट कहलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा-कालमें बकुल और मयूरके दर्शन मंगलकारी हैं। डाक कहता है—हे सज्जन, आज़माइश करके देख लो। कोकिल, मुर्गा, सुग्गा और मैना—ये चार पक्षी यदि वाम पार्श्वमें बोलें, तो उस दशामें यात्रा फलप्रद है।

नील कण्ठ कर दर्शन होए, मनबांछित फल पावय सोए।
भवन दीर्घिका पार्श्वमें, क्रीड़ा पर्वत छाय।
इर्द-गिर्द केकी उड़य, गगन मध्य मड़लाय।
कहथि 'डाक' मंगलजनक, बित्तक वृधि दिखाय।
बाम भागमें बोल चकोर, सम्मुख दाहिन बोलय मोर।
कहथि 'डाक' शकुन बर जोर, बइसने लह धनधाम बटोर।
दहियल खंजन पक्षि विशेष, दाहिन दर्शन पुण्यहिं लेख।
पिंजरस्थ तोती कें तोता, दुलरावथि डयना सँ खोंता।
शयन-कक्ष के पास लखाय, दुलहिन सँ दुलहा मिल धाय।
पुर पैठत जों वाम ते, तीतर दक्षिण जाय।
कहथि 'डाक' शुभ शकुन यह, मिलतओ सभ मन भाय।

—यात्रा-कालमें नीलकण्ठ पक्षीका दर्शन हो, तो मनोकामना पूरी हो। राज-भवनके पार्श्वमें क्रीड़ा-पर्वत हो और उसके इर्द-गिर्द केकी उड़-उड़कर आसमानमें चक्कर काटें, तो डाक कहता है कि यात्राकी दृष्टिसे यह शकुन-सूचक समझा जाता है और धनकी वृद्धि होती है। वाम भागमें चकोर और सामने तथा दाएँ मोर बोले, तो 'डाक' कहता है कि यात्रा प्रबल है; बैठे ही अपरिमित धन मिलेगा। यात्रा-कालमें दाहिनी ओर दहियल और खंजन दीख पड़ें, तो यात्रा फलदायक हो। यात्राके समय शयन-कक्षमें पिंजड़ेके खोतेमें तोता तोतीको अपने पंखसे दुलारे, तो प्रेमी प्रवाससे लौटकर प्रेमिकासे मिले। नगरमें प्रवेश करनेके वक्त तीतर वाम पार्श्वसे दक्षिण-पार्श्वकी ओर उड़ता हुआ दीख पड़े, तो निश्चय ही अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति हो।

नलिनी रूप छत्र सँ रविकर बापी में हिलकोरा लेथि।
हंस कंध सँ ठेलल लहरी पद्म-पत्र कें टक्कर देथि।
रम्य कछारक बेंत छाँहमें जलचर पंछिक श्रुति-प्रिय शोर।
क्रौंच लालसर कारण्डवगण केंउ-केंउ कलरव कर भोर।
'डाक' अग्र जानी ई देखि शुभ यात्रा कहथि सभ लेखि।

—जिस सरोवरमें नलिनी-रूपी छत्रसे सूर्यकी किरणें अठखेलियाँ करें, हंसके कंधोंसे ढकेली जाकर लहरियाँ कमलके पत्तोंसे टक्कर लेवें और उसके रम्य कछारकी बेंत-छायामें जलचारी पंछी क्रौंच, लालसर, कारण्डव आदि केंउ-केंउ करें, तो 'डाक' कहता है कि यात्रा-कालमें ऐसे सरोवरका देखना मंगलभूत है।

प्रतिवर्ष पवस, शरद, हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वसन्त इन भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें भिन्न-भिन्न क़िस्मके पंछी आते और जाते हैं। पावसमें घुमड़े धूमिल और कजरारे मेघोंको देखकर पपीहे 'पी कहाँ? पी कहाँ?' की रट लगाते हैं और सुरधनु-पंखी मोर नाचने लगते हैं।[६] शरद-ऋतुमें सर्दी बढ़ जाती है, आसमानमें चाँदनी छिटकती है, तरुणियोंके मनमें काम-वासना भड़क उठती है और उधर सुग्गे और चकोर नारे लगाते हैं।[७] हेमन्तमें खेतोंमें कतकी, गजकेशर, तुलसीफूल, कान्हर, लालसर, ललदेइया—रंग-रंगके धान फूट जाते हैं। यौवन-श्रीमें अलसाए हंस-चकेवा आनन्दमें फूले नहीं समाते और श्यामा बोलने लगती है।[८] शिशिरमें कल्पना कीजिए कि प्रियतम परदेशमें है। ज़ोरोंसे तुषार-पात हो रहा है। विरहिणी सेजपर तड़प रही है और हारीत पक्षी क्रीड़ा कर रहे हैं।[९] ग्रीष्ममें पृथिवी जलने लगती है, दिन-रात उष्ण प्रतीत होते हैं और करांकुल केंउ-केंउ करते हैं।[१०] फिर वसन्त, चैतका महीना, आममें बौर लगते हैं, हुदहुदके ब्याहकी तैयारी होती है और अनेक चिड़ियोंकी महफ़िल जमती है। बीचमें दूल्हा बनकर अन्य अनेक पक्षी बैठते हैं। कौआ शकुन विचारता है, मयूरी नाचती है, कोयल गाती है, धौला मृदंग बजाता है, छत्री चँवर डुलाता है, पिड़कुलिया ताल देती है, कठफोड़वा काठ चीरता है, चिल्होरवा लकड़ी ढोता है, मुनिया झाड़ू देती

---

६. अषाढ़ मास घन गरजत घोर, रटत पपिहरा, नाचत मोर।
आयल हे सखि मास अषाढ़, हरि बिनु मोहि चन्द्रिका भार।
(मैथिली)

आषाढ़े घम घोरिया ने, बादल गाजे घोर।
वापैया पियु-पियु करे, ने मधरा बोले मोर। (गुजराती)

७. आसिन शरद जनावत जोर, उगय चाँदनी दुख बर जोर।
बोलल हे सखि कीर-चकोर, कहमा गेल मोरा नन्दकिशोर।
(मैथिली)

८. अगहन हे सखि सारि लुबुधि गेल, फुटि गेल सभ रंग धान थो।
हंसा चकेउआ रामा केरू करइअ, श्यामा करत किरकार थो।
(मैथिली)

९. प्राणप्रिया परदेश तजय नहिं, पूस तुसार अपार।
पलंग पकड़ि पछतावत बितल, हारीत करथि बहार। (मैथिली)

१०. जेठ जरित तन बिरहक ज्वाला, उखम लाग दिन-रैन।
केंउ-केंउ कय उड़थि करांकुल, पहुँ बिनु जिव नहिं चैन।
(मैथिली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, मैना भात पकाती है, सरगट्टी माड़ पसाती है, दहियल दही जमाता है, पेचक[११] पान लगाता है और सुग्गा वेद पढ़ाता है।[१२]

वसन्तके आगमनसे जैव और वनस्पति-जगत्की धमनियोंमें मस्तीका संचार होता है और क्रीड़ाशील पक्षी-जगत् फूलोंकी मदिर भीनी गन्ध और पवनके पुलक-मन्थरसे तृप्त होकर एक कुतूहलमय स्वप्नका सृजन करता है। अनादिकालसे पक्षी-जगत्का यह वसन्तकालीन संचित प्यार अबाधित रूपसे चलता आया है। वसन्तके आते ही नर-पंछीका आन्तरिक प्रेम-तार झनझना उठता है और वह संगीत, नृत्य और प्रेम द्वारा मादाको रिझाया करता है। वह नर-कोकिल भी, जिसके मादक संगीतसे आकर्षित होकर हमारे कवियोंने पृष्ठके पृष्ठ रँग डाले हैं और अपढ़ ग्रामीण-जन भी क्षण-भरके लिए जीवनके सुख-दुःख और ताप-दाप भूल जाते हैं,[१३] वसन्त-ऋतुमें ही गान-झड़ीकी वर्षा करता है। कोकिलाके गर्भाधानका समय खत्म होनेपर कोयलके गानेका मौसम भी बीत जाता है। यद्यपि अन्य ऋतुओंमें भी कभी-कभी इसकी आवाज़ सुनाई दे जाती है; पर उसमें वह मिठास नहीं होती, जो वसन्तकी कूकमें होती है।

कोयलका सगोत्री पपीहा ग्रीष्मान्तमें और चातक वर्षारम्भमें संगीतकी झड़ी लगाया करता है। बुलबुलका गान भी, जिसको समस्त विश्वमें प्रथम स्थान मिला है, जिसकी मार्मिकताने लोक-हृदयको छू दिया है, उन्मुक्त प्रेमके समयकी मस्तीका ही उद्बोधक है।[१४] वर्षारम्भ होनेपर मयूरका नृत्य तो देखते ही बनता है। प्रेममें मस्त होकर वह ऊँचे-ऊँचे उड़कर, पंख फैलाकर और बार-बार नीचे उतरकर मादाके प्रति अपने प्रेमको व्यक्त करता है। कबूतर अपना आबदार कण्ठ और रंगीन पूँछ फैलाकर मादाके इर्द-गिर्द चक्कर काटता है, घेर-घेर कर घुटकता है। मादापर अपने व्यक्तित्वका रौब ग़ालिब करनेके लिए पक्षियोंमें एक और भी कला है—युद्ध। देखा गया है कि दो पहलवान मुर्ग़े एक मादाके लिए कुछ अजीब तरहसे परस्पर युद्ध करते-करते मृतप्राय हो गए हैं। कबूतर, तीतर आदि अन्य अनेक पक्षी भी इस फ़नमें काफ़ी होशियार हैं।

वर-वधूके प्रणय-रंगमें शराबोर कोहबर-घर (कोष्ठबर) में हंस-हंसिनी, मोर-मोरनी, तोता-तोती आदि भिन्न-भिन्न पक्षियोंने आदरणीय स्थान पाया है। रंग-बिरंगे पक्षियोंके कलापूर्ण चित्रसे प्रेमके कोहबर-घरमें एक अजीब आकर्षण दीखने लगता है। पिठार, सिलेटी मसि और कलछौंह ईंगुरसे लिखित चित्रकारी अब भी ग्रामीण कलाकी महत्ताको दरशाती है। उसकी आड़ी और टेढ़ी-मेढ़ी भित्तियाँ अब भी दूल्हा-दुलहिनके हृदयमें खदान खोदकर प्रेमका मूल्य आँका करती हैं। कोहबर-घरके चित्र-निर्माणमें कारीगरीकी अपेक्षा कलाका सन्तुलन अधिक पाया जाता है।

कोहबर-घरके आलंकारिक रूप और बन्धसे मोरका विशेष घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसा लगता है, मानो इसकी सुन्दर शक्ल-सूरत दो अपरिचित हृदयोंको एकसूत्रताका सुर प्रदान

---

११. पेचक : पचति पच्यते वा पच। संस्कृत-पर्याय—उलूक, वक्रनासिक, दिवाभीत, काकभीरु। यह निशाचर है, केवल रातको ही देखता है। श्री स्वान्सनने पेचक-जातिका विभाजन तीन श्रेणियोंमें किया है—(१) वृहत् कर्ण (Typical Group), (२) क्षुद्रकर्ण (Sub-typical) और क्षुद्र पुच्छ—दोनों पैर लोम द्वारा आच्छादित (Aferrant)।

१२. चैत मास वन मोजरन लागे, हुदहुदको ब्याह रचा है।
साहब बन दूल्हा बैठा है, सभ चिड़ियनकी शादी होती है।
कौआ शकुन विचारे, मोरनी नाच दिखावे।
कोयल गीत सुनावे, धौला मृदंग बजावे।
छत्री चँवर डुलावे, पिड़कुलिया ताल लगावे।
कठफोड़वा काठ चिरावे, चिल्होरवा लकड़ी ढोवे।
मुनिया झाड़ू फेरे, मैनी भात पकावे।
सरगट्टी माँड़ पसावे, दहियलवा दही जमावे।
पेचक पान लगावे, सुग्गा वेद पढ़ावे।
चैतमास वन मोजरन लागे, हुदहुदको ब्याह रचा है।
साहब बन दूल्हा बैठा है, सभ चिड़ियनकी शादी होती है।
(पश्चिमी मिथिलाके भाटोंमें प्रचलित एक लोक-गीत)

१३. हरिया वन की कोयलां, हरिया वन का मोर।
मन जरिया हरिया करे, बोल - बोल निशि-भोर।
—हरे वनकी कोयल और हरे वनका मोर रात-दिन हरे वनमें झनझनी बरसा-बरसाकर दग्ध हृदयको हरा—हर्षसे भरपूर—किया करते हैं। (राजस्थानी दूहा)

१४. इंग्लैण्डकी एक लोक-कथामें शाही बुलबुलका दर्दीला संगीत सुनकर एक राजाकी आँखोंमें आँसू ढुलक आनेका उल्लेख है। उन्हें देखकर बुलबुल और भी तन्मय हो सुरीले गाने गाने लगी। इससे राजाका हृदय पिघल गया और उसने खुश होकर बुलबुलको पुरस्कार-स्वरूप एक सोनेकी हँसली गढ़वाकर गलेमें पहननेको देनेका आदेश दिया। पर बुलबुलने उसकी आँखोंमें उमड़े आँसुओंको ही अपना सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार समझकर हँसली लेनेसे इन्कार कर दिया। (इंग्लिश फौक-लोर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती होगी अथवा सौन्दर्य-पंछी मोरकी नीलम-आभा देखकर नव-ब्याही दुलहिनकी आँखोंमें नेहका सुरंगा सावन लहराने लगता होगा।[१५] लोक-साहित्य बताता है कि सुहाग-मण्डित कोहबर-घरमें मयूर अपने स्वर-सप्तक नहीं सरसाय, तो प्रशान्त आनन्द-घनके रहते भी आँखोंके पानीका ज्वार उमड़ने लगे। धन्य है वह लोक-दृष्टि, जिसने पहले-पहल कतारकी कतार मोर-पंखियाँ[१६] सजाकर शून्य कोहबर-घरको रंगीन बनाया, वर्ना अपने मदालस रूप-वर्णके बावजूद कुशल नर्त्तक मयूरकी कुहू-ध्वनिके बग़ैर कोहबर-घर निरानन्द ही लगता।

स्त्रियोंमें शरीरके विभिन्न भागोंमें गुदना गोदाना (सुईसे कज्जल वर्ण वनस्पतिक रंग त्वचापर गोदा जाता है) एक प्रकारका शृंगार समझा जाता है। सुसभ्य जातियोंसे लेकर एकदम असभ्य बर्बर लोगों तकमें गुदनेका रिवाज है। पिरस और उकावटी इण्डियनोंमें तो गुदना गुदानेकी प्रथा बिल्कुल विचित्र है। कुछ जातिकी स्त्रियाँ गुदनेके अनुरूप ही नृत्यकी पोशाक पहनकर और चेहरे सजाकर नाचा करती हैं। मिथिलाकी अधिकांश ग्रामीण स्त्रियाँ गुदने गुदवाकर कितनी प्रसन्न होती हैं, इसका कुछ आभास वहाँके लोक-गीतोंमें मिलता है। एक मैथिली लोक-गीतमें एक अल्हड़ युवतीने अपने प्रियतमकी जुदाईको गोदनेकी सुई चुभनेके दर्दसे ज़्यादा मान दिया है। इस सम्बन्धमें उसकी दलील है कि सुई चुभनेका दर्द तो महज़ पहर-डेढ़-पहर तक रहता है; मगर प्रियतमकी जुदाईका दर्द रात-भर क़हर ढाता है।[१७]

सौन्दय और शृंगारका यह विवेचन निश्चय ही रुचि-विशेषके पैमानेके अनुसार किया जाना चाहिए। सच पूछिए तो गुदनेकी यह कला हमारे यहाँ पीढ़ियोंसे चली आई है। गोरे अंगोंपर गुदनेके बेल-बूटे, पक्षी और नाम आदि फबते भी खूब हैं। गोदपारनी (गुदना गोदनेवाली) गुदने गुदवानेकी इच्छुक तरुणियोंके करतलके पृष्ठभाग, जाँघ, कमर, कलाई और गलेसे नीचेके छातीके भागपर उनकी रुचिके अनुकूल क़िस्म-क़िस्मके फूल (जैसे गुलाब, कमल, चमेली आदि) और रंग-बिरंगे पक्षी (जैसे मयूर, सुग्गे, पपीहे आदि) अंकित करती है। ज़रा इसका वर्णन देखिए :—

कहमा गोदयवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
कहमा गोदयवइ दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये?
जोबना गोदयवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
जंघिया गोदयवइ दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये।
किय जल देवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
किय जल देव दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये?
लोटा जल देवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
झारी जल देव दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये।
किय भोजन देवइ में रतन चिड़इया रतन सुगना,
किय भोजन देव दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये?
चूरा भोजन देवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
दही भोजन देव दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये।
कहमा सुतयवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
कहमा सुतयवइ दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये?
अँखिया सुतयवइ में रतन चिड़इया रतन सूगना,
हिरदय लगयवइ दुइ मोर रे मजुरवा के उड़यले जाये।[१८]

---

१५. कहमहिं बोलल कारि कोइलिया, कहमहिं बोलल मजूर हे?
आम डारि बोलल कारि कोइलिया, कोबरहिं बोलल मजूर हे!
कहमहिं लिखल मोर रे मजुरवा, कहमहिं देखु आठदल रे?
कोबरहिं लिखल मोर रे मजुरवा, वेदिय लिखल आठदल रे!

१६. हमारे यहाँ लोक-विश्वास मोर मारनेका विरोध करता है। पर छोटा-नागपुरके लोक-साहित्यमें कहीं-कहीं मोरके मारनेका प्रमाण भी मिलता है। 'सरहुल'-शैलीके एक ऐसे ही उराँव गीतमें एक राजा अपनी रानीके शृंगारके लिए आधी रातको मयूरको मारने जाता है :—

भौंरो पहाड़ गेले राजा, सिंगार मिंजूरी के मारय।
आधो राति गेले राजा, सिंगार ला मिंजूरी के मारय।

१७. सुइया क दरद सखि घड़ि रे पहरवा,
पिया क दरद सारि राति रे।

१८. कहाँ रतन चिड़ियाँ और रतन सुग्गा गुदवाऊँगी और कहाँ मयूर तथा मयूरी चित्रित होंगे? दोनों जोबनपर रतन चिड़िया और रतन सुग्गा गोदवाऊँगी और जाँघपर मयूर तथा मयूरी चित्रित होंगे। किस वस्तुमें रतन चिड़िया और रतन सुग्गेको जल दूँगी और किस वस्तुमें मयूर तथा मयूरीको? लोटेमें रतन चिड़िया और रतन सुग्गेको जल दूँगी और झारीमें मयूर तथा मयूरीको। रतन चिड़िया और रतन सुग्गेको कौन-सी वस्तु खानेको दूँगी, और मयूर तथा मयूरीको क्या खिलाऊँगी? रतन चिड़िया और रतन सुग्गेको चिउड़ा खिलाऊँगी और मयूर तथा मयूरीको दही। रतन चिड़िया और रतन सुग्गेको कहाँ सुलाऊँगी और मयूर तथा मयूरी कहाँ सोयँगे? आँखोंकी सेजपर रतन चिड़िया और रतन सुग्गेको सुलाऊँगी और दिलके पलंगपर मयूर तथा मयूरी सोयँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राल्फ़ फ़ाक्स

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

जो लोग यह विश्वास करते हैं कि साहित्यका सम्बन्ध वास्तव जगत्से है और साहित्यकार देश, काल एवं सामाजिक परिस्थितियोंके प्रभावसे अपनेको सर्वथा विछिन्न नहीं रख सकते, और यदि कोई साहित्यकार देशमें होनेवाले किसी राष्ट्रिक या सामाजिक आन्दोलनसे अपनेको सम्पूर्ण निर्लिप्त रखता है, तो इसका अर्थ है देश एवं समाजके प्रति अपने दायित्वकी अवहेलना और देशवासियोंके प्रति विश्वासघात, उन्होंने इंग्लैण्डके बुद्धिजीवी-सम्प्रदायको कभी श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देखा। साहित्यिक या कलाकार भी आखिर समाजके बीच ही जन्म ग्रहण करता है और समाज द्वारा ही उसकी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियोंका परिपोषण तथा परिवर्द्धन होता है। उसे पग-पगपर समाजका अस्तित्व मानकर चलना पड़ता है। साहित्य केवल व्यक्तिकी ही सृष्टि नहीं होता, उसमें समग्र समाजकी समष्टिगत अनुभूतियोंका प्रकाश होता है। साहित्यका मूल समाजके ऐतिहासिक परिवर्त्तनके साथ-साथ परिवर्तनशील सुख-दुःखके मध्य निहित होनेके कारण ही सामाजिक मनुष्य साहित्यका रसास्वादन करके आनन्द प्राप्त करता है। अतएव वास्तविक जीवनके सम्पर्कसे सर्वथा विच्छिन्न जो साहित्य है, वह कल्पनाका विलास-मात्र समझा जायगा।

मैकालेसे लेकर किपलिंग तक इंग्लैण्डके जितने विख्यात साहित्यिक हुए हैं, उनमें प्रायः सभीने निर्लज्ज भावसे अंगरेज़-जातिकी साम्राज्य-विस्तार-लालसाका जयगान किया है। किन्तु इसके साथ ही इंग्लैण्डके इतिहासमें हम यह भी पाते हैं कि मिल्टने और राजाके विरुद्ध जन-साधारणके विद्रोहमें कवि मिल्टनने जनताका पक्ष ग्रहण किया था। यूनानी जन-साधारणके स्वाधीनता-संग्राममें अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा प्राणदान करके अंगरेज़ कवि बायरनने अपने आत्मघाती विलाप-विलासको गौरवोज्ज्वल आदर्शमें परिणत किया था। किन्तु यह सब निःसंग व्यक्ति-विशेषका संग्राम था। इस विद्रोहके पीछे कोई संघबद्ध प्रेरणा नहीं थी। किपलिंगके उत्तराधिकारी बरनार्ड शा और आल्डस हक्सले-जैसे मनीषियोंने यद्यपि आधुनिक धनतन्त्र एवं साम्राज्यवादके प्रति यथेष्ट व्यंग्य एवं विद्रूप-भाव प्रकट किए हैं; किन्तु भी ब्रिटिश उपनिवेशोंमें जो लोग क्रीतदास बने हुए हैं, उनके सुख-दुःखकी बातोंको आजके ये प्रतिभाशाली साहित्यिक उपेक्षा या अनीच्छासे भूले बैठे हैं। इनकी लेखनीसे जो विद्रोह-वाणी उद्गीरित होती है, उसपर शासक-सम्प्रदाय मुस्करा-भर देता है और कभी-कभी इनकी पीठ भी ठोंक देता है; क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि इनका विद्रोह एवं क्षोभ अधिकसे अधिक उच्छ्वास तथा बुद्बुद् तक ही परिमित रह जायगा। इनमें एक भी ऐसा नहीं है, जो अपनेपर आनेवाले संकटकी परवा न कर व्यापक राजनीति-क्षेत्रमें शासन-व्यवस्थाके ऊपर किसी प्रकारकी विपत्ति आने दे। कौलिन्य एवं बौद्धिक आभिजात्यका अभिमान उन्हें ऐसा नहीं करने देगा। भारतीय जनताकी स्वाधीनताके दावेको लेकर विलायतके तथाकथित विप्लवमना साहित्यिक एक ओर तो विद्वत्तापूर्ण तर्क-वितर्क करते हैं और दूसरी ओर जातिके स्वाधीनता एवं स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारको लेकर पाण्डित्यपूर्ण लेख लिखते हैं। ऐसे ही साहित्यिकोंको लक्ष्यकर गोर्कीने कहा था कि ये सब जीवन-सम्पर्कहीन 'एनिमिक' अर्थात् दुर्बल-मना साहित्यिक हैं। किन्तु शा, हक्सले, इलियट प्रभृति साहित्यिकोंकी भावनाओंसे अनुप्राणित होकर ही एक दल ऐसा तरुण प्रतिभाशाली साहित्यिक निकला, जिसने विश्वव्यापी शोषण एवं उत्पीड़नके विरुद्ध जेहादकी घोषणा की और जनताके दैनन्दिन जीवनके मुक्ति-संग्राममें पूर्ण रूपसे अपनेको संलग्नकर फ़ाशिज़्म और साम्राज्यवादके विरुद्ध आघात करनेके लिए अपनेको सैनिक घोषित किया। ब्रिटेनके इतिहासमें वहाँके बुद्धिजीवियोंका यही सर्वप्रथम संघबद्ध राजनीतिक संग्राम था।

बीसवीं शताब्दीके तृतीय दशकमें फ़ाशिज़्मका रथचक्र द्रुत गतिसे अग्रसर हो रहा था। पश्चिममें जर्मनी और इटली तथा पूर्वमें जापान अपनी साम्राज्य-विस्तार-लालसाको चरितार्थ करनेके लिए दुर्बल राष्ट्रोंकी स्वाधीनताका अपहरण करनेपर तुल पड़े थे। चेम्बरलेन द्वारा परिचालित ब्रिटिश सरकारकी साम्राज्यवादी ढुलमुल नीतिके कारण जर्मनी और इटलीके धनिक सम्प्रदायको गणतन्त्री स्पेनकी स्वाधीनता हरण करनेका प्रोत्साहन मिला और इसका परिणाम हुआ स्पेनका अन्तर्विप्लव। उस समय ब्रिटेनका एक दल तरुण विप्लवी साहित्यिक साम्राज्यवाद एवं फ़ाशिज़्मके विरुद्ध संघबद्ध भावसे संग्राम करनेके लिए लेखनी छोड़कर राइफ़ल धारण करता है। शान्त निर्जन अध्ययन-कक्षके बदले स्पेनकी कोलाहलपूर्ण संग्राम-भूमि ही अब उसका कर्मक्षेत्र बनती है और ये मृत्युंजयी वीर मृत्युका आलिंगन करनेके लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। रणभूमिसे जीवित लौटे बहुत थोड़े और वीरगतिको प्राप्त हुए अनेक। इन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युंजयी वीरोंमें एक राल्फ फ़ाक्स भी थे। २ जनवरी, १९३७ को कर्डोवाके युद्ध-क्षेत्रमें जैतूनके एक मनोरम कुंजवनमें असंख्य स्वाधीनता-योद्धाओंके शवोंके बीच राल्फ फ़ाक्सका मृत शरीर विलीन हो गया!

१९०० ई० में हैलिफ़ैक्स शहरके एक कुलीन मध्यवित्त परिवारमें राल्फ फ़ाक्सका जन्म हुआ था। एक धनी अंगरेज़-परिवारके बालकका जिस रूपमें लालन-पालन होता है, उसीके अनुसार उनका प्रतिपालन हुआ। आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालयमें उन्होंने शिक्षा पाई। एकान्तमें रहकर साहित्य एवं संस्कृतिकी विशेष रूपमें चर्चा करनेका सुयोग एवं सुविधा उन्हें प्राप्त हुई। उस समय साहित्य एवं संस्कृतिके प्रति उनका अनुराग भी पर्याप्त था और इस दिशामें उनकी प्रवृत्ति भी थी। किन्तु रूसमें बोल्शेविक विप्लवके सफल होनेके बाद सन् १९२० में जो भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, उस अवसरपर राल्फ फ़ाक्स साहित्य और संस्कृतिकी चर्चा छोड़कर सोवियत् रूसके अकाल-पीड़ित अंचलोंमें दौड़ पड़े। उस समय तक वे मन-प्राणसे साम्यवादी बन चुके थे। निपीड़ित महामानवकी पुकार सुनकर कलाकार फाक्सने कलाकी मायापुरीमें आत्म-गोपनकर कल्पनाका जाल बुनते रहना अपनी अन्तरात्माके आदेशके प्रति विश्वासघात समझा। साहित्यिकोंकी श्रेणीकी चतुःसीमा तक अपनेको सीमाबद्ध रखकर जिस प्रतिभाका पर्यवसान किसी साहित्यिक पत्रिकाके सम्पादनमें होता, वही प्रतिभा केवल ३६ सालकी अवस्थामें फ़ाशिज़्मके विरुद्ध स्पेनके स्वाधीनता-संग्राममें सदाके लिए अस्तंगत हो गई। किन्तु इस प्रकारकी मृत्यु वरेण्य ही कही जायगी। इसमें जीवनका विनाश नहीं, परिपूर्णता है।

आदर्श-लाभके लिए अपने प्राणोंकी आहुति देकर राल्फ फ़ाक्स आजके तरुण साहित्यिकोंके लिए यह अमर सन्देश छोड़ गए हैं कि जब तक बुद्धिजीवी-सम्प्रदाय श्रमजीवियोंके साथ अपना एकत्व स्थापित नहीं करेगा, तब तक युद्ध एवं फ़ाशिज़्मके विध्वंसी हाथोंसे साहित्य एवं संस्कृतिकी रक्षा असम्भव है। राल्फ फ़ाक्स किसी व्यक्तिगत आर्थिक कारणसे साम्यवादी नहीं बने थे। उन्होंने एकनिष्ट भावसे साम्यवादके आदर्शको ग्रहण किया था। उनके साम्यवाद-ग्रहणके मूलमें बुद्धि, युक्ति एवं साहसका अपूर्व सम्मेलन देखा गया था। जिस दिन उन्होंने अपने जीवनादर्श-रूपमें साम्य-वादको ग्रहण किया, उसी दिनसे उन्होंने पूर्ण आन्तरिकता एवं निष्ठाके साथ इस आदर्शकी सेवामें अपनेको उत्सर्ग कर दिया। इस प्रकार आदर्शके प्रति सत्यनिष्ठाके कारण ही इस आदर्शके अग्नि-स्पर्शसे उनकी साहित्यिक प्रतिभा और भी प्रोद्भासित हो उठी। इसलिए एक ओर जहाँ वे अपने नित्य जीवनके कार्य एवं स्पेनकी रणभूमिमें अपने आदर्शकी रक्षाके लिए मृत्यु-वरणके कारण चिर-स्मरणीय बने रहेंगे, वहाँ दूसरी ओर उनकी साहित्यिक कृतियाँ भी ऐसी हैं, जो उन्हें चिर-काल तक जीवित रखेंगी।

राल्फ फ़ाक्सकी साहित्यिक कृतियोंको हम चार भागोंमें बाँट सकते हैं—ऐतिहासिक, राजनीतिक, उपन्यास एवं साहित्य-समालोचना। चंगेज़खाँ और लेनिनकी जीवनियाँ उन्होंने सम्पूर्ण अभिनव रूपमें लिखी हैं। रचना-कौशलके साथ-साथ उन्होंने अतीतकी इतिहास-रचनाका एक ऐसा रूप हमारे सामने रखा है, जो अब तक एक प्रकारसे अज्ञात बना हुआ था। इस इतिहासमें वीर-पूजा नहीं है। इस इतिहासका संचालन-सूत्र दैवी शक्ति-सम्पन्न युग-मानवके हाथमें नहीं है। इस इतिहासकी रचना हुई है वास्तविक परिस्थितिके साथ मनुष्यके नित्यके जीवनके संघर्षके बीच। इस परिस्थितिसे वृहत्तर परिस्थितिके बीच जो मनुष्यके संग्रामका सफलतापूर्वक संचालन करते हैं, वे ही युग-मानव हैं; वे ही १२वीं शताब्दीके चंगेज़खाँ और २०वीं शताब्दीके लेनिन हैं। समाज-विज्ञानकी इसी विराट पृष्ठभूमि-पर राल्फ फ़ाक्सने युग-पुरुषोंके द्वारा युगके इतिहासकी रचना कराई है। इस दृष्टिकोणको लेकर उन्होंने वर्त्तमान कालके इतिहासकी जो रचना की है, उससे समसामयिक घटनाओंपर तीव्र प्रकाश पड़ता है।

उनके उपन्यास प्रधानतः एशियाको केन्द्र करके रचे गए हैं। यूरोपके बुद्धिजीवियोंने एशिया महादेशके अपनी काल्पनिक रचनाओंमें जो चित्रण किया है, उसके अनुसार एशिया एक ऐसा रहस्यमय देश है, जहाँके लोग असीम दारिद्र्य, अभाव और महामारीके बीच भी ऐहिक जीवनकी अपेक्षा पारलौकिक जीवनकी चिन्ता ही अधिक करते हैं। सब प्रकारके ऐहिक क्लेशोंको सहते हुए भी वे परलोक-सुखकी आशामें निश्चिन्त भावसे सानन्द जीवन व्यतीत कर देते हैं। किन्तु इस विशाल महादेशका एक ऐतिहासिक वास्तव-रूप भी है। मरुभूमिकी खानाबदोश जातियोंको जीवन रक्षाके लिए किस प्रकार भयानक संग्राम करना पड़ता है यूरोपीय धनतन्त्रके कठोर आघातोंके कारण उनका दुःसाहसिक जीवन किस प्रकार पराजित एवं पदानत हुआ है और बोल्शेविक रूसके अधिनायकत्वमें उनके जीवनकी जययात्रा किस प्रकार नूतन रूपमें आरम्भ हुई है—इस सबका सुसम्बद्ध एवं परि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप आपको फ़ाक्सके उपन्यासोंमें मिलेगा। काल्पनिक कहानियोंके आवरणमें इतिहासके इस भयावह क्षमाहीन रूपको चित्रित करनेका जो साहस एवं कला-कुशलता फ़ाक्सने अपने उपन्यासोंमें प्रदर्शित की है, वह निःसन्देह बुद्धिजीवी-वर्गके लिए विस्मयकी वस्तु है। उनके 'स्टार्मिंग हेवेन' और 'पीपुल्स आफ स्टेप' नामक उपन्यास विश्व-साहित्यमें विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मास्कोके 'मार्क्स-एंगल्स-लेनिन इन्स्टीट्यूट'में उन्होंने कई वर्ष तक गवेषणाका कार्य किया, जिसके फल-स्वरूप उन्होंने 'स्पेनमें श्रेणी-संघर्ष', 'ब्रिटिश साम्राज्यवादकी औपनिवेशिक नीति', 'आयरलैण्डके प्रश्नपर मार्क्स और एंगल्स', 'लेनिनकी देनें' आदि पुस्तकें लिखीं। लेनिनकी जीवनी ऐतिहासिक होनेपर भी उसमें एक परिपूर्ण मनुष्यका मूर्त्त रूप ज्वलन्त रूपमें प्रस्फुटित हो उठा है। उपर्युक्त अन्य पुस्तकोंमें भी बुद्धिकी तीक्ष्णता एवं निपुण गवेषणाका परिचय मिलता है। साहित्य एवं संस्कृतिके क्षेत्रमें राजनीतिक संग्रामका समावेश करनेके लिए उन्होंने आजीवन जो चेष्टा की थी, वह भी इस संग्राममें उल्लेख-योग्य है। 'नावेल एण्ड दि पीपुल्स' नामक प्रसिद्ध पुस्तकमें उन्होंने बताया है कि समाजकी प्रगति एवं काल्पनिक साहित्यके बीच किस प्रकार बराबरसे सम्बन्ध रहता आया है। इसके प्रमाणमें उन्होंने कितने ही दृष्टान्त दिए हैं तथा अकाट्य युक्तियोंकी अवतारणा की है। जन-साधारणके मुक्ति-संग्राममें जो प्रगतिशील भावादर्श होता है, उसके साथ साहित्यका क्या सम्बन्ध होना चाहिए, इसपर उन्होंने लिखा है—"Marxism gives to the creative artist the key to reality when it shows him how to discern that pattern and place which each individual occupies in it. At the same time, it consciously gives to men his full value and in this sense is the most humanist of all world outlooks."—अर्थात् कलाकारका काम होता है जन-साधारणकी आँखें खोल देना, अन्ध-परम्परा एवं गतानुगतिकताकी विषाक्त परिस्थितिसे मनुष्यके मन एवं संस्कृतिको प्रकाशमें ले आना। यह तभी हो सकता है, जब कि शिल्पी एवं लेखक मार्क्सवादी दृष्टिकोण लेकर रचना करे; क्योंकि मार्क्सवादमें व्यक्तिके परिपूर्ण विकासके लिए स्थान है, और इस अर्थमें यह संसारकी अन्य सभी दृष्टि-भंगियोंसे बढ़कर मानवीय है। वास्तव-भीति एवं निष्क्रिय विलाप-विलाससे वर्त्तमान लेखक सम्प्रदायको मुक्त करनेमें राल्फ फ़ाक्सके जीवनके अन्तिम दिन व्यतीत हुए। स्पेनके युद्धमें उन्होंने अपने आदर्शकी रक्षाके लिए जो आत्माहुति दी थी, उसमें उनके मुखसे जो अन्तिम वाणी विनिःसृत हुई थी, वह चिर-काल तक हमारी हृत्तंत्रीको झंकृत करती रहेगी—"There are rare occasions in history, in the personal history of each individual, in the common history of all mankind, when the demands of life fully correspond with the dignity and intensity of man's desires."—अर्थात् इतिहासमें, प्रत्येक व्यक्तिके जीवनके इतिहासमें, सारी मानव-जातिके इतिहासमें, ऐसे विरल ही अवसर आते हैं, जब कि मनुष्यकी मर्यादा एवं उसकी इच्छाओंकी तीव्रताके साथ उसकी जीवन-प्रणालीका सम्पूर्ण मेल होता है।

हो सकता है कि आजके इंग्लैण्डमें राल्फ फ़ाक्सके लिए वह गौरवपूर्ण स्थान न हो, जो बरनार्ड शा, हक्सले, इलियट और वेल्सके लिए है; किन्तु कौन कह सकता है कि आगेकी पीढ़ी इस बातको उपलब्ध करके गौरव-बोध नहीं करेगी कि बीसवीं शताब्दीके तृतीय दशकमें इंग्लैण्डमें एक ऐसा तरुण साहित्यिक हुआ था, जिसने अपने आदर्शकी उन्मादनामें दूसरे देशके लिए सहास्य वदन प्राण विसर्जन किए थे और उसके इस ज्वलन्त आत्म-दानसे जातिको चिर-कालके लिए एक अमोघ अनुप्रेरणा प्राप्त हुई थी।

जीवन-गान

श्री महेशचन्द्र मिश्र

बन्दी, अपना मन न थका रे!

माना पिंजड़े में जकड़ा है,
माना शासन बहुत कड़ा है,
मत अरे दुखी हो, हँस-हँस अपना जी बहला रे!
सबमें उतनी शक्ति नहीं है,
सबमें उतनी भक्ति नहीं है,
एक अकेला कर्णधार तू, नौका को उस पार लगा रे!
जग को जीवन-दान मिलेगा,
युग-युग का आह्वान मिलेगा,
मत अलसा रे, चुप न बैठ तू, और तनिक-सा कष्ट उठा रे!
बन्दी, अपना मन न थका रे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सितमगर

प्रो० आनन्द

पात्र

सितमगर—एक दुबला-सा, मगर जवानीकी मस्तीसे भरा हुआ नौजवान भिखारी, मैली-सी हाफ़-पैण्ट और फटी-सी काली कमीज़ पहने हुए।

गजनू—एक लँगड़ा-लूला, फटे चिथड़े पहने बूढ़ा भिखारी।

सुन्दरी—किसी रईस-खान्दानकी रूपवती अधेड़ युवती।

मँगताशाह—भिखमंगोंका पेशेवर सर्दार।

पहला दृश्य

सितमगर—हाय रे सफ़ेदपोशी! किस मज़ेसे कहते हैं—'हट्टे-कट्टे! भीख माँगते शर्म नहीं आती!!'

(चलते-चलते गाता है—)

शर्मो-हयाके ये रखवाले!
हाँ,.....!!

[रास्तेमें बैठा हुआ गजनू सितमगरको पुकारता है। पास आकर सितमगर और झूम-झूमकर गाने लगता है। सुननेवालोंका ठठ लग जाता है। पसे, अधेले तथा फल बरसने लगते हैं। सड़कके दूसरे किनारेपर काफ़ी-हाउसके सामने एक छोटी-सी मोटर खड़ी है। शोफ़रकी जगह खाली है। पिछली सीटपर एक सुन्दरी आकर बैठ जाती है और हार्न बजाना चाहती है; मगर सितमगरके गानेकी आवाज़ सुनकर रुक जाती है। सितमगर गा रहा है।]

ऐशो-तमन्ना के ये पाले,
रातोंके काले, दिनके उजाले।
गर्क खुदीमें, ओछे खयाले,
यारब! इनसे तू ही बचा ले!
हाँ, शर्मो-हयाके.....!!

[भीड़से निकलकर शोफ़र दौड़ता हुआ आता है। सुन्दरी प्रश्न-भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखती है। मोटर चल पड़ती है।]

शोफ़र—मँगतुआके दलका एक छोकरा था, सरकार!

सुन्दरी—हूँ! कौन मँगतुआ?

शोफ़र—(हँसकर) वही, भिखमंगोंका ठेकेदार, सरकार!

[सितमगर सब पैसे बटोरने लगता है। गजनू ललचा उठता है। चाहता है कि दो-एक पैसे मिल जायँ, तो भुने हुए मटर लेकर खा ले; लेकिन डरता है कि पड़ोसकी काली भिखारिनने कहीं उस दिनकी तरह चुगली कर दी, तो दो दिन भूखा रहना पड़ेगा। फिर सोचता है, कुछ पैसे छिपाकर ही रख ले; मगर डर लगा कि शामकी तलाशीमें कहीं पोल खुल गई, तो बड़ी मार पड़ेगी। सितमगर सब-कुछ बटोरकर गजनूके सामने रख देता है और चलने लगता है।]

गजनू—(ललचाकर) और तू?

सितमगर—ये क्या आजके आठ पैसे ले तो लिए हैं।

गजनू—मगर ये सभी तो तेरे हैं।

सितमगर—अपने लिए तो गिने-गिनाए पैसे चाहिएँ आठ। पैसेकी, इज्ज़तकी, शानोशौकतकी या आरामकी ही क्यों न हो, गुलामी तो आखिर गुलामी ही है। आज़ाद, बेफ़िक्र, मनमौजी फ़ुर्सतकी भूख ही तो इस रास्ते ले आई।

दूसरा दृश्य

[मँगताशाहका प्रवेश। चिथड़े लपेटे, कन्धेपर एक बड़ा-सा मैला झोला, बड़े-बड़े बिखरे केश, आँखें चढ़ी हुईं, लम्बा-चौड़ा बदन।]

मँगताशाह—(गजनूसे) नहीं मानता? ऐसी भी क्या बात है!

गजनू—तो क्या करूँ?

मँ० शा०—(तमककर) हाथ-पैरके लूले तो हो ही; पर अक्लके उससे भी ज़्यादा।

गजनू—(उपेक्षासे) सभी धान बारह पसेरी, चौधरी! इन दो सौ पेटुओंसे पेट नहीं भरता? चार गण्डे रोज़ तो मुझीसे पा जाते हो।

मँ० शा०—(डाँटकर) चुप रह। चार गण्डे, चार गण्डे और यह पेटका कुआँ रोज़ कौन भरता है?

गजनू—मालपुओंसे न?

मँगता०—यही शक्ल है न!...तो वह कहता क्या है?

गजनू—तुम्हीं जाकर पूछ लो न?

मँ० शा०—पूछना-ऊछना क्या? गलेमें ज़रा दर्द है, गला वज़ल कह लेता है, और क्या? माँगनेको भीख और ये नखरे! मगर यह रहता कहाँ है?

गजनू—भिखमंगोंका भी कोई ठिकाना होता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़र्श और आसमानकी छत जहाँ भी मिले, क्या महल, क्या खँडहर ?

मँ० शा०—हूँ ! ला इधर, क्या बटोरा है आज ?

[गजनू लगभग दो रुपएके अधन्ने, पैसे, पाई वग़ैरा, चार अमरूद, दो सन्तरे, डेढ़-दो सेर गल्ला झोलेमें डाल देता है ।]

मँ० शा०—दिन ढलने आया और यह कमाई ! ज़बान हिलाना मत, जगहसे सरकना मत, और चीखना-चिल्लाना, घिघियाना, रोना, दौड़-धूप करना इसका तो सवाल ही क्या ? लेकिन शामको ठूँसनेको चाहिए कमसे कम सवा सेर पक्का गल्ला और आधी छटाँक गुड़ भी ! ...धत्तेरेकी, नमकहराम कहींके !

गजनू—अरे, पर सुनो तो बाबा !

मँ० शा०—चुप ! तू ही क्या, देखता हूँ आजकल सभी बेईमान हो रहे हैं । (झोला सँभालता है, जिसमें लगभग तेरह रुपएके पैसे हैं, छः-सात सेर गल्ला और बीस-पच्चीस सन्तरे हैं ।) इतने पेटुओंको पालो, न-जाने कितनोंकी थैली भरो, धौंस सहो, या खुदा ! जो धन्धा देखो, सब घाटा-घाटा ! निकम्मे, अपाहिज कहींके !

[चला जाता है ।]

तीसरा दृश्य

[सवेरेका समय । मैटकाफ़-स्क्वायरमें तालाबके किनारे कुर्सी बैठा हुआ सितमगर गा रहा है—'लाख हम तेरे हुए, पर तू हमारा न हुआ ।' सामनेकी कोठीकी बड़ी-सी खिड़कीमें से वही परिचित सुन्दरी सितमगरकी पहचानी हुई आवाज़ सुनती है । गाना बन्द होते ही नौकरसे गानेवालेको बुलवाती है ।]

सुन्दरी—और गाओ, पैसे मिलेंगे ।

सितमगर—जी (मुस्कराकर) ! मगर गाना मेरा रोज़गार तो नहीं है ।

सुन्दरी—पैसों ही के लिए तो भिखमंगे नाचते-गाते और जाने क्या-क्या करते हैं ?

सितमगर—हाँ, हाँ ; क्यों नहीं ! भिखमंगोंकी इस दुनियामें आपको शाह दिखेंगे ही कहाँ ?

सुन्दरी—तो तुम भीख नहीं माँगते, क्यों ?

सितमगर—नहीं तो ।

सुन्दरी—तो खाते क्या हो ?

सितमगर—हम ! हम खाते हैं भूखोंकी भूख ; सो भी पहले भूखोंको खिला लेते हैं तब ।

सुन्दरी—तो मेरी भूख भी मिटा दो न !

सितमगर—हाँ, हाँ ! जब तक भूख हो, सुनिए । (गाता है—)

भिखमंगोंकी इस दुनियामें,
शाह कौन, कितना, कैसा ?
लँगड़ा, लूला, अन्धा कोई
मस्त, मलंगा मुझ - जैसा !
राजा, रंक, रमाए धूनी
स्वाँग भरे कैसा - कैसा !
रूप - भिखारी इनमें कितने,
कितनोंका ईमाँ पैसा !

[सड़कपर सुननेवालोंकी भीड़ लग जाती है । सितमगर गाता रहता है । सहसा मँगताशाहकी साज़िशसे पुलिस आकर उसे गिरफ़्तार कर ले जाती है ।]

चौथा दृश्य

[समय दोपहर । सितमगर हवालातमें बन्द है । मँगताशाह उससे मिलने आता है ।]

मँगताशाह—कहा था, टोलीमें चले आओ ; मगर तुम्हारा तो दिमाग़ ही ठिकाने नहीं । माँगनेको भीख और ऐंठ इतनी ! इलाक़े-भरमें टोलीके बाहर कोई कानी कौड़ी भी माँग सकता है ? ये जो पाँच, दस, बीस, पचीस रुपए महीना इधर-उधर चटाता हूँ, वैसे ही ? अबे लैसन है, लैसन ! टोलीमें रहनेका वादा करे, तो अभी छुड़ा ले चलूँ । बता ?

सितमगर—(मुस्कराकर) यह हवालात क्या बुरी है, चौधरी ? (फिर गाने लगता है—)

शर्मो - हयाके ये रखवाले !
हाँ,.....!!

[पटाक्षेप

गोपन कौन कथा रही अब ?

श्री सोहनलाल द्विवेदी

कुछ हृदय की शत पंखुड़ियाँ ; देखीं तुमने लड़ियाँ-लड़ियाँ ।
देखी हर्ष-व्यथा सभी जब ; गोपन कौन कथा रही अब ?
कभी कभी अपने जीवन का ; नहीं छिपाया तुमसे मन का ।
सब आवरण वृथा आज तब ; गोपन कौन कथा रही अब ?
आई है मधुऋतु की बेला ; सोचो क्या कहती अवहेला ?
कैसी प्रीति-प्रथा रही कब ? गोपन कौन कथा रही अब ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुन्देलखण्ड-प्रान्तका निर्माण

श्री वासुदेवसिंह जादौन

युद्ध समाजके शरीरके रोगोंका एक महान विस्फोट-मात्र है। उसकी विकरालता तथा विस्तारके परिमाणसे रोगोंकी गहराईका भी पता लग जाता है। महायुद्धकी लपटें आज सारे संसारमें फैल चुकी हैं। कोई भी देश इनसे अछूता नहीं। इससे यह भलीभाँति सिद्ध है कि मानव-समाजका संगठन बिल्कुल ग़लत उसूलोंपर हुआ है और उनमें आमूल परिवर्त्तनकी आवश्यकता है। आज अखिल मानव-जातिको जीवनकी सर्वोत्तम चीज़ों—बौद्धिक प्रगति तथा संस्कृति—की रक्षाके लिए प्रथम पंक्तिमें लड़नेवाले सिपाहियोंकी ज़रूरत तो है ही; पर साथ ही उसको गोली, बारूद, भोजन, वस्त्र आदिके प्रबन्धके लिए मोर्चोंसे दूर चुपचाप काम करनेवाले कार्य-कर्त्ताओंकी भी आवश्यकता है। आज जितनी अधिक व्यापकतामें विनाश हो रहा है, उतनी ही व्यापकतासे युद्धके बाद निर्माण भी करना होगा। उस समय शान्तिको स्थायी बनाने और मानव-समाजके पुनर्निर्माणके लिए युद्धसे भी अधिक सुसंगठित प्रयास करने होंगे। इस उद्देश्यके लिए ज़रूरत पड़ेगी उन स्वप्न-द्रष्टाओं तथा विचारकोंकी, जो घोरतम संकटके दिनोंमें भी भविष्यको भूल नहीं जाते।

आज भारतवर्षकी सीमाओंपर तीन ओरसे युद्धकी घटाएँ घिरती आ रही हैं। प्रत्येक नागरिकसे एक प्रयत्नशील सिपाही सिद्ध होनेकी आशा की जा रही है। दूसरी ओर आज़ादी हासिल करनेके लिए भी उग्र रूपमें कशमकश जारी है। यह कहा जाता है कि आज देश दो दलोंमें बँट गया है। आम तौरपर यह ख़याल किया जाता है कि इन दो दलोंके सिवा और किसी भी समुदायका अस्तित्व नहीं, और यदि है, तो उसका कोई भी महत्त्व नहीं। किन्तु जिस प्रकार युद्धके बादकी समस्याएँ युद्धसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और भयानक होंगी तथा उनके सही या ग़लत हलपर ही मानव-जातिकी प्रगति और शान्ति निर्भर होगी; उसी प्रकार आज़ादीके बाद भारतकी भी अपनी अनोखी समस्याएँ होंगी और उनका सफलतापूर्वक तथा दृढ़तासे सामना करनेके ऊपर ही हमारी स्वतन्त्रता, शान्ति और उन्नति निर्भर होगी। इसलिए आजके भयानक संकट-कालमें भी यदि कोई विचारक भविष्यकी समस्याओंकी रूप-रेखा बनाने और उनका हल निकालनेमें प्रयत्नशील हो, तो उसके कामको अनावश्यक अथवा गौण नहीं समझा जा सकता; क्योंकि उसके प्रयत्नोंकी सफलतापर ही यह निर्भर है कि भविष्यमें युद्धकी सम्भावनाएँ मिट जायँ और हमारी आज़ादीके अपहरणका भी खतरा न रहे।

आज यदि देशका कोई भाग आज़ादीकी जद्दोजहदमें हिस्सा न ले, तब भी आज़ादी प्राप्त की जा सकती है; पर निर्माणके समय किसी भी भूखण्डकी अकर्मण्यताका आशय होगा सभी प्रयासोंकी पीठमें छुरा भोंकनेकी नीतिका अवलम्बन। अथवा यों कहिए कि उन्नतिको पीछे घसीटकर समाजके शरीरको नितान्त अपंगु बना देना। ऐसी दशामें आज देशकी जो स्थिति है, उसपर एक बार दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। यदि देशके राजनीतिक संगठनपर दृष्टि डाली जाय, तो यही कहना होगा कि वह एकदम अस्वाभाविक, कृत्रिम, निरर्थक, बेढंगा और अस्थायी है। ब्रिटिश सरकारने अंगरेज़ी भारतकी सीमाएँ निश्चित करनेमें किसी वैज्ञानिक पद्धति-विशेषकी शरण नहीं ली। कभी किसी देशी सामन्तको जीतकर, कभी दूसरे सामन्तको पदच्युतकर, कभी तीसरे सामन्तसे इनाम प्राप्तकर या उसके दूसरे हक़दारोंसे समझौता करके प्राप्त किए गए भूभागों द्वारा अंगरेज़ी भारतका निर्माण हुआ है। चूँकि यह निर्माण-पद्धति पूर्णतया अनियमित और असंगत थी, इसलिए प्रान्तोंका संगठन बेसिर-पैरका होता गया। आज जो विषमता हमें प्रान्तोंमें मिलती है, उसके मूलमें यही बात है। देशी भारतमें तो और भी व्यापक धाँधली मिलती है। देशी भारतका निर्माण परम्परागत प्राप्त भूमि तथा सनदों और इनामोंसे प्राप्त भूखण्डों द्वारा हुआ है। आज तक देश विभिन्न शियों द्वारा शासित है। इनके हटते ही सम्पूर्ण भारतके राजनीतिक सीमाओंमें भी परिवर्त्तन होना अवश्यम्भावी है।

आज समस्त देशमें कोई भी एक आर्थिक या राजनीतिक नीति प्रचलित नहीं है। सामूहिक प्रयत्नसे आर्थिक समस्याओंके सुलझानेका प्रयास अब तक नहीं हुआ। इसका नतीजा यह हुआ है कि जनता ग़रीबीके निम्नतम धरातलपर पहुँच गई है। आज भारतकी समस्याएँ ग़रीबी, निरक्षरता, मिथ्या विश्वास, सामाजिक रूढ़ियाँ, जात-पाँत, छुआछूत, शिक्षितों और अशिक्षितोंकी बेकारी आदि तो हैं ही; पर इन सबको सुलझानेके लिए सबसे अधिक आवश्यक है देशको स्वाभाविक सीमाओं बाँटकर उसका संगठन। बिना इसके हम अन्य किसी समस्याको सफलतापूर्वक हल करनेके लिए सामूहिक प्रयास कर सकते और न उसके उपयुक्त वातावरण ही बना सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार किसी मनुष्यसे पूरा-पूरा काम लेनेके लिए उसके प्रत्येक अंगका स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार किसी भी जातिका निर्माणके लिए प्रयत्नशील होनेसे पहले स्वाभाविक और स्वस्थ्य इकाइयोंमें संगठित होना ज़रूरी है।

प्रान्त-निर्माणकी वैज्ञानिक भित्तियाँ

छोटे जनपदों और बड़े जनपदों तथा सम्पूर्ण संघात्मक राष्ट्रके बीच कुछ समान स्वार्थ हैं, कुछ असमान। इनके अतिरिक्त कुछ विरोधी स्वार्थ भी हो सकते हैं। बंगाल, सीमा-प्रान्त, मद्रास, बम्बई, मध्य-प्रान्त आदि सभी भूखण्डोंके निवासियोंका यह समान स्वार्थ है कि संघात्मक राष्ट्रकी वैदेशिक नीति ऐसी हो कि पड़ोसी राष्ट्रों तथा संसारकी अन्य शक्तियोंके सामने उसके हितोंको कोई क्षति न पहुँचे। सभीका यह समान स्वार्थ है कि उनके अखिल राष्ट्रपर बाहरसे कोई हमला न कर पाय, और यदि ऐसा हो, तो संघात्मक सरकार डटकर उसका मुक़ाबिला करे। उनका यह समान स्वार्थ है कि मालके आदान-प्रदानमें संसारके किसी भी कोनेमें उनके साथ अन्याययुक्त बर्ताव न हो। उनका यह भी समान हित है कि आने-जानेके रास्ते, डाक तथा तार आदिका प्रबन्ध ठीक प्रकारसे हो। साथ ही आन्तरिक नीति और आन्तरिक व्यापारमें परस्पर-विरोधी प्रणालियाँ प्रचलित न होने पायँ; क्योंकि ऐसा होनेसे एक जनपदके हितोंके विघात द्वारा दूसरेका लाभ हो सकता है। न्यायका भी एक ऐसा मसला है, जिसमें सभीके स्वार्थ निहित हैं। इसके साथ ही आर्थिक प्रणालीकी भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण समस्या है। आर्थिक संगठन ऐसा होना चाहिए, जिसमें मानव-समाजका शोषण होनेकी सम्भावना न रहे। इसी प्रकार राजनीतिक संगठन भी एक ऐसा विषय है, जिसमें सभीके समान स्वार्थ हैं। ये वे स्वार्थ हैं, जो सभी जनपदोंमें समान रूपसे एक-दूसरेसे जुड़े हुए होंगे। इनके लिए सभी जनपदोंको सामूहिक तौरपर प्रयत्न करने होंगे। संघात्मक सरकार इन सबके लिए प्रयत्नशील होगी।

ऊपर बताए हुए समान विषयोंके सिवा कुछ ऐसी समस्याएँ भी हैं, जिनमें समानताका पूर्ण अभाव है और जिनके बारेमें प्रत्येक जनपदको अपनी इकाईकी शक्लमें विचार करने तथा उन्हें सुलझानेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इन समस्याओंका सम्बन्ध है उनकी भाषा तथा साहित्यसे, उनकी निजी ऐतिहासिक निधियोंसे, उनकी सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओंसे और उनके जातीय पर्व-त्यौहारों तथा रीति-रिवाजोंसे। इन सबको व्यक्तिगत चीज़ मानना होगा तथा उनका अपने तरीक़ोंसे उपयोग करनेका सबको हक़ देना होगा। इन चीज़ोंको कोई किसीपर लाद नहीं सकता। हमारी संघात्मक राष्ट्रीय संस्था समान स्वार्थोंका प्रतीक होगी, न कि किसी बड़े जनपदके किसी छोटे जनपदपर अथवा किन्हीं जनपदोंके अपने पड़ोसी जनपदोंपर जमाई जानेवाली धौंसका। केवल संस्थाकी अधिकता या राजनीतिक अथवा आर्थिक प्रणालीकी एकताके बलपर जनपदोंपर भाषा या संस्कृतिको लादनेका प्रयत्न क़ामयाब न होगा। यहाँपर दो-एक उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। राजनीतिक संगठनकी एकताके नामपर सम्पूर्ण भारतको एक ही शासन-सूत्रमें बाँधनेके प्रयत्न उत्तर-भारतमें कई बार हो चुके हैं; पर वे बार-बार असफल हुए। एक बार आस्ट्रिया-हंगरीमें भी इसी प्रकारका प्रयत्न किया गया था; पर वह भी कामयाब नहीं हो सका। वहाँपर भी सर्वियन, क्रोआटियन और रूमानियन जनताको खानगी अधिकार देनेसे इन्कार कर दिया गया था तथा इसी कारण सारे प्रयत्नोंपर पानी फिर गया था। यही बात १९०८ में क्रान्तिके समय तुर्कीमें भी हुई थी। इस प्रकार जब तक संघात्मक सरकार समान स्वार्थोंकी समस्याओंको हल करनेमें प्रयत्नशील रहती है, सभी शक्तियोंका सहयोग मिलता जाता है; किन्तु ज्योंही वह असमान स्वार्थोंपर हाथ डालकर उनको एक इकाई बनानेकी ओर क़दम बढ़ाती है, अथवा यों कहें कि जब वह फ़ौजीकरण—रेजीमेन्टेशन—के नशेमें भाषा और संस्कृति-जैसी व्यक्तिगत चीज़ोंपर हमला करती है, तो चारों ओरसे उसका विरोध शुरू हो जाता है और वहीं उसकी गाड़ी चकनाचूर हो जाती है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि हमारे प्रान्तोंका निर्माण भाषा, संस्कृति, ऐतिहासिक परम्परा, आर्थिक प्रणाली और प्राकृतिक साधनोंकी भित्तियोंपर ही होना चाहिए। यहाँ भाषा तथा संस्कृति मुख्य आधार होते हुए भी यह मुमकिन है कि एक ही भाषा-भाषी भूखण्डके लोगोंके कुछ ऐसे स्वार्थ हों, जिनकी दृष्टिसे उनकी अलग इकाई हो और उनमें उसके प्रति जागरूकता हो, जैसा कि कुर्दिस्तान तथा ईरानके जनपदोंके बीच है। दोनों ही एक ही शिया-धर्मावलम्बी हैं, दोनोंकी भाषा भी फ़ारसी ही है, फिर भी कुर्दोंके कुछ अपने निजी स्वार्थ हैं और वे अपनी स्वतन्त्र इकाईके प्रति जागरूक ही नहीं, वरन् संघर्ष भी करते आ रहे हैं। क्रोआटिया तथा सर्बियामें भी, बावजूद इसके कि भाषाका कोई भेद नहीं है, दो इकाइयोंके प्रति पर्याप्त जागरूकता है। ऐसी दशामें यदि एकताके नामपर जनपदोंके स्वतन्त्रतापूर्वक उन्नति करनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित वातावरण बनानेके स्वतन्त्र संगठनकी माँग बलपूर्वक दबाई जाय, तो सरासर अन्याय होगा। इसलिए प्रान्त-निर्माणके लिए सभी पहलुओंपर विचार करके ही निर्णय करना होगा।

ठोस निर्माणकी बातपर हमारा ध्यान प्रान्त-निर्माणके तरीक़ोंकी ओर बरबस खिंच जाता है; पर आज जितनी सफलता (वैसे भी उनकी निर्माण-पद्धतिकी प्रशंसा संसारके सुप्रसिद्ध विचारक कर चुके थे) के साथ दानवी शक्तियोंका विरोध रूसने किया है, उससे रहे-सहे विरोधियोंको भी उसकी रचना-प्रणालीका लोहा माननेको बाध्य होना पड़ा है। यहाँ उत्तरी साइबेरियाके सबसे ठण्डे प्रदेशोंमें से एक प्रदेश याकूतियाका उदाहरण देकर हम यह दिखानेका प्रयत्न करेंगे कि पुनर्निर्माणमें एक दरिद्र और पिछड़े हुए देशने बीस सालके थोड़ेसे समयमें कितनी आश्चर्यजनक प्रगति की। रूसी क्रान्तिसे पहले याकूतिया भी ज़ारकी सरकारकी चक्कीमें दुर्दान्त रूपसे पीसा जा रहा था। रूसी व्यापारी और पूँजीपति याकूत सामन्तोंकी मददसे वहाँकी पैदावार लकड़ी और समूरी चर्मको लूट रहे थे और वहाँके निवासियोंमें वोडकाके सेवनको प्रोत्साहन दे रहे थे। इस आर्थिक शोषणका नतीजा था सर्वनाशका बराबर नज़दीक आना। वहाँ क्षयरोगका बड़ा ज़ोर था तथा आम तन्दुरुस्तीका यह हाल था कि किसी भी मनुष्यको पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता था। सिवा सामन्तों, पादरियों और व्यापारियोंके पैदाइशसे मौतकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। ५ वर्षकी आयु पूरी करनेसे पहले ही ७० फ़ी-सदी बच्चे मर जाते थे। उन लोगोंकी सांस्कृतिक भावनाको हिक़ारतकी नज़रसे देखा जाता था। उनको अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रीति-रिवाजोंको भी पूरा करनेका हक़ न था। उनको अपनी भाषाकी उन्नतिका अधिकार तो दूर, उस भाषाको बोलनेकी भी आज़ादी न थी। उसको महत्व देना सरकारकी निर्धारित नीतिके विरुद्ध समझा जाता था। उसमें पुस्तकें या अखबार छापनेकी सुविधा तो बहुत ही दूरकी बात थी। लोक-शिक्षणके नामपर जो स्कूल थे भी, उनमें रूसी भाषाके माध्यमसे शिक्षा दी जाती थी। सामन्तों, व्यापारियों, पादरियों तथा उनके रिश्तेदारोंके सिवा अन्य लोगोंके पढ़नेकी सुविधा नाममात्रकी थी। कुल विद्यार्थियोंमें से केवल १५ प्रतिशत याकूत होते थे। शिक्षाका विस्तार २ प्रतिशतके क़रीब था। देश कृषि-प्रधान था और कृषि पुराने तरीक़ोंपर होती थी। इससे निवासियोंका पालन होना भी दूभर था। उनको लकड़ी काटकर तथा शिकार करके अपना पेट भरना पड़ता था। पशु-पालनकी दशा भी शोचनीय थी। न उन्नतिशील तरीक़े काममें लाए जाते थे और न नस्लको सुधारनेका कोई इन्तज़ाम था। वनोंमें जो क़ीमती लकड़ी थी, वह सब काटकर रूसी पूँजीपतियोंके स्वार्थोंके लिए बाहर भेज दी जाती थी। वनोंके सुधारनेका भी कोई प्रयत्न नहीं होता था। कल-कारखानोंका नाम भी न था। तीस लाख वर्गकिलोमीटरमें फैली हुई भूमिकी प्राकृतिक सम्पत्तिके उपयोगका कोई प्रयास न था। सन् १९१७ में उद्योग-धन्धोंकी उपज १५७००० हज़ार रूबलकी थी।

अब इसके २० वर्ष बाद सन् १९३७ की हालतपर भी दृष्टि डालिए। आज वही दलित याकूतिया एक स्वतन्त्र और औद्योगिक जनपद बन गया है। वहाँ सामाजवादी उसूलोंपर आर्थिक निर्माण होनेके कारण आर्थिक लूट करनेवाली श्रेणियों, पूँजीपतियों, व्यापारियों, सामन्तों और पादरियोंका उसके जातीय जीवनमें कोई स्थान नहीं है और शोषणकी सम्भावनाका भी नामो-निशान नहीं है। जन-स्वास्थ्यके लिए भी वहाँ कम प्रयत्न नहीं हुआ। १९१७ में थोड़ेसे चिकित्सालय और १९ डाक्टर थे। १९३६ तक अस्पतालोंकी संख्या १४३ हो गई तथा डाक्टर भी १६३ हो गए। इसके सिवा जन-स्वास्थ्यके बिगड़नेके मूल कारण पुष्टिकर भोजनकी कमी और कार्यकी अधिकताको हमेशाके लिए उखाड़ फेंका गया है। क्रान्तिसे पहले जो याकूत-भाषा लिपि और साहित्य-रहित होकर मृतप्राय थी, वही आज प्रथम ७ वर्षकी अवधि तक दी जानेवाली अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षाका माध्यम है। स्कूली किताबोंके सिवा अन्य अनेक ग्रन्थ याकूत-भाषामें छप चुके हैं। उसमें १८ समाचारपत्र और अनेक मासिक पत्रिकाएँ निकलती हैं। कितने ही अध्ययन-परिषद्, ग्राम-वाचनालय, कोलखोज़-क्लब, सांस्कृतिक भवन, नाटक-घर, कोलखोज़-थियेटर तथा जन-नाट्य-भवन स्थापित हैं। चलते-फिरते सिनेमा बराबर आते रहते हैं। रेडियोसे कोई भी बस्ती खाली नहीं है। याकूत शहरसे रेडियो-द्वारा याकूत-भाषामें ब्राडकास्ट होता है। भाषा और संस्कृतिकी खोजके लिए एक अन्वेषण-विभाग है। जल व आकाश-सम्बन्धी अन्वेषणके लिए विज्ञानशाला तथा जंगल, समूर और खनिज पदार्थोंकी खोजके लिए विद्वत् परिषद् है। हाईस्कूलोंमें विद्यार्थियोंकी संख्या १५ गुनी हो गई है। वहाँ १२ टेकनीकल स्कूल, ३ फैक्ट्री-उम्मीदवार-स्कूल और २ कमकर तैयार करनेके स्कूल हैं, जिनमें २४३० विद्यार्थी पढ़ते हैं। ४०० विद्यार्थी मास्को और लेनिनग्रादमें उच्च शिक्षा पा रहे हैं। शिक्षितोंकी संख्या ८० प्रतिशत है। ३२७०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगोंमें जो २० प्रतिशत अनपढ़ बाक़ी हैं, वे अपरिवर्त्तनवादी तथा प्रतिक्रियावादी बूढ़े लोग हैं, जो कुछ ही सालके मेहमान हैं। कृषिमें भी क्रान्तिकारी उन्नति हुई है। क्रान्तिके बाद खेतीपर किसानोंका कब्ज़ा होने व पंचायती खेतीके ढंगमें तरक्की तथा मशीनोंके उपयोगने उत्साहको बढ़ाया है। आज तीनगुनी भूमि जोती जाने लगी है। २८५०० कम्बाइनर व ट्रैक्टर चलने लगे हैं। लीसेंकोके वर्नलाइज़ेशनके तरीकेने उपज बढ़ानेके साथ ही असम्भव जगहोंमें भी खेती होना सम्भव कर दिया है। नये तरीक़ेकी पशुशालाएँ बनवाई गई हैं। साँड़ोंके चुनाव एवं प्रजनन-विज्ञानकी सहायतासे पशुओंकी नस्ल सुधारी गई है। देवदार तथा अन्य क़ीमती लकड़ियोंके जंगलोंमें लकड़ीके उद्योग स्थापित किए गए हैं। नदियोंमें चलनेवाले जहाज़ोंके कारखाने बन गए हैं। सोनेकी बड़ी-बड़ी खानोंका पता लगाया गया है। परिणाम-स्वरूप आज सोवियत् रूसका १५ प्रतिशत सोना याकूतियामें निकलता है। यहाँ कोयला भी प्रचुर परिमाणमें मिला है। राँगा तो संसार-भरसे ज़्यादा यहाँ निकलने लगा है। पेट्रोल और मिट्टीके तेलके कुएँ भी खोदे गए हैं। राष्ट्रीय आयका ६६ प्रतिशत उद्योग-धन्धोंसे प्राप्त होता है। १२६०००० रूबल प्रतिवर्ष उद्योग-धन्धोंकी आय है। कहाँ १९१७ की आमदनी एक लाख ५७ हज़ार रूबल और कहाँ १९३७ की आय १० करोड़ ७० लाख। इस आमदनीमें से ४ करोड़ ९० लाख रूबल शिक्षा तथा सांस्कृतिक निर्माणमें खर्च किए गए, यानी प्रति मनुष्य १३६ रूबल या ५ रुपया मासिक।

बुन्देलखण्डपर एक दृष्टि

अब ज़रा आजके बुन्देलखण्डपर भी एक दृष्टि डालकर देखा जाय कि उसमें और १९१७ के याकूतियामें कितनी समानता है। आज बुन्देलखण्ड एक ओर तो ब्रिटिश साम्राज्यके जुएमें जुता हुआ है और अपनी पैदावारसे विदेशी शासकोंकी सुविधाओंका प्रबन्ध करता है। दूसरी ओर उसकी हालत यह है कि वह देशी सामन्तों और व्यापारियों द्वारा चूसा जा रहा है। शासनकी दृष्टिमें उसका अंग-भंग करके उसकी ३३-३४ देशी रियासतों तथा उनमें मौजूद कई सौ जागीरों और दो अंगरेज़ी सूबों—यू० पी० और सी० पी०—में विभाजित कर दिया गया। इस प्रकार उसकी एकताकी भावनाको आमूल नष्ट करनेका प्रयत्न किया गया। इन सभी भागोंमें असमान प्रकारके राजतन्त्र ही नहीं, बल्कि आर्थिक संगठन भी अलग-अलग तरहका है। इस प्रकार क्षत-विक्षत बुन्देलखण्ड, जिसकी ग़रीबी निम्नतम धरातलपर पहुँची हुई है, अनगिनत शोषकोंका उदर-पोषण ही नहीं करता, बल्कि भोग-विलासके अनन्त साधनोंको भी उनके लिए सुलभ करता है।

जन-स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देनेकी भला फ़ुरसत ही किसे है? लाखोंकी आबादीके भूखण्डके लिए दो-एक अस्पताल खोल दिए, दो-चार डाक्टर और एक-आध वैद्य भी रख लिए। यही है बस पब्लिक-हेल्थ-डिपार्टमेण्ट-जैसे भारी-भरकम विभागकी व्यवस्था! आम मनुष्योंका स्वास्थ्य पुष्टिकर भोजनकी कमी और कार्यकी अधिकताके कारण अत्यन्त गिर चुका है। यहाँ मलेरिया-जैसी मामूली और हमेशा होनेवाली बीमारीमें भी कई हज़ार आदमी हर साल मर जाया करते हैं। पैदाइश और मौतके आँकड़े यदि प्राप्त हो सकें, तो पता चले कि हर साल पैदा होनेके साथ ही न केवल बच्चे, बल्कि माताएँ भी सैकड़ोंकी तादादमें इस दुनियासे कूच कर जाती हैं। प्रतिवर्ष छोटे बच्चोंकी मृत्यु-संख्याके आँकड़े तो हज़ारों तक पहुँच जायँगे।

शिक्षाकी दशा देखें, तो वह और भी अस्तव्यस्त मिलेगी। ८० लाख जनताके लिए अँगुलियोंपर गिनने लायक हाईस्कूल और मिडिल स्कूल मिलेंगे। उच्चकोटिकी कन्या-पाठशालाएँ तो १० भी नहीं हैं। उनके लिए हाईस्कूलोंकी बात करना तो मज़ाक होगा। उच्च शिक्षा सरकारी अधिकारियों, व्यापारियों, जागीरदारोंके सिवा कितनोंकी पहुँचके भीतर हो सकती है? बुन्देलखण्ड जनपदकी जनताका २ प्रतिशत भी सही मानीमें पढ़ा-लिखा नहीं है। इस मूर्ख जनताकी संस्कृति और साहित्यकी बात करना उसका मखौल उड़ाना नहीं तो क्या है? फिर साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नतिका तो सवाल ही नहीं उठता। भाषाकी ओर देखा जाय, तो यहाँकी शिक्षाके लिए ज़िम्मेदार अधिकारी बुन्देली-भाषाको भाषा तो क्या, उप-भाषा भी माननेसे इनकार करते हैं। उसको शिक्षाका माध्यम बनानेकी तो बात ही अलग है।

कृषिकी यह हालत है कि यहाँका किसान दो बीघे खेतका एक टुकड़ा अपने टुटरूँटूँ बैलों द्वारा चार दिनोंमें भी नहीं जोत पाता और पैदावार तो शायद पाँच मन फी-एकड़ भी नहीं होती। यह भूमि तालाबों और नदियोंकी बहुतायतके लिए अपना सानी नहीं रखती; पर आज तक कितनी नदियों और तालाबोंको बाँधकर उपयोगमें लानेकी कोशिश की गई है? बल्कि कहीं-कहीं तो अयोग्य इंजीनियरोंने बँधे हुए बाँधों तकको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुड़वाकर निर्माण-कार्यको पीछेकी ओर ढकेल दिया है। यहाँका निवासी तो कोदों, लठारा, सेमरके फूल और महुआ खाकर जीवन-यापन करता है। उससे यह आशा करना कि वह संसारमें होनेवाली वैज्ञानिक और औद्योगिक दौड़में दौड़े, सरासर उसका मज़ाक उड़ाना है।

यहाँपर काफ़ी बड़े पैमानेपर पशु-पालन भी होता है; पर वैज्ञानिक और व्यापारिक दृष्टिसे देखा जाय, तो यही कहना होगा कि जिन जानवरोंको पाला जाता है और उनपर जो चारा खर्च किया जाता है, वह एक महान जातीय क्षति है। बुन्देलखण्डके राज्योंमें जनताको भले ही कोई अधिकार न हो; पर यहाँपर प्रत्येक निर्बल तथा मरणासन्न बैलको सन्तानोत्पत्तिका अबाध अधिकार प्राप्त है। नतीजा यह हुआ है कि यहाँकी औसत गाय पाव-भर और औसत भैंस आध सेर दूध यदि हर जून दे दे, तो बड़ी बात मानी जाती है।

जंगलोंकी तो इस भूखण्डमें इतनी अधिकता है कि इसे यदि जंगलोंका ही जनपद कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। जंगलोंमें सागौन, सलैया (दियासलाईके काममें आनेवाली लकड़ी), खैर, कवा, शीशम, महुआ आदि क़ीमती लकड़ियाँ प्रचुर मात्रामें हैं; पर लकड़ीके उद्योगके नामसे भी कोई परिचित नहीं और न काटे हुए वनोंको हरा-भरा करनेकी ओर ही ध्यान दिया जाता है। यदि यही दशा रही, तो वह दिन दूर नहीं, जब कि यह भूखण्ड एक उजाड़ रेगिस्तान दिखाई देगा। प्राकृतिक पैदावारकी खानों आदिके लिए अनुसन्धान की तो अभी शुरूआत भी नहीं हुई है। पहाड़ी प्रान्त होते हुए भी पत्थर निकालनेका ही उद्योग अव्यवस्थित है। फिर और दूसरी प्राकृतिक पैदावारोंकी तो बात ही क्या? यहाँपर उद्योग नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। ध्यानसे देखा जाय, तो कई ऐसे उद्योग हैं, जो आज भी विस्तृत रूपसे प्रारम्भ किए जा सकते हैं। लकड़ी, शक्कर और चमड़े उनमें से कुछ हैं। पर इधर ध्यान देनेकी फ़ुरसत किसे है?

भावी बुन्देलखण्डका एक स्वप्न

बुन्देलखण्डकी जो शोचनीय दशा हो गई है, उसे सुधारने और उसे अन्य जनपदोंकी श्रेणीमें लानेकी ज़िम्मेदारी अकेले बुन्देलखण्डवालोंकी ही नहीं है। वह तो सम्पूर्ण भारतकी सामूहिक ज़िम्मेदारी है। भावी भारतमें किसी भी जनपदके निर्बल होनेके मानी हैं समस्त राष्ट्रीय शरीरकी कमज़ोरी। बिना सब अंगोंको ठीक किए राष्ट्रकी उन्नतिका स्वप्न देखना हिमाक़त होगी। जब कभी जातीय संगठनकी समस्या किसी भी राष्ट्रके सामने आई है, तो उसे तीन प्रकारसे हल करनेकी कोशिश आज तक हुई है। पहला सीमाओंको पुनः संगठित करके जनपदोंको अपनेको एक करनेका हक़ देकर सुलझानेका प्रयत्न, जैसा कि सोवियत रूसने किया है। दूसरा तरीक़ा है अल्पमत इकाइयोंको हज़म कर लेना, जैसा कि भारतमें हुआ है और तुर्कीमें भी। पर यह तरीक़ा अब तक बराबर असफल हुआ है। तीसरे प्रकारका प्रयत्न है सीधी तरहसे हज़म न होनेवाले अल्पमतोंके नागरिकताके अधिकार छीनकर, जैसा कि हिटलरकी जर्मन-सरकारने यहूदी-समस्याको हल करनेके लिए किया है। इस प्रकार हमने देखा कि प्रजातन्त्रीय तरीक़ा वही है, जो सोवियत सरकारने अपनाया है और जिसमें उसे सफलता भी मिली है। यह तरीक़ा है प्रत्येक जनपदको स्वावलम्बी बनाकर उसमें उत्साह और जीवनकी लहर पैदा करना। इसलिए वास्तविक उन्नतिकी ओर पहला और आवश्यक क़दम होगा प्रान्तोंका स्वावलम्बी जनपदोंके रूपमें संगठन। तत्पश्चात् दूसरा क़दम होगा इस प्रकारके आर्थिक और राजनीतिक संगठनका निर्माण, जिसमें जनताकी गाढ़ी कमाईका दुरुपयोग कोई वर्ग न कर सके।

इतना हो चुकनेके बाद यह सवाल आया कि अब तकके अर्जित ज्ञानको जल्दीसे जल्दी जनता तक कैसे पहुँचाया जाय? इसके लिए शीघ्रातिशीघ्र वर्णमालाकी शिक्षा देकर बुन्देली-भाषामें लिखी पुस्तकें जनताके हाथमें देनी होंगी और उसी भाषामें ज्ञान-प्रसारका काम आगे बढ़ाना होगा। हम जानते हैं कि कुछ लोग यह कहकर इसका विरोध करेंगे कि बुन्देली तो हिन्दीका ही एक रूपान्तर-मात्र है, हिन्दीमें ही शिक्षा दी जाय। पर हिन्दीका व्याकरण पढ़ाने और उसके कोषके उन सभी शब्दों, वाक्यांशों और लोकोक्तियोंको सिखानेमें, जिनके लिए बुन्देलीमें भिन्न शब्द, वाक्यांश या लोकोक्तियाँ हैं, समयको खोना एक महान अपराध है।

साक्षारता फैल चुकनेके बाद इतना अवश्य है कि यहाँकी जनताको यह अधिकार होना चाहिए कि वह बुन्देली या हिन्दी जिसमें चाहे अपना साहित्य सृजन करे तथा अखबार आदि निकाले। जो लोग अन्य सब जनपदोंकी भाषाओंको दबा-चकर उनपर केवल खड़ी बोलीको लादना चाहते हैं, वे वास्तवमें सांस्कृतिक साम्राज्यशाहीकी भावनाके शिकार हैं। विरोध करनेवाले यह भी कहते हैं कि बुन्देली-भाषा साहित्य-रहित है; पर क्या वे यह बतायँगे कि बुन्देलीको साहित्य-सृजनका मौक़ा ही कब मिला है? फिर बुन्देलखण्डमें जो ग्राम-गीत आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

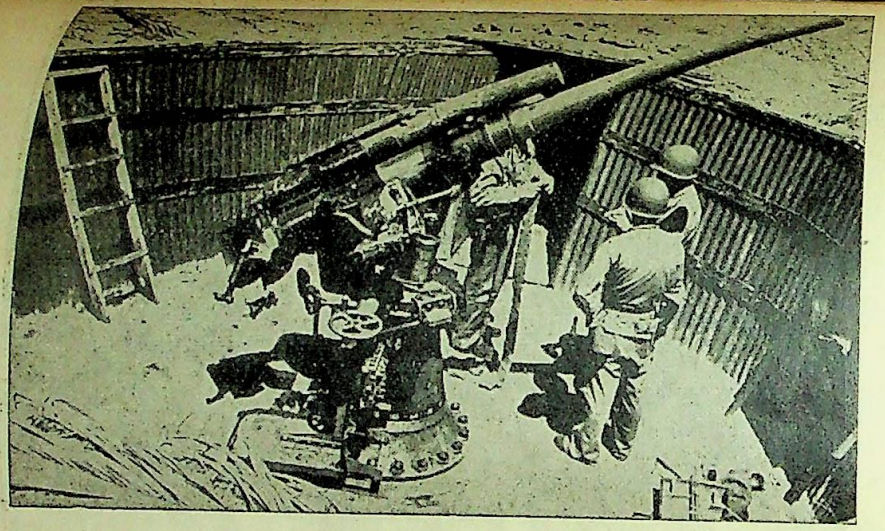

न्यूगिनीमें जापानियों द्वारा छोड़ी गई एक विमान-ध्वंसक तोप, जो अमरीकनोंके हाथ लगी है।

न्यूगिनीके अधिवासी अमरीकन सैनिकोंके लिए झोंपड़े तैयार कर रहे हैं।

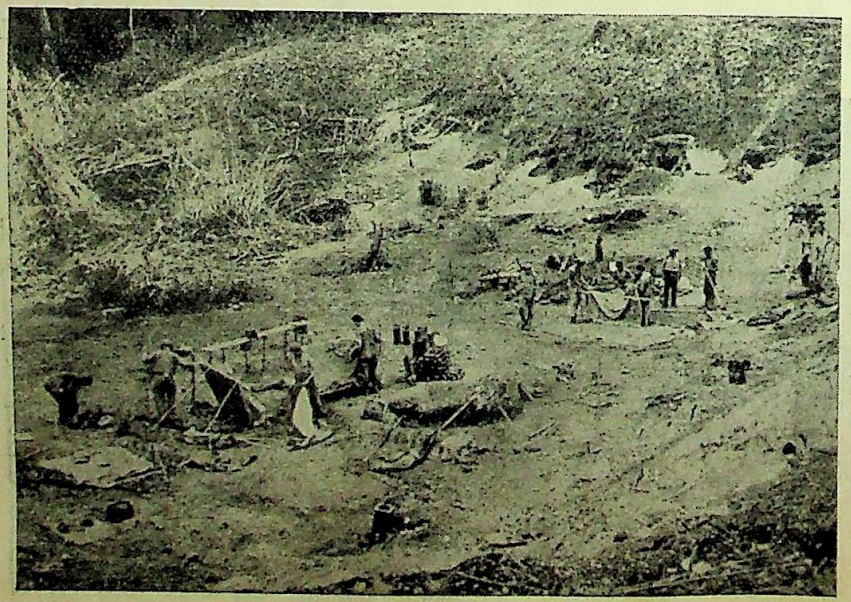

ग्वादलकानालमें अमरीकन नौसेनाका डेरा। पासही पहाड़ीघाटीमें हवाई-हमलोंसे बचनेके घर हैं।

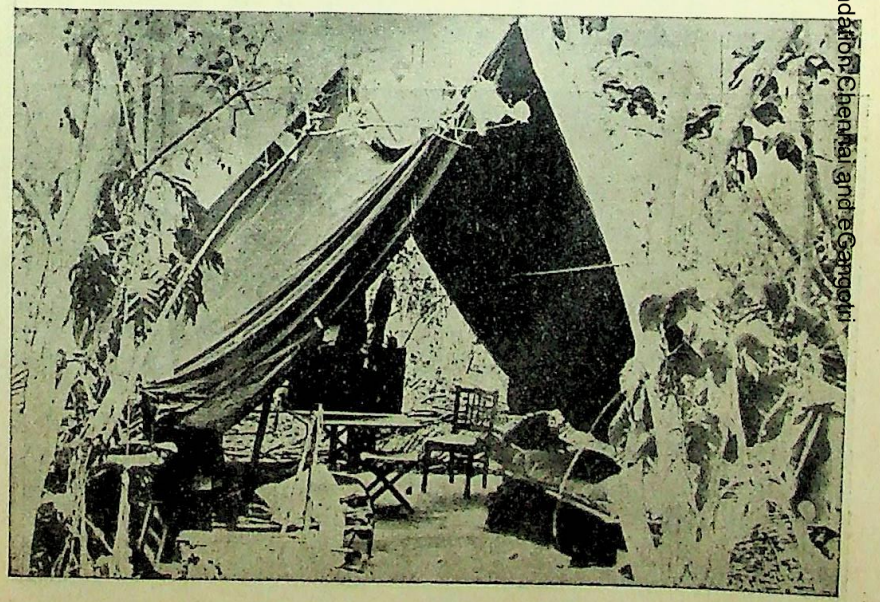

ग्वादलकानालमें अमरीकन नौसेनाके कमाण्डरका ख़ेमा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

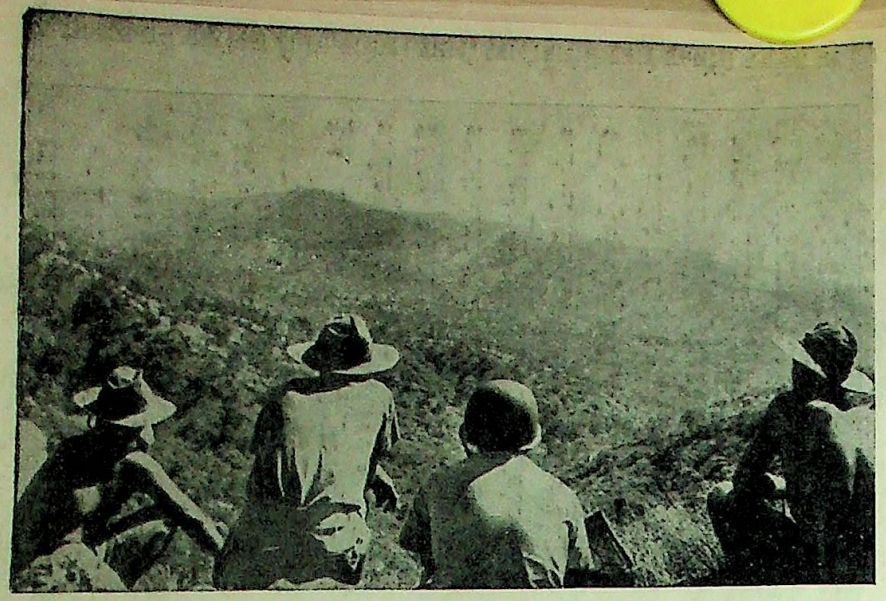

न्यूगिनीकी एक पहाड़ीपर बैठे कुछ मित्र-राष्ट्रीय सैनिक जापानी और मित्र-सेनाका संघर्ष देख रहे हैं।

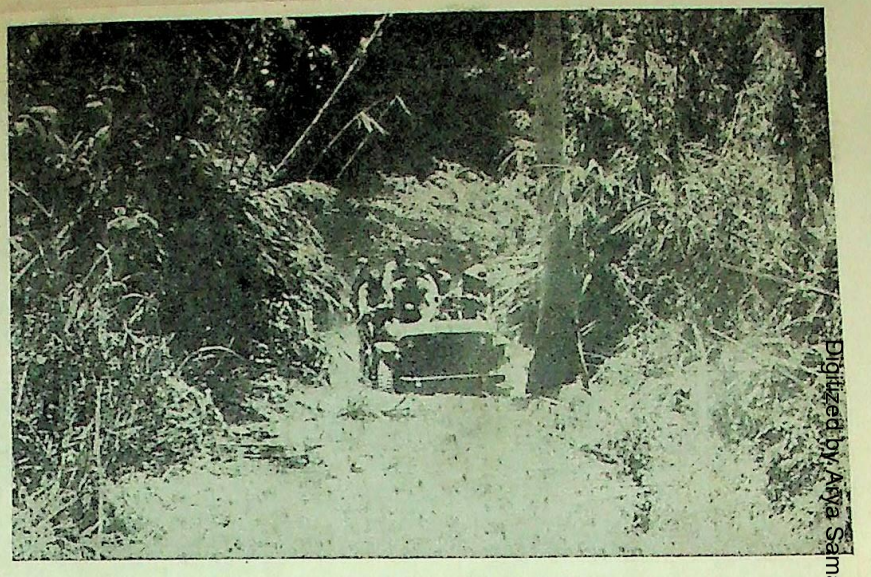

मित्र-सेना (विशेषतया आस्ट्रेलियन) न्यूगिनीके जंगलोंमें से अपना मार्ग बना रहे हैं।

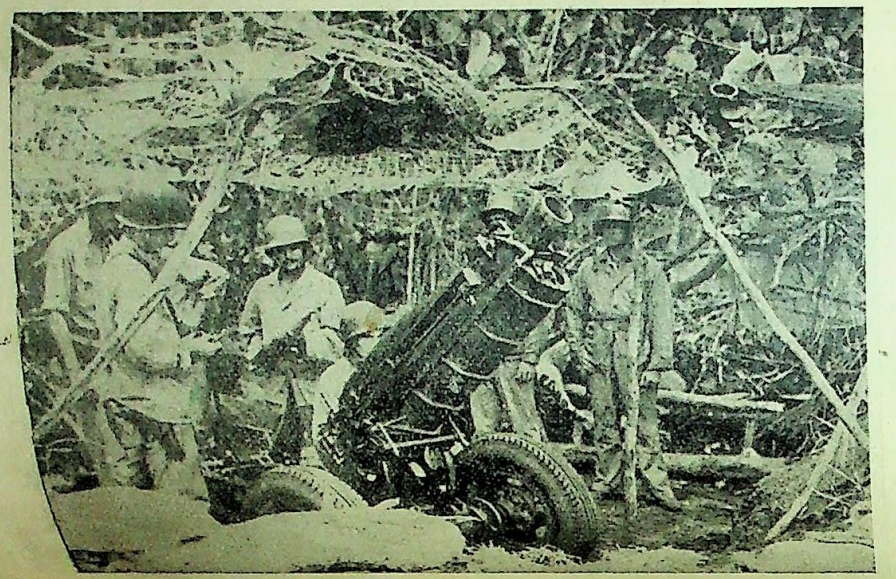

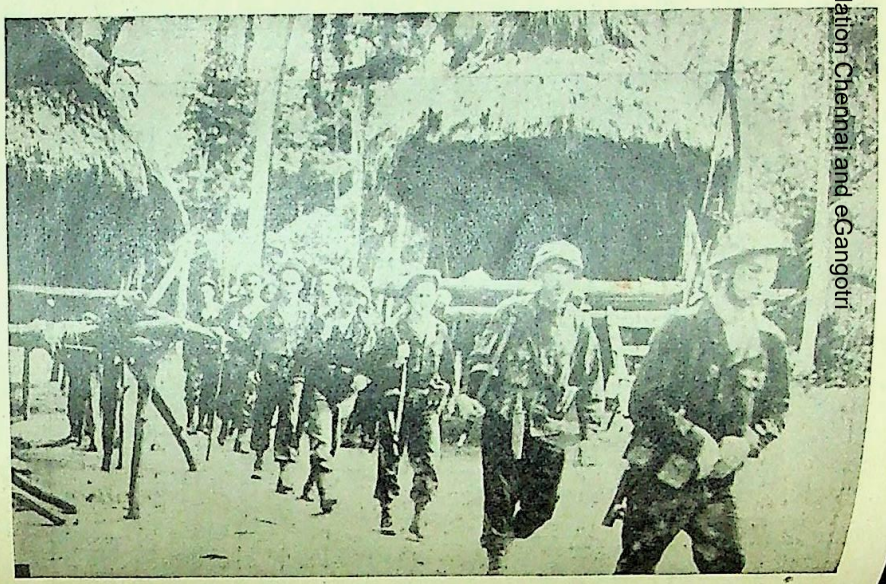

न्यूगिनीके एक गाँवमें से अमरीकनोंकी छोटी मशीनगनोंकी एक टुकड़ी मोर्चेकी ओर जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं, वे क्या खड़ी बोलीके हैं? वीर-काव्य आल्हा क्या खड़ी बोलीमें लिखा गया था? आजसे सौ वर्ष पहले इस खड़ी बोलीका ही, जिसे आज राष्ट्रभाषा कहलानेका गौरव प्राप्त है, कौन-सा साहित्य था? जो लोग अवध और व्रज तथा बुन्देलखण्डकी बोलियोंको एक ही मानते हैं, वे बलिया, दतिया, मथुरा, फर्रुखाबादके पाँच किसान इकट्ठे करके देखें कि वे एक-दूसरेकी बातको कितने प्रतिशत समझ सकते हैं और फिर अपनी साहित्यिक हिन्दी बोलकर देख लें कि वे कितना समझ पाते हैं।

अन्तमें एक ही बात और कहनी है कि राष्ट्रीय समस्याको इस प्रकार जातीय जनपदोंकी इकाई बनाकर हल करनेसे दो साक्षात् लाभ होंगे। एक तो यह कि साम्प्रदायिक समस्या-जैसी विनाशक समस्यासे छुटकारा मिल जायगा, क्योंकि उस समय किसी भी जनपदकी जनताको मज़हब या अन्य इस तरहके नामोंसे प्रभावित नहीं किया जा सकेगा और न जनपदोंमें विरोधी शक्तियोंका गँठबन्धन ही हो सकेगा। दूसरे एक लाभ यह होगा कि पुनर्निर्माणकी योजनाओंको सफल बनाने योग्य वातावरण बन जायगा। सारे जनपद एक ही शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंकी तरह अपने स्वार्थोंकी मज़बूतीसे रक्षा और उन्नति करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्रीय शरीरको सुदृढ़ तथा उन्नतिशील बनानेमें अपना उचित और आवश्यक सहयोग दे सकेंगे।

अब रहा बुन्देलखण्डका सवाल, सो उसका तो अलगसे प्रान्त बनना और भी ज़रूरी है, क्योंकि इस प्रान्तके छिन्न-भिन्न अंग मिलनेके बाद ही सम्पूर्ण भारतके पुनरुद्धारमें यथाशक्ति हाथ बँटा सकेंगे। बुन्देलखण्डको छोटे-छोटे टुकड़ोंमें विभाजित कर दिया गया है और उसमें विषमताओंको सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया गया है, इसलिए इनको सबसे पहले दूर करना और समस्त भूखण्डको एक इकाईमें संगठित करना राष्ट्रकी एक ऐसी आवश्यक समस्या है, जिसको कलके लिए नहीं टाला जा सकता। अभी बुन्देलखण्डके अलग प्रान्त बनाए जानेका आन्दोलन प्रारम्भ ही हुआ है। अल्पसंख्यक पत्रों तथा व्यक्तियोंने ही उसपर अपनी सम्मति प्रकट की है। चूँकि अभी इस आन्दोलनके नेताओंकी ओरसे प्रान्तकी कोई स्पष्ट राजनीतिक रूप-रेखा प्रकाशित नहीं हुई, इसलिए कितने ही पत्रकार-बन्धु इस विषयपर तटस्थ भाव धारण किए हुए है। जिन महानुभावोंकी सम्मतियोंका महत्त्व हो सकता था, उनके जेलमें होनेके कारण यह आन्दोलन व्यापक नहीं बन पाया है। एक पत्रने बुन्देलखण्डके अलग प्रान्त बनाए जानेकी माँगकी तुलना क़ायदे-आज़म जिन्नाके पाकिस्तानसे की है। मानो स्वतन्त्र भारतमें प्रान्त होंगे ही नहीं! या एक ही जनपदको चालीस-चालीस सामन्तोंके शासनमें पड़े रहकर दम तोड़ने दिया जायगा। ये लोग राष्ट्रीय लोकमतको बच्चा समझ बैठे हैं और किसी भी उन्नतशील माँगके सामने आते ही उसे पाकिस्तानके हौएसे डराकर सुला देना चाहते हैं। एक ज़िम्मेदार पत्रके सुयोग्य सम्पादकने प्रान्त-निर्माणके कार्यको बैठे-ठाले आदमियोंका एक अकर्त्तव्य कर्म बतलाया है। एक अन्य सज्जन इसे बिल्कुल असामयिक आन्दोलन समझ बैठे हैं। इन लोगोंको यह कैसे समझाया जाय कि जिस प्रश्नका सम्बन्ध लाखों व्यक्तियोंके जीवन-मरणसे है, वह अत्यन्त आवश्यक तथा बिल्कुल सामयिक है। न उसकी उपेक्षा की जा सकती है और न वह टाला जा सकता है।*

* लेखकके मतामतके लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।—सं०

'साकेत'की उर्मिला

श्री भागीरथी चन्द, बी० ए०, डी० टी०

काव्य-जगत्‌की उपेक्षिता उर्मिलाको लेकर ही गुप्तजीने 'साकेत'की रचना की है। 'साकेत'की इस वियोगिनीके प्रति कवि-संसार उदासीन ही था। किसीने भी अब तक अयोध्याके राजमन्दिरोंकी चहारदीवारीके भीतर कर्त्तव्यकी बेड़ियोंमें जकड़ी हुई, वियोगकी ज्वालामें रात-दिन झुलसती, इस मूर्तिको जाननेकी चेष्टा नहीं की। परन्तु गुप्तजीका भावुक हृदय भला इसकी उपेक्षा कैसे कर सकता था? वे क्षुब्ध हो उठे कवियोंकी उपेक्षा देखकर और उर्मिलाकी मलिन-धूमिल रेखाका स्मरणकर। उसके इसी वेशको उन्होंने 'साकेत'में चित्रित किया है। अब देखना है कि विश्वके लिए सर्वस्व त्याग करनेवाली, संसारकी भलाईके लिए अपने जीवनकी 'खिल-खिल बेला'को धूमिल संध्यामें परिवर्त्तित करनेवाली नारीको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरव प्रदान करनेमें गुप्तजी कहाँ तक सफल हुए हैं ?

सर्वप्रथम उर्मिलाके दर्शन हमें उसके जीवनकी 'खण्डमयी खेला'में अभिषेक-अम्बुर्दोंसे घिरी हुई साकेत-नगरीके प्रकोष्ठमें होते हैं, जहाँ वह प्रियतमके साथ हास-विलास करती हुई आनन्दकी सृष्टि कर रही है। अपने सरल विनोद, अपूर्व रूप-लावण्य तथा अनुपम चित्र-कला द्वारा आकर्षित करती हुई इस विनोदिनी बालाको हम पहचान भी न पाए थे कि राम-वनवासके समाचारसे नगरमें दुःखके बादल छा गए। जेठ तथा जीजीके साथ स्वामीको वन जाते देखकर उर्मिलाके हृदयको ठेस लगती है। उसके सुखोंपर तुषारपात हो जाता है। उसके स्वामी भी वन जाना चाहते हैं। वह नहीं जानती, वह क्या करे ? उसके हृदयमें कर्त्तव्य और प्रेमका घोर संघर्ष होता है। अन्तमें कर्त्तव्य प्रेमपर विजय पाता है और वह मन ही मन कह उठती है—'हे मन, तू प्रिय-पथका विघ्न न बन।' कहे भी क्यों नहीं, आखिर है तो उसी सूर्य-कुलकी वधू, जिसमें राम-जैसे पुत्र तथा दशरथ-जैसे धर्मवीर पिता उपस्थित हैं।

यहाँसे उर्मिला हमारे और भी निकट आने लगती है; परन्तु हास्य-वदनी बालाके रूपमें नहीं। अब तो उसके अधरोंपर हँसीकी क्षीण रेखा भी नहीं। नेत्रोंकी उस उज्ज्वल दीप्तिका कहीं पता नहीं, वरन् सर्वत्र दुःखकी मलिन छाया है। उसकी इस करुण छविको देखकर हमें व्यथा होती है। उसका कपूरकी भाँति घुलना देख तथा उसके अर्द्धमूर्च्छित प्रलाप सुनकर हम व्याकुल हो उठते हैं। हम उसकी इस निराशाका, उसकी खोई-खोई-सी मूर्त्तिकी कमीका और उसके गरम-गरम श्वासोंका स्पष्ट अनुभव करते हैं। इन अनुभूतियोंमें गुप्तजी पैठ पाए हैं और कदाचित् इसीलिए उर्मिलाकी विरह-व्यथाके चित्रणमें वे अत्यन्त सफल भी हुए हैं। उन्होंने उसकी व्यथाको उसके हृदयोंमें उतरकर समझा है। उर्मिलाका हृदय अत्यन्त व्याकुल है। उसे सर्वत्र ही अपने दुःखोंकी छाया दीख रही है। प्रकृति तो उसके पूर्व-सुखोंका स्मृति-कुंज बनकर उसके हृदयको कचोट रही है।[1] वह प्रयत्न करती है धैर्य धरनेका, अपनी आँखोंसे बरसती हुई सावन-भादोंकी धाराको रोकनेका। अपने लिए नहीं तो दूसरोंके लिए, सासुओं तथा देवरोंका मन रखनेके लिए वह अपना दुःख भूलना चाहती है ; पर कहाँ भूल सकी है वह उसे ?[2]

फिर भी गुप्तजी उर्मिलाके चरित्रका गौरवमय विकास नहीं कर सके। वे उसे प्रिय-वियोगमें सुध-बुध खोनेवाली सीमित साधारण नारीकी भावनासे ऊपर नहीं उठा पाए। उसके वियोग-व्यथाका वर्णन करते समय वे भूल गए कि जीवनकी सफलता केवल दुःख सहन करने तक ही सीमित नहीं, वरन् उससे कहीं आगे है—जहाँ मानव अपनी व्यथाको, अपने कष्टोंको, छिपाकर संसारकी व्यथाको हल्का करने लगता है। यही है मानव-चरित्रकी महानता। उर्मिलाके जिस महिमा-मय स्वरूपकी हमें कहीं-कहीं झलक मिलती है, उसका सम्यक् विकास गुप्तजी नहीं कर पाए हैं। वे उर्मिलाके जीवनका वह गौरवशाली रूप न दिखा सके, जो 'प्रिय-प्रवास'की राधाकी एक स्वाभाविक विशेषता है।

अवश्य ही राधा तथा उर्मिलाके चरित्रमें भिन्नता है; किन्तु दोनोंकी बहुत-सी बातें एक-सी भी हैं। दोनों ही कर्त्तव्यकी वेदीपर अपने प्रेमका बलिदान करती हैं। प्रियतमसे विच्छिन्न, घर रहकर ही अपनी जीवनकी विषम घड़ियाँ काट रही हैं। पर उस काटनेमें भी भिन्नता है। उर्मिला इस दुःखमें औरोंको भूल जाती है। औरोंका खयाल भी उसे क्रियाशील नहीं बनाता। वह अनुभव करती है कि उसके दुःखोंके कारण दूसरोंको दुःख होता है। सासुओंकी व्यथा बढ़ती है। बहनोंकी उसासें छूटती हैं। देवरोंके मुख भी श्रीहीन हो जाते हैं। किन्तु इस अनुभूतिको वह कार्यरूपमें परिणत नहीं करती। वियोगमें उर्मिला उस शक्तिको खो बैठती है, जिसके बलपर वह कहना चाहती थी—'हे नाथ साथ दो भ्राताका, बल रहे मुझे उस विधाताका'। और उपवनमें 'पुरबाला-शाला'का विचार करके ही वह चुप रह जाती है। परन्तु राधा केवल 'प्यारे जीवें जग हित करें, गेह चाहे न आवें' कहकर ही नहीं रह जाती, वरन् वह अपनी उस जगत्-कल्याणकी भावनाको सार्थक भी

१. त्रिविध पवन ही था, आ रहा जो उन्हीं-सा ;
यह घन-रव ही था, छा रहा जो उन्हीं-सा।
प्रिय-सदृश हँसा जो, नीप ही था, कहाँ वे ?
प्रकृति-सुफल फैले, भा रहा जो उन्हीं-सा।

२. रोती हैं और दूनी निरखकर मुझे
दीन-सी तीन सासें।
होते हैं देवर श्रीनत, हत बहनें
छोड़ती हैं उसासें।
आली, तू ही बता दे, इस विजन बिना
मैं कहाँ आज जाऊँ!
दीना, हीना, अधीना ठहरकर कहाँ
शान्ति दूँ और पाऊँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है। वह अपना जीवन दूसरोंके दुःख दूर करनेमें बिता देती है। व्रजके घर-घर जाकर वह वियोग-पीड़ित लोगोंको सान्त्वना देती है, माता यशोदाको धैर्य बँधाती है और अपने आँसुओंको आँखोंमें ही पी जाती है; उन्हें बाहर निकलनेका अवसर ही नहीं देती। यही नहीं, वह व्रजके लोगोंको कृष्णके उस महत् कार्यका स्मरण कराती है, जिसके कारण वे उन्हें छोड़ गए। इसीलिए राधा अपने गौरवमय चरित्रके बलपर साधारण नारीसे ऊपर उठकर देवी बन जाती है।

परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि उर्मिलाके चरित्रको गौरव प्रदान करनेमें गुप्तजी सर्वथा असमर्थ रहे हैं। 'साकेत'में अनेक ऐसे स्थल विद्यमान हैं, जहाँ हमें उर्मिलाके वास्तविक हृदयकी छाप भी मिलती है, जहाँ वह अपने सुखोंकी आहुति देकर विश्वको सुखी बनाना चाहती है; जहाँ वह कामना करती है—स्वामीके कर्त्तव्य-पथकी बाधा न बनकर वह सहायक बने और समयकी कठोर देनको चुपचाप सहन करना चाहती है। तभी तो वह कहती है—'दुःख जो मुझको दिए, आलि उसे मैं अवश्य ही लूँगी। सुख भोगे हैं मैंने, दुख भला मैं क्यों न भोगूँगी?' आज उसे दिनोंसे कोई रार नहीं, भाग्यसे असन्तोष नहीं; वह केवल अपने दुःखोंको सहन करते हुए जीवित रहना चाहती है। वह चाहती है समस्त संसार सुखी हो, सारी पृथ्वी हरी-भरी होकर सरसे और सबके लिए केवल एक वही तरसे। कभी उसकी भी सरसनेकी बारी आयगी ही।

प्रियतमसे उर्मिला प्राणोंसे बढ़कर प्रेम करती है। उनसे मिलनेके लिए, उनको केवल एक झाँकी-भर देखनेको, वह व्याकुल है; परन्तु उसे यह सह्य नहीं कि वे कर्त्तव्य-च्युत होकर उसे मिलें। विक्षिप्त होकर जब वह स्वप्नमें लक्ष्मणको लौटा हुआ देखती है, तो उन्हें कर्त्तव्यसे विमुख होते देख कहती है—'जाओ।' वह चाहती है कि उसके स्वामी व्रती रहें और उसमें वह सती रहे, इसीलिए वह अपने मनको समझाती है—'प्रिय-पथमें विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर।' दर्शनाभिलाषाके प्रबल होनेपर वह वनके झुरमुटोंमें पहुँचकर, स्वयं न दिखाई देकर उन्हें देख पानेकी कामना करती है।

इन भावनाओंकी उर्मिलाके प्रति हृदयमें सहानुभूति उत्पन्न होने लगती है; किन्तु जब पाठक उसे लगातार चौदह वर्ष तक रोनेमें ही दिन-रात बिताते देखता है, तब उसकी सहानुभूति विरक्तिसे मलिन पड़ने लगती है, और वह सोचता है कि उर्मिलाके जिस चरित्रको गुप्तजी सम्मुख लाना चाहते थे, शायद वह उसके आँसुओंकी बाढ़में बह गया। वह नारी, जो अपने सिन्दूर-बिन्दुके बलपर कामदेवको भस्म करनेकी शक्ति रखती है, वसन्तके आगमनसे जिसका तरुण-हृदय पल-भर भी विचलित नहीं होता, जो अपनी समस्त कामनाको, अपने यौवनकी उमंगोंको, चपल शिशुका स्वरूप देखकर अपने प्रियतमके लिए सहेजना चाहती है और उसे समझती है केवल थाती-भर, भला वह कभी प्रियके मिलनेपर अपने जीवनकी 'खिल वेला'के लिए पश्चात्ताप करेगी? कदापि नहीं। जीवन-भर तो वह उसे शिशुके रूपमें देखती रही और अब उसके लिए शोक करेगी? यह असम्भव है। उर्मिलाका यह गौरवमय नारी-रूप नवम सर्गकी अन्तिम पंक्तियोंमें पूर्ण रूपसे व्यक्त हुआ है, जहाँ उर्मिला संसारके हितके लिए, विधिके विधानोंकी रक्षाके लिए, सहर्ष अपने प्रियतमका उत्सर्ग और उस उत्सर्गकी पीड़ाको वरदान समझकर अपनाती है और आँचल फैलाकर प्रार्थना करती है—

मुझे भूल-कर ही विभुवनमें बिचरें मेरे नाथ, मुझे न भूलें उनका ध्यान।

यही नहीं, वह दुःख सहन करते हुए भी जीवित रहकर प्रियकी प्रतीक्षा करना चाहती है। इसीलिए वहाँ उसका गौरव सती तथा लक्ष्मीसे भी ऊँचा हो गया है। सती आगमें जल मरी और लक्ष्मी पानीमें डूब मरी। उनमें दुःख सहन न कर सकने-भरकी एकांगी कायरता थी; पर उर्मिलामें अदम्य दुःख सहन करनेकी शक्ति सती और लक्ष्मीकी कायरतासे प्रेरणा पाकर बलवती हो जाती है। वह दुःख झेलकर भी जीवनकी नई आशा और प्रेरणा प्राप्त करती है।

यदि नवम सर्गके पूर्वार्द्धमें विरह-गीतोंकी प्रचुरताके स्थान पर गुप्तजी इस विश्व-कल्याणकी भावनासे ओत-प्रोत हृदयकी भूमि बनाकर 'साकेत'की रचना करते, तो उसकी उर्मिलाका रूप कुछ और ही होता। उस कृश-काय वियोग-विधुराके मुरझाए मुखकी हँसी देखकर हमारी अन्तर्व्यथा श्रद्धाके रूपमें जागरित होती और हम उसको सीता द्वारा अंकित की गई मूर्त्ति—

आँसू नयनोंमें, हँसी वदनपर बाँकी, काँटे समेटती, फूल छींटती झाँकी।

की सत्यतामें हृदयसे विश्वासकर गुप्तजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। 'साकेत'ने 'मानस'को उज्ज्वल करना चाहा था; पर वह उसकी आभामें स्वयं धुँधला पड़ गया। लक्ष्मणके लिए पंचवटीकी रचना आवश्यक हो गई और धूलि-धूसरित मलिन-वासना रघुकुलकी कुलवधू उर्मिला अपने लिए रोती ही रह गई। बाहरसे आई हुई प्रेरणा उत्तर देकर शान्त हो गई। इस प्रकार उर्मिलाकी मौन व्यथा महान् काव्यमें नहीं, बल्कि उक्ति-वैचित्र्यमें खो गई।

नज़रबाग, लखनऊ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न-सृष्टि

श्री धर्मवीर

'आज मैंने सपनेमें देखा कि लार्ड कर्ज़नकी लड़कीके साथ मेरा ब्याह हो गया है।'—यह बात मुझे डाक्टर गोकुलचन्द नारंगने कही। यह बात उस समयकी है, जब वे दयानन्द-कालेज, लाहौरमें अंगरेज़ीके अध्यापक थे। तब वे केवल एम० ए० थे। बैरिस्टरीके लिए इंग्लैण्ड वे बादमें गए। वापसीपर मार्गमें स्वीज़रलैण्डमें उन्होंने पी-एच० डी० भी कर ली और डाक्टर बन गए। उन्हें 'सर'की उपाधि तो कई वर्ष बाद मिली।

अपनी बात कहनेके बाद प्रोफ़ेसर नारंगने मुझसे पूछा—'आपने भी कभी कोई सपना देखा है या नहीं?'

'देखा क्यों नहीं', मैंने उत्तर दिया—'कल रात ही मैंने सपनेमें देखा कि मेरा जूता चुरा लिया गया है।'

ये बातें मुझे हाल ही में पूर्वी और पश्चिमी दर्शनके एक अध्यापकने बताईं।

एक आदमीको भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्ज़नकी बेटीके साथ विवाहका सपना आता है और दूसरेको जूता चुराए जानेका। प्रश्न होता है कि सपने आते ही क्यों हैं? यूरोपके प्रसिद्ध दर्शनवेत्ता फ्रायडका कथन है कि संसारमें मनुष्यके हरएक कार्यके अन्तस्तलमें सेक्सका विचार पाया जाता है। स्वप्नकी सृष्टि भी इसी सेक्सके विचारसे होती है। वाइसरायकी लड़कीसे डा० गोकुलचन्द नारंगकी शादीका मामला तो स्पष्टतया सेक्सका है; परन्तु जूतेकी चोरीका सेक्ससे क्या सम्बन्ध? यदि आज फ्रायड जीवित होता और उससे यह प्रश्न किया जाता, तो सम्भव है कि वह इसकी व्याख्या करते हुए किसी न किसी प्रकार स्त्रीके साथ सम्बन्ध प्रकट करता। (यह भी सम्भव है कि यदि हेवलाक एलिस जीवित होता, तो वह फ्रायडकी व्याख्या सुनकर अपने विशेष ढंगसे हँस देता।)

यदि वह स्वप्न, जिसमें जूता चुराया गया है, सेक्ससे कोई सम्बन्ध नहीं रखता, तो क्या उसका कोई आधार नहीं है? यहाँपर हमको स्वप्न-संसारके विषयमें दूसरी कल्पनासे काम लेना पड़ता है। पहली कल्पना फ्रायडकी है, जो हरएक स्वप्नका आधार सेक्स बतलाता है। दूसरी कल्पना एडलरकी है। एडलर कहता है कि प्रत्येक स्वप्नके अन्तस्तलमें शक्तिकी प्राप्तिका सिद्धान्त काम करता है। हरएक मनुष्य चाहता है कि जिस किसी तरहसे हो सके, शक्ति प्राप्त करूँ। सम्भव है, जिस मनुष्यने जूता चुराया हो, उसने इसे शक्ति प्राप्त करनेका साधन समझा हो। हमारे यहाँ एक मुहाविरा भी तो है। जब हम कहते हैं कि अमुक मनुष्य जूतेका यार है, तो इसका अर्थ यही लिया जाता है कि वह जूतेसे डरता है। इसका तात्पर्य यह है कि जूता भी एक अवस्थामें शक्तिका चिह्न है।

एडलरके अनुसार यह तो हुई दूसरे सपनेकी व्याख्या। पहले स्वप्नको एडलरकी कल्पना किस प्रकार हल करेगी? यों। प्रकृतिमें हम यह बात आम तौरपर देखते हैं कि नरके अन्दर मादापर प्रभुत्व प्राप्त करनेकी इच्छा पाई जाती है। क्यों? उसी शक्तिकी प्राप्तिके लिए। मर्दके अन्दर इसी कारण आक्रमणात्मक बुद्धि पाई जाती है। विवाहको भी यदि इस दृष्टिकोणसे देखा जाय, तो यह पुरुषका स्त्रीपर प्रभुत्व पानेकी इच्छाका दूसरा रूप नज़र आता है।

स्वप्नोंके सम्बन्धमें एक तीसरी कल्पना भी है। वह यह कि हरएक स्वप्नकी तहमें सुखकी इच्छा काम करती है। उपरिलिखित दोनों स्वप्नोंका विश्लेषण किया जाय, तो इसमें सुखकी इच्छा काम करती नज़र आती है। लार्ड कर्ज़नकी बेटीको डाक्टरने किस लिए प्राप्त किया? सुखके लिए। जूता चुरानेवाला जूता क्यों ले उड़ा? उसे अपने काममें लाकर सुख प्राप्त करनेके लिए। एक दृष्टिसे पहली दोनों कल्पनाएँ तीसरी कल्पनामें आ जाती हैं।

अब प्रश्न होता है कि स्वप्न बनते किस प्रकार हैं? यों तो स्वप्न कई बार बड़ी पेचीदा समस्याएँ प्रस्तुत करते हैं; परन्तु हम यहाँपर एक साधारण-सी बात लेते हैं, ताकि विश्लेषण करनेमें आसानी रहे। प्रातःका समय था। पाँच बज चुके थे। चारपाईपर लेटे-लेटे मैंने घड़ियालपर पाँच बजते सुने; लेकिन उसे सुनकर भी अनसुना कर दिया। अब मुझे यह स्वप्न आया—मैं सैरको निकला और बाहर चला गया। एक तरफ़ होकर झाड़ीके पीछे लघुशंका की। वहाँसे दो-चार क़दम ही आगे गया था कि सामने एक मकान नज़र आया। मालिक मकान मेरे सामने खड़ा था। उसने मुझसे सवाल किया—'आपने यहाँ पेशाब क्यों किया?' मैंने उत्तर दिया—'मेरा खयाल था कि यह बाग़ है। यह किसीका प्राइवेट मकान है, इसका मुझे ज्ञान न था।' मैं वहाँसे लौट आया।

अब मैं विचार करता हूँ, तो मुझे इस स्वप्नका कारण मालूम हो जाता है। आदतके मुताबिक प्रातः उठनेपर सबसे पहले पेशाब करता हूँ। उस दिन मैं एक बार जाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना पेशाब किए ही फिर सो गया, इसीलिए शारीरिक आवश्यकताने मस्तिष्कमें पेशाबका विचार उत्पन्न कर दिया। इसी विचारने स्वप्नका रूप धारण कर लिया। एक और उदाहरण लीजिए। मैं सो रहा था कि सुबह-सबेरे हवाका झोंका खिड़कीसे आया। उससे सिरहानेके पासकी खिड़कीका दरवाज़ा खुल गया। हवा ठण्डी भी थी और तेज़ भी। सिरको लगी तो उसने एक सपनेको जाग्रत किया। मैंने देखा कि जहाज़ चल रहा है और समुद्रमें भीषण तूफ़ान आ रहा है।

एक पत्रकारको दूसरेसे शत्रुता थी। अपने-अपने अखबारोंमें वे एक-दूसरेका खूब विरोध करते थे। यों यदि सड़कपर या बाज़ारमें मिल जाते, तो कुशल-क्षेम पूछते; परन्तु दिलसे वह चाहते कि अवसर मिले, तो इसकी गत बनाऊँ। फलस्वरूप एकको ज़रा-सा खयाल होनेपर इस प्रकारका सपना आ सकता है कि उसने दूसरेको भर-पेट पीटा है। यों बेचारा अखबारमें तो अपने शत्रुको न पीट सकता था। सभ्यतापूर्वक गालियाँ दीं और बस; परन्तु सपनेमें उसे विरोधीको पीटनेका अवसर भी मिल गया।

एक मनुष्यको स्वप्न आया कि उसे पृथ्वीपर लिटाकर ऊपरसे मनों बोझ डाल दिया गया है और इस कारण वह पीड़ा अनुभव करने लगा। इसकी व्याख्या कैसे की जायगी? वास्तवमें बात यह थी कि उसके बिछौनेपर बिछी चादर उसकी पीठके नीचे इकट्ठी हो गई थी और वह उसे चुभने लगी। यह चुभना सपनेमें बोझका दर्द बन गया।

यहाँपर एक और मनोरंजक प्रश्न होता है, क्या कोई मनुष्य सपनोंको अपने अधिकारमें कर सकता है? क्या कोई आदमी सपनोंका राजा बन सकता है, ताकि जैसा वह चाहे, उसे वैसा आए? कुछ लोग, जिन्होंने स्वप्नोंका भलीभाँति अध्ययन किया है, कहते हैं कि स्वप्नोंपर क़ाबू पाना एक प्रकारसे असम्भव है। अध्ययनके लिए ये लोग स्वप्नोंको बड़े विचित्र ढंगसे एकत्र करते हैं। अपने सिरहाने ये हर समय काग़ज़-पेंसिल रखते हैं, क्योंकि सपना ऐसी क्रिया है कि जागनेके कुछ ही देर बाद यह भूल जाता है। इसीलिए वे ज्योंही उठते हैं, त्योंही सपनेकी बातोंको नोट कर लेते हैं। इस परिस्थितिमें ऐसी बात, जो इतनी जल्दी भूल जाय, किसके क़ाबूमें आ सकती है? परन्तु नहीं, ऐसा हो भी सकता है। एक सज्जनने मुझे बताया—'ये सपने मेरे बसकी बात नहीं हैं।' मैंने प्रश्न किया—'क्या दुनियामें किसीके बसकी बात हैं भी?' उत्तर मिला—'मैं दूसरोंके विषयमें कुछ नहीं कह सकता। यह जानता हूँ कि जब मैं नवयुवक था, तो जो चाहता, सपनेमें देख लेता। उदाहरणार्थ, एक बार मैंने निश्चय किया कि आज लाहौरसे गाँव जाऊँगा। तब उस दिन मुझे जो स्वप्न आया, उसमें मैं अपने गाँवमें पहुँचा हुआ था। वहाँ मैं अपनी माता और अन्य आत्मीयोंसे मिला और बहुत देर तक बातें करता रहा।'

कुछ लोगोंको विशेष प्रकारके स्वप्न आते हैं। उदाहरणार्थ, वे वीरताके या जानको खतरेमें डालनेवाले सपने देखते हैं। कुछ दूसरे लोगोंको ऐसी बातें सपनोंमें नहीं मिलतीं। यह क्यों? इसका एक कारण यह होता है कि अपने जीवनमें उन्हें प्रायः संकटोंसे मुक़ाबला करना पड़ता है। इस कारण उनको ऐसी ही बातें सोचनेका मौक़ा मिलता रहता है। फल-स्वरूप वे स्वप्न भी संकटपूर्ण देखते हैं।

एक कविने स्वप्नकी बनावटके विषयमें कहा है—'इसके ताने-बाने हवाके तार हैं। कोई मनुष्य सपनेको पकड़कर अनुभव नहीं कर सकता।' परन्तु इस बातसे किसीको इन्कार नहीं हो सकता कि हमारे जीवनपर इन स्वप्नोंका भी प्रभाव होता है। कई बार स्वप्नोंको कलाकार कहानीका माध्यम बनाते हैं। नाटकमें भी इसका प्रयोग किया जाता है। यदि हरएक स्वप्नका विश्लेषण किया जा सके और यह मालूम हो जाय कि कहींकी ईंट कहींका रोड़ा जमाकर भानमतीने यह कुनबा किस तरह जोड़ा है, तो सचमुच यह मनुष्यके लिए मनोरंजनकी बहुत ज़्यादा सामग्री प्रस्तुत करे। कुछ भी हो, इसमें तो किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता कि जिन दार्शनिकोंने इस विषयका अध्ययनकर इसके बारेमें खोज की है, वे हम सबके धन्यवादके पात्र हैं। मनोविश्लेषणका तो एक प्रकारसे आधार ही स्वप्न हैं।

—जूही-चमेलीके फूलोंको देखकर मैं मुग्ध हो गया। उनकी सुगन्धसे जैसे मैं पागल हो उठा। फूलोंका मोह मुझसे दबाया नहीं गया। मालीकी आज्ञा लेकर मैंने कुछ फूल तोड़े। 'ओह कितने सुन्दर हैं ये फूल!' सहसा मेरे मुँहसे निकल गया। मैंने उनको चूमा और सूँघा। मालीने यह देखा और आग-बबूला हो गया। मेरे पास आकर क्रुद्ध स्वरमें बोला—'अरे बाह, बड़े आए फूलोंके शौकीन कहींके! ये फूल मैंने तुम्हें सूँघने-चूमनेके लिए थोड़े ही दिए थे। मैंने तो समझा था कि तुम देव-पूजाके लिए इन्हें ले जा रहे हैं।'

—और देवताओंके सिरपर शोभायमान होने योग्य वे फल सहसा मेरे हाथसे ज़मीनपर गिर पड़े! —कुमार गोविन्दानुज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन

श्री राधिकाशरण वाजपेयी

सड़े घावोंसे भरी देह, जुओंसे भरे चिथड़े, असह्य पीड़ा और कूड़ेके ढेरसे संगृहीत रोटीके टुकड़े—यही नत्थूके जीवन-पाथेय हैं। आज तीन सालसे सियालदहके एक फुट-पाथपर वह जेठ-वैशाखकी गरमी, सावन-भादोंकी वर्षा और पूस-माघका जाड़ा काट रहा है। सबेरेसे शाम तक वह चुपचाप वहीं बैठा रहता है। कभी कुछ बड़बड़ाता है, कभी कुछ सोचता है और कभी एक फूटा आईना लेकर अपना कुत्सित मुँह देखने लगता है, जिसकी पचीस वसन्तोंकी तरुणाईको तीन सालके गलित कुष्ठने खा लिया है। उसकी नाक बैठ गई है। आँखोंकी नीलाभ शुभ्रतामें नैराश्य और घृणाकी पीत-धूसर शून्यता छा गई है। सारी देहमें कत्थई और काले धब्बोंका गंगा-जमुनी सम्मिश्रण है। उँगलियाँ गल रही हैं और चमड़ेकी स्पर्श-शक्ति दिन-ब-दिन लोप होती जा रही है।

देहके इस घृणित रोगने उसके हृदयको भी कुत्सित बना दिया है। लोग उसे देखते हैं, कुछ घृणासे मुँह फेर लेते हैं, कुछ दया-भरी आँखोंसे देखते हुए दूर खिसक जाते हैं और कुछ उसे सजीव पापका ही उदाहरण समझते हैं। नत्थू क्षोभ और ईर्ष्यासे जल उठता है। सोचता है, काश सारी दुनिया कोढ़का शिकार बनती! यदि कभी किसीने एकाध पैसा उसके सामने फेंक दिया, तो वह आशीर्वाद देता है—'राम तुम्हारा भला करे।' पर इस प्रत्यक्ष मंगल-कामनाकी आड़में छिपी रहती है विषाक्त अभिशापकी एक अमिट छाया!

जीवन उसके लिए अर्थहीन भार-सा है। कभी-कभी वह मारे पीड़ाके कह उठता है—'भगवान, मुझे उठा लो; अब सहते नहीं बनता!' पर फिर भी वह जीना चाहता है। न जाने क्यों, यह असीम यन्त्रणामय जीवन उसे रहस्यावृत्त मृत्युसे अच्छा लगता है।

आजसे तीन साल पहले उसका गेहुँआ रंग था। उसके सुडौल चेहरेपर स्वास्थ्य-सुलभ लावण्य था। वह एक मिलमें काम करता था। जीवन शान्तिसे व्यतीत होता था। दिन-भरके परिश्रमके बाद रोटी-दाल-भात खाकर वह लेट रहता और सुदूर बिहारके एक गाँवमें बैठी हुई अपनी स्नेहमयी माँ और सोलह सालकी लजीली बहूकी बातें सोचते हुए सो जाता। सहसा एक दिन उसने देखा कि उसके हाथों और पीठपर कुछ मटमैले कत्थई रंगके धब्बे-से निकल आए हैं। इनसे कोई खास तकलीफ़ तो न थी; पर धब्बोंकी सतह कुछ कड़ी और निर्जीव-सी मालूम होती थी। नत्थूने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। मिल-मज़दूरके दैनन्दिन जीवनमें इतना अवकाश ही कहाँ कि खाज-खुजली और शरीरके मामूली धब्बोंको लेकर माथापच्ची करे।

कई दिनों बाद नत्थूके एक साथीकी निगाह उसके हाथके धब्बोंपर पड़ी। उसने पूछा—'नत्थू भैया, यह हाथोंमें क्या हुआ है?'

नत्थूने कहा—'न जाने यह कैसे दाग़-से पड़ गए हैं, भैया! कुछ समझमें नहीं आता, क्या है?'

साथीने शंकित स्वरमें कहा—'किसी डाक्टरको क्यों नहीं दिखाते? ये दाग़ तो अच्छे नहीं।'

सहसा एक अज्ञात आशंकाने नत्थूको त्रस्त बना दिया। दूसरे दिन सवेरे वह डाक्टरके पास गया। डाक्टरने उसके घावोंको देखा और एक चिट्ठी देकर उसे मैनेजरके पास भेज दिया। मैनेजरने उसे एक महीनेका वेतन देते हुए कहा—'नत्थू, तुम घर चले जाओ। यहाँ रहना ठीक नहीं। तुम्हारा रोग बड़ा बुरा है।'

बड़ा बुरा रोग! नत्थू घबरा गया। पर वह घर न गया। कोढ़ी शरीर लेकर गाँव जानेसे उसने भीख माँगकर यहीं रहना अच्छा समझा। आधे रुपए उसने घर भेज दिए और उसी दिनसे मिल छोड़कर अवारा जीवन बिताना शुरू कर दिया।

अनभ्यस्त होनेके कारण पहले कुछ दिनों तक तो नत्थूको भीख माँगनेमें कुछ हिचकिचाहट-सी होती। बाहरी अंगोंमें रोगका कोई चिह्न न होनेके कारण लोग उसे भीख न देकर दुत्कार देते—'भीख माँगते शर्म नहीं आती? ऐसा हट्टा-कट्टा शरीर लेकर भीख माँगता है! काम करते क्या छाती फटती है?' लज्जा और क्षोभसे विकल हो वह किसी निर्जन स्थानमें बैठकर अपने दुर्भाग्यपर आँसू बहाता। सोचता, 'बड़े पापोंके फल-स्वरूप ही यह रोग होता है! शायद यह मेरे पूर्वजन्मके पापोंका ही फल है!'

- २ -

नत्थूको कुष्ठ-रोगकी यातना तो थी ही; पर उससे भी ज़्यादा पीड़ादायक हो उठी उसके लिए अपूर्ण देह-लालसा। घावोंकी जलन और यन्त्रणा जब दिवावसानके साथ-साथ शान्त होने लगती, निरुपाय संयमकी अशान्ति उसे दग्ध करने लगती। एक दिन दोपहरके समय जब इसी आशंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलता हुआ नत्थू बैठे-बैठे चिथड़ोंमें गाँठें जोड़कर उन्हें पहनने लायक बनानेका विफल प्रयत्न कर रहा था, सत्रह-अठारह सालकी एक साँवली-सी भिखारिन उधरसे गुज़री। नत्थूने उसकी ओर देखा। उसकी चंचल आँखोंमें नत्थूने एक विचित्र अनुराग और आकर्षण उमड़ता देखा। उसकी देहमें भी घाव थे। घुटनोंके नीचे पैरोंमें सूजन और पैरोंकी उँगलियोंमें कुष्ठका ध्वंस-कार्य शुरू हो गया था। भिखारिनने भी नत्थूको देखा। नत्थूकी प्यासी दृष्टि जैसे उसे अच्छी लगी और वह थोड़ी दूरपर अपनी गठरी रखकर नत्थूके पास ही बैठ गई।

'तेरा नाम क्या है री!' नत्थूने आखिर पूछ ही तो लिया। भिखारिनने नत्थूके प्रश्नका कुछ जवाब न दिया। वह मुँह फेरे चुपचाप बैठी रही। पर मौन रहकर भी वह नत्थूकी लालसापूर्ण दृष्टिको सपुलक अनुभव करती रही। 'बोलती क्यों नहीं री, मुँहमें दही जमा है क्या?'

'चाहे जो-कुछ हो, तुझसे मतलब?'—भिखारिनने ज़रा उलझकर जवाब दिया।

नत्थूने बीड़ी सुलगाई, दो-एक कश खींचे और भिखारिनके पास खिसककर बीड़ी उसके मुँहसे लगा दी। भिखारिन पहले तो ज़रा चौंकी, फिर निर्विकार भावसे नत्थूके हाथसे बीड़ी लेकर पीने लगी। बीड़ीकी आँच जब उँगलियोंमें लगने लगी, तो उसने बीड़ी फेंक दी और कुछ मुस्कराकर बोली—'मेरा नाम सुखिया है।'

'रहती कहाँ है?'

'यहाँ, वहाँ, जहाँ जगह मिले! कल चितपुरमें थी, आज कहाँ रहूँगी, पता नहीं।'

'तेरा आदमी भी है, या नहीं?'—नत्थूने दबे स्वरमें पूछा।

भिखारिनने नत्थूपर एक मोहक कटाक्ष डालकर कहा—'फिरा गँवार है रे तू तो! आदमी होता, तो तेरे पास बैठकर बीड़ी पीती? तेरी हड्डी-पँसली न चूर हो जाती?'

नत्थू मारे आनन्दके पागल हो उठा। चन्द सेकेण्ड वह सुखियाको देखता रहा। उसकी फटी-विवर्ण साड़ी उसके पुष्ट यौवनके उच्छ्वासको दबाने और छिपानेमें अक्षम हो रही थी। घृणित रोगकी आड़से उसका हृदय नत्थूको खींच रहा था। उसकी मदालस आँखें मानो नत्थूसे कह रही थीं—'मैं तुम्हारी हूँ!'

नत्थूने पूछा—'ये घाव अच्छे नहीं होते क्या? दवा क्यों नहीं लगाती?'

'ज़रा अपनी हालत तो देख! घावोंपर मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं और चला है मुझे दवा बताने! दवाके लिए पैसे कहाँ? और घाव अच्छे हो जायँ, तो भीख कौन देगा?'

नत्थू आत्म-सचेतन हो उठा। उसने नज़दीक खिसककर सुखियाका हाथ पकड़ लिया और उत्तेजित स्वरमें कहा—'मेरे पास रहेगी? आखिर इस तरह अकेली कब तक भटकेगी?'

सुखियाने इसका उत्तर अपने आसक्तिमय चपल कटाक्षसे दिया और लजाकर आँखें नीची कर लीं।

- ३ -

साल-भर बीत गया। जिस दिन सुखियाकी प्रसव-पीड़ा शुरू हुई, नत्थू दाईका काम करनेके लिए कहींसे खोज-खाजकर एक बूढ़ी भिखारिनको ले आया। वह सुखियाको झोंपड़ीके अन्दर लिवा ले गई। नत्थू उत्कण्ठित होकर बाहर बैठा रहा। आज उसे अपनी माँ और बहूकी याद आ रही थी। वह बाप बनने जा रहा है! काश, आज उसकी माँ होती, तो कितनी खुश होती! रातके दस बजे जब सुखियाका चीखना-कराहना बन्द हुआ, तो नत्थूने अन्दर झाँकते हुए पूछा—'क्या हाल है बूढ़ी माई?'

बुढ़ियाने मुस्कराकर कहा—'झाँकता क्या है? आ, देख न अपने बेटेको।'

बेटेको! बेटेको!! नत्थू अन्दर घुसा। किरासिनकी डिबरीकी अस्पष्ट रोशनीमें उसने देखा—सुखिया चुपचाप अवसन्न पड़ी है और उसके पास ही एक काला लोंदा-सा पड़ा है। यही उसका बेटा है। नत्थूने सिर झुकाकर उसे अच्छी तरह देखा। शिशुकी सारी देहमें गुलाबी, लाल और नीलाभ कुत्सित धब्बे थे! उसकी छोटी-छोटी आँखोंमें मानो एक प्रच्छन्न अभियोग छिपा था।

बुढ़ियाने कहा—'लालको गोदमें ले ले। इसका नाम रखना लाल। देख, तेरी तरफ़ कैसा ताक रहा है। बापको इतना जल्दी पहचान गया!'

नत्थूके मुँहसे अचानक निकल पड़ा—'इसका नाम रखूँगा घिनौना।'

सुखियाने भर्त्सनापूर्ण दृष्टिसे उसकी ओर देखा। उस दृष्टिके सामने नत्थू ठहर न सका। वह चुपचाप वहाँसे खिसक आया। इस घटनाके बाद सुखिया और नत्थू एक-दूसरेसे विच्छिन्न-से हो गए। सुखियाने अपना सारा प्रेम और स्नेह उस शिशुपर न्यौछावर कर दिया।

परन्तु नत्थू सुखियाको कैसे छोड़ सकता था? वह भी उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। पर घिनौना उसके और नत्थूके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच एक दीवार-सी बन गया। सुखियाका रोग बढ़ने लगा और उसकी देह सड़ने लगी। अब नत्थू भी उससे कुछ दूर-दूर-सा रहने लगा।

रातके समय जब मारे पीड़ाके सुखिया कराहती, नत्थू उठ कर वहाँसे चल देता। घिनौना भी चुपचाप पड़ा रहता। भूख लगती, तो हाथ और गर्दन हिलाकर दूध टटोलता। सुखिया सूखा स्तन उसके मुँहसे लगा देती। घिनौना उसे चूसता, रोता और रोते-रोते सो जाता।

आखिर एक दिन सुखिया असह्य पीड़ासे कराह उठी। उसकी देहमें दुर्गन्ध हो गई थी और आँखोंमें मृत्युका सूनापन नज़र आ रहा था। नत्थू उसके पास जा बैठा। सुखियाने उसे देखा, तो तड़प उठी और चीत्कारपूर्ण स्वरमें बोली—'हट जा यहाँसे चाण्डाल! मैं तो मर रही हूँ; पर याद रख, तू भी सुख नहीं भोगेगा। तेरे तनमें कीड़े पड़ेंगे और तू बिना पानीके तरस-तरसकर मरेगा।'

नत्थू कुछ न बोला। चुपचाप वहाँसे उठकर चला गया। सुखियाकी आवाज़ सुन घिनौना जाग पड़ा और चिल्लाने लगा। सुखिया थोड़ी देर उसकी ओर निहारती रही। उसको सूनी आँखोंमें स्नेहका ज्वार-सा आ गया। आँसू बहने लगे। पर दूसरे ही क्षण स्नेहका स्थान दृढ़-संकल्पने ले लिया। उसने एक हाथ घिनौनाकी गर्दनके नीचे लगाया और दूसरा गलेके ऊपर और बोली—'मेरे लाल, तुझे यहाँ कहाँ छोड़ जाऊँ? कौन पूछेगा तुझे? चल, मेरे साथ ही चल!'

और सारी शक्ति लगाकर उसने घिनौनेका गला घोंट दिया! घिनौनाकी कीचड़-भरी आँखें बाहर निकल आईं। दो-एक सेकेण्ड छटपटाकर वह खत्म हो गया! सुखिया तड़प उठी। तीन-चार घण्टे रोती-चिल्लाती रही, फिर चुप हो रही। मृत्युका नीरव आह्वान उसके पास पहुँच चुका था। उसने चारों ओर ताका। नत्थूको देखनेकी शेष कामनाने उसे विकल बना दिया। पर नत्थूका वहाँ कहीं भी पता न था। उसकी आँखें निराश होकर घिनौनाकी डरावनी आँखोंसे आ लगीं और पथरा गईं!

- ४ -

सुखिया और घिनौनाकी मृत्युसे नत्थूने मानो मुक्ति पाई; पर यह मुक्ति क्षणिक थी। सुखिया और घिनौनाकी यादसे उसे एक मुहूर्त्तके लिए भी छुटकारा न मिला। सुखियाके अन्तिम वाक्य अहर्निश उसके कानोंमें गूँजते रहते। जब-तब अचानक वह भरी नींदसे चौंक उठता। अपनी तन्द्रा-च्छन्न आँखोंके सामनेके हरित-नीलाभ आलोकमें वह देखता—घिनौना आँखें फाड़े उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। उसकी देहमें हज़ारों घाव हैं, जिनसे खून और पीब टपक रहे हैं। हाथ फैलाकर मानो वह कह रहा है—'मुझे ले लो! एक दिन भी तुमने मुझे गोदमें नहीं लिया! मैंने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा है? मुझे ले लो!' घिनौनाकी देहके घाव मानो होंठ फैलाकर उसे काटने आ रहे हैं। नत्थू भागना चाहता है; पर वह भाग नहीं सकता। घिनौनाकी घिनौनी आँखें उसे बाँधे हैं। नत्थू चिल्ला उठता!

देहकी क्रमवर्द्धमान पीड़ा और मानसिक अशान्तिने उसे पागल बना दिया। एक दिन उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस दुःखमय नारकीय जीवन और एक महान् शान्तिमय शून्यके बीच एक ही छोटा-सा दरवाज़ा है। उसे लाँघनेमें हिचकिचाहट होती है; ममता और मोह बेड़ियाँ बन जाते हैं। पर नत्थू इस छोटे-से दरवाज़ेको एक ही छलाँगमें अनायास पार कर जायगा।

पौ फट रही थी। नत्थूने देखा, एक मोटरकी रोशनी तीव्र वेगसे चली आ रही है। वह उठा और सड़कपर आकर खड़ा हो गया। मोटरकी रफ़्तार बड़ी तेज़ थी। नत्थू विमोहित हो गया, अजगरकी आँखोंके सामने जैसे मृगशिशु मोहित हो जाता है। आत्म-हत्याके नशेमें नत्थू विभोर हो उठा। मोटर बहुत क़रीब आ गई—सिर्फ़ बीस गज़ दूर, पन्द्रह गज़, दस, पाँच। सहसा नत्थू मोटरके सामने फाँद पड़ा। मोटर उसके पास पहुँचकर अकस्मात् रुक गई। छातीमें उसे चोट-सी मालूम हुई। सुन पड़ा, एक आवाज़ आ रही है—'सूअरका बच्चा, अन्धा हो गया है! चला था मोटरके नीचे आकर मरने!'

नत्थूने आँखें खोल दीं। मोटरके अगले टायरके दाँत उससे चार इंचकी दूरीपर रुके थे। नत्थूकी समझमें नहीं आया कि यह सब क्या हो रहा है। उसने अपनी छातीपर बूटकी ठोकर अनुभव की। देखा, एक फ़ौजी जवान उसे लातें जमा रहा है। नत्थू हड़बड़ाकर उठ बैठा और बोला—'भूल हुई सरकार, चलते-चलते गिर पड़ा था।'

वह उठा और भागा। वह मरना नहीं चाहता था। वह कुष्ठ-कलुषित पीड़ा-लांछित जीवन भी उसे मृत्युसे सुखद जान पड़ा। चाहे जैसे हो, जीना ही चरम सुख है। सूरजकी उगती हुई सुनहली किरणोंमें नत्थूने एक नई मिठास और नए जीवनका अनुभव किया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोटीकी समस्या

स्वर्गीय फ्राँसोया कोपे

[प्रस्तुत कथा-चित्र फ्रांसके प्रसिद्ध साहित्यिक फ्राँसोया कोपेकी आजसे ४५ साल पहलेकी रचना है। तत्कालीन फ्रांसमें जो खाद्य-संकट उपस्थित हुआ था, वही इस रचनाकी विषय-वस्तु है। हमारे देशके वर्त्तमान खाद्य-संकटसे कोपेकी इस रचनाका सादृश्य है और इसीलिए यह सामयिक है।—सं०]

रोटी महँगी है!...अकाल! आज चारों ओर उच्चरित होनेवाली ये भयंकर बातें एक गम्भीर आवेश उत्पन्न करती हैं। कारण, इस संकटके समाचारसे कोई भी उदासीन नहीं रह सकता। यह बात हर भले आदमीके हृदयमें वेदना पैदा कर देती है और स्वार्थीके मनमें डर। इससे किसीको ग्लानि होती है और किसीको घबराहट। सभी बेचैनी महसूस करते हैं। रोटीके दामका सवाल सचमुच ऐसा है, जिसे हम कलके लिए स्थगित नहीं कर सकते। अपने सामने उपस्थित अनेक समस्याओंके बारेमें जैसा हम कहा करते हैं—'बादमें सब ठीक हो जायगा', वैसा इस मामलेमें हम नहीं कह सकते। आशावाद और भविष्यपर ज़िम्मेदारी सौंपना बहुधा निष्ठुरता और अनुभवहीनताकी मिथ्या अभिव्यंजनाके सिवा और कुछ नहीं है। यहाँपर वह बात नहीं चल सकती। भूख देरीको बिल्कुल नहीं सह सकती। खाली पेटकी पुकार सुनना आवश्यक है। जिस भयप्रद क्षणमें कंकाल 'रोटी, रोटी', चिल्लाना शुरू करते हैं, उस समय पुष्ट शरीर-वालोंको यह स्मरण करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है कि जब भूखोंके पास खानेको कुछ नहीं होता, तो वे डँसनेके लिए आगे बढ़ आते हैं।

सभी यह बात कान खोलकर सुन लें कि रोटीका दाम दरिद्रोंकी सहनशीलता मापनेका थर्मामीटर है। पुलके नीचे-वाले खम्भेपर नदीकी बाढ़ोंका चिह्न बना होता है और बड़ी-बड़ी बाढ़ोंकी तारीखें लिखी होती हैं। उसी तरह रोटीवालोंकी दुकानोंपर लगे नोटिसोंको पढ़कर भी समझा जा सकता है कि कब इन अभागोंका क्रोध उमड़कर तटसे ऊपर आ जायगा।

इस बार अकाल पड़ा है। रोटीका दाम बढ़ा दिया गया है। यह भी निश्चित है कि इसे और भी बढ़ाना होगा। फ्रांसके अनेक स्थानोंमें फ़स्ल बिल्कुल नहीं हुई है। सब तूफ़ानसे नष्ट हो गई है। जो अंचल तूफ़ान और पालेसे बचा हुआ है, वहाँ भी समय बहुत खराब है। गेहूँके पौधे ज़्यादा नहीं बढ़े और बालें पतली हो गई हैं। सालमें हमें १२ करोड़ हेक्टा-लिटर आटेकी ज़रूरत है। इसमें कमसे कम ३ करोड़ हेक्टा-लिटरकी कमी पड़ रही है।

इस समय हमारे सामने एक विकट प्रश्न उपस्थित है—हमारी राजस्व-व्यवस्थाको अक्षुण्ण रखा जायगा या अमरीकाके सस्ते गेहूँके लिए हमारा दरवाज़ा खोल दिया जायगा? राजस्व-व्यवस्थाको अक्षुण्ण रखना प्रायः असम्भव है, क्योंकि इससे कुछ ही दिनोंमें रोटीका दाम अत्यधिक बढ़ जायगा। सिर्फ़ यही नहीं, इससे भी अधिक घातक यह होगा कि रोटीका मिलना दुर्लभ हो जायगा। साथ ही अमरीकाके सस्ते गेहूँके लिए दरवाज़ा खोल देनेसे किसानोंका सर्वनाश हो जायगा। इसके अलावा एक और भी ज़बरदस्त खतरा है। वह है गेहूँका फाटका और मुँह-माँगे दामोंपर बेचनेके लिए उसका इकट्ठा किया जाना, जिसके लिए पूर्वकालमें, 'कँवासिअँ'[1] के क़ानूनके अनुसार, फाँसीकी सज़ा थी; लेकिन आजके क़ानूनमें उसके लिए कोई सज़ा नहीं है। यदि सभी इजारेदार गुट्ट बना लेते हैं, तो उनके लिए एक मामूली-सी सज़ाका विधान है; लेकिन इस गुट्टको छिपा रखना सर्वदा सहज है। वर्त्तमान संकटको इजारेदारोंकी नीतिने और भी जटिल तथा गम्भीर बना दिया है। ऐसी हालतमें हर तरहकी बातोंकी आशंका की जा सकती है—यहाँ तक कि दुर्भिक्ष और इससे कहीं भीषण परिणामकी भी।

मैं यहींसे चिरन्तन आशावादियोंका कोमल स्वर सुन रहा हूँ—'लोग बातोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं। वे बहुत ज़्यादा डर रहे हैं। देरीसे कोई डर नहीं है। रोटीका इतना दाम पहली बार ही थोड़े हुआ है? बस, एक 'सु' बढ़ गया है, यह कोई बड़ी बात नहीं है! इसके सिवा आज-कल मजूरोंके खानेकी चीज़ोंमें रोटीका क्या कोई खास स्थान है भी? सापेक्ष-रूपसे मजूरोंके अच्छे दिन सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं। क्या कोई ऐसा मजूर हमें दिखा सकता है, जो रोज़ मांस नहीं खाता हो?'...इन बातोंको सुनकर क्या उस महीयसी रमणीकी बात याद नहीं आ जाती, जिसने ग़रीबोंके लिए खानेको रोटी नहीं है, यह सुनकर कहा था—'अच्छी बात है, तो वे केक खायँ!'[2]

---

१. सितम्बर, १७९२ से अक्तूबर, १७९५ तक जिस क्रान्ति-कारी परिषद्ने फ्रांसपर शासन किया था।

२. कहा जाता है कि फ्रांसके राजा सोलहवें लुईकी रानी मेरी आँतोयानेत्ने यह बात कही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग इस प्रकारका श्रुति-मधुर उपदेश देते हैं, साधारणतः वे सम्पत्तिशाली होते हैं। वे बिना हाथ-पैर हिलाए अपने नियोजित रुपयोंके सूदमें मोटी रक़म पाते हैं, या फिर बड़ी-बड़ी नौकरियाँ करते हैं। वे चमकीली पोशाक पहनते हैं, अर्थनीतिपर बहस करते हैं और क्षण-भरमें तुम्हारी आँखोंके सामने आँकड़ोंसे भरी एक मोटी-सी किताब रख देंगे, जो साफ़-साफ़ इस बातको साबित कर देगी कि दोष ग़रीबोंका ही है। यदि वे दुर्दशाग्रस्त हैं, तो उसे उन्होंने ही बुलाया है। ये भीषण आदमी हैं। इन्हें यह समझानेकी कोशिश न करना कि अधिकांश मजूर यदि शारीरिक थकावटको दूर करनेके लिए वास्तवमें मांस खाते हैं, तो उनके खानेकी मेज़पर मांसके टुकड़े उतने नहीं दिखाई पड़ेंगे, जितना कि शोरवा, जिसमें शायद चम्मच भी नहीं डूबे! उनका थाल आलूसे भरा दिखाई पड़ेगा! ग़रीबोंमें शक्तिहीन वृद्ध बहुत हैं, अनाथ बच्चोंके भारसे दबी हुई विधवाएँ बहुत हैं और हैं बहुत-सी नाममात्रकी मजूरी पानेवाली मजूरिनें, जिनके लिए रोटी ही प्रधान खाद्य है। एक 'सु' तो एक ही 'सु' है। यदि प्रति सेर और प्रतिदिन रोटीका दाम १० 'सु' पड़े, तो वह सालमें १८ फ्रां होता है। १८ फ्रांको ढाई या तीनसे गुणा करनेपर (अनेक परिवारोंमें ढाई-तीन सेर रोटी रोज़ खर्च होती है) जो फल निकलता है, वह छोटी टेंटवालोंके लिए अत्यन्त चिन्ताका कारण बन जाता है। ये सब बातें उन्हें समझाने न जाना। लम्बे-चौड़े हिसाब और रिपोर्ट तथा कोष्टकमें अंकित आँकड़ोंके हथियारसे लैस किसी अर्थनीतिज्ञके सामने इन बातोंको न छेड़ना, नहीं तो वह ग़ुस्सा हो जायगा और तुम्हें समझा देगा कि तुम कुछ नहीं समझते। हो सकता है, वह तुम्हें भावुक और साम्यवादी भी कह दे।

फिर भी वास्तविक बात ज्योंकी त्यों रह जाती है। रोटी महँगी हो गई है, और यदि हम जल्द ही संरक्षण-क़ानूनकी दीवारको एक भी जगह नहीं तोड़ते, तो अगले जाड़ोंमें रोटी और भी महँगी होगी। लेकिन रोटीको और अधिक महँगी नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि उस हालतमें बहुत बड़ा खतरा दिखाई पड़ेगा। विदेशी गेहूँपर से राजस्वका भार कम करना ही होगा। इसका परिणाम फिर चिन्ताजनक होगा। फ्रांसीसी खेती-बाड़ी तो पहलेसे ही दुर्दशाग्रस्त है, इससे उसको और भी ज़बरदस्त धक्का पहुँचेगा। लेकिन इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है। मनुष्यकी बुद्धि कितनी भ्रान्त है! स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि भविष्यकी एकमात्र व्यवस्था होगी अबाध विनिमय। और सभी बातोंके होते हुए भी यह आशा की जा सकती है कि जल्दी या देरसे सभी जातियोंको अपने आर्थिक सम्पर्कके नियन्त्रणमें पेरिसके उन अवारा लड़कोंकी नीति स्वीकार करनी होगी, जो कहते हैं—'तेरे पास जो-कुछ है, उसमें से मुझे दे; मेरे पास जो-कुछ है, उसमें से तुझे दूँगा।' इस बीच उनमें भीषण हिंस्र प्रतियोगिता और निष्ठुर संघर्ष चलते रहेंगे। वे तोपके गोलोंसे (तोप तैयार करनेमें अपना सत्यानाश करते हुए भी) अपेक्षाकृत कम लड़ते हैं। वे राजस्वके गोलोंसे घोर युद्ध करते हैं। जिस समय अस्त्र-शस्त्र काममें नहीं लाए जाते, उस समय जो एकमात्र सैनिक तत्पर रहता है, वह है राजस्व-विभागका कर्मचारी। हमारे देशमें यदि राजस्व-विधान नहीं होता, तो संयुक्त-राष्ट्र अमरीका हमारे ऊपर गेहूँकी मशीनगन चलता, आटेके बोरोंके गोले बरसाता और फ्रांसके गलेमें आटा ठूँसकर हमारे किसानोंको दुर्भिक्षके गालमें डाल देता! इस प्रकार जिस आटेसे आदमीके प्राण बचाए जाते हैं, उसीसे हमें मारा जाता। इससे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।

स्मरण रहे, यदि हम सचमुच ग़रीबोंके खरीदने लायक दामोंपर रोटी देना चाहते हैं, तो हमें मुनाफ़ाखोरोंसे होशियार रहना होगा। यहाँपर आशावादी फिर टोककर कहते हैं—'इस तरहकी बातें तुम कैसे करते हो? कैसी भीषण बातोंकी तुम याद दिला रहे हो? तुम्हारी बातोंको सुनकर देखता हूँ कि बरछियोंपर टँगे हुए फुलँ और बेयर्त्तिये[3]के छिन्न मस्तक मेरी आँखोंके सामनेसे गुज़र जाते हैं। उनके मुँहमें खूनसे सना पुआल ठूँसा हुआ है। आज आवागमनकी इतनी सुविधा हो जानेपर भी क्या गेहूँ इकट्ठा करना सम्भव है?... तुम मेरी बातोंपर हँस सकते हो; लेकिन इजारेदार अब नहीं हैं।'

माफ़ करें सुधीवर, ऐसे लोग हैं। रुपयेके ज़ोरसे आदमी सब-कुछ कर सकता है। फिर मुनाफ़ा करनेका पागलपन तो सीमाहीन है। मेरी तरह आप भी भलीभाँति जानते हैं कि हाल ही में पेरिसमें कितने ही लोगोंकी दौलत घृणास्पद-रूपसे बढ़ गई है और खाद्य-पदार्थोंके फाटकेके सिवा इसका और

३. सोलहवें लुईके ज़मानेमें फुलँ अर्थ-मन्त्री था। १७८९ ई० में लोगोंने उसे मार डाला। बेयर्त्तिये फुलँका दामाद और पेरिसका गवर्नर था। ससुरकी तरह उसकी भी हत्या कर डाली गई।—अनु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई कारण नहीं है। आप ऐसे विवेकहीन लोगोंका नाम भी बता सकते हैं। कारण, समाजके ऊँचे हल्कोंमें वे सम्मानित हैं और आप स्वयं शेयर-बाज़ार या क्लबमें मुलाक़ात होनेपर उनसे हाथ मिलाकर अपने-आपको परम भाग्यवान समझते हैं।

यहाँ फिर आशावादी बिगड़ पड़ेंगे, क्योंकि मैंने उनके आराध्यदेव—स्वर्ण-मृग—को अपमानित किया है। वे कहेंगे—अच्छी बात है, इसमें बुरा क्या हुआ? किसी भी सौदेको सुलझा करना और दाम खूब चढ़ जानेपर उसे बेचना व्यापारियोंके लिए कबसे निषिद्ध हुआ है? इन लखपतियोंके विरुद्ध तुम्हारे सुचिंतित अभियोग क्या हैं? यही न कि ये फाटका खेलते हैं? यह तो कोई अपराध नहीं है। यही न कि ये मुनाफ़ा करते हैं? पर यह तो एक संयोगकी बात है। निर्बाध व्यापारकी हलचलमें तुम्हारे हाथों उसकी क्या गति होगी?'

उत्तरमें मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूँ कि सौदा करनेके जितने भी कारबार हैं, उनमें लोगोंके खाद्य-पदार्थोंका व्यापार करना सबसे गर्हित है। इसी लोगोंकी दुर्दशासे लाभ उठाकर किसीको मालामाल होते देख घृणा होती है। जिससे गेहूँका एक इजारेदार पेरिसका राजा बन सके, जिससे वह प्रासाद-तुल्य भवन तथा फ़ौज-पल्टन रख सके, जिससे साल-भरमें ही वह गरमीके दिनोंमें समुद्र-तटपर अपने ग्रीष्मावासमें, शरद्-ऋतुमें अपनी शिकार-भूमिमें और जाड़ोंमें रिवेरा-स्थित अपने भवनमें निवास कर सके—जानते हो, इसके लिए क्या करना पड़ता है? इसके लिए लाखों मजूरोंको कारखाने जाते समय साथमें नाममात्रका खाना ले जाना होता है। कंगाल नारीके छोटे-छोटे बच्चे जब स्कूल जाते हैं, तो उसे उनके डिब्बोंमें रोटीका एक छोटा-सा टुकड़ा रख देना पड़ता है। कमज़ोर और रोते हुए दुधमुँहे बच्चेके मुँहमें माँको अपना सूखा हुआ स्तन डाल देना पड़ता है। संक्षेपमें, इसके लिए सारी जनताको भूखसे तड़पना पड़ता है।

नहीं, नहीं, गेहूँ व्यापार करनेकी चीज़ नहीं है। जिस अपराधीने किसी छिपी हुई कारसाज़ीसे आटे तथा दूसरी चीज़ोंके दाम बढ़ा दिए हैं और जो ग़रीबोंके काई-लगे पैसोंको सोनेकी ईंटोंमें बदल रहा है, उसके मुँहमें जब रोटीका प्रत्येक कौर जाता है, तब अगर वह कौर खून और आँसूके स्वादसे विषैला हो जाता है, तभी उसको उचित पुरस्कार मिलेगा। रोटी पवित्र होती है। इस रोटीसे यदि आदमी एक दिन भी वंचित रहता है, तो यह हमारी अहंकारी सभ्यताके लिए चरम लज्जाकी बात है।

अनु०—अरुण मित्र

बाण भट्टकी आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

षष्ठ उच्छ्वास

शिविकाओंके निकलते-निकलते गोधूलि-काल हो गया। विलम्बका कारण मैं ही था। गंगा-तटकी नौका-व्यवस्था देखे बिना भट्टिनीको वहाँ भेजना मुझे ठीक नहीं जँचा। गंगा-तीरसे जब मैं लौटा, तो दिवस क्षीण हो आया था। सन्ध्याञ्चल परिणत प्रियंगु-मंजरीके केसरके समान पिंजरिमासे व्याप्त हुआ पश्चिम समुद्रकी ओर लटक चुका था। अस्तकालीन सूर्य दिवधुओंके मुखपर पड़ी हुई एक ऐसी महीन चादरके समान दिख रही थी, जो कुसुम्भ-रसकी अविरल वर्षासे लाल और कोमल हो गई हो। आकाशकी नीलिमा बहुत-कुछ दूर हो गई थी और वह चकोरकी नयन-तारकाके समान पिंगल-वर्णकी कान्तिसे विलिप्त हो चुका था। कोकिलके विलोचनोंके समान रक्तारुण किरणें समस्त भुवनमण्डलको अरुणायित कर रही थीं। अधिक प्रकाशयुक्त एकाध नक्षत्र पूर्व-गगनमें उन्मिषित होते दिख रहे थे और सारी सन्ध्या मोहन-वेशा गैरिक-धारिणी किसी भैरवीके समान चण्डी-मण्डपमें उतर रही थी। शिविकाएँ पहलेसे ही उपस्थित थीं। भट्टिनी और निपुणिका तैयार बैठी थीं। मेरे आते ही वे शिविकाओंपर बैठ गईं और गंगा-तीरके लिए प्रस्थित हो गईं।

प्रांगण-गृहसे बाहर निकलकर मैंने एक बार चारों ओर देखा। आकाशकी अरुणिमा धुल गई थी। वह गाढ़े नील पट्टके समान सिरपर फैला हुआ दिख रहा था। मध्याह्नकी नीलिमा अब अधिक सान्द्र हो गई थी। आस-पासकी वृक्षावलियोंकी हरीतिमा कालिमामें बदल चुकी थी। वनराजियाँ वन्य महिषके मलीमस शरीरकी भाँति काली हो चली थीं। उनपर होनेवाला पक्षिविराव अब शान्त हो गया था। सामनेकी टूटी दीर्घिका अपने शान्त वक्षःस्थलमें आकाशकी समस्त सम्पत्ति लिए हँस रही थी। सब-कुछ शान्त, निस्तब्ध और महिमापूर्ण था। मैंने एक क्षणके लिए सोचा कि पुजारी इस समय आ जाता, तो ज़रा हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोलकर ठठोली कर लेता। पर पुजारी न-जाने इस समय कहाँ था। जानेके पहले मैं एक बार फिर प्रांगण-गृहमें गया, मानो कोई भूली हुई वस्तु खोजनी थी। मोह भी कैसी विचित्र वस्तु है। इस टूटे प्रांगण-गृहके प्रति मेरा आकर्षण इस समय कुछ बढ़-सा गया था। सूना तो वह सदासे था; लेकिन भट्टिनीके निकल जानेके बाद वह विकट सूना हो गया था। उसकी दीवारें मानो बार-बार चिल्लाकर कह रही थीं कि आज हम यथार्थमें सूनी हैं। कुछ देर तक मैं अकारण वहाँ ठिठका खड़ा रहा। भट्टिनीकी एक दिनकी पूजा-वेदी अब भी गीली थी। उसपर के महावराह चले गए थे; पर अपनी उद्धार-महिमाका चिह्न उसपर छोड़ गए थे। थोड़ी देर तक मैं उस वेदीकी ओर मुग्ध-भावसे देखता रहा और फिर एक बार उन तान्त्रिक चिह्नोंकी ओर भी स्थिर नयनोंसे देखा। मुझे भैरवीचक्रके चिह्नोंकी पृष्ठभूमिमें महावराहकी वेदी ऐसी अद्भुत दिखाई पड़ी कि एक क्षणके लिए मैं उसे भविष्यका निमित्त-निर्देशक समझे बिना न रह सका। यह एक दिनके लिए जो परस्पर-विरोधी प्रतीकोंका समन्वय हुआ है, वह आकस्मिक हो सकता है; पर अकारण निश्चय ही नहीं है। इसमें किसी भावी विरोधाभासकी सूचना है। हठात् मेरे मुँहसे मेरी बनाई हुई एक पुरानी आर्या निकल पड़ी।

उन दिनों मैं वाराणसीके पास जनपदमें पुराण-पाठका अभिनय कर रहा था। मेरे हृदयमें कहीं भी भक्तिका लेश भी नहीं था; पर स्वेद, अश्रु और रोमांचका मैंने इतना उत्तम आयोजन किया था कि सरल-हृदया जनपद-वधुएँ और ग्राम-वृद्ध मेरी कथापर मुग्ध बने हुए थे। एक सन्ध्याको मैं व्यासासनसे उठा ही था कि एक अति कमनीय-मूर्त्ति वृद्ध महिलाने आकर मेरे चरण स्पर्श किए। मैंने उसकी ओर देखा—उसका मुखमण्डल मुरझाए हुए कमल-पुष्पके समान खिन्न था। कुण्डलित केश अस्त-व्यस्त हो रहे थे। आँखोंमें एक प्रलयपूरका दृश्य था। अहा, कितनी भक्तिमती थी वह, कितनी विश्वास-परायणा और कैसी सरल-हृदया! मैंने पूछा—'क्यों अम्ब, इतनी व्याकुल क्यों है? क्या हुआ है? कल्याण हो मातः, अपनी व्यथा मुझसे बता। मैं क्या सहायता कर सकता हूँ?' वृद्धाने रुद्ध-कण्ठसे कहा—'तुम ब्राह्मण हो आर्य, पृथ्वीके देवता हो आर्य, तुम्हारे आशीर्वादसे मेरा कल्याण होगा। मेरा एक-मात्र पुत्र घर-द्वार छोड़कर न-जाने कहाँ चला गया है, कोई विधि बताओ कि मैं अपनी खोई हुई निधि पा सकूँ। कोई अनुष्ठान, कोई मांगल्य-व्रत, कोई जप-होम बता दो कि मैं अपने लालको पा सकूँ। हाय, उसकी बालिका वधूको क्या कहकर सान्त्वना दूँ?' उस वृद्धाकी बातसे मैं क्षण-भरके लिए विचलित हुआ। मैं भी तो घर-द्वार छोड़कर भाग आया हूँ। पर दूसरे ही क्षण मैं सम्हल गया; चलो, मेरी कोई माता नहीं है, जो बिलख-बिलखकर धार्मिकताका ढोंग रचनेवालोंसे अनुष्ठानकी विधि पूछती फिरेगी। फिर कोई बालिका या प्रौढ़ा वधू भी नहीं है, जिसे सान्त्वना देनेके लिए किसीको माथापच्ची करनी पड़ेगी। पर यह हतभाग्य कौन है, जो ऐसी माता और बहूको छोड़कर भाग गया है? वह कहाँ गया होगा! वृद्धाको धीरज बँधाते हुए मैंने कहा—'व्याकुल मत हो, अम्ब! तेरी निधि तुझे मिलेगी।' और फिर कुछ व्रत और उपवासकी विधियाँ बताकर अपना पिण्ड छुड़ाया। वृद्धा चली गई; पर मेरे मानस-पटमें एक विशाल छेद करती गई। मेरा कोई नहीं है—न बिलखनेवाला, न सान्त्वनाकी आशा लगाए रहनेवाला। मैं अकेला हूँ, संगीहीन हूँ, हतभाग्य हूँ। रह-रहकर मेरा मन मुझे अवश करने लगा। मुझे यह दुर्निमित्त-सा लगा। अब तक जिसके हृदयपर संसारकी हँसी और रुलाई पद्म-पत्रपर के सलिल-बिन्दुके समान आई और गईं, वह व्यक्ति आज व्याकुल क्यों है? क्या अरुणको देखकर सूर्योदयकी सम्भावना नहीं होती? क्या पवनको देखकर जलागमका अनुमान संगत नहीं है? तो क्या मेरे चित्तका यह विकार किसी पूर्व-निदर्शनके उदयके समान है? मैंने सोच्छ्वास कहा—

अरुण इव पुरःसरो रविं पवन इवातिजवोजलागमम्
शुभमशुभमथापि वा नृणां कथयति पूर्व निदर्शनोदयः।[1]

तबसे मैं उस घटनाको भूल गया था। आज हठात् मेरे मुँहसे यही आर्या निकल पड़ी। तो दुर्निमित्त अभी कटा नहीं है! कल संध्यासे लेकर आजकी संध्या तक घटनाओंके एक चक्रमें बुरी तरह उलझ गया हूँ। क्या कोई अदृष्ट शक्ति किसी अचिन्तनीय विरोध परिस्थानमें मुझे घसीट रही है! क्या आजसे बाण भट्टका हृदय पद्म-पत्रकी तरह अनासक्त नहीं रह सकेगा? कौन जाने!

इसी समय गृहके द्वारपर वन-कुक्कुटोंके उड़नेके कारण मरमराहटकी आवाज़ हुई। गृह-द्वारके एक पार्श्वमें कुछ अयत्न-वर्द्धित करवीरके झाड़ थे। सन्ध्या होते ही उनमें वन-कुक्कुटोंकी बस्ती बस जाती थी। उनके अचानक उड़ने

१. हर्षचरित, ४र्थ उच्छ्वास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे सन्देह हुआ कि कोई आ गया है। निश्चय ही पुजारी होगा। मैं जल्दी-जल्दी घरसे बाहर निकला। द्वारपर मैंने जो-कुछ देखा, वह अप्रत्याशित ही नहीं, अदृष्टपूर्व भी था। मैं इस प्रकार हतचेष्ट हो गया, जैसे बिजली मार गई हो। सामने एक गाढ़ गैरिक वस्त्रधारिणी स्त्री थी। उसके एक हाथमें त्रिशूल था और दूसरेमें काला-सा कोई पात्र। खुले हुए पिंगल-वर्णके केश गुल्फों तक लटके ऐसे लग रहे थे, मानो सायंकालीन अरुण मेघमण्डलमें विद्युत्की शिखाएँ अचंचल होकर रुक गई हों। उसका सुनहरा मुखमण्डल गैरिक वस्त्रोंसे इस प्रकार कुण्डलित था, मानो धातुमयी अधित्यकामें आरग्वधके गाढ़ फूले हुए हों। उसकी आँखें विकच कांचनार-कुसुमके समान लाल-लाल और फटी हुई थीं और उनसे एक मन्द-मन्द रश्मि-सी निकल रही थी। उसकी मूर्त्ति मनोहर नहीं थी; पर वह भयंकर भी नहीं थी। यदि कड़ककर उसने पहले ही मुझे डाँट न दिया होता, तो निस्सन्देह मैं उसे साक्षाद्विग्रह-धारिणी चण्डिका ही समझता। उसने भी मुझे वहाँ देखकर आश्चर्यका ही भाव दिखाया। फिर एक क्षणमें ही उसके अधरोष्ठ काँपने लगे। छितराई हुई आँखें और भी छितरा गईं नासाग्रमें एक प्रकारकी हलचल हुई और भ्रूलताएँ किंचित् हो उठीं। उसके ललाटकी वलियाँ स्पष्ट ही दिख पड़ीं। उसने कड़ककर पूछा—'इस साधना-गृहमें चोरकी भाँति घुसनेवाला तू कौन है?'

मैंने अभी तक अपनेको सँभाला नहीं था। क्या कहना चाहिए, क्या नहीं कहना चाहिए, कुछ स्थिर न कर पाया था। केवल पथराई आँखोंसे उसे देखता रहा। वेश देखकर मैंने अनुमान किया कि वह कोई भैरवी होगी। फिर मुझे इस प्रांगण-गृहके भीतरके विचित्र चिह्नोंकी बात याद आई। मुझे ऐसा लगा कि क्षण-भर पूर्व मेरा मन जिस दुर्निमित्तकी आशंका कर रहा था, वह सिरपर सवार है। इस समय भट्टिनी यहाँसे चली गई हैं, यह सोचकर मेरे मनमें अपार सन्तोष हुआ। मैं अपनेको सम्हालनेमें समर्थ हो गया। हाथ जोड़कर बोला—'परदेशी हूँ मातः, अपराध क्षमा हो।'

भैरवीने एक बार मुझे नीचेसे ऊपर तक ध्यानसे देखा। बोलीं—'तू ब्राह्मण है?'

'मेरा जन्म ब्राह्मण-वंशमें ही हुआ है, मातः!'

'वैदिक क्रियाका अभ्यास है?'

'बहुत थोड़ा।'

'इस साधना-गृहमें तूने क्या किया है?'

मैं ठीक समझ नहीं सका कि भैरवी मुझसे क्या जानना चाहती हैं। कोई वैदिक क्रिया मैंने यहाँ नहीं की है; पर प्रांगण-गृहमें एक गीली मिट्टीकी वेदी अब भी है, मुझे उसकी सफ़ाई तो देनी ही होगी। फिर प्रशंगवश भट्टिनीकी बात भी चल सकती है। इस समय तक वाममार्गी साधकोंके सम्बन्धमें मेरे मनमें श्रद्धाका भाव नहीं था। विशेषकर इन भैरवियोंके सम्बन्धमें मैंने ऐसी बातें सुन रखी थीं, जिनसे उनके विषयमें श्रद्धा नहीं बढ़ सकती। इसीलिए मैंने अपनेको दबाया। बोला—'इस गृहमें मैं बहुत थोड़ी देर ही रहा हूँ, देवि! यहाँ मैंने कोई वैदिक या अवैदिक अनुष्ठान नहीं किया।'

भैरवी भी मेरे मुखको देखकर समझ गईं कि मैं कुछ छिपा रहा हूँ। बोलीं—'ठीक-ठीक बता, नहीं तो अमंगल होगा।'

इस बार मैं डरा। इन भैरवियोंसे मंगल चाहे न हो, अमंगल अवश्य होता है। मेरा ऐसा विश्वास था। हाथ जोड़कर बोला—'अज्ञजनके ऊपर दया होनी चाहिए, मातः!' भैरवीने स्मित हास्य किया। यह हँसी नारीजनोचित बिल्कुल नहीं थी। उसमें किसी प्रकारके शील, विनय, लज्जा या माधुर्यका एकदम अभाव था। वह सूखी नहीं थी, रहस्यपूर्ण थी। उल्काके क्षणभंगुर प्रकाशकी भाँति वह हँसी मेरे मनमें आशंकाको दीप्त कर गई। मैंने फिर भीत-भीत भावसे कहा—'अपराध क्षमा हो, मातः!'

भरवीने कहा—'इधर आओ,' और फिर ज़रा ज़ोरसे पुकारकर कहा—'आर्य, यह देखो कौन है?'

भैरवी मुझे टूटी दीर्घिकाके घाटपर ले गईं। वहाँ पहलेसे ही तीन व्यक्ति उपस्थित थे। दो तो कोई साधक भैरव और भैरवी थे; पर एक महात्मा उनमें विशेष थे। वे व्याघ्रचर्मपर अर्द्धशायित अवस्थामें लेटे हुए थे। उनके शरीरसे एक प्रकारका तेज निकल रहा था। सिरपर केश नहींके समान थे; पर कानकी शष्कुलियाँ श्वेत केशोंसे आच्छादित थीं। ललाटमण्डलकी सहज वलियाँ कूर्च-प्रदेश तक व्याप्त हो गई थीं। आँखोंके ऊपरकी दोनों भ्रूलताएँ मिल गई थीं और सारा मुखमण्डल छोटे-छोटे श्मश्रु लोमोंसे परिव्याप्त था। उनकी आँखें बहुत ही आकर्षक थीं। उन्हें देखकर बड़ी-बड़ी समुद्री कौड़ियोंका भ्रम होता था। ऐसा जान पड़ता था कि वे आँखें पूरी-पूरी कभी खुली ही नहीं थीं। सदा आधी ही खुलती रहनेके कारण उनके नीचे मांसखण्ड फूल उठे थे और कोनोंमें एक प्रकारकी स्थायी सिकुड़न आ गई थी। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेशमें कोई विशेष साम्प्रदायिक चिह्न नहीं था, केवल दाहिनी ओर रखा हुआ पान-पात्र देखकर अनुमान होता था कि वे कोई वाममार्गी अवधूत होंगे। उनके पहनावेमें एक छोटा-सा वस्त्रखण्ड था, जो लाल नहीं था और तन ढँकनेके लिए पर्याप्त तो किसी प्रकार नहीं था। उनकी तोंद कुछ ज़्यादा निकली दिखती थी, यद्यपि वह उतनी अधिक निकली हुई थी नहीं। भैरवीने उनके पास आकर कहा—'बाबा, यह देखो, यह व्यक्ति साधना-गृहको भ्रष्ट कर आया है।' बाबाकी आँखें मुँदी हुई थीं। भैरवीकी वाणी सुनकर वे ज़रा सचेत हुए और उन्होंने अपनी आधी खुली आँखोंसे क्षण-भरके लिए मेरी ओर ताका। वह दृष्टि बहुत ही पवित्र जान पड़ी। बाबाने फिर आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर तक उसी अवस्थामें रहनेके बाद बोले—'मयाविनी! मायाविनी! मायाविनी!!' मुझे ऐसा लगा, मानो वे प्रत्यक्षरूपसे सब-कुछ देख रहे हैं, जैसे त्रिकाल उनके हाथमें आमलक फलके समान सुदर्श है। भैरवीने फिर एक बार मेरे विरुद्ध अभियोग किया। बाबाने बच्चेकी भाँति हँसते हुए कहा—'क्यों रे, वहाँ क्यों गया था? पगले, वह मायाविनी है, उसके जालमें फँस गया!' यह कहकर उन्होंने चण्डी-मण्डपकी मूर्त्तिकी ओर इशारा किया। फिर बोले—'अकेला था?' मुझे ऐसा लगा कि बाबा सब जान गए हैं, उनसे कुछ छिपाना व्यर्थ है। परन्तु बाबाका अभिप्राय कुछ और ही था। मैं समझ नहीं सका और गिड़गिड़ाकर बोल उठा—'कल रातको दो दुःखिनी स्त्रियोंको लेकर इस गृहमें आश्रय लिया था, बाबा! इस गृहमें हमने खाया-पिया है और जूठनसे इसे अपवित्र किया है। मैं जिस दुःखिनी कन्याको आश्रय देनेके लिए यहाँ ले आया था, उसने महावराहकी पूजा भी की है—पर सब-कुछ अनजानमें हुआ है। अपराध क्षमा हो, आर्य!' यह कहकर मैंने भयपूर्वक प्रणिपात किया। बाबा बोले—'डरता है रे?' मैंने संक्षेपमें उत्तर दिया—'हाँ, बाबा!'

बाबा कुछ इस प्रकार सजग हो गए, जैसे किसी बच्चेको कोई तमाशा देखनेको मिल गया हो। उठकर सीधे बैठ गए और कौतूहलके साथ बोले—'इधर आ!' मैं जब उनके पास गया, तो उन्होंने मेरा ललाट छू दिया। मेरे दोनों भ्रुओंके मध्य-भागको उन्होंने अपने अंगुष्ठसे दबाया और फिर हटा लिया। मेरा सिर चकरा गया। क्षण-भरमें मेरे सामने एक भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया। मैंने देखा कि भट्टिनी और निपुणिका नावमें बैठी पूरबकी ओर जा रही हैं। उधर पूर्वी आकाश काले बादलोंसे छा गया है। बादलोंके आगे-आगे पिंगल-वर्णकी धूलि दौड़ रही है और उसके भी आगे छोटे-छोटे तालचंचु पक्षियोंका एक दल धूल और बादलोंके साथ खेलता हुआ भागा आ रहा है। मैं किनारेपर खड़ा हूँ। बादल और घने हो गए। वायुमण्डलमें थोड़ी सर्दीका आभास मिला। फिर भयंकर प्रभंजनके साथ ही साथ आकाशमण्डलमें विकट विद्युत-स्फोट हुआ। गंगाकी लहरें एक-दूसरेसे क्रुद्ध भावसे भिड़ गईं। आकाश धूलिसे, दिङ्मण्डल अन्धकारसे और गंगाका प्रवाह फेनपुंजसे आच्छादित हो गया। देखते-देखते भट्टिनीकी नौका अन्धकारमें अदृश्य हो गई। मेरे हृदय और मस्तिष्क निष्क्रिय-निश्चेष्ट हो रहे। मुँहसे आवाज़ नहीं निकली। पैरोंके नीचे पृथ्वी कुम्भकारके चक्रकी भाँति घूमने लगी। इसी समय बिजली चमकी। नाव धारामें बैठ गई। निपुणिका और भट्टिनी पानीमें कूद पड़ीं। फिर अन्धकार, गर्जन, फूत्कार! मेरा मस्तक झनझना उठा। शिराएँ इस प्रकार स्फीत हो उठीं, जैसे वे रक्तके दबावको अधिक नहीं सह सकेंगी। बादल फैलते गए, आँधीका वेग बढ़ता गया, गर्जनका शब्द ऊँचा होता गया, फूत्कारका विकट-विराव दिङ्मण्डलमें व्याप्त होता गया। मैं चिल्ला उठा—'त्राहि आर्य, त्राहि!' इसी समय मेरे ललाटमें फिर एक बार अंगुलि-स्पर्शका अनुभव हुआ। गंगाकी धारा शान्त हो गई, आकाश स्वच्छ हो गया और भुवनमण्डल प्रसन्न जान पड़ा। मैंने देखा, भट्टिनी नौकामें आराम कर रही हैं। निपुणिका उनके पैरोंके पास बैठी हुई कुछ कह रही है। भट्टिनीका मुख प्रसन्न है, आँखें उत्सुकतासे भरी हैं और कपोल-पालि विकसित हैं। फिर मैंने बाबाकी ओर देखा, उनकी अधखुली आँखोंमें मीठी-मीठी हँसी है। मैंने भीत-भीत भावसे कहा—'बाबा, यह क्या देखा मैंने? ऐसा ही होनेवाला है क्या?' बाबा बच्चोंके समान विनोद करते हुए बोले—'मैं क्या जानूँ?' फिर उनकी आँखें मुँद गईं। कुछ भावावेशकी-सी अवस्थामें बोले—'कितनी माया जानती है, पगली!' फिर मुझे लक्ष्य करके बोले—'क्यों रे, डरता है क्या?'

'मेरा अपराध क्षमा करें, आर्य!'

'तूने कोई अपराध किया है रे?'

'मैं साधारण मनुष्य हूँ, आर्य! अपराध करता ही रहता हूँ; किन्तु जान-बूझकर कभी किसीका अनिष्ट नहीं किया है। मैं अमंगलसे डरता हूँ।'

'ब्राह्मण है न?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ, आर्य !'

'तेरी जाति ही डरपोक है। क्यों रे, महावराहपर तेरा विश्वास नहीं है ?'

'है आर्य !'

'झूठा ! तेरी जाति ही झूठी है ! क्यों रे तू आत्माको नित्य मानता है ?'

'मानता हूँ, आर्य !'

'पाखण्डी ! तेरे सब शास्त्र पाखण्ड सिखाते हैं ! क्यों रे कर्मफल मानता है ?'

बाबाके इस प्रश्नका उत्तर अब सहज ही मैं नहीं दे सका। फिर न-जाने मेरी जातिपर कौन-सा विशेषण बैठा दिया जाय। इस-सा वक्रभंगीसे कतरा जानेकी चेष्टा करते हुए मैंने कहा—'कैसे कहूँ, बाबा !'

बाबा हँसे। बोले—'बता न, तू कर्मफल मानता है या नहीं ?'

'मानता हूँ, आर्य !'

'तो अमंगलसे क्यों डरता है ? मिथ्याचारी है तू !'

'हाँ, आर्य, सो तो हूँ !'

'तो कुछ सच्ची बात सीख न !'

'क्या आर्य ?'

'यही कि डरना नहीं चाहिए। जिसपर विश्वास करना चाहिए, उसपर पूरा विश्वास करना चाहिए, चाहे परिणाम जो हो। जिसे मानना चाहिए, उसे अन्त तक मानना चाहिए।'

'माया-पंकमें डूबा हुआ संसार-कीट हूँ, आर्य ! बहुत-कुछ समझता हूँ ; पर कर नहीं पाता।'

'प्रपंची ! तेरी जाति ही प्रपंची है। सौ बात क्यों समझता फिरता है ? एकको समझ और उसीको कर। क्यों रे, उस लड़कीपर तेरी ममता है न ?'

यह अजीब प्रश्न है। क्या जवाब दूँ ? चुप रहना ही ठीक समझा। बाबाने इसी समय उस भैरवीसे कहा—'सब समझाया ! सब ठीक है न ?'

भैरवीने कहा—'अभी ठीक हो जाता है।' यह कहकर वे और दोनों अन्य साधक भी उठ पड़े। मैं अकेला रह गया। बाबाने मुझसे फिर पूछा—'क्यों रे, बताता क्यों नहीं ?'

मैंने हाथ जोड़कर कहा—'उस कन्याका सेवक होना ही मेरा विषय है, आर्य ! मैं उसके मंगलके लिए प्राण तक देना चाहता हूँ।'

बाबा हँसते रहे। बोले—'ना रे पागल, प्राण मैं नहीं माँगता। मैं जानना चाहता हूँ कि उस कन्यापर तेरी ममता है या नहीं। सीधा क्यों नहीं कहता कि है। तेरी जाति ही टेढ़ी है। हाँ रे, और महावराहपर तेरी ममता है ?'

'है आर्य !'

'मान ले कि एक निशाचर अचानक आकर तुझे धर दबाय और अपने बाएँ हाथमें तेरी उस स्वामिनीको और दाहिने हाथमें महावराहकी मूर्त्तिको लेकर बोले कि तू अपना प्राण देकर किसी एकको बचा सकता है, तो तू किसे बचानेके लिए प्राण देना पसन्द करेगा ?'

बाबा बेढब जीव हैं। ऐसा भी प्रश्न करते हैं ? मैं चुप हो रहा। थोड़ी देर सोचकर बोला—'मैं दोनोंको बचाना चाहूँगा।'

बाबा क्रोधसे काँप उठे—'फिर झूठ बोलता है, जन्मका पातकी, कर्मका अभागा, मिथ्यावादी, पाषण्ड !! महावराहको बचायगा तू ! दम्भी !'

मैं हतचेष्ट, निर्वाक्, स्तब्ध ! बाबाका क्रोध वास्तविक नहीं था। मेरी परीक्षा लेनेके लिए ही उन्होंने यह रूप धारण किया था। मैं विचलित हो गया। मेरी इच्छाके विरुद्ध जैसे किसीने मुझसे कहलवा लिया—'प्राण देकर मैं भट्टिनीको बचाऊँगा।'

बाबा हँसने लगे। उनकी अर्द्धमुद्रित आँखें चमक उठीं। बोले—'अभागा, सारी ज़िन्दगीमें तूने यही एक बात सच कही है। क्यों रे, लजाता है ? दुत् पगले, उस मायाविनीके जालमें फँस रहा है ? बुरा क्या है रे, त्रिपुर-सुन्दरीने जिस रूपमें तेरे मनको भुलाया है, उसे साहसपूर्वक स्वीकार क्यों नहीं करता ? तू अभागा ही बना रहेगा, भोले ! तेरे मनमें महावराहसे अधिक पूज्य भावना उस लड़कीके प्रति है। है न रे ? फिर झूठ बोलेगा भाग्यहीन ?'

'ना बाबा, झूठ क्या मैं समझ-बूझकर बोल रहा हूँ, कोई बोलवा रहा है। भट्टिनीके प्रति मेरी पूज्य भावना है, यह ठीक बात है।'

'हाँ, तू अब ठीक कह रहा है। भुवनमोहिनीका साक्षात्कार पाकर भी तू भटकता फिर रहा है, पगला ! देख रे, तेरे शास्त्र तुझे धोखा देते हैं। जो तेरे भीतर सत्य है, उसे दबानेको कहते हैं ; जो तेरे भीतर मोहन है, उसे भूलनेको कहते हैं ; जिसे तू पूजता है, उसे छोड़नेको कहते हैं। मायाविनी है यह मायाविनी, तू इसके जालमें न फँस। समस्त पुरुषोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरमा रही है, स्त्रियोंको सता रही है, मायाका दर्पण पसारे है। तू उसे नहीं देखता, मैं देख रहा हूँ। तुझे देखकर वह हँस रही है।'

मैं मुग्ध-सा बना बाबाकी ओर देख रहा था। उनका प्रत्येक वाक्य मेरे अन्तस्तलमें उथल-पुथल मचा देता था, जैसे वर्षोंकी गन्दगी साफ़ हो रही हो। बाबाकी बातें जितनी ही विचित्र थीं, उतनी ही भेदक भी। थोड़ी देर तक अभिभूत-सा बना रहनेके बाद मैंने हाथ जोड़कर पूछा—'क्यों बाबा, मैंने जो-कुछ देखा है, वही घटनेवाला है क्या?'

बाबाने निर्भयताके साथ कहा—'तो बुरा क्या है रे? इसके झाँसेमें क्यों आता है? घटने न दे, कितना आनन्द आ जायगा! तू भूलता है, पागल! इसे लीलामें रस मिलता है न? अच्छा ठीक बता, तू उस लड़कीको क्या समझता है?'

'मैं—मैं—मैं...'

'धिङ् मूर्ख, कुछ बता न। जो बात तेरे मनमें पहले आवे, वही कह जा।'

'वह पवित्रताकी मूर्त्ति है, आर्य!'

'तू पशु नहीं है!'

मैं कुछ भी समझ न सका। इसी समय महामाया नामक भैरवी आई। बाबाने उनसे कहा—'महामाया, यह पशु नहीं जान पड़ता; किन्तु वीर भी नहीं है। अमंगलसे डरा हुआ है। इसे आजका प्रसाद देना। अमंगलसे इसका चित्त विक्षिप्त हो रहा है।'

महामाया क्षण-भर ठिठककर खड़ी रहीं। फिर विनीत भावसे बोलीं—'अधिकारी है, आर्य?'

बाबा फिर हँसे। 'तुम भी अभी उसके जालसे नहीं निकलीं, महामाया! कह तो दिया, पशु नहीं है। अधिकारी नहीं होगा, तो क्या कर लेगा? तुम्हें बदनाम करता फिरेगा, यही न? डरती हो। दुत् पगली, डरती है?'

महामायाने कहा—'जो आज्ञा, आर्य!'

बाबाने कहा—'ठहरो महामाया, तुम्हें प्रत्यय दिला दूँ।'—यह कहकर उन्होंने मुझे पास बुलाया। न-जाने फिर क्या देखनेको मिले, यह सोचकर मैं डरता-डरता उनके पास गया। उन्होंने मेरा उत्तरीय हटा दिया और मेरुदण्डकी धीरे-धीरे परीक्षा की। आधी पीठ तक आकर उन्होंने हाथ हटा लिया। बोले—'मैं ठीक कह रहा हूँ, महामाया! यह देखो, इसकी कुण्डलिनी जाग्रत है।'

महामाया भैरवीने भी हाथसे उस स्थानको छूकर देखा। आश्वस्त होकर बोलीं—'तो जैसी आज्ञा हो, बाबा!'

'इसे कुएँके पास बैठा लेना!' फिर मेरी ओर देखकर बोले—'अमंगल दूर हो जायगा; पर तू अमंगलको मंगल क्यों नहीं मान लेता? आज पूर्णिमा लगते ही इन लोगोंकी गोपन साधना होगी। महामाया तुझे प्रसाद देंगी। उसे तू निष्ठाके साथ ग्रहण कर और देख बाबा, भटकता न फिर। इस ब्रह्माण्डका प्रत्येक अणु देवता है। देवताने जिस रूपमें तुझे सबसे अधिक मोहित किया है, उसीकी पूजा कर। आ, तुझे मन्त्र बता दूँ।' मैं बाबाके पास इस प्रकार खिंच गया, जैसे लोहा चुम्बकसे खिंच जाता है। उन्होंने मुझे एक मन्त्र बताया और कहा—'जब तेरे चित्तमें भय, लोभ और मोहका संचार हो, तो तू इसे ही जपा कर।'

मैंने भक्तिपूर्वक बाबाकी बात स्वीकार की। थोड़ी देर तक बाबा निश्चल-से बैठे रहे। फिर किसीके पैरोंकी आहट सुनकर उन्होंने आँखें खोलीं। बोले—'कौन है?'

'विरतिवज्र हूँ, आर्य!'

'आओ।'

विरतिवज्रकी अवस्था पच्चीसके नीचे ही जान पड़ती थी। उनका मुखमण्डल स्वच्छ, मोहनीय और आकर्षक था। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओंके समान चीवर धारण किया था; पर चीवरका रंग पीला न होकर लाल था। चाँदनीमें वह रंग और भी खिल उठा था। उनका कण्ठस्वर भी कोमल और बालकोचित था। बाबाको भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके वे एक स्थानपर शान्त भावसे बैठ रहे। बाबा उसी प्रकार भीमते-से रहे। फिर थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा—'क्या निश्चय किया है, विरति?'

'कुछ समझ नहीं सका, आर्य! मेरे आदिगुरु अमोघवज्रने मुझे ऐसा कुछ करनेको नहीं कहा था। उन्होंने केवल नैरात्म्य की भावनामें स्थिर रहनेका उपदेश दिया था। एक दिन अचानक उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—आयुष्मान्, मैं अब अधिक दिन नहीं रह सकूँगा। तू कौलाचार अघोर भैरवके पास जा। वे ही तेरी व्यवस्था कर देंगे। उसी दिनसे मैं आर्यकी खोजमें था। पर मैं अपने आदिगुरुकी बात ठीक नहीं समझ सका कि क्यों उन्होंने मुझे आपके पास भेजा?'

'नैरात्म्य-भावना तुम्हारी समझमें आई है?'

'नहीं, आर्य!'

'तुम्हारे ऊपर कोई विश्वास करे, तो उसे छोड़ सकनेका साहस है तुममें?'

'नहीं, आर्य!'

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण-अफ्रीकामें 'गोरावाद'

मोहनसिंह सेंगर

केपटाउन-समझौतेकी सारी शर्त्तोंकी सविस्तार चर्चा करना स्थानाभावके कारण यहाँ सम्भव नहीं और न ही शायद अब ऐसा करना विशेष आवश्यक प्रतीत होता है, जब कि लन्दर हस्ताक्षर करनेवाली यूनियन-सरकारने उसके बाद अब तककी अपनी भारतीय-विरोधी नीति और सबसे बादके इस हालके क़ानूनको बिना किसी शर्म या ज़िल्लतके पासकर दुनियाको दिखला दिया है कि केपटाउन-समझौतेका मूल्य एक रद्दी काग़ज़के टुकड़ेसे अधिक कुछ भी नहीं है। पर यूनियन-सरकारकी भारतीय-विरोधी नीतिपर पर्दा डालनेकी इस कूट-कूटनीतिक चाल और भारत-सरकार द्वारा—जो लन्दन-स्थित उसी ब्रिटिश साम्राज्यशाहीकी एक शाखा है, जिसकी दूसरी शाखा दक्षिण-अफ्रीकाकी यूनियन-सरकार है—बिना भारतीयोंकी जानकारी अथवा सहमतिके उनकी ओरसे और उनके लिए इसे स्वीकार किए जानेकी यथार्थ मनोवृत्तिको भलीभाँति समझनेके लिए संक्षेपमें यहाँ केपटाउन-समझौतेकी शर्त्तोंके स्वाभाविक एवं अनिष्ट परिणामकी चर्चा करना असंगत न होगा।

(१) यूनियन-सरकारका मुख्य उद्देश्य था दक्षिण-अफ्रीकाको गोरोंके लिए सुरक्षित करनेके उद्देश्यसे किसी-न-किसी बहाने अधिकाधिक भारतीयोंको वहाँसे बाहर खदेड़ना। इस नीतिको पूरा करनेके लिए सरकारने 'स्वेच्छापूर्ण वापसी' तथा ऐसे लोगोंको '२० पौंड नक़द सरकारी भत्ता' दिए जानेके लुभावने आश्वासनोंके जालमें फँसकर स्वीकार कर लिया। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि लौटनेवाले भारतीयोंको 'बोनस' अवश्य मिला; पर इस लोभमें जो न आए, उन्हें जिस तरह भूखों मरनेके लिए मजबूर कर ज़बरदस्ती स्वदेश भेजा गया, उसे 'स्वेच्छापूर्ण वापसी' कौन कह सकता है? (२) यूनियन-सरकार चाहती थी कि भारतीयोंको गोरोंकी बस्तियोंमें—जिन्हें भारतीयोंने अपने अनथक श्रमसे रहने लायक स्वास्थ्यप्रद स्थान बनाया था—नहीं बसने दिया जाय। डा० मालान उन्हें गोरोंसे दूर ३० वर्गमीलके एक क्षेत्रमें बसाना चाहते थे। भारत-सरकारने 'हाउसिंग-स्कीम'के कर्ण-कटु शब्दोंके पीछे छिपी इस भेद-भावपूर्ण नीतिको आँख मीचकर स्वीकार कर लिया और प्रवासी भारतीयोंसे अनुरोध किया कि वे म्युनिस्पल-हल्कोंमें ज़मीनें न खरीदें। (३) भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकासे निकालनेके लिए गोरे यूनियन-सरकारपर इस बातके लिए बराबर ज़ोर डालते आ रहे थे और हैं कि अन्य ज़ोर-ज़बरदस्तियोंके अलावा उनपर आर्थिक दबाव भी डाला जाय। भारत-सरकारने एक ओर भारतीयोंके लिए पाश्चात्य रहन-सहन और दूसरी ओर अर्थनीतिक क्षेत्रोंसे उनका बहिष्कार करनेको बनाए गए भेद-भावपूर्ण व्यापारिक तथा विषम उजरत-सम्बन्धी क़ानूनों और गोरी मज़दूर-नीतिको स्वीकारकर इसे अधिक सम्भव एवं सत्य कर दिया। (४) 'क्लास-एरियाज़-बिल'का पास होना तो अवश्य स्थगित कर दिया गया; पर 'इमिग्रेशन-एक्ट'के अनुसार भारतीयोंको जो 'विदेशी' एवं 'अवांछनीय प्रवासी' समझा जाता था और उससे उनकी सामाजिक, राजनीतिक एवं अर्थनीतिक स्थितिपर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था, वह पूर्ववत् रहा।[1] यही नहीं, इस सम्बन्धमें प्रवासियोंको बाहर भेजने तथा उनके विरुद्ध कार्यवाही कर सकनेके लिए प्रान्तीय सरकारों, म्युनिस्पल-कौंसिलों और स्वास्थ्य-बोर्डोंको जो निरंकुश एवं अबाध अधिकार दिए गए हैं, उनमें कोई भी सुधार-संशोधन नहीं किया गया। (५) यह शर्त्त कि भारत लौटनेवाले प्रवासी ३ वर्ष तक दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी ही समझे जायँगे (और इस अर्सेके दौरानमें वे दक्षिण-अफ्रीका लौट भी सकेंगे), भारतीयोंके विरोधको ठण्डा करने तथा 'आर्थिक दबाव'के कारण 'स्वेच्छापूर्वक' स्वदेश लौटनेवालोंके आँसू पोंछनेके लिए बेमानी आश्वासन-मात्र थी। (६) इसी प्रकार मैग्ना-कार्टाके सिद्धान्तानुसार भारतीयोंको समान अवसर एवं स्वतन्त्रता दिए जानेका आश्वासन भी एकदम थोथा ही था।[2] (७) भारतीयोंको व्यापार-व्यवसायके लाइसेंस देनेके कठोर और

१. 'साउथ-अफ्रीकन नेशनेलिटी-एक्ट'में दक्षिण-अफ्रीकन नागरिककी परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"दक्षिण-अफ्रीकन यूनियनके किसी भी स्थानमें पैदा हुआ व्यक्ति, जो 'विदेशी' न हो या प्रवास-सम्बन्धी किसी भी क़ानूनके अनुसार 'निषिद्ध प्रवासी' न हो।"

२. मेरित्सबर्गके पार्लमेंट-सदस्य श्री स्ट्राचनने जब एक बार सरकारको इस आश्वासनका स्मरण दिलाते हुए कहा कि जो भारतीय पाश्चात्य रहन-सहनको अपना चुके हैं, उनपर से बिना आज्ञा-पत्रके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें न जा सकनेकी पाबन्दी हटा लेनी चाहिए, तो डा० मालानने उत्तर दिया था—"भारतीय अपने विविध प्रान्तोंमें ही अलग रखे जायँगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यायपूर्ण क़ानूनमें संशोधन करनेका वादा करके भी कुछ नहीं किया गया।[3]

इस प्रकार कुल मिलाकर केपटाउन-समझौता एक थोथी आशा और ठोस धोखा ही साबित हुआ। इसकी पहली वर्ष-गाँठपर, जब कि शायद इसके शबकी दुर्गन्ध आनी भी बन्द हो गई थी, ऐण्ड्रूज़ने कहा था—"व्यक्तिगत रूपसे मुझे कोई आशंका नहीं कि २० वर्षोंमें अगर इस दिशामें स्थिर उन्नति जारी रही, तो न सिर्फ़ वर्ण-भेदका ही अन्त हो जायगा, बल्कि (भारतीयोंको) मताधिकार भी मिल जायगा।"[4] काश, उनकी यह पवित्र सदाशा पूरी हुई होती!

इसके विपरीत इस समझौतेपर हस्ताक्षर करनेवाले गोरोंने किस प्रकार इसके अर्थ और भावनाको भुलाकर, भारतीयों और संसारकी दृष्टिमें अपने वादों और शब्दोंके मूल्यको गिराकर, भारतीय-विरोधी भावनाको अपने शासन, आचार, अर्थ एवं राजनीतिका स्थायी आधार बनाया और एकके बाद एक करके कैसे काले क़ानून पास किए, इसका विवरण गोरोंके इतिहासका शायद सबसे काला और कलंकपूर्ण अध्याय है। यहाँ हम ऐसे ही कुछ काले क़ानूनोंकी संक्षेपमें चर्चा करेंगे।

भारतीय-विरोधी क़ानूनोंका ताँता

वस्तुतः केपटाउन-समझौतेसे भारतीयोंको कुछ भी सुविधा नहीं मिली; पर गोरोंने इसे भारतीयोंके लिए मनचाही मुराद समझकर बड़े नाक-भौं सिकोड़े। नाटाल और ट्रांसवालके गोरोंने तो इसके लिए डा० मालानको खूब खरी-खोटी सुनाई। इस प्रकार इसके परिणाम-स्वरूप भारतीय-विरोधी भावना कहीं अधिक उग्र रूपमें फूट पड़ी। भारतीयोंकी हीनता एवं रहन-सहनकी निम्नतापर बड़े-बड़े प्रवचन होने लगे। गोरे पत्रोंके लेखों और प्रोपेगेण्डाका तूफ़ान-सा आ गया। भारतीयोंको बाहर निकालने और गोरी बस्तियों तथा व्यापार-व्यवसायसे उन्हें दूर रखनेके लिए और ज़ोरोंसे आन्दोलन होने लगा।

केपटाउन-समझौतेके कुछ ही समय बाद, उसकी भावनापर पानी फेरकर 'इमिग्रेशन एण्ड इण्डियन रिलीफ़ (फरदर प्रोवीज़न) बिल' पास हुआ, जिसमें भारतीयोंके प्रवास तथा वापस स्वदेश लौटनेके सम्बन्धमें पहले-जैसी ही अनुचित और अपमानजनक शर्तें रखी गईं। इस सम्बन्धमें अन्तिम और सर्वोच्च अधिकार एक गोरे इमिग्रेशन-अफ़सरको सौंप दिए गए। व्यापारी लाइसेंसके क़ानून भी अधिक कठोर बना दिए गए। और इस पर भी तुर्रा यह कि किसी भी गोरेकी मामूली-सी शिकायतपर भारतीयोंको मिले लाइसेंस रद्द किए जा सकते थे। इंडस्ट्रियल कंसीलिएशन एक्ट, कलर-बार एक्ट, मिनिमम वेजेज़ एक्ट आदि द्वारा भारतीयोंको गोरोंकी प्रतियोगिता करनेसे रोकनेके लिए भेद-भावकी एक ज़बर्दस्त क़ानूनी दीवार खड़ी कर दी गई।

व्यापार करना और ज़मीन आदि खरीदना तो दूर रहा, भारतीयोंके लिए शान्ति और इज्ज़तसे मज़दूरी करना तक मुश्किल कर दिया गया। गोरोंने क़ानून बनाया कि भारतीय मज़दूर अपनी ट्रेड-यूनियन नहीं बना सकते, और गोरोंकी यूनियनोंका सदस्य होनेका तो उन्हें अधिकार नहीं था। पर गोरी यूनियनोंके समझौतों और निर्णयोंको माननेके लिए वे क़ानूनन बाध्य हैं। गोरोंसे अधिक परिश्रम करनेपर भी कम उजरत पाना उनके लिए क़ानूनन जायज़ बना दिया गया। इसपर भी कई कल-कारखानोंके द्वार उनके लिए आज भी बन्द हैं। 'कलर-बार एक्ट' द्वारा यन्त्र-शक्तिसे चलनेवाले कारखानोंके द्वार भारतीयोंके लिए सुदीर्घ कालसे बन्द कर दिए गए हैं। 'लिक्कर एक्ट' द्वारा उन्हें शराब खींचनेके कारखानों तथा होटलोंकी नौकरियों—रसोइया, बेहरा आदि—से भी वंचित कर दिया गया है। 'एप्रेंटिसशिप एक्ट' द्वारा भारतीयोंके लिए मिस्त्री या कारीगरका काम सीखना भी एकदम असम्भव कर दिया गया है।

सबसे गम्भीर और अधिक क़ानून बनाए गए भारतीयोंको ऊखके खेतों और खाँड-व्यवसायसे बाहर रखनेके लिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय कुलियोंके मोज़ाम्बिकके सस्ते देशी मज़दूरोंसे प्रतियोगिता करनेके लिए लाया गया था। बादमें जब इनके प्रश्नको लेकर द्वेषका ज्वालामुखी फट पड़ा, तो स्वभावतः गोरोंने इनके स्थानपर गोरे मज़दूर रखनेकी चेष्टा की। परन्तु इसमें

---

३. सन् १९१४ में, जब गांधीजी प्रवासी भारतीयोंपर होनेवाले अमानुषिक अत्याचारोंके विरुद्ध जेहाद बोल रहे थे, ब्रिटेनके पत्रोंमें भारतीयों तथा दक्षिण-अफ्रीकाकी गोरी सरकारके पक्ष-विपक्षमें कई लेख और पत्र छपे थे। इसी समय लन्दनके सुप्रसिद्ध 'टाइम्स'में छपे लार्ड एम्टहिलके एक पत्रकी निम्न पंक्तियाँ इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे दृष्टव्य हैं :—

"It cannot be too much insisted that the Indians in South Africa are not making any unreasonable demand or asking for anything which cannot quite conveniently be conceded to them. The proof of this is they are asking for the fulfilment of promises which have actually been made to them. If these promises had been kept and if the Indian community had been treated with ordinary honesty and good-faith, there would not be a trace of this long-standing trouble at the present moment either in South Africa or in India."

४. देखिए—'माडर्न रिव्यू', अप्रैल १९२८, पृष्ठ ४६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष सफलता नहीं मिली, क्योंकि न तो गोरे भारतीयों-जितने सस्ते ही थे और न उतना परिश्रम ही कर सकते थे। अतएव उन्होंने मिस्त्री, किरानी तथा अन्य उच्चपदोंपर गोरोंको रखा और मज़दूरोंकी जगह मजबूरन उन्हें भारतीयोंको ही रखना पड़ा। पर जहाँ तक सम्भव हो, उनकी रीति-नीति होनेकी रही। खाँड-व्यवसायको गोरोंके एका-धिकारमें रखने तथा भारतीय प्रतियोगितासे बचानेके लिए हर्टज़ोग-मन्त्रिमण्डलके समयसे ही अनेक भेद-भावपूर्ण क़ानून बन गए हैं। गोरे व्यवसायियोंको विशेष सुविधाएँ तथा अधिकार दिए गए हैं। खाँड-समझौतेके अधीन गोरे मिल-मालिकोंको पूर्ण अधिकार है कि वे भारतीयोंके खेतोंमें उगी ईखको पेरनेसे इन्कार कर दें (और भारतीयोंको गन्ना पेरनेके लिए मिल खोलनेका अधिकार ही नहीं है)।

इन भारतीय-विरोधी क़ानूनों और गोरा-पक्षीय ज़हरीले प्रचार-प्रसारके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों, म्युनिस्पल कौंसिलों, मिलों, कारखानों और दफ़्तरोंके मालिकोंके पास केन्द्रीय सरकार और गोरी संस्थाओंकी ओरसे यथासम्भव प्रत्येक स्थान गोरेको देनेके लिए आज भी आदेश-अनुरोध के प्रस्ताव पहुँचते रहते हैं।

भारतीयोंकी रहन-सहन और शिक्षा

दरअसल भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकासे निकाल बाहर करनेका साम्राज्यवादी हेतु तो है गोरोंका एकांगी स्वार्थ ; पर ऊपरसे ये ठेकेदार उसपर पर्दा डालना चाहते हैं यह कहकर कि भारतीय अशिक्षित, गन्दे और नीची रहन-सहनवाले हैं ; अतः गोरोंको उनकी हवा और छाया तकसे बचना चाहिए। अब हम जो-कुछ बता आए हैं, उससे यह स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष गोरोंने जिस अनीति, अन्याय और ज़बरदस्तीसे नवागत भारतीयोंका आर्थिक, राजनीतिक एवं नागरिक क्षेत्रोंसे बहिष्कार कर रखा है, उसके फल-स्वरूप यदि उनकी रहन-सहन और शिक्षाका मानदण्ड गोरोंकी अपेक्षा कुछ नीचा हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? अगर किसी हद तक ऐसा है, तो उसके दोष गोरों और उनकी ग़ैरज़िम्मेदार सरकारकी काली नीतिके ही हैं, भारतीयोंका नहीं।

किन्तु वास्तवमें स्वार्थान्ध गोरोंने इस बातको तिलका ताड़ बनाया है। जब पहले-पहल भारतीय वहाँ गए, तो निश्चय ही वे अशिक्षित, अल्प-शिक्षित अथवा कुछ नीची रहन-सहनवाले रहे होंगे, क्योंकि कुलियोंके कामके लिए अशिक्षित ही तो वहाँ ले जाए गए थे। किन्तु इन ८३ वर्षोंमें वे या उनके उत्तराधिकारी उस समयके-से 'कुली' ही नहीं रह गए हैं। गोरोंकी सारी ज़ुल्म-ज़्यादतियों, अनीति-अपमानों तथा वैर-विरोधोंको सहकर भी वे आज 'मनुष्य'—और शायद ९९ प्रतिशत गोरोंसे श्रेष्ठ मनुष्य—बन गए हैं। आज वे न केवल सभ्यता, शिक्षा और अच्छी रहन-सहन ही, बल्कि स्वाभिमान एवं मानापमानका अर्थ भी समझने लगे हैं। अपनी व्यापारकुशलता, परिश्रमशीलता एवं ईमानदारी भी वे दुनियाको दिखा चुके हैं। शायद इसीलिए २-२॥ लाख भारतीयोंसे आज वहाँके ७४ लाख गोरे बुरी तरह त्रस्त हो उठे हैं और उन्हें अपना गहरा प्रतियोगी समझने लगे हैं।

फिर भारतीयोंकी ओरसे अपनी रहन-सहन, स्वास्थ्य और शिक्षा आदिकी उन्नतिके लिए किए गए प्रयत्नोंपर पानी फेरनेमें भी गोरोंने कुछ कसर नहीं उठा रखी है। केपटाउन-समझौतेकी इस सम्बन्धकी शर्तोंका लाभ उठाकर डरबनके म्युनिस्पल-कार्पोरेशनने नगरसे ४ मीलकी दूरीपर २०० एकड़ भूमिमें भारतीयोंकी बस्ती बसानेका जो लोग-दिखाऊ अधूरा प्रयत्न किया, उसे देखकर उसकी उपेक्षा, लापरवाही और कर्त्तव्य-विमुखता स्पष्ट हो जाती है। स्वास्थ्य-बोर्डोंको भारी-भारी कर देनेके बावजूद भारतीय हल्कोंके गली-रास्तों, सड़कों, घरों, दुकानों, बाज़ारों आदिकी सफ़ाईका कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं है। १९२८ में इस सम्बन्धमें जब एक भारतीय डेपूटेशन नाटालके (गोरे) एडमिनिस्ट्रेटरसे मिला, तो उसने बड़ी उद्दण्डतापूर्वक कहा—"अपने कर ठीक समयपर दे दिया करो। उनका उपयोग किस तरह होता है, यह जाननेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।" एक नाटाल ही क्यों, समूचे यूनियनमें म्युनिस्पल-कौंसिलों और स्वास्थ्य-बोर्डोंका भारतीयोंके प्रति ऐसा ही उद्धत एवं अनीतिपूर्ण रुख रहा है। यही कारण है कि भारतीय बस्तियोंकी हालत बड़ी ही शोचनीय है। जिसे पृथ्वीपर साक्षात् नरकके दर्शन करने हों, वह एक बार ट्रांसवालके भारतीय लोकेशनको देख आय।[५]

५. १९३६ में डरबनकी पुरानी अस्वस्थ गन्दी बस्तियोंको साफ़ करनेकी योजनाके कारण बहुतसे भारतीय बेघर हो गए थे। इस सम्बन्धमें १६ सितम्बर, १९३६ को सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभागके मन्त्री द्वारा टाउन-क्लर्कके नाम लिखा गया पत्र भारतीयोंकी दयनीय स्थितिपर खासा प्रकाश डालता है। उस पत्रमें कहा गया है कि ऐसी बस्तियोंकी सफ़ाई और उनसे बेघर किए गए लोगोंकी आवास-व्यवस्था साथ-साथ होनी चाहिएँ। जब तक कौंसिल इस प्रकार निराश्रित होनेवालोंके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमीकी रहन-सहनपर शिक्षाका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। इस सुविधासे भी भारतीयोंको दूर ही रखा गया है। गोरोंके स्कूल-कालेजोंके द्वार तो उनके लिए बन्द थे ही, उनके लिए कोई पृथक स्कूल-कालेज भी नहीं खोले गए। प्रवासियोंने जब अपने पैसोंसे अपने बच्चोंकी शिक्षाके लिए व्यवस्था करनी चाही, तब भी गोरोंने कम अड़ंगेबाज़ी नहीं की। केपटाउन-समझौतेके बाद—जिससे गोरोंमें भारतीयोंके प्रति अगाध सद्भावना उत्पन्न होनेके ढोल पीटे गए थे—जब भारतीयोंकी ओरसे यह प्रार्थना की गई कि उनके छात्रोंको उच्च-शिक्षाके लिए सरकारी कालेजोंमें, जो सिर्फ़ गोरोंके लिए ही सुरक्षित थे, पढ़नेकी सुविधा मिलनी चाहिए; तो इसे सहज ही ठुकरा दिया गया। यही नहीं, भारतीयोंसे कहा गया कि वे अपने छात्रोंको फोर्ट हेयरके साउथ-अफ्रीकन नेटिव-कालेजमें भेज सकते हैं। प्रवासियोंने इसे राष्ट्रीय मर्यादाके प्रतिकूल समझ अस्वीकार कर दिया।[६] जब भारतीयोंने नाटाल-सरकारके सामने उच्च शिक्षाके लिए अपने कालेज खोलने तथा केपटाउन-समझौतेकी धारा १ (ए) के अनुसार प्राथमिक शिक्षाके लिए व्यावहारिक क़दम उठानेका विचार प्रकट किया, तो शिक्षा-मन्त्री डा० मालानने कहा कि सुशिक्षित अध्यापकोंके अभावमें इस सम्बन्धमें कुछ नहीं किया जा सकता। इसका सीधा-सादा अर्थ यही था कि गोरे सुशिक्षित अध्यापक तो कालोंको पढ़ा नहीं सकते, और हिन्दुस्तानसे काले सुशिक्षित अध्यापक बुलाकर यूनियन-सरकार गोरोंका सिर-दर्द क्यों और बढ़ाने लगी?

नया काला क़ानून क्यों बना?

अब हम गत मास यूनियन-पार्लमेंट द्वारा पास किए गए 'ट्रेडिंग एण्ड ऑकूपेशन आफ़ लैण्ड (ट्रांसवाल एण्ड नाटाल) रेस्ट्रिक्शन बिल'पर आते हैं। गोरों एवं सरकार द्वारा इसे पास करनेके दो मुख्य कारण बतलाए गए हैं। पहला तो यह कि गोरोंकी बस्तियोंमें भारतीय तेज़ीसे 'घुस' (penetrate) रहे हैं और दूसरा यह कि वे बड़ी तेज़ीसे और पर्याप्त अनुपातमें स्थिर सम्पत्ति प्राप्त कर रहे हैं। भारतीयोंकी इन्हीं प्रवृत्तियोंको रोकनेके लिए इस क़ानूनको 'पगिंग' (Pegging का अर्थ है खूँटी गाड़कर किसी चीज़को रोपना या रोक-थाम करना) संज्ञा भी दी गई है। पर गत मास नाटाल-इण्डियन कांग्रेस द्वारा यूनियन-असेम्बली और सेनेटके सदस्योंके नाम प्रकाशित किए गए खुले पत्र और आन्तरिक मन्त्रीको भेजे गए वक्तव्यमें दिए गए तथ्य और आँकड़े उपरियुक्त कारणों एवं आधारोंको एकदम मिथ्या और निराधार सिद्ध करते हैं।

दक्षिण-अफ्रीकन यूनियनमें कुल २॥ लाखके लगभग भारतीय हैं, जिनमें से २२०,००० केवल नाटालमें हैं। कुल भारतीय वहाँ ४ और ५ पीढ़ियोंसे हैं। पहले अधिकांश भारतीय कुली होनेके कारण नीची रहन-सहनके थे। फिर जब वे छोटे-मोटे व्यापारी बन गए, तो उन्होंने दुकानें खोल लीं और उन्हींके पिछले भागोंमें रहने भी लगे। पर केपटाउन-समझौतेमें—जब कि उनमें से अधिकांश काफ़ी सुसंस्कृत और पैसेवाले व्यापारी हो चले थे—स्वीकृत रहन-सहनके पाश्चात्य ढंगको अपनानेके कारण बड़े-बड़े संयुक्त परिवारोंमें तथा दफ़्तर-दुकानोंके पिछले भागोंमें रहनेकी पद्धति टूटी और खुले तथा स्वास्थ्यप्रद स्थानोंमें मकानोंकी माँग बढ़ी। (डरबनमें कुल एक लाख भारतीय रहते हैं, जिनमें से २५,००० पुरानी बस्ती—ओल्ड बौरो—में हैं। ८,२७४ एकड़की इस बस्तीमें से केवल २·७ एकड़में ७ हल्कोंमें बँटी भारतीय बस्ती है।) पर डरबन-सिटी कौंसिलने—जिसके सब सदस्य गोरे हैं और जिसका मताधिकार तक भारतीयोंको प्राप्त नहीं है (भारतीयोंका यह अधिकार १९२४ में छीन लिया गया!)—इस आवश्यक और स्वाभाविक प्रसारके लिए पुरानी बस्तीकी एक चप्पा ज़मीन भी भारतीयोंको नहीं दी!

सन् १९२० में भारतीय बस्तीके प्रसारकी समस्या हल करनेके लिए 'हाउसिंग-एक्ट' पास किया गया। तत्कालीन आन्तरिक मन्त्री डा० मालानने भारतीयोंके लिए नए [illegible] मकान बनानेको ५०,००० पौंड (लगभग ७ लाख रुपए) [illegible] किए। ८ वर्ष तक इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं हुआ। [illegible] टाउन-समझौतेके बाद फिर इस बासी कढ़ीमें एक हल्का-सा [illegible] आया और १९२८ में सर एडवर्ड थार्नटनकी अध्यक्षतामें [illegible] जाँच-कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशनने ईस्टर्न [illegible] (Eastern Vlei) में भारतीयोंके लिए मकान बनाए [illegible]

नए मकानोंकी कोई योजना पेश नहीं करती, इन निराश्रित लोगोंके लिए—जिन्हें कोई आश्रय-स्थान प्राप्त नहीं है—स्वास्थ्य-विभाग ज़िम्मेदार नहीं होगा!

६. भारत-सरकारके दक्षिण-अफ्रीका-स्थित प्रथम एजेण्ट-जनरल माननीय श्रीनिवास शास्त्रीने भी भारतीयोंसे ज़ोरोंसे अनुरोध किया था कि वे इस 'अवसर' एवं 'सुविधा'से लाभ उठायँ! पर उनका यह उपदेश प्रवासी भारतीयोंपर कोई असर नहीं डाल सका। इसके लिए वे अप्रिय ज़रूर हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिफ़ारिश की, जिसे डरबन-कार्पोरेशनने ठुकरा दिया। बादमें ईस्टर्न-ब्लीको 'यूरोपियन गोल्फ़-कोर्स' (गोरोंके लिए गोल्फ़ खेलनेका मैदान) बना दिया गया। इस वक्त तक 'हाउसिंग-एक्ट' के मातहत ९०,००० भारतीयोंके लिए २६,७०८ पौंड लागतके ५० किफ़ायती और ११७,००० पौंड लागतके २२५ निरुफ़-किफ़ायती मकान बनवाए गए (जब कि १०२,००० गोरोंके लिए ६५९,८८२ पौंड लागतके ७०५ मकान बनवाए गए)। १९३९ में नियुक्त पहले ब्रूम-कमीशनने इस दिशामें सरकार द्वारा की गई अक्षम्य उपेक्षाकी शिकायत एवं आलोचना की है। इसकी रिपोर्टके प्रकाशनके बाद मकान बनवानेके लिए केवल एक भारतीयको ५०० पौंड कर्ज़ दिया गया तथा ३६,०८८ पौंड लागतके ५० निरुफ़-किफ़ायती मकान और बनवाए गए।

सरकारकी इस उपेक्षा; १९२२ के १४वें आर्डिनेन्स (जिसमें विक्रेताको अपनी ज़मीन बेचते समय यह विचित्र शर्त्त लगानेका अधिकार (?) दिया गया है कि उसपर किस क़िस्मकी इमारत बने तथा वहाँ किस जातिके लोग रहें अथवा नहीं रहें); ग्लेनवुड, स्टैलावुड तथा मूरिंगसाइड आदिमें एशिया-वासियोंके न रह सकनेके नियमों (?); गोरों द्वारा अथवा उनकी हाउसिंग-स्कीमके अन्तर्गत बनवाए जानेवाले मकानोंकी एशियाई-विरोधी शर्त्तों; बिल्डिंग-सोसाइटियों द्वारा गोरी बस्तियोंमें मकान बनवाने या खरीदनेके लिए भारतीयोंको कर्ज़ न देनेकी पाबन्दी; किराए-सम्बन्धी असुविधाओं और नदी, समुद्र-तट अथवा अन्य सुहावने स्थानोंमें ज़मीन खरीदने या मकान बनवानेकी भारतीयोंके विरुद्ध पाबन्दी होनेके बावजूद उन्होंने अपनी रहन-सहनका स्टैण्डर्ड ऊँचा करनेके लिए अच्छे घरोंमें रहनेका जो थोड़ा-बहुत प्रयास किया, उसे भी गोरोंका वर्ण-औद्धत्य सहन नहीं कर सका। उन्होंने शोर मचाना शुरू किया कि भारतीय गोरी बस्तियोंमें घुस रहे हैं; उनमें अधिकाधिक अचल सम्पत्ति और व्यापार-केन्द्र प्राप्त कर रहे हैं। इन आरोपोंकी रोशनीमें गोरी बस्तियोंमें भारतीयोंके 'प्रवेश' (infiltration)की जाँचके लिए जस्टिस ब्रूमकी अध्यक्षतामें १९३९ में एक कमीशन नियुक्त किया गया। पहले कमीशनकी रिपोर्टसे—जिसमें गोरोंके भय और आशंकाओंको निराधार बताया गया है—गोरोंको सन्तोष नहीं हुआ, अतः गत वर्ष उन्हींकी अध्यक्षतामें एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया गया। दोनों ब्रूम-कमीशनोंके निम्न निष्कर्ष द्रष्टव्य हैं :—

(१) डरबन-सिटी-कौंसिल द्वारा गोरी बस्तियोंमें १९२७ से १९४२ तक भारतीयोंके 'प्रवेश'को बतलाते हुए जो नक्शा पेश किया गया, वह ग़लत था।

(२) कौंसिलने स्वीकार किया कि १९२७ से भारतीयोंने डरबनके जिन व्यापारिक स्थानोंपर अधिकार किया है, उनकी संख्या नगण्य है। (पैरा ३१३)

(३) गोरोंका यह आरोप कि नाटालमें भारतीय व्यापारी गोरे व्यापारियोंको खत्म कर रहे हैं, निराधार है। गोरे व्यापारियोंकी कमी होनेका कारण भारतीयोंकी प्रतियोगिता बताना सर्वथा अत्युक्तिपूर्ण है। (पैरा २९१)

(४) समूचे प्रान्तकी व्यापारिक स्थितिके अध्ययनसे मालूम होता है कि १९२७ के बादसे गोरे व्यापारियोंकी स्थितिपर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ा है।

(५) डरबनको छोड़कर नाटालमें १९२७ में ३२८ आवास या व्यापारके स्थानोंके मुक़ाबलेमें भारतीयोंके १०३ (१९३६ में यह संख्या १७५ हो गई) स्थान नगण्य ही कहे जायँगे। १९२७ के पहले गोरी बस्तियोंमें भारतीयोंके बसनेके मामलोंके मुक़ाबलेमें इसके बादके २३—और कृषिके मिलाकर २९—मामले कुछ भी नहीं हैं। (परा २९०)

(६) डरबनकी पुरानी बस्तीमें भारतीयोंके प्रवेशकी स्थिति भी विशेष गम्भीर अथवा जटिल नहीं है। १ जनवरी, १९२७ से ३० सितम्बर, १९४० तक गोरोंके ३६२ सब-डिविज़नोंके मुक़ाबलेमें भारतीयोंके केवल १५० सब-डिविज़न बने, जिनमें से गोरी-बस्तियोंमें केवल ४१ थे। १ अक्तूबर, १९४० से २८ फरवरी, १९४३ तक भारतीयोंके केवल ३२६ सब-डिविज़न बने। (दूसरे कमीशनकी रिपोर्ट)

(७) पहले कमीशनने 'मिल्कियत' (Ownership) और 'दखल' (Occupation) में भेद किया है (पैरा २९७); पर दूसरेने न-जाने क्यों, इसे नज़र-अन्दाज़ कर दिया है। उदाहरणार्थ, उपरि-लिखित ३२६ सब-डिविज़नोंकी मिल्कियत प्राप्त करके भी भारतीय रहते केवल ५४ में ही हैं। इसी प्रकार दूसरे २२० सब-डिविज़नोंकी मिल्कियतके बावजूद भारतीय रहते केवल ३७ घरोंमें ही हैं।

(८) 'ब्लाक ए-एल'में भारतीयोंने जो ७७ सब-डिविज़न प्राप्त किए, वे बिल्डिंग-सोसाइटियोंकी नीतिके कारण ही हुए।

(९) कमीशनने अपनी तालिका 'सी'में गत १६ वर्षोंमें भारतीयों द्वारा प्राप्त १,०१६,४३० पौंडकी लागतके ८३८ स्थानोंको भारतीयों एवं गोरोंकी तुलनात्मक आबादी, उनके मूल्य और आनुपातिक बस्तियोंके आँकड़ोंके आधारपर नगण्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाया है। यह तालिका इस प्रकार है :—

आबादी—	१९२७ में	१९४० में	१९४२ में
गोरे	५४,१३०	७०,७१०	८१,४२०
भारतीय	१६,९७७	२४,३५१	२५,४५९
भारतीयोंका प्रतिशत	२३·८	२५·५	२३·८
सम्पत्तिका मूल्य—			
गोरोंकी	२०,८१०,२१० पौं.	३५,२०२,३५० पौं.	३६,४१८,४८०
भारतीयोंकी	१,४४१,२३०	३,४८८,२३०	४,१३६,९३०
भारतीयोंका प्रतिशत	६·४	९·०	१०·२
बस्तियोंकी संख्या—			
गोरोंकी	१०,७८५	१२,७८२	(इस वर्षके
भारतीयोंकी	१,०३४	१,७८३	आँकड़े प्राप्त
भारतीयोंका प्रतिशत	८·७	१२·२	नहीं हो सके।)
कुल सम्पत्ति—			प्रतिशत औसत
गोरोंकी	१५,६०८,२७० पौं०		८५·३
भारतीयोंकी	२,६९५,७२० ,,		१४·७

(१०) डरबनकी पुरानी बस्तीका रक़बा ८,२७४ एकड़ है। कौंसिल और कमीशनके कथनानुसार १९२७ तक भारतीय बस्ती २०४ एकड़में थी।[७] इसके बादकी ८३८ बस्तियोंका रक़बा कमीशनने १५० एकड़ कूता है। इस प्रकार कुल भारतीय बस्तीका रक़बा ३५९ एकड़ हुआ, जो पुरानी बस्तीके रक़बेका केवल ४ प्रतिशत होता है।

(११) इसमें कोई सन्देह नहीं कि अक्तूबर, १९४० से फरवरी, १९४३ के बीच भारतीयों द्वारा अचल सम्पत्तिकी खरीद तेज़ीसे हुई है। पर अकेले भारतीयोंने ही ऐसा किया हो, यह बात नहीं है। युद्धके कारण हुए मुद्रा-प्रसार, अधिक मुनाफ़ों आदिको अचल सम्पत्तिमें लगाना दक्षिण-अफ्रीकाकी युद्ध-कालीन अर्थनीतिका प्रमुख अंग हो रहा है। कमीशनने अचल सम्पत्ति खरीदनेके अन्य कारण भी दिए हैं और कहा है कि ऐसा करनेवाले केवल भारतीय ही नहीं हैं।

पर दोनों ब्रूम-कमीशनोंकी बातोंकी बिना कुछ परवाह किए यूनियन-सरकारने आखिर नया काला क़ानून पासकर भारतीयोंको ज़मीन एवं अचल सम्पत्ति खरीदने, दखल करने अथवा प्राप्त करने और व्यापार-व्यवसाय करनेकी रही-सही गुंजाइश (सुविधा और अधिकार नामकी कोई चीज़ तो उनके पास रह ही नहीं गई थी!) से भी वंचित कर दिया है। क्यों? इसीलिए कि दक्षिण-अफ्रीकामें गोरोंकी मर्ज़ी ही क़ानून है; गोरी सरकार और गोरा विरोधी-दल भारतीयोंको दक्षिण-अफ्रीकासे निकाल बाहर करनेके लिए एकमत हैं और ब्रिटिश सरकार एवं तथाकथित भारत-सरकार प्रवासी भारतीयोंकी सुरक्षा-संरक्षणकी ज़िम्मेदारीसे पल्ला झाड़ बैठी हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भारत न केवल ब्रिटेनका ही ग़ुलाम और दबैल है, बल्कि उसके सभी गोरे उपनिवेशोंका भी! जो लोग औपनिवेशिक स्वराज्य और भारतको ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलका सदस्य बनानेकी मूर्खता एवं अदूरदर्शितापूर्ण बकवास करते नहीं थकते, उन्हें भारतीयोंके इस अपमान, उनके साथ होनेवाली इस अद्वितीय ज़्यादती; और लोकतन्त्र, विश्व-स्वातन्त्र्य एवं सभ्यताके आधारभूत प्राथमिक आदर्शोंकी जान-बूझकर की जानेवाली इस जघन्य उपेक्षा एवं अवमाननासे सबक़ हासिल करना चाहिए।

जोहेन्सबर्गके डीन पादरी पामरने एक बार कहा था कि दक्षिण-अफ्रीकाका वर्ण-द्वेष हिटलरवाद (मतलब है नात्सिज़्म) से कम गर्हित नहीं है! आज हम अपनी आँखोंके सामने देख रहे हैं कि जिस हिटलरवादको यूरोपमें तोपों, टैंकों और बमोंसे दफ़नाया जा रहा है, दक्षिण-अफ्रीकामें उसीको वर्ण-भेद और क़ानूनकी संजीवनी देकर नवजीवन प्रदान किया जा रहा है! क्षुद्र स्वार्थके नामपर होनेवाले मानवता, सभ्यता, संस्कृति, न्याय-नीति एवं भलमनसाहतके इस तर्पणको देखकर दिमाग़ सुन्न पड़ जाता है और आँखें पथरा जाती हैं। हमें ख़याल होता है कि आया हमारे सामने जो यह लोकतन्त्र और विश्व-स्वातन्त्र्यके लुभावने नारोंसे रँगे समाचारपत्रों, पोस्टरों एवं पुस्तकोंका ढेर लगता जा रहा है और प्रतिदिन, प्रतिक्षण, हमारे कान जो मानव-मात्रकी स्वतन्त्रता, समानता एवं चौहरे अभावोंसे मुक्ति दिलानेकी डींगोंसे भरे भाषणोंसे बहरे हो रहे हैं, वह सब वास्तवमें कुछ है या हम जाग्रत-अवस्थामें सिर्फ़ कोई सुनहला स्वप्न ही देख रहे हैं? हमें गोरोंसे कोई द्वेष नहीं, बशर्ते कि वे हमारे साथ पड़ोसी, सहयोगी एवं समान-स्वतन्त्र नागरिकके रूपमें रहें; शासक और शोषक बनकर नहीं। आज पृथ्वीपर २। अरब लोग रहते हैं; पर गोरी सभ्यता और संस्कृतिका केन्द्र-बिन्दु है केवल ५० करोड़ गोरोंका स्वार्थ और परोपजीवी मनोवृत्ति। विश्वकी यथार्थ शान्ति, समृद्धि एवं स्वतन्त्रताके लिए इस मनोवृत्तिका मूलोच्छेद अनिवार्य है।

(समाप्त)

७. यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि फीदम-कमीशनने जोहेन्सबर्गके १०,००० भारतीयोंकी बस्तीके लिए २०२ एकड़ ज़मीन रखी थी। इस दृष्टिसे डरबन-कौंसिलका २५,००० भारतीयोंको २०४ एकड़ रक़बेमें ठूँसना कितना ज़्यादतीपूर्ण है, इसका पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पृथ्वीराजरासो'का एक महत्त्वपूर्ण प्रति

श्री अगरचन्द नाहटा

हिन्दी-साहित्यमें 'पृथ्वीराजरासो' अपनी विशालता एवं प्राचीनताके कारण बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। भारतीय विद्वानों एवं जनताको 'रासो' लगभग ३५० वर्षोंसे आकर्षित करता आ रहा है। इसकी सैकड़ों प्रतियाँ राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रान्तोंमें पाई जाती हैं। कर्नल जेम्स टाड[1], फार्बस[2], वूलनर आदि पाश्चात्य विद्वान भी इसपर मुग्ध थे। कलकत्तेकी रायल एशियाटिक सोसाइटीने आजसे ७० वर्ष पूर्व इसे प्रकाशित करना आरम्भ किया था और सन् १८७३-८६ में इसके कई खण्ड (१, ३, ४ और २६-३५) एवं २७-२८ वें छन्दोंका अंगरेज़ी-अनुवाद भी प्रकाशित किया था। पर सन् १८८६ में उदयपुरके कविराजा श्यामलदानजीने इसके बड़ी एवं १७ वीं शताब्दीका होनेके सम्बन्धमें एक निबन्ध एशियाटिक सोसाइटीके जर्नलमें प्रकाशित किया। जिसके फलस्वरूप सोसाइटीने इसका प्रकाशन-कार्य बन्द कर दिया। इसके पश्चात् उदयपुरके पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या और बाबू श्यामसुन्दरदासने इसके सम्पादनका कार्य-भार अपने हाथमें लेकर सन् १९१५ में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा इसे प्रकाशित करवाया। प्रकाशित संस्करण भाषा एवं ऐतिहासिक उभय दृष्टियोंसे प्राचीन एवं प्रामाणिक न होनेके कारण इसके रचना-कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें काफ़ी मतभेद चल रहा है। एक ओर सर्वश्री मोहलाल पांड्या, डा० श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, राजेन्द्रप्रसाद दीक्षित आदि महानुभाव इसकी प्राचीनताके पक्षमें हैं और दूसरी ओर कविराजा श्यामलदानजी, महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर ओझा, डा० रामकुमार वर्मा आदि विद्वानोंने इसे जाली और अर्वाचीन (लगभग सं० १६०० का) सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। अन्तिम निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है और आज भी यह विषय विवादग्रस्त ही बना हुआ है।

हमारे मतानुसार निर्णयका प्रशस्त मार्ग 'रासो' की समस्त हस्त-लिखित प्रतियोंकी शोध एवं बारीकीसे छान-बीन करना है, और अभी तक इस ओर किसी भी विद्वानका ध्यान आकर्षित न होनेके कारण ही यह प्रश्न सुलझ नहीं पाया है। अपने मन्तव्यानुसार इधर ३-४ वर्षोंसे हमने इस दिशामें प्रयास किया और आज तक 'रासो' की पूर्ण, विभिन्न खण्डोंकी अलग-अलग प्रतियों एवं त्रुटित (खण्डित) लगभग ८०-८५ प्रतियोंका पता लगाया है, जिनमें से कुछ प्रतियोंका परिचय बहुत-कुछ नवीन ज्ञातव्यके साथ हमने 'राजस्थानी' (वर्ष ३, अंक २) में प्रकाशित किया था। शोध करनेपर 'रासो'के विभिन्न संस्करणोंका पता चला है, जिससे उसके परिमाण एवं पाठमें बहुत-सी नवीन बातें प्रकाशमें आई हैं। नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करणमें 'रासो'के समयों (खण्डों) की संख्या ६९ और परिमाण लगभग ३५,००० श्लोकों (३२ अक्षरोंका एक श्लोक) का है। जब कि हमें उपलब्ध प्रतियोंसे किसीका केवल १,३०० श्लोक, किसीका ३,५००-४,००० श्लोक, अन्यका १०,००० से १२,००० और बड़ेसे बड़े संस्करणका परिमाण २५,०००-३०,००० तकका भी है। पाठकोंके सुभीतेके लिए इन संस्करणोंको हमने अपने लेखमें तीन विभागोंमें विभक्त किया था, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

(१) **संक्षिप्त संस्करण**[3]—इसमें समयोंकी संख्या १९ है। इसका परिमाण लगभग ३५००-४,००० श्लोक है। इस संस्करणके उद्धारकर्त्ता कछवाहा राजा सूरसिंहके पुत्र चन्द्रसिंह थें। उनका समय ज्ञात न हो सकनेके कारण इस संस्करणका उद्धार-काल निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। फिर भी इसकी प्रतियाँ सं० १६७० के लगभगकी लिखित उपलब्ध होनेसे इससे पूर्वका तो निश्चित ही है। अभी तक इस संस्करणकी केवल ५ प्रतियोंका ही पता चला है, जिनमें से ३ बीकानेर-स्टेट-लाइब्रेरीमें हैं, १ फतहपुरके जैन यति विष्णुदयालजीके संग्रहमें है, जो अभी हमारे पास है और एककी प्रतिलिपि फार्बस-गुजराती-सभा बम्बईमें है। इसकी मूल प्रतिका पता लगाया जा रहा है।

---

1. ये 'रासो'की प्रति भारतसे लन्दन ले गए, जो अभी वहाँकी रायल एशियाटिक सोसाइटीमें है। इन्होंने 'रासो'के बहुत-से छन्दोंका अंगरेज़ीमें अनुवाद भी किया था।

2. इन्होंने 'रासो'की प्रतिलिपि प्राप्त करनेके लिए बहुत परिश्रम व अर्थ व्यय किया। इनकी करवाई हुई प्रतिलिपियाँ बम्बईकी फार्बस-गुजराती-सभामें सुरक्षित हैं।

3. संक्षिप्त संस्करणकी प्रतियोंमें से बीकानेर-स्टेट-लाइब्रेरीकी एक प्रतिका परिचय श्री दशरथ शर्माने 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका'में भी प्रकाशित किया था। उन्होंने 'पृथ्वीराजरासो' की कथाओंके ऐतिहासिक आधारके सम्बन्धमें भी दो लेख 'राजस्थानी' (वर्ष ३, अंक ३) और 'इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली' में प्रकाशित कराए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) मध्यम संस्करण—यह लगभग ४५ खण्डोंका है। इसका परिमाण १० हज़ारसे १२ हज़ार श्लोकोंका है। इसकी भी अभी तक ५ प्रतियाँ ही प्राप्त हैं, जिनमें से एक हमारे संग्रहमें, एक लाहौर ओरिएन्टल कालेजमें, एक बीकानेर जैन बड़े ज्ञानभण्डारमें, एक बीकानेर-स्टेट-लाइब्रेरीमें और एककी प्रतिलिपि फार्बस-गुजराती-सभामें है। इस संस्करणकी एक त्रुटित प्रति भी हमारे संग्रहमें है।

(३) वृहत् संस्करण—इसमें ६८-६९ समय हैं। इसका परिमाण २५ हज़ारसे ३० हज़ार श्लोकोंका है। इस संस्करणका उद्धार उदयपुरके राणा अमरसिंहके समयमें हुआ था, यह कई प्रतियोंके अन्तिम उल्लेखोंमें पाया जाता है। उदयपुर और उसके आस-पास इस संस्करणकी १०-१२ प्रतियाँ हैं। एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, फार्बस-सभा, नागरी-प्रचारिणी सभा, लाहौर ओरिएन्टल कालेज, एशियाटिक सोसाइटी बम्बई आदिमें भी इस संस्करणकी प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त तीनों संस्करणोंमें से प्रत्येक संस्करणकी एकाधिक प्रतियाँ उपलब्ध हैं; पर भाषाकी दृष्टिसे हमें उनसे सन्तोष नहीं हुआ। हमारे खयालसे इन तीनों संस्करणोंमें न्यूनाधिक परिमाणमें उद्धार कर्त्ताओंकी ओरसे पाठ-प्रक्षेप अवश्य किया गया है। ऐतिहासिक भूल-भ्रान्तियोंका प्रधान कारण यही सम्भव है। हाल ही में उपर्युक्त तीनों संस्करणोंसे पृथक एक अन्य स्वतन्त्र अतिसंक्षिप्त संस्करणका पता चला है, जिसमें 'रासो' एक संलग्न-ग्रन्थ है—अर्थात् इस संस्करणमें 'रासो' खण्डोंमें विभक्त न होकर एक ही खण्ड-रूप है। भाषाकी दृष्टिसे भी अन्य उपलब्ध प्रतियोंसे इसका पाठ प्राचीनताको लिए हुए है। इसका परिमाण १३०० श्लोकोंका ही है। 'रासो'के मौखिक रूपसे सैकड़ों वर्षों तक प्रचलित होनेके कारण इसकी मूल भाषा सुरक्षित नहीं रहने पाई है। हमारे खयालसे यह प्रति मौखिक रूपसे कहे हुए पद्योंका संचय-मात्र है, इसलिए इसमें पाठ-प्रक्षेप बहुत कम या नहींके बराबर सम्भव है। जितना, जिस रूपमें, किसी कविको याद था, इस प्रतिमें लिख लिया गया था, इसलिए इसका पाठ बहुत अशुद्ध, खण्डित एवं कहीं-कहीं पीछेका आगे और आगेका पीछे पाया जाता है। फिर भी 'रासो' के मूल पद्योंका निर्णय करनेके लिए यह प्रति बहुत ही उपयोगी एवं महत्वकी है।

'रासो'की मूल भाषाके उदाहरण मुनि जिनविजयजीके प्रयत्नसे प्रकाशमें आ चुके हैं[४]। इससे 'रासो' एक प्राचीन ऐतिहासिक काव्य है और इसका कर्त्ता चन्दबरदाई पृथ्वीराज चौहानका समकालीन था, यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है। पर जब तक इसकी १४वीं, १५वीं और १६वीं शताब्दियोंकी लिखित प्रतियाँ उपलब्ध न हो जायँ, इसके पाठकी प्रामाणिकता एवं प्राचीनताके विषयमें अन्तिम निर्णयपर पहुँचना कठिन है।

अब उपर्युक्त अतिसंक्षिप्त संस्करणवाली प्रतिका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :—

आरम्भ— श्री सारदायै नमः

प्रथम मंगलमूलसुतं बीयसुत रएकु धर धम्म उथ्थो
त्रिप्त दुशामियत्रिपुर वर्ण पत्त मुषापत्तो शुथ्थो
कुसुम रंग भार हि सुफलउ कत्ति अलम्ब अमीर
रस दरसन पारस्सर भइ आस असम कविकीर ॥३॥

अन्त—

सार विसि करि पल कंषि जिमरण हु चन्द नरिन्द।
रासड रसाल नवरस निबन्धि, अचरिज इदु फणिन्द ॥४१७॥

इति श्री कविभट्ट चन्दबरदाई कृत राजा श्री प्रिथराज चहूआण रासउ रसाल सम्पूर्ण। ग्रन्थाग्र १३०० सिलोक छंद। श्रेयस्तु। लेखक वाचयो

॥श्रीरस्तु॥ श्री कल्याण॥ संवत् १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवर्त्तमाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्री कल्याणमल्लजी तत्पुत्र राजा श्री भाणजी तत्पुत्र राजा श्री भगवानदासजी पठनार्थं ॥श्रेय कल्याण श्री शुभं भवतु॥

यह प्रति धारणौज (गुजरात) गाँवके बारहठ पृथुबजाके पास है और इसकी प्रतिलिपि पारणके जैनमुनिवर्य पुण्यविजयजीकी कृपासे हमें प्राप्त हुई है।

४. 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' (प्र० सिन्धी जैन-ग्रन्थमाला)।

दुनियामें कितनी तरहके लोग हैं?

श्री भानुकुमार जैन

(१) सोचनेवाले, (२) कहनेवाले, (३) करनेवाले। फिर (४) सोचने-कहनेवाले, (५) सोचने, कहने और करनेवाले। फिर (६) कहने-करनेवाले, (७) सोचने-करनेवाले। फिर (८) अपनी सोचनेवाले, (९) अपनी और परायी सोचनेवाले। फिर (१०) परायी-मात्र सोचनेवाले। फिर (११) परायी ही अपनी सोचनेवाले। और फिर (१२) अकर्मण्य (मूर्ख)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

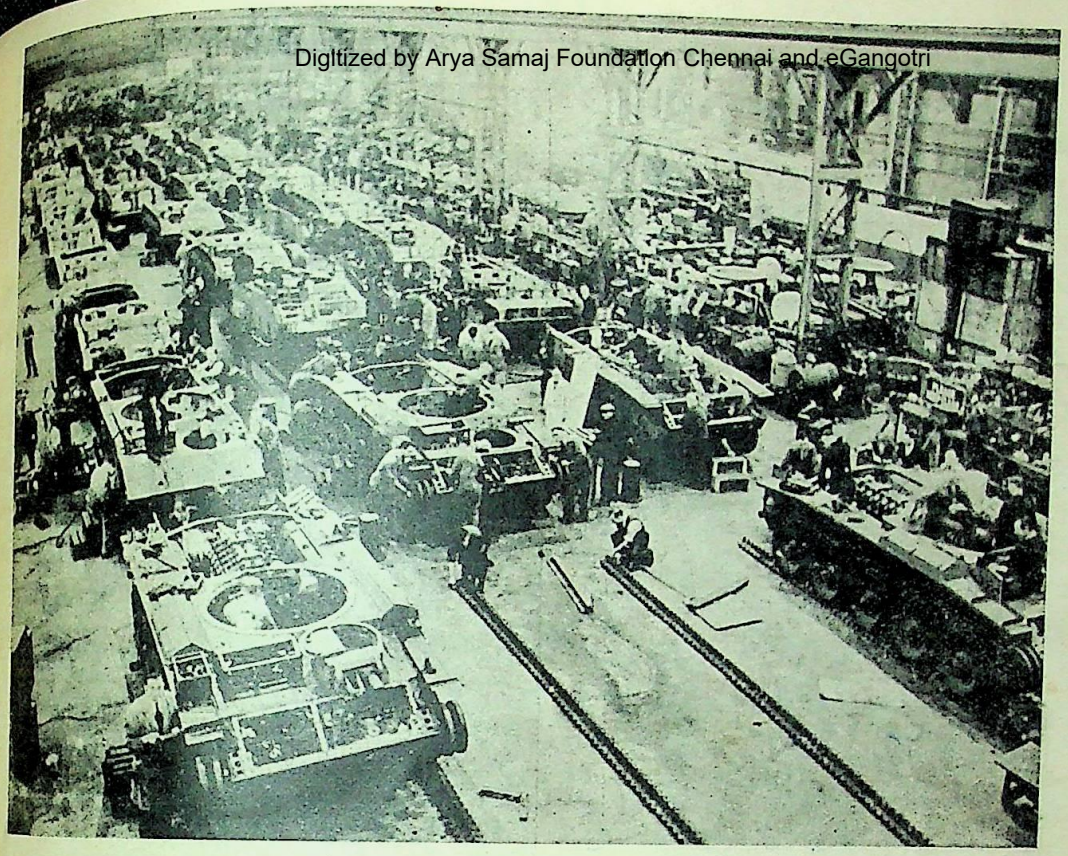

ब्रिटेनके टैंक बनानेवाले एक कारखानेके भीतरका दृश्य।

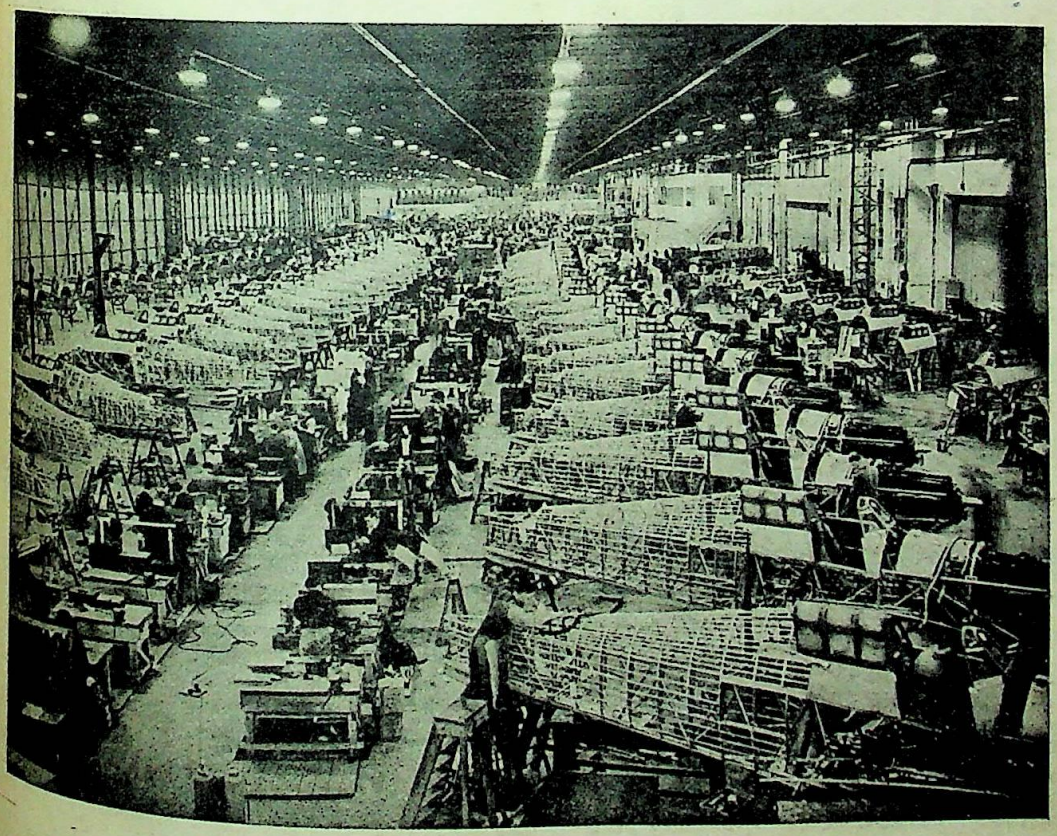

'हरीकेन' नामक लड़ाकू-यान बनानेवाले एक ब्रिटिश कारखानेका दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ब्रिटिश क्रूसेडर नं० ६' टैंक, जो संसारका सबसे हल्का और द्रुतगामी टैंक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

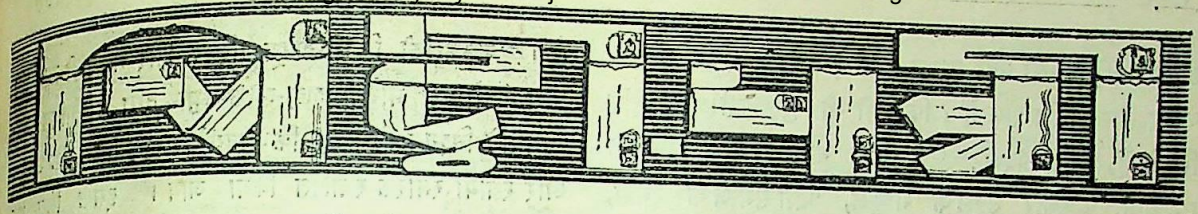

'देवदास' और जोशीजी

तर्कशास्त्रके सिद्धान्तोंका अनुकरण करनेमें, प्रतीत होता है, श्री इलाचन्द्र जोशी सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। एक ही दृष्टान्त लेकर उससे मिलती हुई बातको बिना कोई सम्बन्ध दिखाए अन्य दृष्टान्तोंसे लागू करना हमने उन्हींके लेख 'आधुनिकतम उपन्यासका दृष्टिकोण' ('विशाल भारत', मई १९४३) में देखा है। अपने सारे विवादकी नींव उन्होंने 'देवदास'पर डाली है जो सर्वथा अनुचित है। यह कहना कि हिन्दी-साहित्यपर 'देवदास'का भारी प्रभाव पड़ा है, उसने हिन्दी-जगत्को बड़ी हानि पहुँचाई है, और कुछ नहीं, तो कमसे कम अत्युक्ति तो है ही। 'देवदास' कितना ही बुरा क्यों न हो, उसका इतना असर वस्तुतः नहीं हुआ जितना कि जोशी महोदयने दिखानेकी चेष्टा की है। किसी एक उपन्यासका जनमतको बिलकुल ही विचलित कर देना यह अद्यावधि बहुत ही कम अवसरोंपर हुआ है।

"'देवदास'में यथार्थवादका ढाँचा अवश्य वर्त्तमान है; पर वह ढाँचा केवल ढाँचा ही रह गया है"—यह कहते समय लेखक महोदय सम्भवतः यह भूल गए हैं कि 'देवदास' सन् १९४३ की उपज नहीं है। वह जिस समय लिखा गया था, उस समय ऐसी बातें बहुधा नहीं, कदाचित् ही हुआ करती थीं। और शरत्के सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने 'देवदास' और 'पथेर दाबी'के सिवा कुछ भी कल्पनासे नहीं लिखा। देवदास-जैसा 'आत्महीन, अन्तःसारहीन' जीव वस्तुतः ही उन दिनों कोई रहा होगा, जिसके चरित्रका प्रतिबिम्ब शरत्ने हमें दिया है।

वेश्यालयकी मधुशालामें जब देवदास अपनेको खोने लगता है, तो शरत् पूरी ताक़तसे उसका साथ देता है—यह दूसरी बात जोशीजीने कही है। अच्छा, लेखक यदि देवदासका साथ न देता, तो वह उसका वास्तविक चरित्र-चित्रण किस प्रकार कर सकता था? उस स्थितिमें देवदासको बेपरवाहीसे निकाल सारे उपन्यासको नष्ट करना होता। रही देवदासके प्रति पाठकोंकी समवेदना जगानेकी कोशिश करनेकी बात, तो वह सत्य है। परन्तु लेखक केवल समवेदना ही जगाता है, अतिरिक्त कुछ नहीं करता। समवेदना जगाना तो उपन्यास-कहानी-लेखकका एक ध्येय ही है, अन्यथा उसका उपन्यास सफल कैसे हो? जिस उपन्यासके पढ़नेसे हमारी सहानुभूति नहीं जागती, उसे हम उपन्यास ही क्योंकर कह सकते हैं? 'देवदास'को पढ़कर हम यह कभी नहीं कहते कि जो-कुछ नायकने किया, वह ठीक था, उचित था। नहीं; परन्तु यह सब-कुछ करनेके लिए वह बाध्य किया गया था; उसकी स्थिति और उसके चारों ओरके वातावरणने ही बल लगाकर उसे गिराया था। जैसा कि मैंने जनवरी '४३ के 'विशाल भारत'में (पृष्ठ १४-१५ पर) प्रकाशित अपने लेखमें लिखा था, शरत्ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों द्वारा यह स्थापित किया कि यदि कोई मनुष्य पाप करता है, तो वह इस कारण नहीं कि वह मूलमें ही पापी है; बल्कि इसीलिए कि वह दोष करनेको अपनी स्थितिके दबावसे मजबूर किया जाता है।

फिर जोशीजीने लिखा है—"शरच्चन्द्रका एकमात्र उद्देश्य ही जैसे निकम्मे, आलसी, अहंभावापन्न और चरित्रहीन नायकोंके पतनको महिमान्वित करनेका रहा है।" मुझे तो आश्चर्य है कि जोशी महोदय इतने अभ्यस्त लेखक होकर भी इस प्रकारकी निर्मूल बातें लिखनेके लिए क़लमको मुक्त कैसे छोड़ देते हैं! यह बड़ा भारी दोषारोपण है, और यह सत्य भी नहीं है। शरत्की ६० के लगभग कृतियोंमें से कितनी कृतियोंमें ऐसे नायक हैं? अधिकसे अधिक छः-सातमें ही न। अहंभावापन्न नामक तो विरले ही हैं; परन्तु यदि कुछ आलसी या 'निकम्मे' हैं, तो उनके आन्तरिक गुण भी कम नहीं हैं। आदमीके कार्योंको ही हमेशा नहीं देखा जाता, उसके हृदयके स्तरोंमें भी दृष्टि डाली जाती है। बाहरी चमकपर लालायित होना क्या ठीक है? और कंचन भी तो बाहरसे अनाकर्षक ही होता है, जब तक कि उसे अग्नि पवित्र न करे! चरित्रहीन नायक 'देवदास', 'देना पाओना', 'चरित्रहीन' और 'शुभदा'में ही हैं; फिर भी इन चारोंके नायक क्या असलमें पापी ही थे? उनकी स्थिति क्या बिलकुल अपूर्व थी, जो वे पाप नहीं करते? अहंभावापन्न नायक केवल 'पथेर दाबी'में (अपूर्व) और 'बामुनेर मेये'में ही रहे हैं। और, इसके अतिरिक्त, इन सबका 'पतन' कैसा? इनमें से कुछ ही गिरे; सब तो गड्ढेमें जाकर पड़े नहीं। फिर शरत्ने उनके पतनको महिमान्वित कब किया है? क्या हम उस पतनको शुभ कार्य समझते हैं? हमारे मनमें क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके प्रति घृणा-सी नहीं उत्पन्न होती ? शरत् मुख्यतः स्त्री-चरित्र सिरजनेमें प्रवीण हैं ; फिर भी जो पुरुष-चरित्र उन्होंने सिरजे हैं, उनमें आदर्श चरित्र क्या नहीं हैं ? 'स्वामी'के घनश्याम, 'बैकुण्ठेर उइल'के गोकुल, 'पल्ली-समाज'के रमेश, 'पथेर दाबी'के डाक्टर साहब, बिप्रदास, पण्डित मशाई—क्या इनको श्री इलाचन्द्र भुला बठे ? दूसरे नायक भी बाहरसे निकम्मे क्यों न हों, उनके हृदय कसौटीपर खरे उतरते हैं।

'देवदास'ने मतवालापन फैलाया, यह ठीक है ; परन्तु वह मतवालापन इतना नहीं था, जितना कि जोशीजी कहते हैं। और जो-कुछ फैला, वह इसलिए नहीं कि उपन्यास निजमें ही रद्दी था, बल्कि इसलिए कि ग्रहण करनेवालोंके अन्तरमें भी कमज़ोरी थी। चूँकि एक कविने अपना उपनाम देवदास रख लिया और कुछ लेखक मूढ़ बन गए, इसके मानी यह तो नहीं कि सब लोग बेवकूफ़ बन गए। मैंने शरत्की कृतियाँ एक बार नहीं, पाँच-पाँच बार पढ़ी हैं ; परन्तु 'देवदास'ने मुझपर तो कोई भी मतवालापन या बुरा असर नहीं किया।

श्री इलाचन्द्रने आलोचकोंका मुँह बन्द करनेके लिए लिखा है कि हिन्दीके अधिकांश तरुण साहित्यिकोंका 'देवदास'के लिए बड़ा मोह रहा है। इससे शायद यह भी साबित हो सकता है कि मैंने यह जो सब-कुछ लिखा है, उस मोहके कारण ही ! परन्तु ऐसा नहीं है। मैं पक्षपात करके या नासमझीके कारण उल्टा-सीधा लिखना बर्दाश्त नहीं कर सकता। स्वयं जोशीजी स्थिर-चित्तसे शरत्पर लगाए गए अपने इस अभियोगपर विचार करके देख लें—किसी पक्षकी ओर झुक न जायँ और तर्क-शास्त्रको समेट न दें—तो उन्हें प्रतीत होगा कि यह जो-कुछ लिखा गया है, वह ठीक है ; देवदासने जो किया, वह स्थितियोंके कारण ; इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह स्वभावसे ही पापी था। और यह कहना तो सर्वथा अनुचित है कि "यदि किसी घटनाक्रमसे पार्वतीके साथ उसका विवाह भी हो गया होता, तो वह उससे ऊबकर निश्चित रूपसे चीतपुरकी गन्दी नालियोंमें बहनेवाले कीड़ोंका साथ देता।"

बन्दर रोड, कराची] —दौलतराव परशुराम

स्व० माधव शुक्लका स्मारक

स्वर्गीय पं० माधव शुक्ल न केवल राष्ट्र-कवि थे, वरन् नाट्य-कला-मर्मज्ञ, सिद्धहस्त नाटककार, कुशल अभिनेता तथा कर्मठ राष्ट्रकर्मी एवं साहित्य-सेवी भी थे। आपके निधनसे देश, भाषा, हिन्दी-रंगमंच एवं सार्वजनिक क्षेत्रोंकी महान क्षति हुई है। कलकत्तेकी हिन्दी-नाट्य-परिषद और मारवाड़ी-छात्र-संघ द्वारा आयोजित माधव शुक्ल-शोक-सभा द्वारा प्रस्तावित उप-समितिने निश्चय किया है कि स्वर्गीय शुक्लजीका एक उपयुक्त और स्थायी स्मारक स्थापित किया जाय। इसके लिए एक स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित किया जायगा, जिसमें स्व० शुक्लजीकी जीवनी, उनके साहित्यका संकलन, राष्ट्रीय तथा सार्वजनिक सेवाओंका वर्णन, नट-नाट्य-कौशल और संस्मरण रहेंगे। इसके अतिरिक्त किसी विश्वविद्यालय या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अन्तर्गत स्व० शुक्लजीके स्थायी स्मारककी स्थापनाकी भी योजना बनाई गई है। इन दोनों कार्योंके लिए काफ़ी धनकी आवश्यकता है। हिन्दी-प्रेमी धनी-मानी उदार सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे इस पुण्य-कार्यमें यथाशक्ति सहायता प्रदान करें।

१५०, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता] —श्रीपति पाण्डेय (मन्त्री)

बंगाल-हिन्दी-मण्डल

बंगाल - हिन्दी - मण्डलकी विज्ञप्तिके अनुसार प्रस्तावित पुस्तकोंके आनेकी अन्तिम तारीख ३१ मई, १९४३ रखी गई थी ; किन्तु कई लेखकोंका अनुरोध है कि वे परिस्थितिवश उक्त तारीख तक पुस्तकें नहीं भेज सकेंगे। 'बंगाल-हिन्दी-मण्डल'ने उनकी कठिनाइयोंको अनुभव करते हुए निश्चय किया है कि चार महीनेका समय लेखकोंको और दिया जाय—अर्थात् ३० सितम्बर, १९४३ तक वे अपनी पुस्तकोंकी तीन-तीन हस्त-लिखित अथवा टाइप की हुई प्रतियाँ मण्डलके कार्यालयमें भेज सकते हैं।

किंग्सवे, दिल्ली] —भगवद्दत्त (मन्त्री)

हिन्दी-पुस्तकोंके सूचीपत्र

प्रायः देखा जाता है कि जब किसीको हिन्दीकी नवीन अथवा कुछ प्रसिद्ध पुस्तकोंकी आवश्यकता होती है, और वह किसी प्रकाशकको आर्डर भेजता है, तो उत्तर मिलता है कि वे सब पुस्तकें—जो उनके सूचीपत्रमें दी हुई हैं—उनके यहाँ नहीं मिलेंगी। इससे मँगानेवालेको जो निराशा और असुविधा होती है, उसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। क्या कोई सज्जन ऐसे एक भी प्रकाशकका पता बतलानेकी कृपा करेंगे, जिनके यहाँ सब नहीं, तो कमसे कम हिन्दीकी प्रमुख पुस्तकें मिल सकें ? इसके साथ ही प्रकाशकोंसे मैं अनुरोध करूँगा कि वे ऐसे सूचीपत्र न छपवायँ, जिनमें छपी किताबें वे भेज न सकें। इससे मँगानेवालेको न सिर्फ़ धोखा ही होता है बल्कि समय और धनका अपव्यय भी।

—एक जिज्ञासु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

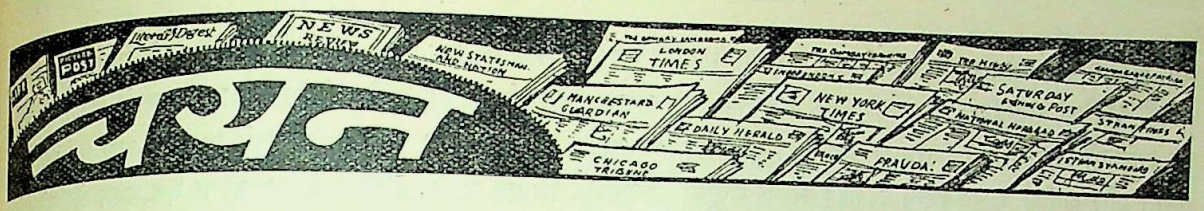

भारतका क्या होगा ?

अमरीकाकी डेमोक्रेटिक पार्टीके ख्यातनामा नेता श्री वैंडल विल्कीने—जो राष्ट्रपतिके पिछले चुनावमें श्री रूज़वेल्टके मुक़ाबलेमें खड़े हुए थे—अभी हाल ही में पूर्वी देशोंकी यात्रासे लौटकर 'वन वर्ल्ड' (एक दुनिया) नामकी एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पुस्तक लिखी है। इस यात्रामें आपको जो यथार्थ अनुभव हुए हैं, उन्हें आपने स्वस्थ चित्त एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे योग्यतापूर्वक देखा और उनका विश्लेषण किया है। यद्यपि आप भारत आनेकी घोषणा कर चुकनेके बावजूद न-जाने किस 'रहस्यपूर्ण कारण' से भारत नहीं आ सके ; पर विश्व-समस्याका मेरुदण्ड होनेके कारण आप उसे भुला न सके। आपने न केवल भारतकी स्वाधीनताका समर्थन ही किया है, बल्कि एक यथार्थ जनतन्त्रवादीकी हैसियतसे उसकी योग्यता-पूर्वक वकालत भी की है। आपने कहा है—"यदि हम उन सिद्धान्तोंमें विश्वास करते हैं, जिनका ढिंढोरा पीटते रहते हैं, और यदि हम उन उद्देश्योंको प्राप्त करनेके लिए मध्य-पूर्वका सहयोग चाहते हैं, तो हमें अपने स्वार्थोंकी पूर्त्तिके लिए देशी जनतामें फूट डालने और एक दलको दूसरे दलके विरुद्ध खड़ा करनेकी नीति त्याग देनी चाहिए।"

श्री विल्कीने 'आज़ादीका युद्ध'-जैसे बहुकथित नारोंका उल्लेख करते हुए पूछा है—"क्या वे ३१ मित्र-राष्ट्र, जो आज एक साथ मिलकर लड़ रहे हैं, इस बातपर एकमत हैं कि हमारी आज़ादीका अर्थ सब देशोंकी आज़ादीसे है और क्या हम प्रत्येक देशको वह आर्थिक आज़ादी देनेको तैयार हैं, जो स्व-शासनकी एकमात्र नींव हो सकती है ? अफ्रीकासे अलास्का तक मुझसे एक ही प्रश्न पूछा गया और वह यह कि भारतका क्या होगा ? चीनके सबसे बड़े विद्वानने मुझसे कहा कि जब भारतकी आज़ादीके प्रश्नको किसी भावी अवसरके लिए स्थगित कर दिया गया, तो इससे न केवल ब्रिटेनकी प्रतिष्ठा ही क्षय हुई, बल्कि संयुक्त-राष्ट्र अमरीकाकी भी। अफ्रीका, मध्य-पूर्व, अबीसीनिया और सम्पूर्ण सुदूर-पूर्वमें आज़ादीके अर्थ औपनिवेशिक शासन-प्रणालीके खात्मेके रूपमें लगाए जाते हैं। चाहे हम इसे पसन्द करें अथवा नहीं, पर यह सच है।

"दुनियाकी प्रत्येक जाति न केवल आज़ादी पानेके योग्य है, बल्कि कल ही उसकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य भी रखती है। आज प्रत्येक आदमी आज़ादी प्राप्त करनेके लिए एक निश्चित तिथि चाहता है और यह आश्वासन भी चाहता है कि उस तिथिको वादा पूरा किया जायगा या नहीं। वे अपनी समस्याओंको आर्थिक और राजनीतिक सहयोग द्वारा स्वयं ही हल करनेका अधिकार चाहते हैं, क्योंकि दुनियाके लोग न केवल राजनीतिक सन्तोषके लिए आज़ादी चाहते हैं, बल्कि अपनी आर्थिक उन्नतिके लिए भी।

"भविष्यमें हमें अपने भाग्य-सूत्र उन सभी देशोंके साथ बिना जाति और रंगका भेद किए बाँधने चाहिएँ, जो न केवल अपने लिए, बल्कि औरोंके लिए भी आज़ादीको जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। आगेसे हमें उन सब देशोंका साथ छोड़ देना चाहिए, जो साम्राज्यवादी हैं और दुनियाकी उन जातियोंकी निन्दा करते हैं, जो अनन्तकालीन युद्धमें विश्वास नहीं रखतीं।"

अन्तमें श्री विल्की लिखते हैं—"शान्ति प्राप्त करनेके लिए तीन चीज़ोंकी आवश्यकता है। एक तो यह कि शान्तिकी योजना विश्व-व्यापी पैमानेपर होनी चाहिए। यदि आज युद्धके दौरानमें ही सयुक्त-राष्ट्र, ब्रिटेन, रूस, चीनी और अन्य मित्र-राष्ट्र अपने युद्धोत्तर उद्देश्योंपर एकमत नहीं होते, तो एटलाण्टिक-सनद-जैसी आशाप्रद और आदर्शवादी योजनाओंका वही हाल होगा, जो विल्सनकी १४ शर्त्तोंका हुआ था और हमारी खिल्ली उड़ती दिखाई देगी। दूसरी यह कि दुनिया राजनीतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे आज़ाद होनी चाहिए। शताब्दियों तक चुपचाप ग़ुलामी करते रहनेके बाद पूर्वी यूरोप और एशियाकी करोड़ों जनताकी आँखें खुल गई हैं और वह पाश्चात्य देशोंके लाभके लिए ग़ुलामी करनेको तैयार नहीं है। वह यह समझने लगी है कि स्वयं उसके देशमें उसकी समृद्धिके लिए पर्याप्त साधन हैं और अब दुनियामें साम्राज्यवादके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। दुनियाके सारे राष्ट्र एक-दूसरेपर निर्भर करते हैं। हमारी पाश्चात्य दुनिया और प्रजातन्त्रको आज कसौटीपर कसा जा रहा है। रूस, चीन और मध्य-पूर्वके सभी पुरुष आज अपनी राजनीतिक शक्तिको भलीभाँति समझते हैं। वे यह जानने लगे हैं कि भावी दुनियाके सम्बन्धमें अनेक महत्त्वपूर्ण निश्चय उन्हींपर निर्भर करते हैं और उनका पक्का इरादा है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन निश्चयोंका आधार वे अपनी आज़ादीको बनायँगे और अपनी आर्थिक, सामाजिक तथा आत्मिक उन्नतिके लिए अवश्य ही आज़ादी प्राप्त करेंगे। तीसरी यह कि दुनियाको आज़ाद कराने और शान्ति बनाए रखनेके लिए संयुक्त-राष्ट्रको रचनात्मक कार्य करना चाहिए।" ('हिन्दुस्तान')

भारतको आज़ाद किया जाय

श्री एच० एन० ब्रेल्सफोर्डने अभी हाल ही में प्रकाशित अपनी 'सबजेक्ट इण्डिया' (पराधीन भारत) पुस्तकमें भारतकी वर्त्तमान समस्या—खासकर राजनीतिक ज़िच—का विद्वत्तापूर्वक विश्लेषण किया है और इस बातपर ज़ोर दिया है कि पाकिस्तानकी कल्पना वर्त्तमान युगके उपर्युक्त नहीं है। आपने कहा कि देशी रियासतोंको ब्रिटिश प्रान्तोंके बराबर स्वाधीनता दिए बिना किसी प्रकारकी राजनीतिक स्वतन्त्रता स्थायी नहीं हो सकेगी। भारतीय समस्याको हल करनेके लिए आपने निम्नलिखित उपाय सुझाए हैं :—

(१) प्रशान्त-महासागर-स्थित देशोंके लिए स्वाधीनता, समानता और उन्नतिके साधनोंकी घोषणा तथा मित्र-राष्ट्रों द्वारा भारतको आज़ादीका वचन दिया जाय। (२) भारतीय प्रश्नोंका निर्णय इंग्लैण्ड-स्थित भारत-मन्त्रीके हाथसे लेकर उपनिवेश-मन्त्रीको दिया जाय। (३) शीघ्र ही एक ऐसे नए वाइसरायकी नियुक्ति की जाय, जो यथासम्भव भारतीय हो—जैसे श्री मुहम्मदअली जिन्ना या सर तेजबहादुर सप्रू। नया वाइसराय अपना कार्य-काल कांग्रेसवालोंकी आम रिहाईसे शुरू करे। (४) कांग्रेस और लीगमें समझौता हो। कांग्रेस लीगको यह आश्वासन दे कि जो प्रान्त आत्म-निर्णयका अधिकार चाहते हैं, उन्हें वह दे दिया जाय। वे आत्म-निर्णयका अधिकार चाहते हैं या नहीं, इस बातका फैसला नई चुनी हुई धारा-सभाओंके बहुमतसे अथवा बहुमतवाले चुनाव-क्षेत्रों द्वारा निर्वाचित तीन-चौथाई सदस्योंकी रायसे किया जाय। इस अधिकारका निर्णय एक निष्पक्ष अदालत करे। यह अदालत हदबन्दी और तत्सम्बन्धी अन्य बातोंका भी फैसला करे। (५) हिन्दुओंकी एकताके आदर्श एवं सिद्धान्तको माननेके लिए यह आवश्यक है कि ब्रिटिश सरकार देशी राज्योंको भी पूर्ण नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार देनेका आश्वासन दे। (६) सर्वदलोंकी मिश्रित केन्द्रीय सरकारकी स्थापना की जाय। यह सरकार युद्ध-प्रयत्न जारी रखे।

साम्प्रदायिक समस्याका उल्लेख करते हुए श्री ब्रेल्सफोर्डने कहा है कि भारतमें धर्मके नामपर कुत्सित राजनीतिक व्यापार किया जा रहा है। गांधीजीने इस तथ्यको समझा है। उनका लड़ाईका सिद्धान्त है सारे भारतको एक करके विपक्षीके खिलाफ़ लड़ना। जो लोग पाकिस्तानके पक्षमें हैं और यह समझते हैं कि वह अपने पाँवोंपर खड़ा होकर एक प्रथम श्रेणीकी सैनिक सत्ताका रूप धारण कर लेगा, वे इस ज़मानेकी नहीं, पिछले ज़मानेकी बातें करते हैं। यदि बंगाल पाकिस्तानमें शामिल नहीं किया गया, तो पाकिस्तानकी योजना असम्भव हो जायगी। पंजाबी यह कभी पसन्द नहीं करेंगे कि वे श्री जिन्नाकी पाकिस्तानी योजनाका भार उठायँ।

कांग्रेस और गांधीजीके सम्बन्धकी चर्चा करते हुए श्री ब्रेल्सफोर्डने लिखा है कि कांग्रेस तानाशाहीके खिलाफ़ है, फिर भी वह गांधीजीका अनुकरण करती है। यह कहना कठिन है कि भविष्यमें गांधीजीको कैसी विजयका श्रेय प्राप्त होगा; लेकिन उन्होंने यह विजय प्राप्त की ही है कि जितने भारतीय उनकी शिक्षाके प्रभावमें हैं, उनमें उन्होंने आत्मिक स्वतन्त्रताकी भावना कूट-कूटकर भर दी है। अब तक भारतीय अपनी मानसिक दासताके कारण अपनेको अंगरेज़ोंसे हीन समझते थे; लेकिन गांधीजीने भारतीयोंको अपनी श्रेष्ठता अनुभव करनेकी शक्ति दी है।

पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके बीच आस्ट्रिया और हंगरी-जैसी पुरानी द्वैध-सत्ताका सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। लेकिन पाकिस्तान एक पीढ़ीसे अधिक चल सकेगा, इसमें सन्देह है। ('प्रताप')

भारतीय समस्याका हल

अमरीकाके प्रसिद्ध पत्र 'करेण्ट हिस्ट्री'में अभी हाल ही में भारतीय समस्यापर प्रिन्सटन-विश्वविद्यालयके प्रो० वाल्टर फेल्प्सका एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें भारतीय समस्याको हल करनेके लिए कई उपाय सुझाए गए हैं। भारतकी वर्त्तमान स्थितिका उल्लेख करते हुए प्रो० वाल्टर फेल्प्सने लिखा है कि यद्यपि दुनियाके अधिकांश हिस्सोंमें मित्र-राष्ट्रोंके प्रयासको सफलता मिल रही है; पर भारतमें उल्टी बात दिखाई देती है। सभी भारतीय, आपसमें उनमें चाहे जितना भी मतभेद क्यों न हो, दिन-दिन ब्रिटेनके अधिकाधिक विरुद्ध होते जा रहे हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे जापानके पक्षमें हैं। इसका अर्थ यह है कि वे ब्रिटेनकी पसन्द नहीं करते और ब्रिटेनके इरादोंमें जो विश्वास उन्हें कभी था, वह समाप्त होता जा रहा है। मैं इस बढ़ते हुए अविश्वासके औचित्यको सिद्ध नहीं करना चाहता, बल्कि मेरा तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्याल है कि ब्रिटेन अपने वादे पूरे करेगा। किन्तु प्रश्न यह नहीं है। इस समय अकेली महत्त्वपूर्ण समस्या युद्धमें विजयी होनेकी है, और इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि एक विरोधी भारत ही नहीं, बल्कि अनमना भारत भी युद्ध-प्रयासमें रोड़ा अटकाता है।

स्थितिका विश्लेषण करनेमें सतर्कताकी आवश्यकता है, लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि ब्रिटेन और भारतका अविश्वास पारस्परिक है—यदि भारतीय अंगरेज़ोंपर विश्वास नहीं करते, तो अंगरेज़ भी भारतीयोंपर विश्वास नहीं करते हैं। महात्मा गांधीकी सचाईपर सन्देह करनेसे कोई लाभ नहीं। न ही यह खयाल करना चाहिए कि सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सने भारतीय नेताओंसे पहले तो वादे किए और फिर वापस ले लिए। महात्मा गांधी या क्रिप्सपर सन्देह करना अधिक आसान है; पर इससे कोई लाभ नहीं। हमें तो गतिरोधके प्रधान कारणपर प्रकाश डालना है और सम्भव हो, तो उसे बिल्कुल नष्ट अथवा कम करनेके उपाय निकालने हैं। भारत-मन्त्री श्री चर्चिलने कहा है कि अब वे भारतको और रियायतें अधिकार नहीं देंगे। भारत-मन्त्री श्री लियोपोल्ड एमरीने कहा है कि अब समझौतेकी कोई बात नहीं होगी और कामन्स-सभाने ८ अक्तूबरको १७ के विरुद्ध ३६० वोटोंसे एमरीका समर्थन किया है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि अंगरेज़ोंके लिए समझौतेकी चर्चा फिर शुरू करना अत्यन्त कठिन है। ऐसा करना न केवल उनके आत्म-सम्मानको ठेस पहुँचाता है, बल्कि सचमुच युद्ध-प्रयासमें भी बाधा डालनेवाला है। दूसरी ओर युद्ध और शान्ति दोनोंमें जो आदमी खतरा उठानेसे चूकता है, वह असफल रहता है। युद्धका चाहे जो भी परिणाम हो, स्वतन्त्र ब्रिटिश साम्राज्यसे अलग होना अनिवार्य है। हमारे द्वारा इच्छित मित्र-राष्ट्रोंकी विजयसे भी भारत या ब्रिटिश साम्राज्य ज्योंका त्यों नहीं रहेगा। पर अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका है कि वर्त्तमान युद्धमें भारतको कैसा हिस्सा लेना है—वह मित्र-राष्ट्रोंको सहायता दे सकता है अथवा उनके प्रयत्नोंमें बाधा डाल सकता है? उसे मित्र-राष्ट्रोंकी पंक्तिमें ज़बरदस्ती शामिल कर लिया गया है।

चर्चिल और एमरी चाहे जो कहें, हम यह विश्वास नहीं कर सकते कि समझौतेकी बातचीत कभी हो ही नहीं सकती। उसके बारेमें चर्चिल और एमरी आवश्यकतासे अधिक अनुदार हैं। ये दोनों ही व्यक्ति परम्परा और मुद्दतसे चले आए विचारोंके कारण कट्टर साम्राज्यवादी हैं। चर्चिलने तो जीवन-पर्यन्त भारतीय स्वतन्त्रताका विरोध किया है। पर क्या अब भी वे अपने विचारोंमें परिवर्त्तन नहीं कर सकते? ब्रिटेनके कट्टरपन्थियोंकी नीति तो अनिवार्य हो जानेपर ही झुकनेकी रही है, अन्यथा वे अब तक जीवित ही नहीं रह सकते थे। गत ८ अक्तूबरका एमरीका भाषण वैसा ही है, जैसे कामन्स-सभामें अमेरिकाके स्वातन्त्र्य-युद्धके बारेमें सन् १७७४, १७७५ और १७७६ में हुआ करते थे। यहाँ हम इन दोनों देशोंकी स्थितिकी समानतापर ज़ोर नहीं देना चाहते; पर यह ज़रूर कहेंगे कि चर्चिल और एमरी दोनों एडमण्ड बर्कके 'अमेरिकासे समझौता' नामक लेखको पढ़ें। युद्धमें चाहे हम विजयी हों अथवा पराजित, हम ब्रिटेनके साथ हैं; पर भारतीय समस्याका समाधान होना अत्यधिक आवश्यक है। स्पष्ट है कि इस समय ब्रिटेन समझौतेकी बातचीत करनेसे इन्कार कर रहा है, न कि भारतकी कांग्रेस-पार्टी।

अंगरेज़ोंकी आदत है कि पहले तो वे अधिकार प्रदान करनेकी उदारता दिखाते और फिर तरह-तरहकी शर्त्तें लगा देते हैं। यह देखते हुए कि समय कम है और स्थिति नाज़ुक है, और भारतके साथ न केवल अमरीका, बल्कि बेलजियम, फ्रांस, हालैण्ड, नार्वे, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, चीन, फिलीपाइन, ग्रीस, रूस, सर्बिया और अन्य अनेक राष्ट्रोंका भाग्य भी जुड़ा हुआ है, हम निम्न माँगें पेश करते हैं, जो कोई बहुत बड़ी नहीं हैं :—

(१) वाइसरायको वापस बुलाया जाय। (२) कांग्रेस-दलसे समझौतेकी बातचीत पुनः चलाई जाय। (३) समझौता करानेके लिए एक पंचायत निर्वाचित की जाय, जिसमें अमरीका और चीनके प्रतिनिधि भी हों; क्योंकि इन देशोंको इस समस्यामें भारी दिलचस्पी है। (४) न केवल ब्रिटेनकी ओरसे, बल्कि मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे यह गारण्टी दी जाय कि युद्धके बाद भारतको स्वतन्त्रता दे दी जायगी।

भारतसे हमारी प्रार्थनाएँ यह हैं—(१) असहयोग-आन्दोलन बन्द किया जाय। (२) उपर्युक्त मित्र-राष्ट्रीय पंचायतके फैसलेको स्वीकार किया जाय। (३) बर्मा और चीनसे जापानियोंको भगानेके लिए भारत नागरिक और सैनिक दोनों प्रकारकी सहायता दे। ('हिन्दुस्तान')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

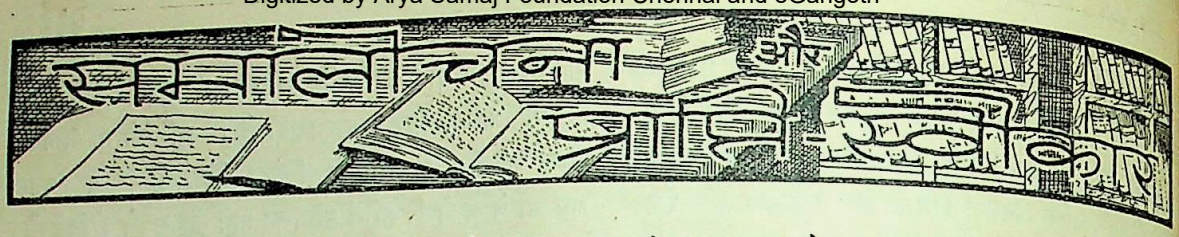

काबा और कर्बला तथा **अर्जन और विसर्जन** : रचयिता—श्री मैथिलीशरण गुप्त ; प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)।

कविपर यह आरोप लगाया जाता है कि वह 'राष्ट्रीय कवियों'की श्रेणीमें बैठकर भी अपनी राष्ट्रीयताकी सीमा हिन्दुत्वसे आगे नहीं बढ़ा सका। सम्भवतः इसी 'भ्रान्ति'को दूर करनेकी दृष्टिसे उसने आलोच्य पुस्तकोंकी रचना की है। 'काबा और कर्बला'में 'मुहम्मद साहब'के विचारोंको प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। पुस्तकके 'काबा'-भागमें हज़रत पैग़म्बरकी अन्तरात्माकी झाँकी पद्यमें रची गई है, जिसमें 'अकबरशाह' और 'ताजमहल' तक चमक रहे हैं। स्पष्ट है कि 'काबा'में बिखरे पद्योंका संग्रह है, जिनमें पैग़म्बर साहबकी उच्चाशयता-उदारताका बखान मिलता है। पुस्तकके 'कर्बला'-भागमें हुसैन साहबकी अपने साथियों-सहित कर्बलामें प्राणोत्सर्गकी मर्मस्पर्शी कहानी मिलती है। 'कर्बला'को हम एक खण्ड-काव्य कह सकते हैं, जिसमें कहानीने काव्यके सौन्दर्यको ढँक दिया है। कवि घटनाके साथ तेज़ीसे बढ़ता जाता है, उसे भीतर झाँकने और अपनेको व्यक्त करनेके लिए मानो अवकाश ही नहीं मिल रहा है। 'कर्बला'की बलि-गाथा—जिसमें हुसैन साहबके बच्चे एक-एक बूँद पानीको तरस-तरसकर मरे बतलाए गए हैं—स्वयं करुणाकी अजस्र धारा बहाती है। हमें आश्चर्य होता है कि महाकविने घटनाओंके साथ चलकर इतिहासके निकट रहनेका ही लोभ क्यों स्वीकार किया? कर्बलाका खण्ड-काव्य दुःखान्त होनेके कारण करुण-रसकी अमर कृति हो सकता था; पर प्रतीत होता है, कविके सामने काव्य-रचनाकी अपेक्षा हज़रत मुहम्मद साहबके विचारोंको पद्यबद्ध करनेकी चिन्ता ही प्रधान रही है। यों, अभ्यासके कारण, कहीं-कहीं शब्द और अर्थ-चमत्कृति आ गई है; पर उससे रस-पिपासुओंकी तृषा शान्त होगी, इसमें सन्देह है।

'अर्जन और विसर्जन'में मनोभावनाओंके दो चित्र हैं—एकमें पुरुष स्त्री-धनको प्राप्त करनेके लिए अपने विश्वास, ईमान, धर्म, स्वदेश—सबकी आहुति दे देता है और फिर भी वह उसे अप्राप्य हो जाता है। दूसरेमें स्त्री अपने स्वदेश, विश्वास, ईमान और धर्मकी आक्रमणकारियोंसे जूझकर रक्षा करती है और देशके सारे वैभवको इसलिए नष्ट कर डालती है कि उन्हींपर आक्रमणकारियोंका मन ललचता है। दूसरे चित्रमें रूसियोंकी 'स्कार्च्ड-अर्थ पालिसी' (सब-कुछ बर्बाद करनेवाली नीति) की सार्थकता समझाई गई है। 'अर्जन' 'बेतुका' होनेपर भी सतुक 'विसर्जन'से अधिक प्रभावोत्पादक है। उसमें नाटकीय छटा अधिक है। 'इउडोसिया'का मनोनिग्रह तथा श्रेय और प्रेयके संघर्षमें श्रेयकी विजय दर्शनीय है। 'विसर्जन'की निम्न पंक्तियाँ प्रत्येक पराधीनकी आकांक्षाको प्रकट करती हैं:—

"नहीं चाहते हम धन-वैभव,
नहीं चाहते हम अधिकार।
बस स्वतन्त्र रहने दे हमको
और स्वतन्त्र रहे संसार।"

—विनयमोहन शर्मा

बुद्धचरित (पहला भाग) : अनुवादक—श्री सूर्यनारायण चौधरी ; प्रकाशक—संस्कृत-भवन, कठौतिया, पोस्ट बनमा (पूर्णिया) ; पृष्ठ-संख्या २२० ; मूल्य १॥), अजिल्द।

महाकवि अश्वघोष-प्रणीत 'बुद्धचरित' नामक संस्कृत-काव्यका यह हिन्दी-अनुवाद है। विस्मय और विषादकी बात तो यह है कि इस ग्रन्थके प्रायः १०० श्लोक अप्राप्य हैं। इसका कारण या तो विदेशी आक्रमणकारियोंकी साहित्य-संहारकी प्रवृत्ति है अथवा बुद्ध भगवानके प्रति हमारी उपेक्षावृत्ति। बौद्ध काल वास्तवमें भारतवर्षके लिए स्वर्ण-युग था। उस समय भारतीयोंका एक प्रतापशाली राष्ट्र था, जो विश्वके असंख्य प्राणियोंको आर्य-संस्कृतिका सन्देश सुना रहा था। अशोक और चन्द्रगुप्तके समयमें जहाँ एक अखण्ड भारतीय साम्राज्यकी स्थापना हुई थी, वहाँ चीन, जापान, लंका, बर्मा, मलय, बृहत्तर (जावा), सुमात्रा, स्याम, लम्बक, बाली आदि देशोंमें आर्य-संस्कृतिके साम्राज्यकी भी नींव पड़ी थी। पर दुर्भाग्यवश भारतके भाग्याकाशमें शंकराचार्य-रूपी धूमकेतुका उदय हुआ और उसके साथ ही हमारे सर्वनाशका सूत्रपात भी हुआ। बौद्ध धर्मका प्रभाव-प्रसार कम हो गया और ब्राह्मण-धर्मका प्रभाव बढ़ा। राष्ट्र नाना सम्प्रदायों और जातियोंमें विभक्त हो गया और अन्ततः दासत्वकी शृंखलामें आबद्ध हुआ।

अश्वघोषका यह काव्य भगवान बुद्धके इसी जीवनकी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलक है। शैली सरस और वर्णन अलंकारपूर्ण है। अनुवाद इतना अच्छा हुआ है कि मूल श्लोकका आनन्द आ जाता है। इसका दूसरा भाग भी शीघ्र निकल जाना चाहिए। यह ग्रन्थ प्रत्येक भारतीयके पढ़ने और संग्रह करने योग्य है। जिन श्लोकोंका पता नहीं चलता, उनके तिब्बती-अनुवादसे डा० जौनस्टनके अंगरेज़ी अनुवादका सहारा लेकर हिन्दीमें ग्रन्थको पूरा कर दिया गया है। —भवानीदयाल संन्यासी

विमानशास्त्र : सम्पादक, अनुवादक और प्रकाशक—श्री प्रियरत्न आर्ष ; पुस्तक मिलनेका पता—सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा, दिल्ली ; पृष्ठ-संख्या ५८ ; मूल्य ।≈) ।

प्रस्तुत पुस्तक महर्षि भरद्वाज-कृत 'यन्त्र-सर्वस्व'के 'वैमानिक प्रकरण'का अनुवाद है। इसमें विमान-सम्बन्धी कितनी ही ज्ञातव्य बातें बताई गई हैं। विमान-चालकोंके लिए ३२ आदेश भी हैं। अनुवादक महोदयने बड़े परिश्रमसे उक्त ग्रन्थका अनुवाद और सम्पादन किया है। साथ ही उन्होंने कितने ही आचार्योंके विमान-सम्बन्धी विचारोंके उद्धरण भी दिए हैं। वर्त्तमान समयमें जब कि विमान-युद्धका इतना बड़ा महत्व है, यह पुस्तक विमान-चालकोंके बड़े कामकी और प्रामाणिक भी है। आशा है, विमान चलानेके शौकीन लोग इसे अवश्य अपनायँगे।

विक्रमादित्य : लेखक—डा० हेमचन्द्र जोशी, डी० लिट् ; प्रकाशक—विक्रम-गौरव-प्रसारक मण्डल, गिरगाँव, बम्बई-४ ; पृष्ठ-संख्या ३२ ; मूल्य ।), अजिल्द।

इस छोटी-सी पुस्तिकामें विद्वान लेखकने शाकारि विक्रमका परिचय करानेका प्रयत्न किया है। विक्रमके समयमें ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला आदिकी काफ़ी उन्नति हुई थी। हमारे देशके अधिकांश धार्मिक कृत्य विक्रमी संवत्के अनुसार ही होते हैं। पर यह दुर्भाग्यकी बात है कि हममें से कितने ही उस महान पुरुषके—जिसके नामपर यह संवत् प्रचलित है, जो नीति, न्याय और ज्ञानमें बेजोड़ था और जो भारतको उसके शत्रुओंसे मुक्ति दिलानेमें समर्थ हुआ था—बारेमें नहींके बराबर जानते हैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तिकाको लिखकर लेखकने जन-साधारणका अत्यधिक उपकार किया है।

उत्तरपाड़ा-अभिभाषण : लेखक—श्री अरविन्द ; अनुवादक—श्री मदनगोपाल गाड़ोदिया ; प्रकाशक—श्री अरविन्द-ग्रन्थमाला, १६, रयू दबासैं द रिश्मों, पाण्डीचेरी ; पृष्ठ-संख्या १६ ; मूल्य ।), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तिका श्री अरविन्द द्वारा उत्तरपाड़ामें हिन्दू-धर्मपर दिए गए भाषणका हिन्दी-रूपान्तर है। यह भाषण उस समय दिया गया था, जब एक वर्षकी क़ैदके बाद श्री अरविन्द छूटकर आए थे। भगवानने उन्हें जेल क्यों भेजा, जेलमें उनका कैसे भगवत्साक्षात्कार हुआ और भगवानसे उन्हें क्या आदेश मिला तथा सत्यका ज्ञान उन्हें कैसे प्राप्त हुआ, आदि बातोंका इसमें संक्षेपमें उल्लेख है। पता नहीं, जेल-जीवनमें और भी किसी क्रान्तिकारीका भगवानसे साक्षात्कार हुआ और उन्होंने उसे इस तरहका अध्यात्मवादी बना दिया कि वह अपने करोड़ों भाइयोंको ही भूल गया या नहीं ; पर लेखकको अलीपुर-जेलकी काल-कोठरीमें 'पहले-पहल भगवत्साक्षात्कार हुआ' और उनकी 'पहली शिक्षा-दीक्षा हुई !' उन्हें भगवानसे 'आदेश' मिला कि वकीलको 'हिदायत तुम नहीं बल्कि मैं दूँगा', 'अपनी सारी कर्मण्यताएँ' छोड़ दो और 'अपने अन्दर अनुसन्धान' करो। एक क्रान्तिकारीके मन और मनोवृत्तिका यह परिवर्त्तन मनोविश्लेषकोंके लिए विचारणीय है।

जेलकी काल-कोठरीके बाद लेखकने अदालतमें विचारपतिकी कुर्सीपर भी भगवान ही को पाया। उन्होंने जेलरोंके दिलको लेखककी ओर घुमा दिया, जेलके बन्धन छिन्न कर दिए, जेलके कम्बलोंके रूपमें लेखकने अपने-आपको श्रीकृष्णके बाहुओंमें पाया ! इस तरहकी न मालूम कितनी लख, वाहियात और बेसिर-पैरकी बातें इस पुस्तिकामें भरी हैं। अन्ध-विश्वास—जो आजकल धर्मका पर्याय-पद बन रहा है—की कसौटीपर जेलर और मजिस्ट्रेटके कार्योंमें हस्तक्षेप करनेवाले भगवानकी ये बातें भले ही खरी उतरें ; पर सहज-बुद्धि और विज्ञानकी दृष्टिमें तो ये न केवल हास्यास्पद ही हैं, बल्कि असंभव, अहितकर एवं भ्रान्तिमूलक भी। भारत तो आगे ही धर्म और अन्ध-विश्वासकी चक्कीमें पिसकर निर्जीव हो रहा है ; ऐसी स्थितिमें इस तरहके गपोड़ोंका प्रकाशन एवं प्रचार सर्वथा अवांछनीय एवं अहितकर है।

जगन्नाथका रथ : लेखक, अनुवादक और प्रकाशक—उपर्युक्त ; पृष्ठ-संख्या ३६ ; मूल्य ॥), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें श्री अरविन्दके जगन्नाथका रथ, आर्य-आदर्श और गुणत्रय, हिरोवूमि इतो, दुर्गा-स्तोत्र और स्वप्न शीर्षक पाँच लेखोंका हिन्दी-अनुवाद है। प्रायः प्रत्येक लेखमें धार्मिकता और दार्शनिकताका पुट है। 'स्वप्न'-शीर्षक लेखमें कहा गया है कि भगवानने 'क्रीड़ाके लिए ही जगत्की सृष्टि की है।' इसीसे शायद जगत्में कुछ अति धनी और अनेक अति दरिद्र-दुःखी हैं और शायद इसीसे बालक श्रीकृष्णने हरि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहनको दर्शन और उपदेश देकर सन्तुष्ट और प्रसन्न भी कर दिया। 'स्वप्न'का हरिमोहन इससे भले ही सन्तुष्ट और प्रसन्न हो गया हो ; पर इस पूँजीवादी युगमें जो लाखों दरिद्र-दुःखी हरिमोहन मारे-मारे फिर रहे हैं, उन्हें सिर्फ़ इसीसे सन्तोष और सुख हो जायगा, इसमें सन्देह है। इस तरहकी आत्म-सन्तुष्टि और आत्म-ज्ञानकी आड़में पूँजीवादकी—जो धर्म या अन्ध-विश्वासका पृष्ठपोषक है—सत्ताको थिर रखने और उसके कुप्रभावके प्रति सर्वसाधारणमें पैदा होनेवाले क्षोभ एवं असन्तोष-को भ्रान्त करनेकी चेष्टा किसी भी 'साधु'को शोभा नहीं देती। जगन्नाथका रथ, हिरोवूमि इतो शीर्षक लेख अच्छे हैं। अनु-वादकी भाषा अच्छी है। —श्रीपति पाण्डेय

माताका सन्देश : लेखक—श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार ; प्रका-शक—कुमार पब्लिशिंग कम्पनी, ११ हरफूल-बस्ती, देहली ; पृष्ठ-संख्या १४८, मूल्य १॥) ; सजिल्द।

हमारे यहाँ ब्रह्मचर्यपर बड़ा ज़ोर दिया जाता है ; पर इसके साथ ही युवक-युवतियोंको नर-नारी-सम्बन्ध अथवा यौन-विज्ञानकी शिक्षासे एकदम दूर रखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर उनमें ब्रह्मचर्यकी अस्वाभाविक और कभी-कभी अनुचित एवं अवांछनीय भावना प्रबल हो उठती है और दूसरी ओर यौन-विज्ञान हौआ-सा बन जाता है। फलतः वे न तो ब्रह्मचर्यका ही यथाविधि पालन कर पाते हैं और न नर-नारी-सम्बन्धको ही स्वस्थ, संयत एवं सुखद-रूपमें रख पाते हैं। इसी कारण आज हमारे देशमें दाम्पत्य जीवन अधिकांशतः एकदम अस्वाभाविक और दुखद है। इससे होनेवाली आत्म-हत्याओंकी संख्या भी नगण्य नहीं है। सच पूछा जाय, तो इसमें दोष माता-पिताओंका ही है।

प्रस्तुत पुस्तकमें इसी समस्यापर सरल भाषामें, मौलिक ढंगसे, प्रकाश डाला गया है। पुस्तक दो खण्डोंमें विभाजित है। पहलेमें शैशवसे लेकर किशोरावस्था तकके विकास, विवेक-भावना, जीवन-परिचय, सहजीवनकी वैज्ञानिकता एवं किशोरावस्थामें पैदा होनेवाली उत्सुकताओं एवं आशंकाओंका उल्लेख और समीचीन समाधान है। दूसरे खण्डमें आजके विकास, कुमार-जीवनके साधारण नियम, आचार, शरीर और मस्तिष्कके विकास, स्वास्थ्य-रक्षा आदिका विशद वर्णन है। शिक्षाके इस नाजुक और अपेक्षाकृत शुष्क विषयको अनुभवी एवं विद्वान लेखकने कथनोपकथन द्वारा ऐसा सुबोध एवं मनोरंजक बना दिया है कि पढ़नेमें कहानी-उपन्यासका-सा मज़ा आता है। कई व्यायामोंके चित्र और विवरण भी दिए गए हैं। पुस्तक किशोरोंके बड़े कामकी है। पर प्रचारकी दृष्टिसे उसका मूल्य कुछ अधिक है। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई और गेट-अप आदि सुन्दर हैं।

लाल निशान : लेखक—श्री नरेन्द्र शर्मा ; प्रकाशक—रेड-स्टार पबलिकेशन्स, रामापुरा, बनारस ; पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य ॥) ; अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें नरेन्द्रजीके लाल निशान, लाल रूस, चीन, बुलावा, स्टालिनग्राड, योम सोवियत्, यकुम मई आदि 'जनगीत' संगृहीत हैं, जो समय-समयपर 'हंस' में प्रकाशित हो चुके हैं। भूमिका-लेखकने 'गेयताही' इन गीतोंका विशेष गुण बतलाते हुए इन्हें 'प्रचारके लिए घूम-घूमकर गाँवों और मज़दूरोंकी बस्तियोंमें गाए और गवाए जाने लायक बतलाया है। हमें खेद है, हम उनके इस कथनसे सहमत नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके पीछे महामानवताकी जो पवित्र भावना एवं प्रेरणा है, उसका प्रत्येक विचारशील व्यक्ति स्वागत ही करेगा। पर अगर कोई आशंका है, तो यही कि जो भारतीय किसान और मज़दूर भारतीय नगरोंके नामोंसे भी अपरिचित हैं, उनके हृदयको रूस और चीनके ये गीत कहाँ तक छू सकेंगे?

यद्यपि गीतोंकी भाषा काफ़ी सरल और आम-फ़हम है; फिर भी भारतीय किसान-मज़दूर उसे भलीभाँति समझ सकेंगे, ऐसा हम विश्वासपूर्वक नहीं कह सकते। 'खोलो लाल निशान'से पता नहीं, लेखक किसान-मज़दूरोंसे कौन-सा निशान खुलवाना चाहते हैं? फिर 'सब मिल दल-बल हो छा जाओ'—कहाँ, किसपर? संगठनका अर्थ किसीपर छा जाना तो नहीं है। इसी तरह 'पूरब-पश्चिम उत्तर-दक्खिन, धरतीके चारों कोने गिन' भी किसी निरर्थक तुकबन्दी ही है। प्रथम तो दिशाएँ धरतीके कोने नहीं हैं ; फिर उन्हें गिननेकी ज़रूरत? शायद दिशाएँ गिनकर शत्रुके हरानेकी 'स्ट्रेटेजी' कोई कवि ही सुझा सकता है! ऐसी ही भ्रान्तिपूर्ण तुकबन्दी है—'जो मेहनतसे पैदा करते, मालिक हैं वह दुनिया-भरके!' क्या खूब? तब तो यह भी एक क़िस्म साम्राज्यवाद हो गया! मेहनतकश अपनी पैदा की हुई चीज़के मालिक हैं, दुनिया-भरके कैसे?

लाल रूस, बुलावा, स्टालिनग्राड, योम सोवियत, और यकुम मई आदि कविताएँ विशेष रूपसे सुन्दर बन पड़ी हैं। कुल मिलाकर कविताएँ पठनीय और हिन्दीमें एक नई धाराकी परिचायक हैं। —भगवत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

जिन्नाको गांधीजीका पत्र

गत २४ अप्रैलको दिल्लीमें हुए मुस्लिम-लीगके अधिवेशनमें सभापतिके आसनसे भाषण देते हुए श्री जिन्नाने कहा था—"यदि मि० गांधी वास्तवमें मुस्लिम-लीगसे समझौता करनेके इच्छुक हैं, तो मुझसे अधिक इसका स्वागत और कोई नहीं करेगा। मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि वह हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंके लिए सबसे उज्ज्वल दिन होगा। अगर मि० गांधीकी यही इच्छा है, तो उन्हें सीधा मुझे पत्र लिखनेसे कौन रोक सकता है? (हर्ष-ध्वनि) कौन है, जो उन्हें ऐसा करनेसे रोक सके? (फिर हर्ष-ध्वनि) वाइसरायके पास जानेसे क्या लाभ? भले ही इस देशकी यह सरकार सबल हो; पर मैं विश्वास नहीं कर सकता कि अगर ऐसा पत्र मुझे भेजा जाय, तो वह उसे रोकनेका साहस करेगी। (और हर्ष-ध्वनि) अगर ऐसा पत्र रोक लिया गया, तो यह एक बड़ी गम्भीर बात होगी।"

जिन्नाके इस कथनने हिन्दू-मुस्लिम-एकताके पक्षपातियोंके मनमें एक नई आशाके अंकुर पैदा किए। पता नहीं, उनके इस कथनके मूलमें हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी हार्दिक भावना थी या यह चाल कि गांधीजी शायद उन्हें सीधा पत्र न लिखें—फिर सरकार द्वारा उसके रोके जानेका तो सवाल ही क्या—और इस तरह जिन्नाकी वाहवाही होगी कि वे तो समझौतेके लिए तैयार हैं; परन्तु गांधीजी (और सरकार भी) ऐसा नहीं होने देते। पर बात कुछ उल्टी ही हो गई। गांधीजीने—जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-एकता-सम्बन्धी अपनी ग़लतियों व मजबूरियोंको सदा सार्वजनिक रूपसे स्वीकार किया है और जिन्नाकी बद-सलूकी तथा बद-कलामीके बावजूद कई बार उनसे मिलने और उन्हें पत्र लिखनेकी तत्परता दिखाई है—क़ायदे-आज़मकी इस कमज़ोरीको स्वीकारकर उनसे मिलनेकी इच्छा प्रकट करते हुए एक पत्र लिख ही तो दिया! इस तरह उन्होंने यह साबित कर दिया कि वे 'वास्तवमें मुस्लिम-लीगसे समझौता करनेके इच्छुक' हैं; और सरकार-बहादुरने इस साधारण पत्रको रोकनेका 'साहस' (जिसे 'दुःसाहस' कहना ज़्यादा ठीक होगा) भी किया। हाँ, इतनी 'मेहरबानी' उसने ज़रूर की कि जिन्नाको गांधीजीके पत्रमें क्या लिखा है, यह बतला दिया। इस सम्बन्धमें गत २६ मईको नई दिल्लीसे प्रकाशित सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया है—"भारत-सरकारको मि० गांधीका एक निवेदन मिला है, जिसके द्वारा उन्होंने अपने एक छोटे-से पत्रको मि० जिन्नाके पास भेजनेकी प्रार्थना की है। पत्रमें मि० जिन्नासे मिलनेकी इच्छा प्रकट की गई है। मि० गांधीके साथ पत्र-व्यवहार या मुलाक़ातोंके विषयमें अपनी प्रसिद्ध नीतिके अनुसार भारत-सरकारने निश्चय किया है कि यह पत्र आगे नहीं भेजा जा सकता और इसकी सूचना मि० गांधी व मि० जिन्नाको दे दी गई है। सरकार एक ऐसे व्यक्तिको, जो एक ग़ैर-कानूनी सामूहिक आन्दोलनको प्रोत्साहित करनेके लिए नज़र-बन्द है और जिसने इसे अस्वीकार न करके एक नाज़ुक समयमें भारतके युद्ध-प्रयासको भारी धक्का पहुँचानेका प्रयत्न किया है, राजनीतिक पत्र-व्यवहार या सम्पर्ककी सुविधाएँ नहीं दे सकती। यह मि० गांधीपर निर्भर है कि वे भारत-सरकारको ऐसा विश्वास दिलायँ, जिससे कि उन्हें एक बार फिर देशके सार्वजनिक मामलोंमें भाग लेनेकी इजाज़त दी जा सके; और जब तक वे ऐसा नहीं करेंगे, तब तक वे कठिनाइयाँ, जिनसे वे कष्ट पा रहे हैं, उनकी अपनी पसन्द हैं।"

क़ायदे-आज़मकी बदहवासी

सरकारके इस विचित्र रुखकी देश और विदेशके अनेक प्रमुख पत्रों एवं नेताओंने कड़ी आलोचना एवं निन्दा की है। मुस्लिम-भारतमें तो इससे काफ़ी नाराज़गी फैली है। सिन्ध-प्रान्तीय मुस्लिम-लीगके संयुक्त-मन्त्री सेठ यूसुफ़अब्दुल्ला हारूँने दूसरे ही दिन एक वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमें कहा—"सरकारके इस कार्यकी देश और विदेशमें समान रूपसे निन्दा की जायगी। मुस्लिम-भारतके लिए तो यह ख़ास तौरसे चिन्ताका विषय है, क्योंकि क़ायदे-आज़मने विशेष रूपसे सरकारको ज़ोरोंके साथ ऐसा बेहूदा क़दम उठानेके खिलाफ़ चेतावनी दे दी थी।" युक्त-प्रान्तके प्रमुख लीगी ज़ेड० ए० लारी साहबने कहा—"भारत-सरकारने हमारे सदरको लिखे गए पत्रको रोकनेका 'साहस' किया है। यह एक बड़ी गम्भीर बात है। सारी स्थितिपर विचार करनेके लिए मुस्लिम-लीगका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशेष अधिवेशन बुलाया जाना चाहिए।" सीमा-प्रान्तके खान अलीगुलखांने कहा—"अब जिन्नाकी बारी है। हम देखना चाहते हैं कि वे इस समस्याको हल करनेके लिए क्या करते हैं? मुझे विश्वास है कि सरकारकी ताज़ा घोषणा जनता द्वारा राजनीतिक संकट दूर करनेके प्रयत्नोंमें अनावश्यक बाधा है।"

लेकिन मुस्लिम-भारत जो सोचता-समझता था, जिन्ना साहबकी समझ-बूझमें भला वही क्यों आता? उस हालतमें उनकी विशेषता और विशिष्टता ही क्या थी? उन्होंने गांधीजीके पत्रके जो अर्थ निकाले, वे सर्वसाधारणकी समझसे कोसों परे मालूम पड़ते हैं। गत २८ मईको एक वक्तव्य निकालकर आपने बतलाया है—"मि० गांधीके इस पत्रकी यही व्याख्या की जा सकती है कि उनकी ओरसे यह चाल ब्रिटिश गवर्मेण्टके साथ संघर्षमें लाकर मुस्लिम-लीगको उलझानेकी है, जिसका एकमात्र उद्देश्य अपनी रिहाईमें मदद प्राप्त करना है; ताकि स्वतन्त्र होनेके बाद वे जो चाहें करें। मि० गांधीकी नीतिमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है और मुस्लिम-लीगके दिल्ली-अधिवेशनमें मैंने जो सुझाव रखे थे, उनको पूरा करनेकी कोई हार्दिक इच्छा नहीं दिखाई गई है। यद्यपि मैं मि० गांधी या किसी भी हिन्दू-नेतासे सदा मिलनेको तैयार हूँ और उनसे अब भी मिलकर प्रसन्न हूँगा, फिर भी केवल यह मिलनेकी इच्छा प्रकट करने-मात्रसे वह पूरा नहीं होगा।.....मैंने सुझाव रखा था कि मि० गांधी मुझे यह सूचित करते हुए पत्र लिखें कि वे अपना क़दम पीछे लौटानेको तैयार हैं, और ८ अगस्तके प्रस्ताव द्वारा निर्धारित नीति और प्रोग्रामको त्यागनेके लिए तैयार हैं, और पाकिस्तानके आधारपर मुस्लिम-लीगसे समझौता करनेके लिए तैयार हैं; तो हम बीती बातोंको बिसारनेके लिए तैयार हैं। अगर मि० गांधी ऐसा लिखते, तो मुझे विश्वास है कि सरकार उनके ऐसे पत्रको रोकनेका साहस नहीं करती।....."

हमें खेद है, हम श्री जिन्नाकी इस बातको मुतलक़ नहीं समझ सके कि केवल उनसे मिलनेकी इच्छा प्रकट करनेवाले गांधीजीके साधारण-से पत्रमें उन्हें लीगको सरकारके साथ संघर्षमें लानेकी भावना कैसे दीख पड़ी? सरकारके रुखके बारेमें उन्हें कोई मुग़ालता नहीं होना चाहिए था। गांधीजीके सम्पर्कमें आनेकी जो सुविधा डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, राजाजी और विलियम फिलिप्सको नहीं मिली, वह उन्हें मिल भी कैसे सकती थी? रही पाकिस्तानके आधारपर—जिसे अस्वीकार करते हुए कांग्रेस प्रस्ताव पास कर चुकी है—समझौता करनेकी रज़ामंदी ज़ाहिर करनेकी बात; सो जिन्ना स्वयं सोच सकते हैं कि जो सरकार गांधीजीके मुलाक़ातके पत्रको भी उन्हें नहीं भेज सकती, वह उनका राजनीतिक चर्चावाला पत्र कैसे उन तक पहुँचने दे सकती थी? फिर गत ८ अगस्तके प्रस्तावका क़दम पीछे हटानेकी बात तो इतनी असंगत है कि हमें भय होने लगता है कि आया जिन्ना लीगके प्रधानकी हैसियतसे बोल रहे हैं या सरकारी एडवोकेटकी हैसियतसे? वह प्रस्ताव सरकार और कांग्रेसके झगड़ेसे सम्बन्धित है, लीग और कांग्रेसकी समस्यासे नहीं। यह कहना तो और भी बौड़मपन है कि जिन्नाको पत्र लिखकर गांधीजी अपनी रिहाईमें मदद पाना चाहते हैं। प्रथम तो जिन्ना महाशयको अपने और लीगके महत्वके बारेमें इतना मुग़ालता होना ही नहीं चाहिए; पर अगर ऐसी भी बात हो, तो जिन्नाको गांधीजी या कांग्रेसियोंकी रिहाईसे इतना डर क्यों? क्या समझौतेके लिए भी जिन्ना गांधीजीकी रिहाई बर्दाश्त नहीं कर सकते? क्या खूब सद्भावना है!

इन अनावश्यक और अप्रासंगिक बातोंको उठाकर जिन्नाने असली समस्याको धुँधला करने और अपनी ज़िम्मेदारी तथा कर्त्तव्य-पालनसे मुँह चुरानेकी मनोवृत्तिका ही परिचय दिया है। गांधीजीकी नीति बदली है या नहीं, यह तो वे उनसे मिलकर ही जान सकते थे। अगर गांधी-वाइसराय-पत्रव्यवहार ही इस बातका अन्तिम परिचायक था, तो फिर उन्हें चुनौती देनेकी क्या ज़रूरत थी? गांधीजीके पत्रको सरकारने रोका है, इसका जिन्नाके पास क्या जवाब है? क्या फिर ऊपर दी गई धमकी कोरी गीदड़-भभकी या शान बघारना ही था? और तारीफ़की बात तो यह है कि समूचे भारतके मुसलमानोंके प्रतिनिधि होनेका दम भरनेवाले इन क़ायदे-आज़मने इस सबपर विचार करनेके लिए लीग या लीग-कौंसिलकी कोई बैठक बुलाना भी आवश्यक नहीं समझा!

मुस्लिम-भारतका विरोध

जिन्नाके अहम्मन्य एवं अविचारपूर्ण रुखकी कई सप्ताह देशभक्त मुसलमानोंने—जो हिन्दू-मुस्लिम-एकता और देशकी आज़ादीको अपने ऐश-आराम, शान तथा वैयक्तिक महत्वाकांक्षाओंसे ऊपर समझते हैं—निन्दा एवं कटु आलोचना की है। मद्रास-प्रान्तीय मुस्लिम-लीगके मन्त्री श्री ए० एम० अल्लापिचाईने तो विरोध-स्वरूप अपने पदसे इस्तीफ़ा भी दे दिया है। कांग्रेस-लीग-समझौतेके सच्चे हिमायती होनेके कारण आप मद्रासके लीगी क्षेत्रोंमें काफ़ी अप्रिय भी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य श्री शमशुल्उलेमा कमाल्दीनने एक वक्तव्यमें कहा है—"मुस्लिम-लीग-अधिवेशनमें दिया गया मि० जिन्नाका भाषण और यह वक्तव्य संगत नहीं जान पड़ते। उनके इस ताज़े वक्तव्यसे मालूम होता है कि वे सरकारको खुश रखना चाहते हैं, सम्भवतः इसलिए कि कई प्रान्तोंमें जो लीगी मन्त्री हैं, वे उन प्रान्तोंके गवर्नरोंकी सहायतासे बरक़रार रहें!.....मुझे विश्वास है, मि० जिन्ना और उनके समर्थक चाहे जो रुख अख्तियार करें, भारतमें काफ़ी तादादमें मुसलमान हैं, जो शीघ्र हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्नका हल चाहते हैं और अड़ंगेबाज़ीकी नीतिके विरोधी हैं।"

बम्बईके श्री अब्दुर्रहमान मीठाने कहा है—"पैंतरेबाज़ मि० जिन्ना अपने पुराने आँख-मिचौनीके खेलमें एक बार फिर अच्छे बेहतरीन रूपमें आए हैं। कांग्रेसके राजनीतिक क्षेत्रसे दूर होनेके कारण पिछले एक वर्षसे उन्होंने जैसे भारतीय राजनीतिक मंचपर एकाधिकार कर लिया है और अपना प्रभुत्व जमानेके लिए सब-कुछ कर रहे हैं। यह सब वे उस स्वाधीनताको नज़र-अन्दाज़ करके कर रहे हैं, जिसके बिना पाकिस्तान कोरा स्वप्न ही है।...आज जब गांधीजीने जिन्नाकी चुनौतीका उत्तर दिया है और सरकारने बड़ी हिकारतके साथ जिन्नाकी धमकीकी उपेक्षा की है, जिन्ना बहुत बड़ा धोखा साबित हुए हैं।...यह निःसंदिग्ध है कि जिन्ना कांग्रेसजनोंकी रिहाई सहन नहीं कर सकते। वे स्वभावतः मौजूदा आर्डिनेंस-राजमें रहने और जब तक कांग्रेस इनकी बेहूदगी और भ्रान्तियोंको सन्तुष्ट न करे, अनिश्चित कालके लिए पाकिस्तानको स्थगित रखनेको तैयार हैं। भले ही अपनी इच्छासे न हो, पर मि० जिन्ना बड़े अच्छे रूपमें साम्राज्यवादी खेलकी चालें चल रहे हैं। कमसे कम अब तो भारतके लोगोंको ज़ाहिर हो ही जाना चाहिए कि वे कितने पानीमें हैं? वे अपने पाकिस्तानी स्वप्नके नामपर कब तक मुस्लिम-जनताको झाँसा देते रहेंगे?"

ये मत उन लोगोंके नहीं हैं, जो 'हिन्दू' अथवा 'कांग्रेसी' हैं, जिनसे जिन्नाको चिढ़ है; बल्कि उन लोगोंके हैं, जो न जिन्नासे कम असहमतदार हैं और न उनसे कम मुसलमान ही। हाँ, हिन्दू-मुस्लिम-एकताके हिमायती वे ज़रा जिन्नासे भिन्न कोटिके हैं। हम अपने मुसलमान भाइयोंसे अपील करेंगे कि वे ठण्डे दिलसे दिमाग़से सोचें कि एक व्यक्तिका औद्धत्य, विद्वेष और अविचार उन्हें किस खाईकी ओर ले जा रहा है? इस तरहकी अदूरदर्शितासे न सिर्फ़ हिन्दू-मुस्लिम-एकताके मार्गमें ही बाधा पड़ रही है, बल्कि मुल्ककी आज़ादी भी—जिसके बिना पाकिस्तान या मुसलमानोंका आत्म-निर्णयका अधिकार कोरा स्वप्न ही रहेगा—दूर होती जा रही है।

गांधीजीपर मुक़दमा नहीं चलेगा!

गत २७ मईको हाउस आफ़् कामन्समें मज़दूर-दलके सदस्य श्री सोरेन्सेनके एक प्रश्नका उत्तर देते हुए—जिसमें यह पूछा गया था कि क्या सर तेजबहादुर सप्रू व अन्य ग़ैर-कांग्रेसी नेताओंकी इस ताज़ा प्रार्थनाका कि महात्मा गांधी व उनके सहयोगियोंके खिलाफ़ 'ह्वाइट-पेपर'में वर्णित जापानके प्रति सहानुभूति रखने आदिके आरोपोंका खण्डन करनेके लिए उन्हें एक अदालतमें पेश किया जाय, कोई उत्तर दिया गया है—भारत-मन्त्री श्री एमरीने कहा कि भारत-सरकारका मि० गांधी और अन्य नज़रबन्द कांग्रेसी नेताओंपर मुक़दमा चलानेका कोई इरादा नहीं है। आगे चलकर आपने कहा कि भारत-सरकार द्वारा दुबारा प्रकाशित 'ह्वाइट-पेपर'में (कांग्रेस-नेताओंपर) जापानके प्रति सहानुभूति रखनेके आरोप नहीं हैं।

किसी देशकी प्रमुख राष्ट्रीय संस्थापर शत्रुके प्रति सहानुभूति रखनेका गम्भीर आरोप करना और फिर उसे करने या वापस लेनेका कारण एवं आधार बताए बिना ही सहसा वापस ले लेना कहाँ तक न्याय, बुद्धि और नीति-संगत है; इसका निर्णय हम विश्व-लोकमतपर ही छोड़ते हैं। पर न्याय-नीतिका यह तकाज़ा तो फिर भी है ही कि या तो अभियुक्तोंको खुली अदालतमें अपनी सफ़ाई देनेका अवसर दिया जाय या रिहा कर दिया जाय। यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो लोकतन्त्र और वैयक्तिक एवं सामूहिक स्वतन्त्रताका अर्थ और महत्त्व ही क्या है? यह तो केवल मनमानी हुई। श्री एमरीका उत्तर कुछ इसी तरहकी मनमानीका ही द्योतक है।

सप्रू-जयकरकी माँग न्याय-नीतिकी न्यूनतम माँग है। हम तो बराबर इसी बातपर ज़ोर देते आ रहे हैं कि जब सरकारके पास काफ़ी और पुख्ता सबूत हैं, तो उसे नज़रबन्द व्यक्तियोंपर मुक़दमा चलाना चाहिए और उन्हें अपनी सफ़ाई देनेका मौक़ा देना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता, तो उन्हें छोड़ देना चाहिए। पर दोनोंमें से एक भी बात नहीं करना और भारतके राजनीतिक संकटको—जिससे संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंमें पूर्ण सहायता-सहयोग मिलने और देशकी आन्तरिक कठिनाइयोंको दूर करनेमें भारी बाधा उपस्थित हो रही है—अनिश्चित काल तक जारी रखना न तो अक़्लमन्दी ही है और न राजनीतिज्ञता ही। इस तरहका अविचार एवं अनीति भारतीय जनताके प्रति घोर अपराध हैं। क्या सरकार फ़िर इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धमें ठण्डे दिल व दिमाग़से विचार करेगी ?

सरकारकी मूर्खतापूर्ण भूल

लन्दनकी टैगोर-सोसाइटीके प्रधानको प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जार्ज बरनार्ड शाने जो सन्देश भेजा था, वह गत २७ मार्चके 'मैंचेस्टर गार्जियन'में प्रकाशित हुआ है। उसमें कहा गया है—"महात्मा गांधीको क़ैदमें डालकर सरकारने एक बहुत ही मूर्खतापूर्ण भूल की है। इस भूलने तथा इससे सम्बन्धित बेतबाज़ीके अक्षन्तव्य कार्यने हिटलरके विरुद्ध हमारे नैतिक दावेको खत्म कर दिया है। बादशाहको चाहिए कि वे महात्मा गांधीको बिना किसी शर्त्तके रिहा कर दें और अपने मन्त्रिमण्डलकी दिमाग़ी खराबीके लिए उनसे क्षमा माँगें। ऐसा करनेसे ही भारतकी स्थिति बिगड़नेसे बच सकती है।"

पता नहीं, ब्रिटिश सरकार और जनता श्री शाके ग्रन्थोंकी भाँति ही उनके इस नसीहत-आमेज़ सन्देशकी भी क़द्रकर अपनी सहज-बुद्धिका परिचय देगी या ग़लती करके उसे स्वीकार-सुधार न करनेकी हठधर्मीको ही अपनायगी ?

भारतीय स्वतन्त्रताकी स्वीकृति

गत २७ मईको लन्दनमें ब्रिटिश पार्लमेण्टके सदस्य श्री डब्ल्यू० जी० कोवकी अध्यक्षतामें एक सभा हुई, जिसमें भारतीय स्वतन्त्रताकी अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृतिके लिए एक कौंसिल बनानेका निश्चय किया गया। इस कौंसिलमें अभी तक ये लोग सम्मिलित हो चुके हैं—सर्वश्री डब्ल्यू जी० कोव, एफ० मेसर (पार्लमेण्टके सदस्य), राइज़ पी० डेवीज़, राइज जे० डेवीज़ (पार्लमेण्टके सदस्य), आर० आर० स्टोक्स (पार्लमेण्टके सदस्य), एस० एस० सिल्वरमैन (पार्लमेण्टके सदस्य), जार्ज गैरलिन, पी० बी० सील, डी० मजूमदार, एम० जैरिफ, ए० एम० बोस। समितिने निश्चय किया है कि मित्र-राष्ट्रीय धारा-सभाओंके सदस्योंसे सम्पर्क स्थापित किया जाय और जल्द ही भारतीय स्वतन्त्रताको मंज़ूर करवानेका प्रयत्न किया जाय।

भारतको आज़ाद करो !

विदेशोंमें भारतकी आज़ादीकी माँग निरन्तर व्यापक और गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। कुछ समय पूर्व वाशिंगटनमें भारतकी आज़ादीकी माँग करते हुए एक जुलूस निकाला गया था, जिसमें भाग लेनेवाले कई युवक-युवतियोंको गिरफ़्तार किया गया था। अब रायटरने समाचार भेजा है कि लन्दनकी भारतीय स्वाधीनता-समितिकी ओरसे उसके अध्यक्ष श्री फेनर ब्राकवेके तत्वावधानमें गत २८ व २९ मईको वहाँ दो जुलूस निकाले गए, जिनमें भारतकी आज़ादीकी माँग करनेवाले वाक्य पोस्टरोंपर लिखे हुए थे। चूँकि यह जुलूस इंग्लैण्डके रक्षा-नियमोंको, जिनके अनुसार वहाँ सब तरहके राजनीतिक जुलूस निकालनेकी मनाही है, चुनौती देकर निकाले गए थे, पुलिसने हस्तक्षेप किया और उनमें भाग लेनेवाले ५०-६० व्यक्तियोंके नाम-पते लिख लिए।

श्री फेनर ब्राकवे पिछले ३४ वर्षोंसे ब्रिटेनके स्वतन्त्र मज़दूर-दलके सदस्य हैं और तबसे कई बार भारतकी आज़ादीके लिए आवाज़ उठा चुके हैं। आपका बचपन भारतमें ही—जहाँ आपके पिता पादरी थे—बीता है। युद्ध-विरोधी और शान्तिवादी होनेके कारण आप कई बार जेल-यात्रा कर चुके हैं। स्वतन्त्र मज़दूर-दलमें शामिल होनेके बाद आपका सबसे पहला भाषण (सन् १९११ में) भारतपर ही हुआ था।

'कांग्रेस ही भारत है !'

पटनाके सहयोगी 'इण्डियन नेशन'में अभी हाल ही में एक बड़ी मज़ेदार बात छपी है, जो भारतके भूतपूर्व चीनी दूत सर ज़फरुल्लाखाँने लाहौर-हाईकोर्टके किसी जजसे कही बतलाते हैं। उन्होंने बताया कि चुंकिंगमें एक बार जनरलिसिमो च्यांग-काई-शेकसे बातचीतके दौरानमें उन्होंने कहा कि यद्यपि कांग्रेस भारतकी सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था है; पर वही एकमात्र संस्था नहीं है, अन्य संस्थाएँ भी हैं—जैसे मुस्लिम-लीग और हिन्दू-महासभा। जनरलिसिमोने यह बात बड़े ध्यानसे सुनी और फिर ज़रा मुस्कराकर कहा—"मैंने तो इसी विचारके साथ भारत छोड़ा कि कांग्रेस ही भारत है और भारत ही कांग्रेस है!"

'कांग्रेस लोकतन्त्रात्मक है !'

ब्रिटिश ब्रोडकास्टिंग-कार्पोरेशनकी भूतपूर्व गवर्नर तथा सोमरविले-कालेज, आक्सफोर्डकी भूतपूर्व प्रिंसिपल कुमारी मार्गरी फ्राइ अभी हाल ही में १० मास तक संयुक्त-राज्य अमरीकाकी यात्रा करके लौटी हैं। गत १ मईको लन्दन पहुँचने पर आपने कहा कि अमरीकाको भारतीय समस्याके हलमें अधिकाधिक सहयोग देना चाहिए। 'ईवनिंग स्टैण्डर्ड'के संवाददाताको आपने बतलाया कि बहुतसे अमरीकन कांग्रेसको वाशिंगटनकी कांग्रेसकी भाँति ही पूर्णतया लोकतन्त्रात्मक समझते हैं और उनका खयाल है कि ब्रिटेनका एक इशारा ही उसे भारतीयोंपर शासन करनेकी पूर्ण क्षमता प्रदान कर सकता है। उनकी रायमें बाग़ी भारत युद्धको लम्बा करेगा। आपका कहना है कि अमरीका और ब्रिटेनके सम्बन्धोंमें भारत एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी जापान-विरोधी हैं!

गत २३ फरवरीको सानफ्रांसिस्कोके टाउन-हालमें भारतीय समस्यापर भाषण देते हुए प्रसिद्ध अमरीकन पत्रकार श्री लुई फिशरने कहा—"एक आदमी है, जिसका मत मैं मानता हूँ कि कौन जापान-विरोधी है और कौन जापान-पक्षीय। वह हैं च्यांग-काई-शेक, और वे गांधीजी तथा भारतकी आज़ादीके पक्षमें हैं। जैसा कि मैं आपको बता चुका हूँ, पिछले महीनोंमें उन्होंने कई बार प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट और विन्स्टन चर्चिलसे ब्रिटेनकी भारतीय नीतिके नरम किए जानेका अनुरोध किया है।"

पता नहीं, चर्चिल और एमरी लुई फिशरसे भी अधिक बुद्धिमान और लोकतन्त्रवादी तथा च्यांगकाई-शेकसे भी अधिक जापान-विरोधी हैं या कुछ और; पर यह तो स्पष्ट है कि उन्होंने अब तक इन सत्परामर्शोंसे लाभ उठाकर अपनी ग़लत और अविचारपूर्ण नीतिको बदला नहीं है। पता नहीं; इस शुभ कार्यके श्रीगणेशके लिए वे किस शुभ घड़ीकी प्रतीक्षामें हैं?

सुदूर-पूर्वकी विजय और भारत

गत मास ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री चर्चिलने अपने फ़ौजी अधिकारियों एवं सलाहकारोंके साथ वाशिंगटनकी यात्रा की। अपने साथ वे राष्ट्रपति रूज़वेल्टके नाम ब्रिटेनके बादशाहका एक पत्र भी ले गए थे। कासाब्लांका और अदानाके बाद हुई इस बातचीतमें, रायटरके विशेष संवाददाताके कथनानुसार, यह तय किया गया बतलाते हैं कि पहले हिटलरको हरानेके लिए यूरोपमें सम्भवतः इटली या नारवेमें दूसरा मोर्चा खोला जायगा और फिर जापानको चारों ओरसे घेरकर तथा हवाई-हमलों द्वारा पराजित किया जायगा। कई पत्रोंने यह भी क़यास किया है कि सम्भवतः जापानपर बड़े पैमानेपर बमबाज़ी करनेके लिए रूससे उसके पूर्वी हवाई-अड्डोंकी भी माँग की जायगी।

पर सुदूर-पूर्वकी विजयके लिए भारतकी स्थिति रूससे अधिक नहीं, तो कम महत्त्वपूर्ण भी नहीं है। हवाई-हमलोंसे दुश्मनको कमज़ोर ज़रूर किया जा सकता है; पर हराया तो जमीन जल या थलपर ही जा सकता है। इस दृष्टिसे भारतका महत्त्व अतुलनीय है। जापानके नए 'साम्राज्य'के एक बहुत बड़े भागको वह अपने जल-थलके बाहुओंसे घेरे है। हमें नहीं मालूम कि ब्रिटिश अधिकारी अथवा संयुक्त-राष्ट्र भारतको जापानपर आक्रमण करनेका कैसा आधार एवं शस्त्रागार बना रहे हैं; पर इतना तो हम दृढ़ता-पूर्वक कह ही सकते हैं कि बेशुमार विदेशी सेना और युद्ध-सामग्रीके बावजूद भारतको दृढ़ जापान-विरोधी गढ़ एवं आक्रमणका आधार बनानेके लिए भारतीयोंका स्वेच्छापूर्ण एवं हार्दिक सहयोग-साहाय्य प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। यह सहयोग सुदूर-पूर्वकी विजयके लिए जितना आवश्यक है, उतना ही इसके बाद स्थापित होनेवाली शान्तिके लिए भी अपरिहार्य है।

यह एक बड़ी ही अच्छी समसामयिक घटना हुई कि जब चर्चिल-रूज़वेल्टमें संयुक्त-राष्ट्रोंकी भावी युद्ध-नीतिके सम्बन्धमें चर्चा हो रही थी, तभी अमरीकाके भारतीय एलची भी—जिन्हें भारत-स्थित ब्रिटिश अधिकारियोंने गांधीजीसे मिलने नहीं दिया था—वाशिंगटन पहुँचे। अपने राष्ट्रपतिसे उन्होंने इस बीचमें तीन बार भेंट की और सम्भवतः उनमें और चर्चिलमें भी भारतीय समस्याको लेकर विचार-विनिमय अवश्य हुआ होगा। सुना है, श्री फिलिप्स आगामी मास भारत लौट रहे हैं और शायद इस बार वे कांग्रेसके नज़रबन्द नेताओंसे भेंट भी करें। जो कुछ भी हो, हम इस बातके लिए उत्सुक हैं कि शीघ्रसे शीघ्र भारतके राजनीतिक ज़िचको खत्म किया जाय—कारण, यही संयुक्त-राष्ट्रोंकी सुदूर-पूर्वकी विजयकी नीतिका सुमेरु है।

भारतीय सैनिकोंकी वीरता

तूनिसकी (ट्यूनीसिया), जहाँ गत १२ मईको लड़ाई खत्म हो गई, विजयकी सबसे उल्लेखनीय घटना है जर्मन सेनापति जनरल फ़ान आर्निमको भारतीय सैनिकों द्वारा बन्दी किया जाना। उत्तर-अफ्रीकाके मित्र-राष्ट्रीय प्रधान-कार्यालयकी विज्ञप्तिमें कहा गया है कि आर्निमको केप बोनमें चतुर्थ भारतीय डिविज़नने बन्दी बनाया। इस आश्चर्यजनक घटनाका विवरण देते हुए रायटरके विशेष संवाददाताने—जो उत्तर-अफ्रीकामें प्रथम सेनाके साथ था—लिखा है: "गत १२ मईको आर्निमने मित्र-राष्ट्रों द्वारा भेजे गए बिला-शर्त्त आत्म-समर्पणके घोषणा-पत्रपर हस्ताक्षर करनेसे इन्कार कर दिया। इसी बीच तेज़ीसे आगे बढ़नेवाली ब्रिटिश सेनाकी अगुआ भारतीय टुकड़ीने जाकर संत मारी दूज़ितमें आर्निमके कार्यालयको घेर लिया और उन्हें बन्दी बना लिया!"

भारतीय सैनिकोंकी इस वीरताकी संयुक्त-राष्ट्रोंके अधिकारियों एवं जनताने मुक्तकण्ठसे दाद दी है। पार्लमेण्टके एक सदस्यने तो यहाँ तक कहा है कि कुछ भारतीय सैनिकोंको प्रदर्शनके लिए अमरीका भी भेजा जाय। इस सम्बन्धमें 'डेली हैराल्ड'में लिखते हुए श्री हेनेन स्वेफ़रने पूछा है—"एल-अलामीनसे तूनिस तककी लड़ाईमें भारतीय सेनाने जो महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उसके सम्बन्धमें तथ्य कब बतलाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँगे ? मैं बराबर उनकी लासानी हिम्मत और हानियोंकी ही कहानियाँ सुनता रहता हूँ।"

निश्चय ही श्री स्वेफ़रका प्रश्न बड़ा अर्थ एवं महत्त्वपूर्ण है और उसका उत्तर वांछनीय है। हमारी समझमें तो यही क्या कम तथ्यपूर्ण बात है कि मित्र-राष्ट्रोंने भारतीयों द्वारा आर्निमको बन्दी बनाए जानेकी घोषणा तो की!

भारत स्व-शासित उपनिवेश होगा ?

ब्रिटिश मज़दूर-दलने राष्ट्रोंके पारस्परिक राजनीतिक मामलोंको निपटानेके लिए रूस, चीन, अमरीका और ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलकी एक संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता स्थापित करनेका सुझाव रखा है, जो 'शान्तिकी सशस्त्र पहरेदार' होगी। यह भी कहा गया है कि भारतको भी स्व-शासित उपनिवेश बनाकर 'स्वतन्त्र उपनिवेशों'के इस राष्ट्र-मण्डलमें शामिल किया जायगा।

हमें खेद और आश्चर्य है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता और नीतिका बाजू बननेके बाद मज़दूर-दल भी, जिसे समूचे साम्राज्य नहीं, तो कमसे कम ब्रिटेनके श्रमजीवियोंकी आशा तो कहा ही जा सकता था, इतना प्रतिगामी हो गया है। प्रथम तो भारतको औपनिवेशिक दरजा देना या दिलाना उसके हाथकी बात नहीं; फिर बहैसियत एक स्वाधीनता और लोकतन्त्रवादी राजनीतिक दलके उसे तो इस निर्णयको भारतीयोंकी इच्छापर ही छोड़नेका अनुरोध करना चाहिए था। काश, मज़दूर-दलने अपनी पुरानी विफलताओं और उपनिवेशोंकी तथाकथित 'स्वतन्त्रता'के भण्डाफोड़से कुछ सबक़ हासिल किया होता!

संसारका नेतृत्व

गत १८ मईको न्यूयार्कमें दिए गए एक भोजमें श्री वेंडेल विल्कीने कहा—"हमें संसारका नेतृत्व करनेवाले राष्ट्रोंका दायरा बढ़ाना चाहिए। ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य अकेले संसारका नेतृत्व नहीं कर सकेंगे। रूस, चीन तथा अन्य राष्ट्रोंको भी इसमें प्रमुख भाग लेने देना चाहिए।"

निश्चय ही श्री विल्कीका संकेत एक ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी ओर है, जो विश्वकी भावी शान्ति, समृद्धि एवं संघर्षका मेरु-दण्ड है। पिछले दो महायुद्धोंका इतिहास बतलाता है कि लाखों आदमियोंके रक्तपात और करोड़ोंकी सम्पत्तिके विनाशका कारण उन पूँजीवादी शासकोंकी साम्राज्य-लिप्सा रही है, जो अपने स्वार्थके लिए विश्वपर आधिपत्य जमानेका स्वप्न देखते रहे हैं। इनके आदेश, इशारे और अर्थ तथा सत्ता-बलके कारण एक देशके ग़रीब और नासमझ लोगोंको दूसरे देशके ग़रीब और नासमझ लोगोंकी बिना किसी दोष, द्वेष या शिकायतके हत्या करनी पड़ी है। इस पागलपनका अन्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि कोई भी राष्ट्र या कुछ राष्ट्रोंका गुट्ट इतना क्षमताशाली न बन जाय कि वह अपनेसे कमज़ोर राष्ट्र या राष्ट्रोंपर बलात्कार कर सके। इसके लिए यह परमावश्यक है कि कोई अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्र-संघ हो। पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि राष्ट्र-सत्ता जनताके सच्चे प्रतिनिधियोंके हाथोंमें ही होनी चाहिए, अन्यथा पिछले राष्ट्र-संघके इतिहासकी पुनरावृत्ति होनेकी ही अधिक सम्भावना है।

अमरीकामें एशियावासियोंका प्रवेश

'हिन्दू'के लन्दन-स्थित संवाददाताने लिखा है—"संयुक्त-राज्य अमरीकाकी धारा-सभाके सम्मुख १८८२ के एशियाई-विरोधी क़ानूनोंको मंसूख करनेका प्रस्ताव विचाराधीन है। इसके अनुसार चीनियों तथा संयुक्त-राष्ट्रोंके साथ लड़नेवाले अन्य देशोंके लोगोंको कोटा-नियमोंके अनुसार अन्य प्रवासियोंके समान ही संयुक्त-राज्यके नागरिक होनेका अधिकार होगा। इस बिलके मुख्य समर्थक वाल्टर जूडका कहना है कि इस बिलको पास करनेसे सुदूर-पूर्वमें हमें उतनी ही राजनीतिक विजय प्राप्त होगी, जितनी कि २० डिविज़नोंसे हो सकती है। इस योजनाके अनुसार प्रतिवर्ष उन जातियोंके, जिनका प्रवेश इस समय निषिद्ध है, ६०० व्यक्ति अमरीकामें प्रवेश कर सकेंगे।"

इसके साथ ही चीनके राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें अमरीकाके चीनी-प्रवेश-निषेध-क़ानूनको रद्द करनेका आन्दोलन होनेका समाचार भी छपा है। हम अपने चीनी भाइयोंके इस कथनसे सर्वथा सहमत हैं कि न्याय, समानता और विश्व-भ्रातृत्वके सिद्धान्त एवं भावनाको अमली जामा पहनाने और इस बातका सबूत देनेके लिए कि अमरीका नात्सियोंकी वर्ण-श्रेष्ठताकी भ्रान्तिका शिकार नहीं है, इस तरहके भेद-भावपूर्ण अनुचित क़ानूनोंको जितना जल्दी मंसूख किया जाय, बेहतर है। १९२४ के बादसे कोई भी एशियावासी विद्यार्थी-काल या यात्राके सिवा ६ मासेसे अधिक अमरीकामें नहीं रह सकता। आर्थिक भ्रान्ति और सामाजिक भेद-भावके अलावा ऐसे क़ानूनोंका कोई नैतिक आधार नहीं है। इनका जल्दसे जल्द मंसूख किया जाना युद्धकी नैतिक विजयके लिए परमावश्यक है।

प्रवासी भारतीयोंपर नया वार

एक ओर अमरीका एशियावासियोंके प्रवेश-निषेधके क़ानून रद्द करने जा रहा है और दूसरी ओर दक्षिण-अफ्रीकाके उद्धत एवं अविचारी गोरे पीढ़ियोंसे वहाँ बसे भारतीयोंको वहाँसे निकाल बाहर करनेके लिए नए-नए बाधक और अपमानजनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ानून पास कर रहे हैं। अभी हाल ही में यूनियन-पार्लमेण्टने एक क़ानून पासकर प्रवासी भारतीयोंपर तथाकथित गोरी बस्तियोंमें रहने, ज़मीन खरीदने तथा व्यापार करने आदिकी नई पाबन्दियाँ लगा दी हैं। इसके विरुद्ध की गई उनकी प्रार्थनाओं और अनुरोधोंकी उसी निरंकुश स्वेच्छाचारिताकी ओरसे उपेक्षा की गई, जिससे कि भारतीयोंको पार्लमेण्ट तथा म्युनिसिपल-बोर्डोंके प्रतिनिधित्व एवं मताधिकारसे भी वंचित रखा गया और जा रहा है।

इस काले क़ानूनसे भारतीयोंको क्या हानि-लाभ होगा और इसके पीछे कौन-सी घृणित मनोवृत्ति काम कर रही है, इसका विशद विवेचन 'दक्षिण-अफ्रीकामें गोरावाद'-शीर्षक लेखमें (जिसका पूर्वार्द्ध गतांकमें और उत्तरार्द्ध इसी अंकमें छपा है) किया गया है। हमें खेद है कि इस भीषण हानिकर क़ानूनके विरुद्ध अभी तक उतनी ज़ोरसे आवाज़ नहीं उठाई गई है, जितनी कि उठाई जानी चाहिए। स्वामी भवानीदयालजी संन्यासीने अपनी अस्वस्थताके बावजूद पत्रों, सभाओं और अधिकारियोंसे भेंट करके इस सम्बन्धमें जो-कुछ किया है, उसके लिए देशवासियोंको उनका आभार मानना चाहिए। बम्बईके शेरिफ़ने भी गत २० अप्रैलको सुन्दरबाई हंसराज जगन्नाथ-हालमें इसके विरुद्ध एक सार्वजनिक सभा की, जिसमें सर जमशेदजी एन० दुग्गन, सेठ हरिदास माधवदास, डा० टी० एम० काजीजी, सर चिमनलाल सीतलवाड, डा० जयकर, सर होर्मी मोदी, श्री जमनादास मेहता, श्री हुसेनभाई लालजी, सर गुलाम मसानी, श्री बी० जी० हार्निमैन, भारत-सरकारके दक्षिण-अफ्रीका-स्थित एजेण्ट-जनरल सर बी० रामराव, सर पुरुषोत्तम-दास ठाकुरदास, एम० आर० ए० बेग, एम० ए० जादवत, श्री अलीमोहम्मद मेकलाई, सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी, सर रहीमतुल्ला सयानी तथा श्री जमनादास द्वारकादास आदिने कड़े शब्दोंमें इस काले क़ानूनकी निन्दा की। पर इतना ही काफ़ी नहीं है। भारतके प्रत्येक नगर-ग्राममें सभाकर इस काले क़ानूनके विरोधमें और उसे वापस लिए जानेका अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किए जाने चाहिएँ और देशके समस्त पत्रोंको इसके विरुद्ध ज़बर-दस्त आन्दोलन करना चाहिए। यह २-२॥ लाख भारतीयोंके पेट या अधिकारका नहीं, ४० करोड़ भारतीयोंके स्वाभिमान, सम्मान और इज्ज़त तथा परिश्रमसे रोज़ी कमानेके अधि-कारका सवाल है। इतने बड़े अपमानको चुपचाप पी जाना क्लीव कायरता और नपुंसकता ही होगी, बल्कि अमानवता भी। नाटाल और ट्रांसवालकी भारतीय कांग्रेसके इस कथनसे हम पूर्णतया सहमत हैं कि अगर गोरे वर्ण-भेद और उसके अनुसार संगठनके इतने क़ायल हैं, तो वे भारत छोड़ दें; फिर सभी प्रवासी भारतीय भी स्वेच्छासे दक्षिण-अफ्रीका छोड़ देंगे! हार्निमैनने तो बम्बईकी उपरिलिखित सभामें अपने नासमझ सहवर्णोंकी काली करतूतके प्रति विक्षोभ, विरोध और क्रोध प्रकट करते हुए यहाँ तक कहा कि जब तक दक्षिण-अफ्रीकाकी सरकार होशमें नहीं आ जाती, हमें भारतमें नौकरी या व्यवसाय करनेवाले प्रत्येक दक्षिण-अफ्रीकन (गोरे) को यहाँसे निकाल बाहर करना चाहिए और वहाँके किसी व्यक्तिको भारतमें घुसने नहीं देना चाहिए। यह एक कटु और कठोर सत्य ज़रूर है; पर इसके पीछे अन्यायके विरोधकी जो तीव्रता है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

मलय-सिंगापुरके पतनकी रिपोर्ट

गत १ जूनको हाउस आफ़् कामन्समें ब्रिटेनके उप-प्रधान-मन्त्री मेजर एटलीने एक प्रश्नके उत्तरमें बतलाया कि मलय और सिंगापुरके पतनपर फील्ड-मार्शल वेवलने जो रिपोर्ट भेजी है, उसे प्रकाशित नहीं किया जायगा। इसका कारण आपने 'शत्रुको उपयोगी सूचना' मिलनेकी आशंका बतलाया। आगे चलकर आपने कहा कि यही बात नारवे और यूनानके युद्धोंपर भी लागू होती है।

सर मारिस ग्वायर और रेडियो

'अमृतबाज़ार पत्रिका'के नई दिल्ली-स्थित संवाददाताने गत ३० मईको भेजे गए अपने संवादमें कहा है कि अभी हाल ही में जब भारतके अवकाश-प्राप्त प्रधान विचारपति सर मारिस ग्वायर दिल्ली-रेडियोसे अपना एक भाषण ब्राडकास्ट करने गए, तो उन्होंने भाषणके कई अंशोंको कटा हुआ पाया। इसके विरोध-स्वरूप उन्होंने अपना भाषण वापस ले लिया और बिना उसे ब्राडकास्ट किए ही चले आए। संवादमें आगे कहा गया है कि भाषण 'भारतमें विश्वविद्यालयोंकी शिक्षा'-विषयक था। इसमें कुछ ऐसे मामलोंका उल्लेख किया गया था, जिनमें धनिकों द्वारा कालेजोंपर नियन्त्रण प्राप्त करने तथा प्रिंसिपलोंके बर्खास्त तक किए जानेकी बातें थीं। रेडियो-अधिकारियोंने इन बातोंको मानहानिपूर्ण बतलाकर निकाल दिया। सर मारिसने कहा कि वे मानहानिकी परिभाषा अधिक अच्छी तरह जानते हैं और रेडियो-स्टेशनसे चले गए। इस घटनाकी रिपोर्ट उन्होंने स्वयं जाकर वाइसरायसे की, जिन्होंने इस सम्बन्धमें जाँच करनेकी आज्ञा दी बतलाते हैं।

रेडियो-अधिकारियोंकी—पता नहीं, उनमें कितने शिक्षण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री हैं और कितने क़ानूनदाँ -- मनमानी और अनुचित हस्तक्षेप करनेकी अनधिकारपूर्ण चेष्टाका यह पहला ही उदाहरण नहीं है। न मालूम कितने विद्वानों और सम्भ्रान्त नागरिकोंको वे इसी तरह अपमानित और ज़लीलकर चुके हैं। सेंसरके नामपर चीज़ोंको तोड़-मरोड़ कर इतना बेजान कर दिया जाता है कि सुननेवालोंके सामने तो निरी निर्जीव-निरर्थक चीज़ें पहुँचती ही हैं ; पर साथ ही उनके लेखकोंको भी भारी ठेस लगती है। इसका परिणाम यह होता है कि रेडियो-विभागको स्वाभिमानी सुयोग्य विद्वानोंका सहयोग कमसे कम मिल पाता है और सस्ते नक्क़ालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। जब सर मारिस ग्वायर-जैसे सुयोग्य क़ानूनदाँ एवं शिक्षण-शास्त्रीको भी नहीं बख्शा गया, तो साधारण व्यक्तियोंकी तो बात ही क्या है ?

जबसे सर सुल्तान अहमद खाँ सार्वजनिक सूचना-विभागके सदस्य हुए हैं, रेडियोकी रीति-नीतिमें सुधार होनेके बड़े-बड़े दावे किए जा रहे हैं। पता नहीं, उनको कब कार्यान्वित किया जायगा। अगर रेडियो-विभागका खर्च भारतीय कर-दाताओंके धनमें से न दिया जाता और अगर रेडियो रखनेवालोंको लाइसेंसके रूपमें सरकारी खजानेको कुछ न देना पड़ता, तो शायद हम सरकारी प्रोपेगण्डाका एक अस्त्र समझकर उसके सम्बन्धमें कुछ न कहते। पर जब ऐसी बात नहीं है, तो जनताके हितको आघात पहुँचानेवाली नीति क्यों बरती जा रही है ? क्या सरकारके साथ ही धनिकोंके कारनामोंपर पर्दा डालना भी रेडियो-विभागकी नीति है ? सर मारिस ग्वायरकी बात मानहानिपूर्ण है या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते ; पर वह सत्य और यथार्थ ज़रूर है, इस बातके अनेक भुक्तभोगी गवाह मिल सकते हैं।

श्री अल्लाहबख़्शका ख़ून

सिन्धके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री और आज़ाद-मुस्लिम-कांफ्रेंसके अध्यक्ष श्री अल्लाहबख़्शके ख़ूनका संवाद समस्त भारतमें बड़े दुःख और क्षोभके साथ सुना गया। गत १४ मईको जब वे शिकारपुरमें अपने मकानसे दो साथियों-सहित ताँगेमें सवार होकर कहीं जा रहे थे, तो किसीने उनपर गोलियाँ चलाईं। दो गोलियाँ उनके सीनेमें लगीं और अस्पताल पहुँचनेसे पहले ही उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। आक्रमणकारी अभी तक लापता हैं। कहा गया है कि इस हत्याके पीछे कोई 'साम्प्रदायिक' अथवा 'राजनीतिक' कारण नहीं हैं।

इससे पूर्व श्री पमनानी, सेठ शीतलदास और सिन्धके प्रमुख गायक-कवि श्री भालकँवलकी भी बड़े रहस्यपूर्ण ढंगसे हत्याएँ हो चुकी हैं और उनके हत्यारोंका भी अभी तक कोई पता नहीं लग सका है। इन हत्याओंके पीछे यथार्थ हेतु क्या है, हमें नहीं मालूम—शायद मालूम हो भी नहीं सकता--पर सिन्ध-सरकारने मार्शल-ला उठानेकी जो घोषणा अभी हाल ही में की है, उसके आधारपर इतना तो कहा ही जा सकता है कि इनके पीछे कमसे कम हूरोंका कोई हाथ नहीं है। तब फिर सिन्धके नागरिक जीवनके इस खतरेका सामना करनेके लिए सिन्ध-सरकार क्या कर रही है ?

मरनेके बाद ४० करोड़ लोगोंके दिलोंमें ज़िन्दा रहनेके लिए अल्लाहबख़्श शायद शहादतके जाम या किसी भौतिक स्मारकके मुहताज़ नहीं। होश सँभालनेके समयसे आख़री दम तक वे साम्प्रदायिक एकता और मुल्ककी आज़ादीके लिए लड़ते रहे। वे सही अर्थोंमें सच्चे मुसलमान और सच्चे भारतीय थे। भारतकी आज़ादी और एकराष्ट्रीयताको उन्होंने अपने स्वार्थ, राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा और सुविधाजनक अवसर-सेविताके मोहमें फँसकर कभी भी धता नहीं बताया। कदाचित् इसीलिए उन्होंने अपनी 'खान बहादुर' और 'ओ० बी० ई०'की उपाधियोंकी ज़िल्लतको भी ठुकरा दिया। इसका पुरस्कार आपको मिला गवर्नर द्वारा बर्खास्तगी, जिससे १९३५ के भारतीय शासन-विधानका जितना खोखलापन ज़ाहिर हुआ, उतनी ही आपकी राष्ट्रीयता एवं स्वाभिमानकी साख भी बढ़ी। इस समय आपकी आयु केवल ४२ वर्षकी ही थी।

डा० सर नीलरतन सरकारका निधन

गत १८ मईको तीसरे पहर गिरीडीहमें भारतके प्रसिद्ध चिकित्सक डा० सर नीलरतन सरकारका ८२ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। पिछले कुछ महीनोंसे आप अस्वस्थ थे। आपके निधनके रूपमें भारतने एक कुशल एवं सेवाव्रती चिकित्सक खो दिया। आपके चिकित्सा-कौशलकी धाक न सिर्फ भारतमें ही, बल्कि विदेशोंमें भी थी। अमरीकाके प्रसिद्ध सर्जन-जनरल टामस पैरेना, अमरीकन-सेनाके यक्ष्मा-विशेषज्ञ एडमण्ड आर० लौंग, न्यूयार्कके डा० यूजेन ओपी आदि अनेक विदेशी विशेषज्ञोंने आपकी योग्यता एवं कार्योंकी दाद दी है। आपका संक्षिप्त जीवन-परिचय इसी अंकमें अन्यत्र दिया जा रहा है।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालक—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

70114

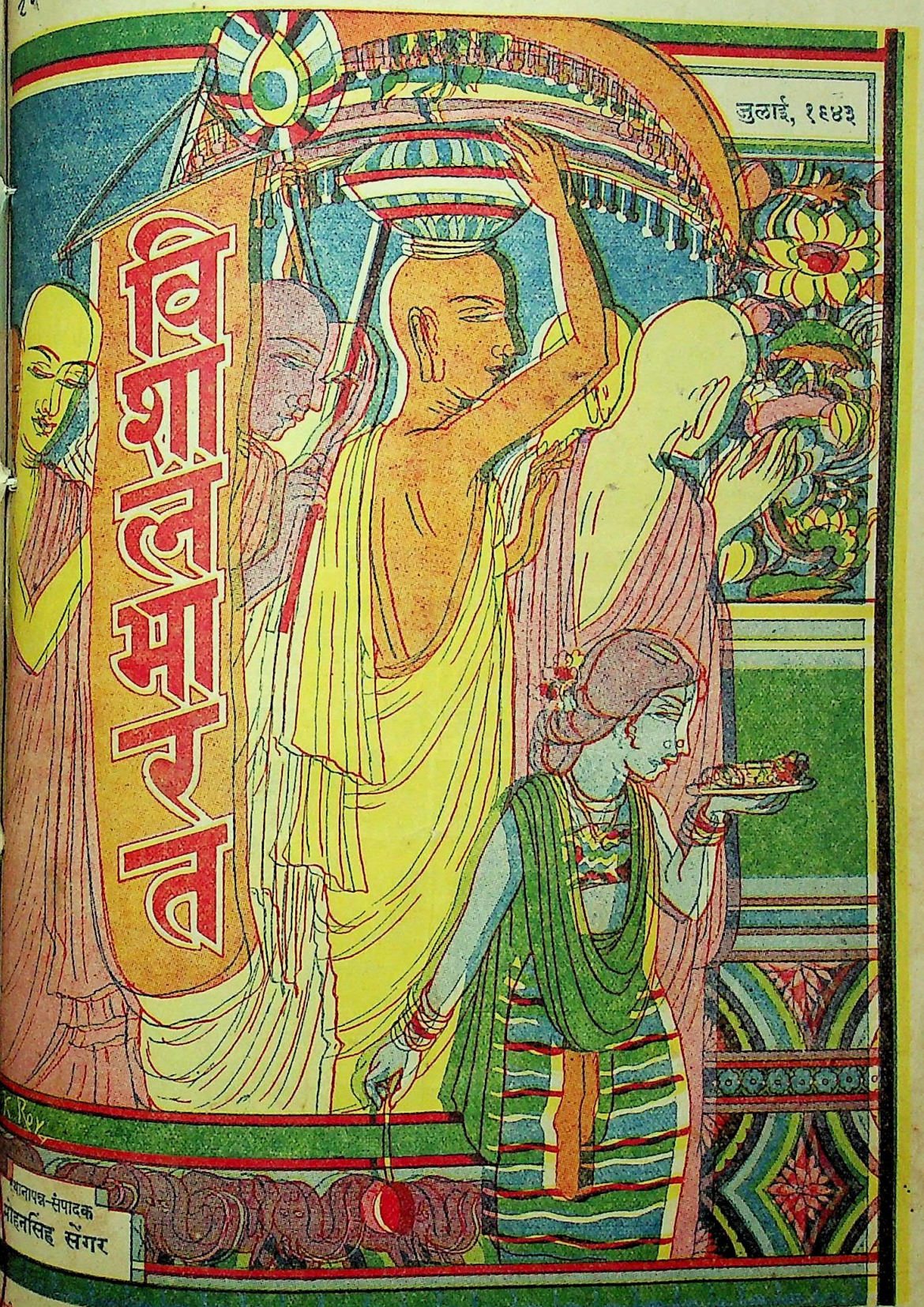

उत्तरदायित्व-स्वीकारपत्र-संपादक
मोहनसिंह सेंगर

वार्षिक मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशचर्या और केशचर्चाका श्रेष्ठ उपकरण

कैन्थाराइडिन

हेयर आयल

पोषणके उपयोगी पदार्थोंके अभावमें जब केश शुष्क और विवर्ण हो जाते हैं एवं सिरमें खुश्की, रूसी आदि आ जाती है, तब बेंगल केमिकलका **कैन्थाराइडिन** व्यवहार करनेसे केशोंकी जड़ें नीरोग होती हैं एवं केशोंको विरलता और उनका झड़ना दूर होकर केशोंके स्वास्थ्य और सौन्दर्यमें वृद्धि होती है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

इन दिनों अपने जूते अधिक दिन अवश्य चलाइये

अब यह उत्तम न होगा कि पहिले की तरह नये-नये जूते जब चाहें तब सिला करें। अतएव हम यह जरूरी समझते हैं कि कुछ सूचनायें आप की सेवा में निवेदन करें जिनके पालन करने से आपके जूते ज्यादा दिन चलेंगे।

सूचना—

- जूता उतारने के बाद ही उसका धूल झाड़ दें और नियम से उन पर पालिश लगाएं।
- जूता पहनते समय शू-हार्न अवश्य काम में लाइये; और उतारते समय फीतों को काफी ढीला कर लीजिये।
- मामूली से मामूली मरम्मत भी तत्काल कराइये—विशेष कर एड़ी तथा तल्वों के बदलाने में बिलकुल देर न होनी चाहिये।

भारतके सर्वश्रेष्ठ जूते

Bata

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

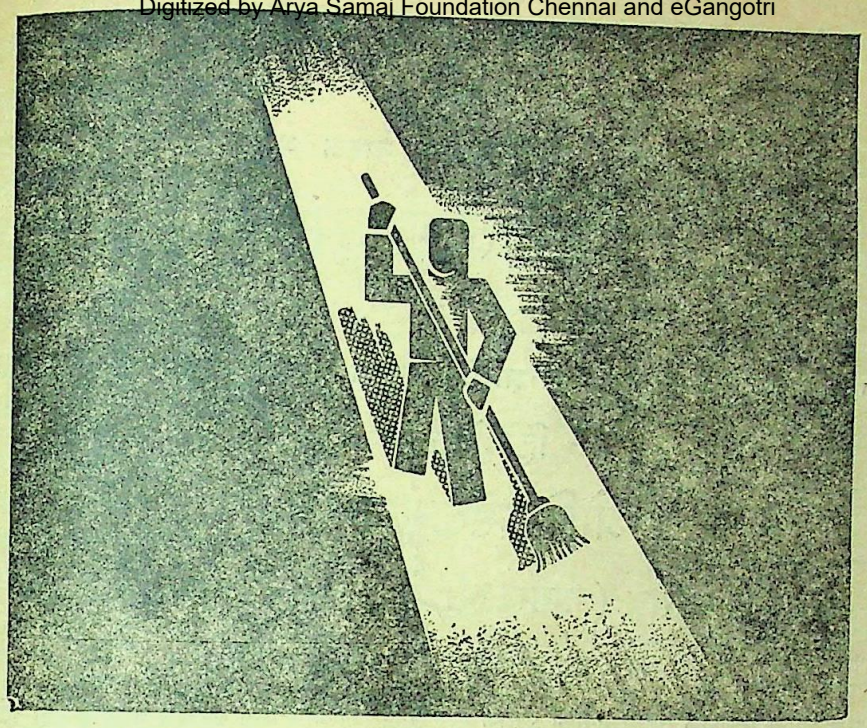

पूरा काम

पेट में मल या गन्दगी एकत्र होने से अनेक रोग होते हैं, इसलिए अपने पेट को खूब साफ़ रखो।

अपने गले, कण्ठनली और फेफड़ों को रोग से अथवा जलन होने से बचाओ, अन्यथा दुखदायी खाँसी हो जाती है।

सब तरह की खाँसी में ग्लायकोडिन टर्म-वसाका का व्यवहार करना चाहिए। यह रोग की जड़ पर प्रहार करता है और इसमें पड़ी हुई औषधियाँ खाँसी को मिटाकर शान्ति देती हैं।

खाँसी को मिटा कर शान्ति देता है

एलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड बड़ोदा.

एलेम्बिक डिस्ट्रीब्यूटर्स लि०, रस्तोगी-हाउस, बाँकीपुर, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-प्रेमियोंके लिए सूचना

हिन्दी-साहित्यके उच्चकोटिके लेखकों, सुप्रसिद्ध प्रकाशकोंकी सर्व प्रकारकी
काव्य, उपन्यास, नाटक आदि

साहित्यिक पुस्तकें

अथवा

पंजाब-विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें नियत हिन्दी-पुस्तकें मँगानेके लिए

हिन्दी-पुस्तक-भण्डार

ओरिएन्टल-बुक-डिपो,

हस्पताल रोड (अनारकली) लाहौरको सर्वदा स्मरण रखें।

प्रकाशक तथा लेखकोंके लिए :—

जिन लेखक अथवा प्रकाशक महानुभावोंकी पुस्तकें हमारे पुस्तकालयमें नहीं पहुँचीं, वे आज ही हमें अपना नवीन सूचीपत्र तथा नियम भेजनेकी कृपा करें, साहित्यिक पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ़्त।

पंजाबकी हिन्दी-परीक्षाओंकी पुस्तकोंका सूचीपत्र भी मुफ्त।

IMPORTANT FOR THE CULTURED

The Renaissance of Indian Art has now become an accomplished fact. Even the Western World of Art has given recognition to it.

CHATTERJEE'S PICTURE ALBUMS form a series of Seventeen numbers, each containing 16 coloured reproductions from the paintings of most eminent artists. *Of these No. 1 & 9 are out of print.* The other Fifteen numbers—*which are all independent*—are priced at Rs. 2-8 as. each, postage As. 6. The present price for these Fifteen numbers is Rs. 37-8 as. *plus* postage Re. 1-12.

As the albums cannot be replaced now excepting at a very high cost, we have had to raise the price to Rs. 2-8 as. each, but for our readers the prices would be till further notice :—

The Full Set of Fifteen for	**Rs. 34-0.**	**Post free in India**
Any Ten Numbers for	**Rs. 23-0.**	**„ „ „**

12½ per cent of the above values should accompany V.P.P. orders in stamps. Rebate for postage will be given for delivery taken by hand.

Only A Few Sets Left

CHATTERJEE'S Albums are of Great Value—Historical and Artistic.

The Modern Review Office

120-2, Upper Circular Road, Calcutta.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[ज्येष्ठ, २००० वि० : : जुलाई, १९४३ ई०]

१ दीपकका नवजीवन (कविता)—
श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' १
२ विक्रम संवत् २०००—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या २
३ हमारा साहित्योपवन—बनारसीदास चतुर्वेदी ७
४ चीनका महिला-आन्दोलन—श्रीमती मेलिंग सूंग च्यांग १०
५ कला और उपयोगितावाद—श्री कुसुम गुप्ता १५
६ हिमाद्रिका आत्म-परिचय—श्री सोहनलाल द्विवेदी १६
७ अपाहिजोंके लिए काम—श्री ईश्वरशरण १७ (४८९)
८ हिन्दू-समाज और तलाक़—
श्री हरिदत्त वेदालंकार २१ (४९१)
९ वरदान या अभिशाप—श्री सोमेश २४ (४९६)
१० सम्मेलनमें विकेन्द्रीकरण—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ३०
११ विकेन्द्रीकरण-आन्दोलन—श्री रामनारायण यादुवेन्दु ३०
१२ बौद्धिक धरातल—श्री शिवाधारसिंह ३४
१३ प्रलयका प्यार—श्री सुधीन्द्र ३७
१४ ऋग्वेदका काव्य—श्री यशवन्तसिंह नेगी ३८
१५ मीनाका विवाह (कहानी)—श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा ४३
१६ कौन सुनेगा कविता तेरी ?—श्री शिवसिंह 'सरोज' ४७
१७ हरद्वार-सम्मेलनके सभापतिका भाषण—
प्रो० विजयमोहन शर्मा ४८
१८ बाण भट्टकी आत्म-कथा—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ५०
१९ 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—मोहनसिंह सेंगर ५४
२० चिट्ठी-पत्री ५९
२२ समालोचना ६१
२३ चयन ६४
२४ सम्पादकीय विचार ६५
तिरंगा चित्र प्रोषित-पतिका—श्री सुहास दे १

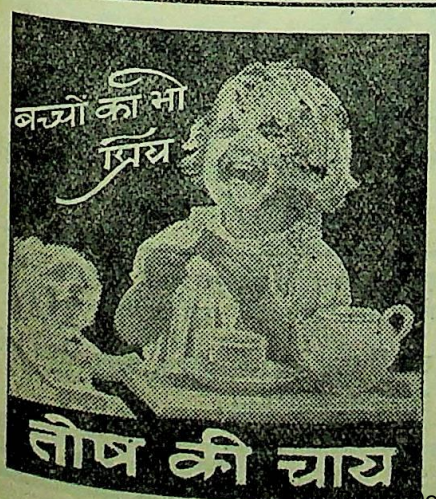

आपके केशोंकी रक्षाकी कुंजी

अपने केशोंकी रक्षा करनेकी कुंजी आपके ही हाथोंमें है···केशोंकी वृद्धिके सहायक और उसकी रक्षामें उपयोगी एवं उसके सौन्दर्यके स्थायित्वमें मददगार

कामिनिया आयल (रजि०)

की एक शीशी ही यह काम करती है...इसे आप भूल नहीं सकते...इसका अद्वितीय सुगन्ध इसके नामकी तरह ही आकर्षक है। कीमत एक शीशीकी १) ; २॥।-), ३ शीशीकी। वी० पी० चार्ज अलग। मुफ्त नमूनेके लिये -) का टिकट भेजें।

ओटो दिलबहार (रजि०)

सुगन्धका राजा—यह मामूली सुगन्ध-द्रव्यों से भिन्न वस्तु है...अत्यन्त मनमोहक। अन्य सुगन्धित द्रव्योंसे इसकी तुलना नहीं हो सकती... अलकोहलसे मुक्त···स्थायी सुगन्ध! एक ड्रामकी शीशी ॥।=)। वी० पी० खर्च अलग। नमूनेके लिये =) आनेके स्टाम्प भेजें।

सोल एजेण्ट—

एंग्लो इंडियन ड्रग एराड

केमिकल कं०, बम्बई-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका छठा अंक प्रकाशित हो गया।

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

आत्म-त्राण (कविता)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
धर्मकीर्त्तिका दर्शन	राहुल सांकृत्यायन
चतुरंग (उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
संतसाधनाका प्रवेशपथ	क्षितिमोहन सेन
नारीका मनुष्यत्व	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
युद्धारम्भके बाद चीनी काव्यकी प्रवृत्ति	उ-शिऔ-लिङ् / अनागारिक शांतिभिक्षु
'रवीन्द्र-संगीत' (आलोचना)	विद्याधर वझलवार
'हमारा हिन्दुस्तान' (आलोचना)	कृष्ण कृपालानी
'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (आलोचना)	हजारीप्रसाद द्विवेदी
'रवीन्द्रनाथ थ्रू वैस्टर्न आईज़' (आलोचना)	ह० द्वि०
सम्पादकीय	नैशनल वार-फ्रन्ट और रवीन्द्रनाथ।

वार्षिक मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए **प्रति संख्या १॥)**

व्यवस्थापक, विश्वभारती पत्रिका,
हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल

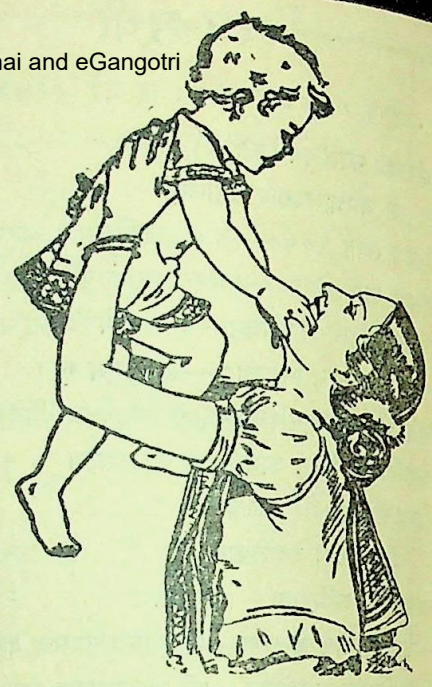

बच्चों के लिए ताकत की दवा

डोंगरे का बालामृत

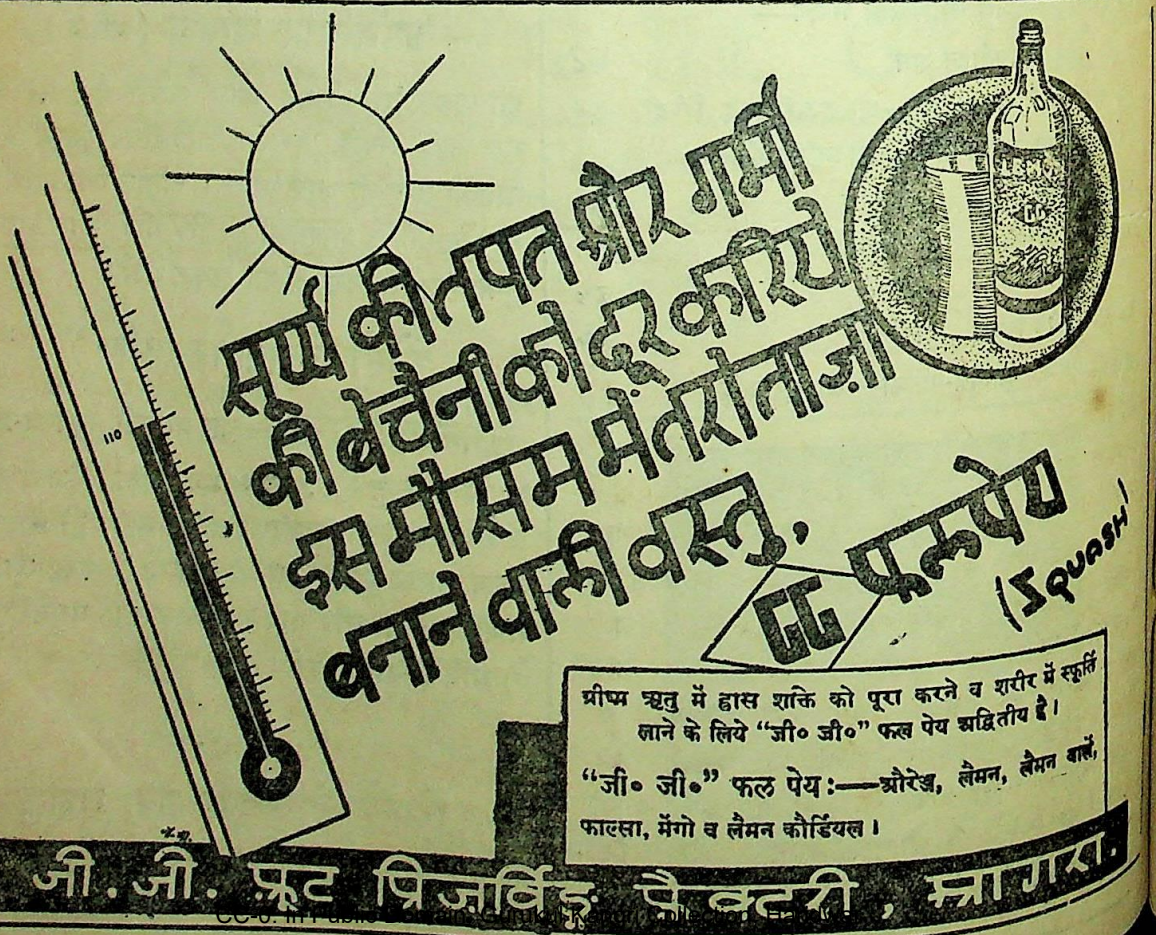

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति और कला की रचनाएँ

कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी रचित—

वासवदत्ता

सोहनलाल जी दुर्बलता, पीड़ा, रोदन, आँसू के नहीं, जीवन, उत्साह, तारुण्य, वेग, प्रभाव व बल के कवि हैं।

सोहनलाल जी उच्च संस्कृति, सुरुचि व उदात्त भावों के धनी हैं। उनके चित्रों में सजीवता गजब की है। शब्द तो मानो उनके सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। उनका शब्द-सामर्थ्य बाण की याद दिलाता है।

वासवदत्ता सांस्कृतिक दृष्टि से अमर रचना है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

—:o:—

कुणाल

(अपूर्व काव्य-प्रबन्ध)

द्विवेदी जी हिन्दी के उन कवियों में हैं, जिन्होंने बहुत सफलता प्राप्त की है। 'कुणाल', प्रबन्ध काव्य इसका निदर्शन है।

अशोक, तिष्यरक्षिता और कुणाल के चरित्र चित्रण में खासतौर से—'कुणाल' के चरित्र-चित्रण में कवि ने कमाल किया है। शब्द सौकुमार्य और भावोत्कर्ष के साथ ही नपे-तुले शब्दों का प्रयोग भी द्विवेदी जी की रचना को उच्च बनाता है।

—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

अमर कलाकारों के अनुपम चित्रों से अलंकृत

प्रत्येक सजिल्द पुस्तक का

मूल्य दो रुपये।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद।

लेखकों एवं कवियोंके लिए नियम

(१) 'विशाल भारत' में प्रकाशनार्थ आनेवाली रचनाएँ कागज़के एक ओर स्याहीसे साफ़ अक्षरोंमें संशोधनके लिए ३ इंचके लगभग हाशिया अथवा दो पंक्तियोंके बीचमें काफ़ी जगह छोड़कर लिखी होनी चाहिएँ। कारबन-कापी, पेंसिलसे लिखी हुईं अथवा कागज़की दोनों ओर, अस्पष्ट, घिचपिच और लापरवाहीसे लिखी हुई रचनाएँ स्वीकार नहीं की जायँगी। (२) रचनाओंकी स्वीकृति-अस्वीकृतिकी सूचना उस समय तक नहीं दी जायगी, जब तक कि उनके साथ पोस्टकार्ड या लिफ़ाफ़ा न होगा। स्वीकृत रचनाएँ जिस अंकमें छपेंगी, उसकी एक प्रति यथासमय लेखककी सेवामें भेज दी जायगी। (३) बिना मँगाए आनेवाली रचनाओंको छापने या लौटानेके लिए सम्पादक बाध्य न होगा। (४) बिना पोस्टेजके आनेवाली रचनाओंको लौटानेके लिए सम्पादक ज़िम्मेदार न होगा। (५) कविताओंको लौटाना हमारे लिए शक्य नहीं है, अतः कवि महानुभाव या तो अपनी रचनाओंकी प्रतिलिपि रख लिया करें अथवा उन्हें लौटानेके लिए आवश्यक पोस्टेज भी साथ भेजें। (६) पारिश्रमिक चाहनेवाले लेखकोंको पहलेसे इस सम्बन्धमें लिखा-पढ़ी कर लेनी चाहिए। (७) प्रकाशनार्थ रचनाएँ, चिट्ठी-पत्री, परिवर्त्तनके पत्र-पत्रिकाएँ, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि सब सम्पादकको भेजी जानी चाहिएँ, किसी व्यक्ति-विशेषके नामसे नहीं। (८) कौन रचना कब छपेगी या किस पुस्तककी आलोचना कब होगी, इस सम्बन्धमें कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जायगा।

'विशाल भारत' कार्यालय

१२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला', मू० ३)।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला १॥।), भाग दूसरा १॥।)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

प्रेमयोग ; प्राच्य और पाश्चात्य ; आत्मानुभूति : परिव्राजक— प्रत्येकका मू० ॥≈)।

मेरे गुरुदेव—मू० ।≈); **शिकागो-वक्तृता**—मू० ।≈); **वर्त्तमान भारत**—मू० ।≈)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर

(सी० पी०)

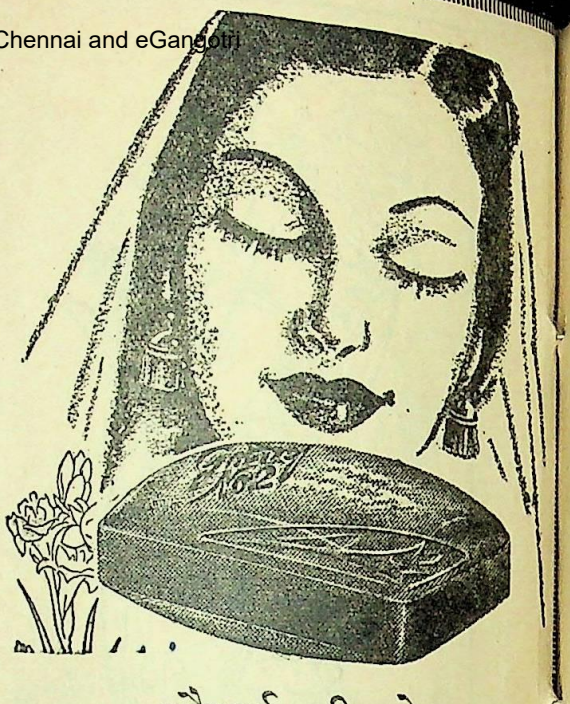

सौन्दर्य की खोज

आपके चर्ममें कितना सौन्दर्य छिपा हुआ है, इसका आपको ज्ञान है ? अपने सम्पूर्ण शरीरके चर्मको निर्मल एवं सुन्दर रखनेके लिए गोदरेजके उत्तम नं० १ नहानेके साबुनके व्यवहारका सरल विश्वसनीय एवं बुद्धिमत्तापूर्ण इलाज नियमित रूपसे करते रहें। सौन्दर्य-वृद्धि करने एवं चर्मका पोषण करनेवाली चुनी हुई प्राकृतिक वनस्पतियोंके तेलसे बने हुए गोदरेजके सर्वगुण-सम्पन्न नं० २ साबुन आपके चर्मके लिए अद्वितीय है। यह साबुन चर्मकी सभी त्रुटियोंको दूरकर उसे स्वच्छ और नीरोग बनाता है। इसका कोमल कान्तिवर्धक फेन आपके चर्मको मखमलकी तरह मुलायम और मनमोहक बना देगा। इसके अतिरिक्त इसमें विद्यमान तत्त्वोंका जन्तुनाशक गुण (साबुनका यह रंग तत्त्वोंके कारण ही होता है) आपके चर्मको आरोग्यता प्रदान करता है।

गो द रे ज नं० १

साबुनोंमें सर्वोत्तम : इसकी बड़ी और सुन्दर बट्टी—मनमोहक सुगन्धवाली कान्तिवर्धक एवं जन्तुनाशक—आपको अवश्य मोहित कर लेगी।

Godrej No. 2

गोदरेज चाभी छाप नं. २ साबुन

टॉयलेट

गोदरेज सोप्स, लि०—पटना (स्टेशन रोड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

प्रोषित-पतिका

[श्री सुहास दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३२, अंक १] जेठ, २००० : : जुलाई, १९४३ [पूर्णांक १८७

दीपकका नवजीवन

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

स्मृति-अंगुलियों पर दिन-दिन, क्षण-क्षण गिन-गिन
रत गत जीवन की करो प्रतीक्षा, साथिन !
ब्ध मैं आश्रित - सीमित ममता - माया का,
या दीप तुम्हारे अंचल की छाया का ;
नुभय, मृदु था वह प्रथम चरण जीवन का,
उत्सर्ग क्षुद्र था, पर, उस स्नेह - ग्रहण का।
क्षया का दीपक रह न सका मैं तब से,
या तिमिर - नाश का मिला निमन्त्रण जब से।
ग बीते, लघु एकाधिकार वह बीता ;
आँगन - सीमा को जग - सीमा ने जीता।
घर के बाहर जब गए ज्योति के लघु कण,
मेरे प्रकाश ने देखा तब विस्मित बन—
देता था मानो उसे चुनौती प्रति - क्षण
जग - प्रगति - निरोधक दारुण कल्मष का वन।
वह; पा प्रकाश ने वन - विनाश - आयोजन,
कर दिया दहन रण - ज्वाला में प्राणार्पण।
ज्वाला होना था श्रेष्ठ दीप होने से,
जिस से वह वन जल उठा एक कोने से।
र, फिर देखा, वह अग्नि बुझी थक - रुककर ;
न अमिट रहा, नव मिला मुझे रूपान्तर।

मैं आज नहीं हूँ, देवि, दीप या ज्वाला ;
दाहकता मुझ में नहीं, न रहा उजाला।
तुम बाट देखतीं होंगी निज दीपक की ;
मैं हूँ मुट्ठी - भर राख ज्योति - अर्पक की।
आहत, असफल का भी यह गौरव - धारण !
मैं रुद्ध वायु में भी वन का भय - कारण !
मत मिलन - विरह से, दिवसों से, मासों से,
जीवन को नापो, हासों - उच्छ्वासों से !
मत करो सफलता - असफलता की गणना ;
सार्थक बलि - पथ का एक पथिक है बनना।
है छिपी भस्म में मेरी, लघु निधि सारी ;
भावी पावक की आशा की चिनगारी।
दीपक बनने की मुझको चाह नहीं है ;
पिछले जीवन का अब उत्साह नहीं है।
इच्छा है, फिर बन सकूँ कभी मैं ज्वाला ;
हो भस्म एक दिन वह कल्मष - वन काला।
यदि फिर पाओ तुम मुझे, नया व्रत लेना ;
आश्रय के बदले मुझे प्रेरणा देना।
अंचल से छाया नहीं, पवन पहुँचाना ;
अन्तर की चिनगारी को प्रखर बनाना !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रम संवत् २०००

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

महाकाल-स्वरूप, रुद्र और सुन्दर, भैरव और मंगल जिस नटराज शिवके नृत्य-छन्दसे ग्रह-नक्षत्रोंकी सृष्टि, स्थिति और ध्वंस होते हैं, ब्रह्मा और इन्द्रोंका आना-जाना होता है, संसारकी जातियोंके उत्थान और पतन होते हैं, उसीकी कृपासे हमारी हिन्दू-जाति अपने एक गौरवमय युगके शुरूसे दो हज़ार बरस बिताकर अब एक नई सहस्राब्दीके प्रारम्भमें आ खड़ी हुई है। हमारी सबसे पुरानी वर्ष-गणना तो कल्यब्द है, जिसका हिसाब ईसू ख़िस्तके पूर्व ३२०१ बरससे गिना जाता है। अब तो कल्यब्द ५०४४ चालू है। परन्तु इस कल्यब्दके बारेमें ठीक-ठीक पता नहीं चलता है कि यह अब्द उसी समयसे अर्थात् अर्जुनके पौत्र और अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित्के राज्यकालसे चला आ रहा है, या पिछले समयमें ज्यौतिषिक पण्डितोंने इस अब्दको बना लिया और व्यवहारमें ले आए। हमारी भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनताके विषयमें हमारे पूर्वजोंने पुराणोंमें बड़े ही जोशके साथ अपनी राय या अपने विचार प्रकट किए हैं, जिसमें हज़ारों और लाखोंकी गिनती कुछ ऐसी बड़ी बात नहीं है। यहाँ तक कि हमारे कुछ विद्वानोंने आधुनिक कालके प्रकाशित कुछ संस्कृत और हिन्दी ग्रन्थोंमें एक 'सृष्ट्यब्द'का भी प्रयोग किया है। इस विचारके अनुसार, अब विक्रम संवत् २००० और ईस्वी सन् १९४३ में विश्व-सृष्टिसे १,९७,२९,४६,०४३ बरस बीत गए हैं। ऐसी गणनामें ईस्वी सन्, ईसा पूर्व या कल्यब्दका भी कोई स्थान नहीं। इस सृष्ट्यब्दके सामने और सब अब्द समुद्रके सामने गोष्पद-जैसे हैं। ईसाई लोग एक सृष्ट्यब्दको मानते हैं, जो ईसू ख़िस्तके पहलेके ४००४ बरससे गिना जाता है; अब इस अब्दकी गणना सिर्फ़ ५९४७ है। यहूदी लोग और एक सृष्ट्यब्द मानते हैं—इस वक्त उसका ५७०३ वाँ साल चल रहा है; मगर ये सब सृष्टि-अब्द मनचाही चीज़ें हैं। इनमें ऐतिह्यसिक सचाईका कोई प्रमाण नहीं। कल्यब्दके बाद एक प्राचीन भारतीय अब्द अब बौद्ध धर्मके देशोंमें—खासकर सिंहल, ब्रह्म, स्याम और कम्बोजमें—चालू है, जो बुद्ध भगवानके जन्मसे गिना जाता है और जो अब २४८७ वें बरसमें है। यह भारतवर्षकी, शायद पृथ्वीकी, सबसे पुरानी ऐतिहासिक वर्ष-गणना है। पुराने ज़मानेके यवन या ग्रीक लोग ओलिम्पियामें देवराज ज़ेउस पातेर या द्यौषूपिताके चौबरसिया त्यौहारके प्रारम्भ काल (ईसू ख़िस्तके जन्मसे ७७६ साल पूर्व) से जो Olympiad या ओलिम्पिया-अब्द मानते थे, वह और रोमक या रूमी लोग रोम शहरकी प्रतिष्ठा (७५३ ई० पू०) के कालसे जो अब्द मानते थे—ये दोनों अब चालू नहीं हैं। ईसाई तारीखने इन दोनोंको मिटा दिया है। बुद्धाब्दके बाद यह विक्रम संवत् स्थापित हुआ था, जो ईसू ख़िस्तके ५८ अथवा ५७ बरस पूर्वसे चालू हुआ और अब तक चला जा रहा है।

विक्रम संवत्के उद्भव और इसके प्राचीन नामोंके विषयमें ऐतिहासिक पण्डितोंने बहुत-कुछ खोज की है। ऐसी ऐतिहासिक खोजसे हमारे बहुतसे प्रचलित सिद्धान्तों, मतवादों या विश्वासोंका, जिन्हें जनता मानती है और जो पुराने ढंगके विद्वानोंके पास स्वयंसिद्ध या सत्य हैं, बहुशः संशोधन होता है, और कभी-कभी संशोधनके कारण वे प्रचलित विश्वास, मतवाद या सिद्धान्त भित्तिहीन अथवा ग़लत या अशुद्ध भी प्रमाणित हो जाते हैं। वैज्ञानिक अर्थात् ऐतिहासिक परम्पराकी दृष्टिसे भी ऐसी ऐतिहासिक खोजपर ऐसे संशोधनकी ज़रूरत माननी होगी। आध्यात्मिक विचारसे भी इसकी उपयोगिता है, क्योंकि 'नास्ति सत्यात् परो धर्मः'—सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। अतः इस सत्यका निर्णय और निर्णीत सत्यकी प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। पर नया सत्य जब तक प्रतिष्ठित न हो, तब तक संशोधनका मार्ग तत्त्वज्ञके सिवा साधारण मनुष्यके लिए विभ्रमकारी होता है। जब तक प्रमाणित सत्यमें हम लोग नहीं पहुँच सकते, तब तक प्रचलित मतवाद जनताके लिए काफ़ी होता है। विक्रम संवत्के, जिसकी तीसरी सहस्राब्दीका सूत्रपात आज होता है, प्रतिष्ठाताके रूपमें मालवराज विक्रमादित्यको हम जानते हैं, जिनकी उज्जयिनी नगरी राजधानी थी और जिनकी नवरत्न-सभामें महाकवि कालिदास विराजते थे। आधुनिक इतिहास इस विक्रमादित्यके अस्तित्वके सम्बन्धमें सन्देह प्रकट कर रहा है। इतिहासकी राय यह है कि विक्रम संवत्की अब्द-गणना किसी राजाने प्रतिष्ठित नहीं की थी; बल्कि यह मालव-जातिके गणतन्त्रकी नई स्थापनाके स्मारक स्वरूप मालव प्रजागण द्वारा प्रतिष्ठित हुई थी, इसलिए इसका एक प्राचीन नाम था 'मालवगण-स्थिति'। महाराज विक्रमादित्यके नामसे इसका सम्बन्ध लगाया गया था लगभग ईस्वी आठवीं शतीमें। इस 'मालवगण-स्थिति'का एक और नाम भी प्राचीन लेखोंसे मिलता है—'कृत', 'क्रित' या 'क्रीत'। इन तीन रूपोंमें इस शब्दके अर्थका ठीक पता नहीं चलता; पर एक विद्वानका अभिप्राय यह है कि इन तीनोंका मूल रूप 'क्रीत' ही है, जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतलब है—'खरीद किया हुआ।' इससे एक ऐसे शक-पार्थव राजवंशके भारतके किसी अंशपर राज करनेका काल सूचित होता है, जिस राजवंशके कुछ राजा पहले-पहल अपने पूर्वगामी राजाओंके खरीद किए हुए गुलाम थे, जैसे देहलीके तुर्की राज्यके कुछ बादशाह गुलाम राजा कहलाते हैं। कहाँ भारतकी स्वतन्त्रताकी ज्योतिसे उज्ज्वल महामहिम महाराज विक्रमादित्यकी प्रयोजनासे विक्रम संवत्की प्रतिष्ठा और कहाँ विदेशी शक-पार्थव 'क्रीत' या खरीदशुदा गुलाम बादशाहोंके नामसे इसका उद्योजन। परन्तु इस विचारमें बुद्धिकी दृष्टिसे हमें पक्षपातशून्य रहना चाहिए। 'क्रीत' अब्दकी जो व्याख्या दी गई है, वह असम्भव नहीं है; पर प्रमाणित नहीं। 'मालवगण-स्थिति' नामके अनुसार, संवत् अब्द राजपूतानेमें मालव गणतन्त्रकी ही प्रतिष्ठाका अब्द है, यह व्याख्या मानने लायक है। प्राचीन भारतके गणतन्त्रके इतिहास और उसकी प्रकृतिके विषयमें स्व० काशीप्रसादजी जायसवालने काफ़ी प्रकाश डाला है। उन्होंने विक्रम संवत्की उत्पत्तिके विषयमें अपनी विख्यात पुस्तक 'हिन्दू-पालिटी'के प्रथम खण्डके पृष्ठ १५२-१५३ में जो लिखा है, वह इस बातपर आखरी सिद्धान्त माना जा सकता है। मालव-जाति ईसू खिस्तके पूर्व चौथी शतीमें यवन सम्राट अलेक्सन्दरके साथ लड़ी थी। यह पंजाबकी एक प्राचीन आर्य-जाति थी, जिसके जीवनमें स्वाधीनताका बड़ा स्थान था। इसकी वीरता, देशभक्ति और स्वाधीनता-प्रियताके काफ़ी उदाहरण उस समयके लेखकोंके ग्रन्थोंमें मिलते हैं। अपनी स्वतन्त्रताको अक्षुण्ण रखनेके लिए, यवन, शक-पार्थव आदि विदेशी जातियोंकी गुलामीसे अपनेको बचानेके लिए, मालव-जातिके लोग, उसी समयकी और कई जातियोंके लोगोंके साथ, ईसाके पहलेकी द्वितीय शतीमें पंजाबसे राजपूतानेमें आकर उपनिविष्ट हुए थे। उस समय एक प्रबल शत्रु था पार्थव राजा नहपाण। खीस्त-पूर्व ५८ सालमें अन्ध्रराज गोमतीपुत्रने नहपाणको लड़ाईमें हरा दिया और उसको मार डाला। यह घटना मालवोंके लिए जीवन-रक्षाकारक हुई, इसलिए मालव-जातिने भविष्य कालके ज्ञापनके लिए ईसा-पूर्व ५८-५७ वर्षसे 'मालवगण-स्थिति' नामसे संवत् अब्दका प्रचलन किया था। अपनी जातिके लिए 'कृत' या एक नया युग लानेवाला है, इस खयालसे 'मालवगण-स्थिति'को 'कृत' भी कहते थे। फिर मालव-जातिका फैलाव राजपूतानेमें बहुत हुआ। इसके नामपर मालव देशने भी एक नए नामको प्राप्त कर लिया। यह अब्द-गणना मालव-जातिके विक्रम या परा-क्रमका भी साक्ष्य देती है, इसलिए इसका नाम 'विक्रम' संवत् रखा गया; दरअसल यह विक्रमादित्य नामके किसी राजाके नामसे नहीं हुआ, पूरी जातिके लोगोंके विक्रम या शूरताका प्रकाशक है।

ऐतिहासिक खोजसे जो-कुछ निकले, सो निकले; पर यह बात तो अविसंवादित है कि आजसे दो हज़ार बरस पूर्वसे यह अब्द हिन्दू-जातिके इतिहासको प्रकाशित करता आया है। ईसाके बाद ७८ बरस बीत जानेसे कुषाण या शक-वंशीय राजाओंने एक नया अब्द क़ायम किया, जो 'शकाब्द' नामसे आजकल हिन्दू-संसारमें चालू है और जो भारतके बाहर द्वीपमय भारतमें (यवद्वीप आदिमें) और इन्दो-चीनमें भी फैल गया। पर विक्रम संवत्का-सा गौरव इसका नहीं। बादमें गुप्त राजाओंने 'गुप्ताब्द' चलाया, और कुछ नए अब्द भी बनाए गए; मगर इनमें कोई भी विक्रम संवत्के तुल्य नहीं। किसी गौरवमय घटनाकी स्मृति, किसी आशापूर्ण अवस्थाकी याद लेकर विक्रम संवत् ज़रूर ही उदित हुआ था, जिसका कुछ-कुछ पता जायसवाल-जैसे ऐतिहासिकोंने लगाया।

मालवगणोंकी स्थितिके बाद बना हुआ नया कृतयुग गुप्त अमलके पश्चात् 'महाराज विक्रमादित्य'के नामसे मिल गया। यह महाराज विक्रमादित्य कौन थे? ऐतिहासिकोंकी राय है कि यह विक्रमादित्य सचमुच गुप्त-वंशके सम्राट द्वितीय चन्द्रगुप्त थे, जिनका बिरुद या उपनाम भी था विक्रमादित्य। इन्होंने ईस्वी सन् लगभग ३८० से ४१४ तक राज किया था और भारतके विदेशी शत्रु हूणोंसे लड़ाई की थी। ये प्रजारंजक राजा थे, और विचार यह है कि इन्हींके राज्यकालमें महाकवि कालिदास प्रकट हुए थे। इनके उपनामके कारण 'मालवगण-स्थिति'का कृत या विक्रम अब्द महाराज विक्रमादित्यका अब्द बन गया, और इस संयोगका नतीजा यह हुआ कि ईसाके पूर्व प्रथम शतीमें यह विक्रमादित्य खुद लाए गए।

किसी देशकी जनता इतिहासके सन् और तारीखकी परवाह नहीं करती, राजाओंकी परम्परा नहीं मानती। इतिहासमें जो-कुछ चित्तानन्दकर मिलता है, उसीका स्मरण जनताके मनमें अपना प्रभाव डाल देता है। चित्त-विक्षोभकारक बात भी जनता जल्द ही भूल जाती है। दुःखकी स्मृति कभी-कभी रह जाती है; पर उतनी नहीं, जितनी सुखकी। भारतीय जनगणोंने अपने राजादर्शसे उज्जयिनी-पति नवरत्न-सभाधीश महाराज विक्रमादित्यके व्यक्तित्वको मूर्त्तिमान कर दिया है। यह भारतीय जनके चित्तमें अब तक विराजमान है। वास्तवसे यह कल्पना अधिक मनोमुग्धकर हो गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विक्रम संवत्के राजा विक्रम'—इस बातसे हिन्दू-जनताके समक्ष जिस प्रजारंजक, गुणिजन-पोषक, न्यायधर्मी, शूरवीर देशरक्षक राजाका आदर्श उदित होता है, मानो राजा रामको छोड़कर और कहीं राजधर्मका इतना उच्च आदर्श नहीं मिलता। प्राचीन भारतीय संस्कृतिका मानो एक सम्पुट बनकर यह नाम और इस नामका अब्द हमारे सामने विद्यमान हैं। अगर शब्दोंमें कहें, तो इतना ही कहना काफ़ी होगा कि 'विक्रम संवत्'में हिन्दू-इतिहास विजड़ित है और हिन्दू-आदर्श इस नाममें छिपा हुआ है।

प्राचीन कालमें बहुत-सी जातियाँ प्रकट हुई थीं, और विश्व-मानव अर्थात् समग्र मानव-जातिके लिए अपने-अपने उपहार, समग्र मानव-सभ्यताकी पुष्टिके लिए अपने-अपने दान लाकर अतीतके गर्भमें विलीन हो गई हैं। मिसरी, ईजीयन, खलदेया, असुर, यवन, रोमक—ये सब जातियाँ चली गईं। तीन प्राचीन जातियोंके साहित्यमें मानव-चिन्ता और सौन्दर्य-सर्जनकी श्रेष्ठ वस्तुएँ मिलती हैं। परमार्थ-लाभ करनेके लिए सबसे मौलिक और गम्भीर भाव-संभार सिर्फ़ इन तीन प्राचीन जातियोंने दिए हैं। ये तीन जातियाँ हैं—हिन्दू या प्राचीन भारतीय, यवन या प्राचीन ग्रीक और चीनी। इनमें यवनोंका नाम-व-निशान अब मिट गया है; पर भारतीय अर्थात हिन्दू और चीनी—ये दो जातियाँ अब तक जीती-जागती हैं। प्राचीन युगके सब प्रौढ़ और सुकृतिवान् जनगणोंमें केवल दो ही आज तक मरे नहीं हैं, जीते हैं—हिन्दू और चीनी। इसका कारण यह है कि इन जनगणोंके लोग पूरी तौरसे अपने प्राचीन धर्म और अपनी प्राचीन संस्कृतिसे छूटे नहीं हैं। अपने धर्म और अपनी जीवन-रीतिकी रक्षा करते हुए प्राचीनोंसे, पूर्वजोंके पुण्य-अवदानसे, इन्होंने अपनोंको अलग नहीं कर दिया है। प्राचीनके बसिलसिला परिवर्त्तनमें जीवन है। प्राचीनसे संयोग-सूत्र छिन्न होनेसे जीवनमें—खासकर मानसिक और आत्मिक जीवनमें—भी हानि पहुँचती है। प्राचीनके ऊपर आधुनिककी प्रतिष्ठाको जब हम सहज भावसे मान लेते हैं, तब बहुत-सी जातियोंमें हम ऐसा ही देखते हैं। हमारी संघ-शक्ति बढ़ती है, अपनेको दिवालिया और पर-प्रसाद-पुष्ट सोचनेका अवकाश हमें नहीं मिलता, और इससे हम आत्मिक दैन्यसे बच जाते हैं। कमसे कम दो हज़ार सालकी स्मृति और संयोग इस विक्रम-ाब्दसे हमारे सामने मूर्त्तिमान हैं। इस कारण इस अब्दका अस्तित्व हमारे जातीय जीवनमें शक्ति लानेवाला है।

इन दो हज़ार वर्षोंमें कितना-कुछ हुआ! पृथिवीका इतिहास इन दो हज़ार वर्षोंमें कई बार उलट गया। रोमका साम्राज्य-विस्तार, आखिर रोमका पतन, यूरोपमें प्राचीन धर्मका विलोप और ईसाई धर्मका उसके स्थानमें आकर उसे ले लेना; इधर इस्लामका उद्भव होना और फैलना, इराक और हिस्पानमें इस्लामी सभ्यताका विकास, मंगोल और ईसाइयोंके हाथ उसका विनाश; भारतमें बौद्ध और ब्राह्मण्य धर्मोंके साथ सभ्यताका फैलाव, द्वीपमय भारत, Indo-China या इन्दो-चीन और Serindia या चीन-हिन्दमें एक 'बृहत्तर भारत'का स्थापन, भारतमें दार्शनिक और वैज्ञानिक तथा कला-विषयक और साहित्यिक उन्नतिकी पराकाष्ठा; भारतपर शक-हूणोंका आक्रमण, उनका उपनिवेश, आखिर तुर्कों द्वारा भारतीय संस्कृतिपर किया हुआ भयंकर आक्रमण और भारतके मुसलमान-युगका आरम्भ, मुसलमान राज्यका प्रसार, मुग़ल सम्राटगणके समय भारतीय सभ्यताके इस्लामीय रूपकी प्रतिष्ठा; फिर पुर्त्तगाली, फ्रांसीसी, अंगरेज़ आदि यूरोपीय जातियोंके लोगोंका आगमन; मध्य-युगके सिद्ध, भक्त और सन्तों द्वारा भारतीय ईश्वर-बोधका नया फैलाव; उधर यूरोपमें गण महाराजका अभ्युदय—फ्रांसीसी क्रान्ति, इंग्लैण्डके भारत-अधिकारके फल-स्वरूप उसके साम्राज्यकी दृढ़ प्रतिष्ठा और व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नति; जर्मनीका उदय, इंग्लैण्ड और जर्मनीमें शत्रुता, विगत महायुद्ध; और रूसकी क्रान्ति, जिससे समग्र दुनियाके प्राचीन रीति-रस्म, औरोंको दबाकर जो अर्थनीति और राष्ट्रनीति आज प्रबल हैं, उनके साथ ही साथ जो रीति-रस्म क़ायम हैं, वे दूर हो जानेवाले हैं। और सबसे बढ़कर है विभिन्न प्रकारके स्वार्थों और आदर्शोंके संघर्षसे पैदा इस समयका महासमर। न-जाने इसका नतीजा क्या होगा, कहाँ तक जातिगत स्वार्थ-बोध और दुर्बलोंपर अत्याचार पृथिवीसे मिट जायँगे। हम भारतीयोंके लिए विक्रम संवत्की यह नवीन सहस्राब्दी क्या लायगी, इसका भी पता नहीं है।

मनुष्यके जीवनमें वर्षगाँठ या सालगिरहका दिन स्मरणीय होता है। ऐसे दिनमें मनुष्य विचारकर देख सकता है कि मानसिक, आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवनमें नफ़ा-नुक़सान क्या हुआ, आशा-आकांक्षा कहाँ तक पूरी हुईं और चिन्ता-आशंका कहाँ तक दूर हुईं। मनुष्य नव वर्षके लिए नए संकल्प करता है और नवीन आशा तथा उत्साहसे काममें लग जाता है। जातिके जीवनमें एक-एक शती एक-एक वर्षगाँठ-सी होती है। सहस्राब्दी खत्म हुई, मानो जातिके जीवनके दस साल बीत गए। यूरोपमें ईसाई लोग सोचते थे कि जब ईसाई अब्दके हज़ार साल पूरे हो जायँगे, तब पृथिवीमें प्रलय होगा, स्वयं अपने फ़रिश्तोंको साथ लाकर ईसू ख्रिस्त फिर नया अवतार लेंगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़-ए-क़यामत ज़ाहिर होगा और स्वर्ग-राज्यकी नींव डाली जायगी। लोग बड़ी आशंकामें थे कि दुनियाका क्या होगा? बहुतसे लोग जोशके साथ धर्म-कर्म करने लगे। पर ईस्वी अब्द १००० बीत गया, दुनिया पूर्ववत् ज्योंकी त्यों चली। जातिके जीवनमें उस जातिमें व्यवहृत अब्दके शतक या सहस्रक खत्म होनेके समय कुछ आशंका, कुछ आशाका आना स्वाभाविक है। शती या सहस्राब्दी खत्म हो जानेका समय क्रान्ति लाता है, ऐसा विचार भी स्वाभाविक है। मुग़ल सम्राट भारत-तिलक अकबर बादशाहके राज-कालमें इस्लामी अब्द हिजरीके पहले सहस्र वत्सर पूरे हुए। इस घटनाके स्मारक-स्वरूप अकबरने 'तारीखे अलफ़ी' अर्थात् 'सहस्रकका इतिहास' नामक एक इतिहास-ग्रन्थ फ़ारसीमें लिखवाया था, जिसमें नबी मुहम्मदके समयसे अकबरके समय तक इस्लामी दुनियाका एक ऐतिहासिक सिंहावलोकन था। ऐसे सुन्दर उपायसे पुरानी सहस्राब्दीको विदा दे दी गई और साथ ही नईका आवाहन किया गया। अनजानमें हम लोगोंने भी जातिकी ओरसे ऐसे ही काममें हाथ लगाया है। विक्रम संवत्की तीसरी सहस्राब्दीके शुरूके साथ-ही-साथ कमसे कम चार भारतीय इतिहास-ग्रन्थ बनानेकी कोशिश चल रही है। काशीकी भारतीय इतिहास-परिषद्ने सर यदुनाथ सरकारके सम्पादकत्वमें भारतवर्षका एक विराट् इतिहास बनानेका काम हाथमें लिया है, जिसके पूरा होनेमें कई बरस लग जायँगे। वैसा ही दूसरा एक इतिहास भारतीय इतिहास-सम्मेलन भी बनाकर प्रकाशित करेगा। ढाका-विश्वविद्यालयसे बंगाल-प्रदेशके इतिहासका पहला खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। उधर गुजरातसे श्री कन्हैयालाल मुन्शीके सम्पादकत्वमें मूलराज सहस्राब्दी-जयन्तीके स्मारक 'The Glory that has Gujarat' नामक इतिहास-ग्रन्थ निकलनेवाला है। ये सब पुस्तकें हमारी आत्म-समीक्षाके लिए, हम हिन्दू-जाति या भारतीय जातिके लोगोंने इतने शतक-भर क्या-क्या किया, उस सबके दिग्दर्शनके लिए निहायत उपयोगी होंगी।

हम लोग चाहे जितने ही विचारशील हों, जितने ही वैज्ञानिक मनोभाव-युक्त हों, हमारे अन्तःकरणमें कल्पनाकी या रसग्राहिताकी एक धारा अन्तःसलिला फल्गु नदी-सी छिपी हुई बहती है। वह हमें कवि, भावुक या रसिक बना देती है। उसीके कारण हम एक मामूली दिनमें बहुतसे गुण देखते हैं, किसी कालमें विशेष कुछ माहात्म्य देखना चाहते हैं। कुछ विशेष मुहूर्त्त रहें या न रहें, हम ऐसे शुभ अवसरको छोड़ नहीं सकते। जो सहस्राब्दी बीत गई, उसमें भला और बुरा दोनों ही हमारे जीवनमें महाकाल ला चुका है। इन भलों और बुरोंकी जाँच हम इस वक्त नहीं कर सकते। रुद्रके साथ अगर हमने एक पात्रसे विष पिया है, तो भी हमें यह ज्ञान है कि हम अमृतके पुत्र हैं, हम मरनेके नहीं। बुराइयाँ जो हमें पहुँची हैं, उनसे मुक्त होनेके लिए ईश्वर हमें शक्ति दें, हमें एकता दें, हमें समर्थ बनायँ। ये बुराइयाँ हमारी परीक्षाके लिए भाग्य-देवताकी देन हैं। हम ईश्वरके सामने, पृथिवीकी सब जातियोंके सामने इस परीक्षामें उत्तीर्ण हों। और जो अच्छी चीज़ें, जो भलाइयाँ हमें मिली हैं, उनके लिए ईश्वरके पादपीठपर हमारी कृतज्ञता पहुँचे। हम दुःखका स्मरण करें, ताकि हम दुःखको दूर करनेमें चेष्टित हों; सुखका स्मरण करें, ताकि हम उत्साहित हों। हमारी राष्ट्रीय स्वाधीनता चली गई है। हममें बहुविध नीचताएँ, भीरुताएँ और जड़ताएँ आ गई हैं। हमें फिर उच्चमनाः, साहसी और उत्साही बनना चाहिए; अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता और शक्तिको फिर जाग्रत करना चाहिए। कई महापुरुष अपने पुण्य जीवनके आदर्श हमारे सामने गए सहस्र वर्षोंमें लाए हैं: पृथ्वीराज चौहान, आचार्य हेमचन्द्र, रामानन्द, कबीर, राणा प्रताप, सायणाचार्य, महाप्रभु चैतन्य, गुसाईं तुलसीदास, सम्राट अकबर, शिवाजी, समर्थ रामदास, गुरु नानक, गुरु गोविन्दसिंह, रानी अहल्याबाई, विजयनगरके राजा कृष्णराय, राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी। इनके आविर्भावसे साबित होता है कि ईश्वरने हमें अब तक त्याग नहीं दिया है। हमें आशा है कि फिर हम अपने झण्डेको ऊँचा कर सकेंगे। और नवीन सहस्राब्दीका स्वागत करते हुए हम ईश्वरसे यह प्रार्थना करते हैं कि क्या काले, क्या गोरे, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या ब्राह्मण, क्या हरिजन—मनुष्य मनुष्यके भाई हैं, यह बोध हममें सुदृढ़ हो जाय; अपने पूर्वजोंके कीर्त्ति-कलापकी चिन्ता करते समय हममें हमारी अपनी अयोग्यताके कारण मनमें आत्म-समीक्षा और लज्जा और साथ ही साथ हमारे दोषोंको गुणोंमें परिवर्त्तित करनेकी इच्छा और चेष्टा आ जायँ; दूसरे किसी देशके न्याय्य हक़ूकको नुक़सान पहुँचाए बिना हम अपने देश भारतको स्वाधीन, समृद्ध और पृथिवी-भूषण तथा जगजीवन बना सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा साहित्योपवन

बनारसीदास चतुर्वेदी

आम्र-निकुंज, ५ जून, १९४३। पाँच आम्र-वृक्षोंका सघन कुंज है। ये चालीस-पचास वर्ष पहले लगाए गए होंगे। इनकी शीतल छायामें बैठे हुए हमारे मनमें आज अनेक विचार उठ रहे हैं। किसी सुदूर पेड़से कोयलकी आवाज़ सुनाई पड़ रही है, जो याद दिलाती है व्रज-कोकिल सत्यनारायण कविरत्नके मधुर स्वरकी, जो कभी हिन्दीके साहित्योपवनमें गूँजा करता था। यह उद्यान काफ़ी विस्तृत है। हम सोचते हैं कि जिन मालियों और उद्यान-सेवकोंने पानी दे-देकर इन पौधोंको बड़ा किया था, क्या उनके मनमें कभी यह कल्पना भी आई थी कि इनका उपभोग आगे चलकर कौन करेगा?

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लल्लूजी लाल, राजा लक्ष्मणसिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट, आचार्य द्विवेदीजी और पं० श्रीधर पाठक तथा अन्य बीसियों साहित्यिकोंने हिन्दी-साहित्योपवनकी जो सेवा की, उसका शुभ फल आज हम लोग भोग रहे हैं। क्या हमारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम भी इस बगीचेको इस प्रकार सुसज्जित करें कि आगे आनेवाली पीढ़ियाँ कृतज्ञतापूर्वक हमारा स्मरण करें?

इन बड़े-बड़े वृक्षोंसे दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह गज़की दूरीपर क़लमी आमोंके नए पौधे हैं, जो चार-पाँच वर्षके होंगे और जिनमें शायद अगले साल फल आयँगे। और यहीं तीन-चार गज़की दूरीपर गमलोंमें नवीन पौधें रखी हुई हैं, जो संख्यामें पचासों होंगी। इनमें कितनी ही जीवित रहेंगी और सम्भवतः कुछ सूख भी जायँगी। माली नित्यप्रति इनकी देख-भाल करता है और बगीचेके मज़दूर नियमानुकूल इनमें पानी देते हैं। मैं खयाल कर रहा हूँ अपने जनपदके उन नवीन लेखकों तथा कवियोंका, जिन्हें प्रोत्साहनका रस और उपयुक्त वायुमंडल मिलना ही चाहिए। 'कीरतिके बिरवा कवि हैं इनकों कबहूँ कुम्हलान न दीजै'—किसी प्राचीन कविने कहा था। पन्द्रह-बीस करोड़ हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें यह सर्वथा स्वाभाविक है कि सहस्रों ही कवि और लेखक हों। यद्यपि हम लेखन-ब्रह्मचर्यके पक्षपाती हैं, तथापि यह भी जानते हैं कि आत्म-प्रकटीकरणकी भावना अदम्य है। किसी कविसे यह कहना कि आप कविता न कीजिए, उतना ही धृष्टतापूर्ण है, जितना कि किसी कलीको यह आदेश देना कि तुम प्रस्फुटित न हो। लेखक लेख लिखेंगे और कवि कविता रचेंगे ही। सर्वोत्तम नीति यही है कि अपनी-अपनी रुचि तथा शक्तिके अनुसार अनुभवी व्यक्ति उन्हें प्रोत्साहन दें और उनका पथ-पदर्शन करें।

अभी उस दिन एक मालीने हमसे शिकायत की थी कि अमुक सज्जनने हमारे अशोकका एक पौधा सुखा डाला। हमारे यहाँसे गमला तो उठा ले गए; पर उसको पानी देनेका प्रबन्ध न कर सके! चूँकि अशोक-वृक्षोंकी शीतल छायामें हमारे जीवनके अनेक सुखप्रद घण्टे बीते हैं, इसलिए हम उस मालीकी हार्दिक वेदनाका अनुमान कर सके; पर साथ ही मनमें यह प्रश्न भी उठा कि क्या इसी प्रकार हम लोगोंकी उपेक्षा या लापरवाहीसे अनेक लेखक तथा कवि अविकसित अवस्थामें ही नहीं पड़े हुए हैं? हमारे उद्यानमें (वह उतने ही अंशमें हमारा है, जितने अंशमें हम उसकी शीतल छाया और स्वच्छ वायुका उपभोग कर सकते हैं; वैसे तो वह राजकीय है) कोई आठ-दस आदमी काम कर रहे हैं। कोई रहँट चला रहा है, कोई पौधोंको पानी दे रहा है, कोई बीथियोंको झाड़ रहा है, कोई पौधोंकी देख-रेख कर रहा है और अभी गार्डेन-आफ़िसर श्रीयुत सेठजीने आकर इस उद्यानका निरीक्षण किया है। क्या साहित्योपवनमें इसी प्रकारके पारस्परिक सहयोगकी भावनाकी ज़रूरत नहीं?

सामने असमयमें ही सूखा हुआ वह पौधा दीख रहा है और हमारे मनमें चिन्ता है उन पत्रकार-बन्धुकी, जो क्षय-रोगसे पीड़ित होकर एक अस्पतालमें पड़े हुए हैं और जिनके पास इतना पैसा भी नहीं कि वे फल खा सकें। हमारे एक मित्रने उन्हें अस्पतालमें जाकर देखा है और लिखा है कि उनकी हड्डी-हड्डी निकल आई है। हमें याद आ रही है पपीतेके उस पौधेकी, जो हम अपनी पूर्व-अफ्रीका-यात्राके पहले एक मित्रकी देख-रेखमें छोड़ गए थे, जिसे तीन महीने बाद लौटकर हमने बिलकुल सूखा हुआ पाया था! उस समय हमें जो हार्दिक वेदना हुई थी, उसका हमें अभी तक स्मरण है। अभी उद्यानके माली श्री गोविन्दसिंहने, जो बहुत मामूली पढ़ा-लिखा है, कविवर देवीदासका एक कवित्त सुनाया है:—

छोटे-छोटे फूलनको सूरनकी वारि करे,
पतरेसे पौधा पानी डारि प्रतिपारिबो;
फूली फुलवारिनके फूल तोरि लेवै खरे,
घने दरखत एक ठौर तैं उखारिबो।
नीचे परे पाँयनि ते टेकनि दे ऊँचों कर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँचे चढ़ि गए ते जरूर काटि डारिबो;
राजनको मालिनको प्रतिदिन 'देवीदास'
चार घरी राति रहे इतनी बिचारिबो।

क्या तुलसीदासजीके समकालीन मारवाड़-निवासी देवीदासजीको स्वप्नमें भी इस बातकी आशा रही होगी कि तीन सौ वर्ष बाद बुन्देलखण्डका एक अशिक्षित या अर्द्ध-शिक्षित माली उनके कवित्तको इस तरह दुहरायगा?

हिन्दी-साहित्योपवनके तीन स्वर्गीय मालियोंसे हमारा व्यक्तिगत परिचय था और उनसे हमने बहुत-कुछ पाया भी था—आचार्य द्विवेदीजी, गुरुवर पं० पद्मसिंह शर्मा और श्रद्धेय गणेशजी। उनके चले जानेके बाद यह उपवन सूना-सूना-सा लगता है :—

'रंगी है आजकलके गुले नौबहारसे।
अगला जो कोई बर्गे ज़र्द इस चमनमें है।'

—अर्थात् वसन्त-वाटिकामें नवीन पुष्प खिले हैं, पीले पत्ते तो कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होते हैं।

स्व० पद्मसिंह शर्माका जीवन ही साहित्यमय था। कवियों और लेखकोंकी रचनाओंकी दाद देना, उन्हें प्रोत्साहित करना मानो उन्हींके हिस्सेमें आया था। दिसम्बर, १९३१ के 'विशाल भारत'में श्रीमती 'चकोरी'की 'उजड़ी वाटिकासे' नामक कविता छपी थी। शर्माजीकी निगाह उस कवितापर पड़ी और उन्होंने तुरन्त ही उसकी प्रशंसा लिख भेजी। कविताके दो पद्य सुन लीजिए :—

वह क्या हुए वैभव तेरे सभी, वह मंजुलता दिखलाती न क्यों?
वह शीतल सौरभ डूबी बयार, अचंचल है इठलाती न क्यों?
वह पीली पराग-सनी सरसों, कुछ झूमती-सी झुक जाती न क्यों?
उकसाती जो आग वियोगकी है, वह कोयल भी अब गाती न क्यों?
वह वल्लरियाँ लिए पल्लवोंको, निज अंकमें नित्य झुलाती न क्यों?
मद-मत्त हो स्वागतमें उषाके, विहँगावली गान सुनाती न क्यों?
सुमनावलियाँ मुसकाती हुईं, भ्रमरोंको बुला बहलाती न क्यों?
मदिरा-सी पिए अलसाती हुई, तितली अब चित्त चुराती न क्यों?

कवितामें इसी प्रकारके पाँच मनोहर पद्य थे। उन्हें पढ़कर हिन्दी-प्रेस, प्रयागसे पं० पद्मसिंहने लिखा था—"'उजड़ी वाटिकासे' शीर्षक कविता मुझे बहुत पसन्द आई। यह चकोरी देवी कौन हैं? अच्छा लिखती हैं। मैंने पहली बार ही उनकी रचना पढ़ी है। तीसरे छन्दकी अन्तिम पंक्ति पढ़ते वक्त कुछ धचका-सा लगता है, उसमें छन्दोभंग या ध्वनिभंग है। मात्राएँ तो गिनी नहीं; पर धचका ज़रूर लगता है, ज़रा पढ़ देखिए।" हिन्दी-जगत्में आज बीसियों लेखक तथा कवि विद्यमान हैं, जिन्हें समय-समयपर शर्माजीसे बहुत-कुछ प्रोत्साहन मिला था। इन पंक्तियोंका लेखक तो उनका अत्यन्त ऋणी है।

इसी प्रकार स्वर्गीय द्विवेदीजी तथा गणेशजी हमें और हमारे-जैसे पचासों नवीन लेखकों तथा कवियोंको बराबर प्रोत्साहन देते रहते थे। जितने साहित्यिकोंका निर्माण इस आचार्य-त्रयीने किया है, उतने और उस कोटिके साहित्यिक हिन्दी-जगत्में शेष सब धुरन्धर महारथियोंने मिलकर भी न बनाए होंगे। अभी उस दिन विद्वद्वर श्री वासुदेवशरण अग्रवालने अपने एक पत्रमें बड़ी कृतज्ञतापूर्वक द्विवेदीजीके एक उत्साहप्रद कृपा-पत्रका ज़िक्र किया था, जो उन्हें आजसे बीस वर्ष पहले प्राप्त हुआ था। हिन्दीका शायद ही कोई उल्लेख-योग्य लेखक या कवि हो, जिसे पूज्य द्विवेदीजीने प्रोत्साहित न किया हो। उन्हींके श्रेष्ठ शिष्य गणेशजीने इस परम्पराको निबाहा और खूब निबाहा।

सौभाग्यकी बात है कि हिन्दीका साहित्योपवन दिनों-दिन खूब हरा-भरा होता जाता है। खेद केवल इसी बातका है कि उसकी देख-भाल करनेवाले सहृदय समालोचकोंका प्रायः अभाव ही है। इस कारण झाड़-झंखाड़की भी वृद्धि हो रही है और इस अकाल तथा कन्ट्रोलके ज़मानेमें भी 'सब धान बाईस पसेरी' बिक रहे हैं! दूसरे साहित्य-सूत्रोंकी बात हम नहीं जानते। सम्भवतः उनके यहाँ क्षति-पूर्त्तिका सिद्धान्त काम कर रहा हो। हमारे यहाँ तो इन तीन साहित्यिक महापुरुषों—द्विवेदीजी, शर्माजी, गणेशजी—के उठ जानेपर उनका स्थान खाली ही है और निकट भविष्यमें उसकी पूर्त्तिकी कोई आशा भी नहीं। पर हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र बसुन्धरा है और हिन्दी-माताकी कोख कभी खाली नहीं होगी, इसलिए निराश होनेका कोई कारण नहीं।

पहले जब कोई अच्छा लेख या नोट अपने हाथसे निकल जाता था, तो इस बातकी आशा रहती थी कि उक्त रचनाकी क़द्र करनेवाले मौजूद हैं और हमें निराश नहीं होना पड़ता था। जिस दिन श्रद्धेय द्विवेदीजी या शर्माजीकी चिट्ठी आ जाती थी, 'विशाल भारत' आफ़िसमें उत्सव-सा हो जाता था। कभी द्विवेदीजी स्व० ब्रजमोहन वर्माकी लेख-शैलीकी प्रशंसा करते थे, तो कभी शर्माजी श्री धन्यकुमारके अनुवादोंकी दाद देते थे। कभी भूल हो जाती थी, तो मीठी डाँट-फटकार हमारे हिस्सेमें आती थी। यह अनुभव करते हुए कि हमारे सिरपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई वयोवृद्ध मौजूद है, जो हमें पथभ्रष्ट न होने देगा, हृदयको ढाढ़स बँधा रहता था। बड़े-बूढ़ोंकी डाँट-फटकारमें भी आनन्द ही आता है। अब कोई अच्छे लेख लिखे, भी तो किसके लिए? यहाँ कौन किसे पूछता है? आज हममें से प्रत्येक अपने घरकी चहारदीवारीके भीतर साग-तरकारीकी बाड़ी लगाकर खुद ही उसका भोग करना चाहता है। उपवन लगाने या सजानेकी चिन्ता किसीको नहीं। भगवानने गीतामें कहा था :—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्ति आत्म कारणात्।

—अर्थात् यज्ञसे बचे हुए पदार्थोंका भोजन करनेवाले सन्त लोग तमाम पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; किन्तु जो लोग अपना ही पेट भरनेके लिए भोजन बनाते हैं, वे केवल पापका ही आहार करते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे साहित्यिक याज्ञिक इस उपदेशको ध्यानमें रखें।

आज हम प्राचीन भारतीय धर्म, श्राद्ध-कर्मको भी भूलते जा रहे हैं। हमारे यहाँ कितने ही लेखक और कवि ऐसे हो गए हैं, जो बहुत अच्छा लिखते थे; पर जिनके लेखों अथवा कविताओंका संग्रह हम अभी तक नहीं कर पाए। उनका यशःशरीर हमारी आँखोंके सामने ही सूखता जा रहा है! हम स्वयं इस मामलेमें अपनेको सबसे बड़ा गुनहगार मानते हैं, इसलिए किसीपर आक्षेप करनेका साहस हममें नहीं है। स्व० द्विवेदीजीका जीवन-चरित अभी तक नहीं लिखा गया। स्व० गणेशजीके लेखों तथा टिप्पणियोंका संग्रह हम लोग नहीं कर सके। उनके संस्मरणोंको एकत्र करके छपाना कोई मुश्किल बात नहीं थी, वह भी हमसे नहीं हुआ। उनके विस्तृत जीवन-चरित लिखनेकी बात तो दूर रही। स्व० बालकृष्ण भट्ट तथा स्व० श्रीधर पाठकके जीवन-चरित अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। सुना है, स्व० लक्ष्मीकान्त भट्टने अपने पूज्य पिताजीका जीवन-चरित लिखा था; पर वह छप नहीं पाया। स्व० सप्रेजीका जीवन-चरित लिखा ही नहीं गया। स्व० पद्मसिंहजीके जीवन-चरितकी ज़िम्मेवारी इन पंक्तियोंके लेखकपर है और यह लिखते हुए मैं अत्यन्त लज्जित हूँ कि वह अभी तक लिखा नहीं जा सका, यद्यपि उनके विषयमें तीन विशेषांक निकलवा चुका हूँ और पुस्तकका ढाँचा भी तैयार है। यह श्राद्ध-कार्य तभी विधिवत् सम्पन्न हो सकता है, जब भिन्न-भिन्न जनपदोंके साहित्यिक इस पुण्य-कार्यको बाँट लें। उदाहरणार्थ, स्व० मुन्शी अजमेरीजीकी समस्त रचनाओंके संग्रहका कार्य बुन्देलखण्डके साहित्यिकोंको आपसमें मिलकर करना चाहिए। वैसे मुन्शीजी अखिल भारतीय व्यक्ति थे और उनके यशःशरीरकी रक्षाके लिए हम अन्य भारतीय जनपदोंसे भी सहायता ले सकते हैं; पर जब तक उनके निकटस्थ व्यक्ति और उनका जनपद इस श्राद्ध-कार्यको नहीं उठाता, तब तक बाहरसे मदद मिलना मुश्किल ही है। स्व० घासीरामजी व्यास और स्व० रसिकेन्द्रजीकी रचनाओंका संग्रह तो हम लोगोंको ही करना चाहिए।

'हसरत तो उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गए!' यदि हम अपने-अपने जनपदकी जाँच-पड़ताल करें, तो हमें पता लगेगा कि हमारे साहित्योपवनकी कितनी ही कलियाँ बिना खिले ही मुरझा गईं। प्रोत्साहन किसे कहते हैं, यह उन्होंने जीवन-भर नहीं जाना। वास्तवमें वह विद्वान लेखक हिन्दी-माता और हिन्दी-जनताका बड़ा उपकार करेगा, जो इन उपेक्षित व्यक्तियोंके दृष्टिकोणसे आधुनिक हिन्दीका इतिहास लिखेगा। हमारे इतिहास-लेखक प्रायः 'टकामें टका और धकामें धका'की नीतिसे काम लेते हैं और विज्ञापित व्यक्तियोंकी ही प्रशंसाके पुल बाँधते चले जाते हैं। भावी इतिहास-लेखकका कर्तव्य होगा उन लेखकों तथा कवियोंका भी उल्लेख करना, जो वास्तवमें बड़े होनहार थे; पर प्रतिकूल परिस्थितियोंके कारण जिनका यथोचित विकास नहीं हो पाया। स्व० कौशलेन्द्रजीका नाम आपको हिन्दीके किसी इतिहासमें नहीं मिलेगा, यद्यपि वे उच्च-कोटिके कवि थे। आकस्मिक दुर्घटनासे वे अग्निकाण्डमें स्वाहा हो गए।* यदि पक्षपात और धृष्टता न समझी जाय, तो मैं यह भी कहूँगा कि इन पंक्तियोंके लेखकका अनुज रामनारायण चतुर्वेदी भी एक होनहार कवि तथा लेखक था; पर वह असमयमें ही चल बसा! किन्तु यह समय अपने व्यक्तिगत दुखड़ोंके रोनेका नहीं है। हमारे कहनेका अभिप्राय यही है कि हमारे सैकड़ों ही छुटभइए आज हमसे प्रारम्भमें थोड़ी-सी सहायता (किंचित प्रोत्साहन) की आशा रखते हैं और उन नवांकुरोंके पनपनेका अवसर अवश्य मिलना चाहिए। हम साहित्य-जगतमें परावलम्बनकी भावना जाग्रत नहीं करना चाहते। प्रोत्साहनका कोई सदाव्रत जारी करनेकी इच्छा हमारी नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि चिरस्थायी पराश्रय अन्ततोगत्वा निर्बलता तथा अनैतिकताको जन्म देता है। हमारा कहना तो सिर्फ़ इतना ही है कि तैरना सीखनेवालोंके लिए प्रारम्भमें जैसे थोड़े-से सहारेकी ज़रूरत होती है, वैसे ही साहित्य-सरिताके नवीन

* महाकवि अकबरके शब्दोंमें :—
वह चमन ही जल गया जिसमें लगाए थे शजर।
अब तुझे पाकर मैं ऐ बादे बहारी क्या करूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखकोंको शुरू-शुरूमें कुछ सहायता मिलनी चाहिए। बस। कभी-न-कभी वह युग अवश्य आयगा, जब कि हमारे साहित्यिक काल-कोठरियोंके बजाय उद्यानोंमें रहेंगे, जब कि नोन-तेल-लकड़ीकी निरन्तर चिन्ता करनेके बजाय देशके महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंका चिन्तन करते हुए उनका समय बीतेगा और जब कि समाजमें उन्हें वही स्थान प्राप्त होगा, जो प्राचीन कालमें सच्चे अर्थों ब्राह्मणोंको प्राप्त था। निःसन्देह आजके युगमें लेखक ही वास्तविक ब्राह्मण हैं, चाहे वे किसी भी जातिके हों (हिन्दू, मुसलमान, पारसी या ईसाई इत्यादि); पर उस युगको लानेके लिए हम सबको साधना करनी होगी। एक वृद्ध आदमीसे, जो आमके पौधे लगा रहा था, किसीने पूछा—'बाबा, तुम यह क्यों लगाते हो? इनके फल खानेके लिए तुम क्या बैठे रहोगे?' बूढ़ेने जवाब दिया—'हमारे बाबाने आम लगाए थे, हम खा रहे हैं। हम लगा रहे हैं, सो हमारे नाती खायँगे।' इसी भावनासे हम साहित्यिकोंको काम करना चाहिए। आज हिन्दीके पत्रकारोंको जो-कुछ थोड़ी-सी सुविधाएँ प्राप्त हैं, उनके लिए हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, सदत्त सम्पादकाचार्य, आचार्य द्विवेदीजी, श्रद्धेय गणेशजी इत्यादिके ऋणी हैं। हमारे सौभाग्यसे पूज्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा पराड़करजी पथ-प्रदर्शकके रूपमें हमारे बीचमें विद्यमान हैं। आजकी हिन्दी-पत्रकार-कला इन्हीं सबकी लगाई हुई फुलवारी है। इसे गुलज़ार करना हम सबका कर्त्तव्य है।

हर्षकी बात है कि हिन्दी-जगत्में कुछ ऐसे दूरदर्शी व्यक्ति भी विद्यमान हैं, जिनका ध्यान समस्त साहित्योपवनकी ओर है। सेवाग्राम-सम्मेलनके कुछ प्रस्ताव ऐसे हैं, जिन्हें पढ़कर हृदय पुलकित हो उठता है। आशा-लता लहराने लगती है। पर लगभग चौबीस करोड़की आबादीवाले हिन्दी-जगत्के पचासों जन-पदीय साहित्योद्यानोंकी देख-भालका कार्य दो-चार व्यक्तियोंके सुपुर्द किया नहीं है। हमारे प्रधान माली (सम्मेलन-सभापति) का कर्त्तव्य है कि कमसे कम एक बार चक्कर लगाकर इन उपवनोंकी खैर-सल्लाह तो कर लें, नवीन साहित्यिक अंकुरोंको देखें और जाँच करें कि कहीं कोई होनहार पौधा सरस वायुमण्डलके अभावमें सूख तो नहीं रहा।

साहित्योपवनके प्रश्न दो-एक नहीं, अनेक हैं और उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार हो सकता है, जब प्रत्येक जनपदके साहित्य-सेवी अपने यहाँके किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थलपर इकट्ठे होकर पाँच सात दिन साथ रहें और उस उल्लासमय वायुमण्डलमें दिल खोलकर बातचीत करें। साधन-सम्पन्न व्यक्ति इस उद्यान निवास और उद्यान-भोजका प्रबन्ध करके आसानीसे यश लूट सकते हैं। वैसे तो प्रत्येक साहित्य-सेवीके लिए सैकड़ों वर्ष पहलेके किसी यूनानी दार्शनिकका यह उपदेश 'Cultivate your garden' (अपने बगीचेको जोतो-बोओ) ही आदर्श-वाक्य है। 'स्वधर्मे निधने श्रेयः' भगवानने गीतामें कहा था। फिर भी पारस्परिक विचार-परिवर्त्तनकी कभी-कभी आवश्यकता पड़ती रहती है।

साहित्यिकोंको युग-धर्मको ध्यानमें रखते हुए स्व-धर्म पालन करना चाहिए। सहस्र बार वन्दनीय हैं राल्फ़ फ़ाक्स-जैसे लेखक, जो क़लम और बन्दूक़ दोनोंके धनी थे (शस्त्र और शास्त्र दोनोंके ज्ञाता), जिन्होंने फ़ाशिज़्मके प्रबल प्रभंजनके प्रतिरोधमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दी और जिनके यशःसौरभसे विश्व-साहित्यके उपवन युग-युगान्तर तक महकते रहेंगे। पर न प्रत्येक साहित्यिक उनकी तरह क्षत्रिय बन सकता है और न प्रत्येकको बनना ही चाहिए। वैचित्र्यमें जीवन है और वैचित्र्य ही उपवन तथा साहित्योपवन दोनोंकी जान है। कठमुल्ले हैं वे, जो चट्टानपर उगनेवाले पीपलोंकी तो पूजा करते हैं; किन्तु कोमल जुही तथा चंचल चमेलीके लिए जिनके हृदयमें कोई भी स्थान नहीं। पर कोई भी असली उद्यान-प्रेमी अथवा सच्चा साहित्य-सेवी असहिष्णु नहीं बन सकता।

गुलाबको चमेली बननेकी ज़रूरत नहीं और गेंदा जुहीसे ईर्ष्या क्यों करे? उद्यानमें सबका उचित स्थान है और अपने स्थानपर यथोचित सम्मान। महाप्राण वटवृक्ष तूफ़ानोंमें डटे रहेंगे और छुईमुई क्यारियोंमें शोभा देगी। आम यदि मधुर फल देंगे, तो बबूल भी कठोर काँटे, जिनसे बाड़ीकी सीमापर रक्षाका काम लिया जा सकेगा। उद्यान और साहित्योपवन दोनोंके लिए हम एक ही सिद्धान्तके समर्थक हैं, यानी सबको फूलने-फलने तथा फैलनेके लिए पर्याप्त अवकाश और आकाश प्राप्त हो—'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनका महिला-आन्दोलन

श्रीमती मेलिंग सूंग च्यांग (मादाम च्यांगकाई-शेक)

इतिहास बतलाता है कि क्रान्तिकारी मतवादके विकासका महिलाओंकी उन्नतिके आन्दोलनसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरणके लिए फ्रांसकी राज्यक्रान्ति यूरोपके, दास-प्रथाका अन्त अमरीकाके और अक्तूबर-क्रान्ति रूसके महिला-आन्दोलनोंकी प्रेरक शक्तियाँ सिद्ध हुई हैं। चीनका महिला-आन्दोलन १९०० के बाक्सर-विद्रोहके बाद—मंचू-सत्ताके पराभव-कालमें हुए वैधानिक सुधारोंसे—आरम्भ होता है। उसके बाद १९११ की क्रान्ति, ४ मईके आन्दोलन और उत्तरी अभियानके रूपमें प्रगतिकी विभिन्न मंज़िलोंको पार करता हुआ यह आन्दोलन आज भी चीनके स्वाधीनता-आन्दोलनके साथ-साथ चल रहा है। इन सब मंज़िलोंमें यह चीनके अन्य सामाजिक आन्दोलनोंसे सम्बद्ध रहा है।

यद्यपि चीनका महिला-आन्दोलन मंचू-सत्ताके उत्तरार्द्धमें हुए वैधानिक सुधारोंसे आरम्भ होता है, तथापि १९११ की क्रान्ति तक यह केवल पुराने सामाजिक और नैतिक बन्धनोंके विरुद्ध विद्रोहकी चेतना-मात्र रहा है। इसके बाद यह विचार-क्रान्ति कार्य-रूपमें परिणत हुई, जिसमें महिलाओंने अपनी शक्ति और दृढ़ निश्चयका खासा अच्छा परिचय दिया। इसके उपरान्त इसका किस प्रकार विकास हुआ और वूचंग-क्रान्तिसे पूर्व तथा बादमें विभिन्न मंज़िलोंमें किस-किस रूपमें इसकी प्रगतिको सहायता मिली, इसीका थोड़ा-सा उल्लेख इस निबन्धमें किया जायगा।

१९११ की क्रान्तिसे पहले

सन् १८९४ के चीन-जापान-युद्धकी समाप्तिपर हुई शिमोनोसेकी-सन्धिके बाद अधिकाधिक विदेशियोंका चीनमें आगमन हुआ और चीनसे भी बड़ी तादादमें कूटनीतिक प्रतिनिधि तथा छात्र विदेशोंमें गए। इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कसे चीनमें यूरोप तथा अमरीकाकी संस्कृतियों, रहन-सहन, शिक्षा तथा विचारोंका प्रचार-प्रसार हुआ। लोगोंमें विचार-क्रान्ति हुई और महिलाओंकी ओरसे खुले-आम राजनीतिक, सामाजिक एवं अर्थनीतिक समानताकी माँग होने लगी। परिणामतः कई वैधानिक सुधारोंके लिए आवाज़ उठाई जाने लगी।

इस दिशामें, मंचू-सत्ताके सम्राट कुआंग-सूके शासनके २६वें वर्षमें, असाधारण त्याग और साहसके साथ क़दम बढ़ानेवाली थीं चौ-फू-चेन, माहो-चीह-स्यांग और लीउ-हुई-फांग। इनके प्रयत्नोंके फल-स्वरूप दो वर्ष बाद ही महिलाओंका पहला पत्र प्रकाशित हुआ। इसके बाद तो पीकिंग और शंघाईसे महिलाओंके कई पत्र निकलने लगे। 'चीनी महिलाओंसे' नामक पुस्तकमें श्रीमती चिन-यीने महिलाओंके लिए ६ प्रकारकी सुविधाओंकी माँग की—स्कूल जाने, मित्र बनाने, कारबार करने, रुपए-पैसेका हिसाब-किताब रखने, घरसे बाहर आने-जानेकी स्वतन्त्रता और विवाहकी आज़ादी। इसके साथ ही श्रीमती यीने महिलाओंके सामाजिक सम्बन्धों, विवाह, शिक्षा और सरकारी विभागोंमें काम करने आदिके सम्बन्धमें ऐसे विचार प्रकट किए, जिनका चीनी महिलाओंके विचारोंपर काफ़ी प्रभाव पड़ा।

कुआंग-सूके शासनके ३०वें वर्षमें चिउ-चिन नामक एक क्रान्तिकारी महिलाने महिलाओंकी शिक्षा और व्यायाम आदिका काम अपने हाथमें लिया। कुछ समय बाद वह मंचू और राजतन्त्र-विरोधी क्रान्तिमें भाग लेते हुए मारी गई। चीनी लोग आज भी उसे बड़ी श्रद्धा और आदरके साथ याद करते हैं। स्त्री-शिक्षाके लिए इस समय विशेष आन्दोलन होने लगा। हांगचोकी हुई-सिग-कन्याशाला खानगीसे सरकारी व्यवस्थामें चली आई और कई महिला-शिक्षण-संस्थाएँ खुल गईं। इसी समय मंचू-सत्ताकी ओरसे शिक्षण-संस्थाओंकी व्यवस्था एवं निरीक्षणके लिए एक विशेष विभाग खोला गया, जिसमें पहली बार स्त्री-शिक्षाको स्थान मिला।

पर बावजूद इन सबके चीनमें स्त्री-शिक्षाका सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं हो पाया था; अतः बहुत-सी चीनी छात्राएँ जापान गईं, जो इस समय आधुनिकताकी नई पश्चिमी लहरमें से गुज़र रहा था। चीन और जापानकी वर्ण तथा संस्कृतिकी समानता तो सर्वविदित है ही; पर यह कह देना भी आवश्यक है कि जापानने सभ्यता और संस्कृतिके नामपर जो-कुछ सीखा है, वह चीनसे ही लिया है। जापानने कोरिया द्वारा ही चीनसे केलेण्डर (पंचांग)-निर्माण, लिखना और इतिहास-लेखन आदि सीखे हैं। सम्राट कुआंग-सूके शासनके ३२वें वर्षमें जापान-स्थित चीनी छात्राओंने वहाँ अपना एक संघ भी क़ायम किया, जिसकी ओरसे कई प्रकाशन भी हुए।

इस प्रकार १९११ की क्रान्तिसे पूर्व चीनी महिलाओंमें जो थोड़ी-बहुत जाग्रत हुई, वह पश्चिमके सम्पर्कके कारण ही। इसका आरम्भ कन्याशालाओंकी स्थापनासे हुआ; किन्तु शीघ्र ही यह भी मंचू-सत्ताके विरुद्ध संगठित होनेवाली सार्वजनिक क्रान्तिका एक अंग बन गई। इस जाग्रतिमें मिशनरियों द्वारा खोली गई कन्याशालाओंका भी विशेष हाथ है। चीनी महिलाओंकी जाग्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[illegible] पुरातनके बन्धनसे मुक्तकर आधुनिक शिक्षा द्वारा स्वतन्त्रताके मार्गपर अग्रसर करानेका शुभारम्भ इन्हीं लोगोंने किया था।

१९११ की क्रान्तिके बाद

सन् १९११ की क्रान्तिमें महिलाओंने बहुमूल्य योग दिया। [illegible]वारोंकी स्वतन्त्रता कार्य-रूपमें परिणत हुई। इस उथल-पुथलमें उनके कार्योंका क्षेत्र स्वभावतः बढ़ गया। वूचांगपर अधिकार होनेके बाद जब सेनामें और रँगरूटोंकी ज़रूरत पड़ी, तो काफ़ी तादादमें स्त्रियाँ सेनामें भर्त्ती हुईं। कुमारी वू-शू-[illegible] महिला-सैनिकोंकी अध्यक्षा बनाई गईं। हांगचोके युद्धमें [illegible]यांगकी युवतियोंने भी भाग लिया। सक्रिय क्रान्तिमें योग [illegible]के लिए उनके कई फ़ौजी दस्ते और टुकड़ियाँ बनाई गईं। [illegible] अभियानमें भी वे पुरुषोंके साथ-साथ लड़ीं।

क्रियात्मक रूपसे लड़नेके अलावा उन्होंने अन्य कई प्रकारसे क्रान्तिको सफल बनानेमें सहायता की। वूहानमें क्रान्ति [illegible] होते ही महिलाओंके प्राथमिक सहायता और रक्षा-दल [illegible] गए, जो सेनाके साथ ही उत्तरकी ओर बढ़ते गए। [illegible]कोंकी सेवा-सुश्रूषा और मरहम-पट्टीका भार भी उन्होंने ही [illegible]। शंघाई, हांको, हेनयांग, चिंक्यांग, नानकिंग आदिमें [illegible]कासकी शाखाएँ खुल गईं। सुन्दर और गाने-नाचनेवाली [illegible]योंने खुफ़ियागीरी, जनतासे क्रान्तिकी सहायताके लिए [illegible] तथा सामग्री एकत्र करने और सैनिकोंकी आवश्यकताकी [illegible] जुटानेमें बहुमूल्य योग दिया। स्थान-स्थानपर क्रान्ति-[illegible] महिला-संस्थाएँ खुल गईं, जिनकी सदस्याएँ घर-घर [illegible] क्रान्तिके लिए चन्दा और सामग्री जुटाने लगीं। [illegible] इलिंग (मादाम एच० एच० कुंग) ने, जो हाल ही में [illegible]कासे अपनी शिक्षा समाप्तकर चीन लौटी थीं, अर्थ-संग्रहके [illegible] जन-नाट्यके महत्वको समझा और ऐसे खेलोंके अभि-[illegible] व्यवस्था की, जिनमें रंगमंचपर भले घरोंकी सुशिक्षित [illegible]योंने भाग लिया। इससे एक ओर जहाँ महिलाओंकी [illegible]-सी भ्रान्तियाँ दूर हुईं, क्रान्ति और घायल सैनिकोंकी [illegible]ताके लिए काफ़ी धन एकत्र हुआ।

क्रान्तिकी सफलताके बाद महिलाओंके विचारों और धार-[illegible]में भी व्यापक क्रान्ति हुई। सुशिक्षित महिलाओंमें अपने [illegible]कारोंके प्रति जागरूकता और शासन-प्रबन्धमें भाग लेनेकी [illegible] पैदा हुई। कई संस्थाएँ स्थापित हुईं, जो महि-[illegible]की स्वतन्त्रता और समानताका आन्दोलन करने लगीं। [illegible] ओरसे यह दावा किया गया कि पुरुषोंके समान ही उन्हें [illegible] धारा-सभाका मताधिकार देने, सदस्य चुने जा सकनेकी सुविधा देने और सरकारी नौकरियाँ मिलनेकी व्यवस्था की जानी चाहिए। इस आन्दोलनका प्रधान केन्द्र थी 'तुंग-मेंग-हुई' नामक संस्था, जिसकी ओरसे सरकारसे यह दरख्वास्त की गई कि वह अपने विधानमें महिलाओंको मताधिकार देने, धारा-सभामें चुने जा सकने और सरकारी नौकरियाँ कर सकनेके लिए आवश्यक सुधार-संशोधन करे। ऐसा न होनेपर चीनी नागरिककी परिभाषामें उचित संशोधन करनेकी बात भी सुझाई गई। पर जब नए विधानका मसविदा प्रकाशित हुआ, तो स्त्रियों और पुरुषोंकी राजनीतिक, सामाजिक तथा अर्थनीतिक समानताको स्पष्ट रूपसे स्वीकार नहीं किया गया। इससे चीनी महिला-समाजमें सरकारके विरुद्ध भारी नाराज़गी फैली।

महिलाओंके बौद्धिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी विकासकी ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। क्रान्तिको सफल बनानेमें पत्रों और प्रोपेगण्डाका बड़ा ज़बर्दस्त हाथ रहा था, अतः महिलाओंने भी अपने सुधार एवं उन्नतिके लिए इसी अस्त्रका उपयोग करनेका निश्चय किया। कई महिलाओंने लेखन और अख-बारनवीसीके क्षेत्रोंमें प्रवेश किया और पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों द्वारा स्त्रियोंमें शिक्षा, राजनीतिक व सामाजिक सुधारों, स्वतन्त्रता एवं समानताके अधिकारों, शासन-प्रबन्धमें भाग लेनेकी आवश्यकता आदिका प्रचार आरम्भ किया। उद्योग-धन्धोंमें भी महिलाओंने खुलकर भाग लेना आरम्भ किया। शंघाईकी विमेंज़ इण्डस्ट्रियल कम्पनीका सारा काम महिलाएँ ही करती थीं। नानकिंगमें महिलाओंकी दस्तकारियोंके कई केन्द्र और कई महिला-बैंक खोले गए। कई अन्य क्षेत्रोंमें भी महि-लाओंने स्वतन्त्र रूपसे पुरुषोंके-से काम करने आरम्भ कर दिए।

१९१९ के युवक-आन्दोलनका प्रभाव

चीनी छात्रों द्वारा ४ मई, १९१९ को आरम्भ किया गया युवक-आन्दोलन युवक-युवतियोंके लिए एक राजनीतिक और सांस्कृतिक ही नहीं; बल्कि सामाजिक आन्दोलन भी था। राजनीतिक दृष्टिसे यह पुराने सामन्तों और सैनिक-सत्तावादियोंके विरुद्ध बग़ावतका ऐलान था; पर सामाजिक दृष्टिसे यह राष्ट्रके सामने उपस्थित कई सामाजिक गुत्थियों और समस्याओंके हलका मार्ग-निदर्शन भी था। चीनके महिला-अन्दोलनको तो इससे गति ही मिली। इसके द्वारा प्रेम और विवाहमें स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता, सामाजिक सम्बन्ध-सम्पर्क और शासन-प्रबन्धमें उनके भाग लेनेके औचित्यका समर्थन भी हुआ। परिवारके पुराने दक़ियानूसी विचार ढहने लगे और उनके स्थानपर पति-पत्नीके 'छोटे घर' बसाने तथा स्त्रियोंके अर्थनीतिक स्वावलम्बनके विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबल होने लगे। पीकिंग, शंघाई, क्वांगतुंग, चेकियांग, हूणान, सेच्वान, क्यांगसी आदिमें महिलाओंकी संस्थाएँ क़ायम हुईं, जो उनके अधिकारों तथा शिक्षा और क़ानूनकी दृष्टिमें स्त्री-पुरुषको समान मनवानेके लिए लोकमत जाग्रत करने लगीं।

इस आन्दोलनसे चीनमें स्त्री-शिक्षाको भी काफ़ी गति मिली। पहले युवतियोंकी उच्चशिक्षाके लिए पीकिंगका यूनियन-कालेज, नानकिंगका जिंगलिंग-कालेज और फूचोका साउथ-चाइना-कालेज ही मुख्य थे। ये सब मिश्नरियों द्वारा खोले गए थे। चीनी प्रजातन्त्रने अपने पाँचवें वर्ष (१९१७) से ही इस ओर ध्यान दिया; पर अभी विशेष विकास नहीं हो पाया था। अब सरकारकी ओरसे युवतियोंकी उच्चशिक्षा, शिक्षिकाओंकी ट्रेनिंग और संस्कृति, ललित-कलाएँ, चित्रांकन आदिके लिए अनेक शिक्षण-संस्थाएँ खुलीं। कई विश्वविद्यालयोंमें युवक-युवतियाँ साथ-साथ उच्चशिक्षा प्राप्त करने लगे। इस प्रकार सह-शिक्षाका भी काफ़ी प्रचलन हुआ।

स्त्री-शिक्षाकी उन्नतिके साथ-ही-साथ महिलाओंका कार्यक्षेत्र भी काफ़ी व्यापक हो गया। काफ़ी बड़ी संख्यामें सुशिक्षिता स्त्रियाँ स्कूल-कालेजों, दफ़्तरों, व्यापार-व्यवसाय आदिमें और साधारण शिक्षिता कारखानोंमें काम करने लगीं। इससे महिलाओंके सामाजिक कार्य भी बढ़े। उनकी रहन-सहन सुधारने, मातृ-मन्दिर, शिशु-शालाएँ तथा मज़दूरिनोंके हितोंकी रक्षाकी ओर शिक्षिता नारियोंका ध्यान गया और उनमें सामाजिक सुधार किए जाने लगे। ईसाई-महिला-समितियोंने घरोंमें सुधार किए जानेके लिए देश-व्यापी प्रचार-कार्य किया। कई जगह नारी-शिक्षा-मन्दिर और नारी-आवास स्थापित किए गए।

कुओमिन्तांग और महिला-आन्दोलन

कुओमिन्तांगके पुनर्गठनके बाद उसकी आधारभूत नीतिकी व्याख्या करते हुए कहा गया कि क़ानून, अर्थनीति, शिक्षा और सामाजिक मामलोंमें स्त्री-पुरुषकी समानताके सिद्धान्तका पालन किया जायगा और स्त्रियोंके अधिकारोंकी रक्षाका प्रयत्न किया जायगा। कुओमिन्तांगने नारी-आन्दोलनको सदा प्रोत्साहन ही दिया है। १९२८ में जब राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना हुई, तो कुओमिन्तांगकी देख-रेखमें ही महिला-आन्दोलन चलाया जाने लगा। इस कार्यके लिए उसके केन्द्रीय कार्यालयमें एक विभाग खोला गया, जिसने सारे प्रान्तों, ज़िलों, नगरों और ग्रामोंमें अपनी शाखाएँ खोलीं और स्त्रियोंकी शिक्षा तथा उनके अधिकारोंकी रक्षाके लिए सुसंगठित रूपसे कार्य करना शुरू किया। मज़दूरिनोंकी शिक्षाकी ओर भी इनके द्वारा पर्याप्त ध्यान दिया गया।

नानकिंगके म्युनिस्पल - कुओमिन्तांग - हेडक्वार्टर्स और राष्ट्रीय सेनाके राजनीतिक शिक्षा-विभागने प्रमुख महिला कार्यकर्त्रियोंकी एक सभाकर नानकिंग-महिला-संघ खोलनेका निश्चय किया। शीघ्र ही पीकिंग, तिएन्तसीन और फूचो तथा अन्हवेई और होणान प्रान्तोंके अनेक स्थानोंमें ऐसे ही संघ खुल गए। इनका काम महिलाओंमें साक्षरता, शिक्षा, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पुनर्जागरणका प्रचार-प्रसार करना तथा उन्हें उद्योग-धन्धे सिखाकर स्वावलम्बी बनाना है। स्त्री-शिक्षाके लिए विद्यालय खोलने और उनका संचालन करनेका काम भी इन्हीं संघोंके ज़िम्मे था। ये इस बातका भी ध्यान रखते थे कि राजनीति, क़ानून, शिक्षा, विवाह, समाज तथा अन्यान्य क्षेत्रोंमें स्त्री-पुरुषोंको समान सुविधाएँ एवं अधिकार मिलें और उनके साथ एक-सा ही बर्त्ताव हो।

१९२९ में एक महिला-सम्मेलन हुआ, जिसमें देशके विभिन्न भागोंसे आई हुईं महिला-प्रतिनिधियोंने भाग लिया। इसने सरकारसे राष्ट्रीय महिला-संघ स्थापित करनेका अनुरोध किया। महिलाओंकी उन्नतिके लिए इस सम्मेलनने कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए, यद्यपि कुओमिन्तांग उनपर पूर्णतया अमल नहीं कर सका।

मुकडेन-काण्डने शत्रुके प्रति चीनवासियोंमें विक्षोभकी एक ऐसी विकट लहर पैदा कर दी, जिसके प्रभावसे महिलाएँ भी अछूती न रह सकीं। समस्त चीनकी छात्राओं, अध्यापिकाओं, घरकी बहू-बेटियों, मज़दूरिनों और सुशिक्षिता नारियोंने अपने देशकी रक्षाके लिए प्रचार-पोपेगण्डा, उत्पादन, संगठन और लड़ने तकके दस्ते संगठित कर लिए। नानकिंग, शंघाई, तिएन्तसीन, पीपिंग, कैंटन और हांकोमें महिला-संघ शत्रुको रोकने और देशकी रक्षाके लिए प्रचार व संगठनका महत्त्वपूर्ण कार्य करने लगे। २८ जनवरी, १९३२ को जब शंघाईमें सर्वप्रथम युद्ध आरम्भ हुआ, तो छात्राएँ, मज़दूरिनें और घरोंकी बहू-बेटियाँ भी सैनिकोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर लड़ीं। उन्होंने सैनिकोंके लिए कपड़े बनाए, घायल सैनिकोंकी चिकित्सा और मरहम-पट्टी की, अर्थ-संग्रह और प्रकाशनका कार्य किया। इसके बाद चीनकी महाप्राचीर और सुइयानकी लड़ाइयोंमें भी उन्होंने युद्धमें पूरी-पूरी मदद की।

१९३१ के अकालमें महिलाओंने फिर अपने त्याग, सेवा-व्रत और कर्त्तव्य-परायणताका समुचित परिचय दिया। अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए जगह-जगह केन्द्र खोले गए, जहाँसे उन्हें कपड़े, खाना, रज़ाइयाँ आदि बाँटे गए और बीमारोंकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना-दारू तथा गर्भिणी स्त्रियोंके प्रसवकी व्यवस्था की गई।

मई १९३१ में जब जन समितिकी बैठक बुलाई गई, तो नानकिंगकी महिलाओंके प्रस्तावपर उसने दीवानी और फौजदारी कानूनोंमें कई महत्त्वपूर्ण सुधार किए। १९३५ में समितिके प्रतिनिधियोंके चुनावकी जो शर्तें कुओमिन्तांगकी व्यवस्थापिका द्वारा प्रकाशित करवाई गईं, उनसे महिलाओंके प्रतिनिधित्वकी दिक्कतें दूर नहीं हुईं। इसके विरुद्ध फिर आन्दोलन हुआ।

चीन-जापान-युद्ध और महिलाएँ

७ जुलाई, १९३७ को ज्योंही चीन-जापानमें युद्ध छिड़ा, समूचे देशके लोग चीनकी स्वाधीनता-रक्षाके लिए एक झण्डेके नीचे संगठित होने लगे। युद्धके बढ़ते हुए प्रभावके कारण महिला-आन्दोलनको भी एक नवीन गति मिली। उसका कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक और व्यावहारिक हो गया। मई, १९३८ में १३ प्रान्तोंकी ५० प्रतिनिधि-महिलाओंकी कूलिंगमें एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। इसमें इस बातका अनुभवकर कि यद्यपि महिलाओंकी उन्नतिके लिए देश-भरमें कई संस्थाएँ काम कर रही हैं; पर वे केन्द्रीय रूपसे संगठित-व्यवस्थित नहीं हैं, शत्रुका मुक़ाबला करने और राष्ट्रीय पुनर्निर्माणमें महिलाओंका सहयोग प्राप्त करनेके विचारसे महिलाओं एवं महिला-संस्थाओंका देशव्यापी संगठन करनेकी योजना बनाई गई। इसमें उनकी शिक्षा, रहन-सहन उन्नत करने, अर्थनीतिक हित सुरक्षित करने, व्यापक शिक्षाके लिए महिलाओंके बुद्धिजीवी-संघ संगठित करने आदिकी भी गुंजाइश रखी गई। इन सब कार्योंका संचालन-सूत्र नवजीवन-आन्दोलनकी महिला-परामर्शदातृ समितिके हाथमें रखा गया। चीनी महिला-आन्दोलनके पिछले ३० वर्षोंके इतिहासमें यह एक नया क़दम था। इससे महिलाओंका सगठन काफ़ी व्यापक और ठोस हो गया और उनकी क्षमता भी बढ़ी।

युद्धकी परिस्थितियोंके कारण महिलाओंके सहयोगकी माँग बढ़ी, जिसे सुश्रृंखल रूपमें प्राप्त करनेके लिए महिला-शिक्षिकाओं एवं कार्यकर्त्रियोंकी माँग भी बढ़ी। इसे पूरा करनेके लिए ६ टोलियोंमें ९४१ महिलाओंको ट्रेनिंग दी गई, जिन्होंने देशके कोने-कोनेमें घूमकर कारखानों, अस्पतालों, घायल सैनिकोंकी सेवा-सुश्रूषा तथा युद्धमें अनाथ हुए बालकोंके पालन-पोषण एवं शिक्षा आदिके लिए महिलाओंका सक्रिय सहयोग प्राप्त किया। महिला-युद्ध-सहायक-समितियोंकी ओरसे प्रत्येक प्रान्तमें शिशु-रक्षा-केन्द्र खोले गए। इस समय चीनमें ५४ ऐसे अनाथालय हैं, जिनमें युद्धमें अनाथ हुए २४,९९७ बच्चोंकी देख-रेख होती है।

सबसे उल्लेखनीय कार्य इस दौरानमें महिलाओंने उत्पादन-क्षेत्रमें किया है। युद्धके कारण एक ओर तो चीज़ोंकी माँग बढ़ी और दूसरी ओर बाहरसे मालका आयात रुक गया। मादाम एच० एच० कुंगका ध्यान इस ओर गया और उन्होंने हांकोके कारखानोंमें घूम-घूमकर इस बातका पता लगाया कि स्त्रियाँ किस प्रकार उत्पादन-कार्यमें सहयोग दे सकती हैं? अन्तमें वे इस निर्णयपर पहुँचीं कि रेशम, दस्तकारियों और सूत कातने तथा कपड़ा बुननेके काममें स्त्रियाँ विशेष सहायक हो सकती हैं। फलतः उन्होंने सेच्वानके ११ ज़िलोंमें रेशम तैयार करवानेका काम आरम्भ किया। उन्होंने केवल रेशमका उत्पादन ही नहीं किया, उसकी क़िस्मको भी बेहतर बनाया। १९४० में इस प्रान्तमें जो रेशम तैयार हुआ, वह न सिर्फ़ पिछले वर्षके मुक़ाबलेमें ७० प्रतिशत अधिक था, बल्कि अच्छा भी था। इस समय रेशम पैदा करनेवाली सहयोग-समितियोंमें १२,००० परिवार—जिनमें अधिकांश महिलाएँ ही हैं—काम कर रहे हैं। आशा की जाती है कि शीघ्र ही सेच्वान फिर चीनका प्रमुख रेशम-उत्पादन-केन्द्र हो जायगा।

मादाम कुंगकी प्रेरणासे ही सेच्वानमें कपड़ेकी कताई-बुनाई, दस्तकारी, रेशम तैयार करने आदिके कई कारखाने खोले गए। कई ज़िलोंमें प्रयोगके तौरपर यह कार्य आरम्भ किए गए। गाँवोंकी महिलाओंमें इन कामोंका प्रचार करनेके लिए कई शिक्षित महिलाओंको भेजा गया, जिन्होंने ग्रामीण महिलाओंको उद्योग-धन्धोंकी शिक्षा दी, औद्योगिक सहयोग-समितियाँ स्थापित कीं और उनके परामर्श तथा पथ-प्रदर्शनके लिए उप-समितियाँ संगठित कीं। इस प्रकार महिलाओंके सहयोगसे चीनकी उत्पादन-शक्ति कुछ ही समयमें आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ गई। कुल उत्पादनमें से आवश्यकतानुसार माल देशमें प्रयोगके लिए रख लिया जाता है और बाक़ी विदेशोंको भेजा जाता है, जहाँसे चीनको कई आवश्यक चीज़ें एवं यन्त्रादि प्राप्त होते हैं।

सेनाकी सहायताकी ओर भी महिला-युद्ध-सहायक-समितिने विशेष ध्यान दिया। हुणान, क्वांगतुंग, क्यांगसू, चेकियांग, शेंसी, कान्सू, क्यांगसी तथा क्यूशो प्रान्तोंमें और चीनके बाहर लन्दन, न्यूयार्क, पैरिस एवं फिलिपीन द्वीपोंमें इसकी शाखाएँ खोली गईं, जिनके द्वारा सेनाके लिए सर्दीके कपड़े, क. के जूते, मोज़े, रज़ाइयाँ और दवाइयाँ वग़ैरा संग्रह की गईं। अब तक सब शाखाओंसे ५० करोड़ डालर (लगभग १॥ अरब रुपए।) नक़द, १२५० तोले वज़नके चाँदी-सोनेके गहने, ३०,००० जोड़े कपड़ेके जूते, २० तरहकी दवाइयाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा गर्मी और सर्दीके हज़ारों कपड़े प्राप्त हो चुके हैं। इनमें से कुछ लड़नेवाले सैनिकोंके लिए थे, कुछ घायल सैनिकोंके लिए और कुछ उनके आश्रितोंके लिए।

पर युद्ध-जनित आवश्यकताओंने महिला-सुधारकी धाराको एकदम रोक नहीं दिया है। नवजीवन-आन्दोलनके सिद्धान्तोंके अनुसार महिलाओंकी रहन-सहन एवं उनके सामाजिक जीवनको उन्नत करनेका प्रयत्न बराबर जारी है। वूहानके नगरोंसे जो ३०,००० मज़दूरिनें अपना काम जारी रखनेको दूसरे स्थानोंमें भेजी गईं, उनके ज्ञान-वर्द्धन और रहन-सहनको उन्नत करनेकी शिक्षा भी बराबर जारी रही। कई जगह ऐसी संस्थाएँ क़ायम हो गई हैं, जो ज्ञान-वर्द्धन और शिक्षा-प्रसारके अलावा महिलाओंकी अधिकार-रक्षा, उनके उपयुक्त काम खोजने आदिका भी काम करती हैं। महिलाओंकी उन्नति और सामाजिक सम्पर्क बढ़ानेके लिए सेच्वान, हूणान, क्वीशो, क्वांग-तुंग, क्वांगसी, होणान, शेंसी, पंचम युद्ध-क्षेत्र और कान्सूमें तथा सानफ्रांसिस्को, सिटेल, शिकागो, बोस्टन, वाशिंगटन, न्यूयार्क, लास-एंजेलिस, सेक्रेमेंटो, बाल्टीमोर और पोर्टलैण्ड आदिमें महिला कार्यकर्तृ-सभाएँ खोली गई हैं। समूचे देशमें महिला-नवजीवन-सेवा-समितियाँ भी संगठित की गई हैं, जिनकी अध्यक्षा प्रत्येक ज़िलेदारकी पत्नी है। ये समितियाँ प्रत्येक सरकारी संस्था, राष्ट्रीय सरकार, व्यवस्थापिका, धारा-सभा और २० अन्य संस्थाओंमें सुचारु रूपसे अपना कार्य कर रही हैं।

गाँवोंमें दस्तकारी और उद्योग-धन्धोंके साथ ही महिलाओं तथा बच्चोंमें शिक्षा-प्रसारके लिए भी काम हो रहा है। एक ओर इसका काम ग्रामीण महिलाओंको किसी-न-किसी उद्योग-धन्धेके योग्य बनाना और दूसरी ओर उनके रहन-सहनको उन्नत करना है। पिछले कुछ वर्षोंसे यह कार्य यांग्सीके किनारे-किनारे हो रहा है। यह काम सेच्वानके २८ ग्रामीण ज़िलों, हुआनके १० और पचासों अन्य ज़िलोंमें हो रहा है। पर इससे अभी सरकार और महिला-युद्ध-सहायक-समिति सन्तुष्ट नहीं हैं। उनकी ओरसे इस कार्यको व्यापक रूप देने और आगे बढ़ानेके लिए अधिकाधिक प्रयत्न हो रहा है।

इन सबके साथ ही महिलाओंकी सांस्कृतिक उन्नति, उनके विचारों एवं मतोंको निश्चित उद्देश्योंकी ओर प्रेरित करने तथा उनमें परस्पर सहयोग, सहानुभूति एवं विचार-विनिमयकी भावना पैदा करनेके लिए कई सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ एवं पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। इनका एकमात्र उद्देश्य है स्त्रियोंकी सामाजिक एवं अर्थनीतिक उन्नति, उनके अधिकारोंकी रक्षा, उनमें शिक्षा-प्रचार तथा उनकी रहन-सहन उन्नत करना। नव-जीवन-आन्दोलनकी महिला-परामर्शदातृ-समिति इन वर्षोंमें विशेष सक्रिय, ठोस एवं प्रतिनिधात्मक हो गई है। उसके द्वारा चीनी महिलाओंकी उन्नतिके आन्दोलनको विशेष गति मिली है और चीनी महिलाओंने यह अनुभव किया है कि जब तक उनका देश पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं हो जाता, उनकी स्वतन्त्रता एवं समानताका स्वप्न कार्यान्वित नहीं हो सकता। यही कारण है कि चीनी महिलाओंने राष्ट्रीय स्वाधीनताके युद्धमें अधिकाधिक भाग लिया है।

सबसे महत्वकी बात तो यह है कि चीनके महिला-आन्दोलनको सरकारका पूर्ण सहयोग-साहाय्य प्राप्त है। उसने अपनी नीतिका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि शत्रुके मुक़ाबलेको ठोस और प्रबल बनानेके लिए महिलाओंको सामाजिक सेवाकी शिक्षा देना नितान्त आवश्यक है। उन्हें युद्ध-कालीन नागरिक-संघों तथा सार्वजनीन राजनीतिक परिषद आदिमें इसी उद्देश्यसे पुरुषोंके समान स्थान दिया गया है। राजनीतिक परिषदमें पहले १० महिला-सदस्याएँ होती थीं, अब १६ होती हैं। कई प्रान्तीय धारा-सभाओंमें भी उनको प्रतिनिधित्व प्राप्त है। समस्त देशके महिला-उन्नति-सम्बन्धी कार्योंकी देख-रेख एवं संचालनके लिए केन्द्रीय कुओमिन्तांगके तत्वाधानमें एक महिला-समिति बनानेका भी उसके सातवें अधिवेशनमें निश्चय हुआ है। इससे स्पष्ट है कि कुओमिन्तांग और राष्ट्रीय सरकारके सदस्य चीनके महिला-आन्दोलनमें कितनी दिलचस्पी ले रहे हैं।

अन्तमें हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि पिछले ३० वर्षोंमें चीनके महिला-आन्दोलनने विचारों और योजनाओंसे कार्य-रूप धारण किया है; राष्ट्रकी आज़ादीके संघर्षमें पूर्ण योग देते हुए उसने महिलाओंके लिए वैयक्तिक, सामाजिक एवं अर्थ-नीतिक स्वतन्त्रता तथा उन्हें पुरुषोंके समान अवसर-सुविधाएँ दिलानेकी भरसक चेष्टा की है। इस प्रकार एक विभिन्न मतों का विघटित देश आज सुसंगठित एवं निश्चित ध्येयके प्रति एकमत तथा सामूहिक रूपसे सचेष्ट हो गया है। आज उसके सामने निश्चित उद्देश्य और उनकी पूर्तिके लिए सुनिश्चित योज-नाएँ हैं। चीनी महिलाओंने देशकी आज़ादीके लिए बहु-मूल्य सहयोग और क़ीमती कुर्बानियाँ दी हैं और अपने लिए नई आशा तथा आज़ादी हासिल की है। वे जानती हैं कि जब तक आधा चीन ग़ुलाम है, चीन-राष्ट्र वास्तवमें आज़ाद नहीं। इसीलिए आज वे उसकी पूर्ण-स्वाधीनताके लिए पुरुषोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर लड़ रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला और उपयोगितावाद

श्री कुसुम गुप्ता, बी० ए०

कला 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं'के आधारपर स्थित है। उसकी उत्पत्ति ही आनन्दसे होती है। आनन्द-विभोर हृदयमें ही कला खिलती है। यह आनन्द उल्लासमय होता है। उसी प्रकार उपयोगितावाद वह चीज़ है, जो समाजका आवश्यक अंग है। प्रकृतिमें सर्वत्र उपयोगिता ही पाई जाती है। किन्तु इसके साथ ही उसमें एक और भी गुण होता है, वह है सौन्दर्य। इसका तात्पर्य यह नहीं कि अनुपयोगिता और कुरूपताका अस्तित्व ही नहीं। उपयोगिता और अनुपयोगिता, सुरूपता और कुरूपता सापेक्षिक गुण हैं। एकके अस्तित्वसे ही दूसरेका अस्तित्व प्रकट होता है।

अथर्ववेदमें एक श्लोक है, जिसका भावार्थ यह है कि उच्छिष्ट-मात्रसे आनन्दका स्वरूप विकसित होता है—अर्थात् मनुष्यकी जब दिनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, तब उनके अतिरिक्त मनुष्यका जो ज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता है। उसी उच्छिष्ट ज्ञानके आधारपर आनन्द प्रतिफलित होता है, कलाका मूल यही आनन्द है। किन्तु इस ज्ञानके अतिरिक्त उर्मिमय भावनाका भी मिश्रण कलाकी उत्पत्तिके लिए आवश्यक है—'उच्छिष्टात कला।'

मनुष्य भी एक प्राणी है और उसकी अपनी आवश्यकताएँ हैं। किन्तु मनुष्य और इतर प्राणीमें यहींपर अन्तर है कि केवल आवश्यकताओंकी पूर्ति तो दोनों ही कर लेते हैं; किन्तु कलाकी सृष्टि केवल मनुष्य ही करता है। भर्तृहरिने भी कहा है—'साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाण हीनः'।

कला और उपयोगितावादमें अधिकतर संघर्ष ही रहता है और इन दोनोंका मिलन असम्भव माना जाता है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार हमारे देशमें श्री और सरस्वतीकी एकता नहीं मानी जाती। श्रीका सादृश उपयोगितासे है—अर्थात् सुख और वैभवकी वह भूमि कल्पना है। सरस्वतीकी झलक वही कला है। सरस्वतीका प्रगतिमय स्वभाव है, वही कला है। किन्तु श्री और सरस्वतीका यह विरोध अनुचित है। कला और उपयोगितावादका समन्वय हो सकता है और होना भी चाहिए।

जिस प्रकार विज्ञान शुद्ध और व्यावहारिक दो प्रकारका होता है, उसी प्रकार कला भी शुद्ध और व्यावहारिक दो प्रकारके रूप धारण करती है। मानव-समाजमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रवृत्तियाँ हैं। जन-साधारणमें सब कलाके पारखी नहीं होते। इसीलिए शुद्ध कलाके मर्मके ज्ञाता तो कुछ ही कलाकार होंगे; किन्तु उपयोगितावादके जानकार अधिक ही निकलेंगे। यदि मनुष्य-जाति उन्नतिके शिखरपर पहुँचना चाहती है, तो उसे दोनोंको समान आदर देना पड़ेगा। यदि शुद्ध कलाको सभी लोग उपयोगमें लाने लगेंगे, तो उपयोगितावादका क्षय हो जायगा। आधुनिक कालमें जो सबसे समृद्ध कलाएँ हैं—जैसे कार्टून, पोस्टर आदि—वे तो उपयोगी हैं ही, साथ ही उनमें कलाकी भी झलक होती है। यदि ये सर्वथा कला-विहीन होते, तो जनताको कभी रुचिकर न होते। यहींपर व्यावहारिक कलाकी उपयोगिता है। कोरा उपयोगितावाद नीरस हो जाता है। यदि बिना कलाका आधार लिए केवल उपयोगितावादपर हम ध्यान दें, तो भारतमें कलाकार (Artists) न रहकर केवल कारीगर (Craftsmen) ही रह जायँगे। इससे स्पष्ट है कि कला और उपयोगितावादका सामंजस्य ही उत्तम कला है।

शुद्ध कला क्या है? शुद्ध कला वह है, जो किसी विषयकी गम्भीरताकी थाहमें होती है। संगीत, चित्रकला अथवा भाषण-कलाके ज्ञाता तो कुछ ही लोग हो सकते हैं; किन्तु यही ललित-कलाएँ महत्त्वशाली हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित पदार्थोंमें हम उपयोगिता और सुन्दरता पाते हैं। एक झोंपड़ी शीतसे, तापसे, आतपसे हमारी रक्षा करती है, यही उसकी उपयोगिता है; किन्तु यदि उसीके निर्माणमें हम कुशलतासे काम करें और उसकी कुरूपताको सुन्दरतामें परिवर्त्तित कर दें, तो यहींपर कला है। सौन्दर्यसे ही कलाकी उत्पत्ति होती है। यहाँपर उपयोगितावाद और कलाका एक अच्छा समन्वय है।

कला केवल कलाके लिए होनी चाहिए अथवा उसमें उपयोगितावाद भी हो या नहीं, इस विषयमें बहुत मतभेद है। हिन्दीके अनेक प्रमुख साहित्यकार (अथवा कलाकार) कहते हैं कि साहित्य कलाकी उत्कृष्ट प्रेरणाको हमारे सामने रखता है। साहित्यका काम समाजके लिए प्रचारक बनना नहीं है। कला केवल कलाके लिए होनी चाहिए।

साहित्य जीवन-क्षेत्रका दर्पण है और इस क्षेत्रमें प्रतिदिनके संघर्षका स्पष्टीकरण ही कला है। कला मनुष्यकी आन्तरिक प्रेरणाओंकी सत्यता और वस्तु-स्थितिकी परिचायक है। इसी कारण जब वह वस्तु-स्थिति या जीवनके नियमोंकी अवहेलना करती है, तब वह अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाती है। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तित्व जीवन-अनुभूत सिद्धान्तोंके विरुद्ध हो जाता है, तब वह वास्तविक अर्थमें कला-शून्य हो जाता है।

जीवनके दैनिक संग्रामोंसे विमुख साहित्य ही संघर्ष-विमुख साहित्य है। जो साहित्य जीवनकी प्रतिदिनकी परिस्थितिका बोझ लेकर चलता है और संग्रामके प्रहारोंका स्वागत करता है, वही संघर्षका साहित्य है। इसीके दो भाग यथार्थवादी साहित्य और आदर्शवादी साहित्य हैं। आदर्शवादी साहित्य-संघर्षका सुखद परिणाम चित्रित करता है। वास्तवमें वह भविष्यवादी साहित्य है। साहित्यकार अपनी कल्पनासे उस स्थितिको अंकित करता है, जिसमें जीवनके वर्त्तमान कटु अनुभव नहीं होते। वह दुखपूर्ण वर्त्तमानको सुखपूर्ण अनागत कालमें परिवर्त्तित करनेका स्वप्न देखता है। इसके विपरीत संघर्ष-विमुख साहित्यके विषयमें कुछ और ही बात है। ऐसे साहित्यकार समस्याओंको हल करनेकी अपेक्षा नगण्य वस्तुओंमें मस्ती और आनन्द खोजते फिरते हैं। ये कल्पनासे सुख प्राप्त करते हैं। इनको क्षुब्ध अम्बुधिको लहरोंने किनारेपर फेंक दिया है। वे अपनी टूटी वीणाके तारोंपर मूक गायन गाते हैं और शीराजी द्रवकी लालीमें जीवनका लालित्य देखते हैं। ये घोषणा करते हैं—'कला कलाके लिए है।'

किन्तु आज तो हमें ऐसे साहित्यकी आवश्यकता है, जो मानवताको ऊपर उठाय, मानवके सहज अधिकारोंकी भावना और विवेकको जाग्रत करे तथा उसे स्वतन्त्र, समान और सम्मानपूर्वक रहनेकी प्रेरणा दे। जो लोग इसके प्रतिकूल जाते हैं और प्राकृतिक सौन्दर्यकी निधिको लेकर भौतिक जगत्की चिन्ताओंसे छुटकारा पानेके लिए क्षितिजके उस पार सुनहले स्वप्निल संसारोंका सृजन करते हैं, वे भले ही शुद्ध कलाका दिग्दर्शन कराते हों; किन्तु हमें और युगको आज उनकी आवश्यकता नहीं। जब भूखे-नंगे लोगोंके सम्मुख रोटी-कपड़ेका सवाल है, तब नक्षत्रों, लहरों तथा कलिकाओंके मौन निमन्त्रणसे हमारा काम नहीं चल सकता। सबसे अच्छा साहित्य तो वही होगा, जो कलात्मक होनेपर भी उपयोगी होगा, जिसका हमारे जीवनसे यथार्थमें सम्बन्ध होगा।

हिमाद्रिका आत्म-परिचय

श्री सोहनलाल द्विवेदी

दूर ही से मनहरण मैं।

गगनचुम्बी उच्च-मस्तक मुकुटमणि-सा सुभग जगमग,
शुभ्र-हिम-मंडित कलेवर दिव्यता कमनीय पग-पग;
श्याम-नीलम तरु-लता-तृण सुरभि-मधु-पूरित दिशा-मग,
किन्तु अंतर घाटिकाएँ, पतन का हूँ अवतरण मैं।
दूर ही से मनहरण मैं।

लिए हिम-शीतल गिरा हूँ बनावन की सघन छाया,
विभव-वैभव-खान हूँ मैं किए अधिकृत विश्व-माया;
मसृण कोमल कान्त हूँ मैं सजल शीतल स्निग्ध छाया,
पर उदर में महाज्वाला, स्वार्थ का दृढ़ संस्करण मैं।
दूर ही से मनहरण मैं।

अचल योग-समाधि साधे ध्यान की धूनी रमाये,
जड़ तपस्वी-सा सुदृढ़ संयम-नियम की रज लगाये;
सह रहा हूँ विश्व-आतप 'तत्वमसि' का तन सजाये,
याचना के गर्त्तशत हूँ, वासना का उपकरण मैं।
दूर ही से मनहरण मैं।

एक भी तो डग नहीं मग जहाँपर सम रहा हूँ मैं,
विषम हूँ इतना कि जग-विश्वास का क्या क्रम रहूँ मैं?
जानता हूँ स्वयं कितनी सत्यता का भ्रम रहूँ मैं,
कुलिश कंटक हैं हृदय में बहिर्कुसुमित आभरण मैं।
दूर ही से मनहरण मैं।

बन रहे हो मुग्ध मन में पालकर मृदु-मधुर आशा,
कर सकोगे यहाँ आकर पूर्ण अन्तस की पिपासा;
छाँह पा शीतल-मनोरम कट चलेगी दुख-दुराशा,
उपल जल है प्राण-घातक नीर का बस संस्मरण मैं।
दूर ही से मनहरण मैं।

मैं स्वयं कटि तक धँसा हूँ गहन खाई के किनारे,
बस सका अब तक कहाँ इस गर्त से हो कभी न्यारे?
उठ सकोगे किस तरह फिर पा यहाँ मुझसे सहारे?
क्षमा माँगूँगा प्रणत हो, आज ही क्या? आमरण मैं।
दूर ही से मनहरण मैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपाहिजोंके लिए काम

श्री ईश्वरशरण

युद्ध और युद्ध-सम्बन्धी उत्पादनोंने आज मनुष्यकी आवश्यकता और क़ीमतको कहीं अधिक बढ़ा दिया है। पहले-पहल तो स्वस्थ-सबल लोगोंको लड़नेके लिए मोर्चोंपर भेज देनेके कारण उनके स्थानपर नागरिक एवं युद्ध-सम्बन्धी उत्पादनोंको जारी रखनेके लिए महिलाओंको—जिन्हें अधिकांशतः घरों अथवा दफ़्तरोंकी ही चहारदीवारीमें बन्द रखा जाता था—रखा गया। पर जब लड़ाईमें हताहत होनेके कारण पुरुषोंकी संख्या घटने लगी और उत्पादनकी आवश्यकता बेशुमार बढ़ने लगी, तो सवाल उठा कि आखिर मानव-शक्तिकी इस बढ़ती हुई माँगको कैसे पूरा किया जाय? इस प्रश्नका उत्तर अमरीकाने दिया है और साथ ही उन लाखों अपाहिजोंको—जो खा-पीकर भी समाजके केवल बोझ ही बने हुए थे—उपयोगिताकी ठोस सतहपर ला खड़ा किया है।

अमरीकामें कुल ३५ लाख रजिस्टर-शुदा बेकार हैं, जिनमें से कोई १० लाख अपाहिज हैं—जो किसी-न-किसी तरहके अंग-भंग अथवा अन्धताके शिकार हैं। इनमें से कुछ तो जन्मसे, कुछ आकस्मिक दुर्घटनाओंसे तथा कुछ कल-कारखानोंमें हुए अकस्मातोंके फल-स्वरूप अपाहिज हैं। अन्य देशोंकी भाँति अमरीकामें भी सर्वसाधारणमें इनके प्रति यह ग़लत धारणा फैली हुई है कि ये समाजके किसी कामके नहीं। लोगोंकी दया, दान और भीखपर जब तक भी ये ज़िन्दा रहें, ग़नीमत है। आजसे कोई १० वर्ष पूर्व अमरीकाके शिक्षा-विभागके अध्यक्ष ई० पी० चेस्टरने पहले-पहल अपाहिजोंके प्रति फैली इस भ्रान्ति और ग़लत धारणाका विरोध किया। जब उन्होंने कहा कि अपाहिजोंको भी उनके बौद्धिक विकास एवं शारीरिक क्षमताके अनुसार काम देकर समाजके लिए उपयोगी बनाया जा सकता है, तो लोगोंने उनकी खिल्ली उड़ाई। पर चेस्टर इससे तनिक भी हतोत्साहित नहीं हुए—यद्यपि वे बहुत कम अपाहिजोंको काम दिला सके।

पर ज्यों ही यह लड़ाई शुरू हुई—और ख़ासकर अमरीका और जापानमें सुदूर-पूर्वमें जबसे संघर्ष छिड़ा—नागरिक आवश्यकताओं एवं युद्ध-सामग्रीकी माँग अत्यधिक बढ़ गई। इसके लिए कारखाने तो खुल गए; पर मानव शक्ति इतनी कहाँसे आय कि मोर्चोंपर लड़े भी और इन्हें भी चालू रखे? चेस्टरने यही अवसर अपने स्वप्नको सत्य करनेके लिए उपयुक्त समझा और राजकीय अधिकारियों, कारखानेदारों, डाक्टरों तथा मनोविज्ञान-वेत्ताओंसे विचार-विमर्श शुरू किया। लोगोंको उनकी बातोंपर विशेष विश्वास तो नहीं हुआ; पर प्रयोगके लिए उन्हें सुविधा देनेकी बात सबने मान ली। इसका परिणाम यह हुआ है कि युद्ध छिड़नेके समय जहाँ प्रतिमास २०० अपाहिजोंको छोटा-मोटा काम मिलता था, इस समय प्रतिमास ४५९० अपाहिज काफ़ी महत्व और ज़िम्मेदारीके कामोंके लिए रखे जा रहे हैं।

अपाहिज मानव-शक्तिके इस उपयोगका विवरण किसी कहानीसे कम मनोरंजक नहीं है। ज़रा एक उदाहरण देखिए। ट्रिनिटी-कालेज, हार्टफोर्डके एक कमरेमें एक बड़ी मेज़ रखी है। इसके चारों ओर विविध उद्योग-व्यवसायोंके कोई २०-२५ मालिक बैठे हैं। बीचमें बैठे आदमीके सामने अपाहिजोंकी एक सूची टाइप की हुई रखी है। एक-एक नामपर वह निशान लगाता है और नाम पढ़कर सुनाता है। सामने दो कुर्सियोंपर एक डाक्टर और एक मनोविज्ञानवेत्ता बैठे हैं। उनके पास भी इसी क्रमकी एक सूची है, जिसपर उन्होंने प्रत्येक व्यक्तिके निरीक्षण-परीक्षणके सम्बन्धमें अपना मत संकेत-रूपमें अंकित कर रखा है। अध्यक्षने एक नाम पढ़ा—जार्ज वार्डिस। सामने बैठे हुए डाक्टरने खड़े होकर कहा—'बचपनमें एक मोटरके नीचे आ जानेसे इस आदमीके दोनों कूले भिंच गए हैं। प्रारम्भमें उपयुक्त चिकित्सा न होनेसे अब उनका कुछ नहीं हो सकता। वैसे उसका शरीर सबल और स्वस्थ है।' इसके बाद मनोविज्ञानवेत्ताने उठकर कहा—'यह नौजवान बड़े अच्छे स्वभावका है। अपनी जाँचमें मैंने उसे साधारण लोगोंसे अधिक बुद्धिमान पाया। उसने मेरे पास पड़े हुए सभी औज़ारोंको ग़ौरसे देखा और उनके उपयोग एवं कार्योंका बड़ा ही सन्तोष-जनक विश्लेषण किया। मेरी रायमें वह प्रत्येक ऐसे कामको—जिसमें अपनी जगहसे हटने या चलने-फिरनेकी ज़रूरत न हो—बड़ी उत्तमताके साथ कर सकता है।' इसके पश्चात् अध्यक्षने अपने सामने पड़े हुए काठके हवाई-जहाज़ों और कुत्तोंको दिखाते हुए कहा—'ये माडल मैंने उसके कमरेमें पाए हैं। पूछनेपर उसने बताया कि अपना जी बहलाने और समयका सदुपयोग करनेके लिए उसने इन्हें तैयार किया है।' यह कहकर उन्होंने देखनेके लिए उन्हें आस-पासके लोगोंमें बाँट दिया।

माडलोंका देखना समाप्त होनेपर जार्ज वार्डिसको भीतर बुलाया गया। बैसाखीके सहारे वह भीतर आया। उसका बड़ा सिर, उन्नत चौड़ा ललाट, काले-घुँघराले केश, सबल बाहु और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्ट वक्ष देखते ही बनता था। सस्मित चेहरेसे उसने सबका अभिवादन किया और विविध व्यक्तियों द्वारा पूछे गए प्रश्नोंका सरल-स्वाभाविक ढंगसे उत्तर देना शुरू किया। उससे पूछा गया—'तुम पढ़ना जानते हो?' उसने उत्तर दिया—'क्यों नहीं, इसमें क्या बड़ी बात है?' फिर पूछा गया—'माइक्रोमीटरपर काम कर सकोगे?' उत्तर मिला—'बड़ी आसानीसे। सिर्फ़ एक बार उसे देखकर ज़रा उसका काम समझ-भर लूँ।' अध्यक्षने कहा—'अच्छा, तुम जा सकते हो।' वाडिसकी आँखें और होंठ फिर उसी स्वस्थ-स्वाभाविक मुस्कराहटसे चमके और सबको धन्यवाद देकर बैसाखी टेकता हुआ वह बाहर चला गया। सबके चेहरोंपर प्रसन्नता और सन्तोषका भाव था। एक व्यक्तिने कहा—'आदमी तो होशियार है; बस ज़रा लँगड़ाता है।' एक कारखानेके मालिकने कहा—'जिस प्रयोगशालामें हम लकड़ीके माडल बनाते हैं, फिलहाल इसे वहीं रखेंगे। फिर औद्योगिक स्कूलमें माइक्रोमीटरका काम सीख जानेपर इसे वहाँ रख देंगे। आदमी ईमानदार और मेहनती मालूम होता है।'

इस प्रकार अपाहिजोंका डाक्टरी और मनोवज्ञानिक परीक्षणकर उनके उपयुक्त कार्य उन्हें दिया जाता है। कनेक्टीकटके युद्ध-उद्योगोंमें सबसे अधिक अपाहिजोंको खपाया गया है। प्रतिदिन वहाँकी सड़कोंपर लँगड़ों, लूलों, अन्धों और एक या दोनों हाथ-पाँव कटे स्त्री-पुरुषोंकी कतारें किसी-न-किसी कारखानेकी ओर जाती हुई दिखाई देती हैं। न केवल सर्वसाधारणकी धारणा ही इनके बारेमें ग़लत थी, बल्कि ये स्वयं भी अपने-आपको किसी कामका नहीं समझते थे। किन्तु अमरीकन सरकारने चेस्टर-जैसे सूझवालोंकी सहायतासे इनमें से ८० प्रतिशत लोगोंको किसी-न-किसी कामके लायक सिद्ध कर दिया है। इस प्रकार इनके प्रति न सिर्फ़ मालिकोंकी ही मनोवृत्ति बदली है, बल्कि ये स्वयं भी अनुभव करने लगे हैं कि अवसर मिलनेपर ये भी अन्य लोगोंकी भाँति स्वाभिमानपूर्वक स्वावलम्बी जीवन बिता सकते हैं।

अब जहाँ भी कोई आदमी अकस्मात या दुर्घटनाके कारण अपंग हो जाता है, तो सारे विवरण-सहित उसकी रिपोर्ट चेस्टरके दफ़्तरमें पहुँचती है। इसी प्रकार स्कूलके अपाहिज छात्र-छात्राओंकी रिपोर्ट भी उनके पास पहुँचती है। युद्धमें अपंग हुए सैनिक भी जब अस्पताल छोड़ते हैं, तो अपना विवरण चेस्टरके दफ़्तरमें भिजवा देते हैं। उपयुक्त काम मिलनेपर इनमें से चुन-चुनकर आदमी विभिन्न कारखानोंके क्षेत्रोंमें भेज दिए जाते हैं और कुछ शिक्षणके लिए हार्टफोर्ड, न्यू हेवेन, ब्रिजपोर्ट आदिके विश्वविद्यालयोंमें खुले विशेष विद्यालयोंमें। पहले डाक्टर उनमें से प्रत्येकके शारीरिक अवयवोंकी भलीभाँति जाँचकर बतलाता है कि कौन व्यक्ति कैसा काम कर सकेगा और कैसा नहीं? साथ ही यह भी देखा जाता है कि आया उसकी अपंगताको दूर या कम किया जा सकता है या नहीं। इसके बाद मनोविज्ञानवेत्ता प्रत्येक अपाहिजकी रुचि-अरुचि, बौद्धिक क्षमता एवं झुकाव आदिका विश्लेषण करता है। इनकी सिफ़ारिशोंके बाद चेस्टरका दफ़्तर उनके लिए यथायोग्य कार्यकी व्यवस्था करता है।

एक बार चेस्टरके पास एक व्यक्ति आया, जो किसी समय हवाई-जहाज़ोंके इंजन जाँचनेमें बहुत होशियार था; पर आँत बढ़ जाने और नसें फूल जानेके कारण वह अपना काम कुशलतापूर्वक जारी न रख सका और बेकार हो गया। उसके एक स्त्री और ९ बच्चे थे। मनोविज्ञानवेत्ताओंने उसे देखकर बताया कि वह औसत व्यक्तियोंसे कहीं अधिक बुद्धिमान है और यान्त्रिक कार्योंमें उसकी रुचि भी है। डाक्टरोंने कहा कि उसके शरीरमें और कोई खराबी नहीं है। अगर आपरेशन सफल रहे, तो वह ठीक हो सकता है। चेस्टरने एक कारखानेदारसे उसके सम्बन्धमें बातचीत की और कहा—'सरकारी खर्चपर उसका आपरेशन करवानेकी ज़िम्मेदारी मैं लेता हूँ। पर अगर वह ठीक हो गया तो?' कारखानेदारने कहा—'मैं उसे अपने यहाँ हवाई-जहाज़ोंके इंजन जाँचनेपर रख लूँगा।' फलतः उसका आपरेशन करवाया गया और आज वह बड़ी कुशलतापूर्वक अपना काम कर रहा है। अपने वेतनमें से किस्तों द्वारा उसने आपरेशनका खर्च भी चुका दिया है।

आज अमरीकामें ५० फ़ी-सदी अपाहिजोंको तुरन्त कामपर भेज दिया जाता है, २५ प्रतिशतको विशेष शिक्षाके लिए भेजा जाता है और शेष १५ प्रतिशतको सुननेके यन्त्र, नक़ली हाथ-पाँव और अन्य साधन देकर काम करने लायक बनाया जा रहा है। किसी एक पाँववाले आदमीके लकड़ीका दूसरा पाँव लगाकर उसे देख-रेख और जाँच करनेके कामपर रख दिया जाता है। जो चल-फिर नहीं सकतीं, उन स्त्रियोंको टाइपिस्ट और टेलीफ़ोन-आपरेटर, खज़ान्ची तथा आय-व्यय-निरीक्षकका काम दे दिया जाता है। एक आँखवाले एक नीग्रोको एक रेडियो-कम्पनीमें इन्स्पेक्टर बनाया गया है, जो अन्य ४५ इन्स्पेक्टरोंके साथ बखूबी काम कर रहा है। जिन स्त्रियोंके हाथ नहीं हैं, उन्हें नक़ली हाथ लगाकर अस्पतालोंमें मैट्रन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किचन-सुपरिंटेंडेंट (रसोईघरकी देखरेख करनेवाली) बना दिया गया है।

इस सम्बन्धमें एक घटना विशेष उल्लेखनीय है। एक बार एक कारखानेको एक ऐसे आदमीकी ज़रूरत पड़ी, जो बड़ी और भारी चीज़ें एक स्थानसे उठाकर दूसरी जगह रख सकता हो और साथ ही ऐसीटेलीन-गैसके टार्च-आपरेटरका भी काम कर सकता हो। कोई स्वस्थ-सबल आदमी इस समय मिल नहीं सकता था और अपाहिजोंमें कोई ऐसा देख नहीं पड़ा। बहुत खोज-बीनके बाद एक सबल-स्वस्थ अन्धे और एक गूँगे-बहरे-लूलेको मिलाकर यह काम लेनेका निश्चय किया गया। पहले तो सबने इसे हँसीमें ही लिया; पर वास्तवमें यह प्रयोग बहुत सफल रहा। शुरूमें इन दोनोंको एक ही आदमीका वेतन दिया जाता था; पर जब काम अधिक और अच्छा होने लगा, तो दोनोंको अलग-अलग पूरा वेतन दिया जाने लगा। इस प्रकारके प्रयोग कई अन्य क्षेत्रोंमें भी किए गए हैं और उनमें काफ़ी सफलता मिली है।

अपाहिजोंको काम देकर अमरीकाने न केवल उनके दुःख-दारिद्र्यको ही दूर किया है, बल्कि उनके प्रति फैली आम भ्रान्ति और ग़लत धारणाका भी मूलोच्छेद किया है। इसके द्वारा अपाहिजोंमें जिस आत्म-विश्वास, स्वाभिमान और स्वावलम्बनकी भावनाका उद्रेक हुआ है, वह मानवताके उज्ज्वल भविष्यका निर्देशक है। युद्धके बाद जब बहुत बड़ी संख्यामें अपंग सैनिकोंके समय और पेटकी समस्या हमारे सामने उपस्थित होगी, अमरीकाका यह पथ-प्रदर्शन उस व्यापक समस्याके हलमें बहुमूल्य सहायता देगा। पर यह किसी एक देशकी समस्या नहीं है। प्रत्येक देशको—और हो सके, तो अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें—इस सम्बन्धमें क्रियात्मक क़दम उठाना चाहिए। जहाँ यह युद्ध-कालकी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, वहाँ युद्धोपरान्त शान्ति-कालमें भी यह एक बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण समस्या होगी। इसके हलपर जाने कितने व्यक्तियों एवं परिवारोंका—जिन्होंने युद्धको जीतने और शान्तिको लानेमें अपने शरीर एवं सर्वस्वकी बलि दी है—भविष्य निर्भर करता है।

हिन्दू-समाज और तलाक़

श्री हरिदत्त वेदालंकार

पिछली दो दशाब्दियोंमें हमारे देशमें असाधारण नारी-जागरण हुआ है। सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारोंके आन्दोलनोंसे, स्त्रियोंमें उच्चशिक्षा-प्रसारसे तथा मताधिकार-प्राप्ति और पश्चिमी विचारोंके प्रभावसे शिक्षित स्त्रियोंमें नवजीवन एवं जागृतिका संचार हुआ है। वे अपनी वर्त्तमान शोचनीय अवस्थितिको दूर करने तथा हिन्दू-धर्मशास्त्रों द्वारा स्त्रियोंपर लादी गई अनुचित बाधाओंको हटानेके लिए प्रबल प्रचार और आन्दोलन कर रही हैं। प्रतिवर्ष अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय महिला-सम्मेलनोंमें इन विषयोंपर विचार-विमर्श होता है और अनेक प्रस्ताव पास किए जाते हैं। इन प्रस्तावोंमें अनेक बार हिन्दू-स्त्रियों द्वारा तलाक़के अधिकारकी माँग की जाती है। १९३६ में अखिल भारतीय महिला-सम्मेलनकी ओरसे राष्ट्र-संघको भारतीय स्त्रियोंकी स्थितिके सम्बन्धमें जो आवेदन-पत्र भेजा गया था, उसमें हिन्दू-स्त्रियोंको तलाक़की माँगका समर्थन किया गया था। केन्द्रीय व्यवस्थापिका-परिषद्में जब कभी हिन्दू-स्त्रियोंको तलाक़का अधिकार देनेके प्रस्ताव पेश हुए, तो महिला-सम्मेलनोंने उनका हार्दिक समर्थन किया।

किन्तु हिन्दू तलाक़के नामसे ही भड़क उठते हैं। वे इसे हिन्दू-धर्मकी भावनाके सर्वथा विपरीत समझते हैं और क्षण-मात्रके लिए भी इसे नहीं सह सकते। वर्त्तमान हिन्दू-समाज तलाक़के प्रति कितना असहिष्णु है, इसका इसी तथ्यसे अनुमान किया जा सकता है कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका-परिषद्में १९२८ तथा १९३३ में दो बार हिन्दू-स्त्रियोंके लिए तलाक़का बिल पेश हुआ। दोनों बार हिन्दुओंकी ओरसे उसका घोर विरोध हुआ और वह बिल एक्ट नहीं बन सका। हिन्दुओंका यह दृढ़ विश्वास है कि धर्मशास्त्रोंमें विवाहको एक पवित्र एवं अविच्छेद्य सम्बन्ध माना गया है। तलाक़ उनके इस चिर-पोषित एवं प्रिय विचारके विरुद्ध जाता है। इसलिए वे तलाक़का घोर विरोध करते हैं। शिक्षित स्त्रियाँ पश्चिमी देशोंका अनुकरण करती हुई अपनी वर्त्तमान हृदय-द्रावक दशासे मुक्ति पानेके लिए तलाक़के अधिकारकी माँग करती हैं। हमारा उद्देश्य दोनों पक्षोंकी समीचीन मीमांसा करना है।

हिन्दुओंका यह विश्वास है कि विवाह एक अविच्छेद्य सम्बन्ध है। मृत्यु भी विवाह-सम्बन्धको भंग नहीं कर सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सती स्त्रियाँ जन्म-जन्मान्तरोंमें भी अपने पतियोंको प्राप्त करती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका यह विश्वास पिछले कालके धर्मशास्त्रों तथा पुराणोंसे पुष्ट होता है; किन्तु यदि ऐतिहासिक दृष्टिसे देखा जाय, तो हमें यह मालूम होगा कि दूसरी शताब्दी ई० पू० से मनुस्मृति तथा इसके बादकी अन्य स्मृतियोंने विवाहको अविच्छेद्य सम्बन्धके रूपमें प्रतिपादित किया। उससे पहले सभी विवाहोंको यह पवित्रता नहीं मिली थी। स्त्रियोंका एक विवाह हो जानेके बाद दूसरा विवाह कुछ विशेष अवस्थाओंमें हो सकता था। मनुस्मृतिके बादकी कुछ स्मृतियोंने भी स्त्रियोंका यह अधिकार स्वीकृत किया; किन्तु बादमें हिन्दू-समाजमें स्त्रियोंकी दशा गिरती गई और उनसे यह अधिकार छिन गया।

वैदिक युगमें पतिके मर जानेपर पत्नीको दूसरा विवाह व नियोग करनेका अधिकार निश्चित रूपसे था।[1] यदि पति-पत्नीका सम्बन्ध अविच्छेद्य है, तो पत्नीको दूसरे विवाहका अधिकार नहीं होना चाहिए। उसे आमरण वैधव्यका जीवन बिताते हुए अपने मृत पतिकी भक्ति करनी चाहिए। हम आगे चलकर यह देखेंगे कि जिस समयसे हिन्दू-समाजमें विवाहको अविच्छेद्य सम्बन्ध माननेका सिद्धान्त पूर्णरूपसे माना जाने लगा, उसी समयसे विधवा-विवाह बन्द हो गया। अथर्ववेदके एक मन्त्रमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी चर्चा है—"जो पहले पतिको प्राप्त करनेके पश्चात् दूसरे पतिको प्राप्त करती है, वे दोनों 'पंचौदन अज'को देते हैं और पृथक नहीं होते। जो दूसरा पति 'पंचौदन अज' और दक्षिणा तेजसे युक्त अजको देता है, वह पुनर्विवाहित स्त्रीके साथ समान तेजवाला होता है।"[2] हमें यहाँ 'पंचौदन अज'के पचड़ेमें पड़नेकी ज़रूरत नहीं है। यह तो विषयान्तर है; किन्तु इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियोंको कुछ विशेष दशाओंमें पुनर्विवाहका अधिकार था। वेदोंसे पुनर्विवाहकी इन विशेष दशाओंपर कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ता।

वैदिक युगके बाद मनुष्योंके आचारको वेदानुकूल एवं उत्तम बनानेके लिए धर्मसूत्रोंकी रचना हुई। इन धर्मसूत्रोंमें विवाह-सम्बन्धी आचारोंका भी प्रतिपादन है। वेदोंमें स्त्रियोंके पुनर्विवाहकी जिन विशेष दशाओंपर अधिकारका पर्दा पड़ा हुआ है, धर्मसूत्रकारोंने उस पर्देको थोड़ा-सा उठा दिया है। पुनर्विवाहकी अवस्थाओंमें प्रवास मुख्य है। वशिष्ठ-धर्मसूत्रमें इस विषयका विस्तारसे प्रतिपादन है और वह इस प्रकार है—'प्रोषित पत्नी पाँच वर्ष प्रतीक्षा करे, पाँच वर्षके बाद पतिके पास जाय। यदि धार्मिक व आर्थिक कारणोंसे प्रवास न कर सके, तो उसे इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए कि उसका पति मर चुका है। सन्तानवती ब्राह्मणी पाँच वर्ष तथा निःसन्तान चार वर्ष, सन्तानवती क्षत्रिया पाँच वर्ष तथा निःसन्तान तीन वर्ष, सन्तानवती वैश्या चार वर्ष और निःसन्तान दो वर्ष तथा सन्तानवती शूद्रा दो वर्ष और निःसन्तान एक वर्ष पतिकी प्रतीक्षा करे। इसके बाद वह पतिके समान स्वार्थ, जन्म, पिण्ड, उदक व गोत्र-वालेसे विवाह करे। इनमें पहला व्यक्ति पिछलोंसे अधिक गौरववाला है।'[3] वशिष्ठकी इस व्यवस्थासे स्पष्ट है कि प्रोषित पतिकाको पाँच वर्ष बाद दूसरा पति वरण करनेका अधिकार था। इस सम्बन्धमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वर्त्तमान युगमें प्रवास, यातायात एवं पत्र-व्यवहारके साधन वशिष्ठ-धर्मसूत्रके समयकी अपेक्षा बहुत उन्नत हो गए हैं। इंग्लैण्डके १९३७ के 'दि मैट्रिमोनियल काज़ेज़ एक्ट'में यह अवधि सात वर्ष रखी गई है।

वशिष्ठ-धर्मसूत्रके बाद कौटिलीय अर्थशास्त्रमें इस विषयकी विस्तारसे चर्चा है। प्रवास-जनित परिस्थितियों तथा विवाह-विच्छेदके सम्बन्धमें कौटिल्यने बहुत सुन्दर तथा न्यायपूर्ण विधान बनाया है। कौटिल्य यह अच्छी तरह समझता था कि स्त्रियोंको कुछ अवस्थाओंमें जब कि वे अपने पतिसे वियुक्त हो जाती हैं, यदि पुनर्विवाहका अधिकार न दिया गया, तो समाजमें अधर्म, व्यभिचार एवं अत्याचार बहुत बढ़ जायगा। प्राणियोंको मिली सहज यौन-प्रेरणाके आवेगको यदि उचित मार्ग नहीं मिलेगा, तो वह अनुचित मार्गोंसे उस आवेगको शान्त करेगी। इसलिए कौटिल्यने स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा

१. को वां शयुत्रा विधवेव देवरम्। (ऋग्० १०।४०।२)
उदीर्ष्वनार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेषराहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ।
(ऋग्० १०।१८।८)

२. या पूर्वं पतिं वित्त्वा अथान्यं विन्दते पतिम्।
पंचौदनं च तावजं ददातो न वियोषतः॥
समानलोको भवति पुनर्भुवा परः पतिः।
योऽजं पंचौदनं दक्षिणा ज्योतिषं ददाति॥
(अथर्ववेद ९।५।२६-२७)

३. प्रोषित पत्नी पंचवर्षाण्युपासीत। ऊर्ध्वं पंचभ्यो वर्षेभ्यो भर्तुः सकाशं गच्छेत्। यदि धर्मार्थाभ्यां प्रवासे प्रत्यनुकामान स्यात्तथा प्रेत एव वर्तितव्यं स्यात्। एवं ब्राह्मणी पंच प्रजाताप्रजाता चत्वारि···अत ऊर्ध्वं समानार्थ जन्मपिण्डोदक गोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान्। (वशिष्ठ-धर्मसूत्र, अध्याय १७, सूत्र ७५-८०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कि स्त्रीके ऋतु-कालका उपरोध होना (ऋतु-कालमें पुरुष-संगम न होना) धर्मका वध करना है।[४] इस मूल सिद्धान्तको दृष्टिमें रखते हुए कौटिल्यने आठों प्रकारके विवाहोंमें, चाहे वे ब्राह्म हों या आसुर, कुछ विशेष परिस्थितियोंमें दूसरे विवाहका विधान किया है। आजकल हिन्दू-समाजमें धर्म-विवाहोंको महत्व दिया जाता है और उन्हें अविच्छेद्य माना जाता है, अतः इन विवाहोंके विषयमें कौटिल्यकी व्यवस्था जानना अधिक उपयुक्त है।

'धर्म-विवाहसे परिगृहीत कुमारी आपत्तिग्रस्त हो और पति उसे बिना कहे विदेश चला गया हो, तो स्त्री सात तीर्थों (मासिक धर्मों) तक प्रतीक्षा करे; कहकर गया हो, तो एक वर्ष प्रतीक्षा करे; पतिके विदेश जानेपर कोई समाचार न मिले, तो पाँच तीर्थों तक प्रतीक्षा करे और मिलनेपर दस तीर्थों तक। इसके बाद धर्माधिकारीकी आज्ञा पाकर अपनी इच्छानुसार दूसरा विवाह कर सकती है।[५] थोड़े समयके लिए बाहर जानेवाले (हृत प्रवासी) पतियोंकी पुत्रहीन स्त्रियाँ एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें और पुत्रवती इससे अधिक। यदि पति उनके भरण-पोषणका प्रबन्ध कर गए हों, तो दुगुने काल तक। पढ़नेके उद्देश्यसे गए ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ दस वर्ष तक प्रतीक्षा करें और राज्य-कार्यपर गए पुरुषोंकी स्त्रियाँ आयु-पर्यन्त।'[६] आयु-पर्यन्त प्रतीक्षाकी अवधि बहुत लम्बी है। कौटिल्यने इस अवधिके लिए विशेष छूट दी है। 'इस तरह आयु-पर्यन्त प्रतीक्षा करनेवाली स्त्रीका यदि किसी समानवर्ण पुरुषसे बच्चा पैदा हो जाय, तो वह निन्दनीय नहीं।'[७] तीर्थोंपरोधको धर्मवध माननेवाले कौटिल्यके लिए ऐसी व्यवस्था करना स्वाभाविक ही है। इसी-लिए कौटिल्यने पतिके दीर्घ प्रवासी, संन्यासी अथवा मर जाने-पर सात महीनेकी प्रतीक्षाके बाद स्त्रीको पुनर्विवाहकी आज्ञा दी है।[८]

तलाक़के सम्बन्धमें कौटिल्यका स्पष्ट मत है कि नीच, प्रवासी, राजद्रोही, घातक, (जाति अथवा धर्मके आचारसे) पतित, नपुंसक पति स्त्रीके लिए त्याज्य है।[९] यह नियम धर्म-विवाहोंके लिए है। दूसरे विवाहोंके लिए कौटिल्य अधिक उदार हैं। प्राचीन धर्मशास्त्रोंमें ८ प्रकारके विवाह माने गए हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच। इनमें पहले चार धर्म-विवाह कहलाते थे। इनमें उपर्युक्त कारणोंसे ही तलाक़ सम्भव था; किन्तु दूसरे विवाहोंमें कई बार ऐसी स्थिति आ जाती है कि पति-पत्नीमें द्वेष उत्पन्न हो जाता है। कई बार यह द्वेष इकतरफ़ा होता है और कई बार दोनों ओरसे। यह द्वेष उत्पन्न हो जानेपर विवाह एक भार मालूम होने लगता है और पति-पत्नी वैवाहिक बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं। कौटिल्य परस्पर द्वेषसे ही इन विवाहोंमें स्त्री-पुरुषको मोक्ष अर्थात् तलाक़का अधिकार देता है। कौटिल्यने इस विषयमें स्त्री-पुरुषके अधिकार तुल्य ही रखे हैं। 'पतिकी इच्छा न होनेपर उसके साथ द्वेष रखती हुई स्त्री उसका त्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्थामें पति भी अपनी स्त्रीका परित्याग नहीं कर सकता। दोनोंका एक-दूसरेके साथ द्वेष होनेसे ही परित्याग सम्भव है।'[१०] ऊपरी दृष्टिसे परस्पर द्वेषकी शर्त्त कुछ विचित्र-सी जान पड़ती है; किन्तु आगे हम यह देखेंगे कि वर्त्तमान कालके पश्चिमी जगत्के बरट्रेण्ड रसेल-जैसे उच्चकोटिके विचारक यह आवश्यक समझते हैं और स्वीडन, नार्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम और स्वीज़रलैण्डके नए तलाक़-कानूनोंमें यह शर्त्त रखी गई है।

कौटिल्य धर्मसूत्रकारोंकी तरह विवाहको एक संस्कार नहीं मानता। उसकी सम्मतिमें विवाह एक समय या ठेका है, जैसा कि आजकल पश्चिमी देशोंमें माना जाता है। वर-वधू या उनके अभिभावक वह समय करते हैं और अन्य समयोंकी भाँति शर्त्त पूरी न होनेपर वह तोड़ा भी जा सकता है। कौटिल्यने वस्तुओंके क्रय-विक्रय-प्रकरणमें विवाहका उल्लेख किया है और यह विधान बनाया है कि 'प्रथम तीन वर्णोंमें पाणिग्रहण हो जानेपर भी यदि स्त्री-पुरुषके प्रथम

४. तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटिल्यः।
(कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रकरण ३, अध्याय ३, सूत्र ४२)

५. आपदुक्तौ धर्मविवाहात्कुमारी परिगृहीतारमनाख्याय प्रोषितं श्रूयमाणं सप्ततीर्थान्याकांक्षेत। संवत्सरं श्रूयमाणमाख्याय।··· ततःपरं धर्मस्थैर्विसृष्टा यथेष्टं विन्देत। (कौटि० अर्थ०, ३।४।३३-४१)

६. (कौटि० अर्थ०, ३।४।२६-३०)।

७. सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत। (कौटि० अर्थ०, ३।४।३१)

८. दीर्घ प्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य च भार्या सप्ततीर्था न्याकांक्षेत। (कौटि० अर्थ०, ३।४।४३)

९. नीचत्वं परदेशे च प्रस्थितो राजकिल्बिषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीवोऽपिवा पतिः॥
(कौटि० अर्थ०, ३।२।५९)

१०. अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या।
भार्यायाश्च भर्त्ता। परस्परं द्वेषान्मोक्षः।
(कौटि० अर्थ०, ३।३।१७-१९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शयन-कालमें किसीमें (स्त्रीमें या पुरुषमें) कोई दोष मालूम पड़े, तो विवाह-सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है।[११] कन्याके किसी गुप्त दोषको छिपाकर यदि कोई उसका विवाह करता है, तो उसे ९६ पण दण्डका विधान है, और जो वरके दोषोंको छिपाता है, उसे १९२ पण दण्डका। दोनों अवस्थाओंमें स्त्री-धन व शुल्क ज़ब्त कर लिया जाता था।

मौर्य-वंशकी समाप्तिके साथ भारतमें बौद्ध धर्मके विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया हुई। महाराज पुष्यमित्रके नेतृत्वमें ब्राह्मण-धर्मका अभ्युदय हुआ और इसी समय वर्त्तमान कालमें उपलब्ध मनुस्मृतिके अधिकांश भागका सम्पादन हुआ। अर्थशास्त्रके नियमोंके विरुद्ध धर्मसूत्रकारोंने आवाज़ उठाई और कौटिलीय नियमोंमें बहुत परिवर्त्तन किया। स्मृतिकार अर्थशास्त्रकारोंकी तरह विवाहको समय (Contract) मात्र नहीं मानते थे, अपितु एक पवित्र बन्धन समझते थे। स्मृतिकारोंकी समूची वैवाहिक व्यवस्थाएँ इस मूल सिद्धान्तसे प्रभावित थीं। इसलिए कौटिल्यने स्त्रीको जिन हालतोंमें मोक्षका अधिकार दिया था, मनुस्मृतिकारने उस अधिकारको, उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार, सीमित कर दिया। हमने ऊपर कौटिल्यके प्रोषितपतिकाके नियम देखे हैं। यदि पत्नी पुत्रवती हो, तो वह पतिके लौटनेकी अधिकसे अधिक ८ वर्ष तक प्रतीक्षा करे और निः-सन्तान ४ वर्ष तक। इसके बाद वह धर्म-विवाहमें इच्छानुसार पतिका वरण कर सकती थी। यदि वह कुमारी हो, तो कुछ मास प्रतीक्षा करके पुनर्विवाहका अधिकार पा लेती थी। मनुने अर्थशास्त्रकी इन व्यवस्थाओंके स्थानपर अपनी यह व्यवस्था दी कि प्रोषितपतिकाको यदि पति उसके निर्वाहके लिए वृत्ति दे गया है, तो वह उससे निर्वाह करे; यदि वृत्ति नहीं दे गया है, तो अगर्हित शिल्पोंसे अपना निर्वाह करे। इस प्रकार निर्वाह करती हुई पत्नी पतिके धर्म-कार्यसे विदेश जानेपर ८ वर्ष, विद्याके लिए जानेपर ६ वर्ष अथवा कामके लिए जानेपर ३ वर्ष प्रतीक्षा करे।[१२] इस प्रतीक्षाके बाद भी यदि उसका पति न लौटे, तो पत्नी क्या करे, इस विषयमें मनु सर्वथा मौन है। वशिष्ठने प्रतीक्षाकी अवधि व्यतीत होनेपर पतिके पास जाने या पुनर्विवाह करनेकी आज्ञा दी थी और कौटिल्यने इच्छा-नुसार वरणका अधिकार दिया था; किन्तु मनु इस विषयमें कुछ भी व्यवस्था नहीं करता। मनुस्मृतिके टीकाकारोंमें मनुके इस मौनपर बहुत मतभेद है। नन्दनने लिखा है कि स्त्रीको पुनर्विवाहका अधिकार है; किन्तु मेधातिथिने इसका विरोध किया है। दूसरे टीकाकार कहते हैं कि पत्नीको पतिकी खोजके लिए जाना चाहिए।

कौटिल्यने विवाहके बाद पति-पत्नीमें कोई दोष प्रकट होने पर दोनोंको मोक्षका अधिकार दिया; किन्तु मनु यह अधिकार पुरुष तक ही सीमित कर देता है। विवाहके बाद पति पत्नीके दोष ज्ञात होनेपर उसे छोड़ सकता है;[१३] किन्तु पत्नी पतिके दोष प्रकट होनेपर उसे नहीं छोड़ सकती।

पतिके नपुंसक व राजद्रोही होनेकी दशामें कौटिल्य पत्नीके पुनर्विवाहके अधिकारको स्वीकृत करता है; किन्तु मनु पतिके उन्मत्त या क्लीव होनेपर भी पत्नीसे यह आशा करता है कि वह पतिकी सेवा करेगी। यदि वह पतिकी सेवा नहीं करती, तो उसके साथ यही रियायत की गई है कि पतिको उसका त्याग नहीं करना चाहिए।[१४] मौर्य-कालिक भारतमें पत्नीको अधिकार था कि वह ऐसे पतिको मोक्ष देकर दूसरा पति स्वीकार करे; शुंग-वंशके समय पत्नीपर यह अनुग्रह किया गया कि ऐसे पतिकी सेवा न करनेवाली स्त्रीको पति त्याग न करे। मनुस्मृतिमें पतिके साथ यह उदारता दिखाई गई है कि उसके उन्मत्त, पतित या क्लीव होनेपर पत्नी उसे नहीं छोड़ सकती; किन्तु पत्नी यदि पतिके साथ एक वर्षसे अधिक हेष करे, तो पतिको उसका अलंकारादि दाय छीनकर उसका त्याग कर देना चाहिए।[१५] जो स्त्री द्यूतादि दुर्व्यसन-ग्रस्त, मदिरोन्मत्त या रुग्ण पतिकी सेवा न करके पतिका अपमान करती है, पति उससे अलंकार छीनकर उसका ३

११. वृत्तपाणिग्रहणयोरपि रोषमौपशायिकं दृष्ट्वा सिद्धमुपा-वर्त्तनम्। (कौटि० अर्थ०, ३।१६।१७)

१२. विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता।
प्रोषितं त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥७५॥
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षट्, यशोऽर्थं न कामार्थं त्रींस्तु वरान् ॥७६॥
(मनु०, ९।७५-७६)

१३. विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्।
व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मता चोपपादिताम्॥
(मनु०, ९।७२)

१४. उन्मत्तं पतितं क्लीवमबीजं पापरोगिणम्।
न त्यागोऽस्ति हिषन्त्याश्च न दायापवर्त्तनम्॥ (मनु०, ९।७९)

१५. संवत्सरं प्रतीक्षेत हिषन्तीं योषितं पतिः।
ऊर्ध्वं सवत्सरादेनं दायं हृत्वा न संवसेत्॥ (मनु०, ९।७७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करने के लिए त्याग करे।[१६] पत्नीके मद्यप, दुःशील, प्रतिकूल, रुग्ण, हिंस्र तथा अपव्ययी (अर्थघ्नी) होनेपर पतिको दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। स्त्री वन्ध्या हो, तो ८ वें वर्ष; उसकी सन्तानें पैदा होकर मर जाती हों, तो १०वें वर्ष; लड़कियाँ ही उत्पन्न होती हों, तो ११ वें वर्ष तथा अप्रियवादिनी होनेपर पतिको एकदम दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।[१७]

पुरुषोंको दूसरे विवाहकी इतनी सरल छूट देनेका स्त्रियोंकी स्थितिपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कौटिल्यके समय तक दोनोंके अधिकारोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं था। स्त्री नपुंसक और पतित पतिको छोड़ सकती थी। मनुस्मृतिमें पत्नीसे यह अधिकार छीन लिया गया और साथ ही पतिको दूसरे विवाहोंका निर्बन्ध अधिकार दे दिया गया। प्रायः यह कहा जाता है कि दूसरे विवाहका अधिकार स्मृतिकारोंने पुत्र न होनेकी दशामें ही दिया है; किन्तु मनुस्मृतिके उपर्युक्त श्लोकोंसे यह स्पष्ट है कि अन्य अनेक अवस्थाओंमें—स्त्रीके अप्रियवादी होनेकी दशा तकमें—पतिको पुनर्विवाहका अधिकार है। इसका परिणाम पुरुषों तथा स्त्रियों दोनोंके लिए घातक हुआ। पुरुष एकपत्नीव्रतके उच्च आदर्शको भूलने लगे और स्त्रियोंकी दशा—जो उस समयसे गिरनी शुरू हुई—मध्य-कालमें निरन्तर गिरती गई।

प्राचीन कालसे चले आनेवाले स्त्रियोंके इन अधिकारोंके अपहरणको बादके अनेक स्मृतिकारोंने स्वीकार नहीं किया। गुप्त-कालके स्मृतिकार नारदने पतिके नपुंसक होनेकी दशामें पत्नीको दूसरे विवाहका अधिकार दिया।[१८] गुप्त-कालमें स्त्रियाँ अपने पतियोंको छोड़ सकती थीं। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि समुद्रगुप्तके ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्तकी पत्नी ध्रुवस्वामिनीने अपने पतिको छोड़कर चन्द्रगुप्तके साथ विवाह किया।[१९] मध्य-कालमें, कलियुगमें प्रामाणिक मानी जानेवाली पराशर-स्मृतिने भी पतिके नष्ट, मृत, क्लीव, पतित और प्रव्रजित होनेपर पहले पतिको छोड़कर दूसरे पतिके साथ विवाहकी अनुमति दी; किन्तु हिन्दू-स्त्रियोंकी स्थिति इतनी गिर चुकी थी कि वे अपने अधिकारोंका उपयोग करनेमें असमर्थ हो गईं। स्त्रियोंके पुनर्विवाहके विरुद्ध हिन्दू-समाजमें प्रबल लोकमत उत्पन्न हो गया। इस लोकमतकी प्रबलताका अनुमान इसी एक तथ्यसे हो सकता है कि विधवा-विवाह-क़ानूनको पास हुए ८५ वर्ष हो गए; किन्तु हिन्दू-समाजमें विधवाओंकी संख्या अभी तक पहलेकी ही तरह है।

स्त्रियोंकी स्थिति किस हद तक गिर गई है, यह इस बातसे जाना जा सकता है कि कौटिल्यके समय यदि पति पत्नीको तीन बारसे अधिक बाँसकी खपच्ची या रस्सीसे प्रहार करता था या थप्पड़ मारता था, तो पत्नी पतिके विरुद्ध न्यायालयमें मुक़दमा चला सकती थी। आज यदि यह अधिकार हिन्दू पत्नियोंको प्राप्त हो जाय, तो अधिकांश पतियोंको न्यायालयमें उपस्थित होना पड़ेगा। याज्ञवल्क्यके समयसे स्त्रीका यह आदर्श बताया जा रहा है कि स्त्रीका परम धर्म पतिके वचनका पालन है।[२०]

पुरुषोंको पुनर्विवाह तथा बहुविवाहकी सुविधा देनेसे स्त्रियोंके भयंकर दुःखों और अत्याचारोंका सूत्रपात हुआ। दूसरी स्त्रीके आ जानेपर पहली स्त्रीकी क्या दशा होती है, इसे शब्दोंमें पूर्णरूपसे प्रकट करना असम्भव है। सौतिया डाह पहली स्त्रीके जीवनको नरक बना देती है। अधिकांश घरोंमें पहली स्त्रियाँ बादकी स्त्रियोंकी दासियाँ बनकर ही अपना जीवन यापन कर सकती हैं। ऐसी स्त्रियोंके लिए, चाहे उनके पति मर गए हों या जीवित हों, याज्ञवल्क्यने इहलोक तथा परलोकमें कीर्त्ति प्राप्त करनेका साधन यही बतलाया है कि उन्हें किसी दूसरे व्यक्तिके पास नहीं जाना चाहिए; किन्तु वही याज्ञवल्क्य पतियोंके लिए सर्वथा भिन्न व्यवस्था करते हैं। पत्नीको तो पतिके मरनेपर भी उसका ध्यान करना चाहिए; किन्तु पतिको पत्नीके मरते ही फौरन दूसरा विवाह कर लेना चाहिए।[२१] स्त्रीके अधिकारोंका यह कितना क्रूर उपहास है!

---

१६. अतिक्रामेदप्रमत्तं या मत्तं रोगार्त्तं मेव वा।
सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा॥
(मनु० ९।७८)

१७. मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥
(मनु०, ९।८०-८१)

१८. अपत्यार्थं स्त्रियः सृष्टाः स्त्रीक्षेत्रं बीजिनो नराः।
क्षेत्रं बीजवते देयं, नाबीजो क्षेत्रमर्हति॥
(नारद)

१९. विशेष विस्तारके लिए देखिए—वासुदेव अग्रवालका 'गुप्त-साम्राज्यका इतिहास'।

२०. स्त्रीभिः भर्तुर्वचः कार्यमेष धर्मः सनातनः। (याज्ञ०)

२१. दाहयित्वाऽग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः।
आहरेद् विधिवद्दारानग्नीं चैवाविलम्बितः॥ (याज्ञ०, १।८७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य-कालमें स्त्रीकी अवस्था मनु-प्रतिपादित उत्तम साथीके उच्च धरातलसे गिरकर दासी तक पहुँच गई।[२२] मनुने तो पत्नीको यही आदेश दिया था कि चाहे उसका पति दुःशील, परस्त्रीगामी, गुणहीन क्यों न हो, पत्नीको उसकी देवताके समान पूजा करनी चाहिए;[२३] किन्तु मध्य-कालिक पराशर-स्मृतिने यहाँ तक व्यवस्था दे डाली कि जो पत्नी दरिद्र, रोगी या धूर्त्त पतिका अपमान करती है, वह बार-बार कुत्ती तथा सूकरी होती है।[२४] स्त्रियोंके लिए पतिके साथ सती होनेके आदर्शका गौरव बढ़ने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पत्नीको न तो पतिकी जीवितावस्थामें और न उसके मरनेके बाद ही द्वितीय विवाहका अधिकार रहा। सती-प्रथाने पतिके मरनेके बाद अधिकतर अवस्थाओंमें पत्नीको ज़बर्दस्ती सती होनेपर बाध्य किया। अकबरने इस कुरीतिको दूर करना चाहा; किन्तु वह इसमें सफल नहीं हो सका। स्त्रियाँ ज़बरदस्ती चितारोहणसे बचनेके लिए मुसलमान हो जाती थीं। ऐसी सामाजिक स्थितिमें तलाक़की कल्पना भी सर्वथा विस्मृत हो गई और यह सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया कि हिन्दू-धर्ममें विवाह एक पवित्र बन्धन है और उसमें तलाक़ सम्भव नहीं।

वरदान या अभिशाप ?

श्री सोमेश, एम० ए०

उमा आज खुश है—बेहद खुश। रह-रहकर उसके दिलमें आनन्दकी हिलोर उठ आती है। उसका रोम-रोम जैसे आज निहाल हो उठा है। आज उसका बेटा बी० ए० पास हुआ है। रजिस्ट्रारने लिखा है कि उसे एम० ए० के लिए दो साल तक छात्रवृत्ति दी जायगी।

'मन्मथ बेटा, आज तूने कुलका नाम ऊँचा कर दिया। तेरी माँ कहलाकर आज मुझे गर्व है। भगवान तुझे और भी ज़्यादा नामवरी दे!'—बेटेके सिरपर हाथ फेरते हुए उमाने कहा।

'यह सब तेरे ही आशीर्वादका फल है, माँ!'

'मेरी एक बात मानेगा रे?'

'कहो, क्या बात है?'

'कालेज जानेसे पहले तू शादी कर ले। अब मैं थक गई हूँ। ज़रा मेरे बुढ़ापेकी तरफ़ भी तो देख।' माँकी आँखोंमें आशा थी, अनुनय था।

'एम० ए० पास करनेके बाद तुम जो कहोगी, कर लूँगा, माँ! पर अभी तो ज़रा.....'

'नहीं बेटा, बार-बार अच्छी लड़कियाँ नहीं मिलतीं। आजकलके पढ़े-लिखे लड़के योंही शादीको टालते रहते हैं और फिर किसी बुरी लड़कीसे पाला पड़नेपर जन्म-भर पछताया करते हैं।...तूने डाक्टर भारद्वाजकी लड़की तो देखी है न? वही इन्दिरा—सुन्दर, सलोनी और पढ़ी-लिखी भी है। तुझे फैशनवाली लड़की पसन्द भी है। उससे अच्छी लड़की बिरादरीमें कहाँ मिलेगी?'

इन्दिराका नाम सुनते ही मन्मथका मन ज़रा विचलित हुआ। उसकी निगाहमें भी वह जँची हुई थी। मनकी बात उसे माननी पड़ी। वह राज़ी हो गया।

और एक दिन सचमुच ही तो वह ले आया एक लहलही लता-सी मनभावनी, चंचल, हँसमुख, पर तुनुक-मिजाज़ इन्दिराको अपने घर। 'मुझे अपना सकोगी, इन्दिरा?'—मन्मथ पहले ही दिन खुला।

'प्रश्न मेरा नहीं, आपके अपनानेका है। क्या मैं आपकी आशाओं तक पहुँच पाऊँगी?'

'मुझे तो मानो मनचाहा वरदान मिल गया।'

'मुझे भी'—इन्दिराने तनिक झेंपते हुए कहा। और कुछ ही दिनोंमें दोनों इतने हिल-मिल गए, मानो बरसोंका साथ-सम्बन्ध हो। मन्मथकी माँ भी बहू-बेटेको देख फूली न समाती।

गरमियोंके बाद जब माँ और इन्दिरासे विदा लेनेका समय आया, मन्मथ सिहर उठा। वे 'सोनेके दिन और चाँदीकी

---

२२. दासीवदादिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत्।
(व्यास-स्मृति, २।२७)

२३. विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥
(मनु०, ५।१५४)

२४. दरिद्रं व्याधितं धूर्त्तं भर्त्तारं यावमन्येत।
सा शुनी जायते मृत्वा शूकरी च पुनः पुनः॥
(पाराशर स्मृति, ४।१६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

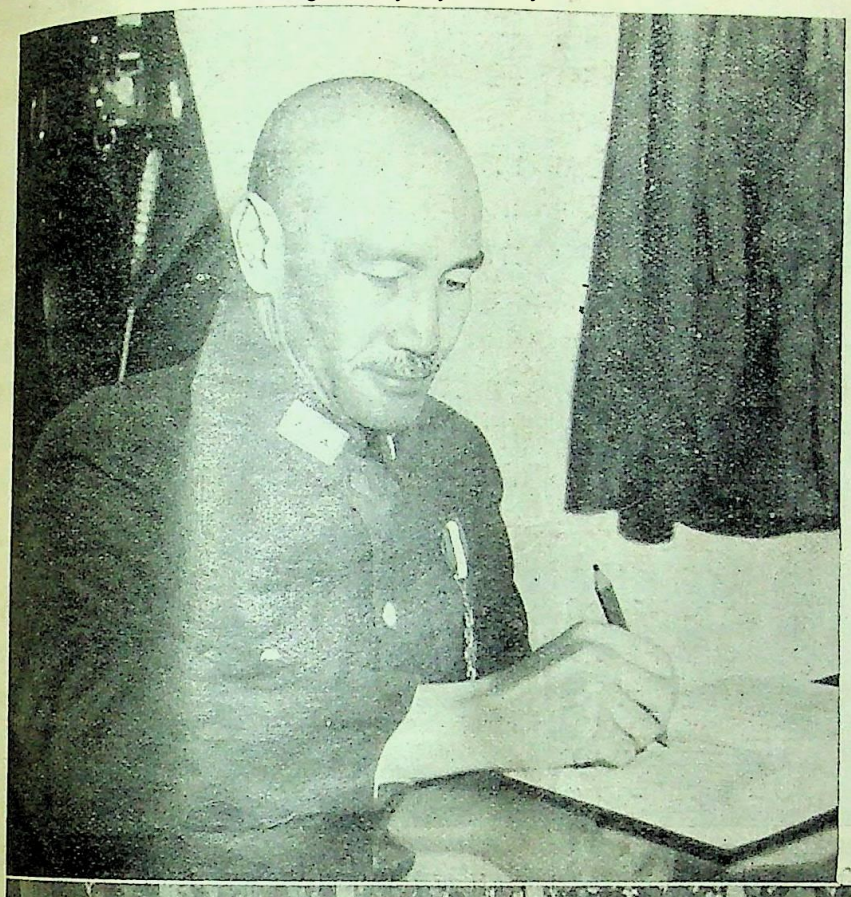

मार्शल च्यांगकाई-शेक, जिनका प्रत्येक क्षण जापानको किस प्रकार पराजितकर नए और स्वतन्त्र चीनका निर्माण किया जाय, इसी चिन्तामें बीतता है।

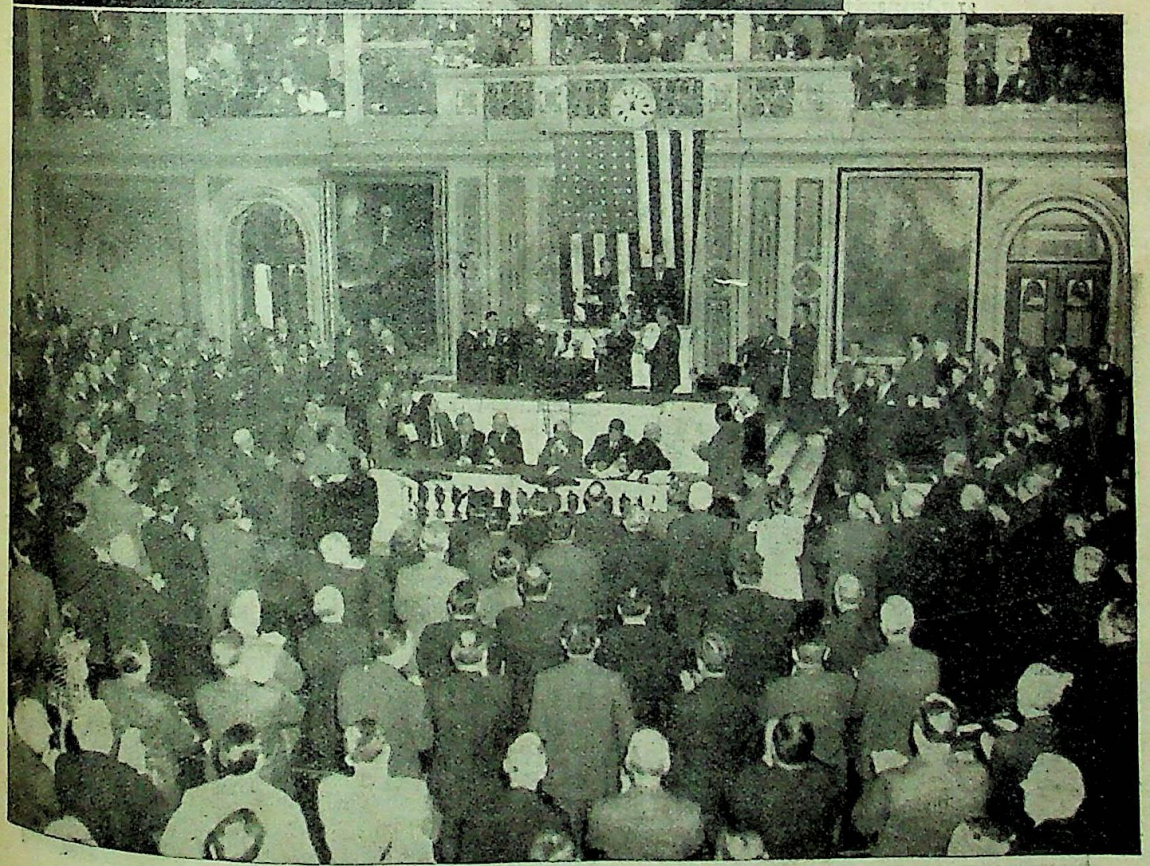

संयुक्त-राज्य अमरीकी कांग्रेसमें मादाम च्यांगकाई-शेक भाषण दे रही हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रम-विभागकी ओरसे खोली गई ट्रेनिंग-फैक्टरीमें महिलाओंको काम सिखाया जा रहा है।

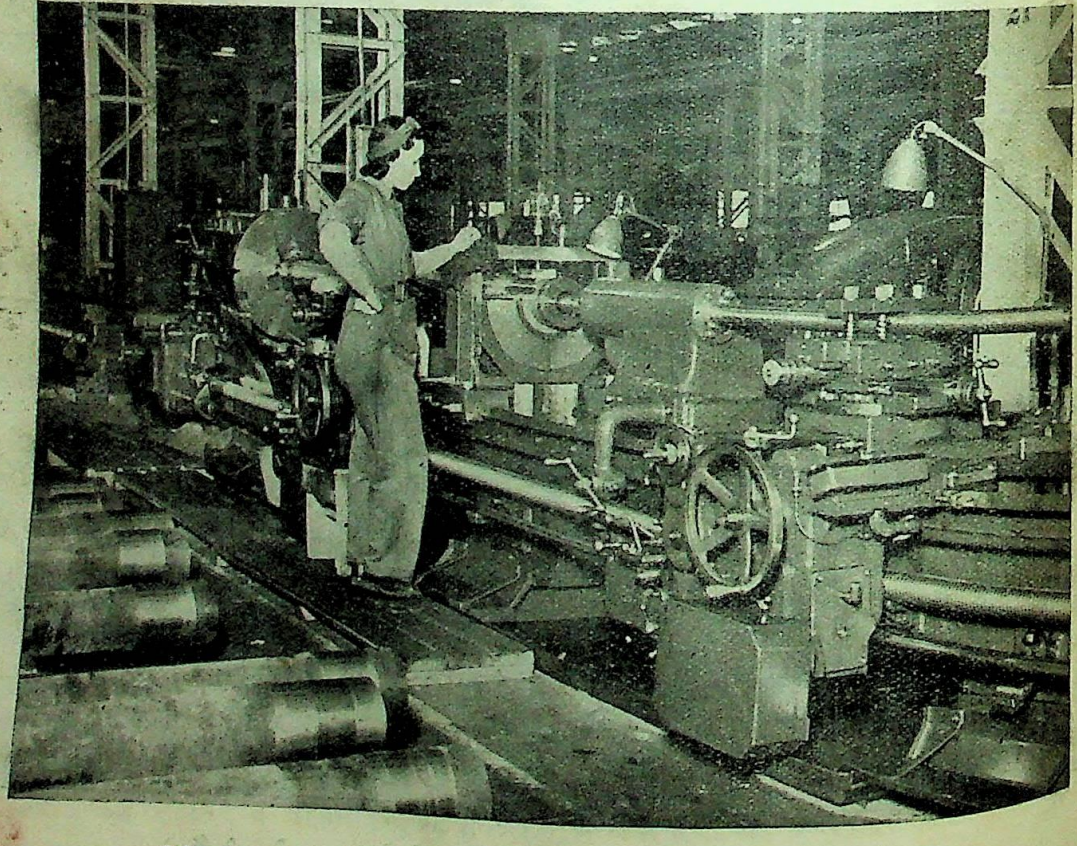

विभिन्न आकारकी तोपें तयार करनेवाले कारखानेमें काम करनेवाली एक महिला।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष कब बीत गई, उसे पता ही न चला। जाते-जाते पत्नीसे देख—'इतने दिनोंमें तुम्हें लेकर मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बना रखी हैं। उन्हें बचपनके मिट्टीके घरौंदों-जैसे तोड़ न डालना। माँकी खूब मन लगाकर सेवा करना।'

मैं भरसक माँको खुश रखनेकी कोशिश करूँगी।'—इन्दिराका गला भर आया।

दरवाजेपर एक थालीमें अक्षत-कुंकुम लिए उमा खड़ी थी। मन्मथने उसके पैर छुए और कहा—'माँ, तुम्हारी बहू तुम्हें सौंपे जाता हूँ। उसे अपनी ही बेटी समझना। उसकी त्रुटियोंको माफ़ कर दिया करना। अच्छा, तो अब चलता हूँ।'

- २ -

मन्मथ पक्का आशावादी था। कालिदास और भवभूतिका अध्ययन करते-करते वह कलाका पुजारी भी हो चला था। नवीन जीवनके—गृहस्थीके, समाजके, देश-सेवाके—कई सुनहले चित्र उसने मनके पर्देपर अंकित कर लिए थे। पर उसका आदर्श चित्र था : वरदान बनकर आई गृहस्थीका वह राजा है और इन्दिरा उसकी रानी। माँ राजमाता। चारों ओर सुख-शान्तिका साम्राज्य है। पर पुराने, अनुदार वातावरणमें पलीसे युवती और युवतीसे बूढ़ी बननेवाली उमाकी साध थी : उसका बेटा ढेर-से रुपए कमाने लगेगा। रुपयोंकी थोक वह उसे सौंपेगा। यह हक़ वह कैसे छोड़ सकती थी ?

मन्मथके बनारस चले जानेके बाद इन्दिराने उमाको माँ जैसा माँका-सा प्यार और ममता पानेकी आशासे उसकी सेवा की। उसकी अपनी माँ बचपनमें ही उसे अकेली छोड़कर चल बसी थी। पर उमाने उसकी यह आशा कभी पूरी नहीं की। सासके ऊँचे पदसे न उमा कभी नीचे उतरी और न बहूको उसने कभी उसकी नीची सतहसे ऊपर उठने दिया। 'सास सास है और बहू बहू; दोनोंमें माँ-बेटीका रिश्ता कैसा ?'—यह कहा करती। सासके इस दक़ियानूसी दृष्टिकोणसे धीरे-धीरे इन्दिराके मनकी सारी श्रद्धा, सम्मान और स्नेह धुल गए।

दिन, सप्ताह, मास बीतते-बीतते दो साल पूरे हो गए। एम० ए०की परीक्षा देकर जब मन्मथ घर लौटा, तो माँको बेटा मिला, पत्नीको पति। कुछ समय बाद मन्मथका परीक्षा-फल भी निकल आया। वह पास हो गया। दोनोंके जीवनमें एक बार फिर नया उत्साह, नई उमंग, नया आनन्द भर गया। एक दिन माँने प्रस्ताव किया—'मन्मथ, अब जल्दीसे नौकरी कर ले, बेटा।'

'दो-चार माह और ठहर जाओ माँ, फिर किसी कालेजमें प्रोफ़ेसर न बन जाऊँ तो कहना!'

'अच्छी बात है; पर यहीं कहीं कोशिश क्यों नहीं करता ? बाहरके सौसे घरके पचास अच्छे, मन्मथ! हम यहाँ पैदा हुए, यहीं बढ़े। यहाँ हमारे सुख-दुखके साथी नातेदार हैं, संगी-साथी हैं, बाहर हमारा कौन है ?'—कहते-कहते माँकी आँखें भर आईं।

माँके आँसू देख मन्मथका दिल पिघल गया। उसकी बाहर जानेकी धुन हवा हो गई। कालेज-जीवनके हवाई-क़िले भी उसे शरण न दे सके। उसकी सारी आशाएँ, सारे अरमान बालूकी दीवारकी तरह ढह गए।

दो दिन बाद एक मनमारे, खिन्न मन युवकको लोगोंने हाईस्कूलके 'टीचर्स-रूम'में देखा। स्कूलकी घड़ीकी टिक्-टिक् और घण्टोंकी टन्-टन् मानो 'प्रोफ़ेसर-प्रोफ़ेसर' कहकर उसकी खिल्ली उड़ाने लगीं।

- ३ -

पहली तारीखको मनको कुचलकर, अपनी आत्माका खून कर कमाए हुए ७०) रुपए लाकर मन्मथने माँके हाथपर रख दिए। माँकी आँखें चमक उठीं। उसके दिलमें एक मीठी-मीठी गुदगुदी-सी पैदा हुई।

मन्मथ भोला था। आस-पासकी दुनियाको भी वह भोली ही समझता था। गृहस्थीके दाँव-पेंच उसे क्या मालूम ? माँका दिल क्या चाहता है, इन्दिरा क्या साथ लिए बैठी है, यह सब वह कैसे जानता ? माँ और पिताजी गृहस्थीका भार ढोते-ढोते थक चुके हैं, यही- सोच- उसने यह भार अपने कन्धोंपर ले लिया। पर स्कूल, ट्यूशन और क्लबके बाद उसे यह मौक़ा ही न मिलता कि लोगोंका हिसाब समयपर चुका सके। इसलिए इन्दिराको सारी बातें समझाकर वह पैसे चुकानेको दे जाता। वह ठीकसे इस ज़िम्मेदारीको निभाती भी; पर उमाको यह भला न लगा।

पहले दो-तीन माह तो उमा अपमानकी यह कड़ुवी घूँट पीकर रह गई; लेकिन फिर उसके लिए यह सब असह्य हो गया। उसके भीतरकी 'सास' विद्रोह कर उठी—'मन्मथ क्या करे ? उसने तो रुपए मुझे ही सौंपे थे। मैंने खुद अपने पाँवपर कुल्हाड़ी मारी। अब बहू मेरी बात भी नहीं पूछती। मनमाना-खर्च करती है, मनमाना बचा लेती है। मैं जैसे इस घरकी कोई हूँ ही नहीं।.....पर मेरा मन्मथ तो ऐसा नहीं था। यह कैसा जादू इस चुड़ैलने उसपर कर दिया ?'

इन्दिरा पढ़ी-लिखी और नई रोशनीकी लड़की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजके पुराने क़ानून-क़ायदोंको, उसकी मर्यादाको वह पूरी तरह नहीं पाल पाती थी। फिर उससे कई ग़लतियाँ होतीं, तोड़-फोड़ हो जाती, खाने-पीनेकी चीज़ोंमें कमी-बेशी हो जाती। बस गृहस्थीके हथकण्डे जाननेवाली उमाको प्रतिशोधका मौक़ा मिल जाता।

एक दिन इन्दिरा मन्दिरसे ज़रा देरसे लौटी। उसके आते ही उमाने आँखें तरेरकर पूछा—'इतनी देर तक तू कहाँ रही?'

'शंकरके मन्दिरमें।'—इन्दु सरल भावसे बोली।

'वहाँ इतनी देर तक क्या करती थी? शामके बाद घरसे बाहर रहते तुझे शर्म नहीं आती?' लाज-शर्म सब घोलकर पी गई?'

'तो क्या देव-दर्शन करना भी पाप है?'

'पाप तो नहीं; पर देव-दर्शनकर मीरा बननेमें कुछ नहीं धरा है। अपने पतिको भगवान मानकर उसकी पूजा कर, सास-ससुरकी सेवा-चाकरी कर, इसीमें तेरी मुक्ति है।'

इन्दिरा नीचा सिर किए सासकी ये कड़ुवी-तिखी बातें सुनती रही। बीच-बीचमें उसके बचपनका अतीत मचल उठता। तबकी आज़ादी और अल्हड़पन, पिताका दुलार, उसका रूठना, पिताका मनाना, पसन्दका खाना, पसन्दका पहनना, पसन्दका रहना और करना। और फिर शादी, ससुराल, सास और वह। यहाँ कुछ भी करो, सासके मनका। देव-दर्शन करो, तो पाप। पढ़ो-लिखो, तो पाप। पहनो-ओढ़ो, तो पाप। पुण्य है, तो बस केवल सासके इशारोंपर नाचना।

- ४ -

एक दिन जब इन्दिरासे उसकी पड़ोसकी सहेली शशिने बागमें चलनेका प्रस्ताव किया, तो वह बड़े असमंजसमें पड़ गई। साससे पूछे, तो आफ़त; न पूछे, तो आफ़त। हर हालतमें बाग जानेका मतलब था सासकी नाराज़गी मोल लेना, उसकी खरी-खोटी सुनना। फिर भी उसने हिम्मत की—'शशिके साथ थोड़ा बागमें घूम आऊँ, माँ?'

रूखेपनसे उमा बोली—'मैं क्या जानूँ? मन्मथसे पूछ।'

'वे घरमें नहीं हैं।'

'तो जा, मेरे मना करनेसे तू कब रुकनेवाली है?'

इन्दिरा ज़रा खिन्न हुई; पर फिर सब-कुछ जानते-बूझते भी शशिके साथ चली गई। साससे डर गई—यह अपमान भला उसकी 'नारी' कैसे सहती? लेकिन बागकी झूमती लताओं, उनके लुभावने हँसते फूलों, फलोंसे झुके वृक्षों और उनपर बैठे हुए मदमाते पक्षियोंकी तानमें रम जानेपर भी इन्दिराके मनपर घरके नीरस वातावरणकी छाया गिर ही जाती थी।

मन कड़ाकर वह घर लौटी। मन्मथ आ चुका था। उसे सुनाते हुए उमाने नई फ़ैशनकी लड़कियोंकी वह खबर ली कि इन्दिराका दिल छलनी-छलनी हो गया। मन्मथको भी थोड़ी-सी बातके लिए उसका यह अपमान अखरा; पर वह चुप हो रहा। रातको उसने पत्नीको समझाया—'माँकी बातोंका बुरा न मानना, इन्दु! नए-पुरानोंका झगड़ा सब घरोंमें है।' पर इन्दुका सदमा कम न होता। वह रोने लगती। मन्मथ सोचता, इसी इन्दिराको सर्वगुण-सम्पन्न कहकर माँने उसके लिए चुना था? यही वह बहू है, जिसे पाकर माँ फूली न समाती थी? इसी गृहस्थीको वरदान समझनेके सपने वह कालेजमें देखा करता था?

इन्दिराको खरी-खरी सुनाने और उसके खिलाफ़ मन्मथके कान भरनेका उमा सदा मौक़ा ढूँढ़ती रहती। मन्मथ भी सब बातें ध्यानसे सुन लेता; लेकिन इन्दुसे कुछ न कहता। उसकी ग़लतियोंको भी वह सुनी-अनसुनी कर देता। सोचता, माँकी चाहे वह कुछ न हो; पर उसकी तो सब-कुछ है। उसीके कारण तो उसका कुण्ठित-सा जीवन कुछ चल निकला है। वह इन्दिराको उसकी कमज़ोरियोंके बावजूद हृदयसे प्यार करता, उसके सुख-दुःखका खयाल रखता और माँ सदा उससे खुश रहे, यही मनाता था। माँके कठोर व्यवहारसे क्षुब्ध इन्दिराके करुण जीवनपर उसे बड़ी दया आती।

एक दिन इन्दु अपने पिताके घर गई और उनके कहनेसे रातको वहीं रह गई। मन्मथपर अपना रंग चढ़ानेका यह मौक़ा भला उमा क्यों छोड़ने लगी? बोली—'देखा मन्मथ, अपनी बहूके लच्छन? ६ बजे लौटनेका कहकर रातके ११ बजा दिए! अब क्या वह आयगी? इतनी मनमानी मैंने और किसी घरमें तो देखी नहीं। दूसरे घरोंमें बहुएँ सास और पतिसे थर-थर काँपती हैं। मैं तो उस छुई-मुईको कुछ कहती भी नहीं। इसपर भी जब-तब वह सारा घर सिरपर उठा लेती है। तू भी उसे कुछ नहीं कहता। औरतोंको धाकमें रखना चाहिए। उन्हें इतनी आज़ादी देना अच्छा नहीं।'

'पर गई तो वह अपने पिताके घर ही है न? रातको वहीं रह भी गई, तो क्या हुआ? हर सन्तान अपने माँ-बापको देखनेकी, उनसे मिलनेकी इच्छा रखती है। तुम्हारी नीरजाको तुमसे मिलनेसे कोई रोके, तो तुम्हें कितना बुरा लगेगा?'

उमा आँखें फाड़-फाड़कर सब सुनती रही। उसने समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया कि मन्मथको बहूके खिलाफ़ भड़कानेकी कोशिश करना औंधे घड़ेपर पानी डालना है।

लेकिन उस रात जब मन्मथको अकेले पलंगपर सोना पड़ा, तो उसकी नींद हराम हो गई। उसकी बुद्धि जगी: इन्दु सचमुच अब कुछ मनमानी करने लगी है। कमसे कम उसे मेरा तो खयाल रखना था। मुझे कह तो जाती कि रातको वह वहीं रहेगी। इस प्रकार झुँझलाता हुआ वह न मालूम कब सो गया।

खासी धूप चढ़ आनेपर भी वह सुबहकी ठण्डी हवामें खर्राटे लेता रहा। इन्दुने आकर उसे जगाया। होशमें आनेपर इन्दु ही उसे सामने दिखी—मुस्कराती, खिलखिलाती। मन्मथने दोनों हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा और हृदयसे लगा लिया।

'कलके गुनाहकी यही सज़ा मिली है क्या?'—इन्दिराके गालोंपर गुलाब खिल उठे।

'मैं तुझे ज़रूर सज़ा दूँगा, इन्दु! तू मेरी कुछ भी परवाह नहीं करती।'—यह कहकर मन्मथने धीरेसे एक चपत इन्दिराके गालपर लगा दिया और दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

- ५ -

मन्मथकी तनख्वाहका पैसा हथियाने और इन्दिराको अपनी धौंसमें रखनेके लिए उमाका षड्यन्त्र चलता रहा। कभी बहूके पहनावेको लेकर वह सारा घर सिरपर उठा लेती, कभी उससे होनेवाले मामूली-से नुक़सानपर आग-बबूला हो उठती। चुन-चुनकर वह ऐसे तीखे तीर चलाती कि इन्दिरा तिलमिला उठती। वह गुस्सेसे भीतर ही भीतर जलती और सासकी विष-बुझी बातोंको यादकर उसे कई बार मूर्च्छा आ गई। कभी-कभी तो वह खड़ीकी खड़ी ही धड़ाम-से गिर पड़ती। उसके हाथ-पाँव तन जाते, आँखें फिर जातीं, मुँहसे झाग निकलने लगते, ज़ोर-ज़ोरसे साँस चलती और वह 'अब मरी, तब मरी-सी' हो जाती। मन्मथ यह सब देख रुआँसा हो जाता, उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगतीं।

अब अक्सर इन्दिराको 'फिट' आने लगे। उसका शरीर सूख चला। न मन चंगा, न तन चंगा। वह सदा बीमार रहने लगी। बुखार, सिर-दर्द, कमर-दर्द या छातीका दर्द—बारी-बारीसे अपना फर्ज़ अदा करने लगे। पर उमा इन सबको काम न करनेके लिए बहूकी बहानेबाज़ी ही समझती। उसकी शब्दोंकी मार बराबर जारी रही। एक बार जब कमज़ोरीके कारण घीका बर्त्तन इन्दिराके हाथसे फर्शपर उलट गया और घी फैल गया, तो उमा उबल पड़ी—'अन्धी हो गई है क्या? सँभाल कर काम करना तो जैसे तेरे माँ-बापने तुझे सिखाया ही नहीं। शर्म नहीं आई, दो सेर घी मिट्टीमें मिला दिया! हाथ-पाँव टूट गए हैं क्या, जो इतना-सा बर्त्तन भी नहीं थमता! खूनका पसीनाकर जो कमाता है, उसे पता चलता है कि पैसा कैसे आता है। तुझे क्या?'

'मुझे माफ़ कीजिए। मेरे आप चाहे दस जूते लगा लीजिए; पर मेरे माँ-बापने आपका क्या बिगाड़ा है? और खूनका पसीनाकर कमानेकी क़ीमत भी मैं आपसे ज़्यादा जानती हूँ!'—न-जाने कैसे आज पहली बार इन्दिराका स्वाभिमान हुंकार उठा।

उमा उबल पड़ी—'अच्छा! एक तो क़सूर करेगी, फिर ज़बान चलायगी? सदाकी रोगी न मालूम कहाँकी अभागिन पल्ले पड़ी है। मरती भी तो नहीं, जो दूसरी बहू ले आऊँ। इस चुड़ैलसे जाने कैसे वंश चलेगा?'

इन्दिराका दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। अपने कमरेमें जाकर वह पलंगपर पड़ गई। कमरेकी एक-एक चीज़ जैसे उसे अभागिन, रोगिणी, निपूती, बाँझ कहकर अपमानित करने लगी। कमरेमें फैले हुए अँधेरे और सूनेपन-जैसा ही आज उसे अपना जीवन भी शून्य और अन्धकारमय मालूम होने लगा। सासकी बातें सोचते-सोचते वह बेहोश हो गई।

मन्मथ स्कूल जाता, क्लब भी जाता; लेकिन वहाँ पढ़ाते या खेलते समय सदा एक तरहकी धुकधुकी-सी उसके मनमें बनी रहती। कहीं माँ इन्दुसे झगड़ न पड़ी हो, इन्दुको फिर फिट न आ गया हो। आज भी कुछ इसी तरहके विचार रह-रहकर उसके मनमें उठ रहे थे। उसी धुनमें घर आकर वह सीधा अपने कमरेमें गया। वहाँ मुस्कराती इन्दिराकी जगह कमरेके भयावने सूनेपनने उसका स्वागत किया। उसने सोचा, इन्दु फिर कहीं अपने पिताके घर तो नहीं चली गई? शायद रसोईघरमें हो। पर वहाँ माँ थी। ज़रूर कुछ दालमें काला है, उसका मन डरा। उसे देखते ही माँ बोली—'बहू बेचारी दिन-रात बीमार रहा करती है, मन्मथ! क्या करें, दवाई भी तो असर नहीं करती! न-जाने कैसी बीमारी है! बस चले तो कुछ करें भी। मुझे तो उसपर बड़ी दया आती है; पर किसी तरह दुनिया तो चलानी ही पड़ेगी।'

'क्या मतलब?'

'यही कि तू दूसरी शादी कर ले। माना कि तू बहूको बहुत प्यार करता है। इससे उसका दिल दुखेगा, यह भी मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानती हूँ। लेकिन वंशकी रक्षा भी तो ज़रूरी है न।'

'यह मुझसे नहीं होगा, माँ! मैं योंही ठीक हूँ, मुझे लड़के-बाले नहीं चाहिएँ।'—मन्मथ रूखेपनसे बोला।

वह सीधा अपने कमरेमें पहुँचा और बोला—'इन्दु?'

'जी।'

'यहाँ अँधेरेमें तुम क्या कर रही हो?'

'कुछ तो नहीं। ज़रा फिट आ गया था, उसीसे लेटी थी।'

पर मन्मथ बिना कहे सब-कुछ समझ गया। बिजलीकी तरह सारी बातें उसके दिमाग़में घूम गईं—माँकी हमदर्दी, दूसरी शादी, वंश चलानेकी बात। सास बहूके साथ इतनी अमानुषिक हो सकती है, इसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। इन्दिराके पास बैठकर मन्मथ उसे प्यारसे सहलाने लगा। दिन-रात उसीकी चिन्तामें घुलते रहनेवाले पतिकी गोदमें ढुलककर वह सिसकने लगी—'मुझे छोड़कर आप कहीं न जाया कीजिए।'

'तुम्हारे पास ही तो हूँ। तुम इतनी दुःखी क्यों होती हो?'

'आपको मेरे कारण कितना कष्ट होता है? आपकी सारी उम्मीदें मुझ अभागिनके कारण मिट्टीमें मिल गईं। मैं आपकी कोई इच्छा पूरी नहीं कर सकी। मैं आपके किसी कामकी नहीं। पर क्या करूँ? बच्चेका होना-न-होना तो मेरे वशकी बात नहीं। आप इसके लिए मुझे ठुकरा देंगे, दूसरी शादी कर लेंगे? किन्तु आपको छोड़ मैं कहाँ जाऊँगी? आपके सिवा इस दुनियामें मेरा है कौन?'

'मेरी सारी अच्छाइयाँ-बुराइयाँ तुम्हारे सामने हैं, इन्दु! तुम मुझसे अपरिचित नहीं। फिर भी इसका उत्तर मुझे ही देना होगा? अपने दिलको टटोलकर तुम इन बातोंका जवाब नहीं पा सकतीं?'

'फिर भी माँके कहनेसे अगर आपने दूसरी शादी कर ली, तो मेरा क्या होगा?'

'लेकिन माँ इतनी बदल कैसे गईं, इन्दु? उनकी पहली दया-मया कहाँ चली गई? बात-बातपर वे तुमसे उलझ क्यों पड़ती हैं? जिस इन्दिराको उन्होंने खुद पसन्द किया, जिसपर उन्हें इतना नाज़ था, वह आज एकाएक उनके मनसे उतर कैसे गई?'

'मैं क्यों माँके दिलसे उतर गई, यह तो वे ही जानें; पर वे हमेशा चलते-फिरते ताना मारा करती हैं: मेरे भोले मन्मथको तूने गाँठ लिया और घरकी मालकिन बन बैठी। मैं तो एक नौकरानी हूँ, जो तेरे और मन्मथके टुकड़ोंपर पल रही हूँ।'

इन्दिराकी इस ज़रा-सी बातमें मन्मथको सारी समस्याका हल मिल गया। आज माँके दिलका रहस्य खुला। उसके मनके छिपे मोहको मन्मथने जाना। घरके जिस कलह, जिस अशान्तिको मिटानेका उपाय सोचते-सोचते वह थक जाता, वह आज अचानक उसके हाथ लग गया। बेचारा ऊब उठा था घरमें। इस गृहस्थीमें उसका दम घुटने लगा था। कालेज-जीवनमें बनाए सारे स्वप्न और आदर्श ढह गए थे। दो मीलका चक्कर काटकर वह रोज़ स्कूल जाता। वहाँ उसे मिलते कुछ सफ़ेदपोश, कुछ अध-नंगे, कुछ मुरझाए, कुछ खिले, कुछ मांसल, कुछ पिचके हुए लड़के-लड़कियाँ। बाबा आदमके ज़मानेकी किताबें, अठारहवीं सदीके दक़ियानूसी विचारोंके जालमें फँसा, धोखे, छल-कपट और चापलूसीका अवतार बना हेडमास्टर और कूपमण्डूक-से सड़े-गले ज्ञानकी दुहाई देनेवाले पेटू शिक्षक। कई घण्टे इस नरकमें बिताकर थका-माँदा शामको जब वह घर आता, तो सुख-शान्ति और आरामकी जगह उसे मिलता एक क्षुब्ध, उदास, सूना, नीरस वातावरण, जो उसे खाने दौड़ता। बार-बार संज्ञाहीन हो जानेवाली मुर्दा-सी इन्दिरा और रूखी, चिढ़चिढ़ी, कोनेमें गुम-सुम बैठी माँको लेकर वह क्या करे? कैसे जिए?

पर सोचते-सोचते विचारमग्न मन्मथने जैसे सब-कुछ पा लिया हो। उसका मन फूल-सा हल्का हो गया। उसने अपने मनका प्रस्ताव इन्दुके सामने रखा। वह निष्प्रभ-सी हो गई। मन्मथका निश्चय था: घरकी शान्तिके लिए इन्दुको पैसेका मोह छोड़ना होगा। इसीमें घरका भला और सुख-शान्ति है।

- ६ -

जिस दिन ७०) रुपए लाकर मन्मथने माँके हाथपर रख दिए, उसकी बाछें खिल गईं। उसकी उदासी ऐसे काफ़ूर हुई, जैसे सूरजको देखकर अँधेरा। आज फिर घर उसका हो गया। फिरसे घरमें उसकी पूछ होने लगी। सबपर उसकी धाक जम गई। अपने सन्दूक़में वह रुपए रखती। उस दिनसे इन्दिराको धेला भी छूनेको नहीं मिला। न वह माँगती, न सास देती। बहूकी क्या बिसात, जब मन्मथको ही हाथ-खर्चके लिए वह कौड़ी न देती? पर उसके हाथमें जानेसे पैसे बचने लगे और मन्मथके बिना जाने एक तीसरे आदमीकी मार्फ़त 'सेविंग-बैंक'में छोटे लड़केके नाम जमा होने लगे।

मन्मथके इस व्यवहारसे इन्दिराके स्वाभिमानको गहरी ठेस लगी। उसने कब उससे पैसोंकी भीख माँगी थी! खुद ही अधिकार देकर खुद ही छीन लिया, यह उसका सरासर अपमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। मन्मथ भी कम मुश्किलमें नहीं पड़ा। उसने माँको जैसे-तैसे मनाया, तो इन्दिरा रूठ गई। अब इस उलझनको वह कैसे सुलझावे ? केवल प्रेमसे तो वह माननेवाली नहीं थी। उसे चाहिए था अधिकार और चाँदीके चमचमाते सिक्के, जिनके कारण उसने इतनी यातनाएँ भोगी थीं। मन्मथ जब वेतनके रुपए सीधे माँको दे देता, तो इन्दिराकी त्यौरियाँ चढ़ जातीं, मुँह फूल जाता, पतिसे हँसना-बोलना बन्द हो जाता। उसके मनमें उधेड़-बुन चला करती। इन्दिरापर उसने कैसी-कैसी आशाएँ बाँध रखी थीं ? सोचा था, दोनों साथ-साथ जीवन-पथपर चलते-बढ़ते समाजको उन्नत बनायँगे ; देशकी सेवा करेंगे ; उसकी आज़ादीके लिए लड़ेंगे। लेकिन आज वह स्वप्न भंग हो चुका था।

एक दिन मन्मथ खाना खा रहा था। माँ रसोईघरमें थी। इन्दिराने मौक़ा देखकर चुटकी ली—'क्यों जी, कभी आपने यह भी सोचा कि मुझे भी पैसे-टकेकी ज़रूरत पड़ती है ?'

'जब तुम्हें ज़रूरत हो, मुझसे कह दिया करो।'

'पहले घरका चिराग़ तो जलाइए, फिर मन्दिरका जलाना। आपको ही क्या मिलता है ?'

'देखो, कम वेतनमें तो यही सब होता है। घरमें कितने ही खर्च लगे रहते हैं। उसपर सतीशकी कालेजकी पढ़ाई भी तो है।'

'जी हाँ, क्यों नहीं ; सबके लिए आपके पास रुपए हैं। नहीं हैं तो बस केवल मेरे लिए !'

'तुम्हें किस बातकी कमी है, इन्दु ? तुम पैसेके पीछे दीवानी क्यों बनी हो ?'

'लेकिन आजके भाई किसके हुए हैं, जो आपके होंगे ?'

'इसमें होने न होनेका सवाल ही नहीं उठता। सतीशको हम अपना फर्ज़ समझकर पढ़ाते हैं ; किसी आशासे नहीं।'

'मतलबकी बात आप समझते नहीं और बेसिर-पैरकी हाँकने लगते हैं।'—इन्दिराने चिढ़कर कहा।

'आखिर तुम्हारा मतलब क्या है !'

'यही कि ट्यूशनके रुपए आगेसे मैं लूँगी। वे घरमें खर्च नहीं होंगे। माँको पैसा चाहिए, भाईको पैसा चाहिए और मेरा जैसे आपकी कमाईपर कोई अधिकार ही नहीं ! मैं किसीकी लौंडी नहीं, जो सुबहसे शाम तक काम घिसा करूँ।'

'पगली कहींकी ! अरे, बिना पैसे लिए अपना कर्त्तव्य-पालन करने और घरवालोंके लिए सुख-दुःख झेलनेवाली स्त्री लौंडी होती है ! खैर, पर ट्यूशनके रुपए तुम क्या करोगी ?'

'जमा करूँगी, फिर अपने लिए सोनेकी चूड़ियाँ बनवाऊँगी।'

'और घरके खर्चका क्या होगा ?'

'मैं कुछ नहीं जानती। आपकी कमाईपर मेरा भी अधिकार है और शायद दूसरोंसे ज़्यादा।'

'अच्छा, ट्यूशनके रुपए तुम्हारे। बस ?'—मन्मथने पिण्ड छुड़ाया।

कुछ ही दिनों बाद महीना पूरा होनेपर जब इन्दिराने ट्यूशनके रुपए माँगे, तो मन्मथने कह दिया—'इस बार कपड़े-वालेका बिल ज़्यादा आनेसे खर्च हो गए। तुम अगली बार ले लेना।'

इन्दिराने तमककर कहा—'मैं तुम्हारी होती कौन हूँ, जो तुम मेरी चिन्ता करो ? माँको खुशी-नाराज़गीका तुम्हें ध्यान रहता है, मेरा क्यों रहे ? स्त्री तो पतिके पैरकी जूती है न !' इन्दिराकी आँखोंमें आँसू छलछला आए।

'पैसेका अनुचित और अनावश्यक मोह तुमसे यह सब कहला रहा है, इन्दु ; वर्ना बार-बार इस तरहकी चोट मेरे दिलपर तुम नहीं करतीं। मैंने कभी तुम्हें हेटी निगाहसे नहीं देखा। तुम सुखी रहो, इस बातकी चिन्तामें दिन-रात घुलते रहनेका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरा यह अस्थि-पंजर शरीर है। कहीं भी मांस दीखता है तुम्हें इसपर ? पर इसके बदलेमें मैंने पाया सारे ज़मानेका दुःख, सन्ताप, चिन्ता और अविश्वास !'

इस बार इन्दिराका मुँह न खुला। उत्तेजित मन्मथका चेहरा तमतमा उठा था। उसका अन्तस कसक उठा। पैसा, पैसा ! दुनियामें पैसा ही सब-कुछ है, आदमी कुछ नहीं ! माँको पैसा चाहिए ! पत्नीको पैसा चाहिए ! अपने सुखको लात मारकर, अपने स्वाभिमानकी कुर्बानीकर वह पैसा देता जाय, तभी माँका प्यार और पत्नीका प्रेम उसे नसीब होगा !

कभी-कभी वह सोचता, क्यों न इन मुट्ठी-भर स्वार्थके गुलामोंको छोड़ वह भारतकी अपार जनतामें अपनेको मिला दे, देशकी सेवामें जूझ पड़े ? पर फिर परिवारकी ज़िम्मेदारी उसे रोक लेती। बूढ़े माँ-बाप, छोटे-छोटे भाई-बहन और इन्दिरा, इन सबका क्या होगा ? इनके प्रति भी तो उसका कुछ कर्त्तव्य है ? आज परिवारके प्रति उसका यह कर्त्तव्य उसे देशके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करनेसे रोक रहा था। और इस नारकीय जीवनका बोझ लेकर वह आशा-निराशा-भरे, थके-हारे पथिककी तरह निर्जीव-निरुत्साह चला जा रहा था—न-जाने क्यों और किधर ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलनके विकेन्द्रीकरणकी समस्या

सम्मेलनमें विकेन्द्रीकरण ?

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

'विशाल भारत'के मईके अंकमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके विषयमें दो पत्र और उनपर सम्पादकीय मन्तव्य देखा। हमारे मित्र पं० बनारसीदास चतुर्वेदीकी समझ है—'प्रयागमें सम्पूर्ण शक्तिको केन्द्रित करके हम लोगोंने कोई बहुत बुद्धिमानीका काम नहीं किया।...२० करोड़ व्यक्तियोंको मानसिक भोजन देनेका कार्य प्रयागके ४-५ बहुधन्धी आदमी कदापि नहीं कर सकते। भिन्न-भिन्न जनपदोंके सांस्कृतिक धरातलोंमें अन्तर है। उनके कुछ प्रश्न भी जुदे-जुदे हैं। कोई भी केन्द्रीय संस्था उनकी ओर भरपूर ध्यान नहीं दे सकती।' चतुर्वेदीजीकी यह विचार-धारा उनके अराजकवादी होनेके कारण है या गड़बड़झाला विचार (Muddled thinking) के कारण, यह वे ही बता सकते हैं। प्रयागमें कोई शक्ति केन्द्रित नहीं है, जो २० करोड़को मानसिक भोजन देनेका दावा करती हो। सच तो यह है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन किसीको—प्रयागवालोंको भी—मानसिक भोजन नहीं देता। वह हिन्दी-प्रचारकी अखिल भारतीय संस्था है और यह काम वह पूरी लगनके साथ कर रहा है। उसे आप साहित्य-सम्मेलनके बदले प्रचार वा परीक्षा-सम्मेलन कह सकते हैं। पर उसने जनपदोंकी कोई शक्ति दबा नहीं ली है, जिसके लिए चतुर्वेदीजी विकेन्द्रीकरण (decentralization) चाहते हैं।

घासीरामजी व्यासकी कीर्त्ति-रक्षाके लिए किसी अखिल भारतीय संस्थासे आशा करना वैसा ही है, जैसा हम अपने पिताके स्मारकके लिए कांग्रेससे आशा करें। हम तो उनका तर्पण तक न करें और दूसरोंसे आशा करें कि उनका स्मारक खड़ा करा दें! चतुर्वेदीजी प्रोपेगैंडिस्ट हैं और यही काम उन्होंने किया है। खण्डन करना एक बात है, और कुछ करके दिखाना दूसरी बात। चतुर्वेदीजीसे हमारा निवेदन है कि आप बहुत स्कीमें प्रकाशित कर चुके; अब कुछ काम कीजिए। चतुर्वेदीजीसे हमारा अनुरोध है कि विकेन्द्रीकरणके नशेमें कहीं आप हिन्दीकी छीछालेदर न कर डालें। यदि बोलियोंमें रीडरें छपने लग जायँगी, तो फिर जिस हिन्दीको हम राष्ट्रभाषा बता रहे हैं, उसको नमस्ते कर लेना पड़ेगा।

चतुर्वेदीजीके गड़बड़झाला विचारके कारण ही उनकी जनपद-योजना स्पष्ट नहीं हुई। श्रीयुक्त वासुदेवशरण अग्रवालके लेखमें जिन जनपदोंका उल्लेख है, वे भाषाके कामके नहीं हैं। हिन्दीका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है और उसमें अनेकों बोलियाँ हैं। कई बोलियोंमें अच्छा साहित्य भी है। पहला काम तो यह निश्चय करना है कि कौन बोली कहाँसे चलती और कहाँ समाप्त होती है। इसके बाद आप उनके 'मुहावरों, शब्दों, कहावतों तथा कहानियों इत्यादिका संग्रह' प्रसन्नतापूर्वक करें। हमारी समझसे तो पहले शब्दोंका सार्थ संग्रह होना चाहिए, क्योंकि इसमें बिलम्ब करनेसे बहुतसे शब्द लुप्त हो जायँगे। फिर एक बोलीके शब्द अन्य बोलीमें हैं या नहीं, इसका विचार होना चाहिए, और हैं तो उसी अर्थमें या भिन्न अर्थमें, यह जानना आवश्यक है। कहावतों और कहानियोंमें विशेष अन्तर न होगा। ऐतिहासिक और प्राकृतिक विवरणोंका प्रकाशन तथा वृक्ष-लता-वनस्पतियों और पशु-पक्षियोंका अध्ययन भी आवश्यक है। इस अध्ययनकी भी अन्य केन्द्रोंके अध्ययनसे तुलना होनी चाहिए।

इस कार्यक्रमके सिवा साहित्यके सृजन और प्रकाशनका भी बड़ा काम है, जो नहीं हो रहा है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका ध्यान प्रचारकी ओर है, आप अपने केन्द्रोंसे वा किसी अन्य संस्थासे सृजन और प्रकाशनकी व्यवस्था कराइए। वही सबकुछ करे, इस प्रकारका आग्रह करना उचित नहीं है। विकेन्द्रीकरणके बिना कोई काम रुक नहीं सकता।

विकेन्द्रीकरण-आन्दोलन

श्री रामनारायण यादुवेन्दु बी०ए०, एल्-एल्०बी०

'बिशाल भारत'के आदि-सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने, जिन्हें कई साहित्यिक आन्दोलनोंका प्रवर्त्तक होनेका सौभाग्य मिल चुका है, अब एक नया साहित्यिक आन्दोलन आरम्भ किया है। यह साहित्यिक जनपद-संगठन अथवा विकेन्द्रीकरणके नामसे प्रसिद्ध है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके हरद्वार-अधिवेशनसे पूर्व चतुर्वेदीजीने सम्मेलनके निर्वाचित सभापति श्री माखनलाल चतुर्वेदी (सम्पादक 'कर्मवीर') से एक पत्र लिखकर इस विषयमें हरद्वार-सम्मेलनमें विचार एवं निश्चय करनेका आग्रह किया। सम्मेलनके अवसरपर हमने 'हिन्दुस्तान'में श्री० सत्येन्द्रका इस विषयपर एक लेख भी पढ़ा और हालमें मईके 'विशाल भारत'में कलकत्ता-विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके अध्यक्ष श्री० ललिताप्रसाद सुकुलका भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लेख पढ़ा है। सम्मेलनके सभापति श्री माखनलाल चतुर्वेदीने भी अपने अभिभाषणमें इस सम्बन्धमें अपने विचार निर्भीकतापूर्वक स्पष्ट रूपसे जनताके समक्ष प्रस्तुत किए तथा बौद्ध साधु श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनने एक प्रस्ताव भी इस विषयपर सम्मेलनमें प्रस्तुत किया। इस प्रकार इस आन्दोलनने सहज ही महत्व प्राप्त कर लिया है। यदि कोई सामान्य व्यक्ति इस प्रकारका आन्दोलन शुरू करता, तो शायद ही ऐसे साहित्य-महारथी उसकी ओर ध्यान देते।

इस आन्दोलनका सूत्रपात कैसे हुआ, इसके पीछे कौन-सी भावना कार्य कर रही है, इसके पीछे कौन-से राजनीतिक मन्तव्य हैं आदि प्रश्नोंका उत्तर इस लेखमें देना अभी शक्य नहीं है। लोकोंके लिए अभी आन्दोलनकी पर्याप्त व्याख्याकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें श्री बनारसीदास चतुर्वेदीने श्री माखनलाल चतुर्वेदीके नाम लिखे गए पत्रमें कहा है :—

"कृपया इस बातको न भूल जाइए कि जहाँ गुजराती, मराठी, बंगला इत्यादि भाषाओंका राज्य है, वहाँ हिन्दीका साम्राज्य है। साम्राज्यके भिन्न-भिन्न अंगोंको पूर्ण स्वाधीनता देकर हमें संघकी स्थापना करनी है। उदाहरणार्थ यदि राजस्थानी लोग अपनी पोथियाँ राजस्थानी-भाषामें लिखना चाहते हैं, तो हमारे लिए यह उचित है कि हम उन्हें यह स्वाधीनता दे दें।.....केन्द्रीकरणकी हानियाँ हम देख रहे हैं। प्रयागमें सम्पूर्ण शक्तिको केन्द्रित करके हम लोगोंने कोई बहुत बुद्धिमानीका कार्य नहीं किया। हिन्दी-भाषी २० करोड़ हैं। २० करोड़ व्यक्तियोंको मानसिक भोजन देनेका कार्य प्रयागके ४-५ बहुधन्धी आदमी कदापि नहीं कर सकते। भिन्न-भिन्न जनपदोंके सांस्कृतिक धरातलोंमें अन्तर है। उनके कुछ प्रश्न भी जुदे-जुदे हैं। कोई भी केन्द्रीय संस्था उनकी ओर भरपूर ध्यान नहीं दे सकती। यह कार्य तो स्थानीय तथा जनपदीय संस्थाओं द्वारा ही हो सकता है।.....मेरा निवेदन सिर्फ़ इतना ही है कि अभी जो बड़े-बड़े विस्तृत भूखण्डोंकी शिथिल संस्थाएँ बनी हुई हैं उनको विभाजित करके छोटे-छोटे सजीव साहित्यिक जनपदोंका निर्माण कर दिया जाय। दो नीतियोंमें से एक हमें अवश्य चुन लेनी होगी। या तो हम अन्य बोलियोंकी संस्कृतिको खत्म करके एक खड़ी बोलीकी संस्कृति जारी रखें या फिर इस सांस्कृतिक उपवनके वैचित्र्यको स्थायी बनाए रखनेके लिए जनपदोंको विशेष-विशेष बोलियोंको भी पनपने दें। मैंने सुना है कि सोवियत् रूसने द्वितीय मार्गका अवलम्बन किया है, और मैं भी उसीका पक्षपाती हूँ।"

चतुर्वेदीजी, जो कभी राष्ट्रभाषा हिन्दी और हिन्दी-साहित्यके प्रबल समर्थक थे, आज न-जाने किस भावनासे प्रेरित होकर 'खड़ी बोलीकी संस्कृति'के विरुद्ध आन्दोलन करने खड़े हो गए हैं। आज वह समस्त देशमें हिन्दीका प्रचार और प्रसार करनेके लिए इतने इच्छुक नहीं दीख पड़ते, जितने भिन्न-भिन्न प्रदेशोंकी बोलियोंके साहित्यकी रक्षाके लिए। वे हिन्दीको साम्राज्य मानकर चलते हैं और प्रान्तीय भाषाओंको राज्य। इस दृष्टिसे वे प्रान्तीय भाषाओंको ही नहीं, प्रत्युत हिन्दी-भाषी प्रदेशोंकी विभिन्न बोलियोंको भी पूर्ण स्वाधीनता देनेके पक्षमें हैं। यदि बुन्देलखण्डके लोग बुन्देली, जोधपुर-बीकानेरके लोग मारवाड़ी, राजस्थानके लोग राजस्थानी, मिथिलाके लोग मैथिली, अवधके लोग अवधी और ब्रजके लोग ब्रज-भाषामें पाठ्य-पुस्तकें लिखकर स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें शिक्षाके माध्यमके लिए इन बोलियोंको स्वीकार कर लें, तो इसमें चतुर्वेदीजीकी रायमें हिन्दी-साहित्यकी न कोई हानि है और न राष्ट्रभाषा हिन्दीका कोई अहित। यह कितना निर्दोष विकेन्द्रीकरण है! क्या चतुर्वेदीजी यह आशा रखते हैं कि उनकी इस योजनाके अनुसार कार्य करनेपर हिन्दी राष्ट्र-भाषाके पदपर आसीन हो सकेगी?

आज वर्षोंसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हिन्दीका प्रचार कर रहा है और वह हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकारकर इस दिशामें प्रयत्नशील है। परन्तु अभी तक उसका यह आन्दोलन पूर्ण सफल नहीं हो सका। हिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें उसे काफ़ी सफलता मिली है। उसकी सफलताको देख उर्दूके समर्थकोंको अपनी भाषाकी रक्षाके लिए चिन्ता हो गई है। हिन्दी-उर्दूका विवाद तथा अंगरेज़ी-भाषा एवं साहित्यका आतंक ही राष्ट्रभाषाके प्रचार व प्रसारमें बड़ी बाधाएँ बने हुए हैं; परन्तु अब चतुर्वेदीजीका साहित्यिक जनपद-आन्दोलन एक नई बाधा बन गया है। 'प्रान्तीय भाषाएँ राज्य हैं और हिन्दी साम्राज्य' यह कहना सत्य नहीं है। यदि इस कल्पनाको सत्य मानकर आगे चलेंगे, तो वास्तवमें प्रान्तीय भाषाएँ हिन्दी-साम्राज्यवादके विरुद्ध घोर युद्ध ठान लेंगी और फिर हिन्दी-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर ही रहेगा। हिन्दीको किसीने भी राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रस्तुत नहीं किया; प्रत्युत वह तो शताब्दियोंकी साधना और अपने प्रकृत गुणों तथा विशिष्टताओंके कारण ही राष्ट्रकी वाणी बन गई है। हिन्दी राष्ट्रभाषा इसलिए नहीं है कि अन्य प्रान्तीय भाषाओंने उसके शासनको किन्हीं कारणोंसे स्वीकार कर लिया है और वे चाहें जब उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परित्याग कर सकेंगी। **हिन्दी देशकी सबसे सरल, बोधगम्य और अधिकतम देशवासियों द्वारा समझी और पढ़ी जानेवाली भाषा है।** यदि हिन्दीमें ये प्रकृत गुण नहीं होते, तो अहिन्दी-भाषी प्रान्तों एवं प्रदेशोंमें उसका प्रचार सम्भव नहीं था और उसका स्थान बँगला, गुजराती, तमिल, मराठी अथवा उर्दू ले लेतीं।

आज हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सम्मुख सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीमें इतना उच्च साहित्य पैदा हो कि विश्वविद्यालयोंकी उच्चशिक्षाका माध्यम भी हिन्दी सफलता-पूर्वक बन सके। यह हमारी भाषाकी सबसे बड़ी समस्या है। परन्तु कितने खेद और आश्चर्यकी बात है कि जब हमें राष्ट्र-भाषाके उपयुक्त साहित्य-निर्माणकी आवश्यकता है, तब हमारे हिन्दी-साहित्यिकोंका ध्यान जनपदोंके साहित्यिक संगठनकी ओर खींचकर उन्हें प्रादेशिक बोलियोंमें साहित्य-रचना करनेके लिए प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की जा रही है! क्या इस कार्यसे राष्ट्र-भाषाके भविष्यको धक्का न लगेगा? इस आन्दोलनके कारण राष्ट्रभाषाका अहित अवश्यम्भावी है। भिन्न-भिन्न बोलियोंमें जब पाठ्य-पुस्तकोंकी रचना शुरू हो जायगी, जब स्कूलों तथा कालेजोंमें इन बोलियोंके साहित्यका ही बोलबाला रहेगा, तब हिन्दी-भाषा और साहित्यकी श्रीवृद्धिके लिए प्रयत्न ही कौन करेगा?

श्री माखनलाल चतुर्वेदीने हरद्वार-सम्मेलनके सभापतिके पदसे जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—"इस विषयमें मैं समस्त हिन्दी-संसारके बल-वर्द्धनके लिए पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके जनपदोंकी स्थापना अथवा मण्डलोंकी स्थापनाके सुझावका समर्थन करता हूँ,—वहाँ तक, जहाँ तक कि देहलीके सम्मेलनका प्रस्ताव आज्ञा देता है। यों हिन्दी-भाषाके भारी विस्तार और गुरुतर कार्य-भारके कारण कुछ संस्थाएँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अन्तर्गत होकर भी अपना कार्य अबाधरूपसे अलग कर रही हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, इन्दौरकी मध्य-भारत-समिति, बिहार, पंजाब, मध्य-प्रान्त और मालवाके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, वर्धाकी राष्ट्रभाषा - प्रचार - समिति, प्रयागकी भारतीय हिन्दी-परिषद्—ये संस्थाएँ अपना-अपना कार्य किए जा रही हैं और प्रयागका सम्मेलन-कार्यालय इनके कार्योंको सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखता।...किन्तु मैं इन प्रयत्नोंको विकेन्द्रीकरणका प्रयत्न नहीं कहता। मैं यह तो चाहता हूँ कि मारवाड़ी, मालवी, बुन्देलखण्डी, ब्रजभाषा, मैथिली आदिका नष्ट होता हुआ साहित्य उज्ज्वल रूपमें सम्मुख आए; किन्तु मैं यह हरगिज़ नहीं समझ सकता कि इन प्रान्तोंकी पाठ्य-पुस्तकें वहाँकी बोलियोंमें छपने लगें। प्रान्तीय अभिमानको जागृत करना बुरी बात नहीं; किन्तु इनके गृह-कलहसे मुझे सम्पूर्ण हिन्दी-जगत्के नाश हो जानेका भय मालूम होता है। मेरे विचारसे अंगरेज़ीके राजरथको हिन्दीके क्षेत्रोंमें बलवान बनाकर अखिल हिन्दी-जगत्की एक हिन्दी-भाषाको कमज़ोर करनेका इससे सुन्दर तरीक़ा दूसरा नहीं हो सकता कि प्रान्तीय उत्तेजनामें पड़कर एक दिन मैथिलीका बोलनेवाला मारवाड़ी न समझे और मारवाड़ीका बोलनेवाला मैथिली। तब परिणामतः हाईस्कूलों और कालेजों द्वारा प्रदत्त अंगरेज़ी-भाषा धीरेसे आकर हमारे हिन्दी-जगत्के प्रान्तोंके बीच व्यवहार और सुविधाकी भाषा बन जाय। हाँ, प्रान्तोंमें हिन्दी-भाषामें ही हम प्राचीन प्रान्तीय साहित्योंको समझें और समझावें। जो मारवाड़ी और मैथिली जानते हैं, वे मूलको समझ लें, जो नहीं जानते उन्हें हम हमारे साहित्यिक ग्रन्थ प्रचलित हिन्दीमें समझावें। प्रयागके केन्द्रीकरणका हम विकेन्द्रीकरणसे इलाज न करें, क्योंकि इस इलाजके तो बीमारीसे भी भयंकर हो जानेका भय है।"

दिल्ली-सम्मेलनका प्रस्ताव

श्री माखनलाल चतुर्वेदीने यद्यपि श्री बनारसीदास चतुर्वेदीके जनपद-आन्दोलनका उस सीमा तक समर्थन किया है, जहाँ तक कि दिल्ली-सम्मेलनका प्रस्ताव आज्ञा देता है; परन्तु श्री माखन-लाल चतुर्वेदी यह नहीं चाहते कि प्रान्तों या प्रदेशोंकी बोलियोंमें पाठ्य-ग्रन्थोंकी रचना की जाय। वे यह चाहते हैं कि प्राचीन बुन्देलखण्डी, मारवाड़ी तथा मैथिलीके साहित्यका अध्ययन किया जाय; परन्तु यह सब हिन्दी-भाषामें हो। इस प्रकार वे श्री बनारसीदास चतुर्वेदीके जनपदीय संगठनके आन्दोलनका पूर्णरूपमें समर्थन नहीं करते। इस सम्बन्धमें दिल्ली-सम्मेलनका प्रस्ताव क्या आज्ञा देता है, इसपर भी विचार कर लेना उचित है। प्रस्ताव इस प्रकार है—"राष्ट्रभाषा हिन्दीकी विस्तृत अभिवृद्धि और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कार्यों और उद्देश्योंका सुसंगठित प्रचार करनेकी दृष्टिसे यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि प्रत्येक प्रान्तमें प्रान्तीय सम्मेलन और महत्त्वपूर्ण बोलियोंके क्षेत्रमें मण्डल-सभाएँ स्थापित की जायँ, जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे सम्बद्ध होकर व्यवस्थित रीतिसे निरन्तर कार्य करती रहें।"

सम्मेलन प्रान्तोंमें प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और बोलियोंके क्षेत्रोंमें मण्डलोंकी स्थापनाको आज्ञा अपने कार्यों एवं उद्देश्योंका सुसंगठित प्रचार करनेकी दृष्टिसे देता है। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ यह मण्डल या प्रादेशिक सभाएँ सम्मेलनके उद्देश्यों एवं कार्योंमें बाधक बनें या सम्मेलनके साथ प्रतियोगिता करें, वहाँ वे इस प्रस्तावके विरोधी बन जाते हैं।

अब यह विचार करना है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके उद्देश्य क्या हैं? सम्मेलनकी नियमावलीके नियम २ के अनुसार उसके उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—(क) हिन्दी-साहित्यके सब अंगोंकी पुष्टि और उन्नतिका प्रयत्न करना। (ख) देशव्यापी व्यवहारों और कार्योंको सुलभ करनेके लिए राष्ट्रलिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार बढ़ानेका प्रयत्न करना। (घ) हिन्दी-भाषाको सुगम, मनोरम, व्यापक और समृद्ध बनानेके लिए समय-समयपर उसके अभावोंको पूरा करना और उसकी कठिनाई और त्रुटियोंके संशोधनका प्रयत्न करना। (ङ) हिन्दी-भाषा और साहित्य-सम्बन्धी अनुसन्धानका प्रयत्न करना।

इन उद्देश्योंपर एक दृष्टि डालनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि सम्मेलनका उद्देश्य हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्यकी श्री-वृद्धि और प्रचार ही है। अतः जो कार्यक्रम इन उद्देश्योंमें बाधक है वह दिल्ली-प्रस्तावके अनुसार अवैधानिक ही माना जायगा। यदि जनपदोंकी बोलियोंमें पाठ्य-ग्रन्थोंका निर्माण होने लगे, तो स्वभावतः बोलियोंके क्षेत्रोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसके साहित्यके प्रचारमें बाधा उपस्थित हो जायगी। स्थानीय जनता अपनी-अपनी बोलियोंके साहित्यकी अभिवृद्धिमें जुट पड़ेगी और इस प्रकार सम्मेलनकी ३० वर्षोंकी साधना तथा महात्मा गांधीका राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिए किया गया भगीरथ प्रयत्न और राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति एवं दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाके प्रयत्न एक सीमा तक विफल हो जायँगे।

विकेन्द्रीकरण क्यों?

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रयागमें केन्द्रित होनेकी हानियाँ देख रहे हैं। यह हम भी स्वीकार करते हैं कि सम्मेलनका संगठन जनतान्त्रिक आधारपर नहीं है और उसमें मौलिक परिवर्त्तनकी आवश्यकता है। उसका संचालन-सूत्र सुदीर्घ कालसे प्रयागके कुछ इने-गिने विद्वानोंके हाथोंमें ही चला आ रहा है। परन्तु सम्मेलन ही एकमात्र संस्था नहीं है, जो २० करोड़ हिन्दी-भाषियोंको मानसिक भोजन देनेका कार्य कर रही है। हिन्दीकी अनेक प्रान्तीय और स्थानीय साहित्य-संस्थाएँ, वाचनालय एवं पुस्तकालय तथा लेखक, कवि, कलाकार, पत्रकार एवं प्रचारक इस यज्ञमें योगदान कर रहे हैं। हम भी यह चाहते हैं कि प्रत्येक प्रान्तमें हिन्दी-साहित्य-परिषदें स्थापित हों, उनका संगठन मज़बूत बनाया जाय और ज़िलों तथा जनपदोंमें साहित्य-मण्डल स्थापित किए जायँ; परन्तु ये सब संस्थाएँ अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अन्तर्गत रहें या उससे स्वीकृत-सम्बद्ध हों। इन सब संस्थाओंका उद्देश्य हिन्दी-भाषा एवं साहित्यका प्रचार एवं अभिवृद्धि करना हो। ये चाहें, तो स्थानीय साहित्यिक एवं भाषा-सम्बन्धी कार्योंको भी अपने हाथमें ले सकती हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके संगठनमें जो त्रुटियाँ हैं, उसके विधानमें जो दोष हैं, उनके निवारणके लिए विद्वानोंकी एक समिति बना दी जाय, जो इस सम्बन्धमें अपने सुझाव पेश करे, जिससे सम्मेलन यथार्थमें एक अखिल भारतीय संस्था बन सके।

यदि सम्मेलन स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीकी स्मृति-रक्षाके लिए अभी तक कुछ न कर सका और यदि वह स्वर्गीय कवि घासीरामजीकी स्मृति-रक्षाके लिए भी कुछ न कर सका, तो क्या इसका मतलब यह है कि सम्मेलनकी कोई आवश्यकता ही नहीं है अथवा वह एक बेकार संस्था है? जहाँ तक हम जानते हैं, सम्मेलनके विधानमें ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं, जिससे किसी भी स्वर्गीय साहित्य-सेवीकी स्मृति-रक्षाके लिए साहित्य-प्रेमी कुछ न कर सकें। हमारी रायमें साहित्य-सेवियोंकी स्मृति-रक्षाका कार्य स्थानीय या प्रान्तीय साहित्य-परिषदें अपने हाथमें लें, तो यह कार्य बड़ी सुविधापूर्वक हो सकता है।

हरद्वार-सम्मेलनका प्रस्ताव

हरद्वार-सम्मेलनमें श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायनने १९ मई, १९४३ को खुले अधिवेशनमें जनपदोंके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया (यह प्रस्ताव किसी अन्य सज्जनका था)। प्रस्ताव इस प्रकार है—"इस सम्मेलनका यह विश्वास है कि भारतीय संस्कृति जनपदोंमें निहित है। अतः यह सम्मेलन स्थायी-समितिसे यह निवेदन करता है कि वह एक समिति बनावे, जो भारतीय जनपदोंकी भाषा, भौगोलिक स्थिति, पशु-पक्षी, वनस्पति, उपज, ज्ञान, संस्कृति आदिका अध्ययन करानेकी योजना उपस्थित करे। इस समितिके सदस्य होंगे सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, सत्येन्द्र झुंझेरी, जैनेन्द्रकुमार, देवेन्द्र सत्यार्थी, अमरनाथ झा और चन्द्रबली पाण्डेय।"

सर्वश्री अमरनाथ झा, सावित्रीदेवी, कमलाबाई किबे और हरिशंकर विद्यार्थीने इस प्रस्तावका अनुमोदन और समर्थन किया। सभा-भवनके एक महत्त्वपूर्ण भागने इसके विरोधमें अपनी आवाज़ उठाई; परन्तु विरोधियोंको अपने मत प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेका सुयोग नहीं दिया गया और सभापतिजीने प्रस्तावपर बहसको स्थगित करनेका आदेश दे दिया। श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार तथा ठा० श्रीनाथसिंहने इस प्रस्तावका विरोध किया। उन्होंने इसे राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए घातक बतलाया। अनेक प्रतिनिधियोंने सभापतिजीसे यह अनुरोध किया कि इस प्रस्तावपर सम्मति न ली जाय और इसे अगले सम्मेलनमें विचारार्थ पुनः रखा जाय। परन्तु यह अपील भी सभापतिजीको स्वीकार्य नहीं हुई और प्रस्ताव बहुमतसे पास (?) हो गया!

अब हमें यह विचार करना है कि वास्तवमें इस प्रस्तावका आशय क्या है और इसके फलितार्थ क्या हैं? सभा-भवनमें उपस्थित अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों एवं साहित्यकारोंका यह विचार था कि अभी साल-छः महीने तक तो इसपर कुछ अमल भी न हो सकेगा, क्योंकि सम्मेलनकी समितियाँ भी 'सरकार'की तरह ही धीरे-धीरे अपना क़दम बढ़ाती हैं। देखनेमें यह प्रस्ताव सर्वथा निर्दोष है। सम्मेलन एक समिति बनायगा और वह समिति जनपदोंकी भाषा, संस्कृति, पशु-पक्षी, उपज, वनस्पति ज्ञान आदिका अध्ययन करानेकी योजना प्रस्तुत करेगी। यदि हिन्दी-भाषा और साहित्यकी अभिवृद्धिमें इस प्रकारकी योजनासे सहायता मिले, तो वास्तवमें यह प्रस्ताव अभिनन्दनीय हो सकता है। परन्तु वास्तवमें इससे हिन्दी-साहित्यका कोई लाभ होगा, यह सन्दिग्ध ही है। आशंका यह है कि यह 'जनपदीय अध्ययन' हमारे समाज-संगठनमें प्रवेशकर कहीं साहित्यिक पाकिस्तानका रूप न धारण कर ले! इसी आशंकाके भयसे अनेक प्रतिनिधियोंने इसका विरोध किया था।

बौद्धिक धरातल

श्री शिवाधारसिंह

जब हम किसी व्यक्तिके लिए कहते हैं कि वह बुद्धिमान है, तो यह कहते समय हमारा झुकाव 'विवेकशीलता'की ओर ही अधिक रहता है, यद्यपि बुद्धिका व्यापार विवेककी क्रियाओं तक ही सीमित नहीं है। हाँ, विवेक बुद्धिका एक आवश्यक अथच अनिवार्य अंग अवश्य है। बुद्धिका उदय कहाँ होता है, यह विषय अब तक विवादग्रस्त है। साधारण विवेचनसे ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धि केवल मस्तिष्कके सजग धरातलकी वस्तु है; पर सजग धरातलमें प्रयासकृत विकास सम्भव है, और बुद्धिमें ऐसा परिवर्त्तन देखनेमें नहीं आता। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धिकी जड़ें मस्तिष्कके अर्द्धचेतन और अचेतन धरातलसे होती हुई मनोविश्लेषणके अनुसार अतिचेतन (Super conscious level) में पहुँचती हैं। आजकी दुनियाका अधिकांश अतिचेतनके विकास या जागरणके प्रति उदासीन है। सजग धरातलके विकासके लिए स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय हैं; पर अतिचेतनके जागरणके लिए कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं। मानवीय विकासके मूलस्रोत इस अतिचेतन धरातलके जागरण या विकासके लिए प्राचीन कालमें हठयोग और राजयोग इत्यादि विद्याएँ थीं। ऐसी विद्याएँ आज भी हैं; पर तथाकथित सभ्य समाजसे बहुत दूर।

बुद्धिके मापके लिए अब तक न तो कोई यन्त्र बना है और न कोई वैज्ञानिक विधान ही। कौन कितना बुद्धिमान है, यह पता लगाना बड़ा कठिन है। मनुष्यका बाहरी व्यापार बुद्धिकी इयत्ताकी सूचना देनेके लिए पंगु सिद्ध होता है। यह भी देखा जाता है कि कभी-कभी विकसित बुद्धि और अकर्मण्यता साथ-साथ चलने लगती हैं। बुद्धिके मापका उपाय सर्व-प्रथम एबिंगाज़ (Ebbinghaus) ने निकाला, ऐसा माना जाता है। उसके समकालीन जैकब,[1] कैटेल,[2] फैरण्ड,[3] करपैट्रिक,[4] केली,[5] नार्सवर्दी[6] इत्यादि थे, जिन्होंने इस दिशामें प्रयास किया। एबिंगाज़का कहना था कि संश्लेष और विश्लेषकी शक्तिका नाम बुद्धि है। अपने मनके अनुसार उसने १८९७ में रिक्त-पूर्त्तिका उपाय निकाला। जैसे—'किसने किसको किस चीज़की दीवारोंके किनारे घसीटा?' या '.....ने.....को .....की दीवारोंके किनारे घसीटा' इत्यादि।

पर अभी तक बुद्धिके मापका कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं निकला। इधर बिने (Binet) ने बुद्धि मापनेके कुछ उपाय निकाले। बिनेको सार्वजनिक शिक्षा-विभागके मन्त्रीने

1. Jacob's Study of Memory-span, 1902.
2. Cattell's Problems of Mental Testing, 1890.
3. Farrand's Physical and Mental Measurements of the Students of the Columbia University, Psychological Review, III, 1896.
4. Kirpatric's Individual Tests of School Children, Psychological Review, VII, 1900.
5. Kelly's Psychological Test of Normal and Abnormal Children, Psychological Review, X, 1903.
6. Norsworthy's The Psychology of Mentally Defective Children, Arch of Psychology, No. 1, 1906.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...के लिए बुलाया कि कुछ छात्र फ़ेल क्यों होते हैं ? उन्होंने ...के साथ इस दिशामें कई प्रयोग किए और १९०५ में ...विषयपर 'एन्नी साइकालाजी' (Annee Psychology) ...कतिपय लेख लिखे। इन प्रयोगोंमें बहुत-सी बातें थीं, जैसे ...ओंकी लम्बाईकी तुलना, प्रश्नोंका ठीक ढंगसे समझना, ...के अंकोंकी आवृत्ति इत्यादि। इन सब प्रश्नोंपर एनाल ...निउरोलाजिया, २४, १९०६ (Annal de Neurolo-...xxiv, 1906) के बाद डी सैंक्टिस (De Sanctis) ...प्रकाशन हुआ। अमरीकन देशोंके लिए इनका अनुवाद ...बौद्धिक माप-दण्ड' (a Measuring Scale for ...lligence, The Training School, VI, 1910) ...गोडार्ड (Goddard) द्वारा किया गया। लगभग ...सम्बन्धोंमें हेली और जी० फैराल्डने १९१०-११ में ...द्धिक वर्गीकरणके कुछ उपाय'-शीर्षक एक लेख प्रकाशित ...।[7]

बिनेने अपने माप-दण्डकी आवृत्ति की ; किन्तु बुद्धिके ...के सम्बन्धमें वह किसी निश्चित निर्णयपर नहीं पहुँच सका। ...भी उनके तीन निश्चित मत थे—बुद्धि निर्देशोंके समझने, ...निश्चित मानसिक स्थितिके बनाने और स्वतःसम्भूत ...-विवेचनकी शक्तियोंका समवाय।[8] यह आवृत्ति १९११ ...की गई थी और उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई। बिनेने ...से बालकोंकी परीक्षा करके सामान्य बुद्धिका अनुमान लगाया ...उसीके अनुसार कुछ प्रश्न निश्चित किए, जो एक निर्दिष्ट ...सामान्य बुद्धिवाले बालकके लिए उपयुक्त थे। इसके ...उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ा और विभिन्न वय एवं धीके ...कई वर्ष तक मिल-मिलकर उनकी मानसिक स्थितिका ...अनुमान करना पड़ा। यदि किसी बालककी आयु ८ ...होती, तो पहले वह उससे ६ वर्षकी आयुके बालकके ...प्रश्न करता, फिर ७ वर्षकी वयके उपयुक्त और फिर ...प्रकार बढ़ते-बढ़ते १२ वर्षकी वयके उपयुक्त। इस प्रकार ...देखता कि बालक कहाँ असफल होता है और कहाँ तक ...। यदि वह बालक १० वर्षकी आयुके उपयुक्त प्रश्नोंका ...ठीक उत्तर दे देता, तो उसका मानसिक वय १० वर्ष है, ...वह सामान्यसे उच्चतर है। और यदि ८ वर्षकी आयु-...लड़का केवल ६ या ७ वर्षकी वयके उपयुक्त प्रश्नोंका ही उत्तर दे पाता, तो वह अकुशाग्र-धीका सिद्ध होता। बुद्धिकी असामान्य अवस्थाके मापके लिए बिने शारीरिक वय (Chronological age) से मानसिक वय (Mental age) को घटा देते थे। इस प्रकार यह पता चल जाता था कि कौन कितना अधिक बुद्धिमान है और कौन कितना कम ?

बुद्धिकी परीक्षाके आन्दोलनने बिनेके समयमें ही जर्मनीमें बड़ा ज़ोर पकड़ा। मेनमैम्स (Menmams) अब तक काफ़ी काम कर चुका था। स्टर्न (Stern) ने परीक्षाके गणनाक्रममें एक आवश्यक परिवर्त्तन किया था।[9] बुद्धिकी असामान्य अवस्थाके मापके विषयमें बिनेका उपाय अपने गणना-विधानमें कुछ सदोष था। माना कि कोई बालक शारीरिक वयमें ६ वर्ष है और उसका मानसिक वय १० वर्ष है ; पर बिनेके अनुसार कहा जायगा कि उसकी असामान्य अवस्था ४ वर्ष है। दूसरे बालकका शारीरिक वय ८ वर्ष है और मानसिक वय १२ वर्ष। अतः उसकी भी असामान्य अवस्था ४ वर्ष होगी। ज़ाहिरा तौरपर इससे ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धिकी कुशाग्रतामें दोनों ही बालक समान होंगे ; पर यथार्थमें बात ऐसी नहीं है। पहली अवस्थावाला बालक सामान्य बुद्धिसे २॥। गुनी बुद्धि रखता है और दूसरी अवस्थावाला १॥ गुनी, जब कि बिनेके अनुसार ऐसा कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। इसलिए इस 'गुना'के आधारपर स्टर्नने मानसिक वयको शारीरिक वयसे भाग देनेका विधान किया। इसका अधिक ठीक होना स्वाभाविक ही था। १९१६ में टरमन (Terman) ने बिने-मापदण्डकी जाँच की। उसने स्टर्नकी प्रणालीमें थोड़ा-सा परिवर्द्धन करके यह निश्चय किया कि मानसिक वय और शारीरिक वयका आनुपातिक सम्बन्ध क्या है ? यह विभाजन-प्रणालीका ही एक रूप है ; पर दैनिक कार्योंके लिए इसकी उपादेयता अधिक है। इसे 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' (Intelligence Quotient) कहते हैं। आगे चलकर इसका और अधिक सुधार हुआ और इसको सौके आनुपातिक क्रममें लाकर पूर्णांकोंमें लाया गया, अर्थात् मानसिक वयको शारीरिक वयसे भाग देकर भजनफलको १०० से गुणा कर दिया गया। इस प्रकार उस बालकका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट', जिसका मानसिक वय १० वर्ष है और शारीरिक वय ६ वर्ष है, $\frac{१०\times१००}{६}$ यानी १६६$\frac{२}{३}$ हुआ और ८ वर्ष शारीरिक वय तथा १२ वर्ष मानसिक वयवालेका $\frac{१२\times१००}{८}$ यानी १५० हुआ। यहाँपर बिनेकी ४ वर्ष

7. Tests for mental-classification : Psychological ...XIII, 1910-11.

8. Intelligence, he suggests, is the ability to under-... directions to maintain a mental set and to apply ...criticism (the correction of one's own errors).

9. The Psychological Methods of Testing Intelligence, 1912.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असामान्य अवस्थावाली बात (जो उपर्युक्त दोनों स्थितियोंमें है) की पंगुता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

बहुत दिनोंकी परीक्षाके अनन्तर ऐसा पता चला कि जिनका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' १२० होता है, वे काफ़ी बुद्धिमान और प्रायः समाजके अगुआ होते हैं; जिनका ७० होता है या उससे कम, वे मनस्तः बड़े दुर्बल और कभी-कभी पागल भी होते हैं। यहाँ एक बड़े मज़ेकी बात मिली कि अपढ़ समाजमें मछुए या मछलीमार सबसे अधिक कुशाग्र-धी होते हैं और पढ़े-लिखे समाजमें प्रायः वकील और बैरिस्टर। यह भी देखा गया है कि जिस सामान्य समाजके ५ प्रतिशत जनसमूहका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' १२० होगा, उसके ५ प्रतिशतका ही 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' ८० होगा। इसी प्रकार यदि १० प्रतिशत जनसमूहका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' १३० होगा, तो १० ही प्रतिशत समूहका कोशण्ट ७० होगा। सामान्य समाज इसलिए कहा गया है कि यदि आप चुन-चुनकर कुछ विशेषया शिक्षित या पटु-समूहपर या विशेषतया मूर्ख-समूहपर इस बातको लागू करें, तो भी हमारी बात असत्य सिद्ध होगी, क्योंकि जिनका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' १०० हुआ, यानी जो सामान्य-धी हुए, वे प्रत्येक सामान्य समाजके लगभग ३५ प्रतिशत होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि एक साधारण समाजमें या जन-साधारणमें जितने मूर्ख होते हैं, उतने ही चतुर भी; और यही कारण है कि कहींपर बहुत-से बाज़िदअली शाह हैं, तो कहींपर चिथड़ोंका लबादा पहननेवाले बेताजके बादशाह।

स्टर्नने १९१२ में बिने-मापदण्डकी जाँच करते समय यह मालूम किया कि हरएक व्यक्तिका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' जीवन-भर स्थायी रहता है। यदि आरम्भमें उसका 'कोशण्ट' ७० है, तो जीवन-भर उसका 'कोशण्ट' ७० ही रहेगा, चाहे उसकी आयु ४ महीने हो या ८० वर्ष। १९१६ में टरमनने 'बौद्धिक मापदण्ड'[१०] लिखकर इसी बातकी पुष्टि की। इसका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति आरम्भसे ही मूर्ख है, वह आजीवन मूर्ख बना रहेगा, और जो आरम्भसे ही बुद्धिमान है, वह आजीवन बुद्धिमान। टरमनने १९१९ में 'छात्रोंकी बुद्धि' लिखकर इस जीवन-व्यापिनी बुद्धिमत्ता या मूर्खताका ज़ोरदार समर्थन किया; पर ऊली (Woolly) ने इसका विरोध किया और कहा कि नहीं, वयके साथ ही 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट'में परिवर्त्तन होना भी सम्भव है। इसपर उसने १९२५ में 'अल्पवयमें बौद्धिक विकासके औचित्य'पर काफ़ी प्रकाश डाला।[११] वैसे भारतीय योगदर्शन भी अतिचेतन धरातलके जागृत हो जानेपर बुद्धिके परिवर्त्तनकी बातका समर्थन करता है। कुण्डलिनीके जागृत होकर सहस्रारमें पहुँच जानेपर अनुभव पदार्थ-हीन हो जाता है, यानी बिना किसी पदार्थके सम्पर्कमें आए—इन्द्रियोंके माध्यमसे—भी आपको उसका ज्ञान होगा। नेत्रोंको ही लीजिए। कुण्डलिनीके सहस्रारमें पहुँच जानेपर आपको इस बातकी आवश्यकता न पड़ेगी कि कलकत्तेका समाचार जाननेके लिए आपको कलकत्तेको अपनी आँखोंके सामने रखनेकी आवश्यकता पड़े। आप प्रयागमें बैठे-बैठे भी कलकत्तेकी जो घटना देखना चाहें, देख सकते हैं, अथवा वहाँकी जो ध्वनि सुनना चाहें, सुन सकते हैं। ज्ञानके इस स्तरपर आनेके अनन्तर जन्मजात बुद्धिके स्वरूपका कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि यह ऐन्द्रिय ज्ञानके चरम विकासकी स्थिति है, जहाँ तुलनात्मक अवस्थाकी बात ही नहीं उठती। वैसे साधारण जीवनके प्रश्नपर बहुमत और लम्बी खोज ऊलीके मतके विरुद्ध पड़ती है।

बुद्धिके ऐसे विभाजनसे प्रतीत होता है कि जिसे सफल होना है, वह प्रत्येक क्षेत्रमें सफल होकर ही रहेगा और कृतप्रयास होकर भी दूसरा व्यक्ति, जिसका 'इंटेलीजेन्स कोशण्ट' कम है, असफल ही रहेगा; जैसा कि 'कासारे दिवसं वसनापि पयःपूरं परं पंकिलं·····कि सौरभं सौरिभिः'में इंगित है। पर ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही व्यक्ति एक क्षेत्रमें असफल होता है और दूसरेमें सफल। सर जगदीशचन्द्र बसु प्रयास करनेपर भी शायद सफल कवीन्द्र रवीन्द्र न हो पाते और न रवीन्द्र सर जगदीश। कालान्तरमें मनोविज्ञानवेत्ताओंने[१२] बुद्धिके दो विभाग किए हैं, जिनसे किन्हीं अंशों तक इन शंकाओंका समाधान हो जाता है। बुद्धिका एक भाग साधारण बुद्धि (General Intelligence) कहलाता है और दूसरा विभागीय बुद्धि (Specific Intelligence)। किसी विषयमें विशेषता प्राप्त करना, यह विभागीय बुद्धिका व्यापार है। सम्भव है, एक अच्छा कवि अच्छा कहानीकार न हो सके अथवा एक उपन्यासकार एक सफल नाटककार न हो सके। इसलिए जीवनकी सफलताका रहस्य विभागीय बुद्धिके उपयुक्त विषयके चयनमें है। यह भी देखा जाता है कि किसी व्यक्तिमें साधारण बुद्धि तो बहुत है; पर विभागीय बुद्धि बहुत कम। कुछ व्यक्ति ऐसे

10. The Measurement of Intelligence.

11. The validity of standards of Mental Measurement in young Childhood: School and Society, XXI 1925.

१२. उदाहरणके लिए स्पीयरमैन (Spearman) ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी होते हैं, जिनमें विभागीय बुद्धि होती है; पर साधारण बुद्धि बहुत कम। उपर्युक्त दोनों प्रकारके व्यक्ति जीवनमें बहुत अच्छी सफलता नहीं प्राप्त करते। व्यापक सफलता उन्हींको प्राप्त होती है, जिनमें दोनों प्रकारकी बुद्धियोंका समाहार होता है।

बुद्धिके मापकी सचाईकी परीक्षा एक बार अमरीकामें की गई। सन् १९१४ का महायुद्ध छिड़ा था और अमरीकाके सैन्य-विभागके पास इतना समय न था कि पहले वह सिपाहियोंकी कार्य-प्रणालीका सूक्ष्म और दीर्घकालिक निरीक्षण करे और तब उनमें से अधिकारियोंका चयन करे। अपनी सहायताके लिए सैन्य-विभागने कुछ मनोवैज्ञानिकोंको बुलाया और उनसे अधिकारियोंका चयन करनेको कहा। रँगरूटोंमें पढ़े-लिखे और अपढ़ दोनों ही प्रकारके व्यक्ति थे। पढ़ों-लिखोंके लिए साहित्यिक परीक्षाएँ निर्दिष्ट की गईं और अपढ़ोंके लिए कुछ करके दिखानेकी (performance-tests), क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि केवल पढ़े-लिखे लोग ही बुद्धिमान हों। इनके परिणाम-स्वरूप चुने गए व्यक्ति सचमुच अच्छे अधिकारी सिद्ध हुए। कुछ ऐसे व्यक्तियोंको, जिनके पास बड़े-बड़े आदमियोंके सिफ़ारिशी पत्र थे, या जो सैन्य-विभागके बड़े-बड़े पदाधिकारियोंके सम्बन्धी थे, या जो काफ़ी पढ़े-लिखे थे, मनोवैज्ञानिकोंने अयोग्य ठहराया। इसके विपरीत कई बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति सुयोग्य बतलाए गए। स्कूलमें भी कुछ ऐसे ही प्रयोग विद्यार्थियोंपर किए गए और उनको यह परामर्श दिया गया कि वे पढ़ना छोड़ दें; पर सुविधा और शौकके कारण वे पढ़ते रहे। आगे चलकर देखा गया कि वे एक-एक क्लासमें चार-चार वर्ष तक फेल होते रहे।

बुद्धि-परीक्षाके इस तरहके प्रयोगोंके बिल्कुल ठीक होनेके बावजूद अभी इस सम्बन्धमें कोई बात अन्तिम रूपसे नहीं कही जा सकती। सम्भव है, मनोवैज्ञानिकोंको भविष्यमें किसी दूसरे ही निर्णयपर पहुँचना पड़े। पर अब तक जितना भी हुआ है, उसपर अच्छी तरह विश्वास किया जा सकता है। कम-से-कम बिनेके अनन्तर सभी मनोवैज्ञानिकोंको सफलता मिली है। इस विषयपर अब भी नई-नई खोजें हो रही हैं। परन्तु बुद्धिका व्यवसाय क्या है, अब तक मनोवैज्ञानिकोंका इसपर मतैक्य नहीं हो सका है। एबिंगाज़ और बिनेके मत हम ऊपर दे चुके हैं। डाक्टर बैलर्डका कहना है कि अधिकांश मनोवैज्ञानिक बुद्धिके तीन कार्य मानते हैं—ऊँची और जटिल समस्याओंका विवेचन; उन समस्याओंकी ओर अधिक प्रवृत्ति, जो अपने साथ एक नवीनता लाती हैं; और कोरे प्रतिबिम्ब या ग्रहणशीलताके बजाय अनुभवकी तालिकाका विश्लेषण, उपक्रम-चिन्तन तथा पुनस्समीकरण।[13] एक अन्य महाशयने लिखा है कि बुद्धि बहुत-सी सूक्ष्म विभागीय चिन्तन-शक्तियोंका समवाय है।[14] मैक्सवैल गारनेटने एक नई बात और जोड़ी है कि बुद्धि साम्यके आधारपर संसर्गकी पटुता भी देती है।[15] बुद्धिके स्वरूपके सम्बन्धमें, अभी तक यही मुख्य धारणाएँ हैं।

13. Intelligence is more fully manifested in the higher mental processes than in the lower; it is specially active in dealing with a situation which presents points of novelty, (in other words with the solution of problem) it is more concerned with the dissecting, plannury and rearranging of the data of experience than with the mere reception of impressions. (British Journal of Psychology, October, 1929).

14. Intelligence may really be a compound of a great number of abilities all highly specified.

15. Cleverness or the tendency to associate by similarity. (Maxwell Garnett).

प्रलयका प्यार

श्री सुधीन्द्र, एम० ए०

प्रणय में मेरे प्रलय का प्यार भी है।

इन्द्रधनुषी रँग मिलन के
तूलिका-सा चिर-विरह ले।
आँकता हूँ चित्र में, अपने
सुखद सपने सुनहले।
क्षार करने को उन्हें पर हाथ में अंगार भी है!

ओठ जो वंशी सुनाते,
अँगुलियाँ वीणा बजातीं।
वे रणस्थल में गरजते,
ये समर-भूषा सजातीं।
रक्तमें मेरे सतत शत सागरोंका ज्वार भी है!

बाँध लेंगे क्या मुझे
पल-भर, महल ये रत्न-विजड़ित?
मोह लेंगे कुंज-उपवन
क्या मदिर संगीत-गुंजित?
आज नन्दन-सा मुझे जब वरद कारागार भी है!

आज तन का कर रहा हूँ,
मैं रुचिर शृंगार नव-नव।
किन्तु बलि-पंथी बनूँगा
कल, उठे जय-घोष, जन-रव।
जन-जनार्दनके चरण में शीश यह उपहार ही है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेदका काव्य

श्री यशवन्तसिंह नेगी

हिन्दुओंका 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्'का अनिन्द्य सिद्धान्त ही आजकलका उच्चतम आदर्श बन गया है। आध्यात्मिक अर्थ तो उसका बहुत सुन्दर है ही, उसकी लौकिक भावना भी अपने-आपमें एक कलाकी वस्तु है। 'सत्यं-शिवं'में वैज्ञानिक सत्य और ऐहिक शिवकी भावनाका क्या स्थान है, यह निश्चित करना सरल नहीं; परन्तु इतना तो निर्विवाद है कि वैज्ञानिक सत्य और ऐहिक शिव भी उससे एकदम बहिष्कृत नहीं हैं। जिस प्रकार विभिन्न धर्म-मार्गोंके मूलमें पाप और पुण्यके भेदकी विभिन्न भावनाएँ ही वर्त्तमान रहती हैं, उसी प्रकार हिन्दुत्वके महान् शाखा-भेदके मूलमें भी सत्य और शिवकी विभिन्न भावनाएँ ही काम करती हैं। परन्तु इतने प्रशस्त मत-मतान्तरोंमें भी वह पुराना और सदा नवीन 'सुन्दर' हिन्दुओंकी दृष्टिसे ओझल नहीं हो पाया है। सौन्दर्य—स्थूल और सूक्ष्म—प्रत्येक धर्मकी एक आवश्यकता है। 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्'की अभिव्यक्ति ही यदि कलात्मक न हुई, तो उसका मूल्य ही क्या? जिज्ञासासे ज्ञानके नैसर्गिक मार्गपर चलनेवाले मनुष्यकी भावना स्वयं ही सौन्दर्य-रूप हो जाती है—विशेषकर उस अवस्थामें, जब जिज्ञासाका आश्रय महान् और रहस्यपूर्ण हो। शिशुओंके कुतूहल और श्रद्धा-भावको तिलांजलि देकर एकदम चोटीके सर्वज्ञ बननेवालेकी अभिव्यक्ति-शैली कभी भी कलात्मक नहीं रही है। विज्ञानका सहज प्रभाव भी जिज्ञासासे बोधिकी ओर है; परन्तु उसकी कार्य-प्रणालीमें विश्लेषणकी जो अदम्य प्रवृत्ति काम करती है, उससे काव्यकी सहज शत्रुता है। वैदिक हिन्दुत्व भारतीय काव्यकी प्रारम्भिक जिज्ञासात्मक अवस्था है। ऋग्वेदकी आत्मा काव्य है, उसके अलंकरण और अन्य उपकरण नहीं।

वैज्ञानिक सत्यको ही यदि पूर्ण सत्य मान लिया जाय, तो कदाचित् कलाकी कोई भी वस्तु 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्'की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। इसी वैज्ञानिक सत्यको ही पूर्ण सत्य मानकर कहा जाता है कि कला उन अर्द्ध-अँधियारे युगोंकी विभूति है, जब मानवी बुद्धिका विकास इतना सम्यक न था। विज्ञानकी चकाचौंधमें कलाका धुँधला प्रदीप कोई हस्ती ही नहीं रखता; परन्तु फिर भी बीसवीं शताब्दीमें कला विज्ञानसे अधिक रुचिकर प्रतीत हुई है। फलतः मान लिया गया है कि कला और विज्ञानके मार्ग भिन्न हैं। हिन्दुत्वका सत्य कलात्मक सत्य है—एक ऐसा सत्य, जिस तक वस्तुतः विज्ञानकी पहुँच, कमसे कम उसके भौतिक उपकरणों द्वारा, है ही नहीं। और वही सत्य हिन्दुत्वके क्रमिक विकासकी प्रत्येक अवस्थामें स्पष्टतर और अधिक कलात्मक हो गया है; क्योंकि हिन्दुत्वका नैसर्गिक प्रवाह पदार्थसे आत्मा—स्थूलसे सूक्ष्म—की ओर है। प्रत्येक अवस्थामें वह अधिक गूढ़ और गम्भीर होता गया है। इसी सत्यकी प्रारम्भिक जिज्ञासा-रूप अवस्था हिन्दुत्वका आदि-ग्रन्थ ऋग्वेद है।

वैदिक हिन्दुत्वके प्रथम ऐतिहासिक प्रतीक—ऋग्वेद—का काव्य तो स्पष्टतः ही एक ऊँचे दर्जेका काव्य है। वैदिक काव्यके प्रशंसक मेकडोनेलने वैदिक काव्यकी आत्माको आशामयी (optimistic) बतलाया है, जो शत-प्रति-शत सत्य है। यद्यपि उन्होंने प्राचीन संस्कृत-साहित्यको निराशावादी (pessimistic) बताकर स्पष्टतः ही एक बड़ी भूल की है, तथापि ऋग्वैदिक साहित्यके विषयमें तो उनका कहना बिल्कुल सही है। हिन्दुओंके परब्रह्मका जन्म कभी शैतानके जन्मके साथ हुआ ही नहीं। (विभिन्न धर्मोंके पाश्चात्य इतिहासकारोंका तो यहाँ तक कहना है कि प्रकृतावस्थामें निरपेक्ष छोड़े गए मनुष्यकी मूल प्रवृत्तियाँ अच्छी नहीं कही जा सकतीं, इसलिए उस अवस्थामें शैतान खुदासे बड़ा है।) हिन्दुत्वकी श्रेष्ठताका एक प्रमाण यही है कि उसमें एक बड़े शैतानकी सत्ताका स्वीकरण है ही नहीं। ऋग्वेद तक तो वह अवस्था आई नहीं थी, जब हिन्दुओंको प्रकृतिकी विराट सत्ताके सूर्य-चन्द्र-ग्रहादि प्रतीकोंसे कभी डर-सा लगा हो। यह शिवकी भावनाका एक पहलू है—जो-कुछ है, कल्याणके लिए है; उससे डरनेकी कोई बात नहीं। यही वैदिक कालकी आशामूल आत्मा है। जब इतने सारे देवता, इतनी सारी शक्तियाँ ही कल्याणपर आ तुली हों, तो मनुष्यके लिए निराश होनेकी जगह ही कहाँ है? सूर्य जगत् और तस्थुषकी आत्मा है; इन्द्र हमारे शत्रुओंका संहारक है; मरुत प्रकृतिकी विराट् सत्ता है; उषा सौन्दर्यकी प्रतिमा और ऐश्वर्य-प्रदायिनी है। सभी कुछ ठीक है। यद्यपि राक्षस, यातुधान, दास प्रभृति शब्द भी ऋग्वेदमें प्रयुक्त हुए हैं, तथापि उनको ऐतिहासिक अर्थमें प्रयुक्त समझना ही ठीक जँचता है। 'दास'का 'आर्य'के साथ प्रयुक्त होना ही इस बातका स्पष्ट प्रतीक है कि 'दास' ऐतिहासिक और ऐहिक व्यक्ति हैं। जो-कुछ हो, इतना तो स्पष्ट है कि इतने कल्याणकारी देवोंके होते हुए वैदिक हिन्दू निराशावादी हो ही कहाँ सकते थे? यद्यपि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना सही है कि इन शक्तियोंमें से कोई भी वैदिक काल तक 'इष्टदेव'के पदको न प्राप्त कर सकी थी ; परन्तु इससे तो हिन्दु-त्वकी प्रारम्भिक कलात्मकताका ही बोध होता है। वैदिक मन्त्रोंके मूलमें किसी अज्ञात शक्तिके इतने दृश्य-प्रतीकोंकी महत्ता और सौन्दर्यसे उपजात आश्चर्य और श्रद्धाकी भावना ही काम करती है—वही आश्चर्य, जो कतिपय विद्वानों द्वारा कलाकी मूल प्रेरक वृत्ति मान लिया गया है। रहस्यमें लिपटी हुई और दृश्य-रूपसे इतनी दूर स्थित शक्तियोंसे कैसे मनुष्यका तादात्म्य स्थापित हो सकता है ? उन कतिपय शक्तियोंमें राम और कृष्णकी तरह मानवीय भावनाओंका आरोपण भी तो नहीं है और दो-एकको छोड़कर उनका स्वरूप भी तो बहुत स्पष्ट नहीं है। ऐसी अवस्थामें अर्चन ही भक्तिका स्वरूप है। भक्तिके दूसरे आठ प्रकारोंके लिए यहाँ कहीं भी जगह नहीं है। फिर वास्तोष्पति और क्षेमस्यपति तथा सीता इत्यादि जो गृह-क्षेत्रके अधिष्ठाता देवता हैं, उनका रूप तो बिलकुल ही अस्पष्ट और अनिश्चित है।

ऋग्वेद-कालीन जिज्ञासाका स्वरूप सृष्टि-निर्माणके विवरणमें बहुत सुन्दरतासे स्पष्ट हुआ है। इसी मन्त्र और पुरुष-सूक्तमें वैदिक दर्शनके पहले-पहल दर्शन होते हैं ; परन्तु इस मन्त्रमें दर्शनकी गहनताकी अपेक्षा वर्णनका सौष्ठव ही अधिक है। शून्यका यह रूप गम्भीर ही नहीं, भयावह भी है। सत् और असत् किसीका अस्तित्व नहीं। तो फिर है क्या :—

ना सदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीदजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्न
अम्भः किमासीद्गहन गभीरम् ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह आसीत प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्मा द्धान्यन्न परः किं चनास ॥

—'न सत् था, न असत् था। न वायुपथ था और न उससे परे व्योमपथ था। क्या था वहाँ ? किसके अधीन था वह ? कहाँ अति गहन-गम्भीर जल तो नहीं था ?

—'न मृत्यु थी, न अमृत था। रात्रि-दिनका प्रतीक भी नहीं था। अपनी ही शक्तिसे एक वायु-रहित श्वास लेता था। उसके सिवा और कहीं कुछ न था।'

कहाँसे यह सृष्टि उत्पन्न हुई, कैसे हुई, इसे कौन जानता है ? कदाचित् जो इस सारे चराचरका निरीक्षक है, वह इस भेदको जानता हो, या शायद न भी जानता हो—'सो अंग वेद यदि वा न वेद।'

यद्यपि सृष्टिके पूर्वकी यह व्यापक शून्यता भी बहुत काव्य-मयी है, तथापि ऋग्वेदका काव्य यथार्थ रूपसे उसके कतिपय देवताओंकी मूर्त्ति-कल्पनामें बिखरा पड़ा है। जड़ताकी ओर ऋग्वैदिक कविकी दृष्टि गई ही नहीं। प्रकृतिमें जो-कुछ जीवित और प्रवाहमान है, जिसे मति और तेज ही सुन्दरता प्रदान करते हैं, वही ऋग्वैदिक कविके लिए काव्यमय है। निश्चलतामें जहाँ माहात्म्यका आधिक्य है, केवल वहीं दैवी मूर्त्तिकी कल्पना की गई है—जैसे पृथ्वी। 'अरण्यानी'की कल्पना कदाचित् अरण्यके सौन्दर्य व उपयोग-प्रमुखताके कारण की गई है। ऋग्वैदिक कविने कुरूपताकी ओरसे अपनी आँखें बिलकुल ही फिरा ली थीं। रात्रिको कुरूप देखनेसे उसने क़तई इन्कार कर दिया है। अँधेरी रात्रिका भी एक सौन्दर्य है, इसमें सन्देह नहीं ; किन्तु उस सौन्दर्यको केवल एक विशेष प्रकारकी प्रकृतिवाले सौन्दर्य-प्रेमी ही देख सकते हैं। वह सौन्दर्य सबके लिए नहीं। इसके प्रतिकूल ज्योतिष्मती तारा-दीपित रात्रिका सौन्दर्य तो सभीके लिए स्पष्ट है। इसी उजले पहलूको ऋग्वेदकी 'रात्रि'के कविने देखा है :—

ओर्वप्रा अमर्त्या
निवतो दे व्युवद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥

—'यह अमर शक्ति असीम प्रसारमें व्याप्त हो गई है—ऊँचाई और गहराईमें भी ; ज्योतिसे वह अन्धकारका संहार कर रही है।' यह उस रात्रिकी कल्पना है, जो ज्योतिसे तमका संहार करती है। वह अपने (तारा-रूप) अनेक नेत्रोंसे अनेक जगहोंको देखती है और अपनी समस्त सुन्दरतामें आती है :—

रात्री व्यख्यदायती
पुरुमा देव्य वक्षभिः
विश्वा अधि श्रियो ऽधित ॥

रात्रिको ऊषाकी 'स्वसा' (बहन) कहा गया है। जब 'ऊषा' इतनी सुन्दर है, तो रात्रिको कुरूप बनाना तो उसके साथ अन्याय करना है।

ऋग्वेदका उषः सूक्त तो बहुत ही काव्यमय है। उसके कुछ मंत्रोंका श्री महादेवी वर्माने हिन्दीमें मूलसे भी सुन्दर अनुवाद किया है। सौन्दर्यकी यह देवी (ऊषा) अपना स्वर्ण-रथ जोतकर चराचरको जगाती चलती है :—

यूयं हि देवी ऋतयुभिरश्वैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परि प्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्ती रुपसः ससन्त
द्विपाच्चतुष्पाषच्चत्थाय जीवम् ॥

—ऊषा सदा नवीन है। उसका स्वरूप बदलता नहीं। वह अमीतवर्णा है। कभी तो सूर्य देदीप्यमान ऊषाका पीछा करता है—'सूर्यः देवीम् उषसम् रोचमानाम् मर्मः न योषाम् अभि एति पश्चात्'—और कभी स्वयं ऊषा गोदमें एक सुन्दर बालकको लेकर आती है। इसी प्रकार कई सुन्दर छन्दोंमें ऊषाका वर्णन किया गया है।

यह पहले कहा जा चुका है कि ऋग्वेदमें प्रकृतिको कभी भी जड़-रूपमें नहीं देखा गया है; परन्तु आधुनिक अर्थमें जैसे प्रसुप्त प्रकृतिमें भी स्पन्दन देखा जाता है, वसा ऋग्वेदमें कहीं भी नहीं पाया जाता। फलतः जहाँ आधुनिक कवि प्रकृतिके प्रसारका यथावत् वर्णनकर उसे सजीव बना सकता है, वहाँ ऋग्वेदके कविको मूर्तीकरण (Personification) का सहारा लेना पड़ता है। यह ठीक है कि इस मूर्त्ति-निर्माणमें मूर्त्तिके पूरे अवयवों पर यथार्थ रूपसे ध्यान नहीं दिया गया है, केवल मुख्य पहलुओंका ही चित्रण किया गया है और चित्रकी बारीकियोंकी ओर कविका ध्यान नहीं गया है। इसका एक और कारण है। ऋग्वेदके कविका मुख्य ध्येय चित्र-निर्माण था ही नहीं। फलतः उसने प्रकृतिके केवल उन्हीं पहलुओंको देखा है, जो उसकी देवता-रूप शक्तियोंकी महत्ता या सौन्दर्यको स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार 'ऊषा' फूलोंको विकसित करती है, भौंरोंको गुँजाती है, इत्यादि छोटी-छोटी बातोंका ध्यान नहीं रखा गया है। ध्यान रखा गया है केवल इस बातका कि वह अपना स्वर्ण-रथ जोतकर चराचरको जगाती चलती है। ठीक उसी प्रकार :—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्येन सविता रथेना
देवो याति भुवनानि पश्यन्।

—'अपने सोनेके रथपर सवितृदेव भुवनोंको देखते हुए जाते हैं।' सवितृ, सूर्य इत्यादिके मन्त्रोंमें कविने 'हिरण्य' (सोने) की वर्षा की है। पता नहीं, यहाँ रात्रि हो जानेपर किस स्वर्गमें सविताकी रश्मियाँ बरसाती हैं :—

क्वे ३ दानीं सूर्यः कश्चिकेतः
कतमां द्यां रश्मिरस्या नतान ॥

सूर्य-सविताका मार्ग ऊँचा, नीचा, पुरातन और स्वच्छ है। वे पृथ्वीके आठों पर्वत-शृंगों, सातों समुद्रों इत्यादिको देखते चलते हैं।

जहाँ आकाशकी इतनी चीज़ोंको ऋग्वेदके कविने देखा है, वहाँ वह सर्वसौन्दर्यशालिनी वसुन्धराको भी एकदम भुला नहीं बैठा है। 'पृथ्वी' ऋग्वेदमें बहुधा 'द्यावा'के साथ समासमें आया है। उनको सुन्दरतासे पूर्ण बनाया ही गया है—'पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्।' इतनी सुन्दरता और वत्सलताके होते हुए भी वे 'ऋतावरी' हैं और उन दोनोंके बीच सूर्य 'धर्म'-पूर्वक आता-जाता है। सभी एक नियम और एक लौपर टिके हैं :—

ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशंभुव
ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी द्विषणे अंतरीयते।
देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः।

आंग्ल महाकवि वर्डस्वर्थने भी कभी इस 'धर्म'के कारण आकाशको निर्मल और दृढ़, फूलोंको विकसित और परिमलको वितरित बतलाया था :—

Flowers laugh before thee in their beds
And fragrance in the footsteps tread
And the most ancient heavens through
Thee are fresh and strong.

इसी ऋत (dynamic law) से अधिष्ठित प्रकृति सुन्दर और सुष्ठ है। परन्तु प्रकृतिमें केवल ऐसा शालीन सौन्दर्य ही नहीं है, ऐसी मोहक शक्ति ही नहीं है। समय-समयपर प्रकृति अपने कठिन कर्मों द्वारा अपनी शक्तिका प्रदर्शन भी करती रहती है। प्रकृतिके इस कठोर पहलूकी उपेक्षा की ही नहीं जा सकती। फलतः जहाँ कविने ऊषा और रात्रिकी शान्ति-प्रधान सुन्दरताको आँख-भर देखा है, वहाँ वह उन मरुतोंको भी नहीं भूला है, जो—'ये महः रजसः विदुः ईंखयन्ति च पर्वतान् तिरः समुद्रान् अर्णवान्। भरुंगि अग्ने आ गहि।' अर्थात् इस महाकाशके वासी या भ्रमण करनेवाले या जाननेवाले हैं, जो बादलों या पर्वतोंको हिला-डुला देते हैं, महान् जलपूर्ण समुद्रका उपहास-सा करते हैं, उन मरुतोंके साथ हे अग्नि, आओ।

मरुत दोनों लोकों और पर्वतोंको कँपा देते हैं, वृक्षोंको उखाड़ फेंकते हैं और जंगली हाथियोंकी तरह वे काननोंको नष्ट कर देते हैं। वर्षा करते समय वे बादलों द्वारा अन्धकार उत्पन्न कर देते हैं। मरुतों द्वारा बरसाई गई जलधारासे बहुधा झंझा और विद्युत भी सम्बन्धित हैं। मरुतोंके पिता रुद्र हैं, जिनके बहुत-से गुण उनमें जैसेके तैसे उतर आए हैं। परन्तु मरुत और रुद्रमें ऐसी भयानक शक्ति होते हुए भी उच्छृंखलता नहीं है। मरुत केवल उत्पात ही नहीं करते,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरन् लोकोंकी वृद्धि भी करते हैं—'रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे।' पहले कहा जा चुका है कि जहाँ भी प्रकृतिमें दृश्य-गति है, वहीं ऋग्वेदके मन्त्रोंकी उद्भावना हुई है। इस प्रकार अपसूको भी ऋग्वेदमें स्थान मिला है। (अपस्—वह जल, जो चारों ओरसे उमड़ता हुआ समुद्रकी ओर अग्रसर होता है।)

ऋग्वेदका मंडूक-सूक्त हमारी समझमें ठीक-ठीक नहीं आया। उसमें कोई सुन्दरता नहीं है। कदाचित् वह वर्षा-प्राप्तिके लिए एक मन्त्र-मात्र है, इसलिए उसमें हमें काव्य ढूँढ़ना भी नहीं चाहिए। महात्मा तुलसीदासकी तरह ऋग्वेदके कविने भी टर्राते हुए मेंढकोंकी उपमा वेद पढ़ते हुए ब्राह्मणोंसे दी है। छोटे-पीले मेंढक हैं और स्वरमें स्वर मिलाकर वेद-पाठ करते हैं। धन्य हैं ये मेंढक!

वैदिक इन्द्रको कहाँ तक एक प्राकृतिक देवता मानना उचित है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। इन्द्रके साथी मरुत और पर्जन्य हैं। पर्जन्य और मरुत दोनों शक्ति और गतिके प्रतीक हैं। कतिपय स्थानोंपर तो पर्जन्यका स्वरूप इन्द्रसे भी उग्रतर हो चला है :—

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिनाय भुवनं महावधात्।
आनागा ईषति वृष्ण्यावतो
यत्पर्जन्यः स्तनयन हन्ति दुष्कृतः॥

—'वह वृक्षोंको उखाड़ फेंकता है। राक्षसोंको मार डालता है। उसके महास्त्रसे सारी सृष्टि डरती है। वज्रनाद करते हुए जब पर्जन्य दुष्टोंका संहार करते हैं, तो पाप-रहित सज्जन दुष्टोंका हृदय भी भयसे त्रस्त हो जाता है।'

ऐसे पर्जन्यसे भी उग्रतर तेज मरुद्वन्त इन्द्र यद्यपि वर्षा, वज्र और वज्रकी शक्ति हैं, तथापि उनका सुन्दरतर स्वरूप उनका ऐहिक रूप ही है। ऋग्वेदके लगभग एक-चौथाई सूक्तोंके विषय केवल इन्द्र ही हैं। कतिपय विद्वानोंका मत है कि इन्द्र उस कालके आर्योंके राष्ट्रीय देवता थे, जो ठीक भी जँचता है। इन्द्रका स्वरूप और सभी देवताओंसे स्पष्टतर है और उनका मूर्तिकरण भी पूरा है। उनके हाथ, सिर और कानोंका पूरा वर्णन किया गया है, दाढ़ी और जबड़ेको भी नहीं छोड़ा गया है। परन्तु यह सब होते हुए भी इन्द्र-सूक्तोंमें काव्यकी कमी बहुत खटकती है। उन्होंने बहुत-से महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किए हैं, इससे उनकी शक्तिका ही अनुमान मिलता है :—

यः पृथिवीं व्यथमानाम दृंहद्
यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामेस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः॥

इत्यादि। परन्तु इन्द्रके इतने लम्बे-चौड़े वर्णनमें काव्यमय स्थल बहुत ही कम हैं। यह वर्णन एक पूर्ण प्रशस्ति है, जिसमें प्रायः एक ही बातको दुहराया गया है, भिन्न-भिन्न ढंगसे कहा गया है। फलतः उसका रहा-सहा सौन्दर्य जाता रहा है।

ऋग्वेद कई देवताओंकी प्रशस्तियोंका संग्रह है; परन्तु जहाँ तक प्रकृतिके शक्ति-प्रतीकोंको ही देवता मानकर मन्त्र-रचना की गई है, वहींपर ऋग्वेदमें काव्यमय स्थल पाए जाते हैं। विष्णु, बृहस्पति, विश्वकर्मा, विश्वदेवा इत्यादिकी प्रशस्तियाँ तो निरे गद्य-खण्ड हैं। मन्यु, श्रद्धा, अनुमति, सूनृता इत्यादिकी अमूर्त्त भावनाएँ होनेके कारण उनकी प्रशस्तियोंमें हमें कवित्व पानेकी आशा थी; परन्तु यहाँ भी हमें निराश ही होना पड़ा है।

'सोम' और 'सोमपवमान'को भी ऋग्वेदमें स्थान मिला है। सोमके तैयार करनेका वर्णन संक्षिप्त, पर सुन्दर है। कुछ विद्वानोंका मत तो यहाँ तक है कि समुद्र-मन्थनकी मूल उद्भावना सोमको तयार करनेकी विधिसे ही हुई है। सच पूछा जाय, तो ऋग्वेदमें हमें सबसे सुन्दर 'सोम'के ही दो-एक मन्त्र मालूम होते हैं। उनमें सोमपायीकी मानसिक अवस्थाका बड़ा सुन्दर चित्रण है। सोमपायी अपने-आपको भूलकर सभी चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है। कदाचित् इसीलिए 'सोम'को इतना महत्व दिया गया है। सोम पीकर मनुष्य केवल चिन्ता-मुक्त ही नहीं हो जाता, वरन्—

अपाम सोममृतां अभूमा—
गन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
कि नूनमस्यान्कृणावदरातिः
किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥

—'सोम-पान कर चुके हैं, अमर हो चुके हैं, ज्योतिको प्राप्त हो चुके हैं, देवताओंको पा चुके हैं। किसीकी शत्रुता हमारा क्या बिगाड़ सकती है, और हे अमर, मर्त्योंकी ईर्ष्या-जलन भी अब हमारा क्या कर सकती है?'

सोम क्या पी चुके हैं, देवताओंसे भी एक हाथ आगे बढ़ चुके हैं। आप खुद अमर हो चुके हैं और दूसरोंको भी 'अमृत' कहकर पुकारते हैं। दूसरे मन्त्रोंमें सोमको बलवर्द्धक औषधिके रूपमें वर्णित किया गया है, वर्ना जिस 'मधुर पेय'से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिमागकी ऐसी हालत हो जाती है, जैसी कि उपर्युक्त मन्त्रमें चित्रित की गई है, उसे केवल ताड़ी या भंग ही कहा जा सकता है ; क्योंकि अमृत तो मर्त्योंको मुअस्सर है ही नहीं। ऐसे ही सोमके अतिरात्र (कदाचित् रातको देर तक होनेवाले) उत्सव-समारोहमें वे ब्राह्मण बैठा करते थे, जिनकी उपमा ऋग्वेदमें मेंढ़कोंसे दी गई है।

ऋग्वैदिक यमकी कल्पना और सभी देवताओंकी कल्पनासे कहीं अधिक सुन्दर और काव्यमयी है। कहा गया है कि उन्होंने स्वेच्छानुसार ही देह-त्याग किया और जीवनसे मृत्युको अधिक पसन्द किया। इससे पता चलता है कि शायद वे ऐतिहासिक पुरुष थे। ज़ेन्द-अवेस्तमें भी उन्हें एक ऐहिक राज्यका शासक बनाया गया है। गम्भीर ढालोंपर चलकर उन्होंने अनेक मर्त्योंके लिए मार्ग ढूँढ़ निकाला है। उस विन-स्वान्के तेजस्वी पुत्रको तुम हविषसे प्रसन्न करो :—

परेयिवासं प्रवतो महीरनु
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य॥

उन्हीं पुरातन मार्गोंसे होकर जानेकी मृतकोंको सलाह दी गई है :—

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर
यमा नः पूर्वे पितरः परेयुः।

—'हट जाओ, भाग जाओ यहाँसे। इस स्थानको पितरोंने उस (मृतक) के लिए तैयार किया है।' यम इसे रात्रि, जल और दिवासे द्योतित अवसान दे रहे हैं :—

अपेत वीत वि च सर्पतातो
ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रत्।
अहोभिरद्भिर क्तुभिर्व्यक्तं
यत्रो ददात्यवसानमस्मै॥

मृतक यम-लोकमें विभिन्न मार्गोंसे होकर जाते हैं और यमके साथ पितरोंको देख पाते हैं। यूनानी पौराणिक कथाओंमें सरबेरस नामक एक त्रिशिर कुत्तेको नरकके द्वारका रक्षक बतलाया गया है। ऋग्वैदिक मृतकोंको भी यम-लोकके मार्गमें सरमाके पुत्र, चार-चार आँखोंवाले दो कुत्ते दिखाई पड़ते हैं और उनका अतिक्रमण करना पड़ता है। यमसे भी मृतकको इन्हीं दो श्वानोंकी संरक्षतामें देनेको कहा गया है। परन्तु ध्यान रहे, नरक ऐसी भयंकर वस्तुकी कल्पना ऋग्वेदके कविके दिमागसे बाहरकी वस्तु थी। विष्णुके सुन्दर लोककी ऋग्वेदमें कामना की गई है, स्वर्गका भी दो-एक बार नाम आ गया है; परन्तु सात नरकोंका कहीं वर्णन भी नहीं है। कोई देवता मनुष्योंपर इतना जुल्म ढा सकता है, शायद इसकी कल्पना करना कठिन था। इसीलिए नरकके नामपर हम देवोंको ठाटके साथ सोम पान करते ही देख पाते हैं—'यस्मिन वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।' एक सुन्दर पत्तोंवाले वृक्षके नीचे कहीं उबलते तेलसे भरे कड़ाह नहीं हैं, चीत्कार नहीं है, सड़ते मांसकी दुर्गन्ध नहीं है और कहीं भयंकर कारागार नहीं है। वह तो ऋग्वेदके निर्माण-कालके बहुत बादकी हमारे अपर धार्मिक साहित्यकारोंके दिमागकी उपज है। नरककी कल्पनासे तो ऋग्वैदिक कल्पनाका तारतम्य ही उलट-पुलट जाता, उसकी आशावादी आत्माको ठेस पहुँचती। अतएव ऋग्वेदमें नरकका चित्रण नहीं किया गया है।

'जुआरी'पर ऋग्वेदमें अनेक प्रवचन हैं। कुछ स्थानोंपर तो उसे पढ़कर हँसी आ जाती है। उसका व्यंग्य इतना हल्का है कि वह बच्चोंकी-सी बात जान पड़ती है; किन्तु फिर भी वह ऋग्वेदमें अपने ढंगकी एक चीज़ है। बेचारे जुआरीकी हालत बहुत ही बुरी है। उसकी सासको उससे बहुत ही नफ़रत है। पत्नी उसको झाड़ू मारती है, और दुर्भाग्यका मारा वह किसी दयावान त्राताके पैर भी नहीं पकड़ सकता, क्योंकि सब कहते हैं—'उस पुराने घोड़ेकी तरह, जो बेचनेके लिए हो, यह भी किसी कामका नहीं है'—

न्देष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्दितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥

यही नहीं, दूसरे लोग उसकी स्त्रीका उपभोग तक करने लगते हैं—'अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य।' माँ, बाप, भाई-बन्धु सब उसे नाकबूल कर देते हैं। कोई उससे रिश्ता नहीं रखना चाहता। इस तरह वह सिर्फ़ अपने ही लिए नहीं, अपने परिवारके लिए भी वायस होता है। बेचारा जुआरी सोचता है कि सब लोग मुझे छोड़ देंगे। इस डरसे वह प्रतिज्ञा करता है कि अब कभी जुआ खेलने न जायगा; परन्तु अजान मिलते ही उससे चुप नहीं बैठा जाता और वह जुआघरमें घुस ही पड़ता है। बड़ी उम्मीद लेकर वह जाता है; परन्तु तक़दीर उसका साथ नहीं देती। वह हारता ही चला जाता है। ऐसे जुआरीके लिए ऋग्वेदके कविकी सलाह है :—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वित्त रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः क्तिवः तत्र जाया
तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥

—यह पासे-वासे छोड़ दो, खेती करो, अपनी ज़मीन-जायदादको गनीमत समझकर खुश रहो। हे जुआरी, तुम्हारी गौएँ हैं, पत्नी है।'

ऋग्वैदिक काव्यके आदर्श सारल्य और सौष्ठवपूर्ण थे। यद्यपि भाषा-विभेदके कारण ऋग्वैदिक मन्त्रोंके समझनेमें आज कुछ लोगोंको कठिनाई होती है, तथापि वह अत्यन्त सरल और अवगमनीय है। ऋग्वेद एक पद्य-ग्रन्थ है और उसमें गायत्री, जगती, त्रिष्टुप और अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त हुए हैं। काव्यके अन्यत उपकरणोंकी उतने पुराने युगमें हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अलंकार इत्यादिको तो वैदिक साहित्यमें ढूँढ़ना निरी मूर्खता ही होगी। ऋग्वेदका काव्य उसकी आत्मामें है—उक्ति, विचारों और भावनाओंमें है, उसकी भाषा इत्यादिमें नहीं। ऋग्वेद न महाकाव्य है, न इतिहास-पुराण, न खण्ड-काव्य, न गीति-काव्य और न कोरा काव्य ही है। वह तो केवल एक धर्म-ग्रन्थ है, और हमें देखना केवल यह है कि हमारे आजसे तीन-साढ़े-तीन हज़ार वर्ष पहलेके पूर्वज उन धार्मिक भावनाओंको कहाँ तक काव्यमय बना सके थे।

मीनाका विवाह

श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा

बरसातका दिन था। पानी बरसकर रुक गया था; पर काले मेघ फिर उमड़ आए थे। उदयने कुछ देर तक तो प्रतीक्षा की, फिर छाता और बरसाती लेकर घूमने चल पड़ा। प्रताप बाबूके घरके सामने पहुँचकर उसने पुकारा—'प्रताप बाबू हैं?'

भीतरसे एक बारीक़ आवाज़ आई—'हैं।' उदय खड़ा रहा। मीना झपटी हुई द्वारपर आई। उसके सिरसे आँचल का पल्ला खिसक गया था। बाल कुछ बिखर गए थे। उदयको देखते ही उसने जल्दीसे सिरपर पल्ला लिया, कपड़े सँभाले और धीरेसे बोली—'नमस्ते, उदय बाबू! आइए, बैठिए।'

उदयने बाहर खड़े-खड़े ही कहा—'नमस्ते। बाबूजीसे कहो, जल्दी घूमने चलें; देर हो रही है।'

'बाबूजी तो अभी आफ़िससे नहीं...'

'आफ़िससे नहीं आए? पर अभी मैंने पुकारा, तब तो उन्होंने कहा कि हैं।'

'पानी बरसनेकी वजहसे शायद रुक गए होंगे। पर अभी आते ही होंगे। आप बैठिए न। मैं आपके लिए पान लाती हूँ।'

उदयने जवाब दिया—'नहीं', ज़रा टहल आऊँ; फिर देर होगी।' और घूमने चल पड़ा।

मीना एकटक उसकी ओर देखती न-जाने कितनी देर द्वारपर खड़ी रही।

गोरी, पतली, चंचल मीना उस समय केवल ११ वर्षकी थी; पर उसकी चंचलतामें अर्द्ध-लुप्त एक विचित्र गम्भीरता-सी थी। प्रताप बाबू आफ़िससे आते, तो मीनाको बुलाते—'मीना तम्बाकू लाओ।' बाहरसे कोई आता, तो मीना बुलाई जाती—'मीना बेटी, इनके लिए नाश्ता और पान तो लाओ।' प्रताप बाबूके लिए मानो मीनाके सिवा घरमें और कोई था ही नहीं। मीना भी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक दौड़-दौड़कर सारा काम करती। औरोंके हाथसे मँगाई हुई चीज़ें छीन-छीनकर बाबूजीके पास लाती। मीना भी शायद यही समझती थी कि अपने बाबूजीके लिए वह सब-कुछ है। अगर वह उन्हें खाना न देगी, तो वे भूखे रह जायँगे। वह बराबर उनके लिए दौड़ती रहती। प्रताप बाबूके घर आनेका मतलब था गोया मीनाके घर आना। इस तरह निरन्तर बेचारीको दौड़ते-थकते देख उदयको कभी-कभी तरस भी आता था। एक दिन उसने प्रताप बाबूसे हँसते-हँसते पूछा—'मीना न होती, तो आप क्या करते?' प्रताप बाबू ज़रा मुस्कराए और बोले—'पता नहीं, क्या हालत होती!'

मीना उदयके घर अक्सर जाया करती थी। पड़ोसीके अलावा वह उदय और उसकी बहन सुमित्राकी मित्र बन गई थी। सुमित्रा भी उसे बड़ा मानती थी। सुमित्राके साथ बैठकर कभी वह सीने-बुननेका काम करती, कभी तरकारी बनाती, कभी सबके लिए पान लगाती और कभी अपनी सखियोंके साथ दिन-भर नाचती-खेलती रहती। एक दिन उदय आफ़िससे लौटते समय बाज़ारसे चाकलेट लेता आया। मीनाको देखकर बोला—'तुम कैसे जान गईं मीना कि मैं चाकलेट ला रहा हूँ?'

'मुझे तो नहीं मालूम। लाए होंगे, मुझे चाकलेटसे क्या वास्ता?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो तुम यहाँ पहलेसे ही कैसे पहुँच गईं ?'

'मैं तो दीदीके पास आई थी।'

'यह सब बहाना रहने दो। अच्छा, कुछ काम कर दो, तब चाकलेट दूँगा। ज़रा मेरे चप्पल तो ले आओ।'

'मैं चप्पल-वप्पल नहीं लाती। आपके चाकलेटके लिए मेरे मुँहसे लार नहीं टपक रही है।'

'अच्छा नहीं, मीना बड़ी अच्छी लड़की है। पेटू नहीं है, मिठाई नहीं खाती, सिर्फ़ ढाई सेरकी एक मोटी रोटी खाती है। बस ?'

कपड़े बदल, हाथ-मुँह धो, उदय नाश्ता करने बैठा। तरकारी मुँहमें डालते ही बोला—'ओह, कितना नमक है! किसने बनाई है आज यह ? तरकारीमें नमक डाला है या नमकमें तरकारी बनाई है ?'

सुमित्राने कहा—'तरकारी तो मीनाने बनाई है; पर इतना नमक तो उसमें नहीं है। तुम तो यों ही बका करते हो। बेचारी घण्टों बैठकर कितने प्यारसे साग-सब्ज़ी बनाती है; पर तुम्हें जैसे उसका बनाया तो कुछ पसन्द ही नहीं आता। मुझसे तो वह अच्छी ही तरकारी बनाती है।'

उदय मुस्कराकर चुप हो रहा। थोड़ी देर बाद उसने अचार माँगा। मीना जब अचार उसकी थालीमें रखने लगी, तो उदयने उसका हाथ पकड़ लिया और हँसकर धीरेसे बोला—'अब ?' और ज्यों ही मीना अपना हाथ छुड़ानेके लिए झुकी, तो उसकी पीठपर धम्म-से एक घूँसा जमा दिया। मीनाका मुँह लाल हो गया। उसने अपना हाथ छुड़ानेके लिए बड़ा ज़ोर लगाया, छटपाई, कलाई मुरकनेका बहाना किया। हाथ छूटते ही वह ज़ोरसे भागी और दूर खड़ी हो हँसकर कहने लगी—'नमक ज़्यादा है, तो तरकारी छोड़ क्यों नहीं देते ? सारी कटोरी तो चाट गए!'

उदयने पानीका एक चुल्लू भरा और मीनाकी ओर फेंकनेका अभिनय किया। मीना मुँह बिराकर वहाँसे नौ-दो ग्यारह हो गई। मीना और उदयका यह झगड़ा नैमित्तिक न होकर नैत्यिक हो गया था, जिसमें दर्शकके रूपमें कभी-कभी सुमित्रा भी शामिल हो जाया करती थी।

- २ -

मीनाका पन्द्रहवाँ साल बीत रहा था। प्रताप बाबू उसके ब्याहके लिए चारों ओर दौड़-धूप कर रहे थे। वे ठहरे आराम-तलब और बेफ़िक्र आदमी; पर यह फ़िक्र तो जैसे अपने-आप उनपर आ पड़ी थी। वे झुँझलाते, बकते, परेशान होते और कहते—'यह सब काम मुझसे नहीं होगा।' पर और कोई न था। छुट्टियोंमें जहाँ-तहाँ जाते, लड़कोंका पता लगाते, लोगोंसे मिलते। कभी कहीं योग्य लड़का मिलता, तो दहेज और टीकेके रूपमें उसके दाम सुनकर ही ठिठक जाते! फिर लड़केकी खोजका क्षेत्र भी संकीर्ण ही था—जाति, कुल आदिके भीतर ही। इनसे बाहर कितना भी अच्छा लड़का क्यों न हो, अछूतवत् है। प्रताप बाबूको ये वाहियात रुकावटें पसन्द न थीं; पर बेचारे करते क्या ? ब्याहका रोज़गार और बाज़ार देखकर उन्हें क्रोध आता, क्षोभ और ग्लानि होती। जिस तरह गाय-बैलका मोल-भाव होता है, उसी तरह ब्याहके योग्य लड़कोंके पिता और चाचा सारी लाज-शर्म छोड़ लड़कोंका भी सौदा करते हैं। इतनेपर भी अगर कहीं प्रताप बाबू दो-एक लड़कोंको देखकर तिलककी बात पक्की कर आते, तो उनकी स्त्री अड़ंगे खड़े कर देती—'इस लड़केकी माँ नहीं है। उस लड़केकी मौसीके बारेमें कुछ शिकायत सुनी जाती है। वह लड़का अच्छे खानदानका नहीं है। यह मुआ बिलकुल ही अकेला है!' आदि।

शिवरात्रिका दिन था। उदयके घरके पास शिवजीका मन्दिर था, जहाँ शिवरात्रिका मेला लगा करता था। इस मौक़ेपर धार्मिक उत्सव और नाटक इत्यादि भी होते थे। जयन्ती मीनाकी समवयस्क सखी थी। जयन्तीकी दादी शिवरात्रिका उत्सव देखने जयन्तीको ले सुबहसे ही उदयके घर आ गई थी। मीना तो वहाँ उनसे भी पहले पहुँच गई थी। मीना और जयन्ती आज बड़ी प्रसन्न थीं। उन्हें आज जैसे खुली छुट्टी मिल गई थी। वे दोनों कभी सारे घरमें दौड़ लगातीं, कभी हँसी-ठट्ठा करतीं और कभी आपसमें छीना-झपटी। उदयको आज भी फ़ुरसत नहीं थी। वह अपने पढ़ने-लिखनेके कमरेमें बैठा आफ़िसका काम कर रहा था। मीना और जयन्ती उस कमरेमें जातीं और आलमारीसे पढ़नेको किताबें निकाल लातीं। थोड़ी देरमें ही उन किताबोंको वापस रख दूसरी किताबें ले आतीं। कभी उदयसे पूछतीं—'कौन किताब अच्छी है, उदय बाबू ?' मीना ज़रा ज़्यादा ढीठ थी। एक बार उदयके नज़दीक आ उसके हाथसे अकस्मात क़लम खींच ली और बोली—'पहले हमें किताबोंके नाम बताइए, नहीं तो आपको आज काम नहीं करने दूँगी।'

'देखो, मान जाओ, मीना! तंग करोगी, तो सज़ा मिलेगी।'

'अच्छा, देखा जायगा; पर हमें बताइए, कौन-सी किताबें पढ़ें ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदय कुछ नहीं बोला और चुपचाप काम करने लगा। मीना और जयन्ती और नज़दीक आ गईं। मीना पास पड़ी हुई दूसरी कुर्सीपर बैठ गई और उदयकी तरह ही काम करनेकी नक़ल करने लगी। मामला शतरंजके शहकी तरह हो गया। तय हुआ कि सभी बाहर बरामदेमें चलकर बैठें। उदय आरामकुर्सीपर बैठा और मीना तथा जयन्ती बेतकी कुर्सियोंपर। मीनाके मुँहसे निकला—'यहाँ बैठना कैसा अच्छा लगता है!' जयन्तीने हँसते हुए कहा—'शादी होनेपर पतिके साथ तुम इसी तरह बैठेगी, मीना?' मीना पहले तो कुछ लजाई; पर फिर खिलखिलकर बोली—'शादी, शादी, शादी! तुझे हर वक़्त मेरी शादीकी ही चिन्ता क्यों रहती है, री?' जयन्ती बाल-सुलभ हँसी खिलाकर चुप हो रही; पर जब उदयकी आँखें मीनाकी आँखोंसे मिलीं, तो सहसा उसने उनमें एक सलज्ज आनन्दका उद्रेक पाया।

शामको खाना-पीना समाप्तकर सब स्त्रियाँ उत्सव देखने चली गईं। उदय पहले ही घूमने निकल गया था। उसके लिए खाना ढँककर रख दिया गया था। कुछ देर बाद जब उदय लौटा, तो उसने नौकरसे चाबी माँग लानेको कहा। इतनेमें ही मीना और जयन्ती अकस्मात उधर निकल आईं। जयन्तीकी दादी आरतीमें चढ़ानेके लिए पैसे ले जाना भूल गई थीं, इसीलिए इन्हें भेजा था। उदयने कहा—'मुझे भूख लगी है। खानेको कुछ बचा है या तुम लोग सब सफ़ा कर गईं?'

मीना बोली—'आपका खाना ढँककर रख दिया गया है; पर अलमारीकी चाबी तो दीदीके पास है। जा, जयन्ती, ज़रा दौड़कर चाबी तो ले आ। तू बड़ी प्यारी सखी है।'

रात अभी थोड़ी ही बीती थी। दिगन्तमें हल्का अँधेरा छाया हुआ था। प्रकृति शान्त-स्तब्ध थी। सामने थोड़ी ही दूरीपर उत्सव हो रहा था। वहाँ जैसे आमोद-प्रमोदकी लहरें उठ रही थीं। बच्चे नाटकके पात्रोंके आडम्बर देखकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। बूढ़ी स्त्रियाँ भाव-भक्तिमें खोई-सी थीं। युवतियाँ प्रेमियोंकी आँखोंमें अपने शृंगार तौल रही थीं। जहाँ मीना और उदय खड़े थे, गैसकी धीमी रोशनी आ रही थी। मीना उदयकी दाहिनी ओर थी। उदयने अपना दाहना हाथ उसके कन्धेपर रख बाएँ हाथसे उत्सवकी ओर दिखाकर कहा—'देखो मीना, मंचके बीचमें वे नायक और नायिका खड़े हैं। कैसे अजीब हैं उनके साज-शृंगार! शिवजी भी क्या बेढंगे होंगे!'

मीना मूर्त्तिकी तरह अचल-अवाक् खड़ी रही। न उदयका हाथ कन्धेपर से हटाया, न हिली-डुली और न कुछ बोली। दूसरे ही क्षण मीनाका सिर उदयके वक्षस्थलपर आ टिका। धीरे-धीरे उसकी आँखें उठीं और उदयकी आँखोंसे मिलीं। मीनाकी आँखें वर्षा-ऋतुकी पुष्करिणीकी तरह लबालब भरी थीं। उत्सवकी रोशनी इनमें आज एक अजीब चमक पैदा कर रही थी। कुछ ही क्षण वे उदयके नेत्रोंपर टिकीं और फिर धीरे-धीरे नीचे झुक गईं। उनमें कितनी तृष्णा थी, कितना तिरस्कार था, कितनी निराशा और कितनी आशा! उदय मीनाकी इन रहस्य-भरी आँखोंको देख अवाक्-शिथिल खड़ा रहा। उदयके मस्तिष्कमें जैसे एक साथ हज़ारों भावनाएँ उठने लगीं, हज़ारों प्रश्न एक साथ उससे उत्तर माँगने लगे।

इसी समय जयन्ती चाबी लेकर आती दिखाई दी और दोनों सहमकर अलग खड़े हो गए।

- ३ -

प्रताप बाबूके बहुत दौड़-धूप करनेके बाद बलवन्तपुरमें मीनाका विवाह ठीक हो गया। लड़का एक दफ़्तरमें काम करता था। घरमें खाने-पहननेको काफ़ी था। धन-जनसे घर भरा-पूरा था। लड़केके पिताने व्यापार-व्यवसायमें अच्छा पैसा कमाया था। लेन-देन ठीक हो गया और प्रताप बाबूको तिलकका अधिकांश रुपया पेशगी ही दे देना पड़ा। विवाहका दिन भी २६ जून निश्चित हो गया।

मीनाकी बड़ी बहन सुभद्रा अपने पति और बच्चोंके साथ माँके घर आई हुई थी। एक दिन तय हुआ कि नदीके बीच चट्टानोंपर बैठकर सब फोटो खिंचवायँ। फोटो खींचनेका भार उदयपर डाला गया। सुभद्रा, उसके पति, मीना और उदय सिन्दूरा नदीके तटपर सन्ध्यासे कुछ पहले ही पहुँच गए। नदीमें बड़े-बड़े चट्टान थे। उसका पाट तो काफ़ी बड़ा चौड़ा था; पर ग्रीष्मके कारण धारा संकीर्ण हो गई थी। एक चट्टानसे दूसरे चट्टानपर कूदते, पानीके उछालसे कपड़े बचाते, यह लोग फोटोके लिए अच्छी जगह ढूँढ़ रहे थे। मीनाने एक अधजली लकड़ीका टुकड़ा देखा। उसे उठा लिया और पूछा—'यह यहाँ कहाँसे आया?' चारों ओर देखनेसे थोड़ी दूरपर मुर्दा जलानेके चिह्न मिले। सबने चिल्लाकर मीनासे कहा कि लकड़ी झट फेंक दे। मीना उस लकड़ीको कुछ देर तक अन्यमनस्क भावसे उलटती-पलटती रही, फिर फेंककर बोली—'इसमें डरकी क्या बात है? मैं भी तो एक दिन मरूँगी ही, तब मुझे भी यहीं लाकर जला देना।' सारी मण्डली खीझ उठी। सुभद्राने कहा—'ऐसी अशुभ बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिए।'

फोटोके लिए जगह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते काफ़ी देर हो गई। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोशनी कम हो गई थी, अतः फोटो खींचना दूसरे अवसरके लिए स्थगित करना पड़ा। यहाँसे सब सिनेमा देखने गए। सिनेमामें आज बड़ी भीड़ थी। सुभद्राके पति बच्चेको सँभालनेके लिए स्त्रीकी बग़लमें बैठे, फिर मीना बैठी और अन्तमें उदय। जहाँ कुछ मीनाकी समझमें न आय, उसे समझानेका भार उदयपर था। पर वह स्वयं जैसे आज कुछ समझ-बूझ नहीं रहा था। एक अजीब अन्यमनस्कता और उदासी उसके मनपर छा रही थी। कुछ क्षण बाद उदयने एक कोमल गरम हाथका स्पर्श अनुभव किया। मीनाकी नाज़ुक अंगुलियोंको अपने हाथमें ले फूलकी पंखुड़ियोंकी तरह सुलझाते हुए धीरेसे उसने कहा—'मीना, शादी हो जानेपर तुम मुझे भूल तो न जाओगी? क्या कभी याद करोगी?' मीनाने रुँधे हुए गलेसे कहा—'क्यों ऐसी बातें पूछते हो? क्या इस जन्ममें तुम्हें भूलना सम्भव है?' उत्तरमें उदयने मीनाके हाथको अपने दोनों हाथोंमें लेकर दबा दिया।

तीसरे दिन सुबहसे ही सुना गया कि मीना शैया-ग्रस्त हो गई है। उसे ज्वर चढ़ गया। दवा हो रही थी। सखियाँ हँसी करतीं—'तुम्हें कोई बीमारी नहीं है। शादीकी ज़्यादा खुशीमें, या इस डरसे कि पतिसे भेंट होगी तो न-जाने क्या होगा, तुम्हें बुखार चढ़ गया है।' मीना एक फीकी हँसी हँसकर गुम-सुम हो जाती। उदय सुबह-शाम आता, उसके पास काफ़ी देर बैठता, उसकी सेवा-सुश्रूषा करता। वह जितनी देर बैठता, मीना प्रसन्न रहती, अपना सारा कष्ट भूल जाती। पर उसका ज्वर घटनेके बदले और बढ़ता गया। अब घरमें चिन्ता होने लगी। डाक्टर कुछ ठीक-ठीक निदान नहीं कर पा रहे थे। कभी मोतीझरा बतलाते थे, तो कभी गर्द-तोड़, कभी कुछ और। प्रताप बाबू बड़े उद्विग्न और चिन्तित रहने लगे। वे कभी बीमारीपर झल्लाते, तो कभी मीनापर।

उदय ज्वरके पहले दिनसे ही जितना समय पाता, मीनाके पास ही बिताता। रोगीकी सेवा, दवा, पथ्य इत्यादिकी सारी ज़िम्मेदारियाँ माँने अकथित शब्दोंमें उदयको सौंप दी थीं। उदय मीनाको ढाँढ़स बँधाता, उसे प्रसन्न रखता। कहता—'कुछ डरकी बात नहीं है मीना, तुम जल्द ही अच्छी हो जाओगी। अब तो तुम्हारे ब्याहके दिन भी नज़दीक आ रहे हैं।' मीना चाहनेपर भी जैसे कुछ कह न पाती और उसकी आँखोंसे आँसूकी दो बड़ी-बड़ी बूँदें उसके गालोंपर ढुलक आतीं।

मीनाकी बीमारीको लेकर उदय रात-दिन व्यस्त-बेचैन रहता। न खानेकी फिक्र, न सोनेका ठीक। रात-भर मीनाको पंखा झलता, दवा देता और पथ्यका प्रबन्ध करता। मीनाकी माँ और सुभद्रा बराबर कहतीं—'आप कुछ देर आराम कर लीजिए, तब तक हम बैठती हैं। इस तरह जागनेसे तो आप भी बीमार पड़ जाइएगा।'

एक दिन माँ और दीदीके साथ मीनाने भी सानुनय आग्रह किया—'आप कुछ देर आराम कर लें। मेरे लिए आखिर आप क्यों इतनी तकलीफ़ सह रहे हैं? आप मेरे लिए जो-कुछ कर रहे हैं, मैं आजीवन भूल न सकूँगी? इस उपकारका बदला मैं कैसे दे सकूँगी? मेरे पास है ही क्या? मेरा तो हृदय भी अपना नहीं है। उसे तो कभीका दे चुकी हूँ। दी हुई चीज़को अब फिर क्या दूँ? जिस दिनसे.....' इतना कहते-कहते मीनाका गला रुँध गया।

उदय निश्चल-विकल बैठा सुनता रहा। उसे रह-रहकर अतीतकी सारी बातें याद आ रही थीं। जो वह पहले ठीक-ठीक न समझ सका था, अब समझमें आया। उसकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें एक-एक कर गिर रही थीं। वह केवल इतना ही कह सका—'मुझे क्या मालूम था मीना कि तुम मुझे...'

- ४ -

कुछ दिन बाद मीनाका ज्वर उतर गया। स्वजनोंकी चिन्ता दूर हुई। उदयने मानो दूसरा जीवन पाया। उसकी अनवरत सेवाने मीनाको जैसे एक बहुत बड़े संकटसे उबारा। इस समय संसारमें उदयसे अधिक सुखी शायद कोई न था।

उस दिन प्रातःकाल जब उदय मीनाको देखने गया, तो उसे पथ्य दिया जा चुका था। धुले हुए पुष्पकी तरह वह फिर खिल उठी थी। यही नहीं, ज्वरकी आँचसे तपकर जैसे उसका सौन्दर्य और भी निखर उठा था। उदयको देखकर मीना मुस्कराई। इस मुस्कराहटमें प्रेम और कृतज्ञतासे परिपूर्ण हार्दिक स्वागत था और था सर्वस्व न्यौछावर करनेका भाव। उदय भी मुस्कराया। उसकी मुस्कराहटमें थी सफलता, प्रसन्नता और तन-मनसे की गई सेवा द्वारा प्राप्त विजयकी भावना।

धीरे-धीरे मीना स्वस्थ होने लगी। पर पथ्यके पाँच-छः दिन बाद अचानक एक दिन उसके दाहने हाथमें कुहनीके ऊपर पीड़ा आरम्भ हुई। ऊपरसे कुछ पता न चलता था; पर दर्द बढ़ता गया। फिर ज्वर आने लगा। वैद्यने बाँधनेकी दवा दी; पर कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर डाक्टरको बुलाया गया। उसने कहा कि भीतर हड्डीपर फोड़ा निकला है, जो पक गया है। उसी फोड़ेकी वजहसे ज्वर है। रोगीको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपरेशनके लिए अस्पताल ले जाना पड़ेगा। इसमें देरी करना ठीक न होगा।

आपरेशनसे सभीको डर लगता है। मीनाकी माँ इसके नितान्त विरुद्ध थीं। रातके नौ बजे बग़लवाले कमरेमें कई लोग जमा थे। सलाह हो रही थी कि क्या किया जाय? मीनाके कमरेमें केवल उदय था। मीनाके सिरहाने कुर्सीपर बैठा वह घोर चिन्ता, उदासी और निराशाकी मौजोंमें डूब-उतरा रहा था। मीनाने अपने बाएँ हाथसे उदयका सिर अपनी छातीकी ओर झुका लिया और बोली—'आप अधीर न हों; इस जन्ममें नहीं, तो उस जन्ममें अवश्य हम दोनों मिलेंगे।'

उदय चुप रहा। कुछ क्षण बाद मीना फिर बोली—एक बात कहूँ?'

'कहो।'

'कई दिनोंसे सोच रही थी, कहूँ या न कहूँ। किसीसे कहिएगा नहीं।'

'नहीं कहूँगा।'

धीमे स्वरमें मीना कहने लगी—'इस फोड़ेके निकलनेसे पहले बाबूजी एक दिन आफ़िससे लौटे, तो मेरा ज्वर कम न होते देख बड़े नाराज़ हुए। झल्लाकर कहने लगे—इस लड़कीको बीमारी-ईमारी कुछ नहीं है। असली बात यह है कि इसे यह शादी पसन्द ही नहीं है। मैं जानता हूँ, इसका मन यहाँ है। मैंने दौड़-धूप करनेमें कुछ उठा नहीं रखा। कर्ज़ औक़ातसे बाहर ही कर रहा हूँ। जहाँ तक सम्भव था, सुयोग्य लड़का ही ठीक किया है। फिर माँकी ओर घूम-कर कहने लगे—समाजका बन्धन तोड़नेको तैयार हो, तो अब भी बोलो। तुम्हीं तो कहती हो कि अपने हाथ अपने मुँह कालिख कैसे लगाऊँ? माँसे न रहा गया। वे बाबूजीको डाँटने लगीं—बेचारी लड़की तकलीफ़से मर रही है और तुम पागलोंकी तरह आयँ-बाँय-शाँय बक रहे हो। बाबूजी शान्त तो हो गए; पर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। फिर रोनी-सी सूरत बनाए वे मेरे पास आए और प्यारसे कहने लगे—बेटी, मेरी बातोंका बुरा न मानना; मैं आजकल दुःख और चिन्तासे पागल हो रहा हूँ।'

बग़लवाले कमरेमें वार्तालाप चल रहा था। निराशाके शब्द हुक्केके गम्भीर गुड़-गुड़ शब्दके साथ चोरकी तरह बन्द दरवाज़ेको पारकर सहमे हुए, दबे-दबे, आ रहे थे। कभी-कभी प्रोत्साहनके शब्द भी जैसे चोरका पीछा करते वेगसे चले आते थे—पर बहुत थोड़े और धीमे। कमरेमें निस्तब्धता थी। केवल दो व्यक्तियोंकी साँसकी आवाज़ सुनी जा सकती थी। उदय अभी तक एक शब्द भी न बोला था। मीनाकी बाँहने उसके सिरको जिस अवस्थामें रख दिया था, वह अब तक उसी अवस्थामें था। मीनाने उसकी आँखोंकी ओर देखा और बोली—'आप बुरा न मानिएगा। बाबूजी केवल दुःखमें ये बातें कह रहे थे। माँ और वे दोनों पीठ-पीछे आपकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।'

आपरेशन हुआ। मीना काटेज-वार्डमें रखी गई। जहाँ तक सम्भव था, यत्न किया गया। रोगीके बदनमें रक्तकी कमी हो जानेपर उदयने अपना खून दिया। पर कोई उपाय कारगर नहीं हुआ। आखिर अपने ब्याहके दिन, ब्याहको ही लग्नमें, मीना इस संसारसे सदाके लिए चल बसी! ठीक इसी समय अस्पतालके बाहर सदर सड़कपर बड़ी सज-धज और रोशनी-बाजेके साथ एक बारात काटेज-वार्डके पाससे गुज़र रही थी।

कौन सुनेगा कविता तेरी ?

श्री शिवसिंह 'सरोज'

कौन सुनेगा कविता तेरी?
कौन सुनेगा रे अभिमानी,
तेरे सदय - हृदयकी वाणी?
किसके श्रुति-पुट सधे हुए हैं,
किसके पलकों में है पानी?
सब बहरे बन चुके श्रवणकर क्षण-भर के वैभव की भेरी।
किसने सुनी गहन - गम्भीरी,
मुखरित 'मीरा' की मंजीरी?

कब मानवता के खँडहर पर,
'कबिरा'की बज सकी नफ़ीरी?
'सूर' सूर बन गए स्वयं ही पाकर जग की राह अँधेरी।
जहाँ प्रगति से प्रीति नहीं है,
जहाँ बुद्धिकी जीत नहीं है;
इस भौतिक युग में कोई भी,
भावुक मन का मीत नहीं है।
बँधे हुए मन - प्राण, चेतना है सोने - चाँदीकी चेरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरद्वार-सम्मेलनके सभापतिका भाषण

प्रो० विनयमोहन शर्मा

वर्षों बाद हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका सभापतित्व इस वर्ष एक हिन्दी-साहित्य-सेवीको प्राप्त हुआ। लोगोंकी यह शिकायत रही है कि सम्मेलनकी गादीपर शुद्ध साहित्य-सेवीके न बैठनेसे सभापतिका भाषण केवल हिन्दी-प्रचारका ही स्वर निकाल पाता है। उसमें साहित्यकी विभिन्न धाराओंकी उचित आलोचना और साहित्यिक सन्देश नहीं सुनाई देता। उनकी इस शिकायतमें तथ्य रहा है। अतः इस वर्ष यह आशा की जाती थी—विशेषकर उस दशामें, जब सभापतिका चुनाव महीनों पूर्व घोषित किया जा चुका था—कि सभापतिका भाषण काफ़ी श्रम और छान-बीनके साथ तैयार किया जा सकेगा। पर जब हमने उसे ध्यानसे पढ़ा, तो हमें निराशा ही हुई। उसमें भाषाके पिटे हुए प्रश्नोंको ही उठाया गया है; साहित्यकी विभिन्न धाराओंकी समीक्षा तो क्या, उन्हें झाँकनेका भी प्रयत्न नहीं किया गया। हाँ, हिन्दी-साहित्यकारोंकी नामावलीको बटोरने और उसपर कई बार काव्यमय भाषामें असावधानीपूर्ण सम्मति देनेका प्रयास (आवश्यकतासे अधिक) किया गया है। 'गुण-ग्राहकता'का उत्साह इतना अधिक प्रदर्शित हुआ है कि जहाँ मामूलीसे मामूली—प्रान्तीय नहीं, स्थानीय महत्वके—नामों तकको सुन्दर विशेषणोंसे उच्चरित किया गया है, वहाँ अखिल भारतीय कीर्त्ति-लब्ध लेखकोंका उल्लेख ही नहीं हो पाया है।

मध्य-प्रान्तीय साहित्यकारोंमें प्रसिद्ध समीक्षक श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पुराने पत्रकार और कवि पं० मादीन शुक्ल, पं० रामनारायण मिश्र, सेक्सरिया-पारितोषिक प्राप्त करनेवाली प्रसिद्ध गद्यकाव्य-लेखिका कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या बी०ए०, सुन्दर कवियत्री कुमारी रूपकुमारी वाजपेयी एम०ए०, श्रीमती तेजरानी पाठक बी० ए० ('हृदयका काँटा' उपन्यास तथा कई कहानियोंकी लेखिका), 'ज्योतिर्मय', 'हंस' आदिकी हिन्दी-सेवाएँ काफ़ी पुरानी हो चुकी हैं। युक्त-प्रान्तीय लेखकोंमें 'अर्थ-शास्त्र'की साधनामें जीवन खपानेवाले श्री भगवानदास केलाका स्मृति-पथसे उड़ जाना चिन्तनीय है। हर प्रान्तमें ऐसे अनेक नाम हैं, जो लिए जा सकते थे। इस स्थलपर उन सबका उल्लेख सम्भव नहीं है। अखिल भारतीय साहित्य-सम्मेलनके मंचसे प्रान्तवार साहित्य-सेवियोंकी सूची पुकारनेका श्रम न उठाया जाता, तो अच्छा होता; क्योंकि यह कार्य तो प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलनके सभापति प्रतिवर्ष करते ही रहते हैं। वहाँ तो ऐसे ही साहित्य-स्रष्टाओंकी चर्चा की जानी चाहिए थी, जिन्होंने साहित्यकी प्रगति-विशेषमें विशेषरूपसे सहायता पहुँचाई है और जिनकी कीर्त्ति उनकी प्रतिभा और बुद्धिके बलपर प्रान्तीय सीमाको लाँघ चुकी है।

सभापतिजीने अपने भाषणमें एक जगह कहा है—'मुझे एक चीज़ खटकती रहती है, वह हमारे आलोचना-ग्रन्थोंका मूल्य-मापन। दस-पन्द्रह वर्षके बीचके कलाकारोंकी ज़मीन लेकर हम चर्चा करने बैठ जाते हैं। कुछको गण्य सिद्ध करते हैं, कुछको नगण्य। अध्ययन और पहुँचका अभाव और सस्ते विशेषणोंका उपहार हमारे ग्रन्थोंकी विशेषता होती है।... अन्य साहित्योंमें यह बात नहीं। उनका मूल्य-मापन सौ वर्षोंसे छोटा नहीं होता और साहित्यकी विभिन्न धाराओंकी चर्चामें शताब्दियोंके लेखे-जोखेके साथ वर्त्तमान युगके कलाकारोंको प्रस्तुत किया जाता है। परिणामतः योग्य कलाकारोंकी न हत्या होती है, न अकाल मृत्यु।' हम जानना चाहते हैं कि सभापतिजीने अपने भाषणमें 'मूल्य-मापन'का अपना यह दृष्टिकोण क्यों भुला दिया? भाषणके प्रारम्भमें जहाँ मृतात्माओंके प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गई हैं, वहाँ जब उनके वियोगकी एक वर्षकी सीमाका बन्धन नहीं है, तब हिन्दी-आलोचना-क्षेत्रको आलोकित करनेवाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और पं० अवध उपाध्यायको 'अकाल मृत्यु' क्यों मरने दिया गया? यदि उन्होंने उनकी कृतियोंको पढ़ा होता, तो उन्हें यह शिकायत न रहती कि हिन्दीके समीक्षक अधकचरे और अपनी 'नाप-जोख'में सतहपर ही तैरकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। आज भी सर्वश्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, नन्ददुलारे वाजपेयी आदिकी 'नाप-जोख' संकुचित नहीं है। जितने 'सस्ते विशेषणोंका उपहार' हमें सभापति महोदयके भाषणमें दिखलाई दिया, उतना शायद ही किसी वर्त्तमान समीक्षा-ग्रन्थमें पाया गया हो!

भाषणमें जहाँ साहित्यकी चर्चा की गई है, वह अस्पष्ट और भाषाकी 'रंगीनियाँ' लिए हुए अधिक है। पृष्ठ ३ पर कहा गया है—'अब साहित्यिक कह रहा है कि उसे नाचने-कूदने और जीवनकी रंगीनियाँ दिखानेके लिए छोड़ दिया जाय।' मानो वह विचार-दानके तपोमय जीवनसे ऊब गया है और उसे विश्राम चाहिए। 'विश्राम चाहिए' इसलिए कि उसकी स्पर्धामें तीन शक्तियाँ खड़ी हुई हैं। उन शक्तियोंके नाम ये गिनाए गए हैं—(१) इंजीनियर, जो मशीनों आदिकी रचनाका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

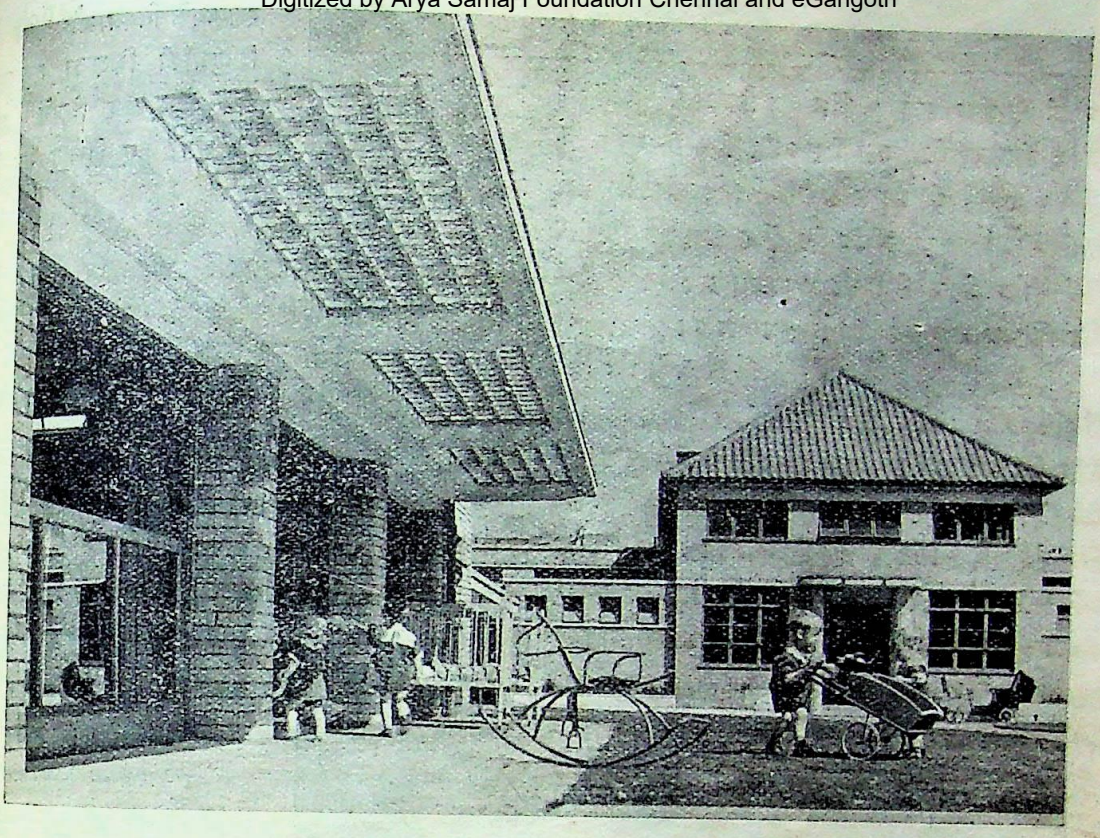

प्रचुर हवा और रोशनीसे युक्त ब्रिटेनकी एक शिशु-शाला और विद्यालय।

बम-काण्डोंके बाद शिशुओंको भवनोंके बजाय खुले स्थानोंमें ही शिक्षा दी जाने लगी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

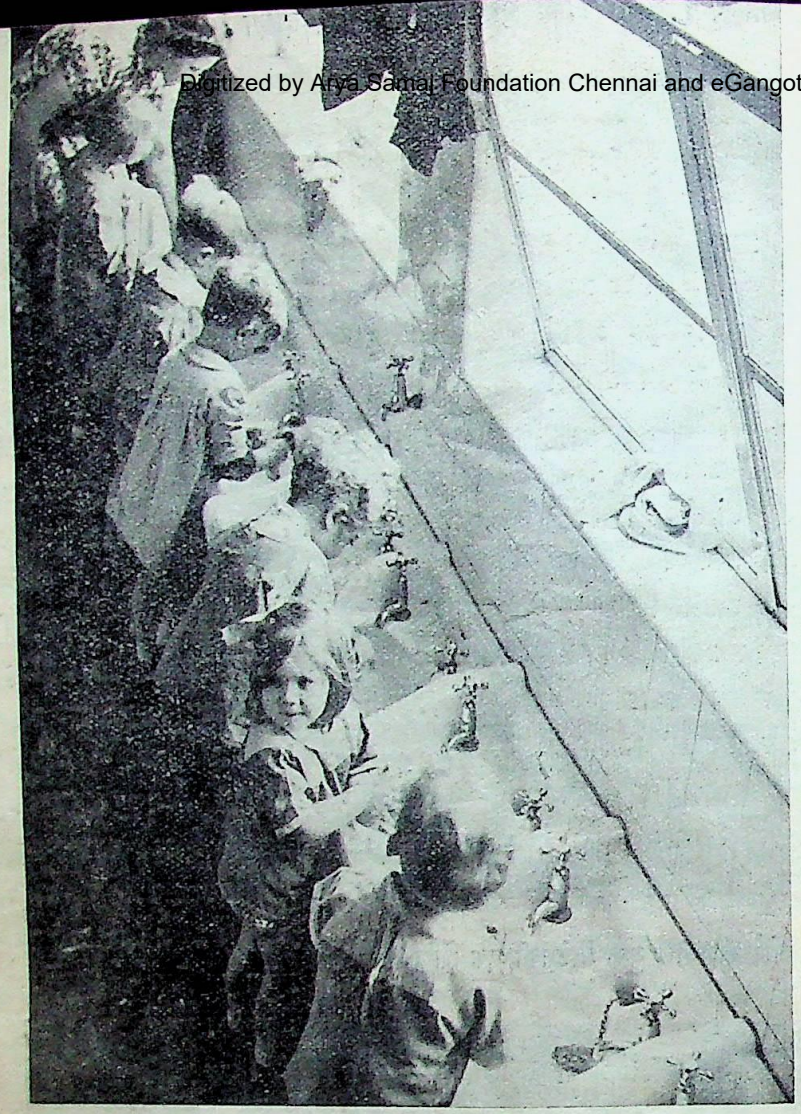

बाएँ :—

स्वास्थ्यके नियम और दैनिक कर्म शिशुओंकी शिक्षाका एक प्रमुख अंग हैं। इस चित्रमें वे हाथ-मुँह धोते हुए दिखाए गए हैं।

नीचे :—

युद्ध-कालीन अभावमें भोजन कैसे और कितना किया जाय, शिशुओंको यह भी सिखाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना प्रभुत्व संसारमें जमा रहा है और साहित्यकारको पीछे धकेल रहा है, (२) राजनीतिज्ञ, जो अपना मनचाहा साहित्य लिखवाकर साहित्यकारको खरीदना चाहता है—उसे 'इज़्म'के दायरेमें बाँधना चाहता है और (३) मनोवैज्ञानिक है, जो कलाको मनोविकारोंके कौशल दिखानेको ही प्रेरित करता है।' फिर कहा गया है—'क्या इंजीनियर, राजनीतिज्ञ और मनोवैज्ञानिकका सामना हम इसी बातसे कर ले जायँगे कि हमारे कलाकार ऐसे समय लचीली भावनाओं, रसीली कविताओं और विचारकी मक्खियोंसे भिनकती रचनाओंको लेकर साहित्य-सृजन करते रहें?'

इतना पढ़नेपर यह समझमें नहीं आता कि 'अब साहित्यिक नाचने-कूदनेके लिए' क्यों छटपटा रहा है—विचार-दानके तपोमय जीवनसे ऊबकर या ऊपर बतलाई गई तीन शक्तियोंसे संघर्ष (?) न ले सकनेके कारण? साहित्यके मार्गमें भौतिक विज्ञान (इसे ही 'इंजीनियर' कहा गया है) और राजनीतिके विभिन्न 'वाद' रास्ता रोककर खड़े हो सकते हैं; पर मनोविज्ञान उसकी सृष्टिमें कैसे बाधक होता है, जिससे ऊबकर साहित्यकारने 'नाचने-कूदने'का पेशा अख्तियार कर लिया है? संसारका ऐसा सम्मुन्नत और श्रेष्ठ साहित्य हमारे ध्यानमें नहीं आता, जो 'मनोविज्ञान'से शून्य हो। साहित्यकारको मनोविज्ञानसे सामना करनेका यह उपदेश सचमुच एक पहेली ही है! साहित्यकारको 'मनोविज्ञान' ही, जिसे वह पुस्तकोंमें पढ़े बिना ही जानता है, जिन्दा रखता, अमर बनाता है। फिर इनसे 'विश्राम चाहिए'के लिए 'नाचने-कूदने और रंगीनियाँ दिखाने'की प्रवृत्ति जाग्रत होनेमें कौन-सा तर्क, तथ्य तथा 'मनोविज्ञान' है?

वक्ता महोदय हिन्दी-कविताकी वर्त्तमान धाराके साथ दूर तक चलते प्रतीत नहीं होते। वे 'छायावाद-युग'में ही अपनेको पाते हैं, जहाँ 'रंगीनियों'पर रीझकर लोगोंके मस्तक डुलते थे। (उनकी स्वयंकी रचनाओंमें भी 'रंगीनियाँ' युग-छाया डाल रही है।) अब तो साहित्यकार 'रंगीनियों' (यह शब्द हम व्यापक अर्थमें ले रहे हैं) से चौंकता है, भाग जाना चाहता है—इतनी दूर कि उसे कल्पना-जगत्‌से बिलकुल ही मुँह न मोड़ लेनेका इङ्गित देना आवश्यक हो गया है! इसमें सन्देह नहीं कि साहित्यमें उस 'गन्दगी'को, जो कुछ आधुनिक कहानियों, उपन्यासों और कविताओंमें यथार्थवादके नामपर दिखलाई देती हैं, कड़ेसे कड़े शब्दोंमें भर्त्सना की जानी चाहिए। सभापतिजीको स्पष्ट रूपसे ऐसे साहित्यकारोंका नामोल्लेखकर उन्हें सन्मार्गपर लानेका उपदेश देना उचित था। उन्होंने वर्त्तमान साहित्यकारोंपर 'रंगीले' होनेका जो सर्वसाधारण आरोप लगाया है, वह उनका आधुनिक साहित्यकी प्रगतिशील गतिसे अपरिचित रहना ही बतलाता है। सामयिक पत्र-सम्पादकके साहित्यिक सभापतिसे होनहार साहित्य-विद्यार्थी हिन्दी-साहित्यमें बहनेवाली प्रगतिशील साहित्य-धाराके अच्छे विश्लेषणकी अपेक्षा रखते थे।

भाषणमें भाषा और लिपिके प्रश्नोंको भी स्पर्श किया गया है। 'भाषाको क्यों आसान बनाना चाहिए'की दलीलें पठनीय हैं। राष्ट्रभाषाके स्वरूपकी विवेचना भी अच्छी है; पर लिपिपर विचार नहीं किया गया। भाषणके दो पृष्ठ एक ग्रामीण जिज्ञासुकी चिट्ठीसे भर गए हैं; पर उसके प्रश्नोंका उत्तर एक पंक्तिमें भी नहीं दिया गया!

रेडियोकी भाषापर कटाक्ष करते हुए कुछ ऐसी बातें कही गई हैं, जो रेडियो सुननेवालोंको हास्यास्पद प्रतीत होंगी। रेडियोपर जो हिन्दी-भाषण होते हैं, उनकी भाषा वही होती है, जो 'सारंग'में छपती है और 'पण्डित' जो गीता सुनाते हैं, वे फ़ारसी-मिली हिन्दी नहीं बोलते। रेडियोपर मौलवी ज़रूर अरबी-फ़ारसी-मिश्रित उर्दू बोलते हैं; पर 'पादरी' (रेडियोपर पादरी महाशयका हिन्दोस्तानीमें 'सर्मन' कभी नहीं होता!) हिन्दी-भाषा बिगाड़नेके लिए 'खरीद'कर रखा गया हो, इसका 'सुननेवालों'को अनुभव नहीं है। यहाँ मैं रेडियोकी भाषाकी 'वकालत' नहीं कर रहा हूँ। 'सारंग'में तो वही भाषा छपती है, जिसे रेडियोपर हिन्दीके प्रसिद्ध कलाकार प्रो० गुलाबराय, डा० रामकुमार वर्मा, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामविलास शर्मा, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, श्री रामनाथ 'सुमन' आदि बोलते हैं। और 'सारंग'की भाषाकी सभापतिजी प्रशंसा करते हैं! काश, वे अपने भाषणको तथ्य जानकर अधिक तर्कपूर्ण बनाते। रेडियोके प्रोग्रामोंको सुननेसे यह विदित होता है कि अधिकारियोंने हिन्दी विद्वानोंके भाषण मँजी हुई हिन्दीमें और अहिन्दी विद्वानोंके भाषण मँजी हुई उर्दूमें, जिसमें अरबी-फ़ारसी शब्दोंका बाहुल्य रहता है, करानेका आयोजन रखा है; पर दोनों तरहके भाषणोंको वे 'हिन्दुस्तानी' भाषाके नामपर घोषित करते हैं। यही आपत्तिका विषय हो सकता है। वे हिन्दी-उर्दूकी खाईको 'हिन्दुस्तानी' नाम देकर पाटनेमें असफल सिद्ध हुए हैं।

विचारोंके तारतम्य और जानकारीके यत्र-तत्र अभावको विस्मृतकर यदि कोई 'कला कलाके लिए'—भाषणको पढ़ना चाहेगा, तो उसे कई स्थलोंपर सुन्दर शब्द-योजना मिलेगी, जो हमारी आँखोंके सामने एक आकर्षक चित्र खींच देती है। वक्ताके कवि-रूपपर हम मुग्ध हो उठते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाणभट्टकी आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

'तुम और मैंका भेद भूलनेमें तुम्हें रस मिलता है ?'

'हाँ, आर्य !'

'पुरुष और स्त्रीका भेद तुम भूल सकते हो ?'

'नहीं, आर्य !'

'बुद्ध और बद्धका भेद तुम्हें अच्छा लगता है या बुरा ?'

'अच्छा आर्य !'

'साधु आयुष्मान्, तुम सत्यवादी हो। अमोघवज्रने समझ-बूझकर ही तुम्हें मेरे पास भेजा है। तुम सौगत-तन्त्रके अधिकारी नहीं हो, तुम कौल-मार्गमें विचर सकते हो। पर आयुष्मान्, बिना शक्तिके साधना तो इस मार्गमें नहीं चल सकती। इस बातका एक निश्चय तो तुम्हें करना ही पड़ेगा।'

'यही मैं नहीं समझ सकता, आर्य !'

'जब तक तुम पुरुष और स्त्रीका भेद नहीं भूल जाते, तब तक तुम अधूरे हो, अपूर्ण हो, आसक्त हो। तुम और मैंका भेद तब तक तुमसे निरन्तर चिपटा रहेगा। अगर तुममें नैरात्म्य-भावनाकी प्रवृत्ति होती, तो शक्तिके बिना भी साधना चल सकती। तुममें वह प्रवृत्ति नहीं है। पर मैं अपनी ओरसे यह साधना तुम्हारे सिर लादना नहीं चाहता। तुम्हारी रुचि हो, तो स्वीकार करो। देखो, न तो प्रवृत्तियोंको छिपाना उचित है, न उनसे डरना कर्त्तव्य है और न लज्जित होना युक्तियुक्त है। इतनी बात गाँठ बाँध लो, फिर गुरुके उपदेश पर चलते रहो। आज तुम चक्रमें एकत्र बैठ सकते हो।'

विरतिवज्रने साष्टांग प्रणतिके साथ आदेश अंगीकार किया। उनके चेहरेसे स्पष्ट ही लक्षित हो रहा था कि उनके भीतर अशान्ति है, वे उसे अपनी शक्ति-भर दबा रहे हैं। गुरुको प्रणाम करनेके बाद वे मेरी ओर फिरे। अबकी बार चाँदनी ठीक उनके मुखपर पड़ी। अहा, कैसा कमनीय मुख है! क्षण-भरके लिए लाल चीवरसे लिपटे विरतिवज्रको देखकर मेरे मनमें धूर्जटिकी नयनाग्नि-शिखामें वलयित मदन देवताका स्मरण हो आया। अस्थानमें वैराग्यका उदय हुआ है। विद्युल्लतामें चन्द्रमण्डल उलझ गया है। सांध्य किरणोंमें पुण्डरीक पुष्प फँस गया है। उषःकालीन आकाशमण्डलमें शुक्र ग्रह स्थिर हो गया है। मदन-शोकसे व्याकुल वसन्तने वैराग्य ग्रहण किया है। अहा, ऐसा भी क्या सम्भव है? विरतिवज्रने जिज्ञासा-भरी दृष्टिसे मुझे देखा। उन्हें मेरा वेश इस समाजका विरोधी जान पड़ा और मुझे उनका रूप। बाबाने ही मध्यस्थता की—'परदेशी ब्राह्मण हैं, विरति! साधना-गृहमें आश्रय लिया था। महामाया इनसे अप्रसन्न हैं। अभी वे जालसे निकल नहीं सकी हैं। विकट है उस मायाविनीका जाल, दुरतिक्रम्य है उसका विधान। महामाया अभी उलझी हुई हैं। ये अमंगलसे डरते हैं, मोह है अभी, शीघ्र ही कट जायगा। जन्म-जन्मान्तरका संस्कार है, मिटते-मिटते वर्षों लग जायँगे। पशु नहीं हैं, निकल चलेंगे। महामाया प्रसाद देंगी इन्हें। वे भी प्रसन्न होंगी, ये भी अभीत होंगे।' इतना कहनेके बाद बाबाने आकाशकी ओर देखा। बोले—'समय हो आया है, विरति, सुधापात्र देना ज़रा!' विरतिने पात्र बढ़ा दिया। बाबाने ऊपर मुँह करके पुकारा—'मायाविनी, मायाविनी!' और फिर गट-गट करके पी गए। थोड़ी देर तक एक अद्भुत मस्तीकी दशामें झूमते रहे और फिर उठ खड़े हुए। हम दोनों भी उठ गए। विरतिके साथ वे साधना-गृहमें चले गए और मुझे थोड़ी देर बाद आनेका आदेश किया। चलते-चलते कहते गए—'किसीसे न डरना, गुरुसे भी नहीं, मन्त्रसे भी नहीं, लोकसे भी नहीं, वेदसे भी नहीं। मन्त्र याद है न?'

'हाँ, आर्य!'

'थोड़ी देर बाद बिना किसीके बुलाए निडर होकर आ जाना। भला!'

'हाँ, आर्य।'

बाबाके चले जानेके बाद मैंने सोचनेका अवसर पाया। यह कहाँ आ फँसा हूँ। बाबाकी बातोंका मतलब क्या है? क्या मैं इतनी जल्दी कौल-मार्गमें दीक्षित हो गया? महामाया यदि स्वयं उलझी हुई हैं, तो उनके प्रसादको निष्ठापूर्वक क्यों ग्रहण करूँ? पर बाबाने तो ऐसा ही आदेश दिया है। बाबाके प्रभावसे मैंने जो-कुछ देखा, वह क्या सत्य है? भट्टिनी इस समय निरपद हैं न? निपुणिकाकी क्या अवस्था है? क्या मैं भट्टिनीकी ही पूजाका अधिकारी हूँ? कैसा आश्चर्य है! इतनी सीधी बातें मेरे मनमें इतनी हलचल क्यों पैदा कर रही हैं! मुझे फिर एक बार ऐसा लगा कि चक्कर आ जायगा। बाबाका मन्त्र थोड़ी देर तक जपते रहनेमें ही कल्याण था। मैं निष्ठा-पूर्वक जपने लगा। एक मुहूर्त्तके बाद मुझे अकारण ऐसा प्रतीत हुआ कि बाबा बुला रहे हैं। मैं साधना-गृहकी ओर अभिभूतकी भाँति चल पड़ा। प्रांगण-गृहके द्वारपर से ही मैंने अत्यन्त शान्त और मृदु कण्ठसे यह श्लोक उच्चारित होते सुना :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वीन्दुरुधान्नपूर्णमितरेण च रत्नपात्रम्
भिक्षान्नदाननिरतां नवहेमवर्णाभम्बां भजे सकलभूषण भूषितांगीम्।'

कुछ महामायाका था। मैंने अनुमानसे समझा कि जब अन्न-पूर्णाका ध्यान-मन्त्र पढ़ा जा रहा है, तो निश्चय ही कुछ भोजनका व्यापार चल रहा है। परन्तु भीतर जानेपर जो-कुछ देखा, उसका भोजनसे केवल दूरका ही सम्बन्ध था। एक चक्राकार मण्डलमें पाँच व्यक्ति बैठे हुए थे। कौलाचार्य अघोरवज्र और महामाया भैरवी प्रायः सटकर बैठे थे। साधक भैरवोंकी दूसरी जोड़ी भी ज़रा दूर हटकर उसी प्रकार बैठी हुई थी। विरति-वज्र अकेले ही एक सिरेपर पद्मासन बाँधे विराजमान थे। इन्हींके पास अपने निर्दिष्ट स्थानपर मैं बैठ गया। वहाँसे बाबा और महामाया बिल्कुल सामने पड़ते थे। सभी साधकोंके पास एक-एक पानपात्र थे और सभी साधक लाल वस्त्रसे ढँके हुए थे। किन्तु बाबाके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। पहले जो छोटा-सा चिथड़ा था, वह भी न-जाने कब खिसक पड़ा था। केन्द्रस्थलमें लाल कपड़ेसे ढँका हुआ कारण (मदिरा) से भरा पात्र था और उसके ऊपर अष्टदल कमलके आकारका कोई पात्र रखा हुआ था। साधक लोग जपमें व्यस्त थे। बाबा कुछ भी नहीं कर रहे थे। एक अद्भुत आत्म-विस्मृति-सी अव-स्थामें वे दिखाई दे रहे थे। उनका सारा शरीर निवात-निष्कम्प दीप-शिखाकी भाँति स्थिर और प्रशान्त था। उनके मुख-मण्डलपर ज्योत्स्ना बरस रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि समाधिस्थ शिवके उत्तमांगपर गंगाकी धवल धारा सहस्रधार होकर झर रही है। मैंने इस बार महामायाको अच्छी तरह देखा। उनका मुखमण्डल कमल-कोरकके समान लम्बा-सा था। उसपर ललाटपट्ट अष्टमीके चन्द्रके समान आयत और स्वच्छ विराज रहा था। ज्योत्स्नाके प्रतिफलनसे उस मुख-मण्डलकी स्निग्धता बढ़ गई थी। प्रथम बार मैंने उन्हें ठीक नहीं समझा था। उनकी छितराई आँखों और तनी भृकुटियोंने मेरे मनमें अश्रद्धाका भाव ला दिया था। इस बार मैंने पार्वती-प्रतिमाके समान निश्चल-गौर मुखमण्डलको देखकर अपनी ग़लती समझी। अघोर भैरवके पार्श्व-देशमें शान्त भावसे बैठी हुई महामाया भगवान् शंकरकी पार्श्ववर्तिनी उमाके समान शान्त-मनोरम दिख रही थीं। अनुष्ठानकी विधियोंके सम्पादनका भार उन्हींपर था। बाबा शान्त-निःस्पन्द बैठे थे। महामाया कारण-घटसे पात्र पूर्ण कर रही थीं और अस्फुट ध्वनिमें कुछ मन्त्र पढ़ती जा रही थीं। सभी साधकोंके पात्र भरे गए। महामायाने पहले बाबा अघोर भैरवके हाथमें पात्र दिया। देनेके पूर्व उन्होंने कुछ मन्त्र पढ़े। सम्भवतः वह सुधादेवीका ध्यान-मन्त्र था। फिर कई बार दोनों हाथोंके सहयोगसे कुछ विशेष मुद्राओंसे पात्रको मुद्रायित किया। फिर एक बार अपने चारों ओर चुटकी बजाकर न-जाने कौन-सा अनुष्ठान किया। शायद वह दिग्बन्धनकी विधि थी। बाबाने ज्योंही हाथमें पात्र लिया, त्योंही साधकोंने भी अपने-अपने पात्र उठा लिए। अत्यन्त मृदु-मन्द्र कण्ठसे विरतिवज्रने प्रथम पात्रकी वन्दना-स्तुति पढ़ी :—

श्रीमद् भैरव शेखर प्रविलच्चन्द्रामृताप्लावितम्
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीगण महासिद्धैः समासेवितम्।
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षान्त्रिखण्डामृतम्
बन्दे श्री प्रथमं कराम्बुजगतं पात्रं विशुद्धिप्रदम्।[1]

मन्त्र समाप्त होते ही बाबाने महामायाके अधरोष्ठोंसे पात्र स्पर्श कराया और फिर धीरे-धीरे बिना किसी प्रकारका शब्द किए पी गए। साधकोंने भी वैसा ही किया। थोड़ी देर तक करवीर पुष्पोंके सौरभ और गुग्गुलु-धूमके साथ मिलकर कारण-सौरभने मेरे मन और प्राण दोनोंको व्याकुल कर दिया। साधकोंमें कोई भी विचलित नहीं हुआ। जप चलता रहा। अन्यान्य साधकोंने पानके समय दाहिने हाथसे कुछ विशेष प्रकारकी मुद्राएँ धारण कीं; पर बाबा यथापूर्व रहे। उन्होंने न मन्त्र पढ़ा, न मुद्रा धारण की और न कोई अनुष्ठान ही किया। वे कैलाश-शिखरपर समाधिस्थ भगवान त्रिनयनके समान शान्त-निश्चल बैठे रहे। साधकोंने क्रमशः द्वितीय, तृतीय पात्रोंका आवाहन किया। सात बार योंही हुआ। पान-मुद्रा-जप, पान-मुद्रा-जप! दूसरे भैरव-युगल कुछ चंचल दिखाई दिए। महामाया और विरतिवज्र यथापूर्व अनुष्ठानमें लगे रहे। मेरा सिर भन्नाने लगा। इस बार बाबाने आँखें खोलीं। उनके मानसमें कोई चांचल्य नहीं था, सिर्फ़ एक बार ताककर उन्होंने फिर समाधि ली। भैरव-युगल कुछ अधिक चंचल हुए। बाबा अघोर भैरवने प्रथम बार शान्त-स्फुट स्वरमें आदेश दिया—'शान्ति-मन्त्र पाठ करो।' महामाया और विरतिवज्रने बड़े मनोहर कण्ठसे शान्ति-पाठ किया। मुझे सभी मन्त्र याद नहीं हैं; पर भाव उनके बड़े ही मनोरम थे। प्रत्येक मन्त्रके बाद विरतिवज्र अकेले ही एक श्लोक पढ़ते थे। बार-बार सुननेके कारण वह मुझे अब भी स्मरण है :—

शिवमस्तु सर्वजगतः परहित-निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु शान्तिं सर्वो लोकः सुखी भवतु॥
सर्वो लोकः सुखी भवतु॥'

१. तु० कोलावलिनिर्णय, ८म उल्लास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भैरव-युगल प्रकृतिस्थ हुए। अनुष्ठान फिर आगे बढ़ा। ग्यारहवें पात्रकी समाप्तिके बाद साधकोंके हाथोंमें विशेष-विशेष प्रकारकी आकृतियाँ दिखाई देने लगीं। चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना हट चुकी थी। आँगनका कुट्टिम अन्धकारसे, वायुमण्डल मदिर-गन्धसे और नभोमण्डल गुग्गुलु-धूमसे परिपूर्ण था। मेरा मस्तिष्क यह सब सहनेका एकदम अभ्यस्त नहीं था। मुझे ऐसा लगा कि आकाशसे विकटाकार भूत-बैताल उतर रहे हैं और घटके चारों ओर खड़े हो रहे हैं। साधकोंकी चक्राकार मण्डली कुछ छाया-चित्रों-सी दिखने लगी। रह-रहकर उन छायाचित्रोंमें विक्षोभ और आन्दोलन होते रहे। मैं अपनेको अधिक नहीं सँभाल सका। सिर घूम गया और मैं निःसंज्ञ होकर कब लुढ़क गया, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं चला।

थोड़ी देर बाद मेरी चेतना लौट आई। मुझे मस्तककी ओरसे कुछ शीतलताका अनुभव हुआ। यद्यपि मेरी आँखें उस समय भी बन्द थीं, तो भी मैंने प्रत्यक्ष देखा कि नभो-मण्डलके मध्य-भागसे आनन्द भैरव उतर रहे हैं। उनके शरीरमें कोटि-कोटि सूर्योंकी प्रभा है और फिर भी वे कोटि-कोटि चन्द्रमासे अधिक शीतल लग रहे हैं। अमृत-समुद्रमें उद्भूत ब्रह्माके कमलपर से उठकर वे सुधा-धवल वृषभपर आरूढ़ हुए। उनके कण्ठकी नीलिमा इस समस्त श्वेत पृष्ठभूमिमें ऐसी लग रही थी, मानो कर्पूरगिरिपर नीलमणिका छोटा अंकुर निकल आया हो। वे अपने अठारह हाथोंमें घण्टा, डमरू, पाश, अंकुश, खड्ग आदि विविध शस्त्रोंको और एक हाथमें अभय-मुद्राको धारण किए हुए थे। आनन्द भैरवके साथ ही आनन्द भैरवी सुरादेवीका पदार्पण हुआ। आनन्द भैरवके समान इनके भी पाँच मुख, तीन नेत्र और अठारह भुजाएँ थीं। उनका रंग हिम, कुन्द और चन्द्रकी भाँति धवल था। आँखें चंचल खंजरीटकी भाँति लीलापरायण थीं। प्रवालके समान आरक्त ओष्ठ-पुटोंमें मन्द-मन्द स्मित सदा विराजमान था। वे आनन्दकी मूर्त्ति, मस्तीकी प्रभवभूमि, सौन्दर्यका विश्रान्ति-स्थल, आभाका आवास-गृह और यौवनका मूर्त्त विग्रह दिखाई दे रही थीं। आनन्द भैरवके इशारेपर उन्होंने मेरा मस्तक स्पर्श किया। मुझे ऐसा लगा, मानो अमृत-तूलिकासे किसीने मेरे सारे शरीरको विलिप्त कर दिया हो। आनन्द भैरवीने मेरा सिर धीरे-धीरे अपने उत्संगमें ले लिया। मेरी सारी जड़िमा क्षण-भरमें विलुप्त हो गई। आनन्द भैरवीने मन्द स्मितपूर्वक मेरे नयनों और कपोल-प्रान्तोंको अपने अमृतार्द्र हाथोंसे पोंछ दिया। मेरी आँखें खुल गईं। तब भी मेरा मस्तक भैरवीकी गोदमें था। मैंने अभिभूतकी भाँति कहा—'अपराध क्षमा हो, अम्ब! आज मैं कृतार्थ हूँ।' भैरवीके मुखपर आनन्दकी धारा बह गई। उन्होंने फिर एक बार भैरव और सुरादेवीका ध्यान-मंत्र पढ़ा। अब मैंने समझा कि मेरा मस्तक महामायाकी गोदमें है। उनका कण्ठस्वर स्पष्ट, मधुर और करुण था। उनकी आँखोंमें मातृ-स्नेह छलक रहा था। उनके मुखमण्डलसे एक प्रकारकी स्निग्ध प्रभा निकल रही थी। वे कुछ परिवर्त्तित हो गई थीं। मैंने कृतज्ञ भावसे कहा—'मातः आज मैं कृतार्थ हुआ। अत्यन्त बाल्य वयसमें मैंने अपनी माता खो दी थी। पिताका सुख भी मैं बहुत दिनों तक नहीं देख सका। मातृ-पितृहीन अभागा बाण भट्ट वात्स्यायन-वंशका कलंक ही सिद्ध हुआ है। आज मेरा जन्म सफल है, जो मैं आनन्द भैरवीका अमृतायमान स्नेह-स्पर्श पा रहा हूँ। मातः, मेरा अपराध क्षमा हो, अमंगल अपगत हो, कल्याण प्राप्त हो।' भैरवीने स्नेहपूर्वक कहा—'कल्याण हो, वत्स! महामायाका प्रसाद ग्रहण करो।' इस बार मैंने अच्छी तरहसे आँखें खोलीं। महामाया ही तो हैं! धारासार वर्षाके बाद शिथिल-वृन्त अशोक-पुष्पके समान उनके नयन रक्त होनेपर भी आर्द्र थे, तुहिन-सिक्त शेफालिका-कुसुम-नालके समान उनका नासावंश पिंगल होकर भी मनोरम था, विद्युत्-शिखा-संवलित मेघमण्डलसे आच्छादित चन्द्रमण्डलकी भाँति उनका ललाटपट्ट कपिशवर्ण और अस्तव्यस्त चिकुर-राशिसे आच्छन्न होकर भी अभिराम था। आँधी-पानीसे उद्धत फूले हुए कोविदार-वृक्षोंके समान उनका परिधेय वस्त्र स्खल-कुंचित होकर भी सुन्दर था और कारण-घटपर स्थापित जपा-पुष्पके समान उनका सिन्दूर-तिलक छिन्न-भिन्न होकर भी पवित्र था। उनकी आज्ञासे मैं उठ बैठा। बड़े स्नेह और आदरके साथ उन्होंने प्रसाद दिया। प्रसादमें मधु, अदरख, भुना हुआ कन्द तथा अपराजिता-पुष्पके कुछ दल थे। मैंने भक्तिपूर्वक उस प्रसादको ग्रहण किया। महामाया भैरवी मेरी ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टिसे देखती रहीं। मैंने अपने चारों ओर एक बार ध्यानसे देखा। महामायाके अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था, यहाँ तक कि कारण-पात्र और करवीर-पुष्पका एक छोटा दल भी वहाँ नहीं था। मैंने विनीत भावसे पूछा—'मातः, आर्य अघोर भैरव कहाँ गए? और वे दोनों साधक कहाँ चले गए?'

महामायाने संक्षेपमें उत्तर दिया—'सब लोग अपने-अपने आश्रमोंमें चले गए। मैं भी जाऊँगी। बाबाकी आज्ञा थी कि तुम्हें प्रसाद दे लूँ, इसीलिए अब तक रुकी हुई थी।'

'वे लोग अब इधर नहीं आयँगे क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कार्तिककी अमावस्यासे पहले नहीं।'

'बाबा भी नहीं?'

'बाबा सिद्ध अवधूत हैं, उनका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है। आ भी सकते हैं, नहीं भी आ सकते हैं। उनका प्रसाद पाना तुम्हारे परम पुण्योंका परिणाम है।'

'एक बात पूछूँ, माता?'

'पूछो!'

'बाबाने कल मुझसे जो-कुछ कहा, उसका क्या अभिप्राय है?'

'बाबासे अधिक मैं क्या बता सकती हूँ।'

'प्रवृत्तियोंकी पूजा करनेका क्या तात्पर्य हो सकता है?'

'बाबाने क्या कहा है?'

'बाबाने कहा है कि प्रवृत्तियोंसे डरना भी ग़लत है, उन्हें छिपाना भी ठीक नहीं और उनसे लज्जित होना भी बालिशता है। फिर उन्होंने कहा है कि त्रिभुवनमोहिनीने जिस रूपमें मुझे मोह लिया है, उसी रूपकी पूजाकर, वही तेरा देवता है। फिर विरतिवज्रसे उन्होंने कहा—इस मार्गमें शक्तिके बिना साधना नहीं चल सकती। ऐसी बहुत-सी बातें उन्होंने बताईं, जो अश्रुतपूर्व थीं। क्यों अम्ब, शक्ति क्या स्त्रीको कहते हैं? और स्त्रीमें क्या सचमुच त्रिभुवनमोहिनीका वास होता है?'

'देख बाबा, तू व्यर्थकी बहस करने जा रहा है। बाबाने जो-कुछ कहा है, वह पुरुषका सत्य है। स्त्रीका सत्य ठीक वैसा ही नहीं है।'

'उसका विरोधी है, मातः?'

'पूरक है रे। पूरक अविरोधी हुआ करता है।'

'मैं समझ नहीं सका।'

'समझ जायगा, तेरे गुरु प्रसन्न हैं, तेरी कुण्डलिनी जाग्रत है, तुझे कौल-अवधूतका प्रसाद प्राप्त है। उतावला न हो। इतना याद रख कि पुरुष वस्तु-विच्छिन्न भाव-रूप सत्यमें आनन्दका साक्षात्कार करता है, स्त्री वस्तु-परिगृहीत रूपमें रस पाती है। पुरुष निःसंग है, स्त्री आसक्त; पुरुष निर्द्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोन्मुखी; पुरुष मुक्त है, स्त्री बद्ध। पुरुष स्त्रीको शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है; पर स्त्री स्त्रीको शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है।'

'तो स्त्रीकी पूर्णताके लिए पुरुषको शक्तिमान माननेकी आवश्यकता है न, अम्ब?'

'ना। उससे स्त्री अपना कोई उपकार नहीं कर सकती, पुरुषका अपकार कर सकती है। स्त्री प्रकृति है। वह, उसकी सफलता पुरुषको बाँधनेमें है; किन्तु सार्थकता पुरुषकी मुक्तिमें है।' मैं कुछ भी नहीं समझ सका। केवल आँखें फाड़-फाड़कर महामायाकी ओर देखता रहा। वे समझ गईं कि मैंने कहीं मूलमें ही समझनेमें प्रमाद किया है। बोलीं—'नहीं समझ सका न? मूलमें ही प्रमाद कर रहा है, भोले! तू क्या अपनेको पुरुष समझ रहा है और मुझे स्त्री? यही प्रमाद है। मुझमें पुरुषकी अपेक्षा प्रकृतिकी अभिव्यक्तिकी मात्रा अधिक है, इसलिए मैं स्त्री हूँ। तुझमें प्रकृतिकी अपेक्षा पुरुषकी अभिव्यक्ति अधिक है, इसलिए तू पुरुष है। यह लोककी प्रज्ञप्ति-प्रज्ञा है, वास्तव सत्य नहीं। ऐसी स्त्री प्रकृति नहीं है, प्रकृतिका अपेक्षाकृत निकटस्थ प्रतिनिधि है और ऐसा पुरुष प्रकृतिका दूरस्थ प्रतिनिधि है। यद्यपि तुझमें तेरे ही भीतरके प्रकृति-तत्त्वकी अपेक्षा पुरुष-तत्त्व अधिक है; पर वह पुरुष-तत्त्व मेरे भीतरके पुरुष-तत्त्वकी अपेक्षा अधिक नहीं है। मैं तुझसे अधिक निःसंग, अधिक निर्द्वन्द्व और अधिक मुक्त हूँ। मैं अपने भीतरकी अधिक मात्रावाली प्रकृतिको अपने ही भीतरवाले पुरुष-तत्त्वसे अभिभूत नहीं कर सकती। इसीलिए मुझे अघोर भैरवकी आवश्यकता है। जो कोई भी "पुरुष"-प्रज्ञप्तिवाला मनुष्य मेरे विकासका साधन नहीं हो सकता।'

'और अघोर भैरवको आपकी क्या आवश्यकता है?'

'मुझे मेरी ही अन्तःस्थिता प्रकृतिके रूपमें सार्थकता देना। वे गुरु हैं, वे महान् हैं, वे मुक्त हैं, वे सिद्ध हैं। उनकी बात अलग है।'

'किन्तु यह कारण-द्रव्य इस तत्त्वमें क्या सहायता पहुँचाता है, अम्ब?'

'तू नहीं समझ सकेगा। मदिरा प्रकृतिकी सुव्यक्तिका कारण है। वह उसे छिपी नहीं रहने देती। यह गोपन रहस्य है!'

होगा। मैंने मन ही मन महामाया भैरवीके अपूर्व चिन्तन-शक्तिपर आश्चर्य किया। वे थोड़ी देर तक खड़ी रहीं, जैसे कुछ याद कर रही हों। उनके रक्तिम नयन-कोरकोंमें अश्रु-कण दिखाई दिए। वे कुछ व्याकुल-सी लगीं। फिर बोलीं—'जा, जहाँ जाना था, वहाँ जा। मुझे दूर जाना है।' और फिर बिना प्रतीक्षा किए चलनेको प्रस्तुत हो गईं। मैंने हड़बड़ाकर प्रणाम किया और आग्रहपूर्वक पूछा—'मातः, वे विरतिवज्र कौन हैं?'

'उनका आश्रम कहीं हिमालयके पाददेशमें है। वे सौगत अवधूत अमोघवज्रके शिष्य हैं; पर सौगत-तन्त्रमें अनधिकारी समझकर गुरुने उन्हें हमारे सम्प्रदायमें भेज दिया है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अनधिकारी क्यों है, मातः ?'

'त्रिभुवनमोहिनीकी माया है। वे शक्ति-हीन हैं। उनकी शक्ति उनकी प्रतीक्षा कर रही है। वाराणसीके जनपदमें उनका जन्म है, उनकी शक्ति भी वहीं है।'

महामाया भैरवीकी बात सुनते ही मुझे वाराणसी-जनपदकी वह वृद्धा याद आ गई। विरतिवज्रका मुख उससे मिलता-जुलता था। अहा, यही क्या उस बुढ़ियाका लाल था ? फिर क्या इस साधकसे साक्षात्कार नहीं होगा ? मैं चिन्तामग्न थोड़ी देर तक खड़ा रहा। महामाया तब तक दूर निकल गई थीं। मैं भी तेज़ीसे बाहर निकल आया। उस समय आकाश वृद्ध कपोतके पक्षके समान धूम्र हो गया था। चन्द्रमा कटी हुई पतंगकी भाँति अस्तशिखरपर ढल चुका था। तरुण अरुणकी पीताभ रश्मियाँ स्वर्ण-शलाकाकी बनी झाड़ूके समान पूर्व-गगनके नक्षत्रोंको झाड़ रही थीं। महारुद्रके पिनाककी भाँति धनुराशि आकाशके पश्चिम-मण्डलार्द्धमें प्रत्यंचित हो चुकी थी और क्षीण-भूयिष्ठा रजनी संन्यास लेनेके लिए एक-एक करके अपने नक्षत्रालंकारोंको खोल रही थी। चण्डी-मण्डप तुहिन-सिक्त हो गया था और सामनेके मैदानकी दूर्वाविलियाँ अलस-शिथिल भावसे पड़ी दिख रहीं थी। मैं गंगा-तटकी ओर चल पड़ा।

(क्रमशः)

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

मोहनसिंह सेंगर

हिन्दीके 'सूर्य' कविवर सूरदास जन्मन्ध थे या बादमें अन्धे हुए, यह निर्विवाद-रूपसे नहीं कहा जा सकता। पर यह तो सभी मानते हैं कि वे अन्धे ज़रूर थे और उनके सवा लाख पद अन्धता-कालकी ही रचना हैं। आज तो खँजड़ी, एकतारा अथवा बिना किसी वाद्य-यन्त्रके गा-गाकर भीख माँगनेवाला प्रत्येक अन्धा 'सूरदास'-संज्ञासे आभूषित है। कविवर सूरदासके संगीत-नैपुण्यके सम्बन्धमें हमारी कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं ; किन्तु उनकी काव्य-प्रतिभा असन्दिग्ध रूपसे उन्हें हिन्दी-कविताका 'सूर्य' बननेका अधिकार देती है। उनकी अदोष छन्द-रचना, उनके रूपक, श्लेष, दृष्टिकूटक पद, उपमाएँ, प्रकृति-वर्णन, बाल-नारी-पुरुष-स्वभाव-विश्लेषण, हास्य-कौतुक और विशेष रूपसे मेघों, बिजली, सरिता, तड़ाग, ऋतुओं एवं रंगोंके वर्णन पढ़कर तो यह माने बिना नहीं रहा जा सकता कि कविवर सूरदास आजकलके-से निरक्षर अन्धे नहीं थे, बल्कि एक असाधारण काव्य-छन्द-मर्मज्ञ थे। इस दृष्टिसे आजकलके भजन और क़व्वाली कहनेवाले निरे अन्धे गलाबाज़ोंको 'सूरदास' कहना हमारी अज्ञता और नासमझीका ही द्योतक है।

जो भी कुछ हो, इस नामकरणसे अन्धोंके प्रति हमारी मनोवृत्ति और धारणाका सामान्य परिचय तो मिल ही जाता है। भीख माँगनेवाले इन सस्ते भक्तोंके प्रति हमारी कोई हार्दिक श्रद्धा अथवा आस्था भले ही न हो ; पर उनके प्रति हमारी अकर्मण्यता-जनित उपेक्षा तो स्वतःसिद्ध एवं स्पष्ट ही है। उनका भीख माँगना एक ऐसा साधारण व्यापार हो गया है कि हमें उन्हें ऐसा करते देखकर कोई ग्लानि नहीं होती। हाँ, अगर कोई हममें से किसीसे यह प्रश्न करे कि अन्धे होनेपर क्या तुम भी भीख माँग सकोगे, तो हमारे अहंभाव अथवा स्वाभिमानको एक गहरी ठेस ज़रूर लगेगी। यही बात परावलम्बनके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। और अन्धोंके लिए भीख माँगने या पराश्रयी होनेके सिवा और कोई चारा ही नहीं है। तब फिर क्या हमने कभी यह सोचा है कि जो अन्धे भीख माँगकर अपना उदर-पोषण कर रहे हैं, या जो जीवन-भरके लिए किसीपर बोझ बनकर रह रहे हैं, उनके प्रति भी हमारा कुछ कर्त्तव्य है ? क्या हमने कभी यह सोचा है कि हम चाहें तो उन्हें संसार और समाजका बोझ अथवा मृत-अंग न रहने देकर अपने-जैसा ही स्वावलम्बी, स्वाभिमानी एवं समाजका एक उपयोगी अंग बना सकते हैं ?

अन्धोंकी मनोव्यथाको समझनेके लिए बड़ी पैनी अन्तर्दृष्टि और विशाल हृदय चाहिए। कुत्तेकी तरह रोटीका टुकड़ा फेंक देना ही उनकी पर्याप्त सहायता अथवा उनके प्रति सक्रिय सहानुभूतिका परिचायक नहीं है। इस तरहकी सहायता-सहानुभूतिसे न तो उनकी समस्याका कोई बुद्धि-संगत हल ही होता है और न उनकी वह मनोव्यथा ही कम हो पाती है, जो घुनकी तरह भीतर-ही-भीतरसे उनके जीवनको खोखला बनाती रहती है। कदाचित् इसीलिए डाक्टरोंकी राय है कि अन्धोंकी आयु हृष्ट वालोंसे लगभग पौनी (२५ प्रतिशत कम) होती है। पर इसका मतलब यह नहीं कि अन्धोंकी बौद्धिक अथवा शारीरिक क्षमता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

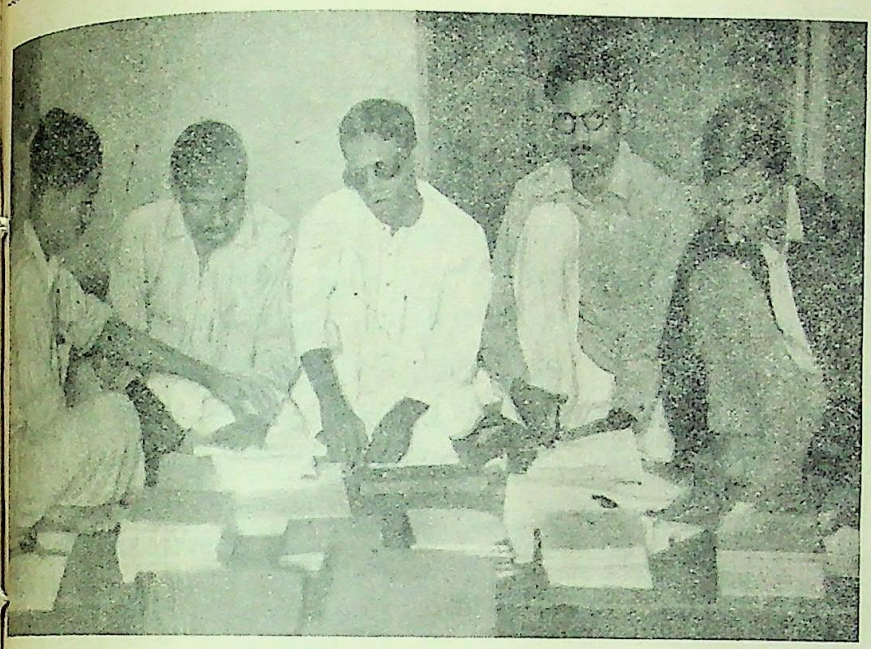

'लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड'के छात्र जिल्दसाज़ीका काम कर रहे हैं।

अन्धोंको औषध अथवा अस्त्रोपचार द्वारा नेत्र-ज्योति पुनः प्राप्त हो सकती है। पर उसकी पहुँचके बाहर जो अन्धे हैं, उन्हें सहज-बुद्धि द्वारा शिक्षा-दीक्षा देकर एक बहुत बड़ी सीमा तक अन्धताके दोष एवं इससे उत्पन्न हुई अयोग्यतापर विजय प्राप्त करनेमें सहायता पहुँचाई जा सकती है। इस तरह नेत्रोंकी ज्योतिके बदलेमें हम उन्हें सामाजिक एवं अर्थ-नीतिक स्वावलम्बनके योग्य बना—जीवनके वास्तविक उजालेमें लाकर—अन्धता-रोग या अकस्मात द्वारा हुए अहितको बहुत-कुछ दूर कर सकते हैं।

नेत्र-ज्योतिको छोड़कर—दृष्टिवालोंसे किसी भी रूप या मात्रामें कम होती है। बल्कि दृष्टिका अभाव कई बार तो अन्धोंकी मानसिक और बौद्धिक क्षमताको अनेक दृष्टिवालोंके मुक़ाबलेमें अधिक विकसित करनेमें सहायक अथवा इसका कारण होता है। असलियत इस बातकी है कि हम अन्धोंकी इस क्षमताका मूल्य और महत्व ठीक-ठीक समझें तथा उचित शिक्षा-दीक्षा द्वारा इसे समाजकी भलाईके लिए काममें लाने की व्यवस्था करें।

अन्धोंकी शिक्षाका यही प्रधान हेतु है।

अन्धे क्या नहीं कर सकते ?

भारतमें अन्धोंकी शिक्षाके मार्गमें जो एक बहुत बड़ी बाधा हम देख रहे हैं, वह है अन्धोंकी क्षमताके प्रति सर्वसाधारणमें

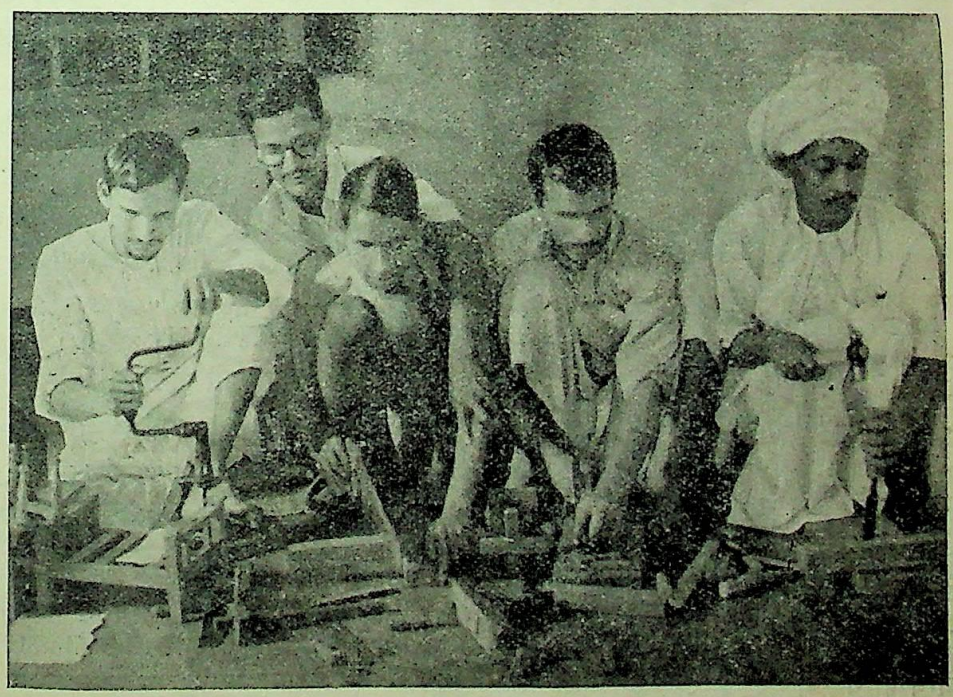

'लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड'के छात्र बढ़ईगीरीका काम कर रहे हैं।

इस सम्बन्धमें हमें एक बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए। वह यह कि अन्धता केवल एक रोग या अकस्मातका परिणाम-मात्र है। वह न तो 'ईश्वर' की देन है और न 'भाग्य' का लेख ही। जहाँ तक चिकित्सा-विज्ञान आज पहुँच चुका है, एक सीमा तक और कुछ खास क़िस्मके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देह और अविश्वासकी भ्रान्तिपूर्ण भावना। अन्धोंको अक्सर घरमें बैठनेको कहा जाता है। उनकी सब तरहसे उपेक्षा ही नहीं की जाती, बल्कि यदि वे कुछ करना चाहें, तो उन्हें वैसा करनेसे हतोत्साह भी काफ़ी किया जाता है। उनसे कहा जाता है कि जो आदमी अपना रास्ता भी न ढूँढ़ सके, वह पढ़-लिख या हुनर सीखकर दुनियामें क्या करेगा? पर वास्तवमें इसका कोई ठोस आधार नहीं है। समुचित शिक्षा और अवसर मिलनेपर अन्धे क्या नहीं कर सकते? यहाँ हम पाठकोंकी जानकारीके लिए कुछ ऐसे ही अन्धोंका उल्लेख करेंगे।

कुमारी हेलेन केलरका नाम तो पाठकोंने सुना ही होगा। वे अन्धी होनेके साथ-ही-साथ गूँगी और बहरी भी

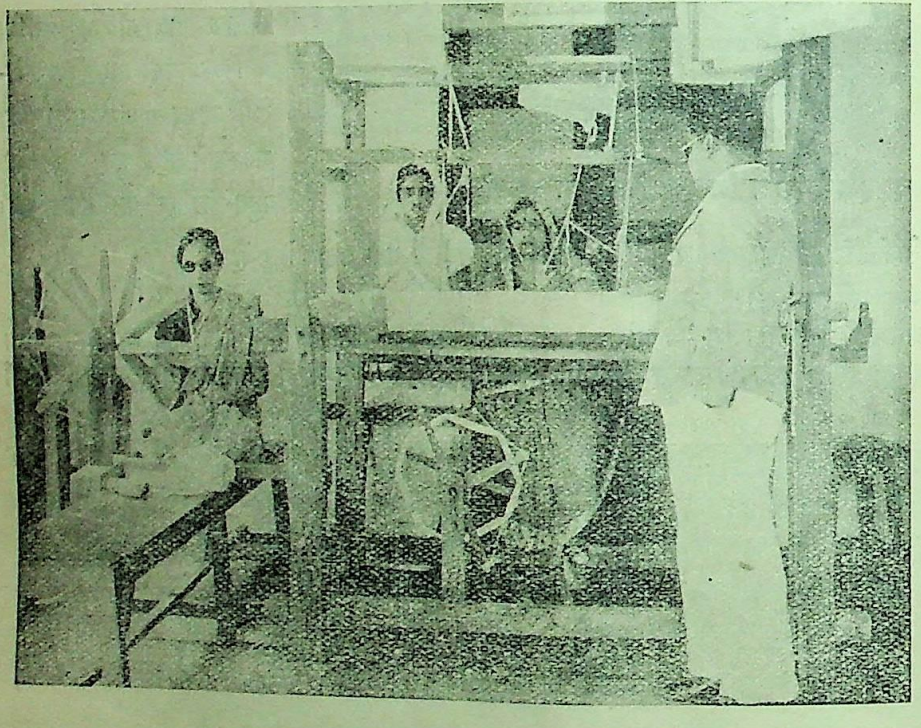

लाइट-हाउसकी छात्राएँ कातना-बुनना सीख रही हैं। दाहिनी ओर प्रो० सुबोध राय खड़े हैं।

हैं। वे अमरीकाकी प्रसिद्ध लेखिका और पत्रकार हैं तथा एक कुत्तेकी सहायतासे चलती-फिरती हैं। दूसरी अन्धी महिला हैं **कुमारी स्मिथ**, जो न्यूयार्कके 'बफैलो-एक्सप्रेस'की संवाद-दात्री हैं। आप भी एक कुत्तेकी सहायतासे घूमती-फिरती और अपने पत्रके लिए समाचार तथा विचार संग्रह करती हैं। आप समूचे अमरीका और कनाडाका भ्रमण कर चुकी हैं। **श्री वाल्टर आर० मैकडोलैण्ड**, जो १३ वर्षकी ही आयुमें अन्धे हो गए थे, आज ज्योर्जिया (संयुक्त-राज अमरीका)के पब्लिक-सर्विस-कमीशनके अध्यक्ष तथा दक्षिणी रेलों व सार्व-जनिक हितकी सेवाओंकी समिति और भाड़ा आदि तय करनेकी कमेटीके प्रधान हैं। **श्री विलियम टेलर** पेन्सिल्वेनियाके कुशल वकील तथा कई संस्थाओंके सालिसिटर हैं। आप स्थानीय वकील-सभा और शिशु-स्वास्थ्य-संघके प्रमुख कार्यकर्ता भी हैं। **श्री डेविड गाइटन** मिसिसिपीके ब्ल्यूमाउण्टेन-कालेजमें इतिहासके अध्यापक, एक बैंकके डाइरेक्टर और कई पत्रोंके संवाददाता भी हैं। **श्री हेनरी फासेट**, जो २३ वर्षकी आयुमें अन्धे हुए थे, एक दीर्घ-काल तक ब्रिटेनके पोस्ट-मास्टर-जनरल रहे। इस बीचमें आपने डाक-विभागमें कई उल्लेखनीय सुधार करवाए। बादमें आप पार्लमेंटके सदस्य भी हो गए। भारतकी स्वाधीनताके प्रति आपका विशेष अनुराग था, इसीलिए कभी-कभी आपको पार्लमेंटका 'भारतीय सदस्य' भी कहा जाता रहा है।

उपरियुक्त नामोंका उल्लेख केवल उदाहरण-स्वरूप किया गया है। वैसे अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, रूस, पोलैण्ड, नारवे, स्वीडेन, बेल्जियम, हालैण्ड आदिमें अन्धोंकी शिक्षाके परिणाम-स्वरूप आज सुशिक्षित अन्धे जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें सुचारु रूपसे अपना कार्य कर रहे हैं। भारतमें अब तक इस ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया गया। पर जहाँ ध्यान दिया गया है, वहाँ परिणाम भी आशातीत रूपसे सुखद हुआ है। बंगाल इस दिशामें भारतीय प्रान्तोंमें अग्रणी रहा है। **श्री सुबोध-चन्द्र राय**, एम० ए०, बी० एल०—जो कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें लेक्चरर और 'लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड'के कुशल संचालक हैं—का नाम तो न केवल बंगाल, बल्कि भारतकी सीमाओंके भी बाहर पहुँच चुका है।* आपके अलावा बंगालमें कई अन्धे अध्यापक और वकील हैं। अभी हाल ही में कलकत्ता-काईकोर्टने जो 'हेबियस कार्पस'के मातहत ९ नज़रबन्दोंकी ओरसे सरकारके

* आपका विस्तृत परिचय फरवरी, १९४१ के 'विशाल भारत' में प्रकाशित हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध अपील की गई थी, उसमें वादी-पक्षकी ओरसे श्री साधन गुप्त, एम० ए०, बी० एल० भी एक वकील थे।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि सुशिक्षित अन्धे अपने और समाजके लिए अभिशापके बदले बहुत बड़ा वरदान भी साबित हो सकते हैं। अतः उनकी क्षमता एवं सामर्थ्यके विरुद्ध सर्व-साधारणमें जो भ्रान्ति फैल रही है, उसका प्रचार-प्रोपेगेंडा अथवा क़ानून बनाकर मूलोच्छेद किया जाना चाहिए। इस सम्बन्धमें अमरीकाके 'रेण्डल्फ़ शेफ़र्ड एक्ट' तथा 'ओ-डे एक्ट' और ब्रिटेनके 'ब्लाइण्ड परसन्ज़ एक्ट' तथा 'स्पेशल पेन्शन्ज़ एक्ट' जैसे कुछ क़ानून भारतमें भी बनने चाहिएँ, ताकि जीविकोपार्जनके कोई भी द्वार अन्धोंके लिए बन्द न रहें और दृष्टिवाले अनुचित प्रतियोगिता द्वारा उनकी उन्नतिके मार्गमें बाधक भी न बन सकें। इसके लिए कुछ सुशिक्षित अन्धोंको भारतकी केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओंमें भेजना नितान्त आवश्यक है।

अन्धोंकी शिक्षा और सरकार

भारतमें अन्धोंकी संख्या ६००,००० है*, जो संसारके कुल अन्धोंका छठा भाग है। पर संसारके अन्य देशोंके मुक़ाबलेमें भारतमें अन्ध-शिक्षाकी ओर अभी नाम-मात्रको ही ध्यान दिया गया है। निश्चय ही इसकी बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी सरकारपर है। नामके लिए यद्यपि सभी प्रान्तोंमें एक-दो अन्ध-शिक्षा-केन्द्र हैं; पर उन्हें उन्नत करने अथवा इस विषयमें कोई केन्द्रीय व्यवस्था करनेकी ओर अभी तक भी कोई ध्यान नहीं दिया गया है। गत वर्ष सरकारने दो ऐसे क़दम ज़रूर उठाए हैं, जिनसे भविष्यमें उसके इस दिशामें कुछ करनेकी आशा बँधती है। पहला है अन्ध-शिक्षाकी व्यावहारिक योजना बनानेके लिए मेजर-जनरल **सर क्लुथा मंकेन्ज़ी**की नियुक्ति और दूसरा समूचे भारतके लिए एक सामान्य ब्रेल-लिपि निश्चित करनेके लिए एक समितिका संगठन (१९४१)। समितिकी पहली बैठक गत १७-१८ नवम्बर, १९४१ को नई दिल्लीमें हो भी चुकी है, जिसमें देशके अनेक प्रमुख अन्ध-शिक्षकोंने भाग लिया था।

किन्तु इस दिशामें सबसे उल्लेखनीय और साहसपूर्ण क़दम उठाकर कलकत्ता-विश्वविद्यालयने एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। १९४० से उसके टीचर्स-ट्रेनिंग-विभागमें अन्धोंको पढ़ानेकी इच्छा रखनेवाले भावी अध्यापकोंके लिए विशेष पाठ्यक्रम रखा गया है। इसमें 'अन्ध-शिक्षाका इतिहास', 'अन्धताकी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक समस्याएँ' तथा 'अन्ध-शिक्षाके व्यावहारिक पहलू' आदि विषय हैं। अब तक इस पाठ्यक्रमको ५५ अध्यापकों—३० पुरुषों और २५ महिलाओं—ने लिया है। ये सब आज विभिन्न विद्यालयोंमें अन्ध-शिक्षण-कार्य कर रहे हैं। अन्य विश्वविद्यालय भी चाहें, तो इस दिशामें काफ़ी महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार अन्धोंकी शिक्षाके लिए सुशिक्षित अध्यापकोंके न मिलनेकी शिकायत स्वतः दूर हो जायगी और यह कार्य कुछ-न-कुछ अवश्य आगे बढ़ेगा।

किन्तु जहाँ-तहाँ इस तरहके बिखरे प्रयत्नोंसे कोई विशेष कार्य नहीं हो सकेगा। उसके लिए तो सरकारको अन्ध-शिक्षणकी एक निश्चित रूप-रेखा अपने सामने रखकर ही चलना होगा। यह रूप-रेखा उसे देशी और विदेशी अन्ध-शिक्षण-शास्त्रियोंके सहयोगसे तैयार करनी चाहिए। सुझावके रूपमें हम विदेशोंमें इस दिशामें किस प्रकार कार्य हो रहा है, उसका थोड़ा बहुत उल्लेख यहाँ करेंगे। विदेशोंमें अन्ध-शिक्षाको तीन मोटी श्रेणियोंमें बाँटा गया है :—

(१) स्कूल न जानेवाले ५-६ वर्ष तकके अन्धे बच्चोंकी शिक्षा। इन बच्चोंको शय्या-त्यागके समयसे लेकर सोने तकके सभी नैत्यिक आवश्यक कर्म सिखाए जाते हैं। बच्चा अधिकांश बातें—यहाँ तक कि चलना और तुतलाना तक—देखकर अनुकरण द्वारा ही सीखता है। यही शिक्षा उसकी शिक्षा एवं जीवनके विकासका मूलाधार होती है। इसके दृढ़ हुए बिना उसकी भावी शिक्षाकी इमारत किस नींवपर खड़ी की जा सकती है? यूरोप और अमरीकामें इनके शिक्षण-केन्द्रोंको **'सनशाइन होम्स'** (Sunshine Homes) कहते हैं। (भारतमें इस आयुके अन्धोंकी संख्या १५,००० है; पर उनकी शिक्षाके लिए एक भी ऐसा केन्द्र नहीं है।)

(२) ६ से १६ वर्ष तकके लड़के-लड़कियोंकी (प्राथमिक एवं माध्यमिक) शिक्षा। बच्चोंकी—अन्धे और दृष्टिवाले दोनों—वास्तविक शिक्षाकी आयु यही है। इस आयुमें उनका बौद्धिक विकास बड़ी तीव्र गतिसे होता है और उनकी ग्राह्य-शक्ति अपनी चरम सीमापर होती है। किन्तु दृष्टि इस विकास और ग्राह्य-शक्तिका एक बहुत बड़ा साधन है, अतः उसके अभावकी अधिकसे अधिक पूर्त्तिकर अन्धे लड़के-लड़कियोंको रंगों एवं आकार-प्रकारका यथासम्भव ठीक-ठीक बोध करानेके लिए भौतिक साधन एवं व्यावहारिक पहलू इस शिक्षाके प्रधान अंग

* यह संख्या १९३१ की मर्दुमशुमारीसे दी जा रही है। १९४१ की मर्दुमशुमारीमें, न जाने क्यों, अन्धोंको अलग नहीं गिना गया। अतः उनकी वर्त्तमान निश्चित संख्या जाननेका हमारे पास कोई साधन नहीं है। —ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। विशेष प्रयत्नोंके बावजूद जिनका बौद्धिक विकास एक खास सीमासे आगे नहीं ले जाया जा सकता, उन्हें विभिन्न प्रकारकी दस्तकारियाँ तथा अन्यान्य उद्योग-धन्धे सिखाए जाते हैं। (भारतमें इस आयुके अन्धोंकी संख्या ५०,००० है और केवल कुछके लिए नाम-मात्रकी शिक्षाका प्रबन्ध जहाँ-तहाँ है।)

(३) वयस्कोंकी शिक्षा। इसमें प्राथमिक या माध्यमिक पुस्तकीय शिक्षाके विकास-क्रमको देखकर उसके आगेकी शिक्षाका निर्णय छात्रकी रुचि, क्षमता एवं विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थितिको दृष्टिगत रखकर किया जाता है। (भारतमें वयस्क अन्धोंकी संख्या ५५०,०००—अर्थात् कुल अन्धोंका ९१ प्रतिशत—है; पर उनकी शिक्षाका भी कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं है।)

यह तो हुई अन्धोंकी शिक्षाकी रूप-रेखा; पर सरकारको इस बातका प्रबन्ध भी करना चाहिए कि जो अन्धे विभिन्न विद्यालयोंसे शिक्षा प्राप्तकर निकलें, उन्हें उनके उपयुक्त काम भी दिया या दिलाया जाय। इसके बिना उनकी शिक्षाका उद्देश्य—उन्हें आर्थिक रूपसे स्वावलम्बी एवं समाजका उपयोगी अंग बनाना—पूरा न होगा और वे शिक्षितोंकी बेकारी ही बढ़ायँगे। उनके और दृष्टिवालोंके क्षेत्रोंमें इसकी प्रतिक्रिया भी बहुत अच्छी एवं स्वस्थ न होगी। सरकार स्वयं अपने विभागों—विशेषतया स्कूल-कालेजों—में शिक्षित अन्धोंको रखकर तथा उनकी क्षमता-सम्बन्धी अयोग्यताओं एवं भ्रान्तियोंको विशेष क़ानूनों द्वारा हटाकर इस दिशामें अनुकरणीय कार्य कर सकती है।

'लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड'

अन्यान्य बातोंकी तरह अन्ध-शिक्षण-कार्यमें भी बंगाल ही भारतमें अग्रणी रहा है। अन्धे लड़के-लड़कियोंकी शिक्षाके लिए खोला गया कलकत्ता-अन्ध-विद्यालय (Cacutta Blind School) पिछले कई वर्षोंसे इस दिशामें स्तुत्य कार्य कर रहा है। गत १ अगस्त, १९४१ को खोला गया 'लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड' वयस्क अन्धोंकी शिक्षाका भारतमें पहला केन्द्र एवं प्रयत्न है। अभी इसे खुले केवल दो ही वर्ष हुए हैं और खुला भी यह ऐसे समय है, जब कि जनता और सरकारका सारा समय, ध्यान और पैसा विशेषतया युद्ध-सम्बन्धी कार्योंमें ही लग रहा है। फिर भी इन दो वर्षोंमें इसने जो-कुछ किया है, उससे इसके उज्ज्वल भविष्यकी ही सूचना मिलती है।

इस समय लाइट-हाउसमें २१ वयस्क छात्र-छात्राएँ हैं, जिन्हें बेत अथवा बाँसकी चीज़ें (कुर्सी, मोढ़ा तथा टोकरियाँ आदि) बनाने, दर्ज़ीगीरी, संगीत, बढ़ईगीरी, जिल्दसाज़ी, सूत कातने और कपड़ा बुनने तथा हिसाब और पढ़ने-लिखने आदिकी शिक्षा दी जाती है। छात्रोंके खाने-पीने तथा रहने आदिकी व्यवस्था लाइट-हाउसकी तरफ़से ही है और शिक्षाका सारा व्यय भी वहन करता है। शिक्षार्थियोंकी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनेके लिए अमरीकासे एक ब्रेल-प्रेस मँगानेकी भी व्यवस्था की गई थी; पर युद्ध-स्थितिके कारण वह नहीं आ सका। संस्था एकमात्र सार्वजनिक सहायतापर ही अवलम्बित है। अर्थाभावके कारण वह न तो अधिक संख्यामें वयस्क अन्धोंकी शिक्षाका ही प्रबन्ध कर सकती है और न अपना कार्य ही विशेष उन्नत रूपसे कर सकती है। अभी तक कलकत्ता-कार्पोरेशन और बंगाल-सरकारकी ओरसे उसे आर्थिक सहायता देनेके लिए कुछ भी नहीं हुआ है। जनता और सरकारकी यह उपेक्षा सवथा दुखद और अशोभन है। (संस्थाका वर्त्तमान कार्यालय ३९-ए, हरीश मुखर्जी रोड, भवानीपुर, कलकत्तेमें है।)

यद्यपि लाइट-हाउसकी व्यवस्थाके लिए एक सुगठित समिति है और उसे डा० श्यामाप्रसाद मुखोपाध्याय तथा रायपुरके बैरन लार्ड अरुणकुमार सिंह जैसे सम्भ्रान्त व्यक्तियोंका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त है, तथापि उसकी साँस और जीवन-प्राण हैं प्रो० सुबोधचन्द्र राय। आप अवैतनिक रूपसे कार्य करते हैं और कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें अध्यापन-कार्यसे बचनेवाला सारा समय संस्थाको ही देते हैं। संस्थाके लिए धनकी चिन्ता करना, सम्भावित दानियोंके यहाँ दौड़-धूप करना, पाई-पाई सोच-समझकर खर्च करना और खुद उसका दैनिक हिसाब रखना, शिक्षाकी व्यवस्था करना, शिक्षार्थियोंके स्वास्थ्य, रहन-सहन एवं खान-पान तथा उनकी वैयक्तिक समस्याओंकी ओर ध्यान देना और न जाने कितने छोटे-बड़े कामोंका बोझ उन्हींपर है। वे न रात देखते हैं, न दिन; न धूप देखते हैं, न पानी; और हर समय लाइट-हाउसके लिए ही दौड़-धूप करते रहते हैं। ऐसी लगन, तत्परता और एकाग्रता हमने तो दृष्टिवालोंमें भी कम ही देखी है। हमारा विश्वास है, इस सदुद्योगमें देशवासी तन, मन और धनसे पूरी-पूरी सहायता करेंगे।

आज भारतके समस्त अन्धे मानो एक स्वरसे पुकार रहे हैं—'तमसो मा ज्योतिर्गमय!' आइए, हम उनके सघन तमिस्र जीवनमें प्रकाशकी एक क्षीण किरण पहुँचानेमें अपना योग दें। दृष्टिके रूपमें हमें जो न्यामत मिली है, उसका औचित्य तो दृष्टिहीनोंकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करके ही सिद्ध कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

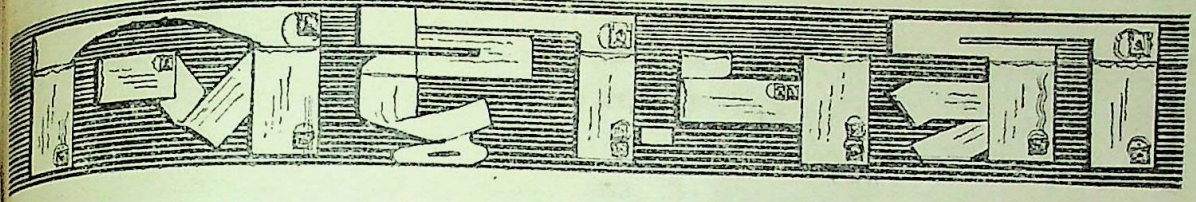

भूषणके विषयमें जिज्ञासा

अप्रैलके 'विशाल भारत'में 'मिश्रबन्धु प्रलाप' नामक पुस्तककी चर्चा वा आलोचना देखनेसे मनमें कुछ विचार उत्पन्न हुए हैं। मुझे पुस्तक देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिए उसके विषयमें मेरा ज्ञान नहींके समान ही है। यह आलोचना कृष्णदेव उपाध्यायके नामसे छपी है। इसके पढ़नेसे यह पढ़ा कि बेताबजीने 'सूर, बिहारी और भूषणको सप्रमाण ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है।' मैंने इन महाकवियोंकी वंशावलीका अध्ययन नहीं किया है; पर भूषणकी जन्मभूमि तिकवाँपुर और उनका वत्सगोत्री त्रिपाठी होना पढ़ा है। इसके विपरीत बेताबजीने 'शिवाबावनी'के 'भणत भूषण भाट सुनौ नौरंगजेब'के आधारपर भूषणको भाट वा ब्रह्मभट्ट प्रमाणित करना चाहा है। मेरे पास काशीसे प्रकाशित भूषण-ग्रन्थावलीकी जो प्रति है, उसमें यह पद नहीं है। पर यदि 'शिवाबावनी'में यह पद हो भी, तो क्या इतनेसे ही भूषण भाट मान लिए जायँगे? अवश्य ही यह प्रमाण अपर्याप्त है।

मराठी बखरमें जहाँ भूषणकी चर्चा हुई है, वहाँ वे मतिराम त्रिपाठीके भाई बताए गए हैं। इसका बेताबजीके पास क्या खण्डन है? इसके सिवा 'विशाल भारत'के इसी अंकके 'हिन्दू-प्रवर्त्तक अकबर' शीर्षक लेखमें श्रीयुत सरदेसाईने लिखा है—'राजा बीरबल उपाधि अकबरने महेशदासको प्रदान की थी, जो अट्टी-निवासी तद्देशीय ब्राह्मण था। उसका धन्धा भाटोंका था। कविताएँ रचकर उन्हें राजाओंको सुनाकर जीविकोपार्जन करना ही उसका काम था।' इसके आगे लेखकने एक जगह लिखा है कि 'सन् १५६२ में अकबरने जयपुरपर आक्रमण किया। उस समय वहाँके राजाने महेशदास भाटको अपनी ओरसे सन्धिकी चर्चा करनेके लिए अकबरके पास भेजा।..... उसने अपनी सुन्दर आकर्षक कविताएँ कर्ण-मधुर स्वरमें गाकर अकबरका मन मोह लिया। अकबर बहुत खुश हुआ और उसने इस कविको खूब इनाम देकर अपने पास ही रख लिया।' इससे क्या यह अनुमान करना अनुचित होगा कि भाट शब्दका प्रयोग कविताके पूर्वक होता था और ऊपरके अवतरणमें भूषणने अपनेको जो भाट कहा है, उसका अर्थ जन्मना नहीं, कर्मणा भाट है? आशा है, बेताबजी इसपर विचार करेंगे। भूषणका जो स्थान हिन्दी-साहित्यमें है, वह न उनके ब्राह्मण होनेसे बढ़ता और न भाट होनेसे घटता है। हमारी तो केवल जिज्ञासा है।

काशी] —अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

नवीन लेखक और सम्पादक

गत मईके 'विशाल भारत'में श्री चन्द्रभानु विशारदने ग्रामीण साहित्यिकोंकी समस्यापर एक पत्र लिखा था और कुछ प्रश्न पूछे थे। साहित्यिक पत्रिकाओं और पुस्तकालयोंका अभाव ही, मेरी दृष्टिमें, ग्रामवासियोंके लिए एक समस्या है, अन्य सब-कुछ गौण है। चालू साहित्यसे परिचय रखनेके लिए किसी एक ही उत्तम साहित्यिक पत्रिकाका आद्यन्त सतर्क अध्ययन कर लेना पर्याप्त है। वैसे तो ग्रामीण साहित्यिकोंको कुछ भी हतोत्साह होनेकी आवश्यकता ही नहीं है। वस्तुतः सत्साहित्यका निर्माण ग्रामोंमें, प्रकृतिके विशद प्रांगणमें, सजग आँखों और स्वच्छ हृदय ही से किया जा सकता है। मौलिक और अनुभूतिपूर्ण रचनाओंका सृजन नगरोंके संघर्ष-कोलाहलमें नहीं होता।

उनके प्रश्न अधिकतर प्रारम्भिक श्रेणीके साहित्यिकोंसे सम्बन्ध रखते हैं—ग्रामीण साहित्यिकोंसे नहीं। रचना-संशोधन आदिके लिए उत्तरोंमें उचित और अमूल्य निर्देश दिए गए हैं। साहित्यिकोंमें परस्पर सम्बन्ध-सहयोगकी भावना जाग्रत करनेकी तीव्र आवश्यकता है, तभी अगले लोग पिछलोंकी सहायता करते हुए साहित्यका भण्डार रत्नोंसे भर सकेंगे। पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ानेके लिए पत्र-सम्पादकोंको लेखकों-कवियोंके निवास-गृह आदिका पूरा परिचय उनके लेखके साथ देना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि समीप रहनेवाले साहित्य-सेवी परस्पर परिचित हो सकेंगे। अत्यधिक दूर रहनेवाले साहित्यिकसे परिचय बढ़ानेमें मुझे विशेष लाभ नहीं प्रतीत होता।

नवीन लेखकोंकी प्रगतिके लिए मेरा यह सुझाव है कि पत्रोंके सम्पादक अपनी रुचि और आवश्यकताके अनुसार कुछ ऐसे विषयोंकी सूचना दो मास पूर्व ही पत्रमें प्रकाशित करवा दिया करें, जिनपर लेखक अपने मौलिक लेख लिखकर भेज सकें। हिन्दीमें इस प्रकारसे प्रकाशनकी शैली प्रचलित नहीं है। इस सुझावसे नवीन लेखकोंका दिग्प्रदर्शन किया जा सकता है और विषय-विषयपर अनेक लेखक तैयार हो सकते हैं। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अधिकतर सम्पादकोंकी सूझ और नवीन लेखकोंको निमन्त्रण देनेकी उदारतापर ही निर्भर करता है। आशा है, सभी पत्रोंके सम्पादक इन बातोंपर विचार करेंगे।

गिरिडीह (बिहार)] —श्रीकुमार शर्मा विद्यालंकार

भारतका राष्ट्रीय इतिहास

भारतीय इतिहास-परिषद् गत चार वर्षोंसे भारतीय विद्वानोंके परस्परके सहयोग द्वारा भारतवर्षका एक सर्वांगीण इतिहास लिखनेकी तैयारीमें लगा है। परिषद्के आरम्भिक दो वर्ष संस्थाको अखिल भारतीय रूपमें संगठित करने तथा भारत एवं लंकाके विभिन्न भागोंके विद्वानोंसे सहयोग प्राप्त करनेमें व्यतीत हुए। इतिहासके लिखे जाने और प्रकाशित करनेकी योजनापर आपसमें विचार करनेमें भी बहुत समय लगा। इसके बाद जनवरी, १९४१ में परिषद्के विवरण-पत्र द्वारा भारतीय राष्ट्रका इतिहास २० जिल्दोंमें लिखे जानेकी योजना प्रकाशित की गई। सात विद्वानोंका एक सम्पादक-मण्डल समूचे इतिहासकी योजना बनाने और उसे चलानेके लिए नियुक्त हुआ। २० जिल्दोंमें से १३ जिल्दोंका काम आरम्भ किया गया और प्रत्येक जिल्द एक या दो सुयोग्य सम्पादकोंके हाथमें सौंपी गई। इन जिल्दोंके सम्पादकोंमें कइयोंने अपनी जिल्दकी तफसीलवार योजना सम्पादक-मण्डलकी सहायतासे तैयारकर अलग-अलग अध्याय विशेषज्ञ विद्वानोंको लिखनेको बाँट दिए हैं। इन जिल्दोंका काम प्रगतिकी विभिन्न मंज़िलोंपर है। आशा की गई थी कि १९४२ के अन्त तक दो जिल्दें तैयार हो जायँगी; पर देशके अशान्त वातावरणके कारण वैसा नहीं हो सका। किन्तु हम लोग अब भी आशा करते हैं कि इस वर्षके अन्दर एक या दो जिल्दें तैयार कर लेंगे।

इतिहास-सम्पादनका कार्य तो हमारे प्रधान-सम्पादक डा० सर यदुनाथ सरकारकी निरीक्षणतामें सन्तोषजनक रूपसे चल रहा है; पर हमारे अध्यक्ष देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादके नज़रबन्द हो जानेसे हमारी आर्थिक दशाको क्षति पहुँची है, क्योंकि इस राष्ट्रीय इतिहासके लिखे जानेके महान कार्यके लिए जो एक बहुत बड़ी रक़म चाहिए, उसके इकट्ठा करनेका भार उन्होंने अपने ही कन्धोंपर लिया था। अभी हमारे मन्त्री प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकारकी नज़रबन्दीसे हमारी कठिनाई—विशेषकर इस सम्बन्धमें—और भी बढ़ गई है। (श्री गदाधरप्रसाद अम्बष्ठ विद्यालंकार, जो उनके साथ गत तीन वर्षोंसे काम कर रहे थे, परिषद्के स्थानापन्न-मन्त्री नियुक्त किए गए हैं।) कठिनाई केवल रुपएकी है। अतएव भारतीय इतिहास-परिषद्के कार्य और उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए राष्ट्रीय इतिहासके इस काममें रुचि रखनेवाले उदार धनी-मानी सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे आगे बढ़ें और अच्छी रक़म प्रदानकर परिषद्को सहायता दें, जिससे आरम्भ किया गया यह महानुष्ठान बन्द न हो जाय।

बनारस] —(प्रो०) व्यंकटेश पुणताम्बेकर, उपाध्यक्ष

हिन्दुस्तानी-एकेडेमीके ४ पुरस्कार

हिन्दुस्तानी-एकेडेमीकी अवधानतामें निम्नलिखित दो विषयों पर व्याख्यानमालाओंके दिलवानेका प्रबन्ध कर लिया गया है। ये व्याख्यान हिन्दी और उर्दूमें सन् १९४३-४४ के भीतर दिए जायँगे। व्याख्यानोंकी तिथियाँ यथासमय सूचित की जायँगी। (१) हिन्दी : हिन्दवी या दक्षिणात्य भाषा तथा साहित्य। व्याख्यानदाता—डा० बाबूराम सक्सेना। (२) उर्दू : अंगरेज़ी-उपन्यासोंका विकास। इसमें अंगरेज़ी-उपन्यासके 'टेकनीक' या रचना-कौशलपर विस्तृत विचार होगा तथा उर्दू-उपन्यासके विकासपर उनके प्रत्यक्ष प्रभावपर प्रकाश डाला जायगा।

निम्नलिखित चार विषयोंपर अप्रैल, १९४१ से मार्च, १९४३ के बीच प्रकाशित हिन्दी और उर्दूकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तकोंपर ५००) के चार पुरस्कार प्रदान करनेका प्रबन्ध हो गया है—(१) जीवन-चरित तथा इतिहास। (२) विज्ञान। (३) पद्य। (४) गद्य।

मुद्रित पुस्तकोंकी सात प्रतियाँ एकेडेमी-कार्यालयमें ३१ जुलाई, १९४३ तक पहुँच जानी चाहिएँ। (ये पुस्तकें लौटाई नहीं जा सकेंगी।) उस तिथिके बाद आनेवाली पुस्तकोंपर विचार न हो सकेगा। पुरस्कार-समितिके सुझानेपर एकेडेमी उक्त पुस्तकोंके अतिरिक्त अन्य पुस्तकोंपर भी विचार कर सकेगी, यदि वे पुस्तकें निर्दिष्ट कालके अन्दर प्रकाशित हुई हों। यदि कोई पुस्तक एकेडेमी द्वारा नियुक्त निर्णायकोंकी रायमें इस प्रकारके पुरस्कारके योग्य एकेडेमी द्वारा निश्चित आदर्शको न पहुँच सकेगी, तो ऐसी अवस्थामें कार्यकारिणीको पुरस्कार रोक लेनेका अधिकार होगा। पुरस्कारोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका पत्र-व्यवहार न हो सकेगा। जो सज्जन भेजी हुई पुस्तकोंकी रसीद पाना चाहें, वे कृपया अपना पैकेट 'एकनालेजमेण्ट डयू' करके भेजें। प्रदत्त पुरस्कारोंकी घोषणा यथासमय पत्रोंमें की जायगी।

इलाहाबाद] —शुकदेवविहारी मिश्र, प्रधान-मन्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

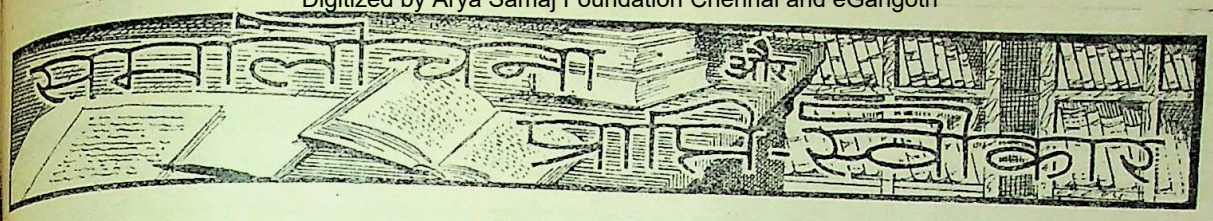

कुण्डलिया रामायण : सम्पादक और टीकाकार—श्री सत्यनारायण पाण्डेय, एम० ए० ; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद ; पृष्ठ-संख्या—डिमाई अष्टपत्री आकारके २१३ ; मूल्य ३), अजिल्द ।

गोस्वामी तुलसीदासजीने जहाँ 'कवित्त-रामायण' (कवितावली), 'गीतावली', 'बरवै रामायण' प्रभृति रामायणें लिखी हैं, वहाँ उनकी एक 'कुण्डलिया रामायण' भी है । गोस्वामीजीका सबसे प्रसिद्ध और मूल्यवान् काव्य 'रामचरित-मानस' है ; परन्तु दुर्भाग्यवश इसका अब तक कोई ऐसा संस्करण नहीं निकला, जिससे सन्तोष होता । यही हाल अन्य रामायणोंका भी है । पं० सत्यनारायण पाण्डेयने 'कुण्डलिया रामायण'का प्रामाणिक संस्करण उपस्थित करनेका जो यह प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि इसमें कोई त्रुटि नहीं है, तथापि इतना कहा जा सकता है कि अब तक इसके जितने संस्करण देखनेमें आए हैं, उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है । इसमें मूलके साथ फुटनोटमें शब्दार्थ दिया गया है और कहीं-कहीं 'रामचरित-मानस', 'गीतावली' अथवा 'कवितावली'के उसी आशयके अवतरण देकर तुलना भी की गई है । इसके अतिरिक्त भूमिकामें (१) कुण्डलिया-छन्दकी उत्पत्ति, (२) 'कुण्डलिया रामायण'की प्रामाणिकता, (३) प्रचारमें बाधाएँ, (४) कथाभाग, (५) तुलनात्मक समीक्षा और (६) वर्णाश्रम-धर्मपर विचार प्रकट किए गए हैं ।

यद्यपि जिस ढंगकी टीका इसमें दी गई है, वह किसी महत्त्वकी नहीं है, तथापि नहींसे यह शब्दार्थ भी बुरा नहीं है । इस ग्रन्थके संस्करणकर्त्तासे हम इस विषयमें सहमत हैं कि अब तक उपलब्ध प्रमाणोंसे गो० तुलसीदासजी ही कुण्डलिया-छन्दके प्रवर्तक हैं और इस प्रकारकी छन्द-रचनाकी प्रवृत्ति उनकी बालकी रचनाके समयसे देखी जाती है, जहाँ दोहेके बाद इनके आरम्भमें वे अन्तिम शब्द दुहराते देखे जाते हैं । जो है, 'अवधी भाषा' हिन्दीके साहित्यिकोंके ध्यानमें इतनी जमी हुई है कि वे इतना भी नहीं सोच पाते कि अवधी कोई भाषा नहीं है और जिस भाषामें जायसीने 'पदमावत' लिखा है, वह बैसवाड़ी है, क्योंकि जायस खास बैसवाड़ेमें है ; और जो यह शिकायत है कि 'उनकी (जायसीकी) काव्य-भाषा ब्रजभाषासे अछूती न बच सकी', वह यह न समझनेके कारण है कि बैसवाड़ा पूर्वी और पश्चिमी बोलियोंकी मिलन-भूमि है ।

तुलसीदासजी मिली-जुली भाषाके पक्षपाती और सबसे बड़े प्रयोगकर्त्ता थे । उन्होंने लिखते समय कभी इस बातका विचार ही नहीं किया कि जो शब्द लिखा जा रहा है, वह कहाँका है । जैसी भाषा 'मानस'में उन्होंने बर्ती है, वैसी ही 'कुण्डलिया रामायण'में भी व्यवहृत हुई है । भाषाके विषयमें जो विवेचन इस ग्रन्थमें किया गया है, वह बहुत सुलझा हुआ नहीं जान पड़ता । उदाहरणार्थ मार्‌यौ, कह्यो, छल्यो, देख्यो, गयौ, नयौ, भयौ एकवचन रूपोंके बहुवचन गे, भे इत्यादि नहीं हैं, जैसा बतानेकी चेष्टा की गई है । एकवचन रूप ब्रज और उससे भी पश्चिममें आज भी प्रयुक्त होते हैं । यद्यपि अन्तिम अपभ्रंश प्राकृतमें तो 'अउ' और 'आ'कारान्त दोनों भूतकालिक रूप लिंग-भेदसे एकवचनमें मिलते हैं ; जैसे :—

गयउ सुकेसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइं हरिणाइं ।
चम्पयं-कुसुमहो मज्झि सहि भसलु पइट्ठउ ।
सोहइ इन्दनीलु जणि कणइ बइट्ठउ ॥

और—भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महाकन्तु ।

पर आगे चलकर 'अउ' अथवा 'औ'कारान्त रूप -पश्चिममें और आकारान्त रूप पूर्वमें प्रचलित हुए । औकारान्त क्रिया-पदोंके बहुवचनोंसे आकारान्त क्रियापदोंके बहुवचनोंमें कुछ अन्तर पड़ता है और इसलिए पाण्डेयजीका यह निर्णय ठीक नहीं कि 'गयौ' और 'भयौ'के बहुवचन 'गे' और 'भे' हैं । इनके बहुवचन होनेमें सन्देह नहीं है सही ; पर ये 'गा' और 'भा'के बहुवचन हैं, 'गयौ' और 'भयौ'के नहीं । 'गयौ' और 'भयौ'के बहुवचन तो 'गये' और 'भये' हैं । खालक़बारीमें अमीर ख़ुसरोने भी 'कह्या' और 'रह्या' जैसे 'बगुफ़्तम मैं तुझ कह्या' और 'कुजा-बेमांदी तू कित रह्या' लिखा है । इसी प्रकार पाण्डेयजीका 'पढ़ाइयौ', 'समुझाइयौ' जैसे क्रियापदोंके विषयमें जो यह विधान है कि ये बहुत पुराने प्रयोग गोस्वामीजीने किए हैं, ठीक नहीं ; क्योंकि ऐसे प्रयोग आधुनिक कवियोंकी रचनाओंमें भी पाए जाते हैं, जैसे—'पापी पियासों कहियो जाय ।' बोल-चालमें तो कहीं-कहीं अब भी इनका व्यवहार देखा जाता है और ४० वर्ष पहले तो लेखोंमें भी 'तू समझाइयो', 'कहियो' इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखनेमें आ जाते थे। 'चढ़ाइहौं', 'देखाइहौं' पश्चिमी और 'चढ़ाउब', 'देखाउब' पूर्वी भविष्यकालिक क्रियापद हैं। यह कहना कि "आज्ञाके योगमें अवधीमें 'हु' आता है, जैसे करहु, रचहु ; परन्तु ब्रजमें 'औ' आता है, जैसे करौ, रचौ इत्यादि" संगत नहीं ; क्योंकि अपभ्रंश प्राकृतकी जो पंक्तियाँ ऊपर उद्धृत की हैं, उनकी पहली ही पंक्तिमें 'पिअहु' आया है। बात यह है कि 'हु'कारान्त प्रयोग प्राचीन और 'औ'कारान्त अर्वाचीन है, और पूर्वमें प्राचीन प्रयोगोंका ही व्यवहार तुलसीदासजी आदिने किया है। प्राचीन रूपोंमें जहाँ-जहाँ 'हु' है, अर्वाचीन रूपोंमें उसका लोप होकर सन्धिके नियमानुसार नवीन रूप बने हैं, जैसे—'पिअहु'का 'ह' लुप्त होकर 'पिअउ' बना और बादको 'अ' और 'उ' की सन्धि होकर 'पिऔ' बन गया। फिर 'पिऔ' 'पियो' हो गया। इसी प्रकार पहला रूप 'पतिन्ह' था, बादका 'पतिन' हुआ। मानसमें हकार बहुधा पाया ही जाता है, जैसे—'दण्ड जतिन्हकर भेद जहँ नरतक नृत्य समाज।' जो हो, फिर भी जहाँ तक अन्य विषयोंका विचार है, पाण्डेयजीने अच्छा परिश्रम किया है।

पुस्तक १९४१ की छपी हुई है, जब कागज़ इतना मँहगा न था, इसलिए ३) दाम बहुत अधिक है। संस्करणकर्त्ताने जहाँ प्रचारमें बाधाओंका वर्णन किया है, वहाँ यदि अगले संस्करणकी नौबत आवे, तो ग्रन्थकी दुर्मूल्यताको भी बाधाओंमें स्थान दे दें, तो उचित होगा। खेद है कि इसके प्रकाशक प्रयागके इंडियन प्रेसका ध्यान इस ओर नहीं गया। —अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

मैथिली-लोकगीत : संग्रहकर्त्ता तथा सम्पादक—श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश' ; भूमिका-लेखक—पं० अमरनाथ झा ; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या ४३२ ; मूल्य ३), सजिल्द।

सभी देशोंके साहित्यमें लोकगीतोंका एक विशिष्ट स्थान रहा है। इन गीतोंका सम्बन्ध देशके जन-साधारणके नित्यके जीवनसे होता है। सभी प्रकारकी काव्यगत कृत्रिमताओंसे विहीन इन लोकगीतोंमें हृदयके जो सच्चे-सरल भाव व्यक्त होते हैं, वे जाति-धर्म-निर्विशेष सभी श्रेणियोंके मानवोंके मर्मको स्पर्श करनेवाले होते हैं। जीवनके ये मधुर-मार्मिक गीत जनताके दैनिक जीवनके अंग बन जाते हैं और जनता इनसे प्राण-रस संग्रहकर अपने कर्म-क्लान्त जीवनको रसमय, माधुर्यमय एवं स्फूर्तिमय बनानेमें समर्थ होती है। अतएव साहित्यके इस मूल्यवान अंगका संरक्षण और उसे मुद्रित रूपमें अमरत्व प्रदान करना आवश्यक ही नहीं, वरन एक महत्त्वपूर्ण कार्य भी है। इस पुस्तकके सम्पादक 'राकेश'जीने मैथिली-लोकगीतोंका यह सुन्दर संग्रह प्रकाशितकर एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। लोकगीतोंके संग्रह करनेमें 'राकेश'जी बड़े परिश्रम, अध्यवसाय और कर्त्तव्य-निष्ठाका परिचय दे रहे हैं। इस कार्यमें उन्होंने जीवनके कितने ही वर्ष व्यतीत किए हैं और आज भी कर रहे हैं। इस प्रकार उनके पास अभी तक हज़ारों लोकगीतोंका संग्रह मौजूद है, जिसके कुछ ही अंश इस पुस्तकमें प्रकाशित किए गए हैं। ये सब गीत यदि क्रमशः प्रकाशित हो जायँ, तो ये सचमुच साहित्यके लिए अमूल्य सम्पद सिद्ध होंगे और साहित्य-रसिकोंका इनसे मनोरंजन एवं आनन्दवर्द्धन होगा।

मैथिली-भाषाके लोकगीतोंमें एक सहज मिठास है, जो सहज ही मनको मुग्ध कर देती है। इन गीतोंमें कहीं प्रेम-रसकी मन्दाकिनी बह रही है, तो कहीं करुण रसकी फल्गु-धारा; कहीं जीवनके उल्लासमय संगीत हैं, तो कहीं विरहके मर्मोच्छ्वास। सभी प्रकारके पर्व-त्योहार एवं मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि शुभ अवसरोंपर गाए जानेवाले ये गीत अपनी मौलिकताको लिए हुए न मालूम कितने युग-युगान्तरोंसे गाँवोंके प्रशान्त वातावरणको अपनी प्राणोन्मादिनी स्वर-लहरीसे प्रकम्पित एवं प्रफुल्लित करते आ रहे हैं। इनकी जादू-भरी स्वर-लहरी आज भी गाँवोंमें गूँज रही है। चाहिए केवल सुननेके लिए कान और दर्द-भरा दिल। एक नमूना लीजिए :—

काजर मसि नख सँ लिख देल ;
हृदयक कागद फारिय देल।

हृदयका काग़ज़ फाड़कर और आँखोंके काजलकी स्याहीमें नखकी क़लम डुबोकर वियोगिनीने पत्र लिखा है। हृदय-रूपी काग़ज़ फाड़कर काजल-रूपी स्याहीमें नख-रूपी क़लम डुबोकर विरहिणी बालाका अपने प्रवासी प्रियतमको पत्र लिखना कितना भावव्यंजक और साथ ही करुण है!

इन ग्राम-गीतोंके संकलनमें विद्यापति, भानुनाथ, सरसराम, हर्षनाथ, नन्दीपति आदि कवियोंके जो गीत दिए गए हैं, वे लोकगीत न कहाकर साहित्यिक गीत या गीत-काव्य कहे जायँगे। ग्राम-गीतोंमें इनका समावेश कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। दूसरी बात यह है कि संकलनकर्त्ताने इन सब गीतोंको लोगोंसे सुनकर ही लिखा है, जिससे कई स्थलोंमें अर्थका अनर्थ हो गया है। यथा, पृष्ठ २२१, तिरहुति नं० २—'ऋतु अवसान वयस मोर भेल।' में 'अवसान' न होकर शुद्ध पाठ 'अवतार' होना चाहिए। अर्थ यह होगा कि ऋतु अर्थात् षट् ऋतु और अवतार अर्थात् दस अवतार। इस प्रकार ६+१०=१६, अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी वयस १६ वर्षकी हुई। लेखकने अशुद्ध पाठके कारण इसका अर्थ लिखा है—'वसन्त-ऋतुका अन्त हो गया', जो ठीक नहीं है। गीतोंका वर्गीकरण कहीं-कहीं भ्रममूलक है। पृष्ठ ६८, गीत नं० १३, 'रुक्मिणी-हरण' नाटकके रचयिता कवि रमापतिका यह गीत 'सोहर' नहीं, 'तिरहुति' है। पृष्ठ १८६, समदाऊनि नं० ११ कबीरपन्थी है। 'वटगमनी' तिरहुतिका ही एक प्रभेद है। दोनोंको पृथक मानना भ्रमपूर्ण है। 'वटसावित्री' जेठ अमावस्याका एक पर्व है, गीतका कोई प्रभेद नहीं। पृष्ठ १३२, तिरहुति नं० १५ समदाऊनि है। पृष्ठ १५३, नचारी नं० ३ नचारी नहीं है। पृष्ठ ५५ सोहर नं० ३ की अन्तिम पंक्ति 'हाथ सँ फेंकल कंकन सऊतिनि जर लागल रे'में 'सऊतिनि जर' मैथिली लोकोक्ति है। सभा ज्वर : सौतिनि ज्वर—सौत होगी, इसकी आशंकासे उत्पन्न रोग। इस पंक्तिका अर्थ ठीक नहीं है।

ये गीत मैथिली-भाषाके प्रतिनिधि गीत नहीं कहे जा सकते। मैथिली-गीत विशुद्ध रूपमें दरभंगा ज़िलेके गाँवोंमें ही प्रचलित हैं। संग्रहके गीतोंमें विकृत मैथिलीके भी उदाहरण हैं। 'झूमर' शब्द शुद्ध मैथिलीमें 'झूमरि' कहा जायगा। 'रजा' मैथिलीका सर्वनाम नहीं है। पृष्ठ २७५, वटगमनी नं० १६ की १९ वीं पंक्तिमें 'ज्यों' शब्द मैथिली नहीं है। क्रियाका रूप भी बहुधा विकृत है। क्रियामें बहुधा अन्तिम ई का अभाव है। इस प्रसंगमें यही समुचित प्रतीत होता है कि संग्रहकर्त्ता महोदयने जिन स्थानोंसे गीतोंका संग्रह किया है, उनका निर्देश गीतोंके साथ ही कर देते। इससे मैथिली-भाषाके द्वन्द्वात्मक वैभिन्न्यका भी परिचय मिल जाता।

इन त्रुटियोंके होते हुए भी हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि 'राकेश'जीका यह संग्रह बहुत ही सुन्दर एवं उपादेय हुआ है, और इस पुस्तकका परायणकर साहित्य-रस-पिपासुओंको अवश्य परितोष प्राप्त होगा। पुस्तककी छपाई-सफाई उत्तम है। अर्थ-सहित इन लोकगीतोंके प्रकाशित होनेसे मैथिली-भाषासे अनभिज्ञ पाठक भी इनका रसास्वादनकर यथेष्ट आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। —जगन्नाथप्रसाद मिश्र

बीरबलकी कहानियाँ : लेखक—चौधरी शिवनाथसिंह शाण्डिल्य ; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली ; पृष्ठ संख्या ४२ ; मूल्य ⅀), अजिल्द।

बीरबलकी सूझ, चातुरी और हाज़िर-जवाबी सुविख्यात है। प्रस्तुत पुस्तकमें उनकी कुछ ऐसी ही शिक्षाप्रद और बुद्धि-दीपक कहानियोंका संग्रह किया गया है, जिनसे उनके इन गुणोंका पर्याप्त परिचय मिलता है। पुस्तकमें कुल २९ कहानियाँ संगृहीत हैं। सभी कहानियोंकी भाषा सरल और मुहाविरेदार है। पुस्तक बच्चोंके बड़े कामकी है।

रूमीकी कहानियाँ : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त ही ; पृष्ठ-संख्या १०१ ; मूल्य ॥), अजिल्द।

मौलाना जलालुद्दीन रूमी फ़ारसके एक बहुत बड़े समदर्शी एवं सर्वात्मवादी सन्त हो गए हैं। उनका 'मसनवी' फ़ारसी-साहित्यका अनूठा ग्रन्थ है। इसका अनुवाद दुनियाकी कई भाषाओंमें हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक इसीमें से ३६ कथाओं एवं उपाख्यानोंका सरल-सुबोध हिन्दीमें भाषान्तर दिया गया है। भक्ति, नीति, अध्यात्म और वैराग्य आदिके ये उपदेश शुष्क और नीरस न होकर काफ़ी सरस और चमत्कारपूर्ण हैं। हिन्दी-पाठकोंके लिए ऐसा उपयोगी ग्रन्थ सुलभ करनेके लिए लेखक और प्रकाशक धन्यवादके पात्र हैं। —'भग्नदूत'

अग्रवाल-जातिका विकास : लेखक—श्री परमेश्वरीलाल गुप्त ; प्रकाशक—श्री काशी-पेपर-स्टोर्स, २१, बुलानाला, काशी ; पृष्ठ-संख्या २०२ ; मूल्य १), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें अग्रवाल-जातिकी उत्पत्ति और उसके विकासका 'मौलिक' इतिहास 'पुरातात्विक प्रमाणोंके आधारपर' लिखा गया है। लेखकका दावा है कि 'इस विषयपर निकलनेको तो बीसियों पुस्तकें निकली हैं ; पर उनमें से कोई भी ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे प्रामाणिक नहीं कही जा सकती।' साथ ही इस पुस्तकके सम्बन्धमें उनका कहना है—'अग्रवाल-जातिके इतिहासपर पहली बार वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे प्रकाश डाला गया है।' और 'इस पुस्तकमें इतिहासकी अपेक्षा ऐतिहासिक विवेचन ही अधिक है।' इसका 'परिचय' श्री बसन्तलाल मुरारका और 'प्रस्तावना' सर सीतारामने लिखी है, जिससे उसकी प्रामाणिकताके बजाय प्रचारमें ही अधिक सहायता मिल सकती है।

सद्गुरु कबीर ज्ञान-परिषदका निवेदन : प्रकाशक—मन्त्री, अखिल भारतीय कबीर-पंथ, सेवा-मण्डल, बड़ौदा।

गत २९, ३०, ३१ मई, १९४२ को परिषदका पहला अधिवेशन बड़ौदामें हुआ था। प्रस्तुत निवेदनमें उसीका विवरण एवं आय-व्ययका उल्लेख है। कबीर साहबने सहिष्णुता, अहिंसा और नीच-ऊँचका भेद मिटानेके जो अमूल्य उपदेश दिए हैं, उनके महत्व, आवश्यकता एवं उपयोगिताके बारेमें कोई दो मत नहीं हो सकते। उनका जितना अधिक प्रचार हो, अच्छा है। इस दृष्टिसे हम परिषदका स्वागत करते है। —'निर्मम'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

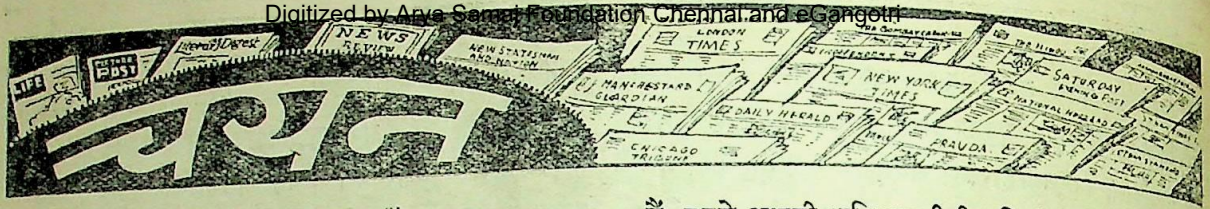

चीनकी सूंग बहनें

सूंग बहनें वर्त्तमान चीनकी सबसे अधिक उल्लेखनीय महिलाएँ हैं। अपनी तीव्र बुद्धि, संगठन करनेकी योग्यता, वाक्-पटुता और आकर्षणके कारण वे किसी भी समाजमें अग्रणी-पद प्राप्त कर सकती हैं। चीनके वर्त्तमान महिला-समाजके सर्वोत्तम गुणोंका ही वे प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, बल्कि चीनी महिलाओंके उस समस्त प्रयत्नका भी, जो वे स्वतन्त्रताके युद्धके लिए पुरुषोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर कर रही हैं।

सबसे बड़ी बहन इलिंग चीनके अर्थ-मन्त्री डा० एच० एच० कुंगकी पत्नी और अर्थशास्त्रकी विशेषज्ञा हैं। जब अगस्त, १९३७ में जापानने चीनपर आक्रमण किया, तो श्रीमती कुंग युद्ध-कार्यमें तत्परतासे संलग्न हो गईं। आपने अपनी निजी रक़मसे आहतोंको ले जानेवाली मोटरें तथा सेनाके लिए ठेला-मोटरोंका प्रबन्ध किया, सुसज्जित अस्पताल खोले और स्वाधीनता-ऋणपत्रोंकी बिक्रीका संगठन किया। जब औद्योगिक सहकारिता-समितियोंको जन्म दिया गया, तो श्रीमती कुंगने इस आन्दोलनको अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। वस्त्र तथा अन्य उद्योगोंमें भी आप विशेष रुचि रखती हैं। आपको आशा है कि पानीकी व्यवस्था और मशीनके यन्त्रोंसे जब चीनी गृहणियोंका काम हल्का हो जायगा, तो उन्हें अधिक स्वतन्त्रता तथा अवकाश मिलेगा।

दूसरी बहन श्रीमती चिंगलिंग आदर्शवादी हैं। आप श्रेष्ठ चरित्रकी रूपवती महिला हैं, जिन्होंने अपना जीवन अपने पति डा० सुनयात-सेनके कार्यको जारी रखनेमें लगा दिया है। २० वर्षकी आयुमें आपने डा० सुनयात-सेनसे विवाह किया। विवाहके कुछ ही वर्ष बाद चीनी जनताको घोर परिश्रमसे राजनीतिकी शिक्षा देनेके बाद डा० सुनका देहान्त हो गया। श्रीमती चिंगलिंगने डा० सुनके सेक्रेटरीके रूपमें परिश्रमसे काम किया। उनकी मृत्युके पश्चात् आपने कुओमिंतांग स्कूलमें उनका कार्य जारी रखा और कुओमिंतांग-दलकी प्रधान कार्य-समितिमें भी काम किया। जब श्री च्यांगकाई-शेक और कम्यूनिस्तोंके बीच मतभेद उत्पन्न हो गया, तो आप सार्वजनिक जीवनसे अलग हो गईं। विदाईके सन्देशमें आपने अनुरोध किया कि सर्वसाधारण और जनताके आधारपर नवीन चीनका निर्माण किया जाय। देहातके लोग आज सर्वत्र जो छापामार लड़ाई लड़ रहे हैं, उससे आपकी भविष्यवाणीकी पुष्टि होती है। तीनों बहनोंमें सबसे पहले श्रीमती सुनने औद्योगिक सहकारिता-समितिके आन्दोलनमें रुचि प्रकट की और क्रियात्मक सहयोग प्रदान किया।

सबसे छोटी बहन मेलिंगकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है और समस्त संसारमें आप श्रीमती च्यांगकाई-शेकके नामसे विख्यात हैं। आपकी शक्ति, उत्साह और व्यावहारिक योग्यताकी परीक्षा विविध क्षेत्रोंमें हो चुकी है। आपने चीनी वायु-सेनाका संगठन किया है। जनरलिसिमोके समस्त विदेशी पत्र-व्यवहारका कार्य आप ही करती हैं, महिलाओंके युद्ध-कार्यका संचालन करती हैं और शिक्षकोंको स्वयं ट्रेनिंग देती हैं, जो देहातमें जाकर स्वास्थ्य-केन्द्रोंका संगठन करते हैं। श्रीमती च्यांगने कितने ही युद्ध-अनाथालय स्थापित किए हैं, जहां हज़ारों गृहविहीन बच्चोंका पालन-पोषण होता है और उन्हें शिक्षा दी जाती है। हाल ही में आपने अमरीकाकी कांग्रेसके सम्मुख जो भाषण दिया था, उसके सम्बन्धमें कहा गया है कि विदेशी राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंने अब तक जितने भाषण दिए हैं, उनमें यह सबसे श्रेष्ठ था।

युद्धके कारण सूंग बहनें एक-दूसरेके और भी अधिक निकट सम्पर्कमें आ गई हैं। चीनके युद्ध-प्रयत्नोंके लिए दृढ़ संकल्पकी भावनामें उनके मतभेद विलीन हो गए हैं। चीनी महिला-समाजको आप तीनों बहनोंसे बहुत-कुछ आशा है। इतिहास सदा स्मरण करता रहेगा कि आधुनिक चीनके निर्माणमें सूंग बहनोंका सबसे अधिक हाथ था। ('भारतीय समाचार')

बंगालमें अंगरेज़ीका सर्वप्रथम विद्वान

बंगालमें अंगरेज़ी-भाषा जाननेवाला सबसे पहला व्यक्ति एक साधारण धोबी था! अंगरेज़ी-बँगला-शब्दकोषके सर्वप्रथम रचयिता श्री रामकमल सेनने अपनी उक्त पुस्तककी भूमिकामें बताया है कि कलकत्ता पहुँचनेवाला सर्वप्रथम अंगरेज़ कप्तान जब अपना जहाज़ लेकर बन्दरगाहमें पहुँचा, तो उसने वहांके लोगोंसे एक दुभाषिया भेजनेके लिए अनुरोध किया। अंगरेज़ सौदागरों और कलकत्तेके जुलाहोंके बीच मध्यस्थता करनेवाले सेठोंने अपनी अज्ञानतावश उस जहाज़पर एक ऐसे व्यक्तिको भेज दिया, जो एक साधारण धोबी था। धोबीने कप्तानसे उसके साथ रहकर अंगरेज़ीका जो ज्ञान प्राप्त किया, उसीके आधारपर श्री सेनने उस धोबीको बंगालका सर्वप्रथम अंगरेज़ी-भाषाका विद्वान बताया है। ('भारत')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

अलविदा, लार्ड लिनलिथगो !

गत २२ अक्टूबर, १९४२ को क्वेटाकी म्युनिस्पल-कमेटी और शाही जिरगेकी ओरसे भेंट किए गए मानपत्रका उत्तर देते हुए लार्ड लिनलिथगोने कहा था—"भारतमें मेरा कार्य-काल समाप्त हो रहा है—कुछ ही महीनोंमें मैं अपने उत्तराधिकारीको कार्य-भार सौंप दूँगा।" अब आठ महीने बाद, बड़ी खोज-बीन करनेपर, कहीं आपके उत्तराधिकारीका प्रबन्ध हो सका है और आगामी अक्टूबरमें आप भारतसे तशरीफ़ ले जा रहे हैं।

लार्ड डलहौज़ीकी भाँति आप भी ७ वर्ष तक भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल रहे, यद्यपि आपका कार्य-काल डलहौज़ीके मुकाबलेमें राजनीतिक दृष्टिसे कहीं अधिक घटनापूर्ण और सरगर्म रहा। वाइसराय होनेसे पहले आप कृषि-कमीशनके अध्यक्षके रूपमें भारत आए थे। देशके विभिन्न भागोंका दौरा करनेके बाद कमीशनने यहाँकी उपज बढ़ानेके लिए एक भारी-भरकम रिपोर्ट पेश की थी। उसके परिणाम-स्वरूप उपज तो बढ़ी नहीं; पर कुछ नौकरियाँ और खर्चे ज़रूर बढ़ गए! इसके बाद, भारतके इसी अनुभवके आधारपर, आप १९३५ के गवर्मेण्ट आफ़ इण्डिया बिलका मसविदा तैयार करने-वाली संयुक्त पार्लमेंटरी कमेटीके अध्यक्ष बनाए गए। पार्लमेण्ट-री सरितासे जब आप जैसे-तैसे उस प्रतिगामी बिलकी छिद्रमय नौकाको पार लगा ले गए, तो उसे राष्ट्रीय भारतके तूफ़ानी समुद्रमें से निकालनेकी ज़िम्मेदारी भी ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंने आपपर ही डाली। फलतः १९३६ में कृषि-विशेषज्ञ लार्ड लिनलिथगो, जिन्हें कुछ दिनों भारत-सरकारके आतिथ्यके बाद इस देशका पर्याप्त 'अनुभव' प्राप्त हो चुका था, वाइसराय होकर भारत आए।

आपकी योग्यता और मनोवृत्तिके बारेमें यद्यपि भारत-वासियोंको कोई खास जानकारी नहीं थी, फिर भी आपकी नियुक्तिके बारेमें जो-कुछ उन्होंने सुना-जाना, उसीके आधारपर आपका स्वागत हुआ और देशमें एक नई आशाका संचार हुआ। हरिजनों और गायोंके प्रति हार्दिक दिलचस्पी, छात्रोंके स्वास्थ्यकी चिन्ता और भारतकी राजनीतिक आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूति-पूर्ण भाषणोंने आपकी लोकप्रियताको और भी बढ़ा दिया। इसके बाद आया १९३५ का नया विधान और अचानक जैसे सारा दृश्य ही बदल गया! यद्यपि आपने कुछ समय बाद अपने हस्तक्षेपके बारेमें स्पष्टीकरणकर देशकी एकमात्र प्रतिनिधि राजनीतिक संस्था कांग्रेसको पद ग्रहण करनेके लिए राज़ी कर लिया; पर आपको यह भलीभाँति अनुभव हो गया कि पग-पगपर जनताके प्रतिनिधियोंको असली सत्ता न सौंपनेकी पाब-न्दियों एवं प्रतिरोधोंका पिटारा, यह नक़ली स्वशासन-विधान, कितना थोथा, बेअमल और छल-कपटपूर्ण है!

इसके बाद वर्तमान महायुद्ध छिड़ा और प्रान्तीय स्वाधी-नताका रहा-सहा खोखलापन भी स्पष्ट हो गया! जब प्रान्तीय मन्त्रियोंकी आँखोंके सामने, शायद उनकी स्वीकृति-सहमतिके बिना ही, शासनमें 'बाहरी' हस्तक्षेप होने लगा, तो कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंने इस्तीफ़े देकर पानीके इस बुलबुलेको अन्तिम रूपसे फोड़ दिया और गवर्नर नए विधानकी धारा ९३ के अनुसार प्रान्तोंके कर्ता-धर्त्ता-विधाता बन बैठे! विधानके दूसरे अंग संघ-शासन (फेडरेशन) की तो गर्भमें ही मृत्यु हो गई! पर लार्ड लिनलिथगोने इतनेपर भी हिम्मत नहीं हारी और अपनी काग़ज़ी नावको आर्डिनेंसोंके बलपर खेते ही रहे। स्व० विट्ठलभाई पटेलने एक बार भारतके भूतपूर्व भद्र ईसाई वाइस-राय लार्ड अरविन (अब हेलीफेक्स) को साश्चर्य १३ आर्डिनेंसोंका विधाता बताया था। यदि आज वे जीवित होते, तो पता नहीं लार्ड लिनलिथिगोके बारेमें क्या कहते?

पाठक, और लार्ड लिनलिथगो भी, हमें ग़लत न समझें। व्यक्तिगत रूपसे उनके प्रति हमारे मनमें कोई द्वेष या दुर्भावना नहीं है। अगर कुछ है, तो पर्याप्त दया और सहानुभूति ही। उन्होंने एक ऐसे असम्भव कार्यको अपने हाथमें लिया, जिसमें विफलता १०० प्रतिशत अवश्यम्भावी थी। इसमें दोष उनका नहीं, ब्रिटेनके उस प्रतिगामी साम्राज्यवादी टोरी-गुट्टका है, जो भारतके ४० करोड़ लोगोंको स्वाधीनताके नामपर कोरा दम-क्षांसा देकर फुसलाना चाहता है। यह करिश्मा एक लिनलिथगो तो क्या, सैकड़ों चर्चिल और हज़ारों एमरी भी शायद न कर सकें। हाँ, अगर लार्ड लिनलिथगोका कोई दोष है, तो यही कि उन्होंने 'व्यक्ति लिनलिथगो' पर 'वाइसराय लिनलिथगो'को हावी और विजयी होने दिया और गांधीजीके 'मित्र' होकर भी उनके ब्रिटेन और भारतकी स्थायी मैत्रीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्नको धूलमें मिल जाने दिया। शायद इसीलिए लार्ड लिनलिथगो रीडिंगसे अधिक चतुर और अरविनसे अधिक लोकप्रिय होकर भी विलिंगडनसे अधिक प्रतिगामी ही सिद्ध हुए हैं। कदाचित वे भी इसे महसूस करते हों।

वैवल : फौजी और राजनीतिज्ञ

गत १८ जूनको नई दिल्लीसे प्रकाशित एक विज्ञप्तिमें भारतके फ़ौजी-लाट फील्ड-मार्शल सर आर्चीबाल्ड पर्सीवल वैवलको भारतका वाइसराय बनाए जानेकी घोषणा की गई है। एक आँखवाले, ६० वर्षीय, भारतके मनोनीत वाइसराय लार्ड वैवल १९०८ में भारतके सीमा-प्रदेशमें लड़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त आप दक्षिण-अफ्रीका, फ्रांस, मिस्र, फिलस्तीन आदिमें भी लड़ चुके हैं। भारतके प्रधान सेनापति होनेके बाद आप सुदूर-पूर्व और मध्य-पूर्वमें हुए कई युद्धोंका संचालन भी कर चुके हैं। आपने प्रसिद्ध अंगरेज़ सेनापति जनरल एलेन-बीकी—जिसके कि आप शिष्य रह चुके हैं—एक प्रामाणिक जीवनी भी लिखी है। कवितासे आपको विशेष प्रेम है और रूसी, अरबी तथा यूनानी भाषाओंके आप अच्छे जानकार हैं।

आपकी फ़ौजी क्षमता एवं दूरदर्शिताके बारेमें न तो हमारी कोई विशेष जानकारी है और न उसके सम्बन्धमें मत देनेके हम अधिकारी ही हैं। परन्तु इतना कहनेकी धृष्टता तो हम करेंगे ही कि मलय, सिंगापुर, यव (जावा), सुमात्रा, बोर्नियो तथा बर्माकी हानियोंके लिए व्यक्तिगत रूपसे भले ही आप ज़िम्मेदार न हों; पर एक कुशल सिपाही और सेनापतिकी हैसियतसे आप उन सम्भावनाओं एवं प्रगतियोंको भाँपने और उनकी धाराको अपने पक्षमें मोड़नेमें सफल नहीं हुए, जो आगे चलकर उपर्युक्त हानियोंका कारण बनीं। कमसे कम इन मौक़ों पर तो हमें आपकी फ़ौजी दूरदर्शिताका विशेष परिचय नहीं मिला।

आपकी राजनीतिज्ञताके बारेमें भी हमारी कोई खास जानकारी नहीं। पिछले दिनों जब क्रिप्स-योजनाको लेकर भारतीय नेताओंसे क्रिप्सकी बातचीत हो रही थी, तो यह सुननेमें आया था कि फील्ड-मार्शल वैवल भारतीयोंको रक्षा-विभाग सौंपनेके खिलाफ़ हैं। इस प्रसंगमें पं० जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, क्रिप्सके सुझाव एवं अनुरोधपर, आपसे मिले भी थे। आपसे उनकी क्या बातें हुईं, यह तो हमें नहीं मालूम; पर इस सम्बन्धमें निकले वक्तव्यमें उन्होंने कहा था कि 'वैवलसे जितनी देर बातचीत हुई, भारतकी रक्षाका प्रश्न उन्होंने छुआ तक नहीं और हमें ऐसा लगा, मानो किसी राजनीतिज्ञसे बातचीत हो रही है।' जो मन तथा पेशेसे सिपाही हो, उसकी राजनीतिकी कल्पना ही की जा सकती है।

भारतके सम्बन्धमें आप क्या-कुछ जानते हैं, इसे आप ही के मुँहसे सुनिए। गत २२ जूनको लन्दनके इंडिया-आफ़िसमें वाइसरायके मिल जानेकी खुशीमें एक प्रेस-कान्फ्रेन्स बुलाई गई थी, जिसमें आपने अपना लिखित वक्तव्य पढ़ा था। इसमें आपने कहा था—"...मैं केवल यह कह सकता हूँ कि मैं भारतका एक सच्चा मित्र हूँ और पूर्ण हृदयसे उसकी राजनीतिक विकासकी आकांक्षाओंसे सहानुभूति रखता हूँ और उसके भविष्यमें मेरा दृढ़ विश्वास है। भारतमें मेरे एक मातहत अफ़सरके रूपमें ५ श्रेष्ठ वर्ष और बादमें उसके प्रधान सेनापतिके रूपमें दो अत्यन्त दिलचस्प वर्ष बीते हैं।" आगे चलकर आपने कहा—"मैं इस बातसे पूर्ण परिचित हूँ कि उस महादेशके बारेमें मैं कितना कम जानता हूँ और वहाँ जानेसे पहलेके हफ़्तोंमें मैं वहाँकी स्थितिका अध्ययन करूँगा, सलाह लूँगा और मैं आशा करता हूँ, अपना दिमाग़ खुला रख सकूँगा।" फिर आगे आपने कहा—"अभी तक तो स्वभावतः मैंने अन्य श्रेणियोंकी अपेक्षा भारतके सिपाहियोंको ही विशेष रूपसे देखा है।" गत २८ जूनको भारतीय सैनिकोंके नाम दिए गए अपने सन्देशके दौरानमें आपने कहा है—"मैं स्वभावतः आगे भी भारतके नाविकों, सैनिकों और उड़ाकोंके हितोंका ध्यान रखूँगा...।"

निःसन्देह यह भारतका सौभाग्य ही है कि ऐसे संकटके समय उसे एक और ऐसा 'सच्चा मित्र' मिला है, जो उसकी राजनीतिक विकासकी आकांक्षाओंसे हार्दिक सहानुभूति रखता है। पर दुर्भाग्यवश केवल सैनिकोंकी जानकारी और नाविकों, सैनिकों तथा उड़ाकोंके हितोंका ध्यान रखनेवाला यह मित्र भारतकी राजनीतिक आकांक्षाओंको कहाँ तक महसूस या पूरा कर सकेगा, यह शंका सन्देहसे खाली नहीं है। ४० करोड़ भारतीयोंमें से कितने सैनिक, नाविक और उड़ाके हैं? फिर इण्डिया-आफ़िसमें ब्रिटेनके वेतनभोगी कर्मचारियोंके भ्रान्तिपूर्ण खरीतोंके अलावा भारतकी यथार्थ स्थितिकी जानकारी करानेवाली कौन-सी साधन-सामग्री है? और क्या उस सामग्रीसे, उस वातावरणसे, भारत आनेसे पहलेके केवल कुछ हफ़्तोंमें ही वैवल भारतकी वस्तु-स्थितिका समीचीन अध्ययन और ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे!

लेकिन ब्रिटिश अधिकारियोंको इन बातोंसे लेना ही क्या! जब कोई राजनीतिज्ञ—जो केवल आज्ञा देने और आज्ञा पालन करनेका अभ्यस्त नहीं होता—भारतका वाइसराय बननेको तैयार नहीं हुआ, तो यह सौभाग्य वैवलको बख्शा गया! और इसपर भी एमरी साहबको नाज़ है कि "इस बातसे कोई इन्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करेगा कि फील्ड-मार्शल वैवलकी नियुक्तिका—जो बड़ी कल्पनाशील है—अच्छा स्वागत हुआ है। मि० चर्चिल और उनके सहयोगी इस बातके लिए बहुत उत्सुक थे कि भारतके लिए एक ऐसा सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ढूँढ़ा जाय, जो प्रधान-मन्त्री ही की तरह एक महादेशका न केवल इस युद्धमें फ़ौजी संचालन तथा युद्ध-नीतिकी समस्याओंको बखूबी समझते हुए हो, बल्कि शान्ति और मुल्की शासनके रूपमें भी, मार्ग-प्रदर्शन कर सके।"

पहला फ़ौजी वाइसराय

यद्यपि गत वर्ष सम्भावित वाइसरायोंमें सर वैवलका नाम भी लिया गया था; पर इस बातकी यथार्थताकी शायद ही किसीने कल्पना की हो। कदाचित् इसीलिए देश-विदेशोंमें इस नियुक्तिपर काफ़ी आश्चर्य प्रकट किया गया है, और ब्रिटिश मन्त्री तथा अधिकारियोंने इसे सब तरहसे उचित सिद्ध करनेके लिए इस महँगीके ज़मानेमें भी क़लम-दावात और काग़ज़का खासा उपयोग किया है। भारतीय लोकमतने इसपर जो अप्रसन्नता और उदासीनता दिखलाई है, उसका उल्लेख अनावश्यक होगा। स्थानीय 'हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड'के वाशिंगटन-स्थित संवाद-दाता कहना है कि यह नियुक्ति चर्चिल-रूज़वेल्ट-बातचीतके क्रममें वहीं तय हुई थी। वहाँकी एक प्रेस-कान्फ्रेन्समें भारतके सम्बन्धमें पूछे गए प्रश्नोंके उत्तरमें चर्चिलने कहा बतलाते हैं कि ब्रिटेन जापान-विरोधी युद्धको अधिक तगड़ा करनेके लिए जुटा है।' इस बातसे वैवलकी नियुक्तिसे यह आशा बँधनी स्वाभाविक है कि मित्र-राष्ट्र अब जापानके विरुद्ध ज़ोरदार अभियान शुरू करने जा रहे हैं। पर वैवलकी नियुक्तिवाली घोषणामें ही यह भी कहा गया है—"यह तय किया गया है कि जापानके विरुद्ध होनेवाले युद्धके संचालनकी ज़िम्मेदारीसे भारतके फ़ौजी-लाटको मुक्त कर दिया जाय और इसके लिए दक्षिण एशियाका पृथक सेनापतित्व स्थापित किया जाय। इस घोषणामें शीघ्र ही एक और घोषणा की जायगी।" इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि जापान-विरोधी युद्धके संचालनकी वास्त-विक ज़िम्मेदारी भारतके वाइसराय या फ़ौजी-लाटपर नहीं होकर सेनापति जनरल स्टिलवलको ही सौंपा जायगा।

तब प्रश्न होता है कि वाइसरायके पदपर एक पेशेवर फ़ौजी को क्यों नियुक्त किया गया? फ़ौजी और राजनीतिज्ञका सम्बन्ध लोकतन्त्रका मेरुदण्ड है, जो पिछली कई शताब्दियोंके राजनैतिक संघर्षों और नैतिक बलिदानोंके बलपर ब्रिटेन और अमरीकामें पनप रहा है। हिटलर, मुसोलिनी, तोजो आदिके शासनका इसीलिए अन्त करनेकी बात कही जाती है कि यह स्वेच्छाचारी ग़ैर-ज़िम्मेदार फ़ौजी-मनोवृत्तिके तानाशाह अपने-अपने राष्ट्रकी विकास-धाराको शान्ति-समता-समृद्धिके बजाय संघर्ष-साम्राज्यकी ओर मोड़कर न केवल अपने ही देशोंकी, बल्कि संसारकी सुख-शान्ति-समृद्धिको भी असम्भव बनाए हुए हैं। स्वयं सर वैवलने अपने केम्ब्रिज-भाषणोंके दौरानमें इस भेदपर प्रकाश डालते हुए कहा था :—

"Interchangeability between the soldier and the statesman passed for ever, I fear, in the last century. The Germans professionalised the trade of war and modern inventions by increasing its technicalities, have specialised it. It is much the same with politics, professionalised by democracy. No longer can one man hope to exercise both callings, though both are branches of the same craft, the governance of men and the ordering of human affairs...The politician, who has to persuade and confute, must keep an open and flexible mind, accustomed to criticism and argument; the mind of the soldier, who commands, and obeys without question, is apt to be fixed, drilled and attached to definite rules."

—अर्थात् फ़ौजी और सिपाहीके अदल-बदलकी प्रथाका पिछली शताब्दीमें शायद सदाके लिए अन्त हो गया।...एक आदमी दोनों काम नहीं कर सकता। राजनीतिज्ञका काम लोगोंको समझा-बुझाकर राज़ी करना या खण्डन-मण्डन करना होता है, अतः उसे अपना दिमाग़ खुला और लचीला बनाना पड़ता है। पर सिपाहीको चूँकि बिना किसी चीं-चपड़के हुक्म मानना और हुक्म देना पड़ता है, स्वभावतः वह स्थिर-मत और निश्चित नियमोंका आदी होता है।

गत २२ जूनको लन्दनसे दिए गए वक्तव्यमें यद्यपि सर वैवलने कहा है कि 'मैंने अपनी वर्दी उतार दी है और इस आशासे अपना फ़ौजी जीवन खत्म कर दिया है कि मैं एक मुल्की अधिकारीकी हैसियतसे हमारे उद्देश्य और भारतकी बेहतर सेवा कर सकता हूँ;' फिर भी आगे चलकर वे इस तथ्यको कहे बिना भी नहीं रह सके हैं—'आप लोगोंकी स्वभावतः यह धारणा होगी कि यह इतना आसान नहीं है कि केवल एक पोशाक बदल लेनेसे ही मस्तिष्ककी फ़ौजी आदत भी बदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय !' उनकी पहलेकी और अबकी बातोंका अन्तर अपने-आप ही स्पष्ट हो जाता है।

यहाँ हमें गत महायुद्धके समयका कर्ज़न और किचनरका वह झगड़ा याद आ जाता है, जब लार्ड किचनरने भारतीय सेनाकी पुनर्व्यवस्थाके लिए अनियन्त्रित अधिकार चाहे थे और लार्ड कर्ज़नने उसका विरोध करते हुए सेनाको मुल्की शासनके अधीन—न कि मुल्की शासनको सेनाके अधीन—होनेकी बातपर ज़ोर दिया था। इस सिद्धान्तकी रक्षाके लिए कर्ज़नको अपने पदसे इस्तीफ़ा तक देना पड़ा था। बादमें किचनरने लार्ड मिण्टोकी जगह वाइसराय बननेकी भी कोशिश की; पर लार्ड मार्ले द्वारा कठोर विरोध किए जानेके कारण ऐसा नहीं हो सका। लार्ड मार्लेके विरोधके कारण एक फ़ौजी लाहौर-हाईकोर्टका विचारपति भी नहीं बन सका। कुछ वाइसरायोंने मुल्की पदोंपर फ़ौजियोंको जब-तब नियुक्त किया; पर लार्ड डलहौज़ीने आकर इस प्रथाका अन्त कर दिया। ड्यूक आफ़ आर्गिल जब भारत-मन्त्री थे, तब उन्होंने भी इस तरहकी नियुक्तियोंका डट-कर विरोध किया। लार्ड मिण्टोने भी अपने वाइसराय-कालमें बर्मामें मुल्की पदोंपर होनेवाली फ़ौजियोंकी नियुक्तियोंका एकदम अन्त कर दिया। लेकिन इस समय बात ही कुछ और है। युद्ध-स्थितिकी ओट लेकर सरकार जहाँ चाहे फ़ौजियोंको नियुक्त कर सकती है। और तो और, भारतके खाद्य-मोर्चेपर भी एक फ़ौजी (मेजर-जनरल वुड) ही विराजमान है!

बाहरी आक्रमणकी आशंका या आन्तरिक अशान्ति द्वारा भी वैवलकी नियुक्तिका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। कारण, ये दोनों बातें १८५७ के बादसे कई बार सम्भव दिखाई पड़ी हैं; पर इनके लिए कभी भी फ़ौजी वाइसराय नियुक्त नहीं किया गया। सच तो यह है कि इस नियुक्ति द्वारा चर्चिलने भारतके फ़ौजी अधिकारको खुल्लमखुल्ला सत्यके रूपमें स्वीकार किया है। एक ऐसे युद्धके समय, जो कि विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रके लिए लड़ा जा रहा है, और जब कि भारतको स्वशासनकी ओर ले जानेके दावे किए जा रहे हैं, एक पेशेवर फ़ौजीके हाथमें ४० करोड़ लोगोंका भाग्य सौंप देना क्या अर्थ रखता है, यह संयुक्त-राष्ट्र ही बताएँ। लार्ड मार्लेने एक बार ब्रिटिश पार्ल-मेंटमें कहा था कि '१९वीं शताब्दीमें इंग्लैण्डने १११ लड़ाइयाँ लड़ीं, जिनके लिए उसे एक पेनी भी खर्च नहीं करनी पड़ी!' यह बताना शायद उन्होंने अनावश्यक समझा कि उन सबका जन और धनका खर्च भारतने वहन किया था!! चर्चिल और एमरी भला भारतकी इस क्षमतासे लाभ उठानेसे क्यों चूकने लगे? स्वयं मनोनीत वाइसराय महोदयने अपने २२ जूनके वक्तव्यमें कहा है—"भारत संयुक्त-राष्ट्रोंकी पूर्वी युद्ध-नीतिमें युद्ध-सामग्री पहुँचानेका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है और यहाँसे भारतके युद्ध-प्रयत्नको काफ़ी तेज़ीसे उन्नत और व्यापक बनाया जा सकता है।"

युद्ध-प्रयत्न और जनता

लेकिन युद्ध-प्रयत्नको उन्नत और व्यापक बनानेके लिए जनताका सम्पूर्ण हार्दिक सहयोग भी तो अनिवार्य है। लन्दनके सहयोगी 'इकोनोमिस्ट'के शब्दोंमें इसके लिए भारत और ब्रिटेनका पारस्परिक अविश्वास दूर किया जाना निहायत ज़रूरी है। युद्ध-प्रयत्नको स्वयं भारतीय जितना उन्नत और व्यापक बना सकते हैं, उसकी शायद ब्रिटेनके अदूरदर्शी राजनीतिज्ञ कल्पना भी नहीं कर सकते। पर इसके लिए उन्हें पहले अपने-आपपर और फिर भारतीयोंपर पूरा विश्वास करना होगा। किन्तु वैवलकी नियुक्तिसे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भारतकी समस्याको एक फ़ौजी मसलेसे अधिक कुछ नहीं समझते। चर्चिल और एमरीने विश्व-लोकमतकी उपेक्षाकर सदा भारतीय समस्याके सन्तोषजनक हलकी तरफ़से उदासीनता ही प्रकट की है। सर वैवल यदि चाहें और साहससे काम लें, तो इनकी अहम्मन्यता, अदूरदर्शिता एवं अविचारसे संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नमें आज जो बाधा उपस्थित हो रही है, भारतीयोंके सम्पूर्ण हार्दिक सहयोग द्वारा उसे दूरकर विजयमें बहुत बड़ी सहायता पहुँचा सकते हैं। इस रूपमें वे न केवल भारत या ब्रिटेनकी, बल्कि विश्व-मानवताकी भी बहुत बड़ी सेवा और सहायता कर सकते हैं।

पर जब तक ऐसा नहीं होता, पूर्वकी लड़ाईमें, जिसका सीधा सम्बन्ध भारतसे है, भारतकी कोई आवाज़ नहीं होगी। कांग्रेसी नेता, जो युद्ध-प्रयत्नको यथार्थमें उन्नत और व्यापक बना सकते हैं, जेलोंमें बैठकर युद्धकी विजय और उसके बाद भारतके 'आज़ाद' होनेकी प्रतीक्षा करेंगे; जनता कपड़ों और खाद्य सामग्रीके लिए त्राहि-त्राहि करेगी; गवर्नर सलाहकारों या लीगी-मन्त्रियों और वाइसराय पुनर्गठित 'भारतीय' व्यवस्थापिका परिषद्की सहायतासे युद्ध-प्रयत्नको उन्नत और व्यापक बनायेंगे। इस तरहकी विचार-धारा सर्वथा अहितकर, असंयत एवं अन्याय-न्यतापूर्ण है। कदाचित् इसीलिए ब्रिटिश अधिकारियोंने भारतकी असली और मूल राजनीतिक समस्यापर पर्दा डालनेकी कोशिश की है और इसके बदलेमें, नए वाइसराय द्वारा भी भारतकी सामाजिक एवं अर्थनीतिक समस्याकी ओर ही ध्यान दिए जानेकी बातपर ज़ोर दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजीसे समझौता किया जाय

लन्दनके 'इकोनोमिस्ट'ने लार्ड वैवलकी नियुक्तिपर टिप्पणी करते हुए 'भारत और ब्रिटेनके सम्बन्धोंमें मनोवैज्ञानिक परिवर्त्तन' लानेकी अपील की है। इस बातको अधिक स्पष्ट करते हुए 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन'ने लिखा है—"वाइसरायोंका परिवर्त्तन भारत और ब्रिटेनके पेचीदा राजनीतिक व्यूहको भंग करने और भारतीयोंका सहयोग प्राप्त करनेकी नए सिरेसे कोशिश करनेका मौक़ा देता है। इससे लाभ उठानेका एकमात्र उपाय फील्ड-मार्शल वैवलके पास यही है कि वे नए सिरेसे प्रयत्न करें। एक सिपाहीकी हैसियतसे वे इस बातकी घोषणा करें कि पुराने राजनीतिक झगड़ों या अच्छाइयों-बुराइयोंसे उन्हें कोई वास्ता नहीं; इसलिए आवश्यकता है युद्धमें विजय प्राप्त करना। इसमें भारत और ब्रिटेनका समान हित है और पहला काम यह किया जाय कि भारतकी रक्षा और जापान-विरोधी युद्धमें दोनोंका सहयोग स्थापित किया जाय। इस उद्देश्यसे वाइसराय मि० गांधीसे मिलें और उनके साथ समझौता करनेकी कोशिश करें, जिसके द्वारा वैधानिक प्रश्न युद्धकी समाप्ति तक स्थगित रखा जाय—क्योंकि इस समय उसे स्थगित रखना अनिवार्य-सा है—और सरकार सब राजबन्दियोंको छोड़ दे। वे किसी ज़िम्मेदार भारतीयको राजबन्दियोंसे मिलकर समझौतेके आधारकी चर्चा करने दें तथा यह घोषणा कर दें कि वे इस दिशामें होनेवाले प्रयत्नोंका स्वागत करेंगे और समझौतेके प्रस्तावोंपर व्यक्तिगत रूपसे खुद ध्यान देंगे।"

क्या लार्ड ववल इस नेक सलाहसे लाभ उठायँगे?

सरकारके रुखमें परिवर्त्तन हो

गत २६ जूनको लन्दनमें इण्डिया-लीगकी महिला-समितिकी एक आवश्यक बैठक भारतीय स्थितिपर विचार करनेके लिए हुई, जिसमें यह विश्वास प्रकट किया गया कि फ़ाशिज़्म-विरोधी युद्धमें संयुक्त-राष्ट्रोंमें पूर्ण सहयोग स्थापित करनेके लिए ब्रिटिश सरकारके रुखमें परिवर्त्तन होना आवश्यक है। सर्वसम्मतिसे लार्ड वैवलको इस आशयका सन्देश भेजा गया कि वे भारतवासियोंके साथ मैत्रीपूर्ण समझौता करके इस देशकी बहुत बड़ी सेवा करेंगे। अन्तमें समितिने इस आशयका प्रस्ताव पास किया कि शीघ्र राजनीतिक ज़िचका अन्त किया जाय, भारतीय नेताओंको रिहा किया जाय और अस्थायी रूपसे राष्ट्रीय सरकार क़ायम करनेकी बातचीत चलाई जाय।

ब्रिटिश महिलाओंकी अपील

ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्री तथा भारत-मन्त्रीके पास ७० प्रमुख महिलाओंके हस्ताक्षरोंसे एक अपील भेजी गई है, जिसमें कहा गया है—"हम विश्वास करती हैं, हम इस देशके बहुतसे निवासियोंकी इच्छाको व्यक्त कर रही हैं कि भारतमें और विश्वके अन्य भागोंमें यह इच्छा है कि ब्रिटेन और भारतके बीच अब राजनीतिक ज़िचका अन्त हो जाय। हम इस समस्याकी पेचीदगीसे वाक़िफ़ हैं, और यह भी जानती हैं कि दोनों पक्षोंकी ओरसे इसका अन्त करनेकी इससे पहले कोशिश हो चुकी है। मगर हम यह विश्वास नहीं कर सकतीं कि ये कठिनाइयाँ मानवीय उपायोंसे परे हैं। सभी बड़ी लड़ाइयोंमें परामर्श और सन्धि-चर्चाका तरीक़ा अन्तमें संघर्षका स्थान ले लेता है। हम चाहती हैं कि यह तरीक़ा बग़ैर विलम्बके अख्तियार किया जाय। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि सरकार ज़िचको जारी न रहने दे। ज़िचको दूर करनेके लिए पहले क़दमके तौरपर हम चाहती हैं कि भारतके नरम-दलके नेताओंको नज़रबन्द नेताओंसे मिलने व विचार-विनिमयकी सुविधा दी जाय।"

भारतीय महिलाओंकी माँग

श्रीमती रामेश्वरी नेहरूके सभापतित्वमें हुए पंजाब-प्रान्तीय महिला-परिषद्के अधिवेशनमें गांधीजी और दूसरे कांग्रेस-नेताओंकी रिहाईके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया है। इसमें कहा गया है कि सरकार महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेस-नेताओंको रिहा कर दे और उनसे वर्त्तमान राजनीतिक ज़िचका अन्त करनेके लिए बातचीत आरम्भ करे। प्रस्तावपर बोलते हुए श्रीमती रामेश्वरीने कहा—"वर्त्तमान राजनीतिक ज़िचका कारण ब्रिटिश सरकार और उसके भारत-स्थित प्रतिनिधिका वर्त्तमान रुख है। इसमें सन्देह नहीं कि समस्त भारत ही नहीं, बल्कि संसारके सभी भाग महात्मा गांधी और कांग्रेस-नेताओंकी रिहाईकी माँगके साथ हैं।"

नेताओंको बिला शर्त्त छोड़ा जाय

भारत-सेवक-समितिकी ३७ वीं वर्षगाँठपर समितिके सभापति पं० हृदयनाथ कुँजरूने भारतकी राजनीतिक स्थितिकी विवेचना करते हुए सरकारकी सत्ता न छोड़नेकी इच्छापर प्रकाश डाला। गांधीजीके साथ भेंट करनेके लिए निर्दल-नेताओंको आज्ञा न देनेका उल्लेख करते हुए आपने कहा—"ऐसा जान पड़ता है कि सरकार हमें आन्तरिक मतभेदोंको दूर करनेका मौक़ा ही नहीं देना चाहती।" सर तेजबहादुर सप्रू, डा० जयकर तथा दूसरे व्यक्तियोंने महात्मा गांधीकी अनिश्चित नज़रबन्दीके बारेमें वाइसरायको जो पत्र लिखे हैं, उसका हवाला देते हुए आपने कहा—"सरकारको महात्मा गांधी तथा कांग्रेसके नेताओंको बिला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्त रिहा कर देना चाहिए। ऐसा हो जानेपर परिवर्त्तित स्थिति महात्मा गांधीको अपनी नीतिमें सुधार करनेके लिए प्रेरित करेगी।"

गांधीजीकी रिहाईका प्रस्ताव

मालूम हुआ है कि केन्द्रीय असेम्बलीकी अगली बैठकमें श्री रामरतन गुप्त यह प्रस्ताव पेश करनेवाले हैं कि महात्मा गांधी एवं अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमिटीकी कार्यसमितिके सदस्योंपर या तो मुक़दमा चलाया जाय या उन्हें रिहा किया जाय।

गांधीजीपर 'असम्भव' आरोप!

लन्दनमें प्रकाशित हुए श्वेत-पत्रपर टिप्पणी करते हुए 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन'ने लिखा है—"भारत-सरकारने ७६ पृष्ठका श्वेत-पत्र प्रकाशितकर—जिसमें शुरूसे अन्त तक गांधीजीपर व्यक्तिगत आरोप लगाए गए हैं—आपत्तिजनक काम किया है। यह एक प्रचार-पुस्तिका है, जिसके द्वारा उन्हें अमरीकनोंकी आँखोंमें गिरानेका प्रयत्न किया गया है।..... यह हमला संसारके एक ऐसे महानतम व्यक्तिपर किया गया है, जो इस समय इसका उत्तर या अपनी सफ़ाई दे सकनेकी स्थितिमें नहीं है। फिर अगर इन गम्भीर आरोपोंका ठोस आधार है, तो क्या भारत-सरकारको गांधीजीको चुपचाप अपने शासन-बलसे अलग नज़रबन्द रखनेके बजाय खुली अदालतमें उनपर मुक़दमा नहीं चलाना चाहिए था?"

आगे चलकर कहा गया है—"गांधीपर जो यह भीषणतर आरोप लगाए गए हैं कि वे तोड़-फोड़ और अग्निकाण्डों अथवा जापानकी जीतमें सहायता पहुँचानेका विचार कर रहे थे, हमें न केवल अदम-सबूत ही मालूम होते हैं, बल्कि असम्भव भी। गांधीजी जो-कुछ करना चाहते थे—शायद जार्ज फाक्स भी वही करता—तोक्यो जाकर जापानियोंको शान्तिका पाठ पढ़ाना। यह भलमनसाहतकी मूर्खता भले ही हो; पर भारत या ब्रिटेनके प्रति यह राजद्रोह कदापि नहीं है।"

गांधीजीका एक पत्र कहाँ गया?

गत २४ जूनको कामन्समें श्री सोरेन्सनने पूछा कि २३ सितम्बर, १९४२ को गांधीजीने हिंसात्मक कार्योंकी निन्दा करते हुए वाइसरायको एक पत्र लिखा था, जो प्रकाशित पत्र-व्यवहारमें नहीं है, और न उसपर वाइसराय या भारत-मन्त्रीने कोई प्रकाश ही डाला है।

इसके उत्तरमें भारत-मन्त्री श्री एमरीने कहा कि मि० सोरेन्सन भ्रममें हैं। सितम्बरमें गांधीजीसे जो एकमात्र पत्र प्राप्त हुआ, वह भारत-सरकारके गृह-विभागके सेक्रेटरीके नाम था, वाइसरायके नाम नहीं। यह २३ सितम्बरका था, जिसका उल्लेख भारतीय पत्रोंको प्रकाशनार्थ दिए गए पत्र-व्यवहारमें है। इसमें मि० गांधीने तथाकथित खेदजनक तोड़-फोड़का ज़िक्र करते हुए उसकी ज़िम्मेदारी सरकारपर डाली है और हिंसात्मक कार्योंकी स्पष्ट रूपसे निन्दा नहीं की है।

इसपर श्री सोरेन्सनने कहा कि मि० राजगोपालाचार्यने विशेष रूपसे यह बात कही है कि गांधीजीने हिंसात्मक कार्योंकी निन्दा करते हुए वाइसरायको पत्र लिखा है। यदि वाइसरायको यह बात मालूम थी, तो जिस समय इन कार्योंपर कोई राय न देनेके लिए मि० गांधीकी आलोचना की जा रही थी, तब क्यों कुछ नहीं कहा गया? इसके उत्तरमें श्री एमरीने कहा—"नहीं। गांधीजीकी क़लमकी भूलसे या तो मि० सोरेन्सनको ग़लतफ़हमी हुई है या मि० राजगोपालाचार्यको।"

फिर गांधी-वाइसराय पत्र-व्यवहार

नागपुरके सहयोगी 'हितवाद'का कहना है कि महात्मा गांधी वाइसरायसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं और अगस्तमें फिर कोई बड़ी घटना घट सकती है। इस सम्बन्धमें 'नवभारत'का प्रतिनिधि लिखता है—"ज़िम्मेदार लोग तो यह एक मानी हुई बात समझते हैं कि महात्मा गांधीका वाइसरायसे पत्र-व्यवहार चल रहा है; पर आगेके बारेमें कुछ निश्चित अनुमान नहीं हो सकता। अगस्तमें महात्माजीकी गिरफ़्तारी व नज़रबन्दीको एक वर्षकी अवधि हो जाती है। सम्भव है, महात्माजी उनपर एवं कांग्रेसपर लगाए गए आरोपोंको अदालतमें सिद्ध करने या उठा लेने और राष्ट्रीय सरकारकी माँगके लिए फिर आग्रहपूर्ण निवेदन करें और प्रतिकूल उत्तर या रुखकी हालतमें किसी विशिष्ट कार्रवाईपर विचार करें। कुछ लोगोंका खयाल है कि महात्माजी यह चेष्टा तो ज़रूर करेंगे; परन्तु शायद इस मामलेको अगस्तमें अन्तिम रूप न दें—नए वाइसराय जनरल वैवलके पद-ग्रहणके पश्चात् वे अपनी माँगपर ज़ोर दें; कारण, शीघ्र विदा होनेवाले वाइसरायसे शायद इस मामलेमें अन्तिम फैसलेकी उम्मीद करना ठीक न रहे।"

एमरीकी थोथी सद्भावना

गत ११ जूनको लन्दनमें भारतीय गैलेरीका उद्घाटन करते हुए भारत-मन्त्री श्री एमरीने कहा—"हमें आशा है कि युद्ध-शासन-जन्य समस्याएँ बहुत जल्दी समाप्त होकर भूतकालके इतिहासका रूप ले लेंगी। आज भारतीय राजनीतिकी जो पेचीदा समस्याएँ उपस्थित हैं, वे पिछली पीढ़ीमें उत्पन्न हुई हैं और दूसरी पीढ़ीके अन्तके पूर्व ही निश्चित रूपसे इतनी सुधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँगी कि उन समस्याओंका वर्त्तमान रूप न रह जायगा।" आगे चलकर आपने कहा—"यदि हम चाहते हैं कि भारतीय तथा अंगरेज़ अपनेको एक परिवारके सदस्योंकी भाँति अनुभव करें, तो भारतका हित इसीमें है कि वह हमारी इच्छाओंको समझे और हमारे हितमें यह और भी ज़रूरी है कि हम भारतीय कला तथा साहित्य-निधिको तथा भारतकी प्रगति करनेकी लालसाको समझें और उसके साथ सहानुभूति रखें।"

काश, एमरी साहब भारतीय कला और साहित्य-निधिको समझनेका भार बेहतर लोगोंपर छोड़कर स्वयं उस नीतिसे बाज़ आनेकी तकलीफ़ गवारा करते, जो भारतकी राजनीतिक व्यवस्थाको पेचीदा बनाए हुए है। भारतने उनको और उनके सहायकोंकी इच्छाओंको बखूबी समझ लिया है; पर अब समय आ गया है कि वे भारतकी इच्छाओंको समझें और उनसे सहानुभूति रखनेकी तबालत छोड़कर उन्हें अमली जामा पहनानेकी कोशिशमें योग दें—या कमसे कम अपने क्षुद्र स्वार्थ और अदूरदर्शितावश उनके सफलीभूत होनेके मार्गमें बाधक न बनें।

भारतको आज़ादीकी गारंटी

ब्रिटिश पार्लमेण्टके मज़दूर-दलके छः सदस्योंने एक घोषणा प्रकाशित की है, जिसमें कहा गया है कि दुनियासे भारतकी आज़ादी मंज़ूर करानेके लिए एक कौंसिलकी स्थापना की गई है, जिसका यह दृढ़ उद्देश्य है कि मित्र-राष्ट्र सचाईसे भारतको उन अधिकारोंके उपभोगकी गारण्टी दें, जो सब जातियोंके लिए लागू एटलाण्टिक-सनदमें निहित हैं। इस घोषणापर प्रो० हेरल्ड कैटलिनके भी हस्ताक्षर हैं। प्रो० कैटलिन राजनीतिक तथा वैधानिक विषयोंके एक प्रसिद्ध लेखक हैं तथा कारनेल-यूनिवर्सिटीमें राजनीतिके प्रोफ़ेसर रह चुके हैं।

भारतको आज़ाद किया जाय

गत १६ जूनको लन्दनमें इण्डिया-लीगकी एक मीटिंग हुई, जिसमें भारतकी राजनीतिक, सामाजिक और अर्थनीतिक परिस्थितियोंपर चिन्ता प्रकट की गई और शीघ्र ही राजनीतिक गतिरोधका अन्त करने, राजबन्दियोंको छोड़ने तथा अस्थायी राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनाके लिए क़दम उठानेका अनुरोध किया गया। लार्ड फैरिंगडनने यह आशंका प्रकट की कि सरकार शायद कुछ करना-धरना नहीं चाहती, फिर भी आपने सुझाया कि नए वाइसरायको समझौता करनेका आश्वासन लेकर भारत भेजना चाहिए। आपने कहा कि ब्रिटेनने भले ही भारतके लिए बहुत-कुछ किया हो; पर भारतने उसका हज़ार गुना वापस चुका दिया है। इस समयके विशेष नियम-क़ानूनोंकी निन्दा करते हुए आपने कहा कि समाजवादीकी हैसियतसे हम सबको स्वतन्त्र होना चाहिए और भारत भी स्वतन्त्र होना चाहिए।

श्री सोरेन्सनने कहा कि पहले लड़ाई जीतनेकी चिल्लाहट तो सर्वत्र सुनाई देती है; पर उतना ही ज़रूरी भारतके लिए आज़ादी प्राप्त करना भी है।

मज़दूर-दल और भारत

जहाँ तक भारतका सम्बन्ध है, अभी हाल ही में लन्दनमें हुई मज़दूर-कान्फ्रेन्सने पहाड़ खोदकर चुहिया निकालनेकी कहावत ही चरितार्थ की है। कान्फ्रेन्समें भारत-सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिकी आलोचना करते हुए दो प्रस्ताव पेश किए गए, जिनमें 'वास्तविक प्रतिनिधि संस्थाओं'से समझौतेकी बातचीत फिर शुरू करने, स्वतन्त्र भारतके लोगोंका फ़ाशिज़्म-विरोधी युद्धमें स्वेच्छापूर्ण सहयोग प्राप्त करने, राजबन्दियोंको रिहा करने तथा भारतीय प्रधान-मन्त्रीके अधीन राष्ट्रीय सरकार क़ायम करने आदिकी बातें कही गईं। यही नहीं, सब प्रकारके राजनीतिक और आर्थिक साम्राज्यवादको शीघ्र ही खत्म करनेके लिए ब्रिटिश साम्राज्यके उपनिवेशवासियोंके नाम एक विशेष घोषणा-पत्र निकालकर उन्हें चारों प्रकारकी स्वतन्त्रता दिलानेकी बात भी कही गई। पर आश्चर्य और दुःख तो हमें तब हुआ, जब कि श्री आर्थर ग्रीनवुडके केवल इस आश्वासनपर कि निकट भविष्यमें संयुक्त-समिति द्वारा राष्ट्रीय कार्य-समितिकी रिपोर्टके प्रकाशमें इनपर विचार कर लिया जायगा, समयाभावका बहाना करके प्रस्ताव वापस ले लिए गए!

सैद्धान्तिक बातों और नारोंसे शोर-गुल मचाकर जनताकी सहानुभूति प्राप्त करनेकी कोशिश करना और वास्तवमें करना-धरना कुछ नहीं, यह आजकल वाम-पक्षीय राजनीतिकी बहुत प्रबल 'नीति' और चाल बन गई है। भारतीय कम्युनिस्टोंकी तरह ही ब्रिटेनका मज़दूर-दल भी इस कलामें काफ़ी पारंगत है। पर उसकी प्रतिक्रियाशीलता एकसे अधिक बार स्पष्ट हो चुकी है। मैकडोनल्डने उसके कफ़नमें आखरी कील ठोंकी थी, जिसके बाद वह फिर स्वतन्त्र नीति और अस्तित्व नहीं प्राप्त कर सका। आज तो फ़ाशिज़्म-विरोधी युद्धकी सरगर्मीमें वह यह भी भूल गया है कि जिस साम्राज्यवादसे वह लोहा लेना चाहता था, आज वह उसीका एक पुर्ज़ा बना हुआ है। और जहाँ तक भारतकी स्वाधीनताके प्रश्नका सम्बन्ध है, यह पहला अवसर नहीं है, जब उसने हमें बतलाया है कि इस सम्बन्धमें वह ब्रिटेनके अनुदार-दली कट्टर साम्राज्यवादियोंसे किसी भी रूपमें भिन्न नहीं है। इसपर भी 'पायोनियर'में छपे एक लेखमें भारतीय पत्रोंको चेता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनी दी गई है कि वे कठोर आलोचनाकर मज़दूर-दलकी सहानुभूतिसे वंचित न हों। भारतसे अधिक यह ब्रिटेन और उसकी यथार्थमें फ़ाशिज़्म-विरोधी जनताके लिए दुर्भाग्यकी बात है।

कांग्रेस सबसे शक्तिशाली संस्था है

भारतमें जो तुर्क पत्रकार-दल आया था, उसके एक सदस्य श्री एन० सादकने 'अक्साम-इस्तम्बूल'में लिखा है--"भारतवर्षमें कांग्रेस-दल, जो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता है, अकेला दल नहीं है। वहाँ उसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न स्वार्थोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली अन्य संस्थाएँ भी हैं; किन्तु कांग्रेस, जिसका नेतृत्व पं० जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी-जैसे नेता करते हैं, देशकी सबसे शक्तिशाली संस्था है। आरम्भमें कांग्रेस अंगरेज़ोंको अप्रिय नहीं लगती थी, क्योंकि उनका खयाल था कि वह एक राष्ट्रीय शक्तिके रूपमें उनके साथ सहयोग करेगी। किन्तु परिस्थितियोंसे उत्साहित होकर कांग्रेसने देशके शासनपर अपना अधिकार करनेके प्रयत्नमें जल्दबाज़ी की।.....जबकि कांग्रेस अंगरेज़ोंको भारतसे तुरन्त हटानेकी माँग करती है, तब मुस्लिम-लीग चाहती है कि अंगरेज़ोंके भारतसे हटनेसे पहले पाकिस्तानकी स्थापना हो जाय। कांग्रेस-दल हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक राष्ट्रकी एक जाति मानता है; किन्तु मुसलमान दो जातियाँ मानते हैं।"

लुई फिशरकी चीज़ोंपर पाबन्दी

गत ५ जूनको भारत-रक्षा-विधानकी ४१ वीं धाराके अनुसार केन्द्रीय सरकारने यह आज्ञा जारी की है कि अमरीकन पत्रकार तथा लेखक श्री लुई फिशर द्वारा भारतके सम्बन्धमें लिखी गई या भाषणमें कही गई सारी सामग्रीको ब्रिटिश भारतमें किसी भी रूपमें छापनेसे पहले चीफ़ प्रेस-एडवाइज़र नई दिल्लीको दिखलाया जाय और उनकी लिखित अनुमतिके बिना ब्रिटिश भारतमें उसे कोई न छापे।

फिशरने अपने व्यक्तिगत अनुभवों और भारतमें आँखों-देखी बातोंके आधारपर अमरीकाके 'नेशन'में जो लेख लिखे हैं और गत २८ फ़रवरीको सानफ्रांसिस्कोमें जो भाषण दिया है, उन सबसे अंगरेज़ोंके अमरीकन प्रोपेगण्डाका भण्डाफोड़ होना स्वाभाविक ही था। यह कहना अनावश्यक है कि ब्रिटेनके वेतनभोगी प्रचारकोंके मुक़ाबलेमें अमरीकन लुई फिशरको अधिक विश्वास और सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। पर यह हमारी समझमें नहीं आया कि फिशरकी चीज़ोंपर भारतमें प्रतिबन्ध लगाना कहाँकी अक़्लमन्दी है? फिशरने आखिर ऐसी कौन-सी नई बात कही या लिखी है, जिसे हम लोग पहलेसे ही न जानते-समझते हों? हाँ, अगर ब्रिटिश अधिकारी यह पाबन्दी अमरीकामें लगवा सकते, तो अमरीकनोंको भी मालूम हो जाता कि अंगरेज़ लेखन और भाषणकी स्वतन्त्रताके किस हद तक क़ायल हैं!

व्यापारियोंका देशद्रोह

अभी हाल ही में वस्त्र-व्यवसायपर सरकारकी ओरसे लगे अंकुशसे उत्पन्न स्थितिपर बम्बईके कपड़ेके एक बड़े व्यापारीने कहा बतलाते हैं कि "९ अगस्त १९४२ को जो भाव थे, वे भाव शीघ्र ही फिर हो जायँगे। हमने बापूके साथ उनकी पीठ-पीछे दग़ा किया है। जनताकी कठिनाईमें उसकी मदद करनेके बदले हमने भाव बढ़ा दिए। कमानेकी धुनमें इसको नहीं देखा। बाज़ार बन्द करके उल्टा नफ़ा पैदा कर लिया। इसका फल भोगे बिना हमारा छुटकारा नहीं; क्योंकि हमारे कार्यसे बापूकी आत्माको दुःख हुआ है।"

यह एक ऐसे अपराधीकी स्वीकारोक्ति है, जो अनीतिसे असाधारण मुनाफ़ा बटोरकर उसकी ग्लानिको छिपा नहीं सका है।

सुन्दरलालजीकी अस्वस्थता

हमारे पाठक यह सुनकर चिन्तित होंगे कि श्री सुन्दरलालजी जेलमें काफ़ी अस्वस्थ हैं। सुना है कि वे हृद्रोगसे पीड़ित हैं तथा उनकी कमज़ोरी निरन्तर बढ़ती ही जाती है। और यदि यही दशा रही, तो उनकी बीमारी असाध्यावस्था तक पहुँच सकती है।

सुन्दरलालजीका 'विशाल भारत'से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। 'विशाल भारत' और 'विश्ववाणी' दोनोंपर उनका समान स्नेह रहा है। इस पत्रके संस्थापक श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायको वे गुरुतुल्य पूज्य मानते रहे हैं और 'विशाल भारत'के प्रथम सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी नियुक्ति उन्हींकी प्रेरणासे हुई थी। इसी पत्रमें समय-समयपर उनके सर्वोत्तम लेख भी छपते रहे हैं। आप इधर कितने ही वर्षोंसे सांस्कृतिक कार्योंमें संलग्न रहे हैं और विवादग्रस्त राजनीतिसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहा है।

युक्त-प्रान्तीय सरकारसे हमारा विनम्र अनुरोध है कि वह दूरदर्शितासे काम ले और सुन्दरलालजीको शीघ्रसे शीघ्र मुक्त कर दे।

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

स्थापन्न-सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

ग ३१] जनवरी–जून, १९४३ [पूर्णांक १८६

विषय-सूची

में सौन्दर्य (स०)—सुप्ति सिन्हा, कुमारी	२५७
का आरम्भ (कहानी)—मोहनसिंह सेंगर	२२०
र आज ईसा जीवित होते?—जे० बी० एस० हाल्डेन	१६९
शाप (कहानी)—ओंकारशंकर विद्यार्थी	१३१
रीका और भारत—ईश्वरशरण	१६२
सक्रीम (कहानी)—मोहनसिंह सेंगर	६४
का पन्ना (कविता)—सियारामशरण गुप्त	५६
की कहानी—रूपकुमारी बाजपेई	३७३
ओंकी प्रत्यक्ष आवाज़—लल्लीप्रसाद पाण्डेय	३५०
निकतम उपन्यासका दृष्टिकोण—इलाचन्द्र जोशी	३३९
र्थिक संकट और मुद्रा-प्रसार—रामस्वरूप व्यास	१२८
या-आफ़िस—अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	१४२
में नारीका स्थान—कुसुम गुप्ता	३४८
नियद्का प्रथम दार्शनिक : प्रवाहण जैवलि—राहुल सांकृत्यायन	८७
फलक (कहानी)—सत्यवती मल्लिक	३४४
ज़ : वर्त्तमान युगके सन्त फ्रांसिस—गुरुदयाल मल्लिक	२४२
(कहानी)—भैरवप्रसाद गुप्त	१८८
तुम जाओगे ! (कविता)—'केसरी'	२१९
कारकी जिम्मेदारी—ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	१७४
स्करवाड़ी (स०)—रामस्वरूप व्यास	५७
किसानोंके शिरोमणि—गुरुदयाल मल्लिक	१८
कुणाल-गीत—मैथिलीशरण गुप्त	१
क्रान्तिकी दिशा—लियों त्रात्स्की	५१
खण्डित मूर्त्तियाँ (कहानी)—'धूमकेतु'	६१
गांधीजी (स०)—गुरुदयाल मल्लिक	२८६
गीत—'विराज'	३७१
गुजरातका गरबा-रास—गौरीशंकर ओझा	१९८
गूँगों-बहरोंकी शिक्षा (स०)—नृपेन्द्रमोहन मजूमदार	८९
गोपन कौन कथा रही अब ?—सोहनलाल द्विवेदी	४२७
ग्राम-बालिका (कविता)—सोहनलाल द्विवेदी	३४३
घर और बाहर—गोविन्दानुज, कुमार	८८
चयन ७१ ; १५१ ; २३१ ; ३१२ ; ३९१ ; ४५९	
चाबुक—तेजनारायण काक	४
चार प्रकारके आदमी	३६
चिट्ठी-पत्री ६९ ; १४६ ; २२५ ; ३०६ ; ३८६ ; ४५७	
चीनी-लिपि—कृष्णकिंकर सिंह	२१४
'छिताईवार्त्ता'—अगरचन्द नाहटा : भँवरलाल नाहटा	३७७
जयजयकार (कविता)—गोपालसिंह नेपाली	१६१
जयपुरकी कारीगरी—एन० सी० मेहता, आई० सी० एस०	१६
जापानकी युद्ध-कालीन अर्थनीति—डा० नन्दलाल	२६९
जीव-जन्तुओंके वैज्ञानिक नाम—कृष्णानन्द गुप्त	१०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव-विज्ञानके कुछ शब्द—सुरेशसिंह, कुँवर १०५
जीवके विकासकी कथा—सुरेशसिंह, कुँवर ३३७
जीवन (कहानी)—राधिकाशरण वाजपेयी ४३८
जीवन और विज्ञान—जवाहरलाल नेहरू २०७
जीवन-गान—महेशचन्द्र मिश्र ४२५
जीवनके हित बलि कर जीवन ! (कविता)—'बच्चन' ८१
ट्यूनीसिया—ईश्वरशरण ३२५
डेविड हरबर्ट लारेन्स—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र १८५
ताजमहल (कविता)—डा० देवराज ४०१
तितलियाँ (स०)—सुरेशसिंह, कुँवर २६५
दक्षिण-अफ्रीकामें 'गोरावाद'—मोहनसिंह सेंगर ३२८ ; ४४९
दुःखिनी सीता—शम्भुप्रसाद बहुगुना ५२
दुनियामें कितने तरहके लोग हैं ?—भानुकुमार जैन ४५६
दुर्घटना (एकांकी नाटक)—गौरांगप्रसाद वसु ९७
दृष्टि (कहानी)—सत्यवती मल्लिक २५३
धूमिल चित्र (कहानी)—देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' २७५
नई व्यवस्था और भारत—सी० वी० एच० राव ८२
नक्षत्र (कविता)—महावीरसिंह 'वीर' १०७
'नजर नसाय गई, मालिक !'—प्रो० विनयमोहन शर्मा २९१
नया संसार (कविता)—गोपालसिंह नेपाली ३२१
नारी—तेजनारायण काक ४०४
पवमान सोमके प्रति (कविता)—रामइक़बालसिंह 'राकेश' २४१
पाणिनि-कालीन भारत—प्रो० सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी १०८
पृथ्वीराजकी दिल्ली (कविता)—'रसिकेन्द्र' ३२
'पृथ्वीराज-रासो'की एक महत्त्वपूर्ण प्रति—अगरचंद नाहटा ४४५
प्रतिभा : उसका स्वरूप (स०)—हेमचन्द्र मोदी, स्व० २४८
प्रतिशोध (कहानी)—झवेरचन्द मेघाणी २०६
प्रसादके 'आँसू'पर एक दृष्टि (स०)—प्रो० विनयमोहन शर्मा १२५
प्रवासी भारतीय (स०)—भवानीदयाल संन्यासी १३५ ; ३०२
फ़व्वारा (कविता)—तेजनारायण काक ९४
फूल (गद्य-काव्य)—गोविन्दानुज, कुमार ४३७
बँगला-साहित्यमें मंगल-काव्य—प्रभामयी राय, कुमारी ४०५
बदला (कहानी)—इकबाल वर्मा 'सेहर,' स्व० ४६
बबूल—तेजनारायण काक २७४
बलिदान (कहानी)—पंडितजी १३९
बहरोंकी शिक्षा (स०)—नृपेन्द्रमोहन मजूमदार ३५८
बाण भट्टकी आत्म-कथा—हजारीप्रसाद द्विवेदी २० ; ११९ ; २०८ ; २९५ ; ३६४ ; ४४३
बुद्धके अन्तिम दिन (स०)—सूर्यनारायण चौधरी २७२
बुन्देलखण्ड-प्रान्तका निर्माण—वासुदेवसिंह जादौन ४२८
भग्न-नीड़ (कविता)—ब्रह्मदेव शास्त्री ३४७
मन्दिरोंका देश दक्षिण (स०)—भैरवप्रसाद गुप्त ३३
माताका सौन्दर्य—विट्ठलदास मोदी ३८४
मानव महान, मानव मधुतम ! (कविता)—श्रीकुमार शर्मा ८६
मानवकी पहचान (कविता)—महेशचन्द्र मिश्र ३६३
माया-गृह—ब्रह्मदेव शास्त्री १९१
मायावी मुसकान (स० कविता)—सत्यवती शर्मा २४
मृत्तिकाका दीप (कविता)—शिवमंगलसिंह 'सुमन' २७१
यन्त्रपुरी (कविता)—सियारामशरण गुप्त १३४
युग-प्रवर्त्तक अकबर—गो०-स० सरदेसाई २८७
युद्धके बाद भारत—ईश्वरशरण २४३
यूरोपीय राजनीति-दर्शनके आदर्शवादी विचारक—शैलेन्द्र १९३
रवीन्द्रनाथके चित्र—गुरुदयाल मल्लिक १६८
रवीन्द्रनाथके साथ एकतान—गुरुदयाल मल्लिक ३७२
रहमानबेकी अद्भुत करामात—प्रो० हाल्डेन १२३
राजस्थानका शिक्षण-केन्द्र पिलानी—सोहनलाल पचीसिया ३८१
रात, तेरे रंग गहरे ! (कविता)—रूपकुमारी बाजपेई २७४
राल्फ़ फ़ाक्स—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र ४२१
राष्ट्र-निर्माणमें हिन्दीका हाथ—
औटमी चौफीन : शम्भुप्रसाद बहुगुना ३६२
रूसमें दीवार-चित्र (स०)—अजित मुखोपाध्याय ४०६
रेलकी खिड़कीसे (कविता)—राजेन १६६
रोटीकी समस्या—फ्राँसोया कोपे, स्व० ४४१
लड़ाईके बाद—बालकृष्ण गुप्त १७१
लाल सेनाका जादूगर (स०)—ननिबाला राय, कुमारी ३५
लोक-साहित्यमें पक्षी-वर्णन—रामइक़बालसिंह 'राकेश' ४१७
वासन्तीसे (कविता)—सोहनलाल द्विवेदी १९६
विधर्मियोंका हिन्दू-धर्ममें प्रवेश—प्रो० श्रीराम शर्मा २०१
वृद्ध भारतके नये नुक्ताचीं—दर्शनानन्द २४४
शकूरका शुकराना (कहानी)—'जीवनमुक्त' ३५१
शिवका मत्स्याखेट (कविता)—डा० देवराज ९५
संगीत-कला—जगन्नाथबख्श दास १५५
सच्ची शिक्षाका स्वरूप—'जीवनमुक्त' २०१
समाधिपर (कविता)—सत्यवती मल्लिक ४३९
समालोचना ६५ ; १४८ ; २२८ ; ३०९ ; ३८८ ; ४३९
सम्पा० विचार ७३ ; १५३ ; २३३ ; ३१३ ; ३९३ ; ४९३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत'की उर्मिला—भागीरथी चन्द ४२३
साध (नाटक)—पृथ्वीनाथ शर्मा २५; ११२; १७७
साहित्य-साधना—क्षितिमोहन सेन २
साहित्य-स्रष्टा शरच्चन्द्र—दौलतराव परशुराम १२
साहित्यमें हास्य-रस—प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र २७८
सितमगर (एकांकी नाटक)—प्रो० आनन्द ४२६
सेतुबन्ध—बनारसीदास चतुर्वेदी ४०२
सृष्टिमें भगवानकी ज्यामिति (स०)—सुप्रि सिन्हा, कुमारी ५
स्टर्लिंग-निधिका भविष्य—अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार ३२२
स्त्री-शिक्षा—किशोरलाल घ० मशरूवाला ४०
स्व० डा० नीलरतन सरकार—'निर्मम' ४१५
स्व० सत्यमूर्त्ति—शिवकुमार विद्यालंकार ३६१
स्वर्गीय आचार्य शुक्ल—लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय २९२
स्वप्न-सृष्टि—धर्मवीर ४३६
हमारी चीनी बहनें (स०)—ननिबाला राय २८२
हिन्दीका उपन्यास-साहित्य—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ४०९
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (दो पत्र) ३३४
हिन्दी-साहित्यमें मीराका योग—शान्तिस्वरूप गौड़ ३५२

लेखक-सूची

अगरचन्द नाहटा—'पृथ्वीराज-रासो'की एक महत्त्वपूर्ण प्रति ४४५
अगरचन्द नाहटा : भँवरलाल नाहटा—'छिताईवार्त्ता' ३७७
अजित मुखोपाध्याय—रूसके दीवार-चित्र (स०) ४०६
अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार—इण्डिया-आफ़िस १४२; स्टर्लिंग-निधिका भविष्य ३२२
आनन्द, प्रो०—सितमगर (एकांकी नाटक) ४२६
इकबाल वर्मा 'सेहर', स्व० —बदला (कहानी) ४६
इलाचन्द्र जोशी—आधुनिकतम उपन्यासका दृष्टिकोण ३३९
ईश्वरशरण—अमरीका और भारत १६२; युद्धके बाद भारत २४३; ट्यूनीसिया ३२५
एल० सी० मेहता, आई०सी०एस०—जयपुरकी कारीगरी १६
ओंकारशंकर विद्यार्थी—अभिशाप (कहानी) १३१
औटमी चौफीन : शम्भुप्रसाद बहुगुना—राष्ट्र-निर्माणमें हिन्दीका हाथ २६२
किशोरलाल घ० मशरूवाला—स्त्री-शिक्षा ४०
कुसुम गुप्ता—इटलीमें नारीका स्थान ३४८
कृष्णकिंकर सिंह—चीनी-लिपि २१४
कृष्णानन्द गुप्त—जीव-जन्तुओंके वैज्ञानिक नाम १०३
'केसरी'—कल तुम जाओगे ! (कविता) २१९
क्षितिमोहन सेन—साहित्य-साधना (स०) २
गुरुदयाल मल्लिक—किसानोंके शिरोमणि (स०) १८; रवीन्द्रनाथके चित्र १६८; ऐण्ड्रूज : वर्त्तमान युगके सन्त फ्रांसिस २४२; गांधीजी (स०) २८६; रवीन्द्रनाथके साथ एकतान ३७२
गोपालसिंह नेपाली—जयजयकार (कविता) १६१; नया संसार (कविता) ३२१
गोविन्दानुज—घर और बाहर ८८; फूल (गद्य-काव्य) ४३७
गौरांगप्रसाद वसु—दुर्घटना (एकांकी नाटक) ९७
गौरीशंकर ओझा—गुजरातका गरबा-रास १९८
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—हिन्दीका उपन्यास-साहित्य ४०९
जगन्नाथप्रसाद मिश्र, प्रो०—डेविड हरबर्ट लारेन्स १८५; साहित्यमें हास्य-रस २७८; राल्फ़ फ़ाक्स ४२३
जगन्नाथबख्श दास—संगीत-कला १८२
जवाहरलाल नेहरू—जीवन और विज्ञान २०७
'जीवनमुक्त'—सच्ची शिक्षाका स्वरूप ९५; शकूरका शुकराना (कहानी) ३५५
झवेरचन्द मेघाणी—प्रतिशोध (कहानी) २०६
ताराशंकर वन्द्योपाध्याय—कलाकारकी ज़िम्मेदारी १७४
तेजनारायण काक—चाबुक ४; फ़व्वारा (कविता) ९४; बबूल २७४; नारी ४०४
दर्शनानन्द—वृद्ध भारतके नये नुक्ताचीं २४६
देवराज, डा०—शिवका मत्स्याखेट (कविता) ९६; ताजमहल (कविता) ४०१
देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'—धूमिल चित्र (कहानी) २७५
दौलतराव परशुराम—साहित्य-स्रष्टा शरच्चन्द्र (स०) १२
धर्मवीर—स्वप्न-सृष्टि ४३६
'धूमकेतु'—खण्डित मूर्त्तियाँ (कहानी) ६१
ननिबाला राय, कुमारी—लाल सेनाका जादूगर (स०) ३७; हमारी चीनी बहनें (स०) २८२
नन्दलाल, डा०—जापानकी युद्ध-कालीन अर्थनीति २६९
'निर्मम'—स्व० डा० नीलरतन सरकार ४१५
नृपेन्द्रमोहन मजूमदार—गूँगों-बहरोंकी शिक्षा (स०) ८९; बहरोंकी शिक्षा (स०) ३५८
पंडितजी—बलिदान (कहानी) १३९
पृथ्वीनाथ शर्मा—साध (नाटक) २५; ११२; १७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभामयी राय, कुमारी—बँगला-साहित्यमें मंगल-काव्य ४०५
फ्राँसोया कोपे, स्व०—रोटीकी समस्या ४४१
'बच्चन'—जीवनके हित बलि कर जीवन ! (कविता) ८१
बनारसीदास चतुर्वेदी—सेतुबन्ध ४०२
बालकृष्ण गुप्त—लड़ाईके बाद १७१
ब्रह्मदेव शास्त्री - माया-गृह १९१; भग्न-नीड़ ३४७
भवानीदयाल संन्यासी, स्वामी—प्रवासी भारतीय १३५; ३०२
भागीरथी, चन्द—'साकेत'की उर्मिला ४३३
भानुकुमार जैन—दुनियामें कितने तरहके लोग हैं ? ४५६
भैरवप्रसाद गुप्त—मन्दिरोंका देश दक्षिण (स०) ३३;
कनौज (कहानी) १८८
महावीरसिंह 'वीर'—नक्षत्र (कविता) १०७
महेशचन्द्र मिश्र—मानवकी पहचान ३६३; जीवन-गान ४२५
मैथिलीशरण गुप्त—कुणाल-गीत १
मोहनसिंह सेंगर—आइसक्रीम ६४; अंतका आरम्भ २२०;
दक्षिण-अफ्रीकामें 'गोरावाद' ३२८; ४४९
'रसिकेन्द्र'—पृथ्वीराजकी दिल्ली (कविता) ३२
राजेन—रेलकी खिड़कीसे (कविता) १६६
राधिकाशरण वाजपेयी—जीवन (कहानी) ४३८
रामइक़बालसिंह 'राकेश'—पवमान सोमके प्रति (कविता) २४१;
लोक-साहित्यमें पक्षी-वर्णन ४१७
रामस्वरूप व्यास—किलोंस्करवाड़ी (स०) ५७;
आर्थिक संकट और मुद्रा-प्रसार १२८
राहुल सांकृत्यायन—उपनिषदका प्रथम दार्शनिक :
प्रवाहण जैबलि ८७
रूपकुमारी बाजपेई—रात, तेरे रंग गहरे ! (कविता) २७४;
आजकी कहानी (कहानी) ३७३
लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय—स्व० आचार्य शुक्ल २९२;
आत्माओंकी प्रत्यक्ष आवाज़ ३५०
लियों त्रात्स्की—क्रान्तिकी दिशा ५१
वासुदेवसिंह जादौन—बुन्देलखण्ड-प्रान्तका निर्माण ४२८
विट्ठलदास मोदी—माताका सौन्दर्य ३८४
विनयमोहन शर्मा, प्रो०—प्रसादके 'आँसू'पर एक दृष्टि १२५;
'नजर नसाय गई, मालिक !' २९१
'विराज'—गीत ३७१
शम्भुप्रसाद बहुगुना—दुःखिनी सीता ५२
शान्तिस्वरूप गौड़—हिन्दी-साहित्यमें मीराका योग ३५२
शिवकुमार विद्यालंकार—स्व० सत्यमूर्त्ति ३६१
शिवमंगलसिंह 'सुमन'—मृत्तिकाका दीप (कविता) २७१
शैलेन्द्र—यूरोपीय राजनीति-दर्शनके आदर्शवादी विचारक १९३
श्रीकुमार शर्मा—मानव महान, मानव लघुतम ! ८६
श्रीराम शर्मा, प्रो०—विधर्मियोंका हिन्दू-धर्ममें प्रवेश २०१
सत्यवती मल्लिक—समाधिपर (कविता) २०४;
दृष्टि (कहानी) २५३; एक झलक (कहानी) ३४४
सत्यवती शर्मा—मायावी मुसकान (स० कविता) २४
सर देसाई, गो० स०—युग-प्रवर्त्तक अकबर २८७
सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी, प्रो०—पाणिनि-कालीन भारत १०८
सियारामशरण गुप्त—आजका पन्ना (कविता) ५६;
यन्त्रपुरी (कविता) १३४
सी० वी० एच० राव—नई व्यवस्था और भारत ८२
सुप्ति सिन्हा, कुमारी—सृष्टिमें भगवानकी ज्यामिति (स०) ५;
अंकमें सौन्दर्य २५७
सुरेशसिंह कुँवर—जीव-विज्ञानके कुछ शब्द १०५;
तितलियाँ (स०) २६५; जीवके विकासकी कथा ३३७
सूर्यनारायण चौधरी—बुद्धके अन्तिम दिन २७२
सोहनलाल द्विवेदी—वासन्तीसे ११८; ग्राम-बालिका ३४३;
गोपन कौन कथा रही अब ? ४२७
सोहनलाल पचीसिया—राजस्थानका शिक्षण-केन्द्र पिलानी ३८१
हजारीप्रसाद द्विवेदी—बाण भट्टकी आत्म-कथा
२०; ११९; २०८; २९५; ३६४; ४४३
हाल्डेन, प्रो० जे० बी० एस०—रहमानबेकी अद्भुत
करामात १२३; अगर आज ईसा जीवित होते? १९९
हेमचन्द मोदी, स्व०—प्रतिभा : उसका स्वरूप २४८

चित्र-सूची

तिरंगे चित्र :—
गाँवके रास्तेपर—माणिकलाल वन्द्योपाध्याय २४१
तितलियाँ २६४
दापांकरकी तिब्बत-यात्रा—मणीन्द्रभूषण गुप्त १
प्रतिक्षा—देवीप्रसाद राय-चौधुरी ४०१
प्रत्यावर्त्तन—वासुदेव राय ३२१
वसन्त-आगमन—गोपालचन्द्र घोष १९१
साँईं बाबा—वीरेश्वर कर्मकार ४८
सादे चित्र :—अनेक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

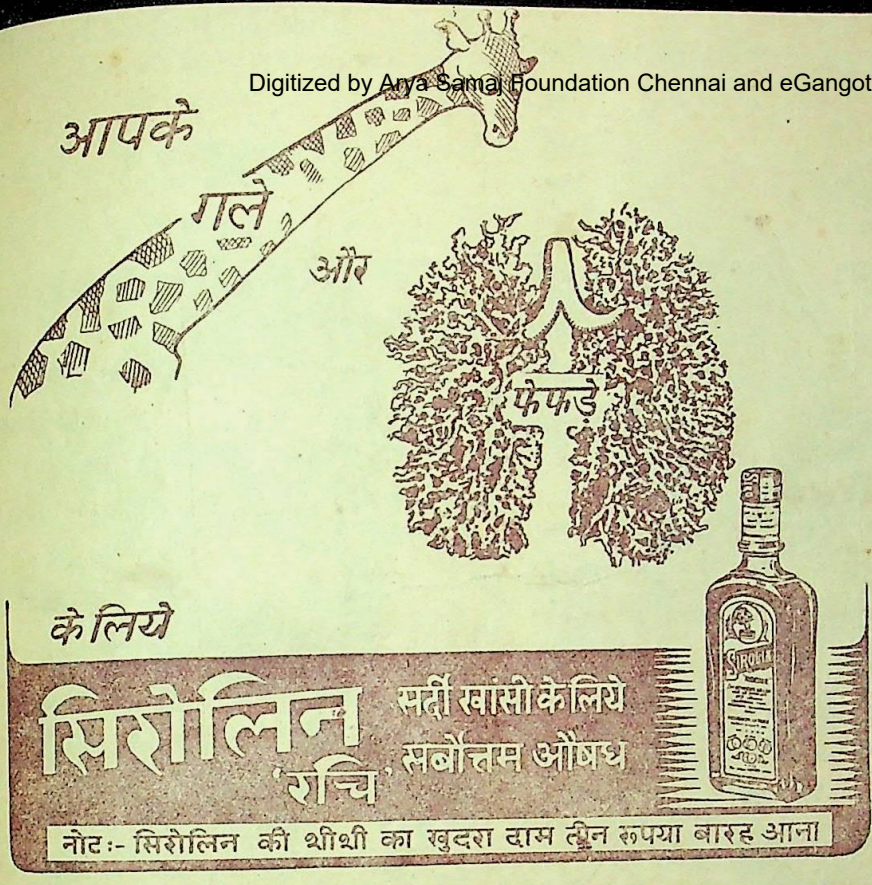

पैंतालीस सालकी परीक्षित महौषधि

सन्तानदाता अवलेह

यह अवलेह यथा नाम तथा गुण है। हज़ारों अँधेरे घरोंमें इसने चिराग़ जलवा दिये। यह अवलेह कन्याको पुत्रवती बनाकर कुलका नाम चलाता है। जिसके घरमें पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। इसलिए पुत्र पानेके लिये आप इस अवलेहको अपनी प्यारी धर्मपत्नीको सेवन कराइये। इससे स्त्रियोंके सारे रोग रोग नाश होते हैं—जैसे कमर और पीठ वगैरःमें दर्द होना, कम-ज़्यादा ख़ून गिरना, गर्भाशयमें टेढ़ा होना, नलोंमें भारीपन रहना, हल्की हरारत, जीर्ण-ज्वर, पिंडलियाँ दुखना, सिरमें दर्द रहना वग़ैरह सारी शिकायतें इस अमृतसे काफ़ूर हो जाती हैं। जो काम लेडी डाक्टरोंके आपरेशनोंसे नहीं हुए, वे इस अवलेहसे हो गये। मूल्य १२) रुपये सेर। पहले आधा सेर मँगा लीजिये। चमत्कार दीख जायगा।

नोट :—अगर प्रदर आदि रोगकी शिकायत है, तो आप हमारे यहाँसे रोगिणी-फार्म मँगा लें। आपके पत्रका उत्तर आदरणीय वैद्य बाबू हरिदासजीकी सुपुत्री श्रीमती चमेलीदेवीजी वैद्या द्वारा दिया जायगा, जो कुमारी-चिकित्सामें प्रवीण हैं। याद रखें, इनका दवाख़ाना अलग नहीं है। हरिदास एण्ड कम्पनीके ही पतेपर पत्र-व्यवहार करें, अन्यथा धोखा होगा!

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धके इस संकट-कालमें जब किरासन तेलका मिलना मुश्किल हो रहा है, हमारी सस्ती मोमबत्तियाँ आपको हर मौक़ेपर निर्मल और निर्धूम प्रकाश देंगी। इनमें चर्बी और दुर्गन्धका नाम भी नहीं है।

एवरलाइट मार्का मोमबत्ती

एवरलाइट कैन्डिल्स

६, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता

एजेन्सीके लिये पत्र-व्यवहार करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालक—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

अक्तूबर १९४३

विशाल भारत

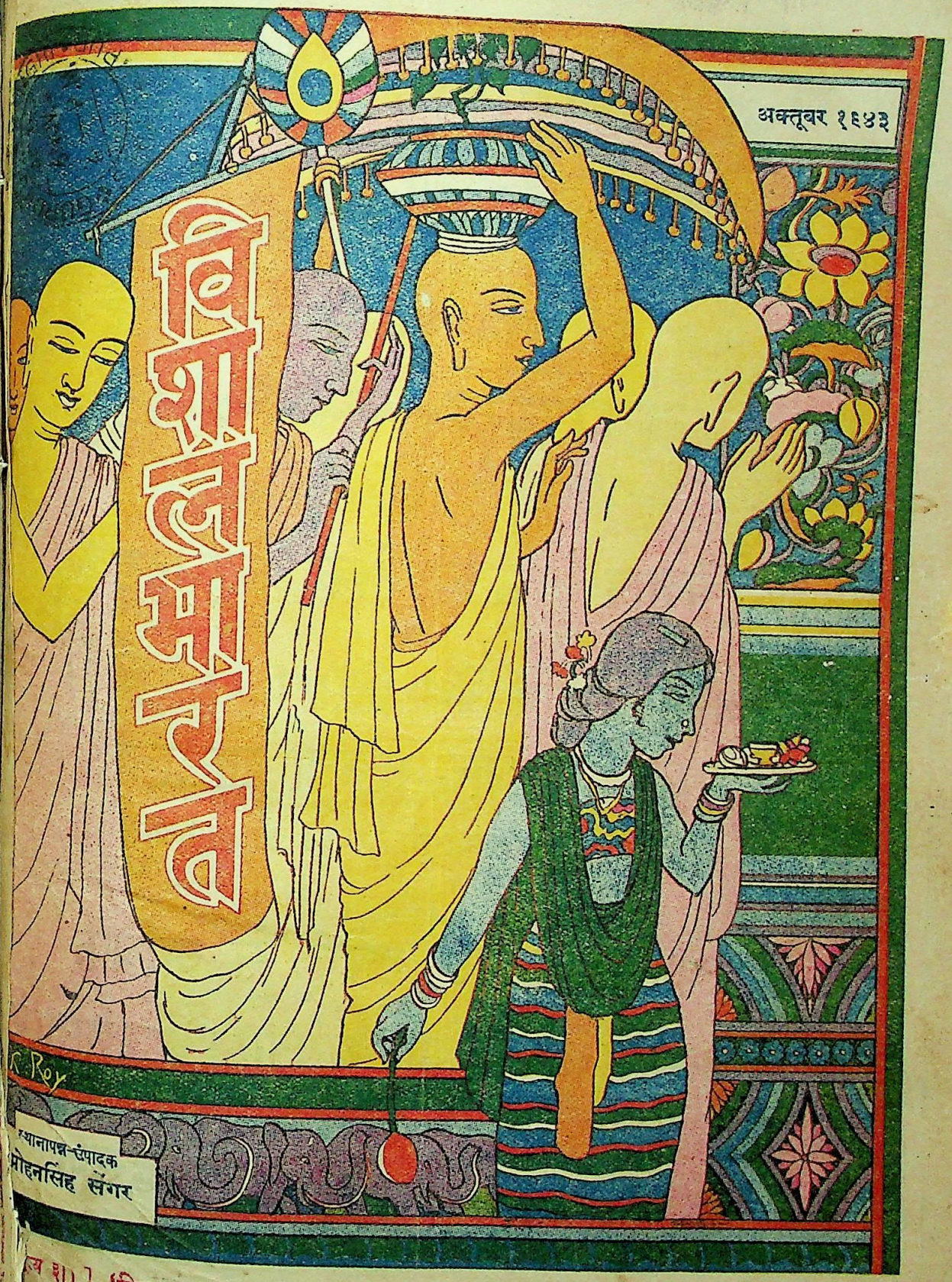

स्थानापन्न-संपादक
मोहनसिंह सेंगर

[मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब नैशनल बैंक लि०

हेड आफिस :—
४७ माल रोड, लाहौर

ब्रांचें :—
समस्त भारतवर्ष में

बैंक जो अपने गुणोंमें अनुपम है

क्रमानुसार बचत

के लिये

पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

में

अपना सेविंग बैंक हिसाब खोलिये।

सूद १॥ प्रति सैकड़ा सालाना

चेक द्वारा रुपया निकलवाने की सहूलियत।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चालू धन २५ करोड़ से अधिक

बैंक-सम्बन्धी सब प्रकारका कारोबार किया जाता है

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

योद्धराज
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

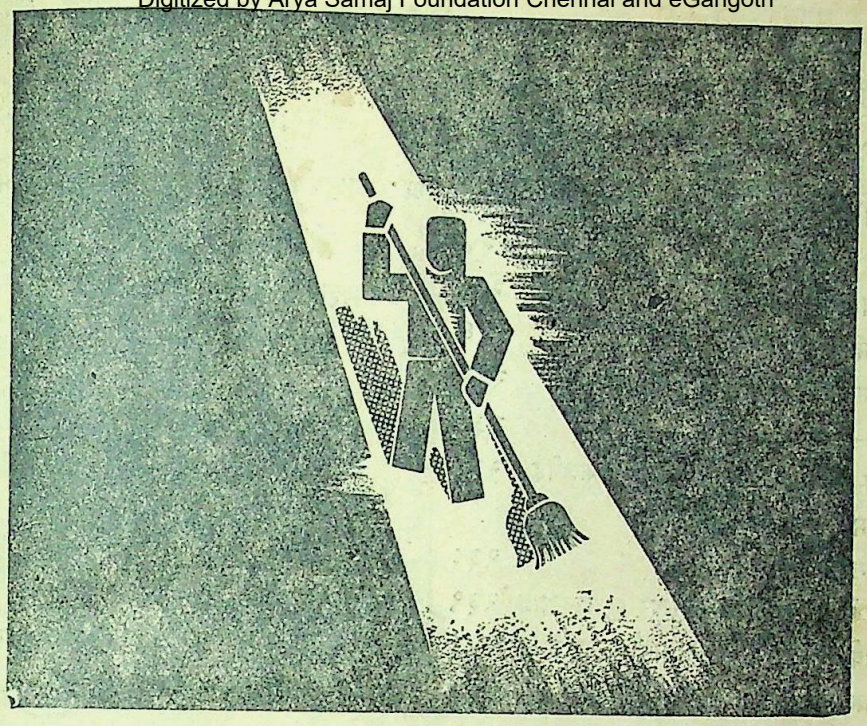

पूरा काम

पेट में मल या गन्दगी एकत्र होने से अनेक रोग होते हैं, इसलिए अपने पेट को खूब साफ़ रखो।

अपने गले, कण्ठनली और फेफड़ों को रोग से अथवा जलन होने से बचाओ, अन्यथा दुखदायी खाँसी हो जाती है।

सब तरह की खाँसी में ग्लायकोडिन टर्म-वसा का व्यवहार करना चाहिए। यह रोग की जड़ पर प्रहार करता है और इसमें पड़ी हुई औषधियाँ खाँसी को मिटाकर शान्ति देती हैं।

खाँसी को मिटा कर शान्ति देता है

एलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड बडोदा

एलेम्बिक डिस्ट्रीब्यूटर्स लि०, रस्तोगी-हाउस, बाँकीपुर, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[भाद्र, २००० वि० : : अक्तूबर, १९४३ ई०]

१ क्रान्ति-कुमारी (कविता)—श्री सोहनलाल द्विवेदी २१७
२ मातृभाषाओंका प्रश्न—श्री राहुल सांकृत्यायन २१८
३ स्व० गुरुशंकरन नम्बूदरी—श्री सतीशचन्द्र काला २२२
४ रवीन्द्रनाथ और साहित्यिक आदर्श—श्री गुरुदयाल २२४
५ मानव तू निर्भय बन (कविता)—श्री आरसीप्रसादसिंह २२५
६ बेट्रिस वेब—मोहनसिंह सेंगर २२६
७ अन्धोंकी शिक्षा और श्री रामानन्द बाबू (स०) २३२
८ चोर (कहानी)—श्री जैनेन्द्रकुमार २३३
९ सुरमयी बदली (कविता)—श्री रूपकुमारी बाजपेई २३५
१० मनुष्यकी आत्म-चेतना और जीवन—श्री इलाचन्द्र जोशी २३६
११ प्रेमचन्द और देहात—श्री श्यामसुन्दर झुनझुनवाला २३९
१२ दिल्लीका गान्धर्व महाविद्यालय—श्रीमती सत्यवती २४३
१३ वनस्थलीमें उपवन—श्री सुधीन्द्र २४७
१४ टमाटर-सोयाबीन—श्री चन्द्रभाल ओझा २४८
१५ भारतका भावी परित्राता (स०)—श्री सन्तराम २५१
१६ मन-घन (कविता)—श्री सोहनलाल द्विवेदी २५३
१७ हमारे लोकगीत—श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश' २५४
१८ भावुकताकी एक झलक—श्री चन्द्रबली पांडे २५७
१९ प्रो० सर पैट्रिक गीडीज़—श्री माधव विनायक किबे २६०
२० राघव (कहानी)—श्री शान्तिस्वरूप गौड़ २६१
२१ बाण भट्टकी आत्म-कथा—श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी २६३
२२ 'संन्यासी'—श्री मुकुन्दीलाल २६८
२३ युद्धोत्तर अर्थनीति और व्यापार—श्री पथिक २७०
२४ चिट्ठी-पत्री २७३ ; २५ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार २७६ ; २६ चयन २७९ ; २७ सम्पादकीय २८१
तिरंगा चित्र : ग्राम-वधू—श्री देवीप्रसाद राय-चौधुरी २१७

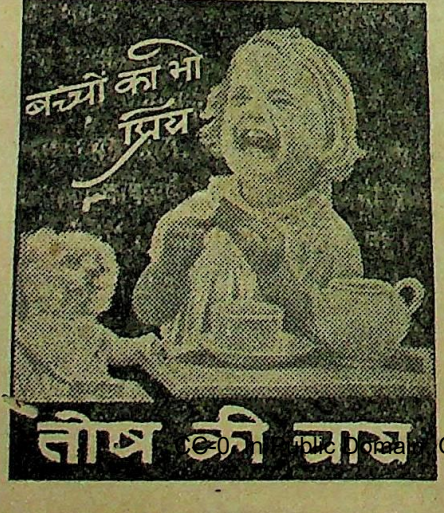

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री 'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला', मू० ३)।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला १॥), भाग दूसरा १॥)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

प्रेमयोग ; प्राच्य और पाश्चात्य ; आत्मानुभूति : परिव्राजक— प्रत्येकका मू० ॥=)।

मेरे गुरुदेव—मू० ।=) ; शिकागो-वक्तृता—मू० ।=) ; वर्त्तमान भारत—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर

(सी० पी०)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगमुक्ति के बाद शक्ति के लिये?

शक्ति देनेवाली ऐसी औषधि का सेवन करो जो पाचन शक्ति को बढाये

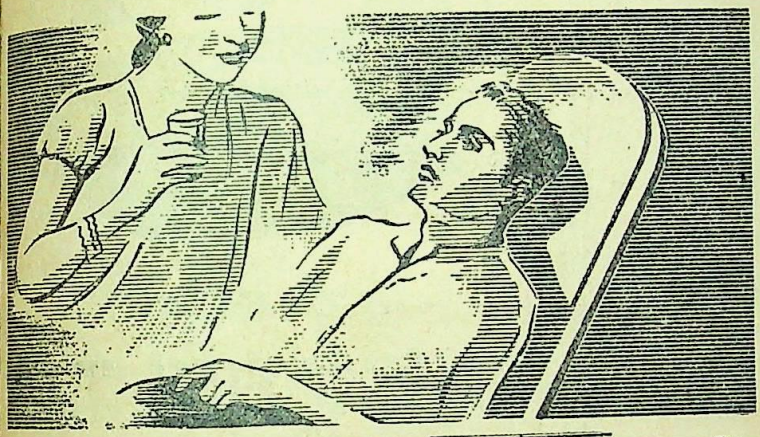

"बहुत दिनों तक रोगग्रस्त रहने के कारण मेरे पति की पाचन-क्रिया बिल्कुल बिगड़ गई थी और रोग के उभरने का भय रहता था। एक दिन एक डाक्टर ने हेमो-द्राक्षो माल्ट का सेवन करने को कहा। उन्होंने कहा,—**'हेमो-द्राक्षी माल्ट'** में जव का सत, अंगूर का रस तथा अन्य औषधियाँ हैं, जो पाचन-क्रिया को ठीक करती हैं। दूसरी ओर इसमें ग्लीसेरो फास्फेट्स, पचने योग्य लौह और हेमो ग्लोबिन है, जो रक्तको बढ़ाकर नशों में शक्ति और स्फूर्ति देते हैं।"

"चंगे हो गये। हेमो-द्राक्षो माल्ट के थोड़े दिनों के सेवन के बाद मेरे पति अब बिल्कुल चंगे हो गये हैं। अब उनमें खूब शक्ति और उत्साह बढ़ गया है—वे अपने काम पर भी जाते हैं। उनके इस परिवर्तन के लिये मैं हेमो-द्राक्षो माल्टका धन्यवाद करती हूँ।"

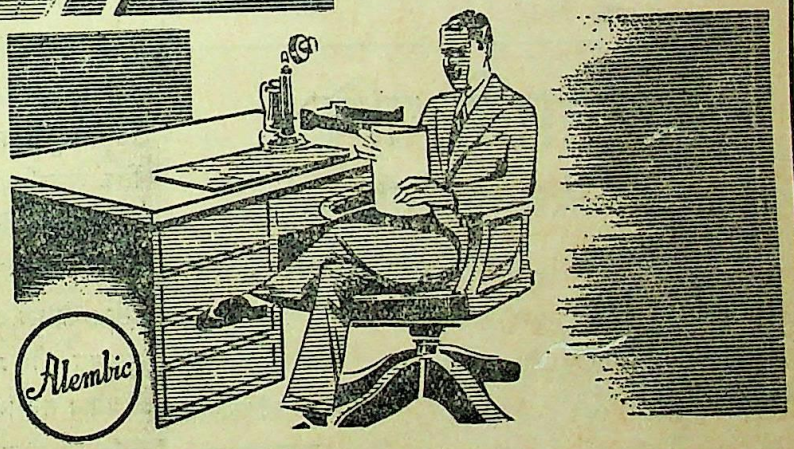

एलेम्बिक केमिकल

वर्क्स कं० लि०

बड़ौदा

एलेम्बिक डिस्ट्रीब्यूटर्स लि०, रस्तोगी हाउस, बाँकीपुर, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों के लिए ताकत की दवा
डोंगरे का बालामृत

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका सातवाँ अंक प्रकाशित हो गया।

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

शिक्षानिधि	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
वेदका अर्थानुचिन्तेन	बलदेव उपाध्याय
धर्मकीर्त्तिका दर्शन (२)	राहुल सांकृत्यायन
नटीकी पूजा	कृष्ण कृपालानी
चतुरंग (उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
विस्मृत बौद्ध दर्शन	शान्ति भिक्षु
साहित्यका नया रास्ता	हजारीप्रसाद द्विवेदी

इसके अतिरिक्त चीन-भवनकी दीवारोंपर सुप्रसिद्ध शिल्पाचार्य श्री नन्दलाल वसु द्वारा अंकित नटी-पूजाके नयनाभिराम चित्र, रवीन्द्रनाथकी कविताएँ और चोटीके विद्वानों द्वारा लिखी हुई समालोचनाएँ हैं। प्रथम वर्षकी फाइलें बहुत कम बची हैं। संग्रह करनेमें शीघ्रता कीजिए।

आर्डर मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए प्रति संख्या १॥)

व्यवस्थापक, विश्वभारती पत्रिका,

हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल

सौन्दर्य की खोज

आपके चर्ममें कितना सौन्दर्य छिपा हुआ है, इसका आपको ज्ञान है? अपने सम्पूर्ण शरीरके चर्मको निर्मल एवं सुन्दर रखनेके लिए गोदरेजके उत्तम नं० १ नहानेके साबुनके व्यवहारका सरल विश्वसनीय एवं बुद्धिमत्तापूर्ण इलाज नियमित रूपसे करते रहें। सौन्दर्य-वृद्धि करने एवं चर्मका पोषण करनेवाली चुनी हुई प्राकृतिक वनस्पतियोंके तेलसे बने हुए गोदरेजके सर्वगुण-सम्पन्न नं० २ साबुन आपके चर्मके लिए अद्वितीय है। यह साबुन चर्मकी सभी त्रुटियोंको दूरकर उसे स्वच्छ और नीरोग बनाता है। इसका कोमल कान्तिवर्धक फेन आपके चर्मको मखमलकी तरह मुलायम और मनमोहक बना देगा। इसके अतिरिक्त इसमें विद्यमान तत्त्वोंका जन्तुनाशक गुण (साबुनका यह रंग तत्त्वोंके कारण ही होता है) आपके चर्मको आरोग्यता प्रदान करता है।

गोदरेज नं० १

साबुनोंमें सर्वोत्तम : इसकी बड़ी और सुन्दर बट्टी—मनमोहक सुगन्धवाली कान्तिवर्धक एवं जन्तुनाशक—आपको अवश्य मोहित कर लेगी।

Godrej No. 2

गोदरेज चाभी छाप नं. २

टॉयलेट साबुन

गोदरेज सोप्स, लि० — पटना (स्टेशन रोड)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

ग्राम-वधू

[श्री देवीप्रसाद राय-चौधुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

भाग ३२, अंक ४] भाद्र, २००० : : अक्तूबर, १९४३ [पूर्णांक १९०

क्रान्ति-कुमारी

श्री सोहनलाल द्विवेदी

मैं आती हूँ बन नई सृष्टि, ध्वंसोंके प्रलय-प्रहारोंमें।
मैं आती हूँ धर कोटि चरण, युगके अनन्त हुंकारोंमें।

मैं आती हूँ ले नव भाषा,
मैं आती ले नव अभिलाषा,
नव शब्द, छन्द, लय, ताल, मीड़, नव गमकोंकी गुंजारोंमें।
मैं आती हूँ धर कोटि चरण, युगके अनन्त हुंकारोंमें।

चीरती रूढ़ियोंकी छाती,
बिजली बन तमसाको ढाती,
मैं आती हूँ कन्धेपर चढ़, मृत्युंजय अभय कुमारोंमें।
मैं आती हूँ धर कोटि चरण, युगके अनन्त हुंकारोंमें।

जड़ गतानुगतिकी हिला-हिला,
अन्धानुकरणपर बनी शिला,
आती हूँ कसक-कराह लिए, मैं मरती हूँ बेज़ारोंमें।
मैं आती हूँ धर कोटि चरण, युगके अनन्त हुंकारोंमें।

पद-दलितोंको मैं उकसाती,
दलितोंका पथ मैं बन जाती,
उल्का, तारा, शनि केतु लिए, खेला करती अंगारोंमें।
मैं आती हूँ धर कोटि चरण, युगके अनन्त हुंकारोंमें।

तोड़ती नियम औ' धाराएँ
फोड़ती क़िले औ' काराएँ,
जंज़ीरें, बेड़ी, मृत्युदण्ड, फाँसीके हाहाकारोंमें।
मैं आती हूँ धर कोटि चरण, युगके अनन्त हुंकारोंमें।

- २ -

कविको देती वरदान नए,
रविको देती मैदान नए,
छविको देती उद्यान नए,
हविको देती बलिदान नए,
मैं ध्वंस-सृजनके चरणोंसे नित अपना पंथ सजाती हूँ;
जब आती हूँ!

निर्बलके करकी ढाल बनी,
निर्धनके कर करवाल बनी,
धन दर्पित, उद्धत, क्रूर, कुटिल,
कामी प्राणोंका काल बनी,
युग-युगके गौरव-छत्र-मुकुटमें बढ़-बढ़ आग लगाती हूँ;
जब आती हूँ!

विद्रोह, भ्रान्ति, विप्लव, अशान्ति,
उत्पात, अराजकता भरती,
मैं सप्त-सिन्धु खौला करके
भू-अम्बर सभी एक करती,
फूँकती जागरण-शंख, पंख मैं बँधे हुए खुलवाती हूँ;
जब आती हूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृभाषाओंका प्रश्न

श्री राहुल सांकृत्यायन

मातृभाषाओंके बारेमें कहनेसे पहले हिन्दीके बारेमें हम अपनी स्थिति साफ़ कर देना चाहते हैं, क्योंकि इसीको लेकर कितने ही भाई बे-समझे तरह-तरहकी कल्पनाएँ उड़ाने लगते हैं। आजके युगने जहाँ भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी जातियोंको आत्म-चेतना प्रदान की है, ज्ञानके प्रसारको बढ़ाया है; वहाँ साथ ही साथ भिन्न-भिन्न जातियोंको उसने एक-दूसरेके बिलकुल निकट कर दिया है। रेलों, जहाज़ों और विमानोंने देशोंकी दूरियोंको शून्य-सा बना दिया है। आज भिन्न-भिन्न प्रान्तों और देशोंके व्यक्ति उसी तरह एक-दूसरेके पास जीने-रहनेका मौक़ा पाते हैं, जैसा कि किसी वक्त पड़ोसी गाँवों और महल्लोंके लोग। आज कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद, जमशेदपुर, जमालपुर-जैसे कल-कारखानेवाले शहरोंको देखनेसे मालूम होता है कि किस तरह वहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके मजूर-मजूरिनें, एक जगह रहकर, एक ग्रामके वासी बन गए हैं, जिसके कारण वे आपसमें सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए एक सम्मिलित भाषाको उपयोगिताको ही नहीं समझते, बल्कि सरल हिन्दीका इस्तैमाल भी करते हैं। आजके युगमें एक सम्मिलित भाषाकी उपयोगिताको न समझना वस्तुतः बड़े आश्चर्यकी बात होगी, इसीलिए हिन्दीके सम्मिलित साझेकी भाषा होनेसे हम इन्कार नहीं करते। रोज़के आपसी वार्तालापकी तरह साहित्यिक आदान-प्रदानके साधनके तौरपर भारतमें हिन्दीका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है और रहेगा, इसे भी हमें मानना पड़ेगा। इसलिए हिन्दी-साहित्यके प्रचार और विस्तारकी हम किसीसे कम कामना नहीं करते। इस बातके तो हम और भी ज़बर्दस्त पक्षपाती हैं, यह कौरवी-सम्बन्धी हमारे विचारोंसे मालूम होगा।

हम तो सिर्फ़ इतना ही चाहते हैं कि लोग इस बातको स्वीकार करें कि मेरठ-कमिश्नरी (कुरु-जनपद) के पौने चार ज़िलोंको छोड़कर बाक़ीके लोगोंकी भी अपनी निजी मातृभाषाएँ हैं। यदि इस बातको आप मान लेते हैं, तो आगेका काम बिलकुल सरल हो जाता है। पांचाली (रुहेलखंडी), ब्रज (सौरसेनी), बुन्देलखंडी (दाशार्णी), बघेलखंडी (चेदिका), वात्सी (दक्षिणी अवधी), काशिका (बनारसी), मल्लिका (भोजपुरी) आदिमें से एक-एकके बोलनेवालोंकी संख्या लाखों ही नहीं, करोड़ों तक पहुँचती है, और ये भाषाएँ इन लोगोंकी मातृभाषाएँ हैं। मातृभाषाकी हमारी परिभाषा यह है कि जिसके बोलनेमें अनपढ़से अनपढ़ आदमी और बच्चा तक भी व्याकरणकी ग़लती न कर सके। आप बरसानेके पाँच वर्षके बच्चेके सामने अपनी सीखी ब्रजभाषाको बोलें। बच्चेने व्याकरणका नाम भी नहीं सुना होगा; लेकिन यदि आप कहीं अशुद्ध बोलेंगे, तो वह तुरन्त हँस पड़ेगा। बच्चेने माँके दूधके साथ अपनी मातृभाषा और उसके व्याकरणको अप्रयास सीखा है। आप इन भाषाओंको हिन्दीसे अभिन्न नहीं कह सकते। यदि ऐसा होता, तो अवधी, काशिका, मल्लिका आदि भाषाएँ बोलनेवाले मिडिल तक ही नहीं, बी० ए० तक भी पढ़कर व्याकरणकी भारी भूलें नहीं करते। इस कथनका सबूत ढूँढ़ना हो, तो मिडिल तथा अपर तकके परीक्षार्थियोंकी प्रश्नोत्तर-कापियाँ देख लें, अथवा स्वयं अपने रोज़-रोज़के तजुर्बेको ही इस्तैमाल कर सकते हैं। सहवास या मजबूरीसे मामूली बातोंको ग़लत-सलत समझ-समझा लेनेको आप भाषा-अभिज्ञता नहीं कह सकते।

मानव-जातिके आज तकके तथा प्रतिदिन, प्रतिक्षण बढ़ते विस्तृत ज्ञानके — दर्शन, विज्ञान, साहित्य, राजनीतिके हम उत्तराधिकारी हैं, और इस ज्ञानको प्राप्त करना तथा इसे काममें लाना हमारे जीवित रहनेके लिए सबसे ज़रूरी शर्त है। यह ज्ञान सदा भाषाके लिबासमें रहता है और भाषाके माध्यम द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। प्रश्न है, क्या आप ज्ञानको बिना समय और श्रमके अधिक व्ययके सिखलाना चाहते हैं? आप 'हाँ' कहेंगे; मगर आपकी 'हाँ' व्यर्थ है, जब तक कि आप अवधी, काशिका, मल्लिका-भाषा-भाषियोंके सामने यह शर्त पेश करते हैं कि पहले वे आठ वर्ष तक हिन्दी सीखें, फिर उन्हें ज्ञान-मंदिरमें प्रवेश करनेका अधिकार होगा। मुश्किल तो यह है कि शहरके कुछ हिन्दीवाले तथा वर्षोंके परिश्रमके बाद हिन्दी बोल लेनेवाले हमारे शिक्षक गाँवके ग़रीबोंकी कठिनाइयोंको बिलकुल ही खयालमें नहीं लाना चाहते।

मातृभाषाओंको ज्ञानका माध्यम बनानेमें शिक्षाकी प्रगति कितनी तेज़ीसे हो सकती है, इसका सुन्दर उदाहरण सोवियत मध्य-एशियाकी तुर्कमान, उज़बेक, किर्गिज़ और कज़ाक जातियाँ हैं, जो १९१७ से पहले शिक्षामें भारतीयोंसे अधिक पिछड़ी हुई थीं। ज़ारशाही दिलसे चाहती ही न थी कि उनमें शिक्षा सार्वजनीन हो। इसलिए उसने स्कूलोंमें रूसीका माध्यम रखा था। शिक्षित शहरी तरुण तुर्की (तुर्कीकी साहित्यिक भाषा) को शिक्षाका माध्यम बनाना चाहते थे, जो मध्य-एशियाकी इन जातियोंकी मातृभाषाओंके समीप होते हुए भी उनकी मातृ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा न थी। रूसी द्वारा यदि ज्ञानके आदान-प्रदानमें समर्थ होनेके लिए दस सालकी शर्त थी, तो तुर्कीमें आठ सालकी। जब दोनों शत-प्रतिशत जनताको साक्षर ही नहीं, शिक्षित देखनेके लिए उत्सुक नहीं थे, तो फिर उन्हें मातृभाषाओंकी ओर नज़र दौड़ानेकी ज़रूरत ही क्या थी? मगर जब १९१७ की रूसी जन-क्रान्तिके लिए जनताको साक्षर-शिक्षित करना जिन्दगी और मौतका सवाल हो गया, तो क्रान्तिके नायकोंका ध्यान जनताकी बोलियों—तुर्कमानी, उज़्बकी, किर्गिज़ी, कज़ाकी—की ओर गया। उस वक्त इन भाषाओंकी न कोई लिपि थी और न कोई लिखित साहित्य। इसके विरुद्ध रूसी और तुर्की साहित्य विशाल थे; लेकिन जनताके पथ-प्रदर्शक भलीभाँति यह समझते थे कि सारी जनताको रूसी या तुर्की भाषापर अधिकार करनेके लिए मजबूर करनेकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि रूसी, तुर्की तथा दूसरी भी समुन्नत भाषाओंमें सुरक्षित ज्ञानको तुर्कमानी आदि भाषाओंमें उल्था करके जनताके सामने रखा जाय। उन्होंने ऐसा ही किया, और आज २५ वर्ष बाद मध्य-एशियाकी कैसी कायापलट हुई, यह हमारे सामने है। जिस वक्त की भाषामें आजसे २५ साल पहले एक भी छपी पुस्तक न थी, आज वही ताशकन्द-विश्वविद्यालयके भिन्न-भिन्न विषय-वाले कालेजोंमें शिक्षाका माध्यम है। उसमें अनेक दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। हज़ारों पुस्तकें छपती हैं। ज़िद्दी बूढ़े-बूढ़ियोंको छोड़कर आज वहाँ कोई निरक्षर ही नहीं, अशिक्षित भी नहीं है।

हम 'मातृभाषाकी जय'के नामपर लोगोंको पागल नहीं बनाना चाहते, बल्कि जब हम विशाल जनताको चन्द सालोंमें साक्षर-शिक्षित करनेकी बात सोचते हैं, तो यह छोड़कर 'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' साफ़ मालूम होता है। यदि विदेशी साम्राज्यवादियोंकी भाँति हम भी चन्द सेठों-बाबुओंको शिक्षित करके उन्हें शासक बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि ९० फ़ी-सदी जनता अशिक्षित रहकर अपने शासकोंकी मनमानीमें दखल न दे, तब तो मातृभाषा छोड़ दूसरी भाषाको शिक्षा-माध्यम बनानेकी शर्त बिल्कुल ठीक है; लेकिन यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आजके कल-कारखानोंकी बारीक मशीनोंको शिक्षित मजूर ही चला सकते हैं। आजकलके पेचीदा हथियारोंको अशिक्षित सिपाही नहीं इस्तैमाल कर सकते।

कितने लोग सोचते हैं कि इन ग्रामीण बोलियोंमें कितने ही सुन्दर गीत, कहानियाँ, मुहावरे और शब्द पाए जाते हैं। इन बोलियोंके लिए मृत्युका वारण्ट कट चुका है, इसलिए इनमें उपलभ्य साहित्यिक तथा भाषातात्त्विक सामग्रियोंको जल्दी-जल्दी जमा कर लेना चाहिए। उनकी दृष्टिमें मातृभाषाओंका बस इतना ही मूल्य है, अथवा वे इतनी ही दयाकी पात्र हैं; मगर वे भारी भ्रममें हैं, जब वे मृत्युके वारण्टकी बात सोचते हैं। व्रजभाषाके लिए मृत्युका वारण्ट कट चुका है! अवधी मरण-शय्यापर लेटी है! मैथिली सपना बनने जा रही है! जाकर पूछिए इन भाषाओंके बोलनेवाले करोड़ों नर-नरियोंसे और सूर, तुलसी, विद्यापतिसे। यदि सूर, तुलसी, विद्यापतिकी मुँहदेखी करना चाहते हैं, तो मल्लिका (भोजपुरी), बुन्देली, बघेलीको जीनेका अधिकारी समझते हैं या नहीं? जाकर पूछिए तो सवा करोड़ मल्लों (भोजपुरियों) को और चेकोस्लोवाकिया तथा बेल्जियम-जैसी जन-संख्या रखनेवाले बुन्देलों और बघेलोंको। मनमाना मृत्युका वारण्ट निकालनेकी धृष्टता न कीजिए। यदि ये भाषाएँ—'बोलियाँ'—अब तक नहीं मरीं, तो निकट भविष्यमें वे नाम-शेष नहीं होने जा रही हैं। उनके तुलसियों, सूरों, विद्यापतियोंकी आपने अब तक क़दर नहीं की या भुला दिया, तो अब भी उर्वरता गई नहीं है। भविष्य उनके हाथमें है। हम बोलियोंके गीतों, कहानियों और मुहावरोंके जमा करनेके विरोधी नहीं, बल्कि ज़बदस्त समर्थक हैं; लेकिन उन्हें अजायबघरकी निर्जीव वस्तुओं अथवा पिंजरा-पोलकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रही लूली-लँगड़ी गायोंके रूपमें रखकर नहीं। हम उन्हें देखना चाहते हैं जनपदीय पार्लमेण्टोंमें बोली जाते, कचहरियोंमें लिखी जाते, प्राइमरी पाठशालाओंसे लेकर कालेजों-विश्वविद्यालयों तक शिक्षाका माध्यम बनते। संक्षेपमें, अपने घरमें अपनी मालकिन बनते। जनताकी भाषा जब घरकी मालकिन बनेगी, तभी जनता घरकी मालकिन बन सकती है।

मातृभाषाओंके माध्यमकी बात करते ही झट लोग सवाल कर बैठते हैं कि पाठ्य-पुस्तकें कहाँ हैं? जिन पुस्तकोंके पढ़ने-खरीदनेवाले लाखों विद्यार्थी हों, उनके तैयार होनेमें कितनी देर लगेगी? अब लेखकोंकी बात लीजिए। पन्त, इलाचन्द्र जोशी, हेमचन्द्र जोशी आदि लेखकोंकी मातृभाषा पूर्वी पहाड़ीको लेखकोंकी दरिद्रता क्या? वही बात बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी आदिकी मातृभाषा व्रज; सियारामशरण, मैथिलीशरण आदिकी मातृभाषा बुन्देली; 'निराला', देवीदत्त शुक्ल आदिकी मातृभाषा कौसली (उत्तरी अवधी); 'निर्मल', श्रीनाथसिंह आदिकी मातृभाषा वात्सी (दक्षिणी अवधी); चन्द्रबली पांडे, अयोध्यासिंह उपाध्याय, विश्वनाथप्रसाद मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकी मातृभाषा काशिका (बनारसी) ; उदयनारायण तिवारी, शिवपूजन सहाय, मनोरंजनप्रसाद आदिकी मातृभाषा मल्लिका (भोजपुरी) ; 'राकेश', 'उमेश', जगन्नाथप्रसाद मिश्र, अमरनाथ झा आदिकी मातृभाषा मैथिली आदिके बारेमें समझ सकते हैं। जहाँ एक बार इस बातको आपने मान लिया कि मातृभाषाएँ शिक्षाका माध्यम हों, वहाँ लेखकोंको पैदा करनेकी फ़िक्रमें दुबले होनेकी आवश्यकता नहीं। हिन्दीके बहुत ही अधिक लेखक ऐसे हैं, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं, बल्कि ब्रज, कौसली, काशिका, मल्लिका आदि है। पुस्तकोंके प्रकाशनके लिए प्रकाशक तो सैकड़ोंकी संख्यामें आपके पीछे-पीछे दौड़ते फिरेंगे, और प्रतियोगितामें मैट्रिक तक की पुस्तकोंका तैयार हो जाना तो एकाध सालका काम है? पारिभाषिक शब्दोंका सवाल हिन्दीके लिए भी वैसा ही है। संस्कृतका शब्द-भाण्डार मातृभाषाओंके लिए भी खुला है। जर्मन भाषाकी भाँति मातृभाषाएँ कितनी ही परिभाषाओंको अपने (बोलीके) कोषसे बनायँगी। पाँवगाड़ी (बाइसिकल), अगनबोट (स्टीमर) आदि उन्होंने बनाए भी हैं। फिर रेडियो, रेल-जैसे कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय शब्दोंको वैसे ही लिया जा सकता है।

मातृभाषाओंको माध्यम बनानेका अधिकार

पिछले कांग्रेसी मन्त्रिमंडल भी यह कार्य कर सकते थे। सीमा-प्रदेशके कांग्रेस-मन्त्रिमंडलने पश्तोको पाठशालाओंमें शिक्षाका माध्यम बनाया भी था। कोई भी राष्ट्रीयतावादी मन्त्रिमंडल बुन्देलखण्डमें बुन्देली तथा ब्रजमें ब्रजभाषाको शिक्षाका माध्यम बना सकता है। इसमें अंगरेज़ी महाप्रभुओंको बाधा देनेकी ज़रूरत नहीं, यदि आप समझते हैं कि इस लड़ाईके बाद भी दुनिया तो बदलेगी, मगर हम और हमारे प्रभु तब भी उसी तरह बने रहेंगे।

हाँ, हमारे देशमें प्रान्तोंका बँटवारा अभी तक शासकोंके सुभीतेके अनुसार हुआ था। अब उसे जनताके सुभीतेके अनुसार करना होगा। तीन प्रान्तोंकी जगह तीस प्रान्तोंके हो जानेमें अंगरेज़-प्रभुओंकी आपत्तिके खयालसे मरे मत जाइए। यदि आप समझते हैं कि अंगरेज़ी साम्राज्य वैसा ही अक्षुण्ण रहेगा, भारत सफ़ेद सिविलियनोंकी चक्कीके नीचे वैसे ही पिसता रहेगा, तो फ़िक्र करनेकी ज़रूरत नहीं; क्योंकि तब तीनकी जगह तीस आइ० सी० एस० को लाट साहब बननेका मौक़ा मिलेगा। यदि आज ग्यारह प्रान्तों और छै सौसे ऊपर देशी राज्योंके रहते हुए भी भारतकी अखण्डता अक्षुण्ण है, तो उस वक्त भी उसकी गुंजाइश है। जब आत्म-हत्याके बारेसे बँगला, उड़िया, गुजराती और मराठीको आत्म-हत्या—आत्म-गोपन—करनेके लिए आप तैयार नहीं कर सकते, तो बेचारी ब्रजभाषा, बुन्देली, मल्लिका और मैथिलीसे कौन-सा अपराध बन पड़ा है? फिर भाषाओंको हमने नहीं गढ़ा है। ये विश्वके विकासके क्रममें स्वयं आ मौजूद हुई हैं, और भावुकताके नाम पर नहीं, अपनी उपयोगिताके नामपर जीने देनेकी मांग कर रही हैं।

हाँ, तो हमारी मातृभाषाओंके लिए हिन्दी-उर्दू वाले प्रान्तों (पंजाब, सिन्ध, युक्त-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बिहार) तथा रियासतोंको फिरसे निम्न जनपदोंमें बाँटना होगा :—

भाषा	जनपद	राजधानी
हिन्दकी	पश्चिमी पंजाब	रावलपिंडी
मध्य-पंजाबी	मध्य-पंजाब	लाहौर
पूर्वीय पंजाबी	पूर्वीय पंजाब	लुधियाना
सिन्धी	सिन्ध	कराची
मुल्तानी	मुल्तान	मुल्तान
काश्मीरी	काश्मीर	श्रीनगर
पश्चिमी पहाड़ी	त्रिगर्त	काँगड़ा
हरियानी	हरियाना	दिल्ली
मारवाड़ी	मारवाड़	जोधपुर
वैराटी	विराट	जयपुर
मेवाड़ी	मेवाड़	चित्तौड़
मालवी	मालवा	उज्जैन
बुन्देली	बुन्देलखंड	झाँसी
ब्रज	सूरसेन	आगरा
कौरवी	कुरु	मेरठ
पंचाली	रुहेलखंड	बरेली
गढ़वाली	गढ़वाल	श्रीनगर
कूर्माचली	कूर्मांचल	अल्मोड़ा
कौसली	कौसल (अवध)	लखनऊ
वात्सी	वत्स	प्रयाग
चेदिका	चेदी	जबलपुर
बघेली	बघेलखंड	रीवा
छत्तीसी	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
काशिका	काशी	बनारस
मल्लिका	मल्ल	छपरा
बज्जिका	बज्जी	मुज़फ़्फ़रपुर
मैथिली	विदेह (तिर्हुत)	दरभंगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगिका	अंग	भागलपुर
मागधी	मगध	पटना
संथाली	संथाल-परगना	जसीडीह

इस सूचीमें कुछ और भाषाएँ बढ़ सकती हैं। ग्रियर्सनका प्रयत्न प्रारम्भिक था, इसलिए उनके भाषा तथा क्षेत्रके विभाजन भी प्रारम्भिक थे। उन्होंने भोजपुरीके भीतर ही काशिका (बनारसी) और मल्लिका दोनोंको गिन लिया है, जो व्यवहारतः बिल्कुल ग़लत है। स्टैण्डर्ड भाषाका सवाल उठते ही सीधे छपरा और बनारसकी बोलियोंका दावा आपके सामने आयगा और मल्ल तथा काशी जनपदोंके निवासी अपनी-अपनी भाषाओंकी अलग सत्ता स्वीकार कराके रहेंगे।

प्रान्तोंके पुनर्विभाजनके सम्बन्धमें मालूम होना चाहिए कि सवा करोड़ मल्ल-वासी (छपरा, बलिया, आरा, मोतीहारी, देवरिया, शिल्दारनगरवाले) इसके लिए सबसे अधिक उतावले हैं। उनका प्रान्त आज बिहार तथा युक्त-प्रान्तमें बँटा हुआ है, जिसमें युक्त-प्रान्तमें उनके साथका व्यवहार अच्छा नहीं कहा जा सकता। मातृभाषाओं और जनपदोंकी माँग उनके वास्तविक पृथक व्यक्तित्वके बलपर की जाती है। यहाँ न विकेन्द्रीकरणका सवाल है और न २० करोड़की भारी-भरकम संख्याके सँभाल पानेका। यदि २० करोड़ क्या, ४० करोड़ भी एक मातृभाषा-भाषी होते, तो सिर्फ़ संख्याके भारी होनेसे उसे खण्ड-खण्ड करना उचित न होता। और विकेन्द्रीकरण? यहाँ तो हम वस्तुतः केन्द्रीकरण कर रहे हैं, जब कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें बिखरे मल्लि-भाषियों (भोजपुरियों) को एक जनपदमें संगठित करते हैं। 'कहाँकी ईंट, कहाँका रोड़ा, भानुमतीने कुनबा जोड़ा'की जगह एक भाषा-भाषियोंको एक जनपदके रूपमें केन्द्रित कर देते हैं।

कौरवी और हिन्दी

सभी जनपदों (प्रान्तों) के बीच राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए एक अन्तर्प्रान्तीय भाषाकी आवश्यकता अनिवार्य है, यह हम बतला चुके हैं। हिन्दी (फ़ारसी, अरबी भरमारके साथ यही उर्दू है) इस कामको आज कर रही है और भविष्यमें उसे और भी अधिक करना होगा। हम पसन्द करेंगे कि प्राइमरीके आगे बढ़नेपर हरएक विद्यार्थीको हफ़्तेमें दो-तीन घण्टे हिन्दीका पढ़ना आवश्यक कर दिया जाय। ऊपरके तीस जनपदोंमें उसे अनिवार्य द्वितीय भाषा मान लेनेपर भी शायद किसीको आपत्ति न होगी; किन्तु यह प्रश्न सारे भारतसे सम्बन्ध रखेगा, और बंगाल, आन्ध्र, द्रविड़ केरल आदिमें से किसीको आपत्ति भी हो सकती है, इसलिए अनिवार्य करना, न करना जनपदोंके ऊपर छोड़ देना चाहिए। हिन्दीके द्वितीय भाषाके तौरपर अधिक प्रचार होनेसे कालेजों तथा उच्च खोजोंकी हिन्दी-पुस्तकोंका भली प्रकार उपयोग हो सकेगा, यद्यपि छात्रको परीक्षामें अपनी मातृभाषामें उत्तर देनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

लेकिन हिन्दी सिर्फ़ अन्तर्प्रान्तीय भाषा ही नहीं है, वह कितनोंकी मातृभाषा है, इसे युक्त-प्रान्तके शहरोंके रहनेवाले पाठक अच्छी तरह जानते हैं। मातृभाषाको माध्यम स्वीकार करनेका मतलब है, हमें मुरादाबाद, बरेली, आगरा, दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग आदि शहरोंके हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी अपनी मातृभाषा द्वारा शिक्षा देनेके लिए उन-उन जगहोंपर विशेष स्कूलोंका प्रबन्ध करना होगा। (सोवियत्ने भी ऐसा ही किया है।) साथ ही जनपदोंमें उन जनपदोंकी राजकीय भाषाके तौरपर हिन्दीको नहीं स्वीकार किया जा सकता।

किन्तु एक बात और न भूलिए। हिन्दी शहरके चन्द सफ़ेदपोशोंकी ही भाषा नहीं है, उसके बोलनेवाले ३० लाखसे अधिक गाँवकी साधारण किसान, मजूर, शिल्पकार जनता भी है। वह मेरठ, मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुरके तीन पूरे ज़िलों और देहरादूनके निचले तथा बुलन्दशहरके उत्तरी भाग (इन पौने चार ज़िलों) के गाँवोंकी जनताकी मातृभाषा है। हाँ, उसे 'गँवारी' कह लीजिए; लेकिन जानते हैं, अपनी 'गँवारी' बोलीके साथ साहित्यिक भाषाका अटूट सम्बन्ध बना रहना उतना ही आवश्यक है, जितना शहरी बाबू लोगोंका गाँवके कमेरोंके साथ। जर्मन लेखक अल्बर्ट स्विटज़रका कथन है—"फ्रेंच और जर्मन इन दोनों भाषाओंके अन्तरको, जैसा कि मैं अनुभव करता हूँ, इस प्रकार सर्वोत्तम ढंगसे स्पष्ट कर सकता हूँ कि जहाँ तक फ्रेंच भाषाका सम्बन्ध है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी सुन्दर उद्यानके बढ़िया साफ़-सुथरे रास्तोंपर चक्कर लगा रहा हूँ; लेकिन जर्मन भाषामें ऐसा जान पड़ता है, जैसे मनमाने तौरपर किसी जंगलमें घूम रहा हूँ। साहित्यिक जर्मन भाषाका सम्पर्क जनताकी बोलियोंसे बने रहनेके कारण उसमें एक निरन्तर नवीन जीवनकी धारा प्रवाहित होती रहती है। फ्रेंच भाषाका नित नूतन सम्पर्क भूमिसे नहीं रहा। अतः वह परिष्कृत अवश्य हो गई है, पर साथ ही उसकी गतिशीलता भी नष्ट हो गई है; किन्तु जर्मन भाषा उसी अर्थमें आज भी प्रगतिशील बनी हुई है।"* (शेष पृष्ठ २२२ पर)

* "The difference between the two languages (the French and the German) as I feel it, I can best describe

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० गुरुशंकरन नम्बूदरी

श्री सतीचन्द्र काला, एम० ए०

प्रकृति-प्रेमी एवं जीवनमें एक अपूर्व लय देखनेवाले महाकवि कालिदासने कहा है—'**मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवन मुच्यते बुधैः।**' जीवन-मरण संसारका एक नियमित प्रवाह है। संसारकी किसी भी वस्तुमें स्थायीत्व नहीं है। इसी कारण ज्ञानी लोगोंके लिए मृत्यु एक शोचनीय विषय नहीं है; किन्तु महान् आत्माओंकी, जिनको हम अवतार या पुरुष-विशेषके रूपमें देखते हैं, मृत्यु अवश्य शोचनीय है। इस दृष्टिसे कथकलि-नृत्यके प्रकाण्ड ज्ञाता तथा उदयशंकर-कला-केन्द्रके एक उज्ज्वल नक्षत्र गुरुशंकरन नम्बूदरीका संसारसे उठ जाना भारतीय कलाके लिए ही नहीं, वरन् समस्त पूर्वी कला-क्षेत्रोंके लिए एक महान् दुर्भाग्य है। जीवन-पर्यन्त गुरु-शंकरन नम्बूदरी कलाकी उपासना करते रहे और उपासना करते-करते ही वे मंचपर एक हास्य-मुद्राके साथ सदैवके लिए समाधिस्थ भी हो गए।

गुरुशंकरन नम्बूदरीका जन्म सन् १८८० में त्रावणकोर रियासतके अम्बलपूजा नामक स्थानमें हुआ था। उनका सम्पूर्ण परिवार धार्मिक प्रवृत्तिका था, इसलिए यज्ञोपवीत-संस्कार होनेके बाद ही बालक शंकरनको वेद तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ पढ़नेके लिए दे दिए गए। धर्मकी ओर उनकी रुचि तो थी ही; साथ ही उनकी आत्मा अभिनय तथा नृत्यकी सीमाको छूनेके लिए भी उत्कण्ठित हो रही थी। उनकी इच्छा कथकलि-नृत्य सीखनेकी होती; किन्तु रूढ़िगत परम्पराओंके उपासक बालक शंकरनके पिताको पुत्रकी ऐसी प्रवृत्ति उचित नहीं जान पड़ी। पिताके विरोध करनेपर भी वे अनवरत रूपसे कथकलिका अध्ययन करते रहे। कुछ समय बाद गुरुके पिताने अपने पुत्रको एक नृत्य-सम्मेलनमें देखा। वे अपने पुत्रकी प्रतिभाको देखकर चकित हो गए। शंकरनके जीवनका यह एक अपूर्व दिवस था। इसके बाद ही शंकरनको नृत्य सीखनेकी अनुमति मिल गई। वे लगातार ४ वर्ष तक कथकलि-नृत्यकी सूक्ष्मताओंका अध्ययन करते रहे। अभिनयकी शिक्षा उन्हें कलाकार चक्कियारने दी। कथकलि-नृत्य ३० प्रकारका है। इसकी शैली एक ओर गूढ़ तथा दूसरी ओर सरल कही जा सकती है। इस नृत्य तथा अभिनयकी शिक्षा लम्बी और कठिन है। इसीसे वे लगभग १५ वर्ष तक कथकलिकी शिक्षा प्राप्त रहे। बादमें जब वे इधर-उधर नृत्य-प्रदर्शनके लिए गए, तो लोगोंको अनुभव हुआ कि शंकरनका शरीर ही स्वयं 'कथकलि'का प्रतीक बन गया है।

गुरुशंकरन नम्बूदरी तथा उदयशंकरका सर्वप्रथम मिलन त्रिवेन्द्रममें सन् १९३४ में हुआ था। दोनोंकी आत्माएँ एक निश्चित ज्ञान तथा ध्येयकी आकांक्षाएँ रखती थीं, इसलिए प्रथम मिलनमें ही वे एक-दूसरेके अति निकट आ गए। उदयशंकरके आग्रहसे उसी वर्ष गुरु कलकत्ते चले आए, और

हिन्दीको उसकी उर्वर प्रसव-भूमिके साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा, उसे कौरवीके पास जाना होगा, तभी उसकी कृत्रिमता (सदा संस्कृत या अरबी-फ़ारसीसे ऋण लेनेकी प्रवृत्ति)को हटाया जा सकता है, उसके विरुद्ध जीवटहीन प्रवाहको तीव्र और सजीव बनाया जा सकता है। आज हिन्दीको आमफ़हम (सहल) बनानेका नुस्खा हमारे नीमहकीम बतलाते हैं, उसमें उर्दूमें प्रयुक्त होनेवाले कुछ अरबी-फ़ारसी शब्दों ('आम' अरबी है और 'फहम' फ़ारसी है) को ज़बर्दस्ती डाल लेना। हिन्दीको उर्दूकी ओर घसीटकर या उर्दूको हिन्दीकी ओर घसीटकर सरल नहीं बनाया जा सकता, बल्कि दोनोंको सरल बनानेका रास्ता एक ही है—कौरवी बोलीके नज़दीक जाना। अखण्ड हिन्दी राज्यवादियोंको भी मानना पड़ेगा कि आज हिन्दी उस जगह पहुँच गई है, जहाँ उसे अपने मूल स्रोतसे सम्बद्ध किए बिना उसकी अधूरी वर्णन-शक्ति, अधूरे भाव-प्रकाशनको दूर नहीं किया जा सकता। गाँवके मल्लाह, मोची, लुहार, कुम्हार आदिके सैकड़ों हथियारों और क्रियाओंका वर्णन क्यों हमारे उपन्यास-कहानी-लेखक अपने ग्रन्थोंमें नहीं करते? मैं समझता हूँ, हिन्दीके सम्बन्धमें सबसे ज़रूरी एक पंचवार्षिक योजना इस कामके लिए बनानी है कि कौरवीके अलिखित गीत, कविता, कहानी, कहावत, मुहावरे तथा शिल्प-शब्दका विस्तृत संग्रह किया जाय। हिन्दीके उपन्यास-कहानी-लेखकों और सामाजिक जीवनके चित्र खींचनेवालोंको कुरु ज़िलोंके गाँवोंमें चन्द मासका प्रवास अपनी शिक्षाका एक अंग बनाना चाहिए। मातृभाषाओंको उनका हक़ देते ही हिन्दी-उर्दूकी समस्या हमारे यहाँ भी उसी तरह बेकार-सी हो जायगी, जिस तरह वह बंगालमें है।

by saying that in French I seem to be strolling along the well-kept paths in a fine park, but in German to be wandering at will in a magnificent forest. Into literary German there flows continually new life from the dialects with which it has kept in touch. French has lost this ever-frech contact with the soil. It is . . . something finished, while German in the same sense remains something unfinished."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० गुरुशंकरन नम्बूदरी

वहाँ उन्होंने उदयशंकरके सहयोगियोंको कथकलिकी शिक्षा देनी प्रारम्भ की। १९३६ में गुरु अपनी पार्टीको लेकर नृत्य-प्रदर्शनके लिए उत्तर-भारतमें घूमे। लोगोंने उनके नृत्योंको सराहा। साथ ही लोगोंको भारतीय कलाका एक विशेष अंग भी एक विशेष सन्देशके रूपमें प्राप्त हुआ। मलाबारकी भौगोलिक स्थितिने इस नृत्यकी बड़ी रक्षा की है, अन्यथा अनेक बाहरी प्रभावोंसे इस नृत्यमें विच्छृंखलता आ जाती। कथकलि भारतका एक अति शुद्ध तथा सात्विक नृत्य है, और उत्तर-भारतके लोगोंको यह नृत्य गुरुशंकरन नम्बूदरी द्वारा ही प्राप्त हुआ। इसी समय गुरुने उदयशंकरको 'कार्त्तिकेय-नृत्य' भी सिखलाया, जिसकी चारों ओर बड़ी प्रशंसा हुई है। इसकी एक बड़ी विशेषता थी कथकलि-नृत्यके साथ उत्तर-भारतके संगीतका सम्मेलन।

उदयशंकरके कला-केन्द्रकी स्थापनाके साथ ही गुरुशंकरन नम्बूदरी भी वहाँ कथकलि-शिक्षकके रूपमें आ गए। पहाड़ोंकी मुग्ध दृश्यावलीने गुरुको नवीन प्रेरणा दी। कथकलिकी शिक्षा उन्होंने विद्यार्थियोंको नवीन ढंगसे दी और मरण-काल तक वे विद्यार्थियोंसे कहते रहे कि परम्परागत नृत्य-नियम भी आधुनिक कालके समाजको रुचिप्रद रूपमें दिए जा सकते हैं। उनका यह कथन सत्य भी था, क्योंकि कथकलिके प्रदर्शनको सभी प्रकारके व्यक्ति समझ सकते थे।

गुरु धर्मप्रिय व्यक्ति थे। अवकाशके समय वे भगवत्-भजन तथा पासनामें लीन रहते थे। कला-केन्द्रमें आते ही उन्होंने 'नटराज'की मूर्त्तिकी स्थापना की। इस मूर्त्तिके सम्मुख गुरुको कई नवीन तथा महत्त्व-पूर्ण प्रेरणाएँ मिलीं। गुरुकी धारणा थी कि ईश्वर सबका एक है। एक बार गुरुने उस्ताद अल्लाउद्दीनखांको नटराजके सम्मुख गायनके लिए बुलाया; पर उस्तादको अन्दर जानेमें हिचकिचाहट-सी हुई। अन्तमें गुरुके विशेष आग्रहसे उस्ताद अन्दर आ ही गए। इससे ज्ञात होता है कि गुरु परम्परागत विचार-धारामें लिप्त होते हुए भी विश्वजनीनताको कितना महत्व देते थे।

गुरुका व्यक्तित्व महान् था। वे सहनशीलताके आगार थे। जीवनके संध्या-कालके सब प्रभाव उनके तेजोमय चेहरेपर पड़ चुके थे। उनके उच्च ललाट तथा अन्य बातोंसे गम्भीरता और थोड़ी-सी कठोरता भी टपकती थी। किन्तु जो लोग गुरुके निकट आए, वे जानते हैं कि गुरु कितने शान्तिप्रिय और उनमें कितनी करुणा तथा सहानुभूति थी। उग्र रूपके (शेष पृष्ठ २२३ पर)

कार्त्तिकेयकी नृत्य-मुद्रामें श्री उदयशंकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवीन्द्रनाथ और साहित्यिक आदर्श

श्री गुरुदयाल मल्लिक

कुछ समय पूर्व, एक दिन, जब मैं रवीन्द्रनाथकी एक पोथी पढ़ रहा था, तो सहसा मेरे कानोंमें एक गीतकी भनक पड़ी। मैंने अपने कान खड़े कर लिए और ज़रा अधिक सावधान होकर सुनने लगा। मेरा एक पड़ोसी बड़े सम्मोहक आनन्दके साथ गा रहा था। गीतके भाव कुछ इस प्रकार थे—'निश्चय ही दुनियावी मनुष्य निरा मूर्ख है। उसके चतुर्दिक, रात और दिन, आनन्दका महासागर लहरा रहा है और वह चिल्ला-चिल्लाकर लोगोंसे कह रहा है कि मैं प्यासा हूँ! अगर वह इसमें थोड़ा गहरा गोता मार सके, तो जीवनका आनन्द प्राप्त कर सकता है। पर वह तो संसारकी ओर ही देखता है और इसकी टेढ़ी-मेढ़ी भुलभुलैयोंमें भ्रान्त हो जाता है। यदि वह केवल अपने मनस्चक्षुसे सब चीज़ोंको देख सकता, तो उसे सर्वत्र आनन्दका सत्य और सत्यका आनन्द ही दिखाई पड़ता।'

कुछ समय बाद गान समाप्त हो गया; पर मेरी जिस विचार-सरणिको वह स्पन्दित कर गया था, उसकी यात्रा मेरी आत्माकी परतोंमें होकर जारी रही। थोड़ी देर बाद वह थम गई, और मैंने अनुभव किया कि उसने रवीन्द्रनाथके साहित्यिक आदर्शके प्रति मेरे हृदयकी आँखें खोल दी हैं। मैं सोचने लगा, आखिर समूचे सत्साहित्यका आधार-भूत सिद्धान्त क्या है? वह है सर्वप्रथम लेखक द्वारा अपनी और बादमें सब चीज़ोंकी आत्माको पहचानना। पर इसके विपरीत अधिकांश लेखक दूसरा मार्ग ग्रहण करते हैं। वे हमारे चारों ओरके रहस्यपूर्ण जगत्को जाननेके लिए बुद्धिका सहारा लेते हैं। खेद है कि यह उनके लिए एक धुँधले शीशेके टुकड़ेसे अधिक सहायक सिद्ध नहीं होती, जिसमें से उन्हें धुँधला ही दिखाई पड़ता है। कदाचित् इसीलिए प्राचीनोंने मस्तिष्ककी 'यथार्थको काटनेवाला' कहकर परिभाषा की है।

सच तो यह है कि ज्यों ही आदमी सजग रूपसे अपनी आत्मासे साक्षात्कार करेगा, वह अपनी सारी अभिव्यक्तिको उसीके रंगमें रँगा पायगा, क्योंकि आत्मा मजनूँकी तरह है, जिसने हर ज़र्रेमें लैलाको ही पाया है! आत्म-साक्षात् हुआ कोई भी व्यक्ति अलादीनके इस चिराग़को लेकर वस्तु-जगत्की अँधेरीसे अँधेरी गुफ़ामें पैठ सकता है। वहाँसे वह क़ीमती मोती ही चुनकर लायगा। अपने-आपमें हुआ यह आत्म-प्रकाश एकके बाद एक करके जीवनके ही पहलूकी आत्माको प्रकट कर देता है, क्योंकि आत्म-प्रकाशका आनन्द प्रत्येक वस्तुको आत्माभिव्यक्तिके उल्लाससे भर देता है। अतः आत्म-संवेदनके क्षणमें यह समूचा ब्रह्माण्ड एक हो जाता है—भले ही इसके बाह्य रूपान्तर कितने ही क्यों न रहें।

इसके अतिरिक्त व्यक्तिमें स्वच्छन्दताकी भावना भर जाती है, जो उसके मस्तिष्ककी निश्चित रूपों तथा भ्रान्तियोंके परावलंबनकी शृंखलाकी कड़ी-कड़ी खोल देती है। इस प्रकार व्यक्तिको जिस आनन्दका अनुभव होता है, वह उसके गुफ़ामें रहनेवाले उस आदि-पुरुषके आनन्द-सा ही होता है, जिसका अपनी गुफ़ाकी दीवारों पर छायाकी आँख-मिचौनी देखनेके बाद एक दिन, अपनी छोटी दुनियासे बाहर आनेपर, यथार्थसे साक्षात् हुआ था। और कहना न होगा कि यह स्वच्छन्दताकी भावना ही 'अपनेसे इतर किसी शक्ति या व्यक्ति'के प्रति सम्पूर्ण आत्मार्पणकी जननी है। 'जीवन-देवता'की भावना इसीका परिणाम है, जिसके प्रति रवीन्द्रनाथकी ममतामयी भक्ति रही है। जैसा

नृत्योंमें गुरु अपने सम्पूर्ण रूपमें दीख पड़ते थे। अपने सुन्दर नृत्यसे वे अनुपम वातावरणकी सृष्टि कर सकते थे।

वृद्धावस्थाके निकट पहुँचते-पहुँचते प्रायः लोग शिथिल पड़ जाते हैं; किन्तु गुरु ६३ वर्षकी उम्रमें भी पूर्ण स्वस्थ तथा स्फूर्तिवान थे। प्राचीन गुरुओंकी तरह वे भी प्रतिक्षण शिक्षक तथा उपदेशकका कार्य करते थे। जब भी कथकलि-नृत्यके प्रदर्शनकी आवश्यकता पड़ती थी, वे तुरन्त मंचपर उतर पड़ते थे। इस दिशामें उनका उत्साह प्रशंसनीय था।

गत ७ अगस्तको गुरु जिन्दके महाराजके केन्द्रमें आगमनके उपलक्षमें कथकलि-नृत्य कर रहे थे। विचित्र उत्साह तथा स्फूर्तिके साथ उन्होंने 'दुशासन-वध'का अभिनय प्रारम्भ किया। इसके बाद ही गुरु कुछ दुर्बलता अनुभव करने लगे। मंचकी एक ओर गुरु बैठ गए और कुछ ही क्षणमें स्वर्गलोकको प्रयाण कर गए। गुरु अभी तक भारतीय इतिहासकी एक घटनाका ही अभिनय कर रहे थे, अब स्वयं उनका जीवन ही एक घटना बन गया।

गुरुशंकरन नम्बूदरी कथकलिके एक विशाल स्तम्भ थे। उनकी मृत्युसे श्री उदयशंकरके कला-केन्द्रकी तो क्षति हुई ही है; किन्तु भारतकी एक महान् आत्मा भी उठ गई। सदियोंके बाद भारतमें ऐसे कुशल कलाकार कभी-कभी अकस्मात् निकल आया करते हैं। गुरुशंकरनका जन्म नृत्यके लिए हुआ था और उसके पीछे उन्होंने अपना जीवन बिताया और उसीके पीछे वे मर भी मिटे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि एमर्सनने एक जगह कहा है—'लेखक सर्वशक्तिमती आत्माके प्रति नत होकर ही महान् है।'

पर आत्म-प्रकाशके आनन्द, विश्वकी मूलभूत एकता और आत्माकी स्वच्छन्दताके साथ-ही-साथ नवीनताकी भावनाका भी उदय होता है। हर सूर्योदय न केवल सृष्टिके उस प्रथम प्रभातकी ही याद दिलाता है 'जब नक्षत्रों ने गाया था'; बल्कि अपने साथ विशुद्ध मौलिकताका सौरभ भी लाता है। इसीलिए लेखक इसका अछूते सौन्दर्य और प्रेमकी-सी भावनासे स्वागत करता है। यही कारण है कि रवीन्द्रनाथके गीतों का प्रधान स्वर रहा है—'तुम मेरे पास सदा चिरनवीनके रूपमें आते हो।'

किन्तु भावों का आत्माके रूपमें प्रकटीकरण अथवा आत्माका भावों में प्रवेश लेखकके हृदयकी उस प्रेरणापर ही अवलम्बित है, जिसका मूलमन्त्र है : 'शान्तिसे ही किसीको पहचाना जा सकता है।' इसके लिए उसे एमर्सनके कथनानुसार 'एकान्तका वधूकी तरह आलिंगन करो'वाली बातको ही चरितार्थ करना होगा। और रवीन्द्रनाथने कई लम्बे वर्षों तक पद्माके किनारे तथा शान्तिनिकेतनके ग्राम्य वातावरणमें इस नववधूकी आराधना की है। अतएव यह कहना अत्युक्ति न होगा कि शान्तिनिकेतनने रवीन्द्रनाथकी आत्माकी वैसे ही रक्षा की, जैसे कि उन्होंने शान्तिनिकेतनकी आत्माकी। एक धर्म-वाक्य है : 'शान्त होकर देखो और जानो कि मैं ईश्वर हूँ।' इसी तरह विश्वका भी कथन है : 'शान्त होकर देखो और जानो कि मैं भी ईश्वरीय हूँ।'

पर आजके लेखक तो दौड़ और यथार्थमें ही विश्वास करते हैं। वे यह भूल जाते हैं, जैसा कि रवीन्द्रनाथने कहा है, कि यथार्थ पशुता है और वे खाजसे पीड़ित अशान्त व्यक्तिकी तरह इधर-उधर दौड़कर आत्माके प्रकाशको उसी तरह असम्भव कर देते हैं, जिस प्रकार कि बिना हवाके वातावरणमें किसी भी चीज़का जलकर प्रकाश करना असम्भव है। भले ही उनकी गति सिनेमाकी फ़िल्मकी-सी हो; पर वे अपने-आपको हिमालयकी-सी ठोस महत्ता और वासन्तीके सुरभिमय प्रवाहसे वंचित कर लेते हैं।

संक्षेपमें रवीन्द्रनाथका साहित्यिक आदर्श आत्माके सत्य और सत्यकी आत्मासे उद्भूत था। यही कारण है कि जहाँ उनकी प्रतिभाने हमें ज्वलन्त सत्य (और सच मानिए, सत्य ज्वलन्त ही है) प्रदान किया है, अधिकांश लेखक स्वयंसिद्ध बातोंकी चिनगारियाँ ही बिखेर पाए हैं।

मानव तू निर्भय बन !

श्री आरसीप्रसादसिंह

निर्भय बन, निर्भय बन;
मानव, तू निर्भय बन!
तू सशक्त, महा - प्राण;
गा न आज करुण गान!
संकट से हार मान,
खो न ध्येय तू महान!
जीवनमय, पौरुषमय,
निश्चल, निःसंशय बन!
मानव, तू निर्भय बन!
सोने - सा तपता रह आग में;
फूलों - सा हँसता रह बाग में!
सुख में मत गर्व कर,
दुख में मत अश्रु भर;
आपद को झेलता,
बाधा को ठेलता,
आगे बढ़, आगे बढ़!
आसमाँ दहाड़ता,
सागर ललकारता,
कौन वह पुकारता—
सावधान!
पाँव यह रुके नहीं, रुके नहीं!
शीश यह झुके नहीं, झुके नहीं
दानव के सामने!
मानव, तू मानव है!
पृथ्वी का गौरव है!
सृष्टि में न अन्य है
तुझ - सा। तू धन्य है!
जीवन का यह समर,
तू अमर, तू अमर;
मरने से होता डर?
छिः! छिः! तू कैसा नर!
उठ, उठ, कुछ भी तो कर!
बाहर से पत्थर तू,
भीतर से किसलय बन!
मानव तू निर्भय बन!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेट्रिस वेब

मोहनसिंह सेंगर

बेट्रिस वेबपर कुछ लिखनेका विचार आते ही हमें उनके वे शब्द याद आ गए, जो उन्होंने एक बार अपनी एक जीवन-चरित-लेखिकाको लिखे थे। उन्होंने लिखा था—'लेकिन हममें से एकपर आप दूसरेके बिना कैसे लिख सकती हैं?'[1] कहना न होगा कि एलिज़बेथ गैरेट, मेरी मैकार्थर, पर्ल बक अथवा सरोजिनी नायडूकी भाँति बेट्रिस वेबको व्यष्टि-रूपमें देखना नितान्त असम्भव है। बेट्रिस और सिडनीका जीवन गंगा-यमुनाकी उस युग्म धाराके समान कहा जा सकता है, जिसे देखकर यह कहना मुश्किल है कि उसमें कौन-सा और कितना पानी गंगाका है और कितना यमुनाका? हाँ, किन्हीं अंशोंमें, हम वेब-दम्पतिकी तुलना प्रसिद्ध फ्रांसीसी विज्ञानवेत्ता कूरी-दम्पतिसे कर सकते हैं। जिस तरह रेडियमके आविष्कारसे कूरी-दम्पतिने भौतिक विज्ञानकी श्रीवृद्धि की, उसी तरह सामाजिक अनुसन्धान द्वारा वेब-दम्पतिने भी ब्रिटिश राजनीतिको समाजवाद और वैधानिकतासे सम्पन्न किया।

जार्ज बरनार्ड शाने सिडनी और बेट्रिसको 'आश्चर्यजनक रूपसे एक-दूसरेका पूरक' और 'असाधारणतया श्रेष्ठ जोड़ी' बतलाया है।[2] एक अन्य जीवन-चरित-लेखिकाने इन्हें 'द्विनक्षत्र व्यक्तित्व' (Double-star Personality) कहा है।[3] उसका कहना है कि ये दोनों न सिर्फ़ घूमने-फिरने, बातचीत करने, पढ़ने-लिखने आदिमें ही साथ रहा करते थे, बल्कि शरीरसे असमान होनेपर भी एक-दूसरेके दस्ताने, जूते, गुलूबन्द, टोप आदि भी अदल-बदल कर लिया करते थे। इतना ही नहीं, लिखने और बोलनेमें भी दोनों इस तरह भाग लेते थे, मानो एक ही आदमी लिख-बोल रहा हो। कभी बेट्रिस नोट तैयार करतीं और सिडनी उन्हें लिखते। कभी नोट सिडनीके होते और लिखनेका काम बेट्रिस करतीं। यही सार्वजनिक या दलके भाषणोंमें भी होता था। एक भाषण देता और दूसरा भाषणके अन्तमें श्रोताओं द्वारा पूछे जानेवाले प्रश्नोंके उत्तर देता। घरपर यदि कोई उनसे मिलने आता या वे ही अपने अनुसन्धान-कार्यके दौरानमें कहीं जाते, तो एक आरम्भ करता—'हमारे खयालसे तो' और दूसरा वाक्यके सूत्रको आगे बढ़ाता हुआ कहता—'इंग्लैण्डकी सामाजिक स्थितिका निस्तार' और फिर पहला कहने लगता—'बिना समाजवादके हो नहीं सकता।' आगन्तुक बड़े आश्चर्यसे कभी बेट्रिस और कभी सिडनीकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखता और अपने मनमें शायद यह आशंका भी करता कि यह दोनों कोई नाटकके पात्र हैं, या दोनोंने अपना-अपना पाठ पहलेसे ही रट रखा है!

पर वास्तवमें ऐसी कोई बात नहीं थी। उन दोनोंके मस्तिष्क एक संयुक्त डाइनेमोकी तरह काम करते थे। उनकी विचार-धाराएँ एक पथपर, एक ही दिशामें, दौड़ती थीं। नैकट्य और एक-दूसरेके स्वभावकी समीचीन परिचितिने उनकी अभिव्यक्तिको भी अद्भुत एकरूपता दे दी थी। मस्तिष्क और अभिव्यक्तिकी इस असाधारण एकताका परिचय पाठकोंको एक साधारण-सी घटनाके उल्लेखसे और भी अच्छी तरह हो जायगा। एक बार एक नवविवाहित दम्पति अपने विवाहके प्रारम्भिक रजत-दिवस बितानेके लिए वेब-दम्पतिके अतिथि हुए। प्रातःकाल जब दोनों दम्पति वायु-सेवनको निकले, तो सिडनी और आगन्तुक पुरुष आगे-आगे चल रहे थे और बेट्रिस तथा नववधू उनसे कुछ क़दम पीछे। बातचीतके दौरानमें सिडनीने अपने अतिथिसे पूछा—'क्या आप बता सकते हैं कि इस समय आपकी पत्नी और बेट्रिसमें क्या बातचीत हो रही है?' अतिथिने मुड़कर पीछे देखा और मुस्कराकर कहा—'भला, यह मैं कैसे बता सकता हूँ?' सहज भावसे सिडनीने कहा—'लेकिन मैं बता सकता हूँ। सुनिए, बेट्रिस आपकी पत्नीसे कह रही है कि विवाह भावुकताकी रद्दीकी टोकरी है!' अतिथि कुछ सकपका गया। थोड़ी दूर जाकर दोनों रुके और बेट्रिस तथा नववधूके पहुँचते ही वधूको हतप्रभ देखकर अतिथिने उससे पूछा—'तुम दोनोंमें क्या बातें हो रही थीं?' वधू कुछ कहे, इससे पहले ही बेट्रिसने कहा—'देखिए, मैं आपकी पत्नीसे कह रही थी कि विवाह भावुकताकी रद्दीकी टोकरी है!' वाक्य पूरा होते-न-होते अतिथि आश्चर्यसे आँखें फाड़-फाड़कर बारी-बारीसे सिडनी और बेट्रिसके चेहरे देखने लगा! 'हमारी साझेदारी' (Our Partnership) नामक पुस्तकमें वेब-दम्पतिने अपने इस आश्चर्यजनक संयुक्त व्यक्तित्वपर बड़े अच्छे और विश्लेषणात्मक ढंगसे प्रकाश डाला है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोणका उदय

बेट्रिस वेबके जीवनकी चर्चा करनेसे पहले उस समयकी इंग्लैण्डकी सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितिका सिंहावलोकन

1. Margaret Cole : Women of Today.
2. G. B. Shaw : The Truth About Soviet Russia.
3. Mary Hamilton : Sydney And Beatrice Webb.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लेना असंगत न होगा। १९वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध विक्टोरिया-युगका पराभव-काल कहा जा सकता है। पुराने विचार, विश्वास और नैतिक मापदण्ड तेज़ीसे बदल रहे थे। कार्लाइल, रस्किन और डिकेन्सके विचारोंको वेद-वाक्य समझ कर कोई ग्रहण करनेको तैयार नहीं था। 'मनुष्य परिस्थितियोंकी उपज है'—इस बाबा-वाक्यं-प्रमाणम्के साथ अब यह भी कहा जाने लगा था—'लेकिन उसमें उन्हें बदलनेकी क्षमता भी है!' नए-नए वैज्ञानिक आविष्कारोंने लोगोंके तर्क और विवेकको धक्केके साथ उकसा दिया था और जहाँ-तहाँ शिक्षित-समाजमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणका उदय हो रहा था। डारविन, टिण्डेल, हक्सले, जेम्स मार्टिन्यू, बिशप एलिकाट, कार्डिनल मैनिंग आदिने लोगोंके विचारोंमें उथल-पुथल मचा दी थी। सामाजिक क्लबोंमें मौसम, ताशके खेलों और नवयुवतियोंकी पोशाकों या सौन्दर्यकी चर्चाका स्थान 'राबर्ट एल्ज़मेयर' (Robert Elsmere) और इब्सनके 'घोस्ट' (Ghost) की आलोचना-प्रत्यालोचनाने ले लिया था।

विचार-क्रान्तिका यह चरण मस्तिष्कसे मंडलियोंमें और फिर वहाँसे राजनीतिक क्षेत्रमें बड़ी तेज़ीसे बढ़ने लगा। लोग प्रजातन्त्रकी चर्चा करने लगे। मन्त्री केवल कुलीन घरानोंके विशिष्ट शिक्षण-संस्थाओंमें पढ़े-लिखे सम्पन्न व्यक्ति ही हों, जिन्हें शिक्षा और मताधिकारसे वंचित रहें, देशका सारा व्यापार कम्पनियोंके चन्द कृपापात्र पूँजीपतियोंके हाथोंमें ही केन्द्रित-कीलित रहे, पार्लमेंट केवल तिकड़मपन्थी नरम-दलियोंके वाक्-युद्धका अखाड़ा बनी रहे और अधिकांश श्रमजीवी बेकारीसे भूखों मरकर या बाकारीके शोषण, अत्यधिक परिश्रम और यथेष्ट भोजन-छाजनके अभावमें अकाल काल-कवलित हों, यह सब बातें प्रश्न-सूचक चिह्न बनकर औसत व्यक्तिके मस्तिष्कमें मँडराने लगीं। लोक-बलने नए साहस और विश्वासके साथ करवट बदली और देखते-ही-देखते इंग्लैण्डने एक नया जामा धारण कर लिया। पार्लमेंटका मताधिकार विस्तृत-व्यापक हुआ, स्थान-स्थानपर सहयोग-समितियाँ और ट्रेड-यूनियन-कमेटियाँ बनने लगीं। १८७० के शिक्षा-क़ानून द्वारा प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। बेन्थम और स्टुअर्ट मिलके विचार फैले पढ़ने लगे। उनके तथाकथित 'उग्र' विचारोंमें भी परिवर्तन हुआ। हरबर्ट स्पेंसरके प्राथमिक सिद्धान्त (First Principles) तथा 'आदमी बनाम राज्य' (Man versus State) रद्दीकी टोकरीकी शोभा बढ़ाने लगे। हेनरी जार्ज[४] और चार्ल्स बूथने सर्वहारा-वर्गकी नारकीय ग़रीबी और कठिनाइयोंकी जाँच आरम्भ कर दी थी।[५]

बेंथम, मिल और स्पेंसरका स्थान ऐडम स्मिथ, रिकार्डो तथा केम्ब्रिजके प्रसिद्ध अर्थनीतिज्ञ आल्फ्रेड मार्शलकी रचनाओंने ले लिया। शीघ्र ही कार्ल मार्क्सके विचारोंमें ब्रिटिश जनताने जीवनका एक नया प्रकाश देखा और एक नया सन्देश सुना। १८८९ की लन्दनकी डौक-हड़ताल इस प्रकाशकी पहली चिनगारी थी। एनी बेसेंटके उत्तेजक भाषणोंने दियासलाईके कारख़ानोंमें काम करनेवाली कमसिन मज़दूरनियोंमें नया बल भर दिया और अपनी माँगोंकी पूर्त्ति न होने तक उन्होंने काम करनेसे इन्कार कर दिया। क्षुब्ध-असन्तुष्ट लोक-बलकी पहली ठोकरने ग्लेडस्टन-सरकारका तख्ता उलट दिया (१८८६ में), और चार्ल्स ब्रेडला द्वारा पार्लमेंटमें राजभक्तिकी शपथ लेनेसे इन्कार करनेपर समूचे देशमें एक दबी-सी प्रसन्नता, उत्साह और उसके साथ ही नई आशंकाकी सिहरन दौड़ गई। आयरलैण्डके उग्र होते जानेवाले स्वाधीनता-आन्दोलनने इस आशंकाको और भी उभाड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जाग्रत जनता और अधिकारी समान रूपसे मार्क्सवाद अथवा तत्कालीन समाजवादके 'खतरे'से सजग-सावधान हो गए।

सम्पन्नतासे विपन्नताके नरकमें

बेट्रिस पौटरका जन्म २ जनवरी, १८५८ ई० को कौट्स-वोल्ड्स (मैमथशायर) के एक मध्य-वित्त परिवारमें हुआ था। उसके दादाने खेतीका काम छोड़कर पहले-पहल व्यापार-व्यवसाय की ओर क़दम उठाया था। वह पार्लमेंटका सदस्य भी हुआ और आगे चलकर उसके विचार इतने उग्र हुए कि वह अनाज-क़ानून-विरोधी संघका सदस्य भी बना। कौबडन और ब्राइटका वह बड़ा प्रशंसक तथा धर्मान्धताका विरोधी था। पर उसका लड़का (बेट्रिसका पिता) रिचार्ड पौटर अपने पिताके विचारोंके प्रतिकूल प्रारम्भमें उग्र विचारोंका होकर भी आगे चलकर कट्टर-

४. हेनरी जार्जने भी लेनिनकी भाँति ही चुपचाप लन्दनमें अपना अनुसन्धान-कार्य किया और वहीं १८८३ में उनकी मृत्यु हुई।

५. जार्ज बरनार्ड शाका कथन है कि यह जाँच यह साबित करनेके लिए की गई थी कि इंग्लैण्डमें ग़रीबी है ही नहीं! ('दि कैलकटा-रिव्यू', सितम्बर, १९४३)। पर बेट्रिसका कहना है कि १७ वर्ष तक बूथने अपने खर्चपर लन्दनकी ग़रीबीकी जाँच की और उसके परिणामको १७ भागोंमें प्रकाशित करवाया। (My Apprenticeship, P. 263-304)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्थी हो गया। पार्लमेंटके मताधिकारका विस्तार तथा सुधार-बिलोंको उसने सदा आशका और विरोधकी दृष्टिसे ही देखा। उग्र विचारोंके इस बढ़ते हुए वेगको रोकनेके लिए निकाले गए 'मैंचेस्टर गार्जियन'के अन्यतम संस्थापकोंमें वह भी था। १८४७ की आर्थिक दुरवस्थामें उसे अपनी पैतृक सम्पतिके बहुत बड़े भागसे हाथ धोना पड़ा था। अतः इसके बादसे अपना सारा समय उसे खासे बड़े परिवारके भरण-पोषणके लिए व्यापारसे अपनी आय बढ़ानेमें ही लगाना पड़ता था।

पौटरके ९ सन्तानें हुईं, जो सब लड़कियाँ ही थीं। बेट्रिस इनमें से आठवीं थी। उसके पैदा होने तक पौटरकी आर्थिक स्थिति काफ़ी अच्छी हो चली थी। अतः सम्पन्न-वर्गमें होनेके कारण लन्दनके सम्भ्रान्त, उच्च-पदस्थ, राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री आदि बुद्धिजीवियोंका पौटर-परिवारमें आना-जाना बना ही रहता था। पौटरकी लड़कियोंके विवाह ल्योनार्ड कर्टनी, हेनरी हौब-हाउस, सी० ए० क्रिप्स (बादमें लार्ड पारमूर) तथा उसकी एक भतीजीका विवाह चार्ल्स बूथसे हुआ, जिसके परिणाम-स्वरूप पौटर-परिवारकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि तो बढ़ी ही; पर साथ ही वह सामाजिक और राजनीतिक चर्चाका खासा अच्छा केन्द्र भी बन गया। इन लोगोंकी बातचीतमें बेट्रिसका भाग लेना स्वाभाविक ही था। पर वह अपनी अन्य बहनोंकी तरह किसी चीज़को पढ़-सुनकर आसानीसे माननेवाली नहीं थी। वह आगन्तुकोंसे प्रश्नपर प्रश्न करती, अपनी आशंकाएँ बताती और उनका समाधान चाहती। बेट्रिसकी माँ अतिथियोंको तंग करनेकी उसकी इस आदतसे बुरी तरह परेशान थी और जब-तब अपने मिलने-वालोंके सामने कहा करती थी—'अकेली बेट्रिस मेरी ऐसी लड़की है, जिसमें औसत दर्जेसे कम बुद्धि है।' पर पौटरके मित्र प्रसिद्ध अंगरेज़ी दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसरका ध्यान बेट्रिसकी गहरी जिज्ञासु-वृत्ति और असाधारण प्रतिभाकी ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने उसे अपने लिखने-पढ़नेके काममें सहायक बना लिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्पेंसरके व्यक्तिवादी विचारोंका आरम्भमें बेट्रिसपर बड़ा गहरा असर पड़ा, इनसे उसकी जिज्ञासा-वृत्तिको काफ़ी उत्तेजन मिला; पर आगे चलकर वह अपने गुरुको भी पीछे छोड़ गई। उसकी सामाजिक अनुसन्धानकी बढ़ती हुई जिज्ञासा और समाजवादकी ओर उसका अत्यधिक झुकाव स्पेंसर तथा पौटरको भी अच्छे न लगे।

बौद्धिक भूखने बेट्रिसको परिवार और समाजके समय नष्ट करनेवाले 'राम-रसरों'से दूर हटाकर एकान्त-प्रिय, और किसी हद तक व्यक्तिवादी भी, बना दिया। अपने दादा और पिताके पुस्तकालयकी सारी पुस्तकें चाट जानेके बाद उसने नई-नई पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ मँगाकर पढ़नी शुरू कीं। उसकी माँको यद्यपि उसकी यह फिज़ूलखर्ची पसन्द न आई; पर घरकी आर्थिक अवस्था अच्छी होनेके कारण पिताने कभी इस सम्बन्धमें उससे कुछ नहीं कहा। बेट्रिसकी बहनें भी उसकी इस 'विद्वान बननेकी चेष्टा'से विशेष प्रसन्न नहीं थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि पढ़ने और पढ़ी हुई चीज़ोंके नोट लेनेके बाद बचा हुआ समय बेट्रिस घरके नौकर-नौकरानियोंमें बिताती थी। वे बेट्रिसकी इस 'कृपा' और 'सहानुभूति'से बड़े प्रभावित होते और अपनी ग़रीबीका इतिहास बड़े चाव और विस्तारसे उसे बताते। उस समय इंग्लैण्ड दो श्रेणियोंमें बँटा था—अमीर और ग़रीब। अमीरोंकी संख्या बहुत कम थी और जनताका अधिकांश भाग ग़रीब ही था। ग़रीबोंके प्रति सहानुभूति दिखाना और सहायता या भिक्षाके रूपमें उन्हें कुछ देना उस समयके अमीरोंका एक मामूली-सा चोचला हो गया था। लंदनमें कई धर्मार्थ-संस्थाएँ सहायता-कार्य करती थीं, जिनमें अधिकांशतः सम्पन्न घरानोंकी महिलाएँ अपना आलस्य और जीवनकी एकरसता दूर करनेके लिए भाग लिया करती थीं। अपनी अन्य बहनों तथा सहे-लियोंके साथ बेट्रिस भी उनकी ओर आकृष्ट हुई; पर उनका काम और रंग-ढंग देखकर उसे विशेष सन्तोष नहीं हुआ।

बेट्रिसकी प्रतिभा और ग़रीबीके कारणों एवं ग़रीबोंकी स्थितिकी जाँचकी ओर उसका विशेष झुकाव देखकर १८८६ में चार्ल्स बूथने लंदनके श्रमजीवियोंकी स्थितिकी जाँचके कार्यमें उससे सहयोग माँगा। बेट्रिसको मानो मुँहमाँगा वरदान मिल गया। उसने सहर्ष बूथके साथ काम करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद दोनोंने कई महीनों तक सैकड़ों जाँच करनेवालोंकी सहायतासे ग़रीब लोगोंकी आय, व्यय, स्थिति आदिके बारेमें विवरण और बहुमूल्य आँकड़े एकत्र किए। इस जाँचके परिणाम-स्वरूप वे इस निर्णयपर पहुँचे कि लन्दनकी आबादीका ३० प्रतिशत हिस्सा ऐसा है, जिसे स्वस्थ, सबल, सक्षम और काम करने योग्य बनाए रखने लायक़ भोजन-छाजन नहीं मिलता। इस जाँचने पहली बार बेट्रिसकी आँखोंके सामने पूँजीवादी शासनके अभिशाप-स्वरूप उस नारकका नंगा चित्र उपस्थित किया, जिसपर ग़ैरज़िम्मेदार अधिकारियों, प्रोपेगेण्डा और धर्मार्थ-संस्थाओंने दानका पर्दा डाल रखा था।

वास्तविकताके सम्पर्कमें आकर बेट्रिसकी न केवल जिज्ञासा ही बढ़ी, बल्कि उत्साह और सामाजिक अनुसन्धानकी लगन भी और उसने लन्दनके ईस्ट-एण्डमें जाकर स्वयं मज़दूर-जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव करनेका तय किया। कुछ समय तक मध्य-श्रेणीके मकानों (कैथराइन-बिल्डिंग्स) का किराया वसूल करनेका काम करनेके बाद अपने-आपको वेल्सकी कुमारी जोन्स बतलाकर उसने लंकाशायरके एक कारखानेमें मज़दूरनीका काम भी किया, जहाँसे कुछ दिन बाद अयोग्य बतलाकर उसे हटा दिया गया। कई मज़दूर-परिवारोंमें घूम-घूमकर, रहकर तथा उन्हींके भोजन-वस्त्रोंको अपनाकर उसने उनकी स्थितिका आवश्यक विवरण और आँकड़े एकत्र किए। अन्य बातोंके साथ उसने अनुभव किया कि यदि सहयोग-समिति-आन्दोलन ठीक ढंगसे संगठित-संचालित किया जाय, तो मज़दूरोंकी आर्थिक स्थिति बहुत-कुछ सुधारी जा सकती है। उसने इसपर एक ग्रन्थ लिखनेका इरादा किया। जब उसने केम्ब्रिजके प्रसिद्ध अर्थनीतिज्ञ आल्फ्रेड मार्शलके सामने सहायता और मार्ग-प्रदर्शनके लिए अपना विचार रखा, तो उन्होंने उसे हँसीमें उड़ा दिया। किन्तु वह इससे निरुत्साह नहीं हुई और प्रो० लीकीसे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। पर उनसे भी कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। आखिर उसने अकेले ही यह बीड़ा उठानेका तय किया। १८८९ में इंग्लैण्डके सहयोग-आन्दोलनपर उसकी पुस्तक प्रकाशित हुई, जो आज भी वहाँकी सामाजिक समस्याओंपर बड़े महत्वका अधिकारपूर्ण इतिवृत्त समझी जाती है।

नारी-हृदयका अन्तर्द्वन्द्व

अपने अनुसन्धानसे बेट्रिसको यह विश्वास हो गया कि ग़रीबीका अन्त कुछ लोगोंके दान देने या कुछ लोगोंके दयालु अथवा सद्विचारशील होनेसे ही नहीं हो सकता। इसका समूल नाश तो सरकार ही कर सकती है—ऐसी सरकार, जो जनताकी हो और जनताके लिए हो। इस तरह उसका झुकाव समाजवादकी ओर होने लगा। उसने यह महसूस किया कि मध्य और उच्च वर्गोंको बतलाया जाय कि ग़रीबीसे लड़नेके लिए मज़दूरोंने अब तक किस प्रकार अपना संगठन किया और किस प्रकार उन्हें भावी कार्यके लिए संगठित होना चाहिए। १८वीं और १९वीं शताब्दियोंके मज़दूर-संगठनोंका इतिहास जब उसे बड़े-बड़े नामी समाज-शास्त्रियोंके पास भी न मिला, तो उसने स्वयं ट्रेड-यूनियनोंके कार्यकर्त्ताओंसे मिलने, उनके अनुभव जानने, अधिकारियोंके साथ हुए एवं होनेवाले उनके पत्र-व्यवहारकी फ़ाइलोंका अध्ययन करने आदिका कार्य आरम्भ किया। पर यह कार्य इतना समय और श्रम-साध्य था कि अकेलीके लिए बहुत अधिक जान पड़ा और कदाचित् पहली बार उसने जीवन एवं जीवनके इस सर्वप्रिय कार्यमें एक साथी अथवा सहयोगीकी आवश्यकता महसूस की।

पर माँ-बहनोंके रूखेपन और स्पेंसरके विचारोंने बेट्रिसके जीवनमें व्यक्तिवादिता, दार्शनिकता और सुख-विलासके जीवनके प्रति उदासीनता ला दी थी, तथा ग़रीबोंके अनुसन्धान-कार्यने उसके मस्तिष्कपर ऐसी गहरी छाप डाली थी कि उसने मन ही मन अपना जीवन पूँजीवादियोंके नरकमें सड़नेवाले मानवी कीड़ोंके जीर्णोद्धारके लिए ही समर्पित करनेका संकल्प कर लिया था। अपनी माँ द्वारा विवाहेच्छु युवकोंको आमन्त्रित करने तथा बहनों द्वारा बन-सँवरकर पार्टियों, दावतों और नृत्योंके रूपमें उन्हें मोहित करनेके आयोजन उसे बुरी तरह खलने लगे थे। अक्सर वह ऐसे अनुष्ठानोंमें या तो शामिल ही नहीं होती थी, या अगर शामिल होती, तो आरामकुर्सीपर अध-लेटी कोई पुस्तक या पत्रिका पढ़ती रहती थी। उसकी माँ अक्सर इस तरहकी 'धृष्टता' या अतिथियोंके सामने बिल्कुल मामूली पोशाकमें आनेकी उसकी 'अशिष्टता'के लिए उसे झिड़क दिया करती थी, और वह चुपचाप उठकर अपने कमरेमें चली जाती थी। उसके इस व्यवहारने बहुत कम युवकोंको उसकी ओर 'आकृष्ट' होनेका मौक़ा दिया। एक-दो बार जब उसके पिताने हँसी-हँसीमें कहा—'बेट्रिस, मैं चाहता हूँ कि मेरे एक जामाता और होता!' तो उसने मुँह बनाकर कह दिया—'अच्छा! मैं तो देखती हूँ कि उनकी कोई खास कमी नहीं है।'

१८८२ में बेट्रिसकी माँका देहान्त हो गया। अब न केवल घर-गृहस्थीका, बल्कि रिचार्ड पौटरके कारोबारकी देख-रेखका भार भी बेट्रिसपर ही आ पड़ा। इधर उसका शरीर दुर्बल-शिथिल और मन भी डाँवाडोल-सा हो रहा था। अपनी माँको दफ़नाकर लौटनेके बाद उसने अपने शोक, अकेलेपन और मानसिक क्षोभका जो चित्र खींचा है, वह नारी-हृदयकी आकांक्षाकी स्पष्ट स्वभावोक्ति है। एक ओर उसका हृदय सफल विवाहके रूपमें होनेवाले प्रेमके आदान-प्रदान और नारीके सहज सुखके लिए मचल रहा था और दूसरी ओर 'स्पष्ट तथा विश्लेषणात्मक मस्तिष्क' अपने स्वतन्त्र कार्यके अधिकारके अबाध प्रयोगपर अड़ा हुआ था।[6] बेट्रिसके पिताके गिरते हुए स्वास्थ्यने उसकी चिन्ताओंको और भी बढ़ा दिया। १८८५ में पक्षाघातसे आक्रान्त हो उन्होंने चारपाई पकड़ ली, जिसके बाद फिर वे उठ नहीं सके और १८९२ में उनका देहान्त हो गया।

अपने पिताकी रोग-शय्याके पास बैठकर बेट्रिस अपना काम भी करती जाती और उनकी तीमारदारी भी करती। इन

6. Beatrice Webb: My Apprenticeship, P. 327.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों लन्दनमें फेबियन-सोसाइटीका बड़ा ज़ोर था। जार्ज बरनार्ड शा, सिडनी वेब, सिडनी आलीवर (बादमें लार्ड आलीवर), एनी बेसेण्ट आदि इसके जगमगाते नक्षत्र थे। बेट्रिसका ध्यान भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ और वह भी इसकी सभाओं तथा अध्ययन-केन्द्रोंमें आने-जाने लगी। यहीं १८९० में कुमारी ओक्टेविया हिलने बेट्रिसका सिडनी वेबसे परिचय कराया, जो इस समय ब्रिटेनके मज़दूरोंकी स्थितिपर अधिकारी समझा जाता था। सिडनी लन्दनकी निम्न-मध्य श्रेणीके एक एकाउन्टेन्टका लड़का था, जो लन्दन-विश्वविद्यालयकी सन्ध्याकी पढ़ाईसे ही ग्रेजुएट और वकील होकर उपनिवेश-विभागमें सीनियर क्लर्क हो गया था। १८८५ में वह फेबियन-सोसाइटीका सदस्य बना और उसकी ओरसे निकलनेवाले कई इश्तिहार, विवरण-पत्र तथा पुस्तिकाएँ लिखीं। १८९१ में अपना पूरा समय राजनीतिक कार्योंमें देनेके विचारसे सिडनीने नौकरी छोड़ दी। इस बीच बेट्रिससे उसका परिचय घनिष्ठतामें बदला और कुछ ही समय बाद वह घनिष्ठता प्रेममें परिवर्तित हो गई। दोनोंने एक-दूसरेमें अपने जीवनके पूरक साथीकी क्षमता देखी और जुलाई, १८९२ में दोनोंके विवाहकी घोषणासे लन्दनके राजनीतिक क्षेत्रोंमें साश्चर्य प्रसन्नताकी एक लहर दौड़ गई।

४५ वर्षोंका राजनीतिक 'हनी-मून'

विवाहके बाद अपना 'हनी-मून' मनाने सिडनी और बेट्रिस भावुक प्रेमियोंकी तरह इटलीके प्राकृतिक सौन्दर्यमय क्षेत्रों अथवा यूनानके खँडहरोंकी खाक छानते नहीं फिरे; बल्कि दोनों सीधे आयरलैण्ड और दो महीने बाद वहाँसे अमरीका तथा कनाडा गए। दोनोंने इन देशोंकी मज़दूर-बस्तियोंको अपना घर बनाया और मज़दूरोंके संगठनोंके अध्ययनको अपना संयुक्त कार्य। आगे चलकर यही कार्य 'मज़दूर-संगठनका इतिहास' (History of Trade-Unionism) के रूपमें राजनीतिके विद्यार्थियोंके सामने आया। मज़दूर-संगठनका यह पहला प्रामाणिक इतिहास है, जिसका दुनियाकी २७ विभिन्न भाषाओंमें अनुवाद हुआ है। रूसी भाषामें तो इसका अनुवाद स्वयं लेनिनने ही किया है।

यह इनके ४५ वर्षके राजनीतिक 'हनी-मून'का श्रीगणेश कहा जा सकता है। इसके बाद दोनोंने मिलकर सामाजिक-राजनीतिक अनुसन्धानका जो कार्य किया, जो ग्रन्थ लिखे तथा जो व्यावहारिक कार्य किया, उन सबका महत्व सामान्य नहीं है। रोज़ पुस्तकालयोंमें जाकर किताबोंसे नोट लेना, लोगोंके घर जा-जाकर तथा उन्हें अपने घरपर बुलाकर, मज़दूर-बस्तियोंमें चक्कर लगाकर, भाषण देकर, मज़दूरोंकी मुसीबतें उन्हींके मुँहसे सुनकर, मालिकोंका दृष्टिकोण जानकर, स्थानीय शासनकी व्यवस्था देखकर, कौंसिलोंके संगठन एवं कार्योंकी जाँचकर, उनकी कमियाँ तथा दोष और उन्हें दूर करनेके उपाय बतलाकर उन्होंने समाजतन्त्रको कितना सबल-समृद्ध बनाया है, इसे बतला सकना सहज नहीं है। उनके इस संयुक्त श्रमका परिणाम निम्न-लिखित महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रन्थ हैं:—

(1) Hisotry of Trade-unionism. (2) Co-operative Movement. (3) Consumers' Co-operative Move. (4) Constitution of Socialist Commonwealth. (5) Decay of Capitalist Civilization. (6) Fabian Essays. (7) Facts for Londoners. (8) Facts for Socialists. (9) How to pay for the War. (10) Labour and the New Social-order. (11) Labour and the Nation. (12) Liquor-licensing History. (13) The History of Local Government in England, 10 Vols. (14) London Education. (15) Methods of Social Study. (16) Towards Social Democracy. (17) Industrial Democracy. (18) Wages of Men and Women : Should they be equal ? (19) The Works' Manager. (20) Our Partnership. (21) History of Durham Miners. (22) Soviet Communism : A New Civilization, 2 Vols.

उपर्युक्त ग्रन्थोंमें बेट्रिस वेब-लिखित 'मेरी उम्मीदवारी' (My Apprenticeship) शामिल नहीं है; क्योंकि वह वेब-दम्पतिके संयुक्त श्रमका परिणाम न होकर अकेली बेट्रिसकी ही लिखी हुई है। उसे देखनेसे पता चलता है कि बेट्रिसने उसे (अपनी डायरी) प्रकाशनके विचारसे नहीं लिखा था; पर जब १९२६ में वह (दो भागोंमें) प्रकाशित हुई, तो लोगोंको बेट्रिसकी प्रतिभा, अध्ययनशीलता और उसके मित्र-परिचितोंके सम्बन्धमें काफ़ी बहुमूल्य जानकारी प्राप्त हुई। व्यक्ति अपने प्रति कहाँ तक ईमानदार, निष्कपट, स्पष्टवादी और जिज्ञासु हो सकता है, बेट्रिसकी यह पुस्तक इसका ज्वलन्त उदाहरण है। बेट्रिसकी दूसरी उल्लेखनीय पृथक रचना दरिद्र-क़ानून-जाँच-कमीशनकी अल्पमत-रिपोर्ट है। १९०५ में बाल्फुर-सरकारने वेब-दम्पति द्वारा की गई दरिद्र-क़ानूनोंकी आलोचना और उसके परिणाम-स्वरूप देश-भरमें हुई तीव्र प्रतिक्रियासे मजबूर होकर इन क़ानूनोंकी जाँचके लिए एक कमीशन नियुक्त किया था। बेट्रिस वेबको भी इसका सदस्य मनोनीत किया गया। लगातार चार वर्षों तक उसने न केवल कमीशनके सामने उपस्थित होनेवाले गवाहोंसे ही खोज-खोजकर प्रश्न पूछे, बल्कि उसके समानान्तर अपना स्वतन्त्र अनुसन्धान-कार्य भी जारी रखा। जब कमीशनकी रिपोर्ट तैयार होने लगी, तो उसने देखा कि सदस्योंका बहुमत उसकी सिफ़ारिशोंसे सहमत नहीं है। अतः मजबूरन उसे अपनी सिफ़ारिशें एक अल्पमत-रिपोर्टके रूपमें प्रकाशित करनी पड़ीं। इसकी २५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ार प्रतियाँ छपते ही हाथों-हाथ बिक गईं, और इसके परिणाम-स्वरूप कई चुनाव-क्षेत्रोंपर कट्टर पन्थियोंकी जगह स्थायी रूपसे मज़दूरोंका कब्ज़ा हो गया। १९१८में मज़दूरनियोंकी युद्ध-कालीन उजरतकी जाँचके लिए बैठी कमेटीकी भी बेट्रिस सदस्य मनोनीत हुई और उसकी अल्पमत-रिपोर्टमें भी उसने मज़दूर-मज़दूरनियोंको समान उजरत दी जानेकी बड़े ज़ोरोंसे वक़ालत की।

वेब-दम्पतिके ग्रन्थोंमें से प्रत्येकपर पृथक-पृथक रूपसे कुछ कह सकना इस छोटे-से लेखमें सम्भव नहीं है। पर उनके उस एक ग्रन्थकी यहाँ चर्चा करना आवश्यक है, जिसने सही मानोंमें उन्हें 'विश्व-विख्यात' बनाया। यह ग्रन्थ है 'सोवियत् साम्यवाद : एक नई सभ्यता' (Soviet Communism : A new Civilization), जिसे उन्होंने सर्वप्रथम १९३५ में प्रकाशित करवाया था। पहले संस्करणमें ग्रन्थके नामके आगे एक प्रश्नवाचक चिह्न लगाया गया था, जिसका मतलब यह था कि क्या वास्तवमें रूसका साम्यवाद एक नई सभ्यता है? पर दूसरे संस्करणमें यह चिह्न हटा लिया गया। सीधे-सादे अर्थोंमें इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि पहले उन्हें रूसी साम्यवादके एक नई सभ्यता होनेमें आशंका या सन्देह था, जो बादमें न केवल दूर ही हुआ, बल्कि विश्वास एवं दृढ़ मतके रूपमें परिणत हो गया। पहली आशंका या सन्देह था एकमात्र बुद्धिजीवियोंका शक्कीपन, जिसका कोई ठोस या व्यक्तिगत अनुभवका आधार नहीं था। पर बादमें महीनों स्वयं रूसके ग्राम-नगरोंमें घूमकर, किसानों, मज़दूरों एवं नागरिकोंसे उनके ज़ार-कालीन अनुभवों और उनकी तुलनामें नवीन व्यवस्था-जनित स्थितिका अध्ययनकर तथा पुराने और नवीन शासन-तन्त्रोंका भेद अपनी आँखोंसे देखकर उन्होंने अपना स्पष्ट मत स्थिर किया और अपने ग्रन्थमें तदनुसार परिवर्त्तन-संशोधन भी किए। अगर यह रूसी साम्यवादके १०० टंच खरा और लोकोपयोगी होनेकी सफल-सार्थक विजय है, तो उतनी ही बड़ी और महत्त्वपूर्ण यह वेब-दम्पतिकी बौद्धिक ईमानदारी, स्पष्टवादिता तथा अनुसन्धान-अध्ययनके बाद तथ्योंको ग्रहण करनेकी विश्लेषणात्मक प्रवृत्तिकी भी विजय है। आज वेब-दम्पतिका यह ग्रन्थ रूसपर निकले कतिपय प्रामाणिक और निष्पक्ष ग्रन्थोंमें से एक और प्रमुख है। स्मरण रहे, इसके लेखक न तो साम्यवादी हैं और न मार्क्सवादके क़ायल ही।

रूसके प्रति वेब-दम्पतिके दृष्टिकोण और उसमें हुए परिवर्तनको समझनेके लिए उनकी राजनीतिक पृष्ठभूमिपर भी उड़ती नज़र डाल लेना अप्रासंगिक न होगा। १९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें पूँजीवादी शासनके दुष्परिणामकी प्रतिक्रियाने इंग्लैण्डके राजनीतिक क्षेत्रोंमें जितना उग्र चित्र ग़रीबों और श्रमजीवियोंकी दुर्दशाका उपस्थित किया, उतनी ठोस उसके उपचारकी कोई रूप-रेखा उपस्थित नहीं की। फेबियन-समाजवादी धीरे-धीरे शासनमें सुधारकर ग़रीबोंकी स्थिति सुधारनेकी बातें करते थे।

सन् १९१४-१८ का महायुद्ध, रूसकी सफल क्रान्ति और युद्धोत्तर पुनर्निर्माण आदि मार्क्सवाद तथा फेबियन-समाजवाद दोनोंके लिए बड़ी कठोर परीक्षा और कसौटी साबित हुए। मार्क्सवादके विरुद्ध जब-तब उठाई जानेवाली समझ नासमझकी आशंकाएँ रूसकी सफल क्रान्ति और उसके बाद वहाँ स्थापित हुई नई व्यवस्थाके कार्यसे हवा हो गईं। बहुतसे फेबियन तक उसका लोहा मानने लगे और अपनी भ्रान्तियों तथा बौड़मपनसे और अधिक अनभिज्ञ नहीं रह सके। रूसकी नवजात साम्यवादी व्यवस्थाके विरुद्ध भेजी गई ब्रिटिश सेनाके लिए जब ट्रान्सपोर्ट तथा डौक-मज़दूरोंने माल लादनेसे इंकार कर दिया और समूचे मज़दूर-वर्गमें सहाभूतिकी एक ज़बर्दस्त लहर दौड़ गई, तो बहुतसे पूँजीवादी, साम्राज्यवादी और फेबियन-समाजवादी भी चौंक उठे। इसके कुछ समय बाद १९२७ में स्वयं बेट्रिसने सिहेमकी मज़दूरनियोंके नाम की गई अपीलमें कहा था—"रूसकी क्रान्ति और खास तौरपर ब्रिटेनमें हुआ उसका प्रोपेगेण्डा ब्रिटिश मज़दूर-आन्दोलनके इतिहासमें सबसे बड़ी दुर्घटना है।"[7] हमें खेद है, बेट्रिसके इस कथनसे हम सहमत नहीं; पर इसके पीछे दुराग्रह या प्रोपेगेण्डाकी हठी और कपटी मनोवृत्तिके बजाय अनुसन्धान, अध्ययन और स्वानुभूति-जनित आत्म-विश्वासका जो दृढ़ आग्रह है, उससे राजनीतिका कोई भी विद्यार्थी इन्कार नहीं कर सकता। कदाचित् इसीलिए बेट्रिसकी राजनीतिक ईमानदारीके प्रति आक्रोशसे अधिक हमारी आस्था और उपेक्षासे अधिक आदर है। जहाँ सिडनीने पार्लमेंटका सदस्य तथा दो बार मज़दूर-मन्त्रिमण्डलमें शामिल होकर अपने कई सामाजिक सुधारोंको क़ानूनन लागू करने-करानेका भरसक प्रयत्न किया; बेट्रिसने इस ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया। १९२९ में जब दूसरी मज़दूर-सरकारने सिडनीको लार्ड पासफील्डके नामसे लार्ड-सभामें अपने नेताके रूपमें कार्य करनेके राज़ी कर लिया, तो बेट्रिसने सहज ही 'लेडी पासफील्ड' कहलानेसे इन्कारकर अपना प्रचलित नाम ही क़ायम रखा।

गत ३० अप्रैलको बेट्रिसके निधनके रूपमें यह राजनीतिक

7. Manchester Guardian, July 8, 1927.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हनी-मून' सहसा भंग हो गया। ४५ वर्षोंके अध्ययन-अनुसन्धान द्वारा दी गई बहुमूल्य सामग्रीके अलावा लन्दनका 'स्कूल आफ़् इकनामिक्स' और 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' वेब-दम्पतिकी ही उपयोगी देन हैं।

अन्ध-शिक्षा और श्री रामानन्द बाबू

गत ५ सितम्बरको 'प्रवासी' तथा 'माडर्न-रिव्यू'-सम्पादक और 'विशाल भारत'-संचालक श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायको अखिल भारतीय 'लाइट-हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड' की ओरसे उनके ७९वें वर्षमें प्रवेश करनेके उपलक्ष्यमें एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया, जिसका सारांश यह है :—

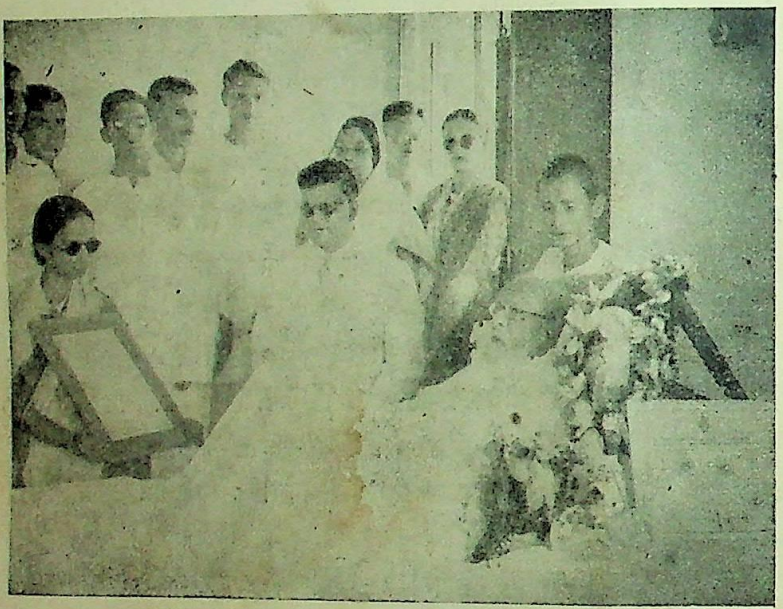

श्री रामानन्द बाबू 'लाइट हाउस फ़ार दि ब्लाइण्ड'के अध्यक्ष तथा छात्रोंके साथ।

"हे मनीषि, आपके जीवनने विधाताके अनुग्रहसे ७९वें वर्षमें पदार्पण किया है, वहींसे आप अपने कृतज्ञ देशवासियोंके अन्तरकी श्रद्धा और अर्घ्य ग्रहण कीजिए। राजा राममोहन रायकी विराट प्रतिभाने जिस संस्कृतिकी बुनियाद डाली थी, उसकी परिणति हमने आपसे ही पुष्पित होते देखी है। सरल माधुर्य और व्यक्तित्वके समावेशसे आपका जो जीवन ऐश्वर्यमय हो उठा है, उस आदर्शकी तुलना आज-पर्यन्त नहीं मिली। आपको अपने बीच पाकर हम लोग धन्य हुए हैं। पत्रकारकी हैसियतसे आपके मतवादकी स्वाधीनता, अकुतोभय स्वदेश-प्रेम और युक्तिकी संगतिके सामने हमने बहुत बार सिर झुकाया है। 'माडर्न रिव्यू', 'प्रवासी' और 'विशाल भारत'के जनकको समग्र विश्व जिस रूपमें जानता है, हम उससे और भी अन्तरंग भावसे आपको जानते हैं। आप हम लोगोंके हैं।

"भाग्यकी विडम्बनासे सृष्टिकी प्रथम करुणासे जो वंचित हैं, उनकी ओरसे हम आज आपको विशेष रूपसे अभिनन्दन जताते हैं 'बँगला ब्रेल-वर्णमाला'के हिसाबसे। १९वीं सदीके अन्तिम भागमें भारतके जो कईएक मुट्ठी-भर सहृदय व्यक्ति दृष्टिहीनोंकी बात सोच रहे थे, उनमें आप अन्यतम हैं। उसी सुदूर अतीतमें (श्रावण, १२९९ सालमें) आप ही द्वारा सम्पादित 'दासी' पत्रिकामें आपके दर्दी मनने जिस 'अन्ध-लिपिमाला'की सृष्टि की थी, उसीने आज सामान्यतम परिवर्त्तित आकारमें समग्र बंगाली अन्धोंके सम्मुख नूतन जगत् उद्घाटित कर दिया है। जो सम्मान आपको प्राप्त है, उसे अन्य लोगोंको प्राप्त करते देख आपने निर्विकार रहकर जिस निर्लोभ अनासक्ति और महान् त्यागका परिचय दिया है, वह एकमात्र आपके लिए ही सम्भव था। वार्द्धक्यके द्वारपर खड़े होनेपर भी इन हतभागोंके प्रति आपकी करुणा अक्षुण्ण बनी हुई है, यह देखकर हम लोगोंका अन्तर आनन्दसे भर उठता है।"

लम्बी बीमारीके कारण क्षीण एवं मन्द हुई, किन्तु आत्माका बल, हार्दिकता और सहज सौजन्यसे ओत-प्रोत, अपनी वाणीसे श्री रामानन्द बाबूने लाइट-हाउसके अधिकारियों और विशेषतया उसके अवैतनिक मन्त्री अन्ध-विद्वान प्रो० सुबोधचन्द्र रायके प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए कहा—"अपने स्वभावके अनुसार विविध विषयों पर लेख लिखनेके दौरानमें १८९२में मैंने 'दासी'में अन्ध-शिक्षापर भी एक लेख लिखा था। मेरा इससे अधिक उसके लिखनेका और कोई उद्देश्य न था। पर १९३८में प्रो० सुबोध रायने अपने वैज्ञानिक ढंगसे यह बतलाकर हम सबको आश्चर्यमें डाल दिया कि बँगला-अन्ध-लिपिका जनक मैं ही हूँ।" आगे चलकर आपने श्रीमती ईवलिन रायके त्याग और सेवा-भावकी प्रशंसा करते हुए उनकी गान्धारीसे तुलना की, जिसने स्वेच्छासे अन्ध पतिको वरण किया था। प्रो० रायके अध्ययन और कार्यकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि भारतीय अन्धोंमें ऐसे विद्वानको पाकर हमें गर्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार

श्री जैनेन्द्रकुमार

घरमें आठ बरसका प्रद्युम्न बड़ा ऊधमी है। किसीकी नहीं सुनता और ज़िदपर आ जाय, तो पूछिए ही क्या। इधर कुछ दिनोंसे वह कुछ गुमसुम रहता है। ऊधम-दंगा भी कम हो गया है। जाने क्या बात उसके मनमें बैठ गई है। शामको स्कूलसे आता है, तो दौड़कर खेलने बाहर नहीं चला जाता, इस-उस कमरेमें ही दिखाई देता है। मैं परेशान हूँ। पूछती हूँ—"क्या हुआ है रे प्रद्युम्न?" तो सिर हिलाकर कह देता है—"कुछ भी नहीं।"

"तो खेलने क्यों नहीं गया?"

"योंही नहीं गया।"

मैं समझती हूँ कि रूठा है। तब गोदमें लेकर प्यार करती हूँ। पर वह बात भी नहीं है। अब सबकी अपनी-अपनी जगह शोभा है। बालकमें बुद्धिमानी अच्छी नहीं लगती। उसमें बचपन चाहिए। पर प्रद्युम्न जो आठ वर्षकी उम्रमें बुज़ुर्ग बन रहा है, सो मैं कैसे देखती रह जाऊँ? डपटकर कहा—"जाता क्यों नहीं खेलने? साथी बच्चोंमें मन ही बहलेगा।"

डपटती हूँ, तो वह सचमुच चला जाता है। मैं डरती हूँ कि घरके बाहर इधर-ही-उधर तो वह नहीं भटक रहा है। पर नहीं, वह सीधा साथियोंमें जाता है और खेलकर काफ़ी देरमें लौटता है। एक बात देखती हूँ। शामको निबटकर जब चार जनीं बैठकर बात करती हैं, तो वह भी पास बैठा हुआ दिखाई देता है। वह कुछ नहीं बोलता, चुपचाप सुनता रहता है। मुझसे सटकर भी नहीं बैठता और न कभी गोदमें लेटनेकी ही चेष्टा करता है। अपने अलग-थलग गुमसुम बैठा रहता है।

आजकल दिन बड़े खराब हैं। गेहूँ ढाई सेरका भी मयस्सर नहीं है। दूधके दाम घोसीने परसोंसे आठ आने सेर कर दिए हैं। शाक-भाजीके बारेमें छै आनेसे कमकी बात ही न कीजिए। लौकी और कद्दू दोनों उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं; पर अब उन्हींके हुक्मसे वही बनाती हूँ, क्योंकि वे चार आनेमें जो आ जाते हैं। शहरियोंकी मुसीबत, बहन, कुछ न पूछो। मकान-किराया है कि दम खुश्क करता है। ४०) दे रही हूँ; पर मैं ही जानती हूँ कि कैसे गुज़र होती है। महमान आए, तो बैठानेको जगह नहीं। यह मुई लड़ाई जाने कब बन्द होगी। आपसमें हमारे ऐसी ही बातें हुआ करती हैं।

सावित्रीने कहा—"अरे जी, तुमने सुना, कल हमारे मोहल्लेमें एकका ताला टूट गया।"

गिरजा बोली—"यह न होगा, तो क्या होगा? कुछ नुक़सान तो नहीं हुआ?"

सावित्रीने कहा—"यही खैर हुई। चौकीदारकी लाठीकी ठक-ठक सुनकर, कहते हैं, चोर भाग गया।"

सब्ज़माला बोली—"मैंने तो लोहेके किवाड़ लगानेको कह दिया है। देखो न, उस रोज़ उनके यहाँसे कपड़े-ज़ेवर सब चला गया। और तो और, बर्त्तन तक ले गए।"

यह समाचार पुराना पड़ गया था; पर आज इस मौक़ेपर वह फिर नया हो आया।

दुलारी बोली—"दूर क्यों जाओ, रातकी बात मुमानीजीसे ही न पूछो कि रह-रहकर कैसा खटका होता रहा और सबेरे देखते हैं, तो साफ़ निशान हैं कि किसीने कुण्डेपर हाथ आज़माया है।"

मुमानी इस मण्डलीमें कुछ नई हैं। शायद वजह यह भी हो कि वह अकेली मुसलमान हैं। लेकिन उनके कुण्डेकी बात आई, तो उत्साहसे उन्होंने पूरा बखान किया—"नवाब साहब आए न थे। दोका वक्त था। ए० आर० पी० के काममें उन्हें अक्सर देर हो जाती है। अब घरमें हम सब जनीं अकेलीं। मर्द कोई भी नहीं। बहन, कुछ पूछो नहीं। खट-खट सुन रही हैं; पर कुछ करते नहीं बनता। आपसमें घुस-फुस करके रह जाती हैं और सबके धुकधुकी हो रही है। मैंने तो सबेरे ही कह दिया—या तो नौ बजे आ जाओ, नहीं तो मकान तब्दील करो। खुदा जाने, मैं तो नौ बजे किवाड़ बन्द कर लिया करूँगी। मेरी बलासे फिर वो कहीं रहें। सोएँ वहीं जाके अपने ए० आर० पी० में। खुदा क़सम बहन, देर तक छतपर से कई क़दमोंके चलनेकी आहट आती रही। यह चोर…।"

जैनमती बोली—"क्यों, बशीरमियाँ घरमें नहीं थे क्या?"

मुमानी जानने कहा—"उनकी भली चलाई। नई शादी हुई है, तो उन्हें क्या होश है? दोनोंको अपना कमरा है और बस। बाक़ी उनकी तरफ़से सब-कुछ क्यों न लुट जाय। अब सच तो यह है बहन कि चोरका हौल मुझे भी था। इसीसे बोल नहीं रही थी, चुप थी।"

रूपवती बोली—"औरोंकी बात तो नहीं कहती, नीमपर चढ़कर इनके घर तो मैं कहो जब पहुँच जाऊँ।"

सब जनीं इसपर बहुत खुश हुईं और कहने लगीं कि यह बात पतेकी है। मेरे मनमें खुद इस कटे नीमकी बात कई बार आई थी। सोचती थी कि म्युनिसिपलिटीमें लिखकर कटवा दूँ। इस मरे पेड़को भी यहीं होना था। मैंने जैनमतीकी तरफ़ देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"जीजी, बताओ क्या करूँ ? पेड़ है तो बड़े बेमौक़े, कोई चढ़के आ सकता है। हमारा दिलीप ही रोज़ यहाँसे सड़कपर उतर जाता है। कहती हूँ, मानता ही नहीं।"

जीजीने कहा—"तो उनसे कहा ?"

मैं बोली—"उनसे जब कहा, तो उन्होंने कौन-सा काम करके रखा। बोले—'नीमके पेड़से ठण्डी हवा आती है।' मैंने कहा—'चोर जो आ सकता है ?' बोले—'ज़रूर आ सकता है, इससे किवाड़ खुले रखा करो और वक्त-बेवक्तके लिए दो-चार रोटियाँ भी बचा रखा करो। आए कोई, तो उसे कुछ खानेको तो मिल जाय। चोर बेचारा भूखा होता है।' तबसे जीजी, मैंने तो कान पकड़ा, जो कुछ कहूँ। सीधीकी वह तो उल्टी लगाते हैं। जेठजीसे कहना, वह कुछ इन्तज़ाम कर दें, तो मुझे कल पड़ जाय। हर घड़ी दिल धुक-धुक करता रहता है। बात यहाँ कर रही हूँ और मन...। क्या बजा होगा ?"

"नौ बज गया।"

मैं घबराकर बोली—"नौ !" सब जनीं मेरा तमाशा देखने लगीं। मैंने कहा—"मुझे जाने दो। चल प्रद्युम्न, चलें।"

प्रद्युम्न पीछेकी एक तरफ़ बैठा था। औरोंके साथके बच्चे सब सो गए थे। प्रद्युम्न बिल्कुल नहीं सोया था। इस वक्त भी जैसे वह यहाँसे उठना नहीं चाहता था।

सब्ज़मालाने उठती-उठतीका हाथ पकड़कर मुझे बैठाल लिया और कहा—"लाला आ तो गए हैं...।"

मैं और भी घबराकर बोली—"आ गए हैं ?"

सब्ज़मालाने कहा—"वह देख, कमरेमें बत्ती जल रही है।" यह कहकर उसने मुझे अंकमें भरकर चूम लिया। इस सहेलीकी मैं यहाँ बात नहीं कर सकती। वह मुझपर ज़बर्दस्ती करती है ; लेकिन इस ज़बर्दस्तीसे ही मैं उसकी हो गई हूँ। बोली—"लाला थोड़ी देर अकेले रह लेंगे, तो क्या हो जायगा ? तुझे छोड़कर खुद जो महीनों बाहर रहते हैं।"

मैंने कहा—"उन्होंने खाना नहीं खाया, जीजी ! मुझे जाने दो।"

"आप लेके खा लेंगे।" कहते हुए उसने मुझे ज़बरन बैठा लिया।

प्रद्युम्न अपनी जगह बराबर ध्यान लगाए बैठा था। खैर, मेरे बैठ जानेपर चोरीसे हटकर चोरोंकी बात होने लगी। वे निर्दयी होते हैं, चालाक होते हैं, पासमें कुछ-न-कुछ हथियार रखते हैं। इसी तरह बात आगे बढ़कर डाकू, जेलखाना, कालापानी और फाँसी तक पहुँची। घड़ीने दस बजाए, तब जाकर मेरा छुटकारा हुआ। और जनीं भी तब अपने घर गईं। प्रद्युम्न उँगली पकड़े मेरे साथ आ गया।

प्रद्युम्नके बाबूजी लेटे हुए किताब पढ़ रहे थे। कहा—"पता है, अब क्या बजा है ?"

मैंने टालते हुए कहा—"खाना खा लिया ?"

"खा लिया।"

वे नाराज़ थे। हाँ तो हाँ। मैं भी प्रद्युम्नको लिटाकर उसीके बराबर लेट गई। उनसे बोली नहीं। वे भी किताब पढ़ते रहे। मुझे नींद नहीं आई थी ; पर आँख बन्द किए लेटी थी। ऐसे समय प्रद्युम्न मेरी खाटसे उठा और अपने बाबूजीके पास जाकर बोला—"बाबूजी !"

चौंककर उन्होंने मुँह फेरा। प्रद्युम्नको पास खड़ा देखकर कहा—"आओ, प्रद्युम्न, मेरे पास सोओगे ?" बच्चा पास बैठ तो गया, लेटा नहीं। "क्यों, बैठे क्यों हो ? सो जाओ।"

प्रद्युम्नने कहा—"चोर रोशनीमें नहीं आता, बाबूजी ?"

उसके बाबूजीने कहा—"नहीं, रोशनीमें कोई चोर नहीं आता। और भाई, चोर भला कोई होता भी है ? सो जाओ।"

लेकिन प्रद्युम्न नहीं सोया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—"अँधेरेमें आता है ?"

उसके बाबूजीने कहा—"क्या बकते हो, सो जाओ।" और उसे ज़बर्दस्ती लिटा दिया और अपनी किताब खोलकर पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने मुड़कर देखा होगा कि प्रद्युम्न अब भी आँख फाड़े ऊपर देख रहा है, सोया नहीं है ; क्योंकि तभी मैंने सुना कि उन्होंने कहा—"अरे, अभी सोए नहीं तुम ?" कहकर उन्होंने किताब अलग रख दी और बटन दबा दिया। फिर प्रद्युम्नको छातीके पास खींचकर थपका-थपकाकर सुलाने लगे। ऐसे उन्हें थोड़ी देरमें नींद आ गई। मैं नहीं सोई थी। इतनेमें देखती क्या हूँ कि अँधेरेमें टटोल-टटोलकर प्रद्युम्न मेरी खाटपर आ गया।

मैंने उसे अपनेमें खींचकर फुसफुसाकर कहा—"बेटे, सो जाओ।" वह मेरे अंकमें लगकर सोनेकी चेष्टा करने लगा। मैं थोड़ी-थोड़ी देरमें उसके पपोटे देखती थी कि सो तो गया है न ? मैंने कहा—"क्यों प्रद्युम्न, नींद नहीं आती ? क्या बात है।"

कुछ देर साँस बाँधकर वह लेटा रहा। अन्तमें वह रोक नहीं सका, एकाएक बोला—"भाभी, चोर कैसा होता है ?"

मैं सुनकर हैरतमें रह गई। मैंने कहा—"अरे, वह सचमुचमें कुछ थोड़े ही होता है। वह तो झूठ-मूठकी बात है।"

"तो वह नहीं होता ?"

मैंने कहा—"बिल्कुल नहीं होता।" सुनकर वह चुप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। मैंने कहा—"सो जाओ, भय्या!"

उसने ज़ोरसे कहा—"होता है।"

मैं हँसकर बोली—"तो बताओ, कैसा होता है?"

बोला—"मेरी किताबमें राक्षसकी तस्वीर है, वैसा होता है। दो सींग, गदहेके-से कान और लम्बी जीभ।"

मैंने कहा—"हटो, कोई चोर-वोर नहीं होता। किताबमें यों ही तस्वीरें बनी होती हैं। लो, अब सो जाओ।" डपटकर मैं उसे थपथपाने लगी और कुछ देरमें वह सो गया।

इस बातको आठ-दस रोज़ हो गए। प्रद्युम्नकी हालत पहलेसे ठीक है। मैंने सबसे कह दिया है कि प्रद्युम्नके सामने ऐसी बात बिल्कुल मुँहसे न निकालें। सब इस बातका ध्यान रखती हैं। और मालूम होता है कि चोर प्रद्युम्नके दिलसे भी उतरकर भाग-भूग गया है।

दिलीप हमारा भतीजा है और साथ ही रहता है। वह बी०ए० में पढ़ता है। कालेज दो मील होगा, साइकिलसे आता-जाता है। प्रद्युम्न अपने कई साथियोंके साथ स्कूलसे लौटा था। आते ही बस्ता फेंक उनके साथ भाग जाना चाहता था। मैंने जैसे-तैसे उसे रोका और फल-मिठाई खिलाने लगी। कहा—"सबेरेसे गया, तुझे भूख नहीं लगी, प्रद्युम्न?"

खाने तो वह लगा; पर मन उसका दोस्तोंमें था। इतनेमें आया दिलीप। बोला—'चाची, एक चोर पकड़ा गया है, चोर। बाहर गलीमें सिपाही उसे ले जा रहे थे। सच्ची, चाची!"

मैंने अनायास कहा—"कहाँ रे?"

दिलीप कापी-किताब फेंकते हुए बोला—"यह बाहर ही तो, गलीके बाहर।"

"तो चलो, होगा।—ले, अरे, खाता क्यों नहीं?"

लेकिन प्रद्युम्नका मुँह रुक गया था। बरफ़ीका पहला टुकड़ा भी नीचे नहीं उतरा था। वह भूला-सा सामने देखता रह गया था।

"ले, खाता क्यों नहीं? खाकर कहीं जाना।"

परन्तु प्रद्युम्न कुछ देर उसी तरह खोया-सा रहा; एकदम उठकर वहाँसे भाग छूटा। मैंने तब दिलीपसे कहा—"जा भय्या, देख तो, वह कहाँ जा रहा है?"

दिलीप स्वयं ही जाना चाहता था। इससे वह भी लपक कर भाग गया। आनेपर देखा कि दिलीप जितना उल्लसित है, प्रद्युम्न उतना ही चिन्तित दीखता है। मैं दिलीपसे पूछने-ताछने लगी और वह मुझे अपनी सुनी-सुनाई सब बताने लगा। प्रद्युम्न तब बराबर पास खड़ा था। सहसा बीचमें वह बोला—"चोर आदमी होता है, माँ? चोर नहीं होता?"

मैंने कहा—"हाँ बेटा, आदमी ही होता है।"

"राक्षस नहीं होता?"

मैंने कहा—"नहीं भय्या, राक्षस नहीं होता।"

वह मेरी तरफ़ ताकता हुआ देखता रह गया, बोला—"राक्षस नहीं होता—बिल्कुल राक्षस नहीं होता? तो फिर क्या बात है, अम्मा? अबसे किवाड़ बन्द मत किया करो।"

मैंने तो सुनके माथा ठोक लिया, बहन! सोचा कि इस ज़रा-से में भी तो बापके लच्छन आ गए!

सुरमयी बदली

श्री रूपकुमारी बाजपेई, एम० ए०

सुरमयी बदली!

फलती जाती गगन पर,
धीर गति चल, मृदुल पग धर,
राग-भीनी यामिनी की तान ज्यों पहली।
उड़ा आँचल पारदर्शी,
लहरतीं लट नभ-स्पर्शी,
माँग उलझी इन्द्रधनु की दीप्ति से भर ली।
लाँघती पल निमिष-वेला,
साथ अपना ही अकेला,
दूर से आती अकेली शून्य राह चली।
अब न लो पड़ती दिखाई,
क्षिति-परिधि के पार छाई,
एक रेखा धूम की बस शेष मटमैली!
कौन अपलक, सजल लोचन,
माँगता री, एक दर्शन?
रुक न जो मेरी सुनी, अपनी न कुछ कहली?
लहलही मधुऋतु रचाने,
जागरित नवयुग बसाने,
रिक्त कबरी जगत के अभिशाप से सज ली।
स्निग्ध चितवन, छाँह का तन,
तरल करुणा से बना मन,
नील शतदल-सी खिली रहती सरस बदली।
सुरमयी बदली!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यका आत्म-चेतना और जीवन

श्री इलाचन्द्र जोशी

जब मैं अपने जीवनके बीते हुए दिनोंकी याद करता हूँ, तो जीवनके सम्बन्धमें मेरा दृष्टिकोण निराशामय बन जाता है। सैद्धान्तिक रूपसे मैं क़तई निराशावादी नहीं हूँ। मेरी बुद्धि यह विश्वास करती है कि मनुष्यका जीवन नाना उलटे-सीधे चक्रोंसे होता हुआ निरन्तर एक ऐसे लक्ष्यकी ओर बढ़ा चला जा रहा है, जहाँ सब विरोधी प्रवृत्तियोंके सम-अवस्थाको प्राप्त होनेपर एक परिपूर्ण सामंजस्यमयी स्थिति मानव-जगत्को ओत-प्रोत कर देगी। पर जब दिन-रातके यथार्थ जीवनका कठोर अनुभव मेरे मनको प्रतिपल चोट पहुँचाता रहता है, तो मेरा यह सैद्धान्तिक विश्वास मेरी तनिक भी सहायता नहीं करता। मैं इस कड़े सत्यको किसी भी हालतमें नहीं भुला पाता हूँ कि मनुष्य एक अत्यन्त हीन और घोर स्वार्थी प्राणी है, और आदर्शवादकी पालिशसे मानवताकी चमड़ीकी झीनी परतको निरन्तर चमकाते रहनेकी चेष्टा करनेपर भी उसके भीतर छिपी हुई असंख्य पशु-प्रवृत्तियोंको अधिक समय तक दबाए रहनेमें एकदम असमर्थ है। वास्तवमें मानवताकी चमड़ी झिल्लीसे अधिक मोटी नहीं है और उसके नीचे मनुष्य निरा पशु है, बल्कि पशुसे भी अधिक भयंकर और खतरनाक—क्योंकि एक तो विकासके क्रमसे वह सृष्टि-जगत्का अन्तिम प्राणी है, और स्वभावतः उसकी पशु-प्रवृत्तियाँ भी दूसरे पशुओंकी अपेक्षा अधिक विकसित हो उठी हैं; दूसरे, उसकी आत्म-चेतना विकासके एक ऐसे स्तरको पहुँच चुकी है, जो अत्यन्त आश्चर्य-जनक और भय उत्पन्न करनेवाला है। जो पशु मानव-पशुसे निम्नकोटिके हैं, उनमें आत्म-चेतना नहींके बराबर होती है, इस कारण वे उतने खतरनाक नहीं होते।

मनुष्यकी आत्म-चेतना किसी हद तक उसके लिए वरदान हो सकती है; पर मेरा यह ध्रुव विश्वास है कि प्रायः ९५ फ़ी-सदी वह उसके लिए अभिशाप ही सिद्ध हुई है। इस वृत्तिने एक ओर मनुष्यके अहंभावको हद दर्जे तक बढ़ाकर जीवन-संघर्षमें अपने समाजके सब व्यक्तियोंसे आगे बढ़े रहनेकी भावना जमाई है और दूसरी ओर अपनी पशु-प्रवृत्तियोंको दबानेकी विफल चेष्टाके फल-स्वरूप उसके भीतर आत्मग्लानि और निराशाके नाशकारी बीजोंके पनपनेकी सुविधा उत्पन्न की है।

अहंभाव एक ऐसी वृत्ति है, जिसका असन्तोष अनन्त है। मैं अपने अनुभव और अनुमान द्वारा इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि सभ्यताके आदिकालसे लेकर वर्त्तमान समय तक कुछ बिरले ही मनुष्य ऐसे रहे होंगे, जो अपने अन्तःकरणसे यह विश्वास करते रहे हों कि जीवनमें उन्होंने कभी एक क्षणके लिए भी सच्चे सन्तोषकी भावनाका अनुभव किया है। असन्तोषका यह निहायत खतरनाक कीड़ा मनुष्यके जानमें या अनजानमें प्रतिपल उसके पीछे लगा रहता है और काठके भीतर पैठे हुए अदृश्य कीड़ेकी तरह सब समय उसके मनको कुतरता रहता है। इस असन्तोषका मूल कारण उसके अहंभावका कभी न रुकनेवाला विकास है। यह अहंभाव उसे व्यक्तिगत रूपसे निरन्तर आगे बढ़ते रहनेके लिए उकसाता रहता है और समाज और संसारकी यथार्थ परिस्थितियोंके साथ उसे अपने व्यक्तित्वका सामंजस्य स्थापित करने नहीं देता। प्रत्येक सभ्य मनुष्य हर घड़ी, ज्ञातमें या अज्ञातमें, केवल इसी एक चिन्तामें डूबा रहता है कि वह अपने समाजके दूसरे व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक धनवान, अधिक प्रतिष्ठित और अधिक शक्तिशाली कैसे हो। जब वह प्रबल चेष्टाके बाद पहलेसे कुछ अधिक उन्नत परिस्थितिमें जा पहुँचता है, तो उससे और अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली बननेके लिए छटपटाता है। इस चेष्टामें सफल होनेपर भी उसे सन्तोष नहीं होता। उससे भी अधिक समर्थ बननेके लिए वह बेचैन हो उठता है और उस बेचैनीके लिए समाज और संसारको कोसता रहता है। ज़रा सोचनेकी बात है कि जब समाजका प्रत्येक व्यक्ति दूसरोंकी तुलनामें अधिक सम्पन्न, समर्थ और प्रतिष्ठित बननेके लिए सब समय, जानमें या अनजानमें, अस्थिर रहे, तो समाजमें समता, स्थिरता और शान्ति कैसे क़ायम हो सकती है? इस विश्वव्यापी होड़में सभी व्यक्ति निश्चय ही सफल नहीं हो सकते—एक युगमें केवल एक ही व्यक्ति किसी हद तक सफल हो सकता है। शेष सब व्यक्ति स्वभावतः मरते दम तक असन्तोष, अशान्ति, निराशा और भयके शिकार बने रहनेके लिए बाध्य होंगे। और वह एक 'सफल' व्यक्ति भी सच्चे सुख और सन्तोषका अनुभव इसलिए नहीं कर सकता कि उसके अहंभावकी प्रगति उस अवस्थामें भी नहीं रुकती, और वह मानवोत्तर शक्ति प्राप्त करके सृष्टिकर्त्ताके साथ होड़ लगाना चाहता है, जैसा कि प्रसिद्ध रूसी क्रान्तिकारी बाकुनिनने स्वीकार किया था।

अहंभावने मनुष्यके मनमें केवल प्रतियोगितामें सबसे आगे बढ़े रहनेकी प्रवृत्ति ही नहीं उत्पन्न की है, बल्कि उसे सब समय केवल अपने ही सम्बन्धमें सोचते रहनेका अत्यन्त विकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संकुचित मनोभाव प्रदान किया है। अहंभावकी चरितार्थतामें असफल व्यक्ति कल्पना-लोकमें विचरकर कभी अपने बड़प्पनका खयाली सुख भोगने लगता है और कभी अपने संघर्ष-रहित प्राथमिक जीवनकी याद करके वर्त्तमान जीवनकी यथार्थतासे भागकर माँकी सुख-शान्तिमय गोदमें फिरसे छिपे रहनेका स्वप्न देखने लगता है, जिसकी सफलता उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार पहाड़ी जल-धाराके प्रवाहको नीचेसे ऊपरकी ओर वापस ले जाना। कौन ऐसा व्यक्ति है, जो ईमानदारीके साथ यह कह सके कि जीवन-संग्रामकी असफलतासे तंग आकर अपने प्राथमिक जीवनकी ओर प्रतिमुख होनेकी इच्छा उसके मनमें कभी उत्पन्न नहीं हुई? गोर्कीने अपनी डायरीमें लिखा है कि उसके मनमें नए सिरेसे—१५ वर्षकी अवस्थासे—जीवन बितानेकी इच्छा होती थी। हालाँकि गोर्की अपने मनमें यह बात अच्छी तरह जानता रहा होगा कि यदि एक बार यह असम्भव सम्भव हो भी जाय—उसे फिरसे १५ वर्षकी अवस्था प्राप्त करके नए सिरेसे जीवन बितानेकी सुविधा मिल भी जाय—तो भी अन्तमें उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा; क्योंकि उस हालतमें भी केवल बाहरी बातोंको छोड़कर जीवनके संघर्षका मूलगत रूप वही रहेगा—कभी बदल नहीं सकता। उसका विवेक चाहे कुछ कहता रहा हो; किन्तु उसका अहम् फिर एक बार नए रूपमें अपनेको प्रकाशित करनेकी स्वाभाविक इच्छाको (चाहे वह कैसी ही असंगत क्यों न हो) दबा नहीं पाता था। मैं भी अक्सर यह सोचता हूँ—काश कि अपने पिछले जीवनके क्रमको फिर एक बार नए सिरेसे, बदले हुए रूपमें, भोगनेका अवसर मिलता! जिन-जिन चक्करोंसे गुज़रते हुए मैंने आज तकका जीवन बिताया है, उनसे बिलकुल भिन्न कुछ दूसरे ही चक्करोंसे होकर जीवन बितानेका अनुभव प्राप्त करनेकी इच्छा मेरे बच्चोंकी तरह नादान अहंवादी मनको समय-समयपर होती रहती है। यहाँपर इस बातका उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि मेरा यह अहंवादी मन मेरे विवेकशील मनसे बिलकुल भिन्न है। पर मेरा विवेकशील मन मेरे लिए विशेष महत्त्व इसलिए नहीं रखता कि प्रतिपलके सुख-दुःखकी यथार्थ अनुभूति मेरे अविवेकी अहंवादी मनको ही होती है। कुछ भी हो, बात चल रही थी नए सिरेसे जीवन बितानेकी इच्छाको लेकर। मान लिया जाय कि मुझे यह सुविधा प्राप्त हो गई और मैं बिलकुल नए चक्करोंसे होकर जीवन बिताने लगा। पर इस बातकी क्या गारण्टी है कि वे एक-दम नए चक्कर मेरे सुख-सम्बन्धी आदर्शके अनुकूल पड़ेंगे? क्योंकि इस विशाल विश्वमें जीवन-चक्रोंके अनन्त सम्मिलित रूपों—अंगरेज़ीमें जिन्हें Combinations कहते हैं—की सम्भावना है। फिर भी विवेचनाका दुश्मन मनुष्यका यह अहंवादी मन इस विचित्र विश्वासको अपने स्वार्थी पंजेसे जकड़े रहना चाहता है कि यथार्थ जीवनके चक्रोंका एक-न-एक 'कांबिनेशन' अवश्य ही ऐसा होगा, जो उसके जीवन-पथपर स्थापित होनेसे उसे सुखमय बना देता।

इस प्रकारके शिशु-भावापन्न, अविवेकपूर्ण अहंभावसे जब मैं विवेकी मनुष्योंको भी मुक्त होते नहीं पाता, बल्कि उन्हें इस भावनासे और अधिक जकड़ा हुआ पाता हूँ, तो मेरी निराशा अधिक विकट रूप धारण करने लगती है। चूँकि तथाकथित विवेकशील मनुष्यकी अनुभूति प्रबल होती है, इसलिए उसके अहंभावपर जीवनके जो घात-प्रतिघात होते रहते हैं, वे भी तीव्र होते हैं। प्रत्येक मनुष्य—चाहे वह मूर्ख हो या विवेचनाशील—अपने अहम्में, और अहम्के द्वारा ही, जीवनके वास्तविक सुख-दुःखोंका अनुभव करता है। विवेक द्वारा वह अहम्के बाहरकी कल्पना अवश्य कर सकता है और अहम्के विनाश द्वारा सामूहिक जीवनमें सामंजस्य किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है, उसके उपायको भी एक आदर्शके रूपमें जनताके आगे बड़े सुन्दर ढंगसे रख सकता है। पर साथ ही अपने निजी जीवनसे यह भी अनुभव करता है कि उस उपायको न वह व्यावहारिक रूप देनेमें समर्थ है, न उसका चेला-सम्प्रदाय। लाख चेष्टा करनेपर भी वह अहम्के संकीर्ण दायरेसे मुक्त नहीं हो पाता। साथ ही वह यह भी जानता है कि उसका जो अहंभाव प्रतिपल उसे आत्मग्लानि, असन्तोष और अशान्तिकी उलझनोंमें फँसाए रहता है, यदि किसी उपायसे उसका विनाश हो भी जाय, तो जीवन ही उसके लिए अर्थहीन हो जायगा। यह सचमुच अच्छा मज़ाक है!—अहंभावके रहनेसे शान्ति नहीं है, और उसके न रहनेसे जीवन ही नहीं है!

यहाँपर तार्किक महाशय अवश्य ही मुझसे यह कहना चाहेंगे कि यदि अहंभावके बिना जीवन नहीं है, तो मानव-मन पर अहम्का अटल राज्य होनेकी बातसे निराश होनेका कोई कारण नहीं होना चाहिए, बल्कि यह सोचकर आशावादी बनना चाहिए कि व्यक्तिके अहम् और विवेकका द्वन्द्व जीवन-संग्रामको और अधिक रोचक बना देता है। इसके उत्तरमें मैं यह कहना चाहूँगा कि यदि जीवन वास्तवमें एक संग्राम है, तो उस संग्रामकी सार्थकता क्या है? यदि जन्मके समयसे लेकर मरते दम तक केवल संघर्ष और संग्राममें पिसते रहनेको ही जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं, तो आप लोगोंको मानना पड़ेगा कि वह चाहे और जो-कुछ हो, सुखकर कदापि नहीं हो सकता।

असल बात यह है कि जीवन अपने-आपमें न सुखकर है, न दुःखकर। किसी एक अज्ञात शक्तिने अनादि और अनन्त कालके किसी एक विचित्र क्षणकी खामखयालीमें सृष्टिकी कल्पना करके जो बहुत-से निराले नियम बनाए, जीवन उनमें से एक है, बस। इसके अतिरिक्त और वह कुछ नहीं है। पशुओंको देखिए, वे कभी यह नहीं सोचते कि जीवन क्या है, कैसा है और क्यों है? जैसा भी है, उनके दृष्टिकोणसे वह ठीक है। पर किसी शैतानने मनुष्यके भीतर अपनेपनकी चेतनाका बीज बोकर उसके साथ जो निष्ठुर परिहास किया है, उसीकी बदौलत जीवनको अच्छा या बुरा समझनेकी प्रवृत्ति उसमें आ गई है। उसकी वास्तविक अनुभूति उसे बुरा ही समझती है; पर चूँकि अहम्‌के साथ-ही-साथ शैतानने उसमें विवेकका बीज भी उगाया है, इसलिए कुछ विवेकी क्षणोंमें वह यह सोचकर अपने-आपको ठगनेकी कोशिश करता है कि जीवनका संग्राम अपने-आपमें पूर्ण और सार्थक है। मनुष्यको विवेक प्रदान करके शैतानने अपने परिहासकी निष्ठुरताको और अधिक तीव्र और उग्र बना डाला है। पर एक बात इस सम्बन्धमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह यह कि विवेकको मनुष्य अभी तक अपना नहीं पाया है। वह जैसे उसके गलेके घेघेकी तरह है, जो सब समय उसके शरीरसे चिमटे रहनेपर भी शरीरका कोई अंग नहीं है। इसलिए जीवन सुखमय है या दुःखमय, आशामूलक है या निराशामूलक, लीला है या संग्राम, इस सम्बन्धमें जो-कुछ भी राय वह देता है, उसका कोई मूल्य मनुष्यका वास्तविक व्यक्तित्व अंकित नहीं करना चाहता। मनुष्यका वास्तविक व्यक्तित्व उसके अहम्‌के सिवा और कुछ नहीं है, इसलिए जीवनकी यथार्थताके सम्बन्धमें अहम्‌की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियाँ ही गणनाके योग्य हैं, बुद्धिकी विवेचना नहीं।

मानव-जीवनके सम्बन्धमें मेरे दुःखवादी दृष्टिकोणके दो प्रधान कारण हैं—पहला मनुष्यके अहंभावका आवश्यकतासे अधिक—बहुत अधिक—विकास और दूसरा सभ्य मानवताकी पालिश की हुई झिल्लीनुमाँ चमड़ीके भीतर—अन्तर्मनमें—अतल तक भरी हुई असंख्य पशु-प्रवृत्तियाँ। एक ओर अहंभाव अपनी उत्तरोत्तर प्रगतिसे मनुष्यको लोकोत्तर—Superman—बननेके लिए प्रवृत्त करता है, जो घोर असामाजिक और व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति है, और दूसरी ओर युग-युगान्तसे अन्तर्मनमें दबी हुई पशु-प्रवृत्तियाँ सब समय उथल-पुथल मचाती रहती हैं और मनुष्यको उलटी ओर—प्रतिगतिके अतल गह्वरकी ओर—घसीटनेका प्रयत्न करती रहती हैं। इन दो असामाजिक धाराओंकी रस्साकशीके बीचमें सभ्य मानवका झीना सामाजिक पर्दा अब फटा तब फटा, इस दशामें प्रतिपल दोलित होता रहता है। एक कोनेसे विवेक यह सब तमाशा देखते हुए व्यंग और परिहासके तौरपर कभी मुँह मटकाता हुआ मुस्कराता है और कभी अट्टहास करता है।

वर्त्तमान युगमें अहम् केवल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहा है, उसने सामूहिक रूप भी धारण कर लिया है। हिटलरके शासन-कालमें जिस जर्मनीका प्रादुर्भाव हुआ है, उसका दानवी रूप इसी सामूहिक अहम्‌के रससे पोषित हुआ है। "जर्मन जाति संसारमें सर्वश्रेष्ठ है", "प्रतिभाशाली आर्य-जातिके विशुद्ध वंशज केवल जर्मन ही हैं", "सारे संसारमें जर्मनोंका प्रभुत्व स्थापित करना जर्मनोंका जन्मसिद्ध कर्त्तव्य है," आदि घोर अहंभावापन्न और अतिशय संकीर्णताकी परिचायक कूक्तियोंसे हिटलर तथा उसके सहकर्मियोंने जर्मनोंके सामूहिक अहंभावको उकसाकर उसे विकृतिकी चरम सीमा तक पहुँचा दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप आज सभ्यताकी पालिश की हुई झीनी झिल्ली फट चली है और विश्वव्यापी नाश-लीलाका चक्र चल रहा है। अहंभाव चाहे व्यक्तिगत हो चाहे सामूहिक, वह घोर असामाजिक होता है और विनाशके बीज उसके भीतर निहित रहते हैं।

इन सब कारणोंसे मेरा आत्मगत दृष्टिकोण निराशावादी हो उठा है, तथापि, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, सैद्धान्तिक रूपसे मैं अभी तक आशावादी हूँ और हिटलरकी नाशलीला भी मेरे उस बौद्धिक आशावादको हिलानेमें समर्थ नहीं हो पाई है। चूँकि मेरा व्यक्तिगत जीवन बहुत सीमित है, इसलिए आत्म-चिन्तनके क्षणोंमें मैं पूर्वोल्लिखित प्रत्यक्ष कारणोंसे हताश अवश्य हो उठता हूँ; पर जब कुछ बिरले क्षणोंमें मैं अपने अहम्‌को कुछ समयके लिए ताकपर रखकर सोचता हूँ, तो मेरे मनमें यह विश्वास जमने लगता है कि अनन्तकालीन विश्व-जीवनकी महत्ता विकृति और विनाशकी अग्नि-परीक्षाओंके द्वारा ही प्रतिष्ठित होती है।

मेरे निराशावादी दृष्टिकोणका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मैं जीवनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेनेका उपदेश देता हूँ, या कर्त्तव्य-कर्मोंसे हाथ समेट लेनेको कहता हूँ। नहीं; बल्कि मेरा यह विचार है कि जीवनकी वास्तविकताको (चाहे वह निराशामय हो, चाहे आशाप्रद) उसके निजी रूपमें, जैसेका तैसा, ग्रहण करना प्रत्येक समझदार व्यक्तिका कर्त्तव्य है। यह नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर हालतमें लाभदायक है ; क्योंकि यदि आप जीवनके कटु सत्यको यथार्थ रूपमें स्वीकार न करें, तो प्रतिपल केवल रोते-कोसते रहना ही आपके हाथ आयगा, और उससे प्रकृतिके कठोर नियमका कोई उपचार नहीं हो सकेगा। जीवनकी यथार्थताको ज्यों-का त्यों स्वीकार करनेसे निराशावादी भावनाके डंकका विष बहुत-कुछ जाता रहता है। मैं यह मानता हूँ कि आशावादका ढोंग रचनेवाले व्यक्तिके झूठे आदर्शवादी विचारोंकी अपेक्षा सच्चे निराशावादीका आत्म-चिन्तन कई गुना बेहतर है। इस साथ ही यह भी जानता हूँ कि इस जीवन-विद्वेषी भावको अपनाए रहनेसे जीवनका विष घटनेके बजाय उसके और अधिक तीव्र होनेकी सम्भावना ही अधिक है। इस विषका यदि थोड़ा-बहुत उपचार हो सकता है, तो वह केवल इस उपायसे कि हम जीवनकी वास्तविकतासे मुँह न मोड़कर साहसके साथ सार्वजनिक संघर्षके बीचमें आवें और सामूहिक जीवनकी प्रगतिमें हिलचस्पी लें। इस उपायसे व्यक्तिगत अहंभावकी तीव्रता बहुत-कुछ क्षीण पड़ जायगी, और प्रतिपल जो हमारी निराशावादिता हमें काँटेदार स्प्रिंगकी तरह जकड़कर निष्ठुर पीड़न पहुँचाती रहती है, वह एक मीठी वेदनासे गुदगुदाने लगेगी।

जीवन प्रत्यक्ष रूपसे निश्चय ही निराशामूलक और दुःखमय है ; पर जब दुःखके निराकरणका कोई उपाय नहीं है, तो चतुराई इसीमें है कि उसे अधिकसे अधिक नमकीन और चरपरा बनानेकी चेष्टा की जाय, जिससे उसका कड़वापन बहुत-कुछ फीका पड़ सके। मैं यथार्थ आशावादी न होनेपर भी महत् सामाजिक जीवनके आदर्शपर विश्वास करता हूँ और अपने संकीर्ण अहम्के अनुभवोंको ही चरम अनुभव नहीं समझता—कमसे कम सैद्धान्तिक रूपसे। सम्भव है, मेरा विवेक मुझे यहाँ भी धोखा देता हो और परिहास करना चाहता हो ; पर इस धोखेमें भी एक विशेष प्रकारका सरस सुख वर्त्तमान है, जो जीवनकी कुनैनको गलेके नीचे उतारने योग्य बना देता है।

प्रेमचन्द और देहात

श्री श्यामसुन्दर झुनझुनवाला, बी० ए०

विज्ञ समालोचकोंने कहा है कि यदि आप 'बोर्डर कंट्री' जायँ, तो आपको स्काटकी याद आयगी ; वसेक्स जायँ, तो टामस हार्डीकी और अयोध्या जायँ, तो 'तुलसी'की। उसी प्रकार जब आप किसी देहातमें जायँगे, तो प्रेमचन्दकी याद आए बिना न रहेगी। सच्ची बात तो यह है कि प्रेमचन्द और देहातको अलग-अलग समझना भूल है। प्रेमचन्दका जन्म देहातमें हुआ था और वे देहातमें ही पले थे। बादमें वे शहरमें रहे। उनका अधिक समय तो शहर ही में बीता ; परन्तु उनका मन सदैव देहातमें रहता था। कुछ तो इस नाते कि लेखकके जीवनकी छाप प्रायः उसकी रचनापर ज़रूर रहती है और कुछ इस नाते कि भारत देहातोंमें ही बसता है—प्रेमचन्द देहातोंको न भुला सके। उनकी आन्तरिक इच्छा यही थी कि वे देहातके स्वच्छ और सीधे-सादे वातावरणमें अपनी ज़िन्दगी बसर करें, और यदि परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं, तो शायद वे ऐसा ही करते भी।

जिन्होंने प्रेमचन्दका थोड़ा-सा भी साहित्य पढ़ा है, उन्हें इस बातका अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता कि उनकी रचनामें वह स्वच्छ ग्रामीण वातावरण और आधार-भूमि वर्त्तमान है जो प्रेमचन्दकी अपनी निजी खूबी है और जिसमें उनकी मौलिकता प्रशंसनीय है। प्रेमचन्दकी इस रूपमें एक यह विशेषता है कि अधिक समय शहरोंमें काटते हुए भी उन्होंने ग्रामोंकी जितनी बारीकियोंको पहचाना और जिस खूबीसे उन्हें हमारे सामने पेश किया, वैसा कोई भी भारतीय उपन्यासकार नहीं कर सका है। उन्होंने लाखों कृषकोंके मूल तत्त्वको जाननेकी चेष्टा की और उसमें वे सफल भी हुए। ग्रामीणोंका उन्होंने ऐसा सजीव चित्र खींचा है कि 'उन्होंने हमारे हिन्दी-जगत्के भाव-चक्रको ग्रामीण जीवनसे सम्बद्ध कर दिया है।' प्रेमचन्दने हिन्दीकी उस धाराको, जो शहरोंकी संकीर्ण गलियोंमें चक्कर काटती हुई विकसित होनेमें असमर्थ हो रही थी, देहातोंकी ओर मोड़कर उसे विस्तृत भू-भाग प्रदान किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह काम उन्हीं-जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तिका था।

प्रेमचन्दने लोगोंका मन शहरोंसे गाँवोंकी ओर फेरनेके लिए गाँवोंको शहरोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर दिखलाया है। ऐसा करनेमें वे दो उपाय काममें लाते हैं। वे दिखलाते हैं प्रकृतिकी, वहाँके वातावरणकी, सुन्दरता और वहाँके जीवनका सौन्दर्य। यहाँ हमें यह न भूल जाना चाहिए कि ऐसा करनेमें वे यथार्थताके परे नहीं चले जाते। यदि वे ऐसा करते, तो उनकी साहित्यिक शक्तिकी कमजोरी प्रकट होती। ये विशेष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताएँ उनकी सभी रचनाओंमें—उनकी कतिपय छोटी कहानियोंमें भी—हम पाते हैं। पर उनके उपन्यासोंमें तो गाँवका जैसा जीता-जागता और सम्पूर्ण चित्र हमें 'गोदान'में मिलता है, वैसा उनके और किसी उपन्यासमें नहीं।

प्रेमचन्द जहाँ कहीं भी मौक़ा पाते हैं, देहातोंके वातावरणका आकर्षक वर्णन करने लग जाते हैं। प्रकृतिका वर्णन करते-करते वे कविके क्षेत्र तक पहुँच जाते हैं :—

"फागुन अपनी झोलीमें नवजीवनकी विभूति लेकर आ पहुँचा था। आमके पेड़ दोनों हाथोंसे बौरकी सुगन्ध बाँट रहे थे और कोयल आमकी डालियोंमें छिपी हुई संगीतका गुप्त दान कर रही थी।" ('गोदान', पृ० ३४१)

"...भादोंमें वर्षा हो गई और किसानोंके प्राण हरे हुए। कितना उछाह था उस दिन। प्यासी पृथ्वी जैसे अघाती ही न थी और प्यासे किसान ऐसे उछल रहे थे, मानो पानी नहीं, अशर्फियाँ बरस रही हैं। बटोर लो, जितना बटोरते बने। ('गोदान', पृ० २५१)

"रसिक वसन्त, सुगन्ध और प्रमोद और जीवनकी विभूति लुटा रहा था, दोनों हाथोंसे दिल खोलकर। कोयल आमकी डालियोंमें छिपी अपनी रसीली, मधुर, आत्मस्पर्शी कूकसे आशाओंको जगाती फिरती थी। महुएकी डालियोंपर मैनोंकी बारात-सी लगी बैठी थी। नीम और सिरस और किरौंदे अपनी महकमें नशा-सा घोले देते थे। होरी आमके बागमें पहुँचा, तो वृक्षोंके नीचे तारे-से खिले थे।" ('गोदान', पृ० ४०९)

प्रकृतिका यह रंग देख उसका व्यथित, निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्तिमें जैसे डूब गया। तरंगमें आकर वह गाने लगा :—

"हिया जरत रहत दिन रैन।
आमकी डरिया कोयल बोले तनिक न आवत चैन।"

यहाँ 'गोदान'-कारने शहरवालोंकी मीठी चुटकी ली है कि आओ देखो, गाँवोंमें क्या लुत्फ़ है। 'रंगभूमि' (पृष्ठ २) में भी इस तरहके वर्णन हैं—"कार्त्तिकका महीना था। वायुमें सुखद शीतलता आ गई थी। संध्या हो चुकी थी।...सड़कके दोनों ओर पेड़ लगे हुए थे। गाड़ीवानोंने उनके नीचे गाड़ियाँ ढील दीं।...और इस दरिद्रतापर भी उन्हें कुछ चिन्ता नहीं थी, बैठे बाटियाँ सेंकते और गाते थे। बैलोंके गलेमें बँधी घंटियाँ मँजीरोंका काम दे रही थीं।" प्रकृति और पुरुष दोनों ही आनन्दमें मग्न हैं।

प्रेमचन्दने किसानोंके सीधे-सादे जीवनका चित्र सामने रखकर यह दिखलाना चाहा है कि गाँवोंकी अपेक्षा नगरका जीवन कैसा कठोर, निर्दयी, धूर्त्त, छली और प्रवंचनापूर्ण है। वे कहते हैं—"...लेकिन उसका (किसानका) सम्पूर्ण जीवन प्रकृतिसे स्थायी सहयोग है। वृक्षोंमें फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; खेतोंमें अनाज होता है, वह संसारके काम आता है; गायके थनमें दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं; मेघोंसे वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगतिमें कुत्सित स्वार्थके लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसीके जलते हुए घरमें हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।" ('गोदान', पृ० १०)

'रंगभूमि' का सूरदास तो बड़ा ही महान् पुरुष है। उसके-जैसे दो व्यक्ति शायद ही मिलें। समाहारकी दृष्टिसे भी ग्रामीणोंका ही पलड़ा झुका मिलेगा। एक ओर हैं सूरदास, होरी, गोबर आदि गाँवकी मिट्टीके पले और दूसरी ओर हैं विनयसिंह, राजा महेन्द्रकुमार, रायसाहब, मि० तंखा आदि। स्त्री-पात्रोंमें भी गाँवोंकी स्त्रियाँ—सुभागी, धनिया, झुनिया आदि—बहुत-से अवगुणोंके रहते हुए भी शहरोंकी सोफ़िया, मिस मालती वगैरहसे कहीं प्रशंसनीय हैं। ग्रामीणोंकी सादगी और भोलापन, जो उनकी विशेषताएँ हैं, मनको लुभाए डालते हैं।

प्रेमचन्दके ग्रामीणोंमें त्यागकी मात्रा काफ़ी रहती है। किसान जानता है लड़ाई करके प्रेम करना, वह जानता है किसीके लिए जान हथेलीपर रख देना। अलग होते हुए भी होरीका अपने भाइयोंपर प्रेम, दुनियाकी असमयमें रक्षा, घरमें ज़हर खाने तकके लिए एक पैसा न रहनेपर भी पुनियाके घरकी तलाशीको रोकनेके लिए दारोग़ाको घूस देनेके लिए तैयार होना आदि ऐसी बातें हैं, जिनकी मिसाल शहरमें खोजना कठिन है। "तलाशी! होरीकी साँस तले-ऊपर होने लगी। उसके भाई हीराके घर तलाशी होगी और हीरा घरमें नहीं है। तो फिर होरीके जीते-जी और उसके देखते यह तलाशी न होने पावेगी।...हीरा अलग सही; पर दुनिया तो जानती है, वह उसका भाई है।..." ('गोदान', पृ० १८३-१८४)।

कहाँ गए मिस मालतीके वे उपासक, जो उस एक अक्षर-ज्ञानके सामने दुम दबाकर रह गए थे और अकेला होरी राय-साहबके कहनेपर उसपर टूट पड़ा था? और जंगलकी वह काली-कलूटी छोकरी, जो मि० मेहताको जंगलमें मिली थी! उसे क्या गरज़ पड़ी थी कि वह इनकी इतनी सेवा करती; पर नहीं, कुटियापर आए अभ्यागतको वह किस तरह लौटा सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

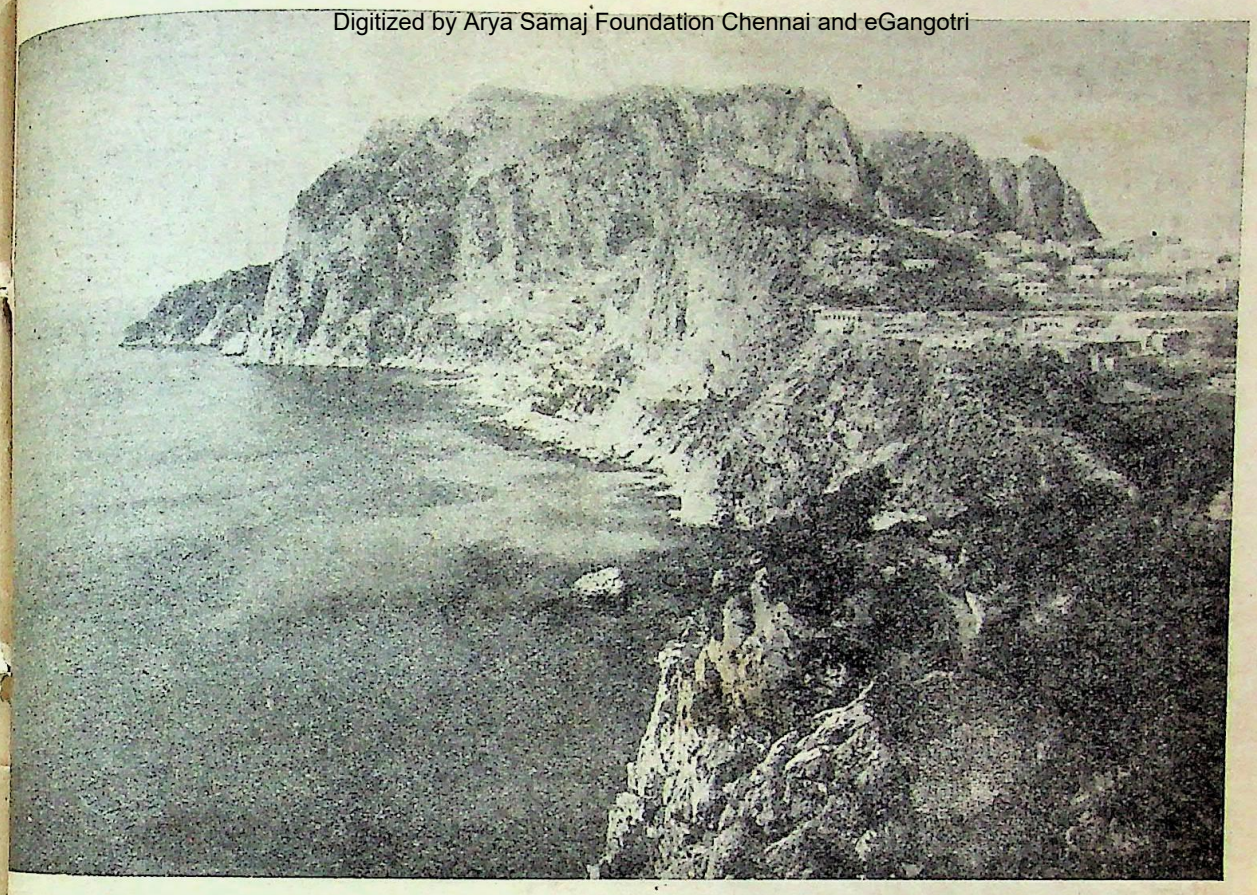

नेपल्सके पड़ोसमें इटलीके काप्री टापू और उसके आसपासके पहाड़ोंका दृश्य

इटलीके दक्षिण-पूर्वी समुद्र-तटपर बसा बारी नगर और बन्दरगाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

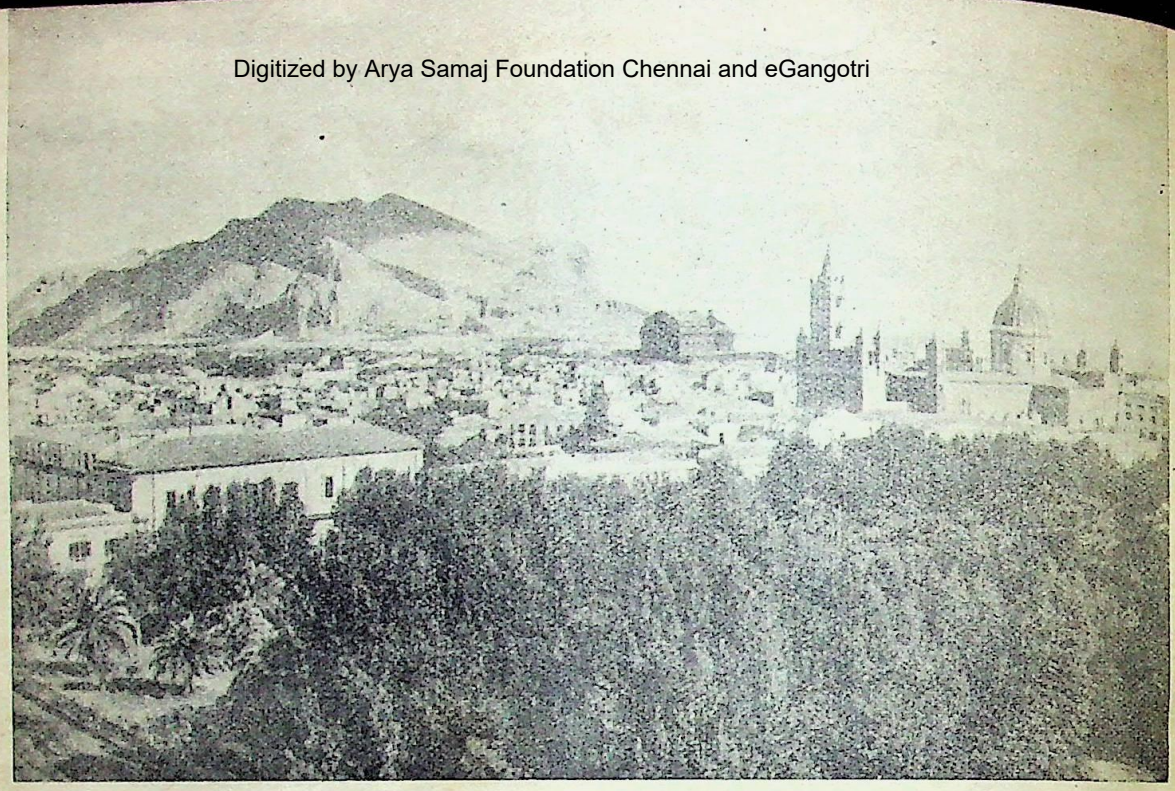

सिसिलीका प्रमुख नगर पालरमो, जो अपने प्राकृतिक दृश्योंके लिए प्रसिद्ध है

सिसिलीकी कुछ युवतियाँ अपनी सर्वप्रिय राष्ट्रीय पोशाकमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी? मालतीके सर-दर्दके लिए दवा खोजने वह तुरत चली जाती है। "इस जंगली छोकरीमें सेवाका कितना भाव है! हड्डी और धूलमें आसमानपर चढ़ी चली जा रही है।"

रायसाहबने भले ही दुनियाको फाँसनेके लिए ये शब्द कहे हों—"तुम हमें बड़ा आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े हैं, पर दर्शन थोड़े।...हम मानवताका वह पद न पा सकेंगे, जिसपर पहुँचना ही जीवनका लक्ष्य है।" पर यह बात कितनी सच्ची है, इसे बतानेकी ज़रूरत नहीं।

देहातोंमें भले ही अत्याचार हो, दुःख हो; परन्तु आनन्दकी कमी नहीं। "देहातोंमें सालके छै महीने किसी-न-किसी उत्सवमें ढोल-मँजीरा बजता रहता है। होलीके एक महीने पहले तक फाग उड़ती है, असाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादोंमें कजलियाँ होती हैं। कजलियाँके बाद रामायण-गान होने लगता है। सेमरी भी अपवाद नहीं है। महाजनकी धमकियाँ और कारिन्दोंकी गालियाँ इस आमोदमें बाधा नहीं डाल सकतीं। घरमें अनाज नहीं है, तनपर कपड़े नहीं हैं, गाँठमें पैसे नहीं हैं, कोई परवा नहीं। देहातकी आनन्दवृत्ति तो दबाई नहीं जा सकती, हँसे बिना तो रहा नहीं जा सकता।" ('गोदान', पृष्ठ ३६२)

परन्तु प्रेमचन्दने देहातोंकी असुन्दरताकी ओरसे आँखें बन्द नहीं कर ली हैं। देहातके सौन्दर्यके साथ-साथ उन्होंने उसकी बुराइयोंको भी देखा है। उनकी पैनी दृष्टि गाँवोंमें घुसी थी और वे वहाँकी कालिमाओंको भी प्रदर्शित कर सके हैं। श्री प्रियरंजन सेन कहते हैं—"उसमें ('गोदान'में) हमें उस भारतीय कृषकोंकी हृदय-विदारक कहानी मिलती है, जिनके आत्मसम्मानका अनेक प्रकारसे अपहरण हो चुका है, जिनका लालन-पालन मिथ्या विश्वासों और धार्मिक विश्वासोंके सम्मिश्रणमें हुआ है और जिन्हें सदा ऐसी दरिद्रता और ऋणका मुक़ाबला करना पड़ता है, जिससे बचनेकी उनके लिए प्रायः कोई आशा नहीं है।...देहातोंमें जो-कुछ गन्दगी या बुराई है और जो-कुछ सौन्दर्य या भलाई है, जो-कुछ सुख है और जो-कुछ दुःख है, जो-कुछ अद्भुत परिस्थितियाँ हैं और जो अनन्त सम्भावनाएँ हैं, उन सबका उसमें बहुत अच्छा दिग्दर्शन है।...एक ओर तो ब्राह्मण और महाजन मिलकर देहातोंको खाते चले जाते हैं और दूसरी ओर सामाजिक प्रणाली और आर्थिक दुर्दशा उनके प्राण ले रही है।"

वहाँके एक घरकी दशा देखिए—"देखा, तो उस मुखतसर घरकी मुख्तसर गृहस्थी इधर-उधर फैली पड़ी थी। कहीं लुटिया औंधी पड़ी थी, कहीं घड़े लुढ़के हुए थे। महीनोंसे अन्दर सफ़ाई नहीं हुई थी। ज़मीनपर मनों धूल बैठी हुई थी। फूसके छप्परमें मकड़ियोंने जाले लगा लिए थे। एक चिड़ियाका घोंसला भी बन गया था।" ('रंगभूमि', पृष्ठ ५६४)

'गोदान' (पृष्ठ ५९३) में भी होरीके घरकी ऐसी ही दशा दिखलाई गई है और कहा गया है—"और यह दशा कुछ होरीकी ही नहीं थी, सारे गाँवपर ही यह विपत्ति थी। ऐसा एक भी आदमी न था, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणोंकी जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियोंकी तरह नचा रही हो।"

जहाँ ज़मींदारके यहाँ 'एक आने' रोज़की मजूरी मिलती हो और एक आने रुपए सूदपर रुपया मिलता हो, जहाँ नोखेराम-जैसे कारिन्दे हों और पटेश्वरीलाल-जैसे पटवारी, जहाँ झिंगुरी साह-जैसे महाजन हों और दातादीन-जैसे महापण्डित, वहाँकी ऐसी हालतपर आश्चर्य नहीं हो सकता। और यह बात केवल सेमरी और बेलरीकी ही नहीं, भारतके लाखों गाँवोंकी है। गाँवोंका यह कैसा भारी व्यंग है कि जो एड़ी-चोटीका पसीना एक करके अनाज पैदा करे, वह दाने-दानेको मुहताज हो! होरीको ऊँखके १२५) रु० मिले नहीं कि कर्ज़ और लगानमें हाथों-हाथ निकल गए। गाँवोंकी कैसी दयनीय हालत है—"वैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घरमें अनाजका एक दाना भी न रहा। पाँच-पाँच पेट खानेवाले और घरमें अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भरपेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है। उधार ले, तो किससे? गाँवके सभी छोटे-बड़े महाजनोंसे तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी? जेठमें अपना ही काम ढेरों था। ऊँखकी सिंचाई लगी हुई थी; लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो?...साँझ हो गई थी। छोटा बच्चा रो रहा था। माँको भोजन न मिले, तो दूध कहाँसे निकले? सोना परिस्थिति समझती थी, मगर रूपा क्या समझे? बार-बार रोटी-रोटी चिल्ला रही थी।" ('गोदान', पृष्ठ २४८)

लगानका भार देहातियोंपर कैसा पड़ता है, यह सभीको मालूम है—"सहसा एक दिन बादल उठे और असाढ़का पहला दौंगड़ा गिरा। किसान खरीफ़ बोनेके लिए हल ले-लेकर निकले कि रायसाहबके कारकुनने कहला भेजा, जब तक बाक़ी न चुक जायगी, किसीको खेतमें हल न ले जाने दिया जायगा। किसानोंपर जैसे वज्रपात हो गया।" ('गोदान', पृष्ठ १६९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीणोंके कर्ज़ लेनेकी प्रवृत्ति किसीसे छिपी नहीं है। एक आने रुपए सूदपर भी कर्ज़ लेते रहेंगे, भले ही सूद तक देनेका ठिकाना न हो। होरीका सारा जीवन कर्ज़के कारण खराब हो गया। "उधारको वह एक तरहसे मुफ़्त समझता था।" वह जानता था कि वह कर्ज़ कभी चुका नहीं सकेगा; पर तो भी झूठी कुल-मर्यादाके पीछे और धार्मिक अन्ध-विश्वासोंके कारण वह कर्ज़की धारामें बह गया। तो भी पासमें पैसे न रहते थे। जब मौत उसके निकट आ रही थी, उसके गोदानके लिए उसकी स्त्रीके पास सूतकी कमाईके बीस आने पैसे निकले।

गाँवोंमें किस तरह बात-बातपर लाठियाँ चल जाती हैं, बात-बातपर 'अलगोझा' हो जाता है और बात-बातपर पति-पत्नीमें लड़ाई हो जाती है, ये सारी बातें प्रेमचन्दने दिखलाई हैं। गृह-कलह, जिसमें पति स्त्रीपर अपने हाथकी सफ़ाई दिखलाता है, देहातोंकी खूबी है। 'गोदान'में होरी और धनिया और 'रंगभूमि'में भैरों और सुभागी अच्छे उदाहरण हैं। देहातोंकी सामूहिक वृत्तिके उदाहरण हमें 'रंगभूमि' और 'गोदान' दोनोंमें मिलते हैं, जहाँ वे बराबर अपनी धारणाएँ बदलते रहते हैं।

प्रेमचन्दने गाँवोंके उन कुत्तों और गिद्धोंकी भी खबर ली है, जो ग्रामीणोंपर झपटते रहते हैं, भले ही उन्हें मांस और लहूके बदले सूखी हड्डी और चमड़ा ही मिलें। ये हैं वहाँके पटवारी, कारिन्दे, महाजन, ब्राह्मण आदि। ये हमारी समवेदनाके पात्र नहीं। इन्हें हम अच्छी नज़रसे नहीं देखते हैं। नोखेराम, झिंगुरी साह, दातादीन, पटेश्वरी, बिसेसर साह, नायकराम आदि ऐसे ही पात्र हैं। इस सूचीमें 'दारोगा' भी मज़ेसे चले आते हैं। गाँवोंमें कई बदचलन नवेली स्त्रियाँ भी होती हैं। उनका गाँवके उन महानुभावोंसे, जो अधर्मके परे रहते हैं, कैसा सम्बन्ध रहता है, यह बात भी प्रेमचन्दसे छिपी नहीं रही। 'गोदान'में झुनिया, नोहरी और सिलिया ऐसे ही स्त्री-पात्र हैं।

प्रकृति भी गाँवोंमें हमेशा अपना सुन्दर रूप लिए नहीं रहती। वह भी कठोर और निर्मम हो जाती है—"माघके दिन थे। महावर लगी हुई थी। घटाटोप अन्धकार छाया हुआ था। एक तो जाड़ोंकी रात, दूसरे माघकी वर्षा। मौतका-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अँधेरा तक न सूझता था। होरी भोजनकर पुनियाके मटरके खेतकी मेंड़पर अपनी मड़ैयामें लेटा हुआ था। चाहता था शीतको भूल जाय और सो रहे; लेकिन तार-तार कम्बल और फटी हुई मिर्ज़ई और शीतल झोंकोंसे गीली पुआल, इतने शत्रुओंके सम्मुख आनेका नींदमें साहस न था।" ('गोदान', पृष्ठ १९३)

प्रेमचन्दने शहरकी दुनिया अच्छी तरह देखी थी। वहाँकी मिलों और मशीनोंकी बढ़तीको देख उनके प्रभावको वे समझते थे। मिलोंकी बढ़तीसे देहातोंपर क्या असर पड़ता है, इसे वे जानते थे। 'रंगभूमि'में पाँड़ेपुरकी मिलके कारण तबाही दिखलाकर उन्होंने अपना देहातका नक्शा पूरा कर दिया। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक—सभी दृष्टियोंसे उन्होंने देहातोंको परखा और उनकी जीती-जागती तस्वीर खड़ी कर दी। परन्तु 'रंगभूमि'-कार यहीं नहीं रुके। थोथे यथार्थवादको उन्होंने कभी पसन्द नहीं किया। वे संसारको कर्म-क्षेत्र समझते थे। ग्राम-सुधारपर उनके अपने विचार थे, और ये विचार उस समयके प्रचलित विचारोंसे भिन्न थे। उनकी धारणा थी कि केवल देहातियोंके दोषोंका ढिंढोरा पीटने और क़ानून बनानेसे ग्राम-सुधारका कार्य सुचारु रूपसे नहीं चल सकता। इन विचारोंको उन्होंने 'प्रेमाश्रम'में प्रकट किया है। हमें यह अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं कि प्रेमचन्द ही प्रेमशंकरके द्वारा कह रहे हैं—"परिश्रमी तो इनसे अधिक संसारमें कोई न होगा। मितव्ययितामें, आत्म-संयममें, गृह-प्रबन्धमें वे निपुण हैं। उनकी दरिद्रताका उत्तरदायित्व उनपर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियोंपर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है।"

ग्रामोंकी समस्याओंकी तह तक पहुँचनेकी उन्होंने सफल चेष्टा की। वहाँके ऋणकी समस्यापर उनके विचार कितने ठोस हैं—"दातादीनने सुरती मलते हुए कहा—कुछ सुना, सरकार भी महाजनोंसे कह रही है कि सूदकी दर घटा दो, नहीं डिग्री न मिलेगी।

"झिंगुरी तमाखू फाँककर बोले—पंडित, मैं तो एक बात जानता हूँ। तुम्हें गरज पड़ेगी, तो सौ बार हमसे रुपए उधार लेने आओगे और हम जो ब्याज चाहेंगे, लेंगे। सरकार अगर असामियोंको रुपए उधार देनेका कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो हमें इस क़ानूनसे कुछ न होगा। हम दर कम लिखाएँगे; लेकिन एक सौमें पचीस पहले ही काट लेंगे। इसमें सरकार क्या कर सकती है?" ('गोदान', पृष्ठ ४११-१२)

करोड़ों ग्रामीणोंकी दुर्दशा देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो उठा था। कलाके बलसे वे कृषकोंके कंठ-स्वर बन गए। उन्होंने गाँवोंकी आवाज़ शहरों तक पहुँचा दी। उन्होंने मूक-व्यथित जनोंको वाणी प्रदान की और अपनी क़लमके जादूसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान्धर्व महाविद्यालयकी वृन्दवादन-मण्डली (आर्केस्ट्रा)।

दिल्लीका गान्धर्व महाविद्यालय

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

अन्य छात्रोंकी भाँति विद्यालयके वार्षिकोत्सवके प्रीतिभोजका निमन्त्रण मुझे भी मिला था, तो भी सकुचाते हुए मैंने भीतर क़दम रखा। किन्तु यहाँ नूतन, पुरातन, परिचित, अपरिचितकी ओर ध्यान देनेकी तनिक भी गुंजाइश नहीं, उलटा मुझे आँगनमें प्रवेश करते ही लगा। बहुओं, बेटियों तथा छात्राओं-सहित माताजी एक ओर पूरियाँ बेलने-सेंकनेके लिए बैठी हैं। दूसरी ओर महाविद्यालयके आचार्यगण बरफ़ी बनानेकी फ़िक्रमें हैं। तीसरी ओर तरकारी, चटनी आदि परोसनेकी व्यवस्था शिशु-छात्र एकत्रित होकर कर रहे हैं। इस तौलिया कन्धेपर डाले वृद्ध पिताजी छात्रोंके हाथ धुलानेके लिए उत्सुक हैं। काम-काजकी इस व्यग्रतामें बागेश्री, भैरवी तथा कल्याणके तान-आलाप अकस्मात् ही रजनीगंधाकी सुरभिकी नाईं मस्त पवनके साथ हिलोर ले उठते हैं।

सहसा मैं भी पूरियाँ बेलनेवाली टोलीमें सम्मिलित हो गई। कुछ ही क्षणोंमें अपने छोटे-छोटे संगी-साथियोंके हृदयसे फूटती हुई आनन्दकी धारा मुझे भी स्पर्श करने लगी। मेरी तरह एक व्यक्ति (मराठा सज्जन श्री संजीवराव, जो एक दिन पूर्व इसी विद्यालयके वार्षिकोत्सवमें प्रधान नियुक्त हुए थे) भी आश्चर्य-चकित हो वातावरणकी इस मधुरताका पान कर रहे थे। कल इसी समय स्थानीय टाउन-हालमें इन्हीं विद्यार्थियों द्वारा उन्होंने उच्चकोटिका संगीत श्रवण किया था।

भोजन प्रारम्भ हुआ। पहले छोटे छात्र बैठे और बड़े छात्रोंने परोसा। दूसरी बारीमें हम लोग बैठे ही थे कि भीतर कमरेमें से बेलेके संग अनेक बाल-स्वर गूँज उठे।

खेतों, झोपड़ियों तथा खेतों तकको मुखरित कर दिया। अगर ग़ौर करके देखा जाय, तो प्रेमचन्दके देहातियोंमें—भले ही वे अतीतकी और पुरानी लकीरके फ़क़ीर क्यों न हों—विद्रोहकी एक छिपी हुई भावना रहती है। किसानका भोला मन, रूढ़ियोंसे जकड़े रहनेपर भी, कभी-कभी अन्यायके कारण हुई अपनी विनष्ट अवस्थापर आँसू बहाता है और समाजकी वर्त्तमान व्यवस्थापर उसका विश्वास डगमगाता-सा है। 'गोदान'में होरी भी कभी-कभी आशंका कर बैठता है। 'रंगभूमि'में सूरदासको नायक बनाकर और कथानकको देहातमें ही घटितकर प्रेमचन्दने ग्रामीणोंकी मूकताको दूर कर दिया। सूरदासकी बात तो जाने दीजिए, 'गोदान' ही में होरीके हृदयमें समाजके विरुद्ध जो भावना उठती है, वह गोबरमें अधिक प्रत्यक्ष और तीव्र रूपमें दिखाई देती है। ग्रामवासियोंकी इस जाग्रतिको हम 'स्वाभाविक प्रतिक्रिया' न कहें, तो और क्या कहें?

प्रेमचन्दने जिस कारीगरीके साथ देहातोंको हमारे सामने उपस्थित किया, उससे हमारा हृदय समवेदनासे द्रवीभूत हो जाता है। उनकी आत्माको कितना सन्तोष होता, यदि वे 'लखनपुर'-जैसा एक भी गाँव भारतमें देख पाते। उनके देहात-चित्रणमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह कभी खटकता नहीं। उनकी कलाको उनके देहात-प्रेमसे कोई बाधा नहीं पहुँची। गाँव तो प्रेमचन्दकी रचनाओंकी आत्मामें ही प्रवेश कर गए हैं, फिर बाधा कैसी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाना सिनेमाका कोई चालू गीत था, जिसे वे लोग मज़ाकके तौरपर गा रहे थे। विद्यालयके पाँच-छः वर्ष तकके नन्हे विद्यार्थी भी शुद्ध संगीत तथा साधारण निम्नश्रेणीके गानोंके सौन्दर्य-भेदको भली प्रकार पहचानते हैं। उनके हृदय गाना गाते हुए जिस अलौकिक उमंगके वेगसे भर रहे थे, वह धीरे-धीरे तालियोंपर उतर आई और जब उससे भी उनके नन्हे शरीरों और हृदयोंकी तृप्ति न हुई, तो स्वतः धीमे-धीमे पैरोंमें गति होने लगी। सम्भवतः वे उससे आगे मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। सहसा उसे पिताजीने आकर पूरा कर दिया। पैंसठ-वर्षीय वयोवृद्ध पाँच-सात वर्षके बालक-बालिकाओंके साथ हाथ पकड़कर घेरा बाँधे बराबर ताल देकर नाचने लगे। बस, फिर क्या था, बड़े छात्रोंमें से जो सफ़ाईके लिए

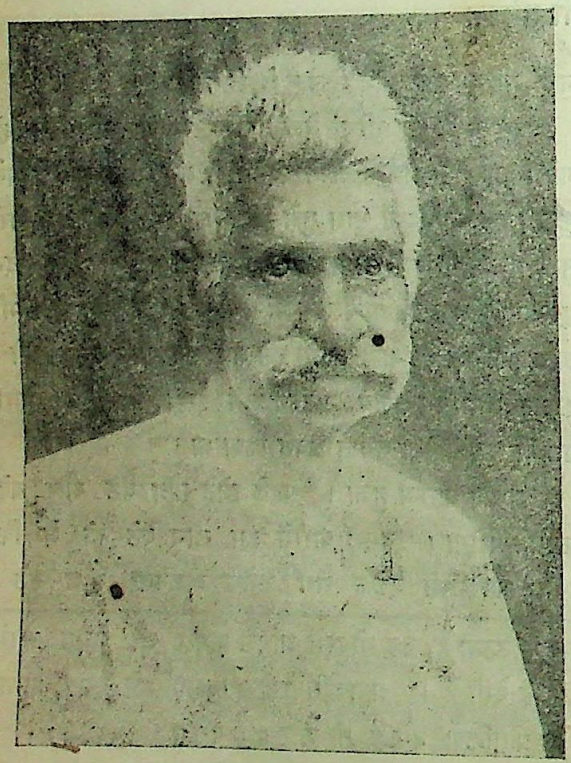

महाविद्यालयके संस्थापक पं० रामचन्द्र मौद्गल्य (पिताजी)।

झाड़ू पकड़े खड़ा था, या जो तरकारीके बर्त्तन लिए परोसने अथवा जो पत्तलें और पानीके सकोरे रखने जा रहा था, वे सबके सब उसी दशामें वहाँ आकर झूम उठे। घर-भर नाचने लगा। पिताजी पहले एक पंक्ति गाते :—

When I see a rainbow in the sky,
My heart leaps up !.....

और सब बच्चे पीछे 'up-up' करते हुए नाचते तथा हँसीके फ़व्वारे छोड़ते। अपने छोटे बच्चे भाषीको पिताजीके साथ कूदते-नाचते देख मुझे रोमांच हो आया। वह मनमें सोचता होगा—काश, उसके पढ़ाईके स्कूलमें गर्दनपर घूँसा मारनेवाले और निब चुभोनेवाले क्रूर अध्यापकोंका स्थान भी कहीं इन्हीं पिताजीने लिया होता!

संगीत-कलाकी सूक्ष्म राग-रागनियों एवं मार्मिक अंगोंके विषयमें मेरा ज्ञान निपट अधूरा है और न सौदरल्य-परिवारसे मेरा विशेष परिचय ही; किन्तु घरके अनेक 'काम-धन्धों'को छुड़ाकर कनाट-सरकसके बड़े-बड़े हरित चक्करोंको दो-चार क़दमोंमें ही पार कराकर जो मृदुलय मुझे आकर्षित कर ले जाती है, वह है इस संस्थाकी शिक्षण-पद्धति और उससे भी बढ़कर उसका मधुर पारिवारिक वातावरण। वहाँ अपने बच्चोंको भेजते समय मैं यह अनुभव करती हूँ कि वे गान-वाद्यके अतिरिक्त उस सुसंस्कृत गृहकी सादगी तथा सुरुचिकी अमिट छाप अनायास ही ग्रहण कर रहे हैं, जो शिक्षाका वास्तविक एवं आवश्यक अंग है और जिसका कुछ आभास उपर्युक्त दृश्यसे पाठकोंको मिल ही गया होगा।

और वह झाँकी! जब उस छोटे-से बरामदेमें भाई विनयचन्द्रजी अपने अनुज-बन्धुओं तथा छात्रमण्डली-सहित वसन्तकी पुण्य-प्रभात वेलामें जयजयवन्ती राग द्वारा वृन्दवादन (orchestra) प्रारम्भ करते हैं, तो समा बँध जाता है। उनके छोटे भाई विपिनचन्द्रजी चित्रकला तथा गायन-विद्याके गम्भीर अध्ययनके साथ ही बाँसुरीमें विशेष प्रवीण हैं तथा उनसे छोटे दो भाई प्रमोद और विनोद क्रमशः तबला और इसराजमें। छात्र-छात्राओंके सौभाग्यसे उनकी गुरुपत्नी सौ० पद्मावती भी 'पूना-गांधर्व महाविद्यालय'की स्नातिका एवं एक मराठी महिला हैं। उनका कण्ठ-स्वर तथा छात्रोंके प्रति व्यवहार दोनों ही अति मधुर हैं। वे बेला लिए होती हैं। विनयचन्द्रजीके पूज्य पिताजी—जो इस प्रवाहिणीके स्रोत तथा अंगरेज़ी एवं संस्कृतके पण्डित हैं, जो गुरुकुल काँगड़ीमें वर्षों अध्यापन-कार्य कर चुके हैं और सितार तथा अन्य वाद्य-यन्त्रोंसे भली प्रकार परिचित हैं—पूर्ण तन्मयतासे ताल दे रहे होते हैं। उनकी बहन शान्ता तथा भतीजियाँ शोभा और अपराजिता वीणा लिए होती हैं, और उनके बड़े भाई पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, जिनकी मूल-प्रेरणासे ही भाई विनयचन्द्रजीने संगीतकी शिक्षा पाई है, तो हिन्दी-संसारके सुपरिचित कवि ही हैं।

हाँ तो, उस सम्मिलित मोहक स्वरकी गूँजसे मानसिक नेत्रोंके सम्मुख सहसा एक भव्य दृश्य आ खड़ा होता है, मानो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालयके हिमाच्छादित उच्च शैल-शिखर, नदियोंके शान्त प्रवाहित स्वर, मेघाच्छन्न आकाशमें डमरूका गम्भीर नाद, सिन्धुकी कोमल तड़ित ध्वनियाँ तथा रवि-शशि, ग्रह-नक्षत्रकी अजस्र धाराएँ सृष्टिके गहन तलमें निहित दुःख-सुख-भरी महा-मौन-ध्वनिको निरन्तर व्यक्त कर रहे हैं। निस्सन्देह मानवीय कोमल अनुभूतियों एवं भावोंकी चरम अभिव्यक्तिका उत्कृष्ट साधन शुद्ध संगीतके तुल्य दूसरा नहीं। वह अभिव्यक्ति, जिसे मूर्तिकार कठोर पत्थरपर गढ़कर व्यक्त करता है, चित्रकार जिसे तूलिका और रंगोंके मिश्रण द्वारा व्यक्त करता है तथा महान् कविको भी जिसके लिए शब्दोंका आश्रय लेना पड़ता है, संगीत-ज्ञ केवल अपने स्वरके उतार-चढ़ाव द्वारा ही उसे मूर्त्तिमान कर देता है। वस्तुतः संगीत काव्यकी जननी है। केवल गलेके ही व्यायामपर घण्टों खर्च करनेवाले गायकों की मैं क़ायल नहीं हूँ। लय, स्वर और हृदयका समुचित समन्वय होना चाहिए, और यही इस संस्थाकी पद्धतिमें हमें मिलाता है।

उत्तरीय भारतमें संगीतकी इस महत्ताको प्रचारित करनेका श्रेय केवल स्व० विष्णु दिगम्बरजीको है। उन्हींकी अथक साधनाके परिणाम-स्वरूप आज उत्तर-भारतके प्रायः सभी बड़े नगरोंमें गत कई वर्षोंसे गान्धर्व विद्यालयकी स्थापना हो चुकी है। गान्धर्व महाविद्यालय, दिल्लीके संस्थापक श्री विनय-चन्द्रजी मौद्गल्य संगीतालंकार पूना-गान्धर्व महाविद्यालयके स्नातक तथा संगीताचार्य श्री विनायक पटवर्धनके सुयोग्य शिष्य हैं। आजसे सात वर्ष पूर्व भारतवर्षकी राजधानीमें संगीत-कलाके प्रचारके निमित्त २-४ छात्रोंको लेकर नई दिल्लीमें आपने उक्त संस्थाकी स्थापना की थी। उनकी परिश्रमशीलता तथा शिक्षणकी सरल-सहज पद्धतिका ही यह परिणाम है कि आज लगभग ८० से ऊपर छात्र-छात्राएँ विद्यालयमें संगीतकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इस समय उनकी पत्नी सौ० पद्मावतीजी बड़ी कन्याओंकी श्रेणियाँ स्वयं लेती हैं और भाई विपिनचन्द्रजी तथा प्रो० लोकमणिजी अन्य श्रेणियोंमें उन्हें सहायता देते हैं। विद्यालयकी शिक्षण-पद्धति अत्यन्त स्वाभाविक है। हारमोनि-यमको यहाँ क़तई स्थान नहीं दिया जाता। तानपूरेके साथ ही शुद्ध स्वरोंपर संगीतकी शिक्षा दी जाती है। इसीलिए प्रारम्भसे ही अल्प समयमें विद्यार्थियोंको तालका पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इसके अतिरिक्त सितार, बेला, इसराज, बाँसुरी, मृदंग आदि वाद्य-यन्त्रोंकी श्रेणियाँ पृथक हैं। विद्यालयके पाठ्यक्रममें नियुक्त मीरा, सूर, कबीर आदिके पदों तथा कईएक भावपूर्ण नवीन कविताओंके अतिरिक्त वीर-रसके कितने ही मनोहारी गान विनयचन्द्रजीके स्वयं रचित हैं। यह संस्था 'गान्धर्व महाविद्यालय-मण्डल', बम्बईसे सम्बद्ध है। यही मण्डल यहाँकी परीक्षाएँ लेता है। उत्तीर्ण परीक्षार्थी संगीत-विशारद, संगीतालंकार तथा संगीत-प्रवीणकी उपाधियोंसे आभू-षित किए जाते हैं। आज तक ७० से ऊपर विद्यार्थी मंडलकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो चुके हैं। पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल, मदरास, काश्मीर, मध्य-प्रान्त आदि प्रान्तोंके विभिन्न भाषा-

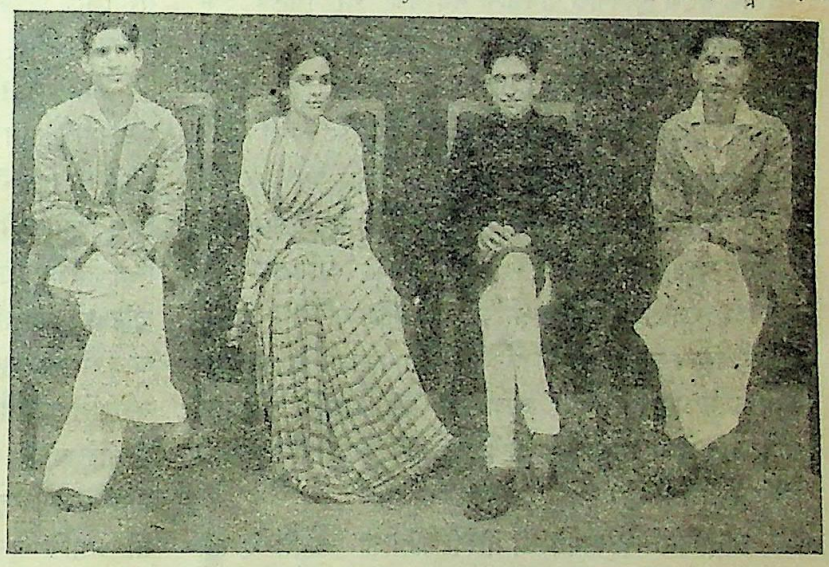

महाविद्यालयके प्रमुख कार्यकर्त्ता—(बाईं ओरसे) श्री विपिनचन्द्र मौद्गल्य, सौ० पद्मावती, श्री विनयचन्द्र और श्री लोकमणि।

भाषी विद्यार्थियोंको एक साथ शिक्षा प्राप्त करने तथा मिलने-जुलनेका अवसर ऐसी संस्था द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाता है।

गत २० वर्षोंसे मुझे दिल्लीकी सार्वजनिक सभाओंमें भाग लेनेका अवसर मिलता रहा है और मुझे सदा ही उनमें राष्ट्रीय गानों एवं सुन्दर मंगलाचरणोंका प्रभाव अखरा है। किन्तु अब प्रत्येक समारोह गान्धर्व महाविद्यालयके सुमधुर वृन्दवादन, मंगल-घोष एवं वन्देमातरम् गानके बिना फीका प्रतीत होता है। इस प्रकार दिल्लीके राष्ट्रीय तथा साहित्यिक जीवनमें इस अभावकी पूर्त्तिका श्रेय बहुत-कुछ अंशोंमें 'गान्धर्व महाविद्यालय'को है। अनेक धुँआँधार व्याख्यानोंकी अपेक्षा एक भावयुक्त सम्मिलित गान कहीं अधिक प्रभावशाली होता है, ऐसी मेरी निजी धारणा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आजकल हम एक अत्यन्त विषम परिस्थिति एवं संघर्षपूर्ण मार्गसे गुज़र रहे हैं। इस ध्वंसकारी युगमें, जहाँ जीवन-यापन तकका सहारा नहीं, आरामके साथ बैठकर गान, वाद्य, चित्रकला आदि सूक्ष्म प्रवृत्तियोंके चिन्तनके विषयमें कुछ भी कहना असामयिक-सा प्रतीत होता है।"—यह कथन एक दृष्टिसे सही है; किन्तु लोकजीवनमें संगीतका जो महत्व है, वह इससे कम नहीं हो जाता। इस बातकी पुष्टि हम स्वयं कर सकेंगे, यदि कहीं सुने हों पसीनेसे तर मज़दूरोंके घर लौटते समयके सान्ध्य-गीत अथवा धानके खेतोंमें दिन-भर पानीमें खड़े किसानोंके सुमधुर लोकगीतोंकी स्वाभाविक गूँज, जो न केवल उन्हींके श्रमपूर्ण जीवनकी कँटीली राहको सुलझा देती है, प्रत्युत सूर्यास्तकी अन्तिम रश्मियोंके संग नीड़ोंमें लौटनेवाले पक्षियोंके कलरवके सदृश सुननेवाले पथिकोंके मरुपथको भी स्निग्ध बना देनेकी विचित्र क्षमता रखती है। फिर स्थूल-जगत् जैसे अपने विस्तार एवं निर्माणके लिए आश्रय खोजता है, हमारे अन्तरके सूक्ष्मकी माँग क्या उससे अधिक अनिवार्य नहीं है? मानव-अन्तस्तल वह गहनतम स्रोत है, जो सहस्र बार प्रतिकूल परिस्थितियोंसे दबाया जाकर भी पुनः उतने ही वेगसे उमड़नेकी निरन्तर चेष्टा किया करता है। उस भव्यकी अवहेलना हम कैसे कर सकते हैं? इसी सूक्ष्म जगत्की अभिव्यक्तियाँ, ललित कलाएँ, शिल्प आदि राष्ट्रकी जो अनूठी सम्पत्तियाँ हैं, संगीत-कला उनमें प्रमुख है, और आज भी वह प्राचीन ऋषियोंके सामज्ञानसे लेकर भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तीय लोकगीतोंमें प्राणोंकी भाँति समा रही है।

राष्ट्र-निर्माणके कार्यमें जो वीरवर प्राणोंकी आहुति दे रहे हैं, वे अतुलनीय हैं; किन्तु इस महायज्ञकी पूर्त्तिका साधन केवल यही एक नहीं है। राष्ट्रकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए हमें कितने ही ऐसे सामूहिक केन्द्र स्थापित करने होंगे, जिनके द्वारा हम जनताकी अभिरुचिमें परिवर्त्तन कर सकें। हमारी अध्ययनशालाओंमें ऐसे कला-विशारदोंका नितान्त अभाव है, जो स्कूलों या कालेजोंकी शिक्षाके साथ-ही-साथ अपने कलापूर्ण जीवनके व्यक्तित्वकी छाप भी विद्यार्थियोंके मनपर छोड़ सकें। इसीलिए प्राणपणसे जो कतिपय व्यक्ति भूली मानवताको सत्य एवं सौन्दर्यके भव्य स्वरूपका दर्शन करवानेमें जीवन खपा रहे हैं, जिनके निर्मल आलोक-तले हम सम्पूर्ण जगत्को एक विराट दृष्टिकोणसे देखना सीखते हैं, जिनके द्वारा निर्धारित पथपर हम हँस-गाकर मरना और जीना सीखते हैं। इस उलझे जगत्से तनिक हटकर जिनके आईनेमें हम अपने अन्तरमें निहित अलौकिक शक्तियोंकी झाँकी पा लेते हैं, वे भी बारम्बार वन्दनीय हैं।

राष्ट्रकी चेतना निस्सन्देह जाग्रत हो चुकी है। हम समझने लगे हैं कि हमारी माँग केवल अन्न-वस्त्र आदि भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित नहीं। सदियोंसे जो हमने खोया है, आज उसे पुनः प्राप्त करने एवं उसकी रक्षाके लिए भावी सन्तान आकुल है। परिणाम-स्वरूप अनेक नगरोंमें आए दिन शिल्प एवं चित्रकलाके स्कूल खुल रहे हैं; किन्तु इतना मैं निस्संकोच कह सकती हूँ कि इनमें से अधिकांशका ध्येय केवल व्यवसाय-वृत्ति तक ही सीमित है। जिनके जीवनका ध्येय इन संस्थाओंके विषयमें दिन-रात कल्याणकारी स्वप्न देखना ही है, वे जन विरले हैं।

दिल्ली शहरके इर्द-गिर्द कितनी ऐसी नर्सरियाँ हैं, जहाँ फलों-फूलोंके विकासका प्रयत्न किया जाता है। कनाट-सरकसके घेरेमें ही कितनी मानवीय फुलवाड़ियाँ हैं, जिनका सिंचन भिन्न-भिन्न दिशाओंसे सुयोग्य मालियों द्वारा हो रहा है—जैसे चित्रकलाके उद्यानमें उकील-बन्धु; शिल्प एवं सूचिकलाकी वाटिकामें श्रीमती सुशीला दीदी (जिनकी वर्षोंकी अथक लगनसे आज सैकड़ों बहनें निर्वाहके योग्य बन रही हैं); नृत्यकलाकी बगियामें कुमारी निर्मला जोशी तथा पतित कही जानेवाली बहनोंके बीहड़ वनमें आशाकी ज्योति लिए कुमारी शैफ़र्ड। नर्सरियोंका विस्तृत विवरण फिर कभी दूँगी; किन्तु आज तो श्रद्धाके कुसुम संगीतके उस अविरल झरनेपर अर्पित हैं, जिसकी शीतलतामें थके-माँदे प्राणोंने बार-बार मानसिक एवं शारीरिक आरोग्यता पाई है। आज एक स्वर्गीय स्वप्न मेरे नेत्रोंके सम्मुख है। वह दिन दूर नहीं, जब कहीं शहरके कोलाहलसे तनिक दूर 'गान्धर्व महाविद्यालय'का निजी भवन एवं आश्रम होगा। और उसके अन्तर्गत संसारकी विभिन्न जातियों एवं देशोंके संगीत तथा कला-सम्बन्धी पुस्तकोंसे सुसज्जित एक बृहत पुस्तकालय और भिन्न-भिन्न वाद्य-यन्त्र। और होगा लताओं तथा पुरातन चित्रोंसे विभूषित एक कला-मंडप अथवा रंगमंच, जहाँ दिन-भरके व्यस्त जीवनके उपरान्त दिल्लीकी कला-प्रेमी जनता निम्नकोटिके आधुनिक चित्रपटोंके स्थानपर ऊँचे धरातलका मानसिक आहार पा तुष्ट होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्थलीमें उपवन

श्री सुधीन्द्र, एम० ए०

एक दिन विजन वनस्थली में,
प्रकृति-नटी का जहाँ था न रम्य परिधान,
भरणी वसुन्धरा का था न जहाँ स्नेह - दान,
एक वल्लरी की सुख - स्रोतमयी गोद में,
मोद में,
एक ही अकेली कली खेलती थी,
पली हुई प्यार में, दुलार में,
ढली हुई स्नेह - पारावार में।
इठलाती, लहराती मंजुल - मृदुल वह,
रस बरसाती तन, मन और जीवन में।
आती थी सुखद समीर की हिलोर और
झुला उसे जाती थी छूती पालने का छोर ;
कलिका थी मंजु मुसकान - से बिखेर देती
हास नयनों में, बयनों में मधु की मिठास,
लास निज लीला में।
कलिका के आसपास, सुरभित हुआ था वात।
बीतते थे सुख - स्नात, एक - एक दिन - रात।
देखती थी स्वप्न वह पलकों में—
'किस दिन मैं कुसुमित हो वितरित करूँगी गन्ध,
धन्य तन - मन को करूँगी निज धरा के लिए !'

× × ×

अकस्मात् दुर्दिन में, दुष्क्षण में,
जब कि लहरा रही थी लता,
कलिका थी डोल रही मोद - रता,
घोल रही अन्तर में सरसता।
आया एक झोंका किसी दुर्दिशा से,
झंझा का कर प्रहार,
देकर निठुर झकझोर घोर
लतिका थी कम्पिता,
कलिका थी अपहृता,
छूट पड़ी, टूट पड़ी धरती पर
हुई धूल - धूसरिता,
और मृदु पंखुड़ियाँ बिखर पड़ीं सब ओर,
मिल गईं किंचित् - सी कलिका वह धूल में !
गूँजा श्रवणों में तब कर्कश करुण रव
दव लगी नन्दन में,
हो गई निमेष में ही सूनी लतिका की गोद
मोद सभी लुट गया,
जुट गया शोक का समाज वहाँ,
डूबे उसमें वे मन, ऊबे जो न सुख से थे ;
नयनों से झरा नीर, हृदयों से बही पीर,
हुए सब तरु अधीर,
भर गया अम्बर में एक अति करुण राग।

× × ×

बीते क्षण, बीते पल, बीती घड़ी, बीते याम,
दिन बीते, रात बीती।
एक दिन घिरे मेघ,
जीवन से भरे मेघ,
झरे मेघ,
बरस पड़े आकर उसी विरस भूमि पर।
एक प्रात,
देखा नयनों ने वहाँ अंकुर था उगा एक,
हृदयों से चुआ रस,
प्राणों से अमृत - रस,
अंकुरिता लता हुई, नव - पल्लविता,
एक बार फिर हुई स्मित - रता,
(हुई थी जो धूसरिता, अपहृता)
आसपास विजन में फूट पड़े अंकुर अनेक तब
फूल उठीं लतिकाएँ पाकर हृदय - रस
खिलीं कलियाँ लो कई नई - नई,
हो गईं लताएँ उपवन की मुकुलमयी।
मधुर - मधुर, मृदुल - मृदुल गन्ध बही चारों ओर
मरु में पुनः एक खिल उठा मरुद्यान !
हो उठा सुरभिमान, स्वर्ग - उपवन - समान !
एक नहीं, दो नहीं, दस नहीं—शत - शत सुमन खिले !
जिन्हें देख नयन खिले, मन खिले, तन खिले,
जीवन के क्षण खिले,
जगत के कण खिले।
आज वहाँ जीवन है—बिछा था जहाँ श्मशान,
आज वहाँ जागे प्राण, घर जो सुप्त, म्रियमाण ;
था जो जड़ खड़ा, वह रथ हुआ क्रियमाण,
छिड़ा था विहाग जहाँ, गूँजा सुमधुर गान,
छाया आनन्द वहाँ, था जो बना शोक - स्थान,
डूबा था तिमिर में जो, हुआ वह ज्योतिष्मान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टमाटर-सोयाबीन

श्री चन्द्रभाल ओझा, एम० ए०

[पात्र : गणेश—एक पंसारी ; हरी—गणेशका लड़का ; शिवरानी—एक औरत ; तारा—गणेशकी लड़की ; तथा मज़दूर वगैरह । स्थान : कानपुरके एक मुहल्लेमें एक पंसारीकी दुकान । समय—८ बजे दिन । गणेश पंसारी कुछ पढ़ा-लिखा है और उसका लड़का भी मिडिल पास है । दुकान उसके मकानमें ही है और मकानसे लगा एक बगीचा भी है । 'अधिक खाद्य उपजाओ' (Grow More Food)-आन्दोलनके अनुसार गणेश अपने बगीचेमें आलू, टमाटर, गोभी, करमकल्ला और पपीतेकी खेती करने लगा है और उसका लड़का दुकान जिस दालानमें है, उसीके एक किनारे बैठकर उन्हें बेचता है ।]

हरी—बाबू, जो लोग शहद निकालने आए थे, शहद निकाल चुके । अब मज़दूरी माँग रहे हैं । और आलू खोदनेवाले भी दुपहरी माँग रहे हैं ।

गणेश—इन मज़दूरोंके मारे तो नाकमें दम है । इनको कितना भी क्यों न दिए जाओ, इनका पेट ही नहीं भरता। काम कुछ करना नहीं और जब देखो तब दुपहरिया-सँझरियाका तक़ाज़ा करते रहते हैं । एक क्यारी भी तो आलू नहीं खोदा होगा और आ गए दुपहरिया माँगने ! कह दो, आज अब और कुछ नहीं मिलेगा। शामको सबकी मज़दूरी देकर सबको विदा कर देना ।

हरी—पर कुछ नहीं देनेसे कैसे काम चलेगा ? खाली पेट वे सब मनसे काम जो नहीं करेंगे ।

गणेश—खाली पेट ? क्यों, कल जो मज़दूरी दी थी, उसको खर्च क्यों नहीं करते ? जाओ, कह दो, आज कुछ नहीं मिलेगा। (जेबसे पैसे निकालकर देता है) और हाँ, ये लो पैसे ; शहद निकालनेवालोंको दे दो । शहदको खूब सँभालकर रखना । आजकल शहद बड़ा मँहगा हो रहा है ।

[हरी चला जाता है ।]

दूसरा दृश्य

[समय—२ बजे दिन । स्थान वही । गणेश दुकानपर बैठा है । एक ग्राहक आता है और कुछ सौदा लेकर चला जाता है । हरी आता है ।]

हरी—मज़दूर तो सब चले गए । उन्होंने काम करनेसे इन्कार कर दिया ।

गणेश—चले गए ? अच्छा, कोई बात नहीं ; चले जाने दो । देखें, इतनी अच्छी मज़दूरी और कहाँ पाते हैं ?

हरी—तो फिर आलू कैसे खोदे जायँगे ?

गणेश—हुँः । हम लोग खुद खोदेंगे । अरे यह तो अच्छा ही हुआ कि वे सब कामचोर चले गए । अच्छे मज़दूर तो आजकल जैसे मिलते ही नहीं । जो अच्छे होते हैं, वे टिकते नहीं ; और जो जिगरचोट्टे हैं, उन्हें रखेगा भी कौन ? आज शामको हम लोग खुद खोदेंगे । [शिवरानीका प्रवेश]

शिवरानी—साहुजी, ज़रा-सा शहद है क्या ?

गणेश—शहद तो···हाँ···शायद नहीं है, नहीं है ।

शिवरानी (प्रार्थनाके स्वरमें)—बड़ी सख्त ज़रूरत है। मेरा लड़का बीमार है । उसीको दवामें देनेके लिए हकीमजीने बताया है ।

गणेश—तो यह बात पहले क्यों नहीं कही ? (कुछ सोचकर) हाँ, हाँ, ठीक याद आया । शहद है, बिल्कुल ताज़ा ; लेकिन उसे मैं बेचना नहीं चाहता । वह बड़े आदमियोंके लिए रख छोड़ा है । उसीमें से थोड़ा तुम्हें दे दूँगा। पर आजकल शहद बड़ा महँगा है । तुम क्या दाम दे सकोगी ?

शिवरानी—मुझे तो हर हालतमें लेना ही है, लाला ! दाम मैं क्या बताऊँ, जो-कुछ तुम कहोगे, दे दूँगी । क्या शहद भी लड़ाईमें जा रहा है ?

गणेश—(शिवरानीके आखिरी वाक्यको जैसे गणेशने सुना ही नहीं । लड़केसे कहता है) हरी, ज़रा लाना तो वह बढ़िया शहद, जो कल निकाला गया है । देख, सँभालकर लाना। बोतल कहीं गिरकर फूट न जाय ।

[हरी चला जाता है और शहदकी बोतल लाकर गणेशके सामने रख देता है । वह उसमें से थोड़ा शहद शिवरानीको एक कटोरीमें दे देता है ।]

शिवरानी—इसके कितने पैसे दूँ, लाला ?

गणेश—आठ आने ।

शिवरानी—इतने-से शहदके आठ आने ? यह भी कोई लूट है, लाला ? आखिर कुछ तो मेरे बीमार बच्चेपर रहम··· लूट है, लाला ? आखिर कुछ तो मेरे बीमार बच्चेपर रहम···

गणेश—रहम-वहम मेरे यहाँ नहीं है, समझीं ? तुम्हें गरज़ हो, तो ले जाओ, वर्ना···

[शिवरानी आँचलके छोरमें बँधे पैसे खोलकर आठ आने दे देती है, और जिधर गणेशका लड़का बैठा टमाटर बेच रहा है, उस ओर जाती है ।]

शिवरानी—भैया, थोड़े-से टमाटर भी दे दो । बच्चेको टमाटर या परवलका शोरवा देनेको कहा है हकीमजीने ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले तो बाज़ारमें कहीं भी नहीं हैं, तुम टमाटर ही दे दो।

हरी—हाँ, हाँ, लो न। ये टमाटर बड़े अच्छे हैं। कितने दूँ ?

शिवरानी—क्या भाव हैं ?

हरी—यही सात आने सेर।

शिवरानी—सात आने सेर ? ग़ज़ब है ! इतने महँगे तो कभी सुने भी नहीं। अभी परसों तक तो तीन आने सेर थे।

हरी—परसोंकी बात छोड़ो। यहाँ तो घड़ी-घड़ीमें दाम बदलता है। यह जो धोती पहने बैठा हूँ, कल शामको ५) में ली है और आज सबेरे इसका दाम साढ़े पाँच है। अगर मैंने इसको पहन न लिया होता, तो बेचकर आठ आने मुनाफ़ा न कमाता। हाँ, तो लेती हो सात आने सेर ? इतने अच्छे टमाटर बाज़ारमें कहीं आठ आने सेरमें भी न मिलेंगे।

शिवरानी—अच्छा लाओ, आध सेर दे दो। आज तो इसी भी भाव लेने ही पड़ेंगे। अभी जैसे-तैसे काम चल जाय, कल तो मेरा भतीजा ढेर-सारे आलू, टमाटर और सोयाबीन भेजेगा। लिखा है—इस बार ऐसे अच्छे टमाटर और सोयाबीन हुए हैं कि मुँहमाँगे दाम मिल रहे हैं।

हरी—कहाँ रहता है तुम्हारा भतीजा ? क्या करता है वह ?

शिवरानी—भरथनेमें रहता है। बागवानी करता है और सब्ज़ी बेचता है।

सौदा लेकर शिवरानी चली जाती है। हरी सोयाबीन शब्दपर कुछ सोचता हुआ दिखाई पड़ता है और सोयाबीन शब्द दो बार धीमे स्वरमें उच्चारण करते हुए सुनाई पड़ता है।]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वही। समय—५ बजे शाम। गणेश दुकानपर बैठा है। ग्राहक आते हैं और सौदा लेकर चले जाते हैं। इसी समय उसकी लड़की तारा घरमें से आती है।]

तारा—बाबू, आज शामके वास्ते सब्ज़ी नहीं है। उस टोकरेमें रखे टमाटरोंमें से थोड़े-से ले लूँ क्या ? और आलू भी किसीसे खुदवाकर मँगवा दो।

गणेश—नहीं, वे टमाटर मत लेना। वे सब बिक्रीके लिए हैं। (आलूके बारेमें अभी कुछ कह नहीं पाता कि कोई ग्राहक आ जाता है। तारा भीतर चली जाती है।)

[हाथमें एक अखबार लिए हरीका प्रवेश]

हरी—बाबू, उस औरतकी बातमें कुछ सार है। वह जो सोयाबीन-सोयाबीन कह रही थी, तुम जानते हो, वह क्या चीज़ है ? मैंने अखबारमें उसके बारेमें पढ़ा है।

गणेश—अखबारमें ? तो तुम अखबारपर पैसे फेंकते हो ? किसने तुमसे अखबार खरीदनेके लिए कहा था ?

हरी—अखबार मैंने खरीदा नहीं, अभी आते-आते ज़रा धानामलकी दुकानपर एक मिनटके लिए बैठ गया था। वहींसे पढ़नेको उठा लाया हूँ।

गणेश—अच्छा। हाँ, तो क्या लिखा है ?

[हरी अखबारमें से पढ़कर सुनाता है।]

गणेश—तो क्या सचमुच ही सोयाबीन इतनी अच्छी चीज़ है, जो फ़ौजके सिपाहियोंकी खुराकमें आती है ? जाओ, उस औरतको फौरन ढूँढ़ो और बुला तो लाओ। हम भी सोयाबीन बोएँगे। और हाँ सुनो, उसके भतीजेने जो टमाटर भेजे हैं, उनकी बानगी भी लेते आना। हम भी वैसे ही टमाटर पैदा करेंगे।

हरी—अच्छा, मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[स्थान—वही। समय—६॥ बजे शाम। ताराका प्रवेश]

तारा—बाबू, सब्ज़ी तो अभी तक भी नहीं आई। मैं फिर नहीं जानती और देर हो गई तो। शाम तक न आई, तो फिर मैं रातमें नहीं बनाऊँगी।

गणेश—अच्छा, तुम चलो, अभी कुछ इन्तज़ाम करता हूँ।

[हरी और शिवरानी आते हैं।]

गणेश—हाँ, तो तुम क्या कह रही थीं सोयाबीनके बारेमें ? तुम्हारे भतीजेके भेजे टमाटर और सोयाबीन आ गए ?

शिवरानी—नहीं, थोड़ी देरमें गाड़ी आयगी, तब आयँगे।

गणेश—अच्छा, तो थोड़ी देरमें मैं इस लड़केको फिर भेजूँगा या खुद ही चला आऊँगा। मुझे टमाटरोंका बहुत शौक है।

पाँचवाँ दृश्य

[समय—८ बजे शाम। स्थान—शिवरानीका मकान। एक कोनेमें एक झाबा टमाटर और सोयाबीन रखे हैं। शिवरानी टमाटरोंको हाथमें लेकर गणेशको दिखाती है।]

गणेश—(टमाटरोंको ललचाई आँखोंसे देखता हुआ) क्या भाव बेचोगी इन्हें, बोलो ?

शिवरानी—ये तो तुम्हें दिखा-भर रही हूँ। मुझे बेचने तो हैं नहीं। मुझे तो अपने बीमार लड़केके लिए चाहिएँ। न-जाने कितने दिनोंमें चंगा होगा।

गणेश—समझा ; लेकिन इतने टमाटर कब तक रखे रहोगी ? खराब न हो जायँगे ? और गोकि ये देखनेमें अच्छे हैं, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खानेमें तो न उतने अच्छे होंगे और न उतने फ़ायदेमन्द ही, जितने कि मेरे टमाटर। आखिर एक सेर तो तुम मुझे आसानीसे दे ही सकती हो।

शिवरानी—टमाटर तो तुम्हारे पास खुद ही हैं। और जब ये टमाटर उनसे खानेमें अच्छे भी नहीं हैं, तो इन्हें फ़िज़ूल लेकर क्या करोगे?

गणेश—यूँ ही; कहा न, मुझे खब्त जो है। जहाँ कहीं कोई नए क़िस्मकी तरकारी देखी, उसे मैं खाके देखना चाहता हूँ। क्या भाव दोगी, बोलो?

शिवरानी—मैंने कह दिया न कि मुझे बेचने नहीं हैं।

गणेश—लेकिन एक सेर ही सही। देखो, मैं भी तो शहद नहीं बेचना चाहता था; पर तुम्हें आखिर दे ही दिया न?

शिवरानी—अच्छा, तो ले लो एक सेर; पर आठ आने देने होंगे।

गणेश—आठ आने! यह तो ज़रा ज़्यादा हैं। अच्छा, जितने टमाटर तुमने मुझसे लिए हैं, उतने ही तुम मुझे दे दो इनमें से। दाम मैं तुम्हारे वापस किए देता हूँ।

शिवरानी—नहीं, मेरे टमाटर उनसे अच्छे हैं। मैं यह नहीं करूँगी।

गणेश—अच्छा, तो आठ आने ही ले लेना। सेर-तराजू मैं हरीसे लिवाता लाया हूँ।

[शिवरानी राज़ी हो जाती है और एक सेर टमाटर तौल देती है। गणेश उन्हें अँगोछेमें बाँध लेता है।]

गणेश—और सोयाबीन? सोयाबीन भी तो थोड़े-से दो।

शिवरानी—नहीं, सोयाबीन बेचनेके लिए तो क़तई मना किया है।

गणेश—क्यों?

शिवरानी—यह तो चिट्ठीमें लिखा है, जो मैं अभी पूरी पढ़ा भी नहीं पाई थी कि तुम आ गए।

गणेश—तो लाओ, अब मैं पढ़ दूँ। कहाँ है वह?

[शिवरानी चिट्ठी लाकर देती है। गणेश चिट्ठी पढ़ता है—'...और बुआजी, सोयाबीन खानेसे वह जल्दी चंगा हो जायगा। बचे हुए सोयाबीनकी खेती तुम भी करना। बड़े महँगे हो रहे हैं।' गणेश पूरी चिट्ठी नहीं पढ़ता और चिट्ठी शिवरानीको लौटा देता है।]

गणेश—और कोई खास बात नहीं। हाँ, तो सेर-भर दो। मेरी भी तो लड़की बीमार है। लो, यह एक रुपया। अब ज़्यादा ज़िद न करो।

[शिवरानी कुछ सोचती हुई एक सेर सोयाबीन तोल देती है। गणेश टमाटर और सोयाबीन लेकर जल्दीसे चला जाता है।]

छठा दृश्य

[स्थान—गणेशकी दुकान। समय—८॥ बजे रात। गणेश टमाटर और सोयाबीन अपने बैठनेके टाटपर रखता है और घरमें से कुछ लानेके लिए चला जाता है। बड़बड़ाते हुए ताराका प्रवेश।]

तारा—(टाटपर रखे टमाटरों और सोयाबीनको देखकर) अब इनकी आँख खुली है। (सोयाबीनको देखकर) और यह पता नहीं, कौन नई सब्ज़ी ले आए? शायद कोई विलायती फलियाँ हों। खैर चलूँ, नहीं तो बड़ी देर हो जायगी।

[आँचलके पल्लेमें टमाटर और सोयाबीन लेकर भीतर चली जाती है। कुछ देर बाद गणेश आता है। हरी और शिवरानी बड़े तैशमें झगड़ते हुए आते दिखाई पड़ते हैं।]

शिवरानी—कहाँ है तुम्हारा बाप? बिल्कुल ठग हो तुम लोग।

गणेश—(आगे बढ़कर) क्या बात है, शिवरानी? क्यों गरम हो रही हो, कुछ कारण भी तो सुनूँ?

शिवरानी—हाँ, कारण है; इसीलिए तो कहती हूँ कि तुम ठग हो। तुमने पूरा खत नहीं पढ़ा। खतमें लिखा है कि सोयाबीन बेचना मत। वह सात रुपए सेर है। आगे इसका दाम बढ़ेगा। इसका आटा दवाके काममें आता है। यह सब तो तुमने पढ़कर मुझे बताया ही नहीं।

गणेश—नहीं जी, तुम पागल हुई हो। ऐसा यह सोयाबीन क्या कोई केसर-कस्तूरी है? अच्छा लो, यह एक रुपया और लो। तुम खुश रहो।

शिवरानी—नहीं, मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा रुपया। मुझे मेरा सोयाबीन वापस कर दो। मेरा भतीजा सुनेगा, तो बड़ा नाराज़ होगा।

गणेश—ओः हो, बड़ा नाराज़ होगा! तुम्हारा भतीजा क्या हुआ, कहींका लाट है? अच्छा, तो ले जाओ अपना सोयाबीन। (इधर-उधर देखता है। न पाकर कुछ घबराकर ज़ोरसे चिल्लाता है।) कहाँ गए वे टमाटर और सोयाबीन! अभी तो मैं यहाँ रखकर गया था।

हरी—कहीं चूहे तो नहीं ले गए?

शिवरानी—सोयाबीन चूहे ले गए? यह सब कुछ नहीं, तुम लोग चोर हो, पक्के ठग हो। लाओ मेरे सोयाबीन, नहीं तो दो सात रुपए।

गणेश—सात रुपए? बाप रे बाप! सात जनममें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतका भावी परित्राता

श्री सन्तराम, बी० ए०

संसार जिन लोगोंको अवतार, पैगम्बर, परित्राता या महा-पुरुष कहकर पूजता है, वे ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने [illegible] के दुःख-हरण और कुशल-वर्द्धनमें अपने जीवनोंको लगा [illegible] था; जिन्होंने किसी भयंकर विपत्ति और संकटसे अपने [illegible] और जातिका उद्धार किया था। ऐसी दिव्य आत्माएँ [illegible]-समयपर प्रत्येक देश और प्रत्येक जातिमें जन्म ग्रहण [illegible] रही हैं। उनके पुण्य-प्रतापसे ही यह संसार मनुष्योंके [illegible] लायक बना रहता है। उदाहरणार्थ, श्रीरामचन्द्रजीके [illegible]में भारतवर्षमें आर्य और अनार्यका झगड़ा बड़ा विकट [illegible] धारण कर रहा था। उत्तरमें आर्य रहते थे और [illegible]में अनार्य। अनार्योंके उपद्रवके कारण सारा देश अशान्त [illegible] था। जिस प्रकार इस समय हिन्दू और मुसलमानकी [illegible] भारतवासियोंको दुखित कर रही है, उसी प्रकार त्रेता-[illegible] आर्य और अनार्यकी समस्या देशकी शान्तिको भंग कर [illegible] थी। श्रीरामचन्द्रजीका बड़ा उपकार यह था कि उन्होंने [illegible]-विजय करके इस आर्य और अनार्यके झगड़ेको मिटाया। [illegible] समूचे देशको एक हिन्दू-राष्ट्रके रूपमें परिणत कर [illegible]। इससे देशमें सुख और शान्ति स्थापित हो गई। [illegible] इनका बड़ा भारी उपकार था। इसीसे वे भगवान्‌का [illegible] समझे जाने लगे।

दूसरा उदाहरण श्रीकृष्णचन्द्रका है। वे सोलह-कला [illegible] ईश्वरका अवतार माने जाते हैं। लोग 'जय श्रीकृष्ण' [illegible] एक-दूसरेका अभिवादन करते हैं। पर हिन्दू-जातिने [illegible] यह अपूर्व सम्मान इसलिए नहीं किया कि वे गोपोंके [illegible] नाचा करते थे, या गोपियोंका चीर-हरण करते थे, या [illegible]ने जरासन्धको मारा था। ये बहुत साधारण-सी बातें हैं [illegible] इनके लिए कोई जाति किसी मनुष्यको ईश्वरका अवतार [illegible] नहीं पूज सकती। श्रीकृष्णके प्रति जनताकी अगाध [illegible] और सम्मानका कारण उनकी उस देश-सेवामें छिपा है, जो उन्होंने शत्रुसे देशका परित्राण करके की थी। उनके समयमें उत्तर-अफ्रीकाकी 'मूर' नामक एक बर्बर जाति जहाज़ोंमें सवार होकर भारतपर आक्रमण किया करती थी। उनके आक्रमणोंके मारे भारतवासियोंका नाकमें दम हो रहा था। उनसे अपनी रक्षाका कोई उपाय उनको न सूझता था। श्रीकृष्णने उन मूरोंको रोकनेके लिए मथुरासे चलकर सागर-तटपर द्वारकापुरीमें अपनी राजधानी बनाई और अपने प्रबल पराक्रमसे उन दानवोंको मार भगाया। उनके प्रतापसे चिर-पीड़ित भारतवर्ष फिरसे सुखकी साँस लेने लगा। इसीसे श्रीकृष्णके अनेक नामोंमें से एक नाम 'मुरारि' अर्थात् मूरोंका शत्रु भी है।

मूरोंके आक्रमणके उपरान्त एक बार फिर भारतपर वैसा ही घोर संकट उपस्थित हुआ। शक नामक एक दूसरी बर्बर जातिने इस देशपर धावा बोलकर मालवा तक इसे तहस-नहस कर डाला। उस समय विक्रमादित्यने उनको खदेड़कर देशका परि-त्राण किया। इसीसे उनका नाम 'शकारि' प्रसिद्ध है, और आज तक भारतके घर-घरमें वीर विक्रमादित्यको धार्मिक-प्रवर, स्वार्थियोंके स्वार्थ पूर्ण करनेवाला और परहित-परायण बताकर उनका यशोगान किया जाता है।

राम, कृष्ण और विक्रमके कालोंमें भारतपर जैसी विपत्ति आई थी, उससे भी अधिक इस समय उपस्थित हुई है। उन प्राचीन समयोंमें भारतको बाह्य शत्रुओंकी बाधा अवश्य थी; परन्तु देशकी भीतरी दशा अबसे बहुत अच्छी थी। उस समय देशमें आजकी तरह भीतर फूट न थी। आज बाह्य शत्रुकी बाधा तो पूर्ववत् विद्यमान है ही, उसके अतिरिक्त न केवल हिन्दू और मुसलमानकी ही विकट समस्या दुःख दे रही है, वरन् स्वयं हिन्दुओंके भीतर भी द्विज और शूद्रका, ब्राह्मण और अब्राह्मणका, भूमिहार और कायस्थका, जाट और बनिएका, अछूत और सवर्णका नया झगड़ा खड़ा हो गया है। इन सबके स्वार्थ एक-दूसरेके विपरीत हैं। जो पदार्थ एकके लिए अमृत

[illegible]। (कुछ सोचते हुए) लेकिन तारासे तो पूछा जाय, कहीं [illegible] तो नहीं उठा ले गई? बड़ी देरसे तरकारी-तरकारी कर [illegible] थी। (पुकारता है।) तारा, ओ तारा, ज़रा यहाँ तो आ।

तारा—चौकेमें हूँ, बाबू! बड़ी देरसे तो सब्ज़ी मिली [illegible]। अभी-अभी चढ़ाई है। थोड़ा ठहरकर आऊँगी।

गणेश—(दौड़ता हुआ भीतर जाता है) कौन-सी सब्ज़ी [illegible] है री? कौन लाया था?

तारा—वही टमाटर और विलायती फलियाँ, जो टाटपर रखी थीं। मैं क्या जानूँ, कौन लाया था इन्हें? तुम्हींने मँगवाई होंगी। [हरी और शिवरानी भी आ जाते हैं।]

शिवरानी—लाओ मेरे सात रुपए!

[हरी और गणेश आँखें फाड़-फाड़कर शिवरानीकी ओर देखते हैं। तारा अवाक् हो सबको आश्चर्यसे देखती है।]

[पटाक्षेप]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वही दूसरेके लिए विष है। जाति-भेदके कारण होनेवाली हिन्दुओंकी दुर्दशाका चित्र एक विद्वानने इन शब्दोंमें खींचा है—

"The effect of this permanent maintenance of human types is that population is heterogeneous to the last degree. It is no question of rich and poor; of town and country; of employer and employed; the difference is far deeper. The population of a district or town is a collection of different nationalities—almost different species—of mankind, that will not eat or drink or intermarry with one another, and that are governed in the more important affairs of life by committees of their own. It is hardly too much to say that by the caste systems the inhabitants of India are differentiated into over 2,000 species which, in the intimate physical relations of life, have as little in common as the inmates of a Zoological garden. A land thus socially atomised and politically split into many principalities was clearly predestined to fall before the first strong invader."*

श्री सन्तराम, बी० ए०

—अर्थात् स्थायी-रूपसे मानवीय विशिष्टताओंको क़ायम रखनेका परिणाम यह हुआ है कि सारी आबादी ही अन्तिम सीमा तक विजातीय अथवा विविध जातीय हो चली है। यह प्रश्न धनी और ग़रीब, शहर और गाँव तथा मालिक और नौकरका ही नहीं, और भी अधिक गहरा है। एक ज़िले या क़स्बेकी आबादी मनुष्योंकी विविध जातियों—प्रायः विविध वंशों—का समूह है, जिसमें आपसमें रोटी-बेटीका व्यवहार नहीं है और जो जीवनके आवश्यक मामलोंमें अपनी पंचायतों द्वारा शासित होते हैं। यह कहना ज़्यादती न होगी कि जात-पाँत द्वारा भारतवासी २००० से भी अधिक ऐसे वंशोंमें बँट गए हैं, जिनका जीवनके भौतिक मामलोंमें परस्पर उतना ही सम्बन्ध है, जितना कि चिड़ियाघरके जानवरोंमें होता है। इस तरह सामाजिक और राजनीतिक विभागोंमें बँटे देशका किसी भी प्रबल शत्रुकी पहली चोटसे पददलित हो जाना स्वाभाविक ही था।

जाति-भेदके कारण सचमुच भारतकी एकता और राष्ट्रीयता छिन्न-भिन्न हो गई है। यहाँकी विभिन्न जातियों और उप-जातियोंमें, खान-पान और ब्याह-शादीकी दृष्टिसे, उतना भी सम्बन्ध नहीं, जितना कि पशु-पक्षियोंका एक-दूसरेसे होता है। भारत-भूमि इस समय विभिन्न संस्कृतियोंका क्रीड़ा-स्थल बन रही है। इनके पारस्परिक विरोधसे यहाँकी राष्ट्रीयता नष्ट हो गई है। इसलिए भारतके भावी उद्धारकके सामने मुख्य और प्रथम कार्य देशमें एक राष्ट्रका निर्माण है। इसके उपरान्त ही राष्ट्रकी स्वतन्त्रताका प्रश्न आयगा।

परन्तु राष्ट्र-निर्माणका कार्य कुछ आसान नहीं। महात्मा गांधीने भी पहले इस कार्यको आवश्यक बताया था। उन्होंने कहा था कि जब तक हिन्दू-मुस्लिम-एकता न होगी, स्वराज्य प्राप्त न हो सकेगा। परन्तु लगभग बीस वर्ष तक प्रयत्न करनेपर भी वह एकता स्थापित न हो सकी, वरन् हिन्दू और मुसलमानके बीचकी खाई दिनपर दिन और भी बढ़ती गई। पहले तो मुसलमान पृथक् अधिकार ही माँगते थे; पर अब तो वे पृथक् निवास-भूमि—पाकिस्तान—की भी माँग करने लगे हैं। इस ओरसे हताश होकर अब महात्माजीको कहना पड़ा है कि स्वराज्य-प्राप्तिके बाद ही हिन्दू-मुस्लिम-एकता सम्भव हो सकेगी। अब विचारणीय विषय यह है कि क्या देशवासियोंमें इस प्रकारकी फूटके रहते हम स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे? यदि इस फूटके रहते भी स्वराज्य प्राप्त हो सकता है, तो फिर इसे दूर करनेकी आवश्यकता ही क्या है? भारतमें बसनेवाली विभिन्न जातियों और उप-जातियोंको एकबन्धुताके सूत्रमें पिरोनेका प्रयत्न छोड़कर क्या रूज़वेल्ट, चर्चिल या स्तालिनसे अपीलें करनेसे स्वराज्य मिल जायगा? जो स्वराज्य किसी दूसरेकी कृपासे प्राप्त होगा, वह कितने दिन स्थिर रह सकेगा? कांग्रेसको ऐसा ही स्वराज्य ब्रिटिश पार्लमेण्टने दान-रूपमें दिया था; पर वह कितने दिन बना रह सका?

* *Clashing Tides of Colour* by Lothrop Stoddards, pp. 285-286.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पाकिस्तान'को रोकनेके लिए इस समय नाना उपाय सोचे जा रहे हैं। 'अखण्ड भारत'का आन्दोलन भी खड़ा किया गया है। एक लाख स्वयंसेवक भरती किए जा रहे हैं। तर्क और युक्तिसे मुसलमानोंका मुँह बन्द करनेकी चेष्टा की जा रही है; पर क्या ये उपाय सफल हो सकेंगे? बिलकुल नहीं। कारण यह कि रोगका निदान ही ग़लत है। रोग कुछ है और औषध कुछ और दी जा रही है। सारे अनिष्टका मूल कारण, भारतके पतनका प्रधान कारण, हिन्दुओंकी सदोष समाज-रचना या वर्ण-भेद है। इस वर्ण-भेदको स्थिर रखते हुए देशकी स्वतन्त्रताके लिए जो भी प्रयत्न होंगे, उनका विफल रहना अवश्यम्भावी है। वर्ण-भेदके कारण ही हिन्दुओंकी विभिन्न जातियोंके स्वार्थ परस्पर-विरोधी हैं। वर्ण-भेदके ही कारण हिन्दू-मुस्लिम-एकता असम्भव है। कोई दो वर्ष हुए, मैंने श्री जिन्नासे पूछा था कि इंग्लैण्ड और चीनमें भी मुसलमान हैं; पर हमने उनको कभी यह कहते नहीं सुना कि हमारी भाषा अंगरेज़ी या चीनी नहीं, वरन् अरबी है; या नेलसन और कनफ्यूशस हमारे महापुरुष नहीं, वरन् रुस्तम और आसफन्दयार ही हमारे महापुरुष हैं। फिर क्या कारण है कि भारतमें ज्योंही कोई व्यक्ति इस्लाम ग्रहण करता है, वह झट कहने लगता है, मेरी भाषा हिन्दी नहीं, राम-कृष्ण मेरे महापुरुष नहीं? इसपर उन्होंने उत्तर दिया था कि इंग्लैण्ड और चीनमें जब कोई व्यक्ति मुसलमान बनता है, तो उसका बहिष्कार नहीं कर दिया जाता, उसे म्लेच्छ विघोषित नहीं कर दिया जाता; परन्तु भारतमें जबसे हमने इस्लाम ग्रहण किया है, हमारा पूर्ण सामाजिक बहिष्कार है। इसलिए हमारी भाषा, संस्कृति और इतिहास हिन्दुओंसे सर्वथा पृथक् रहकर विकसित हुए हैं। श्री जिन्नाकी इस बातका उत्तर मैंने 'अखण्ड भारत'के प्रवर्त्तक श्री कन्हैयालाल मुंशीसे पूछा था; पर उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा! जब तक मुसलमानों और शूद्रोंकी शिकायतोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार न किया जायगा, भारतकी समस्याका हल होना कठिन है।

प्रताप, शिवाजी और गोविन्दसिंहसे बढ़कर मुसलमानोंका विरोध करना इस समयके हिन्दुओंके लिए सम्भव नहीं। परन्तु देखिए, प्रसिद्ध इतिहास-शास्त्री सर यदुनाथ सरकार क्या कहते हैं—"शिवाजीके उद्योगसे समूचे देशमें एक अस्थायी उत्साह फैल गया और हमने समझ लिया कि देश संयुक्त हो गया। परन्तु समाज-रूपी शरीरमें पड़ी हुई दरारें और छेद गुप्त रूपसे काम करते हैं। उनके कारण हम किसी उच्च आदर्शको चिरकाल तक स्थिर नहीं रख सकते। शिवाजीने इन दरारोंको वैसीकी वैसी बनाए रखना चाहा। वह एक ऐसे हिन्दू-समाजकी मुग़लोंके आक्रमणोंसे रक्षा करना चाहता था, जो जात-पाँतकी पृथकताको ही अपने जीवनका श्वास समझता है, वह विभिन्नताओंसे भरे हुए गंगा-जमुनी समाजको समूचे भारतका विजेता बनाना चाहता था। इसलिए वह बालूकी दीवारें खड़ी कर रहा था। वह असम्भवको सम्भव बनाने जा रहा था। जात-पाँतसे बुरी तरह दबे हुए, भीतरसे फटे और बिखरे हुए हिन्दू-समाजका भारत-जैसे विशाल महादेशपर स्वराज्य स्थापित करना मानव-शक्तिसे बाहर और सृष्टिके नैसर्गिक नियमके विपरीत है।"*

इसलिए मेरा विश्वास है कि भारतका भावी परित्राता या अवतार वही मनुष्य हो सकेगा, जो जाति-भेदको मिटाकर देशमें सच्ची राष्ट्रीयताकी नींव रखेगा। इस समय तो देश दिग्भ्रष्ट हो रहा है। वह पहुँचना काशी चाहता है; परन्तु दौड़ रहा है काबेकी ओर मुँह किए। इस सरपट दौड़से वह अपने गन्तव्य स्थानपर न पहुँच सकेगा। इसीलिए महात्मा टालस्टायने कहा है—"The distance you have gone is less important than the direction in which you are going."—अर्थात् आप कितना मार्ग चल चुके हैं, यह बात उतनी आवश्यक नहीं, जितनी यह कि आप किस दिशामें चल रहे हैं।

* Shivaji and His Times, pp. 430-31

मन-घन

श्री सोहनलाल द्विवेदी

आज फिर मन-घन भरा है!
बाँध रक्खा जो युगों से अश्रु वह दृगमें ढरा है।
बह रहा है पवन सन्-सन्,
खुल रहा फिर प्रणय-बन्धन,
फिर विरह-लतिका पनपती, घाव फिर उरका हरा है।
रूप का सुर-धनु निकलता,
आज फिर बढ़ती विकलता,
दामिनी बन दमकती सुधि, आज पीड़ा उर्वरा है।
बह चले फिर नयन-निर्झर,
बह चले सरिता-सरोवर;
कहाँ माँझी? पाल खोलो, आज जल-प्लावित धरा है।
आज फिर मन-घन भरा है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लोकगीत

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

'कितनौ चिड़िया उड़े अकास, दाना है धरतीके पास'—जाने किस निरक्षर या साक्षर कविके कंठसे यह भेद-भरी वाणी निकली थी! इस अलभ कहावतके सुलभ होनेके बावजूद हमारी साहित्यिक चेतना हारिल पक्षी-सी (मिट्टीसे नाता तोड़कर) चंगुलमें ओछा तिनका ले दिङ्-मंडलकी अवाक् शून्यताको ऊपर-ही-ऊपर चीरती रही, यद्यपि कि गदबदी मिट्टीके घिनौने स्पर्शसे अछूता रहकर भी उसका चोला कबीरकी 'झीनी-झीनी रे बीनी चदरिया'की तरह स्वच्छ न रह सका। महाप्राण साधकोंने लाख प्रयत्न किए, कला-निपुणताने लाख कौशल दिखलाए; मगर वे उसकी प्राकृतिक मांसलताको ज्यों-का-त्यों क़ायम रखनेमें पूर्णकाम न हुए। दूसरी ओर लाखों अनपढ़ कवियोंने पर्दोंको कंठमें ही जोड़-जोड़कर अपनी सरस्वतीको जगाना शुरू किया। वे एक कंठसे दूसरे कंठमें सर्वत्र फैलते रहे। जब दृष्टि दिवस-अंध घुग्घूकी तरह न देखकर वस्तुको सीधा आर-पार देखे और बग़ैर इस बातका ख़याल किए कि 'मुशफ़िक़ लिखूँ, शफ़ीक़ लिखूँ या दिलरुबा लिखूँ' झट दिलके क़सीदेको काढ़कर रख दे, तो उसे देख या सुनकर तड़प उठना स्वाभाविक है।

हृदयके धरातलसे सूझके पौधेको रस अथवा बुद्धिको पोषक तत्त्व न मिलनेपर अभिव्यक्तिका खोखलापन पर-कटे पक्षीकी तरह विकल-विवश हो जाता है। सभ्यताके प्रकाशसे उज्ज्वल सवाक् चित्रपटपर मिट्टीकी उदास प्रतिमा अपना केस-रिया दुकूल फैलाकर दर्शकोंपर पल-भरके ही लिए जादू डालती है; मगर खेतोंकी छातीपर दूर-दूर तक चतरे, मखमली पेटियों-सी लटकीं छीमियोंसे लदे मटर और केरावके पौधे अपने यौवनके पट सरकाकर नीरससे नीरस हृदयको भी सदाके लिए काबू कर लेते हैं।

सात-आठ साल पहले मैंने लोक-साहित्यके तलमें पैठकर धूलसे हीरे बटोरनेके मन्सूबे बाँधे। तीन-चार साल पहले लोकजीवनकी गहराइयोंको मापकर आँखोंके दुर्बल टिम-टिम प्रकाशमें कुछ अछूते रत्नोंके धुँधले दृश्य देखे। अनाड़ी पारखी भौतिक मापदण्डसे उनकी ऊँची क़ीमत कूते, तो कैसे? इनमें नक़ली आब तो है नहीं। कालके आघातसे अनाशमान इनकी मुद्रापर चिरन्तन कलाका रंग है। 'जब तोपकी आवाज़ होती है, तो कवितादेवी मौन हो जाती है'—सोवियत्-भूमिमें इन्क़लाब की आग धधकनेपर यह आवाज़ गूँज उठी थी। 'मैं ऐसी कविताएँ नहीं लिखता, जो अनुकूल अवसरकी ताकमें बिलमें क़ैद रहें।' प्रसिद्ध सोवियत्-लेखक मायाकोव्स्कीने जवाब दिया था—'मैं शब्दके ऐसे बमोंको ढाल सकता हूँ, जो समयकी चट्टानोंकी धज्जियाँ उड़ा दें।' फिर कालकी भाथीसे धौंका जाकर और मरणके हथौड़ेकी चोट खाकर भी ऊँचे दर्जेके सुवर्णकी चादरकी भाँति जो टस्-से टूट न जाय, भला उस लोकवाणीकी समता आजका चिन्तनशील साहित्य कैसे करे?

यही कारण है कि जब कोई इनकी विस्तीर्णताको माप डालनेका प्रयत्न करता है, तो वह हत-चेतन हो जाता है। 'किमि अनन्त आकाश यह अंजलि बीच समाय?' उसका मापदण्ड केवल इनके अवयव-विशेषको ही माप पाता है; मगर ये भग-वान वामनके पदकी तरह दिक्-विदिक्को मापते जा रहे हैं। ये लोकगीत नभचुम्बी ऊँचे पर्वतके वासी नहीं, राष्ट्रकी अन्ध-कारपूर्ण झोंपड़ीके लाल हैं। जीवनकी शून्य और गम्भीर मरुभूमिमें ये अकेले ही खजूरके वृक्षकी तरह हरियालीकी गर्दन उठाए मनहूसीके गालोंपर थप्पड़ मारा करते हैं। जब कोई अंगार-से उग्र इनके वीर-रसपूर्ण तरानोंको सुनता है, तो उसकी नज़र चमकती किरच-जैसी हो जाती है। जब कोई प्रेममें शराबोर इनके शृंगारी तरानोंको सुनता है, तो उसके सूखे हृदयमें भी कमल लहराने लगता है। जब कोई इनके विदाकालीन संवेदनमय स्वरोंको सुनता है, तो उसकी काठकी छाती भी ककड़ी-सी दरक जाती है। जब कोई कुन्दन-सी तपी इनकी अनुभूत सूक्तियोंको सुनता है, तो वह उन्हें दिलके पन्नेपर हमेशाके लिए लिख रखता है।

क्यों? इसलिए कि जिन विभूतियोंके कारण हमारी सांस्कृ-तिक आत्मा विश्व-प्रेमका रंगमंच बनी रही है, वे इनके हृदयमें अंकित हैं। इनका साधा हुआ स्वर सनसनाते तीरकी तीव्र गतिसे कालके भींटेको पारकर सीधे अन्तस्तलमें जा चुभता है। सर्वज्ञताके आसनपर विचारककी तरह सुशोभित इनकी वाणी किसी जनपद-विशेषकी बपौती नहीं, इनमें देश-देश और प्रान्त-प्रान्तके प्राकृतिक प्रतीकों तथा अनुभूतिमूलक विचारोंका दर्शन होता है। ये हमारे दिलके पलँगपर कोबर-घरके पाहुने-से हमेशा सोए रहनेके अधिकारी हैं। हमारे प्राचीन पुरुषों—यहाँ तक कि समस्त जन-समुदाय—के लक्षण-स्वरूप उनके पुराने विचार, चिरकाल नवीन आचार, बँधे हुए विश्वासोंके बोझ, वर्ण, धर्म, मतमतान्तर, विविध जातियों और उपजातियोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प-विकल्प, ज़िन्दगीकी कशमकशके चित्र और आत्म-विस्मृत लेहशीलताके रूप इनमें भासित होते हैं। हमारी ग्रामीण संस्कृति ज़बर्दस्त गजदन्त-सी पाखंडी सभ्यताके गालको फोड़कर इनमें विकसित हो उठी है। और यही लोकगीतोंके अमरत्व और टिकाऊपनका रहस्य है।

प्रश्न उठता है कि इन लोकगीतोंकी रचना कैसे हुई? किन महाप्राणोंने विचित्र शब्द-सुर, विचित्र छन्द-वाक्य तथा विचित्र इंगित-भंगियोंमें जीवनके परम सुन्दर और परम असुन्दर दोनोंको सम्पूर्ण-सम्भव उत्कृष्टताके साथ व्यक्त किया? सृष्टि-रचनाके सम्बन्धमें ऋग्वेदके एक मन्त्रमें कहा गया है—'वह ऐसा कौन-सा महावन था, उस महावनमें ऐसा कौन-सा महावृक्ष था, जिसे काट-छाँटकर द्यावा पृथिवी-रूप संसार बनाया गया? हे पंडितो, अपने मनसे ही पूछो कि किस महावनके किस महावृक्षसे इस विश्वको बनाकर उसे अपनेमें धारण करके ब्रह्म सबका अधिष्ठाता बना हुआ है।'[१] तैत्तिरीय ब्राह्मण समाधान करता है—'ब्रह्म वन था, ब्रह्म ही वृक्ष था, जिससे द्युलोक और पृथिवी तराशे गए। हे पंडितो, मनसे ही चिन्तन करके यह बतलाता हूँ कि ब्रह्म ही भुवनोंको धारण करके उनका अधिष्ठाता बना हुआ है।'[२]

तैत्तिरीय ब्राह्मणकी सृष्टिका कर्त्ता केवल एक ब्रह्म है और लोक-साहित्यके कर्त्ता-धर्त्ता अनेक लोक-ब्रह्म हैं। अतः ऋग्वेदमें उठाई गई शंकाका तैत्तिरीय ब्राह्मणमें जिसे दृष्टि-बिन्दुसे समाधान किया गया है, उस या उससे मिलती-जुलती हुई तर्क-प्रणालीका आश्रय लेकर लोकगीतोंकी रचनाके बारेमें अन्धाधुन्ध अथवा ग़ैर-ज़िम्मेदाराना विचार प्रकट करना वाणीके अतोल भेदको छटाँकी बटखरेसे तोलने-जैसा होगा। इस प्रश्नकी मीमांसा करनेके पहले हमें उस युगकी कल्पना करनी चाहिए, जब भाषाकी रचना नहीं हुई थी और हृदयके अक्षरोंको वाणीका रूप देनेके लिए तरह-तरहके संकेत बने थे, जो हाथ-पैर-सिर आदि अवयवोंके माध्यमसे भाव-प्रसूनके गोपन परिमलको वितरित किया करते थे। धीरे-धीरे जब संकेतात्मक हाव-भावका कोहरा साफ़ हुआ, तो ध्वनिके आलोकने अपना लावण्य प्रकट किया। ध्वनिमें अभिव्यक्तिकी अस्पष्टताके कारण तब भाव केवल अटकलबाज़ीके मुखापेक्षी रहे होंगे और भाषा भी भविष्यके नीड़में रहस्यमय अण्डेकी तरह सृजित होती रही होगी। ध्वनिके अभ्यन्तरमें मृत भाव शब्दका लक्ष्य स्पर्श करनेके लिए गूँगेके समान अकुलाते रहे होंगे। वर्षों बाद उनके अन्तरके खारे जलकी हवामें शब्दका मीठा सुर बज सका होगा और तब जड़ताकी नींद तोड़नेवाली वाणी प्राणोंको अमृत-रससे भरकर टपक पड़ी होगी। वसुधाका उर-कोष मधुपूर्ण

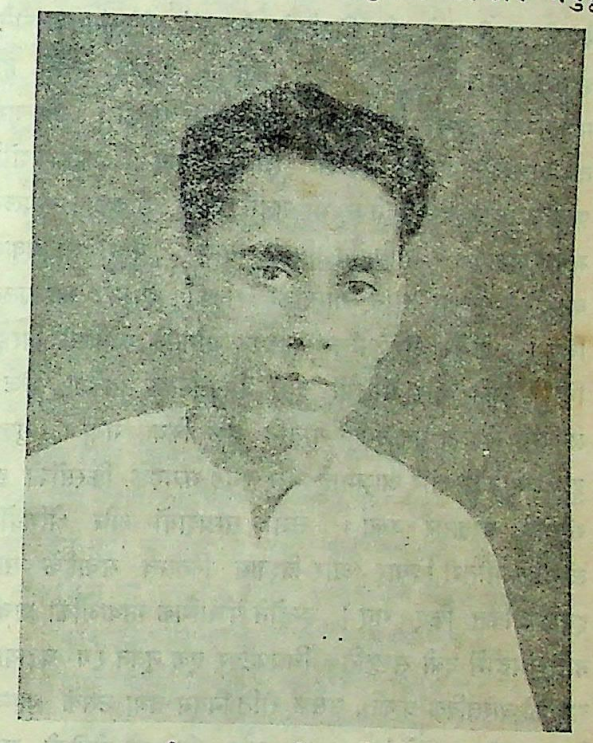

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

हो उठा होगा और फूलोंने पुलकातिरेकमें हँसीका सरगम शुरू किया होगा।

यों वर्षोंके बाद वर्ष बीत गए। वाणीमें मरे पंजरको हँसाने और रुलानेकी ताक़त आई। सुर और तालके तार झनझना उठे। मूकताकी जगह मुखरता पैदा होने लगी और भावके कण्ठमें गानके घाव उभर निकले। गर्भसे निकलकर शिशुने ज्योंही प्रकाशका मुँह देखा कि 'सोहर' गाए गए। फूलके पालनेपर शिशुने रोनेकी भूमिका बाँधी, लोरियोंने उसके दिलको क़ाबूमें किया। बालक ब्रह्मचारी बना, गीत दूल-बादल-से उमड़ पड़े। दूल्हा ब्याह करने द्वारपर गया, गीतोंने शून्यको रंगीन बनाया। प्रेमके कोवर-पंख दो अनपहचाने

---

१. किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावा पृथिवी निष्ठतक्षुः
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु
तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।' (ऋ० १०।८१।४)

२. ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आस
यतो द्यावा पृथिवी निष्ठतक्षुः
मनीषिणो मनसा वि ब्रवीमिवो
ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयोंका मिलन हुआ, गीत-नादसे घर-आँगन गूँज उठा। मौतका पैग़ाम पहुँचा, गीतोंने जख्मपर मरहम-पट्टी की। व्रत-त्योहार हुए, गीतोंके नारोंसे ज़मीन हिल गई।

लम्बे और सूने दिन बीतते गए, और ज्यों-ज्यों वे समाप्त हुए, पुराने गीत तरह-तरहकी शक्लोंमें बदलकर लोकदृष्टिको अचम्भेमें डालने लगे। पहले तो लोकजीवनने उनके अजनबीपनको गवारा नहीं किया; लेकिन धीरे-धीरे वे अपना अजनबीपन खोकर उनके दिलोंके भीतरी कोनेमें बसेरा लेने लगे। परिवर्त्तनका यह क्रम लोक-दुनियामें अपनी सहज रफ़्तारसे चलने लगा। भिन्न-भिन्न आकृतियोंमें नाना भाँतिसे बदलते, अपने केन्द्रके सहारे बनते और मिटते ये गीत धीरे-धीरे संसारके कोने-कोनेमें व्याप्त हो गए। पकी फ़सलसे डलिया भरती हुई मज़दूरिनोंने धानके खेतोंमें मस्तीकी वंशी फूँकी। भिखारी नट-बालकोंने ढोलक बजाकर 'आल्हा' गाए। फ़ाक़ाक़शोंने फ़ाक़ेके नशेसे डसे रहनेपर भी रातमें मांदर ठोंककर जंगलमें मंगल मनाए। धोबियोंने 'बिरहे' गाए। बरदी लादनेवाले बनजारेने गुलनार तराने गा-गाकर राहकी थकानके रम ग़लत किए। प्रेमिकाओंने आँचल फाड़कर आँखोंके काजलसे विरह-वियोग लिखे और पंछियों द्वारा प्रियतमको सन्देश भेजे। लाखोंके दिलका सवाल इन गीतोंने हल किया गया। गुज़रे हुए जमानेकी ज़ोर-आज़माई और रगड़-झगड़के क़िस्सोंको इन गीतोंने बरक़रार रखा। सभी सम्प्रदायों और श्रेणियोंके लोगोंके भीतरी विचार और विश्वास नितान्त सचाईके साथ इनमें अंकित किए गए! इन्होंने पौराणिक गाथाओंकी प्राचीनतर मिट्टीमें दबी संस्कृतिके चित्रपटपर एक नूतन रंग चढ़ाया। राष्ट्रकी वास्तविक प्रकृति, उसके रीति-नियम तथा उसके आन्तरिक गुणकी इन्होंने रक्षा की और पीढ़ी-दर-पीढ़ीकी घटनाओंको अपने गर्भमें फूलने-फलनेका मौक़ा दिया।

पहले किसी लोक-समुदायने इन लोकगीतोंकी रचनाकर समस्त जन-समूहको आकर्षित किया। बादमें ये एकसे दूसरे तक कंठाग्र होते-होते पहुँचते रहे। सृजनशक्ति चुप नहीं बैठा करती। उसकी प्रगतिके लिए सदा उचित अवकाश मिल जाया करता है। इस प्रवृत्तिसे अनुप्रेरित हो इनमें क्रम-क्रमसे घटाव-बढ़ाव और कतर-ब्योंत भी होते रहे। एक ज़माना आया, जब कि इन गीतोंकी सूरत इतनी बदल गई कि इनके असल रचयिता भी इन्हें देखकर अपनी कृति कहनेका दावा नहीं कर सके। इस सम्बन्धमें लोक-कविताके पारखी प्रो० किटरीज़का यह निर्णय 'People as a whole composes poetry without the agency of the individual author' सर्वथा युक्ति-संगत और वैज्ञानिक है।

हमारे गाँवका समाज गर्म गन्धकके पानीके चश्मे तथा उबलते पंकके सोतेकी तरह भूखकी भट्ठीमें जल-भुन रहा है। एक ऐसे धौंकू वातावरणमें, जिसमें ९० प्रतिशत व्यक्ति दुःखके काँटोंकी माला पहने उँगलियोंपर दिन गिना करते हैं, कविताकी लता झुलस क्यों नहीं जाती? स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कहा है—"एक तरफ़ भूख और प्यास चाबुक मार रही हैं; कलेजेमें आग लगाए दे रही हैं; कहती हैं, काम करो। दूसरी तरफ़ वनकी हरियालीने माया फैला दी है; धूपके सोनेने माया बिखेर दी है। वे चित्रमें मस्ती ले आ दे रहे हैं, कहते हैं, छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी।" और इधर लोक-हृदयसे आवाज़ आ रही है—"भूखके मारे 'बिरहा' भूल गया। 'कजरी' और 'कबीर' भी याद नहीं रहे। यहाँ तक कि किसी गोरीकी मोहिनी सूरत देखकर अब कलेजेमें पीड़ा भी नहीं होती।"*

भूखके अपघातका धक्का ज़िन्दगीकी चूलोंको ढीली कर रहा है। लोकगीतकी दुनियामें एक नूतन अध्याय शुरू हो गया है। अतीतके सपनोंकी काली चादर ओढ़े उसकी चेतना अब असन्तोष और बेचैनीकी ओर संकेत करने लगी है। जीवनकी बेलको रस पिलाकर पोसनेवाली उसकी इस चेष्टामें कभी अवरोध नहीं होता। मुमकिन है, भूखके मारे उसके स्वरकी तानी-भरनी 'कजरी' और 'कबीर'के बारीक जाल नहीं बुन सकें; गोरीकी मोहिनी सूरत देखकर भी मुमकिन है, उसके कलेजेमें प्यार नहीं जगे; दुःखका अतल रोदन मुमकिन है, उसके ठहाकेकी हँसीको चाट डाले; पर एक-न-एक दिन उसीका स्वर-अंकुर ऊसर काली मिट्टीके स्तरको फोड़कर खुशीकी हरियाली लहराया करेगा और उसमें जीवनका विपुल भार हल्का होगा।

आज साहित्यमें प्रगतिवादके प्रति जो अगाध स्तुतिका भाव व्यक्त किया जाने लगा है, उसके मूलमें जीवनके यथार्थ तत्त्व और लोक-विज्ञानके मूलभूत सिद्धान्तकी प्रेरक शक्ति ही काम कर रही है। मगर साहित्यके विधि-विधानके नियन्ता आज जीवनकी चेतन भावना और जन-मानवसे सम्बन्ध-स्थापक प्राणवान मान्यता दोनों ही खो बैठे हैं। कोई जनपद, कोई संस्कृति, कोई कला-कृति तब तक संगठित और टिकाऊ शक्ति

---

* 'भुखिया क मारल, बिरहा बिसरि गेल
भुलि गेल कजरी-कबीर।
देखि क गोरी क मोहिनी सुरति आब
उठय ने करेजवामें पीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावुकताका एक झलक

श्री चन्द्रबली पांडे

संस्कृत-साहित्यमें कवि-कुल-गुरु कालिदासको जो प्रतिष्ठा प्राप्त है, प्रायः वही प्रतिष्ठा उनके टीकाकार महामहोपाध्याय मल्लिनाथको संस्कृत-टीकाकारोंमें प्राप्त है। उनकी टीका उच्च कोटिकी होती है, इसका अनुमान अध्यापक केशवप्रसाद मिश्रके इस कथनसे कुछ लगाया जा सकता है। आप कहते हैं—"अर्थ समझनेमें मुझे मल्लिनाथी टीकासे बहुत सहायता मिली है। अतएव मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। किन्तु मैंने कहीं उनका अनुसरण नहीं किया है। यत्र-तत्र उनसे भिन्न अर्थ माने हैं। मल्लिनाथ जैसे 'शब्दार्थपरीक्षणप्रणयी' वैसे भावुक नहीं। पहले ही श्लोककी टीकामें 'जनकतनया-स्नानपुण्योदकेषु' (='सीताके मज्जनसे शुचि जल'वाले आश्रमोंमें) के विशेषणका भावार्थ उन्होंने लिखा है—'पावनेष्वित्यर्थः' (=पवित्र)। मतलब यह कि यक्षने जिन-जिन आश्रमोंमें डेरे डाले, वे सब बड़े पवित्र थे; क्योंकि वहाँके जलाशयोंमें सीताजीने स्नान किया था। सोचनेकी बात है कि विरही यक्ष किसी तीर्थ-यात्राके लिए तो रामगिरिपर गया ही नहीं था, जो वह पवित्र स्थलोंमें डेरा डालता फिरता। वह बेचारा तो गया था अपना दिन काटने।...किन्तु वाह रे कालिदास! तुमने वहाँ भी उसे चैनसे न रहने दिया। जहाँ-जहाँ उसे ले जाकर बिठाया, वहाँ-वहाँ निर्वासित होनेपर भी रामके साथ सीताका स्मरण दिला-दिलाकर उसीसे उसके भाग्यको कोसवाया! विरह-कातरपर रुलाया!" (मेघदूत, भारत-कला-भवन-संस्करण, हिन्दुस्तान प्रेस, सं० १९९२, प्रस्तावना पृ० ८-९)

अनुवादक पं० केशवप्रसाद मिश्र भी यदि 'शब्दार्थपरीक्षण-प्रणयी' होते, तो हम उनसे पूछते कि यक्ष सीधे रामगिरिपर ही क्यों जा विराजा और जो आपने लिख दिया कि 'जहाँ-जहाँ उसे ले जाकर टिकाया', उसका अर्थ कहाँसे आपको आभासित हो गया? कालिदासने तो उसे सीधे रामगिरीपर ही ले जाकर खड़ा कर दिया, कुछ इधर-उधर भटकाया नहीं। जो कहो कि 'जहाँ-जहाँसे' हमारा तात्पर्य है 'रामगिरि'से ही, तो कहो कि यक्ष सीधे रामगिरिपर ही क्यों जा विराजा? क्या सीता-रामके संयोगकी सुधि कहीं और नहीं आती और यह संयोग ही उसे क्यों इतना भा गया था? और यह भी तो कहो कि इस संयोग-सुखकी ध्वनि निकलती कहाँसे है? विप्रयोगी यक्षको इस संयोगी आश्रमकी सुधि क्यों हुई? और यदि हो भी गई, तो वह रामगिरिपर ही क्यों लट्टू रहा, किसी अन्य संयोगी स्थान पर क्यों न आसन जमा लिया? पर नहीं, कोरी भावुकताका विवेकसे नाता क्या कि समझ-बूझसे काम लिया जाय और किसीके मानसमें पैठकर उसके भावको रखा जाय? छायाजीवी तो 'छाँह'के पीछे ही दौड़े फिरते हैं, उन्हें मूलका दर्शन कैसे हो सकता है?

पंडितजीने जो 'भिन्न अर्थ माननें'की घोषणा की है, वह भी तो किसी काममें नहीं आती। वह तो और भी अन्धी दिखाई देती है। पंडितजी कहते हैं 'शुचि', मल्लिनाथ कहते हैं 'पावन'। बस, यही तो भेद है? परन्तु क्या कालिदास 'शुचिता'की प्रेरणासे ही यक्षको रामगिरिपर टिकाते हैं? क्या देशमें कोई अन्य स्थान नहीं था? जो शापकी कहो, तो भूलो मत कि शाप किसी रामगिरिपर बसनेका नहीं था, जो वह दिन काटनेके हेतु वहीं जा रहा। नहीं, उस स्थानको तो उसने स्वयं चुन लिया था। क्यों? कारण कालिदासके मुँहसे सुनो:—

'कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥'

इसका अनुवाद है :—

'धनपतिने सेवासे बेसुध एक यक्षपर कोप किया,

होती हो सकती, जब तक वह उपयोगिताकी अनिवार्यताओंको स्वीकार न करे और उसके खाकेका गुण और फैलाव तर्क तथा ज्ञानके अनुरूप न हो। जैसा कि 'लिटरेचर आफ़ दि पीपुल्स ऑफ़ दि यू० एस० एस० आर०' नामक ग्रन्थमें प्रसिद्ध रूसी आलोचक श्री शागींयानने कहा है—"कोई भी कलाकार अनिवार्यतः युग-जीवनसे कलाका सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकता। उसके अन्तरका कर्मचक्र बाहरके मानदण्डोंके सहारे ही जीवित रहता है।" और जो कलाकार जीवन और समाजके बेशक़ीमती स्वत्वको ठुकराता है, उसका लेखन ऐन्द्रजालिक परी-कहानियोंसे अधिक मूल्य नहीं रखता।" विश्व-ज्ञानका प्रसारक होता है ऐसा साहित्य, जो स्पन्दनशील सँवेदनोंकी कुनमुनाहटसे प्रभावित हो।

ऊपर उद्धृत गीत इसी दिशाका निर्देशक है। हम देख रहे हैं कि हमारे लोकगीत अर्थनीतिक वैषम्य और श्रेणी-संघर्षके गुणात्मक प्रभावसे पग-पगपर उत्प्रेरित होकर आगे बढ़ रहे हैं। वे पीब-भरे समाजकी सड़ी आकृति और ग़रीबीके अवसादसे ग्रस्त आवाज़को भी आँख और कान खोलकर देखने और सुनने लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे वर्ष-भर प्रिया-विरहका कारण दूभर शाप दिया।
तब निरस्त हो उसने डेरे रम्य रामगिरिपर डाले,
जो सीता-मज्जनसे शुचि जल और घनी छायावाले ॥'

हम यहाँ इस केशवी रचनापर विचार करने नहीं बैठे हैं। नहीं, हमें यहाँ दिखाना तो यह है कि वस्तुतः 'जनकतनया-स्नानपुण्योदकेषु' का रहस्य क्या है और क्यों कालिदासने इसे 'पुण्य' कहा है। कहना न होगा कि कालिदासकी भावुकताकी डींग हाँकनेवाले बेचारे केशवप्रसाद यहाँ भी बेचारे ही रह गए हैं, और इस 'पुण्य'को 'शुचि' बनानेके अतिरिक्त उनके लिए और कोई चारा भी नहीं रह गया है। ध्यान रहे, 'छन्द'की ओटमें भी आप बच नहीं सकते, क्योंकि 'शुभ' शब्द भी पिंगलमें वही काम देता, जो 'शुचि' दे रहा है और साथ ही वह 'पावन' वा 'पवित्र'से दूर भी दिखाई देता—अर्थात् उससे उक्त पंडितजीका इष्ट सिद्ध हो जाता और उनकी भावुकता भी उभर आती। कहनेको 'शुभ' लिख तो दिया; पर वास्तवमें सिद्ध कुछ भी न किया। निदान देखना चाहिए कि कालिदासका अभिमत क्या है और अन्य टीकाकारोंका इस विषयमें क्या कहना है। अच्छा लीजिए, एक महानुभाव स्पष्ट कहते हैं—"अतो रागस्य स्थितिमात्रात्तीर्थभूतोऽयं पर्वतः इति तमेमाबीभजत्। यतो 'यदध्यासितमर्हद्भि स्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते' इति। जनकात्मजाविरहितोरामस्तत्रासीनस्तां प्राप्तवान्। अतो ममाप्येवं स्थानमहिम्ना कान्तासंगतिर्भविष्यतीति तस्याश्रयणम्।". (मेघदूतम्, काशी-संस्कृत-सीरिज, सं० १९८८, पृ० २)

अच्छा होता, मल्लिनाथपर फ़बती कसनेके पहले अध्यापक पं० केशवप्रसाद कमसे कम एक बार प्रसंगपर ध्यान रखकर 'तीर्थ' और 'विरह'पर विचार कर लेते और तब देखते कि वस्तुतः कालिदासका पक्ष क्या है और मल्लिनाथ क्या कहना चाहते हैं। अच्छा, इतना तो प्रकट हो ही गया कि चारित्रवर्द्धनाचार्यने अपनी चारित्रवर्द्धिनी टीकामें रामगिरिको तीर्थ-स्थान माना है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि किस शुभ कामनासे यक्षकी यात्रा वहाँ हुई थी। ध्यान देने और विचार करनेकी बात है कि वियोगी यक्षकी भावना उस समय क्या थी, जो वह सीधे रामगिरिपर जा रहा और कहीं अन्यत्रका नाम तक नहीं लिया। कहना न होगा कि यहाँ भी पं० केशवप्रसादकी प्रतिभा मुग्ध हो जाती और सहसा यही देख पाती है कि यहाँ तो राम और सीताका विलास चल रहा है और इसीसे उद्दीप्त हो यक्ष रोता और अपने भाग्यको कोसता है। सच है, 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी', इसीको तो कहते हैं? तभी तो हम कहते हैं कि 'मधुमती'को 'रसभूमि' माननेसे बड़ा अनर्थ होता है और प्रतिभा धाड़ मारकर रोने लगती है। देखो न, दूर क्यों जाते हो? इसी प्रसंगको क्यों नहीं ले लेते? कालिदास कहते क्या हैं? यही न कि वहाँ कभी 'जनकतनया' स्नान करती रहती थी और वह 'रामगिरि' था? सो तो ठीक ही है। यदि विवेककी आँखसे देखो, तो पता चले कि कालिदासने इन दो शब्दोंमें क्या भर दिया है और इनकी मूल व्यंजना क्या है।

कहा जा सकता और वादी खुलकर कह सकता है कि यहाँ 'रामगिरि'में रामका संकेत है ही और उधर 'जनकतनया'के होनेमें किसीको सन्देह नहीं, फिर इन्हें राम और सीताके संयोगका संकेत क्यों न मानें? निवेदन है 'शब्द'की परीक्षा और 'भावुकता'की पुकारके कारण। शब्द कहता है 'राम' अलग और 'जनकतनया' विलग है। यह 'जनकतनया' रामसे दूर हो चुकी है। फिर इस रामगिरिपर सीताका वास कैसा? क्या यह 'वैदेही-वनवास'का द्योतक है?

हाँ, इतना तो विदित ही है कि कालिदासने 'जनकतनया-स्नानपुण्योदकेषु'में बहुवचनका प्रयोग कुछ दिखानेके हेतु ही जान-बूझकर किया है, कुछ तुक भिड़ानेके लिए नहीं। मल्लिनाथने इसका कुछ निर्देश कर भी दिया है, तो भी हम उनको प्रमाणकी कोटिमें नहीं रखते। कारण कि प्रसंग भावुकताका आ पड़ा है और वे ठहरे 'शब्दार्थपरीक्षणप्रणयी'। परन्तु करें क्या, हृदयपारखी भावुक भी तो प्रेममें इधर-उधर भटकना और बार-बार शीतोपचार करना ही ठीक समझते हैं? तो क्या इस 'स्नानपुण्योदकेषु'से यह ध्वनित नहीं होता कि 'जनकतनया' किसी एक ही कुण्डमें नित्य नहीं नहाया करती थी, प्रभु विरहसे सन्तप्त हो रह-रहकर कभी किसी जल और कभी किसी जलमें नहाती थी कि कदाचित् उस-उस जलसे उसे शान्ति मिले और उसका विरह-ताप कुछ दूर हो। रही 'जनकतनया'की व्यंजना, सो वह भी तो इसी पक्षमें है। उसे चाहे आप कुमारी मानें वा परित्यक्ता; पर है तो वह अपने रामसे विलग ही। और राम? अब यदि रामका रामगिरिसे कोई सम्बन्ध है तो यह कि :—

'आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो वाष्पमुष्णम्' ॥९७

इसीका केशवी अनुवाद है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके ऊपर रघुनायकके वन्दनीय चरणोंकी छाप, तब प्रियबन्धु तुंग गिरिवरसे मिलकर विदा माँग तू आप। समय-समयपर ही तुझको पा जो चिर-विरह-जन्य तत्काल, वरण वाष्प मोचन कर करके कहता व्यथित हृदयका हाल॥' संस्कृतके करुण कवि भवभूतिका उत्तर-रामचरित इसीको लेकर चला हुआ है। समझमें नहीं आता कि उक्त पं० केशवप्रसाद-जीने इसका अर्थ क्या समझ लिया, जो 'वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदै-रंकितं मेखलासु'का अनुवाद कर दिया—'जिसके ऊपर रघुनायकके वन्दनीय चरणोंकी छाप।' कहना न होगा कि 'मेखलासु'की उपेक्षाकर केशवजीने सिद्ध कर दिया कि इसका संकेत उनकी समझमें न आ सका। सच तो यह है कि उक्त पंडितजीने न तो 'पुण्योदकेषु'के बहुवचनका अर्थ समझा और न 'मेखलासु'के बहुवचनपर ही ध्यान दिया। कालिदासने 'रघुपतिपदैरंकितं'का प्रयोग केवल यह दिखानेके हेतु नहीं किया था कि उस पहाड़पर उनका चरण-चिह्न है, प्रत्युत उनका तात्पर्य तो यह था कि इसी पर्वतमालाके मध्य-भागमें विरही राजा रामका भ्रमण हुआ था और इसी गिरिपर उन्हें सीताकी खोजमें भटकना पड़ा था।

यह तो खुली हुई बात है कि शम्बूक-वधके उपरान्त उनको जनस्थानमें सीताकी चिन्ता हुई, और वे उसी वियोगमें व्याकुल हो इधर-उधर भटकते फिरे। शम्बूकका स्थान कहाँ था और उसका इस रामगिरिसे क्या सम्बन्ध था, इसकी खोजमें कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। श्री नन्दलाल दे कहते हैं—

"Ramtek, north of Nagpur in the Central Provinces, where Sambuka, a Sudra, performed asceticism, for which reason he was killed by Ramachandra. Hence it may be identified with the Saibala-giri, a mountain mentioned in the Ramayana (Uttara, Ch. 75). At the time of Kalidasa, the author of the *Meghaduta*, it was known by the name of Ramagiri."—*The Geographical Dictionary*, 1927, p. 176.

शम्बूकाश्रमका जो परिचय श्री नन्दलाल देने दिया है, उसका सारांश यह है कि वस्तुतः रामटेक, रामगिरि और शैवल-गिरि एक ही हैं। प्रतीत होता है कि शैवल 'रघुपतिपदैरंकितं'के प्रचारसे पहले रामगिरि बना और फिर मराठी भाषाके प्रसादसे रामटेक हो गया। रामटेक ही कालिदासका रामगिरि है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। कारण, यहाँसे प्रस्थान करनेपर मेघ 'आम्रकूट' अथवा मैकलगिरिपर जाता है—'आम्रकूट वह शिर-आँखोंपर लेगा तुझे देखकर क्लान्त ॥१७॥।' निदान कहना पड़ता है कि कुशल कवि कालिदासने 'रघुपतिपदैरंकितं'के द्वारा यह व्यक्त कर दिया है कि यह वियोगी राजा रामचन्द्रका प्रसंग है, कुछ संयोगी तापस रामका नहीं।

कवि-कुल-गुरु कालिदासने सीताको 'जनकतनया' और रामको 'रघुपति' क्यों कहा, यह तो प्रकट ही हो गया और स्पष्ट हो गया यह भी कि क्यों यक्षने इसी रामगिरिपर डेरा डाला था। सच तो यह है कि यह रामगिरि वियोगियोंका तीर्थ-स्थान ही है। इसीसे तो यक्ष भविष्यकी शुभ कामनासे इस पुण्य-स्थान पर आ रहा था और नित्य इसी भावनामें मग्न रहता था कि कभी उसकी भी कामना सफल होगी। समझमें नहीं आता कि भावुकताका तिलक लगानेवाला प्राणी इस प्रसंगमें संयोगको कहाँसे सूँघ लेता है! माना कि मल्लिनाथको 'रामगिरि'का पता न था और उनमें वह भावुकता भी न थी, जो किसी हृदयका भेद खोलती है; पर देखिए तो सही इस 'वाह रे कालिदासी' आलोचकमें कितनी समझ है, जो इस प्रकार मल्लिनाथकी खिल्ली उड़ाता और अपनी अनुपम प्रतिभाका ढिंढोरा पीटता है। सो तो वह कहता ही है; पर उसकी प्रकृति-दृष्टि भी कितनी पैनी है, तनिक इसे भी देखें—"देशदर्शन-कौतुकी कालिदास काव्य-संसारमें रमते-रमते रामगिरिपर जा जमे। **जलदागमकाल** था। स्निग्धश्यामल बलाहकोंसे व्योममंडल व्याप्त था।... शैलसरिताका सर्ज-अर्जुन-कदम्ब-कुसुमोंसे मिश्रित पर्वतीय-धातु-रंजित **नव जल त्वरित गतिसे कल-कल करता बह रहा था।** अभिनव-जलधारासे आप्यायित मरकतमणि-नील शाद्वलपर टहलती हुई बीर बहूटियाँ धरा-रमणीको लालबूटीदार सुलापंखी साड़ी पहना रही थीं।..." (प्रस्तावनाका राम)

अब तो जी नहीं चाहता कि इस आडम्बर और पोथीकी पंडिताईपर और कुछ कहें। कौन है, जो विवेकके साथ कह सकता है कि इसमें निरे शब्दजाल और कोरे पांडित्य-प्रदर्शनके सिवा कुछ और भी है। जलदागमकाल (आषाढस्य प्रथम दिवसे) में मेघको देखते ही प्रकृतिसे यह वर्षा फूट पड़ी, तो कोई बात नहीं, वह तो केशवी माया ठहरी; पर कालिदासको 'देशदर्शन-कौतुकी' बना देना अपने क्रूर कौतुकका परिचय देना ही नहीं, कालिदासका उपहास करना भी है। अब समय आ गया है कि इन कल-जीवियोंसे कालिदासकी कलाकी रक्षा की जाय और प्रकट दिखा दिया जाय कि कालिदास-जैसे राष्ट्र-कविकी कविता कोरी कल्पना नहीं, देश-कालका बोध चाहती है और इतिहास एवं भूगोलके द्रोहियोंको आ नहीं सकती। भला जिससे कालिदासकी पंक्ति ही ठीक-ठीक नहीं लगती, वह उनकी भावुकता और भावको क्या समझेगा? कालिदासकी कविता आँख चाहती है, मोरकी पाँख नहीं। भावुकता भावकी भूखी होती है, बनावकी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० सर पैट्रिक गीडीज़

श्री माधव विनायक किबे, एम० ए०

प्रो० गीडीज़ प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी अत्यन्त सरल स्वभावके थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि वे कोई प्रख्यात पुरुष हैं। सन् १९१८ के लगभग जब वे दार्जिलिंग पधारे थे, तब उन्होंने वहाँपर नगर-रचना-शास्त्रका एक वासन्तिक वर्ग खोला था। उन्हीं दिनों इन्दौरके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् विनायक सीताराम सरवटे वहाँ आए। उन्होंने वहाँ जो-कुछ देखा, उससे बहुत प्रभावित हुए और इन्दौर लौटकर उन्होंने उसकी चर्चा की। वह चर्चा श्रीमान् महाराजा तुकोजीराव होल्कर द्वितीयके कानोंमें भी पड़ी। उन्होंने आज्ञा दी कि इन्दौर नगरकी रचना प्रो० गीडीज़की इच्छानुसार की जाय। अतः पत्र-व्यवहार किया गया। तत्कालीन प्रधान-मन्त्री रायबहादुर मेजर दुबेने इस कार्यमें सहायता दी। सारी बातें निश्चित हो गईं और पारिश्रमिकके रूपमें पचास हज़ार रुपया देना तै हुआ।

प्रो० गीडीज़ यहाँ पधारे और उन्होंने निरीक्षण-कार्य प्रारम्भ कर दिया। बहुत-से नक्शे, चार्ट आदि तैयार करके नगर-भवनमें उनका प्रदर्शन किया गया। जब कभी सुननेवाले मिलते, तभी वे उनके विषयमें चर्चा करते। समय मिलता, तो मैं भी वहाँ पहुँच जाता। उनका समझाना क्या था, मानो ज्ञानके वे अनन्त भण्डार थे। नगरसे एवं प्रजाके हितसे राष्ट्रके अंग-प्रत्यंग किस प्रकार सम्बद्ध हैं, राष्ट्रकी आत्मा किस तरह उसके प्रत्येक नगरमें प्रतिबिम्बित होती है, नागरिकोंके कर्त्तव्य क्या हैं, नगरको कैसे सुन्दर और आकर्षक बनाया जा सकता है—इन विषयोंपर प्रभावोत्पादक विवेचन होता था। आदमी विश्वविद्यालय है। एक प्रोफ़ेसर ही विश्वविद्यालय है, ऐसा प्रो० गीडीज़का मत था। इन्दौर उन दिनों एक विद्यापीठ ही बन गया था। दुःखकी बात है कि उसका उपयोग बहुत थोड़े लोगोंने किया। अपने निरीक्षण-कार्य तथा योजनाको प्रो० गीडीज़ने दो भागोंमें प्रकाशित किया है। ये पुस्तकें क्या हैं, महाकाव्य हैं। उनके पन्ने-पन्नेपर प्रो० गीडीज़का परिश्रम झलकता है। कई पाश्चात्य विश्व-विद्यालयोंने उन्हें अपने यहाँ पाठ्य-पुस्तकोंमें स्थान दिया है।

उनके निजी संस्मरणोंमें मुझे अनेक बातें याद हैं। कई बार तो प्रो० गीडीज़ने मेरे मकानपर स्वयं ही पधारनेकी कृपा की और मुझे बहुत-सी बातें समझाईं। कई टिप्पणियाँ भी उन्होंने मुझे लिखकर दीं। उनका सहवास मुझे अत्यन्त लाभ-दायक तथा ऊँचा उठानेवाला प्रतीत होता था। कुछ समय पश्चात् जब डा० हार्डी वर्त्तमान अधिपति श्रीमन्त महाराजा यशवंतराव होल्करके संरक्षक एवं शिक्षक नियुक्त होकर आए, तब वे मेरे नाम प्रो० गीडीज़का परिचय-पत्र लाए थे। यह डा० हार्डी प्रो० गीडीज़के शिष्य थे। उन्होंने किसी भी विश्वविद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई थी; परन्तु भू-गर्भ-शास्त्र-सम्बन्धी एक शोधपूर्ण निबन्धपर उन्हें डी० एस्-सी० (डाक्टर आफ़ साइन्स) की उपाधि मिली थी।

भारतसे लौटनेके पश्चात् प्रो० गीडीज़ने दक्षिण-फ्रान्सके मापलियर नामक स्थानपर एक विश्वविद्यालयकी स्थापना की, जिसे श्रीमन्त महाराजा यशवंतराव होल्करने एक खासी रक़म प्रदान की। सन् १९३९ में जब मैं श्रीमन्त महाराजाके साथ विलायत गया, तो प्रो० गीडीज़ने मुझसे मिलनेकी कृपा की। उस समय उन्होंने कईएक वैज्ञानिक विषयोंकी एक प्रदर्शिनी लन्दनमें की थी। वहाँ वे मुझे ले गए और सब चीज़ें दिखाकर समझाईं। टेलीविज़न (अर्थात् दूरस्थ चित्रोंका एक पर्देपर दिखाई देना) का उन दिनों आविष्कार हुआ ही था। निकटके कमरेमें क्या हो रहा है, तब केवल यही देखा जा सकता था। अब तो उस दिशामें काफ़ी प्रगति हो चुकी है और दूर-दूर तककी चीज़ें देखी जा सकती हैं। स्काटलैण्डकी राजधानी एडिनबरोमें प्रो० गीडीज़ने कई मंज़िलोंकी एक इमारत बनवाई थी। उसकी प्रत्येक मंज़िलपर उन्होंने नक्शे, चार्ट आदि लगवाए थे; लेकिन सबसे ऊँची मंज़िलपर उन्होंने एक ऐसा आयोजन किया था कि नीचे सड़कपर जो-कुछ होता था, उसका प्रतिबिम्ब काँचपर दिखाई देता था। उसे देखनेके लिए प्रो० गीडीज़ने मुझे आग्रहपूर्वक लिखा था। अतः मैं उसे देखने गया। वहाँके व्यवस्थापक उनके लड़के थे। वे बड़े प्रेम-भावसे मिले। उसे देखकर जब मैं लन्दन वापस लौटा, तो प्रो० गीडीज़ मापेलियर चले गए थे। उन्होंने मापेलियर आनेका मुझे आदेश दिया; किन्तु लौटनेकी जल्दी होनेके कारण मैं उनके आदेशका पालन न कर सका। लन्दनमें प्रदर्शिनीके समय हुई भेंट ही मेरी और उनकी अन्तिम भेंट थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राघव

श्री शान्तिस्वरूप गौड़

राजन राघवको समझा-बुझाकर जब घर लौटा, तो बरबस मसनदके सहारे गिर पड़ा। वह राघव और रमोलाको बचपनसे जानता था। राघव तो उसका लँगोटिया यार ही था और रमोला उसके मोहल्लेकी एक लड़की। वह बाबू रामचन्द्रकी एकमात्र सन्तान थी। जब तक उसके पिता जीवित थे, उसका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यारसे हुआ था। जब वह ८-९ सालकी थी, तभी रामचन्द्र बाबूकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उसकी देख-रेख उसकी माँ रामकली करने लगी। रामकली पुराने खयालकी थी। नई सभ्यताके लिए वह काले पर्देके समान थी, जिसपर नवीनताका एक रंग भी फेर देना मुमकिन न था। अतः ८-९ सालकी नन्ही बच्ची रमोलाको उसने अपने रंगमें रँगना शुरू किया और वह उसमें पूर्णतया सफल भी हुई।

इस बातको सोचते हुए राजनको आज एक बहुत पुरानी बात याद हो आई, जब वह अपना १५वाँ वर्ष पूरा कर रहा था और रमोलाकी ओर कुछ खिंचा भी था। अब रमोलाने उसके साथ खेलना छोड़ दिया था। उसने अपने ऊपरवाले कमरेकी खिड़कियोंमें से बीसियों बार रमोलाको देखनेका प्रयत्न किया था; मगर अब वह जैसे यथार्थमें असूर्यम्पश्या हो गई थी। एक दिन बहुत निराश होकर उसने आँखें ऊपर उठाकर बारी-बारीसे उन खिड़कियोंकी ओर देखा था। वे तब भी ज्योंकी त्यों अचल खड़ी थीं। मगर आज राजन, राघव और रमोलामें कितना परिवर्त्तन आ गया था!

राजन अब २५ सालका हट्टा-कट्टा नौजवान था। २०वाँ वर्ष पूरा होते-न-होते उसका विवाह हो गया था। आज वह एक बच्चेका बाप था। उसकी स्त्री रतनी उसके विचारोंके अनुरूप थी और सुन्दर भी। वह खुश था। जीवन उसे भला मालूम होता था। राघवने अपनी जवानीको उसके उठते न उठते ही नष्ट कर लिया था—पर संसारकी निगाहोंसे एकदम बचाकर। सिर्फ़ राजन इस बातको जानता था। रमोला अपना १९वाँ वर्ष पूरा कर रही थी। बिजली-सी कौंधती हुई न-जाने कितनी आँखोंमें चकाचौंध पैदाकर वह इधरसे उधर निकल जाती थी। लोग उसे हसरत-भरी निगाहोंसे देखते और मन-ही-मन किसी अज्ञात भाग्यशालीका भाग्य सराहते। पास-पड़ोसमें वह लोगोंके लिए चर्चाका एक सहज विषय बन गई थी। कुछ दिन उसकी चर्चा भी खासी रही और फिर एक दिन सब-कुछ जैसे सहसा शान्त हो गया। फिर कभी इस विषयकी कोई चर्चा चलती, तो सभी जैसे टालनेकी कोशिश करते।

- २ -

कलकत्तेमें लांछित यौवन जैसे गली-गली, कूँचे-कूँचेमें बिखरा पड़ा है। पर्देकी ओटसे कच्ची कली झाँकती है और फिर वह उचककर जैसे अपना रूप-यौवन बिखेर देती है। जब रमोला मुश्किलसे १० वर्ष की थी और राघव १६-१७ का, रजनीका यहाँ बड़ा नाम था। वह नाचती खूब थी और उसके गायनमें तो जैसे नारद मुनिकी वीणाका ही स्वर सुन पड़ता था। उसके घुँघरू-भरे पैरोंकी झंकार और काँपते हुए गलेका स्वर सुननेवालेको रसमें भिगोकर शराबोर कर देता था। जिसने उसे ठुमककर आगे बढ़ते देखा, उसके मुँहसे 'वाह' निकल पड़ती। ऐसी थी वह छरहरे-बदनकी रजनी, जो बारहों महीने और तीसों दिन चन्द्रिका-सी उज्ज्वल साड़ी और छोटे-छोटे तारोंकी माला पहने रहती।

एक दिन अनजान राघवने भी उसको देखा और वही दिन राघवके लिए जैसे एक नया सन्देश लाया। उसी दिन मानो कच्चा राघव पकनेसे पहले ही टूटकर गिर पड़ा। उसे उठा कौन सकता था? दुनियाकी निगाहोंसे बचकर, छिपकर वह उस नरकमें गिरा। मगर मैं अभागा इस बातको जानता हूँ। वह तारक-छाया अपनी सफ़ेद हँसीके रजत-पटपर जलद-से मनके किलकते भावोंको लिख-लिख हारती थी। उसने राघवको पाया था। राघव सुन्दर था। उसकी गोल-गोल बड़ी आँखें किसीपर भी अपना स्थायी प्रभाव छोड़े बिना नहीं रह सकती थीं। हृदय उसका रससे ओतप्रोत था। सहज ही आत्म-समर्पणकी भावना उसमें समयसे पहले ही अपना स्थान बना चुकी थी। आज भी उसमें यह सब-कुछ विद्यमान है; मगर उसका विवेक उससे दूर हट गया है। उस समय उसके मूल्यको उसने कहाँ आँक पाया था? वासनाके विस्तृत क्षेत्रमें वह पानीकी नाईं बहा किया; मगर उस क्षेत्रको माप सकनेमें वह असमर्थ ही रहा।

एक दिन सहसा उसने सुना कि सरे-आम, दोपहरके दो बजे, किसी हत्यारेने रजनीको स्थायी रूपसे दूसरी दुनियामें भेज दिया है! उसने बड़ी बेरहमीके साथ अपनी हाथ-भरकी छुरीको उसके कलेजेमें भोंक दिया था। उसी दिन रातको राघव पटना चला गया। फिर कई दिन बाद मुझे उसके पत्रसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम हुआ कि वह पटना छोड़कर इलाहाबाद चला गया है और कुछ दिन उसका त्रिवेणीपर रहनेका विचार है; मगर आठ दिन बाद ही उसका दूसरा खत मिला कि उस पत्रको डालनेके साथ ही वह दिल्लीके लिए रवाना हो रहा है। गंगा, यमुना और सरस्वतीका संगम भी उसको शान्ति नहीं दे सका था।

- ३ -

दिल्लीमें भारतके उज्ज्वल अतीतकी कहानी वहाँकी मिट्टीके कण-कणपर अंकित हुई आज भी बिखरी पड़ी है। मुग़ल-कालीन भारतकी उन्नतिकी कहानी दिल्ली आज भी प्रत्येक यात्रीको करुण-स्वरमें सुनाती है। इस कहानीको राघवने भी सुना। उसका दिल हिला; पर उसपर अब भी रजनीका पूर्ण अधिकार था। वह राघवसे अब भी बहुत-कुछ कहती थी। वही पिछली बातें, कुछ नई नहीं और राघव उनको ध्यानसे सुनता था। मगर दिल्लीकी करुण कहानी रजनीकी शृंगारमयी झाँकी और उसकी नृशंस हत्यासे कहीं अधिक करुण थी। उसने तुरत मुझे अपने पास बुला भेजा; किन्तु मैं घरके अनेक आवश्यक कार्योंको पूरा करके लगभग एक महीने बाद ही उसके पास पहुँचा। मैंने पहुँचकर देखा, उसके दिलमें रजनी न थी, देश-प्रेम भी नहीं, अब वहाँ किसी हंसाका अधिकार हो चला था। मेरा मन न-जाने कैसा-कैसा हो गया। तो क्या खाईसे निकलकर वह कुँएमें जा गिरा है! मगर मैंने चुप रहना ही ठीक समझा और जब तक वहाँपर रहा, चुप ही रहा।

हंसा हिमालयके निचले भागकी एक अनोखी चिड़िया थी। लांछिता नहीं, घर-गृहस्थकी एक सुकुमारी कन्या। अभी वह २०-२१ की होगी। यौवन और सौन्दर्य जैसे उसके चरणोंमें धूल बने लोटते थे। पर उसकी माँ रामकली-जैसी न थी। हंसाने भी अपनी स्वतन्त्रताका दुरुपयोग नहीं किया था। वह किसीकी जीवन-संगिनी होकर रहना चाहती थी। अपने बाल्य कालमें उसने ननकसे स्नेह किया था। पर तब वह थी ७-८ सालकी और लगभग इतनेका ही ननक भी। उस समय वह प्रेमका अर्थ नहीं जानती थी। ननक उसको अच्छा लगता था। ननककी प्रतिमूर्त्ति ही वह जीवनमें पाना चाहती थी।

राघवमें उसने जैसे ननकको देखा था। ननक भी एक दिन ऐसे ही उसके घरके सामने आकर रहने लगा था, जैसे अब राघव रहता था। दोनोंमें शीघ्र ही मेल हो गया। ननक और हंसा दिन-रात साथ-साथ खेलते-कूदते और खाते-पीते। एक दिन अचानक ननक छतसे गिरकर इस दुनियासे सदाके लिए चला गया। हंसा इतने वर्ष बाद भी उसको भूलनेमें असमर्थ रही। राघवके रूपमें जैसे उसने ननकको फिर पा लिया। उसकी बचपनकी स्मृतियाँ जैसे प्रौढ़ बनकर फिर लौट आईं। दोनोंमें प्रेम बढ़ा तो द्रौपदीके चीरकी भाँति क्षण-क्षण बढ़ता ही गया। दोनों रोज़ मिलने लगे। माँ-बापने अपनी इकलौती कन्याका यह परिवर्त्तन देखा और चुप रह जाना ही ठीक समझा। लेकिन···

- ४ -

रतनी, जी चाहता है, अगर आज हंसाको मैं ढूँढ़कर ला सकूँ, तो वह स्वयं अपनी आँखोंसे राघवका यह रूप देख ले। उस राघवका, जिसको उसने मीरा बनकर प्रेम किया; मगर जो भ्रमरकी भाँति उसका पराग चुराकर वहाँसे उड़कर फिर यहीं चला आया—रमोलाके लिए! आज वह उसे सँभाल नहीं पा रहा है; उसी रमोलाको, जिसने उसको सब-कुछ दिया; मगर राघव फिर भी उसको अपनानेमें असमर्थ रहा! अगर आज राघव अपने दामनके दाग़ोंको देख सके; जीवनका, गृहस्थका, सच्चा सुख वास्तविकतासे तभी मेल खा सकेगा। वह पागल जिस कमीकी रमोलामें सृष्टि करता है, वह कमी उसमें अपनेमें है। मैं भलीभाँति जानता हूँ—रमोला सुन्दर है, वह नारी है, उसमें शक्ति है। वह राघवके नीरस जीवनको सरस और उसके सूने घरको बच्चोंकी किलकारीसे संगीतमय कर सकती है, बशर्ते कि राघव ज़रा अपनी ओर ध्यान दे। राघव शक्तिहीन है, पहले उसे खोया हुआ पौरुष प्राप्त करना होगा। मगर पौरुषहीन राघव आज दुनियाकी नज़रोंमें रमोलाको ही शक्ति-हीना बतलानेकी धृष्टता करता है!

और नारीके ठुकराए हुए प्रेमने रमोलामें एक अहम् और प्रतिहिंसाकी भावनाकी सृष्टि कर दी है। पर पगला राघव रमोलाको दुनियाको निगाहोंमें गिराकर इस सत्यको छिपाना चाहता है। वह नारीकी शक्तिको नहीं पहचानता। राघव रमोलाको धमकाकर, गाली-गलौज और मार-पीटसे फिर वहीं लाना चाहता है, जहाँ पुरुष नारीको रखना चाहता है! रतनी, मैं सब कहता हूँ, उसे अपनी भूल सुधारनी ही होगी।

अवाक् रतनी राजनकी नीची पलकोंकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखती ही रह गई। उसके दबे होंठोंसे एक सर्द आह-भर निकलकर रह गई!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाण भट्टका आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

गंगाका स्वच्छ सैकत-पुलिन चाँदनीमें चमक रहा था और उसके बीचोंबीच गंगाकी धारा दूर तक फली हुई रजत वर्णसे समावृत्त-पारद प्रवाहकी भाँति दिखाई दे रही थी। दिगन्तके एक छोरसे एक क्षीण नीली रेखाके रूपमें इस धाराका आविर्भाव हुआ था और दूसरे दिगन्तके छोरमें उसी प्रकार एक पतली नीली रेखाके रूपमें वह विलुप्त हो गई थी। बीचमें उसकी चटुल लहरें एक-पर-एक सोपान-श्रेणीकी भाँति सजी हुई थीं और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब बार-बार उनसे टकराकर खण्ड-खण्ड हो जाता था। सब-कुछ शान्त, स्निग्ध और मनोरम था। आकाशमें ताराओंकी सभामें चन्द्रमा राजाकी भाँति विराजमान था और गंगाकी धारामें निपुण मल्लकी भाँति विविध व्यायामका अभ्यास कर रहा था। मेरे सामने इस निःशब्द प्रकृतिके अन्तरालमें एक कोलाहलपूर्ण युद्ध चल रहा था। भट्टिनीकी पालकी चली जा रही है। सब-कुछ शान्त, गम्भीर और गुरुता लिए हुए है। अचानक प्रत्यन्त-दस्युओंका दल उसपर टूट पड़ता है। दो सौ विश्वस्त सैनिक एक-एक करके मर रहे हैं। उनके श्रम-बिन्दुसे सुसज्जित भालपट्टपर कभी न झुकनेवाला निश्चय है। उनके हाथोंमें नंगी तलवारें हैं, कन्धोंपर तीक्ष्ण-फलक कुन्त हैं, हृदयोंमें मर-मिटनेकी साध है और मनोंमें भट्टिनीको न बचा सकनेका पश्चाताप है। उनकी शिराओंसे रक्तकी धारा छूट रही है। मांस-खण्ड लटककर टूट रहे हैं; परन्तु वे चट्टानकी भाँति अपने स्थानपर दृढ़ हैं। धीर नापित निराशा-भरे स्वरमें बेटीको निर्भय रहनेकी पुकार कर रहा है। उसका गला रुँधा है, मस्तिष्क बेचैन है, हाथ शत्रुओंसे उलझे हुए हैं और वाणी कातर है; पर उसमें भट्टिनीको बचा लेनेकी अदमनीय आशा है। और भट्टिनीका कमलके समान प्रफुल्ल मुख भयसे काला हो गया है, आँखें विकट दृश्यसे पथरा गई हैं, श्रुति-संवेदन भोथा हो गया है—वे बेहोश होकर गिर पड़ती हैं। मेरे रक्तका प्रत्येक कण झनझना उठा। मैंने अनुभव किया कि शिराओंमें सर्वत्र कुछ कर-गुज़रनेकी उमंग है; पर करना क्या है? संसारमें यह विकट घृणित दृश्य पहली बार नहीं दिखाई दिया है, यहीं इसकी समाप्ति भी नहीं है। बाण भट्ट जितना भी चिन्तित और उत्तेजित क्यों न हो, यह घिनौना दृश्य संसारमें बार-बार दिखाई देगा। महापुरुषोंने करुण और मैत्रीके अनेक उपदेश दिए हैं, भ्रातृ-भाव और जीव-दयाके बहुत ग्रन्थ लिखे हैं; पर उन्हें सफलता नहीं मिली है। मैं निराशासे कातर हो उठा हूँ। क्या यह कभी बन्द नहीं होगा? क्या संसारकी सबसे बहुमूल्य वस्तु इसी प्रकार अपमानित होती रहेगी? मेरा मन कहता था कि जब तक राज्य रहेंगे, सैन्य-संगठन रहेंगे, पौरुष-दर्पका प्राचुर्य रहेगा, तब तक यह होता ही रहेगा। परन्तु क्या कभी यह भी सम्भव है कि मानव-समाजमें राज्य न हों, सैन्य-संगठन न हों, सम्पत्ति-मोह न हो? मैं कोई उत्तर खोज नहीं पा रहा था। इसी समय मैंने पीछे फिरकर देखा, निपुणिका खड़ी है। उस समय वह प्रकृतिस्थ हो गई थी। हँसती हुई बोली—'एक बात बताऊँ, भट्ट! मैं भाग जानेके चौथे दिन तुमसे उज्जयिनीमें ही मिली थी।'

मैं इस बिना भूमिकाके प्रसंगका कुछ तात्पर्य नहीं समझ सका; पर यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि उज्जयिनीमें निपुणिका मुझसे मिली थी। मैंने कुतूहलके साथ प्रश्न किया—'क्या कहती है, निउनिया! तू उज्जयिनीमें मुझसे मिली थी?'

'हाँ भट्ट, मैं उज्जयिनीमें तुमसे मिली थी। तुम उस समय शाविलकके अड्डे पर मुझे ही खोजने गए थे।'

शाविलकका अड्डा! मुझे उज्जयिनीके जनाकीर्ण लोकालयमें मिट्टीके दियोंसे सदा सुसज्जित वह गन्दी पान-शाला याद आ गई, जहाँ मद्यपों, द्यूतकरों और चोरोंका निवास है। वहाँ स्त्रियोंकी खरीद-बिक्रीका भी कारबार होता है। नगरके निचली श्रेणीके विटों, विदूषकों और लम्पटोंका वह अड्डा है। मुझे सन्देह था कि निपुणिका कहीं इन लोगोंके जालमें न फँस गई हो, इसलिए कई दण्डधरोंको साथ लेकर मैं उस नरक-कुण्डकी तलाशी लेने गया था। वह दुर्गन्धका भाण्डार है, दुराचारका आश्रय है, लम्पटताका आवास है। वहीं निपुणिका मुझसे मिली थी! मैंने आश्चर्यके साथ पूछा—'तू वहाँ कैसे गई, निउनिया?'

'मैं मदपायियोंको चषक भर-भरकर मद्य दिया करती थी।'

'इसी रूपमें!'

'नहीं, मैंने बालक-वेश धारण किया था।'

'तू स्वेच्छासे गई थी, निउनिया?'

'हाँ भट्ट, मैंने स्वेच्छासे केवल एक दिनके लिए नौकरी कर ली थी और वेतन लिए बिना ही दूसरे दिन भाग आई।' मैं आश्चर्यसे निपुणिकाके मुँहकी ओर ताकने लगा। वह हँसती हुई बोली—'तुम नहीं समझोगे भट्ट, मैं बता रही हूँ।' फिर निपुणिकाने अपनी कहानी इस प्रकार सुनाई—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि यद्यपि तुम्हारी नर्त्तकियाँ अवरोधमें रहती थीं और तुमने उनको कुलवधुओंका सम्मान दिया था; पर वे शाविलककी दुकानका पता जानती थीं। जिस अशुभ रात्रिको मैं तुम्हारे आश्रयको छोड़कर भागी, उस रात्रिको शाविलककी दूकान बन्द थी। वह तुम्हारे प्रकरणका अभिनय देखने गया था। मैं नेपथ्यसे नटीके वेशमें ही भाग पड़ी थी। बड़ी देर तक मैं उज्जयिनीकी सूनी गलियोंमें मारी-मारी फिरी। उस रात्रिको उज्जयिनीके समस्त स्त्री-पुरुष बाण भट्टका अभिनय देखने गए हुए थे। गवाक्षोंके कपाट बन्द थे। अलिन्दोंकी देहलियाँ सूनी थीं। वीथियोंमें यत्र-तत्र राजकीय प्रदीप अन्धकार दूर करनेका असफल प्रयत्न कर रहे थे। मैं एक-दो घटी तक कुछ ठीक न कर सकी कि कहाँ जाऊँ। मेरा मन बुरी तरह आहत था। मैं लज्जा और निराशासे पागल हो गई थी। आज सोचती हूँ, तो जान पड़ता है, मैंने कितनी बड़ी मूर्खताका काम किया था। घूमते-घूमते मैं थक गई और एक बार मनमें आया कि फिर लौटकर तुम्हारे ही आश्रयमें चली जाऊँ। मुझे पूरा विश्वास था कि तुम मुझे क्षमा भी कर दोगे और आश्रय भी दोगे। पर मेरा भाग्य अप्रसन्न था। मैं आगे बढ़ी। मुझे बिल्कुल मालूम नहीं था कि मैं कहाँ चली जा रही हूँ। घूमते-घामते मैं एक बड़े प्रासादके सामने पहुँच गई। मुझे ऐसा लगा कि यह ज़रूर परमभट्टारकके किसी राजकर्मचारीका प्रासाद होगा। प्रासादके भीतर दीपमालिका-सी जगमग हो रही थी। भीतर दो-चार दासियाँ शायद रही हों; पर बाहर कोई नहीं था। मैं अन्धकारमें एक जगह खड़ी होकर सोचने लगी कि क्या यहाँ मुझे एक रातके लिए कोई रुकने देगा? इसी समय मैं जिस स्थानपर खड़ी थी, उसके पास ही हलचल-सी हुई। फिर दो काले भूत-जैसे आदमी उस स्थानके एक बिलमें से निकल पड़े। उनके सारे शरीरमें तेल चुपड़ा हुआ था और पहनावेमें एक नील लँगोटके अतिरिक्त और कुछ न था। बाहर आते ही वे कुछ सँभालने लगे। मैं उन्हें देखते ही मारे डरके चिल्ला उठी और मूर्छित होकर धड़ाम-से गिर गई। मेरा चिल्लाना सुनते ही वे सब-कुछ छोड़-छाड़कर भाग गए। उस समय तुम्हारा प्रकरण अभिनीत हो चुका होगा; क्योंकि मेरे गिरनेके कुछ क्षण बाद ही नगरीकी प्रधान गणिका मदनश्रीकी गाड़ी वहाँ लगी। उल्काके प्रकाशमें एक दासीने मुझे देखा और आश्चर्य तथा भयसे चिल्ला उठी। मदनश्रीने गाड़ीसे उतरकर मुझे उठाया। मैं उस समय संज्ञाहीन तो नहीं थी; पर मेरी शिराएँ हतचेष्ट हो गई थीं। मैं लज्जा और भयसे जड़ीभूत बनी वहीं पड़ी रही। मदनश्रीने मेरा वेश देखकर मुझे पहचान लिया। आश्चर्य और कुतूहलसे वह हैरान-सी रह गई। अस्फुट स्वरमें बोली—'यह तो बाण भट्टकी नर्त्तकी है!' फिर उसने बड़े प्यारसे मेरे सिरपर हाथ रखा और हेलाके साथ बोली—'कहाँ चली हो, हला! इसी वेशमें अभिसारको निकल पड़ीं? वह कौन सौभाग्यशाली प्रेमी है, जिसके लिए इस गहन अन्धकारमें तुम चल पड़ीं? निष्ठुर है वह सखी, निष्ठुर है!' मैंने मदनश्रीको पहचाना। हँसकर बोली—'मेरा प्रिय यम है, हला!' मदनश्रीने मेरे कपोलपर हल्का-सा आघात किया—छिः सरले, ऐसा भी बोलते हैं! उठो तो।' मैं उठी और मेरे वस्त्रोंमें उलझी हुई एक पटोलिका गिर पड़ी। उसमें की सामग्री रास्तेपर बिखर गई। भागते समय चोर उसे फेंक गए होंगे। पटोलिकामें अलक्तक (महावर), मनःशिला, हरिताल, हिंगुल और राजावर्तका चूर्ण रखा हुआ था। स्पष्ट ही वह मदनश्रीके चित्रकर्मकी सामग्री थी। मुझे बादमें चलकर पता चला कि मदनश्री बहुत अच्छा चित्रकर्म जानती थी। महाकालके मन्दिरमें जो हर-पार्वतीकी मनुष्य-प्रमाण प्रतिकृति तुमने देखी थी, वह उसीकी बनाई हुई थी। उसे मनःशिला और राजावर्तके चूर्णोंके मिश्रणका अद्भुत प्रयोग मालूम था। न जाने सिक्थक (मोम)-ऐसी एक वस्तु वह उनमें मिला देती थी कि मनःशिलाका रंग एक विचित्र प्रकारसे चमक उठता था। तो उस पटोलिकाको देखकर गणिकाके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। मुझे डरी हुई देखकर उसने पहले अनुमान किया था कि उसके रथको देखकर ही मैं डर गई थी। बादमें जब मैंने चोरोंकी बात बताई, तो उसने शंकित भावसे सेंधकी ओर देखा। पटोलिकाके अतिरिक्त उसके शृंगपराधानकी पेटिका भी बाहर पड़ी हुई थी। एक बार तो वह कातर भावसे चिल्ला उठी कि 'हला, मैं लुट गई!' पर ध्यानसे देखनेपर मालूम हुआ कि पेटिकासे कुछ गया नहीं है। उसने कृतज्ञतापूर्वक मुझे गले लगा लिया। बोली—'सखि, तुम न आ गई होतीं, तो मेरा सर्वस्व लुट जाता।' फिर ज़रा रुककर बोली—'सखि, तुम लोग तो बाण भट्टकी कुलवधू हो, क्या यहाँ एक रात नहीं रुक सकतीं?' मैं क्या कहूँ भट्ट, जिस समय उसने तुम्हारा नाम इस ढंगसे लिया, उस समय मेरा मुँह क्रोध और अमर्षसे लाल हो गया। उसके इस कथनका तात्पर्य तुम नहीं समझ सकोगे। वह कलुष मानसका कलुषतर अभियोग था। मुझे अपने ऊपर भी बड़ा क्रोध आया, क्योंकि वह बराकी मुझे तब भी अभिसारिका समझ रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

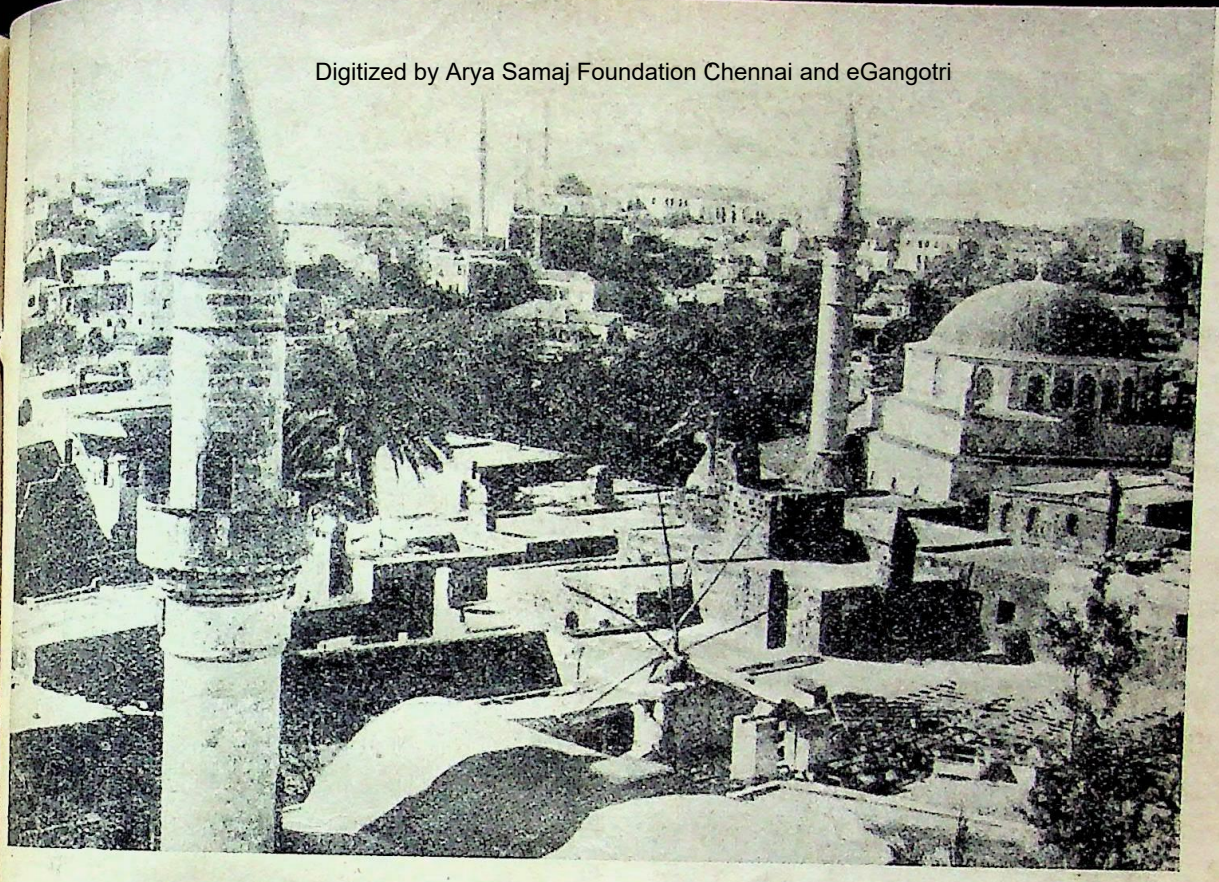

रोड्स नगरका एक दृश्य। इस इटालियन द्वीपपर इस समय मित्र-राष्ट्रोंका अधिकार है

लन्दनके ट्रेफलगर-स्क्वायरमें हुई बर्लिनपर बम बरसानेवाले 'लंकास्टर' बमबाजकी प्रदर्शिनीका एक दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

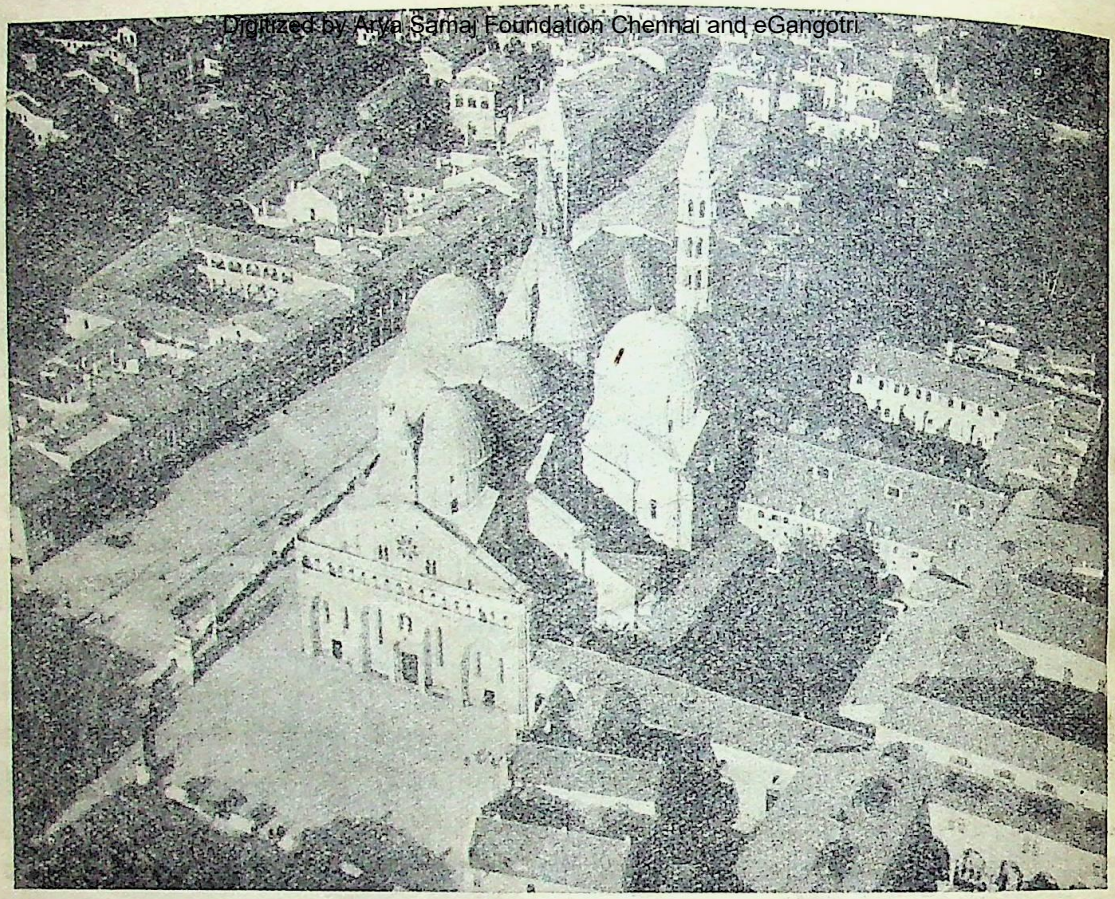

इटलीका प्रसिद्ध नगर पादुआ । बीचमें सेंट एण्टनीका गिरजा दिखाई दे रहा है

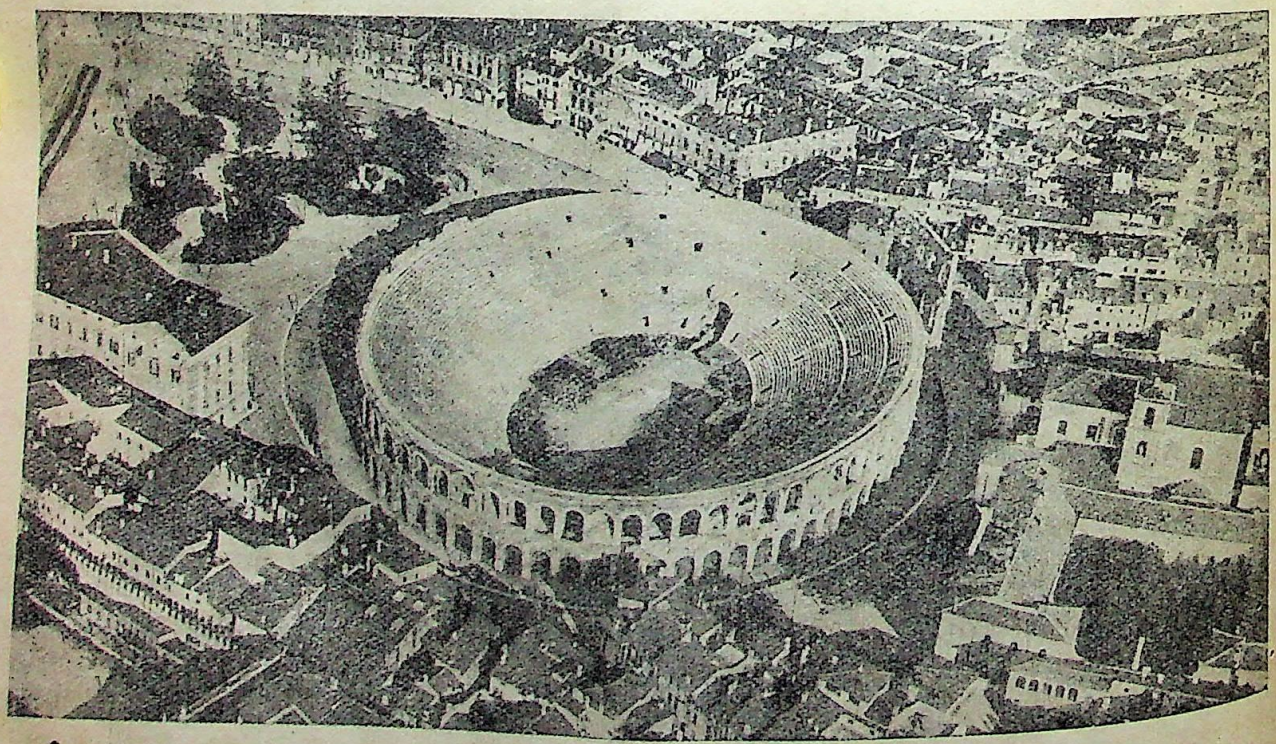

इटलीके वेरोना नगरका एक दृश्य । बीचमें पुराना क्रीड़ागार दिखाई दे रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और मुझे चिढ़ानेके लिए ही उसने ऐसा वाक्य कहा था। मैंने शान्तिके साथ ही कहा —'सखि, मेरी-जैसी अभागिनोंको देखकर बाण भट्टको छोटा न समझो। मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगी।' गणिका अवाक् होकर मेरे मुँहकी ओर देखने लगी। फिर मेरा हाथ पकड़कर बोली—'चलो, भीतर चलें।' मैं मदनश्रीके साथ उसके विशाल महलमें घुस गई। जिसे एक क्षण पहले 'बाण भट्टकी कुलवधू' कहा गया था, उसे गणिकाके घरमें प्रवेश करनेके पहले मर जाना चाहिए था। भट्ट, मैंने तुम्हारे पवित्र नामको कलंकित किया है, मैं अपराधिनी हूँ!"

इतना कहकर निपुणिकाने घुटने टेककर मुझे प्रणाम किया। मैं धड़फड़ाकर उठ खड़ा हुआ। निपुणिकाकी इन समस्त बातोंका रहस्य मैं बिल्कुल नहीं समझ सका था। उसने शान्त भावसे कहा—'बैठो भट्ट, थोड़ा और बैठो।' मैं बैठ गया। निपुणिकाका चेहरा खिल गया। एक क्षणमें ही मेघमुक्त चन्द्र-मण्डलकी भाँति, शैवालमुक्त कमल-पुष्पकी भाँति, काई हटाई हुई पुष्करिणीकी भाँति और कुज्झटिका-विरहित दिङ्मण्डलकी भाँति वह प्रसन्न और निर्मल हो गई, मानो उसके हृदयका कोई विशाल शल्य निकल गया हो, चित्तमें धँसी नुकीली कील बाहर निकल आई हो। वह फिर बोली—"मदनश्रीका प्रासाद बहुत विशाल था। उसके द्वारपर नाना भाँतिकी कुसुम-मालिकाएँ मनोहर ढंगसे सजी थीं। भिन्न-भिन्न प्रकोष्ठोंमें शुक-सारिका, लाव-तित्तिर, हंस-कारण्डव, मयूर-सारसके निवास थे। घोड़ों और मेषोंके लिए अलग प्रकोष्ठ थे और नागरजनोंके विश्राम और गान-नृत्य सुननेके अलग-अलग प्रकोष्ठ नियत थे। उसके प्रमोद-वनकी स्थंडिल-पीठिकाओंपर नगरीके बड़े-बड़े श्रेष्ठि-कुमार कुसुमास्तरण (फूल बिछाना) किया करते थे। उसकी क्रीड़ा-वापीके हंसों और चक्रवाकोंको मृणाल भक्षण कराना नागरक लोग सौभाग्यका कार्य मानते थे। मदनश्रीने बड़े उद्धत गर्वके साथ तुम्हारे विषयमें कुवाच्य कहे थे भट्ट, पर उस बेचारीका दोष नहीं था। उसने पुरुष देखा ही नहीं था। उस बन्धुलों, विटों, लम्पटों और स्त्रैणोंकी रंगभूमिमें मनुष्यका कहीं पता न था। उसने गर्वपूर्वक जब कहा था कि 'तेरे बाण भट्ट-जैसे सैकड़ों यहाँ तलवे चाटने आया करते हैं, सखी', तो मुझे उस-पर क्रोध नहीं हुआ था। मैंने केवल उपेक्षाकी हँसी हँस दी थी। दूसरे दिन जब वह चीनांशुकमें सजकर, गलेमें रत्नावली पहनकर, लोध्ररेणुसे कपोल-संस्कारकर और क्षालक्तक पैरोंको कुसुम-स्तवकवाले उपानहोंसे सज्जितकर तुमसे मिलने गई थी, तो मैं क्षण-भरके लिए चिन्तित हो गई थी।" इतना कहनेके बाद निपुणिका कुछ लजा-सी गई। फिर सँभलकर बोली—'तुम्हें स्मरण है न भट्ट, दूसरे दिन वह तुमसे मिलने गई थी?'

मैं उस घटनाको भूल गया था। आज निपुणिकाके स्मरण करानेपर उज्जयिनीकी मदनश्रीका रूप स्मृति-पटपर एकाएक आ उपस्थित हुआ। उस दिन निपुणिकाके न मिलनेके कारण मैं बहुत चिन्तित था। उसी समय मेरे एक भृत्यने समाचार दिया कि नगरीकी प्रधान गणिका मदनश्री कलके अभिनयकी सफलतापर बधाई देनेके लिए पधारी है। मैंने उसका स्वागत किया था। उसमें कुल-कन्याका-सा शील था और कविकी-सी प्रतिभा। उसने अलक्तक भी धारण किया था, यह मुझे खूब याद है; क्योंकि जब उसने कुट्टिम-भूमिपर पैर रखा, तो मैंने आश्चर्यके साथ देखा कि उसपर प्रवाल-मणिकी रसधारा-सी बह गई; ऐसा जान पड़ा, मानो लाल-लाल लावण्य-स्रोतसे सारा कुट्टिम प्लावित हो गया है। उसके चीनांशुकके किनारोंपर एक हल्की लालीकी लहर-सी डोल रही थी। नूपुरोंकी क्वणन-ध्वनिने उस तरंगायित अलक्ताभाको शोभामय बना दिया था। मैंने रत्नावली मालाको शायद लक्ष्य ही नहीं किया; पर उसके अंशुकान्त (आँचल) के बाहर निकले हुए बाहु-युगलको देखकर मृणाल नालका भ्रम हुआ था। उसकी पतली, छरहरी अंगुलियोंकी नख-प्रभासे वे वलयित जान पड़ते थे। मदनश्री नगरकी प्रधान गणिका होनेके ही योग्य थी। उसके प्रवालके समान लाल-लाल अधर-युगल अनुराग-सागरकी तरंगोंके समान मोहन दिखाई दे रहे थे। उसके गंडस्थलकी रक्ताभ दन्त कान्ति देखकर मदिरा-रससे पूर्ण माणिक्य-शुक्तिके सम्पुटकी याद आ जाती थी। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें शतदल-विबद्ध भ्रमरकी भाँति मनोहर थीं। भ्रू-लताएँ मदमत्त यौवन गजराजकी मदराजिकी भाँति तरंगायित होती दिख रही थीं और ललाट-पट्टपर मनःशिलाका लाल बिन्दु अनुराग-प्रदीपकी भाँति जल रहा था। उसने लोध्ररेणुसे अंसस्थलोंका संस्कार अवश्य किया होगा, क्योंकि माणिक्य कुण्डलोंमें उसके उड़े हुए चूर्ण लगे हुए थे और ऐसा जान पड़ता था कि कर्णोत्पलसे क्षरित मधुधारामें पद्म-किंजल्क-चूर्ण बहे जा रहे हों। ललाट-मणिकी लाल किरणोंसे धुले हुए उसके मेचक केशपाश संध्याकालीन मेघाडम्बरकी भाँति दर्शकको बरबस आकृष्ट कर रहे थे और ऐसा जान पड़ता था कि एक अद्भुत मदधारा लोचन-जगत्को विह्वल कर रही है। उसकी हँसीमें बालिकाकी-सी सरलता प्रकट हुई थी और क्षण-भरके लिए मेरा उद्विग्न चित्त भी उस शोभाकी मनोहारिणी पद्मराग-पुत्तलिकाको देखकर विश्राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाने लगा था। उससे थोड़ी देर तक ही बातचीत हुई थी। मैं घूम-फिरकर खोई हुई निपुणिकाकी ही बातपर आ जाता था; पर वह कला और शिल्पकी बात करना चाहती थी। वह उठकर जब चली गई, तो मैं भूल ही गया कि कोई आया था। विद्युतकी क्षणस्थायी प्रभाकी भाँति वह एक भूल जाने-योग्य झलक छोड़ गई थी। मुझे ऐसा लगा था कि वह मेरे वैदग्ध्यका आदर नहीं कर सकी, और मैंने उसकी परवा भी नहीं की, क्योंकि मैं उस दिन अपनी विदग्धताका श्राद्ध करने जा रहा था।

निपुणिकाने कहा—"भट्ट, वह लौटकर आई, तो उसका चेहरा उतर गया था। उसने जीवनमें पहली बार ऐसा पुरुष देखा था, जो स्त्रीका सम्मान तो करता है; पर तलवा नहीं चाटता। उसने सूखी हँसीके साथ कहा—'बाण भट्ट आदमी नहीं है, हला!' मैंने गर्वपूर्वक उत्तर दिया—'वह देवता है, सखी!' भट्ट, मैंने तुम्हारा नाम कलंकित किया था; पर तुमने मेरा मान रख लिया। मैं उसके सामने गर्वसे सिर ऊँचा करके चलने लगी। मैंने उस अभागी रातके समस्त क्षोभको धो दिया। मैं उसी दिनसे अपनेको हाड़-मांसकी गठरीसे अधिक समझने लगी। तुमने मुझे मुक्ति दी है, भट्ट!"

मैं आश्चर्यके साथ निपुणिकाकी बात सुन रहा था। अब मेरे लिए धैर्य रखना असम्भव हो गया। बोला—'मैं देवता हूँ, यह जाननेकी इस समय मुझे क्या आवश्यकता है, निउनिया! असली बात बता न। इतनी बड़ी कहानीका आज क्या प्रयोजन है?' निपुणिकाने आहत भावसे कहा—'तुम्हारे लिए कोई मूल्य नहीं है इस कहानीका; पर मेरा तो यही सर्वस्व है। गले तक पाप-पंकमें डूबी हुई निउनियाके पास और धन है ही क्या, भट्ट?' मैंने स्नेहके साथ कहा—'ना निउनिया, मूल्य तो मेरे लिए पर्याप्त है। तेरी सारे जीवनकी कहानी मैं सुनना चाहता हूँ। तूने मुझमें जो-कुछ देखा है, वह मैं स्वयं न देख सका हूँ और न समझ पाया हूँ। मूल्य क्यों नहीं है; पर प्रयोजन तो बता!'

पर निपुणिका सब-कुछ कह जाना चाहती थी। उसे रोकना ठीक नहीं था, क्योंकि ऐसा करनेसे उसके दुःखी चित्तको ठेस लगती। एक बार उसको ठेस लगाकर मैं जिस प्रकार चिन्तित और उद्विग्न हो गया था, उसकी पुनरावृत्ति अब असम्भव थी। वह कहने लगी और मैं सावधान होकर सुनता रहा। निपुणिका ज़रा सँभलकर मुस्कराती हुई बोली—"तुम विश्वास नहीं कर सकोगे, भट्ट, मदनश्री बुरी तरह पराजित हुई थी।" इतना कहनेके बाद निपुणिकाकी आँखें झुक गईं और वह रुक-रुककर हँसती हुई बोली—"बताऊँ, भट्ट? एक दिन मदनश्रीके प्रमोदवनमें मैं घूम रही थी। प्रमोदवनके पूर्वी सिरेपर अशोक और वकुल वृक्षोंके बीच माधवी-लताका मण्डप था। उसके चारों ओर कुरबकका बेड़ा दिया हुआ था। उसी एकान्त कुंजमें मैंने आश्चर्यके साथ देखा कि उज्जयिनीकी प्रधान गणिका एकाग्रचित्तसे चित्र बना रही है। अनाड़ी भी समझ सकता था, उसका हृदय गम्भीर अनुरागसे उत्क्षिप्त था, दुकूल विस्रस्त भावसे एक ओर पड़ा हुआ था, कंचुकबन्ध शिथिल हो गए थे, नयन-पक्ष्म स्थिर और चिन्तामग्न थे, अँगुलियाँ सफ़ाईसे घूम रही थीं और प्रवाल-मणिके समान लाल ओठोंपर मनःशिला और लाजावर्तके रंग लगे हुए थे। उस समय वनस्थली शान्त थी, वृक्षोंपर पक्षि-विराव एकदम नहीं था, लताओंके किसलय तक मानो सम्भ्रमके कारण स्तब्ध थे। मैं दबे-पाँव उसके पीछे जाकर खड़ी हो गई और साँस रोककर उसका कला-नैपुण्य देखने लगी। उसने चित्रका प्रायः समस्त अंग नील प्रावरणसे ढँक रखा था। केवल पैरोंकी अँगुलियाँ बाक़ी थीं। वह बड़े यत्नसे उसपर रंग चढ़ा रही थी। चित्र समाप्त होनेके बाद उसने बड़ी सुकुमार भंगीसे नील प्रावरणको हटाया। मैं आश्चर्यसे स्तब्ध रह गई। भट्ट, वह तुम्हारा ही चित्र था!"

मैंने हँसकर कहा—'निउनिया, चण्डीमण्डपके पुजारीके बाद उपहास करने-योग्य व्यक्ति तुझे नहीं मिला था, अब मैं मिल गया हूँ!' निउनियाने सिर ऊपर उठाया। वह हँस रही थी। उसकी आँखें बार-बार नीचे झुक जाती थीं और वह बार-बार ऊपर उठाना चाहती थी। हँसीकी शुचिता उन्हें ऊपर ले जाती थी और सरसता नीचे झुका देती थी। ज़रा कनखियोंसे स्थिर भावसे देखती हुई बोली—'लेकिन वास्तविक बात तो अभी मैंने बताई ही नहीं।' वह अबकी बार आँखें झुकाकर देर तक हँसती रही। फिर सम्हलकर बोली—'भट्ट, उसकी हथेलियोंमें पसीना आ गया था और चित्रपर एक-आध बूँद आँसू भी गिरे थे!' यह बनाई हुई बात थी। निपुणिकाकी आँखें ही इसका प्रमाण थीं। मैंने कहा—'सात्त्विक भावके स्वेद-बिन्दु?' अब निपुणिका ज़ोरसे हँस पड़ी। उसकी आँखें ऊपर नहीं उठीं और आँचल मुँहपर चला गया। थोड़ी देरके बाद निपुणिकाने कहा—"मैंने पीछेसे सीत्कार किया। गणिका मुझे देखकर लजा गई। उसका लज्जित मुख बहुत सुन्दर था, भट्ट! तुम देखते, तो कविता लिख देते। मैंने हँसकर पूछा—'किस बड़भागीका चित्र बना रही है, हला!' लज्जा और अनुराग गणिकाको मूक नहीं बनाते, और भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ बना देते हैं। हँसती हुई बोली—'तेरे देवताका!' और चित्रफलक मुझे दे दिया। मैं दूसरे ही दिन उसे चुराकर भाग खड़ी हुई थी, भट्ट!"

फिर थोड़ा रुककर निपुणिका बोली—'मैं बहुत दिन नहीं जीऊँगी भट्ट, थोड़े दिनोंकी अतिथि हूँ। मेरा एक अनुरोध तुम्हें रखना होगा।' निपुणिकाकी इस कहानीका यह उपसंहार सुनकर मैं सिहर गया। बोला—'छिः निउनिया, ऐसा भी बोलते हैं!' किन्तु वह सुननेको प्रस्तुत नहीं थी। बोली—'भागते समय मैंने बालक-वेश धारण कर लिया था। तुम्हारे आवासपर गई, तो पता लगा कि तुम मुझे खोजने कहीं गए हो। यह भी पता चला कि शर्विलककी दूकानपर दण्डधरोंके साथ तलाशी लेने जाओगे। मैं एक बार सिर्फ़ तुम्हें देखकर उज्जयिनी छोड़ देना चाहती थी। शर्विलककी दूकानपर मैं चली जा रही थी कि रास्तेमें एक शकद्वीपका ब्राह्मण ज्योतिषी मिल गया। उसने मुझे देखते ही कहा—'आ बेटा, तेरा भाग्य गिन दूँ।' मैंने एक दीनार ज्योतिषीको दिया। मेरे पास बहुत थे। उसने नाना भाँतिके चक्र खींचकर बताया कि तेरा भविष्य अच्छा है; पर तुझे दुःख भोगना है। मैंने पूछा कि मैं जिससे भेंट करने जा रहा हूँ, उसके विषयमें कुछ बताओ। उसने थोड़ी देर तक गणना करनेके बाद कहा—'वह बड़ा यशस्वी कवि होगा; परन्तु कोई रचना समाप्त नहीं कर सकेगा। जिस दिन वह कविता लिखने बैठेगा, उस दिनसे उसकी आयु क्षीण होने लगेगी। वह उसके बाद सहस्र दिन तक जीवित रह सकेगा।' ज्योतिषीकी बातसे मैं शंकित हो गई और हाथ जोड़कर बोली—'कोई बचनेकी विधि है क्या, आर्य?' ज्योतिषीने सिर हिलाकर कहा—'है।' फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद ज्योतिषीने कहा—'उससे कह देना कि किसी जीवित व्यक्तिके नामपर काव्य न लिखे।' मैंने यह सुनकर तत्काल शर्विलककी दुकानका रास्ता लिया। सौभाग्यसे वह उस समय प्रसन्न था और चषक भरनेके काममें मुझे नियुक्त कर लिया। तुम दण्डधरोंके साथ आए और मैंने तुम्हें जी भरकर देखा। तुमने घृणाके कारण मेरी ओर ताका भी नहीं। महा-प्रतीहार ज़रा देर बाद आए थे और उनसे तुम कह रहे थे कि अपना लिखा हुआ प्रकरण तुमने सिप्रामें फेंक दिया है। और जब तक निपुणिका नहीं मिल जाती, तब तक न तुम कुछ लिखोगे, न खेलोगे। मैं सुनकर आश्वस्त हो गई और यहीं मिलनेका संकल्प लेकर भाग आई। आज भट्टिनीके घरमें तुमने जब कविता लिखनेकी बात कही, तो मेरा चित्त काँप उठा। मैं यही कहने आई हूँ, भट्ट, कि तुम भट्टिनीके या किसी अन्य जीवित व्यक्तिके विषयमें कविता मत लिखो। मेरा अनुरोध रख लो, मैं अकिंचन ग़रीब केवल प्रार्थना कर सकती हूँ।"

निपुणिकाने जानुपातपूर्वक प्रणाम किया। मैंने उसे आश्वासन देते हुए कहा—'मैं तेरा अनुरोध पालन करूँगा, निउनिया; पर मैं ज्योतिषीकी बातपर विश्वास नहीं करता।' निउनिया आँख फाड़कर मेरी ओर देखने लगी। ज्योतिषीकी बातपर विश्वास न करना उसकी समझमें आने लायक बात नहीं थी। मैंने कुछ अधिक नहीं कहा। केवल आकाशकी ओर देखकर एक दीर्घ निःश्वास लिया। मैं जानता हूँ कि इधर हाल ही में यवन लोगोंने जिस होरा-शास्त्र और प्रश्न-शास्त्र नामक ज्योतिष विद्याका प्रचार इस देशमें किया है, वह यावनी पुराण-गाथाके आधारपर रचा हुआ एक अटकल-पच्चू विधान है। भारतीय विद्याने जिस कर्मफल और पुनर्जन्मका सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, उसके साथ इसका कोई मेल ही नहीं है। यहाँ तक कि हमारे पुराण-प्रथित ग्रह-देवताओंकी जाति, स्वभाव और लिंग तकमें अद्भुत विरोध स्वीकार कर लिए गए हैं। हमारे पुराण-प्रसिद्ध शुक्र और चन्द्रमा इस ज्योतिषमें स्त्री-ग्रह मान लिए गए हैं, क्योंकि यवन-गाथाओंकी वीनस और डिएना देवियाँ हैं, और वे ही इन ग्रहोंकी अधिष्ठात्री देवी मान ली गई हैं। ग्रह-मैत्रीका तो अद्भुत विधान है। आर्य-पुराण-ग्रन्थोंसे इस मैत्रीबन्धका कोई समर्थन नहीं होता। इस विद्याने देशके अशिक्षित जन-समूहको खूब प्रभावित किया है, और धीरे-धीरे यह विद्या कुसंस्कारके रूपमें राजाओं और पंडितोंमें फैलती जाती है। सबसे आश्चर्य तो यह है कि भगवान् बुद्धके प्रवर्तित सौगत-मार्गमें भी इसका प्राधान्य स्थापित हो गया है। मैं इसका रहस्य जानता हूँ; परन्तु निउनिया नहीं जानती। तो भी उसको आश्वस्त करनेके लिए मैंने प्रतिज्ञा की कि किसी जीवित व्यक्तिके विषयमें कविता लिखनेमें संकोच करूँगा। अन्त तक मेरी प्रतिज्ञा निभ नहीं सकी; पर जिस दिन वह टूटी, उस दिन निपुणिका हमें छोड़कर लोकान्तरको प्रस्थान कर चुकी थी। हम दोनों थोड़ी देर तक चुप बैठे रहे। नौकाके नीचेसे आनन्दगद्गद स्वरमें सुनाई दिया:—

जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाण कोट्याखिलमूर्त्तिधारिणा
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंभूर्भगवान् प्रसीदतु॥

कंठ भट्टिनीका था। निपुणिका धड़फड़ाकर उठ पड़ी। बोली—'भट्टिनीकी पूजा समाप्त हो गई। चलो, प्रसाद लें।' (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संन्यासी'

श्री मुकुन्दीलाल, बी० ए० (आक्सन), बार-एट-ला

यद्यपि उपन्यासकी साधारण परिभाषा दी गई है कल्पित कथा, तथापि वह सदैव कोरी कल्पित कथा ही नहीं होता और न नितान्त लेखककी कल्पना-शक्तिके खेलकी खयाली दुनिया ही होता है। उपन्यास कई श्रेणियों और क़िस्मोंके हैं। साधारणतया उपन्यास जीवन, समाज, किसी जाति या व्यक्तिका चित्र है। उपन्यासकी उपयोगिता और लोकप्रियता बहुत हद तक कलाकारकी योग्यता, बुद्धि और लेखन-शैलीपर निर्भर है। साधारण लोग तो उसे मनोरंजन और समय बितानेके लिए ही पढ़ते हैं। कोई उसमें आदर्श चरित्र ढूँढ़ता है, कोई साधारण स्थितिका गृहस्थ-जीवन, कोई अमीरोंका जीवन, कोई प्रेमी-प्रेमिकाओंकी प्रणय-चर्चा और कोई जीवन-रहस्यके अवलोकनार्थ उपन्यास पढ़ता है। हाँ, यह उपन्यास-लेखककी बुद्धि, भावना और कला-कौशलपर निर्भर है कि वह कल्पित कथाओं द्वारा किसी मत-विशेष या अपने विचारोंको उपन्यासके पात्रोंके कथनोपकथन या व्यवहारोंके रूपमें प्रतिपादित करे, या किसी कुरीतिका खाका खींचकर उसकी बुराइयों और अन्यायकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करे।

हमारी भारतीय भाषाएँ तो दर-किनार रहीं, अंगरेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओंमें भी प्रथम श्रेणीके उपन्यास-लेखक तो इने-गिने ही हैं। ऐसी हालतमें उपन्यासकी कला और कथा-वस्तुके लिहाज़से हिन्दीके किसी उपन्यास-लेखककी कृतिकी आलोचना करते समय हमें हिन्दीके औपन्यासिक धरातल—हिन्दी-उपन्यासों और उनके लेखकोंके स्टैण्डर्ड—का समीचीन खयाल रखना होगा। श्री इलाचन्द्र जोशी हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने गत मईके 'विशाल भारत'में प्रकाशित अपने 'आधुनिकतम उपन्यासका दृष्टिकोण'-शीर्षक लेखमें बताया है—"देखना यह होगा कि लेखककी रचना ठोस जीवन-केन्द्रपर स्थित है या नहीं, जीवनके मर्मको छूती है या नहीं और कठोर वास्तविक जीवन-संघर्षके माध्यमसे ही रुग्ण जीवनका उपचार सुझानेमें समर्थ है या नहीं।" शायद इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जोशीने 'संन्यासी' लिखा हो। यदि ऐसा न भी हो, तब भी यह आशा करना अत्यधिक न होगा कि उनके उपन्यासमें ये गुण अवश्य होंगे। अब देखना यह है कि ५२२ पृष्ठोंका 'संन्यासी' जोशीजीके कथनानुसार एक सफल काल्पनिक कथा है या नहीं।

अव्वल तो जिस संस्कृत-निष्ठ हिन्दीमें 'संन्यासी' लिखा गया है, वह उस साधारण जनताकी समझमें नहीं आयगी, जिसके दिमाग़पर लेखक अपने मनोविज्ञानकी छाप छोड़ना चाहता है। 'संन्यासी'को पढ़नेसे एकमात्र खयाल यह होता है कि लेखक मनोविज्ञानकी तरंगोंका चित्र खींचना चाहता है। मनोविज्ञानमें भी जो खास बात पाठकोंके ध्यानमें आयगी, वह है नन्दकिशोर (संन्यासी) की ईर्ष्या और डाह, जिसके कारण 'संन्यासी'की दोनों नायिकाएँ शान्ति और जयन्ती, एक समाजसे और दूसरी संसारसे, सदाके लिए लोप हो जाती हैं। उनके चरित्रका चित्र नितान्त अधूरा है। यदि मनोविज्ञानपर ही 'संन्यासी'में अधिक ज़ोर दिया जाना था, तो क्या मनोविज्ञान और स्वाभाविक भावना तथा वात्सल्य प्रेम शान्तिके जीवनमें इस तरह दर्शाया जाना उचित था कि जिस व्यक्तिपर प्रथम दर्शनमें आसक्त होकर जिस अबला (शान्ति) ने अपना सर्वस्व त्यागा, वही पुत्रको छोड़कर इस तरह चली जाय, मानो वह बालक उसकी कोखसे जन्मा ही नहीं। और ५-६ वर्षके बाद जिस प्रेमीका दर्शन अनायास ही मिले, उसके प्रति उसके मन या हाव-भावपर कोई असर न पड़े; वह अवकाश मिलनेपर भी उससे दो बातें न करे; और वह अपने पुत्र और उसके पिता (अपने प्रेमी) को छोड़कर चली जाय, मानो उनसे उसका कोई सरोकार या वास्ता ही नहीं। इतनी निर्मोही माता और त्यागी अस्वाभाविक प्रेमिका न कोई हो सकती है और न होनी ही चाहिए। जब नन्द-किशोरने एकाएक अपने आत्मजको सहसा, अनायास ही, कन्या-पाठशालाके हातेमें देखा, तो उस समय मनोविज्ञान व मानव-मन तथा भावके लिहाज़से दुष्यन्तकी तरह क्या-क्या भावनाएँ नन्दकिशोरके दिलमें उठी होंगी और ५-६ वर्ष बाद शान्तिको देखनेपर मनोविज्ञानकी दृष्टिसे नन्दकिशोरकी क्या हालत होती, नन्दकिशोरका व्यवहार इसके नितान्त विपरीत दिखाया गया है। शान्ति पुत्रको छोड़कर कहाँ गई? उसका क्या हुआ? अपने पुत्रके प्रति नन्दकिशोरके क्या भाव व दायित्व थे, इसका कहीं कोई संकेत नहीं है। बस, संन्यासी बनकर नन्दकिशोर इन सबसे अपना पिण्ड छुड़ा लेता है।

शान्ति, जो 'संन्यासी'की प्रमुख नायिका है, अपने जीवनको प्रेमकी वेदीपर, लोक-लाजको ताकपर रखकर, बिना अपनी सहेली कमलकुमारीको अपने मनके भाव या संकल्प बताए, एक मनचले विद्यार्थीके साथ भाग निकलनेसे, अस्वाभाविक व्यवहार होनेपर भी, अपने प्रेमकी दृढ़ता तो दिखाती है; पर फिर साम्यवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलदेवके विचारोंमें उलझकर जिस नन्दकिशोरको पहली बार पानवालीकी दुकानके सामने खड़े देखकर मोहित हो गई थी, उसको, उसके भाईके ताने सुनकर, सदाके लिए ठुकरा देती है। नन्दकिशोरका मनोविज्ञान और प्रेम भी शान्तिका-सा ही है। जिस रमणीने उसके लिए सर्वस्व त्यागा, उसको उसने एक कुलियाकी तरह घरसे भागने दिया—डाहके कारण नहीं; पर इसलिए कि भाई साहब दरवाज़ेपर खड़े हो गए और भय्याको उसकी तलाशमें जाने नहीं दिया। वह चाहता, तो कमसे कम शाम तक या दूसरे दिन ही उस बेचारीकी खबर ले सकता था—उसके अन्दर तो संन्यासी बन्द नहीं था। शान्तिका भी वही हाल कि उधर तो नन्दकिशोर (भावी संन्यासी) के साथ भागी और एक ही सप्ताहके अन्दर बलदेवके साम्यवादसे इतनी रीझ गई कि वह सोनेका चन्द्रहार, जिसको कभी अपने प्रेमी नन्दकिशोरके सामने भी नहीं पहना था और उसे बताया भी नहीं था, और वे दो सुन्दर साड़ियाँ, जो नन्दकिशोर उसके लिए बड़े चावसे लाया था, उनको बलदेवकी बहनको दे दिया। उसकी बहनने भी बिना किसी तकल्लुफ़के उन्हें रख लिया। ५२२ पृष्ठके उपन्यासमें बेचारे बलदेवको कितने पृष्ठ दिए गए, उसका व्यक्तित्व कितना अधूरा छोड़ दिया गया! उसको और उसकी बहन तथा माताको, जिनके द्वारा दरिद्रताके भीषण परिणामका चित्र या साम्यवादकी खूबियाँ दिखाई जा सकती थीं, अकस्मात् दूध-सी प्रेमके प्यालेमें पड़नेवाली दो मक्खियोंकी तरह निकालकर फेंक दिया गया। इस तरह किसी भी व्यक्तिके चरित्रका पूरा चित्र 'संन्यासी'में नहीं दिखाया गया।

कलाकी दृष्टिसे एक ही व्यक्तिका चरित्र 'संन्यासी'में दर्शाया गया है, जो एक साधारण, फैशनेबल, मनचले, आधुनिक जेंटिलमैन विद्यार्थीका चित्र हो सकता है, और वह है रमेशका। पर वह भी नन्दकिशोरसे मुँहकी खाकर रंगमंचसे (नन्दकिशोरके फ्लैटसे) बोरिया-बँधना समेटकर सदाके लिए लोप हो गया। जिस जयन्तीने पहले-पहल नन्दकिशोर विद्यार्थी (संन्यासी) के दिलमें प्रेमपूर्ण दृष्टिपातसे उथल-पुथल पैदा कर दी थी और जिससे ६ वर्ष बाद सोच-समझकर, देख-भाल, पूछ-ताछके बाद, भाई-भावजकी अनुमतिसे नन्दकिशोरका विवाह हुआ, उसके चरित्रपर नन्दकिशोरको सिर्फ़ इसी बातपर शंका हो गई कि रमेशने उसे बाल्यावस्थामें गाना सिखाया था और फिर विवाहके बाद उसने रमेश व जयन्तीको घरमें खड़े-खड़े बातें करते देखा था। जिस जयन्तीकी असाधारण बुद्धि, ज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक विवेक-शक्तिकी लेखकने बड़ी तारीफ़ की है, वह केवल उक्त घटनाके कारण, पतिके शुबहा करनेपर, फौरन आत्मघात कर लेती है।

मैंने जोशीजीके 'संन्यासी'से बहुत बड़ी आशा की थी, इसीलिए मुझे निराश होना पड़ा। मैं 'संन्यासी'के लेखकके इस कथनसे सहमत हूँ कि 'कोरे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और तटस्थ दार्शनिक विवेचनसे औपन्यास्यता श्रेष्ठ नहीं मानी जा सकती।' जोशीजीने 'विशाल भारत'के पिछले दो अंकोंमें आधुनिक उपन्यासोंकी जो समालोचना 'देवदास'को सामने रखकर की है, उसके अनुसार तो उनका 'संन्यासी' भी उच्चकोटिका उपन्यास नहीं ठहरता। कारण, उसमें अधूरे-अनोखे चित्र ही दिखाई देते हैं। उसके नायक-नायिका केवल उद्देश्यहीन, मनचले और दुर्बल-चरित्र विद्यार्थीकी एकमात्र मनोवृत्ति और ईर्ष्याका परिणाम दिखानेको दर्शाए गए हैं। उसकी डाह और स्त्रीके चित्तकी अस्थिरता दर्शानेके लिए ही शान्ति और जयन्तीका खून किया गया है।

बँगलाके श्रेष्ठ उपन्यासकार शरत्की आलोचना करते हुए जोशीजीने कहा है—"आधुनिकतम कलाकार यदि अपनी कथाओंमें चरित्रहीन और रोमांसवादी पात्रोंका अवतरण करता है तो केवल इसलिए कि वह अपने मनोवैज्ञानिक अस्त्रसे उनकी आत्माका स्तर-प्रति-स्तर खोलकर उनके घोर अहंभावपूर्ण 'कवित्वमय' प्रेमका पोल-प्रकाश करना चाहता है।" जोशीजीकी यह धारणा व्यक्तिगत हो सकती है; पर सभी उपन्यास-लेखकोंका यह उद्देश्य नहीं हो सकता। कर्मका फल वे कर्म और पात्रोंके जीवनमें दिखा सकते हैं। केवल मनोविज्ञानसे काम नहीं चलेगा। वह तो वहीं तक पाठकोंके सामने आता है, जहाँ तक वह पात्रोंके चरित्रमें पाया जाता है। उनके मनकी भावनाओंको लेखक ज़ाहिर करता है, न कि पात्र खुद। उपन्यास-लेखक जब कोई कथा लिखने बैठता है, तो उसे अपने ध्यानमें कोई घटना, समस्या, व्यक्ति या इतिहास अवश्य सामने रखना होता है। फिर उसे जो साधन उपलब्ध हों, उनका उपयोग उसे अपनी लेखनी द्वारा ही करना होता है। अपने उपाख्यान या घटनाको वह जहाँ तक विस्तीर्ण करना आवश्यक समझता है, करता है; पर यह उसे अपनी कला, कल्पना-शक्ति और विचार-धाराके अनुसार ही करना होता है, जिससे चित्र अपूर्ण न रहे। लेखक तो सारा वर्णन इस तरह करेगा, जैसे सब कुछ उसने स्वयं देखा या सुना हो। पाठक उसे पढ़ता है और पढ़ते-पढ़ते चरित्रके साथ इतना एकतान हो जाता है कि लेखकको भूल जाता है।

(शेष पृष्ठ २७० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धोत्तर अर्थनीति और व्यापार

श्री जी० एस० पथिक

वर्त्तमान युद्धके चार वर्ष समाप्त हो गए, और अब वह पाँचवेंमें प्रवेश कर रहा है। कुछ लोगोंका खयाल है कि यह वर्ष ही आखरी है। जो-कुछ भी हो, मित्र-राष्ट्रोंके लिए यह वर्ष बहुत अनुकूल रहा। भारतवर्षने इस वर्षमें सबसे अधिक संकट और मुसीबतें सहीं; मगर इस देशकी आपदाओंका यहीं अन्त नहीं है। आर्थिक दृष्टिसे इस वर्षका पर्यवेक्षण करते हुए हम देशके प्रधान आर्थिक साधनोंपर विचार करते हैं। भारतके ये साधन हैं—कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार और अर्थ। कृषि-जन्य उत्पादनकी अवस्था अत्यन्त नाजुक रही। खाद्य-पदार्थोंके अभावसे देशमें भयानक स्थिति उत्पन्न हो गई, जो शताब्दियोंसे कभी न देखी गई। कृषि-जन्य पदार्थोंके दाम इस वर्ष सबसे अधिक तेज़ हुए। ग़रीब किसानोंको ज़रूर लाभ हुआ; पर उनसे अधिक बीचवालोंने कमाया। किसानों और मण्डियोंके भावोंमें कोई तारतम्य नहीं रहा। यह एक प्रश्न है कि मण्डियोंमें कच्चे माल और खाद्य-पदार्थोंके फाटके व सट्टेसे जो दाम चढ़े, उससे उत्पादकोंको कहाँ तक लाभ हुआ? निश्चय ही मण्डियोंके ऊँचे भावोंके कारण ही सरकार और विदेशी खरीदार अधिक दाम देनेके लिए बाध्य हुए। इससे किसानोंको दो पैसे अधिक मिले। पर अनेक बार उनपर ज़ोर-ज़ुल्म भी किया गया कि वे सरकारी एजेण्टोंको जिस-तिस भावमें अपनी फ़सल बेच दें। जो भी हो, किसानोंके पास कुछ धन आया। अब लोग सोचते हैं कि वे इस रक़मका क्या करेंगे? क्यों न वे थोड़ा-बहुत चन्दा युद्ध-ऋणमें दें और बाक़ी रक़मसे सरकारी कर्ज़ खरीद लें? किसानोंको यह रुपया युद्धके बाद सहज ही मिल जायगा। गल्ले और कच्चे मालके दाम बढ़े, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। कलकत्तेके थोक भावोंके इण्डेक्स (जुलाई १९१४=१००) के आधारपर अगस्त, १९३९ में गल्ले और दालोंके भाव ८३ और ९६ से ४०८ और ३०३ तक चढ़ गए। मई, १९४३ में ये अंक ४७३ और ३७४ थे। इसी प्रकार तेलहन, पाट और रुईके भाव भी बढ़े। एक समय खयाल किया जाता था कि निर्यात बन्द होनेसे इन चीज़ोंका क्या होगा? पर देशमें ही खपत बढ़ जानेसे ये पैदावारें ऊँचे दामोंमें ही बिकती रहीं। इस चौथे वर्षमें कृषि-जन्य सभी पदार्थोंके दाम बेहद चढ़ गए। जुलाई, १९४३ का इण्डेक्स ३३२ था, उसमें १३४ अंकोंकी वृद्धि हो गई।

देशमें कच्चे माल और खाद्य-पदार्थोंकी माँग बढ़ जानेसे निर्यात-व्यापार नहीं बढ़ पाया। जो-कुछ माल बाहर जाता रहा, उसे भी बन्द करनेकी नौबत आ गई। गत तीन वर्षोंकी अपेक्षा इस वर्षके नौ महीनोंमें आयात और निर्यात दोनों ही कम रहे और १४,९८४ लाख रु०का निर्यात और ८१२९ लाख

कुछ साहित्यिक कलाकार ऐसे हैं, जो अपने समकालीनोंके प्रति विद्रोहकी भावनासे प्रेरित हो अपनी विचार-धारा और अपने सामाजिक आदर्शको अपनी विलक्षण लेखन-शैली द्वारा पाठकोंके विचारोंमें विप्लव पैदा करते हैं। इस कक्षाके कलाकार और प्रौढ़ साहित्यिक हैं बरनार्ड शा, जिनका अंगरेज़ी-साहित्यमें विशिष्ट स्थान है। इनके विषयमें जोशीजीका कहना है—"शा जब प्रतिष्ठाकी चोटीपर पहुँचा हुआ था, उसी वक्त मर चुका था।" पर, जोशीजी निश्चिन्त रहें, शा मरा नहीं है। जब तक अंगरेज़ी-भाषा रहेगी, तब तक शा भी रहेगा। हाँ, यह कोई कह सकता है कि शाका जो अत्यावश्यक प्रोपेगेण्डा-कार्य था, वह समाप्त हो गया। जन-साधारणकी विचार-धाराको परिवर्त्तित करने और नए सामाजिक सम्बन्धका रास्ता बतानेमें जितना काम शाने किया, उतना और किसी अंगरेज़ी-साहित्यिक नेताने नहीं किया। शा और वैल्सने इस दिशामें बहुत बड़ा काम किया है। काश कि हिन्दी-साहित्यमें भी शा और वैल्स होते! श्री इलाचन्द्र जोशी सरीखे हिन्दी-लेखक यदि भाषाकी सरलता, पात्रोंके चरित्र-चित्रण और भावों तथा विचारोंको प्रकट करनेमें शा या वैल्सका अनुकरण करें, तो भारतीय समाज और साहित्य दोनोंका बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं।

खेदका विषय है कि जोशीजीने जो भाव और चरित्र ५२२ पृष्ठोंके 'संन्यासी'में अस्वाभाविक और क्लिष्ट हिन्दीमें पेश किए हैं, उनको वे सरलतासे २५० पृष्ठोंमें लिख सकते थे। उपन्यास-लेखकोंको अपने नहीं, तो कमसे कम पाठकोंके समयका तो खयाल रखना ही चाहिए। यदि लेखकको अपने विचार, आदर्श और मत जनता तक पहुँचाने हैं, तो उसकी भाषा काफ़ी सरल और बोधगम्य होनी चाहिए। हिन्दी-लेखकोंको कुछ ऐसे भी उपन्यास लिखनेकी ओर ध्यान रखना होगा, जो विचार, आदर्श, भावना और भाषाकी दृष्टिसे इस कोटिके हों कि अन्य प्रान्तोंके लोग भी हिन्दी पढ़नेको लालायित हों। इसके साथ ही हमें उस समयकी ओर भी दृष्टि रखनी चाहिए, जब हिन्दी या हिन्दुस्तानी केवल हिन्दुओंकी ही नहीं, वरन समूचे भारतकी राष्ट्रभाषा होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रु०का आयात हुआ। कुल निर्यातमें ३८०६ लाखका खाद्य-पदार्थ, २९७२ लाखका कच्चा माल और ७५७६ लाख रु०का तैयारी माल था। इस प्रकार भारतके पक्षमें व्यापारकी बाक़ी इस अवधिमें ६८,०५५ लाख रु०की थी।

आज किसी भी चीज़के पूरे और सामयिकतापूर्ण आँकड़े नहीं मिलते। विदेशी व्यापार ही नहीं, देशके औद्योगिक उत्पादनके भी आँकड़े प्राप्त होना दुर्लभ है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि इस युद्ध-कालमें भारतकी औद्योगिक प्रगति उपेक्षणीय नहीं रही। यदि सरकार साधारण दूरदर्शितासे काम लेती, तो इस समय तक भारतमें कई नए छोटे-बड़े धन्धे चलने लगते। कौन इससे इन्कार कर सकता है कि भारतकी कपड़ा, ऊन, रेशम और जूटकी मिलें अधिकसे अधिक माल पैदा करनेमें समर्थ नहीं हैं? इस्पातका धन्धा तो ठीक है; पर इंजीनियरिंगके उद्योगमें कोई प्रगति नहीं हुई। मोटर, हवाई-जहाज़ और समुद्री जहाज़के निर्माण करनेकी लगातार माँगपर कोई भी ध्यान नहीं दिया गया। आर्डिनेंस फैक्टरियोंका धन्धा युद्ध-कालका है। उनसे देशके औद्योगिक निर्माणमें कोई सहायता नहीं मिलती। जो छोटे धन्धे आज युद्ध-कालमें चल रहे हैं, उनका स्थायित्व सन्देहजनक ही है। आर्थिक क्षेत्रमें बैंकोंके व्यवसायने प्रगति की। कई बैंकोंने अच्छा डिवीडेंड दिया और सुरक्षित-कोशमें भी काफ़ी धन जमा किया। इस वर्ष नए-नए बैंकोंकी स्थापना हुई। डिफेंस-लोन और ट्रेज़री-बिलोंमें काफ़ी रुपया लगा। युद्धके इन चार वर्षोंमें व्यापारिक बैंकोंकी ऋण-काजमें २४३ करोड़ रु० पूँजी अधिक लगी, जिसमें १२० करोड़ रु० इस वर्षमें लगे। सरकारी काग़ज़ और ३½ सैकड़ा १९६३-६५ लोनमें भी अधिक रक़म लगी। इस चौथे वर्ष बैंक करेन्सीकी वृद्धि ७०५·२७ करोड़ रु० तक हुई। इस प्रकार नए नोट आदिकी वृद्धि ३४१,०६४ करोड़ रु०की हुई। यह वृद्धि ५० प्रतिशत है। भारत-सरकारके अर्थ-सदस्यके अनुसार ४० करोड़की जनसंख्यावाले विशाल देशमें युद्ध-कालमें यह वृद्धि कोई अधिक नहीं है। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इस वृद्धिका घातक प्रभाव पड़ा है। यह वृद्धि देशकी नागरिक जनताके लिए उत्पादनमें वृद्धिके बिना हुई। इसके कारण वस्तुओंकी आमद और वितरणमें जो बन्धन तथा नियन्त्रण लगाए गए, उनसे चीज़ोंके दाम चढ़ गए। यह अवस्था इतनी भयंकर हो गई है कि आज इसे पश्चात्तापपूर्वक सरकारको स्वीकार करना पड़ रहा है।

आज भारतको न केवल अपना साधारण व्यय और युद्ध-कालके व्ययका ही भार उठना पड़ता है, बल्कि उसे इस देशमें होनेवाले मित्र-राष्ट्रोंके व्ययके लिए भी रुपया जुटाना पड़ता है। ब्रिटिश सरकारने यह भार इस देशपर ही लाद दिया है। विदेशी ऋण चुकानेके पश्चात् लन्दनमें भारतकी ७ अरब रुपएकी स्टर्लिंग-सिक्यूरिटियाँ जमा हैं, जिन्हें ब्रिटेन अभी नहीं चुका रहा। उसकी इच्छा है कि युद्धके बाद इस रक़मसे भारत अपनी औद्योगिक प्रगतिके लिए कलें खरीद सकेगा और पेंशन आदि भी चुका सकेगा। यह बात प्रकट है कि युद्धके बाद पौण्डके दाम गिरनेसे इन सिक्यूरिटियोंका कितना मूल्य रह जायगा। युद्धके पूर्व भारतका सार्वजनिक ऋण १२०५·८० करोड़ रु० था। उसमें जून, १९४३ तक जो वृद्धि हुई, उससे यह रक़म १४४७·०५ करोड़ रु० हो गई। जुलाई और अगस्तके अंक शामिल करनेपर यह रक़म १४६५·०५ करोड़ रु० हो जाती है। दूसरे शब्दोंमें, इन चार वर्षोंमें भारतके ऋणमें २६० करोड़ रु० की वृद्धि हुई।

देश भारी करोंसे लदा हुआ है। साधारण जनता अधिक करोंका भार सहनेमें असमर्थ है। सरकार अब अपनी आयके लिए किसानोंपर नज़र लगाए है। यह माना जाता है कि किसानोंको इन युद्धके दिनोंमें २०० करोड़ रु० प्राप्त हुए हैं। इनमें से यदि वे १०० करोड़ रु० युद्ध-ऋणमें दे डालें, तो सरकारको सन्तोष होगा। कई प्रान्तोंमें किसानोंसे धन वसूल करनेका कार्य शुरू भी हो गया है। संयुक्त-प्रान्तकी वार-कमेटीने गत अप्रैल तक ३॥ करोड़ रु० किसानोंसे प्राप्त किए थे और आज यह रक़म ७॥ करोड़ रु० से अधिक हो गई है। वर्षके अन्तमें सरकारने करेंसीकी वृद्धि रोकनेके लिए नई कम्पनियोंके स्थापित होनेमें रुकावट लगा दी, जिससे सर्वसाधारण स्वतन्त्रतापूर्वक पूँजी न लगा सकें। इसके सिवा सोना-चाँदी और तैयारी तथा कच्चे मालके सौदोंपर भी पूँजीका नियन्त्रण कर भारतीय व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी स्वाभाविक गति रोक दी गई है।

विदेशी व्यापार

भारतके विदेशी व्यापारमें आयात कभी इतना कम नहीं हुआ था, जितना कि मई, १९४३ में हुआ। केवल ७·९२ करोड़ रु० का आयात हुआ, जो रक़म अप्रैलसे १·४५ करोड़ रु० कम है। निर्यातमें ७५ लाख रु०की वृद्धि हुई। कुल निर्यात १६·९० करोड़ रु० का हुआ। मईमें व्यापारकी बाक़ी भारतके पक्षमें ८·९८ करोड़ रु०की थी, जब कि अप्रैलमें ६·७८ करोड़ रु० की थी। आयातमें कमी यह प्रकट करती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण-अफ्रीका और मिस्रसे रुईकी आमदमें भारी कमी हो गई। अप्रैलमें रुईका आयात २·९२ करोड़ रु० था, जो मईमें १·२५ करोड़ रु० रह गया। कच्चे ऊनका आयात भी ४८·३९ लाख रु० से गिरकर ३६·९० लाख रु० रह गया। तमाखू और शराबका आयात अधिक था। उनके आयातमें ९·७६ लाख और १८·३२ लाख रु० से २७ लाख और २२·८० लाख रु० की वृद्धि हुई। केमिकल और ड्रग तथा रंगका आयात ६०·८३ लाख और ४०·३९ लाख रु० से गिरकर ३३·६७ लाख और ३७·४८ लाख रु० रह गया। मशीनरीका आयात ८७ लाख रु० का हुआ। काग़ज़का आयात ९·१५ लाखसे बढ़कर १४·९४ लाख रु० हुआ। मोटरोंका आयात ८२·४८ लाखसे गिरकर ५·९४ लाख रु० रह गया।

निर्यातमें ५० प्रतिशत हिस्सा कपड़े और हेसियनका है। दोनोंका निर्यात ४·७३ करोड़ और ३·८६ करोड़ रु०का हुआ, जब कि गत महीनेमें यह २·३५ करोड़ और ५·३५ करोड़ रु० का था। देशमें खाद्य-पदार्थोंकी कमी होनेपर भी उनके निर्यातमें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। उनमें १८·७५ लाखसे २७·०२ लाख रु० की वृद्धि हुई। चायका निर्यात २·३६ करोड़ रु०का हुआ। तेलहनका दाम चढ़ जानेसे निर्यात सिर्फ़ ३७·९३ लाख रु० का हुआ। रुई और पाटका निर्यात १००·२८ लाख और ५८ ४९ लाख रु०का हुआ।

ग्रामीण समस्या

भारतके ७ लाख ग्रामोंकी समस्या आज तक हल नहीं हुई है। दीर्घ कालसे देशकी दरिद्रता दूर करनेके लिए भारतमें ग्रामोद्धारका आन्दोलन जारी है; पर उसमें कुछ भी सफलता नहीं मिली; उल्टे जनसंख्या बढ़ती चली गई। सन् १७५०में बर्माको छोड़कर भारतकी आबादी १३ करोड़ थी, जो १८७२में २० करोड़ ४० लाख, १९०१ में २७ करोड़ ७० लाख और अब ३८ करोड़ ८० लाखसे भी अधिक है। कहा जाता है कि यह संख्या और भी अधिक होती, यदि अकाल, बाढ़, महामारी, युद्ध आदिमें लाखों व्यक्तियोंकी मृत्यु नहीं हुई होती। भारतमें जनसंख्याकी वृद्धि नए नए शहरोंके बसनेसे हुई। फिर भी अन्य देशोंकी तुलनामें भारतमें जनसंख्याकी वृद्धि अधिक नहीं है। १८७० से १९३१ तक इंग्लैण्डमें ७७ प्रतिशत, जापानमें ११३ प्रतिशत, रूसमें ११५ प्रतिशत, अमरीकामें १२५ प्रतिशत और भारतमें ३१ प्रतिशत वृद्धि हुई है। पर इस ग़रीब देशके लिए यह वृद्धि ही भार-स्वरूप है।

भारतकी आबादीका ८८ प्रतिशत भाग ग्रामोंमें रहता है। १८९१ में ग्रामोंकी जनसंख्या २५ करोड़ ८० लाख थी, जो १९४१ में ३३ करोड़ ९० लाख हो गई। इसके सिवा शहरोंकी अबादी २ करोड़ ७० लाखसे ४ करोड़ ९० लाख हो गई। १९०१ में ग्रामीण धन्धोंमें ४ करोड़ ६० लाख व्यक्ति थे, जो १९३१में ३ करोड़ ४० लाख रह गए। ग्रामोंमें आबादी एक प्रकारके लोगोंकी नहीं है। ७० प्रतिशत किसान हैं, जो आर्थिक दृष्टिसे गिरे हुए हैं। कृषक-मज़दूरोंकी अवस्था तो और भी खराब है। जो १० करोड़ ३० लाख आदमी खेती करते हैं, उनमें ३० प्रतिशतकी ही अवस्था अच्छी है।

खेतीकी ज़मीनमें वृद्धि हुई है; पर कृषिमें सुधार न होने और ज़मीनकी उर्वरा-शक्ति न बढ़ानेसे खेतीकी भूमि दिनपर दिन अनुपयुक्त होती जा रही है। किसान बेचारे क्या करें। उनके लिए तो कृषिमें उन्नतिके नए साधन और सुविधाएँ दूर की बातें हैं। ज़मीनपर भी उनका वास्तविक अधिकार नहीं है। जो ज़मीन है, वह भी कर्ज़के कारण निकलती चली जाती है। यही कारण है कि ६५ प्रतिशत ज़मीन उनके हाथसे निकल गई है। इसीसे ज़मीनपर किसानोंके अधिकार क़ायम रखनेके लिए प्रायः सभी प्रान्तोंमें किसान-क़ानून स्वीकृत हुए हैं। पर प्रश्न यह है कि ग्रामोंका उद्धार क्या उद्योगीकरणसे सम्भव है? वर्त्तमान धन्धोंके विकासमें कलोंका उपयोग होता है, जिसका अर्थ है कि मज़दूरोंके हाथमें रहा-सहा काम भी न रहे। देशको स्वावलम्बी बनानेके लिए उद्योगीकरण आवश्यक है; पर ग्रामोंकी उन्नति तो हाथके धन्धोंसे ही होगी। अनेक छोटे धन्धे ग्रामोंमें आसानीसे पनप सकते हैं। आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्तिकी उत्पादन-शक्ति बढ़े।

नई जहाज़ी नीति

आज सभी भारतीय व्यापारी जहाज़ और नौकाएँ युद्ध-सम्बन्धी कार्यमें जुटी हैं। उनमें से बीसों नष्ट हो गए हैं। अतएव उनके पुनर्निर्माणकी व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। सरकारने भारतीय व्यापारियोंके बढ़ते हुए असन्तोषको दूर करनेके लिए भारतीय जहाज़ोंके लिए एक संयुक्त कन्ट्रोलरकी नियुक्ति की है, जिसका निकटवर्ती सम्पर्क ब्रिटिश प्रतिनिधिसे होगा और जो भारतीय धन्धेके हितोंकी रक्षा करनेमें सदा अग्रसर रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

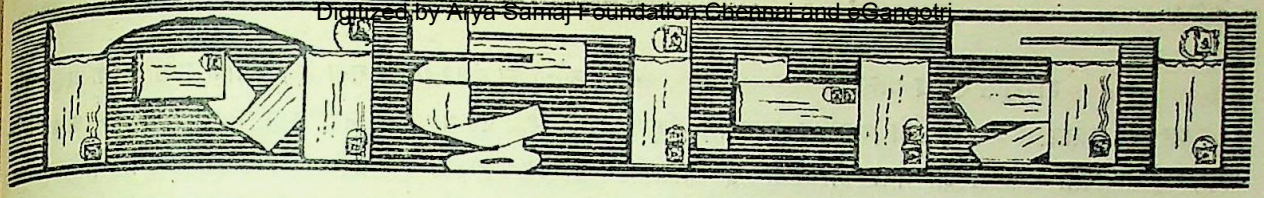

बुन्देलखंडी-विश्वकोष

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने हरद्वार-अधिवेशनमें यह प्रस्ताव स्वीकृत किया है कि भिन्न-भिन्न जनपदोंके साहित्य, भाषा, पशु-पक्षी, जन-विज्ञान तथा वनस्पति आदिका विधिवत् अध्ययन किया जाय। बुन्देलखंडी-विश्वकोषकी आयोजनाको इस प्रस्तावसे बड़ा बल मिला है। विश्वकोषके लिए बुन्देलखंडी-प्रान्तकी प्रकृति, पुरातत्त्व, इतिहास, भाषा, साहित्य तथा सार्वजनिक जीवनपर विद्वानोंके अध्ययनपूर्ण लेख आने प्रारम्भ हो गए हैं; परन्तु कार्य इतना विशाल है कि केवल विद्वान लेखकोंके सहयोगसे ग्रन्थ सर्वांगीण नहीं बन सकता। इसलिए हम बुन्देलखंड-प्रेमियोंसे निवेदन करते हैं कि निम्न विषयोंपर जो तथ्य तथा सामग्री हमें दे सकें, निम्न पतेपर भेजें—बुन्देलखंडकी सार्वजनिक संस्थाएँ और कार्यकर्त्ता; बुन्देलखंडकी आर्थिक समस्याएँ; बुन्देलखंडमें शिक्षा तथा शिक्षण-संस्थाएँ; बुन्देलखंडके प्रसिद्ध व्यक्ति; बुन्देलखंडकी सामाजिक दशा, रहन-सहन, रीति-रिवाज; बुन्देलखंडके सुन्दर प्राकृतिक स्थल, ऐतिहासिक स्थान और उनका महत्व; बुन्देलखंडी राज्योंकी दशा और बुन्देलखंड-संबंधी अन्य जानकारीकी बातें।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़] —बनारसीदास चतुर्वेदी

सामयिक साहित्य-सदन, लाहौर

समस्त हिंदी-भाषा-भाषियों और साहित्य-साधकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पर्याप्त पूँजीके साथ लाहौरमें सामयिक साहित्य-सदन (रजिस्टर्ड) नामकी एक बड़ी प्रकाशन-संस्था स्थापित की गई है। यह संस्था आबाल-वृद्ध नर-नारियोंकी साहित्य-संबंधी माँग पूरी करेगी। इसके द्वारा हर प्रकारका सामयिक साहित्य प्रकाशित और प्रचारित किया जायगा। मौलिक साहित्य देना इस संस्थाका मुख्य कर्त्तव्य है, फिर भी महत्त्वपूर्ण विदेशी साहित्यको हिन्दीमें लानेका प्रयत्न किया जायगा। शिक्षा-सदन, लाहौरकी बालोपयोगी मासिक पत्रिका 'शिक्षा'को सदनने अपने स्वामित्वमें ले लिया है। सदनका उद्देश्य केवल व्यापार करना नहीं है, बल्कि युगकी उस माँगकी पूर्त्ति करना भी है, जिसकी ओर अभी तक उचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। शीघ्र ही सदनकी ओरसे 'शिक्षा' पत्रिका तथा अनेक समयोपयोगी उत्तम पुस्तकें निकलेंगी।

चेम्बरलेन रोड, लाहौर] —हरिकृष्ण 'प्रेमी'

ग्रामीण लेखकोंकी कठिनाइयाँ

ग्रामीण लेखकोंकी कठिनाइयोंके सम्बन्धमें चर्चा चलाकर 'विशाल भारत'ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। वास्तवमें केन्द्रीय स्थानोंसे दूर देहातोंमें पड़े लेखकों और कवियोंको शिकायतका मौक़ा है, क्योंकि नामी-गिरामी साहित्यिकोंसे उन्हें मार्ग-प्रदर्शन मिलना तो दूर, थोड़ी सहानुभूति भी नहीं मिल पाती। अपनी रचनाओंको लिए वे भटकते हैं। सम्पादकोंके द्वार तक या तो वे पहुँच नहीं पाते, या पहुँच भी जाते हैं, तो निराश होते हैं। उनकी रचनाएँ रद्दीकी टोकरीमें स्थान पाती हैं और यदि सम्पादक महोदयकी बहुत कृपा हुई, तो इस या ऐसे ही रिमार्कके साथ लौट आती हैं—'संशोधनकी आवश्यकता है', या 'अभी थोड़ा और अभ्यास कीजिए', आदि। श्री माखनलाल चतुर्वेदीने अपने हरद्वार-अधिवेशनके अभिभाषणमें बड़ी मार्मिक बात कही थी—'एक ग्रामीण जिज्ञासुने मुझे चिट्ठी लिखी है। उस चिट्ठीके सम्मुख मेरे सभापतित्वका सारा सम्मान अपमानित और लज्जित है। जो **भावोंकी अन्नपूर्णा वाणीका स्वामी** हो, उसे हमने अपने कलावान और विद्वान होनेके गर्वमें इस तरह करुण वाणीसे भीख-सी माँगनेके लिए विवश किया है! हमने साहित्यकी तस्वीरपर आसक्त होकर साहित्यके मूल दैवतका अपमान किया है।' सम्मेलनने अपने जनपद-सम्बन्धी प्रस्तावमें स्वीकार किया है कि **भारतीय सभ्यताका निवास हमारे ग्रामोंमें है।** तब उस संस्कृतिमें जन्मे और पले विकासोन्मुख लेखकों और कवियोंको, जिनकी प्रतिभा तनिक सहारा पाकर चमक उठ सकती है, अवहेलनाकी दृष्टिसे देखा जाय, तो यह उनके साथ सरासर अन्याय नहीं तो क्या है?

हर्षकी बात है कि सम्मेलनने इस ओर ध्यान देकर हरद्वार-अधिवेशनमें ग्रामीण लेखकोंके मार्ग-प्रदर्शन तथा प्रोत्साहन देनेके लिए एक प्रस्ताव पासकर तीन मासमें एक योजना बनाकर पेश करनेके लिए पं० अमरनाथ झा, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तथा पं० बनारसीदास चतुर्वेदीकी एक समिति बनाई है। इसके संयोजक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी चुने गए हैं। मैं पाठकोंसे विनय करता हूँ कि वे इस सम्बन्धमें अपने सुझाव अथवा योजनाएँ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ('मधुकर'-कार्यालय, टीकमगढ़, सी० आई०) के पतेपर यथाशीघ्र भेजनेकी कृपा करें।

टीकमगढ़] —यशपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरत्के साथ अन्याय

शरत्की कृतियोंपर एक बार जो अनुचित आक्रमण किया गया, वह सम्भवतः काफ़ी न था, अतः श्री इलाचन्द्र जोशीने अपने लेख 'आधुनिकतम उपन्यासका दृष्टिकोण'का उत्तरार्ध ('विशाल भारत', अगस्त, '४३) भी हमें दिया है। किसी बातसे लगते हुए गुणको, बिना कोई सम्बन्ध दिखाए, दूसरी बातोंसे लागू करना कोई तर्क नहीं है। जोशीजी अपनी तर्क-बुद्धिको यह लेख लिखते समय बिलकुल आरामके लिए छोड़ बैठे दीखते हैं। वे अनुमान या नतीजा निकालनेमें बड़ी शीघ्रता दिखाते हैं। एक-दो प्रमाण बताकर बाक़ीको वे साधारण व्याख्याकी आड़में ढाँक देते हैं। एक-दो उपन्यासोंमें कुछ विशेष त्रुटियाँ हैं, इसके मानी यह नहीं कि लेखककी सभी (लगभग ६०) कृतियोंमें वे खास त्रुटियाँ पाई जायँगी। सत्य इससे भिन्न है, और यदि जोशीजी तर्कशास्त्रको समेटकर सत्यके विपरीत कुछ स्थापित करना चाहते हैं, तो यह उन्हींका अहंभाव है। उनकी भाषा भी नागवार है। वे अपनी व्याख्याएँ सभी बहुत प्रबल शब्दोंमें करते हैं। इससे कई बार उनसे अत्युक्ति हो जाती है। शब्दोंको नरमकर उनका निश्चित और वाञ्छित अर्थ दिखानेके लिए ही प्रयोग करना चाहिए, न कि शब्दोंके भण्डारमें निजको स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए।

जोशीजीने अपने सारे लेखकी नींव शरत्की कृतियोंपर डाली है—और वह भी शरत्की सिर्फ़ तीन या चार कृतियोंपर। वे इन तीन या चार कृतियोंको लेकर उनके गुण (अथवा अवगुण) प्रमाणित करते हैं और बादमें कहते हैं कि शरत्की 'सभी' कृतियोंपर ये गुण लागू हैं। वे यह नहीं कहना चाहते कि फ़लाँ-फ़लाँ उपन्यासमें ये दोष हैं, बल्कि वे कहते हैं कि शरत्की सभी कृतियोंमें ये दोष हैं। जैसे एक जगह उन्होंने लिखा है—"पापियोंके प्रति उनकी करुणा इस क़दर उमड़ उठी कि जितने भी चरित्रहीन, निकम्मे, आलसी, 'गुड-फार-नथिंग' पात्र समाजकी छातीमें घुनकी तरह लगे हुए हैं, उन सबको महिमान्वित करनेकी प्रतिज्ञा उन्होंने कर ली।" यह असत्य नहीं, तो कमसे कम घोर अत्युक्ति तो है ही। जिसने शरत्के सब उपन्यास पढ़ लिए हैं, वह जानता है कि उनमें से सिर्फ़ तीन या चारमें ही कुछ चरित्रहीन, निकम्मे पात्र हैं। समाजके सभी घृणित लोग शरत्की कृतियोंमें नहीं हैं। और फिर इनको महिमान्वित करना कैसा? मैं जून, ४३ के 'विशाल भारत'में यह कह चुका हूँ कि जितने भी पतित पात्र हमें दिए गए हैं, उनको महिमान्वित बिलकुल नहीं किया गया है। उनकी कृतियोंका वर्णन लिखा गया है। पापीके प्रति करुणा प्रदर्शित की गई है, पर यह कभी नहीं कहा गया कि उनका कार्य महान् है अथवा अच्छा है। पापीको अथवा पापको महिमान्वित कदापि नहीं किया गया है। शरत्की कृतियोंमें से सिर्फ़ पाँच कृतियों ('चरित्रहीन', 'देना पाओना', 'देवदास', 'गृहदाह' और 'शुभदा') में चरित्रहीन, निकम्मे पात्र हैं। स्थानाभावके कारण मैं बहुत कुछ न कहकर यही कहूँगा कि शरत्के पतित अथवा चरित्रहीन पात्र कदाचित् ऐसे नहीं हैं, जो स्वेच्छापूर्वक पाप करते हों। वे स्थितियोंके कारण बद्ध हैं, अपने वातावरणमें मजबूर होकर पाप या दुष्कर्म करते हैं। प्रकृति अथवा स्वभावसे वे पापी नहीं हैं।

जोशीजी 'कला कलाके लिए'का सिद्धान्त न भी मानते हों; पर कला सिर्फ़ कलाके लिए भी होती है। शरत्ने पतितोंके बारेमें जो-कुछ लिखा, वह पापियोंको महिमान्वित करनेके लिए कैसे था? शरत्ने केवल ऐसे आदमियोंका चित्र हमारे सामने पेश किया है, जो उन दिनोंमें हुआ करते थे, और अब भी हैं। इसके सिवा, शरत्की कला कोरी कला ही नहीं है। शरत् बादमें जाकर सांकल्पिक लेखक हुए—उनका हरएक कृतिके लिखनेमें कोई-न-कोई अभिप्राय रहता था। पर हाँ, उनका अभिप्राय ऐसा नहीं था कि वे किसी समस्याको सुलझाकर उसके लिए प्रतिकार बताएँ। उन्होंने चार या पाँच उपन्यासोंमें ही किसी समस्याका समाधान बताया है। नहीं तो साधारणतया वे समस्या पेश करके उसके दोनों पक्ष दिखाने-भर ही में सन्तुष्ट हो जाते हैं (जैसे 'श्रीकान्त' और 'पल्लीसमाज'में)। 'पथेर दाबी' और 'शेष प्रश्न' उन्होंने विशेष अभिप्रायसे लिखे थे, अन्यथा आमतौरपर उनके उपन्यासोंमें कथा तथा घटनाओंका ही महत्त्वपूर्ण प्राबल्य रहा है। समस्याएँ भी होती हैं; पर उनकी महत्ता कम है। वे कथाको मोड़-तोड़ या विकृत नहीं कर सकतीं, कथामें वे मिली हुई हैं।

चूँकि शरत्ने एक उपन्यासका नाम 'चरित्रहीन' रख लिया, इसके मानी यह तो नहीं कि उन्होंने चरित्रहीन पात्रोंको महिमान्वित करनेकी प्रतिज्ञा की थी। प्रतिज्ञा तो दूर रही, अनजानमें भी उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। 'चरित्रहीन' शरत्का उस कोटिका उपन्यास है, जिसमें उन्होंने एक समस्या उठाई है, पर उसका समाधान देनेकी कोशिश बिलकुल नहीं की—अर्थात् उन्होंने जैसा होता देखा, वैसा ही उपन्यासमें ग्रहण किया है। सतीश, सावित्री और सरोजिनी वास्तविक पात्र हैं। उनका सच्चा चित्र पेश करनेसे पता नहीं, शरत् कैसे दोषी बनते हैं! जोशीजी भले ही उन्हें 'नारीत्वके आत्म-सम्मानको ठुकराने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला' कहें। शरत्‌ने ऐसी कोई बात नहीं कही या सुझाई कि सावित्रीके आत्म-त्यागमें 'महत्ता' है। रही बात युगके आदर्शसे ऊपर उठनेकी, सो शरत्‌की कृतियोंका पूर्ण रीतिसे अध्ययन करनेवाले सभी जानते हैं कि शरत् प्रगतिशील होते हुए भी पुराने आदर्शोंपर चलनेवाले थे। यह शरत्‌में दूसरा अद्भुत मेल है। राजनीतिक क्षेत्रमें काम करनेसे शरत्‌के विचार कुछ प्रगतिशील ज़रूर हुए थे; पर उनकी पुराने आदर्शोंके लिए हार्दिक ममता भी नहीं मिटी थी। इसका प्रतिबिम्ब हम 'शेष प्रश्न'की कमला, 'पथेर दाबी'की भारती और 'बिप्रदास'की वन्दनामें देखते हैं, जो कि अपने विचारोंमें आधुनिक हैं, फिर भी पुराने आदर्शोंको छोड़ नहीं पातीं। इसके लिए एक कारण यह भी है कि भारतीय स्त्रीके लिए समाजके विरुद्ध कुछ करना इतना आसान भी नहीं है, जितना कि पुरुषके लिए। सामाजिक विरोधसे, हमने देखा है, स्त्रीको ज़्यादा भुगतना पड़ता है।

"शरत्‌ने पौराणिक आदर्शोंपर प्रगतिका चटकीला रंग (केवल रंग—और कुछ नहीं) चढ़ाकर हम लोगोंसे यह मनवा लिया कि वे प्रगतिशील लेखक हैं।" यह कहना सर्वथा अनुचित है। शरत्‌ने सारी उम्रमें यह कभी नहीं कहा कि वे प्रगतिशील हैं। शरत् किस प्रकार, हम आजकलके लोगोंकी नाईं, मँझधारमें थे, यह मैं बता चुका हूँ। और 'श्रीकान्त'के बारेमें तो मैं कह चुका हूँ कि इसमें उन्होंने समस्याका समाधान देनेकी कोशिश ही नहीं की। अन्नदा और राजलक्ष्मी दोनों सत्य-जगत्‌की हस्तियाँ हैं; उनके बारेमें यह कहना ठीक न होगा कि शरत्‌ने जान-बूझकर उन्हें ऐसा बनाया है। किसीका सच्चा रूप दिखानेसे यदि कोई उसका 'हिमायती' नहीं रह जाता, तो भले आप शरत्‌को कुछ भी समझ लें; पर शरत् स्त्री-जातिके हिमायती अवश्य थे। सावित्री और अन्नदा-जैसी स्त्रियोंका चरित्र-चित्रण उन्होंने केवल वास्तविकताके लिए किया। वे स्वयं भी तो पुराने आदर्शोंसे अपनेको छुड़ानेकी कोशिश कर रहे थे। यदि वे पूर्ण रीतिसे प्रगतिशील बन पाए होते, तो अवश्य 'श्रीकान्त'की अभया-जैसी और भी नारियाँ हमारे सामने रख जाते। पर क्या साधारणतया उनके उपन्यासोंमें स्त्री-जातिके प्रति सम्मानका भाव नहीं है? क्या उन्होंने नारीको एक अमूल्य रत्न नहीं साबित किया? क्या नारीका जननी-हृदय शरत्‌की नायिकाओंमें प्रबल नहीं पाया जाता? बड़ी दीदी, सन्ध्या (बामुनेर मेयेकी) और 'नव विधान'की नायिका-जैसी नारियाँ क्या शरत्‌की कृतियोंमें कम हैं? अतः यह कहना बिलकुल ग़लत है कि शरत् "युगकी नीतिके धर्मध्वजी ठेकेदारोंके विरोधी बनकर जनताकी आँखोंमें अप्रिय नहीं बनना चाहते थे।" उनमें यह साहस अवश्य था; पर कुछ किया तभी जाता है, जब विचार निश्चयका रूप लेते हैं। पर शरत्‌के विचार निश्चय बनें, इससे पहले ही उनकी मृत्यु हो गई।

शरत्‌के नायकोंको मैंने तो कभी आदर्श नहीं समझा। न श्रीकान्त आदर्श है, न देवदास, न और ही कोई। शरत्‌ने उन्हें आदर्श बनाया भी नहीं है। न उन्होंने उनके प्रति इस प्रकार करुणा जताने या उपजानेकी कोशिश की है, जिस प्रकार जोशीजी कहते हैं। करुणा खुद-ब-खुद पाठकके दिलमें होती है; पर वह पाठकको अन्धा नहीं बना देती, उसे यह विचारनेको बाध्य नहीं करती कि नायक महान् अथवा आदर्श है। जोशीजीका यह कथन भी ग़लत है कि आजकल जो पुस्तकें निकलती हैं, वे लेखकोंके दूषित मनका फल हैं। यह क्यों सोचा जाय कि लेखक स्वयं अपनी कुवृत्तियाँ ही ज़ाहिर कर रहे हैं? वे तो वास्तविकता दिखा रहे हैं। क्या ऐसी वास्तविकता दिखानेकी बिल्कुल आवश्यकता ही नहीं है? तो फिर हम जीवनको आँखोंसे क्यों देखते हैं? जोशीजीके मतानुसार हमें वास्तविकताकी ओरसे आँखें बन्द कर लेनी चाहिएँ या उसके साथ आदर्शका मिश्रण करना चाहिए।

बन्दर रोड, कराची] —दौलतराव परशुराम

कवि और आदर्शोन्मुख भावना

'विशाल भारत'के पिछले अंकमें प्रकाशित 'दीप-शिखा'की आलोचनासे बहुत अंशोंमें मैं सहमत हूँ। इसी प्रकार सोहनलालजीकी 'चित्रा'पर लिखी गई पंक्तियाँ भी बहुत स्पष्ट हैं। पर मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि कविको लोकोपयोगी साहित्य ही देना चाहिए। जीवनमें ऐसे क्षण आते हैं, जब व्यक्ति—चाहे वह समाजमें कितना ही 'बड़ा' क्यों न समझा जाता हो—अपनेमें किसीके प्रति दैन्य अनुभव करता है। पर वह दैन्य साधना-जनित होना चाहिए—जीवनके शरीर-स्पर्शकी लालसा-जनित नहीं। दूसरे शब्दोंमें आदर्शोन्मुख भावनामें गिरानेकी अपेक्षा उठानेकी क्षमता अधिक रहती है। मैं आलोचकसे इस बातमें सहमत हूँ कि 'चित्रा'की साधना मांसल है, अतः वह न तो साधकको ही ऊपर उठाती है और न किसीको प्रेरित ही कर सकती है। साहित्य चाहे पलायनवादका हो, चाहे यथार्थसे संघर्ष लेनेवाला, उसमें ईमानदारी (sincerity) आवश्यक है। दुःख है, यह ईमानदारी बहुत कम रचनाओंमें दीख पड़ती है। 'चित्रा'की आलोचनाकी स्पिरिटके साथमें पूर्ण रूपसे सहमत हूँ। —एक पाठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

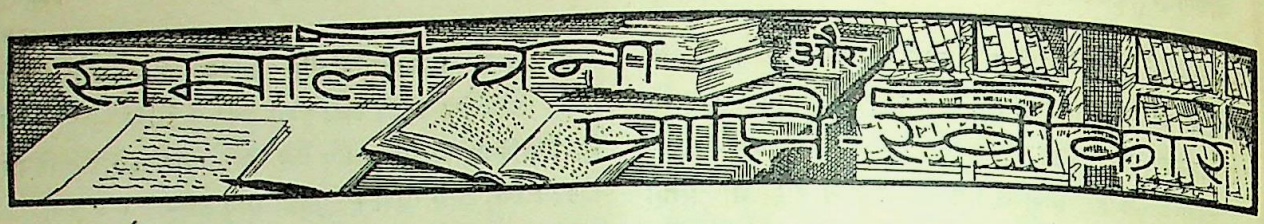

Languages and Linguistic Problem (भाषाएँ और भाषा-समस्या) : लेखक—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, एम० ए०, डी० लिट्० ; प्रकाशक—हम्फ्रे मिलफोर्ड (आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटी प्रेसकी ओरसे), बम्बई ; पृष्ठ-संख्या ३१ ; मूल्य ।)।

आलोच्य पुस्तिकाके लेखक डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भाषा-विज्ञानके महापंडित हैं और हिन्दी-संसार भी उनसे काफ़ी परिचित है। ३१ पृष्ठोंकी इस छोटी-सी पुस्तिकामें आपने भारतके भाषा-सम्बन्धी प्रश्नोंपर अनेक दृष्टिकोणोंसे प्रकाश डाला है। राष्ट्रीय जाग्रतिके इस मुहूर्तमें राष्ट्रभाषाकी समस्या प्रखरतर हो उठी है। आवश्यकता थी कि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विद्वान अपने स्वतन्त्र, किन्तु स्पष्ट, मत प्रकट करते। उपर्युक्त पुस्तिका इस ओर एक सुन्दर प्रयास है।

पहले १२ पृष्ठोंमें लेखकने विविध भारतीय भाषाओं तथा बोलियोंका (बोलनेवालोंकी संख्या तथा स्थानोंका विवरण देते हुए) तात्त्विक विवेचन किया है। इस तुलनात्मक विश्लेषणके पश्चात् लेखकने स्पष्ट शब्दोंमें प्रतिपादित किया है कि **'हिन्दी ही आधुनिक भारतीय भाषाओंकी प्रतिनिधि है।'** २५ करोड़ ७० लाख भारतीयोंकी तो यह स्वाभाविक वाणी है ही ; लेकिन और भी कितने ही लाख इसे समझ लेते हैं। परिष्कृत हिन्दी तथा उर्दू दोनों मिलकर १८ करोड़ भारतीयोंकी साहित्यिक भाषा है। इस प्रकार संख्याके विचारसे संसारकी सारी भाषाओंमें उत्तरी चीनी तथा अंगरेज़ीके बाद तीसरे नम्बरपर हिन्दी ही आयगी (और सातवेंपर बँगला) (पृष्ठ १२)। लेकिन केवल बोलनेवालोंकी संख्याके विचारसे ही नहीं, वरन् राष्ट्रीय संगठन तथा भारतीय एकताको ध्यानमें रखते हुए भी लेखकने यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि 'हमें एक अखिल भारतीय भाषाकी आवश्यकता है, जिसे अधिसे अधिक भारतीय-समझ लेते हों तथा बोलते हों और जो अखंड भारतकी सामूहिक एकताका प्रतीक हो' (पृष्ठ २२)। 'हमारी वर्तमान दशामें तो हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होनेका दावा कर सकती है' (पृ० २३)। 'इस समय तक वह तो भारतकी नैसर्गिक एकताके महान विचारका प्रतीक बन भी चुकी है' (पृ० २४)। भारतके सांस्कृतिक मानचित्रमें हिन्दीका स्थान निर्धारित करते हुए डाक्टर साहबने कहा है कि हिन्दीका विशेष गौरव घुणाक्षर-न्यायके आधारपर नहीं है, वरन् वह तो उस भागकी भाषा है, जो 'मध्य-देश' कहलाता है तथा जो प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिका मुख्य केन्द्र रहा है। भारतका यही तो वह मर्मस्थान है, जहाँ प्राग्-आर्यन तथा आर्यन संस्कृतिका ब्राह्मण-धर्म द्वारा सम्मिश्रण हुआ था और यहींकी भाषा तो संस्कृत, शौरसेनी, प्राकृत, पालि, शौरसेनी-अपभ्रंश, व्रजभाषा तथा हिन्दीके विविध रूपोंमें परिवर्त्तित होती हुई आर्य-भारतकी आर्य-सांस्कृतिक वाणी बनी थी। इसके बाद भी यही भू-भाग मुग़ल-साम्राज्यका केन्द्रस्थल बना था और उनके द्वारा भी यहींकी भाषाको निरन्तर बल मिलता रहा था (पृ० २०)।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दीके पीछे केवल बोलनेवालोंकी बहुत बड़ी संख्याका ही बल नहीं है, वरन् प्राचीनतम भारतीय संस्कृति एवं विचार-धाराकी समर्थ वाहिनी होनेका पुण्य भी वर्त्तमान है। इस स्पष्ट आलोचनाके साथ ही लेखकने आजकलकी 'हिन्दुस्तानी' तथा 'उर्दू'की खींच-तानपर भी बहुत सुलझे हुए ढंगसे विचार किया है। भाषा और लिपिका साथ भी चोली-दामनका-सा है। अतः लेखकने इस ओर अपना सुझाव रोमनके पक्षमें पेश किया है—इसलिए नहीं कि वह देवनागरीसे किसी प्रकार बढ़कर है, वरन् इसलिए कि उर्दूके अक्षर कितने ही दोषपूर्ण क्यों न हों, उनके साथ मुसलमानोंकी धार्मिक ममता जुड़ी हुई है। देवनागरी-लिपि यद्यपि लगभग २४ करोड़ व्यक्तियों द्वारा व्यवहृत होती है तथा अपने ध्वनि-विन्यास, अक्षरोंकी पूर्णता तथा अन्य वैज्ञानिक विशेषताओंके कारण संसारकी सर्वोत्तम लिपि है (पृ० २६), फिर भी भारतके मुसलमान शायद इसे स्वीकार न करें। रोमनके इस सुझावपर मतभेद हो सकता है ; परन्तु डाक्टर साहबकी शंका निर्मूल नहीं है। वे स्वयं भी मानते हैं कि नए विदेशी (रोमन) अक्षरोंके प्रति विरोधकी भावना दुर्दमनीय भी हो सकती है ; तब उस दशामें सिवा देवनागरीके अपनानेके और कोई उपाय नहीं (पृ० २८)। इस प्रकार कुल मिलाकर यह छोटी-सी पुस्तिका हिन्दीके पाठकोंके लिए उपयोगी सिद्ध होगी, इसमें सन्देह नहीं।

—ललिताप्रसाद सुकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनिकी : रचयिता—श्री सियारामशरण गुप्त ; प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी); पृष्ठ-संख्या ६५ ; मूल्य ॥=) ।

सियारामशरणजी बाह्य जगत्को अपनेमें और अपनेसे बाहर रखकर भी देखते हैं। अतः उनकी रचनाओंमें बाह्य स्थितिका तटस्थ आकलन और उसके प्रति सहानुभूति-दर्शन होता है। परन्तु सामयिक वातावरणके चित्रणका प्राधान्य होनेसे उनकी रचना विशुद्ध आत्मानुभूतिमय रचनाओंमें नहीं हो सकती। 'दैनिकी' इसी कोटिकी कृति है। वे कहते भी हैं—"दम घोंट देनेवाले जिस वातावरणमें आजकल रहना पड़ रहा है, उसमें जो हुई भावनाओंका ही आलेखन इसमें किया (गया) है।" और "इसीसे इसमें 'कवित्व-कला' सम्भव न थी।" फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कविने 'दैनिकी'में अपने समयका सजीव चित्र खींचा है। केवल यथार्थ चित्रणसे भी भावनाओंमें उत्तेजना उत्पन्न हो सकती है। पर 'दैनिकी'के जिन 'दृश्यों'के साथ कविकी सहानुभूतिका मेल हो गया है, वे अधिक प्रभावोत्पादक हो गए हैं। हमें निवेदन, अंजलि-दान, क्षितिज, मेरा घट, सजग द्वन्द्व और बिरजू शीर्षक रचनाओंमें 'दम घोंट देनेवाले' वातावरणकी अच्छी झाँकी मिल जाती है। कवि अपने उद्देश्यमें सफल हुए हैं।

पथिकके स्वर : रचयिता—श्री महेशशरण जौहरी 'ललित'; प्रकाशक—सत्साहित्योद्यान, सियागंज, इन्दौर ; पृष्ठ-संख्या ६३ ; मूल्य १) ।

इसमें भी 'दैनिकी'के समान ही "मानवीय जीवनकी उन घटनाओंका चित्रण है," जो हमारी आँखोंके सामने ही घटती रहती हैं। कविके गीतोंमें बिजली-सी चपलता और क्षणिकता है और है बरसाती नदी-सा पूर-भरा बहाव भी। वे यह भी भूल जाते हैं (अपनी मस्तीमें) कि उनके 'पनघट'पर ठुकराए राहियोंका आना उन्हें क्या बना रहा है! किसी अवगुण्ठिताका "कितने ठुकराए राही, जब आते मेरे पनघटपर" गाना अधिक स्वाभाविक होता। इसमें सन्देह नहीं कि 'स्वरों'में ज्वाला है, यौवन है और कविके भविष्यका सुन्दर सन्देश भी है।

चिनगारी : रचयिता—श्री शैलेन्द्र ; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-मण्डल, ९९ शिवाजी पार्क, बम्बई-२८ ; पृष्ठ-संख्या २६ ; मूल्य ।) ।

इसमें शैलेन्द्रजीकी 'चुनी हुई २० कविताएँ' संकलित हैं, जिनमें सामयिकता उससे भर रही है। मज़दूरोंकी बस्तीका वर्णन देखिए :—

'भिनभिन घिनघिन से भरी हुई,
लथपथ रपटीली सनी हुई।
लम्बी-चौड़ी, अंधेर-भरी, कहलाती मालिककी चालें,
जो पिंजड़ोंसे भी बदतर हैं, रह सकते खटमल-मच्छर हैं,
ये दानवकी पैनी दाढ़ें, मानव की हड्डी चूस रहीं।'

कविकी रूसी आल्हा, कार्ल मार्क्सके प्रति और मज़दूर-किसानोंके प्रति शीर्षक रचनाओंमें काफ़ी उन्मेष है। आजको कागज़पर पढ़नेवालोंका इन चलती हुई रचनाओंसे निश्चय ही संतोष होगा। कविकी भाषामें गति है, ओज है।

अर्चन : लेखक और प्रकाशक—श्री हरगोविन्द गुप्त ; प्रेम-मंदिर, चिरगाँव (झाँसी) ; मूल्य ।=) ।

चैत्र शुक्ल ६ स्व० गणेशशंकरजी विद्यार्थीकी बरसीका दिन है। उस दिन उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यकी वेदीपर अपने नश्वर शरीरकी आहुति दी थी। उसी पुण्य-बलिदानकी स्मृतिमें लेखकने 'अर्चन'की सृष्टि की है। मानवताकी रक्षाके लिए स्व० विद्यार्थीजीने अपने प्राणोंपर खेलकर जो धैर्य, शौर्य और त्यागका आदर्श प्रस्तुत किया, उसने कई हृदयोंमें प्रेरणा भरी है। 'अर्चन'की पंक्तियोंमें यही स्वर है :—

तेरे पुण्य-क्षेत्रपर आकर मेरा मानस-पद्म खिला ;
एक नया उत्साह मिला है, एक नया उल्लास मिला।

लेखककी श्रद्धांजलिके फूलोंमें स्वच्छता एवं सहज सुवास है। भावनाकी 'वस्तु' आलोचनाका विषय नहीं हो सकती। लेखक सहृदय हैं, भावप्रवण हैं। —विनयमोहन शर्मा

फलाहार-चिकित्सा : लेखक—कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय, आयुर्वेद-विशारद ; प्रकाशक—महेन्द्र-रसायनशाला, कटरा, प्रयाग ; पृष्ठ-संख्या २०९ ; मूल्य २।-), सजिल्द।

हमारे भोजनमें फलोंका प्रमुख स्थान है। विभिन्न मौसमोंमें हम विभिन्न फल खाते भी हैं ; पर किस फलमें कौन-से सार-पदार्थोंकी प्रधानता है, यह नहीं जानते। लेखक महोदयने प्रस्तुत पुस्तकमें फलों-सम्बन्धी सारी बातोंकी जानकारी पाण्डित्यपूर्ण ढंगसे कराई है। इस पुस्तकमें १४ अध्याय हैं, जिनमें फलोंकी क़िस्में, उनमें निहित तत्त्व, उनका विविध उपयोग, गूदेदार फल, रसदार फल, नट्स, रोग-निवारणमें फलोंकी उपयोगिता आदिका वर्णन किया गया है और अन्तमें विश्लेषण-तालिका दी गई है। लेखक स्वयं अनुभवी चिकित्सक जान पड़ते हैं, इसीसे यह पुस्तक इतनी सुन्दर बन पाई है। यह अपने ढंगकी बिल्कुल नई चीज़ है। इसके पढ़नेसे फलोंके बारेमें बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है। ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर पुस्तकके प्रकाशनके लिए लेखक बधाईके पात्र हैं। पुस्तकका मूल्य कुछ अधिक है। यदि मूल्य कम रखा जाता, तो सम्भवतः इसका अधिक प्रचार होता। —श्रीपति पाण्डेय

नव तारा : लेखक—श्री उदयराजसिंह ; प्रकाशक—श्री राजराजेश्वरी-साहित्य-मंदिर, सूर्यपुरा, (शाहाबाद—बिहार) ; पृष्ठ-संख्या १०७ ; मूल्य १।), अजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखककी पाँच कहानियाँ और तीन एकांकी संग्रहीत हैं। यद्यपि लेखक साहित्य-क्षेत्रमें अभी नए हैं—यह उनका प्रथम संग्रह है—पर उनमें प्रतिभा है, ऐसा उनकी रचनाओंसे स्पष्ट प्रतीत होता है। सूझ उनकी गहरी है। गरीबी और राष्ट्रीयताको लेकर उन्होंने अपनी कहानियों और एकांकियोंका सृजन किया है। 'कविकी ज्वालामें' उन्होंने इस युगके गरीबीकी चादरमें लिपटे एक साहित्यिककी मनोदशाका चित्रण किया है और लगभग वही चीज़ 'नग्न रूप' कहानीमें मानो नग्न रूपमें दिखाई गई है। संभवतः लेखकने इस युगसे भी आगेके युगकी कल्पना की है, जहाँ घोर आर्थिक संकटमें पड़कर एक कलाकार एक पैसेका भूजा खरीदनेके लिए दो आनेकी पेंसिल बेचनेको बाध्य होता है। इस चित्रणमें थोड़ी-सी अतिशयोक्ति हो गई है। 'चित्र और कलाकार'में संसारकी ठोस वास्तविकताओंको लेकर कतिपय चित्र खींचे गए हैं। 'बन्दीका मोह' संग्रहकी सबसे सुन्दर कहानी कही जा सकती है।

तीनों एकांकी भी अपने-अपने ढंगके अच्छे और मंचपर सुगमतासे खेले जा सकते हैं। उनमें से एक प्रतियोगितामें पुरस्कृत भी हो चुका है। कहीं-कहींपर लेखकने कुछ अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग भी किया है, जो खटकता है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि लेखकका भविष्य उज्ज्वल है। पुस्तककी छपाई अत्यन्त साफ़ और शुद्ध है। —यशपाल

The Tyranny of Colour (वर्ण-व्यतिपात) : लेखक और प्रकाशक—श्री पी० एस० जोशी, ४० ब्री-स्ट्रीट, न्यू-टाउन, जोहान्सबर्ग (ट्रांसवाल) ; पृष्ठ-संख्या ३१८।

इधर कुछ कालसे प्रवासी-साहित्य-प्रणयनकी प्रगति मंद पड़ गई है। इस शताब्दीके प्रथम चरणमें प्रवासी-साहित्य-सृजनका कार्य सन्तोषजनक हुआ था। 'प्रवासी भारतवासी', 'फिजीमें मेरे २१ वर्ष', 'फिजीकी समस्या', 'केनियामें हिन्दुस्थानी', 'दक्षिण-अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास' इत्यादि उसी कालकी कृतियाँ हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अंगरेज़ीके उपरान्त हिन्दीमें ही इस विषयका थोड़ा-बहुत साहित्य मिलता है। पर अभी तक अधिकांशतः प्रवासी भारतीयोंकी केवल राजनीतिक विपत्तियोंका इतिवृत्त ही तैयार हो सका है, उनकी धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी समस्याएँ अन्धकारमें ही हैं। इसका मुख्य कारण है अधिकारी लेखकोंका अभाव और प्रकाशकोंकी उदासीनता। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी-साहित्यका यह आवश्यक अंग अधूरा ही रह गया है।

कई साल पहले ट्रांसवाल-प्रदेशके जोहान्सबर्ग-निवासी प्रसिद्ध गुजराती-साहित्य-सेवी श्री प्राणशंकर सोमेश्वर जोशीने गुजरातीमें 'रंग द्वेषनो दुर्ग' नामक एक ग्रंथ लिखकर अहमदाबादके गुर्जर-ग्रंथरत्न-कार्यालयसे प्रकाशित कराया था। इसकी भूमिका गुजरातके प्रख्यात नेता और साहित्यिक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने लिखी थी। इस ग्रंथका देश और विदेशोंके गुजराती-भाषा-भाषियोंमें पर्याप्त प्रचार और सत्कार हुआ। इससे जोशीजीका उत्साह बढ़ा और उन्होंने उसीके आधारपर अंगरेज़ीमें 'The Tyranny of Colour' (अर्थात वर्ण-व्यतिपात) ग्रंथ लिखकर हाल ही में प्रकाशित किया है। इसकी भाषा सरल और सुबोध, शैली सरस और सजीव, विवेचन-पद्धति बलवती, प्रवाहपूर्ण और गम्भीर है। पुस्तक प्रवासियोंके प्रथम पथ-प्रदर्शक एवं सत्याग्रहके प्रवर्त्तक महात्मा गांधीको समर्पित की गई है। इसमें विशेषतः दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी भारतीयोंकी दयनीय दशाका दिग्दर्शन है, क्योंकि आधुनिक युगमें वही उपनिवेश वर्ण-द्वेषका गढ़ है। यह प्रवासी भारतीयोंका कोई इतिहास नहीं है, किन्तु रंग-द्वेषका पर्दा-फाश करनेके लिए प्रसंगानुसार ऐतिहासिक तथ्योंका सहारा लिया गया है। फिलस्तीनके यहूदी वहाँ अपने श्वेत चर्मके प्रतापसे विशुद्ध यूरोपियन बन गए हैं और समानाधिकार भोगते हैं ; किन्तु भारतीय और चीनी तथा अन्य सभी राष्ट्रवाले, जिनके चमड़े सफ़ेद नहीं हैं, दक्षिण-अफ्रीकामें नीच और अछूत समझे जाते हैं और अपमानकी ठोकरें खाते हैं। इस साल तो भारतकी भावनाओंको ठुकराकर पृथक्करण क़ानून (Segregation Act) भी वहाँकी पार्लमेण्टमें पास हो गया है—जब कि अफ्रीकाकी रक्षाके लिए भारतीय सिपाही अपना रक्त बहा रहे थे।

जोशीजीकी यह पुस्तक सामयिक, उपादेय और महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रंथकी रचनाकर उन्होंने अपने देश और राष्ट्रकी बहुत बड़ी सेवा की है। इसे प्रत्येक भारतीयको पढ़ना चाहिए और अपनी सामयिक स्थितिपर ध्यान देना चाहिए। जोशीजीने अपने मित्रोंकी सहायतासे इस ग्रंथकी सैकड़ों प्रतियाँ इंग्लैण्ड, अमरीका और भारतके मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंके पास भेंट-रूपसे भेजकर अत्यन्त श्रेयस्कर कार्य किया है। —भवानीदयाल संन्यासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

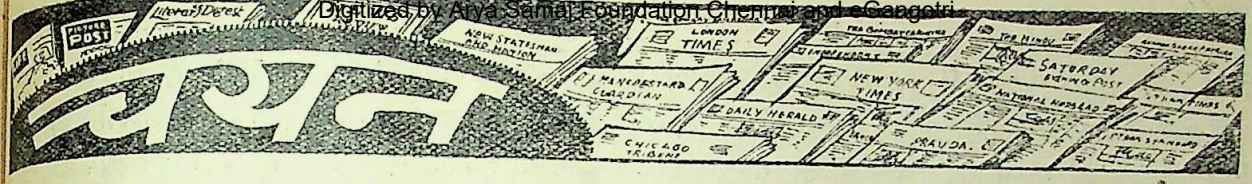

नगर-पिताका 'सर' बननेसे इन्कार !

ग्लासगोके नगर-पिता जान एम० बिगरके अभी हाल ही में 'सर' बननेसे इन्कार कर देनेका बड़ा मनोरंजक विवरण लन्दनके 'न्यूज़ रिव्यू' (१ जुलाई, १९४३) में प्रकाशित हुआ है। कहते हैं कि बादशाहकी वर्षगाँठपर प्रकाशित होनेवाली उपाधियोंकी सूची जब तैयार की जा रही थी, तो ग्लासगोके 'लार्ड प्रोवोस्ट' जान एम० बिगरकी अनुमति चाही गई कि यदि उनका नाम 'सर' उपाधिसे विभूषित होनेवाले लोगोंमें शामिल कर लिया जाय, तो उन्हें कोई आपत्ति तो न होगी ? बिगरने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'नहीं, मैं अपना नाम उस सूचीमें नहीं छपने दूँगा।'

बिगरके पूर्ववर्ती पैट डोलनको जब 'सर' बनाया गया था, तो कहा गया कि यह उनका नहीं, ग्लासगोका सम्मान है। पर बिगरने इससे असहमति प्रकट की और कहा—"व्यक्तिगत रूपसे मैं उपाधियोंकी परवा नहीं करता। साथ ही समाजवादी दलका यह विधान भी है कि कार्पोरेशनका कोई समाजवादी सदस्य उपाधियाँ स्वीकार न करे। 'सर जान'के बजाय मैं 'मिस्टर बिगर' कहलाना अधिक पसन्द करता हूँ। मैं अपने नगर और उसके कृपालु नागरिकोंका 'लार्ड प्रोवोस्ट' हूँ, यही मेरे लिए सबसे बड़ा सम्मान है।"

बिगर इस समय ६० वर्षके हैं। उनके बाल सफ़ेद, चेहरा सदा हँसता हुआ और बड़े मिलनसार स्वभावके हैं। वे एक बड़े ग़रीब घरके साधारण शिक्षित व्यक्ति हैं। अपने सम्बन्धी किसी मोचीकी दुकानमें होनेवाली बातोंको सुनकर वे समाजवादी बने। ग्लासगोके आप प्रमुख मज़दूर-नेता हैं। वहाँकी सहयोग-समितिके आप जीवन-भर हिसाब-किताब-परीक्षक रहे हैं। कई वर्षों तक आप वहाँके हाकिम भी रहे हैं। एक बार जब समूचे ग्लासगोमें शराब-बन्दी हुई, तो आप उससे बरी कर दिए गए थे। पता चलनेपर आपने कहा कि या तो शराब-बन्दी सभी पर लागू होगी या किसीपर भी नहीं।

गांधीजीने कनाडियन उड़ाकोंकी जान बचाई

तीन युवक कनाडियन उड़ाके एक वायुयानपर बैठे कहीं जा रहे थे। ग्रीनलैण्डके तटपर उनके वायुयानको बाध्य होकर एक ग्लेशियरपर उतरना पड़ा। बिस्कुटकी एक पेटीके सिवा उनके पास खानेके लिए कोई वस्तु नहीं थी। उस कठिन शीतमें उन्हें १४ दिन गुज़ारने पड़े, तब कहीं उनकी सहायताके लिए लोग पहुँचे। इन कनाडियन युवकोंने एक पत्रमें अपना अनुभव प्रकाशित किया है और बतलाया है कि वे सम्पूर्ण रात बातें करनेमें गुज़ार देते थे। २४ घंटेपर एक-एक बिस्कुट तीनों खा लेते थे। उन्होंने लिखा है कि हम आपसमें गांधीजीकी चर्चा करने लगे और कहने लगे कि देखो, उपवास करके भी मनुष्य कितने दिनों तक जीवित रह सकता है। गांधीजीके उदाहरणसे उनमें आशा और उत्साह उत्पन्न हुआ और वे सोचने लगे कि जब गांधीजी ५०-६० दिन तक बिना कुछ खाए रह सकते हैं, तो हम लोग भी बिना भोजनके काफ़ी दिनों तक जीवित बने रह सकते हैं। यदि गांधीजीका उदाहरण उनके सामने न होता, तो सम्भव था कि वे हिम्मत हार जाते और घबराकर प्राण खो बैठते। ('भारत')

एक राजस्थानी सूरदास

खेतड़ीमें प्रज्ञाचक्षु राज्यमिश्र पण्डित दुर्गादत्तजी शास्त्री संस्कृतके प्रगाढ़ विद्वान तो थे ही (जिनके द्वारा नवद्वीप, बनारस तथा लोहार्गलमें संस्कृत-पाठशालाएँ चल रही हैं), अब श्री नाथूराम शर्मा भी ग्रेजुएट हो गए हैं। आप जयपुरके समीपवर्ती लोयल नामक ग्रामके निवासी हैं। श्री नाथूरामका २२ नवंबर, १९१० को लोयलमें जन्म हुआ। अपने जन्म-ग्रहणके ११वें महीनेमें ही नेत्र-पीड़ा होकर आपकी दोनों आँखें जाती रहीं और इस प्रकार बिलकुल अन्धे हो जानेसे आपका जीवन आपके घरवालोंके लिए भार-स्वरूप हो गया। सन् १९१० से १९२२ ई० तक आपको लोयलमें ही रहना पड़ा। इसके अनन्तर आप अपने पिताके पास झरिया चले गए। वहाँ झरियाके एक प्रभावशाली व्यवसायीसे आपको प्रोत्साहन मिला। आरम्भमें आपने संस्कृतके अध्ययनका श्रीगणेश किया। विद्यार्थियोंसे ही पूछ-ताछकर सारस्वत पढ़ा। सेठ हरदेवदास स्वयं भी आपको पढ़ाते थे। रुद्री तथा श्रीमद्भगवद्गीता आपने उन्हींसे पढ़ीं। सारस्वत समाप्त करके आपने चन्द्रिकामें (१९२९-३० में) प्रवेश किया।

सन् १९३०-३२ में कुछ सुशिक्षित सज्जनोंके अधिक सम्पर्कमें रहनेका आपको सुयोग मिला और गुण-संचयको अपना प्रधान लक्ष्य मानकर आपने अंगरेज़ी भाषाका मौखिक अध्ययन आरम्भ किया। इसीके साथ संस्कृत, बँगला तथा हिन्दीके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका ज्ञान आपने अपने श्रुतिगह्वर द्वारा लाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। सितम्बर, १९३२ में (अपनी उम्रके २२वें वर्षमें) आप पटनाके अन्ध-विद्यालयमें नियमित रूपसे अंगरेज़ी पढ़नेके लिए प्रविष्ट हुए। यहाँसे साढ़े तीन वर्षमें ही तैयारी करके मैट्रिक्युलेशनकी परीक्षामें बैठ गए और सन् १९३६ में दूसरी श्रेणीमें पास हुए। इसके बाद आप पटना बी० एन० कालेजमें प्रविष्ट हुए और सन् १९४० में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। ग्रेजुएट होनेके साथ-साथ आप संगीतके जानकार हैं, कविता करते हैं और वक्तृत्व-कलामें भी प्रवीण हैं। मारवाड़ी, संस्कृत और अंगरेज़ीके अतिरिक्त बँगला, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाएँ भी आप जानते हैं। ब्रेल-लिपिमें लिख भी सकते हैं और शतरंजके खिलाड़ी हैं। ('हिन्दुस्तान')

रेलोंमें डेढ़ लाख स्त्रियाँ

इंग्लैण्डमें रेल्वे लाइनके चार बड़े विभाग हैं, जिनमें पोस्ट-आफ़िस और टेलीफ़ोनके सिवा अधिकसे अधिक मज़दूर काम करते हैं। लन्दन और नार्थ-ईस्टर्न रेल्वेमे १०४,००० मज़दूर काम करते हैं। शान्ति-कालमें इस लाइनमें ९ हज़ारसे अधिक स्त्रियाँ काम करती हैं। उस समय उनका काम प्रायः क्लार्कीका रहता है। उनमें से कुछ स्त्रियाँ सफ़ाई, पालिश आदिका भी काम करती हैं। आमतौरपर शान्ति-कालमें इंग्लैण्डके भारी धन्धोंमें स्त्रियोंको कोई स्थान नहीं मिलता; किन्तु आजकल युद्धके दिनोंमें उक्त रेल्वे लाइनमें काम करनेवाली स्त्रियोंकी संख्या ३० हज़ारसे भी अधिक है, जिनमें से २१ हज़ारसे अधिक स्त्रियाँ युद्ध-सम्बन्धी काम करती हैं। बिल-पोस्टिंग, पोर्टरेज, सिगनेलिंग, इंजनकी सफ़ाई, इंजन-शेडका काम, प्लेट रखना, सिगनल और टेलीग्राफ़की दुरुस्ती, रंगसाज़ी, इलेक्ट्रिक लाइट, फ्रेंच पालिश करना, वेल्डिंग और मशीन आदिके बीसों काम हैं, जिनमें आज वहाँकी स्त्रियाँ लगी हैं। इनमें कई इंजीनियरिंगके धन्धे भी हैं, जिनमें कार्य-कुशलताकी विशेष ज़रूरत है। पर कहना न होगा कि ब्रिटेनकी स्त्रियाँ इनमें भी सर्वथा योग्य सिद्ध हुई हैं। वे बड़े परिश्रमसे काम करती हैं। वे सब तरहका भारी काम भी करती हैं। इंजन बनानेके कारखानोंमें वे बिजली और हथौड़े चलानेके काममें तो कहीं-कहीं पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक निपुणतासे काम करती हैं। आज ब्रिटेनमें डेढ़ लाख स्त्रियाँ रेलोंके भारी कामोंमें लगी हैं और कोई ऐसा काम नहीं है, जिसमें उन्होंने अपनी योग्यता सिद्ध न की हो। —जी० एस० पथिक

भारत, ब्रिटेन और अमरीकामें मँहगाई

भारतमें रहन सहनका खर्च मँहगाईकी भयंकरताके कारण दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है। इंग्लैण्ड और अमरीकाकी सरकारोंने अपने देशोंको आर्थिक दुरवस्थासे बचानेके लिए जो प्रयत्न किए, उनके फल-स्वरूप वहाँ मँहगाईकी मार इतनी ज़बरदस्त नहीं हो पाई, जितनी कि यहाँ हो रही है। यहाँकी सरकारके पास देशी और विदेशी अर्थ-विशेषज्ञ बरसोंसे मौजूद हैं; परन्तु वे देशकी आर्थिक नीति इतनी अच्छी नहीं बना सके, जिससे बंगालका यह संकट टल सकता। आज बंगालकी जो लज्जाजनक हालत हो रही है, वह वर्त्तमान नीतिसे—जैसा कि राज्य-परिषदकी बैठककी कार्यवाहीसे मालूम होता है—किसी भी दिन देश-व्यापी हो सकती है। मँहगाईके तुलनात्मक आँकड़े 'ईस्टर्न इकानामिस्ट' (१३ अगस्त) से नीचे उद्धृत किए जाते हैं:—

	भारत		अमरीका		इंग्लैण्ड	
	थोक क़ीमत	रहन-सहनका खर्च	थोक क़ीमत	रहन-सहनका खर्च	थोक क़ीमत	रहन-सहनका खर्च
१९३९	७५	१०६	७७	९९	१०३	१५८
१९४०	८१	११२	७९	१००	१३७	१८४
१९४१	९४	१२२	८७	१०५	१५३	१९९
अक्टूबर, '४१	१०५	१२५	९२	१०९	१५५	१९९
जनवरी, '४२	१२७	१३७	९६	११२	१५६	२००
अप्रैल, '४२	१३५	१३२	९९	११५	१६०	२००
जुलाई, '४२	१५५	१६८	९९	११७	१६०	२००
अक्टूबर, '४२	१६१	१७२	१००	११९	१६०	२००
मार्च, '४३	१७७	२२५	...	...	...	... ('प्रताप')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya-Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

बंगालके अकालकी भीषणता

कलकत्ता और उसके आसपासके स्थानोंमें भुखमरोंकी सहा-के लिए होनेवाले सरकारी और ग़ैरसरकारी प्रयत्नोंकी धूमके बावजूद अकाल-जनित स्थिति भीषणसे भीषणतर होती चली जा रही है। भूखोंकी मृत्यु-संख्या बराबर बढ़ रही है, जिसके फल-स्वरूप श्मशान-घाटों और कब्रिस्तानोंमें भी मुर्दोंके लिए स्थाना-भाव हो चला है! कलकत्ता-कार्पोरेशनके एक सदस्यने उसकी ता २३ सितम्बरकी बैठकमें कहा कि नीमतल्ला-घाटपर उन्होंने लाशें पिछले दिनसे सड़ती हुई देखीं! लाशोंको गाड़नेके लिए आदमियों और जलानेके लिए ईंधनकी भी कमी हो रही है। मुर्दा ढोनेवाले अनेक सरकारी और ग़ैरसरकारी दलोंके लगातार काम करनेपर भी कई लाशें घण्टों आम रास्तोंपर पड़ी रहा करती हैं। एक ओर सरकार भिखमंगोंको गाँवोंमें वापस भेज रही है, उन्हें कामपर लगानेकी घोषणाएँ कर रही है और दूसरी ओर प्राण-शेष कंकालोंका कभी खत्म न होनेवाला अप्रिय जुलूस निरन्तर कलकत्तेके गली-रास्तोंमें बहता हुआ शहरमें फैल रहा है। उनके साथ ही शहरकी गन्दगी भी बढ़ती जा रही है।

इसका प्रमुख कारण यह है कि बंगालके ग्रामीण क्षेत्रोंकी स्थिति और भी भयंकर हो चली है और सिवा तड़प-तड़पकर मरनेके ग्रामीणोंके लिए वहाँ कोई आशा-आश्रय नहीं बचा है। दिनाजपुर, बाँकुड़ा, फ़रीदपुर, ढाका आदि ज़िलोंकी स्थिति इतनी भीषण हो चली है कि वहाँ लोग जीवित कैसे हैं, यही अचरजकी बात है। रंगपुर, चाँदपुर, मुन्शीगंज, ढाका, नारायणगंज, बारीपुर, फ़रीदपुर, तंगेल आदिमें छोटे पैमानेपर—किन्तु अधिक नग्न और भीषण रूपमें—कलकत्तेके मृत्यु-काण्डोंकी पुनरावृत्तियाँ हो रही हैं। बाज़ारोंसे अनाज ग़ायब होता जा रहा है (यद्यपि चोरीसे मुन्शीगंज आदिमें वह ६०)-७०) रु० मन तक बिक भी रहा है!) और भुखमरोंकी संख्या तेज़ीसे बढ़ रही है। ग़रीब अपनी सन्तानों और स्त्रियों तकको बेच रहे हैं! मुर्दों और अशक्तोंको कुत्ते तथा सियार नोच-नोचकर खा रहे हैं। मध्य-वर्गके लोगोंकी—जो न भीख माँग सकते हैं और न सहायता पानेकी गरज़से किसीको अपनी कष्ट-कथा ही सुना सकते हैं—हालत तो और भी करुणापूर्ण हो रही है। इस तरह हमारी आँखोंके सामने धीरे-धीरे ग़ुलामोंका यह देश भिखमंगों और मुर्दोंका देश बनता जा रहा है और हम अवाक्-असहाय बैठे-बैठे यह सब देख रहे हैं। विदेशी शासनका अभिशाप और स्वदेशी पूँजीवादका पाप मानो भुख-मरोंकी ठठरियों और लाशोंके रूपमें आज मुँह बोल रहा है!

मंत्रिमंडलका निकम्मापन

एक ओर पिछले दिनों कलकत्तेके संवादपत्रोंमें भूखसे मरनेवालोंके आँकड़े, करुणापूर्ण विवरण, रोमांचकारी चित्र और सहायताके लिए की जानेवाली मार्मिक अपीलोंके विज्ञापन छप रहे थे तथा दूसरी ओर, पासवाले कालमोंमें ही, बंगाल-असेंबली और कौंसिलकी वितंडावादी कार्यवाही भी छप रही थी। पहले विवरणको देखकर जहाँ पाठकका हृदय बैठ-सा जाता था और आँखें भर आती थीं; दूसरेको पढ़कर प्रान्तीय स्वाधीनताके ढकोसलेपर वह झुँझला उठता था। दोनों धारा-सभाओंमें एकके बाद एक सदस्यने उठकर मंत्रिमंडलकी अयोग्यता, अकर्म-ण्यता, कुप्रबन्ध, अधिकारोंके दुरुपयोग और बेईमानी तकके गम्भीर आरोप किए; मंत्रियोंके वक्तव्योंकी सचाईपर शक किया; उन्हें उनके यथार्थ न होनेकी चुनौती दी और उनके यह कहनेपर कि अमुक-अमुक स्थानोंमें यह-वह सुविधा की गई है, स्पष्ट कहा कि बाज़ारोंसे चावल एकदम ग़ायब हो रहा है, अथवा चोर-बाज़ारोंमें वह ऊँची दरोंपर बेचा जा रहा है, आदि। पर बावजूद इन सारी आलोचनाओंके वोट लिए जानेपर बहुमत मंत्रिमंडलको ही मिला! इस विडम्बनासे हम अपने-आपको यह माननेके लिए धोखा नहीं दे सकते कि वास्तवमें मंत्रि-मंडलको प्रान्तका विश्वास प्राप्त है, उसने खाद्य-समस्याको संतोष-जनक रूपसे हल किया है, अथवा वह जो कुछ कर रहा है, वह प्रान्तको स्वीकार है। असेंबलीमें उसके विरुद्ध जो गम्भीर आरोप किए गए हैं, रेलोंने विज्ञापन छपवाकर अपनी जो निर्दो-षिता घोषित की है तथा पंजाब-सरकारके कुछ ज़िम्मेदार मंत्रियोंने उसकी खाद्य-नीतिके बारेमें जो-कुछ कहा है, उनसे जनतामें शंकाएँ पैदा होना स्वाभाविक है। विरोधी-दलका मुँह वह भले ही बन्द कर दे; लेकिन बिना निष्पक्ष जाँचके इन शंकाओंका समाधान संभव नहीं।

पर, आजकी स्थितिको देखते हुए, विरोधी-दलको भी हम किसी तरह बधाई नहीं दे सकते। इसमें कोई शक नहीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने प्रान्तकी वास्तविक वस्तु-स्थिति धारा-सभाके सामने लाकर तथा मंत्रिमंडलके कई आपत्तिजनक कार्योंका भण्डाफोड़कर जनताकी काफ़ी बड़ी सेवा की है ; पर साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि उसने खाद्य-संकटको कम करनेमें कोई क्रियात्मक या ठोस सहयोग नहीं दिया। धारा-सभाओंकी कार्यवाहीका अधिकांश मंत्रियों और भूतपूर्व मंत्रियोंकी पारस्परिक तू-तू मैं-मैं तथा आरोप-प्रत्यारोपोंका ही रोना था। क्या जनताने इसी लिए उन्हें अपना प्रतिनिधि चुनकर धारा-संभाओंमें भेजा है? इस समय प्रान्तकी प्राथमिक आवश्यकता यह है कि सब सदस्य अपने वैयक्तिक और दलगत मतभेदों और विरोध-वैमनस्यको भुलाकर एक ऐसी ठोस, जनताका विश्वास-प्राप्त तथा सर्वदल-सरकार बनायँ, जिसका प्रमुख कार्य और कर्त्तव्य हो अकालकी विभीषिकासे प्रान्तका पिण्ड छुड़ाना। क्या हम आशा करें कि बंगालके सभी धाराशास्त्री इसपर ध्यान देकर अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे?

और यह क्रूरतापूर्ण मज़ाक!

गत २७ सितम्बरको बंगाल-असेम्बलीमें डा० नलिनाक्ष सान्यालने एक बड़ी ही गम्भीर घटनाकी ओर गृहका ध्यान आकृष्ट किया। आपने कहा कि दिनके २॥ बजे असेम्बली-भवनकी ओर आते हुए कई भुखमरोंको पुलिसने बुरी तरह मारा-पीटा और ५ को गिरफ़्तार भी किया। आपने बतलाया कि गृहके कई सदस्योंने पुलिसको उनके साथ बदसलूकी करते देखा। श्री पी० बनर्जी तथा मौलवी अज़हर-अलीने भी इसी तरहकी घटनाओंका ज़िक्र किया।

इसके उत्तरमें प्रधान-मन्त्रीने इस घटनासे अनभिज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"लेकिन मुझे एक ऐसी घटना मालूम है, जिसमें कुछ लोगोंने—पता नहीं, वे कौन थे—बड़ा ही घृणित कार्य किया है। जब मैं १२-२० या १२-३० पर इस भवनसे जा रहा था, तो मैंने असेम्बली-भवनके बाहर बहुतसे भुखमरोंको जमा देखा। पूछनेपर मालूम हुआ कि उन सबके पास ऐसे कार्ड थे, जिनपर लिखा हुआ था कि अगर वे असेम्बली-भवन आयँ, तो उन्हें कपड़ा और खाना दिया जायगा। यही नहीं, इनके साथ कुछ और भी किया गया, जो इससे भी अधिक घृणास्पद है। जिन कार्डोंसे इन लोगोंको खाद्य-पदार्थ मिलते थे, वे लेकर इन्हें ये फर्ज़ी कार्ड दे दिए गए थे। इनके यहाँ आनेका परिणाम यह हुआ कि उस मिलनेवाले खाद्यसे भी ये वंचित रह गए।"

मंत्रिमंडलपर गम्भीर आरोप

साधारण-ग़लतियों, अयोग्यताओं, धाँधली आदिके अलावा बंगालके वर्त्तमान मन्त्रिमंडलपर प्रधान-रूपसे तीन गम्भीर आरोप किए गए हैं—(१) उसने बिना सार्वजनिक रूपसे टेंडर माँगे, एक ऐसी मुस्लिम-फर्मको अपना चावल खरीदनेका एजेंट नियुक्त किया, जिसका मुस्लिम-लीगसे सम्बन्ध बताया जाता है। बंगालके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री श्री फज़लुलहक़ने गत २९ सितम्बरके 'अमृतबाज़ार-पत्रिका'में निकले अपने वक्तव्यमें तो यहाँ तक कहा है कि फर्मकी ओरसे दाम-वसूलीके लिए जो वाउचर पेश किए गए हैं, उनमें उल्लिखित दरें असली दरें नहीं हैं। इसकी जाँचके लिए वे बंगालके विभिन्न भागोंका दौरा भी कर रहे हैं। (२) पंजाबके खाद्य-मन्त्री सरदार बलदेवसिंहने गत १५ सितम्बरको लाहौरमें एसोशिएटेड-प्रेसके प्रतिनिधिके भेंट करनेपर कहा—"मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं कि या तो बंगाल-सरकार या मध्यस्थ, स्टाकिस्ट और मिलवाले गेहूँ और गेहूँकी चीज़ोंमें मुनाफ़ा कमा रहे हैं, अन्यथा पंजाब और बंगालमें गेहूँकी दरें समान होनी चाहिएँ।...गत १५ अगस्तसे पंजाब ५०,००० टन गेहूँ और गेहूँकी चीज़ें भेज चुका है। सिर्फ़ इसपर ही बंगाल-सरकारने लगभग २० लाख रु० मुनाफ़ा कमाया है।" पंजाबके सिविलियन सर कौलिन गारबेटने, जो १ अक्टूबरसे उत्तरी भारतके रीजनल फूड-कन्ट्रोलर नियुक्त हुए हैं, गत २८ सितम्बरको कलकत्तेके रोटरी-क्लबमें अपने भाषणके दौरानमें बतलाया—"बंगाल-सरकारने, शायद किसी ग़लत हिसाबसे, अभी हाल ही में पंजाब-सरकारसे हुए खाद्य-पदार्थोंके कारोबारमें ४० लाखसे नीचे ही मुनाफ़ा कमाया है।" (३) मन्त्रियोंके वक्तव्योंके बावजूद असेम्बलीमें कई सदस्योंने उन्हें यह चुनौती दी कि बाज़ारोंमें अनाज निर्धारित मूल्यपर नहीं मिलता या बहुत कम मात्रामें मिलता है। अब लाहौरके सहयोगी 'सण्डे ट्रिब्यून'ने अपने गत २६ सितम्बरके अंकमें लिखा है—"दिल्लीमें बार-बार इस बातपर ज़ोर दिया जा रहा है कि २,००० टनसे अधिक अनाज प्रतिदिन बंगाल जा रहा है; लेकिन बंगाल-सरकार उसकी खपतके सम्बन्धमें दिल्लीके सन्तोष लायक सूचना नहीं दे सकी है।"

ऐसे गाढ़े संकटके समय जब कि प्रत्येक सरकारी-ग़ैर-सरकारी व्यक्ति और संस्थाका सारा ध्यान एकमात्र खाद्य-संकटको दूर करनेमें लगाना चाहिए, हम आपसी झगड़ों तथा आरोप-प्रत्यारोपोंकी जाँचमें समय और शक्तिका नष्ट किया जाना ठीक नहीं समझते। पर ये आरोप इतने गम्भीर हैं और इनका खाद्य-संकटके बढ़ने या जारी रहनेसे इतना निकट सम्बन्ध है कि हम इनकी उपेक्षाको हानिकर समझते हैं। अतः हम चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि सरकार किसी सैरसरकारी या अर्द्ध-सरकारी कमीशन द्वारा शीघ्रातिशीघ्र इनकी निष्पक्ष जाँच करवाय।

विदेशोंको अँधेरेमें रखनेका यत्न

सितम्बरके ३० दिनोंमें कलकत्तेमें २००० से ऊपर व्यक्ति-के भूखसे मरनेके आँकड़े सरकार द्वारा स्थानीय पत्रोंमें प्रका-शित कराए गए हैं। २५ सितम्बरको समाप्त होनेवाले अकेले सप्ताहमें १४९ व्यक्ति मरे! इनमें ११ और १२ तारीखको मरे व्यक्तियोंकी संख्या शामिल नहीं है, क्योंकि इन दो दिनोंमें आँकड़े प्रकाशित कराना अकस्मात् स्थगित कर दिया गया था। इसके विरुद्ध जनता और पत्रोंमें फैले असन्तोष और क्षोभके परिणाम-स्वरूप १३ से फिर उनका प्रकाशन जारी किया गया।

लाहौरके अधगोरे पत्र 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट'का कहना है—"विदेशी पत्रोंके संवाददाताओंको भूखोंकी मृत्यु और अस्पतालोंमें भर्ती कराए जानेवाले अति दुर्बल अथवा बेहोश व्यक्तियोंकी संख्या भी अपने पत्रोंको भेजनेकी आज्ञा नहीं है। सरकारी उपायों—जो अक्सर सदभिलाषाएँ-मात्र होते हैं—के वर्णनके साथ यदि वे नरमीसे अकाल-सम्बन्धी तथ्य लिखें, तो भी भेज सकते हैं।" इसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि ये संवाददाता ब्रिटेन और अमरीकाकी जनताको—जिसे बराबर यही कहा जाता रहा है कि युद्ध-स्थितिके कारण भारतमें थोड़ा-सा अन्नाभाव है—असली वस्तु-स्थितिकी जानकारी करा निर्भ्रान्त कर दें! सैंसरकी ढालसे अपने-आपको बचाने और बंगालकी अत्यधिक स्थितिसे विदेशोंको अँधेरेमें रखनेकी इस दुर्नीतिकी जितनी भी निन्दा की जाय, कम है। इससे विदेशोंमें यह प्रतिक्रिया हो सकती है कि स्थिति विशेष गम्भीर है और सर-कार अपना कर्त्तव्य भलीभाँति पालन नहीं कर रही। इसीलिए अकालकी खबरोंका यह 'ब्लैक-आउट' हो रहा है।

इसके विपरीत १८७३-७४ में पड़े अकालके समय विदेशी संवाददाताओंको क्या सुविधाएँ दी गई थीं, यह ज़रा बंगालके तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर सर रिचार्ड टेंपलके शब्दोंमें ही सुनिए। 'मेरे समयके व्यक्ति और घटनाएँ' (Men and Events of My Time) ग्रन्थमें वे लिखते हैं—"लन्दनके पत्रों—विशेषतया 'टाइम्स'—के भारतीय संवाददाताओंने आनेवाले अनिष्ट (अकाल) के वविध्यपूर्ण शब्द-चित्र भेजे और कई सुझाव उपस्थित किए, जिनका मुद्दा यह था कि ब्रिटिश जनता और बादशाह सूखेके परिणामसे जनताकी शक्ति-भर रक्षा करनेके लिए भारत-सरकारको ज़िम्मेदार समझें। ब्रिटिश लोक-मतको भी धीरे-धीरे यही धारणा होती गई और लोग बहुत उत्तेजित हो उठे। इस तरह सबके दिमागोंपर भारी बोझ-सा पड़ गया और सरकारी अफ़सर यह महसूस करने लगे कि अगर उनकी ग़फलतसे कोई प्राण-हानि हुई या नाकामयाबी हुई, तो उनके खिलाफ़ क़ानूनी कार्यवाही की जायगी।"

आस्ट्रेलियाकी तत्परता

पर अधिकारियोंके संकीर्ण रुखके बावजूद बंगालके अकालकी खबरें विदेशोंमें पहुँची हैं और कई देशोंसे सहानु-भूतिपूर्ण प्रतिक्रियाके समाचार भी आ रहे हैं। अमरीकाने यद्यपि अकालको 'ब्रिटेनका मामला' बतलाकर पल्ला झाड़ दिया है, हमारे पड़ोसी आस्ट्रेलियाने मानवताका परिचय दिया है। उसके उप-प्रधान-मंत्री फोर्डने ऐलान किया है कि वे ५०,००० टन गेहूँ भारत भेजेंगे। वाणिज्य और कृषि-मंत्री विलियम जेम्स स्कलीने कहा है कि यदि ब्रिटेन जहाज़ दे, तो आस्ट्रेलिया भारतके भुखमरोंकी सहायताके लिए गेहूँ भेज सकता है। पर अभी तक ब्रिटेनके ऐसा करनेके आसार दिखाई नहीं देते। इस समय ६॥ से ८ करोड़ मन (८ से १० करोड़ बुशल) गेहूँ आस्ट्रेलियाकी भुखारियोंमें पड़ा है और शीघ्र ही उसकी नई फ़स्ल भी कटनेवाली है। क्या ब्रिटिश अधिकारी इस ओर अविलम्ब ध्यान देंगे?

अकालकी ज़िम्मेदारी किसपर?

केन्द्रीय सरकार द्वारा खाद्य-नीतिके निर्धारणमें की गई ढिलाई, खाद्य-विभागकी स्थापनामें हुए विलम्ब और उसकी नाकारा कार्य-प्रणाली तथा प्रान्तीय सरकारोंके असहयोग, धाँधली और अविचारपूर्ण नीतिका भण्डाफोड़ देशके अनेक प्रमुख पत्रों, व्यापारियों और नेताओं द्वारा किया जा चुका है। इसके बाद किसी भी समझदार व्यक्तिके लिए मशाल लेकर यह ढूँढ़नेकी ज़रूरत नहीं कि इस समय बंगालकी जो भयंकर अवस्था है, उसकी ज़िम्मेदारी किसपर है? पर गत २३ सितम्बरको कामन्समें कई प्रश्नों द्वारा स्थितिका स्पष्टीकरण करनेको मजबूर किए जाने-पर भारत-मन्त्रीने न सिर्फ़ पुरानी और टाल-मटूलकी बातोंको ही दोहराया, बल्कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों द्वारा स्थितिको सुधारनेके लिए किए जानेवाले प्रयत्नोंका बखान भी किया और अन्ततः खाद्य-स्थितिका सारा कलंक उन भारतीय मन्त्रियोंपर मढ़ा, जो प्रान्तीय धारा-सभाके प्रति जवाबदेह हैं! पता नहीं, उस समय आप यह बात क्यों भूल गए थे, जब प्रान्तीय धारा-सभाका विश्वास-प्राप्त सिन्धके प्रधान-मन्त्री स्व० अल्लाह-बखशको बर्खास्त किया गया और श्री फज़लुलहक़को इस्तीफ़ेपर हस्ताक्षर करनेको मजबूर किया गया? पर सच-तो यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रान्तीय मन्त्रियोंका अस्तित्व गवर्नरकी इच्छापर निर्भर करता है। और केन्द्रीय सरकार तो है ही वाइसरायकी इच्छाका खेल। तब प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारकी भूलोंकी ज़िम्मेदारीसे एमरी साहब इस सफ़ाईसे बच कैसे निकलना चाहते हैं?

आपका यह कथन भी उतना ही निराधार और मिथ्या है कि सरकार विदेशोंसे अन्न भेजनेके लिए जहाज़ी सुविधाका प्रबन्ध कर रही है। ऊपर दिए गए आस्ट्रेलियाके वाणिज्य और कृषि-मन्त्रीके वक्तव्यसे इसकी अस्लियत स्वतः सिद्ध हो जाती है। इसके विपरीत भारतसे उस समय तक भी अन्न बाहर भेजा जाना जारी रहा, जब कि भारतमें भुखमरी बढ़ती जा रही थी और राज्य-परिषदमें श्री कोर्नन स्मिथ फ़रमा रहे थे कि यह सब 'स्थितिका अतिरंजित अभिनय' (Over-dramatisation of the situation) है। कलकत्तेमें राशनिंग न होना, बाज़ारोंमें माल पहुँचानेकी सुविधाके बिना ही दरोंका नियन्त्रण करना, मुनाफ़ाखोरों और अनाज जमा करनेवालोंसे अनाज न निकलवा सकना आदि ऐसी बातें हैं, जिनकी ज़िम्मेदारीसे सरकार अपना हाथ नहीं खींच सकती।

एकमात्र उपचार—राष्ट्रीय सरकार

पार्लमेंटकी सदस्या लेडी एस्टरने श्री एमरीसे भारतीय भुखमरीके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारकी निर्दोषता घोषित करनेका अनुरोध करते हुए बतलाया कि दुनियामें इसे लेकर अंगरेज़ोंके खिलाफ़ ज़बर्दस्त प्रोपेगेण्डा हो रहा है। विदेशी शासन और सेंसरकी कृपासे उस प्रोपेगेण्डाकी जानकारीसे हम वंचित हैं; पर पार्लमेंटके अन्यतम मज़दूर-सदस्य श्री सिल्वरमैनकी यह बात हमने ज़रूर पढ़ी है कि इस स्थितिका पैदा होना ही ब्रिटेनके खिलाफ़ सबसे बड़ा प्रोपेगेण्डा है। लाहौरके अधगोरे पत्र 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट'ने लिखा है—"ब्रिटिश साम्राज्यवादपर भुखमरीसे होनेवाली मौतोंका दाग़ कितने ही खर्चों या व्यक्तियों द्वारा नहीं मिटाया जा सकेगा।"

लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंको अगर लोक-लज्जा या नेकनामीका खयाल होता, तो न-जाने कितने वर्ष पहले ही उनकी हठधर्मी और अदूरदर्शिताका स्थान सद्बुद्धि, विवेक और परस्पर सहयोग तथा विश्वासकी भावनाने ले लिया होता तथा भिक्षा लेनेके बजाय आज भारत उन्हें अधिकाधिक देनेको हाथ बढ़ाता। भले ही भारत-मन्त्री प्रान्तीय स्वाधीनता और वाइसरायकी कौंसिलकी 'भारतीयता'के गीत गायँ, भले ही लार्ड हेलीफैक्स भारतीयों द्वारा स्वेच्छासे ब्रिटिश शासन स्वीकार किए जानेका मिथ्या प्रचार करें और भले ही सेंसर तथा प्रोपेगेण्डाके बलपर विदेशोंमें भारतके सुख, शान्ति और समृद्धिके ढोल पीटे जायँ; लेकिन जेलोंमें सड़नेवाले देशके हज़ारों गण्य-मान्य नेता और भूखसे तड़प-तड़पकर मरनेवाले निर्दोष ग़रीब विदेशी शासनके दुष्परिणामका ज्वलन्त प्रतीक हैं। यह कठोर और अप्रिय, किन्तु ठोस सत्य आज जादूकी तरह स्वयं अंगरेज़ोंके सिरपर चढ़कर बोल रहा है!

अब भी समय है कि अंगरेज़ अपनी ग़लती सुधारें और ग़ैरज़िम्मेदार-स्वेच्छाचारी शासकके बजाय हमारे साथी बनें। देशमें आज जो राजनीतिक और अर्थनीतिक संकट उपस्थित हैं, उसका एकमात्र उपचार है राष्ट्रीय सरकार—ऐसी सरकार, जो जनताको हो, जनताके लिए हो और जनताके ही प्रति जवाबदेह हो। इसके सिवा और कोई उपाय कारगर हो नहीं सकता। जितना जल्दी यह किया जाय, भारत और ब्रिटेन दोनोंके लिए उतना ही अच्छा है। एक स्वरसे आज पीड़ित-शोषित-बुभुक्षित भारतकी यही माँग है—भिक्षा नहीं, अपने जन्मसिद्ध नैतिक अधिकारके रूपमें।

ब्लेड, काग़ज़ और व्हिस्की!

अखबारोंमें एक खुशखबरी छपी है: 'जहाज़ोंकी आवा-जाईमें कुछ सुविधा होनेसे इस बातकी आशा है कि अब बाल बनानेके ब्लेड और अखबारी काग़ज़ अधिक मात्रामें उपलब्ध हो सकेंगे। ब्रिटिश साम्राज्य और अमरीकासे आनेवाले ब्लेडोंके आर्डरोंमें काफ़ी वृद्धि कर दी गई है और इस बातका भरसक प्रयत्न किया जा रहा है कि माल आकर चोर-बाज़ारमें न चला जाय। अखबारी काग़ज़ और व्हिस्कीके आयातमें भी वृद्धि होनेकी आशा है।'

चलिए शुक्र है, भूखों-नंगोंको हजामतके लिए नए ब्लेड, पढ़नेके लिए अखबार और पीनेके लिए व्हिस्की तो मिलेगी। इनसे भी कुछ तो भुखमरीका ग़म ग़लत होगा ही।

गांधीजीके वक्तव्योंपर से रोक हटी

गत १३ सितम्बरको बम्बई-सरकारके सेक्रेटरीने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करवाई है, जिसमें कहा गया है कि बम्बई-सरकारने १० फरवरी, १९४३ के दिन एक हुक्म निकाला था और २३ मार्च, १९४३ को उसमें एक संशोधन किया था। उसके अनुसार यह व्यवस्था की गई थी कि महात्मा गांधीके वक्तव्य और महात्मा गांधीसे मिलकर आनेवाले व्यक्तियोंके वक्तव्य प्रकाशनसे पूर्व प्रान्तीय प्रेस-ऐडवाइज़रके पास सलाहके लिए भेज दिए जायँ। अब यह हुक्म वापस लिया जाता है।

लेकिन जब गांधीजीका कोई वक्तव्य बाहर नहीं आने दिया जाता और न कोई उल्लेखनीय व्यक्ति उनसे मिलने ही दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, तब इस तरहकी पाबन्दीका लगाया जाना और वापस लिया जाना क्या मानी रखते हैं, यह हमारी समझमें नहीं आया।

कांग्रेस ग़ैरक़ानूनी नहीं है!

पटना-हाईकोर्टके जस्टिस वर्माने जस्टिस मेरेडिथके इस विचारसे सहमति प्रकट करते हुए कि विभिन्न कांग्रेस-कमेटियाँ ग़ैरक़ानूनी घोषित की गई हैं, कांग्रेस नहीं; और जुलूसोंपर प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है, जहानाबादके एक मुख्तारको दी गई सज़ा रद्द कर दी और उन्हें बरी कर दिया। अभियुक्तपर स्वतन्त्रता-दिवसके दिन जुलूस निकालनेका अभियोग था और मजिस्ट्रेटने भारत-रक्षा-क़ानूनकी ५६ (४) वीं धाराके अनुसार उसको एक साल कड़ी क़ैदकी सजा दी थी। अपील करनेपर गयाके दौरा-जजने अभियुक्तकी सजा घटाकर ६ महीने कड़ी क़ैद कर दी थी।

कांग्रेसी धुरी-विरोधी हैं

सिन्ध-प्रान्तीय मुस्लिम-लीगके संयुक्त-मन्त्री श्री मुहम्मद-अमीन खोसो, एम० एल० ए० ने सिन्ध-सरकारसे सिन्धके राजनीतिक बन्दियोंको जेलोंसे छोड़ देनेकी अपील की है। उन्होंने कहा है—'मैं स्वयं ८ महीने तक जेलमें रहा हूँ और मैं सिन्धके सब प्रमुख कांग्रेसजनोंके खयाल जानता हूँ। हम जेलमें बिना किसी रुकावटके राजनीतिक चर्चा किया करते थे। कुछ कांग्रेसजनोंको छोड़कर क़रीब-क़रीब सबके प्रगतिशील और धुरी-विरोधी खयाल हैं। कांग्रेसको किसी भी अर्थमें धुरी-पक्षका कहना झूठ और राजनीतिक चाल है। इन स्थितियोंमें मैं वर्त्तमान मन्त्रिमण्डलसे सब राजबन्दियोंकी रिहाईका अनुरोध करता हूँ। यदि मन्त्रिमण्डल ऐसा न करे, तो मैं सब सिन्धियोंसे उनकी रिहाईकी संयुक्त माँग करनेकी प्रार्थना करता हूँ।'

सरकारी नौकर लड़ाईका चन्दा जमा न करें

लाहौरका १७ सितम्बरका समाचार है: 'पंजाब-सरकारने निश्चय किया है कि सरकारी नौकरोंको हिदायत दी जाय कि वे लड़ाईका चन्दा जमा करना बन्द कर दें। दौरेके वक्त अफ़सरोंको थैलियाँ भेंट करनेका जो चलन पड़ गया है, उसे भी बन्द करनेका निश्चय किया गया है।' ('प्रताप')

गांधी-नेहरूके नामसे चिढ़!

प्रयागका ७ सितम्बरका समाचार है कि युक्त-प्रान्तके गवर्नरने 'चाँदनी' नामक फिल्मका, जिसे बम्बईके फिल्म-सेंसर-बोर्डने पास कर दिया है, वह हिस्सा अस्वीकृत कर दिया है, जिसमें कुछ खास राजनीतिक नेताओंके चित्र हैं और देवीके भाषणमें यह वाक्य आया है कि यदि लड़कियोंको ठीक शिक्षा मिले, तो वे महात्मा गांधी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू-जैसे देशभक्त उत्पन्न कर सकती हैं।—वाह री समझ!

'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद'पर रोक

त्रावणकोर-सरकारने एक हुक्म निकालकर 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद'के नारोंपर रोक लगा दी है और कहा है कि ऐसे नारोंसे सार्वजनिक शान्ति व सुरक्षाको हानि पहुँचनेका डर है। हुक्ममें कहा गया है कि भविष्यमें जो लोग इस प्रकारके नारे लगायँगे, उनपर त्रावणकोर-रक्षा-क़ानूनके अधीन कार्रवाई की जायगी।

क्यों नहीं, भला ऐसा किए बिना फाशिस्तोंको हरानेकी तैयारी कैसे हो सकती है!

चीनमें संस्कृत तथा पालिकी शिक्षा

ज्ञात हुआ है कि चीनके विद्यालयोंमें संस्कृत तथा पालि भाषाओंकी शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए चीन-सरकारकी ओरसे भारतके प्रसिद्ध बौद्ध पंडित भिक्षु जगदीश काश्यपको वहाँ आनेका निमन्त्रण मिला है। भिक्षु जगदीश इस समय काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें पालि-भाषाके प्रचारका कार्य कर रहे हैं। आशा है, उनके चीन जानेसे संस्कृति और धर्मके दो बड़े केन्द्र चीन तथा भारतके बीच युगातीत भ्रातृभावकी विशेष वृद्धि होगी।

भारतीय वैज्ञानिकोंके कार्य

ग़रीबी और ग़ुलामी मनुष्य तथा देशकी न केवल सामाजिक और राजनीतिक उन्नतिमें ही बाधक हैं, बल्कि बौद्धिक विकासमें भी। पर इसके बावजूद शिक्षा और विज्ञानके क्षेत्रमें भारतीय आज भी सम्पन्न-समृद्ध-स्वतन्त्र विदेशियोंसे लोहा ले रहे हैं। विज्ञानके क्षेत्रमें सर जगदीशचन्द्र वसु, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, सर सी० वी० रमन, एस० रामानुजन, प्रो० मेघनाद साहा, प्रो० पी० सी० महलानबीस तथा सर रामनाथ चोपड़ा विश्वको अपनी प्रतिभाका समुचित परिचय दे अपने देशका नाम उज्जल कर चुके हैं। अभी हाल ही में अमरीकाके 'न्यू रिपब्लिक' पत्रने कुछ अन्य भारतीय वैज्ञानिकोंके उन आविष्कारों और देनोंका विवरण प्रकाशित किया है, जिनसे इस युद्धमें बहुमूल्य सहायता मिल रही है।

अमरीकन सेनाएँ 'न टूटनेवाले कंटेनर' (खास क़िस्मके डिब्बे) काममें ला रही हैं, जिनमें कोई भी चीज़—यहाँ तक कि तरल द्रव्य भी—हवाई-जहाज़से चाहे जैसी सख्त ज़मीन, पानी या पहाड़पर गिराई जा सकती है और कंटेनरोंमें एक शिकन भी न आयगी। ये प्रो० सर शान्तिस्वरूप भटनागर द्वारा आविष्कृत हैं। लास-एंजेलस (केलिफ़ोर्निया) में डा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगन्नाथ शर्मा द्वारा आविष्कृत कुछ नए उपायों द्वारा खाद्य-सामग्री डिब्बों और जहाज़ोंमें इस तरह भरी जा रही है कि कोई भी चीज़ खराब न हो। आपने संतरेको कृत्रिम रूपसे रँगनेकी एक ऐसी विधिका आविष्कार किया है, जिससे फ्लोरिडाके उत्पादकोंकी आय ४॥ करोड़ डालर बढ़ गई है। मुंडामें जापानियोंके विरुद्ध जलती हुई लपटें फेंकनेके जो अस्त्र अमरीकन प्रयोगमें ला रहे थे, वे इलीनायस-विश्वविद्यालयके डा० आलमजीत डी० सिंह द्वारा आविष्कृत हैं। आपने शत्रु-यानोंसे नीचेकी चीज़ें छिपानेके भी कई नए उपाय खोज निकाले हैं। डेट्रायटके डा० के० एन० काटजूने भी हेक्सटर और शेफ़र्डकी सहायतासे ऐसे रंग खोज निकाले हैं, जिन्हें ऊपरसे देखनेपर आसपासकी हरियालीसे पृथक नहीं देखा जा सकता। रासायनिक युद्ध-सामग्रीमें डा० वी० आर० कोकटनूर, यान्त्रिक कार्यमें डा० बैरम डी० सकलतवाला तथा अन्य कार्योंमें डा० शरत्कुमार राय, डा० येलप्पारागदा चन्द्रशेखर तथा कई अन्य भारतीय वैज्ञानिक बहुमूल्य सहायता कर रहे हैं।

भारतीय वैज्ञानिक पुरस्कृत

केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयने १९४१-४२ का आदम-पुरस्कार इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ़ साइन्स बंगलोरके प्रो० एच० जे० भाभाको उनकी पुस्तक 'प्रकृतिके मूल अणुओंका सिद्धान्त और उनकी पारस्परिक प्रतिक्रिया' ('दि थ्योरी आफ़ फण्डामेण्टल पार्टिकल्स आफ़ नेचर एण्ड देयर इण्टर-एक्शन') पर प्रदान किया है। आदम-पुरस्कारकी स्थापना १८४८ में की गई थी। यह दो सालमें एक बार विज्ञानके किसी निबन्ध या पुस्तकपर दिया जाता है। इसका स्टैण्डर्ड इतना ऊँचा है कि १८५० से १९१३ तक यह केवल १५ व्यक्तियोंको ही दिया गया है।

लन्दनमें भारतीय सैनिकोंका स्वागत

गत १६ सितम्बरको लन्दनमें चतुर्थ भारतीय डिवीज़नका स्वागत करते हुए भारत-मन्त्री श्री एमरीने कहा कि इस लड़ाईमें इसका कार्य अन्य डिवीज़नोंसे बढ़-चढ़कर रहा है। डिवीज़नके प्रतिनिधियोंका हम हार्दिक स्वागत करते हैं, जो कि ब्रिटिश जनताको न केवल भारतकी वीर और यशस्वी सेनाके प्रतिनिधियोंके दर्शनका मौक़ा देनेके लिए, बल्कि उनको इस बातका अवसर देनेके लिए कि लड़ाईमें भारतीय सेनाने जो कार्य किया है, उसके लिए उसको वह धन्यवाद दे सके, इस देशमें आए हैं। हम यह कार्य करते हुए विशेष रूपसे प्रसन्न हैं, क्योंकि जो लोग लन्दन आनेके लिए चुने गए हैं, वे उस डिवीज़नके सैनिक हैं, जो लड़ाईके आरम्भसे यशोपूर्ण है। इसने विजयके बाद विजय पाई है। अफ्रीकन युद्धमें विजयका मुकुट इसीके सिरपर रखा गया, जब कि जनरल फ़ान आरनीमने इसको आत्म-समर्पण किया। इस लड़ाईमें इसके बराबर और किसी डिवीज़नने कार्य नहीं किया है। श्री एमरी और मनोनीत वाइसराय लार्ड वेवल दोनोंने इण्डिया-आफ़िसमें भारतीय डिवीज़नके प्रतिनिधियोंका स्वागत किया और हरएकसे हाथ मिलाया।

भारतीय ईसाई 'हिन्दू' हैं!

अहमदनगरके नाना साहब मोडक एक भारतीय ईसाई हैं। आपने हाल ही में अपनी आयुके ५० साल पूरे किए हैं। इस अवसरपर आपको म्युनिसिपैलिटी और नगरकी सार्वजनिक सभाओंकी ओरसे पुष्पहार और मानपत्र अर्पित किए गए। इनका उत्तर देते हुए आपने कहा—"मैं धर्मसे ईसाई हूँ और अपने ईसाई-धर्मको श्रेष्ठ मानता हूँ; तथापि धर्मका इतना अन्तर दूर करनेके बाद भाषा, संस्कृति और राष्ट्रकी दृष्टिसे हिन्दुस्तान ही हमारी मातृभूमि है। हिन्दू शब्दके दो अर्थ हैं। एक धर्मसे हिन्दू और दूसरा हिन्दुस्तानमें उत्पन्न हुआ और रहनेवाला हिन्दू। इस दूसरे अर्थमें हम ईसाई-धर्मी हिन्दू हैं, यह भारतीय ईसाई-समाजको दृढ़तापूर्वक अपने ध्यानमें रखना चाहिए। इस दृष्टिसे देखनेमें हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, इस विषयमें विवाद नहीं रहता।" ('हिन्दुस्तान')

'काला आदमी' कहनेपर सज़ा

श्रीराम लेन, नई दिल्लीके एक दुकानदार लाला नन्दकिशोरको 'काला आदमी' कहनेके अपराधमें चौधरी सूबासिंह मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वलने एक एंग्लो-इण्डियन महिला (श्रीमती सी० आई० पोप) को एक सौ रुपया जुर्माना या तीन माह क़ैदकी सज़ा दी है। जुर्माना अदालतमें ही जमा कर दिया गया। मामला इस प्रकार था कि श्रीमती पोप, जो श्रीराम लेनमें रहती हैं, लाला नन्दकिशोरकी दुकानपर गईं और २० सेर चीनी माँगी। लाला नन्दकिशोरने कहा कि उसे एक बारमें केवल आठ आनेकी चीनी देनेकी हिदायत मिली हुई है। इसपर श्रीमती पोप बहुत बिगड़ीं और लाला नन्दकिशोरको अंगरेज़ीमें 'काला आदमी', 'सुअर' आदि अपशब्द कहे। यही नहीं उन्होंने तमाम भारतीयोंको कोसा और 'काले आदमी' आदि कहा। लाला नन्दकिशोरने मामला अदालतमें पेश कर दिया और श्रीमती पोपके विरुद्ध अभियोग सिद्ध कर दिया।

लन्दनमें नीग्रो खिलाड़ीका अपमान

पश्चिमी द्वीप-समूहके क्रिकेटके प्रसिद्ध नीग्रो खिलाड़ी श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीरी कान्स्टेंटाइनने नीग्रो होनेकी वजहसे होटलमें जगह न देनेके कारण लन्दनके इम्पीरियल होटलके मालिकोंपर हाइकोर्टमें मुक़दमा चलाया है। श्री कान्स्टेंटाइन लंकाशायरके नीग्रो कारीगरोंके वेलफेयर-अफ़सर हैं और अगस्तकी छुट्टीमें मैचमें खेलनेके लिए लन्दन आए थे। वे अपनी पत्नी और पुत्रीके साथ ठहरनेके लिए इम्पीरियल होटल गए; किन्तु वहाँ ठहरे हुए लोगोंके आपत्ति करनेपर उन्हें वहाँ जगह न मिली और लौट जाना पड़ा। 'लीग आफ् कलर्ड पीपुल्स'के अध्यक्ष डाक्टर मूडीने इस घटनाकी खबर उपनिवेश-सचिव कर्नल आलिवर स्टनलीको दी। बादमें होटलके व्यवस्थापकने बताया कि श्री कान्स्टेंटाइन स्वेच्छापूर्वक चले गए। यह होटल श्वेतांगोंके लिए ही है और इस समय विशेषकर होटलमें अमरीकन ही ठहरते हैं।

युद्धकी चौथी वर्षगाँठपर ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग-कार्पोरेशनने जब श्री कान्स्टेंटाइनको बोलनेके लिए बुलाया, तो आपने कहा कि यदि आप खूब सतर्क न रहें, तो रोज़ ऐसी ज़िल्लतें उठानी पड़ती हैं, जो आपको अधिक कटु बनाती हैं। एक बार एक होटलमें होनेवाले नाचसे आपको चले जानेको कहा गया। आप वहाँसे चले तो आए; पर इस व्यवहारने आपके आत्म-सम्मानको इतना गहरा आघात पहुँचाया कि आप सो या खा-पी भी नहीं सके।

सर हरबर्ट विलियम्सने उक्त घटनापर पार्लमेंटमें प्रश्न उठानेका विचार प्रकट करते हुए कहा कि युद्ध-कार्यमें लगे एक ब्रिटिश नागरिकका यह अनादर बड़े शर्मकी बात है। २३ सितम्बरको कामन्समें इस घटनाका ज़िक्र करते हुए गृह-मन्त्री श्री हरबर्ट मौरिसनने कहा कि जाति या वर्णके आधारपर किसी भी ब्रिटिश नागरिक (गैरब्रिटिश नहीं।) के साथ किसी प्रकारका भेद-भावपूर्ण व्यवहार न हो, इस बातका होटलके मालिकों तथा वहाँ ठहरनेवालोंको पूरा ध्यान रखना चाहिए। श्री कान्स्टेंटाइनको समानताके दर्जे और तदनुकूल व्यवहारसे वंचित रखे जानेकी ज़िम्मेदार लोकमत द्वारा निन्दा करनेका इज़हारकर आपने फ़रमाया कि बिला माकूल कारणोंके स्थान देनेसे इन्कार करनेका होटलवालोंको कोई अधिकार नहीं है।

वर्ण-द्वेषपर श्री रूज़वेल्ट

चिकागोमें गत २८ सितम्बरको हुए नीग्रो-सहायक-सम्मेलनमें बोलते हुए संयुक्त-राज्य अमरीकाके राष्ट्रपति रूज़वेल्टने कहा—"वर्ण-संघर्षके कारण विदेशोंमें लोग हमपर सन्देह करते हैं। हमारे राष्ट्रकी अक्षुण्णता और हमारे युद्ध-उद्देश्योंकी कसौटी है देशके अल्पसंख्यक दलोंके प्रति हमारा रुख। काले, श्वेत, भूरे और पीले सभी वर्णोंके लोग आज़ादीके लिए हमारे साथ लड़ रहे हैं। जब तक हम सब लोगोंके लिए जनतन्त्रके सिद्धान्तोंका प्रयोग और प्रचार नहीं करते, दुनियाके सामने हम सभी पद्दलित लोगोंके नेताके रूपमें खड़े नहीं हो सकते।"

और दक्षिण-अफ्रीकामें?

पर हम श्री रूज़वेल्ट और मौरिसनसे पूछना चाहते हैं कि क्या भारतीय ब्रिटिश नागरिक या प्रजा नहीं हैं? क्या वे संयुक्त-राष्ट्रोंके साथ फाशिज़म-विरोधी युद्धमें नहीं लड़ रहे हैं? तब फिर उनके साथ दक्षिण-अफ्रीकामें जो-कुछ हो रहा है, उसका उनके पास क्या जवाब है? श्री कान्स्टेंटाइनको तो सिर्फ़ होटलमें ही जगह नहीं दी गई; पर दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंको तो पुश्तोंके गाढ़े पसीनेकी कमाईसे पाँव रखने-भरको ईमानदारीसे बनाई गई जगहोंसे भी क़ानूनके गैरक़ानूनी, अनैतिक और अनधिकारपूर्ण डण्डेसे मारकर भगाया जा रहा है! वर्ण-औद्धत्यकी इससे अधिक नीचतापूर्ण मिसाल शायद मानव-इतिहासमें दूसरी नहीं मिलेगी। ऐसी दशामें लाखों पीड़ित-ताड़ित भारतीयोंकी दृष्टिमें श्री मौरिसन या रूज़वेल्टकी इन डींगोंका क्या मूल्य है कि वे वर्ण-भेदके विरोधी हैं और यह युद्ध विश्व-स्वातन्त्र्य एवं समानताके लिए लड़ा जा रहा है? पर सच तो यह है कि दक्षिण-अफ्रीकामें भारतीयों और अमरीकामें नीग्रो लोगोंके साथ होनेवाला दुर्व्यवहार इस बातका प्रमाण है कि अंगरेज़ और अमरीकन अभी तक ईमानदारी और व्यावहारिकतासे वर्ण-औद्धत्यके उस कलंकसे मुक्त नहीं हो पाए हैं, जिसके लिए वे जब-तब हिटलरको कोसते रहते हैं।

दक्षिण-अफ्रीकाकी 'बदनामी'?

पैगिंग-एक्टके विरुद्ध हुए प्रचारने दक्षिण-अफ्रीकाके गोरोंको इस बुरी तरह बौखला दिया है कि वे साधारण शिष्टता और मानवोचित भलमंसाहतसे भी गिरने लगे हैं। अब वे उचित-अनुचित सब तरहके उपायोंसे भारतीयोंको तंग करनेके लिए खड्गहस्त हो गए हैं। अभी हाल ही में डरबनके जिस भागमें भारतीयोंको बसानेका तय किया गया है, वहाँ टेकनिकल कालेज और स्कूल खोलनेके लिए उन्होंने नगर-कौंसिलसे अनुमति और ज़मीन माँगी। वहाँके मेयर श्री हयूपर्ट एलिस ब्राउनने इसका ज़ोरोंसे समर्थन किया। पर कौंसिलने बहुमतसे इस माँगको अस्वीकार कर दिया। प्रस्तावका विरोध करते हुए कई गोरोंने कहा कि चूँकि भारतीयोंने दक्षिण-अफ्रीकाकी सरकारके निर्णयके विरुद्ध आन्दोलनकर उसकी बदनामी की है, हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें यह सुविधा देनेके पक्षमें नहीं हैं।

इससे सिद्ध है कि वहाँके गोरे अब भारतीयोंका दैनिक जीवन भी असम्भव करनेपर तुले हुए हैं। सरकारको इस कमीनेपनसे प्रवासी भारतीयोंकी रक्षा करनेके लिए शीघ्र ही कुछ करना चाहिए।

स्मट्सका शिष्टमंडलसे मिलनेसे इन्कार!

मेरित्सबर्गका ११ अगस्तका समाचार है कि दक्षिण-अफ्रीकन यूनियनके प्रधान-मन्त्री जनरल स्मट्सने दक्षिण-अफ्रीकन भारतीय कांग्रेसके शिष्टमण्डलसे मिलनेसे इन्कार कर दिया है, जो उनके सामने अभी हाल ही के अधिवेशनमें स्वीकृत प्रस्ताव पेश करना चाहता था। कांग्रेसको जवाब भेजते हुए जनरल स्मट्सके सेक्रेटरीने लिखा है—"अन्य देशोंसे अपील करनेकी धमकीको मद्देनज़र रखते हुए प्रधान-मन्त्री आपके शिष्टमण्डलसे नहीं मिलना चाहते।"

स्मरण रहे कि पिछले दिनों हुए भारतीय कांग्रेसके अधिवेशनमें सर्वसम्मतिसे पास हुए महत्त्वपूर्ण प्रस्तावोंमें से एकके द्वारा कांग्रेसको यह अधिकार दिया गया था कि वह अपना प्रतिनिधि-मण्डल ब्रिटेन और अमरीका भेजे, ताकि वहाँके लोगोंको प्रवासी भारतीयोंकी स्थितिसे अवगत करा दिया जाय।

भेड़िए और मेमनेकी कहानी

गत ३० अगस्तको डरबनमें हुई नेटाल-इण्डियन-कांग्रेसकी पुनर्गठित सभामें भारतीय हाई-कमिश्नर सर शफ़ात अहमदखाँने जो भाषण दिया था (जिसका सारांश हम गतांकमें दे चुके हैं), उसपर टिप्पणी करते हुए जोहान्सबर्गके एक प्रतिगामी गोरे पत्र 'दाइ त्रान्सवालेर'ने लिखा है—"भारत-सरकारको यूनियनके आन्तरिक मामलोंमें दखल देनेकी क्या ज़रूरत है? इसके आन्तरिक मामलों और नीतिमें हस्तक्षेप करनेका हाई-कमिश्नरको क्या अधिकार है? स्थापित नीतिके परिवर्त्तनके लिए लोगोंको उत्तेजित करनेका हाई-कमिश्नरको कोई अधिकार नहीं है। इसके विपरीत ऐसे प्रतिनिधि यूनियनके आन्तरिक मामलोंमें जो बराबर हस्तक्षेप करते रहे हैं और उससे दक्षिण-अफ्रीकाके लिए कठिनाई पैदा होनेकी जो सम्भावना है, उसे देखते हुए इस प्रतिनिधित्वका अन्त कर देनेकी माँग करना आवश्यक प्रतीत होता है।" आगे चलकर कहा गया है—"भारतके आज़ाद और विरोधी होनेकी प्रतीक्षा करनेसे पहले ही जड़ और शाखसे इस प्रश्नका सफ़ाया कर देना आवश्यक है। ऐसा अभी ही किया जाना चाहिए, जब कि भारत शक्तिहीन है। यूनियनके भारतीय भारतके नागरिकोंका-सा आचरण करते हैं, तब हमें उन्हें उनके घर—भारत—ही भेज देना चाहिए।"

इस बौखलाहट और प्रमादपूर्ण उद्गारने भारत-सरकारके प्रवासी-विभागके सदस्य डा० खरे तकको आघात पहुँचाया है। गत २ सितम्बरको बम्बईके महाराष्ट्र चेम्बर आफ़ कामर्समें बोलते हुए आपने कहा—"आज सुबहके पत्रोंमें यह पढ़कर मुझे आघात पहुँचा कि दक्षिण-अफ्रीकाके शासनमें हस्तक्षेप करनेका आरोप करके भारतीय हाई-कमिश्नरके वापस बुलाए जानेका सुझाव रखा गया है। यह भेड़िए और मेमनेकी ही कहानी है। दक्षिण-अफ्रीकाके भारतीयोंको मानवीय और न्याय्य क़ानूनकी आशा करनेका पूर्ण अधिकार है। जब तक उन्हें ऐसे अधिकार नहीं दिए जाते, उन्हें अपनी मातृभूमिसे अपील करनेका पूरा-पूरा अधिकार है।" आपने यह आश्वासन दिया कि प्रवासी भारतीयोंके स्वाभिमान और हितोंकी रक्षाके लिए आप शक्ति-भर सब-कुछ करेंगे।

दक्षिण-अफ्रीकाकी प्रतिक्रिया

दक्षिण-अफ्रीकन भारतीय कांग्रेसके भारत-स्थित प्रतिनिधि श्री मुहम्मदअहमद जदाबत और स्वामी भवानीदयाल संन्यासीने एक वक्तव्यमें कहा है कि यह बड़ी चिन्ताकी बात है कि भारत-सरकारने दक्षिण-अफ्रीकाकी सरकारपर दबाव डालनेके हेतु जिन व्यापारिक प्रतिबन्धोंको लगानेका निश्चय किया है, उन्हें बेकार करनेकी कोशिश की जा रही है। दक्षिण-अफ्रीकाकी सरकार इन प्रतिबन्धोंसे काफ़ी घबरा उठी है। उसने टाट, कपड़ा, सूत, गूदड़ और अन्य सामान भारतसे धड़ाधड़ मँगाए। जहाज़ पर जहाज़ यहाँसे लदकर दक्षिण-अफ्रीका जाने लगे। इससे यह साबित होता है कि दक्षिण-अफ्रीकाकी सरकारपर दबाव डालनेका यह उपाय विशेष कारगर साबित नहीं हुआ।

इस कथनमें बहुत बड़ी सचाई और वज़न है। अगर वास्तवमें भारत-सरकार दक्षिण-अफ्रीकाकी उद्धत सरकारके होश ठिकाने लानेके लिए कुछ करना चाहती है, तो उसे दृढ़ता और शीघ्रतासे माकूल कार्यवाही करनी चाहिए।

आवश्यक सूचना

५ से १८ अक्टूबर तक 'विशाल भारत'-कार्यालय पूजाकी छुट्टियोंके कारण बन्द रहेगा। अतः अगला अंक नवम्बरके दूसरे सप्ताह तक निकलेगा। इस बीचमें आनेवाले सम्पादकीय तथा व्यवस्था-सम्बन्धी पत्रोंका उत्तर तथा तदनुसार कार्यवाही छुट्टियोंके बाद ही हो सकेगी। —व्यवस्थापक

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैंतालीस सालकी परीक्षित महौषधि

सन्तानदाता अवलेह

यह अवलेह यथा नाम तथा गुण है। हज़ारों अँधेरे घरोंमें इसने चिराग़ जलवा दिये। यह अवलेह वन्ध्याको पुत्रवती बनाकर कुलका नाम चलाता है। जिसके घरमें पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। इसलिए पुत्र पानेके लिये आप इस अवलेहको अपनी प्यारी धर्मपत्नीको सेवन कराइये। इससे स्त्रियोंके सारे गुप्तांग रोग नाश होते हैं—जैसे कमर और पीठ वगैरःमें दर्द होना, कम-ज़्यादा ख़ून गिरना, गर्भाशयमें पीड़ा होना, नलोंमें भारीपन रहना, हल्की हरारत, जीर्ण-ज्वर, पिंडलियाँ दुखना, सिरमें दर्द रहना वगैरह सारी शिकायतें इस अमृतसे काफ़ूर हो जाती हैं। जो काम लेडी डाक्टरोंके आपरेशनोंसे नहीं हुए, वे इस अवलेहसे हो गये। मूल्य १२) रुपये सेर। पहले आधा सेर मँगा लीजिये। चमत्कार दीख जायगा।

नोट :—अगर प्रदर आदि रोगकी शिकायत है, तो आप हमारे यहाँसे रोगिणी-फार्म मँगा लें। आपके पत्रका उत्तर आदरणीय वैद्य बाबू हरिदासजीकी सुपुत्री श्रीमती चमेलीदेवीजी वैद्या द्वारा दिया जायगा, जो कि नारी-चिकित्सामें प्रवीण हैं। याद रखें, इनका दवाख़ाना अलग नहीं है। हरिदास एण्ड कम्पनीके ही पतेपर पत्र-व्यवहार करें, अन्यथा धोखा होगा!

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

लज्जा नारी का भूषण

किन्तु उसका आतिशय्य प्रायः ही हानिकर होता है। महीने-दर-महीने दुर्वह यन्त्रणा नीरव रूपसे सह्य न करके रोगकी बात बताकर उसका प्रतिकार करना प्रत्येक नारीका कर्त्तव्य है।

इउटेरन

बेंगल केमिकलका भाइब्रो-अशोक

गर्भाशयके सभी प्रकारके रोगों और स्त्री-धर्मकी सब प्रकारकी विकृतियोंमें विशेष कार्यकर है। वन्ध्या और मृतवत्सा नारियोंके लिए भी यह परम हितकर है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धके इस संकट-कालमें जब किरासन तेलका मिलना मुश्किल हो रहा है, हमारी सस्ती मोमबत्तियाँ आपको हर मौक़ेपर निर्मल और निर्धूम प्रकाश देंगी। इनमें चर्बी और दुर्गन्धका नाम भी नहीं है।

एवरलाइट मार्का मोमबत्ती

एवरलाइट कैन्डिल्स

६, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता

एजेन्सीके लिये पत्र-व्यवहार करें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

२७-११-४३
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

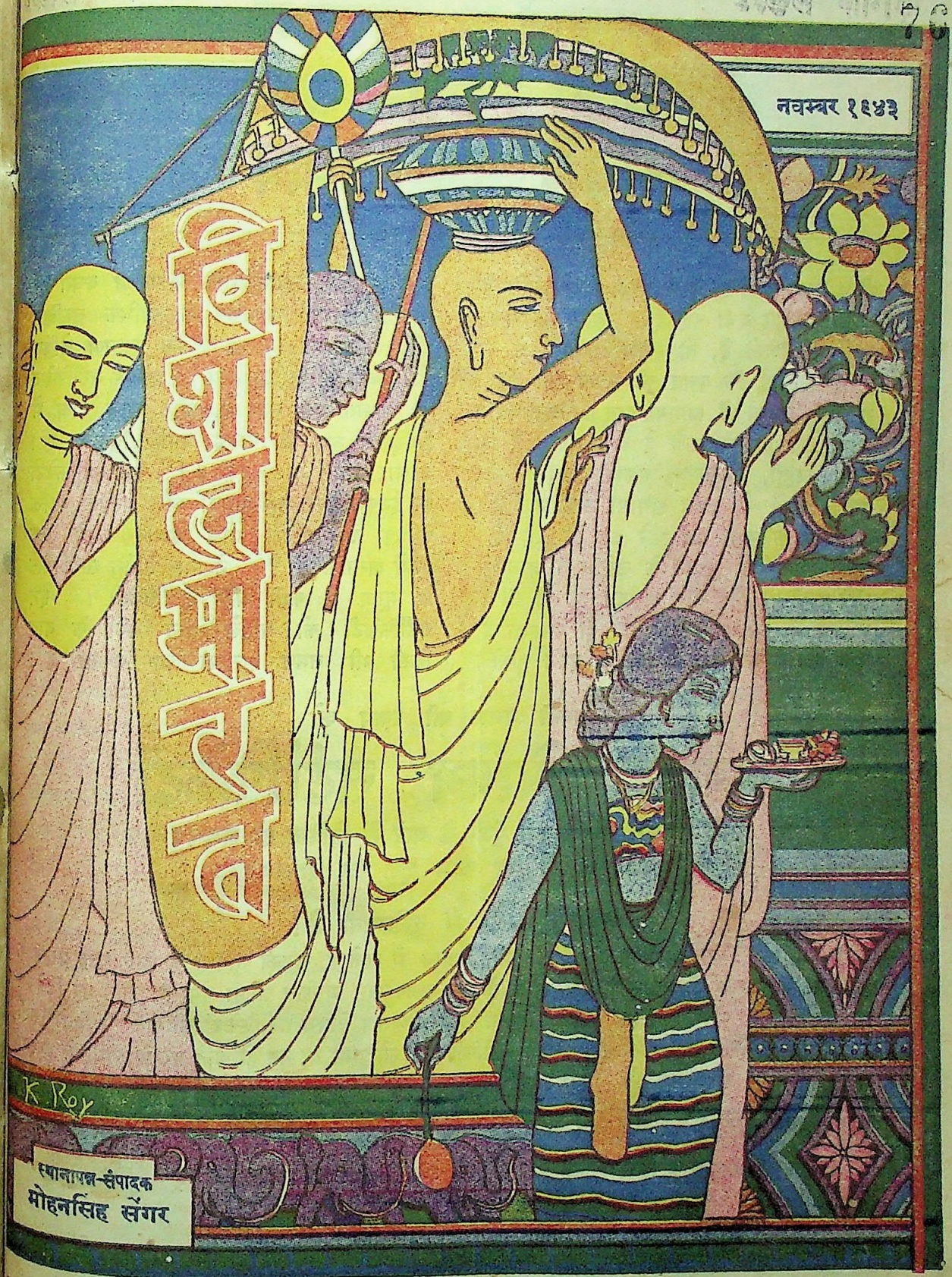

स्थानापन्न-संपादक
मोहनसिंह सेंगर

सभाष्टी मूल्य ३।)] 'विशाल भारत' कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता [एक अंकका ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ाई के दिनों में पूंजी लगाने का सबसे अच्छा उपाय

जो लोग दूरदर्शी हैं, वे आजकल अपनी शक्ति के अनुसार रुपया बचा रहे हैं। आप जब बचत करने लग जाते हैं, तो स्वाभाविक रूप से यह इच्छा होती है कि बचत की रक़म को किसी सुरक्षित योजना में लगाया जाय। असावधान लोगों को यह चेतावनी दे देना जरूरी है कि सोना, चांदी, जवाहरात, मकान-जायदाद और दूसरी चीजों में रुपया लगाना ठीक नहीं है। इन चीज़ों के भाव धीरे धीरे कम हो रहे हैं। अगर आप पूंजी लगाने के उद्देश्य से आजकल ऊँचे दामों पर कोई चीज़ खरीदते हैं, तो निकट भविष्य में आपको भारी घाटा हो सकता है, और लड़ाई के बाद तो अवश्य हानि होगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल बचत की रक़म को लगाने का सब से अधिक सुरक्षित और अच्छा उपाय यह है कि नेशनल सेविंग सर्टीफिकेटों को ख़रीदा जाय। प्रत्येक सर्टीफिकेट की क़ीमत दस रुपये है, और बारह साल में निश्चित रूप से पन्द्रह रुपये मिलते हैं। सरकार उसकी गारंटी देती है। इन सर्टीफिकेटों पर इनकम टैक्स नहीं लगता और प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक पांच हजार रुपये तक इनमें लगा सकता है। नेशनल सेविंग सर्टीफिकेट के मूल्य में कमी नहीं हो सकती। इन सर्टीफिकेटों को पहिले तीन वर्षों के बाद किसी भी समय भुनाया जा सकता है।

अपनी बचत की रक़म को

नेशनल सेविंग सर्टीफिकेटों

में लगाइए और अपनी पूंजी के बारे में निश्चित हो जाइए।
आज से ही यह काम शुरू कर दीजिए।

रजिस्ट्री कराने में बुद्धिमानी है!

जो लोग आसाम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मद्रास में रहते हैं, उनकी सुविधा के लिए युक्त प्रान्त के पोस्टमास्टर जनरल के नियन्त्रण में लखनऊ में सेण्ट्रल रजिस्ट्रेशन आफिस खोला गया है, जहां पर डिफेन्स सेविंग सर्टीफिकेटों, पोस्ट आफिस कैश सर्टीफिकेटों और नेशनल सेविंग सर्टीफिकेटों की रजिस्ट्री बिना किसी प्रकार के खर्च के कराई जा सकती है। इससे सर्टीफिकेट के खो जाने या नष्ट हो जाने पर आसानी से अपना दावा साबित किया जा सकता है। पूरा विवरण जानने के लिए स्थानीय डाकख़ाने से दरियाफ्त कीजिए।

नेशनल सेविंग सर्टीफिकेट उन सभी डाकख़ानों में मिलते हैं, जिनमें सेविंग बैंक का काम होता है।

विस्तारित विवरण के लिए बंगाल सेविंगस ब्यूरो १५ नं० ओल्ड कोर्ट हाउस स्ट्रीट, कलकत्ता में दरियाफ्त कीजिए।

CPU-414

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

[आश्विन, २००० वि० : : नवम्बर, १९४३ ई०]

हा रामानन्द बाबू ! (सचित्र) २८९
रामानन्द बाबूका पुण्य-स्मरण—
श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी २९४
रामानन्द चटर्जी—श्री रिचार्ड जे० वाल्श २९४
प्रवासीकी श्रद्धांजलि—स्वामी भवानीदयाल संन्यासी २९५
समाज-सुधारक रामानन्द चटर्जी—श्री सन्तराम २९८
रामानन्द बाबू—श्री दौलतराव परशुराम ३००
रामानन्द बाबूके निधनपर पत्र-पत्रिकाओंकी श्रद्धांजलियाँ ३०१
शोक-प्रस्तावः ३०३
भारतकी औद्योगिक उन्नतिका प्रश्न—
प्रो० शंकरसहाय सक्सेना ३०५
संस्कृतका कथा-साहित्य—
श्री अविनाशकुमार श्रीवास्तव ३१०
अधूरा चित्र (कहानी)—श्रीमती कमलादेवी चौधरी ३१३
मानव-मनकी पहेली—प्रो० प्रभाकर माचवे ३१८
'दिशो न जाने न लभे च शर्म !'—
प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र ३२१
साज़िश (एकांकी नाटक)—श्री धर्मवीर ३२७
प्राचीन भारतमें संगीत—श्री दौलतराव परशुराम ३३१
मैंने नाचना कैसे सीखा ?—श्री लज्जाकुमारी ३३३
कालिदासके दो चित्र—श्री शोभाचन्द्र जोशी ३३५
'त्यागपत्र' और 'नारी'—प्रो० नगेन्द्र ३३७
होमियोपैथी (एकांकी)—श्री मनोरंजन भट्टाचार्य ३४१
चिट्ठी-पत्री ३४६ ; २१ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार ३४८ ; २२ चयन ३५१ ; २३ सम्पादकीय ३५३
तिरंगा चित्र : वापसी—श्री वासुदेव राय २८९

आपके केशोंका रक्षाकी कुंजी

अपने केशोंकी रक्षा करनेकी कुंजी आपके ही हाथोंमें है···केशोंकी वृद्धिके सहायक और उसकी रक्षामें उपयोगी एवं उसके सौन्दर्यके स्थायित्वमें मददगार

कामिनिया आयल (रजि०)

की एक शीशी ही यह काम करती है...इसे आप भूल नहीं सकते...इसका अद्वितीय सुगन्ध इसके नामकी तरह ही आकर्षक है। कीमत एक शीशीकी १) ; २॥।-), ३ शीशीकी। वी० पी० चार्ज अलग। सुफ्त नमूनेके लिये -) का टिकट भेजें।

ओटो दिलबहार (रजि०)

सुगन्धका राजा—यह मामूली सुगन्ध-द्रव्यों से भिन्न वस्तु है...अत्यन्त मनमोहक। अन्य सुगन्धित द्रव्योंसे इसकी तुलना नहीं हो सकती... अलकोहलसे मुक्त···स्थायी सुगन्ध ! एक ड्रामकी शीशी ॥।=)। वी० पी० खर्च अलग। नमूनेके लिये =) आनेके स्टाम्प भेजें।

सोल एजेण्ट—

एंग्लो इंडियन ड्रग एण्ड केमिकल कं०, बम्बई-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य नष्ट हो गया है?

तो ताकत की ऐसी औषधी का सेवन करें जो पाचन शक्ति भी बढाये

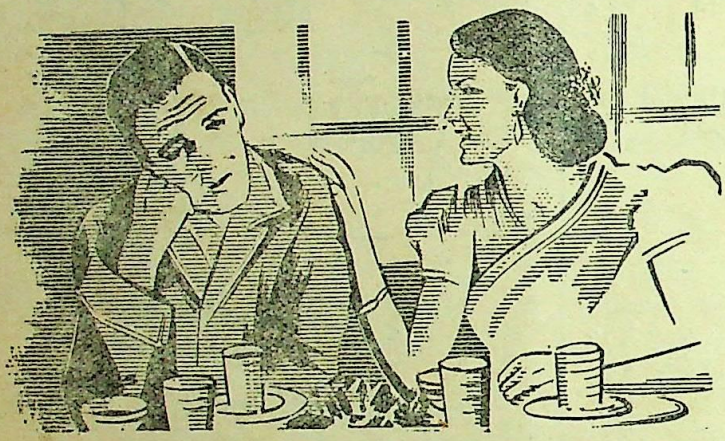

मेरे पति प्रातःकाल उठकर नित्य कहते,—"तबियत गिरती ही जा रही है।" मैंने उन्हें द्राक्षो माल्ट का सेवन कराया। उससे उनमें अद्भुत परिवर्तन हो गया।

हेमो द्राक्षो माल्ट की दो रूप से क्रिया होती है। इसमें लोह, ग्लीसरो–फास्फेट्स और हेमो ग्लोबिन रक्तको बढ़ानेवाले हैं और नसोंको दृढ़ करते हैं; दूसरी ओर जवका सत, अंगूर का रस तथा अन्य औषधियां पाचन शक्ति बढ़ाती हैं।

संसार में सर्वश्रेष्ठ है अब मेरे पति उत्साह और शक्तिसे परिपूर्ण हो गए हैं। वे कहते हैं,—"यह शक्ति की अद्भुत औषधि है, जो सोनेके मोल की है।" इसलिए मैंने भी इसका सेवन आरम्भ कर दिया है।

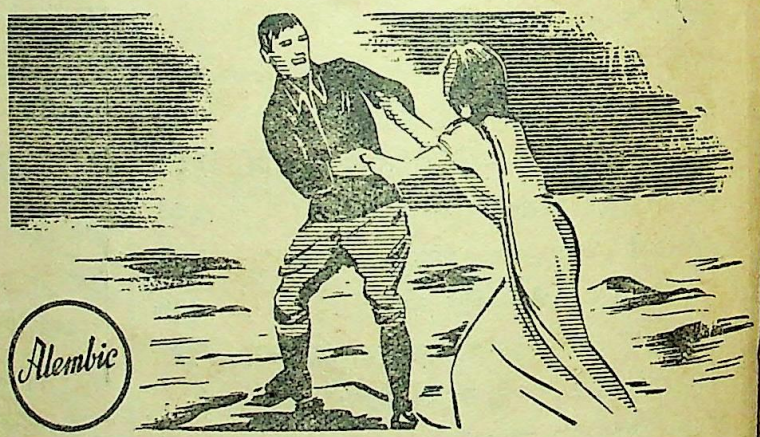

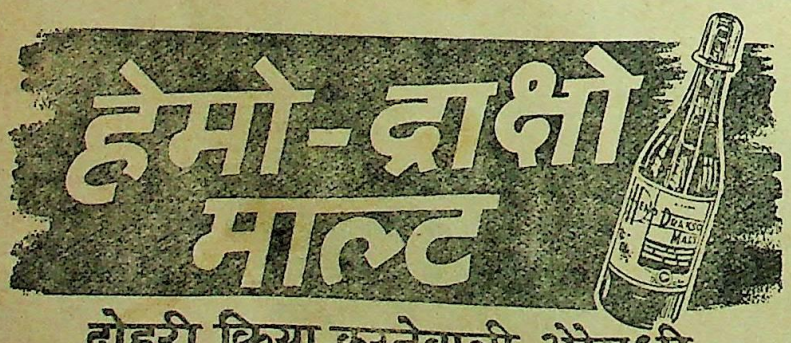

एलेम्बिक केमिकल

वर्क्स कं० लि०

बड़ौदा

एलेम्बिक डिस्ट्रीब्यूटर्स लि०, रस्तोगी हाउस, बाँकीपुर, पटना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब नैशनल बैंक लि०

हेड-आफिस :—
४७ माल रोड, लाहौर

ब्रांचें :—
समस्त भारतवर्ष में ११४

बैंक जो अपने गुणोंमें अनुपम है

क्रमानुसार बचत

के लिये

पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

में

अपना सेविंग-बैंक हिसाब खोलिये ।

सूद १॥ प्रति सैकड़ा सालाना

चेक द्वारा रुपया निकलवाने की सहूलियत ।

* * * * * * *

चालू धन २७ करोड़ से अधिक

बैंक-सम्बन्धी सब प्रकारका कारोबार किया जाता है ।

लन्दन और न्यूयार्कमें भी हमारी एजेंसियाँ हैं ।

योद्धराज
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैंतालीस सालकी परीक्षित महौषधि

सन्तानदाता अवलेह

यह अवलेह यथा नाम तथा गुण है। हज़ारों अँधेरे घरोंमें इसने चिराग़ जलवा दिये। यह अवलेह वन्ध्याको पुत्रवती बनाकर कुलका नाम चलाता है। जिसके घरमें पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। इसलिए पुत्र पानेके लिये आप इस अवलेहको अपनी प्यारी धर्मपत्नीको सेवन कराइये। इससे स्त्रियोंके सारे गुप्तांग रोग नाश होते हैं—जैसे कमर और पीठ वगैरःमें दर्द होना, कम-ज़्यादा ख़ून गिरना, गर्भाशयमें पीड़ा होना, नलोंमें भारीपन रहना, हल्की हरारत, जीर्ण-ज्वर, पिंडलियाँ दुखना, सिरमें दर्द रहना वगैरह सारी शिकायतें इस अमृतसे काफूर हो जाती हैं। जो काम लेडी डाक्टरोंके आपरेशनोंसे नहीं हुए, वे इस अवलेहसे हो गये। मूल्य १२) रुपये सेर। पहले आधा सेर मँगा लीजिये। चमत्कार दीख जायगा।

नोट :—अगर प्रदर आदि रोगकी शिकायत है, तो आप हमारे यहाँसे रोगिणी-फार्म मँगा लें। आपके पत्रका उत्तर आदरणीय वैद्य बाबू हरिदासजीकी सुपुत्री श्रीमती चमेलीदेवीजी वैद्या द्वारा दिया जायगा, जो कि नारी-चिकित्सामें प्रवीण हैं। याद रखें, इनका दवाख़ाना अलग नहीं है। हरिदास एण्ड कम्पनीके ही पतेपर पत्र-व्यवहार करें, अन्यथा धोखा होगा!

पता—हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा।

कोल्ड क्रीम
आफ़् रोज़ेज़

गुलाबकी सुगन्धिवाला
प्रसाधन प्रलेप

शीतके दौरात्म्यसे हाथ, पाँव, मुँह, होंठ और शरीरकी चमड़ीके स्वास्थ्य एवं लावण्यकी रक्षाके लिए अनुपम। सौन्दर्य-साधनाके लिए यह परम सहायक और फैशनपरस्तोंका परम बन्धु है। इसमें चर्बी या मोमका लेश भी नहीं है।

* *
*

बेंगल केमिकल
कलकत्ता : बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IMPORTANT FOR THE CULTURED

The Renaissance of Indian Art has now become an accomplished fact. Even the Western World of Art has given recognition to it.

CHATTERJEE'S PICTURE ALBUMS form a series of Seventeen numbers, each containing 16 coloured reproductions from the paintings of most eminent artists. *Of these No. 1 & 9 are out of print.* The other Fifteen numbers—*which are all independent*—are priced at Rs. 2-8 as. each, postage As. 6. The present price for these Fifteen numbers is Rs. 37-8 as. *plus* postage Re. 1-12.

As the albums cannot be replaced now excepting at a very high cost, we have had to raise the price to Rs. 2-8 as. each, but for our readers the prices would be till further notice :—

The Full Set of Fifteen for	**Rs. 34-0.**	**Post free in India**
Any Ten Numbers for	**Rs 23-0.**	**„ „ „ „**

12½ per cent of the above values should accompany V.P.P. orders in stamps. Rebate for postage will be given for delivery taken by hand.

Only A Few Sets Left

CHATTERJEE'S Albums are of Great Value—Historical and Artistic.

The Modern Review Office

120-2, Upper Circular Road, Calcutta.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों के लिए ताकत की दवा

डोंगरे का बालामृत

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला', मू० ४)।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला ३), भाग दूसरा ३)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

भक्तियोग ; प्रेमयोग ; प्राच्य और पाश्चात्य ; आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ; परिव्राजक—प्रत्येकका मू० ॥≈)।

मेरे गुरुदेव—मू० ।≈) ; **शिकागो-वक्तृता**—मू० ।≈) ; **वर्त्तमान भारत**—मू० ।≈)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर

(सी० पी०)

विश्वभारती पत्रिका

पत्रिकाका सातवाँ अंक प्रकाशित हो गया।

इस अङ्कके कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :—

शिक्षानिधि	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
वेदका अर्थानुचिन्तन	बलदेव उपाध्याय
धर्मकीर्त्तिका दर्शन (२)	राहुल सांकृत्यायन
नटीकी पूजा	कृष्ण कृपालानी
चतुरंग (उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर
विस्मृत बौद्ध दर्शन	शान्ति भिक्षु
साहित्यका नया रास्ता	हजारीप्रसाद द्विवेदी

इसके अतिरिक्त चीन-भवनकी दीवारोंपर सुप्रसिद्ध शिल्पाचार्य श्री नन्दलाल वसु द्वारा अंकित नटी-पूजाके नयनाभिराम चित्र, रवीन्द्रनाथकी कविताएँ और चोटीके विद्वानों द्वारा लिखी हुई समालोचनाएँ हैं। प्रथम वर्षकी फाइलें बहुत कम बची हैं। संग्रह करनेमें शीघ्रता कीजिए।

वार्षिक मूल्य ६) आज ही ग्राहक बनिए प्रति संख्या १॥)

व्यवस्थापक, विश्वभारती पत्रिका,

हिन्दी-भवन, शान्तिनिकेतन, बंगाल

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[श्री वासुदेव राय

चापसुंदरी

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्थापक—रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"
"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३२, अंक ५] आश्विन, २००० : : नवम्बर, १९४३ [पूर्णांक १९१

हा रामानन्द बाबू !

गत ३० सितम्बरको, जब कि 'विशाल भारत'का अक्टूबरका अंक छपकर पाठकोंकी सेवामें भेजा जानेके लिए तैयार हो रहा था, संध्याके ७-४० पर उसके संचालक तथा 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'के ख्यातिनामा सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायने अचानक अपनी इहलीला संवरण कर ली। यद्यपि उनका अन्त सर्वथा आकस्मिक नहीं था ; पर इससे कुछ ही क्षण पहले वे अपनी ज्येष्ठा पुत्रीसे इतनी अच्छी तरह बात-चीत कर रहे थे कि उनके अन्तके इतने निकट होनेकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अन्त तक उनकी चेतना और स्मरण-शक्ति बाक़ायदा बनी रही।

पिछले ८ वर्षोंसे आप एक ऐसे रोगसे पीड़ित थे, जिसका ठीक-ठीक निदान नहीं हो पाया था। आपके सारे शरीरमें ऐसी तेज़ खुजली और जलन होती थी कि चैन नहीं पड़ती थी। ५५ वर्षोंसे विशुद्ध निरामिषभोजी होनेके कारण आपकी शारीरिक दुर्बलता भी रोग-वृद्धिमें सहायक हुई। १९४० में आपकी अवस्था काफ़ी चिन्ताजनक हो चली। एक प्रमुख त्वचा-विशेषज्ञसे आपका निरीक्षण करवाया गया, जिसने आपको खुजली दूर करनेकी दवा दी। पर इससे भी आपको कोई स्थायी लाभ नहीं हुआ। बादमें मालूम हुआ कि आपको कोई त्वचा-रोग नहीं है, यद्यपि आपकी त्वचा किसी प्रकारके पोषणकी कमीसे दुबल हो गई थी। इसके बाद कई कुशल चिकित्सकोंका कई तरहका इलाज कराया गया ; किन्तु आंशिक और अस्थायी आरामके सिवा कुछ भी लाभ नहीं हुआ। इस अवस्थामें भी, जब कि आपका शरीर अतीव दुर्बल हो चला था, बिना पर्याप्त विश्राम तथा उचित पोषक द्रव्योंके लिए ही आप उसी लगन, श्रम तथा तत्परताके साथ 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'के सम्पादनका कष्ट एवं श्रम-साध्य कार्य करते रहे। नवम्बर १९४२ में आपका रोग इतना उग्र हो चला कि आपको शय्याकी शरण लेनी पड़ी। इस तरह मजबूरन आपको अपने कामसे हाथ खींच लेना पड़ा। फरवरी १९४३ में एक बार बिना किसी सहारेके उठनेकी चेष्टा करते हुए आप गिर पड़े, जिससे आपके कूल्हेकी हड्डी टूट गई। इस दुर्घटनाने आपके स्वस्थ और नीरोग होनेकी रही-सही क्षीण आशाको भी धुँधला बना दिया। बढ़ती हुई दुर्बलता और इस दुघटनाके परिणाम-स्वरूप कई अन्य व्याधियाँ भी उठ खड़ी हुईं और अन्तमें विजातीय पदार्थ मिल जानेसे आपके रक्तमें एक तरहका विष फैल गया, जो आपके अन्तका प्रत्यक्ष कारण बना।

बुद्धि और स्मरण-शक्तिने अन्तिम क्षण तक आपका साथ दिया। रोग-शैयापर पड़े-पड़े ही आप न सिर्फ़ 'प्रवासी', 'माडर्न रिव्यू' और 'विशाल भारत'-परिवारके सदस्योंसे बातचीत करने, सलाह-मश्विरा देने और मार्ग-प्रदर्शन करनेका कार्य ही बखूबी करते रहे ; बल्कि अनेक मित्र-परिजनों तथा आगन्तुकोंके साथ भी प्रसन्नता, स्पष्टता और पुरानी स्मृतियोंको लेकर विचार-विमर्श करते रहे। अनेक संस्थाओंकी ओरसे की गई संवर्द्धनासे आप न केवल प्रत्यक्ष रूपसे प्रभावित ही हुए, बल्कि अपनी प्रतिभा, प्रतिष्ठा, अनुभव एवं अध्ययनशीलताके अनुरूप भेंट किए गए अभिनन्दन-पत्रोंके सम्यक उत्तर भी दिए। एक बार तो आपने संस्कृतके एक विद्वान अध्यापकके सामने, कोई प्रसंग आनेपर, महाभारतसे संस्कृतका एक काफ़ी बड़ा उद्धरण बिना रुके या उच्चारणमें किसी प्रकारकी त्रुटि किए सुनाकर सभी उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियोंको आश्चर्य-चकित कर दिया। पूरे ६० वर्ष तक कठोर परिश्रम करनेपर भी आपकी मेधा, स्मरण-शक्ति और मस्तिष्क अन्त तक कितने सशक्त, संचलनशील और स्पष्ट बने रहे, यह इस बातसे साफ़ ज़ाहिर है।

स्वदेशकी समस्याओंके प्रति आप अन्तिम काल तक जागरूक एवं चिन्तनशील बने रहे। प्रतिदिन आप अनेक प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ पढ़वाकर सुनते थे और महत्त्वपूर्ण घटनाओं एवं समस्याओंपर उपस्थित व्यक्तियोंके समक्ष अपना मत भी प्रकट करते थे। यह मत वही होता था, जो लेखनी द्वारा लगभग आधी शताब्दी तक 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'के पृष्ठोंमें व्यक्त होता रहा है—यद्यपि इसके लिखित रूपमें प्रधानता होती थी तर्क, संयम और प्रभावकी; जब कि इसके कथित रूपमें मानो आप अपने हृदयकी सारी वेदना और तड़प उँड़ेल देते थे। इस बीच कई पेचीदा और नाजुक मामलोंमें आपकी सलाह भी ली गई, जिसपर आपकी स्वाभाविक विश्लेषण-शक्ति, अनुभव एवं अध्ययनशीलताकी गहरी छाप थी।

रामानन्द बाबू एक ऐसे ऋषी थे, जिन्होंने अपनी नहीं, बल्कि अपने देशकी मुक्तिके लिए यावज्जीवन तप किया। आपने अपना घर नहीं, मातृभाषाका भाण्डार भरा; अपनी नामवरी नहीं की, बल्कि मातृभाषाका मस्तक ऊँचा किया। आप चाहते तो एक सम्पन्न और सुखी गृहस्थ बनकर ऐश-आरामसे रह सकते थे। पर आपने सुख और सम्पन्नताके मार्गको ठुकरा कर स्वेच्छासे—कर्त्तव्य और विवेककी प्रेरणासे—सेवा, कष्ट और निःस्वका कँटीला मार्ग अपनाया। लगी-लगाई नौकरी छोड़कर आपने अखबारनवीसीके उस घर-फूँक पेशेको अपने लिए चुना, जिसके सिरपर हर घड़ी सरकारके क़ानूनी कोपका कुल्हाड़ा तना रहता है और पाँव दरिद्रताका अजगर निगलता रहता है। १८९९ में जब आप कायस्थ-पाठशाला-कालेज, प्रयागके प्राध्यापक थे, आप कालेजके जातीय उर्दू-मासिक मुखपत्र 'कायस्थ-समाचार'के सम्पादक नियुक्त हुए। आपने इसे जातीयताकी संकीर्ण सीमाओंसे बाहर निकालकर एक सार्वजनिक हितके अंगरेज़ी-मासिकका रूप देनेकी चेष्टा की। पर इसमें आपको उचित सुविधा एवं सन्तोष नहीं मिले, अतः एक वर्ष बाद आपने इसका सम्पादन-भार त्याग दिया और १९०१ में सुप्रसिद्ध बँगला मासिक 'प्रवासी'का निजी प्रकाशन आरम्भ किया। समयपर इसे छाप देनेका भार आपके सुहृद इंडियन प्रेस, प्रयागके स्वामी स्व० चिन्तामणि घोषने लिया। कुछ समय बाद कालेजकी प्रबन्ध-समितिसे मतभेद होनेके कारण अपने पदसे इस्तीफ़ा देकर आप कलकत्ता चले आए।

अब एक ओर आपके सामने अपनी पत्नी और ५ बच्चोंके भरण-पोषणका सवाल था और दूसरी ओर 'प्रवासी'का प्रकाशन जारी रखनेका। पिछले कुछ ही महीनोंमें 'प्रवासी'ने बँगला-भाषा-भाषियोंमें ऐसी धाक जमा ली थी कि आप उसे किसी भी हालतमें बन्द नहीं करना चाहते थे। वह आपकी चरम आकांक्षाका मूर्त्तरूप बन चुका था। इसी धर्म-संकटके समय आपके सामने दो 'सुअवसर' उपस्थित हुए। आप कलकत्तेके सिटी-कालेजके प्रधान नियुक्त किए गए; पर बादमें आपने यह पद 'गुरु-दक्षिणा' के रूपमें अपने एक अध्यापकको अर्पित कर दिया। दूसरा अवसर था एक देशी राज्यमें युवराजके शिक्षक एवं एक शिक्षण-संस्थाका अध्यक्ष होनेका, जिसमें खासे अच्छे वेतनके सिवा इस शर्त्तपर 'प्रवासी'का सारा खर्च दिए जानेकी भी बात थी कि उसे एक अ-राजनीतिक विशुद्ध साहित्यिक पत्र बना दिया जाय! पर आपके जीवनका उद्देश्य इतना प्रबल और स्पष्ट तथा लगन इतनी ज़बर्दस्त थी कि ये प्रलोभन आपको पथ-भ्रष्ट नहीं कर सके। जिस तुच्छतासे आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालय द्वारा बी० ए० में प्रथम आनेपर मिलनेवाली सरकारी छात्रवृत्तिको ठुकरा दिया था, उसीसे आपने इस निमंत्रणको भी ठुकरा दिया।

भारतकी राजनीति इस समय एक नई करवट ले रही थी। कर्ज़नका साम्राज्यवाद अगाड़ी-पिछाड़ी तोड़कर हिनहिना रहा था। बंग-भंगकी योजनाने जनतामें असन्तोष और विक्षोभकी एक ज़बर्दस्त लहर पैदा कर दी थी। साम्राज्यवादी हुक्काम हर तरहसे लोकमत और लोकबलको कुचलनेपर आमादा थे। बिना मुक़दमा चलाए अनिश्चित कालके लिए किसीको भी 'नज़रबंद' कर लेना, पत्रोंके मुँहपर 'विशेष क़ानूनों'का ताला डालना, अवैध तरीक़ोंसे दमन करना आदि रोज़मर्राकी मामूली-सी बातें हो चली थीं। देशकी यह स्थिति देखकर रामानन्द बाबूके हृदयको गहरी ठेस लगी, और उन्होंने म्रियमाण राष्ट्रीयताके पुनरुज्जीवनके लिए अपनी एड़ी-चोटीका पसीना एक करनेका संकल्प किया। दिल और दिसाग़के साथ ही उनके हाथमें तलवारको परास्त करनेवाली ज़ोरदार क़लम थी; पर 'प्रवासी' द्वारा उनकी आवाज़ बँगला-भाषा-भाषियोंके सिवा दूसरों तक नहीं पहुँच पा रही थी, जब कि वे उसे समूचे देश और विदेशों तक पहुँचाना चाहते थे। फलतः वे प्रयाग लौटे और जनवरी १९०७ में इण्डियन प्रेससे ही अंगरेज़ी-मासिक 'माडर्न रिव्यू'का प्रकाशन आरंभ किया। 'माडर्न रिव्यू'के कुछ अंकोंने ही जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश-विदेशमें उसकी धाक जमा दी, वहाँ युक्त-प्रांतकी नौकरशाही को बुरी तरह बौखला भी दिया। उसने रामानन्द बाबूको तुरन्त युक्त-प्रान्त छोड़ देनेका नादिरशाही हुक्म दिया, जिसका विकल्प था बिना मुक़दमा चलाए अनिश्चित कालके लिए नज़र-बन्दी। नज़रबन्दीका परिणाम होता 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' का खात्मा। पर चूँकि ये दोनों पत्र प्रबल राष्ट्रीय अस्त्र बन चुके थे, आपने इनका प्रकाशन बन्द करनेके बजाय युक्त-प्रान्त छोड़ देना ही ठीक समझा और सिरपर आर्थिक तथा पारिवारिक चिन्ताओंका बोझ लादे फिर कलकत्ता चले आए। यहाँ आकर आपने अनेक कठिनाइयों एवं अभावोंके बावजूद 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'के प्रकाशनकी नए सिरेसे व्यवस्था की।

इसके बादका आपका जीवन आदर्श और सिद्धान्तोंके पुजारी; देशकी संस्कृति, स्वाधीनता और साहित्यके आराधक तथा न्याय-नीति, चरित्र-बल और साधुताके साधककी लम्बी संघर्ष-कहानी है। अपनी स्पष्टवादिता, निर्भीकता और न्याय एवं सत्य-परायणताके लिए आपको अदालत तक घसीटा गया तथा जे० टी० सण्डरलैण्डकी 'इण्डिया इन बौण्डेज' (गुलाम भारत) छापकर दुनियाके सामने भारतकी आज़ादीके लिए आवाज़ बुलन्द करनेपर दण्डित भी किया गया। पदों और पैसोंके प्रलोभन तो आपके सामने अनेक बार आए और सम्मान भी आपका खूब किया गया। १९२६ में आपके जीवनमें एक ऐसा अवसर भी आया, जब कि आप चाहते, तो उससे काफ़ी सम्पत्ति और सम्मान अर्जन कर सकते थे। पर एक क्षणको भी आपने उससे लाभ उठानेकी बात नहीं सोची और कभी भी अपने विवेक, न्याय एवं सत्य-परायणतापर आँच नहीं आने दी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, आपकी लेखनीका ज़ोर और निर्भीकता भी अधिकाधिक बढ़ते गए। इस तरह योग्यता, साहसिकता, निर्भीकता और देशकी स्वाधीनताकी लगनके कारण आप एक बहुत बड़े राष्ट्र-बल अथवा राष्ट्रीय संस्था बन गए।

जनवरी १९२८ से आपने 'विशाल भारत'का प्रकाशन आरम्भ किया। इसके जन्म और उद्देश्यके सम्बन्धमें इसके प्रथम अंकमें ही लिखा गया था: "...जिन सिद्धान्तों तथा विचारोंका प्रचार आप अपने अंगरेज़ी तथा बँगला पत्रों द्वारा करते रहे हैं, उन्हींको अब आप राष्ट्रभाषा द्वारा हिन्दी-जनताके सम्मुख रखना चाहते हैं। 'विशाल भारत'की आयोजनाका एकमात्र उद्देश्य यही है।" जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, रामानन्द बाबू जहाँ भारतकी राष्ट्रीय स्वाधीनताके कट्टर समर्थक थे, वहाँ वे भारतीय संस्कृतिके भी पुजारी थे। उनके मानस-चक्षुओंके सामने बृहत्तर भारतका वह मानचित्र सदा झूलता रहा है, जिसकी सभ्यता-संस्कृतिकी पताका कभी सुदूर-पूर्वमें जापान तक और पश्चिममें आजके मध्य-पूर्व, मिस्र, तुर्की, यूनान और रोम तक फहराती रही है। 'विशाल भारत' उनके इसी स्वप्नकी अभिव्यक्ति है और यही कारण है कि प्रवासी भारतीयोंकी समस्याओंकी ओर उनका सविशेष ध्यान रहा और 'माडर्न रिव्यू' तथा 'विशाल भारत'ने इस प्रश्नको अपना एक मुख्य प्रश्न बनाया। इसके अतिरिक्त भारतकी विभिन्न जातियों, प्रदेशों, उनके साहित्यों, सामाजिक एवं व्यापारिक स्थितिकी जानकारीके आदान-प्रदान, राजनीतिक एवं सामाजिक सुधार; शिक्षा तथा उद्योग-धन्धोंकी उन्नति; किसानों व मज़दूरोंकी सेवा तथा ज्ञान-वृद्धि; माँ-बहनोंका सम्मान, शिक्षा और सुधार; साहित्यका पुनरुज्जीवन तथा उसके नवांगोंका विकास और सबसे बढ़कर देशकी एकराष्ट्रीयता तथा स्वाधीनताके लिए आवाज़ बुलन्द करना 'विशाल भारत'का प्राथमिक उद्देश्य रहा है।

'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'की ही भाँति 'विशाल भारत'को भी हम रामानन्द बाबूका मानस-पुत्र कह सकते हैं। तीनोंकी आत्मा उन्हींके उज्ज्वल व्यक्तित्वका वरदान है। अगर कोई अन्तर है, तो यही कि जहाँ 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'को उन्होंने अपने रक्तसे सींचा और अपनी वाणीसे सजाया, 'विशाल भारत'को उनके व्यक्तित्वकी स्नेह-सिक्त शीतल छाया और पावन प्रेरणाकी संजीवनीसे ही पनपनेका मौक़ा मिला है। सबसे छोटा मानस-पुत्र होनेके कारण 'विशाल भारत' उनके विशेष स्नेहका भाजन रहा है और सौ काम छोड़कर भी उन्होंने 'विशाल भारत'-परिवारके सदस्योंसे भेंट-मुलाक़ात, बातचीत, आवश्यक परामर्श और मार्ग-प्रदर्शन आदिके लिए अपना अमूल्य समय दिया है। जाने-अनजाने कभी भूलसे भी उन्होंने परिवारके किसी सदस्यको, परोक्ष-रूपसे भी, मालिक-कर्मचारीके-से सम्बन्ध या व्यवहारका आभास नहीं होने दिया। यह तो बहुत दूरकी बात है, किन्तु छोटोंके प्रति उनका व्यवहार जितना स्नेह, अपनापन, सम्मान और शिष्टतापूर्ण रहा है, वह हमारे लिए गर्व और गौरवकी चीज़ है। इन सबके साथ ही उन्होंने रीति-नीतिके सम्बन्धमें 'विशाल भारत'के सम्पादकोंको सम्पूर्ण स्वाधीनता दे रखी थी और उनका इससे केवल एक सामान्य लेखकका-सा सम्बन्ध था। इस सम्बन्धमें 'विशाल भारत'के प्रथम अंकमें ही यह सूचना छपी थी—"अगले अंकसे 'विशाल भारत'में श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायकी राजनीतिक टिप्पणियाँ बराबर प्रकाशित होती रहेंगी। पर वे लिखेंगे उसी हैसियतसे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे कि कोई सम्मानित लेखक किसी पत्रमें लिखता है और अन्य लेखकोंकी तरह अपनी सम्मतियोंके लिए वे ही उत्तरदाता होंगे। 'विशाल भारत'की नीतिके संचालनमें उन्होंने हमें पूर्ण स्वाधीनता दे दी है।"

'विशाल भारत'की यह सम्पादकीय स्वाधीनता सिर्फ़ कहने या लोगोंको दिखानेके लिए ही नहीं थी, बल्कि इसके सम्पादकोंने सदा इसका साहस, विश्वास और निर्भीकताके साथ पूरा-पूरा उपभोग-उपयोग भी किया है। उदाहरणके लिए, रामानन्द बाबू हिन्दू-महासभाके प्रबल समर्थक एवं पृष्ठपोषक थे; पर 'विशाल भारत' अपने जन्म-कालसे ही उसे भारतकी एकराष्ट्रीयताके लिए हानिकर, अनावश्यक और संकीर्ण साम्प्रदायिक वितण्डावाद-मात्र समझता रहा है। एक बार उसके सभापति-पदसे दिए गए उनके भाषणकी भी उसने कड़ी आलोचना की थी। वे हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेकी क्षमतामें सन्देह करते थे और बँगलाको अधिक सक्षम समझते थे। उनके इस मतका 'विशाल भारत' ने न केवल प्रबल प्रतिवाद ही किया, बल्कि अपने प्रथम अंकसे ही हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेके अकाट्य प्रमाण, इसके समर्थनमें माने हुए मनीषियों और भाषा-विशारदोंके मत तथा राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीकी व्यापक सक्षमता और उसकी विकोसोन्मुख धाराके प्रामाणिक विवरण आदि भी प्रकाशित किए हैं। पर अपने मौलिक और सैद्धान्तिक मतभेदके बावजूद रामानन्द बाबूने कभी भी, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे, 'विशाल भारत'के संपादकोंपर किसी तरहका दबाव डालने, उन्हें किसी तरह प्रभावित करने या उनकी आज़ादीपर किसी तरहका अंकुश लगानेकी चेष्टा नहीं की। दूसरे शब्दोंमें हम इसे पिता और पुत्रका वह घरेलू मतभेद कह सकते हैं, जिसे लेकर न तो पुत्रको अलग घर बसाना पड़ा और न पिताको ही पुत्रको घरसे बाहर निकालना पड़ा। सच्चे विश्वास और ईमानदारीके इस मतभेदने 'विशाल भारत'-परिवार और रामानन्द बाबूके व्यक्तिगत या संचालक-संपादकके सम्बन्धोंमें कभी रत्ती-भर भी फर्क़ नहीं आने दिया। जहाँ यह बात रामानन्द बाबूके असाधारण एवं उच्च व्यक्तित्वकी परिचायक है, वहाँ इसने 'विशाल भारत'को वह आत्म-विश्वास और आत्म-बल भी दिया, जिससे बड़ीसे बड़ी सत्ता, संस्था या व्यक्तिकी उचित एवं निर्भीक आलोचना करने तथा दो-टूक सत्य कहनेसे वह कभी झिझका या चूका नहीं।

हिन्दीपर रामानन्द बाबूका जो अशेष ऋण है, उसकी विस्तृत चर्चा हम किसी अगले अंकमें करेंगे। 'विशाल भारत'का प्रकाशनकर उन्होंने हिन्दीकी क्या सेवा की, यह बतलाना हमारा काम नहीं है। अपनी वैयक्तिक जानकारीके आधारपर हम इतना ही कह सकते हैं कि हिन्दीके प्रति उनका अनुराग संदासे रहा है। 'सरस्वती' के प्रकाशनके लिए इंडियन प्रेसके स्वामी स्व० चिन्तामणि घोषको, जो आपके परम मित्र तथा 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'के आदि मुद्रक थे, आपने काफ़ी प्रोत्साहन और प्रेरणा दी थी। 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' कदाचित् पहले अ-हिन्दी पत्र हैं, जिनमें हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा संस्थाओंकी विशद चर्चा रहती है। 'प्रवासी'के प्रथम वर्षके तीसरे ही अंक (आषाढ़, १३०८) में आपने श्री अपूर्वचन्द्र दत्तका 'हिन्दी परिभाषा' शीर्षक एक लेख छापा था, जिसमें हिन्दीके पारिभाषिक शब्दोंपर खासा अच्छा विवेचनात्मक प्रकाश डाला गया था। इसी प्रकार 'माडर्न रिव्यू'के प्रथम अंक (जनवरी १९०७) में भी आपने 'बाल महाभारत' (ठा० सूर्यकुमार वर्मा), 'बाल रामायण' (पं० रामजीलाल शर्मा), 'जीवदया' (श्री माणिक्यचन्द्र जैन) और 'आनन्दमठ'के हिन्दी-अनुवाद (कुँवर कमलानन्द सिंह) की विशद आलोचना की थी और अंतिम पुस्तकमें अनुवादकी भूलोंपर भी खासा प्रकाश डाला था। 'सरस्वती'के प्रकाशनपर आपने हिन्दीके सामयिक साहित्यका पर्यवेक्षण करते हुए ('प्रवासी', भाद्र १३१०) उसके प्रथम अंककी जैसी सुन्दर एवं समीचीन आलोचना की थी, उसे पढ़कर यह कहना कठिन है कि वह किसी अ-हिन्दी-भाषा-भाषीकी लिखी हुई है। तुलसीकृत रामायण, महाभारत, आल्हा, हिन्दीके वैज्ञानिक शब्दकोष तथा सामयिक हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकोंपर जैसी सुन्दर और तथ्यपूर्ण समीक्षाएँ 'प्रवासी' तथा 'माडर्न रिव्यू'में निकली हैं, वैसी शायद हिन्दी-पत्रोंमें भी बहुत कम निकली होंगी। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाका, जिसका अधिकांश अ-हिन्दी-भाषा-भाषी शायद आज भी नाम नहीं जानते, आपने सितम्बर १९०७के 'माडर्न रिव्यू'में सचित्र परिचय (एडविन ग्रीव्ज़-लिखित) छापा था। इस तरह अ-हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्रोंमें आपके द्वारा हिन्दीका असाधारण प्रचार हुआ है। पता नहीं, कितने हिन्दी-भाषा-भाषी यह जानते हैं कि अनेक अ-हिन्दी-भाषा-भाषी व्यक्तियों तथा संस्थाओंने 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'में प्रकाशित हिन्दी-पत्रों एवं पुस्तकोंकी समीक्षाएँ पढ़कर ही हिन्दी-पत्रों एवं पुस्तकोंका चुनाव किया है और बहुतसे आज भी करते हैं। यही नहीं, 'माडर्न रिव्यू'में छपनेवाली हिन्दी-पुस्तकोंकी समीक्षाओंने देश-देशान्तरके अंगरेज़ी-भाषा-भाषियों तक हिन्दी-साहित्यकी प्रगति और विविधताका संदेश पहुँचाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्व० बालकृष्ण भट्ट, श्री सुन्दरलाल तथा अन्य कई हिन्दी-महारथी रामानन्द बाबूके उन सुहृदोंमें से थे, जिनसे वे अक्सर हिन्दी-सम्बन्धी विचार-विमर्श किया करते थे। पर इनके पत्रों या ग्रन्थोंकी माकूल आलोचना करनेसे वे कभी नहीं चूकते थे। (उदाहरणके लिए देखिए 'माडर्न रिव्यू'के नवम्बर १९०७ के अंकमें प्रकाशित द्विवेदीजीकी 'विक्रमांक-देव-चरित-चर्चा' और फरवरी १९०८ के अंकमें प्रकाशित उन्हींकी 'हिन्दी - भाषाकी उत्पत्ति' की आलोचनाएँ।) नागरी-लिपिकी वैज्ञानिकताके रामानन्द बाबू बहुत क़ायल थे और अपने अनेक संकीर्ण-मनोवृत्तिवाले बँगला-विद्वानोंके विरोधके बावजूद 'माडर्न रिव्यू'में संस्कृत अथवा बँगलाके उद्धरण सदा देवनागराक्षरोंमें ही छापते थे। 'विशाल भारत'के कम्पोज़िंगके लिए उन्होंने हिन्दी-लाइनो-मशीन भी मँगवाई; किन्तु कई कारणोंसे वह प्रयोग अधिक न चल सका।

रामानन्द बाबूके निधनके रूपमें जहाँ देशने अपने संकटके गाढ़े समयमें एक निर्भीक और सत्यवादी सुयोग्य सिपाही खो दिया, पत्रकार-जगत्‌ने आदर्शों और सिद्धान्तोंके लिए लड़ने, सर्वस्व निछावर करने और मरनेवाला एक 'भीष्म पितामह' खो दिया, हमने अपने गौरव, गर्व, आश्वासन और अभिमानका प्रतीक तथा मार्ग-प्रदर्शनका दीप-स्तम्भ खो दिया। आज जब कि सत्यका सूर्य प्रोपेगण्डा और पाबन्दियोंके बादलोंमें छिप गया है तथा न्याय और औचित्यको युद्धके धुँएने उदरस्थ कर लिया है, उनके सत्परामर्श, अनुभव और मार्ग-प्रदर्शनकी हमें कितनी अधिक ज़रूरत थी, इसे हमीं अनुभव कर सकते हैं। पर अन्ततः यही समझकर हम उनके इस दुःसह वियोगके आघातको सहन कर रहे हैं कि उनकी पुण्य-पवित्र आत्माका प्रताप, उनकी तेजस्विता, उनकी आदर्श, सिद्धान्त और सत्य-पूजा तथा उनका असाधारण साहस, निर्भीकता और आत्म-विश्वास स्थिर प्रकाश-पुंज बनकर सदा संकट, दुर्बलता तथा विभ्रमके समय हमारा मार्ग-प्रदर्शन करते रहेंगे। इसी आशा, आश्वासन और आत्म-विश्वासको लेकर हम अडिग-अभय कर्त्तव्यके उस पथपर चलते रहेंगे, जिसे रामानन्द बाबूके पुण्यचरण-चिह्न स्पष्ट और आलोकित कर गए हैं। इस यात्रामें उनका आशीर्वाद ही हमारा सबसे बड़ा सम्बल एवं अवलम्ब होगा।

हमारी इस अपौर्णेय क्षतिमें जिन कृपालु लेखकों, कवियों, ग्राहकों, पाठकों, एजेण्टों तथा उदाराशय संस्थाओंने तारों, पत्रों,

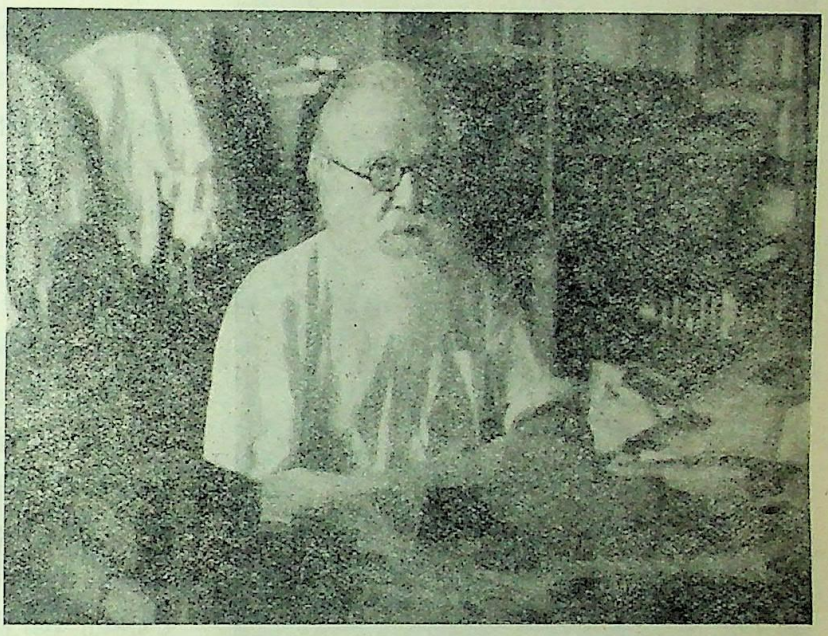

रामानन्द बाबू (१९४२ ई०)

प्रस्तावों आदिके रूपमें समवेदना और आश्वासनका जो हाथ हमारी ओर बढ़ाया है, उनके प्रति किन शब्दोंमें हम अपनी विनीत कृतज्ञता ज्ञापन करें? रामानन्द बाबूको खोकर आज हम अपनेको जिस अनाथावस्थामें पा रहे हैं, उसमें हमारे लिए यह बहुत बड़ा सहारा है। हमें खेद है कि हम अपने इन उदार अभिभावकोंके प्रति पृथक-पृथक रूपसे आभार प्रदर्शन न कर सके। इस असमर्थताके लिए क्षमा-याचना करते हुए हम इन पंक्तियों द्वारा उन सबके प्रति अपना विनम्र श्रद्धा-निवेदन करते हैं और आशा करते हैं कि उनका सहयोग, स्नेह और सत्परामर्श हमें सदा पूर्ववत् प्राप्त होते रहेंगे।

आगामी अंकोंमें हम रामानन्द बाबूके जीवन एवं कार्योंपर विस्तृत प्रकाश डालनेवाले लेख तथा संस्मरण प्रकाशित करेंगे और उनके अपने महत्त्वपूर्ण विचारोंको भी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करनेकी भरसक चेष्टा करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामानन्द बाबूका पुण्य-स्मरण

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

बाबू रामानन्द चट्टोपाध्यायके देहान्तसे पत्रकार-जगत्की जो अपौणेय क्षति हुई है, उसकी चर्चा ही इस समय नहीं हो सकती। इस देशमें गत ५० वर्षोंमें बहुतसे नामी

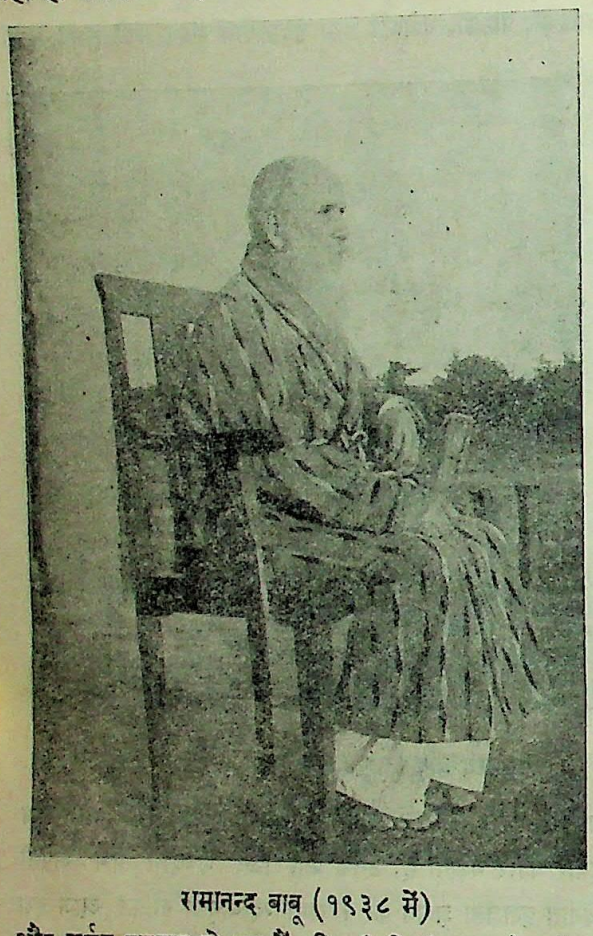

रामानन्द बाबू (१९३८ में)

और कर्मठ पत्रकार हो गए हैं, जिनकी निर्भीकता और देश-भक्ति तथा ज्ञानके कारण आज इस देशके लोगोंको भी अपनी गिरी हुई अवस्थाका अनुभव होने लगा है। रामानन्द बाबू इनमें अन्यतम थे। अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, उत्कट देश-प्रेम और शारीरिक और मानसिक बलका उपयोग उन्होंने इस देशको उठानेमें ही किया। वे अन्यायके सामने दबते नहीं थे और न उससे किसी तरहका समझौता ही करते थे। यही नहीं, वे किसीको उसकी इच्छाके विरुद्ध दबाते भी नहीं थे। इसका प्रमाण 'विशाल भारत'के सम्पादकको मत-स्वातन्त्र्यका अधिकार देना है। रामानन्द बाबू समझते थे कि देशकी वर्त्तमान अवस्थामें हिन्दू महासभा-जैसी संस्था उपयोगी ही नहीं, आवश्यक भी है। 'विशाल भारत'-सम्पादकको यह मत रुचिकर नहीं था और वे इसके विरुद्ध लिखते भी थे। 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी'में इस सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा जाता था, 'विशाल भारत'को उसके विरुद्ध भी लिखनेसे रामानन्द बाबूने कभी नहीं रोका। यह उनकी अद्वितीय और विलक्षण सहिष्णुता थी।

उनका मृदु स्वभाव, भव्य मूर्त्ति और निर्मल चरित्र तथा दिव्य तेज लोगोंको प्रभावित किए बिना नहीं रहते थे। मुझे बंगालके बड़ेसे बड़े सम्पादकके सम्पर्कमें आनेके अवसर मिले हैं। मैंने सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी सहनशीलता और उदारता देखी है, मोतीलाल घोषकी सादगी और विपिनचन्द्र पालकी तेजस्विता देखी है; परन्तु इन सबका सम्मिश्रण रामानन्द चटर्जी ही में पाया है। एक बातमें ये सबसे निराले देखे गए और वह था इनका निर्लोभ। कामिनी-कांचनके चक्करमें जो न पड़े, वही योगी और विरागी है। रामानन्द बाबू राष्ट्रसंघमें निमन्त्रित होकर गए, पर अपने खर्चसे गए, जिससे मनपर किसी प्रकारके आभारका भार न पड़े। इस देशका दुर्भाग्य है कि इसके दुर्दिनमें आज रामानन्द बाबू-जैसा सपूत इसे छोड़ गया। बातें बहुत हैं; पर इस समय अधिक नहीं लिखा जा सकता।

रामानन्द चटर्जी

श्री रिचार्ड जे० वाल्श, सम्पादक 'एशिया'

हम अमरीकावासी भारतके बारेमें बहुत कम जानते हैं। जब-तब कहींसे होकर भूले-भटके कोई खबर आ जाती है और अक्सर वह किसी उग्र या भारी-भरकम घटनाकी खबर होती है। यहाँ तक कि भारतीय जीवनकी महत्त्वपूर्ण प्रगतियोंपर भी हमारे देशके पत्रोंमें बहुत कम चर्चा रहती है—और वह भी बड़े-बड़े शहरोंके केवल इने-गिने पत्रोंमें ही।

अतएव एक अमरीकन सम्पादककी हैसियतसे मुझे बहुत गर्व है कि मेरा हज़ारों मील दूर बैठे रामानन्द चटर्जी-जैसे व्यक्तिसे परिचय है। वे इतने सुयोग्य सम्पादक हैं, इतनी अच्छी जानकारीवाले हैं और लिखनेमें इतने साधुभावसे संतुलित तथा साहसी हैं कि जो-कुछ भी वे कहें, मैं उसपर विश्वास कर सकता हूँ। मैं एक बार कलकत्तेमें उनके निवास-स्थानपर उनके परिवारके बीच उनसे मिला था और तुरन्त उनके प्रति मेरे हृदयमें अगाध श्रद्धा पैदा हो गई। यह श्रद्धा 'माडर्न रिव्यू'में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवासीका श्रद्धाजाल

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

सन् १८५७ की राज्यक्रांति आज़ादीके लिए भारतकी आत्माकी पुकार थी, जो आपसके विग्रह और वैमनस्य तथा राष्ट्रीय भावनाके अभावके कारण विफल हुई। क्रांतिके साथ ही कम्पनीशाहीका भी अन्त हो गया और भारतके इतिहासका एक विशिष्ट अध्याय समाप्त हुआ। इस देशका शासन-सूत्र ब्रिटिश पार्लमेण्टके हाथोंमें आया; निरस्त्रीकरण-विधान बना; राष्ट्रको अस्त्र-शस्त्रसे वंचित कर दिया गया और देश-भरमें स्मशानकी-सी शांति छा गई। इस स्थितिमें नवीन युगका आगमन हुआ; इतिहासका नया अध्याय आरम्भ हुआ। इस कालमें जिन महाभागोंने भारतीय राष्ट्र और इतिहासके निर्माणमें योग दिया, जिन्होंने साहित्य-सृजन और पत्रकार-कलाके विकास एवं उत्कर्षमें अपनी शक्तिको लगाया और जिन्होंने मातृभूमिकी सर्वांगीण उन्नतिमें आत्मोत्सर्ग कर दिया, उनमें स्वर्गीय रामानन्द चटर्जी भी एक थे।

राज्यक्रांतिकी समाप्तिके पश्चात् सन् १८६५ में बंगालके बाँकुड़ा-ज़िलेके एक प्रतिष्ठित परिवारमें रामानन्द बाबूका जन्म हुआ था। जिस दिन उन्होंने बंगभूमिपर पदार्पण किया, उस दिन भारतीय पत्रकार-कलाके लिए एक नवीन आशाका अंकुर उदय हुआ। जब उन्होंने जीवनके कार्यक्षेत्रमें प्रवेशकर प्रयागके एक मामूली मासिक पत्रका संपादन आरम्भ किया, तो पत्रकार-कलाकी आशा-अभिलाषाओंकी कलियाँ खिल उठीं और जब इस अद्वितीय महापुरुषने अपने 'माडर्न रिव्यू', 'प्रवासी' और 'विशाल भारत'-रूपी पत्र-पुष्पोंको भारत-माताके चरणोंपर चढ़ाया, तो पत्रकार-जगत्को उस नवीन युगका आलोक दिखाई पड़ा, जिसके लिए दीर्घकालसे प्रतीक्षा की जा रही थी।

शिक्षा प्राप्तकर रामानन्द बाबूने शिक्षा-प्रचारका अनुष्ठान आरंभ किया। वे प्रयागकी कायस्थ-पाठशालामें प्राध्यापक नियुक्त हुए। उस समय पाठशालाकी ओरसे उर्दूमें एक मामूली मासिक पर्चा निकलता था, जिसका नाम भी संस्थाके अनुकूल 'कायस्थ-समाचार' था। रामानन्द बाबू उसके संपादक बनाए गए। पत्रकार-संसारमें उनका यही प्रथम प्रवेश था। उन्होंने 'कायस्थ-समाचार'का रूप बदल दिया, उर्दूके मामूली पर्चेसे उसे अंगरेज़ीका सुन्दर मासिक पत्र बना दिया और उसका उद्देश्य रखा शिक्षा-प्रचार। इसी लक्ष्यको सामने रखकर आपने साल-भर (सन् १८८९-१९००) तक 'कायस्थ-समाचार'का ऐसी योग्यतासे सम्पादन किया कि आपकी

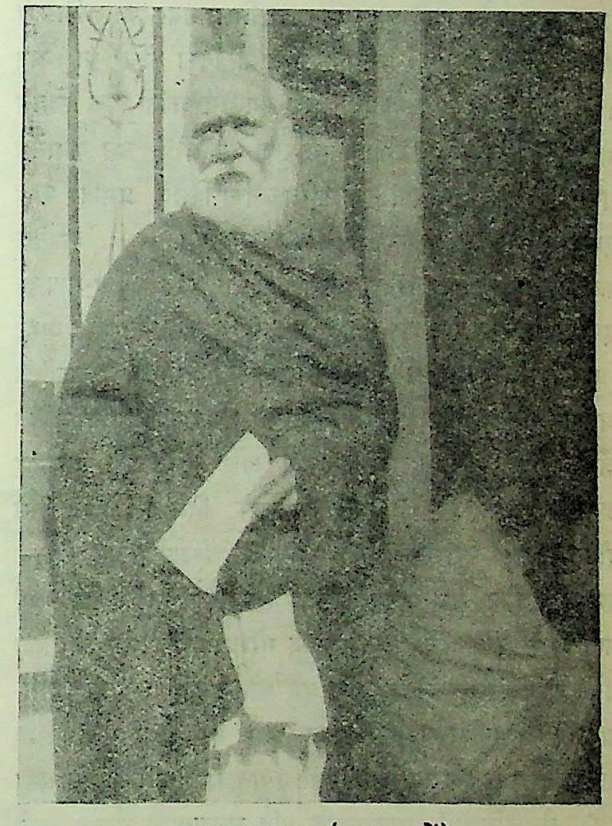

रामानन्द बाबू (१९३४ में)

विलक्षण प्रतिभापर शिक्षित-समाज मुग्ध हुए बिना न रहा। भारतमें अखबारनवीसीका वह प्रारम्भिक युग था। उस समय 'कायस्थ-समाचार'के सिवा प्रयागमें और किसी भी भाषामें कोई अखबार नहीं निकलता था। लखनऊसे श्री गंगाप्रसाद वर्माका अंगरेज़ी-अर्द्धसाप्ताहिक 'एडवोकेट' निकल रहा था। ४८-४९

उनकी स्पष्टोक्तिपूर्ण टिप्पणियाँ पढ़कर निरन्तर बढ़ी ही है। कभी-कभी उनका पत्र आता है—प्रेम, ईमानदारी और स्पष्टवादिताकी छाप लिए तथा समीचीन और संगत। कभी-कभी वे हमें अपना लेख भी भेजते हैं, जिसके पहुँचनेका दिन 'एशिया'-कार्यालयके लिए एक त्योहारका-सा दिन हो जाता है।

मेरी ही तरह जो भारत और अमरीकनों, तथा अंगरेज़ोंमें भी, अच्छे सम्बन्धकी आशा रखते हैं, उन सबकी यह कामना होनी चाहिए कि रामानन्द चटर्जी अपना लेखन-कार्य जारी रखें और अपने श्रेष्ठ कार्यको जारी रखनेके लिए अन्य पत्रकारोंको शिक्षा दें। १० अप्रैल, १९३०। (श्रीमती शान्तादेवीके संग्रहसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़िलोंकी संहति युक्त-प्रदेश-भरमें उस समय केवल ये ही दो अखबार निकलते थे। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि उन्नीसवीं सदीके अन्तमें यहाँ पत्रकारीकी क्या दशा थी? 'कायस्थ-समाचार'को रामानन्द बाबूने शिक्षा तक ही सीमित रखा था और वह निकाला भी था इसी कामके लिए; किन्तु साल-भरके बाद आपने उसका सम्पादन छोड़ दिया।

सन् १९०० में रामानन्द बाबूने 'कायस्थ-समाचार'का सम्पादन त्याग दिया; किन्तु पत्रकार-कलासे उनका आन्तरिक अनुराग हो गया था और उन्हें वह पुण्य-मार्ग मिल गया था, जिसपर चलकर निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचना उनके जीवनका ध्येय था। सन् १९०१ में उन्होंने अपनी मातृभाषा बँगलामें अपना एक स्वतंत्र मासिक पत्र निकाला, जिसका नाम रखा 'प्रवासी'। उस ज़मानेमें राष्ट्रीय भावनाका अभाव एवं प्रान्तिकताका विशेष प्रभाव था। एक प्रान्तवाले दूसरे प्रान्तको परदेश समझते थे। काशीसे कलकत्ता जाना मानो परदेश जाना था। चूँकि बँगला-भाषाकी एक पत्रिकाका जन्म, एक प्रवासी बंगाली द्वारा, बंगालसे बाहर (प्रयागमें) हुआ था, अतएव तत्कालीन स्थिति और पद्धतिके अनुसार उसका नाम 'प्रवासी' रखना ही रामानन्द बाबूको उचित जँचा। इस पत्रिकाने बँगला-भाषा और साहित्यमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। नूतन बंगालके निर्माणमें 'प्रवासी'ने दीप-स्तम्भका काम किया है। बंगालके विश्वविख्यात विद्वान, प्रकाण्ड पण्डित, लब्धप्रतिष्ठ कलाकार, तपोनिष्ठ साहित्य-सेवी एवं क्रान्तिकारी कवि 'प्रवासी'में लिखना गौरवकी बात समझते हैं। अंगरेज़ीके धुरन्धर विद्वान होते हुए भी उन्होंने अपनी मातृभाषाकी उपेक्षा करना राष्ट्रीय पाप समझा। कदाचित् इसीलिए आज बँगला-भाषाके साहित्यकी सुयश-पताका शानसे फहरा रही है। बंगवासियोंमें मातृभाषाके प्रति अनुरागपूर्ण भावना भरने और उसकी सेवाकी प्रवृत्ति पैदा करनेका बहुत-कुछ श्रेय रामानन्द बाबू और उनके 'प्रवासी'को है। बँगला-साहित्यमें रामानन्द बाबूका नाम अजर-अमर रहेगा और भावी पीढ़ियाँ उनकी पुण्य-स्मृतिपर श्रद्धांजलि चढ़ाती रहेंगी।

'प्रवासी'के प्रतापसे रामानन्द बाबूका बंगभूमिमें तो यशोगान होने ही लगा था; किन्तु अन्य प्रान्तवाले उनकी महान् प्रतिभासे वंचित थे। अतएव राष्ट्रीय विचारोंके व्यापक प्रचारकी दृष्टिसे सन् १९०७ में आपने प्रयागसे ही 'माडर्न रिव्यू'का श्रीगणेश किया। इस मासिक पत्रने रामानन्द बाबूकी बलवती लेखनीकी बदौलत अपने जीवनके स्वल्प कालमें ही भारतकी सीमा लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली। आज विश्वके सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रोंमें 'माडर्न रिव्यू'की गणना है। रामानन्द बाबूकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ 'माडर्न रिव्यू'की प्रतिष्ठा, गौरव और आकर्षण बढ़ानेमें सर्वोपरि सहायक सिद्ध हुई हैं।

इसके बाद इस महापुरुषकी दृष्टि भारतकी अन्तर्प्रान्तीय अथवा राष्ट्रभाषा हिन्दीकी ओर फिरी। इस देशमें हिन्दी बोलनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है। इसका प्रचार भी देश-भरमें राष्ट्रभाषाके रूपमें दिन-दूना रात-चौगुना हो रहा है। यद्यपि रामानन्द बाबू हिन्दीको भारतकी राष्ट्रभाषा माननेको तैयार नहीं थे; किन्तु उसकी प्रगति और प्रभावको अस्वीकार करना किसी भी विचारशील व्यक्तिके लिए सम्भव नहीं है। अतएव सन् १९२८ की जनवरीमें आपने सचित्र हिन्दी-मासिक 'विशाल भारत'का सूत्रपात किया। 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू'का सम्पादन तो आप स्वयं करते थे; किन्तु हिन्दीसे विशेष अभिज्ञ न होनेके कारण 'विशाल भारत'का सम्पादन-भार उन्होंने बन्धुवर बनारसीदास चतुर्वेदीको सौंपा। चतुर्वेदीजीके उद्योगसे 'विशाल भारत' भी देश तथा विदेशोंमें काफ़ी प्रसिद्ध हुआ, और उसने हिन्दीके अव्वल दर्जेके मासिक पत्रोंकी पंक्तिमें स्थान पाया। इस प्रकार रामानन्द बाबूने राष्ट्रभाषा हिन्दीकी बहुत बड़ी सेवा की। जब एक बार महात्मा गांधीने उनके राष्ट्रभाषा-प्रेमानुरागकी प्रशंसा की थी, तो उन्होंने 'माडर्न रिव्यू'में एक टिप्पणी लिखकर अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण करते हुए निस्संकोच कहा था कि हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानकर नहीं, प्रत्युत हिन्दी-भाषियोंको एक उच्च और उत्तम मासिक पत्र देनेकी दृष्टिसे उन्होंने 'विशाल भारत'का सूत्रपात किया है। इसलिए कुछ लोगोंने यह धारणा बना ली कि 'विशाल भारत' वास्तवमें रामानन्द बाबूके व्यवसायका एक अंग है। यदि इसमें कुछ भी सचाई हो, तो कहना पड़ेगा कि रामानन्द बाबू एक अनुभवशून्य व्यवसायी थे। मनुष्य व्यवसाय करता है कमानेके लिए, गँवानेके लिए नहीं। लेकिन जो लोग 'विशाल भारत'की आर्थिक स्थितिसे परिचित हैं, उनको यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि वर्षों वह घाटेपर घाटा उठाता रहा है।

असलमें भारतीय पत्रकार-कलाके कल्याण और उत्थानके लिए ही इस महापुरुषका आविर्भाव हुआ था। इस कलाके आदि-आचार्योंमें वे एक थे। भारतीय पत्रकारीका स्टैण्डर्ड उच्च बनानेमें उनका विशेष हाथ था। वे स्वयं तो पत्रकार-शिरोमणि थे ही, पर उन्होंने अनेक नवीन पत्रकार बनाए। निराश पत्रकारोंको उन्होंने आशा बँधाई, दुःखी पत्रकारोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता पहुँचाई और पथभ्रष्ट पत्रकारोंको मर्यादाकी राह दिखलाई। अनेक कलाकार, कवि, ग्रन्थकार और लेखक उनका सहारा पाकर भारतके साहित्याकाशमें प्रकाशमान सितारेकी तरह चमक उठे। लगातार ४५ साल वे पत्रकार-कलाकी सेवामें सन्नद्ध रहे, और इस दरम्यानमें देशकी सुषुप्त आत्माको जगानेमें उन्होंने कोई बात उठा नहीं रखी। वैसे तो वे राजनीतिक नेता और समाज-सुधारक भी थे और इन क्षेत्रोंमें उन्होंने बहुत-कुछ काम भी किया था; परन्तु उनके जीवनका ध्येय था—पत्रकार-कलाका विकास और उत्कर्ष। इसी कामके लिए उनका उदय हुआ था और इसी काममें उनका अस्त भी हुआ।

× × ×

पिछली चौथाई सदीके अन्दर मैंने अनेक बार रामानन्द बाबूके दर्शन किए। भगवानने उनके शरीरको सुन्दर साँचेमें ढाला था। साधारण डील-डौल, हल्का गेहुँआ रंग, भव्य मुखाकृति, दीर्घदर्शी दृष्टि, लम्बी सफ़ेद दाढ़ी और सादे वस्त्र देखकर मुझे ऐसा भासित होता था कि मैं पुरातन कालके किसी ऋषिके सामने उपस्थित हूँ। उस दिव्य रूपको देखते हुए आँखें नहीं अघाती थीं। वे जब बोलने लगते, तो उनकी बोली ऐसी मधुर लगती, मानो सुधाकी वृष्टि हो रही है। उनका भावुक हृदय सहानुभूतिसे भरा था और उनका व्यवहार इतना शिष्टतापूर्ण होता था कि कोई भी व्यक्ति मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। उनके दर्शनसे एक पवित्र भावका उदय हो आता, उनकी बात-चीतसे मन मोहित हो जाता और उनके शिष्टाचारसे सहसा उनके प्रति श्रद्धासे सिर झुक जाता। अन्तरसे यह आवाज़ आने लगती कि क्या मानवताकी यह प्रतिमूर्त्ति नहीं है? क्या ऐसे मनुष्य संसारमें दुर्लभ नहीं हैं?

मेरे जीवनका एकमात्र लक्ष्य रहा है—प्रवासी भारतीयोंकी सेवा। इसी नाते पं० बनारसीदास चतुर्वेदीसे मेरा परिचय हुआ। इसी कामके सिलसिलेमें रामानन्द बाबूको भी समीपसे देखनेका अवसर मिला। प्रवासी भारतीयोंके लिए उनके हृदयमें गहरी सहानुभूति थी। वे अत्याचार-पीड़ित अपने प्रवासी-बन्धुओंकी कष्ट-कथा सुनकर मर्माहत हो उठते थे और उनके मुखसे यह उद्‌गार निकल पड़ता था कि यदि हमारा देश आज़ाद होता, तो किसीकी क्या मजाल थी, जो हमें इस क्रूरतासे अपमानकी ठोंकरें लगाता और हम अपनी बेक़सीपर दिल मसोसकर रह जाते। जब कभी उनके सामने प्रवासियोंकी चर्चा छिड़ती, वे ग्लानिसे गड़ जाते, उनका हृदय व्यथासे भर आता।

मित्रवर स्वर्गीय साधु एंड्रूज़से मुझे रामानन्द बाबूके महान् व्यक्तित्वका परिचय प्राप्त हुआ। उनकी साहित्य-साधना, राष्ट्रीय भावना एवं प्रवासियोंकी हित-कामनाकी बातें सुनकर उनके प्रति स्वभावतः श्रद्धा भी उत्पन्न हो आई। रामानन्द बाबू और एंड्रूज़ साहबमें गाढ़ी मित्रता थी। इसी मित्राचारीके प्रतापसे 'माडर्न रिव्यू'को प्रवासियोंके प्रश्नपर खास दिलचस्पी थी। एंड्रूज़ साहब प्रवासियोंकी परिस्थितपर हमेशा 'माडर्न रिव्यू'में लिखा करते थे—इस विषयपर उनके अच्छेसे अच्छे लेख प्रायः इसी पत्रमें निकला करते थे। 'माडर्न रिव्यू'के पृष्ठ प्रवासियोंके लिए हमेशा खुले रहते थे। भाई बनारसीदास तब 'जनपद' के संकीर्ण बाटके बटोही नहीं बने थे; बल्कि विराट भारतका सैर-सपाटा कर रहे थे और उन दिनोंके 'माडर्न रिव्यू'में प्रवासियोंपर प्रतिमास कुछ-न-कुछ लिखा करते थे। मेरे कार्यमें भी इस पत्रसे जो सहायता प्राप्त हुई है, उसे मैं कभी विस्मरण नहीं कर सकता। इसीलिए आज मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि रामानन्द बाबू इस लोकसे क्या गए, मानो प्रवासी भाइयोंका एक ऐसा मित्र उठ गया, जो उनपर आफ़त आनेपर पूरे ज़ोरके साथ आवाज़ उठाता था, उनके विपद-निवारणके लिए वकालत करता था और दुःखमें दिलासा दिया करता था।

रामानन्द बाबू स्वतन्त्र विचारोंके पुजारी थे। वे अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करनेमें ज़रा भी नहीं हिचकते थे—चाहे वह किसीको अच्छा लगे या बुरा। सम्पादकीय विचार-स्वातंत्र्यकी रक्षा और पालन उनका सर्वोपरि सिद्धांत था। वे जिस प्रकार अपने विचारोंकी स्वतंत्रतापर आँच आने देना नहीं चाहते थे, उसी प्रकार दूसरोंके स्वतंत्र विचारोंका भी आदर करते थे—चाहे वे उनकी मनोवृत्ति, नीति और प्रवृत्तिके प्रतिकूल ही क्यों न हों। उन्होंने अपने इस सिद्धांतके सम्बन्धमें केवल ज़बानी जमा-खर्चसे ही काम नहीं लिया, बल्कि उसे कार्यान्वित भी कर दिखाया। जब वे हिन्दू-महासभाके प्रधान निर्वाचित हुए और इस पदसे एक महत्त्वपूर्ण अभिभाषण दिया, तो उस भाषण के कुछ अंशोंपर 'विशाल भारत'के तत्कालीन सम्पादक भाई बनारसीदासने बड़ी कड़ी समालोचना की। छपनेसे पहले रामानन्द बाबूने उसे देखा भी; पर रोका नहीं। यदि वे चाहते, तो अपने ही पत्र 'विशाल भारत'में अपनी नीतिकी टीका नहीं होने देते; किन्तु उन्होंने सम्पादकीय स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करना अपने सिद्धान्तके प्रतिकूल समझा। बादमें बनारसीदासजीकी आलोचनाका उत्तर लिखकर उन्होंने अपने कथनका स्पष्टीकरण किया था। कभी-कभी तो भाई बनारसीदास महज़ मामूली बातको लेकर रामानन्द बाबूपर टीका-टिप्पणी किया करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उनकी इस प्रवृत्तिकी एक बार साहित्याचार्य स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा और मैंने बड़ी कड़ी टीका भी की थी; किन्तु रामानन्द बाबूने उनकी आज़ादीमें कभी दखल नहीं दिया। इस अनुपम उदाहरणसे हिन्दी-पत्रकार-संसारके उन मालिकोंको कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जो अपने अखबारके सम्पादकको भाड़ेका टट्टू समझते हैं और उसकी पीठपर सवार होकर जिधर चाहें, चलनेके लिए बागडोर घुमाया करते हैं।

रामानन्द बाबू केवल कल्पना-जगत्में विचरनेवाले विचारक ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने विचार और कर्मका समन्वय भी कर दिखाया। कर्म ही जीवन है, विचार तो कर्मका प्रेरक-मात्र है, इस तथ्यको उन्होंने पूर्णरूपेण हृदयंगम कर लिया था। वे ऐसे स्वप्नदर्शी भी नहीं थे, जिसका सुन्दरसे सुन्दर स्वप्न केवल काग़ज़का कलेवर काला करनेमें ही काम आता हो। उनमें अपने स्वप्नको कार्यान्वित करनेकी विलक्षण क्षमता भी थी। वे जहाँ आदर्श विचारक और महान् तत्त्वज्ञानी थे, वहाँ क्रियाशील देशभक्त और साहित्यिक महारथी भी थे। उन्होंने भारतकी भलाईके लिए जो-कुछ काम किए, उनकी यहाँ सूची पेश करना सर्वथा असंभव है। यहाँ इतना ही कहकर संतोष करना पड़ेगा कि उनका जीवन स्वदेशके लिए था, इसलिए उनकी मृत्यु स्वदेशकी बहुत बड़ी हानि है।

समाज-सुधारक रामानन्द चटर्जी

श्री सन्तराम, बी० ए०

श्रीयुत रामानन्द चटर्जीको सर्वसाधारण जनता शायद केवल एक उच्चकोटिके बँगला-अंगरेज़ी-लेखक और राजनीति-विशारदके रूपमें ही जानती है। परन्तु वे लेखक और राजनीतिज्ञके अतिरिक्त एक कट्टर समाज-सुधारक भी थे। १९२९ में लाहौरमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ था। उस अवसरपर २८ दिसम्बरको लाहौरके जात-पाँत-तोड़क-मण्डलने भी एक बड़ा सम्मेलन किया था। उस सम्मेलनके सभापतिका आसन रामानन्द बाबूने ही सुशोभित किया था। सम्मेलनमें सर प्रफुल्लचन्द्र राय और स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू प्रभृति विद्वानों और नेताओंने भाषण किए थे। इसी सम्मेलनमें मोतीलालजीने कहा था—"एक समय एक मित्रने मुझसे पूछा कि कोई एक ही ऐसा काम बताइए, जिसके करनेसे भारतको स्वराज्य मिल सकता है, तो मैंने उत्तर दिया था कि जात-पाँतको मिटा दो, स्वराज्य मिल जायगा।" इस अवसरपर रामानन्द बाबूने सभापति-पदसे जो अभिभाषण दिया था, वह बड़ा ही मार्मिक था। उसमें उन्होंने बड़े ही तत्त्वकी बातें कही थीं। उनसे जान पड़ता था कि उन्होंने जाति-भेदकी समस्यापर बड़ा गहरा विचार किया है। उनका यह अभिभाषण अंगरेज़ीमें था। उसमें से कुछ बातोंका हिन्दी-भाषान्तर नीचे उद्धृत किया जाता है। इससे पता लगता है कि वे जाति-भेदको कितना हानिकारक समझते थे। उन्होंने कहा था :—

"जात-पाँत-तोड़क-मण्डलके नामसे कुछ लोगोंको भ्रम हो सकता है कि हम केवल तोड़नेवाले ही हैं। परन्तु सचाई यह है कि हम वहाँ तक ही तोड़क हैं, जहाँ तक कि आवश्यक है। हम समाजके वर्त्तमान भवनके कुछ खण्डोंको इसलिए गिराते हैं, ताकि हम उनसे भी अधिक सुन्दर, अधिक शानदार, अधिक स्थायी और अधिक सुखदायक कोई दूसरी चीज़ बना सकें।

"राष्ट्र-निर्माणके मार्गमें जाति-भेद सदा ही एक बाधा रही है। परन्तु मैं पूछना चाहता हूँ कि यदि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो, तो क्या फिर जाति-भेद बुरा न होगा? यह सत्य है कि भारत एक दीर्घकाल तक स्वतन्त्र था और उस कालमें भी यहाँ जाति-भेद था। परन्तु इसके साथ ही यह बात भी एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारतकी पराधीनताका एक कारण जाति-भेद हुआ है। परन्तु मान लीजिए कि जाति-भेद भारतकी स्वतन्त्रताके नाशका कारण नहीं हुआ। ऐसी दशामें जाति-भेदको बनाए रखना क्या न्याय-संगत होगा? बिलकुल नहीं। कारण यह कि जाति-भेद कुछ लोगोंको तो समाजमें उच्च स्थान देता है और कुछको नीच ठहराता है। यह अवस्था पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली जाती है। यह नहीं कहा जा सकता कि 'उच्च वर्ण'के सब या अधिकांश लोग अपने चरित्र या बुद्धिके कारण समाजमें उच्च पदके अधिकारी हैं, और 'नीच जाति'के सब लोग अपमान, मानभंग, अत्याचार और नीच पदके पात्र हैं। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि यदि राजनीतिक रूपसे जाति-भेद राष्ट्रको छिन्न-भिन्न एवं निर्बल करनेवाला न भी हो, तो भी इसको बनाए रखना ठीक नहीं।

"कोई प्राचीन कालके वर्णाश्रम-धर्मकी बात ला सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसमें सन्देह नहीं कि सिद्धान्त-रूपमें वर्णाश्रम अवश्य था। परन्तु मुझे ऐतिहासिक सन्देह है कि कोई एक ऐसा काल था, जब सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र स्मृतियोंमें बनाए गए अपने-अपने कामोंमें ही लगे हुए थे। नाटकों, पुराणों और इतिहासमें ऐसे बहुतसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि बहुतसे लोग इस विषयमें स्मार्त-धर्मका पालन नहीं करते थे। यदि मान भी लिया जाय कि कभी इस देशमें वर्णाश्रम विद्यमान था, तो उसे अब पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। इस समय चारके स्थानमें चार सहस्रसे भी अधिक बिरादरियाँ या वर्ण-समूह होंगे। जिन लोगोंको सर्वसाधारण नीच वर्ण समझते हैं, उनमें से कुछ अपने ब्राह्मण या क्षत्रिय होनेकी दुहाई दे रहे हैं और उनको यज्ञोपवीत मिल रहे हैं।

"कहा जाता है कि वर्णाश्रम गुण-कर्मके अनुसार है। क्या कोई ऐसा व्यक्ति या अधिकारी हो सकता है, जिसे भारतके सभी आयुओंके सभी हिन्दू स्त्री-पुरुषोंके गुण-कर्मका ज्ञान हो; जिसमें इतनी न्याय-बुद्धि और पर्याप्त निष्पक्षता हो कि वह इन हिन्दुओंको चार वर्णों या समूहोंमें बाँट सके और इस बाँटको स्वीकार करनेपर बाध्य कर सके? इस समता, स्वाधीनता और बन्धुताके युगमें उसकी अवस्था और अधिकारके विरुद्ध सिर उठानेवाले क्या बहुतसे विद्रोही न निकल पड़ेंगे? यह भी स्मरण रहे कि समूचे समाजको चार वर्णोंमें बाँटनेका यह काम सदाके लिए केवल एक ही बार नहीं किया जा सकता। सब बेटों और बेटियोंमें अपने माता-पिताके गुण नहीं होते और न वे माता-पिताका व्यवसाय ही करते हैं। इसलिए प्रत्येक पीढ़ीका नए सिरेसे चार समूहोंमें विभाजन करते रहना पड़ेगा। नहीं, नहीं, यह भी हमने बहुत घटाकर बात कही है। हो सकता है कि मनुष्य अपने जीवनमें एक या अनेक बार अपना व्यवसाय बदल ले। हो सकता है कि ब्राह्मण माता-पिताका लड़का रसोइया, पुरोहित और साथ ही एक छोटा व्यापारी भी हो। हो सकता है कि पति और पत्नी दोनोंका व्यवसाय एक न हो। एक व्यक्तिमें अपने जीवनके विभिन्न कालोंमें विभिन्न गुण हों। किस मनुष्य या जन-समूहमें इतनी शक्ति है कि वह इन समूहोंको निरन्तर बार-बार नए सिरेसे सुश्रृंखलित करता रहे, जिसमें इन सब जटिलताओंका सन्तोषजनक रूपसे समाधान हो जाय? नहीं, वर्णाश्रम-व्यवस्थासे काम नहीं चल सकता।

"कहा जाता है कि वर्ण-भेदसे एक बड़ा लाभ यह है कि लड़केको पिताका व्यवसाय मिल जाता है; कामके लिए उसे मारे-मारे नहीं भटकना पड़ता; प्रतियोगिता न होनेसे सुभीता रहता है। परन्तु फिर भी जितनी बेकारी भारतमें है, उतनी किसी दूसरे देशमें नहीं। यह ठीक है कि पैतृक व्यवसाय करनेवाले हमारे कई कारीगर बड़े निपुण होते हैं; परन्तु सब नहीं। इसके विपरीत जाति-भेदके कारण उद्योग-धंधों और उनकी रीतियोंमें बाहरसे दूसरे वर्णोंका नया रक्त, नई बुद्धि और नए विचार न आनेसे, और अपेक्षाकृत प्रतियोगिताका अभाव होनेसे, हमारे अनेक कारीगर जात-पाँत न माननेवाले दूसरे देशोंके कारीगरोंसे कम निपुण और चरित्रहीन हो गए हैं। एक उदाहरण लीजिए। कलकत्तेमें चीनी बढ़ई भारतीय बढ़ईकी अपेक्षा कहीं अधिक पारिश्रमिक पाते हैं, क्योंकि वे अधिक निपुण, अधिक विश्वासपात्र और अधिक परिश्रमी हैं। इतना ही नहीं, भारतीय बढ़इयोंमें भी मुसलमान अधिक और हिन्दू कम हैं। पश्चिमी देशोंमें जात-पाँत न होनेसे कई बहुत बड़े मनीषियों और कुशाग्रबुद्धि मनुष्योंने अपनेको कला-कौशल और वाणिज्य-व्यापारमें लगाया है और हमारे परम्परागत कारीगरों और व्यापारियोंको मात कर दिया है। हमारे पुराने क्षत्रिय वीरतामें अनुपम थे; परन्तु वे भारतको विजित होनेसे न बचा सके, क्योंकि सारी प्रजाको देश-रक्षामें कोई दिलचस्पी न थी और दूसरे वर्णके श्रेष्ठ बुद्धिवाले मनुष्य इस कलाकी उन्नतिमें कोई रुचि नहीं रखते थे।

"जापानने जब उन्नति की, तो सबसे पहले वहाँके परम्परागत क्षत्रियों—अर्थात् समुदाय-दल—ने अपने विशेषाधिकारोंको अपने-आप छोड़ दिया और ईता जाति—अर्थात् वहाँकी अछूत जाति—को क़ानून द्वारा सामाजिक और राजनीतिक रूपसे दूसरे सब लोगोंके बराबर कर दिया गया। क्या हममें भी वैसा सामाजिक देश-प्रेम, वैसी न्याय-बुद्धि और देशके लिए अपने विशेषाधिकारोंको छोड़ देनेकी वैसी इच्छा एवं शक्ति है?

"प्रागैतिहासिक समयोंसे विदेशी लोग भारतमें प्रवेश करते और भारतीय प्रजामें आत्मसात् होते रहे हैं। कई विदेशी ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि बन गए हैं। सर्वसाधारणकी धारणा है कि कमसे कम उच्च वर्णके लोग आर्य हैं; परन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि नृत्तत्व-शास्त्र किसी भी वंशको शुद्ध नहीं मानता। उसकी दृष्टिमें शुद्ध आर्य-वंश नामका कोई पदार्थ संसारमें नहीं है। बंगाल और मद्रास प्रभृति भारतके अनेक प्रान्तोंमें ब्राह्मणोंमें भी काफ़ी रक्त-संकरता है। कभी-कभी एक ही परिवारमें कुछ मनुष्य बहुत गोरे और कुछ बहुत ही काले तथा एक दूसरेसे बिलकुल विभिन्न आकृतिवाले देखे जाते हैं। हम बंगाली, वंशकी दृष्टिसे, आर्यकी अपेक्षा द्रविड़ और मंगोल अधिक हैं, और हम इसे अपने लिए कोई लज्जाकी बात नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते। मनुष्यत्वके श्रेष्ठ गुण केवल आर्योंका ही इजारा नहीं।

"पहले कहा जा चुका है कि भारतकी पराधीनताका एक बड़ा कारण जाति-भेद है। छोटी जातिके लोगोंके लिए चाहे कोई ऊँचे वर्णका हिन्दू राजा हो और चाहे कोई विदेशी मुसलमान, एक ही बात थी; क्योंकि वे अनुभव करते थे कि हम तो शूद्र और अछूत ही रहेंगे। वस्तुस्थिति यह है कि इस समय अब्राह्मणों और अछूतोंसे इस बातकी घोषणा कराना सरल है कि वे ऊँचे वर्णके हिन्दुओंके शासनसे विदेशी राज्यको अधिक पसन्द करते हैं। जाति-भेदके कारण बहुसंख्यक हिन्दू मुसलमान और ईसाई हो गए हैं। एक जाति दूसरी जातिसे ईर्ष्या और द्वेष रखती है। अनेक दशाओंमें सब जातियोंके लोग मिलकर उच्चकोटिकी शिक्षा-संस्थाएँ नहीं बना सके। उच्चकोटिके कालेजोंके स्थानमें, जहाँ बढ़िया अध्यापक और पदार्थ-विज्ञान आदि शास्त्रोंके पढ़ानेका उत्कृष्ट प्रबन्ध हो, हमारे यहाँ कायस्थ, भूमिहार और जाट-कालेज तथा स्कूल हैं। ये बिल्कुल रद्दी और अनुपयुक्त दशामें हैं।

"जाति-भेद भारतमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगतिके मार्गमें शायद सबसे बड़ी बाधा रहा है। इसने हिन्दू-जातिका संगठन नहीं होने दिया और इसे एक दृढ़ राष्ट्र बननेसे रोका है। कारण यह कि जहाँ एक-दूसरेपर विश्वास और प्रेम नहीं, वहाँ वह बन्धन नहीं रहता, जो विभिन्न भागोंको बाँधकर इकट्ठा रख सके।

"मैं पहले कह चुका हूँ कि अपमानजनक दुर्व्यवहारके कारण बहुतसे हिन्दू हिन्दू-समाजको छोड़ चुके हैं। इससे हिन्दुओंकी संख्या काफ़ी घटी है। दूसरे समाजोंके लोगोंको अपने धर्मकी दीक्षा देकर हिन्दू अपनी संख्या बढ़ा सकते थे; परन्तु इन नवागत हिन्दुओंको इस बातका विश्वास नहीं कि हिन्दू-समाजमें वे सम्मानपूर्वक रह सकेंगे। इसलिए बहुत कम लोग बाहरसे हिन्दू-समाजमें आए हैं। इसी कारण दूसरे धर्मोंमें चले जानेवाले लोगों या उनके वंशजोंको किसी बड़ी संख्यामें वापस हिन्दू-समाजमें नहीं लाया जा सका। सचाई यह है कि जब तक लोगोंको वही सामाजिक पद नहीं मिल सकता, जो उनको ईसाइयों या मुसलमानोंमें मिल सकता है, तब तक वे हिन्दू बननेका विचार तक भी मनमें नहीं ला सकते। जाति-भेद मनुष्यके दृष्टिकोण और विचारको संकीर्ण बना देता है। वे अपनी जातिको ही अपना संसार समझते हैं। उसीमें वे जीते, खाते-पीते और सीमित रहते हैं।

"उपर्युक्त कारणोंसे जाति और उपजातिके बन्धनोंको तोड़ना पड़ेगा। इसलिए मुझे प्रसन्नता है कि जात-पाँत-तोड़क मंडलने इस कामकी ओर ध्यान दिया है। इसने प्रोपेगेण्डाके लिए विविध साधनोंका—समाचारपत्रों, पुस्तकों, पैम्फलेटों, व्याख्यानों, सम्मेलनों और अन्तर्जातीय सहभोजों इत्यादिका—उपयोग किया है। इसने जात-पाँत-तोड़क विवाहोंके लिए भी क्रियात्मक कार्य किया है। ब्राह्मसमाजमें हम रोटी-बेटी-व्यवहारमें जात-पाँतका कुछ भी विचार नहीं करते।"

रामानन्द बाबूके निधनसे जात-पाँत-तोड़क-आन्दोलनका एक बहुत बड़ा समर्थक और सहायक संसारसे उठ गया। जात-पाँत-तोड़क-मण्डलकी अन्तरंग सभाने उनकी मृत्युपर शोकका प्रस्ताव पासकर अपने दुःखका प्रकाश किया है।

रामानन्द बाबू

श्री दौलतराव परशुराम

किसी महान् व्यक्तिका सच्चा मूल्य आँकनेके लिए दूरीकी आवश्यकता होती है। साहित्यिक क्षेत्रके महान् व्यक्तियोंकी हालतमें वह दूरी समयकी होनी चाहिए। रामानन्द बाबूके सम्बन्धमें यह दूरी अभी हमें प्राप्त नहीं हुई। वे अब तक हमारे हृदयोंके निकट हैं और उनके देहावसानका शोक ताज़ा ही है। इसीसे उनकी कृतियोंको आलोचनात्मक दृष्टिसे देखा जाय और उनकी महत्ताका माप-तौल किया जाय, यह यदि असम्भव नहीं, तो कठिन ज़रूर है।

रामानन्द बाबू महान् व्यक्ति थे, इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। न सिर्फ़ भारतमें ही, बल्कि भारतसे बाहर भी (ब्रह्मदेश, सीलोन और जापान तक) कई आदमी इस बातकी साक्षी भरेंगे। उनका कार्य न सिर्फ़ साहित्यिक क्षेत्रमें ही, परन्तु अन्य दिशाओंमें भी अमूल्य था। १८८७ में डिग्री लेनेके बाद वे सिटी-कालेज, कलकत्तामें प्रोफ़ेसर हुए। इसके बाद कुछ साल (१८९५-१९०६) वे इलाहाबादकी कायस्थ-पाठशालाके प्रिंसिपल होकर रहे। साथ-साथ वे अन्य क्षेत्रोंमें भी कार्य करते रहे। कुछ समयके लिए साधारण-ब्राह्मसमाजके सभापति भी हुए। पर यह काल उनके जीवनमें इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना कि इसके बादका।

सन् १९०७ में उनके जीवनका प्रमुख कार्य आरम्भ हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'माडर्न रिव्यू'की स्थापनाके रूपमें भारतीय पत्रकारीको सबल पुष्टि मिली। यह मासिक पत्र था, फिर भी इसका प्रचार विस्तृत-व्यापक था। कुछ वक्त पहले उन्होंने बँगला मासिक 'प्रवासी' निकाला था और १९२८ में 'विशाल भारत' ने जन्म पाया। 'प्रवासी'के विषयमें कुछ कहना कठिन है। कारण एक तो बँगला जानते हुए भी मैं उसका उचित पठन कर नहीं पाया और दूसरे उसका क्षेत्र भी सीमित है; पर 'विशाल भारत' और 'माडर्न रिव्यू'के सम्बन्धमें आसानीसे कहा जा सकता है कि ऐसे पत्र भारतमें कम हैं। और 'माडर्न रिव्यू'को तो भारतमें ही क्यों, एशियाके पत्रोंमें उच्च स्थान प्राप्त है। रामानन्द बाबूकी शैली तेजयुक्त, प्रवाह-पूर्ण और शुद्ध तथा निर्लिप्त थी, जिसकी कई अंगरेज़ी-लेखकोंकी शैलीसे तुलना की जा सकती है। उनके पत्रोंमें संसारके लगभग प्रत्येक विषयपर लेख प्रकाशित होते थे और होते हैं। कई सुविख्यात अन्तर्राष्ट्रीय लेखक उनके पत्रोंके लिए लिखनेमें अपना गौरव समझते थे।

दूसरा श्रेय जो रामानन्द बाबूको है, वह है भारतमें तिरंगे चित्रोंका बाक़ायदा छापना आरम्भ करनेका। उनसे पूर्व कुछ तिरंगे चित्र अवश्य छपे थे; पर नियमित रूपसे नहीं। उन्हींने इस प्रकारकी छपाईको पुष्टि दी। उनके १८ चित्र-आल्बम इस बातका प्रमाण हैं। साथ ही वे उनकी कला-प्रियता भी साबित करते हैं।

एक प्रकारसे कहा जाय, तो रामानन्द बाबूने ही विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरको अंगरेज़ी-जगत्के सामने पेश किया। विश्व-कविकी पहली अंगरेज़ी-रचना 'माडर्न रिव्यू'में ही प्रकट हुई थी। उसके बादसे लेकर अन्त तक विश्वकवि अपनी अंगरेज़ी कविताओंका बहुत बड़ा अंश 'माडर्न रिव्यू'में देते रहे। इस कारण भारतवासी आजन्म रामानन्द बाबूके ऋणी रहेंगे।

रामानन्द बाबूकी प्रबल तर्कशैली और स्पष्टवादिताकी क़द्र जल्द ही हुई और सन् १९२६ में उन्हें राष्ट्र-संघ (League of Nations) के इजलासमें उपस्थित होनेका सरकारी तौरपर निमन्त्रण दिया गया। वे ही अकेले पत्रकार थे, जिन्हें इस प्रकारका निमन्त्रण मिला। अपने निडर होनेका सबूत उन्होंने रेवरेण्ड जे० टी० सण्डरलैण्डकी पुस्तक 'इण्डिया इन बौण्डेज' प्रकाशित करके दिया, जिसके लिए उन्हें सज़ा भी दी गई। उनके अपने प्रकाशन थे—'राजा राममोहन राय', 'आधुनिक भारत' और 'स्वशासनकी ओर'।

भारतको और खासकर बंगालको उनके निधनसे विशेष हानि पहुँची है। उनका स्थान भरना महाकठिन है। भारतके इति-हासमें उनको कैसी जगह प्राप्त होगी, यह निश्चत करना आसान नहीं है। इस समय तो हम अपनी कृतज्ञता और श्रद्धाको ही शब्दाकार दे सकते हैं।

रामानन्द बाबूके निधनपर पत्र-पत्रिकाओंकी श्रद्धांजलियाँ

रामानन्द बाबूके निधनपर देशकी अनेक सभा-संस्थाओंने शोक-प्रस्ताव पास किए हैं तथा अंगरेज़ी और देशी भाषाओंके लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंने अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। हमें खेद है कि उन सबको स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जा सकता। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

दैनिक **'विश्वमित्र'** (कलकत्ता)—श्री रामानन्द चटर्जीको देश और देशके बाहर भी कौन नहीं जानता? आप वर्त्तमान युगके पत्रकार-गगन-मण्डलके प्रकाशमान नक्षत्र थे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। अभी उस दिन तक आपकी ७९वीं वर्ष-गाँठके उपलक्षमें आपको विभिन्न पत्रकार-संघोंकी ओरसे बधा-इयाँ दी जाती रही हैं। कौन जानता था कि क्रूर काल इस आतुरतासे आपका स्वागत करनेको तैयार है? गत बृहस्पति-वार (३० सितम्बर) को ७॥ बजे संध्याके समय इस महान् पत्रकारने पत्रकार-जगत्को अन्धकारमें छोड़कर महाप्रस्थान कर दिया। देशको इस समय ऐसे अनुभवी पत्रकारकी कितनी आवश्यकता है, यह सभी समझदार व्यक्ति स्वयं समझ सकते हैं; पर क्रूर कालको इसकी क्या परवाह! आपका जीवन अध्ययन और अध्यापनसे आरम्भ हुआ और सफल पत्रकारके रूपमें अन्त तक वैसा ही बना रहा। आप न केवल अंगरेज़ी और बँगलाके ही पत्रोंके सम्पादक रहे, बल्कि हिन्दीके विख्यात मासिक पत्र 'विशाल भारत'के भी आप संचालक रहे। आपको जो सफलता मिली, विरले लोगोंको ही वैसी सफलता मिला करती है।

'लोकमान्य'—श्रीयुत रामानन्द चटर्जी उच्चकोटिके मेधावी थे। बी० ए० और एम० ए० दोनों ही की परी-क्षाओंमें आप प्रथम श्रेणीमें प्रथम आए थे। प्रारम्भमें आप स्थानीय सिटी-कालेजमें अध्यापक हुए थे। श्री केशवचन्द्र सेनके सम्पर्कमें आनेसे आप ब्राह्मसमाजी हो गए थे। सर्वश्री आनन्द-मोहन बोस, कृष्णकुमार मित्र, हेरम्बचन्द्र मैत्र और अन्य प्रसिद्ध बंगीय विद्वानों, पत्रकारों और समाज-सुधारकोंकी प्रेरणासे आप पत्रकारत्व-वृत्ति ग्रहण करनेकी ओर प्रवृत्त हुए थे। १८९५ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप सिटी-कालेजका कार्य छोड़कर इलाहाबाद चले गए और कायस्थ-पाठशालाके प्रधानाचार्य नियुक्त हुए। वहीं आपने इण्डियन प्रेसके सहयोगसे १९०१ में 'प्रवासी' निकाला। १९०७ में आप कलकत्ते आ गए और 'माडर्न रिव्यू' नामक अंगरेज़ी मासिक पत्र निकालने लगे। १९२८ में आपने 'विशाल भारत' नामक हिन्दी मासिक पत्र निकाला। श्री रामानन्द चटर्जीकी दादाभाई नौरोजी, गोखले, लाला लाजपतराय और महामना मालवीयजीसे घनिष्ठता हो गई थी और आप कांग्रेसी बन गए थे। पर इधर आप हिन्दुत्वकी ओर प्रवृत्त हो गए थे और हिन्दू-सभाके अध्यक्ष भी बनाए गए थे। ये संक्षेपमें श्री चटर्जीके जीवनकी कुछ बातें हैं। पत्रकार-जगत्में जो आपका इतना नाम था, सो इस हेतु कि आप वस्तुतः उच्चकोटिके स्वाभिमानी और निर्भीक पत्रकार थे। भारत ही में नहीं, विदेशोंमें भी आपके विचारोंका सम्मान होता था। श्रीयुत रामानन्द चटर्जीकी टिप्पणियाँ अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली होती थीं। आपके लेखों और टिप्पणियोंमें ज्ञानवर्द्धक सामग्रीका प्राचुर्य होता था और शैली भी रोचक और गम्भीर होती थी। आपके देहावसानसे एक और भारतीय महापुरुष उठ गया।

'विश्वबन्धु' (कलकत्ता)—यह समाचार हमने मार्मिक व्यथाके साथ पढ़ा कि भारतीय पत्रकार-कलाके योग्य मार्ग-दर्शक बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय अब हमारे बीच न रह गए। एक अध्यापककी भाँति रामानन्द बाबूने अपना जीवन आरम्भ किया, और शिक्षा देनेकी बलवती भावनाने उन्हें कालेजसे लाकर प्रेसमें बैठाया, जहाँसे वे बीसवीं शताब्दीके आरम्भसे अब तक नव-युवक छात्रोंको नहीं, देशके शत-शत प्रौढ़ व्यक्तियोंको शिक्षा देते रहे। १९०१ में प्रयागसे 'प्रवासी'का सम्पादन आपने आरम्भ किया, जो बँगला-समाज और साहित्यमें नवयुगकी वाणी बना। १९०७ में 'माडर्न रिव्यू'का प्रकाशन आरम्भ हुआ, और इन दोनों पत्रोंने समाजकी विविध प्रकारसे सेवाके साथ-साथ पत्रकार-कलाका एक आदर्श उपस्थित किया। 'माडर्न रिव्यू' सिर्फ़ भारतमें ही नहीं, बल्कि विदेशोंमें भी एक शक्ति-शाली मासिक पत्र माना गया। रामानन्द बाबूके निर्भीक विचार, तर्कपूर्ण शैली और ओजमयी भाषा—सभीने मिलकर पत्रको भारतीय पत्रोंकी पहली पंक्तिमें ला बिठाया, और उसी आदरके स्थानपर अब तक है। हिन्दी-भाषियोंकी सेवाके लिए प्रवासी-प्रेससे 'विशाल भारत' निकलवाया, जो हिन्दीके श्रेष्ठ मासिक पत्रोंमें है, और अनेक कठिनाइयोंके बावजूद रामानन्द बाबू निष्ठाके साथ इस पत्रको उन्नत करनेमें लगे रहे। सामाजिक सुधारके कामोंमें भी आप बंगाली-समाजके आगुवा थे। ब्राह्म-समाजके प्रतिष्ठित नेताओंमें आपकी गणना थी। रामानन्द बाबूके निधनसे भारतीय पत्रकार-कलाके क्षेत्रमें जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति निकट भविष्यमें होती नहीं दिखती। हम आपकी स्मृतिमें विनत होते हैं। रामानन्द बाबूको खो देना समस्त देशकी हानि है। उनके निधनपर सारा देश दुःखित है।

'हिन्दुस्तान'—श्री रामानन्द चटर्जीके निधनसे भारतीय पत्रकारोंने एक ऐसा व्यक्ति खो दिया, जो वर्त्तमान पीढ़ीका हर दृष्टिसे बुज़ुर्ग कहा जा सकता था। रामानन्द बाबू कुशल और सफल पत्रकार ही नहीं थे, पत्र-संचालक भी थे और एक नहीं, तीन भाषाओंमें तीन प्रमुख पत्र उनकी देख-रेखमें निकलते रहे थे। अंगरेज़ी 'माडर्न रिव्यू' भारतका सुप्रसिद्ध मासिक है, 'प्रवासी' बँगलाका श्रेष्ठ मासिक और 'विशाल भारत' हिन्दीमें ख्याति लाभ कर चुका है। हम उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं। हिन्दीमें भी उन-जैसे व्यक्ति हों, यही हम चाहते हैं।

'प्रताप'—'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी'के सम्पादक, 'विशाल भारत'के संचालक श्रीयुत रामानन्द चटर्जीकी मृत्युका समाचार सर्वत्र दुःखके साथ पढ़ा गया। अत्यन्त योग्यता एवं सम्मानके साथ उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके बाद उन्होंने शिक्षा-क्षेत्रमें प्रवेश किया। लेकिन सार्वजनिक जीवनकी अभिलाषा उन्हें पत्रकार-कलाकी ओर ले गई। जब उन्होंने 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी'का प्रकाशन किया था, उस समय देशमें सुसम्पादित मासिक पत्रोंका अभाव था। अपने अनवरत परिश्रम और प्रतिभा-सम्पन्न साहससे उन्होंने 'माडर्न रिव्यू'को अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्रदान किया। जे० टी० सण्डरलैण्ड कहा करते थे कि यदि संसारके आठ प्रमुख मासिक पत्रोंके नाम लिए जायँ, तो 'माडर्न रिव्यू'का नाम भी आदरके साथ लिया जायगा। ब्राह्मसमाज, हिन्दू-महासभा, देशी राज्य-प्रजा-परिषद, पत्रकार-संघ, बंग-साहित्य-सम्मिलनी आदि संस्थाओंके प्रति उन्होंने जो सेवाएँ की हैं, वे सदा सुन्दर शब्दोंमें याद की जायँगी। पत्रकार-जगत्में वे अत्यन्त निर्भीक और साहसी प्रसिद्ध थे। सरकारके प्रतिबन्ध उनके अदम्य विचार-स्वातन्त्र्यको तनिक भी विचलित न कर सके। 'इण्डिया इन बौण्डेज' (पराधीन भारत) के लेखक डा० जे० टी० सण्डरलैण्डके लेखोंको भारत-सरकार-सदा सन्देहकी दृष्टिसे देखा करती थी। 'माडर्न रिव्यू'में उनके लेख बराबर स्थान पाते रहे। फिर उनकी पुस्तक 'इण्डिया इन बौण्डेज' श्रीयुत चटर्जीके प्रोत्साहनसे प्रकाशित हुई। वह ज़ब्त कर ली गई। उस समय श्रीयुत चटर्जीने जो सम्पादकीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिप्पणियाँ लिखी थीं, वे उनकी विचार-स्वतन्त्रतापर अच्छा प्रकाश डालती हैं। मेजर वामनदास वसु और सर यदुनाथ सरकारके ऐतिहासिक लेखोंको 'माडर्न रिव्यू'ने स्थान देकर इतिहासकी जो सेवा उक्त पत्रने की है, वह सब इतिहास-प्रेमियोंपर प्रकट है। श्रीयुत रामानन्द चटर्जी राष्ट्रसंघके निमन्त्रणपर जेनेवा गए थे। वहाँकी कार्यवाही देखकर उन्हें दुःख हुआ। केवल स्वाभिमानकी प्रेरणासे उन्होंने राष्ट्रसंघ द्वारा दिया गया मार्ग-व्यय लेनेसे भी इन्कार कर दिया। 'विशाल भारत' निकालकर उन्होंने अपने हिन्दी-प्रेमका परिचय दिया। नागरी-लिपिकी अखिल भारतीय उपादेयता वे भी रवीन्द्रनाथ टैगोरकी तरह स्वीकार करते थे। जब 'माडर्न रिव्यू'में उन्होंने बँगला-कविताके उद्धरण नागरी अक्षरोंमें प्रकाशित किए, तो बंगाली नाराज़ हुए; पर उनका तर्क अकाट्य सिद्ध हुआ। सभी विचारोंके व्यक्ति उनकी विद्वत्ता, प्रतिभा, योग्यता और निर्भीकताके क़ायल थे।

'हिन्दी-स्वराज्य'—गत सप्ताह भारतके प्रसिद्ध पत्रकार श्री रामानन्दजी चटर्जीका ७९ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हो गया। स्वर्गीय चटर्जी जब इलाहाबादकी कायस्थ-पाठशालामें प्रिंसिपल थे, तभीसे बँगला मासिक 'प्रवासी' का सम्पादन करते थे। बादमें वे कलकत्ते चले गए और 'माडर्न रिव्यू'को जन्म दिया। फिर आपने 'विशाल भारत' का प्रकाशन शुरू किया। उनके ये तीनों मासिक अपने-अपने क्षेत्रमें लोकप्रिय और नामवर हुए। एक ध्येयवादी सम्पादकके नाते स्व० रामानन्द बाबूका नाम भारतके अलावा दुनियाके अंगरेज़ी-भाषी पाठकोंमें लोकप्रिय था। वे प्रार्थना-समाजी एवं स्त्री-उद्धारके समर्थक थे।

'देशदूत'—सुप्रसिद्ध देशभक्त और 'प्रवासी' तथा 'माडर्न रिव्यू'के ख्यातनामा सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जीका एकाएक स्वर्गवास हो गया। रामानन्द बाबू भारतके ही नहीं, संसारके उच्चतम पत्रकारोंमें गिने जाते थे। उन्होंने इटलीके देशभक्त मेजिनीकी भाँति अपने जीवनके ५० वर्ष सार्वजनिक सेवा, शिक्षाकी उन्नति और देशभक्तिके कार्योंमें बिता दिए। उन्होंने अपनी प्रबल लेखनीसे पत्रकार-जगत्में एक ऐसी धाक ज़मा ली थी कि अन्त तक वे अपने उसी गौरव-पदपर आसीन रहे। 'माडर्न रिव्यू' आजकल प्रथम श्रेणीके सुसम्पादित पत्रोंमें गिना जाता है। उसकी आवाज़ और आलोचनाका एक निश्चित स्थान है। इसका समस्त श्रेय स्वर्गीय रामानन्द बाबूको है। उन्होंने अपनी तपस्याका एक अद्भुत उदाहरण पत्रकार-जगत्में उपस्थित किया। सिद्धान्त और दृढ़तासे वे देश, समाज, साहित्यकी अभूतपूर्व सेवा करनेमें लीन रहे। ऐसे प्रख्यात देशभक्त और पत्रकारके स्वर्गवाससे सार्वजनिक जीवनकी कितनी हानि हुई, इसका अनुभव भलीभाँति किया जा सकता है। रामानन्द बाबूके निधनसे भारतीय पत्रकार-जगत्में जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्त्ति फ़िलहाल सम्भव नहीं है। आप बड़े सज्जन, देशभक्त, सांस्कृतिक और सुदृढ़ विचारोंके विद्वान थे। पत्रकार-कलाको आपने जिस उच्च दर्जेपर पहुँचाया है, वह इतिहासमें अमर रहेगी। ऐसे वयोवृद्ध नेताके निधनसे प्रत्येक भारतीय—विशेष रूपसे पत्रकारों—को दुःख होना अनिवार्य है।

शोक-प्रस्तावः

भागीरथीतीर-विराजितस्य, श्रीश्रद्धानन्द कुलगुरोः कीर्त्तिरूपस्य, हरिद्वारीय गुरुकुल-विश्वविद्यालयस्य, ब्रह्मचारिणामुपाध्यायानां चेयं परिषद् भारतभूमेः पत्रकारप्रवरस्य, निर्भयसमीक्षकस्य, सुधारकमूर्धन्यस्य, शिक्षातत्वप्रवीणस्य, स्वदेशसेवाव्रतीनः, प्राच्यसंस्कृति-पूजकस्य, तत्रभवतः श्रीरामानन्दचट्टोपाध्याय-महाभागस्य निधनवृत्तान्तं निशम्य नितान्तं खेदमावहति। लोकमंगलाय राष्ट्रजागरणाय च सम्पादितं तदीयं कार्यकलापं स्मारं स्मारं श्रद्धाप्रसूनाञ्जलिभिः संभावयति।

परिषदियं दिवंगतस्य महाभागस्यात्मीयजनैः सार्धं स्वीयां हार्दिकीं सहवेदनां सहानुभूतिं च सम्यग् अनुभवति। लोकानन्तरं गतस्य च तस्यात्मा चिरशान्तिं लभतां इत्येवं प्रार्थ्यते तत्रभवान् परमकारुणिकः श्रीभगवान्॥

'श्री वेंकटेश्वर-समाचार'—गत ३० वीं सितम्बरको कलकत्तेमें अंगरेज़ी 'माडर्न रिव्यू' और बँगला 'प्रवासी'के संस्थापक तथा सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याने अपनी इहलीला संवरण की। अन्तिम समय आपकी अवस्था कोई ७९ सालकी थी। आप अतीव यशस्वी तथा देशविख्यात साहित्यिक पुरुष थे। समय पाकर आपने कलकत्तेमें यन्त्रालय प्रतिष्ठित किया और उससे पूर्वोक्त दोनों पत्र बड़ी ही योग्यताके साथ निकालते रहे। राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति भी आपका सविशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुराग था, इसीलिए आपने इधर कितने ही वर्षोंसे अपने यन्त्रालयसे हिन्दी मासिक 'विशाल भारत' निकाल रखा था। ऊपरके दोनों पत्रोंके साथ-साथ यह हिन्दी मासिक भी अभी तक निकल रहा है। जगदीशसे विनय है कि वह भारतके कल्याणार्थ रामानन्दजीकी छोड़ी हुई इन तीनों विभूतियोंको चिरकाल तक रक्षित रखें।

साप्ताहिक 'लोकमान्य' (दिल्ली)—'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी'के सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जीके निधनसे भारतीय पत्रकार-जगत्का एक जगमगाता हीरा उठ गया। आप अनुभवी और निर्भीक पत्रकार थे और आपकी टिप्पणियाँ स्वतन्त्र, देशभक्तिपूर्ण होती थीं। आपकी चुभती और मँजी हुई शैलीमें लिखी टिप्पणियोंको पढ़नेके लिए मासिक 'माडर्न रिव्यू'की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकतासे की जाती थी। आप केवल अपनी योग्यता और परिश्रमके बलपर ही ऊँचे उठे और 'माडर्न रिव्यू' तथा 'प्रवासी'के द्वारा देश-सेवाके साथ-साथ यश और धन भी खूब कमाया। आप हिन्दीके प्रसिद्ध मासिक 'विशाल भारत'के भी संचालक थे। आपकी दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय थी और आप अपने पत्रोंमें उपनिवेशोंमें बसे भारतीयोंकी चर्चा विशेष रूपसे करते थे।

'लोकयुद्ध'—हमारे बीचसे हमारे स्वातन्त्र्य-आन्दोलनका एक महान् योद्धा और निर्भीक पत्रकार उठ गया। 'प्रवासी' (बँगला) और 'माडर्न रिव्यू' (अंगरेज़ी) के सम्पादक और 'विशाल भारत'के संचालक श्री रामानन्द चटर्जीने इस शताब्दीके प्रारम्भमें पत्रकार-दुनियामें प्रवेश किया था। इस आधी शताब्दीमें उन्होंने हमेशा राष्ट्रीय आज़ादीका तथा दूसरी प्रगतिशील शक्तियोंका साथ दिया। १९१५ में जब महात्माजीने भारतीय राजनीतिमें प्रवेशकर कांग्रेसको जनताके नज़दीक लानेके प्रयत्न शुरू किए, तो श्रीयुत रामानन्द चटर्जीने उनका स्वागत किया था। १९१७ में उन्होंने रवि ठाकुरके ही साथ-साथ रूसकी महान् नवम्बर-क्रान्तिका अभिनन्दन किया था। फ़ाशिज़्मके वे कट्टर दुश्मन थे। १९३१ में जब जापानने मंचूरियापर आक्रमण किया, तो उन्होंने उसकी सख्त निन्दा की थी। १९४१ में जब हिटलरने सोवियतपर हमला किया, तब भी उनकी रोष-भरी वाणी उसके विरुद्ध उठी थी। पिछले दिनों ७९ वर्षकी अवस्थामें भी वे बंगालके अन्न-संकटको दूर करनेके प्रयत्नोंमें योग दे रहे थे। उनके निधनसे आज हमारे देशकी एक और वीर आत्मा उठ गई।

'योगी'—रामानन्द चटर्जीके स्वर्गवाससे भारतवर्ष नहीं, सारी दुनियाका एक महान् स्वतन्त्र विचारक पत्रकार उठ गया। देशके शासकों, नायकों और पूँजीपतियोंके कोप, कुचक्र और प्रलोभनके बीच अपनी ईमानदारीको निभाते हुए सर ऊँचा रखके अपनी बात कह जाना और जनताकी पसन्दका अन्धानुकरण न कर उसकी रुचिके प्रवाहको उचित दिशामें ले जाना सच्चे पत्रकारका कर्त्तव्य है। इस कसौटीपर खरे उतरनेवाले पत्रकारोंमें रामानन्द बाबू अग्रणी थे। लगभग ४० वर्षों तकके उनके सक्रिय पत्रकार-जीवनमें उन्हें न कोई झुका सका और न भुला सका। यही कारण था कि उनका यशःसौरभ संसारके कोने-कोनेमें छाया हुआ है। 'माडर्न रिव्यू', 'प्रवासी' और 'विशाल भारत' रामानन्द बाबूकी कीर्त्तिके अमर चिह्न बने रहें, यही उनकी साधनाका फल रहेगा। पत्रकारोंके सामने वे जो कुछ पवित्र चरण-चिह्न छोड़ गए हैं, वही हमारे लिए सबसे बड़ी देन होगी।

मासिक **'विश्वमित्र'**—श्री रामानन्द चटर्जीकी मृत्युसे भारतको, विशेषतः भारतीय पत्रकार-कलाको, जब कि इस समय उसकी संकटापन्न स्थिति है, जो क्षति पहुँची है, निकट भविष्यमें उसकी पूर्त्ति होनेकी सम्भावना नहीं। आप अंगरेज़ी और बँगलाके दो उच्चकोटिके मासिक पत्रों—'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी'—के सम्पादक तथा संचालक थे। आपकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ बड़ी गम्भीर होती थीं और विदेशी पत्रकार भी उनका लोहा मानते थे। रामानन्द बाबू केवल पत्रकार ही न थे, कट्टर देशभक्त और समाज-सुधारक भी थे। हिन्दीके प्रति उनका जो प्रेम था, उसका परिचय देनेके लिए पिछले १४-१५ वर्षोंसे वे हिन्दी मासिक 'विशाल भारत'का संचालन करते थे।

'माधुरी'—आदरणीय बाबू रामानन्द चटर्जीके नामके साथ स्वर्गीय शब्द लगाते हृदय विदीर्ण होता है। विद्वद्वर चटर्जी महाशय अपने जीवनमें देश और समाजके उपकारके लिए जो-कुछ कर गए हैं, उसे हम भारतवासी सदैव श्रद्धाके साथ स्मरण करेंगे। आप अंगरेज़ीमें 'माडर्न रिव्यू' और बँगलामें 'प्रवासी' नामका मासिक पत्र निकालते थे। दोनों पत्रोंके स्वत्वाधिकारी और सम्पादक आप ही थे। हिन्दीमें 'विशाल भारत' नामका मासिक पत्र भी आपने निकाला। ये तीनों पत्र बराबर प्रकाशित हो रहे हैं। चटर्जी देशभक्त भी उच्चकोटिके थे। आपकी मृत्युसे एक वयोवृद्ध, प्रभावशाली और निर्भीक सम्पादक भारतने खो दिया। पाश्चात्य जगत्को भारतीय संस्कृतिका ज्ञान करानेकी दिशामें 'माडर्न रिव्यू'ने बहुत अधिककाम किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

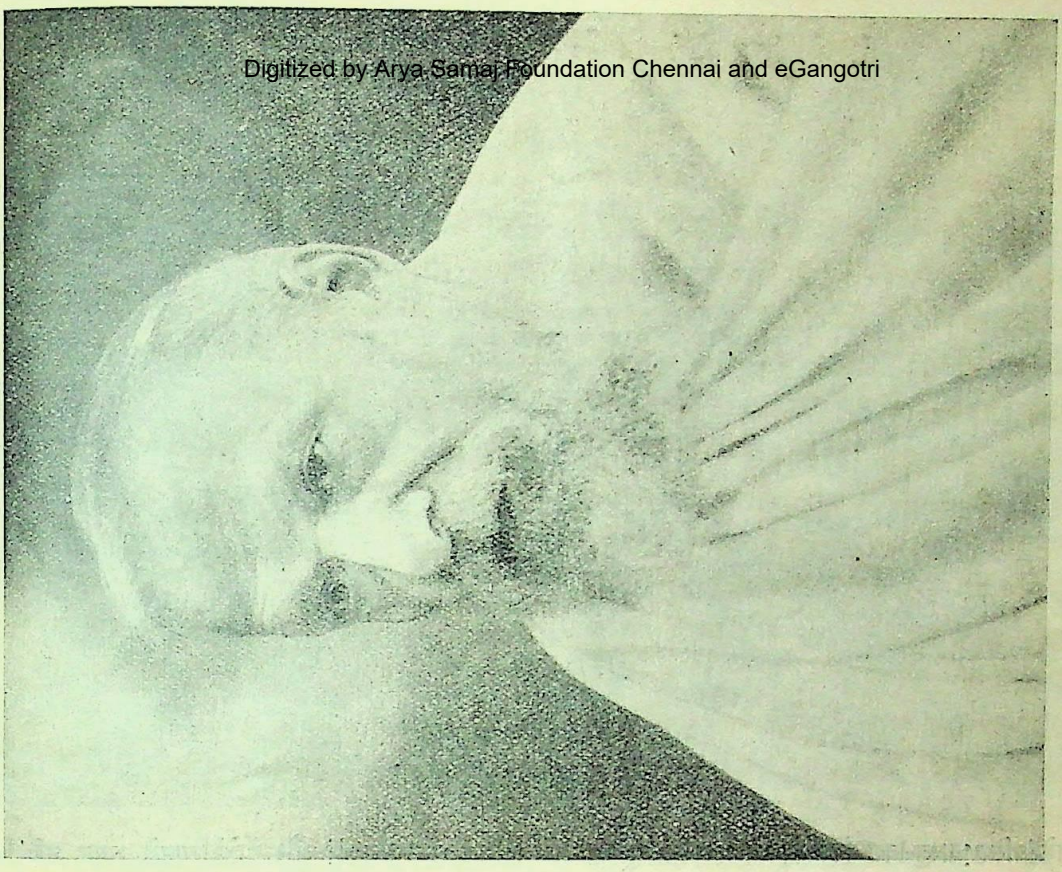

रामानन्द बाबू (१९३६ में)

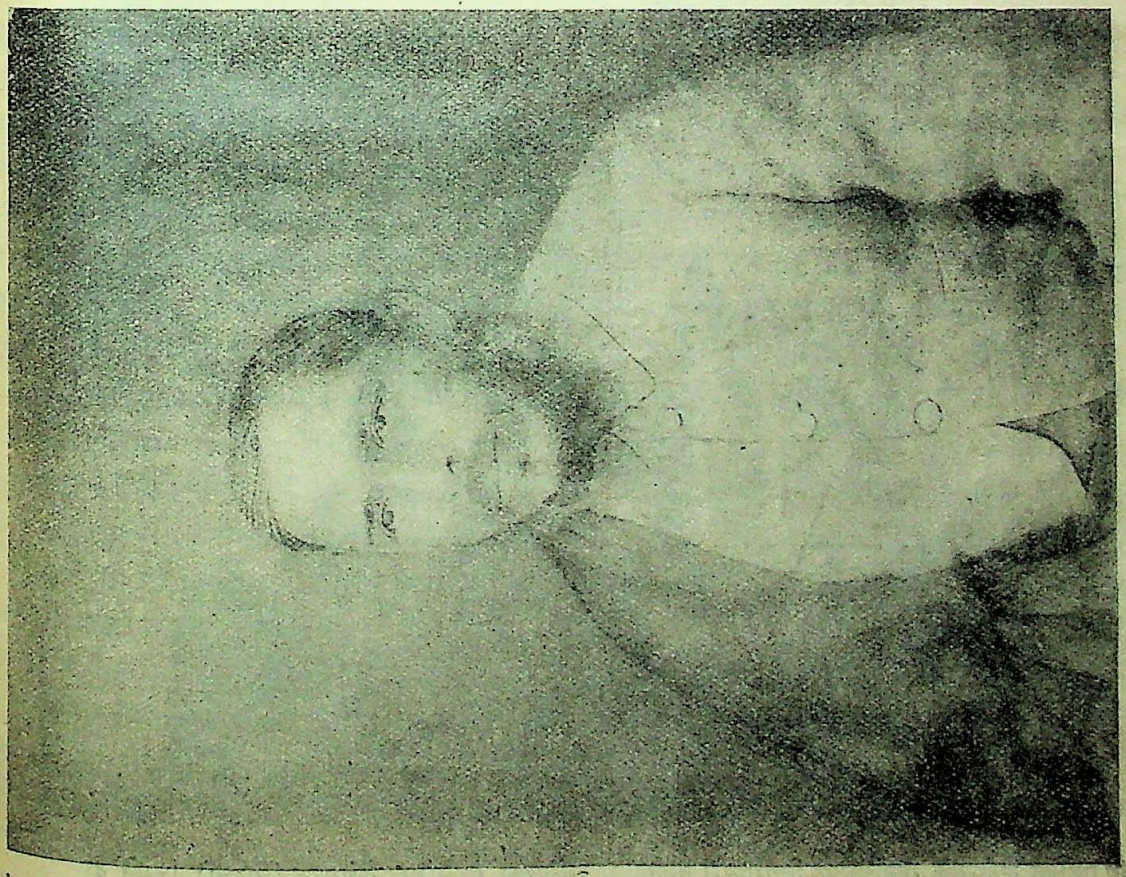

रामानन्द बाबू (१८९९ में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

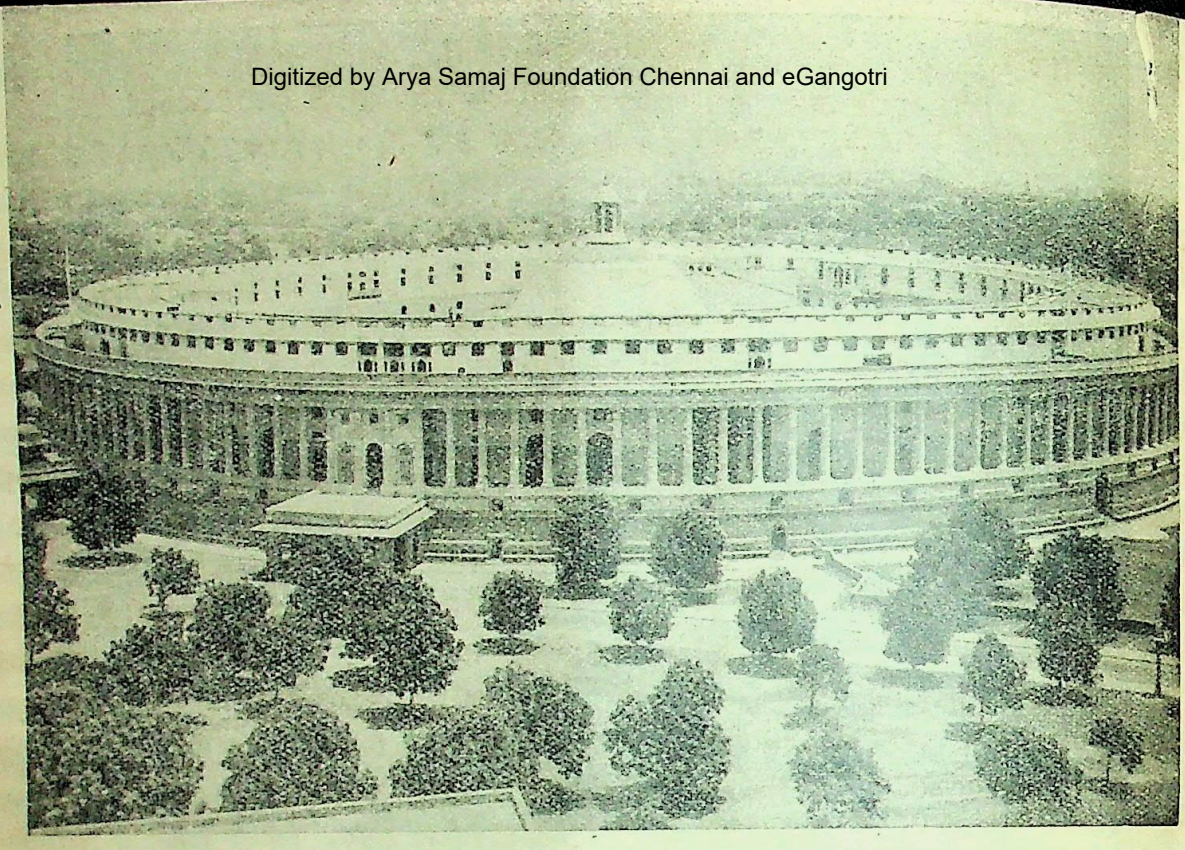

ब्रिटेनके प्रसिद्ध वास्तु-विद्या-विशारद सर एडविन ल्यूटेन्स द्वारा निर्मित धारा-सभाओं और सेक्रेटेरिएटके भवन, नई दिल्ली।

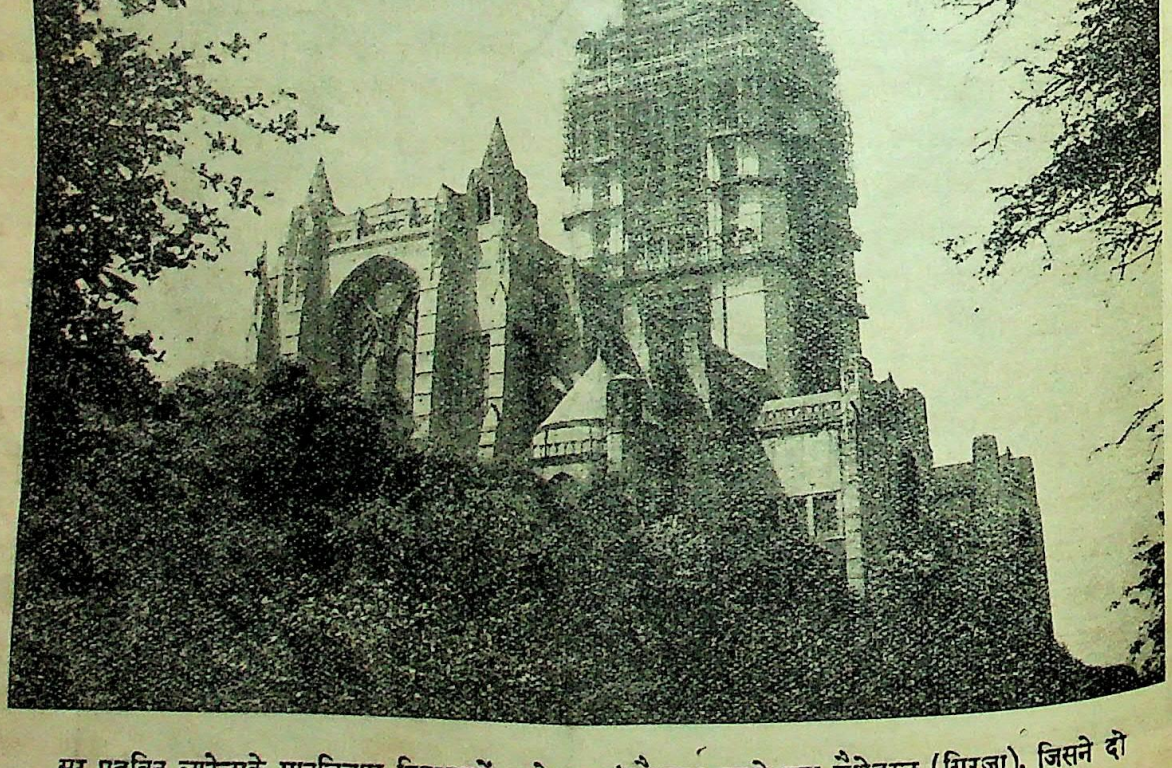

सर एडविन ल्यूटेन्सके मानचित्रपर लिवरपूलमें बननेवाला इंग्लैण्डका सबसे बड़ा कैथेडरल (गिरजा), जिसने दो महायुद्ध और तीन बादशाहोंका शासन देखा है। अभी भी यह पूरा नहीं हो पाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतकी औद्योगिक उन्नतिका प्रश्न

श्री शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०

वर्तमान महायुद्धके फल-स्वरूप भारतवर्षमें औद्योगिक उन्नतिका प्रश्न एकबार फिर प्रबल वेगसे देशके सामने उपस्थित हुआ है। यों तो भारतके उद्योगीकरणकी माँग आरम्भसे ही राष्ट्रीय आन्दोलनका एक अंग रही है। भारतीय नेता आरम्भसे ही भारतीय उद्योग-धंधोंके प्रति भारत-सरकारकी उदासीनताका घोर विरोध करते रहे हैं। वे लगातार बहुत समय तक भारतीय धंधोंके लिए संरक्षण प्राप्त करनेका प्रयत्न करते रहे हैं। अन्तमें जब पिछले महायुद्ध (१९१४-१८) के समाप्त होनेपर भारतवर्षको अपनी आयात-निर्यात-कर-नीति (Fiscal policy) निर्धारित करनेकी आंशिक स्वतन्त्रता मिल गई, तो हमने उस अधिकारका उपयोग लोहे, कपड़े, शक्कर, कागज़, तथा सीमेंटके धंधोंकी उन्नतिके रूपमें किया। लेकिन आयात-निर्यात-कर-सम्बन्धी नीतिको निर्धारित करनेमें फिर भी पूर्ण स्वाधीनता नहीं मिली थी। भारत सरकारने शर्त-सहित संरक्षण (Discriminating protection) की नीतिको अपनाकर केवल उन्हीं धंधोंको संरक्षण प्रदान किया, जो कुछ शर्तोंको पूरा करें। भारतीय इससे सन्तुष्ट नहीं थे। वे चाहते थे कि पूर्ण संरक्षण-नीतिको अपनाकर सरकारको धंधोंको तेज़ीसे बढ़ाना चाहिए, जिससे भारतवर्ष भी संसारके औद्योगिक प्रधान-देशोंमें अपना स्थान ग्रहण कर सके। किन्तु भारत-सरकार अपने देश (ब्रिटेन) के उद्योग-धंधोंपर आँच नहीं आने देना चाहती थी, इस कारण उसने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। भारतीय लोकमत सरकारकी इस नीतिसे क्षुब्ध था।

इधर सोवियत्-रूसकी पंचवर्षीय योजनाओंने अन्य देशोंकी भाँति भारतवर्षको भी प्रभावित किया और कांग्रेसने राष्ट्रीय औद्योगिक योजना-कमेटी (नेशनल-प्लानिंग-कमेटी) नियुक्त की। कांग्रेस इस बातको जानती थी कि जब तक देश स्वतंत्र न हो जाय, तब तक इस प्रकारकी योजनाको कार्य-रूपमें परिणत नहीं किया जा सकता। किन्तु राष्ट्रीय महासभाको विश्वास था कि वह शीघ्र ही देशकी स्वतन्त्रताको प्राप्त कर लेगी।

कुछ ही समय उपरान्त वर्तमान युद्ध छिड़ गया और उससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओंने हमारी राजनीतिक प्रगतिको गहरा धक्का लगाया। जो भी प्रयत्न देशकी औद्योगिक उन्नतिके लिए किए जा रहे थे, वे सरकारकी दमन-नीतिके कारण शिथिल पड़ गए। राष्ट्र-निर्माण-योजना-कमेटीका काम रुक गया। अखिल भारतीय चर्खा-संघका संगठन नष्ट-प्रायः हो गया। ग्राम-उद्योग-संघ भी थोड़े समयके लिए निष्प्राण कर दिया गया। इधर युद्धके छिड़नेपर और विशेषकर जापानके बर्मा विजय कर लेनेके उपरान्त भारतीय सीमापर आ जानेके कारण देशकी औद्योगिक निर्धनताका दुखद बोध भारतवासियोंको पग-पगपर होने लगा। विदेशी आक्रमणसे देशकी रक्षा करनेके लिए और देशकी जन-संख्याकी दैनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए जिन चीज़ोंकी आवश्यकता है, वे देशमें तो उत्पन्न होती ही नहीं और न इस समय विदेशोंसे मँगाई ही जा सकती हैं। देश प्रति क्षण बाहरी आक्रमणके भयके रहते भी निस्सहाय अवस्थामें पड़ा हुआ है। हमारी औद्योगिक हीन दशा इस असहाय अवस्थाका एक मुख्य कारण है। हमें ऐंजिन, हवाई-जहाज़, समुद्री जहाज़, मोटर, तथा रण-सामग्री प्रचुर मात्रामें चाहिए। किन्तु हमारे यहाँ ये सामान बनते ही नहीं और न सरकार इन धंधोंको उन्नति ही चाहती है। यदि इस युद्धकी विभीषिकासे हम किसी प्रकार बच गए, तो वह केवल संयोगवश ही सम्भव होगा। आजके युगमें कोई भी देश अपने उद्योग-धंधोंकी उन्नति किए बिना अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं कर सकता। अतएव यह निश्चय है कि युद्धके उपरान्त यदि भारतवर्ष संयोगवश युद्धकी विभीषिकासे बच गया और उसको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें सफलता मिली, तो वह अपने उद्योग-धंधोंकी उन्नतिके लिए विशेष रूपसे प्रयत्नशील होगा।

अब प्रश्न यह है कि देशकी औद्योगिक उन्नति करनेमें किस नीतिको अपनाया जाय। महात्मा गांधी बराबर इन बड़े-बड़े कल-कारखानोंका विरोध करते रहे हैं। उनका कहना है कि ये आधुनिक धंधे स्वयं एक बुराई हैं। इनके द्वारा आर्थिक और सामाजिक शक्ति कुछ थोड़े-से पूँजीपतियोंके हाथोंमें केन्द्रित हो जाती है। असंख्य मज़दूरोंको गर्हित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यही नहीं, उद्योगीकरणका एक अवश्यम्भावी परिणाम यह होता है कि समाजमें चरम सीमाकी आर्थिक असमानता उत्पन्न हो जाती है। मनुष्यको मशीनका पुर्ज़ा बनकर काम करना पड़ता है। महात्माजीका कहना है कि आधुनिक उद्योग-धंधोंकी नींव ही हिंसापर अवलम्बित है। अतएव अहिंसात्मक समाज-संगठन केवल गृह-उद्योग-धंधों द्वारा और उनके आधारपर ही किया जा सकता है। उनका कहना है कि इस तरह एक नवीन सभ्यताको जन्म दिया जा सकता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो उपभोगकी वस्तुओंकी बहुलतापर नहीं, वरन् आवश्यकताओंकी कमीपर आश्रित होगी।

कुछ विद्वान महात्माजीके गृह-उद्योग-धंधोंकी योजनाका इस आधारपर विरोध करते हैं कि गृह-उद्योग-धंधे मिलोंकी प्रतिस्पर्द्धामें टिक नहीं सकते और उनके द्वारा उत्पन्न हुई वस्तुओंका लागत-व्यय अधिक होता है। किन्तु यदि गहरे उतर कर देखा जाय, तो इसमें अधिक तथ्य नहीं है। जहाँ तक कारखानेके मालिकका प्रश्न है, यह ठीक है। उसके लिए कारखानेमें तैयार की हुई वस्तुका लागत-खर्च कम बैठता है। किन्तु जहाँ तक समाजका प्रश्न है, उसके लिए उस वस्तुका लागत-व्यय बहुत अधिक होता है। आधुनिक कल-कारखानोंके आधारपर खड़े किए गए औद्योगिक संगठनसे केवल ऊपर-लिखी बुराइयाँ ही उपस्थित नहीं होतीं, वरन् पूँजीवादका अवश्यम्भावी परिणाम होता है साम्राज्यवाद, जो निबल देशोंका अनवरत शोषण करता है और समय-समयपर भयंकर युद्धकी विभीषिकाको ला उपस्थित करता है। अतएव इस प्रकारकी औद्योगिक उन्नतिके कारण युद्ध होते हैं और उनके कारण होनेवाले प्रलयकारी विध्वंसकी हानिको भी वस्तुओंकी लागतमें जोड़ना पड़ता है। अस्तु, केवल यह युक्ति उपस्थित करके हम महात्माजीकी गृह-उद्योग-धंधोंकी योजनाका विरोध नहीं कर सकते।

तो फिर क्या आधुनिक ढंगके उत्पादनको सर्वथा रोक दिया जाय और महात्माजीके प्रस्तावको मानकर गृह-उद्योग-धंधोंकी ही उन्नति की जाय? परन्तु क्या भारतवर्ष संसारसे पृथक रहकर चल सकेगा? कोई भी राष्ट्र, जो प्रगतिकी अवहेलना करेगा, जीवित नहीं रह सकता। आजके इस वैज्ञानिक युगमें कोई भी देश नितान्त स्वावलम्बी बनकर नहीं रह सकता। गमनागमनके साधनोंकी उन्नतिके कारण आज दूरी नष्ट हो गई है। एक देश दूसरे देशपर सैकड़ों बातोंके लिए निर्भर करता है। अतएव भारतवर्ष चाहे जितना ही गृह-उद्योग-धंधोंसे क्यों न चिपटे रहना चाहे; यदि उसे संसारमें जीवित रहना है, तो उसे आधुनिक उद्योग-धंधोंकी उन्नति करनी ही होगी। चाहे गृह-उद्योग-धंधोंसे भारतवर्षको लाभ ही क्यों न हो; परन्तु यदि पृथ्वीके अन्य देश आधुनिक ढंगके धंधोंको अपनाए रहे, तो भारतवर्षके लिए भी कोई चारा नहीं रहेगा। इसके अतिरिक्त एक बात और है। यदि आधुनिक धंधोंका राष्ट्रीयकरण किया जाय और उत्पादन आजकी भाँति लाभके लिए न होकर उपभोगके लिए किया जाय, तो उससे होनेवाली हानियाँ दूर हो सकती हैं। समाजवादियोंका यही कहना है कि जब मानवीय बुद्धिने नए-नए आविष्कार करके यन्त्रोंके द्वारा कम समय और श्रम व्यय करके सम्पत्तिके उत्पादनका ढँग निकाल लिया है, तो उसको छोड़ देना और कहीं अधिक समय और श्रम व्यय करके उत्पादन करना बुद्धिमानी नहीं है और न यह समाजके लिए हितकर ही है। हाँ, जो बुराइयाँ पूँजीवादी औद्योगिक संगठनके कारण उत्पन्न हो गई हैं, वे उद्योग-धंधोंके राष्ट्रीयकरणसे दूर हो सकती हैं।

इस सम्बन्धमें एक बात और ध्यान देनेकी है। संसारमें अभी तक संस्कृति और सभ्यताका विकास बहुतोंको असभ्य और असंस्कृत रखकर ही किया गया है; क्योंकि सभ्यता और संस्कृतिका जन्म वहीं होता है, जहाँ उपभोगकी वस्तुओंकी प्रचुरता हो और यथेष्ट अवकाश हो। सामन्तशाही युगमें संस्कृत और सभ्यताका प्रकाश उन्हीं वर्गोंमें फैला, जिन्हें यथेष्ट अवकाश था, जो दास रखकर उनसे अपने सारे कार्य करवाते थे और जिनके पास आवश्यकताओंको पूरा करनेके पर्याप्त साधन थे। पूँजीवादी युगमें भी धनी-वर्ग ही कला, सभ्यता और संस्कृतिकी विलासिताका उपभोग कर सकता है। सर्वहारा-वर्ग रात-दिन अपना पेट भरनेमें ही लगा रहता है। उसे इतना अवकाश कहाँ कि वह इनकी कल्पना भी कर सके। किन्तु जब मानवीय बुद्धिने उत्पादनकी ऐसी प्रणाली ढूँढ़ निकाली है कि प्रत्येक मनुष्यको यथेष्ट आजीविकाके साधन दिए जा सकते हैं और यथेष्ट अवकाश भी मिल सकता है, तो उस प्रणालीको केवल इसलिए दूषित ठहराना उचित नहीं कि इस समय उस सम्पत्तिका न्यायपूर्ण बँटवारा नहीं होता और कुछ थोड़े-से व्यक्ति उसको हड़प लेते हैं।

अस्तु, यह स्पष्ट है कि भारतवर्षको आधुनिक ढंगके उद्योग-धंधोंको अपनाना ही होगा। यह हो सकता है कि भारतकी विशेष परिस्थितिको देखते हुए इन गृह-उद्योग-धंधोंको भी आधुनिक छोटे यन्त्रों तथा शक्तिसे सुसज्जित करके संगठित किया जाय; किन्तु बड़े-बड़े कारखानोंका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। हमें देखना यह है कि भारतवर्षके उद्योग-धंधोंकी दशा कैसी है और किस प्रकार उनकी उन्नति की जा सकती है। भारतवर्षकी औद्योगिक उन्नतिके प्रश्नपर विचार करते समय हमें यह न भूल जाना चाहिए कि जब तक हम परतन्त्रताका जुआ अपने कन्धोंपरसे नहीं उतार फेंकते, तब तक हम वास्तविक अर्थोंमें औद्योगिक उन्नति नहीं कर सकते। भारतवर्ष निकट भविष्यमें स्वतन्त्र होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्यवादकी इच्छाके विरुद्ध भी नवीन शक्तियोंके फल-स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष स्वतन्त्र होगा। स्वतन्त्र भारतके सामने सबसे बड़ी समस्या अपनी बढ़ती हुई निर्धन जनसंख्याके भरण-पोषण और उसके रहन-सहनके दर्जेको ऊँचा उठानेकी उपस्थित होगी। अतएव हमें देखना यह है कि हमारा औद्योगिक संगठन किस प्रकारका हो, जिससे हम भारतीयोंकी निर्धनताको वास्तविक अर्थोंमें दूर कर सकें।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतवर्षको एक नवीन औद्योगिक संगठनको जन्म देना होगा, जिसमें गृह-उद्योग-धंधों और आधुनिक बड़े-बड़े कारखानोंका सामंजस्य स्थापित होगा। गृह-उद्योग-धंधोंसे एक लाभ तो यह है कि उनसे बहुत बड़ी संख्यामें श्रमजीवियोंको कार्य मिल सकेगा। हमारे देशमें जो असंख्य जनसंख्या पूरी या आधी बेकार है, उसको काम देकर ही हम राष्ट्रकी सम्पत्तिको बढ़ा सकते हैं। जितने अधिक लोग बेकार होंगे, उतना ही राष्ट्र निर्धन रहेगा। किन्तु यह धंधे तभी पनप सकते हैं जब कि उनके द्वारा बाज़ारके लिए माल न उत्पन्न किया जाकर उपभोगके लिए ही उत्पन्न किया जाय। नहीं तो इन धंधोंको बड़े कारखानोंकी प्रतिद्वन्द्विताका सामना करना पड़ेगा। यद्यपि छोटे छोटे आधुनिक ढंगके यन्त्रोंका आविष्कार करके, उत्पादनके आधुनिक ढंगका प्रचार करके तथा जहाँ कहीं सम्भव हो जल-विद्युत् उत्पन्न करके गृह-उद्योग-धंधोंको आजसे कहीं अधिक शक्तिशाली और दृढ़ बनाया जा सकता है और वे कुछ हद तक बड़े-बड़े कारखानोंकी प्रतिद्वन्द्वितामें खड़े भी हो सकते हैं; फिर भी बाज़ारमें प्रतिद्वन्द्वितामें खड़े होनेके लिए गृह-उद्योग-धंधोंमें लगे हुए विक्रयका संगठन करना होगा, जिसको चलानेके लिए अत्यधिक व्यावसायिक बुद्धि और पूँजीकी आवश्यकता होती है। उसका भारतीय कारीगरों और ग्रामीणोंमें सर्वथा अभाव है। इसके लिए हमें गृह-उद्योग-धंधोंको दो विभागोंमें बाँटना होगा एक तो वे धंधे, जो ग्रामीणों तथा अन्य श्रमजीवियोंको अवकाशके समय कुछ काम दे सकें और उनकी आयमें वृद्धि कर सकें। ऐसे धंधे साधारण जनताके लिए आवश्यक वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाले होंगे। इनसे विक्रयकी समस्या उपस्थित न होगी, गाँवमें ही उन वस्तुओंकी खपत हो जायगी। इसके लिए सहकारी-समितियोंकी स्थापना करनी होगी। ये समितियाँ अपने सदस्योंके लिए दैनिक आवश्यकताओंकी वस्तुएँ उत्पन्न करें और प्रत्येक सदस्य अपनी वस्तु देकर अन्य वस्तुओंको समितिसे खरीद सके। उदाहरणके लिए एक जुलाहा समितिको कपड़ा बेंचकर उसके बदलेमें रस्सी, बान, गुड़, शहद, तेल, इत्यादि ले सके। एक प्रकारसे ये समितियाँ एक श्रम-विनिमय-केन्द्र होंगे, जहाँ प्रत्येक सदस्य अपने श्रमको दूसरोंके श्रमसे बदल सकेगा। इस प्रकार इन धंधोंका संगठन करनेमें न तो पूँजीकी ही अधिक आवश्यकता होगी और न द्रव्यके उपयोग ही की कठिनाई होगी।

अन्य गृह-उद्योग-धंधे, जिनमें अधिक कुशलता, कारीगरी और पूँजीकी आवश्यकता होती है और जिनके लिए बाज़ारका संगठन करना आवश्यक होगा उनका भी सहकारिताके आधारपर संगठन करना होगा। राज्य उनको प्रोत्साहन दे, तभी वे पनप सकते हैं। परन्तु इस प्रकारके धंधोंका अच्छा संगठन तभी हो सकता है, जब कि उनके लिए सस्ते, हल्के, किन्तु आधुनिक ढंगके यन्त्रोंका आविष्कार हो, नवीन ढंगसे उत्पादन हो, सम्भव हो तो उनके लिए सस्ती बिजली उपलब्ध की जाय और तैयार मालकी बिक्रीका समुचित प्रबन्ध किया जाय।

गृह-उद्योग-धंधोंकी उपयोगिताको स्वीकार करते हुए यह मानना ही होगा कि हम आधुनिक ढंगके यन्त्र-संचालित कारखानोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते। राष्ट्रको सम्पत्तिशाली और सबल बनानेके लिए हमें औद्योगिक उन्नति करनी ही होगी। आरम्भमें भारत सरकारने ब्रिटिश पूँजीपतियोंके हितोंकी रक्षाके लिए भारतीय धंधोंको पनपने ही नहीं दिया। मुक्त-द्वार-नीतिने भारतीय गृह-उद्योग-धंधोंको तो नष्ट कर ही दिया, साथ ही बड़े-बड़े कारखानोंकी स्थापनाको भी असम्भव बना दिया। परन्तु क्रमशः अंगरेज़ पूँजीपतियोंने यहाँ अपने धंधे स्थापित किए। विदेशी पूँजी भारतवर्षमें आने लगी। धीरे-धीरे रेलवे, चायके बागों, क़हवा और रबरके बागों, कोयला, अबरख और ताँबेकी खानों, पाट तथा अन्य धंधोंपर विदेशी पूँजीका आधिपत्य स्थापित हो गया। आज भी भारतवर्षमें लगभग १ अरब ५० करोड़ पौंडकी विदेशी पूँजी लगी हुई है। ब्रिटिश पूँजीपतियोंने यहाँ अपनी मैनेजिंग-एजेंसी-फर्में स्थापित कर लीं और यही एजेंसियाँ एक प्रकारसे यहाँके उद्योग-धंधोंका संचालन करती हैं। ऐण्ड्रू यूल, बर्ड कम्पनी, शा-वालेस, आक्टैवियस-स्टील, किलबर्न कम्पनी तथा अन्य दर्जनों मैनेजिंग-एजेंसियाँ हैं, जो आज भी भारतके अधिकांश कारखानोंका नियन्त्रण और संचालन करती हैं। धीरे-धीरे भारतीय पूँजीपतिभी इस दिशामें अग्रसर हुए, किन्तु उन्हें इन सुसंगठित विदेशी पूँजीपतियोंका सामना करना पड़ा। परन्तु बंग-भंग-आन्दोलनके बाद स्वदेशीकी लहर उठी और उद्योग-धंधोंको संरक्षण प्रदान करनेकी माँग भी ज़ोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पकड़ती गई। १९२१ के उपरान्त यह माँग आंशिक रूपसे स्वीकार भी कर ली गई, परन्तु भारत-सरकारने ऐसे धंधोंको संरक्षण प्रदान नहीं किया, जो ब्रिटेनसे आनेवाले मालसे प्रतिस्पर्द्धा करें। इधर भारत-स्थित ब्रिटिश पूँजीपतियों तथा अन्य विदेशी पूँजीपतियोंने देखा कि वे स्वदेशीकी भावनाका अपने लाभके लिए तभी उपयोग कर सकते हैं जब कि वे भारतीय पूँजीपतियोंसे समझौता कर लें। अतएव उन्होंने अपनी जूतनमें भारतीय पूँजीपतियों को हिस्सेदार बना लिया। धीरे-धीरे ताता, बिड़ला, डालमिया और वालचन्द हीराचन्दका उदय हुआ। यद्यपि इन भारतीय पूँजीपतियोंका भी देशके धंधोंपर यथेष्ट प्रभाव है, परन्तु वह अंगरेज़ मैनेजिंग-एजेंट्सकी तुलनामें नगण्य है। साथ ही विदेशी पूँजीपति इन भारतीय पूँजीपतियोंको थोड़ा-सा हिस्सा देकर उनकी आड़में स्वदेशीका स्वांग रचकर भोली जनताकी स्वदेशीकी भावनाका लाभ उठाते हैं। ब्रिटिश फर्मोंके साथ यह भारतीय पूँजीपति समझौता करके उनके छोटे भागीदार बन जाते हैं और देखनेमें प्रबन्ध भारतीय पूँजीपतियोंके हाथमें रहता है, जिससे ब्रिटिश पूँजीपतियोंको विरोधी भावनाका सामना नहीं करना पड़ता, वरन उनको जनताकी सहानुभूति प्राप्त हो जाती है। भारतीय पूँजीपति आज शिखण्डीका काम कर रहे हैं। तभी एसोशियेटड सीमेंट कम्पनी, जो वस्तुतः 'किलिक निक्सन कम्पनी'के प्रभाव और अधिकारमें है, भारतीय कम्पनी समझी जाती है और वह भी इसका दावा करती है। ऐसा करनेसे यद्यपि भारतीयोंकी सहानुभूति उसे प्राप्त हो जाती है; परन्तु प्रबन्ध और अधिकार विदेशियोंका ही रहता है। उसमें किंचित मात्र भी अन्तर नहीं पड़ता। केवल यही नहीं 'विमको', जो कि भारतमें दियासलाईके धंधेपर आधिपत्य जमाए है; 'लिवर ब्रादर्स', जो साबुनके धंधेपर अधिकार किए हुए है, 'इम्पीरियल केमिकल' जो रासायनिक द्रव्योंपर एकाधिपत्य स्थापित किए है; ये सब शत-प्रतिशत विदेशी होते हुए भी इन भारतीय पूँजीपतियोंकी आड़में भारतीय लोकमतको धोखा देते हैं। बात यह है कि जबसे भारत-सरकारने कुछ वस्तुओंपर आयात-कर लगा दिया है, विदेशी पूँजीपतियोंने उन वस्तुओंके कारखाने भारतवर्षमें ही खोल दिए हैं और विरोधको दूर करनेके लिए तथा जनताकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए उन्होंने उनका ऐसा रूप बना दिया है मानो वे भारतीय ही हों। इसका फल यह हो रहा है कि करका बोझ तो पड़ता है भारतीय जनतापर और उसका लाभ मिलता है विदेशी पूँजीपतियोंको। हमारे पूँजीपति अपना थोड़ा-सा व्यक्तिगत लाभ देखकर उनके इस षड्यन्त्रमें सम्मिलित हो जाते हैं। यही नहीं, जो कारखाने केवल भारतीय पूँजीपतियोंके अधिकारमें ही हैं, उन्होंने भी विदेशी पूँजीपतियोंसे गुप्त समझौते कर रखे हैं। इससे एक बात स्पष्ट है कि भारतीय पूँजीपतियोंको देशके लाभका इतना ध्यान नहीं है जितना कि अपने व्यक्तिगत लाभका।

अब प्रश्न यह है कि यदि भारतवर्ष स्वतन्त्र हो जाय, तो विदेशी पूँजीके प्रति हमारी नीति क्या हो? विदेशी पूँजी यदि भारतीय धंधोंकी उन्नतिमें सहायक हो सके, तो हमें उसका स्वागत करना चाहिए; किन्तु हम यह किसी दशामें भी सहन नहीं कर सकते कि वह हमारे धंधोंका नियंत्रण और संचालन करे। विदेशी पूँजीपर हम केवल सूद दें और उसका देशकी औद्योगिक उन्नतिमें उपयोग करें, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। "फारेन कैपिटल कमेटी"में आज कई वर्ष हुए पंडित मदनमोहन मालवीयने इस प्रश्नको उठाया था; किन्तु भारत सरकार भला विदेशी पूँजीपर कोई प्रतिबन्ध क्यों लगाती? फल यह हुआ कि भारतीय धंधोंको जो संरक्षण मिला उससे जनताका बोझ तो बढ़ गया, किन्तु सारा लाभ विदेशी पूँजीपतियोंको हुआ। हाँ, थोड़ा-सा भाग हमारे देशी पूँजीपतियोंको भी मिलने लगा। भारतीय पूँजीपतियोंने इस सम्बन्धमें जिस नीतिका अवलम्बन किया है, वह भी अधिक श्रेयस्कर नहीं है।

तब क्या हम विदेशी पूँजीपतियोंको हटाकर भारतीय पूँजीपतियोंको जनताका शोषण करनेकी छूट दे दें? ऐसा करनेसे देशका कोई लाभ न होगा। वर्तमान युद्ध द्वारा उत्पन्न हुई कठिन परिस्थितिने भारतीय पूँजीपतियोंका नग्न स्वरूप हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। यद्यपि भारत-सरकारने लाभ समेटनेकी प्रवृत्तिको रोकनेके लिए अतिरिक्त-लाभ-करकी दर ९५ प्रतिशतके लगभग कर दी; किन्तु हमारे यह पूँजीपति फिर उपभोक्ताओंकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए ५ या ६ प्रतिशत लाभके लोभको भी न छोड़ सके और अपने कारखानोंसे उत्पन्न होनेवाले मालका मूल्य दिन-प्रति-दिन ऊँचा करते गए। अतएव भविष्यमें विदेशी पूँजीपतियोंसे छुटकारा पाकर इन देशी पूँजीपतियोंके शोषणका शिकार होना कोई वांछनीय परिस्थिति न होगी। आवश्यकता इस बातकी है कि भविष्यमें हमारे उद्योग-धंधोंपर देशी पूँजीपतियोंका एकछत्र आधिपत्य न हो जाय। इसके लिए राष्ट्रीय सरकारको अपनी औद्योगिक नीतिमें परिवर्त्तन करना होगा। जितने भी आधारभूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धंधे (Key Industries) हैं, उनका राष्ट्रीयकरण कर लिया जाय। उनका संचालन सरकार करे। उदाहरणके लिए रेलवे, जल-विद्युत् उत्पन्न करनेवाले कारखाने, लोहेकी खानें और कारखाने, कोयलेकी खानें इत्यादि। आधुनिक कम्पनी-एक्टमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किए जायँ, जिससे एक ही मैनेजिंग-फर्म एकसे अधिक कम्पनीका संचालन न कर सके और उनको भी आज-जैसे अधिकार न रहें। आज स्थिति यह है कि एक ही मैनेजिंग-एजेण्ट २५-३० – यहाँ तक कि इससे भी अधिक – कम्पनियोंके सर्वेसर्वा बने हुए हैं।

एक बात और ध्यान देनेकी है। आज देशके द्रव्य-बाज़ारकी दशा ऐसी है कि यदि बिड़ला-ब्रदर्स या अन्य कोई ख्यातनामा पूँजीपति किसी कम्पनीकी स्थापना करते हैं, तो उसके सारे हिस्से सरलतासे बिक जाते हैं। किन्तु यदि कोई युवक, जिसमें व्यवसायिक बुद्धि है अथवा जिसने कोई नवीन आविष्कार किया है, चाहे तो उसकी कम्पनीके हिस्से कोई न खरीदेगा। मान लीजिए कि एक व्यक्तिने सतत प्रयत्न करके साधारण घाससे कागज़ बनानेका आविष्कार कर लिया है और बड़ी मात्रामें कागज़ बनानेके लिए वह एक कारखाना स्थापित करना चाहता है, तो वह पूँजी कहाँसे लाय? उसे विवश होकर इन पूँजीपतियोंकी शरणमें ही जाना पड़ता है। यह पूँजीपति उसके आविष्कारको कुछ रुपयोंमें खरीदकर एक कारखाना स्थापित करते हैं और मनमाना लाभ उठाते हैं। इस स्थितिका परिणाम यह हो रहा है कि क्रमशः सारे धंधोंपर पूँजीपतियोंका आधिपत्य होता जा रहा है और व्यावसायिक बुद्धिवाले साधारण स्थितिके साहसी युवकोंके लिए कोई क्षेत्र अपनी बुद्धिसे धन उपार्जन करनेका नहीं रह गया है। यह स्थिति सर्वथा अवांछनीय है। इससे केवल यही कुपरिणाम नहीं होता कि देशके समस्त धंधोंपर कतिपय पूँजीपतियोंका आधिपत्य स्थापित हो जाता है ही, बल्कि आर्थिक असमानता भी विषम रूप धारण कर लेती है और साधारण जनताका भीषण शोषण होता है। ये पूँजीपति अपनी तिजोरियोंके बलपर राष्ट्रीय सरकारको अपनी कठपुतली बनाकर नचाते हैं। आज इंग्लैण्ड और संयुक्त-राज्य अमरीकामें कहनेको प्रजातंत्र है; परन्तु वास्तवमें वहाँका शासन वहाँके पूँजीपतियोंके संकेतपर होता है। चर्चिल और रूज़वेल्ट उसी समय तक शक्तिवान हैं, जब तक कि वे पूँजीपतियोंके संकेतोंपर नाचते हैं। फ्रांसकी सरकारने यदि जर्मनीके सामने घुटने टेक दिए, तो केवल इसलिए कि फ्रांसके पूँजीपति चाहते थे कि अब युद्ध न लड़ा जाय, क्योंकि ऐसा होनेसे शासन-यन्त्र कम्यूनिस्टोंके हाथमें चला जाता। अस्तु, जिन देशोंमें पूँजीपतियोंका विशेष प्रभाव होता है, वहाँ प्रजातन्त्र केवल नाम-मात्रको ही होता है। वास्तविक सत्ता पूँजीपतियोंके हाथोंमें होती है और वे अपने देशवासियोंका शोषण करते हैं। भारतवर्षमें भी पूँजीपतियोंने जो नीति स्वीकार की है, वह ऐसी ही है। युद्धके समयमें इन पूँजीपतियोंने अँधाधुन्ध लाभ कमाया और उपभोक्ताओंका जितना भी शोषण किया जा सकता है, किया। अतएव भारतवर्ष भी अपने पूँजीपतियोंसे कुछ अधिक आशा नहीं कर सकता।

अस्तु, आवश्यकता इस बातकी है कि भावी राष्ट्रीय सरकार बड़े-बड़े पूँजीपतियोंका उदय न होने दे। इसके लिए आवश्यकता इस बातकी है कि सरकार बड़े-बड़े औद्योगिक बैंकोंकी स्थापना करे। इन बैंकोंका यह कार्य हो कि यदि कोई व्यावसायिक बुद्धिवाला व्यक्ति कोई नवीन कारखाना खोलना चाहे, तो उसकी योजनाकी जाँच कर लेनेके उपरान्त उस कारखानेके हिस्सोंको खरीदनेकी घोषणा कर दे। औद्योगिक बैंककी घोषणाका प्रभाव यह होगा कि जनता उसके हिस्से खरीद लेगी और उस व्यक्तिको पूँजीकी कठिनाई न होगी। इस प्रकार जिन धंधोंका राष्ट्रीयकरण करनेकी आवश्यकता न भी समझी जाय, उनको भी पूँजीपतियोंके हाथोंमें पड़नेसे बचाया जाय; तभी हम उन कठिनाइयों और बुराइयोंसे बच सकेंगे, जिनका सामना अन्य देशोंको करना पड़ रहा है।

आज पूँजीवादका अवश्यम्भावी परिणाम साम्राज्यवाद और प्रलयकारी विध्वंसका नग्न नृत्य हम देख रहे हैं। यदि हम पूँजीवादके विषसे समाजको बचाना चाहते हैं, तो हमें अधिकाधिक उद्योग-धंधोंका राष्ट्रीयकरण करना ही होगा। अन्यथा हम पूँजीवादकी भयंकर विभीषिकासे बच नहीं सकते।

—उस दिन देखा, एक फोटोग्राफ़र कलकत्तेकी एक मुख्य सड़कपर सड़ती हुई लाशों और रेंगते-घसिटते या बैठे-पड़े कंकालोंके चित्र ले रहा है। उससे कुछ ही क़दम हटकर एक सफ़ेदपोश चित्रकार कुछ कंकालोंके पेंसिल-स्केच तैयार कर रहा है। उसके पास ही उसका एक मित्र खड़ा कभी बननेवाले स्केच और कभी जिनसे वे बनाए जा रहे हैं, उन मानव-कंकालोंपर एक नज़र डाल लेता है।

फोटो लेकर फोटोग्राफ़रने एक सिगरेट सुलगाई और नए 'उपादान'की खोजमें चल पड़ा। चित्रकारने कागज़-पेंसिल जेबमें डालते हुए हँसकर अपने साथीसे कहा—'यार, चीज़ तो खासी मज़ेदार बनेगी।' और दोनों चल पड़े। —'भग्नदूत'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतका कथा-साहित्य

श्री अविनाशकुमार श्रीवास्तव, बी० ए०

साहित्यके अन्य अंगोंकी भाँति 'कथा'के जन्मके विषयमें भी काफ़ी मतामत हैं। कुछ विद्वान ग्रीसको इसका जन्म-स्थान मानते हैं, और कुछ भारतवर्षको। पर प्रतीत ऐसा होता है कि सम्भवतः दोनों देशोंका एक-दूसरेपर प्रभाव पड़ा है। किन्तु इसमें भी भारतवर्षने ग्रहण करनेकी अपेक्षा प्रदान ही अधिक किया है। श्री थियोडोर बेनफी (Theodor Benfey) का, जिनके 'पंचतन्त्र'के जर्मन-अनुवादने तुलनात्मक साहित्यकी सृष्टि की, कथन है कि कहानीका जन्म यद्यपि भारतमें हुआ, पर कथा-साहित्यका जन्म तो ग्रीसमें ही हुआ है। साथ ही वे बौद्ध साहित्यका इस दिशामें सराहनीय कार्य भी स्वीकार करते हैं। पर आज २०वीं सदीमें, जब वैज्ञानिक रीतिसे बुद्धि और आलोचना-साहित्यका विकास हो रहा है, कथा या कहानीके आविर्भावके वादविवादमें पड़ना युक्तियुक्त नहीं। कुछ देशोंके लोग अपनी प्रकृति, जलवायु तथा परिस्थितियोंके कारण अधिक कल्पनाशील एवं निर्माण-कुशल होते हैं, और कुछ अधिक साहित्यिक, वैज्ञानिक या भ्रमणशील। इस दृष्टिसे कथा या कहानीको ग्रन्थाकार-रूपमें उपस्थितकर साहित्यकी ओर ले जानेका श्रेय भारतवर्षको ही है।

वैसे तो कहानी अथवा कथामें विशेष अन्तर नहीं, किन्तु संस्कृत-साहित्यमें आख्यानोंको हम दो विभागोंमें विभक्त कर सकते हैं। एक तो साधारण सरस उपाख्यान, जिन्हें अंगरेज़ीमें Tale या Anecdote कहते हैं। (हम इन्हें कहानी ही कहेंगे।) दूसरे धर्म-विषयक उपदेशात्मक व्याख्यान, जिन्हें अंगरेज़ीमें Didactic Fable या केवल fable कहते हैं। इनको हम कथाके नामसे सम्बोधित करेंगे।

मनुष्य-जातिमें कथा कहने और सुननेकी प्रवृत्ति आदि-कालसे ही चली आई है, किन्तु यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि कथाको पशुओं द्वारा वर्णन कर मनुष्यपर उसका उपदेश घटित करनेकी भावनाका संचार कबसे हुआ? ऋग्वेदके सातवें मंडलमें एक स्थलपर वर्षारम्भके समय दर्दुरोंके शब्दकी तुलना स्तुति करते समय ब्राह्मणोंके उच्चारणसे की गई है। महाभारतमें भी नीतिके दृष्टान्त देनेके लिए कथाओंका प्रयोग किया गया है। विदुर धृतराष्ट्रसे पाण्डवोंको मारनेके लिए मना करते हैं, क्योंकि उनका मारना उस पक्षीके मारनेके तुल्य होगा, जो सोनेका अण्डा देता था। पाण्डवोंसे इस प्रकार व्यवहार करनेका परामर्श दिया जाता है, जैसे चतुर शृगालने अपने मित्र शेर, चूहे आदिसे किया था। भर्हुतके एक बौद्ध स्मारकसे ज्ञात होता है कि ई० पू० दूसरी शताब्दीमें 'जातक' कथाओंका भी प्रचार हो चुका था। किन्तु श्री ए० बी० कीथके अनुसार इस बातका कोई यथेष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि 'पंचतन्त्र'के पूर्व प्राकृतमें कोई कथा-साहित्य था। बौद्ध साहित्यमें कथाओंका निश्चित रूपसे एक धार्मिक अर्थ एवं महत्त्व है। इसमें बुद्ध-मतके गुणोंका उदाहरण देनेके लिए संसारमें आत्माके आवागमनके सिद्धान्तके साथ कथाओंका प्रयोग किया गया है। इसलिए प्रत्येक कथाके नायक अथवा सहनायकमें महात्मा बुद्ध और उनके अनुयायियोंका रूप छिपा है।

ऐसा ही एक महत्वपूर्ण लक्षण संस्कृत-कथाओंमें भी सन्निहित है। सम्भव है वैदिक या महाभारत-रामायण-कालकी कथाओंमें धर्म अथवा उपदेशकी भावना इतनी प्रधान न रही हो, किन्तु पशु-पक्षियोंके रूपमें मानव-जीवनकी कहानियाँ अवश्य प्रचलित थीं। कुछ समय पश्चात् ये कथाएँ निश्चित रूपसे धर्म तथा उपदेशके कार्यमें लाई जाने लगीं। राजनीतिके ग्रन्थ तथा मनुस्मृति आदिकी भाँति अन्य धर्मशास्त्र राजकुमारों और उच्चपदाधिकारियोंके पुत्रोंके लिए अधिक कठिन थे। ये ग्रन्थ आवश्यक एवं नीतिपूर्ण होनेपर भी जब नीरस तथा क्लिष्ट प्रतीत होने लगे, तो पण्डित-मस्तिष्कोंने राजकुमारों आदिको कथाओं द्वारा नीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्रकी शिक्षा देनेकी इस नवीन प्रथाका प्रचार किया। पशु-पक्षियोंकी कथाओंमें अपने उपदेशोंको रूपान्तरितकर वे बड़ी रोचक रीतिसे अपने शिष्योंको पढ़ाते थे। विषय गहन एवं गम्भीर था, पर उसकी शैली सरस एवं सरल थी। इस प्रकार स्वभावतः एक नवीन साहित्यका सृजन होने लगा। इसमें कथा-वर्णन गद्यमें है और उपदेश, धर्म या शिक्षाके स्थलोंपर—ऐतरेय ब्राह्मणकी भाँति—श्लोकोंका प्रयोग किया गया है। 'कथा-संग्रह-श्लोक'—के रूपमें कथाका सारांश भी श्लोकोंमें ही मिलता है। बादमें शनैः-शनैः कथाएँ पद्यमें भी लिखी जाने लगीं। इन कथाओंके बारेमें एक और भी विशिष्ट बात मिलती है कि विषयको बढ़ानेकी दृष्टिसे रचयिता कथाके अन्दर कथाका निर्माण करता चला गया है। इस प्रकार एक मुख्य कथामें इतनी अन्तरकथाएँ आ जाती हैं कि कथाओंका परस्पर सम्बन्ध प्रायः विछिन्न-सा होता जाता है और कथाकी धारावाहिकतामें भी कभी-कभी व्यवधान-सा आ जाता है। पश्चिमी विद्वान इसे प्रायः दोषकी दृष्टिसे देखते हैं, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समयका पण्डित-मस्तिष्क इसीको कला मानता था।

अनुसन्धानसे मालूम हुआ है कि वर्त्तमान समयमें संस्कृत-कथा-साहित्यके जितने **पंचतंत्र, तन्त्राख्यायिका, हितोपदेश** आदि ग्रन्थ हैं, वे सब किसी एक **पंचतन्त्र** अथवा ऐसी ही अन्य नामकी पुस्तकके भिन्न-भिन्न भाषान्तर हैं। इस मूल पुस्तकका सबसे अधिक अंश काश्मीरकी **तन्त्राख्यायिका** में सुरक्षित प्रतीत होता है। अनुमान है कि उस मूल पंचतन्त्रके भाषान्तर नीचे दी गई अनुक्रमणिकाके अनुसार होंगे।

मूल पंचतन्त्रके निर्माण-कालके विषयमें भी अनेक मत हैं। पंचतन्त्रसे विदित होता है कि इसके लेखकको 'महाभारत'का ज्ञान था। इसमें 'दीनार' शब्दका प्रयोग किया गया है और कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र'का भी कुछ संकेत मिलता है। इसलिए कुछ लोग इसे ३०० ई० पू०के बिल्कुल बादका मानते हैं। ५७० ई० में पहलवी-अनुवाद होनेके कारण कुछ लोग इसे पाँचवीं शताब्दीमें भी लिखित निर्धारित करते हैं। पर प्रायः लोग यही मानते हैं कि इसका निर्माण गुप्त-कालमें ही हुआ। गुप्त-कालकी संस्कृत तथा पंचतन्त्रकी संस्कृतमें साम्य भी काफ़ी है। लेखकके विषयमें यथेष्ट प्रमाणित रूपसे तो कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु प्रायः यही मत प्रचलित है कि किसी विद्वान वैष्णव ब्राह्मण (विष्णु शर्मन्) ने इन कथाओंको महिलारोप्य अथवा मिहिलारोप्य (दक्षिण)के राजा अमरशक्तिके पुत्रोंके लिए लिखा था। डा० जोहेन्स हारटेल (Dr. Johnnes Hartel) का मत है कि यह ग्रन्थ काश्मीरमें लिखा गया होगा, जो प्रोफ़ेसर आर० ओ० फ्रांकके अनुसार 'क्लासिकल' (पौराणिक) संस्कृतका जन्मस्थान है। किन्तु इस बातका भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता।

मूल पंचतन्त्र पाँच भागोंमें विभाजित है। प्रथम भागकी प्रधान कथा 'सुहृद्भेद' है, जिसमें १७ अन्तरकथाएँ हैं। द्वितीय भाग 'मित्रलाभ' अथवा 'सुहृत्प्राप्ति' है, जिसमें ५ अन्तर कथाएँ हैं। तृतीय भाग 'काकोलूकीय' है, जिसमें दो कथाएँ हैं। चतुर्थ व पंचम भाग क्रमसे 'लब्धप्रणाश' तथा 'अपरीक्षितकारक' है, जिन दोनोंमें पुनः दो-दो कथाएँ हैं। इन भागोंके शीर्षकसे ही कथाका विषय प्रकाशित होता है। मृग और खरगोशकी, शिबि, मूसक तथा कूर्मादिकी कथाएँ रोचक ही नहीं, शिक्षाप्रद तथा कलापूर्ण भी हैं। यह ग्रन्थ ऐसे राजकुमारोंके लिए लिखा गया था, जो अधिक तीव्र बुद्धिवाले न थे। अतः स्वभावतः इसकी भाषा सरल, साधारण तथा शैली रोचक एवं मनोहर है।

पंचतन्त्रके जितने भी भिन्न भाषान्तर उपलब्ध हैं, उनमें 'तन्त्राख्यायिका' सबसे उत्तम ही नहीं, मूल पंचतन्त्रको सबसे अधिक अंशमें उपस्थित भी करती है। पंचतन्त्रके प्रत्येक भाषान्तर अथवा अनुवादका इस छोटेसे लेखमें विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं हो सकता। उन सबमें सबसे अधिक प्रसिद्ध व प्रचलित 'हितोपदेश' है, जिसपर बंगाल-प्रान्तका प्रभाव ही नहीं पड़ा, बल्कि वह वहाँकी कृति भी प्रतीत होता है। इसके लेखकका नाम नारायण था, जिन्होंने इसे किसी धवलचन्द्रकी

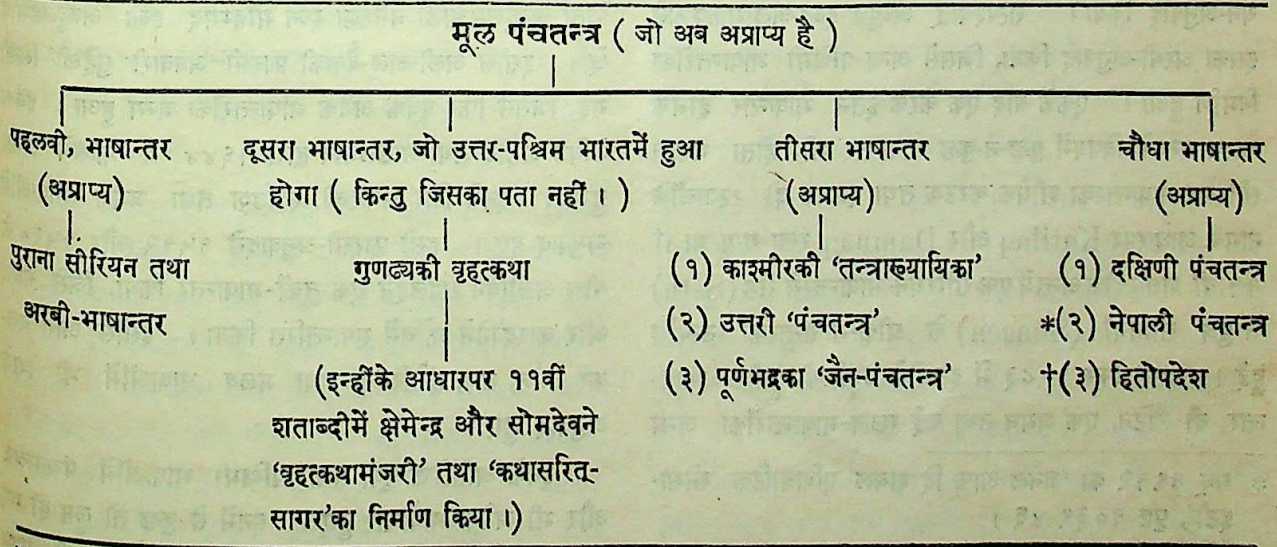

* ए० बी० कीथके अनुसार यह दक्षिणी पंचतन्त्रके किसी दूसरे समान भाषान्तरसे लिखा गया होगा; किन्तु अब सम्भवतः वह नष्ट हो चुका है।

† यह अधिकांशमें किसी नितान्त भिन्न ग्रन्थके आधापर लिखा गया होगा। —ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संरक्षतामें लिखा था। श्री कीथके अनुसार नारायणका जीवन-काल माघ तथा कामन्दकिके पश्चात् है। 'हितोपदेश'की एक प्रतिमें १३७३ ई० की तिथि पड़ी है, जिससे स्पष्ट है कि नारायण इसके पूर्व ही रहे होंगे। उनका रविवारके लिए 'भट्टारकवार'का प्रयोग यह भी स्पष्ट करता है कि वे बहुत प्राचीन कालमें न रहे होंगे, क्योंकि भट्टारकवारका यह प्रयोग ९०० ई० के पूर्व प्रचलित न था।* 'हितोपदेश'की आरम्भकी एक कथामें कन्याओंका गौरीको बलिदान देनेका वर्णन आता है। इससे विद्वानोंका मत है कि नारायणका बंगालके तान्त्रिक समुदायसे कुछ सम्बन्ध होगा और उन्होंने यह ग्रन्थ बंगालमें ही लिखा भी होगा। 'हितोपदेश'की रचना पंचतन्त्रके अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थोंकी सहायतासे हुई जान पड़ती है। लेखकने 'कामन्दकीय नीतिशास्त्र'से भी बहुत कुछ उद्धृत किया है। कई कथाएँ अपनी लिखी हुई भी हैं। सम्भवतः लेखकका विचार पंचतन्त्रके समान ही दूसरा ग्रन्थ उपस्थित करनेका रहा हो। श्लोकोंके अतिरिक्त इसका भाषा-सौष्ठव धाराप्रवाह तथा शिक्षाकी दृष्टिसे बहुत सुन्दर एवं उपयुक्त है।

पंचतन्त्रको यूरोप ले जानेका श्रेय प्रधानतः बारज़ो (Barzoe) अथवा बारज़ुयेह (Barzuyeh) नामक एक चिकित्सकको है। इस विद्वान् चिकित्सकको इसी कामके लिए फ़ारसके शाह चोशराऊ अनोशरवान (५३१-७९)ने भारत भेजा था। फिर इन्हींके तत्त्वावधानमें पंचतन्त्रका पहलवी-अनुवाद हुआ। ५७० ई० में बुद नामक किसी व्यक्तिने इसका सीरियन-अनुवाद किया। तत्पश्चात् अब्दुल्ला-इब्न-अल्-मुक़फ़्फ़ाने इसका अरबी-अनुवाद किया, जिससे अन्य पश्चिमी भाषान्तरोंका निर्माण हुआ। एकके बाद एक करके इतने भाषान्तर होनेके कारण ग्रन्थके विषयमें कुछ-न-कुछ भावान्तर भी होता गया। सीरियन-भाषान्तरका शीर्षक करटक तथा दमनक दो शृगालोंके नामके आधारपर Katilaq और Damnaq रखा गया था।† ११ वीं शताब्दीके अन्तमें एक सीरियन-भाषान्तरसे सेठ (Seth) के पुत्र सीमियों (Simeon) के ग्रीक-भाषान्तरकी उत्पत्ति हुई। इससे फिर १५८३ में इटलीके ज्यूलियोन्यूतीका भाषान्तर, दो लैटिन, एक जर्मन तथा कई स्लाव-भाषान्तरोंका जन्म हुआ। १२५१ में इसका एक स्पेनिश-भाषान्तर भी निकला, जिसके पूर्व (लगभग ११०० ई० में) रब्बी जोएल (Rabbi Joel) का हीब्रू-भाषान्तर हो चुका था। इसीके आधारपर १२६३ और १२७८ के बीच जौन आफ़ कापुआ (John of Capua) ने Liber Kelilac et Dimnae, Directorium Vitae Humanae के नामसे पुनः एक लैटिन-भाषान्तर प्रकाशित किया। जौन आफ़् कापुआ वास्तवमें एक यहूदी था, जिसने अपना धर्म बदलकर ईसाई-मत स्वीकार कर लिया था। इसकी कृतिका एक अनुवाद जर्मनमें एन्थोनियस फ़ान फौर (Anthonius Von Pforr) ने Das buch der byspel der alten Wysen नामसे किया। इस जर्मन अनुवादने वहाँके साहित्यको बहुत अधिक प्रभावित किया और १४८३ के बाद यह बार-बार प्रकाशित होता रहा। डेनिश, डच तथा आइसलैण्डकी भाषाओंमें भी इसका रूपान्तर हुआ। इसीके आधारपर १४९३ में पुनः एक स्पेनिश तथा १५४६ में एगनोलो फ़िरेंन्जुओला (Agnolo Firenzuola) द्वारा एक इटालियन-भाषान्तर प्रकाशित हुआ। इस इटालियन-भाषान्तरसे १५५६ में एक फ्रेंच-अनुवाद भी हुआ। ए० दोनीके एक दूसरे इटालियन अनुवाद (दो भागोंमें) से सर टामस नार्थने १५७० में 'दि मारल फ़िलासफ़ी आफ़् दोनी' नामसे एक भागका अंगरेज़ीमें अनुवाद किया।

इन अनुवादोंकी दूसरी आवश्यक शाखा ११२१ या ११४२ के एक दूसरे अरबी-अनुवादके आधारपर है। इस अनुवादके रचयिता अब्दुलमआली नसरुल्ला इब्न मोहम्मद इब्न अब्दुलहमीद थे। इसीसे अली-अल्-वैज़की फ़ारसी 'अनवारी सुहैली' लिखी गई, जिससे फिर पूर्वके अनेक भाषान्तरोंका जन्म हुआ। इनका डेविड शहीद तथा गाउलमान द्वारा १६४४ में फ्रांसमें प्रचार हुआ। इनसे फिर अंगरेज़ी, स्वेडिश तथा जर्मन भाषाओंमें अनुवाद हुए। इसी फ़ारसी-अनुवादसे १५१२ और १५२० के बीच अलीबिन सालिहने एक तुर्की-भाषान्तर किया, जिसे गालां और कारदोनेने फ्रेंचमें रूपान्तरित किया। इसीसे आगे चलकर जर्मन, डच, हंगेरियन तथा मलय भाषाओंमें भी इसके अनुवाद हुए।

इनके अतिरिक्त पूर्वी तथा पश्चिमी भाषाओंमें पंचतन्त्रके और भी अनेक भाषान्तर हुए। इनमें से कुछ तो लुप्त हो गए कुछ केवल अंशोंमें सुरक्षित हैं तथा बादके बहुतसे अभी प्राप्य हैं। इन रूपान्तरोंके अतिरिक्त स्पेनिश तथा जौन आफ़ कापुआके भाषान्तरोंसे रामुन्दस-द-बितेरी (Raimundus de Bite-

* सन् १९१२ का 'जर्नल आफ़् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी', पृष्ठ १०३९-४६।

† अरबी तथा सीरीयन-भाषान्तरोंके पूर्ण विवरणके लिए देखिए अबुलफज़लकी 'आयार-दानिश' तथा हुसेनवाएज़की 'अनवारी-सुहैली' की प्रस्तावनाएँ। —ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधूरा चित्र

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

महर्षि वाल्मीकि तीर्थ-यात्रासे लौटकर राम-नाम-गुणगान करते हुए अपने आश्रममें प्रविष्ट हुए, तो उन्होंने देखा – एक घनी लताकी ओटमें, पत्थरकी शिलापर मस्तक नत किए बैठी सीता आज एकाग्र मनसे कुछ लिख रही है। कुतूहलवश मुनि वाल्मीकि उसी ओरको चल दिए और चुपचाप सीताके पीछे खड़े होकर देखने लगे। सीताके हाथका बनाया हुआ एक अधूरा चित्र उसके सम्मुख है। हाथमें तूलिका लिए और चित्रमें आँखें गड़ाए सीता बिल्कुल स्तब्ध बैठी है। उस अधूरे चित्रके भावोंमें वह इस प्रकार डूब गई है कि उसे अपनी आँखोंके आँसुओंकी भी खबर नहीं है, जो लगातार झरनेकी भाँति झर रहे हैं।

महर्षि सीताकी तन्मयतामें बाधा न देकर मनोयोगसे चित्रका निरीक्षण करने लगे। अयोध्याके महाराज रामचन्द्र एक विशाल यज्ञशालामें बैठे यज्ञ कर रहे हैं। उनके बाएँ पार्श्वमें सीताकी स्वर्ण-प्रतिमा शोभित है और उनके चारों ओर बैठे हुए विद्वान योगी, मुनि और पुरोहितगण सीताके पक्षका सम्पूर्ण कार्य उस प्रतिमा द्वारा सम्पन्न करा रहे हैं। देश-देशान्तरके राजे-महाराजे, योगी-मुनि, देवता-राक्षस-वानर, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी आमन्त्रित होकर आए हैं। और इन सब ही की आँखोंमें वह स्वर्ण-प्रतिमा कुतूहलकी वस्तु बन रही है। इसी एक विषयको लेकर मनन, चिन्तन, वार्तालाप, वाद-विवाद, काना-फूसी और शोक-उपहास-निन्दा सभी कुछ चल रहे हैं। विशेषकर स्त्रियोंमें ये काय बड़ी प्रबलतासे चल रहे हैं। वृद्धा स्त्रियाँ बहू-बेटियोंको पुरानी कथा सुनाकर स्वर्ण-प्रतिमाका इतिहास बता रही हैं। रावणके घर रहनेके कारण सीताके चरित्रपर एक धोबीने सन्देह किया था, इसलिए रामचन्द्रने सीताका परित्याग कर दिया; किन्तु उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। बिना स्त्रीके भागके यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता, अतः सीताकी स्वर्ण-प्रतिमाके साथ वे यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ-वेदीके समीप ही महर्षि वाल्मीकिके साथ सीताके दोनों पुत्र लव और कुश आश्चर्य-चकित-से कभी सजल नेत्रोंसे उस प्रतिमाको देखते हैं, कभी चारों ओर मुँह घुमाकर आकुल दृष्टिसे प्रत्येकके मनका भाव जाननेकी निष्फल चेष्टा करते हैं। जो काना-फूसी वे सुन रहे हैं, उससे वे दोनों बहुत ही व्याकुल और रुँआसे हो गए हैं। बड़े परिश्रमसे वे अपने हृदयके आवेगको रोके हुए इस प्रतीक्षामें हैं कि कब महर्षि अपने आश्रममें पहुँचें और कब वे उनसे अपने मनकी शंकाका समाधान करें। वहाँका वातावरण उनके हृदयमें एक रहस्यका आभास-सा करा रहा है, और वह आभास उनके कोमल-पवित्र हृदयमें एक साथ हज़ार बिच्छुओंके दंशन-सी पीड़ा उत्पन्न कर रहा है। अथच धीर-गम्भीर बालक किसी प्रकार वह भारी मानसिक बोझ सँभाले बैठे यज्ञ-उत्सव देख रहे हैं। अन्तिम दृश्य यज्ञ-मण्डपसे दूर वाल्मीकिके आश्रमका है। दोनों बालक एकान्त पाकर, विह्वल हो, मुनिके चरणोंपर गिर पड़ते हैं और करुण चीत्कार करके मानो पूछते हैं—'बताओ, बताओ गुरुदेव, वह स्वर्ण-प्रतिमा क्या हमारी माता सीताकी ही है? ये हमारे कान क्या अब तक यज्ञ-मण्डपमें अपनी ही माताकी निन्दा सुन रहे थे! बोलो गुरुदेव, बोलो, आपका महाकाव्य क्या हमारे ही माता-पिताके चरित्रका वर्णन है? वह अग्नि-परीक्षा और यज्ञशालाका यह वातावरण, हे गुरुदेव, इसमें क्या सत्य है और क्या असत्य...?'

---

rris) ने, जोहन्ना आफ् नवाराके लिए 'Liber de Dina et Kalila' लिखी। इटलीके बाल्डोने भी १२ वीं शताब्दीमें अपनी नोवस एसोपसके लिए पंचतन्त्रसे ही यथेष्ट विषय उद्धृत किया। ला-फोन्तेनने तो अपनी कहानियोंके दूसरे संस्करण (१६७८) में स्पष्ट रूपसे लिख दिया कि अपनी पुस्तकका अधिकांश विषय भारतीय ऋषि 'पिलपय'से, जो संस्कृत 'विद्यापति'का अपभ्रंश प्रतीत होता है, लिया है।*

इस प्रकार आज पश्चिमी साहित्यमें 'पंचतन्त्र' इस तरह घुल-मिल गया है कि 'फेब्लियो' (Fabliaux) अथवा 'गेस्ता रोमानोरम' (Gesta Romanorum) में इसकी झलक कोई विज्ञ ही देख सकता है। किस प्रकार भारतीय कथा यूरोपीय आँचलमें लिपटकर दूसरा रूप धारण कर चुकी है, इसको विन्टर-निट्ज़ने वेल्श भाषाकी गेलट कथामें स्वामी-भक्त नेवलेकी भारतीय कथाका रूप दिखाकर स्पष्ट किया है। फ़ारसने पूर्व तथा पश्चिमके इस मिलापमें बहुत बड़ा कार्य किया है। जिप्सी, मंगोल, अरब तथा ग्रीक व्यापारिक तथा 'बिज़ेन्टाइन' (कुस्तुन्तुनिया-सम्बन्धी) साहित्यने भी इस दिशामें बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस प्रकार 'पंचतन्त्र' आज संसारके कथा-साहित्यपर अपना विशेष प्रभुत्व रखता है।

* पंचतन्त्रके विविध यूरोपियन भाषान्तरोंका विवरण श्री ए० बी० कीथके निर्णयके आधारपर है।—ले०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहीं पर सीताकी तूलिका रुक गई है—मानो उसकी कल्पना-शक्तिने आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया हो, मानो वह सीताके मनःतापको अनुभव करके भयभीत हो गई हो! इस तापको शायद वह और प्रोत्साहन देना अब उचित नहीं समझती ; कारण, कहीं सीताके हृदयके दो टुकड़े न हो जायँ! और कल्पना-शक्तिके साथ ही सीताके तन, मन और प्राण इस समय स्तब्ध हो गए हैं। वह ताप अपनी प्रबलताके कारण हृदयके बाँधको तोड़कर आँखोंकी राह बह रहा है। उस प्रबलताको धाराका अनुभव करने तथा उसे रोकने-बाँधनेकी, सारी क्रियाएँ मानो निष्फल हो रही हैं। सारी शक्तियाँ मानो उसी वेगमें बही चली जा रही हैं। तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वैरागी महर्षि वाल्मीकि भी उसी वेगमें बहने लगे। किन्तु शीघ्र ही किसी प्रकार अपनेको सँभालकर उन्होंने सीताको उबारनेकी चेष्टा की। बोले—'पुत्री सीते, इस प्रकार अधीर होकर यह कैसा चित्र बना रही हो?'

चौंककर सीताने तूलिका हाथसे दूर फेंक दी और वाल्मीकिके चरणोंपर गिरकर और भी विह्वल हो उठी। आशीष देते हुए मुनिने सीताको उठाकर खड़ा किया और उसके मुँहकी ओर देखा। उसकी हिरणी-सी काली आँखोंमें से अब भी संतप्त अश्रु धारा गतिकी सीमाका उल्लंघनकर इस तरह बह रही थी मानो वह किसी प्रकार रुकना ही न चाहती हो। उसके गौर मुखपर छाई आरक्तता साफ़ बता रही थी कि यह क्रम न जाने कबसे जारी है। सीताकी उस समयकी करुणा-मूर्ति और उसके हृदयकी वेदनाओंका वह मार्मिक चित्र देखकर आदि-कवि वाल्मीकि भी उस समय सीताको सान्त्वना देनेके लिए वाणी और शब्दोंका अभाव-सा अनुभव करने लगे। वे सीताका मस्तक अपने हृदयसे लगाकर वार्धक्यसे काँपता हुआ अपना हाथ सीताके सिरपर फेरने लगे, जैसे अपने हृदयके सम्पूर्ण वात्सल्यसे वे सीताके सर्वांगको नहलाकर उसके मनकी सारी व्यथा, सारा सन्ताप, धो देंगे।

सामने चमकते प्रातःकालके सूर्यने अपनी एक किरण महर्षिके मुखपर डालकर देखा—उनकी श्वेत पलकोंके बीचमें जल-कण छलछला आए हैं। सूर्य स्तब्ध देखता रह गया, किन्तु उस वृद्ध हृदयकी सम्राज्ञी भक्ति-देवी त्रस्त हो उठीं। उन्होंने सरस्वतीका आँचल झकझोरकर कहा—'यह मूक रहनेका अवसर नहीं है शारदे, शीघ्र अपनी प्रेरणासे काम लो, अन्यथा महा अनर्थ होना चाहता है। मेरा तो अस्तित्व ही मिटना चाहता है। मैं तेरी मनुहार करती हूँ, देवि।' वाणीने भक्तिकी यह मनुहार तो स्वीकार कर ली, किन्तु वह सोचने लगीं—'अयोध्यापतिके अनन्य भक्त महाकविके मनमें आज अपने इष्टके प्रति किंचित् विरसता उत्पन्न हुई है और मेरी सामर्थ्य कविके हृदयगत भावोंको सुसज्जित शब्दोंका बाना पहनाने तक ही सीमित है, उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करना या उनमें परिवर्त्तन करना मेरी शक्तिसे बाहरकी बात है।

वाणीकी प्रेरणासे कवि स्वतः ही बोल उठे—'सीते, अयोध्यापतिने तुम्हारे साथ अन्याय किया है...' अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि तड़पकर सीताने अपने हाथसे महर्षिका मुख बन्द कर दिया। (महर्षि अपना वाक्य पूरा न कर पाए कि 'वे तेरे प्रति कितने कठोर बन गए हैं। पुरुष-हृदय नारीके मनको समझनेमें असमर्थ है, फिर भी मैं आज बहुत-कुछ अनुभव कर रहा हूँ। मैं इसे सहन नहीं कर सकूँगा पुत्री, मेरा कवि होना व्यर्थ होगा यदि मैंने अपने महाकाव्यमें तुम्हारी इस पीड़ाका वर्णन न किया।') सीताका हाथ छुड़ाते हुए कवि बोले—'जाओ सीता, मेरी लेखनी और भोज-पत्र तो ले आओ। मुझे अपने काव्यके कुछ अंश बदलने हैं।'

सीता वात्सल्यकी भीख-सी माँगती हुई वाल्मीकिके हृदयसे और भी अधिक चिपट कर चीख उठी—'आप कुछ भी नहीं समझ सके, पिता। अयोध्यापतिकी सुकीर्त्ति सूर्यके समान प्रखर है, उनका चरित्र गंगाजलके समान निर्मल और पवित्र है। अयोध्यापतिका हृदय जिस प्रकार दयाके प्रति उदार और कोमल है, कर्त्तव्यके प्रति उतना ही विशाल और कठोर है। गुरु, उनकी कर्मनिष्ठा अपार है, अद्भुत है और है समुद्रके समान गहन। अयोध्यापतिके गुण-गान करने ही में वाणीकी महिमा है, उसीमें कविता और कवि दोनों धन्य हैं। मुझे क्षमा करो, पिता ; मेरे आँसुओंके कारण आज आपके मुखसे स्नेहके कुछ अपशब्द निकल गए।' फिर महर्षिको झकझोरते हुए सीताने ऐसे भावोंकी सरिता-सी बहा दी, मानो वह आनन्दसे उतावली हो रही है। भक्ति-देवी उस शुभ वेलापर सीताके प्रति कृतज्ञ हो उठीं।

- २ -

अबोध बालिकाके समान जो माताके शरीरसे चिपटकर दुलारसे मातृत्वपर विजय पाले, उसी प्रकार माया-मोहसे रहित उस तपस्वी हृदयपर सीताने भी विजय पा ली। तपस्वीका क्रोध तो शान्त हो गया, परन्तु उसके स्थानपर वात्सल्यमयी एक पीड़ाका प्रादुर्भाव हो गया। सीताने महर्षिके हृदयपरसे उस पीड़ाको दूर करनेके विचारसे आँखोंमें प्रसन्नता भरकर हँसते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कहा—'एक सुख-संवाद मिला है, पिता। मैं तो बहुत उत्सुकतासे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।'

सीताकी चेष्टा व्यर्थ नहीं गई। महर्षिकी सजल आँखें भक्ति और आनन्दकी आभासे उद्दीप्त हो उठीं। वे बोले—'कैसा सुख-संवाद है? क्या अयोध्यापतिका सुख-समाचर मिला है।'

'हाँ पिता, अयोध्यापति अश्वमेध-यज्ञ कर रहे हैं। आपके लिए निमन्त्रण आया है।'

हर्षसे महर्षि अपने महाकाव्यके राम-यश-वर्णनवाले प्रकरणका एक श्लोक गाने लगे और सीता भी उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर दुगुने उत्साहसे गाती हुई अपनी तूलिका और चित्र उठाकर एक ओर भाग गई। महर्षि ओज-भरे स्वरसे गाते हुए अपनी कुटीमें रामायण खोलकर बैठ गए। लव और कुश महर्षिको आया जानकर भागे हुए आए और चरण-स्पर्शकर प्रणाम किया। महर्षिने आशीष देकर उन्हें समीप बिठा लिया और रामायण कंठाग्र कराने लगे। किन्तु आज महर्षि अपने काव्य-रसमें पूर्णतः तन्मय नहीं हो सके। वे अनुभव करने लगे—सीताने उनके स्वरमें जो स्वर मिलाकर गाया था, ऐसा जान पड़ता था। मानो उसका सम्पूर्ण हृदय उस स्वरके साथ बाहर निकला आ रहा है। और वह अधूरा चित्र!

वाल्मीकि चिन्तामें डूब गए। दोनों बालकोंको उन्होंने बाहर जाकर खेलनेकी आज्ञा दे दी। प्रबल इच्छा होते हुए भी बालक इस समय गुरुके मनोभावको जानकर अश्वमेध-यज्ञमें जानेकी बात नहीं पूछ सके।

- ३ -

दोपहरके भोजनके निमित्त सीता जलसे धोए हुए स्वच्छ कन्द-मूल-फल कदली-पत्रमें लिए मुनिकी कुटीमें उपस्थित हुई। देखा, मुनि लेखनी हाथमें लिए लिखनेमें व्यस्त हैं। सीताने आदर और प्रतिष्ठाके साथ मूल-फल मुनिके सम्मुख रखकर श्रद्धा-युक्त मृदु स्वरमें कहा—'भोजन पा लें, पिता।' संकेतसे सीताको समीप बैठनेको कहकर अस्फुट वाणीमें मुनि बोले—'आज मेरा निराहार व्रत है, सीते।' और मुनि उसी प्रकार व्यग्रतासे लेखनी चलाने लगे।

मौन बैठी सीता पाँवके अँगूठेके नखसे धरती खोदती हुई सोचने लगी—पिताने आज व्रत क्यों किया? आज मेरे कारण कविके पुनीत और कोमल हृदयको ज़रूर कोई ठेस लगी है। वह मन-ही-मन लज्जित होने लगी। गुरुदेवने उसका चित्र भी तो देख लिया है! इसी तरह सोचते-सोचते बहुत-सा समय व्यतीत हो गया।

थोड़ी देर बाद लेखनी एक ओर रख दीर्घ निश्वास लेकर महर्षि स्वतः कह उठे—'सम्पूर्ण!' सीता सहसा चौंक उठी। हाथ जोड़कर उसने प्रश्न किया—'क्या सम्पूर्ण, पिता? क्या आपने अयोध्यापतिके पवित्र चरित्रकी कथा सम्पूर्ण कर ली? पिता, मुझे उसे सुननेकी प्रबल इच्छा है।'

आसनसे उठते हुए महर्षि बोले—'हाँ पुत्री, मेरा काव्य आज सम्पूर्ण हो गया है। किन्तु पुत्री, तुम्हें सुनानेका अभी समय नहीं है। शीघ्र ही लव और कुशको बुलाकर मेरी यात्रा की तैयारी कर दो। अयोध्यापति द्वारा सम्पन्न होनेवाले अश्वमेध-यज्ञको देखनेकी मेरी प्रबल इच्छा है।'

सीता पाषाणकी प्रतिमाकी भाँति स्तब्ध खड़ी रह गई, जैसे उसमें कोई गति ही शेष न रह गई हो और अवाक् रह गए मुनि वाल्मीकि। उनके अश्वमेध-यज्ञ देखने जानेकी बातसे सीताके हृदयमें किस प्रकारका आघात पहुँचा, यह जाननेके लिए मुनिने एक जिज्ञासापूर्ण दृष्टि सीताके अन्तरमें डाली। उन्हें लगा, अयोध्यापतिकी यह परम साध्वी स्त्री सीता आज उनकी उस पुनीत योजनामें सम्मिलित होनेकी अधिकारणी नहीं है! आज यह पति-परायणा पतिके दर्शनोंसे भी वंचिता है! आज अयोध्याकी स्वामिनी अयोध्याकी प्रजा द्वारा ठुकराई जाकर निर्वासिता है! पर अधिक देर तक वाल्मीकि सीताके अन्तरमें छिपे उस गहन-गम्भीर भाव-पारावारका भली भाँति निरीक्षण नहीं कर सके। सीताने तुरन्त ही अपने आपको सँभाल लिया और मुनिका आदेश पालन करनेके लिए विद्युत्-गतिसे भाग चली। अपने स्वरको पूरी गतिपर पहुँचाकर वह चिल्लाने लगी—'ओ लव, ओ कुश, तुम दोनों कहाँ हो? शीघ्र इधर आओ। देखो, गुरुदेव अश्वमेध-यज्ञ देखने जा रहे हैं। शीघ्र आओ, बालको; देर हो रही है। पिता तुम्हारी प्रतिक्षा कर रहे हैं।'

दूरसे महर्षिने देखा, बालकोंको समीप आता देखकर भी सीता ज़ोर-ज़ोरसे बोलती ही जा रही है। महर्षि जिज्ञासा और विश्लेषणकी बात भूल गए। कवियोंमें महाकवि और तपस्वियोंमें तपोश्रेष्ठ वाल्मीकिने उस नारी-हृदयकी वेदनाके प्रति नतमस्तक होकर मन-ही-मन कहा—सीते, तुम धन्य हो!

कुछ ही क्षण बाद बालकोंको यात्राके लिए तैयार कर और अपनेको प्राकृतिस्थ कर सीता मुनिके सम्मुख उपस्थित हुई और हाथ जोड़कर बोली—'पिता, आपका व्रत कब समाप्त होगा? क्या आप निराहार ही यात्रा करेंगे?' गम्भीरतासे मुनिने कहा—'पुत्री सीते, मैं अपने काव्यकी परीक्षा करना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। अब तो मैं इसकी सफलताका निर्णय करके ही जल ग्रहण करूँगा, ऐसा मेरा प्रण है। और यदि असफल हुआ, तो इसे अग्निदेवको समर्पित कर दूँगा।'

सीताने देखा, अन्तिम वाक्य कहते-कहते मुनि कुछ उत्तेजित और कुछ क्रोधित-से हो उठे हैं। तेजसे उनका मुख रक्त-वर्ण हो गया है और आँखें उद्दीप्त हो उठी हैं। उनमें से एक प्रकारकी दृढ़ताका प्रकाश निकल रहा था। सीताके मनपर आतंक सा छा गया। 'पिता किस प्रकारकी परीक्षा लेना चाहते हैं, यह पूछनेका उसे साहस ही नहीं हुआ। मुनि आशीर्वाद देकर चलनेको प्रस्तुत हो गए। सीताने मुनिके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम करते हुए धीरेसे कहा—'पिता, अयोध्यापतिके चरणोंमें मेरा प्रणाम निवेदन कीजिएगा और उनकी थाती, ये दोनों बालक, उन्हें सौंप दीजिएगा। इतना कहते-कहते सीताका गला भर आया।

द्वारपर यात्राके लिए तैयार खड़े दोनों पुत्रोंको छातीसे लगाकर सीता फफककर रो उठीं। हृदयका सन्ताप मातृ-वात्सल्यके रूपमें आँखोंसे फूटकर बहने लगा। स्नेहसे सीताकी पीठपर हाथ फेरते हुए मुनिने आदेश दिया—'पुत्री, अब तुम जाओ। सन्ध्या समीप आ रही है। पूजाकी वेला भी हो आई।' बार-बार बालकोंका मुख चूमकर सीता आँखें पोंछती हुई आश्रमकी ओर लौट चली और आर्द्र कण्ठ तथा नयनोंसे महर्षि दोनों बालकोंके साथ रामायणके श्लोक गाते हुए जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाने लगे।

- ४ -

यज्ञ-भूमि अयोध्यासे भी सौगुनी सुन्दर एक विशाल नगरीके रूपमें सुसज्जित थी। आज उस नगरीका प्रातः और भी महत्वपूर्ण और चमत्कृत हो उठा था। सारे नगरका जन-समाज आज यज्ञ ही की नहीं, अपनी दैनिक दिनचर्या तककी बात भूलकर जहाँ-तहाँ चित्र-लिखित-सा खड़ा अपने कानों द्वारा अलौकिक संगीत-सुधारसका पान कर रहा था। यहाँ तक कि अयोध्यापति भी एकाग्र मनसे यज्ञ नहीं कर सके। चारों ओरसे उमड़ती हुई जो मधुर संगीत-लहरी बढ़ी चली आ रही थी, सारे समाजकी भाँति उनका चित्त भी उसीमें डूबने-उतराने लगा। पुरोहितगण मन्त्र उच्चारण करना भूल गए। रामचन्द्र आहुतिका पात्र हाथही में लिए उठ खड़े हुए। कदली-पत्रसे सुसज्जित वातायनमें से झाँककर उन्होंने देखा—साक्षात् काम-देवके अवतार-से दो बालक वीणापर अपना मधुर स्वर झंकृत करते उसी ओर बढ़े चले आ रहे हैं और उनके पीछे-पीछे अपार जन-समुदाय उस संगीत-लहरीमें डूबता-उतराता चला आ रहा है। राजा रामचन्द्रकी दृष्टि बालकोंकी छविका आभास पाकर मुग्ध हो गई। उस छविमें न जाने कैसा आकर्षण था कि उनका हृदय एकबारगी ही उन बालकोंकी ओर खिंचने-सा लगा। वह यज्ञ-जैसे महत्वपूर्ण अनुष्ठानको भूलकर उन्हें देखनेको खड़े हो गए।

भाईकी यह दशा देखकर लक्ष्मणने समीप आकर उनकी तन्मयता भंग की—'महाराज, कल सन्ध्या समय यज्ञशालामें महर्षि वाल्मीकिका शुभागमन हुआ है। ये दोनों बालक उनके शिष्य हैं। महर्षिने एक महाकाव्यकी रचना की है। उनकी आज्ञासे बालक उसी काव्यको चारों ओर घूम-घूमकर यज्ञमें आए अतिथियोंको सुना रहे हैं। महर्षि वाल्मीकि कुछ अस्वस्थ हैं, इस कारण वे आज यज्ञ-मण्डपमें उपस्थित नहीं हो सके। वे अतिथि गृहमें विश्राम कर रहे हैं।' महाराजा रामचन्द्रने वशिष्ट मुनि तथा यज्ञ-वेदीपर बैठे हुए अन्य सारे मुनियोंको सम्बोधित करके कहा—'आज्ञा हो तो आज यज्ञ-कार्य स्थगित कर महर्षिकी काव्य-कलाका और इन प्यारे बालकोंके कोमल कण्ठसे स्फुटित हुई संगीत-मन्दाकिनीके रसामृतका पान किया जाय।' प्रसन्न वदनसे वहाँ एकत्रित सारे राजे-महाराजे और मुनियोंने राजाके प्रस्तावका अनुमोदन किया।

लक्ष्मणसे बालकोंको उनके पास भेजनेका संकेतकर अस्वस्थ-से रामचन्द्र शयन-कक्षमें चले गए।

बालकोंके मुखसे वाल्मीकि-काव्यके २० अध्याय सुनकर अयोध्यापतिने बालकोंसे अन्तिम अंश सुननेकी आकांक्षा प्रकट की। बालकोंने रामचन्द्रको स्नेहमें ओत-प्रोत कर देनेवाली मृदुल वाणीमें उत्तर दिया—'गुरुदेवने अभी काव्यके अन्तिम अंश हमें कण्ठाग्र नहीं कराए हैं।' रामचन्द्र जो सत्रह सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ उन्हें देना चाहते थे, बालकोंने नम्रतापूर्वक यह कहकर उन्हें लेनेसे इन्कार कर दिया—'हम वनके फल-मूलपर निर्वाह करनेवाली वनोवासिनी सीताके पुत्र हैं। ये स्वर्ण-मुद्राएँ हमारे किस कामकी?' और पृथ्वीपर माथा टेककर, रामचन्द्रको प्रणामकर, दोनों बालक वाल्मीकिके समीप चले गए।

बालकोंके अन्तिम शब्द रामचन्द्रके कानोंमें गूँजने लगे। वे व्यग्र होकर बोले—'हनूमान, मैं एकान्त चाहता हूँ। हनूमानने शयन-कक्षके पट बन्द कर दिए और द्वारपर प्रतिहारीके आसनपर आकर बैठ गए।

कुछ समय उपरान्त राजा रामचन्द्रने एक पत्र लेकर लक्ष्मणको महर्षि वाल्मीकिके समीप भेजा। पत्र पढ़कर मुनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलकित हो उठे और बोले—'लक्ष्मण, अयोध्यापतिने लिखा है, मैंने अपने काव्यमें सीताके जिस सतीत्वके पराक्रमका वर्णन किया है, कल यज्ञ-मण्डपमें वे सीता द्वारा उसीका प्रमाण चाहते हैं। लक्ष्मण, तुम तुरन्त एक द्रुतगामी रथकी व्यवस्था करो, जिससे मैं शीघ्र-से-शीघ्र सीताको यहाँ ला सकूँ। और अयोध्याके महाराजसे कह देना कि वे सारी अयोध्याकी प्रजा, अपने सारे मानव-समाज, बानर-समाज, राक्षस-समाज, और सारे देव-समाजको भी एकत्रित करें। सबके सामने सीता प्रमाण देगी।'

यह कहकर मुनिने आश्रमके लिए प्रस्थान किया और लक्ष्मण प्रणाम करके भाईके समीप मुनिकी आज्ञा सुनाने चले गए।

आश्रममें पहुँचकर मुनिने देखा—मलिन वेशमें, आँखें बन्द किए, समाधिस्थ-सी बैठी सीता साधनामें रत है। दिव्य दृष्टिसे मुनिने जाना—सीताने निराहार रहकर तप द्वारा अपने प्राण छोड़नेका निश्चय किया है। उत्तेजना और आज्ञा-युक्त शब्दोंसे मुनिने सीताकी साधना भंग की—'उठो सीते, रामचन्द्र भरे समाजके बीचमें तुम्हारे सतीत्वका प्रमाण चाहते हैं। तुम्हें अपने सतीत्वका प्रमाण देना ही होगा। देवि, चलो, अयोध्या-पतिका रथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।'

चौंककर मुनिको प्रणाम करते हुए सीताने कहा—'किन्तु पिता, अग्नि-परीक्षाके उपरान्त सीताको अब फिर किसी प्रकारका प्रमाण देनेकी आवश्यकता अनुभव नहीं होती। आपकी दयासे मैं माताके कर्त्तव्यसे उऋण हो गई। अतएव अब मेरी प्राण रखनेकी अनिवार्यता भी समाप्त हो गई। आप बालकोंको उनके पिताको सौंपकर मेरी ओरसे क्षमा माँग लें। उनकी इस अन्तिम आज्ञाका पालन मैं अब नहीं कर सकूँगी।'

आग्रहपूर्वक वाल्मीकि बोले—'नहीं सीते, तुम्हें चलना ही होगा। यह तुम्हारी परीक्षा नहीं वाल्मीकिके तपकी परीक्षा है, वाल्मीकि-रामायणकी परीक्षा है। स्वाभिमानकी वेदनाको मैं जानता हूँ, किन्तु मेरे लिए तुम्हें उस पीड़ाको, जैसे भी हो, सहना ही होगा। अयोध्याकी प्रजा द्वारा ठुकराई हुई अयो-ध्याकी महारानी भले ही फिर अयोध्याके राजाके रनिवासमें जाना सहन न करे, पर वाल्मीकिके आश्रम ही के नहीं, हृदयके द्वार भी सदैव उसके लिए खुले हैं। पुत्री, तुम्हारे इस कष्ट-सहनसे वाल्मीकि और वाल्मीकिका महाकाव्य धन्य हो जायगा।'

सीता अब और कुछ न कह सकी। कृतज्ञताके भारसे दबी-सी वह रथपर बैठ गई और मन ही मन मुनिको धन्यवाद देने लगी, जिनके द्वारा फिर उसे आर्यपुत्रके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त होने जा रहा था।

- ५ -

प्रातःवेलामें जब यज्ञ-मण्डपमें बहुत बड़ी सभा एकत्रित हो गई, देवलोकसे सारे देवता और गन्धर्व आदि भी आ गए, राजा रामचन्द्र आकर यज्ञ-वेदीपर बैठे। इस समय सभामें एक क्षणिक-सा कुतूहल होकर फिर गहरी स्तब्धता छा गई। सारे जन-समुदायकी आँखें द्वारकी ओर चली गईं। सबने देखा—तपस्वियोंके शिरोमणि महाकवि वाल्मीकि एक हाथमें रुद्राक्षकी माला और दूसरेमें गंगाजली लिए चले आ रहे हैं। उनके पीछे पवित्रताकी साक्षात् प्रतिमा-सी सीता वल्कल धारे, मस्तक नीचा किए, धीरे-धीरे चली आ रही है। उसके मुखकी कान्तिको सतीत्वका सत्य द्विगुणित कर रहा है। उसे देखकर सारे उपस्थित व्यक्तियोंके हृदय श्रद्धासे परिपूर्ण हो उठे। सबने सीताको मन ही मन प्रणाम किया। अयोध्यापति राजा राम-चन्द्र मुख नीचाकर भूमि निहारने लगे। उन्हें मुनिके स्वागतमें खड़े होकर प्रणाम करनेका भी भान नहीं रहा।

उनके समीप आकर घनघोर गर्जना-सी करते हुए हाथ ऊपर उठाकर महर्षि वाल्मीकिने कहा—'महापराक्रमी, महाबल-शाली, गौरवशाली त्रिलोकके शिरोमणि रामचन्द्र, तुमने अप-यशके भयसे परम सती सीताका गर्भावस्थामें परित्याग किया था और उसकी अग्नि-परीक्षा ले चुकनेके बाद भी आज तुम इस विशाल-समाजके बीचमें उसके सतीत्वका प्रमाण चाहते हो। मैं गंगाजली हाथमें लेकर सीताके सतीत्वका प्रमाण देता हूँ। मैंने घोर तपस्या की है, किन्तु मेरे अनन्त कालकी सारी तपस्या तराजूके एक पलड़ेमें रख दी जाय और एकमें सीताका सतीत्व, तो सीता ही का पलड़ा भारी रहेगा। यदि इस वचनमें किंचित् भी असत्य या अतिशयोक्ति हो, तो मेरी आज तककी तपस्याका सारा फल नष्ट हो जाय; मेरी साधना भ्रष्ट हो जाय; जिस पवित्र जलको लेकर मैं यह सौगन्ध खा रहा हूँ, उस जलकी धाराको मस्तकपर धारण करनेवाले शंकर मुझे अपने तीसरे नेत्रकी ज्वालासे भस्म कर दें।'

सारी सभामें साधुवाद-साधुवादका नाद गूँज उठा—और विह्वल-से रामचन्द्र मुनिके चरणोंपर गिरकर बोले—'देव मुझे क्षमा करो!'

'कल्याण हो!' कह मुनिने सीताकी ओर देखकर कहा—'पुत्री, तुम्हें प्रमाण-स्वरूप जो-कुछ कहना हो, कहो।' वाल्मी-किकी इस आज्ञासे लक्ष्मणका मन बिलख उठा। उन्होंने चाहा कि दौड़कर सीताके चरण पकड़ लें और कहें—माता अब क्षमा करो। माता कौशल्याने चाहा कि भीड़को चीरती हुई जाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलको उज्वल करनेवाली पुत्र-वधूको हृदयसे लगा लें। अयोध्याकी प्रजा चीखनेको हुई कि उसे अपनी महारानीसे सतीत्वका प्रमाण नहीं चाहिए; उसका अपराध क्षमा हो। पर सीताने किसीको पलक मारने तकका अवकाश नहीं दिया और मन ही मन रामचन्द्रको प्रणाम कर पृथ्वीको सम्बोधित करके बोली—'माता, अपने पतिव्रतमें यदि मैं तेरे ही समान अचल रही हूँ, तो तू मेरी लज्जा और मर्यादाको अचल रखनेके लिए मुझे अपने भीतर स्थान दे।'

भयंकर गर्जनाके साथ पृथ्वी फटी और उसमें से एक दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ। देवी पृथ्वीने स्वयं सीताको उठाकर उस दिव्य सिंहासनपर बिठा लिया और वह सिंहासन पृथ्वीमें चला गया। सारे देव, नर, किन्नर, वानर और महान् शक्तिशाली रामचन्द्र भयभीत-से देखते रह गए, सीताके प्रचण्ड सतीत्व सन्तापकी उस महिमाको!

मानव-मनकी पहेली

प्रो० प्रभाकर माचवे, एम० ए०

आजकल व्यत्यस्त-रेखा-पहेलियाँ या 'क्रासवर्ड पज़ल्स' बहुत-से लोग सुलझाते हैं। पहेलियोंके हल खोज निकालना और हलके रूपमें स्वयं अन्य पहेलियोंका निर्माण करना मानव मनका अत्यन्त प्रिय व्यापार है। अनादिकालसे इस प्रकारके अक्षरकूट, चित्रकूट, चक्रव्यूह या भूलभुलैयाँ या यक्ष-प्रश्नोंके रूपमें शब्दकूटोंके उदाहरण मिलते हैं। परन्तु इन सब चक्रव्यूहोंसे अधिक चकरीली, उलझन-भरी और कठिन पहेली मानवका मन है। इस छोटे-से लेखमें यह प्रयत्न किया जायगा कि पश्चिममें इस पहेलीको सुलझानेकी दिशामें चिन्तकों और विचारकोंने क्या-क्या प्रयत्न किए और वे किस निष्कर्षपर पहुँचे हैं।

पाइथोगोरस (ईसा-पूर्व ५८२-५०६) आत्माकी अमरतामें विश्वास करता था। अतः आत्म-विद्याके अर्थमें मनोविज्ञानका सर्वप्रथम उल्लेख उसके ग्रन्थोंमें मिलता है। वैसे ग्रीक लोग 'साइके' (देवी मनसा) नामक एक अप्सराकी कथा मानते थे, जो अत्यन्त सुन्दरी होनेके कारण वीनस (रति) की ईर्ष्या और कोपका भाजन बनी। रतिने जलकर उस अप्सराका प्रेम किसी घृणित व्यक्तिसे हो जाय, ऐसी आयोजना करनेके लिए क्यूपिड (अनंग) को साइकेके पास भेजा। क्या आश्चर्य, स्वयं क्यूपिड साइकेके प्रेमपाशमें आबद्ध हो गया। वीनस अतिक्रुद्ध होकर साइकेकी हत्या करनेके लिए गई, जिसमें क्यूपिड मारा गया। क्यूपिडकी बहन इलेक्ट्रा देवाधिदेव अपोलोके पास जाकर क्यूपिडकी प्राणभिक्षा माँग लाई, जिससे क्यूपिड अमर हो गया। साइकेने तितलीका रूप ले लिया। यह कथा अपने यहाँके काम-दहन और परिणामतः कामदेवके अतनु होनेकी घटनासे तुलनीय है। ग्रीकोंको प्राणिशास्त्रका ज्ञान बहुत ही कम था। अतः मनका अभ्यास भी एक अतीन्द्रिय, पारलौकिक, अतिमानवी, आध्यात्मिक आशयके कोहरेमें कई संदियोंतक ढँका रहा और उसे वैज्ञानिक रूप न मिल पाया।

अरस्तू (ई० पू० ३८४-३२२) और अफलातून (ई०पू० ४२९-३४७) के मन और आत्मा-सम्बन्धी विचार कुछ अंशोंमें अधिक युक्तिसंगत जान पड़ते हैं। अरस्तूके मतसे आत्मा केवल रूपमय है। यानी वस्तुमें जैसे आकारादि गुण होते हैं, वैसे ही आत्माका विचार भी एक 'फार्म' है। संवेदनाएँ मनको बदलती रहती हैं। स्मृति सिर्फ़ संवेदनाओंका दीर्घकाल तक टिकनेवाला प्रतिबिम्ब है और मानवका आजीवन अनुभव केवल स्मृति-समुच्चय-मात्र है। इस प्रकार भाव-पक्षकी उपेक्षा-कर अरस्तूने ज्ञान और कर्मको अधिक महत्व दिया। प्लेटो या अफलातून तो इससे भी बढ़कर जीव-मात्रमें आत्माका अस्तित्व मानता है। मानवात्माकी विशेषता उसकी विचार-शक्ति है, और मानवात्माके स्पष्टतः तीन विभाग हैं—आदमी १।३ हिस्सा सुबुद्ध ईन्सान है, १।३ हिस्सा शेर और १।३ हिस्सा नाना-मुण्डोंवाला राक्षस है! इस रूपकको अपने 'रिपब्लिक' नामक ग्रन्थमें समझाते हुए प्लेटोने कहा है कि मानवी मनके बुद्धि, उच्च भावना और नीच प्रवृत्तियाँ—ये तीनों हिस्से जिस परि-माणमें शासक व्यक्तियोंमें हों, उसी प्रकारकी शासन-व्यवस्था भी होती है। इसी विचार-भित्तिके अनुसार 'रिपब्लिक'में दी हुई शिक्षा योजना भी विचित्र है। उसके कथनानुसार कवि झूठे होते हैं, उन सबको देश-निकाला देना चाहिए तथा कविता नहीं पढ़ाई जानी चाहिए। नगरके भावी रक्षक युवकोंको केवल ज्यामिति, संगीत और व्यायामकी ही शिक्षा दी जानी चाहिए।

मध्य-युगकी १६वीं सदी तककी दीर्घकालीन अज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिशामें श्रद्धा-सातत्यका स्वप्न अधिक था। धार्मिक मूढ़ग्राहोंने मनोविज्ञानकी वास्तविक जड़को जमने ही नहीं दिया। फ्रेंच तत्वज्ञ दकार्तने (१५९६ से १६५० ई०) अपना प्रसिद्ध सूत्र 'Cogito ergo sum' (मैं विचार करता हूँ) रचकर मन और भौतिक द्रव्यके बीच द्वैत स्थापित किया। वह पशुओंमें किसी प्रकारकी मानसिक शक्तिका अभाव मानता था, अतः उन्हें यन्त्र या 'ऑटोमेटन' कहा करता था। हाब्सने (१५८८-१६७९) मनोविज्ञानकी रचनामें एक और बात जोड़ दी—'संकल्प-शक्ति (विल-पावर) केवल संघर्ष-जन्य है।' मनकी बाह्य जगत्से टक्कर होती है। यदि मन जीत जाता है, तो उसमें प्रबल संकल्प-शक्ति है, अन्यथा दुर्बल। दकार्तके द्वैत-वादकी प्रतिक्रिया लाक (१६३२-१७०४) के 'मानवी समझ-सम्बन्धी निबन्ध'में पाई जाती है। उसके अनुसार मन निष्क्रिय कोरी पटियाके समान है, जिसपर बाह्य जगत् जो-कुछ भी प्रभाव डाल दे, वे ही सरल और जटिल विचारोंके रूपमें अंकित होते रहते हैं। जहाँ दकार्तने मनको ही अधिक महत्व दिया था, वहाँ लाकने बाह्य जगत्पर ज्ञानको—यानी अनुबोधकी—सारी ज़िम्मेदारी डाल दी। ह्यूमने (१७११-७६) मन और जगत् दोनोंको मिथ्या सिद्ध किया और कार्य-कारण-सम्बन्धको केवल संयोग (एसोसिएशन) माना। आगे चलकर इस विचारने मनोविज्ञानमें स्मृति-चित्रोंके संयोगके रूपमें बड़ी सहायता पहुँचाई, और 'फ्री एसोसिएशन टेस्ट'के रूपमें एक मनोविश्लेषणकी शैली भी चल पड़ी। लाइब्नित्ज़ने (१६४६-१७१६) अवश्चेतन-मनका पहली बार अनुसंधान किया, जिसे आगे चलकर शौपेनहरने (१७८८-१८६०) अन्ध-प्रेरणा (ब्लाइण्ड विल) का रूप दिया। इमैन्युएल कांटने (१७२४-१८०४) यद्यपि मनोविज्ञानके क्षेत्रमें इतना कार्य नहीं किया है, जितना कि अध्यात्मशास्त्रकी तार्किक चिन्तनाके क्षेत्रमें; तथापि संकल्प-प्रेरणा अथवा 'विल' तथा भावनाओंपर मनके अभ्यासके सिल-सिलेमें ज़ोर देनेका श्रेय कांटको ही है। हरबर्टने (१७७६-१८४१) सर्वप्रथम 'apperceptive mass' शब्दका प्रयोग किया, जिसका आगे चलकर वार्ड और अन्य वैयक्तिक मनोवैज्ञानिकोंने 'कन्टिन्यूयम'के रूपमें विशदीकरण किया। हरबर्टने ही मनोविज्ञानमें चैतन्यमयता या 'डाइनेमिज़्म'का सूत्रपात किया। अब वेबर (१७९५-१८७८) और फेचनर (१८०१-८७) ने गणितका मनोविज्ञानमें योग देकर अपना सुविख्यात 'संवेदनाओं-सम्बन्धी नियम' ईजाद किया, जिसके अनुसार संवेदन-क्षमता वस्तुपर नहीं, वरन् वस्तुओंकी वृद्धि अथवा कमीके अनुपातपर अवलम्बित रहती है। उधर १८वीं और १९वीं सदीके पूर्वार्द्ध तक प्राणिशास्त्र भी धीरे-धीरे उन्नति कर रहा था। इस दिशामें प्रयोग हो रहे थे और वैज्ञानिक शरीरके सूक्ष्मतम अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे मनके रहस्यमय व्यापारोंके अध्ययनकी आवश्यकता अनिवार्य मानते जा रहे थे। उदाहरणार्थ गाल (१७५८-१८२८) पागल, सिरफिरे, विक्षिप्त व्यक्तियों और मूर्ख, बुद्धू लड़कोंका विशेष अध्ययन कर रहा था। उसका संशोधन विशेषतः मस्तिष्क तक ही सीमित था। बेलने (१७७४-१८४२) पूरे नाड़ी-संधान (नर्वस सिस्टम) का अध्ययन किया। मूलरने (१८०१-५८) यह निश्चित किया कि संवेदनाओंका गुण संवेदना-निर्माण करनेवाली शिराओंपर आश्रित है। संक्षेपमें मनोविज्ञानकी स्थिति अपनी शैशवावस्थामें थी। यानी १९ वीं सदीके उत्तरार्द्ध तक उसने वैज्ञानिक मान्यता पूरी तरह प्राप्त नहीं की थी। दर्शनकी चेरी बनकर ही ये विचार-धाराएँ चल रही थीं।

१९ वीं सदीके उत्तरार्द्धमें विज्ञानने अँगड़ाई ली। १८५९ से ७२ तक चार्ल्स डार्विन अपनी 'जातियोंकी उत्पत्ति और विकास', 'पशु और मानवमें भावनाओंकी अभिव्यक्ति' नामक पुस्तकें लिखता रहा। उसी समयसे मनोविज्ञानके क्षेत्रमें प्रायोगिक, तौलनिक और पशु-मनोविज्ञानकी नींव पड़ी। हरबर्ट स्पेंसरने (१८२०-१९०३) बड़े उत्साहसे मनोविज्ञानमें विकास-वादके सिद्धान्त जोड़ दिए। गाल्टनने (१८२२-१९११) आनुवंशिक प्रतिभाका अभ्यास किया। वुंड्टने (१८३२-१९२०) लाइपज़िगमें १८७९ में पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित की। वुंड्ट पहला मनोवैज्ञानिक था, जिसने अनुभव-प्रक्रियाका अध्ययन किसी भी पूर्व दृष्टिको न मानते हुए स्वतन्त्र रूपसे शुरू किया। स्टैनली हालने (१८४४-१९२४) १८८३ में अमरीकामें पहली प्रयोगशाला बनाई, जिसके उद्योगका फल उसके 'कैशोर्यावस्था'पर लिखित दो भागोंके मोटे ग्रन्थके रूपमें मिलता है। वयःसंधिके मनोविज्ञानपर उसके समान अधिकारपूर्वक शायद ही किसीने लिखा हो। विलियम जेम्स (१८४२-१९१०) प्रायोगिक मनोविज्ञान—विशेषतः बर्त्तावाद—की खिल्ली उड़ाया करता था; पर उपयोगितावादके सिद्धान्त मनोविज्ञानके क्षेत्रमें उसीने लागू किए। जिस प्रकार उसने रहस्यवादी धार्मिक सन्तों या मर्मियोंके साक्षात्कारोंका मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, वैसे ही भावनाओंकी अभिव्यक्तिके सम्बधमें उसकी सुविख्यात थ्योरी (सिद्धान्त) 'हम रोते हैं, इसलिए हमारे आँसू नहीं आते, वरन् हमारे आँसू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हैं, इसलिए हम रोते हैं' (यद्यपि बादमें असिद्ध भी की गई) 'जेम्स-लैंग थ्योरी'के नामसे प्रसिद्ध है। मुन्टरबर्ग (१८९३-१९१६) मनोविज्ञानकी व्याप्ति और उपयुक्तता व्यावहारिक जीवनमें लाना चाहता था, और उसी दृष्टिसे १९०८ में उसने 'अपराध-चिकित्सामें मनोविज्ञानके योग'पर पुस्तक लिखी और चार वर्ष बाद 'मनोविज्ञान और औद्योगिक योग्यता'पर। इस प्रकार मानव-मनकी पहेलीको सुलझाते-सुलझाते हम बीसवीं सदी तक आ पहुंचते हैं।

अब इसके पश्चात् सहसा मनोविज्ञानकी धारा विभिन्न शाखाओंमें फूट पड़ती है, जिनका विस्तृत परिचय इस छोटे-से लेखमें सम्भव नहीं। इन शाखाओंके नाम और उनके प्रवर्त्तकोंका या सिद्धान्तोंका अति संक्षिप्त परिचय ही हम यहां देंगे। वर्त्ताविवाद, हार्दिक मनोविज्ञान, मनोविश्लेषणवाद और गेल्टाल्ट-पन्थी। इनके अलावा अनेलिटिकल, इण्डिविजुअल, सोशल आदि कई और 'स्कूल्स' हैं। प्रथम दो शाखाओंके आदि-गुरु हैं इवान पेत्रोविच पावलाव (१८४९-१९३६)। इस वृद्ध रूसी डाक्टरने कुत्तोंपर अगणित प्रयोग करके 'कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स' (परिस्थिति-अवलम्बित प्रतिक्रिया) का प्रसिद्ध सिद्धान्त खोज निकाला। लायड मार्गन, जेकब, थार्नडाइक, कोहलर आदि विद्यमान प्राणिशास्त्र-विशारदोंने शिपेंजी बन्दरोंपर प्रयोग-कर 'प्रयत्न और गलतियां', 'ट्रौपीज़्म' आदि कई ऐसे सिद्धान्त खोज निकाले, जिन्हें लेकर न केवल शिक्षा-मनोविज्ञानमें ही विशेष उन्नति हुई, वरन् चारकोटसे चले हुए वर्त्ताविवादका कोहलर आदिने ऐसे रूपोंमें प्रयोग किया और करते जा रहे हैं, जिनसे मनोविज्ञानके मनस्तत्वको पूरी तरह विलुप्तकर उसे शरीर-शास्त्रकी एक शाखा बना देना ही उनका उद्देश्य प्रतीत होता है। हार्मिक (हार्म शब्द उस जीवनशक्ति या सुषुप्त प्राणावेगके लिए प्रयुक्त किया जाता है, जिसे डा० युंग 'लिबिडो' या बर्गसों 'एलान विताल' या नीत्शे 'विल्लेज़ुर माख्ट' कहता था) स्कूलका संचालक है मैकडुगल, जिसने चालीस आवेगों या प्रेरणाओंको मानवी मनोव्यापारोंका मूलाधार माना है। इनमें से तेरह प्रमुख हैं, जिन्हें पुनः आत्मिक, यौन और सामाजिक तीन विभागोंमें बांटा गया है। उसके मतसे क्षुधा, यौन-पिपासा और आत्म-प्रतिष्ठाके आवेग मानव-मनको उद्वेलित और चेतन-अवचेतन रूपसे संचालित करते रहते हैं। मनोविश्लेषण-शास्त्रके आदि प्रवर्तक हैं डा० सिगमंड फ्रायड। १८९५ में फ्रायड और ब्यूवरने मिलकर 'स्टडी इन यूवर हिस्ट्री' प्रकाशित की। १९०० में फ्रायडका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वप्न-मीमांसा' (मूलनाम 'डाइ ट्राउमडिउटुंग') प्रकाशित हुआ। १९०९ में फ्रायड और उनके तबके प्रमुख सहकारी और अब उनसे मतभेद होनेसे अलग हुए डा० युंग व्याख्यान-प्रवासपर अमरीका गए। १९११-१३ के बीच दोनों अलग हुए। एलफ्रेड अडलर भी उनसे अलग हो गए। १९२१ में मनोविश्लेषण द्वारा रोग निवारणका पहला 'क्लिनिक' वियेनामें स्थापित हुआ। अब अखिल-अन्तर्राष्ट्रीय-मनोविश्लेषण-शास्त्रकी शाखा-संस्थाएँ सिर्फ़ वियेना, बर्लिन, बुडापेस्ट, लन्दन, स्वीज़रलैण्ड, होलैण्ड, मास्को और कलकत्तेमें हैं।

मनोविश्लेषणके मुख्य सिद्धान्त हैं—(१) मनोविश्लेषण मुख्यतः मानसिक रोगों—जैसे हिस्टीरिया, उन्निद्ररोग, नर्वस-ब्रेकडाउन या 'न्यूरौसिस' और 'आब्सैशन्स' (मानसिक विकृतियां और दबाव वगैरह)—की चिकित्साका एक उपयोगी साधन सिद्ध हुआ है। (२) इसी शास्त्रको मनोगाहन अथवा मनोनिमज्जन (डेप्थ साइकालाजी) भी कहते हैं। इसमें मुख्यतः मनके अचेतन भागकी खोज-पड़ताल की जाती है। फ्रायडके मतानुसार इसके भी तीन भाग हैं—(क) मनका समतल अथवा पृष्ठभूमि-गत अध्ययन, जिसमें इड, ईगो और सुपर-ईगोका अभ्यास मुख्य है। (ख) मनकी सुख-दुख-विवेकानुसारी शक्तिके मित-व्ययकी प्रवृत्ति, जिसमें 'फ्रस्ट्रेशन' और 'फिक्सिसरुग'का अभ्यास मुख्य है। (ग) मनकी सत्यात्मकता, जिसमें मुख्यतः इरास, लिबिडो और कैथेक्सिसका अध्ययन होता है। (३) इस मनोनिमज्जनके लिए साधनभूत अधिकतर स्वप्न-संकेतों, स्वप्नगत विकृतियों (ट्राउमेनटेस्टेलुंग)—जिसके फिर तीन विभेद हैं: संक्षिप्तीकरण (वेरडिश्टुंग), उलट-फेर (वेरशाइलुंग) और अदल-बदल (यूबरट्रागुंग)—और अन्य प्रकारकी मानसिक ग्रन्थियोंका अध्ययन बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

'एनेलेटिकल' अर्थात् विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान फ्रायडके ही सिद्धान्तोंकी अधिक निर्ममता और कठोर तर्क-परीक्षाके बाद अडलर द्वारा (१८७०-१९३७) प्रयुक्त हुई शाखाका नाम है। गेल्टाल्ट-पंथका आरम्भ जर्मनीमें हुआ। इसके मूल व्याख्याकार स्विंगर्न वगैरह हैं। उनके मतानुसार अनुबोध-प्रक्रिया एक प्रकारका साधारणीकरण है। विभागीय अथवा विशिष्ट ज्ञानके समय जो समग्रताका भान होता है, उसे 'जी' तत्व कहते हैं। इसी मनकी द्विधा गतिको सामने रखकर गेल्टाल्टोंने कई और खोजें की हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दिशो न जाने न लभे च शर्म !'

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए०

मनीषी आल्डस हक्सलेने वर्त्तमान युगको 'Do what you will'—अर्थात् 'जैसी इच्छा हो करो' नामसे अभिहित किया है। एक दूसरे मनीषी विद्वान जोडने वर्त्तमान सभ्यताको Treacle Toffe Civilization कहा है, जिसका अभिप्राय यह है कि बच्चे जिस प्रकार मिठाईके लिए लालायित रहते हैं, उसी प्रकार इस युगके मनुष्य जीवनमें तुच्छ वस्तुओंको—भोग एवं इन्द्रिय-सुखको—ही सर्वोपरि महत्त्व देते हैं और उन्हींके लिए लालायित रहते हैं। हक्सलेकी परिभाषाके अनुसार यदि वर्त्तमान युगको 'जैसी इच्छा हो करो'-युग मान लेनेसे ही काम चल जाता, तब तो हमारे वास्तव जीवनके लिए कोई विषम समस्या उपस्थित ही नहीं होती। किन्तु बात ऐसी नहीं है। जिस युगमें हम जन्मे हैं और जिससे होकर गुज़र रहे हैं, वह एक विचित्र एवं विलक्षण युग है—न सम्पूर्ण आलोक ही, न एकबारगी अन्धकार ही; गोधूलिके धूमिल प्रकाशमें दिगन्त कुहासाच्छन्न। एक ओर युग-युगके संचित अतीतके ज्ञान, नीति, धर्म, उपदेश श्रद्धा एवं विश्वास हैं और दूसरी ओर वर्त्तमान युगके ज्ञान-विज्ञान, नितनूतन मतवाद, सिद्धान्त, सन्देह, संशय, अश्रद्धा एवं अविश्वास। अतीत एवं वर्त्तमानके इस संघर्षमें भविष्यके लिए कोई पथ-निर्देश नहीं। इस संघर्ष-चक्रमें पड़कर हमारे मनकी जैसी अवस्था हो रही है, उसमें कल्याणका मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता। सन्देह एवं संशयके आवर्त्तमें पड़कर आकुल आत्मा महावीर अर्जुनकी तरह चीत्कार कर उठती है—'दिशो न जाने न लभे च शर्म'!—अर्थात् न तो कर्त्तव्य-पथ सूझ रहा है और न मनको शान्ति ही मिल रही है। ठीक यही हालत आज इस युगके अधिकांश मनुष्योंकी—विशेष कर हमारे देशके तरुण-सम्प्रदायके मनकी—हो रही है। सन्देह एवं संशयके विपुल अन्धकारके बीच आजका युवक अन्ध भिखारीकी तरह अपना मार्ग टटोल रहा है। जीवनमें नीति, धर्म, आचरण, आप्तवाक्य, राष्ट्र-समाज किसी भी वस्तुके लिए कोई निश्चित मानदण्ड नहीं रह गया है। जीवनमें कोई लक्ष्य नहीं, आदर्श नहीं, गन्तव्य स्थान नहीं, कर्त्तव्याकर्तव्यकी कसौटी नहीं। अतीतके प्रति श्रद्धा, शास्त्र-वाक्योंके प्रति निष्ठा एवं गुरुजनोंके उपदेशोंके प्रति आस्था हममें बिलकुल नहीं रह गई है। धर्म, ईश्वर, आत्मा, परलोक, पूजा-प्रार्थना, ब्रह्मचर्य, संयम, सुनीति सबके प्रति वीतश्रद्ध। आजका युवक ब्रह्मचर्य एवं संयमकी बात सुनकर हँस देता है, आत्मा एवं परलोक, नरक एवं स्वर्गके विश्वासका व्यंग्य एवं विद्रूप करता है और नीतिवागीशोंके उपदेशोंका मखौल उड़ाता है। ईश्वरके प्रति अविचलित विश्वास, शास्त्र-वाक्योंके प्रति अडिग श्रद्धा, पूजा-अनुष्ठान, जप-साधना, कीर्त्तन-भजन, नीति एवं उपदेश, संयम एवं ब्रह्मचर्य यह सब १९वीं शताब्दीके साथ ही अतीतके गर्भमें विलीन हो गए। अब उनसे चिपके रहनेमें लाभ नहीं। अतीतके जीर्ण-पुरातन संस्कारोंमें रखा ही क्या है कि उनको लेकर नूतनके उन्मुक्त वातावरणसे अपनेको वंचित रखा जाय? अब तो बीसवीं शताब्दी वारविलासिनीकी तरह अपने लोलायित हाथोंमें भोग एवं इन्द्रिय-सुखोंका स्वर्णभाण्ड लेकर आई है। कोई बन्धन नहीं, विधि-निषेध नहीं; मनमें जब जिस प्रवृत्तिका उदय हो, अविलम्ब उसे चरितार्थ करना ही वर्त्तमान युगकी नीतिका मापदण्ड है।

किन्तु इन सबके लिए केवल युवक-समाजको कोसने, उसके प्रति रोष प्रकट करने अथवा वर्त्तमान सभ्यताको अभिशाप-तुल्य समझनेसे काम चल सकता और न इससे समस्याका ही समाधान हो सकता है। आजका भारतवर्ष संसारसे सम्पूर्ण विच्छिन्न न रहकर विश्व-सभ्यताका ही एक अंग बन गया है। अपनी प्राचीन सभ्यता एवं पुरातन संस्कृतिको लेकर ही आज वह आत्मतृप्त नहीं रह सकता। पश्चिमसे नव-नव विचार एवं मतवाद आकर उसके पुरातन आचार-विचार एवं आदर्शपर अनवरत आघात कर रहे हैं। वर्त्तमान समाज-व्यवस्थामें उसके व्यक्तित्वको पूर्ण विकसित होनेका सुयोग बहुत कम मिलता है। समाजके विधि-निषेध, राष्ट्रके नियम-क़ानून उसके आत्मविकासके मार्गमें पग-पगपर अन्तराय सिद्ध हो रहे हैं। किसी भी दिशामें जीवनके किसी भी क्षेत्रमें वह पुरानी लीक या परिपाटीके विरुद्ध जानेका दुःसाहस नहीं कर सकता। एक ओर भारतीय सभ्यताके चिरन्तन आदर्शके प्रति उसका विश्वास नहीं रह गया है, दूसरी ओर पश्चिमकी भाव-धारामें नव-नव विचार-तरंगोंके आघातके बीच वह तिनकेकी तरह बहता जा रहा है। कहाँ जा रहा है, स्वयं नहीं जानता। एक ओर यदि अतीतके प्रति श्रद्धा या विश्वास नहीं रह गया है तो दूसरी ओर भविष्यत्पर भी तो सम्पूर्ण भरोसा नहीं। यदि अतीतका पल्ला पकड़कर ही जीवनकी समस्त समस्याओंसे छुट्टी मिल जाती, तब तो विशेष चिन्ताकी बात नहीं होती। किन्तु इससे भी तो काम नहीं चलता। पुरातन आदर्शोंमें आजकी परि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तित परिस्थितियोंके लिए न तो कोई उपयोगिता रह गई है और न सार्थकता। उन आदर्शोंमें अब पहलेके समान सजीवता भी नहीं रह गई है कि वे हमें जीवनमें गतिवेग एवं अनुप्रेरणा प्रदान कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि हम जीवनमें शान्ति चाहते है, संयम चाहते हैं, महत् आदर्शोंके प्रति अनुराग चाहते हैं। किन्तु यदि इस शान्तिके साथ शक्तिका, संयमके साथ शौर्यका एवं आदर्शके साथ कर्मोन्मादनाका समन्वय नहीं हुआ, तो शान्ति, संयम एवं आदर्शका कोई मूल्य हमारे जीवनमें नहीं हो सकता। शान्तिसे भी बढ़कर लोभनीय हमारे लिए जीवन है। वह जीवन, जिसमें कर्म एवं ज्ञानका, सत्य एवं सुन्दरका, धर्म एवं विज्ञानका, सिद्धान्त एवं शौर्य्यका, श्रद्धा एवं युक्ति-निष्ठाका समन्वय हो। इसलिए केवल पुरातन आदर्शोंमें अविचलित अन्धश्रद्धा रखकर जीवन-यापन करनेमें न तो कोई गौरव ही है और न इस प्रकारका जीवन काम्य ही हो सकता है।

इसलिए आज हमें ठंढे दिलसे पक्षपातहीन बुद्धि लेकर उन सब कारणोंपर विचार करना होगा, जिनकी वजहसे आजका युवक-सम्प्रदाय प्राचीन आदर्शोंके प्रति वीतश्रद्ध हो रहा है। पहले धर्मको लीजिए। धर्मका स्थान प्राचीन युगमें मनुष्यके जीवनमें सर्वोपरि रहा है। सभी जातियोंके धर्मग्रन्थ धर्म एवं ईश्वरकी महिमासे भरे पड़े हैं। धर्मके नामपर परलोकमें सुख प्राप्त करने या स्वर्ग लाभ करनेकी कामनासे मनुष्यने न मालूम कितने असाध्य कार्य किए हैं। हँसते-हँसते अपने जीवनको बलिदान तक कर दिया है, अकुण्ठित चित्तसे मृत्युका आलिंगन किया है। धर्मने मनुष्यको सभ्यता एवं संस्कृतिका प्रचार करनेके लिए भीषण कान्तार, विशाल मरुभूमि, दुर्गम शैल-शिखर एवं चिर तुषाराच्छन्न प्रदेशकी यात्रा करनेके लिए अनुप्राणित किया है। धर्मके नामपर साहित्य, संगीत, कला एवं विज्ञानके श्रेष्ठ निदर्शनोंकी सृष्टि हुई है। किन्तु उसी धर्मको जब आजका युवक केवल रूढ़िवाद एवं अन्ध विश्वास तक ही परिसीमित देखता है, धर्मके नामपर अत्याचार एवं अनाचार अनीति एवं अन्याय, परधन-शोषण एवं परस्वापहरण होते देखता है, तो स्वभावतः धर्मके प्रति उसके मनमें वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है। धर्मके नामपर ही तो ईसाई पादरियोंने अफ्रीका और एशियाके अनुन्नत देशोंमें ईसाई धर्मका प्रचार किया और साथ ही साम्राज्य-वादके प्रसारका पथ भी प्रशस्त किया। धर्मके नामपर ही तो मनुष्य मनुष्यका रक्त-पिपासु बनता है और धर्म-विश्वासके नामपर मनुष्य मनुष्यके बीच भेदभावकी सृष्टि करता है। धर्म और ईश्वरका नाम बेचकर एक मनुष्य-दल अलस एवं अकर्मण्य जीवन व्यतीत करता है और फिर भी वह समाजमें समादृत एवं सम्मानित होता है। धर्मके नामपर ही स्वार्थी एवं पाखण्डी धर्मके ठेकेदारोंने लक्ष-लक्ष मनुष्योंके मनमें यह धारणा बद्धमूल कर दी है कि उनका दुःख, दारिद्र्य, दैन्य, दुर्गति उनके पूर्वजन्मकृत पापोंका परिणाम है, भगवानका दिया हुआ दण्ड है, विधिका अमिट विधान है। इसलिए शान्त एवं सहज भावसे सब कुछ सहते हुए अपने परजन्मके लिए पुण्य-संचय करना ही उनके लिए परम पुरुषार्थ है। धर्मके नामपर ही तो समाजमें आज ऐसे मनुष्योंको सब प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त हैं, जो किसी प्रकारका परिश्रम नहीं करते, समाजके लिए धनोत्पादनमें सहायक नहीं होते और सब प्रकारके भोग एवं ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होकर अलस, अकर्मण्य एवं विलासमय जीवन व्यतीत करते हैं। धर्मके नामपर ही तो प्राचीन कालसे लेकर अब तक ज्ञान-विज्ञानकी उन्नतिके मार्गमें रोड़े अटकाए गए हैं और प्रगति-पथके पथिकोंको उत्पीड़ित, लांछित एवं अपमानित किया गया है। धर्मके नामपर ही तो उस आध्यात्मिक भीरुता एवं दुर्बलताको प्रश्रय दिया गया, जिसके परिणाम-स्वरूप इस जड़वादी युगमें भारतको चिरदासता, पराधीनता, पराजय, अपमान एवं लांछना मिली और कोटि-कोटि भारतवासी जीवनके सभी क्षेत्रोंमें जड़वत् निस्पन्द एवं निष्प्राण बन गए। यह आध्यात्मिक भीरुता ही आज कोटि-कोटि मनुष्योंके हृदयमें पराधीनता, प्रबलोंके अत्याचार, लोभियोंके निष्ठुर लोभ एवं धनिकवर्गके औद्धत्य एवं आधिपत्यके विरुद्ध संग्राम करनेके लिए दुर्जय साहस एवं दुर्दमनीय प्रेरणाकी सृष्टि नहीं करती। धर्मके नामपर ही तो समाजमें, जातिके जीवनमें सभी प्रकारके अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, कुसंस्कार, गतानुगतिकता और दकियानूसी विचारोंको प्रश्रय दिया जा रहा है, जिनके कारण समाजमें प्रतिगामी शक्तियोंका प्राबल्य बना हुआ है और जातिके जीवनमें प्राणोंका चांचल्य नहीं देखा जाता। आप कहेंगे कि इन सबके लिए धर्म उत्तरदायी नहीं है, बल्कि धर्मका विकृत रूप, स्वार्थियों और पाखण्डियों द्वारा उसका दुरुपयोग। हो सकता है ऐसा ही हो, मगर वास्तव जीवनमें तो आज धर्मका यह विकृत रूप ही देखनेको मिलता है। धर्मके मौलिक सिद्धान्त भले ही चिरन्तन सत्यके रूपमें मानव-जातिके लिए कल्याणप्रद हों, किन्तु वास्तव जीवनमें तो धर्मके उन शाश्वत सिद्धान्तोंकी पग-पगपर हत्या ही हो रही है और समर्थन किया जा रहा है जाति, वर्ण, सम्प्रदाय एवं मतमतान्तरका, अन्धविश्वास, कुसंस्कार एवं रूढ़िवादका, जिनके कारण मनुष्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यके बीच साम्य एवं मैत्रीके बदले भेदभाव एवं शत्रुताकी सृष्टि एवं पुष्टि हो रही है। ऐसी स्थितिमें धर्मके प्रति आधुनिक युवकोंके मनमें यदि उपेक्षा, उदासीनता अथवा विद्रोहकी भावना उत्पन्न हो रही है, तो इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं।

ब्रह्मचर्य, संयम, विवाह-बन्धन एवं यौन-सम्बन्ध इन विषयोंको लेकर भी आधुनिक युवकोंके सामने विषम समस्या उपस्थित हो रही है। जहाँ तक ब्रह्मचर्य एवं संयमका सम्बन्ध है, भारतके प्राचीन आदर्श एवं ऋषि-मुनियोंके आप्तवाक्योंको लेकर हमारे मनमें किसी प्रकारका सन्देह ही नहीं उठता। पातंजलसे लेकर गांधीजी तक सब एक स्वरसे ब्रह्मचर्य एवं संयमकी महत्ता एवं आवश्यकता स्वीकार करते हैं। किन्तु मुश्किल तो तब होती है जब आधुनिक युवक इस सम्बन्धमें जज लिन्डसेके Revolt of Youth को, बर्नार्ड शाके Man and Superman को, इब्सनके Dolls' House को, हक्सलेके Point Counter-point को, लारेन्सके Lady Chatterley's Lover को, बटरेण्ड रसैलके Marriage and Morals को और सबसे बढ़कर मनोविश्लेषण-विज्ञानके आचार्य फ्रायडकी पुस्तकोंको पढ़ता है। इन सब लेखकोंमें भी एकके मतके साथ दूसरेके मतका सामंजस्य नहीं। पातंजलसे लेकर गांधीजी तक जितने उपदेशक हुए हैं, उन सबके लेखोंको पढ़कर एक ओर यदि आप यह विश्वास करने लगते हैं कि ब्रह्मचर्यकी साधना जीवनको सफल एवं मंगलमय बनानेके लिए सबसे बड़ी साधना है, ब्रह्मचय ही जीवन है, और ब्रह्मचर्य-साधनाकी बदौलत ही देवताओंने मृत्युपर विजय प्राप्त की थी; तो दूसरी ओर पश्चिमसे यह वाणी सुनाई पड़ती है कि ब्रह्मचर्य महज़ ढकोसला है; काम-प्रवृत्तिको बलात् रोकनेसे मन कभी स्वस्थ नहीं रह सकता और इसके फल-स्वरूप अनेक मानसिक व्याधियोंका जन्म हो सकता है। यौन-इच्छाका अवदमन करनेसे देह एवं मनको जो अस्वस्थता होती है, उसपर फ्रायडने बार-बार ज़ोर दिया है। उन्होंने कहा है कि सभ्य मानवका जीवन नाना विधि-निषेधोंकी शृंखलाओंसे शृंखलित होनेके कारण आनन्दसे बहुत परिमाणमें वंचित रह जाता है। इससे उसकी क्षति हुई है। संयमके नामपर सहस्र-सहस्र नर-नारी अपने यौन-जीवनके ऊपर समाजका जो हस्तक्षेप सहन कर रहे हैं, यह उनको चारित्रिक दुर्बलता है। मनुष्यके मनमें यौन-प्रवृत्तिका जो वेग (libido) है, उसे धारण करनेकी शक्ति सब मनुष्योंमें समान नहीं होती। यह शक्ति अधिकांश मनुष्योंमें सीमाबद्ध है। इस सीमाको अतिक्रम करनेसे मनके अस्वस्थ होनेकी आशंका रहती है। जिसको मन-प्राणसे चाहते हैं, उसे नहीं पानेपर व्यर्थताकी तीव्र अनुभूति मनको विफल कर देती है। (People fall ill of neurosis when the possibility of satisfaction for the libido is removed from them.) फ्रायडके मतवादमें यौन-प्रवृत्तिके अवदमनके घातक परिणामोंपर विशेष ज़ोर दिया गया है। केवल फ्रायड ही नहीं हक्सलेने भी कहा है: "Chastity enforced against desire is unquiet and life-destroying."—अर्थात् इच्छाके विरुद्ध ज़बर्दस्ती जो संयम किया जाता है वह जीवनके लिए अशान्तिकर एवं विनाशकारी है। हेवलाक एलिसने काम प्रवृत्तिको "The deepest and most volcanic of human impulses" कहा है। बर्टरेण्ड रसैलने कहा है—"Sex is a natural human need like food and drink."—काम-प्रवृत्ति जीवनके लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार अन्न और जल। अपनी "Marriege and Morals" पुस्तकमें उन्होंने लिखा है: "The General principle upon which the newer morality differs from the traditional morality of puritanism is this: We believe that instinct should be trained rather than thwarted."—सुनीतिके सम्बन्धमें परम्परासे जो धारणा चली आती है, उससे आधुनिक मतकी विभिन्नता यह है कि आधुनिकोंका यह विश्वास है कि काम-प्रवृत्तिका अवदमन न करके उसे सुनियंत्रित करना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज मनोविश्लेषण विज्ञानके पण्डित हमें यह शिक्षा दे रहे हैं कि आत्म-संयम आत्म-पीड़नके सिवा और कुछ नहीं है और यह मनुष्यके आत्म-प्रकाशके मार्गमें बाधक है। केवल साइको-एनेलिसिस ही नहीं, Anthropology अर्थात् मानव-विज्ञानको भी यही शिक्षा है।

विवाहके पूर्व युवक-युवती परस्पर प्रेम कर सकते हैं और दोनोंके बीच यौन-सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, इस बातकी कल्पना भी भारतीय आदर्शके अनुसार घोर निन्दनीय समझी जायगी। विवाहके पूर्व कुमार एवं कुमारीके बीच किसी प्रकारका भी यौन-सम्बन्ध भारतीय समाजमें पापकर्म समझा जाता है। किन्तु लिन्डसे साहब Revolt of youth पुस्तकमें ठीक इसके विपरीत हमें सलाह देते हैं। विवाहित जीवनको सुखमय बनानेके लिए यहाँ Love-marriage और Trial-marraige का उपदेश दिया जा रहा है। बर्टरेण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसैल भी Companionate-marriage के सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। इन महानुभावोंके मतसे कुमार एवं कुमारीके बीच यौन-सम्बन्ध दूषणीय नहीं; बल्कि विवाहके पूर्व कौमार्य जीवनमें ही यौन-सम्बन्धकी अभिज्ञता आवश्यक है। जिसको जीवन-संगिनी बनाने जा रहे हैं, उसके साथ विवाहके पूर्व यौन-सम्बन्ध सब प्रकारसे वांछनीय है। आधुनिक कालमें दम्पतिका जीवन जो सुखमय नहीं हो रहा है, इसका बहुत कुछ कारण यह है कि वे विवाहके पूर्व एक-दूसरेकी प्रकृति एवं स्वभावसे भली-भाँति परिचित नहीं हो पाते। विवाहके पूर्व प्रेमिक एवं प्रेमिका कुछ समय तक एक साथ पति-पत्नीकी तरह रहते हुए परस्पर एक-दूसरेको अच्छी तरह जाननेकी कोशिश करेंगे और इसके बाद यदि उन्हें यह अनुभव होगा कि उनका विवाहित जीवन सुखमय होगा, तब तो वे प्रणय-बन्धनमें आबद्ध होंगे, अन्यथा पृथक् हो जायँगे। बर्टरेण्ड रसैलके मतसे जब सब-कुछमें परिवर्त्तन हो रहा है, तो फिर विवाह-प्रथा ही अन्धकार-युगकी क्यों रह जाय? ("It is neither possible nor desirable that in a world where everything else is changing, marriage should remain exactly what it was in the dark ages.") बर्टरेण्ड रसैल न्यूयार्कके एक कालेजमें जब गणित-शास्त्रके अध्यापक नियुक्त होकर गए, तो उन्होंने अपने प्रथम अभिभाषणमें ही छात्रोंके सामने कह डाला: "I am sure that university-life would be better, both intellectually and morally, if most university-students had temporary childless marriages." अर्थात् मेरा यह विश्वास है कि यदि विश्वविद्यालयके अधिकांश छात्रोंको अस्थायी सन्ततिहीन विवाहका अनुभव हो जाय, तो निःसन्देह उनका जीवन बौद्धिक एवं नैतिक दृष्टिसे उत्तम होगा। अमरीकाके पादरियोंने उनके इस कथनका तीव्र प्रतिवाद किया था। इस प्रकार भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिमें जो सब आचार-विचार एवं आदर्श अत्यन्त पवित्र एवं जीवनके लिए कल्याणप्रद समझे जाते थे और आज भी समझे जा रहे हैं, उन्हींके विरुद्ध आज पश्चिमसे आघातपर आघात हो रहे हैं। नित्य नूतन वाणी, नूतन विचारधारा एवं नूतन मतवाद पुरातन आदर्शके प्रति हमारी जो श्रद्धा थी, जो विश्वास था, उसकी जड़को कमज़ोर बनाते जा रहे हैं। और पश्चिमसे जो सब मतवाद इस देशमें फैल रहे हैं, उनके प्रवर्त्तक भी कोई ऐरे-गैरे या साधारण व्यक्ति नहीं कि उनकी बातोंको अनसुनी कर दिया जाय या उनकी उपेक्षा कर दी जाय। रसैल, शा, हक्सले, वेल्स, फ्रायड, मैकडूगैल ये सबके सब आधुनिक युगके मनीषी पण्डित एवं विचार-जगत्के दिग्गज महारथी माने जाते हैं। साहित्य द्वारा तो इस प्रकारके विचारोंका अबाध रूपमें प्रचार हो ही रहा है, साथ ही सिनेमामें नारियोंके नग्न चित्र, हालिवुडकी कौपीनवती तारिकाओंके विलास-विभव एवं लास्य नृत्य, थियेटरके कामोद्दीपक नृत्य-संगीत, मासिक एवं साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओंमें कामुकतापूर्ण कहानियोंकी भरमार ये सब मिलकर यदि आधुनिक युवकोंके चित्तको विभ्रान्त बना रहे हों, तो इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

राष्ट्रके प्रति प्रेम एवं श्रद्धाका भाव आज जो रूप ग्रहण कर रहा है, वह भी आधुनिक युवकोंके लिए एक समस्या ही रहा है। स्वतः राष्ट्र-प्रेम कोई दोष नहीं कहा जा सकता—स्वदेश एवं स्वराष्ट्रके प्रति प्रेम होना स्वाभाविक ही है—किन्तु इस राष्ट्र-प्रेमका आधार जब नीच राष्ट्रनीति होता है, जिसके अनुसार एक जाति दूसरी जातिका अनिष्ट साधन करके अपनी उन्नतिका पथ प्रशस्त करती है, तो वह राष्ट्र मानव-कल्याणके लिए विघातक सिद्ध होता है। इस प्रकारकी राष्ट्रीयताका अर्थ यह होता है कि हम जिस देशमें रहते हैं, वह देश और वहाँके लोग संसारमें सर्वश्रेष्ठ हैं और एकमात्र स्वदेश एवं स्वदेशवासी ही हमारी सहानुभूति एवं समवेदनाके पात्र हो सकते हैं। हमारा देश अन्याय एवं अनीति भी करे, तो वह समर्थनीय है। इस अन्याय एवं अनीतिका समर्थन करनेमें यदि दूसरे देशकी स्वाधीनताका उसकी धन-सम्पत्तिका अपहरण भी हो, निरीह नर-नारियोंकी नृशंस हत्या भी हो, तथापि वह निन्दनीय नहीं, बल्कि गौरव करनेकी वस्तु है। जो अपने देश द्वारा किए गए अन्याय एवं अत्याचारका समर्थन नहीं करता, वह स्वदेश-द्रोही है, भीरु है। राष्ट्रीयताके सम्बन्धमें यह संकीर्ण विचार ही आज पाश्चात्य जगत्को कूटनीतिका लीलाक्षेत्र बन रहा है। यही कारण है कि यूरोपकी राष्ट्रीयता आज अन्ध देश-प्रेममें परिणत हो रही है। राष्ट्र-पूजाका यह रूप आज इतना उत्कट हो चला है कि राष्ट्र-कल्याणके नामपर व्यक्तिके सुख-दुःखकी कोई परवाह नहीं की जाती। व्यक्तिकी वाणी एवं विचारकी स्वतन्त्रताका निर्लज्ज रूपमें अपहरण किया जाता है और राष्ट्रीयताके नामपर व्यक्तिके जन्मसिद्ध अधिकारोंको खर्व किया जाता है।

राष्ट्रीयता या जातीयताका आदर्श होना चाहिए स्वराज-स्थापना। स्वराज-स्थापना करके व्यक्तिका स्वराष्ट्रमें कर्त्तव्य एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार निर्धारित करके, जातिके वृहत्तर आदर्शकी ओर अग्रसर होना उचित है। व्यक्ति-समाज-जाति-विश्व-मानवका एक डगसे दूसरे डगकी ओर बढ़ना ही आदर्श कहा जा सकता है। व्यक्तिगत जीवनसे सामाजिक जीवन, सामाजिक जीवनसे जातीय जीवन—यही उन्नतिका सोपान है। जातीयतासे सार्वजनीनताकी ओर अग्रसर होना चाहिए। किन्तु एकमात्र रूसको छोड़कर और किसी भी देशकी राष्ट्रीयतामें यह बात नहीं देखी जाती। और सब देशोंकी राष्ट्रीयताका आदर्श है निकृष्ट जातीयता। यह जातीयता निन्तान्त स्वार्थपर एवं आत्म-सर्वस्व है। यही कारण है कि आज यह राष्ट्रीय आदर्श सर्वतोमुखी एवं सर्वशक्तिमान् बनकर जनताके स्वातंत्र्यको अनेक रूपोंमें खर्व कर रहा है। इसी राष्ट्रीयताके प्रतिवादमें आज रोम्याँ रोलाँ, रसैल, शा, वेल्स और गाँधी विद्रोहकी वाणी उद्घोषित कर रहे हैं और आधुनिक युवक-समाज उनसे अनुप्राणित हो रहा है

राष्ट्रीय जीवनमें यूरोपका प्रजातन्त्र अब तक व्यक्तिवाद एवं प्रतियोगिताकी ही पूजा करता आ रहा था। समाजकी उन्नति व्यक्तिकी प्रतियोगिताके ऊपर ही निर्भर करती है। परिस्थितियोंके साथ घात-प्रतिघातके फल-स्वरूप प्रतियोगी जातियोंमें जो सक्षम होती हैं, वे ही संसारमें अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकती हैं। (The progress of Society depends upon the intensity of rivalry and Compti-tion.) बेंजमिन किड (Benjamin kidd) ने तो प्रत्यक्ष रूपमें प्रतियोगिताको ही जीव-जगत्में उन्नतिका एकमात्र सोपान मान लिया है। (All progess from the beginning of life has been the result of the most strenuous and imperative conditions of rivalry and selection. Without this struggle degradation must set in.) एक समय यूरोपके सभी दार्शनिक एक स्वरसे इस मतका प्रतिपादन कर रहे थे कि प्रतियोगिताके द्वारा ही समाजमें सक्षमको जय-लाभ होगा और अक्षमका विनाश होगा। जिस समाजमें प्रतियोगिता नहीं होगी, वहाँ अक्षम सक्षमसे उसके न्याय्य अधिकारमें भाग ग्रहण करेगा। इससे सक्षम दुर्बल होगा। अन्ततः सारा समाज अन्य देशोंके समाजके साथ जीवन-संग्रामकी प्रतियोगितामें पीछे हट जायगा। इसलिए समाजके भीतर और बाहर प्रतियोगिता ही उन्नतिका एकमात्र मार्ग है। "नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।"

किन्तु राष्ट्रीय जीवनमें इस व्यक्ति-पूजा एवं प्रतियोगिताके महामन्त्रकी साधना समाजके लिए अत्यन्त अनिष्टजनक सिद्ध हुई और इसका परिणाम भी भीषण हुआ। प्रतियोगिताके फल-स्वरूप अनैक्य और उसका परिणाम स्वेच्छाचार-प्रभूत धनोपार्जन करके मुट्ठीभर लोग समाजमें सर्वेसर्वा बन गए हैं। उच्छृंखल बनकर राष्ट्रीय शासनका सूत्र ये ही लोग संचालित कर रहे हैं। असंख्य श्रमजीवी अन्न एवं वस्त्रके अभावमें पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ज्ञान-विज्ञानके प्रकाशसे, आधुनिक जीवनकी सुख-सुविधाओंसे, वे सर्वथा वंचित रह जाते हैं। उनमें न कोई व्यक्तित्व होता है और न मनुष्यत्व। वे आजीवन उन मुट्ठीभर धनकुबेरोंकी छाया-तुल्य बने रहते हैं। राष्ट्र एवं समाजको, शान्ति एवं व्यवस्थाको अक्षुण्ण रखना ही उनका परम कर्त्तव्य हो जाता है। राष्ट्र एवं समाजमें उनके अस्तित्वका कोई मूल्य ही नहीं होता। गणतन्त्र, स्वाधीनता एवं साम्यके आदर्श उनके जीवनमें कभी भी सत्य-रूपमें परिणत नहीं होते। मुक्ति एवं आनन्दके ऊपर, राष्ट्रकी सम्पत्तिके ऊपर उनका कोई अधिकार नहीं होता। अध्यापक हेराल्ड लास्कीने आधुनिक समाज एवं राष्ट्र-व्यवस्थाका चित्रांकण करते हुए ठीक ही लिखा है : "It has subordinated to the acquisitive impulse whatever spirit there is of service and creativeness in those who are subject to its dominion."—अर्थात् इस व्यवस्थाने सेवा एवं सृष्टि करनेकी प्रवृत्तिको गौण बना दिया है और संचय करनेकी प्रवृत्तिको प्रधानता प्रदान की है।

किन्तु इस राष्ट्र-व्यवस्था एवं समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध आज समस्त संसारके चिन्तनशील विद्वान विद्रोहकी वाणी उच्चरित कर रहे हैं। वे प्रतियोगिताके कारण समाजका जो अनर्थक शक्तिव्यय हो रहा है, उसका निवारण करना चाहते हैं और जो समाज-विरुद्ध व्यक्तिवाद अब तक प्रतियोगिताके परिणाम-स्वरूप समाज-बन्धनको शिथिल करता आ रहा है, उसके बदलेमें सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकासका पथ मुक्त करना चाहते हैं। उनका कथन है कि प्रतियोगिता नहीं सहयोगिता ही समाजकी उन्नतिका एकमात्र उपाय है। समाजकी आभ्यन्तरीन प्रतियोगिता कम हो जानेपर समाजकी शक्तिमें वृद्धि होगी और जीवन-संग्रामकी प्रतियोगितामें उसके लिए और भी सुविधाएँ होंगी।

इसलिए वर्त्तमान युगके कण्ठसे आज यह वाणी उद्घोषित हो रही है कि वर्त्तमान समाज-व्यवस्थाको भंग करके उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिताभस्मपर नूतन समाज-व्यवस्थाकी नींव डालनी होगी। इस समाज-व्यवस्थामें सम्पत्तिके ऊपर व्यक्ति-विशेषका अधिकार नहीं होगा। जो लोग समाजके लिए धनोत्पादन करते हैं, उनका सम्पत्तिपर अधिकार होगा। भूमि, खान, प्रधान-प्रधान व्यवसाय-वाणिज्य तथा कल-कारखाने राष्ट्रकी सम्पत्ति समझे जायँगे और राष्ट्रका उद्देश्य मुट्ठीभर लोगोंका कल्याण नहीं, समग्र समाजका कल्याण होगा। मनुष्यके साथ मनुष्यका जब तक धनगत वैषम्य बना रहेगा, तब तक कोटि-कोटि मनुष्योंके लिए समाजमें न्याय, साम्य एवं स्वाधीनताका कोई अर्थ नहीं होगा। लेनिन और गांधी, स्तालिन और जवाहरलाल सबके सब आज इसी कल्याणपथका निर्देश कर रहे हैं और देशका तरुण-समाज आज अपने जीवनमें इसी आदर्शको ध्रुवतारा बनाकर प्रगति-पथका पथिक हो रहा है। वह एक नूतन समाज एवं राष्ट्र-व्यवस्थाकी सृष्टि करना चाहता है, जिसके लिए उसकी जय-यात्रा आरम्भ हो चुकी है।

आधुनिक सभ्यताके आशीर्वादोंमें भौतिक विज्ञानकी बड़ी महिमा है। मनुष्य-जातिने बड़ी-बड़ी आशाओंको लेकर विज्ञान देवताके चरणोंमें अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की थीं। उसने इस विश्वासके साथ इस देवताकी आराधना आरम्भ की थी कि इसकी बदौलत उसके सुख-स्वाच्छन्द्यमें वृद्धि होगी, जीवनमें उसे अधिक सुयोग एवं अवकाश मिलेंगे, जिससे उसके जीवनकी महिमा एवं सार्थकता बहुत कुछ बढ़ जायगी। मनुष्य सत्य एवं सुन्दरकी सेवामें अपनेको अधिक संलग्न कर सकेगा और इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृतिके प्रसारमें सहायता पहुँचेगी। किन्तु आज वही भौतिक विज्ञान जब दुःख, विपत्ति एवं सर्वनाशका वाहन बनकर मानव-जातिको ध्वंसकी ओर ले जानेपर तुला हुआ है और सारी पृथिवीको कसाईखानेके रूपमें परिणत कर रहा है, उस समय स्वभावतः कितने ही मनीषियोंके मनमें यह प्रश्न उठने लगा है कि विज्ञानने कल्याणकी तुलनामें मनुष्यका अकल्याण भी कम नहीं किया है। (Scince, always fostered as the benefactress of man, has become the hand-maid of destruction. With the help of secrets won from nature by devoted minds, men are making the earth into a shambles.) मनुष्यके आनन्दमें, उसकी सुख-सुविधाओंमें वृद्धि करनेकी तुलनामें विज्ञानने विध्वंसका कार्य कितनी कुशलतासे किया है, यह बरनार्ड शाके शब्दोंमें सुनिए :—

"In the arts of life man invents nothing; but in the arts of death, he outdoes Nature herself, and produces by chemistry and machinery all the slaughter of plague, pestilence and famine."—अर्थात् जीवन धारण करनेकी कलामें मनुष्यने कुछ भी आविष्कार नहीं किया है; परन्तु विनाश-साधनकी कलामें वह प्रकृतिकी ध्वंसलीलाको भी मात कर रहा है। रसायन और यन्त्रों द्वारा वह संक्रामक रोग, महामारी और दुर्भिक्ष-जनित समस्त महानाशोंकी सृष्टि कर रहा है। इसीलिए इस विज्ञान उपदेवता—यन्त्र-दानव—की अतिपूजाके विरुद्ध गांधी और रवीन्द्रनाथ हमें सावधान-वाणी सुना रहे हैं। जिस दिन राष्ट्र एवं समाज श्रेणी-शोषणसे वस्तुतः मुक्त होंगे, उसी दिन विज्ञान राष्ट्रकी सेवामें अपनेको सम्पूर्ण रूपसे नियोजित कर सकेगा और तभी विज्ञानका आशीर्वाद देशके प्रत्येक नर-नारीके गृहमें सुख-समृद्धि एवं आनन्दकी स्थापना करेगा।

जो सब पुरातन आदर्श, जीर्ण आचार-विचार मनुष्यके जीवनको पंगु बना रहे हैं, जिनकी अब कोई उपयोगिता या सार्थकता नहीं रह गई है, जो हमारे जीवनकी प्रगतिमें बाधक हो रहे हैं, उनके विरुद्ध तो अभियान करना ही होगा। उनके अचलतायतनको धूलिसात् कर देना होगा। किन्तु इसके लिए चाहिए विवेक बुद्धि, चटुला बुद्धि नहीं। पुरातन होनेसे ही कोई वस्तु अशुभ नहीं हो जाती। केवल पुरातन होनेके कारण किसी आदर्शके मूलमें कुठाराघात करना पौरुषका परिचायक नहीं है। किसी जातिके ज्ञान-भाण्डारमें पुरुष वंशानुक्रमसे जो अनुभव संचित होते रहे हैं, उनके फल-स्वरूप ही सामाजिक आचार-विचार एवं नीतिके विधि-निषेध निर्धारित होते हैं। इसलिए उनपर कुठाराघात करते समय हमें यह भी देखना होगा कि पौरुषके नामपर हम कोरी वाहवाही या उच्छृङ्खलताका ही परिचय तो नहीं दे रहे हैं। पश्चिमसे जो सब नित-नूतन मतवाद या सिद्धान्त इस देशमें प्रचारित हो रहे हैं, वे ही एकमात्र सत्य हों और हमारी गीता, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथोंकी शिक्षाओंका कोई मूल्य या महत्व नहीं रह गया हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्य विद्वानोंके लेखोंका मूल्य है अवश्य, किन्तु परानुकरण-प्रवृत्तिके नामपर उनका अन्धानुकरण करना अल्पबुद्धिका परिचायक है। कहा गया है 'अल्पविद्या भयंकरी' (Little knowledge is a dangerous thing)। इसलिए "साइको-ऐनेलसिस" और "ऐनथ्रपलजी"की दो-चार पुस्तकोंको पढ़कर यह दम्भ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साज़िश

श्री धर्मवीर, एम० ए०

[घरमें अध्ययनका कमरा, जिसकी लम्बाई २० और चौड़ाई १५ फ़ीट है। कमरेके दाएँ, बाएँ और पीछे एक-एक दरवाज़ा है। सामने अँगीठीपर भगवान कृष्णकी हाथसे बनी तस्वीर फ्रेममें जड़ी रखी है। चित्रके दोनों तरफ़ हाथी-दाँतके बने जयपुरी हाथी हैं। पुस्तकोंसे भरी चार आल्मारियाँ दीवारोंके साथ खड़ी हैं। बाईं तरफ़की दीवारपर संसारका एक बड़ा मानचित्र लटक रहा है। कमरेके बीचमें एक गोल मेज़ है। दाईं तरफ़ कोनेमें एक तिपाई है। मेज़पर फूलदानमें फूल धरे हैं। छतसे बिजलीका पँखा लटक रहा है। दीवारोंका रंग हल्का अँगूरी है। परदे भी उसी रंगके हैं। कमरेकी दाईं तरफ़ ग़ुसलखाना और बाईं तरफ़ ड्राइंग-रूम है। ग़ुसलखानेवाला दरवाज़ा बन्द है। ड्राइंग-रूम-वाला दरवाज़ा रेशमी परदेके पीछे है। गरमीका मौसम है। समय—सायंकाल साढ़े पाँच बजेके लगभग। पात्र—राय-बहादुर चिरंजीलाल, सुपरिंटेंडिंग-इंजीनियर, उम्र ६४ बरस, क़द छोटा, रंग साँवला, चश्मा लगाए, मलमलका कुरता और बारीक धोती पहने। रायबहादुर चिरंजीलालकी स्त्री रामदेई, उम्र ६२ वर्ष, चेहरेपर बहुत ज़्यादा झुर्रियाँ, उम्रसे ज़्यादा बुड्ढी मालूम देती है। दोनों कमरेके दर्मियान पड़ी मेज़के गिर्द कुर्सियोंपर बैठे हैं। बिजलीका पंखा चल रहा है।]

चिरंजीलाल—कल ओले पड़ जानेसे आज इतनी गरमी नहीं है। अगर पंखा न भी चल रहा हो, तो भी गरमी मालूम न दे।

रामदेई—अब पंखा बन्द न कर दीजिए।

चिरंजीलाल—अरे भई, तुम्हें यह डर कैसे पैदा हो गया? (ज़रा ठहरकर) पता नहीं, वे अभी तक क्यों नहीं आए। हाँ, मिठाई और फल तो देख लिए थे न?

रामदेई—मेरी आँखोंके सामने नथुआने परोसे थे।

(४३ बरसका नौकर नथुआ प्रवेश करता है। उसका सिर नंगा है। नीचे लाँगवाली धोती और ऊपर कुरता है।)

चि०—क्यों नथुआ?

नथुआ—महाराज, वे आ गए। बाबू दुर्गादासजीके साथ उनकी माता भी हैं।

चि० (रामदेईकी ओर देखकर)—चलो, उनको यहाँ ले आवें।

(दोनों उठ बैठे। रायबहादुर तो जल्दी-जल्दी कमरेसे बाहर हो गए। रामदेई बहुत ही धीरे चलने लगी। नथुआ, जो एक तरफ़ खड़ा था, दोनोंके पीछे हो लिया। दो मिनटके बाद रायबहादुरके साथ ड्राइंग-रूमकी तरफ़से ३१ बरसका एक अप-टू-डेट फ़ैशनेबल जेंटिलमैन प्रविष्ट होता है। साथ ही

होना चाहिए कि जो-कुछ सत्य है, वह वहीं तक परिसीमित है। ये सब विद्याएँ भी अभी सत्यके प्रयोगको लेकर ही चल रही हैं। इनके सिद्धान्तोंमें भी परिवर्त्तन हो रहे हैं। एक ही मतवादके प्रतिपादक विभिन्न आचार्य भी परस्पर सहमत नहीं हैं। फ्रायड, एडलर और युंग तीनों ही मनोविश्लेषण-विज्ञानके पण्डित होनेपर भी भिन्न-भिन्न मत पोषण करते हैं। ऐसी स्थितिमें किसके कथनको आप्तवाक्य माना जाय?

असल बात यह है कि प्राचीनमें न तो एकबारगी सत्य ही है, और न एकबारगी मिथ्या ही है। उसी प्रकार नवीनमें भी सत्य एवं मिथ्या दोनोंका समावेश है। सत्य एवं सुन्दर किसी देश-विशेषकी बपौती नहीं। उनपर सब देशोंका, सब कालमें समान अधिकार है। इसलिए जिस प्रकार अतीतसे सत्य एवं सुन्दरको ग्रहण करना होगा, उसी प्रकार वर्त्तमानसे भी। दोनोंके लिए हृदयका द्वार खुला रखना होगा। अतीतमें जिस प्रकार प्राच्य सभ्यता एवं संस्कृतिने मनुष्यका कल्याण किया है, उसी प्रकार वर्त्तमानमें पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृतिने भी मनुष्यको बहुत कुछ महिमा-मण्डित किया है। दोनोंके ही अवदान मानव-जातिके लिए श्रेष्ठ सम्पत्ति-स्वरूप हैं। भारत एक ओर यदि गीताकी अमरवाणीका परित्याग नहीं कर सकता, तो दूसरी ओर वह साम्य-मन्त्रके उद्गाता मार्क्स और लेनिनकी भी उपेक्षा नहीं कर सकता। आइन्सटाइन और बर्गसाँ, गांधी और अरविन्द सब उसके लिए समान रूपसे मान्य हैं। धर्म एवं विज्ञानका, ज्ञान एवं कर्मका, भोग एवं त्यागका, ऐश्वर्य एवं अनासक्तिका, अधिकार एवं कर्त्तव्यका समन्वय ही नूतन भारतवर्षकी साधना होनी चाहिए। भारत अपने राष्ट्रीय जीवनके इस संकट-कालमें ऐसे ही नेता एवं पथ-प्रदर्शकी अपेक्षा कर रहा है, जो सत्य एवं ज्ञानकी आलोकवर्त्तिका हाथमें लेकर अपनी तेजोमयी वाणीसे तरुण-सम्प्रदायके हृदयको अनुप्राणित करता हुआ, उसे विभिन्न मतवादोंके भूलभुलैयासे निकालकर, कल्याणका सन्मार्ग प्रदर्शित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६५ बरसकी अप-टू-डेट स्त्री निहालदेवी भी है। उसके कानोंमें टाप्स और शरीरपर सरदई रेशमी साड़ी है। थोड़ी देरमें रामदेई घिसटती-घिसटती पहुँचती है।)

चि० (नवयुवकसे)—बैठिए मिस्टर दुर्गादास। (निहालदेवीसे) बैठिए बहनजी।

नि०—आप भी बैठिए। (रामदेईसे) बहनजी, आप इधर आइए। (रामदेई पास आकर कुर्सीपर बैठ जाती है।)

चि०—आपको बहुत कष्ट हुआ। इस गरमीमें आना पड़ा।

नि०—नहीं, आज तो गरमी है ही नहीं। कल ओलोंने तो हद ही कर दी।

चि०—अचानक ही पड़ गए। (दुर्गादाससे) इंग्लैण्डमें तो इतनी गरमी न पड़ती होगी? आप कितने बरस रहे थे वहाँ?

दुर्गादास—जुलाईमें वहाँ गरमी होती है; लेकिन यहाँकी गरमीका मुक़ाबला कौन कर सकता है? चार बरसमें मैंने वहाँ ऐसी गरमी कभी नहीं देखी।

नि०—आपको लाहौरसे यहाँ आनेमें तकलीफ़ तो बहुत हुई होगी।

चि०—नहीं, तकलीफ़ कैसी? हमको तो बल्कि इस बातका अफ़सोस है कि हम पिछले हफ़्ते न आ सके, जब कि हमने आपको लिख भी दिया था।

नि०—अजी अफ़सोस तो हमें है कि आपको लाहौरसे अमृतसर बुलाकर इतनी तकलीफ़ दी। आजकल रेलका सफ़र कोई मामूली बात थोड़े ही है। खासकर बहनजीको तो···

रामदेई (बनावटी हँसी हँसकर)—लेकिन और किया ही क्या जा सकता था, जब दुर्गादासजीका हुक्म ठहरा। नहीं तो हमने यही समझ रखा था कि जब कभी दुर्गादासजी लाहौर आयँगे, तभी हम इनके दर्शन कर लेंगे।

नि०—अच्छा, तो रेखा कहाँ है?

चि०—अभी-अभी तो यहीं थी। (ज़रा ऊँची आवाज़से) रेखा!

(बाहरसे जवाब)—'आई, पिताजी!' इसके साथ ही पिछले दरवाज़ेसे एक युवती प्रवेश करती है। आयु २१ बरस, सुन्दर, किसी प्रकारका कोई गहना न पहने हुए, साड़ीको सिरपर सँभालनेके बाद हाथ जोड़कर धीरेसे 'नमस्ते' कहती है।)

नि०—आओ बेटी, इधर, मेरे पास आओ।

(युवती निहालदेवीके पास जाती है। निहालदेवी उसे अपने साथकी कुर्सीपर बिठाती है और पीठपर हाथ फेरती है।)

चि०—बेटी, इनके लिए पानी वग़ैरा मँगवाओ न।

(रेखा उठकर जाती है।)

नि०—रेखाजीने बी० ए० कब पास किया था?

चि०—पिछले साल।

(रेखा मिठाईकी और नथुआ फलकी प्लेट उठाए प्रवेश करता है। दोनों धीरेसे उनको मेज़पर रखते हैं। नथुआ वापस चला जाता है। रेखा अपनी जगह बैठ जाती है।)

चि०—बेटी, पहले पानीके लिए कह दो; गरमी है।

रेखा—पिताजी, नथुआ अभी आध मिनटमें पानी लाता है।

नि०—बेटी, मेरे लिए पानीमें बर्फ़ न डालना।

रेखा—बर्फ़में लगा हुआ शरबत है। वह तो कोई नुक़सान नहीं करेगा।

(कमरेके बाहर दूर सड़कपर कुछ शोर होता है। ऐसा मालूम देता है, जैसे कोई जुलूस निकल रहा हो। एक नारा लगता है—'नारी अमर रहे!' फिर आवाज़ आती है—'रेखा, बाहर आ जाओ!' रायबहादुर घबराहटके साथ अपनी जगहसे उठकर दरवाज़े तक जाते हैं।)

रेखा—पिताजी, आप ठहरिए। मैं देखती हूँ। (बाहर जाती है।)

(शोर कम पड़ जाता है। इसलिए रायबाहादुर दरवाज़ा बन्द करके फिर अपनी कुर्सीपर आ बैठते हैं।)

दु०—रायबहादुर, एक बात तो बताइए।

चि०—फ़रमाइए।

दु०—क्या इस बँगलेपर पुलिसकी नज़र है?

चि०—यह कैसे हो सकता है? मेरे मेहमानदार लाला शिब्बूमल रायसाहब हैं। किसी राजनीतिक आन्दोलनसे उनका दूरका भी वास्ता नहीं। और भी कोई ऐसी-वैसी बात इनसे नहीं हो सकती। लेकिन आपको यह शक कैसे पैदा हुआ?

दु०—अभी-अभी जब हम इधर आ रहे थे, तो ऐसा मालूम दिया, जैसे रास्तेमें कई आँखें हमें बड़े ध्यानसे देख रही हों। फिर बँगलेके बाहर ५-६ लड़कियाँ टहलती हुई दिखाई दीं···

चि०—माफ़ कीजिए, कैसी लड़कियाँ थीं वे?

दु०—पढ़ी-लिखी मालूम देती थीं। काफ़ी होशियार, क्योंकि उन्होंने अपनी किसी बातसे हमारे अन्दर उस समय कोई शक न पैदा होने दिया। अब जब कि बाहर शोर हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

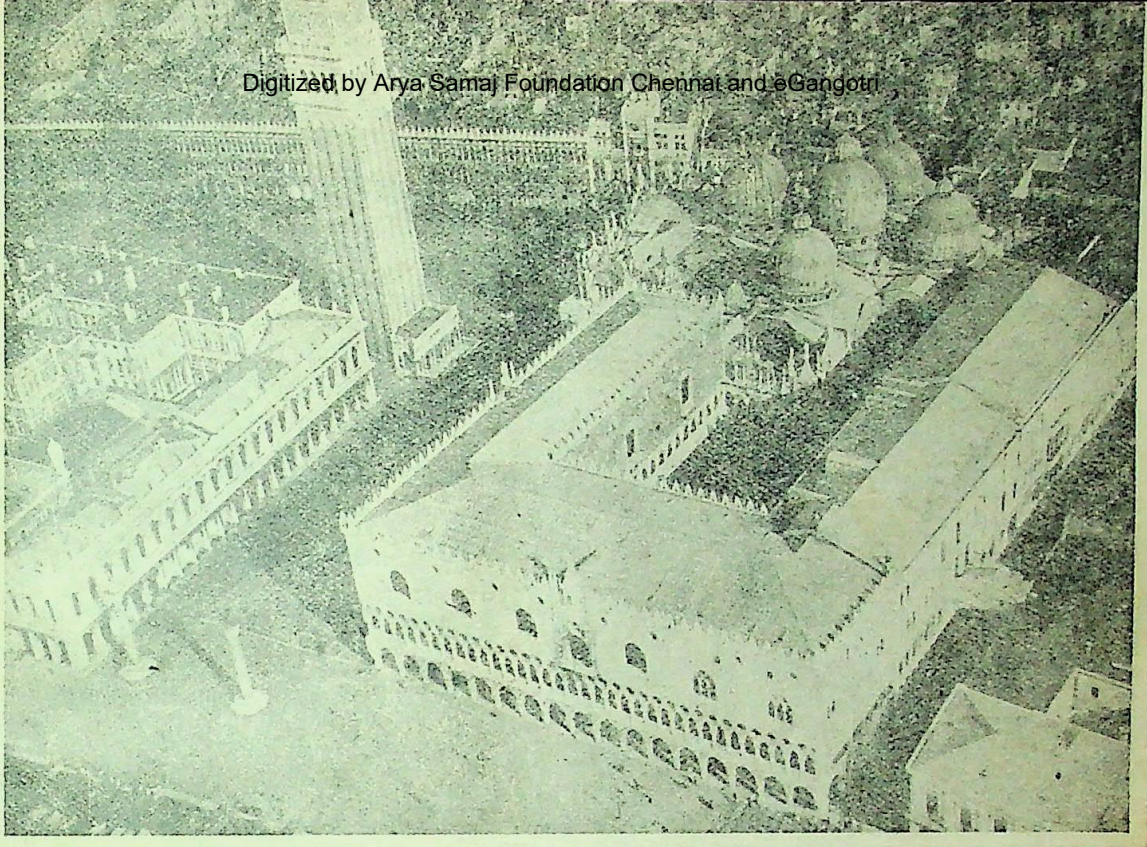

वेनिस (इटली) का सौन्दर्य-केन्द्र—सन्त मार्कोका विशाल गिरजा।

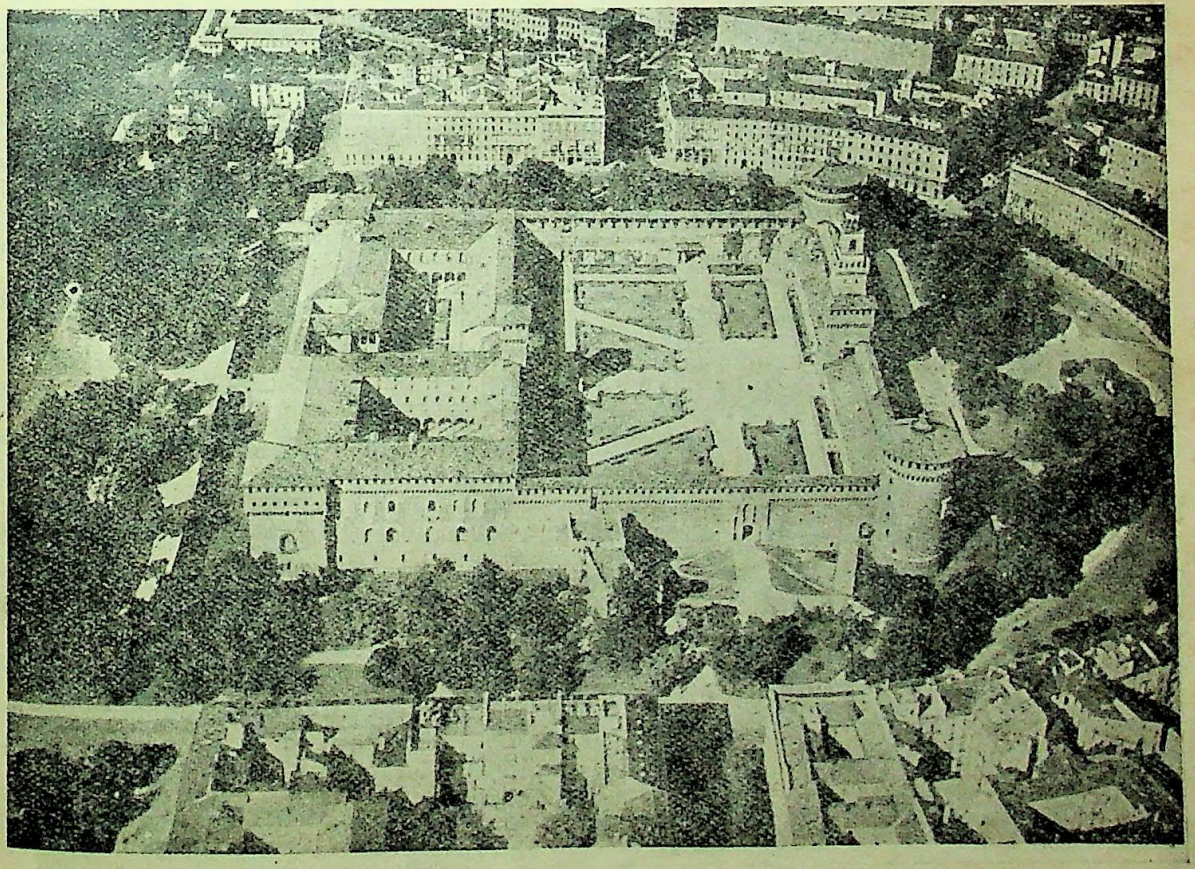

मिलान (इटली) का प्रसिद्ध स्फ़ोरज़ाका ऐतिहासिक क़िला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

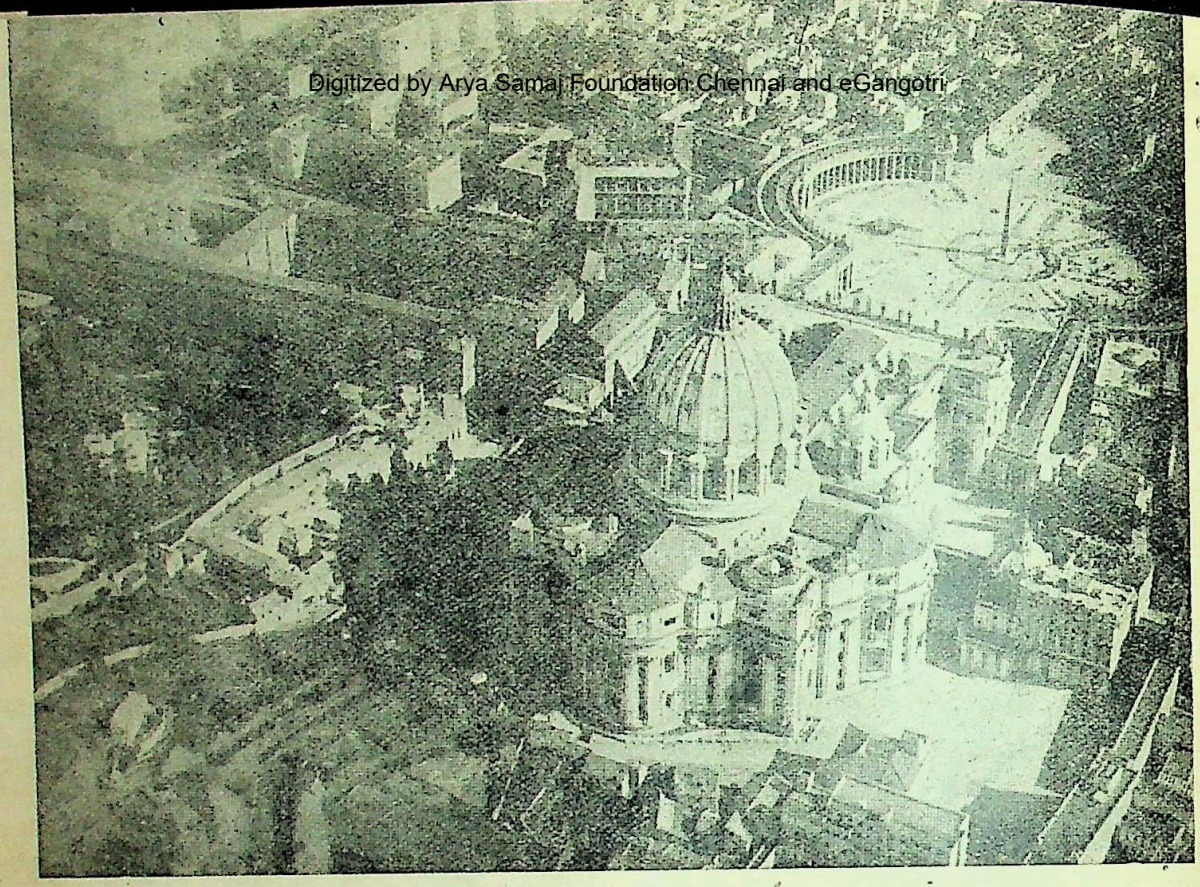

रोमका सन्त पीटरका विशाल गिरजा और पोपका 'होली-सी' नगर ।

स्वेडनके पत्रकारोंका एक दल बमबाजीसे नष्ट हुई लन्दनकी एक बस्तीका निरीक्षण कर रहा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है और अजीब क़िस्मके नारे लग रहे हैं, तो मुझे ख्याल पैदा हुआ है कि कहीं वे लड़कियाँ...

चि०—नहीं, नहीं, मेरा विचार है कि वे लड़कियाँ मेरे मित्र, रायसाहब शिब्बूमलकी लड़की और मनोरमाकी सहेलियाँ होंगी। कल भी शायको यहाँ कईएक लड़कियाँ जमा थीं। शायद किसी नाटकका रिहर्सल हो रहा था।

दु०—नाटकका रिहर्सल!

चि०—हाँ, मैंने पूछा भी; लेकिन उन्होंने कुछ ठीक-ठीक बताया नहीं, बातों ही बातोंमें टाल दिया। लड़कियाँ शर्मीली हुआ करती हैं। मैं भी चुप हो गया कि बच्चियाँ हैं। दिल बहलानेके लिए खुद ही कोई खेल-तमाशा कर रही हैं। आखिर खेल-कूदकी यही तो उम्र है।

दु०—क्या आपकी लड़की भी नाटकमें पार्ट करना जानती है?

चि०—लाहौरमें तो इसने शायद कभी किया नहीं। कालेजमें करती रही हो, तो मुझे मालूम नहीं। हाँ, परसों जब हम यहाँ, अमृतसर, पहुंचे, तो थोड़ी ही देरके बाद मनोरमाकी बहुत-सी सहेलियोंने नाटकके लिए रेखाको घेर लिया और सम्भवतः पार्टीके लिए १०) रु० भी लिए। एक बात मेरी समझमें नहीं आई। रेखाके साथ वे सब पता नहीं किस तरह इतनी जल्दी हिल-मिल गईं। ऐसा मालूम होता है कि दुनियादारीमें अभी तक न पड़नेसे रस्मी बातोंकी तरफ़ इनका ध्यान नहीं जाता। खैर, छोड़िए इन बातोंको; अब यह बताइए कि आपकी राय क्या है?

नि०—ऐसी देवीके बारेमें, खासकर जब कि यह आप-जैसे राजाकी लड़की है, कोई दूसरी राय हो ही कैसे सकती है?

रामदेई—आप ऐसा कहकर हमें शर्मिन्दा न करें। (थोड़ी देरके बाद) लेकिन बाबू दुर्गादासने तो कुछ कहा ही नहीं।

दु०—माताजीने जो कहा है, वह ठीक है। उनकी रायको मेरी राय ही समझिए।

चि०—इसका मतलब यह है कि रिश्ता हो जाना चाहिए?

नि०—आपका कहना हमारे लिए आज्ञाके बराबर है। जैसा आप कह रहे हैं, वैसा ही होगा।

(ड्राइंग-रूमके आगेसे परदा हटाकर रेखा प्रवेश करती है।)

रेखा—जैसा आप कह रहे हैं, वैसा नहीं होगा!

(रामदेई घबराहटके कारण आँखोंकी सफ़ेदी निकाल और मुँह खोल लेती है।)

चि० (घबराकर)—रेखा! क्यों बेटी, क्या हो गया है तुम्हें? बावली, कभी ऐसी बातें भी मुँहसे निकाली जाती हैं?

रेखा—पिताजी, क्षमा कीजिए। आप ज़रा ठहर जाइए। यह मामला मुझसे सम्बन्ध रखता है, इसलिए मुझे भी तो कुछ कहने दीजिए।

चि०—बेटी, तुम यह क्या कह रही हो? यह काम क्या हम तुम्हारी खातिर नहीं कर रहे?

रेखा—पिताजी, आपको कई बातोंका पता नहीं है।

रामदेई—कई बातोंका! किन बातोंका, बेटी?

रेखा—माताजी, मेरे-जैसी कितनी ही लड़कियोंसे बहुत ही बुरा सलूक हुआ है।

चि०—तुम क्या कह रही हो? कौन-सी लड़कियाँ? बदसलूकी कैसी? बेटी, हमारे लिए तो यह सब पहेलियाँ हैं।

रामदेई—कौन-सी लड़कियाँ?

रेखा (आगे बढ़कर, माता-पितासे)—आप बाहर चलिए, बड़े कमरेमें। (दुर्गादास और निहालदेवीसे) आपको कष्ट न हो, तो आप भी इधर तशरीफ़ ले आइए।

(सभी ड्राइंग-रूममें प्रवेश करते हैं। वहाँ कई नौजवान लड़कियाँ गोल घेरा बनाकर कुर्सियोंपर बैठी हैं। दुर्गादास, निहालदेवी, रायबहादुर और रामदेई घबरा जाते हैं।)

रेखा (माता-पितासे)—देखिए, आपसे मैं इनका परिचय करवाती हूँ। ये खुद ही आपको बतायेंगी कि इनके साथ मि० दुर्गादास और इनकी माताने कैसा व्यवहार किया है। (लड़कियोंसे) अच्छा, आप ही एक-एक करके अपना-अपना नाम, घराना और शिक्षा बतातीं जाइए। लेकिन यह बात बताना मत भूलिए कि इन सज्जन दुर्गादासने आपके साथ कैसा व्यवहार किया है।

(पहली कुर्सीपर बैठी लड़की खड़ी हो जाती है।)

मेरा नाम चन्द्रप्रभा है। मेरे पिता ऐडवोकेट हैं। मैं बी० ए०, बी० टी० हूँ। मुझे ये माँ-बेटा देख चुके हैं। इनको शिकायत है कि मैं बी० टी० क्यों हूँ? दुर्गादास फ़रमाते हैं कि मुझे लड़कोंको पढ़ानेके लिए कोई स्कूल तो नहीं खोलना है।

(दूसरी लड़की खड़ी होती है।)

मेरा नाम है मोहिनी। मेरे पिता ठीकेदार हैं। मैं एफ़० ए० पास हूँ। मुझे भी ये दोनों देखने आए थे। मैं इनको इस कारण पसन्द नहीं आई कि मैं चश्मा लगाती हूँ।

(तीसरी लड़की खड़ी होती है।)

मैं हूँ ललिता। मेरे पिता इंजीनियर हैं। मैं बी०ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ। मेरी कमर मोटी है, यह मेरा क़सूर है।

(चौथी लड़की खड़ी होती है।)

मेरा नाम है सुवर्णलता। मेरे पिता कमिश्नरके दफ़्तरमें हेड-असिस्टेंट हैं। मैंने पिछले साल एम० ए० किया था। पिता अमीर नहीं हैं, यही मेरा दोष है।

(पाँचवीं लड़की खड़ी होती है।)

मैं सुवीरादेवी हूँ। मेरे पिता एकाउण्टेंट-जनरलके दफ़्तरमें हेड-क्लर्क हैं। मैं बी०ए० (आनर्स) हूँ। इसी कारण मेरे विरुद्ध फैसला दिया गया।

(छठी लड़की खड़ी होती है।)

मेरा नाम है कान्ता। मेरे बाप असेंम्बलीके मेम्बर हैं। मैं आयुर्वेदाचार्या हूँ। मेरी माता इनको बहुत बूढ़ी नज़र आईं।

(सातवीं लड़की खड़ी होती है।)

आप हँसिएगा नहीं, मेरा सही नाम है मधुबाला। मेरे पिताजी वैद्य हैं। मैं बी० एस्-सी० हूँ। छः बहनें कुँआरी क्यों हैं—यही मेरे खिलाफ़ इल्ज़ाम है!

(आठवीं लड़की खड़ी होती है।)

रेखा (लड़कीसे)—ठहरिए। (अपने पितासे) पिताजी, अब आप ही कहिए कि क्या कोई सज्जन ऐसी बातें कर सकता है? क्या भले घरोंकी लड़कियोंके साथ कोई आदमी ऐसा व्यवहार करनेका साहस कर सकता है? फिर इस बातकी क्या गारण्टी है कि मुझसे भी ऐसा ही व्यवहार नहीं होगा?

चि०—इन लड़कियोंको यह कैसे मालूम हो गया कि मिस्टर दुर्गादासको इनके खिलाफ़ कोई शिकायत है?

रेखा (उत्तर देनेके लिए खड़ी ललिता, स्वर्णलता और मधुबालाको रोककर)—आप ठहर जाइए। (पितासे) आप यह क्यों पूछते हैं कि इनको यह कैसे मालूम हो गया? मि० दुर्गादास और इनकी माताजीसे पूछिए कि इनमें से हरएकके खिलाफ़ इनको कोई-न-कोई शिकायत थी या नहीं?

चि०—तो क्या तुम्हारा मतलब यह है कि मि० दुर्गादास और इनकी माता इन सभी देवियोंको सचमुच ही देख चुके हैं?

रेखा—इसका जवाब इन लड़कियोंसे माँगनेके बजाय उचित आदमीसे माँगिए।

दु०—मुझे अफ़सोस है कि मैं इस सवालका जवाब देनेके लिए यहाँ नहीं आया।

रेखा—मुझे भी अफ़सोस है कि इन बहनोंके अपमानको मैं अपना अपमान समझती हूँ।

दु०—इसका मतलब?

रेखा—इसका मतलब यह है कि आपका दो सौ रुपया वेतन थोड़ा है, आपके पिताका स्वर्गवास हो चुका है और आप बेशरम हैं, क्योंकि भले घरोंकी लड़कियोंका अपमान करते हुए आपको शरम नहीं आई।

दु०—मिस रेखा, आप मेरा अपमान कर रही हैं। आपको माफ़ी माँगनी चाहिए।

रेखा (माँ-बापको बोलनेसे रोककर)—आपने इन सभी देवियोंका अपमान किया है। पहले आप इनसे क्षमा माँगिए; फिर मैं भी देखूँगी।

दु०—आप मुझसे इसकी आशा न रखें।

रेखा—तब आप किस आशापर यहाँ खड़े हैं? चाय तो आप पी ही चुके हैं। अब आप तशरीफ़ ले जा सकते हैं।

(दुर्गादास और निहालदेवी एक-दूसरेके मुँहकी तरफ़ देखते हैं। रायबहादुर और रामदेई पहले एक-दूसरेकी तरफ़, फिर दुर्गादास और अन्तमें लड़कियोंकी तरफ़ देखते हैं। दुर्गादास और निहालदेवी बाहर चले जाते हैं। आगे केमरा लिए एक उन्तीस-वर्षीय नवयुवक मिलता है, जिसने सिरपर हैट, नीचे पैंट और ऊपर खुले गलेवाली क़मीज़ पहन रखी है। फ़ोटो लेनेके बाद दाएँ हाथसे सिरपरसे हैट उठाकर और मुँहपर मुस्कराहट लाते हुए कहता है—'थैंक यू सो मच।')

दु० (घबराकर)—आप कौन हैं?

केमरामैन—मैं दैनिक 'वन्देमातरम्'का स्टाफ़-फ़ोटोग्राफ़र हूँ।

दु०—आपको यहाँ आनेके लिए किसने कष्ट दिया है?

केमरामैन—किसीने टेलीफ़ोन किया था। आपका फ़ोटो कल प्रातः निकल जायगा!

नि०—क्या बात है, दुर्गादास?

दु०—साज़िश!

(कैमरामैन भाग जाता है। माँ-बेटा एक-दूसरेका मुँह देखते हैं। परदा गिरता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतमें संगीत

श्री दौलतराव परशुराम

हमारी जानकारीके बहुत ही कम ऐसे विषय हैं, जो भारतीय संगीतसे भी अधिक अन्धकार और रहस्यमें ढँके हुए हों। प्रायः प्रत्येक विषयके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ तो निश्चित रूपसे कहा जा ही सकता है ; पर भारतीय संगीतके सम्बन्धमें हम जो धारणाएँ करते हैं, वे सत्यके रूपमें परिणत नहीं की जा सकतीं। संगीतके इतिहासको उचित रीतिसे स्थापित करनेके लिए अब तक कुछ प्रयत्न अवश्य किए गए हैं, पर समूचे प्रमाण न होनेसे कुछ ठोस निर्णय नहीं किया जा सका। पूर्व-भारतमें, जैसा कि संस्कृत-साहित्यके प्रख्यात विद्वान मैक्समूलर कहते हैं, लोगोंमें ऐतिहासिक भावना बिल्कुल कम थी, इसीसे वे अपने दिनोंमें हुई बातोंको भविष्यके लिए लिख नहीं छोड़ते थे। और यदि उन्होंने कुछ लिखा भी था, तो आज वह हमें सुलभ नहीं है। रुचिके अभावसे संगीत-विषयक अधिकांश साहित्य पुस्तकालयोंकी आलमारियोंमें म्लान हस्तलिपियोंके रूपमें पड़ा हुआ है। जब तक जी-तोड़ परिश्रम करके इस साहित्यको प्रकाशित न किया जायगा, तब तक भारतीय संगीतके इतिहासका हमारा ज्ञान अपूर्ण और असम्बद्ध ही रहेगा। पर कुछ पुस्तकें हमारे पास ऐसी अवश्य हैं, जिनसे उन दिनोंके संगीतके विषयमें मोटे तौरपर कुछ अन्दाज़ लगाया जा सकता है। पर इस बातका हमें ध्यान रखना होगा कि यह ज्ञान केवल ऐतिहासिक वर्णनके रूपमें ही है। अद्यावधि हम प्राचीन भारतके 'संगीत'का सत्य रूप नहीं जान पाए हैं।

'सामवेद' वैदिक कालमें यज्ञके अवसरपर गाया जाता था। उसकी अपनी निजी छन्दगति थी। 'ऋग्' और 'साम' वेदोंके श्लोक हमारे लिए संगीतबद्ध शब्दोंके अतीव प्राचीन प्रमाण हैं। सामवेद कुछ कठिन नियमोंके अनुसार गाया जाता था। ये नियम 'सामसूत्रों'में दिए गए हैं, जिनमें छन्द तथा गानेका तरीक़ा जतानेके लिए उचित चिन्हकारी (notation) भी दी गई है। वेद गाए इसीलिए जाते थे कि संगीतको ईश्वरोपासनाका मूल अंग माना जाता था। उपवेदोंने संगीतको कलाका स्थान दिया है। ऋषि-मुनि उस कालमें संगीतको आवश्यक विद्या मानते थे। बारम्बार यही कहा गया है कि हमारे संगीतका मूल 'सामवेद' है। पर यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि यह ग्रन्थ ३-४ हज़ार वर्ष पहलेका है। इसके सिवा प्राचीन अथवा अर्वाचीन कोई भी विद्वान साम-संगीत तथा बादके ग्रन्थकारोंके 'संगीत'के बीचमें उचित सम्बन्ध स्थापित करनेमें सफल नहीं हुआ है। इससे 'सामवेद' आजकलके हमारे 'संगीत'के विषयमें कुछ भी बतानेमें निरर्थक है।

'गांधर्व' वेद सम्मान और भक्तिकी दृष्टिसे देखा जाता है। कब और किससे उसकी रचना हुई थी, यह हमें ज्ञात नहीं है। स्वयं पुस्तक भी आज अलभ है। पर इतना कहा जा सकता है कि वह संगीत-सम्बन्धी एक उच्च कोटिका ग्रन्थ था। उसके बादकी सारी प्राचीन पुस्तकें अपनी धारणाओंके लिए उसीपर आधार रखती हैं। ऐसे कुछ चिन्ह मिलते हैं—बिलकुल मन्द चिन्ह—जिनसे पता चलता है कि 'गांधर्व' और 'साम' वेदोंकी रचनासे भी पूर्व भारतमें संगीतकी एक मुक्त, असीम भावना-सी थी। उसके बाद वह भावना निन्दनीय ठहराई गई, यह ऋषियोंके 'धर्मशास्त्रों' से सिद्ध होता है। पर वैदिक कालमें आकर संगीतको फिर सम्मान प्राप्त हुआ और संगीतको 'कला'का स्थान मिला। ब्राह्मण-कालमें सप्तकके स्वरोंका उचित रीतिसे अध्ययन किया जाता था, यह हम तब मान सकते हैं जब यह भी मानें कि उससे पूर्व भी एक 'संगीत-काल' था।

'उपनिषदों'में ब्राह्मण-कालका समस्त साहित्य समाया हुआ है। जब हम उपनिषदोंके श्लोकोंको उनकी आत्मिक लाक्षणिकतासे अलग करते हैं, तो साफ़ दिखाई देता है कि वे संगीतके स्वर, ग्राम तथा मूर्च्छनाओंसे सम्बन्ध रखते हैं। सप्तक और श्रुतियोंके विषयमें भी उपनिषदोंमें कुछ कहा गया है। ब्राह्मण-कालमें 'गीत' भी हुआ करते थे, जो श्लोकोंसे भिन्न थे। इन गीतों तथा श्लोकोंके नाम देवताओंकी नामावलीके अनुकूल बनाए जाते थे। 'मैं देवताओंकी अमरताके लिए गाता हूँ, मनुष्य-जातिकी कामनाओंके लिए तृण और जल तथा व्याधियोंकी औषध पानेके लिए, आत्मन् और स्वर्गके लिए।' स्वर इन्द्रके देहकी महत्ता धारण करते हैं, श-ष-स-ह प्रजापतिके देहकी और व्यंजन अक्षर यमके देहकी। स्वर बलपूर्वक उच्चारे जाते हैं, यह कहकर कि 'मैं इन्द्रकी शक्ति चाहता हूँ।' श-ष-स-ह स्पष्टतासे, पर अन्तरमें, उच्चारित होते हैं, यह कहनेके बाद कि 'प्रजापतिको मैं अपना जीवन अर्पण करता हूँ। व्यंजन अक्षर धीरेसे, पर स्पष्ट, उच्चारे जाते हैं, यह कहकर कि 'मृत्युसे मैं निजको मुक्त करता हूँ।' गायक यह सब-कुछ करनेके बाद सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था, और किसी भी दोष अथवा निन्दासे उसकी रक्षा की जाती थी।

'छान्दोग्य' तथा 'बृहदारण्यक' उपनिषदोंमें भी सामवेदके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाए जानेकी बात लिखी है। बृहदारण्यक उपनिषदमें कुछ वाद्य-यन्त्रोंके नाम भी दिए गए हैं। वैदिक सूचीपत्रके अनुसार वैदिक कालमें अनेक वाद्य-यन्त्र हुआ करते थे। टक्करके यन्त्र—अर्थात् ढोल या मृदंग—चार प्रकारके थे—'दुन्दुभि', 'आडम्बर', 'भूमिदुन्दुभि' (जो ज़मीनमें गड्ढा खोदकर उसे खाल या चमड़ेसे ढाँककर बनाया जाता था) और 'वनस्पति' (काष्ठ-मृदंग)। 'आघाटि' एक प्रकारका मँजीरा था, जो नृत्यका साथ देनेके लिए उपयुक्त था। तारवाले चार यन्त्र थे—'काण्ड-वीणा', 'कर्करि', 'वाण' (जिसमें १०० तार थे) और 'वीणा' (जो आजकल भी प्रचलित है)। उन दिनों संगीत किस सीमाको पहुँच चुका था, उसका प्रमाण एक 'वीणा' ही काफ़ी है। बन्सरीके प्रकारके वायु-यन्त्र भी थे—'तूणव' (लकड़ीकी बन्सरी), 'नाड़ी' (बाँसकी बनी हुई) और 'बाकुर'। यजुर्वेदके समय तक कई पेशेवर संगीतज्ञ पैदा हो गए थे, क्योंकि वृत्तियोंकी सूचीमें बीनकार, तबलची, तथा बन्सरी और शंख बजानेवालोंका भी वर्णन किया गया है।

'शिक्षा-ग्रन्थों'की रचना ब्राह्मण-कालके ऋषि याज्ञवल्क्यने की थी, जो 'शुक्ल-यजुर्वेद'का माना हुआ लेखक है। वह 'अनुष्टुप' नामक छन्दका वर्णन करता है और कहता है कि वह गांधर्व-वेदमें भी दिया गया है। याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मत्रेयीको 'आत्मन्'का अर्थ बताते हुए एक श्लोकका वर्णन करता है, जिसमें देवताओं, ऋषियोंकी जातियों तथा छन्दोंको तीन भागोंमें विभक्त किया गया है—उच्च, नीच और स्वरित। याज्ञवल्क्य जिस प्रकार 'रे'को 'ध'के साथ, 'ग'को 'नी'के साथ और 'सा'को 'प' और 'म'के साथ रखते हैं, उससे यही प्रमाणित होता है कि उस कालमें संगीत काफ़ी वृद्धि कर चुका था।

व्याकरणकर्त्ता पाणिनी (३२६ ई० पू० के लगभग) भी अपनी पुस्तकोंमें 'संगीत'का वर्णन करते हैं। पर संगीतके नियमोंका सबसे पहला वर्णन 'ऋक्प्रातिशाख्य ग्रन्थों'में किया गया है, जो 'सप्तक' तथा सप्तकके सात स्वरोंके विषयमें कुछ कहते हैं।

रामायणमें लोकगीतों (Ballads) के गाए जानेकी बात लिखी हुई है। वाल्मीकि बहुधा संगीत-सम्बन्धी उपमाएँ प्रयोग में लाते हैं, यथा मधुमक्खियोंका भिनभिनाना तारवाले यन्त्रके संगीतकी नाईं था और मेघोंका गर्जन मानो मृदंगका धीर-गम्भीर शब्द हो। वाल्मीकि समर-भूमिके संगीतका वर्णन करते हुए कहते हैं—जिसमें धनुषोंकी चरचराहट तथा ठनकार तारवाले यन्त्रोंका स्थान ले लेती है और हाथियोंका मन्द-मन्द कराहना कण्ठगीत-सा है। रावण एक स्थानपर कहता है—'मैं अपने भयानक धनुष-रूपी बीनको बाण-रूपी लकड़ियोंसे बजाऊँगा।' सुग्रीवके अन्तःपुरमें लक्ष्मण वीणाका मधुर आलाप सुनते हैं और साथमें शुद्ध कण्ठगीत भी सुनाई देता है। रावण संगीत-कलामें सिद्धिको पहुँचा था और उसने स्वयं शिवको भी अपनी गायन-कलासे ही तुष्ट किया था। रामायणमें 'जाति'का भी ज़िक्र है, जो सम्भवतः उन दिनोंमें 'राग'के लिए दूसरा शब्द था। इसके सिवा कुछ वाद्ययन्त्रोंके नाम भी दिए गए हैं—भेरी, दुन्दुभि, मृदंग, पटह, घट, पणव और डिण्डिम (टक्कर अथवा टंकारके यन्त्र), मुदुक (तुरही), आडम्बर (एक प्रकारका अलगोज़ा) और वीणा।

संगीत-सम्बन्धी कुछ कहावतें भी हमें मिलती हैं, जिनमें से एक 'अद्भुत रामायण'में है। उसमें प्रशंसाके साथ आलोचना भी मिश्रित है। कहा जाता है कि एक दिन नारद ऋषिने मनमें सोचा कि मैंने संगीत-शास्त्र तथा संगीत-कला दोनोंको सम्पूर्ण रीतिसे अपने अधीन कर लिया है। उनका दर्प चूर्ण करनेके लिए सर्वज्ञ विष्णु उन्हें अमरावती ले गए। वहाँ वे एक विशाल भवनमें प्रविष्ट हुए, जिसमें कई नर-नारी अपने भग्न अंगोंको लिए रो रहे थे। विष्णु रुक गए और उनसे उनके विलापका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया—'हम महादेव-रचित राग-रागनियाँ हैं; पर चूँकि नारद नामक एक ऋषिने, जो संगीतके उचित ज्ञानसे रिक्त है और संगीत-कलासे भी अनभिज्ञ है, हमें असावधानतापूर्वक गाया है, इसीसे हमारे चेहरे विकृत हो गए हैं और हमारे अंग नष्ट हो गए हैं। जब तक महादेव अथवा अन्य कोई कुशल व्यक्ति हमें उचित रीतिसे न गाएगा, तब तक हमारा उद्धार न होगा। यह सुनकर नारद लज्जित हुए और विष्णुको प्रणाम कर क्षमा माँगी।

इसी प्रकारकी कथा हनूमानके विषयमें भी कही गई है। उन्हें अपनी संगीतकी जानकारीका बड़ा अभिमान था और वे सदा इसकी डींग मारा करते थे। रामचन्द्र उनकी डींगें सुनकर रुष्ट होते थे। एक दिन उन्होंने हनूमानका गर्व खर्व करनेका निश्चय किया। समीप ही किसी वनमें एक ऋषि थे, जिनकी संगीत-सिद्धि इस प्रकारकी थी कि वे सात स्वरोंको सात अप्सराओंके रूपमें प्रकट कर सकते थे। एक दिन शिकारका बहाना करके रामचन्द्र हनूमानके साथ इन्हीं ऋषिकी कुटियाके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने ऋषिसे कुछ गीत सुनानेका अनुरोध किया। इस बीचमें हनूमानने अपनी कला दिखानेके लिए सगर्व एक वीणा उठा ली और उसे बजाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ समय बाद पत्तोंमें हलचल-सी हुई। मन्द-मधुर शब्द सुनाई देने लगे और सात अप्सराएँ (स्वरोंकी मूर्त्तियाँ) प्रकट हुईं। वे पानी भरनेको जा रही थीं। हनूमानकी वीणाका आलाप सुनकर उनमें से एक रुक गई और कुछ क्षणोंमें गिरकर मर गई। हनूमानने वह स्वर गलत बजाया था। बाक़ीकी अप्सराओं (स्वरों) को आश्वासन ही न बँधता था। वे रोने तथा प्रलाप करने लगीं। उनका दुःख देखकर ऋषि मुस्कराए और वीणा उठाकर उन्होंने वह स्वर उचित रीतिसे बजाया। ज्यों ही वह मृत स्वर ठीक-ठीक बजाया गया, त्योंही वह अप्सरा उठ खड़ी हुई। सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। हनूमान लज्जित हुए और उन्होंने अपने अनुचित गर्वके लिए प्रायश्चित्त किया।

महाभारतमें सात स्वरों तथा गांधार-ग्रामका ज़िक्र किया गया है। 'सम्वादित्व'के नियमका भी उसमें वर्णन है। भगवद्गीतामें भी संगीतका काफ़ी ज़िक्र है। उसमें धर्मशास्त्रोंकी नाईं संगीतकी निन्दा नहीं की गई है। मनु तथा अन्य ऋषियोंने धर्मशास्त्रोंमें संगीतको हेय बतलाया है, इससे यह प्रमाणित होता है कि संगीत उन दिनोंमें एक भिन्न कला थी और पतनको पहुँच चुकी थी। गीता वेदोंमें सामको श्रेष्ठ मानती है, छन्दोंमें गायत्रीको, गन्धर्वोंमें चित्ररथको और ऋषियोंमें नारदको।

बौद्ध शब्दकोषकार अमरसिंहके 'अमरकोष'में सप्तकके सात स्वरोंकी पूर्ण व्याख्या की गई है। बौद्ध कालके साहित्यमें संगीतको उच्च स्थान प्राप्त है और सभ्य, सुशिक्षित तथा सुचरित बननेके लिए संगीतकी जानकारी आवश्यक ठहराई गई है। 'मृच्छकटिक' तथा कालिदासकी कृतियोंमें भी संगीतका काफ़ी ज़िक्र किया गया है। 'मालविकाग्निमित्रम्'में चतुष्पदकी चीज़ गाना एक कठिन कार्य बताया गया है। 'नाट्यशास्त्र' संगीतका इतना विवरण नहीं देता, जितना नाट्यकलाका। इस पुस्तकमें, जो चतुर्थ शताब्दीमें लिखी गई थी, संगीत-सम्बन्धी तीन ही प्रकरण हैं। उनमें 'स्वर', 'श्रुति' (अर्द्धस्वर), 'ग्राम', 'मूर्च्छना' तथा 'जाति' (राग) की विस्तृत व्याख्या दी गई है। 'राग' अथवा 'रागिनी'के विषयमें कुछ नहीं कहा गया है। बाक़ी जो कुछ है, वह आजकल हम लोगोंके लिए बोधनीय नहीं है।

प्राचीन भारतके संगीतकारोंमें ब्रह्मा, शिव, सरस्वती, पार्वती, नारद तथा भरत ऋषिके सिवा रावण, गौतमबुद्ध और अश्वघोष ('बुद्धचरित'के लेखक) भी थे। इनके साथ अन्य भी कई संगीतज्ञ थे। कुछ ईरानके बादशाह बेहराम गोरके निमंत्रणपर ईरान भी गए थे।

इन सब बातोंसे मालूम होता है कि प्राचीन भारतमें संगीत काफ़ी प्रतिष्ठा हासिल कर चुका था। वह सर्वसाधारणके लिए भी सुलभ था और उन्हें बहुत प्रिय भी था। कर्नल टाड कहते हैं—'इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि प्राचीनकालके हिन्दुओंके संगीत-शास्त्रकी स्थिति मालूम की जाय और यूरोपीय तथा भारतीय संगीतकी परस्पर तुलना की जाय। हम जो कुछ जानते हैं, उससे यही प्रतीत होता है कि भारतीय संगीत नियमकी उस पूर्णताको पहुँच चुका था, जो आज तक यूरोपको अलभ है। श्रीमती एन० सी० विल्सनका कहना है—'भारतवासियोंके लिए यह गर्वका कारण होगा कि उनका संगीत-प्रबन्ध, लिखित शास्त्रके रूपमें, संसारमें सबसे प्राचीन है।'*

* इस लेखके लिखनेमें निम्नलिखित पुस्तकोंसे सहायता प्राप्त हुई है—'उत्तर हिन्दुस्थानी संगीतनी संक्षिप्त ऐतिहासिक समालोचना' (गुजराती) : श्री विष्णु नारायण भातखण्डे ; Music of India : By Herbert A. Popley ; Sangit of India : By Atiya Begam ; Hindu Superiority : By Har Bilas Sarda.

मैंने नाचना कैसे सीखा ?

श्री लज्जाकुमारी

गतिका जो छन्द है, प्राणका भी वही छन्द है। गतिमें जहाँ छन्द नहीं है, प्राणमें वहीं विच्युति है—प्राण वहीं गतप्राण हैं। हम संस्कार-च्युत हैं। हमारी गतिमें छन्द नहीं है। हमारा पद-विक्षेप अभिप्राय और अभिलाषा-विहीन है। हमारी अंग-भंगिमामें गीति-बद्धता नहीं है। अवश्य इसीलिए हमारे कर्ममें भाव और रस नहीं हैं, और इसीलिए हम प्राण-विहीन हैं।

मुझसे व्याख्या करनेको नहीं कहा जाएगा। 'लेखन' अथवा 'साहित्य' शब्दसे मेरा परिचय अपरिचयके समान ही है। साहित्य-रचना अथवा शब्द-सृजनसे मैं बहुत दूर हूँ। मैं जानती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि मैं अपरिचित और अनजान हूँ। शब्द मेरी व्याख्याका माध्यम बननेको तैयार भी तो नहीं होंगे। लेकिन मैं डरूँ क्यों? मेरा जन्म हिन्दू-कुलके अभिजात वर्गमें हुआ है। समाजमें कुल-लक्ष्मी कन्याओंको वंश-परम्पराके अनुसार जिन सब गुण-लक्षणोंका पालन करना होता है, मैं भी उन्हीं सीमा-रेखाओंमें पाली-पोसी जा रही हूँ। फिर भी मनुष्यके स्वभावके अनुसार मेरा व्यक्तित्व और अस्तित्व मेरा अपना है। मेरा मन जिज्ञासा चाहता है। प्रकृतिने पृथ्वी और पृथ्वीमें धूलि-कणोंकी रचना क्यों की है? वह दूर्वादल (दूब) से सज्जित क्यों है? और प्रकृति अथवा पृथ्वीके दूर्वादलपर शरद-ऋतुके प्रातःकालीन ओस-कण सूर्य देवताकी उपस्थितिमें भी अपने चुम्बनका कौनसा रहस्य प्रकट करनेके लिए जीवित दिखाई पड़ते हैं? और यह पृथ्वी शस्य-श्यामला क्यों है? यह वर्षा अपने आगमनके समय पैरोंमें रुनझुन नूपुर क्यों पहन लेती है? वह रँगीली चुनरीके लिए मचल-मचल और थिरक क्यों उठती है? और पृथ्वी अथवा प्रकृतिको यह सब राग-रंग क्या शोभा देता है? मेरी जिज्ञासाका अन्त नहीं है। मैं जानना चाहती हूँ, पक्षियोंको कलरव किसने सिखलाया? 'मानव' नामकी जातिका इतिहास कहाँसे आरम्भ होता है? मैं भी जाने कहाँसे कहाँ आ पड़ी हूँ?

आप कहिएगा, मेरा लेख तो इन सब गूढ़ तत्वोंके विवेचनका विषय नहीं है। वह नृत्तात्विक अथवा प्रत्नतात्विक भी नहीं है। खैर, जाने दीजिए। आप केवल यह बताइए कि शिशु पैदा होते ही रोने क्यों लगता है? वह मुस्करा क्यों उठता है? और वह घुटनोंके बल चलना आखिर क्यों आरंभ करता है? कौतुककी इसमें कोई बात नहीं है। मैं कहूँगी कि नर्त्तनका रहस्य और मर्म भी इसी स्थलपर छिपा है। नर्त्तन और कुछ नहीं, गतिशील जीवन है। हम जीवनसे क्यों लज्जित अथवा भयभीत हों? 'नर्त्तन'के आगेका 'जीवन' निकाल दीजिए, रह जाएगा केवल 'नर्त्तन'। आप शंका मत कीजिए। मैं विषयसे परे नहीं जा रही हूँ।

आप कहिएगा, समाजमें लक्ष्मी कन्या अथवा कुलनारीके नाचनेकी प्रथा नहीं रही। शताब्दियों पूर्व हमने समाजसे नर्त्तन अथवा नृत्यकलाको विदा कर दिया है। ठीक, बिलकुल ठीक; पर मैं पूछती हूँ—कारण? कारण नाना संख्यामें हैं। उन सबका विवेचन करनेकी आवश्यकता नहीं है। परिणाम किन्तु मैं बताऊँ। हम अल्पप्राण हो उठे। हमारी गतिमें छन्द नहीं रहा। हम विकल-अंग दिखाई पड़े। हमारा भाव और हमारा रस जाने कहाँ चला गया। किन्तु हमने संस्कार नहीं खोया। प्रकृति और पृथ्वीका रहस्य हमारी मानसिक चेतनासे अचेतन नहीं हो सका। हमने सत्य और सनातन पंथसे एक बार फिर चिरन्तन पृथ्वीको चिरन्तन कालके समान सरिताके प्लावन और सागरकी तरंग-भंगिमामें देखा। कला जागी। हम महाप्राण हो उठे। युग गया, युगान्तर उपस्थित हुआ। नृत्यकलाके अनुकूल आकर्षण जागा। नृत्यकलाके प्रतिष्ठान प्रवर्त्तित हुए।

मैं कलावन्तिनी नहीं हूँ, किन्तु मैंने भी अपने निमीलित नयनोंको रक्त-मांसकी लम्बी-पतली उँगलियोंके सहारे उन्मीलित किया। मैंने चलना सीखा। मुझे उसमें छन्दकी रचना अच्छी लगी। मेरे नीचेकी पृथ्वी थिरकी और मैं नाची। मैं देख रही हूँ, सारी पृथ्वी, सारी प्रकृति, सारे स्थलीय और जलीय जीव-जन्तु अपनी मुद्रा—अपने नर्त्तन—में विभोर हैं। नर्त्तन और मुद्राके साथ ही प्रकृति और पृथ्वी, जल और स्थल जीवित हैं। यह मनुष्य-जन्तु केवल मुद्राविहीन हो गया,—उसकी गतिका छन्द खो गया। 'प्रकृति' निकाल दीजिए, 'मस्तिष्क'से आरम्भ कीजिए। शैशवने चलना सीखा और उसकी गतिका छन्द नष्ट हुआ, उसकी चेष्टाकी भंगिमा खो गई—उसके जीवनका प्राण गया।

यह क्या है? 'प्रकृति' वितण्डा नहीं है, न 'प्रकृति' विकृति है। 'प्रकृति'से विपरीत पुरुषकी गति नहीं है। भय और संकोच मुझे छू नहीं गया। मैं प्रकृतिको नाचती देखती हूँ। मैंने पुरुषको नाचते देखा है। मेरे परमेश्वर नाचते हैं। देखिए—देव, देखिए—देवियाँ; नाच जीवन है,—नाच प्रलय है! मैं भी नाचती हूँ।

मैं नर्त्तकी नहीं हूँ। मेरे घरमें मेरी स्मृतिकी दूरी तक कोई कभी नहीं नाचा; लेकिन मैं समझती हूँ कि नृत्यकला भारतीय आदर्श है। जावा, बाली, ब्रह्मदेश, चीन, जापान सारा पौर्वात्य नृत्यके आदर्शोंपर अवलम्बित है। शिक्षा ज्ञान-विज्ञानके द्वारा समाजको जीवन दान करती है, नृत्यकला देशमें उसी उद्देशपर अवलम्बित है।

देशके अन्तःपुरोंमें नारियों द्वारा कलाके प्रतीक अभी विद्यमान हैं। देखिए चित्रकला, देखिए पर्व-नृत्य। मैं भी तो नाचती हूँ। मैं नर्तकी नहीं हूँ; लेकिन आपने समझा, मैंने नाचना कैसे सीखा? और मैं समझती हूँ, मुझसे इससे अधिक व्याख्या करनेको नहीं कहा जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासके दो चित्र

श्री शोभाचन्द्र जोशी

आजसे डेढ़ हज़ार वर्ष पहलेकी बात है। आर्यावर्तकी राजधानी पाटलिपुत्रपर अस्त होते सूर्यकी किरणें बासन्ती रंग बिखेरने लगी थीं। भागीरथीकी छोटी-छोटी लहरियोंपर दीपक टिमटिमा उठे और बुझ गए। पश्चिमी आकाशपर सरसोंके फूलोंका-सा रंग छा गया।

उत्तरी प्राचीरके बाहर उद्यानमें एक पुरुष टहल रहा था। लम्बा क़द। स्वस्थ, मांसल शरीर। तप्त स्वर्णका-सा रंग। पिंगल केश। नीले नेत्र। आजानु लम्बी बाहु-युगल। पीले रंगकी धोती उसने पहन रखी थी। कन्धोंपर हल्के नीले रंगका चीनांशुक था। एकाएक वह ठिठककर खड़ा हो गया। क्षण-भरको उसने डूबते प्रकाशकी ओर देखा। क्षण-भरके लिए अन्दरसे निकलते उच्छ्वासके झोंकेसे उसका वक्षःस्थल कम्पित हो उठा। क्षण-भरके लिए मानो इतनी देरके मौनको यथासाध्य तोड़ते हुए अर्द्ध-स्फुट स्वरमें उसने कहा—'ओह, डूब गया!'

पास ही में मालती-कुंजके पार्श्वसे होता हुआ एक और व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा। नीरवमें कहा हुआ वाक्य कदाचित् उसने सुन लिया था। बिना किसी प्रकारके अभिवादनके उसने भी दुहराया—'हाँ, डूब गया।'

पहला पुरुष चौंका। घूमकर देखा। आगन्तुकको पहचाना और कहा—'अरे, तुम? आओ निचुल, आओ मित्र!'

दोनों साथ-साथ टहलने लगे। पाटलिपुत्रके मन्दिरोंमें सन्ध्याकी आरती होने लगी। पटहवादन तथा तूर्यनादसे वातावरण मुखरित हो उठा। पहला पुरुष खड़ा हो गया। आम्र-वृक्षके नीचेसे पुंजीभूत हो आगे बढ़ते हुए अन्धकारको देखकर वह बोला—'आजके दिवसकी समाप्ति असमयमें ही हो गई, बन्धु! आजकी सन्ध्या बड़ी ही रंगहीन, गौरवहीन और फीकी-फीकी-सी लगी।'

आगन्तुक निचुलने पूछा—'ऐसी भ्रान्ति होनेका कारण?'

'मुझे स्वयं समझमें नहीं आता। सूर्य तो अस्त होनेके ही लिए प्राचीसे निकलता है। उषाके कपोल सदा लज्जाके रंगमें नहीं रँगे रह सकते। नित्यप्रति प्रत्येक व्यक्ति दिन ढलनेकी ही प्रतीक्षा करता है। किन्तु नित्यप्रति होनेवाले प्राकृतिक व्यापारोंको मनुष्य उसी रंगमें देखता है, जिसमें आसपासकी परिस्थितियाँ उसके विचारोंको डुबा देती हैं।' कुछ देर स्तब्ध रहकर उसने पुनः कहा—'आज मुझे अपनी जन्मभूमिका स्मरण हो आया है, मित्र! काश्मीरका सौन्दर्य नहीं भुलाया जा सकता। मेरी कल्पनाका मूल स्रोत वहीं है। मेरी कविता वहींके फूलोंके रंगमें रँगी है। मेरे गीतोंमें वहाँकी वायुकी मूर्च्छना है। छोड़ना पड़ा, बन्धु! नियतिके सूत्रमें बँधे हैं हम लोग। हृदयकी डोर उसकी तुलनामें बड़ी ही कच्ची होती है। हाँ, तो निचुल, उत्तरापथके कोई नूतन समाचार मिले?'

'हाँ, हूणोंकी सेना गान्धारके छोर तक पहुँच गई है। मगध सेनाके दो गुल्म यवनों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिए गए हैं।'

'और परमेश्वर परम वैष्णव परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री···'

'कुमारगुप्त क्या कर रहे हैं, यही पूछना चाहते हैं न आप? क्यों, तो आमूल-चूड़ान्त सुरा और सौन्दर्यके सागरमें डूबे हुए हैं। वीणाकी झंकार सुनते-सुनते मगधके सम्राटके कान प्रत्यंचा-निर्घोष सुननेके योग्य नहीं रह गए हैं। भाग्य-सूर्य अस्तप्राय है, कवि। चन्द्रगुप्त और आर्य समुद्रगुप्तके बाहुबलसे स्थापित किया हुआ समुद्रसे समुद्र तक सीमित गुप्त-साम्राज्य विलासी नरेन्द्रके हाथों नहीं सँभल सकता।'

सुननेवालेने लम्बी साँस ली और कहा—'सब-कुछ वैसा ही हो रहा है, जैसा होना था। अकेली नियति ही मनुष्यके जीवनकी गति-निर्णायक नहीं होती। जिन-जिन तत्वोंसे भाग्य नामक शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है, उनमें व्यक्तिका अपना चरित्र भी है। चरित्र ही भाग्य है, बन्धु। अरे, अभी-अभीकी बात है। मेरे काश्मीरसे यहाँ चले आनेके कुछ ही महीने बाद युवराज कुमारगुप्त आर्यावर्तके एकछत्र सम्राट बने थे। पाटलिपुत्रकी आबाल-वृद्ध जनता सन्तोषकी साँस लेकर विश्राम करने लगी थी। उसी समय समाचार मिला, हूणोंने भारतकी शस्य-श्यामला भूमिकी ओर शनि-दृष्टि डाली है। मैं उस दिन अग्निमंडपमें नए महाराजके सम्मुख बैठा था। वृद्ध आमात्यके यह समाचार सुनानेपर कुमारगुप्तने अपने वंशके अनुरूप ही उत्तर दिया—'आर्य, ऐसी चिन्ता क्यों? इस शरीरमें आर्य समुद्रगुप्त और आर्य चन्द्रगुप्तका रक्त बह रहा है। मेरे रहते गुप्त-साम्राज्य यवनों द्वारा पदानत न होगा।'

सभासे लौटकर मैंने अपने काव्यके छठे सर्गमें एक नया श्लोक लिखा :—

असौ 'कुमार' स्तभजोऽनुजस्त्रिविष्टपस्यैव पतिं जयन्तः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुर्वी धुरं यो भुवनस्य पित्रा धुर्येण दम्यः सदृशं बिभर्ति।

और मेरे काव्यकी समाप्तिके पूर्व ही कुमारगुप्तके चरित्रमें ऐसा परिवर्तन हुआ!'

'तुम्हारे काव्यको महाराजने पढ़ा तो बड़े ही चावसे।'—निचुलने कहा।

'पढ़ लिया? आदिसे अन्त तक?'

'हाँ, आदिसे अन्त तक।'

'हूँ, और अग्निवर्णका वृत्तान्त भी पढ़ा महाराजने?'

'हाँ।'

'तुम उस समय वहीं थे?'

'हाँ।'

'तुमने देखा कि महाराजके मुखपर कैसा भाव था?'

'हाँ, अग्निवर्णका वृत्तान्त पढ़कर महाराजने तुम्हारा काव्य एक ओर रख दिया और परिचारिकाको गौड़ीय सुराका एक पात्र भरकर लानेकी आज्ञा दी। मेरी ओर देखकर महाराजने कहा—'कालिदास सच्चा कवि है। सुरा और सौन्दर्यका आदर वही कर सकता है।'

'हा विडम्बने! दिलीपकी तपस्यासे पनपे हुए रघुके वंशका अग्निवर्णके हाथों ह्रास होते पढ़कर भी समुद्रगुप्तके पौत्रके ऐसे भाव!'

'सुराके तीन-चार पात्र गलेसे नीचे उँड़ेलकर महाराज कुमारगुप्तने पुनः मेरी ओर देखा और कहा—'जाओ ब्राह्मण, कालिदासको मेरी ओरसे धन्यवाद दे देना और कहना कि अग्निवर्ण तक आकर उनके काव्यकी समाप्ति बड़ी सुन्दर हो उठी है, और गुप्तवंश...'

'हाँ, हाँ, गुप्तवंश क्या?'

'बस, इसके पश्चात् कुमारगुप्त एकाएक उठकर अन्तःपुरकी ओर चल दिए।'

थोड़ी देर उद्यानमें फिरसे नीरवता छा गई। दोनों व्यक्ति अपने-अपने विचारोंमें लीन वहाँ टहलते रहे। कुछ समयके उपरान्त कालिदासने कहा—'अबसे मैं कोई भी राजनीतिक काव्य नहीं लिखूँगा!'

- २ -

इसके पश्चात् आषाढ़ आया। ऐसे कितनी ही बार पाटलिपुत्रपर आषाढ़के मेघ छाए थे। कितनी ही बार ग्रीष्म-तप्ता पृथ्वीने जलको बूँदोंसे सिहर-सिहरकर सोंधी उसाँसें ली थीं। कितनी ही बार पाटलिपुत्रके उद्यानोंमें मेघ-गर्जन सुनकर मोर नाच उठे थे। किन्तु वहाँके लाखों निवासियोंमें से किस-किसने वर्षाके प्रथम मेघपर ध्यान दिया था? ऐसे कितने ही आषाढ़ आए और चले गए। वर्षा आई और चली गई। छहों ऋतुएँ आईं, फिर आईं। उनसे मानव-जीवन बना और समाप्त होता चला गया। परन्तु अबकी आषाढ़के पहले मेघका जैसा अभिनन्दन हुआ, वैसा न कभी हुआ था, और न कभी होगा।

उस दिन भी सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। पाटलिपुत्रके उपवनमें उसी भाँति कालिदास आज भी टहल रहे थे। उष्माकी अत्यधिक प्रबलता थी। वायु निस्पन्द थी। चारों दिशाएँ मानो दिवस-भरके तापको साराका सारा बाहर उगल रही हों। उपवनके वृक्ष प्राणहीन-से लगते थे—पत्ती-पत्ती संज्ञाहीन-सी दिखाई देती थी। कविका शरीर तो पाटलिपुत्रके उद्यानमें टहल रहा था; किन्तु उनका मन दूर, बहुत दूर काश्मीरकी उपत्यकाओंमें विचरण कर रहा था। उष्माके आधिक्यसे उनका कौषेय उत्तरीय पसीनेमें लथपथ हो गया था; किन्तु उनके विचार अतीतके स्वप्न-देशमें उड़ रहे थे।

हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणी, उसकी छायामें बसा एक छोटा-सा गाँव। प्रान्तवर्ती सरल वृक्षके वनमें एक युवती बैठी है। कालिदास विस्मित-से, चकित-से, उसकी ओर देख रहे हैं और पूछ बैठते हैं:—

कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते, न तु दृश्यते
बाले, तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्?

युवती खिलखिला उठती है। उसकी हँसीमें नृत्य है, स्वरमें स्नेह है, आँखोंमें भावक पूजा है! कविका स्वप्न टूट गया। काश्मीरसे कविको आना पड़ा। क्यों? यह नहीं बता सकता कोई। पाटलिपुत्रमें जीवन व्यतीत हो रहा है; किन्तु जीवनमें रस नहीं है। जीनेके लिए ही जिया जा रहा है।

टहलते-टहलते कवि हठात् खड़े हो गए। उनके कानोंने एक ध्वनि सुनी थी—मन्द, गम्भीर ध्वनि; जैसे किसीने मृदंगपर गमक लगाई हो। चकित नेत्रोंसे कविने इधर-उधर देखा। पासके वेणु-कुंजसे मयूर बाहर निकल आया था। सुन्दर लम्बी ग्रीवाको मोड़-मोड़कर उसने भी चारों ओर देखा।

फिर वही ध्वनि! दूर, क्षितिजके उस पार, अन्तरिक्षके पीछेसे कोई गरज रहा था! इतनेमें पूरबकी ओरसे सरसराती वायु चल पड़ी। कविके कन्धोंपर उत्तरीय फहराने लगा। आवेग-प्रदीप्त नेत्रोंसे कविने देखा, मयूरने अपने पंख फैला दिए हैं। चमकीले नीले पंखोंपर जैसे सहस्रों इन्द्रधनुषी रंगकी आँखें खुल गई हों!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः गर्जन हुआ। थिरकते पैरोंपर मुड़कर कविने प्राचीके क्षितिजको देखा—कृष्ण-वर्ण हाथीकी भाँति आषाढ़का मेघ ऊपर अधरमें झूल रहा था। कविने देखा—बादल निकट आया, वायु और भी वेगसे बहने लगी, पृथ्वीपर एक विचित्र सौन्दर्यमयी श्यामलता छा गई। एकाएक ऐसा लगा, मानो व्योममें सहस्रों उल्काएँ जल उठी हों। श्वेत रंगकी बिजली बादलके शरीरमें सर्पिणीकी भाँति पल-भर लिपटकर कहीं खो गई। गम्भीर निनाद हुआ और गजमुक्ताके आकारकी एक बून्द कविके उन्नत मुखपर बरस पड़ी। शरीरके रोम-रोम थिरक उठे। हृदय ताल देकर नाच उठा। आँखें आनन्दके जलसे भीग गईं। कविकी आत्मा ऊर्द्धगामिनी बनकर 'महान्'के स्वागतको उद्यत हो गई।

सन्तप्तोंके शरण, इन्द्रके कामचारी प्रकृति-पुरुषके आगे नम्रतापूर्वक खड़े होकर, अंजलिमें कुटजके पुष्पोंको भर, अपने-आपको धनपतिके क्रोधसे विश्लेषित अलकावासी एक यक्ष बता, भारतके एक कविने उस दिन अपने हृदयकी समस्त वेदनाको गीतोंमें भर दिया। धूम, ज्योति, सलिल और मरुतसे बने मेघने कविकी याञ्चाको सुना या नहीं, कौन जानता है? काश्मीरकी पुष्पमयी घाटियोंमें वास करनेवाली कविकी प्रियतमा तक वह हवाई सन्देश पहुँचा भी या नहीं, कौन जानता है? किन्तु कविका वह अमर प्रयत्न असफल नहीं हुआ। उस समयसे आज तक डेढ़ हज़ार बार आकाशमें वर्षाके मेघका आगमन हुआ। उतनी ही बार हज़ारों-लाखों कण्ठोंसे कविके उस गीतका अश्रुसिक्त गद्‌गद् स्वरमें पाठ हुआ। मानव-जगत्‌में लाखों अभागे यक्ष उत्पन्न हुए। भाग्यका कठोर शाप उनपर बरसा। लाखों मानवी यक्षिणियाँ, कुसुम-सदृश अपने आशा-बन्ध सँभाले, सद्यःपातिप्रणयी हृदयको लिए वेदनामें तड़प उठीं। उस समय वियोगी कविका गीत उनके हृदयके सुरसे सुर मिलाकर गूँज उठता होगा। उन्हें उसमें अपनी यातना-भरी प्रतीत होती होगी। अपने अन्दरका सत्य उन्हें उसमें मिलता होगा।

किसी ऐसी ही सन्ध्यामें, उत्तरायणमें, 'नील-लोहित' भगवान्‌से अपनी आत्माकी मुक्तिके लिए प्रार्थना करते हुए आर्यावर्तका वह अमर कविसम्राट चुपचाप चल दिया होगा शिव-लोकको! किन्तु कवि मरता ही कब? वह तो जीवित है आज भी। आज भी इस समय व्योममें काले-सफ़ेद बादल छाए हुए हैं। आज भी हम लोगोंमें कुछेक शापित यक्षकी वेदनाको वहन कर रहे हैं। हममें से कई, दिनमें अधिक नहीं तो एक दर्जन बार, गुनगुना उठते हैं:—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः,
कंठाश्लेषप्रणयिनिजने किम्पुनर्दूरसंस्थे?

'त्यागपत्र' और 'नारी'

प्रो० नगेन्द्र, एम० ए०

प्रेमचन्दजीके सभी उपन्यास हिन्दीके मूर्धन्यपर आसीन होने योग्य नहीं हैं। 'गोदान' उनकी सबसे महत्वपूर्ण कृति है। उसके अतिरिक्त 'गबन', 'सेवासदन', 'रंगभूमि' आदिमें भी बहुत कुछ है, जो अमर रहेगा। हिन्दीमें इनसे टक्कर लेनेवाले उपन्यास बहुत नहीं प्रकाशित हुए। जो हुए, वे उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं, जैसे 'त्यागपत्र', 'नारी', 'चित्रलेखा', 'शेखर' इत्यादि। समय और सुविधाको देखते हुए यहाँ मैं श्री जैनेन्द्रकुमारके 'त्यागपत्र' और श्री सियारामशरण गुप्तके 'नारी' उपन्यासोंको लूँगा। ये दोनों उपन्यास मुझे काफ़ी प्रिय हैं। इनमें कुछ इस प्रकारकी समता और विषमता है, जो तुलनात्मक अध्ययनको रोचक और उपयोगी बना देती है।

'त्यागपत्र' और 'नारी' दोनों ही में एक नारीकी कहानी है। 'त्यागपत्र' एकमात्र मृणालकी व्यक्तिगत कहानी है और 'नारी' जमुनाकी। मृणाल और जमुना दोनोंके ही व्यक्तित्वोंके मूलमें अतृप्ति है। दोनों ही हमारे सम्मुख एक अभुक्त वासना लिए आती हैं। मृणालके जीवनका तो आरम्भ ही इस अतृप्तिसे होता है। उसके माता-पिता नहीं हैं। भाईका स्नेह उसके स्नेहकी कमीको भर नहीं पाता। उसको स्नेहकी झलक एक दूसरे व्यक्तिसे मिलती है। पर मिलनेके साथ ही वह एक तीखा घाव छोड़कर सदाके लिए मिट जाती है। भावजकी कठोर ताड़ना उस अभावकी अग्निको और भी भड़काती है, और अन्तमें उसका बेमेल विवाह एवं पतिकी यन्त्रणाएँ इस जीवनव्यापी अतृप्तिमें पूर्ण आहुति बन जाती हैं। इस प्रकार वासना पूर्णतः अभुक्त और अतृप्त रहकर उसके जीवनमें एक अद्‌भुत गति और शक्तिका संचरण करती है। जीवनके मध्याह्न तक तो उसे इस वासनाके संस्कारका उचित माध्यम नहीं मिल पाता, और वह एक उद्दाम तीव्रता लिए झुलसती और झुलसाती—जीवनको मानो चीरती हुई—भट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कती रहती है। बीचमें वह पातिव्रतकी बात करती है, अपने पतिके साथ समझौतेका प्रयत्न करती है, एक अत्यन्त निकृष्ट व्यक्ति—कोयलेवाले—के साथ ममताका खेल खेलती है, पत्नी-धर्मके निर्वाहका दावा करती है। पर यह सब कुछ जैसे एक तीखा व्यंग्य है। सचमुच चारों ओरसे नकार प्राप्तकर मृणालका जीवन ही एक तीव्र व्यंग्य बन गया है। जमुनाका व्यक्तित्व व्यंग्यमय नहीं है। कारण यह है कि उसमें आरम्भसे ही निषेध और स्वीकृतिका मिश्रण रहा है। उसको चारों ओरसे नकार ही नहीं मिला। आरम्भमें पतिका मुक्त प्रणय-दान, उसके चले जानेपर श्वसुरका स्निग्ध वात्सल्य, और उनके मरनेके बाद हल्लीके स्नेहमें उसे जीवनकी मधुर स्वीकृति भी मिली है। इसके साथ ही बादमें पतिकी उपेक्षामें गाँववालोंके, विशेषकर चौधरीके, कटु व्यवहारमें उसे तिरस्कार भी मिला है। परन्तु कुल मिलाकर वास्तवमें यह नकार उस स्वीकृतिसे कहीं हल्का बैठता है। इसीलिए जमुना कई बार विचलित होकर भी विश्वास नहीं खो पाती, जीवनकी स्वीकृतिका अपमान नहीं कर पाती। जीवनको चरम परिणतिमें भी—जब वह पतिका ध्यान छोड़ एक दूसरे व्यक्तिको ग्रहण करनेका निश्चय कर लेती है—वह जीवनको स्वीकार ही करती है, उसका निषेध नहीं करती। उसके जीवनमें अतृप्ति है। उसकी वासना प्रणयके अभावमें अतृप्त और अभुक्त रहती है; परन्तु उसके साथ ही उसको व्यक्त और तुष्ट करनेका साधन भी तो पुत्र-रूपमें उसके पास है। वह गृहिणी है। गृहस्थ-जीवनकी मर्यादाका भी, जिसके समतल थामलेमें हल्ली-जैसा सुन्दर पौधा पनप रहा है, उसकी वासनापर अधिकार है। इसलिए उसके व्यक्तित्वमें मृणालकी-सी तीव्रता और गति नहीं रह गई; परन्तु विश्वासकी प्रशान्त गम्भीरता उसमें है। मृणाल यदि लेम्पकी प्रखर लौ है, जिसमें प्रकाशके साथ विषाक्त धुआँ भी है, तो जमुना घृतका स्निग्ध दीपक है, जिसमें प्रकाश चाहे हल्का हो, पर धुआँ बिलकुल नहीं है।

इन दोनों पात्रोंके व्यक्तित्वोंके अनुसार ही दोनों उपन्यासोंके मूल प्रश्नोंमें भी साम्य है। इन दोनोंके रचयिताओंकी विचारधाराकी एक दिशा है। दोनों ही दार्शनिक या सामाजिक शब्दावलीमें गांधी-नीतिमें, और मनोविश्लेषणकी शब्दावलीमें आत्म-पीड़नमें विश्वास करते हैं। दोनों ही एक स्वरमें कह उठते हैं—'सचमुच जो शास्त्रसे नहीं मिलता, वह ज्ञान आत्म-व्यथामें मिल जाता है।' (त्यागपत्र)। 'लोग ऊपर-ऊपर देखते हैं, इसीसे कहते हैं कि इसे दुख है। किसीको दुख ही दुख हो तो वह ज़िन्दा कैसे रहे? आज तो पूरा उपाय करनेकी सोच ली है। आनन्द इसमें भी है।' (नारी)। और अधिक स्पष्ट किया जाय, तो वास्तवमें इस दृष्टिकोणका निर्माण अहिंसाके आधारपर कामकी स्वीकृतिके द्वारा हुआ है। दोनों उपन्यासोंमें आत्म-व्यथामें जीवनकी शक्तिका मूल-स्रोत माना गया है। अबके कारणोंसे घृणा न करते हुए, कष्टकी अनिवार्यतासे त्रास न खाकर, उसमें आनन्दकी भावना करना अहिंसा है, और अहिंसा यह सिखाती है कि अभुक्त वासनाका वितरण करना ही उसकी सफलता है। मृणाल अन्तमें जाकर इसी उपचारको ग्रहण करनेमें अपनी मुक्ति समझती है। जमुनामें यह भावना प्रारम्भसे ही वर्त्तमान है। परन्तु दोनोंके दृष्टिकोणोंमें एक अन्तर है—'नारी'की विचार-धारामें समाज-नीतिकी मर्यादाका रक्षण है, परन्तु 'त्यागपत्र'में यह बात नहीं है। जमुनाके स्रष्टाने इस बातका ध्यान रखा है कि दूसरे व्यक्तिको ग्रहण करनेमें भी वह समाज-नीतिका उल्लंघन न कर पाए—जमुना जिस वर्गकी नारी है, उसमें पुनर्विवाह या दूसरा घर बसा लेना जायज़ है। इसके विपरीत 'त्यागपत्र'में सामाजिक मानोंकी अन्तिम स्वीकृति नहीं है, पतिके होते हुए भी मृणाल अपने प्रति सद्व्यवहार करनेवाले व्यक्तिको शरीर-समर्पण कर बैठती है—उत्तेजनामें आकर नहीं, ठण्डे मस्तिष्कसे। जैनेन्द्रजी नीतिकी चहार-दीवारीका प्रवेश करना शायद आत्म-कल्याणके लिए उचित समझते हैं, परन्तु सियारामशरणजी समाजकी मर्यादा-भंग करना श्रेयस्कर नहीं मानते।

दोनों उपन्यासोंके मूल प्रश्नोंको ऋजु-शैलीसे समझिए—सबसे पहले दो नारियाँ अपने जीवनका संघर्ष लेकर हमारे सामने आती हैं और हमारे मनमें प्रश्न उठता है कि नारी-जीवनकी मुक्ति किसमें है?—विवाहकी मर्यादामें, या प्रवृत्तिके उपभोगमें? प्रत्यक्ष रूपमें यही धारणा होती है कि सियारामशरणजी प्रवृत्तिको स्वीकार करते हुए भी विवाहकी मर्यादाके पक्षमें हैं और जैनेन्द्रजी समाज-मर्यादाका आदर करते हुए भी प्रवृत्तिके ही समर्थक हैं। पर यह तो हमारे अध्ययनकी पहली मंज़िल है—'त्यागपत्र' और 'नारी'का मूल प्रश्न अभी हमारे हाथ नहीं आया। अभी और आगे चलना है और उसके लिए हमें मृणाल और जमुनाके व्यक्तित्वोंके पार देखना पड़ेगा, क्योंकि 'त्यागपत्र' और 'नारी' स्पष्टतः ही सामाजिक समस्याके उपन्यास नहीं हैं; उनका—विशेषकर त्यागपत्रका—सम्बन्ध मानव जीवनके मौलिक प्रश्नसे है: जीवनकी मुक्ति क्या है? 'त्यागपत्र'के साथ यह विशेषता लगा देनेका अर्थ यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारीमें पाठककी दृष्टि उसके सामाजिक समस्यावाले पहलूपर अपेक्षाकृत अधिक ठहरती है, मृणालकी अपेक्षा जमुना समाजकी इकाई ज़्यादा है, उसके जीवनमें सामाजिक समस्या भी थोड़ा-बहुत महत्व तो रखती ही है। लेकिन फिर भी यह पहली मंज़िल तो आपको पार करनी ही होगी, तभी आप इन उपन्यासोंकी अन्तर्धारामें प्रवेश कर सकेंगे। यहाँ आकर मृणाल और जमुना उपलक्ष्य बन जाते हैं—समाज तथा पुरुष और नारीके आवरणोंको पारकर जैसे ये दोनों शुद्ध व्यक्ति रह जाते हैं और जीवनका समाधान ढूँढ़नेमें व्यस्त दिखाई देते हैं : विधान या प्रवृत्ति ? यह इनका मूल प्रश्न है और यही सामाजिक मानवका चिरन्तन प्रश्न भी है। जैसा मैंने ऊपर कहा, जैनेन्द्रजी विधानका साधारण रूपमें आदर करते हुए भी अन्तिम परिणतिपर पहुँचकर उसका निषेध कर देते हैं। सर एम० दयालका त्यागपत्रपर सही करना स्पष्ट रूपमें जैनेन्द्रजीका विधानके निषेधपर सही करना है। वह महसूस करते हैं : "कहीं कुछ गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि ग़लत है। समाज ग़लत है···इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है। इससे ज़रूर कुछ होना होगा, ज़रूर कुछ करना होगा।" आगे एक प्रश्न उठता है—'पर क्या-आ ?' यहाँ आकर अधिकांश संक्राति कालके विचारकोंकी भाँति वे घबराकर रुक जाते हैं। लेकिन उनकी आस्था, जिसका पोषण गांधी-नीतिके प्रभावमें हुआ है, उनकी मदद करती है ; और वे अहिंसा या तपस्यामें जीवनका समाधान मान लेते हैं यद्यपि वह पूर्णतः उनके घटमें उतर जाता है, इसमें मुझे सन्देह है। उनके पास एक यही उत्तर है और यही उत्तर सियारामशरणजीके पास भी है। दोनोंका प्रश्न एक है, उत्तर भी एक है, लेकिन क्रिया भिन्न है। सियारामशरणजीको जीवन-विधानकी गड़बड़का इतना तीखा अनुभव नहीं होता, लेकिन वे उसपर सन्देह अवश्य करते हैं, उसको तोड़नेका लोभ भी उनको कम नहीं होता है—क़रीब-क़रीब तोड़ ही देते हैं—लेकिन अन्तमें उन्हें उसीकी ओर लौटना पड़ता है। वे मानो इस प्रकार सोचते हों—'पीड़ा जीवनमें अनिवार्य है, उसीमें आनन्दकी भावना कर लेना जीवनका समाधान प्राप्त कर लेना है ; और प्रवृत्तिके बन्धनकी पीड़ा ही सच्ची पीड़ा है। इस प्रकार आत्म-पीड़नकी फ़िलासफ़ीमें विश्वास रखनेवाले ये लेखक दो विभिन्न क्रियाओं द्वारा जीवनका समाधान ढूँढ़ निकालते हैं—जैनेन्द्रजी विधानसे युद्ध करते हुए और सियारामशरणजी प्रवृत्तिसे लड़ते हुए।

दृष्टिकोणका यही अन्तर दोनों व्यक्तित्वोंके अन्तरको स्पष्ट कर देता है। प्रवृत्तिके समर्थक जैनेन्द्रजीका अहं स्वभावतः ही अधिक बलिष्ठ और तीखा होना चाहिए, और उधर विधानमें आस्था रखनेवाले सियारामशरणजीमें अधिक आत्म-निषेध होना उतना ही स्वाभाविक है। दोनों व्यक्तियोंका जीवनादर्श एक है—पूर्ण अहिंसाकी स्थिति प्राप्त कर लेना, अर्थात् अपने अहंको पूर्णतः घुला देना। इस साध्यके लिए सियारामशरणजीकी साधना अधिक हार्दिक है, नैतिक दमनका अभ्यास उनको अधिक है, और उनका अहं सचमुच बहुत काफ़ी घुल चुका है। अहिंसा बहुत कुछ उनके व्यक्तित्वका अंग बन चुकी है। इसके विपरीत जैनेन्द्रका अहं अब भी इतना सजग और पैना है कि उनकी सादगी, विनम्रता और सरलताको चीरता हुआ क्षण-क्षण सामने आ जाता है। इसीलिए अपने प्राप्यके लिए उनको सियारामशरणकी अपेक्षा अधिक संघर्ष करना पड़ता है। उनके जीवनमें संघर्ष अधिक है, ठीक उतना ही अधिक जितना मृणालके जीवनमें जमुनाकी अपेक्षा। सियारामशरणजीमें हृदयका अंश अधिक है, वे अधिक आस्तिक हैं। जैनेन्द्रजीमें बुद्धिकी तीव्रता है, अतएव उनके मनमें सन्देहका संघर्ष अधिक है। इसीलिए जैनेन्द्र अधिक व्यक्तिवादी हैं—सियारामशरणजीमें सामाजिकताकी भावना अधिक है। सियारामशरणजीके लिए अहिंसाका आदर्श कुछ सीमा तक प्राप्त भी है, परन्तु जैनेन्द्रजीके लिए अभी वह एक प्राप्य-मात्र है। उनकी जागरूकता और उससे भी अधिक जागरूक अहंकार स्वभावसे ही अहिंसाके आत्म-निषेधके प्रतिकूल है, इसीलिए उनको उसके प्रति आग्रह अधिक है। यही कारण है कि उनके उपन्यासमें संघर्ष अधिक तीखा और सशक्त है। मेरी अपनी धारणा यह है कि साहित्यकी शक्ति और तीव्रता उसके सृष्टाके अहंकी शक्ति और तीव्रताके अनुसार ही होती है। दुर्बल अहं अथवा किसी भी कारणसे दबा हुआ अहं, यहाँ तक कि घुला हुआ अहं भी आर्द्रताकी ही सृष्टि कर पाता है, शक्तिकी नहीं। निदान 'त्यागपत्र'में जहाँ तीव्रता है, वहाँ 'नारी'में है आर्द्रता।

शैलीमें भी दोनोंका वही सम्बन्ध है, जो उनके व्यक्तित्वमें—यानी 'त्यागपत्र'की शैलीमें तीखापन और वक्रता है, 'नारी'की शैलीमें कोमलता और सरलता है। 'त्यागपत्र'की कहानी जैसे दिल और दिमाग़को चीरती हुई आगे बढ़ती है, और 'नारी'की कहानीको सुनकर जैसे पीड़ा मधुर-मधुर घुल उठती है। 'त्यागपत्र'की शैलीमें कठोर निर्ममता है, उसके कुछ क्षणोंकी निर्ममता तो असह्य है। अगर आपके सामने कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति मुँहकी रंगतको बिगाड़ता हुआ, तकलीफ़के साथ ज़हर पीता हो, तो आप कैसा महसूस करेंगे ? और अगर यही व्यक्ति बिना किसी प्रकारके भाव-परिवर्तनके, गम्भीरताके साथ ज़हरको गट-गट-कर जाय, तो आपको कैसा लगेगा ? मृणालकी कुछ आत्म-यन्त्रणाएँ ऐसी ही हैं। इसके विपरीत 'नारी'की शैलीमें घरेलू स्निग्धता है। जयना आत्म-व्यथामें विश्वास करती हुई भी अपने प्रति स्निग्ध और करुण है—अतएव 'नारी'की कहानीमें कोमल-स्निग्ध गति है। उसकी कहानीमें हृदयको स्पर्श करनेवाले स्थल अनेक हैं, हृदयको चीरनेवाले स्थल नहीं हैं। 'नारी'की यह करुण कहानी हल्कीके बाल-सुलभ क्रिया-व्यापारोंसे मन बहलाती हुई, धीरे-धीरे आगे बढ़ती है—यहाँ तक कि कहीं-कहीं इसकी गति मन्द पड़ जाती है, और पाठक सोचता है कि हल्कीके ये खेल और मुक़द्दमे कुछ कम हों तो अच्छा था, क्योंकि कहीं-कहीं वे कहानीको उलझा लेते हैं। 'नारी'की कहानीका यह दोष उसके प्रभावमें बाधक होता है।

इन दोनों कहानियोंकी गठनमें एक-एक स्थल ऐसा मिलता है, जहाँ पाठकका मन रुककर उसकी स्वाभाविकतापर सन्देह कर उठता है। 'त्यागपत्र'में जब मृणाल पतिके घरसे निकलकर एक कोयलेवालेको ग्रहण कर लेती है, तो शायद अनेक पाठकोंकी भाँति मेरा मन भी पूछ उठता है—क्या एक शिक्षिता मध्यवर्गीय बालाके लिए यह स्वाभाविक है ? क्या वह अपने पैरोंपर नहीं खड़ी हो सकती थी, जैसा कि उसने बादमें कुछ दिनके लिए किया ? और अगर उसे किसी पुरुषके सहारेकी ही आवश्यकता थी, तो क्या कोयलेवालेकी अपेक्षा अच्छे चुनावकी गुंजाइश नहीं थी ? यह सन्देह एक बार ज़रूर उठता है, लेकिन इसका समाधान प्राप्त कर लेना भी समझदार पाठकके लिए असम्भव नहीं है। मृणालके व्यक्तित्वमें बुद्धि और संवेदनाकी प्रखरताके कारण एक असाधारणता है, अतएव एक साधारण मध्यवर्गकी युवतीको दृष्टिमें रखकर उसके व्यवहारकी समीक्षा करना ग़लत होगा। जीवनमें नकार पाकर उसका स्वभावसे ही संवेदनाशील मन अतिशय संवेदनाशील हो गया है। बस, उस आखिरी धक्केसे वह एक बार कुछ समयके लिए समग्रतः डूब जाता है। ऐसी स्थितिमें चुनावका प्रश्न ही नहीं उठता—उसपर अहसान करनेवाला पहला पुरुष बड़ी आसानीसे कुछ समयके लिए तो उसके जीवनमें प्रवेश कर ही सकता है—बड़े-बड़े करोड़पतियोंकी स्त्रियाँ फ़क़ीरोंके साथ भाग जाती हैं। और मृणालके साथमें तो यह स्थिति मानसिक विवशता (resignation) के अतिरिक्त चैलेंजका परिणाम भी हो सकती है। शरत्के पाठकको इस प्रकारके पात्रोंको ग्रहण करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। 'नारी'में भी एक स्थल सन्देहप्रद है। ज्यों ही जमुनाकी कहानी अन्तिम स्थितिपर पहुँचती है, हल्कीका एक साथी हीरा, सिर्फ़ हल्कीसे बदला लेनेके लिए, जमुनाके पतिको एक ऐसा पत्र लिख देता है कि सारा खेल बिगड़ जाता है। यह पत्र इतना कौशलपूर्ण है कि इसको हीरा-जैसा छोटा बालक तभी लिख सकता था, जब सियारामशरणजी इबारत बोलते गए होते। माना कि यह घटना जमुनाके व्यक्तित्व-विकासमें प्रत्यक्षरूपसे बहुत महत्वपूर्ण नहीं है, परन्तु कथाके विकासमें इसका महत्व असंदिग्ध है। इसकी त्रुटि कथा-शिल्पकी एक त्रुटि है। इसका समाधान मुझे बहुत सोचनेपर भी नहीं मिल पाया। यहीं आकर जैनेन्द्रजी और सियारामशरणजीकी शैलीका एक और अन्तर स्पष्ट हो जाता है—जैनेन्द्रजी अपनी शैलीके प्रति जागरूक हैं, प्रभावको तीव्र करनेके लिए उन्होंने सचेत होकर कोशिश की है। उन्होंने इसीलिए संवेदनाके मापक रूपमें सर एम० दयालकी सृष्टि की है। जैनेन्द्रजी प्रभावको तीव्र करते जाते हैं और धारा धीरे-धीरे ऊपर चढ़ती जाती है। अन्तमें मृणालकी मृत्युपर जैसे तापके सीमा पारकर जानेसे यन्त्र टूट जाता है, सर एम० दयाल जजीसे स्तीफ़ा दे देते हैं। यह उपन्यास-शिल्पीका अद्भुत कौशल है। इसीलिए जब जैनेन्द्रजी कभी-कभी सादगीमें आकर टैकनीक या शिल्पसे सर्वथा अबोध होनेकी बात करने लगते हैं, तो हँसी आ जाती है। उधर सियारामशरणजीका लक्ष्य कमसे कम 'नारी'में एक सीधी-सच्ची करुण-स्निग्ध कहानी कहना ही रहा है। उन्होंने जागरूक होकर प्रभावको तीव्र करनेका प्रयत्न नहीं किया, या इतने हल्के हाथोंसे किया है कि वह लक्षित नहीं होता। उदाहरणके लिए आप वह स्थल ले सकते हैं, जहाँ एक दूसरा व्यक्ति जमुनाके जीवनमें प्रवेश करता है और जमुना उसे समर्पण कर देती है। यह सब इस प्रकार होता है, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पाठकके मनमें जमुनाके जीवनका यह सबसे महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार सरक जाता है, जिससे कि वह बिल्कुल नहीं चौंकता। इसके विपरीत आप मृणालका समर्पण लीजिए। उसमें कितना व्यंग्य है, कितनी कचोट है, कितनी तीव्रता है ? उसके जीवनका यह तथ्य पाठकके मनको चीरता हुआ, उसकी वृत्तियोंको झनझनाता हुआ, प्रवेश करता है। 'त्यागपत्र'का कौशल अपनी विदग्धताके बलपर अपने मेधावी शिल्पीकी दुहाई देता है और 'नारी'का कौशल अपनेको छिपाकर अपने स्नेहार्द्र शिल्पीकी सिफ़ारिश करता है।

(दिल्ली-रेडियोके सौजन्यसे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होमियोपैथी

श्री मनोरंजन भट्टाचार्य

पहला दृश्य

[पूर्वी बंगालके पूर्वी हिस्सेका, जहाँ जापानी बमबारीका खतरा है, एक सम्पन्न गाँवके बीचवाले रास्तेका नुक्कड़। होमियोपैथिक डाक्टर निवारणके पीछे दवाईका बक्स लिए जगाईका प्रवेश। दूसरी ओरसे पं० स्मृतिरत्नका घबराए हुए प्रवेश।]

स्मृतिरत्न—कौन डाक्टर बाबू, मैं तो आप हीके यहाँ जा रहा था। चलो तो भैया ज़रा मेरे घरपर, कल रातसे पंडिताइनको क़ै-दस्त हो रहे हैं। लेकिन हैज़ा शायद नहीं है।

जगाई—तब डरकी क्या बात है? चलिए डाक्टर बाबू, पहले हम मियाँ-मोहल्लेसे हो आवें।

स्मृति०—हाँ, क्यों नहीं, मियाँ-मोहल्लेमें छू-छाकर तब आओगे ब्राह्मणोंकी बस्तीमें? पागलके सिवा दूसरा कौन ऐसी बात कह सकता है।

जगाई—लेकिन पंडितजी, आपके यहाँ तो हैज़ा नहीं है।

स्मृति०—हाँ, नहीं है हमारे घरमें हैज़ा। जानता है, मेरी परदादी मरते वक्त कह गई थी कि हमारे घरमें वह बीमारी कभी नहीं होगी। इसके अलावा, हम आचारवान् ब्राह्मण हैं। तीन वक्त पूजा-पाठ किए बिना पानी भी नहीं पीते।

निवारण—तो पंडितजी, तीन बार पूजा करके आप पानी कहाँका पीते हैं?

स्मृति०—क्यों? अपने परदादेके खुदवाए हुए शिमूल पोखरेका।

निवा०—कैसे अचरजकी बात है कि आप उस गन्दे पोखरेका पानी पीते हैं!

स्मृति०—देवताके नामपर संकल्प किए गए उस पोखरेको आप गन्दा कहते हैं?

निवा०—पर पंडितजी, मैंने वहाँपर किसानोंको अक्सर गाय-बैल वगैरह नहलाते हुए देखा है।

स्मृति०—तो उससे क्या हुआ? आप कहना चाहते हैं कि गोमाताके नहलानेसे पोखरेका पानी अपवित्र हो जाता है?

निवा०—अपवित्र भले ही न हो, लेकिन गन्दा तो ज़रूर हो जाता है।

जगाई—और उस पानीके पीनेसे क़ै-दस्त न होंगे तो क्या होगा; चाहे आप तीन बार पूजा-पाठ करें, चाहे तीस बार।

स्मृति०—नास्तिक, म्लेच्छ कहींका! जहाँ-तहाँका, इसका-उसका, छुआ खाकर यह खुद तो रसातलको गया ही है; पर डाक्ट साहब, आपने इसके हाथोंमें दवाका बक्स क्यों दे दिया? इसके छूनेसे क्या आपकी दवाइयोंका असर कम नहीं हो जायगा?

निवा०—शायद ऐसी ही बात हो, नहीं तो हैज़ा क्यों नहीं बन्द कर पा रहा हूँ? वह मुसलमान-मोहल्लेसे अब ब्राह्मणोंकी बस्तीमें आ पहुँचा है। आपके घरमें भी शायद...

स्मृति०—अजी नहीं, राम बचाय, मेरे घरमें भला हैज़ा क्यों होगा? पंडिताइनको तो सिर्फ़ क़-दस्त हो रहे हैं। शायद पेटमें कुछ गड़बड़ी हो।

जगाई—डाक्टर बाबू, तब फिर सिर्फ़ क़ै-दस्तकी थोड़ी-सी दवा पण्डितजीको देकर चलिए न मियाँ-मोहल्लेमें। अब देर करना ठीक नहीं।

स्मृति०—तो क्या आप पहले हमारे घर नहीं चलेंगे?

निवा०—हाँ, उधरसे लौटकर आऊँगा, तब पण्डिताइनजीको देखकर ही दवा दूँगा।

स्मृति०—मालूम नहीं वहाँसे आप कब लौटेंगे? फिर नहाने-धोनेमें भी देर लगेगी ही। तब तक दूसरी बेर हो जायगी। इससे तो फिर आप कोई दवा ही दे दीजिए। पर देखिए, किसी तेज़ दवाकी ज़रूरत नहीं है।

[डाक्टर बक्स खोलकर दवा बनाने लगता है। दूरसे नगर-कीर्त्तनकी आवाज़ सुनाई पड़ती है।]

स्मृति० (बड़बड़ाकर)—कबसे हरामज़ादोंको कह रहा था कि नगर-कीर्त्तन करके गाँवकी परिक्रमा कर डालो, जिसमें हैज़ा-वैज़ा फैलनेका डर न रहे। लेकिन मेरी बात सुनता कौन है? अब जब सिरपर आ बनी, तो सभी डरकर कीर्त्तन करने निकले हैं। लेकिन अब इन शूद्रोंको सिर्फ़ क़ै-दस्तसे ही छुटकारा नहीं मिलेगा, हैज़ा भी होगा, ज़रूर होगा।

जगाई (हँसीमें)—अच्छा पण्डितजी, अगर संयोगसे पंडिताइनजी इस बीमारीसे मर जाती हैं, तो क्या आप भी उनके साथ ही मरेंगे?

स्मृति०—चुप रह पागल कहींका, मुँहसे ऐसी अशुभ बात निकालता है?

निवा० (कई पुड़ियोंको हाथमें लेकर)—लीजिए, पहले इसे दीजिएगा। उसके बाद अगर क़ै या दस्त न हों, तो इसे न दीजिएगा। डरकी कोई बात नहीं है। मैं फुर्सत मिलते ही आपकी तरफ़ आऊँगा। लेकिन इस पोखरेका पानी अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप लोग न पिएँ। अगर पीना ही पड़े, तो उबालकर। लेकिन रास्तेवाला ट्यूब-वैल तो आपके घरसे विशेष दूर नहीं है। वहींसे पानी मँगा लीजिए।

स्मृति०—अच्छा, अच्छा। आप एक बार उधर आनेकी कोशिश ज़रूर करें। अच्छा, नमस्कार। [स्मृतिरत्नका प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

[जगाई और डाक्टर निवारण बातें करते हुए चले जा रहे हैं। दूरसे नगर-कीर्त्तनकी आवाज़ सुनाई पड़ती है।]

जगाई—कैसा अच्छा संयोग है डाक्टर बाबू, आज हिन्दू कीर्त्तन करने निकले हैं और आज ही मुसलमान भाई मसजिदमें जमा होकर नमाज़ पढ़ेंगे। लेकिन डाक्टर बाबू, हिन्दुओंके भगवान क्या बहरे हैं? चिल्लाकर न बोलनेसे क्या वे सुन नहीं सकते? मुसलमानोंके खुदा भी चिल्लानेसे तो खफ़ा ही होते होंगे। ईश्वर और खुदा दोनों तो मनकी बात समझ लेते हैं, फिर चिल्लानेकी क्या ज़रूरत?

निवा०—देख जगाई, कीर्त्तन करनेवाले तो इसी ओर आ रहे हैं। क्या वे मसजिदकी बग़लसे जाना चाहते हैं?

जगाई—तो इसमें हर्ज़ ही क्या है? हिन्दू-मुस्लिम दोनों एकसाथ मिलकर हैज़ेके खिलाफ़ ईश्वरसे अर्ज़ करेंगे। खुदाकी कृपा ज़रूर होगी। ईश्वर लोगोंकी रक्षा करेगा। अच्छा, बतलाइए खुदा और ईश्वर दोनों एक हैं या दो?

निवा०—वे एक हैं या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम; लेकिन हम हिन्दू-मुसलमान दो हैं, एक नहीं।

जगाई—देखिए डाक्टर बाबू, मैं मन्दिरमें भी जाना चाहता हूँ और मसजिदमें भी। हिन्दूका छुआ भी खाता हूँ, और मुसलमानका भी। लेकिन मुझे सभी खदेड़ देते हैं। न तो लोग मुझे मन्दिरमें घुसने देते हैं, न मसजिदमें ही। अतः खुदा और ईश्वरके एक होनेसे मेरी तरह उनकी भी फ़ज़ीहत होगी। उन्हें न तो मसजिदमें जगह मिलेगी, और न मन्दिरमें ही। लेकिन आप खड़े-खड़े क्या सोच रहे हैं?

निवारण—मालूम होता है जगाई, अब गाँवमें एक नई क़िस्मका हैज़ा फैल जायगा—हिन्दू-मुसलमान दंगा! इसकी दवा तो हैमियोपैथीमें है नहीं, जगाई।

(कीर्त्तन-दल निकट आ जाता है। लोग झूम-झूमकर गा रहे हैं।)

समन पालारे पाला, ओ चाँद-गौर एलो।
*गौर एलो निताई एलो, संगे रामानन्द एलो।**

निवारण (कुछ लोगोंसे)—आप यह कर क्या रहे हैं? मसजिदकी बग़लसे कीर्त्तन-मंडली ले जा रहे हैं? मुसलमान वहाँ जमा होकर नमाज़ पढ़ रहे हैं।

एक आदमी—वे ईश्वरका नाम ले रहे हैं, तो हम भी तो वही कर रहे हैं। हम तो सरकारी रास्तेसे जायँगे, मसजिद बग़लमें है, तो होने दो। हम उसका या मुसलमानोंका क्या बिगाड़ते हैं?

जगाई—लेकिन व्यर्थमें झगड़ा हो जायगा। वे बहुत हैं, मैं देख आया हूँ।

दूसरा आदमी—वे बहुत हैं, तो हम क्या कुछ कम हैं? क्या वे हमसे जीत जायँगे?

तीसरा आदमी—और वह मशहूर गुण्डा गफ़ूर तो हैज़ेसे बीमार पड़ा हुआ है, अब डर किसका है? चलो, बढ़ो।

(सब गाते हुए आगे बढ़ते हैं।)

समन पालारे पाला, प्राण गौर एलो।

निवा०—आप लोग दूसरे रास्तेसे जायँ, मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। सभी पीड़ित आज भगवानका नाम ले रहे हैं, आज झगड़ेकी बात मनमें भी मत लाइए। आगे ही हैज़ेसे गाँवमें तबाही मची हुई है।

पहला आदमी—हैज़ा तो मुसलमान-टोलेमें है, हमको उससे डर ही क्या?

निवा०—लेकिन अब वह हमारी बस्तीमें भी आ गया है।

जगाई—जी हाँ, नहा-धोकर, शुद्ध-पवित्र होकर आया है! हज़ेके पेटमें आग लगी है। हमारी हिन्दू-बस्तीमें अबकी बार उसे पेटभर भक्ष्य मिलेगा! बोहनी हुई है एकदम पंडित स्मृतिरत्नके घरसे!

पहला आदमी—चुप रह, पागल कहींका। आज कीर्त्तन-मण्डली निकली है। शनीचरको २१ हाथ ऊँची कालीमाईकी पूजा होगी। हिन्दुओंकी बस्तीमें हैज़ा पाँव भी नहीं रख सकता। पंडिताइनजी दो-चार बार घाटपर गईं, इसीसे उन्हें हैज़ा हो गया।

दूसरा आदमी—चलोजी, चलो! कीर्त्तन-मण्डलीको रोककर इस तरहकी बातोंमें फिज़ूल वक्त नहीं गँवाना चाहिए। अब अखंड कीर्त्तन आठों पहर चलता रहेगा।

(फिर सब गाते हुए आगे बढ़ते हैं।)

---

* हे यम, अब तू भाग जा, क्योंकि चन्द्रमा-रूपी भगवान गौरांग महाप्रभु आ गए हैं। गौरांग महाप्रभु आए हैं, सन्त निताई आए हैं और साथमें रामानन्द भी आए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समन पालारे पाला, औ चाँद-गौर एलो।

निवा० (अन्य लोगोंसे)—आप ज़रा दूसरे रास्तेसे घूमकर जायँ, मसजिदसे बिल्कुल सटकर मत जाइए। आपके पैरों पड़ता हूँ।

पहला आदमी—तुम अपना काम देखो डाक्टर, हमारे धर्म-कर्ममें बाधा मत डालो।

तीसरा आदमी—अरे यह डाक्टर हमारी मण्डलीको तितर-बितरकर देना चाहता है, क्योंकि हैज़ा रुकजानेसे इसको तो बहुत बड़ा नुक्सान होगा न!

दूसरा आदमी—हाँ, हाँ, तभी। चलो, चलें।

(कीर्त्तन-मण्डलीका प्रस्थान। दूसरी ओरसे पाँचूमियाँका प्रवेश।)

पाँचू—नमस्कार डाक्टर बाबू। अम्माकी तबीयत आज कुछ ठीक मालूम होती है। आँखें खोलकर उन्होंने देखा और खुद पानी माँगकर पिया है। आप चलकर ज़रा उन्हें देख न लेंगे?

निवा०—जा तो रहा था पाँचू, लेकिन……

पाँचू—क्या ये लोग मसजिदकी बग़लसे शोर मचाते हुए जायँगे? आज जुम्मेकी नमाज़ है। मैं भी आपको संदेश देकर वहीं जानेवाला था।

निवा०—नहीं, तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। तुम्हारी माँको देखे बग़ैर नहीं कह सकता कि तुम्हें उसे छोड़कर जाना चाहिए या नहीं।

पाँचू—लेकिन अगर ये लोग मसजिदकी तरफ ही जायँ…

जगाई—और अगर उधर तुम्हारी माँकी तबीयत फिर खराब हो जाय, तो?

निवा०—अच्छा पाँचू, चलो पहले देख लें तुम्हारी माँ कैसी है, उसके बाद तय किया जाय कि किधर चलें।

जगाई (बक्स देते हुए)—पाँचू, इस दवाईके बक्सको तुम्हीं लेते जाओ डाक्टर बाबूके साथ। मैं यहीं चौराहेपर खड़ा हूँ। कौन जाने, मामला कहाँ तक पहुँचेगा?

(पाँचूके साथ डाक्टरका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य

[अचानक कीर्त्तनका बन्द होना और शोरगुल सुनाई पड़ना। हिन्दुओंका लाठियाँ आदि लेकर उस ओर जाना।]

जगाई—आखिरकार भिड़ ही गए दोनों। पागल, बेवकूफ़! (एक हिन्दूसे) क्या बात है, आप लोग उधर कहाँ जा रहे हैं?

हिन्दू—देखते नहीं, वे साले हमारी कीर्त्तन-मंडली तोड़ रहे हैं।

जगाई—कीर्त्तन-मंडली तोड़ रहे हैं! और उधर कुछ मुसलमान जो मन्दिर तोड़ रहे हैं, इसका क्या होगा?

दूसरा हिन्दू—ऐं! मन्दिर तोड़ रहे हैं?

जगाई—हाँ, उसको बचाना ज़्यादा ज़रूरी है।

सभी—हाँ, हाँ, चलो; हम चलकर मन्दिरकी रखवाली करें। (सब एक ओर दौड़ जाते हैं।)

जगाई (एक लम्बी साँस लेकर)—क्या करूँ, मन्दिरको बचाऊँ या मसज़िदको?

(मसजिदकी ओरसे मुसलमानोंका एक दल हाथोंमें डण्डे, छुरे आदि लिए आता है।)

जगाई—बात क्या है भाइयो, आप लोग इतने उत्तेजित क्यों हैं? उधर यह कैसा गोलमाल हो रहा है?

एक मुसलमान—हरामखोर क़ाफ़िरोंकी शैतानी देखी तुमने, ठीक नमाज़के वक्त हल्ला करते हुए मसजिदकी बग़लसे जाना चाहते हैं। ग़फ़ूर आज नहीं है, इसीसे उन्होंने समझ लिया है कि अब हममें कुछ भी ताक़त नहीं रह गई है। लेकिन हम उन्हें सस्ता नहीं बख़्शेंगे।

जगाई—तो आप लोग उधर कहाँ जा रहे हैं?

दूसरा मु०—मसजिदपर ढेले फेंके जा रहे हैं। हमने अगर उनके मन्दिरके कँगूरे नहीं तोड़े, तो हमारा नाम मुसलमान नहीं!

(इसी वक्त हवाई-हमलेकी सूचना देनेवाला साइरन बजने लगता है। सभी डरकर हतबुद्धि हो एक-दूसरेका मुँह देखने लगते हैं।)

जगाई—सोच क्या रहे हैं आप लोग, भागकर कहीं छिपिए। यह हवाई-हमलेके खतरेका भोंपू है।

एक मुसलमान—लेकिन छिपें कहाँ, यहाँ तो कोई बचावघर भी नहीं है।

जगाई—आसपास तो सभी पुआलके झोंपड़े हैं। वह सामनेवाला मन्दिर काफ़ी मज़बूत है, चलिए, सब वहीं चलें।

(सब 'चलो, चलो' कहकर अपने हाथोंके डण्डे, छुरे और ईंटें फेंककर मन्दिरकी ओर दौड़ते हैं। कुछ ही क्षण बाद हवाई-जहाज़से बम गिरने और फटनेकी आवाज़ आती है।)

जगाई—भई वाह, यह तो अच्छा तमाशा है! बमके डरसे हिन्दू भूल गए कि मुसलमान मन्दिरमें घुस रहे हैं और मुसलमान भूल गए हैं कीर्त्तन-मण्डलीको तोड़ना!

(सब लोग ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं।)

जगाई (ऊपर देखकर)—एक बम आकर गिरे, तो बस सारा झगड़ा ही मिट जाय। लेकिन क्या ऐसा होगा? ऐसी सुखकी मौत हम लोगोंके नसीबमें कहाँ? हमें तो मरना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा घुल-घुलकर, भूखे रहकर। देखते नहीं, चावलका दाम किस तेज़ीसे चढ़ता जा रहा है?

(डाक्टर निवारणका कुछ लाठियाँ, छुरे, ईंटें वगैरह लेकर मसजिदकी तरफ़से प्रवेश।)

निवा०—क्या कर रहे हो जगाई?

जगाई—कुछ खास तो नहीं, यही एक तमाशा देख रहा हूँ। देखिए न, मुसीबतके वक्त हिन्दू खुद मुसलमानोंको प्राण-रक्षाके लिए मन्दिरमें खींच लाए हैं। मन्दिर मज़बूत है न, बमसे बचाव तो कर सकता है न?

निवा०—हाँ, है तो बड़े अचरजकी बात, मसजिदमें भी यही बात है। जैसे ही साइरन बजा, दंगा रुक गया; हथियार ज़मीनपर गिर पड़े। थोड़े-से लेता भी आया हूँ। मसजिदके अन्दर चोटी और दाढ़ीमें कोई झगड़ा नहीं है। मुल्लाजी और बाबाजी साँस रोके भीतर बैठे हैं।

जगाई—लेकिन आप तो पाँचूकी माँको देखने गए थे, मसजिदमें कैसे जा पहुँचे?

निवा०—पाँचूके पीछे-पीछे। उसकी माँ अच्छी हो या न हो, पाँचू तो उसी वक्त चला मसजिदकी ओर!

जगाई—सचमुच डाक्टर बाबू, हमारे देशके लोग बड़े धर्मान्ध हैं। आदमीकी जानसे वे धर्मको बड़ा समझते हैं।

निवा०—लेकिन चण्डीदासने तो कहा है—'सबार ऊपर मानुष सत्य, तार ऊपर नेंई।' देखो जगाई, मन्दिर-मसजिद दोनोंको ही तोड़ दिया जाय, तो अच्छा है।

जगाई (हँसकर)—पर आज नहीं डाक्टर बाबू, गाँवके सभी हिन्दू-मुसलमान आज मन्दिर-मसजिदमें शरण लिए हुए हैं। फिर कितने मन्दिर-मसजिद तुड़वाए जायँ? मनके अन्दरके मन्दिर-मसजिद जब तक नहीं टूटेंगे, तब तक एक टूटनेवालेकी जगह सौ नए खड़े हो जायँगे।

(बमोंके गिरनेकी आवाज़ आती है।)

निवा०—बमबारी करके हमको डराना चाहते हैं।

जगाई—मुझे तो डर नहीं लग रहा है। क्या आपको लग रहा है?

निवा०—नहीं रे, मैं तो ए० आर० पी० का डाक्टर हूँ। यह देख! (बाहरका लाल फ़ीता दिखाता है।)

जगाई—यह क्या है? बमसे बचानेका जन्तर? इसे हाथमें बाँध लेनेसे सिरपर बम नहीं गिरेगा क्या? और हो तो एक मुझे भी दे दो।

निवा०—अभी तो नहीं है। अच्छा, तुम्हें एक दूँगा। लेकिन पहले यह बताओ कि अब क्या करना चाहिए?

जगाई—मैं यहींसे देखता रहूँगा कि आस-पास कहीं बम तो नहीं गिरता है। आप जाकर मरीज़ोंको देखिए। लेकिन आपका दवाईका वह बक्स क्या हुआ?

निवा०—अरे उसे तो मैं इस झमेलेमें मसजिदमें ही छोड़ आया।

जगाई—जो भी कुछ हो, आप जाकर पहले पंडिताइनको देख आइए। दवा तो पंडितजी ले ही गए हैं।

(बमबाज़ोंके लौट जानेपर 'आल-क्लियर' होता है। डा० निवारण तेज़ीसे क़दम बढ़ाता हुआ एक ओर चला जाता है।)

चौथा दृश्य

[हाँफ़ते हुए स्मृतिरत्नका प्रवेश]

स्मृतिरत्न—जगाई, डाक्टर बाबू कहाँ हैं रे?

जगाई—क्यों, आपही के घरकी ओर तो गए हैं। यह क्या, आप क्या नहाकर आ रहे हैं?

स्मृति०—और नहीं तो क्या? दवा लेकर जाते वक्त सोचा कि शायद दंगा शुरू हो गया है, अतः ज़रा देखता ही जाऊँ। इसी वक्त हौं-औं-औं होने लगा। सब दानवी उत्पात हैं। सनातन-आर्य देशमें म्लेच्छ, यवन और न जाने कौन तो घुस आए; अब सुन रहा हूँ कि नए जापानी म्लेच्छोंके मुँहमें भी उसे देखकर पानी भर आया है! न मालूम कब कलि भगवान अवतार लेंगे?

जगाई—कलि भगवान तो आवेंगे तब आवेंगे, लेकिन पंडिताइनजीके लिए दवाका क्या हुआ?

स्मृति०—ओः दवा, यह देख सब गलकर पानी हो गई है! बमके डरसे पानीमें ही जो बैठे रहना पड़ा, सो वे नन्हीं-नन्हीं होमियोपैथीकी गोलियाँ पोखरेके जलमें मिल गईं। डाक्टर साहब गए हैं, यही अच्छी बात है।

जगाई—पंडितजी, यह अच्छी बात नहीं है। दंगेके झमेलेमें डाक्टर बाबूने अपना दवाईका बक्स खो दिया है। खाली हाथों ही वे पंडिताइनको देखने गए हैं।

स्मृति०—ऐसे ही गए हैं? तब तो कोई इन्तज़ाम करेंगे ही। लेकिन नहाकर तो गए हैं न?

जगाई०—ऐसा तो नहीं मालूम होता था कि वे नहाकर गए हैं। लेकिन इन्तज़ाम क्या करेंगे? साथमें तो कोई दवा है नहीं। आप एक काम कीजिए। सुना है, होमियोपैथीकी दवा जितनी पतली होती है, उसका असर भी उतना ही ज़्यादा होता है। वह थोड़ी-सी दवा पोखरेके पानीमें मिलकर बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज़ हो गई होगी। आप कपड़े निचोड़कर एक चूल्लू-भर पी लें। पंडिताइनजी तो आपकी अर्द्धांगिनी हैं न? आपके यह पानी पीनेसे उनपर दवाका असर दूना होगा।

स्मृति०—पगला कहींका, यह भी कोई मज़ाकका वक्त है?

[मसजिदकी तरफ़से हिन्दू-मुसलमानोंका एक साथ प्रवेश। पाँचूके हाथमें होमियोपैथीका बक्स है।]

पाँचू—डाक्टर बाबू कहाँ हैं, क्या आप लोग बता सकते हैं? वे अपना बक्स मसजिदमें ही छोड़ आए।

स्मृति०—अच्छा, लाओ, मुझे दे दो। वे मेरे ही घर गए हैं।

(पंडित स्मृतिरत्न बक्स लेकर जाने ही वाले थे कि मन्दिरकी ओरसे हिन्दू-मुसलमानोंका एक दल आता है।)

एक व्यक्ति—जी हाँ, वे आपके ही घर गए हैं। आपके लिए बैठे इन्तज़ार कर रहे हैं। लेकिन दवाके बक्सकी अब ज़रूरत नहीं है। पंडिताइनजी तो चल बसीं!

स्मृति०—ऐं! क्या कहा, पंडिताइन चल बसीं।

पहला व्यक्ति—हाँ, हाँ, जल्दी जाकर देखिए।

स्मृति०—डाक्टरने छू-छा तो नहीं लिया? (प्रस्थान)

जगाई (हथियारोंको दिखाकर)—आप लोग अपने-अपने हथियार छाँट लें। मैंने इन्हें एक जगह सँभालकर रख दिया था। (सब एक-दूसरेका मुँह देखने लगते हैं।) मुल्लाजी, यह कुल्हाड़ी आपकी है न? और बाबाजी, यह सोंटा आपका है न? और ये ईंटें, पत्थर, ढेले, बर्छी, भाले—इन सबको कैसे बाँटा जाय। अच्छा हो, अगर आप लोग अपने-अपने हाथसे फेंकी हुई चीज़ें फिर ले लें और जहाँ काम छोड़ गए थे, वहींसे फिर शुरू कर दें।

(सब चुपचाप खड़े एक-दूसरेका मुँह देख रहे हैं।)

मुल्लाजी—जगई भैया, आप चाहे जिस रास्तेसे अपनी कीर्त्तन-मंडली ले जायँ। हम या तो पहले नमाज़ पढ़ लेंगे या कुछ देर बाद अपनी नमाज़ शुरू करेंगे।

कई मुसलमान—हाँ, हाँ, यही ठीक है।

बाबाजी—नहीं, आप लोग अपनी नमाज़ अभी शुरू कीजिए। हम गाँवके दूसरे रास्तेसे कीर्त्तन-मंडली ले जायँगे।

मुल्ला—नहीं बाबाजी, ऐसा होनेसे आप सोचेंगे कि हमारी ज़िद ही क़ायम रही या आपकी खुशीमें हमारी खुशी नहीं है। इसलिए आप इसी रास्तेसे खुदाका नाम लेते हुए जायँ।

बाबाजी—हम भी अपनी ज़िदके लिए लज्जित हैं, मुल्लाजी! मेहरबानी करके हमें माफ़ कीजिए। हम दूसरे रास्तेसे चले जायँगे।

(डाक्टर निवारणका प्रवेश)

जगाई—डाक्टर बाबू, आप कहते थे न कि दंगे और हैज़ेकी कोई दवा नहीं है। लेकिन देखिए, मुल्लाजी और बाबाजी एक-दूसरेसे माफ़ी माँग रहे हैं।

निवा०—बात तो सच है, जगाई! यह तो 'विषस्य विषमौषधि' वाली ही बात है। दंगेकी दवा है बम!

जगाई—लेकिन नमाज़ और कीर्त्तनका तो फैसला होता दिखाई नहीं पड़ता है।

निवा०—आप नमाज़ पढ़िए, कीर्त्तन कीजिए, भगवानको पुकारिए; लेकिन उनसे कुछ माँगना क्यों पड़ेगा? पेड़-पेड़में तो फल, नदी-तालाबोंमें जल...

जगाई—जी हाँ, उसी जलसे तो हैज़ा...

निवा०—इसीलिए आदमीको अक़्ल मिली है कि वह हैज़ेको खत्म करे।

जगाई—लेकिन आदमीमें आकाशसे बम बरसानेकी बुद्धि भी है।

निवा०—हाँ, पर उस दुष्ट-बुद्धिको भी पूरा वशमें करनेकी बुद्धि आदमीमें है।

पाँचू—लेकिन हम लोग तो बहुत छोटे आदमी हैं।

निवा०—दंगा करनेके समय तो तुमने नहीं सोचा कि तुम लोग छोटे हो। और छोटा होनेसे क्या हुआ? हैज़ेके कीड़े भी तो बहुत छोटे होते हैं। लेकिन देख रहे हो न, बहुतसे मिलकर बड़े-बड़े आदमियोंको खत्म कर देते हैं। उसी तरह हम भी एक होकर बमबारीसे अपना बचाव कर सकते हैं और इन्हें बरसानेवाले हवाई-जहाज़ोंको भी खत्म कर सकते हैं। किसी दिन चीनवाले भी हमीं लोगोंकी तरह आपसमें लड़ते-झगड़ते थे; पर आज वे लोग एक होकर अपने देशके शत्रुओं और उनकी बमबारियोंका मुक़ाबला कर रहे हैं।

जगाई—लेकिन हम क्या करें?

निवा०—हम चाहें, तो बहुत-कुछ कर सकते हैं। आपसमें लड़ना और एक-दूसरेका सिर फोड़ना शर्मकी बात है। आप लोग ये हथियार उठाइए और दुश्मनोंसे अपने देशकी रक्षा करनेके लिए कमर कस लीजिए।

सब मिलकर—हिन्दुस्तानकी जय हो! भारतवर्ष आज़ाद हो! फ़ाशिज़्मका नाश हो! [पटाक्षेप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

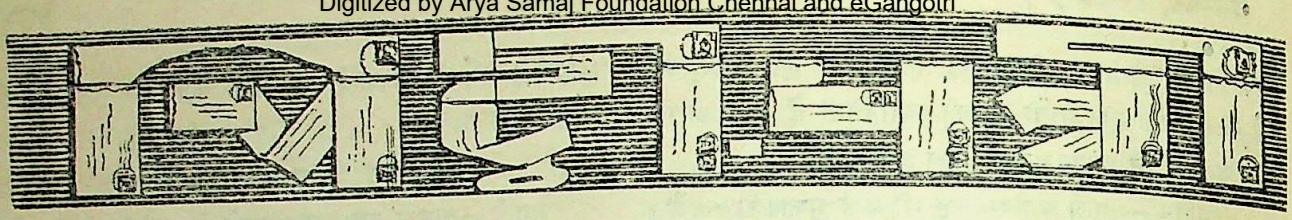

आचार्य गिडीज़ और जनपद

गत सितम्बरके 'विशाल भारत'में श्री बनारसीदास चतुर्वेदीका 'आचार्य गिडीज़'-शीर्षक लेख देखा। जीवनी या जीवनी-सम्बन्धी लेख लिखनेकी कला तो उनकी अपनी विशेषता रही है। एक क्या, अनेक उनकी ऐसी छोटी-छोटी कृतियोंका स्मरण किया जा सकता है, जिनका व्यक्तिगत 'प्रोपेगेण्डा'के अलावा साहित्यिक मूल्य भी कम नहीं है। परन्तु इस लेखमें तो वह कला अपने उतारपर दीख पड़ी। प्रारम्भसे ही उसमें ऐसे अंश दीख पड़े, जो निराधार तो हैं ही; किन्तु उपहास्पद भी कम नहीं हैं। येनकेनप्रकारेण गिडीज़ साहबके मुँहसे अपनी बेसिर-पैरकी 'जनपद'वाली नई सनकका समर्थन करवाना औचित्यके बाहरकी चीज़ है।

गिडीज़ साहबसे अपना जिस समयका परिचय चतुर्वेदीजी बताते हैं (यानी १९१८ का), उस समय तक जनपदोंकी यह नई धारणा उनके दिमाग़से शायद उसी तरह ग़ायब रही होगी, जैसे कि जिन्ना साहबके दिमाग़से पाकिस्तानकी। गिडीज़ साहब समाज-शास्त्रके विद्वान तो थे ही; परन्तु 'जीव-तत्त्व'के उससे भी बड़े—बल्कि समाज-शास्त्रका विवेचन भी उन्होंने 'जीव-तत्त्व'के आधारपर ही किया है। अपनी 'टाउन-प्लानिंग' या 'टुवर्ड्स दि सिटी डेवलपमेण्ट' पुस्तकमें जो सिद्धान्त उन्होंने प्रदिपादित किए हैं, उनसे चतुर्वेदीजीकी जनपदवाली धारणाका समर्थन तो शायद कहीं भी नहीं होता। यह समस्या उनके क्षेत्रकी चीज़ भी नहीं रह जाती—विशेषकर उस अर्थमें, जिसमें चतुर्वेदीजी 'जनपद' शब्दका प्रयोग करते हैं।

किसी व्यक्तिकी, और विशेषकर किसी विद्वानकी, व्यक्तिगत रूपसे प्रशंसा करना बुरा नहीं; लेकिन प्रत्येक चीज़की सीमा होती है और होती है मर्यादा। अपने अनावश्यक उत्साहमें चतुर्वेदीजी दोनोंको पार कर गए मालूम देते हैं। आप कहते हैं—"...'नगर-निर्माण-कला'के प्रथम प्रवर्त्तक। गार्डन-सिटीज़ (उद्यान-नगर) की कल्पना उन्हींके उर्वर मस्तिष्क द्वारा प्रसूत हुई थी..." (पृ० १४८)। जातकों या पुराणों तक जानेका कष्ट यदि चतुर्वेदीजी न भी उठाते; किन्तु मानसार, नारद-संहिता, बृहत्संहिता, अर्थशास्त्र, कामसूत्र या महाराज भोजके समरांगण या आइन-अक़बरीको ही देखनेका यदि वे कष्ट उठाते, तो उपर्युक्त ग़लतबयानीसे शायद बच जाते। कला, विज्ञान और शिक्षाके इस प्राचीनतम केन्द्रके प्रति इस प्रकारके निराधार आक्षेप लेखकका अज्ञान ही सूचित करते हैं।

इसी प्रकार एक जगह और कहा गया है—"हमारे विश्व-विद्यालयोंकी ऊसर भूमिमें करील-रूपी 'प्रोफ़ेसर' दृष्टिगोचर होते हैं,..." (पृ० १४८)। यहाँ भी लेखकने भारतीय विद्वानों, आचार्यों और हमारे शिक्षा-केन्द्रोंपर कीचड़ उछालनेका ओछा प्रयत्न किया है। प्रायः देखा गया है कि जिन्हें विश्वविद्या-लयोंकी पवित्र सीमामें प्रवेश करनेका भी सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका, वे अपनी इस न्यूनतापर लज्जित तो कम ही होते हैं, वरन् उसपर थोथा गर्व करनेमें ही अपनी शोभा समझते हैं। इस ज़मानेमें भी जिस भूमिने महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, प्रो० सी० वी० रमन, प्रो० के० टी० शाह, प्रो० राधाकृष्णन-जैसे उच्चकोटिके व्यक्तित्ववाले विद्वान 'प्रोफ़ेसर' पैदा किए हों, उसके विषयमें उपर्युक्त अनर्गल आक्षेप लेखककी मनोवृत्तिका ही नमूना है। हो सकता है कि चतु-र्वेदीजीको उच्चकोटिके 'प्रोफ़ेसरों'के निकट बैठनेका सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो। इसी प्रकार पता नहीं, किस ज्ञानके मत्थे चतु-र्वेदीजीने विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रमपर भी अपनी अनधिकारपूर्ण आलोचना लिख मारी है। वे शायद यह भूल गए कि विवेक-शील मनुष्य अपने इने-गिने अनुभवोंके आधारपर ही निष्कर्ष नहीं निकाला करते।

राजनीतिक ग़ुलामीसे भी कहीं अधिक भयंकर होती है मनुष्यकी दिमाग़ी ग़ुलामी। यह उसीका फल है कि हम अपनोंकी उचित इज्ज़त करना भी आज तक न सीख सके। यों तो देशमें यह रोग काफ़ी फैला हुआ है; परन्तु यदि यहाँके चतुर्वेदीजीकी कोटिके लोग भी इसके शिकार हो जायँ, तब तो भगवान ही रक्षा करे।

—दर्शनानन्द

मलेरियाका एक सुलभ योग

इन दिनों प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें मलेरियाका प्रबल प्रकोप है। न-जाने कितने लोगोंको इसके कारण घोर संकटका सामना करना पड़ रहा है। मुझे एक योग ज्ञात है, जो मले-रिया एवं उसके विभिन्न रूपोंपर अव्यर्थ सिद्ध हो चुका है। फ़र्रुखाबादमें दस स्थानोंपर इसके वितरणका प्रबन्ध है और अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक एक हज़ारसे अधिक व्यक्ति इससे लाभ उठा चुके हैं। योग इस प्रकार है—तीन माशे मकरा राई और एक माशा गेरू लेकर पानीमें खूब गाढ़ा-गाढ़ा पीस लें। पानी अधिक न डालें, जिससे औषध चन्दनसे अधिक गाढ़ी बनी रहे। यह पिसी हुई औषध आधी-आधी दोनों पैरोंके अँगूठोंके नाखूनोंपर रख दें। ऊपरसे एक हरा पत्ता रखकर कपड़ेसे बाँध दें। ज्वर आनेसे दो घण्टे पहले औषध बाँध लें। जब तक ज्वर बिल्कुल न छूट जाय, इसी प्रकार बाँधते रहें। मलेरियाके प्रबलसे प्रबल आक्रमणमें भी चार-पाँच बारसे अधिक इसके बाँधनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। —जयनारायण शर्मा, मोहल्ला सेनापति, फ़र्रुखाबाद।

ग्राम-पुस्तकालय-योजना

हम वाचनालय व शिक्षा-प्रसारके साथ ही ग्राम-पुस्तकालयोंकी योजनाएँ प्रस्तुत करना चाहते हैं। एतदर्थ साहित्यके इस विषयके लेखक महानुभावोंसे विनय है कि वे अपने-अपने लेख निम्न पतेपर शीघ्र प्रेषितकर अवश्य अनुगृहीत करेंगे। उन लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करानेका विचार है। अधोलिखित विषयोंका साहित्य विशेष-रूपसे अपेक्षित है—ग्राम-पुस्तकालयोंका प्रामाणिक इतिवृत्त; ग्राम-पुस्तकालयोंकी सफलताके साधन; ग्रामोंके नव-निर्माणमें पुस्तकालयका भाग; आधुनिक जाग्रति और पुस्तकालय; क्या पुस्तकालय शिक्षा-प्रचारका सर्वोत्कृष्ट साधन है? भारतीय प्रान्तके पुस्तकालयोंकी समितियोंका विस्तृत कार्य-विवरण; आदर्श-पुस्तकालयकी रूप-रेखा; शिक्षाका पुस्तकालयसे सम्बन्ध; शिक्षालय और पुस्तकालयका महत्त्व; ग्राम-पुस्तकालयोंकी आवश्यकता; भारतके सुविख्यात पुस्तकालयोंका पता व कार्यशैली और विदेशी पुस्तकालयोंका विस्तृत वर्णन, उनकी सफलता एवं प्रभाव। —मन्त्री, ग्राम-वाचनालय-प्रचार-फण्ड, बड़वाहा (इन्दौर राज्य)।

हरद्वार-सम्मेलन-निधि

सम्मेलनके हरद्वार-अधिवेशनके अवसरपर महन्त शान्तानन्द नाथ, बा० पन्नालालजी भल्ला एवं महन्त घनश्याम गिरिजी द्वारा प्रदत्त रुपयोंसे सभापति श्री माखनलालजी चतुर्वेदीका तुलादन हुआ था और यह निश्चय किया गया था कि इन रुपयोंकी निधिसे सम्मेलन द्वारा बीसवीं शताब्दीके स्वर्गीय साहित्यिकोंकी अप्रकाशित रचनाओंका प्रकाशन हो। इस कार्यको सुचारु रूपसे अग्रसर करनेके लिए एक उपसमिति बनाई गई है, जिसके महन्त शान्तानन्द नाथ, महन्त घनश्याम गिरि, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० सीताराम चतुर्वेदी, पं० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आजीवन सदस्य तथा पं० माखनलालजी चतुर्वेदी आजीवन प्रधान हैं। सम्मेलनकी ओरसे इस उपसमितिके इस वर्षके सदस्य डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल', पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, श्री वाचस्पति पाठक तथा श्री रामचन्द्र टंडन चुने गए हैं। इस उपसमितिकी प्रथम बैठक ता० १९-९-४३ को सम्मेलन-कार्यालयमें हुई, जिसमें सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि बीसवीं सदीके दिवंगत साहित्यिकोंके नाम तथा उनकी कृतियों आदिके विवरण प्राप्तकर समितिकी आगामी बैठकके अवसरपर उपस्थित किए जायँ। पाठकोंसे विनम्र निवेदन है कि स्वर्गीय साहित्यिकों, उनकी कृतियों, नाम, परिचय आदिके सम्बन्धमें जिन व्यक्तियोंके पास जो सामग्री हो, वे नीचे लिखे पतेपर पत्र द्वारा सूचितकर इस कार्यमें सहयोग प्रदान करनेकी कृपा करें। —रामचन्द्र टंडन, संयोजक, हरद्वार-सम्मेलन-निधि, प्रयाग।

हिन्दी-पत्रकारोंसे निवेदन

अखिल भारतीय हिन्दी-पत्रकार-संघ सब प्रकारके हिन्दी-पत्रकारों (सम्पादक, स्वतन्त्र लेखक, संवाददाता, कहानीकार इत्यादि सब) का एक ऐसा लेखा तैयार कर रहा है, जिसमें उनके नाम-धामके अतिरिक्त उनके अनुभव, शिक्षण, योग्यता, वेतन इत्यादिका विवरण भी रहे। इस प्रयोजनके लिए संघ-कार्यालयकी ओरसे विविध पत्रों और पत्रकारोंको पत्र भी लिखे गए हैं; परन्तु दुर्भाग्यवश न तो संघ-कार्यालयको सब पत्रों और पत्रकारोंका पता ही ज्ञात है और न वे सब सज्जन, जिनको पत्र लिखे जाते हैं, उनका अभीष्ट उत्तर देनेकी ही कृपा करते हैं। इसलिए उन सब सज्जनोंसे, जो अपनेको हिन्दी-पत्रकार समझते हैं, निवेदन है कि वे अपने और अपने पत्रकार-मित्रोंके विषयमें ऊपर-निर्दिष्ट जानकारी संघ-कार्यालयको स्वयं यथाशीघ्र लिख भेजनेका कष्टकर हिन्दी-पत्रकारोंकी सेवा व संगठनके इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें सहयोग देनेकी कृपा करें। यदि किसी बन्धुको अपना वेतन या अन्य कोई बात बतलानेमें आपत्ति हो, तो वह उसे छोड़ सकते हैं। कमसे कम अपना नाम-धाम आदि तो सबसे तुरन्त ही लिख भेजनेकी प्रार्थना है। —रामगोपाल, कार्यालय-मन्त्री, अ० भा० हिन्दी-पत्रकार-संघ, नया बज़ार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

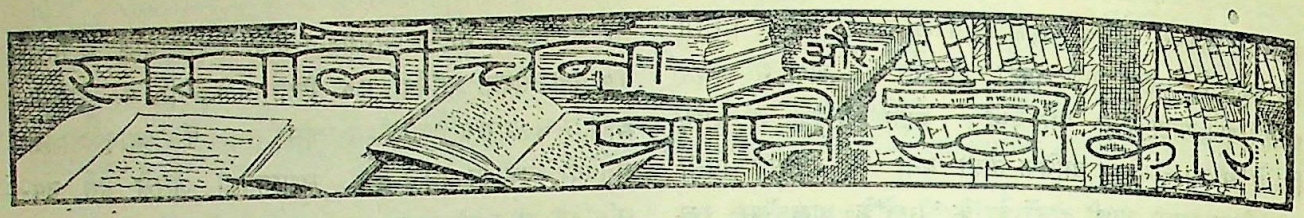

कम्युनिष्ट घोषणापत्र : अनुवादक और सम्पादक—श्री रमेशचन्द्र सिनहा ; प्रकाशक—जन-प्रकाशन-गृह, खेतवाड़ी, बम्बई ; पृष्ठ-संख्या १२४ ; मूल्य १।), अजिल्द ।

मार्क्स और एंगल्सके सुप्रसिद्ध 'कम्युनिस्त मैनिफेस्टो'का यह हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशितकर जन-प्रकाशन-गृहने श्रमजीवी-वर्गकी सराहनीय सेवा की है । इसका जो अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है, उसे देखते हुए भारतमें इसका अधिकाधिक प्रचार वांछनीय है । इस दृष्टिसे इसकी भाषा और भी सरल तथा आम-फ़हम होती, तो अच्छा था । प्रस्तुत अनुवादकी भाषा कुछ साहित्यिक है, जो नाम-मात्रके साक्षर श्रमजीवियोंको शायद आसानीसे समझमें न आ सके । 'घोषणापत्रकी पृष्ठभूमि'के अन्तमें—जिसके मूल लेखकका उल्लेख न-जाने क्यों नहीं किया गया है—लिखा गया है कि यह घोषणापत्र फरवरी १८४८ में लिखा गया और कुछ महीनों बाद १८४८ में छपा । पर एडोरात्स्कीका कथन है कि यह फरवरी १८४८में बर्लिनमें छपा । एंगल्सकी प्रस्तावनामें भी साफ़ लिखा है कि इसे तैयार करनेका भार नवम्बर १८४७ में मार्क्स और एंगल्सको सौंपा गया तथा फरवरी १८४८ में यह छपा । अन्तकी अधिकांश टिप्पणियाँ भी रयाज़नफ़की लिखी हुई हैं, जब कि अनुवादमें इस बातका कहीं भी उल्लेख नहीं है ।

समाजका विकास : मूल लेखक—श्री लियान्तिएव ; अनुवादक—श्री ओमप्रकाश संगल ; प्रकाशक—उपर्युक्त ही ; पृष्ठ-संख्या २० ; मूल्य ≡) ।

समाजका विकास आकस्मिक नहीं है । वह एक निश्चित नियम-शृंखला या धाराके रूपमें चलता है । अतएव उसकी उन्नति एवं आवश्यक सुधारके लिए इन नियमों—इस निश्चित धारा—की जानकारी भी आवश्यक है । मार्क्सने इस सम्बन्धमें सर्वप्रथम तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे प्रकाश डाला है । लियान्तिएवकी इस पुस्तिकामें उसी विकास-क्रमका सरल-सुबोध परिचय है । मानव-समाजके प्रत्येक सदस्यके लिए इसकी जानकारी आवश्यक है । आशा है, हिन्दी-संसार इस पुस्तिकाको चावसे पढ़ेगा ।

तान्या : बच्चोंके हत्यारे : लेखक—श्री पी० लिडोव ; लेखिका—श्री एलेना कोनोवियेन्को ; अनुवादिका—श्री कमला तक्की ; प्रकाशक—उपर्युक्त ही ; पृष्ठ-संख्या क्रमशः ४७ और ३२ तथा मूल्य ॥) और ।-) ।

पहली पुस्तिकामें एक १८ वर्षीया रूसी वीरांगनाके असाधारण साहस और नात्सियों द्वारा प्राणदण्ड दिए जानेका रोमांचकारी वर्णन है । तान्याकी साहसिकता, उसके बलिदानपर उसकी माँका सन्देश और सैनिकोंके पत्र—सभी रूसकी अद्भुत नवमानवता और स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमानके पुतलोंकी उस मनोवृत्तिके परिचायक हैं, जिसे रूसकी जनसत्ताने जन्म दिया है । तान्याके चरित्रसे बर्बर शत्रुओंका मुक़ाबला करनेके लिए हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं ।

दूसरी पुस्तिकाका विषय उसके नामसे ही स्पष्ट है । रूसपर बिना किसी उत्तेजना-उकसाहटके हुए आक्रमणका उद्देश्य न सिर्फ़ रूसको बरबाद करना या रूसियोंको जर्मनीके अधीन करना ही है, बल्कि स्लाव-जातिका नाम-निशान तक मिटा देना भी । इसीलिए रूसमें जर्मन सेनाएँ न केवल सैनिकों एवं नागरिकोंका ही, बल्कि अबोध बच्चोंका भी निमम-निर्भय वध कर रही हैं । जर्मन फ़ौजकी १३वीं कम्पनीके सिपाहियोंको यह आदेश दिया गया था कि १२ से १६ वर्ष तकके लड़के-लड़कियोंका बिल्कुल सफ़ाया कर दें । यह घृणित और गर्हित कुकर्म नात्सियों और उनके जापानी छुटभइयोंके राजनीतिक कार्यक्रम अथवा तथाकथित नई व्यवस्थाका प्रधान आधार है । नात्सियोंकी इस क्रूरताका वर्णन पढ़कर जहाँ रोमांच हो आता है, वहाँ इनकी इस अमानुषिकताके शिकार हुए बच्चोंके क्षत-विक्षत चित्रोंको देखकर कलेजा मुँहको आ जाता है । प्रस्तावनामें नात्सियोंकी क्रूर-लीलाओंसे मिलती-जुलती उनके जापानी छुटभइयोंकी चीन और बर्माकी कारस्तानियोंका उल्लेखकर पुस्तिकाको भारतीय—और विशेषकर हिन्दुस्तानी भाषा-भाषी—पाठकोंके लिए और भी उपयोगी बना दिया गया है ।

इन दोनों पुस्तिकाओंके प्रकाशनके लिए अनुवादिका और प्रकाशक साधुवादके पात्र हैं । इनके द्वारा उन्होंने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है । बदक़िस्मतीसे जो कुछ सिर-फिरे हिन्दुस्तानी—जिनकी विवेक-बुद्धिको काठ-सा मार गया जान पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—यह समझने लगे हैं कि जर्मनी या जापान उन्हें आज़ाद करा देंगे, या भारतपर उनका अधिकार होनेसे वे खूब सुखी-समृद्ध हो जायँगे, ये पुस्तिकाएँ उनकी आँखें खोलने और उनके होश ठिकाने लानेमें सहायक होंगी, ऐसा हमारा अनुमान है। भारतमें फ़ाशिस्त-विरोधी मोर्चेको मज़बूत करने और लोगोंमें फ़ाशिज़्मके विरुद्ध प्रबल लोकबल संगठित करनेके लिए इन पुस्तिकाओंका घर-घरमें पहुँचना नितान्त आवश्यक है। इनका मूल्य भी इतना कम है कि आसानीसे औसत दर्ज़ेका हर आदमी इन्हें खरीदकर पढ़ और अपने मित्र-परिजनोंको पढ़ा सकता है।

—'भग्नदूत'

अहार : सम्पादक—श्री यशपाल जैन ; प्रकाशक—'मधुकर' कार्यालय, टीकमगढ़ (सी० आई०) ; पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ।=), सजिल्द।

अहार जैनियोंके प्रमुख क्षेत्र बुन्देलखण्डका एक उपेक्षित तीर्थ है। वहाँ भगवान शान्तिनाथ और कुन्थु भगवानकी भावपूर्ण विराट मूर्त्तियोंके सिवा २५० के लगभग और भी प्रतिमाएँ हैं। प्रस्तुत पुस्तिका द्वारा लेखकने न केवल अहारके प्राचीन गौरव और महत्वका ही दिग्दर्शन कराया है, बल्कि उसके जीर्णोद्धार—टीकमगढ़से अहार तक पक्की सड़क बनने तथा वहाँकी प्रतिमाओंके किसी सुव्यवस्थित संग्रहालयमें एकत्र किए जाने आदि—के लिए आन्दोलनका भी सूत्रपात्र किया है। पुस्तिकामें संग्रहीत लेखों एवं सम्मतियोंसे यह स्पष्ट है कि उन्हें इस सत्कार्यमें जैन-समाजके अनेक प्रमुख एवं सम्पन्न व्यक्तियोंका सहयोग प्राप्त है। ऐसी दशामें अहारके जीर्णोद्धार-जैसे सामान्य कार्यकी सफलता अवश्यंभावी है। आशा है, 'अहार' इस आवश्यक समस्याकी ओर जैन-समाजका ध्यान आकृष्ट करनेमें सफल होगी।

—सत्यपाल

आदर्श महिला—पं० चन्दाबाई : लेखक—पं० परमानन्द जैन शास्त्री, प्रकाशिका—पं० ब्रजबालादेवी, जैन-बाला-विश्राम धर्मकुंज, धनुपुरा, आरा ; पृष्ठ-संख्या २८६; मूल्य १।।), सजिल्द।

इस पुस्तकमें प्रसिद्ध जैन महिला-रत्न पंडिता चन्दाबाई जीका, जो जैन-बाला-विश्रामकी जीवन-प्राण हैं, सचित्र जीवन-परिचय है। आपने किस प्रकार वैधव्यको देश, जाति और समाजकी सेवामें लगाया और कोई पुत्र गोद न लेकर समाजके दीन-दुखियोंको ही अपनी सन्तानवत् समझा और उनकी सहायता, शिक्षा तथा सुधारमें ही अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया, इसकी कथा बड़े रोचक ढंगसे सीधी-सादी सुबोध भाषामें लिखी गई है। आपमें जितना संयम, कर्त्तव्य-परायणता, सत्साहस और परिश्रमशीलता है, उतनी ही गंभीर विद्वत्ता एवं पाण्डित्य भी। मुझे विश्वास है, हिन्दी-भाषा-भाषी महिलाएँ इस जीवनीको चावसे पढ़ेंगी और उससे लाभान्वित होंगी।

मेरा मुन्ना और नटखट नन्दू : लेखक—श्री दयाशंकर 'दद्दाजी' ; प्रकाशक—बालबन्धु-कार्यालय, दिल्ली ; पृष्ठ-संख्या क्रमशः २८ और ३४ तथा मूल्य प्रत्येकका ।), अजिल्द।

'मेरा मुन्ना' में गद्य-पद्यमें मुन्नाके जीवनकी कई मनोरंजक बातें लिखी गई हैं, जिनमें मनोरंजनके साथ-साथ शिक्षा भी है। 'नटखट नन्दू' ११ दृश्योंका एक समस्या-नाटक (टेकनीक की दृष्टिसे यद्यपि सर्वथा शिथिल और असफल) है। इसमें बतलाया गया है कि नन्दू बहुत अधिक नटखट कैसे बन गया ? बच्चोंके लिए यह एक मनोरंजक कहानी है और उनके अविभावकोंके लिए बच्चोंके भाव-शिक्षण तथा आत्माभिव्यक्तिके प्रति उचित दृष्टिकोण निर्धारित करनेकी प्रेरणा। इस दृष्टिसे इसका महत्व विशेष है।

—ननिबाला राय

मास्को : रचयिता—श्री 'रमण'; प्रकाशक—'ईमायण', नया टोला, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) ; पृष्ठ-संख्या ५१ ; मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तकके नाम और मुखपृष्ठपर दिए गए चित्रसे पाठकको पहले-पहल ऐसा भान होता है, मानो यह जर्मनों द्वारा गत वर्ष मास्कोपर हुए आक्रमणके समय रूसियों द्वारा दिए गए साहस और शौर्यके परिचयका विवरण है। पर पहला पृष्ठ उलटते ही पुस्तकके नामके नीचे कोष्ठकमें लिखा 'प्रगतिशील-कविता-संग्रह' सामने आता है। इसमें संगृहीत कविताएँ हैं—कपोत, बुर्ज़ुआ, कच्ची नाशपातियाँ, हेडानिस्ट नारी और मे-डे। सभी कविताएँ अतुकान्त हैं—शायद आजकलके प्रचलित 'मुक्तक वृत्त'में लिखी गई हैं। पुस्तकके आरम्भमें 'दिनकर'जीकी लिखी हुई एक शीर्षकहीन प्रस्तावना है।

नागरी-लिपिमें छपनेवाली अधिकांश तथाकथित प्रगतिवादी रचनाओंको हिन्दी पढ़े-लिखे शायद ठीक-ठीक समझ नहीं पाते, कदाचित् इसीलिए उनके लेखकोंको ही उनका मर्म और महत्व समझाना पड़ता है। 'मास्को'के कविने भी प्रगतिवादियोंकी इस परम्पराकी रक्षा की है। मुखपृष्ठकी पीठपर ही लिखा गया है—"एक ओर मिलकी घरघराहटको छन्दोंमें बाँधनेवाला क्रान्तदर्शी प्रगतिवाद है और दूसरी ओर जीवनकी उपेक्षाकर कल्पनाके कंगूरोंपर मँडरानेवाला निष्क्रिय छायावाद।.....'मास्को' एक ऐसा avelache है, जिसमें ज़र्जर वृक्षोंको उखाड़ फेंकनेकी शक्ति भी है और धूल-मिट्टीको भिगो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर नए पौधे उगानेकी सरसता भी। इसकी मान्यताओंमें आपको मतभेद भले ही हो, इसकी आवाज़को आप अनसुनी नहीं कर सकते।" पर हमें खेद है कि 'मास्को'की कविताओंमें न तो हमें कहीं 'मिलकी घरघराहटको छन्दोंमें बाँधनेवाला क्रान्तदर्शी प्रगतिवाद' ही मिला और न किसी एवेलांशके ही दर्शन हुए। हमें इसलिए और भी अधिक निराशा हुई कि हम 'जर्जर वृक्षोंको उखाड़ फेंकने' और 'धूल-मिट्टीको भिगोकर नए पौधे उगानेकी सरसता'वाले नवीन और विचित्र एवेलांशको इसमें नहीं देख सके। पता नहीं, कबसे और कहाँ 'एवेलांश' इतने सदय-सरस बन गए हैं। और 'मास्को'की मान्यताएँ? वे तो कोई उसमें हैं ही नहीं, जिनसे मतभेदका सवाल उठे। पहली रचना 'कपोत'को छोड़कर शेष रचनाओंमें कवित्व या साहित्यिकताकी कहीं बू भी नहीं है। हाँ, उनमें एक असंयत, अविवेकशील, उच्छृंखल, अतृप्त, अस्वस्थ और विकृत मस्तिष्कका आघात पहुँचानेवाला प्रमादपूर्ण प्रलाप अवश्य है। पहली ही कविताके एक 'एवेलांश'का ज़रा नमूना देखिए :—

"और, आज मैं भी,
राह देखता हूँ—
एक टक,
उस तूफ़ानकी—
जिसके हलके धक्के से,
धराशायी हो जाऊँगा!"

खूब! इन पंक्तियोंमें प्रगतिवादकी झलक है या निराशा, निरुद्देश्य और पराजयवादी हीन मनोवृत्तिकी, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर लें। 'कच्ची नासपातियाँ'—जिसे तथाकथित प्रगतिवादके मुखपत्र 'हंस'में सुरुचिको आघात पहुँचानेवाली बतलाया गया है—और 'हेडानिस्ट नारी' संग्रहकी सबसे गन्दी, भद्दी और कुरुचिपूर्ण रचनाएँ हैं। इसी प्रकार पूँजीपतियोंके खिलाफ़ उगले गए ज़हरमें ज़हरीलापन कम और कुरुचि, गाली-गलौज तथा प्रमादपूर्ण बकवास अधिक है। अगर गालियाँ देने और दाँत पीसनेसे ही पूँजीवादका खात्मा हो सकता, तब तो शायद अब तक वह शताब्दियों पूर्व खत्म हो गया होता। पर कविका उद्देश्य तो सिर्फ़ आघात पहुँचाना है, जिसका शिकार यहाँ पूँजीपतिके बजाय बेचारे पाठकोंको होना पड़ा है।

प्रस्तावनामें 'दिनकर'जीने जहाँ कई यथार्थताओंका सीधा उल्लेख किया है, वहाँ वे भी संयम, विवेक और सुरुचिको धता बतानेसे नहीं चूके हैं। आप फ़रमाते हैं—"मास्कोका प्रकाशन इस बातका सिगनल है कि हिन्दीमें उस प्रवृत्तिका प्रवेश हो रहा है, जो आघात पहुँचानेवाले कौशलको कलाका पर्याय समझती है।" आघात पहुँचानेवाले कौशलकी झाँकी तो 'मास्को'में काफ़ी है; पर यह कलाका पर्याय कैसे और किस रूपमें है, यह दिनकरजीने भी नहीं बतलाया। आगे आपने कहा है—"इस पुस्तककी 'कपोत'के सिवा सारी-की-सारी कविताएँ कटुतासे भरी हुई हैं और उनकी तहमें एक उच्छृंखल व्यक्तित्वका उन्माद है।" और युगके इस उच्छृंखल नौजवानके बारेमें आप फरमाते हैं—"...सफलताके लिए शील, धर्म, नतिकता और बुद्धिके दीर्घकालीन प्रयोगोंको विफल होते देखकर, निराशाके आवेशमें उसकी आत्माने उसी लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए अब दुःशीलता और पापको अपनाना शुरू कर दिया हो। दुःशीलताको साधनके रूपमें स्वीकार कर लेना विवेक और शीलके खिलाफ़ सबसे बड़ा विद्रोह है और इस पुस्तकमें सर्वत्र ही इस विद्रोहका गर्जन सुनाई पड़ता है।" अगर 'मास्को' ही विवेक और शील-विरोधी विद्रोहका गर्जन है, तब तो कहना पड़ेगा कि यह विद्रोह 'शील, धर्म, नैतिकता और बुद्धिके दीर्घकालीन प्रयोगोंकी विफलता'से कहीं अधिक घातक, हानिकर, अस्वाभाविक, असंगत और अविचारपूर्ण है।

इस बारेमें दो मत नहीं हो सकते कि पूँजीवादी व्यवस्थाने आज मानवताको रसातलमें पहुँचा दिया है। पर खीझकर, गालियाँ देकर, उसे न तो खत्म ही किया जा सकता है और न उसकी जगह लोक-कल्याणप्रद किसी नई व्यवस्थाकी स्थापना ही की जा सकती है। यह किस प्रकार हो सकता है, इसका जीता-जागता नमूना सोवियत् रूस है। पर 'मास्को'के पृष्ठोंमें एक ऐसा विकृत-विशृंखल मस्तिष्क झुँझलाता हुआ दीख पड़ता है, जिसने न तो वर्त्तमान व्यवस्थाके रोगको ठीक-ठीक समझा है, न वह उसका उचित निदान ही कर सका है—उपचारकी तो फिर बात ही क्या? अगर यही प्रगतिवाद है, तो हम स्पष्ट कहना चाहते हैं कि ऐसे लेखक अपने अज्ञान, अविवेक एवं उच्छृंखलतासे प्रगतिवादको सबसे बड़ा धक्का पहुँचा रहे हैं और उसके उज्ज्वल भविष्यको अपनी लिखास तथा यशोलिप्साके कारण अन्धकारमय बना रहे हैं। 'मास्को', 'रमण' और 'ईभायण' अगर किसीके प्रतीक हैं, तो केवल नासमझी, अधकचरेपन, विकृति, प्रमाद और उच्छृंखलताके ही। हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंका प्रकाशन न केवल अपव्यय और खेदकी ही, बल्कि शर्मकी भी बात है।

—अविनाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

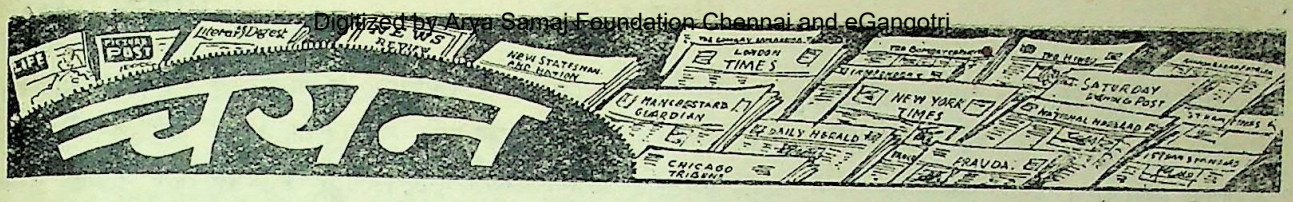

अमरीकामें भारतीय विज्ञानवेत्ताका कार्य

अमरीकन युद्ध-सूचना-विभागकी ओरसे अभी हाल ही में चिकागो (इलीनायस) के निकट यर्केज़-प्रयोगशालामें शोध-कार्य करनेवाले भारतीय विज्ञानवेत्ता डा० सुब्रह्मण्यन चन्द्रशेखरके सम्बन्धमें एक संवाद-पत्र प्रचारित किया गया है। डा० चन्द्रशेखर १९३० में 'प्रकाशकी विकीरणता'पर नोबेल-प्राइज़ प्राप्त करनेवाले सुप्रसिद्ध भारतीय विज्ञानवेत्ता सर सी० वी० रमणके भानजे हैं। ३२ वर्ष पूर्व आपका जन्म लाहौरमें हुआ था। मद्रासके प्रेसिडेंसी-कालेजसे आपने भौतिक विज्ञानमें विशिष्ट योग्यताके साथ बी० ए० पास किया और १९३६ में केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयने आपको 'डाक्टर' तथा ट्रिनिटीका 'फेलो' बनाया। इसके बाद आपने रूसका भाषण-भ्रमण किया और वहाँके विज्ञानवेत्ताओंकी समितिकी कई बैठकोंमें भी शामिल हुए।

पिछले ५ वर्षोंसे आप चिकागो-विश्वविद्यालयमें नक्षत्र-विज्ञानके संयुक्त अध्यापक हैं। इस समय आप लेक जिनिवा (इलीनायस) में रहकर भूतात्त्विक एवं नक्षत्र-विज्ञानपर यर्केज़-प्रयोगशालामें शोध-कार्य कर रहे हैं। प्यूबल (मैक्सिको) में हुई भौतिक विज्ञान-कांग्रेसके समक्ष—जिसमें सम्मिलित हुए १० अमरीकन प्रतिनिधियोंमें से एक आप भी थे—पढ़े गए निबन्धमें आपने नक्षत्रोंके निर्माण, संगठन और उनके जीवन-कालपर कई नई बातें बतलाईं। आइन्स्टाइनके 'सापेक्षवाद' और ११ वर्ष पूर्व आविष्कृत लुओवें-विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध बेल्जियन विज्ञान-वेत्ता केनन जार्जेस लेमेत्रे (जो अब नात्सियोंके बन्दी हैं) के 'प्रसरणशील पृथ्वी'के सिद्धान्तोंको मद्देनज़र रखते हुए आपने अपनी ५ वर्षकी शोधके बाद यह मत्र स्थिर किया है कि नक्षत्र कमसे कम दो अरब वर्षोंसे हैं और नक्षत्र-समूहकी औसत आयु ३ से ५ अरब वर्ष होती है। यह गणना आपने प्लीएडेसके गणित-सिद्धान्तके आधारपर की है।

लेमेत्रेके 'प्रसरणशील पृथ्वी'के सिद्धान्तका खुलासा करते हुए आपने बतलाया है कि पहले पृथ्वी परमाणुओंका एक घना ठोस हुआ गोला थी। धीरे-धीरे वह गोला अन्यान्य विभागोंके रूपमें फैलता गया। आजके पृथ्वी-खंडके मुक़ाबलेमें वह समूचा गोला इतना बड़ा था कि आजकलके किसी भी गड्ढेमें आ जाय। उस समय उसका वजन लगभग ५०० करोड़ टन और तापक्रम ८ अरब डिग्री सेंटीग्रेड था। अण्डेनुमा यह गोला जब एक दिन फटा, तो नक्षत्रों और भूखण्डोंके रूपमें जहाँ-तहाँ फैल या बिखर गया।

डा० चन्द्रशेखर अमरीकन सेना-विभागके वैज्ञानिक सलाह-कार भी हैं और फौजी विजयोंमें महत्त्वपूर्ण सहायता कर रहे हैं। आपने इस दिशामें काम करनेवाले अपने साथी अमरीकन विज्ञानवेत्ताओंके कार्योंकी प्रशंसा की है।

तालस्तायके पुत्रसे भेंट

'मास्को-न्यूज़'में नीना ब्लाडीमिरोफ़ने अभी हाल ही में काउण्ट लियो तालस्तायके ८० वर्षीय पुत्र सरगाई तालस्तायसे हुई अपनी भेंटका बड़ा ही मनोरंजक विवरण प्रकाशित कराया है। उन्होंने लिखा है—हालमें ही रूसके प्रसिद्ध उपन्यासकार लियो तालस्तायके पुत्र सरगाई तालस्तायसे मेरी भेंट हुई थी। वे अपने पितासे बहुत अधिक मिलते-जुलते हैं। उनकी भूरी चुभती हुई आँखें बिलकुल उनके पिताकी-सी ही हैं। वे अपने पिताके जीवन और रचनाओंके सम्बन्धमें वर्षोंसे बड़ी तत्परताके साथ अपने संस्मरण लिख रहे हैं। उस समय वे उसीमें व्यस्त थे। ८० वर्षकी आयुमें भी उनमें बड़ी कार्य-क्षमता है। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से अधिकांश उनके पिता लियो तालस्तायके जीवन और कार्यके सम्बन्धमें हैं। इनमें से 'लियो तालस्तायके जीवनमें संगीतका स्थान' तथा 'लियो तालस्तायकी बातचीतमें विनोद' नामक दो पुस्तकोंका श्री एल्मर माडने अंगरेज़ीमें अनुवाद किया है और उन्हें अपनी 'तालस्तायका पारिवारिक दृष्टिकोण' नामक पुस्तकमें सम्मिलित कर लिया है।

एक आलमारीमें तालस्तायकी रचनाओंके संग्रहका जयन्ती-संस्करण रखा था। श्री सरगाई तालस्तायने मुझे बताया कि इस पुस्तककी ९० जिल्दें होंगी। अपनी नई पुस्तक 'लियो तालस्तायके पिता और पितामह'का ज़िक्र करते हुए उन्होंने नेपोलियनके आक्रमणके समयकी सैनिक-वर्दी पहने हुए एक चित्रकी ओर इशारा करके कहा—'ये मेरे पितामह निकोलाई तालस्ताय हैं।' सरगाई तालस्तायकी ८०वीं वर्षगाँठके दिन मास्कोके वैज्ञानिकोंके क्लबमें संगीत-समारोह किया गया था, जिसमें उनके गीत पढ़े गए।

महिलाओंकी शिक्षा कैसी हो ?

गत मास बनस्थली-बालिका-विद्यालयके आठवें वार्षिको-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्सवका सभानेतृत्व करते हुए सुप्रसिद्ध महिला-नेतृ श्रीमती हंसा मेहताने कहा—एक बड़ी हद तक हमारी अवनति और हीनताका मूल कारण हमारी स्त्रियोंका अज्ञान है। स्त्रियाँ भावी पीढ़ियोंकी माताएँ और गृह-मन्दिरका निर्माण करनेवाली हैं। उनको अशिक्षित बने रहने देना एक अपराध है। मगर हमारे सामने जो प्रश्न है, वह यह है कि स्त्रीको जो शिक्षा दी जाय, उसका स्वरूप क्या हो? और इसका उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब हम इस बातपर सहमत हो लें कि जीवनमें स्त्रीका क्या कार्य है?

क्या स्त्रीका कार्य घरमें और राष्ट्रमें एक मौन दर्शक बने रहनेका ही हो सकता है? वह अब 'अबला' और पुरुष-समाज या राष्ट्रपर बोझ बनकर नहीं रह सकती। सच्ची सहचरीके नाते उसे पुरुषके कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर जीवन-यात्रा करनी है और पुरुषकी तरह उसे विश्वके इस रंगमंचपर बहुतसे कार्य करने हैं। विवाहिता स्त्रीके नाते गृहमें उसके कई कर्त्तव्य हैं। यदि वह माँ है, तो भावी पीढ़ीका ठीक-ठीक लालन-पालन करनेका उत्तरदायित्व उसपर है। यदि वह कुमारी रहती है, तो उसे अपना स्वतन्त्र जीवन-क्रम बनाना है और इसके लिए उसे पूरे साधन जुटाने हैं। वह विवाह करे या न करे, उसे उपयोगी नागरिक तो बनना ही है और राष्ट्रकी गति-विधिमें विवेकयुक्त और आवश्यकतानुसार क्रियात्मक रस भी लेना ही है। जिस शिक्षामें इस बातका ध्यान नहीं रखा जाता, वह अवश्य सदोष होगी।

हमारी आजकी शिक्षा तो इस आदर्शके बहुत नीचे रह जाती है, क्योंकि वह न तो व्यक्तिकी सम्पूर्ण आवश्यकताओंको पूरा करती है और न उपयोगी नागरिक ही निर्माण करती है। मौजूदा शिक्षा अत्यधिक पुस्तकीय है, और इसलिए वह एकांगी है। आज तो आवश्यकता है मनुष्य—सम्पूर्ण मनुष्य—की शिक्षाकी। मनुष्यमें शरीर है और साथ ही आत्मा भी है; उसमें बुद्धि है, साथ ही भावनाएँ भी हैं; उसके अधिकार हैं, साथ ही कर्त्तव्य भी हैं। दुःख है कि अपने देशमें शरीरकी शिक्षाकी तरफ़ कम ध्यान दिया गया है, और जहाँ तक लड़कियोंका सम्बन्ध है, उसकी एकदम उपेक्षा की गई है। शारीरिक शिक्षा एक प्राथमिक आवश्यकता है। परन्तु हमें यह याद रखनी चाहिए कि शारीरिक शिक्षण देनेमें हमारा लक्ष्य पहलवान बना देना नहीं है, बल्कि शरीरको सुघड़ और स्वस्थ बनाना है। नृत्य स्त्रियोंके लिए सबसे उपयुक्त व्यायाम है। प्राचीन ग्रंथोंके अध्ययनसे विदित होता है कि प्राचीन कालमें भी स्त्रियोचित गुणोंमें नृत्यका प्रमुख स्थान होता था। मैंने इसका विशेष उल्लेख केवल इसलिए किया है कि प्राचीन कला आजकल भुला-सी दी गई है। उसको उचित रीतिसे पुनर्जीवित करनेसे स्त्रियोंका लाभ तो होगा ही, साथ ही कला-जगत् भी समृद्ध होगा। ('हिन्दुस्तान')

पूर्वी भाषाओंके सरकारी लेख

विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा अनुसन्धान-समितियोंकी सहायतासे भारत-सरकारके विविध भाषाओंके महत्त्वपूर्ण लेखोंका पुस्तक-रूपमें सम्पादन और प्रकाशन किया जा रहा है। इससे विद्यार्थियोंकी भावी पीढ़ियोंको भारतके अतीतके सम्बन्धमें उपयोगी सामग्री प्राप्त हो सकेगी। पूर्वीय भाषाओंके लेखोंमें से बँगलाके लेखोंका एक ग्रन्थ भारत-सरकारके लेखोंके संरक्षक डा० एस० एन० सेन द्वारा सम्पादित होकर कलकत्ता-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। इस ग्रन्थमें बँगला लेखोंके मूल रूपके अतिरिक्त उनका संक्षिप्त सार भी अंगरेज़ीमें दिया गया है। २०० मराठी पत्रोंका संग्रह भारत-इतिहास-संशोधक-मंडल, पूनाको दे दिया गया है, जिनका सम्पादन प्रोफ़ेसर डी० वी० पोद्दार करेंगे और उन्हें शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा। फारसी अखबारोंका ग्रन्थ दिल्ली-विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया जायगा और विश्वविद्यालयके इतिहासके रीडर डा० आई० एच० कुरेशी उसका सम्पादन कर रहे हैं। गुरुमुखीके ग्रन्थकी सामग्री एकत्र की जा रही है, जिसका सम्पादन प्रोफ़ेसर गंडासिंह करेंगे, और वह खालसा-कालेज, अमृतसर द्वारा प्रकाशित किया जायगा। लगभग ३०० हिन्दी-लेख एकत्र कर लिए गए हैं और इलाहाबाद-विश्वविद्यालयने उन्हें प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है। द्राविड़ भाषाओंके लेखोंके उतारे और प्रकाशित किए जानेका प्रबन्ध किया जा रहा है। डा० एस० एन० सेन अब तक मिले हुए संस्कृत-लेखोंका सम्पादन स्वयं करेंगे और उन्हें पत्रिकाओंमें प्रकाशित करानेकी भी व्यवस्था करेंगे। इम्पीरियल-रेकार्ड्स-डिपार्टमेंटके पास अरबी, अराकानी, भूटानी, बर्मी, चीनी, उड़िया, तिब्बती तथा अन्य भाषाओंके भी लेख हैं, और इनमें दिलचस्पी रखनेवाले विद्वान उनका प्रसन्नतापूर्वक निरीक्षण तथा अनुशीलन कर सकते हैं। वे उन ३० तुर्की भाषाके हस्तलिखित लेखोंसे भी लाभ उठा सकते हैं, जो भारत-सरकारने स्वर्गीय सर ई० डेनीजन रास द्वारा प्राप्त किए थे। ('भारतीय समाचार')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय विचार

ब्रिटिश अधिकारी और अकाल

आज जब बंगाल भारतकी पराधीनताका पाप और साम्राज्यवादी शोषणका शाप वहन कर रहा है, ब्रिटेनके तथाकथित 'भारत-हितैषी' और 'भारत-विशेषज्ञ' गला फाड़-फाड़कर दुनियाको सुना रहे हैं कि इस लज्जाजनक स्थितिके लिए नई-दिल्ली अथवा लंदनके ब्रिटिश अधिकारी ज़िम्मेदार नहीं हैं। गत ४ नवम्बरको कामन्समें बंगालके अकालपर ५॥ घंटे तक हुई बहसका एक वाक्यमें यही निष्कर्ष है। भारत-मन्त्री श्री एमरीने—जिनके इस बारेमें दिए गए वक्तव्य असंगति, अस्पष्टता, असत्यता, अदूरदर्शिता, अविचार और टालमटूलके 'गुणों'के लिए काफ़ी बदनाम हो चुके हैं—विरोधी-दलके भाषणोंको सुननेसे पहले ही तैयार किए गए अपने वक्तव्यमें 'मौजूदा स्थितिके इतिहासकी अर्थनीतिक पृष्ठभूमि'पर प्रकाश डालते हुए हस्बदस्तूर किसानोंकी ग़रीबी, आबादीकी वृद्धि, मुद्रा-प्रसार, खाद्य-पदार्थोंके विषम विभाजन, बंगालकी फ़स्लके बारेमें श्री फज़लुलहक़के थोथे आशावाद आदिपर वर्त्तमान दुरवस्थाकी ज़िम्मेदारी डालनेकी चेष्टा की। ब्रिटिश शासनमें भारतमें बनी ४०,००० मील लम्बी रेल-लाइन, सिंचाईकी नहरें और जहाज़ी सुविधा आदिका उल्लेखकर आपने खाद्य-स्थितिके बारेमें सरकारके बराबर सावधान रहने, 'अधिक अन्न उपजाओ'-आन्दोलनके अन्तर्गत १२,०००,००० एकड़ अतिरिक्त भूमिमें खेती होने, केन्द्रीय सरकारकी देशव्यापी खाद्य-योजना और खाद्य-संकट दूर करनेके लिए किए गए बंगालके मौजूदा मन्त्रिमण्डलके कार्योंका उल्लेखकर आपने अपना वही पुराना तकिया-क़लाम दोहराया कि इससे भारतके सभी भागों और दलोंकी एकता एवं सहयोगपर आधारित भावी विधानकी आवश्यकता और भी स्पष्ट हो जाती है।

बंगालके अकाल और भारतकी आम खाद्य-स्थितिके सम्बन्धमें ब्रिटिश अधिकारियोंकी 'निर्दोषिता' सबित करनेके लिए अकेले एमरी साहब शायद काफ़ी नहीं समझे गए, अतः बंगालके भूतपूर्व गवर्नर और ब्रिटेनके मौजूदा अथ-सचिव सर जान एण्डरसन, ब्रिटेनके भूतपूर्व युद्ध-मन्त्री श्री होर बेलीशा, सर एल्फ्रेड नाक्स, श्री गोडफ्रे निकल्सन आदि अनुदारदलियोंको भी उनकी मदद करनी पड़ी। भारतकी खाद्य-स्थितिके सम्बन्धमें ब्रिटेनके अर्थ-सचिवका इतनी अधिक दिलचस्पी लेना भले ही असंगत एवं अनावश्यक हो; पर ब्रिटिश साम्राज्यकी नेकनामीके लिए उनका यह कष्ट एवं कर्त्तव्य अनिवार्य-सा हो गया जान पड़ता है। किन्तु सर जान यह भूल गए जान पड़ते हैं कि अपने ६ वर्ष भारतमें रहनेकी जिस 'विशेष योग्यता'की उन्होंने पार्लमेंटमें दुहाई दी, उस समयकी और आजकी स्थितिमें आकाश-पातालका-सा अन्तर है। श्री एमरीके सुरमें सुर मिलाकर आपने भी न केवल भारतको ग़रीब, छोटे किसानोंका और आदि-कालीन सामाजिक तथा अर्थ-नीतिक ढाँचेवाला देश ही बतलाया, बल्कि मेज़ पीटकर (डंकेकी चोट) अपने ६ वर्षके बंगालकी गवनरीके अनुभवकी दुहाई देकर भारतकी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों तथा ब्रिटिश सरकारकी कार्यपटुता और निर्दोषिताका बखान भी किया। श्री फज़लुलहक़के—जिनसे आपका कभी कोई मतभेद नहीं हुआ—आशावादका सहारा आपने भी लिया और कहा कि किसानोंकी अपनी स्थिति ठीक रखने और भविष्यमें अच्छी दर मिलनेके लोभसे खाद्य-पदार्थ जमाकर रखनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भी किसी हद तक इसके लिए ज़िम्मेदार है। श्री होर बेलीशाने ब्रिटिश शासनकी न्यामतों—नदियोंके बाँध, ४०,००० मील लम्बी रेल-लाइन, सड़कें, जहाज़ी सुविधाएँ आदि—का उल्लेख करते हुए सैनिक कार्योंको प्राथमिकता देनेकी बात कही। आपने कहा कि हम सबको राहत देनेवाली विजयको लानेवाले कार्योंकी ओर हमें पहले ध्यान देना चाहिए। भारतीय कृषिके आदि-कालीन होनेका आपने भी उल्लेख किया और कहा कि हमारा एक ऐसे देशसे पाला पड़ा है, जहाँ चर्खा राष्ट्रीय देवता समझा जाता है, १२,०००,००० लकड़ीके हल हैं, फ़स्ल दाँतीसे काटी जाती है, बैलोंसे खुँदवाई या हाथसे कूटी जाती है और हवासे अनाजका भुस अलग किया जाता है।

विवेक, सत्य और नैतिकताको चुनौती

सर्वश्री एमरी, एण्डरसन और होर बेलीशाके उपर्युक्त भाषण न केवल हमारे ही, बल्कि विश्वके विवेक, सत्य और मानवताको बहुत बड़ी चुनौती हैं। मज़दूर-दलके सदस्य श्री कोवके शब्दोंमें कहा जाय, तो श्री एमरी और एण्डरसनका यह कथन ब्रिटिश शासनके लिए बहुत बड़ा कलंक है कि आज भी भारत ग़रीब, छोटे किसानोंका और आदि-कालीन सामाजिक एवं अर्थ-नीतिक ढाँचेवाला देश है। हम उन्हींसे पूछना चाहते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतको इस स्थितिमें रखनेके लिए आखिर कौन ज़िम्मेदार है ?—२०० वर्षोंका ब्रिटिश शासन या वे लोग, जो आज़ादी या स्वशासनका अधिकार माँगनेपर शत्रुके एजेंट बतलाए जाकर जेलोंमें ठूँस दिए गए हैं ? रही भारतमें ४०,००० मील लम्बी रेल-लाइन, नदियोंके बाँध, नहरें, सड़कें आदि बनवाने और जहाज़ी सुविधा देनेकी बात, सो कौन नहीं जानता कि ब्रिटिश अधिकारियोंने ये कार्य भारतीयोंकी सुख-सुविधा या समृद्धिके विचारकी अपेक्षा अपने व्यापार, साम्राज्यवादी शोषण और फ़ौजी आवश्यकताओंके विचारसे ही अधिक किए हैं। भारतका राष्ट्रीय इतिहास तो आज है ही नहीं ; पर अनेक ईमानदार अंगरेज़ तथा अन्य यूरोपीय इतिहासकारोंके पचासों उद्धरण देकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि आजकी अपेक्षा ५०, १००, १५० या २०० वर्ष पूर्व भारत अधिक धन-धान्यपूर्ण एवं समृद्ध था। विलियम डिगबी ('प्रासपेरस ब्रिटिश इंडिया') वाल्टर हेमिल्टन ('ईस्ट-इंडिया गज़ेटियर'), डा० राबर्टसन ('ए हिस्टोरिकल डिस्क्वीज़ेशन कन्सर्निंग इंडिया'), ब्रुक एडम्स ('दि ला आफ़ सिविलिज़ेशन एण्ड डिके'), डा० टेलर ('टोपोग्राफ़ी आफ़ ढाका'), सर विलियम हण्टर ('एनाल्स आफ़ रूरल बेंगाल' और 'हिस्ट्री आफ़ ब्रिटिश इण्डिया'), मार्क ट्वेन ('मोर ट्रैम्प्स एब्राड') और न-जाने कितने अन्य विदेशी लेखकोंने हमें यह बतलाया है। और जहाज़ी सुविधा ? कौन नहीं जानता कि ब्रिटिश जहाज़ भारतसे कच्चा माल ब्रिटेन ले जाने और वहाँसे बनी हुई चीज़ें भारत लानेका काम करते रहे हैं। इससे ब्रिटिश पूँजीपतियोंको सविशेष लाभ पहुँचा है या ग़रीब भारतीयोंका किंचिन्मात्र उपकार हुआ है, यह भी क्या बतलाना पड़ेगा ? इनसे न केवल भारतकी पुरानी जहाज़रानी ही नष्ट हुई; बल्कि अनुचित प्रतियोगिताके कारण नई भारतीय जहाज़रानी भी भलीभाँति पनप नहीं सकी। ब्रिटिश नेवीगेशन और सिंधिया-स्टीम-नेवीगेशन कम्पनियोंकी प्रतियोगिता और उसके परिणामकी बात पाठक शायद भूले न होंगे। आज भारतकी अपनी जहाज़ी सुविधा क्या और कितनी है, यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं। और लंदनके 'एकोनोमिस्ट'के शब्दोंमें, क्या हम एमरी साहबसे पूछ सकते हैं कि अब तक भारतकी खाद्य-स्थिति सुधारनेके लिए उन्होंने कितने जहाज़ देनेकी कृपा की है ?

हम यह मानते हैं कि बंगालकी खाद्य-स्थितिके सम्बन्धमें श्री फ़ज़लुलहक़का आशावाद किसी हद तक थोथा साबित हुआ। लेकिन इस 'ग़रीब, छोटे किसानोंके और आदि-कालीन सामाजिक और अर्थनीतिक ढाँचेवाले देश'पर अनुचित एवं अनावश्यक बोझ बने, भारी-भरकम तनख्वाहें लेनेवाले भारत-मन्त्री, वाइसराय, गवर्नर, कई खाद्य-विशेषज्ञ तथा अफ़सर और हज़ारों सिविलियंन फिर आखिर किस मर्ज़की दवा हैं ? क्या इन सबमें अपनी कोई समझ, सूझ, दूरदर्शिता और सहज-बुद्धि नहीं है और ये सबके सब श्री फ़ज़लुलहक़के आशावादसे ही ज्ञान और प्रकाश ग्रहण करते रहे हैं ? गत जनवरीमें जब श्री एमरीने कामन्समें कहा था कि भारतमें अकालकी कोई आशंका नहीं है, उसके कई मास पूर्व गांधीजीने 'हरिजन'में न केवल इस आशंकाके सत्य होनेकी ओर ही संकेत किया था, बल्कि उससे उत्पन्न स्थितिका सामना करनेके लिए तैयार रहनेकी प्रेरणा तथा उसके लिए अपनी रचनात्मक योजना भी छाप दी थी। (अभी हाल ही में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने उनके इस लेखको कई पत्रोंमें पुनः मुद्रित करवाया है।) इसमें युद्ध-प्रयत्नमें अड़चन डालनेवाली कोई बात न थी और न ही तब गांधीजी तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगोकी 'दोस्ती'की सुविधासे ही वंचित हुए थे। तब सरकारने उनकी इस चेतावनी और सुझावोंपर क्यों ध्यान नहीं दिया ? क्या श्री फ़ज़लुलहक़ या और कोई उसके ऐसा करनेके मार्गमें भी बाधक थे ?

भारतीय आबादीकी वृद्धिका सहारा लेते समय श्री एमरीको शायद यह याद नहीं रहा कि आबादीकी वृद्धि भारतके लिए कोई नई बात नहीं है। पिछली कई दशाब्दियोंमें—ब्रिटिश शासन-कालमें ही—उसकी आबादी बढ़ी है ; पर उससे अकाल पड़नेकी नौबत शायद ही कभी आई हो। यह ज्ञान-वर्द्धक नई बात हम आज पहली बार सुन रहे हैं। लेकिन क्या हम पूछ सकते हैं कि भारतमें लाखोंकी तादादमें जो विदेशी सेना, युद्ध-बन्दी और अनेक जर्मन-अधिकृत देशोंके शरणार्थी पड़े हैं, एमरी साहबके खयाल-शरीफ़में उनका भी इससे कोई सम्बन्ध है, या नहीं ? जब बर्माके चावलकी कमी और देशी फ़सलकी कमज़ोरीके बावजूद बाहर भेजी गई भारतीय सेनाके लिए भारतसे खाद्य-पदार्थ भेजे जाते रहे, तो भारतके इन 'महमानों' के लिए किस देशसे और किस मात्रामें खाद्य-पदार्थ आए हैं ? इनकी अतिरिक्त खपतको सरकारने आखिर कैसे पूरा किया ? बल्कि सच तो यह है कि इस सारी जन-वृद्धिके बावजूद खाद्यका आयात तो दूर रहा, भारतसे खाद्य-पदार्थोंका निर्यात जारी रहा—भले ही वह पहलेकी अपेक्षा कम रहा हो।

रही मुद्रा-प्रसार और खाद्य-पदार्थोंके विषम-विभाजनकी बात, सो इसकी १०० फ़ी-सदी ज़िम्मेदारी लंदन और भारतकी ब्रिटिश सरकारोंपर ही है। देशके अर्थनीतिज्ञोंकी चेतावनीके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बावजूद जहाँ एक ओर सरकार धड़ाधड़ नोट छापती गई ; वहाँ दूसरी ओर श्रमजीवियोंकी उजरत बढ़ाने, चीज़ोंके मूल्य स्थिर एवं नियन्त्रित करने और उनके विभाजनकी उचित व्यवस्था करनेके लिए वह कोई प्रभावपूर्ण कार्यवाही नहीं कर सकी। क्या हम एमरी साहबसे ही पूछ सकते हैं कि ब्रिटेनमें मुद्रा-प्रसार और उसके कुप्रभावको रोकनेके लिए जो प्रयत्न किए गए हैं, उनका शतांश अथवा सहस्रांश भी भारतमें किया गया ? मुद्रा-प्रसार और उसके कारण चीज़ोंके बढ़ते हुए मूल्यके अनुपातमें श्रमजीवियोंकी उजरत बढ़ानेके लिए सरकारने क्या किया, या कुछ किया भी या नहीं, इसका तो एमरी साहबको पता तक नहीं ! एक ओर मुद्रा-प्रसारसे चीज़ोंका मूल्य असाधारण गतिसे बढ़ता गया, व्यापारके नामपर ग़रीबोंको लूटनेवाले हृदय-हीन और बेईमान मुनाफ़ाख़ोर मनमाना भाव बढ़ाकर जनताको दिन-दहाड़े लूटते रहे, और दूसरी ओर सरकार मूल्य-नियन्त्रणकी विफलताको देखकर भी—उससे कोई सबक़ हासिल न कर—लाल-फ़ीतोंके इन्द्रजालमें उलझी हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रही ! एकके बाद एक निकलनेवाले उसके आर्डिनेंस साबुनके पानीके गोलोंसे अधिक कारगर साबित नहीं हो सके।

एमरी साहब एक ही साँसमें भारतमें ४०,००० मील लम्बी रेल-लाइन बनानेकी ब्रिटिश शासनकी न्यामतका बखान भी करते हैं और उसीमें खाद्य-पदार्थोंके विषम विभाजनकी शिकायत भी ! इस सम्बन्धमें हम पिछले दिनों कलकत्तेके दैनिक पत्रोंमें ईस्ट-इण्डिया रेल्वेके अधिकारियों द्वारा छपवाए गए उस विज्ञापनकी ओर एमरी साहबका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं, जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि ई० आई० आर० ने इस दिशामें अब तक क्या-कुछ किया है और स्थितिके बिगड़नेमें उसकी कितनी ज़िम्मेदारी है। इस सिलसिलेमें उन ग़ैर-सरकारी सहायता-समितियों—खासकर पंजाबकी—के वक्तव्य भी द्रष्टव्य हैं, जिन्होंने इस बातकी शिकायत की थी कि बंगालके लिए ग़ल्लोंसे भरे बोरे स्टेशनोंपर पड़े हैं ; पर रेल-अधिकारी कहते हैं कि उनके लिए डब्बे नहीं हैं ! तब क्या सरकारने रेलोंका उपयोग एकमात्र फ़ौजी आवश्यकताओंके लिए ही नहीं किया है, जिसकी ओर पार्लमेंटमें श्री होर बेलीशाने अपने भाषणके दौरानमें संकेत किया है ? वर्ना फिर यह शिकायत क्यों और किससे ?

सर जान एण्डरसनने किसानोंकी अपनी स्थिति ठीक रखने और भविष्यमें अच्छी दर मिलनेके लोभसे खाद्य-पदार्थ जमाकर रखनेकी जिस स्वाभाविक प्रवृत्तिकी ओर संकेत किया है, वह असंगत ही नहीं, सर्वथा असत्य, निराधार और कल्पना-प्रसूत भी मालूम होती है। हमें आश्चर्य और खेद है कि सर जान एण्डरसन अपनी ६ वर्षकी बंगालकी जानकारीके अनुचित और मिथ्या गर्वमें यह भूल गए कि सर जान हरबर्टका बंगाल सर जान एण्डरसनके समयका बंगाल तनिक भी नहीं है। उनके समयके और आजके बंगालमें उतना ही अन्तर है, जितना एक मोटे-ताज़े स्वस्थ रक्त-मांसल शरीर और एक मृतप्रायः रक्त-हीन अस्थि-शेष कंकालमें होता है। उस समयकी किसानोंकी 'स्वाभाविक प्रवृत्ति' आज भी उसी रूपमें क़ायम रह सकती है, यह साम्राज्यवादी वफ़ादारीकी ही उपज मालूम पड़ती है। जो लोग आज अपने झोंपड़े, बर्त्तन, हल, बैल, बच्चे और स्त्रियों तकको बेच अथवा निराश्रय छोड़कर दाने-दानेके भिखारी बने हुए हैं, जो भूखसे तड़प-तड़पकर गली-रास्तों, सड़कों और फुटपाथोंपर कीड़ोंकी मौत मर रहे हैं, उन्होंने 'अपनी स्थिति ठीक रखने और भविष्यमें अच्छी दर मिलनेके लोभसे खाद्य-पदार्थ जमा कर रखे हैं', ऐसी क्रूर कल्पना सर एण्डरसन-जैसे कुशल और दूरदर्शी अधिकारी ही कर सकते हैं ! हम आपका ध्यान बंगालके अकालग्रस्त क्षेत्रोंका दौरा करनेके बाद श्री हृदय-नाथ कुँजरू द्वारा गत २ नवम्बरको नई दिल्लीसे प्रकाशित उस वक्तव्यकी ओर आकृष्ट करते हैं, जिसमें उन्होंने कहा है कि किसी भी यूरोपियन या भारतीय अफ़सरने, जिनसे वे अपने दौरेके दौरानमें मिले हैं, यह नहीं कहा कि उनके इलाक़ोंमें किसानोंने अनाज जमा कर रखा है ! अगर ग़ैर-सरकारी होनेके कारण इस वक्तव्यपर सर एण्डरसन पूरा विश्वास न कर सकें, तो हम उनका ध्यान गत १२ अक्टूबरके 'बम्बई-क्रानिकल'में छपी बंगालके वर्त्तमान मन्त्रिमण्डलके—जिसे स्थापित करनेका श्रेय सर जान हरबर्टको और सत्तारूढ़ रखनेका पुण्य यूरोपियन दलको है—सिविल-सप्लाई-विभागके मन्त्री श्री सुहरावर्दीसे हुई उसके विशेष संवाददाता श्री डी० एफ़० कराकाकी उस भेंटकी ओर आकृष्ट करते हैं, जिसमें श्री सुहरावर्दीने अनाजके जमा होनेकी बातका ज़ोरोंसे प्रतिवाद किया है। और अगर हम यह मान भी लें कि सर एण्डरसनकी बात ही सच है, तो सरकारके पास ऐसा कौन-सा अधिकार, अस्त्र, आर्डिनेंस अथवा विशेष क़ानूनोंका साधन नहीं है, जिससे वह जमा अनाजका पता लगाकर उसे बरामद न कर सके और उसे जमा कर रखनेवालेको उचित दण्ड न दे सके ? अगर इन सबके बावजूद सरकार कुछ भी करनेमें असमर्थ है अथवा विफल रही है, तो उसके लिए श्रेयस्कर यही है कि वह शासनकी बागडोर अधिक योग्य, समर्थ एवं जनताके विश्वासु और हितचिन्तक प्रतिनिधियोंके हाथोंमें सौंपकर लाखों व्यक्तियोंको असमय ही यमलोक पहुँचानेके अपने इस पापका प्रायश्चित्त करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारियोंकी विफलताकी बदनामीके बँटवारेका ज़िक्र करते हुए सर एण्डरसनने बड़े गर्वके साथ कहा—"ऐसी बातें करनेसे कोई फ़ायदा नहीं कि ज़िम्मेदार स्वशासन देनेसे जैसे कोई अन्तर ही न पड़ा हो।" क्यों नहीं, अन्तर तो बहुत बड़ा पड़ा है। गवर्नरके विशेषाधिकारोंके कठघरेमें बद्ध जनताके तथाकथित चुने हुए ज़िम्मेदार मन्त्री जहाँ जनताकी माँग या हितके लिए अपनी इच्छानुसार कुछ भी करनेको स्वतन्त्र और सक्षम नहीं हैं, वहाँ अकाल-जैसी महामारीके अनर्थकी बदनामी उनपर थोपनेके लिए वाइसराय और भारत-मन्त्रीसे लेकर अदनासे अदना ब्रिटिश अधिकारी तक पूर्ण स्वतन्त्र है। पता नहीं, सर एण्डरसनको यह बात मालूम है या नहीं कि जिन श्री फ़ज़लुलहक़से उनका कभी कोई मतभेद नहीं हुआ था, उन्हींसे सर जान हरबर्टने किस प्रकार इस्तीफ़ेपर हस्ताक्षर करवाए? इस घटनाकी यथार्थताके बारेमें हमारी कोई निजी जानकारी तो नहीं है; पर इतना हम अवश्य जानते हैं कि इस सम्बन्धमें श्री फ़ज़लुलहक़ने बंगाल-असेम्बलीमें जो वक्तव्य दिया था, उसमें सर हरबर्टपर लगाए गए गम्भीर आरोपोंका न तो अब तक कोई प्रतिवाद हुआ है और न उनका कोई उत्तर ही दिया गया है।

शासकोंकी अयोग्यता और अकर्मण्यता

पर सर जान एण्डरसन, एमरी और होर बेलीशाकी वक़ालतके बावजूद सर्वश्री पैथिक लारेन्स, कोव, ग्राहम व्हाइट, रिडले, जार्ज शुस्टर, एमन आदिने सरकारकी अयोग्यता, लापरवाही, दुबलता और अकर्मण्यताका काफ़ी भण्डाफोड़ किया और इस बातपर ज़ोर दिया कि सरकार आज जो-कुछ कर रही है, वह उसे बहुत पहले करना चाहिए था। श्री पैथिक लारेन्सने सारी स्थितिकी ज़िम्मेदारी ब्रिटिश शासकों तथा पार्लमेंटकी बतलाई और कहा कि खाद्य-पदार्थोंकी मूल्य-वृद्धिका कारण मुद्रा-प्रसार है, जिसके लिए भारत-सरकारके सिवा और कोई ज़िम्मेदार नहीं है। आपके मतसे चीज़ोंके मूल्यका आम इण्डेक्स ३०० प्रतिशत चढ़ा है—खाद्य-पदार्थोंका ५०० से ७०० और अन्य चीज़ोंका ९०० प्रतिशत। आपने कहा कि अकालका भारतमें वही परिणाम हो रहा है, जो एक फ़ौजी हारका होना चाहिए। सर जान वार्डला मिल्नने लीपा-पोती करनेकी बहुत कोशिश की, फिर भी उन्हें यह शिकायत करनी ही पड़ी कि श्री एमरी अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए कितने जहाज़ दे या दिलवा सकेंगे, इस बारेमें उन्होंने कोई निश्चित वक्तव्य नहीं दिया। वाइसरायकी शासन-परिषदके भूतपूर्व सदस्य सर जार्ज शुस्टरने—जिन्हें भारतीय स्थितिका सर जान एण्डरसन या श्री एमरीसे शायद कम ज्ञान नहीं है—सरकारकी अकर्मण्यता, अयोग्यता और शिथिलताको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। कदाचित् इसीलिए आपके भाषणका बहुत थोड़ा अंश ही रायटरने भारत भेजनेकी कृपा की है।

सबसे अधिक सारपूर्ण और स्पष्ट बातें मज़दूर-दलके सदस्य श्री कोवने कहीं। आपने सारी गड़बड़ीकी ज़िम्मेदारी निश्चित करनेके लिए जाँच-कमीशनकी माँग करते हुए कहा—"हमारे लाखों भाई मर रहे हैं। भारतमें हताहत होनेवाले लोगोंकी संख्या इस युद्धमें अगले २-३ महीनोंमें हताहत होनेवाले लोगोंसे भी अधिक होगी। भारतमें इसकी क्या प्रतिक्रिया होती है? हम कहते हैं कि हम फ़ाशिस्त ज़ोर-ज़ुल्मके खिलाफ़ अपनी आज़ादीके लिए लड़ रहे हैं। पर भारतके लोगोंको हमने कौन-सा नैतिक आमन्त्रण दिया है? मैं बतलाना चाहता हूँ कि पं० नेहरू हमारे युद्ध-प्रयत्नके खिलाफ़ थे और कांग्रेसका हमारी इस लड़ाईमें विश्वास नहीं था। पर कांग्रेसका प्रत्येक प्रस्ताव राष्ट्रोंकी स्वाधीनताके लिए था। भारतीय लोकमतके नेताओंमें हमें फिर विश्वास पैदा करना है। यह तभी हो सकता है, जब हम भारतीयोंको राष्ट्र-मंडलमें समानताका स्थान दें। मेरा विश्वास है कि भारतीय नेताओंसे समझौता किए बिना कुछ भी सम्भव नहीं।" श्री एमरीके भाषणको अधूरा बताते हुए आपने कहा "युद्ध हमारे भारतीय शासनके लिए अग्नि-परीक्षा साबित हुआ है। हम २०० वर्षोंसे वहाँ शासन कर रहे हैं; पर आजके-से महायुद्धके छिड़ते ही जहाँ तक नैतिक भित्तिका सवाल है, हमारा शासन-सूत्र छिन्न-भिन्न हो गया है। हम शोकजनक रूपसे असफल रहे हैं। जब तक हम भारतकी राजनीतिक कठिनाइयोंको दूर नहीं करते, स्थितिका सामना करना सर्वथा असम्भव है। पं० नेहरू और वैसे ही हमारे अन्य मित्र आज जेलोंमें हैं। हमें स्पष्टवादी होना चाहिए: हमारे उद्देश्योंके लिए भारतीय नेताओंका कोई सहयोग नहीं है और मैं समझता हूँ कि इसमें दोष हमारा ही है। हमें केवल खाद्यसे भरे जहाज़ ही भारत नहीं भेजने हैं, बल्कि ज़ेलोंसे भारतके कांग्रेसी नेताओंको भी रिहा करना है।"

इन शब्दोंमें चाहे जितना भी बल और सद्भावना हो, परिस्थितिका चाहे जो भी तक़ाज़ा हो; मगर रायटरके संवादके अनुसार सारी बहसका परिणाम यह हुआ कि सर जान एण्डरसन द्वारा दी गई भारतकी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारकी ज़ोरदार सफ़ाई और ब्रिटिश आशावादके विश्वासजनक प्रमाणसे सन्तुष्ट और प्रसन्न हो पार्लमेंटके सदस्य निश्चिन्त होकर अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घरोंको लौट गए हैं। गत ११ नवम्बरको कामन्समें पूछे गए श्री कर्कवुडके इस प्रश्नके उत्तरमें कि क्या सरकार इस बातका प्रतिवाद करेगी कि अकालकी इस स्थितिके लिए वह ज़िम्मेदार है, श्री एमरीने अपने और सर एण्डरसनके भाषणोंकी ओर संकेत किया। इस उत्तरसे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि बंगालके अकाल अथवा भारतकी खाद्य-स्थितिपर पार्लमेंटमें हुई बहसका उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो; पर उसका उपयोग सरकारने दुनियाके सामने अपना कलंक धोनेकी चेष्टाके रूपमें ही किया है।

यह धोखा और दिखावा क्यों?

पार्लमेंटकी इस खाद्य-बहससे न केवल भारतमें ही, बल्कि इंग्लैण्ड और सम्भवतः अमरीकामें भी गहरी निराशा और क्षोभ फैले हैं। पालमेंटके लिबरल-सदस्य श्री क्लीमेंट डेवीज़ने इसे 'सर्वाधिक निराशाजनक' बतलाया है। ब्रिटिश पत्रोंने भी इसपर खासी कड़ी टीका-टिप्पणी की है। 'डेली हेराल्ड'ने लिखा है—"भारत-मन्त्री श्री एमरी अपनी वैयक्तिक ज़िम्मेदारीको बखूबी समझते हैं; लेकिन कलकी बहसमें वे फिर अपने पदके योग्य साबित होने या तर्कसे काम लेनेमें विफल रहे। इस बार फिर आपने अपना बचाव किया और न सिर्फ़ अपने विभागके मुस्तैदी और दूरदर्शिताके अभावको ही अस्वीकार किया, बल्कि इस संकटके समयके भारत-सरकारके कार्योंके लिए उसकी वास्तवमें प्रशंसा भी की। भारत-मन्त्री इस मामलेमें विफल ही साबित हुए हैं। इससे ब्रिटेन भी विफल ही साबित होगा, जब तक कि लोकमत सरकारको मि० एमरी या सर जान एण्डरसन द्वारा निर्दिष्ट कार्यवाहीकी अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण कार्यवाही करनेकी आवश्यकता न महसूस करा दे।" 'रिनाल्ड्स न्यूज़'में निकले अपने लेखमें श्री टाम ड्रिबर्ग (पार्लमेंट-सदस्य) ने कहा है कि योग्यता और गम्भीरतापूर्वक गत बृहस्पतिवारकी बहसका उपसंहार करते हुए सर जान एण्डरसनने अकालको उस ईश्वरका एक प्रकोप सिद्ध कर दिया, जिसे वे अपनी वास्केटकी जेबमें रखनेका आभास देते हैं।

बहसके समयकी पार्लमेंटकी उपस्थिति, मन्त्रियोंका रुख और गृहका वातावरण उसकी अस्लियतपर और भी अधिक प्रकाश डालते हैं। 'हिन्दू'के विशेष संवाददाताका कहना है कि दर्शक-गैलरीमें कुल ४० व्यक्ति थे, जिनमें कई भारतीय भी थे। और बैठक आरम्भ होनेपर पार्लमेंटके ६०० में से केवल ३५ सदस्य उपस्थित थे। भारत-मन्त्रीका भाषण शुरू होनेके बाद कई सदस्य और आने शुरू हुए और बादमें उनकी संख्या ५३ हो गई। सर जान एण्डरसनका भाषण लम्बा होगा, यह समझकर एमरी साहब कदाचित् अपनी पत्नीके लिए गैलरीका टिकट बनवाने बाहर चले गए। 'अमृतबाज़ार पत्रिका'के विशेष संवाददाताका कहना है कि श्री एमरी पहले बोलनेवाले थे; पर ग़लतीसे पहले बोलने लगे श्री पैथिक लारेंस। फिर भी श्री एमरीने अपने विभाग द्वारा पहलेसे ही तैयार किया गया भाषण पढ़ दिया। ज्यों-ज्यों वे अपना भाषण पढ़ते गए, गृहमें निर्जीवता आती गई। जब उन्होंने लार्ड लिनलिथगोके कार्योंका उल्लेख किया, तब भी यह निर्जीवता बनी हुई थी। पर जब कुछ टोरियोंने लार्ड लिनलिथगोका नाम आनेपर हर्षध्वनि की, तो सवश्री सिमूर काक्स, सिल्वरमैन और कोवने व्यंग्यपूर्वक कहा—'हर्ष-ध्वनि नहीं, उनपर मुक़दमा चलना चाहिए!'

निश्चय ही लार्ड लिनलिथगोपर (और सर जान हरबटपर भी) भारतके खाद्य-सम्बन्धी घोटालेके लिए पार्लमेंटमें मुक़दमा चलाना औचित्य, नैतिकता और न्याय-नीतिका प्राथमिक तकाज़ा है। पर आज अंगरेज़ोंमें हेस्टिंग्ज़ और क्लाइव चाहे जितने हों, एडमण्ड बर्ककी-सी मेधा और दृढ़तावाले पार्लमेंट-सदस्य कितने हैं? भले ही लार्ड लिनलिथगोसे शासनके इस भयंकर दुरुपयोग और ग़ैरज़िम्मेदारीके लिए कोई जवाब तलब न हो; पर 'ग्लासगो-हेराल्ड'के ये शब्द क्या वे भूल सकेंगे—"यह एक दुखान्त घटना है कि हमारे ज़मानेके एक वाइसरायके कालमें, जिसने अपने-आपको खेतीके साथ एकरूप कर दिया था, भारत-भूमिमें फिर ऐसा भयंकर अकाल आया, जो कि अब तक अज्ञात था।" फिर भी हमारे लिए यह कम आश्चर्यकी बात नहीं कि पार्लमेंटमें ऐसे वाइसरायके कार्योंकी प्रशंसा हो और टोरी हर्ष-ध्वनि द्वारा उनके यशमें चार चाँद लगानेकी हास्यास्पद चेष्टा करें।

जो भी कुछ हो, इन सब बातोंसे यह तो सुस्पष्ट है ही कि ब्रिटिश अधिकारियों और पार्लमेंटके सदस्योंको भारतीय जनताके प्राणों और हितोंकी कितनी चिन्ता है! प्रधान-मन्त्री चर्चिलने तो इस खाद्य-बहसमें आने तककी भी ज़रूरत नहीं समझी—जब कि यूरोपके छोटेसे छोटे देश या दलका मामला दरपेश होनेपर वे न सिर्फ़ दौड़े-दौड़े आते ही हैं, बल्कि सवाल-जवाब और बहसके लिए पूरी तैयारी भी करके आते हैं। माननीय जयकरके शब्दोंमें कहा जा सकता है—"इससे वह पुराना अन्ध-विश्वास निराधार साबित होता है कि पार्लमेंटके ये क़रीब ६०० व्यक्ति ७००० मील दूरसे भारतका शासन कर सकते हैं। क्या अब इस धोखे और दिखावेका अन्त करनेका समय नहीं आ गया है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़ोर-ज़बरदस्ती कब तक ?

'माई डियर चर्चिल' (विक्टर गोलांज़, लंदन, मार्च १९४१) नामक पुस्तकके लेखक 'पापुलस'ने ब्रिटिश मन्त्रियोंके नाम बड़े स्पष्टोक्तिपूर्ण पत्र लिखे हैं। श्री एमरीके नाम लिखे गए पत्रमें उन्होंने कहा है—"बलपूर्वक भारतका शासन करते रहना, ब्रिटेनकी शक्तिके बाहर और उसके उन घोषित उद्देश्योंके प्रतिकूल है, जिनमें कहा गया है कि यह युद्ध लोकतन्त्रके लिए लड़ा जा रहा है।...भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध भारतपर शासन करनेका क्या ग्रेट-ब्रिटेनको तनिक भी अधिकार है, जो कि हिटलरको नार्वे या हालेण्ड या अधिकृत फ्रांस या अगर वह ब्रिटेनपर भी अधिकार कर सके, तो उसपर शासन करनेका नहीं है ? अगर हम भारतमें तलवारके अधिकारको मानते हैं, तो हमें स्वाधीनता और लोकतन्त्रके नेता होनेका दम भरने अथवा इनके नेताओंसे सहायताकी आशा करनेका क्या अधिकार है ? या क्या स्वाधीनता और लोकतन्त्र केवल उन्हींके लिए हैं, जिनकी चमड़ी गोरी है ? यह अन्याय ही नहीं, मूर्खताकी पराकाष्ठा है कि आप भारतीय लोकमतके उन सैकड़ों नेताओंको जेलोंमें डाले हुए हैं, जो भारतके प्रश्नको लेकर मैत्रीपूर्ण समझौता करनेके सर्वाधिक पक्षपाती हैं।...आप उस तरह भारतका शासन नहीं कर सकते, जिस तरह आपके पूर्वजोंने १९वीं सदीमें किया था। अगर तलवार ही से आपको भारतमें शासन करना है, तो आपको उसपर २०वीं शताब्दीकी—नात्सी मापदण्डोंकी-सी—धार भी चढ़ानी होगी। आपको सब भारतीय नेताओंको नज़रबन्द-कैम्पोंमें बन्द करना होगा और उन्हें गोलीसे उड़ाना होगा। पर प्रिय एमरी, आप ऐसा नहीं कर सकते—और आप स्वयं भी जानते हैं कि आप ऐसा नहीं कर सकते।"

इसी पत्रमें भारतके युद्धमें शामिल किए जाने और उसकी राष्ट्रीय आकांक्षाके सम्बन्धमें आपने लिखा है—"भारतमें बहुत अधिक विक्षोभ इस बातसे फैला है कि उसे बिना उसकी अपनी स्वीकृतिके युद्धमें घसीटा गया है। उसे ब्रिटिश साम्राज्यके अधीन देशकी हैसियतसे जबरन युद्धमें शामिल किया गया है। यह साम्राज्यवादी परम्पराके अनुकूल ही है। १९१४ में भी ऐसा ही किया गया था ; पर तब कोई विक्षोभ नहीं फैला था। किन्तु १९१४ से अब तक बहुत-कुछ बदल गया है। भारतको औपनिवेशिक दर्जा देनेका वादा किया गया है—किन्तु दिया नहीं गया है—जब कि भारतीय राष्ट्रीयता आज उससे कहीं आगे बढ़ गई है।" अन्तमें आपने श्री एमरीसे कहा है कि वे ब्रिटिश युद्ध-मन्त्रिमंडलसे भारतको औपनिवेशिक दर्जा नहीं—क्योंकि सम्भव है भविष्यमें ब्रिटिश साम्राज्य ही न रहे, जिसका कि वह उपनिवेश कहला सके—शीघ्र ही, और अभी ही, कुछ ठोस अधिकार देनेका अनुरोध करें।

श्री एमरीको हटाया जाय

पर हमें खेद है, 'पापुलस' महोदयको श्री एमरीकी बुद्धि, विवेक, सूझ और समझके बारेमें काफ़ी मुग़ालता मालूम होता है। अब तक उन्होंने भारतके सम्बन्धमें जो वक्तव्य दिए हैं, उनसे न केवल यहाँकी स्थिति ही घोटालेमें पड़ी है, बल्कि उनकी ग़लतबयानियोंसे उनकी और ब्रिटिश सरकारकी अयोग्यता एवं अदूरदर्शिताको लेकर लोगोंमें और भी अधिक क्षोभ फैला है। भारत और ब्रिटेनके सम्बन्धोंमें तनाव और कटुता लाने तथा उन्हें बढ़ानेका इतना काम शायद ही किसी दूसरे भारत-मन्त्रीके वक्तव्योंने किया हो, जितना श्री एमरीकी फ़िकरेबाज़ियों, ग़लतबयानियों और तानेज़नीने। अतः भारत और ब्रिटेनके बीच किसी भी समझौते या सद्भावके लिए प्राथमिक आवश्यकता इस बातकी है कि एमरी साहबको यथाशीघ्र विदा किया जाय।

'रिनाल्ड्स न्यूज़', 'डेली वर्कर' आदि ब्रिटेनके कई पत्रोंने श्री एमरीके हटाए जानेकी माँग की है। 'न्यूज़ आफ़् दि वर्ल्ड'के राजनीतिक संवाददाताने श्री एमरीके भाषणोंसे फैले असन्तोष और विक्षोभका भलीभाँति चित्रण किया है। 'अमृतबाज़ार पत्रिका'के विशेष संवाददाताका कहना है कि अनुदारदली पार्लमेंट-सदस्य तक श्री एमरीसे ऊब गए हैं और चाहते हैं कि उन्हें फौरन हटाया जाय। 'हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड'के विशेष संवाददाताने तो यहाँ तक लिखा था कि खाद्य-बहसके समय ही श्री एमरीके हटाए जानेकी माँग की जायगी। पर न-जाने क्यों, ऐसा नहीं किया गया। बर्मिंघममें बोलते हुए श्री पाम दत्तने भी श्री एमरीके हटाए जानेकी आवश्यकता एवं अनिवार्यतापर ज़ोर दिया है। अब समय आ गया है, जब ब्रिटिश लोकमतको अपने शासकोंपर इस बातके लिए ज़ोर डालना चाहिए कि वे युद्ध-स्थिति और उसके खतरोंकी ओटमें उन आदर्शों तथा सिद्धान्तोंकी और अधिक हत्या न करें, जिनके लिए वे यह लड़ाई लड़नेकी डींग हाँकते हैं।

पर अकेले श्री एमरीके हटनेसे या उनकी जगह कोई दूसरा व्यक्ति आनेसे ही भारतीय लोकमत सन्तुष्ट न होगा। भारतके सम्बन्धमें दिए गए उनके वक्तव्योंकी अपूर्णता, असत्यता और असंगतिसे न केवल उनकी अपनी अयोग्यता, अदूरदर्शिता तथा ग़ैर-ज़िम्मेदारी ही सिद्ध होती है, बल्कि उनके इण्डिया-आफ़िस तथा भारतीय संवाददाताओंकी भी। गत १४ अक्टूबरको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने पार्लमेंटमें बंगालके अकालसे प्रतिदिन १००० व्यक्तियोंके मरनेकी बात कही थी। 'स्टेट्समैन'ने इस असत्यका खण्डन करते हुए यह संख्या ९ और ११ हज़ारके आसपास बतलाई है। पं० हृदयनाथ कुँजरूने इसे ५० हज़ार और श्री के० सन्तानमने एक लाख बतलाया है। इस एक बातसे ही स्पष्ट है कि श्री एमरीको भारतकी वस्तुस्थितिका कितना ज्ञान है, और अगर असली स्थितिका ज्ञान है, तो वे उसे किस रूपमें पार्लमेंटके सामने रखकर न केवल भारत, बल्कि ब्रिटेनकी जनताको भी धोखा दे रहे हैं। अतएव उनके पदके साथ ही इण्डिया-आफ़िस के खर्चीले ढकोसलेका भी खात्मा किया जाय। अब ७००० मील दूरसे भारतकी स्थितिको देखने-सुनने और ४० करोड़ लोगोंके भाग्यके साथ जुआ खेलनेके इस साम्राज्यवादी और सर्वथा अलोकतान्त्रिक दिखावेका अन्त कर देना ही लोकतन्त्रकी सबसे बड़ी सेवा तथा सहायता है।

उपनिवेशोंकी नत्थीमें भारत !

जब भारतकी आज़ादीका सवाल ब्रिटेनके अमरीकन साथियोंसे, उनके सम्मिलित युद्ध-उद्देश्योंके आधारपर, सीधा जवाब माँगता है, तो वे यह कहकर अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं कि यह ब्रिटेनका घरेलू प्रश्न है और अमरीका इस मामलेमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। पर जब उनका और ब्रिटेनका कोई आपसी मामला दरपेश होता है, तो फ़ौरन वे भारत—और खासकर उसकी वर्त्तमान स्थिति—के भविष्यके बारेमें बड़ी तत्परतासे चुनौती देते नज़र आते हैं। मास्को-कांफ्रेंसके बाद निकले वक्तव्यकी टीका करते हुए कुछ अमरीकन तटस्थतावादियोंने कहा है कि इसमें ब्रिटेनकी भारत-सम्बन्धी नीतिके बारेमें कुछ भी नहीं कहा गया है। इसकी ब्रिटेनमें क्या प्रतिक्रिया हुई, हमें नहीं मालूम; पर लार्ड-सभामें लार्ड स्ट्रेबोल्गी द्वारा एक संक्षिप्त इंडिया-बिलके पेश किए जानेका संवाद अवश्य भारत पहुँचा है। इसे लार्ड स्ट्रेबोल्गीने 'पीयर'की व्यक्तिगत हैसियतसे पेश किया, मज़दूर-दलकी ओरसे नहीं (जिसके कि आप प्रतिनिधि हैं)। इसका एकमात्र उद्देश्य था १९३१ के वैस्टमिंस्टर-विधानमें दी गई उपनिवेशोंकी सूचीमें भारतका नाम नत्थी कर देना—१९३५ के भारतीय विधान-क़ानूनको रद्द या संशोधित करना नहीं। बिलमें इस बातका भी उल्लेख था कि भारतका भावी विधान जनताकी पंचायत द्वारा या अन्य प्रकारसे बादमें तय किया जाय। लार्ड स्ट्रेबोल्गीने बिलको भारतीय राजनीतिक ज़िच दूर करनेका प्रयत्न बतलाते हुए गत ३० जूनको गिल्ड-हालमें श्री चर्चिल द्वारा दिए गए उस भाषणकी ओर संकेत किया, जिसमें भारतीय युद्ध-सेवाओंकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा था कि भारतको ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलमें पूर्ण सन्तोष मिलेगा।

पर दुर्भाग्यवश लार्ड स्ट्रेबोल्गीके इस बिलका प्रथम वाचन भी न हो सका और बिना प्रथम वाचन तथा मत-विभाजनके ही लार्डोंने इसे ठुकरा दिया। अगर इसके साथ लार्ड स्ट्रेबोल्गीका—जो भारतके परम हितैषी हैं—नाम न जुड़ा होता, तो हम इसे एक साम्राज्यवादी बेहूदा मज़ाकसे अधिक और कुछ नहीं समझते। पर हमें आश्चर्य है, लार्ड स्ट्रेबोल्गीके दिमाग़में यह बात कैसे आई कि सिर्फ़ १९३१ के वैस्टमिंस्टर-विधानमें उपनिवेशोंकी सूचीमें भारतका नाम नत्थी कर देने-मात्रसे ही उसकी राजनीतिक समस्या सुलझ जायगी और ४० करोड़ भारतीय सन्तुष्ट हो जायँगे? फिर उन्हें यह भी सोचना चाहिए था कि सर्वश्री एमरी, चर्चिल, एण्डरसन और क्रेनबोर्न क्या आसानीसे ऐसा होने देंगे? और अगर एक क्षणके लिए हम मान भी लें कि बिल पास हो जाता है, तब क्या १९३५ के प्रतिगामी विधान—गवर्नरों और वाइसरायके विशेषाधिकारों—को बरक़रार रखकर भारतको उपनिवेश बनाना साफ़-साफ़ धोखा और कपट नहीं है? अधिक दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि लार्ड स्ट्रेबोल्गी-जैसे ज्ञान और अनुभव-वृद्ध मज़दूर-सदस्य भी अब तक यह नहीं समझ और महसूस कर पा रहे कि आजका भारत उपनिवेश बननेकी अवस्थासे बहुत अधिक आगे बढ़ चुका है। जनताके प्रतिनिधियोंको आत्म-निर्णय और शासनाधिकारोंसे वंचित रखकर, देशकी अर्थनीतिक दुरवस्था और राजनीतिक प्रतिगामिताको थोथे वादों तथा प्रोपेगण्डाके बलपर बरक़रार रखकर, भारतकी ग़ुलामीपर 'उपनिवेश'का साइनबोर्ड टाँगना बहुत बड़ी आत्म-प्रवंचना होगी। ऐसी लीपा-पोतीसे अंगरेज़ सिवा अपने और किसीको धोखा नहीं दे सकते।

भारत-सरकारकी विफलता

बंगालके अकाल ग्रस्तोंकी यथासमय उचित मदद करनेमें प्रान्तीय मन्त्रिमंडलका दोष और शिथिलता तो है ही; पर उससे कहीं अधिक दोष है भारतकी केन्द्रीय सरकारका। जब बंगालकी अवस्था बदसे बदतर होती चली जा रही थी, भारत-सरकार उसकी असली स्थितिसे आँख मूँदनेका ढोंग रच रही थी। उसकी इस शिथिलता, दुर्बलता और अयोग्यताकी अनेक ग़ैर-सरकारी (और ग़ैर-कांग्रेसी) प्रमुख व्यक्तियों तथा भारतके अधगोरे और विलायतके गोरे पत्रोंने भी अस्पष्ट आलोचना की है। जब स्थिति सँभल और सुधर सकती थी, तो सिन्धने गेहूँ और चावल बंगाल भेजनेसे साफ़ इन्कार कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार-सरकारने बंगालके लिए खरीदे हुए चावल और दीगर क़िस्मका अनाज बाहर जानेसे रोक दिया। उड़ीसाने अपने सम्भावित अकालके कारण बंगालकी सहायतामें कोताई की। बम्बई-सरकारने बंगालसे हटाए गए बुभुक्षित बच्चोंको अपने प्रान्तमें नहीं आने दिया। एक ओर बंगालमें बुभुक्षितोंकी मृत्यु-संख्या बढ़ती गई और दूसरी ओर प्रान्तीय अधिकारियोंकी संकीर्णता तथा अदूरदर्शिताका यह तमाशा भी चलता रहा और केन्द्रीय सरकार 'रामको रिझाऊँ या मनाऊँ मैं रहीमको'की दुविधामें फँसी अकर्मण्य बनी बैठी रही। खाद्य-कान्फ्रेंस और ग्रीगोरी-कमेटीके सुझावोंपर भी तत्परतासे प्रभावपूर्वक अमल नहीं किया जा सका। मार्च १९४३ की मूल खाद्य-योजना इस मास तक भी कार्यान्वित नहीं हो पाई है। बंगालके सिविल-सप्लाई-मन्त्री श्री सुहरावर्दीने कहा है कि उन्हें अक्टूबरके आरम्भ तक केन्द्रीय सरकारसे भूखोंमें बाँटनेके लिए कुछ भी नहीं मिला ('बम्बई-क्रानिकल', १२ अक्टूबर, १९४३)।

पर शायद इसमें उन लोगोंका, जो आज अपनी खुश-क़िस्मतीसे वाइसरायकी शासन-परिषदकी कुर्सियाँ सुशोभित कर रहे हैं, विशेष दोष न हो। जिन कुर्सियोंपर वे आज आसीन हैं, वे किस हद तक उनके उपयुक्त अथवा स्वयं वे किस हद तक उनके योग्य हैं, यह तो वे स्वयं ही बता या जान सकते हैं; पर इतना हम अवश्य जानते हैं कि खाद्य-सदस्यकी इधर खासी अदला-बदली हुई है। ऐसा न होनेपर भी कोई खास फ़र्क़ शायद न पड़ता। फिर भी मुस्लिम-लीगकी कार्य-समितिके सदस्य काज़ी मोहम्मद ईसाके शब्दोंमें "केन्द्रीय सरकार खाद्य-समस्याको हल करनेमें बुरी तरह नाक़ामयाब हुई है। उसकी इस नाक़ामयाबीका सबब यह है कि वाइसरायकी शासन-परिषद किसीकी प्रतिनिधि नहीं है—न उसमें हिन्दुओंका प्रभाव है और न मुसलमानोंका।" ('हिन्दू', ३१-१०-४३)। न हो, मगर चर्चिल और एमरी साहबको तो है ही! और इन्हींको भारतीयोंका असली प्रतिनिधि बताकर वे आज भारतके राजनीतिक ज़िचपर पर्दा डाले हुए हैं।

हमें अपना शासन चाहिए!

आदमी सारी दुनियाको चाहे धोखा दे ले; पर वह अपने-आपको कदापि धोखा नहीं दे सकता। हम चाहते हैं कि ब्रिटेनके अधिकारी इस अकाट्य एवं असंदिग्ध यथार्थताको झुठलानेके बजाय समझें, महसूस करें और अब भी सद्बुद्धि, विवेक तथा दूरदर्शितासे काम लें। भारतने इस युद्धमें कभी अड़चन डालनेकी परोक्ष रूपसे भी चेष्टा नहीं की; अपने, ब्रिटेनके और विश्वके हितमें उसने सदा जर्मन-जापानी-दस्युओंके नाशकी ही कामना की है; ब्रिटेनका अहित और अशुभ उसने कभी नहीं चेता। पर आज जब दुनियाके छोटे-छोटे देश आत्म-निर्णय और स्वाधीनताकी माँग कर रहे हैं और स्वयं ब्रिटेन उनके इस जन्मसिद्ध अधिकारको न सिर्फ़ स्वीकार ही कर रहा है, बल्कि उसकी सिद्धिके लिए अपना अमित खून और धन भी बहा रहा है, भारत उसकी गुलामीमें सन्तुष्ट रहकर उसका मुँह काला करवानेकी धृष्टता कैसे कर सकता है?—और विशेषकर उस हालतमें, जब कि उसका यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक भारत गुलाम रहेगा, साम्राज्यवादियोंमें प्रतिद्वन्द्विता, विश्वासघात, अशान्ति और युद्धकी सम्भावना ठोस रूपमें बनी रहेगी तथा भारतका स्वाधीन होना न केवल भारत और ब्रिटेनके लिए ही, बल्कि विश्व-शान्ति और विश्व-मानवताके लिए भी एक बहुत बड़ी न्यामत होगा।

श्री चर्चिल और एमरी तक हमारी आवाज़ शायद न पहुँच सके; पर लार्ड वेवल तक तो वह पहुँच ही सकती है। वे विश्व-इतिहासकी धाराके एक विशेष महत्त्वपूर्ण घुमावपर भारत आए हैं, अतः उनकी ज़िम्मेदारियाँ शान्ति-कालके वाइसरायकी अपेक्षा कहीं अधिक और पेचीदा हैं। ऐसे नाज़ुक समयमें उनकी तनिक शिथिलता या छोटी-सी भूल भी हिमालयकी-सी भूलका-सा अनर्थ कर सकती है और समझ, सूझ तथा साहसका ज़रा-सा परिचय भी न केवल भारत या ब्रिटेनका, बल्कि विश्व-मानवताका बहुत बड़ा कल्याण एवं हित-साधन कर सकता है। भारतकी समस्या आज ब्रिटेन या संयुक्त-राष्ट्रोंके ही नहीं, लार्ड वेवलके भी विवेक, सूझ और कर्त्तव्य-परायणताकी परीक्षा है। माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके तीनों ऐतिहासिक पत्र और सर एच० पी० मोदी तथा श्री नलिनीरंजन सरकारका विचार एवं सुझावपूर्ण वक्तव्य वे अब तक पढ़ ही चुके होंगे। श्री० के० एम० मुंशीसे भेंट भी वे कर चुके हैं। इन सुयोग्य राजनीतिज्ञोंसे अधिक हम उन्हें क्या कह या सुझा सकते हैं? हम उनका ध्यान गत ८ और २२ सितम्बरको लन्दनमें हुई उनकी संवर्द्धनाके अवसरपर दिए गए उनके भाषणों—और विशेष रूपसे १६ सितम्बरो पिलग्रिम-भोजके अवसरपर कही गईं भारतके राजनीतिक ज़िच-सम्बन्धी बातों—की ओर आकृष्टकर उनसे पूछना चाहते हैं कि 'दिमाग़ी बटुए'में आखिर क्या है और उसे हमको तथा हमें उसे देखनेका सौभाग्य कब प्राप्त होगा?

मुद्रक और प्रकाशक : श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar